शुक्रनीतिः

'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याभ्यां समुपबृंहिता

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र

शुक्रनीतिः

॥ श्रीः ॥
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२७४

महर्षिशुक्राचार्यविरचिता

शुक्रनीतिः

श्रीमज्जीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्यकृतव्याख्योपेता
तथा
'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याभ्यां समुपबृंहिता

भाग-

व्याख्याकार
डॉ॰ जगदीशचन्द्र मिश्र
साहित्याचार्यः, व्या॰ शा॰
एम॰ ए॰ (द्वितीय), पी-एच्॰ डी॰, डिप्-इन-एड्

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

पुनर्मुद्रित संस्करण : 2009
मूल्य : 350.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
दूरभाष: (011) 32996391,23286537, फैक्स: (011) 23286537

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

भूमिका

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा, उसी तरह उसकी गतिविधि उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। समाज के रूप-रंग, बुद्धि-ह्रास, उत्थान-पतन, समृद्धि, दुःस्थिति के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी तरह सामाजिक रीति, नीति और संस्कृति का प्रधान वाहक तत्कालीन साहित्य होता है। नीति-रीति की आत्मा तत्कालीन साहित्य के भीतर से, संस्कृति के माध्यम से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार, नीति का समतुल प्रचार, रीति के व्यापक स्वरूप का साधन साहित्य ही होता है। नैतिकता का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के ऊपर आश्रित रहता है तो वहाँ का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता। किन्तु यदि नैतिकता के भीतर मानवता की भव्य भावनाएँ हिलोरें मारती रहती हैं तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी नैतिकता की पृष्ठभूमि से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। नीतिशास्त्र से सम्बद्ध साहित्य सामाजिक भावना तथा नैतिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का दर्पण है तो नैतिक आचार तथा मानवीय विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने हेतु नैतिकता के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने का वाहन होता है।

'शुक्रनीति' पूर्वोक्त सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। शुक्रनीति भारतीय समाज के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। भारतवर्ष में नैतिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन-संग्राम के विकट संघर्ष से विमुख न होकर मानव-जीवन की सार्थक उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है।

संस्कृत-साहित्य में नीति-वर्णनपरक विशेष ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। 'शुक्रनीति' भी उनमें से एक है, जिनमें सूत्रात्मक पद्धति से जीवन को सुखमय तथा लाभप्रद बनाने के लिए उपयोगी विषयों का वर्णन किया गया है। शुक्रनीति की अपनी एक विशिष्ट किन्तु सुबोध शैली है। प्रायः सम्पूर्ण ग्रंथ में अनुष्टुप् वृत्तों का प्राधान्य है। इनमें स्वाभाविकता एवं सरलता इतनी है कि ये यथाशीघ्र पाठक या श्रोताओं के हृदय तक पहुँचकर अपना प्रभाव जमाने में समर्थ होते हैं। शुक्रनीति के वास्तविक रचयिता के विषय में हमारा ज्ञान अधूरा है, विवादास्पद है, फिर भी इसका सम्बन्ध शुक्राचार्य से इतनी घनिष्ठता के साथ जुड़ा है कि इन श्लोकों को हम 'शुक्रनीति' के नाम से स्वभावतः पुकारते हैं। इसका मुख्य कारण आचार्य शुक्र का एक महनीय राजनीतिवेत्ता होना है। फलतः इनके व्यवहार सम्बन्धी श्लोकों के संग में राजनीति सम्बन्धी श्लोकों का सद्भाव मिलता है। शुक्रनीति के अनेक श्लोक मनुस्मृति में, महाभारत में तथा पुराणों में भी उपलब्ध होते हैं। इस विषय का विस्तृत अनुशीलन अंग्रेज विद्वान् डॉ० लुडविक अस्टर्नवाल ने अनेक ग्रंथों तथा निबन्धों में प्रस्तुत किया है।

संहिताकाल से ही विद्या की संख्या में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित रहे हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में चौदह विद्याओं का उल्लेख है। उनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा,

धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दस्, निरुक्त, ज्योतिष, ऋक्, यजु:, साम तथा अथर्व वेद (द्रष्टव्य—या॰ स्मृ॰ १।३) मनु ने भी इतनी ही विद्याएँ मानी हैं। विष्णुपुराण में आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के साथ अठारह विद्याओं को मान्यता दी गई है। छान्दोग्योपनिषद् में संक्षेपतः उन्नीस विद्याओं का उल्लेख है, परन्तु इन सबसे भिन्न शुक्रनीति में बत्तीस विद्याओं का निर्देश किया गया है (द्रष्टव्य—शु॰नी॰ ४/२६७ से ३०५)। कौटिल्य केवल चार विद्याओं को मानते हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, विद्या तथा चौथी दण्डनीति। दण्डनीति की प्रधानता कामन्दकीय और महाभारत में भी है। इस परम्परा का संकेत रामायण में भी है। बृहस्पति-सम्प्रदाय का कथन है कि केवल दो ही विद्याएँ हैं—वार्ता तथा दण्डनीति। परन्तु शुक्राचार्य के अनुसार एक ही विद्या है और वह है—दण्डनीति। 'दण्डनीतिरेका विद्या इत्यौशनसा तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धाः।' (अर्थशास्त्र पृ॰ १०) इनके कहने का तात्पर्य यह है कि दण्डनीति के बिना किसी भी विद्या की सुरक्षा नहीं हो सकती है। अतः सभी विद्याओं में दण्डनीति की प्रधानता है। दण्डनीति अपने-आप में पूर्ण है, जब कि अन्य विद्याएँ आंशिक हैं (द्रष्टव्य—शु॰ नी॰ १/४-५)। यही कारण है कि चार विद्याओं के समर्थक कौटिल्य ने भी इसे सर्वोच्च स्थान दिया है। छान्दोग्य उपनिषद् में उपयुक्त एकायन शब्द की व्याख्या आचार्य शंकर ने नीतिशास्त्र मानकर की है। नीतिविद्या सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है। महाभारत, स्मृति और अन्य पुराणों में नीतिविद्या की अनेकशः प्रशंसा की गई है। इससे इतना तो निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि परंपरागत भारतीय चिन्तकों ने नीतिविद्या की मानव-जीवन में विशिष्ट महत्ता स्वीकार की है। नैतिकता ही जीवन है, अनैतिक जीवन घृण्य है। नीतिपरक अनुचिंतन का प्रतिफल यही नीति है। मानवता की पृष्ठभूमि नैतिकता ही है। इसके बिना वेद, आगम, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र या अन्य किसी भी शास्त्रों का ज्ञान अधूरा है। इसलिए इस नीति की मानव-जीवन में इतनी अधिक महत्ता स्वीकार की गई है।

नीतिहीन अनैतिक जीवन मृत्यु से बदतर है। जीवन को केवल वे ही उपलब्ध होते हैं जो स्वयं के और सबके लिए इस नैतिकता के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसके अभाव में मनुष्य केवल शरीर मात्र है, जीवन नहीं और शरीर तो जड़ है, जीवन नहीं। आज सर्वत्र आतङ्कवाद, उग्रवाद और भौतिकता का प्रभुत्व इसी नैतिकता के अभाव का परिणाम है। इस नैतिक जीवन की अनादि अनन्त धारा से जिसका परिचय नहीं है, वह मिथ्या भ्रम में ही अनैतिक कर्म में सुख की खोज करता है। शरीर के अतिरिक्त और शरीर को अतिक्रमण करता हुआ अपने भीतर जो इस नैतिक जीवन का अनुभव नहीं कर पाते हैं, उनके जीवन पशु-जीवन से ऊपर नहीं उठ पाते। शारीरिक मिट्टी के घेरे से ऊपर उठकर जब व्यक्ति अपने कर्म में नैतिकता की ज्योति का अनुभव करते हैं तब वे सच्चे अर्थ में मनुष्य बन जाते हैं।

नीतिशास्त्र चाहे शुक्र का हो या देवगुरु बृहस्पति का अथवा मानवीय कर्म का विवेचक कूटनीतिज्ञ कौटिल्य का; सबका सार एक ही है, सबका रहस्य एक ही है। सबके प्रति आत्मवत् प्रीति ही नीति है, इससे भिन्न जो कुछ है वह अनीति है। इस पवित्र प्रीति की नीति में जो जितना अधिक प्रविष्ट होता है, उसका जीवन उतना ही अधिक नैतिक होता है। प्राणी के प्रति प्राणी का पवित्र प्रेम ही नीतिशास्त्र का नैतिक जीवन का मूलाधार है।

नीति शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'पाना' होता है; यानि जीवन पाना और जीवन को वही उपलब्ध करता है जो नीतिवान् है। 'णीञ् प्रापणे' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगा कर नीति शब्द का निर्माण होता है, किन्तु पाना एक सकर्मक क्रिया है। अतः इसके अर्थ की पूर्णता के लिए कर्ता, कर्म, अपादान तथा क्रिया का समाहार आवश्यक है। दूसरी बात यह भी है कि प्रापण एक प्रेरणार्थक क्रिया है। अतः इसके निश्चित रूप से दो कर्म होंगे। एक तो प्रयोज्यकर्ता और दूसरा सहयोगी। तात्पर्य यह होगा कि नीति एक आचारनिष्ठ व्यक्ति से प्रेरित वह शब्द है जो सदैव जीवन को उर्ध्वगामी बनाता है। इसीलिए कहा गया है–"नयनात् नीतिरुच्यते।" शुक्र ने प्रथम अध्याय के श्लोक संख्या ५६ में इसका विवेचन प्रस्तुत किया है। नीतिविद्या के अद्वितीय परिष्कारक भीष्म का कहना है कि चारों वर्णों के धर्म में जब कभी विप्लव होता है, जब कभी अनाचार, अनीति का बोलबाला होता है, उसका प्रतिरोध राजा का कर्तव्य बन जाता है।

"चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्म-सङ्कर-रक्षा च राज्ञां धर्मः सनातनः"॥ (म॰भा॰ शा॰प॰ ५६।१५)

राजनीतिप्रकाश में उद्धृत मत्स्यपुराण के अध्ययन से इस नीति शब्द का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है—

"स्वधर्मप्रच्युतां राजा स्वे स्वे धर्मे नियोजयेत्"।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी इस विचार की सम्पुष्टि की है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' कहकर प्रकारान्तर से इसी मत का संपोषण किया है। अतः यह स्पष्ट है कि नीतिवान् व्यक्ति का ही जीवन जीवन है; अन्यथा नीतिहीन जीवन पशु से भी बदतर है। 'नीति' इस एक शब्द में वह सब अणु छिपा है जो मनुष्य को पशु से भिन्न करता है। लेकिन इसमें शर्त इतनी ही है कि नैतिक जीवन तभी उपलब्ध होता है जब सबके भीतर आत्मानुभूति हो। क्योंकि नीति को ऊपर से आरोपित नहीं किया जा सकता। यह कोई वस्त्र नहीं है जिसे हम ऊपर से ओढ़ सके। यह हमारे आचरण की आत्मा है। इसका तो आरोपण नहीं, अपने आप सहज स्फुरण है। नैतिक जीवन एक चेतनावस्था है। नैतिकता कर्म नहीं है, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। इसे पाना ही दिव्य जीवन का आधार है। इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो सहज स्फुरित नीति रूप स्वभाव के अभाव में नैतिक जीवन होता है, वह सत्य नहीं है; क्योंकि ऐसे नैतिक जीवन का आधार किसी-न-किसी रूप में भय अथवा प्रलोभन ही होता है। फिर चाहे ऐसा भय या प्रलोभन लौकिक हो या पारलौकिक, कोई फर्क नहीं पड़ता। स्वर्ग के प्रलोभन या नर्क के डर से यदि कोई नैतिक बना है तो वह न तो नैतिक है और न पवित्र ही। ऐसा किसी सौदे में हो सकता है, सत्य में नहीं। नैतिक जीवन का आधार सत्यनिष्ठ है। अतः शास्त्रकारों ने यह निर्णय लिया है कि यदि व्यक्ति स्वयं नीतिनिष्ठ नहीं है तो इसका दायित्व राष्ट्रीय है। राष्ट्रनेता, जो प्राचीनकाल में राजा कहलाता था, का यह कर्त्तव्य है कि जनसमूह का विचार नैतिक क्यों नहीं है?

अनुचित मार्ग के अनुसरण के भी साधारणतः दो कारण हो सकते हैं—अज्ञान तथा अशक्ति। सज्जन हो या दुर्जन—दोनो ही कुमार्ग का अवलम्बन कर सकते हैं। लेकिन थोड़ा विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों के नैतिक आचरण के आधार अलग-अलग

हैं। सज्जन व्यक्ति यदि अनैतिक होता है तो निश्चय ही उसके पीछे उसका अज्ञान है। किन्तु दुर्जनों के अनैतिक आचरण के पीछे उसका अज्ञान नहीं प्रत्युत उसकी अशक्ति ही कही जा सकती है। यदि किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति किसी के आचरण में अनैतिकता है तो उसे अज्ञान तो नहीं कहा जा सकता, उस व्यक्ति को सज्जन भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु ठीक इसके विपरीत अज्ञानता के कारण यदि किसी का आचरण कलुषित है अथवा वह कुमार्गगामी बना है तो निश्चय ही उसे दुर्जन तो नहीं ही कहा जा सकता। अनौचित्य के इस अंधकार में ज्ञान की उपलब्धि होते ही उसका अनैतिक आचरण नैतिकता का पल्ला छूने लगता है। अतः इस देश के चिन्तकों ने नैतिकता को सहज स्फुरित जीवन की सहचर्या कहा है।

ऐसे अनुचित और अनैतिक आचरण के अवरोध के लिए शास्त्रकारों ने राष्ट्रनायक पर दायित्व सौंपा है। आज आतंकवाद, उग्रवाद या ऐसे अनैतिक संगठनों का जो बोलबाला है, उसका दायित्व किस पर होगा? ऐसी विषम स्थिति के लिए मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्र, देवगुरु बृहस्पति या मानवीय आचार के स्तम्भ कूटनीतिज्ञ कौटिल्य ने स्पष्ट शब्दों में साम, दाम, भेद तथा दण्डनीति का प्रयोक्ता राष्ट्रनायक को माना है। मनु ने स्पष्ट शब्दों में ६।१०९ श्लोक में कहा है—"सामादीनामुपायानां चतुर्णाम्।" इसी तरह याज्ञवल्क्य ने भी अपनी स्मृति के प्रथम अध्याय के ३४६वें श्लोक में—'उपायाः सामदानं च भेदो दण्डस्तथैव च' कहकर राष्ट्रनायक पर दायित्व सौंप दिया है। मत्स्यपुराण ने इन चार उपायों का महत्त्व तो बतलाया ही है, इसके अतिरिक्त उपेक्षा, माया अर्थात् कपट तथा इन्द्रजाल का प्रयोग भी सुझाया है। यद्यपि ये सभी उपाय तत्कालीन संदर्भ में एक विरोधी या शत्रुभूत राजा के संदर्भ में कहे गये हैं किन्तु इसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिवेश में भी उतनी ही युक्तिसंगत और महत्त्वपूर्ण है, जितनी पहले थी। व्यवहार-निर्वाह के लिए आज भी इनका महत्त्व असाधारण है। याज्ञवल्क्य ने अपनी मिताक्षरा के १।३४६ में इसकी उपादेयता को स्पष्ट रूप में स्पष्ट करते हुए कहा है कि यद्यपि ये सभी उपाय शत्रुभूत राजा के लिए हैं फिर भी समाज के अपकारक अनैतिक व्यक्तिमात्र के लिए इन उपायों का यथायोग्य, यथावसर प्रयोग आवश्यक ही नहीं बल्कि उचित भी है। ऐसे ही प्रयोग के अभाव में आज राष्ट्रीय समस्याएँ चाहे कश्मीर की घाटी में हों, आसाम के बागान में या पंजाब की उर्वरा भूमि में; उलझती जा रही हैं—

> **"एते सामादयः न केवलं राज्य-व्यवहार-विषयाः अपितु सकल-लोक-व्यवहार-विषयाः"॥**
>
> (मिताक्षरा, या॰ स्मृति)

हमारे शास्त्रकारों ने जो कुछ भी कहा है वह न तो समयसापेक्ष है और न व्यक्ति-विशेष के लिए उद्दिष्ट है। यह एक शाश्वत सत्य है, मानवीय सृष्टि का महत्त्वपूर्ण रहस्य है। न इसे किसी युग में बाँधा जा सकता है या न किसी व्यक्ति-विशेष के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह कल के लिए जितना सत्य था, आज के संदर्भ में उतना ही उपादेय है और भविष्य के लिए भी उतना ही अभिनव। समस्या व्यक्तिनिष्ठ होती है, समाधान भी तदनुकूल ही होना चाहिए। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने इन उपायों में भी अलग-अलग व्यवस्थाएँ निर्धारित की हैं। सबके लिए सभी उपायों का प्रयोग अनुचित ही नहीं अनर्गल भी सिद्ध हो सकता है। अपराध या अपराधी के अनुसार इन उपायों का प्रयोग हमारे शास्त्रकारों ने स्पष्टरूप से निर्दिष्ट किया है। इतना तो बड़ी सरलता से समझा जा ही सकता है कि यदि कोई भूला आदमी

अज्ञानतावश अपराधियों के संपर्क में आकर कोई जघन्य कर्म करता है तो उसे "साम" से शान्त किया जा सकता है। मत्स्यपुराण में कहा है—

"साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृहणन्तीति पराश्रुतिः।
तथाऽप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम्"॥ (२२१।८)

इसी तरह दान और भेद का भी प्रयोग यथाविहित यथावसर व्यक्ति-विशेष के लिए निर्दिष्ट किया गया है, किन्तु जो दुर्जन हैं, दुर्वृत्त हैं, आसक्तिपूर्वक दुष्टता पर उतारु हैं, उनके लिए दण्ड के सिवा और कोई अन्य उपाय संभव नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने हमें चेतावनी दी है–

"यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।
दण्डेनैव प्रसह्यैतान् शनकैर्वशमानयेत्"॥ (मनु॰ ७।१०८)

इस स्तर पर शुक्राचार्य ने भी स्पष्टरूप से कहा है—"दण्डः पूज्यप्रहीणके।" किन्तु आचार्य शुक्र ने 'दण्ड' प्रयोग में भी पूर्ण सतर्कता की आवश्यकता पर बल दिया है। अनुचित दण्ड से जनसामान्य में आतङ्क फैल जाता है और प्रशासन का आधार शिथिल पड़ने लगता है। जहाँ एक हत्यारा के लिए प्राणदण्ड समुचित है, वही एक चोर के लिए भी वही दण्ड घातक सिद्ध हो सकता है। इसीलिए शुक्र ने दण्डविधान से पूर्व नैतिक आचरण की सराहना की है तथा नैतिकता का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

यही कारण है कि आज के प्रगतिशील विचारक आधुनिकता के नाम पर नीतिशास्त्र के अनुचिन्तन को दकियानूस कहकर बहुत अधिक पीछे नहीं ढकेल पा रहे हैं। यह सच है कि मिथ्या नैतिक जीवन के आधार को आधुनिक ज्ञान के विकास ने विनष्ट कर दिया है। मिथ्या नैतिकता से तात्पर्य यह है कि भय और प्रलोभन पर कोई वास्तविक नैतिक जीवन न पहले कभी मान्यता प्राप्त किया है और न ऐसा हो भी सकता है। हमारे शास्त्रकारों ने ऐसे नैतिक जीवन को कभी नैतिक माना ही नहीं है। उनकी दृष्टि में इससे तो नैतिकता का एक मिथ्या आभास ही पैदा हो सकता है और उससे आत्मविकास नहीं आत्मवंचना ही हो सकती है।

आज आधुनिक विचारकों के सामने अनीति नग्न हो गई है अर्थात् अधिक स्पष्ट हो गई है। धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, स्वर्ग-नर्क सबकी मान्यताएँ थोथी दलील मालूम पड़ने लगी हैं। परिणामतः उन्हें न उनके प्रति कोई आकर्षण रह गया है और न उससे कोई भय ही; फिर जो होना चाहिए वही हो रहा है।

आज की अनैतिकता और अराजकता का यही मूल कारण है। नीति नहीं, नीति का आभास ही टूट गया है और यह शुभ ही है कि हम एक भ्रम से बाहर निकल आये हैं। किन्तु हमारे सामने एक बड़ा उत्तरदायित्व भी आ गया है, वह है—सम्यक् नैतिक जीवन के लिए नया आधार खोजने का। वह आधार भी सदा से है।

शुक्र, बृहस्पति, कौटिल्य, महावीर, बुद्ध और गाँधी की अन्तर्दृष्टियाँ मिथ्या नैतिक आधारों पर खडी नहीं हैं। उन लोगों ने भी नीति के अनेक प्रभेदों का यथावसर यथाव्यक्ति प्रयोग किया है। सम्यक् नीति वही है जो सद्विचारपूर्वक अपराधियों तक पहुँच जाय। एक बार

सम्राट् अकबर के दरबार में कुछ विदेशी नीतिविशेषज्ञ उपस्थित थे। उस समय सम्राट् अकबर न्यायाधिकरण का प्रयोग कर रहा था। उसके सामने चार चोरों को खड़ा कर दिया। पहले चोर की अकबर ने भर्त्सना की, धिक्कारा और छोड़ दिया। दूसरे को उसने काफी डाँट लगाई और भरी सभा में बेइज्जत किया, फिर उसे छोड़ दिया। तीसरे चोर को उसने चार जूते लगवा कर बाहर निकलवा दिया। चौथे चोर का सिर मुँडवा कर गधे पर बैठाकर, उसके गले में पुराने फटे जूतों का हार पहनवाकर, शहर में घुमाने का आदेश देकर छोड़ दिया। अपराध एक, दण्ड अनेक। विदेशी पर्यटकों को ये बातें अखरीं। उसने सम्राट् से विनम्र प्रार्थना की। आपकी नीति की विदेश में भी प्रशंसा की जाती है। सच पूछिए तो यही देखने हम लोग यहाँ आये। परन्तु यहाँ आकर हमने जो कुछ देखा, वह हमारी समझ से बाहर है। क्योंकि अपराध एक और दण्ड अनेक। सम्राट् अकबर मुस्कराता रहा। कुछ देर बाद उसने अपने गुप्तचर शाखा के प्रमुख को इनके साथ कर दिया और कहा कि इन्हें उन चारों अपराधियों के घर तक घुमाकर ले आओ। ये विदेशी पर्यटक जब प्रथम अपराधी के घर पर पहुँचे तो वहाँ का दृश्य देखकर हतप्रभ रह गये। क्योंकि दरबार से लौटकर अपराधी ने ग्लानि के कारण आत्महत्या कर ली थी। उसके परिजन रो रहे थे। वहाँ मातम का सन्नाटा छाया हुआ था। दूसरे अपराधी के घर पर जाने से पता चला कि दरबार से लौटकर अपराधी घर के एक कमरे में बन्द हो गया है। रोते-रोते उसकी बद हालत है। वह किसी को अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता है। तीसरे अपराधी के यहाँ पहुँचने पर पर्यटकों ने देखा कि अपराधी अपनी गठरी बाँधकर कहीं जाने की तैयारी में लगा है। उससे जब पूछा गया कि कहाँ जा रहे हो? तो उसने जवाब दिया कि मैं यह देश छोड़ रहा हूँ। भरी सभा में मेरा पानी उतार दिया गया, अब मैं कौन-सा मुँह किसे दिखाऊँ? इसीलिए मैं अब देश छोड़कर जा रहा हूँ। इसके बाद चौथे अपराधी की तलाश में ये सभी आगे बढ़े। शहर में जुलूस निकाला गया था। अपराधी अपने विकृत रूप में गधे पर बैठा था। लोग उस पर चप्पल, जूते, कंकर, पत्थर फेंक-फेंक कर पीट रहे थे और वह आराम से गधे पर बैठा था। अचानक उसकी आँख उस भीड़ में खड़ी अपनी पत्नी पर पड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—यहाँ खड़ी क्या कर रही हो? घर जाओ। एक टब में गरम पानी, तौलिया और साबुन तैयार रखो। कुछ देर में ये लोग नाच-तमाशा कर मुझे छोड़ देंगे। मैं घर आ रहा हूँ। अब इन विदेशियों को सम्राट् अकबर की नीति का रहस्य समझ में आया। यही कारण है कि हमारे आचार्य शुक्र ने दण्डनीति के प्रयोग में बड़ी सावधानी बरती है। उन्होंने कहा है कि 'दण्डेन नीतिः' अर्थात् साम, दान, भेद और दण्ड में दण्ड की महत्ता स्वीकार की है। यही कारण है कि महाभारत में भी दण्डनीति का अत्यधिक माहात्म्य प्रस्तुत किया गया है और सभी उपायों में दण्ड को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पन्द्रहवाँ अध्याय महाभारत का शांतिपर्व दण्ड-प्रशंसा में ही लिखा गया है। नीति को दण्डनीति कहने का आधार भी प्रायः यही है। क्योंकि 'दण्ड' शब्द उपाय-विशेष वाचक होने के साथ-ही-साथ उपाय-सामान्य का भी पर्याय है। शुक्रनीति के चौथे सर्ग के चालीसवें श्लोक में कहा गया है—'येन सन्दम्यते जन्तुः उपायो दण्ड एव सः'। अतः नीति के साधन साम, दान आदि को दण्ड कहा जा सकता है और उसकी साध्य नीति को दण्डनीति। अथवा उपाय तथा उपेय नीति में अभेदोपचार के आधार पर भी नीति को दण्डनीति कहा जा सकता है। क्योंकि

दण्डप्रयोजक व्यक्ति भी औपचारिक रूप में दण्डपदवाच्य हो सकता है। अतः 'दण्डस्य नीतिः दण्डनीतिः' कहा जा सकता है।

मिताक्षरा १।३५८ के अनुसार माता, पिता, स्नातक, पुरोहित एवं संन्यासी तथा वानप्रस्थों को अदण्डनीय माना है। पर मिताक्षराकार ने इस 'अदण्ड्य' के पीछे एक कड़ी शर्त लगा दी है। इन्हें आचारवान् एवं चरित्रनिष्ठ होना आवश्यक है—"अदण्ड्यौ मातापितरौ, स्नातक-पुरोहित-परिव्राजक-वानप्रस्थाः श्रुतशीलशौचाचारवन्तः, ते हि धर्माधिकारिणः।" अब प्रश्न यह उठता है कि सामान्य व्यक्ति भी यदि आचारनिष्ठ एवं श्रुतशील है तो क्या वह दण्ड की परिधि में आ सकता है? ऊपर बताई गई शर्त से हीन कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो, अगर अपराधी है तो उसे दण्ड देना ही चाहिए। इस पक्ष के समर्थक मनु, याज्ञवल्क्य प्रभृति अन्य आचार्य भी हैं। जहाँ तक शुक्राचार्य का प्रश्न है तो ये तो विलक्षण क्रान्तिकारी हैं। अतः इनकी व्यवस्था भी क्रान्तिकारिणी ही है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है; और तो और अगर गुरु भी उद्धत हो, कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से शून्य हो, कुमार्गगामी हो तो उन्हें भी दण्डित किया जाय—

"गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥" (४।५०)

आचार्य शुक्र ने धर्म के रक्षक दण्ड को ही माना है। दण्डनीति के व्यवहार से राजा के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। इन्होंने दमन के अर्थ में ही दण्ड का प्रयोग किया है—"येन सन्दम्यते जन्तुः उपायो दण्ड एव सः।" व्यक्ति-विशेष या अपराध-विशेष के अनुसार झिड़कना, अपमानित करना, भूखे रखना, बाँधना, पीटना, धन हर लेना, देश निकाला देना, शिर मुँडवा देना, गदहे पर बैठाकर घुमाना, अंग-भंग करना तथा प्राणदण्ड देना सभी दण्डविधान के अन्तर्गत ही आते हैं। इन सबों का प्रयोग प्रशासक को स्वविवेक से करना चाहिए। दण्ड के भय से ही प्रजा अपने-अपने धर्म में स्थिर रहती है। प्रशासक के लिए दण्ड एक ऐसी शक्ति है—जिसके भय से दुर्बलों पर सबलों का आक्रमण नहीं होता, असत्य भाषण एवं कपटाचार से लोग डरते हैं, क्रूर कोमल बन जाते हैं, दुष्ट दुष्टता छोड़ देते हैं; यहाँ तक कि पशु भी दण्ड के भय से ही वशवर्ती हो जाते हैं। डाकू भाग जाते हैं, चुगलखोर अपनी जबान बन्द कर लेते हैं, आततायी डरते हैं, निर्भीक भयाक्रान्त रहते हैं तथा कर नहीं देने वाले करदाता बन जाते हैं। दण्ड ही एक ऐसी प्रक्रिया है—जिससे लोग डर कर कर्तव्यपालन में स्थिर रहते हैं। अतः प्रशासक को सदैव दण्डधर ही बने रहना चाहिए।

प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाने में आचार्य शुक्र ने इसीलिए 'दण्ड' पर इतना अधिक बल दिया है। फिर भी कुछ आचार्यों की दृष्टि में उपायचतुष्टय में कहीं 'साम' और कहीं 'दान' की महत्ता स्वीकार की गई है। मनु ने साम और दण्ड की महत्ता स्वीकार की है। 'सामादीनामुपायानां··· सामदण्डौ प्राशस्यन्ति' (७।१०९) अर्थात् राष्ट्र के अभ्युदय के लिए यथास्थान 'साम' और दण्ड ही प्रशस्त होना चाहिए। किन्तु ठीक इसके विपरीत कुल्लूक भट्ट ने तथा मत्स्यपुराण ने इन सबों की अपेक्षा 'दान' को महत्त्व दिया है। किन्तु विचारपूर्वक देखने पर मत्स्यपुराण के ये वचन 'सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्' अधिक उचित प्रतीत

नहीं होता। क्योंकि व्यवहारनीति के 'दान' में उत्कोच (Bribc) का भी सन्निवेश है। यह स्वेच्छा से दिये गये धार्मिक दान का पर्याय सिद्ध नहीं होता। तुलनात्मक दृष्टि से भी 'दान' का क्षेत्र संकुचित है और दण्ड का क्षेत्र विस्तृत। अतः राजनीति हो या व्यवहारनीति, 'दण्डनीति' ही सर्वोत्कृष्ट है—

शुक्रनीति एवं उसके रचनाकार

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर शुक्रनीति की विशिष्टता और महत्ता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसके अध्ययन से तत्कालीन भारतीय समाज, उसके चिन्तन और उसकी प्रवृत्ति पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। राजनीति सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान, जो सामान्यतः सार्वजनीन कहा जा सकता है, हमें इस ग्रन्थ से मिलता है। इस ग्रन्थ की अपनी विशिष्ट गरिमा है।

किन्तु वर्तमान शुक्रनीतिसार का रचयिता कौन है? इस पर एक प्रश्नचिह्न लग गया है। अनुचिन्तक, विवेचक एवं इतिहासविद् तीन खण्डों में विभक्त हैं। परम्परागत विचार के समर्थक अन्य साक्ष्य के अनुमोदक तथा आधुनिक विवेचक इस शुक्रनीतिसार के रचयिता भृगुपुत्र दानवगुरु शुक्राचार्य को नहीं मानते। इस अमान्यता के आधारभूत तर्क महत्त्वपूर्ण हैं। परम्परागत चिन्तक इसे शुक्राचार्य की रचना मानते हैं। इसमें वे परम्परागत एवं अन्तःसाक्ष्य को प्रमाण मानते हैं। परम्परा से इस ग्रन्थ को शुक्र की रचना मानी गई है। जहाँ तक अंतःसाक्ष्य का प्रश्न है तो शुक्रनीतिसार के चतुर्थ अध्याय के कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं। यथा—

"न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
काव्यैव नीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणाम्" ॥ (४।४२८)

X X

"शुक्रोक्तनीतिसारं यश्चिन्तयेदनिशं सदा।
व्यवहारधुरं वोढुं स शक्तो नृपतिर्भवेत्" ॥ (४।४२७)

यद्यपि उक्त प्रमाण एवं परम्परा से इस रचना के संस्रष्टा शुक्राचार्य प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्य वचनों एवं महाभारत के कथन से फिर इस निष्कर्ष पर एक प्रश्नचिह्न लग जाता है। महाभारत में कई स्थानों पर शुक्रनीति की चर्चा की गई है। उसमें दिये गये संकेत के अनुसार शुक्रकृत नीतिसारसंग्रह से यह संग्रह भिन्न प्रतीत होता है। क्योंकि महाभारत में शुक्रनीति में १००० (एक हजार) अध्याय की चर्चा की गई है, किन्तु इस संग्रह में केवल दो हजार दो सौ श्लोक मौलिक हैं तथा कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को मिलाकर कुल दो हज़ार चार सौ चौवन श्लोक हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि एक हजार अध्याय वाले ग्रंथ में मात्र २४५४ श्लोक का समावेश हो, यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। इस संदर्भ में एक पक्ष का यह भी कहना है कि शुक्राचार्य ने स्वयं अपने बृहद् ग्रंथ को लोककल्याण के निमित्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। दूसरा यह भी पक्ष है कि शुक्र नाम के किसी अन्य आचार्य ने इस ग्रंथ की रचना की है। तीसरा मत यह भी है कि अज्ञात नाम किसी विद्वान् ने इस ग्रंथ की रचना कर ख्याति की दृष्टि से शुक्राचार्य के नाम से प्रचारित किया है। इस संदर्भ में विशेष जानकारी के लिए History of Dharmashastra का प्रथम अधिकरण विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

आधुनिक इतिहासवेत्ताओं ने शुक्रनीति का मनन-चिन्तन कर ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रंथ में गुप्त साम्राज्य से उत्तरवर्ती तथा हर्षवर्धन से पूर्ववर्ती स्थिति का स्पष्ट रूप से वर्णन मानते हैं। गुप्तोत्तर काल में इस देश की जो परिस्थिति थी तथा उस परिस्थिति को नियंत्रण में लाने के जो उपाय सर्वविदित थे, उसका समावेश इस संग्रह में स्पष्ट संकेत करता है कि यह संग्रह शुक्राचार्य का नहीं है। आधुनिक विचारकों ने यह भी कहा है कि कौटिल्य आदि के द्वारा उल्लिखित औशनस सिद्धांत इस शुक्रनीति में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। प्रमाणपुष्ट इन तीनों पक्षों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि शुक्रनीति में वर्णित विषय शुक्राचार्य द्वारा किया गया संक्षिप्त संस्करण तो हो ही सकता है। क्योंकि इस संदर्भ में शुक्रनीति के प्रारंभिक प्रतिज्ञापरक श्लोक द्रष्टव्य हैं। वशिष्ठादि हम सब ऋषियों ने मनुष्यों की बुद्धिकामना से शुक्रनीति के सारांश का संग्रह किया, जो संक्षिप्त होते हुए भी तर्कपूर्ण और आधुनिक अल्पजीवी राजा तथा व्यवहार के लिए उपयुक्त है—

"स्वयम्भूर्भगवांल्लोकहितार्थं सङ्ग्रहेण वै।
तत्सारं तु वसिष्ठाद्यैरस्माभिर्वृद्धिहेतवे" ॥ (शु॰नी॰ (१।३-४)
"अल्पायुर्भूभृदाद्यर्थं सङ्क्षिप्तं तर्कविस्तृतम्"।

उपक्रम के इस प्रमाण के आधार पर समालोचकों की विधि-निषेध की स्थिति में ऐच्छिक विकल्प तो किया जा ही सकता है और उस ऐच्छिक विकल्प के अनुसार जब तक सशक्त युक्ति और पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि यह शुक्रनीति भार्गव की रचना नहीं है तब तक हम इसे शुक्रनीति का सारसंग्रह ही मानकर चलते हैं, क्योंकि इस ग्रंथ का भी पूरा नाम 'शुक्रनीतिसार' ही है। अतः इसे हम आचार्य शुक्र की ही रचना मानते हैं।

इतिहासकारों ने इसे गुप्तोत्तर एवं हर्षपूर्ण काल की रचना सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु ऐसा प्रयास समयसापेक्ष तो होता है पर उसकी तुलना देश-काल की स्थिति, तत्कालीन भाषा, अभिव्यक्ति की शैली तथा सामाजिक स्वरूप को आधार मानकर की जाती है। इन विषयों पर जब ध्यान जाता है तो तारतम्य का कोई सूत्र या तुलनात्मक स्थिति का कोई विशिष्ट स्वरूप हाथ नहीं आता। गुप्तकाल के जो भी अभिलेख इतिहास के संग्रहालय में उपलब्ध हैं, उसकी प्रांजल भाषा, स्पष्ट शैली, सुन्दर अभिव्यक्ति एवं सश्लिष्ट शब्द-संयोजन के शुक्रनीति की भाषा में कहीं दर्शन नहीं होते। प्रत्युत शुक्रनीति में आर्ष-प्रयोगों की भरमार इसे गुप्तकाल से बहुत पीछे ढकेल देता है। क्योंकि गुप्तयुग की गाथा बताने वाली 'प्रयाग-प्रशस्ति' में हरिसेन की भाषा और शुक्रनीति की भाषा में कोई तुलना ही नहीं है। प्रांजल, स्फीत, अर्थच्छवि को अपने में समेटे गुप्तकालीन भाषा का नमूना प्रयाग-प्रशस्ति में देखा जा सकता है। यथा–

'यस्य प्रज्ञानुषङ्गोचितसुखमनसः शास्त्रतत्त्वार्थभर्तुः'।

x x

'अध्येयः सूक्तमार्गः कविमतिविभवोत्सारणं चापि काव्यम्'।

इस भाषा और शैली का शुक्रनीति में दर्शन दुर्लभ है। बची बात हर्षपूर्व की तो हर्षकालीन प्रशस्ति, अभिलेख और शिलालेख इस बात के प्रमाण हैं कि शुक्र के आर्षप्रयोग से पाणिनि द्वारा परिष्कृत भाषा न ही इस काल में सुन्दर प्रयोग हुआ था। व्याकरणशास्त्र के इतिहास में

युधिष्ठिर-मीमांसक ने पाणिनि का जो काल निर्धारित किया है (७वीं शती ईसापूर्व से ४थी शती ई॰ पूर्व) उससे भी ऐतिहासिकों का तर्क स्वतः खण्डित हो जाता है। क्योंकि शुक्रनीति में प्रायः पग-पग पर अपाणिनीय प्रयोग है। इन सभी तथ्यों के प्रयोग से हम परम्परागत मान्यता का समर्थन करते हुए शुक्रनीति के रचयिता भार्गव शुक्र को ही मानते हैं।

शुक्रनीति एवं उसका रचनाकाल

शुक्रनीति में वर्णित जातिव्यवस्था, आचार-विचार तथा वैवाहिक सम्बन्ध की स्थिति से; स्थापत्य कला, मूर्तिनिर्माणकला तथा अन्य कला के विशद वर्णन से; कुल, श्रेणी, गण आदि कुछ विशिष्ट संस्थाओं के संकेत से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह रचना गुप्तकाल से पूर्व की है। जहाँ तक वर्णव्यवस्था का प्रश्न है तो ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्' से ही वर्णव्यवस्था परिलक्षित है। शुक्राचार्य तो एक क्रांतिकारी इस व्यवस्था के विरुद्ध अपना निर्णय स्थिर करते हैं। उन्होंने इस जातिप्रथा का जमकर खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में सुगति और दुर्गति के प्रति कर्म ही कारण होता है। इस संसार में जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ नहीं होता है। वस्तुतः गुण और कर्म के भेद से ही ये वर्णभेद होते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति तो ब्रह्मा से ही है, तो क्या फिर सभी ब्राह्मण नहीं हैं? क्योंकि वर्ण से या पिता से ब्रह्मतेज नहीं आ सकता है। प्रत्युत ब्राह्मण तो वह है जो ज्ञान, कर्म, उपासना में प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए देवाराधन में लीन, शांतचित्त, इन्द्रियों को दमन करने वाला दयालु होता है—

"ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं ब्राह्मणाः।
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्मतेजः प्रपद्यते" ॥ (शु॰नी॰ १।३९)

x x

"ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः" ॥ (शु॰नी॰ १।४०)

इसी तरह उनका क्रांतिकारी दृष्टिकोण जनता की भलीभाँति रक्षा करने में चतुर, वीर, जितेन्द्रिय, पराक्रमी तथा दुष्टों को दमन करने वाला ही क्षत्रिय हो सकता है और यह स्थिति निश्चित रूप से ईसा पूर्व लगभग छठी शताब्दी के पास रुद्रदमन जैसे सम्राटों को दृष्टि में रखकर ही लिखी जा सकती है। गुप्तकाल या गुप्तोत्तरकाल तो ब्राह्मणधर्मी प्रतीत होता है, जिसके विरुद्ध तो सम्पूर्ण बौद्धधर्म का आयाम है। अतः शुक्रनीति का रचनाकाल बुद्ध के बाद किसी भी तरह निश्चित नहीं किया जा सकता है।

जहाँ तक आचार-विचार का प्रश्न है तो शुक्र की दृष्टि में इसका प्रेरक राजा होता है। यही कारण है कि उन्होंने काल का भी कारण राजा को माना है और यदि काल ही व्यक्ति के आचार-विचार में प्रमाण माना जाय तो उसके करने वालों में धर्म कहाँ से हो? कहने का तात्पर्य यह है कि शुक्र ने समाज का धर्माचरण, आचार-विचार के प्रति सम्पूर्ण दायित्व राजा में समर्पित किया है—

"आचारप्रेरको राजा ह्येतत्कालस्य कारणम्।
यदि कालः प्रमाणं हि कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु" ॥ (शु॰नी॰ १।२२)

और राजा का यह दायित्व उपनिषत् काल में ही प्रतीत होता है।

शुक्र ने भवन-निर्माण एवं मंदिर-निर्माण की ऊँचाई, मंजिल, द्वार, मंडप, कमरे आदि का जो निर्देश किया है, वह भी गुप्तकाल से पूर्व का ही प्रतीत होता है। शुक्र के अनुसार देवगृह की भित्ति की ऊँचाई पीठ से दस हाथ अधिक तथा देवमंदिर के ऊपर की भूमि द्वार से दुगुनी ऊँची होनी चाहिए और प्रासाद का शिखर ऊँचाई के अनुकूल द्विगुण या त्रिगुण बनाना चाहिए। एक मंजिल से लेकर सवा सौ मंजिल तक अष्टदल कमल के आकार का चारों दिशाओं में बने हुए मण्डपों से अथवा चारों तरफ कमरों से युक्त मंदिर शक्ति के अनुसार बनाना चाहिए। एक हजार (१०००) खम्भों से युक्त प्रासाद उत्तम, उससे न्यून स्तम्भों का मध्यम तथा उससे भी न्यून स्तम्भों का अधम प्रासाद कहलाता है। फिर मण्डप के ऊपर यदि शिखर बनाना हो तो वहाँ पर स्तम्भ नहीं बनाना चाहिए, क्योकिं वहाँ पर केवल भित्ति ही सुखप्रद होती है। इस प्रकार की स्थिति हमें दक्षिण भारत के स्थापत्य कला में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। मंदसौर के शिवमंदिर तथा पल्लवों के द्वारा निर्मित भवन या मंदिर इससे मेल खाते हैं। डॉ॰ विसेंट स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "Early History of India" के प्रथम संस्करण में अपनी सम्मति प्रकट की है कि पल्लव लोग Persian अथवा पार्थियन मूल के थे। डॉ॰ राइस ने लिखा है कि दक्षिण भारत के पल्लव-नरेशों का समीकरण पल्लवों के साथ किया जाना चाहिए, जिनका उत्पादन गौतमीपुत्र शातकर्णी ने शकों और यवनों के साथ कर दिया था। डॉ॰ एल॰ राइस ने चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में अपना जो मत बताया है वह पल्लवों के मूल की समस्या से जुड़ा है। पल्लवों के अभिलेख भी प्राप्त हैं। इन सबों के तुलनात्मक अध्ययन करने पर ३२५ से ३५० ई॰ का ही हमें बोध कराता है। इससे भिन्न जहाँ तक मूर्तिकला का प्रश्न है तो शुक्र ने इस पर भी जमकर विचार किया है। मूर्ति कैसी हो, लाखों में कोई एक प्रतिमा सबों के लिए सर्वांगसुन्दर बनती है; किन्तु शास्त्र के मतानुसार जो सुन्दर हो, वही प्रतिमा सुन्दर कहलाती है। इस संदर्भ में शुक्र ने अन्य आचार्यों के मतों का भी उल्लेख किया है, जिसके अनुसार जिसका मन जिस प्रतिमा में लग जाता है उसके लिए वही सुन्दर है। फिर इससे आगे मूर्ति की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई, आकृति, मोटाई आदि का विशद वर्णन शुक्र ने किया है—

"चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ ह्यङ्गुष्ठो द्व्यङ्गुलो मतः।
सार्द्धद्वयाङ्गुलोऽङ्गुष्ठस्तन्मिता वा प्रदेशिनी।
प्रदेशिनी द्व्यङ्गुला तु सार्धाङ्गुलमथेतराः" ॥ (शु॰नी॰ ४।१०३-१०४)

और ऐसी प्रतिमाएँ आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में उपलब्ध हैं। अतः कुछ विचारकों ने शुक्रनीति की रचना को गुप्तकाल से लेकर हर्षकाल तक के बीच घसीटने की जो दुश्चेष्टा की है, वह अनैतिहासिक ही नहीं, अनर्गल भी है। कहाँ शुक्र की आर्ष भाषा और कहाँ हर्षकालीन परिष्कृत लौकिक संस्कृत। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"श्रीहर्षदेवाभिभूतो श्रीवलभीपतिपरित्राणोपजातः भ्रमददभ्रविभ्रमयशोवितानुः श्रीदद्दः" ॥ (Ref : Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Society Vol. vi p I and Indian Antiquary Vol. B 1884 pp 70-81.)

बची बात गण, संघ, निगम या श्रेणी की तो गुप्तोत्तर काल के संगठनों के ही ये नाम नहीं हैं। प्राचीन भारत में भी ये श्रेणियाँ भिन्न-भिन्न व्यापारिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती थीं। क्योंकि इतिहास के प्रसिद्ध लेखक ओमप्रकाश ने यह निश्चयात्मक रूप से मान लिया है कि सिन्धुनिवासी ने व्यापार या उद्योग हेतु अपने-आप को संगठित कर लिया था और उनके संगठनों को श्रेणियों का पूर्वरूप माना जा सकता है। श्री आर॰सी॰ मजुमदार और श्री राधाकुमुद मुखर्जी की यह धारणा है कि उत्तरवैदिक काल तक संगठित आर्थिक संस्थाओं का उदय हो चुका था। इन विद्वानों ने गण, श्रेणी, पणि आदि शब्दों के आधार पर यह निर्णय लिया है कि उस समय भी व्यापारियों के अपने संघ थे। ई॰ पू॰ छठी ई॰ में श्रेणियों के संगठन के विषय में हमें जातकों से भी जानकारी मिलती है। प्रत्येक व्यवसाय के लोग श्रेणी के रूप में अपना संगठन करके अपने नेता का चुनाव करते थे। विशेष विश्लेषण के लिए द्रष्टव्य—प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास—डॉ॰ महावीर सिंह त्यागी द्वारा लिखित ग्रंथ के पृष्ठ सं॰ ३५, प्रकाशक—राजीव प्रकाशक, मेरठ केण्ट। इस प्रकार इन ऐतिहासिक प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि शुक्रनीति की रचना ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के लगभग हुई है। हाँ, यह बात अलग है कि इसका परिष्करण और परिवर्द्धन आगे चलकर होता गया है, जो डॉ॰ अल्तेकर के भ्रम का कारण बना है।

आचार्य शुक्र की अन्य रचनाएँ

औशनस आचार्य शुक्र की कतिपय अन्य रचनाओं का उल्लेख अन्य अनेक ग्रन्थों में उद्धरण के रूप में उपलब्ध है। विज्ञानेश्वर एवं कौटिल्य ने औशनस 'अर्थशास्त्र' की यथावसर जमकर चर्चा की है। प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र को यदि समानार्थक मान लिया जाय तो फिर महाभारत में उल्लिखित राजनीतिशास्त्र तथा विज्ञानेश्वर द्वारा निर्दिष्ट अर्थशास्त्र की एकात्मकता सिद्ध हो जाती है। महाकवि दण्डी ने भी अपने 'दशकुमारचरित' में राजनीतिशास्त्रकारों की नामावली में बड़े ही सम्मान के साथ प्राथमिकता देकर उल्लेख किया है—

'येऽपि मन्त्रकर्कशाः शास्त्रतन्त्रकाराः, शुक्राङ्गिरसविलाशाक्ष-बहुदन्तीपुत्र-पराशरप्रभृतयः।'
(द॰कु॰च॰ऊ॰पी॰ ८)

इसी तरह अश्वघोष ने भी अपने बुद्धचरित में ससम्मान 'राजनीतिशास्त्ररचयिता के रूप में स्मरण किया है। यथा—

"यद्राजशास्त्रं भृगुरङ्गिरा च न चक्रतुर्वशकरावृषितौ।
तयोः सुतौ तौ च ससर्जतुस्तत्कालेन शुक्रश्च बृहस्पतिश्च" ॥ (बु॰च॰ १४६)

इसी तरह महाकवि कालिदास ने भी शुक्र की राजनीति की सगर्व चर्चा की है—

"अध्यापितस्योशनसाऽपि नीतिप्रयुक्तरागप्रणिधिद्विषस्ते" ॥ (कु॰सं॰ ३।४६०)

मनु के सुप्रसिद्ध मीमांसक मेधातिथि ने औशनसी राजनीति के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। मनुस्मृति ७।१५ तथा ८।५० पर भाष्य दर्शनीय है। महाभारत तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में भी कई उल्लेख इस संदर्भ में मिलते हैं। कुछ आलोचकों ने इन्हें स्मृतिकार के रूप

में भी स्मरण किया है। मिताक्षरा ३।३६० तथा मन्वर्थमुक्तावली १०।४९ में भी आचार्य शुक्र को स्मृतिकार के रूप में स्मरण किया गया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि मनु, याज्ञवल्क्य की तरह शुक्र की भी कोई स्मृति अवश्य होगी, जो अभी अनुपलब्ध है। बैंकन कालेज संग्रहालय में दो तथा जीवानन्द संग्रहालय एवं आनन्दाश्रम संग्रहालय में भी औशनस धर्मशास्त्र उपलब्ध है। महामहोपाध्याय 'काणे' ने औशनस स्मृति का उल्लेख किया है। अतः यह कहना अयुक्तिकर नहीं है कि शुक्राचार्य ने राजनीति के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों की भी रचना की है।

शुक्रनीतिसार में राजनीति की पारिभाषिक पदावली, न्याय के अनुमान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, धार्मिक तथ्यों का विश्लेषण, स्मृतिप्रयुक्त आनुशासनिक शब्दावली का यत्र-तत्र प्रयोग से पता चलता है कि शुक्राचार्य की रचना कुछ और हैं, भले ही वे अस्तित्व में हो या नहीं। किन्तु प्रश्न यह है कि ये औशनस शुक्र एक ही है कि या भिन्न-भिन्न व्यक्ति? इस विषय का अनुसन्धान अभी सापेक्ष्य है।

संसार में इतने दीर्घकाल से प्रचारित, इतने विशाल जनसमूह को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आन्दोलित और प्रेरित करने वाला नीतिशास्त्र अन्य नहीं है। हजारों सालों से अनेक उत्थान-पतन के बीच यह नीतिशास्त्र कभी म्लान नहीं हुआ। अनेक संकटों को झेलकर भी अधिकाधिक तेजोद्दीप्त होकर यह सदैव प्रकट होता रहा है।

जैसा कि पहले हम बता चुके हैं कि शुक्रनीति का काल भारतीय इतिहास के उस अंश का संकेत करता है जब कई छोटे-छोटे राजा अपने आस-पास के दूसरे राजाओं को सामादि उपायों से करद बनाने में ही नहीं बल्कि उसके सम्पूर्ण राज्य का ही अपहरण करने की ताक में लगे रहते थे। शुक्र से लेकर गुप्तोत्तर काल तक देश की यही स्थिति थी। धर्म और स्मृतिपरक सिद्धान्तों के विवेचन को साथ लिये शुक्रनीति अपने साथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिशास्त्र राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष के विवेचन में लगे प्रतीत होते हैं। शत्रुपक्ष के भेदन के उपायचतुष्टय की प्रधानता का महत्त्व स्वीकृत था। शुक्र की राजनीतिपटुता उस काल में राजनीति के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान का संकेत कर उस काल की राजनैतिक दशा का चित्र तो उपस्थित करती ही है, साथ ही धार्मिक जीवन की व्यवस्था, आचार की महत्ता स्वीकार कर इस बात की ओर संकेत करती है कि शुक्र केवल राजनीतिवेत्ता आचार्य ही नहीं थे, प्रत्युत धर्मशास्त्र एवं स्मृतिजन्य सिद्धान्त में भी उनका समान अधिकार था। अतः जब तक इस अनुसंधेय विषय का विस्तृत आधार सामने नहीं आता तब तक आचार्य शुक्र की अन्य कृतियों के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

शुक्रनीति की वर्ण्यवस्तु

'शुक्रनीति' मुख्यतः राजनीति का प्रख्यापक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। राजा, राज्य और जनता; इस ग्रन्थ में तीन प्रमुख तत्त्व हैं, जिनके कर्तव्यों का उचित निर्देश इस ग्रन्थ का प्रमुख वर्ण्य विषय है। राजा स्वयं धर्मनीति का पालन करते हुए प्रजा को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे। धर्मच्युत प्रजा को अपने-अपने धर्म में व्यवस्थित करना राजा का प्रमुख कर्तव्य

होना चाहिए। आचार्य शुक्र ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा कामन्दकीय नीतिसार की तरह केवल राजनैतिक सिद्धान्त पक्ष का ही विधान नहीं किया है, प्रत्युत व्यावहारिक उदार राजनीति की ओर भी यत्र-तत्र संकेत किया है। शत्रुपक्ष के भेदन के लिए चार 'स्पशों' (गुप्तचरसमन्वित सामरिक व्यवस्था) की व्यवस्था की महत्ता स्वीकार की है। इस शत्रुपक्षीय भेदन के बिना शुक्र ने राजनीति की निर्मूलता मानी है, परन्तु राजनीति को ठंडे दिमाग से सोचने का विषय माना है; जल्दबाजी का नहीं। रुक कर विपक्ष की भावी अवनति की प्रतीक्षा इनकी राजनीति को अभीष्ट है। शुक्रनीति की राजनीतिपटुता उस समय की राजनीतिक दशा की ओर पूर्ण संकेत भी करती है।

शुक्र ने प्रजा को व्यवस्थित बनाना राजा का मुख्य धर्म और कर्तव्य माना है। अतः यह आवश्यक है कि नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णधर्म या वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था हो, षड्विध स्मार्त धर्मों का निरूपण किया जाय। क्योंकि किसी भी व्यक्ति, जाति या समाज के उचित धर्म के परिज्ञान के बिना उसे उचित धर्म पर ले जाना असंभव है। अतः शुक्रनीति में विशद रूप से इन विषयों का समावेश किया गया है। उन्मार्गगामी प्रजा को व्यवस्थित बनाने के लिए, उन्हें सत्पथ पर चलाने के लिए राजा को दण्डप्रयोग की आवश्यकता होती है। देश, काल और व्यक्ति के अनुसार तीक्ष्ण या कोमल दण्ड का विधान इस ग्रंथ में किया गया है। दण्ड-संचालन के लिए तदङ्गभूत सैन्य-व्यवस्था का वर्णन भी सापेक्ष्य माना गया है। राज्य-संचालन के सात अंगों का विधिवत् वर्णन किया गया है।

राजनीति के साथ आचार्य शुक्र ने इस ग्रंथ में समाजनीति को भी नहीं भुलाया है। समाज के प्रमुख अंगभूत नारी का धर्म, पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध, रत्नों के मूल्य का तारतम्य, स्वरूप-वर्णन, स्वर्णादि धातुओं के प्रमुख प्रभेद, बकरी, गाय, हाथी, घोड़े प्रभृति पशुओं के मूल्य का निर्देश, इनके शुभाशुभ गुणलक्षणों का औचित्य, किसानों से मालगुजारी लेने की व्यवस्था, उत्तम कृषिकर्म के लक्षण, सिंचित भूमि तथा असिंचित भूमि की मालगुजारी का तारतम्य, ग्रामीण की प्रतिभूति-व्यवस्था, व्यापारियों से कराधान, राज्य एवं राजा की श्रेष्ठता, देवतुल्यता, सर्वधर्मरक्षण से राष्ट्ररक्षण का संकेत, गुरु के लक्षण, प्रमुख विद्याओं के लक्षण, वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण, इतिहास, वेदान्त, योग तथा अन्य उपयोगी तत्त्वों का विश्लेषण कर शुक्राचार्य ने एक आदर्श राजा, राज्य और जनता की सफल कामना नीतिसार के माध्यम से प्रस्तुत की है।

वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से शुक्र के उपास्थापन की प्रक्रिया अनोखी है। अनुशासन और व्यवस्था की दृष्टि से शुक्र की राष्ट्रीय कल्पना भी अद्भुत है। राष्ट्र की हर छोटी-बड़ी वस्तु, समाज के हर छोटे-बड़े व्यक्ति, समाज के उपयोग में आने वाली प्रत्येक वस्तु को अनुशासित एवं व्यवस्थित रूप में इन्होंने देखा है। लगता है कि शुक्राचार्य की यह नैतिक व्यवस्था गुप्त साम्राज्य तक चलकर अपनी उदात्त वृत्ति को समेट कर गुप्त साम्राज्य के साथ ही कहीं गुम हो गई। अब उसके भव्य नैतिक विधान स्मृतिशेष ही बचा रह गया है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि शुक्रनीति के प्रमुख विषय राज्य, राजा एवं जनसामान्य हैं। ऐसे ही प्रमुख विषयों का संक्षिप्त विवरण आगे हैं।

राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त

राज्य की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन-अर्वाचीन विचारकों का भी मतभेद है। इन मतभेदों के कारण ही राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। इन विभिन्न विचारकों का समीकरण इस प्रसंग में अभीष्ट नहीं है। राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में प्राचीनतम सिद्धान्त है—दैवी सिद्धान्त। इसके अनुसार राज्य का निर्माण ईश्वर ने किया है एवं राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। यह मान्यता थी कि राजा की आज्ञा की अवहेलना ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना मानी जायेगी तथा ऐसा करने पर मनुष्य दण्ड का भागी होगा। इसी सन्दर्भ में मनु, याज्ञवल्क्य आदि की तरह ही शुक्रनीति में भी आठ लोकपालों की समष्टि मानी गई है। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर इन लोकपालों के निरन्तर रहने वाले अंशों को अपने में धारण कर अपनी तपस्या के प्रभाव से राजा स्थावर और जंगम स्वरूप जगत् का स्वामी होता है और प्रजा से कर ग्रहण करने वाला तथा लोक की रक्षा करने वाला इन्द्र-तुल्य होता है (१।७१-७२)। इन पर ध्यान देने से हम इस निष्कर्ष कर पहुँचते हैं कि शुक्राचार्य की दृष्टि में राजा देवांश तथा राज्य की उत्पत्ति दैवी सिद्धान्त (Divine right) ही मान्य है।

राजा

आचार्य शुक्र ने भले-बुरे गुणों के आधार पर राजा के स्वरूप का निर्धारण एवं वर्गीकरण किया है। पवन जैसे सुगन्ध या दुर्गन्ध का वाहक होता है, उसी तरह राजा भी भले-बुरे कर्मों का प्रेरक होता है। जैसे सूर्य अन्धकार का नाशक एवं धर्म का प्रवर्त्तक होता है, उसी तरह राजा भी अधर्म का नाशक एवं धर्म का प्रेरक होता है। यमराज की तरह दुष्कर्म का दण्ड देने वाला राजा ही होता है। वह अग्नि की तरह पवित्र हविग्रहीता, प्रजा के द्वारा प्रदत्त करों का उपभोक्ता होता है। वरुणदेव जैसे जलरूपी रस से जीवों को परिपुष्ट करते हैं, एक विचारशील राजा उसी तरह अपने धन से प्रजा का परिपोषण करता है। चन्द्रमा की तरह अपने गुण तथा शुभ कर्मों से राजा संसार को आह्लादित करता है। कुबेर की तरह एक अच्छा राजा कोष-संचय में प्रवीण होता है। पिता, माता, गुरु, भ्राता, बन्धु, कुबेर एवं यम के गुणों से युक्त राजा ही राजा होता है। राजा प्रजा को गुणज्ञ बनाने में पिता की तरह निपुण, माता की तरह प्रजा के अपराध क्षमा करने में सक्षम, गुरु की तरह प्रजा का हितोपदेशक, भाई की तरह अंशग्रहीता, बन्धु की तरह देह, स्त्री, धन तथा गुप्त रहस्य का संगोपन करने वाला, कुबेर की तरह धनद, यम की तरह अपराधी को दण्ड देने वाला होता है। राजा में ये सभी गुण स्वभावसिद्ध होते हैं। अपराधों को क्षमा करने वाला राजा क्षमाशील तथा दुष्टों को दमन करने वाला राजा शक्तिशाली कहलाता है। जो राजा अपने समस्त दुर्गुणों का परित्याग कर क्षमाशील बना रहता है, अपनी निन्दा सुनकर भी सहनशक्ति नहीं खोने वाला, प्रजारंजक, इन्द्रियजित्, शूरवीर, शस्त्रास्त्रसंचालन में निपुण, शत्रुनाशक, उदात्तचरित्र, धारणाशक्तिसम्पन्न, ज्ञान-विज्ञान में कुशल, नीचसंसर्गरहित, दूरदर्शी, वृद्धोपासक, नीतिसम्पन्न तथा गुणिजनसेवित राजा देवांशसंभूत कहलाता है (शु॰नी॰ १।८१-८५)। ठीक इसके विपरीत गुणधर्मी राजा राक्षसों के अंश से उत्पन्न कहलाता है। जिस अंश का राजा होता है, उसके सहायक भी उसी अंश के होते हैं (शु॰नी॰ १।८६)।

राजत्व की यह कल्पना ऐतिहासिक दृष्टि के महत्त्व से ऋग्वेदिक काल से शुक्र काल तक निरन्तर प्रवाहित रही है। ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा आई है—एक बार देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ। युद्ध में असुरों की विजय हुई और देवताओं की पराजय। अर्थात् राजा न रहने के कारण हमारी हार हुई है, हमें अपना राजा चुनना चाहिए। सबों ने इसकी स्वीकृति दी (द्रष्टव्य ऐ॰ब्रा॰ १।५।९)। तैत्तिरीय ब्राह्मण की कथा में बतलाया गया है कि देवासुर संग्राम में प्रजापति ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र को इसलिए छिपा दिया था कि कहीं असुर उसे मार न डाले। उधर कयाधु के पुत्र प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन को इसलिए छिपा दिया कि कहीं देवता उसे मार न डालें। किन्तु देवों को ऐसा ज्ञात हुआ कि राजा के बिना युद्ध नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने प्रजापति के पास जाकर कहा—राजा के बिना युद्ध करना असंभव है। फिर इन्द्र से राजा होने की प्रार्थना की गई। (विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य– डॉ॰ वेणीप्रसाद की पुस्तक 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' पृष्ठ ६८)

इन गाथाओं को यदि हम आलोचनाओं की कसौटी पर कसें तो यह बिलकुल ही तर्कसंगत जान पड़ती है। क्योंकि देवासुर संग्राम आर्यों और अनार्यों के बीच युद्ध की ओर संकेत करता है। संग्राम की विधियों को ध्यान से देखने पर यह भी पता चलता है कि संग्राम में किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता होती है जो सर्वशक्तिसम्पन्न सर्वाधिकार वाली हो तथा जो लोगों की सुरक्षा कर सकती हो। आर्यों को प्रारंभ में अनार्यों से बार-बार संघर्ष करना पड़ता था और इन संघर्षों में न केवल सैनिक-संगठन की आवश्यकता थी; वरन् संग्राम के लिए धनसंचय उस अशान्त युग में शान्ति की स्थापना के लिए किसी राजनीतिक संगठन की भी आवश्यकता थी। सुन्दर शासन-व्यवस्था स्थापित करने के लिए किसी राजा की आवश्यकता प्रतीत होती है। यहीं से राजपद की कल्पना की जा सकती है।

ऋग्वेद में मित्र, वरुण और अग्नि ने अपने राजत्व के विषय में जो बातें कहीं हैं, उससे राजा बड़े शानदार होते थे। लोग उनकी आज्ञा का पालन करते थे (ऋ॰ ४।४२)। इस प्रसंग से एक ओर जहाँ राजा की महानता का बोध होता है तो वहीं दूसरी ओर राजा के दैवी अधिकार में उनके विश्वास का पता चलता है। राजा की आज्ञा सर्वमान्य थी। राजभक्ति थी। इसका संकेत ऋग्वेद ४।५०।८ से होता है। राजा से हर प्रकार की सहायता अपेक्षित थी, राजा न्यायाधीश भी होता था। दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मुकदमों का फैसला राजा करता था। फौजदारी के मुकदमों में वह एक विस्तृत विधानसंहिता का उपयोग करता था (ऋ॰ २५।१३, ४।४।३)। राजा अदण्ड था और प्रजा के अपराधों पर उसे दण्ड देता था (ऋ॰ ८।४४।११)। यह परम्परा क्रमशः शुक्र तक चली है।

शुक्र ने जो कुछ भी कहा उससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जब लोग कुमार्ग पर चलने लगे होंगे तभी नीति की और उसके उपाय के रूप में प्रधानतया दण्ड और दण्ड के निर्वाह के रूप में राजा की आवश्यकता हुई होगी। इतनी ही बात नहीं, दण्ड की आवश्यकता का निर्देश करते समय शुक्र ने मात्स्य न्याय का प्रयोग किया है। अर्थशास्त्र ने यह कहते हुए इसका अनुमोदन किया है—

"अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति।"

कामन्दकीय नीतिशास्त्र ने भी इस तथ्य का समर्थन २।४० में यह कहते हुए किया है—'दण्डाभावे परो ध्वंसी मात्स्यन्यायः प्रवर्त्तते।" महाभारत में भी शान्तिपर्व १५।३० में "जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलं बलवत्तरा" का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा के बिना राज्य-संचालन संभव नहीं है। अतः वैदिक काल से ही राजनीति में राष्ट्रनीति के अन्तर्गत राजा की कल्पना समीचीन मानी गई है। क्योंकि राजा के बिना, एक नियंत्रक के बिना राज्य का संचालन संभव नहीं है। राजा ही दण्डाधिकारी होता है। दण्ड के भय से ही लोग अपने धर्म पर, अपने कर्तव्य पर सुदृढ होकर राष्ट्र को समृद्ध बनाने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि शुक्र ने नीति को दण्ड का पर्याय मानते हुए राजपद की कल्पना की है। आचार्य मनु ने भी शुक्र के इस विचार का अनुमोदन किया है। मनुस्मृति का ७।२० श्लोक इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—'यदि न प्रणयेत् राजा, दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः। शूले मत्स्यानि वा पश्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः॥' यही कारण है समाज-रक्षा के निमित्त ही बलवत्तर व्यक्ति को राजपद के हेतु आर्यों ने दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त की कल्पना की है। शुक्र ने भी राजा को देवांश और राक्षसांश से समुद्‌भूत दो कल्पनाएँ की हैं। शुक्र भी राजा को दण्ड का प्रतीक मानते हुए राजनीति के दुरूह पद पंजिका में समाज के संरक्षणार्थ राजपद की कल्पना की है। मनु ने भी शुक्र की इस विचारधारा को सम्पुष्ट करते हुए मनुस्मृति के ७।२ में कहा है—

'रक्षार्थमस्य लोकस्य राजानमसृजत्प्रभुः।'

कहने का तात्पर्य यह है कि समाज जब उच्छृंखल हो जाता है, व्यवस्था की जगह अनवस्था छा जाती है, अनास्था और अराजकता का बोलबाला बढ़ जाता है, उग्रवाद और मनमानी, हत्या और नृशंस जैसे स्वार्थी लोगों का कर्म अपनी पराकाष्ठा को छूने लगता है तब उस समाज को व्यवस्थित करने के लिए राजा या सुदृढ़ प्रशासक की आवश्यकता शुक्र ने महसूस की है।

ऐसे ही परिवेश में अधर्म की पृष्ठभूमि पर पलते, फलते-फूलते अधर्म को देखकर युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से इस संदर्भ में प्रश्न पूछा था। पितामह भीष्म ने जो कुछ भी उत्तर उन्हें दिया था, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कृतयुग में धर्म के प्रसार में ही अधर्मनिरोधक दण्ड या दण्डधर राजा की गतार्थता थी। किन्तु जब लोगों में अनाचार का संचार हुआ तब देवताओं ने ब्रह्मा से राजा के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मा ने देवताओं की इस स्तुति से प्रभावित होकर राजा तथा दण्डनीति की कल्पना की, राजा का आविष्कार किया तथा दण्डनीति का उपदेश दिया (इसके लिए शान्तिपर्व ५९।१३।१४।१६ द्रष्टव्य है)। शुक्राचार्य की दृष्टि में प्रलयकालीन जलधारा में डूबते-उतराते लोगों का सहारा जैसे एक नाव होती है, उसी तरह अराजकता की स्थिति में एक दण्डधर राजा का महत्त्व है।

"यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजाः।
अकर्णधारा जलधौ, विप्लवेतेह नौरिव॥" (शु०नी० १।६५)

मनु ने कृतयुग की व्याख्या की है और परिस्थितिजन्य राजा की उत्पत्ति की भी चर्चा की है। दोनों की एकवाक्यता इसे प्रमाणपुष्ट करती है कि राजा की उत्पत्ति के पीछे दण्डनीति का अधिकतर महत्त्व है। कृतयुग एक धार्मिक व्यवस्था थी, जिसमें अधर्म और अनीति का अभाव था। अतः राजा के बिना भी समाज व्यवस्थित था, दण्डनीति की आवश्यकता नहीं

थी; किन्तु जैसे-जैसे समाज में व्यक्ति की विकृतियाँ बढ़ती गई, दण्डधर राजा या सशक्त प्रशासक की आवश्यकता महसूस होने लगी। इस विचार के पृष्ठपोषक भारत के अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक ग्रन्थ हैं।

किन्तु पाश्चात्य अनुचिन्तन के पृष्ठपोषक कुछ आधुनिक विचारक कृतयुग, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि की कल्पनाओं को नकारते हैं तथा राजा को देवांश नहीं मानते। उनकी दृष्टि में मानव-जाति की उत्पत्ति के साथ राजा की उत्पत्ति को मानते हैं। राज्यपद पर नियोजन और नियंत्रण के प्रकार समय-समय पर बदलते रहे हैं। न्याय और अन्याय से प्रेरित मानव के आचरणों को किसी युग-विशेष की धारा में न तो समेटा जा सकता है और न उसे नियन्त्रित ही किया जा सकता है। यह तो मानवधर्म है, युग-युग से चलता आया है और चलता रहेगा। इसलिए यह कहना उचित नहीं हैं कि कृतयुग में राजा की आवश्यकता नहीं थी। प्रत्युत इसकी जगह यह कहना समीचीन होगा कि देश, काल और व्यक्ति के अनुसार विचार और परिस्थितिजन्य आचरण बदलते रहे हैं। अशान्ति और अनवस्था को नियंत्रित रूप में एक सच्चा स्वरूप देने के लिए नियंत्रक या प्रशासक की आवश्यकता हर युग में समान भाव से होती रही है और दण्डनीति का उपयोग सर्वत्र समान ही रहा है।

वस्तुतः आधुनिक विचारों का यह अनुचिन्तन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है। धार्मिक ग्रन्थों में या आर्य-साहित्य में जो कुछ भी कहा गया है, वह सत्य है। जहाँ तक विचार-भिन्नता का प्रश्न है, अनुचिन्तन का वह एक पक्ष मात्र है। शास्त्रीय सिद्धान्त के हर पक्ष और पहलू का एक विशिष्ट संकेत होता है। उस संकेत को जब हम पूर्ण रूप से समझने की चेष्टा करते हैं तो समाधान स्वतः सामने आ जाता है। मनुष्य के गुण-दोषों की विवेचना शास्त्र का मुख्य उद्देश्य होता है। गुणों को बढ़ावा देना और दोषों की भर्त्सना करना उसकी नियंत्रक रेखा है। गुण और दोष मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जहाँ मनुष्य होगा वहाँ ये होंगे। इन्हें नियंत्रित करने का आधार दण्डनीति ही होती है और दण्डनीति का आश्रय राजा होता है। वंशगत या गुणगत इनका चुनाव समाज स्वयं करता रहा है। कल का राजा आज का प्रशासक है। फर्क केवल इतना है कि कल जो वंशानुगत था वह आज बहुमत के द्वारा चुनावी घोषणा के साथ सम्पन्न होता है; यह भी एक सुगधर्म है। नेता या प्रशासक जैसा होगा, उसके साम्राज्य में वैसी ही सुख-समृद्धि होगी या विपन्नता छाएगी। शुक्रनीतिसार में भी राजा को ही युगप्रवर्तक माना गया है।

अब राजा शब्द के अर्थ पर यदि हम ध्यान दें तो निश्चय ही ऊपरलिखित तथ्यों की सम्पुष्टि हो जाती है। यास्क ने अपने निरुक्त में "राजृ दीप्तौ" धातु से राजा शब्द की निष्पत्ति की है। इसकी उपपत्ति में निरुक्त के व्याख्याकार दुर्गाचार्य का कहना है कि यह राजा आठ लोकपालों की मात्रा से निर्मित शरीर से होता रहता है। पाणिनि-व्याकरण के अनुसार भी "राजृ" धातु से "कणिन्" प्रत्यय कर "राजन्" शब्द का निष्पादन किया गया है। महाभारत में "रंज" धातु से "राजा" शब्द की निष्पत्ति मानी गई है। महामहोपाध्याय काणे महोदय ने राजधर्म-काण्ड से उद्धृत एक वचन से—"बलेन चतुरङ्गेन यतो रञ्जयति प्रजाः। दीप्यमानः स वपुषा तेन राजाभिधीयते॥" (History of Dharmasastra, Part 3, Page 28) इस वचन के अनुसार दोनों अर्थों में काणे महोदय ने समन्वय स्थापित करते हुए राज तथा रंज—दोनों

ही धातुओं से राजा की निष्पत्ति मानी है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'राजन्' शब्द का प्रयोग किसी भी लोकरंजन या दीप्तिमान पुरुष के लिए किया जा सकता है। वस्तुतः सही राजा वही है जो प्रजारंजन करता हो।

राजा नीतिसम्पन्न होता है। राजा को यत्नपूर्वक नीतिशास्त्र का अभ्यास करने की चर्चा शुक्र ने की है। इनकी दृष्टि में नीतिनिपुण राजा ही जहाँ एक ओर शत्रुजयी होता है, वहीं वह प्रजारंजक भी होता है। लोगों के सम्पूर्ण अभीष्ट को सिद्ध करने वाला यह नीतिशास्त्र ही है। राजा इसी नीतिशास्त्र के बल पर सबका स्वामी बना है। नित्य प्रजा का पालन और दुष्टों का दमन किसी भी राजा का परम धर्म है और यह कर्म नीतिशास्त्र के द्वारा ही सम्पादित होता है। नीतिरहित राजा दोषयुक्त होता है, डरा रहता है। उसकी सैन्यशक्ति क्षीण हो जाती है और वह अनायास शत्रु के अधिकार क्षेत्र में चला जाता है। शुक्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—जो राजा नीति का त्याग कर अनैतिक व्यवहार करता है, वह दुःखभागी होता है। ऐसे राजा का सेवक भी तलवार की धार चाटने का काम करता है—

> "नीतिं त्यक्त्वा वर्त्तते यः स्वतन्त्रः स हि दुःखभाक्।
> स्वतन्त्रप्रभुसेवा तु ह्यसिधारावलेहनम्॥" (शु॰ नी॰ १।१६)

राजा का कर्त्तव्य

राजधानी में रहता हुआ राजा रात के चौथे पहर में जगकर राज्य की दैनिक आय तथा नियत व्यय पर कुछ क्षण अवश्य अनुचिंतन करे तथा उसे औचित्य की परिधि में लाकर समतूल करने की चेष्टा करे। राजकोष में कितना धन संरक्षित है तथा उनसे कितना व्यय किया गया, व्यवहार में मुद्रित आय-व्यय होने पर अवशिष्ट धन कोष में कितना रह गया? इसकी समुचित जानकारी राजा को अवश्य होनी चाहिए। इतना ही नहीं; प्रत्यक्ष और लेख से जाँचकर आज कितना व्यय होगा, उतना धन अनुमान से निकलवा कर अलग से रख दे। इसके बाद नित्य-नैमित्तिक कर्म से निपटकर स्नान, संध्या और पुराण-श्रवण के बाद दो मुहूर्त दानादि कर्म में व्यतीत करे। इसके बाद उत्कृष्ट कर्म करने वाले राजसेवकों को एक मुहूर्त तक पुरस्कृत करे। अन्न, वस्त्र, सुवर्ण तथा रत्नों के देखने और सेना के लिए आदेश लिखने एवं आय-व्यय के निरीक्षण में चार मुहूर्त्त समय व्यतीत करे। फिर उसके बाद अपने मित्र तथा बान्धवों के साथ भोजन करने के बाद कुछ क्षण तक विश्राम करे। विश्राम के बाद जज या वकील के द्वारा समझाये हुए मुकदमों को देखने में अपना कुछ क्षण व्यतीत करे। शिकार, खेल तथा सैन्यव्यूहाभ्यास में संध्या का समय बिताये। फिर रात्रि-भोजन के बाद गुप्तचरों से राज्य की स्थिति की जानकारी प्राप्त करे। फिर स्वस्थ मन से सो जाये। ये राजा के कुछ दैनिक कृत्य हैं; जिसका उल्लेख शुक्र ने प्रथम सर्ग में किया है। इसके बाद राजा के कुछ और प्रमुख कर्तव्यों का शुक्र ने निर्देश किया है।

राजा अपनी राज-आज्ञा (राजकीय घोषणा) प्रजा में प्रचारित करे। तदनुसार राजा को प्रजा के लिए प्रतिदिन राजाज्ञा घोषित करनी चाहिए—'मेरे राज्य में रहने वालों के लिए यह उचित कर्तव्य है कि वे गुलाम, नौकर, स्त्री, पुत्र, शिष्य—इनमें से किसी को भी अतिपीड़क वाग्दण्ड न दे। तौलने में बटखरा या सिक्का में मोम आदि, धातु तथा उसकी जाति के समान पदार्थ;

जैसे घी, दूध, मधु, मांस, चर्बी या किसी वस्तु के चूर्ण में बेईमानी से मिलावट न करे और किसी से उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न लिखवाये, घूस न ले। राजकार्य को कहीं नष्ट न होने दे। गुण्डे, चोर, लम्पट—ये चाहे द्वेषी हों या न हों, छिपकर भी इनकी रक्षा नहीं करनी चाहिए। जनहित में जो अपकारक हैं; ऐसे उग्रवादी संगठनों का जमकर विरोध करना चाहिए। माँ-बाप, पूज्य पुरुष, विद्वान्, सदाचारी एवं सत्पुरुषों का भूलकर भी अपमान या उपहास नहीं करना चाहिए। स्त्री-पुरुष या स्वामी-सेवक के बीच अकारण फूट डालने की दुश्चेष्टा नहीं करनी चाहिए। भाई-भाई, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र परस्पर एक-दूसरे से अलग हट जायें, ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिए। बावरी, कुआँ, बगीचा, सीमा, धर्मशाला, देवमन्दिर, रास्ता, अधम जन तथा विकलाँग लोगों को न तो क्षति पहुँचाए और न कभी पीड़ित करे। बिना राजा की आज्ञा पाए जुआ न खेले, शराब न पीए, शिकार न खेले, हथियार न रखे। गाय, हाथी, घोड़ा, ऊँट, भैंस, घर, मकान, चाँदी, सोना, रत्न, नशीली वस्तु तथा जहर—इन्हें खरीदना या बेचना राजाज्ञा के बिना उचित नहीं है। शराब चुलाना, दस्तावेज लिखाना, दानपत्र भरवाना, चिकित्सा, महापाप का किसी को दोष लगाना, लावारिस धन हड़पना दण्डनीय कार्य माना जायेगा। नवसमाज का गठन, किसी जाति पर दोष लगाना, किसी व्यक्ति का खोया या गड़ा हुआ धन अधिकृत करना, किसी के रहस्य की पोल खोलना, राजा के दुर्गुणों को छिपाना नहीं चाहिए। अपने धर्म की हानि, झूठ बोलना, परस्त्रीगमन, झूठी गवाही, झूठा लेख, राजा से छिपाकर किसी वस्तु का आदान-प्रदान करना, निर्धारित कर से अधिक कर वसूलना, चोरी-डकैती एवं राजद्रोह कभी नहीं करना चाहिए। वेतन, चुंगी, कर, सूद, दर्प, बल तथा छल—इनके द्वारा किसी का धन नहीं हरना चाहिए। बटखरा में हेर-फेर नहीं करना चाहिए। ऐसी राजाज्ञा सुनकर भी जो लोग अन्यथा आचरण करते हैं, उन्हें घोर राजदण्ड का सामना करना पड़ेगा'। इस तरह राजा प्रतिदिन अपनी घोषणा ढिंढोरा पिटवाकर करे।

राजा का कर्तव्य-निर्देश

राजा अपनी राजाज्ञा लिखवा कर चौराहे पर टँगवा दे। दुष्ट एवं शत्रुओं को दण्डित करने के लिए सदैव उद्यत रहे। प्रजापालन नीतिपूर्वक करना चाहिए। पर्यटकों की सुख-सुविधा के लिए राजमार्ग व्यवस्थित होना चाहिए। इन पर्यटकों को यदि कोई लूटता हो या किसी तरह का दुःख पहुँचाता हो तो ऐसे आततायियों को प्राणदण्ड की सजा दे। गाँवों से जो आमदनी हो, उसका बारहवाँ भाग निकाल कर ग्रामरक्षकों की नियुक्ति करे। अपनी सम्पूर्ण आय का तीन भाग खर्च कर सैन्य संगठित करे। शेष बचे धन का आधा भाग दान करे तथा बचे धन के आधे भाग से मंत्रियों का संरक्षण करे। उसके आधा भाग से पदाधिकारियों की नियुक्ति करे। उसका आधा भाग अपने ऊपर खर्च करे। एक भाग कोष में जमा कर दे। इस तरह राजा सम्पूर्ण आय का छः भाग कर उससे वर्षभर का काम चलावे। यह निर्देश सामन्तस्तरीय राजाओं तक के लिए मान्य है, उससे नीचे के स्तर के लिए नहीं। राज्य, यश, धन और गुण इनके पाने पर उनकी रक्षा करने में तथा दूसरे के राज्य हड़पने का प्रयत्न करना चाहिए। इन समस्त कार्यों के प्रति राजा को सदैव सयत्न होना चाहिए। वीरता, पाण्डित्य, वक्तृत्व, दानशीलता, बल-पराक्रम तथा शत्रुपक्षीय राजे पर आक्रमण करने का अवसर कभी न चूके। जो राजा निःशंक होकर युद्ध में अपने प्राण के भय को छोड़कर युद्ध करता है, वही सच्चा वीर है।

राजधानी

राजकीय कर्तव्य में राजधानी के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव अपना अलग महत्त्व रखता है। सौन्दर्यात्मक दृष्टि से, संरक्षणात्मक दृष्टि से तथा प्रशासन-संचालन की दृष्टि से इस स्थान का तब और महत्त्व बढ़ जाता है, जब सशक्त राजा की तत्पर चिन्तन शक्ति का व्यावहारिक उपयोग प्रारंभ हो जाता है। इस दृष्टि से विचार करने पर आचार्य शुक्र ने सर्वप्रथम प्रांकृतिक सौन्दर्य को ही महत्त्व दिया है। बहुविध वृक्षों और लता-वल्लरियों से राजधानी की भूमि आच्छादित होनी चाहिए। अनेक प्रकार के पशुओं का अभयारण्य तथा बहुविध पक्षियों का उसे शरणस्थल होना चाहिए। जलाशय एवं नदियों का अभाव नहीं होना चाहिए। काठ एवं घासों की कमी नहीं होनी चाहिए। नदीं ऐसी हो जिसके माध्यम से नाविक आसानी से सागर तट तक पहुँच सके। धरती समतल हो और सुरम्य होनी चाहिए। वह धरती अर्द्धचन्द्राकार, वृत्ताकार या चौकोर होनी चाहिए। उस भूमि को मजबूत चाहारदीवारी सें घेर ले। चाहारदीवारी के बाहर खाई से उसे घिरा होना चाहिए। इससे बाहर पार्श्ववर्ती भूमि में गाँव तथा नगरों को बसाने की व्यवस्था होनी चाहिए। बीच में सभा-मण्डप हो। कुएँ, बावरी, तडाग आदि की व्यवस्था हो। किले में चारों ओर चार विशाल द्वार होने चाहिए। भीतर मार्ग की व्यवस्था अच्छी हो। फलदार वृक्षों से वह भूमि आच्छादित हो। अनेक गलियाँ बनी हों। स्वस्थ एवं सुदृढ़ मन्दिर, मठ एवं धर्मशाला की व्यवस्था हो। किले के भीतर ऐसी सुविधा हो कि राजपरिवार के साथ प्रजावर्ग की भी समय आने पर रक्षा की जा सके। ऐसी सुन्दर राजधानी में राजभवन का भव्य निर्माण होना चाहिए। राजंभवन के बीच में सभाभवन हों और उसी की भीतरी सीमा-रेखा में गोशाला, अश्वशाला, गजशाला आदि की व्यवस्था हो। अच्छी बावरी, अच्छे कुएँ और फुहारों से राजभवन की शोभा बढ़ाई जाये। राजभवन की चारों भुजाएँ समरूप हों। दक्षिण की ओर ऊँची और उत्तर की ओर राजभवन की भूमि कुछ नीची हो अर्थात् पानी का बहाव उत्तर दिशा की ओर हो। राजभवन एकभुज या विषमभुज नहीं होना चाहिए। इसे चतुःशाल अर्थात् चारों ओर घर से घिरा होना चाहिए अन्यथा एक घर शुभदायक नहीं होता है। इसके आस-पास सशस्त्र सैनिकों का आवास होना चाहिए। आकर्षक यंत्रों से युक्त परिखा से घिरा मजबूत चाहारदीवारी से आवृत होना चाहिए। तीन कक्षाओं और चार द्वारों से इसे सुशोभित होना चाहिए। शस्त्रास्त्रधारी प्रहरी दो-दो घंटे पर अपनी ड्यूटी बदलते हुए चार, पाँच या छः की संख्या में अहर्निश इसकी रक्षा करते रहें। राजभवन के आगे हमेशा तम्बू, शामियाना, अटारी उसकी शोभा बढ़ाते रहें। इसके आगे पूरब की ओर नहाने, धोने, वस्त्र-प्रक्षालन करने तथा भोजन बनाने के अलग-अलग कक्ष बने हों। सोने के लिए, बिहार करने के लिए, रोने के लिए, अन्नादि रखने के लिए, दास-दासियों के लिए, मल-मूत्रादि त्याग के लिए क्रमशः दक्षिण दिशा में घर बने हों। गाय, मृग, ऊँट, हाथी आदि के लिए पश्चिम दिशा में गृह-निर्माण करना चाहिए। रथ, घोड़े या हथियार रखने के लिए, व्यायाम करने के लिए, वस्त्र तथा रत्न रखने और विद्याभ्यास करने के लिए सुरक्षित एवं सुन्दर गृह उत्तर दिशा की ओर बनाए। शास्त्रसम्मत इन बातों का निर्देश करने के बाद आचार्य शुक्र ने राजा को इस बात की छूट दी है कि इस पर बिना विचार किये कोई राजा अपनी सुविधा के अनुसार कौन घर किस दिशा में बने, इस पर स्वतंत्र विचार कर सकता है। मुख्य राजभवन

से उत्तर दिशा की ओर कचहरी और शिल्पशाला का निर्माण कराये। भवन की लम्बाई के पाँचवें भाग के बराबर ऊँची दीवार होनी चाहिए। कोठरी की लम्बाई का छठा भाग दीवार की मोटाई होनी चाहिए। यह माप महल के नीचले भाग के लिए कहा गया है। ऊपर की मंजिलों में सुविधानुसार निर्माण कराया जा सकता है। खंभों एवं भित्तियों से अलग कोठरियों का निर्माण होना चाहिए। एक घर में तीन, पाँच या सात कोठरियाँ होनी चाहिए। द्वार बनाने के लिए घर के आठ भाग करके उसके बीच के दो भागों में दरवाजा बनाना चाहिए। इसी तरह चारों दिशाओं में बीच के दो-दो भागों में दरवाजा होना चाहिए। ऐसे द्वार मनुष्यों को धनद एवं पुत्रद होते हैं। राजभवन चौकीदारों से सुरक्षित रहे तथा उसके सटे चारों ओर तोपची तोप लगाकर पहरा दे। राजगृह एवं देवगृह में द्वार के वेध की मान्यता नहीं होती।

सभाभवन

राजा का सभाभवन अत्यन्त सुरक्षित, आकर्षक एवं मनोहर होना चाहिए। दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा या पूरब से पश्चिम की ओर दुगुना या तिगुना लम्बा हो। भवन एक मंजिल का, दो मंजिला या तीन मंजिला अपनी इच्छा के अनुसार बनवाये। प्रकाश एवं हवा के लिए भवन में सुन्दर एवं आकर्षक खिड़कियों की व्यवस्था होनी चाहिए। ऊपर कक्ष में सामियाना तना हो। बगल के कमरे की अपेक्षा बीच के कमरे की लम्बाई दूनी होनी चाहिए। भवन की छत मजबूत एवं आकर्षक होनी चाहिए। बीच का कमरा एक मंजिल का होना चाहिए। कमरों के आगे सुन्दर, सुडौल, पच्चीकारी से युक्त खम्भे सहन में लगे होने चाहिए। विवाद विचारार्थ हाल के चारों ओर दरवाजे होने चाहिए। सामने फव्वारा होना चाहिए। कमरे के भीतर पंखा एवं घड़ी की व्यवस्था होनी चाहिए। विचार-कक्ष में शीशे एवं सुन्दर चित्र लगे होने चाहिए।

राज्य के उत्तराधिकारी

आचार्य शुक्र ने किसी भी राज्य के लिए राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ और सपुत्र को माना है। शुक्र का कहना है—यदि राजकुल में एक से अधिक राज्याधिकारी हों तो उनमें सबसे बड़े को ही उत्तराधिकारी चुनना चाहिए। शेष को योग्यतानुसार उसके कार्य का सहायक बना देना चाहिए। क्योंकि व्यवस्थित राज्य-संचालन के लिए अनेक सहायकों की अपेक्षा उनमें ज्येष्ठ ही उत्तम होता है (१।३४२)। राज्य का उत्तराधिकारी अर्थात् बड़ा बेटा यदि कोढ़ी, गूंगा, अन्धा या नपुंसक हो तो वह राज्य पाने का अधिकारी नहीं माना जाता है। ऐसी स्थिति में सुयोग्य कनिष्ठ पुत्र ही गद्दी का हकदार होता है (१।३४४-४५)। इसके अभाव में भतीजे को उत्तराधिकारी बनाना चाहिए। किन्तु यौवराज्याधिकार के सन्दर्भ में इन्होंने ज्येष्ठ पुत्र की अयोग्यता की स्थिति में उसके चाचा को उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया है। युवराज पद की एक विशिष्ट मर्यादा का ध्यान शुक्र ने रखा है। उनकी दृष्टि में जो राजकीय मुहर लगाने के अतिरिक्त सभी राजकार्य को सदा करने में समर्थ हो, अपनी धर्मपत्नी से समुत्पन्न औरस पुत्र को ही युवराज पद के लिए प्राथमिकता देनी चाहिए। इसकी अयोग्यता की स्थिति में क्रमशः राजा का छोटा भाई, चाचा, भतीजा, पुत्रीकृत पुत्र अथवा दत्तक पुत्र को चुनकर युवराज

पद पर नियुक्त करना चाहिए। क्रमशः पूर्वोक्त के अभाव में नाती या भगिने को युवराज बनाना चाहिए (२।१४-१५)। इस तरह हम देखते हैं कि आचार्य शुक्र योग्य उत्तराधिकारी के पक्षधर हैं। राज्यहित को प्राथमिकता देते हैं। सुयोग्य शासक ही कल्याणकारी राजा हो सकता है। अन्यथा न तो प्रजा सुखी होगी और न राज्यश्री ही सुस्थिर रह सकती है।

राज्य अविभाज्य

"राज्यविभाजनाच्छ्रेयो न भूपानां भवेत्खलु।
अल्पीकृतं विभागेन राज्यं शत्रुर्जिघृक्षति"॥ (शु॰नी॰ १।३४७)

राज्य के विभाजन से किसी भी राज्य का कल्याण संभव नहीं है, क्योंकि राज्य छोटे होने पर शक्ति छोटी हो जाती है। शक्ति छोटी होते ही दुश्मन राजे उसे हड़प लेना चाहते हैं। आचार्य शुक्र ने स्पष्ट रूप से कहा है कि एक राजा के अनेक बेटे हो सकते हैं, परन्तु वे सभी राज्य के स्वामी नहीं हो सकते हैं। सबों के बीच समान रूप से राज्य का विभाजन संभव नहीं है। विभाजित राज्य का बहुनायक वाले प्रशासन का विनाश निश्चित होता है। अतः राज्य एक अविभाज्य सम्पत्ति है। अगर राज्य के अनेक हकदार हैं तो वैसी स्थिति में योग्यतानुसार उन्हें अनेक पदाधिकारी के पदों पर स्थापित कर राज्य-संरक्षण की व्यदस्था को सुदृढ़ बना देवे। राजा कोई एक ही होगा, वह अपने राज्य का चतुर्थांश देकर उन सारे दायादों को चारों दिशाओं में राज्य-संरक्षण हेतु स्थापित करे अथवा उन्हें प्रान्तों के राज्यपाल पद पर नियुक्त कर दे। अन्य सम्बन्धियों को भी हाथी, घोड़ा, गाय, ऊँट, खजाने आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों के अधिपति बना दे। माताओं एवं उनके सदृश पूज्य महिलाओं को भोजनालय का अधिकार समर्पित कर दे। इस तरह सबों को किसी-न-किसी स्थान पर स्थापित कर राज्य को सुदृढ़ बना लें।

उपायचतुष्टय

आचार्य शुक्र ने साम, दान, भेद तथा दण्ड—इन्हीं चार उपायों के महत्त्व को स्वीकार किया है। उपायचतुष्टय की महत्ता स्वीकार करते हुए शुक्र ने कहा है—

"विनाशनीयास्ते सर्वे सामादिभिरुपक्रमैः।
मित्रं शत्रुं यथायोग्यैः कुर्यात् स्ववशवर्त्तिनम्"॥ (शु॰नी॰ ४।२४)

शत्रु-राजाओं को सदैव उपायों का सहारा लेकर उनमें भेद डालकर उन्हें वशवर्त्ती बनाया जा सकता है। जैसे उपाय से ही उन्मत्त हाथी, जहरीले साँप या वनराज को भी वशवर्त्ती बनाया जाता है, उसी प्रकार शत्रु और मित्र को भी उपाय से वश में लाया जाता है। क्योंकि उपाय से ही मनुष्य धरती पर रहकर भी स्वर्ग पहुँच जाता है, अल्पशक्ति होकर भी वज्र को भेद सकता है। राजा मित्र, सम्बन्धी, प्रजा, पुत्र और सम्बन्धियों के विषय में साम, दान तथा दण्ड का प्रयोग अलग-अलग समुचित ढंग करे। शुक्र ने सर्वप्रथम शत्रु के लिए सामनीति का प्रयोग ही उचित माना है। सामनीति के असफल हो जाने पर उसकी जगह दाननीति का प्रयोग करना चाहिए। दाननीति से भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो अन्ततोगत्वा हर तरफ से भेदनीति का प्रयोग करना चाहिए। भेदनीति की असफलता के बाद या प्राणसंकट उपस्थित

होने पर ही शत्रु के लिए दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिए (शु॰नी॰ ४।३६)। अतिप्रबल शत्रु के लिए साम और दान का, अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु के लिए साम और भेद का प्रयोग करना चाहिए। समान बलशाली शत्रुओं के साथ भेद तथा दण्ड नीति का प्रयोग करना चाहिए और अपने से हीन शत्रुओं के साथ सदैव दण्डनीति का ही प्रयोग करना चाहिए (शु॰नी॰ ४।३८)। मित्र के लिए सदैव साम-दान का प्रयोग ही उचित माना गया है। किसी भी स्थिति में मित्रों के साथ भेद या दण्ड नीति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शत्रु-राजा की प्रजा में भेद का, शत्रुपीड़ित प्रजा के संग्रह के लिए साम तथा दान का विधान किया गया है। अपनी प्रजा के लिए शुक्र ने साम तथा दान के प्रयोग को ही समुचित बतलाया है। किन्तु यदि इन उपायों से काम न चले तो अन्ततः दण्ड का भी प्रयोग समुचित माना गया है। इन चारों उपायों की प्रशंसा, इनके निदर्शन, उपयोग, प्रयोग और औचित्य का सोदाहरण वर्णन शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के प्रारंभिक अंश में दर्शनीय है। शुक्रनीति में वर्णित उपायचतुष्टय प्रायोगिक है, इसलिए सूपयुक्त एवं व्यवस्थित हैं।

शुक्र के सप्त राज्याङ्ग

राज्य के विभिन्न अङ्गों का अनेक रूपों में वर्णन महाभारत एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध होता है। आचार्य शुक्र ने भी राज्य को सप्ताङ्ग माना है। इनके अनुसार राजा, मंत्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल—ये राज्य के सात अंग हैं। शुक्र ने मंत्री को राज्य के चक्षु, मित्र को कान, कोश को मुख, बल को मन तथा दुर्ग को हाथ एवं राष्ट्र को पैर माना है—

"स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्ताङ्गमुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः॥
दृगमात्यः सुहृच्छ्रोत्रं मुखं कोशो बलं स्मृतः।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रे राज्याङ्गानि स्मृतानि हि"॥ (शु॰नी॰ १।६१-६२)

इसी तरह चतुर्थ अध्याय में राज्य को एक वृक्ष का रूपक देकर शुक्र ने मनोरंजक ढंग से इनके अङ्गों का विश्लेषण किया है। शुक्र की दृष्टि इस विषय में स्फीत, स्वस्थ एवं युक्तिसंगत है। इन छोटे स्थलों में इन अङ्गों का अलग-अलग विवेचन उचित प्रतीत नहीं होता। सन्दर्भगत इसे कोई पर्यालोचक देखकर इस नीति का स्पष्टीकरण कर सकता है।

मन्त्रिपरिषद्

आचार्य शुक्र ने सुव्यवस्थित ढंग से राज्य-संचालन हेतु एक 'मन्त्रिपद पर अधिक बल दिया है। उनकी दृष्टि में एक स्वतंत्र राजा निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी हो सकता है। अनुचित कार्य करने में प्रवृत्त हो सकता है। अतः उस पर अंकुश लगाने के लिए, औचित्य पथ पर उन्हें प्रेरित करने के लिए सुयोग्य सहायकों का होना अनिवार्य है (४।५६-५८)। अतः उन्होंने मंत्रि-परिषद्' के गठन पर बल दिया है—

"सुहृद्भिर्भ्रातृभिः सार्द्धं सभायां पुत्रबान्धवैः।
राज्यकृत्यं सेनपश्च सभ्याद्यैश्चिन्तयेत्सदा"॥ (शु॰नी॰१।३५३)

शुक्रनीति के अनुसार इस परिषद् में सदस्यों की संख्या दस होनी चाहिए। ये दस सदस्य इस प्रकार हैं—पुरोधा, प्रतिनिधि, प्रधान सेनापति, पण्डित, प्राड्विवाक, सचिव, सुमंत्र, मंत्री, अमात्य और दूत। यथा—

"पुरोधाश्च प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवस्तथा।
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः॥
अमात्यो दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश"॥ (शु॰नी॰ २।७१-७२)

इस संदर्भ में शुक्र ने एक अन्य मत का भी उल्लेख किया है। इसके अनुसार राजपरिषद् में केवल आठ प्रकृतियों का ही उल्लेख किया गया है—'अष्टप्रकृतिभिर्युक्तो नृपः कैश्चित् स्मृतः सदा।' तदनुसार ये आठ प्रकृतियाँ हैं—सुमन्त्र, पण्डित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि (शु॰नी॰ २।७३-७४)। मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की योग्यता का उल्लेख करते हुए शुक्र ने कहा है—इन्हें कुलीन, गुणवान्, शीलवान्, शूर, विद्वान्, राजभक्त, प्रियंवद, हितोपदेष्टा, क्लेशसहिष्णु, धर्मनिष्ठ, चतुर, रागद्वेष रहित अतएव सच्चरित्र होना चाहिए। क्योंकि दुश्चरित्र एवम् अधार्मिक सहायकों के कारण राज्य विनष्ट हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धि का वैभव भिन्न-भिन्न होता है। यथार्थवक्ता की बातों से तथा आगम, अनुमान, प्रत्यक्ष और उपमान—इन साधनों से, साहस, छल-बल, गुरुता एवं लघुता से व्यवहारों में जो विभिन्नता एवं महत्ता पाई जाती हैं, उन सबों का ज्ञान प्राप्त करना अकेले किसी व्यक्ति के वश की बात नहीं है। अतः राजा को राज्य की उन्नति के लिए परिषद्-गठन की आवश्यकता होती है (शु॰नी॰ २।६-७)। दुश्चरित्र एवं कुमंत्रणाप्रवीण सहायक स्वयं तो नष्ट हैं ही, राज्य को भी ले डूबते हैं। युवराज एवं मंत्रिगण दोनों ही राजा के क्रमशः दायें-बायें अङ्ग की दोनों बाँहें, आँखें और कान होते हैं। इनके बिना तो राजा निश्चय ही बाँहें, आँखें और कानों से रहित हो जाता है। अतः काफी बुद्धिमानी से राजा को इनका चयन करना चाहिए (शु॰नी॰ २।९२-९३)।

सदस्यों का कार्य-विभाजन

आचार्य शुक्र के अनुसार मंत्रिपरिषद् के प्रत्येक सदस्य का कार्यक्षेत्र विभाजित होना चाहिए। सभी सदस्य सभी कार्य में हाथ नहीं बँटा सकते। सबों का कार्यक्षेत्र बँटा रहना चाहिए। कार्यक्षेत्र का बँटवारा व्यक्तिनिष्ठ योग्यता एवं अर्हता के आधार पर ही होना चाहिए। विषय-विशेषज्ञ का कार्य एवं निर्णय निश्चय ही प्रशंसनीय होता है। साथ ही प्रजा का भी यह पवित्र कर्तव्य होना चाहिए कि अपनी समस्या सर्वप्रथम राजा के सामने न उपस्थित कर उचित स्रोत अर्थात् तद्विषयक मन्त्री के माध्यम से ही राजा तक पहुँचाना चाहिए। मंत्रियों द्वारा सूचित समस्याओं पर तर्क-वितर्क के बाद ही बहुमत के आधार पर राजा को निर्णय देना चाहिए। सभी सदस्यों के कार्यों का निरीक्षण करने के लिए राजा को 'दर्शकों' (Inspectors) की नियुक्ति करनी चाहिए। इनका कार्यकाल मात्र एक वर्ष का ही होना चाहिए। इन्हें स्थानान्तरित कर देना चाहिए। शुक्र की दृष्टि में इन दर्शकों का काम बड़ा ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन्हें पक्षपात रहित व स्वस्थ दृष्टिकोण से तटस्थ होकर किसी के कार्य का निरीक्षण व परीक्षण करना चाहिए।

राजकीय पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, पदच्युति, स्थानान्तरण एवं पदमुक्ति

नियुक्ति (Appointment)

उच्चपदाधिकारियों की नियुक्ति (Appointment) उनके स्पष्ट व्यक्तित्व के आधार पर करना चाहिए। सत्यवादी, गुणी, उच्चकुलोत्पन्न, सम्पन्न, मनसा-वाचा-कर्मणा निरन्तर राजसेवक, प्राप्तवेतन से सदैव सन्तुष्ट, मधुरभाषी, कार्यकुशल, स्थिरचित्त, पवित्राचारी, परोपकारी, अपकारविमुख, अपराधी राजकुमार एवं अपने पिता पर भी निगाह रखने वाला, कुपथगामी स्वामी को भी सत्पथगामी बनाने में प्रयत्नशील, राजपरिवार के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पण की भावना रखने वाले व्यक्ति को उच्चाधिकारी के पद पर नियुक्त करना चाहिए (शु॰नी॰ २।५७-६६)।

पदोन्नति (Promotion)

"यथा यथा श्रेष्ठपदे ह्यधिकारी यदा भवेत्।
अनुक्रमेण संयोज्यो ह्यन्ते च प्रकृतिं नयेत्"॥ (शु॰नी॰ २।११६)

शुक्राचार्य के विचार से यथाक्रमन्याय से सदाचारी एवं सुयोग्य पदाधिकारियों को पदोन्नति मिलनी चाहिए। अव्यवहित निम्नपदस्थ व्यक्ति को उच्चपद पर पदोन्नति अवश्य देनी चाहिए। यह पदोन्नति कर्मठ पदाधिकारी को तब तक मिलनी चाहिए जब तक वह प्रधान पुरुष के पद पर न पहुँच जाय।

पदच्युति (Discharge)

"प्रजाशतेन सन्द्विष्टं सन्त्यजदधिकारिणम्"। (शु॰नी॰ १।३७७)

किसी भी पदाधिकारी को अपने कार्य में असावधान पाने पर या उनकी अयोग्यता सिद्ध हो जाने पर उन्हें पदच्युत कर देना चाहिए (शु॰नी॰ २।१११)। यदि एक सौ प्रजा एक साथ मिलकर किसी अधिकारी के विरुद्ध आवेदनपत्र भेजे तो उस पदाधिकारी को पदच्युत कर देना चाहिए (शु॰नी॰ १।१७७)। यदि किसी कर्मचारी का आचरण निन्दनीय हो तथा सत्याचरण, परोपकार एवं आज्ञापालन—इन तीनों गुणों से रहित हो तो उन्हें पद से च्युत कर दे (शु॰नी॰ १।१११-११५)। जो पदाधिकारी हिंसक प्रवृत्ति के हों तथा मिथ्या भाषण करे, उसे भी पदच्युत कर देना चाहिए। इस संदर्भ में मूल ग्रन्थ का प्रथम एवं द्वितीय अध्याय विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

स्थानान्तरण (Transfer)

"त्रिभिर्वा पञ्चभिर्वापि सप्तभिर्दशभिश्च वा।
दृष्ट्वा तत्कार्यकौशल्ये तथा तं परिवर्त्तयेत्"॥ (शु॰नी॰ २।११२)

शुक्राचार्य के अनुसार राजा तीन, पाँच, सात या अधिकतम दस साल में पदाधिकारियों की कार्यक्षमता देखकर उन्हें स्थानान्तरित कर दे। राजा सदा एक व्यक्ति को, चाहे वह कोई भी हो, एक स्थान पर अधिक दिनों तक कार्य न करने दे। उसकी कार्यकुशलता के अनुरूप

उसे स्थानान्तरित करता रहे (शु॰नी॰ २।११३)। कार्यक्षम व्यक्ति को कार्यान्तर में स्थानान्तरण कर देना चाहिए।

पदमुक्ति (Retirement)

"तत्कार्ये कुशलं चान्यं तत्पदानुगतं खलु।
नियोजयेत् वर्तने तु तदभावे तथापरम्॥
तद्गुणे यदि तत्पुत्रस्तत्कार्ये तं नियोजयेत्"॥ (शु॰नी॰ २२।११५)

यदि कार्यसम्पन्नता में शिथिलता आ जाय या पदाधिकारी या कर्मचारी बूढ़ा हो जाय तो उसे अवकाश ग्रहण करा दे और उसकी आवश्यकता की सम्पूर्ति हेतु उसके लिए अवकाश-वृत्ति (pension) की व्यवस्था कर दे। उसकी जगह किसी सुयोग्य व्यक्ति को पद पर स्थापित कर दे। यदि अवकाश-प्राप्त कर्मचारी या पदाधिकारी का पुत्र उस कार्य के लिए सक्षम हो तो उन्हें पिता के पद पर नियुक्त कर लेना चाहिए।

इनके अतिरिक्त आचार्य शुक्र ने भृत्यों के लिए दण्ड एवं पुरस्कार का भी निर्णय किया है। जो पदाधिकारी या कर्मचारी दक्षतापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह कर लेता है, उसे प्रोत्साहित करने के लिए समय-समय पर पुरस्कार की व्यवस्था करनी चाहिए। साथ ही जो कर्मचारी या पदाधिकारी अपने कर्तव्य में लापरवाही बरतें, उसके साथ सख्ती बरतनी चाहिए। ऐसे भृत्यों के लिए शुक्र ने अनेक प्रकार का दण्डविधान किया है।

कोश-सञ्चय

राजा को जिस किसी भी प्रकार से धन एकत्र करना चाहिए। संचित कोश से राज्य, सेना तथा यज्ञादि कर्मों की रक्षा करनी चाहिए। अतः सेना तथा प्रजा की रक्षा के लिए एवं यज्ञ के लिए जो कोश संचित किया जाता है, वह राजा के लिए लोक-परलोक के लिए सुखप्रद होता है, अन्यथा नहीं। अधर्मी राजे का धन छल, बल या डाका डालकर भी हरण कर अपना कोश संचित करना चाहिए। अकारण प्रजा पर जुर्माना, मालगुजारी या चुंगी बढ़ाकर देवोत्तर सम्पत्ति पर कर लगाकर कोश नहीं संचित करना चाहिए। इसी तरह मूलधन छोड़कर लाभांश का सोलहवाँ या बीसवाँ भाग राजस्व के रूप में ग्रहण करना चाहिए। भागकर, आकर कर और शुल्कादि के द्वारा राजकोश की वृद्धि के लिए शुक्र ने स्पष्ट निर्देश दिया है। प्रजा से शुल्क संग्रह करने में लाभालाभ का ध्यान भी आवश्यक है। अर्थदण्ड और उपायन (Presents) भी कोश-संचय का आधार होना चाहिए। संरक्षित कोश से सैन्य-संगठन, प्रजा-संरक्षण एवं यज्ञादि सम्पादन करते रहना चाहिए। विशेष अध्ययन के लिए 'कोशसंचय' नामक चतुर्थ अध्याय द्रष्टव्य है।

बल

'बल' शब्द शक्ति का पर्याय है। राज्य के प्रमुख अङ्गों में इसका विशिष्ट स्थान है। शुक्र ने बल के छः भेदों के अन्तर्गत अर्थशास्त्र में वर्णित मंत्रशक्ति, प्रभुशक्ति एवं उत्साहशक्ति का अन्तर्भाव कर दिया है। इनके अनुसार ये छः बल इस प्रकार हैं—शारीरिक बल, शौर्यबल, सैन्यबल, अस्त्रबल, बुद्धिबल तथा आयुर्बल। विशेष के लिए मूल ग्रन्थ द्रष्टव्य।

राष्ट्र

"स्थावरं जङ्गमं वापि राष्ट्रशब्देन गीयते।" (शु॰नी॰, ४।३।१)

आचार्य शुक्र के अनुसार राष्ट्र शब्द से स्थावर अर्थात् वृक्ष-पर्वतादि सहित भू-भाग तथा जंगम अर्थात् गो-मनुष्यादि चैतन्य प्राणी का बोध होता है। जिस राजा के अधीन जितना राष्ट्र अर्थात् भू-भाग होता है, वह उसका 'राज्य' कहलाता है। चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पदाएँ राष्ट्रपदवाच्य हैं। एक राज्य में अनेक बस्तियाँ होती हैं। उन्हें ग्राम, पल्ली या कुम्भ कहा गया है। इनके विचार से ग्राम एक कोस वर्ग का होता है, जिसकी मालगुजारी एक हजार रजतमुद्राएँ होती हैं। ग्राम के आधा 'पल्ली' और पल्ली का आधा 'कुम्भ' कहलाता है—

"भवेत्क्रोशात्मको ग्रामो रूप्यकर्षसहस्रकः।
ग्रामार्द्धकं पल्लिसंज्ञं पल्यर्द्धं कुम्भसंज्ञकम्"॥ (शु॰नी॰ १।१९३)

गाँवों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। ये अधिकारी हैं—ग्रामाधिपति, दण्डाधिपति, भागहर, लेखक, शुल्कग्राहक तथा प्रतीहार–

"साहसाधिपतिञ्चैव ग्रामनेतारमेव च।
भागहारं तृतीयं तु लेखकञ्च चतुर्थकम्।
शुल्कग्राहं पञ्चमं च प्रतिहारं तथैव च।
षट्कमेतन्नियोक्तव्यं ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे"॥ (शु॰नी॰ २।१२१-१२२)

इस राष्ट्र में नगरों की स्थापना भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। साज-सज्जा एवं सौन्दर्य-व्यवस्था के लिए इन नगरों में विशेष ढंग के पदाधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। शुक्र ने आधुनिक ढंग से मार्केट की व्यवस्था को अपेक्षित माना है। उनकी दृष्टि में एक तरह की विक्रेय वस्तु की व्यवस्था एक ही मार्केट में होनी चाहिए। मार्केट की सुव्यवस्था के जिन पदाधिकारियों की नियुक्ति होती है, उनकी योग्यता एवं दक्षता के सन्दर्भ में शुक्र ने द्वितीय अध्याय में जमकर विचार किया है।

यातायात की सुविधा की दृष्टि से राष्ट्रव्यापी सड़कों के निर्माण पर शुक्र ने काफी बल दिया है। राजभवन की चारों दिशाओं में राजमार्ग की व्यवस्था होनी चाहिए। ये राजमार्ग सम्पूर्ण देश को एकसूत्र में जोड़ देते हैं। उत्तम राजमार्ग तीस हाथ चौड़ा होता है। बीस हाथ चौड़ा राजमार्ग मध्यम दर्जे का माना जाता है। पन्द्रह हाथ चौड़ा राजमार्ग अधम कोटि का माना जाता है। गाँव एवं शहरों में ऊपरलिखित तीन प्रकार की सड़कों की ही व्यवस्था है। (शु॰नी॰ १।२६०-६१)

और यात्रियों को ठहरने के लिए जगह-जगह पान्थशाला की व्यवस्था होनी चाहिए। ये पान्थशालाएँ सुरक्षित एवं जलाशय युक्त हों, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें समान आकृति के अनेक घर कतार में होने चाहिए (शु॰नी॰ १।२५७)। इनकी देखरेख के लिए एक स्थायी व्यक्ति इसकी व्यवस्था करे। ये पदाधिकारी 'पान्थशालाधिप' कहलाते हैं। पान्थशाला में टिके पथिकों का पूरा विवरण लिखित रूप में होना चाहिए।

ब्राह्मण

"ब्राह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं नु ब्राह्मणाः ।
न वर्णतो न जनकात् ब्राह्मतेजः प्रपद्यते" ॥ (शु॰नी॰ १ ।३९)

वर्णाश्रम व्यवस्था के सुदृढ़ पक्षधर होते हुए भी आचार्य शुक्र का वर्णव्यवस्थात्मक दृष्टिकोण क्रान्तिकारी प्रतीत होता है। उनके अनुसार जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ होता है। वस्तुतः गुण और कर्म के भेद से ही ब्राह्मणत्व होता है—

"न जात्या ब्राह्मणाश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः" ॥ (शु॰नी॰ १ ।३८)।

सृष्टि के सभी जीव ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। अतः क्या वे सभी ब्राह्मण कहला सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि ब्राह्मण जाति में जन्म लेने से ही किसी में ब्रह्मतेज नहीं प्राप्त हो जाता है। ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड का प्रकाण्ड विद्वान् होता हुआ, देवाराधन में लीन, शान्तचित्त, इन्द्रियविजेता तथा स्वभाव से दयालु होना ब्राह्मणत्व के कारण होते हैं। इन गुणों से हीन व्यक्ति केवल ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर कोई ब्राह्मण नहीं होता। स्वभावतः आचार्य शुक्र गुणकर्मवादी प्रतीत होते हैं। गुण और कर्म को झूठलाया नहीं जा सकता, पर यही तथ्य समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इस सन्दर्भ में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के विचार भी उपेक्षणीय प्रतीत नहीं होते हैं। उनका कहना है—"अगर जमीन उठ कर ऊपर आसमान से नहीं मिल सकती, तो यह भी निश्चित है कि आसमान जमीन का सोंधी मुख वाला मुँह चूमने के लिए नीचे नहीं उतर सकता। यों कोई बैठा ठाला आदमी जमीन-आसमान क़ा कुलावा मिलाया करे।" शास्त्रीजी के इस कथन में भी काफी दम है।

यह भी सच है कि आज भारतवर्ष के श्रेष्ठतम वर्ण का नाम ब्राह्मण नहीं है। पर एक समय वैसा भी था जब यह देश संस्कृति और सभ्यता के सर्वोत्तम शिखर पर विद्यमान था। उस समय वहाँ की यही ब्राह्मण जाति संसारभर के लोगों को सभ्यता और सच्चरित्रता की शिक्षा देती थी। मनु का भी कथन है—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याः सर्वमानवाः" ॥

अर्थात् इसी देश में उत्पन्न ब्राह्मणों क़े निकट आ-आकर पृथ्वी के सब मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

जो जाति किसी समय विश्व क़े मानव को शिक्षित, सभ्य और सदाचारी बनाने की शक्ति रखती थी, आज कालक्रम से वह इतनी अशिक्षित, असभ्य एवं दुश्चरित्र हो गई है कि उसे सर्वाधिक निम्न क्या, पतित एवं भिखारी तक कहते कोई कुण्ठित नहीं होता।

पर जिस समय त्याग और तपस्या की मूर्ति इस जाति का प्रतापादित्य मध्याह्न की प्रभा में था, सबके उत्तमाङ्ग इसके पादपद्मों का पराग प्राप्त करने के लिए विनयरत रहते थे, आज

उस युग की स्मृति का अवशेष मात्र इस भग्न देश में है। इसकी प्याली तो टूट गई, पर उसकी स्मृति में भी मस्ती है। इस उजड़ी, अपमान भरी दुनिया में भी उसकी एक नन्ही बस्ती तो बची है।

इस चरित्रवान् विद्याभिमानिनी जाति की एक छोटी गाथा छान्दोग्योपनिषद् में है, जो इस प्रकार है—एक छोटा-सा ब्राह्मण बालक था। उसका नाम था सत्यकाम और उसकी माता का नाम था जबाला। एक दिन उसने अपनी माता से पूछा कि मैं किस गोत्र का हूँ? मुझे बता दो। मैं भी अब आश्रम में जाकर ब्रह्मविद्या की शिक्षा ग्रहण करूँगा।

माता ने कहा—बेटा, मुझे तो तुम्हारा गोत्र ज्ञात नहीं है। जब तुम उत्पन्न हुए थे तब मैं नवयुवती ही थी। दिन-रात अतिथियों, अभ्यागतों के सेवा-कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उस समय तुम्हारे पिता से मैं उनका गोत्र पूछ नहीं सकी थी और अब वे इस संसार में रहे ही नहीं। मुझे केवल इतना ही मालूम है कि तुम्हारा नाम सत्यकाम है और मेरा नाम जबाला। इसलिए यदि तुम्हारे आचार्य तुमसे गोत्र की जिज्ञासा करें तो कह देना मैं 'जाबाल' हूँ।

बालक गुरु गौतम के पास पहुँचकर माता की कही हुई बातों को दुहरा दिया। सुनकर ऋषि ने समझ लिया कि यह निश्चय ही ब्राह्मण का बालक है। क्योंकि ब्राह्मणेतरों के स्वभाव में इतनी ऋजुता, ऐसी सरलता, स्पष्टता एवं सत्यता प्राप्त होने को नहीं। फलतः उन्होंने उनका उपनयन संस्कार करने के लिए समिध आदि होम की सामग्रियाँ लाने की तत्क्षण आज्ञा दे दी।

इस कथन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है ब्राह्मण होने के कारण सत्यवादी होना और सत्यवादी होने के कारण ब्राह्मण होना—ये दो बाते हैं। उपनिषद् के अनुसार ब्राह्मण होने के कारण ऋजुस्वभाव, सत्यप्रकृति, स्पष्टवादी होना बतलाता है कि ब्राह्मण में जहाँ त्याग, तपस्या आदि अनेककानेक अपनी जातीय विशेषता रहती हैं, वहाँ उसमें सत्यवादिता भी सत्यकाम की कोटि कीं होती है। केवल सत्यवादी होने के कारण कोई ब्राह्मण नहीं कहला सकता। इसीलिए महाराज हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर आदि सत्यावतार होने पर भी राजर्षि ही कहलाये, ब्रह्मर्षि नहीं। 'धिग्बलं क्षत्रियबलं तेजोबलबलं स्मृतम्'। इस बात को माननेवाले विश्वामित्र ने राजर्षि से ब्रह्मर्षि बनने के लिए पता नहीं कितनी कठिन तपस्या की थी। अर्थात् ब्राह्मण होने के लिए ब्राह्मण वंश में उत्पत्ति और उसके आदर्श का पालन दोनों ही आवश्यक हैं। आचार्य शुक्र का प्रायः ब्राह्मण से यही अभिमत है। केवल जात्या नहीं, कर्मणा भी ब्राह्मणत्व की अपेक्षा है।

'न वर्णतो न जनकात्' से यह अर्थ उचित नहीं कि सिंह और सियार का बच्चा एक ही कुल का मान लिया जाय। इसीलिए शंकराचार्य ने सुस्पष्ट शब्दों में कह दिया है—

'वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणाम्'।

केवल वेद द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार शूद्रों को नहीं है। यह बात भी अभिमान से नहीं कही गई है। समाज की सुव्यवस्था के लिए, वर्णाश्रम धर्म का सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने के लिए स्वयं ईश्वरकृत यह प्रविभाग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"। प्रत्येक के लिए पृथक् अर्थात् पृथक् गुण और कर्मों का सम्यक्

विभाजन करते हुए स्वयं मैंने वैज्ञानिक रीति से बहुत सोच-विचार कर चतुर्वर्ण की व्यवस्था की है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में— 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत' ॥ विराट् पुरुष के इस रूपक द्वारा शिर से पैर तक दुरुस्त, शृंखलित समाज का संगठन ही तो बतलाया गया है। वह इसी नियम या शृंखला का फल था कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य को सच्चाई और ईमानदारी से पूरा करता था। सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य फैला था। आज 'सर्ववर्णसमुच्चय' या 'वर्णसांकर्य' का ही यह कुप्रभाव है कि समस्त भारतवर्ष दुःख-दारिद्र्य में, उग्रवाद, नक्षलवाद या संहारकवाद की चपेट में पड़ा त्राहि-त्राहि कर रहा है। सबके सब--

"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"॥

को भूल गये हैं। अस्तु, जिस कार्य को स्वयं भगवान् ने किया था, आज यदि उसे किसी समाज-विशेष का सदस्य कर सकने की कुचेष्टा करता है तो मात्र यह उसका दम्भ ही तो है। इसी अनधिकार के कारण परमकारुणिक भगवान् श्रीराम को तपस्या करते हुए शूद्र शम्बूक का वध करना पड़ा था। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शास्त्रीजी के विचार अक्षरशः तर्कपूर्ण एवं अकाट्य हैं। आचार्य शुक्र का—**'भेदिता गुणकर्मभिः'** का तात्पर्य निश्चय ही गुण-कर्म के साथ जन्म का सहयोग भी अपेक्षित है, अन्यथा ब्राह्मण तो ब्राह्मण है ही।

नारी

आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के लोकधर्मनिरूपण-प्रकरण में भारतीय नारी के नित्य-नैमित्तिक कृत्यों का विवरण प्रस्तुत किया है। इससे जहाँ नारी के उदात्त जीवन पर प्रकाश पड़ता है, वहीं उनके कर्त्तव्यों का भी निर्देश मिलता है। कहना न होगा कि भारतीय विचारधारा नर-नारी को पुरुष-प्रकृति के रूप में निरूपित करती है। पुरुष को निर्गुण और प्रकृति को त्रिगुणात्मिका मानती है। माया और मायी के आध्यात्मिक प्रयोग के अतिरिक्त शिव-शक्ति का रूपक भी प्रचलित है, जिसके अनुसार शक्तियुक्त शिव ही सृष्टि की सामर्थ्य रखता है। अन्यथा शक्तिनिरपेक्ष होकर तो वह तनिक भी स्पन्दित नहीं हो सकता है।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतः स्थान-स्थान पर नारी-चरित्र में देवत्व, मनुष्यत्व और पशुत्व के शत-शत निदर्शन मिलते हैं। आज तक नारी को राग और विराग दोनों ही दृष्टियों से देखा जाता रहा है। नारी को परखने की यह निश्चय ही निर्वैयक्तिक दृष्टि नहीं हो सकती। राग और विराग के पूर्वाग्रहदूषित यह दृष्टि कदापि वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती है। पर यह भी सच है कि युगधर्म के अनुसार सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक कारणों से सदा नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन होता रहा है। किन्तु नारी का जो रूप आज देखा जा रहा है वह किसी भी समाज का प्रौढता का परिचायक नहीं हो सकता है।

मैं मानता हूँ कि आज की शिक्षा में नारी-समाज की रुचि में काफी परिवर्तन ला दिया है। आधुनिकता के नाम पर सहज भारतीय संस्कारों का प्रभाव कहीं गुम हो गया है। नारी-स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्दता का बोलबाला है। फैशन पर स्त्री के नाम पर नग्न कामुकता का प्रदर्शन है। नारी कामना का प्रतीक हो सकती है, नारीरूप तथा नारीसौन्दर्य के

प्रति अनुरागात्मक दृष्टिकोण हो सकता है। आचारानुकूल काम को तो स्वयं भगवान् ने अपना प्रतीक माना है। परन्तु पुरुष के पौरुष को ललकारता आज के स्वच्छन्द नारी-समाज ने क्या पाया? क्या खोया? यह प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा है।

नारी, जिसने पुरुषों को जन्म दिया; नारी, जिसने धार्मिक कर्मकाण्डों में पुरुषों का साथ दिया; नारी, जिसने तत्त्वदर्शन का अध्ययन किया; नारी, जिसने पुरुष को रणाङ्गण में साथ दिया; नारी, जिसने पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर उसके हर अनुष्ठान में साथ दिया; उसके सुख-दुःख में सहभागिनी बनी रही, उसे आज के पुरुष-समाज ने क्या दिया? आज के तथाकथित सुसंस्कृत और विकसित समाज में वह निम्न दर्जे की हकदार बनी, बलात्कार की शिकार बनी, दहेज की बलिवेदी पर अकारण चढ़ी, कामुकता का लक्ष्य बनी, विविध प्रताड़ना की भागी बनी, सहज भोग की वस्तु समझी गई, कोठे के लिए मजबूर हुई। हाँ, समानता के प्रलोभन में जिस प्रकार बिजली के कौंध जाने पर अन्धकार में प्रकाश की एक हलकी झलक दीख जाती है, उसी प्रकार यदा-कदा स्त्री को भी कुछ अल्प समय के लिए समाज में अच्छा दर्जा मिल जाता है। परन्तु अधिकांश समय तो वह पुरुष की प्रस्थिति (status) को छू भी नहीं पाती। आज तक समाज की कोई व्यवस्था उसे पुरुष के समानान्तर नहीं ला सकी।

नारी ने अपने जिस विगत स्वरूप को त्याग दिया, उसने उसे क्या नहीं दिया? इतिहास साक्षी है कि उसने आदर, सम्मान और समानता का भी समय देखा है। सम्पत्ति की हकदार भी बनी है। अपने त्याग के बल पर उसने समाज में अति समादरणीय पद पर प्रतिष्ठित रही है। पुरुष की पति और पुत्र के रूप में वह सदैव अनुगामी बनी रही हैं। अपने इस मौलिक स्वरूप का त्याग कर उसने क्या पाया? प्रताड़ना, प्रपीड़न, उत्पादन और अपमान। ऐसी स्थिति में शुक्रनीति का यह प्रसंग नारी के विगत वैभव का ही तो संकेत करता है।

नैतिकता की दृष्टि से शुक्र ने भारतीय नारी के नित्य एवं नैमित्तिक कृत्यों का वर्णन किया है। उनके अनुसार स्त्री तथा शूद्र को क्रमशः पति एवं स्वामी की सेवा छोड़कर जप, तप, तीर्थ सेवन, संन्यास, मंत्रसाधना या देवपूजा नहीं ही करनी चाहिए। स्त्रियों के लिए पति की सेवा छोड़कर अन्य कोई धर्म तथा काम की सिद्धि के लिए साधन नहीं है (शु॰नी॰ ४।४-५)। नारी के नित्य-कृत्य का निर्देश करते हुए उन्होंने कहा है—पति के शय्या छोड़ने के पूर्व नारी को बिछावन छोड़ देना चाहिए। शौचादि से निवृत्त होकर पति को उठा दे। पुनः बिछावन गोलकर गृह की सफाई कार्य में जुट जाना चाहिए। फिर आँगन में बिखरे सामानों को इकट्ठा कर आँगन में झाड़ू लगा दे। फिर घी से चिकने यज्ञपात्रों को गर्म पानी से धो-पोंछ कर ठीक कर ले। फिर उन्हें यथास्थान रख दें। अच्छी तरह सूख जाने पर उनमें घी डालकर अन्य उपकरणों के साथ पूजागृह में रख दे। तत्पश्चात् रसोईगृह में प्रवेश करे। नित्य भोजन में प्रयुक्त पात्रों को रसोईघर से बाहर निकाल ले। उन्हें चारो तरफ से माँज-धोकर एक किनारे रख दे। फिर रसोईघर की सफाई करे। इसके बाद चुल्हा के पास आग और जलावन की लकड़ी रख दे। फिर उस दिन कार्य में आने वाले पात्रों, अन्न, दूध, घी, तेल, सब्जी आदि की व्यवस्था कर ले। दिन के पूर्वार्द्ध के उपयोग में आने वाली समस्त वस्तुओं की व्यवस्था सम्पन्न कर अपने सास एवं श्वसुर को जाकर विनम्र भाव से प्रणाम करे। इसके बाद वह स्नान कर सास-श्वसुर, पति, माता-पिता, भाई तथा आप्तजनों के द्वारा प्रदत्त वस्त्राभूषण ही

धारण करे। मन, वचन एवं कर्म से पवित्र रहकर, निर्मल, निष्कलुष स्थति में पति की मनःस्थिति का अनुमान कर चलने वाली, छाया की तरह पति का अनुगमन करने वाली, हितकर कार्यों में मित्र की तरह सहयोगिनी बनकर पति के द्वारा निर्दिष्ट कार्यों में दासी की तरह पति को सहयोग देकर सदैव उसके साथ रहे। रसोईघर में अन्न पकाकर पति के सामने रखे। निष्ठापूर्वक बलि-वैश्वदेव से बचे सिद्धान्न से भोजन कराने योग्य लोगों को भोजन कराये। पति को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भोजन कर शेष दिन के भाग में अपने पारिवारिक आय-व्यय का अनुचिन्तन करे। फिर शाम को सुबह की तरह गृहमार्जनादि के बाद साध्वी स्त्री पति को भोजन कराने के बाद नौकर-चाकरों को भोजन कराये। इसके बाद स्वयं हलका भोजन करे। गरिष्ठ भोजन कभी न करे। इसके बाद अवशिष्ट नियमित गृहकार्य समाप्त कर शय्या बिछा दे। पति के लेट जाने पर उनकी परिचर्या समाप्त कर पति जब विश्राम की स्थिति में आ जाय तो स्वयं भी उसके बगल में सो जाय। वह कभी नग्न न रहे। किसी कार्य में असावधानी न बरते। किसी वस्तु की कामना प्रकट न करे। इन्द्रियों को अपने वश में रखे। ऊँची आवाज में बिलकुल न बोले। न तो कठोर वचन बोले और न ऊँची आवाज देकर किसी को बुलाये। किसी को अप्रिय बातें न कहें और न किसी से विवाद ही करे। विवाद की स्थिति यदि अनिवार्य हो जाय तो निरर्थक प्रलाप से बचे। पति का अधिक धन व्यय न कराये। पति के धर्म या अर्थ सम्बन्धी कार्यों का विरोध न करे। असावधानी, उन्मत्तता, क्रोध एवं ईर्ष्या प्रकट करने वाली बातों का सदा परित्याग कर दे। चुगलखोरी, हिंसा, निन्दा, विषयासक्ति, अहङ्कार, अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन, नास्तिकता एवं साहसिक कार्य चोरी एवं दमन का परित्याग कर दे।

भारतीयों के नैमित्तिक कृत्यों का वर्णन करते हुए आचार्य शुक्र ने कहा है—रजोदर्शन के बाद तीन दिनों तक स्त्रियों को नित्यकर्म से विरक्ति ले लेनी चाहिए। सबसे अलक्षित घर के किसी एक कोने में निवास करे। एक ही वस्त्र धारण करे। दीन-हीन अवस्था में साज-शृंगार से रहित एकान्त सेवन करे। प्रमादरहित धरती पर सोकर यह तीन दिन की अवधि व्यतीत करे। इस तरह तीन रात बीत जाने पर चौथे दिन सूर्योदय के बाद सचैल स्नान करे। स्नानोपरान्त पतिदर्शन के बाद पुनः अपने नित्य कर्म में प्रवृत्त हो। पति-पत्नी के प्रति आकर्षित रहे, उसे उससे विरक्ति न हो, इसके लिए उसे पति यदि परदेश में हो तो उस महिला को घर से बाहर नहीं घूमना चाहिए और न आकर्षक वेशभूषा ही धारण करना चाहिए। मंगलसूचक साध्वी स्त्री के चिह्नों के अतिरिक्त आभूषणों का उसे परित्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के लोकधर्मनिरूपण-प्रकरण में नारी-चरित्र का विशद वर्णन किया है। उनके जीवन का एक नैतिक मूल्य का मापदण्ड स्थिर करने की चेष्टा की है।

आज से हजारों साल पूर्व नारी-जीवन की ऐसी विशद उदात्त कल्पना देखकर शरीर पुलकित हो उठता है, रुधिर गर्म हो जाता है और अपनी संस्कृति पर गर्व से छाती फूल उठती है कि उस आर्ष युग में हमारे देश में एक ऋषि ने नारीत्व के इस तेज, चरित्र और निष्ठा की यह विशद कल्पना की थी। मालूम नहीं, नारी-चरित्र की ऐसी अशरीरिणी विशुद्धि, चारित्रात्मिकता की ऐसी सजीव कल्पना इस तरह और भी किसी नीतिकार ने की है या नहीं। यहाँ भारतीय नारी के सामने पुरुष स्वतः क्षुद्र प्रतीत होता है।

प्रस्तुत संस्करण

संस्कृत के विश्वविजयी नीतिग्रन्थों में शुक्र का नीतिसारसंग्रह भी एक ग्रन्थ है। इनकी मौलिकता पर उँगली उठाने वाले भी इनकी लोकप्रियता के सम्बन्ध में दो मत नहीं रखते। संस्कृत में ऐसे श्रेष्ठ ग्रन्थों की भी एक विशाल परम्परा है, जिन्हें प्रामाणिक लेखकों के अभाव में मौलिक मानने में हिचकिचाहट हो सकती है, किन्तु जो लोकप्रियता में अब भी अतुल है।

विषयवस्तु के संकलन की दृष्टि से व्यावहारिक तथ्य-निरूपण में इस ग्रंथ की महत्ता अद्वितीय है। यह ग्रन्थरत्न अनेक संस्करणों में अनेक रूप में प्रकाशित हैं। इनमें ऑपर्ट (Oppert) महोदय का मद्रास से प्रकाशित संस्करण, जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित संस्करण, प्राध्यापक विनय कुमार सरकार का 'Sacred Books of Hindu Series' में अंग्रेजी अनुवाद का संस्करण, पण्डित श्री ब्रह्मशङ्कर मिश्र का चौखम्बा संस्कृत संस्थान से प्रकाशित संस्करण जहाँ-तहाँ पूरे-अधूरे रूप में उपलब्ध है। परन्तु इस ग्रंथरत्न के विभिन्न संस्करणों को मिलाकर देखने पर इसमें अनेक विभिन्नताएँ दीख पड़ती हैं।

पं० जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित संस्करण के मूल पाठ को मैंने अपनी संस्कृत-हिन्दी व्याख्या का आधार बनाया है। साथ ही उनकी संस्कृत टीका को भी इसमें सम्मिलित किया गया है। परन्तु उपलब्ध संस्करण में आरम्भिक ३४ श्लोकों (प्रथम अध्याय श्लोक संख्या १ से ३४) के खण्डित होने से इन ३४ श्लोकों की संस्कृत टीका अनुपलब्ध होने के कारण इसकी पूर्ति भी उसी आदर्श पर की गई है। व्याख्या-क्रम में पाठभेद, आर्ष-प्रयोग, अप्रचलित अर्थ में शब्द-संयोजन से लगातार उलझता रहा हूँ। इसी बीच नेत्र- चिकित्सा के लिए मद्रास जाना पड़ा और फिर आने का आश्वासन लेकर बीमार आँख के साथ लौट जाना पड़ा। नेत्रज्योति की अशक्तता से उलझता साहसपूर्वक इस अनुष्ठान में जुटा रहा। इस अनुष्ठान के पुरश्चरण में मेरे ज्येष्ठ पुत्र श्री अवधेश कुमार मिश्र, तृतीय पुत्र श्री अमरेश कुमार मिश्र (दोनों बैंक पदाधिकारी), कनिष्ठ पुत्र श्री भवेश कुमार मिश्र, अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, एम०आर०डी० कॉलेज, मेघौल तथा पौत्री सुश्री शुभांसुबाला अंग्रेजीप्रतिष्ठा की छात्रा ने लेखन कार्य में सहयोग देकर मेरा मनोबल बढ़ाते रहे हैं। इनके सहयोग के लिए मैं इन्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ। इस सन्दर्भ में उत्साहसम्पन्न, धैर्य और साहस की प्रतिमूर्त्ति अपने प्रकाशक गुप्तबन्धुओं को भी मैं नहीं भुला सकता, जो एक से एक अनुपलब्ध ग्रन्थों का प्रकाशन कर सुरभारती की सेवा में कटिबद्ध हैं।

अन्त में सुधी समीक्षकों, विज्ञ पाठकों एवं विद्वज्जनों से प्रार्थना करूँगा कि इस संस्करण में अगर कुछ भी अच्छाई, नवीनता या उपयोगिता की वस्तु उन्हें प्रतीत हो तो सानुग्रह दृष्टि से इसे अपनाकर लेखक और प्रकाशक के श्रम को सार्थक करेंगे।

विधुव्योमाब्धिवसुधाब्दे बोधिन्याञ्च विभोर्बुधे।
मिश्रजगदीशचन्द्रेण भूमिकेयं समापिता॥

कार्त्तिक शुक्ल एकादशी, सन् १४०१ साल।
प्रोफेसर्स कालोनी, पो० रिफाईनरी टाउनशिप,
बेगूसराय ८५१११७

विदुषामनुचरः
डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

विषय पृष्ठ
ग्रन्थ का मङ्गलाचरण १
ग्रन्थ की प्रस्तावना १
नीतिशास्त्र की योजना ३
नीतिशास्त्र की गरिमा ४
व्याकरण ज्ञान की महत्ता ४
राजा की नीतिशासज्ञता ६
राजा का आचार प्रेरकत्व ९
धर्म की महत्ता १०
सात्विकादि राजा के तीन भेद १२
दुर्गति-सुगति में कर्म की प्रधानता १४
राजा देवांशोद्भव २९
गुणवान् राजा की परिभाषा ३१
राजा का जितेन्द्रिय होना आवश्यक ३९
मन का नियन्त्रण ३९
विनाश के मूल कारण ४१
शब्द विषय का कारण ४१
रूप विषय का कारण ४१
रस विषय का कारण ४१
गन्ध विषय का कारण ४२
द्युतादि व्यसन जन्यदोष ४३
राजकीय अष्ट व्यवहार ५०
राजा के गुण और द्वेष ५१
आन्वीक्षिकी प्रभृति विद्या की परिभाषा ६३
मनोहर वचन की महत्ता ६८
विषय पृष्ठ
सामन्त और माण्डलिकादि की परिभाषा ७७
भूमि के मान भेदों का निर्देश ७९
राजधानी निर्माण के योग्य भूमि ८६
राजोचित भवनों का निर्माण ८७
दुर्ग निर्माण निर्देश ९५
राजसभा निर्माण का निर्देश ९५
मंत्रियों का निवास भवन ९९
सेना और प्रजा वर्गों के स्थान ९९
धर्मशाला निर्माण १०१
राज मार्ग का स्वरूप निर्देश १०१
धर्मशाला की व्यवस्था १०५
नृप दैनिक कृत्य १०८
चौकीदारों के कृत्य ११२
राजाज्ञा की घोषणा ११३
राजकीय कर्त्तव्य ११९
विषदूषित अन्नादि परीक्षण १२३
शिकार व्यापार का निर्देश १२६
राजा के रक्त सम्बधियों के लिए निर्धारित कर्त्तव्य १३१
परीषद् की व्यवस्था १३३
राजा के लिए राज्यचिह्न आवश्यक १३६
राजा के कर्त्तव्य १३६
राजा के द्वारा पदाधिकारियों का पर्यवेक्षण १४१
राजा के पारलौकिक कृत्य १४४

द्वितीय अध्याय

राज्य कर्म की दुष्करता, श्रेष्ठ सहायकों की आवश्यकता १४७
व्यवहार निर्णय में मन्त्रियों का विचार सापेक्ष्य १४८
स्वेच्छाचारी राजा का विनाश निश्चित १४८
कुमंत्रियों की मंत्रणा का निषेध १५०
युवराज पद का निर्देश १५०
युवराज पद के अधिकारी एवं उनका कार्य १५१
राजपुत्रों में आचार स्थापना का महत्व १५४

विषय **पृष्ठ**

राजपुत्रों की पितृभक्ति का निर्देश १६१
महामात्यादि सेवक विषयक विचार १६५
उत्तम कोटि के सेवक का लक्षण १६६
अधम कोटि के सेवक की पहचान १७०
राजा की दश प्रकृतियाँ १७२
राजा की अष्ट प्रकृतियाँ १७३
पुरोहित प्रभृति का प्राधिकरण १७३
पुरोहितादि के लक्षण १७४
राजकृत्यों में प्रधान का महत्व १७८
सचिव के कृत्य १७८
प्रतिनिधि का काम १७८
मन्त्रियों के कार्य १७९
वकीलों के काम १८१
पण्डितों के कार्य १८२
सुमंत्र के कार्य १८३
अमात्य के कार्य १८३
अन्योन्य के स्थान पर अन्योन्य की योजना १८३
आधिकारिक व्यवस्था का निर्देश १८५
अधिकार योग्य को अधिकार देने का निर्णय १८६
योग्याधिकारी के अभाव में अन्य व्यक्ति का पद स्थापन १८७
अन्य कार्यों के लिए सचिव की नियुक्ति १८७
छह दण्डाधिपतियों की नियुक्ति १८८
तपस्वी प्रभृति की रक्षा का दायित्व १८९
योजनाकर्त्ता की दुर्लभता १९१
गजाधिपति एवं महावत के लक्षण १९१
अश्वाधिपति के लक्षण १९२
सारथि के लक्षण १९२
घुड़सवार के लक्षण १९३
अश्वशिक्षक के लक्षण १९४
साईस के लक्षण १९४
सेनापति एवं सैनिकों के लक्षण १९५
पदाति सेनापाल के लक्षण १९५
शतानिकादि के लक्षण १९५
अधिकारियों को अलग अलग राजचिन्ह्रों से युक्त रहने का निर्देश १९६
वित्तिरादिपोषकों की योजना १९८
रत्नादि के अध्यक्ष १९८
कोषाध्यक्ष के लक्षण १९८

विषय **पृष्ठ**

वस्त्राधिपति के लक्षण १९८
धान्यपति के लक्षण २०१
पाकाध्यक्ष के लक्षण २०१
आरामाधिपति के लक्षण २०१
गृहाधधिपति के लक्षण २०२
देवाध्यक्ष के लक्षण २०२
दानाध्यक्ष के लक्षण २०२
सभासद के लक्षण २०४
सत्राधिप के लक्षण २०४
परीक्षक के लक्षण २०५
साहसाधिप के लक्षण २०५
ग्रामाधिप के लक्षण २०५
कर वसूलकर्त्ता के लक्षण २०६
लेखक के लक्षण २०६
द्वारपाल के लक्षण २०६
चुंगी लेने वालों के लक्षण २०७
तपोनिष्ठ के लक्षण २०७
दानशील के लक्षण २०८
श्रुतज्ञ के लक्षण २०८
पौराणिक के लक्षण २०८
शास्त्रविद के लक्षण २०९
ज्योतिर्विद के लक्षण २०९
मान्त्रिक के लक्षण २०९
वैद्य के लक्षण २१०
तान्त्रिक के लक्षण २१०
अन्तःपुर संरक्षक २१०
अन्तःपुर परिचारक २१०
गुप्तचर के लक्षण २११
दण्डधर के लक्षण २१२
गायकाधिप के लक्षण २१२
गणिका के लक्षण २१३
वेश्याभृत्य के लक्षण २१३
शिल्पी एवं वैतालिक का सामीप्य २१४
सत्य एवं परोपकार की महत्ता २१८
पापी, हिंसक एवं असत्यवादी भृत्यों का बहिष्कार २१८
सद्भृत्य के कृत्य २१९
द्वारपाल का कर्त्तव्य २२०
राजपार्श्ववर्त्ती दण्डाधिकारियों का कर्त्तव्य २२०

विषय	पृष्ठ
राजपार्श्ववर्त्ती भृत्य का कर्त्तव्य	२२१
राजपक्ष की पुष्टि का निर्देश	२२२
मनोविनोद में भी राज विरुद्ध बोलने का निषेध	२२२
राजा के सामने जोर से हंसने का निषेध	२२२
हितकारी सेवक का कार्य	२२४
प्रजा पीड़न का निषेध	२२६
अपने कर्त्तव्य के प्रति वफादार होने का निर्देश	२२६
राजकीय गोपनीय तथ्यों को गुप्त रखने का निर्देश	२२८
राजा की नकल करने का निषेध	२२८
राजा की अनुरक्ति एवं विरक्ति के ज्ञान का बोध होना चाहिए	२२८
विरक्त राजा के लक्षण	२२९
अनुरक्त राजा के लक्षण	२३०
राजप्रदत्त भूषण-धारण का निर्देश	२३१
स्वामी के प्रति सेवक का कर्त्तव्य	२३२
पारस्परिक भृत्यकर्म	२३४
राजा और भृत्य के बीच सुन्दर व्यवहार	२३४
लुटेरे राजा के लक्षण	२३६
प्रच्छन्न चोर के लक्षण	२३६
शिशुराजकुमार का भी अपमान निषिद्ध	२३७
लेख्यों के भेदों का निर्देश	२४९
लेख के दो भेदों का निर्देश	२५१
जयपत्र के लक्षण	२५१
आज्ञापत्र के लक्षण	२५२
प्रज्ञापन पत्र के लक्षण	२५२
शासन पत्र के लक्षण	२५२
प्रसाद लिखित के लक्षण	२५३
भोगकर उपायन-पुरुषावधिक और कालावधिक पत्रों के लक्षण	२५३
विभाग पत्र या भाग्यलेख के लक्षण	२५४
दानपत्र के लक्षण	२५४
क्रय पत्र के लक्षण	२५४
सादिलेख्य के लक्षण	२५५
संवित् पत्र के लक्षण	२५५
ऋण लेख्य के लक्षण	२५५
शुद्धि पत्र के लक्षण	२५६
सामयिक लेख्यपत्र लक्षण	२५६
सम्मति संज्ञक पत्र के लक्षण	२५६
क्षेमपत्र के लक्षण	२५७
वेदनार्थक पत्र के लक्षण	२५८
आय-व्यय लेख के लक्षण	२५८
राजाओं के आय-व्ययादि के लक्षण	२५९
आय के भेद	२६०
संचित आय के भेद	२६०
निश्चित अन्य स्वामिक संचित धन के भेद	२६०
औपनिध्य,याचित औत्तमर्णिक के लक्षण	२६१
अज्ञात स्वामिक के लक्षण	२६१
स्वत्व विनिश्चित के भेद	२६२
साहजिक के लक्षण	२६२
अधिक के लक्षण	२६२
संचित धन के लक्षण	२६३
संचित धन के भेद	२६३
पार्थिव सज्ञक आय के भेद	२६४
चल संज्ञक आय के लक्षण	२६४
विभागानुसार आय के व्याप्य व्यापक भाव	२६४
व्यय के भेदों एवं पुनरावर्त्तक	२६५
निधि उपनिधि आदि व्यय के लक्षण	२६५
स्वत्व निवर्तक के भेद	२६६
ऐहिक तथा पारलौकिक व्यय के भेद	२६६
प्रतिदान, पारितोषिक और वेतन व्यय के लक्षण	२६७
उपभोग्य के लक्षण	२६७
भोग्य व्यय के लक्षण	२६८
पारलौकिक व्यय के चार भेद और उनके लक्षण	२६९
आय-व्यय लेखक के कर्त्तव्य	२६९
अवशिष्ट आय के विभिन्न भेद	२७०
मान-उन्मान परिमाण संख्या	२७१
लोक व्यवहारार्थ द्रव्य तथा धन के लक्षण	२७२
मूल्य की परिभाषा	२७२
मूल्य के न्यूनाधिक्य का कारण निर्देश	२७३
पत्रलेखन प्रकार	२७३
हर लेख पर मुद्राङ्कन की आवश्यकता	२७७
पत्र में आय-व्यय लेखन का निर्देश	२७८
व्यापक व्याप्य के लक्षण	२७९

विषय	पृष्ठ
स्थान टिप्पणादि के भेद	२८०
शेष आय-व्यय-स्थल आय-व्यय ज्ञान	२८१
तिथ्यादि लिखने का निर्देश	२८२
गुज्जादिकों का लक्षण	२८३
प्रस्थपाद लक्षण	२८४
संख्या का प्रमाण	२८४
संख्या की अनन्तता	२८५
एकादिपरार्ध तक संख्याओं के नाम	२८६
कालमान का त्रैविध्य एवं चन्द्रादिकों की व्यवस्था	२८६
भृति के तीन प्रकारों का निर्देश	२८६
कार्यमानादिकों के लक्षण	२८६
मध्यमादि भृति के लक्षण	२८८
पोषण योग्य भृति नियत करने का निर्देश	२८८
हीनभृति देने से अनर्थ का निर्देश	२८९
शूद्रादिकों को आच्छादान मात्र दावव्य	२८९
भृत्य के तीन भेद	२९०

विषय	पृष्ठ
भृत्यों को छुट्टी देने का नियम	२९०
रोग के समय भृति देने का नियम	२९१
बार-बार रोग ग्रस्त के स्थान पर प्रतिनिधि की नियुक्ति	२९२
सेवा रहित भृति देने का निर्देश	२९२
कटुभाषी भृत्य का भृतिदान प्रकार	२९५
राजा के साथ भृत्य के वर्तन का वर्णन	२९६
भृत्य को कार्य मुद्रा से अंकित करने का निर्देश	२९७
भृत्यों को विशिष्ट राजचिह्न न देने का निर्देश	२९८
दश प्रकृति पुरोहितो का जाति नियम	२९८
भागग्राही और साहसाधिपति आदि पद के लिए क्षत्रियादि रखने का निर्देश	२९९
सेनापति पद पर शूरमात्र को रखने का निर्देश	३००

तृतीय अध्याय

सर्व सुख के लिए प्रवृत्ति का निर्देश	३०२
धर्म के बिना सुख न मिलने का निर्देश	३०२
सर्वसाधारण के लिए विहिता चरण का निर्देश	३०३
निविद्धाचरणों का निषेध	३०४
दश प्रकार के पापों का निर्देश	३०४
दरिद्रों का संरक्षण	३०५
हित एवं मित बचनों का महत्व	३०६
अकेले सुखोपभोग का निषेध	३०७
आत्मापमान का गोपन	३०७
पराराधन पण्डितों के व्यवहार का निर्देश	३०७
इन्द्रियों पर नियंत्रण का निर्देश	३०८
इन्द्रियों को अनियंत्रित छोड़ने से हानि	३०८
स्त्रियों का स्पर्श अनर्गल	३०९
स्त्रियों के लिए सम्बोधन विधि	३०९
स्त्री स्वातन्त्रय का निषेध	३१०
यत्नपूर्वक स्त्रीधन का संरक्षण	३१०
चैत्यादि के लंघन का निषेध	३११
नदी तैरकर पार नहीं करना चाहिए	३१२
देरतक उकड़ू बैठने का निषेघ	३१३
निरन्तर सूर्यावलोकन का निषेध	३१३
सन्ध्या समय भोजनादि का निषेध	३१४
व्यवहार में आचार्यत्व का निरूपण	३१४
राजादिगत धर्म में दोषारोपण का निषेध	३१५
आग्रहपूर्वक भाषण का निषेध	३१५
पापस्मरण का निषेध	३१५
सद्गुण का ग्रहण दुर्गुण का त्याग कर्त्तव्य	३१६
सार ग्रहणीय है	३१७
अधर्मी पुत्र-मित्रादि का परित्याग	३१७
आतताईयों के लक्षण	३१७
क्षणभर भी स्त्री की उपेक्षा अकर्त्तव्य	३१८
जहाँ राजादि विरुद्ध हो वहाँ क्षण भर भी टिकना उचित नहीं है	३१८
अविवेकी राजादि से धन प्राप्ति की इच्छा निरर्थक	३१९
माता-पिता यदि सन्तान का उचित पालन एवं शिक्षण न करें तो इस पर पश्चात्ताप या शोक नहीं करना चाहिए	३१९

विषय	पृष्ठ
सावधानी से राजसेवा कर्त्तव्य	३२०
माता प्रभृति के साथ विरोध का निषेध	३२१
स्वजन-विरोध, स्त्री-विवाद से परहेज	३२१
अकेले स्वादिष्ट भोजन का निषेध	३२१
अन्य धर्म के सेवन का निषेध	३२२
त्याज्य निद्रादि दोषों का निषेध	३२२
मनुष्य के लिए कार्याकार्य विचार	३२३
बिना पूछे किसी से कुछ न करने का निर्देश	३२४
अनुभवविहीन स्वाभिप्राय प्रकट का निषेध	३२४
दम्पति के बीच साक्ष्य का निषेध	३२५
आपत्ति में विचलित होने तथा किसी के साथ मर्मवेधी बातें करने का निषेध	३२५
अश्लील चर्चा का निषेध	३२५
लोक निन्दिव कार्य का बहिष्कार	३२६
शत्रु के भी गुण ग्राह्य	३२६
धनी-निर्धन होना भाग्याधीन है	३२६
दीर्घदर्शी के लक्षण	३२७
प्रत्युत्पन्न मति के लक्षण	३२८
आलसी के लक्षण	३२८
साहसी के लक्षण एवं दोष	३२९
दीर्घसूत्री के लक्षण	३२९
सहसा कार्य करने का निषेध	३२९
मित्र की विशेषता	३३०
बिना समझे किसी को मित्र बनाने का निषेध	३३१
मित्र प्राप्त करने का प्रयास	३३१
विश्वस्त पर भी विश्वास का निषेध	३३१
प्रामाणिकादि का विश्वास करने कां निर्देश	३३२
परीक्षा के बाद ही विश्वस्त की मान्यता	३३२
उग्रदण्ड एवं कटु वचन का निषेध	३३३
विद्यादिकों से प्रमत्त होने का निषेध	३३४
विधामत्तता के अनर्यकारी फल	३३४
शौर्यमत्तता के अनर्थकारी फल	३३४
धनमत्त पुरुष की स्थिति का वर्णन	३३५
कुलीनता के मद से मत्त व्यक्ति का वर्णन	३३५
बल से उन्मत्त व्यक्ति	३३६
अपने मान से उन्मत्त व्यक्ति का वर्णन	३३६
विद्याप्रभृति गुणों से विनम्र होने का निर्देश	३३६
विद्याप्रभृति गुणों का फल	३३६
शूरतादि के फलों का वर्णन	३३७
निम्नवर्ग से भी विद्या ग्रहण करनी चाहिए	३३७
नष्ट वस्तु सदैव उपेक्ष्य है	३३८
दूसरे का धनापहरण का निषेध	३३८
प्राणात्यय में असत्य भाषण का महत्व	३३८
पति-पत्नी में भेद डालने का निषेध	३३९
दो आदमियों की बातचीत में व्यवधान नही डालने का निर्देश	३३९
बेटादि के साथ सदैव बहन का अपने घर में बसाने का निषेध	३४०
सर्पादि को तुच्छ नहीं समझना चाहिए	३४०
सर्पादि से संभलकर व्यवहार करने का तथा ऋणादि का सम्पूर्ण विनष्ट करने का निर्देश	३४१
याचकों के साथ व्यवहार का निर्देश	३४१
दाताओं की प्रशंसा सदैव श्रोतव्य	३४२
यथासमय परिमित भोजन	३४२
स्त्री-संभोयादि शून्यस्थान में ही विहित	३४२
षड्रस भोजन प्रीतिपूर्वक ग्राह्य	३४३
अपनी पत्नी के साथ ही विहार करने का निर्देश	३४३
रात्रिशयन का निश्चित समय तथा गरीबों का उपहास नहीं करने का निर्देश	३४४
कार्य साधक के कृत्यों का वर्णन	३४४
दुर्वचन एवं गुरुजनों की आज्ञा का निषेध	३४५
बुरे कार्य की ओर प्रेरित करने वाले गुरु का त्याग एवं शुभ कार्य की ओर प्रेरित करने वाले नीच व्यक्ति की बात भी मान्य है	३४५
अपनी युवती पत्नी को स्वतन्त्र छोड़ने का निषेध	३४५
साध्वी पत्नी का संरक्षण आवश्यक	३४६
जीवन्मृत पुरुषों का निर्देश	३४८
गोपनीय बातों का निर्देश	३४९
देशाटन कर्त्तव्य	३४९
देशाटन के लाभ	३४९
राजसभा में बैठने का लाभ	३५०
अनेक शास्त्रों के अध्ययन का फल	३५०
वेश्या दर्शन के फल	३५१
पण्डितों के साथ मैत्री का फल	३५२
आत्मनिमित्त पाक का निषेध	३५२

विषय	पृष्ठ
गुरुजनों के लिए मार्ग दानव्य	३५२
शकटादि से दूर रहने का निर्देश	३५३
शृङ्गी आदि जीवों पर विश्वास का निषेध	३५३
गमनादि के निषेद्ध कार्य	३५३
गुरुजनों के साथ उनकी इच्छा के बिना कार्य करने का निषेध	३५४
अभद्र कर्म भी कभी बड़ों के लिए भूषक	३५५
बिना अनुमति के गुरुजनों के सन्मुख बैठने का निषेध	३५५
मूर्खो के सामित्व का निषेध	३५५
आवश्यकता क्रम में कार्य सम्पादन का निर्देश	३५६
अपकर्म करने में विलम्ब का निर्देश	३५६
संसार को वशक्वीबनाने का उपाय	३५७
वश करने के उपायों की दुर्जनता में विफलता	३५८
वेदादि अध्ययन का महत्त्व	३५८
चार व्यसनों के निर्देश	३५९
कूट व्यवहार का निर्देश	३५९
विहित कार्य कर्त्तव्य	३६०
रात्रि में सुखपूर्वक न सोने वालों का निर्देश	३६१
राजा का अनुकरण अकेले सर्पादि को मारने का प्रयास करने का निषेध	३६१
आततायी गुरुजनों का वध भी उचित	३६१
गुरुजनों के आगे प्रौढपाद बैठने का निषेध	३६१
उत्तम पुरुष के लक्षण	३६२
स्त्री के कथन पर अन्धविश्वास का निषेध	३६२
स्त्री के आठ दुर्गुणों का निर्देश	३६२
सोलह साल के बाद पुत्रादि के ताड़न का निषेध	३६३
दौहित्रादि का पुत्रों से बढ़कर पालन का निर्देश	३६३
स्वामी के लक्षण	३६३
एक शय्या पर सर्वदात स्त्री के साथ शयन का निषेध	३६४
वर और मित्र की परीक्षा का निर्देश	३६४
वर के लक्षण	३६५
कन्या के लक्षण	३६६
विद्या एवं धन संचय का निर्देश	३६६

विषय	पृष्ठ
धनार्जन के उपयोगों का निर्देश	३६६
धन की अपेक्षा विद्या की श्रेष्ठता का निर्देश	३६७
धनार्जन आवश्यक	३६८
धन का प्रभाव कथन	३६९
व्यवहार में लेख आवश्यक	३७०
मित्रों को व्याज रहित धन देने का निर्देश	३७१
लिखा-पढ़ी के साथ सूद पर धन देने का निर्देश	३७१
आहार-व्यवहार में लज्जा का त्याग आवश्यक	३७२
उचित व्यय करने का निर्देश	३७२
पत्नी की रक्षा का दायित्व	३७३
सस्त्रीक प्रौढ़ पुत्रों के बीच धन का विभाजन	३७४
दो सौतों को एक पुरुष के साथ रखने का निषेध	३७४
व्याजी धन के विभाजन का निषेध	३७४
शाश्वत मैत्री के लिए त्याज्य कर्मो का निर्देश	३७५
साक्षी एवं लेख के बिना ऋण देने का निषेध	३७५
उत्तमोत्तमादिक पुरुषों के लक्षण	३७६
प्रतिदिन दान करने का निर्देश	३७७
यथेष्ट दान-धर्म का निर्देश	३७७
दान से शत्रु को भी मित्र बनाने का निर्देश	३७७
परलोक सुख साधक संविद् दान के लक्षण	३७८
पारितोष्य, श्रियादत्त या यशोर्थक दान	३७८
आचारदत्त या ह्रीदत्त दान	३७८
भीदत्त दान	३७९
नष्ट दान	३७९
आराध्य देव को सर्वोत्कृष्ट मानना	३८०
वशीकर वस्तुओं में दान तथा सरलता	३८०
विचारपूर्वक स्नेह या द्वेष करना चाहिए	३८०
अतिक्रूर होने का निषेध	३८१
अतिक्रूरता का अनिष्ट फल	३८१
अहम्मानी बनने का निषेध	३८१
देवादिकों के तिरस्कार का निषेध	३८३
युवती स्त्री, धन, पुस्तक के परहस्त होने का निषेध	३८४
अल्प कारण से धन, कीर्ति के त्याग का निषेध	३८४
वीर सैनिकों के दुर्वचन ही राह्य	३८५

विषय पृष्ठ
विनोद में भी दुःखद बातें बोलने का निषेध ३८५
जिस पर असर न पडे उसे कुछ न कहना चाहिए ३८५
व्यसनी नीच की नृशंसता ३८६
कुमित्र के लक्षण ३८६
कठोर वचन बोलने का निषेध ३८६
अपने से अधिक बली शत्रु का सम्मान ३८७
सुजनता मनुष्य का भूषण ३८७
अश्वादिकों के गुणों की भूषणता और दुर्गुणता ३८८
एक ही नायक से परिवार की सुन्दरता ३८९
हिंसक पुरुषादि की उपेक्षा का निषेध ३८९
चुगुलखोरी गुणज्ञता का आवरण ३८९
बाल्यावस्था में माता प्रभृति की मृत्यु पूर्वजन्मार्जित महापाप का फल है ३९०
दुखप्रद विषयों का निर्देश ३९०
सुखद न होने वाली छः बातें ३९१
जीवनमुक्त, खल या पशु के तुल्य के लक्षण ३९१
खल पुरुष के लक्षण ३९१
आशा ही जीवन है इसका निर्देश ३९२
धूर्त पुरुष के कर्मों का निर्देश ३९२
सुखदायी एवं दुखदायी पुत्रों के लक्षण ३९३
प्रीति देनेवाली स्त्री के लक्षण ३९४
सुख और दुःखदायिनी माता के लक्षण ३९४
आनन्ददायक पिता के लक्षण ३९४
मित्र के लक्षण ३९५
मानहानिकारक काम का निर्देश ३९५
सेवा के बल पर राजादि के साथ संघर्ष करने का निषेध ३९५
दुःखदायक कार्यों का निर्देश ३९६
स्त्रियों को पति के प्रेम से ही अधिक सुख मानने का निर्देश ३९६
स्त्रियों को वशवर्त्तिनी बनाने का उपाय ३९७
व्यवसाय प्रारम्भ से पूर्व जानकारी लेने का निर्देश ३९७
अधिक व्यय वाले कार्यों को न करने का निर्देश ३९८
तपस्यादि में प्रधिनिधित्व का प्रयोग अनुचित ३९८
मधुरभोजी आदि को एकान्त की इच्छा रखने का निर्देश ३९९

विषय पृष्ठ
मूर्खजनों के कृत्य ४००
सत्त्वगुणी तेज की सर्वाधिक श्रेष्ठता का निर्देश ४००
अपने कर्म से ब्राह्मण की महत्ता का निर्देश ४०१
अपने कर्म में निरत ब्राह्मणों से क्षत्रियों को डरने का निर्देश ४०१
धर्म को हानि न पहुँचाने की वृत्ति की श्रेष्ठता ४०१
कृषिवृत्ति की सर्वाधिक उत्तमता ४०२
भिक्षावृत्ति की अधमता तथा कहीं उत्तमता का निर्देश ४०२
आध्वर्यवादि कर्मों से महाधनी न होने का निर्देश ४०२
राजसेवा के बिना विपुल धन की प्राप्ति न होने का निर्देश ४०३
राजाओं के साथ साँप की तरह सतर्क व्यवहार का निर्देश ४०३
दूरस्थ व्यक्ति समीपस्थ की तरह कार्यकर्ता का निर्देश ४०४
वेदज्ञ को भी नीतिशास्त्र जाने बिना चतुर न बनने का निर्देश ४०४
गरीबी से धनी होने में सुख प्राप्ति का निर्देश ४०५
मृतापत्यता से अनपत्यता की श्रेष्ठता का निर्देश ४०५
पहले सुखद फिर दुःखद विषयों का निर्देश ४०६
कुमंत्री प्रभृति से राजा आदि के नाश का निर्देश ४०७
शिक्षक के अनुसार हाथी प्रभृति में गुण के आधान की श्रेष्ठता ४०७
अधिकार प्राप्त होने पर तीन बातों की स्वयं प्राप्ति ४०७
गृहस्थों के सुखदायक विषयों के निर्देश ४०८
अन्तःपुर में नियुक्त करने योग्य पुरुषों के लक्षण ४०८
समय बाँधकर आत्मनियान्त्रित कार्य करने का निर्देश ४०९
प्रवास के समय सुखदायी छः बातों का निर्देश ४०९

विषय पृष्ठ
घोड़े पर चढ़कर राजा को बाजार निकलने का निषेध ४१०
पथिकों के लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयों का निर्देश ४११
जल्दी बूढा बनाने वाले विषयों का निर्देश ४११
प्रिय होने के उपाय ४१२
अप्रिय होने के कारणों का निर्देश ४१२
स्तुति से देवता का यशवर्त्ति होने का निर्देश ४१२
अपने दुर्गुणों पर स्वयं विचार करने का निर्देश ४१२
महान पुरुष के लक्षण ४१३
साधु एवं खल पुरुषों के लक्षण ४१४
झगड़ालू क्रीड़ा का निषेध ४१४
मित्र के प्रति कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयों का निर्देश ४१५
बलवानों के विरुद्ध कुछ न बोलने का निर्देश ४१६
विषय पृष्ठ
विपति में कर्त्तव्य का निर्देश ४१६
बूढ़ों के प्रति अनुकूल वचन और अन्य स्त्री को घूर कर न देखने का निर्देश ४१७
दूसरों के अपराधी बच्चों को दण्ड न देने का निषेध ४१७
गाँव को छोड़कर अन्यत्र बसने वाली अवस्थाओं का निर्देश ४१७
बिना जज की आज्ञा के वादी-प्रतिवादी के विचार न करने का निर्देश ४१८
दूसरे का झगड़ा अपने माथे पर न लेने का निर्देश ४१८
शास्त्र ज्ञान के बिना न कहने योग्य विषयों का निर्देश ४१८
परतंत्रता से अधिक दुःख और स्वतंत्रता से अधिक सुख न होने का निर्देश ४१९
प्रत्यक्षादि चार प्रमाणों से व्यवहार ज्ञान होने का निर्देश ४१९

चतुर्थ अध्याय

सुहृदादि लक्षण प्रकरण

मित्र-शत्रु के प्रकारों का निर्देश ४२१
चार पादों से युक्त उत्तम मित्र के लक्षण ४२१
वैर भाव रखने वालों के दो लक्षणों का निर्देश ४२२
परम शत्रु और एक तरफ शत्रु भाईयों के लक्षण ४२३
राजाओं की परस्पर कृत्रिम मित्रता का निर्देश ४२३
सहज मित्र के लक्षण ४२५
विधादि पॉच की सहज मित्रता का निर्देश ४२५
सार्थक पुत्र के लक्षण ४२६
स्वाभाविक शत्रु के लक्षण ४२६
परस्पर शत्रु का निर्देश ४२६
मूर्ख पुत्रादि शत्रु ४२७
मूर्खों को उपदेश देने का निषेध ४२७
राजाओं के उदासीन-स्वाभाविक शत्रु-मित्र ४२८
मित्र और शत्रु राजाओं के प्रति राजाओं के आचरण ४२९
मित्रादि के प्रति सामदानादिका विचार ४३०
मित्रता के कारणों का निर्देश ४३०
मित्र के लिए साम एवं दान वाक्यों का निर्देश ४३०
भेद तथा दण्ड वाक्यों का लक्षण ४३१
उदासीन के शत्रु बनने का निर्देश ४३१
शत्रु के प्रति साम वाक्य के लक्षण ४३२
शत्रु के लिए दान के स्वरूप का निर्देश ४३२
शत्रु के प्रति भेद का स्वरूप निर्देश ४३३
शत्रु के प्रति दण्ड का स्वरूप-निर्देश 433
मित्र, शत्रु तथा उदासीन राजाओं को अपने से अधिक बलवान् न होने देने का निर्देश ४३४
सामादिकों को करने में क्रम का निर्देश ४३४
शत्रु-भेद से सामादिकों की व्यवस्था का निर्देश ४३४
मित्र के लिए केवल सामदान का प्रयोग ४३५
रिपुपीडित प्रजा का साथ दान से नियंत्रण ४३५
अपनी प्रजा का सामदान से पालन ४३६
अपनी प्रजा के साथ दण्डभेद प्रयोग का निषेध ४३६
दण्ड के लक्षण ४३६
दण्ड के भेद का निर्देश ४३७

विषय	पृष्ठ
दण्ड का प्रभाव और राजा को दण्डधर होने का निर्देश	४३८
घमड़ी गुरुजन भी दण्डनीय है	४३९
दुष्टों की हिंसा भी अहिंसा मानने का निर्देश	४३९
उचितानुचित दण्ड से राजा के इष्टानिष्ट फल कथन	४३९
सत्ययुगादि में दण्ड देने का सकारण निर्देश	४४१
राजा का युगप्रवर्तक होने का निर्देश	४४२
धार्मिक अधार्मिक प्रजा के होने के कारणों का निर्देश	४४२
पापी राजा के राज्य में वर्षा का अभाव	४४३
राजा को स्त्रैन्य एवं क्रोधी होने का निषेध	४४३
राजा को काम, क्रोध का त्याग करने का निर्देश	४४३
कामक्रोधादि को छोड़कर दण्ड देने का अधिकार	४४४
राजा ऊपर से क्रूर बनकर प्रजा को दण्ड दे	४४४
चुगुलखोरों से देश नष्ट होने का निर्देश	४४५
दोषमुक्त उत्तम राजा के लक्षण	४४५
अपराधों के दो भेद और उनके चार-चार का निर्देश भेदों का निर्देश	४४६
मानसिकादि चार अपराधों की परीक्षा का निर्देश	४४६
दण्डनीय पुरुषों के लक्षण	४४७
उत्तम पुरुष के विषय में प्रथमादि अपराधों के दण्डों का एवं अन्त में जेल देने का निर्देश	४४८
संरोध और नीच कर्म के योग्य पुरुष के लक्षण	४५०
शास्त्रोक्त दण्डनीय पुरुषों के लक्षण	४५०
आजीवन बन्धन योग्य पुरुष के लक्षण	४५०
सड़कों पर झाड़ू लगाने योग्य पुरुष के लक्षण	४५१
अधम पुरुषों के लगातार अपराध करने पर दण्ड का प्रकार	४५१
धन के गर्व से अपराध करने पर दण्ड का निर्देश	४५२
बन्धन तथा ताडन योग्य पुरुषों के लक्षण	४५२
पतली रस्सी या छड़ी से मारने योग्य पुरुष के लक्षण	४५३
नीच कर्म कराने योग्य अपराधी का निर्देश	४५३
वध की शिक्षा कदापि न देने का निर्देश	४५४
असहाय अपराधी के माता-पिता को दण्ड नहीं देना चाहिए	४५५
देश निष्कासन योग्य अपराधी के लक्षण	४५५
मार्ग संरक्षण योग्य पुरुष का निर्देश	४५९
संसर्ग से दूषित को दण्ड देकर सही राह पर चलने का निर्देश	४५९
राजा से बिगाड़ करवाने वाले को नष्ट कर देने का निर्देश	४६०
गणों की दुष्टता करने पर उपाय का निर्देश	४६०
अधर्मी राजा को प्रजा भय दिलावे इसका निर्देश	४६१
अधर्मी राजा और प्रजा के तत्काल नष्ट हो जाने का निर्देश	४६१
माँ-बाप प्रभृति का जो भरण-पोषण न करे उसके लिए दण्ड का विधान	४६१
उत्तमादि साहस दण्ड का लक्षण तथा पणादि के लक्षण	४६२

कोश निरूपण प्रकरण

विषय	पृष्ठ
कोश के लक्षण	४६४
सुखप्रद कोश का निर्देश	४६४
दुखप्रद कोश का निर्देश	४६५
अन्यायोपार्जित कोश के दुष्ट फलों का निर्देश	४६५
सुपात्र और अपात्र के लक्षणादि का निर्देश	४६६
अधर्मशील राजा के धन को हर लेने का निर्देश	४६६
शत्रु के अधीन राज्यों के होने का निर्देश	४६६
देवोत्तर सम्पत्ति पर कर लगाकर धन न बढ़ाने का निर्देश	४६७
आपत्ति में अधिक कर लगाने का निर्देश	४६७
आपत्ति रहित होने पर सूद सहित धन वापस करने का निर्देश	४६८
प्रबल दण्ड से अनिष्ट फल	४६८
कोश संग्रह करने का प्रमाण	४६९

विषय पृष्ठ
प्रजा संरक्षण का फल ४६९
राष्ट्र वृद्धि के तीन कारण ४७०
नीतिनिपुणता से कोशवृद्धि करने का यत्न करने का निर्देश ४७०
श्रेष्ठ नृप के तीन लक्षण ४७१
नीचादि धन के लक्षण ४७२
प्रजा के संताप से सवंश राजा के नाश का निर्देश ४७३
धान्य संग्रह करने के प्रमाण का निर्देश ४७३
संग्रह योग्य धान्यादि की परीक्षा का निर्देश ४७४
औषधि आदि वस्तुओं के संचय का निर्देश ४६५
संग्रहीत धन की रक्षा करने का निर्देश ४७६
अपने कार्य में सदा सजग रहने का निर्देश ४७७
संचित धन की रक्षा न करने पर मूर्खता का निर्देश ४७७
मूर्ख के लक्षण ४७८
राजा को रत्न की परीक्षा करने का निर्देश ४७९
हीरा आदि महारत्नों का निर्देश ४७९
नवरत्नों के वर्ण और नवग्रहों का निर्देश ४७९
सम्पूर्ण रत्नों में हीरा की श्रेष्ठता का निर्देश ४८२
श्रेष्ठ रत्नों के लक्षण ४८३
असत रत्नों के लक्षण ४८३
बेटा चाहने वाली को हीरा धारण करने का निषेध तथा बहुत दिन धारण किए मोती या मूँगा के हीन होने का निर्देश ४८४
दोषवर्जित रत्न के लक्षण ४८४
मूल्य अधिक और कम होने के कारण ४८५
मौक्तिक की उत्पत्ति के स्थानों का निर्देश ४८६
मोती के रंग और भेद का निर्देश ४८७
कृत्रिम मोती के निर्माण के स्थान का निर्देश ४८७
मोती की परीक्षा विधि का निर्देश ४८८
रत्नों का तुलामान निर्देश ४८८
हीरा का मूल्य का विचार ४८९
काले और रक्त बिन्दुवाले रत्न धरण करने योग्य नही होते ४९३
माणिक्यादिकों के मूल्य का विचार ४९३
गोमेद का उन्मान के योग्य न होने का निर्देश ४९४

विषय पृष्ठ
अत्यन्त गुण वालों का मान से मूल्य न होने का निर्देश ४९४
मोती के भेद और लक्षण ४९६
सुवर्णादि सात धातुओं का निर्देश ४९६
सुवर्णादि सात धातुओं के तरतम भाव ४९७
स्वर्णादि धातुओं के गुण ४९७
धातुओं के मूल्य का प्रमाण ४९८
अधिक मूल्य की गौ के लक्षण ४९९
बकरी आदि के मूल्य का प्रमाण ४९९
गवादि के उत्तम मूल्यों का निर्देश ४९९
हाथी आदि के उत्तम मूल्यों का निर्देश ५००
देशकालानुसार सब का मूल्य निर्धारण ५०२
शुल्क के लक्षण ५०३
एक ही बार किसी वस्तु का शुल्क ग्राह्य ५०४
किसान से मालगुजारी लेने का प्रमाण ५०५
उत्तम कृषिकर्म के लक्षण ५०६
तड़ागदिकों से सम्पन्न भूमि से ग्राह्य कर का निर्देश ५०६
रजतादि भूमि के लिए राजकर का निर्देश ५०७
तृण-काष्ठादि विक्रेता से कर ५०८
बकरी आदि की वृद्धि से अष्टम भाग कर का निर्देश ५०८
कारू आदि से कर ग्रहण का निर्देश ५०८
भूभागादि को तत्काल लेने का निर्देश ५०९
किसान को भाग पत्र और धनी को प्रतिभू बनाकर कराधान ५१०
कहीं कर न लेने का निर्देश ५११
व्यापारी से लाभ का बत्तीसवाँ भाग कर के रूप में ग्राह्य ५११
दुकानद्वार से भूमिकर लेने का प्रावधान ५११

राष्ट्र प्रकरण

राष्ट्र के दो प्रकारों का निर्देश ५१३
राज्य एवं राजा की सर्वश्रेष्ठता एवं देव तुल्यता का निर्देश ५१३
देश के पुण्य और पाप के भोक्ता राजा का निर्देश ५१४
नरक के लक्षण का निर्देश ५१५
राजा को धर्निष्ठ बनने का निर्देश ५१५
सर्वधर्म रक्षण से देश की रक्षा का निर्देश ५१६

विषय	पृष्ठ
मुख्य जाति के चार प्रकार और संकर की अनन्तता का निर्देश	५१६
जरायुजादि चार प्राणियों की जादित का निर्देश	५१७
द्विज और ब्राह्मणों के कर्मों का निर्देश	५१८
क्षत्रिय एवं वैश्य के कर्मों का निर्देश	५१९
शूद्रादि के कर्मों का निर्देश	५१९
ब्राह्मणादि के लिए कृषि-भेद का निर्देश	५१९
ब्राह्मणातिरिक्त भिक्षाटन वर्जित	५२०
द्विजाति को साङ्गवेद पढ़ने का अधिकार	५२१
गुरु का लक्षण	५२१
मुख्य विद्या बत्तीस एवं कला चौसठ का निर्देश	५२१
विद्या और कला के लक्षण	५२२
विद्याओं में वेद तथा उपवेद के नामों का निर्देश	५२२
वेदों के सह अङ्गों का निर्देश	५२३
मीमांसादि विद्याओं का नाम-निर्देश	५२३
वेद के मन्त्र और ब्राह्मण दो भागों का निर्देश	५२४
ऋग्वेद के लक्षण	५२४
यजुर्वेद के लक्षण	५२५
सामवेद के लक्षण	५२५
अथर्ववेद के लक्षण	५२५
आयुर्वेद के लक्षण	५२६
धनुर्वेद के लक्षण	५२६
गान्धर्व वेद के लक्षण	५२७
तन्त्र या आगम के लक्षण	५२७
शिक्षा के लक्षण	५२७
कल्प के लक्षण व भेद	५२८
व्याकरण के लक्षण	५२८
निरुक्त के लक्षण	५२९
ज्यौतिष के लक्षण	५२९
छन्द के लक्षण	५२९
मीमांसा के लक्षण	५३०
तर्क के लक्षण	५३०
सांख्य के लक्षण	५३०
वेदान्त के लक्षण	५३१
योग के लक्षण	५३२
इतिहास के लक्षण	५३२
पुराण के लक्षण	५३३
स्मृति के लक्षण	५३४
नास्तिक मत के लक्षण	५३४
अर्थशास्त्र के लक्षण	५३४
कामशास्त्र के लक्षण	५३५
शिल्पशास्त्र के लक्षण	५३५
अलंकारशास्त्र के लक्षण	५३६
काव्य के लक्षण	५३६
देश भाषा के लक्षण	५३६
अवसरोक्ति के लक्षण	५३७
यावन, ग्रन्थ तथा मत के लक्षण	५३७
देशादिधर्म के लक्षण	५३८
आयुर्वेदोक्त दश कलाओं के लक्षण	५४०
धनुर्वेदोक्त पाँच कलाओं के लक्षण	५४२
पृथक् चार कलाओं के लक्षण	५४४
तडाग कूपादि कलाओं के लक्षण	५४५

लोकधर्म निरूपण प्रकरण

विषय	पृष्ठ
चार आश्रमों का नाम निर्देश	५५२
चार आश्रमों के कृत्यों का निर्देश	५५२
स्त्री और शूद्र के लिए देवपूजा करने का निर्देश	५५३
स्त्रियों के लिए पति सेवा सर्वश्रेष्ठ धर्म	५५३
स्त्रियों के नित्य कर्म का निर्देश	५५४
साध्वी स्त्रियों को पैशुन्यादि का निषेध	५५८
यथोक्तपति सेवा से परिलोक जाने का निर्देश	५५९
स्त्रियों के नैमित्तिक कत्यों का निर्देश	५६०
रजोस्वला स्त्री की शुद्धि के समय का निर्देश	५६०
पतिव्रता स्त्रियों के कतव्यों का निर्देश	५६१
शूद्र के लिए धर्म का निर्देश	५६३
संकर जाति के नियम का निर्देश	५६४
राजा को स्वर्णकारादिकों को सदा कार्य में लिप्त करने का निर्देश	५६७
मदिरा गृह को गाँव से पृथक् रखने का निर्देश	५६८
दिन में मद्य पीने का निषेध	५६८
वृक्षारोपण और पोषण के नियम	५६८

विषय **पृष्ठ**

ग्राम्य वृक्षों के नामों का निर्देश ५६९
बगीचा लगानें के स्थान का निर्देश ५७०
वृक्षों का ऋतुभेद से सींचने के समयों का निर्देश ५७०
वृक्ष के नष्ट न होने का उपाय ५७०
वृक्षों के फल-पुष्पों की वृद्धि का उपाय ५७१
जंगली पेड़ लगाने की जगह और उनका नाम ५७१
कूपादि में उतरने योग्य सीढ़ियों के निर्माण का निर्देश ५७३
देश में विपुल जल एव पुल की व्यवस्था का निर्माण ५७३
जात्यनुसार देव एवं गुरु गृह के निर्माण का निर्देश ५७४
चौराहे पर विष्णु मन्दिर निर्माण का निर्देश ५७४
मेरु आदि मन्दिरों के सौलह प्रकारों का वर्णन ५७४
मेवार्दिकों के अनुसार उनके मण्डपों के प्रमाणों का निर्देश ५७६
ध्यानयोग में प्रतिमा की साधन मुख्यता का निर्देश ५७६
बालू से धातु तक की निर्मित प्रतिमा की उत्तरोत्तर स्थिरता का निर्देश ५७७
देव प्रतिमा की शुभकारिता एवं मानव प्रतिमा की अशुभ कारिता का निर्देश ५७८
सात्त्विकादि तीन प्रकार की प्रतिमाओं का निर्देश ५७९
सात्त्विक प्रतिमा के लक्षण ५७९
तामसी प्रतिमा के लक्षण ५८०
राजसी प्रतिमा के लक्षण ५८८
अङ्गुलादिक प्रमाणों के लक्षण ५८१
वामनी, मानुषी, दैवी, राक्षसी प्रतिमाओं के लक्षण ५८१
स्त्री देवता एवं वामन देव की प्रतिमा की ऊँचाई ५८१
नर-नारादि की प्रतिमाओं की ऊँचाई का प्रमाण ५८२
चण्डी प्रभृति की प्रतिमाओं की ऊँचाई का प्रमाण ५८२

विषय **पृष्ठ**

असुरों की प्रतिमाओं की ऊँचाई का प्रमाण ५८२
बाल तथा कुमारगान की प्रतिमाओं की ऊँचाई का प्रमाण ५८२
सत्ययुगादि भेद से प्रतिमाओं की ऊँचाई ५८३
नौताल प्रमाण ऊँची प्रमाण की प्रतिमाओं के अवयवों के प्रमाणों का निर्देश ५८३
रम्य प्रतिमा के लक्षण ५८८
रम्य तथा अरम्य प्रतिमा का अन्तर ५८८
मतान्तर से रम्य-अरम्य प्रतिमा में अन्तर ५८९
अवयवों की आकृति का वर्णन ५८९
अवयवों के अन्तर का प्रमाण ५९१
अवयवों की परिधि का प्रमाण ५९२
प्रतिमा की दृष्टि का प्रमाण ५९६
प्रतिमा के आसन का प्रमाण ५९७
योग्यतानुसार द्वारादि का प्रमाण ५९७
देवमन्दिर की ऊँचाई का प्रमाण ५९८
मञ्जिल तथा आकृति का निर्देश ५९८
प्रासाद के उत्तमादि तीन भेदों का निर्देश ५९८
मन्दिर के स्तम्भों का प्रमाण तथा निषेध का निर्देश ५९९
प्रासाद के भीतरी विस्तार का विचार ५९९
प्रतिमा के वाहन, रूप तथा आयुध का विचार ५९९
प्रतिमा के अनेक मुख होने पर व्यवस्था का विचार ६००
अनेक भुजाओं की व्यवस्था ६०१
ब्रह्मा के मुखों की व्यवस्था ६०१
हयग्रीवादिकों की आकृति विषयक विचार ६०२
अनिष्टकारक प्रतिमा के लक्षण ६०३
सौख्यदायक प्रतिमा के लक्षण ६०३
सात्त्विक प्रतिमाओं का वर्णन ६०३
लक्षणों के अभाव में भी दोष रहित प्रतिमा का निर्देश ६०५
प्रमाण एवं दोष रहित प्रतिमा का निर्देश ६०६
युग-भेद से वर्ण भेद का लक्षण ६०६
वर्ण-भेद से सात्त्विकी प्रभृति प्रतिमाओं का निर्देश ६०६
युग-भेद से सौवर्णादि का प्रतिमा विभाग निर्देश ६०७

विषय पृष्ठ
अमुख प्रतिमा के स्थापन का निषेध ६०८
भक्त पूजक के तपोबल से प्रतिमा दोषों के नष्ट होने का निर्देश ६०८
वाहन स्थापन तथा वाहनों के लक्षण विषयक निर्देश ६०९
गणेश की मूर्ति के लक्षण तथा अवयवों का प्रमाण ६११
स्त्रियों के अवयवों का प्रमाण ६१५
सवों के मुख का प्रमाण ६१६
बालक प्रतिमा के अवयवों का प्रमाण ६१६
शरीर की पूर्णता होने का वर्ष प्रमाण ६१७
सप्तताल प्रमाण की मूर्ति के अवयवों का प्रमाण ६१८
आसुरी मूर्त्तियों के लक्षण ६२१
शिल्पी को कभी मूर्त्तियों की वृद्ध सदृश कल्पना न करने का निर्देश ६२२
राजा को उक्त देवताओं का स्थापन कर प्रति वर्ष उनका उत्सव करने का निर्देश ६२३
मानहीन और भग्न प्रतिमा को रखने का निषेध ६२३
प्रजाकृत उत्सवों का सदैव पालन करने का निर्देश ६२४

राजधर्म निरूपण प्रकरण

राजा को प्रजा के सुख-दुःख का समान अनुभव होना चाहिए ६२५
शत्रु, दुष्ट तथा प्रजापालन के लक्षण ६२५
शत्रुनाश और दुष्टनिग्रह का लक्षण ६२६
व्यवहार लक्षण ६२६
राजा को वकील के साथ मुकदमा देखने का निर्देश ६२६
पक्षपात के पाचँ कारणों का निर्देश ६२७
राजा के अनिष्ट कारक हेतुओं का निर्देश ६२७
स्वयं कार्य का निर्णय न कर सकने पर योग्य ब्राह्मण को नियुक्त करने का निर्देश ६२९
ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रियादि की नियुक्ति ६२९
सभासद के लक्षण ६३०
निर्णय के अयोग्य पुरुषों के लक्षण ६३१
राजा को द्विजाति का स्वयं निर्णय न करने का निर्देश ६३१

विषय पृष्ठ
यज्ञ सदृश सभा के लक्षण ६३३
सभा में श्रोताओं में वैश्यों के रहने का निर्देश ६३४
सभा में जाने का नियम ६३४
सभा में निर्णय करने वालों का क्रम निर्देश ६३५
निर्णयकों का तारतम्य ६३५
निर्णय करने में समर्थ पुरुष के लक्षण ६३६
धर्म का लक्षण ६३७
अनुचिन्तन प्रकार का निर्देश ६३७
दस साधनों का निर्देश ६३८
यज्ञतुल्य सभा के द्वितीय लक्षण ६३८
गणक तथा लेखक के लक्षण ६४०
धर्माधिकरण का निर्देश ६४०
राजसभा में प्रवेश करने प्रकार ६४०
सभा में राजा के कृत्यों का निर्देश ६४१
राजा को पूर्ण विचारपूर्वक सर्वधर्मों की रक्षा का निर्देश ६४१
देश, जाति और कुल धर्मों को पालन करने उदाहरणों का निर्देश ६४१
देश, जाति और कुल धर्मों के उदाहरणों का निर्देश ६४२
कलयुग में महादण्ड के योग्य का निर्देश ६४२
न्यायादिकों के समय का निर्देश ६४४
मनुष्य मारनादिकों में समय के नियम के अभाव का निर्देश ६४४
राजा के समक्ष कार्य निवेदन के करने के प्रकार का निर्देश ६४४
अर्थी के लिए राजा के कार्यों का निर्देश ६४५
लेखक के कृत्यों का निर्देश ६४६
राजा को अन्यथा लेख लिखवाने वाले को दण्ड देने का निर्देश ६४६
राजा के अभाव में वंकील को पूछने का निर्देश ६४७
प्राङ् विवाद शब्द के अर्थ का निर्देश ६४७
व्यवहार पद का कथन ६४८
राजा या राजपुरुष को स्वयं व्यवहार पैदा करने का निषेध ६४८
राजा को छलादि का बिना निवेदन किए भी ग्रहण करने का निर्देश ६४९

विषय पृष्ठ
स्तोभक के लक्षण ६४९
सूचक के लक्षण ६५०
पचास छलों का वर्णन ६५०
दस अपराधों का वर्णन ६५३
राजा द्वारा ज्ञेय बाईस पदों का वर्णन ६५४
दण्डनीय वादी के लक्षणों का निर्देश ६५५
आवेदनपत्र के लक्षण एवं बोधगम्य सरल भाषा का निर्देश ६५५
पूर्व पंक्ष को बिना शुद्ध किये उत्तर उगलवाने वाले अधिकारी को पदच्युत करने का निर्देश ६५६
पूर्व पक्ष के पूर्ण होने पर वादी को रोकने का निर्देश ६५६
राजाज्ञा के बिना आगे बढ़ने पर प्रत्यर्थी पर रोक ६५७
चार प्रकार के रोकों का निर्देश ६५७
अपराधी को ही बुलाने के लिए राजा को निर्देश ६५९
अपराधियों को बुलाने के लिए असमर्थ भृत्यों को नहीं भेजने का निर्देश ६५९
हीन पक्षा स्त्रियों को भी न बुलाने का निर्देश ६६०
विवाह के लिए तैयार व्यक्ति को बुलाने का निषेध ६६०
चलने में असमर्थ को सवारी से बुलाने का निर्देश ६६२
अर्थी प्रत्यर्थी के अन्य कार्य में व्यस्त रहने पर प्रतिनिधि को भेजने का निर्देश ६६२
अंप्रगल्भ व्यक्ति के बन्धु को अपने पक्ष का ठीक ढंग से प्रतिपादन करने का निर्देश ६६३
जिस किसी से कार्य करा लेने पर वह उसी के द्वारा किया गया समझने का निर्देश ६६३
नियोजित पुरुष को सोलहवाँ भाग शुल्क देने तथा अधिक लेने वाले को दण्डित करने का निर्देश ६६४
नियोगी पुरुष की नियुक्ति तथा लोभ से दूसरे व्यक्ति को नियोजित करने वाले को दण्डित करने का निर्देश ६६५
कचहरी में बुलाने योग्य स्त्रियों का निर्देश ६६६
विषय पृष्ठ
विवादी की मृत्यु होने पर उसके पुत्र को विवाद करने का निर्देश ६६६
हत्या जैसे जघन्य अपराध करने वाले की मुकदमा में स्वयं उपस्थिति का निर्देश ६६७
बन्धुबल के घमंड पर न आने पर दण्डित करने का निर्देश ६६७
जमानतदार के कृत्यों का निर्देश ६६८
विवाद के साधनों की जाँच कर लेने का निर्देश ६६९
पक्ष के लक्षण ६६९
अर्जी दावा (भाषा) दोष का निर्देश ६७०
पक्षाभाष को छोड़ देने का निर्देश ६७०
अप्रसिद्ध के लक्षण ६७१
निष्प्रयोजन के लक्षण ६७१
असाध्य या विरुद्ध के लक्षण ६७१
निरर्थक या निष्प्रयोजन के लक्षण ६७२
दण्डनीय वादी के लक्षण ६७२
उत्तर लेखन का निर्देश ६७३
असंदिग्ध उत्तर के लक्षण ६७३
संदिग्ध उत्तर के लक्षण ६७४
दण्ड योग्य प्रतिवादी के लक्षण ६७४
चार प्रकार के उत्तर ६७५
सत्योत्तर के लक्षण ६७६
मिथ्योत्तर के लक्षण ६७६
चार प्रकार के मिथ्योत्तर ६७६
प्रत्यवस्कन्द के लक्षण ६७७
प्राङ्न्याय के लक्षण ६७७
प्राङ्न्याय के तीन प्रकार ६७७
मुकदमे के चार पाद ६७८
प्रथम निर्णय योग्य न्याय का निर्देश ६७९
एक विवाद में दो वादियों की क्रिया नहीं होने का निर्देश ६८१
साधन के भेद ६८२
तत्त्व और छल के लक्षण ६८२
विवादी को साधन दिखलाने का निर्देश ६८२
गुप्त को सभासदों के द्वारा प्रकट करने का निर्देश ६८४
कूटसाक्षी और साक्ष्यलोपी को दूना दण्ड देने का निर्देश ६८५

विषय	पृष्ठ
दो प्रकार के लिखित साधन का निर्देश	६८५
सात प्रकार के लौकिक लिखित का निर्देश	६८६
तीन प्रकार के शासन	६८७
साधनक्षम लेख्य के लक्षण	६८७
साधना योग्य लेख्य के लक्षण	६८८
अच्छे लेख से फल का निर्देश	६८९
साक्षी के लक्षण और भेद का निर्देश	६८९
साक्षी की विशेष परीक्षा न करने का निर्देश	६९२
वालकों को साक्षी न होने का निर्देश	६९२
साक्षी लेने में राजा को कालक्षेप न करने का निर्देश	६९३
प्रत्यक्ष साक्षी का साक्ष्य लेने का निर्देश	६९३
दण्डनीय और नीच साक्षी के लक्षण	६९४
क्रमशः साक्ष्य कथन का निर्देश	६९५
गवाही लेने के प्रकारों का निर्देश	६९५
कुशलों और कुटिलों द्वारा बनावटी लेख लिखने का निर्देश	७००
केवल साक्षियों से ही कार्यसिद्धि न करने का निर्देश	७०१
केवल भोगों से ही कार्यसिद्धि न होने का निर्देश	७०१
अनुचित शंका उत्पन्न करने वाले को दण्ड का निर्देश	७०१
विपरीत शंका करने पर अनवस्था का निर्देश	७०१
प्रामाणिक भोग के लक्षण	७०२
केवल भोग बताने वाले को चोर समझने का निर्देश	७०२
केवल लेख को भी प्रबल न मानने का निर्देश	७०३
साठ साल तक भोग में आई वस्तु को किसी के द्वारा न छिने जाने का निर्देश	७०४
आधि आदि का केवल भोग से नष्ट न होन का निर्देश	७०४
उपेक्षादि कारण से स्वामी को उसके फल प्राप्ति न होने का निर्देश	७०५
दिव्य कहने का निर्देश	७०५
त्रिविध साधन के अभाव में तीन प्रकार की विधियों का निर्देश	७०३
युक्ति के लक्षण	७०६

विषय	पृष्ठ
कार्य साधन हेतुओं के लक्षण	७०६
धन ग्रहण करने योग्य प्रतिवादी के लक्षण	७०७
युक्ति की असमर्थता में दिव्य का उपयोग करने का निर्देश	७०७
दिव्य को न मानने पर धर्मतस्कर होने का निर्देश	७०८
दिव्य स्वीकार करने वालों को उत्तम फल का निर्देश	७०९
दिव्य निर्णय में पदार्थों का निर्देश	७०९
अग्नि दिव्य के प्रकार का निर्देश	७१०
गर तथा घट दिव्य के प्रकार का निर्देश	७१०
जल दिव्य के प्रकार का निर्देश	७११
धर्माधर्म मूर्त्ति एवं तण्डुल दिव्यों के प्रकार का निर्देश	७११
शपथ दिव्य के प्रकार का निर्देश	७१२
अपराध तारतम्य से दिव्य तारतम्य का निर्देश	७१२
दिव्य के निषेध का निर्देश	७१४
शिर के बिना दिव्य के अधिकारी का निर्देश	७१४
तप्रमाष दिव्य के अधिकारी का निर्देश	७१५
वादी के दिव्य के स्वीकार करने पर फिर साधन न पूछने का निर्देश	७१६
भाषा पत्रिका होने पर दिव्य से शोध न करने का निर्देश	७१६
लौकिक साधन के अभाव में शपथ देने का निर्देश	७१७
साक्षी के भेदन के प्राप्त होने पर शपथों से निर्णय करने का निर्देश	७१७
विवाहादिकों में साक्षी को ही निर्णय साधन होने का निर्देश	७१९
द्वार और मार्ग के बीच भोग को ही प्रमाण बनाने का निर्देश	७१९
मानुषी और दैवी क्रियाओं के प्रमाण का निर्देश	७१९
छः प्रकार के निर्णय का निर्देश	७२०
सब के अभाव में निश्चय करने में राजा के प्रमाण होने का निर्देश	७२१
धर्मशास्त्र के अविरोध पूर्वक राजा को नीति शास्त्र पर विचार करने का निर्देश	७२१

विषय पृष्ठ
विवाद होने के कारणों का निर्देश ७२२
अधर्म निरत राजा की सभासद द्वारा उपेक्षा न करने का निर्देश ७२३
धिग्दण्ड और वाग्दण्ड दोनों के सभासदों के अधीन होने का निर्देश ७२३
दुबारा कार्यारम्भ में कारण का निर्देश ७२४
पुनर्भव विधि के लक्षण ७२४
मंत्री आदि को नियम विरुद्ध फैसला करने पर अर्थदण्ड देने का निर्देश ७२५
जयी के लक्षणों का निर्देश ७२५
जयी को जय पत्र देने के प्रकार का निर्देश ७२६
प्रजा की अनुकूलता करने वाले राजा के गुणों का निर्देश ७२६
जीवित माता-पिता के रहते बूढ़े बेटे को भी स्वतंत्र न होने का और उन दोनों में पिता की श्रेष्ठता का निर्देश ७२७
पिता के अभाव में माता और माता के अभाव में भाई की श्रेष्ठता का निर्देश ७२७
पिता की सभी पत्नियों में माता की तरह व्यवहार का निर्देश ७२८
स्वतंत्रता परतंत्रता का निर्णय ७२८
स्वामित्व का निर्णय ७२९
विभाग का विचार ७३१
अंशधारियों के क्रम-निर्णय का निर्देश ७३२
सौदायिक धन में स्त्री की स्वतंत्रता का निर्देश ७३३
सौदायिक धन के लक्षण ७३३
अविभाज्य धन के लक्षण ७३३
जलादिकों से धन की रक्षा करने वाले को दसवाँ भाग प्राप्त करने का निर्देश ७३४
शिल्पी के लक्षण ७३४
नर्तकादियों का धन विभाग विषयक निर्देश ७३५
चोरों का धन विभाग विषयक निर्देश ७३५
व्यापारियों का धन विभाग विषयक निर्देश ७३६
आपातकाल में भी नौ तरह के धनों को न देने का निर्देश ७३७
उत्तम साहस दण्ड देने के योग्य का निर्देश ७३८
अस्वामिक धन को चोरों से लेने वालों को दण्ड देने का निर्देश ७३८

विषय पृष्ठ
त्याग योग्य ऋत्विज और याज्य के लक्षण ७३८
राजा को ३२ वाँ या १६वाँ लाभांश पण्य में नियत करने का निर्देश ७३९
व्यापारी के धन की व्यवस्था का निर्देश ७३९
मूल से दूना ब्याज ले चुकने पर महाजन को मूल धन देने का निर्देश ७३९
लिखित नष्ट होने पर साक्ष्य के आधार पर महाजन को धन दिलवाने का निर्देश ७३९
खोटी वस्तु बेचने वाले को दण्ड देने का निर्देश ७४१
शिल्पी की भृत्ति का विचार ७४१
स्वर्णकार की भृत्ति का विचार ७४२
धातुओं में मिलावट करने वाले को दूना दण्ड देने का निर्देश ७४५

दुर्ग प्रकरण

ऐरिण दुर्ग के लक्षण ७४७
पारिख और पारिध दूर्ग के लक्षण ७४७
वनदुर्ग तथा धन्व दुर्ग के लक्षण ७४७
जलदुर्ग तथा गिरीदुर्ग के लक्षण ७४८
सैन्यदुर्ग और सहायदुर्ग के लक्षण ७४८
ऐरिणादि दुर्ग का तारतम्य निर्देश ७४९
सहाय तथा सैन्य दुर्गों की साधनता का निर्देश ७५०
आपात काल में अन्य दुर्गों की उत्तमता का निर्देश ७५०
अत्यन्त श्रेष्ठ दुर्ग के लक्षण ७५१
युद्ध सहायक सामग्रियों से परिपूर्ण दुर्ग से निश्चित विजय होने का निर्देश ७५१

सैन्य प्रकरण

सेना का लक्षण ७५३
सेना के भेदों का वर्णन ७५३
स्वगमा और अन्यगमा सेना के लक्षण ७५४
सेना के प्रभाव का निर्देश ७५४
बल के छः प्रकार का निर्देश ७५४
सेना बलों के दो प्रकार का निर्देश ७५६
मैत्र, स्वीय, मौल तथा साद्यस्क सेनाओं के लक्षण ७५७
सार-असार, शिक्षित-अशिक्षित सेना के लक्षण ७५८

विषय **पृष्ठ**

गुल्मीभूत, अगुल्मक, दत्तास्त्रादि तथा स्वशस्त्रा सेनाओं के लक्षण ७५७
कृतगुल्म, स्वयंगुल्म, दत्तवाहन और आरण्यक सेना के लक्षण ७५८
शत्रुबल के तथा दुर्बल सेना के लक्षण ७५८
सेना का शारीरिक बल बढ़ाने के उपाय ७५९
शौर्यवल बढ़ाने के उपाय ७५९
सेनाबल, आस्तिक बल एवं बुद्धिबल बढ़ाने के उपाय ७५९
आयुर्बल के लक्षण ७६०
सेना में पदाति की संख्या का नियम ७६०
प्रतिमास व्यय करने का प्रमाण ७६२
राजकीय रथ का वर्णन ७६३
अनिष्ट एवं शुभप्रद गज के लक्षण ७६४
भद्रगज के लक्षण ७६५
मन्द्रगज के लक्षण ७६५
चार प्रकार के हाथी ७६५
मृगगज के लक्षण ७६६
मिश्रगज के लक्षण ७६६
गजमान में अंगुलादिकों का प्रमाण ७६६
भद्रगज के शरीर का मान ७६७
मन्द्र तथा मृगगज का मान ७६७
उत्कृष्ट अश्व के लक्षण ७६७
उत्तम तथा मध्यम अश्व के लक्षण ७६८
नीच अश्व के लक्षण तथा उनके अवयवों का मान ७६८
अश्व की ऊँचाई और लम्बाई का प्रमाण ७६८
उत्तम अश्व के अन्य लक्षण ७७९
घोड़े की भौंरी के दो भेद ७८०
घोड़ा और घोड़ी की देह में दायें-बायें भौंरी के शुभ लक्षण ७८०
अन्यथा होने पर फलाभाव का निर्देश ७८०
भौरियों के ऊपर-नीचे होने से फल-भेद ७८०
शुभ भौंरी के लक्षण ७८१
भौंरी के स्थानानुसार घोड़े की उत्तमता ७८१
भौंरी के स्थानानुसार घोड़े की मध्यमता ७८१
पूर्णहर्ष अश्व के लक्षण ७८२
सूर्यसंज्ञक अश्व के लक्षण तथा फल ७८२
सार-अन्य भौरियों से युक्त अश्वों के लक्षण ७८३

विषय **पृष्ठ**

यशोवर्द्धक तथा सर्वसंज्ञक अश्व के लक्षण ७८३
शिवसंज्ञक एवं क्रूरसंज्ञक के लक्षण ७८४
इन्द्रसंज्ञक अश्व के लक्षण ७८४
विजयसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८४
पद्मसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८५
भूपालसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८५
चिन्तामणिसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८६
शुक्लसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८६
अनिष्टकारक अश्वों के लक्षण ७८६
धूमकेतुसंज्ञक अश्व के लक्षण एवं फल ७८७
कृतान्तसंज्ञक भौंरी के लक्षण एवं फल ७८७
घोड़े की पुँछ के शुभाशुभ फल ७८७
भौंरियों के अशुभ पद स्थानों का निर्देश ७८८
आवर्त भौंरियों के शुभप्रद स्थानों का निर्देश ७८८
सूर्य-चन्द्र भौंरी के स्थानानुसार शुभाशुभ का निर्देश ७८९
शुभाशुभ फलप्रद भौंरी के स्थानों का निर्देश ७८९
एकशृंगी तथा एकरश्मि संज्ञक भौंरी के लक्षण एवं फल ७९०
कीलोत्पाटी व मध्यम आवर्तों के लक्षण और फल ७९१
पंचकल्याण व अष्टमंगल अश्व के लक्षण और फल ७९१
श्यामकर्ण अश्व के लक्षण ७९२
जयमंगल अश्व के लक्षण ७९२
अश्वों की श्रेष्ठ गति का लक्षण ७९३
निन्दित दलभंजी अश्व के लक्षण ७९४
स्निग्ध वर्ण होने से सर्व वर्णगत दोषनाशकता का निर्देश ७९५
अश्वों के कृशाादि दोष उत्पन्न होने के कारण ७९५
अश्वों की चाल का दायित्व शिक्षक पर होने का निर्देश ७९६
घोड़ो के सुशिक्षक के लक्षण ७९६
अश्व सुशिक्षक के कृत्यों का निर्देश ७९७
अश्व को अन्यथा ताड़न करने से अनिष्ट ७९८
उत्तम और हीन घोड़े की गति का प्रमाण ७९९
उत्तमादि मंडलों के प्रमाणों का निर्देश ७९९

विषय **पृष्ठ**

ऋतु-भेद से अश्व शिक्षा के समय में भेद का निर्देश ८००
वर्षा ऋतु में और विषम भूमि में घोड़े को चलाने का निर्देश ८००
उत्तम गति से अश्व के फल का निर्देश ८०१
थकित अश्व को धीरे चलाने का तथा उन्हें पौष्टिक आहार देने का निर्देश ८०१
मोच खाये अंग पर चाबुक से मारने का निषेध ८०२
थके हुए घोड़े को गुड़ और नमक देने का निर्देश ८०२
पसीना रुकने पर लगाम उतारने का निर्देश ८०२
घोड़ों के अंगों को मलकर फेरने का निर्देश ८०२
घोड़ों को मद्य एवं मांस का रस देने का फल ८०३
चारा खिलाने के बाद तत्काल घोड़े पर सवारी का निषेध ८०३
घोड़े के लिए उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के भोजनों का निर्देश ८०३
घोड़ो की छः प्रकार की गति का नाम ८०४
धारा गति के लक्षण ८०४
आस्कन्दित गति के लक्षण ८०५
रेचित गति के लक्षण ८०५
प्लुत तथा धौरीतक गति के लक्षण ८०५
वल्गित गति के लक्षण ८०६
बैल के मुखादि का प्रमाण ८०६
पूज्य सप्तताल बैल के लक्षण ८०६
श्रेष्ठ बैल के लक्षण ८०६
श्रेष्ठ ऊँट के लक्षण ८०७
मनुष्य और हाथी की आयु एवं उनके बचपन का प्रमाण ८०७
घोड़ा, बैल तथा ऊँट की आयु का प्रमाण ८०८
दाँतों से बैल और घोड़ों की उम्र की जानकारी का उद्देश्य ८०९
निन्दित घोड़ों के लक्षण ८११
दाँतो द्वारा बैल, ऊँट की आयु की परीक्षा ८१२
अंकुश के लक्षण ८१३
घोड़ों के लगाम का वर्णन ८१४
बैल, ऊँट को वश में करने का उपाय ८१४

विषय **पृष्ठ**

मनुष्य और पशु को ताड़न द्वारा वश में करना तथा सैनिकों को अर्थदण्ड न देने का निर्देश ८१५
बैलादि के निवास का सुरक्षित प्रबन्ध ८१५
राज्य में सौ-सौ योजन पर सेना रखने का निर्देश ८१६
बोझ ले चलने वालों का तारतम्य ८१६
छोटे शत्रु पर भी अल्प साधनों से आक्रमण करने से निषेध ८१६
युद्ध से भिन्न कार्यों में नवनियुक्त सैनिकों का प्रयोग ८१७
संग्राम में अधिक सेना की आवश्यकता का निर्देश ८१७
सन्नद्ध सेना की महिमा ८१८
मौलसेना की प्रशंसा ८१८
सेना में अवश्य भेद होने के कारण ८१९
सेना का भेद होने से अनिष्ट फल ८१९
राजा को शत्रु सेना में भेद डालने का निर्देश ८१९
शत्रुओं को साधने का प्रकार ८२०
शत्रुओं को जीतने का भेद के अतिरिक्त दूसरा उपाय न होने का निर्देश ८२०
शत्रु की त्यागी हुई सेना को अपनी सेना में रखने का प्रकार निर्देश ८२१
मित्र की सेना को अपनी सेना में रखने का प्रकार निर्देश ८२१
अस्त्र और शस्त्र के लक्षण और भेद ८२१
मांत्रिक अस्त्र के अभाव में नालिक अस्त्र का प्रयोग ८२२
नालिक के दो प्रकारों का निर्देश ८२२
लघु नालिक के लक्षण ८२३
बृहन्नालिक के लक्षण ८२४
बारूद बनाने का प्रकार ८२६
गोला बनाने का प्रकार ८२६
नालिक की व्यवस्था का निर्देश ८२६
बारूद बनाने और दूसरे प्रकार का निर्देश ८२६
तोप के गोले को लक्ष्य पर फेंकने की रीति ८२७
बाण का लक्षण ८२८
गदा और पट्टिश का लक्षण ८२८
खड्ग, पारा और भाले का लक्षण ८२९

विषय	पृष्ठ
चक्र और पाश के लक्षण	८३०
कवच और टोप के लक्षण	८३०
करज के लक्षण	८३०
युद्ध की इच्छा करने योग्य राजा का लक्षण	८३१
युद्ध का सामान्य लक्षण	८३१
युद्ध के भेद और लक्षण	८३१
युद्ध के लिए काल विचार	८३३
युद्ध के लिए उत्तम देश का लक्षण	८३४
मध्यम युद्ध देश के लक्षण	८३५
अधम युद्ध देश के लक्षण	८३५
युद्ध के लिए सेना का विचार	८३५
मंत्र के छः गुणों के नामों का निर्देश	८३६
संधि के लक्षण	८३६
विग्रह के लक्षण	८३७
यान और आसन के लक्षण	८३७
आश्रय और द्वैधी भाव के लक्षण	८३७
संधि करने योग्य पुरुषों का निर्देश	८३८
उपहार रूप संधि की सर्वश्रेष्ठता का निर्देश	८३८
शत्रु के बलानुसार उपहार की कल्पना के भेद	८३९
पार्श्ववर्ती अनार्य राजा से भी संधि करने का निर्देश	८३९
संधि के अवसरों का तथा उनसे लाभ का निर्देश	८४०
विग्रह करने योग्य पुरुष्र के लक्षण	८४१
विग्रह होने के कारणों का तथा विग्रह और कलह के भेद का निर्देश	८४२
बलवान् शत्रु के साथ विग्रह करने का निषेध	८४३
निरुपाय दशा में विग्रह करने का निर्देश	८४३
यान के पाँच भेद	८४३
विगृह्ययान के दो प्रकार के लक्षण	८४४
सन्धाययान के लक्षण	८४५
संभूययान के लक्षण	८४५
प्रसङ्गयान के लक्षण	८४५
उपेक्षायान के लक्षण	८४६
रास्तों में सेना को चलाने की व्यवस्था	८४६
नदी-पर्वतादि में भय की संभावना होने पर व्यूह बाँधकर चलने का निर्देश	८४७
मकर, श्येन व सूचीमुख व्यूहों का नाम व योजना स्थल का निर्देश	८४७
पाँच व्यूहों का नाम-निर्देश	८४७
बाजा बजाने के ढङ्ग से संकेतों के जानने का निर्देश	८४८
सैनिकों को संकेतज्ञान कराने का निर्देश	८४८
संकेतों के अनुसार सैनिकों को कार्य करने का निर्देश	८४८
संकेतानुसार स्थिति रखने का निर्देश	८४९
संकेतानुसार बाणादि चलाने आदि का निर्देश	८४९
संकेतानुसार गमनादि करने का निर्देश	८४९
सदा व्यूहबद्ध होकर अस्त्रादि चलाने का निर्देश	८५१
अस्त्र-प्रयोगादि के समय सैनिकों की स्थिति का निर्देश	८५१
क्रौञ्चव्यूह के लक्षण	८५१
श्येनव्यूह के लक्षण	८५२
मकर व्यूह के लक्षण	८५२
सुचीमुख तथा चक्रव्यूह के लक्षण	८५२
सर्वतोभद्र व्यूह के लक्षण	८५३
शकट और व्यालव्यूह के लक्षण	८५३
सैन्य की न्यूतना व अधिकतानुसार एवं युद्ध भूमि के अनुसार १ या २ व्यूह रचना का निर्देश	८५३
आसन के लक्षण और उस समय के कर्त्तव्य	८५४
सन्धाय आसन के लक्षण	८५४
आश्रय के लक्षण	८५५
द्वैधीभाव के लक्षण	८५६
उपाय करने से कार्य सिद्ध होने का निर्देश	८५६
उद्योग की अवश्य कर्त्तव्यता का निर्देश	८५७
भेद और समाश्रय की श्रेष्ठता का निर्देश	८५८
लाचारी होने पर युद्ध करने का निर्देश	८५९
स्त्री, गो, ब्राह्मण के रक्षार्थ युद्ध न करने से हानि	८५९
किसी की ललकार पर क्षत्रिय को अधर्म युद्ध करने का निर्देश	८६०
शय्या पर पड़े-पड़े क्षत्रिय का मरना	८६१

विषय पृष्ठ

युद्ध में शत्रु को न मार सकने पर बन्धुओं के साथ युद्ध में लड़ते-लड़ते मर जाने से क्षत्रियों की परम कर्त्तव्यता का निर्देश ८६१

यूद्ध में पीछे पैर न हटाने तथा लड़कर मर जाने की प्रशंसा ८६२

स्वामी के निमित्त लड़ने का फल ८६२

युद्ध में वीरगति पाये हुए के लिए शोक करने का निषेध ८६२

युद्ध में वीरतापूर्वक मरने का फल ८६३

युद्ध में वीरगति पाने पर मुनि दुर्लभ लोक की सुगमता से प्राप्ति का निर्देश ८६३

शूरता की प्रशंसा सर्वोत्तमता का निर्देश ८६४

प्राणियों के अन्न का विचार ८६४

सूर्यमंडल भेदन करने वाले दो पुरुषों का निर्देश ८६४

आततायी ब्राह्मण के गुरु को मारने का निर्देश ८६५

शत्रु द्वारा संकट आ पड़ने पर आचार्य धर्मशास्त्रियों द्वारा उपाय पूछने की निरर्थकता का निर्देश ८६५

जिससे शत्रु मारा जा सके ऐसी नीति पर चलने का निर्देश ८६७

आततायी ब्राह्मण को शुद्रवतृ जानकर मारने में दोषाभाव का निर्देश ८६७

आततायी बालक को भी मारने में दोषाभाव का निर्देश ८६८

युद्ध में क्षत्रिय की भाँति लड़ते हुए ब्राह्मण को मारने में दोषाभाव का निर्देश ८६८

जीवन-रक्षार्थं युद्ध से भाग ज़ाने पर दोष का निर्देश ८६८

रणांगण में मित्रादि का परित्याग कर भगोड़े का दोष ८६९

धोखेवाज मित्र का दोष निर्देश ८६९

शरणागत को लौटाने पर नरकगामिता का दोष ८७०

दुराचारी क्षत्रिय को मारने का निर्देश ८७०

उत्तम, मध्यम, कनिष्ट और अद्यम युद्ध के लक्षण ८७१

सर्वोत्तम युद्ध के लक्षण ८७१

विषय पृष्ठ

नालिकास्त्र युद्ध के लक्षण ८७१

शस्त्र युद्ध का लक्षण ८७२

बाहुयुद्ध का लक्षण ८७२

आठ प्रकार के बाहुयुद्ध का निर्देश ८७२

बाहुयुद्ध के आठो प्रकार में मित्रों के लिए प्रयोग का निषेध ८७२

युद्ध के समय सेना की रचना ८७४

युद्ध होने का क्रम ८७५

सेना के उपद्रुत होने पर लड़ने का निर्देश ८७५

सेना में फूट डालने में पाप का निर्देश ८७६

फूट जाने वाली सेना के दुःखदायिनी होने का निर्देश ८७६

सामादि का ध्यान रखते हुए युद्ध करने का निर्देश ८७७

शत्रु पर चढ़ाई करते समय सेना को तनख्वाह बढ़ाने का निर्देश ८७७

युद्ध में नालास्त्र आदियों की योजना ८७८

युद्ध में प्रहार करने के अयोग्य सैनिकों के लक्षण ८७९

वृद्ध-बालकादि राजा को मारने का निषेध ८८०

बलवान् शत्रु के नाशार्थ कूटयुद्ध की महत्ता ८८०

शत्रु के छिद्र को भली प्रकार देखने का निर्देश ८८१

कार्य को नष्ट न करने का निर्देश ८८१

सेनापति के नित्य कृत्यों का निर्देश ८८१

उत्तम कार्यकारी सैनिकों को पारितोषिक दातव्य ८८२

शत्रु को नष्ट करने का उपाय ८८२

शत्रु सेना में भेद डालने का प्रकार ८८३

विपद ग्रस्त शत्रुसेना और मित्रसेना की रक्षा करने का निर्देश ८८३

अपनी सीमावर्ती राज्य की रक्षा का निर्देश ८८३

पराजित शत्रु की प्रजा को प्रसन्न रखने का निर्देश ८८४

विजित राज्य के मंत्रिमंडल को बदलने का निर्देश ८८५

मंत्री प्रभृति के कृत्यों का निर्देश ८८६

गाँव से बाहर सैनिकों को टिकने का तथा उसके निषिद्ध कार्यो का निर्देश ८८७

विषय पृष्ठ
सहस्र सैनिकों को शिक्षा देने के नियमों का निर्देश ८८७
सैनिकों के त्याज्य कर्म ८८८
सैनिकों के लिए कर्त्तव्य कर्म ८८८
आज्ञा के विरुद्ध आरचण करने वाले सैनिकों के लिए दण्ड का निर्देश ८८८
प्रतिदिन सैनिकों को व्यूहाभ्यास करने का निर्देश ८८९
सुबह-शाम सैनिकों की गणना का निर्देश ८९०
मृत्यों के प्राप्ति पत्र पाकर वेतन देने का निर्देश ८९०
शिक्षित सैनिकों को पूर्ण वेतन देने का निर्देश ८९०
शत्रु से मिलकर अनिष्टकारी सेना को नष्ट करने का निर्देश ८९१
मार डालने या त्याज्य नौकरों के लक्षण ८९१
अन्तःपुरादिक में रखने योग्य भृत्य के लक्षण ८९१
अच्छी वेतन देकर पालन्ने योग्य भृत्यों के लक्षण ८९२
शत्रु के भृत्यों के वेतन का विचार ८९३
राज्यच्युत किये राजा के पुत्रादि की व्यवस्था का निर्देश ८९३
विषय पृष्ठ
शत्रुसंचित धन की व्यवस्था का निर्देश ८९४
सदाचारी शत्रु का पालन और असदाचारी को कष्ट पहुँचाने का निर्देश ८९५
पहरेदारों की व्यवस्था ८९५
राजा के पूज्य होने के कारणों का निर्देश ८९८
चिर स्थायी राजा के लक्षण ८९८
शीघ्र की पदभ्रष्ट होने वाले राजा के लक्षण ८९९
नीति भ्रष्ट राजा को भी अल्प राजा का उद्धार करने में समर्थ होने का निर्देश ९००
तेजोहीन राजा से बलवान् राजा के साधारण भृत्य का भी तेजस्वी होने का निर्देश ९००
राजा से बढ़कर बहुमत की महत्ता का निर्देश ९००
हीन-राज्य राजा के आचरणों का निर्देश ९०१
राजा के दरिद्र होने के कारणों का निर्देश ९०१
धार्मिक नीच राजा को भी श्रेष्ठ होने का निर्देश ९०२
धर्माधर्म की प्रवृत्ति में राजा ही कारण ९०२
मनु के अनुसार नीति-ग्रन्थों की संख्या का निर्देश ९०३
शुक्रनीति-सार-चिन्तन का फल ९०३
शुक्रनीति के समान दूसरी नीति न होने का निर्देश ९०३

पञ्चम अध्याय

नीति शेष कहने का निर्देश ९०५
शत्रु के छिद्रों को ढूढ़ते रहने का निर्देश ९०५
शत्रु राजा को हीनबल बनाने के लिए यत्न करने का निर्देश ९०५
मौका देखकर शत्रु को नष्ट करने का निर्देश ९०६
युद्ध में नियुक्त करने योग्य का निर्देश ९०६
दान-मान से रहित भी भृत्य को अपने राजा को न छोड़ने का निर्देश ९०७
शत्रु का राज्य हरण करने का उपाय ९०८
राजाविहीन सेनापति आदि शक्तिविहीन होता है ९०८
राज्य को वृक्ष की समता का निर्देश ९०९
राजा के लिए पालनीय नियमों का निर्देश ९०९
पुत्र को राज्य देने के समय का निर्देश ९११
राज्य पाने पर राजपुत्र के आचरणों का निर्देश ९१२
मन्त्रियों का राजपुत्रों के साथ करने योग्य व्यवहार ९१२
नये राजा के साथ मन्त्रियों के अनीति पूर्ण व्यवहार का निषेध ९१३
नये राजा को विज्ञ मन्त्रियों के अपमान का दुष्परिणाम ९१३
नये मंत्रियों की नियुक्ति की व्यवस्था ९१३
धूर्त्त एवं साधुजनों की पहचान का निर्देश ९१४
धूर्त्त, जार और चोर में धूर्त्त की श्रेष्ठता का निर्देश ९१४
धूर्त्तों की धूर्त्तता का वर्णन ९१५

विषय पृष्ठ

बिना धूर्त्तता के अत्यन्त धन न मिलने का निर्देश ११६
राजा को पर धनापहरण स्वधर्म मानने का निर्देश ११६
आश्रय-भेद से सभी पापों का धर्मस्थित होने का निर्देश ११७
बहुप्रशंसित धर्म और निन्दित अधर्म मानने का निर्देश ११७
अधिक दानादि करने का निषिद्धता ११८
धर्मानुसार अर्थोपार्जक की पूज्यता का निर्देश ११८
अर्थोपार्जनार्थ प्रयास की प्रंशसा का निर्देश ११८
शौर्यादिकों का शस्त्रास्त्रों के बिना दुःखदायी होने का निर्देश ११९
अविभक्त-विभिक्त एवं मित्रों के साथ व्यवहार का निर्देश ११९
अपने स्वजनों को सन्तुष्ट कर धनोपभोग का निर्देश १२०
स्वकार्यसिद्धि के लिए अधिक वेतन देकर भी सेवक को रखने का निर्देश १२०
ब्रह्माणादि द्वारा यज्ञादि करने में धन का व्यय करने से ही सुखी होने का निर्देश १२१
दर्प, मान,. कार्पण्य, भय तथा उद्वेग के लक्षण १२१
महानन वैर तथा मिंत्रता के कारणों का निर्देश १२१
आपत्ति पड़ने पर राजा के कर्त्तव्य का निर्देश १२२
आपत्ति में बिना वेतन के भी स्वामिकार्य करने की कालमर्यादा का निर्देश १२३
प्रंशसा योग्य भृत्य और स्वामी का वर्णन १२४
योग्य स्वामी तथा भृत्य का उदाहरण १२५
एकचित्रता के भाव का वर्णन १२५
श्रीकृष्ण की कूटनीति क़ा वर्णन १२५
हित सिद्ध करने में मध्यस्थ पुरुष के व्यवहार का निर्देश १२६
अपनी रक्षा की युक्ति का विचार न करने वाले की निन्दा का निर्देश १२७
कार्यसिद्ध्यर्थ दो प्रकार की युक्तियों का निर्देश १२७
छल का वर्णन १२८
तीन प्रकार के भृत्यों का निर्देश १२९

विषय पृष्ठ

उत्तमादि भृत्यों के लक्षण १३०
प्रकारान्तर से उत्तमादि भृत्यों के लक्षण १३०
उपदेश के बिना सबका ज्ञान न होने का तथा बाल्य व युवा स्वस्था में प्रारम्भ किये हुए की समाप्ति का निर्देश १३१
बहुत कार्यों को एक साथ आरम्भ करने का निषेध १३१
समाप्त होने योग्य कार्य को प्रारम्भ करने का निर्देश १३२
प्रयोजन की सिद्धि होने की संभावना में कलह करने का निर्देश १३२
कार्य में प्रवृत्ति तथा दोष के कारणों का निर्देश १३२
निर्दोष तथा अभिमत कार्य करने का निर्देश १३३
दशग्रामाधिपादिकों का विचरण करने के १३३
प्रकारों का निर्देश १३३
श्रेष्ठ तथा हीन पुरुष के समान में न्यूनाधिक्य का निषेध १३५
उत्तमादि गृहभूमि के प्रमाणों क़ा निर्देश १३५
अधिकारी पुरुषों को ग्राम के बाहर रहने एवं सैनिकों को बिना राजकार्य के ग्राम प्रवेश के निषेध का निर्देश १३६
सैनिको को ग्रामवासियों को पीड़ा न पहुँचाने एवं ग्रामवासियों को सैनिकों के साथ व्यवहार करने का निर्देश १३६
सैनिकों के शौर्यवर्धक उपायों को करने का निर्देश १३७
युद्ध कार्य से अन्य सैनिकों की नियुक्ति का निषेध १३७
व्यवहार में विफल होने पर धनिक या किसान की रक्षा करने का निर्देश १३७
धनी सैनिक के वेतन व भत्ता के विषय में विचार १३८
सैनिकों के धन की आत्मवत् रक्षा करने का एवं जालसाज धनिकों का धनहरण करने का निर्देश १३८
मूल से चौगुना सूद ले चुकने पर धनी को कुछ न देने का निर्देश १३८

॥ श्रीः ॥

शुक्रनीतिः

श्रीमज्जीवानन्दविद्यासागरकृतया संस्कृतव्याख्यया समुल्लसिता
तथा च
'विमला'-संस्कृत-हिन्दीटीकाभ्यां समुपबृंहिता

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य जगदाधारं सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
सम्पूज्य भार्गवः पृष्टो वन्दितः पूजितः स्तुतः ॥ १ ॥
पूर्वदेवैर्यथान्यायं नीतिसारमुवाच तान्।
शतलक्षश्लोकमितं नीतिशास्त्रमथोक्तवान् ॥ २ ॥

मङ्गलाचरणम्

ज्योतीरूपां परशिवां ज्ञानरूपाञ्च ज्ञानदाम्।
सर्वसिद्धिप्रदात्रीञ्च वन्दे वागधिदेवताम् ॥ १ ॥
दुर्वृत्तवृत्तदमनीं शमनीं विपत्ती-
र्दात्रीं जयं विपुलकीर्तिमियं धरित्रीम्।
भूत्वा प्रसन्नाष्टभुजाऽष्टमातृका
माङ्गल्यमातनुमुदैव सदैव माता ॥ २ ॥
मुरलीमधुरनिनादितराधाराधितललितलताकुञ्जे
शम्पाश्लिष्टं मेघं वन्दे तदिव मनोज्ञं कमपि ॥ ३ ॥
वेदवेदाङ्गपारज्ञं हिमाभं शुक्लभूषणम्।
नीतिज्ञं कविरात्मज्ञं शुक्रं वन्दे शुभावहम् ॥ ४ ॥
शुक्राचार्यप्रणीतस्य शुक्रनीतेः प्रबोधिनीम्।
व्युत्पन्नां विमलां व्याख्यां कुर्वेऽहं विदुषां मुदे ॥ ५ ॥

तत्र भगवान् शुक्राचार्यः स्वयं चतसृणामपि विद्यानामुपयोगं जानन्नपि शिष्यविशेषाणां पुरतः सर्वविद्यारम्भो दण्डनीत्यधीन एवेति व्याजहारेति। तच्छुत्वा ते शिष्या दण्डनीतेः प्राधान्यं तदभिप्रेतमिति स्वीचक्रुः शिष्याणामेतदनुरोधमालम्ब्य 'काव्यं यशसेऽर्थकृते शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥' इत्यालङ्कारिकवचनप्रामाण्यात् काव्यस्यानेक-

साधनत्वाच्च 'काव्यालापांश्च वर्जयेदि'ति तन्निषेधस्यासत्काव्यविषयतां पश्यन् शुक्रनीतिनामकं काव्यं चिकीर्षुश्चिकीर्षितार्थाविघ्नपरिसमाप्तिहेतोः 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखमि'त्याशीराधन्यतमस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वात् मङ्गलमाचरति—**प्रणम्येति**।

अन्वयः—पूर्वदेवैः सम्पूज्य वन्दितः पूजितः स्तुतः भार्गवः पुष्टः (स च) सर्गस्थित्यन्तकारणं जगदाधारं प्रणम्य, तान् यथान्यायं नीतिसारम् उवाच। अथ शतलक्षश्लोकमितं नीतिशास्त्रम् उक्तवान् ॥ १-२ ॥

व्याख्या—पूर्वदेवैः = असुरैः, सम्पूज्य = सम्यग्रूपेण पूजनं विधाय, वन्दितः = समादृतः, पूजितः = अर्चितः, स्तुत = प्रशंसित, भार्गवः = शुक्राचार्यः, पृष्टः = जिज्ञासितः, (स च) सर्गस्थित्यन्तकारणम् = जगतः समुत्पत्तेः, स्थितेः = अस्तित्वस्य, अन्तस्य = विनाशस्य च, कारणं = निमित्तभूतं, जगदाधारम् = सम्पूर्णब्रह्माण्डस्य, आधारम् = अवलम्बनभूतं परमेश्वरं, प्रणम्य = नत्वा, तान् = पूर्वदेवान् (असुरान्), यथान्यायम् = समुचितप्रकारेण, नीतिसारम् = नयतत्त्वम्, उवाच = कथयामास, अथ = तदनन्तरम्, शतलक्षश्लोकमितम् = कोटिपद्यात्मकम्, नीतिशास्त्रम् = नीतिविद्याशास्त्रम्, उक्तवान् = कथितवान् ॥ १-२ ॥

हिन्दी—एक बार असुरों ने शुक्राचार्य की पूजा, वन्दना तथा स्तुति करके उनसे पूछा, उन्होंने भी सृष्टि, पालन, विनाश के कारणस्वरूप परमात्मा को प्रणाम करके उन असुरों से विधिवत् नीतिशास्त्र के सार का वर्णन किया। तदनन्तर उन्होंने एक करोड़ नीतिविषयक श्लोकों को कहा ॥ १-२ ॥

* जीवानन्दकृत व्याख्या *

प्रणम्येति—पूर्वदेवैः शुक्रशिष्यैः असुरैः प्रणिपातपुरस्सरं सम्पूज्य कृतस्तुतिः, विधिवत् पूजितः शुक्राचार्यः सर्वैः पृष्टः सन्, सृष्टिस्थितिविनाशकारणं सम्पूर्णसंसारस्याधारभूतं देवदेवं नत्वा दैत्यवर्यान् सम्यक्प्रकारेण नीतेस्तत्त्वं व्याजहार। तदनन्तरं कोटिश्लोकपरिमितं नीतिविद्याशास्त्रं कथितवान् ॥ १-२ ॥

स्वयम्भूर्भगवाँल्लोकहितार्थं सङ्ग्रहेण वै।
तत्सारं तु वसिष्ठाद्यैरस्माभिर्वृद्धिहेतवे ॥ ३ ॥
अल्पायुर्भूभृदाद्यर्थं सङ्क्षिप्तं तर्कविस्तृतम् ॥

अन्वयः—स्वयम्भूर्भगवान् लोकहितार्थं वै सङ्ग्रहेण अस्माभिः वसिष्ठाद्यैः अभिवृद्धिहेतवे तु तत्सारं सङ्क्षिप्तं तर्कविस्तृतम् अल्पायुः भूभृदाद्यर्थम्।

व्याख्या—स्वयम्भूर्भगवान् = भगवान् ब्रह्मा, लोकहितार्थम् = जनकल्याणाय, वै = इति निश्चयेन, सङ्ग्रहेण = सङ्कलनेन, अस्माभिः = अमीभिः, वसिष्ठाद्यैः = वसिष्ठादिमुनिभिः, अभिवृद्धिहेतवे = विकासप्रयोजनाय, तु = अपि च, तत्सारम्—तस्य = नीतिशास्त्रस्य, सारम् = तत्त्वम्, सङ्क्षिप्तम् = अल्पीभूतम्, तर्कविस्तृतम्—तर्कैः = युक्तिभिः, विस्तृतम् = विततम्, अल्पायुर्भूभृदाद्यर्थम् = स्वल्पायुर्नृपाद्यर्थमपि सङ्कलितम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—भगवान् स्वयंभू ब्रह्मा द्वारा संकलित उन नीतिश्लोकों को हम वसिष्ठादि ऋषियों ने लोककल्याण के लिए संक्षिप्त रूप से संकलित किया। ये नीतिश्लोक संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित एवं तर्कयुक्त हैं। आधुनिक अल्पायु राजा के लिए भी ये वैसे ही काम्य हैं ॥३ ॥

स्वयम्भूरिति। स्वयम्भूर्भगवान् प्रजापतिः समस्तलोककल्याणाय वै इति निश्चयेन सङ्क्षेपेण वसिष्ठादिमुनिवर्य्यैः समेषां विकासार्थं तत् प्रोच्यमानं नीतिशास्त्रसारं सङ्क्षिप्तं सत् पश्चात् तर्कैः सुविस्तृतं स्वल्पायुषां नृपाणां कल्याणाय सुसङ्गृहीतम् ॥ ३ ॥

क्रियैकदेशबोधीनि शास्त्राण्यन्यानि सन्ति हि ॥ ४ ॥
सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम् ।
धर्मार्थकाममूलं हि स्मृतं मोक्षप्रदं यतः ॥ ५ ॥

अन्वयः—अन्यानि शास्त्राणि क्रियैकदेशबोधीनि हि सन्ति, सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृत् नीतिशास्त्रकं यतः धर्मार्थकाममूलं मोक्षप्रदं हि स्मृतम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—अन्यानि = अपराणि, शास्त्राणि = विज्ञानानि, क्रियैकदेशबोधिनी— क्रियायाः = व्यापारस्य व्यवहारस्य च, एकदेशस्य = एकस्यैव पक्षस्य, बोधिनीम् = ज्ञापिनीम्, हि = यतः, सन्ति = भवन्ति, सर्वोपजीवकम् = सकलजनहितैषिणम्, लोकस्थितिकृत् = सामाजिकसुरक्षायाः बन्धकत्वम्, नीतिशास्त्रकमेव = आचारसंहितैव, यतः = यस्मात्, धर्मार्थकाममूलम्—धर्मस्य = व्रतोपवासादिनियमस्य, अर्थस्य = धनस्य, कामस्य च = मनोरथस्य च, मूलम् = हेतुः, तथा मोक्षप्रदम् = मुक्तिदायकम्, हि = निश्चयेन, स्मृतम् = कथितम् ॥ ५ ॥

हिन्दी—नीतिशास्त्र से भिन्न अन्य सभी शास्त्रों ने व्यावहारिक जगत् के किसी एक भाग का ही वर्णन किया है, किन्तु सार्वजनिक हित एवं सामाजिक सुरक्षा (Guaranty) का बन्धकत्व नीतिशास्त्र ही देता है। क्योंकि धर्म, अर्थ काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थचतुष्टय का यह साधक है ॥ ५ ॥

क्रियैकदेशबोधीनीति। लोके प्रसृतानि बहूनि शास्त्राणि सन्ति, तानि सर्वाण्यपि स्वस्वविषयबोधकानीति नात्र विचिकित्सा। तेष्वेकं सर्वोपकारकरणसमर्थं समाजरक्षादक्षिणं नीतिशास्त्रं वर्वर्ति। अत एव प्रोच्यते समाजे धर्मार्थकाममूलं मोक्षप्रदञ्चेति ॥ ४-५ ॥

अतः सदा नीतिशास्त्रमभ्यसेद्यत्नतो नृपः ।
यद्विज्ञानान्नृपाद्याश्च शत्रुजिल्लोकरञ्जकाः ॥ ६ ॥

अन्वयः—अतः नृपः सदा यत्नतः नीतिशास्त्रम् अभ्यसेत्, यत् विज्ञानात् नृपाद्याः शत्रुजित् च लोकरञ्जकाः भवन्ति ॥ ६ ॥

व्याख्या—अतः = इति हेतोः, नृपः = राजा, सदा = निरन्तरम्, यत्नतः = प्रयत्नतः, नीतिशास्त्रम् = नयविद्याम्, अभ्यसेत् = अनुशीलयेत्, यत् = यस्य, विज्ञानात् = विशिष्टबोधात्, नृपाद्याः = भूभृदाद्याः, शत्रुजित्—शत्रून् जयतीति शत्रुजित् = वैरिविजेता, च = पुनः, लोकरञ्जकः = प्रजापरितोषकाः, भवन्तीति शेषः ॥ ६ ॥

हिन्दी—इसलिए राजा को सदैव प्रयासपूर्वक नीतिशास्त्र का अनुशीलन करना चाहिए। इसकी जानकारी से अपने राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर लोकप्रियता प्राप्त की जा सकती है ॥ ६ ॥

अत इति। एतदर्थं प्रजाहितमतिः पार्थिवः किंवा सार्वभौमः सदैव प्रयत्नतो नीतिशास्त्राभ्यासतत्परो भवेत्। अमुष्य परिशीलनाद् व्यवहारकरणाच्च सर्वेऽपि राजानः शत्रुवर्गे विजयं लभन्ते लोकरञ्जकाश्च भूत्वा सुयशो भागिनो भवन्ति ॥ ६ ॥

सुनीतिकुशला नित्यं प्रभवन्ति च भूमिपाः।
शब्दार्थानां न किं ज्ञानं विना व्याकरणाद्भवेत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—च भूमिपाः नित्यं सुनीतिकुशलाः प्रभवन्ति। शब्दार्थानां ज्ञानं व्याकरणात् विना किं न भवेत् ॥ ७ ॥

व्याख्या—च = पुनः, भूमिपाः = भूपालाः, नित्यम् = अनुदिनम्, सुनीतिकुशलाः = सुष्ठुतया नयप्रवीणाः, प्रभवन्ति = शक्तिशालिनो भवन्ति। शब्दार्थानाम्—शब्दानाम् = वर्णसंहतीनाम्, अर्थाणाम् = आशयानाञ्च, ज्ञानम् = बोधः, व्याकरणात्—व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते, शब्दाः अनेनेति = शब्दशास्त्रात्, विना = विहाय, किमिति प्रश्ने, न = नहि, भवेत् = स्यात्? अर्थाद् भवत्येवेति भावः ॥ ७ ॥

हिन्दी—और इसी शास्त्र की जानकारी से राजे सुनीति में निपुण होते हैं। क्या व्याकरणशास्त्र की जानकारी के बिना शब्द और अर्थ का ज्ञान नहीं होता? अर्थात् होता ही है ॥ ७ ॥

सुनीतिकुशला इति। किञ्चान्यत् नीतिशास्त्रमिदमभ्यस्य ते प्रतिदिनं राज्ये समाजे च प्रशस्तनीतिज्ञा इति जोघुष्यन्ते। अन्यशास्त्राणां ज्ञानं तु स्वयमेव तथा भविष्यति यथा व्याकरणशास्त्रज्ञानमन्तरा शब्दार्थज्ञानं तु भवत्येवेति भावः ॥ ७ ॥

प्राकृतानां पदार्थानां न्यायतर्कैर्विना न किम्।
विधिक्रियाव्यवस्थानां न किं मीमांसया विना ॥ ८ ॥

अन्वयः—न्यायतर्कैः विना प्राकृतानां पदार्थानां (ज्ञानं) किं न? तथा मीमांसया विना विधिक्रियाव्यवस्थानां किं न? ॥ ८ ॥

व्याख्या—न्यायतर्कैः = युक्तिवादैः, विना = त्यक्त्वा, प्राकृतानाम् = भौतिकानाम्, पदार्थानाम् = द्रव्यगुणकर्मादिप्रमेयविषयाणाम्, ज्ञानम्, किम् इति प्रश्ने, न = न भवति, अर्थात् भवत्येवेति, तथैव, मीमांसया = दर्शनशास्त्रविशेषेण, विधिक्रियाव्यवस्थानाम् = कर्मकाण्ड-विधानानाम्, किं बोधो न भवति? भवत्येवेति भावः ॥ ८ ॥

हिन्दी—न्याय एवं तर्कशास्त्र के अध्ययन के बिना क्या प्राकृत पदार्थों (अर्थात् उन विषयों में से कोई एक, जिनके नाम, रूप आदि का कथन न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों में किया गया है। वह अभिधेय वस्तु न्याय में १६, वैशेषिक में ६ या ७, सांख्य में २५, योग में २६ और वेदान्त में दो पदार्थ (Matter) माने गये हैं) का ज्ञान नहीं होता? इसी तरह विधि की क्रिया अर्थात् कर्मकाण्ड की व्यवस्थाओं का ज्ञान मीमांसाशास्त्र के बिना नहीं होता क्या? अर्थात् होता ही है ॥ ८ ॥

प्राकृतानामिति। अन्यदपि ग्रन्थकृदुदाहरति—न्यायादियुक्तिवादप्रधानभूतशास्त्रैर्विना किं भौतिकघट-पदादिपदार्थानां किंवा द्रव्यगुणकर्मप्रभृतिप्रमेयविषयाणां ज्ञानं न भवति? मीमांसाशास्त्रं विना कर्मकाण्डक्रियाविधीनां बोधो न भवति? अर्थात् भवत्येवेति नात्र शङ्काऽऽतङ्क, इति काव्यात्यजत एव ॥ ८ ॥

देहादीनां नश्वरत्वं वेदान्तैर्न विना हि किम्।
स्वस्वाभिमतबोधीनि शास्त्राण्येतानि सन्ति हि ॥ ९ ॥

अन्वयः—वेदान्तैः विना देहादीनां नश्वरत्वं किं न? हि एतानि शास्त्राणि स्वस्याभिमत-बोधीनि हि सन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—वेदान्तैः = ज्ञानकाण्डैरध्यात्मविद्याभिर्वा, विना = विहाय, देहादीनाम् = शरीरादीनाम्, नश्वरत्वम् = अनित्यत्वम्, किम्, न = नहि, हि = यतः, एतानि = पूर्वोक्तानि, शास्त्राणि = धर्मग्रन्थाः, स्वस्याभिमतबोधीनि—स्वस्य = आत्मनः, अभिमतम् = सम्मतम्, बोधीनि = ज्ञापीनि, हि इति निश्चयेन, सन्ति = भवन्तीति ॥ ९ ॥

हिन्दी—देहादि समस्त सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान क्या वेदान्तशास्त्र के अध्ययन के बिना नहीं होता है? ये पूर्वोक्त सभी शास्त्र अपने-अपने मत या सम्प्रदाय की ही स्थापना करते हैं ॥ ९ ॥

देहादीनामिति। वेदान्तशास्त्रोक्तैर्ज्ञानकाण्डैरध्यात्मविधाभिर्वा विना शरीरादीनामनित्यत्वं कुत्राप्यस्ति, अर्थात् नास्तीति निश्चप्रचम्, पूर्वोक्तान्येतानि शास्त्राणि आत्मसम्मतविषयस्य ज्ञापकानि भवन्तीति परमार्थः ॥ ९ ॥

तत्तन्मतानुगैः सर्वैर्विधृतानि जनैः सदा।
बुद्धिकौशलमेतद्धि तैः किं स्याद् व्यवहारिणाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—तत्तन्मतानुगैः सर्वैः जनैः सदा विधृतानि एतत्, हि बुद्धिकौशलं तैः व्यवहारिणां किं स्यात् ॥ १० ॥

व्याख्या—तत्तत् = तेषां, मतानाम् = सम्प्रदायानाम्, अनुगैः = अनुयायिभिः, जनैः = लोकैः, सर्वैः = सकलैः, विधृतानि = विशेषरूपेण स्वीकृतानि, एतत् = पूर्वोक्तम्, हि इत्यवधारणे, बुद्धि-कौशलम् = प्रज्ञाचातुर्यम्, तैः = पूर्वोक्तशास्त्रैः, व्यवहारिणाम् = व्यवहारकर्तृणाम्, किम् = न किमपीत्यर्थः ॥ १० ॥

हिन्दी—और इन सम्प्रदायों के अनुयायी लोग ही पूर्वोक्त शास्त्रों का सर्वथा अध्ययन करते हैं। बुद्धिचातुर्य के अतिरिक्त व्यावहारिक जगत् में भला इन शास्त्रों के अध्ययन से क्या लाभ हो सकता है? ॥ १० ॥

तत्तन्मतानुगैरिति। तेषां तेषां सम्प्रदायानुयामिभिः सर्वैः पुरुषैः सविशेषं स्वीकृतानीति निश्चयम्। तत्र व्यवहारकर्तृणां किं नाम बुद्धेः चातुर्यं, न किमपीति भावः ॥ १० ॥

सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्या विना नहि।
यथाऽशनैर्विना देहस्थितिर्न स्याद्धि देहिनाम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—सर्वलोकव्यवहारस्थितिः नीत्या विना नहि, यथा हि देहिनाम् अशनैः विना देहस्थितिः न स्यात् ॥ ११ ॥

व्याख्या—सर्वलोकव्यवहारस्थितिः—सर्वेषाम् = अखिलानाम्, लोकानाम् = जनानाम्, व्यवहारस्य = व्यापारस्य, स्थितिः = अस्तित्वम्, नीत्या = नयेन, विना = विहाय, नहि = न भवति, यथा = येन प्रकारेण, हि इति निश्चयेन, देहिनाम् = देहधारिणाम्, अशनैः = भोजनैः, विना = परित्यज्य, देहस्थितिः = शरीरसत्ता, न = नहि, स्यात् = भवेदिति ॥ ११ ॥

हिन्दी—भोजन के बिना प्राणियों की देह का अस्तित्व नहीं रह सकता, ठीक इसी प्रकार लोकव्यवहार का अस्तित्व नीतिशास्त्र के ज्ञान के बिना टिक नहीं सकता ॥ ११ ॥

सर्वलोकेति। अखिललोकव्यवहारस्यास्तित्वं नीतिं विहाय तथा न भवति, यथा शरीरधारिणां भोजनमन्तरा शरीरधारणं दुष्करं भवतीति निष्कर्षः॥ ११ ॥

सर्वाभीष्टकरं नीतिशास्त्रं स्यात्सर्वसम्मतम्।
अत्यावश्यं नृपस्यापि स सर्वेषां प्रभुर्यतः॥ १२॥

अन्वयः—सर्वाऽभीष्टकरं नीतिशास्त्रं सर्वसम्मतं स्यात्, नृपस्याऽपि अत्यावश्यं, यतः सः सर्वेषां प्रभुः॥ १२ ॥

व्याख्या—सर्वाभीष्टकरम्—सर्वेषाम् = सकलजनानाम्, अभीष्टकरम् = मनोऽभिलषितफलदायकम्, नीतिशास्त्रम् = नयविज्ञानम्, सर्वसम्मतम् = सर्वमान्यम्, स्यात् = भवेत्, नृपस्याऽपि = राज्ञोऽपि, अत्यावश्यम् = अवश्यकर्तव्यम्, यतः = यस्मात्, सः = राजा, सर्वेषाम् = सकलजनानाम्, प्रभुः = स्वामी॥ १२ ॥

हिन्दी—सभी मनुष्यों को सारी मनचाही वस्तु देने वाली यह नीतिविद्या है, इसे सभी मानते हैं; और यह राजा की जानकारी के लिए भी अत्यावश्यक है, क्योंकि राजा तो जन-सामान्य का स्वामी है॥ १२ ॥

सर्वाभीष्टकरमिति। सर्वविधंजनानां मनोभिलषितफलदायकं नीतिशास्त्रं भवतीति सर्वजनमान्यं तथ्यमिदम्। न केवलं लोकानामपितु राज्ञामपि यतो हि राजानः सर्वेषां लोकानां प्रभवो विराजन्ते॥ १२ ॥

शत्रवो नीतिहीनानां यथाऽपथ्याशिनां गदाः।
सद्यः केचिच्च कालेन भवन्ति न भवन्ति च॥ १३॥

अन्वयः—यथा अपथ्याशिनां गदाः केचित् सद्यः केचित् कालेन भवन्ति, तथा नीतिहीनानाम् शत्रवः भवन्ति च न भवन्ति॥ १३ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, अपथ्याशिनाम् = कुपथ्यभक्षकानाम्, गदाः = रोगाः, केचित् कश्चित्, सद्यः = तत्काल एव, केचित् = कतिपयाः, कालेन = समयान्तरेण, भवन्ति = जायन्ते, तथा = तेनैव प्रकारेण, नीतिहीनानाम् = नयविहीनानाम्, शत्रवः = रिपवः, भवन्ति = जायन्ते, च = पुनः, नीतिज्ञानाम्, न = नहि, भवन्ति = जायन्ते॥ १३ ॥

हिन्दी—नीतिविहीन व्यक्ति के शत्रु देर-सबेर उत्पन्न होते ही रहते हैं, किन्तु नीति-निपुण व्यक्ति शत्रुविहीन होते हैं। ठीक उसी प्रकार अस्वास्थ्यकर भोजन करने वालों को देर-सबेर रोग चाँप लेते हैं, किन्तु ठीक इसके विपरीत जो स्वास्थ्यप्रद भोजन करते हैं, उनके पास रोग कभी फटकते ही नहीं हैं॥ १३ ॥

शत्रव इति। यथा नीतिशास्त्रज्ञानरहितानां शत्रवः कदाचिद्भवन्ति कदाचिच्च तथा न भवन्ति, यथा अपथ्यसेविनां केचिद् रोगाः कदाचिद् भवन्ति केचित् कालान्तरेण भवन्ति नैव वा भवन्तीति सम्पिण्डितोऽर्थः॥ १३ ॥

नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्याऽतो विना ह्युभे॥ १४॥

अन्वयः—प्रजानां परिपालनं दुष्टनिग्रहणञ्च नित्यं नृपस्य परमो धर्मः, अतः नीत्या विना उभे हि न॥ १४ ॥

व्याख्या—प्रजानाम् = जनानाम्, परिपालनम् = संरक्षणम्, च = पुनः, दुष्टानाम् = दुराचारिणाम्, निग्रहणम् = दमनम्, नित्यम् = अनुपलम्, नृपस्य = राज्ञः, परमः = सर्वोत्कृष्टः, धर्मः = कर्तव्यः, अतः = अस्मात् कारणात्, नीत्या = नयेन, विना = त्यक्त्वा, उभे = द्वे, हि इति निश्चयेन, न = न सम्भवतीति ॥ १४ ॥

हिन्दी—दुष्टदमन और प्रजापालन दोनों ही राजा के नित्य धर्म हैं अर्थात् दैनिक कर्तव्य हैं और ये दोनों नीतिशास्त्र के ज्ञान के बिना संभव नहीं हैं ॥ १४ ॥

नृपस्येति। जनानां परिरक्षणं दुष्टजनानां दण्डव्यवस्थया दमनं च प्रतिक्षणं नृपस्य सर्वोत्कृष्टो धर्मो भवति। अतः नीतिशास्त्रं विना लोकरक्षणं दुष्टदमनञ्चेत्युभे न भवत इति सिद्धान्तः ॥ १४ ॥

अनीतिरेव सच्छिद्रं राज्ञो नित्यं भयावहम्।
शत्रुसंवर्धनं प्रोक्तं बलह्रासकरं महत् ॥ १५ ॥

अन्वयः—राज्ञः अनीतिरेव सच्छिद्रं नित्यं भयावहं शत्रुसंवर्धनं महत् बलह्रासकरं प्रोक्तम् ॥ १५ ॥

व्याख्या—राज्ञः = नृपस्य, अनीतिरेव = अनय एव, सच्छिद्रम् = महद्दोषम्, नित्यम् = सर्वदा, भयावहम् = त्रासदम्, शत्रुसंवर्द्धनम् = रिपुवृद्धिकरम्, महत् = अत्यधिकम्, बलह्रासकरम् = शक्तिक्षयकरम्, प्रोक्तम् = कथितम् ॥ १५ ॥

हिन्दी—जिस राजा को नीतिशास्त्र का ज्ञान नहीं है, वह हमेशा भयभीत रहता है, उसके दुश्मन दिन-दूने रात चौगुने बढ़ते हैं। उसका शक्तिशाली सैन्य-बल भी विनष्ट हो जाता है। अतः किसी राजा के लिए नीतिज्ञान का अभाव अत्यन्त दोषावह है ॥ १५ ॥

अनीतिरेवेति। नृपस्य नीतिकुशलताया अभाव एव महान् दोषः, तेन प्रतिदिनं भीतिः समुत्पद्यते, शत्रूणां च वृद्धिर्भवति किञ्च राज्ञो बलहानिरपि भवति, इति कथितम् ॥ १५ ॥

नीतिं त्यक्त्वा वर्त्तते यः स्वतन्त्रः स हि दुःखभाक्।
स्वतन्त्रप्रभुसेवा तु ह्यसिधारावलेहनम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—यः नीतिं त्यक्त्वा स्वतन्त्रः वर्तते सः हि दुःखभाक्, तु स्वतन्त्रप्रभुसेवा असिधारावलेहनं हि ॥ १६ ॥

व्याख्या—यः = नृपः, नीतिम् = नयम्, त्यक्त्वा = विहाय, स्वतन्त्रः = स्वच्छन्दः, वर्तते = अस्ति, सः = असौ, हि = यतः, दुःखभाक् = कष्टं भजति, तु = पुनः, स्वतन्त्रप्रभुसेवा = स्वच्छन्दस्वामिनः सेवनम्, असिधारावलेहनम् = करवालकोटिसंसेवनम्, हि = इति निश्चयेनेति ॥ १६ ॥

हिन्दी—नीतिविहीन स्वेच्छाचारी राजा पग-पग पर दुःख झेलता है। उसकी सेवा करना निश्चित रूप से तलवार की धार चाटने के समान कष्टप्रद होती है ॥ १६ ॥

नीतिमिति। यो राजा नीतिं विहाय निरङ्कुशः सन् व्यवहरति, स सर्वदा कष्टं भजते। एतादृक्स्वामिनः सेवा करवालधारावलेहनमिव सर्वदा दुःखायत इति निश्चयः ॥ १६ ॥

स्वाराध्यो नीतिमान् राजा दुराराध्यस्त्वनीतिमान्।
यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी ॥ १७ ॥

अन्वयः—नीतिमान् राजा स्वाराध्यः अनीतिमान् राजा दुराराध्यो भवति। यत्र च उभे नीतिबले तत्र सर्वतोमुखी श्रीरस्ति॥ १७॥

व्याख्या—नीतिमस्यास्तीति नीतिमान् = नयपरः, राजा = नृपः, स्वाराध्यः—सुखेन, आराध्यः = सेव्यो भवति, अनीतिमान् = अन्यायपरः राजा, दुराराध्यः = दुःखेन सेव्यो भवति, यत्र = यस्मिन् स्थाने, च = पुनः, उभे = द्वे, नीतिबले = नयशक्ती, स्तः, तत्र = तस्मिन् स्थाने, सर्वतोमुखी = सर्वतः सर्वप्रकाराः, श्रीः = लक्ष्मीः समायातीति॥ १७॥

हिन्दी—नीतिमान् राजा सहज सेव्य होता है, किन्तु जो राजा नीतिज्ञ नहीं है, उसे सन्तुष्ट या खुश करना कठिन होता है। और जिनके पास नीति और बल दोनों हैं उसके पास समस्त सम्पदाएँ स्वतः चारों ओर से जुट जाती हैं॥ १७॥

स्वाराध्य इति। नीतिशास्त्रविद् राजा सुखेन आराध्यो भवति, नीतिज्ञानरहितो राजा दुःखेन आराध्यो भवति। यस्य राज्ञो राज्ये नीतिबलं सैन्यबलं च भवति, तत्र सर्वप्रकारा श्रीर्भवति॥ १७॥

अप्रेरितहितकरं सर्वराष्ट्रं भवेद्यथा।
तथा नीतिस्तु सन्धार्या नृपेणात्महिताय वै॥ १८॥

अन्वयः—यथा सर्वराष्ट्रं अप्रेरितहितकरं भवेत् तथा नीतिः तु नृपेण आत्महिताय वै सन्धार्या॥ १८॥

व्याख्या—यथा = यया रीत्या, सर्वराष्ट्रम् = सम्पूर्णप्रजामण्डलम्, अप्रेरितहितकरम् = विना प्रोत्साहनेन कल्याणकरम्, भवेत् = स्यात्, तथा = तत्प्रकारा, नीतिः = नयः, तु = पादपूर्त्यर्थ-प्रयोगः, नृपेण = राज्ञा, आत्महिताय = स्वकीयकल्याणाय, वै = इति निश्चयेन, सन्धार्या = सुष्ठुतया धारणीया भवेदिति॥ १८॥

हिन्दी—जिस नीति से राजा से किसी तरह के प्रोत्साहन को पाये बिना सम्पूर्ण प्रजामण्डल आत्महित की बात करे, तो राजा को भी अपने हित के लिए वही नीति अपनानी चाहिए॥१८॥

अप्रेरितेति। येन प्रकारेण सम्पूर्ण प्रजावर्गो विना प्रोत्साहनं प्राप्य स्वहितकार्यं कुर्यात् तेन प्रकारेण राज्ञा स्वकल्याणाय नीति साधुनीतिर्धारणीया स्यात्॥ १८॥

भिन्नं राष्ट्रं बलं भिन्नं भिन्नोऽमात्यादिको गणः।
अकौशल्यं नृपस्यैतदनीतेर्यस्य सर्वदा॥ १९॥

अन्वयः—यस्य नृपस्य अनीतेः सर्वदा राष्ट्रं भिन्नं बलं भिन्नम् अमात्यादिकगणः भिन्नः एतत् तस्य अकौशल्यम्॥ १९॥

व्याख्या—यस्य = पूर्वोक्तस्य, नृपस्य = राज्ञः, अनीतेः = अनयात्, सर्वदा = सततम्, राष्ट्रम् = प्रजामण्डलम्, भिन्नम् = असम्बद्धम्, बलम् = सैन्यम्, भिन्नम् = पृथग्भूतम्, अमात्यादिकगणः = सचिवादिकसमूहः, भिन्नः = अलग्नः, एतत् सर्वम्, तस्य = अनीतिज्ञस्य नृपस्य, अकौशलम् = अचातुर्यम् प्रख्यापयतीति॥ १९॥

हिन्दी—किसी राजा की अनीति और अकुशलता के कारण ही उसके राष्ट्र में अलगाव उत्पन्न होता है। उसके सैन्यबल में फूट पैदा होती है। उसके मन्त्रिमंडल में मतभिन्नता होती है॥ १९॥

भिन्नमिति। यस्य राज्ञो नीतिविरुद्धव्यवहारेण बारं बारं प्रजामण्डलं, सैनिकबलं मन्त्रिवर्गश्च पृथक्-पृथक् भवति, एतत् त्रयं तस्य कुशलताराहित्यं सूचयति॥१९॥

तपसा तेज आदत्ते शास्ता पाता च रञ्जकः।
नृपः स्वप्राक्तनाद्धत्ते तपसा च महीमिमाम्॥२०॥

अन्वयः—नृपः तपसा तेजः आदत्ते शास्ता पाता च रञ्जकः स्वप्राक्तनात् तपसा च इमां महीम् धत्ते॥२०॥

व्याख्या—नृपः = राजा, तपसा = तपेन, तेजः = दीप्तिः, आदत्ते = धार्यते, शास्ता = शासकः, पाता = पालनकर्ता, च = पुनः, रञ्जकः = आह्लादकः, स्वप्राक्तनात् तपसा = पूर्वजन्मोपार्जितेन तपेन, च = पुनः, इमाम्, महीम् = पृथिवीम्, धत्ते = धार्यते॥२०॥

हिन्दी—कोई राजा अपने तपोबल के कारण ही तेजस्वी, शासक, प्रजापालक एवं प्रजा के लिए आह्लादक होता है। अपने पूर्वजन्मोपार्जित तप के प्रभाव से ही इस धरती का पालनकर्ता होता है॥२०॥

तपसेति। राजा तपः प्रभावेण तेजस्वी भवति, उत्तमः शासको, रक्षकः प्रजाजनमनोरञ्जकश्च भवति। पूर्वजन्मनस्तपसा स एव भूपतिर्भवति॥२०॥

वृष्टिशीतोष्णनक्षत्रगतिरूपस्वभावतः ।
इष्टानिष्टाधिकं न्यूनाचारैः कालस्तु भिद्यते॥२१॥

अन्वयः—स्वभावतः वृष्टिशीतोष्णनक्षत्रगतिरूपः इष्टानिष्टाधिकं तु न्यूनाचारैः कालः भिद्यते।

व्याख्या—स्वभावतः = निसर्गतः, वृष्टिः = वर्षा, शीतः = शैत्यम्, उष्णः = ग्रीष्मः, नक्षत्ररूपम् = तारासमूहस्वरूपः, इष्टानिष्टाधिकम् = अपेक्षितानपेक्षितबहुलम्, तु = पुनः, न्यूनाचारैः = अल्पतरव्यवहारैः, कालः = दिष्टः, भिद्यते = भिन्नो भवति॥२१॥

हिन्दी—यद्यपि काल एक ही है, फिर भी वर्षा, जाड़ा, गर्मी और नक्षत्रों की गति और उनके रूप स्वभाव से अपेक्षित, अनपेक्षित कम या ज्यादे व्यवहार से उसके अनेक भेद होते हैं॥२१॥

वृष्टिरिति। स्वभाववशादेकोऽपि कालो वर्षाभिः, शीतेन, उष्णेन, नक्षत्राणां गत्या स्वरूपेण च अपेक्षितानपेक्षित बहुलं पुनः स्वल्पतरव्यवहारैश्च एष कालो बहुधा भिद्यते॥२१॥

आचारप्रेरको राजा ह्येतत्कालस्य कारणम्।
यदि कालः प्रमाणं हि कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु॥२२॥

अन्वयः—राजा आचारप्रेरकः एतत् कालस्य कारणं, यदि कालो हि प्रमाणं कर्तृषु धर्मः कस्मात् अस्ति?॥२२॥

व्याख्या—राजा = नरपतिः, आचारप्रेरकः—आचारस्य = व्यवहारस्य, प्रेरकः = प्रेरणादायकः, एतत् = एषः, कालस्य = नियामकस्य, कारणम् = निदानम्, यदि = चेत्, कालः = नियन्ता, हि = एव, प्रमाणम् = निदर्शनम्, कर्तृषु = अनुष्ठातृषु, धर्मः = धर्माचारः, कस्मात् = कुतः, अस्ति = भवति?

हिन्दी—प्रजा के व्यवहार का प्रेरक राजा ही होता है, अतः काल का प्रेरक भी वही है। अन्यथा यदि काल को हम प्रेरक मान लें तो कर्ता में धर्म का अस्तित्व कहाँ से आयेगा? अतः प्रजा के सत्याचरण में राजा ही प्रमुख कारण है न कि काल॥२२॥

आचारप्रेरक इति। राजा लोकव्यवहारस्य प्रेरणादायको भवति, एष एव कालस्य नियामकत्वे कारणं भवति। नो चेत् यदि कालः प्रमाणं स्यात् तर्हि कर्मकर्तृषु धर्मस्य अस्तित्वं कथं सिद्ध्येत्। अतः प्रजायाः समुचिताचरणे राजा एव प्रधानं कारणं न तु कालः॥ २२॥

राजदण्डभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरो भवेत्।
यो हि स्वधर्मनिरतः स तेजस्वी भवेदिह॥ २३॥

अन्वयः—इह लोकः राजदण्डभयात् स्वस्वधर्मपरः भवेत्। यो हि स्वधर्मनिरतः सः तेजस्वी भवेत्॥ २३॥

व्याख्या—इह = संसारे, लोकः = प्रजा, राजदण्डभयात् = राजाशासनसन्त्रासात्, यो हि = जनः, स्वधर्मपरः—स्वस्य = आत्मनः, धर्मे, परः = तत्परः, भवेत् = स्यात्, सः = असौ, तेजस्वी = ओजस्वी, भवेत् = स्यात्॥ २३॥

हिन्दी—राजदण्ड के भय से ही प्रजा अपने-अपने धर्म के पालन में तत्पर रहती है। अपने धर्म के पालन में तत्पर व्यक्ति ही इस समग्र संसार में तेजस्वी होता है॥ २३॥

राजदण्डभयादीति। अस्मिन् संसारे प्रजावर्गो राजदण्डभयात् स्वे स्वे धर्मणि तत्परो भवेत्। य एवं स्वधर्मतत्परो भवति स तेजसा समलङ्कृतो भवेत्॥ २३॥

विना स्वधर्मान्न सुखं स्वधर्मो हि परं तपः।
तपः स्वधर्मरूपं यद्वर्धितं येन वै सदा॥ २४॥
देवास्तु किङ्करास्तस्य किं पुनर्मनुजा भुवि॥

अन्वयः—विना स्वधर्मात् सुखं न, स्वधर्मः हि परं तपः। येन वै सदा स्वधर्मरूपं तपः वर्धितं तस्य तु देवाः किङ्कराः, पुनः भुवि मनुजाः किम्?॥ २४॥

व्याख्या—विना = त्यक्त्वा, स्वधर्मात् = स्वकीयकर्तव्यात्, सुखम् = आनन्दम्, न = न भवति, स्वधर्मः = आत्मनः शास्त्रविहितकर्तव्यम्, हि = इति निश्चयेन, परमम् = उत्कृष्टम्, तपः = तपस्या अस्ति, येन = कर्तव्यपालनेन, वै = इति निश्चयेन, सदा = सर्वदा, स्वधर्मरूपम् = आत्मनः कर्तव्यस्वरूपम्, तपः = तपस्या, वर्धितम् = उत्थापितम्, तस्य = जनस्य, तु = इति निश्चयेन, देवाः = सुराः, किङ्कराः = दासाः, भवन्ति, पुनः, भुवि = संसारे, मनुजाः = मनुष्याः, किम् = न किमपीति भावः॥ २४॥

हिन्दी—अपने धर्म का पालन करना ही सबसे बड़ी तपस्या है, क्योंकि स्वधर्म का पालन किये बिना सुख की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। अतः जिसने अपने धर्म का पालन किया है, देवता उसके दास हैं, फिर मनुष्यों का कहना ही क्या?॥ २४॥

विनेति। स्वधर्माचरणं विना सुखं न, स्वधर्मसेवनमेव परमं तपोऽस्ति, यः सदा स्वकीयधर्मरूपं तप उपासते तस्मिन् देवा अपि प्रसीदन्ति किमुत तस्मिन् ते सेवकवद्व्यवहरन्ति किम्पुनः सामान्यपुरुषाणां चर्चेति भावः॥ २४॥

सुदण्डैर्धर्मनिरताः प्रजाः कुर्यान्महाभयैः॥ २५॥
नृपः स्वधर्मनिरतो भूत्वा तेजःक्षयोऽन्यथा॥

अन्वयः—नृपः स्वधर्मनिरतः भूत्वा महाभयैः सुदण्डैः प्रजाः धर्मनिरताः कुर्यात्, अन्यथा तेजक्षयः॥ २५॥

व्याख्या—नृपः = राजा, स्वधर्मनिरतः = आत्मधर्मासक्तः, भूत्वा = जनयित्वा, महाभयैः = अतित्रासैः, सुदण्डैः = कठोरदण्डभयैः, धर्मनिरताः = धर्मासक्ताः, प्रजाः = जनाः, कुर्यात् = विधेयात्, अन्यथा = इतरथा, तेजक्षयः = क्षीणतेजो भवति ॥ २५ ॥

हिन्दी—स्वयं राजा अपने धर्म में आसक्त होकर कठोर राजदण्ड के भय से अपनी प्रजा को भी धर्मानुसक्त बनाता है। जो राजा ऐसा नहीं करता, उसका तेज स्वतः क्षीण हो जाता है ॥ २५ ॥

सुदण्डैरिति। राजा स्वकीये धर्मे तत्परः सन् अतिभीतिप्रदैः कठोरदण्डभयैः प्रजा धर्मपराः कुर्यात्। यदि राजा एवं न कुर्यात् तदा सः क्षीणतेजाः स्यात् ॥ २५ ॥

अभिषिक्तोऽनभिषिक्तो नृपत्वं तु यदाप्नुयात् ॥ २६ ॥
बुद्ध्या बलेन शौर्येण ततो नीत्याऽनुपालयन्।
प्रजाः सर्वाः प्रतिदिनमच्छिद्रे दण्डधृक् सदा ॥ २७ ॥

अन्वयः—अभिषिक्तः तु अनभिपिक्तः यदा नृपत्वम् आप्नुयात्, ततः बुद्ध्या बलेन शौर्येण नीत्या सर्वाः प्रजाः प्रतिदिनम् अनुपालयन् सदा अच्छिद्रे दण्डधृक् ॥ २६-२७ ॥

व्याख्या—अभिषिक्तः = सिंहासने उपवेशितः, तु = वा, अनभिषिक्तः = सिंहासने अनुपवेशितः, यदा = यस्मिन् काले, नृपत्वम् = राजत्वम्, आप्नुयात् = प्राप्नुयात्, ततः = तत्पश्चात्, बुद्ध्या = प्रज्ञया, बलेन = शक्त्या, शौर्येण = वीर्येण, नीत्या = नयेन, सर्वाः = सकलाः, प्रजाः = जनाः, प्रतिदिनम् = दिने दिने, अनुपालयन् = रक्षां कुर्वन्, सदा = सर्वदा, अच्छिद्रः = दोषरहितो भूत्वा, दण्डधृक् = राजदण्डधारणं कर्तव्यमिति ॥ २६-२७ ॥

हिन्दी—राजा राजपद पर निर्वाचित हो या अनिर्वाचित, राजसिंहासनारूढ होते ही उसे अपने कर्तव्य का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। उसे अपनी बुद्धि, शक्ति, वीरता और नीति से हमेशा प्रजापालन में तत्पर रहना चाहिए। उसे आत्मदोष रहित होकर ही राजदण्ड धारण करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

अभिषिक्त इति। सिंहासनासीनः किं वा सिंहासनासीनोन्मुखः पुरुषो यदा राज्यं प्राप्नुयात् तदा सः बुद्धिबलेन, सेनया, स्वकीयशूरतया, राजनीत्या, प्रतिदिनं प्रजावर्गमनुपालयन् सदा निजापरभावरूपदोपरहितो भूत्वा राज्यकार्यसञ्चालनाय दण्डधृक् भवेत् ॥ २६-२७ ॥

नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः स्वल्पकोऽपि विवर्धते।
तिर्यञ्चोऽपि वशं याति शौर्यनीतिबलैर्धनैः ॥ २८ ॥

अन्वयः—बुद्धिमतः राज्ञः स्वल्पकोऽपि अर्थः नित्यं विवर्धते, शौर्यनीतिवशैर्धनैः तिर्यञ्चोऽपि वशं याति ॥ २८ ॥

व्याख्या—बुद्धिमतः राज्ञः = ज्ञानवतो नृपस्य, स्वल्पकोऽपि = अत्यल्पोऽपि, अर्थः = धनम्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, विवर्धते = वृद्धिं याति, तस्य शौर्येण = वीरत्वेन, नीत्या = नयेन, बलैः = शक्त्या, धनैः = अर्थैः, च, तिर्यञ्चोऽपि = सरीसृपोऽपि, कीटपतङ्गोऽपि, वशम् = वशीभूतः अधीनो वा, याति = भवति ॥ २८ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा का थोड़ा धन भी हमेशा बढ़ता ही रहता है। उसकी शक्ति, नीति और बल वैभव से तिर्यक् (कीट-पतंगे आदि) भी वशवर्ती हो जाते हैं ॥ २८ ॥

नित्यमिति। सद्बुद्धियुक्तस्य नृपस्य अत्यल्पमपि धनं प्रतिदिनम् एधते, शूरतया, नीत्या, सेनया च वशगः कीटपतङ्गादिरपि वशीभूतो भवति, का कथा पुंसाम् ॥ २८ ॥

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं तपः।
यादृक् तपति योऽत्यर्थं तादृग् भवति वै नृपः ॥ २९ ॥

अन्वयः—सात्त्विकं राजसं च तामसं तपः त्रिविधम्। यो नृपः यादृक् तपति वै तादृक् अत्यर्थं भवति ॥ २९ ॥

व्याख्या—सात्त्विकम् = सत्त्वगुणजम्; सात्त्विकभावास्त्वष्टधा, तद्यथा—

"स्वेदः स्तम्भोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥" (साहि॰)

राजसम् = रजोगुणसम्पन्नः, च = पुनः, तामसम् = तमोगुणसमन्वितम्, तपः = नियमस्थितिः, त्रिविधम् = त्रिप्रकारकम्, यः नृपः = यः राजा, यादृक् = यत्प्रकारकः, तपति = तपः करोति, वै = इति निश्चयेन, तादृक् = तत्प्रकारकः, अत्यर्थम् = अत्यधिकम्, भवति = जायते ॥ २९ ॥

हिन्दी—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रधान तीन तरह के तप होते हैं। जो राजा जिस प्रकार का तप करता है वह उसी के अनुसार सत्त्वगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी बन जाता है।

सात्त्विकमिति। तपसः त्रिविधां गतिं विवृण्वन् नीतिकारः कथयति—सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रिविधं तपो भवति। यो राजा यादृक् तपः करोति, स तादृक् फलभाग्भवतीति भावः॥ २९ ॥

यो हि स्वधर्मनिरतः प्रजानां परिपालकः।
यष्टा च सर्वयज्ञानां नेता शत्रुगणस्य च॥ ३० ॥
दानशौण्डः क्षमी शूरो निःस्पृहो विषयेष्वपि।
विरक्तः सात्त्विकः स हि नृपोऽन्ते मोक्षमन्वियात्॥ ३१ ॥

अन्वयः—यो हि स्वधर्मनिरतः प्रजानां परिपालकः च सर्वयज्ञानां यष्टा च शत्रुगणस्य नेता दानशौण्डः क्षमी शूरः निःस्पृहः विषयेष्वपि विरक्तः, स हि नृपः सात्त्विकः; अन्ते मोक्षम् अन्वियात्।

व्याख्या—यः = नृपः, हि = यतः, स्वधर्मनिरतः = आत्मकर्तव्यनिष्ठः, प्रजानाम् = जनानाम्, परिपालकः = सुपोषकः, च = पुनः, सर्वयज्ञानाम् = विविधयागानां, यष्टा = यजनकर्ता, च = पुनः, शत्रुगणस्य = अरिसमूहस्य, नेता = नायकः, दानशौण्डः = दानकर्मणि दक्षः, क्षमी = क्षमाशीलः, शूरः = वीरः, निःस्पृहः = स्पृहाशून्यः, निर्लेपः, विषयेष्वपि = उपभोगेष्वपि, विरक्तः = अनासक्तः, सः = असौ, हि = यतः, नृपः = राजा, सात्त्विकः = सात्त्विकगुणसम्पन्नो भवति, अन्ते = जीवनान्ते, मोक्षम् = मुक्तिम्, अन्वियात् = प्राप्नुयात् ॥ ३०-३१ ॥

हिन्दी—जो राजा लगातार अपने कर्तव्य या धर्म पालन में संलग्न रहता है, हर तरह के यज्ञों का अनुष्ठाता, शत्रुओं का नेता, अत्यन्त उदार, सहिष्णु, शूर, विषयों के प्रति अनासक्त एवं विरक्त होता है, वह सात्त्विक कहलाता है। वही अन्त में मोक्ष का अधिकारी होता है ॥ ३०-३१ ॥

यो हीति। यो हि राजा प्रजाः परितः पालयति, सर्वविधयज्ञान् यजते, स्वनीतिकौशलेन शत्रुगणस्योपरि नेतृत्वं करोति, दानशूरः क्षमावान्, शूरः, वीरः, स्पृहारहितः सर्वेष्वपीन्द्रियविषयेषु निर्लिप्तो भवति, स राजा सात्त्विक इति कथ्यते। स जीवनान्ते मोक्षभाग्भवतीति ॥ ३०-३१ ॥

विपरीतस्तामसः स्यात् सोऽन्ते नरकभाजनः ।
निर्घृणश्च मदोन्मत्तो हिंसकः सत्यवर्जितः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—विपरीतः तामसः स्यात्, सः निर्घृणः मदोन्मत्तः हिंसकः सत्यवर्जितः अन्ते नरकभाजनः ॥ ३२ ॥

व्याख्या—विपरीतः = सात्त्विकगुणस्य प्रतिकूलः, तामसः = तमोगुणविशिष्टः, स्यात् = भवेत्, सः = तामसो राजा, निर्घृणः = निर्दयः, मदोन्मत्तः = मदोत्कटः, हिंसकः = घातकः, सत्यवर्जितः = अवितथरहितः, अन्ते = जीवनसमाप्तौ, नरकभाजनः = नरकगामी भवति ॥ ३२ ॥

हिन्दी—उपरोक्त गुणों के विपरीत गुणवाला राजा तामस कहलाता है और अन्त में नरकगामी होता है। ऐसा राजा निर्दय, मदोन्मत्त, हिंसक एवं सत्यवर्जित होता है ॥ ३२ ॥

विपरीत इति। सात्विकप्रवृत्तेर्विपरीतो राजा तामस इति कथ्यते। स निर्दयी, मद्यपानेन उन्मत्तो हिंसाप्रवृत्तियुक्तः, सर्वदा सत्यभाषणपराङ्मुखः च सन् पर्यन्ते स नरकगामी भवति ॥ ३२ ॥

राजसो दाम्भिको लोभी विषयी वञ्चकश्शठः ।
मनसाऽन्यश्च वचसा कर्मणा कलहप्रियः ॥ ३३ ॥
नीचप्रियः स्वतन्त्रश्च नीतिहीनश्छलान्तरः ।
स तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं भविताऽन्ते नृपाधमः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—दाम्भिकः लोभी विषयी वञ्चकः शठः मनसा वचसा कर्मणा अन्यः च कलहप्रियः नीचप्रियः च स्वतन्त्रः नीतिहीनः छलान्तरः राजसः, सः नृपाधमः। अन्ते तिर्यक्त्वं वा स्थावरत्वं भविता ॥ ३३-३४ ॥

व्याख्या—दाम्भिकः = पाखण्डी, लोभी = लोलुपः, विषयी = कामी, विषयासक्तश्च, वञ्चकः = कपटी, शठः = मायावी, मनसा अन्यः = चित्तेनापरः, वचसा अन्यः = कथनेनापि भिन्नः, कर्मणा अन्यः = कार्येणापि द्वितीयः, अर्थात् मन-वचन-कर्मसु सामञ्जस्याभावः, च = पुनः, कलहप्रियः = विवादी, नीचप्रियः = अधमप्रियः, च = पुनः, स्वतन्त्रः = स्वच्छन्दः, नीतिहीनः = नयविरहितः, छलान्तरः = कपटपूर्णः, राजसः = राजसगुणयुक्तो भवति, सः = असौ, नृपः = भूपतिः, अधमः = नीचः, अन्ते = प्राणान्ते, तिर्यक्त्वम् = कीटपतङ्गादिभावम्, वा = अन्यथा, जडत्वम् = अचलत्वम्, भविता = प्राप्स्यतीति ॥ ३३-३४ ॥

हिन्दी—जो पाखण्डी, लोभी, कामी, वंचक और धूर्त है, जो भीतर कुछ और बाहर कुछ और है; जिसके मन, वचन और कर्म में एकरूपता नहीं है, जो झगड़ालू है, नीचजनप्रेमी है, स्वेच्छाचारी है, नीतिविहीन है, छल-छद्मी है, रजोगुणी है; मरणोपरान्त ऐसा राजा कीट-पतंग या जड़ योनि में जन्म लेता है ॥ ३३-३४ ॥

राजस इति। सम्प्रतिराजसप्रकृतिवनां राजानं विशिनष्टि—राजसप्रकृतिवान् राजा पाखण्डी, लोभपरायणः, इन्द्रियविषयाणां कामी, कपटी, धूर्तः, मनसा अन्यत् विचारयति, वचसा अन्यद् वक्ति, कर्मणा अन्यदेव करोति, सर्वेषु सर्वदा कारणं विनाऽपि कलसं कोलाहलं च करोति, नीच जनेषु स स्निह्यति, निरङ्कुशस्वभावः, अविनीतः कपटपूर्णस्वभाववान् राजसः पुरुषो नृपो वा भवति। एतादृङ्नृपो नीचः कथ्यते। स जीवनान्ते पशुपक्षिकीटपतङ्गादियोनौ किंवा स्थावरयोनौ परिणमति ॥ ३३-३४॥

देवांशान् सात्त्विको भुङ्क्ते राक्षसांशांस्तु तामसः।
राजसो मानवांशांस्तु सत्त्वे धार्य्यं मनस्ततः॥ ३५॥

अन्वयः—सात्त्विकः देवांशान् भुङ्क्ते, तु तामसः राक्षसांशान् भुङ्क्ते, तु राजसः मानवांशान् भुङ्क्ते। ततः सत्त्वे मनः धार्यम्॥ ३५॥

व्याख्या—सात्त्विकः = सतोगुणावलम्बी, देवांशान् = देवभागान्, भुङ्क्ते = उपभोगं करोति, तु = पुनः, तामसः = तमोगुणाश्रयी राजा, राक्षसांशान् = दैत्यभागान् भुङ्क्ते, तु = पुनः, राजसः = रजोगुणी राजा, मानवांशान् = मानवभागान् भुङ्क्ते, ततः = तस्मात् कारणात्, सत्त्वे = सात्त्विकभावे, मनः = चित्तम्, धार्यम् = निवेशितव्यमिति॥ ३५॥

हिन्दी—सतोगुणी राजा देवताओं के हिस्से, तमोगुणी दानवों के हिस्से, रजोगुणी मनुष्यों के हिस्से का उपभोग करता है। अतः राजा को सतोगुणी बनने का ही प्रयास करना चाहिए॥ ३५॥

देवांशानिति। सात्त्विकः सत्त्वगुणावलम्बी देवांशान् तामसः तमोगुणावलम्बी राक्षसांशान् तथा राजसः रजोगुणावलम्बी मानवांशान् प्राप्नोति, ततः तस्मात् हेतोः सत्त्वे मनो धार्य्यं सत्त्वगुण एवाश्रयणीय इति भावः॥ ३५॥

सत्त्वस्य तमसः साम्यान्मानुषं जन्म जायते।
यद्यदाश्रयते मर्त्त्यस्तत्तुल्यो दिष्टतो भवेत्॥ ३६॥

अन्वयः—सत्त्वस्य तमसः साम्यात् मानुषं जन्म जायते। मर्त्यः यत् यत् आश्रयते दिष्टतः तत्तुल्यः भवेत्॥ ३६॥

व्याख्या—सत्त्वस्य = सतोगुणस्य, तमसः = तमोगुणस्य, उभयोर्गुणस्य, साम्यात् = समानत्वात्, मानुषम् = मनुष्यत्वम्, जन्म = उत्पत्तिः, जायते = भवति, मर्त्यः = मरणधर्मी जनः, यत् यत् आश्रयते = यदाचारी भवति, दिष्टतः = भाग्येन, तत्तुल्यः = तत्सदृशः, भवेत् = स्यादिति॥ ३६॥

हिन्दी—सात्त्विक एवं तामसिक गुणों की समता से मनुष्य का प्रादुर्भाव होता है और भाग्यवश जैसे गुणों का मनुष्य आश्रय ग्रहण करता है, वैसा ही बन जाता है॥ ३६॥

सत्त्वस्येति। सत्त्वस्य तमसश्च गुणयोरेतयोः साम्यात् समानत्वात् मानुषं जन्म जायते। अयं भावः—यत्र यादृशः सत्त्वगुणः तादृश एव तमोगुणः विद्यते, स मनुष्यत्वं लभते इति पूर्वं केवलरजसा मनुष्यत्वं लभ्यते, इह तु सत्त्वतमसोः साम्येनेति न पुनरुक्तिरिति बोध्यम्। अतः मर्त्यः यद् यद् आश्रयते यदाचारी भवतीत्यर्थः, दिष्टतः भाग्येन तत्तुल्यः तदनुरूपः भवेत्॥ ३६॥

कर्मैव कारणञ्चात्र सुगतिं दुर्गतिं प्रति।
कर्मैव प्राक्तनमपि क्षणं किं कोऽस्ति चाक्रियः?॥ ३७॥

अन्वयः—अत्र कर्म एव सुगतिं च दुर्गतिं प्रति कारणम्, प्राक्तनमपि कर्मैव च किं क्षणम् अक्रियः कः अस्ति?॥ ३७॥

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् संसारे, कर्म = प्रवृत्तिः, एव = केवलम्, सुगतिम् = उत्तमगतिम्, मुक्तिञ्च, च = पुनः, दुर्गतिम् = दुर्दशाम्, प्रति = दिशि, कारणम् = साधनम्, प्राक्तनमपि =

पूर्वजन्मार्जितकर्म अपि, कर्मैव = कर्तव्यमेव, च = पुनः, किम् = कथम्, क्षणम् = अत्यल्पसमयः, अक्रियः = क्रियाविहीनः, कः = जीवविशेषः, अस्ति = विद्यते, न कोऽप्यस्तीति भावः ॥ ३७ ॥

हिन्दी—इस संसार में मनुष्य के सुख या दुःख का कारण उसका किया हुआ कर्म ही होता है। ये कर्म पूर्वजन्मार्जित हैं। पूर्व जन्मार्जित कर्म ही भाग्य कहलाता है। कोई भी प्राणी एक क्षण भी क्या निष्क्रिय रह सकता है? अर्थात् नहीं ॥ ३७ ॥

कर्मेति। अत्र संसारे कर्मैव सुगतिं वा दुर्गतिं प्रति कारणं, कर्मबलेनैव लोकः सुगतिं वा दुर्गतिं भजते इत्यर्थः, प्राक्तनं पूर्वजन्मकृतं यत् तदपि कर्म एव, कोऽपि जनः किं क्षणमपि अक्रियः कर्मशून्यः अस्ति नैवेत्यर्थः, सर्वमेव कर्मायत्तमिति भावः ॥ ३७ ॥

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—अत्र जात्या ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः न, तथा शूद्रः म्लेच्छोऽपि च न, गुणकर्मभिः भेदिताः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—अत्र = इहलोके, जात्या = जन्मना, न कोऽपि ब्राह्मणः = विप्रः, क्षत्रियः = राजन्यः, वैश्यः = पणिकः, न च शूद्रः = वृषलः, म्लेच्छोऽपि च न = वर्णाश्रमधर्मविहीनः अनार्योऽपि न, गुणकर्मभिः—गुणैः = स्वजातिनिष्ठधर्मविशेषैः, कर्मभिः = व्यक्तिनिष्ठक्रियाभिः, भेदिताः = वर्गीकृताः, एता इति शेषः ॥ ३८ ॥

हिन्दी—इस संसार में जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ नहीं होता है। गुण और कर्म के भेद से ही ये जातिगत भेद हैं ॥ ३८ ॥

नेति। अत्र संसारे जात्या कश्चिद् ब्राह्मणः क्षत्रियश्च न विद्यते इति शेषः, तथा वैश्यः न, शूद्रश्च न, म्लेच्छश्च न अस्तीति शेषः, तर्हि किमित्याह भेदिता इति। गुणकर्मभिः गुणैः तत्तज्जातिनिष्ठैः गुणैः धर्मैः कर्मभिश्च भेदिता एते इति शेषः। गुणकर्मप्रभेदेन केऽपि ब्राह्मणाः केऽपि क्षत्रियाः केऽपि वैश्याः अपरे शूद्राः अन्ये म्लेच्छाश्चेति संज्ञया निर्दिश्यन्ते इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं नु ब्राह्मणाः ?।
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्मतेजः प्रपद्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयः—ते सर्वे तु ब्रह्मणः समुत्पन्नाः किं नु ब्राह्मणाः? ब्राह्मतेजः न वर्णतः न च जनकात् सम्पद्यते ॥ ३९ ॥

व्याख्या—ते = पूर्वोक्ता ब्राह्मणादयः, सर्वे = सकलाः वर्णाः, तु = वाक्यारम्भे नितान्तप्रयोगाभावे प्रयुक्तः, ब्रह्मणः = वेधसः, समुत्पन्नाः = समुद्भूताः, किं नु = सम्भवतः वितर्के प्रयोगः, ते सर्वे वर्णाः ब्राह्मणाः भवन्ति, इति? ब्राह्मतेजः = (ब्रह्मं शुद्धं चैतन्यं वा वेत्त्यधीते वेति ब्राह्मणः) ब्राह्मणसम्बद्धकान्तिः, न वर्णतः = जात्या न, न च जनकात् = ब्राह्मणपुत्रत्वादपि न, सम्पद्यते = प्राप्यते इति ॥ ३९ ॥

हिन्दी—सृष्टि के सभी जीव तो ब्रह्मा से ही उत्पन्न हुए हैं, तो क्या सभी ब्राह्मण हैं? इसका उत्तर—नहीं है। क्योंकि न तो जाति से और न जनक से ही किसी व्यक्ति या प्राणी में ब्रह्मतेज प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

ब्रह्मण इति। सर्वे ते पूर्वोक्ताः ब्राह्मणाः ब्रह्मणः विधातुः समुत्पन्नाः, अतः ब्राह्मणाः किं नैवेत्यर्थः, नुशब्दो वितर्के। वर्णतः आदिमवर्णतया ब्राह्मतेजः न प्रपद्यते न प्राप्यते तथा जनकात् जनकसम्बन्धात् ब्रह्मजातत्वादित्यर्थः, वा ब्राह्मतेजः न प्राप्यते ॥ ३९ ॥

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥ ४० ॥

अन्वयः—यः ज्ञानकर्मोपासनाभिः देवताराधने रतः च शान्तः दान्तः दयालुः गुणैः ब्राह्मणः कृतः ॥ ४० ॥

व्याख्या—यो हि पुरुषः, ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने—ज्ञानैः= आत्मबोधैः, कर्मभिः= स्वकर्तव्यैः, उपासनाभिश्च= आराधनाभिश्च, देवतानाम्= देवानाम्, आराधने= पूजने, रतः= सदैव संलग्नः, च= पुनस्तथा, शान्तः= निरुद्वेगः, दान्तः= वशी नियन्त्रितो वा, दयालुः= कृपालुः, गुणैः= पूर्वोक्तगुणसम्पन्नैः, ब्राह्मणः= विप्रः, कृतः= निर्मितः, विधिनेति भावः ॥ ४० ॥

हिन्दी—कोई भी व्यक्ति अपने गुण और कर्म से ही ब्राह्मण होता है। ज्ञान से, अपने कर्मों से, आराधना से, देवता की उपासना में निरन्तर निरत रहकर, शान्तचित्त, विजयी और जितेन्द्रिय व्यक्ति ही ब्राह्मण हो सकता है ॥ ४० ॥

अहो ब्राह्मणः कथं जायते इत्याह—**ज्ञानेति**। यः ज्ञानस्य कर्मणश्च उपासनाभिः अनुशीलनानुष्ठानतपोभिः, गुणैः उपलक्षितः, देवताराधने रतः शान्तः जितेन्द्रियः दान्तः विनयरतः तथा दयालुः स ब्राह्मणः कृतः विधात्रेति शेषः ॥ ४० ॥

लोकसंरक्षणे दक्षः शूरो दान्तः पराक्रमी।
दुष्टनिग्रहशीलो यः स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ४१ ॥

अन्वयः-यः लोकसंरक्षणे दक्षः शूरः दान्तः पराक्रमी दुष्टनिग्रहशीलः स वै क्षत्रियः उच्यते ॥ ४१ ॥

व्याख्या—यः= राजा, लोकसंरक्षणे—लोकानाम्= प्रजानाम्, संरक्षणे= त्राणे, दक्षः= कुशलः, शूरः= वीरः, दान्तः= जितेन्द्रियः, पराक्रमी= विक्रान्तः, दुष्टनिग्रहशीलः—दुष्टानाम्= दुर्जनानाम्, निग्रहः= निरोधः, शीलम्= स्वभावः, यस्यासौ, सः= असौ राजा, वै इति निश्चयेन, क्षत्रियः= राजन्यः, उच्यते= कथ्यते ॥ ४१ ॥

हिन्दी—प्रजापालन में अत्यन्त प्रवीण, बहुपराक्रमी, शक्तिशाली, आत्मनियन्त्रित और दुष्टों को दण्डित करने वाला व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण 'क्षत्रिय' कहलाता है ॥ ४१ ॥

लोकेति। यश्च लोकरक्षणे प्रजापालने दक्षः निपुणः शूरः बलवान् दान्तः निग्रहीतेन्द्रियः पराक्रमी तथा दुष्टानां निग्रहे समर्थः स क्षत्रियः उच्यते वैशब्दः अवधारणे ॥ ४१ ॥

क्रयविक्रयकुशला ये नित्यञ्च पण्यजीविनः।
पशुरक्षाः कृषिकरास्ते वैश्याः कीर्तिता भुवि ॥ ४२ ॥

अन्वयः—भुवि ये क्रयविक्रयकुशलाः च नित्यं पण्यजीविनः पशुरक्षाः कृषिकराः, ते वैश्याः कीर्तिताः ॥ ४२ ॥

व्याख्या—भुवि = संसारे, ये = जनाः, क्रयविक्रयकुशलाः = मूल्येनादानप्रदानचतुराः, च = पुनः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, पण्यजीविनः = व्यवसायिनः, पशुरक्षाः = पशुसंरक्षणे रताः, कृषिकराः = कृषकाः, ते = जनाः, वैश्याः = वणिजः, कीर्तिताः = ख्याता इति ॥ ४२ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति खरीद-फरोख्त में चतुर हों, व्यवसायी हों, खेतिहर हों और पशु पालते हों—ऐसे लोग संसार में वैश्य कहलाते हैं ॥ ४२ ॥

क्रयेति। ये नित्यं क्रयविक्रयकुशलाः सन्तः पण्यजीविनः व्यवसायिन इत्यर्थः, तथा पशुरक्षाः पशुपालनरताः कृषिकराश्च ते भुवि पृथिव्यां वैश्याः कीर्तिताः ॥ ४२ ॥

द्विजसेवार्चनरताः शूराः शान्ता जितेन्द्रियाः ।
सीरकाष्ठतृणवहास्ते नीचाः शूद्रसंज्ञकाः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—ये द्विजसेवार्चनरताः शूराः शान्ताः जितेन्द्रियाः सीरकाष्ठतृणवहाः नीचाः ते शूद्रसंज्ञकाः ॥ ४३ ॥

व्याख्या—येः = जनाः, द्विजसेवार्चनरताः—द्विजानाम् = द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायतेति द्विजः, तेषां द्विजानां = ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यानाम्, सेवायाम् = शुश्रूषायाम्, अर्चने = सत्कार्ये, रताः = तत्पराः, शूराः = साहसिकाः, शान्ताः = कठिनकार्येऽपि निरुद्वेगाः, जितेन्द्रियाः = वशिनः, सीरकाष्ठतृणवहाः—सीरम् = हलिः, काष्ठम् = दारुम्, तृणञ्च = शादश्च, वहन्तीति = नयन्तीति, तथोक्तपुरुषाः, नीचाः = अधमाः, ते = जनाः, शूद्राः = शूद्रवर्णाः, इति संज्ञकाः = इत्यभिधीयन्ते ॥ ४३ ॥

हिन्दी—जो द्विजाति की सेवा में तत्पर रहते हैं, बलिष्ठ, उद्वेग रहित एवं वश्यवर्ती होते हैं, हल जोतते हैं, लकड़ी और घास ढोते हैं; वे अपने नीच कर्म के कारण शूद्र कहलाते हैं ॥ ४३ ॥

द्विजेति। ये द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां सेवायां परिचर्य्यायाम् अर्चने च पूजने च रताः शूराः बलवन्तः कार्य्यक्षमा इत्यर्थः, शान्ताः सुशीलाः जितेन्द्रियाः वशीकृतेन्द्रियाः सीरं लाङ्गलं काष्ठं तृणञ्च वहन्तीति तथोक्ताः अत एव नीचाः क्षुद्रकर्मरताः, ते शूद्रसंज्ञकाः शूद्रा इत्यभिहिता इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

त्यक्तस्वधर्माचरणा निर्घृणाः परपीडकाः ।
चण्डाश्च हिंसका नित्यं म्लेच्छास्ते ह्यविवेकिनः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—त्यक्तस्वधर्माचरणाः निर्घृणाः परपीडकाः च चण्डाः नित्यं हिंसकाः, ते हि अविवेकिनः म्लेच्छाः ॥ ४४ ॥

व्याख्या—त्यक्तस्वधर्माचरणाः = आत्मनो धर्माचारविहीनाः, निर्घृणाः = निष्ठुराः, परपीडकाः—परेषाम् = अन्येषां जनानाम्, पीडकाः = दुःखदायकाः, च = पुनः, चण्डाः = दारुणाः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, हिंसकाः = घातकाः, ते = जनाः, हि, अविवेकिनः = विवेकशून्याः, म्लेच्छाः कथिताः ॥ ४४ ॥

हिन्दी—मानवधर्म छोड़ने वाले, निर्दय, परपीड़क, क्रोधी एवं हिंसक को म्लेच्छ कहते हैं। इनमें विवेक नाम की कोई वस्तु होती ही नहीं ॥ ४४ ॥

त्यक्तेति। ये च त्यक्तस्वधर्माचरणाः धर्माचारवर्जिता इत्यर्थः, निर्घृणाः निर्दयाः परपीडकाः

चण्डाः उग्राः नित्यं सततं हिंसकाः हिंसाशीलाः तथा अविवेकिनः विवेकरहिताः यथेच्छाचारिण इत्यर्थः, ते म्लेच्छाः, हिशब्दः अवधारणे ॥ ४४ ॥

प्राक्कर्मफलभोगार्हा बुद्धिः सञ्जायते नृणाम् ।
पापकर्मणि पुण्ये वा कर्तुं शक्तो न चान्यथा ॥ ४५ ॥

अन्वयः—नृणां प्राक्कर्मफलभोगार्हा बुद्धिः सञ्जायते, अन्यथा पापकर्मणि वा पुण्ये न च कर्तुं शक्तः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—नृणाम् = पुरुषाणाम्, प्राक्कर्मफलभोगार्हा = पूर्वकृतशुभाशुभकर्मफलभोगविषयिणी, बुद्धिः = मतिः, सञ्जायते = भवति, अन्यथा = इतरथा, पापकर्मणि = अनिष्टकारीकृत्ये, वा = अथवा, पुण्ये = शुभकर्मणि, न च कर्तुम् = अनुष्ठातुम्, शक्तः = समर्थो भवति ॥ ४५ ॥

हिन्दी—मनुष्यों के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने के लिए उसी तरह उसकी बुद्धि उत्पन्न होती है। अन्यथा पाप या पुण्य कर्म में कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता ॥ ४५ ॥

प्रागिति। नृणां मनुष्याणां प्राक्कर्मफलभोगार्हा प्राक्तनशुभाशुभकर्मफलभोगविषयिणी बुद्धिः सञ्जायते, अन्यथा पापकर्मणि पुण्यं वा कर्तुं न च शक्तः न शक्नोतीत्यर्थः। प्राक्तनकर्मबलेनैव कोऽपि पापकर्मणि कोऽपि वा पुण्यकर्मणि प्रवर्तते इति फलितार्थः ॥ ४५ ॥

बुद्धिरुत्पद्यते तादृक् यादृक् कर्मफलोदयः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ४६ ॥

अन्वयः—यादृक् कर्मफलोदयः तादृक् बुद्धिः उत्पद्यते, यादृशी भवितव्यता तादृशाः एव सहायाः ॥ ४६ ॥

व्याख्या—यादृक् = यत्प्रकारकः, कर्मफलोदयः—कर्मफलस्य = पूर्वकर्मणां परिणामस्य, उदयः = उद्गमः, तादृक् = तत्प्रकारिका, बुद्धिः = मतिः, उत्पद्यते = सञ्जायते, यादृशी = यत्प्रकारिका, भवितव्यता = भागधेयम्, तादृशा = तत्प्रकारका, एव = केवलम्, सहायाः = सहायकाः भवन्तीति भावः ॥ ४६ ॥

हिन्दी—पाप या पुण्य पूर्वकृत कर्म का जैसा फल सामने आता है, मनुष्य की बुद्धि वैसी ही हो जाती है। होनी जैसी होती है, सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं ॥ ४६ ॥

बुद्धिरिति। यादृक् कर्मफलस्य उदयः, तादृक् बुद्धिः उत्पद्यते, भवितव्यता नियतिः यादृशी, तादृशा एव सहायाः भवन्तीति शेषः ॥ ४६ ॥

प्राक्कर्मवशतः सर्वं भवत्येवेति निश्चितम् ।
तदोपदेशा व्यर्थाः स्युः कार्य्याकार्य्यप्रबोधकाः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—प्राक्कर्मवशतः सर्वं निश्चितं भवत्येव तदा कार्याकार्यप्रबोधकाः उपदेशाः व्यर्थाः स्युः ॥ ४७ ॥

व्याख्या—प्राक्कर्मवशतः = प्राक्तनकर्मफलवशादेव, यदि, सर्वम् = सकलम्, निश्चितम् = नियतम्, भवत्येव = जायते एव, तदा = तर्हि, कार्याकार्यप्रबोधकाः = कृत्याकृत्यज्ञापकाः, उपदेशाः = शिक्षाः, व्यर्थाः = निरर्थकाः, स्युः = भवेयुः ॥ ४७ ॥

हिन्दी—यदि पूर्वकृत कर्मफल के अनुसार ही व्यक्ति को सुख-दुःख की प्राप्ति हो तो

फिर कर्तव्य-अकर्तव्यबोधक सारे उपदेश ही व्यर्थ हो जायेंगे। अर्थात् भावी ही अगर प्रबल है तो पुरुषार्थ तो व्यर्थ हो ही जायेगा ॥४७॥

प्रागिति। प्राक्कर्मवशतः प्राक्तनकर्मबलात् सर्वं शुभाशुभं भवत्येव इति निश्चितं, यदीत्यध्याहार्य्यं तदा कार्य्याकार्य्यप्रबोधकाः कर्तव्याकर्तव्यप्रतिपादकाः उपदेशाः व्यर्था विफला स्युः भवेयुः केवलप्राक्तनाङ्गीकारे पुरुपकारो व्यर्थ इति भावः ॥४७॥

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं क्लीबा दैवमुपासते ॥४८॥

अन्वयः—धीमन्तः वन्द्यचरिताः पौरुषं महत् मन्यन्ते, क्लीबाः पौरुषं कर्तुम् अशक्ताः दैवम् उपासते ॥४८॥

व्याख्या—धीमन्तः = बुद्धिमन्तः, वन्द्यचरिताः = वन्दनीयचरित्राः, पौरुषम् = पुरुषार्थम्, महत् = महनीयम्, मन्यन्ते = स्वीक्रियन्ते, क्लीबाः = पुरुषत्वविहीनजनाः, पौरुषम् = साहसम्, कर्तुम् = विधातुम्, अशक्ताः = असमर्थाः, दैवम् = भाग्यम्, उपासते = आश्रयन्तीति भावः ॥४८॥

हिन्दी—महनीय चरित्र वाले बुद्धिमान् व्यक्ति पुरुषार्थ को महत्त्व देते हैं। कायर, जो पुरुषार्थ में असमर्थ हैं, वे भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं ॥४८॥

धीमन्त इति। वन्द्यचरिताः महनीयचरित्राः धीमन्तः बुद्धिमन्तः पौरुषं पुरुषकारं महत् मन्यन्ते न तु दैवं, क्लीबाः अक्षमास्तु पौरुषं कर्तुम् अशक्ताः सन्तः दैवं प्राक्तनभयम् उपासते आश्रयन्ति ॥४८॥

दैवे पुरुषकारे च खलु सर्वं प्रतिष्ठितम्।
पूर्वजन्मकृतं कर्मेहार्जितं तद् द्विधाकृतम् ॥४९॥

अन्वयः—सर्वं खलु दैवे पुरुषकारे च प्रतिष्ठितं, तत् द्विधाकृतं पूर्वजन्मकृतं कर्म इहार्जितम् ॥४९॥

व्याख्या—सर्वम् = सकलशुभाशुभम्, खलु = निश्चयेन, दैवे = दैवाधीने, पुरुषकारे = पुरुषार्थे च, प्रतिष्ठितम् = स्थापितम्, सर्वं दैवाधीनं किञ्च परुषार्थ अपेक्षते, इति फलितार्थः। तत् = फलोत्पत्तिसाधनम्, द्विधाकृतम् = प्रकारद्वयेन व्यवस्थापितम्, पूर्वजन्मकृतं कर्म = प्राक्तनकृतकर्म 'दैवम्', अन्यच्च, इहार्जितम्—इह = संसारे, अर्जितम् = उपार्जितम् कर्म, इति ॥४९॥

हिन्दी—कर्म के दो भेद हैं—भाग्य एवम् पुरुषार्थ। इन्हीं दोनों पर सारी दुनिया के समस्त काम टिके हैं। पूर्वजन्मार्जित कर्म भाग्य है और वर्तमान में किया गया कर्म पुरुषार्थ कहलाता है ॥४९॥

दैव इति। सर्वं शुभाशुभं दैवे पुरुषकारे च प्रतिष्ठितं खलु निश्चितं सर्वमेव दैवाधीनं परं पुरुषकारमपेक्षते इति भावः, तत् फलोत्पत्तिसाधनं द्विधाकृतं द्वैविध्येन व्यवस्थापितम् एकं पूर्वजन्मकृतं कर्म दैवमित्यर्थः, अपरम् इहार्जितम् ऐहिकं पौरुषमित्यर्थः ॥४९॥

बलवान् प्रतिकारी स्याद् दुर्बलस्य सदैव हि।
स बलाबलयोर्ज्ञानफलप्राप्त्यान्यथा न हि ॥५०॥

अन्वयः—बलवान् सदैव हि दुर्बलस्य प्रतिकारी स्यात्, सः बलाबलयोर्ज्ञानं फ़लप्राप्त्या अन्यथा न हि ॥५० ॥

व्याख्या—बलवान् = बलशालिन्, सदैव = नित्यमेव, हि इति पादपूर्त्यर्थम्, दुर्बलस्य = निर्बलस्य, प्रतिकारी = अपकारी किं वा उपकारी, स्यात् = भवेत्, सः = असौ, बलाबलयोः = सामर्थ्यासामर्थ्ययोः, ज्ञानम् = बोधः, फलप्राप्त्या = परिणामप्रतिपत्त्या, अन्यथा = इतरथा, नहि = न भवति। शक्ताशक्तयोः स्वपरनिष्ठयोः बोधेन परिणामप्रतिपत्त्या च तस्य दुर्बलप्रतीकार इति फलितार्थः ॥५० ॥

हिन्दी—बलवान् व्यक्ति सदैव दुर्बल का अपकारी या उपकारी होता है। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों में जो दुर्बल होता है, उसे हटाने वाला व्यक्ति हमेशा सशक्त होता है। सबल और दुर्बल का ज्ञान फलप्राप्ति से ही होता है, दूसरे ढंग से नहीं ॥५० ॥

बलवानिति। बलवान् प्रवलः जनः सदैव दुर्बलस्य प्रतिकारी अपकारी अथवा उपकारी स्यात्। हिशब्दः पादपूरणार्थः। स बलाबलयोः ज्ञानस्य फलस्य प्राप्त्या तत् करोतीति शेषः। अन्यथा न हि ब़लाबलयोः स्वपरनिष्ठयोः ज्ञानेन फलप्राप्त्या च तस्य दुर्बलप्रतीकार इति भावः ॥५० ॥

फलोपलब्धिः प्रत्यक्षहेतुना नैव दृश्यते।
प्राक्कर्महैतुकी सा तु नान्यथैवेति निश्चयः ॥५१ ॥

अन्वयः—प्रत्यक्षहेतुना फलोपलब्धिः नैव दृश्यते, सा तु प्राक्कर्महैतुकी अन्यथा न वेति निश्चयः ॥५१ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्षहेतुना = प्रत्यक्षप्रयोजनेन, फलोपलब्धिः = परिणामप्राप्तिः, नैव = नास्त्येव, दृश्यते = अवलोक्यते, सा तु = फलप्राप्तिः, प्राक्कर्महैतुकी = पूर्वकृतकर्माधीना, अन्यथा = इतरथा, न वेति, निश्चयः = नियतेति भाव इति ॥५१ ॥

हिन्दी—प्रत्यक्ष कारण से किसी फल की उपलब्धि नहीं होती। यह फल की उपलब्धि तो पूर्वजन्मार्जित कर्म के कारण दिखलाई पड़ती है, अन्यथा नहीं ॥५१ ॥

फलोपलब्धिरिति। प्रत्यक्षहेतुना दृश्यमानकारणेन फलोपलब्धिः फललाभः नैव दृश्यते, सा तु फलोपलब्धिः प्राक्कर्महैतुकी प्राक्तनकर्माधीना, अन्यथा नैव इति निश्चयः ॥५१ ॥

यज्जायतेऽल्पक्रियया नृणां वापि महत् फलम्।
तदपि प्राक्तनादेव केचित् प्रागिहकर्मजम् ॥५२ ॥

अन्वयः—वापि अल्पक्रियया नृणां यत् महत् फलं जायते, तदपि प्राक्तनात् कर्मणः एव केचित् प्रागिहकर्मजम् ॥५२ ॥

व्याख्या—वापि = अथवा, अल्पक्रियया—अल्पेन = स्तोकेन, क्रियया = चेष्टया, नृणाम् = मनुष्याणाम्, यत् महत् = यद् बृहत्, फलम् = परिणामम्, जायते = उत्पद्यते, तदपि = सोऽपि, प्राक्तनात् = पूर्वजन्मार्जितात्, कर्मणः = कार्यस्य, एवेति निश्चयेन, केचित् = कतिपयाः, प्रागिहकर्मजम् = प्राक्तनैहिककर्मभ्यां जातमिति वदन्ति, उत्तरश्लोकस्य क्रियापदं 'वदन्ति' इत्यनेनान्वयः ॥५२ ॥

हिन्दी—कभी-कभी मनुष्य को थोड़े प्रयास से बड़े फल की प्राप्ति होती है। यह बड़ी

उपलब्धि पूर्वजन्मार्जित कर्म का परिणाम होता है। कुछ आचार्य इसे वर्तमान पुरुषार्थ का ही फल मानते हैं ॥ ५२ ॥

यदिति। वापि अथवा अल्पक्रियया अल्पेन पुरुषकारेण नृणां यत् महत् फलं जायते तदपि प्राक्तनात् पूर्वजन्मकृतात् कर्मण एव भवतीति शेषः, केचित् तत् प्रागिहकर्मजं प्राक्तनैहिककर्मभ्यां जातं वदन्तीति उत्तरश्लोकीयक्रियापदेनान्वयः ॥ ५२ ॥

वदन्तीहैव क्रियया जायते पौरुषं नृणाम्।
सस्नेहवर्त्तिदीपस्य रक्षा वातात् प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—इहैव क्रियया नृणां पौरुषं जायते, सस्नेहवर्तिदीपस्य प्रयत्नतः वातात् रक्षा वदन्ति ॥ ५३ ॥

व्याख्या—इहैव = अत्रत्यैव, क्रियया = कर्मणा, नृणाम् = नराणाम्, पौरुषम् = पुरुषार्थजन्यफलम्, जायते = प्राप्यते, तथाहि सस्नेहवर्तिदीपस्य = तैलवर्तिकायुक्तस्य प्रदीपस्य, प्रयत्नतः = प्रयासपूर्वकेण, वातात् = पवनात्, रक्षा केचिद्वदन्तीति ॥ ५३ ॥

हिन्दी—कुछ आचार्यों के मत से मनुष्यों को जो कर्मफल की प्राप्ति होती है, उसका कारण पुरुषार्थ अर्थात् तात्कालिक कर्म ही होता है। जैसे तेल और बत्ती के बावजूद प्रयासपूर्वक दीपक को हवा से बचाने पर ही दीपक जलता है ॥ ५३ ॥

वदन्तीति। इहैव क्रियया नृणां पौरुषं जायते, तथाहि प्रयत्नतः पुरुपकारात् सस्नेहवर्तिदीपस्य तैलाक्तदशान्वितस्य दीपस्य वातात् रक्षा भवतीति शेषः, इत्यपि वदन्ति केचिदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ५३ ॥

अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न चेद् यदि।
दुष्टानां क्षपणं श्रेयो यावद् बुद्धिबलोदयम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—अवश्यम्भाविभावानां यदि प्रतीकारः न चेत् वै तदा यावद्बुद्धिबलोदयं दुष्टानां क्षपणं श्रेयः भवतु ॥ ५४ ॥

व्याख्या—अवश्यम्भाविभावानाम् = अपरिहार्यविषयाणाम्, यदि = चेत्, प्रतीकारः = शमनोपायः, न चेत् = नैव भवति, वै इत्यवधारणे, तदा = तस्मिन् काले, यावद्बुद्धिबलोदयम् = स्वकीयमतिशक्त्यनुसारेण, दुष्टानाम् = खलानाम्, क्षपणम् = अप्रतिकरम्, श्रेयः = कल्याणकरम्, भवतु = जातु ॥ ५४ ॥

हिन्दी—यद्रि अनिवार्य भावी का प्रतीकार संभव न होता तो फिर अपनी बुद्धि और बल के अनुसार दुष्ट भावी को टालकर कल्याणकारी कार्य का सम्पादन भी संभव नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थ से दुष्टभावी को भी टाला जा सकता है ॥ ५४ ॥

अवश्यमिति। अवश्यं भाविनां भावानां विषयाणां यदि प्रतीकारो न वै नैव भवतीति शेषः, वैशब्दः अवधारणे, तदा यावद्बुद्धिबलोदयं बुद्धिबलानुसारेणेत्यर्थः, दुष्टानाम् अपकारिणां रोगादीनां शत्रूणां क्षपणम् अप्रतिकरणं श्रेयः शुभावहं भवतु इति शेषः ॥ ५४ ॥

प्रतिकूलानुकूलाभ्यां फलाभ्याञ्च नृपोऽप्यतः।
ईषन्मध्याधिकाभ्याञ्च त्रिधा दैवं विचिन्तयेत् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—अतः नृपोऽपि प्रतिकूलानुकूलाभ्याम् ईषत् मध्याधिकाभ्यां फलाभ्यां च दैवं त्रिधा विचिन्तयेत् ॥५५॥

व्याख्या—अतः = अस्मात् कारणात्, नृपोऽपि = राजाऽपि, प्रतिकूलानुकूलाभ्याम् = अहितहितकराभ्याम्, ईषत् मध्याधिकाभ्याम्—ईषत् = अल्पम्, मध्यमप्रभूताभ्याम्, फलाभ्याम् = परिणामाभ्याम्, च = पुनः, दैवम् = भाग्यम्, त्रिधा = प्रकारत्रयेण, विचिन्तयेत् = चिन्तनं कुर्यात् ॥५५॥

हिन्दी—इसी तरह किसी राजा को भी मनोवांछित या विरोधी ढंग से आने वाले भाग्यफल को तीन तरह का समझना चाहिए—कम फल देने वाला, मध्यम फल देने वाला तथा अधिक फल देने वाला ॥५५॥

प्रतिकूलेति। अतः कारणात् नृपः अपि प्रतिकूलानुकूलाभ्यां तथा ईषत् मध्याधिकाभ्यां फलाभ्यां दैवं त्रिधा विचिन्तयेत् अल्पप्रतिकूलानुकूलफलकमेकं मध्यविधप्रतिकूलानुकूलफलकं द्वितीयम् अधिकप्रतिकूलानुकूलफलकं तृतीयमिति ॥५५॥

रावणस्य च भीष्मादेर्वनभङ्गे च गोग्रहे।
प्रातिकूल्यन्तु विज्ञातमेकस्माद् वानरान्नरात् ॥५६॥

अन्वयः—रावणस्य च भीष्मादेः एकस्मात् वानरात् नरात् वनभङ्गे च गोग्रहे प्रातिकूल्यं तु विज्ञातम् ॥५६॥

व्याख्या—रावणस्य = लङ्काधिपतेः, च = पुनः, भीष्मादेः = भीष्मः आदिर्येषां तस्य दुर्योधनस्य = धृतराष्ट्रज्येष्ठपुत्रस्य, क्रमशः, एकस्मात् = केवलात्, वानरात् = कपेः, नरात् = मानवात्, अर्जुनात्, वनभङ्गे = मधुवनमर्दने, च = पुनः, गोग्रहे = विराटनृपतेः गवां प्रत्याहरणे, प्रातिकूल्यम् = वैरुद्ध्यम्, भाग्यम् इति शेषः, तु, विज्ञातम् = सर्वविदितमेव ॥५६॥

हिन्दी—रावण की प्रिय अशोकवाटिका को हनुमान् नामक एक बन्दर ने उजाड़ डाला। भीष्म जैसे सहयोगी के बावजूद दुर्योधन की गायों को विराटनगर में अकेले अर्जुन ने घेर लिया। तो फिर इन प्रतिकूल परिणामों से ही तो दुर्भाग्य की सूचना मिल जाती है ॥५६॥

रावणस्येति। रावणस्य एकस्मात् वानरात् हनुमत इत्यर्थः, वनभङ्गे मधुवनमर्दने तथा भीष्मादेः भीष्म आदिः श्रेष्ठः यस्य तस्य दुर्य्योधनस्य इत्यर्थः, एकस्मात् नरात् अर्जुनादित्यर्थः, गोग्रहे विराटराजस्य गवां प्रत्याहरणे प्रातिकूल्यं दैवस्येति शेषः, विज्ञातं रावणस्य भीष्मादेरिति कर्त्तरि षष्ठी ॥५६॥

कालानुकूल्यं विस्पष्टं राघवस्यार्जुनस्य च।
अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत् ॥५७॥

अन्वयः—राघवस्य च अर्जुनस्य कालानुकूल्यं विस्पष्टम्, यदा दैवम् अनुकूलं तदा अल्पा क्रिया सुफला भवेत् ॥५७॥

व्याख्या—राघवस्य = श्रीरामचन्द्रस्य, च = पुनः, अर्जुनस्य = पार्थस्य, कालानुकूल्यम् = समयसाहाय्यम्, विस्पष्टम् = विशेषरूपेण, स्पष्टम् = व्यक्तम्, यदा = यस्मिन्काले, दैवम् = भाग्यम्, अनुकूलम् = सहयोगिनम्, तदा = तस्मिन् काले, अल्पा = स्वल्पा, अपि क्रिया = चेष्टा, सुफला = सुपरिणामदायिनी, भवेत् = स्यादिति ॥५७॥

हिन्दी—श्रीराम और अर्जुन के समय की अनुकूलता तो साफ जाहिर है। अतः समय अनुकूल रहने पर थोड़ी चेष्टा भी सुफलदायिनी सिद्ध होती है॥५७॥

कालानुकूल्यमिति। राघवस्य रामस्य अर्जुनस्य च कालानुकूल्यं कालस्य समयस्य आनुकूल्यं सहकारित्वं विस्पष्टं विशेषेण व्यक्तमित्यर्थः, यदा दैवम् अनुकूलं तदा अल्पा क्रिया अल्पपुरुषकारः सुफला भवेत्, यथा एकेन हनुमता मधुवनभङ्गः तथा एकेन अर्जुनेन गोप्रत्याहरणमिति भावः॥५७॥

महती सत्क्रियानिष्टफला स्यात् प्रतिकूलके।
बलिर्दानेन सम्बद्धो हरिश्चन्द्रस्तथैव च॥५८॥

अन्वयः—प्रतिकूलके महती सत्क्रिया अनिष्टफला स्यात्, बलिः तथैव हरिश्चन्द्रः दानेन सम्बद्धः स्यात्॥५८॥

व्याख्या—प्रतिकूलके = विपरीतपरिस्थितौ, महती = बृहती, सत्क्रिया = सुष्ठुतया सम्पादितकर्म, अनिष्टफला = अनभिलषितफलदा, स्यात् = भवेत्, तथाहि—बलिः = दानवराजः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, हरिश्चन्द्रः = औपनिषदिको राजा, दानेन = दानकर्मणा, सम्बद्धः = सन्नियन्त्रितः, स्यात् = भवेत्॥५८॥

हिन्दी—भाग्य प्रतिकूल रहने पर अच्छी तरह की गई उत्तम क्रिया का परिणाम भी अनपेक्षित होता है। दान देने के कारण ही दानवेन्द्र बलि और राजा हरिश्चन्द्र बन्धन में पड़े॥५८॥

महतीति। प्रतिकूलके प्रातिकूल्ये दैवस्यति शेषः, महती सत्क्रिया साध्वी क्रिया अनिष्टफला स्यात्, तथाहि बलिः तथा हरिश्चन्द्रः दानेन सम्बद्धः आसीदिति शेषः॥५८॥

भवतीष्टं सत्क्रिययानिष्टं तद्विपरीतया।
शास्त्रतः सदसज्ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽसत्सत् समाचरेत्॥५९॥

अन्वयः—सत्क्रियया इष्टं भवति, तद्विपरीतया अनिष्टं भवति। अतः शास्त्रतः सदसत् ज्ञात्वा असत् त्यक्त्वा सत् समाचरेत्॥५९॥

व्याख्या—सत्क्रियया = साधुकर्मणा, इष्टम् = यथेप्सितं फलम्, भवति = याति, तत् = सत्क्रियया, विपरीतया = असत्क्रियया, अनिष्टम् = अनपेक्षितं भवति। अतः शास्त्रतः = शास्त्रानुसारेण, सदसत् = साध्वसाधुकार्यम्, ज्ञात्वा = विचार्य, असत् = असाधुकार्यम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, सत् = साधुकार्यम्, समाचरेत् = सुष्ठुतया व्यवहरेत्॥५९॥

हिन्दी—अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है। अतः शास्त्रानुसार अच्छे और बुरे कर्मों को ठीक तरह समझ कर बुरे कर्मों का परित्याग कर सत्कर्म करना चाहिए॥५९॥

भवतीति। सत्क्रियया इष्टं भवति तद्विपरीतया असत्क्रिययेत्यर्थः, अनिष्टं भवति। अतः शास्त्रतः सदसत् ज्ञात्वा यत्नात् असत् कार्य्यं त्यक्त्वा सत्कार्य्यं समाचरेत्॥५९॥

कालस्य कारणं राजा सदसत्कर्मणस्त्वतः।
सुकार्य्योद्यतदण्डाभ्यां स्वधर्मे स्थापयेत् प्रजाः॥६०॥

अन्वयः—राजा कालस्य कारणम्, अतः सदसत्कर्मणः तु सुकार्योद्यतदण्डाभ्यां प्रजाः स्वधर्मे स्थापयेत् ॥ ६० ॥

व्याख्या—राजा = नृपतिः, कालस्य = समयस्य, कारणम् = हेतुर्भवति, यतो हि राजा सत्कार्यं पश्यति तदा तत्कालः सत्ययुगं भवति, सैव राजा सामान्यतः कार्यं पश्यति तदा तत्कालस्त्रेता भवति, यदा सैव राजा न कार्यं पश्यति तदा स कालः द्वापरयुगं भवति, अनेनैव प्रकारेण राजा यदि स्वपतिः तदा तत्कालः कलियुगं भवति। अतः = अस्मात् कारणात्, सदसत्कर्मणः = साध्वसाधुकार्यस्य, कारणम् = प्रयोजनम्, तु इत्यवधारणे, अतः = राज्ञ एव प्रजानां साध्वसाधुकर्मप्रवर्तकत्वात्तस्माद्राजा, सुकार्योद्यतदण्डाभ्याम्—सुकार्ये = सत्कर्मणि, उद्यतम् = सन्नद्धः, दण्डश्च = दमनश्च, ताभ्यां प्रजाः = जनाः, स्वधर्मे = मानवधर्मे, स्थापयेत् = निवेशयेदिति ॥ ६० ॥

हिन्दी—अच्छे या बुरे कर्मों के प्रेरक काल का भी नियामक राजा ही होता है। अतः राजा अपने सत्कर्म और दण्डनीति से प्रजा को अपने धर्म पर स्थिर रखे ॥ ६० ॥

कालस्येति। राजा कालस्य कारणम्। अयं भावः—यदा राजा सम्यक् कार्य्यं पश्यति स कालः सत्ययुगं, यदा सामान्यतः पश्यति तदा त्रेतायुगं, यदा न कार्य्यं पश्यति तदा द्वापरयुगं, यदा निद्राति तदा कलियुगमिति। अतः सदसत्कर्मणः कारणं तु एव तुशब्दः अवधारणे राज्ञ एव लोकानां सदसत्कर्मप्रवर्तकत्वादिति भावः। तस्मात् राजा सुकार्य्ये उद्यतम् उद्योगः भावे क्तप्रत्ययः, दण्डश्च ताभ्यां प्रजाः स्वधर्मे स्थापयेत् ॥ ६० ॥

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्ताङ्गमुच्यते राज्यं तत्र मूर्द्धा नृपः स्मृतः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—राज्यं सप्ताङ्गम् उच्यते, स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च, तत्र नृपः मूर्द्धा स्मृतः ॥ ६१ ॥

व्याख्या—राज्यम् = जनपदः, सप्ताङ्गम् = सप्तभागः, उच्यते = कथ्यते। तद्यथा—स्वामी = सम्प्रभुः, अमात्यः = सचिवः, सुहृत् = सखा, कोशः = निधानम्, राष्ट्रम् = देशः, दुर्गम् = कोटः, बलानि = सैन्यानि, तत्र = तेषु सप्ताङ्गेषु, नृपः = राजा, मूर्द्धा = उत्तमाङ्गम्, स्मृतः = कथितः ॥ ६१ ॥

हिन्दी—नीतिशास्त्र के अनुसार राज्य के सात अंग माने गये हैं। वे हैं क्रमशः राजा, मंत्री, मित्र, खजाना, देश, किला और सेना। इनमें राजा को सिर माना गया है ॥ ६१ ॥

स्वामीति। राज्यं सप्ताङ्गं सप्तावयवम् उच्यते—स्वामी राजा, अमात्यः मन्त्री, सुहृद् मित्रं, कोषः धनं, राष्ट्रं राज्यस्य प्रजावर्गः, दुर्गं शत्रुदुर्गमं गुप्तिस्थानं तथा बलं सैन्यम्। तत्र तेषु सप्तसु मध्ये नृपः मूर्द्धा उत्तमाङ्गं स्मृतः ॥ ६१ ॥

दृगमात्यः सुहृच्छ्रोत्रं मुखं कोशो बलं मनः।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ राज्याङ्गानि स्मृतानि हि ॥ ६२ ॥

अन्वयः—अमात्यः दृग्, सुहृद् श्रोत्रं, कोशः मुखं, बलं मनः, दुर्गं हस्तः, राष्ट्रं पादः—राज्याङ्गानि स्मृतानि हि ॥ ६२ ॥

व्याख्या—अमात्यः = मन्त्री, दृग् = नयनम्, सुहृत् = मित्रम्, श्रोत्रम् = कर्णः, कोशः = भाण्डागारम्, मुखम् = आननम्, बलम् = सैन्यम्, मनः = चित्तम्, दुर्गम् = कोटः, हस्तः = करः,

राष्ट्रम् = जनपदः, पादः = चरणम्, एतानि राज्याङ्गानि = राष्ट्रावयवानि, स्मृतानि = कथितानि, हि इत्यवधारणे ॥ ६२ ॥

हिन्दी—मंत्री को राज्य की आँख, मित्र को कान, खजाने को मुँह, सेना को मन, किले को दोनों हाथ और राष्ट्र को पैर कहे गये हैं ॥ ६२ ॥

दृगिति। अमात्यः दृक् चक्षुः, सुहृद् श्रोत्रं कर्णावयवं, कोशः मुखं, बलं मनः अन्तःकरणं, दुर्गं हस्तः, राष्ट्रं पादः—एतानि राज्याङ्गानि स्मृतानि कथितानि, हिशब्दः अवधारणे ॥ ६२ ॥

अङ्गानां क्रमशो वक्ष्ये गुणान् भूतिप्रदान् सदा।
यैर्गुणैस्तु सुसंयुक्ता वृद्धिमन्तो भवन्ति हि॥ ६३॥

अन्वयः—क्रमशः अङ्गानां सदा भूतिप्रदान् गुणान् वक्ष्ये। यैः गुणैः तु सुसंयुक्ताः वृद्धिमन्तः हि भवन्ति ॥ ६३ ॥

व्याख्या—क्रमशः = अनुक्रमेण, अङ्गानाम् = अवयवानाम्, सदा = सर्वदा, भूतिप्रदान् = ऐश्वर्यदातृणि, गुणान् = धर्मान्, वक्ष्ये = कथयिष्यामि, यैः गुणैः = धर्मैः, तु इत्यवधारणे, सुसंयुक्ताः = सुष्ठुरूपेण समन्विताः, राजानः वृद्धिमन्तः = अभ्युदयशालिनः, हि इति निश्चयेन, भवन्ति = जायन्ते ॥ ६३ ॥

हिन्दी—हमेशा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले पूर्वोक्त अंगों के उन गुणों का क्रमशः वर्णन करूँगा, जिनसे अच्छी तरह युक्त होने पर कोई राजा अभ्युदयशाली बन जाता है ॥ ६३ ॥

अङ्गानामिति। क्रमशः अङ्गानां सदा भूतिप्रदान् शुभावहान् गुणान् वक्ष्ये, यैः गुणैः सुसंयुक्ता राजानः वृद्धिमन्तः उन्नतिशालिनः भवन्ति हि, हिशब्दः अवधारणे ॥ ६३ ॥

राजास्य जगतो हेतुर्वृद्ध्यै वृद्धाभिसम्मतः।
नयनानन्दजनकः शशाङ्क इव तोयधेः॥ ६४॥

अन्वयः—वृद्धाभिसम्मतः राजा तोयधेः शशाङ्क इव नयनानन्दजनकः तथा अस्य जगतः वृद्ध्यै हेतुः ॥ ६४ ॥

व्याख्या—वृद्धाभिसम्मतः = परिणतप्रज्ञजनमतानुगामी, राजा = नृपः, तोयधेः = सागरस्य, शशाङ्कः = मृगाङ्कः, इव = यथा, नयनानन्दजनकः = लोचनाह्लादोत्पादकः लोकानाम्, तथा अस्य = एतस्य, जगतः = संसारस्य, वृद्ध्यै = अभ्युदयाय, हेतुः = कारणमस्तीति भावः ॥ ६४ ॥

हिन्दी—बड़े-बूढ़ों के अनुसार सागर में जलस्तर के बढ़ाव का कारण जैसे चन्द्रमा होता है, ठीक उसी प्रकार संसार की सम्पत्ति के बढ़ाव का कारण प्रजानेत्ररंजक राजा ही होता है ॥ ६४ ॥

राजेति। वृद्धाभिसम्मतः सुविज्ञप्राचीनजनमतानुवर्ती राजा तोयधेः समुद्रस्य शशाङ्कः चन्द्र इव नयनानन्दजनकः लोकानामिति शेषः, तथा अस्य जगतः वृद्ध्यै अभ्युदयाय हेतुः ॥ ६४ ॥

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजा।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव॥ ६५॥

अन्वयः—यदि नरपतिः सम्यक् नेता न स्यात् ततः प्रजा जलधौ अकर्णधारा नौः इव इह विप्लवेत ॥ ६५ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, नरपतिः = भूपालः, सम्यक् = सुष्ठुतया, नेता = मार्गदर्शकः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, ततः = तर्हि, प्रजाः = जनाः, जलधौ = सागरे, अकर्णधारा = पोतवाहविहीना, नौः = तरणिः, इव = यथा, इह = संसारे, विप्लवेत = विपद्यते ॥ ६५ ॥

हिन्दी—यदि राजा इस संसार में अपनी प्रजा को सफल नेतृत्व प्रदान करने में असमर्थ हो तो जैसे माँझी रहित नाव समुद्र में डूब जाती है, वैसे ही राज्य की जनता विनष्ट हो जाती है ॥ ६५ ॥

यदीति। यदि नरपतिः सम्यक् नेता नायकः कार्य्यदर्शीति यावत् न स्यात् ततः तदा प्रजा जलधौ समुद्रे अकर्णधारा नाविकरहिता नौः अर्णवतरिरिव इह जगति विप्लवेत विपद्यते ॥ ६५ ॥

न तिष्ठन्ति स्वस्वधर्मे विना पालेन वै प्रजाः ।
प्रजया तु विना स्वामी पृथिव्यां नैव शोभते ॥ ६६ ॥

अन्वयः—प्रजाः पालेन विना वै स्वस्वधर्मे न तिष्ठन्ति, तथा स्वामी तु प्रजया विना पृथिव्यां नैव शोभते ॥ ६६ ॥

व्याख्या—प्रजाः = जनाः, पालेन = रक्षकेण नृपतिना, विना = विहाय, वै = इत्यवधारणे, स्वस्वधर्मे = स्वकीयधर्मे, न = नहि, तिष्ठन्ति = निरतो भवन्ति, तथा स्वामी = प्रभुः, प्रजया = जनैः, विना = अभावे, पृथिव्याम् = धरायाम्, नैव = नास्त्येव, शोभते = राजते ॥ ६६ ॥

हिन्दी—इस धरती पर पालक राजा के बिना प्रजा अपने-अपने धर्म में स्थिर नहीं रह सकती, उसी तरह बिना प्रजा के राजा की भी शोभा नहीं होती ॥ ६६ ॥

नेति। प्रजाः पालेन रक्षकेण विना स्वस्वधर्मे न तिष्ठन्ति, वैशब्दोऽवधारणे, तथा स्वामी प्रजया विना पृथिव्यां न शोभते राजप्रजयोः परस्परसापेक्ष्यं प्रयोजनीयमिति भावः ॥ ६६ ॥

न्यायप्रवृत्तो नृपतिरात्मानमथ च प्रजाः ।
त्रिवर्गेणोपसन्धत्ते निहन्ति ध्रुवमन्यथा ॥ ६७ ॥

अन्वयः—अथ नृपतिः न्यायप्रवृत्तः आत्मानं च प्रजाः त्रिवर्गेण उपसन्धत्ते, अन्यथा ध्रुवं निहन्ति ॥ ६७ ॥

व्याख्या—अथ = अन्यच्च, नृपतिः = राजा, न्यायप्रवृत्तः = पक्षपाताभावपरायणः, आत्मानम् = स्वम्, च = पुनः, प्रजाः = जनान्, त्रिवर्गेण—त्रयाणाम् = धर्मार्थकामानाम्, वर्गैः = समूहैः, उपसन्धत्ते = प्रेरयति, अन्यथा = इतरथा, अन्यायप्रवृत्तश्चेत् तर्हि आत्मानं प्रजाश्च ध्रुवम् = निश्चितम्, निहन्ति = विनाशयन्ति ॥ ६७ ॥

हिन्दी—न्यायी राजा अपने आपको तथा अपनी प्रजा को सदैव धर्म, अर्थ और काम जैसे तीन पुरुषार्थ में संलग्न रखते हैं। अन्यायी राजा स्वयं तो डूबता ही है, अपने साथ प्रजा को भी लेकर डूब जाता है ॥ ६७ ॥

न्यायेति। नृपतिः न्यायप्रवृत्तः न्यायपरायणः सन् आत्मानं प्रजाश्च त्रयाणां धर्मार्थकामानां वर्गैः उपसन्धत्ते योजयति, अन्यथा अन्यायप्रवृत्तश्चेत् आत्मानं प्रजाश्च ध्रुवं निश्चितं निहन्ति नाशयति ॥ ६७ ॥

धर्मं द्वैतवने राजा विधाय बुभुजे दिवम्।
अधर्माश्चैव नहुषः प्रतिपेदे रसातलम्॥ ६८॥

अन्वयः—राजा द्वैतवने धर्मं विधाय दिवं बुभुजे, नहुषः अधर्मात् रसातलं प्रतिपेदे॥ ६८॥

व्याख्या—राजा = नृपधर्मराजः, द्वैतवने = एतदाख्यारण्ये, धर्मम् = धार्मिककृत्यम्, विधाय = कृत्वा, दिवम् = स्वर्गम्, बुभुजे = भुक्तवान्, नहुषः = एतदाख्यचन्द्रवंशी नृपतिः, अधर्मात् = अपकर्मणः, गन्धर्वोन्मोचयित्वा ब्राह्मणोपरि पादाघातितस्तस्मात्पापकर्मणः, रसातलम् = पातालम्, प्रतिपेदे = प्राप्तवान्। अत्रोच्यते—नहुषस्याधर्माचरणादगस्त्योपरि पादाघातात् स्वर्गादिन्द्रपदाच्च्युतो भूत्वा सर्परूपेण पाताले निवासोऽभूत्। अत्र पौराणिकी कथानुसन्धेयेति॥ ६८॥

हिन्दी—द्वैतवन में रहने को विवश युधिष्ठिर ने अपने धर्माचरण से धरती का पालन करते हुए उसका यथेच्छ उपभोग किया। किन्तु इन्द्रपद पाने के बावजूद राजा नहुष को अपने अधर्म के कारण रसातल जाना पड़ा॥ ६८॥

धर्ममिति। राजा युधिष्ठिर इत्यर्थः, द्वैतवने धर्मं विधाय दिवं बुभुजे नहुषः अधर्मात् रसातलं प्रतिपेदे च एवशब्दोऽवधारणे। अगस्त्यशापेन नहुषस्य अधर्माचरणात् इन्द्रत्वपदात् अजगरसर्परूपेण मर्त्यलोके आगमनम् अभूत् इति पौराणिकी कथा अत्र अनुसन्धेया॥ ६८॥

टिप्पणी—नह + उषच् = नहुषः। नहुष नाम का एक चन्द्रवंशी राजा था। वह प्रसिद्ध राजा ययाति का पिता था। नहुष अत्यधिक बुद्धिमान् एवं प्रतापी राजा था। उसके पिता का नाम आयुष् था तथा वह पुरूरवा का पोता था। जब इन्द्र ने वृत्र को मार गिराया तब उसे ब्रह्महत्या का पाप लगा। इस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करने के लिए वे एक सरोवर में जा छिपे। उस समय इन्द्रासन पर राजा नहुष को बिठाया गया। वहाँ रहते हुए नहुष ने इद्राणी के प्रेम को जीतने के लिए शीघ्र इन्द्रभवन पहुँचना चाहा। इस विचार से उसने सप्तर्षियों को पालकी उठाने में जोत दिया। इन्द्रभवन की ओर चलते हुए उस कामान्ध ने रास्ते में सप्तर्षियों को 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'तेज और तेज चलो' कहा। इस पर क्रुद्ध मुनि अगस्त्य ने उसे सर्प अर्थात् साँप बन जाने का शाप दिया। शापग्रस्त नहुष आकाश से धरती पर गिरा और आत्मरक्षार्थ वहाँ से सीधे रसातल पहुँचा। वह इसी घोर दुरवस्था में तब तक पड़ा रहा जब तक युधिष्ठिर ने वहाँ पहुँच कर उसका उद्धार नहीं किया। (पौराणिक गाथा से)

वेणो नष्टस्त्वधर्मेण पृथुर्वृद्धस्तु धर्मतः।
तस्माद्धर्मं पुरस्कृत्य यतेतार्थाय पार्थिवः॥ ६९॥

अन्वयः—वेणः तु अधर्मेण नष्टः, पृथुः तु धर्मतः वृद्धः। तस्मात् पार्थिवः धर्मं पुरस्कृत्य अर्थाय यतेत॥ ६९॥

व्याख्या—वेणः = कोऽपि पौराणिको राजा, तु इति बलात्मकोऽव्ययः, अधर्मेण = अपकर्मणा, नष्टः = नाशं गतः, तु = किन्तु, पृथुः = वेणपुत्रः, धर्मतः = धर्माचरणेन, बद्धः = समृद्धिमुपगतः, तस्मात् = तेन हेतुना, पार्थिवः = राजा, धर्मम् = सत्कर्म, पुरस्कृत्य = समाश्रित्य, अर्थाय = धनाय, यतेत = प्रयासं कुर्यादिति॥ ६९॥

हिन्दी—अपने अधर्म के कारण ही राजा वेण को विनष्ट होना पड़ा और उसके पुत्र राजा पृथु ने धर्म के कारण ही अभ्युदय को प्राप्त किया। अतः किसी भी स्थिति में धर्म को प्रधान

मानकर ही राजा को धनोपार्जन का प्रयास करना चाहिए ॥ ६९ ॥

वेण इति। वेणो नाम नृपतिः अधर्मेण नष्टः, पृथुर्वेणपुत्रः धर्मतः धर्मेण वृद्धः वृद्धिं गतः, तस्मात् पार्थिवः धर्मं पुरस्कृत्य आश्रित्य अर्थाय अर्थलाभाय यतेत यत्नं कुर्य्यात् ॥ ६९ ॥

टिप्पणी—वेण एक दुष्ट राजा था। यज्ञ एवं देवार्चन का वह घोर विरोधी था। इसके कुकृत्य से धरती वन्ध्या हो गई। चारों ओर अकाल की काली छाया में जन-जीवन संत्रस्त हो उठा। सभी प्राणी दाने-दाने को मुँहताज हो उठे। उसके अत्याचार से क्षुब्ध होकर ऋषियों ने उसे पीट-पीटकर मार डाला। उसकी मृत्यु के बाद देश में अराजकता छा गयी। मुनियों ने राष्ट्र की रक्षा के लिए वेण के पुत्र की उत्पत्ति की इच्छा से मृत वेण की दाँई भुजा को मसला। तब उससे अग्नि के समान तेजस्वी बालक पृथु क़ी उत्पत्ति हुई। वेण का यही बेटा पृथु पृथ्वी का प्रथम राजा है, जिसके नाम पर इस भूमि का नाम पृथ्वी हुआ। इस पृथु को ऋषिओं ने तत्काल पृथ्वी का राजा घोषित कर दिया। किन्तु उसकी प्रजा पहले ही दुर्भिक्षग्रस्त हो चुकी थी। उसने राजा से भोज्य पदार्थ दिलाने की प्रार्थना की, जिसे धरती ने पहले से ही बन्द कर दिया था। क्रुद्ध होकर पृथु ने अपना धनुष उठाया और पृथ्वी की ओर झपटा। भयभीत पृथ्वी गाय का रूप धारण कर राजा से आगे-आगे भागने लगी। राजा ने भी उसका पीछा किया। अन्ततः बाध्य होकर पृथ्वी ने राजा के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। वह राजा से प्राण की भीख माँगने लगी तथा राजा को आवश्यक भोज्य पदार्थ देने की प्रतिज्ञा की। पर इसके लिए उसने राजा को एक बछड़ा देने को कहा, ताकि वह दूध देने योग्य बन सके। इसके लिए राजा ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाया। फिर इस बछड़े के सहारे गाय रूपी पृंथ्वी को दुहा और दूध अपने हाथों में लिया। इसी से उसे प्रजापालन के निमित्त पर्याप्त अन्न, फल और शाक-सब्जियाँ मिलीं। बाद में पृथु के अनुकरण पर देव, दनुज, मनुज, ऋषि, पहाड़ और नागों ने अपने में से ही उपयुक्त दोग्धा और बछड़े को ढूँढा। फिर पृथ्वी का यथेच्छ दोहन किया। (विष्णुपुराण से)

योहि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम्।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ॥ ७० ॥

अन्वयः—यः हि राजा धर्मपरः सः देवांशः, अन्यः रक्षसाम् अंशभूतः धर्मलोपी प्रजापीडाकरः भवेत् ॥ ७० ॥

व्याख्या—यः = कोऽपि, हि इति निश्चयेन, राजा = भूपालः, धर्मपरः = धार्मिकः, सः = असौ, देवांशः = देवतांशसमुद्भूतः, अन्यः = तद्भिन्नोऽधार्मिको राजा, रक्षसाम् = दैत्यानाम्, अंशभूतः = भागादुत्पन्नो भवति, सः धर्मलोपी = धर्मलोपकरः, प्रजापीडाकरः—प्रजानां = जनानाम्, पीडाकरः = कष्टदायको भवति ॥ ७० ॥

हिन्दी—जो राजा धार्मिक होता है, वह देवांश से उत्पन्न कहलाता है। इससे भिन्न अधार्मिक राजा दानवों के अंश से उत्पन्न कहलाता है। ऐसा राजा धर्म का लोप करने वाला तथा प्रजापीड़क होता है ॥ ७० ॥

य इति। यः राजा धर्मपरः स देवांशः, अन्यः रक्षसाम् अंशभूतः नृपः धर्मलोपी प्रजानां पीडाकरश्च भवेत् ॥ ७० ॥

अराजके हि सर्वस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः ॥ ७१ ॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चापि मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ ७२ ॥

अन्वयः—सर्वस्मिन् अराजके हि भयात् सर्वतः विद्रुते प्रभुः अस्य सर्वस्य रक्षार्थं इन्द्रानिलयमार्काणाम् अग्नेश्च वरुणस्य च चन्द्रवित्तेशयोश्चापि शाश्वतीः मात्राः निर्हृत्य राजानम् असृजत् ॥ ७१-७२ ॥

व्याख्या—सर्वस्मिन् = अखिलसंसारे, अराजके = राजहीने सति, हि इति निश्चयेन, भयात् = सन्त्रासात्, सर्वतः = समन्ततः, विद्रुते = प्रत्यावर्तने सति, प्रभुः = स्रष्टा, अस्य = पुरोवर्तिनः, सर्वस्य = जगतः, रक्षार्थम् = कष्टनिवारणाय, इन्द्रानिलयमार्काणाम्—इन्द्रस्य = पुरन्दरस्य, अनिलस्य = पवनस्य, यमस्य = अन्तकस्य, अर्कस्य = दिवाकरस्य, च = पुनः, अग्नेः = वह्नेः, वरुणस्य = जलेश्वरस्य च, चन्द्रवित्तेशयोश्चापि—चन्द्रस्य = चन्द्रमसः, वित्तेशस्य = कुबेरस्य, चापि, शाश्वतीः = अविनाशिनीः, मात्राः = भागान्, निर्हृत्य = निगृह्य राजानम् = भूपालम्, असृजत् = रचयामास ॥ ७१-७२ ॥

हिन्दी—राजविहीन इस संसार में भयाक्रान्त प्राणी जब इधर-उधर चारों ओर आत्मरक्षार्थ भागने लगे, तब विधाता ने इस संसार की रक्षा के लिए इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर जैसे अष्टलोकपालों में जो चिरन्तन शक्ति हैं, उन्हें संग्रहीत कर उनसे पृथ्वीपालक राजा की सृष्टि की ॥ ७१-७२ ॥

अराजक इति। इन्द्रेति। सर्वस्मिन् जगति अराजके अत एव भयात् सर्वतः समन्ततः विद्रुते पलायिते सति प्रभुर्ब्रह्मा अस्य सर्वस्य जगतः रक्षार्थम् इन्द्रस्य अनिलस्य यमस्य अर्कस्य अग्नेः वरुणस्य चन्द्रस्य कुबेरस्य च अष्टानामेतेषां देवानां शाश्वतीः चिरन्तनीः तेजस्विनीरित्यर्थः, मात्राः अंशान् निर्हृत्य सङ्गृह्य राजानमसृजत् सृष्टवान् ॥ ७१-७२ ॥

जङ्गमस्थावराणाञ्च हीशः स्वतपसा भवेत्।
भागभाग्रक्षणे दक्षो यथेन्द्रो नृपतिस्तथा ॥ ७३ ॥

अन्वयः—यथा इन्द्रः स्वतपसा जङ्गमस्थावराणां च ईशः भागभाक् रक्षणे दक्षः तथा नृपतिः भवेत् ॥ ७३ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, इन्द्रः = शक्रः, स्वतपसा = स्वकीयतपोबलेन, जङ्गमस्थावराणाम् = चराचराणां, जगताम्, ईशः = स्वामी सन्, भागभाक् = अंशग्रहणे, तथा रक्षणे = त्राणे, दक्षः = कुशलः, तथैव, नृपतिः = राजा, भवेत् = स्यात् ॥ ७३ ॥

हिन्दी—जैसे इन्द्र अपने तपोबल से चराचर जगत् का स्वामी बनकर उनके अंशों का उपभोग करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजापालक बनकर प्रजा से कर ग्रहण करता है ॥ ७३ ॥

जङ्गमेति। यथा इन्द्रः स्वतपसा निजेन तपोबलेन जङ्गमस्थावराणां चराचराणां जगताम् ईशः अधिपतिः सन् भागभाक् तथा रक्षणे दक्षः रक्षाकुशलः नृपतिः भागभाक् करग्राही भवेत् ॥ ७३ ॥

वायुर्गन्धस्य सदसत्कर्मणः प्रेरको नृपः ।
धर्मप्रवर्तकोऽधर्मनाशकस्तमसो रविः ॥ ७४ ॥

अन्वयः—वायुः गन्धस्य प्रेरकः, नृपस्तु सदसत्कर्मणः प्रेरकः धर्मप्रवर्तकः तथा तमसः रविरिव अधर्मनाशकः ॥ ७४ ॥

व्याख्या—वायुः = पवनः, गन्धस्य = वासस्य, प्रेरकः = प्रोत्साहकः, नृपस्तु = राजा तु, सदसत्कर्मणः = साध्वसाधुक्रियायाः, प्रेरकः = प्रेरणादायकः, धर्मप्रवर्तकः = धर्मसंस्थापकः, तथा तमसः = अन्धकारस्य, रविः = सूर्यः, इव = यथा, अधर्मनाशकः = अपकर्मनिहन्ता भवति ॥ ७४ ॥

हिन्दी—गन्ध का प्रेरक जैसे पवन होता है, उसी तरह प्रजा के अच्छे-बुरे कर्मों का प्रेरक राजा होता है। अन्धकार-विनाशक सूर्य की तरह प्रजा का अधर्मनाशक तथा धर्मप्रवर्तक राजा ही होता है ॥ ७४ ॥

वायुरिति। वायुः गन्धस्य प्रेरकः नृपस्तु सदसत्कर्मणः प्रेरकः धर्मप्रवर्तकः तथा तमसः रविरिव अधर्मस्य नाशकः ॥ ७४ ॥

दुष्कर्मदण्डको राजा यमः स्याद् दण्डकृद् यमः ।
अग्निः शुचिस्तथा राजा रक्षार्थं सर्वभागभुक् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—दुष्कर्मदण्डकः राजा यमः स्यात्, यतः यमः दण्डकृत्। अग्निः शुचिः सन् सर्वभागभुक् तथा रक्षार्थं सर्वभागभुक् ॥ ७५ ॥

व्याख्या—दुष्कर्मदण्डकः—दुष्कर्मणाम् = दुर्वत्तानाम्पापिनाम्, दण्डकः = शासकः, यमः = कृतान्तः, स्यात् = भवेत्, यतः यमः = दण्डधरः, दण्डकृत् = सर्वेषां कृते दण्डविधानकर्ता भवति। अग्निः = पावकः, शुचिः = पवित्रः, सन्, सर्वभागभुग् = सकलांशभोक्ता, यथा सर्वसुराणां भागम् अग्नौ हुतं भुङ्क्ते तथैव धार्मिको राजा, रक्षार्थम् = प्रजापालनाय, सर्वभागभुक् = सर्वेषां करग्राही भवति ॥ ७५ ॥

हिन्दी—यमराज जैसे कुकर्मियों को दण्ड देता है, वैसे ही राजा पापियों को दण्ड देता है। जैसे अग्नि पवित्र होकर सभी देवताओं के अंश को ग्रहण करता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी प्रजापालन में तत्पर रहकर, उससे कर ग्रहण कर उसका यथाविध विनियोग करता है ॥ ७५ ॥

दुष्कर्मेति। दुष्कर्मणां पापिनां दण्डकः दण्डयिता राजा यमः स्यात् यतः यमः दण्डकृत्। अग्निः शुचिः पवित्रः सन् यथा सर्वेषां देवानां भागम् अग्नौ हुतमिति भावः, भुङ्क्ते इति सर्वभागभुक् तथा शुचिः राजा रक्षार्थं सर्वेषां जगतां प्रजानामित्यर्थः, भागभुक् स्वग्राहांशग्राहीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

पुष्यत्यपां रसैः सर्वं वरुणः स्वधनैर्नृपः ।
करैश्चन्द्रो ह्लादयति राजा स्वगुणकर्मभिः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—वरुणः अपां रसैः सर्वं पुष्यति, नृपः स्वधनैः, चन्द्रः करैः ह्लादयति, राजा स्वगुणकर्मभिः ॥ ७६ ॥

व्याख्या—वरुणः = प्रचेताः, अपाम् = वारीणाम् रसैः = सारैः, सर्वम् = सकलं जगत्, पुष्यति = परिपुष्टं करोति, तथैव नृपः = राजा, स्वधनैः = स्वकीयसमृद्धिः, पुष्यति, चन्द्रः =

चन्द्रमाः, यथा करैः=स्वमयूखैः, सकलं जगत् ह्लादयति=प्रसादयति, तथैव राजा स्वगुणकर्मभिः=स्वशीलक्रियाभिः॥७६॥

हिन्दी—वरुण जैसे सलिल-रस से समस्त सृष्टि को परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार राजा भी अपने धन से समस्त प्रजामंडल का परिपालन करता है। चन्द्रमा जैसे अपनी शीतल किरणों से संसार को आनन्दित करता है, उसी प्रकार राजा अपने गुण और कर्म से समस्त प्रजाकुल को आनन्दित करता है॥७६॥

पुष्यतीति। वरुणः अपां सलिलरसैः सर्वं जगत् पुष्यति, नृपः स्वधनैः सर्वं पुष्यति, चन्द्रः करैः किरणैः सर्वं ह्लादयति प्रीणयति, राजा स्वस्य गुणैः दयादाक्षिण्यादिभिः कर्मभिः मूर्तकार्य्यादिभिश्च सर्वं रञ्जयति॥७६॥

कोशानां रक्षणे दक्षः स्यान्निधीनां धनाधिपः।
चन्द्रो यथा विना सर्वैरंशैर्नो भाति भूपतिः॥७७॥

अन्वयः—कोशानां रक्षणे दक्षाः निधीनां धनाधिपः स्यात्, यथा चन्द्रः सर्वैरंशैः विना न भाति॥७७॥

व्याख्या—कोशानाम्=निधानानाम्, रक्षणे=गोपने, दक्षः=प्रवीणः, भूपतिः=भूपालः, निधीनाम्=सञ्चयानाम्, धनाधिपः=कुबेर इव प्रचुरधनवान्, स्यात्=भवेत्, यथा=येन प्रकारेण, चन्द्रः=शशी, सर्वैरंशैः—सर्वैः=सकलैः, अंशैः=किरणैः, विना=विहाय, न=नहि, भाति=शोभते, तथैव राजा विपुलकोषैर्विना न शोभते॥७७॥

हिन्दी—धन-संरक्षण में चतुर राजा कुबेर की तरह धनाधिप होता है। जैसे चन्द्रमा सर्वांश ग्रहण किये बिना केवल आत्म-अंश से ही नहीं शोभता, उसी प्रकार विपुल कोश के बिना राजा की शोभा नहीं होती॥७७॥

कोशानामिति। कोशानां धनानां रक्षणे सञ्चये दक्षः पटु राजा निधीनां धनाधिपः कुबेर इव प्रभूतधनशाली स्यात्। कोशानां सञ्चये आवश्यकतामाह—चन्द्रः सर्वैः अंशैः विना अंशेन यथा न भाति, तथा भूपतिः सर्वैः अंशैः विपुलकोषैः विना नो भाति न शोभते।।७७॥

पिता माता गुरुर्भ्राता बन्धुर्वैश्रवणो यमः।
नित्यं सप्तगुणैरेषां युक्तो राजा न चान्यथा॥७८॥

अन्वयः—पिता माता गुरुः भ्राता बन्धुः वैश्रवणः यमः, एषां सप्तगुणैः राजा नित्यं युक्तः भवेत्, अन्यथा च न॥७८॥

व्याख्या—पिता=जन्मदाता, माता=जननी, गुरुः=आचार्यः, भ्राता=सोदर्यः, बन्धुः=सगोत्रः, वैश्रवणः=विश्रवणस्यापत्यमिति कुबेरः, यमः=जीवितेशः, एषाम्=पूर्वोक्तानाम्, सप्तगुणैः=गुणसप्तयुक्तैः, राजा=नृपतिः, अन्यथा=पूर्वोक्तसप्तगुणहीनैः राजा प्रजापालको न भवेत्॥७८॥

हिन्दी—माँ, बाप, भाई, बन्धु, गुरु, कुबेर और यम—इन सातों के नित्य गुण से युक्त राजा को होना चाहिए। इन सात गुणों के अभाव में कोई राजा प्रजारंजक नहीं हो सकता॥७८॥

पितेति। पिता जनकः माता जननी गुरुः आचार्यः भ्राता सोदरः बन्धुः सुहृत् वैश्रवणः धनपतिः

यमः दण्डधरः एषां सप्तगुणैः राजा नित्यं युक्तः भवेत्, अन्यथा एषां गुणैर्विहीन इत्यर्थः, न च रञ्जको भवेत् ॥७८ ॥

गुणसाधनसन्दक्षः स्वप्रजायाः पिता यथा।
क्षमयित्र्यपराधानां माता पुष्टिविधायिनी ॥७९ ॥

अन्वयः—यथा पिता स्वप्रजायाः गुणसाधनसन्दक्षः माता पुष्टिविधायिनी एवम् अपराधानां क्षमयित्री ॥७९ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, पिता = जनकः, स्वप्रजायाः = निजसन्ततेः, गुणसाधने = गुणोपार्जने, सन्दक्षः = सुष्ठुतया प्रवीणो भवेत्, तथा माता = जननी, पुष्टिविधायिनी = पोषणकारिणी, तथा अपराधानाम् = दोषाणाम्, क्षमयित्री, तथैव राजा प्रजानां पोषकः क्षमाशीलश्च भवेत् ॥७९ ॥

हिन्दी—पिता जैसे अपनी सन्तान को गुणवान् बनाने में कुशल होता है, माँ जैसे अपनी सन्तान के सारे अपराधों को भूलकर उनका संपोषण करती है; उसी तरह एक राजा को अपनी प्रजा को गुणोपार्जन कराने में प्रवीण होना चाहिए तथा माता की तरह प्रजा के अपराधों को भूलकर उनका संपोषण करना चाहिए एवं क्षमाशील होना चाहिए ॥७९ ॥

गुणेति। राजा पिता यथा जनक इव स्वप्रजायाः गुणसाधने गुणोपार्जने सन्दक्षः सम्यक् तत्परः भवेदिति शेषः। तथा पुष्टिविधायिनी पोषणकारिणी अपराधानां दोषाणां क्षमयित्री माता यथा जननीव प्रजानां पोषकः क्षमाशीलश्च भवेत् ॥७९ ॥

हितोपदेष्टा शिष्यस्य सुविद्याध्यापको गुरुः।
स्वभागोद्धारकृद् भ्राता यथाशास्त्रं पितुर्धनात् ॥८० ॥

अन्वयः—सुविद्याध्यापकः गुरुः यथा शिष्यस्य हितोपदेष्टा, भ्राता पितुर्धनात् यथाशास्त्रं स्वभागोद्धारकृत् ॥८० ॥

व्याख्या—सुविद्याध्यापकः—सुष्ठु विद्या सुविद्या, तस्याः विद्यायाः अध्यापकः = शिक्षकः, गुरुः = आचार्य, यथा = येन प्रकारेण, शिष्यस्य = छात्रस्य, हितोपदेष्टा = लाभप्रदोपदेशकः, तथैव भूपालः स्वप्रजानां विद्यादाता हितोपदेष्टा च भवेत्। भ्राता = सोदरः, यथाशास्त्रम् = शास्त्रमनतिक्रम्य, पितुर्धनात् = जनकोपार्जितसम्पदः, स्वभागोद्धारकृत्—स्वस्य = आत्मनः, भागस्य = अंशस्य, उद्धारम् = दायस्यांशविशेषः, करोतीति, तथा राजा प्रजाभ्यः स्वभागमुद्धरेदिति ॥८० ॥

हिन्दी—एक गुरु जैसे अपने शिष्य को हितकर उपदेश देकर विद्यादान करता है, राजा भी उसी तरह अपनी प्रजा को हितसाधन का ज्ञान कराये। फिर पिता से प्राप्त धन का एक भाई शास्त्रानुसार अपना हिस्सा लेकर दूसरे का अंश त्याग देता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा के धन से उचित भाग ही कर के रूप में ग्रहण करना चाहिए ॥८० ॥

हितेति। सुविद्याध्यापकः शोभनविद्याशिक्षकः गुरुर्यथा शिष्यस्य उपदेष्टा, तथा राजा प्रजानां विद्यादाता उपदेष्टा च भवेत्। भ्राता यथा पितुर्धनात् स्वस्य भागस्य उद्धारं करोतीति स्वभागोद्धारकृत् तथा राजा प्रजाभ्यः स्वभागमुद्धरेदिति भावः ॥८० ॥

आत्मस्त्रीधनुगुह्यानां गोप्ता बन्धुस्तु मित्रवत्।
धनदस्तु कुबेरः स्याद् यमः स्याच्च सुदण्डकृत्॥ ८१॥

अन्वयः—राजा मित्रवत् आत्मस्त्रीधनगुह्यानां गोप्ता बन्धुः धनदः तु कुबेरः तथा दण्डकृत् तु यमः स्यात्॥ ८१॥

व्याख्या—राजा मित्रवत् = सुहृदिव, आत्मस्त्रीधनगुह्यानाम्—आत्मनः = स्वस्य, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, धनानाम् = सम्पदाम्, गुह्यानाम् = गोपनीयविषयाणाम्, गोप्ता = संरक्षकः, तु = अतएव, बन्धुः = ज्ञातिः, धनदः = अर्थप्रदः, तु = अत एव, कुबेरः = राजराजः, तथा सुदण्डकृत् = यथान्यायं दण्डयिता, अत एव यमः = दण्डधरः, स्यात् = भवेत्॥ ८१॥

हिन्दी—राजा मित्र की तरह अपना, स्त्री का, धन का तथा गोपनीय विषयों का रक्षक होता हैं, अतएव वह बन्धु है। समय पर प्रजा को धन देता है, अतः कुबेर है। अपराधियों को सुनिश्चित दण्ड देता है, अत एव वह यमराज है॥ ८१॥

आत्मेति। राजा मित्रवत् आत्मनः स्त्रीणां धनानां तथा गुह्यानां विषयाणां गोप्ता रक्षिता अतएव बन्धुः धनदः अत एव कुबेरः, तथा सुदण्डकृत् यथान्यायं दण्डयिता अत एव यमः स्यात्॥ ८१॥

प्रवृद्धिमति सुराज्ञि निवसन्ति गुणा अमी।
एते सप्त गुणा राज्ञा न हातव्याः कदाचन॥ ८२॥

अन्वयः—प्रवृद्धिमति सुराज्ञि अमी गुणाः निवसन्ति। राज्ञा एते सप्तगुणाः कदाचन न हातव्याः॥ ८२॥

व्याख्या—प्रवृद्धिमति = विशिष्टाभ्युदयशालिनि, सुराज्ञि = शोभने राजनि, अमी = पूर्वोक्ताः, गुणाः = शीलानि, निवसन्ति = तिष्ठन्त्येव, राज्ञा = भूपतिनां, एते = पूर्वोक्ताः, सप्तगुणाः = गुणसप्तसंख्यकाः, कदाचन = कदापि, न = नहि, हातव्याः = त्यक्तव्याः॥ ८२॥

हिन्दी—अभ्युदयशाली राजा में ये गुण होते ही हैं। अतः किसी भी राजा को ये पूर्वोक्त सात गुणों का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए॥ ८२॥

प्रवृद्धीति। प्रवृद्धिमति प्रकृष्टाभ्युदयशालिनि सुराज्ञि शोभने राजनि अमी पूर्वोक्ताः पित्रादिगुणाः निवसन्ति, अतः राज्ञा कदाचन एते सप्त गुणाः न हातव्याः न त्यक्तव्याः॥ ८२॥

क्षमते योऽपराधं सः शक्तः सुदमने क्षमी।
क्षमया तु विना भूपो न भात्यखिलसद्गुणैः॥ ८३॥

अन्वयः—यः शक्तः अपराधं क्षमते सः सुदमने क्षमी, क्षमया तु विना भूपः अखिलसद्गुणैः न भाति॥ ८३॥

व्याख्या—यः = नृपः, शक्तः = सक्षमः सन्, अपराधम् = दोषम्, क्षमते = मर्षणं कुरुते, सः = असौ राजा, सुदमने = प्रजानां सुशासने, क्षमी = सक्षमः। क्षमया = मर्षणेन, तु विना = विहाय, भूपः = राजा, अखिलैः = निखिलैः, सद्गुणैः = साधुचरित्रैः, समन्वितोऽपि, न = नहि, भाति = शोभते॥ ८३॥

हिन्दी—सामर्थ्यवान होते हुए भी जो अपराध क्षमा कर देता है, वह क्षमाशील राजा कहलाता

है। दुष्टों का जो दमन करता है अर्थात् जिसका प्रशासन सुदृढ़ है, वह सक्षम राजा है। किन्तु समस्त शुभगुणों के रहने के बावजूद भी क्षमाहीन राजा शोभा नहीं पाता॥८३॥

क्षमते इति। यः शक्तः समर्थः सन् अपराधं क्षमते, सः सुदमने प्रजानां सुशासने क्षमी सक्षमः। क्षमया तु विना भूपः अखिलैः समग्रैः सद्‌गुणैः उपलक्षितोऽपीत्यर्थः, न भाति न शोभते॥८३॥

स्वान् दुर्गुणान् परित्यज्य ह्यतिवादांस्तितिक्षते।
दानैर्मानैश्च सत्कारैः स्वप्रजारञ्जकः सदा॥८४॥
दान्तः शूरश्च शस्त्रास्त्रकुशलोऽरिनिषूदनः।
अस्वतन्त्रश्च मेधावी ज्ञानविज्ञानसंयुतः॥८५॥
नीचहीनो दीर्घदर्शी वृद्धसेवी सुनीतियुक्।
गुणिजुष्टस्तु यो राजा स ज्ञेयो देवतांशकः॥८६॥

अन्वयः—यः स्वान् दुर्गणान् परित्यज्य हि अतिवादान् तितिक्षते, किञ्च सदा दानैः मानैः च सत्कारैः स्वप्रजारञ्जकः दान्तः शूरः शस्त्रास्त्रकुशलः अरिनिषूदनः अस्वतन्त्रः मेधावी ज्ञानविज्ञानसंयुतः नीचहीनः दीर्घदर्शी वृद्धसेवी सुनीतियुक् गुणिजुष्टः तु यः राजा सः देवतांशकः ज्ञेयः॥८४-८५-८६॥

व्याख्या—यः= राजा, स्वान्= स्वकीयान्, दुर्गुणान्= अवगुणान्, परित्यज्य= विहाय, हि= इति निश्चयेन, अतिवादान्= आत्मलोचनानि, तितिक्षते= सहते, किञ्च सदा= सर्वदा, दानैः= प्रदानैर्वितरणैश्च, मानैः= सम्मानैः, च= पुनः, सत्कारैः= समादरैः, स्वप्रजारञ्जकः—स्वप्रजानाम्= स्वकीयजनानाम्, रञ्जकः= आनन्ददायकः, दान्तः= नियन्त्रितः, शूरः= वीरः, शस्त्रास्त्रकुशलः= आयुधसञ्चालने प्रवीणः, अरिनिषूदनः= शत्रुसंहारकः, अस्वतन्त्रः= अस्वेच्छाचारी, नीतिशास्त्रानुवर्ती सर्वत्रैवेति। मेधावी= प्रतिभासम्पनः, ज्ञानविज्ञानसंयुतः—ज्ञानविज्ञानाभ्याम्= सामान्यविशेषबोधाभ्याम्, संयुतः= समन्वितः, नीचहीनः= अधमजनसम्पर्कविहीनः, दीर्घदर्शी= दूरदर्शी, वृद्धसेवी= परिणतप्रज्ञपुरुषमतानुवर्त्ती, सुनीतियुक्= सुनयसम्पन्नः, गुणिजुष्टः—गुणिभिः= पण्डितजनैः, जुष्टः= समाराधितः, तु यो राजा= नरपतिः, सः= असौ, देवतांशकः= देवांशसमुद्‌भूतः, ज्ञेयः= बोध्यः॥८४-८५-८६॥

हिन्दी—जो राजा अपने दुर्गुणों को पहचान कर उसे दूर करता है, दूसरों के द्वारा की गई आलोचना सुन और सह सकता है; अपनी प्रजा को दान-मान और सम्मान देकर उन्हें सदैव प्रसन्न रखकर प्रजारंजक बनता है; जितेन्द्रिय, शस्त्रास्त्रसंचालन में निपुण, शत्रुसंहारक, आत्मसंयमी, मेधावी, ज्ञानी, विज्ञानी, नीचसंसर्गहीन, दूरदर्शी, वृद्धोपासक, सुनीतिसम्पन्न, गुणवानों द्वारा उपासित राजा देवता के अंश से उत्पन्न होता है॥८४-८५-८६॥

स्वानित्यादि। यः स्वान् निजान् दुर्गुणान् दोषान् परित्यज्य अतिवादान् निन्दावादान् तितिक्षते सहते किञ्च सदा दानैः मानैः सत्कारैः समादरविशेषैश्च स्वप्रजानां रञ्जकः प्रीतिजनकः दान्तः इन्द्रियदमनशीलः शूरः बलवान् शस्त्रास्त्रकुशलः सङ्ग्रामविदित्यर्थः, अरिनिषूदनः शत्रुतापनः अस्वतन्त्रः अस्वेच्छाचारी नीतिशास्त्रानुवर्तीत्यर्थः, मेधावी बुद्धिमान् ज्ञानविज्ञानाभ्यां सामान्यविशेषरूपाभ्यां संयुतः नीचहीनः हीनसंसर्गरहितः दीर्घदर्शी बहुदर्शी वृद्धसेवी

अभिज्ञजनमतानुवर्ती सुनीतियुक् सुनयसम्पन्नः तथा गुणिभिः विद्वद्भिः जुष्टः सेवितः भवति स राजा देवांशकः देवांशेनावतीर्ण इत्यर्थः ज्ञेयः ॥८४-८५-८६ ॥

विपरीतस्तु रक्षोंऽशः स वै नरकभाजनः।
नृपांशसदृशो नित्यं तत्सहायगणः किल ॥ ८७ ॥

अन्वयः—विपरीतः तु रक्षोंऽशः वै नरकभाजनः, तत्सहायगणः किल नित्यं नृपांशसदृशः ॥ ८७ ॥

व्याख्या—विपरीतस्तु—तु = किन्तु, विपरीतः = पूर्वोक्तगुणविरुद्धः, राजा, रक्षोंऽशः = दानवांशसमुद्भूतः, सः = असौ राजा, वै = इति निश्चयेन, नरकभाजनः = निरयगामी भवति। तत् = तस्य राज्ञः, सहायगणः = सहयोगिनोऽपि, किल = असन्दिग्धरूपेण, नित्यम् = ध्रुवम्, नृपांशसदृशः = राजांशतुल्यो भवति। राजा यादृशस्तादृश एव तस्य पार्श्वचरो भवति ॥ ८७ ॥

हिन्दी—ऊपरवर्णित गुणों के विपरीत गुण वाला राजा राक्षसों के अंश से उत्पन्न कहलाता है। ऐसा राजा नरकगामी होता है। ऐसे राजा के पार्श्वचर भी उसी तरह के होते हैं ॥ ८७ ॥

विपरीत इति। उक्तविपरीतस्तु नृपः रक्षोंऽशः राक्षसांशेनावतीर्णः, स वै स एव नरकभाजनः निरयभागी भवति। तस्य राज्ञः सहायगणः सहचरवर्गः नृपांशसदृशः राजांशसमानः, यादृशो राजा तादृश एव तत्पार्श्वचर इत्यर्थः, यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्। तद्वदेव तच्छक्तिरिति भावः ॥ ८७ ॥

तत्कृतं मन्यते राजा सन्तुष्यति च मोदते।
तेषामाचरणैर्नित्यं नान्यथा नियतेर्बलात् ॥ ८८ ॥

अन्वयः—राजा तत्कृतं मन्यते अनुमोदते च, नियतेः बलात् तेषाम् आचरणैः नित्यं सन्तुष्यति अन्यथा न ॥ ८८ ॥

व्याख्या—राजा = भूपालः, तत् = तेषामनुचराणाम्, कृतम् = कार्यम्, मन्यते = स्वीक्रियते, अनुमोदते = समर्थनं कुरुते, च = पुनः, नियतेः = भाग्यस्य, बलात् = सामर्थ्यात्, तेषाम् = स्वानुचराणाम्, आचरणैः = व्यवहारैः, नित्यम् = सततम्, सन्तुष्यति = आनन्दानुभूयते, अन्यथा = इतरथा, न = नास्त्येवेति भावः ॥ ८८ ॥

हिन्दी—नियति के प्रभाव में जकड़ा ऐसा राजा अपने पार्श्वचरों के कुकर्म का सदैव अनुमोदन करता है, उससे संतुष्ट रहता है; उसे ही मानता है। इससे भिन्न लोगों की वह सुनता ही नहीं ॥ ८८ ॥

तदिति। राजा नित्यं सततं तत्कृतं तेषां पार्श्वचराणां कृतं कार्य्यं मन्यते अनुमोदते, तथा नियतेः अदृष्टस्य बलात् प्रभावात् तेषाम् आचरणैः व्यवहारैः सन्तुष्यति सन्तोषं लभते, अन्यथा न मोदते न हृष्यति ॥ ८८ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मफलं नरैः।
प्रतिकारैर्विना नैव प्रतिकारे कृते सति ॥ ८९ ॥

अन्वयः—नरैः कृतकर्मफलं प्रतिकारैः विना अवश्यमेव भोक्व्यम्, प्रतिकारे कृते सति नैव ॥ ८९ ॥

व्याख्या—नरैः = मानवैः, कृतकर्मफलम्—कृतम् = सम्पादितम्, यत्कर्म = कार्यम्, तस्य फलम् = परिणामम्, प्रतिकारैः = शमनोपायैः, विना = विहाय, अवश्यमेव = नित्यमेव, भोक्तव्यम् = उपयोक्तव्यम्, प्रतिकारे = शमनोपाये, कृते सति = सम्पादिते सति, नैव = न भोक्तव्यमिति ॥ ८९ ॥

हिन्दी—किये गये कर्मों का फल तो मनुष्य को भोगना ही पडता है। कृतकर्म के दुष्परिणाम की शान्ति के लिए यदि प्रतिकार न किया जाय तो उसे टाला नहीं जा सकता है ॥ ८९ ॥

अवश्यमिति। नरैः मानवैः प्रतिकारैः विना शान्तिमन्तरेण कृतकर्मफलम्, अवश्यमेव निश्चितमेव भोक्व्यं, प्रतिकारे शान्तौ कृते सति नैव भोक्तव्यमिति भावः ॥ ८९ ॥

तथा भोगाय भवति चिकित्सितगदो यथा।
उपदिष्टेऽनिष्टहेतौ तत् तत् कर्तुं यतेत कः ॥ ९० ॥

अन्वयः—चिकित्सितगदः यथा भोगाय भवति अनिष्टहेतौ उपदिष्टे कः तत्तत्कर्तुं यतेत ॥ ९० ॥

व्याख्या—चिकित्सितगदः = उपचारितरोगः, यथा = येन प्रकारेण, भोगाय = भुक्तये, भवति = याति, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रतिकृतकर्मफलः राजा भोगाय भवति, अनिष्टहेतौ = अनभिलषितकरणे, उपदिष्टे = निर्देशिते, कः = पुरुषः, तत् तत् = अनिष्टं, कर्त्तुम् = सम्पादितुम्, यतेत = प्रयत्नशीलो भवति, अर्थात् न कोऽपीति भावः ॥ ९० ॥

हिन्दी—चिकित्सा-क्रम में रोगनिवृत्ति के लिए जो उपाय बतलाये जाते हैं, वह नहीं करने पर जैसे रोगी को रोग का दुष्परिणाम भोगना ही पड़ता है और रोगनिवृत्तिसाधक उपाय करने पर रोगी रोगमुक्त हो जाता है; इसी तरह सम्भावित अनिष्ट के कारणों को यदि किसी को समझा दिया जाय तो फिर ऐसा कौन व्यक्ति है, जो फिर वैसे अनिष्टजन्य कर्मफल पाने का प्रयास करेगा? ॥ ९० ॥

तथेति। चिकित्सितगदः प्रतिकृतरोगः यथा भोगाय भवति शक्नोति, तथा प्रतिकृतकर्मफलः राजा भोगाय भवति, अनिष्टहेतौ उपदिष्टे उपदेशने सम्यक् विदिते सति कः तत् अनिष्टं कर्तुं यतेत न कोऽपीत्यर्थः ॥ ९० ॥

रज्यते सत्फले स्वान्तं दुष्फले न हि कस्यचित्।
सदसद्बोधकान्येव दृष्ट्वा शास्त्राणि चाचरेत् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—सत्फले स्वान्तं रज्यते दुष्फले कस्यचित् न हि सदसद्बोधकानि शास्त्राणि दृष्ट्वा आचरेत् ॥ ९१ ॥

व्याख्या—सत्फले = शुभदपरिणामे, स्वान्तम् = मानवानामन्तःकरणम्, रज्यते = प्रसन्नो भवति, च = पुनः, दुष्फले = दुःखदपरिणतौ, कस्यचित् = कस्यापि जनस्य, नहि = मनो न रमते। अतः सदसद्बोधकानि = साध्वसाधुबोधकानि, शास्त्राणि = धर्मग्रन्थान्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, आचरेत् = व्यवहरेदिति ॥ ९१ ॥

हिन्दी—अच्छे फलदायक कार्यों में मनुष्य का मन रमता है और बुरे फलदायक कार्यों से जी घबड़ाता है। अतः अच्छे-बुरे कार्यों के परिचायक शास्त्रों को देखकर ही तदनुसार आचरण करना चाहिए ॥ ९१ ॥

रज्यते इति। सत्फले सुन्दरे फले सति स्वान्तं मनः रज्यते हृष्यति, दुष्फले सति कस्यचिदपि न हि नैव। सदसद्बोधकानि हिताहितप्रतिपादकानि शास्त्राणि दृष्ट्वा आचरेत् यथा दुष्फलं न स्यात् तथा व्यवहरेदित्यर्थः॥९१॥

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात्।
विनयस्येन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति॥९२॥

अन्वयः—विनयः नयस्य मूलं, विनयश्च शास्त्रनिश्चयात्, इन्द्रियनयः विनयस्य मूलं, तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति॥९२॥

व्याख्या—विनयः = प्रश्रयः, नयस्य = नीतेः, मूलम् = उपक्रमः, विनयश्च = सौजन्यञ्च, शास्त्रनिश्चयात् = शास्त्रस्य तत्त्वज्ञानात् भवति, इन्द्रियजयः = जितेन्द्रियत्वम्, विनयस्य = शालीनतायाः, मूलम्, तद्युक्तः = तदन्वितः, शास्त्रमृच्छति = विज्ञानमधिगच्छति॥९२॥

हिन्दी—नीति की जड़ विनय है। शास्त्र का जानकार व्यक्ति विनयी होता है। विनय का उपक्रम इन्द्रियों पर विजय पाना है। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही शास्त्र का जानकार हो सकता है॥९२॥

नयस्येति। विनयः नयस्य नीतिप्रयोगस्य मूलं विनयेनैव नीतिः प्रयुज्यते इति भावः, विनयश्च शास्त्रनिश्चयात् शास्त्रार्थतत्त्वावबोधात् भवति, इन्द्रियजयः विनयस्य मूलं तद्युक्तः जितेन्द्रियः जनः शास्त्रम् ऋच्छति अधिगच्छति॥९२॥

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत्।
ततः पुत्रांस्ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः प्रजाम्॥९३॥

अन्वयः—राजा प्रथमम् आत्मानं ततः पुत्रान् ततः अमात्यान् ततः भृत्यान् ततः प्रजां विनयेन उपपादयेत्॥९३॥

व्याख्या—राजा = भूपालः, प्रथमम् = आदौ, आत्मानम् = स्वकम्, ततः = तत्पश्चात्, पुत्रान् = स्वसुतान्, ततः = तत्पश्चात्, अमात्यान् = सचिवान्, ततः = तदनन्तरम्, भृत्यान् = सेवकान्, ततः = तदनन्तरम्, प्रजाम् = शासितजनम्, विनयेन = प्रश्रयेण, उपपादयेत् = कार्यान्वितं कुर्यात्॥९३॥

हिन्दी—राजा सर्वप्रथम अपने-आप को विनयी बनाये। इसके बाद अपने पुत्रों को, फिर सचिवों को, पुनः अन्य राजकर्मचारियों को और अन्त में प्रजा को। कहने का तात्पर्य यह है कि विनयी राजा को देखकर राजकुमार विनम्र होंगे। विनत राजकुमारों का अनुकरण मंत्रिमण्डल करेगा। विनयी मंत्रिमंडल को देखकर राजकर्मचारी विनम्र बनेंगे। सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र को विनयी देखकर प्रजा स्वतः विनयी बन जायेगी॥९३॥

आत्मानमिति। राजा प्रथमम् आत्मानं ततः पुत्रान्, ततः अमात्यान् सचिवान्, ततः भृत्यान् अपरान् कर्मचारिवर्गान् ततश्च प्रजां विनयेन उपपादयेत् योजयेत्। अयं भावः—राज्ञः विनयदर्शनेन राजपुत्राः, राजपुत्राणां विनयदर्शनेन अमात्याः, अमात्यानां विनयदर्शनेन अपरकर्मचारिणः तेषाञ्च विनयदर्शनेन सर्वाः प्रजाः विनयालङ्कृता भवन्तीति॥९३॥

परोपदेशकुशलः केवलो न भवेन्नृपः।
प्रजाधिकारहीनः स्यात् सगुणोऽपि नृपः क्वचित्॥९४॥

अन्वयः—नृपः केवलः परोपदेशकुशलः न भवेत्, क्वचित् सगुणोऽपि नृपः प्रजाधिकारहीनः स्यात् ॥ ९४ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, केवलः = सम्पूर्णतया, परोपदेशकुशलः—परेषाम् = अन्येषाम्, उपदेशकुशलः = अनुशासनप्रवीणः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, राजा स्वयमपि उपदेशानुकूलमाचरणं कुर्यादिति केवलशब्दार्थेऽत्रास्ति। क्वचित् = कुत्रचित्, सगुणोऽपि = गुणान्वितोऽपि, नृपः = राजा, प्रजाधिकारहीनः = प्रजाप्रभुत्वरहितः, स्यात् = भवेत् ॥ ९४ ॥

हिन्दी—राजा केवल दूसरों को ही उपदेश देने में कुशल न हो। उसे स्वयं भी उपदेशानुसार आचरण करना चाहिए। क्योंकि कहीं गुणवान् राजा भी प्रजा के ऊपर अपना अधिकार खो बैठता है ॥ ९४ ॥

परेति। नृपः केवलः परोपदेशकुशलः न भवेत् स्वयमपि उपदेशानुरूपसमाचारो भवेदिति केवलशब्दार्थः। क्वचित् सगुणोऽपि उपदेशकुशलोऽपि नृपः प्रजाधिकारहीनः राज्यच्युतः स्यात् स्वस्य उपदेशानुरूपाचारविरहाद् यथेच्छाचारेण प्रजाविरागाच्चेति भावः ॥ ९४ ॥

न तु नृपविहीनाः स्युर्दुर्गुणा ह्यपितु प्रजाः।
यथा न विधवेन्द्राणी सर्वदा तु तथा प्रजाः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—प्रजाः तु दुर्गुणाः अपि नृपविहीनाः न स्युः, इन्द्राणी यथा न विधवा तथा प्रजाः सर्वदा तु ॥ ९५ ॥

व्याख्या–प्रजाः = राज्यनिवासिनो जनाः, तु, दुर्गुणाः अपि = दोषयुक्ताः अपि, नृपविहीनाः = भूपतिरहिताः, न = नहि, स्युः = भवेयुः, इन्द्राणी = शची, यथा = येन रूपेण, न = नहि, विधवा = मृतभर्त्तिका भवति, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रजाः = जनाः, सर्वदा = सदा, तु = इत्यवधारणे ॥ ९५ ॥

हिन्दी—किन्तु दुर्गुणशाली प्रजा भी कभी राजाविहीन नहीं होती। जैसे इन्द्र के न रहने पर इन्द्राणी कभी विधवा नहीं होती। कहावत है—राजा मर गये राजा चिरायु हों ॥ ९५ ॥

न त्विति। प्रजाः तु दुर्गुणा गुणविहीना अपि नृपविहीना राजरहिता न स्युः न भवन्ति, इन्द्राणी यथा न विधवा, तथा प्रजाः सर्वदा तु सर्वदैव तुशब्दोऽवधारणे। न विधवा न स्वामिहीना भवन्ति गुणविहीनो राजा प्रजाहीनः भवेत् प्रजा तु गणविहीनापि न कदाचिदपि राजविहीना भवतीति फलितार्थः ॥ ९५ ॥

भ्रष्टश्रीः स्वामिता राज्ञो यस्य दान्ता न मन्त्रिणः।
तथाऽविनीता दायादा दुष्टाः पुत्रादयोऽपि च ॥ ९६ ॥

अन्वयः—यस्य राज्ञः मन्त्रिणः न दान्ताः तथा दायादाः अविनीताः तथा पुत्रादयोऽपि च दुष्टाः, तस्य स्वामिता भ्रष्टश्रीः भवति ॥ ९६ ॥

व्याख्या—यस्य = तथाकथितस्य, राज्ञः = नृपस्य, मन्त्रिणः = सचिवाः, न = नहि, दान्ताः = जितेन्द्रियाः, दायादाः = बान्धवाः, अविनीताः = उच्छृङ्खलाः, तथा = तेनैव रूपेण, पुत्रादयोऽपि च = आत्मजादयोऽपि च, दुष्टाः = दुर्वृत्ताः सन्ति, तस्य = राज्ञः, स्वामिता = प्रभुत्वम्, भ्रष्टश्रीः = श्रीहीनो भवति ॥ ९६ ॥

हिन्दी—जिस राजा के मंत्री अजितेन्द्रिय हों, बन्धु-बान्धव उच्छृंखल हों, बेटे भी दुष्ट स्वभाव के हों, उसका स्वामित्व श्रीविहीन होता है ॥ ९६ ॥

भ्रष्टेति। यस्य राज्ञः नृपतेः मन्त्रिणः अमात्याः न दान्ताः न विनयसम्पन्नाः तथा दायादाः बान्धवाः अविनीताः दुष्टस्वभावाः पुत्रादयोऽपि दुष्टाः दुष्टस्वभावाः तस्य राज्ञः स्वामिता राजत्वं भ्रष्टश्रीः श्रीहीना भवतीति यावत्। अतः राज्ञः मन्त्र्यादिभिः विशेषेण विनीतैर्भवितव्यम् इति फलितार्थः॥९६॥

सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः।
विनीतात्मा हि नृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते॥९७॥

अन्वयः—सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः विनीतात्मा हि नृपतिः भूयसीं श्रियम् अश्नुते॥९७॥

व्याख्या—सदा = सर्वदा, अनुरक्ताः = सक्ताः, प्रकृतिः = प्रधानपुरुषः, यस्य नृपस्य सः, प्रजानाम् = जनानाम्, पालने = रक्षणे, तत्परः = निरतः, तथा विनीतात्मा—विनीता = विनम्रा, आत्मा = जीवनम्, यस्यासौ राजा, भूयसीम् = महतीम्, श्रियम् = लक्ष्मीम्, अश्नुते = भुङ्क्ते॥९७॥

हिन्दी—जिस राजा के प्रधान पुरुष उसमें अनुरक्त रहते हैं और राजा सदैव प्रजापालन में तत्पर रहता है, वह महती लक्ष्मी का उपभोग करता है॥९७॥

सदेति। सदा अनुरक्ता प्रकृतिः प्रधानपुरुषः अमात्यादिरित्यर्थः, यस्य सः प्रजानां पालने तत्परः न तु अलस इत्यर्थः, तथा विनीतात्मा विनयी नृपतिः भूयसीं महतीं श्रियम् अश्नुते भुङ्क्ते॥९७॥

प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम्।
ज्ञानाङ्कुशेन कुर्वीत वशमिन्द्रियदन्तिनम्॥९८॥

अन्वयः—प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम् इन्द्रियदन्तिनं ज्ञानाङ्कुशेन वशं कुर्वीत॥९८॥

व्याख्या—प्रकीर्णः = विस्तृतः, विषयः = उपभोगः, एव अरण्यम् = वनम्, तस्मिन्वने, धावन्तम् = विद्रवन्तम्, विप्रमाथिनम् = दुर्दमनीयम्, इन्द्रियदन्तिनम् = इन्द्रियरूपगजम्, ज्ञानाङ्कुशेन—ज्ञानम् = बोधः, एव अङ्कुशम् = सृणिः, तेन वशम् = वशवर्तिनम्, कुर्वीत = विदधीतेति। अत्र रूपकालङ्कारस्तद्यथा—'रूपकं रूपितारोपे विषये निरपह्नवमि' ति। ज्ञानम् अङ्कुशं वा इन्द्रियदन्तिनमित्यत्र उपमानोपमेयोपादानात् सादृश्यलाभस्तेनात्र सादृश्यमूलकमेव तादात्म्यं रूपकमिति॥९८॥

हिन्दी—विस्तृत वासनारूपी जंगल में इन्द्रिय रूपी दुर्दान्त हाथी सदैव उसे मथ डालने को उद्यत रहता है, जिसे राजा अपने ज्ञान रूपी अंकुश से सदैव वश में करता है॥९८॥

इन्द्रियजयमाह—**प्रकीर्णेति**। प्रकीर्णः विस्तृतः विषयः एव अरण्यं तस्मिन् धावन्तं विप्रमाथिनं दुर्दान्तम् इन्द्रियदन्तिनम् इन्द्रियरूपमातङ्गं ज्ञानमेव अङ्कुशः हस्तिशासनदण्डविशेषः तेन वश्यं वशीभूतं कुर्वीत जितेन्द्रियो भवेदित्यर्थः॥९८॥

विषयामिषलोभेन मनः प्रेरयतीन्द्रियम्।
तन्निरुध्यात् प्रयत्नेन जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः॥९९॥

अन्वयः—मनः विषयामिषलोभेन इन्द्रियम् प्रेरयति, प्रयत्नेन तन्निरुध्यात्, तस्मिन् जिते जितेन्द्रियः॥९९॥

व्याख्या—मनः = चित्तम्, विषयाः = अर्था एव, आमिषाणि = पिशितानि, उपभोग्यवस्तूनीत्यर्थः, तेषु लोभेन = प्राप्तीच्छया, इन्द्रियम् = चक्षुरादिकम्, प्रेरयति = प्रेरणां ददाति, प्रयत्नेन = सप्रयासेन, तत् = मनः, निरुद्ध्यात् = अवरुद्ध्यात्, तस्मिन् = मनसि, जिते = वशीकृते, जितेन्द्रियः = इन्द्रियजेता भवति ॥९९॥

हिन्दी—वासना रूपी मांस के लोभ से मन सदैव इन्द्रियों को प्रेरित करता है। अतः इसे प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए। जिसने इस मन को रोक लिया, वही जितेन्द्रिय है ॥९९॥

विषयेति। मनः विषयाः सम्पद एव आमिषाणि भोग्यवस्तूनि तेषु लोभेन लालसया इन्द्रियं चक्षुरादिकं प्रेरयति, अतः प्रयत्नेन यत्नातिशयेन तत् मनः निरुन्ध्यात् निरुद्धं कुर्य्यात्, तस्मिन् मनसि जिते वशीकृते सति जितेन्द्रयः भवति ॥९९॥

एकस्यैव हि योऽशक्तो मनसः सन्निवर्हणे।
महीं सागरपर्य्यन्तां स कथं ह्यवजेष्यति? ॥१००॥

अन्वयः—यः एकस्यैव मनसः सन्निवर्हणे अशक्तः सः सागरपर्यन्तां महीं कथम् अवजेष्यति ॥१००॥

व्याख्या—यः = राजा, एकस्यैव = एकमात्रमेव, मनसः = चित्तस्य, सन्निवर्हणे = वशीकरणे, अशक्तः = असमर्थो भवति, सः = असौ, सागरपर्यन्ताम् = आ सागराम्, महीम् = पृथिवीम्, कथम् = केन प्रकारेण, अवजेष्यति = जेष्यति, अर्थात् कथमपि न जेष्यति ॥१००॥

हिन्दी—जो राजा केवल अपने मन को ही नहीं जीत सकता, वह समुद्रपर्यन्त फैली इस धरती को कैसे जीत सकता है? ॥१००॥

एकस्येति। यः नृपः एकस्यैव मनसः सन्निवर्हणे वशीकरणे अशक्तः असमर्थः, सः सागरपर्य्यन्तां ससागरां महीं कथम् अवजेष्यति वशीकरिष्यति? न कथमपीत्यर्थः। सर्वथा मन एव अग्रे वशीकर्तव्यमिति भावः ॥१००॥

क्रियावसानविरसैर्विषयैरपहारिभिः।
गच्छत्याक्षिप्तहृदयः करीव नृपतिर्ग्रहम् ॥१०१॥

अन्वयः—नृपतिः क्रियावसानविरसैः अपहारिभिः विषयैः आक्षिप्तहृदयः करीव ग्रहं गच्छति ॥१०१॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, क्रियावसानविरसैः—क्रियायाः = व्यापारस्य, अवसानविरसैः = अन्ते दुःखकरैः, अपहारिभिः = आकर्षकैः, विषयैः = उपभोगैः, आक्षिप्तहृदयः—आक्षिप्तम् = आकृष्टम्, हृदयः = चित्तम्, करीव = गजः इव, ग्रहम् = बन्धनम्, गच्छति = याति, विषयासक्तो हि राजा बन्धनमुपैति इति फलितार्थः ॥१०१॥

हिन्दी—भोग के अन्त में नीरस मन को अपनी ओर खींचने वाली वासना से आकृष्टचित्त होकर कोई राजा गजराज की तरह बन्धन में ही तो पड़ता है ॥१०१॥

क्रियेति। नृपतिः क्रियायाः अवसानविरसैः परिणामासुखकरैः अपहारिभिः आपातमनोहारिभिः विषयैः आक्षिप्तम् आकृष्टं हृदयं यस्य तथाभूतः सन् करीव गज इव ग्रहं बन्धनं गच्छति प्राप्नोति। राज्ञा विषयासक्तेन न भाव्यमिति भावः ॥१०१॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एकैकस्त्वलमेतेषां विनाशप्रतिपत्तये ॥ १०२ ॥

अन्वयः—शब्दः स्पर्शः रूपं रसः गन्धश्च पञ्चमः, एतेषां तु एकैकः विनाशप्रतिपत्तये अलम् ।

व्याख्या—शब्दः = श्रवणेन्द्रियग्राह्यविषयः, स्पर्शः = त्वगिन्द्रियभोग्यविषयः, रूपम् = चक्षुरिन्द्रियगोचरमाकृतिः, रसः = रसनेन्द्रियभोग्यविषयः, गन्धश्च = घ्राणेन्द्रियभोग्यश्च, पञ्चमः = पञ्चसंख्यकाः, एतेषां = पूर्वोक्तानाम् तु एकैकः = एकैकोऽपि, विनाशप्रतिपत्तये = विनाशाय, अलम् = समर्थोऽस्ति, किमु यत्र पञ्चेति भावः ॥ १०२ ॥

हिन्दी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचों में एक-एक ही मनुष्य के विनाश के लिए पर्याप्त है ॥ १०२ ॥

शब्द इति। शब्दः श्रवणेन्द्रियभोग्य इत्यर्थः, स्पर्शः त्वगिन्द्रियभोग्य इत्यर्थः, रूपं दर्शनेन्द्रियगोचरं, रसः रसनेन्द्रियविषयः, पञ्चमः गन्धः घ्राणेन्द्रियगम्यश्च एतेषाम् एकैकस्तु एकैकोऽपीत्यर्थः, विनाशप्रतिपत्तये अनर्थोत्पत्तये अलं समर्थः ॥ १०२ ॥

शुचिर्दर्भाङ्कुराहारो विदूरभ्रमणे क्षमः ।
लुब्धकोद्गीतमोहेन मृगो मृगयते वधम् ॥ १०३ ॥

अन्वयः—शुचिर्दर्भाङ्कुराहारः विदूरभ्रमणे क्षमः लुब्धकोद्गीतमोहेन मृगः वधं मृगयते ॥ १०३ ॥

व्याख्या—शुचिः = पवित्रः, दर्भाङ्कुरः = कुशप्ररोहः, एव आहारः = भोजनम्, यस्यासौ, विदूरभ्रमणे = सुदूरविचरणे, क्षमः = समर्थोऽपि, लुब्धकोद्गीतमोहेन—लुब्धकस्य = व्याधस्य, उद्गीतेन = उदितगायनेन, यः मोहः = मुग्धता, तेन, मृगः = हरिणः, वधम् = मरणम्, मृगयते = अन्विष्यति ॥ १०३ ॥

हिन्दी—पवित्र कोमल कुश के अँखुओं को खाने वाला दूर-दूर तक चौकड़ी भरने वाला हिरण भी बहेलिए के गीत से मोहित होकर मौत ही तो पाता है ॥ १०३ ॥

शब्दमुदाहरति—**शुचिरिति**। शुचिः पवित्रः निर्दोषो वा, दर्भाङ्कुरं कुशाङ्कुर एव आहारो यस्य सः तथा विदूरभ्रमणे अतिदूरप्लवने क्षमोऽपि मृगः लुब्धकस्य व्याधस्य उद्गीतेन उच्चैर्गानेन यः मोहः मुग्धता तेन गानश्रवणासक्ततया इत्यर्थः, वधम् आत्मविनाशं मृगयते अन्विच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १०३ ॥

गिरीन्द्रशिखराकारो लीलयोन्मूलितद्रुमः ।
करिणीस्पर्शसम्मोहाद् बन्धनं याति वारणः ॥ १०४ ॥

अन्वयः—गिरीन्द्रशिखराकारः लीलयोन्मूलितद्रुमः करिणीस्पर्शसम्मोहात् वारणः बन्धनं याति ॥ १०४ ॥

व्याख्या—गिरीन्द्रशिखराकारः = शैलशृङ्गतुल्यः, लीलयोन्मूलितद्रुमः—लीलया = क्रीडया, उन्मूलिता = उत्पाटिता, द्रुमाः = वृक्षाः, येन तादृशः, करिणीस्पर्शसम्मोहात्—करिण्याः = हस्तिन्याः, स्पर्शेन = संसर्गेण, यः सम्मोहः = स्नेहः, तस्मात्, वारणः = मदोन्मत्तगजराजः, बन्धनम् = ग्रहम्, याति = गच्छति ॥ १०४ ॥

हिन्दी—शैलशिखर की तरह विशालकाय, खेल-खेल में बड़े-बड़े पेड़ों को ढहा देने वाला गजराज भी हथिनी के संसर्ग-लोभ के कारण बन्धन में पड़ता है ॥ १०४ ॥

स्पर्शमुदाहरति—**गिरीति**। गिरीन्द्रशिखराकारः पर्वतशृङ्गतुल्यः तथा लीलया अवहेलया उन्मूलिता द्रुमा वृक्षाः येन तादृशः वारणः गजोऽपि करिण्याः स्पर्शेन यः सम्मोहः मुग्धता तस्मात् बन्धनं याति प्राप्नोति ॥ १०४ ॥

स्निग्धदीपशिखालोकविलोलितविलोचनः ।
मृत्युमृच्छति सम्मोहात् पतङ्गः सहसा पतन् ॥ १०५ ॥

अन्वयः—पतङ्गः स्निग्धदीपशिखालोकविलोलितविलोचनः सम्मोहात् सहसा पतन् मृत्युम् ऋच्छति ॥ १०५ ॥

व्याख्या—पतङ्गः = पत्रबिल्लः शलभो वा, स्निग्धा = तैलाक्ता, या दीपशिखा = दीपज्वाला, तस्या आलोकेन = प्रकाशेन, विलोलिते = विमुग्धे, विलोचने = नयने, यस्य तथाभूतः सन्, सम्मोहात् = प्रेमोन्मादात्, सहसा = हठात्, पतन् = च्यवन्, दीपशिखायामुपरि, मृत्युम् = मरणम्, ऋच्छति = वरयति ॥ १०५ ॥

हिन्दी—दीप की सुन्दर लौ के आलोक से चंचल आँखोंवाले फतिंगे उसके रूप से मुग्ध होकर, उस पर गिरकर अपनी जान ही तो गँवाते हैं ॥ १०५ ॥

रूपमुदाहरति—**स्निग्धेति**। पतङ्गः पक्षवान् कीटविशेषः स्निग्धा या दीपशिखा तस्या आलोकेन विलोलिते विमोहिते विलोचने नेत्रे यस्य तथाभूतः सन् सम्मोहात् सहसा पतन् दीपशिखायामिति शेषः, मृत्युम् ऋच्छति प्राप्नोति ॥ १०५ ॥

अगाधसलिले मग्नो दूरेऽपि दासतो वसन् ।
मीनस्तु सामिषं लोहमास्वादयति मृत्यवे ॥ १०६ ॥

अन्वयः—दासतः दूरे वसन् अगाधसलिले मग्नः मीनस्तु सामिषं लोहं मृत्यवे आस्वादयति ॥ १०६ ॥

व्याख्या—दासतः = धीवरात्, दूरे = अन्तर्वर्त्तिनि, वसन् = निवसन्, अगाधे = अतिगम्भीरे, सलिले = जले, मग्नः = जलान्तःप्रविष्टः, मीनस्तु = मत्स्यस्तु, सामिषम् = मांसयुक्तम्, लोहम् = लौहकण्टकम्, मृत्यवे = मरणाय, आस्वादयति = रसास्वादनं करोति ॥ १०६ ॥

हिन्दी—मछुवे से दूर अगाध सागर के जल में रहने वाली मछलियाँ भी अंकुशी में लिपटे मांस का चटखारें भरने के लिए ही तो मौत के मुँह में चली जाती हैं ॥ १०६ ॥

रसमुदाहरति—**अगाधेति**। दासतः कैवर्तस्य दूरे दूरवर्तिनि अगाधे अतलस्पर्शसलिले वसन् मीनस्तु मृत्यवे आत्मना नाशाय सामिषम् आमिषयुक्तं लोहं वडिशम् आस्वादयति ॥ १०६ ॥

उत्कर्तितुं समर्थोऽपि गन्तुं चैव सपक्षकः ।
द्विरेफो गन्धलोभेन कमले याति बन्धनम् ॥ १०७ ॥

अन्वयः—द्विरेफः उत्कर्तितुं समर्थोऽपि सपक्षकः गन्तुं च गन्धलोभेन कमले बन्धनं याति ॥ १०७ ॥

व्याख्या—द्विरेफः = भ्रमरः, उत्कर्तितुम् = कमलदलकर्तनाय, समर्थोऽपि = सक्षमोऽपि, तथा सपक्षकः = पक्षयुक्तोऽपि, गन्तुम् = उड्डीयान्यत्र पलायितुं सक्षमोऽपि, गन्धलोभेन = पद्मपरागलिप्सया, कमले = पद्मे, बन्धने = प्रतिबन्धे, याति = प्राप्नोति ॥ १०७ ॥

हिन्दी—भौंरा कमलपंखुड़ियों को काटकर उड़ सकता है, किन्तु कमल की गंध के लोभ से उसकी पंखुडियाँ बन्द होने पर स्वयं बन्धन कबूल कर लेता है ॥ १०७ ॥

गन्धमुदाहरति—**उत्कर्तितुमिति**। द्विरेफः भ्रमरः उत्कर्तितुं दशनेन कर्तितुं समर्थः तथा सपक्षकः पक्षसहितः उड्यनसमर्थोऽपीत्यर्थः, ससहायोऽपीति ध्वन्यते। गन्धलोभेन कमले पद्मे बन्धनं याति लभते ॥ १०७ ॥

एकैकशो विनिघ्नन्ति विषया विषसन्निभाः ।
किं पुनः पञ्च मिलिताः न कथं नाशयन्ति हि ॥ १०८ ॥

अन्वयः—विषसन्निभाः विषयाः एकैकशः विनिघ्नन्ति, मिलिताः पञ्च किं पुनः कथं न नाशयन्ति हि ? ॥ १०८ ॥

व्याख्या—विषसन्निभाः = हालाहलतुल्याः, विषयाः = शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेन्द्रियाः, एकैकशः = एकैकमपि, विनिघ्नन्ति = विनाशयन्ति, मिलिताः = सम्मिलिताः, पञ्च = शब्दादयः, किं पुनः = पुनः का कथेति ? कथम् = केन प्रकारेण, न = नहि, नाशयन्ति = विनष्टं कुर्वन्ति ? विनाशयन्त्येवेति, हिशब्दोऽत्र पादपूर्त्यर्थमेवेति ॥ १०८ ॥

हिन्दी—विषतुल्य ये विषय अकेले-अकेले भी जान लेता है; जहाँ शब्द-स्पर्शादि ये पाँचों एक साथ मिले हैं, वहाँ पूछना ही क्या है ? ॥ १०८ ॥

इन्द्रियमुदाहरति—**एकैकश इति**। विषसन्निभाः गरलसदृशाः विषयाः भोग्यवस्तूनि एकैकशः विनिघ्नन्ति नाशयन्ति मिलिताः पञ्च शब्दादय इत्यर्थः, किं पुनः ? कथं न नाशयन्ति हि ? अवश्यमेव नाशयन्तीत्यर्थः। हिशब्दः अवधारणे ॥ १०८ ॥

द्यूतं स्त्री मद्यमेवैतत् त्रितयं बह्वनर्थकृत् ।
अयुक्तं युक्तियुक्तं हि धनपुत्रमतिप्रदम् ॥ १०९ ॥

अन्वयः—द्यूतं स्त्री मद्यम् अयुक्तम्, एतत् त्रितयं बह्वनर्थकृत्, युक्तियुक्तं हि धनपुत्रमतिप्रदम् ॥ १०९ ॥

व्याख्या—द्यूतम् = पणनम्, स्त्री = नारी, मद्यम् = सुरा, अयुक्तम् = अनुचितम्, एतत् त्रितयम् = सुरासुन्दरीमधूनि, तानि बह्वनर्थकृत्—बहूनाम् = प्रचूराणाम्, अनर्थानाम् = अनिष्टाणाम्, कृत् = कारकम्, युक्तियुक्तम् = उपयुक्तसेवनम्, हि = इति निश्चयेन, धनपुत्रमतिप्रदम् = सम्पत्तिसुतबुद्धिप्रदं भवति ॥ १०९ ॥

हिन्दी—सुरा, सुन्दरी और जुए का अत्यधिक सेवन बड़ा हानिकर तो होता ही है तथा इनका उचित मात्रा में सेवन करने पर जुए से धन, स्त्री से पुत्र तथा मदिरा से बुद्धि बढ़ती है ॥ १०९ ॥

यथाक्रमेण व्यसनदोषं वर्णयिष्यन्, प्रथमं द्यूतादित्रिकमाह—**द्यूतमिति**। द्यूतं देवनं स्त्री तथा मद्यम् अयुक्तम् अनुचितम् अयथासेवितमित्यर्थः, एतत् त्रितयं बहूनाम् अनर्थानां कृत् कारकं युक्तियुक्तं यथायथं सेवितं धनं पुत्रं मतिञ्च यथाक्रमेण प्रददातीति तथोक्तं भवति ॥ १०९ ॥

धर्मपुत्रनलाद्यास्तु सुद्यूतेन विनाशिताः।
सकापट्यं धनायालं द्यूतं भवति तद्विदाम्॥ ११० ॥

अन्वयः—धर्मपुत्रनलाद्यास्तु सुद्यूतेन विनाशिताः। तद्विदां सकापट्यं द्यूतं धनायालं भवति ॥ ११० ॥

व्याख्या—धर्मपुत्रः = युधिष्ठरः, तथा नलः = निषधाधिपतिः, आदिर्येषां ते तु, सुद्यूतेन = सहजपणनेन, विनाशिताः = राज्यात् भ्रंशिताः, अतः तद्विदाम् = द्यूतक्रीडानिपुणानाम्, सकापट्यम् = छलछद्मयुक्तम्, द्यूतम् = पणनम्, धनाय = अर्थलाभाय, अलम् = पर्याप्तम्, भवति = याति ॥

हिन्दी—जुआ खेलने में अनभिज्ञ युधिष्ठिर और नलादि राजे को काफी हानि उठानी पड़ी। किन्तु जुआ खेलने में निपुण लोगों को इससे काफी धन भी मिलता है ॥ ११० ॥

स्त्रीणां नामापि संह्लादि विकरोत्येव मानसम्।
किं पुनर्दर्शनं तासां बिलासोल्लासितभ्रुवाम्॥ १११ ॥

अन्वयः—स्त्रीणां नामापि संह्लादि मानसं विकरोत्येव, तासां विलासोल्लासितभ्रुवां दर्शनं किं पुनः? ॥ १११ ॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = नारीणाम्, नामाऽपि = नामोच्चारणमपि, संह्लादि = आह्लादजनकं सत्, मानसम् = चित्तम्, विकरोत्येव = विकारमुत्पादयत्येव, तासाम् = विलासिनीनाम्, विलासोल्लासितभ्रुवाम्—विलासेन = विभ्रमेण, उल्लासितौ = आनन्दितौ, भ्रुवौ = भ्रूलते, यासां तासां स्त्रीणाम्, दर्शनम् = साक्षात्कारम्, किं पुनः = पुनः का कथेति ॥ १११ ॥

हिन्दी—नारियों के नाम का उच्चारण भी मन में गुदगुदी पैदा कर उन्हें जब विकृत कर देता हो तो फिर हाव-भावभरी प्रसन्न भौंहों वाली उन सुन्दरियों के दर्शन का भला पूछना ही क्या? ॥ १११ ॥

स्त्रीमुदाहरति—**स्त्रीणामिति**। स्त्रीणां नामापि नामोच्चारणमपि संह्लादि आनन्दजनकं सत् मानसं विकरोत्येव, विलासेन उल्लासितौ भ्रुवौ यासां तासां स्त्रीणां दर्शनं किं पुनः? मानसं विकरोतीति किं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १११ ॥

रहःप्रचारकुशला मृदुगद्गदभाषिणी।
कं न नारी वशीकुर्य्यान्नरं रक्तान्तलोचना? ॥ ११२ ॥

अन्वयः—रहःप्रचारकुशलाः मृदुगद्गदभाषिणी रक्तान्तलोचना नारी कं नरं न वशीकुर्यात् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—रहसि = एकान्ते, यः प्रचार = सञ्चरणम्, तत्र कुशलाः = चुतुराः, मृदुगद्गदभाषिणी = श्रुतिमधुरप्रहृष्टवादिनी, रक्तान्तलोचना—रक्तान्ते = रञ्जितोपान्ते, लोचने = नेत्रे, यस्यास्तादृशी नारी = स्त्री, कं नरम् = पुरुषम्, न = नहि, वशीकुर्यात् = स्वायत्तीकुर्यात्? ॥ ११२ ॥

हिन्दी—एकान्त में मिलने में चतुर, प्रेमातिरेक में भरे गले से बोलने में निपुण और मुग्ध मनोहर आँखों वाली नारी भला किस नर को अपनी ओर खींच नहीं सकती? ॥ ११२ ॥

रह इति। रहसि एकान्ते यः प्रचरः प्रचरणं तत्र कुशलाः निपुणाः मृदुगद्गदभाषिणी तथा रक्तान्ते लोचने यस्याः तादृशी नारी कं नरं न वशीकुर्य्यात् अपितु सर्वमेवेत्यर्थः ॥ ११२ ॥

मुनेरपि मनोऽवश्यं सरागं कुरुतेऽङ्गना।
जितेन्द्रियस्य का वार्त्ता किं पुनश्चाजितात्मनाम्॥ ११३॥

अन्वयः—अङ्गना जितेन्द्रियस्य मुनेरपि मनः अवश्यं सरागं कुरुते, का वार्ता अजितात्मनां किं पुनः? ॥ ११३ ॥

व्याख्या—अङ्गना = सुवदना नारी, जितेन्द्रियस्य = वशीकृतेन्द्रियस्य, मुनेरपि = तपस्विनोऽपि, मनः = चित्तम्, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, सरागम् = आसक्तियुक्तम्, कुरुते, का वार्त्ता = का कथा? अजितात्मनाम् = अजितेन्द्रियसामान्यजनानाम्, किमिति प्रश्ने पुनः? ॥ ११३ ॥

हिन्दी—इन्द्रियजेता मुनियों के मन को भी नारी मलिन कर देती हैं तो फिर विषयासक्त सामान्य जनों का पूछना ही क्या? ॥ ११३ ॥

मुनेरिति। अङ्गना प्रशस्ताङ्गवती नारी जितेन्द्रियस्य मुनेरपि मनः अवश्यं सरागं कुरुते, का वार्ता किं वक्तव्यम्, अजितात्मनाम् अजितेन्द्रियाणां किं पुनः॥ ११३ ॥

व्यायच्छन्तश्च बहवः स्त्रीषु नाशं गता अमी।
इन्द्रदण्डकनहुषरावणाद्याः सदा ह्यतः॥ ११४॥

अन्वयः–अतः सदा स्त्रीषु व्यायच्छन्तः अमी इन्द्रदण्डकनहुषरावणाद्याः बहवः नाशं गताः॥ ११४ ॥

व्याख्या—अतः = अस्मात् कारणात्, सदा = सर्वदा, स्त्रीषु = परस्त्रीषु, व्यायच्छन्ताः = आसक्ंति कुर्वन्तः, अमी = एते, इन्द्रदण्डकनहुषरावणाद्याः = बहवः राजानः, नाशम् = विनाशम्, गताः = प्राप्ताः॥ ११४ ॥

हिन्दी—बहुत सारे बलशाली राजे परस्त्रीप्रेम के कारण ही विनष्ट हुए हैं। इनमें इन्द्र, नहुष, दण्डक और रावण आदि प्रसिद्ध हैं॥ ११४ ॥

व्यायच्छन्त इति। अतः कारणात् सदा स्त्रीषु व्यायच्छन्तः आसक्तिं कुर्वन्त अमी इन्द्रदण्डकनहुषरावणाद्या बहवः राजानः नाशं गताः हि। हिशब्दः अवधारणे। अहल्याहरणेन इन्द्रस्य विपत्तिः सञ्जाता। दण्डकराज्ञा भार्गवाश्रमे भार्गवकया अरजाया बलाद्धरणम्। ततो भार्गवदत्तेन शापेन सप्तरात्रेण भस्मसाद्भूतो दण्डकस्य विषयः। सपुत्रवलवाहनो दण्डकोऽपि मृतः। दण्डककथाया विस्तरस्तु वाल्मीकिरामायणस्य उत्तरकाण्डे अशीतिसर्गे द्रष्टव्यः। शचीकामनया च नहुषस्य अगस्त्यशापेन अजगरसर्परूपेण मर्त्यलोके पतनम्। विस्तरस्तु महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तदशाध्याये द्रष्टव्यः। सीताहरणेन रावणस्य ध्वंसस्तु रामायणे द्रष्टव्यः॥ ११४ ॥

टिप्पणी—अहल्याहरण के कारण इन्द्र पर विपत्ति का पहाड़ टूटा।

एक दिन जब महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे, उपयुक्त अवसर समझ कर कामी शचीपति इन्द्र ने अहल्या के साथ कुकर्म किया। अहल्या गौतम की पत्नी थीं। रामायण के अनुसार अहल्या सबसे पहली पत्नी थी, जिसे ब्रह्मा ने उत्पन्न कर मुनि गौतम को दे दिया। गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र ने उसे सत्पथ से फुसला कर धोखा दिया। गौतम का वेश धारण कर आये हुए इन्द्र को पहचान कर भी उस दुर्बुद्धि नारी ने उसके साथ संगम किया। अहल्या से समागम कर जब इन्द्र भाग रहा था उस कुटिया से, सहसा मुनि गौतम ने उस छद्मवेशी इन्द्र को पहचान कर शाप दे दिया—'दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण कर यह पापकर्म किया है;

अतः तुम अण्डकोश रहित हो जायेगा।' मुनि के इतना कहते ही इन्द्र के दोनों अण्डकोश उसी क्षण धरती पर गिर गये। दूसरी कथा के अनुसार वह इन्द्र को जानती थी। इन्द्र के अनुराग तथा नम्रता के वशीभूत होकर उसकी चापलूसी का वह शिकार बन गयी थी। इसके अतिरिक्त एक और कहानी है, जिसके अनुसार इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता प्राप्त की। चन्द्रमा ने मुर्गा बनकर आधी रात को बाँग दे दी। इस बाँग ने गौतम को अपने प्रातःकालीन नित्य कृत्य करने के लिए जगा दिया। इन्द्र ने कुटिया में प्रवेश कर गौतम का स्थान ग्रहण किया। जब गौतम को अहल्या के पथभ्रष्ट होने का ज्ञान हुआ तब उन्होंने दोनों को शाप दे दिया।

नहुष—राजा नहुष इन्द्राणी की कामना से मुनि अगस्त्य के श्राप से अजगर बन धरती पर गिरा। इस कथा का वर्णन किया जा चुका है। विशेष जानकारी के लिए महाभारत के उद्योगपर्व में १७वाँ अध्याय देखना चाहिए।

दण्डक—एक बार राजा दण्डक चैत के मनोरम महीने में आचार्य शुक्र के आश्रम पर आया। राजा दण्डक परम प्रतापी, बलशाली और शुक्राचार्य का शिष्य था। वहाँ शुक्राचार्य की सर्वोत्तम सुन्दरी कन्या अरजा वनप्रान्त में घूम रही थी। अरजा के रूप की इस भूतल में कहीं तुलना न थी। उसे देखते ही दण्डक कामासक्त हो गया। मोहान्ध उस कामी राजा ने उससे रतिक्रिया की याचना की। डरी-सहमी अरजा ने उसे समझाया—मैं पुण्यकर्मा शुक्रदेव की ज्येष्ठ पुत्री हूँ। मैं कुमारी कन्या हूँ, तुम्हारे गुरु की पुत्री हूँ। मेरा बलपूर्वक स्पर्श न करो। मेरे पिता शाप देकर तुम्हें भस्म कर देंगे। पर उस कामी ने अरजा की एक न सुनी और उसके साथ बलात्कार किया। जब मुनि शुक्र को यह पता चला तब क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—'पापी, दुर्बुद्धि वह नरेश सात रात के भीतर ही पुत्र, सैन्य और सवारियों सहित विनष्ट हो जाय।' और ऐसा ही हुआ भी। विशेष जानकारी के लिए के लिए द्रष्टव्य वा॰ रा॰ उ॰ का॰ ८१ सर्ग।

रावण—सर्वविदित कथा—एक प्रसिद्ध राक्षस, लंका का राजा, राक्षसों का मुखिया था। उसके पिता का नाम विश्रवा तथा माता का नाम केशिनी या कैकशी था। वह कुबेर का सौतेला भाई था। पुलस्त्य ऋषि का पौत्र होने के कारण वह पौलस्त्य भी कहलाता था। मूल रूप से लंका पर पहले कुबेर का अधिकार था। रावण ने उसे वहाँ से भगाकर अपनी राजधानी बनाई। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। कुछ लोगों के अनुसार उसके पैर भी चार थें। ऐसा वर्णन मिलता है कि रावण ने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए दस हजार वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की और प्रति हजार वर्ष के पश्चात् अपना एक-एक सिर ब्रह्मा के सम्मुख प्रस्तुत किया। अपना नौ सिर काटकर चढ़ाने के बाद जब वह अपना अन्तिम सिर काटकर ब्रह्मा को चढ़ाने लगा तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि उसकी मृत्यु न देवता के द्वारा होगी और न नर के द्वारा। इस शक्ति से सम्पन्न होकर वह अत्याचारी बन गया। देवता भी उसके घरेलू नौकरों की भाँति उसकी सेवा करने लगे। एक बार उसने कैलास पर्वत उठाने का प्रयास किया, किन्तु शिव ने पर्वत को ऐसा दबाया कि उसकी अंगुलियाँ कुचल गईं।

राम जब अपना निर्वासित जीवन जंगल में बिता रहे थे—एक दिन रावण ने उनकी पत्नी सीता पर आसक्त होकर कपट प्रबन्ध से उनका अपहरण कर लिया। सीता से अपनी पत्नी बन जाने का अनुरोध करने लगा, किन्तु उसने अनुरोध को ठुकरा दिया। उसके यहाँ रहती

हुई भी पतिव्रता, सती, साध्वी बनी रही। अन्त में राम ने अपनी वानर-सेना की सहायता से लंका पर चढ़ाई की और रावण और उसकी सेना का काम तमाम किया।

अतत्परनरस्यैव स्त्री सुखाय भवेत् सदा।
साहायिनी गृहकृत्ये तां विनान्या न विद्यते ॥ ११५ ॥

अन्वयः—अतत्परनरस्यैव सदा स्त्री सुखाय भवेत्। यतः तां विना अन्या गृहकृत्ये साहायिनी न विद्यते ॥ ११५ ॥

व्याख्या—अतत्परस्य = अनासक्तस्य, नरस्य = जनस्य, एव इति निश्चयेन, सदा = सर्वदा, स्त्री = वनिता, सुखाय = हर्षाय, भवेत् = स्यात्, यतः, ताम् = वामाम्, विना = विहाय, अन्या = काप्यपरा, गृहकृत्ये = गृहकार्ये, सन्तानोत्पादने, तेषां लालने पालने च, साहायिनी = साहाय्यकारिणी, न = नहि, विद्यते = अस्ति ॥ ११५ ॥

हिन्दी—अनासक्त मनुष्य के लिए ही स्त्री सदैव सुख देने वाली होती है, क्योंकि गृहकार्य में नारी के बिना कोई दूसरी सहायिका नहीं हो सकती ॥ ११५ ॥

अतत्परस्येति। अतत्परस्य अनासक्तस्य स्त्री सदा सुखाय भवेत्, यतः तां विना अन्या गृह्यकृत्ये गार्हस्थकार्य्ये सन्तानोत्पादनलालनपालनादिरूपे साहायिनी साहाय्यकारिणी न विद्यते ॥११५॥

अतिमद्यं हि पिबतो बुद्धिलोपो भवेत् किल।
प्रतिभां बुद्धिवैशद्यं धैर्य्यं चित्तविनिश्चयम् ॥ ११६ ॥
तनोति मात्रया पीतं मद्यमन्यद् विनाशकृत्।
कामक्रोधौ मद्यतमौ नियोक्तव्यौ यथोचितम् ॥ ११७ ॥

अन्वयः—अतिमद्यं पिबतः हि बुद्धिलोपो भवेत् किल। मात्रया पीतं मद्यं प्रतिभां बुद्धिवैशद्यं धैर्यं चित्तविनिश्चयं तनोति, अन्यद् विनाशकृत्। कामक्रोधौ मद्यतमौ यथोचितं नियोक्तव्यौ ॥ ११६-११७ ॥

व्याख्या—अतिमद्यम् = अत्यधिकसुराम्, पिबतः = पानं कुर्वतो जनस्य, हि = इति निश्चयेन, बुद्धिलोपः = मतिभ्रष्टः, भवेत् = स्यात्, किल = इति सर्वविदितमेव। मात्रया = परिमाणेन, पीतम् = पानं कृतम्, मद्यम् = सुरा, प्रतिभाम् = नवनवोन्मेषशालिनिप्रज्ञाम्, बुद्धिः = मतिः, वैशद्यम् = वैमल्यम्, निर्मलमिति, धैर्यम् = मनःस्थैर्यम्, चित्तविनिश्चयम्—चित्तस्य = अन्तःकरणस्य, विनिश्चयम् = दार्ढ्यञ्च, तनोति = विस्तारयति, अन्यद् = अपरिमितमद्यपानञ्च, विनाशकृत् = विनाशकारकम्भवतीति भावः। एवमेव कामक्रोधौ—कामश्च = विषयाभिलाषश्च, क्रोधश्च = कोपश्च, कामक्रोधौ, मद्यतमौ—माद्यत्याभ्यामिति मद्यौ, अतिशयेन मद्यौ मद्यतमौ = अतिमादकौ, यथोचितम् = यथायोग्यम्, नियोक्तव्यौ = व्यवहार्यौ ॥ ११६-११७ ॥

हिन्दी—बहुत अधिक शराब पीने वाले की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसी मदिरा का नियत मात्रा में सेवन करने से प्रतिभा और बुद्धि का विकास होता है, धैर्य की मात्रा बढ़ जाती है तथा चित्त स्थिर हो जाता है। ठीक शराब की ही तरह काम और क्रोध भी मन को मदोन्मत्त बना देते हैं। अतः इन दोनों का प्रयोग भी यथावसर करना ही श्रेयस्कर होता है ॥ ११६-११७ ॥

मद्यमुदाहरति—**अतिमद्यमिति। तनोतीति।** अतिमद्यं पिबतः जनस्य बुद्धिलोपः भवेत् किल किलेति प्रसिद्धौ। हिशब्दः अवधारणे। मात्रया परिमाणेन पीतं मद्यं प्रतिभां बुद्धितैक्ष्ण्यं बुद्धिवैशद्यं निर्मलां मतिं धैर्य्यं धीरतां चित्तस्य विनिश्चयं स्थिरताञ्च तनोति, पूर्वं युक्तियुक्तं मतिप्रदमित्युक्तम् इह तु तद्विवरणमिति बोद्धव्यम्। अन्यत् अपरिमितमित्यर्थः, मद्यं विनाशकृत् विनाशकमित्यर्थः। कामक्रोधौ माद्यत्याभ्यामिति मद्यौ करणे यप्रत्ययः। अतिशयेन मद्यौ मद्यतमौ अतिमादकौ इत्यर्थः, किन्तु यथोचितं नियोक्तव्यौ व्यवहार्य्यौ न तु अयथोचितमिति भावः॥ ११६-११७॥

कामः प्रजापालने च क्रोधः शत्रुनिवर्हणे।
सेनासन्धारणे लोभो योज्यो राज्ञा जयार्थिना॥ ११८॥

अन्वयः—राज्ञा प्रजापालने कामः च जयार्थिना शुत्रुनिवर्हणे क्रोधः सेनासन्धारणे लोभः योज्यः॥ ११८॥

व्याख्या—राज्ञा = भूपतिना, प्रजापालने = सन्ततिसंरक्षणे वा शासितजनपालने, कामः = विषयाभिलाषः वा आकाङ्क्षा, च = पुनः, जयार्थिना = विजयाभिलाषिणा, शत्रुनिवर्हणे = रिपुसंहरणे, क्रोधः = कोपः, तथा सेनासन्धारणे—सेनानाम् = बलानाम्, सन्धारणे = संरक्षणे, लोभश्च = लिप्सा च, योज्यः = प्रयोक्तव्यः॥ ११८॥

हिन्दी—राजा को संतति-संरक्षण अथवा प्रजापालन के लिए काम का प्रयोग करना चाहिए। विजयी होने के लिए शत्रुसंहारार्थ क्रोध का तथा सैन्य-संरक्षण के लिए लोभ का प्रयोग करना चाहिए॥ ११८॥

काम इति। राज्ञा प्रजापालने सन्तानरक्षणे वा अधिकृतजनपालने कामः योज्यः प्रयोक्तव्यः, तथा जयार्थिना सता शत्रुनिवर्हणे शत्रुपराजये क्रोधः सेनानां सन्धारणे संरक्षणे लोभश्च योज्यः नियोक्तव्य इत्यर्थः॥ ११८॥

परस्त्रीसङ्गमे कामो लोभो नान्यधनेषु च।
स्वप्रजादण्डने क्रोधो नैव धार्य्यो नृपैः कदा॥ ११९॥

अन्वयः—नृपैः कदापि परस्त्रीसङ्गमे कामः अन्यधनेषु च लोभः तथा स्वप्रजादण्डने क्रोधः नैव धार्यः॥ ११९॥

व्याख्या—नृपैः = राजभिः, कदापि = कदाचिदपि, परस्त्रीसङ्गमे = परकीयामैथुने, कामः = सुरताभिलाषः, अन्यधनेषु = परसम्पत्सु, लोभः = लिप्सा, तथा स्वप्रजादण्डने = स्वशासितजनदण्डने, क्रोधः = कोपः, नैव = नास्त्येव, धार्यः = कर्त्तव्यमिति भावः॥ ११९॥

हिन्दी—दूसरों की पत्नी का उपभोग करने के लिए काम, परधन के अपहरण के लिए लोभ तथा अपनी प्रजा को दण्डित करने के लिए क्रोध किसी राजा को कभी नहीं करना चाहिए॥ ११९॥

परस्त्रीति। नृपैः कदापि परस्त्रीसङ्गमे कामः अन्यधनेषु परधनेषु लोभः तथा स्वप्रजानां दण्डने क्रोधः नैव धार्य्यः नैव कर्त्तव्यः॥ ११९॥

किमुच्यते कुटुम्बीति परस्त्रीसङ्गमान्नरः।
स्वप्रजादण्डनाच्छूरो धनिकोऽन्यधनैश्च किम्॥ १२०॥

अन्वयः—नरः परस्त्रीसङ्गमात् किं कुटुम्बी उच्यते ? स्वप्रजादण्डनात् शूरः च अन्यधनैः धनिकः उच्यते किम् ॥१२०॥

व्याख्या—नरः = पुरषः, परस्त्रीसङ्गमात् = परपत्नीसम्भोगात्, किमिति प्रश्ने, कुटुम्बी = गृहस्थः, उच्यते = कथ्यते ? नैवेत्यर्थः। तथा स्वप्रजादण्डनात् = स्वशासितजनदमनात्, शूरः = वीरः, अथवा अन्यधनैः = परसम्पद्भिः, धनिकः = धनवान, उच्यते किम् ? नैवेत्यर्थः॥१२०॥

हिन्दी—परस्त्रीगमन कर क्या कोई गृहस्थ बन सकता है ? अपनी प्रजा को ही दण्डित कर कोई राजा शूर हो सकता है ? दूसरों का धन हड़प कर क्या कोई धनी बन सकता है ? कदापि नहीं॥१२०॥

किमिति। नरः परस्त्रीसङ्गमात् किं कुटुम्बी गृही उच्यते ? नैवेत्यर्थः, तथा स्वप्रजादण्डनात् शूरः बलवान् वा अन्यधनैः परधनैः हृतैरिति शेषः, धनिकः धनवान् किम् उच्यते ? नैवेत्यर्थः॥१२०॥

अरक्षितारं नृपतिं ब्राह्मणं चातपस्विनम्।
धनिकं चाप्रदातारं देवा घ्नन्ति त्यजन्त्यधः॥१२१॥

अन्वयः—देवाः अरक्षितारं नृपतिं च अतपस्विनं ब्राह्मणं च अप्रदातारं धनिकं घ्नन्ति, अधः त्यजन्ति॥१२१॥

व्याख्या—देवाः = सुराः, अरक्षितारम् = प्रजापालनमकुर्वाणम्, नृपतिम् = राजानम्, च = पुनः, अतपस्विनम् = तपोविरतम्, ब्राह्मणम् = विप्रम्, च = पुनः, अप्रदातारम् = दानशून्यम्, धनिकम् = धनिनम्, घ्नन्ति = नाशयन्ति, अधः = नीचैः, त्यजन्ति = कुर्वन्ति॥१२१॥

हिन्दी—प्रजा की रक्षा नहीं करने वाले राजा को, तप नहीं करने वाले ब्राह्मण को तथा दान नहीं देने वाले धनवान् को देवता विनष्ट कर नरक में ढकेल देते हैं॥१२१॥

अरक्षितारमिति। देवाः अरक्षितारं प्रजापालनमकुर्वाणं नृपतिम् अतपस्विनं तपोविरहितं ब्राह्मणं, तथा अप्रदातारं कृपणं धनिकं देवाः घ्नन्ति नाशयन्ति अधः त्यजन्ति कुर्वन्ति च॥१२१॥

स्वामित्वं चैव दातृत्वं धनिकत्वं तपःफलम्।
एनसः फलमर्थित्वं दास्यत्वं च दरिद्रता॥१२२॥

अन्वयः—स्वामित्वं दातृत्वं च धनिकत्वं तपः एव फलम्; तथा अर्थित्वं दास्यत्वं च दरिद्रता एनसः फलम्॥१२२॥

व्याख्या—स्वामित्वम् = प्रभुत्वम्, दातृत्वम् = दानकर्तृत्वम्, च = पुनः, धनिकत्वम् = समृद्धत्वम्, तपः = तपस्यायाः, एव = निश्चयेन, फलम् = परिणामम्, तथा = तेनैव रूपेण, अर्थित्वं = याचकत्वम्, दास्यत्वम् = किङ्करत्वम्, च = पुनः, दरिद्रता = अकिञ्चनत्वम्, एनसः = पापस्य, फलम् = परिणामम्भवति॥१२२॥

हिन्दी—प्रभुता, दान करने की क्षमता और सम्पन्नता—ये सभी तपस्या के फल हैं। याचना, दासता और दरिद्रता—ये सभी पाप के फल हैं॥१२२॥

स्वामित्वमिति। स्वामित्वम् आधिपत्यं दातृत्वं दानशीलत्वं तथा धनिकत्वं धनवत्त्वं तपसः फलं तपोबलेनैव एतानि लभ्यन्ते इति भावः। तथा अर्थित्वं याचकत्वं दासत्वं दासवृत्तिः दरिद्रता निर्धनता च एनसः पापस्य फलं पापेनैवैतानि सम्भवन्तीति भावः॥१२२॥

दृष्ट्वा शास्त्राण्यतश्चित्तं सन्नियम्य यथोचितम्।
कुर्य्यात् नृपः स्ववृत्तं तु परत्रेह सुखाय च॥१२३॥

अन्वयः—अतः नृपः शास्त्राणि दृष्ट्वा चित्तं सन्नियम्य परत्र इह च सुखाय स्ववृत्तिं यथोचितं कुर्यात् ॥१२३॥

व्याख्या—अतः = पूर्वोक्तकारणात्, शास्त्राणि = धर्मग्रन्थान्, दृष्ट्वा = अवलोक्य वा विचिन्त्य, चित्तम् = मनः, सन्नियम्य = सम्यक्प्रकारेण निगृह्य अर्थात् वशमानीय, परत्र = परलोके, इह च = अस्मिन् संसारे च, सुखाय = सुखप्राप्तये, स्ववृत्तम् = स्वकीयाचरणम्, यथोचितम् = यथायोग्यम्, कुर्यात् = अनुष्ठेयात् ॥१२३॥

हिन्दी—शास्त्रचिन्तन के बाद अपने मन को नियंत्रित कर संसार और संसार से परे सुख पाने की इच्छा से राजा को यथोचित आचरण करना चाहिए॥१२३॥

दृष्टेति। अतः कारणात् नृपः शास्त्राणि दृष्ट्वा समालोच्य चित्तं सन्नियम्य वशीकृत्य परत्र इह च सुखाय यथोचितं स्ववृत्तं स्वकर्तव्यं कार्य्यं कुर्य्यात्॥१२३॥

दुष्टनिग्रहणं दानं प्रजायाः परिपालनम्।
यजनं राजसूयादेः कोशानां न्यायतोऽर्जनम्॥१२४॥
करदीकरणं राज्ञां रिपूणां परिमर्दनम्।
भूमेरुपार्जनं भूयो राजवृत्तं तु चाष्टधा॥१२५॥

अन्वयः—राजवृत्तं तु अष्टधा; तद्यथा—दुष्टनिग्रहणम्, दानम्, प्रजायाः परिपालनं, राजसूयादेः यजनम्, न्यायतः कोशानाम् अर्जनं, राज्ञां करदीकरणं, रिपूणां परिमर्दनं, भूयः भूमेः उपार्जनं चेति॥१२४-१२५॥

व्याख्या—राजवृत्तम्—राज्ञः = नृपस्य, वृत्तम् = आचरणं कर्त्तव्यं वा, तु, अष्टधा = अष्टप्रकारकम्, तद्यथा—दुष्टनिग्रहणम्—दुष्टानाम् = दुर्जनानाम्, निग्रहणम् = नियन्त्रणम्, दानम् = त्यागः उत्सर्जनञ्च, प्रजायाः = शासितजनानाम्, परिपालनम् = संरक्षणम्, राजसूयादेः—राजसूयः = नृपाध्वरः, यज्ञः = यागः, आदौ यस्य तादृशस्य यज्ञस्य, यजनम् = अनुष्ठानम्, न्यायतः = नयेन, कोशानाम् = राजकीयसम्पदाम्, अर्जनम् = उपार्जनम् अभिवर्द्धनञ्च, राज्ञाम् = नृपानाम्, करदीकरणम् = राजस्वप्रदानेन स्वायत्तीकरणम्, रिपूणाम् = शत्रूणाम्, परिमर्दनम् = पराभवम्, भूयः = पुनः, भूमेः = धरायाः, उपार्जनम् = धनादिकस्याहरणम्, चेति॥१२४-१२५॥

हिन्दी—दुष्टों का दमन, दान, प्रजापालन, राजसूय प्रभृति यज्ञों का अनुष्ठान, न्यायपूर्वक कोश की वृद्धि, अन्य राजाओं से कर वसूल कर अपने अधीन बनाना, शत्रुओं को पराजित करना तथा राज्य-सीमा को बढाना—ये आठ प्रकार के आचरण राजा के लिए उचित हैं॥१२४-१२५॥

किं तत् स्ववृत्तमित्याह—**दुष्टेति**। **करदीकरणमिति**। राजवृत्तम् अष्टधा; यथा दुष्टानां निग्रहणं, दानं, प्रजायाः परिपालनं, राजसूयादेर्यज्ञस्य यजनं, कोशानां धनानां न्यायतः यथान्यायम् अर्जनं, राज्ञां करदीकरणं करदानेन अधीनीकरणं, रिपूणां शत्रूणां परिमर्दनं पराजयनं, तथा भूमेः भूयः प्राचुर्य्येण उपार्जनम्॥१२४-१२५॥

न वर्द्धितं बलं यैस्तु न भूपाः करदीकृताः ।
न प्रजाः पालिताः सम्यक् ते वै षण्ढतिला नृपाः ॥ १२६ ॥

अन्वयः—यैः तु बलं न वर्द्धितं, भूपाः न करदीकृताः, न सम्यक् प्रजाः पालिताः; ते नृपाः वै षण्ढतिलाः ॥ १२६ ॥

व्याख्या—यैः = नृपैः, तु, बलम् = सैन्यम्, न = नहि, वर्द्धितम् = संवर्द्धितम्, भूपाः = अन्यभूपतयः, न = नहि, करदीकृताः = करदानेन वशीकृताः, न = नहि, सम्यक् = सुष्ठुतया, प्रजाः = जनाः, पालिताः = सम्पोषिताः, ते = एवंविधाः, नृपाः = राजानः, वै = इति निश्चयेन, षण्ढतिलाः = नपुंसकतिलाः, कर्त्तव्यहीनाः ॥ १२६ ॥

हिन्दी—जिस राजा ने अपनी सेना न बढाई, अन्य राजाओं को कर देने के लिए विवश नहीं किया और प्रजा का ठीक ढंग से पालन नहीं किया, वह (तेल रहित) नपुसंक तिल की तरह तुच्छ है ॥ १२६ ॥

नेति। यैः बलं सैन्यं न वर्द्धितं भूपाः नृपाः न करदीकृताः करदानेन न वशीकृताः तथा सम्यक् प्रजाः न पालिताः, ते नृपाः षण्ढतिलाः नपुंसकतिलाः अकर्मण्या इत्यर्थः ॥ १२६ ॥

प्रजा सूद्विजते यस्माद् यत्कर्म परिनिन्दति ।
त्यज्यते धनिकैर्यस्तु गुणिभिस्तु नृपाधमः ॥ १२७ ॥

अन्वयः—प्रजा यस्मात् सूद्विजे यत् कर्म परिनिन्दति तथा गुणिभिः तु धनिकैः यः त्यज्यते, सः नृपाधमः ॥ १२७ ॥

व्याख्या—प्रजा = जनाः, यस्मात् = नृपात्, सूद्विजते = अतिशयेन व्याकुलतामवाप्नोति, यत् कर्म = यस्य कर्म, परिनिन्दति = अधिक्षिपति, तथा गुणिभिः = कुशलजनैः, तु = पुनः, धनिकैः = सम्पन्नजनैः, यः = राजा, त्यज्यते = संसर्गः न क्रियते, सः = असौ, नृपः = राजा, अधमः = नीचो भवति ॥ १२७ ॥

हिन्दी—जिस राजा से प्रजा परेशान हो, जिसके कार्य की लोग निन्दा करे और जिसके संसर्ग को धनवान् एवं गुणीजन छोड़ दे—ऐसा राजा नीच होता है ॥ १२७ ॥

प्रजेति। प्रजा यस्मात् सूद्विजते अतिशयेन उद्वेगं प्राप्नोति, यत्कर्म यस्य कर्म परिनिन्दति च तथा गुणिभिर्गुणवद्भिः विद्वद्भिरित्यर्थः, धनिभिश्च यः त्यज्यते यत्संसर्गः न क्रियते इत्यर्थः, स नृपाधमः ॥ १२७ ॥

नटगायकगणिकामल्लषण्ढाल्पजातिषु ।
योऽतिसक्तो नृपो निन्द्यः स हि शत्रुमुखे स्थितः ॥ १२८ ॥

अन्वयः—यः नृपः नटगायकगणिकामल्लषण्ढाल्पजातिषु अतिसक्तः सः निन्द्यः हि शत्रुमुखे स्थितः ॥ १२८ ॥

व्याख्या—यः = यत्प्रकारकः, नृपः = राजा, नटगायकगणिकामल्लषण्ढाल्पजातिषु—नटाः = शैलूषाः, गायकाः = गेष्णाः, गणिकाः = पण्यस्त्रियः, मल्लाः = योद्धारः, षण्ढाः = नपुंसकाः, तथा अल्पा = नीचा, जातिः = वर्णः, येषां तादृशाः जनास्तेषु अतिसक्तः = अतिशयेनासक्तः, सः = असौ, निन्द्यः = निन्दनीयः सन्, हि = इति निश्चयेन, शत्रूणाम् = अरीणाम्, मुखे = आनने, स्थितः = तिष्ठति ॥ १२८ ॥

हिन्दी—जो राजा नट, गवैया, गणिका, भाँड, पहलवान तथा नीच जाति के लोगों में अति आसक्ति रखता है, वह निन्दनीय तो होता ही है; साथ ही वह शीघ्र शत्रु की चपेट में पड़ जाता है ॥ १२८ ॥

नटेति। यः नृपः, नटाः ताण्डवव्यवसायिनः, गायकाः सङ्गीतजीविनः गणिकाः वेश्याः मल्लाः व्यायामिनः षण्ढाः क्लीवाः तथा अल्पा क्षुद्रा जातिर्येषां तादृशाः नीचजातय इत्यर्थः, तेषु अतिसक्तः अत्यासक्तः स निन्द्यः निन्दनीयः सन् हि निश्चयेन शत्रूणां मुखे स्थितः तिष्ठतीत्यर्थः, वर्त्तमाने क्तप्रत्ययः ॥ १२८ ॥

बुद्धिमन्तं सदा द्वेष्टि मोदते वञ्चकैः सह।
स्वं दुर्गुणं नैव वेत्ति स्वात्मनाशाय स नृपः ॥ १२९ ॥

अन्वयः—यः नृपः सदा बुद्धिमन्तं द्वेष्टि, वञ्चकैः सह मोदते, स्वं दुर्गुणं नैव वेत्ति; सः स्वात्मनाशाय भवति ॥ १२९ ॥

व्याख्या—यो नृपः = राजा, सदा = सर्वदा, बुद्धिमन्तम् = ज्ञानवन्तम्, द्वेष्टि = विद्वेषं करोति, वञ्चकैः = प्रतारकैः, सह = सार्द्धम्, मोदते = आनन्दं लभते, स्वम् = निजम्, दुर्गुणम् = दोषम्, नैव = नास्त्येव, वेत्ति = जानाति, सः = असौ, स्वात्मनाशाय = आत्मविनाशाय, भवति ॥ १२९ ॥

हिन्दी—सदैव बुद्धिमानों से वैर, धूर्तों से दोस्ती तथा अपने अवगुणों से अनभिज्ञ राजा अपनी कब्र अपने हाथों से खोदता है ॥ १२९ ॥

बुद्धिमन्तमिति। यः नृपः सदा बुद्धिमन्तं सुधियं द्वेष्टि, वञ्चकैः धूर्तैः सह मोदते आमोदं करोति, तथा स्वं दुर्गुणं दोषं नैव वेत्ति नावबुध्यते, सः स्वात्मनाशाय निजदेहनाशाय भवतीत्यर्थः, सः अचिराद् भ्रश्यते इति भावः ॥ १२९ ॥

नापराधं हि क्षमते प्रदण्डो धनहारकः।
स्वदुर्गुणश्रवणतो लोकानां परिपीडकः ॥ १३० ॥
नृपो यदा तदा लोकः क्षुभ्यते भिद्यते यतः।
गूढचारैः श्रावयित्वा स्ववृत्तं दूषयन्ति के ॥ १३१ ॥
भूषयन्ति च कैर्भावैरमात्याद्याश्च तद्विदः।
मयि कीदृक् च सम्प्रीतिः केषामप्रीतिरेव वा ॥ १३२ ॥
ममागुणैर्गुणैर्वापि गूढं संश्रुत्य चाखिलम्।
चारैः स्वदुर्गुणं ज्ञात्वा लोकतः सर्वदा नृपः ॥ १३३ ॥
सुकीर्त्यै सन्त्यजेन्नित्यं नावमन्येत वै प्रजाः।
लोको निन्दन्ति राजंस्त्वां चारैः संश्रावितो यदि ॥ १३४ ॥
कोपं करोति दौरात्म्यादात्मदुर्गुणलोपकः।
सीता साध्व्यपि रामेण त्यक्ता लोकापवादतः ॥ १३५ ॥
शक्तेनापि हि न धृतो दण्डोऽल्पो रजके क्वचित्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः राजादत्ताभयोऽपि च ॥ १३६ ॥

अन्वयः—यदा धनहारकः लोकानां परिपीडकः तथा प्रदण्डः नृपः स्वदुर्गुणश्रवणतः अपराधं हि न क्षमते तदा लोकः क्षुब्धते। अतः नृपः यतः स्ववृत्तात् भिद्यते तत् स्ववृत्तं गूढचारैः श्रावयित्वा के अमात्याद्याः तद्विदः दूषयन्ति वा कैः भावैः भूषयन्ति तथा मम अगुणैः वा गुणैः केषां मयि कीदृक् सम्प्रीतिः वा अप्रीतिरेव एतदखिलं चारैः संश्रुत्य लोकतः सर्वदा ज्ञात्वा नृपः सुकीर्त्यै नित्यं स्वदुर्गुणं सन्त्यजेत्, प्रजाः नैव अवमन्येत। हे राजन्! लोकः त्वां निन्दति इति चारैः संश्रावितः सन् यदि दौरात्म्यात् कोपं करोति तदा असौ आत्मनः दुर्गुणानां लोपकः अपि सीता रामेण साध्वी लोकापवादतः त्यक्ता, शक्तेनापि रामेण रजके अल्पोऽपि दण्डः न धृतः, यतः राजा ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः दत्ताभयोऽपि चेति॥ १३०-१३६॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, धनहारकाः = परधनापहर्त्तारः, लोकानाम् = प्रजानाम्, परिपीडकाः = परितः कष्टदायकाः, तथा प्रदण्डः = प्रचण्डदण्डः, नृपः = राजा, स्वदुर्गुणश्रवणतः—स्वदुर्गुणानाम् = आत्मदोषाणाम्, श्रवणतः = आकर्णनात्, अपराधम् = दोषम्, न = नहि, क्षमते = सह्यं कुरुते, तदा लोकः = तस्य प्रजा, क्षुब्धते = विरज्यते, भिद्यते = वियुज्यते, अतः = अस्मात् कारणात्, नृपः = राजा, यतः स्ववृत्तात् = आत्माचरणात्, भिद्यते = पृथग्भूयते, तत् स्ववृत्तम् = निजचरित्रम्, गूढचारैः = गुप्तचरैः, श्रावयित्वा = निशामयित्वा, के अमात्याद्याः = सचिवप्रभृति-प्रकृतपुरुषाः, तद्विदः = तज्जानन्तः सन्तः, दूषयन्ति = कलुषितं कुर्वन्ति, तदिति शेषः, वा कैः, भावैः = अभिप्रायैः, भूषयन्ति = प्रशंसन्ति, तथा मम = मदीय, अवगुणैः = दोषैः वा, गुणैः = सत्स्वभावैः, केषाम् = प्रमुखपुरुषाणाम्, मयि = राज्ञि, कीदृग् = किंविधा, सम्प्रीतिः = आसक्तिः, वा = अथवा, अप्रीतिरेव = अनासक्तिरेव, एतदखिलम् = सम्पूर्णम्, चारैः = गुप्तचरैः, संश्रुत्य = सम्यग्रूपेणाकर्ण्य, लोकतः = लोकपरम्परातः, सर्वदा = सततम्, ज्ञात्वा = अवगम्य, नृपः = राजा, सुकीर्त्यै = सुयशसे, नित्यम् = अनुपलम्, स्वदुर्गुणम् = आत्मदोषम्, त्यजेत् = त्यागं कुर्यात्, प्रजाः = स्वशासितजनाः, वै = इति निश्चयेन, नैव = नास्त्येव, अवमन्येत = अवहेलयेत। राजन् = हे नृप! लोकः = प्रजा, त्वाम् = भवन्तम्, निन्दति = निन्दां करोति, इति = एवम्, चारैः = गुप्तचरैः, संश्रावितः = निशामयितः सन्, यदि = चेत्, दौरात्म्यात् = दुष्टात्मत्वात्, कोपम् = क्रोधम्, करोति = आचरति, तदा असौ, नृपः = राजा, आत्मनः = स्वकीयस्य, दुर्गुणानाम् = दोषाणाम्, लोपकः = क्षयकारी, अस्वीकारीत्यर्थः, निजदोषाच्छादनेनातिविराग-भाजनम्, लोकानामिति भावः। सत्यपि दोषे का कथा, अपि सीता = जनकनन्दिनी, असत्यपि लोकापवादो निराकरणीय इत्याह—सीतेति। रामेण = दशरथसुतेन, साध्वी = साधुचरित्रा, सीता, लोकापवादतः = प्रजाप्रतिवादात् त्यक्ता = परित्यक्ता, शक्तेनापि = समर्थेनापि, रामेण, क्वचित् = कदाचित्, रजके = निर्णेजके, अल्पोऽपि = स्वल्पोऽपि, दण्डः = दमनः, न = नहि, धृतः = कृतः, राजा = रामः, ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः = सामान्यविशेषज्ञानयुक्तः, तथा दत्तम् = प्रदत्तम्, अभयम् = निर्भयम्, येन सदत्ताभयः = निर्भयत्वम्, कृतमिति भावः॥ १३०-१३६॥

हिन्दी—जो राजा किसी के कुसूर माफ नहीं कर सकता, दोष के लिए कठोर दण्ड देता है; उसकी प्रजा उनसे क्षुब्ध होकर हट जाती है। ऐसी स्थिति में अपने आचरण से ही राजा अपनी प्रजा की नजर में गिरकर अलग-थलग हो जाता है। अतः इनसे बचने के लिए राजा का कर्तव्य है कि वह अपने गुप्तचरों को प्रजा के बीच भेज दें। वे उनके सामने राजा के आचरणों को खुल कर सुनाये तथा इन आचरणों से अवगत सचिवों के विचारों को भी जानने

की चेष्टा करें। राजा के किन आचरणों को वे सदोष मानते हैं तथा किन आचरणों की वे प्रशंसा करते हैं। राजा के किन गुणों के कारण कितने लोगों को राजा से प्रीति है तथा किन अवगुणों से राजा के प्रति कितने लोगों की विरक्ति है—इस जानकारी को राजा अपने गुप्तचरों से ही प्राप्त करे। गुप्तचरों से अपने दुर्गुणों की जानकारी पाकर कीर्तिकामी राजा दुर्गुणवादियों को दण्ड देने की अपेक्षा अपने दुर्गुणों का परित्याग करे। अपने निन्दकों को कभी तिरस्कृत न करे। यदि किसी राजा को गुप्तचर यह सूचना दें—'राजन्! अमुक व्यक्ति इस तरह आप की निन्दा करता है' तो यह सुनकर अपना दोष छिपाने वाला राजा ही अपने दुष्ट स्वभाव के कारण ही अपने दुर्गुणवादियों पर क्रोध करता है, अन्यथा नहीं। सर्वशक्तिमान् होते हुए भी श्रीराम ने एक तुच्छ धोबी के द्वारा दोषारोपण करने पर लोकापवाद के भय से अपनी सतीसाध्वी पत्नी सीता का परित्याग कर दिया। उस निन्दक धोबी पर थोड़ा भी क्रोध नहीं किया। ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न राजा राम ने भी उस अवगुणवादी को अभयदान ही दिया॥ १३०-१३६ ॥

नेत्यादि। यदा धनहारकः परधनलुब्धः लोकानां प्रजानां परिपीडकः तथा प्रदण्डः तीक्ष्णदण्डः नृपः स्वदुर्गुणानां श्रवणतः श्रवणात् अपराधं प्रजानामिति शेषः, न क्षमते तदा लोकः क्षुभ्यते विरज्यते, अतः कारणात् नृपः यतः स्ववृत्तात् स्वचरित्रात् भिद्यते तत् स्ववृत्तं गूढचारैः गुप्तचरैः श्रावयित्वा के अमात्यादयः तद्विदः तज्जानन्तः सन्तः दूषयन्ति दूषितं कुर्वन्ति तदिति शेषः, वा कैः भावैः भूषयन्ति प्रशंसन्ति तथा मम अगुणैः वा गुणैः केषां जनानां मयि कीदृक् सम्प्रीतिः अनुरागः केषां वा अप्रीतिरननुरागः, एतत् अखिलं समग्रं चारैः गूढपुरुषैः संश्रुत्य सम्यगाकर्ण्य लोकतः लोकपरम्परातश्च सर्वदा ज्ञात्वा राजा सुकीर्त्त्यै सुयशसे नित्यं सततं स्वदुर्गुणं निजदोषं त्यजेत्, प्रजाः नैव अवमन्येत। हे राजन्! लोकस्त्वां निन्दति इति चारैः संश्रावितः सन् यदि दौरात्म्यात् कोपं करोति तदा असौ नृपः आत्मनः दुर्गुणानां दोषाणां लोपकः लोपकारी अस्वीकारीत्यर्थः, आत्मनो दोषाच्छादने नातिविरागभाजनं, प्रजानामिति भावः। सति दोषे का कथा, अपि सीता असत्यपि लोकापवादो निराकरणीय इत्याह सीतेति। रामेण साध्वी लोकापवादतः त्यक्ता। शक्तेनापि रामेण क्वचित् कदाचित् रजके अपवादकारिणीत्यर्थः, अल्पोऽपि दण्डः न धृतः न कृत इत्यर्थः, यतः राजा रामः ज्ञानेन सामान्येन विज्ञानेन विशेषज्ञानेन च सम्पन्नः युक्तः तथा दत्तम् अभयं येन स दत्ताभयः अपवादश्रवणेन स्वदोषसंशोधनसम्भवात् अपवादिनि अभयं दत्तवानित्यर्थः। पुरा किल स्वां पत्नीं स्थानान्तरादागतां नाहं त्वां ग्रहीष्यामि अहं रामो न यः राक्षसगृहस्थितां सीतां परिजग्राहेति कथयतः कस्यचिद्रजकस्य मुखात् गूढचारेण सीतापवादं श्रुत्वा रामाय कथितं रामश्च तच्छ्रवणात् सीता परित्यक्तेति वार्त्तात्रानुसन्धेया॥ १३०-१३६ ॥

समक्षं वक्ति न भयाद्राज्ञो गुर्वपि दूषणम्।
स्तुतिप्रिया हि वै देवा विष्णुमुख्या इति श्रुतिः॥ १३७॥
किं पुनर्मनुजा? नित्यं निन्दाजः क्रोध इत्यतः।
राजा सुभागदण्डी स्यात् सुक्षमी रञ्जकः सदा॥ १३८॥

अन्वयः—राज्ञः गुर्वपि दूषणं भयात् समक्षं न वक्ति। हि विष्णुमुख्याः देवाः वै स्तुतिप्रियाः, मनुजाः किं पुनः? इत्यतः नित्यं क्रोधः निन्दाजः राजा सदा सुभागदण्डी सुक्षमी रञ्जकः स्यात्॥ १३७-१३८ ॥

व्याख्या—प्रजा, राज्ञः = नृपस्य, गुर्वपि = महदपि, दूषणम्, भयात् = त्रासात्, समक्षम् = सम्मुखे, न = नहि, वक्ति = वदति, हि = यतः, देवाः = सुराः, वै इति निश्चयेन, स्तुतिप्रियाः—स्तुतिः = स्तवनम्, प्रियः = रुचिकरः, यस्यासौ ताः, मनुजाः = सामान्यजनाः, किं पुनः = पुनः का कथेति, इत्यतः = अस्मात्कारणात्, नित्यम् = सततम्, क्रोधः = पापः, निन्दाजः = निन्दया समुत्पन्नः, अतः कस्यापि निन्दा न कार्येति। राजा = नृपतिः, सदा = सर्वदा, सुभागदण्डी—सु = सुष्ठु, भागः = विभागः, यत्र तत्, सुव्यवस्थितम् इति यावत्, यथा स्यात्तथा दण्डयतीति भावः, सुक्षमी = अत्यधिकक्षमाशीलः, रञ्जकः = प्रजाप्रियः, स्यात् = भवेत् ॥ १३७-१३८ ॥

हिन्दी—कोई भी व्यक्ति राजा के भय से उसके सामने बहुत बड़े दोष के बारे में भी मुँह नहीं खोल सकता है। क्योंकि भगवान् विष्णु प्रभृति देवगण भी जब स्तुतिप्रेमी हैं तो फिर सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या? फिर यह तो प्रतिदिन का बँधा धन्धा है कि किसी की निन्दा से ही क्रोध होता है। अतः राजा को सोच-विचार कर ही किसी को दण्ड देना चाहिए। अत्यन्त क्षमाशील एवं प्रजारंजक होना चाहिए ॥ १३७-१३८ ॥

समक्षमिति। किमिति। लोकः राज्ञः गुरु महदपि दूषणं भयात् समक्षं न वक्ति, हि यतः विष्णुमुख्याः नारायणप्रभृतयः देवा वै अपि स्तुतिप्रियाः स्तवसन्तुष्टा भवन्तीति शेषः, इति श्रुतिः वेदवचनम्। मनुजाः मानवाः किं पुनः? स्तवेनैव सर्वे सन्तुष्यति दोषवादेन नेति फलितार्थः, इत्यतः अस्मात् कारणात् नित्यं सततं क्रोधः निन्दाजः निन्दया जायते इत्यर्थः, अतः निन्दा नैव कर्तव्येति भावः। राजा सदा शोभनः सुनियतत्वात् सुन्दरः भागः विभागः यत्र तत् सुव्यवस्थमिति यावत् यथा तथा दण्डयतीति तथोक्तः, सुक्षमी अतिक्षमावान् तथा रञ्जकः लोकानामिति शेषः, स्यात् भवेत् ॥ १३७-१३८ ॥

यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत् ॥ १३९ ॥

अन्वयः—यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीः च स्वामिता एतानि षट् चञ्चलानि ज्ञात्वा धर्मरतः भवेत् ॥ १३९ ॥

व्याख्या—यौवनम् = नववयः, जीवितम् = जीवोपेतम्, चित्तम् = मनः, छाया = आतपाभावः, लक्ष्मीः = श्रीः, च = पुनः, स्वामिता = प्रभुत्वम्, एतानि = पूर्वोक्तानि, षट् = षट्संज्ञकाः, चञ्चलानि = चपलानि, ज्ञात्वा = अवबुध्य, धर्मरतः = धर्मे तत्परः, राजा भवेत् = स्यादिति ॥ १३९ ॥

हिन्दी—जवानी, जिन्दगी, मन, छाया, लक्ष्मी और प्रभुता—इन छहों को अत्यन्त चपल मान कर राजा को सदैव धर्मनिरत होना चाहिए ॥ १३९ ॥

यौवनमिति। यौवनं तारुण्यं जीवितं जीवनं चित्तं मनः छाया अनातपं लक्ष्मीः श्रीः तथा स्वामिता ऐश्वर्य्यम् एतानि षट् चञ्चलानि अस्थिराणि ज्ञात्वा धर्मरतः धर्मनिष्ठः भवेत् ॥ १३९ ॥

अदानेनापमानेन छलाच्च कटुवाक्यतः।
राज्ञः प्रबलदण्डेन नृपं मुञ्चति वै प्रजा ॥ १४० ॥

अन्वयः—प्रजा राज्ञः अदानेन अपमानेन छलात् कटुवाक्यतः प्रबलदण्डेन नृपं वै मुञ्चति ॥ १४० ॥

व्याख्या—प्रजा = जनाः, राज्ञः = नृपस्य, अदानेन = दानरहितेन, अपमानेन = अनादरेण, छलात् = कपटात्, कटुवाक्यतः = दुर्वचसा, तथा प्रबलदण्डेन = प्रचण्डदण्डविधानेन, नृपम् = भूपतिम्, मुञ्चति = त्यजतीति ॥ १४० ॥

हिन्दी—राजा की कंजूसी से, अनादर से, कपटी व्यवहार से, कटुवचन से और प्रचण्ड दण्ड से प्रजा उसे छोड़ देती है ॥ १४० ॥

अदानेनेति। प्रजा राज्ञः अदानेन अयथोचितदानेन दानराहित्येन वा अपमानेन अवमाननया, छलात् कापट्यात्, कटुवाक्यतः दुर्वचसा तथा प्रबलदण्डेन गुरुतरदण्डविधानेन नृपं मुञ्चति त्यजति ॥ १४० ॥

विपरीतगुणैरेभिः सान्वयारज्यते प्रजा।
एकस्तनोति दुष्कीर्त्तिं दुर्गुणः सङ्घशो नु किम् ॥ १४१ ॥

अन्वय—एभिः विपरीतैः गुणैः प्रजा सान्वया रज्यते। एकः दुर्गुणः दुष्कीर्त्तिं तनोति नु सङ्घशः किम् ॥ १४१ ॥

व्याख्या—एभिः = पूर्वोक्तैः, विपरीतैः = विलोमकैः, गुणैः = स्वभावैः, प्रजाः = जनाः, सान्वया = सपुत्रपौत्रादिः, अरज्यते = विरज्यते, अथवा एभिर्विपरीतगुणैः दानमानादिभिः प्रजा, रज्यते = आसक्तो भवतीत्यर्थः। एकः = एकमात्रः, दुर्गुणः = दोषः, दुष्कीर्तिम् = अपयशः, तनोति = विस्तारयति, नु = भो, सङ्घशः = समस्तरूपेण, किं वक्तव्यम्? न किमप्यर्थः ॥ १४१ ॥

हिन्दी—ऊपरवर्णित दुर्गुणों के उलटा गुणवाले राजा से उसके कुल-खानदान के साथ समस्त प्रजामण्डल प्रसन्न रहता है। एक भी दुर्गुण दुष्कीर्ति फैलाता है तो फिर जहाँ दुर्गुणों का समूह हो वहाँ का पूछना ही क्या? ॥ १४१ ॥

विपरीतेति। एभिः विपरीतैः गुणैः पूर्वोक्तैः अदानादिभिर्दुर्गुणैरित्यर्थः, सान्वया सपुत्रपौत्रादिः प्रजा अरज्यते विरज्यते इत्यर्थः। अथवा एभिर्विपरीतगुणैः दानमानादिभिः रज्यते अनुरागमातनोतीत्यर्थः। एको दुर्गुणः दोषः दुष्कीर्त्तिं तनोति, नु भो सङ्घशः समस्त इत्यर्थः, किं वक्तव्यम् इत्यर्थः ॥ १४१ ॥

मृगयाक्षास्तथा पानं गर्हितानि महीभुजाम्।
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदो पाण्डुनैषधवृष्णिषु ॥ १४२ ॥

अन्वयः—मृगया अक्षाः तथा पानम् महीभुजाम् गर्हितानि। तेभ्यः तु पाण्डुनैषधवृष्णिषु विपदः दृष्टाः ॥ १४२ ॥

व्याख्या—मृगया = आखेटः, अक्षाः = पणनानि, तथा = तेनैव प्रकारेण, पानम् = सुरासेवनम्, महीभुजाम् = भूभृताम्, गर्हितानि = निन्दितानि, तेभ्यः = त्रिभ्यः तु, पाण्डु = नृपविशेषः, नैषधः = निषधदेशाधिपतिनलः, वृष्णिषु = यादवेषु, विपदः = आपदः, दृष्टाः = ख्याता एवेति ॥ १४२ ॥

हिन्दी—शिकार, शराब और जुआ खेलना—ये तीनों काम किसी भी राजा के लिए निन्दित काम है, क्योंकि शिकार से पाण्डु की, जुए से नल की और शराब पीने से यदुवंशियों की विपत्ति सर्वविदित है ॥ १४२ ॥

मृगयेति। मृगया, अक्षाः द्यूतानि, तथा पानं मद्यपानम् एतानि महीभुजां राज्ञां गर्हितानि निन्दितानि, तेभ्यः त्रिभ्यः पाण्डुनैषधवृष्णिषु पाण्डुनलयादवेषु विपदः दृष्टाः ॥ १४२ ॥

टिप्पणी—पाण्डु—पाण्डवों के पिता का नाम पाण्डु था। विचित्रवीर्य की विधवा अम्बिका से व्यास के द्वारा पांडु का जन्म हुआ था। पांडु रंग का पैदा होने के कारण उसका नाम पांडु पड़ा, क्योंकि व्यास के साथ सहवास के अवसर पर उसकी माता पांडुरंग की हो गई थी।

"यस्मात् पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह।
तस्मादेव सुतस्ते वै, पाण्डुरेव भविष्यति॥" (महा॰)

किसी शाप के कारण पाण्डु को स्वयं सन्तानोत्पादन से रोक दिया गया था। इसीलिए उसने कुन्ती को दुर्वासा ऋषि से प्राप्त मंत्र का उपयोग करके सन्तान प्राप्त करने की अनुमति दे दी थी। फलतः कुन्ती ने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को जन्म दिया। इसी मंत्र के उपयोग से माद्री ने नकुल और सहदेव को जन्म दिया। एक दिन शिकार खेलने के लिए पाण्डु जंगल गया। जंगल के एकान्त शिविर में उसके साथ उसकी छोटी रानी भी थी। एक दिन शिकार की धुन में अपने शाप को भूलकर जिसके कारण वह सावधान था, उसने माद्री का आलिंगन करने का दुःसाहस किया, किन्तु वह उसके भुजपाश में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

नैषध—निषध देश के राजा नल का यह एक विशेषण है। नल अत्यन्त उदार एवं सद्गुण-सम्पन्न राजा था। देवताओं का विरोध सहकर राजकुमारी दमयन्ती ने इसे अपना पति चुना था। कुछ वर्षों तक ही ये दम्पति सुख से रहे। किन्तु दमयन्ती को पाने में निराश होकर कलि ने नल पर जुए का सहारा लेकर जुल्म ढाये। एक दिन वह नल के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कलिग्रस्त नल ने अपने भाई पुष्कर के साथ जूआ खेला। जूए में नल अपना सर्वस्व हार गया। हार के बाद उसे पत्नी के साथ राजधानी से निर्वासित कर दिया गया। एक दिन वह जब जंगल में मारा-मारा फिर रहा था, हताश होकर अपनी पत्नी को अर्द्धनग्नावस्था में छोड़कर उसे भाग जाना पड़ा। रास्तें में कर्कोटक नामक नाग ने उसे डँस लिया। फलतः उसकी समस्त देह विकृत हो गयी। उसी विकृत शरीर से वह अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहा पहुँचा। वहाँ वह बाहुक नाम से नौकर हो गया। राजा की घुड़साल में वह एक साईस का काम करने लगा। इसके बाद एक दिन राज ऋतुपर्ण की सहायता से उसने अपनी पत्नी दमयन्ती को फिर से प्राप्त किया, फिर आनन्दपूर्वक रहने लगा।

वृष्णि—श्रीकृष्ण के किसी पूर्वज का नाम था। वृष्णि कुल की संतान अविजित योद्धा थी। किन्तु शराब पीकर एक बार नशे में वे आपस में ही टकराकर एक-दूसरे के हाथ समूल विनष्ट हो गये॥१४२॥

कामक्रोधस्तथा मोहो लोभो मानो मदस्तथा।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः॥१४३॥

अन्वयः—कामः क्रोधः मोहः लोभः मानः तथा मदः—एनं षड्वर्गम् उत्सृजेत्। अस्मिन् त्यक्ते नृपः सुखी भवति॥१४३॥

व्याख्या—कामः = विपयाभिलाषः, क्रोधः = कोपः, मोहः = ममत्वम्, लोभः = लिप्सा, मानः = दर्पः, मदः = शौण्डता, एनम् = इयम्, षडवर्गम् = षड्रिपुसमूहम्, उत्सृजेत् = परित्यजेत्, अस्मिन् = पूर्वोक्तकामादिके, त्यक्ते = उत्सर्जिते, नृपः = राजा, सुखी = मुदितो भवति॥१४३॥

हिन्दी—कामुकता, रोष, अज्ञान, लालच, प्रतिष्ठा और गर्व—ये मनुष्य के छः मनोविकार हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिए। इन्हें छोड़कर ही कोई राजा सुखी हो सकता है ॥ १४३ ॥

काम इति। कामः विषयाभिलाषः क्रोधः, मोहः लोभः मानः तथा मदः गर्वः एनं षड्वर्गम् उत्सृजेत् त्यजेत् राजेति शेषः, अस्मिन् षड्वर्गे कामादिके त्यक्ते सति नृपः सुखी भवति ॥ १४३ ॥

दण्डको नृपतिः कामात् क्रोधाच्च जनमेजयः।
लोभादैलस्तु राजर्षिर्मोहाद् वातापिरासुरः ॥ १४४ ॥
पौलस्त्यो राक्षसो मानान्मदाद् दम्भोद्भवो नृपः।
प्रयाता निधनं ह्येते शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः ॥ १४५ ॥

अन्वयः—एते शत्रुषड्वर्गम् आश्रिताः निधनं प्रयाताः। तथाहि—दण्डकः नृपतिः कामात् च जनमेजयः क्रोधात् राजर्षिः ऐलस्तु लोभात् आसुरः वातापि मोहात् राक्षसः पौलस्त्यः मानात् दम्भोद्भवः नृपः मदात् निधनं प्रयाताः ॥ १४४-१४५ ॥

व्याख्या—एते = दण्डकादिनृपतयः, शत्रुषड्वर्गम् = षड्रिपुसमूहम्, आश्रिताः = अवलम्बिताः, निधनम् = विनाशम्, प्रयाताः = प्राप्ताः। तथाहि—दण्डकः = एतदाख्यः, नृपतिः = राजा, कामात् = विषयाभिलाषात्, जनमेजयः = परीक्षितपुत्रः, क्रोधात् = कोपात्, राजर्षिः—राजसु = भूभृत्सु, ऋषिः = तपस्वी, ऐलः = इलायास्तनयः पुरूरवा, लोभात् = लौल्यात्, आसुरः—असुरः = दैत्यः, एवासुरः, वातापि, मोहात् = अज्ञानात्, पौलस्त्यः = पुलस्त्यपुत्रः, राक्षसः = दानवः, रावणः, मानात् = दर्पात्, तथा दम्भोद्भवः = दम्भपुत्रः, नृपः = राजा, मदात् = गर्वात्, निधनं प्रयाताः इत्यनेनान्वयः ॥ १४४-१४५ ॥

हिन्दी—कामुकता के कारण राजा दण्डक, क्रोध के कारण जनमेजय, लालच के कारण राजर्षि ऐल, मोह के कारण वातापि दैत्य, मान के कारण पुलस्त्यकुलोद्भव राक्षसराज रावण और मद के कारण दम्भोद्भव नामक राजाओं का विनाश हुआ है। क्योंकि ये सभी शत्रुतुल्य ऊपरवर्णित षड्रिपुओं के शिकार हुए थे ॥ १४४-१४५ ॥

दण्डक इति। पौलस्त्य इति। एते दण्डकादयः राजानः शत्रुषड्वर्गं शत्रुरूपं षड्वर्गं कामादिकम् आश्रिताः सन्तः निधनं विनाशं प्रयाताः गताः। तथाहि दण्डकः नृपतिः कामात्, जनमेजयः क्रोधात् ऐलः इलातनयः राजर्षिः पुरूरवा लोभात् आसुरः असुर एव आसुरः स्वार्थे णप्रत्ययः। वातापिः मोहात् अज्ञानात् पौलस्त्यः पुलस्त्यतनयः राक्षसः रावणः मानात् तथा दम्भोद्भवः दम्भपुत्रः नृपः मदात् गर्वात् निधनं प्रयाता इत्यनेनान्वयः। एतेषामिति वृत्तानि पुराणेषु अनुसन्धेयानि ॥ १४४-१४५ ॥

टिप्पणी—दण्डक—दण्डक की कथा का पहले उल्लेख किया जा चुका है। अपनी घोर कामुकता के कारण अपने ही गुरु शुक्राचार्य की कुमारी पुत्री अरजसा के साथ बलात्कार करने के कारण गुरुशाप से अपना सवंश विनाश कर लिया।

जनमेजय—हस्तिनापुर का यह एक प्रसिद्ध राजा था। इसके पिता का नाम परीक्षित था। यह महाभारत के प्रसिद्ध वीर अर्जुन का पोता था। इसके पिता को साँप ने काटा था। सर्पदंश से ही उसकी मृत्यु हुई थी। यह जानकर जनमेजय क्रोध से आगबबूला हो गया। उस क्षति का प्रतिशोध करने के लिए संसार से सर्पजाति का समूल विनाश करने के लिए क्रोधवश उसने दृढ़ सकंल्प लिया। तदनुसार एक सर्पयज्ञ का आरम्भ किया गया, जिसमें तक्षक को

छोड़कर और सभी सर्प जला दिये गये। आस्तिक ऋषि के बीच में पड़ने से तक्षक के प्राण बचे। सर्पयज्ञ बन्द कर दिया गया, किन्तु जनमेजय ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त न हो सके। प्रायश्चित्त के रूप में उन्हें अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ी। (महाभारत से)

राजर्षि ऐल—'इलाया अपत्यम्'। महर्षि ऐल बुध और इला का पुत्र था। चन्द्रवंशी राजकुल का यह प्रवर्तक था। यह पुरूरवा के नाम से विख्यात था। एक बार किसी कारणवश मित्र और वरुण ने उर्वशी को शाप दे दिया था। शापवश उर्वशी धरती पर घूम रही थी। पुरूरवा ने उसे अपनी ललचाई आँखों से देखा और उस पर आसक्त हो गया। उर्वशी भी उस राजा को देखकर उसके लोकविश्रुत सौन्दर्य तथा सच्चाई, भक्ति, उदारता आदि गुणों के कारण उस पर मुग्ध हो गई, फलतः उसकी पत्नी बन गई। बहुत दिनों तक दोनों सुखपूर्वक रहे। एक पुत्र को जन्म देने के बाद उर्वशी फिर स्वर्ग चली गई। लोभी राजा ने उसके वियोग और शोक में बड़ा विलाप किया। उर्वशी प्रसन्न होकर दुबारा आकर फिर उसके साथ रहने लगी। एक और पुत्र को जन्म देकर पुनः स्वर्ग चली गई। फिर राजा अपना लोभ संवरण नहीं कर सका। उर्वशी ने पाँच बार आकर राजा के पाँच पुत्रों को जन्म दिया। फिर भी ऐल उसे अपनी जीवनसंगिनी बनाने के लोभ को छोड़ न सका। इसके लिए गन्धर्वों के निर्देशानुसार उसने एक यज्ञ किया। यज्ञ के फलस्वरूप उसका मनोरथ पूरा हुआ। विक्रमोर्वशीय में दी गई कहानी कई अंशों में भिन्न प्रकार से बतलाई गई है। इसी प्रकार ऋग्वेद के आधार पर शतपथ ब्राह्मण में दिया गया वृत्तान्त भिन्न प्रकार का है। शतपथ के अनुसार उर्वशी ने पुरूरवा के साथ दो शर्तों पर रहना स्वीकार किया है। पहली शर्त यह है कि उसकी दो भेड़ें, जिन्हें वह पुत्रवत् प्यार करती हैं, उसके पलंग के पास ही बँधेंगे और दूसरी यह कि वह राजा उर्वशी को कभी नंगा न दिखलाई दे। फिर एक बार गन्धर्वों ने उन भेड़ों को चुरा लिया और उर्वशी पुनः स्वर्ग चली गई और अपने लोभ के कारण राजा विलाप ही करता रह गया।

वातापि—वातापि नामक एक प्रचण्ड दैत्य था। अपने मोह के कारण ही इसका विनाश हुआ था। अगस्त्य मुनि ने इसे खाकर पचा लिया था। (पौराणिक गाथा से)

पौलस्त्य—पुलस्त्य मुनि के कुल में जन्म लेने के कारण रावण को ही पौलस्त्य के नाम से जाना जाता है। इसका वृत्त पूर्ववर्णित है। (रामायणी कथा)

दम्भोद्भव—दम्भ नामक राजा का यह पुत्र था। यह अत्यन्त मदोन्मत्त था। अपने मद के कारण ही इसने अपना विनाश कर लिया था। इसकी कथा भागवत पुराण में है।

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यः प्रतापवान्।
अम्बरीषो महाभागो बुभुजाते चिरं महीम्॥ १४६ ॥

अन्वयः—प्रतापवान् जामदग्न्यः तथा महाभागः अम्बरीषः शत्रुषड्वर्गम् उत्सृज्य चिरं महीं बुभुजाते ॥ १४६ ॥

व्याख्या—प्रतापवान् = वीर्यवान् वा तेजस्विन्, जामदग्न्यः = जमदग्निसुतः परशुरामः, तथा = तेनैव प्रकारेण, महाभागः = सौभाग्यशालिन्, अम्बरीषः = पुराणप्रसिद्धनृपः, शत्रुषड्वर्गम् = षड्रिपुसमूहम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, महीम् = धरित्रीम्, बुभुजाते = भुक्तवन्तौ ॥ १४६ ॥

हिन्दी—काम-क्रोधादि छः शत्रुओं का परित्याग कर ही जमदग्निपुत्र प्रतापी परशुराम तथा सौभाग्यशाली राजा अम्बरीष ने इस धरती का बहुत दिनों तक उपभोग किया ॥ १४६ ॥

शत्रुषड्वर्गमिति। प्रतापवान् जमदग्नेरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः परशुरामः तथा महाभागः अम्बरीषः शत्रुषड्वर्गम् उत्सृज्य त्यक्त्वा चिरं महीं पृथ्वीं बुभुजाते भुक्तवन्तौ ॥ १४६ ॥

टिप्पणी—अम्बरीष—अयोध्या का यह परम प्रतापी राजा था। यह सूर्यवंशी क्षत्रिय था। भगवान् विष्णु का यह परम भक्त था। अपनी इन्द्रियों पर इसका अधिकार था। जब-जब इस पर विपत्ति आयी– भगवान् विष्णु ने इसकी रक्षा की। (रामायणी कथा)

जामादग्न्य—जमदग्नि नामक ऋषि के पुत्र होने के कारण परशुराम को ही जामदग्न्य कहा जाता है। जमदग्नि बड़े ही पुण्यात्मा ऋषि थे। उनकी पत्नी रेणुका थी। इससे उन्हें पाँच पुत्र हुए। परशुराम सबसे छोटे थे। एक दिन रेणुका स्नान करने के लिए नदी पर गई। वहाँ उन्होंने गन्धर्व-दम्पति को जलक्रीड़ा करते देखा। उन्हें देखकर उसके मन में ईर्ष्या जागी। फलतः उसका मन भी कलुषित हो गया। नदीस्नान से भी उसका यह मानसिक कलूष नहीं मिटा। वह आश्रम लौट आई। क्रोधावतार जमदग्नि ने सतीत्वहीन उसके चेहरे की कान्ति देखते ही उसे धमकाया। अपने पुत्रो को उसका सिर काट देने को कहा। किन्तु पहले चार पुत्रों ने ऐसा क्रूर दुष्कृत्य करने में आना-कानी की। छोटे पुत्र परशुराम ने शीघ्र ही पिता के आदेश का पालन किया। कुल्हाड़ी उठाकर माता का सिर काट दिया। जमदग्नि का क्रोध शान्त हो गया। पिता ने वरदान माँगने को कहा। परशुराम ने माँ को पुनर्जीवनदान की प्रार्थना की तो वह प्रार्थना शीघ्र ही मान ली गई। एक बार राजा कार्त्तवीर्य जमदाग्नि के आश्रम में आकर उनकी गायें हाँककर ले गये। जब परशुराम को पता चला तो उसने वीर कार्त्तवीर्य से युद्ध कर उसे यमलोक पहुँचा दिया। कार्त्तवीर्य के पुत्रों ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि की हत्या कर दी। जब परशुराम को इस घटना का पता चला तो उसने समस्त क्षत्रिय जाति का उन्मूलन करने की घोर प्रतिज्ञा की और उसने ऐसा किया भी। कहा जाता है उसने इक्कीस बार इस धरती को क्षत्रियरहित कर दिया। कुमार कार्तिकेय की शक्ति से ईर्ष्या होने के कारण एक बार उसने क्रौंच पर्वत को भी तीर से बेंध दिया था। अपने सुकृत्य के कारण आज भी परशुराम महेन्द्र पर्वत पर तपस्या में निरत हैं। ये सप्त चिरजीवियों में एक हैं।

वर्द्धयन्निह धर्मार्थौ सेवितौ सद्भिरादरात्।
निगृहीतेन्द्रियग्रामः कुर्वीत गुरुसेवनम् ॥ १४७ ॥

अन्वयः—इह सद्भिः सेवितौ धर्मार्थौ आदरात् निगृहीतेन्द्रियग्रामः वर्द्धयन् गुरुसेवनं कुर्वीत ॥ १४७ ॥

व्याख्या—इह = अस्मिन् संसारे, सद्भिः = सज्जनैः, सेवितौ = उपासितौ, धर्मार्थौ—धर्मश्च = अभ्युदयनिःश्रेयससाधको गुणकर्मसमूहश्च, अर्थश्च = धनञ्च, आदरात् = सम्मानपूर्वकात्, निगृहीतेन्द्रियग्रामः—निगृहीतः = नियन्त्रितः, इन्द्रियग्रामः = इन्द्रियसमूहः, येनार्थात् = जितेन्द्रियः सन्, वर्द्धयन् = वृद्धिं प्रापयन्, गुरूणाम् = वृद्धानाम्, सेवनम् = उपासनम्, कुर्वीत = विदधीत ॥ १४७ ॥

हिन्दी—इस संसार में सज्जनों के द्वारा सादर सेवित धर्म और अर्थ को जितेन्द्रिय होकर बढाते हुए बड़े-बूढों की सेवा करनी चाहिए ॥ १४६ ॥

वर्द्धयन्निति। इह जगति सद्भिः साधुभिः सेवितौ अनुष्ठितौ धर्मार्थौ आदरात् यत्नात् निगृहीतेन्द्रियग्रामः जितेन्द्रियः सन् वर्द्धयन् सेवमानः गुरूणां वृद्धानां सेवनं कुर्वीत ॥ १४७ ॥

शास्त्राय गुरुसंयोगः शास्त्रं विनयवृद्धये।
विद्याविनीतो नृपतिः सतां भवति सम्मतः ॥ १४८ ॥

अन्वयः—शास्त्राय गुरुसंयोगः विनयवृद्धये शास्त्रं विद्याविनीतः नृपतिः सतां सम्मतः भवति ॥ १४८ ॥

व्याख्या—शास्त्राय = शास्त्रचिन्तनाय, गुरुसंयोगः—गुरूणां = वृद्धानां, संयोगः = सम्पर्कः, विनयवृद्धये—विनयस्य = सौजन्यस्य, वृद्धये = वर्द्धनार्थम्, शास्त्रम् = धर्मग्रन्थानुशीलनम्, विद्याविनीतः—विद्यया = शास्त्रज्ञानेन, विनीतः = विनयशीलः, नृपतिः = राजा, सताम् = सज्जनानाम्, सम्मतः = सम्मानितः, भवति = अस्ति ॥ १४८ ॥

हिन्दी—गुरुजनों के सम्पर्क से शास्त्रज्ञान मिलता है। शास्त्रज्ञान से शालीनता बढ़ती है। विद्याविनीत राजा सज्जनों का प्रिय होता है ॥ १४८ ॥

शास्त्रायेति। शास्त्राय शास्त्रज्ञानाय गुरुसंयोगः वृद्धसेवनं, विनयवृद्धये शास्त्रं शास्त्रानुशीलनं प्रभवतीति शेषः, विद्याविनीतः शास्त्रविद् विनीतश्च नृपतिः सतां साधूनां सम्मतः प्रियो भवति ॥ १४८ ॥

प्रेर्य्यमाणोऽप्यसद्वृत्तैर्नाकार्य्येषु प्रवर्त्तते।
श्रुत्या स्मृत्या लोकतश्च मनसा साधुनिश्चितम् ॥ १४९ ॥
यत् कर्म धर्मसंज्ञं तद् व्यवस्यति च पण्डितः।
आददानप्रतिदानकलासम्यक् महीपतिः ॥ १५० ॥

अन्वयः—महीपतिः असद्वृत्तैः प्रेर्य्यमाणोऽपि अकार्येषु न प्रवर्त्तते, तथा श्रुत्या स्मृत्या लोकतः मनसा च साधुनिश्चितं यत् धर्मसंज्ञं कर्म तत् व्यवस्यति, यश्च आददानप्रतिदानकलासम्यक् सः पण्डितः ॥ १४९-१५० ॥

व्याख्या—यो महीपतिः = भूपतिः, असद्वृत्तैः = दुष्टाचारैः, प्रेर्यमाणोऽपि = प्रोत्साहितोऽपि, अकार्येषु = अकरणीयेषु, न = नहि, प्रवर्त्तते = कार्योपकरणं क्रियते, तथा श्रुत्या = वेदेन, स्मृत्या = स्मृतिग्रन्थेन, लोकतः = लोकाचारेण, मनसा = चित्तेन, च = पुनः, साधुनिश्चितम् = सुष्ठुतया निर्धारितम्, यत् धर्मसंज्ञं कर्म = यद्धार्मिकानुष्ठानम्, तत् = कार्यम्, व्यवस्यति = व्यवहरति, यश्च = पुरुषविशेषः, आदानप्रतिदानकलासम्यक्—आदानप्रतिदानयोः = ग्रहणप्रत्यर्पणयोः, कलासु = विभागेषु, कुत्र किं दानं कर्त्तव्यं कुतो वा कस्मात् किं ग्रहीतव्यमस्यां कलायाम्, यः सम्यक् = सुष्ठुविचारशीलः, सः = एवंविधः पुरुषः, पण्डितः—पण्डा = बुद्धिरस्य सञ्जायते इति पण्डितः = प्रवीणपुरुषो भवति ॥ १४९-१५० ॥

हिन्दी—गलत आचरणवाले लोगों की गलत प्रेरणा पाकर भी अच्छे-बुरे का विचार रखने वाला राजा कभी गलत निर्णय नहीं लेता है। क्योंकि वेद स्मृति और लोकव्यवहार से प्राप्त

ज्ञान के आधार पर ही जो सत्कर्म है, उसे ही वह करता है। कौन काम करना चाहिए और कौन नहीं, इसे पहचानने की कला में निपुण व्यक्ति ही प्रवीण होता है॥१४९-१५०॥

प्रेर्य्यमाण इति। यदिति। यः महीपतिः असद्वृत्तैः दुर्वृत्तैः पुरुषैः प्रेर्य्यमाणोऽपि अकार्य्येषु असत्सु कार्य्येषु न प्रवर्त्तते तथा श्रुत्या वेदेन स्मृत्या धर्मसंहितया लोकतः आचारेण मनसा च साधुनिश्चितं यत् धर्मसंज्ञं कर्म धर्मकार्य्यं तत् व्यवस्यति सेवते च, यश्च आददानप्रतिदानयोः ग्रहणप्रत्यर्पणयोः आङ्पूर्वकात् दाधातोः भावे शानच्प्रत्ययः। कलासु विभागेषु कुत्र किं दानं कर्त्तव्यं कुतो वा किं ग्रहीतव्यमित्येवंरूपासु सम्यक् सुविचक्षणः स पण्डितः॥१४९-१५०॥

जितेन्द्रियस्य नृपतेर्नीतिशास्त्रानुसारिणः।
भवन्त्युच्चलिता लक्ष्म्यः कीर्त्तयश्च नभस्पृशः॥१५१॥

अन्वयः—जितेन्द्रियस्य नीतिशास्त्रानुसारिणः नृपतेः लक्ष्म्यः उच्चलिताः तथा कीर्त्तयः नभस्पृशः भवन्ति॥१५१॥

व्याख्या—जितेन्द्रियस्य = इन्द्रियजितः वशिनो वा, नीतिशास्त्रानुसारिणः—नीतिशास्त्रस्य = नयविद्यायाः, अनुसारिणः = अनुकारिणः, नृपतेः = राज्ञः, लक्ष्म्यः = श्रियः, सम्पदः, उच्चलिताः = समन्ततश्चलितुं तत्पराः, तथा तस्य नृपतेः कीर्त्तयः = यशांसि, नभस्पृशः = गगनचुम्बिन्यो भवन्ति॥१५१॥

हिन्दी—नीतिशास्त्र का अनुसरण करने वाले, जितेन्द्रिय राजा के घर लक्ष्मी चारों ओर से दौड़-दौड़ कर आती है और उसकी कीर्ति आकाश को छूती है॥१५१॥

जितेन्द्रियस्येति। जितेन्द्रियस्य नीतिशास्त्रानुसारिणः नृपतेः लक्ष्म्यः श्रियः सम्पदः इत्यर्थः, उच्चलिताः उन्नताः तथा कीर्त्तयश्च नभस्पृशः आकाशदर्शिनः सुदूरगामिन्य इत्यर्थः भवन्ति॥१५१॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्याश्चतस्र एवैता अभ्यसेद् नृपतिः सदा॥१५२॥

अन्वयः—आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती चतस्रः विद्या एव नृपतिः सदा एव अभ्यसेत्॥१५२॥

व्याख्या—आन्वीक्षिकी = आत्मविद्या, त्रयी = ऋग्यजुःसामानि, वार्त्ता = व्यवहारशास्त्रम्, दण्डनीतिः = दमनयः, एताः शाश्वती = अविनाशिनी, चतस्रः = चतुःसंख्यिका, विद्या एव, नृपतिः = राजा, सदा = सर्वदा, एव अभ्यसेत् = अनुशीलनं कुर्यात्॥१५२॥

हिन्दी—आन्वीक्षिकी (आत्मविद्या या तर्कशास्त्र), त्रयी (ऋग्, यजुः तथा साम की समष्टि), वार्त्ता (व्यवहारशास्त्र) तथा दण्डनीति (अर्थशास्त्र)—ये चारों विद्याएँ सनातन हैं। अतः राजा को इसका सतत अभ्यास करना चाहिए॥१५२॥

आन्वीक्षिकीति। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्डनीतिश्च एषा चतुर्विधा शाश्वती चिरन्तनी विद्या इति शेषः, राजा सदा एताश्चतस्र एव विद्याः अभ्यसेत् शिक्षेत्॥१५२॥

टिप्पणी—आन्वीक्षिकी—इससे मूलतः आत्मविद्या तथा गौतमादि रचित तर्कशास्त्र न्यायदर्शनशास्त्र से सम्बन्ध है।

'आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात्सुखदुःखयोः।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति' ॥ (काम० २ ।११)
'आन्वीक्षिकी श्रवणाय—' (मा०१ मनु० ६/४३)

त्रयी—त्रयी से अभिप्राय तीनों वेदों की समष्टि (ऋग्-यजुः-साम) से है।

'त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः'। (का० १)
'तौ त्रयी वर्जमितरविद्याः परिपाठितौ'। (उत्त०२, मनु०४ ।१२५)

वार्ता—वार्ता शब्द से तात्पर्य उस शास्त्र से है जिसके अध्ययन से लोकव्यवहार का ज्ञान प्राप्त होता है। अर्थात् वैश्यवृत्ति, जिसके अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा एवं कुसीद का ज्ञान प्राप्त होता है।

आन्वीक्षिक्यां तर्कशास्त्रं वेदान्ताद्यं प्रतिष्ठितम्।
त्रय्यां धर्मो ह्यधर्मश्च कामोऽकामः प्रतिष्ठितः ॥ १५३ ॥

अन्वयः—आन्वीक्षिक्यां वेदान्ताद्यं तर्कशास्त्रं प्रतिष्ठितं, त्रय्यां धर्मः अधर्मश्च कामः अकामश्च प्रतिष्ठितः ॥ १५३ ॥

व्याख्या—आन्वीक्षिक्याम् = आत्मविद्यायाम्, वेदान्ताद्यम् = ज्ञानकाण्डोपनिषदाद्यम्, तर्कशास्त्रं = न्यायशास्त्रम्, प्रतिष्ठितम् = स्थापितम्, त्रय्याम् = त्रयीविद्यायाम्, अर्थात् ऋग्यजुःसामस्वरूपायाम्, श्रुतौ, धर्मः = पुण्यम्, अधर्मश्च = पापञ्च, कामः = अभिलाषः, अकामश्च = अनभिलाषश्च, प्रतिष्ठितः = सम्मानितः ॥ १५३ ॥

हिन्दी—आन्वक्षिकी में तर्कशास्त्र एवं वेदान्तादि की और त्रयीविद्या में पाप-पुण्य एवं काम-मोक्ष की बातें कही गई हैं ॥ १५३ ॥

आन्वीक्षिक्यामिति। आन्वीक्षिक्यां विद्यायां वेदान्ताद्यं वेदान्तप्रभृति तर्कशास्त्रं न्यायशास्त्रं प्रतिष्ठितं प्रपञ्चितं, त्रय्याम् ऋग्यजुःसामरूपायां श्रुतौ इत्यर्थः, धर्मः अधर्मश्च कामः अकामश्च प्रतिष्ठितः प्रपञ्चितः ॥ १५३ ॥

अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ।
वर्णाः सर्वाश्रमाश्चैव विद्यास्वासु प्रतिष्ठिताः ॥ १५४ ॥

अन्वयः—वार्त्तायाम् अर्थानर्थौ दण्डनीत्यां नयानयौ वर्णाश्रमाश्चैव आसु विद्यासु प्रतिष्ठिताः ॥ १५४ ॥

व्याख्या—वार्त्तायाम् = व्यवहारशास्त्रे, अर्थानर्थौ—अर्थश्च = अर्थोपार्जनश्च, अनर्थश्च = अनिष्टनिवारणोपायश्च, दण्डनीत्याम् = राजनीतिशास्त्रे, नयानयौ—नयश्च = नीतिश्च, अनयश्च = अनीतिश्च, वर्णाश्रमश्चैव—वर्णाः = ब्राह्मणादयः, आश्रमाश्च = ब्रह्मचर्यादयश्च, आसु = पूर्वोक्तासु, विद्यासु = शास्त्रेषु, प्रतिष्ठिताः = प्रतिष्ठापिताः सन्ति ॥ १५४ ॥

हिन्दी—वार्त्ता में अर्थोपार्जन एवं अनर्थ-निवारण के उपाय वर्णित है। दण्डनीति में नीतिमार्ग पर चलते हुए अनीतिमार्ग पर चलने वालों के लिए दण्डविधान वर्णित है ॥ १५४ ॥

अर्थेति। वार्त्तायाम् अर्थानर्थौ अर्थश्च अनर्थश्च अर्थोपार्जनानर्थनिवारणोपायावित्यर्थः, दण्डनीत्याम् अनयश्च नयमार्गेण व्यवहर्त्तव्यम्, अनये दण्डनमित्येवंरूपौ इत्यर्थः, प्रतिष्ठिताविति

शेषः। वर्णाः ब्राह्मणादयः सर्वाश्रमाः सर्वे आश्रमाः ब्रह्मचारिप्रभृतयश्च आसु उक्तासु विद्यासु प्रतिष्ठिताः नियतं स्थिता इत्यर्थः॥१५४॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रपुराणानि त्रयीदं सर्वमुच्यते॥१५५॥

अन्वयः—अङ्गानि चत्वारः वेदाः मीमांसा न्यायविस्तरः धर्मशास्त्राणि पुराणानि, इदं सर्वं त्रयी उच्यते॥१५५॥

व्याख्या—अङ्गानि = शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषानि, चत्वारः = चतुर्धा, वेदाः = ऋग्यजुःसामाथर्वाख्याः, मीमांसा = दर्शनशास्त्रविशेषः, न्यायविस्तरः = तर्कप्रपञ्चः, धर्मशास्त्राणि = धर्मसंहितायां मन्वादिस्मृतयः, पुराणानि = ब्रह्मादीनि, इदम् = एतत्, सर्वम् = सकलम्, त्रयी, उच्यते = कथ्यते॥१५५॥

हिन्दी—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द—ये छः अङ्ग; ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार वेद; मीमांसा, तर्कशास्त्र, मन्वादि स्मृति और ब्रह्मादि पुराण—ये सभी त्रयी' कहलाते हैं॥१५५॥

अङ्गानीति। अङ्गानि शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तच्छन्दोज्योतिषाणि, चत्वारः वेदाः ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याः मीमांसा, न्यायविस्तरः तर्कप्रपञ्चः, धर्मशास्त्राणि मन्वादिप्रणीतानि, पुराणानि ब्रह्मादीनि इदं सर्वं त्रयी उच्यते त्रयीशब्देन उक्तानि शास्त्राणि बोद्धव्यानीत्यर्थः॥१५५॥

कुसीदकृषिवाणिज्यं गोरक्षावार्त्तयोच्यते।
सम्पन्नो वार्त्तया साधुर्न वृत्तेर्भयमृच्छति॥१५६॥

अन्वयः—वार्त्तया कुसीदकृषिवाणिज्यं गोरक्षा उच्यते। साधुः वार्त्तया सम्पन्नः वृत्तेः भयं न ऋच्छति॥१५६॥

व्याख्या—वार्तया = उक्तया, कुसीदम् = वार्द्धुष्यम्, कृषिः = हलभृतिः, वाणिज्यम् = व्यापरः, गोरक्षा = गवां रक्षा, पशुपालनम्, उच्यते = कथ्यते, साधु = सज्जनः, वार्त्तया सम्पन्नः = वार्त्तया = पूर्वोक्तविद्यया, सम्पन्नः = संयुक्तः, वृत्तेः = आजीविकायाः, भयम् = त्रासम्, न = नहि, ऋच्छति = प्राप्नोति॥१५६॥

हिन्दी—सूदखोरी, खेती, व्यापार और गोपालन को व्यापार कहते हैं। इस वार्त्ताशास्त्र का भलीभाँति ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को जीविका सम्बन्धि भय कभी नहीं होता॥१५६॥

कुसीदेति। वार्त्तया पूर्वोक्तया अर्थानर्थसाधन्या कुसीदं वृद्धिव्यवहारः कृषिः वाणिज्यं तथा गोरक्षा गवां रक्षा उपलक्षणमेतत् पशुपालनमित्यर्थः उच्यते, साधुर्जनः वार्तया विद्यया सम्पन्नः युक्तः वृत्तेः जीविकायाः भयं न ऋच्छति न प्राप्नोति सुखेन जीवनं यापयतीति भावः॥१५६॥

दमो दण्ड इति ख्यातस्तस्माद्दण्डो महीपतिः।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते॥१५७॥

अन्वयः—दण्डः दमः इति ख्यातः तस्मात् महीपतिः दण्डः। तस्य नीतिः दण्डनीतिः, नयनात् नीतिः उच्यते॥१५६॥

व्याख्या—दण्डः = निग्रहः शासनं वा, दमः = दमनम्, इति ख्याताः = प्रसिद्धाः, तस्मात् = कारणात्, महीपतिः = राजा, दण्डः = दमनकारित्वात् दण्ड एवेति। तस्य = राज्ञः, नीतिः = दण्डनीतिः, नयनात् = दुष्टादुष्टनिर्णयात्, नीतिः उच्यते = कथ्यते ॥ १५६ ॥

हिन्दी—दम को दण्ड भी कहते हैं। दण्ड देने के ही कारण राजा दण्डस्वरूप है। उस के राज्यसंचालन नीति को दण्डनीति कहते हैं। नी + क्तिन् से बनता है नीति; नी का अर्थ है—ले जाना। यहाँ दण्डनीति से राजनीति का ग्रहण किया जाता है। क्योंकि इससे वह प्रजा को धर्म की ओर ले जाता है ॥ १५६ ॥

दम इति। दण्डः दमः दुष्टदमनमित्यर्थः, इति ख्यातः प्रसिद्धः तस्मात् महीपतिः दण्डः दमनकारित्वात् दण्ड एवेति कार्य्यकारणयोरभेदेनोपचारः। तस्य महीपतेः नीतिः दण्डनीतिः, नयनात् दुष्टादुष्टनिर्णयात् नीतिः उच्यते कथ्यते ॥ १५७ ॥

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानाद्धर्षशोकौ व्युदस्यति।
उभौ लोकाववाप्नोति त्रय्यां तिष्ठन् यथाविधि ॥ १५८ ॥

अन्वयः—आन्वीक्षिक्या आत्मविज्ञानात् हर्षशोकौ व्युदस्यति; त्रय्यां यथाविधि तिष्ठन् उभौ लोकौ अवाप्नोति ॥ १५८ ॥

व्याख्या—आन्वीक्षिक्या = आत्मविद्यया, आत्मविज्ञानात् = आत्मबोधात्, हर्षशोकौ—हर्षश्च = मोदश्च, शोकश्च = दुःखश्च, व्युदस्यति = त्यजति, त्रय्याम् = त्रयीविद्यायाम्, यथाविधि = यथायोग्यम्, तिष्ठन् = अनुसरन्, उभौ = द्वौ, लोकौ = लोकपरलोकौ, अवाप्नोति = प्राप्नोति।

हिन्दी—आन्वीक्षिकी विद्या से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञानी व्यक्ति न तो हर्ष से प्रभावित होता है और न शोक से प्रताड़ित। त्रयीविद्या के ज्ञान से कोई राजा यथोचित कार्य करता हुआ संसार का सुख भोग कर परलोक का भी सुख भोगता है ॥ १५८ ॥

आन्वीक्षिक्येति। आन्वीक्षिक्या विद्यया आत्मविज्ञानात् आत्मावबोधात् हर्षशोकौ व्युदस्यति त्यजति जन इति शेषः, आत्मज्ञाने सति शुभाशुभहर्षशोकौ भवत इति भावः। तथा त्रय्यां विद्यायां यथाविधि तिष्ठन् यथाविधि त्रयीमनुसरन्नित्यर्थः, उभौ लोकौ ऐहिकमामुत्रिकञ्च प्राप्नोति ॥ १५८ ॥

आनृशंस्यं परो धर्मः सर्वप्राणभृतां यतः।
तस्माद्राजानृशंस्येन पालयेत् कृपणं जनम् ॥ १५९ ॥

अन्वयः—यतः सर्वप्राणभृताम् आनृशंस्यं परो धर्मः, तस्मात् राजा आनृशंस्येन कृपणं जनं पालयेत् ॥ १५९ ॥

व्याख्या—यतः = यस्मात्कारणात्, सर्वप्राणभृताम्—सर्वेषाम् = सकलानाम्, प्राणभृताम्—प्राणं बिभर्त्तीति प्राणभृत्, तेषां प्राणभृताम् = प्राणिनाम्, आनृशंस्यम् = दया, परः = परमः, धर्मः = पुण्यम्, उच्यते, तस्मात् राजा = भूपतिः, आनृशंस्येन = दयया, कृपणम् = दीनं, जनम् = लोकम्, पालयेत् = रक्षयेत् ॥ १५९ ॥

हिन्दी—सभी जीवों के प्रति दया करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अतः अनुकम्पापूर्वक दीन-हीन प्रजा का पालन करना ही राजा का धर्म है ॥ १५९ ॥

आनृशंस्यमिति। यतः सर्वेषां प्राणभृतां देहिनाम् आनृशंस्यं दया परमः धर्मः उक्त इति शेषः, तस्मात राजा आनृशंस्येन अनुकम्पया कृपणं दीनं जनं पालयेत् ॥ १५९ ॥

न हि स्वसुखमन्विच्छन् पीडयेत् कृपणं जनम्।
कृपणः पीडयमानः स्वमृत्युना हन्ति पार्थिवम्॥ १६० ॥

अन्वयः—स्वसुखमन्विष्यन् कृपणं जनं न हि पीडयेत्। पीड्यमानः कृपणः मृत्युना पार्थिवं हन्ति ॥ १६० ॥

व्याख्या—स्वसुखमन्विष्यन्—स्वम् = निजम्, सुखम् = आनन्दः, अन्विष्यन् = अनुसन्धानं कुर्वन्, कृपणम् = दीनजनम्, न हि, पीड़येत् = व्यथयेत्, पीड्यमानः = क्लेश्यमानः, कृपणः = दीनः, स्वमृत्युना—स्वेन = निजेन, मृत्युना = निधनेन, पार्थिवम् = नृपम्, हन्ति = मारयति ॥ १६० ॥

हिन्दी—अपने सुख को खोजते हुए गरीबों को कभी नहीं सताना चाहिए। सताये गये गरीब अपनी मौत से राजा को भी विनष्ट कर देते हैं ॥ १६० ॥

न हीति। स्वं निजं सुखम् अन्विच्छन् कृपणं दीनं जनं न हि पीडयेत्, पीड्यमानः कृपणः दीनः स्वमृत्युना निजेन मृत्युना पार्थिवं राजानं हन्ति नाशयति ॥ १६० ॥

सुजनैः सङ्गतं कुर्य्याद्धर्माय च सुखाय च।
सेव्यमानस्तु सुजनैर्महानतिविराजते ॥ १६१ ॥

अन्वयः—महान् धर्माय सुखाय च सुजनैः सङ्गतं कुर्यात्, सुजनैः सेव्यमानस्तु अतिविराजते ॥ १६१ ॥

व्याख्या—महान् = श्रेष्ठजनः, धर्माय = पुण्यार्जनाय, सुखाय = सुखमवाप्तये, सुजनैः = साधुपुरुषैः सह, सङ्गतम् = सम्पर्कम्, कुर्यात् = विदध्यात्, सुजनैः = सत्पुरुषैः, सेव्यमानस्तु = उपास्यमानस्तु, अतिविराजते = अत्यधिकं शोभते ॥ १६१ ॥

हिन्दी—सुख पाने के लिए, सुखी जीवन के लिए भद्र पुरुषों की संगति करनी चाहिए। क्योंकि सज्जनों से सेवित राजा महत्त्वशाली होकर बहुत दिनों तक सुशोभित होता है ॥ १६१ ॥

सुजनैरिति। महान् जनः धर्माय सुखाय च सुजनैः साधुभिः सङ्गतं संसर्गं कुर्य्यात्, सुजनैः सेव्यमानस्तु अतिविराजते, अधिकं शोभते ॥ १६१ ॥

हिमांशुमाली च यथा नवोत्फुल्लोत्पलं सरः।
आनन्दयति चेतांसि तथा सुजनचेष्टितम्॥ १६२ ॥

अन्वयः—हिमांशुमाली च नवोत्फुल्लोत्पलं सरः यथा चेतांसि आनन्दयति तथा सुजनचेष्टितम् ॥ १६२ ॥

व्याख्या—हिमांशुमाली = तुषारकिरणमाला, अस्यास्तीति हिमकिरणमाली = चन्द्रमा, च = पुनः, नवोत्फुल्लोत्पलम्—नवानि = नूतनानि, उत्फुल्लानि = विकसितानि, उत्पलानि = कुवलयानि, यस्मिन् तादृशम्, सरः = सरोवरः, यथा = येन प्रकारेण, चेतांसि = मनांसि, आनन्दयति = आह्लादयति, तथा = तेनैव प्रकारेण, सुजनचेष्टितम्—सुजनानाम् = संत्पुरुषाणाम्, चेष्टितम् = समाचरितम्, मनांसि आह्लादयति ॥ १६२ ॥

हिन्दी—चन्द्रमा और खिले कमलों से भरे तालाब जैसे मन को प्रसन्न कर देते हैं, ठीक उसी तरह सज्जनों का व्यवहार भी आनन्ददायक होता है ॥ १६२ ॥

हिमांश्विति। हिमांशुमाली चन्द्रः यथा नवानि उत्फुल्लानि उत्पलानि कुमुदानि यस्मिन् तादृशं सरः आनन्दयति शोभयति, तथा सुजनानां साधूनां चेष्टितम् आचरितं चेतांसि मनांसि आनन्दयति ॥ १६२ ॥

ग्रीष्मसूर्य्यांशुसन्तप्तमुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुस्थलमिवोदग्रं त्यजेद् दुर्जनसङ्गतम् ॥ १६३ ॥

अन्वयः—ग्रीष्मसूर्यांशुसन्तप्तम् अनाश्रयम् उद्वेजनं मरुस्थलम् इव दुर्जनसङ्गतं त्यजेत्।

व्याख्या—ग्रीष्मसूर्यांशुसन्तप्तम्—ग्रीष्मे = निदाघकाले, ये सूर्यांशवः = दिवाकरकिरणाः, तैः सन्तप्तम् = ज्वलितम्, अनाश्रयम् = अशरणम्, उद्वेजनम् = भयोत्पादकम्, मरुस्थलम् = मरुभूमिम्, इव = यथा, दुर्जनसङ्गतम्—दुर्जनानाम् = दुष्टानाम्, सङ्गतम् = सम्पर्कम्, त्यजेत् = त्यागं कुर्यात् ॥ १६३ ॥

हिन्दी—ग्रीष्मकालीन सूर्य-किरणों के सम्पर्क से सन्तप्त मन को उद्विग्न करनेवाली, छायाविहीन मरु- भूमि की तरह दुर्जनों की संगति होती है। अतः इसका तो परित्याग कर ही देना चाहिए ॥ १६३ ॥

ग्रीष्मेति। ग्रीष्मे निदाघे ये सूर्यांशवः रविकिरणाः तैः सन्तप्तम् उद्वेजनं भीतिजनकम् अनाश्रयम् आश्रयरहितम् अनावृतमित्यर्थः, मरुस्थलमिव मरुभूमिमिव उदग्रम् अतिभयङ्करं दुर्जनसङ्गतम् असाधुसङ्गं त्यजेत् ॥ १६३ ॥

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः ।
वरमाशीविषैः सङ्गं कुर्य्यान्न त्वेव दुर्ज्जनैः ॥ १६४ ॥

अन्वयः—निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः आशीविषैः सङ्गं वरं न तु दुर्जनैः सङ्गं कुर्यात् ॥ १६४ ॥

व्याख्या—निःश्वासेन = उच्छ्वसितेन, उद्गीर्णः = निःसृतः, यः हुतभुक् = वह्निः, तस्य धूमेन = खतमालेन, धूम्रीकृतानि = कृष्णलौहितीकृतानि, आननानि = मुखानि, येषां तादृशैः आशीविषैः = विषधरैः, सङ्गम् = सम्पर्कम्, वरम् = श्रेष्ठम्, न तु दुर्जनैः = दुष्टजनैः, सम्पर्कं कुर्यात् = करणीयमिति भावः ॥ १६४ ॥

हिन्दी—साँसो से निकली जहरीली आग के धुँए से ललाई लिये काले रंग के चेहरे वाले विषधरों (साँपों) के साथ रहना अच्छा है, किन्तु दुर्जनों की संगति अच्छी नहीं है ॥ १६४ ॥

निःश्वासेति। निःश्वासेन उद्गीर्णः यः हुतभुक् अग्निः तस्य धूमेन धूम्रीकृतानि कृष्णलौहितीकृतानि आननानि मुखानि येषां तादृशैः आशीविषैः भुजङ्गैः वरं सङ्गं कुर्य्यात् दुर्जनैः न तु एव सः विषधरसङ्गादपि दुर्जनसङ्गो भयावह इति भावः ॥ १६४ ॥

क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय सुजनाय यथाञ्जलिः ।
ततः साधुतरः कार्य्यो दुर्जनाय हितार्थिना ॥ १६५ ॥

अन्वयः—अभ्यर्हणीयाय सुजनाय यथा अञ्जलिः क्रियते, हितार्थिना दुर्जनाय ततः साधुतरः कार्यः ॥ १६५ ॥

व्याख्या—अभ्यर्हणीयाय = सम्माननीयाय, सुजनाय = साधुपुरुषाय, यथा = येन प्रकारेण,

अञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः, क्रियते = सम्पाद्यते, हितार्थिना = कल्याणकामीजनेन, दुर्जनाय = दुष्टजनाय, ततः = तस्मादपि, साधुतरः = श्रेष्ठतरः, अञ्जलिः कार्यः ॥ १६५ ॥

हिन्दी—आत्महित चाहने वाले व्यक्ति का उचित कत्तर्व्य है कि वह जैसे समादरणीय सज्जनों की अभ्यर्थना में हाथ जोड़ता है, उससे अधिक दुर्जनों के लिए हाथ जोड़े। ताकि अपनी मीठी बातों से उन्हें सन्तुष्ट कर उनसे कतरा सके ॥ १६५ ॥

क्रियते इति। अभ्यर्हणीयाय पूज्याय सुजनाय यथा अञ्जलिः क्रियते, यथा बद्धाञ्जलिना सुजनः सेव्य इत्यर्थः, हितार्थिना जनेन दुर्जनाय ततः तस्मादपि साधुतरः अञ्जलिः कार्य्यः समधिकबद्धाञ्जलिना दुर्जनः सेव्य इत्यर्थः, चाटुवचनैः परितोष्य दुर्जनः परिहर्त्तव्य इति भावः ॥ १६५ ॥

नित्यं मनोऽपहारिण्या वाचा प्रह्लादयेज्जगत्।
उद्वेजयति भूतानि क्रूरवाग्धनदोऽपि सन् ॥ १६६ ॥

अन्वयः—मनोहारिण्या वाचा नित्यं जगत् प्रह्लादयेत्। क्रूरवाक् धनदोऽपि सन् भूतानि उद्वेजयति ॥ १६६ ॥

व्याख्या—मनोहारिण्या = हृदयहारिण्या, मधुरया, वाचा = वाण्या, नित्यम् = सततम्, जगत् = संसारः, प्रह्लादयेत् = आनन्दयेत्, क्रूरा = कठोरा, वाक् = वाणी, यस्य तादृशः जनः, धनदोऽपि = कुबेरतुल्योऽपि सन्, भूतानि = प्राणिनः, उद्वेजयति = उद्वेगं जनयति ॥ १६६ ॥

हिन्दी—हमेशा मीठी बातों से संसार को प्रसन्न रखना चाहिए। कर्कश वाणी बोलने वाला व्यक्ति यदि धनपति कुबेर की तरह धन देने वाला हो तो भी उसकी कठोर बातें लोगों को अधिक उद्विग्न करती हैं ॥ १६६ ॥

नित्यमिति। मनोहारिण्या मधुरया वाचा नित्यं सततं जगत् प्रह्लादयेत् सन्तोषयेत्, क्रूरा कर्कशा वाक् यस्य तादृशः जनः धनदः अर्थदोऽपि सन् भूतानि प्राणिनः उद्वेजयति तापयति ॥ १६६ ॥

हृदि विद्ध इवात्यर्थं यया सन्तप्यते जनः।
पीडितोऽपि हि मेधावी न तां वाचमुदीरयेत् ॥ १६७ ॥

अन्वयः—जनः यया हृदि विद्ध इव अत्यर्थं सन्तप्यते, मेधावी पीडितोऽपि तां वाचं न उदीरयेत् ॥ १६७ ॥

व्याख्या—जनः = लोकः, यया = वाचा, हृदि = चेतसि, विद्धः = वेधितः, इव = यथा, अत्यर्थम् = अमितम्, सन्तप्यते, मेधावी = बुद्धिमान् जनः, पीडितोऽपि = सन्तप्तः सन्नपि, ताम् = कर्कशाम्, वाचम् = वाणीम्, न = नहि, उदीरयेत् = उच्चारयेत् ॥ १६७ ॥

हिन्दी—पीड़ित होने पर भी बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी वाणी का प्रयोग न करे जिसे सुनकर सुनने वाले व्यक्ति की छाती में वह बात बाण की तरह चुभ जाय और वह पीड़ा से तड़प उठे ॥ १६७ ॥

हृदीति। जनः यया वाचा हृदि विद्ध इव अत्यर्थम् अतिमात्रं सन्तप्यते, मेधावी बुद्धिमान् जनः पीडितोऽपि परैरभिहितोऽपि तां वाचं निष्ठुरां वाणीं न उदीरयेत् न कथयेत् ॥ १६७ ॥

प्रियमेवाभिधातव्यं नित्यं सत्सु द्विषत्सु वा।
शिखीव केकां मधुरां वाचं ब्रूते जनप्रियः ॥ १६८ ॥

अन्वयः—सत्सु वा द्विषत्सु प्रियमेव नित्यम् अभिधातव्यम्। जनप्रियः शिखी केका इव मधुरां वाचं ब्रूते ॥ १६८ ॥

व्याख्या—सत्सु = सद्‌गुणशालिनि सुहृत्सु, वा = अथवा, द्विषत्सु = दुर्वृत्तशालिनि दुर्हृत्सु, प्रियम् = मनोहरम्, एव = केवलम्, नित्यम् = अनवरतम्, अभिधातव्यम् = वक्तव्यम्। जनप्रियः = लोकाभिरामः, शिखी = मयूरः, केका = मयूरवाणी, इव = यथा, मधुराम् = मनोहराम्, वाचम् = गिरम्, ब्रूते = वदति। रूपकानुप्राणितोपमालङ्कारः ॥ १६८ ॥

हिन्दी—सज्जन मित्र हो अथवा दुर्जन दुश्मन—सबों के साथ मीठी बातें ही बोलनी चाहिए। लोकप्रिय जन मयूर की तरह ही मीठी बातें ही बोलते हैं ॥ १६८ ॥

प्रियमेवेति। सत्सु बन्धुषु वा द्विषत्सु शत्रुषु अपि प्रियमेव न तु अप्रियम् एवकारोऽन्यव्यवच्छेदकः। नित्यं सततम् अभिधातव्यं वक्तव्यम्। जनप्रियः लोकः शिखी मयूरः केकामिव मधुरां वाचं ब्रूते कथयति ॥ १६८ ॥

मदरक्तस्य हंसस्य कोकिलस्य शिखण्डिनः।
हरन्ति न तथा वाचो यथा वाचो विपश्चिताम्॥ १६९ ॥

अन्वयः—विपश्चितां वाचः यथा हरन्ति मन इति शेषः, मदरक्तस्य हंसस्य कोकिलस्य शिखण्डिनः वाचः तथा न ॥ १६९ ॥

व्याख्या—विपश्चिताम् (विप्रकृष्टं चिनोति चेतति चिन्तयति वेति; वि + प्र + चित् + क्विप्—पृषो०) = बुद्धिमताम्, वाचः = गिरः, यथा = येन प्रकारेण 'मनः' इति शेषः, हरन्ति = लुण्ठन्ति, मदेन = उन्मादेन, रक्तः = रञ्जितः, तस्य मदासक्तस्य, हंसस्य = मरालस्य, वा कोकिलस्य = पिकस्य, शिखण्डिनः = मयूरस्य, वाचः = गिरः, तथा = तेन प्रकारेण, मनो न हरतीति भावः। दृष्टान्तालङ्कारोऽत्र ॥ १६९ ॥

हिन्दी—मदोन्मत्त हंसों का कूजन, कोयलों की काकली, मयूरों की केका भी मन को वैसे नहीं लुभातीं जैसे विद्वानों की मीठी बातें लुभाती हैं ॥ १६९ ॥

मदेति। विपश्चितां विदुषां वाचः यथा हरन्ति मन इति शेषः, मदरक्तस्य हंसस्य कोकिलस्य तथा शिखण्डिनः मयूरस्य वाचः तथा न ॥ १६९ ॥

ये प्रियाणि प्रभाषन्ते प्रियमिच्छन्ति सत्कृतम्।
श्रीमन्तो वन्द्यचरिता देवास्ते नरविग्रहाः ॥ १७० ॥

अन्वयः—ये प्रियं सत्कृतम् इच्छन्ति प्रियाणि भाषन्ते, ते नरविग्रहाः श्रीमन्तः वन्द्यचरिताः देवाः वक्तव्या इति शेषः ॥ १७० ॥

व्याख्या—ये = लोकाः, प्रियम् = रुचिकरम्, सत्कृतम् = श्लाघास्वरूपं सत्कारम्, इच्छन्ति = अभिलषन्ति, प्रियाणि = मनोहराणि, भाषन्ते = वदन्ति, ते = एवंविधा जनाः, नरविग्रहाः = मनष्यदेहधारिणः, श्रीमन्तः = सौभाग्यशालिनः, वन्द्यम् = प्रशंसनीयम्, चरितम् आचरणम्, येषां तादृशाः वन्दनीयचरित्राः, देवाः = सुराः, एव कथितव्येति शेषः। अर्थात् खल्वस्मिन् संसारे प्रियवादिन एव सत्कारयोग्याः भवन्तीति भावः ॥ १७० ॥

हिन्दी—जो लोग मीठी बातें बोलते हैं और अपने आत्मीयों का सम्मान करना जानते हैं, ऐसे वन्दनीय चरित्र वाले सौभाग्यशाली लोग मनुष्य के रूप में देवता ही होते हैं ॥ १७० ॥

ये इति। ये जनाः प्रियं सत्कृतं प्रशंसावादरूपं सत्कारम् इच्छन्ति प्रियाणि वचनानि प्रभाषन्ते वदन्ति प्रियवादिनः प्रियसत्कारार्हा इति भावः, ते नरविग्रहाः मानवदेहधारिणः श्रीमन्तः वन्द्यं चरितं येषां तादृशाः महनीयचरित्रा देवाः वक्तव्या इति शेषः॥ १७०॥

न हीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
दया मैत्री च भूतेषु दानञ्च मधुरा च वाक्॥ १७१॥

अन्वयः—त्रिषु लोकेषु ईदृशं संवननं नहि विद्यते यथा भूतेषु दया मैत्री सौहृद्यं दानं तथा मधुरा वाक् भवतीति शेषः॥ १७१॥

व्याख्या—त्रिषु = त्रिसंख्यकेषु, लोकेषु = भुवनेषु, ईदृशम् = एतादृशम्, संवननम् = वशीकरणम्, न हि = नैव, विद्यते = अस्ति, यथा = येन प्रकारेण, भूतेषु = जीवेषु, दया = हितेच्छा वानुकम्पा, मैत्री = सख्यम्, सौहृद्यम् = प्रणयः, तथा = तेनैव प्रकारेण, मधुरा = मनोहरा, वाक् = वाणी च, भवतीति शेषः॥ १७१॥

हिन्दी—तीनों लोक में ऐसा दूसरा कोई वशीकरण नहीं है—जैसा प्राणियों के प्रति दया, मैत्री, त्याग या उनके प्रति मधुरवचन बोलना है॥ १७१॥

न हीति। त्रिषु लोकेषु ईदृशं संवननं वंशीकरणं न हि नैव विद्यते इत्यर्थः, यथा भूतेषु दया, मैत्री सौहृद्यं दानं तथा मधुरा वाक्॥ १७१॥

श्रुतिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद् देवतां सदा।
देवतावद् गुरुजनानात्मवच्च सुहृज्जनान्॥ १७२॥

अन्वयः—आस्तिक्यपूता सदा देवतां देवतावत् गुरुजनान् तथा आत्मवत् सुहृज्जनान् पूजयेदिति श्रुतिरस्ति॥ १७२॥

व्याख्या—आस्तिक्यपूतात्मा (आस्तिक + तल्, त्वल् ष्यञ् वा)—आस्तिक्येन = ईशवेदपरलोकेषु विश्वासेन, पूतात्मा—पूतः = पवित्रः, आत्मा = चेतनः, यस्यासौ आस्तिक्यपूतात्मा अर्थात् परमात्मनि श्रद्धावान् भूत्वा, सदा = सर्वदा, देवताम् = दिवौकसाम्, देवतावत्, गुरुजनान् = पूज्यपुरुषान्, आत्मवत् = स्वसदृशम्, सुहृज्जनान् = मित्रसमूहान्, पूजयेत् = अर्चयेत्, इति = इत्थम्, श्रुतिः = वेदः, अस्तीति भावः॥ १७२॥

हिन्दी—आस्तिकता से पवित्रचित्त होकर सदैव देवताओं की पूजा करनी चाहिए। गुरुजनों को देवताओं की तरह तथा सुहृज्जनों को अपनी आत्मा की तरह सम्मानित करना श्रुति है॥

श्रुतिरिति। आस्तिक्यापूतात्मा इश्वरे भक्तिमान् सन् सदा देवतां देवतावत् गुरुजनान् तथा आत्मवत् सुहृज्जनान् बन्धून् पूजयेत् इति श्रुतिरस्तीति शेषः॥ १७२॥

प्रणिपातेन हि गुरून् सतोऽनूचानवेष्टिताः।
कुर्वीताभिमुखान् देवान् भूत्यै सुकृतकर्मणा॥ १७३॥

अन्वयः—अनूचानैः वेष्टितः प्रणिपातेन सतः गुरून् तथा भूत्यै सुकृतकर्मणा देवान् अभिमुखान् कुर्वीत॥ १७३॥

व्याख्या—अनूचानैः (अनु + वच् + कन् नि॰)= वेदवेदाङ्गेषु पारङ्गतैः विद्वद्भिः, 'अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गुरोस्तु यः' इत्यमरः। वेष्टितः = परिवेष्टितः सन्, प्रणिपातेन = नमस्क्रियया,

सतः = साधुपुरुषान्, गुरून् = पूज्यपुरुषान्, तथा = तेनैव प्रकारेण, भूत्यै = ऐश्वर्याय, सुकृतकर्मणा = सद्गुणसम्पन्नेन स्वक्रियया, देवान् = सुरान्, अभिमुखान् = अनुकूलान्, कुर्वीत = कर्तव्यमिति भावः ॥ १७३ ॥

हिन्दी—वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणों को साथ लेकर प्रणामपुरःसर गुरुजनों, सज्जनों और देवताओं को अपने अनुकूल बनाना चाहिए। ऐसा करने से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है तथा व्यक्ति सुखी होता है। १७३ ॥

प्रणिपातेनेति। अनूचानैः साङ्गवेदविद्भिः सुपण्डितैरित्यर्थः, अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीति गुरोस्तु य इत्यमरः, वेष्टितः परिवृतः सन् प्रणिपातेन सतः साधून् गुरून् गुरुजनान् तथा भूत्यै मङ्गलाय सुकृतकर्मणा शोभनेन कार्य्येण देवान् अभिमुखान् अनुकूलान् कुर्वीत ॥ १७३ ॥

सद्भावेन हरेन्मित्रं सद्भावेन च बान्धवान्।
स्त्रीभृत्यौ प्रेममानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् ॥ १७४ ॥

अन्वयः—सद्भावेन मित्रं सद्भावेन बान्धवान् प्रेममानाभ्यां स्त्रीभृत्यौ दाक्षिण्येन इतरं जनं हरेत् ॥ १७४ ॥

व्याख्या—सद्भावेन = शुभचिन्तनेन, मित्रम् = सहचरम्, सद्भावेन = हितभावनया, बान्धवान् = अंशकान्, प्रेम्णा = स्नेहेन, स्त्रीम् = वनिताम्, मानेन = सम्मानेन च, भृत्यम् = सेवकम्, दाक्षिण्येन = शिष्टतया, इतरम् = अवशिष्टाधमम्, जनम् = लोकम्, हरेत् = वशवर्त्तिनं कुर्यात् ॥ १७४ ॥

हिन्दी—शुभचिन्तन से मित्रों को, हितकामना से दायादों को, स्नेह से स्त्री को तथा शिष्टता से गँवारों को वशवर्त्ती बनाना चाहिए ॥ १७४ ॥

सद्भावेनेति। सद्भावेन मित्रं सद्भावेन बान्धवान् प्रेममानाभ्यां प्रेम्णा सम्मानेन च स्त्रीभृत्यौ स्त्रीं भृत्यं परिजनवर्गं तथा दाक्षिण्येन औदार्य्येण इतरं जनं हरेत् वशीकुर्य्यात् ॥ १७४ ॥

बलवान् बुद्धिमान् शूरो यो हि युक्तपराक्रमी।
वित्तपूर्णां महीं भुङ्क्ते स भूपो भूपतिर्भवेत् ॥ १७५ ॥

अन्वयः—यः हि बलवान् बुद्धिमान् शूरः युक्तपराक्रमी सः वित्तपूर्णां महीं भुङ्क्ते, सः भूपः भूपतिर्भवेत् ॥ १७५ ॥

व्याख्या—यः = नृपः, हि = यतः, बलवान् = सामर्थ्यवान्, बुद्धिमान् = धीमान्, शूरः = वीरः, युक्तपराक्रमी—युक्तम् = समुचितम्, यथा स्यात्तथा पराक्रमते = विक्रमते, इति तादृशः भवेदिति, समुचितपराक्रमशाली भवेदिति भावः। सः = असौ, वित्तपूर्णाम् = धनधान्यसमन्वितम्, महीम् = पृथिवीम्, भुङ्क्ते = उपभोगं करोति, स एव भूपः = नृपः, भूपतिः = पृथ्वीपतिः, भवेत् = स्यादिति ॥ १७५ ॥

हिन्दी—जो राजा सामर्थ्यवान्, वीर तथा उचित समय पर पराक्रम करने वाला होता है, वह धन-धान्य से पूर्ण पृथ्वी का उपभोग करता है। शब्द के सच्चे अर्थ में वही भूपति है ॥१७५ ॥

बलवानिति। यः भूपः बलवान् बुद्धिमान् शूरः प्रतापवान् तथा युक्तपराक्रमी युक्तम् उचितं यथा तथा पराक्रमते इति तादृशः भवेत् स भूपतिः समग्रपृथिवीपतिः सम्राडित्यर्थः, सन् वित्तपूर्णां महीं भुङ्क्ते ॥ १७५ ॥

पराक्रमो बलं बुद्धिः शौर्य्यमेते वरा गुणाः।
एभिर्हीनोऽन्यगुणयुग् महीभुक् सधनोऽपि च॥ १७६॥
महीं स्वल्पां नैव भुङ्क्ते द्राक् च राज्याद् विनश्यति।
महाधनाच्च नृपतेर्विभात्यल्पोऽपि पार्थिवः॥ १७७॥
अव्याहताज्ञस्तेजस्वी एभिरेव गुणैर्भवेत्।
राज्ञः साधारणास्त्वन्ये न शक्ता भूप्रसाधने॥ १७८॥

अन्वयः—पराक्रमः बलं बुद्धिः शौर्यम् एते वराः गुणाः च, एभिः हीनः अन्यगुणयुक् महीभुक् सधनोऽपि स्वल्पाम् अपि महीं नैव भुङ्क्ते, प्रत्युत द्राक् च राज्यात् विनश्यति। यश्च राज्ञः एभिः एव गुणैः उपलक्षितः अव्याहताज्ञः तथा तेजस्वी भवेत् सः अल्पः अपि पार्थिवः महाधनात् नृपतेः विभाति। अन्ये साधारणाः भूप्रसाधने तथा न शक्ताः भवन्तीति भावः॥ १७६-१७८॥

व्याख्या—पराक्रमः = पौरुषम्, बलम् = सामर्थ्यम्, बुद्धि = मतिः, शौर्यम् = वीरता, एते = पूर्वोक्ताः, गुणाः = दक्षताः, वराः = उत्तमा, एभिः = पूर्वोक्तगुणैः, हीनः = रहितः, अन्यगुणयुक् = अपरप्रभावोपपन्नः, महीभुक् = नृपः, सधनोऽपि = धनसम्पन्नोऽपि, सत्यपि धनवान्, स्वल्पामपि = अत्यल्पमपि, महीम् = पृथ्वीम्, नैव = नास्त्येव, भुङ्क्ते = उपभुज्यते, प्रत्युत द्राक् च = पुनः शीघ्रमेव, 'द्राक्' पदमव्ययवाचकम्, राज्यात् = सिंहासनात्, विनश्यति = च्युतो भवति, भ्रश्यति वेति। यश्च, राज्ञः एभिः = पूर्वोक्तपराक्रमादिभिः, गुणैः = सन्धिविग्रहादिकस्वभावैः, उपलक्षितः = समन्वितः, अव्याहताज्ञः = अप्रतिरुद्धनिदेशः, तथा तेजस्वी = वर्चस्वी, भवेत् = स्यात्, सः असौ अल्पः = स्तोकमपि, समृद्धिरहितोऽपि, पार्थिवः = राजा, महाधनात् = आत्मनिष्ठगुणप्रभावात्, नृपतेरत्रापेक्षार्थे पञ्चमी, विभाति = शोभते, अन्ये = एतद्भिन्नसाधारणाः भूप्रसाधने = अवनिमलङ्करणे, न = नहि, शक्ताः = समर्थाः, भवन्तीति भावः॥ १७६-१७८॥

हिन्दी—पौरुष, सामर्थ्य, बुद्धि और वीरता—मनुष्य के ये सभी श्रेष्ठ गुण माने जाते हैं। जिस राजा में इन गुणों की कमी होती है तथा उसके पास अपार सम्पत्ति भी रहती है, फिर भी वह थोड़ी-सी धरती का अधिपति भी नहीं रह सकता है और यदि वह हो भी तो उसका राज्य टिक नहीं सकता है। महाधनवान् अगुणी राजा की अपेक्षा गुणवान् छोटा राजा भी सुशोभित होता है और अपने अधीनस्थों में प्रजापालक कहलाता है। क्योंकि पूर्वोक्त गुणों के कारण उनकी आज्ञा कोई नहीं टाल सकता है, ऐसा ही राजा ऊर्जस्वी होता है। इससे भिन्न राजे के सभी गुण साधारण माने जाते हैं। ऐसे राजे अपने राज्य के पालन में सक्षम नहीं हो पाते ॥ १७६-१७८॥

पराक्रम इत्यादि। पराक्रमः बलं बुद्धिः तथा शौर्य्यम् एते वराः श्रेष्ठा गुणाः, एभिर्गुणैः हीनः अन्यगुणयुक् महीभुक् राजा सधनोऽपि धनवानपि स्वल्पामपि महीं नैव भुङ्क्ते प्रत्युत द्राक् च शीघ्रं द्राक् इति अव्ययम्। राज्यात् विनश्यति भ्रश्यति। यश्च राज्ञः एभिः पराक्रमादिभिः गुणैः उपलक्षितः अव्याहताज्ञः अस्खलितनिदेशः तथा तेजस्वी भवेत् सः अल्पोऽपि असमृद्धोऽपि पार्थिवः महाधनात् उक्तगुणहीनात् नृपतेः अपेक्षार्थे पञ्चमी। विभाति शोभते। अन्ये साधारणाः सामान्याः जनाः भूप्रसाधने पृथ्वीवशीकरणे न शक्ताः न समर्थाः ॥ १७६-१७८॥

खनिः सर्वधनस्येयं देवदैत्यविमर्दिनी।
भूम्यर्थे भूमिपतयः स्वात्मानं नाशयन्त्यपि॥ १७९॥

अन्वयः—इयं देवदैत्यविमर्दिनी सर्वधनस्य खनिः भूमिपतयः भूम्यर्थे स्वात्मानमपि नाशयन्ति॥ १७९॥

व्याख्या—इयम् = एषा, देवदैत्यविमर्दिनी = देव-दानवविनाशिनी, सर्वधनस्य = सकल-सम्पदः, खनि = कोशः, अस्या एव पृथिव्याः कृते बहुधा देवासुरसङ्ग्रामोऽभवत्, अस्मादेव कारणात्, भूमिपतयः = भूस्वामिनः, भूम्यर्थे = अस्याः एवावन्याः कृते, स्वात्मानमपि = निजजीवनमपि, नाशयन्ति = विनष्टं कुर्वन्ति॥ १७९॥

हिन्दी—देवता और दानवों को लड़ाने वाली तथा सकल सम्पदाओं की निधि यही धरती है। इसी धरती के लिए राजे अपनी जान तक गँवा देते हैं॥ १७९॥

स्वानिरिति। इयं देवदैत्यविमर्दिनी सुरासुरविध्वंसिनी भूमिः अस्या एव कृते बहुशः सुरासुरविमर्दो जात इति भावः, सर्वधनस्य खनिः आकरः, भूमिपतयः राजानः भूम्यर्थे अस्या एव भूमेः कृते इत्यर्थः, स्वात्मानं स्वदेहम् अपि नाशयन्ति॥ १७९॥

उपभोगाय च धनं जीवितं येन रक्षितम्।
न रक्षिता तु भूर्येन किं तस्य धनजीवितैः॥ १८०॥

अन्वयः—येन उपभोगाय धनं च जीवितं रक्षितं तु येन भू न रक्षिता, तस्य धनजीवितैः किम्?॥ १८०॥

व्याख्या—येन = पुरुषविशेषेण, उपभोगाय = स्वरसास्वादनाय, धनम् = सम्पदम्, च = पुनः, जीवितम् = जीवनम्, रक्षितम् = गोपितम्, तु = किन्तु, येन = जनेन, भूः = पृथिवी, न = नहि, रक्षिता = संरक्षणं कृता, तस्य जनस्य नृपस्य वेति, धनजीवितैः = धनजीवनैः, किम् = न किमपीत्यर्थः॥ १८०॥

हिन्दी—जिसने आत्म-उपभोग के लिए धन और जीवन की रक्षा तो की पर धरती की रक्षा नही कर सका, उसके धन-जीवन की रक्षा का कोई महत्त्व नहीं॥ १८०॥

उपभोगायेति। येन उपभोगाय धनं जीवितञ्च रक्षितं किन्तु भूः पृथिवी न रक्षिता, तस्य धनजीवितैः धनैः जीवनैश्च किम्? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः॥ १८०॥

न यथेष्टव्ययायालं सञ्चितं तु धनं भवेत्।
सदागमाद् विना कस्य कुवेरस्यापि नाञ्जसा॥ १८१॥

अन्वयः—कस्यापि सञ्चितं धनं सदागमात् विना यथेष्टव्ययाय अलं न भवेत्, कुवेरस्यापि अञ्जसा न॥ १८१॥

व्याख्या—कस्यापि = पुरुषविशेषस्य, सञ्चितम् = सङ्गृहीतम्, धनम् = वैभवम्, सदागमात् = नित्यधनलाभं विना, यथेष्टव्ययाय = यथेप्सितवित्तविनियोगाय, अलम् = पर्याप्तम्, न = नहि, भवेत् = स्यात्, कुवेरस्यापि = धनपतेरपि, अञ्जसा = पर्याप्तरूपेण, न = नहि भवति। अयमाशयः—यदि धनाधिपतेरपि धनं, तत्त्वतः पर्याप्तो भवितुं न शक्यते तर्हि सामान्यजनस्य नित्यधनागमाभावे यथेच्छव्यये सति सङ्गृहीतधनस्य का कथा? नित्यधनागमाभावे सञ्चितं धनं

तु शीघ्रमेव क्षीयते, व्ययानुकूलमेव सर्वदा धनागमोऽपि आवश्यकमिति तात्पर्यः॥ १८१ ॥

हिन्दी—किसी भी व्यक्ति का संचित धन नित्य धनागम के बिना मनोनुकूल व्यय करने पर शीघ्र ही छीन जाता है। नित्य धनागम के अभाव में कुवेर का खजाना भी खाली हो जाता है तो फिर सामान्य जन का पूछना ही क्या? (इस दृष्टि से पृथ्वी धन का अत्यधिक महत्त्व है।)॥ १८१ ॥

नेति। कस्यापि जनस्य सञ्चितं धनं सदागमात् नित्यधनलाभं विना यथेष्टव्ययाय अलं समर्थं न भवेत्, कुवेरस्यापि अञ्जसा तत्त्वतः न अन्यस्य किं पुनरिति भावः, यथेच्छव्यये सति सञ्चितं धनम् अचिरात् क्षीयते, यादृग्व्ययः तादृशश्चेत् सर्वदा आगमो न स्यादिति फलितार्थः॥ १८१ ॥

पूज्यस्त्वेभिर्गुणैर्भूपो न भूपः कुलसम्भवः।
न कुले पूज्यते यादृग् बलशौर्य्यपराक्रमैः ॥ १८२ ॥

अन्वयः—एभिः गुणैः भूपः पूज्यः, कुलसम्भवः तु भूपः न पूज्यते। बलशौर्यपराक्रमैः यादृक् पूज्यते कुले तादृग् न॥ १८२ ॥

व्याख्या—एभिः= पूर्वोक्तपराक्रमादिभिः, गुणैः= स्वभावैः, भूपः= नृपतिः, पूज्यः= श्लाघनीयः, कुलसम्भवः= नृपकुलोत्पनः, तु= किन्तु, भूपः= भूपतिः, न= नहि, पूज्यते= प्रशस्यते, केवलराजकुले प्रसूतत्वेन गुणाभावे कोऽपि नृपः पूज्यो न भवतीति फलितार्थः। बलशौर्य-पराक्रमैः= शक्तिसामर्थ्यपुरुषार्थैः, यादृक्= यत्प्रकारकः, पूज्यते= मान्यो भवति, कुले= केवलराजकुलोत्पन्नत्वेन, तादृक्= तत्प्रकारकपूज्यत्वम्, न= नहि, भवति॥ १८२ ॥

हिन्दी—पराक्रमादि पूर्वोक्त गुणों से युक्त ही कोई राजा पूज्य होता है, केवल राजकुल में जन्म लेने से कोई राजा इन गुणों के अभाव में पूज्य नहीं होता। अपने बल, वीर्य और पराक्रम से कोई राजा जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, वैसी प्रतिष्ठा केवल राजकुल में जन्म लेने से प्राप्त नहीं होती॥ १८२ ॥

पूज्य इति। एभिः पूर्वोक्तैः पराक्रमादिभिः गुणैः उपलक्षितस्तु भूपः पूज्यः प्रशंसनीयः, कुलसम्भवः राजवंशप्रसूतस्तु भूपः न पूज्यः राजवंशप्रसूतत्वमेव न पूज्यत्वे निदानमिति भावः। बलशौर्य्यपराक्रमैः यादृक् पूज्यते, कुले कुलजातत्वे तादृक् न॥ १८२ ॥

लक्षकर्षमितो भागो राजतो यस्य जायते।
वत्सरे वत्सरे नित्यं प्रजानान्त्वविपीडनैः ॥ १८३ ॥
सामन्तः स नृपः प्रोक्तो यावल्लक्षत्रयावधि।
तदूर्ध्वं दशलक्षान्तो नृपो माण्डलिकः स्मृतः ॥ १८४ ॥

अन्वयः—यस्य तु वत्सरे वत्सरे प्रजानाम् अविपीडनैः नित्यं लक्षकर्षमितः राजतः भागः जायते, सः नृपः सामन्तः प्रोक्तः। लक्षत्रयावधि यावत् तत् ऊर्ध्वं दशलक्षान्तः नृपः माण्डलिकः स्मृतः॥ १८३-१८४ ॥

व्याख्या—यस्य= नृपस्य, तु= इत्यवधारणे, वत्सरे वत्सरे= प्रतिवत्सरमर्थात् वार्षिकम्, प्रजानाम्= जनानाम्, अविपीडनैः= विनातिक्रमणैः, नित्यम्= नियमितम्, लक्षकर्षमितः= सहस्रशतकमुद्रापरिमितम्, राजतः भागः= [illegible] राजस्वम्, जायते= भवेत्, सः= असौ,

नृपः = राजाः, 'सामन्तः' = गणाधिपतिः, इति प्रोक्तः = कथ्यते । अस्य सामन्तस्य लक्षकर्षपरिमिताल्लक्षत्रयावधि यावत् = लक्षत्रितयपरिमितरौप्यमुद्रारूपराजस्वं प्रतिवत्सरं लभते, तत् = तस्माद्, ऊर्ध्वम् = उपरि, अर्थात् लक्षचतुष्टयावधि दशलक्षान्तः = दशलक्षपर्यन्तवार्षिकराजस्वं जायते, स नृपः = राजा, माण्डलिकः स्मृतः = कथितः ॥ १८३-१८४ ॥

हिन्दी—जिस राजा को वार्षिक राजस्व एक लाख रुपये से लेकर तीन लाख रुपये तक प्रजा को बिना सताये प्राप्त होता है, उसे 'सामन्त' कहते हैं। इससे ऊपर अर्थात् चार लाख रुपये से दस लाख रुपये तक राजस्व वसूल होता है, वह राजा 'माण्डलिक' कहलाता है ॥ १८३-१८४ ॥

लक्षेति । सामन्त इति । यस्य तु वत्सरे वत्सरे प्रतिवत्सरं प्रजानाम् अविपीडनैः पीडनं विना नित्यं निश्चितं लक्षकर्षमितः लक्षकर्षपरिमितः राजतः भागः रौप्यमुद्रारूपराजस्वं जायते सः सामन्तः प्रोक्तः कथितः, लक्षत्रयावधि यावल्लक्षत्रितयपरिमितरौप्यमुद्रारूपराजस्वं यस्य प्रतिवत्सरम् उत्पद्यते स नृपः, तदूर्ध्वं दशलक्षान्तः लक्षचतुष्टयावधिदशलक्षपर्य्यन्तराजस्वं यस्य प्रतिवत्सरम् उत्पद्यते स नृपः माण्डलिकः स्मृतः कथितः ॥ १८३-१८४ ॥

तदूर्ध्वन्तु भवेद्राजा यावद् विंशतिलक्षकः ।
पञ्चाशल्लक्षपर्य्यन्तो महाराजः प्रकीर्त्तितः ॥ १८५ ॥

अन्वयः—तदूर्ध्वं विंशतिलक्षकः यावत् राजा भवेत्। पञ्चाशल्लक्षपर्यन्तः महाराजः प्रकीर्त्तितः ॥ १८५ ॥

व्याख्या—तदूर्ध्वं = दशलक्षादुपरि, विंशतिलक्षकः यावत् = एकादशलक्षावधि विंशतिलक्षपर्यन्ताधिपतिः, 'राजा' इति भवेत् = स्यादिति, तदूर्ध्वम् एकविंशतिलक्षावधि पञ्चाशल्लक्षपर्यान्ताधिपतिः, 'महाराजः' इति = एवम्, प्रकीर्त्तितः = कथितः ॥ १८५ ॥

हिन्दी—इससे ऊपर ग्यारह से बीस लाख तक राजस्व पानेवाला 'राजा' कहलाता है तथा बीस से ऊपर पचास लाख रुपये तक वार्षिक राजस्व पाने वाला 'महाराज' कहलाता है ॥ १८५ ॥

तदूर्ध्वमिति । तदूर्ध्वं यावद्विंशतिलक्षकः एकादशलक्षावधिविंशतिलक्षपर्य्यन्ताधिपतिरित्यर्थः, राजा भवेत् । तदूर्ध्वं पञ्चाशल्लक्षपर्य्यन्तः एकविंशत्यवधिपञ्चाशल्लक्षपर्य्यन्ताधिपतिः महाराजः प्रकीर्त्तितः कथितः ॥ १८५ ॥

ततस्तु कोटिपर्य्यन्तः स्वराट् सम्राट् ततः परम् ।
दशकोटिमितो यावत् विराट् तु तदनन्तरम् ॥ १८६ ॥
पञ्चाशत्कोटिपर्य्यन्तः सार्वभौमस्ततः परम् ।
सप्तद्वीपा च पृथिवी यस्य वश्या भवेत् सदा ॥ १८७ ॥

अन्वयः—ततस्तु कोटिपर्यन्तः स्वराट्, ततः परं दशकोटिमितो यावत् सम्राट्, तदनन्तरं पञ्चाशत्कोटिपर्यन्तं विराट्, ततः परं सार्वभौमः यस्य वश्या सदा सप्तद्वीपा पृथिवी भवेत् ॥ १८६-१८७ ॥

व्याख्या—ततः = तदूर्ध्वन्तु, कोटिपर्यन्तः = एकपञ्चाशदधिकशतलक्षपर्यन्तं यस्य वार्षिकराजस्वं भवति सः राजा 'स्वराट्' इति भवति। ततः परम् = तदूर्ध्वम्, दशकोटिमितो

यावत् = कोटिद्वयावधिदशशतलक्षपर्यन्ताधिपतिः 'सम्राट्' इति कथ्यते, तदनन्तरम् = तदूर्ध्वम्, पञ्चाशत्कोटिपर्यन्तः = एकादशकोट्यवधिपञ्चाशत्कोटिपर्यन्तः, यस्य वार्षिकं राजस्वं भवति स 'विराट्' इति कथ्यते, ततः परम् = तदूर्ध्वम्, वार्षिकराजस्वं यस्य भवति, सः = असौ, सार्वभौमः = सकलपृथिवीपतिः चक्रवर्त्ती सम्राट् भवेत्। यस्य = राज्ञः, वश्या = वशवर्त्तिनी, सदा = सर्वदा, सप्तद्वीपा = सप्तजलवेष्टिताः भूमयः, भवेत् = जायेत ॥ १८६-१८७ ॥

हिन्दी—इससे ऊपर एक करोड़ तक वार्षिक राजस्व पाने वाला प्रशासक 'स्वराट्' कहलाता है। दो करोड़ से दश करोड़ तक जो वार्षिक राजस्व पाता है, वह 'सम्राट्' होता है। ग्यारह करोड़ से पचास करोड़ तक जिसे राजस्व प्राप्त होता है, वह 'विराट्' कहलाता है। इससे अधिक राजस्व प्राप्त करने वाला राजा 'सार्वभौम' अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट् होता है, जिसके अधीन सदा यह सप्तद्वीपा धरित्री होती है ॥ १८६-१८७ ॥

तत इति। पञ्चाशदिति। ततः तदूर्ध्वं कोटिपर्य्यन्तः एकपञ्चाशदवधिकोटिपर्य्यन्ताधिपतिः स्वराट्, ततः तदूर्ध्वं दशकोटिमितः कोटिद्वयावधिदशकोटिपर्य्यन्ताधिपतिः सम्राट्, तदनन्तरं पञ्चाशत्कोटिपर्य्यन्तः एकादशकोट्यवधिपञ्चाशत्कोटिपर्य्यन्ताधिपतिः विराट् भवति। ततः परं सप्तद्वीपा पृथिवी यस्य सदा वश्या वशं गता भवेत् सः सार्वभौमः सर्वभूमीश्वरः चर्कवर्त्तीत्यर्थः भवेत् ॥ १८६-१८७ ॥

स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानाञ्च नृपः कृतः।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा ॥ १८८ ॥

अन्वयः—ब्रह्मणा स्वभागभृत्या प्रजानां दास्यत्वे हि सर्वदा पालनार्थं तु स्वामिरूपः नृपः कृतः ॥ १८८ ॥

व्याख्या—ब्रह्मणा = विश्वसृजा, वेधसा वेति, स्वभागभृत्या—स्वभागः = नृग्राह्यकरः, एव भृतिः = निर्वेशः वेतनं वा, तया = राजस्वरूपवेतनग्रहणेन, प्रजानाम् = जनानाम्, दास्यत्वे = सेवकत्वे, स्थित इति शेषः, च = पुनः, हीति निश्चयेन, सर्वदा = सततम्, पालनार्थम् = प्रजानामेव रक्षणार्थम्, स्वामिरूपः = प्रभुस्वरूपः, नृपः = राजा, कृतः = कल्पित इत्यर्थः। अत्र विरोधाभासालङ्कारः। चमत्कारजनकः परमार्थतः विरोधाभावेऽपि यत्रापाततो विरोधो भासते स विरोधाभासालङ्कारः। किञ्च चमत्कारजनकत्वे सति विरोधस्यापाततो भासमानत्वं विरोधाभासत्वम्। यद्वा चमत्कारजनकत्वे सति एकाधिकरणसम्बद्धत्वेन प्रतिपादितार्थयोरापाततः प्रतीयमानैककरणासम्बद्धत्वं विरोधाभात्वम् = नृपाधिष्ठितसेवकत्वस्वमित्वयोः स्पष्टविरोधः, किञ्च राज्ञः स्वभागभृत्या प्रजानां सेवकत्वं तथा रक्षणकारित्वात् स्वामित्वञ्चेति विरोधपरिहारः ॥ १८८ ॥

हिन्दी—प्रजा से राजस्वरूप वेतन ग्रहण करने के कारण सेवक के रूप में तथा निरन्तर प्रजापालन में तत्पर रहने के कारण स्वामी के रूप में विधि ने राजा की सृष्टि की है ॥ १८८ ॥

स्वभागेति। ब्रह्मणा विधात्रा स्वभागः राजग्राह्यांशः एव भृतिः वेतनं तथा प्रजानां दास्यत्वे किङ्करत्वे स्थित इति शेषः, नृपः सर्वदा पालनार्थं प्रजानामेव रक्षणार्थं हि स्वामिरूपः कृतः कल्पितः इत्यर्थः, राज्ञः राजस्वरूपवेतनग्रहणात् प्रजानां भृत्यत्वं रक्षणकारित्वात् स्वामित्वञ्चेति भावः ॥ १८८ ॥

सामन्तादिसमा ये तु भृत्या अधिकृता भुवि।
ते तु सामन्तसंज्ञाः स्यू राजभागहराः क्रमात् ॥ १८९ ॥

अन्वयः—ये तु भुवि भृत्या अधिकृताः ते सामन्तादिसमाः, ते तु क्रमात् राजभागहराः सामन्तसंज्ञाः न भवन्ति ॥ १८९ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, तु = पुनः, भुवि = भूमौ, भृत्या = वेतनेन, किमपि नियतमूल्यप्रदानेनेत्यर्थः, अधिकृताः = जनसंरक्षणकर्मणि नियोजिताः, ते = एवंविधनियुक्तसेवकाः, तु = अपितु, सामन्तादिसमाः = तत्सदृशाः भवन्ति, ते = करसङ्गृहीताः, तु = प्रत्युत, क्रमात् = अनुक्रमात्, राजभागहराः = नृपग्राह्यकरसङ्ग्रहकर्त्तारः, सामन्तसंज्ञाः = 'सामन्त' इत्याख्यपदधारिणः, न = नहि, भवन्तीति, अर्थात् लक्षरौप्यमुद्रारूपकरसङ्ग्राहकाः वेतनभोक्तारः सेवकास्तु 'सामन्त'पदवीं नाप्नुवन्ति प्रत्युत तेऽनुसामन्ताः भवन्ति ॥ १८९ ॥

हिन्दी—करसंग्रह करने के लिए राजा के द्वारा नियुक्त सेवक सामन्त के तुल्य तो हैं, पर वे 'सामन्त' पद के हकदार न होकर अनुसामन्त मात्र होते हैं ॥ १८९ ॥

सामन्तेति। ये तु भुवि पृथिव्यां भृत्या वेतनेन केनचिन्निर्दिष्टमूल्येनेत्यर्थः, अधिकृताः प्रजानां पालनकर्मणि नियुक्ता इत्यर्थः, ते सामन्तादिसमाः सामन्तादीनां पूर्वोक्तानां समाः समानकार्य्यकारिण इत्यर्थः, ते तु क्रमात् यथाक्रमं राजभागहराः राजग्राह्यांशहारिणः सामन्तसंज्ञाः सामन्तादिनामधारिणो न भवन्तीति शेषः ॥ १८९ ॥

सामन्तादिपदभ्रष्टास्तत्तुल्यं भृतिपोषिताः ।
महाराजादिभिस्ते तु हीनसामन्तसंज्ञकाः ॥ १९० ॥

अन्वयः—ये तु सामन्तादिपदभ्रष्टाः महाराजादिभिः तत्तुल्यं भृतिपोषिताः ते तु हीनसामन्तसंज्ञकाः (भवन्ति) ॥ १९० ॥

व्याख्या—ये = जनाः, तु = पुनः सामन्तादिपदभ्रष्टाः—सामन्तादिपदेभ्यः = गणाधिपत्याद्युपाधिभ्यः, भ्रष्टाः = अवपतिताः, अपि, महाराजादिभिः = राजेश्वरादिभिः, तत्तुल्यम् = तत्सदृशम्, भृतिपोषिताः—भृत्या = वेतनेन, पोषिताः = संवर्द्धिताः, ते तु = ते जनास्तु, हीनसामन्तसंज्ञकाः = हीनसामन्ताः भवन्तीति भावः ॥ १९० ॥

हिन्दी—जिन्हें राजे-महाराजे सामन्त पद से हटाकर, सामन्त की तरह ही वेतन देकर भूमिकर वसूल करने के लिए नियुक्त करते हैं, वे हीनसामन्त कहलाते हैं ॥ १९० ॥

सामन्तेति। ये तु सामन्तादिपदेभ्यो भ्रष्टा विच्युताः अपि महाराजादिभिः तत्तुल्यं यथा तथा भृत्या वेतनेन पोषिताः पालिताः भवन्ति ते तु हीनसामन्तसंज्ञकाः हीनसामन्ता इति कथिताः ॥ १९० ॥

शतग्रामाधिपो यस्तु सोऽपि सामन्तसंज्ञकः ।
शतग्रामे चाधिकृतोऽनुसामन्तो नृपेण सः ॥ १९१ ॥

अन्वयः—यः तु शतग्रामाधिपः सोऽपि सामन्तसंज्ञकः, च शतग्रामे नृपेण अधिकृतः सः अनुसामन्त इति ॥ १९१ ॥

व्याख्या—यः = वीरः, तु = पुनः, शतग्रामाधिपः—शतानाम् = दशगुणितदशसंख्यकानाम्, ग्रामाणाम् = निवसथानाम्, अधिपतिः = स्वामी, योऽस्तीति शेषः, स = असौ अपि, सामन्तसंज्ञकः = 'सामन्त' इत्युपाधिधारी भवति, च = पुनः, यस्तु = तथाकथितवीरपुरुषस्तु, शतग्रामे = शतसंख्यकग्रामार्थे, नृपेण = केनापि राज्ञा, अधिकृतः = करसङ्ग्रहार्थं स्वामित्वेन नियोजितः, सः = असौ, 'अनुसामन्त' इति कथ्यते । अत्र तु निजाधिकारेण पराधिकारेण भावेन च भेद इति ॥ १९१ ॥

हिन्दी—सौ गाँवों का जो स्वामी होता है, वह भी 'सामन्त' ही कहलाता है, किन्तु कोई राजा किसी वीर पुरुष को वेतन देकर राजस्व संग्रह के लिए सौ गाँवों का अधिपति नियुक्त करता है तो वह सामन्त नहीं अनुसामन्त कहलाता है ॥ १९१ ॥

शतेति। यस्तु शतग्रामाणाम् अधिपः सोऽपि सामन्तसंज्ञकः सामन्त इति कथितः। यस्तु नृपेण शतग्रामे अधिकृतः नियुक्तः सः अनुसामन्तः उक्त इति शेषः, स्वायत्तपरायत्ततया भेद इति भावः ॥ १९१ ॥

अधिकृतो दशग्रामे नायकः स च कीर्त्तितः।
आशापालोऽयुतग्रामभागभाक् च स्वराडपि ॥ १९२ ॥

अन्वयः—यः दशग्रामे अधिकृतः सः नायकः कीर्त्तितः। यः च अयुतग्रामभागभाक् सः आशापालः च स्वराड् अपि कीर्त्तितः ॥ १९२ ॥

व्याख्या—सः = पदाधिकारी, दशग्रामे—दशानाम् = दशसंख्यकानाम्, ग्रामाणां = निवसथानाम्, तस्मिन् दशग्रामे, अधिकृतः = करसङ्ग्रहार्थं प्रजासंरक्षणार्थञ्च नियोजितः, सः = असौ वीरः, नायकः = नायकाख्यपदेन, कीर्त्तितः = कथितः विख्यातो वा भवति। तु = पुनः, यः = वीरः, अयुतग्रामभागभाक्—अयुतग्रामाणाम् = दशसहस्रग्रामाणाम्, भागभाक् = राजस्वसङ्ग्रहार्थमधिकृतो भवति, सः = असौ, आशापालः = दिग्पालः, च = पुनः, 'स्वराट्' इत्यप्यभिहितो भवति ॥ १९२ ॥

हिन्दी—दस गाँवों का राजस्व संग्रह के लिए वेतन देकर जो पदाधिकारी नियुक्त किया जाता है, वह 'नायक' कहलाता है। इसी तरह दस हजार गाँवों के करसंग्रहीता को 'आशापाल' या 'स्वराट्' कहते हैं ॥ १९२ ॥

अधिकृत इति। यः दशग्रामे अधिकृतः दशानां ग्रामाणां रक्षणकर्मणि नियुक्त इत्यर्थः, सः नायकः कीर्त्तितः। यस्तु अयुतग्रामाणां दशसहस्रग्रामाणां भागभाक् राजस्वपाही, सः आशापालः दिक्पालः तथा स्वराट् अपि कीर्त्तित इति शेषः ॥ १९२ ॥

भवेत् क्रोशात्मको ग्रामो रूप्यकर्षसहस्रकः।
ग्रामार्द्धकं पल्लिसंज्ञं पल्ल्यर्द्धं कुम्भसंज्ञकम् ॥ १९३ ॥

अन्वयः—क्रोशात्मकः रूप्यकर्षसहस्रकः ग्रामः भवेत्, ग्रामार्द्धकं पल्लिसंज्ञं भवेत्, पल्ल्यर्द्धं कुम्भसंज्ञकम् (भवेदिति) ॥ १९३ ॥

व्याख्या—क्रोशात्मकः = चतुःसहस्रहस्तपरिमितः, रूप्यकर्षसहस्रकः = दशशतरजतमुद्राराजस्वः भूखण्डः, ग्रामः = ग्रामाख्यः, भवेत् = स्यात्, ग्रामार्द्धकम् = निवसनार्द्धभागम्, पल्लिसंज्ञकम् = ग्रामटिकाऽऽख्यम्, भवेत्, पल्ल्यर्द्धम् = ग्रामकार्द्धभागन्तु, कुम्भसंज्ञकम् = कुम्भनाम्ना प्रसिद्धमिति भवति ॥ १९३ ॥

हिन्दी—एक कोस वर्ग का भू-भाग गाँव कहलाता है, जिसकी मालगुजारी एक हजार रुपये की होती है। गाँव का आधा भाग पल्ली कहलाता है और पल्ली का आधा कुम्भ कहलाता है ॥ १९३ ॥

भवेदिति। क्रोशात्मकः क्रोशैकपरिच्छिन्नः रूप्यकर्षसहस्रकः सहस्ररौप्यमुद्राराजस्वः भूभागः ग्रामो भवेत् ग्रामार्द्धकम् अर्द्धग्रामः पल्लिसंज्ञं पल्लीति नाम्ना प्रसिद्धं, तथा पल्ल्यर्द्धं अर्द्धपल्ली कुम्भसंज्ञकं कुम्भनाम्ना प्रसिद्धम् ॥ १९३ ॥

करैः पञ्चसहस्रैर्वा क्रोशः प्रोक्तः प्रजापतेः ।
हस्तैश्चतुःसहस्रैर्वा मनोः क्रोशस्य विस्तरः ॥ १९४ ॥

अन्वयः—पञ्चसहस्रैः करैः प्रजापतेः क्रोशः प्रोक्तः, वा चतुःसहस्रैः हस्तैः क्रोशस्य विस्तरः मनोः प्रोक्त इति ॥ १९४ ॥

व्याख्या—पञ्चसहस्रैः = पञ्चाशद्भिः, करैः = हस्तैः, परिमितः, भूखण्डः = क्रोशः, मीलद्वयात्मकः भूभागः, 'प्रजापतेः क्रोशः' इति, प्रोक्तः = कथितः। प्रजापतेरित्यत्र वर्तमानक्तप्रत्यययोगे कर्तरि षष्ठीप्रयोगः, वा = अथवा, चतुःसहस्रै = चत्वारिंशतैः, हस्तैः = करैः, परिमितभूभागः, क्रोशस्य = मीलद्वयपरिच्छिन्नभूभागस्य, विस्तरः = विस्तारः, मनोः प्रोक्त इति। मनोरित्यत्रापि क्तप्रत्ययप्रयोगे कर्तरि षष्ठीति बोध्यम् ॥ १९४ ॥

हिन्दी—पाँच हजार हाथों की लम्बाई वाला भूखण्ड प्रजापति के अनुसार एक कोस होता है और मनु के अनुसार चार हजार हाथ लम्बा भूखण्ड ही एक कोस होता है ॥ १९४ ॥

करैरिति। पञ्चसहस्रैः करैः हस्तैः परिच्छिन्नः भूभागः क्रोशः प्रजापतेः प्रोक्तः कथितः, प्रजापतेरिति वर्तमानक्तप्रत्यययोगे कर्तरि षष्ठी। चतुःसहस्रैः हस्तैः क्रोशस्य विस्तरः परिमाणं मनोः प्रोक्त इति अध्याहार्य्यम्, अत्रापि मनोरिति कर्तरि षष्ठी ॥ १९४ ॥

सार्द्धद्विकोटिहस्तैश्च क्षेत्रं क्रोशस्य ब्रह्मणः ।
पञ्चविंशशतैः प्रोक्तं क्षेत्रस्तद्धि निवर्त्तनम् ॥ १९५ ॥

अन्वयः—सार्द्धद्विकोटिहस्तैः क्रोशस्य क्षेत्रं तथा पञ्चविंशशतैः क्षेत्रैः तत् हि निवर्तनं ब्रह्मणः प्रोक्तम् ॥ १९५ ॥

व्याख्या—सार्द्धद्विकोटिहस्तैः = सार्द्धद्विशतलक्षकरैः, क्रोशस्य = मीलद्वयस्य, क्षेत्रम् = भूखण्डम्, तथा पञ्चविंशशतैः = सार्द्धद्विसहस्रैः, क्षेत्रैः = क्रोशपरिमितभूखण्डैः, तत् हि = प्रख्यातभूखण्डम्, निवर्तनं नाम, ब्रह्मणः = विधातुः, प्रोक्तम् = कथितम्। अत्रापि ब्रह्मण इति वर्तमानक्तप्रत्यययोगे कर्तरि षष्ठी ॥ १९५ ॥

हिन्दी—ब्रह्मा ने ढाई करोड़ हाथों के क्षेत्र को कोस तथा उससे पच्चीस गुणा अधिक भूखण्ड को निवर्तन कहा है ॥ १९५ ॥

सार्द्धेति। सार्द्धद्विकोटिहस्तैः क्रोशस्य क्षेत्रं क्रोशमिता भूरिति, तथा पञ्चविंशशतैः क्षेत्रैः क्रोशमितभूभागैः तत् हि प्रसिद्धं निवर्तनं नाम ब्रह्मणः प्रोक्तं, ब्रह्मण इति कर्तरि षष्ठी ॥ १९५ ॥

मध्यमामध्यमपर्वदैर्घ्यं यच्च तदङ्गुलम् ।
यवोदरैरष्टभिस्तद्दैर्घ्यं स्थौल्यन्तु पञ्चभिः ॥ १९६ ॥

अन्वयः—मध्यमामध्यमपर्वदैर्घ्यं यत् तद् अङ्गुलं तथा अष्टभिः यवोदरैः दैर्घ्यं तत् पञ्चभिः स्थौल्यम् इति ॥ १९६ ॥

व्याख्या—मध्यमायाः = ज्येष्ठाङ्गुल्याः, मध्यम् = मध्यपरिमाणम्, यत् = सम्बन्धबोधकसर्वनामवाचकोऽयं शब्दः, पर्व = भागः, तस्य दैर्घ्यम् = लम्बता, यत् तत् अङ्गुलम् = अष्टयवपरिमाणं, करशाखेति शेषः, तथा अष्टभिः = अष्टसंख्याबोधकैरङ्कैः, यवानाम् = प्रवेराणाम्, उदरैः =

मध्यभागैः, दैर्घ्यम् = लम्बतापरिमितम्, तथा पञ्चभिः यवोदरैः स्थौल्यम् = पीनत्वे परिमितम्, यत् तदपि अङ्गुलमिति भावः ॥ १९६ ॥

हिन्दी—बीच की अंगुली के बिचले भाग की लम्बाई एक अंगुली होती है। किसी अन्य आचार्य के मत से आठ जौ के बीच के भाग की तरह लम्बाई तथा पाँच जौ के बीच के भाग की मोटाई को एक अंगुली कहा जाता है ॥ १९६ ॥

मध्यमेति। मध्यमाया अङ्गुल्याः मध्यमं यत् पर्व तस्य दैर्घ्यं दीर्घपरिमाणं तत् अङ्गुलम् उक्तमिति शेषः, तथा अष्टभिः यवानाम् उदरैः मध्यभागैः दैर्घ्यं दैर्घ्ये परिमितं, तथा पञ्चभिः यवोदरैः स्थौल्यं स्थूलत्वे परिच्छिन्नमित्यर्थः, यत् तदपि अङ्गुलमिति केषाञ्चिन्मतमिति भावः ॥ १९६ ॥

चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तैः प्राजापत्यः करः स्मृतः ।
स श्रेष्ठो भूमिमाने तु तदन्यास्त्वधमा मताः ॥ १९७ ॥

अन्वयः—तैः चतुर्विंशत्यङ्गुलैः प्राजापत्यः करः स्मृतः। भूमिमाने तु सः श्रेष्ठः, तदन्यास्तु अधमाः मताः ॥ १९७ ॥

व्याख्या—तैः = पूर्वोक्तैः, चतुर्विंशत्या = उक्तसंख्यातदङ्कैः, अङ्गुलैः = कररुहैः, प्राजापत्यः = प्रजापतिसमादृतः, करः = हस्तः, स्मृतः = कथितः। भूमिमाने = पृथ्वीपरिधौ, तु = पुनः, सः = हस्तः, श्रेष्ठः = वरः, तदन्यास्तु = तद्भिन्नास्तु, अधमाः = हीनाः, मताः = सम्मताः, कथितेति भावः ॥ १९७ ॥

हिन्दी—प्रजापति के मत मे पूर्वोक्त चौबीस अंगुलियों का एक हाथ धरती नापने के लिए आदर्श (Standard) माप माना गया है। इससे भिन्न माप निम्न कोटि का होता है ॥

चतुर्विंशेति। तैः चतुर्विंशत्या अङ्गुलैः प्राजापत्यः प्रजापतिसम्मतः करः हस्तः स्मृतः। भूमिमाने भूपरिमाणे तु सः करः श्रेष्ठः, तदन्यास्तु कराः अधमाः मताः कथिताः ॥ १९७ ॥

चतुःकरात्मको दण्डो लघुः पञ्चकरात्मकः ।
तदङ्गुलं पञ्चयवैर्मानवं मानमेव तत् ॥ १९८ ॥

अन्वयः—चतुःकरात्मकः दण्डः पञ्चकरात्मकः लघुः तत् अङ्गुलं पञ्चयवैः तत् मानवं मानम् एवेति ॥ १९८ ॥

व्याख्या—चतुःकरात्मकः = चतुर्हस्तपरिमितः, यो दण्डः = भूमापकलगुडः, तत्तु लघुः = कनीयमापदण्डो भवति, तथा पञ्चकरात्मकः = पञ्चहस्तपरिमितः दण्डः, दीर्घसंज्ञया कथितः। तस्य दण्डस्य लघोर्वा दीर्घसंज्ञकस्य, अङ्गुलम् = करशाखा, पञ्चभिर्यवैः परिमितम् इति, तत् मानम् = परिमाणन्तु, मानवम् = मनुसम्मतं परिमाणम्, अथवा मानवम् = मनुष्यसम्बन्धीति ज्ञेयः ॥ १९८ ॥

हिन्दी—जमीन नापने के लिए जिस वेणुदण्ड अर्थात् लग्गे का प्रयोग किया जाता है, वह चार हाथ का लग्गा छोटा तथा पाँच हाथ का लग्गा बड़ा कहलाता है। पाँच जौ की अंगुलि स्टैण्डर्ड माप है। यह माप मनुसम्मत या मानवीय माप है ॥ १९८ ॥

चतुरिति। चतुःकरात्मकः चतुर्हस्तमितः परिमाणविशेषः दण्डः, पञ्चकरात्मकस्तु लघुः लघुसंज्ञया कथितः। तस्य दण्डस्य लघोर्वा अङ्गुलं पञ्चभिर्यवैः परिच्छिन्नमिति शेषः, तत् मानवं मनुसम्मतं मानं परिमाणम् अथवा मानवं मनुष्यसम्बन्धीत्यर्थः ॥ १९८ ॥

वसुषण्मुनिसंख्याकैर्यवैर्दण्डः प्रजापतेः ।
यवोदरैः षट्शतैस्तु मानवो दण्ड उच्यते ॥ १९९ ॥

अन्वयः—वसुषण्मुनिसंख्याकैः यवैः दण्डः प्रजापतेः तु षट्शतैः यवोदरैः मानवः दण्डः उच्यते ॥ १९९ ॥

व्याख्या—वसुषण्मुनिसंख्याकैः= अष्टषट्सप्तधिकसंख्यैः, यवैः= एकैकशः स्थापितैः धान्यविशेषैः, परिमितो भवतीति भावः, दण्डः= वेणुदण्डः, प्रजापतेः= प्रजापतेर्मतम्, इति बोध्यः, तु= पुनः, षट्शतैः= षट्शत- संख्यकैः, यवानाम्= प्रवेटानाम्, उदरैः= मध्यभागैः, एकैकशः स्थापितैः परिमाणविशेषः, मानवः= मनुसम्मतः किंवा मनुष्यसम्बन्धीति, दण्डः= वंशखण्डः, उच्यते= कथ्यते, इति भावः ॥ १९९ ॥

हिन्दी—प्रजापति के मत से सात सौ अड़सठ ज़ौ का स्टैंडर्ड लग्गा होता है और मानव लग्गा छः सौ जौ लम्बा होता है ॥ १९९ ॥

वस्विति । वसुषण्मुनिसंख्याकैः (७६८) अष्टषष्ट्यधिकशतसङ्ख्यैरित्यर्थः, यवैः एकैकशः स्थापितैः परिच्छिन्नः परिमाणविशेषः भवतीति शेषः, इति प्रजापतेर्मतमित्यर्थः, षट्शतैः यवानाम् उदरैः मध्यभागैः एकैकशः स्थापितैरिति भावः, परिच्छिन्नः परिमाणविशेषः मानवः दण्ड उच्यते ॥ १९९ ॥

पञ्चविंशतिभिर्दण्डैरुभयोस्तु निवर्त्तनम् ।
त्रिंशच्छतैरङ्गुलैर्यवैस्त्रिपञ्चसहस्रकैः ॥ २०० ॥

अन्वयः—उभयोः त्रिंशच्छतैः अङ्गुलैः त्रिपञ्चसहस्रकैः यवैः पञ्चविंशतिभिः दण्डैः निवर्त्तनं भवति ॥ २०० ॥

व्याख्या—उभयोः= आयामपीवरयोः, क्रमानुसारम्, त्रिंशच्छतैः= त्रिसहस्रैः, अङ्गुलैः= अङ्गुलिभिः, दैर्घ्ये त्रिसहस्राङ्गुलिपरिमाणैरित्यर्थः, पीनत्वे च, त्रिपञ्चसहस्रकैः= त्रिपञ्चसहस्रसंख्यकैः, यवैः= महाबुसैः, परिमितैरित्यर्थः, पञ्चविंशतिभिः= पञ्चाधिकविंशतिभिः, दण्डैः= वंशखण्डैः, निवर्तनम्= विंशतिदण्डपरिच्छिन्ना भूमिम्, भवति= जायते ॥ २०० ॥

हिन्दी—तीन हजार अंगुली लम्बी या पन्द्रह हजार जौ लम्बी स्टैंडर्ड लग्गी होती है और इस आदर्श मापवाली पच्चीस लग्गी लम्बी तथा पच्चीस लग्गी चौड़ी भूमी निवर्तन अर्थात् एक बीघा भूमि होती है ॥ २०० ॥

पञ्चविंशतीति । उभयोः दैर्घ्यस्थौल्ययोः यथाक्रमं त्रिंशता शतैः दैर्घ्ये त्रिंशच्छताङ्गुलपरिमितैरित्यर्थः, स्थौल्ये च त्रिपञ्चसहस्रकैः यवैः त्रिपञ्चसहस्रयवपरिमितैः पञ्चविंशतिभिः दण्डैः निवर्त्तनं भवति ॥ २०० ॥

सपादशतहस्तैश्च मानवन्तु निवर्तनम् ।
ऊनविंशतिसाहस्रैर्द्विशतैश्च यवोदरैः ॥ २०१ ॥

अन्वयः—सपादशतहस्तैः वा उनविंशतिसाहस्रैः द्विशतैः च यवोदरैः मानवं निवर्तनं भवति ॥ २०१ ॥

व्याख्या—सपादशतहस्तैः= पञ्चविंशत्यधिकशतकरैः, वा ऊनविंशतिसाहस्रैः द्विशतैश्च= द्विशताधिकेन एकोनविंशतिसहस्रैश्च, यवानां= प्रवेटानाम्, उदरैः= एकैकशः स्थापितैः मध्यभागैः, मानवम्= मनुसम्मतम्, निवर्तनम्= विंशतिवंशखण्डायासभूखण्डम्, भवति ॥ २०१ ॥

हिन्दी—सवा सौ अर्थात् एक सौ पच्चीस हाथों का अथवा उन्नीस हजार दो सौ यवों के आयाम का मानव-निवर्तन होता है ॥ २०१ ॥

सपादेति। सपादशतहस्तैः पञ्चविंशत्यधिकशतहस्तैः वा उनविंशतिसाहस्रैः द्विशतैश्च द्विशताधिकेन न विंशतिसहस्रैः यवोदरैः एकशः स्थापितैः यवमध्यभागैः मानवं मनुप्रोक्तं निवर्तनं परिमाणविशेष इत्यर्थः भवति ॥ २०१ ॥

चतुर्विंशशतैरेव ह्यङ्गुलैश्च निवर्त्तनम्।
प्राजापत्यन्तु कथितं शतैश्चैव करैः सदा ॥ २०२ ॥

अन्वयः—चतुर्विंशशतैः अङ्गुलैः एव च शतैः करैः प्राजापत्यं निवर्तनं सदा कथितम् ॥२०२ ॥

व्याख्या—चतुर्विंशशतैः = चतुर्विंशतिशतैः, अङ्गुलैः = अष्टयवपरिमाणैः, एवशब्दोऽत्र विकल्पवाचकोऽस्ति, च = पुनः, शतैः = दशगुणितदशसंख्यकैः, करैः = हस्तैः, प्राजापत्यम् = ब्रह्मप्रोक्तम्, निवर्त्तनम् = विंशतिवेणुदैर्घ्यं भूभागम्, सदा = सर्वदा, कथितम्, आदर्शकरस्य चतुर्विंशत्यङ्गुलपरिमाणत्वादित्यर्थः ॥ २०२ ॥

हिन्दी—प्रजापति के मत से चौबीस सौ अंगुलों का अथवा सौ हाथ का भूखण्ड एक निवर्तन अर्थात् बीस बाँस लम्बा भूखण्ड माना जाता है ॥ २०२ ॥

चतुरिति। चतुर्विंशशतैः चतुर्विंशतिशतैरङ्गुलैः एव अथवा एवशब्दोऽत्र विकल्पवाचीति। शतैः करैः हस्तैः प्राजापत्यं ब्रह्मप्रोक्तं निवर्तनं सदा कथितम्। हस्तस्य चतुर्विंशत्यङ्गुलपरिमाणत्वादिति भावः ॥ २०२ ॥

सपादषट्शता दण्डा उभयोश्च निवर्त्तने।
निवर्त्तनान्यपि सदोभयोर्वै पञ्चविंशतिः ॥ २०३ ॥

अनव्यः—उभयोश्च निवर्त्तने सपादषट्शताः दण्डाः उभयोरेव वै पञ्चविंशतिः निवर्तनानि सदा भवन्ति ॥ २०३ ॥

व्याख्या—उभयोश्च = मनुप्राजापत्योः सम्बन्धिनी, निवर्तने = परिमितभूमौ भूमाने वा, सपादषट्शताः = पादाधिकषट्शताः, दण्डाः = वेणुखण्डाः, उभयोरेव = पूर्वोक्तमनुप्राजापत्योः मतयोश्च, वै = इति निश्चयेन, पञ्चविंशतिः = उक्ता संख्या, निवर्त्तनानि = भूमानानि, सदा = सर्वदा, भवन्तीति भावः ॥ २०३ ॥

हिन्दी—दोनों के माप में छः सौ पच्चीस लग्गी होती है। उन दोनों के माप सदैव २५ माने गये हैं ॥ २०३ ॥

सपादेति। उभयोश्च मनुप्राजापत्योः सम्बन्धिनी निवर्त्तने कथिते इति शेषः, सपादषट्शताः पञ्चविंशत्यधिकषट्शताः दण्डाः पूर्वोक्तमानविशेषाः उभयोरेव मतयोः पञ्चविंशतिः निवर्त्तनानि सदा भवन्ति ॥ १०३ ॥

पञ्चसप्ततिसाहस्रैरङ्गुलैः परिवर्त्तनम्।
मानवं षष्टिसाहस्रैः प्राजापत्यं तथाङ्गुलैः ॥ २०४ ॥

अन्वयः—पञ्चसप्ततिसाहस्रैः अङ्गुलैः मानवं परिवर्त्तनं तथा षष्टिसाहस्रैः अङ्गुलैः प्राजापत्यम् ॥ २०४ ॥

व्याख्या—पञ्चसप्ततिसाहस्रैः = पञ्चाधिकसप्ततिसाहस्रैः, अङ्गुलैः = करशाखाभिः, परिवर्तनम् = भूमानविशेषः, तथा = तेनैव प्रकारेण, षष्टिसाहस्रैः = उक्तसंख्यकैः अङ्गुलैः, प्राजापत्यम् = ब्रह्मप्रोक्तं परिवर्त्तनं भवतीति भावः॥ २०४॥

हिन्दी—पचहत्तर अंगुलों का मानव परिवर्त्तन होता है तथा साठ हजार अंगुलों का प्राजापत्य परिवर्त्तन माना गया है॥ २०४॥

पञ्चेति। पञ्चसप्ततिसाहस्रैः अङ्गुलैः मानवं परिवर्तनं मानविशेषः तथा षष्टिसाहस्रैः अङ्गुलैः प्राजापत्यं परिवर्त्तनं भवतीति शेषः॥ २०४॥

पञ्चविंशाधिकैर्हस्तैरेकत्रिंशच्छतैर्मनोः ।
परिवर्त्तनमाख्यातं पञ्चविंशशतैः करैः॥ २०५॥
प्राजापत्यं पादहीनचतुर्लक्षयवैर्मनोः।
अशीत्यधिकसाहस्रचतुर्लक्षयवैः परम् ॥ २०६॥

अन्वयः—पञ्चविंशाधिकैः एकत्रिंशच्छतैः हस्तैः मनोः परिवर्तनम्, पञ्चविंशशतैः करैः प्राजापत्यं परिवर्त्तनम् आख्यातम्। (किञ्च) पादहीनचतुर्लक्षयवैः मनोः (तथा) अशीतिसहस्राधिकचतुर्लक्षयवैः परम्॥ २०५-२०६॥

व्याख्या—पञ्चविंशाधिकैः = उक्तसंख्याधिक्यैः, एकत्रिंशच्छतैः = एकाधिकत्रिंशच्छतैः, हस्तैः = करैः, मनोः = मनुना प्रोक्तम्, परिवर्त्तनम् = भूमापनम्, पञ्चविंशशतैः, करैः = हस्तैः, प्राजापत्यम् = ब्रह्मप्रोक्तम्, परिवर्तनम्, आख्यातम् = कथितम्। किञ्च पादहीनचतुर्लक्षयवैः = चतुर्थांशन्यूनचतुर्लक्षयवैः, मनोः = मनुसम्मतम्, परिवर्त्तनम्, तथा अशीतिसहस्राधिकचतुर्लक्षयवैः, परम् = अन्यत्, प्राजापत्यम् = प्रजापतिसम्बन्धीति परिवर्त्तनमाख्यातमिति॥ २०५-२०६॥

हिन्दी—तीन हजार एक सौ पच्चीस हाथों का मानव परिवर्त्तन और दो हजार पाँच सौ हाथों का प्राजापत्य परिवर्त्तन होता है। तीन लाख यवों का मानव परिवर्त्तन होता है तथा चार लाख आठ हजार यवों का प्राजापत्य परिवर्त्तन होता है॥ २०५-२०६॥

पञ्चेति। प्राजापत्यमिति। पञ्चविंशाधिकैः एकत्रिंशच्छतैः हस्तैः मनोः सम्बन्धीत्यर्थः, परिवर्त्तनं तथा पञ्चविंशशतैः करैः प्राजापत्यं ब्रह्मसम्मतं परिवर्त्तनम् आख्यातं कथितम्। किञ्च पादहीनचतुर्लक्षयवैः चतुर्थांशन्यूनचतुर्लक्षयवैः मनोः सम्मतमिति शेषः, परिवर्त्तनं तथा अशीतिसहस्राधिकचतुर्लक्षयवैः परम् अन्यत् प्राजापत्यमित्यर्थः, परिवर्त्तनम् आख्यातं कथितम्॥ २०५-२०६॥

निवर्त्तनानि द्वात्रिंशन्मनुमानेन तस्य वै।
चतुःसहस्रहस्ताः स्युर्दण्डाश्चाष्टशतानि हि॥ २०७॥

अन्वयः—तस्य वै मनुमानेन द्वात्रिंशत् निवर्तनानि हि चतुःसहस्रहस्ताः च अष्टादशशतानि दण्डाः स्युः॥ २०७॥

व्याख्या—तस्य = पूर्वोक्तस्य, वै = इति निश्चयेन, मनुमानेन = मनोः सम्मतपरिमाणेन, द्वात्रिंशत् = द्वयाधिकत्रिंशत्, निवर्त्तनानि = मापकदण्डाः, हि = यतः, चतुःसहस्रहस्ताः—चतुःसहस्राः, हस्ताः = कराः, च = पुनः, अष्टादशशतानि = अष्टाधिकदशशतानि, दण्डाः = मापदण्डाः, स्युः = भवेयुः॥ २०७॥

हिन्दी—मनु के मान से चार हजार हाथ या आठ सौ दण्ड के बत्तीस निवर्त्तन होते हैं ॥ २०७ ॥

निवर्त्तनानीति। तस्य मनोरित्यर्थः, सम्बन्धिनः सम्मता इत्यर्थः, अष्टशतानि दण्डाः चतुःसहस्राः हस्ताश्च चतुःसहस्रहस्ताधिकाष्टशतदण्डा इत्यर्थः, मनुमानेन मनोः परिमाणेन द्वात्रिंशत् निवर्त्तनानि स्युः भवेयुः ॥ २०७ ॥

पञ्चविंशतिभिर्दण्डैर्भुजः स्यात् परिवर्त्तने।
करैरयुतसंख्याकैः क्षेत्रं तस्य प्रकीर्त्तितम् ॥ २०८ ॥

अन्वयः—परिवर्त्तने पञ्चविंशतिभिः दण्डैः भुजः स्यात्, तस्य अयुतसंख्याकैः करैः क्षेत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ २०८ ॥

व्याख्या—परिवर्त्तने = पूर्वनिर्दिष्टमापविशेषविषये, पञ्चविंशतिभिः = पञ्चाधिकविंशतिसंख्यकैः, दण्डैः = मापकवंशखण्डैः, भुजः = बाहुः, स्यात् = भवेत्, तस्य = पूर्वोक्तस्य मापविशेषस्य, अयुतसंख्यकैः = दशसहस्रैः, करैः = हस्तैः, परिमितं स्थानविशेषम्, क्षेत्रम् = भूखण्डम् इति, प्रकीर्त्तितम् = कथितम् ॥ २०८ ॥

हिन्दी—एक परिवर्त्तन पचीस लग्गे का एक भुज होता है और दश हजार हाथों का एक परिवर्त्तन का क्षेत्र होता है ॥ २०८ ॥

पञ्चेति। परिवर्त्तने पूर्वोक्ते परिमाणविशेषे विषये पञ्चविंशतिभिः दण्डैः भुजः स्यात्, तस्य भुजस्य अयुतसंख्याकैः दशसहस्रैः करैः परिच्छिन्नं स्थानमिति शेषः, क्षेत्रं प्रकीर्त्तितं कथितम् ॥ २०८ ॥

चतुर्भुजैः समं प्रोक्तं कष्टभूपरिवर्त्तनम्।
प्राजापत्येन मानेन भूभागहरणं नृपः ॥ २०९ ॥
सदा कुर्य्याच्च स्वापत्तौ मनुमानेन नान्यथा।
लोभात् सङ्कर्षयेद् यस्तु हीयते सप्रजो नृपः ॥ २१० ॥

अन्वयः—कष्टभूपरिवर्त्तनं चतुर्भुजैः समं प्रोक्तम्, नृपः प्राजापत्येन मानेन स्वापत्तौ मनुमानेन भूभागहरणं सदा कुर्यात्। अन्यथा न तु यः नृपः लोभात् सङ्कर्षयेत् सः नृपः सप्रजः हीयते ॥ २०९-२१० ॥

व्याख्या—कष्टभूपरिवर्त्तनम्—कष्टः = क्लेशोत्पादकम्, भूपरिवर्त्तनम्—भुवः = पृथिव्याः, परिवर्त्तनम् = पूर्वोक्तभूमानविशेषः, चतुर्भुजैः = चतुर्बाहुभिः, समम् = सदृशम्, प्रोक्तम् = कथितम्, नृपः = राजा, प्राजापत्येन = पूर्वोतक्तब्रह्मसम्भवेन, मानेन = मापेन, स्वापत्तौ—स्वस्य = आत्मनः, आपत्तौ = विपत्तौ, मनुमानेन = मनुसम्मतेन, भूभागहरणम् = भूखण्डग्रहणम्, सदा = सर्वदा, कुर्यात् = ग्रहणं कुर्यात्, अन्यथा = इतरथा, न = नहि, तु = पुनः, यः = पूर्वोक्तः, नृपः = राजा, लोभात् = लिप्सया, सङ्कर्षयेत् = भूखण्डग्रहणेन प्रजाः पीडयेत्, स तु नृपः = राजा, सप्रजः—प्रजया = शासितजनैः सह, हीयते = भ्रश्यते ॥ २०९-२१० ॥

हिन्दी—भू-परिवर्त्तन कष्टकर होता है, चार भुजों का एक परिवर्त्तन होता है। राजा को सदैव प्रजापत्य माप से ही भूभाग ग्रहण करना चाहिए। विपत्तिकाल में मानवमान से भी

भूखण्ड ग्राह्य हो सकता है, इससे भिन्न नहीं। लोभवश जो राजा प्रजा से अधिक भूभाग ग्रहण करता है, वह राजा प्रजा सहित विनष्ट हो जाता है ॥ २०९-२१० ॥

टिप्पणी– श्लोक संख्या २०९ में पाठभेद है। किसी पाठ में 'कष्टभूपरिवर्त्तनम्' की जगह 'कृष्टभूपरिवर्तनम्' है। इस पाठ के अनुसार इस का अर्थ होगा—जोत कर आबाद की गई धरती का परिवर्त्तन। २५ दण्ड का एक भुज होता है और चार भुज अर्थात् सौ दण्ड का एक परिवर्त्तन होता है।

चतुरिति। सदेति। कष्टः क्लेशजनकं भूपरिर्वर्त्तनं भुवः भूमेः परिवर्त्तनं तदाख्यमानविशेषः चतुर्भुजैः समं प्रोक्तं कथितं शतदण्डपरिमितमित्यर्थः। नृपः प्राजापत्येन पूर्वोक्तेन मानेन स्वापत्तौ स्वस्य आपत्तौ बाधायां सत्यां क्षतिसम्भवे इत्यर्थः, मनुमानेन भूभागहरणं भूमिपरिच्छेदं सदा कुर्य्यात् अन्यथा न। यस्तु नृपः लोभात् सङ्कर्षयेत् भूभागनिर्णयेन प्रजाः पीडयेत् स तु सप्रजः ससन्तानः हीयते भ्रश्यति ॥ २०९-२१० ॥

न दद्याद् द्व्यङ्गुलमपि भूमेः स्वत्वनिवर्त्तनम्।
वृत्त्यर्थं कल्पयेद् वापि यावद् ग्राहस्तु जीवति ॥ २११ ॥

अन्वयः—भूमेः द्व्यङ्गुलमपि न दद्यात्, वापि ग्राहः यावत् जीवति वृत्त्यर्थं स्वत्वनिवर्त्तनं कल्पयेत् ॥ २११ ॥

व्याख्या—भूमेः = पृथिव्याः, द्व्यङ्गुलमपि = अङ्गुलिद्वयमपि भूमिम्, राजा कस्मैचिदपि, न = नहि, दद्यात् = समर्पणं कुर्यात्, वापि = अथवा, ग्राहः = गृह्णातीति ग्राहः = भूग्रहीता, यावत् जीविकार्थम्, स्वत्वनिवर्त्तनम्—स्वत्वस्य = निजाधिकारस्य, निवर्त्तनम् = परावर्त्तनम्, कल्पयेत् = सम्पादयेत्। अनेन राज्ञः कर्त्तृत्वमुपदिशति; यस्मै कस्मै स्वल्पामपि भूमिं न दातव्यम्, यदि कारणवशेन दद्यात् तदा तस्य जीवनावधिरेव तत्स्वत्वस्य परित्यागं कुर्यात् ॥ २११ ॥

हिन्दी—राजा का यह कर्त्तव्य है कि अपनी दो अंगुल भूमि पर से भी अपना अधिकार न छोड़े। किसी परिस्थिति में यदि किसी को कुछ जमीन देना पड़े तो उसकी जीविका के लिए उसके जीवन पर्यन्त ही उस जमीन पर उसका अधिकार देना चाहिए ॥ २११ ॥

नेति। राजा भूमेः द्व्यङ्गुलमपि अङ्गुलद्वयपरिमितामपि भूमिमित्यर्थः, न दद्यात् कस्मैचिदपीति शेषः, वापि अथवा गृह्णातीति ग्राहः ग्रहीता यावत् जीवति तावत् तस्य वृत्त्यर्थं जीविकार्थं स्वत्वनिवर्त्तनं स्वत्वस्य त्यागं कल्पयेत्। अयमर्थः—अल्पामपि भूमिं कस्मैचित् दद्यात्, यदि दद्यात् तदा ग्रहीतुर्जीवनावधिस्तत्स्वत्वत्याग इति ॥ २११ ॥

गुणी तावद् देवतार्थं विसृजेच्च सदैव हि।
आरामार्थं गृहार्थं वा दद्याद् दृष्ट्वा कुटुम्बिनम् ॥ २१२ ॥

अन्वयः—गुणी तावत् देवतार्थं हि सदैव विसृजेत्, च कुटुम्बिनं दृष्ट्वा आरामार्थं वा गृहार्थं दद्यात् ॥ २१२ ॥

व्याख्या—गुणी = गुणवान् राजा, तावदित्यवधारणे, देवतार्थम् = देवमन्दिरनिर्माणाय, हि इति निश्चयेन, सदैव = सततम्, विसृजेत् = अर्पयेत्, च = पुनः, कुटुम्बिनम् = गृहिणम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य विचिन्त्य वा, आरामार्थम् = उद्यानहेतवे, वा = अथवा, गृहार्थम् = आवासीयभवनार्थम्, दद्यात् = ददीत, एवंविधं दानञ्च यावज्जीवनपर्यन्तमिति बोध्यम् ॥ २१२ ॥

हिन्दी—गुणवान् राजा देवमन्दिर के लिए, सार्वजनिक उद्यान के लिए तथा कुटुम्बियों को भवन-निर्माण के लिए भूमि अवश्य दे ॥ २१२ ॥

गुणीति। गुणी नृपः देवतार्थं देवालयस्थापनार्थं सदैव विसृजेत् दद्यात् भूमिमिति शेषः, तथा कुटुम्बिनं गृहिणं दृष्ट्वा विविच्य तस्य आरामार्थम् उद्यानार्थं वा गृहार्थं गृहनिर्माणार्थं दद्याद् वा वाशब्दोऽवधारणे, दानञ्च जीवनावधीति बोद्धव्यम् अन्यथा पूर्ववाक्यविरोधादिति ॥ २१२ ॥

नानावृक्षलताकीर्णे पशुपक्षिगणावृते।
सुबहूदकधान्ये च तृणकाष्ठसुखे सदा ॥ २१३ ॥
आसिन्धुनौगमाकूले नातिदूरमहीधरे।
सुरम्यसमभूदेशे राजधानीं प्रकल्पयेत् ॥ २१४ ॥

अन्वयः—नानावृक्षलताकीर्णे पशुपक्षिगणावृते सदा सुबहूदकधान्ये च तृणकाष्ठमुखे आसिन्धुनौगमाकूले नातिदूरः महीधरे सुरम्यसमभूदेशे राजधानीं प्रकल्पयेत् ॥ २१३-२१४ ॥

व्याख्या—राजा नानावृक्षलताकीर्णे = अनेकविधवृक्षवल्लरीबहुले, सदा = सर्वदा, पशुपक्षिगणैः = मृगविहगसमूहैः, आवृते = सङ्कुले परिवृते वा, सदा = सर्वदा, सुबहूनि = अतिप्रचुराणि, उदकानि = जलानि, धान्यानि = अन्नानि, यस्मिन् तथाभूते, च = पुनः, तृणकाष्ठसुखे—तृणैः = पलालैः, काष्ठैः = दारुभिश्च, सुखे = तुष्टिकरे, आसिन्धु = आसागरम्, नौभिः = तरणिभिः, गमः = गमनम्, तेन आकुले = सङ्कुले, आसमुद्रतरणियातायातसाधने इति भावः, नातिदूरः = समीपवर्त्ती, महीधरः = पर्वतः, यस्य तादृशे, सुरम्ये = अतिरमणीये, समभूदेशे = उच्चावचरहितभूखण्डे, राजधानीम्—राज्ञा धीयते उप्यते अस्यामिति राजधानीम् = राजाधिष्ठानम्, प्रकल्पयेत् = कुर्यात् ॥ २१३-२१४ ॥

हिन्दी—बहुविध पेड़-पौधों और लताओं से आच्छादित, पशु-पक्षियों से अनुगूंजित, अन्न-धन-धान्य से परिपूरित, घास और काठ से भरे, नौका से समुद्र तक जाने लायक नदी के किनारे रमणीय समतल धरती पर राजा अपनी राजधानी बनायें ॥ २१३-२१४ ॥

राजधानीकरणमाह—**नानेति**। **आसिन्ध्विति**। राजा नानावृक्षलताकीर्णे बहुविधवृक्षलताबहुले पशुपक्षिगणैः आवृते युक्ते, सदा सुबहूनि अतिप्रचुराणि उदकानि धान्यानि च यस्मिन् तथाभूते, तृणैः काष्ठैश्च सुखे सुखकरे, आसिन्धु आसमुद्रं नौभिः नौकाभिः गमः गमनं तेन आकुले युक्ते समुद्रपर्य्यन्तनौकागमनागमनसाधने इत्यर्थः, नातिदूरः अदूरवर्त्ती महीधरः पर्वतो यस्य तादृशे सुरम्ये मनोहरे समभूदेशे समानभूमिभागे राज्ञा धीयते उप्यते अस्यामिति राजधानीं स्वनिवासस्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१३-२१४ ॥

अर्द्धचन्द्रां वर्त्तुलां वा चतुरश्रां सुशोभनाम्।
सप्राकारां सपरिखां ग्रामादीनां निवेशिनीम् ॥ २१५ ॥
सभामध्यां कूपवापीतडागादियुतां सदा।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारां सुमार्गारामवीथिकाम् ॥ २१६ ॥
दृढसुरालयमठपान्थशालाविराजिताम् ।
कल्पयित्वा वसेत् तत्र सुगुप्तः सप्रजो नृपः ॥ २१७ ॥

अन्वयः—अर्द्धचन्द्रां वा वर्त्तुलां वा चतुरश्रां सुशोभनां सप्राकारां सपरिखां ग्रामादीनां निवेशिनीं सभामध्यां कूपवापीतडागादियुतां चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारां सुमार्गारामवीथिकां दृढसुरालयमठपान्थशालाविराजितां कल्पयित्वा नृपः सदा तत्र सुगुप्तः सप्रजः वसेत् ॥ २१५-२१७ ॥

व्याख्या—अर्द्धचन्द्राम् = चन्द्रार्द्धस्वरूपाम्, वा = अथवा, वर्त्तुलाम् = चक्राकाराम्, वा = किंवा, चतुरश्राम् = चतुष्कोणाम्, सुशोभनाम् = कान्तिमयीम्, सप्राकाराम्—प्राकारेण = प्राचीरेण, सहिताम् = प्राचीरवेष्टिताम्, सपरिखाम् = खातयुक्ताम्, ग्रामादीनाम् = वसतिप्रभृतीनाम्, निवेशिनीम् = निवासशालिनीमन्तरान्तराग्रामपल्ल्यादिविभागवतीम्, सभामध्याम् = मध्ये मध्ये निवेशितसमाजाम्, कूपवापीतडागादियुताम्—कूपैः = जलसञ्चयरन्ध्रैः, वापीभिः = वापिकाभिः, तडागैः = ह्रदैः, आदिपदेन जलयन्त्रादिभिः, युताम् = समन्विताम्, चतुर्दिक्षु = पूर्वादिकचतसृषु दिक्षु, चतुर्द्वाराम् = चतुर्मुखाम्, सुमार्गाः = सुष्ठु पन्थानः, आरामवीथयः = उपवनपङ्क्तयः, यस्यां तादृशीम्, तथा दृढैः = प्रगाढैः, सुरालयैः = देवगृहैः, मठैः = धार्मिकविद्यालयैः, पान्थशालाभिः = पथिकविश्रामगृहैः, विराजिताम् = सुशोभिताम्, राजधानीम् = राजप्रासादम्, कल्पयित्वा = रचयित्वा, नृपः = राजा, सदा = सर्वदा, तत्र = तस्मिन् स्थाने, सुगुप्तः = सुष्ठुप्रतिपालितः, सप्रजः = शासितजनैः सह, वसेत् = निवासं कुर्यात् ॥ २१५-२१७ ॥

हिन्दी—देखने में अर्द्धचन्द्राकार, चक्राकार या चौकोर धरती, अत्यन्त सुन्दर चाहारदीवारी और खाई से घिरी, ग्राम-नगर बसाने याग्य, जिसके बीच-बीच में सभामण्डप हो, कुएँ, बावड़ी और तालाब से युक्त, चारों दिशाओं में चार द्वारवाली, सुन्दर राजमार्ग और उपवनों से घिरी सुदृढ मन्दिर, मठ और सराय से सुशोभित राजधानी बनाकर उसमें प्रजा के साथ राजा को हमेशा सुरक्षित होकर रहना चाहिए ॥ २१५-२१७ ॥

अर्द्धचन्द्रामित्यादि। अर्द्धचन्द्राम् अर्द्धचन्द्राकारामित्यर्थः, वा वर्त्तुलां मण्डलाकाराम् अथवा चतुरश्रां चतुष्कोणां सुशोभनां शोभाशालिनीं सप्राकारां प्राचीरवेष्टितां ग्रामादीनाम् अन्तरान्तरा ग्रामपल्ल्यादिविभागवतीं सभामध्यां मध्ये मध्ये स्थापितसमाजां वापीभिर्दीर्घिकाभिः तडागैः सरोवरैः आदिपदेन जलयन्त्रादिभिः युतां चतुर्दिक्षु पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणासु चतुर्द्वारां द्वारचतुष्टयवतीं शोभनाः मार्गाः पन्थानः, आरामवीथयः उपवनश्रेणयः यस्यां तादृशीं तथा दृढैः सुरालयैः देवालयैः मठैः छात्रादिपाठशालाभिः तथा पान्थशालाभिः पथिकजनावस्थानार्थं निर्मितगृहैरित्यर्थः, विराजितां राजधानीं कल्पयित्वा नृपः सदा तत्र सुरक्षितः तथा सप्रजः पुत्राद्यन्वयसहितः सन् वसेत् ॥२१५-२१७ ॥

राजगृहं सभामध्यं गवाश्वगजशालिकम्।
प्रशस्तवापीकूपादिजलयन्त्रैः सुशोभितम् ॥ २१८ ॥
सर्वतः स्यात् समभुजं दक्षिणोच्चमुदङ्नतम्।
शालां विना नैकभुजं तथा विषमबाहुकम् ॥ २१९ ॥
प्रायः शाला नैकभुजा चतुःशालं विना शुभा।
शस्त्रास्त्रधारिसंयुक्तप्राकारं सुष्ठुयन्त्रकम् ॥ २२० ॥

अन्वयः—राजगृहं सभामध्यं गवाश्वगजशालिनं प्रशस्तवापीकूपादिजलयन्त्रैः सुशोभितं सर्वतः समभुजं दक्षिणोच्चम् उदङ्नतं शालां विना नैकभुजं तथा विषमबाहुकं शस्त्रास्त्रधारिसंयुक्तप्राकारं सुष्ठुयन्त्रकं स्यात् ॥ २१८-२२० ॥

व्याख्या—तस्मिन् सुरम्यं, राजगृहम् = नृपसदनं वा राजधान्याम्, सभामध्यम् = मध्यस्थाने संसद्भवनम्, गवाम् = धेनूनाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, गजानाम् = कुञ्जराणाम्, च = पुनः, शालाभिः = गृहैः समन्वितम्, प्रशस्तैः = प्रशंसितैः, वापीकूपजलयन्त्रैः = दीर्घिकाकूपसरोवरशीकरवर्षकैः, सुशोभितम् = शोभान्वितम्, सर्वतः = परितः, समभुजम् = समानबाहुम्, दक्षिणोच्चम् = वामेतरस्यां दिशि, उच्चम् = उन्नतम्, उदङ्नतम् = उदीच्यां दिशि, नतम् = न्यूनम्, शालाम् = भवनम्, विना = अन्तरेण, नैकभुजम्—न एकभुजम् = बहुबाहुयुतम्, यावद्भिर्भुजैः भवनपरिमाणम्, ततोऽधिकबाहुभिः परिव्याप्तावान्तरस्थानमित्यर्थः, तथा = तेनैव प्रकारेण, विषमबाहुकम् = असमभुजपरिमितम्, शस्त्रास्त्रधारिकम् = आयुधधारिभिः, संयुक्तः = संरक्षितः, प्राकारः = शालो यस्य तथाविधम्, तथा सुष्ठु = मनोहराणि, यन्त्राणि = बहुविधकार्यसाधनानि, यस्मिन् तादृशम्, नृपसदनं स्यात् = भवेदिति ॥ २१८-२१९-२२० ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त राजधानी में ऐसा राजभवन हो जिसके बीच में सभाभवन हो; उसी सीमा के भीतर गोशाला, घुड़शाल, हाथीखाना हों; अच्छी बावड़ी, अच्छे कुँए और फुहारयंत्रों से सुशोभित हों; उस राजभवन की चारों भुजाएँ बराबर हों तथा दक्षिण की ओर ऊँचा और उत्तर की ओर नीचा हो; जिसमें शाला के बिना एक भुज एवं विषम भुज न हो। क्योंकि चतुःशाला के बिना अन्यशाला एक भुज होने के कारण शुभदा नहीं होती। चहारदीवारी से घिरे, सुन्दर फुहारों से सजे, हाथियारबन्द सैनिकों से संरक्षित राजभवन होना चाहिए ॥ २१८-२२० ॥

राजगृहमित्यादि। तत्र राजधान्यां सभामध्यं मध्यस्थितसभागृहं गवाम् अश्वानां गजानाञ्च शालाभिः समन्वितं प्रशस्तैः मनोज्ञैः वापीकूपजलयन्त्रैः सुशोभितं सर्वतः सर्वासु दिक्षु समभुजं समानभुजपरिमाणं दक्षिणस्यां दिशि उच्चम् उन्नतं तथा उदङ्नतम् उत्तरस्यां दिशि नतम् अवनतं, शालां गृहं विना अनेकभुजं बहुभुजपरिमाणं यावद्भिर्भुजैः गृहमानं ततोऽधिकभुजैः परिच्छिन्नावान्तरस्थानमित्यर्थः, (यतः चतुःशालं यस्मिन् गृहे चत्वारः विभागाः सन्तीति तत् विना अनेकभुजा बहुभुजपरिमाणा शाला प्रायः बाहुल्येन अशुभा अमनोहरा इत्यर्थः।) विषमबाहुकम् अयुग्मभुजमितं शस्त्रास्त्रधारिभिः संयुक्तः रक्षित इत्यर्थः, प्राकारो यस्य तथोक्तं तथा सुष्ठु शोभनानि यन्त्राणि नानाकार्य्यसाधनानि यस्मिन् तादृशं राजगृहं स्यात् भवेत् ॥ २१८-२२० ॥

सत्रिकक्षचतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु सुशोभितम्।
दिवा रात्रौ सशस्त्रास्त्रैः प्रतिकक्षासु गोपितम्॥ २२१ ॥
चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिर्यामिकैः परिवर्त्तकैः।
नानागृहोपकार्य्याट्टसंयुतं कल्पयेत् सदा॥ २२२ ॥

अन्वयः—सत्रिकक्षचतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु सुशोभितं दिवारात्रौ सशस्त्रास्त्रैः चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः वा परिवर्त्तकैः यामिकैः प्रतिकक्षासु सदा सुगोपितं नानागृहोपकार्याट्टसंयुतं कल्पयेत् ॥ २२१-२२२ ॥

व्याख्या—तत्पूर्ववर्णितनृपसदनम्, सत्रिकक्षचतुर्द्वारम्—त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः, कक्षैः = कोष्ठैः, तथा चतुर्भिः = चतुःसंख्याकैः, द्वारैः = प्रवेशमुखैः सहितम्, चतुर्दिक्षु = परितः, सुशोभितम् = मनोहरम्, दिवारात्रौ = अहर्निशम्, सशस्त्रास्त्रैः = सायुधैः, चतुर्भिः पञ्चमिः षड्भिर्वा, परिवर्त्तकैः = चक्रानुक्रमेणोपस्थितैः, यामिकैः = रक्षापुरुषैः, प्रतिकक्षासु = प्रतिपरिधिषु, सदा = सततम्,

सुगोपितम् = सर्वतोभावेन संरक्षितम्, तथा नानागृहोपकार्याट्टसंयुतम्—नानागृहैः = बहुविध-विशालभवनैः, उपकार्याभिः = सहायकोपकरणैः पटमण्डपैः, तथा अट्टैः = राजप्रासादैः, संयुतम् = समन्वितम्, कल्पयेत् = रचयेत् ॥ २२१-२२२ ॥

हिन्दी—तीन कक्षाओं और चारों दिशाओं में चार दरवाजें वाले भव्य भवन हों, इन महलों की रक्षा में दिन-रात तत्पर हथियारबन्द पहरेदार हों। बारी-बारी से पहरा देने के लिए इनकी संख्या चार, पाँच या छः हों। प्रत्येक कक्षा सुरक्षित हों, निरन्तर अनेक भव्य भवनों, अटारियों, तम्बुओं और शामियानों से सुशोभित राजमहल की रचना हों ॥ २२१-२२२ ॥

सेति। चतुर्भिरिति। तच्च राजगृहं सत्रिकक्षचतुर्द्वारं त्रिभिः कक्षैः विभागविशेषैः तथा चतुर्भिर्द्वारैः सहितं चतुर्दिक्षु सुशोभितं शोभासंयुक्तं दिवा दिवसे दिवेत्यव्ययम्। तथा रात्रौ सशस्त्रास्त्रैः शस्त्रास्त्रधारिभिः चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिर्वा परिवर्त्तकैः पर्य्यायक्रमेण स्थितैः यामिकैः प्रहरिभिः प्रतिकक्षासु प्रतिविभागेषु सदा सुगोपितं सुरक्षितं तथा नानागृहैः विविधाकारैः सदनैः उपकार्य्याभिः पटमण्डपैः तथा अट्टैः हर्म्यैः संयुतं कल्पयेत् ॥ २२१-२२२ ॥

वस्त्रादिमार्जनार्थञ्च स्नानार्थं यजनार्थकम्।
भोजनार्थञ्च पाकार्थं पूर्वस्यां कल्पयेत् गृहान् ॥ २२३ ॥

अन्वयः—पूर्वस्यां वस्त्रादिमार्जनार्थं च यजनार्थकं भोजनार्थं च पाकार्थं गृहान् कल्पयेत् ॥ २२३ ॥

व्याख्या—पूर्वस्याम् = प्राच्यां दिशि, वस्त्रादिमार्जनार्थम्—वस्त्रादीनाम् = परिधानप्रभृतीनाम्, मार्जनार्थम् = प्रक्षालनार्थम्, च = पुनः, यजनार्थकम् = यज्ञानुष्ठानार्थम्, भोजनार्थम् = भक्षणाय, च = पुनः, पाकार्थम् = रन्धनार्थम्, गृहान् = सदनान्, कल्पयेत् = रचयेदिति ॥ २२३ ॥

हिन्दी—परिधान-प्रक्षालन के लिए, स्नान, पूजा एवं यज्ञ के लिए, रसोईघर एवं भोजन के लिए पूर्वदिशा में ही गृहनिर्माण कराये ॥ २२३ ॥

वस्त्रेति। पूर्वस्यां दिशि वस्त्रादीनां मार्जनार्थं क्षालनार्थं स्नानार्थं यजनार्थं यज्ञानुष्ठानार्थं भोजनार्थं तथा पाकार्थं रन्धनार्थं गृहान् कल्पयेत् ॥ २२३ ॥

निद्रार्थञ्च विहारार्थं पानार्थं रोदनार्थकम्।
धान्यार्थं घरटाद्यर्थं दासीदासार्थमेव च ॥ २२४ ॥
उत्सर्गार्थं गृहान् कुर्य्याद्दक्षिणस्यामनुक्रमात्।
गोमृगोष्ट्रगजाद्यर्थं गृहान् प्रत्यक् प्रकल्पयेत् ॥ २२५ ॥

अन्वयः—दक्षिणस्याम् अनुक्रमात् निद्रार्थं विहारार्थं पानार्थं रोदनार्थकं धान्यार्थं रोदनार्थं चरटाद्यर्थं दासीदासार्थं तथा उत्सर्गार्थं गृहान् कुर्यात्। किञ्च प्रत्यक् गोमृगोष्ट्रगजाद्यर्थं गृहान् प्रकल्पयेत् ॥ २२४-२२५ ॥

व्याख्या—दक्षिणस्याम् = वामेतरस्यां दिशि, अनुक्रमात् = आनुपूर्व्यात्, निद्रार्थम् = स्वापार्थम्, विहारार्थम् = सुरताद्यर्थम्, पानार्थम् = मद्यादिपेयपदार्थसेवनार्थम्, रोदनार्थकम् = विलपनार्थम्, धान्यार्थम् = अन्नादिसङ्ग्रहार्थम्, घरटाद्यर्थम् = गोधूमादिपेषणचक्रयाद्यर्थम्, एवञ्च दासीदासार्थम् = सेविकासेवकनिवासार्थम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, उत्सर्गार्थम् = मलमूत्रत्यागार्थम्,

गृहान् = सदनान्, कुर्यात् = रचयेत्। किञ्च प्रत्यक् = प्रतीच्यां दिशि, गवाम् = पशूनाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, गजाद्यर्थम् = हस्त्याद्यर्थम्, गृहान् = भवनान्, प्रकल्पयेत् = निर्माणं कुर्यात् ॥२२४-२२५॥

हिन्दी—शयनकक्ष, सुरादिपेयगृह, रुदनगृह, अन्नादि संग्रह के लिए, चक्की बैठाने के लिए, नौकर-चाकरों के लिए तथा मल-मूत्र त्यागने के लिए क्रमशः दक्षिण की ओर घर बनवाना चाहिए। इसी तरह गाय, ऊँट और हाथी के लिए पश्चिम दिशा में घर बनवाना चाहिए॥२२४-२२५॥

निद्रार्थमिति। उत्सर्गार्थमिति। दक्षिणस्यां दिशि अनुक्रमात् यथाक्रमं निद्रार्थं शयनार्थं विहारार्थं क्रीडार्थं पानार्थं मद्यादीनामुपयोगार्थं रोदनार्थं क्रन्दनार्थं धान्यार्थं धान्यरक्षणार्थं घरटाद्यर्थं मुद्गगोधूमादिचूर्णार्थं यन्त्रविशेषाद्यर्थं दासीदासार्थं किङ्करीकिङ्करावस्थानार्थं तथा उत्सर्गार्थं मलमूत्रत्यागार्थं गृहान् कुर्य्यात्। किञ्च,प्रत्यक् पश्चिमायां दिशि गवां मृगाणाम् उष्ट्राणां गजादीनाञ्च रक्षणार्थं गृहान् प्रकल्पयेत् ॥२२४-२२५॥

रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थं व्यायामायामिकार्थकम्।
वस्त्रार्थकन्तु द्रव्यार्थं विद्याभ्यासार्थमेव च॥ २२६॥
उदग्गृहान् प्रकुर्वीत सुगुप्तान् सुमनोहरान्।
यथा सुखानि वा कुर्य्याद् गृहाण्येतानि वै नृपः॥ २२७॥

अन्वयः—रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थं व्यायामायामिकार्थकं तु वस्त्रार्थकं द्रव्यार्थम् एवञ्च विद्याभ्यासार्थं सुगुप्तान् सुमनोहरान् उदग्गृहान् प्रकुर्वीत। वा नृपः यथासुखानि एतानि गृहाणि वै कुर्यात्॥२२६-२२७॥

व्याख्या—रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थम्—रथानाम् = स्यन्दनानाम्, वाजिनाम् = घोटकानाम्, अस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, शस्त्राणाम् = करधृतप्रहरणानाम्, स्थानार्थम्, व्यायामायामिकार्थम्—व्यायामः = मल्लक्रीडाविशेषः, तस्य आयामिका = प्रसरः, तदर्थम्, तु = पुनः, वस्त्रार्थकम् = परिधानपरिरक्षणार्थम्, द्रव्यार्थम् = धनादिसङ्ग्रहणार्थम्, गृहोपकरणाद्यर्थं वा, तथा विद्याभ्यासार्थम् = ज्ञानार्जनार्थम्, सुगुप्तान् = सुष्ठुतया रक्षितान्, सुमनोहरान् = हृदयाह्लादकान्, उदग्गृहान् = उत्तरदिग्वर्तिनः, गृहान् = सदनान्, प्रकुर्वीत = रचयेत्, वा = अथवा, नृपः = राजा, यथासुखानि = स्वसुखानुसारेण, एतानि = पूर्वोक्तानि, गृहाणि = सदनानि, वै = इति निश्चयेन, कुर्यात् = रचयेत्॥२२६-२२७॥

हिन्दी—रथ, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र के लिए, कसरत करने के लिए, वस्त्र तथा द्रव्य के लिए, विद्याभ्यास के लिए सुरक्षित एवं सुन्दर घर उत्तर दिशा में बनाये। अथवा राजा अपनी सुविधा के अनुसार ऊपरवर्णित सभी घरों को बनवाये॥२२६-२२७॥

रथेति। उदगिति। रथानां वाजिनाम् अस्त्राणां क्षेपणीयानां शस्त्राणां हस्तधृतानां प्रहरणानां स्थानार्थं व्यायामायामिकार्थं व्यायामः अङ्गचालनविशेषः तस्य आयामिका विस्तरः तदर्थं वस्त्रार्थकं वसनरक्षणार्थकं द्रव्यार्थं धनरक्षणार्थं गृहोपकरणाद्यर्थं वा तथा विद्याभ्यासार्थं सुगुप्तान् सुरक्षितान् सुमनोहरान् उदग्गृहान् उत्तरदिग्वर्तिनः गृहान् प्रकुर्वीत। वा अथवा नृपः यथासुखानि आत्मनः सुखानुसारेण एतानि पूर्वोक्तानि गृहाणि कुर्य्यात्॥२२६-२२७॥

धर्माधिकरणं शिल्पशालां कुर्य्यादुदग्गृहात्।
पञ्चमांशाधिकोच्छ्राया भित्तिर्विस्तारतो गृहे॥ २२८॥

अन्वयः—धर्माधिकरणं शिल्पशालां गृहात् उदक् कुर्यात्। गृहे भित्तिविस्तारतः पञ्चमांशः अधिकः उच्छ्रायः॥ २२८॥

व्याख्या—धर्माधिकरणम् = न्यायालयम्, शिल्पशालाम् = कलानिकेतनम्, गृहात् = मुख्यभवनात्, उदक् = उदीच्यां दिशि, उदगिति अव्ययम्, कुर्यात् = निर्माणं कुर्यात्, गृहे = भवने, भित्तिविस्तारतः—भित्तिः = कुड्यम्, तत् विस्तारतः = प्रसरात्, पञ्चमांशः = पञ्चमभागः, अधिकः = अतिरिक्तः, उच्छ्रायः = उद्गतम्, यस्याः तादृशी भवतीति भावः॥ २२८॥

हिन्दी—राजभवन से उत्तर में कचहरी एवं कलानिकेतन का निर्माण करे। पूरे भवन की लम्बाई का जो पाँचवाँ भाग हो उतनी ऊँची दीवार का निर्माण कराये॥ २२८॥

धर्मेति। धर्माधिकरणं विचारालयं तथा शिल्पशालां गृहात् राजगृहात् उदक् उत्तरस्यां दिशि, उदगिति अव्ययं, कुर्य्यात्। किञ्च गृहे राजगृहे भित्तिः विस्तारतः गृहविस्तारात् पञ्चमांशः अधिकः उच्छ्रायः औन्नत्यं यस्याः तादृशी भवतीति शेषः॥ २२८॥

कोष्ठविस्तारषष्ठांशस्थूला सा च प्रकीर्त्तिता।
एकभूमेरिदं मानमूर्ध्वमूर्ध्वं समन्ततः॥ २२९॥

अन्वयः—कोष्ठविस्तारषष्ठांशस्थूला सा च प्रकीर्त्तिता। समन्ततः एकभूमेः इदम् ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वं मानम्॥ २२९॥

व्याख्या—कोष्ठस्य = गृहमध्यपरिवेष्टितस्थानस्य, यः विस्तारः = प्रसरः, तस्य षष्ठांशवत् = षष्ठभाग इव, स्थूला = पीवरा, सा च = पूर्वोक्ता भित्तिः, प्रकीर्त्तिता = कथिता, समन्ततः = सर्वतः, एकभूमेः—एकस्य = भवनस्य, भूमेः = स्थानस्य, इदम् = एतत्, ऊर्ध्वम् = उन्नतमित्यर्थः, ऊर्ध्वम् = उपरि, मानम् = परिमाणम्, कथितमिति शेषः॥ २२९॥

हिन्दी—कोठरी की लम्बाई का छठा भाग जितना हो उतनी मोटी दीवार उठानी चाहिए। यह एक मंजिला मकान का मान कहा गया है। इसके बाद ऊपर के मंजिलों की दीवार की मोटाई का अनुपात इसी क्रम में समझना चाहिए॥ २२९॥

कोष्ठेति। सा च भित्तिः कोष्ठस्य गृहाभ्यन्तरभागस्य यः विस्तारः तस्य षष्ठांशवत् स्थूला प्रकीर्त्तिता उक्ता समन्ततः सर्वतः एकभूमेः एकस्य गृहस्य भूमेः इदम् ऊर्ध्वम् उत्कृष्टं चरममित्यर्थः, ऊर्ध्वं मानं परिमाणम् उक्तमिति शेषः॥ २२९॥

स्तम्भैश्च भित्तिभिर्वापि पृथक्कोष्ठानि संन्यसेत्।
त्रिकोष्ठं पञ्चकोष्ठं वा सप्तकोष्ठं गृहं स्मृतम्॥ २३०॥
द्वारार्थमष्टधा भक्तं हारस्यांशौ तु मध्यमौ।
द्वौ द्वौ ज्ञेयौ चतुर्दिक्षु धनपुत्रप्रदौ नृणाम्॥ २३१॥

अन्वयः—स्तम्भैः वा भित्तिभिः पृथक् कोष्ठानि संन्यसेत्। अपि च गृहं त्रिकोष्ठं पञ्चकोष्ठं वा सप्तकोष्ठं द्वारार्थम् अष्टधा भक्तं स्मृतम्। द्वारस्य अंशौ मध्यमौ चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ नृणां धनपुत्रप्रदौ॥ २३०-२३१॥

व्याख्या—स्तम्भैः = अवष्टम्भैः, वा = अथवा, भित्तिभिः = कुड्यैः, पृथक् = असंलग्नानि, कोष्ठानि = भाण्डागाराणि, संन्यसेत् = स्थापयेत् कल्पयेत् वा। अपि च = अन्यच्च, गृहम् = भवनम्, त्रिकोष्ठम्—त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः, कोष्ठैः = प्रकोष्ठैः, युतम्, पञ्चकोष्ठम्—पञ्चभिः = पञ्चसंख्यकैः, कोष्ठैः = प्रकोष्ठयुतैः वा, सप्तकोष्ठम् = सप्तभिः प्रकोष्ठैः संयुक्तम्, द्वारार्थम् = गृहावग्रहणार्थम्, अष्टधा भक्तम् = अष्टखण्डेषु विभक्तम्, द्वारसहिताष्टकोष्ठमित्यर्थः, स्मृतम् = उक्तम्। द्वारस्य = द्वारकोष्ठस्य, अंशौ = भागौ, मध्यमौ = मध्यस्थितौ, चतुर्दिक्षु = चतुर्षु दिक्षु, द्वौ द्वौ = द्विमुखौ, निर्मितौ सन्तौ, नृणाम् = जनानाम्, धनपुत्रप्रदौ = सम्पत्सुखदायकौ भवतः इति भावः। अदृष्टार्थमेतत् प्रशंसावचनम्। अत्र चमत्कारजनकत्वे सति प्रस्तुतपरत्वे सति अप्रस्तुतवर्णनत्वमप्रस्तुतप्रशंसात्वमिति भावः॥ २३०-२३१ ॥

हिन्दी—खम्भों और दीवारों से अलग कोठरियों को बनवायें और एक घर में तीन, पाँच या सात कोठरियाँ बनवायें। घर बनवाने के लिए घर को आठ खण्डों में बाँटकर उनमें से बीच के दो भागों में द्वार बनाना चाहिए। इसी तरह चारों दिशाओं में बीच के दो भागों में द्वार बनाना चाहिए। ऐसे द्वार मनुष्यों के धन तथा पुत्र देने वाले होते हैं॥ २३०-२३१ ॥

स्तम्भैरिति। द्वारार्थमिति। स्तम्भैः भित्तिभिर्वा पृथक् भिन्नानि भिन्नानि कोष्ठानि संन्यसेत् विन्यसेत् कल्पयेदित्यर्थः। किञ्च गृहं त्रिकोष्ठं त्रिभिः कोष्ठैः युतं पञ्चकोष्ठं पञ्चभिः कोष्ठैः युतं वा सप्तकोष्ठं सप्तभिः कोष्ठैः युतं द्वारार्थम् अष्टधाभक्तं द्वारसहिताष्टकोष्ठमित्यर्थः, स्मृतं कथितम्। किञ्च द्वारस्य अंशौ खण्डौ मध्यमौ मध्यविधौ चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ निर्मितौ सन्तौ नृणां धनपुत्रप्रदौ भवत इति शेषः, अदृष्टार्थमेतत् प्रशंसावचनमिति भावः॥ २३०-२३१ ॥

तत्रैव कल्पयेद्द्वारं नान्यथा तु कदाचन।
वातायनं पृथक्कोष्ठे कुर्य्याद् यादृक् सुखावहम्॥ २३२ ॥

अन्वयः—तत्रैव द्वारं कल्पयेत्, कदाचन अन्यथा तु न। कोष्ठे यादृक् सुखावहं वातायनं पृथक् कुर्यात्॥ २३२ ॥

व्याख्या—तत्रैव = तस्मिन्नेव कोष्ठविभागेषु, द्वारम् = प्रवेशद्वारम्, कल्पयेत् = विन्यसेत्, कदाचन अन्यथा = सम्भवतः इतरथा, न = नहि, तु = तथा, कोष्ठे = भाण्डारे, यादृग् = यत्प्रकारकः, सुखावहम् = सुखकरं भवतीति, वातायनम् = लघुद्वारम्, पृथक् = भिन्नं भिन्नं, कुर्यात् = विदध्यात्॥ २३२ ॥

हिन्दी—उन्हीं भागों में द्वार बनवाना चाहिए, इससे अलग बिलकुल ही नहीं; और प्रत्येक कोठरियों में अपनी सुविधा के अनुसार जंगले लगवाये॥ २३२ ॥

तत्रेति। तत्रैव कोष्ठविभागेषु इत्यर्थः, द्वारं कल्पयेत् कदाचन अन्यथा न। तथा कोष्ठे यादृक् सुखकरं भवतीति शेषः, तादृक् वातायनं गवाक्षं पृथक् पथक् कुर्यात्॥ २३२ ॥

अन्यगृहद्वारविद्धं गृहद्वारं न चिन्तयेत्।
गृहकोणस्तम्भमार्गपीठकूपैश्च वेधितम्॥ २३३ ॥

अन्वयः—गृहद्वारम् अन्यगृहद्वारविद्धं गृहकोणस्तम्भमार्गपीठकूपैश्च वेधितं न चिन्तयेत्॥ २३३ ॥

व्याख्या—गृहद्वारम् = भवनप्रवेशप्रमुखद्वारमेकम्, अन्यगृद्वारविद्धम् = अपरगृहद्वारवेधितम्, तथा गृहकोणस्तम्भमार्गपीठकूपैश्च—गृहकोणेन = गृहास्रेण; अत्र पाठभेदोऽस्ति, अन्यस्मिन् संस्करणे 'गृहकोणः' स्थाने 'वृक्षकोणः' इत्यस्ति, तदनुसारेण वृक्षकोणेन इत्यर्थो भवति, स्तम्भेन = यूपेन, मार्गपीठेन = पथिस्थापितकाष्ठपाषाणधात्वादिनिर्मितमासनेन, तथा कूपैः = जलागारैश्च, वेधितम् = विद्धगृहम्, न = नहि, चिन्तयेत् = कल्पयेत् ॥ २३३ ॥

हिन्दी—दूसरे घर से वेधित द्वार वाला घर नहीं बनाना चाहिए या किसी घर या पेड़ के कोण से वेधित, राह पर बने चबूतरे या कुँए से वेधित घर का द्वार नहीं होना चाहिए ॥ २३३ ॥

अन्येति। गृहद्वारम् एकमित्यर्थः, अन्यगृहद्वारविद्धम् अपरद्वारसंयुक्तं तथा वृक्षकोणेन स्तम्भेन मार्गपीठेन पथिस्थापितपीठाकारप्रदेशेन तथा कूपैश्च वेधितं संसक्तं न चिन्तयेत् न कल्पयेत् ॥ २३३ ॥

प्रासादमण्डपद्वारे मार्गवेधो न विद्यते।
गृहपीठं चतुर्थांशमुच्छ्रायस्य प्रकल्पयेत् ॥ २३४ ॥

अन्वयः—प्रासादमण्डपद्वारे मार्गविधः न विद्यते। उच्छ्रायस्य चतुर्थांशं गृहपीठं प्रकल्पयेत् ॥ २३४ ॥

व्याख्या—प्रासादमण्डपस्य = देवालयस्य नृपालयस्य वा; 'प्रासादो देवभूभुजामि'त्यमरः, द्वारेः = निर्गमे; 'द्वारं निर्गमेऽभ्युपाये' इति हैमः, मार्गवेधः—मार्गयोः मार्गाणां वा = पथाम्, वेधः = संयोगः, न = नहि, विद्यते = अस्तीति भावः। उच्छ्रायस्य = दैर्घ्यस्य; 'आरोहो दैर्घ्य उच्छ्राये' इत्यमरः। चतुर्थांशम् = तुरीयभागः, गृहपीठम्—गृहस्य = भवनस्य, पीठम् = अधिष्ठानम्, प्रकल्पयेत् = कुर्यादिति ॥ २३४ ॥

हिन्दी—देवालय या राजभवन के मण्डपद्वार में वेध का विचार नहीं है। गृहपीठ का अधिष्ठान मुख्य भवन की लम्बाई का चौथाई होना चाहिए ॥ २३४ ॥

प्रासादेति। प्रासादमण्डपस्य देवगृहस्य राजगृहस्य वा, 'प्रासादो देवभूभुजामि'त्यमरः। द्वारे मार्गवेधः मार्गयोर्मार्गाणां वा वेधः संयोगः न विद्यते न कार्य्य इत्यर्थः। किञ्च उच्छ्रायस्य चतुर्थांशं चतुर्थांशपरिमाणं गृहपीठं प्रकल्पयेत् ॥ २३४ ॥

प्रासादानां मण्डपानामर्द्धांशं वापरे जगुः।
परवातायनैर्विद्धं नापि वातायनं स्मृतम् ॥ २३५ ॥

अन्वयः—वा अपरे प्रासादानां मण्डपानाम् अर्द्धांशं जगुः। वातायनं परवातायनैः विद्धं नापि स्मृतम् ॥ २३५ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, अपरे = अन्यविचारकाः, प्रासादानाम् = देवालयानां नृपालयानां वा, मण्डपानाम् = वितानानाम्, अर्द्धांशम् = अर्द्धभागः, जगुः = कथयन्ति, अर्द्धपरिमाणेन गृहपीठं करणीयमिति कथनाशयः। किञ्च वातायनम् = गवाक्षः, परवातायनेन = अन्यगवाक्षेण, विद्धम् = वेधितम्, नापि = नैव, स्मृतम् = कथितम्, विधातव्यमिति भावः ॥ २३५ ॥

हिन्दी—कुछ आचार्य के मत से गृहपीठ मुख्य भवन का आधा होना चाहिए तथा एक खिड़की दूसरी खिड़की से विद्ध नहीं होनी चाहिए ॥ २३५ ॥

प्रासादानामिति। अपरे विद्वांसः प्रासादानां मण्डपानां पूर्वोक्तदेवराजगृहाणाम् अर्द्धांशम् अर्द्धांशपरिमितं वा गृहपीठं जगुः कथयन्ति अर्द्धपरिमाणेन गृहपीठं कार्य्यमिति भावः। किञ्च वातायनमेकं परवातायनेन अपरगवाक्षेण विद्धं संसक्तं नापि नैव स्मृतं कथितं न कार्य्यमिति भावः॥ २३५ ॥

विस्तारार्धांशमध्योच्चा छदिः खर्परसम्भवा।
पतितन्तु जलं तस्यां सुखं गच्छति वाप्यधः ॥ २३६ ॥

अन्वयः—खर्परसम्भवा छदिः विस्तारार्धांशमध्योच्चा, तस्यां पतितं तु जलं सुखं वापि अधः गच्छति ॥ २३६ ॥

व्याख्या—खर्परसम्भवा—खर्परैः = मृत्पट्टिकाभिः, सम्भवा = समुत्पन्ना, छदिः = पटलम्, विस्तारस्य = आयामस्य, अर्द्धांशम् = अर्द्धभागः, मध्यम् = मध्यभागः, उच्चम् = उन्नतम्, मूलम्, यस्यास्तथाभूता विधेयेति भावः, तस्याम् = गृहाच्छादने, पतितम् = निपतितं, तु = इत्यवधारणे, जलम् = सलिलम्, सुखम् = सहजभावेन, यथा तथा अधः = अधोभागे, गच्छति = याति ॥२३६ ॥

हिन्दी—खपरैल के घर की मूल ऊँचाई घर के पूरे विस्तार की आधी होनी चाहिए, ताकि उस पर गिरी जलधारा आसानी से नीचे आ जाये ॥ २३६ ॥

विस्तारेति। खर्परसम्भवा खर्परैः तदाख्यैः आच्छादकवस्तुविशेषैः कृतेत्यर्थः, छदिः विस्तारस्य स्वविस्तारस्य अर्द्धांशं मध्यम् उच्चं मूलं यस्याः तथाभूता कार्य्या इति शेषः, तस्यां पतितं जलं सुखं यथा तथा अधः गच्छति, तुशब्दः अवधारणे ॥ २३६ ॥

हीना निम्ना छदिर्न स्यात् तादृक् कोष्ठस्य विस्तरः।
स्वोच्छ्रायस्यार्द्धमूलो वा प्राकारः सममूलकः ॥ २३७ ॥

अन्वयः—छदिः हीना निम्ना न स्यात्, स्वोच्छ्रायस्य कोष्ठस्य विस्तरः न स्यात्, प्राकारः अर्द्धमूलः वा सममूलकः न स्यात् ॥ २३७ ॥

व्याख्या—छदिः = पटलम्, निम्ना = नता, हीना = अपकृष्टा, न = नहि, स्यात् = भवेत्, स्वोच्छ्रायस्य = समुन्नतस्य, कोष्ठस्य = प्राकारस्य, विस्तरः = पीठम्, तथाहीनः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, प्राकारः = गृहमध्यम्, अर्द्धमूलः = गृहमूलार्द्धपरिच्छिन्नः, वा = अथवा, सममूलकः = मूलपरिमितः, न स्यादर्थात् गृहमूलात्किञ्चिन्न्यूनपरिमितः निर्मातव्यमिति ॥ २३६ ॥

हिन्दी—घर का विस्तार जिस अनुपात में हो, उससे कम या हीन उसका छप्पर नहीं होना चाहिए और घर की ऊँचाई का आधा अथवा सममूलक न होकर उससे कुछ निम्न होना चाहिए ॥ २३७ ॥

हीनेति। छदिः उक्तरूपा हीना न्यूना निम्ना अवनता च न स्यात्, तथा सोच्छ्रायस्य समुन्नतस्य कोष्ठस्य विस्तरः तादृक् हीनः निम्नश्चेत्यर्थः, न स्यात् किञ्च प्राकारः प्राचीरवेष्टनम् अर्द्धमूलः मूलार्द्धपरिमितः वा सममूलकः मूलपरिमितः न स्यात्, मूलात् किञ्चिदूनपरिमितः कार्य्य इति भावः ॥ २३७ ॥

तृतीयांशकमूलो वा ह्युच्छ्रायार्द्धप्रविस्तरः।
उच्छ्रितस्तु तथा कार्य्यो दस्युभिर्न विलङ्घ्यते ॥ २३८ ॥

अन्वयः—वा प्राकारः तृतीयांशकमूलः हि उच्छ्रायार्द्धप्रविस्तरः तु उच्छ्रितः तथा कार्यः यथा दस्युभिः न विलङ्घ्यते ॥ २३८ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, प्राकारः, तृतीयांशकमूलः = गृहमूलस्य तृतीयभागपरिच्छिन्नम्, हि = यतः, उच्छ्रायस्य = गृहोच्चतायाः, अर्द्धः = अर्द्धपरिमितः, प्रविस्तरः = विस्तारो विधेयः, तथा = तादृशः, कार्य्यः = विधेयः, यथा = येन प्रकारेण, दस्युभिः = चौरैः, न = नहि, विलङ्घ्यते = विलुण्ठ्यते ॥ २३८ ॥

हिन्दी—अथवा मूल गृह की ऊँचाई के तीसरे भाग के बराबर चहारदीवारी की ऊँचाई होनी चाहिए अथवा घर की ऊँचाई की आधी चहारदीवारी की ऊँचाई होनी चाहिए, ताकि चोर-उचक्के उसे आसानी से लाँघ न सकें ॥ २३८ ॥

तृतीयेति। वा अथवा प्राकारः तृतीयांशकं तृतीयभागमितं मूलं यस्य तथोक्तः तथा उच्छ्रायस्य उच्चतायाः अर्द्धः अर्द्धमितः प्रविस्तरः विस्तारः यस्य तादृशः कार्य्य इति शेषः। किञ्च तथा उच्छ्रितः उन्नतः कार्य्यः यथा दस्युभिः शत्रुभिरित्यर्थः, न विलङ्घ्यते ॥ २३८ ॥

यामिकैः रक्षितो नित्यं नालिकास्त्रैश्च संयुतः।
सुबहुदृढगुल्मश्च सुगवाक्षप्रणालिकः ॥ २३९ ॥

अन्वयः—नित्यं यामिकैः रक्षितः नालिकास्त्रैः संयुतः सुबहुदृढगुल्मः तथा सुगवाक्षप्रणालिकः ॥ २३९ ॥

व्याख्या—पूर्वोक्तप्राचीरः, नित्यम् = निरन्तरम्, यामिकैः = रक्षापुरुषैः, रक्षितः = गोपितः, नालिकास्त्रैः = शराग्रैः; 'स्यात्कदम्बशरयोः पुमान्' इति मेदिनी; तथा 'कलम्बः सायके नीपे नालीशाके' इति विश्वः। संयुतः = समवेतः, सुबहूनि = प्रचुराणि प्रभूतानि वा, दृढानि = प्रगाढानि सबलानि वा, गुल्मानि = सैन्यविभागभेदाः, यस्मिन् तादृशः, तथा = तेनैव प्रकारेण, सुगवाक्षप्रणलिकः —सु = सुष्ठु, गवाक्षाणाम् = वातायनानाम्, प्रणाली = सन्निवेशसरणिः, यत्र तथाभूतः कार्य्य इति ॥ २३९ ॥

हिन्दी—पहरेदारों से निरन्तर सुरक्षित, तोपखाने से युक्त, बहुत सारे सैनिकों या लता-गुल्मों से आच्छादित, सुन्दर खिड़कियों और छोटे द्वारों से युक्त राजभवन होना चाहिए ॥ २३९ ॥

यामिकैरिति। उक्तरूपः प्राचीरः नित्यं सततं यामिकैः प्रहरिभिः रक्षितः, नालिकास्त्रैः नालिकाख्यप्रहरणविशेषैः संयुतः, सुबहूनि बहुलानि दृढानि गुल्मानि रक्षकवर्गस्थानविशेषाः यस्मिन् तादृशः तथा सुष्ठु गवाक्षाणां प्रणाली सन्निवेशशृङ्खला यत्र तथाभूतः कार्य्य इति शेषः ॥ २३९ ॥

स्वहीनप्रतिप्राकारो ह्यसमीपमहीधरः।
परिखा च ततः कार्य्या खाताद् द्विगुणविस्तरा ॥ २४० ॥
नातिसमीपप्राकारा ह्यगाधसलिला शुभा।
युद्धसाधनसम्भारैः सुयुद्धकुशलैर्विना ॥ २४१ ॥
न श्रेयसे दुर्गवासो राज्ञः स्याद् बन्धनाय सः।
राज्ञा राजसभा कार्य्या सुगुप्ता सुमनोरमा ॥ २४२ ॥

त्रिकोष्ठैः पञ्चकोष्ठैर्वा सप्तकोष्ठैः सुविस्तृता।
दक्षिणोदक् तथा दीर्घा प्राक्प्रत्यग् द्विगुणाथवा॥ २४३॥
त्रिगुणा वा यथा काममेकभूमिर्द्विभूमिका।
त्रिभूमिका वा कर्त्तव्या सोपकार्य्या शिरोगृहा॥ २४४॥
परितः प्रतिकोष्ठे तु वातायनविराजिता।
पार्श्वकोष्ठात् तु द्विगुणो मध्यकोष्ठस्य विस्तरः॥ २४५॥

अन्वयः—स्वहीनप्रतिप्राकारः असमीपमहीधरः हि च ततः परिखा खातात् द्विगुणविस्तरा कार्या। नातिसमीपप्राकारा अगाधसलिला शुभा, युद्धसाधनसम्भारैः सुयुद्धकुशलैः विना राज्ञः दुर्गवासः श्रेयसे न। राज्ञा सुगुप्ता सुमनोहरा त्रिकोष्ठैः पञ्चकोष्ठैः सप्तकोष्ठैः वा दक्षिणोदक् सुविस्तृता। तथा प्राक्प्रत्यक् दीर्घा अथवा द्विगुणा वा त्रिगुणा वा यथाकामम् एकभूमिः द्विभूमिका त्रिभूमिका सोपकार्या। शिरोगृहा प्रतिकोष्ठे परितः वातायनविराजिता तु मध्यकोष्ठस्य विस्तरः पार्श्वकोष्ठात् द्विगुणः॥ २४०-२४५॥

व्याख्या—पूर्वोक्तः प्राकारः, स्वहीनप्रतिप्राकारः—स्वस्मात् = स्वकीयाकारात्, हीनः = ऊनः, प्रतिप्राकारः = प्रतियोगिपक्षप्राकारः, यस्य तस्य विपक्षस्य प्राकारात् समुन्नतः, असमीपमहीधरः—तथा च असमीपः = अनिकटस्थः, महीधरः = गिरिः, यस्य तथाभूतस्य, कर्त्तव्य इति पदमध्याहार्यमर्थात् पर्वतसमीपे तदाश्रयेणारिभिरतिपातनीयत्वादिति भावः, हीति निश्चयेन, ततश्च = तत्पश्चात् एवंविधप्राचीरस्य चतुर्दिक्, परिखा = खातम्, कुर्यात्, सा च परिखा खातात् = गर्त्तात्, द्विगुणः = गाम्भीर्याद् द्विगुणिता, विस्तरा = विस्तृता, यस्यास्तथोक्ता कार्या, सा च नातिसमीपप्राकारा—प्राकारस्य = वप्रस्य; 'वप्रश्चावरणे वृन्दे प्राकारे मूलबन्धने' इति धरणिः; नातिसमीपम् = नात्यन्तिकम्, अगाधसलिला—नास्ति गाधः = स्थितिरत्र इति अगाधः = अतलस्पर्शः; 'अगाध अतलस्पर्शे' इत्यमरः, सलिला = उदकेति, तथा शुभा = शोभनञ्च, तु = किञ्च, युद्धसाधनसम्भारैः = समरसम्पादनार्थायुधसमूहैः, तथा सुयुद्धकुशलैः = समरसुदक्षपुरुषैः, विना = विहाय, राज्ञः = नृपस्य, दुर्गवासः—दुर्गे = कोटे, वासः = निवासः, श्रेयसे = कल्याणाय, न = न भवति, अपितु विनाशाय भवति। राज्ञा = नृपेन, सुगुप्ता = सुष्ठु संरक्षिता, सुमनोहरा = मनोहारि, त्रिकोष्ठैः = त्रिपटलैः, पञ्चकोष्ठैः = पञ्चपटलैः, वा = अथवा, सप्तकोष्ठैः = सप्तपटलैः, विभक्ता इति अध्याहार्यम्। दक्षिणोदक् = सव्येतरोत्तरयोः, सुविस्तृता—सम्यग्रूपेण, विस्तृता = प्रसरिता, तथा प्राक्प्रत्यक् = पूर्वपश्चिमयोः, दीर्घा, अथवा द्विगुणा = द्विगुणिता, आयामादायतम् इति भावः, अथवा = वा, त्रिगुणा = त्रिगुणिता, राजसभा कार्या, अथवा यथाकामम् = अभिलाषानुकूलम्, एकभूमिः = मात्रैकगेहा, द्विभूमिका = भवनद्वयसंयुक्ता, त्रिभूमिका = सदनत्रयसंयुता, सोपकार्या = पटमण्डपाख्यराजभवनेन सहितम्, शिरोगृहा = शिरस्थसदनेन सहिता, प्रतिकोष्ठे = कोष्ठे कोष्ठेषु, परितः = सर्वतः, वातायनविराजिता = खडक्किकाशोभिता, राजसभा कर्त्तव्या, किञ्च मध्यकोष्ठस्य = मध्यस्थशालायाः, विस्तरः = विस्तारः, पार्श्वकोष्ठात् = पार्श्वकक्षात्, द्विगुणः = द्विगुणिता भवितव्येति भावः॥ २४०-२४५॥

हिन्दी—इसके बाद उससे छोटे आकार का परकोटा बना हो तथा उस परकोटे के समीप कोई पहाड़ न हो। उस परकोटे के बाद परिखा अर्थात् जलवाहिनी खाई खुदवाये। दुर्गरक्षा

के लिए उस खाई की चौड़ाई उसकी गहराई से दुगुनी हो, इसमें अथाह जल हो। इसमें युद्ध के उचित उपकरण अर्थात् उत्तम कोटि के पर्याप्त आयुध अवश्य हों, क्योंकि इनके बिना किले में राजा का निवास खतरे से खाली नहीं है। कुशल योद्धा और आयुध के बिना दुर्ग तो किसी राजा के लिए बन्धन का कारण बन जाता है। ऐसे दुर्ग के भीतर राजप्रासाद का निर्माण होना चाहिए। राजभवन सुरक्षित एवं सुन्दर हो। दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा अथवा पूर्व से पश्चिम की ओर राजभवन दुगुना या तिगुना लम्बा हो। अपनी इच्छा के अनुसार एक-मंजिला, दुमंजिला या तिमंजिला भवन हो, ऊपर की मंजिल में शामियाना तना हो, प्रत्येक घर में सुन्दर-सुन्दर खिड़कियाँ लगी हों और बगल के कमरे की अपेक्षा बीच के कमरे का विस्तार उससे दुगुना अवश्य हो॥ २४०-२४५ ॥

स्वहीनेत्यादि। उक्तः प्राकारः स्वस्मात् हीनः न्यूनः प्रतिप्राकारः विपक्षप्राकारः यस्य तथोक्तः विपक्षप्राकारात् समुन्नत इत्यर्थः, तथा असमीपः असन्निहितः महीधरः पर्वतो यस्य तादृशः कर्त्तव्य इति अध्याहार्य्यं पर्वतसन्निधाने तदाश्रयेण शत्रुभिरुल्लङ्घनीयत्वादिति भावः। ततश्च तस्य प्राचीरस्य परत इत्यर्थः, परिखा तदाख्या जलवृतिरित्यर्थः, कार्य्या, सा च खाताद् गभीरत्वादित्यर्थः, द्विगुणः विस्तरः यस्याः तथोक्ता, नातिसमीपप्राकारा प्राकारस्य नितान्तमसन्निहिता, अगाधसलिला बहूदका तथा शुभा सुदृश्या च। किञ्च युद्धसाधनसम्भारैः सङ्ग्रामोपकरणसमूहैः तथा सुयुद्धकुशलैः रणदक्षैः पुरुषैः विना राज्ञः दुर्गे वासः श्रेयसे मङ्गलाय न परं स बन्धनाय स्यात्। अपरश्च राज्ञा सुगुप्ता सुरक्षिता मनोहरा त्रिकोष्ठैः पञ्चकोष्ठैः सप्तकोष्ठैर्वा विभक्ता इति अध्याहार्य्यं दक्षिणोदक् दक्षिणोत्तरयोरित्यर्थः, सुविस्तृता तथा प्राक् प्रत्यक् पूर्वपश्चिमयोरित्यर्थः, दीर्घा अथवा द्विगुणा विस्तारात् दैर्घ्ये इति शेषः, अथवा त्रिगुणा राजसभा कार्य्या। अथवा यथाकामं यथेप्सितम् एकभूमिः एकमात्रगृहा द्विभूमिका गृहद्वययुता त्रिभूमिका गृहत्रयसंयुता सोपकार्य्या शिरोगृहा उपकार्य्याख्यगृहविशेषेण शिरोगृहेण शिरस्थगृहविशेषेण सहिता प्रतिकोष्ठेषु परितः सर्वतः चतुर्दिक्षु इत्यर्थः, वातायनविराजिता गवाक्षशोभिता राजसभा कर्त्तव्या। किन्तु मध्यकोष्ठस्य विस्तरः पार्श्वकोष्ठात् द्विगुणः कार्य्य इति शेषः॥ २४०-२४५ ॥

पञ्चमांशाधिकं तूच्चं मध्यकोष्ठस्य विस्तरात्।
विस्तारेण समं तूच्चं पञ्चमांशाधिकन्तु वा॥ ४४६ ॥

अन्वयः—मध्यकोष्ठस्य तु उच्चं विस्तरात् पञ्चमांशाधिकम् उच्चं विस्तरेण समं पञ्चमांशाधिकं वा इति॥ २४६ ॥

व्याख्या—मध्यकोष्ठस्य = केन्द्रीयकक्षायाः, तु = पुनः, उच्चम् = उत्तुङ्गता, विस्तरात् = आयामात्, पञ्चमांशाधिकम् = पञ्चमभागादधिकम्, उच्चम् = उच्चता, विस्तरेण = विस्तारेण, समम् = सदृशम्, वा = अथवा, पञ्चमांशाधिकम्, पञ्चमभागादतिरिक्तम्, राजभवनं निर्मातव्यमिति केचित्कथयन्तीति भावः॥ २४६ ॥

हिन्दी—बीच वाले कमरे की ऊँचाई उस भवन के आयाम के पाँचवें भाग से अधिक या उसी के बराबर होनी चाहिए॥ २४६ ॥

पञ्चमेति। मध्यकोष्ठस्य तु उच्चम् उच्चता विस्तरात् पञ्चमांशाधिकं कार्य्यमिति शेषः। उच्चं विस्तरेण समं पञ्चमांशाधिकं वा कार्य्यमिति केचिद् वदन्तीति अध्याहार्य्यम्॥ ४४६ ॥

कोष्ठकानाञ्च भूमिर्वा छदिर्वा तत्र कारयेत्।
द्विभूमिके पार्श्वकोष्ठे मध्यमं त्वेकभूमिकम्॥ २४७॥

अन्वयः—कोष्ठकानां भूमिः वा छदिः तत्र द्विभूमिके पार्श्वकोष्ठे मध्यमम् एकभूमिकं कारयेत्॥ २४७॥

व्याख्या—कोष्ठकानाम् = अनेकगृहयुतानाम्, भूमिः = विस्तारभूभागः, वा = अथवा, तेषामनेकगृहयुतानां भूभागानाम्, छदिः = पटलम्, या आसीदिति तत्र = तस्मिन्स्थाने, द्विभूमिके = स्तरद्वयावच्छिन्नभवने, पार्श्वकोष्ठे = पार्श्वस्थभवने सति, मध्यस्थम् = मध्येस्थित-कोष्ठम्, एकभूमिकम् = एकस्तरीयभवनम्, कारयेत् = रचयेदिति॥ २४७॥

हिन्दी—कमरों की विस्तारभूमि के अनुसार उसकी छत होनी चाहिए। अगल-बगल के भवन दुमंजिले हों तो बीच का भवन एकमंजिला होना चाहिए॥ २४७॥

कोष्ठकानामिति। कोष्ठकानां भूमिः विस्तारभागः वा छदिः आच्छादनभागः या आसीदिति अध्याहार्य्यं, तत्र द्विभूमिके पार्श्वकोष्ठे गृहद्वयावच्छिन्ने पार्श्वावयवे सति मध्यमं कोष्ठमिति शेषः, एकभूमिकम् एकगृहपरिच्छिन्नं कारयेत्॥ २४७॥

पृथक्स्तम्भान्तसत्कोष्ठा चतुर्मार्गागमा शुभा।
जलोर्ध्वपातियन्त्रैश्च युता सुस्वरयन्त्रकैः॥ २४८॥
वातप्रेरकयन्त्रैश्च यन्त्रैः कालप्रबोधकैः।
प्रतिष्ठिता च स्वादर्शैस्तथा च प्रतिरूपकैः॥ २४९॥
एवंविधा राजसभा मन्त्रार्था कार्य्यदर्शने।
तथाविधामात्यलेख्यसभ्याधिकृतशालिकाः॥ २५०॥
कर्त्तव्याश्च पृथक् त्वेतास्तदर्थाश्च पृथक् पृथक्।
शतहस्तमितां भूमिं त्यक्त्वा राजगृहात् सदा॥ २५१॥

अन्वयः—पृथक्स्तम्भान्तसत्कोष्ठा चतुर्मार्गागमा शुभा, च जलोर्ध्वपातियन्त्रैः च सुस्वरयन्त्रकैः कालप्रबोधकैः यन्त्रैः युता वातप्रेरकयन्त्रैः स्वादर्शैः तथा च प्रतिरूपकैः प्रतिष्ठिता। एवंविधा राजसभा कार्यदर्शने तथाविधा अमात्यलेख्यसभ्याधिकृतशालिकाः पृथक् पृथक् तथा राजगृहात् शतहस्तमितां भूमिं त्यक्त्वा सदा तदर्थाः एताः च पृथक् कर्त्तव्याः॥ २४८-२५१॥

व्याख्या—पृथक् = भिन्नम्, स्तम्भानाम् = स्थूणानाम्, अन्ते = विरामे, सत्कोष्ठाः = सुष्ठु प्रकोष्ठाः, पाठान्तरे—'पृथक्सभान्तसत्कोष्ठाः' केचिन्मते—पृथक् = व्यतिरिक्तः, सभान्तः = सभामध्ये, सत् = विद्यमाने सति, कोष्ठम् = गृहमध्यम्, यस्यास्तथोक्ताः, चतुर्मार्गागमाः—चतुर्भिः = तुरीयैः, मार्गैः = पथिभिः, आगमे = सङ्गमे, शुभा = कल्याणकरी, चतुष्पथेत्यर्थः, च = पुनः, जलोर्ध्वपातियन्त्रैः—जलानि = सलिलानि, ऊर्ध्वपातीनि = उपरिगामीनि, यैः तादृशानि, यन्त्रैः = जलोत्क्षेपोपकरणयन्त्रैः, च = पुनः, सुस्वरयन्त्रकैः = मधुरध्वनिविस्तारयन्त्रयुक्तैः, तथा कालप्रबोधकैः यन्त्रैः = घटिकायामनालीयन्त्रैः, युता = संवलिता, पुनः वातप्रेरकयन्त्रैः = वीजनयन्त्रसमन्वितैः, स्वादर्शैः = मनोज्ञमुकुरैः, तथा च प्रतिरूपकैः = प्रतिमूर्तिभिः, प्रतिष्ठिता = स्थापिता, एवंविधा = एतत्प्रकारा, मन्त्रार्था = परामर्शप्रयोजनेन निर्मिता, राजसभा = राजपरिषद्,

कार्यदर्शने = कर्मविक्षणे, अत्र निमित्तार्थे सप्तमीति, तथाविधा = तादृशी विशिष्टेति भावः, अमात्यानाम् = सचिवानाम्, लेखकानाम् = ग्रन्थकाराणाम्, सभ्यानाम् = सभासदाम्, अधिकृतानाम् = पदाधिकारिवर्गाणाम्, शालिकाः = भवनानि, पृथक् पृथक् = भिन्नभिन्नस्थाने, तथा राजगृहात् = नृपसदनात्, शतहस्तमिताम् = शतकरपरिमिताम्, भूमिम् = रिक्तधराम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, सदा = सर्वदा, तदर्थाः = कार्यावलोकनार्थाः, एताः = पूर्वोक्ताश्च, पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, भवनं कर्त्तव्याः = करणीयाः इति ॥ २४८-२५१ ॥

हिन्दी—विभिन्न स्तम्भों के अन्त में सुन्दर भवनों से सजे, चतुष्पथवाले, फव्वारे लगे, मधुर ध्वनिविस्तारक यन्त्रयुक्त, स्वचालित पंखों से युक्त, घंटाघर-समन्वित, यहाँ-वहाँ आदमकद सुन्दर शीशे लगे, बहुविध सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण चित्र रंगे, मन्त्रणा के लिए तथा राजकार्यावलोकनार्थ राजपरिषद् का दिव्य भवन होना चाहिए। इसी तरह मंत्री, लेखक, सभासद् तथा पदाधिकारियों के अलग-अलग कमरे होने चाहिए। ये सभी भवन राजभवन से सौ हाथ की दूरी पर होने चाहिए ॥ २४८-२५१ ॥

पृथगित्यादि। पृथक् विभिन्नं सभान्तः सभामध्ये सत् विद्यमानं कोष्ठं यस्याः तथोक्ता, चतुर्भिर्मार्गैः पथिभिः आगमे आगमने शुभा सुखकरी चतुष्पथा इत्यर्थः, जलानि ऊर्ध्वपातीनि ऊर्ध्वगामीनि यैः तादृशानि यन्त्राणि जलोद्गमयन्त्राणीत्यर्थः, तैः तथा सुस्वरयन्त्रकैः स्वयं मधुरस्वरोत्थापकैः यन्त्रैश्च युता। किञ्च वातप्रेरकयन्त्रकैः अभिमतसमीरणसञ्चारकयन्त्रैरित्यर्थः, कालप्रबोधकैः समयनिर्णायकैश्च यन्त्रैः उपलक्षिता तथा द्वादशैः शोभनैः दर्पणैः प्रतिरूपकैः प्रतिकृतिभिश्च प्रतिष्ठिता अलङ्कृता एवंविधा उक्तप्रकारा मन्त्रार्था मन्त्रणाभिप्रायेण निर्मिता राजसभा कार्यदर्शने कार्य्यदर्शनार्थमित्यर्थः, निमित्तार्थसप्तमी। कार्य्या इति शेषः। तथाविधा तादृशी प्रशस्ता इति शेषः, अमात्यानां लेख्यानां लेखकानां सभ्यानाम् अधिकृतानां कर्मचारिणां शालिकाः गृहाणि पृथक् पृथक् तथा राजगृहात् शतहस्तमितां भूमिं त्यक्त्वा सदा तदर्थाः कार्य्यदर्शनार्थाः एताः शालिकाः पृथक् पृथक् कर्त्तव्याः ॥ २४८-२५१ ॥

उदग्द्विशतहस्तां प्राक् सेनासंवेशनार्थिकाम्।
आराद्राजगृहस्यैव प्रजानां निलयानि च ॥ २५२ ॥
सधनश्रेष्ठजात्यानुक्रमतश्च सदा बुधः।
समन्ताच्च चतुर्दिक्षु विन्यसेच्च ततःपरम् ॥ २५३ ॥

अन्वयः—बुधः प्राक् राजगृहस्य आरात् एव सदा सेनासंवेशनार्थिकाम् उदग् द्विशतहस्तां ततः परं चतुर्दिक्षु समन्तात् अनुक्रमतः सधनश्रेष्ठजातिः प्रजानां निलयानि च विन्यसेत् ॥ २५२-२५३ ॥

व्याख्या—बुधः = बुद्धिमान् राजा, प्राक् = पूर्वम्, राजगृहस्य = राजभवनस्य, आरात् = निकटे दूरेऽपि च; 'आराद्दूरसमीपयोरि'त्यमरः। सदा = सर्वदा, सेनासंवेशनार्थिकाम् = सैन्यावासार्थिकाम्, उदग्द्विशतहस्ताम् = शतद्वयहस्तोत्तरस्यां दिशि, शालिकां कुर्यादिति शेषः, ततःपरम् = तदनन्तरम्, चतुर्दिक्षु = परितः, समन्तात् = सर्वतः, अनुक्रमतः = अनुक्रमेण, सधनश्रेष्ठजातिः—सधनाः = वशीभूताः धनिकाः, श्रेष्ठाः = उत्तमाः, या जातिः = समाजः, तया = तदनुसारेणेत्यर्थः, प्रजानाम् = जनानाम्, निलयानि = सदनानि, च, विन्यसेत् = स्थापयेदिति ॥ २५२-२५३ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा राजमहल से दो सौ हाथ की दूरी पर सेना की छावनी उत्तर दिशा की ओर बनवाये। तत्पश्चात् सर्वप्रथम राजभवन के चारों ओर धनिकों, अभिजातवर्गीय श्रेष्ठ जनों तथा सामान्य प्रजाजनों का घर क्रमानुसार बसाये॥ २५२-२५३॥

उदगिति। सधनेति। बुधः विद्वान् नृपतिः प्राक् प्रथमं राजगृहस्य आरात् समीपे एव 'आराद् दूरसमीपयोरि'त्यमरः, सदा सेनासंवेशनार्थिकां सैन्यरक्षार्थाम् उदग् द्विशतहस्तां द्विशतहस्तोत्तरवर्त्तिनीं शालिकां ततःपरं चतुर्दिक्षु समन्तात् सर्वतः अनुक्रमतः यथाक्रमेण सधना श्रेष्ठा च या जातिः तया तदनुसारेणेत्यर्थः, प्रजानां निलयानि च विन्यसेत् कल्पयेत्॥ २५२-२५३॥

प्रकृत्यनुप्रकृतयो ह्यधिकारिगणस्ततः।
सेनाधिपाः पदातीनां गणः सादिगणस्ततः॥ २५४॥
साश्वश्च सगजश्चापि गजपालगणस्ततः।
बृहन्नालिकयन्त्राणि ततः स्वतुरगीगणः॥ २५५॥
ततः स्वगौल्मिकगणो ह्यारण्यकगणस्ततः।
क्रमादेषां गृहाणि स्युः शोभनानि पुरे सदा॥ २५६॥

अन्वयः—प्रकृत्यनुप्रकृतयः ततः अधिकारिणगणः, ततः सेनाधिपाः, ततः पदातीनां गणः, ततः साश्वः सादिगणः, ततः सगजः गजपालगणः, ततः बृहन्नालिकयन्त्राणि, ततः स्वतुरगीगणः, ततः स्वगौल्मिकगणः, ततः आरण्यकगणः पुरे क्रमात् एषां सदा शोभनानि गृहाणि स्युः॥ २५४-२५६॥

व्याख्या—प्रकृतयः = प्रधानपुरुषाः, ततः = तत्पश्चात्, अनुप्रकृतयः = उपप्रधानाः, ततः = तदनन्तरम्, अधिकारिगणः = उच्चपदस्थराजपुरुषाः, ततः = तत्पश्चात्, सेनाधिपाः = सेनापतयः, ततः पदातीनाम् = पादचारिसैन्यानाम्, गणः = समूहः, ततः = तदनन्तरम्, साश्वः = घोटकैः सह, सादिगणः = अश्वारोहिसैनिकाः, ततः = तदनन्तरम्, सगजः = गजैः सह, गजपालगणः = हस्तिपकाः, ततः = तत्पश्चात् बृहन्नालिकयन्त्राणि = शतघ्नीचालकयन्त्राणि, बृहन्ति = महान्ति, नालिकयन्त्राणि = अग्न्यस्त्रसमूहानि, सैन्यसाहचर्यात्, लक्षणया तच्छालिनः पुरुषास्ततः = तत्पश्चात् स्वतुरगीगणः—स्वस्य = आमनः (नृपस्य), तुरगीगणः = अश्वासमूहः, ततः = तदनन्तरम्, स्वगौल्मिकगणः—स्वस्य = राज्ञः, गौल्मिकगणः = नृपाङ्गरक्षकवर्गः, ततश्च = तत्पश्चात्, आरण्यकः गणः = जाङ्गलजातिसङ्घः, पुरे = पत्तने, क्रमात् = आनुपूर्व्यात्, एषाम् = पूर्वोक्तानां, प्रकृत्याद्यारण्यकपर्यन्तानाम्, सदा = निरन्तरम्, शोभनानि = रम्याणि, गृहाणि = भवनानि, स्युः = भवेयुः॥ २५४-२५६॥

हिन्दी—उस राजनगर में प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, राजपुरोहित सहित उच्चपदाधिकारी गण, सेनापति, स्थलसेना, घुड़सार सहित घुड़सवारों, हाथीखाना सहित हाथीवानों, तोपखाने सहित गोलन्दाजों, अच्छे नस्ल की घोड़ियों का समूह, अंगरक्षकों तथा वनजातियों के सुन्दर घरों की क्रमशः व्यवस्था होनी चाहिए॥ २५४-२५६॥

प्रकृत्यादि। प्रकृतयः प्रधानपुरुषाः, अनुप्रकृतयः ततो निकृष्टाः प्रजाः तदनन्तरम् अधिकारिगणः राजनियुक्तभृत्यवर्गः ततः सेनाधिपाः सेनापतयः ततः पदातीनां सैन्यानां गणः, ततः साश्वः अश्वसहितः सादिनाम् अश्वारोहिणां सैन्यानां गणः, ततः सगजः गजसहितः गजपालगणः ततः बृहन्नालिकयन्त्राणि बृहन्ति महान्ति नालिकयन्त्राणि अस्त्रविशेषयन्त्राणि चेतनसाहचर्य्यात् लक्षणया

तच्छालिनः पुरुषाः ततः स्वतुरगीगणः स्वस्य राज्ञ इत्यर्थः, तुरगीगणः अश्वासमूहः ततः स्वस्य गौल्मिकगणः रक्षकवर्गः ततश्च आरण्यकगणः वन्यजातिसङ्घः पुरे नगरे क्रमात् एषाम् उक्तानां प्रकृत्याद्यारण्यकगणपर्य्यन्तानां सदा शोभनानि गृहाणि स्युः भवेयुः ॥ २५४-२५६ ॥

पान्थशाला ततः कार्य्या सुगुप्ता सुजलाशया।
सजातीयगृहाणां हि समुदायेन पङ्क्तितः ॥ २५७ ॥
निवेशनं पुरे ग्रामे प्रागुदङ्मुखमेव वा।
सजातिपण्यनिवहैरापणे पण्यवेशनम् ॥ २५८ ॥

अन्वयः—ततः सुगुप्ता सुजलाशया पान्थशाला कार्या। पुरे ग्रामे च पङ्क्तितः सजातीयगृहाणां प्रागुदङ्मुखं वा समुदायेन निवेशनं तथा आपणे सजातीयपण्यनिवहैः पण्यवेशनम् ॥ २५७-२५८ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, सुगुप्ता = सुष्ठुरक्षिता, सुजलाशया = सुन्दरवापीकूपतडागादियुक्ता, पान्थशालां = पथिकाश्रमः, कार्या = करणीया, पुरे = नगरे, ग्रामे = निवसर्थे, च = पुनः, पङ्क्तितः = अनुक्रमेण, सजातीयगृहाणाम् = सगोत्रभवनानाम्, प्रागुदङ्मुखम्—प्राङ्मुखम् = पूर्वाभिमुखम्, वा उदङ्मुखम् = उत्तराभिमुखम्, वा, समुदायेन = समूहेन, निवेशनम् = स्थापनम्, तथा आपणे = हट्टे, सजातीयपण्यनिवहैः —सजातीयानां = समानजातीनां, पण्यानाम् = विक्रेयाणाम्; 'विक्रेयं पणितव्यं पण्यञ्चे'त्यमरः। निवहैः = समूहैः, तत्क्रमेणेत्यर्थः, पण्यवेशनम् = विक्रेयद्रव्याणाम्, निवेशनम् = स्थापनम्, कर्त्तव्यमिति ॥ २५७-२५८ ॥

हिन्दी—और बटोहियों के विश्राम हेतु पान्थागार होना चाहिए। यह पान्थागार सुरक्षित हो तथा उसमें कुँए या बावडी की सुन्दर व्यवस्था हो। उस सराय के सभी घर एक ही आकार-प्रकार के एक कतार में हों। ये सराय नगर या गाँव में पूर्व या उत्तर मुख का हो और बाजार में बिकनेवाली एक तरह की वस्तु की दूकानें एक ही जगह हों ॥ २५७-२५८ ॥

पान्थशालेति। निवेशनमिति। ततश्च सुगुप्ता सुजलाशया शोभनजलाशयसमन्विता पान्थशाला पथिकावासः कार्य्या। किञ्च पुरे नगरे ग्रामे वा पङ्क्तितः श्रेणिक्रमेण सजातीयगृहाणां समानजातीयलोकानां गृहाणां प्रागुदङ्मुखं प्राङ्मुखम् उदङ्मुखं वा इत्यर्थः, समुदायेन साकल्येन निवेशनं तथा आपणे निषद्यायां सजातिपण्यनिवहैः समानजातीनां पण्यानां विक्रेयद्रव्याणां निवहैः समुदायैः तत्क्रमेण इत्यर्थः, पण्यवेशनं पण्यानां स्थापनं कर्त्तव्यमिति शेषः ॥ २५७-२५८ ॥

धनिकादिक्रमेणैव राजमार्गस्य पार्श्वयोः।
एवं हि पत्तनं कुर्य्यात् ग्रामञ्चैव नराधिपः ॥ २५९ ॥

अन्वयः—राजमार्गस्य पार्श्वयोः क्रमेण धनिकादि नराधिपः एवं हि पत्तनं च ग्रामं कुर्यात् ॥ २५९ ॥

व्याख्या—राजमार्गस्य = राजपथः, पार्श्वयोः = मार्गस्योभयोः पक्षयोः, क्रमेण = यथाक्रमेण, धनिकादि = सम्पन्नजनादिकं निवेशयेदिति भावः, नराधिपः = नरपतिः, एवं हि = ईदृशमेव, पत्तनम् = नगरम्, च = पुनः, ग्रामम् = आवसथम्, कुर्यात् = तनुयात् ॥ २५९ ॥

हिन्दी—राजमार्ग के दोनों ओर सम्पन्न लोगों की क्रमानुसार दूकानें खुलवानी चाहिए। इसी तरह ग्राम या नगर राजा को बसवाना चाहिए ॥ २५९ ॥

धनिकादीति। किञ्च राजमार्गस्य पार्श्वयोः क्रमेण धनिकादि समृद्धजनादिकं स्थापयेदिति शेषः। नराधिपः राजा एवं हि ईदृशमेव पत्तनं नगरं ग्रामञ्च कुर्य्यात् ॥ २५९ ॥

राजमार्गास्तु कर्त्तव्याश्चतुर्दिक्षु नृपगृहात्।
उत्तमो राजमार्गस्तु त्रिंशद्धस्तमितो भवेत् ॥ २६० ॥

अन्वयः—नृपगृहात् चतुर्दिक्षु राजमार्गाः कर्त्तव्याः। त्रिंशत्हस्तमितः राजमार्गः उत्तमो भवेत् ॥ २६० ॥

व्याख्या—किञ्च नृपगृहात् = राजभवनात्, चतुर्दिक्षु = समन्ततः, राजमार्गाः = राजपन्थानः, कर्त्तव्याः = करणीयाः, तत्र त्रिंशद्धस्तमितः—त्रिंशत् = त्रिंशता, हस्तैः = करैः, मितः = परिमितः, राजमार्गः = राजपन्थाः, उत्तमः = वरेण्यः, भवेत् = स्यात् ॥ २६० ॥

हिन्दी—राजभवन के चारों ओर राजमार्ग होना चाहिए। तीस हाथ चौड़ा राजमार्ग उत्तम कोटि का होता है ॥ २६० ॥

राजमार्गा इति। नृपगृहात् चतुर्दिक्षु राजमार्गाः कर्त्तव्याः। तत्र त्रिंशद्धस्तमितः त्रिंशता हस्तैः परिमितः राजमार्गः उत्तमः भवेत् ॥ २६० ॥

मध्यमो विंशतिकरो दशपञ्चकरोऽधमः।
पण्यमार्गास्तथा चैते पुरग्रामादिषु स्थिताः ॥ २६१ ॥

अन्वयः—विंशतिकरः राजमार्गः मध्यमः तथा दशपञ्चकरः अधमः तथा पुरग्रामादिषु स्थिताः एते पण्यमार्गाः कार्येति ॥ २६१ ॥

व्याख्या—विंशतिकरः = विंशतिहस्तपरिच्छिन्नः, राजमार्गः = राजपथः, मध्यमः = सामान्यकोटिको भवति, तथा = तादृशमेव, दशपञ्चकरः = पञ्चदशहस्तपरिमितविस्तीर्णपथः, अधमः = निम्नकोटिकः पथो भवति, तथा पुरग्रामादिषु स्थिताः—नगरनिवसथादिष्ववस्थितः, एते = पूर्वोक्ताः, पण्यमार्गाः = आपणिकपन्थानः कर्त्तव्येति ॥ २६१ ॥

हिन्दी—साधारण राजमार्ग बीस हाथ चौड़ा होता है। इससे कम अर्थात् पन्द्रह हाथ चौड़ी सड़क तो अधम कोटि की होती है। इसी माप की बाजारी सड़क चाहे नगर की हो या गाँव की हो, बनानी चाहिए ॥ २६१ ॥

मध्यम इति। विंशतिकरः विंशतिहस्तपरिमितः राजमार्गः मध्यमः। दशपञ्चकरः पञ्चदशहस्तपरिमितः अधमः। तथा पुरग्रामादिषु एते पण्यमार्गाः पण्यानां विक्रेयस्थानानां मार्गाश्च उच्छ्रिताः विशालाः कर्त्तव्या इति शेषः ॥ २६१ ॥

करत्रयात्मिका पद्या वीथिः पञ्चकरात्मिका।
मार्गो दशकरः प्रोक्तो ग्रामेषु नगरे च ॥ २६२ ॥

अन्वयः—पद्याः करत्रयात्मिका, वीथिः पञ्चकरात्मिका, ग्रामेषु च नगरेषु मार्गः दशकरः प्रोक्तः ॥ २६२ ॥

व्याख्या—पद्याः = केवलपदचारणयोग्यपथः पद्धतिर्वा, करत्रयात्मिका = हस्तत्रयपरिमिता, भवितव्यम्, तथा वीथिः = रथ्या, पञ्चकरात्मिका = पञ्चहस्तपरिमिता, विपणिमार्गः निर्मातव्यः, ग्रामेषु = आवसथेषु, च = पुनः, नगरेषु = पुरेषु, मार्गः = वर्त्म, दशकरः = दशहस्तपरिच्छिन्नः,

प्रोक्तः = कथित इति ॥ २६२ ॥

हिन्दी—इसी तरह गाँवों या शहरों में पगडण्डी तीन हाथ चौड़ी, गली पाँच हाथ चौड़ी और सड़क कम-से-कम दस हाथ चौड़ी होनी चाहिए ॥ २६२ ॥

करेति। पद्या केवलपादचारणयोग्या रथ्या करत्रयात्मिका त्रिहस्तमिता वीथिः विपणिमार्ग इत्यर्थः, पञ्चकरात्मिका पञ्चहस्तमिता कार्य्या इति शेषः। ग्रामेषु नगरेषु सामान्येष्वित्यर्थः, मार्गः दशकरः दशहस्तमितः प्रोक्तः कथितः ॥ २६२ ॥

प्राक् पश्चाद्दक्षिणोदक् तान् ग्राममध्यात् प्रकल्पयेत्।
पुरं दृष्ट्वा राजमार्गान् सुबहून् कल्पयेन्नृपः ॥ २६३ ॥

अन्वयः—नृपः ग्राममध्यात् प्राक्पश्चात् दक्षिणोदक् दृष्ट्वा तान् राजमार्गान् प्रकल्पयेत्, तथा पुरं दृष्ट्वा सुबहून् राजमार्गान् कल्पयेत् ॥ २६३ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, ग्राममध्यात् = पुरमध्ये, प्राक् = पूर्वम्, पश्चात् = पश्चिमम्, दक्षिणः = वामेतरः, उदक् = उत्तरम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, तान् = पूर्वोक्तान्, राजमार्गान् = राजपथः, प्रकल्पयेत् = उद्भावयेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, पुरम् = नगरम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, सुबहून् = विपुलान्, राजमार्गान् = राजपथः, कल्पयेत् = रचयेदिति ॥ २६३ ॥

हिन्दी—राजा गाँव के बीच से, पूरब से पश्चिम की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाले राजमार्ग बनवाये, अथवा राजधानी के अनुसार बहुत सारे राजपथ का निर्माण कराये ॥ २६३ ॥

प्रागिति। नृपः ग्राममध्ये प्राक्पश्चात् दक्षिणोदक् पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरं दृष्ट्वा तान् मार्गान् पथः प्रकल्पयेत्। तथा पुरं दृष्ट्वा सुबहून् राजमार्गान् कल्पयेत् ॥ २६३ ॥

न वीथिं न च पद्यां हि राजधान्यां प्रकल्पयेत्।
षड्योजनान्तरेऽरण्ये राजमार्गन्तु चोत्तमम् ॥ २६४ ॥

अन्वयः—राजधान्यां वीथिं न च पद्यां न प्रकल्पयेत्। हि तथा षड्योजनान्तरे अरण्ये उत्तमं राजमार्गं प्रकल्पयेत् ॥ २६४ ॥

व्याख्या—राजधान्याम् = नृपनगर्याम्, वीथिम् = रथ्याम्, न = नहि, च = पुनः, पद्याम् = पदचारणयोग्यमार्गमपि, न = न कर्त्तव्यम्, हि = इति निर्धारणे, तथा = अपितु, षड्योजनान्तरे = चतुर्विंशतिक्रोशव्यवहिते; "चतुष्क्रोश्यां च योगे च योजनमि"ति मेदिनी, अरण्ये = वने, अर्थात् वनगमनार्थम्, उत्तमम् = विशिष्टम्, राजमार्गम् = नृपपथम्, प्रकल्पयेत् = रचयेत् ॥ २८४ ॥

हिन्दी—राजधानी में पगडंडी या गली नहीं बनवानी चाहिए। राजधानी से छः योजन अर्थात् चौबीस कोस के अन्तर पर तीस हाथ चोड़ी सड़क बनवानी चाहिए ॥ २६४ ॥

नेति। राजधान्यां वीथिम् अल्पप्रसरां रथ्यां न प्रकल्पयेत् हिशब्दः अवधारणे। तथा षड्योजनान्तरे चतुर्विंशतिक्रोशव्यवहिते अरण्ये अरण्ययानार्थमित्यर्थः, उत्तमं राजमार्गं प्रकल्पयेत् ॥ २६४ ॥

कल्पयेत् मध्यमं मध्ये तयोर्मध्ये तथाधमम्।
दशहस्तात्मकं नित्यं ग्रामे ग्रामे नियोजयेत् ॥ २६५ ॥

अन्वयः— मध्ये मध्यमं तयोः मध्ये च अधमं कल्पयेत्। तथा ग्रामे ग्रामे दशहस्तात्मकं नित्यं योजयेत् ॥ २६५ ॥

व्याख्या—मध्ये = अन्तराले, अर्थात् षड्योजनान्तरारण्ये, मध्यमम् = विंशतिहस्तात्मकं मध्यमकोटिकराजमार्गम्, तयोः = उभयोः राजमार्गयोः, मध्ये = मध्यस्थे, अधमम् = निम्नकोटिकं मार्गम्, कल्पयेत् = रचयेत्। तथा ग्रामे ग्रामे = प्रतिग्रामे, दशहस्तात्मकम् = दशहस्तपरिच्छिन्नम् पथम्, नित्यम् = अनवरतम्, योजयेत् = रचयेत् ॥ २६५ ॥

हिन्दी—बीच में मध्यम राजमार्ग अर्थात् बीस हाथ चौड़ी सड़क बनवानी चाहिए। उन दोनों के बीच में दस हाथ चौड़ी अधम कोटि की सड़क प्रत्येक गाँव में सदा बनवानी चाहिए ॥ २६५ ॥

कल्पयेदिति। मध्ये चतुर्विंशतिक्रोशव्यवहितारण्यमध्ये इत्यर्थः, मध्यमं राजमार्गं तयोः मार्गयोः मध्ये च अधमं मार्गं कल्पयेत्। तथा ग्रामे ग्रामे प्रतिग्रामं दशहस्तात्मकं दशहस्तपरिमितं मार्गं नित्यं सततं योजयेत् स्थापयेत् ॥ २६५ ॥

कूर्म्मपृष्ठा मार्गभूमिः कार्य्या ग्राम्यैः सुसेतुका।
कुर्य्यान्मार्गान् पार्श्वखातान्निर्गमार्थं जलस्य च ॥ २६६ ॥

अन्वयः—ग्राम्यैः कूर्मपृष्ठा सुसेतुका मार्गभूमिः कार्या, च जलस्य निर्गमार्थं पार्श्वखातात् मार्गान् कुर्यात् ॥ २६६ ॥

व्याख्या—ग्राम्यैः = ग्रामीणैः, कूर्मपृष्ठा = मध्योन्नता स्तूपपृष्ठा, तथा सुसेतुका = सुष्ठुसंवरसंयुता, मार्गभूमिः = प्रतोली, कार्या = कर्त्तव्या, च = पुनः, जलस्य = सलिलस्य, निर्गमार्थम् = बहिर्गमनार्थम्, पार्श्वखातात् = पार्श्वगर्त्तात्, ग्रामवासीजनः मार्गान् = पथः, कुर्यात् = स्थापयेत् ॥ २६६ ॥

हिन्दी—ग्रामीणों को अपने-अपने गाँवों की सड़क कछुए की पीठ की तरह मध्योन्नत बनवानी चाहिए। आवश्यकतानुसार उस सड़क पर सुन्दर पुल भी होना चाहिए। जल-बहाव के लिए सड़क के नीचे पक्की नालियाँ भी होनी चाहिए ॥ २६६ ॥

कूर्मेति। ग्राम्यैः ग्रामवासिभिः कूर्मपृष्ठा कमठपृष्ठाकारा उन्नतमध्या इत्यर्थः, तथा सुसेतुका शोभनसेतुयुक्ता मार्गभूमिः कार्य्या। किञ्च ग्रामवासी जनः जलस्य निर्गमार्थं पार्श्वखातात् पार्श्वयोः खातात् मार्गान् कुर्य्यात् ॥ २६६ ॥

राजमार्गमुखानि स्युर्गृहाणि सकलान्यपि।
गृहपृष्ठे सदा वीथिर्मलनिर्हरणस्थलम् ॥ २६७ ॥

अन्वयः—सकलानि अपि गृहाणि राजमार्गमुखानि स्युः। गृहपृष्ठे सदा मलनिर्हरणस्थलं वीथिः कार्या ॥ २६७ ॥

व्याख्या—सकलानि = अखिलानि, अपि = अपि च, गृहाणि = सदनानि, राजमार्गमुखानि —राजमार्गे = अध्वनि, मुखम् = अभिमुखम्, येषां तानि तथाभूतानि, स्युः = भवेयुरिति, गृहपृष्ठे—गृहाणाम् = भवनानाम्, पृष्ठदेशे = पश्चाद्भागे, सदा = निरन्तरम्, मलनिर्हरणस्थलम् —मलनिर्हरणस्य = कल्कनिस्सारणस्य, स्थलम् = भूभागम्, वीथिः = रथ्या, कार्या = कर्त्तव्या इति शेषः ॥ २६७ ॥

हिन्दी—घरों के रुख सड़क की ओर होने चाहिए और घरों के पिछवाड़े गन्दगी हटाने के लिए गलियाँ बनवानी चाहिए ॥ २६७ ॥

राजेति। सकलानि अपि गृहाणि राजमार्गे मुखं येषां तानि तथाभूतानि स्युः भवेयुः। गृहाणां पृष्ठे पृष्ठदेशे पश्चाद् भूमौ सदा मलनिर्हरणस्य मलनिष्कासनस्य स्थलं स्थानभूतम् उपायस्वरूपमित्यर्थः, वीथिः अल्पप्रसरा रथ्या च कार्य्या इति शेषः ॥ २६७ ॥

पङ्क्तिद्वयगतानां हि गेहानां कारयेत् तथा।
मार्गान् सुधाशर्करैर्वा घटितान् प्रतिवत्सरम् ॥ २६८ ॥

अन्वयः—तथा प्रतिवत्सरं पङ्क्तिद्वयगतानां गेहानां मार्गान् सुधाशर्करैः वा घटितान् कारयेत् ॥ २६८ ॥

व्याख्या—तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रतिवत्सरम् = वर्षे वर्षे, पङ्क्तिद्वयगतानाम् = राजमार्गस्य द्वयोः पार्श्वयोः, पङ्क्तिद्वयगतानाम् = श्रेणिबद्धानाम्, गेहानाम् = ग्रामीणगृहाणाम्, मार्गान् = राजपथः, सुधाशर्करैः = सितचूर्णाऽश्मरीभिः सुदृढैः, वा घटितान् = सुनिबद्धान्, कारयेत् = रचयेदिति ॥ २६८ ॥

हिन्दी—सड़क के किनारे पंक्तिबद्ध दोनों ओर के घरों के बीच बनी राहों की मरम्मत चूने-कंकड़ से प्रतिवर्ष करवानी चाहिए ॥ २६८ ॥

पङ्क्तिद्वयेति। तथा प्रतिवत्सरं पङ्क्तिद्वयगतानां मार्गस्य उभयोः पार्श्वयोः श्रेणिबद्धानां गेहानां गृहाणां मार्गान् सुधाशर्करैः सुधासु चूर्णेषु यानि शर्कराणि कठिनद्रव्यविशेषाः तैः वा घटितान् निबद्धान् कर्दमपरिहारार्थमिति भावः कारयेत् ॥ २६८ ॥

अभियुक्तनिरुद्धैर्वा कुर्य्यात् ग्राम्यजनैर्नृपः।
ग्रामद्वयान्तरे चैव पान्थशालां प्रकल्पयेत् ॥ २६९ ॥
नित्यं सम्मार्जिताञ्चैव ग्रामपैश्च सुगोपिताम्।
तत्रागतन्तु सम्पृच्छेत् पान्थं शालाधिपः सदा ॥ २७० ॥

अन्वयः—अभियुक्तनिबद्धैर्वा ग्राम्यजनैः नृपः कुर्यात्, च ग्रामद्वयान्तरे पान्थशालां प्रकल्पयेत्। ग्रामपैः नित्यं सम्मार्जितां च सुगोपितां तु शालाधिपः सदा तत्रागतं पान्थं सम्पृच्छेत् ॥ २६९-२७० ॥

व्याख्या—अभियुक्तैः = अभ्यर्थिभिः, वा सम्भ्रान्तजनैः, वा = अथवा, निरुद्धैः = कारागुप्तैः वा अनुरुद्धैः, वा = अथवा, ग्राम्यजनैः = ग्रामीणैः, कर्दमपरिहारार्थमुच्चपथनिर्माणं कारयेत्। अथवा सम्भ्रान्तजनानुरोधवशवर्त्तिभिरित्यत्र ग्राम्यजनेषु साहाय्यदानाय सम्भ्रान्तानामनुरोध इति कथनाशयः। ग्रामद्वयान्तरे = द्वयोः ग्रामयोर्मध्ये, पान्थशालाम् = पान्थगृहम्, प्रकल्पयेत् = स्थापयेत्, तत्र ग्रामपैः = ग्रामप्रमुखैः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, सम्मार्जिताम् = परिष्कृताम्, च = पुनः, सुगोपिताम् = सुरक्षिताम्, प्रकल्पयेत्, तु = तथा, शालाधिपः = पान्थशालाध्यक्षः, तत्र = तस्मिन् पान्थगृहे, आगतानाम् = समागतानाम्, सम्पृच्छेत् = प्रश्नं कुर्यात् ॥ २६९-२७० ॥

टिप्पणी—'अभियुक्तनिरुद्धैर्वा' के यहाँ दो अर्थ हैं—अभियुक्त = प्रार्थी एवम् अभिजातवर्गीय, इसी तरह निरुद्ध = बंदी तथा अनुरोध।

हिन्दी—राजा ग्रामीणों के अनुरोध पर ग्रामीणों या बन्दियों से ठीक करवाये। दो गाँवों के बीच में एक पान्थशाला बनवाये। उसकी नित्य सफाई और सुरक्षा का प्रबन्ध ग्रामप्रमुख से करवाना चाहिए। धर्मशाला का प्रबंधक वहाँ ठहरे यात्रियों से सदा पूछे—॥ २६९-२७०॥

अमीति। नित्यमिति। अभियुक्तैः सम्भ्रान्तैः जनैः निरुद्धैः अनुरुद्धैः सम्भ्रान्तजनानुरोधवशवर्त्तिभिरित्यर्थः, ग्राम्यजनैः ग्राम्यजनेषु सम्भ्रान्तानामनुरोधः साहाय्यदानायेति बोद्धव्यम्। ग्रामे वा ग्रामयोर्मध्ये नित्यं सम्मार्जितां परिष्कृतां ग्रामपैः ग्रामीणैः सुगोपितां सुरक्षिताञ्च पान्थशालां पथिकजनाश्रयं प्रकल्पयेत्। सदा पान्थशालाधिपः पान्थशालाध्यक्षः तत्र पान्थशालायाम् आगतं जनं सम्पृच्छेत् ॥ २६९-२७०॥

प्रयातोऽसि कुतः कस्मात् क्व गच्छसि ऋतं वद।
ससहायोऽसहायो वा किं सशस्त्रः सवाहनः ॥ २७१॥
का जातिः किं कुलं नाम स्थितिः कुत्रास्ति ते चिरम्।
इति पृष्ट्वा लिखेत् सायं शस्त्रं तस्य प्रगृह्य च ॥ २७२॥
सावधानमना भूत्वा स्वापं कुर्विति शासयेत्।
तत्रस्थान् गणयित्वा तु शालाद्वारं पिधाय च ॥ २७३॥
संरक्षयेद् यामिकैश्च प्रभाते तान् प्रबोधयेत्।
शस्त्रं दद्याच्च गणयेद् द्वारमुद्घाट्य मोचयेत् ॥ २७४॥

अन्वयः—कुतः प्रयातः असि, क्व गच्छसि, त्वं ससहायः वा असहायः, किं सशस्त्रः सवाहनो वा ऋतं वद? का जातिः, किं कुलं, नाम किं ते, कुत्र चिरं स्थितिः? इति पृष्ट्वा लिखेत्। सायं तस्य शस्त्रं प्रगृह्य सावधानमना भूत्वा स्वापं कुरु इति शासयेत्। ततः तत्रस्थान् गणयित्वा तु च शालाद्वारं पिधाय यामिकैः संरक्षयेत्। प्रभाते तान् प्रबोधयेत् च शस्त्रं दद्यात् गणयेत् च मोचयेत् ॥ २७१-२७४॥

व्याख्या—तदनन्तरं पृच्छाप्रकारमाह—हे पान्थ! कुतः = कस्मात्स्थानात्, प्रयातः = समागतः, असि = भवसि? क्व = कस्मिन्स्थाने, गच्छसि = यासि, त्वम् = भवान्, ससहायः = सपरिचरोऽसि, वा = अथवा, असहायः = सहायकविहीन, एकाकी एवाऽसि, सशस्त्रः = शस्त्रयुक्तः, किमिति प्रश्ने? सवाहनः = रथाश्वादिना वाहनेन युक्तोऽपि वा वाहनविहीनोऽसि, ऋतम् = सत्यम्, वद = कथय, ते = भवतः, का जातिः = कस्यां जात्याम्, किं कुलम् = कस्मिन् वंशे समुत्पन्नोऽसि? नाम किम् = कया आख्यया ख्यातोऽसि, कुत्र = कस्मिन्स्थाने, ते = तव, चिरम् = स्थायीरूपेण, स्थितिः = आवासम्, अस्ति, इति = एवम्प्रकारेण, पृष्ट्वा = जिज्ञास्य, लिखेत् = पान्थपञ्जिकायाम्पूर्वोक्तं सकलमुल्लिखेत्, सायम् = सन्ध्यावेलायाम्, तु = इत्यवधारणे, तस्य = पथिकस्य, शस्त्रम् = आयुधम्, प्रगृह्य = नीत्वा, सावधानमना भूत्वा = जागरूको भूत्वा, स्वापम् = शयनम्, कुरु = विधेहि, इति = इत्थम्, तम् = पथिकम्, शासयेत् = समादिशेत्। ततः तत्रस्थान् = पान्थशालायामुपस्थितान् पथिकान्, गणयित्वा = गणनां कृत्वा, तु = इत्यवधारणे, च = पुनः, शालाद्वारम् = पान्थशालायाः मुख्यकपाटम्, पिधाय = अर्गलेन कीलयित्वा, यामिकैः = रात्रिप्रहरिभिः, संरक्षयेत् = सञ्ज्ञापयेत्। अथ प्रभाते = प्रभातकाले, प्रमुखलौहद्वार-

मुद्घाट्य, तान् = प्रसुप्तपथिकान्, प्रबोधयेत् = जागरयेत्, च = पुनः, तेषां शस्त्रम् = आयुधम्, दद्यात् = प्रत्यर्पयेत्, तत्पश्चात्, गणयेत् = गणनां कुर्यात्, च = पुनः, तान् पथिकान्, मोचयेत् = गन्तुमादिशेत् ॥ २७१-२७४ ॥

हिन्दी—पान्थशाला के प्रबन्धक का यह दायित्व है कि रात में टिकने वाले यात्रियों से पूछे कि तुम कहाँ से आये हों, क्यों आये हो और कहाँ जा रहे हो? क्या तुम्हारे साथ कोई साथी है या अकेले हो? क्या शस्त्र या सवारी भी तुम्हारे पास है? तुम किस जाति के हो तथा तुम्हारा कुल-खानदान क्या है? तुम्हारा नाम क्या है? तुम कहाँ के निवासी हो? ये समस्त बातें यात्रियों से पूछकर पञ्जीबद्ध कर ले। फिर उनकी गिनती कर उनका हथियार अपने पास रखकर उन्हें शान्त मन से सोने का आदेश दे। पान्थशाला के फाटक बन्द कर चौकीदारों से रातभर पहरा दिलवाये। प्रातःकाल पान्थशाला में टिके यात्रियों को जगाकर, उनकी गिनती कर, उनका हथियार उन्हें लौटा कर, शाला का फाटक खोल कर उन्हें बाहर कर दे ॥ २७१-२७४ ॥

पृच्छाप्रकारमाह—**प्रयात** इत्यादि। हे पथिक! कुतः कस्मात् देशात् प्रयातः आगतः असि, क्व कुत्र गच्छसि, त्वं ससहायः सानुचरः, असहायः एकाकी वा, शस्त्रधारी किं वा सवाहनः वाहनेन अश्वादिना सहितः किं, द्रुतं शीघ्रं वद कथय। ते तव का जातिः, किं कुलं कस्मात् कुलादुत्पन्नोऽसीत्यर्थः, नाम किं कुत्र चिरं स्थितिः अवस्थानम् अस्ति? इति पृष्ट्वा लिखेत् पूर्वोक्तं सर्वमिति शेषः, सायं सन्ध्यायान्तु तस्य पथिकस्य शस्त्रं प्रगृह्य सावधानमनाः भूत्वा सतर्कः सन्नित्यर्थः, स्वापं कुरु निद्राहीति तं शासयेत् उपदिशेत्। ततः तत्रस्थान् पथिकान् गणयित्वा संख्याय शालाद्वारं गृहद्वारं पिधाय आच्छाद्य निरुध्य इत्यर्थः, यामिकैः प्रहरिभिः संरक्षयेत् रक्षां कारयेत्। अथ प्रभाते द्वारमुद्घाट्य तान् प्रबोधयेत् जागरयेत् शस्त्रं तेषामिति शेषः, दद्यात् प्रत्यर्पयेत्, गणयेत्संख्यां कुर्य्यात् तथा माचयेत् विसर्जयेत् ॥ २७१-२७४ ॥

कुर्य्यात् सहायं सीमान्तं तेषां ग्राम्यजनः सदा।
प्रकुर्य्याद्दिनकृत्यन्तु राजधान्यां वसन्नृपः ॥ २७५ ॥

अन्वयः—ग्राम्यजनः सदा सीमान्तं तेषां सहायं कुर्यात्। नृपस्तु राजधान्यां वसन् दिनकृत्यं प्रकुर्यात् ॥ २७५ ॥

व्याख्या—ग्राम्यजनः = ग्रामवासिनः, सदा = सर्वदा, सीमान्तम् = निजग्रामसीमापर्यन्तम्, तेषाम् = पथिकानाम्, सहायम् = यात्रिभिः सहैव गमनम्, कुर्यात् = विधेयात्, नृपः = भूपतिः, तु = अव्ययवाचकोऽयं शब्दः, राजधान्याम् = नृपनगर्याम्, वसन् = निवसन्, दिनकृत्यम् = दैनिकानुष्ठानं, प्रकुर्यात्—प्रकर्षेण = उत्तमरीत्या, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ २७५ ॥

हिन्दी—और ग्रामीणजन उस सराय में टिके यात्रियों को अपने गाँव की सीमा तक सुरक्षित पहुँचा दे तथा राजधानी में रहते हुए राजा अपना दैनिक कृत्य का सम्पादन करे ॥ २७५ ॥

कुर्य्यादिति। ग्राम्यजनः सदा सर्वस्मिन् काले सीमान्तं स्वग्रामसीमापर्य्यन्तं तेषां पथिकानां सहायं सहगमनं कुर्य्यात्। नृपस्तु राजाधान्यां वसन् दिनकृत्यं प्रतिदिनकर्त्तव्यं प्रकुर्य्यात् प्रकर्षेण यथाविधानेन कुर्य्यादित्यर्थः ॥ २७५ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे मुहूर्तद्वितयेन वै।
नियतायश्च कत्यस्ति व्ययश्च नियतः कति ॥ २७६ ॥

कोशभूतस्य द्रव्यस्य व्ययः कति गतस्तथा।
व्यवहारे मुद्रिताय व्ययशेषं कतीति च॥ २७७॥
प्रत्यक्षतो लेखतश्च ज्ञात्वा चाद्य व्ययः कति।
भविष्यति च तत्तुल्यं द्रव्यं कोशात् तु निर्हरेत्॥ २७८॥

अन्वयः—पश्चिमे यामे उत्थाय राजा मुहूर्त्तद्वितयेन वै नियतायः कति, कति व्ययश्च, नियतः कति, कोशभूतस्य द्रव्यस्य व्ययः कति गतः, तथा व्यवहारे मुद्रिताय व्ययशेषं च कति? इति प्रत्यक्षतः च लेखतः ज्ञात्वा अद्य व्ययः कति भविष्यति तु कोशात् तत्तुल्यं द्रव्यं निर्हरेत्॥ २७६-२७८॥

व्याख्या—पश्चिमे = अन्तिमे प्रहरे, यामे = निशायाम्, उत्थाय = अवहितो भूत्वा, राजा = नृपः, मुहूर्त्तद्वितयेन = मुहूर्त्तद्वयेन, वै इति निश्चयेन, नियतायः = पूर्वनिर्णीतधनागमः, कति = कियान्, व्ययश्च = धनविनियोगश्च, नियतः = निर्धारितः, कति = कियान्, कोशभूतस्य = निधाने स्थितस्य, द्रव्यस्य = विभवस्य, व्ययः = विनियोगः, कति = कियान्, गतः = भूतः, तथा व्यवहारे = वर्त्तने, मुद्रितानाम् = मुद्राक्षराङ्कितानाम्, व्ययशेषम् = व्ययोपरान्तावशिष्टधनम्, च कति = कियान्, प्रत्यक्षतः = दृग्गोचरतः, च = पुनः, लेखतः = लिपिबद्धतः, ज्ञात्वा = परिज्ञाय, अद्य = वर्त्तमानदिने, व्ययः = विनियोगः, कति = कियान् भविष्यति, इत्यनुमीय, कोशात् = भाण्डागारात्, तत्तुल्यम् = व्ययानुकूलम्, द्रव्यम् = धनम्, नहरेत् = निष्कासयेत्॥ २७६-२७८॥

हिन्दी—राजा रात के अन्तिम पहर में जाग कर दो पल सोचे, आज का पूर्वनिर्धारित आय और व्यय कितना है? खजाने में रखे धन से कितना खर्च हुआ? व्यवहार में मुद्रित आय-व्यय होने पर कितना शेष हैं? ये समस्त बातें आँखों से देखकर या पंजी-पुस्तिका से मिलाकर आज कितना व्यय होगा? इसका अनुमान लगाकर खजाने से उतना धन निकलवा कर अलग रख दे॥ २७६-२७८॥

उत्थायेत्यादि। पश्चिमे यामे प्रहरे रात्रेरिति शेषः, उत्थाय राजा मुहूर्त्तद्वितयेन द्वौ मुहूर्त्तौ यावदित्यर्थः, नियतायः निर्द्धारितः आयः अर्थागमः कति कियान् व्ययश्च नियतः निर्द्धारितः कति, कोशभूतस्य भाण्डारस्थितस्य द्रव्यस्य धनस्य कति व्ययः गतः भूतः, व्यवहारे विचारदर्शने मुद्रितानां निर्णीतानाम् आयस्य व्ययस्य च शेषः कति इति प्रत्यक्षतः लेखतः लिखिताच्च ज्ञात्वा अद्य व्ययः कति भविष्यतीति च विचार्य्य इति अध्याहार्य्य कोशात् धनागारात् तत्तुल्यं वर्त्तमानदिवसीयव्ययोपयोगि इत्यर्थः, द्रव्यं निर्हरेत् बहिष्कुर्य्यादित्यर्थः॥ २७६-२७८॥

पश्चात्तु वेगनिर्मोक्षं स्नानं मौहूर्त्तिकं मतम्।
सन्ध्यापुराणदानैश्च मुहूर्त्तद्वितयं नयेत्।
गवाश्वयानव्यायामैर्नयेत् प्रातर्मुहूर्त्तकम्॥ २७९॥

अन्वयः—पश्चात् तु मौहूर्तिकं वेगनिर्मोक्षं, ततः स्नानं मतम्, ततश्च सन्ध्यापुराणदानैः मुहूर्त्तद्वितयं नयेत्, ततश्च गवाश्वयानन्व्यायामैः प्रातर्मुहूर्त्तकं नयेत्॥ २७९॥

व्याख्या—पश्चात् = धनागमोत्सर्गानुचिन्तनानन्तरमित्यर्थः, तु, मौहूर्तिकम् = घटिकाद्वयैकसम्पाद्यम्, वेगनिर्मोक्षम् = मलमूत्रोत्सर्गादिकम्, ततः = तत्पश्चात्, स्नानम् = अवगाहनम्, मतम् = कर्त्तव्यमित्याशयः, ततः = तदनन्तरम्, सन्ध्यापुराणदानैः = दैनिकोपासनापुराणानुचिन्तनदान-

कर्मभिश्च, मुहूर्त्तद्वितयम् = चतुःघटिकासमयम्, नयेत् = यापयेत्, ततश्च = तत्पश्चात्, गवाश्वयानव्यायामैः—गोभिः = धेनुभिः, अश्वैश्च = हयैश्च, यानानि = प्रवाहणानि, एव व्यायामाः = बलवर्द्धकश्रमास्तैः, प्रातः = प्रभातकाले, मुहूर्त्तकम् = घटिकाद्वयं, नयेत् = यापयेत् ॥ २७९ ॥

हिन्दी—इसके बाद नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्नान कर ले। तत्पश्चात् संध्या-वन्दन करे। फिर पुराणों का अनुशीलन कर दानधर्मादिक क्रिया में दो मुहूर्त्त व्यतीत करे। पुनः प्रातःकाल के कुछ क्षण गाय, घोड़े और सवारी के उपयोगजन्य शारीरिक व्यायाम में व्यतीत करे ॥ २७९ ॥

पश्चादिति। पश्चात् आयव्ययादिनिर्णयानन्तरमित्यर्थः, मौहूर्त्तिकं मुहूर्त्तैकनिष्पाद्यं वेगनिर्मोक्षस्नानं महूर्त्तेन मलमूत्रोत्सर्गः स्नानञ्च कर्त्तव्यमित्यर्थः। ततश्च सन्ध्यापुराणदानैः सन्ध्यावन्दनपुराणानुशीलनदानकर्मभिश्च मुहूर्त्तद्वितयं द्वौ मुहूर्त्तौ नयेत् यापयेत्। ततश्च गवाश्वयानव्यायामैः गोभिरश्वैश्च यानानि गमनानि एव व्यायामाः अङ्गचालनव्यापाराः तैः प्रातर्मुहूर्त्तकं प्रातःकालं नयेत् ॥ २७९ ॥

पारितोषिकदानेन मुहूर्त्तन्तु नयेत् सुधीः।
धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः ॥ २८० ॥
आयव्ययैर्मुहूर्त्तानां चतुष्कन्तु नयेत् सदा।
स्वस्थचित्तो भोजनेन मुहूर्त्तं ससुहृन्नृपः ॥ २८१ ॥

अन्वयः—ततः पारितोषिकदानेन सुधीः नृपः तु मुहूर्त्तं नयेत्। ततश्च धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः तथा आयव्ययैः मुहूर्त्तानां चतुष्कं तथा स्वस्थचित्तः ससुहृत् भोजनेन मुहूर्त्तं नयेत् ॥ २८०-२८१ ॥

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, पारितोषिकदानैः = अधीनस्थेभ्यः पुरस्कारवितरणैः, सुधीः = सुबुद्धिः, नृपः = राजा, तु = तथा, मुहूर्त्तम् = घटिकाद्वयम्, नयेत् = यापयेत्। ततश्च = तत्पश्चात्, धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः—धान्यानाम् = अन्नादिकानाम्, वस्त्राणाम् = परिधानानाम्, स्वर्णानाम् = कनकानाम्, रत्नानाम् = माणिक्यानाम्, सेनानाम् = चमूनाम्, देशानाम् = जनपदानाञ्च, द्वन्द्वसमासोऽत्र, विलेखनैः = लिपिबद्धैः, कुर्वाणः, तथा आयव्ययैः = आगमनिर्गमैः, मुहूर्त्तानाम् = द्वादशक्षणपरिमितकालानाम्, चतुष्कम् = चतुरवयवं, चत्वारोऽवयवा यस्य वा इति, अर्थात् चतुःसंख्यकम्, तथा स्वस्थचित्तः = शान्तमनस्कः, ससुहृत् = आप्तजनैरावृतः सन्, भोजनेन = भक्षणेन, मुहूर्त्तम् = कालम्, नयेत् = यापयेत् ॥ २८०-२८१ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा अपने अनुचरों के बीच पारितोषिक वितरण में कुछ क्षण लगाये। हमेशा अन्न, वस्त्र, सुवर्ण और रत्नों को देखने और सेना के लिए आदेश लिखने तथा आयव्यय के निरीक्षण में कुछ समय व्यतीत करना चाहिए। फिर शान्त मन से अपने सच्चे मित्रों के साथ भोजन करना चाहिए ॥ २८०-२८१ ॥

पारितोषिकेति। **आयव्ययैरिति**। ततः सुधीः सुविज्ञो नृपः पारितोषिकदानैः अनुजीविभ्यः पुरस्कारवितरणैः मुहूर्त्तं नयेत्। ततश्च धान्यानां वस्त्राणां स्वर्णानां रत्नानां सेनानां देशानाञ्च विलेखनेन परिमाणादिपर्य्यालोचनया विशेषेण लेखनैः अमात्येनेति भावः, तथा आयव्ययैः आगमापायनिरूपणैः मुहूर्त्तानां चतुष्कं तथा स्वस्थचित्तः ससुहृद् बन्धुजनपरिवृतः सन् भोजनेन मुहूर्त्तं पञ्चममिति शेषः, नयेत् यापयेत् ॥ २८०-२८१ ॥

प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्णनवीनानां मुहूर्त्तकम्।
ततस्तु प्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः ॥ २८२ ॥
मुहूर्त्तद्वितयञ्चैव मृगयाक्रीडनैर्नयेत्।
व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्त्तन्तु मुहूर्त्तं सन्ध्यया ततः ॥ २८३ ॥
मुहूर्त्तं भोजनेनैव द्विमुहूर्त्तञ्च वार्त्तया।
गूढचारैः श्रावितया निद्रयाष्टमुहूर्त्तकम् ॥ २८४ ॥

अन्वयः—ततः जीर्णनवीनानां प्रत्यक्षीकरणात् मुहूर्त्तकं प्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः, ततः मृगयाक्रीडनैः मुहूर्त्तद्वितीयं नयेत्। वा व्यूहाभ्यासैः मुहर्त्तं ततः सन्ध्यया मुहूर्त्तं तथा मुहूर्त्तं भोजनेन एव गूढचारैः श्रावितया द्विमुहूर्त्तं च वार्त्तया निद्रया अष्टमुहूर्त्तकं नयेत् ॥ २८२-२८४ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, जीर्णानाम् = शीर्णानाम्, नवीनानाम् = अभिनवानाम्, च, प्रत्यक्षीकरणात् = इन्द्रियगोचरात्, मुहूर्त्तकम् = घटिकाद्वयम्, ततश्च = तत्पश्चात्, प्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः—प्राड्विवाकादिभिः = विधिवेत्तादिभिः, बोधितेन = ज्ञापितेन, व्यवहारेण = वर्त्तनेन, मुहूर्तद्वितयम् = द्वौ मुहूर्तौ नयेत्। ततः = तत्पश्चात्, मृगया = आखेटैः, क्रीडनैः = खेलनैः, वा = अथवा, व्यूहाभ्यासैः = सैन्यसंरचनाऽनुशीलनैः, मुहूर्त्तम् = घटिकाद्वयम्, नयेत्, ततः = तदनन्तरम्, सन्ध्यया = सान्ध्यकर्मभिः, मुहूर्त्तम् = कालं यापयेत्, तथा मुहूर्त्तम् = घटिकाद्वयम्, भोजनेन = भक्षणेनैव नयेत्, तदनन्तरं गूढचारैः = गुप्तचरैः, श्रावितया = समाचारश्रवणेन, वार्तया = वार्त्तालापेन, द्विमुहूर्त्तम् = मुहूर्त्तद्वयम्, नयेत्, तत्पश्चात्, निद्रया = स्वपनेन, अष्टमुहूर्त्तकम् = मुहूर्त्ताष्टकम्, रात्रौ नयेत् = यापयेदिति ॥ २८२-२८४ ॥

हिन्दी—नई-पुरानी वस्तुओं के निरीक्षण में एक मुहूर्त्त का समय दे। फिर विधिवेत्ताओं से बातें करते हुए लम्बित मुकदमों की जानकारी प्राप्त करने में दो मुहूर्त्त समय दे। फिर शिकार एवं खेलकूद में दो मुहूर्त समय लगाये तथा दो पल सेना के अभ्यास के अनुशीलन में लगाये। फिर सायंकाल भोजन में एक घंटा तथा गुप्तचरों के संदेश सुनने में दो घंटे समय दे। इसके बाद रात में आठ घंटे तक आराम के साथ सोये ॥ २८२-२८४ ॥

प्रत्यक्षीत्यादि। ततः जीर्णानां पुरातनानां नवीनानां नूतनानाञ्च प्रत्यक्षीकरणात् परीक्षणादित्यर्थः, मुहूर्त्तकं ततश्च प्राड्विवाकादिभिर्विचारकर्मणि नियुक्तैः पुरुषैः बोधितेन ज्ञापितेन व्यवहारेण मुहूर्त्तद्वितयं तदनन्तरं मृगयाव्यापारेण क्रीडनैः वा व्यूहाभ्यासैः सैन्यरचनासन्दर्शनैः मुहूर्त्तम् अनन्तरं सन्ध्यया सायंकालीनया इत्यर्थः, मुहूर्त्तं तदनन्तरञ्च भोजनेन रात्रिकालीनेन मुहूर्त्तं पश्चात् गूढचारैः गुप्तचरैः श्रावितया वार्त्तया समाचारेण द्विमुहूर्त्तं तत्परं निद्रया अष्टमुहूर्त्तकं नयेत् ॥ २८२-२८४ ॥

एवं विहरतो राज्ञः सुखं सम्यक् प्रजायते।
अहोरात्रं विभज्यैवं त्रिंशद्भिस्तु मुहूर्त्तकैः ॥ २८५ ॥
नयेत् कालं वृथा नैव नयेत् स्त्रीमद्यसेवनैः।
यत्काले ह्युचितं कर्त्तुं तत्कार्य्यं द्रागशङ्कितम् ॥ २८६ ॥
काले वृष्टिः सुपोषाय ह्यन्यथा सुविनाशिनी।
कार्य्यस्थानानि सर्वाणि यामिकैरभितोऽखिलम् ॥ २८७ ॥

नयवान् अनीतिनतिवित् सिद्धशस्त्रादिकैर्वरैः ।
चतुर्भिः पञ्चभिर्वापि षड्भिर्वा गोपयेत् सदा ॥ २८८ ॥

अन्वयः—एवं विहरतः राज्ञः सम्यक् सुखं प्रजायते । तु त्रिंशद्भिः मुहूर्तकैः एवम् अहोरात्रं विभज्य कालं नयेत्, स्त्रीमद्येसेवनैः वृथा नैव नयेत् । यत्काले कर्तुम् उचितं तत् कार्यं द्राक् अशङ्कितं, काले वृष्टिः सुपोषाय अन्यथा सुविनाशिनी हि । किञ्च नयवान् तथा अनीतिनतिविद् अभितः सिद्धशस्त्रादिकैः वरैः चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः वा यामिकैः सर्वाणि कार्यस्थानानि गोपयेत् ॥ २८५-२८८ ॥

व्याख्या—एवम् = अनेन प्रकारेण, विहरतः = विचरतः, कालयापनं कुर्वतः, राज्ञः = नृपस्य, सम्यक् = सर्वथा सर्वप्रकारेण वा, सुखम् = आनन्दः, प्रजायते = समुपलभ्यते, एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, त्रिंशद्भिर्मुहूर्त्तकैः = चतुर्विंशतिघटिकाभिः, अहोरात्रस्य चतुर्विंशतितमो भागो भवतीति, अहोरात्रम् = दिवानिशम्, विभज्य = विभागं कृत्वा, षष्टिदण्डात्मकं दिवारात्रं विभज्य, कार्यतालिकां निर्माय कालं नयेदित्यर्थः । स्त्रीमद्यसेवनैः = स्त्रीभिः सह विहारं कुर्वन्, च = पुनः, मद्यसेवनैः = सुरापानैः, वृथा = निरर्थकम्, नैव नयेत् = यापयेत् । यत्काले = यस्मिन्समये, यत्कर्त्तुम् = यद्विधातुम्, उचितम् = युक्तम्, तत्कार्यं तदेव, द्राक् = त्वरितम्, अशङ्कितम् = निर्भयम्, तत्काले एव कर्त्तव्यमिति, एवं सति काले = यथावसरे, वृष्टिः = वर्षणम्, प्रजानाम्, सुपोषाय = सुखसंवर्द्धनाय, भवति, अन्यथा = इतरथा, सुविनाशिनी = प्रजाविध्वंसिनी, हि = इत्यवधारणे, अवश्यमेव भवतीत्यर्थः । किञ्च नयवान् = नीतिनिपुणः, तथा अनीतिनतिविद् = अनीतेर्नतिम् अधोगतिं वेत्तीति तथोक्तः अनिष्टज्ञश्चेति, नृपतिः, अभितः = परितः, सिद्धशस्त्रादिकैः = शस्त्रादिसञ्चालनेषु सुदक्षैः, वरैः = उत्तमैः, चतुर्भिः, पञ्चभिः, वा = अथवा, षड्भिः, यामिकैः = वैबोधिकैः, सदा = सर्वदा, सर्वाणि = अखिलानि, कार्यस्थानानि = कार्यस्थलानि, गोपयेत् = संरक्षेदित्यर्थः ॥ २८५-२८८ ॥

हिन्दी—इस तरह का व्यवहार करने वाला राजा सुखी होता है । इस तरह दिन-रात को पूरे तीस मुहूर्त्तों में बाँट कर पहले बतलाये गये ढंग से काम करना चाहिए, न कि सुन्दरी और सुरा के उपभोग में निरर्थक समय गँवाना चाहिए। कार्यतालिका के अनुसार जिस समय जो कर्त्तव्य उचित हो उस समय उस काम को निःशंक होकर झटपट कर डाले । क्योंकि समय पर हुई वर्षा धान्य की पुष्टि के लिए होती है तथा अनवसर की वर्षा उसके विनाश का कारण बन जाती है । नीति और अनीति की चाल को ठीक से समझने वाला राजा चार, पाँच या छः शस्त्र-संचालन में चतुर प्रहरियों से चारों ओर घेर कर सभी कार्यस्थलों की रक्षा करे ॥ २८५-२८८ ॥

एवमित्यादि । एवम् उक्तरूपेण विहरतः समयम् अतिवाहयतः राज्ञः सम्यक् सुखं प्रजायते । एवं पूर्वोक्तया दिशा त्रिंशद्भिः मुहूर्त्तकैः दण्डद्वयमितैः कालैः अहोरात्रं दिवारात्रं षष्टिदण्डात्मकं विभज्य अस्मिन् समये इदं कर्त्तव्यमस्मिन् इदमित्येवं विभागं कृत्वा नयेत्, स्त्रीमद्यसेवनैः स्त्रीभिर्विहारैः सुरापानैश्च वृथा नैव नयेत् । यत्काले यत्कार्य्यं कर्तुमुचितं तत् कार्य्यं द्राक् झटिति अशङ्कितं निःशङ्कं यथा तथा तत्काले एव कर्त्तव्यम् । एवं सति काले योग्ये काले सुपोषाय प्रजानां सुखपालनाय वृष्टिर्भवति अन्यथा सुविनाशिनी प्रजाक्षयकरी वृष्टिरतिवृष्टिरित्यर्थः, हिशब्दः अवधारणे अवश्यमेव भवतीत्यर्थः । किञ्च नयवान् नीतिविचक्षणः तथा अनीतेर्नतिम् अधोगतिं

वेत्तीति तथोक्तः अनयज्ञश्च इत्यर्थः, राजा अभितः सर्वतः सिद्धशस्त्रादिकैः शस्त्रास्त्रकुशलैरित्यर्थः, वरैः श्रेष्ठैः चतुर्भिः पञ्चभिः वा षड्भिः यामिकैः प्रहरिभिः सदा सर्वाणि कार्य्यस्थानानि गोपयेत् संरक्षेत् ॥ २८५-२८८ ॥

तत्रत्यानि दैनिकानि श्रृणुयाल्लेखकाधिपैः ।
दिने दिने यामिकानां प्रकुर्य्यात् परिवर्त्तनम् ॥ २८९ ॥

अन्वयः—तत्रत्यानि दैनिकानि कार्याणि लेखकाधिपैः शृणुयात् । तथा दिने दिने यामिकानां परिवर्त्तनं प्रकुर्यात् ॥ २९९ ॥

व्याख्या—तत्रत्यानि = तस्मिन्स्थाने स्थितानि, दैनिकानि = प्रत्यहनिकानि, कार्याणि = कृत्यानि, लेखकाधिपैः = लेखापदाधिकारिभिः, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्, तथा दिने दिने = प्रतिदिने, यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, परिवर्त्तनम् = परावर्त्तः, प्रकुर्यात् = प्रकर्षेण विदध्यात् ॥२८९ ॥

हिन्दी—और उन कार्यस्थलों की दैनिक कार्रवाइयों को वहाँ के लेखापदाधिकारियों से सुने तथा ड्यूटी पर लगे पहरेदारों की बदली रोज करे ॥ २८९ ॥

तत्रत्यानीति । तत्रत्यानि दैनिकानि प्रतिदिनसञ्जातानि कार्य्याणि लेखकाधिपैः प्रधानलेखकैः शृणुयात् । तथा दिने दिने यामिकानां प्रहरिणां परिवर्त्तनं विनिमयं कुर्य्यात् ॥ २८९ ॥

गृहपङ्क्तिमुखे द्वारं कर्त्तव्यं यामिकैः सदा ।
तैस्तद्वृत्तन्तु श्रृणुयात् गृहस्थभूतिपोषितैः ॥ २९० ॥

अन्वयः—यामिकैः गृहपङ्क्तिमुखे सदा द्वारं कर्त्तव्यम् । गृहस्थभूतिपोषितैः तैः तु वृत्तं श्रृणुयात् ॥ २९० ॥

व्याख्या—यामिकैः = गृहपालैः, गृहपङ्क्तिमुखे = भवनशृङ्खलासम्मुखे, सदा = सर्वदा, द्वारम् = द्वारपालवदवस्थानम्, कर्त्तव्यम् = करणीयम्, गृहस्थभूतिपोषितैः—गृहस्थानाम् = गृहस्वामिनाम्, भूतिभिः = प्रदत्तमासिकवेतनैः, पोषितैः = संवर्द्धितैः, तैः = यामिकैः, तु इत्यवधारणे, वृत्तम् = सर्वमाचरणम्, शृणुयात् = धैर्येण श्रवणं कुर्यादिति ॥ २९० ॥

हिन्दी—गृह-शृंखलाओं के मुख्य द्वार पर नियुक्त पहरेदारों से वहाँ के रहने वालों के बारे में जानकारी प्राप्त करे। साथ ही उन घरों में रहने वालों से मासिक वेतन दिलवाकर उन प्रहरियों का पालन-पोषण करे ॥ २९० ॥

गृहेति । यामिकैः प्रहरिभिः सदा गृहपङ्क्तिमुखे गृहस्थानां गृहश्रेण्यभिमुखे सदा द्वारं दौवारिकवदवस्थानमित्यर्थः, कर्त्तव्यम् । गृहस्थानां भूतिभिः वेतनैः गृहस्थदत्तैरित्यर्थः, पोषितैः पालितैः तैः प्रहरिभिः तद्वृत्तं तेषां गृहस्थानां वृत्तम् आचरितं शृणुयात् । ।२९० ॥

निर्गच्छन्ति च ये ग्रामाद् ये ग्रामं प्रविशन्ति च ।
तान् सुसंशोध्य यत्नेन मोचयेद्दत्तलग्नकान् ॥ २९१ ॥

अन्वयः—ये ग्रामात् निर्गच्छन्ति ये च ग्रामं प्रविशन्ति तान् यत्नेन सुसंशोध्य तान् दत्तलग्नकान् मोचयेत् ॥ २९१ ॥

व्याख्या—ये = लोकाः, ग्रामात् = आवसथात्, निर्गच्छन्ति = बहिर्गन्तुमिच्छन्ति, च = पुनः, ये = जनाः, ग्रामम् = पुरम्, प्रविशन्ति = प्रवेशं कुर्वन्ति, तान् = जनान्, यत्नेन = प्रयासपूर्वकेन,

संशोध्य = परीक्ष्य, तान् = पुरुषान्, दत्तलग्नकान्—दत्तः लग्नकः यैस्तथाभूतान् अथवा दत्तं लग्नकं = शोधनपत्रम्, येभ्यस्तानर्थात् प्रदत्तपारपत्राणि, मोचयेत् = विसर्जयेत् ॥ २९१ ॥

हिन्दी—गाँव से जो निकल रहे हैं या जो प्रवेश कर रहे हैं, प्रयासपूर्वक उनकी तलाशी लेकर तथा उन्हें पारपत्र देकर छोड़ दे ॥ २९१ ॥

निर्गच्छन्तीति। ये जनाः ग्रामात् निर्गच्छन्ति, ये च ग्रामं प्रविशन्ति, तान् यत्नेन सुसंशोध्य परीक्ष्य दत्तलग्नकान् दत्तः लग्नकः प्रतिभूर्यैः तथाभूतान् अथवा दत्तं लग्नकं शोधनपत्रं येभ्यः तान् कृत्वा मोचयेत् निर्गमप्रवेशौ कारयेदित्यर्थः ॥ २९१ ॥

प्रख्यातवृत्तशीलांस्तु ह्यविमृष्य विमोचयेत्।
वीथिवीथिषु यामार्द्धैर्निशिपर्य्यटनं सदा ॥ २९२ ॥
कर्त्तव्यं यामिकैरेव चौरजारनिवृत्तये।
शासनं त्वीदृशं कार्य्यं राज्ञा नित्यं प्रजासु च ॥ २९३ ॥

अन्वयः—प्रख्यातवृत्तशीलान् तु हि अविमृष्य विमोचयेत्। यामिकैः चौरजारनिवृत्तये निशि वीथिवीथिषु सदा यामार्द्धैः पर्यटनं कर्त्तव्यम्। राज्ञा नित्यं प्रजासु च ईदृशं शासनं कार्यम् ॥ २९२-२९३ ॥

व्याख्या—प्रख्यातवृत्तशीलान् = लोकविश्रुतचरित्रनिष्ठान्, विख्यातचरितपुरुषानित्यर्थः, तु = पुनः, हि = इत्यवधारणे, अविमृष्य = असमीक्ष्य, विनापरीक्षणमेव, विमोचयेत् = त्यजेत्, अर्थाद्गन्तुमादिशेत्। किञ्च यामिकैः = प्रहरिभिः, चौराणाम् = दस्यूनाम्, जाराणाम् = परदारलम्पटानाम्, निवृत्तये = उपरमाय, निशि = रात्रौ, वीथिवीथिषु = प्रतिरथ्यासु, सदा = सर्वदा, यामार्द्धैः = प्रहरमध्ये, वारद्वयेनेत्यर्थः, पर्यटनम् = परिभ्रमणम्, कर्त्तव्यम् = करणीयमिति, राज्ञा = भूपतिना, नित्यम् = दिने दिने, प्रजासु = जनेषु, ईदृशम् = पूर्वोक्तप्रकारेणैव, शासनम् = आधिपत्यम्, कार्यम् = अवश्यमेव करणीयम् ॥ २९२-२९३ ॥

हिन्दी—लोकविश्रुत गणमान्य जनों को बिना पूछताछ किये ही जाने की अनुमति देनी चाहिए। चोर एवं परदारगामी लम्पटों को रोकने के लिए प्रति डेढ़ घंटे पर रात में हर गलियों में घूम-घूम कर पहरेदारों को पहरा देना चाहिए। प्रजा पर राजा का अनवरत ऐसा ही शासन होना चाहिए ॥ २९२-२९३ ॥

प्रख्यातेति। **कर्त्तव्यमिति**। प्रख्यातवृत्तशीलान् सुख्यातचरित्रानित्यर्थः, तु पुनः अविमृष्य अविचार्य्य अपरीक्ष्येति यावत् विमोचयेत् हिशब्दः अवधारणे। किञ्च यामिकैः प्रहरिभिः चौराणां तस्कराणां जाराणाम् उपपतीनां निवृत्तये निराकरणाय निशि रजन्यां वीथिवीथिषु प्रतिपल्ली-श्रेणिमध्येषु सदा यामार्द्धैः प्रहरमध्ये वारद्वयेनेत्यर्थः, पर्य्यटनं भ्रमणं कर्त्तव्यम्। राज्ञा प्रजासु ईदृशम् उक्तप्रकारं शासनं नित्यं कर्त्तव्यं, तुशब्दः अवधारणे, अवश्यमेव कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥ २९२-२९३ ॥

दासे भृत्येऽथ भार्य्यायां पुत्रे शिष्येऽपि वा क्वचित्।
वाग्दण्डपरुषं नैव कार्य्यं मद्देशसंस्थितैः ॥ २९४ ॥
तुलाशासनमानानां नाणकस्यापि वा क्वचित्।
निर्य्यासनाञ्च धातूनां सजातीनां घृतस्य च ॥ २९५ ॥

मधुदुग्धवसादीनां पिष्टादीनाञ्च सर्वदा।
कूटं नैव तु कार्य्यं स्याद् बलाच्च लिखितं जनैः॥ २९६॥
उत्कोचग्रहणं नैव स्वामिकार्य्यविलोभनम्।
दुर्वृत्तकारिणञ्चोरं जारं मद्द्वेषिणं द्विषम्॥ २९७॥
न रक्षन्त्वप्रकाशं हि तथान्यानपकारकान्।
मातृणां पितृणाञ्चैव पूज्यानां विदुषामपि॥ २९८॥
नावमानं नोपहासं कुर्य्युः सद्वृत्तशालिनाम्।
न भेदं जनयेयुर्वै नृनार्य्योः स्वामिभृत्ययोः॥ २९९॥
भ्रातृणां गुरुशिष्याणां न कुर्य्युः पितृपुत्रयोः।
वापीकूपारामसीमाधर्मशालासुरालयान् ॥ ३००॥
मार्गान्नैव प्रबाधेयुर्हीनाङ्गविकलाङ्गकान्।
द्यूतञ्च मद्यपानञ्च मृगयां शस्त्रधारणम्॥ ३०१॥
गोगजाश्वोष्ट्रमहिषीनृणां वै स्थावरस्य च।
रजतस्वर्णरत्नानां मादकस्य विषस्य च॥ ३०२॥
क्रयो वा विक्रयो वापि मद्यसन्धानमेव च।
क्रयपत्रं दानपत्रमृणनिर्णयपत्रकम्॥ ३०३॥
राजाज्ञया विना नैव जनैः कार्य्यं चिकित्सितम्।
महापापाभिशपनं निधिग्रहणमेव च॥ ३०४॥
नवसमाजनियमं निर्णयं याति दूषणम्।
अस्वामिनाष्टिकधनसङ्ग्रहं मन्त्रभेदनम्॥ ३०५॥
नृपदुर्गुणालापन्तु नैव कुर्य्युः कदाचन।
स्वधर्म्महानिमनृतं परदाराभिमर्शनम्॥ ३०६॥
कूटसाक्ष्यं कूटलेख्यमप्रकाशप्रतिग्रहम्।
निर्धारितकराधिक्यं स्तेयं साहसमेव च॥ ३०७॥
मनसापि न कुर्वन्तु स्वामिद्रोहं तथैव च।
भृत्या शुल्केन भागेन वृद्ध्या दर्पाद् बलाच्छलात्॥ ३०८॥
आधर्षणं न कुर्वन्तु यस्य कस्यापि सर्वदा।
परिमाणोन्मानमानं धार्य्यं राजविमुद्रितम्॥ ३०९॥
गुणसाधनसन्दक्षा भवन्तु निखिला जनाः।
साहसाधिकृते दद्युर्विनिगृह्याततायिनम्। ३१०॥
उत्सृष्टा वृषभाद्या यैस्तैस्ते धार्य्याः सुयन्त्रिताः।
इति मच्छासनं श्रुत्वा येऽन्यथा वर्त्तयन्ति तान्॥ ३११॥

विनिशिष्यामि दण्डेन महता पापकारकान्।
इति प्रबोधयेन्नित्यं प्रजाः शासनडिण्डिमैः ॥ ३१२ ॥

अन्वयः—राजा शासनडिण्डिमैः प्रजाः नित्यं बोधयेत्। यथा मद्देशसंस्थितैः क्वचित् दासे भृत्ये भार्यायां पुत्रे शिष्ये वाग्दण्डपरुषं नैव कार्यम्। तुलाशासनमानानां वा क्वचित् नाणकस्यापि निर्यासानां सजातीनां धातूनां च घृतस्य मधुदुग्धवसादीनां च पिष्टादीनां सर्वदा कूटं बलात् जनैः लिखितं तु नैव कार्यं स्यात्। उत्कोचग्रहणं स्वामिकार्यविलोभनं नैव कर्त्तव्यम्। दुर्वृत्तकारिणं च चोरं जारं मद्द्वेषिणं द्विषं तथा अप्रकाशम् अन्यानपकारकान् न रक्षन्तु। हि मातृणां पितृणां पूज्यानां विदुषामपि तथा सद्वृत्तशालिनाम् अवमानं न उपहासं न कुर्युः। नृनार्योः स्वामिभृत्ययोः भेदं न जनयेयुः। किञ्च भ्रातृणां गुरुशिष्याणां तथा पितृपुत्रयोः भेदं च न कुर्युः। वापीकूपारामसीमाधर्मशालासुरालयान् मार्गान् हीनाङ्गविकलाङ्गकान् नैव प्रबाधेयुः। राजाज्ञया विना द्यूतं च मद्यपानं च मृगयां शस्त्रधारणं गोगजाश्वोष्ट्रगमहिषीनृणां च स्थावरस्य वै रजत्स्वर्णरत्नानां मादकस्य तथा विषस्य च क्रयः वा विक्रयः मद्यसन्धानं च क्रयपत्रं दानपत्रम् ऋणनिर्णयपत्रकं वा चिकित्सितं नैव कार्यम्। महापापाभिशमनं च निधिग्रहणम् एव नवसमाजनियमं निर्णयं जातिदूषणं अस्वामिनाष्टिकधनसङ्ग्रहं मन्त्रभेदनं तु नृपदुर्गुणालापं कदाचन नैव कुर्य्युः। स्वधर्महानिमनृतं परदाराभिमर्शनं कूटसाक्ष्यं कूटलेख्यम् अप्रकाशप्रतिग्रहं निर्धारितकराधिक्यं च स्तेयं साहसम् एव तथा च स्वामिद्रोहं मनसाऽपि न कुर्वन्तु। किञ्च भृत्या शुल्केन भागेन वृद्ध्या बलात् छलात् दर्पात् सर्वदा यस्य कस्याऽपि आधर्षणं न कुर्वन्तु। परिमाणोन्मानमानं राजविमुद्रितं धार्यम्। निखिलाः जनाः गुणसाधनसन्दक्षाः भवन्तु तथा साहसाधिकृते आततायिनं विनिगृह्य दद्युः। यैः वृषभाद्याः उत्सृष्टाः तैः ते सुयन्त्रिताः धार्याः इति। मच्छासनं शृत्वा ये अन्यथा वर्त्तयन्ति तान् पापकारकान् महता दण्डेन वनिशिष्यामि ॥ २९४-३१२ ॥

व्याख्या—अस्य सर्गस्य चतुर्नवत्यधिकशतद्वयश्लोकादारभ्य द्वादशाधिकशतत्रयश्लोकपर्यन्तमूनविंशतिषु श्लोकेषु राजपुरुषाः डिण्डिमनादैः सह प्रजानुपालिनीं राज्यव्यापिनीं नृपाज्ञामुद्घोषयन्ति। तद्यथा—

राजा, शासनडिण्डिमैः = आधिपत्यसूचकख्यापनैः, प्रजाः = जनाः, नित्यम् = अन्वहम्, बोधयेत् = आश्वासयेत्। मद्देशसंस्थितैः = मदधिकृतजनपदनिवासिभिः जनैः, क्वचित् = कुत्राऽपि, दासे = परिचारके, भृत्ये = सेवके, वा = अथवा, भार्यायाम् = जायायाम्, पुत्रे = सुते, वा, शिष्येऽपि = छात्रेऽपि, वाग्दण्डपरुषम्—वाक्पारुष्यम् = कटुवचनप्रयोगात्मकशासनम्, दण्डपारुष्यम् = क्रूरदण्डाभिधानम्, वा नैव = कदापि न, कार्यम् = कर्त्तव्यमिति। तुलायाः = तोल्यते अनयेति तस्याः मापनस्य, शासनानि = निर्णायकाधिपत्यानि, यानि मानानि = परिमाणानि, तेषां भारमानानाम्, क्वचित् = कुत्रचित्, वा = अथवा, नाणकस्य = मुद्रायाः, निर्यासानाम् = तरुनिःश्रवणानां तरलपदार्थानां वा, सजातीनाम् = तत्तुल्यानाम्, धातूनाम् = सुवर्णादिखनिजभेदानाम्, घृतस्य = आज्यस्य, मधुदुग्धवसादीनाम् = माध्वीकक्षीरमज्जादीनाम्, पिष्टादीनाम् = गुण्डिकादीनाम्, सर्वदा = कथमपि, कूटम् = वञ्चनाम्, बलात् = हठात्, जनैः = लोकैः, लिखितम् = अङ्कितम्, तु, नैव = नास्त्येव, कार्यम् = करणीयम्। उत्कोचग्रहणम् = उपायनस्वीकरणम्, तथा स्वामिकार्यविलोभनम्—स्वामिकार्येषु = राजकृत्येषु, विलोभनम् = लोभाधिक्यम्, नैव = नास्त्येव, कार्यम् = कर्त्तव्यमिति। दुर्वृत्तकारिणम् = दुराचारिणम्, चोरम् =

तस्करम्, जारम् = परदारगामिनम्, मद्द्वेषिणम् = मम विरोधिनम्, द्विषम् = रिपुम्, ममेति शेषः, तथा अप्रकाशम् = अतिगहनम्, यथा तथा अपकारकान् = हानिकारकान्, अन्यान् = अपरान् जनान्, न = नहि, रक्षन्तु = पालयन्तु, केऽपि इत्यध्याहार्यम्। मातृणाम् = जननीनाम्, पितृणाम् = जनकानाम्, अन्येषां पूज्यानाम् = समादरणीयानाम्, गुरुजनानाम् = पूज्यपुरुषाणाम्, विदुषाम् = विपश्चिताम्, तथा सद्वृत्तशालिनाम् = सदाचारनिरतानाम्, लोकानाम्, अवमानम् = तिरस्कारः, न = नहि, च = पुनः, उपहासः = परिहासम्, न = नहि, कुर्य्युः = विधेयुः, मदधिकृतराज्ये इति कर्त्तृपदमध्याहार्यमिति। नृनार्योः = पुरुषस्त्रियोः, पतिपत्न्योरित्यर्थः, तथा स्वामिभृत्ययोः = सेव्यसेवकयोः, वै = इति निश्चयेन, भेदम् = अन्तरम्, परस्परं मनोमालिन्यम्, न = नहि, जनयेयुः = भवेयुरिति। किञ्च = परञ्च, भ्रातृणाम् = सहोदराणाम्, गुरुशिष्याणाम् = अध्यापकाध्येतृणाम्, तथा पितापुत्रयोः = जन्यजनकयोः, भेदञ्च = अन्तरञ्च, न = नहि, कुर्य्युः = विधेयुः। वापीकूपारामसीमाधर्मशालासुरालयान्—वापी = वापिका, कूपः = निपानम्; 'नियतं पिबन्त्यस्मिन्नि'ति; 'आहावस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये' इत्यमरः। आरामः = उद्यानम्, सीमा = उपान्तो वा आधारः; 'सीमाधारस्थितिक्षेत्रेष्वण्डकोषेऽपि च स्त्रियाम्', 'आघाटशब्दोऽप्यत्र' इत्यमरः; तथा चास्य शब्दस्य प्रयोगोऽपि दर्शनीयः—"दिग्मातङ्गघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते"। (मुकुटः) धर्मशाला = यात्रिकगृहम्, सुरालयः = देवालयः, एतान् पूर्वोक्तान् मार्गान् = पथः, हीनाङ्गान् = विकलाङ्गान् जनान्, नैव = कदाचिदपि न, प्रबाधेयुः = कष्टं दद्युः। राजाज्ञया विना = नृपादेशं विहाय, द्यूतम् = अक्षक्रीडाम्, च = पुनः, मद्यपानम् = सुरासेवनम्, च = पुनः, मृगयाम् = आखेटनम्, शस्त्रधारणम् = आयुधग्रहणम्, गवाम् = धेनूनाम्, गजानाम् = कुञ्जराणाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, महिषीणाम् = मन्दगमनानाम्, नृणाम् = पुरुषाणाम्, स्थावरस्य = स्थविरस्य, पृथिव्यादेरचलधनस्येति भावः, रजतस्य = रूप्यस्य, स्वर्णस्य = कनकस्य, रत्नस्य = माणिक्यस्य, मादकस्य = मदकारकद्रव्यस्य, तथा विषस्य = गरलस्य, क्रयः = क्रीतपदार्थः, विक्रयः = विपणः, वा = अथवा, मद्यसन्धानम् = सुरासज्जीकरणम्, क्रयपत्रम् = मूल्येनादानपत्रम्, दानपत्रम् = दानलेखः, ऋणनिर्णयपत्रकम् = ऋणव्यवहारलेखः, वा = अथवा, चिकित्सतम् = वैद्यकव्यवसायः, नैव कार्यम् = कदापि न कार्यम्। महापापाभिशमनम् = महापातकस्य दोषारोपणम्, च = पुनः, निधिग्रहणम् = स्वामिविहीनधनस्य स्वायत्तीकरणम्, नवम् = नूतनम्, समाजनियमम् = सभानियोगः, निर्णयम् = अनिर्णीतस्य कस्यचिदपि विषयस्य राजनिर्णेयत्वादिति भावः, जातिदूषणम्—जातेः = वर्णस्य, दूषणम् = अवगुणकीर्त्तनम्, अस्वामिनाष्टिकधनसङ्ग्रहम्—अस्वामिकस्य = दायादविहीनस्य, नाष्टिकस्य = विनष्टजनस्य वा केनचिद्धारितस्य, धनस्य = सम्पत्तेः, सङ्ग्रहम् = सञ्चयनम्, मन्त्रभेदनम् = रहस्यप्रकाशनम्, तथा नृपदुर्गुणालापम्—नृपस्य = भूपतेः, दुर्गुणालापम् = अवगुणकीर्त्तनम्, तु, कदाचन = कथमपि, नैव = नास्त्येव, कुर्य्युः = वदेयुरिति। स्वधर्महानिम् = निजधर्मक्षयम्, अनृतम् = असत्यभाषणम्, परदाराभिमर्शनम् = परस्त्रीगमनम्, कूटसाक्ष्यम् = प्रतारणादृश्यम्, कूटलेख्यम् = कपटलेखः, अप्रकाशप्रतिग्रहम् = अबुद्धेनैव परस्वग्रहणम्, निर्धारितकराधिक्यम्—निर्धारितस्य = निश्चितस्य, करस्य = राजस्वस्य, आधिक्यम् = बाहुल्यम्, प्रजाभ्यः निर्धारितकरादधिकराजस्वसङ्ग्रहणमित्यर्थः, स्तेयम् = चौर्यम्, साहसम् = बलादपहरणम्, च = पुनः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, [illegible] मनसाऽपि = चित्तेनाऽपि, न =

नहि, कुर्वन्तु = सम्पादयन्तु। अत्रापि 'प्रजाः' इति कर्त्तृपदाध्याहार्यम्। किञ्च भृत्या = मासिकवेतनेन, वा शुल्केन = घट्टपथादीनां करेण, नृपग्राह्यांशेन, भागेन = विभाजनेन, वृद्ध्या = वार्द्धुष्येण, कुसीदव्यवहारेण च, दर्पात् = अभिमानात्, बलात् = हठात्, छलात् = कपटात्, वा = अथवा, सर्वदा = सदा, यस्य कस्यापि जनस्य, आधर्षणम् = मर्दनम्, न = नहि, कुर्वन्तु = आचरन्तु, अधिकृतजना इत्यूह्यम्। परिमाणोन्मानमानम्—परिमाणम् = भारमानम्, अथवा पृथिव्यादीनां मापलसूत्रम्, उन्मानम् = वटकादिकं मानम्, आढकादिकञ्च, राजविमुद्रितम् = राजचिह्नैः प्रमाणितम्, कारयित्वा, धार्यम् = ग्राह्यम्। प्रशासनप्रतिनियुक्तजनेन प्रमाणितं कृत्वैव व्यवहर्त्तव्यमिति भावः। निखिलाः = अखिलाः, जनाः = प्रजाः, गुणसाधने = शुभगुणोपार्जने, सन्दक्षाः = सम्यक्प्रकारेण कुशलाः, भवन्तु = सन्तु। तथा साहसाधिकृते = क्रूरकर्माद्युपलब्धे सति, आततायिनम् = तादृशमपराधिनम्, विनिगृह्य = विशेषरूपेण निरुध्य, दद्युः = नृपसम्मुखे आनयेयुः। आततायिनश्च षड्विधास्तद्यथा—

"अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारापहारी च षडैते आततायिनः॥"

यैः = जनसामान्यैः, वृषभाद्याः = बलीवर्दप्रभृतिपशवः, उत्सृष्टाः = बन्धनविहीनसमुज्झिताः, तैः = जनैः, ते = बलदादिकाः, सुयन्त्रिताः = सुसंयताः, धार्याः = प्रतिपाल्याः, इति = एवम्प्रकारेण, मच्छासनम् = ममादेशम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, ये = जनाः, अन्यथा = इतरथा, वर्त्तयन्ति = कुर्वन्ति, पापकारकारकान् = अधर्माचारिणः, नृपादेशमुल्लङ्घ्य स्वेच्छाचारिणो भवन्ति, तान् = जनान्, महता = अतिकठोरेण, दण्डेन = शासनेन, विनिशिष्यामि = विशेषरूपेण दमनं करिष्यामि; 'साहसं तु दमो दण्डः' इत्यमरः॥ २९४-३१२॥

हिन्दी—ढिंढोरा पिटवा कर राजा अपने राज्य में नित्य घोषणा (Proclamation) करे कि—मेरे राज्य में रहने वाले अपने गुलाम, सेवक, पत्नी, पुत्र या शिष्य को किसी भी स्थिति में अपशब्द या डाँट-फटकार न करें। तौल में, बटखरे के वज़न की माप में, सिक्के की ढलाई में, गोंद या उसकी तरह तरल पदार्थ में, सोने-चाँदी जैसी धातु में या उसी की जाति के अन्य पदार्थ; जैसे—दूध, घी, मधु, चर्बी, पिसान या किसी तरह के चूरे में कभी भी किसी तरह की मिलावट या बेईमानी न करें। किसी से जबर्दस्ती कुछ न लिखवाये। किसी को किसी भी परिस्थिति में घूस न दे। मालिक के काम को कभी न बिगाड़े। गुंडे, चोर, दुराचारी और लम्पटों को—वे चाहें दोस्त हों या दुश्मन—उन्हें छिपकर पनाह न दे। इसी तरह जनता को जो हानि पहुँचाये, उसकी रक्षा न करें। माँ-बाप, सुधी, सदाचारी एवं समादरणीय लोगों की कोई खिल्ली न उड़ायें और न तो उन्हें अपमानित ही करें। नौकर-मालिक के बीच, पति-पत्नी के बीच, पिता-पुत्र के बीच, गुरु-शिष्य के बीच या भाई-भाई के बीच कोई फूट न डालें। बावड़ी, बगीचे, कुँए, सीमा, सराय, मन्दिर या रास्ते को कोई नुकसान न पहुँचायें। विकलाङ्गों को पीड़ा न दें। राजकीय समादेश पाये बिना जुए न खेले, शराब न पीये, शिकार न करे और अवैध हथियार साथ में न रखें। गाय, हाथी, घोड़े ऊँट, भैंस, जमीन-जायदाद, भाँग, अफीम जैसी नशीली वस्तु की खरीद-फरोख्त न करें। शराब न चुलाए। क्रयपत्र, दानपत्र या ऋणपत्र न लिखे, न लिखाये। शासनानुदेश के बिना चिकित्सा-व्यवसाय न करे। किसी पर महापाप का दोषारोपण न करे। गड़े धन स्वीकार न करे। लावारिस धन को हाथ न लगाये। नवनिर्मित

समाज के निर्णयों को स्वीकार न करें। अपनी जाति पर दोषारोपण न करे। लावारिस या विनष्ट हुए व्यक्ति के धन को न छूए। किसी का गुप्तभेद न खोले। राजा के दुर्गुणों के बारे में बातचीत न करें। अपने धर्म को न छोड़े। झूठ न बोले। परस्त्रीगामी न बने। झूठी गवाही न दे। झूठे दस्तावेज न लिखे। राजा से छिपाकर किसी वस्तु की लेन-देन न करें। निर्धारित कर से अधिक राजस्व की वसूली न करें। चोरी-डकैती न करें। राजद्रोह मन से भी न करे। वेतन से, चुंगी से, राजकीय कर से, सूद से, अहङ्कार से, बल से या छल से दबा कर कभी किसी व्यक्ति को पीड़ा न पहुँचायें। तौलने के लिए बटखरे और नापने के लिए नपुए को राजमुद्रा से अभिप्रमाणित करके ही व्यवहार में लाये। गुणसाधन में हर व्यक्ति चतुर हों। अपराधियों को पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दें। मवेशियों को खुला न छोड़ें, उन्हें अच्छी तरह बाँधकर रखे। ऐसी राजाज्ञा सुनकर भी जो इसके विपरीत आचरण करेंगें, उन्हें कड़ी से कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी॥२९४-३१२॥

इत आरभ्य शासनडिण्डिमैरित्यन्तं राजशासनं निर्दिशति—**दास इत्यादि**। राजा शासनडिण्डिमैः शासनार्थवाद्यभेदैः प्रजाः नित्यम् इति वक्ष्यमाणप्रकारेण बोधयेत् ज्ञापयेत्। यथा मद्देशसंस्थितैः मदधिकारवर्त्तिभिः जनैः क्वचित् दासे किङ्करे, भृत्ये पोष्यजने, अथवा भार्य्यायां पत्न्यां पुत्रे अपि वा अथवा शिष्ये छात्रे वाग्दण्डपरुषं वाक्पारुष्यं दण्डपारुष्यं वा नैव कर्त्तव्यम्। तुलायाः शासनानि निर्णायकानि यानि मानानि परिमाणानि तेषां क्वचित् कुत्रचित् वा नाणकस्य मुद्रायाः निर्यासानां तरुलतानिर्गतरसानां सजातीनां समानावयवानां धातूनां स्वर्णरजतादीनां घृतस्य मधुदुग्धवसादीनां पिष्टादीनां चूर्णविशेषाणाञ्च सर्वदा कदापीत्यर्थः, कूटं कपटं बलात् बलात्कारेण जनैः लिखितं लेखनं भावे क्तप्रत्ययः। उत्कोचग्रहणं तथा स्वामिकार्य्येषु विलोभनं विशेषेण लोभप्रदर्शनं नैव कर्तव्यम्। दुर्वृत्तकारिणं दुराचारिणं चोरं जारं मद्द्वेषिणं मम प्रतिकूलं मन्निदेशमकुर्वाणमित्यर्थः, द्विषं शत्रुं ममेति शेषः, तथा अप्रकाशं गूढं यथा तथा अपकारकान् अनिष्टकारिणः अन्यान् जनान् न रक्षन्तु न गोपयन्तु केऽपीति कर्तृपदमध्याहार्य्यं मातृणां पितृणाम् अन्येषां पूज्यानां गुरुजनानां विदुषां पण्डितजनानां तथा सद्वृत्तशालिनां सदाचाररतानां जनानाम् अवमानं न उपहासञ्च न कुर्य्युः मदधिकृता इति कर्तृपदमूह्यम् एवमुत्तरत्र ज्ञेयम्। नृनार्य्योः स्त्रीपुंसयोः दम्पत्योरित्यर्थः, तथा स्वामिभृत्ययोः भेदं परस्परमनोभङ्गं न जनयेयुः, किञ्च भ्रातृणां गुरुशिष्याणां तथा पितृपुत्रयोः भेदञ्च न कुर्य्युः। वापी दीर्घिका कूपः प्रसिद्धः आरामः उपवनं सीमा उभयोर्विवादशान्त्यर्थं निर्णीतं स्थानं धर्म्मशाला धर्म्मानुशीलनार्थं स्थापितगृहं सुरालयः देवालयः एतान् मार्गान् पथः हीनाङ्गान् विकलाङ्गान् वा जनान् नैव प्रबाधेयुः नैव पीडयेयुः। राजाज्ञया विना नृपानुमतिमन्तरेण द्यूतं सपणदेवनं मद्यपानं मृगया शस्त्रधारणं गवां गजानाम् अश्वानाम् उष्ट्राणां महिषीणां नृणां नराणां स्थावरस्य भूम्यादेः रजतस्य रौप्यस्य स्वर्णस्य रत्नस्य मणिभेदस्य मादकस्य मत्तताजनकद्रव्यस्य तथा विषस्य क्रयः विक्रयः वा मद्यसन्धानं सुराप्रस्तुतकरणं क्रयपत्रं दानपत्रम् ऋणनिर्णयपत्रकं वा चिक़ित्सितं चिकित्साव्यवसायः नैव कार्य्यम्। महापापाभिशमनं महापापकीर्त्तनेन अभिसम्पातं निधेरस्वामिकस्य धनस्य ग्रहणं तस्य राजलभ्यत्वादिति भावः, नवं नूतनं समाजनियमं सभाव्यवस्थां निर्णयम् अनिर्णीतस्य कस्यचित् विषयस्येति शेषः, तस्य राजनिर्णेयत्वादिति भावः, जातिदूषणं जातेः दोषकीर्त्तनम् अस्वामिकस्य नाष्टिकस्य केनचित् हारितस्य वा धनस्य सङ्ग्रहं मन्त्रभेदनं गूढमन्त्रणाप्रकाशं तथा नृपस्य राज्ञः दुर्गुणालापं

दुर्गुणालापरूपं दुष्कृतं कदाचन नैव कुर्य्युः प्रजा इति कर्तृपदमध्याहर्त्तव्यम्। स्वधर्म्महानिं निजधर्म्मक्षयम् अनृतम् अलीकवादं परदाराभिमर्शनं परस्त्रीगमनं कूटसाक्ष्यं कपटसाक्षित्वं कूटलेख्यं कपटलिखितम् अप्रकाशप्रतिग्रहम् अज्ञातेन परस्वग्रहणं निर्द्धारितस्य करस्य राजस्वस्य आधिक्यं करादायिभिः प्रजाभ्यः अतिरेकग्रहणं स्तेयं चौर्य्यं साहसं दस्युवृत्तिं तथा स्वामिद्रोहं प्रभोरनिष्टाचरणं मनसापि न कुर्वन्तु अत्रापि प्रजा इति कर्तृपदमूहनीयम्। किञ्च भृत्या वेतनेन भरणेन वा शुल्केन पण्यद्रव्याणां राजग्राह्यांशेन भागेन वण्टनेन वृद्ध्या कुसीदव्यवहारेण दर्पात् बलात् छलात् व्याजाद् वा सर्वदा कदापीत्यर्थः, यस्य कस्यापि जनस्य आधर्षणं पीडनं न कुर्वन्तु अधिकृता इति शेषः। परिमाणं भूम्यादीनां मानार्थरज्वादिकम् उन्मानं घटकादिकं मानम् आढकादिकञ्च राजविमुद्रितं राजचिह्नितं कृत्वा धार्य्यं व्यवहर्त्तव्यम्। निखिलाः समग्राः प्रजाः गुणसाधने गुणार्जने सन्दक्षाः सम्यक् निपुणाः भवन्तु। तथा साहसाधिकृते बलात्कारादिदुष्कर्मापवादे सति आततायिनं तादृशमपराधिनं विनिगृह्य विशेषेण निगृह्य दद्युः राजसमीपे इति शेषः। आततायिनश्च षड्विधाः। यथा—'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः" ॥ इति। यैः जनैः वृषभाद्याः उत्सृष्टाः, तैः ते वृषभाद्याः सुयन्त्रिताः सुनियमिताः धार्य्याः प्रतिपाल्या इत्यर्थः। इति उक्तप्रकारं मच्छासनं मदीयनिदेशं श्रुत्वा ये जनाः अन्यथा वर्त्तयन्ति आचरन्ति, पापकारकान् राजाज्ञालङ्घनरूपपापकारिणः तान् महता प्रबलेन दण्डेन विनिशिष्यामि विशेषेण दण्डयिष्यामीत्यर्थः॥ २९४-३१२ ॥

लिखित्वा शासनं राजा धारयीत चतुष्पथे।
सदा चोद्यतदण्डः स्यादसाधुषु च शत्रुषु॥ ३१३ ॥

अन्वयः—राजा शासनं लिखत्वा चतुष्पथे धारयेत्। असाधुषु शत्रुषु च सदा उद्यतदण्डः स्यात् इति॥ ३१३ ॥

व्याख्या—राजा = नृपतिः, शासनम् = पूर्वोक्तघोषणाम्, लिखित्वा = शिलादिपट्टे उत्कीर्णं कारयित्वा, चतुष्पथे = प्रमुखपथे, धारयेत् = स्थापयेत्, उपरिवर्णितराजनिदेशः शिलापट्टे, लौहस्तम्भे काष्ठफलके वा लिखित्वा जनसङ्कुलमार्गे, चतुष्पथे = हट्टे च, सर्वे जनाः येन पश्यन्तु तथा, असाधुषु = असत्पुरुषेषु, शत्रुषु = सपत्नेषु, सदा = सर्वदा, उद्यतदण्डः = दमनार्थं सन्नद्धो भवेदिति॥ ३१३ ॥

हिन्दी—राजा पूर्ववर्णित अनुदेशों को लिखवा कर जनसंकुल मार्गों पर लटकवा दे तथा दुष्टों और दुश्मनों को दण्ड देने के लिए सदैव तत्पर रहे॥ ३१३ ॥

लिखित्वेति। राजा शासनम् आदेशं लिखित्वा चतुष्पथे धारयेत् स्थापयेत् सर्वेषां गोचरार्थमिति भावः। तथा असाधुषु दुर्जनेषु शत्रुषु च सदा उद्यतदण्डः दण्डधारी स्याच्च॥ ३१३ ॥

प्रजानां पालनं कार्य्यं नीतिपूर्वं नृपेण हि।
मार्गसंरक्षणं कुर्य्यान्नृपः पान्थसुखाय च॥ ३१४ ॥

अन्वयः—नृपेण नीतिपूर्वं हि प्रजानां पालनं कार्यम्। तथा नृपः पान्थसुखाय मार्गसंरक्षणं कुर्यात्॥ ३१४ ॥

व्याख्या—नृपेण = भूपतिना, नीतिपूर्वम् = नीतिमनतिक्रम्य, हि इति निश्चयेन, प्रजानाम् = जनानाम्, पालनम् = संवर्द्धनम्, कार्यम् = विधेयम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, नृपः = राजा,

पान्थानाम् = यात्रिकानाम्, सुखाय = सुखेन गमनाय, मार्गसंरक्षणम् = पथपर्यवेक्षणम्, कुर्यात् = विदध्यात् ॥ ३१४ ॥

हिन्दी—न्यायपूर्वक प्रजा का पालन राजा का कर्त्तव्य है और पथिकों की सुख-सुविधा हेतु राजमार्ग का पर्यवेक्षण भी राजा को करना चाहिए ॥ ३१४ ॥

प्रजानामिति। नृपेण राज्ञा नीतिपूर्वं यथानीति प्रजानां पालनं कार्य्यं तथा नृपः पान्थानां पथिकानां सुखाय मार्गसंरक्षणं कुर्य्यात्, हिशब्दः अवधारणे ॥ ३१४ ॥

पान्थप्रपीडका ये ये हन्तव्यास्ते प्रयत्नतः।
त्रिभिरंशैर्बलं धार्य्यं दानमर्द्धांशकेन च ॥ ३१५ ॥
अर्द्धांशेन प्रकृतयो ह्यर्द्धांशेनाधिकारिणः।
अर्द्धांशेनात्मभोगश्च कोशोंऽशेन च रक्ष्यते ॥ ३१६ ॥

अन्वयः—ये ये पान्थप्रपीडकाः ते प्रयत्नतः हन्तव्याः। त्रिभिरंशैर्बलं धार्यम्, अर्द्धांशकेन दानं च अर्द्धांशेनाधिकारिणः अर्द्धांशेन प्रकृतयः अर्द्धांशेन आत्मभोगः च अंशेन कोशः रक्ष्यते ॥ ३१५-३१६ ॥

व्याख्या—ये ये = मम प्रजाः, पान्थप्रपीडकाः—पान्थानाम् = यात्रिकानाम्, प्रपीडकाः = लुण्ठकाः, ते = मार्गतस्कराः, प्रयत्नतः = प्रयासपूर्वकेण, हन्तव्याः = वधार्हाः, किञ्च सांवत्सरिकराजकरैः प्राप्तधनस्य, त्रिभिरंशैः = तृतीयभागेन, बलम् = सैन्यसङ्गठनम्, धार्यम् = कार्यम्, सैन्यसञ्चालने व्ययं कर्त्तव्यमित्यर्थः। अर्द्धांशकेन = अर्द्धस्यार्द्धभागेन, अर्थात् प्राप्तकरस्याष्टमांशेन, दानम् = सत्कार्येषु पुण्यार्थे च धनं विसृजेत्, पुनश्च अर्द्धांशेन = सकलप्राप्तराजकरस्य वार्षिकस्याष्टमांशेन, प्रकृतयः = राजकीयप्रधानपुरुषाः, अपरार्द्धांशेन = अवशिष्टस्यार्द्धभागेन, अधिकारिणः = राज्यसञ्चालकपदाधिकारिगणाः, वेतनदानेन संवर्द्धनीयाः, अर्द्धांशेन = तदवशिष्टाष्टमभागेनात्मभोगस्य व्यवस्था करणीया, अंशेन = अवशिष्टभागेन, कोशः = आकरः, रक्ष्यते = पूर्यते, नृपाय धनसंरक्षणमपि नितान्तमावश्यकत्वात् ॥ ३१५-३१६ ॥

हिन्दी—बटोहियों को सताने वाले बटमारों को प्रयासपूर्वक पकड़ कर उनका वध कर देना चाहिए। वार्षिक आय का एक तिहाई राजस्व सैन्य-संरक्षण पर खर्च करना चाहिए। सम्पूर्ण आय का एक चौथाई दान, धर्म एवं राहत पर खर्च करना चाहिए। सम्पूर्ण वार्षिक आय का आठवाँ हिस्सा राज्य के प्रधान राजपुरुषों; जैसे मंत्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष प्रभृति के वेतनादि पर व्यय करना चाहिए। उसके दूसरे आधे पैसे राज्य के अन्य पदाधिकारियों पर व्यय करे। उतने ही पैसे राजा अपने सुखभोग पर खर्च करे। धन के बचे भाग को खजाने में सुरक्षित रखे ॥ ३१५-३१६ ॥

पान्थेत्यादि। ये ये जनाः पान्थानां पथिकानां प्रपीडकाः पीडनकारिणः ते प्रयत्नतः यत्नातिशयेन हन्तव्याः वध्याः राज्ञा इति शेषः। किञ्च वार्षिकस्य आयस्य त्रिभिः अंशैः तृतीयभागेनेत्यर्थः, बलं सैन्यं धार्य्यं रक्षितव्यम् अर्द्धस्य आयार्द्धस्य अंशकेन चतुर्थभागेन समुदायस्य अष्टमभागेनेत्यर्थः, दानं कर्त्तव्यमिति शेषः। पुनश्च अर्द्धांशेन पूर्ववत् समुदायस्य अष्टमभागेन प्रकृतयः प्रधानराजपुरुषाः अपरार्द्धांशेन अधिकारिणः रक्ष्या इति शेषः, तथा अपरार्द्धांशेन उक्तया रीत्या समुदायस्याष्टमभागेन आत्मनः स्वस्य भोगस्य सम्पादनीय इति शेषः। अंशेन

अवशिष्टेन भागेन च कोशः धनरक्षणस्थानं रक्ष्यते पूर्य्यते सञ्चयस्यावश्यकत्वादिति भावः॥३१५-३१६॥

आयस्यैवं षड्विभागैर्व्ययं कुर्य्यात् तु वत्सरे।
सामन्तादिषु धर्मोऽयं न न्यूनस्य कदाचन॥३१७॥

अन्वयः—एवम् आयस्य षड्भागैः तु वत्सरे व्ययं कुर्यात्। सामन्तादिषु अयं धर्मः न्यूनस्य कदाचन न॥३१७॥

व्याख्या—एवम्=पूर्ववर्णितरूपेण, आयस्य=प्राप्तधनस्य, षड्विभागैः—षड्भिः विभागैः=अंशैः, वार्षिकायस्य षड्खण्डेषु विभज्य, वत्सरे=प्रतिवर्षे, व्ययम्=वित्तविनियोगः, कुर्यात्। सामन्तादिषु=क्षेत्रपत्यादिषु, अयम्=एषः, धर्मः=नियमः, न्यूनस्य=सामन्ताद्यपेक्षया हीनजनस्य, कदाचन=कथमपि, अयं धर्मः=व्यवस्था, न=नास्त्येवेति॥३१७॥

हिन्दी—इस प्रकार राजा सम्पूर्ण राजस्व को छः खण्डों में बाँट कर सालभर काम चलाये। यह धर्म सामान्तादिसंज्ञक राजाओं के लिए ही है, उससे कम ओहदे वालों के लिए बिलकुल ही नहीं है॥३१७॥

आयस्येति। एवम् उक्तप्रकारेण आयस्य षड्विभागैः षड्भिः विभागैः अंशैः आयं षोढा विभज्येत्यर्थः, वत्सरे प्रतिवर्षं व्ययं कुर्य्यात्। सामन्तादिषु पूर्वोक्तेषु अयं धर्म्मः नियमः अर्थव्ययस्येति भावः, व्यवस्थित इति अध्याहार्य्यं न्यूनस्य सामन्ताद्यपेक्षया निकृष्टस्य कदाचन अयं धर्मो नेत्यर्थः॥३१७॥

राज्यस्य यशसः कीर्त्तेर्धनस्य च गुणस्य च।
प्राप्तस्य रक्षणेऽन्यस्य हरणे चोद्यमोऽपि च॥३१८॥
संरक्षणे संहरणे सुप्रयत्नो भवेत् सदा।
शौर्य्यपाण्डित्यवक्तृत्वं दातृत्वं न त्यजेत् क्वचित्॥३१९॥
बलं पराक्रमं नित्यमुत्थानञ्चापि भूमिपः।
समितौ स्वात्मकार्य्ये वा स्वामिकार्य्ये तथैव च॥३२०॥
त्यक्त्वा प्राणभयं युध्येत् स शूरस्त्वविशङ्कितः।
पक्षं सन्त्यज्य यत्नेन बालस्यापि सुभाषितम्॥३२१॥
गृह्णाति धर्म्मतत्त्वञ्च व्यवस्यति स पंण्डितः।
राज्ञोऽपि दुर्गुणान् वक्ति प्रत्यक्षमविशङ्कितः॥३२२॥
स वक्ता गुणतुल्यांस्तान्न प्रस्तौति कदाचन।
अदेयं यस्य नैवास्ति भार्य्यापुत्रादिकं धनम्॥३२३॥
आत्मानमपि सन्दत्ते पात्रे दाता स उच्यते।
अशङ्कितक्षमो येन कार्य्यं कर्त्तुं बलं हि तत्॥३२४॥

अन्वयः—राजा प्राप्तस्य राज्यस्य यशसः कीर्त्तेः धनस्य च गुणस्य च रक्षणे तथा अन्यस्य हरणे च उद्यमोऽपि किञ्च संरक्षणे च संहरणे सदा सुप्रयत्नः भवेत्। भूमिपः क्वचित् शौर्य-

पाण्डित्यवक्तृत्वम्, दातृत्वम्, बलम्, पराक्रमम्, नित्यम् उत्थानं न त्यजेत्। यः समितौ स्वात्मकार्ये तथा स्वामिकार्ये प्राणभयं त्यक्त्वा अविशङ्कितः युध्येत् सः शूर इति। यः पक्षं सन्त्यज्य बालस्यापि सुभाषितं यत्नेन गृह्णाति धर्मतत्त्वं व्यवस्यति सः पण्डितः। यः अविशङ्कितः प्रत्यक्षं राज्ञोऽपि दुर्गुणान् वक्ति कदाचन तान् गुणतुल्यान् न प्रस्तौति सः वक्ता। यस्य भार्यापुत्रादिकं धनम् अदेयं नैव अस्ति यश्च आत्मानमपि पात्रे सन्दत्ते सः दाता उच्यते। येन अशङ्कितं कार्यं कर्त्तुं क्षमः तत् हि बलम् ॥ ३१८-३२४ ॥

व्याख्या—नरपतिः प्राप्तस्य = उपलब्धस्य, राज्यस्य = जनपदस्य, यशसः = विश्रुत्याः प्रसिद्धेर्वा, कीर्त्तेः = यशसः, धनस्य = सम्पत्तेः, गुणस्य = सुष्ठुस्वभावस्य, रक्षणे = परित्राणे, तथा अन्यस्य = अनुपलब्धस्यान्यनृपस्य राज्यादेरिति भावः। हरणे = स्वायत्तीकरणे, च उद्यमोऽपि = सत्प्रयत्नोऽपि विधेयरिति। किञ्च संरक्षणे = स्वप्रजायाः परित्राणे, संहरणे = अनधिकृतराज्यस्य स्वायत्तीकरणे, सदा = सर्वदा, सुप्रयत्नः = सुयत्नवांश्च, भवेत् = स्यादिति। भूमिपः = पृथिवीपतिः, क्वचित् = कथमपि, शौर्यम् = शूरता, पाण्डित्यम् = विद्वत्त्वम्, वक्तृत्वम् = वाक्पाटवम्, दातृत्वम् = दानकर्त्तृत्वम्, बलम् = शक्तिम्, पराक्रमम् = पौरुषम्, नित्यम् = निरन्त .न्, उत्थानम् = उद्गमनमपि, न = नहि, त्यजेत् = विसर्जयेत्। यः समितौ = सङ्गरे, स्वकार्ये = आत्महिताय, तथा स्वामिकार्ये = प्रभुप्रयोजने, प्राणभयम् = प्राणात्ययम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, अविशङ्कितः = निःशङ्को भूत्वा, युद्ध्येत् = युद्धं कुर्यात्, सः = असौ, शूरः = वीरः, इति कथ्यते। यो जनः, पक्षम् = पक्षपातम्, सन्त्यज्य = सम्यक् प्रकारेण परित्यज्य, बालस्यापि = अल्पवयस्कस्यापि, सुभाषितम् = तथ्यपूर्वकसुन्दरवचनम्, यत्नेन = प्रयासपूर्वकेण, गृह्णाति = स्वीकरोति, धर्मतत्त्वम् = धार्मिकरहस्यम्, व्यवस्यति = निरूपयति, सः = असौ, पण्डितः = प्रज्ञावान् भवति। यः अविशङ्कितः = शङ्कारहितः सन्, प्रत्यक्षम् = व्यक्तम्, राज्ञोऽपि = नृपस्याऽपि, दुर्गुणान् = अवगुणान्, वक्ति = वदति, कदाचन तान् = दोषान्, गुणतुल्यान् = गुणसदृशान्, न = नहि, प्रस्तौति = उपस्थापयति, सः = असौ, वक्ता = वाग्मिन् भवति। यस्य = पुरुषविशेषस्य, भार्यापुत्रादिकम् = पत्नीपुत्रादिकम्, धनम् = वैभवम्, अदेयम्—नास्ति देयमित्यमदेयम् अथवा दातुं योग्यं देयम्, न देयमदेयम् = अदातव्यम्, नैव = नास्त्येव, अस्ति = भवति, च = पुनः, यो जनः, आत्मानमपि = स्वीयमपि, पात्रे = गुणास्पदजने, सन्दत्ते = ददाति, नृपहरिश्चन्द्र इवेति भावः, सः = असौ, दाता = वदान्यः, उच्यते = कथ्यते। येन = कार्येण, अशङ्कितम् = निःशङ्कः सन्, कार्यम् = स्वकर्त्तव्यकर्म, कर्त्तुम् = निष्पादितुम्, क्षमः = समर्थो जनः, तत् हि = तदेव हि, बलम् = सामर्थ्यम्भवति ॥ ३१८-३२४ ॥

हिन्दी—राजा अपने अधिकृत राज्य, ख्याति, कीर्ति, धन और प्राप्तगुण का संरक्षण करें तथा अपने अधिकार से बाहर राज्य को स्वायत्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। प्राप्त के संरक्षण और अप्राप्त के अपहरण के लिए सदैव तत्पर रहे। राजा कभी भी वीरता, बुद्धिमत्ता, वचनपटुता, दानशीलता और पराक्रम को सतत ऊपर उठाने के प्रयास को न छोड़े। युद्ध में अपने लिए अथवा राजा के लिए निःशंक भाव से प्राण का भय छोड़कर जो लड़ता है, वह शूर कहलाता है। पक्षपात रहित होकर प्रयासपूर्वक बच्चे की भी सुन्दर बातें जो सुनता है तथा धर्मतत्त्व का निर्णय करता है, वह प्रज्ञावान् है। राजा के दुर्गुणों को भी जो आमने-सामने निडर होकर कहता है, चापलूसों की तरह राजा के दुर्गुणों को गुण के रूप में कभी प्रस्तुत

नहीं करता, वही वक्ता पुरुष है। पत्नी, पुत्र और धन भी जिसके लिए अदेय नहीं हैं, सत्पात्र को जो अपनी आत्मा भी दे डाले, वह दानी कहलाता है। निडर होकर जो कर्त्तव्य कर्म करे, वही बल है॥३१८-३२४॥

राज्यस्येत्यादि। राजा प्राप्तस्य लब्धस्य राज्यस्य यशसः सुख्यातेः कीर्त्तेः यशस्यकार्य्यस्य धनस्य गुणस्य सच्चरित्रस्य रक्षणे तथा अन्यस्य अप्राप्तस्य राज्यादेरिति शेषः, हरणे उद्यमः उद्यच्छति चेष्टते इति उद्यमः चेष्टावान् उत्पूर्वकात् यच्छतेरन्प्रत्ययः। किञ्च संरक्षणे सम्यक् रक्षणे संहरणे सम्यक् हरणे च सदा सुप्रयत्नः सम्यक् यत्नवांश्च भवेत्। भूमिपः क्वचित् कदाचिदपि शौर्य्यं पाण्डित्यं वक्तृत्वं दातृत्वं वदान्यतां बलं पराक्रमं नित्यं सततम् उत्थानम् उद्योगञ्च न त्यजेत्। यः समितौ युद्धे स्वात्मकार्य्ये निजदेहसम्बन्धिनि कार्य्ये तथा स्वामिकार्य्ये विषये प्राणभयं त्यक्त्वा अविशङ्कितः निःशङ्कः सन् यत्नेन युध्येत् सः शूरः। यः पक्षं पक्षपातमित्यर्थः, सन्त्यज्य बालस्यापि सुभाषितं यत्नेन गृह्णाति, धर्म्मतत्त्वं व्यवस्यति यथायथं निरूपयति सः पण्डितः। यः अविशङ्कितः सन् प्रत्यक्षं समक्षं राज्ञः अपि का कथान्येषामिति भावः, दुर्गुणान् दोषान् वक्ति कथयति, कदाचन तान् दुर्गुणान् गुणैः तुल्यान् कृत्वेति शेषः, न प्रस्तौति प्रकटयति न प्रशंसतीत्यर्थः, सः वक्ता। यस्य भार्य्यापुत्रादिकं धनम् अदेयं नैव अस्ति यश्च आत्मानमपि पात्रे दानपात्रे सन्दत्ते ददाति हरिश्चन्द्रवदिति भावः, स दाता उच्यते। येन गुणेन अशङ्कितं यथा तथा कार्य्यं कर्त्तुं क्षमः शक्तो भवति जन इति शेषः, तत् हि तदेव बलम्॥३१८-३२४॥

किङ्करा इव येनान्ये नृपाद्याः स पराक्रमः।
युद्धानुकूलव्यापार उत्थानमिति कीर्त्तितम्॥३२५॥

अन्वयः—येन अन्ये नृपाद्याः किङ्कराः इव सः पराक्रमः, युद्धानुकूलव्यापार उत्थानम् इति कीर्त्तितः॥३२५॥

व्याख्या—येन = पौरुषेण, अन्ये = अपरे, नृपाद्याः = सामन्तादयः, किङ्कराः = दासाः, इव = यथा, भवन्ति, सः = असौ, पराक्रमः = पौरुषम्, सर्वेऽपि राजानः पराक्रान्ताधीना इति। युद्धस्य = सङ्गरस्य, अनुकूलः = सहायकः, व्यापारः = कार्यम्, उत्थानम् = उद्गमनं पौरुषं वेति, कीर्त्तितम् = कथितमिति। 'कीर्त्तितः', पुल्लिङ्गोऽयं शब्दः किञ्चात्र प्रयोगानुसारेण विधेयप्राधान्यान्नपुंसकत्वमिति॥३३५॥

हिन्दी—जिस पौरुष से अन्य राजे क्रीतदास की तरह वशवर्ती हो जाते हैं, वही पराक्रम है। युद्ध के अनुकूल कर्म ही तो पराक्रम कहलाता है॥३३५॥

किङ्करा इति। येन गुणेन अन्ये नृपाद्याः राजप्रभृतयः किङ्करा इव दासा इव क्रियन्ते इति शेषः, सः पराक्रमः सर्वेऽपि पराक्रान्ताधीना इति भावः। युद्धस्य अनुकूलः उपयोगी व्यापारः उद्यम उत्थानमिति कीर्त्तितं विधेयप्राधान्यात् कीर्त्तितमिति नपुंसकत्वम्॥३२५॥

विषदोषभयादन्नं विमृशेत् कपिकुक्कुटैः।
हंसाः स्खलन्ति कूजन्ति भृङ्गा नृत्यन्ति मायूराः॥३२६॥
विरौति कुक्कुटो माद्येत् क्रौञ्चो वै रेचते कपिः।
हृष्टरोमा भवेद् बभ्रुः सारिका वमते तथा॥३२७॥

दृष्ट्वैवं सविषं चान्नं तस्माद् भोज्यं परीक्षयेत्।
भुञ्जीत षड्रसं नित्यं न द्वित्रिरससङ्कुलम्॥ ३२८॥
हीनातिरिक्तं न कटुमधुरक्षारसङ्कुलम्।
आवेदयति यत्कार्य्यं शृणुयान्मन्त्रिभिः सह॥ ३२९॥

अन्वयः—विषदोषभयात् षड्रसम् अन्नं कपिकुक्कुटैः विमृश्य नित्यं भुञ्जीत। यतः सविषम् अन्नं दृष्ट्वैव हंसाः स्खलन्ति, भृङ्गाः कूजन्ति, मायूराः नृत्यन्ति, कुक्कुटः विरौति, क्रौञ्चः माद्येत्, कपिः वै रेचते, बभ्रुः हृष्टरोमाः भवेत् तथा सारिका वमते। तस्मात् भोज्यं परीक्षयेत्। द्वित्रिरससङ्कुलं न भुञ्जीत। हीनातिरिक्तं कटुमधुरक्षारसङ्कुलं न, किञ्च यत्कार्यम् आवेदयति अर्थी मन्त्रिभिः सह शृणुयात्॥ ३२६-३२९॥

व्याख्या—विषदोषभयात्—विषस्य = गरलस्य, दोषः = दुर्गुणम्, तस्मात्भयात् = त्रासात्, षड्रसम्—षट् = मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदाः, रसाः = आस्वादाः, यस्य तादृशम्, अन्नम् = भोज्यपदार्थम्, कपिकुक्कुटैः = वानरताम्रचूडैः, विमृश्य = परीक्ष्य, नित्यम् = प्रतिदिनम्, भुञ्जीत = खादेत। यतः सविषम् = विषाक्तम्, अन्नम् = खाद्यपदार्थम्, दृष्ट्वैव = अवलोक्यैव, हंसाः = मरालाः, स्खलन्ति = पतन्ति, भृङ्गाः = मधुकराः, कूजन्ति = गुञ्जन्ति, मायूराः—मयूरा एव मायूराः = बर्हिणः, नृत्यन्ति = नर्त्तनं कुर्वन्ति, कुक्कुटः = शिखण्डिकः, विरौति = तारस्वरेण चीत्कुर्वन्ति, क्रौञ्चः = कलिकः बकः वा, माद्येत् = मदोन्मत्तो भवेत्, कपिः = वानरः, वै = इति निश्चयेन, रेचते = पुरीषमुत्सृजति, बभ्रुः = भरद्वाजपक्षिविशेषः, हृष्टरोमाः = रोमाञ्चिताः, भवेत् = जायेत, तथा सारिका = पीतपादा, वमते = वमनं करोति। तस्मात् = तेन कारणेन, भोज्यम् = खाद्यपदार्थम्, परीक्षयेत् = विमृशेत्। द्वित्रिरससङ्कुलम् = रसद्वययुक्तं रसत्रययुक्तं वा, न = नहि, भुञ्जीत = भोजनं कुर्यात्। हीनातिरिक्तम् = हीनरसयुक्तं रसवर्जितम्, अतिरिक्तरसयुक्तम् = अधिकरससंवलितम्, अन्नं न भुञ्जीत, वा, कटुमधुरक्षारसङ्कुलम् = कटुमधुरलवणाक्तम्, न भुञ्जीत, तथा यत्कार्यम् = कर्म, आवेदयति = प्रार्थी निवेदयति, तत्कार्यं मन्त्रिभिः = सचिवैः सह, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यादिति॥ ३२६-३२९॥

हिन्दी—भोजन के जहरीले होने की सन्दिग्ध स्थिति में वानर या मुर्गे को देकर पहले उसकी जाँच कर लेनी चाहिए। क्योंकि जहरीले भोजन को देखते ही हंस लड़खड़ाने लगते हैं, भौंरें गुनगुनाने लगते हैं, मोर नाचने लगते हैं, मुर्गे बाँग देने लगते हैं, बगुलें बड़बड़ाने लगते हैं, वानर पेशाब-पाखाना करने लगते हैं, नेवलों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और मेनाएँ वमन करने लगती हैं। अतः भोजन से पूर्व विषाक्त अन्न की परीक्षा कर लेनी चाहिए। दो-तीन आस्वाद वाले, स्वादहीन या अतिस्वादिष्ट, कडुआ या चरपरा, मीठे, खारे या दाहक वाले भोजन नहीं करना चाहिए। प्रार्थी यदि कुछ निवेदन करना चाहे तो सचिवों के साथ उसे अवश्य सुनना चाहिए॥ ३२६-३२९॥

विषदोषेत्यादि। विषदोषभयात् षड्रसं षट् तिक्तकटुकषायाम्ललवणमधुराः रसाः आस्वादाः यस्य तादृशम् अन्नं कपिकुक्कुटैः बहुवचनात् कपिकुक्कुटप्रभृतिभिरित्यर्थः, विमृश्य परीक्ष्य नित्यं भुञ्जीतेति उत्तरेणान्वयः। यतः सविषम् अन्नं दृष्ट्वैव हंसाः स्खलन्ति पतन्ति, भृङ्गाः भ्रमराः कूजन्ति कूजनम् अस्पष्टनिनादं कुर्वन्ति, मायूराः मयूरा एव मायूराः स्वार्थे प्रत्ययः। नृत्यन्ति, कुक्कुटः

विरौति चीत्कारं करोति, क्रौञ्चः बकः माद्येत् मत्ततां गच्छति, कपिः वानरः रेचते पुरीषमुत्सृजति, बभ्रुः भारद्वाजाख्यपक्षिविशेषः हृष्टरोमा रोमाञ्चितदेहः भवेत् तथा सारिका वमते वमनं करोति वैशब्दोऽवधारणे। तस्मात् भोज्यं खाद्यं वस्तु परीक्षयेत् एतैरिति भावः। द्वित्रिरससङ्कुलं रसद्वययुक्तं त्रययुक्तं वा न भुञ्जीत, हीनातिरिक्तं यस्मिन् यादृशो रसः उपयुज्यते ततो हीनरसयुक्तम् अधिकरसयुक्तं वा न भुञ्जीत, तथा कटुमधुरक्षारसङ्कुलं कटुमधुरलवणाक्तं न भुञ्जीत। किञ्च यत् कार्य्यम् आवेदयति अर्थी प्रत्यर्थी वा इति शेषः, तत् मन्त्रिभिः सह शृणुयात् ॥ ३२६-३२९ ॥

आरामादौ प्रकृतिभिः स्त्रीभिश्च नटगायकैः।
विहरेत् सावधानस्तु मागधैरैन्द्रजालिकैः ॥ ३३० ॥

अन्वयः—सावधानः तु आरामादौ प्रकृतिभिः स्त्रीभिः नटगायकैः मागधैः ऐन्द्रजालिकैः विहरेत् ॥ ३३० ॥

व्याख्या—सावधानः = दत्तावधानः सन्, तु इति पादपूर्त्यर्थे, आरामादौ = उद्यानादौ, प्रकृतिभिः = राज्यसञ्चालकप्रधानपुरुषैः, स्त्रीभिः = नारीभिः, नटैः = शैलूषैः, गायकैः = गेष्णैः, मागधैः = चारणैः, ऐन्द्रजालिकैः = मायिकैः, यथावसरमित्यध्याहार्यम्, विहरेत् = विचरेदिति ॥ ३३० ॥

हिन्दी—और अत्यन्त सावधानी के साथ उद्यान में सचिव, सेनापति प्रभृति राज्य के प्रधानपुरुषों, कामिनियों, नर्त्तकों, गवैये, चारणों या जादूगरों के साथ विहार करें ॥ ३३० ॥

आरामादाविति। सावधानः सदावहितः सन् आरामादौ उपवनादिरम्यायतने प्रकृतिभिः प्रधानपुरुषैः, स्त्रीभिः कामिनीभिः, नटै नर्त्तकैः गायकैः मागधैः वैतालिकैः तथा ऐन्द्रजालिकैः आश्चर्य्यप्रदर्शकैर्जनविशेषैः यथासमयमित्यध्याहार्य्यं विहरेत् ॥ ३३० ॥

गजाश्वरथयानं तु प्रातः सायं सदाभ्यसेत्।
व्यूहाभ्यासं सैनिकानां स्वयं शिक्षेच्च शिक्षयेत् ॥ ३३१ ॥

अन्वयः—सदा प्रातः सायं च गजाश्वरथयानम् अभ्यसेत्, तथा सैनिकानां व्यूहाभ्यासं स्वयं शिक्षेत् च शिक्षयेत् ॥ ३३१ ॥

व्याख्या—सदा = नित्यम्, प्रातः = प्रभाते, सायम् = सन्धिकाले, च, गजाश्वरथयानम्—गजेन = हस्तिना, अश्वेन = घोटकेन, रथेन = स्यन्दनेन, यानम् = प्रवहणम्, अभ्यसेत् = नित्यं व्यवहरेत्, तथा सैनिकानाम् = आयुधिकानाम्, व्यूहाभ्यासम् = सैन्यसंरचनानुशीलनम्, स्वयम् = स्वतः एव, शिक्षेत् = अभ्यसेत्, च = पुनः, शिक्षयेत् = अभ्यासं कारयेत् ॥ ३३१ ॥

हिन्दी—राजा प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल हाथी, घोड़े और रथ की सवारी का अभ्यास करे और सेना की व्यूहरचना स्वयं करे तथा उनसे करवाये भी ॥ ३३१ ॥

गजेति। सदा प्रतिदिनं प्रातः प्रातःकाले सायं सायंकाले च गजाश्वरथयानं गजेन अश्वेन रथेन वा यानं गमनम् अभ्यसेत् आचरेत्। तथा सैनिकानां व्यूहाभ्यासं रचनाप्रणालीं, 'व्यूहस्तु बलविन्यासः' इत्यमरः। स्वयं शिक्षेत् शिक्षयेच्च ॥ ३३१ ॥

व्याघ्रादिभिर्वनचरैर्मयूराद्यैश्च पक्षिभिः।
क्रीडयेत् मृगयां कुर्य्याद् दुष्टसत्त्वान्निपातयन् ॥ ३३२ ॥

अन्वयः—वनचरैः व्याघ्रादिभिः मयूराद्यैः पक्षिभिः क्रीडयेत् । तथा दुष्टसत्त्वान् निपातयन् मृगयां कुर्यात् ॥ ३३२ ॥

व्याख्या—वनचरैः = आरण्यकैः, व्याघ्रादिभिः = शार्दूलादिभिः, मयूराद्यैः = कलापिनाद्यैः, पक्षिभिः = अरण्याद्यानीय गृहपालितैः सह, क्रीडयेत् = मनोरञ्जनं कुर्यात्, तथा दुष्टसत्त्वान् = हिंसकजीवान्, निपातयन् = मारयन्, मृगयाम् = आखेटनम्, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ ३३२ ॥

हिन्दी—राजा जंगली बाघ, मोर आदि पक्षियों को पालतू बना कर घर में मनोरञ्जन करे और हिंसक जीवों का शिकार करे ॥ ३३२ ॥

व्याघ्रेति। वनचरैः व्याघ्रादिभिः मयूराद्यैः पक्षिभिश्च वनादानीय गृहपालितैरित्यर्थः, क्रीडयेत् तथा दुष्टसत्त्वान् हिंस्रान् प्राणिनः सिंहशार्दूलादीन् निपातयन् नाशयन् मृगयाम् आखेटं कुर्य्यात् ॥ ३३२ ॥

शौर्य्यं प्रवर्द्धते नित्यं लक्ष्यसन्धानसाधनम् ।
अकातरत्वं शस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता ॥ ३३३ ॥
मृगयायां गुणा एते हिंसादोषो महत्तरः ।
इङ्गितं चेष्टितं यत्नात् प्रजानामधिकारिणाम् ॥ ३३४ ॥
प्रकृतीनाञ्च शत्रूणां सैनिकानां मतञ्च यत् ।
सभ्यानां बान्धवानाञ्च स्त्रीणामन्तःपुरे च यत् ॥ ३३५ ॥
श्रृणुयाद् गूढचारेभ्यो निशि चात्ययिके सदा ।
सावधानमनाः सिद्धशस्त्रास्त्रः संलिखेच्च तत् ॥ ३३६ ॥

अन्वयः—मृगायायां नित्यं शौर्यं लक्ष्यसन्धानसाधनम् अकातरत्वं शस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता प्रवर्द्धते । एते गुणाः परमेकः हिंसादोषः महत्तरः, किञ्च सावधानमनाः सदा निशि सिद्धशस्त्रास्त्रः आत्ययिके च गूढचारेभ्यः प्रजानाम् अधिकारिणां प्रकृतीनां यत् इङ्गितं तथा चेष्टितं शत्रूणां सैनिकानाञ्च यत् सभ्यानां च बान्धवानाम् अन्तःपुरे स्त्रीणां यत् मतं तत् सर्वं यत्नात् शृणुयात् च संलिखेत् ॥ ३३३-३३६ ॥

व्याख्या—मृगयायाम् = आखेटे, नित्यम् = प्रतिदिनम्, शौर्यम् = वीरता, लक्ष्यसन्धानसाधनम्—लक्ष्यस्य = वेध्यस्य, सन्धानम् = चापे बाणयोजनम्, तेषां साधनम् = विधानम्, वेधव्यान्वेषणचातुर्यम्, अकातरत्वम् = निर्भयत्वम्, शस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता—शस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, च = पुनः, शीघ्रपातनकारिता = क्षिप्रगत्या पतनकारित्वम्, प्रवर्द्धते = प्रकर्षेण वृद्धिं गच्छति । एते = पूर्वोक्ताः, गुणाः = शूरत्वादिगुणाः, सहजभावेनोपवर्द्धते, किञ्चास्मिन्कर्मण्येकः हिंसादोषः = जीवहत्याजन्यपापम्, महत्तर = बृहत्तरः, अतोऽस्मिन् कर्मणि निवृत्तिरेवोचितमिति भावः। किञ्च सावधानमनाः = दत्तावधानः सन्, सदा = सर्वदा, निशि = रजन्याम्, तथा सिद्धानि = अतिकुशलानि, शस्त्राणि = प्रहरणानि, अस्त्राणि = आयुधानि, च यस्य तथोक्तः, शस्त्रास्त्रसञ्चालने प्रवीणः सन्, आत्ययिके = सर्वनाशकरे, च = पुनः, गूढचारेभ्यः = गूढपुरुषेभ्यः, प्रजानाम् = जनानाम्, अधिकारिणाम् = उच्चपदस्थराजपुरुषाणाम्, प्रकृतीनाम् = सचिवसेनापत्यादिप्रधानपुरुषाणाम्, यत् इङ्गितम् = सङ्केतः मनोभावो वा, तथा चेष्टितम् = क्रियाकलापः, शत्रूणाम् = रिपूणाम्, च = पुनः, सैनिकानाम् = सैन्यानाम्, मतम् = आशयः, यत्

सभ्यानाम् = सामाजिकानाम्, च = पुनः, बान्धवानाम् = अंशकानाम्, अन्तःपुरे = अवरोधे, स्त्रीणाम् = राजपत्नीनाम्, यन्मतम् = अभिप्रायः, तत्सर्वम् = सकलम्, यत्नात् = सायासेन, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्, तथा संलिखेत् = लिपिबद्धं कुर्यादिति ॥ ३३३-३३६ ॥

हिन्दी—शिकार खेलने से नित्य शौर्य बढता है, कायरता मिटती है, निशाना सधता है तथा हथियार चलाने में कुशलता मिलती है। शिकार में ये समस्त गुण ही गुण हैं, किन्तु इसमें जीवों की हत्या होती हैं, यह सबसे बड़ा पाप है। विपत्काल में सावधान होकर शस्त्रास्त्र-संचालन में निपुणता प्राप्त करें। रात की निश्चिन्तता में गुप्तचरों से सावधान होकर प्रजा और पदाधिकारियों के, संकेत और क्रिया-कलापों से, अमात्य, सेनापति प्रभृति प्रधान राजपुरुषों के, शत्रु, सैनिक और सभासदों के, रनिवास में निवास करने वाली महिलाओं के विचार से अवगत हो तथा लिख ले ॥ ३३३-३३६ ॥

शौर्य्यमित्यादि। मृगयायां सदा शौर्य्यं शूरत्वं निःशङ्कत्वमित्यर्थः, लक्ष्यसन्धानं शरव्यान्वेषणकौशलमित्यर्थः, अकातरत्वम् अश्रान्तत्वं, तथा शस्त्राणाम् अस्त्राणाञ्च शीघ्रपातनकारिता द्रुतपातित्वं प्रवर्द्धते प्रकर्षेण वृद्धिं प्राप्नोति। एते गुणाः शौर्य्यादय इव मृगयायां सन्तीति शेषः, परम् एकः हिंसादोषः हिंसारूपं पापं महत्तरः अतिमहान्, अतः अस्या निवृत्तिरेव महाफलेति भावः। किञ्च सावधानमनाः सतर्कः सन् सदा प्रतिदिनं निशि रात्रौ तथा सिद्धानि शस्त्राणि अस्त्राणि च यस्य तथोक्तः शस्त्रास्त्रव्यापारे सुनिपुणः सन् आत्ययिके आसन्नविपदि च गूढचारेभ्यः गुप्तचरेभ्यः प्रजानाम् अधिकारिणां भृत्यवर्गाणां प्रकृतीनां प्रधानपुरुषाणाञ्च यत् इङ्गितं मनोभावः तथा चेष्टितम् आचरणं यत्, शत्रूणां विपक्षाणां सैनिकानाञ्च मतम् अभिप्रायः यत्, सभ्यानां राजसभासदां बान्धवानाञ्च मतं यत्, तथा अन्तःपुरे स्त्रीणां मतञ्च यत्, तत् सर्वं यत्नात् शृणुयात् संलिखेच्च पत्रारूढञ्च कुर्य्यात् ॥ ३३३-३३६ ॥

असत्यवादिनं गूढचारं नैव च शास्ति यः।
स नृपो म्लेच्छ इत्युक्तः प्रजाप्राणधनापहः ॥ ३३७ ॥

अन्वयः—यः नृपः असत्यवादिनं गूढचारं नैव शास्ति सः प्रजाप्राणधनापहः म्लेच्छः इत्युक्तः ॥ ३३७ ॥

व्याख्या—यः = शास्ता, नृपः = राजा, असत्यवादिनम् = मिथ्याभाषिणम्, गूढचारम् = गुप्तचरम्, नैव = नास्त्येव, शास्ति = दण्डयति, सः = असौ नृपतिः, प्रजाप्राणधनापहम्—प्रजानाम् = जनानाम्, प्राणान् = जीवनानि, धनानि = वित्तानि, च अपहन्ति = अपहरति, यथा स्यात्तथोक्तः, अत एव तादृशः नृपतिः, म्लेच्छः = वर्णाश्रमधर्मविहीनः, इत्युक्तः = कथितः ॥ ३३७ ॥

हिन्दी—जो राजा झूठ बोलने वाले गुप्तचर को दण्ड नहीं देता, वह अपनी प्रजा के प्राण और धन लेने वाला 'म्लेच्छ' कहलाता है ॥ ३३७ ॥

असत्यमिति। यः नृपः असत्यवादिनं मिथ्यावादिनं गूढचारं नैव शास्ति नैव दण्डयति, सः प्रजानां प्राणान् धनानि च अपहन्तीति तथोक्तः, अत एव म्लेच्छः दुर्जातिविशेषः इति उक्तः कथितः। तादृशचारवचनप्रत्ययेन प्रजानां सर्वनाशकरणादिति भावः ॥ ३३७ ॥

वर्णि-तपस्वि-सन्यासि-नीच-सिद्धस्वरूपिणम्।
प्रत्यक्षेण छलेनैव गूढचारं विशोधयेत् ॥ ३३८ ॥

अन्वयः—वर्णितपस्विसन्यासिनीचसिद्धस्वरूपिणं गूढचारं प्रत्यक्षेण छलेन विशोधयेत् ॥३३८ ॥

व्याख्या—वर्णी = ब्रह्मचारी, तपस्वी = यतिः, सन्यासी = परिव्राजकः, नीचसिद्धः = कपटयोगविभूतिज्ञः, तेषां स्वरूपिणम्, सिद्धपुरुषस्य छद्मरूपधारिणम्, गूढचारम् = गुप्तचरम्, प्रत्यक्षेण = दृग्गोचरेण, छलेन = प्रपञ्चेन कौशलेन वा, विशोधयेत् = परीक्षयेदिति ॥ ३३८ ॥

हिन्दी—संन्यासी, तपस्वी, ब्रह्मचारी या छद्मसिद्ध पुरुष के वेशधारी गुप्तचर की जाँच प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजा को स्वयं करनी चाहिए ॥ ३३८ ॥

वर्णीति। वर्णी ब्रह्मचारी, तपस्वी वानप्रस्थः तृतीयाश्रमीत्यर्थः, वा सन्यासी चतुर्थाश्रमी नीचसिद्धः कपटसिद्धपुरुषः तेषां स्वरूपिणं कपटसिद्धपुरुषादिवेशधारिणं गूढचारं प्रत्यक्षवद् दृश्यमानेन छलेन व्याजेन विशोधयेत् कौशलेन तस्मात् अलीकवादं बहिष्कुर्य्यादित्यर्थः। तेषामेव तत्कौशलज्ञानमस्तीति राज्ञा तेषां साहाय्येन गूढचारशुद्धिः कर्त्तव्येति भावः ॥ ३३८ ॥

विना तच्छोधनात् तत्त्वं न जानाति च नाप्यते।
अशोधकनृपान्नैव बिभ्यत्यनृतवादने ॥ ३३९ ॥

अन्वयः—तच्छोधनात् विना राजा तत्त्वं न जानाति, न च आप्यते। अशोधकनृपात् अनृतवादने नैव बिभ्यति ॥ ३३९ ॥

व्याख्या—तत् = तेषाम् गुप्तचराणाम्, शोधनात् = परीक्षणात्, विना = अभावे, राजा = कोऽपि नृपतिः, तत्त्वम् = वस्तुस्थितिम्, न = नहि, जानाति = अवगतो भवति, न च आप्यते = तथ्यं नृपेण प्राप्यते, ते च गुप्तचराः, अशोधकनृपात् = यो हि नृपतिः परीक्षणेन विना गूढचारं जहाति, तस्मात् नृपात् = भूभृतः। अनृतवादने = मिथ्यालापे, नैव = नास्त्येव, बिभ्यति = बिभेति ॥ ३३९ ॥

हिन्दी—गुप्तचरों की जाँच किये बिना जो राजा उसे छोड़ देता है, उसे वास्तविकता का पता नहीं चलता और न तो वह तथ्य से ही अवगत होता है। क्योंकि ऐसे राजा से जासूस डरता नहीं है ॥ ३३९ ॥

विनेति। तच्छोधनात् तेषां गूढचाराणां शोधनात् विना राजा तत्त्वं याथातथ्यं न जानाति न ज्ञातुं शक्नोति, न च तत्त्वम् आप्यते प्राप्यते राज्ञेति शेषः। ते च चाराः अशोधकनृपात् उक्तप्रकारेण यः न शोधयति तस्मान्नृपादित्यर्थः, अनृतवादने असत्यभाषणे नैव बिभ्यति भयं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ३३९ ॥

प्रकृतिभ्योऽधिकृतेभ्यो गूढचारं सुरक्षयेत्।
सदैकनायकं राज्यं कुर्य्यान्न बहुनायकम् ॥ ३४० ॥

अन्वयः—प्रकृतिभ्यः अधिकृतेभ्यः गूढचारं सुरक्षयेत्। राज्यं सदा एकनायकं कुर्यात् न तु बहुनायकम् ॥ ३४० ॥

व्याख्या—प्रकृतिभ्यः = प्रधानराजपुरुषेभ्यः, अधिकृतेभ्यः = राज्यपदाधिकारिभ्यः, गूढचारम् = गुप्तचरम्, सुरक्षयेत् = सुपालयेत्। राज्यम् = शासितप्रदेशम्, सदा = सर्वदा, एकनायकम् = एकाधिपत्यम्, कुर्यात् = विधेयात्, न तु, बहुनायकम् = बहुस्वामिकम्। गुप्तचरः सचिव-सेनापत्यादीनां प्रमुखपदाधिकारिणाञ्च महीपतौ कीदृशी रति-विरती-चास्तीत्यपि रहसि निवेदयति,

स्वभावतस्तेषां तम्प्रति विरोधो जायते, अतस्तस्याहितस्य सम्भावना भवति, तस्मात्तं संरक्षयेत् ॥ ३४० ॥

हिन्दी—सचिव, सेनापति या उच्च पदाधिकारियों से गुप्तचर की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। जनपद का अधिपति किसी एक को ही होना चाहिए, क्योंकि बहुनायकत्व किसी राज्य के लिए लाभकर नहीं होता है ॥ ३४० ॥

प्रकृतिभ्य इति। प्रकृतिभ्यः अधिकृतेभ्यः राजपुरुषेभ्यः गूढचारं सुरक्षयेत्। गूढचारः प्रकृत्यादीनां राजनि अनुरागविरागौ गूढं कथयति तेन ज्ञातेन तेषां गूढचारं प्रति विद्वेषो जायते अतस्तस्यानिष्टसम्भवः तस्मात् तं सुरक्षयेत् यथा ते तं प्रति नानिष्टमाचरन्तीति फलितार्थः। किञ्च राज्यं सदा एकनायकम् एकस्वामिकं कुर्य्यात् बहुस्वामिकं न, तथात्वे राज्यस्य अस्थायित्वप्रसङ्गादिति भावः ॥ ३४० ॥

नानायकं क्वचिदपि कर्त्तुमीहेत भूमिपः।
राजकुले तु बहवः पुरुषाः यदि सन्ति हि ॥ ३४१ ॥
तेषु ज्येष्ठो भवेद्राजा शेषास्तत्कार्य्यसाधकाः।
गरीयांसो वराः सर्वसहायेभ्योऽभिवृद्धये ॥ ३४२ ॥

अन्वयः—भूमिपः क्वचिदपि अनायकं कर्तुं न ईहेत। यदि राजकुले बहवः पुरुषाः हि सन्ति तेषु ज्येष्ठः राजा भवेत्, शेषाः तत्कार्यसाधकाः भवेत्। सर्वसहायकेभ्यः गरीयांसः वराः अभिवृद्धये ॥ ३४१-३४२ ॥

व्याख्या—भूमिपः = भूपालः, क्वचिदपि = कुत्राऽपि, अनायकम् = नृपतिविहीनं राज्यम्, कर्तुम् = विधातुम्, न = नहि, ईहेत = अभिलषेत्। यदि = चेत्, राजकुले = राजवंशे, बहवः = अनेकाः, पुरुषाः = जनाः, हि = यतः, सन्ति = वर्त्तन्ते, तदा तेषु = अनेकेषु, ज्येष्ठः = अग्रजः, राजा = शास्ता, भवेत् = स्यात्, शेषाः = अवशिष्टाः, तस्याग्रजन्मनः, कार्यसाधकाः = कृत्यसिद्धिकराः, भवेत् = स्यात्। सर्वसहायेभ्यः = सकलसहायकेभ्यः, गरीयांसः = अपेक्षाकृतमहत्त्वपूर्णाः, वराः = उत्तमाश्च, अतः अभिवृद्धये = मनोरथसिद्धये भवति ॥ ३४१-३४२ ॥

हिन्दी—राजा कभी भी बिना राजा के राज्य को रखने की अभिलाषा न करे। यदि किसी राजकुल में एक से अधिक उत्तराधिकारी हों तो उनमें जो सबसे बड़ा हो राजगद्दी का वही अधिकारी है, शेष उसके सहकारी होंगे। क्योंकि राज्य की समृद्धि के लिए सहायकों की अपेक्षा ज्येष्ठ ही श्रेयस्कर होते हैं ॥ ३४१-३४२ ॥

नेति। तेष्विति। भूमिपः राजा क्वचिदपि अनायकम् अस्वामिकं राज्यमिति शेषः, कर्त्तुं न ईहेत चेष्टेत। यदि राजकुले बहवः पुरुषाः सन्ति विद्यन्ते, हिशब्दः अवधारणे। तेषु बहुषु ज्येष्ठः वयसा गुणेन चेति भावः, राजा भवेत्, शेषाः अवशिष्टाः तस्य ज्येष्ठस्य कार्यसाधकाः सर्वसहायेभ्यः सर्वेभ्यः सहकारिभ्यः गरीयांसः वराः श्रेष्ठाश्च, अतः अभिवृद्धये अभ्युदयाय भवन्ति ॥ ३४१-३४२ ॥

ज्येष्ठोऽपि बधिरः कुष्ठी मूकोऽन्धः षण्ड एव यः।
स राज्यार्हो भवन्नैव भ्राता तत्पुत्र एव हि ॥ ३४३ ॥

अन्वयः—ज्येष्ठोऽपि यः बधिरः, कुष्ठी, मूकः, अन्धः, षण्डः; सः तत् भ्राता तत्पुत्रः एक हि नैव राज्यार्हः भवेत् ॥ ३४३ ॥

व्याख्या—ज्येष्ठोऽपि = अग्रजोऽपि, यः = यो हि, बधिरः = श्रवणेन्द्रियविहीनः, कुष्ठी = शिवत्री, मूकः = वाणीहीनः, अन्धः = नेत्रहीनः, षण्डः = क्लीबः, सः = असौ, तथा भ्राता = अन्यसोदरः, राज्ञ इति शेषः। तत् = तस्य, पुत्रः = सुतो वा, नैव = नास्त्येव, राज्यार्हः = सिंहासनारोढुं शक्तो भवेत् ॥ ३४३ ॥

हिन्दी—राज्य का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र यदि बहरा, गूँगा, अंधा, कोढी या हिजड़ा हो तो वह राज्य पाने का अधिकारी नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसका छोटा भाई या उसका बेटा अथवा उसके भाई का बेटा गद्दी का हकदार होता है ॥ ३४३ ॥

ज्येष्ठ इति। ज्येष्ठोऽपि अपिकारात् मध्यमादयो दण्डापूपन्यायसिद्धा वेदितव्याः। यः बधिरः श्रवणेन्द्रियहीनः, कुष्ठी महाव्याधिग्रस्तः, मूकः वर्णानुच्चारकः अन्धः, चक्षुर्द्वयहीनः, तथा षण्डः क्लीबः, सः तथा भ्राता राज्ञ इति शेषः, तत्पुत्रः तस्य भ्रातुः पुत्रो वा बधिरादिश्चेत् नैव राज्यार्हः राज्याधिकारी नैव भवेदित्यन्वयः ॥ ३४३ ॥

स्वकनिष्ठोऽपि ज्येष्ठस्य भ्रातुः पुत्रस्तु राज्यभाक्।
यथाग्रजस्य चाभावे कनिष्ठा राज्यभागिनः।
दायादानामैकमत्यं राज्ञः श्रेयस्करं परम् ॥ ३४४ ॥

अन्वयः—स्वकनिष्ठोऽपि ज्येष्ठस्य भ्रातुः पुत्रः तु राज्यभाक्। यथा अग्रजस्य च अभावे कनिष्ठाः राज्यभागिनः किञ्च दायादानाम् ऐकमत्यं राज्ञः परं श्रेयस्करम् ॥ ३४४ ॥

व्याख्या—स्वकनिष्ठोऽपि—स्वस्य = नृपात्मनः, कनिष्ठोऽपि = लघिष्ठोऽपि, तथा ज्येष्ठस्य = राज्ञोऽग्रजस्य, भ्रातुः = सोदरस्य, पुत्रः = सुतः, तु = अथवा, पुत्रः = अपत्यः, यदि पूर्वपरिगणितदोषरहितश्चेत्तदा, राज्यभाक् = सिंहासनाधिकारी भवेत्। यथा = उदाहरणस्वरूपेण, अग्रजस्य = ज्येष्ठस्य, च = इति पादपूर्त्यर्थे, अभावे = अविद्यमानतायाम्, कनिष्ठाः = अल्पिष्ठाः, अनुजाः राज्यभागिनो भवन्ति, किञ्च = अपि च, दायादानाम् = गोत्रजानाम्, ऐकमत्यम् = मतैक्यम्, राज्ञः = नृपस्य, परम् = अत्यधिकम्, श्रेयस्करम् = कल्याणकारकम्भवति ॥ ३४४ ॥

हिन्दी—राज्य के उत्तराधिकारी के अयोग्य होने पर उसका छोटा भाई अथवा उसका पुत्र या उसके भाई का पुत्र राज्य का उत्तराधिकागी होता है। जैसे बड़े पुत्र के अभाव में छोटे पुत्र राज्य के उत्तराधिकारी होते हैं। दायाद यदि राजा के साथ एकमत होकर राज्य का कार्य संचालित करें तो निश्चय ही राज्य का कल्याण हो जाय ॥ ३४४ ॥

स्वकनिष्ठ इति। स्वस्य राज्ञः कनिष्ठोऽपि तथा ज्येष्ठस्य भ्रातुः पुत्रस्तु पुत्रो वा तुशब्दो विकल्पवाची, उक्तदोषरहितश्चेत् राज्यभाक्। यथाहि अग्रजस्य ज्येष्ठस्य च अभावे कनिष्ठाः राज्यभागिनः, किञ्च दायादानां भ्रातृप्रभृतीनाम् ऐकमत्यम् एकमतावलम्बनं राज्ञः परम् अत्यन्तं श्रेयस्करं शुभावहम् अन्यथा राज्यहानिप्रसङ्गादिति भावः ॥ ३४४ ॥

पृथग्भावो विनाशाय राज्यस्य च कुलस्य च।
अतः स्वभोगसदृशान् दायादान् कारयेन्नृपः।
अध्यासिताः स्वतुल्येन् छत्रसिंहासनैरपि ॥ ३४५ ॥

अन्वयः—पृथग्भावः राज्यस्य च कुलस्य विनाशाय, अतः नृपः अव्याहताज्ञः छत्रसिंहासनैरपि सन्तुष्येत्। दायादान् स्वभोगसदृशान् कारयेत् ॥ ३४५ ॥

व्याख्या—पृथग्भावः = वंशजानां वैभिन्न्यम्, राज्यस्य = जनपदस्य, च = पुनः, कुलस्य = अन्वयस्य, विनाशाय = विध्वंसाय भवति, अतः = अस्मात्कारणात्, नृपः = राजा, अव्याहताज्ञः = अप्रतिरुद्धनिदेशः सन्, छत्रसिंहासनैरपि = राज्यशासनाधिकारैरपि, एव, सन्तुष्येत् = सन्तोषं कुर्यात्। तथा दायादान् = स्वकीयवंशधरान्, स्वभोगसदृशान् = समानभोगिनः, कारयेत् = ददीत, अर्थात् तेऽपि राजसुखमनुभूय सन्तुष्टास्तिष्ठेयुरिति ॥ ३४५ ॥

हिन्दी— इनके परस्पर विरुद्ध रहने पर राज्य और कुल दानों का विनाश होता है। अतः राजा अपने दायादों के लिए राजसी ठाट-बाट से रहने का प्रबन्ध कर स्वयं अबाधित आज्ञावाले केवल छत्रसिंहासन से ही संतुष्ट रहे ॥ ३४५ ॥

पृथगिति। पृथग्भावः दायादानामनैक्यं राज्यस्य कुलस्य वंशस्य विनाशाय भवति च, अतः अस्मात् करणात् नृपः अव्याहताज्ञः अप्रतिहतादेशः सन् छत्रसिंहासनैरपि राज्यशासनाधिकारैरेव सन्तुष्येत् दायादान् भ्रात्रादीन् स्वभोगसदृशान् समानभोगिनः कारयेत् तथात्वे सर्व एव सन्तुष्टास्तिष्ठेयुरिति भावः ॥ ३४५ ॥

राज्यविभजनाच्छ्रेयो न भूपानां भवेत् खलु।
अल्पीकृतं विभागेन राज्यं शत्रुर्जिघृक्षति ॥ ३४६ ॥

अन्वयः—राज्यविभजनात् भूपानां श्रेयः खलु न भवेत्, यतः विभागेन अल्पीकृतं राज्यं शत्रुः जिघृक्षति ॥ ३४६ ॥

व्याख्या—राज्यस्य = जनपदस्य, विभजनात् = वण्टनात्, भूपानाम् = नरपतीनाम्, श्रेयः = कल्याणम्, खलु = निश्चयेन, न = नहि, भवेत् = स्यात्, यतः, विभागेन = विभजनेन, अल्पीकृतम् = स्वल्पीभूतम्, राज्यम् = आधिपत्यम्, शत्रुः = सपत्नः, जिघृक्षति = ग्रहीतुमिच्छति। अर्थात् सपत्नः विखण्डितराज्यं स्वायत्तीकर्त्तुं वाञ्छतीति ॥ ३४६ ॥

हिन्दी—राज्य के विभाजन से निश्चय ही राजा का कल्याण नहीं होता। क्योंकि विखण्डित या छोटे राज्य को शत्रु आसानी से अधिकृत करना चाहता है ॥ ३४६ ॥

राज्यविभागे दोषमाह—**राज्येति**। राज्यस्य विभजनात् विभागकरणात् भूपानां राज्ञां श्रेयः शुभं न खलु नैव भवेत्, खलुशब्दोऽवधारणे। यतः विभागेन अल्पीकृतं खण्डीकृतं क्षुद्रमित्यर्थः, राज्यं शत्रुः जिघृक्षति ग्रहीतुमिच्छति, अल्पस्य अनायासेनैव जेतुं शक्यत्वादिति भावः ॥ ३४६ ॥

राज्यतुर्य्यांशदानेन स्थापयेत् तान् समन्ततः।
चतुर्दिक्ष्वथवा देशाधिपान् कुर्य्यात् सदा नृपः ॥ ३४७ ॥
गोगजाश्वोष्ट्रकोशानामाधिपत्ये नियोजयेत्।
माता मातृसमा या च सा नियोज्या महानसे ॥ ३४८ ॥

अन्वयः—नृपः तान् राज्यतुर्यांशदानेन समन्ततः स्थापयेत्, अथवा चतुर्दिक्षु सदा देशाधिपान् कुर्यात्। किं गोगजाश्वोष्ट्रकोशानाम् आधिपत्ये नियोजयेत्, किञ्च माता या च मातृसमा सा च महानसे नियोज्या ॥ ३४७-३४८ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, तान् = वंशजान्, राज्यस्य = प्रशासितभूखण्डस्य, तुर्यांशदानेन = चतुर्थभागप्रदानेन, समन्ततः = सर्वतः, स्थापयेत् = संस्थापयेत्, अथवा = वा, चतुर्दिक्षु = परितः, सदा = सर्वदा, देशाधिपान् = विखण्डितराज्याधिपतीन्, कुर्यात् = विदध्यात्, किंवा, गवाम् = धेनूनाम्, गजादीनाम् = कुञ्जरप्रभृतीनाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, उष्ट्राणाम् = धूसराणाम्, कोशानाम् = आकराणाम्, आधिपत्ये = स्वामित्वे, नियोजयेत् = नियुक्तान्कुर्यात्, किञ्च माता = जनयित्री, तथा या = नारी, मातृसमा = जननीतुल्या, सा = नारी, महानसे = भोजनालये, नियोज्या = स्थाप्या ॥ ३४७-३४८ ॥

हिन्दी—राजा अपने राज्य की चौथाई देकर उन दायादों को चारों दिशाओं में राज्य के चारों ओर सदा प्रतिष्ठापित करे, अथवा उन्हें उन जनपदों का राज्यपाल नियुक्त करे, अथवा गाय, हाथी, घोडा, ऊँट या खजाने का अधिपति पद पर नियुक्त करे। माता या माँ की तरह पूज्य महिला को भोजनालय का भार सौंपे ॥ ३४७-३४८ ॥

राज्येति। गो इति। नृपः तान् दायादान् राज्यस्य तुर्य्यांशदानेन चतुर्थांशप्रदानेन समन्ततः चतुर्दिक्षु स्थापयेत्, अथवा चतुर्दिक्षु सदा देशाधिपान् खण्डजनपदाधिपतीन् कुर्य्यात्, किंवा गवां गजादीनाम् अश्वानाम् उष्ट्राणां कोशानां धनानाञ्च आधिपत्ये अधिकारकर्म्मणि नियोजयेत् नियुक्तान् कुर्य्यात्। किञ्च माता जननी तथा या मातृसमा जननीतुल्या सा महानसे पाकक्रियाकर्तृत्वे इत्यर्थः, नियोज्या स्थाप्या, आहारदानेन शरीरपुष्टौ मातुर्यत्नातिशयादिति भावः ॥ ३४७-३४८ ॥

सेनाधिकारे संयोज्या बान्धवाः श्यालकाः सदा।
स्वदोषदर्शकाः कार्य्या गुरवः सुहृदश्च ये ॥ ३४९ ॥

अन्वयः—बान्धवाः श्यालकाः सदा सेनाधिकारे संयोज्याः। ये च गुरवः सुहृदः ते स्वदोषदर्शकाः कार्य्याः ॥ ३४९ ॥

व्याख्या—बान्धवाः = दायादाः, श्यालकाः = आत्मवीराः, सदा = सततम्, सेनाधिकारे = सैन्यस्वामित्वे, संयोज्याः = संस्थाप्याः, ये च गुरवः = बलविद्यादिषु स्वतोऽधिकाः, सुहृदः = मित्रवर्गः, ते, स्वदोषदर्शकाः—स्वस्य = आत्मनः, दोषदर्शकाः = दुर्गुणप्रेक्षकाः, कार्याः = स्थाप्याः ॥ ३४९ ॥

हिन्दी—अपने दायादों तथा सालों को सेना का पदाधिकारी बनाये। गुरुजनों एवं मित्रों को अपने दुर्गुणों का पर्यवेक्षक बनाये ॥ ३४९ ॥

सेनेति। बान्धवाः बन्धुवर्गाः श्यालकाः पत्नीभ्रातरश्च सदा सेनाधिकारे सैन्यकर्म्मणि संयोज्याः स्थाप्याः। ये च गुरवः गुरुजनाः सुहृदश्च ते स्वस्य आत्मनः राज्ञ इत्यर्थः, दोषदर्शकाः कार्य्याः, दोशदर्शनकर्म्मणि कस्मिन् कर्म्मणि दोषः किं कर्त्तव्यं किमकर्त्तव्यमित्युपदेशकार्य्ये स्थाप्या इत्यर्थः ॥ ३४९ ॥

वस्त्रालङ्कारपात्राणां स्त्रियो योज्याः सुदर्शने।
स्वयं सर्वन्तु विमृशेत् पर्य्यायेण च मुद्रयेत् ॥ ३५० ॥

अन्वयः—स्त्रियः वस्त्रालङ्कारपात्राणां सुदर्शने योज्याः। स्वयं तु सर्वं विमृशेत् च पर्यायेण मुद्रयेत् ॥ ३५० ॥

व्याख्या—स्त्रियः = नार्यः, वस्त्रालङ्कारपात्राणाम्—वस्त्राणाम् = वसनानाम्, अलङ्काराणाम् =

आभूषणानाम्, पात्राणाम् = भाजनानाम्, सुदर्शने = सुष्ठुरीत्या निरीक्षणकर्मणि, योज्याः = नियोजनं कुर्यात्। तु = पुनः, स्वयम् = आत्मनः, सर्वम् = सकलम्, विमृशेत् = विवेचनं कुर्यात्, केन पदाधिकारिणा किं क्रियतेऽस्य पर्यवेक्षणं कुर्यात्, च = पुनः, पर्यायेण = आनुपूर्व्येण, क्रमशः, मुद्रयेत् = मुद्राङ्कितं कुर्यात् ॥ ३५० ॥

हिन्दी—कपड़े-लत्ते, जेवर-गहने, बरतन-बासन की देखभाल के लिए महिलाओं को नियुक्त करे। फिर सभी कामों का पर्यवेक्षण बारी-बारी से स्वयं कर उस पर निरीक्षण की मुहर लगा दे ॥ ३५० ॥

वस्त्रेति। स्त्रियः स्त्रीवर्गः वस्त्राणाम् अलङ्काराणां पात्राणां भाजनद्रव्याणाञ्च सुदर्शने सुपरीक्षणे तत्त्वावधाने च योज्याः स्थापनीयाः। स्वयं सर्वं विमृशेत् केन किं क्रियते न वेति परिदर्शनं कुर्य्यात् पर्य्यायेण क्रमेण मुद्रयेत् सर्वं परिदृष्टं राजनामाङ्कितं कुर्य्यादित्यर्थः ॥ ३५० ॥

अन्तर्वेश्मनि रात्रौ वा दिवारण्ये विशोधिते।
मन्त्रयेन्मन्त्रिभिः सार्द्धं भाविकृत्यन्तु निर्जने ॥ ३५१ ॥

अन्वयः—रात्रौ वा दिवा विशोधिते निर्जने अन्तर्वेश्मनि वा अरण्ये मन्त्रिभिः सार्द्धं भाविकृत्यं तु मन्त्रयेत् ॥ ३५१ ॥

व्याख्या—रात्रौ = निशायाम्, वा = अथवा, दिवा = दिने, विशोधिते = परिमार्जिते, निर्जने = जनशून्ये, अन्तर्वेश्मनि = राजभवनाभ्यन्तरे, वा = अथवा, अरण्ये = वने, मन्त्रिभिः = सचिवैः, सार्द्धम् = सह, भावि = आगामिन्, कृत्यम् = कार्यम्, तु मन्त्रयेत् = विचारयेत् ॥ ३५१ ॥

हिन्दी—रात के समय भलीभाँति देखकर राजभवन के भीतर और दिन में जनशून्य जंगल में आगे होने वाले काम के बारे में मन्त्रियों के साथ विचार करे ॥ ३५१ ॥

अन्तरिति। रात्रौ दिवा दिवसे वा विशोधिते परिष्कृते निर्जने अन्तर्वेश्मनि गृहाभ्यन्तरे वा अरण्ये मन्त्रिभिः सार्द्धं भावि भविष्यत् कृत्यं मन्त्रयेत् ॥ ३५१ ॥

सुहृद्भिर्भ्रातृभिः सार्द्धं सभायां पुत्रबान्धवैः।
राजकृत्यं सेनपैश्च सभ्याद्यैश्चिन्तयेत् सदा ॥ ३५२ ॥

अन्वयः—सभायां सुहृद्भिः भ्रातृभिः पुत्रबान्धवैः सेनपैः च सभ्याद्यैः सदा राजकृत्यं चिन्तयेत् ॥ ३५२ ॥

व्याख्या—यत्तु प्रकाश्यविषयमस्ति तत्, सभायाम् = परिषदि, सुहृद्भिः = मित्रैः, भ्रातृभिः = सोदरैः, पुत्रैः = तनयैः, बान्धवैः = गोत्रजैः, सेनपैः = सेनापतिभिः, च = पुनः, सभ्याद्यैः = सभासदादिभिः, सदा = निरन्तरम्, राजकृत्यम् = राजकीयकर्म, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ ३५२ ॥

हिन्दी—राजा राजसभा में अपने मित्र, भाई, बेटे, बन्धु-बान्धव, सेनापति एवं सभासदों के साथ मिलकर राजकाज पर विचार-विमर्श करे ॥ ३५२ ॥

सुहृद्भिरिति। सभायां सुहृद्भिः मित्रैः भ्रातृभिः पुत्रबान्धवैः पुत्रैः बान्धवैः ज्ञातिभिः सेनपैः सेनाध्यक्षैः सभ्याद्यैश्च सदा राजकृत्यं चिन्तयेत् एतत् प्रकाश्यविषयमिति बोध्यम् ॥ ३५२ ॥

सभायां प्रत्यगर्द्धस्य मध्ये राजासनं स्मृतम्।
दक्षसंस्था वामसंस्था विशेयुः पार्श्वकोष्ठगाः ॥ ३५३ ॥

अन्वयः—सभायां प्रत्यगर्द्धस्य मध्ये राजासनं स्मृतम्। दक्षसंस्थाः वामसंस्थाः विशेयुः पार्श्वकोष्ठगाः भवेयुरिति ॥ ३५३ ॥

व्याख्या—सभायाम् = संसद्भवने, प्रत्यगर्द्धस्य = प्रतीच्यर्द्धांशस्य, मध्ये = अभ्यन्तरे, राजासनम् = राजसिंहासनम्, स्मृतम् = कथितम्, संसदि पश्चिमाशायां नृपतिसिंहासनं स्थाप्यम्। तस्य राजसिंहासनस्य, दक्षसंस्थाः = दक्षिणस्यां दिशि स्थिताः इति केचिद्वदन्ति, केचिच्च वामसंस्थाः = दक्षिणस्येतरस्यां दिशि स्थिताः सन्तः, विशेयुः = उपविशेयुरिति। अन्ये तु तस्य राजसिंहासनस्य, पार्श्वयोः = समीपयोरुभयोः, कोष्ठयोः = विभागयोः, गच्छन्ति = तिष्ठन्तीति भवेयुरिति भावः ॥ ३५३ ॥

हिन्दी—राजसभा में पश्चिम की ओर बीचोबीच राजसिंहासन होना चाहिए। राजसिंहासन के दोनों ओर बाँये-दाँये अन्य सम्भ्रान्त पार्षदों के बैठने की जगह होनी चाहिए ॥ ३५३ ॥

सभायामिति। सभायां प्रत्यगर्द्धस्य पश्चिमार्द्धभागस्य मध्ये राजासनं सिंहासनं स्मृतं कथितं स्थाप्यत्वेनेति भावः। तस्य दक्षसंस्थाः दक्षिणभागस्थाः केचिदिति शेषः, केचिच्च वामसंस्थाः वामांशस्थिताः सन्तः उपविशेयुरित्यर्थः। अपरे तस्य पार्श्वयोः कोष्ठयोः विभागयोः गच्छन्ति तिष्ठन्तीति तथोक्ताः भवेयुरिति शेषः ॥ ३५३ ॥

पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्च भागिनेयाः स्वपृष्ठतः।
दौहित्रा दक्षभागात् तु वामसंस्था क्रमादिमे ॥ ३५४ ॥
पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः सभ्याः सेनाधिपास्तथा।
स्वाग्रे दक्षिणभागे तु प्राक्संस्थाः पृथगासनाः ॥ ३५५ ॥
मातामहकुलश्रेष्ठा मन्त्रिणो बान्धवास्तथा।
श्वशुराश्चैव श्यालाश्च वामाग्रे चाधिकारिणः ॥ ३५६ ॥

अन्वयः—पुत्राः पौत्राः भ्रातरः तथा भागिनेयाः स्वपृष्ठतः; दौहित्राः दक्षभागात्; तु इमे पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः सभ्याः तथा सेनाधिपाः क्रमात् वामसंस्था तथा स्वाग्रे दक्षिणभागे; तु मातामहकुलश्रेष्ठाः मन्त्रिणः बान्धवाः श्वसुराः श्यालाश्च प्राक्संस्थाः पृथगासनाः वामाग्रे च अधिकारिणः विशेयुरिति ॥ ३५४-३५६ ॥

व्याख्या—पुत्राः = सुताः, पौत्राः = पुत्रतनयाः, भ्रातरः = सोदराः, तथा = एवम्, भागिनेयाः = स्वस्रेयः, स्वपृष्ठतः—स्वस्य = आत्मनः नृपस्य, पृष्ठतः = पश्चिमाङ्गे, तथा = तेनैव प्रकारेण, दौहित्राः = दुहितृपुत्राः, दक्षभागात् = राजसिंहासनात् दक्षिणस्यां दिशि विशेयुरिति। इमे = एते, पितृव्याः = पितृसोदराः, स्वकुलश्रेष्ठाः = निजवंशवरेण्याः, सभ्याः = सभासदः, तथा सेनाधिपाः = सेनानायकाः, क्रमात् = अनुक्रमेण, वामसंस्थाः = राज्ञः वामभागे विशेयुः। तथा = पुनः, स्वाग्रे = नृपतिसमक्षम्, दक्षिणभागे = दक्षिणस्यां दिशि, तु = पुनः, मातामहकुलश्रेष्ठाः = मातुर्जनकान्वयमहत्तराः, मन्त्रिणः = सचिवाः, बान्धवाः = बन्धुजनाः, श्वशुराः = जायाजनकादयः, श्यालकाः = पत्नीभ्रातरः, प्राक्संस्थाः = पूर्वाभिमुखाः, पृथगासनाः = विशिष्टोपवेशनस्थाः सन्तः विशेयुरिति। तथा वामाग्रे = वामभागे, अधिकारिणः = पदाधिकारिवर्गः, तिष्ठेयुरिति ॥ ३५४-३५६ ॥

हिन्दी—राजसिंहासन के पीछे बेटे, पोते, भाई, भानजे बैठें तथा दाँई ओर नाती बैठें। इसी तरह ये चाचे, अपने खानदान के आदरणीय जन, सभासद तथा सेनापति क्रमशः बाँई ओर बैठें।

फिर राजा के सामने दाँई ओर ननिहाल के श्रेष्ठ पुरुष बैठें। मंत्री, बन्धु-बान्धव, ससुर-साले अलग-अलग आसनों पर विराजें तथा सामने बाँई ओर राजपदाधिकारीगण बैठें ॥ ३५३-३५६ ॥

पुत्रा इत्यादि। पुत्राः पौत्राः भ्रातरः तथा भागिनेयाः स्वस्य राज्ञः पृष्ठतः पश्चाद्भागे इत्यर्थः, तथा दौहित्राः दुहितृसुताः दक्षभागात् दक्षिणभागमाश्रित्येत्यर्थः, यवर्थे पञ्चमी। विशेयुरित्यनेनान्वयः। इमे वक्ष्यमाणाः पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः निजकुलमहत्तराः सभ्याः सभासदः तथा सेनाधिपाः क्रमात् वामसंस्थाः विशेयुरित्यनेनान्वयः। तथा स्वाग्रे राजाग्रे नृपसमक्षमित्यर्थः, दक्षिणभागे तु मातामहकुलश्रेष्ठाः राज्ञ इति शेषः, मन्त्रिणः बान्धवाः, श्वशुराः श्यालकाश्च प्राक्संस्थाः पूर्वाभिमुखाः पृथगासनाः विभिन्नासनस्थाः सन्तः विशेयुरित्यनेनान्वयः। वामाग्रे च वामांशे च अधिकारिणः राजकर्म्मचारिणः निवसेयुरिति शेषः॥ ३५४-३५६ ॥

वामदक्षिणपार्श्वस्थौ जामाता भगिनीपतिः।
स्वसदृशः समीपे वा स्वार्द्धासनगतः सुहृत्॥ ३५७ ॥

अन्वयः—जामाता भगिनीपतिः वामदक्षिणपार्श्वस्थौ स्वसदृशः सुहृत् समीपे वा स्वार्द्धासनगतः॥ ३५७ ॥

व्याख्या—जामाता = पुत्रीपतिः, च = पुनः, भगिनीपतिः = आवुत्तः, वामदक्षिणपार्श्वस्थौ = क्रमशः जामाता दक्षिणेतरस्यां दिशि भगिनीपतिश्च दक्षिणस्यां दिशि, स्व-स्वासने विशेताम्। स्वसदृशः = निजतुल्यः, सुहृत् = मित्रम्, समीपे = पार्श्वे, वा = अथवा, स्वस्य = आत्मनः, अर्द्धासनगतः = आसनस्यार्द्धभागे विशेदिति॥ ३५७ ॥

हिन्दी—बाँई ओर जमाई तथा दाँई ओर बहनोई को बैठाये एवं मित्र को अपने पास या अपने आसन के आधे हिस्से में बैठाये॥ ३५७ ॥

वामेति। जामाता भगिनीपतिश्च वामदक्षिणपार्श्वस्थौ क्रमेण विशेतामिति शेषः। स्वसदृशः आत्मसमः सुहृद् समीपे वा स्वस्य अर्द्धासनगतः वा विशेदित्यर्थः॥ ३५७ ॥

दौहित्रभागिनेयानां स्थाने स्युर्दत्तकादयः।
भागिनेयाश्च दौहित्राः पुत्रादिस्थानसंश्रिताः॥ २५८ ॥

अन्वयः—दत्तकादयः दौहित्रभागिनेयानां स्थाने स्युः, तथा भागिनेयाः च दौहित्राः पुत्रादिस्थानसंश्रिताः॥ ३५८ ॥

व्याख्या—दत्तकादयः = कृतकादयः पुत्राः, दौहित्रभागिनेयानाम् = दुहितापुत्र-भगिनीपुत्रादीनाम्, स्थाने = पदे, स्युः = भवेयुः, तथा भागिनेयाः = भगिनीसुताः, च = पुनः, दौहित्राः = दुहितृसुताः, पुत्रादीनाम् = सुतादीनाम्, स्थानेषु = आसनेषु, संश्रिताः = समाश्रिताः भवेयुः॥ ३५८ ॥

हिन्दी—नाती-भाँजे की जगह गोद लिये हुए लड़के बैठें। नाती और भाँजे बेटों की जगह बैठें॥ ३५८ ॥

दौहित्रेति। दत्तकादयः पुत्राः दौहित्रभागिनेयानां स्थाने स्युः भवेयुः। तथा भागिनेयाः दौहित्राश्च पुत्रादीनां स्थानसंश्रिताः स्थानस्थाः स्थानेषु तिष्ठेयुरित्यर्थः॥ ३५८ ॥

यथा पिता तथाचार्य्यः समश्रेष्ठासने स्थितः।
पार्श्वयोरग्रतः सर्वे लेखका मन्त्रिपृष्ठगाः॥ ३५९ ॥

अन्वयः—यथा पिता तथा आचार्यः पार्श्वयोः अग्रतः समश्रेष्ठासने स्थितः भवेदिति लेखकाः सर्वे मन्त्रिपृष्ठगाः ॥ ३५९ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, पिता = जनकः, तथा = एवम्, आचार्यः = गुरुः, पार्श्वयोः = उभयोः पार्श्वयोः, अग्रतः = अग्रभागे, समश्रेष्ठासने—समे = राजसिंहासनतुल्ये, वा श्रेष्ठे = तदप्युत्कृष्टे, आसने = उपवेशने, स्थितः = समासीनो भवेदिति, लेखकः = ग्रन्थरचयिता, सर्वे = सकलाः, मन्त्रिपृष्ठगाः—मन्त्रिणाम् = सचिवानाम्, पृष्ठगाः = पृष्ठदेशे उपविशेयुरिति ॥ ३५९ ॥

हिन्दी—पिता एवं गुरु को अपने समान या उससे भी श्रेष्ठ आसन पर बैठाना चाहिए। लेखकों को मन्त्रिगणों के पीछे बैठना चाहिए ॥ ३५९ ॥

यथेति। यथा पिता तथा आचार्य्यः वेदाध्यापकः गुरुः शिक्षागुरुर्वा पार्श्वयोः अग्रतः पार्श्वद्वयाग्रभागे समश्रेष्ठासने समे राजासनस्य समाने वा श्रेष्ठे आसने स्थितः भवेदिति शेषः। लेखकाः सर्वे मन्त्रिपृष्ठगाः मन्त्रिणां पश्चाद्भागेषु तिष्ठेयुरित्यर्थः ॥ ३५९ ॥

परिचारगणाः सर्वे सर्वेभ्यः पृष्ठसंस्थिताः।
स्वर्णदण्डधरौ पार्श्वे प्रवेशनतिबोधकौ ॥ ३६० ॥

अन्वयः—परिचारगणाः सर्वे सर्वेभ्यः पृष्ठसंस्थिताः पार्श्वे प्रवेशनतिबोधकौ स्वर्णदण्डधरौ तिष्ठेताम् ॥ ३६० ॥

व्याख्या—परिचारगणाः = सेवकवर्गाः, सर्वे = सकलाः, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, पृष्ठसंस्थिताः = पृष्ठभागेषूपविशेयुः, पार्श्वे = समीपभागे, प्रवेशनतिबोधकौ—प्रवेशम् = अन्तर्गमनम्, च = पुनः, नतिम् = प्रणतिम्, बोधकौ = ज्ञापकौ, कार्यार्थिनां प्रणतिं प्रवेशञ्च बोधकौ, स्वर्णदण्डधरौ = कनकदण्डधरौ, द्वौ सेवकौ तिष्ठेताम् ॥ ३६० ॥

हिन्दी—और नौकर-चाकर सबसे पीछे बैठें। दरवाजे के समीप अगल-बगल सोने की छड़ी हाथ में लिये दो दरवान प्रार्थी के प्रवेश और प्रणाम निवेदित करने के लिए खड़े रहें ॥ ३६० ॥

परिचारेति। परिचारगणाः भृत्यवर्गाः सर्वे सर्वेभ्यः कथितेभ्यः पुत्रादिभ्यः पृष्ठसंस्थिताः पश्चाद्भागेषु तिष्ठेयुरित्यर्थः। पार्श्वे प्रवेशनतिबोधकौ प्रवेशं नतिं प्रणामञ्च कार्य्यार्थिनामिति भावः, बोधयत इति तथोक्तौ प्रवेशनतिनिवेदकौ स्वर्णदण्डधरौ द्वौ भृत्यौ तिष्ठेतामिति शेषः ॥ ३६० ॥

विशिष्टचिह्नयुग्राजा स्वासने प्रविशेत् सुखम्।
सुभूषणः सुकवचः सुवस्त्रो मुकुटान्वितः ॥ ३६१ ॥
सिद्धास्त्रो नग्नशस्त्रः सन् सावधानमनाः सदा।
सर्वस्मादधिको दाता शूरस्त्वं धार्मिको ह्यसि ॥ ३६२ ॥
इति वाचं न शृणुयाच्छ्रावकाः वञ्चकास्तु ये।
रागाल्लोभाद्भयाद्राज्ञः स्युर्मूका इव मन्त्रिणः ॥ ३६३ ॥
नताननुमतान् विद्यान्नृपतिः स्वार्थसिद्धये।
पृथक्पृथङ्मतं तेषां लेखयित्वा ससाधनम् ॥ ३६४ ॥

विमृशेत् स्वमतेनैव यत् कुर्य्याद् बहुसम्मतम्।
गजाश्वरथपश्वादीन् भृत्यान् दासांस्तथैव च॥ ३६५॥
सम्भारान् सैनिकान् कार्य्याक्षमान् ज्ञात्वा दिने दिने।
संरक्षयेत् प्रयत्नेन सुजीर्णान् सन्त्यजेत् सुधीः॥ ३६६॥

अन्वयः—सिद्धास्त्रः राजा विशिष्टचिह्नयुक् सुभूषणः सुकवचः सुवस्त्रः मुकुटान्वितः नग्नशस्त्रः सदा सावधानमनाः सन् स्वासने सुखं प्रविशेत्। तथा त्वं सर्वस्मात् अधिकः दाता शूरः धार्मिकश्च असि, इति वाचं न शृणुयात्। ये श्रावकाः वञ्चकाः तथा ये मन्त्रिणः रागात् लोभात् भयात् मूकाः इव स्युः तान् स्वार्थसिद्धये अनुमतान् न विद्यात्। तेषां पृथक् पृथक् ससाधनं मतं लेखयित्वा स्वमतेनैव विमृशेत्, यद् बहुसम्मतं कुर्यात्। सुधीः दिने-दिने गजाश्वरथपश्वादीन् तथैव भृत्यान् दासान् सम्भारान् सैनिकान् कार्याक्षमान् ज्ञात्वा प्रयत्नेन संरक्षयेत्, सुजीर्णान् सन्त्यजेत्॥ ३६१-३६६॥

व्याख्या—सिद्धास्त्रः = साधितप्रहरणविद्यः, राजा = भूपतिः, विशिष्टचिह्नयुक् = ललितलाञ्छनान्वितम्, सुभूषणः = सालङ्कारः, सुकवचः = सुदृढसन्नाहधारी, सुवस्त्रः = सुपरिधानः, मुकुटान्वितः = किरीटी, नग्नशस्त्रः = अपावृतायुधधारी, सदा = सर्वदा, सावधानमनाः = अवहितमनाः, सन्, स्वासने = राजसिंहासने, सुखम् = सानन्दम्, प्रविशेत् = उपविशेत्। तथा त्वम् = भवान्, सर्वस्मात् = सकलजनात्, अधिकः = प्रभूतः, दाता = दानकर्त्ता, शूरः = वीरः, धार्मिकः = पुण्यपरायणः, असि = भवसि, इति = एवम्, वाचम् = वचनम्, न = नहि, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्। ये = जनाः, श्रावकाः = कार्यार्थिनां कार्यसंसूचकाः, वञ्चकाः = धूर्त्ताः, तथा = तेनैव प्रकारेण, ये = जनाः, मन्त्रिणः = सचिवाः, रागात् = अभिमतविषयाभिलाषिणः, लोभात् = कार्पण्यात्, भयात् = भीत्या, मूकाः = वाग्हीनाः, इव = यथा, स्युः = भवेयुः, तान् = पूर्वोक्तान्, स्वार्थसिद्धये = आत्मप्रयोजननिष्पत्तये, अनुमतान् = अभिमतान्, न = नहि, विद्यात् = गृह्णीयात्, तेषाम् = सचिवानाम्, पृथक् पृथक् = प्रत्येकं भिन्नं भिन्नम्, ससाधनम् = सोपकरणम्, युक्तिसङ्गतं वा, मतम् = विचारम्, लेखयित्वा = लिखित्वा, स्वमतेनैव = आत्मचिन्तनेनैव, विमृशेत् = विचारयेत्। यच्च बहुसम्मतम् = अनेकजनसमादृतम्, कार्यम्, कुर्यात् = अनुष्ठेयात्, सुधीः = विद्वान् नृपः, दिने दिने = प्रतिदवसे, गजाश्वरथपश्वादीन्—गजान् = कुञ्जरान्, अश्वान् = घोटकान्, रथान् = स्यन्दनान्, पश्वादीन् = मृगादीन्, तथैव = तेनैव प्रकारेण, भृत्यान् = सेवकान्, दासान् = किङ्करान्, सम्भारान् = सङ्ग्रहणानि, सैनिकान् = रक्षापुरुषान्, कार्याक्षमान् = स्वव्यवसायोऽनुपयुक्तान्, ज्ञात्वा = विदित्वा, प्रयत्नेन = सायासेन, संरक्षयेत् = परिपालयेत्, सुजीर्णान् = अतिवृद्धान्, व्यवसायेऽक्षमान्, सन्त्यजेत् = विसर्जयेत्॥ ३६१-३६६॥

हिन्दी—राजा सदैव सचेत होकर, आकर्षक वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर, कवच और राजमुकुट पहन कर, शस्त्र-संचालन में सिद्धहस्त होकर, खुली तलवार हाथ में लेकर, विशिष्ट राजचिह्नों से विभूषित होकर राजसिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे तथा 'आप सबसे अधिक दानी हैं, सबसे अधिक वीर और धार्मिक हैं, ऐसी चाटुकारिता की बातें न सुनें। क्योंकि ऐसे सुनाने वाले चाटुकार बहुधा धूर्त होते हैं और अपना काम निकालने के लिए ऐसा कहते हैं। जो मंत्री स्नेह से, लोभ से और राजा के भय से सच कहने में कतरायें या चुप्पी साध लें, राज्य-संचालन

में ऐसे लोगों की बातों को सच या टकसाल न माना जाय। युक्तिपूर्वक इनके विचारों को अलग-अलग लिखवा ले और उनमें बहुमत जिस विचार में हों राजकाज चलाने में उसे ही उचित समझे। हाथी, घोड़े, रथ, पशु, नौकर-चाकर गुलाम, वस्तुजात एवं सैनिकों का प्रतिदिन स्वयं निरीक्षण करे और इनमें जो सक्षम हों उनकी रक्षा पयत्नपूर्वक करे और जो बूढे या अक्षम हों उनका परित्याग कर दें॥३६१-३६६॥

विशिष्टेत्यादि। सिद्धास्त्रः शिक्षितास्त्रविद्यः राजा विशिष्टचिह्नयुक् विशेषलक्षणान्वितः सुभूषणः कुण्डलाद्यलङ्कृतः सुकवचः शोभनवर्म्मधारी सुवस्त्रः परिहितशोभनवसनः मुकुटान्वितः किरीटधरः नग्नशस्त्रः शस्त्रधारी सदा सावधानमनाः सन् स्वासने राजासने सुखं प्रविशेत् उपविशेत् तथा त्वं सर्वस्मात् अधिकः दाता वदान्यः शूरः विक्रान्तः धार्मिकश्च असि इति वाचं चाटुकारिणामिति शेषः, न शृणुयात्। ये श्रावकाः कार्य्यार्थिनां कार्यश्रावणकारिणः वञ्चकाः प्रतारकाः तथा ये मन्त्रिणः रागात् कार्य्यार्थिनां केषुचित् अनुरागात् स्नेहादित्यर्थः, लोभात् तुष्णीम्भावे धनप्राप्तिलोभात् वा भयात् यथार्थकथने यस्य हानिः तस्मात् भीताः मूका इव स्युः भवेयुः तान् स्वार्थसिद्धये स्वकार्य्यस्य राजकार्य्यस्य सिद्धये अनुमतान् न विद्यात् तेभ्यः राजकार्य्याभिमतं न गृह्णीयादित्यर्थः। तेषां मन्त्रिणां पृथक् पृथक् प्रत्येकं भिन्नं भिन्नं ससाधनं सकारणं युक्तिसहितमित्यर्थः, मतं लेखयित्वा स्वमतेन विमृशेत् विवेचयेत्। यच्च बहुसम्मतं भवेत् तत् कुर्य्यात्। सुधीः सुबुद्धिः नृपः दिने दिने गजान् अश्वान् रथान् पश्वादीन् भृत्यान् पोष्यवर्गान् दासान् किङ्करान् सम्भारान् प्रयोजनद्रव्याणि तथा सैनिकान् कार्य्याक्षमान् ज्ञात्वा विचार्य्य प्रयत्नेन संरक्षयेत् कार्य्यक्षमान् कर्त्तुमिति शेषः। सुजीर्णान् अत्यन्ताक्षमानित्यर्थः सन्त्यजेत्॥३६१-३६६॥

अयुतक्रोशजां वार्त्तां हरेदेकदिनेन वै।
सर्वविद्याकलाभ्यासे शिक्षयेद् भृतिपोषितान्॥ ३६७॥

अन्वयः—अयुतक्रोशजां वार्त्ताम् एकदिनेनैव हरेत्, वै तथा जनान् भृतिपोषितान् सर्वविद्याकलाभ्यासे शिक्षयेत्॥३६९॥

व्याख्या—अयुतक्रोशजाम् = सहस्रदशक्रोशोद्‌भवाम्, वार्त्ताम् = सम्भाषणम्, एकदिनेनैव = मात्रैकदिनेनैव, हरेत् = जानीयात्, वै = इत्यवधारणे, तथाविधं सम्भाषणमेकदिनाभ्यन्तरेणैव बोध्यम्, तथा तदनुकूलकार्यं कुर्यात्। तथा = तेनैव प्रकारेण, जनान् = प्रजाः, भृतिपोषितान्—भृत्या = वृत्त्या, पोषितान् = पालितान्, सर्वविद्यानाम् = सर्वविधज्ञान-विज्ञानानाम्, कलानाम् = चतुःषष्टिप्रकारकाणां विद्यानाम्, अभ्यासे = अनुशीलने, शिक्षयेत् = पाठयेत्॥३६७॥

हिन्दी—दस हजार कोस तक की दूरी की बातें एक दिन के भीतर ही जान लें। छात्रवृत्ति देकर लोगों को हर विद्या और हर कला की शिक्षा दिलवाये॥३६७॥

अयुतेति। अयुतक्रोशजां दशसहस्रकोशस्थितां वार्त्तां संवादम् एकदिनेन हरेत् वैशब्दोऽवधारणे, यथा एकेन दिनेन तथाभूता वार्त्ता प्राप्यते प्रेर्य्यते वा तथा उपायं कुर्य्यादित्यर्थः, तथा जनान् भृतिपोषितान् भृत्या वेतनादिना पोषिंतान् सर्वविद्यानां कलानाञ्च चतुःषष्टिप्रकाराणां नृत्यगीतादीनाम् अभ्यासे शिक्षयेत्॥३६७॥

समाप्तविद्यं सन्दृष्ट्वा तत्कार्य्ये तं नियोजयेत्।
विद्याकलोत्तमान् दृष्ट्वा वत्सरे पूजयेच्च तान्॥ ३६८॥

अन्वयः—समाप्तविद्यं सन्दृष्ट्वा तत्कार्ये तं नियोजयेत्। तथा तान् विद्याकलोत्तमान् दृष्ट्वा वत्सरे पूजयेत् ॥ ३६८ ॥

व्याख्या—तेषु छात्रेषु, समाप्तविद्यम् = अधिगतज्ञानम्, सन्दृष्ट्वा = सम्यक्प्रकारेणावबोध्य, तान् तत्कार्ये = तस्मिन्कर्मणि, तम् = छात्रविशेषम्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्, तथा तान् = प्रतिनियोजितपुरुषान्, विद्याकलोत्तमान्—विद्यासु = ज्ञान-विज्ञानविषयेषु, कलासु = शिल्पादिशाखासु च, उत्तमान् = उत्कृष्टजनान्, दृष्ट्वा = अवलोक्य परीक्ष्य च, वत्सरे = प्रतिसंवत्सरे, पूजयेत् = पुरस्कारादिप्रदानेन सम्मानयेत् ॥ ३६८ ॥

हिन्दी—और उनका अध्ययन जब समाप्त हो जाय तो उन्हें उनके योग्य कार्यों में नियुक्त कर ले। फिर विद्या और कला के क्षेत्र में जो अत्यधिक निपुण हों उन्हें प्रतिवर्ष पुरस्कारादि प्रदान कर सम्मानित करे ॥ ३६८ ॥

समाप्तेति। तेषु समाप्तविद्यं सुशिक्षितमित्यर्थः, सन्दृष्ट्वा सम्यक् परीक्ष्य सन्दृष्ट्वेत्यार्षः प्रयोगः। तत्कार्य्ये तद्विद्यानुशीलनकार्य्ये वा तदध्यापनकार्य्ये तं नियोजयेत्। तथा तान् छात्रानित्यर्थः, विद्यासु कलासु च उत्तमान् उत्कृष्टान् दृष्ट्वा परीक्ष्य वत्सरे प्रतिवत्सरमित्यर्थः, पूजयेत् पुरस्कारादिना सम्मानयेत् ॥ ३६८ ॥

विद्याकलानां वृद्धिः स्यात्तथा कुर्य्यान्नृपः सदा।
पृष्ठाग्रगान् क्रूरवेशान्नतिनीतिविशारदान् ॥ ३६९ ॥
सिद्धास्त्रनग्नशस्त्रांश्च भटानारान्नियोजयेत्।
पुरे पर्य्यटयेन्नित्यं गजस्थो रञ्जयन् प्रजाः ॥ ३७० ॥

अन्वयः—नृपः सदा यथा विद्याकलानां वृद्धिः स्यात् तथा कुर्यात्। क्रूरवेशान् नतिनीतिविशारदान् सिद्धास्त्रान् च नग्नशस्त्रान् भटान् आरात् पृष्ठाग्रगान् नियोजयेत्। स्वयं गजस्थः प्रजाः रञ्जयन् नित्यं पुरे पर्यटयेत् ॥ ३६९ ॥

व्याख्या—नृपः = नरपतिः, सदा = सर्वदा, यथा = येन प्रकारेण, विद्याकलानाम् = ज्ञानशिल्पानाम्, वृद्धिः = समुन्नतिः, स्यात् = भवेत्, तथा = तेन प्रकारेण, कार्यम्, कुर्यात् = अनुष्ठेयात्, तथा क्रूरवेशान् = नृशंसवेशधारिणः, नतिनीतिविशारदान्—नतौ = प्रणतौ, नीतौ च, विशारदान् = प्रवीणपुरुषान्, सिद्धास्त्रान् = प्रशिक्षितास्त्रविद्याः, नग्नशस्त्रान् = उद्दामायुधान्, भटान् = योद्धॄन्, आरात् = समीपे, पृष्ठाग्रगान् = पृष्ठभागेऽग्रगामिनः, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्, च = पुनः, स्वयम् = आत्मनः, गजस्थः = कुञ्जरोपरि समारूढो भूत्वा, प्रजाः = जनान्, रञ्जयन् = परितोषयन्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, पुरे = नगरे, पर्यटयेत् = पर्यटनं कुर्यात् ॥ ३६९-३७० ॥

हिन्दी—इस तरह कला और विद्या की उन्नति कैसे हो, इसके लिए राजा को सदा प्रयास करना चाहिए। राजा अपने आगे-पीछे चलने वाले ऐसे सैनिकों को नियुक्त करे जो क्रूर वेश वाले हों, नमन और नीति में कुशल हों, अस्त्र-संचालन में सिद्धहस्त हों तथा हाथ में खुले हथियार हों। ऐसा राजा प्रजा के मनोरंजन के लिए नित्य हाथी पर सवार होकर नगर में घूमे ॥ ३६९-३७० ॥

विद्याकलानामिति। सिद्धास्त्रेति। नृपः सदा यथा विद्याकलानां वृद्धिः उन्नतिः स्यात् तथा कुर्य्यात्। तथा क्रूरवेशान् भीमवेशधारिणः नतिनीतिविशारदान् नतौ प्रणतौ नीतौ च विशारदान्

विचक्षणान् सिद्धास्त्रान् नग्नशस्त्रान् शस्त्रधारिणः भटान् वीरान् आरात् समीपे पृष्ठाग्रगान् पश्चात् सम्मुखवर्त्तिनः नियोजयेत् रक्षेत्। स्वयञ्च गजस्थः गजारूढः सन् प्रजाः रञ्जयन् नित्यं पुरे नगरे पर्य्यटयेत् परिभ्रमेत्, स्वार्थे णिजन्तोऽयं परिपूर्वोऽटधातुर्बोध्यः॥ ३६९-३७० ॥

राजयानारूढितः किं राज्ञा श्वा न समोऽपि च।
शुना समो न किं राजा कविभिर्भाव्यतेऽञ्जसा॥ ३७१ ॥

अन्वयः—श्वा राजयानारूढितः राज्ञा समः किं न? तथा राजा शुना समः कविभिः अञ्जसा किं न भाव्यते?

व्याख्या—श्वा = सारमेयः, राजयानारूढितः = नृपानुरूपवाहनारोहणात्, राज्ञा = भूभृता, समः = सदृशः, किं न? अपि तु नृपसदृश एवेत्यर्थः। तथा राजा = भूपतिः, पूर्वोक्तपरिचायकपरिधानपरिजनविहीन इति शेषः, शुना = कुक्कुरेण, समः = तुल्यः, कविभिः = ऋषिभिः, अञ्जसा = निर्व्याजेन, किं न भाव्यते = विभाव्यते, अपि तु भाव्यते एव, तेन सर्वतोभावेन सर्वत्र सर्वदा भूभृता परिच्छदपरिजनेन सहैव भाव्यमिति॥ ३७१ ॥

हिन्दी—राजा की सवारी पर कुत्ता क्या राजा की तरह या राजपरिचायक परिधान और परिचरविहीन राजा कुत्ते की तरह विचारशील पुरुषों द्वारा क्या नहीं समझा जाता है? अर्थात् अवश्य ही समझा जाता है॥ ३७१ ॥

राजेति। श्वा कुक्कुरः राजयानारूढितः राजयोग्यवाहनारोहणात् राज्ञा समः तुल्यः किं न? अपि तु राजतुल्य एवेत्यर्थः। तथा राजा तादृशपरिच्छदपरिजनविहीन इति शेषः, शुना कुक्कुरेण समः कविभिः विद्वद्भिः किं न विभाव्यते बुध्यते अपितु बुध्यत एव, सर्वथा सर्वदा सुपरिच्छदपरिजनेन राज्ञा भाव्यमिति भावः॥ ३७१ ॥

अतः स्वबान्धवैर्मित्रैः स्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः।
प्रकृतिभिर्नृपो गच्छेन्न नीचैस्तु कदाचन॥ ३७२ ॥

अन्वयः—अतः नृपः स्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः स्वबान्धवैर्मित्रैः तथा प्रकृतिभिः गच्छेत् तु कदाचित् नीचैः न॥ ३७२ ॥

व्याख्या—अतः = अस्मात्कारणात्, नृपः = राजा, स्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः—स्वस्य = आत्मनः, साम्येन = सादृश्येन, प्रापितैः = अधिगतैः, गुणैः = दयादाक्षिण्यादिलक्षणैः, स्वबान्धवैर्मित्रैः—स्वस्य = राज्ञः, बान्धवैः = गोत्रजैः, मित्रैः = सुहृद्भिः, तथा प्रकृतिभिः = पदाधिकारिवर्गैः, सह गच्छेत् = चलेत्, क़दाचित् = कथमपि, तु = पुनः, नीचैः = अधोगामिभिः सह, न = नहि गच्छेत्॥ ३७२ ॥

हिन्दी—राजा अपने सदृश गुण वाले व्यक्ति, बन्धु-बान्धव तथा प्रधान राजपुरुषों के साथ ही कहीं जाये; कभी भी नीच पुरुषों के साथ कहीं न जाये॥ ३६२ ॥

अत इति। अतः कारणात् नृपः स्वस्य राज्ञ इत्यर्थः, साम्येन तुल्यतया प्रापितैः जनितैः गुणैः उपलक्षितैरित्यर्थः, उपलक्षणे तृतीया। स्वबान्धवैः मित्रैः सुहृद्भिः तथा प्रकृतिभिः सम्भ्रान्तवर्गैः एव गच्छेत् कदाचन नीचैः नतः सन् अपरिच्छदपरिजनः सन्नित्यर्थः न गच्छेदित्यर्थः॥ ३७२ ॥

मिथ्यासत्यसदाचारैर्नीचः साधुः क्रमात् स्मृतः।
साधुभ्योऽतिस्वमृदुत्वं नीचाः सन्दर्शयन्ति हि॥ ३७३ ॥

अन्वयः—मिथ्यासत्यसदाचारैः क्रमात् नीचः च साधुः स्मृतः। नीचाः हि साधुभ्यः अतिस्वमृदुत्वं सन्दर्शयन्ति ॥ ३७३ ॥

व्याख्या—मिथ्यासत्यसदाचारैः = अलीकावितथसदाचरणैः, क्रमात् = आनुपूर्व्यात्, नीचः = अधमः, च = पुनः, साधुः = सत्पुरुषः, स्मृतः = कथितः। नीचाः = अधमाः, हि = यतः, साधुभ्यः = सत्पुरुषेभ्यः, अतिस्वमृदुत्वम्—अतिशयेन = बहुत्वेन, स्वमृदुत्वम् = आत्मनः मार्दवम्, सन्दर्शयन्ति = प्रदर्शनं कुर्वन्ति ॥ ३७३ ॥

हिन्दी—क्रमशः झूठ के द्वारा व्यक्ति नीच तथा सच के द्वारा सज्जन समझा जाता है। सज्जन की अपेक्षा दुर्जन ही अपनी सहृदयता का अधिक प्रदर्शन करते हैं ॥ ३६३ ॥

मिथ्येति। मिथ्यासत्यसदाचारैः क्रमात् नीचः साधुश्च स्मृतः कथितः मिथ्याभूतसदाचारैः नीचः सत्यभूतसदाचारैः साधुर्भवतीति भावः। नीचाः साधुभ्यः अतिशयेन स्वमृदुत्वं निजमार्दवं सन्दर्शयन्ति हिशब्दः अवधारणे ॥ ३७३ ॥

ग्रामान् पुराणि देशांश्च स्वयं संवीक्ष्य वत्सरे।
अधिकारिगणैः काश्च रञ्जिताः काश्च कर्षिताः ॥ ३७४ ॥
प्रजास्ताः साधुभूतेन व्यवहारं विचिन्तयेत्।
न भृत्यपक्षपाती स्यात् प्रजापक्षं समाश्रयेत् ॥ ३७५ ॥

अन्वयः—राजा वत्सरे स्वयं ग्रामान् पुराणि देशांश्च संवीक्ष्य तथा अधिकारिगणैः काः प्रजाः रञ्जिताः काश्च कर्षिताः, ताः प्रजाः साधुभूतेन व्यवहारं विचिन्तयेत्। भृत्यपक्षपाती न स्यात्, प्रजापक्षं समाश्रयेत् ॥ ३७४-३७५ ॥

व्याख्या—राजा वत्सरे = प्रतिवर्षे, स्वयम् = आत्मनः एव, ग्रामान् = आवसथान्, पुराणि = नगराणि, देशान् = जनपदान्, च, संवीक्ष्य = सम्यक्प्रकारेणावलोक्य, तथा अधिकारिगणैः = राजपदाधिकारिवर्गैः, काः = तेषु काः जनाः, प्रजाः = प्रशासितजनाः, रञ्जिताः = परितोषिताः, काश्च कर्षिताः = पीडिताः, ताश्चावलोक्य, साधुभूतेन = सम्यग्रूपेण, व्यवहारम् = व्यापारः, विचिन्तयेत् = विचारयेत्। भृत्यपक्षपाती—भृत्यानाम् = अधिकारिवर्गाणाम्, पक्षपाती = पक्षधरः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, प्रजापक्षम् = प्रजावर्गाणां यथा कल्याणं भवति तथा, समाश्रयेत् = व्यवहारं कुर्यादिति ॥ ३७४-३७५ ॥

हिन्दी—राजा प्रतिवर्ष ग्राम, नगर और जनपद का स्वयं निरीक्षण कर राजपदाधिकारियों ने प्रजावर्ग में किन्हें परितुष्ट किया है तथा किन्हें पीड़ित किया है? इस पर जो तथ्य हो उस पर विचार करे। पदाधिकारियों का पक्ष न लेकर राजा को प्रजा का पक्षधर होना चाहिए ॥ ३७४-३७५ ॥

ग्रामानिति। प्रजा इति। राजा वत्सरे प्रतिवर्षं स्वयं ग्रामान् पुराणि नगराणि देशांश्च संवीक्ष्य सम्यक् दृष्ट्वा तथा अधिकारिगणैः राजपुरुषैः काः प्रजाः रञ्जिताः, काश्च कर्षिताः पीडिताः, ताः संवीक्ष्य साधुभूतेन याथातथ्येन व्यवहारं विचिन्तयेत् कार्य्यदर्शनं कुर्यात्, भृत्यानाम् अधिकारिणां पक्षपाती न स्यात्, प्रजापक्षं समाश्रयेत् यथा प्रजानामनुरञ्जनं स्यात् तथा कुर्य्यादित्यर्थः ॥ ३७४-३७५ ॥

प्रजाशतेन सन्दिष्टं सन्त्यजेदधिकारिणम्।
अमात्यमपि संवीक्ष्य सकृदन्यायगामिनम् ॥ ३७६ ॥

एकान्ते दण्डयेत् स्पष्टमभ्यासापकृतं त्यजेत्।
अन्यायवर्त्तिनां राज्यं सर्वस्वञ्च हरेन्नृपः॥ ३७७॥

अन्वयः—प्रजाशतेन सन्द्विष्टम् अधिकारिणं सन्त्यजेत्। तथा अमात्यमपि सकृत् अन्यायगामिनं संवीक्ष्य एकान्ते दण्डयेत्। अभ्यासापकृतं स्पष्टं त्यजेत्, किञ्च नृपः अन्यायवर्त्तिनां राज्यं सर्वस्वं हरेत्॥ ३७६-३७७॥

व्याख्या—प्रजाशतेन = बहुसंख्यकैर्जनैः, सन्द्विष्टम् = प्रदत्तदोषम्, अधिकारिणम् = पदाधिकारिवर्गम्, सन्त्यजेत् = परित्यजेत्, राजनियुक्तं पदाधिकारिणं स्वपदान्निष्काशयेदिति। तथा अमात्यमपि = सचिवमपि, सकृत् = एकवारम्, अन्यायगामिनम् = अनीतिकारिणम्, संवीक्ष्य = सम्यक्प्रकारेणावलोक्य, एकान्ते = जनशून्यस्थाने, दण्डयेत् = दण्डं दद्यात्। अभ्यासापकृतम् = असकृदपराधकारिणम्, स्पष्टम् = सार्वजनिकरूपेण, त्यजेत् = परित्यागं कुर्यात्, किञ्च नृपः = राजा, अन्यायवर्त्तिनाम् = अनीतिगामिनाम्, भृत्यानाम् = कर्मचारिणाम्, राज्यम् = भूमिम्, सर्वस्वम् = सर्वसम्पदाम्, हरेत् = अपहरणं कुर्यात्॥ ३७६-३७७॥

हिन्दी—बहुत सारे लोग यदि किसी पदाधिकारी के विरुद्ध शिकायत करे तो राजा उस अधिकारी को निकाल दे। यदि कोई सचिव एक बार अन्याय करे तो उसे एकान्त में बुला कर डाँट दे और यदि कोई बार-बार गलती या अपराध करे तो उसे सार्वजनिक रूप से अपमानित कर निकाल दे, किन्तु अन्यायी पदाधिकारी की धरती और धन दोनों जप्त कर ले॥ ३७६-३७७॥

प्रजेति। एकान्तेति। प्रजाशतेन बहुभिः प्रजाभिरित्यर्थः, सन्द्विष्टं दत्तदोषमित्यर्थः, अधिकारिणं स्वनियुक्तं राजकर्मचारिणं सन्त्यजेत्। तथा अमात्यमपि सचिवमपि सकृत् एकवारम् अन्यायकारिणं संवीक्ष्य एकान्ते निर्जने दण्डयेत्, प्रधानपुरुषस्य सर्वसमक्षमवमानस्य सामान्यापराधे अकर्त्तव्यत्वादिति भावः। अभ्यासापकृतं पुनः पुनरपराधिनं स्पष्टं प्रकाशं दण्डयेत् त्यजेच्च। किञ्च नृपः अन्यायवर्त्तिनाम् अपथसंस्थितानां भृत्यानाम् अन्येषाञ्च राज्यं भूमिं सर्वस्वं सर्वं स्थावरं द्रव्यञ्च हरेत्॥ ३७६-३७७॥

जितानां विषये स्थाप्यं धर्माधिकरणं सदा।
भृतिं दद्यान्निर्जितानां तच्चरित्रानुरूपतः॥ ३७८॥

अन्वयः—जितानां विषये सदा धर्माधिकरणं स्थाप्यम्। निर्जितानां तच्चरित्रानुरूपतः भृतिं दद्यात्॥ ३७८॥

व्याख्या—जितानाम् = विजितानां नृपाणाम्, विषये = अधिकृतक्षेत्रे, सदा = सर्वदा, धर्माधिकरणम् = न्यायालयम्, स्थाप्यम् = स्थापनीयम्। तथा निर्जितानाम् = निःशेषेण पराभूतानाम्, तच्चरित्रानुरूपतः—तत् = तेषाम्, चरित्राणाम् = आचाराणाम्, अनुरूपतः = अनुसारेण, भृतिम् = वेतनम्, दद्यात् = प्रदानं कुर्यादिति॥ ३७८॥

हिन्दी—पराजित राजाओं के देश में अपना शासन-संचालन हेतु न्यायालय की स्थापना करे। विजित राजा के रहन-सहन के अनुसार उसके भरण-पोषण हेतु वेतन दे॥ ३७८॥

जितानामिति। जितानां पराजितानां राज्ञां विषये राज्ये सदा धर्म्माधिकरणं विचारालयः स्थाप्यं, तेषां भाविदुर्नयदण्डनार्थमिति भावः। तथा निर्जितानां निःशेषेण पराजितानां सर्वस्वच्युतानामित्यर्थः, तच्चरित्रानुरूपतः तेषां व्यवहारानुसारेण भृतिं भरणोपयुक्तां वृत्तिं दद्यात्॥ ३७८॥

स्वानुरक्तां सुरूपाञ्च सुवस्त्रां प्रियवादिनीम्।
सुभूषणां सुसंशुद्धां प्रमदां शयने भजेत्॥ ३७९॥

अन्वयः—स्वानुरक्तां सुरूपां सुवस्त्रां प्रियवादिनीं सुभूषणां सुसंशुद्धां प्रमदां शयने भजेत्॥ ३७९॥

व्याख्या—स्वानुरक्ताम्—स्वस्मिन् = आत्मनि, अनुरक्ताम् = आसक्ताम्, सुरूपाम् = रूपवतीम्, सुवस्त्राम् = सुन्दरवसनाम्, प्रियवादिनीम् = मधुरभाषिणीम्, सुभूषणाम् = सालङ्काराम्, सुसंशुद्धाम् = शुद्धाचारिणीम्, प्रमदाम् = सुन्दरीम्, शयने = पर्यङ्के, भजेत् = नयेत्, शय्यायामङ्कशायिनीं कुर्यादिति॥ ३७९॥

हिन्दी– अपने प्रति आसक्त, दिव्यसुन्दरी, रुचिकर परिधान एवं आकर्षक आभूषण पहने, मीठा बोलने वालीं तथा सुन्दर आचरण वाली महिला को अंकशायि बनाये॥ ३७९॥

स्वानुरक्तामिति। स्वस्मिन् अनुरक्ताम् अनुरागवतीं सुरूपां सुन्दरीं सुवस्त्रां शोभनवसनां प्रियवादिनीं सुभूषणां भूषितां तथा सुसंशुद्धां सुचरित्रामित्यर्थः, प्रमदां पत्नीं शयने शय्यायां भजेत् नयेत्॥ ३७९॥

यामद्वयं शयानञ्च ह्यत्यन्तं सुखमश्नुते।
न सन्त्यजेच्च स्वस्थानं नीत्या शत्रुगणं जयेत्॥ ३८०॥

अन्वयः—यामद्वयं शयानञ्च हि अत्यन्तं सुखम् अश्नुते। स्वस्थानं न सन्त्यजेत्, नीत्या च शत्रुगणं जयेत्॥ ३८०॥

व्याख्या—यामद्वयम् = प्रहरद्वयावधिं यावत्, शयानञ्च = स्वापनञ्च, हि इति निश्चयेन, अत्यन्तम् = अत्यधिकम्, सुखम् = आनन्दम्, अश्नुते = अनुभूयते। स्वस्थानम् = स्वकीयस्थलं प्रदेशो वा, न = नहि, सन्त्यजेत् = परित्यजेत्, स्वस्थाने स्थितः कापुरुषोऽपि सिंहायते। तथा नीत्या = नयेन, शत्रुगणम् = अरिवर्गम्, जयेत् = विजयेत्॥ ३८०॥

हिन्दी—आधी रात तक ही सोने वाला राजा अत्यन्त सुखी होता है। उसे अपनी नीति से शत्रुओं पर विजय पाना चाहिए तथा अपनी जगह कभी नहीं छोड़ना चाहिए॥ ३८०॥

यामद्वयमिति। यामद्वयं प्रहरद्वयपर्य्यन्तं शयानञ्च तयेति भावः, अत्यन्तं सुखम् अश्नुते लभते हिशब्दोऽवधारणे। स्वस्थानं निजस्थानं न सन्त्यजेत् स्थानस्थितः कापुरुषोऽपि सिंह इति भावः। तथा नीत्या नीतिकौशलेन शत्रुगणं जयेत् वशं नयेत्॥ ३८०॥

स्थानभ्रष्टा नो विभान्ति दन्ताः केशा नखा नृपाः।
संश्रयेद् गिरदुर्गाणि महापदि नृपः सदा॥ ३८१॥

अन्वयः—दन्ताः केशाः नखाः तथा नृपाः स्थानभ्रष्टाः न विभान्ति। नृपः सदा महापदि गिरिदुर्गाणि संश्रयेत्॥ ३८१॥

व्याख्या—दन्ता = दशनाः, केशाः = शिरोरुहाः, नखाः = कररुहाः, तथा नृपाः = राजानः, स्थानभ्रष्टाः = स्थलच्युताः, न = नहि, विभान्ति = शोभन्ते। नृपः = राजा, सदा = सर्वदा, महापदि = घोरसङ्कटे, गिरिदुर्गाणि = गिरिगह्वराणि, संश्रयेत् = आश्रयेत्॥ ३८१॥

हिन्दी—स्थानभ्रष्ट दाँत, केश, नख और राजे शोभा नहीं पातें। महाविपत्ति आने पर ही राजा को पहाड़ी दुर्ग. का आश्रय ग्रहण करना चाहिए॥ ३८१ ॥

स्थानेति। दन्ताः केशाः नखाः तथा नृपाः स्थानभ्रष्टाः स्थानच्युताः नो विभान्ति न राजन्ते। नृपः महापदि महत्यां दुर्निवारायामित्यर्थः, आपदि सदा गिरिदुर्गाणि पर्वतरूपदुर्गमस्थानानि संश्रयेत्॥ ३८१ ॥

तदाश्रयाद् दस्युवृत्त्या स्वराज्यन्तु समाहरेत्।
विवाहदानयज्ञार्थं विनाप्यष्टांशशेषितम्॥ ३८२ ॥
सर्वतस्तु हरेद् दस्युरसतामखिलं धनम्।
नैकत्र संवसेन्नित्यं विश्वसेन्नैव कं प्रति॥ ३८३ ॥

अन्वयः—तदाश्रयात् दस्युवृत्त्या पुनः स्वराज्यं समाहरेत्। विवाहदानयज्ञार्थं धनं विना दस्युः अष्टांशशेषितः असताम् अखिलं धनं सर्वतः तु हरेत्। नित्यम् एकत्र नैव संवसेत्। कं प्रति नैव विश्वसेत्॥ ३८२-३८३ ॥

व्याख्या—तदाश्रयात्—तत् = तस्य पर्वतस्य, आश्रयात् = आधारात्, गिरिमवलम्ब्य, दस्युवृत्त्या = लुण्ठकव्यवहारेण, पुनः स्वराज्यम्—स्वस्य = आत्मनः, राज्यम् = राष्ट्रम्, समाहरेत् = सम्यक्प्रकारेण, आहरेत् = आददीत। विवाहदानयज्ञार्थम् = परिणयोत्सर्गमखार्थम्, धनं विना, दस्युः = लुण्ठकभूतो राजा, अष्टांशशेषितः = अष्टमभागावशिष्टम्, असताम् = दुर्जनानाम्, अखिलम् = निखिलं समग्रं वा, धनम् = सम्पदाम्, सर्वतः = सर्वतोभावेन, हरेत् = आहरणं कुर्यात्। नित्यम् = प्रतिदिनम्, एकत्र = एकस्मिन्स्थाने, न = नहि, संवसेत् = सम्यक्प्रकारेण निवासं कुर्यात्। कं प्रति = केनाऽपि पुरुषं प्रति, नैव = नास्त्येव, विश्वसेत् = विश्वासं कुर्यात्॥ ३८२-३८३ ॥

हिन्दी—पहाड़ी दुर्ग में रहकर दस्युवृत्ति से अपने खोये राज्य को फिर से पाने का प्रयास करे। दस्यु राजा विवाह, दान और यज्ञ के लिए धन का आठवाँ भाग छोड़कर शेष को सर्वतोभावेन अपहृत करे। दुर्जनों का समस्त धन लूट ले। कहीं एक स्थान पर निवास न करे और किसी पर कभी विश्वास भी न करे॥ ३८२-३८३ ॥

तदाश्रयादिति। सर्वत इति। तस्य गिरेः आश्रयात् गिरिमाश्रित्येत्यर्थः, दस्युवृत्त्या दस्युव्यवहारेण तु पुनः स्वराज्यं समाहरेत् आददीत, विवाहदानयज्ञार्थं वैवाहिकं दानीयं यज्ञीयञ्च धनं विना दस्युः दस्युभूतो नृप इत्यर्थः, अष्टांशावशेषितम् अष्टमांशावशिष्टम् असताम् असाधूनाम् अखिलं सम्रग्रं धनं सर्वतः सर्वैः प्रकारैः हरेत्, अष्टमांशस्तु तेषां वृत्त्यर्थं रक्षणीय इति भावः। नित्यम् एकत्र न संवसेत् तथा कं प्रति नैव विश्वसेत्॥ ३८२-३८३ ॥

सदैव सावधानः स्यात् प्राणनाशं न चिन्तयेत्।
क्रूरकर्मा सदोद्युक्तो निर्घृणो दस्युकर्मसु॥ ३८४ ॥
विमुखः परदारासु कुलकन्याप्रदूषणे।
पुत्रवत् पालिता भृत्याः समये शत्रुतां गताः॥ ३८५ ॥

अन्वयः—सदैव सावधानः क्रूरकर्मा सदोद्युक्तः दस्युकर्मसु निर्घृणः परदारासु तथा

कुलकन्याप्रदूषणे विमुखः ये पुत्रवत् पालिताः भृत्याः समये शत्रुतां गताः तेषां प्राणनाशं न चिन्तयेत् ॥ ३८४-३८५ ॥

व्याख्या—सदैव = सततम्, सावधानः = दत्तावधानः, क्रूरकर्मा = परपीडकः, सदा = सर्वदा, उद्युक्तः = तत्परः, दस्युकर्मसु = अनार्यकृत्येषु, निर्घृणः = निष्ठुरः, किञ्च परदारेषु = परनारीषु, तथा एवं, कुलकन्याप्रदूषणे—कुलकन्यानाम् = कुलकुमारीणाम्, प्रदूषणे = बलात्कारादिकरणे, विमुखः = पराङ्मुखः, ये = जनाः, पुत्रवत् = निजसन्तान इव, पालिताः = पोषिताः, भृत्याः = सेवकाः, समये = कठिनकालसमुपस्थिते, शत्रुताम् = वैरिरूपताम्, गताः = प्राप्ताः, तेषाम् = जनानाम्, प्राणनाशम् = हननम्, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ ३८४-३८५ ॥

हिन्दी—सदैव सावधान रहकर, जान जाने की परवाह किये बिना, क्रूरकर्मी दस्युकर्म में तत्पर तथा निर्दय हो; किन्तु परस्त्रीगामी न हो, कुलकन्या की ओर भी आँख उठाकर न देखे। सन्तान की तरह पालित सेवक भी जब विपरीत समय में साथ न दे तो उसका भी अहित नहीं सोचे ॥ ३८४-३८५ ॥

सदैवेति। विमुख इति। सदैव सावधानः अवहितः क्रूरकर्म्मा निष्ठुरव्यापारः सदा उद्युक्तः दस्यु- कर्म्मसु निर्घृणः किन्तु परदारेषु परस्त्रीषु तथा कुलकन्यानां कुलकुमारीणां प्रदूषणे बलात्कारादि- कर्म्मणि विमुखः पराङ्मुखः भवेत् तथा ये पुत्रवत् पालिताः भृत्याः समये दुःसमये शत्रुतां गताः, तेषां प्राणनाशं न चिन्तयेत् अकर्त्तव्यतया न भावयेत् तेषां प्राणनाशोऽपि न करणीय इति भावः ॥ ३८४-३८५ ॥

न दोषः स्यात् प्रयत्नस्य भागधेयं स्वयं हि तत्।
दृष्ट्वा सुविफलं कर्म तपस्तप्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ ३८६ ॥

अन्वयः—प्रयत्नस्य दोषः न स्यात्, हि तत् स्वयं भागधेयम्। कर्म सुविफलं दृष्ट्वा तपः तप्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ ३८६ ॥

व्याख्या—प्रयत्नस्य = आयासस्य, दोषः = अपराधः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, तत् = विफलत्वम्, स्वयम् = आत्मना, भागधेयम् = भाग्यम् एव। 'यत्ने कृतेऽपि यदि न सिद्ध्यति तर्हि कोऽत्र दोषः' इति। कर्म = प्रयत्नम्, सुविफलम् = सर्वथा विनष्टम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, तपः = तपस्याम्, तप्त्वा = कृत्वा, दिवम् = स्वर्गम्, व्रजेत् = गच्छेत् ॥ ३८६ ॥

हिन्दी—प्रयास करने पर भी यदि विफलता ही हाथ लगे तो इसमें प्रयत्न का नहीं अपितु भाग्य का दोष होता है। ऐसी स्थिति में तपस्या करते हुए दिव्य लोक की यात्रा करनी चाहिए ॥ ३८६ ॥

नेति। प्रयत्नस्य उद्योगस्य न दोषः स्यात् विफलत्वे इति भावः, हि यतः तत् स्वयं भागधेयं भाग्यमित्यर्थः, भाग्यवशात् उद्योगे विफले को दोष इति भावः। कर्म्म उद्योगमित्यर्थः, सुविफलं सर्वथा विफलं दृष्ट्वा शेषे तपस्तप्त्वा दिवं स्वर्गं व्रजेत् ॥ ३८६ ॥

उक्तं समासतो राजकृत्यं मिश्रेऽधिकं ब्रुवे।
अध्यायः प्रथमः प्रोक्तो राजकार्य्यनिरूपकः ॥ ३८७ ॥

इति शुक्रनीतौ राजकृत्याधिकारो नाम प्रथमोऽध्यायः।

अन्वयः—समासतः राजकृत्यम् उक्तं, मिश्रे अधिकं ब्रुवे। राजकार्यनिरूपकः प्रथमः अध्यायः प्रोक्तः॥ ३८७॥

व्याख्या—समासतः = सङ्क्षेपतः, राजकृत्यम् = नृपकरणीयम्, उक्तम् = व्याख्यातम्, मिश्रे = मिश्राख्यचतुर्थाध्याये, अधिकम् = अतोऽप्यधिकं विस्तृतरूपेण, ब्रुवे = कथयामि। राजकार्यनिरूपकः = शासनकृत्यप्रदर्शकः, प्रथमः = प्रारम्भिकः, अध्यायः = सर्गः, प्रोक्तः = सम्यग्रूपेण व्याखातः॥ ३८७॥

हिन्दी—इस प्रकार राज-काज का संक्षिप्त वर्णन किया, विशेष वर्णन मिश्राध्याय में करेंगे। प्रशासकीय कर्मनिरूपक यह पहला अध्याय कहा गया॥ ३८७॥

इस प्रकार शुक्रनीति में 'राजकृत्याधिकार' नामक प्रथम अध्याय की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

उक्तमिति। समासतः सङ्क्षेपेण राजकृत्यम् उक्तम्। मिश्रे अस्य ग्रन्थस्य मिश्राख्ये चतुर्थाध्यायप्रकरणे अधिकम् अस्य विस्तारं ब्रुवे कथयामि। राजकार्य्यनिरूपकः राजकार्य्यप्रदर्शकः प्रथमः अध्यायः प्रोक्तः कथितः॥ ३८७॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता प्रथमाध्यायव्याख्या समाप्ता।

द्वितीयोऽध्यायः

यद्यप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम्॥ १ ॥

अन्वयः—यद्यपि कर्म अल्पतरं तदपि एकेन असहायेन पुरुषेण दुष्करम्, महोदयं राज्यं किमु? ॥ १ ॥

व्याख्या—यद्यपि = षष्ठी वा सप्तम्यर्थादव्ययवाचकोऽयं शब्दः, कर्म = कार्यम्, अल्पतरम् = क्षुद्रतरमतिसामान्यमित्यर्थः, तदपि = तथापि, एकेन = अद्वितीयेन, असहायेन = सहायकरहितेन, पुरुषेण = जनेन, दुष्करम् = दुःसाध्यं भवति, तु = पुनः, महोदयम् = ऐश्वर्यपूर्णम्, राज्यम् = शासितप्रजापालनम्, किमु = का वार्तेति ॥ १ ॥

हिन्दी—यद्यपि कोई काम छोटा-से-छोटा ही हो, तथापि उसे सहायक के बिना अकेला कोई व्यक्ति सहज रूप से सम्पन्न नहीं कर सकता। फिर वैभवपूर्ण राजकाज-संचालन का पूछना ही क्या? ॥ १ ॥

यदीति। यद्यपि कर्म कार्य्यम् अल्पतरं सामान्यमित्यर्थः, तदपि असहायेन एकेन पुरुषेण दुष्करं कर्त्तुमशक्यं महोदय महोन्नतं राज्यं किमु किं वक्तव्यमित्यर्थः॥ १ ॥

सर्वविद्यासु कुशलो नृपो ह्यपि सुमन्त्रवित्।
मन्त्रिभिस्तु विना मन्त्रं नैकोऽर्थं चिन्तयेत् क्वचित्॥ २ ॥

अन्वयः—सर्वविद्यासु कुशलः सुमन्त्रवित् अपि नृपः एकः मन्त्रिभिः विना क्वचित् मन्त्रं तु न चिन्तयेत्॥ २ ॥

व्याख्या—सर्वविद्यासु = सकलशास्त्रेषु, कुशलः = विचक्षणः, सुमन्त्रवित् = सुष्ठुमन्त्रणाविशारदः, अपि = चेत्, नृपः = राजा, एकः = एकाकी एव, मन्त्रिभिः = अमात्यैः, विना = विहाय, क्वचित् = कुत्रचित्, मन्त्रम् = परामर्शम्, तु इत्यवधारणे, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेदिति॥ २ ॥

हिन्दी—हर तरह के ज्ञान में प्रवीण, उत्तम विचारक भी राजा अकेला सचिवों के साथ बिना सलाह किये कभी किसी व्यवहार के विषय में कोई निर्णय न ले॥ २ ॥

सर्वेति। सर्वविद्यासु कुशलः सुमन्त्रवित् शोभनमन्त्रविज्ञः अपि नृपः एकः एकाकी सन् मन्त्रिभिः विना क्वचित् मन्त्रं मन्त्ररूपम् अर्थं न चिन्तयेत् तुशब्दोऽवधारणे॥ २ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासत्सुमते स्थितः।
सर्वदा स्यान्नृपः प्राज्ञः स्वमते न कदाचन॥ ३ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः नृपः सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासत् च सुमते सर्वदा स्थितः स्यात्। स्वमते कदाचन न तिष्ठेत् ॥ ३ ॥

व्याख्या—प्राज्ञः = बुद्धिमान्, नृपः = राजा, सभ्यानाम् = भद्रपुरुषाणाम्, अधिकारिणाम् = स्वत्ववताम्, प्रकृतीनाम् = सचिवादिप्रधानपुरुषाणाम्, सभासदाञ्च = सांसदाञ्च, च = पुनः, सुमते = सुधिषणाचिन्तितविषये, सर्वदा = सततं, स्थितः = विद्यमानः, स्यात् = भवेत्। स्वमते = स्वकीयविचारे, कदाचन = कदापि, न = नहि, तिष्ठेत् = आदिशेदिति ॥ ३ ॥

हिन्दी—ज्ञानवान् राजा उच्चपदाधिकारियों, सचिवादि प्रधानपुरुषों तथा सांसदों की राय पर स्थिर रहें। कभी भी अपनी राय पर नहीं अड़े ॥ ३ ॥

सभ्येति। प्राज्ञः प्रकृष्टज्ञानवान् नृपः सभ्यानाम् अधिकारिणां कर्मचारिणां प्रकृतीनां प्रधानपुरुषाणां सभासदाञ्च सुमते सुनिरूपितमन्त्रविषये सर्वदा स्थितः स्यात् कदाचन स्वमते न तिष्ठेदिति शेषः ॥ ३ ॥

प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैव कल्पते।
भिन्नराष्ट्रो भवेत् सद्यो भिन्नप्रकृतिरेव च ॥ ४ ॥

अन्वयः—स्वातन्त्र्यमापन्नः प्रभुः अनर्थायैव कल्पते। हि भिन्नप्रकृतिरेव च सद्यः भिन्नराष्ट्रः भवेत् ॥ ४ ॥

व्याख्या—स्वातन्त्र्यमापन्नः = निरङ्कुशताप्राप्तः, प्रभुः = स्वामी, अनर्थायैव = आपदर्थायैव, कल्पते = भवति। हि = यतः, भिन्नप्रकृतिरेव—भिन्नाः = विपरीताः, प्रकृतीनाम् = अमात्यादिप्रधानपुरुषाणाम्, प्रभुः, च सद्यः = अचिरेण, भिन्नराष्ट्रः = राष्ट्रात्पृथक्, पदच्युतो भवेत् = स्यादिति ॥ ४ ॥

हिन्दी—स्वेच्छाचारी निरंकुश राजा अनर्थकारी होता है, क्योंकि राज्य के उच्च पदाधिकारी उसका साथ छोड़ देते हैं और वह शीघ्र राज्यच्युत हो जाता है ॥ ४ ॥

प्रभुरिति। स्वातन्त्र्यमापन्नः स्वेच्छाधीनः प्रभुः अनर्थाय एव कल्पते, हि यतः भिन्नप्रकृतिः प्रकृतीनाम् अमतवर्त्तीत्यर्थः, प्रभुः सद्यः झटिति भिन्नराष्ट्रः राज्यच्युतः भवेत् ॥ ४ ॥

पुरुषे पुरुषे भिन्नं दृश्यते बुद्धिवैभवम्।
आप्तवाक्यैरनुभवैरागमैरनुमानतः ॥ ५ ॥
प्रत्यक्षेण च सादृश्यैः साहसैश्च छलैर्बलैः।
वैचित्र्यं व्यवहाराणामौन्नत्यं गुरुलाघवैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—आप्तवाक्यैः अनुभवैः आगमैः च अनुमानतः पुरुषे पुरुषे बुद्धिवैभवं भिन्नं, च क्षेण सादृश्यैः साहसैः छलैः बलैः च व्यवहाराणां वैचित्र्यं गुरुलाघवैः औन्नत्यं दृश्यते ॥ ५-६ ॥

व्याख्या—आप्तवाक्यैः = अधिगतवचनैः, अनुभवैः = साक्षादुपलब्धज्ञानैः, आगमैः = वेदोपनिषदाद्यनुशीलनैः, च = पुनः, अनुमानतः = अभ्यूहैः, पुरुषे पुरुषे = प्रतिपुरुषे, बुद्धिवैभवम् = प्रज्ञासमृद्धिम्, भिन्नम् = पृथक् पृथक्, च = तथा, प्रत्यक्षेण = इन्द्रियगोचरेण, सादृश्यैः = उपमानप्रमाणैः, साहसैः = धैर्यैः, छलैः = कपटैः, बलैः = सामर्थ्यैः, च = पुनः, व्यवहाराणाम् = आचाराणाम्, वैचित्र्यम् = वैलक्षण्यम्, गुरुलाघवैः = महत्कनीयैः, औन्नत्यम् = औच्छ्रायः, दृश्यते = अवलोक्यते ॥ ५-६ ॥

हिन्दी—विश्वस्त वचनों से, प्रत्यक्ष ज्ञान से, शास्त्रानुशील से, अनुमान प्रमाण से प्रत्येक व्यक्ति के बुद्धिवैभव की भिन्नता तथा प्रत्यक्ष एवं उपमान प्रमाणों से, धैर्य से, छल से, बल से व्यक्ति-व्यक्ति में व्यवहारों की विचित्रता, किसी की महान् उन्नति तो किसी की क्षुद्रता साफ-साफ दिखलाई पड़ती है ॥ ५-६ ॥

पुरुष इति। प्रत्यक्षेणेति। आप्तवाक्यैः विश्वस्तवचनैः अनुभवैः आगमैः शास्त्रानुशीलनैः अनुमानतः अनुमानप्रमाणेन च पुरुषे पुरुषे प्रतिपुरुषमित्यर्थः, बुद्धिवैभवं भिन्नं तथा प्रत्यक्षेण प्रमाणेन सादृश्यैः साहसैः छलैः बलैश्च व्यवहाराणाम् आचाराणां वैचित्र्यं विभिन्नत्वं गुरुलाघवैः औन्नत्यञ्च कस्य वा गुर्वी उन्नतिः कस्य वा लघ्वीत्येवमित्यर्थः दृश्यते ॥ ५-६ ॥

न हि तत् सकलं ज्ञातुं नरेणैकेन शक्यते।
अतः सहायान् वरयेद्राजा राज्यविवृद्धये ॥ ७ ॥
कुलगुणशीलवृद्धान् शूरान् भक्तान् प्रियंवदान्।
हितोपदेशकान् क्लेशसहान् धर्म्मरतान् सदा ॥ ८ ॥
कुमार्गगं नृपमपि बुद्ध्योद्धर्त्तुं क्षमान् शुचीन्।
निर्मत्सरान् कामक्रोधलोभहीनान्निरालसान् ॥ ९ ॥

अन्वयः—तत् सकलम् एकेन नरेण ज्ञातुं न शक्यते। अतः राजा राज्यविवृद्धये कुलगुणशीलवृद्धान् शूरान् भक्तान् प्रियंवदान् हितोपदेशकान् क्लेशसहान् सदा धर्मरतान् कुमार्गगम् अपि नृपं बुद्ध्या उद्धर्तुं क्षमान् शुचीन् निर्मत्सरान् कामक्रोधलोभहीनान् तथा निरालसान् सहायान् वरयेत् ॥ ७-९ ॥

व्याख्या—तत् = पूर्वोक्तम्, सकलम् = सम्पूर्णं प्रतिपुरुषादिवैभिन्यम्, एकेन = एकाकिना, नरेण = पुरुषेण, ज्ञातुम् = वेत्तुम्, न = नहि, शक्यते = समर्थो भवति, अतः = अस्मात्कारणात्, राजा = नृपः, राज्यविवृद्धये = राष्ट्रस्योन्नतये, कुलगुणशीलवृद्धान्—कुलीनान् = सत्कुलजान्, गुणिनः = गुणवन्तः, शीलान् = चरित्रवतः, वृद्धान् = अनुभवीजनानित्यर्थः, शूरान् = वीरान्, भक्तान् = अनुरक्तान्, मधुरभाषिणः, हितोपदेशकान् = सत्परामर्शदातृणि, क्लेशसहान् = कष्टसहिष्णून्, सदा = सततं, धर्मरतान् = न्यायतत्परान्, कुमार्गगम् = कुपथगामिनम्, अपि = चेत्, नृपम् = राजानम्, बुद्ध्या = युक्त्या, उद्धर्तुम् = कुमार्गान्निवारयितुम्, क्षमान् = समर्थान्, शुचीन् = निर्मलचरितान्, निर्मत्सरान् = परोत्कर्षद्वेषरहितान्, कामक्रोधलोभहीनान् = विषयाभिलाषकोपलिप्सारहितान्, तथा निरालसान् = आलस्यरहितान्, सहायान् = सहायकान्, वरयेत् = विभिन्नराजकीयपदे स्थापयेदिति ॥ ७-९ ॥

हिन्दी—ऊपरवर्णित समस्त विभेदों की जानकारी पा लेना किसी एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। अतः राजा को चाहिए कि राज्य के अभ्युदय हेतु कुलीन, गुणी, चरित्रवान्, वीर, राजभक्त, मधुरभाषी, हितकर उपदेष्टा, सहिष्णु, सदैव न्यायप्रिय, कुपथगामी राजा को भी युक्तिपूर्वक सत्पथ पर लाने में समर्थ, शुद्ध चरित्रवाला, द्वेषरहित, काम-क्रोध-लोभ रहित तथा आलस्यहीन मनुष्यों को अपने सहायक के रूप में उच्चपद पर नियुक्त करे ॥ ७-९ ॥

न हीत्यादि। तत् सकलं पूर्वोक्तं प्रतिपुरुषीयबुद्धिविभवादि एकेन नरेण ज्ञातुं न शक्यते, अतः अस्मात् कारणात् राजा राज्यविवृद्धये राज्यस्य अभ्युदयाय कुलगुणशीलवृद्धान् कुलीनान् गुणिनः सुशीलानित्यर्थः, शूरान् बलिनः अभीरूनित्यर्थः, भक्तान् अनुरक्तान् प्रियंवदान् हितोपदेशकान् क्लेशसहान् सहिष्णूनित्यर्थः, सदा धर्मरतान् कुमार्गगं कुपथप्रवृत्तमपि नृपं बुद्ध्या उद्धर्त्तुं कुपथात् निवारयितुं क्षमान् शुचीन् शुद्धचरितान् निर्मत्सरान् विद्वेषरहितान् कामक्रोधलोभहीनान् तथा निरालसान् आलस्यरहितान् सहायान् वरयेत् नियुञ्ज्यात् ॥ ७-९ ॥

हीयते कुसहायेन स्वधर्माद्राज्यतो नृपः ।
कुकर्मणा प्रनष्टास्तु दितिजाः कुसहायतः ॥ १० ॥

अन्वयः—कुसहायेन नृपः स्वधर्मात् राज्यतः हीयते । दितिजाः कुसहायतः कुकर्मणा च प्रनष्टाः तु ॥ १० ॥

व्याख्या—कुसहायेन = कुत्सितामात्येन, नृपः = राजा, स्वधर्मात् = निजकर्त्तव्यात्, राज्यतः = राष्ट्राच्च, हीयते = भ्रश्यति । दितिजाः = दैत्याः, कुसहायतः = कुसचिवेन, कुकर्मणा = कुत्सितकृत्येन, च = पुनः, प्रनष्टाः = विनाशमुपगताः, तु = इत्यवधारणे ॥ १० ॥

हिन्दी—कुत्सित सहायकों से राजा अपने धर्म एवं राज्य से च्युत हो जाता है। जैसे—कुत्सित सहायक एवं अपने कुकर्म से दैत्य विनष्ट हुए ॥ १० ॥

हीयते इति। कुसहायेन मन्दसचिवेन नृपः स्वधर्मात् राज्यतः राज्याच्च हीयते भ्रश्यति। दितिजाः दैत्याः कुसहायतः कुकर्मणा कुमन्त्रिपरामर्शेन कुकार्य्यकरणादित्यर्थः, प्रनष्टाः निधनं गताः तुशब्दोऽवधारणे ॥ १० ॥

नष्टा दुर्य्योधनाद्यास्तु नृपाः शूरा बलाधिकाः ।
निरभिमानो नृपतिः सुसहायो भवेदतः ॥ ११ ॥

अन्वयः—शूराः बलाधिकाः तु दुर्योधनाद्याः नृपाः नष्टाः। अतः नृपतिः निरभिमानः सुसहायः भवेत् ॥ ११ ॥

व्याख्या—शूराः = सुविक्रमशालिनः, बलाधिकाः = अतिशक्तिसम्पनाः, तु = किन्तु, दुर्योधनाद्याः = धृतराष्ट्रसुताद्याः, नृपाः = राजानः, नष्टाः = कुसचिवपरामर्शेण विनाशमुपगताः, अतः = अनेन हेतुना, नृपतिः = भूपतिः, निरभिमानः = अहङ्कारशून्यः, केवलमहमेवाखिलं जानामीत्याद्यर्थकमभिमानशून्येति भावः, सुसहायः = कुशलसहायकयुक्तः, भवेत् = स्यादिति ॥ ११ ॥

हिन्दी—प्रचण्ड पराक्रमी एवं अत्यधिक शक्तिसम्पन्न होते हुए भी कुपरामर्श के कारण दुर्योधनादि राजे विनष्ट हो गये। अतः राजा को निरभिमानी एवं कुशल सहायकसम्पन्न होना चाहिए ॥ ११ ॥

नष्टा इति। शूराः विक्रमशीलाः बलाधिकाः समधिकबलसम्पन्नाः दुर्योधनाद्याः नृपाः नष्टाः कुसहायत इति शेषः। अतः अस्मात्कारणात् नृपतिः निरभिमानः स्वयं सर्वं जानामीत्यभिमानवर्जितः सन् सुसहायः शोभनसहायसम्पन्नः भवेत् ॥ ११ ॥

युवराजोऽमात्यगणो भुजावेतौ महीभुजः ।
तावेव नयने कर्णौ दक्षसव्यौ क्रमात् स्मृतौ ॥ १२ ॥

अन्वयः—युवराजः अमात्यगणः एतौ महीभुजः भुजौ। तौ एव क्रमात् दक्षसव्यौ कर्णौ च नयने स्मृतौ ॥ १२ ॥

व्याख्या—युवराजः = राज्याधिकारी कुमारः, अमात्यगणः = मन्त्रिवर्गः, एतौ = उभौ, महीभुजः = राज्ञः, भुजौ = बाहुरूपौ, तौ = पूर्वोक्तौ द्वावेव, क्रमात् = अनुक्रमशः, दक्षसव्यौ = वामेतरदक्षिणेतरौ, कर्णौ = श्रवणे, च = पुनः, नयने = लोचने, स्मृतौ = कथितौ ॥ १२ ॥

हिन्दी—युवराज और मंत्रिमण्डल ये दानों क्रमशः राजा के दायें-बायें हाथ हैं तथा इसी क्रम में ये दोनों राजा के दो कान तथा दो आँखें कही गई हैं ॥ १२ ॥

युवेति। युवराजः राजकर्मणि अभिषिक्तः पुत्रादिः अमात्यगणः सचिववर्गश्च एतौ महीभुजः राज्ञः भुजौ बाहुस्वरूपौ। तौ एव क्रमात् दक्षसव्यौ दक्षिणवामौ नयने कर्णौ च स्मृतौ कथितौ राज्ञ इति शेषः ॥ १२ ॥

बाहुकर्णाक्षिहीनः स्याद् विना ताभ्यामतो नृपः।
योजयेच्चिन्तयित्वा तौ महानाशाय चान्यथा ॥ १३ ॥

अन्वयः—ताभ्यां विना नृपः बाहुकर्णाक्षिहीनः स्यात्। अतः चिन्तयित्वा तौ योजयेत्, अन्यथा महानाशाय भवति ॥ १३ ॥

व्याख्या—ताभ्याम् = युवराजसचिवाभ्याम्, विना = विहाय, नृपः = राजा, बाहुकर्णाक्षिहीनः = भुजश्रुतिदृष्टिविहीनः, स्यात् = भवेत्, अतः = अस्मात्कारणात्, चिन्तयित्वा = विचार्य, तौ = युवराजसचिवौ, राजकार्ये योजयेत् = नियोजयेत्, अन्यथा = इतरथा, महानाशाय = समूलविनष्टाय भवति ॥ १३ ॥

हिन्दी—युवराज और मंत्रिमण्डल के बिना राजा हाथ, कान और आँख रहति होता है। अतः राज्यसंचालन के लिए इन दोनों की नियुक्ति सोच-विचार कर करना चाहिए, अन्यथा महान् अनिष्ट होता है ॥ १३ ॥

बाहु इति। ताभ्यां युवराजामात्याभ्यां विना नृपः बाहुकर्णाक्षिहीनः भुजश्रोत्रनेत्ररहितः स्यात्, अतः अस्मात् कारणात् चिन्तयित्वा विविच्य तौ युवराजामात्यौ योजयेत्, अन्यथा महानाशाय भवतीति शेषः ॥ १३ ॥

मुद्रां विनाखिलं राजकृत्यं कर्त्तुं क्षमं सदा।
कल्पयेद् युवराजार्थमौरसं धर्मपत्नीजम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—मुद्रां विना सदा अखिलं राजकृत्यं कर्त्तुं क्षमं धर्मपत्नीजम् औरसं युवराजार्थं कल्पयेत् ॥ १४ ॥

व्याख्या—मुद्राम् = राजप्रतीकात्मकचिह्नम्, विना = विहाय, सदा = सततम्, अखिलम् = सकलम्, राजकृत्यम् = राजकीयकर्म, कर्तुम् = सम्पादयितुम्, क्षमम् = समर्थम्, धर्मपत्नीजम् = यथाशास्त्रं विवाहिताभार्यातः समुत्पन्नम्, औरसम् = आत्मजम्, युवराजार्थम् = युवराजपदाय, कल्पयेत् = विचारयेत् ॥ १४ ॥

हिन्दी—राजमुद्रा के बिना सम्पूर्ण राज-काज चलाने में सतत सुदक्ष हो, अपनी धर्मपत्नी के गर्भ से उत्पन्न औरस पुत्र को युवराज पद के लिए चुनना चाहिए ॥ १४ ॥

मुद्रामिति। मुद्राम् आलस्यं विना परित्यज्य इत्यर्थः, सदा अखिलं समग्रं राजकृत्यं कर्त्तुं क्षमं धर्मपत्नीजम् औरसं पुत्रं युवराजार्थं युवराजशब्दाभिधेयं कल्पयेत् ॥ १४ ॥

स्वकनिष्ठं पितृव्यं वानुजं वाग्रजसम्भवम्।
पुत्रं पुत्रीकृतं दत्तं यौवराज्येऽभिषेचयेत्॥ १५ ॥

अन्वयः—वा स्वकनिष्ठम् अनुजं पितृव्यम् अग्रजसम्भवं पुत्रं वा पुत्रीकृतं दत्तं यौवराज्ये अभिषेचयेत् ॥ १५ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, स्वकनिष्ठम् = निजलघिष्ठम्, अनुजम्—अनु = पश्चाज्जायते, इत्यनुजम् = लघुभ्रातरम्, पितृव्यम् = खुल्लतातम्, अग्रजसम्भवम् = ज्येष्ठभ्रात्रोत्पन्नम्, पुत्रम् = सुतम्, वा = अथवा, पुत्रीकृतम् = पुत्रवत्स्वीकृतम्, दत्तम् = दत्तकपुत्रम्, यौवराज्ये = युवराजपदे, अभिषेचयेत् = सिंहासने स्थापयेत् ॥ १५ ॥

हिन्दी—युवराज पद के लिए अपनी विवाहिता से उत्पन्न अपना बेटा, इसके अभाव में क्रमशः अपना छोटा भाई, चाचा, छोटे या बड़े भाई के पुत्र, बेटे की तरह गोद लिया गया पुत्र, दत्तक पुत्र को चुनकर युवराज पद पर नियुक्त करे ॥ १५ ॥

स्वेति। वा अथवा स्वकनिष्ठं भ्रातरम् अनुजं वयःकनिष्ठं पितृव्यम् अग्रजसम्भवं पुत्रं ज्येष्ठभ्रातृपुत्रं वा पुत्रीकृतं पुत्रप्रतिनिधित्वेन परिगृहीतं दत्तं दत्तकपुत्रं यौवराज्ये अभिषेचयेत् ॥ १५ ॥

क्रमादभावे दौहित्रं स्वप्रियं वा नियोजयेत्।
स्वहितायापि मनसा नैतान् सङ्कर्षयेत् क्वचित्॥ १६ ॥

अन्वयः—अभावे क्रमात् दौहित्रं वा स्वप्रियं नियोजयेत्। क्वचित् स्वहिताय एतान् मनसाऽपि न सङ्कर्षयेत् ॥ १६ ॥

व्याख्या—अभावे = पूर्वोक्तपुत्रादीनामविद्यमानत्वे, क्रमात् = क्रमशः, दौहित्रम् = दुहितापुत्रम्, वा = अथवा, स्वप्रियम् = आत्मनः प्रियपात्रम्, युवराजपदे नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्, क्वचित् = कदाचिदपि, स्वहिताय = आत्मकल्याणाय, एतान् = पूर्वोक्तजनान्, मनसाऽपि = स्वचिन्तनेनाऽपि, न = नहि, सङ्कर्षयेत् = पीडयेत् ॥ १६ ॥

हिन्दी—क्रम से बतलाये गये लोगों के अभाव में नाती या भानजे को युवराज पद पर नियुक्त करना चाहिए। इन्हें मन से भी पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहिए, क्योंकि इसी में अपना हित सन्निहित है ॥ १६ ॥

क्रमादिति। अभावे पूर्वोक्तानामिति शेषः, क्रमात् दौहित्रं वा स्वप्रियम् आत्मनः प्रियं जनं यं कञ्चन जनं नियोजयेत् क्वचित् कदाचित् स्वहिताय स्वस्य आत्मनः हिताय यदि हितमिच्छेत् तदेत्यर्थः, एतान् यथोक्तान् युवराजान् मनसापि न सङ्कर्षयेत् न पीडयेत् ॥ १६ ॥

स्वधर्मनिरतान् शूरान् भक्तान् नीतिमतः सदा।
संरक्षयेद्राजपुत्रान् बालानपि सुयत्नतः ॥ १७ ॥

अन्वयः—स्वधर्मनिरतान् शूरान् भक्तान् नीतिमतः राजपुत्रान् बालानपि सुयत्नतः सदा संरक्षयेत् ॥ १७ ॥

व्याख्या—स्वधर्मनिरतान् = स्वीयसुकृतस्थितान्, शूरान् = पराक्रमशालिनः, भक्तान् = अनुगामिनः, नीतिमतः = नयसम्पन्नान्, राजपुत्रान् = राजकुमारान्, बालानपि = किशोरानपि, सुयत्नतः = अतिश्रयासेन, सदा = सततम्, संरक्षयेत् = सर्वतोभावेन पालयेत् ॥ १७ ॥

हिन्दी—अपने धर्म में सदैव संलग्न, पराक्रमी, राजभक्त, नीतिनिपुण किशोर राजकुमारों की भी रक्षा प्रयासपूर्वक करनी चाहिए ॥ १७ ॥

स्वधर्मेति। स्वधर्मनिरतान् आत्मधर्मस्थितान् शूरान् विक्रान्तान् भक्तान् अनुरक्तान् नीतिमतः नयसम्पन्नान् राजपुत्रान् राजवंश्यान् बालान् अप्राप्तवयस्कानपि सुयत्नतः अतियत्नेन सदा संरक्षयेत् ॥ १७ ॥

लोलुभ्यमानास्तेऽर्थेषु हन्युरेनमरक्षिताः।
रक्ष्यमाणा यदि छिद्रं कथञ्चित् प्राप्नुवन्ति ते ॥ १८ ॥

अन्वयः—ते अर्थेषु लोलुभ्यमानाः अरक्षिताः एनं हन्युः। किञ्च रक्ष्यमाणाः अपि ते यदि कथञ्चित् छिद्रं प्राप्नुवन्ति ॥ १८ ॥

व्याख्या—ते = राजकुमाराः, अर्थेषु = तदीयधनसम्पत्सु, लोलुभ्यमानाः = धनाभिलाषिनः, अरक्षिताः = त्राणरहिताः सन्तः, एनम् = राजानम्, हन्युः = मारयेयुः। रक्ष्यमाणाः = सुरक्षिताः, अपि, ते = कुमाराः, यदि = चेत्, कथञ्चित् = कुत्रापि, छिद्रम् = दोषम्, प्राप्नुवन्ति = आप्नुवन्ति, तदाप्येनं हन्युरित्यर्थः ॥ १८ ॥

हिन्दी—ये राजकुमार राजा से संरक्षित होते हुए भी धनलोलुप अरक्षित इन राजे में यदि थोड़ा भी दोष पा लेंगे तो उन्हें मार डालेंगे ॥ १८ ॥

लोलुभ्यमाना इति। ते राजपुत्राः अर्थेषु तदीयेषु धनेषु लोलुभ्यमानाः राज्ञा इति शेषः, तेषामर्थलोभादिति भावः, अरक्षिताः सन्तः एनं नृपं हन्युः नाशयेयुः। किञ्च रक्ष्यमाणा अपि ते यदि कथञ्चित् छिद्रं दोषं कथञ्चित् प्राप्नुवन्ति तदापि एनं हन्युरित्यनेनान्वयः ॥ १८ ॥

सिंहशावा इव घ्नन्ति रक्षितारं द्विपं द्रुतम्।
राजपुत्रा मदोद्धूता गजा इव निरङ्कुशाः ॥ १९ ॥

अन्वयः—सिंहशावाः द्विपम् इव मदोद्धूताः निरङ्कुशाः गजाः इव राजपुत्राः रक्षितारं द्रुतं घ्नन्ति ॥ १९ ॥

व्याख्या—सिंहशावाः = मृगेन्द्रशिशवः, द्विपम् = गजम्, इव = यथा, घ्नन्ति, तथैव मदोद्धूताः = मदोन्मत्ताः, निरङ्कुशाः = कामचारिणः, गजाः = हस्तिनः, इव = यथा, राजपुत्राः = राजकुमाराः, रक्षितारम् = त्राणकर्त्तारं नृपमेव, द्रुतम् = शीघ्रम्, घ्नन्ति = विनाशयन्ति ॥ १९ ॥

हिन्दी—जैसे सिंहशावक गजेन्द्र की हत्या कर देते हैं, ठीक उसी प्रकार मदोन्मत्त कामचारी गजराज की तरह ये राजकुमार थोड़ा भी दोष पाकर अपने रक्षक राजे का शीघ्र ही ये विनाश कर देते हैं ॥ १९ ॥

सिंहशावा इति। सिंहशावाः द्विपं हस्तिनमिव मदोद्धूताः मदमत्ताः निरङ्कुशाः गजाः इव राजपुत्राः रक्षितारम् अयत्नत इति भावः, नृपं घ्नन्ति नाशयन्ति ॥ १९ ॥

पितरञ्चापि निघ्नन्ति भ्रातरं त्वितरं न किम्।
मूर्खो बालोऽपीच्छतिस्म स्वाम्यं किं नु पुनर्युवा? ॥ २० ॥

अन्वयः—ते पितरं भ्रातरमपि निघ्नन्ति, इतरं तु किं नु ? मूर्खः बालः अपि स्वस्य स्वाम्यं इच्छतिस्म, युवा किं पुनः?

व्याख्या—ते पितरम् = जनकम्, भ्रातरञ्चापि = सोदरञ्चापि, निघ्नन्ति = मारयन्ति, इतरम् = अन्यजनम्, नु = इति वितर्के, किम् = का कथा ? मूर्खः = अज्ञः, बालः = बालकोऽपि, स्वस्य = आत्मनः, स्वाम्यम् = आधिपत्यम्, इच्छतिस्म = वाञ्छतिस्म, युवा = तरुणः, किं पुनः = तस्य पुनः का कथेति भावः ॥ २० ॥

हिन्दी—यदि ये अपने पिता या भाई की हत्या कर सकते हैं तो फिर दूसरों के बारे में पूछना ही क्या ? क्योंकि अज्ञानी बालक भी जब अपना आधिपत्य चाहते हैं तो फिर जवानों का कहना ही क्या ? ॥ २० ॥

पितरमिति। ते पितरं भ्रातरञ्चापि निघ्नन्ति इतरम् अपरं किं नु वक्तव्यमित्यर्थः, नु वितर्के। मूर्खः बालः शिशुरपि स्वस्य आत्मनः स्वाम्यं स्वेच्छाचारित्वम् इच्छति, युवा किं पुनः ? ॥ २० ॥

स्वात्यन्तसन्निकर्षेण राजपुत्रांस्तु रक्षयेत्।
सद्भृत्यैश्चापि तत् स्वान्तं छलैर्ज्ञात्वा सदा स्वयम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—सदा स्वयं सद्भृत्यैश्चापि तत् स्वान्तं छलैः ज्ञात्वा स्वात्यन्तसन्निकर्षेण तु राजपुत्रान् रक्षयेत् ॥ २१ ॥

व्याख्या—सदा = सर्वदा, स्वयम् = स्वतः एव, सद्भृत्यैश्चापि = विश्वस्तसेवकैश्चापि, तत् = तेषां राजपुत्राणाम्, स्वान्तम् = मानसिकविचारम्, छलैः = कौशलैः, ज्ञात्वा = परिज्ञाय, स्वात्यन्तसन्निकर्षेण—स्वस्य = आत्मनः, अत्यन्तः = अत्यर्थः, यः सन्निकर्षः = सङ्गः, तेन रक्षयेत् = पालयेदिति ॥ २१ ॥

हिन्दी—राजा सदैव विश्वासी नौकरों से या कौशल से स्वयं उन राजकुमारों के हार्दिक विचारों से अवगत होते हुए उन्हें अपने पास रखते हुए उनकी रक्षा करे ॥ २१ ॥

स्वात्यन्तेति। सदा स्वयं सद्भृत्यैश्च तत् स्वान्तं तेषां राजपुत्राणां स्वान्तं मनः छलैः कौशलैः ज्ञात्वा स्वात्यन्तसन्निकर्षेण स्वस्य आत्मनः अत्यन्तः यः सन्निकर्षः सङ्गः तेन रक्षयेत् पालयेत् ॥ २१ ॥

सुनीतिशास्त्रकुशलान् धनुर्वेदविशारदान्।
क्लेशसहांश्च वाग्दण्डपारुष्यानुभवान् सदा ॥ २२ ॥
शौर्य्ययुद्धरतान् सर्वकलाविद्याविदोऽञ्जसः।
सुविनीतान् प्रकुर्वीत ह्यमात्याद्यैर्नृपः सुतान् ॥ २३ ॥

अन्वयः—नृपः अमात्याद्यैः सुतान् सुनीतिशास्त्रकुशलान् धनुर्वेदविशारदान् सदा क्लेशसहान् वाग्दण्डपारुष्यानुभवान् शौर्ययुद्धरतान् सर्वकलाविद्याविदः अञ्जसः तथा सुविनीतान् प्रकुर्वीत ॥ २२-२३ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अमात्याद्यैः = सचिवाद्यैः, सुतान् = पुत्रान्, सुनीतिशास्त्रकुशलान् = नयशास्त्रविशारदान्, धनुर्वेदविशारदान् = धनुर्विद्यानिरूपकशास्त्रविशेषज्ञान्, सदा = सततम्, क्लेशसहान् = कष्टसहिष्णून्, वाग्दण्डपारुष्यानुभवान् = वाग्दण्डकठोरतायाः परिणतप्रज्ञान्, शौर्ययुद्धरतान् = वीरतापूर्णसङ्ग्रामकरणे कुशलान्, सर्वकलाविद्याविदः—सर्वासु = सकलासु, कलासु = चतुःषष्टिप्रकारासु, विद्यासु = शास्त्रेषु, विदः = विशिष्टज्ञानसम्पन्नान्, अञ्जसः =

निर्व्याजान्, सुविनीतान् = सुष्ठुविनययुक्तान्, प्रकुर्वीत = सायासेन कुर्वीत ॥ २२-२३ ॥

हिन्दी—राजा मंत्री प्रभृति आप्तजनों के द्वारा अपने पुत्रों को ठीक ढंग से नीतिशास्त्र में कुशल, धनुर्वेदविद्याविशारद, सदा कष्टसहिष्णु, वाग्दण्ड की कठोरता से पूर्ण परिचित, वीरता के साथ युद्ध करने में प्रवीण, सम्पूर्ण कलाओं एवं विद्याओं का ज्ञाता, कपटहीन एवं विनयी बनाये ॥ २२-२३ ॥

सुनीतीति। शौर्य्येति। नृपः अमात्याद्यैः सुतान् सुनीतिशास्त्रकुशलान् धनुर्वेदविशारदान् सङ्ग्रामनिपुणान् सदा क्लेशसहान् वाग्दण्डपारुष्यानुभवान् वाक्पारुष्यदण्डपारुष्याभिज्ञान् शौर्य्ययुद्धरतान् विक्रमशालिनः सर्वकलाविद्याविदः सर्वासु कलाविद्यासु चतुःषष्टिप्रकारासु विद्यासु विज्ञान् अञ्जसः क्षिप्रकारिणः तथा सुविनीतान् शोभनविनयसम्पन्नान् प्रकुर्वीत ॥ २२-२३ ॥

सुवस्त्राद्यैर्भूषयित्वा लालयित्वा सुक्रीडनैः।
अर्हयित्वासनाद्यैश्च पालयित्वा सुभोजनैः ॥ २४ ॥
कृत्वा तु यौवराज्यार्हान् यौवराज्येऽभिषेचयेत्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विनश्यति ॥ २५ ॥

अन्वयः— सुवस्त्राद्यैः भूषयित्वा सुक्रीडनैः लालयित्वा च आसनाद्यैः अर्हयित्वा सुभोजनैः पालयित्वा तु यौवराज्यार्हान् कृत्वा यौवराज्ये अभिषेचयेत्। हि अविनीतकुमारम् आशु कुलं विनश्यति ॥ २४-२५ ॥

व्याख्या—सुवस्त्राद्यैः = चारुपरिधानादिभिः, भूषयित्वा = अलङ्कृत्वा, सुक्रीडनैः = मनोहरखेलनैः, लालयित्वा = संवर्द्धयित्वा, च = पुनः, आसनाद्यैः = उपवेशनाधारादिभिः, अर्हयित्वा = सम्मान्य, सुभोजनैः = पौष्टिकाशनैः, पोषयित्वा, तु = क्रमेण, यौवराज्यार्हान् = युवराजपदयोग्यान्, कृत्वा = विधाय, यौवराज्ये = युवराजपदे, स्वकीयपुत्रान्, अभिषेचयेत् = स्नापयेत्। हि = यतः, अविनीतकुमारम्—अविनीतः = अशिष्टः, कुमारः = राजपुत्रः, यस्य तादृशं कुलम्, आशु = त्वरितमेव, विनश्यति = विनाशमुपगच्छति ॥ २४-२५ ॥

हिन्दी—सुरुचिसम्पन्न वस्त्रों से उन्हें सुसज्जित कर, उनके मनोविनोद के लिए अच्छे खेलों के रुचिकर साधन जुटाकर, उनको बैठने के लिए अच्छे आसनों की व्यवस्था से उन्हें सम्मानित कर तथा सुभोजन से पाल-पोष कर युवराज पद के योग्य हो जाने पर युवराज बनाये। क्योंकि जिस राजकुल का युवराज अशिष्ट होता है, उस कुल का शीघ्र विनाश हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

सुवस्त्राद्यैरिति। कृत्वेति। सुवस्त्राद्यैः शोभनवसनादिभिः भूषयित्वा सुक्रीडनैः शोभनक्रीडनद्रव्यैः लालयित्वा आनन्दितान् कृत्वा आसनाद्यैः उपवेशनादिना अर्हयित्वा सम्मान्य, सुभोजनैः पालयित्वा क्रमेण यौवराज्यार्हान् कृत्वा पुत्रानिति शेषः, यौवराज्ये अभिषेचयेत्, हि यतः अविनीतः अशिक्षितः कुमारो यस्य तादृशं कुलम् आशु शीघ्रं विनश्यति विनाशं प्राप्नोति ॥ २४-२५ ॥

राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागं हि नार्हति।
क्लिश्यमानः स पितरं परानाश्रित्य हन्ति हि ॥ २६ ॥

अन्वयः—राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागं न अर्हति। हि सः क्लिश्यमानः परान् आश्रित्य पितरं हि हन्ति ॥ २६ ॥

व्याख्या—राजपुत्रः = राजकुमारः, सुदुर्वृत्तः = अतिदुश्चरित्रः, अपि, परित्यागम् = बहिष्करणम्, न = नहि, अर्हति = योग्यो भवति, हि = यतः, सः = कुमारः, क्लिश्यमानः = पीड्यमानः, परान् = शत्रुपक्षान्, आश्रित्य = अवलम्ब्य, पितरम् = जनकम्, हि = इति निश्चयेन, हन्ति = मारयति ॥ २६ ॥

हिन्दी—दुराचारी राजकुमारों का भी परित्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये पीड़ित राजकुमार शत्रुओं का सहारा लेकर पिता की ही हत्या कर देते हैं ॥ २६ ॥

राजपुत्र इति। राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः अतिदुर्वृत्तः अपि परित्यागं न अर्हति न परित्याज्यो भवतीत्यर्थः, स क्लिश्यमानः परान् आश्रित्य पितरं हन्ति हि हन्त्येव ॥ २६ ॥

व्यसने सज्जमानं तं क्लेशयेद् व्यसनाश्रयैः।
दुष्टं गजमिवोद्वृत्तं कुर्वीत सुखबन्धनम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—व्यसने सज्जमानं तं व्यसनाश्रयैः क्लेशयेत्। दुष्टं गजमिव उद्वृत्तं सुखबन्धनं कुर्वीत ॥ २७ ॥

व्याख्या—व्यसने = सुरासुन्दरीसेवमानादौ दुर्गुणे, सज्जमानम् = आकण्ठनिमज्जमानम्, तम् = राजकुमारम्, व्यसनाश्रयैः = तस्य दुर्गुणाधारैः, क्लेशयेत् = पीडयेत्। दुष्टम् = मदोन्मत्तम्, गजम् = हस्तिनम्, इव = यथा, उद्वृत्तम् = उच्छृङ्खलं पुत्रम्, सुखबन्धनम्—सुखेन = सहजभावेन, बन्धनम् = प्रतिबन्धः, कुर्वीत = प्रकुर्वीत ॥ २७ ॥

हिन्दी—यदि कोई राजकुमार सुरा-सुन्दरी जैसे व्यसन में आकण्ठ डूब जाय तो उस दुर्व्यसन की जड़ पर प्रहार करना चाहिए। ताकि उसे कष्ट देकर राजकुमार को सही रास्ते पर लाया जाय। जैसे मदोन्मत्त हाथी को कष्ट पहुँचाकर ही बन्धन में लाया जाता है ॥ २७ ॥

व्यसने इति। व्यसने स्त्रीमद्यादौ सज्जमानं तं पुत्रं व्यसनाश्रयैः तत्सङ्गिभिः क्लेशयेत् तत्सङ्गिनां असम्माननेन यथा पुत्रस्तदात्मकः न भवेत् तथा यत्नं कुर्य्यादित्यर्थः। दुष्टं गजमिव उद्वृत्तम् उच्छृङ्खलं पुत्रं सुखबन्धनं सुखेन आयत्तं कुर्वीत ॥ २७ ॥

सुदुर्वृत्तास्तु दायादा हन्तव्यास्ते प्रयत्नतः।
व्याघ्रादिभिः शत्रुभिर्वा छलै राष्ट्रविवृद्धये ॥ २८ ॥

अन्वयः—तु दायादाः सुदुर्वृत्ताश्चेत् ते प्रयत्नतः व्याघ्रादिभिः शत्रुभिः वा छलैः राष्ट्रविवृद्धये हन्तव्याः ॥ २८ ॥

व्याख्या—तु = किन्तु, दायादाः = गोत्रजाः, सुदुर्वृत्ताः = दुराचारिणः, चेत् = भवेत्, तदा ते = दायादाः, प्रयत्नतः = सायासः, व्याघ्रादिभिः = शार्दूलादिवन्यजन्तुभिः, शत्रुभिः = रिपुभिः, वा = अथवा, छलैः = कौशलैः, राष्ट्रविवृद्धये = राज्योन्नतये, हन्तव्याः = मारितव्याः ॥ २८ ॥

हिन्दी—लेकिन यदि खानदान के अन्य लोग दुराचारी हों तो उन्हें जंगली हिंसक जन्तुओं से, दुश्मनों से या कपटपूर्वक मरवा डालना चाहिए; इसी में राज्य की उन्नति है। २८ ॥

सुदुर्वृत्ता इति। दायादाः अपरे ज्ञातयः सुदुर्वृत्ताश्चेत् ते प्रयलतः व्याघ्रादिभिः शत्रुभिर्वा छलैः कौशलैः राष्ट्रविवृद्धये राज्योन्नतये हन्तव्याः ॥ २८ ॥

अतोऽन्यथा विनाशाय प्रजाया भूपतेश्च ते।
तोषयेयुर्नृपं नित्यं दायादाः स्वगुणैः परैः॥ २९॥
भ्रष्टा भवन्त्यन्यथा ते स्वभागाज्जीवितादपि।
स्वसापिण्ड्यविहीना ये ह्यन्योत्पन्ना नराः खलु॥ ३०॥
मनसापि न मन्तव्या दत्ताद्याः स्वसुता इति।
ते दत्तकत्वमिच्छन्ति दृष्ट्वा यद् धनिकं नरम्॥ ३१॥

अन्वयः—अतः अन्यथा ते प्रजायाः च भूपतेः विनाशाय, ततः दायादाः परैः स्वगुणैः नृपं नित्यं तोषयेयुः। अन्यथा ते स्वाभागात् जीवितादपि भ्रष्टाः भवन्ति। ये नराः खलु स्वसापिण्ड्यविहीनाः अन्योत्पन्नाः ते दत्ताद्याः स्वसुता इति मनसाऽपि नैव मन्तव्याः। यत् ते धनिकं नरं दृष्ट्वा दत्तकत्वम् इच्छन्ति॥ २९-३१॥

व्याख्या—अतः = अस्मात्कारणात्, अन्यथा = इतरथा, ते = दायादाः, प्रजायाः = जनानां, च = पुनः, भूपतेः = राज्ञः, विनाशाय = विध्वंसाय, भवन्ति, ततः दायादाः = वंशजाः, परैः = श्रेष्ठैः, स्वगुणैः = आत्मगुणैः, नृपम् = राजानम्, नित्यम् = सततम्, तोषयेयुः = सन्तोषयेयुः, अन्यथा = विपरीतम्, ते = दायादाः, स्वभागात् = निजप्राप्यांशात्, जीवितादपि = स्वजीवनादपि, भ्रष्टाः = च्युताः भवन्ति, ये नराः = ये जनाः, स्वसापिण्ड्यविहीनाः—स्वस्य = आत्मनः, सापिण्ड्यविहीनाः = अन्योत्पन्नाः अपरवंशजाः, खलु = निश्चयेन, ते = पूर्वोक्ताः, दत्ताद्याः = दत्तकप्रभृतयः, स्वसुताः = निजपुत्राः, इति = इति शम्, मनसा = चेतसाऽपि, नैव मन्तव्याः = स्वीकर्तव्याः इति, यत् = यस्माद्धेतोः, ते धनिकम् = धनवन्तम्, नरम् = पुरुषं, दृष्ट्वा = विलोक्य, दत्तकत्वम् = दत्तकपुत्राः भवितुम्, इच्छन्ति = वाञ्छन्तीति॥ २९-३१॥

हिन्दी—इसके विपरीत वे दायाद राजा और प्रजा दोनों के विनाश का कारण बन जाते हैं। अतः दायादों को चाहिए कि वे अपने श्रेष्ठ गुणों से राजा को सदैव सन्तुष्ट रखें। अन्यथा वे अपने हिस्से के धन और जिन्दगी से भी हाथ धो लेते हैं। जो अपने वंश के न होकर दूसरे वंश के दत्तक पुत्र होते हैं, उन्हें अपने मन से भी अपना पुत्र नहीं समझना चाहिए। क्योंकि लोग धनी पुरुष देखकर उसका दत्तक पुत्र बनने की इच्छा रखते हैं॥ २९-३१॥

अत इत्यादि। अतः अस्मात् वधरूपादुपायात् अन्यथा ते दायादाः प्रजायाः भूपतेश्च विनाशाय भवन्तीति शेषः। ततः दायादाः परैः केवलैः श्रेष्ठैर्वा स्वगुणैः निजगुणैः नृपं नित्यं सततं तोषयेयुः। अन्यथा ते दायादाः स्वभागात् स्वप्राप्यांशात् जीवितादपि जीवनाच्च भ्रष्टाः भवन्ति। ये नराः स्वस्य राज्ञः सापिण्ड्यविहीनाः असपिण्डजाः अन्योत्पन्नाः अपरवंशजाः खलु निश्चितं, ते दत्ताद्याः दत्तकप्रभृतयः स्वसुता इति मनसा नैव मन्तव्याः, यत् यस्मात् ते धनिकं धनवन्तं नरं दृष्ट्वा दत्तकत्वम् इच्छन्ति दत्तकसुता भवितुमिच्छन्तीत्यर्थः॥ २९-३१॥

स्वकुलोत्पन्नकन्यायाः पुत्रस्तेभ्यो वरो ह्यतः।
अङ्गादङ्गात् सम्भवति पुत्रवद् दुहिता नृणाम्॥ ३२॥

अन्वयः—हि यतः दुहिता पुत्रवत् नृणाम् अङ्गात् अङ्गात् सम्भवति। अतः स्वकुलोत्पन्नकन्यायाः पुत्रः तेभ्यः वरः॥ ३२॥

व्याख्या—हि = इति निश्चितम्, यतः = यस्मात्कारणात्, दुहिता = सुताऽपि, पुत्रवत् = पुत्र इवेति, नृणाम् = मनुष्याणाम्, अङ्गात् अङ्गात् = शरीरस्य प्रत्यवयवात्, सम्भवति = समुत्पन्ना भवति, अतः = अस्मात्कारणात्, स्वकुलोत्पन्नकन्यायाः—स्वस्य = आत्मनः, कुले = वंशे, उत्पन्ना = जाता, कन्यायाः = सुतायाः, पुत्रः = सुतः, तेभ्यः = दत्तकेभ्यः, वरः = श्रेष्ठो भवति ॥३२ ॥

हिन्दी—क्योंकि बेटे की तरह बेटी भी मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से जन्म लेती है। अतः अपने वंश की बेटी का बेटा दत्तकपुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है ॥३२ ॥

स्वकुलोत्पन्नेति। हि यतः दुहिता पुत्रवत् नृणाम् अङ्गात् अङ्गात् सम्भवति, अतः अस्मात् कारणात् स्वकुलोत्पन्नकन्यायाः पुत्रः दौहित्र इत्यर्थः, तेभ्यः दत्तकेभ्यः वरः श्रेष्ठः ॥३२ ॥

पिण्डदाने विशेषो न पुत्रदौहित्रयोस्त्वतः।
भूप्रजापालनार्थं हि भूपो दत्तन्तु पालयेत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अतः तु पुत्रदौहित्रयोः पिण्डदाने विशेषः न। भूपः भूप्रजापालनार्थं हि दत्तं पालयेत् ॥३३ ॥

व्याख्या—अतः = अस्मात्कारणात्, तु = प्रथमशब्दस्य पश्चात्प्रयोगार्थ एव, पुत्रदौहित्रयोः = आत्मजात्मजापुत्रयोः, पिण्डदाने = पिण्डनिर्वापे, विशेषः = भेदः, न = नहि, अस्ति, हि = इत्यवधारणे, भूपः = राजा, भूप्रजापालनार्थम्—भूमेः = पृथिव्याः, प्रजानाञ्च = जनानाञ्च, पालनार्थम् = रक्षणार्थम्, हि = इति निश्चितम्, दत्तम् = दौहित्राभावे दत्तकपुत्रम्, पालयेत् = संवर्द्धयेत् ॥३३ ॥

हिन्दी—अतएव पिण्डदान करने में बेटा और नाती में कोई भेद नहीं है। नाती के अभाव में राजा प्रजा एवं धरती की रक्षा के लिए दत्तक पुत्र ले ॥३३ ॥

पिण्डदाने इति। अतस्तु अत एव पुत्रदौहित्रयोः पिण्डदाने विशेषः न अस्तीति शेषः। भूपः भूप्रजापालनार्थं भूमेः प्रजानाञ्च रक्षणार्थं दत्तं दत्तकपुत्रं दौहित्राभावे इति शेषः पालयेत्, हिशब्दः अवधारणे ॥३३ ॥

नृपः प्रजापालनार्थं सधनश्चेन्न चान्यथा।
परोत्पन्ने स्वपुत्रत्वं मत्वा सर्वं ददाति तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—नृपः सधनश्चेत् तदा प्रजापालनार्थं परोत्पन्ने स्वपुत्रत्वं मत्वा तं सर्वं ददाति ॥३४ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, सधनः = धनवान्, चेत् = यदि, तदा, प्रजापालनार्थम् = प्रजारक्षणार्थम्, परोत्पन्ने = अन्यजनोत्पन्नपुत्रे, स्वपुत्रत्वम् = स्वकीयसुतवत्, मत्वा = अवबुध्य, तम् = दत्तकपुत्रम्, सर्वम् = सर्वस्वम्, ददाति = समर्पयतीति ॥३४ ॥

हिन्दी—राजा यदि धनवान् है तो प्रजापालन के लिए दूसरे कुल में उत्पन्न दत्तक पुत्र को अपना बेटा मानकर उसे सर्वस्व समर्पित कर देता है ॥३३ ॥

नृप इति। नृपः सधनश्चेत् समधिकधनशाली यदि, तदा प्रजापालनार्थं परोत्पन्ने पुत्रे स्वपुत्रत्वं मत्वा परपुत्रं दत्तकत्वेन परिगृह्येत्यर्थः, तं दत्तकं सर्वं ददांति, तमिति आर्षप्रयोगः सम्प्रदाने चतुर्थीविधानात्। अन्यथा निर्धनत्वे न दत्तकपुत्रग्रहणमिति भावः ॥३४ ॥

किमाश्चर्य्यमता लोके न ददाति यजत्यपि।
प्राप्यापि युवराजत्वं प्राप्नुयाद्विकृतिं न च॥ ३५॥

अन्वयः—लोके न ददाति नापि यजति किमाश्चर्यम्? युवराजत्वं प्राप्याऽपि विकृतिं न च प्राप्नुयात्॥ ३५॥

व्याख्या—लोके = अस्मिन् संसारे, आत्मजविहीनः कोऽपि राजा कस्मैचित् किमपि, न = नहि, ददाति = प्रयच्छति, नापि यजति = यज्ञं करोति, देवान् अर्चयति, केवलं दत्तकपुत्राय सकलं सम्पदं रक्षति, अतोऽधिकमपि, आश्चर्यम् = विस्मयावहम्, किम् = न किमपीत्यर्थः, अतः = अस्मात्कारणात्, युवराजत्वम् = राज्याधिकारिपदम्, प्राप्याऽपि = अधिगम्याऽपि, विकृतिम् = वैरूप्यम्, न = नहि, प्राप्नुयात् = अधिगच्छेत्॥ ३५॥

हिन्दी—इस संसार में जो धन न किसी को देता है और न उससे कोई यज्ञ या देवार्चन ही करता है, वही धन दत्तक पुत्र को सौंप देता है, इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है? अतः राज्याधिकार पाकर किसी को विकारग्रस्त नहीं होना चाहिए॥ ३५॥

किमिति। लोके जगति दत्तकाय सर्वं रक्षेत् तथापि न ददाति कस्मैचित् किमपीति शेषः, नापि यजति देवान् अर्चयति किमाश्चर्य्यम्? किञ्च युवराजत्वं प्राप्यापि विकृतिं न च प्राप्नुयात् न विकारं गच्छेत्॥ ३५॥

स्वसम्पत्तिमदान्नैव मातरं पितरं गुरुम्।
भ्रातरं भगिनीं वापि ह्यन्यान् वा राजवल्लभान्॥ ३६॥

अन्वयः—मातरं पितरं गुरुं भ्रातरं भगिनीं वा अन्यान् वाऽपि राजवल्लभान् स्वसम्पत्तिमदात् नैव॥ ३६॥

व्याख्या—मातरम् = जननीम्, पितरम् = जनकम्, गुरुम् = आचार्यम्, भ्रातरम् = सोदरम्, भगिनीम् = सोदराम्, वा = अथवा, अन्यान् = अपरान्, वा = अथवा, राजवल्लभान् = राजभक्तान्, स्वसम्पत्तिमदात्—स्वस्य = आत्मनः, सम्पत्तिमदात् = धनोन्मादात्, नैव = कदापि नैव पीडयेदिति शेषः॥ ३६॥

हिन्दी—माँ-बाप, भाई-बहन, गुरु या अन्य जन अथवा राजभक्तों को अपने धनमद से कदापि नहीं सताना चाहिए॥ ३६॥

स्वेति। मातरं पितरं गुरुं भ्रातरं भगिनीं वा अन्यान् राजवल्लभान् राजानुरक्तान् स्वसम्पत्तिं नैव, दद्यादित्यर्थः, सम्प्रदानेषु कर्म्मविभक्तिरार्षैवेति बोध्यं, दाने धनक्षयात् प्रभुत्वहानिः स्यादिति भावः॥ ३६॥

टिप्पणी—जीवानन्दजी ने 'सम्पत्तिं नैव दद्यात्' लिखा है। अर्थात् माँ-बाप, भाई-बहन, गुरु, अन्य या राजभक्तों को सम्पत्ति नहीं देना चाहिए। क्योंकि इन्हें धन देने से धनक्षय तो होगा ही, प्रभुता की भी हानि होगी। 'स्वसम्पत्तिमदान्नैव' का यह अर्थ मेरी दृष्टि में उचित नहीं है। यदि 'अदात्' एवं 'दद्यात्' में अभेदोपचार मानकर ऐसा अर्थ मान भी लें तो भी वदतोव्याघात होगा, सम्प्रदान-चतुर्थी की वैयर्थ्यापत्ति होगी। यदि 'आर्ष' प्रयोग मानते हैं तो उसका उपयुक्त कारण नहीं मिलता है।

महाजनांस्तथा राष्ट्रे नावमन्येत पीडयेत्।
प्राप्यापि महतीं वृद्धिं वर्त्तेत पितुराज्ञया॥ ३७॥

अन्वयः—राष्ट्रे महाजनान् न अवमन्येत तथा न पीडयेत्। किञ्च महतीम् ऋद्धिं प्राप्याऽपि पितुराज्ञया वर्त्तेत॥ ३६॥

व्याख्या—राष्ट्रे = जनपदे, महाजनान् = कुलीनपुरुषान्, न = नहि, अवमन्येत = अवहेलनां कुर्वीत, तथा नैव पीडयेत् = क्लेशयेत्। किञ्च, महतीम् = विपुलाम्, ऋद्धिम् = समृद्धिम्, प्राप्यापि = लभ्यापि, पितुराज्ञया—पितुः = जनकस्य, आज्ञया = अनुमत्या, एव वर्त्तेत = तिष्ठेत्॥ ३७॥

हिन्दी—राज्य में न तो कुलीन जनों का तिरस्कार करे और न ही उन्हें पीड़ा पहुँचाये। अत्यधिक सम्पत्तिवान् होने पर भी पिता के आदेश से ही कोई काम करे॥ ३७॥

महाजनानिति। राष्ट्रे राज्ये महाजनान् भद्रवंशीयान् न अवमन्येत तथा न पीडयेत्। किञ्च महतीम् ऋद्धिम् ऐश्वर्य्यं प्राप्यापि पितुराज्ञया वर्त्तेत तिष्ठेत्॥ ३७॥

पुत्रस्य पितुराज्ञा हि परमं भूषणं स्मृतम्।
भार्गवेण हता माता राघवस्तु वनं गतः॥ ३८॥

अन्वयः—पितुः आज्ञा हि पुत्रस्य परमं भूषणं स्मृतम्। भार्गवेण माता हता, राघवस्तु वनं गतः॥ ३८॥

व्याख्या—पितुः = जनकस्य, आज्ञा = आदेशः, हि = निश्चितम्, पुत्रस्य = सुतस्य, परमम् = उत्कृष्टम्, भूषणम् = अलङ्करणम्, स्मृतम् = कथितम्। भार्गवेण = परशुरामेण, माता = जननी, हता = मारिता, राघवस्तु = रामचन्द्रस्तु, वनम् = अरण्यम्, गतः = प्राप्तः, पितुराज्ञयेति भावः॥ ३८॥

हिन्दी—पुत्र के लिए पिता की आज्ञा का पालन करना सबसे बड़ी शोभा है। परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता की हत्या की तथा राम ने वनगमन किया॥ ३८॥

पुत्रस्येति। पितुराज्ञा हि पुत्रस्य परमं भूषणं स्मृतं कथितम्। तथाहि भार्गवेण परशुरामेण माता हता नाशिता, राघवस्तु रामश्च वनं गतः पितुराज्ञयेति शेषः॥ ३८॥

पितुस्तपोबलात् तौ तु मातरं राज्यमापतुः।
शापानुग्रहयोः शक्तो यस्तस्याज्ञा गरीयसी॥ ३९॥

अन्वयः—तौ तु पितुस्तपोबलात् मातरं राज्यम् आपतुः। अतः यः शापानुग्रहयोः शक्तः तस्य आज्ञा गरीयसी॥ ३९॥

व्याख्या—तौ = रामपरशुरामौ, पितुः = जनकस्य, तपोबलात् = तपस्या शक्त्या, मातरम् = जननीम्, राज्यम् = राजसिंहासनञ्च, आपतुः = प्रापतुः, अतः = अतएव, यः = पुरुषः, शापानुग्रहयोः = अवग्रहानुग्रहयोः, शक्तः = समर्थः, तस्य = जनस्य, आज्ञा = आदेशः, गरीयसी = श्रेष्ठतमा भवति॥ ३९॥

हिन्दी—पिता के तपोबल से पुनः उन दोनों ने क्रमशः परशुराम ने माता का पुनर्जीवन और राम ने राज्य प्राप्त किया। क्योंकि शाप और प्रसाद देने में जो पुरुष समर्थ है उनकी आज्ञा सर्वोपरि मान्य है॥ ३९॥

पितुरिति। तौ भार्गवराघवौ तु पितुस्तपोबलात् मातरं राज्यम् आपतुः प्रापतुः। भार्गवस्य माता पुनर्जीविता, रामस्य च पुनः राज्यप्राप्तिरासीदित्यर्थः। अतः यः शापानुग्रहयोः अभिसम्पातप्रसादयोः शक्तः समर्थः, तस्य आज्ञा गरीयसी अतिगुर्वीत्यर्थः॥ ३९ ॥

सोदरेषु च सर्वेषु स्वस्याधिक्यं न दर्शयेत्।
भागार्हभ्रातृणां नष्टो ह्यवमानात् सुयोधनः॥ ४० ॥

अन्वयः—सर्वेषु सोदरेषु स्वस्य आधिक्यं न दर्शयेत्। हि भागार्हभ्रातृणाम् अवमानात् सुयोधनः नष्टः॥ ४० ॥

व्याख्या—सर्वेषु = सकलेषु, सोदरेषु = भ्रातृषु, स्वस्य = आत्मनः, आधिक्यम् = आधिपत्यम्, न = नहि, दर्शयेत् = अवलोकयेत्। हि = यतः, भागार्हाणाम् = अंशग्रहणकर्तृणाम्, भ्रार्तृणाम् = सोदराणाम्, अवमानात् = अपमानात्, सुयोधनः = दुर्योधनः, नष्टः = विनाशमुपगतः॥ ४० ॥

हिन्दी—अपने भाइयों के सामने अपनी महत्ता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। अपने साझीदार भाइयों के अपमान से ही दुर्योधन विनष्ट हो गया॥ ४० ॥

सोदरेष्विति। सर्वेषु सोदरेषु भ्रातृषु स्वस्य आधिक्यम् आत्मनः ऐश्वर्य्यम् आधिपत्यं वा न दर्शयेत्। हि यतः भागार्हाणां दायादानां भ्रातृणाम् अवमानात् सुयोधनः नष्टः विनाशं गत इत्यर्थः।

पितुराज्ञोल्लङ्घनेन प्राप्यापि पदमुत्तमम्।
तस्माद् भ्रष्टा भवन्तीह दासवद्राजपुत्रकाः॥ ४१ ॥
ययातेश्च यथा पुत्रा विश्वामित्रसुता यथा।
पितृसेवापरस्तिष्ठेत् कायवाङ्मानसैः सदा॥ ४२ ॥

अन्वयः—इह राजपुत्रकाः उत्तमं पदं प्राप्याऽपि पितुराज्ञोल्लङ्घनेन तस्मात् दासवत् भ्रष्टाः भवन्ति। यथा ययातेः पुत्राः यथा विश्वामित्रसुताः। तस्मात् कायवाङ्मानसैः सदा पितृसेवापरः तिष्ठेत्॥ ४१-४२ ॥

व्याख्या—इह = संसारे, राजपुत्रकाः = राजकुमाराः, उत्तमम् = उत्कृष्टम्, पदम् = स्थानम्, प्राप्याऽपि = अधिगतं कृत्वाऽपि, पितुराज्ञोल्लङ्घनेन—पितुः = जनकस्य, आज्ञायाः = आदेशस्य, उल्लङ्घनेन = व्यतिक्रमेण, तस्मात् = उत्कृष्टपदात्, दासवत् = किङ्कर इव, भ्रष्टाः = स्रस्ताः, भवन्ति = सन्ति। यथा = येन प्रकारेण, ययातेः = नहुषसुतस्य, पुत्राः = सुताः यदुप्रभृतयः, यथा विश्वामित्रसुताः = गाधेयपुत्राः मधुच्छन्दादयः, विपन्नाः बभूवुः। तस्मात् = तेन हेतुना, कायवाङ्मानसैः = देहवचनचित्तैः, अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा, पितृसेवापरः = पितृशुश्रूषानिरतः, तिष्ठेत् = जीवेदिति॥ ४१-४२ ॥

हिन्दी—इस संसार में राजकुमार उत्कृष्ट पद पाकर भी पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन कर दास की तरह दुःखभागी बन जाते हैं। जैसे—राजा ययाति के पुत्र यदु प्रभृति एवं विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा प्रभृति पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से उनके शाप से कुत्ते का मांस भोजन करने वाले हो गये। अतः बेटे को सदैव शरीर, वाणी और मन से पिता की सेवा में तत्पर रहना चाहिए॥ ४१-४२ ॥

पितुरिति। ययातेरिति। इह जगति राजपुत्रकाः उत्तमं पदं प्राप्यापि पितुः आज्ञोल्लङ्घनेन तस्मात् उत्तमात् पदात् भ्रष्टाः दासवत् भवन्ति। यथा ययातेः पुत्राः यदुप्रभृतयः, (विस्तरस्तु महाभारते आदिपर्वणि चतुरशीतितमाध्याये द्रष्टव्यः।) यथा वा विश्वामित्रस्य मुनेः सुताः पुत्राः। पितुर्विश्वामित्रस्य शापात् तत्सुताः मधुच्छन्दादयः श्वमांसभोजिनः संवृत्ताः। वाल्मीकिरामायणस्य बालकाण्डे द्विषष्टितमे अध्याये आख्यायिका द्रष्टव्या। तस्मात् कायवाङ्मानसैः सदा पितृसेवापरः पितृशुश्रूषानिरतः तिष्ठेत् ॥४१-४२॥

टिप्पणी—यदुओं की विस्तृत जानकारी के लिए महाभारत के आदिपर्व के चौरासी अध्याय का अनुशीलन करना चाहिए। इसी प्रकार मधुच्छन्दा की कथा वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड का बासठवाँ अध्याय द्रष्टव्यय है ॥४१-४२॥

तत्कर्म्म नियतं कुर्य्याद् येन तुष्टो भवेत् पिता।
तन्न कुर्य्याद् येन पिता मनागपि विषीदति॥४३॥

अन्वयः—येन पिता तुष्टो भवेत् तत्कर्म नियतं कुर्यात्। तत् न कुर्यात् येन पिता मनागपि विषीदति॥४३॥

व्याख्या—येन = कर्मणा, पिता = जनकः, तुष्टः = प्रसन्नः, भवेत् = स्यात्, तत् = पूर्वोक्तपितृप्रसन्नतादायकम्, कर्म = कार्यम्, नियतम् = निश्चितम्, कुर्यात् = सम्पादयेत्। तत् = कर्म, न = नहि, कुर्यात् = अनुष्ठेयात्, येन = कर्मणा, पिता = जनकः, मनागपि = स्तोकमपि, विषीदति = विषण्णो भवति ॥४३॥

हिन्दी—जिस काम से पिता प्रसन्न हो, वह काम निश्चित रूप से करना चाहिए तथा जिस काम से पिता को थोड़ा भी कष्ट हो, वह काम नहीं करना चाहिए॥४३॥

तदिति। येन कर्मणा पिता तुष्टो भवेत् नियतं तत् कर्म कुर्य्यात्। येन कर्मणा पिता मनागपि अल्पमपि विषीदति क्षोभमायाति तत् न कुर्य्यात् ॥४३॥

यस्मिन् पितुर्भवेत् प्रीतिः स्वयं तस्मिन् प्रियञ्चरेत्।
यस्मिन् द्वेषं पिता कुर्य्यात् स्वस्यापि द्वेष्य एव सः॥४४॥

अन्वयः—यस्मिन् पितुः प्रीतिः भवेत् तस्मिन् स्वयं प्रियं चरेत्। यस्मिन् पिता द्वेषं कुर्यात् सः स्वस्यापि द्वेष्यः एव॥४३॥

व्याख्या—यस्मिन् = व्यक्तौ वा वस्तुविशेषे, पितुः = जनकस्य, प्रीतिः = रतिः, भवेत् = स्यात्, तस्मिन् = जने, स्वयम् = आत्मना, प्रियम् = अनुरागम्, चरेत् = कुर्यात्। यस्मिन् = जने, पिता = जनकः, द्वेषम् = वैरम्, कुर्यात्, सः = जनः, स्वस्याऽपि = आत्मनोऽपि, द्वेष्यः = विरोधी, एव = केवलम् ॥४४॥

हिन्दी—जिसके ऊपर पिता का प्रेम है, उसके साथ स्वयं भी प्रिय व्यवहार करे और जिसके साथ पिता वैर करे, उसे वह भी विरोधी ही माने॥४४॥

यस्मिन्निति। यस्मिन् जने पितुः प्रीतिः भवेत्, तस्मिन् स्वयं प्रियं चरेत् कुर्य्यात्। पिता यस्मिन् द्वेषं कुर्य्यात् सः स्वस्यापि आत्मनोऽपि द्वेष्य एव॥४४॥

असम्मतं विरुद्धं वा पितुर्नैव समाचरेत्।
चारसूचकदोषेण यदि स्यादन्यथा पिता ॥ ४५ ॥
प्रकृत्यनुमतं कृत्वा तमेकान्ते प्रबोधयेत्।
अन्यथा सूचकान्नित्यं महद्दण्डेन दण्डयेत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—पितुः असम्मतं वा विरुद्धं नैव समाचरेत्। चारसूचकदोषेण यदि पिता अन्यथा स्यात् तदा प्रकृत्यनुमतं कृत्वा एकान्ते तं प्रबोधयेत्। अन्यथा सूचकान् महद्दण्डेन नित्यं दण्डयेत् ॥ ४५-४६ ॥

व्याख्या—पितुः = जनयितुः, असम्मतम् = असम्प्रतिपन्नम्, वा = अथवा, विरुद्धम् = प्रतिकूलम्, नैव = नास्त्येव, समाचरेत् = व्यवहरेत्। चारसूचकदोषेण—चाराणाम् = गुप्तचराणाम्, सूचकानाम् = पिशूनानाम्, वा = अथवा, दोषेण = अपराधेन, यदि = चेत्, पिता = जनयिता, अन्यथा = विरुद्धम्, स्यात् = भवेत्, तदा = तर्हि, प्रकृत्यनुमतं—प्रकृतीनाम् = प्रधानपुरुषाणाम्, अनुमतम् = सहमतम्, कृत्वा = विधाय, एकान्ते = निर्जने, तम् = जनकं, प्रबोधयेत् = यथार्थ-पूर्णज्ञानं कारयेत्। अन्यथा = इतरथा, सूचकान् = खलान्, महद्दण्डेन = कठोरदण्डेन, दण्डयेत् = दमनं कुर्यात् ॥ ४५-४६ ॥

हिन्दी—पिता के विरुद्ध या असंमत व्यवहार कभी न करे। गुप्तचर या चुगलखोरों की गलती से पिता विरुद्ध हो जाय तो राज्य के प्रधानपुरुषों को अपने अनुकूल बनाकर उनके साथ पिता को एकान्त में समझाये और विरोधी चुगलखोरों को क्रूरतम दण्ड दे ॥ ४५-४६ ॥

असम्मतमिति। प्रकृत्यनुमतमिति। पितुः असम्मतम् अनभिमतं विरुद्धम् अप्रियं कार्य्यं वा नैव समाचरेत्। चाराणां गूढपुरुषाणां सूचकानां खलानां धूर्त्तानामित्यर्थः, दोषेण यदि पिता अन्यथा स्यात् विपरीतमतिः भवेत् तदा प्रकृतीनां प्रधानपुरुषाणाम् अनुमतं कृत्वा परामर्शेनेत्यर्थः, एकान्ते रहसि तं पितरं प्रबोधयेत् यथा पिता सन्तुष्येत् तथा प्रबोधनं कार्य्यमिति भावः, अन्यथा पितुरसन्तोषे इत्यर्थः, सूचकान् धूर्त्तान् अपराधिन इत्यर्थः, महद्दण्डेन महता दण्डेन नित्यं दण्डयेत् ॥ ४५-४६ ॥

प्रकृतीनाञ्च कपटस्वान्तं विद्यात् सदैव हि।
प्रातर्नत्वा प्रतिदिनं पितरं मातरं गुरुम् ॥ ४७ ॥
राजानं स्वकृतं यद् यद् निवेद्यानुदिनं ततः।
एवं गृहाविरोधेन राजपुत्रो वसेद् गृहे ॥ ४८ ॥

अन्वयः—सदैव प्रकृतीनां कपटस्वान्तं हि विद्यात्। किञ्च राजपुत्रः प्रतिदिनं प्रातः पितरं मातरं गुरुं च नत्वा ततः यद्यत् स्वकृतं राजानम् अनुदिनं निवेद्य गृहस्य अविरोधेन गृहे वसेत् ॥ ४७-४८ ॥

व्याख्या—सदैव = सततमेव, प्रकृतीनाम् = सचिवादिप्रमुखपुरुषाणाम्, कपटस्वान्तम्—कपटम् = छलयुक्तम्, स्वान्तम् = मनः, यस्यासौ कपटस्वान्तम्, हि = निश्चयेन, कापट्येनेमाः प्रधानपुरुषाः व्यवहरन्ति वा शुद्धाचारेणेति, विद्यात् = जानीयात्। राजपुत्रः = युवराजः, प्रतिदिनम् = नित्यम्, प्रातः = प्रत्यूषे, पितरम् = जनकम्, मातरम् = जननीम्, गुरुम् = आचार्यम्, नत्वा = प्रणम्य, ततः = तत्पश्चात्, यत् यत् = यानि यानि कर्माणि, स्वकृतम् = आत्मना

सम्पादितम्, तानि सर्वाणि, अनुदिनम् = प्रतिदिनम्, राजानम् = नृपम्, निवेद्य = निवेदनं कृत्वा, गृहस्य = भवनस्य, अविरोधेन = अविसंवादेन, सामञ्जस्यपूर्णेन, गृहे = भवने, वसेत् = निवासं कुर्यात् ॥ ४७-४८ ॥

हिन्दी—सचिवादि प्रधान पुरुषों के मनोगत विचारों से सदैव अवगत रहना चाहिए। प्रतिदिन प्रभातवेला में माँ-बाप और गुरु को प्रणाम कर अपने दैनिक कार्यों से राजा को अवगत करा दे तथा घर के लोगों के साथ सामञ्जस्य रखते हुए युवराज को राजभवन में रहना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

प्रकृतीनामिति। राजानमिति। सदैव प्रकृतीनां राज्यस्थानां प्रधानपुरुषाणां कपटस्वान्तं कपटं मनः विद्यात् हिशब्दोऽवधारणे। प्रकृतयः कापट्येन व्यवहरन्ति न वेति अवधारयेदित्यर्थः। किञ्च राजपुत्रः युवराज इत्यर्थः, प्रतिदिनं प्रातः पितरं मातरं तथा गुरुम् आचार्य्यं नत्वा, ततः अनन्तरं यत् यत् कार्य्यं स्वकृतम् आत्मना निष्पन्नं तत्तत् अनुदिनं राजानं निवेद्य ज्ञापयित्वा एवम्प्रकारेण गृहस्य अविरोधेन सामञ्जस्येन गृहे वसेत् ॥ ४७-४८ ॥

विद्यया कर्म्मणा शीलैः प्रजाः संरञ्जयन् मुदा।
त्यागी च सत्यसम्पन्नः सर्वान् कुर्य्याद्वशे स्वके ॥ ४९ ॥

अन्वयः—त्यागी तथा सत्यसम्पन्नः विद्यया कर्मणा शीलैः प्रजाः संरञ्जयन् मुदा सर्वान् स्वके वशे कुर्यात् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—त्यागी = त्यक्तसङ्गः, तथा सत्यसम्पन्नः = तत्त्वज्ञानयुक्तः, राजपुत्रः स्वकीयया, विद्यया = आत्मबोधेन, कर्मणा = क्रियया, शीलैः = आचरणैः, प्रजाः = लोकाः, संरञ्जयन् = आह्लादयन्, मुदा = हर्षेण, सर्वान् = सकलान्, स्वके = आत्मनः, वशे = अधीने, कुर्यात् ॥ ४९ ॥

हिन्दी—त्यागी एवं तत्त्वज्ञानी राजकुमार अपनी विद्या, कर्म और आचरण से प्रजावर्ग को आह्लादित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक सबको वशवर्त्ती बना ले ॥ ४९ ॥

विद्ययेति। त्यागी दानशीलः तथा सत्त्वसम्पन्नः उत्साहवान् राजपुत्रः विद्यया कर्मणा शीलैः दयादाक्षिण्यादिभिश्चरितैः प्रजाः संरञ्जयन् मुदा आनन्देन अनायासेनेत्यर्थः, सर्वान् जनान् स्वके वशे आत्मनः वशे कुर्य्यात् ॥ ४९ ॥

शनैः शनैः प्रवर्द्धेत शुक्लपक्षमृगाङ्कवत्।
एवं वृत्तो राजपुत्रो राज्यं प्राप्याप्यकण्टकम् ॥ ५० ॥
सहायवान् सहामात्यश्चिरं भुङ्क्ते वसुन्धराम्।
समासतः कार्य्यमुक्तं युवराजस्य यद्धितम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—शुक्लपक्षमृगाङ्कवत् शनैः शनैः प्रवर्द्धेत अकण्टकं राज्यं प्राप्याऽपि एवं वृत्तः राजपुत्रः सहायवान् सहामात्यः चिरं वसुन्धरां भुङ्क्ते। युवराजस्य यत् हितं तत् समासतः उक्तम् ॥ ५०-५१ ॥

व्याख्या—शुक्लपक्षमृगाङ्कवत् = वर्द्धमानचन्द्र इव, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, प्रवर्द्धेत = प्राचुर्येणोत्कर्षं गच्छेत्, अकण्टकम् = निष्कण्टकं शत्रुशून्यं वा, राज्यम् = राष्ट्रम्, प्राप्याऽपि = अधिगतं कृत्वाऽपि, एवम् = पूर्ववर्णितस्वरूपम्, वृत्तः = सदाचारयुक्तः, राजपुत्रः = राजकुमारः,

सहायवान् = साहाय्यसम्पन्नः, सहामात्यः = सचिववर्गसमन्वितः, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, वसुन्धराम् = धरिणीम्, भुङ्क्ते = उपभोगं कुरुते। युवराजस्य = राजकुमारस्य, यत् हितम् = लाभप्रदकार्यम्, तत् सर्वम्, समासतः = सङ्क्षिप्ततः, उक्तम् = कथितम् ॥ ५०-५१ ॥

हिन्दी—शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह क्रमशः बढते हुए, पूर्ववर्णित आचरण करते हुए राजकुमार आगे चलकर अकण्टक राज्य करते हुए सहायकों एवं मन्त्रियों के साथ रहकर बहुत दिनों तक इस धरती का उपभोग करता है। इस तरह युवराज के लिए जो लाभप्रद बातें हैं, उसका संक्षेप में वर्णन किया गया ॥ ५०-५१ ॥

शनैरिति। सहायवानिति। किञ्च शुक्लपक्षमृगाङ्कवत् वर्द्धमानचन्द्र इव शनैःशनैः क्रमेण प्रवर्द्धेत प्रकर्षेण वृद्धिं गच्छेत् राजपुत्र इति शेषः। अकण्टकं राज्यं प्राप्यापि एवं वृत्तः एवं सदाचारसम्पन्नः राजपुत्रः सहायवान् सहायसम्पन्नः सहामात्यः अमात्यवर्गसहितः चिरं वसुन्धरां पृथिवीं भुङ्क्ते। युवराजस्य यत् हितं हितजनकं कार्य्यं तत् समासतः सङ्क्षेपतः उक्तं मयेति शेषः ॥ ५०-५१ ॥

समासादुच्यते कृत्यममात्यादेश्च लक्षणम्।
मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिः समम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—अमात्यादेः कृत्यं मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशव्दादिभिः समं लक्षणं समासात् उच्यते ॥ ५२ ॥

व्याख्या—अधुना, अमात्यादेः = सचिवादेः, कृत्यम् = कर्म, मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिः—मृदुः = मञ्जुलः, गुरुः = गाम्भीर्यम्, प्रमाणम् = मान्यता, तेषां भावः मृदुगुरुप्रमाणत्वम्, वर्णः = जातिः, शब्दः = निनादः, एवमादिभिः, समम् = समन्वितम्, लक्षणम् = अभिज्ञानम्, समासतः = सङ्क्षेपात्, उच्यते = कथ्यते ॥ ५२ ॥

हिन्दी—मंत्रीगण कोमल प्रकृति के हैं या कठोर भाव के? इनमें कितने सभ्रान्त हैं? कौन किस जाति के हैं? किसकी क्या जाति है? कैसा वचन है? इसके साथ इसका लक्षण तथा कृत्य का संक्षिप्त वर्णन करते हैं ॥ ५२ ॥

समासादिति। इदानीम् अमात्यादेः कृत्यं कार्य्यं मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिः मृदुः, गुरुः गम्भीरप्रकृतिः, प्रमाणं महत्तया गणनीयः तेषां भावः मृदुगुरुप्रमाणत्वं वर्णः जातिः, शब्दः वाक्यम् एवमादिभिः समं सहितं लक्षणञ्च समासात् सङ्क्षेपात् उच्यते। अयं भावः—अमात्यः मृदुप्रकृतिः, वा गम्भीरस्वभावः वा कश्चित् सम्भ्रान्तः, अस्य च का जातिः कीदृशं वा वचनमित्यादि वेदितव्यमिति ॥ ५२ ॥

परीक्षकैर्द्रावयित्वा यथा स्वर्णं परीक्ष्यते।
कर्म्मणा सहवासेन गुणैः शीलकुलादिभिः ॥ ५३ ॥
भृत्यं परीक्षयेन्नित्यं विश्वास्यं विश्वसेत् तदा।
नैव जातिर्न च कुलं केवलं लक्षयेदपि ॥ ५४ ॥

अन्वयः—परीक्षकैः यथा द्रावयित्वा स्वर्णं परीक्ष्यते तथा कर्मणा सहवासेन शीलकुलादिभिः गुणैः नित्यं भृत्यं परीक्षयेत्। तदा विश्वास्यं विश्वसेत्, केवलं जातिं न लक्षयेत्, अपि च कुलं नैव लक्षयेदिति ॥ ५३-५४ ॥

व्याख्या—परीक्षकैः = निरूपकैः, यथा = येन प्रकारेण, द्रावयित्वा = गलयित्वा, स्वर्णम् = कनकम्, परीक्ष्यते = समीक्ष्यते, तेनैव प्रकारेण, कर्मणा = कृत्येन, सहवासेन = सहचारेण सङ्गेन वा, शीलकुलादिभिः = सत्स्वभावसद्वंशोत्पन्नत्वादिभिः, गुणैः = धर्मैः, नित्यम् = सततम्, भृत्यम् = सेवकम्, परीक्षयेत् = आलोकयेत्, तदा = परीक्षिते सति, विश्वास्यम् = प्रत्यययोग्यम्, विश्वसेत् = विश्वासं कुर्यात्, केवलम् = सम्पूर्णतया, जातिम् = वर्णमेव, न = नहि, लक्षयेत् = अवलोकयेत्, अपि च = अपरञ्च, कुलम् = वंशमेव, नैव लक्षयेदिति ॥ ५३-५४ ॥

हिन्दी—सोने को गला कर जैसे लोग उसे जाँचते हैं ठीक उसी तरह वेतनभोगी सेवक की जाँच नित्य उसके काम से, उसके चाल-चलन, साथ-संगति, कुल-खानदान और गुणों से करनी चाहिए। उसके बाद यदि वह विश्वसनीय हो तो विश्वास करे, केवल जाति या खानदान पर भरोसा न करे ॥ ५३-५४ ॥

परीक्षकैरिति। भृत्यमिति। परीक्षकैः द्रावयित्वा गलयित्वा यथा स्वर्णं परीक्ष्यते, तथा कर्म्मणा, सहवासेन, शीलकुलादिभिः चरित्रसत्कुलजातत्वादिभिः गुणैः नित्यं भृत्यं परीक्षयेत्, तदा परीक्षिते सतीत्यर्थः, विश्वास्यं विश्वासयोग्यं जनं विश्वसेत्। केवलं जातिं न लक्षयेत् कुलं वंशं वा नैव लक्षयेत् नैव परीक्षयेत् गुणाः परीक्षणीया इति भावः ॥ ५३-५४ ॥

कर्म्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले न हि।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥

अन्वयः—कर्मशीलगुणाः पूज्याः जातिकुले न हि तथा न जात्या न कुलेन श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥

व्याख्या—कर्मशीलगुणाः—कर्म = कार्यम्, शीलम् = स्वाभावम्, गुणाः = दक्षताः, आदिभिः पूज्याः = श्लाघनीयाः, जातिकुले = वर्णवंशे, नहि, तथा = तद्वत् पूज्याः, न = नहि, जात्या = वर्णेन, न कुलेन = वंशेन, श्रेष्ठत्वम् = पूज्यत्वम्, पतिपद्यते = आप्नोति ॥ ५५ ॥

हिन्दी—अपने काम, चाल-चलन और गुणों से मनुष्य जितना पूजनीय होता है उतना जाति और कुल से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठता जाति या कुल से ही नहीं पाई जाती है ॥ ५५ ॥

कर्मेति। कर्म शीलं चरित्रं गुणाः विद्यादयः पूज्याः, जातिकुले तथा नहि नैव पूज्ये इत्यर्थः, कर्म्मशीलगुणानामेव विशेषेण परीक्षा कार्य्येति भावः। जात्या केवलया इत्यर्थः, कुलेन सद्वंशेन च नैव श्रेष्ठत्वं महत्त्वं प्रतिपद्यते प्राप्नोति जन इति शेषः ॥ ५५ ॥

विवाहे भोजने नित्यं कुलजातिविवेचनम्।
सत्यवाक् गुणसम्पन्नस्तथाभिजनवान् धनी ॥ ५६ ॥
सुकुलश्च सुशीलश्च सुकर्म्मा च निरालसः।
यथा करोत्यात्मकार्य्यं स्वामिकार्य्यं ततोऽधिकम् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—विवाहे भोजने नित्यं कुलजातिविवेचनम्। सत्यवाक् गुणसम्पन्नः अभिजनवान् धनी सुकुलः च सुशीलः च सुकर्मा च तथा निरालसः यथा आत्मकार्यं करोति, स्वामिकार्यं ततोऽधिकम् ॥ ५६-५७ ॥

व्याख्या—विवाहे = पाणिग्रहणे, भोजने = अशने, नित्यम् = सततम्, कुलजातिविवेचनम् = वंशवर्णविचारः, कार्यमिति। सत्यवाक् = यथार्थवक्ता, गुणसम्पन्नः = दक्षतायुक्तः,

अभिजनवान् = अभिजातकुलोत्पन्नः, धनी = सम्पत्तिशाली, सुकुलः = सत्कुलोत्पन्नः, च = पुनः, सुशीलः = सच्चरित्रः, च = पुनः, सुकर्मा = सत्यकार्यकर्त्ता, च तथा = तेनैव प्रकारेण, निरालसः = आलस्यहीनो जनः, यथा = येन रूपेण, आत्मकार्यम् = स्वकृत्यं करोति, ततः = तस्मादात्मकार्यादपि, अधिकम् = प्रभूतम्, स्वामिकार्यम् = प्रभुकार्यम्, सम्पादयति ॥५६-५७॥

हिन्दी—कुल और जाति का विचार तो केवल विवाह और भोजन में किया जाता है। सत्यवादी, गुणी, कुलीन, धनी, अभिजात, सुशील तथा सत्कर्मी सेवक आलस्यरहित होकर जितना अपना काम करता है उससे भी अधिक अपने स्वामी का कार्य सम्पन्न करता है ॥५६-५७॥

विवाहे इति। सुकुल इति। विवाहे उद्वाहकृत्ये भोजने च नित्यं सततं कुलजातिविवेचनं कुलजातिविचारः कार्य्यमिति शेषः। सत्यवाक् गुणसम्पन्नः अभिजनवान् महावंशप्रसूतः धनी धनसम्पन्नः सुकुलः निर्दोषवंशजातः सुशीलः सुकर्म्मा तथा निरालसः आलस्यरहितः जनः यथा आत्मकार्य्यं करोति, स्वामिकार्य्यं ततः तस्मात् आत्मकार्य्यात् अधिकं यथा तथा करोतीत्यन्वयः ॥५६-५७॥

चतुर्गुणेन यत्नेन कायवाङ्मानसेन च।
भृत्यैव तुष्टो मृदुवाक् कार्यदक्षः शुचिर्दृढः ॥५८॥

अन्वयः—भृत्यः कायवाङ्मानसेन यत्नेन चतुर्गुणेन भृत्यैव मृदुवाक् कार्यदक्षः शुचिः दृढः ॥५८॥

व्याख्या—भृत्यः, कायवाङ्मानसेन—कायिकेन = शारीरिकेन, वाचिकेन = वचसा, मानसिकेन = चित्तेन, कर्मणा, यत्नेन = प्रयत्नेन, चतुर्गुणेन = चतुर्णां गुणानां समाहारस्तेन, तथा भृत्या = मासिकेन वेतनेन, एव तुष्टः = सन्तुष्टः, मृदुवाक् = मधुरभाषी, कार्यदक्षः = कर्मप्रवीणः, शुचिः = पवित्रः, तथा दृढः = कार्येषु दृढो भवेदिति ॥५८॥

हिन्दी—मन, वचन और शरीर से प्रयत्नपूर्वक चौगुना अधिक मालिक का काम करने वाला, मासिक वेतन से संतुष्ट, मधुरभाषी, कार्यकुशल, पवित्र और दृढ़ता से काम करने वाला सेवक होता है ॥५८॥

चतुर्गुणेनेति। भृत्यः कायवाङ्मानसेन कायिकेन वाचिकेन मानसिकेन कर्म्मणा यत्नेन च चतुर्गुणेन चतुर्णां गुणानां समाहारः तेन तथा भृत्या वेतनेन च तुष्टः मृदुवाक् मधुरभाषी, कार्य्यदक्षः शुचिः शुद्धचेताः तथा दृढः कार्येषु निश्चलः भवेदिति शेषः ॥५८॥

परोपकरणे दक्षो ह्यपकारपराङ्मुखः।
स्वाम्यागस्कारिणं पुत्रं पितरं वापि दर्शकः ॥५९॥

अन्वयः—परोपकरणे दक्षः अपकारपराङ्मुखः स्वाम्यागस्कारिणं पुत्रं पितरं वाऽपि दर्शकः ॥५९॥

व्याख्या—परोपकरणे—परेषाम् = अन्येषाम्, उपकारः = हितम्, तेषां करणे = विधाने, दक्षः = कुशलः, अपकारपराङ्मुखः = अहितकरणे विमुखः, स्वाम्यागस्कारिणम्—स्वामिनि = प्रभौ, आगस्कारिणम् = अपराधकारिणम्, पुत्रम् = सुतम्, स्वामिपुत्रमिति, पितरम् = जनकम्, अर्थात् पुत्रः पितुः पिता च पुत्रस्य वाऽपकारिणः न भवेत् इत्यस्य विषयस्य, दर्शकः = मूकद्रष्टा, नाऽपि भवेदिति ॥५९॥

हिन्दी—परोपकार करने में निपुण, अपकार से विमुख, स्वामी के साथ अपराध करने में प्रवृत्त उनके पुत्र तथा पिता के ऊपर भी निगाह रखने वाला हो ॥ ५९ ॥

परोपकरणे इति। किञ्च परोपकरणे परेषाम् उपकारविधाने दक्षः निपुणः, अपकारपराङ्मुखः तथा स्वाम्यागस्कारिणं स्वामिनि प्रभौ अपराधकारिणं पुत्रं स्वामिपुत्रं पितरञ्च स्वामिन इति शेषः, दर्शकः यथा स्वामिनः पुत्रः पिता वा तस्य अपकारी न भवेत् तथा दर्शनकारी भवेदिति शेषः ॥ ५९ ॥

अन्यायगामिनि पत्यौ यतद्रूपः सुबोधकः।
नाक्षेप्ता तद्गिरं काञ्चित् तन्न्यूनस्याप्रकाशकः ॥ ६० ॥

अन्वयः—पत्यौ अन्यायगामिनि यतद्रूपः सुबोधकः काञ्चित् तद्गिरं न आक्षेप्ता तथा तन्न्यूनस्य अप्रकाशकः ॥ ६० ॥

व्याख्या—पत्यौ = भर्त्तरि, अन्यायगामिनि = अन्यपथगन्तरि, यतद्रूपः—यतत् = प्रयत्नं कुर्वत्, रूपम् = स्वरूपम्, यस्यासौ प्रयत्नवान् सन्, सुबोधकः = सप्रयासेन सन्मार्गे प्रेरकः, काञ्चित् = कस्याऽपि, तद्गिरम् = प्रभुवाचम्, न = नहि, आक्षेप्ता = दोषारोपकः, न = नहि, तथा तन्न्यूनस्य = तस्य न्यूनतायाः, अप्रकाशकः = अख्यापको भवेदिति ॥ ६० ॥

हिन्दी—अनीतिपथ पर चलने वाले स्वामी को भी सही राह पर चलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील होना चाहिए। स्वामी की किसी बात पर आक्षेप नहीं करने वाला तथा उसकी खामियों को किसी के सामने व्यक्त नहीं करने वालां होना चाहिए ॥ ६० ॥

अन्यायेति। पुनश्च पत्यौ स्वामिनि अन्यायगामिनि अनौचित्यप्रवृत्ते सति यतद्रूपः यतत् रूपं यस्य स यत्नवानित्यर्थः, सन् यतदिति यतधातोरात्मनेपदिनोऽपि शतृप्रत्यय आर्षः। सुबोधकः यत्नेन सत्यपथप्रवर्त्तकः, काञ्चित् तद्गिरं तस्य स्वामिनः गिरं वाचं न आक्षेप्ता न तद्वाक्योपरि वाक्प्रयोक्ता इत्यर्थः, तथा तन्न्यूनस्य तन्न्यूनताया इत्यर्थः, भावप्रधाननिर्देशः। अप्रकाशकः प्रभोर्यदि कुत्रचित् त्रुटिर्दृश्यते न प्रकाशकारी भवेदिति भावः ॥ ६० ॥

अदीर्घसूत्रः सत्कार्य्ये ह्यसत्कार्य्ये चिरक्रियः।
न तद्भार्य्यापुत्रमित्रछिद्रदर्शी कदाचन ॥ ६१ ॥

अन्वयः—सत्कार्ये अदीर्घसूत्रः असत्कार्ये चिरक्रियः कदाचन तत् भार्यापुत्रमित्रच्छिद्रदर्शी न भवेत् ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अन्यच्च, सत्कार्ये = शुभकर्मणि, अदीर्घसूत्रः = अचिरक्रियः, असत्कार्ये = दुष्कर्मणि, चिरक्रियः = कृतातिकालः, तथा कदाचन = कस्यांश्चिदवस्थायाम्, तत् = तस्य स्वामिनः, भार्यापुत्रमित्रच्छिद्रदर्शी—भार्य्याणाम् = पत्नीनाम्, पुत्राणाम् = सुतानाम्, मित्राणाम् = सुहृदाम्, छिद्रदर्शी = दोषान्वेषी, न = नहि, भवेत् ॥ ६१ ॥

हिन्दी—अच्छे कामों में जल्दी और बुरे कामों में देर लगाने वाला, मालिक की पत्नी, पुत्र और मित्रों के दोषों को कभी देखने वाला न हो ॥ ६१ ॥

अदीर्घसूत्र इति। अपरञ्च सत्कार्ये शोभनकर्मणि दानादौ अदीर्घसूत्रः सत्वरः, असत्कार्य्ये मन्दकार्य्ये हिंसादिकर्म्मणीत्यर्थः, चिरक्रियः कृतविलम्बः भवेत्। तथा कदाचन तस्य प्रभोः भार्य्याणां पुत्राणां मित्राणाञ्च छिद्रदर्शी दोषानुसन्धायी न भवेत् ॥ ६१ ॥

तद्वत् बुद्धिस्तदीयेषु भार्य्यापुत्रादिबन्धुषु।
न श्लाघते स्पर्द्धते न नाभ्यसूयति निन्दति॥ ६२॥

अन्वयः—तदीयेषु भार्यापुत्रादिबन्धुषु तद्वत् बुद्धिः न श्लाघते न स्पर्द्धते, न अभ्यसूयति, न निन्दति॥ ६२॥

व्याख्या—तदीयेषु = तत्सम्बन्धिषु, भायापुत्रादिषु = पुत्रकलत्रादिषु, तथा बन्धुषु = सगोत्रेषु, तद्वत् = स्वामिसदृशी एव, बुद्धिः = मतिः, अर्थात् यादृशी बुद्धिः स्वामीम्प्रति भवति तादृशी बुद्धिः तस्य भार्यापुत्रादिष्वपि भवितव्यम्, किञ्च स्वयम्, न = नहि, श्लाघते = श्लाघां कुरुते, न स्पर्द्धते = विजिगीषते, न = नहि, अभ्यसूयति = तेषु गुणेषु दोषारोपं कुर्यात्, नापि निन्दति = निन्दां कुर्यात्॥ ६२॥

हिन्दी—स्वामी के सम्बन्धियों की पत्नी, उनके पुत्र एवं बन्धु-बान्धवों के प्रति भी स्वामी की तरह ही आदर-सम्मान की बुद्धि होनी चाहिए और न तो कहीं अपनी प्रशंसा करे और न कहीं उन से स्पर्द्धा करे। न उनके गुणों में दोषारोपण करें और न कहीं उनकी निन्दा ही करें॥ ६२॥

तदिति। तदीयेषु स्वामिसम्बन्धिषु भार्य्यापुत्रादिबन्धुषु तद्वत् तादृशी स्वामिसदृशी बुद्धिर्यस्य तादृशः स्वामी यथा तेषु वर्त्तते तथा वर्त्तमान इत्यर्थः भवेत्, किञ्च स्वयं न श्लाघते न श्लाघां कुर्य्यात्, न अभ्यसूयति न स्वामिनः तदीयानाञ्च गुणेषु दोषारोपं कुर्य्यात् न निन्दति न निन्दां कुर्याच्च॥ ६२॥

नेच्छत्यन्याधिकारं हि निष्पृहो मोदते सदा।
तद्दत्तवस्त्रभूषादिधारकस्तत् पुरोऽनिशम्॥ ६३॥

अन्वयः—अन्येषाम् अधिकारं न इच्छति हि सदा निष्पृहः मोदते। अनिशं तद्दत्तवस्त्रभूषादिधारकः तत् पुरः तिष्ठेत्॥ ६३॥

व्याख्या—अन्येषाम् = अपरेषां राजकर्मचारिणाम्, अधिकारम् = प्रभुत्वम्, न = नहि, इच्छति = अभिलषति, हि = इत्यवधारणे, सदा = सर्वदा, निष्पृहः = लालसारहितः, मोदते = प्रसन्नतामनुभूयते, तथा अनिशम् = सततम्, तद्दत्तान् = स्वामीदत्तान्, वस्त्रभूषादीन् = परिधानालङ्कारादीन्, धारकः—धारयतीति धारकः = धारणं कृत्वा, तत् = तस्य राज्ञः, पुरः = सम्मुखे, तिष्ठेत्॥ ६३॥

हिन्दी—दूसरों के अधिकार पाने की लालसा न हो, लालसा रहित होकर सदा प्रसन्न रहे। स्वामी के सामने उसके दिये हुए वस्त्र तथा आभूषण पहन कर बैठना चाहिए॥ ६३॥

नेति। अन्येषाम् अधिकारं न इच्छति अपरराजकर्म्मचारिणां कार्य्ये लालसां न कुर्य्यात् हिशब्दः अवधारणे। निष्पृहः अलुब्धः सन् सदा मोदते आनन्दं प्रकाशयेदित्यर्थः, तथा अनिशं सततं तद्दत्तान् स्वामिदत्तान् वस्त्रभूषादीन् वसनालङ्कारादीन् धारयतीति तथोक्तः सन् तस्य प्रभोः पुरः अग्रे तिष्ठेदिति शेषः॥ ६३॥

भृतितुल्यव्ययी दान्तो दयालुः शूर एव हि।
तदकार्य्यस्य रहसि सूचको भृतको वरः॥ ६४॥

अन्वयः—भृतितुल्यव्ययी दान्तः दयालुः शूरः तथा रहसि तत् अकार्यस्य सूचकः भृतकः वरः ॥ ६४ ॥

व्याख्या—अपरञ्चापि, भृतितुल्यव्ययी—भृतिः = निर्वेशः वेतनं वा, तत्तुल्येन = तदनुसारेण, व्ययी = वित्तविनियोगकर्त्ता, दान्तः = इन्द्रियजेता, दयालुः = दयितुः, शूरः = सुविक्रमः, तथा, रहसि = एकान्ते, केवलस्वामिसम्मुखे एव, हि = इत्यवधारणे, तत् = तस्य राज्ञः, अकार्यस्य = अपकर्मणः, सूचकः = निर्देशको भवेत्, ईदृशो भृतकः = सेवकः, वरः = श्रेष्ठो भवति ॥ ६४ ॥

हिन्दी—आमदनी के अनुसार खर्च करने वाला, जितेन्द्रिय, दयालु तथा प्रचण्ड पराक्रमी और एकान्त में स्वामी को उनका दोष बतलाने वाला सेवक उत्तमकोटि का होता है ॥ ६४ ॥

भृतीति। अन्यच्च भृतितुल्यव्ययः वेतनानुसारेण व्ययकारी न तु वृथाव्ययकारीत्यर्थः, दान्तः संयतेन्द्रियः दयालुः दयाशीलः शूरः अभीरुरित्यर्थः, तथा रहसि एकान्ते केवलप्रभुसमक्षं न तु अन्यसन्निधावित्यर्थः, तस्य प्रभोः यत् अकार्य्यम् अनुचितकार्य्यं तस्य सूचकः प्रकाशकः भवेत्। ईदृशो भृतकः भृत्यः वरः श्रेष्ठः ॥ ६४ ॥

विपरीतगुणैरेभिर्भृतको निन्द्य उच्यते।
ये भृत्या हीनभृतिका ये दण्डेन प्रकर्षिताः ॥ ६५ ॥
शठाश्च कातरा लुब्धाः समक्षं प्रियवादिनः।
मत्ता व्यसनिनश्चार्त्ता उत्कोचेष्टाश्च देविनः ॥ ६६ ॥
नास्तिका दाम्भिकाश्चैवासत्यवाचोऽप्यसूयकाः।
ये चापमानिता येऽसद्वाक्यैर्मर्मणि भेदिताः ॥ ६७ ॥
रिपोर्मित्राः सेवकाश्च पूर्ववैरानुबन्धिनः।
चण्डाः साहसिका धर्महीना नैते सुसेवकाः।
सङ्क्षेपतस्तु कथितं सदसद्भृत्यलक्षणम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—एभिः विपरीतगुणैः भृतकः निन्द्यः उच्यते। ये भृत्याः हीनभृतिकाः ये दण्डेन प्रकर्षिताः ये शठाः च कातराः लुब्धाः समक्षं प्रियवादिनः मत्ताः व्यसनिनः च आर्त्ताः उत्कोचेष्टाः देविनः नास्तिकाः च दाम्भिकाः तथा असत्यवाचः असूयकाः अपि ये च अपमानिताः ये असद्वाक्यैः मर्मणि भेदिताः रिपोः मित्राः तथा सेवकाः पूर्ववैरानुबन्धिनः चण्डाः साहसिकाः धर्महीनाः; एते सुसेवकाः न भवन्ति। तु सदसद्भृत्यलक्षणं सङ्क्षेपतः कथितम् ॥ ६५-६८ ॥

व्याख्या—एभिः = पूर्वोक्तलक्षणैः, विपरीतगुणैः = विरुद्धस्वभावैः, भृतकः = वैतनिकः, निन्द्यः = गर्हणीयः, उच्यते = कथ्यते। ये भृत्याः = सेवकाः, हीनभृतिकाः—हीनाः = अत्यल्पाः, भृतिकः = वेतनम्, येषां तथोक्ताः, स्वल्पवेतनभोक्तारः, ये = सेवकाः, दण्डेन = दमेन, प्रकर्षिताः = प्रपीडिताः, ये च = सेवकाः, शठाः = वञ्चकाः, च = पुनः, कातराः = भीताः, लुब्धाः = लोलुपाः. समक्षम् = अग्रे सम्मुखे वा, प्रियवादिनः = मधुरभाषिणः, मत्ताः = मदाढ्याः, व्यसनिनः = विषयासक्ताः दुर्वृत्ताश्चेति, च = पुनः, आर्त्ताः = व्यथिताः, उत्कोचेष्टाः—उत्कोचे = उपायने, इष्टम् = अभिलाषः, येषां तथाभूताः, देविनः = कितवाः, द्यूतकारा इत्यर्थः, नास्तिकाः = अनीश्वरवादिनः, नास्ति परलोकः तत्साक्षीश्वरो वेति मतिरस्येति नास्तिकः, दाम्भिकाः = कपटिनः,

तथा असत्यवाचः—असत्यम् = मिथ्या, वदति = गदति, इति असत्यवाक्, ते असत्यवाचः= अलीकभाषिणः, असूयकाः= परगुणेषु दोषारोपकाः, ये = जनाः, अपमानिताः= अनादृताः, च = पुनः, ये = जनाः, असद्वाक्यैः= अभद्रवचनैः, मर्म्मणि = जीवस्थाने, भेदिताः= विदारिताः, मर्मस्थाने कृताघाताः इत्यर्थः, रिपोः= शत्रोः, मित्राः= सुहृदः, मित्रशव्दस्यात्र पुंल्लिङ्गप्रयोगः आर्षत्वादिति। च = पुनः, रिपोः= अरेः, सेवकाः= भृत्याः, च = पुनः, ये = जनाः, पूर्ववैरानुबन्धिनः= प्राग्विरोधसम्बन्धिनः, तथा चण्डाः= क्रूराः, साहसिकाः= आततायिनः, तथा धर्महीनाः= अधार्मिकाः, एते = इमे सर्वे, सुभृत्याः= सुष्ठुसेवकाः, न = नहि भवन्ति। सदसद्भृत्यलक्षणम्—सताम् = सज्जनानाम्, असताम् = दुर्वृत्तानाम्, च भृत्यानाम् = सेवकानाम्, लक्षणम् = चरित्रम्, सङ्क्षेपतः= समासतः, कथितम् = वर्णितम्, इति ॥ ६५-६८ ॥

हिन्दी– और ऊपरवर्णित गुणों के विपरीत गुणवाले सेवक निन्दनीय कहलाते हैं। अल्पवेतनभोगी सेवक, निरन्तर अपराध करने के कारण दण्ड पाकर पीड़ित, क्रूर, कायर, लोभी, चापलूस, शराबी, लम्पट, रोगी, घुसखोर, जुआरी, नास्तिक, कपटी, असत्यवादी, दूसरों के गुणों में भी दोष देखने वाले, अपमानित, अपनी कठोर बातों से दूसरों को मर्माहत करने वाले, दुश्मनों के दोस्त या नौकर, पिछली दुश्मनी को याद रखने वाले, क्रूर, आततायी तथा पापी— ये सुन्दर सेवक नहीं होते हैं। इस प्रकार अच्छे या बुरे सेवकों के लक्षण संक्षेप में कहे गये हैं ॥ ६५-६८ ॥

विपरीतगुणैरित्यादि। एभिर्विपरीतगुणैः पूर्वोक्तविरुद्धगुणैरित्यर्थः, उपलक्षितः भृतकः निन्द्यः दूष्य उच्यते। ये भृत्याः हीना भृतिः येषां तथोक्ताः स्वल्पवेतना इत्यर्थः, ये दण्डेन प्रकर्षिताः प्रपीडिताः सततदोषकारित्वादिति भावः। ये शठाः धूर्त्ताः कातराः भीरवः लुब्धाः लोभपरायणाः समक्षं प्रियवादिनः मत्ताः मद्यरताः व्यसनिनः मृगयादिदोषसंसृष्टाः आर्त्ताः रोगिणः उत्कोचेष्टाः उत्कोचे इष्टम् अभिलाषः येषां तथाभूताः, देविनः द्यूतरताः नास्तिकाः परलोकाद्यमानिनः दाम्भिकाः वञ्चकाः तथा असत्यवाचः असत्यवादिनः असूयकाः दोषारोपिणः। ये अपमानिताः कृतावमानाः, ये च असद्वाक्यैः दुरुक्तिभिः मर्म्मणि भेदिताः कृतमर्माघाता इत्यर्थः, रिपोः शत्रोः मित्राः सुहृदः अत्र मित्रशब्दस्य पुंल्लिङ्गप्रयोगः आर्ष इति। तथा रिपोः सेवकाः भृत्याः तथा ये च पूर्ववैरानुबन्धिनः पूर्वशत्रुतासम्बन्धविशिष्टाः तथा चण्डाः कोपनाः साहसिकाः अविमृष्यकारिणः तथा धर्महीनाः अधार्मिकाः, एते सुसेवकाः सुभृत्या न भवन्तीति शेषः। सङ्क्षेपतस्तु सङ्क्षेपेणैव सदसद्भृत्यलक्षणं सताम् असताञ्च भृत्यानां लक्षणं स्वरूपं कथितम् ॥ ६५-६८ ॥

समासतः पुरोधादिलक्षणं यत् तदुच्यते।
पुरोधाश्च प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवस्तथा ॥ ६९ ॥
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः।
अमात्यो दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश ॥ ७० ॥

अन्वयः—पुरोधादिलक्षणं यत् तत् समासतः उच्यते। पुरोधाः प्रतिनिधिः तथा प्रधानः सचिवः मन्त्री च प्राड्विवाकः पण्डितः च सुमन्त्रकः अमात्यः दूतश्च; एताः दश राज्ञः प्रकृतयः ॥ ६९-७० ॥

व्याख्या—पुरोधादिलक्षणम्—पुरोधाः= ऋत्विजः, आदिर्यस्य तस्य लक्षणम् = स्वरूपम्, यदस्ति तत्स्वरूपम्, समासतः= सङ्क्षेपतः, उच्यते = कथ्यते, पुरोधाः= याज्ञिकः, प्रतिनिधिः= प्रतिपुरुषः, तथा प्रधानः= प्रमुखः, सचिवः= सहायकः, तथा मन्त्री = अमात्यः, प्राड्विवाकः=

अभिभापकः, पण्डितः = कोविदः, सुमन्त्रकः = सुविचारदायकः, अमात्यः = सचिवः, दूतश्च = सन्देशहरश्च, एताः = पूर्वोक्ताः, दश, राज्ञः = नृपस्य, प्रकृतयः = राज्यसञ्चालनस्योपादानकारणानि सन्ति ॥ ६९-७० ॥

हिन्दी—अब पुरोहित आदि के जो लक्षण हैं, संक्षेप में वह कहते हैं—पुरोहित, प्रतिनिधि, प्रधान सचिव, मंत्री, वकील, पण्डित, सुविचारक, अमात्य और दूत—ये दश राजा के राज्य-संचालन के प्रमुख कारण हैं ॥ ६९-७० ॥

समासत इति। मन्त्री चेति। पुरोधादिलक्षणं यत् अस्तीति शेषः, तत् समासतः सङ्क्षेपेण उच्यते। पुरोधाः पुरोहितः, प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवः, मन्त्री प्राड्विवाकः, पण्डितः सुमन्त्रकः, अमात्यः दूतश्च एताः दश राज्ञः प्रकृतयः ॥ ६९-७० ॥

दशमांशाधिकाः पूर्वं दूतान्ताः क्रमशः स्मृताः।
अष्टप्रकृतिभिर्युक्तो नृपः कैश्चित् स्मृतः सदा ॥ ७१ ॥

अन्वयः—दूतान्ताः क्रमशः पूर्वं दशमांशाधिकाः स्मृताः। कैश्चित् नृपः अष्टप्रकृतिभिः युक्तः सदा स्मृतः ॥ ७१ ॥

व्याख्या—दूतः = सूचकः, अन्ते यस्य तादृशाः दूतान्ताः = पुरोहितादिदूतपर्यन्ताः प्रकृतयः, क्रमशः = क्रमेण, पूर्वम् = पूर्वं पूर्वम्, दशमांशाधिकाः = दशगुणाधिकाः, स्मृताः = कथिताः, अर्थात् दूताद्दशगुणाधिकं वेतनममात्यस्य भवति, अमात्याद्दशगुणितं वेतनं सुमन्त्रकस्य, तस्माद्दशगुणाधिकं पण्डितस्य, ततो दशगुणाधिकं प्राड्विवाकस्य, ततो दशगुणितं मन्त्रिणः, ततो दशगुणाधिकं सचिवस्य, ततो दशगुणाधिकं प्रधानस्य, प्रधानाद्दशगुणाधिकं प्रतिनिधेः, ततो दशगुणाधिकं पुरोहितस्य भवति। कैश्चित् = समालोचकैः, नृपः = राजा, अष्टप्रकृतिभिः = अष्टप्रधानपुरुषैः, सदा = सर्वदा, युक्तः = समन्वितः, स्मृतः = कथितः ॥ ७१ ॥

हिन्दी—पुरोहित से लेकर दूत पर्यन्त इन दसों के वेतन पूर्व-पूर्व क्रम से एक-दूसरे की अपेक्षा दस गुणा अधिक होता है। (अर्थात् दूत से दस गुणा अधिक अमात्य का, उससे दस गुणा अधिक सलाहकार का, उससे दस गुणा अधिक पण्डित का, उससे दस गुणा अधिक न्यायवक्ता का, उससे दस गुणा अधिक मंत्री का, उससे दस गुणा अधिक सचिव का, उससे दस गुणा अधिक प्रधान का, उससे दस गुणा अधिक प्रतिनिधि का और उससे दस गुणा अधिक पुरोहित का वेतन होना चाहिए।) अन्य किसी के मत से राजा की आठ ही प्रकृति होती है, जिससे वह सदैव जुड़ा रहता है ॥ ७१ ॥

दशेति। दूतान्ताः पुरोहितादिदूतपर्य्यन्ताः प्रकृतयः क्रमशः दशमांशाधिकाः दशमेन अंशेन अधिकाः स्मृताः कथिताः। अयं भावः—पुरोहितस्य या भृतिः सा प्रतिनिधेर्दशमांशाधिका ज्ञेया, प्रतिनिधेर्या भृतिः सा प्रधानस्य दशमांशाधिका, प्रधानस्य या भृतिः सा सचिवस्य दशमांशाधिका, सचिवस्य या भृतिः सा मन्त्रिणो दशमांशाधिका, मन्त्रिणो या भृतिः सा प्राड्विवाकस्य दशमांशाधिका, प्राड्विवाकस्य या भृतिः सा पण्डितस्य दशमांशाधिका, पण्डितस्य या भृतिः सा सुमन्त्रस्य दशमांशाधिका, सुमन्त्रस्य या भृतिः सा अमात्यस्य दशमांशाधिका, अमात्यस्य या भृतिः सा दूतस्य दशमांशाधिका इति। कैश्चित् पण्डितैः नृपः अष्टप्रकृतिभिः सदा युक्तः स्मृतः कथितः ॥ ७१ ॥

सुमन्त्रः पण्डितो मन्त्री प्रधानः सचिवस्तथा।
अमात्यः प्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधिः स्मृतः ॥७२॥
एता भृतिसमास्त्वष्टौ राज्ञः प्रकृतयः सदा।
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो दूतस्तदनुगः स्मृतः ॥७३॥

अन्वयः—सुमन्त्रः पण्डितः मन्त्री प्रधानसचिवः अमात्यः प्राड्विवाकः प्रतिनिधिः तथा इङ्गिताकारतत्त्वज्ञः तदनुगः दूतः स्मृतः। एताः भृतिसमास्त्वष्टौ सदा राज्ञः प्रकृतयः॥७२-७३॥

व्याख्या—सुमन्त्रः= सत्परामर्शकः, पण्डितः= कोविदः, मन्त्री= अनुशास्ता, प्रधानः= पुरोगः, सचिवः= सहायकः, अमात्यः= नृपानुयायी, प्राड्विवाकः= न्यायाधीशः, प्रतिनिधिः= स्थानापन्नो जनः, तथा इङ्गिताकारतत्त्वज्ञः—इङ्गितम्= चेष्टितं सङ्केतितं वा, आकारः= देहाकारः, तयोस्तत्त्वज्ञः= तथ्यवेत्ता, तदनुगः= तदनुगामी, तेषां सुमन्त्रादीनाम्, अथवा तस्य= नृपस्य, अनुगः= आज्ञापालकः, स्मृतः= कथितः, दूतश्च= राजदूतश्च, एताः= पूर्वोक्ताः, अष्टौ, राज्ञः= नृपस्य, प्रकृतयः= प्रधानपुरुषाः, सदा= सर्वदा, भृतिसमाः—भृत्या= मूलवेतनेन, समाः= तुल्याः, समानवेतना इत्यर्थः॥७२-७३॥

हिन्दी—सत्परामर्शदाता, विद्वान्, मंत्री, राज्यप्रमुख, सचिव, सहायक, न्यायवेत्ता तथा राजप्रतिनिधि—ये राजा की आठ प्रकृतियाँ सदा वेतन में परस्पर समान हैं अर्थात् इनके पूर्व मत की तरह भिन्न-भिन्न वेतन नहीं हैं। ये संकेत और शारीरिक चेष्टाएँ इन दोनों के तत्त्व को जाननेवाला तथा राजा या सुमन्त्र आदि आठ प्रधानपुरुषों की आज्ञा के अनुसार काम करने वाला दूत मात्र एक सामान्य सेवक है। अतः आठप्रकृतियों में इसकी गणना नहीं की गई है॥७२-७३॥

सुमन्त्र इति। एता इति। सुमन्त्रः, पण्डितः, मन्त्री, प्रधानसचिवः, अमात्यः, प्राड्विवाकः, प्रतिनिधिः तथा इङ्गिताकारतत्त्वज्ञः इङ्गितं हृद्गतो भाव इति कोषात्, आकारः शरीरक्रिया तयोस्तत्त्वज्ञः तदनुगः तेषां सुमन्त्रादीनां तस्य राज्ञः वा अनुगामी स्मृतः कथितः दूतश्च एताः अष्टौ राज्ञः प्रकृतयः सदा भृतिसमाः भृत्या वेतनेन समाः तुल्याः तुल्यवेतना इत्यर्थः। इदञ्च मतभेदेनोक्तं पूर्वविरोधादिति विभाव्यम्॥७२-७३॥

पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठः सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्।
तदनु स्यात् प्रतिनिधिः प्रधानस्तदनन्तरम्॥७४॥
सचिवस्तु ततः प्रोक्तो मन्त्री तदनु चोच्यते।
प्राड्विवाकस्ततः प्रोक्तः पण्डितस्तदनन्तरम्॥७५॥
सुमन्त्रस्तु ततः ख्यातो ह्यमात्यस्तु ततः परम्॥७६॥
दूतस्ततः क्रमादेते पूर्वश्रेष्ठा यथा गुणाः॥७७॥

अन्वयः—पुरोधाः प्रथमं सर्वेभ्यः श्रेष्ठः राजराष्ट्रभृत् प्रतिनिधिः। तदनु तदनन्तरं प्रधानः स्यात्, ततः सचिवः प्रोक्तः, तदनु मन्त्री उच्यते, ततः प्राड्विवाकः प्रोक्तः, तदनन्तरं पण्डितः, ततः सुमन्त्रः ख्यातः, ततः परम् अमात्यः, ततः परं तु दूतः। एते क्रमात् यथागुणाः पूर्वश्रेष्ठाः भवन्ति॥७४-७७॥

व्याख्या—पुरोधाः = ऋत्विजः, प्रथमम् = आद्यः, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, श्रेष्ठः = वरेण्यः, राजराष्ट्रभृत्—राज्ञः, राष्ट्रम् = देशम्, बिभर्ति = भरणपोषणं करोतीति, राष्ट्रपोषणकर्त्तेति, पुरोहितो याज्ञिकक्रियया राष्ट्रस्य विघ्नविनाशं कृत्वा राज्यरक्षणकारी भवति। प्रतिनिधिः = प्रतिमूर्तिः, तदनु = तत्पश्चात्, तदपेक्षया न्यूनं भवेत्, तनन्तरम्—तत् = तस्य, अनन्तरम् = पश्चात्, प्रधानः = राज्यप्रमुखः, स्यात् = भवेत्, ततः = तदनन्तरम्, सचिवः = सहायकः, प्रोक्तः = कथितः, तदनु = तत्पश्चात्, मन्त्री = अमात्यः, उच्यते = कथ्यते, ततः = तत्पश्चात्, प्राड्विवाकः = न्यायाधीशः, प्रोक्तः = कथितः, तदनन्तरम् = तत्पश्चात्, पण्डितः = बुधः, ततः = तदनन्तरम्, सुमन्त्रः = सत्परामर्शकः, ख्यातः = कथितः, ततःपरम् = तत्पश्चात्, अमात्यः = सचिवः, ततःपरम् दूतः = राजदूतः। एते = पुरोधादयः, क्रमात् = क्रमेण, यथागुणाः = गुणानुसारेण, पूर्वश्रेष्ठाः — पूर्वानुक्रमेण, श्रेष्ठाः = वरेण्याः, भवन्तीति भावः॥७४-७७॥

हिन्दी—प्रथम मत के अनुसार पुरोहित अन्य प्रकृतियों की अपेक्षा सर्वाधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यह अपने याज्ञिक अनुष्ठान के द्वारा विघ्न-विनाश कर राज्य एवं राजा दोनों का रक्षण करता है। इनसे कम प्रतिनिधि, प्रतिनिधि से कम प्रधान, प्रधान से कम सचिव, सचिव से कम मंत्री, मंत्री से कम न्यायाधीश, न्यायाधीश से कम पण्डित, पण्डित से कम सुमन्त्र, सुमंत्र से कम अमात्य और अमात्य से कम दूत श्रेष्ठ हैं। ये सभी क्रम से अपने-अपने गुणों के अनुसार पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ होते हैं॥७४-७७॥

पुरोधा इति। सचिव इति। सुमन्त्र इति। दूत इति। पुराधाः पुरोहितः प्रथमम् अग्रतः सर्वेभ्यः प्रतिनिध्यादिभ्यः श्रेष्ठः सन् राज्ञः राष्ट्रं बिभर्त्तीति राजराष्ट्रभूत् राज्यरक्षणकारीत्यर्थः, वैधक्रियया राष्ट्रविघ्ननाशादिति भावः। प्रतिनिधिः तदनु तस्य पश्चात् तदपेक्षया न्यून इत्यर्थः स्यात्। तदनन्तरं प्रधानः ततः सचिवः प्रोक्तः कथितः तदनु तत्पश्चात् मन्त्री उच्यते, ततो न्यूनतयेत्यर्थः। ततः प्राड्विवाकः विचारपतिः प्रोक्तः कथितः। तदनन्तरं पण्डितः, ततः अनन्तरं सुमन्त्रः ख्यातः कथितः, ततःपरम् अमात्यः, ततःपरं दूतः न्यूनतया कथित इति शेषः। एते पुरोहितादयः क्रमात् यथाक्रमं यथागुणाः गुणानुसारेण पूर्वश्रेष्ठाः पूर्वः पूर्वः श्रेष्ठो येषां तथोक्ताः भवन्तीति शेषः॥७४-७७॥

मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नस्त्रैविद्यः कर्मतत्परः।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥७८॥
षडङ्गवित् साङ्गधनुर्वेदविच्चार्थधर्म्मवित्।
यत् कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत्॥७९॥
नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः।
सैवाचार्य्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः॥८०॥

अन्वयः—मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः त्रैविद्यः धर्मतत्परः जितेन्द्रियः जितक्रोधः लोभमोहविवर्जितः षडङ्गवित् साङ्गधनुर्वेदवित् च अर्थधर्मवित् यत् कोपभीत्या राजाऽपि धर्मनीतिरतो भवेत्। यश्च नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलः तु यः शापानुग्रहयोः क्षमः सः पुरोहितः, यश्च पुरोधाः सैवाचार्यः॥७८-८०॥

व्याख्या—यः मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः—मन्त्रस्य = वेदवाक्यस्य, अनुष्ठानेन = सविधिसम्पादनेन, सम्पन्नः = निष्पन्नः, त्रैविद्यः = त्रिवेदी, तिसृणां विद्यानां पारङ्गतः, कर्मतत्परः =

कर्मानुष्ठाने सन्नद्धः, जितेन्द्रियः = वशी, जितक्रोधः = कोपजेता, लोभमोहविवर्जितः = लिप्साभ्रमरहितः, षडङ्गवित्—षडङ्गानि = वेदाङ्गषट्शास्त्राणि; तद्यथा—शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषाख्यानि, वेत्तीति = जानातीति, तथाभूतः, तथा षट् शरीरावयवाश्च—'जङ्घे बाहू शिरोमध्यं षडङ्गमिदमुच्यते।' तथा साङ्गान् = अङ्गसहितान्, धनुर्वेदान् = धनुर्विद्यानिरूपकशास्त्राणि, वेत्ति = जानाति, तादृशः, तथा अर्थश्च = धनञ्च, धर्मश्च = सुकृतञ्च, तौ वेत्तीति तथाभूतः, धर्मार्थशास्त्रयोः पण्डितः, यस्य = पुरोहितस्य, कोपभीत्या = क्रोधभयेन, राजाऽपि = नृपः स्वयमपि, अन्यस्य तु का कथा, धर्मनीतिरतः = सत्कर्मन्यायनिरतो भवेत्, यश्च नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलः—यः = पुरोहितः, च नीतिशास्त्रे, शस्त्रसञ्चालनक्रियायाम् = अस्त्राघाते तथा व्यूहरचनायां, कुशलः = निपुणः, शापानुग्रहयोः = अवग्रहानुग्रहयोः, क्षमः = समर्थश्च, सः, पुरोहितः = पुरोधाः, यश्च, पुरोधाः = पुरोहितः, स एव आचार्यः = उपनेता भवति, 'सैव' इत्यार्षप्रयोगः ॥७८-८० ॥

हिन्दी—यथाविधि वैदिक मंत्रों के अनुष्ठाता, कार्यतत्पर, तीनों वेद का जानकार, जितेन्द्रिय, क्रोध को पीनेवाला, लोभ-मोहयुक्त, वेद के छः अङ्गों—व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषशास्त्र—का ज्ञाता, साङ्गोपाङ्ग धनुर्वेदवेत्ता, अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र का विद्वान्, जिसके क्रोध के डर से राजा भी नीति और धर्म में निरत रहता है; ऐसा नीतिशास्त्र में, अस्त्र-शस्त्रसंचालन की कला में तथा व्यूहरचना में प्रवीण पुरोहित को होना चाहिए। वह शाप और वरदान दोनों ही देने में समर्थ हो। ऐसे ही पुरोहित को आचार्य भी कहा जाता है ॥ ७८-८० ॥

पुरोहितलक्षणमाह—**मन्त्रेत्यादि**। यः मन्त्रस्य अनुष्ठानेन यथाविधानेन सम्पन्नः यथाविहितमन्त्रानुरूपकार्य्यकारीत्यर्थः, त्रैविद्यः तिसृणां विद्यानां त्रिवेदानां पारदर्शीत्यर्थः, कर्मतत्परः कार्य्यानुष्ठाने त्वरावान्, जितेन्द्रियः, जितक्रोधः, लोभमोहविवर्जितः, षडङ्गवित् षट् अङ्गानि वेदाङ्गानि व्याकरणशिक्षाकल्पनिरुक्तच्छन्दोज्योतिषाख्यानि वेत्तीति तथाभूतः साङ्गानङ्गसहितान् धनुर्वेदान् वेत्तीति तादृशः तथा अर्थश्च धर्मश्च तौ वेत्तीति तथाभूतः धर्मशास्त्रार्थशास्त्रकुशल इत्यर्थः। यस्य कोपभीत्या क्रोधभयेन राजापि किमन्ये इति भावः, धर्म्मनीतिरतः यथा धर्म्मनीतितत्परः भवेत्। यश्च नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलः नीतिशास्त्रे शस्त्रविद्यायाम् अस्त्रविद्यायां तथा व्यूहादिकर्म्मणि सुनिपुण इत्यर्थः, शापानुग्रहयोः अभिसम्पातप्रसादयोः क्षमः समर्थश्च सः पुरोहितः। यश्च पुरोधाः पुरोहितः स एव आचार्य्यः सैवाचार्य्य इति सन्धिरार्षः ॥७८-८० ॥

विना प्रकृतिसन्मन्त्राद्राज्यनाशो भवेद् ध्रुवम्।
रोधनं न भवेत् तस्मात् राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—प्रकृतिसन्मन्त्रात् विना राज्यनाशः ध्रुवं भवेत्। राज्ञः रोधनं न भवेत् तस्मात् ते सुमन्त्रिणः स्युः ॥८१ ॥

व्याख्या—प्रकृतिसन्मन्त्रात्—प्रकृतीनाम् = पुरोहितादिप्रधानपुरुषाणाम्, सन्मन्त्रात् = सत्परामर्शात्, विना = विहाय, राज्यनाशः—राज्यस्य = राष्ट्रस्य, नाशः = विनाशः, ध्रुवम् = निश्चितम्, भवेत् = स्यात्, तथा राज्ञः = नृपस्य, रोधनम् = कुपथाद्विरामः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, तस्मात् = तेन हेतुना, ते = पुरोहितादिप्रधानपुरुषाः सुमन्त्रिणः = सत्परामर्शदायकाः, स्युः = भवेयुरिति ॥८१ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त पुरोहितादि प्रधानपुरुषों की अच्छी सलाह के लिये बिना यदि कोई राजा काम करता है तो उसके राज्य का विनाश निश्चित है। उस राज्य के राजा को कुपथ से रोकना संभव नहीं होता। अतः इन प्रधान पुरुषों को अच्छी सलाह देने योग्य होना चाहिए॥ ८१॥

विनेति। प्रकृतीनां पूर्वोक्तानां पुरोहितादीनां सन्मन्त्रात् सुनिश्चितात् मन्त्रणात् विना ध्रुवं निश्चितं राज्यनाशः भवेत्, एवं राज्ञः रोधनम् अपथात् निवर्त्तनं न भवेत्, तस्मात् ते पुरोहितादयः सुमन्त्रिणः स्युः भवेयुः॥८१॥

न बिभेति नृपो येभ्यस्तैः स्यात् किं राज्यवर्द्धनम्?
यथालङ्कारवस्त्राद्यैः स्त्रियो भूष्यास्तथाहि ते॥८२॥

अन्वयः—येभ्यः नृपः न बिभेति तैः किं राज्यवर्द्धनं स्यात्? यथालङ्कारवस्त्राद्यैः स्त्रियः भूष्याः ते तथाहि॥८२॥

व्याख्या—येभ्यः = प्रधानपुरुषेभ्यः, नृपः = राजा, न = नहि, बिभेति = भयमाप्नोति, तैः = प्रधानपुरुषैः, किमिति प्रश्ने? राज्यवर्द्धनम्—राज्यस्य = राष्ट्रस्य, वर्द्धनम् = अभ्युत्थानम्, स्यात् = भवेत्, नैवेत्यर्थः। यथा = येन प्रकारेण, अलङ्कारवस्त्राद्यैः = भूषणवसनाद्यैः, स्त्रियः = नार्यः, भूष्याः = अलङ्कार्याः, ते = प्रधानपुरुषाः, तथाहि = तादृशाः एव॥८२॥

हिन्दी—जिन प्रधान पुरुषों से राजा को भय न हो उनसे राष्ट्र का अभ्युदय कदापि संभव नहीं है। वे तो राज्य की वैसी ही शोभा है जैसे औरतों के लिए वस्त्र और आभूषण॥८२॥

नेति। येभ्यः पुरोहितादिभ्यः नृपः न बिभेति, तैः पुरोहितादिभिः किं राज्यस्य वर्द्धनं वृद्धिः अभ्युदय इत्यर्थः स्यात्? नैवेत्यर्थः। यथा अलङ्कारवस्त्राद्यैः स्त्रियः भूष्याः अलङ्कार्य्याः ते पुरोहितादयः तथाहि तादृशा एव पुरोहितादयः केवलं राज्ञः परिच्छदाः न भवन्ति अपितु तादृशाः यादृशेभ्यः भयात् राजापि न कुपथगामी भवेदिति भावः॥८२॥

राज्यं प्रजा बलं कोशः सुनृपत्वं न वर्द्धितम्।
यन्मन्त्रतोऽरिनाशस्तैर्मन्त्रिभिः किं प्रयोजनम्॥८३॥

अन्वयः—यन्मन्त्रतः राज्यं प्रजा बलं कोशः तथा सुनृपत्वं न वर्द्धितम् अरिनाशः न, तैः मन्त्रिभिः किं प्रयोजनम्? ॥८३॥

व्याख्या—यत् = येषाम्, मन्त्रतः = परामर्शात्, राज्यम् = जनपदम्, प्रजाः = जनाः, बलम् = सैन्यं, कोशः = धनम्, तथा सुनृपत्वम् = व्यवस्थितराज्यसञ्चालनम्, न = नहि, वर्द्धितम् = अभ्युदयं प्राप्तम्, तथा अरिनाशम् = रिपुविनाशश्च, न = नहि, भवतीति। तैः = प्रधानपुरुषैः, किं, प्रयोजनम् = उद्देश्यमर्थान्न किमपीत्यर्थः॥८३॥

हिन्दी—जिन प्रधान पुरुषों की सलाह से राजा का राज्य, प्रजा, सेना, खजाना और सुराज्य-संचालन की अभिवृद्धि न हो, तो उन प्रधान पुरुषों से क्या लाभ? अर्थात् कुछ नहीं॥८३॥

राज्यमिति। येषां मन्त्रत. मन्त्रणात् राज्यं प्रजा, बलं सैन्यं कोशः धनं तथा सुनृपत्वं सौराज्यं न वर्द्धितं न वृद्धि प्राप्तं तथा अरिनाशश्च शत्रुक्षयश्च न भवतीति शेषः, तैः मन्त्रिभिः किं प्रयोजनम्? न किमपीत्यर्थः॥८३॥

कार्य्याकार्य्यप्रविज्ञाता स्मृतः प्रतिनिधिस्तु सः।
सर्वदर्शी प्रधानस्तु सेनावित् सचिवस्तथा॥ ८४॥

अन्वयः—यः कार्यस्य अकार्यस्य च प्रविज्ञाता सः प्रतिनिधिः स्मृतः। यः सर्वदर्शी सः प्रधानः, यश्च सेनावित् स सचिवः॥ ८४॥

व्याख्या—यः= पुरुषविशेषः, कार्यस्य= उचितकृत्यस्य, अकार्यस्य च= पुनरनुचितस्य व्यवसायस्य, प्रविज्ञाता= प्रकर्षेण विशिष्टबोद्धा, सः= असौ, प्रतिनिधिः= स्थानापन्नः, स्मृतः= कथितः। यः= पुरुषः, सर्वदर्शी= विश्वद्रष्टा, सः= असौ, प्रधानः= सभाध्यक्षो भवति, च= पुनः, यः= पुरुषः, सेनावित्= सैन्यविज्ञानवेत्ता, सः= असौ, सचिवः= मन्त्री, भवति॥ ८४॥

हिन्दी—कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का समुचित ज्ञान रखने वाला व्यक्ति प्रतिनिधि कहलाता है। विश्वद्रष्टा अर्थात् हर वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षणकर्त्ता प्रधान कहलाता है तथा सैन्य-विज्ञान में निपुण व्यक्ति सचिव होता है॥ ८४॥

प्रतिनिध्यादीनां लक्षणानि निरूपयति—**कार्य्याकार्य्येत्यादिना**। यः कार्य्यस्य अकार्य्यस्य च परिज्ञाता प्रकर्षेण विज्ञानवान् सः प्रतिनिधिः स्मृतः कथितः। यः सर्वदर्शी सः प्रधानः। यश्च सेनावित् सैन्यविज्ञानवान् स सचिवः॥ ८४॥

मन्त्री तु नीतिकुशलः पण्डितो धर्म्मतत्त्ववित्।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा॥ ८५॥

अन्वयः—यः नीतिकुशलः तु मन्त्री, धर्मतत्त्ववित् पण्डितः, सदा लोकशास्त्रनयज्ञः प्राड्विवाकः स्मृतः॥ ८५॥

व्याख्या—यो हि पुरुषः, नीतिकुशलः—नीतौ= नीतिशास्त्रेऽथवा नयव्यवहारे, कुशलः= प्रवीणः, सो हि पुरुषः, मन्त्री= अमात्यो भवति। तु= तथा, यो हि पुरुषः, धर्मतत्त्ववित्—धर्मस्य= अभ्युदयनिश्रेयससाधको गुणकर्मसमूहस्य, तत्त्वम्= याथार्थ्यम्, वेत्ति= जानातीति, तथोक्तस्तत्त्वज्ञः सः पण्डितो भवति। यो हि पुरुषः, सदा= सर्वदा, लोकशास्त्रनयज्ञः —लोकशास्त्रम्= लोकव्यवहारविज्ञानम्, नयज्ञश्च= न्यायशास्त्रविशेषज्ञश्च, तथाभूतः पुरुषः प्राड्विवाकः= न्यायाधीशः, स्मृतः= कथितः॥ ८५॥

हिन्दी—नीतिशास्त्र के जानकार एवं तदनुसार व्यवहार करने में कुशल व्यक्ति मन्त्री कहलाता है। धर्म के तत्त्व को जानने वाला पण्डित तथा लोकव्यवहार एवं न्यायशास्त्रविशेषज्ञ न्यायाधीश कहलाता है॥ ८५॥

मन्त्रीति। यः नीतौ नीतिशास्त्रे तदनुष्ठाने च कुशलः स मन्त्री। यः धर्मस्य तत्त्वं याथार्थ्यं वेत्तीति तथोक्तः सः पण्डितः। यश्च सदा लोकशास्त्रनयज्ञः लोकं लोकाचारं शास्त्रनयञ्च जानातीति तथाभूतः प्राड्विवाकः स्मृतः कथितः॥ ८५॥

देशकालप्रविज्ञाता ह्यमात्य इति कथ्यते।
आयव्ययप्रविज्ञाता सुमन्त्रः स च कीर्त्तितः॥ ८६॥

अन्वयः—यश्च देशकालप्रविज्ञाता स हि अमात्य इति कथ्यते। च आयव्ययप्रविज्ञाता सः सुमन्त्रः इति कीर्तितः॥ ८६॥

व्याख्या—यश्च पुरुषः, देशकालप्रविज्ञाता—देशस्य = जनपदस्य, कालस्य = समयस्य, च विज्ञाता = विशिष्टरूपेण वेत्ता, सो हि 'अमात्यः' इति कथ्यते = ज्ञायते। च = पुनः, यश्च, आयव्ययप्रविज्ञाता—आयस्य = धनागमस्य, व्ययस्य = धनोत्सर्गस्य च, प्रविज्ञाता = अभिज्ञानवान्, सः = असौ, सुमन्त्रः = सुविचारकः, कीर्त्तितः = कथ्यते ॥ ८६ ॥

हिन्दी—देश और काल के विषय में अच्छी जानकारी रखने वाला पुरुष 'अमात्य' कहलाता है और आय-व्यय के विषय में विशिष्ट जानकार को 'सुमन्त्र' कहते हैं ॥ ८६ ॥

देशेति। यश्च देशस्य कालस्य च प्रविज्ञाता अस्मिन् देशे एवं व्यवहर्त्तव्यम् अस्मिन् काले च एवमिति अभिज्ञानवान् सः हि अमात्य इति कथ्यते। यश्च आयस्य अर्थागमस्य व्ययस्य अर्थक्षयस्य च प्रविज्ञाता विज्ञानवान् आयव्ययकर्मनिपुण इत्यर्थः, सः सुमन्त्रः कीर्त्तितः ॥ ८६ ॥

इङ्गिताकारचेष्टाज्ञः स्मृतिमान् देशकालवित्।
षाड्गुण्यमन्त्रविद्वाग्मी वीतभीर्दूत इष्यते ॥ ८७ ॥

अन्वयः—इङ्गिताकारचेष्टाज्ञः स्मृतिमान् देशकालवित् षाड्गुण्यमन्त्रविद् वाग्मी वीतभीः सः दूतः इष्यते ॥ ८७ ॥

व्याख्या—यः इङ्गिताकारचेष्टाज्ञः—इङ्गितम् = सङ्केतम्, आकारम् = बाह्यस्वरूपम्, चेष्टाञ्च = कायिकव्यापारश्च, जानातीति तथोक्तः, स्मृतिमान् = स्मरणशक्तिसम्पन्नः, देशकालवित्—देशस्य = जनपदस्य, कालस्य = समयस्य, चार्थात् अस्मिन् स्थाने एवं व्यवहर्तव्यम्, तथाऽस्मिन् समये चेदं कर्तव्यमित्यस्य विषयस्य, वेत्ता = अभिज्ञः, षाड्गुण्यमन्त्रविद्—षाड्गुण्यानाम् = राज्यरक्षणस्य षडुपायानाम्; तद्यथा—सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधीभाव-संश्रयेति गुणषट्कयुतानाम्, मन्त्रविद् = मन्त्रणाविशेषज्ञः, वाग्मी = वाग्विदग्धः, वीतभीः = भयरहितः, सः = असौ, दूतः = राजदूतः, इष्यते = कथ्यते ॥ ८७ ॥

हिन्दी—किसी व्यक्ति के इशारा, आकार और चेष्टा को समझने वाला, मेधावी, देश-काल के अनुरूप व्यवहार को जानने वाला, राज्य-संरक्षा के छः गुणों—सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधीभाव और समाश्रय—के विषय में सही विचार देने वाला, बोलने में चतुर एवं निर्भय व्यक्ति 'दूत' कहलाता है ॥ ८७ ॥

इङ्गितेति। यः इङ्गितम् अन्तर्भावम् आकारं चेष्टाञ्च जानातीति तथोक्तः स्मृतिमान् मेधावी, देशकालवित् देशकालानुरूपकार्य्यवेत्ता, षाड्गुण्यानां सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयाणां मन्त्रज्ञानवान्, वाग्मी वचनपटुः तथा वीतभीः निर्भयः सः दूतः इष्यते ॥ ८७ ॥

अहितञ्चापि यत्कार्य्यं सद्यः कर्त्तुं यदोचितम्।
अकर्त्तुं यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा।
बोधयेत् कारयेत् कुर्य्यान्न कुर्यान्न प्रबोधयेत् ॥ ८८ ॥
सत्यं वा यदि वासत्यं कार्य्यजातञ्च यत् किल।
सर्वेषां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिन्तयेत् ॥ ८९ ॥
गजानाञ्च तथाश्वानां रथानां पदगामिनाम्।
सुदृढानां तथोष्ट्राणां वृषाणां सद्य एव हि ॥ ९० ॥

वाद्यभाषासु सङ्केतव्यूहाभ्यसनशालिनाम्।
प्राक्प्रत्यग्गामिनां राज्यचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणाम्॥ ९१॥
परिचारगणानां हीनमध्योत्तमकर्म्मणाम्।
अस्त्राणामस्त्रजातीनां सङ्घः स्वतुरगीगणः॥ ९२॥
कार्यक्षमश्च प्राचीनः साद्यस्कः कति विद्यते।
कार्य्यासमर्थः कत्यस्ति शस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक्॥ ९३॥
साङ्ग्रामिकश्च कत्यस्ति सम्भारस्तान् विचिन्त्य च।
सचिवश्चापि तत्कार्य्यं राज्ञे सम्यक् निवेदयेत्॥ ९४॥
साम दानञ्च भेदश्च दण्डः केषु कदा कथम्।
कर्त्तव्यः किं फलं तेभ्यो बहु मध्यं तथाल्पकम्।
एतत् सञ्चिन्त्य निश्चित्य मन्त्री सर्वं निवेदयेत्॥ ९५॥

अन्वयः—प्रतिनिधिः सदा यत् कार्यम् अहितञ्चापि सद्यः यदा कर्त्तुम् उचितं यच्च हितमपि अकर्त्तुं यदा उचितं तत् राज्ञः बोधयेत् कारयेत् कुर्याच्च, तथा न कुर्यात् न प्रबोधयेत्। प्रधानः सर्वेषां राजकृत्येषु यत् कार्यजातं सत्यं यदि वा असत्यं किल भवेत् तत् विचिन्तयेत्। सचिवः गजानाम् अश्वानां रथानां पदगामिनां सुदृढानाम् उष्ट्राणां वृषाणां वाद्यभाषासु सङ्केतव्यूहाभ्यसनशालिनां प्राक्प्रत्यग्गामिनां हीनमध्योत्तमकर्मणां राज्यचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणां परिचारगणानाम् अस्त्राणाम् अस्त्रजातीनां विचिन्त्य तथा कार्यक्षमः प्राचीनः साद्यस्कः वा स्वतुरगीगणः कति विद्यते? कार्यासमर्थः कति? तथा शस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक् साङ्ग्रामिकः सम्भारः कति अस्ति? तान् विचिन्त्य राज्ञे तत् कार्यं सम्यक् निवेदयेत्। मन्त्री केषु कदा कथं साम दानं भेदः दण्डश्च तेभ्यः किं फलं बहु मध्यम् अल्पकञ्च एतत् सञ्चिन्त्य निश्चित्य सर्वं राज्ञे निवेदयेत्॥ ८८-९५॥

व्याख्या—प्रतिनिधिः = प्रतिपुरुषः, सदा = सततम्, यत् = यत्किञ्चित्, कार्यम् = कृत्यम्, अहितमपि = हानिकरोऽपि, सद्यः = तत्क्षणमेव, यदा = यस्मिन्काले, कर्तुम् = सम्पादितुम्, उचितम् = युक्तिसङ्गतम्, यच्च = यत्कार्यञ्च, हितमपि = कल्याणकरमपि, अकर्त्तुम् = कर्त्तुमयोग्यम्, यदा = यस्मिन् काले, उचितम् = सङ्गतम्, तत्कार्यम्, राज्ञः = नृपान्, बोधयेत् = आश्वासयेत्, कारयेत् = प्रेरयेत्, कुर्याच्च = स्वयं विधेयाच्च, तथा, न = नहि, कुर्यात् = विधेयात्, न प्रबोधयेत् = न निवेदयेत्, समुचितकर्त्तव्यस्य प्रेरणं करणञ्चानुचितस्य कर्त्तव्यस्यानिवेदनम् अविधेयञ्च प्रतिनिधेः कर्त्तव्यमिति। प्रधानः = प्रमुखः, सर्वेषाम् = सकलानाम्, राजकृत्येषु = राजकीयानुष्ठानेषु, यत्कार्यजातम् = यत्कर्मसम्पादितम्, तेषु सत्यम् = तथ्यम्, यदि वा असत्यम् = अयथार्थम्, किल = निश्चितम्, भवेत् = स्यात्, तत् = अखिलम्, विचिन्तयेत् = वितर्कयेत्। सचिवः = अमात्यः, गजानाम् = कुञ्जराणाम्, अश्वानाम् = हयानाम्, रथानाम् = स्यन्दनानाम्, पदगामिनाम् = पदातीनाम्, सुदृढानाम् = बलशालिनाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, वृषाणाम् = वृषभानाम्, बाह्यभाषासु = वैदेशिकालापेषु, सङ्केतव्यूहाभ्यसनशालिनाम्—यः सङ्केतः = संज्ञानम्, व्यूहः = सैन्यविन्यासश्च, तत्र अभ्यसनशालिनाम् = कृताभ्यासानाम्, प्राक्प्रत्यग्गामिनाम् =

पूर्वपश्चिमदिशि गन्तुकामानाम्, हीनमध्योत्तमकर्मणाम्—हीनकर्मणाम् = निम्नवर्गीयभृत्यानाम्, मध्यकर्मणाम् = मध्यमविधसेवकानाम्, उत्तमकर्मणाञ्च = उच्चश्रेणीकर्मचारिणाम्, राज्यचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणाम्—राज्यचिह्नधारिणाम् = राजलाञ्छनधृतानाम्, शस्त्रास्त्रधारिणाञ्च = आयुधधारिणाम्, परिचारगणानाम् = भृत्यवर्गाणाम्, अस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, अस्त्रजातीनाम् = आयुधप्रकाराणाम्, सङ्घः = समूहः, विचिन्त्य = विचार्य, च = पुनः, कार्यक्षमः = कार्यकुशलः, प्राचीनः = पुरातनः, साद्यस्कः = अभिनवो वा, स्वतुरगीगणः = निजाश्वारोहवर्गः, कति = किं संख्याकाः, अस्ति = विद्यते ? एतेषु कार्यासमर्थः = स्वकृत्यसम्पादनेऽक्षमः, कति = किं संख्याकाः, अस्ति = विद्यते, तथा शस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक्—शस्त्राणि = आयुधानि, गोलाग्नयः = वर्तुलवह्निपिण्डाः, चूर्णानि = क्षोदाः, तैः युक् = समन्वितः, अर्थादग्न्यस्त्रयुक्तम्, साङ्ग्रामिकः = योद्धारः, सम्भारः = सञ्चयनम्, कति, अस्ति ? तान् = पूर्वोक्तान् सकलान्, विचिन्त्य = पर्यालोच्य, राज्ञे = नृपाय, तत्कार्यम् = तद्विषयकं सकलं कृत्यम्, सम्यक् = सामस्त्येन, निवेदयेत् = कथयेत्। मन्त्री = अमात्यः, केषु = जनेषु विषयेषु वा, कदा = कस्मिन्काले, कथम् = केन प्रकारेण, साम = राजनीतौ उपायभेदः, दानम् = विसर्जनम्, भेदः = शत्रुवशीकरणोपायभेदः, दण्डश्च = विग्रहश्च, कर्त्तव्यः = करणीयः, तेभ्यः = पूर्वोक्तसामादिभ्यः, किं फलम् = किं परिणामम्, तच्च फलम् = तत्परिणामम्, बहु = अत्यधिकम्, मध्यम् = मध्यफलदायकम्, वा अल्पम् = स्वल्पफलदम्, एतत् = एतदखिलम्, सञ्चिन्त्य = सम्यक्प्रकारेण विचार्य, निश्चित्य = निश्चयं कृत्वा, निवेदयेत् = नृपाय कथयेदिति ॥८८-९५ ॥

हिन्दी—प्रतिनिधि का यह कर्त्तव्य है कि वह हमेशा जो काम नुकसानदेह भी है, पर उसका सम्पादन अभी ही उचित है तो उसे सही समय पर करने के लिए राजा से निवेदन करना चाहिए, उनसे करवाना चाहिए और स्वयं भी करना चाहिए तथा जो काम लाभकर है तथा जिस समय उसका करना अनुचित है, वह न राजा से कहे, न कराये और न स्वयं करे। राजकीय सभी कामों में कौन काम सही है और कौन गलत ? इसका विचार करने वाला राज्य का प्रधान होता है। सचिव का काम है कि वह हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक, मजबूत ऊँट, विदेशी भाषाओं के संकेत, सैनिक-व्यूहरचना के सतत अभ्यासी सैनिक, पूर्व एवं पश्चिम की ओर जाने वाले राजदूत, झण्डा-निशान उठाने वाले राजसेवक, निम्न, मध्यम एवं उत्तमवर्गीय कर्मचारीगण, अस्त्र-शस्त्र धारण करने वाले परिचारकगण, हथियारों तथा आयुध-समूहों के सही जानकार कितने हैं और उनकी स्थिति क्या है ? नये और पुराने घुड़सवारों में कितने काम करने योग्य और कितने अयोग्य हैं ? हथियार, गोले और आग्नेयास्त्र कितने हैं ? इनकी सही जानकारी लेकर, उन पर विचार कर राजा से निवेदित करे। मंत्री का काम यह है कि वह किन विषयों में कब और किस तरह सन्धि, विग्रह, दान एवं भेद करना चाहिए और इनका परिणाम कब और कैसा होगा ? थोड़ा, मध्यम या अधिक होगा ? इन सबों पर विचार कर राजा को इससे अवगत कराये ॥८८-९५ ॥

सम्प्रति प्रतिनिध्यादिमन्त्रपर्य्यन्तानां कार्य्याणि क्रमेणाह—**अहितमित्यादि**। प्रतिनिधिः सदा यत् कार्य्यम् अहितमपि सद्यः अविलम्बेनैवेत्यर्थः, यदा कर्त्तुमुचितं यच्च हितमपि अकर्त्तुं यदा उचितं, तत् राज्ञः बोधयेत् निवेदयेत् कारयेत् कुर्य्याच्च तथा न कुर्य्यात् न प्रबोधयेत् न निवेदयेच्च कर्त्तुमुचितस्य निवेदनं करणञ्च अनुचितस्य अनिवेदनम् अकरणञ्च विधेयं प्रतिनिधेरिति फलितार्थः।

प्रधानः सर्वेषां राजकृत्येषु मध्ये यत् कार्य्यजातं सत्यं यदि वा असत्यं किल निश्चितं भवेत् सत्सर्वं विचिन्तयेत् विशेषेण पर्य्यालोचयेत्। सचिवः गजानाम् अश्वानां रथानां पदगामिनां पदातीनां सुदृढानाम् उष्ट्राणां वृषाणां, बाह्यभाषासु अपरभाषासु यः सङ्केतः इङ्गितबोधनं व्यूहः बलरचना च तत्र अभ्यसनशालिनां कृताभ्यासानां प्राक्प्रत्यग्गामिनां पूर्वपश्चिमदेशगामिनां मध्यमोत्तमकर्म्मणां मध्यविधकर्मचारिणाम् उत्तमकर्मचारिणां राजचिह्नशस्त्रास्त्रधारिणां राजचिह्नधारिणां शस्त्रास्त्रधारिणाञ्च परिचारगणानां भृत्यवर्गाणाम् अस्त्राणाम् अस्त्रपातानाञ्च नियमानिति शेषः, विचिन्त्य तथा कार्य्यक्षमः प्राचीनः पुरातनः साद्यस्कः नूतनो वा स्वतुरगीगणः अश्वारोहवर्गः कति विद्यते? कार्य्यासमर्थः कार्य्याक्षमश्च कति अस्ति? तथा शस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक् शस्त्राणि गोलाग्नयः गोलाकाराग्निपिण्डाः चूर्णानि वारुदेति प्रसिद्धानि तैः युक् युक्तः साङ्ग्रामिकः सम्भारः द्रव्यसमूहः कति अस्ति? तान् एतान् पूर्वोक्तान् सर्वान् विचिन्त्य च राज्ञे एतत्कार्य्यं तत्तद्विषयकार्य्यजातं सद्यः सम्यक् याथातथ्येन निवेदयेत्। मन्त्री केषु विषयेषु कदा कथं केन प्रकारेण साम सन्धिः दानं त्यागः, भेदः उपजापः तथा दण्डः विग्रहः कर्त्तव्यः प्रयोक्तव्यः तेभ्यश्च सामादिभ्यः किं फलं तच्च फलं बहु मध्यं वा अल्पकम् एतत्सर्वं सञ्चिन्त्य निर्णीय च निवेदयेत् राज्ञे इति शेषः॥८८-९५॥

साक्षिभिर्लिखितैर्भोगैश्छलैर्भूतैश्च मानुषान्।
स्वेनोत्पादितसम्प्राप्तव्यवहारान् विचिन्त्य च॥९६॥
दिव्यसंसाधनाद्वापि केषु किं साधनं परम्।
युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लोकशास्त्रतः ॥९७॥
बहुसम्मतसंसिद्धान् विनिश्चित्य सभास्थितः।
ससभ्यः प्राड्विवाकस्तु नृपं सम्बोधयेत् सदा॥९८॥

अन्वयः—सभास्थितः प्राड्विवाकः ससभ्यः साक्षिभिः लिखितैः भोगैः छलैः भूतैश्च मानुषान् स्वेन उत्पादितसम्प्राप्तव्यवहारान् विचिन्त्य दिव्यसंसाधनाद्वापि बहुसम्मतसंसिद्धान् विनिश्चित्य केषु किं परं साधनं युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैः लोकशास्त्रतः विनिश्चित्य सदा नृपं सम्बोधयेत्॥९६-९८॥

व्याख्या—सभास्थितः = न्यायालये समुपस्थितः, प्राड्विवाकः = न्यायाधिपतिः, ससभ्यः—सभ्यैः = धर्माधिकारिभिः, परिवृतः सन्, साक्षिभिः = प्रत्यक्षदर्शिभिः, लिखितैः = लिपिबद्धकृतैः, भोगैः = सत्यभूतैः, छलैः = कैतवभूतैः, मानुषान् = नरान्, स्वेन = आत्मनैव, उत्पादितसम्प्राप्तव्यवहारान्—उत्पादिता = कल्पिता, वा सम्प्राप्ताः = यथार्थरूपेण स्वयं समुपस्थिताः, व्यवहाराः = अभियोगाः, येषान्तान्, विचिन्त्य = विशिष्टरूपेण विचार्य, दिव्यसंसाधनाद्वापि = अलौकिकविधानात्, वा = अथवा, बहुसम्मतसंसिद्धान् = बहुजनसमादृतविचारान्, विनिश्चित्य = विशेषेण निश्चयं कृत्वा, केषु = व्यवहारेषु, किमिति प्रश्ने, परमम् = उत्कृष्टम्, साधनम् = उपकरणम्, एतत्सर्वम्, युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैः—युक्त्या = कौशलेन, प्रत्यक्षतः = इन्द्रियग्राह्यतः, अनुमानेन = अभ्यूहनेन, उपमानेन = सादृश्यज्ञानसाधनेन, लोकशास्त्रतः—लोकतः = लोकव्यवहारतः, शास्त्रतश्च = धर्मग्रन्थतश्च, सुनिश्चित्य = सम्यग्रूपेण निश्चयं कृत्वा, सदा = सर्वदा, नृपम् = नरपतिम्, सम्बोधयेत् = कथयेत्॥९६-९८॥

हिन्दी—मुख्य न्यायाधीश (प्राड्विवाक) का कर्त्तव्य यह है कि वह न्यायालय में उपस्थित होकर, जूरी-पंचों के साथ मिलकर गवाही या लिखित अभियोग के द्वारा पता करे कि अभियुक्त सच्चा है या कपटी ? मुकदमा मनगढन्त है या यथार्थ है। जाँच के क्रम में गवाह या अभिलेख के अभाव में किसी अलौकिक साधन का उपयोग करना चाहिए। साथ ही बहुमान्य सिद्धान्त से किसके लिए कौन प्रमाण उचित होगा ? इसका युक्ति, प्रत्यक्ष, अनुमान, दृष्टान्त, लोक-व्यवहार और शास्त्रीय दृष्टि से विचार कर जो सही निर्णय हो, उससे राजा को अवगत करा देना चाहिए ॥ ९६-९८ ॥

प्राड्विवाककार्य्यमाह—**साक्षिभिरित्यादि**। सभास्थितः प्राड्विवाकः विचारपतिः ससभ्यः सभ्यैः परिवृतः सन् साक्षिभिः लिखितैः भोगैः सत्यभूतैः छलभूतैः अलीकैश्च मानुषान् स्वेन स्वयं स्वेच्छयेत्यर्थः, उत्पादिता वा सम्प्राप्ताः याथार्थ्येन उपस्थिताः व्यवहाराः विवादाः येषां तान् मिथ्याकल्पितविवादान् सत्यविवादान् वा इत्यर्थः, विचिन्त्य समालोच्य तेषु च कांश्चिद् दिव्यसंसाधनान् दिव्यमात्रसाधनान् साक्षिलेख्यादिरहितत्वादिति भावः, कांश्चिद् वा बहुसम्मतसिद्धान्तान् अनेकविचारसम्मतान् इत्यर्थः, विनश्चित्य केषु विवादेषु परं श्रेष्ठं साधनं प्रमाणं किम् एतत्सर्वं युक्त्या प्रत्यक्षतः अनुमानेन उपमानेन दृष्टान्तेन लोकतः शास्त्रतश्च सुनिश्चित्य सदा नृपं सम्बोधयेत् निवेदयेत् ॥ ९६-९८ ॥

वर्त्तमानाश्च प्राचीना धर्म्माः के लोकसंश्रिताः।
शास्त्रेषु के समुद्दिष्टा विरुध्यन्ते च केऽधुना ॥ ९९ ॥
लोकशास्त्रविरुद्धाः के पण्डितस्तान् विचिन्त्य च।
नृपं सम्बोधयेत् तैश्च परत्रेह सुखप्रदैः ॥ १०० ॥

अन्वयः—पण्डितः के प्राचीनाः के च वर्त्तमानाः धर्माः लोकसंश्रिताः ? के शास्त्रेषु समुद्दिष्टाः च अधुना विरुध्यन्ते ? तान् विचिन्त्य परत्र इह च सुखप्रदैः तै नृपं सम्बोधयेत् ॥ ९९-१०० ॥

व्याख्या—पण्डितः = बुधः, के = प्रजाः, प्राचीनाः = पुरातनाः, के च = जनाः, वर्त्तमानाः = आधुनिकाः, धर्माः, लोकसंश्रिताः—लोकेषु = जनेषु, संश्रिताः = अवलम्बिताः, प्रजाः कान् नूतनान् पुरातनान् वा धर्मान् अवलम्ब्य व्यवहरन्तीत्यर्थः। के = धर्माः, शास्त्रेषु = धर्मग्रन्थेपु, समुद्दिष्टाः = अभिप्रेताः, अधुना = सम्प्रति, विरुद्धयन्ते = नाद्रियन्ते, के च = धर्माः, लोकशास्त्रविरुद्धाः—लोके = लोकव्यवहारे प्रचलिताः, किञ्च शास्त्रविरुद्धाः = शास्त्रदृष्ट्याऽनुचिताः, तान् = सर्वान्, विचिन्त्य = समालोच्य, परत्र = परलोके, इह = अस्मिन्संसारे च, सुखप्रदैः = आनन्ददायकैः, तैः = धर्मैः, नृपम् = राजानम्, सम्बोधयेत् = निवेदयेत् ॥ ९९-१०० ॥

हिन्दी—प्रजा पुराने धर्म का पालन करती है या नये धर्म का ? शास्त्रविहित होने के बावजूद प्रजा किस धर्म की उपेक्षा करती है अथवा वह कौन धर्म है, जो शास्त्रविरुद्ध होने के बावजूद प्रजा के द्वारा समादृत है ? इन सभी बातों पर ठीक से विचार कर लोक-परलोक में सुखदायक धर्म से राजा को अवगत कराना पण्डित का काम है ॥ ९९-१०० ॥

पण्डितकार्य्यमाह—**वर्तमाना इति। लोकेति च**। पण्डितः के प्राचीनाः के च वर्त्तमानाः धर्म्माः लोकेषु संश्रिताः, लोकाः कान् प्राचीनान् वा वर्त्तमानान् नव्यान् धर्म्मान् आश्रित्य व्यवहरन्तीत्यर्थः। के धर्म्माः शास्त्रेषु समुद्दिष्टाः विहिताः अधुना इदानीं विरुध्यन्ते न शास्त्रनिर्दिष्टा अपि नाद्रियन्ते

इत्यर्थः। के च धर्म्माः लोके प्रचलिताः अथ च शास्त्रविरुद्धाः तान् विचिन्त्य परत्र इह च सुखप्रदैः तैः धर्मैः नृपं सम्बोधयेत् ॥९९-१००॥

इयच्च सञ्चितं द्रव्यं वत्सरेऽस्मिन् तृणादिकम्।
व्ययीभूतमियच्चैव शेषं स्थावरजङ्गमम्।
इयदस्तीति वै राज्ञे सुमन्त्रो विनिवेदयेत्॥ १०१॥
पुराणि च कति ग्रामा अरण्यानि च सन्ति हि।
कर्षिता कति भूः केन प्राप्तो भागस्ततः कति॥ १०२॥
भागशेषं स्थितं कस्मिन् कत्यकृष्टा च भूमिका।
भागद्रव्यं वत्सरेऽस्मिन् शुल्कदण्डादिजं कति॥ १०३॥
अकृष्टपच्यं कति च कति चारण्यसम्भवम्।
कति चाकरसञ्जातं निधिप्राप्तं कतीति च॥ १०४॥
अस्वामिकं कति प्राप्तं नाष्टिकं तस्कराहृतम्।
सञ्चितन्तु विनिश्चित्यामात्यो राज्ञे निवेदयेत्॥ १०५॥
समासाल्लक्षणं कृत्यं प्रधानदशकस्य च।
उक्तं तल्लिखतैः सर्वं विन्द्यात् तदनुदर्शिभिः॥ १०६॥
परिवर्त्त्य नृपो ह्येतान् युञ्ज्यादन्योऽन्यकर्मणि॥ १०७॥

अन्वयः—सुमन्त्रः अस्मिन् वत्सरे इयत् तृणादिकं स्थावरजङ्गमं द्रव्यं सञ्चितम्, इयत् व्ययीभूतम्, इयच्च शेषम् अस्तीति वै राज्ञे विनिवेदयेत्। अमात्यः कति पुराणि कति ग्रामाः? कति अरण्यानि सन्ति हि? कति भूः कर्षिताः केन? ततः कति भागः प्राप्तः? कति वा कस्मिन् भागशेषं स्थितम्? अकृष्टा च भूमिका कति? अस्मिन् वत्सरे शुल्कदण्डादिजं भागद्रव्यं कति? अकृष्टपच्यं कति? अरण्यसम्भवं कति? आकरसञ्जातं कति? च निधिप्राप्तं कति? अस्वामिकं कति? नाष्टिकं तस्कराहृतं सञ्चितञ्च, एतत् विनिश्चित्य राज्ञे निवेदयेत्। समासात् प्रधानदशकस्य लक्षणं च कृत्यम् उक्तम्। नृपः तदनुदर्शिभिः तल्लिखतैः सर्वं विन्द्यात्। एवम् एतान् परिवर्त्त्य अन्योऽन्यकर्मणि युञ्ज्यात्॥१०१-१०७॥

व्याख्या—सुमन्त्रः= सुविचारकः, अस्मिन् = वर्त्तमाने, वत्सरे = वर्षे, इयत् = एतावन्मात्रम्, तृणादिकम् = हरिततृणादिकम्, स्थावरजङ्गमम् = चलमचलञ्च, द्रव्यम् = धनम्, सञ्चितम् = एकत्रीकृतम्, इयत् = एतावत्, व्ययीभूतम् = वित्तविनियोगोऽभूत्, इयच्च = एषा च, शेषम् = अवशिष्टम् अस्तीति, राज्ञे = नृपाय, विनिवेदयेत् = यथार्थरूपेणोपस्थापयेत्। अमात्यः= सचिवः, कति = किं संख्याकाः, पुराणि = नगराणि, कति = किं संख्याकाः, ग्रामाः= हृदादिशून्यनिवसथाः, कति = किं संख्याकाः, अरण्यानि = वनानि, सन्ति = विद्यन्ते, हि = इत्यवधारणे, कति = कियति परिच्छिन्ना, भूः= पृथ्वी, कर्षिताः= भूमिदारणं कृताः, केन = जनेन, ततः= तत्पश्चात् कृष्टभूमेः, कति = कियत्परिमाणः, भागः= अंशः, प्राप्तः= राजस्वरूपेणोपलब्धः, कति = कियत्परिमाणः, वा = अथवा, कस्मिन् = क्षेत्रविशेषे, भागशेषम् = अवशिष्टभागम्, स्थितम् = अवस्थितम्,

अकृष्टा = अहल्या, भूमिका = भूभागः, कति = कियत्परिणामावशिष्टेति भावः, अस्मिन् = पूर्वोक्तविषये, वत्सरे = वर्षे, शुल्कदण्डादिजम्—शुल्कम् = राजस्वम्, दण्डः = दण्डेनोपलब्धं धनम्, तदादिजम् = तत्प्रभृतिजनितं भागद्रव्यम्, कति = किं संख्याकाः? अकृष्टपच्यम् = विना भूकर्षणेन स्वतःसम्भूतशस्यादिकम्, कति = कियत्परिमाणम्? अरण्यसम्भवम् = वनेनोपलब्धधनम्, कति = कियत्संख्याकाः? च = पुनः, आकरसञ्जातम् = खनिजपदार्थः, कति = कियत्संख्याकाः? निधिप्राप्तम् = स्वत्वप्रतिपादकविहीनप्राप्तधनम्, कति? अस्वामिकम् = अदायादं धनम्, कति = कियत्संख्याकाः, नाष्टिकम् = विनष्टप्राप्तधनम्, कति? तस्कराहृतम्—तस्करेण = चौर्यकर्मणा, आहृतम् = अपहृतम्, धनम्, तदर्थं तेषां दण्डेन प्राप्तधनम्, सञ्चितम् = सङ्गृहीतम्, धनं कति? एतत् = पूर्वोक्तमेतदखिलम्, सञ्चिन्त्य = सम्यग्रूपेण विचार्य, विनिश्चित्य = विशिष्टनिश्चयं कृत्वा, राज्ञे = नृपाय, निवेदयेत् = कथयेत्। समासात् = सङ्क्षेपात्, प्रधानदशकस्य = पुरोहितादिदशराज्यप्रधानस्य, लक्षणम् = परिभाषा, च = पुनः, कृत्यम् = तेषां कार्यम्, उक्तम् = कथितम्, नृपः = राजा, तदनुदर्शिभिः = तत्तल्लक्षणकार्येषु दर्शितैः, तल्लिखितैः = तत्प्रधानादिकानां लिखितैः, सर्वम् = सकलम्, विन्द्यात्। एवमेतान् = पूर्वोक्तान्, परिवर्त्त्य = व्यतिहृत्य, अन्योऽन्यकर्मणि = परस्परसुमन्त्रममात्यकार्ये, अमात्यञ्च सुमन्त्रकर्मणि, युञ्ज्यात् = नियोजनं कुर्यात् ॥ १०१-१०७ ॥

हिन्दी—तृणदिक चल-अचल सम्पत्ति किस हद तक संचित की गई है? उनमें कितना खर्च हुआ और कितना बचा है? इसका वार्षिक ब्यौरा राजा के सामने उपस्थित करना सुमन्त्र का काम है। अमात्य का कर्त्तव्य है कि राज्य में कितने गाँव, नगर और जंगल हैं? किसने कितनी धरती जोती है? आबादी वाली धरती से कितना राजस्व मिला और किस धरती का कितना राजस्व बाकी है? परती जमीन कितनी है? प्रतिवर्ष मालगुजारी से और अपराधियों के जुर्माने से कितना धन राजकोष में आता है? परती जमीन में अपने आप पैदा होने वाली फसलें कितनी हैं? जंगल से मिलने वाला धन कितना है? खान से निकलने वाला द्रव्य कितना है? दावेदार रहित पाये गये धन कितने हैं? लावारिस धन कितने हैं? खोया-पाया धन कितना है? चोरों से दण्डरूप में प्राप्त धन कितना है? इन सबों को जोड़कर राजा से निवेदित करे। इस तरह संक्षेप में पुराहितादि दश प्रधान पुरुषों का लक्षण एवं काम कहा गया। राजा प्रधान पुरुषों के काम से उनकी जबानी सुनकर तथा उनके अभिलेखों से अवगत हो एवं इन्हें योग्यतानुसार एक-दूसरे के स्थान पर स्थानान्तरित कर प्रतिनियुक्त करे ॥ १०१-१०७ ॥

सुमन्त्रामात्ययोः कार्य्याण्याह—**इयदित्यादि**। सुमन्त्रः अस्मिन् वत्सरे इयत् एतत्परिमितं तृणादिकं स्थावरजङ्गमं स्थायि अस्थायि च द्रव्यं सञ्चितं सङ्गृहीतम् इयत् एतत्परिमितं व्ययीभूतम् इयच्च शेषम् अवशिष्टम् अस्तीति राज्ञे विनिवेदयेत् विशेषेण ज्ञापयेत्। अमात्यः कति पुराणि नगराणि, कति ग्रामाः कति अरण्यानि सन्ति विद्यन्ते हिशब्दोऽवधारणे। कति कियत्परिमिता भूः कर्षिता कृषीवलैः कृतकर्षणा केन ततः कृष्टभूमेः कति कियत्परिमाणो भागः शस्यानामिति भावः प्राप्तः, कति वा तस्मिन् क्षेत्रे भागशेषं स्थितम्, अकृष्टा च भूमिका भूखण्डं कति? अस्मिन् विषये वत्सरे प्रतिवर्षमित्यर्थः, शुल्कदण्डादिजं शुल्कं राजप्राप्यांशः दण्डः दोषिणां शासनेन लब्धं धनं तदादिजं तत्प्रभृतिजनितं भागद्रव्यं कति? अकृष्टपच्यं विना कर्षणेन क्षेत्रोत्पन्नशस्यादिकं

कति? अरण्यसम्भवं वनजातं द्रव्यं कति? आकरसञ्जातं खनिजं द्रव्यजातं कति? निधिप्राप्तं रथ्यादौ पतितादि अनिर्णीतस्वामिकं वस्तु कति? अस्वामिकं स्वामिहीनम् उत्तराधिकारिरहितञ्च द्रव्यं कति? नाष्टिकं नष्टप्राप्तं हारितद्रव्यमित्यर्थः, तथा तस्करेभ्यः चौरेभ्यः आहृतं तेषां दण्डनेन प्राप्तं वा कति? एतत् सर्वं सञ्चिन्त्य सम्यक् चिन्तयित्वा विनिश्चित्य विशेषेण निर्णीय च राज्ञे निवेदयेत्। समासात् सङ्क्षेपात् प्रधानदशकस्य दशानां पुरोहितादीनां प्रकृतीनां 'प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियामि'त्यमरः। लक्षणं कृत्यं कार्य्यञ्च उक्तं कथितम्। नृपः तदनुदर्शितैः तत्तल्लक्षणकार्य्येषु दर्शितैः कथितैः तल्लिखितैः तेषां पुरोहितादीनां लिखितैः सर्वं विन्द्यात्। एवम् एतान् परिवर्त्त्य अन्योऽन्यकर्म्मणि परस्परकार्य्ये सुमन्त्रम् अमात्यकर्म्मणि अमात्यञ्च सुमन्त्रकर्म्मणि इत्येवं विनिमये नियुञ्ज्याच्च ॥ १०१-१०७ ॥

न कुर्य्यात् स्वाधिकबलान् कदापि ह्यधिकारिणः।
परस्परं समबलाः कार्य्याः प्रकृतयो दश ॥ १०८ ॥

अन्वयः—अधिकारिणः हि कदापि स्वाधिकबलान् न कुर्यात्। दश प्रकृतयः परस्परं समबलाः कार्याः ॥ १०८ ॥

व्याख्या—अधिकारिणः = स्वत्ववन्तः, हि = इति निश्चयेन, कदापि = कस्मिंश्चिदपि काले, स्वाधिकबलान् = आत्मशक्त्याधिकशक्तिशालिनः, न = नहि, कुर्यात् = विदध्यात्, तथा दश = पूर्वोक्तपुराहितादिदशसंख्याकाः, प्रकृतयः = प्रधानपुरुषाः, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, समबलाः = समानबलशालिनः, कार्याः = कर्त्तव्याः ॥ १०८ ॥

हिन्दी—राज्य के पूर्वोक्त पदाधिकारियों को अपने अधिकार से अधिक शक्ति का प्रदर्शन न करने दे। पूर्वोक्त प्रधान पुरुषों को समबल बनाये रखे, किसी को अधिक उभड़ने न दे ॥ १०८ ॥

न कुर्य्यादिति। अधिकारिणः कार्य्यकारिणः कदापि स्वाधिकबलान् निजक्षमताधिकक्षमताशालिनः न कुर्यात् हिशब्दोऽवधारणे। तथा दश प्रकृतयः पुरोहितादयः परस्परं समबलाः तुल्यक्षमताशालिनः कार्य्याः ॥ १०८ ॥

एकस्मिन्नधिकारे तु पुरुषाणां त्रयं सदा।
नियुञ्जीत प्राज्ञतमं मुख्यमेकन्तु तेषु वै ॥ १०९ ॥

अन्वयः—एकस्मिन्नधिकारे सदा तु पुरुषाणां त्रयं नियुञ्जीत। तेषु एकं मुख्यतमं प्राज्ञं नियुञ्जीत ॥ १०९ ॥

व्याख्या—एकस्मिन् = कश्चित्, अधिकारे = प्रकरणे कर्मणि वा, सदा = सर्वदा, तु = अस्मिन्विषये, पुरुषाणाम् = पदाधिकारिणाम्, त्रयम् = त्रिसंख्यकम्, नियुञ्जीत = नियुक्तं कुर्यात्। तेषु त्रिषु पुरुषेषु, एकम् = एकमात्रम्, मुख्यतमम् = अतिश्रेष्ठनायकम्, प्राज्ञम् = बुद्धिमन्तम्, नियुञ्जीत ॥ १०९ ॥

हिन्दी—राजा किसी एक काम पर तीन पदाधिकारियों की नियुक्ति करे और उन तीनों में जो बुद्धिमान् हो उन्हें श्रेष्ठ नायक बना दे ॥ १०९ ॥

एकस्मिन्निति। एकस्मिन् अधिकारे कर्म्मणि विषये सदा पुरुषाणां त्रयं नियुञ्जीत, तेषु त्रिषु मध्ये एकं मुख्यतमम् अतिश्रेष्ठं प्राज्ञं प्रकृष्टज्ञानवन्तं नियुञ्जीत ॥ १०९ ॥

द्वौ दर्शकौ तु तत्कार्य्ये हायनैस्तन्निवर्त्तयेत्।
त्रिभिर्वा पञ्चभिर्वापि सप्तभिर्दशभिश्च वा ॥ ११० ॥

अन्वयः—तत्कार्ये द्वौ दर्शकौ, त्रिभिः पञ्चभिः वा सप्तभिः वा दशभिः हायनैः तन्निवर्तयेत्।

व्याख्या—तत्कार्ये = पूर्वोक्तकर्मणि, द्वौ = उभौ, दर्शकौ = सहायकौ, नियोक्तव्यौ, त्रिभिः = तृतीयैः, पञ्चभिः = शरसंख्यकैः, सप्तभिः = मुनिभिः वा, दशभिः = हरैः, हायनैः = वर्षैः, तन्नवर्त्तयेत्—तयोः = सहायकयोः, निवर्त्तनम् = परिवर्त्तनम्, करणीयमिति ॥ ११० ॥

हिन्दी—उस कार्य में दो सहायक बनावे और तीन, पाँच, सात अथवा दश वर्षों में उन दोनों का परिवर्तन करना चाहिए ॥ ११० ॥

द्वाविति। तत्कार्य्ये तस्मिन् कर्म्मणि दर्शकौ नियोक्तव्याविति शेषः, त्रिभिः पञ्चभिः वा सप्तभिर्वा दशभिः हायनैः वर्षैः तन्निवर्त्तनं तयोर्दर्शकयोः निवर्त्तनं परिवर्त्तनं कर्त्तव्यमिति शेषः ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा तत्कार्यकौशल्ये तथा तौ परिवर्त्तयेत्।
नाधिकारं चिरं दद्याद्यस्मै कस्मै सदा नृपः ॥ १११ ॥

अन्वयः—तत्कार्यकौशल्ये दृष्ट्वा तौ परिवर्त्तयेत्। नृपः सदा यस्मै कस्मै अपि चिरम् अधिकारं न दद्यात् ॥ १११ ॥

व्याख्या—तत्कार्यकोशल्ये—तत् = तयोः दर्शकयोः, कार्यम् = कर्म, कौशल्यम् = चातुर्यम्, च, दृष्ट्वा = अवलोक्य, तौ = दर्शकौ, परिवर्त्तयेत् = व्यावर्तयेत्। नृपः = राजा, सदा = सर्वदा, यस्मै कस्मै = यं कमपि, चिरम् = बहुकालम्, अधिकारम् = प्रभुत्वम्, न = नहि, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ १११ ॥

हिन्दी—उन दोनों के काम और उनकी दक्षता देखकर तदनुसार उनका परिवर्तन करें। वह चाहे जो कोई हो, राजा हमेशा उसे किसी एक पद पर बना न रहने दे ॥ १११ ॥

दृष्ट्वेति। तत्कार्य्यकौशल्ये तयोः कार्य्यं कौशलं नैपुण्यञ्च दृष्ट्वा तौ परिवर्त्तयेत्। नृपः सदा सततं यस्मै कस्मै अपि चिरम् अधिकारं न दद्यात् ॥ १११ ॥

अधिकारे क्षमं दृष्ट्वा ह्यधिकारे नियोजयेत्।
अधिकारमदं पीत्वा को न मुह्येत् पुनश्चिरम्? ॥ ११२ ॥

अन्वयः—अधिकारे क्षमं दृष्ट्वा हि अधिकारे नियोजयेत्। कः पुनः चिरम् अधिकारमदं पीत्वा न मुह्यात् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—अधिकारे = प्रभुत्वपदे, क्षमम् = समर्थम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, हि = इति निश्चये, अधिकारे = प्रभुत्वपदे, नियोजयेत् = नियोजनं कुर्यात्। कः = जनः, पुनः = भूयः, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, अधिकारमदम्—अधिकारजम् = प्रभुत्वपदोत्पन्नम्, मदम् = दर्पः, वा सुरा, पीत्वा = पानं कृत्वा, न = नहि, मुह्यात् = मोहमुपगच्छेत्। अतः बहुकालपर्यन्तं यस्मै कस्मै जनाय प्रभुत्वपदं न दातव्यमिति ॥ ११२ ॥

हिन्दी—अधिकार के लिए किसी समर्थ व्यक्ति को ही अधिकार के पद पर नियुक्त करे। बहुत दिनों तक प्रभुत्वसम्पन्न पद पर एक व्यक्ति को न रहने दे, क्योंकि प्रभुता का मद पीकर कौन प्रमत्त नहीं हो जाता है? ॥ ११२ ॥

अधिकार इति। अधिकारे क्षमं कार्य्यक्षमं दृष्ट्वा हि दृष्ट्वैव अधिकारे नियोजयेत्। कः पुनः चिरम् अधिकारजं मदं पीत्वा न मुह्यात्? अपितु सर्व एव मुह्येदित्यर्थः, अतश्चिरम् अधिकारो न दातव्य इति भावः॥११२॥

अतः कार्य्यक्षमं दृष्ट्वा कार्य्येऽन्ये तं नियोजयेत्।
तत्कार्य्ये कुशलं चान्यं तत्पदानुगतं खलु॥ ११३॥
नियोजयेद्वर्त्तने तु तदभावे तथापरम्।
तद्गुणो यदि तत्पुत्रस्तत्कार्य्ये तं नियोजयेत्॥ ११४॥

अन्वयः—अतः तं कार्यक्षमं दृष्ट्वा अन्ये कार्ये नियोजयेत्। वर्त्तने तु अन्यं तत्पदानुगतं तत्कार्ये कुशलं नियोजयेत् खलु। तदभावे तथा अपरं नियोजयेत्। यदि तत्पुत्रः तद्गुणः तदा तत्कार्ये तं नियोजयेत्॥ ११३-११४॥

व्याख्या—अतः = अस्माद्धेतोः, तम् = जनम्, कार्यक्षमम्—कार्ये = कृत्ये, क्षमम् = समर्थम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, पूर्वपदस्थापितकार्यात्, अन्ये = अपरस्मिन्, कार्ये = कृत्ये, नियोजयेत् = सेवाकर्मणिस्थापयेत्। वर्त्तने तु = व्यवहारेतु, अन्यम् = अपरम्, तत्पदानुगतम् = तस्याधिकारिणः पदे स्थितं जनम्, तत्कार्ये = परिवर्तितपदे, कुशलम् = कार्यक्षमम्, नियोजयेत् = स्थापयेत्, खलु = निश्चयेन। तदभावे = तत्कार्यसम्पादनेऽसमर्थे सति, तथा अपरम् = अन्यम्, तत्कार्यसम्पादने सक्षमम्, नियोजयेत्। यदि = चेत्, तत्पुत्रः = पूर्वपदस्थस्याधिकारिणः पुत्रः, तद्गुणः = स्वपितृसमगुणशाली विद्यते, तदा तत् = पूर्वोक्तः, कार्ये = कर्मणि, तम् = तस्य सुतम्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्॥ ११३-११४॥

हिन्दी—अतः उस कर्मचारी को काम करने में सक्षम देखकर स्थानान्तरित कर किसी अन्य कार्य पर नियुक्त कर दे। उस रिक्त पद पर किसी अन्य सहायक को प्रोन्नत कर नियुक्त कर दे। सक्षम सहायक के अभाव में उस पद पर किसी अन्य को नियुक्त कर दे। यदि पदाधिकारी का पुत्र पिता की तरह कार्यकुशल हो तो उस पद पर उसे ही नियुक्त करे॥ ११३-११४॥

अत इति। नियोजयेदिति। अतः अस्मात् कारणात् तं कर्म्मकरं कार्यक्षमं दृष्ट्वा एकस्मात् कार्य्यात् अन्ये अन्यस्मिन् अन्ये इति आर्षम्, कार्य्ये नियोजयेत्। वर्त्तने तु कार्य्यचलने सति तु अन्यञ्च तत्पदानुगतं जनं तत्पदस्थितं जनं तत्कार्य्ये कुशलं परिवर्त्तितकार्य्यक्षमं नियोजयेत् खलु अवधारणे, तदभावे अशक्तौ तथा कार्य्यक्षममपरं नियोजयेत्। यदि तत्पुत्रः तस्य पूर्वकर्म्मचारिणः पुत्रः तद्गुणः पितृवत् गुणशाली विद्यते इति शेषः, तदा तत्कार्य्ये तं नियोजयेत्॥ ११३-११४॥

यथा यथा श्रेष्ठपदे ह्यधिकारी यदा भवेत्।
अनुक्रमेण संयोज्यो ह्यन्ते तं प्रकृतिं नयेत्॥ ११५॥

अन्वयः—यदा यथा यथा श्रेष्ठपदे अधिकारी भवेत् अनुक्रमेण संयोज्यः हि। तम् अन्ते प्रकृतिं नये त्॥ ११५॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, कोऽपि कर्मचारी, यथा यथा = यादृशे यादृशे, श्रेष्ठपदे = उच्चस्थाने, अधिकारी = क्षमः, भवेत् = स्यात्, तदानुक्रमेणासौ = आनुपूर्व्येण सः,

संयोज्यः = उच्चपदे नियोक्तव्यः, उच्चपदे उत्तरोत्तरं पदोन्नतं कुर्यात्, अन्ते = अन्तिमभागे, तम् = जनम्, प्रकृतिम् = प्रधानपदम्, नयेत् = प्रापयेत् ॥ ११५ ॥

हिन्दी—कोई नया कर्मचारी जैसे-जैसे अपने से ऊँचे पद के योग्य होता जाय, उसी तरह उसे उत्तरोत्तर ऊँचे पद पर प्रोन्नत करता जाय और अन्त में प्रधान पुरुष के पद पर उसे प्रोन्नत कर दे ॥ ११५ ॥

यथेति। यदा नवः कर्म्मचारी यथा यथा यादृशे यादृशे श्रेष्ठपदे अधिकारी योग्यः भवेत् तादृशे तादृशे सः अनुक्रमेण संयोज्यः उत्तरोत्तरं नियोक्त्व्यः, हिशब्दः अवधारणे। अन्ते चरमे तं क्रमोन्नतं कर्म्मचारिणं प्रकृतिं स्वभावं प्रधानं वा स्वपैतृकपदमित्यर्थः, नयेत् प्रापयेत् ॥ ११५ ॥

अधिकारबलं दृष्ट्वा योजयेद्दर्शकान् बहून्।
अधिकारिणमेकं वा योजयेद्दर्शकैर्विना ॥ ११६ ॥

अन्वयः—अधिकारबलं दृष्ट्वा बहून् दर्शकान् योजयेत् वा दर्शकैर्विना एकं योजयेत् ॥ ११६ ॥

व्याख्या—अधिकारबलम् = कार्यगौरवम्, दृष्ट्वा = विचिन्त्य, बहून् = अनेकान्, दर्शकान् = प्रेक्षकान्, योजयेत् = नियोजयेत्, वा = अथवा, दर्शकैर्विना = वीक्षकैर्विहाय, एकम् = एकमात्रं कार्यक्षमं पदाधिकारिणम्, योजयेत् = तत्पदे नियुक्तं कुर्यात् ॥ ११६ ॥

हिन्दी—किसी काम की गुरुता देख-सुनकर उसके लिए बहुत सारे पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करे अथवा बिना पर्यवेक्षक के ही किसी एक सक्षम पदाधिकारी की नियुक्ति करे ॥ ११६ ॥

अधिकारबलमिति। अधिकारबलं कार्य्यबलं कार्य्यगौरवमित्यर्थः, दृष्ट्वा विचार्य्य बहून् दर्शकान् कार्य्यदर्शिनः योजयेत् नियोजयेत्। वा अथवा दर्शकं विना एकं कार्य्यसमर्थम् अधिकारिणं योजयेत् ॥ ११६ ॥

ये चान्ये कर्मसचिवास्तान् सर्वान् विनियोजयेत्।
गजाश्वरथपादातपशूष्ट्रमृगपक्षिणाम् ॥ ११७ ॥
सुवर्णरत्नरजतवस्त्राणामधिपान् पृथक्।
वित्तानामधिपं धान्याधिपं कपाकाधिपं तथा ॥ ११८ ॥
आरामाधिपतिञ्चैव सौधगेहाधिपं पृथक्।
सम्भारपं देवतुष्टिपतिं सदा ॥ ११९ ॥
साहसाधिपतिञ्चैव ग्रामनेतारमेव च।
भागहारं तृतीयन्तु लेखकञ्च चतुर्थकम्।
शुल्कग्राहं पञ्चमञ्च प्रतिहारं तथैव च ॥ १२० ॥
षट्कमेतन्नियोक्तव्यं ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ १२१ ॥

अन्वयः—ये च अन्ये कर्मसचिवाः तान् सर्वान् गजाश्वरथपादातपशूष्ट्रमृगपक्षिणां सुवर्णरत्नरजतवस्त्राणाम् अधिपान् वित्तानाम् अधिपं धान्याधिपं पाकाधिपं तथा आरामाधिपतिं सौधगेहाधिपं सम्भारपं देवतुष्टिपतिं दानपतिं साहसाधिपतिं तथा ग्रामनेतारं भागहारं लेखकं

शुल्कग्राहं तथा प्रतिहारं पृथक् पृथक् योजयेत्। किञ्च एतत् ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे नियोक्तव्यम् ॥ ११७-१२१ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, च = पुनः, अन्ये = दशप्रकृतिभिन्ने, कर्मसचिवाः = कार्यक्षमाः पुरुषाः, तान् = पुरुषान्, सर्वान् = सकलान्, यथायथम्, गजानाम् = हस्तिनाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, रथानाम् = स्यन्दनानाम्, पादातानाम् = पादचारिणम्, पशूनाम् = गोमहिषादीनाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, मृगाणाम् = हरिणानाम्, पक्षिणाम् = शावकानाम्, सुवर्णानाम् = कनकानाम्, रत्नानाम् = मणिनाम्, रजतानाम् = रूप्याणाम्, वस्त्राणाम् = वसनानाम्, अधिपान् = अधिकारिणः, वित्तानाम् = सम्पदाम्, अधिपम् = अधिकारिणम्, धान्याधिपम् = अन्नाध्यक्षम्, पाकाधिपम् = पचनाध्यक्षम्, पाको हि सप्तविधः —"भर्जनं तलनं स्वेदः पचनं क्वथनं तथा। तान्दूरं पुटपाकश्च पाकः सप्तविधो मतः।" आरामाधिपतिम् = उपवनाधिकारिकम्, सौधगेहाधिपम् = प्रासादाध्यक्षम्, सम्भारपम् = सामान्यद्रव्यसमूहाध्यक्षम्, देवतुष्टिपतिम् = सुरसेवाध्यक्षम्, दानपतिम् = दानकर्माधिपम्, साहसाधिपतिम् = सैन्यादिप्रचण्डकर्माध्यक्षम्, सदा = सर्वदा, नियोजयेत्। च = पुनः, ग्रामनेतारम् = ग्रामप्रमुखम्, भागहारम् = राज्यग्राह्यांशदायिनम्, तृतीयन्तु लेखकम् = अभिलेखकर्त्तारम्, चतुर्थकम् = तुरीयन्तु, तथैव = तेनैव प्रकारेण, पञ्चमञ्च शुल्कग्राहम् = समाहर्त्तारम्, तथा षष्ठं प्रतिहारम् = द्वारपालम्, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, योजयेत् = तत्तत्पदे स्थापयेत्। किञ्च साहसाधिपतिप्रभृतिषट्कम् = षट्सख्याकम्, ग्रामे ग्रामे = प्रतिग्रामे, तथा पुरे पुरे = प्रतिपत्तने, नियोक्तव्यम् = नियोजितव्यम् ॥ ११७-१२१ ॥

हिन्दी—और पूर्वोक्त दश प्रधान पदाधिकारियों से भिन्न जो सक्षम पदाधिकारी हों, उन्हें योग्यतानुसार हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, सेना, पशु, ऊँट, मृग, पखेरु, सोना, चाँदी, रत्न और वस्त्र— इन सबों को अलग-अलग देखभाल करने वाले अध्यक्ष पद पर नियुक्त करें। धनाध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, पाकशालाध्यक्ष, उपवनाध्यक्ष, राजमहलों का अध्यक्ष, देवालयों का अध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष के पदों पर नियुक्त करें। इनके अतिरिक्त छः और साहसिक कर्माध्यक्ष, ग्रामप्रमुख, राजस्व वसूली के लिए समाहर्त्ता, अभिलेखपदाधिकारी, आयकरपदाधिकारी तथा द्वारपालों की नियुक्तियाँ प्रत्येक गाँव एवं प्रत्येक शहर में करे॥ ११७-१२१ ॥

ये चेत्यादि। ये च अन्ये कर्म्मसचिवाः कर्म्मक्षमा पुरुषाः तान् सर्वान् यथायथं गजानाम् अश्वानां रथानां पादातानां पशूनां गवादीनाम् उष्ट्राणां मृगाणां पक्षिणां सुवर्णानां रत्नानां रजतानां तथा वस्त्राणाम् अधिपान् वित्ताधिपं धनाध्यक्षं धान्धाधिपं पाकाधिपं पाकाध्यक्षम् आरामाधिपतिम् उद्यानाध्यक्षं सौधगेहाधिपं हर्म्याध्यक्षं सम्भारपं सामान्यद्रव्यसमूहाधिपतिं देवतुष्टिपतिं देवस्वाध्यक्षं दानपतिं दानाध्यक्षं साहसाधिपतिं सङ्ग्रामादिसाहसकर्माध्यक्षं ग्रामनेतारं ग्रामाध्यक्षं भागहारं प्रजाभ्यः राजग्राह्यांशदायिनं लेखकं लिपिकरं शुल्कग्राहं राजग्राह्यवाणिज्याद्यंशहरं तथा प्रतिहारं द्वारपालं पृथक् पृथक् योजयेत् तत्तदाधिपत्यकर्म्मणि नियोजयेत्। किञ्च साहसाधिपतिप्रभृतिषट्कं ग्रामे ग्रामे प्रतिग्रामं पुरे पुरे प्रतिपुरं नियोक्तव्यम्॥ ११७-१२१ ॥

तपस्विनो दानशीलाः श्रुतिस्मृतिविशारदाः।
पौराणिकाः शास्त्रविदो दैवज्ञा मान्त्रिकाश्च ये॥ १२२॥
आयुर्वेदविदः कर्मकाण्डज्ञास्तान्त्रिकाश्च ये।

ये चान्ये गुणिनः श्रेष्ठा बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः ॥ १२३ ॥
तान् सर्वान् पोषयेद् भृत्या दानैर्मानैः सुपूजितान् ।
हीयते चान्यथा राजा ह्यकीर्त्तिं चापि वदन्ति ॥ १२४ ॥

अन्वयः—ये तपस्विनः दानशीलाः श्रुतिस्मृतिविशारदाः पौराणिकाः शास्त्रविदः दैवज्ञाः मान्त्रिकाः, आयुर्वेदविदः कर्मकाण्डज्ञाः तथा तान्त्रिकाः; ये च अन्ये गुणिनः श्रेष्ठाः बुद्धिमन्तः जितेन्द्रियाः तान् सर्वान् दानैः मानैश्च सुपूजितान् भृत्या पोषयेत् । अन्यथा राजा हीयते अकीर्त्तिं चापि हि विन्दति ॥ १२२-१२४ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, तपस्विनः = तपोधनाः, दानशीलाः = दातारः, श्रुतिस्मृतिविशारदाः = वेदार्यधर्मशास्त्रविशेषज्ञाः, पौराणिकाः = पुराणवेत्तारः, शास्त्रविदः = शास्त्रदर्शिनः, दैवज्ञाः = ज्योतिर्विदः भविष्यवेत्तारो वा, ये च = जनाः, मान्त्रिकाः = मन्त्रविदः, आयुर्वेदविदः = वैद्यकशास्त्रविशेषज्ञाः, कर्मकाण्डज्ञाः = कर्मविधायकशास्त्रनिष्णाताः, तथा तान्त्रिकाः = तन्त्रशास्त्रविदः, अभिचारकर्मणि प्रवीणाः, ये च = जनाश्च, अन्ये = अपरे, गुणिनः = गुणोपताः, श्रेष्ठाः = प्रशस्ततमाः, बुद्धिमन्तः = मनीषिणः, तथा जितेन्द्रियाः = वशिनः, तान् = पूर्वोक्तान्, सर्वान् = अखिलान्, दानैः = प्रदानैः, मानैः = सम्मानैः, सुपूजितान् = सम्यग्रूपेणार्चितान्, भृत्या = मासिकवेतनेन, पोषयेत् = संरक्षणं कुर्यादिति । अन्यथा = इतरथा, राजा = नृपः, हीयते = राज्यात्भ्रश्यति, अकीर्त्तितम् = अपकीर्त्तिञ्च, विन्दति = प्राप्नोति ॥ १२२-१२४ ॥

हिन्दी—तपस्वी, दानी, वैदिक, स्मार्त, पौराणिक, शास्त्रवेत्ता, ज्योतिषी, मंत्रवेत्ता, तंत्रज्ञ, वैद्य, कर्मकाण्डी तथा अन्य विषयों के ज्ञाता, श्रेष्ठजन, गुणी, बुद्धिमान् या जितेन्द्रिय हो; उन सबों का दान देकर, सम्मानित कर, सुपूजित बनाकर तथा वेतन निर्धारित कर पालन-पोषण करना चाहिए, अन्यथा राजा स्वतः राज्यच्युत हो जाता है तथा उसकी अपकीर्त्ति भी फैलती है ॥ १२२-१२४ ॥

तपस्विन इति । ये जनाः तपस्विनः तपोनिष्ठाः दानशीलाः वदान्याः श्रुतिस्मृतिविशारदाः वैदिकाः स्मार्त्ताश्च पौराणिकाः पुरावृत्तविदः शास्त्रविदः शास्त्रज्ञानरताः दैवज्ञाः गणकाः ये च तान्त्रिकाः सर्पगारुडादिमन्त्रज्ञाः आयुर्वेदविदः वैद्यकशास्त्रज्ञाः, कर्म्मकाण्डज्ञाः वेदस्मृतिविहित-कर्मानुष्ठानविदः तथा तान्त्रिकाः शैवधर्मशास्त्रपारगाः, ये च अन्ये अपरे गुणिनः गुणवन्तः, श्रेष्ठाः महान्तः बुद्धिमन्तः प्रज्ञाशालिनः तथा जितेन्द्रियाः लोभमोहादिभिरनभिभूताः तान् सर्वान् दानैः मानैश्च सुपूजितान् कृत्वेति शेषः, भृत्या मासिकादिवृत्तिविधानेन पोषयेत् पालयेत् । अन्यथा एतेषामपालने राजा हीयते राज्यात् भ्रश्यति अकीर्त्तिम् अयशः विन्दति लभते च हिशब्दः अवधारणे ॥ १२२-१२४ ॥

बहुसाध्यानि कार्य्याणि तेषामप्यधिपांस्तथा ।
तत्तत्कार्य्येषु कुशलान् ज्ञात्वा तांस्तु नियोजयेत् ॥ १२५ ॥

अन्वयः—कार्याणि बहुसाध्यानि ज्ञात्वा तत्तत्कार्येषु कुशलान् तान् तेषामपि तथा अधिपान् नियोजयेत् ॥ १२५ ॥

व्याख्या—कार्याणि = कृत्यानि, बहुसाध्यानि = अनेकाजननिष्पादनीयानि, ज्ञात्वा = विज्ञाय, तत्तत्कार्येषु = तेषु तेषु कर्मसु, कुशलान् = दक्षान्, तान् = पूर्वोक्तपुरुषाम्, तेषामपि = बहुजन

निष्पादनीयानाम्, कृत्यानाम्, अधिपान् = अध्यक्षान्, नियोजयेत् = योजयेत् ॥ १२५ ॥

हिन्दी—बहुत सारे लोगों द्वारा सम्पादित होने वाले काम को ठीक से समझ कर उन कार्यों को सम्पादित करने में सुदक्ष व्यक्तियों को उस पद का प्रभारी बनाये ॥ १२५ ॥

बहुसाध्ययानीति। कार्य्याणि बहुसाध्यानि बहुजननिर्वाह्यानि ज्ञात्वा तत्तत्कार्य्येषु कुशलान् तान् पूर्वोक्तान् जनान् तेषां बहुसाध्यानां कार्य्याणाम् अधिपान् नियोजयेत् ॥ १२५ ॥

अमन्त्र्यमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥ १२६ ॥

अन्वयः—अक्षरम् अमन्त्रं नास्ति, मूलम् अनौषधं नास्ति, पुरुषः अयोग्यः नास्ति, तत्र योजकः दुर्लभः ॥ १२६ ॥

व्याख्या—अक्षरम् = अकारादयो वर्णाः, अमन्त्रम् = मन्त्रात्मकत्वविहीनम्, नास्ति = न विद्यते, मूलम् = ब्रध्नः, अनौषधम् = भैषज्यातिरिक्तम्, नास्ति = न किमप्यस्ति, पुरुषः = कोऽपि मानुषः, अयोग्यः = अशक्तः, नास्ति = न भवति, तत्र = तथा स्थिते, योजकः = न्याययोग्यप्रयोक्ता, दुर्लभः = दुष्प्राप्यो भवतीति ॥ १२६ ॥

हिन्दी—मन्त्रविहीन कोई अक्षर नहीं होता, किसी भी लता-गुल्म की जड़ औषधविहीन नहीं है तथा कोई पुरुष अयोग्य नहीं होता। इन सबों का सही ढंग से प्रयोग करने वाला व्यक्ति ही दुर्लभ होता है ॥ १२६ ॥

अमन्त्रमिति। अक्षरं वर्णः अमन्त्रम् अमन्त्रात्मकं नास्ति वर्णमात्रस्य ब्रह्मरूपत्वात् सर्व एव वर्णः मन्त्र इत्यर्थः। मूलं तरुगुल्मादीनामित्यर्थः, अनौषधम् औषधव्यतिरिक्तं नास्ति सर्वमेव मूलम् औषधं किमपि भेषजमित्यर्थः। पुरुषः अयोग्यः अक्षमः नास्ति यस्य कस्यचिदपि पुरुषस्य यस्मिन् कस्मिन्नपि कार्य्यपाटवादिति भावः। तत्र तथा स्थिते योजकः यथायोग्यप्रयोक्ता पुरुषः दुर्लभः अप्राप्यः सर्वस्य अक्षरस्य मन्त्रत्वेऽपि सर्वस्य मूलस्य औषधत्वेऽपि सर्वस्य पुरुषस्य योग्यत्वेऽपि यथायथप्रयोगस्य सर्वैरसुकरत्वादिति भावः ॥ १२६ ॥

प्रभद्रादिजातिभेदं गजानाञ्च चिकित्सितम्।
शिक्षां व्याधिं पोषणञ्च तालुजिह्वानखैर्गुणान्।
आरोहणं गतिं वेत्ति स योज्यो गजरक्षणे ॥ १२७ ॥
तथाविधाधोरणस्तु हस्तिहृदयहारकः ॥ १२८ ॥

अन्वयः—यः गजानां प्रभद्रादिजातिभेदं चिकित्सितं, शिक्षां व्याधिं पोषणं च तालुजिह्वानखैर्गुणान् आरोहणं गतिं च वेत्ति सः गजरक्षणे योज्यः। तथाविधः आधोरणः तु हस्तिहृदयहारकः भवति ॥ १२७-१२८

व्याख्या—यः = पुरुषः, गजानाम् = कुञ्जराणाम्, प्रभद्रादिजातिभेदम्— प्रगतं भद्रं यस्मात् तदादिर्यस्य तस्य जातिभेदम् = वर्णप्रकारः, चिकित्सितम् = रोगप्रतिकारोपायः, शिक्षाम् = शिक्षणम्, नियन्त्रणञ्च, व्याधिम् = पीडाम्, पोषणम् = पालनञ्च, तालुजिह्वानखैः = काकुदरसनानखरैः, गुणान् = स्वभावान्, आरोहणम् = अधिरोहणम्, तथा गतिम् = गमनम्, वेत्ति = जानाति, सः = असौ, गजरक्षणे = हस्तिपालने, योज्यः = नियोक्तव्यः। तथाविधः = पूर्वोक्तज्ञानसम्पन्नः,

आधोरणः = हस्तिपकः, तु, हस्तिनां = गजानाम्, हृदयहारकः = मनोहारी भवतीति ॥ १२७-१२८ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति प्रभद्र प्रभृति हाथियों की जाति को, उनकी चिकित्साविधि, प्रशिक्षण, रोग, पालनविधि तथा उनके तालु, जीभ और नाखून के द्वारा उनके गुणों को उन पर चढ़ने की तथा चलाने की कला की जानकारी रखने वाला हो तो उसे गजाध्यक्ष के पद पर नियुक्त करे, क्योंकि ऊपरवर्णित तथ्यों की जानकारी रखने वाला व्यक्ति ही हाथियों पर नियन्त्रण रखने वाला महावत होता है ॥ १२७-१२८ ॥

प्रभद्रादीति। यः गजानां प्रभद्रादिजातिभेदं चिकित्सितं शिक्षां व्याधिं पीडां पोषणं पालनं तालुजिह्वानखैः गुणान्। आरोहणं तथा गतिं वेत्ति जानाति सः गजरक्षणे योज्यः नियोक्तव्यः। तथाविधः तादृशः आधोरणः हस्तिपालकस्तु हस्तिनां हृदयहारकः मनोहरः हस्तिनियमने निपुण इत्यर्थः ॥ १२७-१२८ ॥

अश्वानां हृदयं वेत्ति जातिवर्णभ्रमैर्गुणान्।
गतिं शिक्षां चिकित्साञ्च सत्त्वं सारं रुजं तथा ॥ १२९ ॥
हिताहितं पोषणञ्च मानं यानं दतो वयः।
शूरश्च व्यूहवित् प्राज्ञः कार्योऽश्वाधिपतिश्च सः ॥ १३० ॥

अन्वयः—यः अश्वानां हृदयं जातिवर्णभ्रमैः गुणान् गतिं शिक्षां चिकित्सां सत्त्वं सारं रुजं हिताहितं पोषणं मानं यानं दतः वयः वेत्ति; तथा शूरः व्यूहवित् प्राज्ञः, सः अश्वाधिपतिः कार्यः ॥ १२९-१३० ॥

व्याख्या—यो हि पुरुषः, अश्वानाम् = घोटकानाम्, हृदयम् = चित्तम्, जातिः = प्रकारः, वर्णः = कृष्णश्वेतरक्तादिकम्, भ्रमाः = घोटकादिशरीरस्थरोमवर्त्तुलानि, तैः गुणान् = विशिष्टस्वरूपान्, गतिम् = गमनप्रकारः, शिक्षाम् = प्रशिक्षणम्, चिकित्साम् = रोगप्रतिकारम्, सत्वम् = शारीरिकबलम्, सारम् = पराक्रमम्, रुजम् = रोगम्, हिताहितम् = शुभाशुभम्, पोषणम् = पालनम्, मानम् = परिमाणम्, यानम् = चलनम्, दतः = दन्तान्, वयः = आयुः, वेत्ति = जानाति, तथा शूरः = पराक्रमी, व्यूहवित् = सैन्यरचनाप्रवीणः, तथा प्राज्ञः = धीमान्, भवति, सः = असौ, अश्वाधिपतिः = अश्वाध्यक्षः, कार्यः = योज्यः ॥ १२९-१३० ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति घोड़ों के मनोभाव, उनकी जाति, उनके रंग, उनकी भौंरी, उनके गुण, उनकी चाल, उनकी सीख, उनके रोग की परिचर्या, उनकी ताकत, उनकी क्षमता, उनके रोग, उनके शुभाशुभ लक्षण, उनके पालन-पोषण का ढंग, उनकी ऊँचाई, घुड़सवारी, दाँत गिन कर उनकी उम्र की जानकारी रखने वाला, शूरवीर, व्यूहरचना में प्रवीण और अत्यन्त बुद्धिमान् हो; उन्हें अश्वाध्यक्ष बनाना चाहिए ॥ १२९-१३० ॥

अश्वानामिति। यः अश्वानां हृदयं मनोभावं जातिः भेदज्ञापकधर्मविशेषः वर्णः श्वेतलौहित्यादिकं भ्रमाः रोम्णामावर्त्तादयः तैः गुणान् विशेषान् गतिं नियमं शिक्षां चिकित्सां सत्त्वं बलं सारं क्षमत्वं रुजं रोगं हिताहितं शुभाशुभकरं पोषणं पालनं मानं परिमाणं यानं गमनं दतः दन्तान् वयः वयक्रमञ्च वेत्ति जानाति तथा शूरः बलवान् व्यूहवित् सैन्यविन्यासविज्ञः तथा प्राज्ञः प्रकृष्टबुद्धिमान् भवति सः अश्वाधिपतिः कार्य्यः ॥ १२९-१३० ॥

एभिर्गुणैश्च संयुक्तो धुर्य्यान् गुणांश्च वेत्ति यः।

रथस्य सारं गमनं भ्रमणं परिवर्त्तनम्॥ १३१॥
समापतत्सुशस्त्रास्त्रलक्ष्यसन्धाननाशकः ।
रथगत्या स रथपो हयसंयोगगुप्तिवित्॥ १३२॥

अन्वयः—यः एभिः गुणैः संयुक्तः धुर्यान् युग्यान् रथस्य सारं गमनं भ्रमणं परिवत्र्तनं च वेत्ति; यश्च रथगत्या समापतत्सुशस्त्रास्त्रलक्ष्यसन्धाननाशकः तथा हयसंयोगगुप्तिवित् सः रथपः॥ १३१-१३२॥

व्याख्या—यः= पुरुषः, एभिः= अश्वविषयकविशिष्टज्ञानादिभिः, गुणैः= चातुर्यैः, संयुक्तः= समवेतः, धुर्यान्= भारवहनसमर्थान्, युग्यान्= युताय हितः युग्यस्तान् युग्यान्= रथवहनसमर्थान् घोटकान्, रथस्य= स्यन्दनस्य, सारम्= तत्त्वम्, गमनम्= खलनम्, सरम्= तत्वम्, गमनम्= चालनम्, भ्रमणम्= प्रतिनिवर्त्तनम्, परिवर्त्तनम्= स्थानान्तरणम्, च वेत्ति= जानाति, यश्च= पुनः यः पुरुषः, रथगत्या—रथस्य= स्यन्दनस्य, गत्या= गमनप्रकारेण, समापततां= समागच्छतां, सुशस्त्राणाम्= सायुधप्रतिभटानाम्, लक्ष्यस्य= स्वस्यन्दनस्थस्य शूरस्य कर्मभूतस्य, यत् सन्धानम्= चापे बाणयोजनम्, तस्य नाशकः= संहारकः, तथा हयसंयोगगुप्तवित्—हयानाम्= घोटकानाम्, संयोगैः= प्रतिबलाश्वैः मेलने, या गुप्तिः= निजाश्वसंरक्षणम्, तां वेत्ति= जानातीति तथोक्तः भवति, सः= असौ, रथपः= हयङ्कपः भवेदिति॥ १३१-१३२॥

हिन्दी—जो व्यक्ति ऊपरवर्णित गुणों से युक्त होने के बावजूद भारवहन करने में सक्षम रथ में जोते जाने वाले घोड़ों को एवं रथ की मजबूती आदि तथा रथ हाँकना, घुमाना तथा राह बदलना जानता है तथा अपने रथ की विशेष गति से शत्रुओं के आयुधों के लक्ष्य को विफल बनाने वाला, शत्रुओं के घोड़ों के साथ मुठभेड़ होने पर अपने घोड़ों को बचाने की कला में निपुण व्यक्ति को सारथी बनाये॥ १३१-१३२॥

एभिरिति। यश्च एभिः उक्तैः अश्वहृदयादिज्ञानादिभिः गुणैः संयुक्तः उपलक्षितः धुर्य्यान् भारवहनक्षमान् युग्यान् अश्वान् रथस्य सारं दार्ढ्यादिकं गमनं भ्रमणं परिवत्र्तनं विनिमयञ्च वेत्ति जानाति, यश्च रथगत्या रथस्य गतिवैचित्र्येण समापततां समागच्छतां सुशस्त्रास्त्राणां प्रतिबलवीराणामित्यर्थः, लक्ष्यस्य स्वरथस्थस्य वीरस्य कर्मभूतस्य यत् सन्धानं शरव्यीकरणं तस्य नाशकः ध्वंसकः तथा हयानाम् अश्वानां संयोगे प्रतिबलाश्वैः मेलने या गुप्तिः स्वहयरक्षणं तां वेत्तीति तथोक्तः भवति स रथपः सारथिरित्यर्थः, भवेदिति शेषः॥ १३१-१३२।।

सादिनश्च तथा कार्य्याः शूरा व्यूहविशारदाः।
वाजिगतिविदः प्राज्ञाः शस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः॥ १३३॥

अन्वयः—शूराः व्यूहविशारदाः वाजिगतिविदः प्राज्ञाः शस्त्रास्त्रैः युद्धकोविदाः सादिनः कार्याः॥ १३३॥

व्याख्या—शूराः= सुविक्रमाः, व्यूहविशारदाः= सैन्यसंस्थानविशेषज्ञाः, वाजिगतिविदः—वाजिनाम्= हयानाम्, गतिविदः= गमनप्रकारवेत्तारः, प्राज्ञाः= प्रकर्षज्ञानवन्तः, शस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः—शस्त्रास्त्रैः= आयुधैः प्रहरणैर्वा, युद्धकोविदाः= रणकुशलाः, सादिनः= तुरगिनः, कार्याः= नियोजितव्याः॥ १३३॥

हिन्दी—अत्यन्त पराक्रमी, व्यूहरचना में प्रवीण, घोड़ों की चालों के जानकार, प्रचण्ड बुद्धिमान्

एवं हथियार लेकर युद्ध करने में निपुण व्यक्ति को घुड़सवार बनाना चाहिए ॥ १३३ ॥

सादिन इति। शूराः बलवन्तः व्यूहविशारदाः बलरचनाभिज्ञाः वाजिनाम् अश्वानां गतिविदः गतिज्ञाः प्राज्ञाः बुद्धिमन्तः तथा शस्त्रास्त्रैः युद्धकोविदाः रणपण्डिताः जनाः सादिनः अश्वारोहिवीराः कार्य्याः ॥ १३३ ॥

चक्रितं रेचितं वल्गितकं धौरितमाप्लुतम्।
तुरं मन्दञ्च कुटिलं सर्पणं परिवर्त्तनम्॥ १३४॥
एकादशास्कन्दितञ्च गतीरश्वस्य वेत्ति यः।
यथाबलं यथार्थञ्च शिक्षयेत् स च शिक्षकः॥ १३५॥

अन्वयः—यः अश्वस्य चक्रितं रेचितं वल्गितकं धौरितम् आप्लुतं तुरं मन्दञ्च कुटिलं सर्पणं परिवर्त्तनं आस्कन्दितम् इत्येकादशतम् गतीः वेत्ति तथा यथाबलं यथार्थञ्च शिक्षयेत्, स च शिक्षकः॥ १३४-१३५॥

व्याख्या—यः = पुरुषविशेषः, अश्वस्य = घोटकस्य, चक्रितम् = वलयाकारेण चालनम्, रेचितम् = धौरितगतिम्, वल्गितकम् = आस्कन्दितकम्, धौरितम् = जवेन गमनम्, आप्लुतम् = लम्पनम्, तुरम् = शीघ्रगमनम्, मन्दम् = मृदुगमनम्, कुटिलम् = वक्रगमनम्, सर्पणम् = रिङ्गणम्, परिवर्त्तनम् = प्रत्यावर्त्तनगतिम्, तथा आस्कन्दितम् = रिपून् प्रति आक्रमणम्, इति = इत्थम्, एकादश = रुद्रसंख्याकः, गतीः = अश्वगमनप्रकाराः, वेत्ति = जानाति, तथा यथाबलम् = शक्त्यनुरूपम्, यथार्थञ्च = निर्भ्रान्तञ्च, शिक्षयेत् = प्रशिक्षयेत्, सः = असौ, शिक्षकः = अश्वशिक्षको भवेत्॥ १३४-१३५॥

हिन्दी—घोड़े को चक्कर लगवाना, दुलकी चाल, ऊँचे कूदाना, सरपट दौड़ाना, मेढक की तरह कूदाना, धीरे चलना, टेढ़ी-मेढ़ी चाल, रेंगना, पलटना और दुश्मन पर आक्रमण करना—इन ग्यारह तरह की चाल तथा घोड़े की ताकत के अनुसार निभ्रान्त रूप से सिखाने वाला अश्वशिक्षक के पद पर नियुक्त करने योग्य होता है॥ १३४-१३५॥

चक्रितमिति। यः अश्वस्य चक्रितं चक्राकारेण भ्रमणं रेचितं गतिविशेषं वल्लगतम् उल्लम्फनरूपगतिं धौरितं गतिभेदम् आप्लुतं लम्फनं तुरं त्वरितपातं मन्दं मृदुगतिं कुटिलं वक्रगतिं सर्पणं गतिप्रभेदं परिवर्त्तनं प्रत्यावर्त्तनगतिं तथा आस्कन्दितं शत्रून् प्रति आक्रमणम् इत्येकादश गतीः वेत्ति जानाति तथा यथाबलं यथाञ्च शिक्षयेत् विनयेत् सः च शिक्षकः अश्वशिक्षकः भवेदिति शेषः॥ १३४-१३५॥

वाजिसेवासु कुशलः पल्याणादिनियोगवित्।
दृढाङ्गश्च तथा शूरः स कार्य्यो वाजिसेवकः॥ १३६॥

अन्वयः—यः वाजिसेवासु कुशलः पल्याणादिनियोगवित् च दृढाङ्गः तथा शूरः सः वाजिसेवकः कार्यः॥ १३६॥

व्याख्या—यः = पुरुषविशेषः, वाजिसेवासु = अश्वपरिचर्यासु, कुशलः = प्रवीणः, पल्याणादिनियोगवित् — पल्याणादीनाम् = घोटकपरिचर्याप्रभृतीनाम्, नियोगवित् = नियोजनज्ञः, च = पुनः, दृढाङ्गः = सशक्तशरीरः, तथा = तेनैव प्रकारेण, शूरः = पराक्रमी, सः = एवंविधः पुरुषः,

वाजिसेवकः = अश्वपरिचारकः, कार्यः = नियोज्यः॥ १३६॥

हिन्दी—घोड़ों की परिचर्या में निपुण, घोड़े की साजसज्जा का जानकार, मजबूत कद-काठी वाले वीर व्यक्ति को साईस के पद पर नियुक्त करना चाहिए॥ १३६॥

वाजीति। यः वाजिसेवायाम् अश्वपरिचर्य्यायां कुशलः निपुणः पल्याणादीनाम् अश्वसज्जाविशेषाणां नियोगवित् प्रयोगज्ञः दृढाङ्गः कठिनशरीरः तथा शूरः बलवान् सः वाजिसेवकः अश्वसेवकः कार्य्यः॥ १३६॥

नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिनतिविद्याविशारदाः।
अबाला मध्यवयसः शूरा दान्ता दृढाङ्गकाः॥ १३७॥
स्वधर्मनिरता नित्यं स्वामिभक्ता रिपुद्विषः।
शूद्रा वा क्षत्रियाः वैश्या म्लेच्छा सङ्करसम्भवाः॥ १३८॥
सेनाधिपाः सैनिकाश्च कार्य्या राज्ञाः जयर्थिना॥ १३९॥
पञ्चानामथवा षण्णामधिपः पदगामिनाम्।
योज्यः स पत्तिपालः स्यात् त्रिंशतां गौल्मिकः स्मृतः॥ १४०॥
शतानान्तु शतानीकस्तथानुशतिको वरः।
सेनानीर्लेखकश्चैते शतं प्रत्यधिपा इमे॥ १४१॥
साहस्त्रिकस्तु संयोज्यस्तथा चायुतिको महान्॥ १४२॥

अन्वयः—ये नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिनतिविद्याविशारदाः अबालाः मध्यवयसः शूराः दान्ता दृढाङ्गकाः स्वधर्मनिरताः नित्यं स्वामिभक्ताः रिपुद्विषः शूद्राः क्षत्रियाः वैश्या वा सङ्करसंभवाः म्लेच्छाः ते जयार्थिना राज्ञा सेनाधिपाः च सैनिकाः कार्याः। पञ्चानाम् अथवा षण्णां पदगामिनाम् अधिपः पत्तिपालः योज्यः। त्रिंशतां गौल्मिकः स्मृतः, शतानां शतानीकः तथा अनुशतिकः वरः, सेनानी तथा लेखकः एते नियोक्तव्याः। इमे च शततं प्रति अधिपाः तु साहसिकः तथा च महान् अयुतिकः संयोज्यः॥ १३६-१४२॥

व्याख्या—ये च = जनाः, नीतिशास्त्राणि = सद्व्यवहाराणि, शस्त्राणि = अपातनीयानि प्रहरणानि, अस्त्राणि = क्षेपणीयानि आयुधानि, व्यूहादयः = सैन्यसंरचनाप्रभृतयः, तथा नतिविद्याः = प्रतिशूराः = सशक्ताः, दान्ताः = नियन्त्रिताः, दृढाङ्गकाः = सशक्तकायाः, स्वधर्मनिरताः = आत्मधर्मानुरक्ताः, नित्यम् = सततम्, स्वामिभक्ताः—स्वामिषु = नियोक्तृषु, भक्ताः = अनुरक्ताः, रिपुद्विषः—रिपुषु = अरिषु, द्विषः = शत्रुसन्तपकर्त्तारः, शूद्राः = वृषलाः, क्षत्रियाः = वर्णविशेषाः, वैश्याः = वणिजः, वा = अथवा, सङ्करसम्भवाः = सम्मिश्रणोत्पन्नाः, म्लेच्छाः = अधमाः, ते जयार्थिना = विजिगीषुणा, राज्ञा = नृपेण, सेनाधिपाः = बलाध्यक्षाः, सैनिकाश्च = सेनाचराश्च, कार्याः = नियोज्याः, पञ्चानाम् = पञ्चसंख्यकानाम्, अथवा षट्संख्याकानाम्, पदगामिनाम् = पदातीनाम्, अधिपः = स्वामी, पत्तिपालः = पदातिगः, योज्यः = नियोक्तव्यः, त्रिंशतां पत्तिपालानाम्, अधिपः = स्वामी, गौल्मिकः = कस्यापि सैन्यसमूहस्यैकः सैनिकः, स्मृतः = कथितः, शतानाम् = शतसंख्यकानां गौल्मिकानाम्, अधिपः = स्वामी, शतानीकः, अनुशतिकः, वरः = श्रेष्ठः, सेनानी = सेनानायकः, तथा लेखकः = लेखकारः, एते = पदाधिकारिणः, नियोक्तव्याः, इमे च

शतानीकादयः,शतम् = शतसंख्यकम्प्रति, अधिपाः = अध्यक्षाः, किञ्च साहस्रिकः = दशशताध्यक्षः, तथा महान् अयुतपतिः = दशसहस्राध्यक्षः, संयोजयः = सम्यग्रूपेण नियोक्तव्यः ॥ १३६-१४२ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति देश, काल और पात्र के अनुसार बरतने के नियम का जानकार हो, हथियार चलाने में माहिर हों, सैन्य-विन्यास के जानकार हों, दुश्मनों को दाँव पर चढ़ाकर नीचा दिखाने की कला में प्रवीण, लड़कपन रहित, गबरू जवान, बहादुर, आत्मसंयमी, मजबूत देहवाले, अपने धर्म में तत्पर, नित्य स्वामीभक्त, मालिक के दुश्मनों के द्रोही, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, वर्णसंकर या अधम जाति के कोई भी हों, उन्हें विजयकामी राजा अपना सेनाध्यक्ष या सैनिक बनाये। पाँच या छः पैदल सिपाहियों का जो अध्यक्ष होता है वह पत्तिपाल, तीस सिपाहियों का अधिपति गौल्मिक, सौ सिपाहियों का नायक 'शतानीक' कहलाते हैं और श्रेष्ठ अनुशतिक, सेनानी तथा लेखक— ये सब सौ-सौ के ऊपर विशेष कार्य के लिए अध्यक्ष बनाये जाते हैं। एक हजार सिपाहियों का नायक साहस्रिक तथा दस हजार सिपाहियों के अधिपति को 'आयुतिक' के पद पर नियुक्त करना चाहिए॥ १३७-१४२ ॥

नीतीत्यादि। ये जनाः नीतिः कार्य्याकार्य्यविज्ञानं शस्त्राणि अक्षेपणीयाणि प्रहरणानि तलवारादीनि अस्त्राणि क्षेपणीयाणि शरादीनि व्यूहादयः बलरचनाप्रभृतयः तथा नतिविद्याः शत्रुपराजयकौशलेषु विशारदाः दक्षाः अबालाः शैशवातीताः मध्यवयसः तरुणाः शूराः बलवन्तः दान्ताः विनीताः दृढाङ्गकाः कठिनदेहाः स्वधर्मनिरताः निजधर्मपालननिष्ठाः नित्यं स्वामिभक्ताः स्वामिषु प्रभुषु भक्ताः अनुरागिणः रिपुद्विषः शत्रुषु अननुरागिणः शूद्राः शूद्रजातीयाः क्षत्रियाः क्षत्रियजातीयाः वैश्याः वैश्यजातीयाः वा सङ्करसम्भवाः सङ्कीर्णाः म्लेच्छाः हीनजातयः, ते जयार्थिना विजिगीषुणा राज्ञा सेनाधिपाः सैनिकाश्च कार्य्याः। पञ्चानाम् अथवा षण्णां पदगामिनां पदातीनाम् अधिपः पत्तिपालः पदातिगः योज्यः पदातिपालकत्वेन नियोक्तव्यः। त्रिंशतां पत्तिपालानाम् अधिपः गौल्मिकः स्मृतः कथितः शतानां गौल्मिकानाम् अधिपः शतानीकः अनुशतिकः वरः सेनानीः तथा लेखकः एते नियोक्तव्या इति शेषः। इमे च शतानीकादयः शतं प्रति अधिपाः विशेषविशेषकार्य्याध्यक्षा इत्यर्थः। किञ्च साहस्रिकः सहस्रपतिः तथा महान् अयुतपतिः दशसहस्रपतिः संयोज्यः नियोक्तव्यः॥ १३७- १४२ ॥

व्यूहाभ्यासं शिक्षयेद्यः सायं प्रातश्च सैनिकान्।
जानाति स शतानीकः सुयोद्धुं युद्धभूमिकाम्॥ १४३ ॥

अन्वयः—यः सायं प्रातश्च सैनिकान् व्यूहाभ्यासं शिक्षयेत् तथा सुयोद्धुं युद्धभूमिकां जानाति सः शतानीकः॥ १४३ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषविशेषः, सायम् = दिनान्ते, प्रातश्च = अहर्मुखे च, सैनिकान् = आयुधिकान्, व्यूहाभ्यासम्— व्यूहस्य = सैन्यसंरचनायाः, अभ्यासम् = अनुशीलनम्, शिक्षयेत् = अभ्यासंकारयेत्, तथा सुयोद्धुम् = सुखेन संग्रामं कर्त्तुम्, युद्धभूमिकाम् = सङ्गरसज्जाञ्च, जानाति = वेत्ति, सः = असौ 'शतानीकः' इत्युच्यते ॥ १४३ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति सुबह-शाम सैनिकों को युद्ध के समय सेना के लिए की जाने वाली स्थापना के लिए कवायद करवाता हो तथा भलीभाँति युद्ध करने के लिए रणसज्जा का ज्ञान रखता हो, वह 'शतानीक' कहलाता है॥ १४३॥

व्यूहेति। यः सायं प्रातश्च सैनिकान् व्यूहाभ्यासं बलरच नाया अभ्यासं पाटवं शिक्षयेत् तथा सुयोद्धुं सम्यक् युद्धं कर्त्तुं युद्धभूमिकां रणसज्जाञ्च जानाति स शतानीकः॥ १४३ ॥

तथाविधोऽनुशातिकः शतानीकस्य साधकः।
जानाति युद्धसम्भारं कार्ययोग्यञ्च सैनिकम्॥ १४४॥

अन्वयः—यश्च तथाविधः शतानीकस्य साधकः युद्धसम्भारं तथा कार्ययोग्यं सैनिकं जानाति, सः अनुशातिकः॥ १४४ ॥

व्याख्या—यश्च = पुनर्यो जनः, तथाविधः = तत्सदृशः, शतानीकस्य = एतदाख्यनायकस्य, साधकः = शतानीककार्यसहायः, युद्धसम्भारम् = सङ्ग्रामोपयोगिवस्तुसङ्ग्रहणम्, तथा, कार्ययोग्यम् = कार्यक्षमम्, सैनिकम् = संङ्ग्रामिकम्, जानाति = वेत्ति, सः = असौ, अनुशातिकः, इत्युच्यते॥ १४४ ॥

हिन्दी—और जो उन्हीं की तरह शतानीक की सहायता करने वाला तथा समरोपयोगी सामग्रियों की एवं कार्यक्षम सैनिकों की सही जानकारी रखता हो, उसे अनुशातिक कहते हैं॥ १४४ ॥

तथेति। यश्च तथाविधः तादृशगुणसम्पन्नः शतानीकस्य साधकः साहाय्यकारकः युद्धसम्भारं युद्धोपयोगिद्रव्यसमूहं तथा कार्य्ययोग्यं सैनिकञ्च जानाति सः अनुशातिकः॥ १४४ ॥

निदेशयति कार्य्याणि सेनानीर्यामिकांश्च सः।
परिवृत्तिं यामिकानां करोति स च पत्तिपः॥ १४५॥

अन्वयः—यः कार्याणि तथा यामिकान् च निदेशयति सः सेनानीः। यश्च यामिकानां परिवृत्तिं करोति स च पत्तिपः॥ १४५ ॥

व्याख्या—यः = यो हि पुरुषः, कार्याणि = कर्माणि, तथा यामिकान् = रक्षापुरुषान्, च, निदेशयति = आज्ञापयति, सः = असौ, सेनानीः = सेनापतिर्भवति। यश्च = यो हि पुरुषः, यामिकानाम् = वैबोधिकानाम्, परिवृत्तिम् = प्रहरिपरिवर्त्तनम्, करोति = सम्पादयति, स च = असौ च, पत्तिपः = पदातिपतिर्भवति॥ १४५ ॥

हिन्दी—जो पहरेदारों को काम करने का आदेश देता है तथा जिसके आदेशानुसार सैनिक काम करते हैं, वह सेनापति कहलाता है तथा पहरेदारों का जो पहरा बदलता है, वह पत्तिपाल अर्थात् पदातिपति होता है॥ १४५ ॥

निदेशयतीति। यः कार्य्याणि तथा यामिकान् प्रहरिणश्च निदेशयति आदेशयति सः सेनानीः। यश्च यामिकानां प्रहरिणां परिवृत्तिं विनिमयं करोति स च पत्तिपः पदातिपतिः॥ १४५ ॥

स्वावधानं यामिकानां विजानीयाच्च गुल्मपः॥ १४६॥
सैनिकाः कति सन्त्येतैः कति प्राप्तन्तु वेतनम्।
प्राचीनाः के कुत्र गताश्चैतान् वेत्ति स लेखकः।
गजाश्वानां विंशतेश्चाधिपो नायकसंज्ञकः॥ १४७॥

अन्वयः—गुल्मपः यामिकानां स्वावधानं जानीयात् सः लेखकः। सैनिकाः कति सन्ति ? एतैश्च कति वेतनं प्राप्तम् ? के च प्राचीनाः ? के च कुत्र गताः ? एतान् वेत्ति। किञ्च गजाश्वानां विंशतेः

अधिपः नायकसंज्ञकः भवति ॥ १४६-१४७ ॥

व्याख्या—गुल्मपः = सेनाविभागभेदरक्षकः, यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, स्वावधानम् = निजकर्मण्यवेक्षाम्, जानीयात् = विजानीयात्, सः = असौ, लेखकः = लिपिकारः। सैनिकाः = सामरिकाः, कति = कियन्तः, सन्ति = विद्यन्ते? एतैश्च = एभिश्च, कति = कियत्परिमाणम्, वेतनम् = मासिकभृतिः, प्राप्तम् = लब्धम्? के च = पुनः किं संख्याकाः, प्राचीनाः = अशक्ताः सैनिकाः? च = पुनः, के = सैनिकाः, कुत्र = कस्मिन् स्थाने, गताः = प्रस्थिताः? एतान् = सर्वान्, वेत्ति = जानाति। किञ्च = किन्तु, गजानाम् = कुञ्जराणाम्, अश्वानाम् = हयानाम्, विंशतेः = विंशत्यश्वगजानाम्, अधिपः = अध्यक्षः, नायकसंज्ञकः = नायकाख्यो भवति ॥ १४६-१४७ ॥

हिन्दी—जो पहरेदारों के कामों की सतर्कता का अवलोकन करता है वह गुल्मप अर्थात् सेना के एक विभाग का रक्षक होता है। जो सेना में कितने सिपाही हैं? कौन कितना वेतन पाया है? पुराने असमर्थ सैनिक कितने हैं? कौन कहाँ गया है? इन सारी बातों की जानकारी पाकर इन्हें लिपिबद्ध करता है? वह 'लेखक' कहलाता है। बीस हाथियों और बीस घोड़ों के अध्यक्ष को नायक कहते हैं ॥ १४६-१४७ ॥

स्वावधानमिति। गुल्मपः यामिकानां स्वावधानं स्वस्वकम्मणि सतर्कतां जानीयाच्च। सः लेखकः सैनिकाः कति कियन्तः सन्ति। एतैश्रच कति कियत्परिमाणं वेतनं प्राप्तम्। के च प्राचीनाः अक्षमा इत्यर्थः। के च कुत्र गताः एतान् वेत्ति जानाति जानीयादित्यर्थः। किञ्च गजानाम् अश्वानाञ्च विंशतेः विंशतिगजानां विंशत्यश्वानामित्यर्थः। अधिपः नायकसंज्ञकः नायक इति ख्यात इत्यर्थः॥ १४६-१४७ ॥

उक्तसंज्ञान् स्वस्वचिह्नैर्लान्छितांश्च नियोजयेत् ॥ १४८ ॥
अजाविगोमहिष्येण मृगाणामधिपाश्रच ये।
तद्वद्धिपुष्टिकुशलास्तद्वात्सल्यनिपीडिताः ।
तथाविधा गजोष्ट्रादेर्योज्यास्तत् सेवका अपि ॥ १४९ ॥
युद्धप्रवृत्तिकुशलास्तित्तिरादेश्च पोषकाः ।
शुकादेः पाठकाः सम्यक् श्येनादेः पातबोधकाः ।
तत्तद् हृदयविज्ञानकुशलाश्च सदा हि ते ॥ १५० ॥
मानाकृतिप्रभावर्णजातिसाम्याच्च मौल्यवित्।
रत्नानां स्वर्णरजतमुद्राणामधिपश्च सः ॥ १५१ ॥
दान्तस्तु सधनो यस्तु व्यवहारविशारदः।
धनप्राणोऽतिकृपणः कोशाध्यक्षः स एव हि ॥ १५२ ॥
देशभेदैर्जातिभेदैः स्थूलसूक्ष्मबलाबलैः ।
कौशेयादेर्मानमूल्यवेत्ता वस्त्रस्य वस्त्रपः ॥ १५३ ॥
कुटीकञ्चुकनेपथ्यमण्डपादेः परिक्रियाम्।

प्रमाणतः सौचिकेन रञ्जनानि च वेत्ति यः॥ १५४॥
तथा शय्यादिसन्धानं वितानादेर्नियोजनम्।
वस्त्रादीनाञ्च स प्रोक्तो वितानाद्यधिपः खलु॥ १५५॥

अन्वयः—उक्तसंज्ञान् स्वस्वचिह्नैः लाञ्छितान् नियोजयेत्। ये च अजाविगोमहिष्येण मृगाणां तद्वृद्धिपुष्टिकुशलाः तद्वात्सल्यनिपीडिताः ते तदधिपाः। तथा गजानां तथा गजोष्ट्रादेः ये तथाविधाः तेऽपि तत्सेवकाः योज्याः। किञ्च तित्तिरादेः युद्धप्रवृत्तिकुशलाः च पोषकाः शुकादेः सम्यक् पाठकाः तथा श्येनादेः पातबोधकाः नियोक्तव्याः। हि ते सदा तत्तत् हृदयविज्ञानकुशलाः यश्च रत्नानां स्वर्णरजतमुद्राणाञ्च मानाकृतिप्रभावर्णजातिसाम्याच्च मौल्यवित् सः अधिपः। यस्तु दान्तः सधनः व्यवहारविशारदः धनप्राणोऽतिकृपणः स एव हि कोषाध्यक्षः। यश्च देशभेदैः जातिभेदैः स्थूलसूक्ष्मबलाबलैः कौशेयादेः वस्त्रस्य मानमूल्यवेत्ता वस्त्रपः, यश्च कुटीकञ्चुकनेपथ्यमण्डपादेः परिक्रियां प्रमाणतः रञ्जानानि च सौचिकेन तथा शय्यादिसन्धानं वितानादेः वस्त्रादीनाञ्च नियोजनं वेत्ति सः खलु वितानाद्यधिपः प्रोक्तः॥ १४८-१५५॥

व्याख्या—उक्तसंज्ञान् = प्रोक्तनाम्नः, स्वस्वचिह्नैः = स्वपदबोधकाभिज्ञानैः, लाञ्छितान् = चिह्नितान्, कृत्वा, नियोजयेत् = तत्पदे स्थापयेदिति। च = पुनः, ये = जनाः, अजाविगोमहिष्येण—अजानाम् = छागानाम्, अवीनाम् = मेषाणाम्, गवाम् = धेनूनाम्, महिषीणाम् = महाक्षीराणाम्, एणानाम् = कृष्णमृगाणां, तथा मृगाणाम् = सामान्यहरिणानाम्, तद्वृद्धिपुष्टिकुशलाः = तत्तद्वर्द्धनपोषणचतुराः, तत् = तेषु, वात्सल्येन = अपत्यस्नेहेन, निपीड़िताः = अर्दिताः, ते = जनाः, तदधिपाः = तेषां स्वामी, तथा गजोष्ट्रादेः—गजानाम् = हस्तिनाम्, उष्ट्रादीनाञ्च = क्रमेलकादीनाञ्च, ये तथाविधाः = तत्प्रकारकाः पालकाः, तेऽपि, तत् = तेषां गजादीनाम्, सेवकाः = परिचारकाः, योज्याः = पदे स्थापितव्या। किञ्च, तित्तिरादेः = तिति इति शब्दं राति ददाति इति तित्तिरः = चकोरः, याजुषो दरो वेति, तदेवादौ यस्य तथाभूतस्य पक्षिजातेः, युद्धप्रवृत्तिकुशलाः = रणरुचिचतुराः, पोषकाश्च = संवर्द्धकाश्च, शुकादेः = कीरादेः, सम्यक् = सुष्ठुतया, पाठकाः = शिक्षकाः, श्येनादेः—श्येनः = कपोतारिः, आदौ यस्य तथाभूतस्य पक्षिविशेषस्य, पातबोधकाः = निपतनज्ञापकाः जनाः, नियोक्तव्येति भावः। हि = यतः, ते = पूर्वोक्ताः जनाः, सदा = सर्वदा, तत्तद् = पक्षिविशेषाणाम्, हृदयविज्ञानकुशलाः = मनोगतभावानुशीलने निपुणाः, यश्च = पुनः यो हि पुरुषः, रत्नानाम् = अश्मभेदानाम्, स्वर्णरजतमुद्राणाम्— स्वर्णस्य = कनकस्य, रजतस्य = रूप्यस्य, मुद्रायाः = पदकस्य, च तेषां मानम् = तोलः, आकृतिः = जातिः, प्रभा = रुचिः, वर्णः = वर्णकः, जातिः = प्रकारः, तथा, साम्यम् = समताम्, तस्मात्, मौल्यवित् = मूल्यवेत्ता, सः = असौ, रत्नानाम् = मण्यादीनाम्, अधिपः = अध्यक्षो भवति। यस्तु दान्तः = नियन्त्रितः, सधनः = धनवान्, व्यवहारविशारदः = आचारकुशलः, धनप्राणः—धनेषु = सम्पत्सु, जीवनसमबुद्धिर्यस्यासौ, तथा अतिकृपणः = अत्यमुक्तहस्तः, स एव कोशाध्यक्षः = धनाध्यक्षः। यश्च देशभेदैः = जनपदविभिन्नैः, जातिभेदैः = जात्या भिन्नैः, स्थूलसूक्ष्मबलाबलैः — स्थूलम् = पीवरम्, सूक्ष्मम् = अतिक्षुद्रतनुम्, बलम् = दृढम्, अबलञ्च = बलहीनं च, तैः कौशेयादेः = कौशेयवस्त्रादेः, च = पुनः, वस्त्रस्य = सामान्यविशेषवसनस्य, मानस्य = परिमाणस्य, मूलस्य = अर्थस्य, च वेत्ता = विज्ञाता, सः = असौ, वस्त्रपः = वस्त्राध्यक्षः। यश्च कुटीकञ्चुकनेपथ्यमण्डपादेः — कुत्याः = पटमण्डपस्य, कञ्चुकस्य = कवचस्य लव निचोलस्य च नेपथ्यस्य = परिधानस्य, वेशस्थानस्य च, तथा

मण्डपादेः = वस्त्रनिर्मितगृहादेः, परिक्रियाम् = सविधिसम्पादनप्रणालीम्, प्रमाणतः = परिमाणेन, रञ्जनानि = चित्ररयणानि, च = पुनः, सौचिकेन = कुशलसूचिकर्मणा, तथा शय्यादिसन्धानम् = आस्तरादिसंयोजनम्, वितानादेः = चन्द्रातपादेः, च = पुन, वस्त्रादीनाम् = आच्छादनादीनाम्, नियोजनम् = स्थापनम्, वेत्ति = जानाति, सः = असौ, खलु = निश्चयेन, वितानाद्यधिपः, प्रोक्तः = कथितः ॥ १४८-१५५ ॥

हिन्दी—ऊपर जिनके नामों का उल्लेख किया गया है उन पदाधिकारियों के जो-जो राजचिह्न हों उन्हें लगाकर ही काम करने का आदेश देना चाहिए। भेड, बकरी, गाय, भैंस, हिरण प्रभृति के पदाधिकारी को उनकी वृद्धि और पालन-पोषण में सुदक्ष होना चाहिए। उन पशुओं के दुःख में इन्हें दुःखी होना चाहिए। इसी तरह हाथी, ऊँट आदि की सेवा में सुदक्ष व्यक्ति को ही इनका अध्यक्ष बनाना चाहिए। इसी तरह जुझारू चिड़ियाँ, तीतर आदि को पालने वाले तथा शुक-सारिका को भलीभाँति पलाने-सिखाने वाले तथा बाज जैसे पक्षियों की झपटने की कला के जानकार तथा इन पक्षियों के मनोगत भावों को समझने में निपुण व्यक्ति को सदा इनकी अध्यक्ष बनाना चाहिए। सोने, चाँदी, सिक्के तथा रत्न के जो अध्यक्ष बनाये जाँय, उन्हें इनकी पहचान होनी चाहिए। इनके तौल, आकार, चमक, रंग, जाति और समता को देखकर इनका मूल्य-निर्धारण करने की क्षमता होनी चाहिए। आत्मनियन्त्रित, धनी, व्यवहारकुशल, धन को अपनी जान से बढ़कर समझनेवाले, अत्यन्त कंजूस व्यक्ति को धनाध्यक्ष बनाना चाहिए। जो व्यक्ति देश और जाति सम्बन्धी भेद को ठीक से समझता हो, मोटा-महीन, मजबूत और कमजोर की जानकारी रखता हो तथा तौल और उनकी उचित कीमत आँकने में सक्षम हो—ऐसे लोगों को रेशमी तथा सामान्य वस्त्रों का अध्यक्ष बनाना चाहिए। जो व्यक्ति कपड़े के तम्बू, कवच या पहनावा, पर्दा या वेष, कपड़घर को सही नाप के अनुसार सीने वाले तथा बिस्तर बिछाने, सजाने या शामियाना खड़ा करने या वस्त्राभूषणों से सजाने में माहिर हो, उसे वितानादि का अध्यक्ष बनाना चाहिए ॥ १४८-१५५ ॥

उक्तसंज्ञानीत्यादि। उक्तसंज्ञान् कथितनाम्नः पत्तिपादीन् स्वस्वचिह्नैः चिह्नितान् अङ्कितान् कृत्वा नियोजयेत्। ये च अजानां छागानाम् अवीनां मेषाणां गवां महिषीणाम् एणानां जन्तुविशेषाणां तथा मृगाणां तत्तद्वृद्धिपुष्टिकुशलाः तत्तदुन्नतिसाधनपोषणनिपुणाः तद्वात्सल्येन तेषु अजादिषु वात्सल्येन स्नेहेन निपीड़िताः ते तदधिपाः तथा गजानाम् उष्ट्रादीनाञ्च ये तथाविधाः पालकाः इत्यर्थः, ते अपि तत् सेवकाः तेषां गजादीनां सेवकाः योज्याः नियोक्तव्याः। किञ्च तित्तिरादेः पक्षिजातेः युद्धप्रवृत्तिकुशलाः पोषकाश्च शुकादेः सम्यक् पाठकाः पाठनकारिणः तथा श्येनादेः पक्षिविशेपस्य पातबोधकाः पतनज्ञानवन्तः जनाः नियोक्तव्या इति अध्याहार्य्यं, हि यतः ते जनाः सदा तत्तद् हृदयविज्ञानकुशलाः तेषां तेपां पक्षिणां हृदयविज्ञाने निपुणाः। यश्च रत्नानां स्वर्णरजतमुद्राणाञ्च मानं परिमाणम् आकृतिः आकारः प्रभा दीप्तिः वर्णः रक्तनीलत्वादि जातिः भेदज्ञापकधर्म्मविशेषः तथा साम्यम् औपम्यं तस्मात् मौल्यवित् मूल्यविज्ञः सः रत्नादीनामधिपः। यस्तु दान्तः विनीतः सधनः धनवान् व्यवहारविशारदः लोकाचारविज्ञः धनप्राणः धनेषु प्राणसमबुद्धिः तथा अतिकृपणः अतिव्ययकुण्ठः स एव कोशाध्यक्षः धनाध्यक्षः। यश्च देशभेदैः जातिभेदैः स्थूलसूक्ष्मबलाबलैः देशतः जात्या च विभिन्नैः स्थौल्यसौक्ष्म्यस्थायित्वास्थायित्वरूपैः कौशिकादेः कृमिकोशोत्थादेः वस्त्रस्य मानस्य परिमाणस्य मूल्यस्य च वेत्ता विशेषज्ञः सः वस्त्रपः। यश्च

कुटीकञ्चुकनेपथ्यमण्डपादेः कुट्याः कुटीरस्य कञ्चुकस्य वारबाणस्य नेपथ्यस्य परिच्छदस्य तथा मण्डपादेः गृहादेः परिक्रियाम् अनुष्ठानपरिपाटीं प्रमाणतः परिमाणेन, रञ्जनानि च सौचिकेन सूचीकर्म्मनैपुण्येन, तथा शय्यादिविधानं वितानादेः उल्लोचादेः वस्त्रादीनाञ्च नियोजनं वेत्ति जानाति सः खलु वितानाद्यधिपः प्रोक्तः कथितः॥ १४८-१५५ ॥

जातिं तुलाञ्च मौल्यञ्च सारं भोगं परिग्रहम्।
सम्मार्जनञ्च धान्यानां विजानाति स धान्यपः॥ १५६ ॥

अन्वयः—यः धान्यानां जातिं तुलां मौल्यं सारं भोगं परिग्रहं सम्मार्जनं च विजानाति सः धान्यपः॥ १५६ ॥

व्याख्या—यः धान्यानाम् = अन्नानाम्, जातिम् = भेदः प्रकारो वा, तुलाम् = भारमानम्, च = पुनः, मौल्यम् = मूल्यम्, सारम् = मुख्यांशः, च = पुनः, भोगम् = उपभोगविधिम्, परिग्रहम् = प्राप्त्युपायम्, सम्मार्जनञ्च = निर्मलीकरणञ्च, विजानाति = वेत्ति, सः = असौ, धान्यपः = धान्याध्यक्षो भवति॥ १५६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अन्नों की जाति, वज़न, कीमत, किस्म, खाने का तरीका, पाने का ढंग और उनके रख-रखाव के बारे में जानता है, उसे धान्याध्यक्ष बनाना चाहिए॥ १५६ ॥

जातिमिति। यः धान्यानां जातिं तुलां मौल्यं मूल्यं सारं भोगं परिग्रहं ग्रहणोपायं सम्मार्जनञ्च विजानाति स धान्यपः॥ १५६ ॥

धौताधौतविपाकज्ञो रससंयोगभेदवित्।
क्रियासु कुशलो द्रव्यगुणवित् पाकनायकः॥ १५७ ॥

अन्वयः—धौताधौतविपाकज्ञः रससंयोगभेदवित् क्रियासु कुशलः तथा द्रव्यगुणवित् पाकनायकः भवति॥ १५७ ॥

व्याख्या—धौतम् = मार्जितम्, अधौतम् = अप्रक्षालितम्, तयोः विपाकः = पचनं तं वेत्तीति तथोक्तः, रससंयोगभेदवित्— रसानाम् = अम्ललवणमधुरकटुकषायतिक्तानाम्, संयोगे = सम्मिश्रणे, यः भेदः = अन्तरम्, तं, वेत्ति = जानातीति तथाभूतः, क्रियासु = पचनक्रियासु, कुशलः = प्रवीणः, तथा द्रव्याणाम् = वस्तूनाम्, पदार्थानां वा, च = पुनः, गुणानाम् = स्वभावविशेषाणाम्, विभागवित् = विभजनज्ञः जनः, पाकनायकः = पचनाध्यक्षो भवति॥ १५७ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति पकाने का अन्न धुला है या नहीं धुला है, ठीक से पका है या नहीं— इसका जानकार हो; खट्टा, मीठा, नमकीन, तीता, कसैला, कड़वा प्रभृति षड्रसों के संयोग से होने वाले भेदों की जानकारी रखता हो तथा रसोई बनाने की कला में निपुण हो, उसे पाकाध्यक्ष बनाना चाहिए॥ १५७ ॥

धौताधौतेति। धौतं क्षालितम् अधौतम् अक्षालितं तयोः विपाकः विशेपेण पचनं तं जानातीति तथोक्तः। रसानां कटुकपायतिक्ताम्ललवणमधुराणां संयोगे यः भेदः विशेषः तं वेत्तीति तथाभूतः क्रियासु पाकक्रियासु कुशलः निपुणः तथा द्रव्याणां गुणानाञ्च विभागवित् विभागज्ञः जनः पाकनायकः रन्धनाधिपः भवतीति शेपः॥ १५७ ॥

फलपुष्पवृद्धिहेतु रोपणं शोधनं तथा।

पादपानां यथाकालं कर्त्तुं भूमिजलादिना।
तद्भेषजञ्च संवेत्ति ह्यारामाधिपतिश्च सः॥ १५८॥

अन्वयः—यः पादपानां यथाकालं भूमिजलादिना फलपुष्पवृद्धिहेतुं रोपणम् शोधनं कर्त्तुं तद्भेषजं संवेत्ति सः आरामाधिपतिः भवति॥ १५८॥

व्याख्या—यो हि पुरुषः, पादपानाम् = तरुणाम्, यथाकालम् = ईप्सितसमये, भूमिजलादिना = उर्वरकप्रदानसलिलसिञ्चनादिना, फलपुष्पवृद्धिहेतुम् = फलानाम् = शस्यानाम्, पुष्पाणाम् = सुमनानाम्, वृद्धिहेतुम् = वर्द्धनार्थम्, रोपणम् = आरीपणं वपनं वा, शोधनम् = निर्मलीकरणम्, कर्त्तुम् = विधातुम्, तत् = तेषाम्, भेषजम् = कीटादिजन्यरोगप्रतिकारम्, संवेत्ति = सम्यग् रूपेण जानाति, सः = असौ एव, आरामाधिपतिः = उपवनाध्यक्षः, कार्यः॥ १५८॥

हिन्दी—जो व्यक्ति समयानुसार पेड़-पौधों में खाद पानी डालना जानता हो तथा उनमें फल-फूल अधिक लगे इसलिए पेड़ लगाना, निकौनी करना तथा कीड़े से बचाव के ढंग ठीक तरह से जानता हो, उसे उपवन का अध्यक्ष बनाना चाहिए॥ १५८॥

फलेति। यः पादपानां वृक्षाणां यथकालं भूमिजलादिना मृत्तिकाप्रदानजलसेचनादिना फलपुष्पाणां वृद्धिहेतुं वर्द्धनसाधनं रोपणं शोधनं संस्करणं तथा तेषां भेषजं कीटादिरूपरोगप्रतिकारं संवेत्ति सम्यक् जानाति स हि एव आरामाधिपतिः॥ १५८॥

प्रासादं परिखां दुर्गं प्राकारं प्रतिमां तथा।
यन्त्राणि सेतुबन्धञ्च वापीं कूपं तडागकम्॥ १५९॥
तथा पुष्करिणीं कुण्डं जलाद्यूदूर्ध्वगतिक्रियाम्।
सुशिल्पशास्त्रतः सम्यक् सुरम्यन्तु यथा भवेत्॥ १६०॥
कर्त्तुं जानाति यः सैव गृहाद्यधिपतिः स्मृतः॥ १६१॥
राजकार्य्योपयोग्यान् हि पदार्थान् वेत्ति तत्त्वतः।
सन्चिनोति यथाकाले सम्भाराधिप उच्यते॥ १६२॥
स्वधर्माचरणे दक्षो देवताराधने रतः।
निष्पृहः स च कर्त्तव्यो देवतुष्टिपतिः सदा॥ १६३॥
याचकं विमुखं नैव करोति न च सङ्ग्रहम्।
दानशीलश्च निर्लोभो गुणज्ञश्च निरालसः॥ १६४॥
दयालुर्मृदुवाक् दानपात्रविन्नतितत्परः।
नित्यमेभिर्गुणैर्युक्तो दानाध्यक्षः प्रकीर्त्तितः॥ १६५॥

अन्वयः—यः सुशिल्पशास्त्रतः सम्यक् सुरम्यं यथा भवेत् तथा प्रासादं परिखां दुर्गं प्राचीरं प्रतिमां यन्त्राणि सेतुबन्धं वापीं कूपं तडागकं तथा पुष्करिणीं कुण्डं जलाद्यूदर्ध्वगतिक्रियां कर्तुं जानाति सैव गृहाद्यधिपतिः स्मृतः। यः तत्त्वतः राजकार्योपयोग्यान् पदार्थान् वेत्ति यथाकाले सञ्चिनोति सः सम्भाराधिपः उच्यते। यः सदा स्वधर्माचरणे दक्षः, देवताराधने रतः तथा निष्पृहः सः देवतुष्टिपतिः कर्त्तव्यः। किञ्च यः दानशीलः निर्लोभः गुणज्ञः निरालसः दयालुः मृदुवाक्

दानपात्रवित् नतितत्परः याचकं विमुखं नैव करोति न च सङ्ग्रहं करोति, सः नित्यम् एभिः गुणैः युक्तः दानाध्यक्षः प्रकीर्तितः॥ १५९-१६५ ॥

व्याख्या—किञ्च, यः= पुरुषः, सुशिल्पशास्त्रतः= सुष्ठुहस्तव्यवसायशास्त्रतः, सम्यक् = सर्वप्रकारेण, सुरम्यम् = रुचिरम्, यथा = येन प्रकारेण, भवेत् = स्यात्, तथा, प्रासादम् = हर्म्यम्, परिखाम् = खातम्, दुर्गम् = कोटः, प्रकारम् = वप्रम्, तथा प्रतिमाम् = अनुकृतिम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, यन्त्राणि = देवाद्यधिष्ठानानि, सेतुबन्धम् = संवरनिर्माणम्, वापीम् = दीर्घिकाम्, कूपम् = अंधुः, तडागकम् = कासारकम्, तथा = तेनैव रूपेण, पुष्करिणीम् = सरसीम्, कुण्डम् = पल्वलम्, तथा, जलाद्ययूर्ध्वगतिक्रियाम् — जलादीनाम् = सलिलप्रभृतीनाम्, ऊर्ध्वगतिक्रियाम् = कर्त्तुं यन्त्रादिनोपरिप्रक्षेपणविधिम्, जानाति = वेत्ति, सैव = अत्र सन्धिः आर्षः प्रयोगः, स एव = असावेव, गृहादीनाम् = भवनादीनाम्, अधिपतिः= अध्यक्षः, स्मृतः= प्रोक्तः। यः तत्त्वतः= तथ्येन, राजकार्योपयोग्यान् = शासनकृत्योपयुक्तान्, पदार्थान् = द्रव्याणि, जानाति = वेत्ति, यथाकाले = उचितावसरे, सञ्चिनोति = सङ्गृह्यते, सः सम्भाराधिपः= समाहरणाधिकारी, उच्यते = कथ्यते। यश्च, सदा = सततम्, स्वधर्माचरणे = आत्मधर्मानुष्ठाने, दक्षः= कुशलः, देवताराधने = देवपूजने, रतः= आसक्तः, तथा निःस्पृहः= निरभिलाषः, सः= असौ, देवतुष्टिपतिः= देवर्चनाध्यक्षः, कर्त्तव्यः= विधातव्यः, किञ्च यः दानशीलः= वदान्यः, निर्लोभः= लोभरहितः, गुणज्ञः= गुणग्राहकः, मर्मज्ञो वेति, निरालस = निर्मान्द्यम्, दयालुः= दयिलुः मृदुवाक् = मधुरभाषी, दानपात्रवित् = दानग्रहणाधिकारिवित्, नतितत्परः= विनयशीलः सन्, याचकम् = अर्थिनम्, विमुखम् = विरतः, नैव = नास्त्येव, करोति, सङ्ग्रहम् = आत्मन्यर्थे सञ्चयनमपि नैव करोति, सः= असौ, नित्यम् = सततम्, एभिः= पूर्वोक्तदानशीलादिभिः, गुणैः= स्वभावैः, युक्तः= समन्वितः, दानाध्यक्षः= दानपतिः, प्रकीर्तितः= कथितः॥ १५९-१६५ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति शिल्पशास्त्रविशारद हो तथा अपनी आज्ञानुसार सुन्दर आकर्षक राजमहल, खाई, किला, परकोटा, प्रतिमा, देवताओं के मन्दिर, पुल, बावड़ी, कुँआ, तालाब, पोखर, कुण्ड, फव्वारा— इन्हें जो सुन्दर ढंग से बनाने में कुशल हो, उसे गृहाध्यक्ष बनाना चाहिए। जो यथार्थ रूप से प्रशासनिक कार्यों में आने वाली सभी वस्तुओं की जानकारी रखता है, उसे समाहरणाधिकारी कहते हैं। जो निरन्तर अपने धार्मिक अनुष्ठान में संलग्न रहे, देवार्चन में लगा रहे, अपने लिए किसी वस्तु की कामना न करे, उसे देवपूजा का अध्यक्ष बनाना चाहिए। जो माँगने वाले को कभी निराश न करता हो, अपने लिए कुछ संग्रह न करता हो, दानशील हो, लोभ रहित हो, गुणग्राहक हो, आलस्यरहित, कृपालु, मधुरभाषी, दान देने योग्य व्यक्ति को पहचानने वाला और विनत हो; ऊपरवर्णित गुणों से सदैव युक्त हो तो उसे दानाध्यक्ष बनाना चाहिए॥ १५९-१६५ ॥

प्रासादमित्यादि। यः सुशिल्पशास्त्रतः शोभनशिल्पशास्त्रसमालोचनया सम्यक् सुरम्यं यथा भवेत् तथा प्रासादं देवराजभवनं परिखां दुर्गवेष्टनजलाशयं दुर्गं प्राकारं प्राचीरं प्रतिमां प्रतिमूर्त्तिं यन्त्राणि सेतुबन्धं वापीं दीर्घिकां कूपं तडागकं सरोवरं पुष्करिणीं कुण्डं तथा जलादीनाम् ऊर्द्ध्वं गतिक्रियां यन्त्रादिना ऊर्द्ध्वगमनं कर्त्तुं जानाति सैव स एव गृहादीनाम् अधिपतिः स्मृतः कथितः। सैवेति सन्धिः आर्षः प्रयोगः। यः तत्त्वतः याथार्थ्येन राजकार्य्योपयोग्यान् पदार्थान् वस्तूनि वेत्ति

जानाति यथाकाले सञ्चिनोति च सः सम्भाराधिप उच्यते। यश्च सदा स्वधर्माचरणे दक्षः तत्परः देवतानामाराधने परिचर्य्यायां रतः आसक्तः तथा निष्पृहः निराकाङ्क्षः लोभरहित इत्यर्थः, सः देवतुष्टिपतिः देवार्चनाध्यक्षः कर्तव्यः। किञ्च यः दानशीलः निर्लोभः गुणज्ञः निरालसः आलस्यरहितः दयालुः मृदुवाक् मधुरभाषी दानपात्रवित् नतितत्परः विनतः सन् याचकं विमुखं नैव करोति कदापि न करोतीत्येवशब्दात् प्रतीयते। सङ्ग्रहं स्वयं ग्रहणञ्च न करोति सः नित्यं सततम् एभिर्गुणैः दानशीलत्वादिभिः युक्तः दानाध्यक्षः प्रकीर्त्तितः॥ १५९-१६५ ॥

व्यवहारविदः प्राज्ञा वृत्तशीलगुणान्विताः।
रिपौ मित्रे समा ये च धर्मज्ञाः सत्यवादिनः॥ १६६ ॥
निरालसा जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदाः।
सभ्याः सभासदः कार्य्या वृद्धाः सर्वासु जातिषु॥ १६७ ॥

अन्वयः—ये च सर्वासु व्यवहारविदः प्राज्ञाः वृत्तशीलगुणान्विताः रिपौ मित्रे च समाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः निरालसाः जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदाः वृद्धाः तथा सभ्याः सभासदः कार्याः॥ १६६-१६७ ॥

व्याख्या—ये च = जनाः सर्वासु = सकलासु, जातिषु = वर्णेषु, मध्ये, व्यवहारविदः = ऋणादानाद्यष्टादशविवादज्ञाः, 'विवादो व्यवहारः स्यात्' इत्यमरः, 'विनानार्थेव सन्देहे हरणं हार उच्यते। नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति स्मृतः' ॥ इति कात्यायनः। अथवा लोकाचारविशेषज्ञाः, प्राज्ञाः = प्रकर्षज्ञानवन्तः, वृत्तशीलगुणान्विताः— वृत्तैः = आचरणैः, शीलैः = स्वभावैः, गुणैः = दयादाक्षिण्यादिभिः, अन्विताः = सहिताः, रिपौ = अरौ, मित्रे = सख्यौ, च, समाः = तुल्याः, धर्मज्ञाः = धर्मविदः, सत्यवादिनः = यथार्थवक्तारः, निरालसाः = आलस्यरहिताः, जितक्रोधकामलोभाः = विजितमन्युमदनमनोरथाः, प्रियंवदाः = प्रियभाषिणः, वृद्धाः = वयस्काः, तथा सभ्याः = शिष्टाः, सभासदः = परिषदः, कार्याः = विधेयाः॥ १६६-१६७ ॥

हिन्दी—जो विवादविशेषज्ञ अथवा लोकाचारविशेषज्ञ, सदाचारी, शीलगुणयुक्त, शत्रु-मित्र में समभाव रखने वाले, धर्मज्ञ, सत्यवादी, आलस्यरहित, क्रोध-काम और लोभ को जीतने वाले, प्रियवादी, सभी जाति के बूढे तथा शिष्ट लोगों को सभासद बनाना चाहिए॥ १६६-१६७ ॥

व्यवहारेत्यादि। ये च सर्वासु जातिषु मध्ये व्यवहारविदः ऋणादानाद्यष्टादशविवादज्ञा वा लौकिकाचाराज्ञाः प्राज्ञाः विद्वांसः वृत्तैः सदाचारैः शीलैः सौजन्यादिभिः गुणैः दयादाक्षिण्यादिभिः अन्विताः युक्ताः रिपौ शत्रौ मित्रे सुहृदि च समाः धर्मज्ञाः धार्मिकाः सत्यवादिनः निरालसाः आलस्यवर्जिताः जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदाः प्रियभाषिणः वृद्धाः स्थविराः तथा सभ्याः सभासदः कार्य्याः॥ १६६-१६७ ॥

सर्वभूतात्मतुल्यो यो निष्पृहोऽतिथिपूजकः।
दानशीलश्च यो नित्यं सैव सत्राधिपः स्मृतः॥ १६८ ॥

अन्वयः—यः सर्वभूतेषु आत्मतुल्यः निष्पृहः नित्यम् अतिथिपूजकः दानशीलश्च सैव सत्राधिपः स्मृतः॥ १६८ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, सर्वभूतेषु = सकलचराचरेषु, आत्मतुल्यः = स्वसदृशः, निष्पृहः =

निरभिलाषः, नित्यम् = सततम्, अतिथिपूजकः = अभ्यागतोपासकः, च = पुनः, दानशीलः = वदान्यः, 'सैव' इत्यार्षः, स एव सत्राधिपः = यज्ञाध्यक्षः, स्मृतः = कथितः ॥ १६८ ॥

हिन्दी—जो सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मवत् अनुभूति प्राप्त करता हो तथा लोभरहित प्रतिदिन अतिथिपूजक तथा दानशील हो, उसे यज्ञाधिप होना चाहिए ॥ १६८ ॥

सर्वभूतेति। यः सर्वभूतेषु सर्वप्राणिषु आत्मतुल्यः निष्पृहः निर्लोभः नित्यम् अतिथिपूजकः तथा दानशीलश्च सैव स एव सत्राधिपः यज्ञाध्यक्षः स्मृतः। सैवेति पूर्ववदार्षम् ॥ १६८ ॥

परोपकारनिरतः परमर्माप्रकाशकः ।
निर्मत्सरो गुणग्राही तद्विद्यः स्यात् परीक्षकः ॥ १६९ ॥

अन्वयः—यः परोपकारनिरतः परमर्माप्रकाशकः निर्मत्सरः गुणग्राही तथा तद्विद् यः स्यात् परीक्षकः ॥ १६९ ॥

व्याख्या—यः = जनः, परोपकारनिरतः— परेषाम् = आत्मभिन्नानां जनानाम्, उपकारे = हिते, निरतः = बद्धभावः, परमर्माप्रकाशकः—परेषाम् = अन्येषाम्, मर्मणाम् = गोप्यवृत्तानाम्, अप्रकाशकः = अख्यापकः, निर्मत्सरः = परोत्कर्षद्वेषविहीनः, गुणग्राही = गुणान्वेषी, तथा = तेन प्रकारेण तत् = तेषाम्, विद् = ज्ञाता, स्यात् = भवेत्, सः = असौ, परीक्षकः = निरूपको भवति ॥ १६९ ॥

हिन्दी—दूसरों के हितसाधन में निरत, दूसरों के रहस्य-भेदन में विरत, ईर्ष्याहीन तथा गुणग्राही व्यक्ति को परीक्षक बनाना चाहिए ॥ १६९ ॥

परोपकारेति। यः परेषाम् उपकारे निरतः परेषां मर्माप्रकाशकः मर्मदारणदोषाप्रकाशी निर्मत्सरः अन्यशुभद्वेषरहितः गुणग्राही तथा तद्विद् गुणज्ञः सः परीक्षकः स्यात् ॥ १६९ ॥

प्रजा नष्टा न हि भवेत् तथा दण्डविधायकः ।
नातिक्रूरो नातिमृदुः साहसाधिपतिश्च सः ॥ १७० ॥

अन्वयः—यः प्रजा यथा नष्टा न भवेत् तथा दण्डविधायकः नातिक्रूरः नातिमृदुः सः साहसाधिपतिः कर्त्तव्यः ॥ १७० ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, प्रजा = प्रशासितजनाः, यथा = येन प्रकारेण, नष्टाः = विलीनाः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, तथा = तेन प्रकारेण, दण्डविधायकः = तादृशदण्डकारः, नातिकूरः = नातिशयनिष्ठुरः, नातिमृदुः = नातिकोमलः, साहसाधिपतिः = प्रशासनिकदमनकर्माध्यक्षः; 'साहसं तु दमो दण्डः' इत्यमरः, 'दमः स्यात्कर्दमे दण्डे दमने दमथेऽपि च' इति हेमचन्द्रः, कर्त्तव्यः = विधातव्यः ॥ १७० ॥

हिन्दी—जो प्रजा को ऐसा दण्ड न दे जिससे वह विनष्ट हो जाय ऐसा भी दण्डविधान न करे, जो अत्यन्त कठोर हो या अत्यन्त कोमल हो, उसे साहसाधिपति बनाये ॥ १७० ॥

प्रजेति। यः प्रजा यथा नष्टा न भवेत् तथा दण्डविधायकः तादृशदण्डकारः नातिक्रूरः नातिनिष्ठुरः नातिमृदुः नात्यन्तकोमलश्च सः साहसाधिपतिः चौर्य्यादिशासनाध्यक्षः कर्त्तव्य इति शेषः ॥ १७० ॥

आधर्षकेभ्यश्चोरेभ्यो ह्यधिकारिगणात् तथा ।
प्रजासंरक्षणे दक्षो ग्रामपो मातृपितृवत् ॥ १७१ ॥

वृक्षान् सम्पुष्य यत्नेन फलं पुष्पं विचिन्वति।
मालाकार इवात्यन्तं भागहारस्तथाविधः ॥ १७२ ॥

अन्वयः—ग्रामपः आधर्षकेभ्यः तथा अधिकारिगणात् मातृपितृवत् प्रजासंरक्षणे दक्षः भवेत्। मालाकारः इव यत्नेन वृक्षान् अत्यन्तं सम्पुष्य फलं पुष्पं च विचिन्वति तथाविधः भागहारः भवेत् ॥ १७१-१७२ ॥

व्याख्या—ग्रामपः= ग्रामपालकः, आधर्षकेभ्यः= चौरादिलुण्ठकेभ्यः, तथा= तेनैव रूपेण, अधिकारिगणात्= दुश्चरित्रराजपुरुषात्, मातृपितृवत्= जननीजनकसदृशः, प्रजासंरक्षणे= प्रजापालने, दक्षः= कुशलो भवेत्। मालाकारः= उद्यानपालः, इव= यथा, यत्नेन= सायासेन, वृक्षान्= पादपान्, अत्यन्तम्= अत्यधिकम्, सम्पुम्य= सुष्ठुतया सम्पोष्य, फलम्= शस्यम्, पुष्पम्= प्रसूनम्, च, विचिन्वति= समाहरति, तथाविधः= तेनैव प्रकारेण, भागहारः= प्रजाभ्यः राजाशहारी भवेदिति ॥ १७१-१७२ ॥

हिन्दी—चोर-डाकुओं से तथा दुर्वृत्त राजकर्मचारियों और पदाधिकारियों से माँ-बाप की तरह प्रजा की रक्षा करने में जो कुशल होता है, वह ग्रामाधिपति कहलाता है। माली जैसे प्रयासपूर्वक पौधों को पालकर उससे फल-फूल प्राप्त करता है, उसी तरह भागहार प्रजा का संरक्षण कर उससे राजांश संग्रहीत करता है ॥ १७१-१७२ ॥

आधर्षकेभ्य इति। ग्रामपः ग्रामाधिपतिः आधर्षकेभ्यः दस्युभ्यः चोरेभ्यः तथा अधिकारिगणात् दुर्वृत्तराज्यपुरुषवर्गात् मातृपितृवत् मातेव पितेव च प्रजानां संरक्षणे सम्यक् प्रतिपालने दक्षः यत्नवान् सन् यथा मालाकारः माली यत्नेन वृक्षान् अत्यन्तं सम्पुष्य सम्यक् वर्द्धयित्वा फलं पुष्पञ्च विचिन्वति लभते, तथाविधः भागहारः तद्वद्भागहारीत्यर्थः, भवेदिति शेषः, प्रजाभ्यः रक्षणमूल्यस्वरूपराजग्राह्यांशं गृह्णीयादिति यावत् ॥ १७१-१७२ ॥

गणनाकुशलो यस्तु देशभाषाप्रभेदवित्।
असन्दिग्धमगूढार्थं विलिखेत् स च लेखकः ॥ १७३ ॥

अन्वयः—यस्तु गणनाकुशलः देशभाषाप्रभेदवित् असन्दिग्धम् अगूढार्थं विलिखेत् सः च लेखकः ॥ १७३ ॥

व्याख्या—तु= पुनः, यः= पुरुषः, गणनाकुशलः —गणनायाम्= गणने, कुशलः= चतुरः, देशभाषाप्रभेदवित्— देशानाम्= जनपदानाम्, भाषाणाम्= वचनानाम्, च प्रभेदविद्= प्रकारज्ञः, असन्दिग्धम्= संशयरहितम्, अगूढार्थम्= दुर्बोधार्थरहितम्, विलिखेत्= लिपिबद्धं कुर्यात्, सः= असौ, च= पुनः, लेखकः= लिपिकारः, भवेदिति ॥ १७३ ॥

हिन्दी—गिनती करने में कुशल, देश और भाषा के प्रभेदों का जानकार, असन्दिग्ध एवं स्पष्टार्थ लिखने वाले को लेखक के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥ १७३ ॥

गणनेति। यस्तु गणनायां संख्याने कुशलः तथा देशानां भाषाणाञ्च प्रभेदविद् विशेषज्ञानवान् असन्दिग्धं सन्देहरहितं तथा अगूढार्थं स्पष्टार्थं यथा तथा विलिखेत् स च लेखकः ॥ १७३ ॥

शस्त्रास्त्रकुशलो यस्तु दृढाङ्गश्च निरालसः।
यथायोग्यं समाहूयात् प्रणम्रः प्रतिहारकः ॥ १७४ ॥

अन्वयः—यस्तु शस्त्रास्त्रकुशलः दृढाङ्गः च निरालसः तथा प्रणम्रः यथायोग्यं समाहूयात् सः प्रतिहारकः ॥ १७४ ॥

व्याख्या—यस्तु = यो हि पुरुषस्तु, शस्त्रास्त्रकुशलः—शस्त्रेषु = अक्षेपणीयेषु प्रहरणेषु, अस्त्रेषु = क्षेपणीयेषु प्रहरणेषु, कुशलः = प्रवीणः, दृढाङ्गः = सबलशरीरः, च = पुनः, निरालसः = प्रमादशून्य, तथा प्रणम्रः = विनयावनतः, यथायोग्यम् = यथोचितम्, समाहूयात् = सम्यग्रूपेणाह्वानं कुर्यात्, सः = असौ, प्रतिहारकः = दौवारिको भवेदिति ॥ १७४ ॥

हिन्दी—जो हाथ में लेकर तथा हाथ से फेंककर हथियार चलाने में प्रवीण हों, मजबूत देह वाला, आलस्य रहित, विनम्र तथा यथोचित जन को बुलाकर राजा के सामने उपस्थित करने वाले को द्वारपाल के पद पर नियुक्त करे ॥ १७४ ॥

शस्त्रेति। यस्तु शस्त्रेषु अक्षेपणीयेषु प्रहरणेषु अस्त्रेषु क्षेपणीयेषु प्रहरणेषु कुशलः निपुणः दृढाङ्गः कठिनशरीरः निरालसः आलस्यहीनः तथा प्रणम्रः विनतः सन् यथायोग्यं समाहूयात् समाह्वानं कुर्य्यात् करोतीत्यर्थः, सः प्रतिहारकः ॥ १७४ ॥

यथा विक्रयिणां मूलधननाशो भवेन्न हि।
तथा शुल्कन्तु हरति शौल्किकः स उदाहृतः ॥ १७५ ॥

अन्वयः—विक्रयिणां यथा मूलधननाशः न हि भवेत् तथा शुल्कं हरति सः शौल्किकः उदाहृतः ॥ १७५ ॥

व्याख्या—विक्रयिणाम् = विपणिनाम्, यथा = येन प्रकारेण, मूलधननाशः = मूलवित्तविनाशः, न हि = नास्त्येव, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव रूपेण, शुल्कम् = राजकीयकरम्, हरति = समाहरति, सः = असौ, शौल्किकः = करग्राही, उदाहृतः = कथितः इति ॥ १७५ ॥

हिन्दी—बनिये को मूलधन में जिससे कमी न आये, ऐसा सोचकर कर वसूल करने वाले को शौल्किक अर्थात् समाहर्ता के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥ १७५ ॥

यथेति। विक्रयिणां व्यवसायिनां यथा मूलधननाशः न हि नैव भवेत्, यः तथा शुल्कं तादृशं राजग्राह्यं हरति आदत्ते वणिग्भ्य इति शेषः, सः शौल्किकः शुल्कग्राही उदाहृतः कथितः ॥ १७५ ॥

जपोपवासनियमकर्मध्यानरतः सदा।
दान्तः क्षमी निष्पृहश्च तपोनिष्ठः स उच्यते ॥ १७६ ॥

अन्वयः—यः सदा जपोपवासनियमकर्मध्यानरतः दान्तः क्षमी निष्पृहः सः तपोनिष्ठः उच्यते ॥ १७६ ॥

व्याख्या—यः = जनः, सदा = सर्वदा, जपे = मुहुर्मुहुर्मन्त्रोच्चारणे, उपवासने = उपोषणे, नियमे = नियोगे, कर्मणि = कृत्ये, तथा ध्याने = समाधौ, रतः = आसक्तः, दान्तः = आत्मनियन्त्रितः, क्षमी = क्षमाशीलः, निष्पृहः = निष्कामः, सः = असौ, तपोनिष्ठः = तपोनिधिः, उच्यते = कथ्यते ॥ १७६ ॥

हिन्दी—जो सदा व्रत, उपवास, नियम, कर्मनिष्ठ, ध्याननिरत, वशी, क्षमाशील और निष्काम हो, उसे तपोधन कहते हैं ॥ १७६ ॥

जपोपवासेति। यः सदा जपे उपवासे नियमे व्रतपालने कर्मणि तथा ध्याने समाधौ रतः दान्तः निगृहीतेन्द्रियः क्षमी क्षमावान् तथा निष्पृहः निर्लोभश्च सः तपोनिष्ठ उच्यते ॥ १७६ ॥

याचकेभ्यो ददात्यर्थं भार्य्यापुत्रादिकं त्वपि।
न सङ्गृह्णाति यत्किञ्चिद्दानशीलः स उच्यते ॥ १७७ ॥

अन्वयः—यः याचकेभ्यः अर्थं ददाति किन्तु भार्यापुत्रादिकं तु अपि यत्किञ्चित् न सङ्गृह्णाति सः दानशीलः उच्यते ॥ १७७ ॥

व्याख्या—यः = जनः, याचकेभ्यः = प्रार्थकेभ्यः, अर्थम् = धनम्, ददाति = प्रत्यर्पयति, किन्तु, भार्यापुत्रादिकम् = पत्नीपुत्रादिहेतवे, तु = किन्तु, अपि = चेत्, यत्किञ्चित् = स्तोकमपि, न = नहि, सङ्गृह्णाति = सङ्ग्रहं करोति, सः = असौ, दानशीलः = दानी, उच्यते = कथ्यते ॥ १७७ ॥

हिन्दी—जो माँगने पर याचकों को सारा धन दे डाले, अपनी पत्नी और पुत्र के लिए थोड़ा भी बचाकर न रखे, वह दानशील कहलाता है ॥ १७७ ॥

याचकेभ्य इति। यः याचकेभ्यः अर्थिभ्यः अर्थं ददाति किन्तु भार्य्यापुत्रादिकं स्त्रीपुत्रादिनिमित्तमित्यर्थः, अपि यत्किञ्चित् धनमिति शेषः, न सङ्गृह्णाति सञ्चिनोति सः दानशीलः उच्यते ॥ १७७ ॥

पठनं पाठनं कर्त्तुं क्षमास्त्वभ्यासशालिनः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां श्रुतज्ञास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ १७८ ॥

अन्वयः—ये श्रुतिस्मृतिपुराणानां पठनं पाठनं कर्त्तुं क्षमाः तथा अभ्यासशालिनः ते श्रुतज्ञाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १७८ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् = वेदस्मृत्याख्यानग्रन्थानाम्, पठनम् = अध्ययनम्, पाठनम् = अध्यापनम्, कर्त्तुम् = विधातुम्, क्षमाः = समर्थाः, तथा अभ्यासशालिनः = अनुशीलनकर्त्तारः, ते = जनाः, श्रुतज्ञाः, प्रकीर्त्तिताः = कथिताः ॥ १७८ ॥

हिन्दी—जो वेद, स्मृति तथा पुराणों के पठन-पाठन में सक्षम हों तथा उन सबों का निरन्तर अनुशीलन करने वाले हों, उन्हें 'श्रुतज्ञ' कहते हैं ॥ १७८ ॥

पठनमिति। ये श्रुतिस्मृतिपुराणानां पठनम् अध्ययनं पाठनम् अध्यापनञ्च कर्त्तुं क्षमाः तथा अभ्यासशालिनः अभ्याससमर्थाः ते श्रुतज्ञाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १७८ ॥

साहित्यशास्त्रनिपुणः सङ्गीतज्ञश्च सुस्वरः।
सर्गादिपञ्चकज्ञाता स वै पौराणिकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अन्वयः—यः साहित्यशास्त्रेषु निपुणः सङ्गीतज्ञः सुस्वरः तथा सर्गादिपञ्चकज्ञाता सः वै पौराणिकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, साहित्यशास्त्रेषु = काव्यशास्त्रेषु, निपुणः = कुशलः, सङ्गीतज्ञः = सङ्गीतशास्त्रविशारदः, सुस्वरः = सुमधुरम्, तथा सर्गादिपञ्चकानाम् = वंशानुचरितानाम्; तद्यथा—"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥" ज्ञाता = बोद्धा, सः = असौ, वै = निश्चयेन, पौराणिकः = हिन्दूनामष्टादशाख्यानग्रन्थज्ञः, स्मृतः = कथितः ॥ १७९ ॥

हिन्दी—काव्यशास्त्र में जो निपुण हो, संगीतज्ञ हो, जिसकी आवाज सुरीली हो तथा

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—इन पाँचों का जानकार हो, उसे पौराणिक कहते हैं ॥ १७९ ॥

साहित्येति। यः साहित्यशास्त्रेषु काव्यशास्त्रेषु निपुणः सङ्गीतज्ञः सुस्वरः मधुरवाक् तथा सर्गादिपञ्चकानां सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वन्तरवंशानुचरितानां; 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणमि'त्युक्तेः; ज्ञाता वेत्ता स वै स एव पौराणिकः पुरावृत्तज्ञः स्मृतः कथितः ॥ १७९ ॥

मीमांसातर्कवेदान्तशब्दशासनतत्परः ।
ऊहवान् बोधितुं शक्तस्तत्त्वतः शास्त्रविच्च सः ॥ १८० ॥

अन्वयः—यः मीमांसातर्कवेदान्तशब्दशासनतत्परः ऊहवान् बोधितुं तथा तत्त्वतः बोधितुं शक्तः सः शास्त्रवित् ॥ १८० ॥

व्याख्या—यः, मीमांसायाम् = दर्शनशास्त्रविशेषे, तर्के = न्यायशास्त्रे, वेदान्ते = ब्रह्मविद्यायाम्, तथा शब्दशास्त्रे = व्याकरणे, तत्परः = निरतः, ऊहवान् = तर्कविचारक्षमः, तत्त्वतः = यथार्थतः, बोधितुम् = बोधकर्त्तुम्, शक्तः = क्षमः, सः = असौ, शास्त्रवित् = शास्त्रवेत्ता ॥ १८० ॥

हिन्दी—जो मीमांसा, न्याय, वेदान्त तथा व्याकरणशास्त्र का ज्ञाता हो तथा उक्त शास्त्रों में तार्किक क्षमता रखता हो; उसे समझाने की यथार्थ क्षमता रखता हो, उसे शास्त्रविद् कहते हैं ॥ १८० ॥

मीमांसेति। यः मीमांसायां तर्के वेदान्ते तथा शब्दशासने व्याकरणादिशब्दशास्त्रे तत्परः विज्ञः ऊहवान् तर्कविचारक्षमः तथा तत्त्वतः बोधितुं बोधयितुमित्यर्थः, आर्षमिदम्। शक्तः समर्थः स शास्त्रवित् शास्त्रज्ञः ॥ १८० ॥

संहिताञ्च तथा होरां गणितं वेत्ति तत्त्वतः ।
ज्योतिर्विच्च स विज्ञेयो त्रिकालज्ञश्च यो भवेत् ॥ १८१ ॥

अन्वयः—यः होरां संहितां च गणितं तत्त्वतः वेत्ति, त्रिकालज्ञः भवेत्, सः ज्योतिर्विद् विज्ञेयः ॥ १८१ ॥

व्याख्या—यः होराम् = जन्मपत्रिकानिर्णायिकाम्, संहिताम् = शास्त्रम्, च = पुनः, गणितम् = गणनाशास्त्रम्, तत्त्वतः = यथार्थतः, वेत्ति = जानाति, त्रिकालज्ञः = त्रिकालवेत्ता सर्वज्ञो वा, भवेत् = स्यात्, सः = असौ, ज्योतिर्वित् = ज्योतिषिकः, विज्ञेयः = ज्ञातव्य इति ॥ १८१ ॥

हिन्दी—जो जन्मकुण्डली बनाना जानता हो, गणितज्ञ हो तथा त्रिकालदर्शी हो, उसे ज्योतिषी कहते हैं ॥ १८१ ॥

संहितामिति। यः होरां होरानिर्णायिकां संहितां शास्त्रं तथा गणितं तत्त्वतः याथार्थ्येन वेत्ति जानाति तथा त्रिकालज्ञः भूतभवद्भविष्यज्ञः भवेत् सः ज्योतिर्विद् ज्योतिषिकः विज्ञेयः ॥ १८१ ॥

बीजानुपूर्व्या मन्त्राणां गुणान् दोषांश्च वेत्ति यः ।
मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नो मान्त्रिकः सिद्धदैवतः ॥ १८२ ॥

अन्वयः—यः बीजानुपूर्व्या मन्त्राणां गुणान् दोषान् च वेत्ति तथा मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः सिद्धदैवतः सः मान्त्रिकः ॥ १८२ ॥

व्याख्या—यः = जनः, बीजानुपूर्व्या—बीजानाम् = अव्यक्तशक्तिसूचकमन्त्राक्षराणाम्, आनुपूर्व्या = पूर्वानुक्रमेण, मन्त्राणाम् = वेदवाक्यानाम्, गुणान् = धर्मान्, दोषान् = छिद्रान्, च = पुनः, वेत्ति = जानाति, तथा = तेनैव रूपेण, मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः = मन्त्राणां सविधिसम्पादने निष्पन्नः, सिद्धदैवतः = देवतासिद्धः, सः = असौ, मान्त्रिकः = मन्त्रवेत्ता, उच्यते ॥ १८२ ॥

हिन्दी—बीजभूत मंत्राक्षरों के पूर्वानुक्रम से जो परिचित हो, मंत्र के गुण-दोषों का ज्ञान हो नित्य मंत्रानुष्ठान में लगा हो तथा जिसे देवता की सिद्धि हो, वह मांत्रिक कहलाता है ॥१८२ ॥

बीजेति। यः बीजानां बीजिभूतमन्त्राणाम् आनुपूर्व्या पूर्वानुक्रमेण मन्त्राणां गुणान् दोषांश्च वेत्ति तथा मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः सिद्धदैवतः देवतासिद्धश्च सः मान्त्रिकः मन्त्राचार्य्यः ॥ १८२ ॥

हेतुलिङ्गौषधीभिर्यो व्याधीनां तत्त्वनिश्चयम् ।
साध्यासाध्यं विदित्वोपक्रमते स भिषक् स्मृतः ॥ १८३ ॥

अन्वयः—यः हेतुलिङ्गौषधीभिः व्याधीनां तत्त्वनिश्चयं साध्यासाध्यं विदित्वा उपक्रमते सः भिषग् स्मृतः ॥ १८३ ॥

व्याख्या—यः = जनः, हेतुभिः = युक्तिभिः, लिङ्गैः = अनुमानकारणैः, च = पुनः, औषधीभिः = भैषज्यैः, व्याधीनाम् = रोगाणाम्, तत्त्वनिश्चयम् = तथ्यनिर्णयः, साध्यासाध्यम् = शक्याशक्यम्, विदित्वा = ज्ञात्वा, उपक्रमते = उपायज्ञानपूर्वकम् आरभते, सः = असौ, भिषग् = वैद्यः, स्मृतः = कथितः ॥ १८३ ॥

हिन्दी—जो कारण एवं लक्षण से रोग का तथ्य निर्णय कर, रोग साध्य है या असाध्य इसकी जानकारी प्राप्त कर चिकित्सा प्रारंभ करता है, उसे वैद्य कहते हैं ॥ १८३ ॥

हेत्विति। यः हेतुभिः कारणैः लिङ्गैः चिह्नैः औषधीभिश्च आधीनां रोगाणां तत्त्वनिश्चयं याथार्थ्य-निर्णयं साध्यासाध्यञ्च विदित्वा ज्ञात्वा, उपक्रमते चिकित्सामारभते सः भिषक् वैद्यः स्मृतः ॥ १८३ ॥

श्रुतिस्मृतीतरैर्मन्त्रानुष्ठानैर्देवतार्चनम् ।
कर्त्तुं हिततमं मत्वा यतते स च तान्त्रिकः ॥ १८४ ॥

अन्वयः—यः श्रुतिस्मृतीतरैः मन्त्रानुष्ठानैः देवतार्चनं हिततमं मत्वा कर्त्तुं यतते सः च तान्त्रिकः ॥ १८४ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, श्रुत्या = वेदेन, स्मृत्या = मन्वादिनिर्मितधर्मग्रन्थेन, इतरैः = पुराणादिना विहितैः, मन्त्रानुष्ठानैः = मन्त्राणां फलविशेषाय सविधिसम्पादनैः, देवतार्चनम् = देवपूजनम्, हिततमम् = सर्वाधिकलाभदम्, मत्वा = परिज्ञाय, कर्त्तुम् = सम्पादितुम्, यतते = प्रयत्नं कुरुते, सः = असौ, तान्त्रिकः = तन्त्रप्रयोक्ता भवति ॥ १८४ ॥

हिन्दी—जो वेद, पुराण और स्मृति द्वारा प्रतिपादित मंत्रों के अनुष्ठान से प्रयत्नपूर्वक इन्हें अत्यन्त लाभप्रद मानकर देवपूजन करता है, उसे तांत्रिक कहते हैं ॥ १८४ ॥

श्रुतीति। यः श्रुत्या स्मृत्या इतरेण पुराणादिना विहितैः मन्त्रानुष्ठानैः देवतार्चनं हिततमं मत्वा कर्त्तुं यतते, स तान्त्रिकः ॥ १८४ ॥

नपुंसकाः सत्यवाचः सुभूषाश्च प्रियंवदाः ।
सुकुलाश्च सुरूपाश्च योज्यास्त्वन्तःपुरे सदा ॥ १८५ ॥

अन्वयः—ये सत्यवाचः सुभूषाः प्रियंवदाः सुकुलाः सुरूपाः नपुंसकाः च सदा अन्तःपुरे योज्याः ॥ १८५ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, सत्यवाचः = सत्यवादिनः, सुभूषाः = सुष्ठुवस्त्रालङ्कारयुक्ताः, सुकुलाः = सद्वंशोत्पन्नाः, सुरूपाः = शोभनाकृतिसम्पन्नाः, नपुंसकाः = क्लीबाः, सदा = सर्वदा, अन्तःपुरे = अवरोधे, योज्याः = नियोक्तव्याः ॥ १८५ ॥

हिन्दी—जो सत्यवादी, मधुरभाषी, सुवेषधारी, सुन्दर, कुलीन और नपुंसक हैं, उन्हें रनिवास के सेवक नियुक्त करना चाहिए ॥ १८५ ॥

नपुंसका इति। ये सत्यवाचः सत्यवादिनः सुभूषाः शोभनालङ्काराः प्रियंवदाः प्रियभाषिणः सुकुलाः सद्वंशजाः सुरूपाः नपुंसकाः क्लीबाः, ते सदा अन्तःपुरे योज्याः रक्षणीयाः ॥ १८५ ॥

अनन्याः स्वामिभक्ताश्च धर्मनिष्ठा दृढाङ्गकाः।
अबाला मध्यवयसः सेवासु कुशलाः सदा ॥ १८६ ॥
सर्वं यद्यत् कार्य्यजातं नीचं वा कर्त्तुमुद्यताः।
निदेशकारिणो राज्ञा कर्त्तव्या परिचारकाः ॥ १८७ ॥

अन्वयः—ये अनन्याः स्वामिभक्ताः धर्मनिष्ठाः दृढाङ्गकाः अबालाः मध्यवयसः सेवासु कुशलाः सर्वं यत् यत् कार्यजातं नीचं वा कर्तुम् उद्यतः सदा निदेशकारिणः—राज्ञा परिचारकाः कार्याः ॥ १८६-१८७ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, अनन्याः = एकनिष्ठाः, स्वामिभक्ताः = पालकपरायणाः, धर्मनिष्ठाः = धार्मिकाः, दृढाङ्गकाः = सशक्तशरीराणि, अबालाः = शैशवातीताः, मध्यवयसः = युवानः, सेवासु = परिचर्यासु, कुशलाः = दक्षाः, सर्वम् = सकलम्, यत् यत् = यत्किञ्चित्, कार्यजातम् = अनुष्ठेयवस्तूनि, नीचम् = निकृष्टमपि, कर्तुम् = सम्पादयितुम्, उद्यतः = तत्परः, सदा = सर्वदा, निदेशकारिणः = आज्ञापालकाः, राज्ञा = नृपेण, कार्याः = विधातव्याः ॥ १८६-१८७ ॥

हिन्दी—जो एकनिष्ठ स्वामीभक्त हों, धर्मनिष्ठ हों, कद्दावर जवान हों, सदा सेवा में तत्पर हों, पालक की परिचर्या में नीच कर्म करने को भी तत्पर हों तथा मालिक के हर हुक्म का पालन करने वाले हों—ऐसे लोगों को परिचारक बनायें ॥ १८६-८७ ॥

अनन्या इति। सर्वमिति। ये अनन्याः नापरसङ्क्रान्ता इत्यर्थः, स्वामिभक्ताः प्रभुपरायणाः धर्मनिष्ठाः धर्मपराः दृढाङ्गकाः कठिनशरीराः अबालाः शैशवातीताः मध्यवयसः तरुणाः सेवासु कुशलाः परिचर्य्याभिज्ञाः सर्वं यत् यत् कार्य्यजातं नीचं वा घृणितमपि मलमूत्रादिनिष्काशनादि कर्त्तुम् उद्यताः किं बहुना सदा निदेशकारिणः आज्ञाकारिणः, ते राज्ञा परिचारकाः दासाः कर्त्तव्याः ॥ १८६-१८७ ॥

शत्रुप्रजाभृत्यवृत्तं विज्ञातुं कुशलाश्च ये।
ते गूढचाराः कर्त्तव्या यथार्थश्रुतबोधकाः ॥ १८८ ॥

अन्वयः—ये शत्रुप्रजाभृत्यवृत्तं विज्ञातुं कुशलाः तथा यथार्थश्रुतबोधकाः ते गूढचाराः कर्त्तव्याः ॥ १८८ ॥

व्याख्या—ये = पुरुषाः, शत्रूणाम् = रिपूणाम्, प्रजानाम् = जनानाम्, च = पुनः, भृत्यानाम् =

सेवकानाम्, वृत्तम् = आचरणम्, विज्ञातुम् = वेत्तुम्, कुशलाः = प्रवीणाः, तथा यथार्थश्रुतबोधकाः—यथार्थश्रुतस्य = तथ्याकर्णितस्य न तु अनृतभूतस्य, बोधकाः = ज्ञापकाः, ते गूढचाराः = गुप्तचराः, कर्त्तव्याः = नियोक्तव्याः ॥ १८८ ॥

हिन्दी—जो दुश्मन, सामान्य प्रजा एवं राजसेवकों के आचरणों को जानने में कुशल तथा तथ्यपूर्ण बातों को सुनकर उन्हें ठीक ढंग से बतलाने वाले हों, उन्हें गुप्तचर के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥ १८८ ॥

शत्रुप्रजेति। ये शत्रूणां प्रजानां भृत्यानाञ्च वृत्तं चरितं विज्ञातुं कुशलाः निपुणाः तथा यथार्थश्रुतस्य सत्यश्रुतस्य न तु मिथ्याभूतस्य बोधकाः निवेदकाः ते गूढचाराः गुप्तचाराः कर्त्तव्याः ॥ १८८ ॥

राज्ञः समीपप्राप्तानां नतिस्थानविबोधकाः।
दण्डधरा वेत्रधराः कर्त्तव्यास्ते सुशिक्षकाः ॥ १८९ ॥

अन्वयः—ये राज्ञः समीपप्राप्तानां नतिस्थानविबोधकाः सुशिक्षकाः ते दण्डधराः वेत्रधराः वा कर्त्तव्याः ॥ १८९ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, राज्ञः = नृपस्य, समीपप्राप्तानाम् = अन्तिकमागतानां जनानाम्, नतिम् = प्रणामप्रकारम्, स्थानम् = स्थितिनियमञ्च, विबोधकाः = विशिष्टरूपेण ज्ञापकाः, सुशिक्षकाः = सविनयशिक्षाविदश्च, ते, दण्डधराः = दण्डपाणयः, वेत्रधराः वा, कर्त्तव्याः = नियोक्तव्याः ॥ १८९ ॥

हिन्दी—राजा से मिलने वाले लोगों का अभिवादन करना तथा उनके बैठने के लिए उपयुक्त स्थान की जानकारी रखने वाले सुशिक्षित लोगों को द्वारपाल नियुक्त करना चाहिए ॥ १८९ ॥

राज्ञ इति। ये राज्ञः समीपप्राप्तानां समीपोपस्थितानां जनानामिति शेषः, नतिं प्रणामप्रकारं स्थानं स्थितिनियमञ्च विशेषेण बोधयन्ति ज्ञापयन्ति बोधयितुं शक्नुवन्ति सुशिक्षकाः सुविनयशिक्षाविदश्च ते दण्डधराः वेत्रधराः वा कर्त्तव्याः ॥ १८९ ॥

तन्त्रीकण्ठोत्थितान् सप्त स्वरान् स्थानविभागतः।
उत्पादयति संवेत्ति ससंयोगविभागिनः ॥ १९० ॥
अनुरागं सुस्वरञ्च सतालञ्च प्रगायति।
सनृत्यं वा गायकानामधिपः स च कीर्त्तितः ॥ १९१ ॥

अन्वयः—यः तन्त्रीकण्ठोत्थितान् सप्तस्वरान् स्थानविभागतः उत्पादयति, ससंयोगविभागिनः संवेत्ति, तथा अनुरागं सुस्वरं सतालं सनृत्यं वा सः गायकानाम् अधिपः कीर्त्तितः ॥ १९०-१९१ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, तन्त्रीभ्यः = वीणादिभ्यः, कण्ठेभ्यश्च = गलेभ्यश्च, उत्थितान् = उद्गतान्, सप्तस्वरान् = निषादादिसप्तस्वरसमूहान्, स्थानविभागतः = स्वरोत्पादकस्थानभागतः, उत्पादयति = जनयति, ससंयोगविभागिनः—संयोगान् = संश्लिष्टान्, च = पुनः, विभागिनः = विभक्तान्, ताभ्यां सह, संवेत्ति = सम्यग्रूपेण जानाति, तथा अनुरागम्—अनु = पश्चात्, गतः = चलितः, रागः = भैरवादिरागविशेषः, [illegible] अथवा आसक्तिम्, सुस्वरम् =

सुखदस्वननम्, सतालम् = सङ्गीते कालक्रियासहितम्, सनृत्यम् = नृत्यसहितम्, वा, प्रगायति = गानं करोति, सः = असौ, गायकानाम् = गेष्णानाम्, अधिपः = अध्यक्षः, कीर्त्तितः = प्रख्यातो भवति ॥ १९०-१९१ ॥

हिन्दी—जो वीणा या कंठ से निकले सप्तस्वरों को स्थान-विभाग के अनुसार उत्पन्न करते हैं, संयोग या विभाग को एक साथ मिलाकर या अलग-अलग जानते हैं तथा राग, स्वर, ताल और लय के साथ गाना और नाचना जानते हैं; ऐसे लोगों को गाने वालों का अध्यक्ष कहते हैं ॥ १९०-१९१ ॥

तन्त्रीति। **अनुरागमिति**। यः तन्त्रीभ्यः कण्ठेभ्यश्च उत्थितान् सप्त संप्त स्वरान् निषादादीन् स्थानविभागतः उत्पादयति जनयति, ससंयोगदिभागिनः संयुक्तान् विभक्तांश्च संवेत्ति सम्यक् जानाति तथा अनुरागम् अनुगतः रागो यस्मिन् तत्, सुस्वरं मधुरस्वनं सतालं तालसहितं सनृत्यं नृत्यसहितं वा यथा तथा प्रगायति, सः गायकानाम् अधिपः कीर्त्तितः कथितः ॥ १९०-१९१ ॥

तथाविधा च पण्यस्त्री निर्लज्जा भावसंयुता।
शृङ्गाररसतत्त्वज्ञा सुन्दराङ्गी मनोरमा।
नवीनोत्तुङ्गकठिनकुचा सुस्मितदर्शिनी ॥ १९२ ॥
ये चान्ये साधकास्ते च तथा चित्तविरञ्जकाः।
सुभृत्यास्तेऽपि सन्धार्य्या नृपेणात्महिताय च ॥ १९३ ॥

अन्वयः—नृपेण आत्महिताय तथाविधा निर्लज्जा भावसंयुता शृङ्गाररसतत्त्वज्ञा सुन्दराङ्गी मनोरमा नवीना उत्तुङ्गकठिनकुचा सुस्मितदर्शिनी पण्यस्त्री सन्धार्या; तथा ये च अन्ये साधकाः चित्तविरञ्जकाः सुभृत्याः तेऽपि सन्धार्याः ॥ १९२-१९३ ॥

व्याख्या—नृपेण = राज्ञा, आत्महिताय—आत्मनः = स्वस्य, हिताय = लाभाय तोषाय च, तथाविधा = तद्रूपा, निर्लज्जा = लज्जाविहीना, भावसंयुता = सविभ्रमा, शृङ्गाररसतत्त्वज्ञः—शृङ्गाररसस्य = रसराजस्य, तत्त्वज्ञा = यथार्थज्ञा, सुन्दराङ्गी = रूपवती, मनोरमा = मनोज्ञा, नवीना = नवयौवना, उत्तुङ्गकठिनकुचा = अतीवोन्नतकठोरस्तनी, तथा सुस्मितदर्शिनी = मन्दस्मितदर्शना सहास्यवदना वा, सुष्ठु = शोभनम्, स्मितम् = मन्दहास्यम्, यथा स्यात् तथा पश्यति = अवलोकयति, इति तथोक्ता, पण्यस्त्री = वाराङ्गना रूपाजीवेति वा, सन्धार्या = संयोज्या, तथा = तेनैव प्रकारेण, ये च, अन्ये = अपरे, साधकाः = मनोऽनुकूलकार्यसम्पादकाः, चित्तविरञ्जकाः = विशेषरूपेण मनोरञ्जकाः, सुभृत्याः = सुसेवकाः, तेऽपि सन्धार्याः = रक्षणीयाः ॥ १९२-१९३ ॥

हिन्दी—राजा को आत्महित की दृष्टि से पहले कहे गये ढंग से नाचने-गाने वाली हो, बेशर्म हो, नखरेबाज, कामकेलि के तथ्य को जानने वाली, सुन्दर शरीर वाली, मनमोहिनी, नई जवानी वाली, विशाल और कठोर छाती वाली, मुस्करा कर देखने वाली वेश्या की रक्षा करनी चाहिए। साथ ही मनोभिलषित कार्यसाधन में चतुर, मन को खुश करने वाले अच्छे नौकरों को भी आत्महित के लिए रखना चाहिए ॥ १९२-१९३ ॥

तथाविधेति। **यथेति**। नृपेण राज्ञा आत्महिताय आत्मनः मनसः हिताय सन्तोषाय तथाविधा तादृशसङ्गीतचतुरा इत्यर्थः, निर्लज्जा भावसयुता अनुरागवती शृङ्गाररसस्य तत्त्वज्ञा सुविदितशृङ्गाररसा

इत्यर्थः, सुन्दराङ्गी सुरूपा मनोरमा चित्तहारिणी नवीना नवयुवती उत्तुङ्गकठिनकुचा उन्नतकठिनस्तनी तथा सुस्मितं यथा तथा पश्यतीति तथोक्ता सहास्यदर्शना पण्यस्त्री वेश्या सन्धार्य्या रक्षणीया तथा ये च अन्ये साधकाः मनोऽतीतकार्य्यसाधनचतुराः चित्तविरञ्जकाः चित्ततोषिणः सुभृत्याः तेऽपि सन्धार्य्याः रक्षणीयाः एकेन सन्धार्य्या इति पदेन उभयत्रान्वयः, बहुवचनेऽपि विसर्गलोपादिति विभावनीयम् ॥ १९२-१९३ ॥

वैतालिकाः सुकवयो वेत्रदण्डधराश्च ये।
शिल्पज्ञाश्च कलावन्तो ये सदाप्युपकारकाः ॥ १९४ ॥

अन्वयः—ये वैतालिकाः सुकवयः वेत्रदण्डधराः शिल्पज्ञाः कलावन्तः तथा सदा उपकारकाः ॥ १९४ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, वैतालिकाः = स्तुतिपाठकाः, बोधकराः, सुकवयः = प्रशस्तकवयः, वेत्रदण्डधराः = यष्टिधराः रक्षापुरुषाः, शिल्पज्ञाः = हस्तकर्मविशारदाः, कलावन्तः = सङ्गीतकुशलाः, तथा सदा = सर्वदा, उपकारकाः = हितैषिणः, तेऽपि नृपेण नियोज्याः ॥ १९४ ॥

हिन्दी—स्तुति-गीत गाकर राजा को जगाने वाले, प्रशस्त कवि, नगरपाल, हस्तकर्मविशेषज्ञ, चौसठों कला के जानकार तथा सदैव उपकारक लोगों की भी रक्षा करनी चाहिए ॥ १९४ ॥

वैतालिका इत्यादि। एते वैतालिकादयः कार्य्यानुरूपतः कार्य्यानुसारेण योज्याः रक्षणीया इत्यर्थः, नृपेणेति शेषः इति उत्तरेणान्वयः। ये वैतालिकाः स्तुतिपाठकाः बोधकरा इति ख्याताः, सुकवयः उत्कृष्टकवयः, वेत्रदण्डधराः पुररक्षकविशेषाः, शिल्पज्ञाः शिल्पकुशलाः, कलावन्तः चतुःषष्टिप्रकारकामविद्याकुशलाः तथा सदा उपकारकाः हितैषिणः ॥ १९४ ॥

दुर्गुणासूचका भाणा नर्त्तका बहुरूपिणः ।
आरामकृत्रिमवनकारिणो दुर्गकारिणः ॥ १९५ ॥

अन्वयः—दुर्गुणासूचकाः भाणाः नर्त्तकाः बहुरूपिणः आरामकृत्रिमवनकारिणः दुर्गकारिणः ॥ १९५ ॥

व्याख्या—दुर्गुणासूचकाः = अवगुणज्ञापकाः, भाणाः = वैहासिकाः, नर्त्तकाः = नृत्यकराः, बहुरूपिणः = वेशाजीविनः, आरामस्य = उपवनस्य, च = पुनः, कृत्रिमवनस्य = अनैसर्गिकारण्यस्य, कारिणः = निर्माणनिपुणः, तथा दुर्गकारिणः = कोटनिर्मातारः, रक्षणीयेति भावः ॥ १९५ ॥

हिन्दी—दूसरों के दुर्गुण की सूचना देने वाले, परिहास करने में कुशल व्यक्ति, नर्त्तक, बहुरूपिया, उपवन एवं बनावटी वनदुर्ग के निर्माताओं की रक्षा करनी चाहिए ॥ १९५ ॥

दुर्गुणेति। दुर्गुणासूचकाः दोषप्रकाशकाः भाणाः परिहासकुशलाः, नर्त्तकाः नटाः बहुरूपिणः, विविधरूपधारिणः, आरामस्य उपवनस्य कृत्रिमवनस्य च कारिणः करणनिपुणाः तथा दुर्गकारिणः, गुप्तिस्थाननिर्मातारः ॥ १९५ ॥

महानालिकयन्त्रस्थगोलैर्लक्ष्यविभेदिनः ।
लघुयन्त्राग्नेयचूर्णबाणगोलासिकारिणः ॥ १९६ ॥

अन्वयः—महानालिकयन्त्रस्थगोलैः लक्ष्यविभेदिनः लघुयन्त्राग्नेयचूर्णबाणगोलासिकारिणः ॥ १९६ ॥

व्याख्या—महानालिकम् = बृहदाग्नेयास्त्रनालीम्, यन्त्रम्, यत् = शतघ्नीम्, तत्रस्थैः = तस्मिन् स्थापितैः, गोलैः = वर्तुलैः पिण्डैः, लक्ष्यस्य = प्रतिपक्षभूतस्य लक्ष्यस्य, विभेदिनः = सुविदारकाः, तथा लघु = क्षुद्रम्, यन्त्रम् = विविधप्रभावयुक्तं लघ्वायुधम्, आग्नेयचूर्णानाम् = प्रज्वालककणानां स्फोटकचूर्णानां वा, बाणानाम् = शराणाम्, गोलानाम् = वर्त्तुलाग्निपिण्डानाम्, असीनाम् = करवालानाम्, कारिणः = निर्माणकर्त्तारः ॥ १९६ ॥

हिन्दी—बड़ी तोपों के भीतर रखे हुए गोलों से दुश्मनों पर निशाना साधने वाले गोलन्दाज, बंदूक आदि बारुद का प्रयोग, तीर, तलवार और बम बनाने वालों का संरक्षण करना चाहिए ॥ १९६ ॥

महानालिकेति। महानालिकं बृहन्नालीयुक्तं यत् यन्त्रं तत्रस्थैः गोलैः गोलाकारैः पिण्डैः लक्ष्यस्य रिपुपक्षस्य भेदिनः भेदनकुशलाः तथा लघु क्षुद्रं यन्त्रं येषां तादृशानाम् आग्नेयचूर्णानां गुलीति ख्यातानां बाणानां शराणां गोलानां वर्त्तुलाकारपिण्डानाम् असीनां तलवाराणाञ्च कारिणः निर्मातारः ॥ १९६ ॥

अनेकयन्त्रशस्त्रास्त्रधनुस्तूणादिकारकाः ।
स्वर्णरत्नाद्यलङ्कारघटका रथकारिणः ॥ १९७ ॥

अन्वयः--अनेकयन्त्रशस्त्रास्त्रधनुस्तूणादिकारकाः स्वर्णरत्नाद्यलङ्कारघटकाः रथकारिणः ॥ १९७ ॥

व्याख्या—अनेकानि = बहूनि, यन्त्राणि = आग्नेयास्त्राणि, येषां तादृशानाम्, शस्त्राणाम् = अक्षेपणीयप्रहरणानाम्, अस्त्राणाम् = क्षेपणीयायुधानाम्, धनुषाम् = चापानाम्, तूणादीनाम् = निषङ्गादीनाम्, कारकाः = निर्मातारः, स्वर्णरत्नादिभिः = हिरण्यमाणिक्यादिभिः, अलङ्कारघटकाः = आभूषणनिर्मातारः, तथा रथकारिणः = स्यन्दनकारिणः, रक्षितव्यमिति शेषः ॥ १९७ ॥

हिन्दी—अनेक प्रकार के युद्धोपयोगी यंत्र, अस्त्र-शस्त्र, चाप, तर्कश आदि के निर्माता, सोना और रत्न के आभूषण बनाने वाले कारीगर और रथ-निर्माताओं की रक्षा करनी चाहिए ॥ १९७ ॥

अनेकेति। अनेकानि विविधानि यन्त्राणि येषां तादृशानां शस्त्राणाम् अस्त्राणां धनुषां तूणादीनाञ्च कारकाः करणक्षमाः, स्वर्णरत्नादिभिः अलङ्कारघटकाः भूषणकारिणः तथा रथकारिणः शकटादिनिर्माणकारिणः ॥ १९७ ॥

पाषाणघटका लोहकारा धातुविलेपकाः ।
कुम्भकाराः शौल्विकाश्च तक्षाणो मार्गकारकाः ॥ १९८ ॥

अन्वयः—पाषाणघटकाः लौहकाराः धातुविलेपकाः कुम्भकाराः शौल्विकाः तक्षाणाः मार्गकारकाः ॥ १९८ ॥

व्याख्या—पाषाणघटकाः—पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, घटकाः = योजकाः, लौहकाराः = कर्मकाराः, धातुविलेपकाः—धातुभिः = अश्मविकारादिभिः, विलेपकाः = गृहादिरञ्जनकारिणः, कुम्भकाराः = घटादिनिर्मातारः, शौल्विकाः = कांस्यपीतलौहकाराः, तक्षाणः = वर्द्धकिनः, मार्गकारकाः = पथनिर्मातारः, रक्षणीया इति शेषः ॥ १९८ ॥

हिन्दी—संगतराश या पत्थरकट, लुहार, घर रंगने-पोतने वाले रंगसाज, कुम्हार, कसेरा, बढई और सड़क बनाने वाले को रखना चाहिए ॥ १९८ ॥

पाषाणेति। पाषाणानां प्रस्तराणां घटकाः प्रस्तरैर्गृहादिनिर्मातारः, लोहकाराः कर्म्मकाराः, धातुभिः गैरिकादिभिः विलेपकाः गृहादिरञ्जनकारिणः, कुम्भकाराः, शौल्विकाः जातिभेदाः, तक्षाणः सूत्रधरजातिविशेषाः तथा मार्गकारकाः रथ्याबन्धिनः॥ १९८ ॥

नापिता रजकाश्चैव वासिका मलहारकाः।
वार्त्ताहराः सौचिकाश्च राजचिह्नाग्रधारिणः ॥ १९९ ॥

अन्वयः—नापिताः रजकाः वासिकाः मलहारकाः वार्त्ताहराः सौचिकाः राजचिह्नाग्रधारिणः ॥ १९९ ॥

व्याख्या—नापिताः = क्षुरिणः, रजकाः = रजोहराः, वासिकाः = काष्ठहराः, मलहारकाः = मलवाहकाः, वार्त्ताहराः = सन्देशवाहकाः, सौचिकाः = सूचिकर्मोपजीविनः, तथा राजचिह्नाग्रधारिणः—राजचिह्नानि = राजकीयचिह्नानि, अग्रे = सम्मुखे, धारयतीति तथोक्ताः जनाः रक्षणीयाः ॥ १९९ ॥

हिन्दी—नाई, धोबी, लकड़हारा, भंगी, संदेशवाहक, दर्जी एवं आगे राजकीय चिह्न धारण करने वालों की रक्षा करनी चाहिए ॥ १९९ ॥

नापितेति। नापिताः रजकाः वासिकाः काष्ठच्छेदकजातिभेदाः मलहारकाः पुरीषादिनिष्काशकाः वार्त्ताहराः संवादवाहिनः, सौचिकाः सूचीकर्मकारिणः तथा राजचिह्नानि अग्रे धारयन्तीति तथोक्ताः ॥ १९९ ॥

भेरीपटहगोपुच्छशङ्खवेण्वादिनिःस्वनैः ।
ये व्यूहरचका यानव्यपयानादिबोधकाः ॥ २०० ॥

अन्वयः—ये व्यूहरचकाः भेरीपटहगोपुच्छशङ्खवेण्वादिनिःस्वनैः यानव्यपयानादिबोधकाः ॥ २०० ॥

व्याख्या—ये = जनाः, व्यूहरचकाः = सैनिकव्यूहरचनाकाराः, भेरीणाम् = दुन्दुभीनाम्, पटहानाम् = पणवानाम्, गोपुच्छानाम् = रणवाद्यानाम्, शङ्खानाम् = कम्बूनाम्, वेण्वादीनाम् = वंशीप्रभृतीनाम्, निःस्वनैः = ध्वनिभिः, यानस्य = प्रतिपक्षान् प्रतियात्रायाः, व्यपयानस्य = प्रतिपक्षस्य पराङ्मुखीभावस्य, बोधकाः = व्यञ्जकाः ॥ २०० ॥

हिन्दी—व्यूहरचना करने वाले, नगाड़ा, ढोल, रणसिंघा, शंख, वंशी आदि बजा कर दुश्मनों पर चढ़ाई करना या दुश्मनों से पीछे हटना या आक्रमण के समय की सैनिकों को सूचना देने वालों की भी ॥ २०० ॥

भेरीति। ये व्यूहरचकाः सैनिकरचयितारः भेरीणां पटहानां गोपुच्छानां शङ्खानां वेण्वादीनाञ्च वाद्यानां निःस्वनैः ध्वनिभिः यानस्य शत्रून् प्रति यात्रायाः व्यपयानस्य शत्रुभ्यः पराङ्मुखीभावस्य आदिपदेन आक्रमणादेश्च बोधका ज्ञापकाः ॥ २०० ॥

नाविकाः खनका व्याधाः किराता भारिका अपि।
शस्त्रसम्मार्जनकरा जलधान्यप्रवाहकाः ॥ २०१ ॥

अन्वयः—नाविकाः खनकाः व्याधाः किराताः भारिकाः अपि शस्त्रसम्मार्जनकराः जलधान्यप्रवाहकाः ॥ २०१ ॥

व्याख्या—नाविकाः= औडुपिकाः, खनकाः= अवदारकाः, व्याधाः= लुब्धकाः, किराताः= वनेचराः भारिकाः= भारवाहिनः, शस्त्राणाम्= आयुधानाम्, सम्मार्जनकराः= तीक्ष्णयितारः, तथा जलानाम्= सलिलानाम्, प्रवाहकाः= प्रवहनकारिणः ॥ २०१ ॥

हिन्दी—माँझी, बेलदार, बहेलिया, कोल-भील, बोझा ढोने वाले, हथियार तेज करने वाले, अन्न और पानी पहुँचाने वालों की भी ॥ २०१ ॥

नाविका इति। नाविकाः कर्णधाराः, खनकाः खननकारिणः, व्याधाः किराताः, भारिकाः भारवाहिनः, शस्त्राणां सम्मार्जनकराः तीक्ष्णयितारः, तथा जलानां धान्यानाञ्च प्रवाहकाः वहनकारिणः ॥ २०१ ॥

आपणिकाश्च गणिका वाद्यजायाप्रजीविनः।
तन्तुवायाः शाकुनिकाश्चित्रकाराश्च चर्मकाः ॥ २०२ ॥

अन्वयः—आपणिकाः गणिकाः वाद्यजाायाप्रजीविनः तन्तुवायाः शाकुनिकाः चित्रकाराः च चर्मकाः ॥ २०२ ॥

व्याख्या—आपणिकाः= वणिजः, गणिकाः= वेश्याः, विधुरवैदशिककर्मचारिणां कामशान्त्यर्थमिति भावः, वाद्यजायाप्रजीविनः—वाद्यैः= आतोद्यैः, जायाभिः= भार्याभिः, वा, प्रजीविनः= प्रकर्षेण जीवन्तीति तथोक्ताः, तन्तुवायाः= कुविन्दाः, शाकुनिकाः= जालिकाः, वा लुब्धकाः, चित्रकाराः= रङ्गजीवकाः, तथा चर्मकाः= चर्मकाराः ॥ २०२ ॥

हिन्दी—व्यापारी, परदेशी एवं विधुर कर्मचारियों के कामशान्त्यर्थ वेश्या, बाजा बजाकर पत्नी के नृत्य में साथ देकर जीने वाले, जुलाहे, चीड़ीमार, चितेरे और चमारों की भी ॥ २०२ ॥

आपणिका इति। आपणिकाः विपणिवासिनः गणिकाः वाराङ्गनाः वैदेशिककर्मचारिणां स्थित्यर्थमिति भावः, वाद्यैः जायाभिः प्रजीविभिर्वा प्रकर्षेण जीवन्तीतिं तथोक्ताः, तन्तुवायाः प्रसिद्धाः शाकुनिकाः पक्षिजीविनः चित्रकाराः आलेख्यव्यवसायिनः तथा चर्मकाः चर्मकाराः ॥ २०२ ॥

गृहसम्मार्जकाः पात्रधान्यवस्त्रप्रमार्जकाः।
शय्यावितानास्तरणकारकाः शासका अपि ॥ २०३ ॥

अन्वयः—गृहसम्मार्जकाः पात्रधान्यवस्त्रप्रमार्जकाः शय्यावितानास्तरणकारकाः शासकाः अपि ॥ २०३ ॥

व्याख्या—गृहाणाम्= सदनानाम्, सम्मार्जकाः= परिमार्जकाः, पात्राणाम्= भाजनानाम्, धान्यानाम्= अन्नानाम्, वस्त्राणाम्= वसनानाम्, प्रमार्जकाः= संशोधकाः, शय्यानाम्= पर्यङ्काणाम्, वितानानाम्= चन्द्रातपानाम्, आस्तरणानाम्= शय्योपकरणानाम्, कारकाः= निर्मातारः, शासकाः= उपदेशकाश्चापि ॥ २०३ ॥

हिन्दी—घर में झाडू लगाने वाले, बर्तन-बासन साफ करने वाले, अन्न फटकने वाले, वस्त्र साफ करने वाले, पलंग, चंदोवा और चादर बिछाने वाले तथा उपदेशक की भी ॥ २०३ ॥

गृहेति। गृहाणां सम्मार्जकाः शोधकाः, पात्राणां तैजसानां धान्यानां वस्त्राणाञ्च प्रमार्जकाः शुद्धिकारिणः, शय्यानां वितानानाम् उल्लोचाख्यानाम् आच्छादनपटानाम् आस्तरणानां शय्योपरिपातनीयानां पटानां कारकाः निर्मातारः शासका अपि शिक्षकाश्च ॥ २०३ ॥

आमोदास्वेदसद्धूपकारास्ताम्बूलिकास्तथा ।
हीनाल्पकर्मिणश्चैते योज्याः कार्य्यानुरूपतः ॥ २०४ ॥

अन्वयः—आमोदास्वेदसद्धूपकाराः तथा ताम्बूलिकाः हीनाल्पकर्मिणः कार्यानुरूपतः एते योज्याः ॥ २०४ ॥

व्याख्या—आमोदानाम् = सुवासानाम्, अस्वेदानाम् = अधर्माणाम्, सत् = सताम्, धूपानाम् = गन्धपिशाचिकानाम्, काराः = कारकाः, तथा = तेनैव रूपेण, ताम्बूलिकाः = नागवल्लीदलप्रदातारः, हीनाल्पकर्मिणः—हीनकर्मिणः = कुत्सितकर्मकराः, अल्पकर्मिणः = क्षुद्रकर्मकराश्च, कार्यानुरूपतः = कर्मोपयुक्ततः, एते = पूर्वोक्तसकलकर्मचारिणः, स्वस्वपदे नृपेण, योज्याः = नियोक्तव्याः ॥ २०४ ॥

हिन्दी—सुगंधित, घामरहित धूप का सुवास देने वाले, तमोली, नीच कर्म करने वाले तथा क्षुद्र कर्मियों को कार्य के अनुरूप राजा अपने यहाँ प्रतिनियुक्त करे ॥ २०४ ॥

आमोदेति। आमोदानां सुगन्धानाम् अस्वेदानां स्वेदाजनकानाम् अनुष्णानामित्यर्थः, सताम् उत्कृष्टानां धूपानां गन्धद्रव्यविशेषाणां काराः कारकाः ताम्बूलिकाः ताम्बूलप्रस्तोतारः तथा हीनाल्पकर्मिणः हीनकर्मिणः निकृष्टकर्मकराः अल्पकर्मिणः क्षुद्रकर्मकराश्च ॥ २०४ ॥

प्रोक्तं पुण्यतमं सत्यं परोपकरणं तथा।
आज्ञायुक्तांश्च भृतकान् सततं धारयेन्नृपः ॥ २०५ ॥

अन्वयः—सत्यं तथा परोपकरणं पुण्यतमं प्रोक्तम्। नृपः आज्ञायुक्तान् भृतकान् सततं धारयेत् ॥ २०५ ॥

व्याख्या—सत्यम् = अवितथम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, परोपकरणम् = लोकहितसाधनम्, पुण्यतमम् = अतिसुकृतकरम्, प्रोक्तम् = प्रकर्षरूपेणोक्तम्, नृपः = राजा, आज्ञायुक्तान् = आदेशपालकान्, भृत्यान् = सेवकान्, सततम् = निरन्तरम्, धारयेत् = रक्षयेदिति। 'आज्ञायुक्तान्' इत्यत्र 'आभ्यां युक्तान्' इत्यपि पाठभेदः ॥ २०५ ॥

हिन्दी—सत्य और परोपकार को सर्वश्रेष्ठ पुण्य कहा गया है। अतः इनसे युक्त सदैव आज्ञापालक सेवकों को राजा नियुक्त करे ॥ २०५ ॥

प्रोक्तमिति। सत्यं तथा परोपकरणं परोपकारकरणं पुण्यतमम् अतिपुण्यकरं प्रोक्तं कथितम्, अतः कारणात् नृपः आज्ञायुक्तान् आज्ञाकारिणः भृतकान् भृत्यान् सततं धारयेत् पालयेत्। आज्ञायुक्तानित्यत्र आभ्यां युक्तानिति पाठान्तरकल्पने आभ्यां सत्यपरोपकाराभ्यां युक्तानित्यर्थः ॥ २०५ ॥

हिंसा गरीयसी सर्वपापेभ्योऽनृतभाषणम्।
गरीयस्तरमेताभ्यां युक्तान् भृत्यान् न धारयेत् ॥ २०६ ॥

अन्वयः—हिंसा सर्वपापेभ्यः गरीयसी तथा अनृतभाषणं गरीयस्तरम्। एताभ्यां युक्तान् भृत्यान् नृपः न धारयेत् ॥ २०६ ॥

व्याख्या—हिंसा = हिंसनम्, सर्वपापेभ्यः = सकलकल्मषेभ्यः, गरीयसी = अतीवमहत्त्वपूर्णम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, अनृतभाषणम् = असत्यवचनम्, गरीयस्तरम् = अतिगुरुतरम्, अतः,

एताभ्याम् = हिंसा-अनृतभाषणाभ्याम्, युक्तान् = सहितान्, भृत्यान् = सेवकान्, नृपः = राजा, न = नहि, धारयेत् = पालयेत् ॥ २०६ ॥

हिन्दी—और सभी पापों से बढकर हिंसा और झूठ बोलना है, अतः इन दोनों से युक्त सेवक को बहाल न करे ॥ २०६ ॥

हिंसेति। हिंसा सर्वपापेभ्यः गरीयसी श्रेष्ठा, तथा अनृतभाषणं मिथ्यावचनं गरीयस्तरम् अतिगुरुतरं तस्मात् नृपः एताभ्यां हिंसानृताभ्यां युक्तान् भृत्यान् न धारयेत् त्यजेदित्यर्थः ॥ २०६ ॥

यदा यदुचितं कर्त्तुं वक्तुं वा तत् प्रबोधयन्।
तद्वक्ति कुरुते द्राक् तु स सद्भृत्यः सुपूज्यते ॥ २०७ ॥

अन्वयः—यदा यत् कर्तुं वा वक्तुम् उचितं तत् प्रबोधयन् द्राक् तत् वक्ति च कुरुते, सः सद्भृत्यः तु सुपूज्यते ॥ २०७ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, यत् = कार्यम्, कर्त्तुम् = अनुष्ठातुम्, वा = अथवा, वक्तुम् = गदितुम्, उचितम् = सङ्गतम्, तत् = कार्यम्, प्रबोधयन् = नृपाय निवेदयन् सन्, द्राक् = सपदि, तत् = पूर्वोक्तकार्यम्, वक्ति = निवेदयति, च = पुनः, कुरुते = सम्पाद्यते, सः = असौ, सद्भृत्यः = सुसेवकः, तु = बलात्मकमव्ययम् ॥ २०७ ॥

हिन्दी—जिस समय जो काम करना तथा जो बात बोलना उचित प्रतीत हो, उससे राजा को उसी समय अवगत कराये तथा स्वयं शीघ्र उसका सम्पादन करे—ऐसा सेवक प्रशंसनीय होता है ॥ २०७ ॥

यदेति। यदा यत् कार्य्यं कर्त्तुं वा वक्तुम् उचितं तत् प्रबोधयन् राज्ञे बोधयन् सन् यः द्राक् झटिति तत् वक्ति कथयति कुरुते च सः सद्भृत्यः सुपूज्यते सम्यक् प्रशस्यते ॥ २०७ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे गृहकृत्यं विचिन्त्य च।
कृत्वोत्सर्गन्तु विष्णुं हि स्मृत्वा स्नायादनन्तरम् ॥ २०८ ॥
प्रातःकृत्यन्तु निर्वर्त्त्य यावत् सार्द्धमुहूर्त्तकम्।
गत्वा स्वकार्य्यशालां वा कार्य्याकार्य्यं विचिन्त्य च ॥ २०९ ॥

अन्वयः—पश्चिमे यामे उत्थाय च गृहकृत्यं विचिन्त्य उत्सर्गं तु कृत्वा विष्णुं स्मृत्वा सार्द्धमुहूर्त्तकं यावत् प्रातःकृत्यं तु निर्वर्त्य स्वकार्यशालां गत्वा कार्याकार्यं विचिन्त्य अनन्तरं हि स्नायात् ॥ २०८-२०९ ॥

व्याख्या—पश्चिमे = अन्तिमे, यामे = प्रहरे, उत्थाय = जागरितो भूत्वा, च = पुनः, गृहकृत्यम् = गृहसम्बन्धिकार्यजातम्, विचिन्त्य = विचार्य, उत्सर्गम् = पुरीषोत्सर्गम्, कृत्वा, सार्द्धमुहूर्त्तकम् = दण्डत्रयम्, यावत् = पर्यन्तम्, प्रातःकृत्यम् = प्रातःकालीनसम्पाद्यमानकार्यम्, निर्वर्त्य = पर्यवसानं कृत्वा, स्वकार्यशालाम्—स्वस्य = आत्मनः, कार्यशालाम् = कर्मालयम्, गत्वा = व्रजित्वा, कार्याकार्यम् = कृत्याकृत्यम्, विचिन्त्य = विचार्य, अनन्तरम् = तत्पश्चात्, हि = इत्यवधारणे, स्नायात् = स्नानं कुर्यात् ॥ २०८-२०९ ॥

हिन्दी—रात के पिछले पहर में जगकर, घरेलू आवश्यक कार्यों पर विचार कर, नित्य कर्म से निवृत्त होकर, भगवान् विष्णु का ध्यान कर, पचहत्तर मिनट के भीतर प्रातःकालीन नित्य-

नैमित्तिक कृत्यों का सम्पादन कर, अपनी कर्मशाला में पहुँचकर, क्या करना चाहिए और क्या नहीं—इसका निश्चय करने के बाद ही स्नान करे ॥ २०८-२०९ ॥

उत्थायेति । प्रात इति । पश्चिमे यामे प्रहरे रात्रेरिति शेषः, उत्थाय गृहकृत्यं गृहकार्य्यं विचिन्त्य उत्सर्गं मलमूत्रत्यागं कृत्वा विष्णुं स्मृत्वा इत्थं सार्द्धमुहूर्त्तकं दण्डत्रयं यावत् प्रातःकृत्यं निर्वर्त्त्य तु समाप्यैव स्वस्य कार्यशालां कर्मालयं गत्वा कार्य्याकार्य्यं कार्य्यम् अकार्य्यञ्च विचिन्त्य च अनन्तरं स्नायात्, हिशब्दोऽवधारणे ॥ २०८-२०९ ॥

विनाज्ञया विशन्तन्तु द्वार्स्थः सम्यङ्निरोधयेत् ।
निदेशकार्य्यं विज्ञाप्य तेनाज्ञप्तः प्रमोचयेत् ॥ २१० ॥

अन्वयः—द्वार्स्थः आज्ञया विना विशन्तं सम्यक् निरोधयेत् । निदेशकार्यं विज्ञाप्य तेनाज्ञप्तः प्रमोचयेत् ॥ २१० ॥

व्याख्या—द्वार्स्थः = द्वारे स्थितः द्वारपालः, आज्ञया = नृपादेशेन, विना = विहाय, विशन्तम् = अन्तःप्रवेशः कुर्वतो जनम्, सम्यक् = सामस्त्येन, निरोधयेत् = अवरोधयेत् । तत्पश्चात्, निदेशेन = यथाऽऽज्ञया, कार्यम् = कृत्यम्, विज्ञाप्य = राज्ञे निवेद्य, पुनस्तेन = नृपेण, आज्ञप्तः = आदिष्टः सन्, प्रविशन्तं जनम्, प्रमोचयेत् = विसर्जयेत्, राज्ञः सम्मुखे गमनायादिशेदिति ॥ २१० ॥

हिन्दी—द्वारपाल का यह कर्तव्य है कि यदि कोई व्यक्ति पूर्वानुमति प्राप्त किये बिना ही भीतर प्रवेश करना चाहे तो उसे वह पूरी शक्ति से रोक दे। उसके बतलाये गये कार्य की सूचना राजा को देकर, राजा की आज्ञा मिलने पर ही उसे भीतर जाने के लिए छोड़े ॥ २१० ॥

विनेति । द्वार्स्थः दौवारिकः आज्ञया आदेशेन विना विशन्तं प्रविशन्तं जनं गृहाभ्यन्तरमिति शेषः, सम्यक् निरोधयेत्, पश्चात् निदेशेन यथानिदेशमित्यर्थः, कार्य्यं विज्ञाप्य राज्ञे इति शेषः, तेन राज्ञा आज्ञप्तः सन् तं प्रविशन्तं प्रमोचयेत् त्यजेत् प्रवेशाय अनुमन्येत इत्यर्थः ॥ २१० ॥

दृष्ट्वागतान् सभामध्ये राज्ञे दण्डधरः क्रमात् ।
निवेद्य तन्नतीः पश्चात् तेषां स्थानानि सूचयेत् ॥ २११ ॥

अन्वयः—दण्डधरः सभामध्ये आगतान् दृष्ट्वा क्रमात् राज्ञे तन्नतीः निवेद्य पश्चात् तेषां स्थानानि सूचयेत् ॥ २११ ॥

व्याख्या—दण्डधरः = दण्डपाणिः, सभामध्ये = सभाभवनाभ्यन्तरे, आगतान् = उपस्थितजनान्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, क्रमात् = यथानुक्रमात्, राज्ञे = नृपाय, तत् = तेषाम्, नतीः = प्रणामान्, निवेद्य = समर्प्य, पश्चात् = तदनन्तरम्, तेषाम् = नृपाणाम्, स्थानानि = उपवेशनस्थलानि, सूचयेत् = निर्दिशेत् ॥ २११ ॥

हिन्दी—मुख्य द्वार के संरक्षण पदाधिकारी का कर्तव्य है कि राजसभा में उपस्थित लोगों को देखकर क्रमशः राजा से उनके प्रणाम करने की सूचना देकर पश्चात् उनके बैठने की जगह का निर्देश करे ॥ २११ ॥

दृष्ट्वेति । दण्डधरः दौवारिकः सभामध्ये आगतान् दृष्ट्वा क्रमात् यथाक्रमं राज्ञे तन्नतीः तेषां प्रणामान् निवेद्य पश्चात् तेषां स्थानानि उपवेशनार्थानि सूचयेत् प्रदर्शयेत् ॥ २११ ॥

ततो राजगृहं गत्वाज्ञप्तो गच्छेच्च सन्निधिम्।
नत्वा नृपं यथान्यायं विष्णुरूपमिवापरम्॥ २१२॥
प्रविश्य सानुरागस्य चित्तज्ञश्च समन्ततः।
भर्त्तुरर्द्धासने दृष्टिं कृत्वा नान्यत्र निक्षिपेत्॥ २१३॥

अन्वयः—ततः राजगृहं गत्वा आज्ञप्तः सन्निधिं गच्छेत्। प्रविश्य च नृपम् अपरं विष्णुरूपं यथान्यायं नत्वा सानुरागस्य चित्तज्ञस्य भर्त्तुः अर्द्धासने दृष्टिं कृत्वा अन्यत्र समन्ततः दृष्टिं न निक्षिपेत्॥ २१२-२१३॥

व्याख्या—ततः = सभ्यानामुपवेशनस्थाननिर्देशानन्तरम्, राजगृहम् = नृपभवनम्, गत्वा = समागत्य, आज्ञप्तः = नृपेणादिष्टः सन्, सन्निधिम् = सामीप्यम्, गच्छेत् = व्रजेत्। प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, च = पुनः, नृपम् = राजानम्, अपरम् = द्वितीयम्, विष्णुरूपम् = चक्रधरावतारमिव, यथान्यायम् = यथायुक्तम्, नत्वा = प्रणम्य, सानुरागस्य = सस्नेहस्य, चित्तज्ञस्य = हृदयं विजानतः, भर्त्तुः = स्वामिनः, अर्द्धासने = आसनस्यार्द्धभागे, दृष्टिम् = अवलोकनम्, कृत्वा = विधाय, अन्यत्र = अपरस्मिन् स्थाने, समन्ततः = सर्वतः, दृष्टिम्, न क्षिपेत् = न दद्यादिति॥ २१२-२१३॥

हिन्दी—इसके बाद पुनः राजभवन में प्रवेश कर राजा की आज्ञा मिलने पर उसके पास पहुँच कर उन्हें विष्णु का अवतार समझ कर नियमानुसार प्रणाम करे और राजसभा में पहुँचकर सभासदों के प्रति स्नेह रखने वाले तथा उनके चित्त को समझने वाले राजा के आधे आसन की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर रहे और कहीं दूसरी ओर न देखे॥ २१२-२१३॥

तत इति। प्रविश्येति। ततः तेषां स्थाननिर्देशानन्तरं राजगृहं गत्वा आज्ञप्तः प्राप्तराजनिदेशः सन् सन्निधिं राज्ञ इति शेषः, गच्छेत् प्रविश्य च नृपं राजानम् अपरं विष्णुरूपं नारायणावतारमिव यथान्यायं नत्वा प्रणम्य सानुरागस्य अनुरागिणः चित्तज्ञस्य हृदयं विजानतः भर्त्तुः स्वामिनः अर्द्धासने आसनार्द्धे दृष्टिं कृत्वा अन्यत्र समन्ततः चतुर्दिक्षु दृष्टिं न क्षिपेत् न दद्यात्॥ २१२-२१३॥

अग्निं दीप्तमिवासीदेद् राजानमुपशिक्षितः।
आशीविषमिव क्रुद्धं प्रभुं प्राणधनेश्वरम्॥ २१४॥

अन्वयः—उपशिक्षितः दीप्तम् अग्निम् इव तथा क्रुद्धम् आशीविषम् इव प्राणानां धनानाम् ईश्वरं प्रभुम् आसीदेत्॥ २१४॥

व्याख्या—उपशिक्षितः = सुविनीतः सन्, दीप्तम् = प्रज्ज्वलितम्, अग्निम् = वह्निम्, इव = यथा, तथा = तेनैव प्रकारेण, क्रुद्धम् = कुपितम्, आशीविषम् = घोरविषधरं सर्पम्, इव = यथा, प्राणानाम् = असूनाम्, धनानाम् = सम्पदाम्, ईश्वरम् = स्वामिनम्, प्रभुम् = राजानम्, आसीदेत् = नृपसमीपं गच्छेत्॥ २१४॥

हिन्दी—जलती हुई आग की तरह कुछ विषधर साँप की तरह जान और धन लेने में समर्थ राजा को समझकर, अतिविनम्र होकर उसके पास जाना चाहिए॥ २१४॥

अग्निमिति। उपशिक्षितः सम्यग् विनीतः सन् दीप्तं ज्वलन्तम् अग्निमिव तथा क्रुद्धम् आशीविषं भुजङ्गमिव प्राणानां धनानाञ्च ईश्वरं प्रभुं प्रभुं स्वामिनं राजानम् आसीदेत् राजसमीपं गच्छेदित्यर्थः॥ २१४॥

यत्नेनोपचरेन्नित्यं नाहमस्मीति चिन्तयेत्।
समर्थयन् च तत् पक्षं साधु भाषेत भाषितम्।
तन्नियोगेन वा ब्रूयादर्थं सुपरिनिश्चितम्॥ २१५॥

अन्वयः—नित्यं यत्नेन उपचरेत्, अहम् अस्मि इति न चिन्तयेत्। तत् पक्षं समर्थयन् साधु भाषितं भाषेत। तत् नियोगेन वा सुपरिनिश्चितम् अर्थं ब्रूयात्॥ २१५॥

व्याख्या—नित्यम् = सर्वदा, यत्नेन = सायासेन, राजानमुपचरेत् = सेवेत, अहम् = स्वम्, अस्मि = स्वाधीनो भवामि, इत्याकारकम्, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत्। तथा तत् = तेषाम्, पक्षम् = मतम्, समर्थयन् = अनुमोदयन्, साधु = यथार्थम्, भाषितम् = उदीरितम्, भाषेत = कथयेत्। तत् = तस्य राज्ञः, नियोगेन = प्रेरणया, वा = अथवा, सुपरिनिश्चितम् = सुष्ठुतया निश्चितम्, अर्थम् = प्रयोजनम्, ब्रयात् = वदेत्॥ २१५॥

हिन्दी—हमेशा प्रयासपूर्वक राजा की सेवा करे और राजा के सामने मेरी स्वतन्त्र सत्ता है—ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए। राजा के मत का समर्थन करते हुए सन्तोषजनक बात कहें अथवा राजा की आज्ञा मिलने पर यथार्थ प्रयोजन सुनिश्चित कर कहे॥ २१५॥

यत्नेति। नित्यं सततं यत्नेन उपचरेत् सेवेत राजानमिति शेषः, अहम् अस्मि स्वाधीनः भवामीति न चिन्तयेत् न भावयेत्। तथा तत्पक्षं राजपक्षं समर्थयन् दृढीकुर्वन् साधु सन्तोषकरं भाषितं वचनं भाषेत कथयेत्। तस्य राज्ञः नियोगेन आदेशेन वा सुपरिनिश्चितं सुनिश्चितम् अर्थं ब्रूयात्॥ २१५॥

सुखप्रबन्धगोष्ठीषु विवादे वादिनां मतम्।
विजानन्नपि नो ब्रूयाद्भर्त्तुः क्षिप्त्वोत्तरं वचः॥ २१६॥

अन्वयः—सुखप्रबन्धगोष्ठीषु वादिनां विवादे मतं विजानन्नपि भर्तुः उत्तरं क्षिप्त्वा वचः न ब्रूयात्॥ २१६॥

व्याख्या—सुखप्रबन्धगोष्ठीषु = मनोविनोदार्थसम्पादितराजसमाजेषु, वादिनाम् = प्रस्तावकानाम्, विवादे = तर्कवितर्के, मतम् = सिद्धान्तम्, विजानन्नपि = अवगमन्नपि, भर्त्तुः = स्वामिनः, प्रतिवचनम्, क्षिप्त्वा = आक्षिप्य, वचः = वचनम्, न = नहि, ब्रूयात् = वदेत्॥ २१६॥

हिन्दी—मनोविनोद के लिए प्रस्तुत राजगोष्ठी में परस्पर तर्क-वितर्क करने वालों के बीच विवाद उपस्थित होने पर, सही उत्तर जानते हुए भी वादी के रूप में बोलने वाले राजा के उत्तर को बीच में हीं काटकर कुछ भी नहीं बोलना चाहिए॥ २१६॥

सुखेति। सुखप्रबन्धगोष्ठीषु विहारसमाजेषु वादिनां परस्परतर्कवतां विवादे तर्कव्यवहारे मतं सिद्धान्तं विजानन्नपि भर्त्तुः स्वामिनः उत्तरं सिद्धान्तं क्षिप्त्वा आक्षिप्य आच्छाद्य इत्यर्थः, वचः वचनं नो ब्रूयात् न कथयेत्॥ २१६॥

सदानुद्धतवेशः स्यान्नृपाहूतस्तु प्राञ्जलिः।
तद्गां कृतनतिः श्रुत्वा वस्त्रान्तरितसम्मुखः॥ २१७॥
तदाज्ञां धारयित्वादौ स्वकर्माणि निवेदयेत्।
नत्वाऽऽसीताऽऽसने भद्रे न तत्पार्श्वे न सम्मुखे॥ २१८॥

अन्वयः—नृपाहूतः तु सदा अनुद्धतवेशः प्राञ्जलिः स्यात्। तथा कृतनतिः वस्त्रान्तरितसम्मुखः सन् आदौ तत् गां श्रुत्वा तदाज्ञां धारयित्वा प्रह्वः स्वकर्माणि निवेदयेत्। तत् पार्श्वे वा सम्मुखे आसने न तु आसीत॥२१७-२१८॥

व्याख्या—नृपाहूतः—नृपेण = राज्ञा, आहूतः = आमन्त्रितः सन्, तु = इति बलार्थे प्रयोगः, सदा = सर्वदा, अनुद्धतवेशः—न उद्धतः = अविनीतः, वेशः = प्रसाधनम्, यस्यासौ, एवम्भूतः सन् प्राञ्जलिः = प्रकृष्टकरसम्पुटः, स्यात् = भवेत्। तथा कृतनतिः = प्रह्वीभूतः, वस्त्रान्तरितसम्मुखः = वसनवेष्टितमग्रभागः सन्, आदौ = पुरतः, तत् = स्वामिनः, गाम् = वाचम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, तत् = तस्य, आज्ञाम् = निदेशम्, धारयित्वा = शिरोधार्यं कृत्वा, प्रह्वः = विनतो भूत्वा, स्वकर्माणि = निजोपस्थितिकारणानि, निवेदयेत् = आवेदयेत्। तत् = तस्य राज्ञः, पार्श्वे = समीपे, वा = अथवा, सम्मुखे = पुरोभागे, आसने = उपवेशनाधारे, न तु = नैव, आसीत = समाविशेदिति, उपतिष्ठेदित्याशयः॥२१७-२१८॥

हिन्दी—राजा के बुलाने पर सदैव विनीत वेश से हाथ जोड़कर प्रणाम करे। फिर शरीर का अगला भाग वस्त्र से ढककर उनके सामने खड़ा होकर राजनिर्देश सुने। फिर उनकी आज्ञा पाकर अपने आगमन का प्रयोजन निवेदित करे। राजा के बगल में या सामने आसन पर न बैठे॥२१७-२१८॥

सदेति। नृपेण आहूतः सन् सदा अनुद्धतवेशः विनीतपरिच्छदः प्राञ्जलिः स्यात् तथा कृतनतिः प्रणतः वस्त्रान्तरितसम्मुखः आच्छादितपुरोभागः सन् आदौ अग्रतः तस्य प्रभोः गां वाचं श्रुत्वा तस्य आज्ञाम् आदेशं धारयित्वा गृहीत्वा पश्चात् प्रह्वः नम्रः सन् स्वकर्माणि निजागमनप्रयोजनानि निवेदयेत्। तस्य प्रभोः पार्श्वे सम्मुखे वा प्रभोराज्ञयापीत्यर्थः, आसने न तु आसीत नैव उपविशेत् आज्ञापालनार्थम् आसनं स्पृशेदिति भावः॥२१७-२१८॥

उच्चैः प्रहसनं कासं ष्ठीवनं कुत्सनं तथा।
जृम्भणं गात्रभङ्गञ्च पर्वास्फोटञ्च वर्जयेत्॥ २१९ ॥

अन्वयः—उच्चैः प्रहसनं कासं ष्ठीवनं कुत्सनं जृम्भणं च गात्रभङ्गं पर्वास्फोटं च वर्जयेत्॥२१९॥

व्याख्या—उच्चैः = तारस्वरैः, प्रहसनम् = हासम्, अट्टहासमित्यर्थः, कासम् = क्षवथुः, ष्ठीवनम् = लालानिःसारणम्, कुत्सनम् = कुकर्मकरणम्, जृम्भणम् = जृम्भितम्, हाफिका वेति, च = पुनः, गात्रभङ्गम् = देहकुटलीकरणम्, पर्वास्फोटम्—पर्वणाम् = देहसन्धिस्थलानाम्, आस्फोटम् = कण्डूयनम्, वर्जयेत् = वर्जनं कुर्यात्॥२१९॥

हिन्दी—जोर से हँसना, खाँसना, थूकना, निन्दा करना, जँभाई लेना, शरीर मरोड़ना तथा अंगुली चटकाना—इन कार्यों को न करे॥२१९॥

उच्चैरिति। उच्चैः प्रहसनम् उच्चहासं कासं कफादिनिःसारणशब्दविशेषं ष्ठीवनं थुत्कारं कुत्सनं कुत्सितकर्मकरणम् अथवा कस्यापि निन्दनं जृम्भणं गात्रभङ्गं तथा पर्वणां शरीरग्रन्थीनाम् आस्फोटं कण्डूयनं वर्जयेत् प्रभुसमक्षमिति शेषः॥२१९॥

राज्ञादिष्टन्तु यत् स्थानं तत्र तिष्ठेन्मुदान्वितः।
प्रवीणो [illegible] मेधावी वर्जयेदभिमानताम्॥ २२० ॥

अन्वयः—राज्ञादिष्टन्तु यत् स्थानं मुदान्वितं तत्र तिष्ठेत्, प्रवीणोचितमेधावी अभिमानतां वर्जयेत् ॥ २२० ॥

व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, आदिष्टम् = प्राप्तादेशः, यत्स्थानम् = स्थलम्, मुदान्वितम् = आनन्देन सहितम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, तिष्ठेत् = आसनग्रहणं कुर्यात्, प्रवीणोचितमेधावी = विज्ञोपपन्नपण्डितः, अभिमानताम् = गर्विताम्, वर्जयेत् = त्यजेत् ॥ २२० ॥

हिन्दी—राजा जहाँ बतलाये वहाँ खुशी के साथ बैठ जाय। अपनी प्रज्ञा से उत्पन्न बुद्धिमत्ता का अभिमान छोड़ देना चाहिए ॥ २२० ॥

राज्ञेति। राज्ञा आदिष्टं प्रदर्शितं यत् स्थानं, मुदान्वितः सहर्षः सन् तत्र तिष्ठेत् तथा प्रवीणोचितमेधावी वृद्धोचितप्रज्ञावान् सन् अभिमानतां मानितां वर्जयेत् प्रभुसमीपे मानापमानबुद्धिर्नाद्रियते इति भावः ॥ २२० ॥

आपद्युन्मार्गगमने कार्य्यकालात्ययेषु च।
अपृष्टोऽपि हितान्वेषी ब्रूयात् कल्याणभाषितम् ॥ २२१ ॥

अन्वयः—हितान्वेषी अपृष्टोऽपि आपदि उन्मार्गगमने च कार्यकालात्ययेषु कल्याणभाषितं ब्रूयात् ॥ २२१ ॥

व्याख्या—हितान्वेषी = कल्याणकामी जनः, अपृष्टोऽपि = अननुयोगेऽपि, आपदि = विपदि, उन्मार्गगमने = कुपथसञ्चरणे, च = पुनः, कार्यकालात्ययेषु = कर्मकालव्यतीतेषु, कल्याणभाषितम् = हितकारवचनम्, ब्रूयात् = वदेत् ॥ २२१ ॥

हिन्दी—राजा यदि विपत्ति में हो, कुपथगामी हो या कोई काम करने का समय बीत रहा हो तो कल्याणकामी व्यक्ति को बिना पूछे भी राजा से हितकर बातें कहनी चाहिए ॥ २२१ ॥

आपदीति। हितान्वेषी हितकामी जनः अपृष्टोऽपि अजिज्ञासितोऽपि आपदि, उन्मार्गगमने तथा कार्य्यकालात्ययेषु कार्य्यसमयातिक्रमेषु प्रभोरिति शेषः, कल्याणभाषितं हितवाक्यं ब्रूयात् कथयेत् ॥ २२१ ॥

प्रियं तथ्यञ्च पथ्यञ्च वदेद्धर्मार्थकं वचः।
समानवार्तया चापि तद्धितं बोधयेत् सदा ॥ २२२ ॥

अन्वयः—प्रियं तथ्यं च पथ्यं धर्मार्थकं वचः वदेत्। समानवार्तया च सदा तत् हितं बोधयेत् ॥ २२२ ॥

व्याख्या—प्रियम् = श्रुतिमधुरम्, तथ्यम् = सत्योपेतम्, पथ्यम् = मङ्गलम्, धर्मार्थकम् = धर्मार्थसहितम्, च = पुनः, वचः = वचनम्, वदेत् = कथयेत्, समानवार्तया = समसंलापेन, च = पुनः, सदा = सर्वदा, तत् = तस्य राज्ञः, हितम् = शुभावहम्, बोधयेत् = निवेदयेत् ॥ २२२ ॥

हिन्दी—श्रवणसुखद, तथ्यपूर्ण, कल्याणप्रद, धर्म और अर्थयुक्त बातें सदा राजा से निवेदित करें और समान बातों से राजा को हितकर बातें समझायें ॥ २२२ ॥

प्रियमिति। प्रियं प्रीतिकरं तथ्यं यथार्थं पथ्यं हितं धर्मार्थकं धर्मार्थयुक्तञ्च वचः वदेत् समानवार्तया मानयुक्तसमाचारेण च सदा तस्य प्रभोः हितं बोधयेदपि ज्ञापयेच्च ॥ २२२ ॥

कीर्त्तिमन्यनृपाणां वा वदेन्नीतिफलं तथा।
दाता त्वं धार्मिकः शूरो नीतिमानसि भूपते!॥ २२३ ॥
अनीतिस्ते तु मनसि वर्त्तते न कदाचन।
ये ये भ्रष्टा अनीत्या तान् तदग्रे कीर्त्तयेत् सदा॥ २२४॥

अन्वयः—अन्येषां नृपाणां कीर्त्तिं नीतिफलं वा वदेत्। भूपते! त्वं दाता धार्मिकः शूरः तथा नीतिमान् असि। कदाचन ते मनसि अनीतिः न तु। ये ये अनीत्या भ्रष्टाः तान् तदग्रे सदा कीर्त्तयेत्॥२२३-२२४॥

व्याख्या—अन्येषाम् = अपरेषाम्, नृपाणाम् = राज्ञाम्, कीर्तिम् = सुकर्मविश्रुतिम्, नीतिफलम् = नयमार्गलाभः, वा = अथवा, वदेत् = कथयेत्। किञ्च, हे भूपते = हे राजन्! त्वम् = भवान्, दाता = दानकर्त्ता, धार्मिकः = धर्मात्मा, शूरः = वीरः, तथा नीतिमान् = न्यायनिष्ठः, असि = विद्यसे। कदाचन = कदाऽपि, ते = तव, मनसि = चित्ते, अनीतिः = अन्यायः, न तु = नैवास्ति। ये ये = राजानः, अनीत्या = अन्यायेन, भ्रष्टाः = दुर्वृत्ताः, तान् = नृपान्, तत् = तस्य राज्ञः, अग्रे = सम्मुखे, सदा = सर्वदा, कीर्त्तयेत् = वर्णयेत्॥२२३-२२४॥

हिन्दी—अन्य राजाओं की कीर्ति और उनके नीतिपुरस्सर कर्म के परिणाम का बखान करे। साथ ही कहे—हे राजन्! आप दानी, धर्मात्मा, वीर तथा नीतिकुशल हैं। आपके मन में भी कभी अनीति या अनाचार की बातें नहीं आती हैं। और जो-जो राजे अन्यायपथ पर चलकर अपने राज्य से भ्रष्ट हुए हैं उनकी चर्चा राजा के सामने करे॥२२३-२२४॥

कीर्त्तिमिति। अन्येषां नृपाणां कीर्त्तिं यशस्करकार्य्यं नीतिफलं वा वदेत्। किञ्च हे भूपते! त्वं दाता, धार्मिकः, शूरः, वीरः तथा नीतिमान् नयसम्पन्नः असि, कदाचन ते तव मनसि अनीतिः दुर्णयः न तु नैव वर्त्तते। ये ये नृपाः अनीत्या दुर्णयेन भ्रष्टाः तान् तदग्रे तस्य प्रभोरग्रे सदा कीर्त्तयेत्॥२२३-२२४॥

नृपेभ्यो ह्यधिकोऽसीति सर्वेभ्यो न विशेषयेत्।
परार्थं देशकालज्ञो देशे काले च साधयेत्॥ २२५॥

अन्वयः—सर्वेभ्यः नृपेभ्यः हि अधिकः असि इति न विशेषयेत्। तथा देशकालज्ञः च देशे काले च परार्थं साधयेत्॥२२५॥

व्याख्या—सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, नृपेभ्यः = राजभिः, हि = इति निश्चयेन, अधिकः = प्रभूतः, असि = विद्यसे, इति = इत्थं वचनम्, न = नहि, विशेषयेत् = किमप्युपचित्य ब्रूयात्। तथा देशकालज्ञः = स्थानविशेषस्य कालविशेषस्य च व्यवहारविदः सन्, देशे = स्थानविशेषे, काले = समयविशेषे, च = पुनः, परार्थम् = परोपकारहेतवे , च, साधयेत् = निष्पादयेत्॥२२५॥

हिन्दी—और आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं, ऐसा विशेष रूप से न कहे। देश-काल-विशेषज्ञ होकर उचित देश एवं काल के होने पर दूसरों का काम राजा के द्वारा निष्पादित कराये॥२२५॥

नृपेभ्य इति। सर्वेभ्यः नृपेभ्यः अधिकः श्रेष्ठः असीति न विशेषयेत् विशिष्य ब्रूयात् तथा देशकालज्ञः अस्मिन् देशे इदं कर्त्तव्यमस्मिन् काले एवं व्यवहर्त्तव्यमिति जानन् सन् देशे यथास्थाने काले यथासमये परार्थं परेषामन्येषाम् अर्थं कार्य्यं श्रेष्ठकार्य्यं वा साधयेत्॥२२५॥

परार्थनाशनं न स्यात् तथा ब्रूयात् सदैव हि।
न कर्षयेत् प्रजाकार्य्यमिषतश्च नृपं सदा॥ २२६ ॥

अन्वयः—यथा परार्थनाशनं न स्यात् तथा सदैव हि ब्रूयात्। तथा प्रजाकार्यमिषतः नृपं सदा न कर्षयेत्॥२२६॥

व्याख्या—यथा परार्थनाशनम्—परेषाम् = प्रजादीनाम्, अर्थस्य = प्रयोजनस्य, नाशनम् = उच्छेदनं विनाशनं वा, न = नहि, स्यात् = भवेत्, तथा सदैव = सर्वदैव, हि = इति निश्चयेन, ब्रूयात् = वदेत्, तथा प्रजाकार्यमिषतः—प्रजानाम् = जनानाम्, कार्यमिषतः = कार्यव्यपदेशेन, नृपम् = राजानम्, सदा = सर्वदा, न = नहि, कर्षयेत् = दिशाविशेषे प्रेरयेत्॥२२६॥

हिन्दी—राजा से सदैव ऐसी बातें कहे जो दूसरों के लिए हानिकर न हो तथा प्रजा-कार्य के बहाने राजा को सदैव दिशा-विशेष की ओर प्ररित न करे॥२२६॥

परार्थेति। यथा परार्थनाशनं परेषां प्रजादीनां कार्य्यहानिः न स्यात् तथा सदैव ब्रूयात् तथा प्रजाकार्य्यमिषतः प्रजानां कार्य्यानुरोधेनेत्यर्थः, नृपं स्वामिनं सदा न कर्षयेत् न विरक्तीकुर्यात् हिशब्दोऽवधारणे॥२२६॥

अपि स्थाणुवदासीत शुष्यन् परिगतः क्षुधा।
न त्वेवानर्थसम्पन्नां वृत्तिमीहेत पण्डितः॥ २२७॥

अन्वयः—पण्डितः क्षुधा परिगतः शुष्यन् अपि स्थाणुवत् आसीत। अनर्थसम्पन्नां वृत्तिं न त्वेव ईहेत॥२२७॥

व्याख्या—पण्डितः = मेधावी, क्षुधा = बुभुक्षा, परिगतः = परिपीडितः, अत एव, शुष्यन् = विशीर्णत्वं गच्छन्, अपि = चेत्, स्थाणुवत् = अशाखवृक्षरिव, आसीत = तिष्ठेत्, अनर्थसम्पन्नाम् = अनिष्टसङ्कुलाम्, वृत्तिम् = आजीविकाम्, न त्वेव, ईहेत = चेष्टेत॥२२७॥

हिन्दी—बुद्धिमान् व्यक्ति भले ही भूख से सूखकर ठूँठ की तरह शान्त हो जाय, परन्तु अनर्थ से भरी आजीविका का स्वीकार कभी भी न करे॥२२७॥

अपीति। पण्डितः प्राज्ञो जनः क्षुधा परिगतः क्षुधार्त्तः अत एव शुष्यन् शोषं गच्छन्नपि स्थाणुवत् शाखापल्लवादिहीनः शुष्कतरुरिव आसीत तिष्ठेत् अनर्थसम्पन्नां विपत्सङ्कुलाम् असाध्वीमित्यर्थः, वृत्तिं जीविकां न त्वेव ईहेत चेष्टेत नैवावलम्बेतेत्यर्थः॥२२७॥

यत्कार्य्ये यो नियुक्तः स भूयात् तत्कार्य्यतत्परः।
नान्याधिकारमन्विच्छेन्नाभ्यसूयेच्च केनचित्॥ २२८॥

अन्वयः—यः यत्कार्ये नियुक्तः सः तत्कार्यतत्परः भूयात्। अन्याधिकारं न अन्विच्छेत् च केनचित् न अभ्यसूयेत्॥२२८॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, यत् = यस्मिन्, कार्ये = कर्मणि, नियुक्तः = नियोजितः, सः = असौ, तत् = तस्मिन्, कार्ये = कृत्ये, तत्परः = सन्नद्धः, भूयात् = भवेत्, अन्याधिकारम्—अन्येषाम् = अपरेषाम्, अधिकारम् = प्रकरणम् आधिपत्यं वा, न = नहि, अन्विच्छेत् = अभिलषेत्, च = पुनः, केनचित् = कस्याप्यन्यस्य, न = नहि, अभ्यसूयेत् = परगुणेषु दोषारोपः कुर्यात्॥२२८॥

हिन्दी—जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए नियुक्त किया गया हो उसे दत्तचित होकर उस कार्य का सम्पादन करना चाहिए। किसी का अधिकार छीनने की न तो इच्छा करे और न किसी से डाह करे ॥ २२८ ॥

यत्कार्य्य इति। यः यस्मिन् कार्य्ये नियुक्तः सः तत्कार्य्यतत्परः भूयात् भवेत्, अन्यस्य अधिकारं न अन्विच्छेत् तथा केनचित् न अभ्यसूयेच्च नासूयां कुर्य्याच्च ॥ २२८ ॥

न न्यूनं लक्षयेत् कस्य पूरयीत स्वशक्तितः।
परोपकरणादन्यन्न स्यान्मित्रकरं सदा ॥ २२९ ॥

अन्वयः—कस्य न्यूनं न लक्षयेत् प्रत्युत स्वशक्तितः पूरयीत। सदा परोपकारकरणात् अन्यत् मित्रकरं न स्यात् ॥ २२९ ॥

व्याख्या—कस्य = कस्यापि जनस्य, न्यूनम् = स्खलितम्, न = नहि, लक्षयेत् = अवलोकयेत्, प्रत्युत स्वशक्तितः = आत्मशक्त्या, पूरयीत = त्रुटिं परिमार्जयेत्। सदा = सततम्, परोपकारकरणात्—परेषाम् = अन्येषाम्, उपकारस्य = उपकृतेः, करणात् = निष्पादनात्, अन्यत् = अपरं किमपि, मित्रकरम् = मैत्रीसम्पादकम्, न = नहि, स्यात् = विद्यते ॥ २२९ ॥

हिन्दी—किसी की कमी पर ध्यान न दे, बल्कि अपनी ताकत से उसकी कमी को पूरा कर दे। दूसरे के साथ उपकार करने से बढकर मित्रता बढ़ाने का कोई अन्य साधन नहीं है ॥ २२९ ॥

नेति। कस्य जनस्य अपीति शेषः, न्यूनं त्रुटिमित्यर्थः, न लक्षयेत् स पश्येत् प्रत्युत स्वशक्तितः निजशक्त्या पूरयीत न्यूनं पूरयेत्। सदा सर्वस्मिन् काले परेषामुपकारकरणात् अन्यत् किमपीत्यर्थः, मित्रकरं मैत्रीविधायकं न स्यात् न विद्यते, अतः परेषां न्यूनतापूरणं सर्वथा कर्त्तव्यमिति भावः ॥ २२९ ॥

करिष्यामीति ते कार्य्यं न कुर्य्यात् कार्य्यलम्बनम्।
द्राक् कुर्य्यात् तु समर्थश्चेत् साशं दीर्घं न रक्षयेत् ॥ २३० ॥

अन्वयः—ते कार्यं करिष्यामि इति कार्यलम्बनं न कुर्यात्। समर्थश्चेत् द्राक् कुर्यात्, साशं दीर्घं न रक्षयेत् ॥ २३० ॥

व्याख्या—ते = तव, कार्यम् = कृत्यम्, करिष्यामि = सम्पादयिष्यामि, इति = इत्थमुक्त्वा, कार्यलम्बनम्—तस्य कार्यस्य = कर्मणः, लम्बनम् = वेलातिक्रमः, न = नहि, कुर्यात् = विधेयात्। समर्थः = सुशक्तः, चेत् = यदि, द्राक् = शीघ्रमेव, कुर्यात् = निष्पादयेत्, साशम्— आशया = स्पृहया, सहितम् = युक्तम्, दीर्घम् = कालक्षेपः, न = नहि रक्षयेत् ॥ २३० ॥

हिन्दी—'मैं तुम्हारा काम करूँगा' ऐसा आश्वासन देकर किसी के काम में देर न करे। यदि खुद सक्षम हो तो उसे शीघ्र पूरा कर दे, देर तक उसे आशा में लटका कर न रखे ॥ २३० ॥

करिष्यामीति। ते तव कार्य्यं करिष्यामीति प्रतिश्रुत्येति शेषः, कार्य्यस्य लम्बनं विलम्बनं न कुर्य्यात् समर्थः शक्तश्चेत् द्राक् झटिति कुर्य्यात् साशम् आशासहितम् आशां दत्त्वेति भावः, दीर्घं कालं न रक्षयेत् न कार्यमावृत्य तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २३० ॥

गुह्यं कर्म च मन्त्रञ्च न भर्त्तुः सम्प्रकाशयेत्।
विद्वेषञ्च विनाशञ्च मनसापि न चिन्तयेत्॥ २३१ ॥

अन्वयः—भर्तुः गुह्यं कर्म मन्त्रञ्च न सम्प्रकाशयेत्। विद्वेषं च विनाशं मनसाऽपि न चिन्तयेत्॥२३१॥

व्याख्या—भर्तुः= राज्ञः, गुह्यम् = संवरणीयम्, कर्म = कृत्यम्, मन्त्रञ्च = विचारणा च, न = नहि, प्रकाशयेत् = सम्यग्रूपेण प्रचारयेत्, विद्वेषम् = वैरम्, च = पुनः, विनाशम् = अवसादश्च, मनसाऽपि = चेतसाऽपि, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत्॥२३१॥

हिन्दी—राजा के किसी गुप्त रहस्य का प्रकाशन न करे और उसके साथ वैर या विनाश की कल्पना मन से भी न करे॥२३१॥

गुह्यमिति। भर्तुः स्वामिनः गुह्यं गोपनीयं कर्म्म मन्त्रं परामर्शञ्च न सम्प्रकाशयेत् विद्वेषं विनाशञ्च मनसापि न चिन्तयेत् न भावयेत्॥२३१॥

राजा परममित्रोऽस्ति न कामं विचरेदिति।
स्त्रीभिस्तदर्थिभिः पापैर्वैरिभूतैर्निराकृतैः॥ २३२ ॥
एकार्थचर्य्यां साहित्यं संसर्गञ्च विवर्जयेत्।
वेशभाषानुकरणं न कुर्य्यात् पृथिवीपतेः॥ २३३ ॥
सम्पन्नोऽपि च मेधावी न स्पर्धेत च तद्गुणैः।
रागापरागौ जानीयाद्भर्त्तुः कुशलकर्मवित्।
इङ्गिताकारचेष्टाभ्यस्तदभिप्रायतां तथा॥ २३४ ॥

अन्वयः—राजा परं मित्रः अस्ति इति कामं न विचरेत्। तदर्थिभिः स्त्रीभिः तथा पापैः निराकृतैः वैरिभूतैः एकार्थचर्चां साहित्यं संसर्गञ्च विवर्जयेत्। किञ्च पृथिवीपतेः वेशभाषानुकरणं न कुर्यात्। तथा सम्पन्नोऽपि च मेधावी तद्गुणैः न स्पर्द्धेत। कुशलकर्मवित् भर्त्तुः रागापरागौ तथा इङ्गिताकारचेष्टाभ्यः तदभिप्रायतां जानीयात्॥२३२-२३४॥

व्याख्या—राजा = नृपः, मम, परममित्रः = उत्कृष्टसुहृद्, अस्ति = विद्यते, अत्र मित्रशब्दस्य पुल्लिङ्गप्रयोगः, आर्षत्वादिति, इति = इत्थम्, कामम् = यथेच्छव्यवहारम्, न = नहि, विचरेत् = विचिन्तयेत्। तत् = तस्य राज्ञः, अर्थिभिः = इच्छुकाभिः, स्त्रीभिः = कामीनीभिः, तथा पापैः = दुष्कृतैः, निराकृतैः = तिरस्कृतैः, वैरिभूतैः = शत्रुभूतैः, एकार्थचर्याम् = समानाचरणम्, साहित्यम् = सम्मिलनम्, संसर्गम् = साहचर्यम्, विवर्जयेत् = परित्यजेत्। किञ्च, पृथिवीपतेः = राज्ञः, वेशस्य = प्रसाधनस्य, भाषायाश्च = भाषितस्य च, अनुकरणम् = अनुसरणम्, न = नहि, कुर्यात् = सम्पादयेत्। तथा सम्पन्नोऽपि = समृद्धोऽपि, च = पुनः, मेधावी = प्रज्ञाशाली, तद्गुणैः—तत् = तस्य, गुणैः = स्वभावैः, न = नहि, स्पर्द्धेत = विजिगीषां कुर्यात्। कुशलकर्मवित् = माङ्गलिककर्मविशेषज्ञः, भर्तुः = राज्ञः, रागापरागौ = अनुरक्ति-विरक्ती, केन कृत्येनानुरक्तिस्तथा केन कर्मणा विरक्तिरिति भवेत्, तथा इङ्गितेन = सङ्केतेन, आकारेण = आकृत्या, चेष्टया = कायिकव्यापारेण च, तत् = तस्य स्वामिनः, अभिप्रायताम् = हृद्गतविचारम्, जानीयात् = बुध्येत ॥२३२-२३४॥

हिन्दी—'राजा मेरे परम मित्र है ही' यह सोचकर कभी मनमाना आचरण नहीं करना चाहिए। राजा को चाहने वाली औरतें, राजा के साथ दुर्व्यवहार या वैरभाव या राजा से अनादृत लोगों के साथ बैठना-उठना, विचार-विमर्श करना या मिलना-जुलना बिलकुल छोड़ दे। राजा के पहनावे या उसकी बोलचाल की नकल नहीं करनी चाहिए। समृद्ध एवं प्रतिभाशाली होने के बावजूद राजा के गुणों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। शुभकर्मवेत्ता बनकर राजा की प्रीति या विरक्ति उनके इशारें, मुखमुद्रा या चेष्टा से जानें॥ २३२-२३४॥

राज्येत्यादि। राजा मम परममित्रः अस्ति वर्त्तते इति कामं सम्यक् न विचरेत् न भावयेत्, मित्र इति पुंलिङ्गः आर्षः। तदर्थिभिः तस्य प्रभोः अर्थिभिः अभिलाषिणीभिरित्यर्थः, तदर्थिभिरिति आर्षम्। स्त्रीभिः तथा पापैः पापाचारैः अत एव निराकृतैः वैरिभूतैः शत्रुभिः प्रभोरिति शेषः, एकार्थचर्य्यां सम्भूय व्यवहारम्। साहित्यम् एकक्रियाकरणं संसर्गञ्च विवर्जयेत् त्यजेत् किञ्च पृथिवीपतेः वेशस्य भाषायाश्च अनुकरणं न कुर्य्यात् तथा सम्पन्नोऽपि मेधावी अपि तस्य प्रभोः गुणैः न स्पर्द्धेत। अपि च कुशलकर्म्मवित् शुभकार्यज्ञः सन् भर्त्तुः स्वामिनः रागापरागौ अनुरागविरागौ जानीयाम्, केन कर्म्मणा अनुरागः केन वा विरागो भवेदिति तथा इङ्गितेन आकारेण चेष्टया च तस्य प्रभोः अभिप्रायतां मनोभावं जानीयात् बुध्येत॥ २३२-२३४॥

त्यजेद्विरक्तं नृपतिं रक्ते वृत्तिन्तु कारयेत्॥ २३५॥
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा॥ २३६॥

अन्वयः—विरक्तं नृपतिं त्यजेत्, रक्ते तु वृत्तिं कारयेत्। तथा विरक्तः विनाशं विपक्षाभ्युदयं च कारयेत्॥ २३५-२३६॥

व्याख्या—विरक्तम् = विमुखम्, नृपतिम् = राजानम्, त्यजेत् = परित्यागं कुर्यात्, रक्ते = आसक्ते, तु, वृत्तिम् = भृतिम्, कारयेत् = कुर्यादिति, विरक्तः = विरतः उदासीनो वा, विनाशम् = विध्वंसम्, विपक्षाभ्युदयम्—विपक्षाणाम् = अरीणाम्, अभ्युदयम् = उन्नतिम्, कारयेत् = उत्पादयेत्॥ २३५-२३६॥

हिन्दी—राजा जिससे विमुख होता है उसका विनाश करता है तथा उसके विरोधी का उत्थान करता है। अतः राजा यदि अनासक्त हो तो उसे छोड़ देना चाहिए और अनुकूल हो तभी उसकी सेवा करनी चाहिए॥ २३५-२३६॥

त्यजेदिति। विरक्तं नृपतिं त्यजेत् रक्ते अनुरक्ते नृपे वृत्तिं वर्त्तनं स्थितिमित्यर्थः, कारयेत् कुर्य्यादित्यर्थः, स्वार्थे ञयन्तोऽयं कृधातुः। विरक्तः नृपः नाशं विपदं तथा विपक्षाणां शत्रूणाम् अभ्युदयम् उन्नतिं कारयेत् जनयेत्॥ २३५-२३६॥

आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च।
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः।
वाक्यञ्च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति च॥ २३७॥
लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्त्तने कृते।
दृष्टिं क्षिपत्यथान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि॥ २३८॥
विरक्तलक्षणं ह्येतद्रक्तस्य लक्षणं ब्रुवे॥ २३९॥

दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात्।
कुशलादिपरिप्रश्नी प्रदापयति चासनम् ॥ २४० ॥
विविक्तदर्शनं चास्य रहस्येनं न शङ्कते।
ज्ञायेत हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य च तत्कथाम् ॥ २४१ ॥
अप्रियाण्यपि चान्यानि तद्युक्तान्यभिमन्यते।
उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकसम्पादनैस्तथा।
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ॥ २४२ ॥
इति रक्तस्य वै लक्ष्यं कर्त्तव्यं तस्य सेवनम् ॥ २४३ ॥

अन्वयः—यः नृपः आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति, अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः समदं वाक्यं वक्ति च वृत्तिच्छेदं करोति, गुणसङ्कीर्तने कृतेऽपि विमुख एव लक्ष्यते, च अन्यत्र क्रियमाणे कर्मणि दृष्टिं क्षिपति, एतत् विरक्तलक्षणम्। रक्तस्य लक्षणं ब्रुवे--- दृष्ट्वा प्रसन्नः भवति च आदरात् वाक्यं गृह्णाति, कुशलादिपरिप्रश्नी आसनं प्रदापयति, अस्य विविक्तदर्शनं रहसि एनं न शङ्कते। तस्य च तत्कथां श्रुत्वा हृष्टवदनः ज्ञायेत, तद्युक्तानि अप्रियाण्यपि अन्यानि अभिमन्यते च उपायनं तथा स्तोकसम्पादनैः कथान्तरेषु प्रहृष्टवदनः स्मरति, रक्तस्य इति लक्ष्यं तस्य सेवनं कर्त्तव्यम् ॥ २३६-२४३ ॥

व्याख्या—यः = नृपः, आशावर्द्धनकम् = आकाङ्क्षावृद्धिम्, कृत्वा = विधाय, फलनाशम् = आशां दत्त्वा तत्फलदाने वञ्चनम्, करोति = निष्पादयति, अकोपोऽपि = रोषरहितोऽपि, सकोपाभः = कुपितमिव, प्रसन्नोऽपि = प्रहृष्टोऽपि, च निष्फलः = फलदाने विमुखो भवति, समदम् = सदर्पम्, वाक्यम् = वचनम्, वक्ति = वदति, च = पुनः, वृत्तिच्छेदम् = आजीविकाऽऽघातम्, करोति = निष्पादयति, अपि च, गुणसङ्कीर्त्तने = गुणगाने, कृतेऽपि = प्रशस्तिवचनकथनेऽपि, विमुख एव = अपूर्णकाम एव, लक्ष्यते = दृश्यते, च = पुनः, अन्यत्र = अन्यस्मिन् स्थाने, क्रियमाणे = अनुष्ठीयमाणे, कर्मणि = कृत्ये, दृष्टिं क्षिपति = दृक्पातं करोति। एतत् = पूर्वोक्तगुणः, विरक्तस्य = विरतस्य राज्ञः, लक्षणम् = चिह्नम्, कथितम्। सम्प्रति, रक्तस्य = अनुकूलनृपस्य, लक्षणम् = स्वरूपम्, ब्रुवे = कथयामि, दृष्ट्वा = स्वकीयजनमवलोक्य, प्रसन्नः = प्रहृष्टः, भवति = जायते, च = पुनः, आदरात् = सम्मानपूर्वकात्, वाक्यम् = तस्य कथनम्, गह्णाति = ग्रहणं करोति, कुशलादिपरिप्रश्नी सन् = क्षेमादिमाङ्गलिकपरिपृच्छानन्तरम्, आसनम् = उपवेशनम्, प्रदापयति = प्रदातुमादिशति, अस्य = समागतस्य सेवकस्य, विविक्तदर्शनम् = पृथग्भूतसाक्षात्करणं करोति, रहसि = एकान्तस्थाने स्थितः, एनम् = सम्मुखस्थं सेवकम्, न = नहि, शङ्कते = सन्देहं कुरुते, तस्य = सेवकस्य, तत्कथाम् = वार्त्ताम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, हृष्टवदनः = प्रसन्नमुखः, ज्ञायेत = परिलक्ष्येत, प्रभुरिति, तत् = तेन सेवकेन, युक्तानि = उचितानि, अप्रियाणि अपि = अरुचिकराण्यपि, अन्यानि = अपराणि, अभिमन्यते = अनुशंसते, उपायनम् = उपहारः, तथा = तेनैव प्रकारेण, स्तोकसम्पादनैः = मनागपि कार्यनिष्पादनैरपि, कथान्तरेषु = विविधालापेषु मध्ये, प्रहृष्टवदनः = प्रसन्नाननः सन्, स्मरति = स्मरणं करोति, रक्तस्य = अनुरक्तस्य नृपस्य, पूर्वोक्तरूपम्, लक्ष्यम् = चिह्नम्, तस्य = एवम्भूतस्य राज्ञः, सेवनम् = उपासनम्, कर्त्तव्यम् = विधातव्यम् ॥ २३६-२४३ ॥

हिन्दी—जो आशा बँधाकर आशा का फल नष्ट कर देता हो, गुस्साये नहीं रहने पर भी गुस्से से जिसका चेहरा तमतमाया हो, खुश होकर भी कुछ देने वाला न हो, घमंडभरी बातें बोलता हो, आजीविका का साधन छीन लेता हो और गुणस्तुति सुनकर भी अनसुनी कर दूसरे काम की ओर दृष्टिपात करे तो ये सभी विरक्त स्वामी के लक्षण समझने चाहिए। ठीक इसके विपरीत अनुरक्त राजा वह होता है जो देखकर खुश होता हो, सम्मानपूर्वक उसकी बातें सुनता हो, कुशलक्षेम पूछता हो, बैठने के लिए आसन दिलवाता हो, चाहने पर सेवकों को एकान्त में दर्शन देता हो, एकान्त में निःशक होकर भेंट करता हो, उसकी बातें सुनकर प्रसन्नवदन दीख पड़ता हो, उसकी अन्य अप्रिय किन्तु युक्तिसंगत बातों का भी अनुमोदन करता हो, उसकी भेंट स्वीकार करता हो तथा सेवक के द्वारा किये गये छोटे-मोटे कार्यों को भी प्रसंग आने पर याद करता हो, तो ये लक्षण अनुरक्त स्वामी के जानना चाहिए तथा ऐसे राजा की सेवा करनी चाहिए॥ २३६-२४३ ॥

विरक्तरक्तलक्षणमाह—**आशेत्यादि**। यः प्रभुः आशावर्द्धनकम् आशावृद्धिं कृत्वा फलनाशं करोति आशां दत्वा फले वञ्चयतीत्यर्थः, अकोपः अक्रोधः अपि सकोपाभः सकोप इव तथा प्रसन्नः अपि निष्फलः फलदानविमुखः भवति। किञ्च समदं सगर्वं वाक्यं वक्ति वृत्तिच्छेदं जीविकाव्याघातं करोति च अपि च गुणसङ्कीर्त्तने कृतेऽपि विमुख एव लक्ष्यते तथा अन्यत्र क्रियमाणे कर्मणि दृष्टिं क्षिपति ददाति न गुणसङ्कीर्त्तके इति भावः। एतत् विरक्तस्य लक्षणं चिह्नमुक्तमिति शेषः। इदानीं रक्तस्य लक्षणं ब्रुवे कथयामि। दृष्ट्वा प्रसन्नः भवति, आदरात् वाक्यं गृह्णाति, कुशलादिपरिप्रश्नी सन् कुशलादिजिज्ञासानन्तरमित्यर्थः, आसनम् अस्य सेवकस्य विविक्तदर्शनम् एकान्ते दर्शनञ्च प्रददाति, रहसि एकान्ते स्थित इति शेषः, एनं सेवकं न शङ्कते तस्य सेवकस्य तत्कथां श्रुत्वा हृष्टवदनः प्रसन्नमुखः ज्ञायते लक्ष्यते प्रभुरिति शेषः, तेन सेवकेन युक्तानि अप्रियाणि अपि अन्यानि अभिमन्यते अनुमोदते, उपायनम् उपढौकनं गृह्णाति तथा स्तोकसम्पादनैः यत् किञ्चन कार्यसम्पादनैरपि कथान्तरेषु विविधालापेषु मध्ये प्रहृष्टवदनः प्रसन्नमुखः सन् स्मरति आह्वयति च। रक्तस्य अनुरागिणः प्रभोः इति उक्तप्रकारं लक्ष्यं चिह्नं तस्य अनुरक्तस्य प्रभोः सेवनं कर्त्तव्यम् ॥ २३७-२४३ ॥

तद्दत्तवस्त्रभूषादिचिह्नं सन्धारयेत् सदा।
न्यूनाधिक्यं स्वाधिकारकार्य्ये नित्यं निवेदयेत्।
तदर्थां तत्कृतां वार्तां शृणुयाद्वापि कीर्त्तयेत्॥ २४४॥

अन्वयः—तद्दत्तवस्त्रभूषादिचिह्नं सदा सन्धारयेत्। तथा स्वाधिकारकार्ये न्यूनाधिक्यं नित्यं निवेदयेत्। तदर्थां वा तत्कृतां वार्त्तां शृणुयात् च कीर्त्तयेत् ॥ २४४ ॥

व्याख्या—तत् = तेन राज्ञा, दत्तम् = विसृष्टम्, वस्त्रभूषादि = वसनालङ्कारादि, चिह्नम् = प्रतीकम्, सदा = सर्वदा, सन्धारयेत् = परिधारयेत्। तथा = तेनैव रूपेण, स्वाधिकारकार्ये—स्वस्य = आत्मनः, अधिकारस्य = प्रभुत्वस्य, कार्ये = कर्मणि, न्यूनाधिक्यम्—न्यूनताम् = अपूर्णताम्, आधिक्यञ्च = बाहुल्यञ्च, नित्यम् = प्रतिदिनम्, स्वामिने निवेदयेत् = कथयेत्। किञ्च, तदर्थाम् = नृपसम्बद्धाम्, वा = अथवा, तत् = तस्य, नृपस्य, कृताम् = कथिताम्, वार्त्ताम् = सम्भाषणम्, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्, च = पुनः, कीर्त्तयेत् = तद्गुणं कथयेत् ॥ २४४ ॥

हिन्दी—राजकीय पोशाक और पदक को हमेशा पहनना चाहिए। अपने अधिकारक्षेत्र में किये गये कामों की कमी या अधिकता की सूचना हर रोज अपने स्वामी को देनी चाहिए। इतना ही नहीं, उनकी कही बातें गौर से सुने तथा दूसरों को सुनाये भी ॥ २४४ ॥

तद्दत्तेति। तेन प्रभुणा दत्तं वस्त्रभूषादि वसनभूषणादि चिह्नं सदा सन्धारयेत् तथा स्वाधिकारकार्य्ये निजाधिकारकर्मणि न्यूनाधिक्यं न्यूनताम् आधिक्यञ्च नित्यं निवेदयेत् स्वामिने इति शेषः। किञ्च तदर्थां प्रभुसम्बद्धां वा तत्कृतां प्रभुकथितां वार्तां शृणुयात् कीर्त्तयेच्च ॥ २४४ ॥

चारसूचकदोषेण त्वन्यथा यद्वदेन्नृपः।
शृणुयान्मौनमाश्रित्य तथ्यवन्नानुमोदयेत् ॥ २४५ ॥

अन्वयः—चारसूचकदोषेण तु नृपः यत् अन्यथा वदेत् मौनमाश्रित्य तत् शृणुयात्, किन्तु तथ्यवत् न अनुमोदयेत् ॥ २४५ ॥

व्याख्या—चाराणाम् = गुप्तचराणाम्, सूचकानाम् = पिशुनानाम्, दोषेण = अभियोगेन, यत्, नृपः = राजा, अन्यथा = इतरथा, प्रतिकूलमिव, वदेत् = किमपि कथयेत्, तदखिलम्, शृणुयात् = मौनभावेन श्रवणं कुर्यात्, किन्तु तथ्यवत् = तत्कथनं सत्यकथनमिव, न = नहि, अनुमोदयेत् = समर्थनं कुर्यात् ॥ २४५ ॥

हिन्दी—जासूस या चुगलखोरों के कहने पर राजा यदि कुछ विरुद्ध बातें बोले तो उसे चुपचाप सुन लेना चाहिए, किन्तु सत्य की तरह उसका अनुमोदन नहीं करना चाहिए ॥ २४५ ॥

चारेति। चाराणां सूचकानां दुर्जनानां दोषेण नृपः यत् अन्यथा विरुद्धमित्यर्थः, वदेत् कथयेत् मौनं तुष्णीम्भावम् आश्रित्य तत् शृणुयात् किन्तु तथ्यवत् सत्यवत् न अनुमोदयेत् न स्वीकुर्य्यात् ॥ २४५ ॥

आपद्गतं सुभर्त्तारं कदापि न परित्यजेत् ॥ २४६ ॥
एकवारमप्यशितं यस्यान्नं ह्यादरेण च।
तदिष्टं चिन्तयेन्नित्यं पालकस्याञ्जसा न किम्? ॥ २४७ ॥

अन्वयः—आपद्गतं सुभर्त्तारं कदापि न परित्यजेत्। यस्य अन्नं एकवारमपि आदरेण अशितं तदिष्टं नित्यं चिन्तयेत्। पालकस्य अञ्जसा किं न भवति? ॥ २४६-२४७ ॥

व्याख्या—आपद्गतम् = विपन्नम्, सुभर्त्तारम् = सानुकूलस्वामिनम्, कदाऽपि = कस्यांश्चिदवस्थायामपि, न = नहि, परित्यजेत् = विसर्जयेत्। यस्य स्वामिनः, अन्नम् = भोज्यपदार्थम्, एकवारमपि = सकृदपि, आदरेण = सम्मानसहितेन, अशितम् = खादितम्, तत् = तस्य, इष्टम् = अभिप्रेतम्, नित्यम् = सततम्, चिन्तयेत् = विचारयेत्। तस्य पालकस्य = स्वामिनः, अञ्जसा = निर्व्याजेन, किं न = कथन्नेति ॥ २४६-२४७ ॥

हिन्दी—विपत्ति में फँसे अच्छे स्वामी का परित्याग भी नहीं करना चाहिए। एक बार भी सम्मानपूर्वक जिसका अन्न खा लिया हो उसका हमेशा हितचिन्तन करना चाहिए। फिर अपने पालनकर्ता का निष्कपट भाव से हितचिन्तन नहीं करना चाहिए? अर्थात् अवश्य ही करना चाहिए ॥ २४६-२४७ ॥

आपद्गतमिति। आपद्गतं विपद्ग्रस्तं सुभर्त्तारम् अनुरक्तं प्रभुं कदापि न परित्यजेत्। यस्य अन्नम् एकवारमपि आदरेण अशितं भक्षितं, तस्य इष्टं प्रियं हितमित्यर्थः, नित्यं चिन्तयेत्। तस्य पालकस्य अञ्जसा बलेन किं न भवति अपितु सर्वमेव कार्य्यं सिद्ध्यतीति भावः॥ २४६-२४७ ॥

अप्रधानः प्रधानः स्यात् काले चात्यन्तसेवनात्।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्यात् सेवालस्यादिना यतः॥ २४८॥

अन्वयः—काले च अत्यन्तसेवनात् अप्रधानः प्रधानः स्यात्। यतः सेवालस्यादिना प्रधानेऽपि अप्रधानः स्यात्॥ २४८ ॥

व्याख्या—काले च = यथावसरे, स्वामिनः, अत्यन्तसेवनात् = अत्यधिकोपासनात्, अप्रधानः = गौणसेवकः, प्रधानः = मुख्यपदाधिकारी, स्यात् = भवेत्। यतः, सेवालस्यादिना—सेवायाम् = सेवने, आलस्यादिना = प्रमादादिना, प्रधानोऽपि = प्रमुखोऽपि, अप्रधानः = गौणः, स्यात् = भवेत्॥ २४८ ॥

हिन्दी—समय पर राजा की अत्यधिक सेवा करने से सामान्य सेवक भी प्रोन्नत होकर प्रधान सेवक बन जाता है तथा सेवा में आलस्य आदि करने से प्रधान भी गौण बन जाता है॥ २४८ ॥

अप्रधान इति। अत्यन्तसेवनात् प्रभोरिति शेषः, सेवकः अप्रधानोऽपि प्रधानः स्यात्, यतः प्रधानोऽपि सेवायाम् आलस्यादिना अप्रधानः स्यात्॥ २४८ ॥

नित्यं संसेवनरतो भृत्यो राज्ञः प्रियो भवेत्।
स्वस्वाधिकारकार्य्यं यद्द्राक् कुर्य्यात् सुमना यतः॥ २४९॥

अन्वयः—नित्यं संसेवनरतः भृत्यः राज्ञः प्रियो भवति। यत् भृत्यः द्राक् स्वस्वाधिकारकार्यं कुर्यात् यतः सुमनाः॥ २४९ ॥

व्याख्या—नित्यम् = सततम्, संसेवनरतः = सम्यग्रूपेण सेवातत्परः, भृत्यः = सेवकः, राज्ञः = नृपस्य, प्रियः = मनोहरः सुखकरो वा भवति, यत्भृत्यः = सेवकः, द्राक् = झटिति, स्वस्वाधिकारकार्यम् = निजदायित्वस्य कृत्यम्, कुर्यात् = करोति, अतः = अस्माद्धेतोः, राज्ञः, कार्यात् = कर्मणः, सुमनाः = सुप्रीताः भवन्ति॥ २४९ ॥

हिन्दी—हमेशा सेवा में तत्पर रहने वाला सेवक राजा का प्रिय होता है। क्योंकि जो सेवक अपनी जिम्मेदारी का काम शीघ्र निपटा लेता है वह अपने काम से राजा का प्रिय होता है॥ २४९ ॥

नित्यमिति। नित्यं सततं संसेवनरतः सेवातत्परः भृत्यः राज्ञः प्रियो भवेत्, यत् यस्मात् भृत्यः द्राक् झटिति स्वस्वाधिकारकार्य्यं कुर्य्यात् करोति अतः राजा सुमनाः भवतीत्यर्थः, सुमना यत इति विसर्गस्थाने यादेशः॥ २४९ ॥

न कुर्य्यात् सहसा कार्य्यं नीचं राजापि नो दिशेत्।
तत्कार्य्यकारकाभावे राज्ञः कार्य्यं सदैव हि॥ २५०॥

अन्वयः—सहसा कार्यं न कुर्यात्। राजाऽपि नीचं कार्यं नो दिशेत्। राज्ञः तत्कार्यकारकाभावे सदैव हि कार्यम्॥ २५० ॥

व्याख्या—सहसा = हठात् एकपदे वा, कार्यम् = कृत्यम्, न = नहि, कुर्यात् = सम्पादयेत्। राजापि = नृपोऽपि, नीचम् = अधमम्, कार्यम् = कर्म, नो दिशेत् = कर्त्तुं न आज्ञापयेत्। राज्ञः = नृपस्य, तत्कार्यस्य = नीचकर्मणः, पुरीषादिपरिष्काररूपस्य, कारकाभावे = तदर्थनियुक्तसेवकाभावे, सदैव = सर्वदा एव, हि = यतः, कार्यम् = कारणीयमेवेति भावः॥ २५० ॥

हिन्दी—सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए। राजा भी कोई नीच काम करने के लिए किसी सेवक से न कहे। उस काम के लिए नियुक्त सेवक के अभाव में उपस्थित सेवक स्वयं उसको करे॥ २५० ॥

नेति। सहसा अविविच्येत्यर्थः कार्य्यं न कुर्य्यात् भृत्य इति शेषः, राजापि नीचं कार्य्यं कर्म नो दिशेत् कर्त्तुं नाज्ञापयेदित्यर्थः। राज्ञः तत्कार्य्यस्य नीचकार्य्यस्य मलमूत्रादिपरिष्काररूपस्य कारकाभावे सदैव तत्कार्य्यं कार्य्यं हि कर्त्तव्यमेव॥ २५० ॥

काले यदुचितं कर्त्तुं नीचमप्युत्तमोऽर्हति।
यस्मिन् प्रीतो भवेद्राजा तदनिष्टं न चिन्तयेत्॥ २५१ ॥

अन्वयः—काले यत् कर्त्तुम् उचितं नीचमप्युत्तमोऽर्हति। यस्मिन् राजा प्रीतः भवेत् तत् अनिष्टं न चिन्तयेत्॥ २५१ ॥

व्याख्या—काले = यथावसरे, यत् = कर्म, कर्त्तुम् = विधातुम्, उचितम् = युक्तम्, तत् = कर्म, नीचमपि = हीनोऽपि, उत्तमः = श्रेष्ठसेवकः, कर्त्तुमर्हति = अधिकरोति, यस्मिन् = कर्मणि, राजा = नृपः, प्रीतः = प्रसन्नः, भवेत् = स्यात्, तत् = तस्य, अनिष्टम् = अहितम्, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत्॥ २५१ ॥

हिन्दी—मौका आने पर मल-मूत्रादि उठाने जैसे निकृष्ट कर्म भी यदि उत्तम कोटि के सेवक को करना पड़े तो उसे करना चाहिए। क्योंकि राजा जिस पर प्रसन्न हो, उसके अनिष्ट की चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए॥ २५१ ॥

काले इति। काले समये यत् कर्त्तुमुचितं तत् नीचमपि निकृष्टमपि उत्तमः उत्कृष्टः भृत्यः अर्हति कर्त्तुमधिकरोति यस्मिन् कर्मणि राजा प्रीतः भवेत्। किञ्च तस्य राज्ञः अनिष्टं न चिन्तयेत्॥ २५१ ॥

न दर्शयेत् स्वाधिकारगौरवन्तु कदाचन॥ २५२ ॥

अन्वयः—कदाचन स्वाधिकारगौरवं न तु दर्शयेत्॥ २५२ ॥

व्याख्या—कदाचन = कस्मिंश्चिदपि काले, स्वाधिकारगौरवम्—स्वाधिकारस्य = आत्मकार्यस्य पदस्य वा, गौरवम् = महत्त्वम्, न तु, दर्शयेत् = प्रकाशयेत्॥ २५२ ॥

हिन्दी—राजा के सामने अपने अधिकार के महत्त्व का प्रकाशन नहीं करना चाहिए॥ २५२ ॥

नेति। कदाचन स्वाधिकारस्य निजकार्य्यस्य गौरवं गुरुत्वं दुःसाध्यत्वं न दर्शयेत् न प्रकाशयेत् भृत्य इति शेषः॥ २५२ ॥

परस्परं नाभ्यसूयुर्न भेदं प्राप्नुयुः कदा।
राज्ञा चाधिकृताः सन्तो स्वस्वाधिकारगुप्तये॥ २५३ ॥

अन्वयः—राज्ञा अधिकृताः सन्तः स्वस्वाधिकारगुप्तये परस्परं न अभ्यसूयुः, तथा कदापि भेदं न प्राप्नुयुः ॥ २५३ ॥

व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, अधिकृताः = उपलब्धाः, सन्तः = साधवः सेवकाः, स्वस्वाधिकारगुप्तये = स्वीय-स्वीयप्रभुत्वसंरक्षणाय, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, न = नहि, अभ्यसूयुः = ईर्ष्येयुः, तथा कदापि = कस्यांश्चिदवस्थायामपि, भेदम् = अन्तरम्, न = नहि, प्राप्नुयुः = लभेयुरिति ॥ २५३ ॥

हिन्दी—राजा से प्राप्त अधिकारी पद पर नियुक्त अच्छे सेवक अपने अधिकार की रक्षा के लिए आपस में एक-दूसरे से ईर्ष्या न करें और न एक-दूसरे के प्रति भेदभाव रखें ॥ २५३ ॥

परस्परमिति। राज्ञा अधिकृताः सन्तः साधवः भृत्याः स्वस्वाधिकारगुप्तये निजनिजाधिकाररक्षणाय परस्परं न अभ्यसूयुः न दोषं दर्शयेयुः तथा कदापि भेदं मनोभङ्गरूपं न प्राप्नुयुः ॥ २५३ ॥

अधिकारिगणो राजा सद्वृत्तौ यत्र तिष्ठतः।
उभौ तत्र स्थिरा लक्ष्मीर्विपुला सम्मुखी भवेत् ॥ २५४ ॥

अन्वयः—यत्र अधिकारिगणः च राजा उभौ सद्वृत्तौ तिष्ठतः, तत्र लक्ष्मीः स्थिरा विपुला सम्मुखी भवेत् ॥ २५४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् राज्ये, अधिकारिगणः = पदाधिकारिवर्गः, च = पुनः, राजा = नृपः, उभौ = द्वौ, सद्वृत्तौ = परस्परसदाचरितौ, तिष्ठतः = निवसतः, तत्र = तस्मिन् राज्ये, लक्ष्मीः = रमा, स्थिरा = अचञ्चला, विपुला = प्रभूता, सम्मुखी = पुरावर्तिनी, भवेत् = स्यात् ॥ २५४ ॥

हिन्दी—जिस राज्य में अधिकारी वर्ग एवं राजा दोनों ही सदाचारी होते हैं, उस राज्य में लक्ष्मी स्थिर भाव से अत्यधिक मात्रा में सदैव सामने ही रहती है ॥ २५४ ॥

अधिकारीति। यत्र अधिकारिगणः भृत्यवर्गः राजा च उभौ सद्वृत्तौ सद्व्यवहाररतौ परस्परानुकूलावित्यर्थः, तिष्ठतः वर्तेते, तत्र लक्ष्मीः स्थिरा अनपायिनी विपुला महती तथा सम्मुखी अनुकूलवर्त्तिनी भवेत् ॥ २५४ ॥

अन्याधिकारवृत्तन्तु न ब्रूयाच्छ्रुतमप्युत।
राजा न श्रणुयादन्यमुखतस्तु कदाचन ॥ २५५ ॥

अन्वयः—अन्याधिकारवृत्तं तु श्रुतमपि न ब्रूयात्, उत राजाऽपि कदाचन अन्यमुखतः न शृणुयात् ॥ २५५ ॥

व्याख्या—अन्यस्य = आत्मभिन्नसेवकस्य, अधिकारे = प्रभुत्वक्षेत्रे, वृत्तम् = घटितवृत्तान्तः, तु = निश्चयेन, श्रुतमपि = आकर्णितमपि, न = नहि, ब्रूयात् = वदेत्, उत = प्रत्युत, राजाऽपि = नृपोऽपि, कदाचन = कस्मिन्नपि काले, अन्यमुखतः = अपरमुखादन्यवृत्तम्, न = नहि, शृणुयात् = आकर्णयेत् ॥ २५५ ॥

हिन्दी—दूसरे के अधिकारक्षेत्र की बातें सुनकर भी राजा से निवेदित न करे और राजा भी दूसरे व्यक्ति से दूसरे के अधिकारक्षेत्र की बात न सुने ॥ २५५ ॥

अन्येति। अन्यस्य अपरस्य भृत्यस्य अधिकारे वृत्तं जातं दोषमिति शेषः, श्रुतमपि ज्ञातमपि न ब्रूयात् राज्ञे इति शेषः, राजापि कदाचन अन्यमुखतः अपरमुखात् अपरकथां न शृणुयात् ॥ २५५ ॥

न बोधयन्ति च हितमहितं चाधिकारिणः ।
प्रच्छन्नवैरिणस्ते तु दास्यरूपमुपाश्रिताः ॥ २५६ ॥

अन्वयः—ये अधिकारिणः हितम् अहितं न बोधयन्ति ते तु दास्यरूपम् उपाश्रिताः प्रच्छन्नवैरिणः स्यात् ॥ २५६ ॥

व्याख्या—ये अधिकारिणः = पदाधिकारिवर्गः, हितम् = कल्याणम्, अहितम् = अकल्याणम्, न = नहि, बोधयन्ति = राज्ञे ज्ञापयन्ति, ते तु = ते जनास्तु, दास्यरूपम् = दासत्वम्, उपाश्रिताः = आश्रयप्राप्ताः सेवकाः, प्रच्छन्नवैरिणः = अपवारितशत्रवः, सेवकस्वरूपेणान्तरहितवैरं साधयन्तीति ॥ २५६ ॥

हिन्दी—जो पदाधिकारी राजा के हित-अहित की बात नहीं समझतें, वे सेवक के रूप में छिपे-रुस्तम शत्रु होते हैं ॥ २५६ ॥

नेति। ये अधिकारिणः हितम् अहितञ्च न बोधयन्ति न ज्ञापयन्ति राज्ञे इति शेषः, ते तु दास्यरूपं दासत्वम् उपाश्रिताः प्रच्छनवैरिणः गूढशत्रवः दासरूपेण प्रच्छन्नं वैरं साधयन्तीत्यर्थः ॥ २५६ ॥

हिताहितं न श्रृणोति राजा मन्त्रिमुखाच्च यः ।
स दस्यू राजरूपेण प्रजानां धनहारकः ॥ २५७ ॥

अन्वयः—यश्च राजा मन्त्रिमुखात् हिताहितं न शृणोति सः राजरूपेण प्रजानां धनहारकः दस्युः भवति ॥ २५७ ॥

व्याख्या—च = पुनः, यः राजा = नृपः, मन्त्रिमुखात् = अमात्याननात्, हिताहितम् = लाभालाभकरं वचनम्, न = नहि, शृणोति = श्रवणं करोति, सः राजरूपेण = नृपतिस्वरूपेण, प्रजानाम् = जनानाम्, धनहारकः = धनापहर्त्ता, दस्युः = महासाहसिको भवेत् ॥ २५७ ॥

हिन्दी—और जो राजा मंत्री के मुख से हित-अहित की बातें नहीं सुनता, वह केवल राजा के रूप में प्रजा का धनहर्त्ता डाकू है ॥ २५७ ॥

हिताहितमिति। यश्च राजा मन्त्रिमुखात् हिताहितं न शृणोति, सः राजरूपेण प्रजानां धनहारकः दस्युः दस्युर्यथा प्रजानां धनहारकस्तथा स इत्यर्थः ॥ २५७ ॥

सुपृष्टव्यवहारा ये राजपुत्रैश्च मन्त्रिणः ।
विरुध्यन्ति च तैः साकं ते तु प्रच्छन्नतस्कराः ॥ २५८ ॥

अन्वयः—ये मन्त्रिणः राजपुत्रैः सुपृष्टव्यवहाराः तैः साकं विरुध्यन्ति ते तु प्रच्छन्नतस्कराः ॥ २५८ ॥

व्याख्या—ये मन्त्रिणः = अमात्यवर्गः, राजपुत्रैः = राजकुमारैः, सुपृष्टव्यवहाराः—सुपृष्टः = सम्यक् रूपेण जिज्ञासितः, व्यवहारः = आचारः, येभ्यस्तथोक्ताः सन्तः, तैः = राजपुत्रैः, साकम् = सह, विरुध्यन्ति = विरुद्धमाचरन्ति, ते = मन्त्रिणस्तु, प्रच्छन्नतस्कराः = निभृतदस्यवः सन्ति ॥ २५८ ॥

हिन्दी—राजकुमारों द्वारा राज-काज विषयक ठीक ढंग से पूछे गये प्रश्न सुनकर जो मंत्री उसके साथ विरुद्ध व्यवहार करते हैं, वे छिपे हुए चोर की तरह हैं ॥ २५८ ॥

सुपृष्टेति। ये मन्त्रिणः राजपुत्रैः सुपृष्टः व्यवहारः येभ्यः तथोक्ताः सन्तः तैः राजपुत्रैः साकं सह विरुध्यन्ति विरोधं कुर्वन्ति ते तु प्रच्छन्नतस्कराः गूढचौराः॥ २५८ ॥

बाला ह्यपि राजपुत्रा नावमान्यास्तु मन्त्रिभिः।
सदा सुबहुवचनैः सम्बोध्यास्ते प्रयत्नतः ॥ २५९ ॥

अन्वयः—राजपुत्राः बालाः ह्यपि मन्त्रिभिः न अवमान्याः। सदा सुबहुवचनैः ते प्रयत्नतः सम्बोध्याः॥ २५९ ॥

व्याख्या—राजपुत्राः= राजकुमाराः, बालाः ह्यपि= शिशवोऽपि हि, मन्त्रिभिः= सचिवैः, न= नहि, अवमान्याः= अवज्ञेयाः, सदा= सर्वदा, सुबहुवचनैः= सुन्दरैः बहुभिः वाक्यैः, ते राजकुमाराः, प्रयत्नतः= सायासः, सम्बोध्याः= सुष्ठुकरूपेण बोधनीयाः॥ २५९ ॥

हिन्दी—मंत्रीगण छोटी उम्र वाले राजकुमार को भी तिरस्कृत न करे। बल्कि सदैव आदरपूर्वक बहुवचनान्त शब्दों के द्वारा उन्हें प्रयासपूर्वक सम्बुद्ध करें॥ २५९ ॥

बाला इति। राजपुत्राः बालाः शिशवोऽपि हि मन्त्रिभिः न अवमान्याः नावज्ञेयाः, परं सदा सततं सुबहुवचनैः शोभनैः बहुभिः वाक्यैः ते राजपुत्राः प्रयत्नतः अतियत्नेन सम्बोध्याः सम्यक् बोधनीयाः॥ २५९ ॥

असदाचरितं तेषां क्वचिद्राज्ञे न दर्शयेत्।
स्त्रीपुत्रमोहो बलवान् न निन्दा श्रेयसे तयोः॥ २६० ॥

अन्वयः—क्वचित् तेषाम् असदाचरितं राज्ञे न दर्शयेत्। स्त्रीपुत्रमोहः बलवान्, तयोः निन्दा न श्रेयसे॥ २६० ॥

व्याख्या—क्वचित्= कदाचित्, तेषाम्= राजपुत्राणाम्, असदाचरितम्—असत्= अभद्रम्, आचरितम्= अनुष्ठितम्, राज्ञे= नृपाय, न= नहि, दर्शयेत्= अनुभावयेत्, यतः स्त्रीपुत्रमोहः—स्त्रियाम्= भार्यायाम्, पुत्रे= सुते च, मोहः= ममत्वम्, बलवान्= शक्तिशाली भवति, अतः तयोः= स्त्रीपुत्रयोः, निन्दा= कुत्सनम्, न= नहि, श्रेयसे= कल्याणाय भवतीति॥ २६० ॥

हिन्दी—राजकुमारों के बुरे आचरणों की चर्चा मंत्री राजा के सामने कदापि न करे, क्योंकि स्त्री और पुत्र का मोह बड़ा बलवान् होता है। अतः इन दोनों की निन्दा कभी कल्याणदायक नहीं होती॥ २६० ॥

असदाचरितमिति। क्वचित् कदाचित् तेषां राजपुत्राणाम् असत् मन्दम् आचरितं कार्य्यं राज्ञे न दर्शयेत् भृत्य इति शेषः। स्त्रीपुत्रमोहः स्त्रियां पुत्रे च मोहः ममतारूपाज्ञानं बलवान् अतिप्रबलः भवतीति शेषः, तस्मात् तयोः स्त्रीपुत्रयोः निन्दा कुत्सनं न श्रेयसे मङ्गलाय भवतीति शेषः, स्त्रीपुत्रेषु ममतातिशय्यात् तन्निन्दा न कैरपि सह्यते इति भावः॥ २६० ॥

राज्ञोऽवश्यतरं कार्य्यं प्राणसंशयितञ्च यत्।
आज्ञापयाग्रतश्चाहं करिष्ये तत्तु निश्चितम्।
इति विज्ञाप्य द्राक् कर्त्तुं प्रयतेत स्वशक्तितः॥ २६१ ॥

अन्वयः—राज्ञः अग्रतः अवश्यतरं निश्चितं प्राणसंशयितं यत् कार्यं तत् निश्चितं करिष्ये इति विज्ञाप्य द्राक् स्वशक्तितः कर्त्तुं प्रयतेत॥ २६१ ॥

व्याख्या—राज्ञः = नृपस्य, अग्रतः = पुरतः, अवश्यतरम् = नियततरम्, निश्चितम् = संशयशून्यम्, प्राणसंशयितम् = जीवनसन्दिग्धकरम्, यत्कार्यम् = यत्कर्म, तन्निश्चितम् = अवश्यमेव, करिष्ये = निष्पादनं करिष्यामि, इति = एवम्, विज्ञाप्य = ख्यापनं कृत्वा, द्राक् = शीघ्रमेव, स्वशक्तितः = आत्मशक्त्या, कर्त्तुम् = विधातुम्, प्रयतेत = यत्नं कुर्यात् ॥ २६१ ॥

हिन्दी—राजा के लिए अत्यन्त आवश्यक या उसकी जान के लिए कोई खतरनाक काम हो रहा हो तो आगे बढ़ कर उसे पूरा करने के लिए राजा से उसका आदेश माँगे। राजा को यह कहते हुए आश्वस्त करे कि मैं इस कार्य को निश्चय ही पूरा कर दूँगा और शीघ्र ही अपने सामर्थ्य के अनुसार उसे पूर्ण करने का प्रयास करे ॥ २६१ ॥

राज्ञ इति। भृत्यः राज्ञः अग्रतः अवश्यतरं सुनिश्चितं प्राणसंशयितं जीवनसंशयकरं यत् कार्य्यं तत् निश्चितं करिष्ये इति विज्ञाप्य प्रतिश्रुत्य द्राक् झटिति स्वशक्तितः निजसामर्थ्यानुसारेण कर्त्तुं प्रयतेत ॥ २६१ ॥

प्राणानपि च सन्दद्यान्महत्कार्य्ये नृपाय च।
भृत्यः कुटुम्बपुष्ट्यर्थं नान्यथा तु कदाचन ॥ २६२ ॥

अन्वयः—भृत्यः कुटुम्बपुष्ट्यर्थं महत्कार्ये नृपाय प्राणानपि सन्दद्यात्, अन्यथा तु न कदाचन ॥ २६२ ॥

व्याख्या—भृत्यः = सेवकः, कुटुम्बपुष्ट्यर्थम् = पुत्रकलत्रादिभरणार्थम्, महत्कार्ये = महति सङ्कटापन्नसमये, नृपाय = भूपतये, प्राणानपि = जीवनमपि, सन्दद्यात् = समर्पयेत्, अन्यथा = इतरथा, कुटुम्बभरणाभावे, तु, न = नहि, कदाचन = कथमपि जीवनमर्पयेदिति ॥ २६२ ॥

हिन्दी—परिजन के पालन-पोषण हेतु विवशता की स्थिति में राजा पर जानलेवा खतरा उपस्थित होने पर अपनी जान देकर भी उसे बचाना चाहिए, अन्यथा कभी नहीं ॥ २६२ ॥

प्राणानिति। भृत्यः कुटुम्बपुष्ट्यर्थं परिजनभरणार्थं महत्कार्य्ये महति सङ्कटे कार्य्ये आपतिते इति शेषः। नृपाय प्राणानपि सन्दद्यात् प्राणव्ययेऽपि नृपकार्य्ये अपराङ्मुखो भवेदिति भावः। अन्यथा कुटुम्बभरणाभावे तु कदाचन न प्राणान् दद्यादिति शेषः ॥ २६२ ॥

भृत्या धनहराः सर्वे युक्त्या प्राणहरो नृपः ॥ २६३ ॥

अन्वयः—सर्वे भृत्याः युक्त्या धनहराः नृपोऽपि प्राणहरः ॥ २६३ ॥

व्याख्या—सर्वे = सकलाः, भृत्याः = सेवकाः, युक्त्या = कौशलेन, हेतुमवलम्ब्य, धनहराः = नृपस्य विभवापहारकाः, नृपोऽपि = राजाऽपि, प्राणहरः = भृत्यानां जीवनापहारको भवन्ति ॥ २६३ ॥

हिन्दी—सभी सेवक कुशलतापूर्वक राजा का धन लेते हैं और राजा भी कारणवश ही सेवक के लिए जानलेवा होता है ॥ २६३ ॥

भृत्या इति। सर्वे भृत्याः युक्त्या युक्तिमाश्रित्य हेतुमवलम्ब्य इत्यर्थः, धनहराः राज्ञ इति शेषः, नृपोऽपि प्राणहरः भृत्यानामिति शेषः, युक्तिमाश्रित्य परस्परं धनप्राणहरौ भृत्यप्रभू इति भावः ॥ २६३ ॥

युद्धादौ सुमहत्कार्य्ये भृत्या प्राणान् हरेन्नृपः।
नान्यथा भृतिरूपेण भृत्यो राजधनं हरेत् ॥ २६४ ॥

अन्यथा हरतस्तौ तु भवतश्च स्वनाशकौ ॥ २६५ ॥

अन्वयः—युद्धादौ सुमहत्कार्ये नृपः भृत्या प्राणान् हरेत्, अन्यथा न, भृत्यः भृतिरूपेण राजधनं हरेत्, अन्यथा तौ हरतः स्वनाशकौ भवतः ॥ २६४-२६५ ॥

व्याख्या—युद्धादौ = समरादौ, सुमहत्कार्ये = बृहदायोजने उपस्थिते, नृपः = राजा, भृत्या = वेतनदानेन, सेवकानाम्, प्राणान् = जीवनानि, हरेत् = अपहरेत्, वेतनवृत्त्या भृत्याः नृपविजयाभिलाषिणो भूत्वा स्वजीवनानि त्यजन्तीति भावः, अन्यथा = इतरथा, न = न हरेत्। भृत्यश्च = सेवकश्च, भृतिरूपेण = वेतनरूपेण, राजधनम् = नृपधनम्, हरेत् = हरणं कुर्यादन्यथा तु नहि, अन्यथा = युद्धादिव्यतिरिक्तप्रकारेण, तौ = नृपसेवकौ, यदि हरतः = प्राणधने चापहरतः, स्वनाशकौ = आत्मघातकौ, भवतः = स्तः ॥ २६४-२६५ ॥

हिन्दी—युद्ध जैसे महत्त्वपूर्ण काम के अवसर पर वेतनभोगी सेवक राजा के लिए अपनी जान देकर वेतन का मूल्य चुकाता है। इस दृष्टि से राजा सेवक का प्राणहारक होता है। सेवक भी वेतन के रूप में राजकोष से धन लेकर राजा का धनहर्त्ता होता है। ऊपरवर्णित परिस्थिति से भिन्न स्थिति में दोनों यदि प्राण और धन के अपहारक होते हैं तो दोनों (राजा और भृत्य) का विनाश निश्चित होता है ॥ २६४-२६५ ॥

युक्तिमाह—**युद्धादाविति**। युद्धादौ सुमहत्कार्य्ये उपस्थिते नृपः भृत्या वेतनेन भृतिरूपनिष्क्रयेणेत्यर्थः, प्राणान् भृत्यानामिति शेषः, हरेत् भृतिलोभेन भृत्याः युद्धादौ प्रभुजयार्थिनः प्राणान् त्यजन्तीति भावः। अन्यथा न युद्धादिव्यतिरिक्तविषये तु न हरेदिति शेषः। भृत्यश्च भृतिरूपेण राजधनं हरेत् अन्यथा न हरेदिति निष्कर्षः। अन्यथा अन्यप्रकारेण तौ राजभृत्यौ यदि हरतः प्राणधने इति शेषः, तदा स्वनाशकौ आत्मक्षयकरौ भवतः तथात्वे उभयविरागादुभयनाशोऽवश्यं भविष्यतीति भावः ॥ २६४-२६५ ॥

राजानु युवराजस्तु मान्योऽमात्यादिकैः सदा।
तन्न्यूनामात्यनवकं तन्न्यूनाधिकृतो गणः।
मन्त्रितुल्यश्चायुतिको न्यूनः साहस्रिको मतः ॥ २६६ ॥

अन्वयः—राजा तु सदा मान्यः, युवराजस्तु तन्न्यूनम्, अमात्यनवकं तन्न्यूनाः मान्याः, तन्न्यूनाधिकृतो गणः, आयुतिकः मन्त्रितुल्यः मान्यः तथा साहस्रिकः मन्त्रिन्यूनः मान्यः ॥ २६६ ॥

व्याख्या—राजा = नरपतिः, तु, सदा = सर्वस्मिन्काले, मान्यः = समादणीयः, मन्त्रिभिः, युवराजस्तु = राजकुमारस्तु, तन्न्यूनम् = राजापेक्षया न्यूनतया, मान्यः, अमात्यनवकम् = अमात्यादयः नव प्रधानपुरुषाः, तन्न्यूनाः = युवराजापेक्षया न्यूनतया, मान्याः = समादरणीयाः, तन्न्यूनाधिकृतो गणः = तदपेक्षया न्यूनतया, अधिकृतो गणः = पदाधिकारिवर्गः मान्यः, आयुतिकः = दशसहस्रसेनानायकः, मन्त्रितुल्यः = अमात्यसदृशः, मान्यः, तथा साहस्रिकः = सहस्रसेनानायकः, मन्त्रिन्यूनो मान्यः = समादरणीयो ज्ञेय इति ॥ २६६ ॥

हिन्दी—सचिवादि के द्वारा सर्वाधिक मान्य राजा होता है। उससे थोड़ा कम आदरणीय युवराज होता है। युवराज से कम मान्य अमात्य प्रभृति नौ प्रधानपुरुष होते हैं। उससे कम मान्य पदाधिकारी वर्ग होते हैं। मंत्रियों के तुल्य मान्य दस हजार सेना का अध्यक्ष होता है। एक हजार सेना का अधिनायक उससे थोड़ा कम मान्य होता है ॥ २६६ ॥

राजेति। राजा अमात्यादिकैः सदा मान्यः, युवराजस्तु अनु राजापेक्षया न्यूनतया मान्य इत्यर्थः, अमात्यनवकम् अमात्यादयः नव प्रकृतयः तन्न्यूनाः युवराजापेक्षया न्यूनतया मान्याः अनुजीविभिरिति शेषः। तन्न्यूनाधिकृतो गणः अधिकारिवर्गः तदपेक्षया न्यूनतया मान्य इत्यर्थः। आयुतिकः दशसहस्रसेनापतिः मन्त्रितुल्यो मन्त्रिसमो मान्यः तथा साहस्रिकः सहस्रसेनाध्यक्षः मन्त्रिन्यूनो मान्यः ज्ञेयः॥ २६६ ॥

न क्रीडयेद्राजसमं क्रीडिते तं विशेषयेत्।
नावमान्या राजपत्नी कन्या ह्यपि च मन्त्रिभिः ॥ २६७ ॥

अन्वयः—राजसमं न क्रीडयेत्, क्रीडिते तं विशेषयेत्। राजपत्नी कन्या च मन्त्रिभिः न अवमान्यः॥ २६७ ॥

व्याख्या—राजसमम् = राज्ञा सह, न = नहि, क्रीडयेत् = खेलयेत्, क्रीडिते = खेलिते सति, तम् = नृपम्, विशेषयेत् = पराजितं कदापि न कुर्यात्। राजपत्नी = राजमहिषी, कन्या = राजकन्या, च, मन्त्रिभिः = सचिवैः, नैव = नास्त्येव, अवमान्या = अवज्ञेया॥ २६७ ॥

हिन्दी—पहले तो राजा के साथ किसी प्रकार का खेल ही न खेले और अगर खेलना ही पड़े तो राजा को ही विजयी बनाये। रानी और राजकुमारी की अवहेलना कभी भी नहीं करनी चाहिए॥ २६७ ॥

नेति। राजसमं राज्ञा सहितं न क्रीडयेत् न विहरेत् क्रीडिते सति तं राजानं विशेषयेत् न पराजितं कुर्य्यात् तेन सह क्रीडने तदवमाननं न कुर्य्यादिति भावः। राजपत्नी कन्या च राज्ञ इति शेषः, मन्त्रिभिः न अवमान्या नावज्ञेया॥ २६७ ॥

राजसम्बन्धिनः पूज्याः सुहृदश्च यथार्हतः।
नृपाहूतस्तुरं गच्छेत् त्यक्त्वा कार्य्यशतं महत्॥ २६८ ॥

अन्वयः—राजसम्बन्धिनः सुहृदश्च यथार्हतः पूज्याः। नृपाहूतः महत् कार्यशतमपि त्यक्त्वा तुरं गच्छेत्॥ २६८ ॥

व्याख्या—राजसम्बन्धिनः = राजकीयबान्धवाः, सुहृदश्च = नृपस्य मित्राणि च, यथार्हतः = योग्यतानुरूपम्, पूज्याः = भृत्यैः मान्याः। नृपाहूतः = नृपाकारितः, सेवकः, महत्कार्यशतमपि = बहुविधात्यावश्यककार्यशतमपि, त्यक्त्वा = परित्यज्य, तुरम् = सत्वरम्, नृपसमीपम्, गच्छेत् = व्रजेदिति॥ २६८ ॥

हिन्दी—राजकीय सम्बन्धी एवं राजा के मित्रों का यथायोग्य सेवकों को सम्मान करना चाहिए। सैकड़ों महत्त्वपूर्ण कामों को छोड़कर भी राजा के बुलाने पर सेवक को शीघ्र उसके पास पहुँच जाना चाहिए॥ २६८ ॥

राजेति। राजसम्बन्धिनः सुहृदश्च राज्ञ इति शेषः, यथार्हतः यथायोग्यं पूज्याः भृत्यैरिति शेषः। नृपाहूतः राज्ञा आहूतस्तु भृत्यः महत् कार्य्यशतमपि त्यक्त्वा तुरं सत्वरं गच्छेत्॥ २६८ ॥

मित्रायापि न वक्तव्यं राजकार्य्यं सुमन्त्रितम्।
भृतिं विना राजद्रव्यमदत्तं नाभिलाषयेत्॥ २६९ ॥

अन्वयः—सुमन्त्रितं राजकार्यं मित्रायाऽपि न वक्तव्यम्। भृतिं विना राजद्रव्यं न अभिलाषयेत्॥२६९॥

व्याख्या—सुमन्त्रितम् = सुष्ठुतया विचारितम्, राजकार्यम् = शासनकृत्यम्, मित्रायापि = सुहृदेऽपि, न = नहि, वक्तव्यम् = कथितव्यम्। भृतिम् = वेतनम्, विना = विहाय, अदत्तम् = विनाविसृष्टम्, राजद्रव्यम् = नृपधनम्, न = नहि, अभिलाषयेत् = कामयेत्॥२६९॥

हिन्दी—सुविचारित राज-काज अपने मित्र को भी नहीं बतलाना चाहिए। वेतन को छोड़ कर राजा जो धन न दे, उस राजधन की कभी कामना नहीं करनी चाहिए॥२६९॥

मित्रायेति। सुमन्त्रितं कृतमन्त्रणं राजकार्य्यं मित्राय सुहृदेऽपि न वक्तव्यं, किञ्च भृतिं वेतनं विना अदत्तम् अन्यत् राजद्रव्यं न अभिलाषयेत् नेच्छेत्। स्वार्थे ञयन्तोऽयं लषधातुः॥२६९॥

राजाज्ञया विना नेच्छेत् कार्य्यमाध्यस्थिकीं भृतिम्।
न निहन्याद् द्रव्यलोभात् सत्कार्य्यं यस्य कस्यचित्॥२७०॥

अन्वयः—राजाज्ञया विना कार्यमाध्यस्थिकीं भृतिं न इच्छेत्। तथा द्रव्यलोभात् यस्य कस्यचित् सत्कार्यं न निहन्यात्॥२७०॥

व्याख्या—राजाज्ञया = नृपनिदेशेन, विना = विहाय, कार्यमाध्यस्थिकीम्—कार्यस्य = कर्मणः, माध्यस्थिकीम् = मध्यवर्त्तिनीम्, भृतिम् = वेतनम्, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत्। तथा द्रव्यलोभात् = धनलिप्सायाः, यस्य कस्यचित् = यस्य कस्यापि, सत्कार्यम् = शुभानुष्ठानम्, न = नहि, निहन्यात् = विनाशयेत्॥२७०॥

हिन्दी—राजा के आदेश के बिना कार्य समाप्त किये बिना बीच में ही वेतन न ले। साथ ही धन के लोभ से किसी के शुभ कर्म को विनष्ट न करे॥२७०॥

राजेति। राजाज्ञया विना कार्य्यमाध्यस्थिकीं भृतिं कार्य्यस्य मध्यवर्त्तिनीं भृतिं वेतनं कार्य्यमसमाप्य भृतिमित्यर्थः, न इच्छेत् न गृह्णीयात् तथा द्रव्यलोभात् धनलोभात् यस्य कस्यचित् सत्कार्य्यं न निहन्यात् न नाशयेत्॥२७०॥

स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैः काले संरक्षयेन्नृपम्।
उत्कोचं नैव गृह्णीयान्नान्यथा बोधयेन्नृपम्॥२७१॥

अन्वयः—काले स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैः नृपं संरक्षयेत्। उत्कोचं नैव गृह्णीयात्। नृपम् अन्यथा न बोधयेत्॥२७१॥

व्याख्या—काले = सङ्कटसमये, स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैः—स्वैः = स्वकीयैः, स्त्रीपुत्रधनप्राणैः = पत्नीपुत्रधनजीवनैः, नृपम् = राजानम्, संरक्षयेत् = गोपयेत्। उत्कोचम् = उपायनम्, नैव = नास्त्येव, गृह्णीयात् = स्वीकुर्यात्। नृपम् = भूपतिम्, अन्यथा = इतरथा, विपरीतम्, न = नहि, बोधयेत् = ज्ञापयेत्॥२७१॥

हिन्दी—राजा पर यदि कोई संकट आये तो उसकी रक्षा अपनी पत्नी, पुत्र, धन और ज़ान देकर भी करनी चाहिए। किसी से घूस न ले और राजा को कभी गलत दिशा की ओर निर्देश न करे॥२७१॥

स्वेति। काले स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैः स्वकीयैः स्त्रीपुत्रधनप्राणैः नृपं संरक्षयेत्, उत्कोचं नैव गृह्णीयात् तथा नृपम् अन्यथा न बोधयेत्॥२७१॥

अन्यथा दण्डकं भूपं नित्यं प्रबलदण्डकम्।
निगृह्य बोधयेत् सम्यगेकान्ते राज्यगुप्तये॥ २७२॥

अन्वयः—अन्यथा दण्डकं नित्यं प्रबलदण्डकं भूपं निगृह्य राज्यगुप्तये एकान्ते सम्यक् बोधयेत्॥ २७२॥

व्याख्या—अन्यथा = इतरथा, दण्डकम् = दण्डदातारम्, नित्यम् = अनवरतम्, प्रबलदण्डकम् = प्रचण्डदण्डयितारम्, भूपम् = भूपालम्, निगृह्य = निरुद्ध्य, राज्यगुप्तये = प्रशासनसंरक्षणाय, एकान्ते = विजने, सम्यक् = सुष्ठुतया, बोधयेत् = ज्ञापयेत्॥ २६२॥

हिन्दी—अयथार्थ दण्ड देने वाले तथा प्रचण्ड दण्ड देने वाले राजा को राज्य की रक्षा के लिए रोक कर उन्हें एकान्त में शिक्षा देनी चाहिए॥ २७२॥

अन्यथेति। अन्यथा अयथाविधि दण्डकं दण्डयितारं नित्यं सततं प्रबलदण्डकं तीक्ष्णदण्डञ्च भूपं निगृह्य राज्यगुप्तये राज्यरक्षणाय एकान्ते रहसि सम्यक् बोधयेत् शिक्षयेत्॥ २७२॥

हितं राज्ञश्चाहितं यल्लोकानां तन्न कारयेत्।
नवीनकरशुल्काद्यैर्लोक उद्विजते ततः॥ २७३॥

अन्वयः—यत् राज्ञः हितं च लोकानाम् अहितं तत् न कारयेत्। नवीनकरशुल्काद्यैः लोकः ततः उद्विजते॥ २७३॥

व्याख्या—यत्, राज्ञः = नृपस्य, हितम् = कल्याणम्, च = पुनः, लोकानाम् = प्रजानाम्, अहितम् = अकल्याणम्, भवति, तत्कार्यम्, न कारयेत् = न सम्पादयेत्, यस्मात् नवीनैः = नूतनैः, करैः = राजस्वैः, शुल्काद्यैः = घट्टपथादीनां करैः, लोकः = प्रजा, ततः = तस्मात् नृपात्, उद्विजते = विरज्यते॥ २७३॥

हिन्दी—जिस काम में केवल राजहित हो, प्रजाहित न हो, ऐसा काम राजा से न करवाये। क्योंकि नये कर या चुंगी लगाने से प्रजा उद्विग्न हो जाती है॥ २७३॥

हितमिति। यत् राज्ञः हितं किन्तु लोकानां प्रजानाम् अहितं तत् न कारयेत्, यस्मात् नवीनैः नूतनैः करैः राजस्वैः शुल्काद्यैश्च लोकः प्रजा ततः तस्मात् नृपात् उद्विजते विरज्यते अतस्तादृशं राजहितं न कर्त्तव्यमिति भावः॥ २७३॥

गुणनीतिबलद्वेषी कुलभूतोऽप्यधार्मिकः।
नृपो यदि भवेत् तन्तु त्यजेद्राष्ट्रविनाशकम्॥ २७४॥

अन्वयः—कुलभूतः यदि गुणनीतिबलद्वेषी अधार्मिकः भवेत्, राष्ट्रविनाशकं तं तु त्यजेत्॥ २७४॥

व्याख्या—कुलभूतः = महाकुलप्रसूतोऽपि, नृपः = राजा, यदि = चेत्, गुणनीतिबलद्वेषी—गुणानाम् = स्वाभाविकधर्माणाम्, नीतीनाम् = नयानाम्, बलानाम् = सैन्यानाम्, द्वेषी = विरोधी, तथा, अधार्मिकः = धर्मविहीनः, भवेत् = जायेत, राष्ट्रविनाशकम्—राष्ट्रस्य = जनपदस्य, विनाशकम् = विध्वंसकम्, तम् = नृपम्, तु = इत्यवधारणे, त्यजेत् = परित्यागं कुर्यात्॥ २७४॥

हिन्दी—कुलीन राजा भी यदि गुण, नीति एवं सैन्य विराधी हो, अधार्मिक हो तो उसे राष्ट्र का विनाशक समझ कर उसका त्याग कर देना चाहिए॥ २७४॥

गुणेति। कुलभूतः महाकुलप्रसूतोऽपि नृपः यदि गुणनीतिबलद्वेषी गुणद्वेषी नीतिद्वेषी बलद्वेषी तथा अधार्मिकः भवेत् राष्ट्रस्य राज्यस्य विनाशकं क्षयकारकं तं तु त्यजेत् ॥ २७४ ॥

तत्पदे तस्य कुलजं गुणयुक्तं पुरोहितः।
प्रकृत्यनुमतिं कृत्वा स्थापयेद्राज्यगुप्तये ॥ २७५ ॥

अन्वयः—पुरोहितः प्रकृतीनाम् अनुमतिं कृत्वा गुणयुक्तं तस्य कुलजं तत्पदे राज्यगुप्तये स्थापयेत् ॥ २७५ ॥

व्याख्या—पुरोहितः= सौवस्तिकः, प्रकृतीनाम्= प्रधानपुरुषाणाम्, अनुमतिम्= अनुज्ञाम्, कृत्वा= गृहीत्वा, गुणयुक्तम्= गुणवन्तम्, तस्य= कुराज्ञः, कुलजम्= सुकुलोत्पन्नम्, तत्पदे= तस्य नृपस्य स्थाने, राज्यगुप्तये= राष्ट्रसंरक्षणाय, स्थापयेत्= अभिषिञ्चेत् ॥ २७५ ॥

हिन्दी—और पुरोहित को चाहिए कि पूर्वोक्त गुण, नीति एवं सैन्य विरोधी राजा को पदच्युत कर उसी कुल के किसी अन्य सुयोग्य व्यक्ति को प्रधानपुरुषों की सम्मति से राजसिंहासन पर आरूढ़ करें ॥ २७५ ॥

तत्पदे इति। पुराहितः प्रकृतीनां प्रधानपुरुषाणामनुमतिं कृत्वा गृहीत्वा गुणयुक्तं गुणवन्तं तस्य कुनृपस्य कुलजं वंशभवं तत्पदे तस्य राज्ञः पदे राज्यगुप्तये राज्यस्य रक्षणाय स्थापयेत् अभिषिञ्चेत् ॥ २७५ ॥

सास्त्रो दूरं नृपात् तिष्ठेदस्त्रपाताद् बहिः सदा।
सशस्त्रो दशहस्तन्तु यथादिष्टं नृपप्रियाः ॥ २७६ ॥
पञ्चहस्तं वसेयुर्वै मन्त्रिणो लेखकाः सदा।
सेनपैस्तु विना नैव सशस्त्रास्त्रो विशेत् सभाम् ॥ २७७ ॥

अन्वयः—सास्त्रः नृपात् दूरम् अस्त्रपातात् बहिः सदा तिष्ठेत्। सशस्त्रः दशहस्तं तु दूरम्। नृपप्रियाः मन्त्रिणः लेखकाः यथादिष्टं सदा पञ्चहस्तं दूरं वै वसेयुः। राजा तु सैनपैः विना सशस्त्रास्त्रः सभां नैव विशेत् ॥ २७६-२७७ ॥

व्याख्या—सास्त्रः= अस्त्रसहितः, नृपात्= राज्ञः, दूरम्= आरात्, अस्त्रपातात्= क्षेपणीयास्त्रनिपतनात्, बहिः= बाह्यप्रदेशे, सदा= सर्वदा तिष्ठेत्= उपविशेत्। सशस्त्रः= अक्षेपणीयायुधसहितस्तु दशहस्तम्= दशहस्तपरिमितम्, दूरं तिष्ठेत्। नृपप्रियाः= राजवल्लभाः, मन्त्रिणः= अमात्याः, लेखकाः= लिपिकाराः, सदा= सततम्, यथादिष्टम्= नृपादेशक्रमेण, पञ्चहस्तम्= हस्तपञ्चकपरिमितम्, दूरम्= अन्तराले, वै= इति निश्चयेन, वसेयुः= तिष्ठेयुः। राजा तु सैनपैः= सेनाध्यक्षैः, विना= विहाय, सशस्त्रास्त्रः= अस्त्रशस्त्रसहितः सन्नपि, सभाम्= परिषदि, नैव= नास्त्येव, विशेत्= उपविशेदिति ॥ २७६-२७७ ॥

हिन्दी—अस्त्रधारी व्यक्ति को हथियार की मार से दूर राजा से अलग रहना चाहिए। शस्त्रधारी व्यक्ति राजा से दस हाथ की दूरी पर रहे। राजा के प्रिय व्यक्ति को राजा के आदेशानुसार दूरी पर रहना चाहिए। मंत्री और लेखक सदैव राजा से पाँच हाथ की दूरी पर रहें। हथियारबन्द राजा को भी सेनापति के बिना सभा मे नहीं बैठना चाहिए ॥ २७६-२७७ ॥

सास्त्र इत्यादि। सास्त्रः क्षेपणीयास्त्रसहितः नृपात् दूरम् अस्त्रपाताद् बहिः बाह्यदेशे सदा तिष्ठेत्, सशस्त्रः शस्त्रसहितस्तु दशहस्तं तु दूरं तिष्ठेदिति शेषः। नृपप्रियाः राजप्रणयिनः मन्त्रिणः लेखकाश्च सदा यथादिष्टम् आदेशक्रमेण पञ्चहस्तं दूरं वै निश्चितं वसेयुः। राजा तु सेनपैः सेनापतिभिः विना सशस्त्रास्त्रः अस्त्रशस्त्रसहितः सन् सभां नैव विशेत् ॥ २७६-२७७ ॥

पुरोहितः श्रेष्ठतरः श्रेष्ठः सेनापतिः स्मृतः।
समः सुहृच्च सम्बन्धी ह्युत्तमा मन्त्रिणः स्मृताः ॥ २७८ ॥

अन्वयः—पुरोहितः श्रेष्ठतरः, सेनापतिः श्रेष्ठः स्मृतः, सुहृच्च सम्बन्धी च समः, मन्त्रिणस्तु उत्तमाः स्मृताः ॥ २७८ ॥

व्याख्या—पुरोहितः = पुरोधाः, पदम्, श्रेष्ठतरः = सर्वेभ्यः वरेण्यः, सेनापतिः = सेनाध्यक्षपदम्, श्रेष्ठः = प्रशस्ततमः, स्मृतः = कथितः, सुहृच्च = मित्रञ्च, सम्बन्धी च = बान्धवश्च, समः = तुल्यः, मन्त्रिणस्तु = अमात्यवर्गश्च, उत्तमाः = विशिष्टाः, स्मृताः = कथिताः ॥ २७८ ॥

हिन्दी—पुरोहित का पद सर्वाधिक श्रेष्ठ होता है, सेनापति का श्रेष्ठ, राजा के मित्र एवं सम्बन्धी का पद समान होता है और मंत्रियों का पद उत्तम कहा जाता है ॥ २७८ ॥

पुरोहित इति। पुराहितः श्रेष्ठतरः सर्वेभ्यः श्रेष्ठ इत्यर्थः, सेनापतिः श्रेष्ठः स्मृतः कथितः सुहृच्च सम्बन्धी च समः तुल्यः मन्त्रिणस्तु उत्तमाः उत्कृष्टाः स्मृताः ॥ २७८ ॥

अधिकारिगणो मध्योऽधमौ दर्शकलेखकौ।
ज्ञेयोऽधमतमौ भृत्यः परिचारगणः सदा।
परिचारगणान्न्यूनो विज्ञेयो नीचसाधकः ॥ २७९ ॥

अन्वयः—अधिकारिगणः मध्यमः, दर्शकलेखकौ अधमौ, भृत्यः परिचारकगणः सदा अधमतमः, परिचारगणात् नीचसाधकाः न्यूनः विज्ञेयः ॥ २७९ ॥

व्याख्या—अधिकारिगणः = प्रथमश्रेणिपदाधिकारिणः, मध्यमः = सामान्यः, दर्शकलेखकौ = वीक्षकवर्णिकौ, अधमौ = अवरौ, भृत्यः = सेवकः, परिचारकगणः = दासवर्गः, सदा = सर्वदा, अधमतमः = निकृष्टतमः, परिचारगणात् = किङ्करवर्गात्, नीचसाधकाः = नीचकर्मकारकः, सम्मार्जको वेति, न्यूनः = हीनः, विज्ञेयः = बोद्धव्यः ॥ २७९ ॥

हिन्दी—प्रथम वर्ग के पदाधिकारियों का पद सामान्य कोटि का होता है। पर्यवेक्षक और लेखक का पद निम्नकोटि का होता है। सेवक और दास का पद अधमतम होता है। दास से भी निकृष्टतर पद भंगी प्रभृति का जानना चाहिए ॥ २६९ ॥

अधिकारिगण इति। अधिकारिगणः अपरकर्म्मचारिवर्गः मध्यमः, दर्शकलेखकौ अधमौ निकृष्टौ भृत्यः परिचारकगणः सदा अधमतमः अतिनिकृष्टः ज्ञेयः। परिचारगणात् नीचसाधकः नीचकर्म्मकारकः न्यूनः निकृष्टतमः विज्ञेयः ॥ २७९ ॥

पुरोगमनमुत्थानं स्वासने सन्निवेशनम्।
कुर्य्यात् स कुशलप्रश्नं क्रमात् सुस्मितदर्शनम् ॥ २८० ॥
राजपुरोहितादीनां त्वन्येषां स्नेहदर्शनम्।
अधिकारिगणादीनां सभास्थश्च निरालसः ॥ २८१ ॥

अन्वयः—सः राजा पुरोहितादीनां क्रमात् पुरोगमनम् उत्थानञ्च स्वासने सन्निवेशनं कुशलप्रश्नं तथा सुस्मितदर्शनम्, अन्येषां सभास्थश्च निरालसः स्नेहदर्शनं कुर्यात् ॥ २८०-२८१ ॥

व्याख्या—सः = असौ, राजा = नृपः, पुरोहितादीनाम् = पुरोधाप्रभृतीनाम्, क्रमात् = अनुक्रमेण, पुरोगमनमुत्थानम्—पुरः = अग्रे, गमनम् = चलनम्, उत्थानम् = उपवेशनाद् गात्रोद्गमनम्, स्वासने—स्वस्य = आत्मनः, आसने = उपवेशने, सन्निवेशनम् = समुपवेशनम्, कुशलप्रश्नम् = कुशलादिबोधकजिज्ञासा, तथा सुस्मितदर्शनम् = सहास्यावलोकनम्, अन्येषां तु = पदाधिकारिवर्गाणाम्, तु, सभास्थः—सभायाम् = परिषदि, स्थः = स्थितः, च = पुनः, निरालसः = आलस्यरहितः, स्नेहदर्शनम् = प्रेमपूर्वकावलोकनम्, कुर्यात् = कर्त्तव्यमिति ॥ २८०-२८१ ॥

हिन्दी—और वह राजा पुरोहितादि पूज्य जनों की अगवानी करे, अपने आसन से उठकर अपने आसन पर ही बैठाये; कुशलप्रश्न पूछे, मुस्कराते हुए ससम्मान देखे। अन्य अधिकारी-वर्गों के लिए सभा में ही यथास्थान रहकर आलस्य रहित होकर उन्हें सस्नेह देखे ॥ २८०-२८१ ॥

पुरोगमनमिति। स राजा पुरोहितादीनां क्रमात् यथाक्रमं पुरोऽग्रे गमनम् उत्थानम् आसनात् गात्रोत्थानं स्वस्य निजस्य आसने सन्निवेशनं कुशलप्रश्नं तथा सुस्मितदर्शनं सहास्यदर्शनम् अन्येषान्तु अधिकारिगणादीनां सभास्थः सभायां स्थितः न तु उत्थित इत्यर्थः, तथा निरालसः आलस्यरहितश्च सन् स्नेहदर्शनं सस्नेहमवलोकनं कुर्य्यात् ॥ २८०-२८१ ॥

विद्यावत्सु शरच्चन्द्रो निदाघार्को द्विषत्सु च।
प्रजासु च वसन्तार्क इव स्यात् त्रिविधो नृपः ॥ २८२ ॥

अन्वयः—नृपः त्रिविधः स्यात्—विद्यावत्सु शरच्चन्द्र इव, द्विषत्सु निदाघार्कः तथा प्रजासु वसन्तार्कः ॥ २८२ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, त्रिविधः = त्रिप्रकारकः, स्यात् = भवेत्, यथा—विद्यावत्सु = विद्वत्सु, शरच्चन्द्रः = मेघान्तशशधरः, इव = यथा, द्विषत्सु = शत्रुषु, निदाघार्कः = ग्रीष्मकालीनप्रतप्तरविरिव, तथा प्रजासु = जनेषु, वसन्तार्कः = ऋतुराजकालिकसूर्य इव भवति ॥ २८२ ॥

हिन्दी—राजा तीन प्रकार के होते हैं—विद्वानों के लिए शरद् ऋतु के चन्दमा की तरह आह्लादजनक, शत्रुओं के लिए ग्रीष्मकालीन प्रतप्त सूर्य की तरह असह्य तथा अपनी प्रजा के लिए वसन्तकालीन सूर्य की तरह सेवनीय होता है ॥ २८२ ॥

विद्यावत्स्विति। नृपः त्रिविधः त्रिप्रकारः स्यात् भवेत् यथा विद्यावत्सु पण्डितेषु शरच्चन्द्र इव, द्विषत्सु शत्रुषु निदाघार्कः ग्रीष्मकालसूर्य्य इव तथा प्रजासु वसन्तार्कः वसन्तकालिकः सूर्य्य इव। एक इव शब्दः सर्वत्र सम्बध्यते ॥ २८२ ॥

यदि ब्राह्मणभिन्नेषु मृदुत्वं धारयेन्नृपः।
परिभवन्ति तं नीचा यथा हस्तिपका गजम् ॥ २८३ ॥

अन्वयः—नृपः यदि ब्राह्मणभिन्नेषु मृदुत्वं धारयेत् तदा नीचाः हस्तिपकाः गजं यथा तं परिभवन्ति ॥ २९३ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, यदि = चेत्, ब्राह्मणभिन्नेषु = द्विजेतरेषु, मृदुत्वम् = कोमलत्वम्, धारयेत् = मार्दवेन व्यवहरेत्, तदा = तर्हि, नीचाः = अधमाः, हस्तिपकाः = गजाजीवाः, गजम् = कुञ्जरम्, यथा = इव, तम् = नृपम्, परिभवन्ति = तिरस्कुर्वन्ति ॥ २८३ ॥

हिन्दी—यदि राजा ब्राह्मणेतर जनों के साथ मृदुता का व्यवहार करता है तो नीच जन उसे उसी तरह तिरस्कृत करते हैं जैसे गजराज को एक अदना महावत अपमानित करता है ॥ २८३ ॥

यदीति। नृपः यदि ब्राह्मणभिन्नेषु ब्राह्मणभिन्नेषु ब्राह्मणशब्दोऽत्र द्विजातिपरः। ब्राह्मणक्षत्रवैश्यव्यतिरिक्तेषु शूद्रेष्वित्यर्थः, मृदुत्वं धारयेत् मार्दवेन व्यवहरेदित्यर्थः, तदा नीचाः शूद्राः हस्तिपकाः गजमिव तं नृपं परिभवन्ति। इतरेषु स्पर्द्धा न दातव्येति भावः॥ २८३ ॥

भृत्याद्यैर्यन्न कर्त्तव्याः परिहासाश्च क्रीडनम्।
अपमानास्पदे ते तु राज्ञो नित्यं भयावहे॥ २८४॥

अन्वयः—भृत्याद्यैः क्रीडनं परिहासाश्च न कर्त्तव्याः। राज्ञः ते अपमानास्पदे नित्यं भयावहे ॥ २८४ ॥

व्याख्या—भृत्याद्यैः = निजाधीनस्थसेवकैः सह, क्रीडनम् = खेलनम्, परिहासाश्च = प्रहसनञ्च, न = नहि, कर्त्तव्याः = विधातव्याः। राज्ञः = नृपस्य, ते = सर्वे, अपमानास्पदे = अनादरस्थाने च, नित्यम् = सततम्, भयावहे = भयोत्पादके च भवतः॥ २८४ ॥

हिन्दी—अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ खेलना या हँसी-मजाक नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये दोनों राजा के लिए अनादरजनक एवं भयोत्पादक होते हैं ॥ २८४ ॥

भृत्याद्यैरिति। भृत्याद्यैः अधीनस्थजनैरित्यर्थः, क्रीडनं परिहासाश्च न कर्त्तव्याः यत् यस्मात् ते परिहासक्रीडने राज्ञः अपमानास्पदे अपमानजनके नित्यं सततं भयावहे भयजनके च भवत इति शेषः॥ २८४ ॥

पृथक् पृथग् व्यापयन्ति स्वार्थसिद्ध्यै नृपाय ते।
स्वाकार्य्यं गुणवत् कृत्वा सर्वे स्वार्थपरा यतः ॥ २८५ ॥

अन्वयः—यतः ते भृत्याः स्वार्थपराः स्वार्थसिद्ध्यै स्वकार्यं गुणवत् कृत्वा नृपाय पृथक् पृथक् व्यापयन्ति ॥ २८५ ॥

व्याख्या—यतः = यस्मात्कारणात्, ते = सर्वे, भृत्याः = अधीनस्थकर्मचारिणः, स्वार्थपराः = स्वहितनिष्ठाः, स्वार्थसिद्ध्यै—स्वार्थस्य = आत्मलाभस्य, सिद्ध्यै = साधनाय, स्वकार्यम् = निजकृत्यम्, गुणवत् = गुणवत्, कृत्वा = विधाय, नृपाय = राज्ञे, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नं, व्यापयन्ति = ज्ञापयितुं यतन्ते ॥ २८५ ॥

हिन्दी—क्योंकि ये सभी वेतनभोगी सेवक स्वार्थी होते हैं और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अपने ही काम को सर्वाधिक सुन्दर राजा के सामने प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं ॥ २८५ ॥

पृथगिति। यतः ते सहक्रीडनादिकारिणः भृत्याः स्वार्थपराः सन्तः स्वार्थस्य स्वकार्यस्य सिद्ध्यै साधनाय स्वकार्य्यं निजकार्य्यमिव गुणवत् नान्यकार्य्यमिति भावः, इति कृत्वा नृपाय पृथक् पृथक् व्यापयन्ति यतन्ते बोधयितुं इत्यर्थः॥ २८५ ॥

विकल्पन्तेऽवमन्यन्ति लङ्घयन्ति च तद्वचः।
राजभोज्यानि भुञ्जन्ति न तिष्ठन्ति स्वके पदे ॥ २८६ ॥

विस्रंसयन्ति तन्मन्त्रं विवृण्वन्ति च दुष्कृतम्।
भवन्ति नृपवेशा हि वञ्चयन्ति नृपं सदा॥ २८७॥
तत् स्त्रियं सज्जयन्ति स्म राज्ञि क्रुद्धे हसन्ति च।
व्याहरन्ति च निर्लज्जा हेलयन्ति नृपं क्षणात्॥ २८८॥
आज्ञामुल्लङ्घयन्ति स्म न भयं यान्त्यकर्म्मणि।
एते दोषाः परीहासक्षमाक्रीडोद्भवा नृपे॥ २८९॥

अन्वयः—नृपे यः परिहासक्षमाक्रीडोद्भवाः एते दोषाः तादृशाः भृत्याः तद्वचः विकल्पन्ते अवमन्यन्ति च लङ्घयन्ति तथा राजभोज्यानि भुञ्जन्ति, स्वके पदे न तिष्ठन्ति, किञ्च तन्मन्त्रं विस्रंसयन्ति च दुष्कृतं विवृण्वन्ति, नृपवेशाः भवन्ति, सदा नृपं वञ्चयन्ति, अपि च तत् स्त्रियं सज्जयन्ति, राज्ञि क्रुद्धे च हसन्ति, निर्लज्जाः च व्याहरन्ति, क्षणात् नृपं हेलयन्ति, आज्ञाम् उल्लङ्घयन्ति स्म, अकर्मणि भयं न यान्ति॥ २८६-२८९॥

व्याख्या—नृपे = राजनि विषये, परिहासक्षमाक्रीडोद्भवाः—यः परिहासः = प्रहसनम्, या च क्षमा = क्षान्तिः, या च क्रीडा = खेलनम्, तदुद्भवाः = तदुत्पन्नाः, एते = पूर्वोक्ताः, दोषाः = दुर्गुणाः, भवन्ति, तादृशाः भृत्याः = अधीनस्थकर्मचारिणः, तत् = तस्य नृपस्य, वचः = कथनम्, विकल्पन्ते = अवान्तरकल्पन्ते, अवमन्यन्ति = तिरस्कुर्वन्ति, च = पुनः, लङ्घयन्ति = अतिक्रमन्ति, तथा, राजभोज्यानि = राजकीयवस्तूनि, भुञ्जन्ति = नृपादेशं विना भक्षयन्ति, स्वके = आत्मनि, पदे = स्थाने, न = नहि, तिष्ठन्ति = स्थिरा भवन्ति, निजपदानुरूपं कार्यं कुर्वन्तीति भावः, किञ्च, तत् = नृपस्य, मन्त्रम् = गुप्तविचारम्, विस्रंसयति = प्रकटं कुर्वन्ति, दुष्कृतम् = राज्ञः कुकृत्यम्, विवृण्वन्ति = वर्णयन्ति, नृपवेशाः = राजकीयपरिधानं परिधारयन्ति, किं बहुना, सदा = सर्वदा, नृपम् = राजानम्, वञ्चयन्ति = प्रतारयन्ति, अपि च; तत् = तस्य नृपस्य, स्त्रियम् = राजपत्नीम्, सज्जयन्ति = निजस्वार्थसिद्धयेऽनुरोधयन्ति, राज्ञि = भूपतौ, क्रुद्धे = कुपिते सति, हसन्ति = हास्यं कुर्वन्ति, च = पुनः, निर्लज्जाः = त्रपाहीनाः सन्तः, व्याहरन्ति = आचरन्ति, क्षणात् = स्वल्पकालेनैव, नृपम् = राजानम्, हेलयन्ति = तिरस्कुर्वन्ति, आज्ञाम् = नृपादेशम्, उल्लङ्घयन्ति = व्यतिक्रमन्ति, तथा अकर्मणि = कुकृत्ये कृतेऽपि, भयम् = त्रासम्, न = नहि, यान्ति = प्राप्नुवन्ति॥ २८६-२८९॥

हिन्दी—अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ खेलने, मजाक करने या माफ कर देने से राजा में ये सभी दोष आ जाते हैं–जिससे वे सेवक राजा की बातों को कभी युक्ति देकर काट देते हैं, कभी अवहेलना कर देते हैं तो कभी तिरस्कृत कर देते हैं और कभी बात काट देते हैं। वे बिना राजा का आदेश पाये राजा के लिए रखे भोजन स्वयं खा लेते हैं तथा लापरवाही के साथ अपने पदोचित व्यवहार नहीं करते हैं। राजा के गुप्त मंत्रणा का भेद खोल देते हैं, उनके कुकृत्य का खुल कर वर्णन करते हैं। राजकीय वेशभूषा धारण करते हैं और राजा को ठगते हैं। राजमहिषी से अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अनुरोध करते हैं। राजा के कुपित होने पर हँसते हैं, निर्लज्ज आचरण करते हैं। पल में राजा को झुका लेते हैं और अन्त में राजाज्ञा का भी उल्लंघन कर देते हैं। नीच कर्म करके भी वे राजा से डरते नहीं हैं ॥२८६-२८९॥

विकल्पन्ते इत्यादि। नृपे राजनि विषये यः परिहासः या क्षमा च क्रीडा तदुद्भवाः एते दोषाः भवन्तीति शेषः, यथा तादृशाः भृत्याः तस्य राज्ञः वचः वाक्यं विकल्पन्ते तर्केण परिहरन्ति अवमन्यन्ति कुत्सयन्ति लङ्घयन्ति च तथा राजभोज्यानि वस्तूनि भुञ्जन्ति राजाज्ञां विना भक्षयन्ति, स्वके निजे पदे न तिष्ठन्ति च न स्वपदोचितं व्यवहरन्ति चेत्यर्थः। किञ्च तस्य राज्ञः मन्त्रं विस्रंसयन्ति प्रकाशयन्ति, दुष्कृतं मन्दकार्य्यं विवृण्वन्ति प्रकटयन्ति, नृपवेशाः राजपरिच्छदधारिणः भवन्ति (किं बहुना) सदा नृपं वञ्चयन्ति प्रतारयन्ति। अपि च तस्य राज्ञः स्त्रियं राजमहिषीमित्यर्थः, सज्जयन्ति अनुरोधयन्ति स्वार्थायेति भावः, राज्ञि क्रुद्धे सत्यपि हसन्ति, निर्लज्जाः सन्तः व्याहरन्ति कथयन्ति क्षणात् अल्पेनैव क्षणेन नृपं हेलयन्ति नमयन्ति, आज्ञाम् उल्लङ्घयन्ति तथा अकर्म्मणि मन्दकार्य्ये कृतेऽपीत्यर्थः, भयं न यान्ति न प्राप्नुवन्ति च स्मद्वयं पादपूरणार्थम् ॥ २८६-२८९ ॥

न कार्य्यं भृतकः कुर्य्यान्नृपलेखाद्विना क्वचित्।
नाज्ञापयेल्लेखनेन विनाल्पं वा महन्नृपः ॥ २९० ॥

अन्वयः—भृतकः क्वचित् नृपलेखाद्विना कार्यं न कुर्यात्। नृपः वा लेखनेन विना अल्पं वा महत् कार्यं न आज्ञापयेत् ॥ २९० ॥

व्याख्या—भृतकः = राजसेवकः, क्वचित् = किमपि कुत्राऽपि च, नृपलेखाद्विना—नृपस्य = राज्ञः, लेखात् = लिखितादेशात्, विना = विहाय, कार्यम् = किमपि कृत्यम्, न = नहि, कुर्यात् = अनुष्ठेयात्, नृपः = भूपालोऽपि, वा = अथवा, लेखनेन = लिखितादेशेन, विना = अन्तरेण, अल्पम् = तुच्छम्, वा = अथवा, महत् = श्रेष्ठम्, कार्यम् = कृत्यम्, न = नहि, आज्ञापयेत् = आदिशेदिति ॥ २९० ॥

हिन्दी—राजा के लिखित आदेश के बिना किसी भी राजकर्मचारी को कोई काम नहीं करना चाहिए। राजा भी लिखित आदेश दिये बिना किसी कर्मचारी से कोई छोटा या बड़ा काम करने को न कहे ॥ २९० ॥

नेति। भृतकः भृत्यः क्वचित् नृपलेखाद् विना राजलिपिमन्तरेण कार्यं न कुर्य्यात्। नृपः वा राजा च लेखनेन विना अल्पं वा महत् कार्य्यं न आज्ञापयेत् ॥ २९० ॥

भ्रान्तेः पुरुषधर्म्मत्वाल्लेख्यं निर्णायकं परम्।
अलेख्यमाज्ञापयति ह्यलेख्यं यत् करोति यः।
राजकृत्यमुभौ चौरौ तौ भृत्यनृपती सदा ॥ २९१ ॥

अन्वयः—भ्रान्तेः पुरुषधर्मत्वात् लेख्यं परमनिर्णायकम्। यः अलेख्यं लेख्यं विना आज्ञापयति, यश्च यत् अलेख्यं लेख्यं विना राजकृत्यं करोति, तौ उभौ भृत्यनृपती सदा चौरौ विज्ञेयौ ॥ २९१ ॥

व्याख्या—भ्रान्तेः = सन्देहस्य, पुरुषधर्मत्वात् = मानवस्वभावत्वात्, लेख्यम् = लिपिः, परम् = उत्कृष्टम्, निर्णायकम् = अवधारकम्। यः = नृपः, अलेख्यम् = मौखिकादेशम्, लेख्यम् = लिखितादेशम्, विना = अन्तरेण, राजकृत्यम् = शासनकर्म, आज्ञापयति, यश्च = सेवकः, यत् = राजकार्यम्, अलेख्यं लेख्यं विना = विहाय, राजकृत्यम् = शासनकार्यम्, करोति, तौ = पूर्वोक्तौ, उभौ = द्वौ, भृत्यनृपती = सेवकराजानौ, सदा = सर्वदा, चौरौ = तस्करौ, विज्ञेयौ = अवबोध्यौ ॥ २९१ ॥

हिन्दी—भूल मनुष्य का स्वभाव है; भ्रम न हो इसके लिए लेख बहुत बड़ा प्रमाण होता है। अतः जो राजा अलिखित आदेश देता है तथा जो सेवक बिना लिखित राजाज्ञा के ही राजकाज करता है—वे दोनों राजा और राजकर्मचारी चोर हैं॥२९१॥

भ्रान्तेरिति। भ्रान्तेः भ्रमस्य पुरुषधर्मत्वात् सर्वपुरुषेषु साम्भाव्यमानत्वादित्यर्थः, लेख्यं लिपिः परं प्रधानं निर्णायकं प्रमापकम्। यः राजा अलेख्यं लेख्यं विना आज्ञापयति। यश्च भृत्यः यत् अलेख्यं लेख्यं विना राजकृत्यं करोति तौ उभौ भृत्यनृपती सदा चौरौ विज्ञेयाविति शेषः॥२९१॥

नृपसञ्चिह्नितं लेख्यं नृपस्तन्न नृपो नृपः॥२९२॥

अन्वयः—नृपसञ्चिह्नितं तत् लेख्यम् एव नृपः, नृपः नृपो नेति॥२९२॥

व्याख्या—नृपसञ्चिह्नितम्=राजमुद्राङ्कितम्, तत्=पूर्वोक्तम्, लेख्यम्=लिपिः, एव, नृपः=राजा भवति, लिखितादेशं विना, नृपः=राजा, नृपो न=राजा न भवति॥२९२॥

हिन्दी—राजा की मुहर लगा आदेशपत्र ही असली राजा है। केवल राजा ही राजा नहीं होता है॥२९२॥

नृपेति। नृपसञ्चिह्नितं राजचिह्नितं तत् लेख्यम् एव नृपः, नृपः नृपः न लिपेरेव राजकार्य्यकारित्वादिति भावः॥२९२॥

समुद्रलिखितं राज्ञा लेख्यं तच्चोत्तमोत्तमम्।
उत्तमं राजलिखितं मध्यं मन्त्र्यादिभिः कृतम्।
पौरलेख्यं कनिष्ठं स्यात् सर्वं संसाधनक्षमम्॥२९३॥

अन्वयः—यत् लेख्यं समुद्रं राज्ञा लिखितं तच्चोत्तमोत्तमम्। राजलिखितम् उत्तमं, मन्त्र्यादिभिः कृतं मध्यम्। पौरलेख्यं कनिष्ठं स्यात्। सर्वं संसाधनक्षमम्॥२९३॥

व्याख्या—यत्=किमपि, लेख्यम्=लिपिः, समुद्रम्—मुद्रया=राजप्रत्ययकारिण्या, सहितम्=युक्तम्, राज्ञा=नृपेण, लिखितम्=लिपिबद्धम्, आदेशपत्रम्, तच्च, उत्तमोत्तमम्=परमोत्कृष्टं भवति, यच्च राजलिखितम्=राजमुद्राविहीनं नृपहस्तेन लिखितादेशपत्रम्, तत्तु उत्तमम्=उत्कृष्टम्, मन्त्र्यादिभिः=अमात्यादिप्रकृतिपुरुषैः, कृतम्=लिखितनिदेशम्, मध्यम्=मध्यमवर्गीयलेख्यम्, पौरलेख्यम्—पौरैः=पुरवासिभिः, लेख्यम्, कनिष्ठम्=अधमम्, स्यात्=भवति, सर्वम्=एतत् सकलम्, संसाधनक्षमम्—सम्=सम्यग्रूपेण, साधने=कृत्यसम्पादने, क्षमम्=समर्थम्भवति॥२९३॥

हिन्दी—राजा की मुहर लगी राजाज्ञा परमोत्कृष्ट होती है। मुहर रहित राजा के हस्ताक्षरयुक्त राजनिदेश उत्तम कोटि का है। मंत्रियों का आदेश मध्यम कोटि का है। पुरवासियों का निदेश अधम कोटि का होता है। ये सभी लेख कार्यसिद्धि में समर्थ हैं॥२९३॥

समुद्रेति। यत् लेख्यं समुद्रं मुद्रासहितं राज्ञा लिखितं तच्च तदेव उत्तमोत्तमम् अत्युत्तमं, राजलिखितं लेख्यं मुद्राहीनमिति शेषः, उत्तमं मन्त्र्यादिभिः कृतं लेख्यं मध्यं, पौरैः पुरवासिभिः लेख्यं कनिष्ठम् अधमं स्यात्। सर्वम् अत्युत्तमादिलेख्यं संसाधने सम्यक् साधने कार्य्यस्येति शेषः, क्षमं समर्थं सर्वैरेव कार्य्यं साध्यते परम् अत्युत्तमत्वादिभेदेनेति भावः॥२९३॥

यस्मिन् यस्मिन् हि कृत्ये तु राज्ञा योऽधिकृतो नरः।
सामात्ययुवराजादिर्यथानुक्रमतश्च स: ॥ २९४ ॥
दैनिकं मासिकं वृत्तं वार्षिकं बहुवार्षिकम्।
तत्कार्य्यजातलेख्यन्तु राज्ञे सम्यङ्निवेदयेत् ॥ २९५ ॥

अन्वयः—यस्मिन् यस्मिन् हि कृत्ये यः यः सामात्ययुवराजादिः नरः राज्ञा अधिकृतः सः सः यथानुक्रमतश्च दैनिकं मासिकं वार्षिकं बहुवार्षिकं वा वृत्तं तत्कार्यजातलेख्यं तु राज्ञे सम्यक् निवेदयेत् ॥ २९४-२९५ ॥

व्याख्या—यस्मिन् यस्मिन् = यस्मिन् कस्मिंश्चित्, हि = इति निश्चयेन, कृत्ये = कर्मणि, यः यः = पुरुषविशेषः, सामात्ययुवराजादिः—अमात्यैः = सचिवैः सह, युवराजादिः = राज्याधिकारिणः, नरः = जनः, राज्ञा = नृपेण, अधिकृतः = प्रदत्ताधिकारः, सः सः = तस्मिन् प्रत्येकः, यथानुक्रमतश्च = निजानुक्रमरूपेणैव, दैनिकम् = प्रत्याह्निकम्, मासिकम् = मासानुमासिकम्, वार्षिकम् = सांवत्सरिकम्, बहुवार्षिकम् = बह्वाब्दिकम्, वा = अथवा, वृत्तम् = विवरणम्, तत्तत् = तत्तद्विषयकम्, कार्यजातम् = निष्पादितकृत्यम्, लेख्यम् = लिखिततथ्यम्, राज्ञे = नृपाय, सम्यक् = सुष्ठुरूपेण, निवेदयेत् = नृपसम्मुखे विचारार्थं स्थापयेत् ॥ २९४-२९५ ॥

हिन्दी—जिन-जिन कामों के लिए जिन युवराज, सचिव आदि को पदाधिकारी बनाया गया हो—वे सभी क्रमशः अपने कामों का विवरण दैनिक, मासिक, वार्षिक, बहुवार्षिक रूप में लिखकर सही ढंग से राजा के सामने देखने के लिए प्रस्तुत करें ॥ २९४-२९५ ॥

यस्मिन्निति। दैनिकमिति। यस्मिन् यस्मिन् कृत्ये यः यः सामात्ययुवराजादिः अमात्यसहितः युवराजादिः नरः राज्ञा अधिकृतः नियुक्तः सः सः यथानुक्रमतश्च यथाक्रमेणैव दैनिकं प्रात्यहिकं मासिकं वार्षिकं बहुवार्षिकं वा वृत्तं निष्पन्नं तत्तत् कार्य्यजातलेख्यं राज्ञे सम्यक् निवेदयेत् ॥ २९४-२९५ ॥

राजाद्यङ्कितलेख्यस्य धारयेत् स्मृतिपत्रकम्।
कालेऽतीते विस्मृतिर्वा भ्रान्तिः सञ्जायते नृणाम् ॥ २९६ ॥

अन्वयः—राजाद्यङ्कितलेख्यस्य स्मृतिपत्रकं धारयेत्। यतः काले अतीते नृणां विस्मृतिः वा भ्रान्तिः सञ्जायते ॥ २९६ ॥

व्याख्या—राजाद्यङ्कितलेख्यस्य—राजादिभिः = नृपादिभिः, अङ्कितस्य = मुद्रितस्य, लेख्यस्य = लिखिततथ्यस्य, स्मृतिपत्रकम् = स्मरणलिपिम्, धारयेत् = सर्वतोभावेन संरक्षेत्। यतः, काले = समये, अतीते = व्यतीते सति, नृणाम् = पुरुषाणाम्, विस्मृतिः = विस्मरणम्, वा = अथवा, भ्रान्तिः = भ्रमः, सञ्जायते = समुत्पन्नो भवति ॥ २९६ ॥

हिन्दी–राजा एवं प्रधान पुरुषों के द्वारा मुद्रित आदेशपत्र की प्रतिलिपि अपनी याददाश्त के लिए अवश्य रख लें। क्योंकि बहुत समय बीत जाने पर उसे भूल जाना मनुष्य का स्वभाव है ॥ २८६ ॥

राजेति। राजादिभिः अङ्कितस्य चिह्नितस्य लेख्यस्य स्मृतिपत्रकं स्मरणलिपिं धारयेत् रक्षेत् भृत्य इति शेषः। यतः काले अतीते गते सति नृणां विस्मृतिः भ्रान्तिः वा सञ्जायते ॥ २९६ ॥

अनुभूतस्य स्मृत्यर्थं लिखितं निर्मितं पुरा।
यत्नाच्च ब्रह्मणा वाचां वर्णस्वरविचिह्नितम् ॥ २९७ ॥

अन्वयः—पुरा ब्रह्मणा अनुभूतस्य स्मृत्यर्थं यत्नात् वाचां वर्णस्वरविचिह्नितं लिखितं निर्मितम् ॥ २९७ ॥

व्याख्या—पुरा = प्राचीनकाले, ब्रह्मणा = विधात्रा, अनुभूतस्य = साक्षाज्ज्ञातस्य, स्मृत्यर्थम् = स्मृतिपथे आनयनाय, यत्नात् = प्रयत्नपूर्वकात्, वाचाम् = वाणीम्, वर्णैः = व्यञ्जनैः, स्वरैः = घोषैः स्वरवर्णैर्वा, विचिह्नितम् = विशिष्टरूपेण चिह्नितम्, लिखितम् = लेख्यम्, निर्मितम् = सृष्टमिति ॥ २९७ ॥

हिन्दी—क्योंकि प्राचीन काल में विधाता ने अपनी अनुभूति को जीवित रखने के लिए स्वर एवं व्यञ्जन वर्णों से चिह्नित लेख का निर्माण किया ॥ २९७ ॥

अनुभूतस्येति। पुरा पूर्वस्मिन् काले ब्रह्मणा अनुभूतस्य कृतस्य स्मृत्यर्थं स्मरणार्थं यत्नात् वाचां वर्णैः व्यञ्जनैः स्वरैश्च विचिह्नितं विशेषेण अङ्कितं लिखितं लेख्यं निर्मितम् ॥ २९७ ॥

वृत्तलेख्यं तथा चायव्ययलेख्यमिति द्विधा।
व्यवहारक्रियाभेदादुभयं बहुतां गतम् ॥ २९८ ॥

अन्वयः—लेख्यं द्विधा—वृत्तलेख्यं तथा आयव्ययलेख्यम्। तदुभयं व्यवहारक्रियाभेदात् बहुतां गतम् ॥ २९८ ॥

व्याख्या—लेख्यम् = लिपिबद्धविषयः, द्विधा = द्विविधं भवति, तद्यथा—वृत्तलेख्यम् = वृत्तान्तलेख्यम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, आयव्ययलेख्यम् = आगमोत्सर्गलेख्यम्। तदुभयम् = पूर्वोक्तद्विविधं लेख्यम्, व्यवहारक्रियाभेदात् = आचारव्यापारभेदात्, बहुताम् = अनेकताम्, गतम् = जातमिति ॥ २८९ ॥

हिन्दी—ये लेख दो तरह के होते हैं—समाचार सम्बन्धी तथा आयव्यय सम्बन्धी लेख। इनमें प्रत्येक आचार और क्रिया के भेद से बहुविध होते हैं ॥ २८९ ॥

वृत्तलेख्यमिति। लेख्यं द्विधा वृत्तलेख्यं तथा आयव्ययलेख्यञ्च। तदुभयं व्यवहारक्रियाभेदात् बहुतां गतं बहुविधत्वं प्राप्तम् ॥ २९८ ॥

यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तं सोत्तरक्रियम्।
सावधारणकञ्चैव जयपत्रकमुच्यते ॥ २९९ ॥

अन्वयः—यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तं सोत्तरक्रियं च सावधारणकं जयपत्रकम् उच्यते ॥ २९९ ॥

व्याख्या—यथोपन्यस्तसाध्यार्थसंयुक्तम्—यथा = येन प्रकारेण, उपन्यस्तेन = कथितेन, साध्येन = अभियोज्येन, अर्थेन = विषयेण, संयुक्तम् = सहितम्, सोत्तरक्रियम् = उत्तरक्रियया = प्रत्युत्तरवचनेन, सहितम्, च = पुनः, सावधारणकम् = अन्तिमनिर्णयसहितं लेख्यम्, जयपत्रकम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २८९ ॥

हिन्दी—जिसमें ठीक ढंग से कहे गये अभियोगी विषयों का तथा उसके उत्तर में कही गयी बातों का अन्तिम निर्णय अंकित हो, उसे जयपत्रक कहते हैं ॥ २९९ ॥

यथेति। यथोपन्यस्तेन यथायथकथितेन साध्येन अभियोज्येन अर्थेन विपयेण संयुक्तम् उत्तरक्रियया सहितं सावधारणं सिद्धान्तसहितं लेख्यं जयपत्रकम् उच्यते कथ्यते ॥ २९९ ॥

सामन्तेष्वथ भृत्येषु राष्ट्रपालादिकेषु यत्।
कार्य्यमादिश्यते येन तदाज्ञापत्रमुच्यते ॥ ३०० ॥

अन्वयः—येन सामन्तेषु अथवा राष्ट्रपालादिकेषु भृत्येषु यत् कार्यम् आदिश्यते तत् आज्ञापत्रम् उच्यते ॥ ३०० ॥

व्याख्या—येन = लिखितपत्रेण, सामन्तेषु = गणाधिपतिषु, अथवा राष्ट्रपालादिकेषु = राज्यसंरक्षकेषु, भृत्येषु = अधीनस्थपदाधिकारिवर्गेषु, यत्कार्यम् = यदनुष्ठेयकर्म, आदिश्यते = आज्ञाप्यते, तत् = लेखम्, आज्ञापत्रम् = आदेशपत्रम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०० ॥

हिन्दी—जिस लेख के द्वारा राजा सामन्तों, राज्यपालों तथा अन्य पदाधिकारियों को निर्दिष्ट काम करने का आदेश देता है, उसे 'आज्ञापत्र' कहते हैं ॥ ३०० ॥

सामन्तेष्विति। येन लेख्येन सामन्तेषु अधीननृपतिषु अथवा राष्ट्रपालादिकेषु भृत्येषु यत् कार्य्यम् आदिश्यते आज्ञाप्यते तत् आज्ञापत्रम् उच्यते ॥ ३०० ॥

ऋत्विक् पुराहिताचार्य्यमन्येष्वभ्यर्चितेषु च।
कार्य्यं निवेद्यते येन पत्रं प्रज्ञापनाय तत् ॥ ३०१ ॥

अन्वयः—येन ऋत्विक् पुरोहिताचार्यमन्येष्वभ्यर्चितेषु कार्यं निवेद्यते तत् प्रज्ञापनाय पत्रम् ॥ ३०१ ॥

व्याख्या—येन = लेखेन, ऋत्विक् = याजकः, पुरोहिताचार्येषु = सौवस्तिकवेदाध्यापकेषु, अन्येषु = अपरयाजकेषु, अभ्यर्चितेषु = पूज्यजनेषु, कार्यम् = अनुष्ठेयम्, निवेद्यते = निवेदनं क्रियते, तत् = कृत्यम्, प्रज्ञापनाय = बोधनाय, पत्रम् = लेखम्, प्रज्ञापनपत्रमित्युच्यते ॥ ३०१ ॥

हिन्दी—यज्ञकर्त्ता, पुरोहित, आचार्य तथा अन्य पूज्य लोगों के लिए जिस लेख के द्वारा राजा कार्य सूचित करता है, उसे 'प्रज्ञापनापत्र' कहते हैं ॥ ३०१ ॥

ऋत्विगिति। येन ऋत्विक् पुराहिताचार्येषु अन्येषु अभ्यर्चितेषु पूज्येषु च कार्य्यं निवेद्यते तत् प्रज्ञापनाय पत्रं प्रज्ञापनपत्रमित्यर्थः ॥ ३०१ ॥

सर्वे शृणुत कर्त्तव्यमाज्ञया मम निश्चितम्।
स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं पत्रमेव तत् ॥ ३०२ ॥

अन्वयः—सर्वे मम आज्ञया निश्चितं कर्त्तव्यं शृणुत, स्वहस्तकालसम्पन्नं तदेव शासनं पत्रम् ॥ ३०२ ॥

व्याख्या—सर्वे = यूयम्, मम = मदीया, आज्ञया = आदेशेन, निश्चितम् = निर्धारितम्, कर्तव्यम् = विधेयम्, शृणुत = निशम्यत। स्वहस्तकालसम्पन्नम्—स्वहस्तेन = निजहस्ताक्षरेण, कालेन च = समयनिर्दिष्टेन च, सम्पन्नम् = संयुक्तम्, तदेव, शासनपत्रम् = शासनलेख्यं भवति ॥ २०२ ॥

हिन्दी—हे प्रजा! तुम सभी मेरी बातें सुनो, मेरी आज्ञा से निर्धारित अपने कत्तर्व्य कर्म को करो—ऐसा तारीख के साथ हस्ताक्षर युक्त पत्र 'शासनपत्र' कहलाता है ॥ ३०२ ॥

सर्वे इति। सर्वे यूयं मम आज्ञया निश्चितं कर्त्तव्यं शृणुत एवमुक्त्वेति शेषः, यत् सहस्तेन स्वाक्षरेण कालेन च संयुक्तं लेख्यं तदेव शासनं पत्रं शासनलेख्यमित्यर्थः॥३०२॥

देशाधिकं यस्य राजा लिखितेन प्रयच्छति।
सेवाशौर्य्यादिभिस्तुष्टः प्रसादलिखितं हि तत्॥ ३०३॥

अन्वयः—राजा सेवाशौर्यादिभिस्तुष्टः यस्य लिखितेन देशाधिकं प्रयच्छति तत् हि प्रसादलिखितम्॥३०३॥

व्याख्या—राजा = भूपालः, सेवया = सुश्रूषया, शौर्यादिभिः = युद्धे वीरत्वादिप्रकटनैः, तुष्टः = प्रसन्नः सन्, यस्य = लेख्यस्य, लिखितेन = लेखनेन, देशाधिकम् = जनपदम्, प्रयच्छति = ददाति, तत् = लेख्यम्, हि = अवधारणे, प्रसादलिखितं भवति॥३०३॥

हिन्दी—राजा जिसकी सेवा या वीरता से प्रसन्न होकर पुरस्कार में कोई जनपद लिखित रूप से देता है, उस लेख को 'प्रसादलिखित' कहते हैं॥३०३॥

देशादिकमिति। राजा सेवया परिचर्य्यया शौर्य्यादिभिः वीरत्वप्रकटनादिभिश्च तुष्टः सन् यस्य लेख्यस्य लिखितेन लेखनेन देशादिकं प्रयच्छति पुरस्काररूपेणेति भावः, तत् हि प्रसादलिखितम्॥३०३॥

भोगपत्रन्तु करदीकृतं चोपायनीकृतम्।
पुरुषावधिकं तत्तु कालावधिकमेव वा॥ ३०४॥

अन्वयः—भोगपत्रं करदीकृतं च उपायनीकृतं पुरुषावधिकं वा कालावधिकम्॥३०४॥

व्याख्या—भोगपत्रम् = 'त्वमासां सम्पदामुपभोगं कुरु' एवं कृत्वा यल्लेख्यं दीयते तद्भोगपत्रं भवति। 'अस्य धनस्यैतावन्मात्रमेव राजस्वं दातव्यमि'ति कृत्वा यल्लेख्यं दीयते तत्करदीकृतमर्थात् करदपत्रम्भवति। च = पुनः, उपायनीकृतम्—उपायनम् = उपहारस्वरूपेण सम्पदं प्रदाय यल्लेख्यं दीयते तदुपायनीकृतं भवति, यत्त्विदं वस्तु एकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा पुरुषैर्भोक्तव्यमिति कृत्वा यल्लेख्यं दीयते तत्पुरुषावधिकं भवति। यत्तु सावधिकलेख्यं दीयते तत्कालावधिकं लेख्यम्भवतीति भावः॥३०४॥

हिन्दी—जिस पत्र में 'तुम इसका उपभोग करो' यह लिखकर दिया जाय, उसे 'भोगपत्र' कहा जाता है। इस सम्पत्ति की 'इतनी ही मालगुजारी देनी है' यह लिखकर दिया जाय, उसे 'करदीकृत' पत्र कहा जाता है। लिखित रूप में जो उपहारस्वरूप सम्पत्ति दी जाय, उसे 'उपायनीकृत' कहते हैं। एक से अधिक लोगों के उपभोग हेतु जो लेख दिया जाय, उसे 'पुरुषावधिक' कहते हैं तथा काल का उल्लेख कर जो दिया जाय, उसे 'कालावधिक' पत्र कहा जाता है॥३०४॥

भोगपत्रमिति। त्वया एतत् भुज्यतामिति कृत्वा यत् लेख्यं दीयते तत् भोगपत्रम्। अस्य एतत् राजस्वमिति कृत्वा यत् लेख्यं दीयते तत् करदीकृतं करदपत्रमित्यर्थः। उपायनम् उपढौकनं तद्रूपेण द्रव्यं दत्त्वा यत् लेख्यं दीयते तत् उपायनीकृतम् उपायनपत्रमित्यर्थः। इदं वस्तु एकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा पुरुषैर्भोक्तव्यमिति कृत्वा यत् लेख्यं दीयते तत् पुरुषावधिकम्। यच्च कालमुल्लिख्य लेख्यं दीयते तत् कालावधिक लेख्यमिति शेषः॥३०४॥

विभक्ता ये च भ्रात्राद्याः स्वरुच्या तु परस्परम्।
विभागपत्रं कुर्वन्ति भागलेख्यं तदुच्यते ॥ ३०५ ॥

अन्वयः—ये च भ्रात्राद्याः स्वरुच्या परस्परं तु विभक्ताः विभागपत्रं कुर्वन्ति तत् भागलेख्यम् उच्यते ॥ ३०५ ॥

व्याख्या—ये च = जनाश्च, भ्रात्राद्याः = सोदराद्याः, स्वरुच्या = आत्मेच्छया, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, तु = बलांर्थे, विभक्ताः = कृतविभागाः सन्तः, विभागपत्रम् = दायांशपत्रम्, कुर्वन्ति = सम्पादयन्ति, तत् = पूर्वोक्तलेख्यम्, भागलेख्यम् = वण्टनलेख्यम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०५ ॥

हिन्दी—अपनी इच्छा से भाइयों के बीच आपस में जो बँटवारा होता है; इसके लिए जो अभिलेख तैयार किया जाता है, उसे 'विभागपत्र' या 'भागलेख' कहते हैं ॥ ३०५ ॥

विभक्ता इति। ये च भ्रात्राद्याः स्वरुच्या स्वेच्छया परस्परं विभक्ताः सन्तः विभागपत्रं वण्टनलेख्यं कुर्वन्ति तत् भागलेख्यम् उच्यते ॥ ३०५ ॥

गृहभूम्यादिकं दत्त्वा पत्रं कुर्य्यात् प्रकाशकम्।
अनुच्छेद्यमनाहार्य्यं दानलेख्यं तदुच्यते ॥ ३०६ ॥

अन्वयः—गृहभूम्यादिकं च दत्त्वा यत् अनुच्छेद्यम् अनाहार्यं प्रकाशकं पत्रं कुर्यात् तत् दानलेख्यं उच्यते ॥ ३०६ ॥

व्याख्या—गृहभूम्यादिकम्—गृहम् = सदनम्, भूम्यादिकम् = पृथिव्यादिकम्, च, दत्त्वा = प्रदाय, यत्त अनुच्छेद्यम् = अविश्लेषणीयम्, अनाहार्यम् = अनाहरणीयम्, प्रकाशकम् = ख्यापकम्, पत्रम् = लेख्यम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्, तत् = लेखः, धनपत्रम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०६ ॥

हिन्दी—घर, धरती आदि किसी को देकर सार्वजनिक रूप से यदि घोषित किया जाय कि यह सम्पति अनाहार्य है तो उस लेख को 'धर्मपत्र' कहा जाता है ॥ ३०६ ॥

गृहेति। गृहं भूम्यादिकञ्च दत्त्वा यत् अनुच्छेद्यम् अखण्डनीयम् अनाहार्य्यम् अलीकवादरहितं प्रकाशकं जनसमक्षं पत्रं कुर्य्यात् तत् दानलेख्यम् उच्यते ॥ ३०७ ॥

गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा तुल्यमूल्यप्रमाणयुक्।
पत्रं कारयते यत्तु क्रयलेख्यं तदुच्यते ॥ ३०७ ॥

अन्वयः—तुल्यमूल्यप्रमाणयुक् गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा यत्तु पत्रं कारयते तत् क्रयपत्रम् उच्यते ॥ ३०७ ॥

व्याख्या—तुल्यमूल्यप्रमाणयुक्—तुल्येन = तत्सदृशेन, मूल्येन = अवक्रयेन, प्रमाणेन = साधनेन, युक्तम् = सहितम्, गृहम् = सदनम्, क्षेत्रादिकम् = भूम्यादिकम्, क्रीत्वा = मूल्येनोपलभ्य, यत्तु, पत्रम् = लेख्यम्, कारयते = निष्पादयते, तत् = लेख्यम्, क्रयपत्रम् = मूल्येनादानपत्रम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०७ ॥

हिन्दी—घर, जमीन आदि का उचित मूल्य देकर जो खरीददारी होती है, उसके लिए जो प्रामाणिक दस्तावेज तैयार किया जाता है, उसे क्रयपत्र कहते हैं ॥ ३०७ ॥

गृहेति। तुल्येन योग्येन मूल्येन प्रमाणेन परिमाणेन च युक्तं गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा यत्तु पत्रं कारयते तत् क्रयपत्रम् उच्यते ॥ ३०७ ॥

जङ्गमस्थावरं बन्धं कृत्वा लेख्यं करोति यत्।
गोप्यभोग्यक्रियायुक्तं सादिलेख्यं तदुच्यते ॥ ३०८ ॥

अन्वयः—जङ्गमस्थावरं बन्धं कृत्वा यत् गोप्यभोग्यक्रियायुक्तं लेख्यं करोति तत् सादिलेख्यम् उच्यते ॥ ३०८ ॥

व्याख्या—जङ्गमम् = चलसम्पदः, स्वर्णरजतादिकम्, यथा, स्थावरम् = अचलसम्पदः, यथा भूमिभवनादिकं, बन्धं = बन्धकम्, कृत्वा = विधाय, यत् गोप्यभोग्यक्रियायुक्तम्—गोप्यम् = रक्षणीयम्, भोग्यक्रियायुक्तम् = उपभोगसहितम्, लेख्यम् = लिपिबद्धम्, करोति = विदधाति, तत् = लेख्यम्, सादिलेख्यम् = सोपक्रमाभिलेखम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०८ ॥

हिन्दी—चल-अचल सम्पत्ति को रेहन के रूप में रखकर 'यह रक्षीणय एवं उपभोग्य है' इस तरह की शर्त के साथ जो अनुबन्धपत्र लिखा जाता है, उसे 'सादिलेख' कहते हैं ॥ ३०८ ॥

जङ्गमेति। जङ्गमं स्वर्णरजतादि, स्थावरं गृहभूम्यादि बन्धं बन्धकं कृत्वा यत् गोप्यभोग्यक्रियायुतं लेख्यं करोति तत् सादिलेख्यम् उच्यते ॥ ३०८ ॥

ग्रामो देशश्च यत् कुर्य्यात् सत्यलेख्यं परस्परम्।
राजाविरोधिधर्मार्थं संवित्पत्रं तदुच्यते ॥ ३०९ ॥

अन्वयः—ग्रामः देशः परस्परं राजाविरोधिधर्मार्थं यत् सत्यलेख्यं कुर्यात् तत् संवित्पत्रम् उच्यते ॥ ३०९ ॥

व्याख्या—ग्रामः = अल्पसामान्यजनावासः, देशः = जनपदश्च, परस्परम् = अन्योन्यम्, राजाविरोधिधर्मार्थम्—राज्ञः = नृपतेः, अविरोधिनः = अविरुद्धस्य, धर्मार्थम् = धर्मरक्षार्थम्, यत् सत्यलेख्यम् = शपथपत्रम्, कुर्यात् = कुर्वीत, तत् = पत्रम्, संवित्पत्रम् = सामूहिकप्रतिज्ञापत्रम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—ग्रामीण एवं नागरिक एक साथ मिलकर प्रशासन के सहयोगी धर्म की रक्षा के निमित्त जो प्रतिज्ञापत्र लिखते हैं, उसे 'संवित्लेख्य' कहा जाता है ॥ ३०९ ॥

ग्राम इति। ग्रामः अल्पजनवासभूमिः देशः बहुलोकालयपूर्णजनपदश्च परस्परं राजविरोधिधर्मार्थं नृपविरुद्धधर्मरक्षणार्थं यत् सत्यलेख्यं कुर्य्यात् तत् संवित्पत्रम् उच्यते ॥ ३०९ ॥

वृद्ध्यै धनं गृहीत्वा तु कृतं वा कारितञ्च यत्।
सुसाक्षिमच्च तत् प्रोक्तमृणलेख्यं मनीषिभिः ॥ ३१० ॥

अन्वयः—वृद्ध्यै धनं गृहीत्वा तु सुसाक्षिमत् यत् लेख्यं कृतं कारितं वा तत् मनीषिभिः ऋणलेख्यं प्रोक्तम् ॥ ३१० ॥

व्याख्या—वृद्ध्यै = वर्धनाय, धनम् = द्रव्यम्, गृहीत्वा = नीत्वा, सुसाक्षिमत् = सुसाक्षिभिर्युक्तम्, यत् लेख्यम् = व्यवहारलेखः, कृतम् = स्वहस्तेन लिखितम्, कारितम् = परहस्तेन निष्पादितम्, वा, तत् = लेख्यम्, मनीषिभिः = विद्वद्भिः, ऋणलेख्यम्, प्रोक्तम् = कथितम् ॥ ३१० ॥

हिन्दी—सूद की शर्त पर रुपये उधार लेकर गवाही के साथ अपने हाथ से लिखे या किसी से लिखवाये पत्र को विद्वान् लोग 'ऋणपत्र' कहते हैं ॥ ३१० ॥

वृद्ध्यै इति। वृद्ध्यै वृद्धिं दास्यामि इति प्रतिश्रुत्य धनं गृहीत्वा सुसाक्षिमत् शोभनैः निर्दोषैरित्यर्थः साक्षिभिर्युक्तमित्यर्थः, यत् लेख्यं कृतं कारितं वा तत् मनीषिभिः विद्वद्भिः ऋणलेख्यं प्रोक्तं कथितम् ॥ ३१० ॥

अभिशापे समुत्तीर्णे प्रायश्चित्ते कृते बुधैः ।
दत्तं लेख्यं साक्षिमद्यच्छुद्धिपत्रं तदुच्यते ॥ ३११ ॥

अन्वयः—अभिशापे समुत्तीर्णे प्रायश्चित्ते कृते यत् साक्षिमत् लेख्यं दत्तम्, तत् बुधैः शुद्धिपत्रम् उच्यते ॥ ३११ ॥

व्याख्या—अभिशापे = अपवादाभियोगे, समुत्तीर्णे = साक्ष्याभावान्मुक्तिङ्गते, प्रायश्चित्ते कृते = पापनाशककृत्यमनुष्ठिते, यत् साक्षिमत् = साक्षिकम्, लेख्यम् = लेखपत्रम्, दत्तम् = प्रदत्तम्, तत् = मुक्तिपत्रम्, बुधैः = पण्डितैः, शुद्धिपत्रम्, उच्यते = कथ्यते ॥ ३११ ॥

हिन्दी—लगाये गये अभियोग के प्रमाणित न होने पर प्रायश्चित्त कर चुकने के बाद गवाही के हस्ताक्षर युक्त जो अभियोगमुक्तिप्रमाणपत्र मिलता है, उसे विद्वान् 'शुद्धिपत्र' कहते हैं ॥ ३११ ॥

अभिशापे इति। अभिशापे अभियोगे अपवादे इत्यर्थः, समुत्तीर्णे अप्रमाणतादितिः क्षालिते तथा प्रायश्चित्ते पापशोधकव्यापारे कृते सति यत् साक्षिमत् समाक्षिकं लेख्यं दत्तं, बुधैः तत् शुद्धिपत्रम् उच्यते ॥ ३११ ॥

मेलयित्वा स्वधनांशान् व्यवहाराय साधकाः ।
कुर्वन्ति लेख्यपत्रं यत् तच्च सामयिकं स्मृतम् ॥ ३१२ ॥

अन्वयः—साधकाः स्वधनांशान् व्यवहाराय मेलयित्वा यत् लेख्यपत्रं कुर्वन्ति तत् सामयिकं लेख्यं स्मृतम् ॥ ३१२ ॥

व्याख्या—साधकाः = व्यवसायिनः, स्वधनांशान्—स्वस्य = आत्मनः, धनस्य = द्रव्यस्य, अंशान् = भागान्, व्यवहाराय = व्यापाराय, मेलयित्वा = संयोज्य, यत् लेख्यपत्रम् = व्यवहारलेखः, कुर्वन्ति = निष्पादयन्ति, तत् = लेख्यम्, सामयिकम् = समयसाध्यलेखम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ३१२ ॥

हिन्दी---कुछ उद्योगपति अपने धन का हिस्सा लगाकर भागीदार (Share holder) के रूप में कोई उद्योग चलाने के लिए संवित्पत्र तैयार करते हैं, उसे 'सामयिक लेखपत्र' कहते हैं ॥ ३१२ ॥

मेलयित्वेति। साधकाः सम्भूय समुत्थायिनः व्यवसायिनः स्वधनांशान् व्यवहाराय मेलयित्वा मिश्रयित्वा यत् लेख्यपत्रं कुर्वन्ति तत् सामयिकं समयकृतं लेख्यं स्मृतम् ॥ ३१२ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासद्भिर्न यः कृतः ।
तत्पत्रं वादिमान्यं चेज्ज्ञेयं सम्मतिसंज्ञकम् ॥ ३१३ ॥

अन्वयः—सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासद्भिः यत् न कृतं तत् पत्रं चेत् यदि वादिभिः मान्यं भवति, तत् सम्मतिसंज्ञकं ज्ञेयम् ॥ ३१३ ॥

व्याख्या—सभ्यैः = शिष्टनागरिकैः, अधिकारिभिः = पदाधिकारिवर्गैः राजपुरुषैः, प्रकृतिभिः = राजप्रधानपुरुषैः, सभासद्भिः = पारिषद्यैः, यत् = निर्णयम्, न = नहि, कृतम् = सम्पादितम्, तत् = पूर्वोक्तम्, पत्रम् = लेख्यपत्रम्, चेत् = स्यात्, यदि वादिभिः = अभियोगिभिः, मान्यम् = स्वीकार्यम्, भवति = जायते, तत् = लेख्यपत्रम्, सम्मतिसंज्ञकम् = सम्मतिपत्रम्, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ ३१३ ॥

हिन्दी—शिष्ट नागरिक, पदाधिकरी वर्ग, अमात्यादि प्रधानपुरुष एवं पार्षदों के द्वारा लिये गये अप्रदर्शित निर्णय यदि वादियों को मान्य हो तो उस सम्बन्ध का लेख्यपत्र 'सम्मितसंज्ञक पत्र' कहलाता है ॥ ३१३ ॥

सभ्येति। सभ्यैः अधिकारिभिः राजपुरुषैः प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः सभासद्भिः व्यवहारदर्शिभिरित्यर्थः, यत् न कृतं तत् पत्रं चेत् यदि वादिभिः प्रतिपक्षैः मान्यं ग्राह्यं भवति तदा तत् सम्मतिसंज्ञकं सम्मतिपत्रमित्यर्थः ज्ञेयम् ॥ ३१३ ॥

स्वकीयवृत्तज्ञानार्थं लिख्यते यत् परस्परम्।
श्रीमङ्गलपदाढ्यं वा सपूर्वोत्तरपक्षकम् ॥ ३१४ ॥
असन्दिग्धमगूढार्थं स्पष्टाक्षरपदं सदा।
अन्यव्यावर्त्तकस्वात्मपरपित्रादिनामयुक् ॥ ३१५ ॥
एकद्विबहुवचनैर्यथार्हस्तुतिसंयुतम् ।
समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् ॥ ३१६ ॥
कार्य्यबोधि सुसम्बन्धं नत्याशीर्वादपूर्वकम्।
स्वाम्यसेवकसेव्यार्थं क्षेमपत्रं तु तत् स्मृतम् ॥ ३१७ ॥

अन्वयः—स्वकीयवृत्तज्ञानार्थं श्रीमङ्गलपदाढ्यं वा सपूर्वोत्तरपक्षकम् असन्दिग्धम् अगूढार्थं सदा स्पष्टाक्षरपदम् अन्यव्यावर्त्तकस्वात्मपरपित्रादिनामयुक् एकद्विबहुवचनैः यथार्हस्तुतिसंयुतं समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितं कार्यबोधि सुसम्बन्धं नत्याशीर्वादपूर्वकं स्वाम्यसेवकसेव्यार्थं यत् परस्परं लिख्यते तत्तु क्षेमपत्रं स्मृतम् ॥ ३१४-३१७ ॥

व्याख्या—स्वकीयवृत्तज्ञानार्थम्—स्वकीयस्य = आत्मनः, वृतस्य = समाचारस्य, ज्ञानार्थम् = प्रतीतये, श्रीमङ्गलपदाढ्यम्—श्रीमङ्गलपदैः = अभीष्टसिद्धिप्रदसविभक्तिकशब्दैः, आढ्यम् = सम्पन्नम्, वा, सपूर्वोत्तरपक्षकम् = पूर्ववादोत्तरवादसहितम्, असन्दिग्धम् = शङ्काशून्यम्, अगूढार्थम् = अदुर्बोधार्थम्, सदा = सर्वदा, स्पष्टाक्षरपदम्—स्पष्टानि = सुव्यक्तानि, अक्षरपदानि = वर्णानुव्यधनानि, यस्मिन् तत् तथोक्तम्, अन्यव्यावर्त्तकैः—अन्येषाम् = इतरजनानाम्, व्यावर्त्तकैः = ज्ञाननिवारकैः, स्वात्मनः = स्वकीयस्य, परस्य = अन्यजनस्य च, पित्र्यादिनामभिः = जनकादिनामभिः, युक्तम् = सहितम्, एकद्विबहुवचनैः—एकेन = अद्वितीयेन, द्वाभ्याम् = उभाभ्याम्, वा बहुभिः = अनेकैः, वचनैः = कथनैः, यथार्हया = यथायोग्यया, स्तुत्या = प्रशस्तिवचनेन, संयुक्तम् = सहितम्, समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् = वर्षमासपक्षदिननामजात्यादिभिरङ्कितम्, कार्यबोधि = कर्त्तव्यज्ञापकम्, सुसम्बन्धम् = सम्यग्रूपेण सङ्गतम्, नत्या = प्रणत्या, आशिषा = आशीर्वचनेन युक्तम्, स्वाम्यसेवकसेव्यार्थम् = अधिपति-

अनुचरसेवासंवलितम्, यत् परस्परम् = अन्योन्यम्, लिख्यते, तत् क्षेमपत्रम् = मङ्गललेख्यम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ३१४-३१७ ॥

हिन्दी—अपने समाचार से अवगत कराने के लिए हमेशा स्वस्ति या मंगलसूचक शब्दों से प्रारंभ करके प्रश्नोत्तरयुक्त असंदिग्ध, स्पष्ट अर्थ वाले तथा साफ एवं सुडोल अक्षरों वाले हस्तान्तरित होने से बचने के लिए अपने या दूसरों के पिता आदि के नामों से युक्त एक, दो या बहुवचनों से प्रशस्ति युक्त काम को सही ढंग से सूचित करने वाला वर्ण, मास, पक्ष, दिन नाम तथा जातिबोधक शब्दों से चिह्नित, सुसंगत, यथायोग्य प्रणाम या आशीर्वाद युक्त, स्वामी एवं सेवक के बीच परस्पर सेवा से सम्बन्धित जो पत्र लिखे जाते हैं, उसे 'क्षेमपत्र' कहा जाता है ॥ ३१४-३१७ ॥

स्वकीयेत्यादि। स्वकीयस्य निजस्य वृत्तस्य चरितस्य ज्ञानार्थं बोधनार्थं श्रीमङ्गलपदैः आढ्यं युक्तं सपूर्वोत्तरपक्षकं पूर्वपक्षोत्तरपक्षसहितम् असन्दिग्धं सन्देहरहितम् अगूढार्थम् अगुप्तविषयं सदा स्पष्टानि सुबोधानि अक्षरपदानि यस्मिन् तथोक्तम् अन्येषां व्यावर्त्तकैः बोधनिवारकैः स्वात्मनः निजस्य परस्य च पित्रादिनामभिः युक्तम् एकेन द्वाभ्यां वा बहुभिः वचनैः यथार्हया यथायोग्यया स्तुत्या प्रशंसावादेन संयुक्तं समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितं वत्सरमासपक्षदिननाम-जात्यादिभिरङ्कितं कार्य्यबबोधि कार्यज्ञापकं सुसम्बन्धं सुसङ्गतं नत्याशीर्वादपूर्वकं प्रणत्या आशिषा च युक्तं स्वाम्यसेवकसेव्यार्थं प्रभुभृत्यसेवासंवलितं यत् परस्परं लिख्यते तत् क्षेमपत्रं मङ्गललेख्यं स्मृतं कथितम् ॥ ३१४-३१७ ॥

एभिरेव गुणैर्युक्तं स्वाधर्षकविबोधकम्।
भाषापत्रं तु तज्ज्ञेयमथवा वेदनार्थकम्॥ ३१८ ॥

अन्वयः—एभिरेव गुणैः युक्तं स्वाधर्षकं यत् तत् भाषापत्रम् अथवा वेदनार्थकं तत्पत्रं तु ज्ञेयम् ॥ ३१८ ॥

व्याख्या—एभिः = मङ्गललेख्यैः, एव = केवलम्, गुणैः = धर्मैः, युक्तम् = सहितम्, स्वाधर्षकविबोधकम्—स्वस्य = आत्मनः, आधर्षणस्य = मानसीव्यथायाः, विबोधकम् = विशेषरूपेण व्यञ्जकम्, यत् = लेख्यम्, तत् = लेख्यम्, भाषापत्रम् = अभियोगपत्रम्, अथवा = वा, वेदनार्थकम् = संवेदनार्थकम्, तत्पत्रम् = तल्लेख्यम्, तु = इत्यवधारणे, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ ३१८ ॥

हिन्दी—ऊपर वर्णित समस्त गुणों से युक्त लेखक की मनोव्यथाओं को व्यक्त करने वाले पत्र को 'भाषापत्र' अर्थात् 'अभियोगपत्र' या 'वेदनार्थक पत्र' कहते हैं।। ३१८ ॥

एभिरिति। एभिः क्षेमपत्रीयैरेव गुणैः धर्मैः युक्तं स्वस्य आत्मनः आधर्षणस्य पीडनस्य विबोधकं विशेषणज्ञापकं यत् लेख्यं तत् भाषापत्रम् अभियोगपत्रम् अथवा वेदनार्थकं पत्रं ज्ञेयम् ॥ ३१८ ॥

प्रदर्शितं वृत्तलेख्यं समासाल्लक्षणान्वितम्।
समासात् कथ्यते चान्यच्छेषायव्ययबोधकम्॥ ३१९ ॥

अन्वयः—समासात् लक्षणान्वितं वृत्तलेख्यं प्रदर्शितम्, च अन्यत् शेषम् आयव्ययबोधकं समासात् कथ्यते ॥ ३१९ ॥

व्याख्या—समासात् = सङ्क्षेपात्, लक्षणान्वितम् = परिभाषायुक्तम्, वृत्तलेख्यम् = वृत्तान्तलेख्यम्, प्रदर्शितम् = प्रकाशितम्, च = पुनः, अन्यत् = अपरम्, शेषम् = अवशिष्टम्, आयव्ययबोधकम् = आगमोत्सर्गज्ञापकं लेख्यम्, समासात् = सङ्क्षेपात्, कथ्यते = उच्यते ॥ ३१९ ॥

हिन्दी—संक्षेप में परिभाषा के साथ आचार सम्बन्धी लेख का भेद बतलाया गया, अब बचे हुए आयव्यबोधक पत्रों के बारे में संक्षेप में ही कहा जाता है ॥ ३१९ ॥

प्रदर्शितमिति। समासात् सङ्क्षेपात् लक्षणान्वितं लक्षणयुक्तं वृत्तलेख्यं प्रदर्शितम्। इदानीम् अन्यत् शेषम् अवशिष्टम् आयव्ययबोधकं लेख्यं समासात् सङ्क्षेपात् कथ्यते ॥ ३१९ ॥

व्याप्यव्यापकभेदैश्च मूल्यमानादिभिः पृथक्।
विशिष्टसंज्ञितैस्तद्धि यथार्थैर्बहुभेदयुक् ॥ ३२० ॥

अन्वयः—तत् व्याप्यव्यापकभेदैश्च विशिष्टसंज्ञितैः हि यथार्थैः पृथक् मूल्यमानादिभिः बहुभेदयुक् भवति ॥ ३२० ॥

व्याख्या—तत् = आगमोत्सर्गपत्रम्, व्याप्यव्यापकभेदैश्च—व्याप्यानाम् = स्वल्पविषयाणाम्, व्यापकानाञ्च = बहुव्यापिनाञ्च, भेदैः = प्रकारैः, विशिष्टसंज्ञितैः = बहुस्वल्पैः, हि = यतः, पृथक् = विभिन्नम्, मूल्यमानादिभिः = पण्यपरिमाणादिभिः, बहुभेदयुक् = अनेकप्रकारकम्भवति ॥ ३२० ॥

हिन्दी—आय-व्ययलेख्य अल्पविषयक या बहुविषयक होने के कारण कई तरह के होते हैं। बहुत या थोड़ा होने से अलग-अलग यथार्थ मूल्य और मान के अनुसार अनेक तरह के होते हैं ॥ ३२० ॥

व्याप्येति। तत् आयव्ययपत्रं व्याप्यानाम् अल्पविषयाणां व्यापकानां बहुविषयाणां भेदैः वैशिष्ट्यैः विशिष्टसंज्ञितैः बहुस्वल्पैः पृथक् यथार्थैः मूल्यमानादिभिश्च बहुभेदयुक् विविधं भवति ॥ ३२० ॥

वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
हिरण्यपशुधान्यादि स्वाधीनं त्वायसंज्ञकम्।
पराधीनं कृतं यत्तु व्ययसंज्ञं धनं च तत् ॥ ३२१ ॥

अन्वयः—वत्सरे वत्सरे मासि मासि वाऽपि दिने दिने यत् हिरण्यपशुधान्यादि स्वाधीनं तत्तु आयसंज्ञम्। यच्च पराधीनं कृतं तत् धनं व्ययसंज्ञकं भवति ॥ ३२१ ॥

व्याख्या—वत्सरे वत्सरे = प्रतिवर्षम्, मासि मासि = प्रतिमासम्, वाऽपि = अथवाऽपि, दिने दिने = प्रतिदिनम्, यत् = वस्तुम्, हिरण्यपशुधान्यादि = स्वर्णजन्तुव्रीह्यादि, स्वाधीनम् = आत्माधीनं भवति, तत्तु = तदेव, आयसंज्ञकम् = आगमसंज्ञकम्भवति। यच्च धनम् = स्वर्णादिकं, पराधीनम् = परस्वामिकम्, कृतम् = अधिकृतं भवति, तत् = धनम्, व्ययसंज्ञकम् = निर्गमसंज्ञकं भवति ॥ ३२१ ॥

हिन्दी—प्रतिवर्ष, प्रतिमास या प्रतिदिन जो सोना-चाँदी, पशु, अन्नादिक धन अपने पास आता है, वह आय कहलाता है तथा जो धन दूसरे को दे दिया जाता है, वह व्यय कहलाता है ॥ ३२१ ॥

वत्सरे इति। वत्सरे वत्सरे प्रतिवत्सरं मासि मासि प्रतिमासं दिने दिने प्रतिदिनं यत्

हिरण्यपशुधान्यादि स्वाधीनं निजायत्तं भवति तत् तु तदेव आयसंज्ञकम्। यच्च धनं हिरण्यादि पराधीनं परस्वामिकं कृतं तत् व्ययसंज्ञकम् ॥ ३२१ ॥

साद्यस्कश्चैव प्राचीन आयः सञ्चितसंज्ञकः।
व्ययो द्विधा चोपभुक्तस्तथा विनिमयात्मकः ॥ ३२२ ॥

अन्वयः—आयः साद्यस्कः प्राचीनश्च आयः सञ्चितसंज्ञकः। व्ययश्च द्विधा—उपभुक्तः तथा विनिमयात्मको भवति ॥ ३२२ ॥

व्याख्या—आयः = धनागमः, साद्यस्कः = अविलम्बभावी, तथा प्राचीनश्च = पुरातनश्च, तत्र प्राचीनः आयः, सञ्चितम् = सङ्गृहीतम्, इति संज्ञा = नाम, यस्य तादृशः, सङ्गृहीतधनमित्यर्थः, व्ययश्च = निर्गमश्च, द्विधा = द्विविधम्, उपभुक्तः = प्रयुक्तः, तथा विनिमयात्मकः = प्रतिदानात्मको भवति ॥ ३२२ ॥

हिन्दी—आय दो तरह की होती है—एक तात्कालिक और दूसरी संचित। व्यय भी दो तरह के होते हैं—उपभुक्त एवं दूसरा विनिमयात्मक ॥ ३२२ ॥

साद्यस्क इति। आयः साद्यस्कः सद्यो भवः प्राचीनश्च भवति तत्र प्राचीनः आयः सञ्चितमिति संज्ञा यस्य तादृशः सञ्चितनामा इत्यर्थः। व्ययश्च द्विधा उपभुक्तः तथा विनिमयात्मकः परिवर्त्तरूपः ॥ ३२२ ॥

निश्चितान्यस्वामिकं चानिश्चितस्वामिकं तथा।
स्वस्वत्वनिश्चितं चेति त्रिविधं सञ्चितं मतम् ॥ ३२३ ॥

अन्वयः—सञ्चितं त्रिविधं मतम्—निश्चितान्यस्वामिकं च अनिश्चितस्वामिकं तथा स्वस्वत्वनिश्चितम् ॥ ३२३ ॥

व्याख्या—सञ्चितम् = सङ्गृहीतधनम्, त्रिविधम् = त्रिप्रकारकम्, मतम् = कथितम्, तद्यथा—निश्चितान्यस्वामिकम्—निश्चितः = संशयशून्यः, अन्यः = स्वात्मभिन्नः, स्वामी = प्रभुः, यस्य तथोक्तं धनं प्रथमम्, अनिश्चितः = अनिर्णीतः, स्वामी = प्रभुः, यस्य तादृशं द्वितीयम्, तथा स्वस्वत्वनिश्चितम्—स्वस्य = आत्मनः, स्वत्वम् = स्वामित्वम्, निश्चितम् = निर्णीतम्, तस्मिन् तादृशं तृतीयम् ॥ ३२३ ॥

हिन्दी—संचित आय तीन तरह की होती है। पहली आय—जिसका अधिकारी कोई अन्य व्यक्ति निश्चित है, दूसरी—जिस आय के स्वामित्व का निश्चय नहीं है और तीसरी—संचित आय वह कहलाती है जिस पर अपना निजी स्वत्व हो ॥ ३२३ ॥

निश्चितेति। सञ्चितं सञ्चितनामा आयः त्रिविधं मतं कथितं निश्चितः अन्यः स्वामी यस्य तथोक्तम् एकम्। अनिश्चितः स्वामी यस्य तादृशं द्वितीयम्। तथा स्वस्य स्वत्वं निश्चितं यस्मिन् तथाभूतं तृतीयम् ॥ ३२३ ॥

निश्चितान्यस्वामिकं यद्धनं तु त्रिविधं हि तत्।
औपनिध्यं याचितकमौत्तमर्णिकमेव च ॥ ३२४ ॥

अन्वयः—निश्चतान्यस्वामिकं यद्धनं तत्तु हि त्रिविधम्—औपनिध्यम्, याचितकम् औत्तमर्णिकञ्च ॥ ३२४ ॥

व्याख्या—निश्चितान्यस्वामिकम् = यस्य सञ्चितस्य धनस्य कोऽप्यन्यः स्वामी निश्चितस्तादृशम्, यद्धनम् = यत्सञ्चितसम्पदम्, तत्तु = तद्धनन्तु, हि = इति = निश्चयेन, त्रिविधम् = त्रिप्रकारकं भवति। तद्यथा—औपनिध्यम् = न्यासरूपेण स्थापितं धनं प्रथमम्, याचितकम् = आविहितकालात्प्रयुक्तऋणरूपधनं द्वितीयम्, तृतीयन्तु औत्तमर्णिकम् = ऋणदधनं तृतीयम् ॥ ३२४ ॥

हिन्दी—जिस धन का दूसरा कोई अधिकारी हो वह तीन तरह का संचित धन होता है। पहला वह धन जो अमानत के रूप में रखा हों, दूसरा वह धन जो उधार लिया गया हो और तीसरा संचित धन ऋण देने वाला होता है ॥ ३२४ ॥

निश्चितेति। निश्चितान्यस्वामिकं यत् धनं सञ्चितमित्यर्थः, तत् त्रिविधं हि त्रिप्रकारमेव। औपनिध्यम् एकम्, याचितकं द्वितीयम्, औत्तमर्णिकं तृतीयम् ॥ ३२४ ॥

विश्रम्भान्निहितं सद्भिर्यदौपनिधिकं हि तत्।
अवृद्धिकं गृहीतान्यालङ्कारादि च याचितम्॥ ३२५ ॥

अन्वयः—विश्रम्भात् सद्भिः यद्धनं निहितं तत् हि औपनिधिकम् यच्च अवृद्धिकं गृहीतान्यालङ्कारादि तत् याचितम् ॥ ३२५ ॥

व्याख्या—विश्रम्भात् = प्रत्ययात्, सद्भिः = साधुभिः, यद्धनम् = सम्पदम्, निहितम् = न्यासरूपेण स्थापितम्, तत् हि = तदेव हि, औपनिधिकम् = औपनिध्यम्, यच्च = यद्धनन्तु, अवृद्धिकम् = वृद्धिं विनैव प्रार्थनया गृहीतम्, तद्धनम् = अन्यजनस्यालङ्कारादि यद् भवति तत्, याचितम् = प्रार्थितं धनमिति ॥ ३२५ ॥

हिन्दी—जो धन किसी सज्जन द्वारा विश्वासपूर्वक किसी के पास अमानत के रूप में रखा जाता है वह धन औपनिधिक कहलाता है और जो धन बिना सूद के दूसरे से उधार लिया जाता है, उसे 'याचित' धन कहा जाता है ॥ ३२५ ॥

विश्रम्भादिति। विश्रम्भात् सद्भिः साधुभिः यत् धनं निहितं गच्छितं तत् हि तदेव औपनिधिकम् औपनिध्यम्। यच्च अवृद्धिकं वृद्धिं विना गृहीतं प्रार्थनयेति भावः, अन्यस्य अलङ्कारादि तत् याचितम् ॥ ३२५ ॥

सवृद्धिकं गृहीतं यदृणं तच्चौत्तमर्णिकम्।
निध्यादिकं च मार्गादौ प्राप्तमज्ञातस्वामिकम्॥ ३२६ ॥

अन्वयः—सवृद्धिकं यदृणं गृहीतं तच्च औत्तमर्णिकम्। मार्गादौ यत् निध्यादिकं प्राप्तं तत् अज्ञातस्वामिकम् ॥ ३२६ ॥

व्याख्या—सवृद्धिकम् = वार्द्धुष्यसहितं, यद्धनं ऋणरूपेण गृहीतम् = प्राप्तम्, तत् = धनम्, औत्तमर्णिकम् = ऋणरूपसञ्चितं धनं भवति। मार्गादौ = पथ्यादौ, यत् निध्यादिकम् = निधानादिकं धनम्, प्राप्तम् = अधिगतम्, तत् = धनम, अज्ञातस्वामिकम् = यस्य धनस्य स्वामिनः अज्ञातो भवति तद्धनमज्ञातस्वामिकम्भवति ॥ ३२६ ॥

हिन्दी—सूद पर लिये गये धन को 'औत्तमर्णिक' कहते हैं तथा रास्ते में किसी की भूल के कारण जो धन कूड़ा, गिरा या गड़ा मिल जाय तो वह 'अज्ञातस्वामिक' धन कहलाता है ॥३२६ ॥

सवृद्धिकमिति। सवृद्धिकं वृद्धिं दास्यामीति प्रतिश्रुत्य यत् ऋणं गृहीतं तत् औत्तमर्णिकम्। मार्गादौ रथ्यादिस्थाने यत् निध्यादिकं धनं प्राप्तं तत् अज्ञातस्वामिकम् अनिश्चितस्वामिकम् ॥ ३२६ ॥

साहजिकं चाधिकं च द्विधा स्वस्वविनिश्चितम् ॥ ३२७ ॥

अन्वयः—स्वस्वत्वविनिश्चितं धनं द्विधा—साहजिकम् अधिकञ्च ॥ ३२७ ॥

व्याख्या—स्वस्वत्वविनिश्चितम्—स्वस्य = आत्मनः, स्वत्वम् = स्वामित्वम्, विनिश्चितम् = विशेषेण निर्णीतम्, धनम् = एवंविधधनम्, द्विधा = द्विप्रकारकं भवति, साहजिकम् = सौकर्येणोपलब्धम्, धनम्, च = पुनः, अधिकम् ॥ ३२७ ॥

हिन्दी—जिस धन का अधिकारी निश्चित हो वह दो प्रकार का होता है– साहजिक और अधिक ॥ ३२७ ॥

साहजिकमिति। सत्त्वनिश्चितं निश्चितस्वस्वत्वं धनं द्विधा साहजिकम् अधिकञ्च ॥ ३२७ ॥

उत्पद्यते यो नियतो दिने मासि च वत्सरे।
आयः साहजिकः सैव दायाद्यश्च स्ववृत्तितः ॥ ३२८ ॥

अन्वयः—दिने मासि वत्सरे वा दायात् स्ववृत्तितः यः नियतः आयः उत्पद्यते सैव साहजिकः ॥ ३२८ ॥

व्याख्या—दिने = दिवसे, मासि = मासे, वत्सरे = प्रतिवर्षे, वा, दायात् = पैतृकाद् धनात्, स्ववृत्तितः—स्वस्य = आत्मनः, वृत्तितः = व्यवसायाच्च, यः नियतः = निश्चितः, आयः = धनागमः, उत्पद्यते = प्राप्यते, सैव = तदेव धनम्, साहजिकः = सहजेनोपलब्धः ॥ ३२८ ॥

हिन्दी—जिस धन की दैनिक, मासिक एवं वार्षिक आय पैतृक सम्पत्ति या अपने व्यवसाय से निश्चित रूप में प्राप्त हो, वह साहजिक धन कहलाता है ॥ ३२८ ॥

उत्पद्यते इति। दिने मासि वत्सरे वा दायात् पैतृकात् धनात् स्ववृत्तितः स्वव्यन्त्रसायाच्च यः नियतः निर्द्धारितः आयः उत्पद्यते स एव साहजिकः ॥ ३२८ ॥.

दायः परिग्रहो यत्तु प्रकृष्टं तत् स्वभावजम्।
मौल्याधिक्यं कुसीदञ्च गृहीतं याजनादिभिः।
पारितोष्यं भृतिप्राप्तं विजिताद्यं धनञ्च यत्।
स्वस्वत्वेऽधिकसंज्ञं तदन्यत् साहजिकं स्मृतम् ॥ ३३० ॥

अन्वयः—यत्तु दायः परिग्रहः तत् प्रकृष्टं स्वभावजं साहजिकम्। यत् मौल्याधिक्यं कुसीदञ्च याजनादिभिः गृहीतं पारितोष्यं भृतिप्राप्तं तथा विजितं यत् धनं तत् स्वस्वत्वे अधिकसंज्ञं तत् अन्यत् साहजिकं स्मृतम् ॥ ३२९-३३० ॥

व्याख्या—यत्तु = यद्धनम्, तु, दायः = पैतृकं धनम्, परिग्रहः = प्रतिग्रहात् प्राप्तं धनम्, तत् = धनम्, प्रकृष्टम् = सुखसाध्यत्वादुत्तमम्, स्वभावजं साहजिकं धनम्। यत् = धनम्, मौल्याधिक्यम् = अधिकमूल्येनोपलब्धम्, कुसीदम् = वार्द्धुष्यप्राप्तं धनम्, याजनादिभिः करणैः, गृहीतम् = प्राप्तम्, पारितोष्यम् = पुरस्काररूपेणोपलब्धं धनम्, भृतिप्राप्तम् = वेतनेनोपलब्धम्, तथा विजितम् = पराजिताल्लब्धं धनम्, तत् स्वस्वत्वे = आत्माधिकारनिश्चिते धने,

अधिकसंज्ञम् इति, अन्यत् = एतद्भिन्नं धनम्, साहजिकम् = स्वाभाविकमिति, स्मृतम् = कथितम् ॥ ३२९-३३० ॥

हिन्दी—पैतृक एवं प्रतिग्रह से प्राप्त धन अनायास उपलब्ध होने के कारण उत्कृष्ट साहजिक धन होता है। अधिक मूल्य देकर प्राप्त धन, सूद के रूप में प्राप्त धन, यज्ञादि कराने से दान या पारिश्रमिक रूप में प्राप्त धन, पुरस्कार या वेतन के रूप में प्राप्त धन तथा युद्ध में पराजितों से प्राप्त धन स्वस्वत्वाधिक्य होने के कारण 'अधिकसंज्ञक' धन कहलाता है। इससे अन्य ढंग से जो धन प्राप्त होता है, वह साहजिक कहलाता है ॥ ३२९-३३० ॥

दाय इति। यत्तु दायः पैतृकं धनं परिग्रहः दानग्रहणात् लब्धश्च आयः, तत् प्रकृष्टम् अक्लेशसाध्यत्वात् उत्तमं स्वभावजं साहजिकं धनमिति शेषः। यत् मौल्याधिक्यं यथायथमूल्यात् अधिकत्वेन प्राप्तं, कुसीदं वृद्ध्या प्राप्तं, याजनादिभिः करणैः गृहीतं पारितोष्यं पुरस्काररूपेण लब्धं भृतिप्राप्तं वेतनलब्धं तथा विजितं युद्धजयादिना लब्धं धनं तत् स्वस्वत्वे स्वस्वत्वनिश्चिते धने अधिकसंज्ञम् अधिकमिति प्रसिद्धमित्यर्थः, अन्यत् सर्वं साहजिकं स्मृतं कथितम् ॥ ३२९-३३० ॥

पूर्ववत्सरशेषञ्च वर्त्तमानाब्दसम्भवम्।
स्वाधीनं सञ्चितं द्वेधा धनं सर्वं प्रकीर्त्तितम्॥ ३३१ ॥

अन्वयः—स्वाधीनं सञ्चितं सर्वं धनं द्वेधा प्रकीर्त्तितम्—पूर्ववत्सरशेषं वर्त्तमानाब्दसम्भवञ्च ॥ ३३१ ॥

व्याख्या—स्वाधीनम् = आत्माधिकृतम्, सञ्चितम् = सङ्गृहीतम्, सर्वम् = सकलम्, धनम् = सम्पदम्, द्विधा = द्विप्रकारकम्, प्रकीर्त्तितम् = कथितम्, पूर्ववत्सरशेषम् = पूर्ववर्षावशिष्टम्, तथा वर्त्तमानाब्दसम्भवम् = प्रचरितवर्षजातं धनञ्चेति ॥ ३३१ ॥

हिन्दी—अपने अधीनस्थ संगृहीत सम्पूर्ण धन दो प्रकार का होता है—पहले साल का बचा तथा वर्तमान वर्ष का संभावित धन ॥ ३३१ ॥

पूर्वेति। स्वाधीनं सञ्चितं सर्वं धनं द्वेधा। द्विविधं प्रकीर्त्तितं, पूर्ववत्सरशेषं वर्त्तमानाब्दसम्भवं वर्त्तमानवर्षजातञ्च ॥ ३३१ ॥

द्वेधाधिकं साहजिकं पार्थिवेतरभेदतः।
भूमिभागसमुद्भूत आयः पार्थिव उच्यते॥ ३३२ ॥

अन्वयः—अधिकं साहजिकं, पार्थिवेतरभेदतः द्वेधा, भूमिभागसमुद्भूतः आयः पार्थिवः उच्यते ॥ ३३२ ॥

व्याख्या—अधिकम् = अधिकसंज्ञकम्, साहजिकम् = सहजसंज्ञकञ्च, द्विविधं पूर्वोक्तसञ्चितं धनम्, पार्थिवेतरभेदतः—पार्थिवम् = स्थावरम्, इतरम् = जङ्गमम्, भेदतः = भेदात्, द्वेधा = द्विविधम्। तत्र भूमिभागसमुद्भूतः—भूमिभागेभ्यः = पृथिवीखण्डात्, समुद्भूतः = सञ्जातः, आयः = धनागमः, पार्थिवः = भौतिकः, उच्यते = कथ्यते ॥ ३३२ ॥

हिन्दी—इससे पूर्व अधिक और साहजिक भेद से दो तरह की आय जो बतलाई गई है, वे प्रत्येक स्थावर और जंगम भेद से दो प्रकार के होते हैं। इनमें भूखण्ड से उत्पन्न आय को 'पार्थिव' कहते हैं ॥ ३३२ ॥

द्वेधेति। अधिकं साहजिकञ्च पूर्वोक्तं द्विविधं धनं पार्थिवेतरभेदतः पार्थिवं स्थावरम् इतरम् अस्थावरं जङ्गममिति भेदा द्वेधा द्विविधम्। तत्र भूमिभागेभ्यः समुद्भूतः आयः पार्थिव उच्यते ॥ ३३२ ॥

स देवकृत्रिमजलैर्देशग्रामपुरैः पृथक्।
बहुमध्याल्पफलतो भिद्यते भूविभागतः ॥ ३३३ ॥

अन्वयः—सः देवकृत्रिमजलैः देशग्रामपुरैः पृथक् भूविभागतः बहुमध्याल्पफलतः भिद्यते ॥ ३३३ ॥

व्याख्या—सः= भूखण्डतः प्राप्तधनागमः, देवकृत्रिमजलैः= देवालयादिभिः, कृत्रिमैः= कृतकैः वस्तुभिः, जलैः= सलिलैः, देशग्रामपुरैः= राष्ट्राऽल्पावासनगरैः, पृथक्= भिन्नम्, भूविभागतः= पृथ्वीखण्डैः, बहुमध्याल्पफलतः—बहुभिः= प्रचुरैः, मध्यैः= साधारणैः, अल्पैश्च= स्तोकैश्च, फलैः= परिणामैः, भिद्यते= व्यधनं याति ॥ ३३३ ॥

हिन्दी—उस पार्थिवसंज्ञक आय के देवालयों, कृत्रिम वस्तुओं, पानी, देश, गाँव, नगरों से अलग हुए भूमिसम्बन्धी विभागों से अधिक, साधारण और कम फलों से अनेक भेद होते हैं ॥ ३३३ ॥

स इति। सः पार्थिव आयः देवकृत्रिमजलैः देवालयादिभिः कृत्रिमैः कल्पितैः वस्तुभिः जलैः देशग्रामपुरैः पृथक् विभिन्नैः भूविभागतः पृथ्वीविभागैः बहुमध्याल्पफलतः बहुभिः मध्यैः अल्पैश्च फलैः भिद्यते भेदं गच्छति ॥ ३३३ ॥

शुल्कदण्डाकरकरभाटकोपायनादिभिः ।
इतरः कीर्त्तितस्तज्ज्ञैरायो लेखविशारदैः ॥ ३३४ ॥

अन्वयः—शुल्कदण्डाकरकरभाटकोपायनादिभिः आयः तज्ज्ञैः लेखविशारदैः इतरः कीर्त्तितः ॥ ३३४ ॥

व्याख्या—शुल्कैः= घट्टपथादीनां करैः, दण्डैः= निग्रहैः, आकरैः= खनिजैः, करैः= शुल्कैः, भाटकैः= भाटिभिः, उपायनादिभिः= उपहारादिभिः, आयः= धनागमः, तज्ज्ञैः धनागमज्ञानविद्भिः, लेखविशारदैः= लेखकैः, इतरः= भिन्नः, पार्थिवभिन्नेत्यर्थः, कीर्त्तितः= कथितः ॥ ३३४ ॥

हिन्दी—चुंगी, टैक्स, जुर्माना, खनिज धन, मालगुजारी, भाडे तथा नजराने से मिलने वाली आय का ज्ञान रखने वाले हिसाब लिखने में प्रवीण व्यक्ति इसे चलसंज्ञक आय कहते हैं ॥ ३३४ ॥

शुल्केति। शुल्कैः वणिजादिभ्यः लब्धैः राजग्राह्यांशैः दण्डैः दुष्टदमनोत्थैः आकरैः खन्युत्पन्नैः करैः राजस्वैः भाटकैः भाडेति प्रसिद्धैः तथा उपायनैः उपदाभिः इत्येवमादिभिः आयः तज्ज्ञैः आयज्ञानविद्भिः लेखविशारदैः लेखकैः इतरः पार्थिवभिन्नः कीर्त्तितः ॥ ३३४ ॥

यन्निमित्ततो भवेदायो व्ययस्तन्नामपूर्वकः ।
व्ययश्चैवं समुद्दिष्टो व्याप्यव्यापकसंयुतः ॥ ३३५ ॥

अन्वयः—आयः यन्निमित्तः भवेत्, व्ययस्तन्नामपूर्वकः व्ययश्च । एवं व्याप्यव्यापकसंयुक्तः समुद्दिष्टः ॥ ३३५ ॥

व्याख्या—आयः = धनागमः, यन्निमित्तः = येन कारणेन, भवेत् = स्यात्, व्ययः = धननिर्गमः, तन्नामपूर्वकम्—तत् = पूर्वोक्तः, नाम = विभागः, पूर्वं यस्य तादृशः भवेत्, व्ययश्च = निर्गमश्च, एवम् = आयवत्, व्याप्यव्यापकसंयुक्तम् = बहुस्तोकविषयान्वितः, समुद्दिष्टः = कथितः ॥ ३३५ ॥

हिन्दी—जिस विभाग से आमदनी होती है खर्च भी उसी विभाग के नाम से होता है। अर्थात् जिस स्रोत से आय होती है, उसी स्रोत पर व्यय भी होता है। फिर आमदनी की तरह खर्च भी बहुत या कम विषयक कहा गया है ॥ ३३५ ॥

यन्निमित्त इति। आयः यन्निमित्तः येन निमित्तेन भवेत् व्ययोऽपि तन्नामपूर्वकः तन्नाम पूर्वं यस्य तादृशः तन्निमित्तसमुद्भव इत्यर्थः भवेत्। व्ययश्च एवम् आयवदित्यर्थः व्यापव्यापकसंयुतः स्वल्पबहुविषयगोचरः समुद्दिष्टः कथितः ॥ ३३५ ॥

पुनरावर्त्तकः स्वत्वनिवर्त्तक इति द्विधा।
व्ययो यन्निध्युपनिधीकृतो विनिमयीकृतः।
सकुसीदाकुसीदाधमर्णिकश्चावृतः स्मृतः ॥ ३३६ ॥

अन्वयः—व्ययश्च द्विधा—पुनरावर्त्तकः स्वत्वनिवर्त्तकः। यत् निध्युपनिधीकृतः विनिमयीकृतः सकुसीदः अकुसीद इति द्वेधा आधमर्णिकश्च आवृतः स्मृतः ॥ ३३६ ॥

व्याख्या—सः व्ययश्च = धननिर्गमश्च, द्विधा = द्विप्रकारकः, पुनरावर्त्तकः = पौनःपुन्येन परिवर्त्तमानः, स्वत्वनिवर्त्तकः = स्वामित्वविमुक्तकः। यद्व्ययः = निर्गमः, निधिः कृतः = सञ्चितः, उपनिधिः कृतः = न्यासरूपेण सञ्चितः, विनमयीकृतः = कृतविनिमयः, सकुसीदः = वृद्धिसहितः, अकुसीदः = वृद्धिरहितः, इति = इत्थम्, द्वेधा = द्विविधः, आधमर्णिकश्च = ऋणरूपेण सङ्कलितश्च, आवृतः = पुनरावर्त्तकः, स्मृतः = कथितः ॥ ३३६ ॥

हिन्दी—वह व्यय दो तरह का होता है—फिर लौटकर आनेवाला और कभी न लौटने वाला। जो निधि, उपनिधि या विनिमयरूप में व्यय हुआ है, वह सूदसहित या सूदरहित दो तरह के ऋण रूप में प्राप्त धन पुनरावर्त्तक कहलाता है ॥ ३३६ ॥

पुनरिति। सः व्ययश्च द्विधा, पुनरावर्त्तकः, स्वत्वनिवर्त्तकश्च इति। यः व्ययः निधिः कृतः, उपनिधिः कृतः, विनिमयीकृतः सकुसीदः सवृद्धिकः अकुसीदः अवृद्धिक इति द्वेधा आधमर्णिकश्च आवृत्तः पुनरावर्त्तकः स्मृतः ॥ ३३६ ॥

निधिर्भूमौ विनिहितोऽन्यस्मिन्नुपनिधिः स्थितः।
दत्तमूल्यादिसम्प्राप्तः सैव विनिमयीकृतः ॥ ३३७ ॥

अन्वयः—भूमौ विनिहितः निधिः अन्यस्मिन् स्थितः उपनिधिः दत्तमूल्यादिसम्प्राप्तः सैव विनिमयीकृतः ॥ ३३६ ॥

व्याख्या—भूमौ = पृथिव्याम्, विनिहितः = निवेशितः, निधिः = निधानम्भवति, यतो हि तस्य धनस्यात्यावश्यककार्येऽप्यग्रहणीयत्वाद् व्ययव्यपदेशः, अन्यस्मिन् = आत्मभिन्नजने, स्थितः = हस्तगतधनम्, उपनिधिः = एतदाख्यं धनं भवति। दत्तमूल्यादिसम्प्राप्तः—दत्तेन = प्रदत्तेन, मूल्यादिना = अवक्रयादिना, सम्प्राप्तः = हस्तगतः, सैव, आर्षप्रयोगोऽयम्, तदेव, विनिमयी- कृतः = परिवर्त्तो भवति ॥ ३३७ ॥

हिन्दी—जिस धन को धरती में गाड़ दिया जाता है तथा अत्यावश्यक स्थिति में भी जिसे खर्च नहीं किया जाय, उसे निधि कहते हैं। जो धन दूसरों के हाथ में हैं उसे उपनिधि कहते हैं। समय पर काम न आने के कारण यह भी व्यय कहलाता है॥ ३३७॥

निधिरिति। भूमौ विनिहितः निखातः निधिः तस्य कष्टातिपातेऽप्यग्रहणीयत्वात् व्ययव्यपदेशः। अन्यस्मिन् जने स्थितः गच्छित इत्यर्थः उपनिधिः। दत्तेन मूल्यादिना सम्प्राप्तः सैव स एव आर्षोऽयं सन्धिः, विनिमयीकृतः परिवर्त्तितः एकवस्तुप्रदानेन अपरवस्तुग्रहणमित्यर्थः॥ ३३७॥

वृद्ध्यावृद्ध्या च यो दत्तः स वै स्यादाधमर्णिकः।
सवृद्धिकमृणं दत्तमकुसीदं तु याचितम्॥ ३३८॥

अन्वयः—यश्च वृद्ध्या अवृद्ध्या च दत्तः स वै आधमर्णिकः स्यात। सवृद्धिकं यत् दत्तं तत् ऋणम् अकुसीदं तु याचितम्॥ ३३८॥

व्याख्या—यश्च = व्ययः, वृद्ध्या = कुसीदेन, अवृद्ध्या = अकुसीदेन, च = पुनः, दत्तः = प्रदत्तः, सः = तत्, वै = इति निश्चयेन, आधमर्णिकः = ऋणरूपव्ययः, स्यात् = भवेत्। तत्र सवृद्धिकम् = कुसीदेन सह, यत् = धनम्, दत्तम् = विसृष्टम्, तत् ऋणम् = अधमर्णः, अकुसीदम् = अवृद्धिकम्, तु याचितम् = प्रार्थितम्, भवति॥ ३३८॥

हिन्दी—सूद या बिना सूद के जो धन दिया जाता है, उसे आधमर्णिक कहते हैं। इसमें सूद पर जो दिया जाता है, उसे ऋण तथा बिना सूद पर जो दिया जाता है, उसे हथ-उधार कहते हैं॥ ३३८॥

वृद्ध्येति। यश्च वृद्ध्या अवृद्ध्या च दत्तः स वै एव आधमर्णिकः स्यात्। तत्र सवृद्धिकं यत् दत्तं तत् ऋणम्, अकुसीदम् अवृद्धिकन्तु याचितं भवति॥ ३३८॥

स्वत्वनिर्वर्त्तको द्वेधा त्वैहिकः पारलौकिकः॥ ३३९॥
प्रतिदानं पारितोष्यं वेतनं भोग्यमैहिकः।
चतुर्विधस्तथा पारलौकिकोऽनन्तभेदभाक्॥ ३४०॥

अन्वयः—स्वत्वनिवर्त्तकः तु द्वेधा—ऐहिकः पारलौकिकः। तत्र प्रतिदानं पारितोष्यं वेतनं भोग्यञ्चेति चतुर्विधः ऐहिकः, तथा पारलौकिकः अनन्तभेदभाक्॥ ३३९-३४०॥

व्याख्या—स्वत्वनिवर्त्तकः = आत्माधिकारनिवारकः, तु, द्वेधा = द्विविधम्—ऐहिकः = सांसारिकः, पारलौकिकः = अपार्थिवः, तत्र प्रतिदानम् = प्रत्यर्पणम्, पारितोष्यम् = सिद्धिपाल्यम्, वेतनम् = वृत्तिः, भोग्यञ्चेति = उपयोक्तव्यञ्चेति, चतुर्विधः = चतुर्धा, ऐहिकः = लौकिकः, तथा पारलौकिकः = अपार्थिवः, अनन्तभेदभाक् = बहुविधं भवति॥ ३३९-३४०॥

हिन्दी—आत्माधिकारनिरोधक व्यय दो तरह के होते हैं–ऐहिक तथा पारलौकिक। ऐहिक व्यय के चार भेद होते हैं–प्रतिदान, पारितोषिक, वेतन और भोग्य तथा पारलौकिक व्यय के अनेक भेद होते हैं॥ ३३९-३४०॥

स्वत्वनिवर्त्तक इत्यादि। स्वत्वनिवर्त्तकः व्ययस्तु द्वेधा द्विविधः, ऐहिकः पारलौकिकश्च। तत्र प्रतिदानं पारितोष्यं वेतनं भोग्यञ्चेति चतुर्विधः ऐहिकः। तथा पारलौकिकः अनन्तभेदभाक् बहुविध इत्यर्थः॥ ३३९-३४०॥

शेषं संयोजयेन्नित्यं पुनरावर्त्तको व्ययः।
मूल्यत्वेन च यद् दत्तं प्रतिदानं स्मृतं हि तत्॥ ३४१॥

अन्वयः—पुनरावर्तकः व्ययः नित्यं शेषं संयोजयेत्। यच्च मूल्यत्वेन दत्तं तत्प्रतिदानं स्मृतम्॥ ३४१॥

व्याख्या—पुनरावर्त्तकः = पुनः परिवर्त्तमानः, व्ययः = निर्गमः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, शेषम् = अवशिष्टम्, संयोजयेत् = सम्मेलयेत्, यच्च मूल्यत्वेन = अवक्रयत्वेन, दत्तम् = प्रदत्तम्, तत् = व्ययः, हि = इति निश्चयेन, प्रतिदानम् = विनिमयः, स्मृतः = कथितः॥ ३४१॥

हिन्दी—प्रतिदिन जो शेष को रोकड़ में मिलाया जाता है, वह भी पुनरावर्त्तक व्यय कहलाता है तथा मूल्य के रूप में जो दिया जाता है, उसे प्रतिदान कहते हैं॥ ३४१॥

शेषमिति। पुनरावर्त्तकः व्ययः नित्यं शेषं संयोजयेत्। यच्च मूल्यत्वेन दत्तं तत् हि प्रतिदानं स्मृतम्॥ ३४१॥

सेवाशौर्य्यादिसन्तुष्टैर्दत्तं तत् पारितोषिकम्।
भृतिरूपेण सन्दत्तं वेतनं तत् प्रकीर्त्तितम्॥ ३४२॥

अन्वयः—सेवाशौर्यादिसन्तुष्टैः यद्दत्तं तत् परितोषिकम्। भृतिरूपेण यत् सन्दत्तं तत् वेतनं प्रकीर्त्तितम्॥ ३४२॥

व्याख्या—सेवाशौर्यादिसन्तुष्टैः—सेवया = सुश्रूषया, शौर्यादिना = यथावसरे वीरत्वादिप्रदर्शनेन, भूभृद्भिः, यत् = धनम्, दत्तम् = अर्पितम्, तत् = धनम्, पारितोषिकम् = पुरस्कारस्वरूपम्, भृतिः = वृत्तिः, रूपेण, यत् = धनम्, दत्तम् = समर्पितम्, तत् = धनम्, वेतनम् = वृत्तिः, प्रकीर्त्तितम् = कथितम्॥ ३४२॥

हिन्दी—सेवा और शूरता के कारण स्वामी के द्वारा जो धन दिया जाता है, उसे पारितोषिक कहते हैं तथा जीवन-यापन के लिए सेवकों को जो मासिक या वार्षिक धन दिया जाता है, उसे वेतन कहते हैं॥ ३४२॥

सेवेति। सेवया शौर्य्यादिना च सन्तुष्टैः प्रभुभिः यत् दत्तं तत्पारितोषिकं पारितोष्यम्। यच्च भृतिरूपेण सन्दत्तं तत् वेतनं प्रकीर्त्तितं कथितम्॥ ३४२॥

धान्यवस्त्रगृहारामगोगजादिरथार्थकम्।
विद्याराज्याद्यर्जनार्थं धनाद्यर्थं तथैव च।
व्ययीकृतं रक्षणार्थमुपभोग्यं तदुच्यते॥ ३४३॥

अन्वयः—धान्यवस्त्रगृहारामगोगजादिरथार्थकं विद्याराज्याद्यर्जनार्थं तथैव च धनाद्यर्थं रक्षणार्थं व्ययीकृतं तत् उपभोग्यम् उच्यते॥ ३४३॥

व्याख्या—धान्यवस्त्रगृहारामगोगजादिरथार्थकम्—धान्यानि = अन्नानि, वस्त्राणि = परिधानानि, गृहाणि = सदनानि, आरामाः = उद्यानानि, गावः = धेनवः, गजाः = कुञ्जराः च, आदयः येषां ते, रथाश्च = स्यन्दनाश्च, अर्थाः = प्रयोजनानि, यत्र तादृशम्, विद्याराज्याद्यर्जनार्थम्—विद्याः = ज्ञानानि, राज्यम् = आधिपत्यम्, आदयः येषां तेषाम् अर्जनार्थम् = उपार्जनाय,

तथैव = तेनैव प्रकारेण, च = पुनः, धनाद्यर्थं, रक्षणार्थम् = पालनाय, व्ययीकृतम् = धनविसर्जितम्, तत् = व्ययः, भोग्यम् = उपयोक्तव्यमिति, उच्यते = कथ्यते ॥ ३४३ ॥

हिन्दी—अन्न, वस्त्र, आवास, बगीचा, गाय, हाथी, रथ, प्रभृति तथा विद्या एवं राज्य के लिए और अर्थोपार्जन एवं उसके संरक्षण पर जो व्यय किया जाता है, उसे 'उपभोग्य' कहते हैं ॥ ३४३ ॥

धान्येति। धान्यानि वस्त्राणि गृहाणि आरामाः उद्यानानि गावः गजाश्च आदयो येषां ते रथाश्च अर्थाः प्रयोजनानि यत्र तादृशं विद्याराज्याद्यर्जनार्थं धनाद्यर्थं रक्षणार्थञ्च यत् व्ययीकृतं तत् उपभोग्यम् उच्यते ॥ ३४३ ॥

सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालास्तथैव च।
रथाश्वगोगजोष्ट्राजावीनशालाः पृथक् पृथक् ॥ ३४४ ॥
वाद्यशस्त्रास्त्रवस्त्राणां धान्यसम्भारयोस्तथा।
मन्त्रिशिल्पनाट्यवैद्यमृगाणां पाकपक्षिणाम्।
शाला भोग्ये निविष्टास्तु तद्व्ययो भोग्य उच्यते ॥ ३४५ ॥

अन्वयः—सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालाः च तथैव पृथक् पृथक् रथाश्वगोगजोष्ट्राजावीनशालाः वाद्यशस्त्रास्त्रवस्त्राणां धान्यसम्भारयोः तथा मन्त्रिशिल्पनाट्यवैद्यमृगाणां पाकपक्षिणां शालाः भोग्ये निविष्टाः तत् व्ययः भोग्य उच्यते ॥ ३४४-३४५ ॥

व्याख्या—सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालाः—सुवर्णानाम् = कनकानाम्, रत्नानाम् = बहुमूल्यप्रस्तरखण्डानाम्, रजतानाम् = रूप्याणाम्, निष्काणाम् = दीनाराणाम्, याः शालाः = भवनानि, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, च = पुनः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, रथाश्वगोगजोष्ट्राजावीनशालाः—रथानाम् = स्यन्दनानाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, गवाम् = धेनूनाम्, गजानाम् = हस्तिनाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, अजानाम् = छागानाम्, अवीनाम् = मेषाणाम्, याः शालाः = भवनानि, वाद्यानाम् = वाद्ययन्त्राणाम्, शस्त्राणाम् = अप्रक्षेपणायुधानाम्, अस्त्राणाम् = प्रक्षेपणायुधानाम्, वस्त्राणाम् = परिधानानाम्, याः शालाः = स्थानानि, धान्यस्य = अन्नस्य, सम्भारस्य = द्रव्यसमूहस्य, च याः शालाः = स्थानानि, तथा मन्त्रिणाम् = सचिवानाम्, शिल्पानाम् = शिल्पव्यवसायानाम्, नाट्यानाम् = अभिनयानाम्, वैद्यानाम् = चिकित्सकानाम्, मृगाणाम् = कुरङ्गाणाम्, पाकानाम् = पवित्राणां पाकशालानां वा, पक्षिणाम् = खगानाम्, याः शालाः = गृहाणि, भोग्ये निविष्टाः = भोग्यान्तर्गताः, तत् = तासाम्, व्ययः = निर्गमः, 'भोग्यः' उच्यते = कथ्यते ॥ ३४४-३४५ ॥

हिन्दी—सोना, चाँदी, रत्न एवं मोहर रखने की जो जगह हैं तथा रथ, घोडे, गाय, हाथी, ऊँट, बकरे, भेडें आदि के लिए जो अलग-अलग स्थान बने हैं और बाजे, अस्त्र-शस्त्र, अन्न तथा द्रव्यों को रखने के लिए जो स्थान बने हैं एवं मंत्री, शिल्प, अभिनय, चिकित्सक, हिरण, पाक, पक्षी—इनके लिए जो स्थान हैं उन सबों की गणना भोग्य के अन्तर्गत हैं। अतः इन पर किया गया व्यय भी भोग्य कहलाता है ॥ ३४४-३४५ ॥

सुवर्णेत्यादि। सुवर्णानां रत्नानां रजतानां निष्काणां मोहर इति प्रसिद्धानां याः शालाः स्थानानि, पृथक् पृथक् रथानाम् अश्वानां गवां गजानाम् उष्ट्राणाम् अजानां छागानाम् अवीनां मेषाणाम्

इनानाञ्च याः शालाः, वाद्यानां शस्त्राणाम् अस्त्राणां वस्त्राणाञ्च याः शालाः, धान्यस्य सम्भारस्य द्रव्यसमूहस्य च याः शालाः तथा मन्त्रिणां शिल्पानां नाट्यानां वैद्यानां मृगाणां पाकानां पक्षिणाञ्च याः शालाः भोग्ये निविष्टाः भोग्यान्तर्गताः, तद्व्ययः तासां व्ययः भोग्य उच्यते ॥ ३४४-३४५ ॥

जपहोमार्चनैर्दानैश्चतुर्धा पारलौकिकः।
पुनर्यातो निवृत्तश्च विशेषायव्ययौ च तौ।
आवर्त्तको निवर्त्ती च व्ययायौ तु पृथग् द्विधा ॥ ३४६ ॥

अन्वयः—पारलौकिकः जपहोमार्चनैः दानैः चतुर्धा। तौ च विशेषायव्ययौ पुनर्यातः च निवृत्तः तु व्ययायौ पृथक् द्विधा आवर्त्तकः च निवर्त्ती ॥ ३४६ ॥

व्याख्या—पारलौकिकः = आमुष्मिकव्ययस्तु, जपहोमार्चनैर्दानैः—जपैः = जपजन्यधार्मिकक्रियाभिः, होमैः = हवनैः, अर्चनैः = पूजनैः, दानैः = प्रत्यर्पणैः, चतुर्धा = चतुष्प्रकारको भवति। तौ = उभौ, च = पुनः, विशेषायव्ययौ = विलक्षणागमनिर्गमौ, पुनर्यातः = पुनः प्रस्थितः, च = पुनः, निवृत्तः = विरतः, द्वौ तु व्ययायौ = निर्गमागमौ, पृथक् = पृथग्रूपेण, द्विधा = द्विप्रकारकौ, आवर्त्तकः = परिवर्त्तमानः, च = पुनः, निवर्त्ती = परावर्त्तकः ॥ ३४६ ॥

हिन्दी—पारलौकिक व्यय के मुख्यतः चार भेद हैं—जप, होम, पूजन तथा दान। जो आय आकर पुनः जाने वाला हो तथा जो व्यय जाकर भी फिर लौटने वाला हो, उसे विशेष आय-व्यय कहते हैं। इस तरह व्यय और आय—ये दोनों अलग-अलग आवर्तक एवं निवर्ती भेद से दो प्रकार के होते हैं ॥ ३४६ ॥

जपेति। पारलौकिकः व्ययः जपहोमार्चनदानभेदेन चतुर्धा। तौ च विशेषायव्ययौ पुनर्यातः निवृत्तश्चेति द्वौ तु व्ययायौ व्ययः आयश्च पृथक् द्विधा, आवर्त्तकः निवर्त्ती चेति ॥ ३४६ ॥

आवर्त्तकविहीनौ तु व्ययायौ लेखको लिखेत् ॥ ३४७ ॥

अन्वयः—लेखकः आवर्त्तकविहीनौ तु व्ययायौ लिखेत् ॥ ३४६ ॥

व्याख्या—लेखकः = पञ्जीकारः, आवर्त्तकविहीनौ = परिवर्त्तमानरहितौ, तु, व्ययायौ = निर्गमागमौ, लिखेत् = पञ्जीपत्रे अङ्कनं कुर्यात् ॥ ३४४ ॥

हिन्दी—लेखक लौटने वाले और नहीं लौटने वाले व्यय और आय को लिखे ॥ ३४६ ॥

आवर्त्तकेति। लेखकः आवर्त्तकविहीनौ आवर्त्तकनिवर्त्तिनौ व्ययायौ तु व्ययम् आयञ्च लिखेत् ॥ ३४७ ॥

क्रयाधमर्णघटनान्यस्थलाप्तो विवर्त्तकः।
द्रव्यं लिखित्वा दद्यात्तु गृहीत्वा विलिखेत् स्वयम् ॥ ३४८ ॥

अन्वयः—क्रयाधमर्णघटनान्यस्थलाप्तः निवर्त्तकः स्वयं द्रव्यं लिखित्वा दद्यात्, गृहीत्वा विलिखेत् ॥ ३४८ ॥

व्याख्या—क्रयाधमर्णघटनान्यस्थलाप्तः—क्रयेषु = क्रीतपदार्थेषु, अधमर्णघटनासु = ऋणव्यवहारेषु, अन्यस्थलेषु = अपरविषयेषु, च, आप्तः = विश्वस्तः, निवर्त्तकः = लेखकः, स्वयम् = आत्मनैव, द्रव्यम् = धनम्, लिखित्वा = लेखनं कृत्वा, दद्यात् = विसर्जयेत्, च = पुनः,

गृहीत्वा = परावर्त्तिधनं प्राप्य, विलिखेत् = अङ्कनं कुर्यात् ॥ ३४८ ॥

हिन्दी—विश्वस्त लेखक वस्तु की खरीद तथा ऋणव्यवहार को स्वयं लिखकर ही लेन-देन करें ॥ ३४८ ॥

क्रयेति। क्रयेषु अधमर्णघटनासु ऋणादिव्यवहारेषु अन्यस्थलेषु अन्येषु विषयेषु च आप्तः विश्वस्तः विवर्त्तकः लेखकः स्वयं द्रव्यं लिखित्वा दद्यात् गृहीत्वा च द्रव्यमिति शेषः विलिखेच्च ॥ ३४८ ॥

हीयते वर्द्धते नैवमायव्ययविलेखकः ॥ ३४९ ॥

अन्वयः—एवम् आयव्ययविलेखकः न हीयते वर्द्धते च ॥ ३४९ ॥

व्याख्या—एवम् = अनेन प्रकारेण, आयव्ययविलेखकः = आगमनिर्गमलेखकः, न = नहि, हीयते = क्षीयते, अपितु, वर्द्धते = वृद्धिं प्राप्नोति ॥ ३४९ ॥

हिन्दी—ऐसे लेखक का लिखा आय-व्यय न तो कम होता है और न ज्यादा ही ॥ ३४९ ॥

हीयते इति। एवम् आयव्ययविलेखकः न हीयते वर्द्धते च लिखित आयः व्ययश्च न अल्पः नाप्यधिकः भवतीत्यर्थः ॥ ३४९ ॥

हेतुप्रमाणसम्बन्धकार्य्याङ्गव्याप्यव्यापकैः ।
आयाश्च बहुधा भिन्ना व्ययाः शेषं पृथक् पृथक् ।
मानेन संख्यया चैवोन्मानेन परिमाणकैः ॥ ३५० ॥

अन्वयः—शेषम् आयाः व्ययाश्च पृथक् पृथक् हेतुप्रमाणसम्बन्धकार्याङ्गव्याप्यव्यापकैः मानेन संख्यया उन्मानेन परिमाणकैः बहुधा भिन्नाः ॥ ३५० ॥

व्याख्या—शेषम् = अवशिष्टम्, आयाः = आगमाः, व्ययाश्च = निर्गमाश्च, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, हेतुभिः = कारणैः, प्रमाणैः = परिमाणैः, सम्बन्धैः = संयोगैः, कार्याङ्गैः = कृत्यानामवान्तरव्यापारैः, व्याप्यैः = स्वल्पविषयैः, व्यापकैः = बहुविषयैः, तथा मानेन = सम्भावनया, संख्यया = गणनेन, उन्मादेन = ऊर्ध्वमानेन, परिमाणकैः = प्रमाणैश्च, बहुधा = प्रायशः, भिन्नाः = भेदं गताः ॥ ३५० ॥

हिन्दी—अवशिष्ट आय और व्यय अलग-अलग उनके कारण, प्रमाण, संयोग, कार्याङ्गव्याप्य-व्यापक मान, संख्या, उन्मान और पारिमाण—इन सबों के द्वारा बहुत तरह से अलग-अलग होते हैं ॥ ३५० ॥

हेत्विति। शेषमित्यव्ययम् अवशिष्टा इत्यर्थः, आयाः व्ययाश्च पृथक् पृथक् हेतुभिः कारणैः प्रमाणैः परिमाणैः सम्बन्धैः संयोगैः कार्य्याङ्गैः कार्य्याणामवान्तरव्यापारैः व्याप्यैः अल्पविषयैः व्यापकैः बहुविषयैश्च तथा मानेन संख्यया गणनेन उन्मानेन ऊर्ध्वमानेन परिमाणकैः प्रमाणैश्च बहुधा भिन्नाः भेदं गताः ॥ ३५० ॥

क्वचित् संख्या क्वचिन्मानमुन्मानं परिमाणकम् ।
समाहारः क्वचिच्चेष्टो व्यवहाराय तद्विदाम् ॥ ३५१ ॥

अन्वयः—क्वचित् तद्विदां व्यवहाराय संख्या, क्वचित् मानम्, क्वचित् उन्मानम्, क्वचित् परिमाणं क्वचिच्च समाहारः इष्टः ॥ ३५१ ॥

व्याख्या—क्वचित् = कस्मिंश्चित्प्रदेशे, तद्विदाम् = मानादिज्ञानवताम्, व्यवहाराय = वृद्धिजीवनाय वृत्ताय वा, संख्या = गणना, क्वचित् = कुत्रचित्, मानम् = परिमाणम्, क्वचित् = क्वाऽपि, उन्मानम् = मानस्य समीपमुन्मानम्, क्वचित् = कुत्रचित्, परिमाणकम् = परिमितिः, क्वचिच्च = कुत्रचिच्च, समाहारः = संख्यादिसमुदायः, इष्टः = अभीष्टः ॥ ३५१ ॥

हिन्दी—किसी प्रदेश में मानादि का ज्ञान रखने वाले लोगों को व्यवहार के लिए कहीं संख्या, कहीं मान, कहीं उन्मान, कहीं परिभाषा और कहीं संख्या का समूह अभीष्ट होता है ॥ ३५१ ॥

क्वचिदिति। क्वचित् प्रदेशे तद्विदां मानादिज्ञानवतां व्यवहाराय सङ्ख्या गणना, क्वचित् मानं, क्वचित् उन्मानं, क्वचित् परिमाणकं, क्वचिच्च समाहारः सङ्ख्यादिसमुदायः इष्टः अभिलषितः ॥ ३५१ ॥

अङ्गुलाद्यं स्मृतं मानमुन्मानं तु तुला स्मृता।
परिमाणं पात्रमानं संख्यैकद्व्यादिसंज्ञिका ॥ ३५२ ॥

अन्वयः—अङ्गुलाद्यं मानं स्मृतं, तुला तु उन्मानं स्मृता, पात्रमानं परिमाणम् एकद्व्यादिसंज्ञिका संख्या ॥ ३५२ ॥

व्याख्या—अङ्गुलाद्यम् = करशाखाष्टयवपरिमाणम्भवति, आदिपदेनात्र हस्तादीनां ग्रहणम्भवति, मानम् = एतदाख्यम्, स्मृतम् = कथितम्, तुला = मापनः, तु इत्यव्ययम्, उन्मानमिति, स्मृता = कथिता, पात्रमानम्—पात्राणाम् = भाजनानाम्, मानम्, परिमाणम् = परिमाणसंख्यकं भवति, एकद्व्यादि = एकद्वित्रिप्रभृतिसंज्ञा, संख्या = गणना इति स्मृतेति ॥ ३५२ ॥

हिन्दी—अंगुलि या हाथ से जो नापा जाता है, उसे 'मान' कहते हैं। जिसे तौलकर वजन स्थिर किया जाता है, उसे उन्मान कहतें हैं और किसी बर्तन से जिसे मापा जाय, उसे परिमाण कहते हैं। एक, दो, तीन अर्थात् जिसकी गिनती की जाय, उसे संख्या कहते हैं ॥ ३५२ ॥

अङ्गुलाद्यमिति। अङ्गुलाद्यम् आद्यपदेन हस्तादीनां ग्रहणम्, अङ्गुलादिपरिमाणं मानं स्मृतम्। तुला तु उन्मानं स्मृता। पात्राणां मानन्तु परिमाणम्। एकद्वित्रिप्रभृतिसंज्ञा संख्या स्मृतेति शेषः ॥ ३५२ ॥

यत्र यादृग् व्यवहारस्तत्र तादृक् प्रकल्पयेत् ॥ ३५३ ॥

अन्वयः—यत्र यादृक् व्यवहारः तत्र तादृक् प्रकल्पयेत् ॥ ३५३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् जनपदे, यादृक् = यत्प्रकारकः, व्यवहारः = प्रचलनम्, तत्र = तस्मिन् देशे, तादृक् = तत्प्रकारकः, व्यवहारः, प्रकल्पयेत् = व्यवहारयेत्। तत्रत्यप्रशासकः इति पदम् अध्याहार्यमिति ॥ ३५३ ॥

हिन्दी—जिस देश में जैसा व्यवहार प्रचलित हो उस देश के प्रशासक को वैसे व्यवहार का ही प्रचलन करवाना चाहिए ॥ ३५३ ॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् देशे यादृक् व्यवहारः चलनं तत्र तादृक् प्रकल्पयेत् व्यवहारयेत् राजेति कर्तृपदमध्याहार्य्यम् ॥ ३५३ ॥

रजतस्वर्णताम्रादि व्यवहारार्थमुद्रितम्।
व्यवहार्य्यं वराटाद्यं रत्नान्तं द्रव्यमीरितम्।
सपशुधान्यवस्त्रादितृणान्तं धनसंज्ञिकम्॥ ३५४॥

अन्वयः—व्यवहारार्थमुद्रितं रजतस्वर्णताम्रादि व्यवहार्यम्। वराटाद्यं रत्नान्तम् द्रव्यम् ईरितम्, सपशुधान्यवस्त्रादितृणान्तं धनसंज्ञिकम्॥ ३५४॥

व्याख्या—व्यवहारार्थम् = लोकाचाराय, मुद्रितम् = कृतमुद्रणम्, रजतस्वर्णताम्रादि = रौप्यकनकमुनिपित्तलादि, व्यवहार्यम् = लोकैः व्यवहरणीयम्, वराटाद्यम् = कपर्दिकाप्रभृति, रत्नान्तम् = माणिक्यादिपर्यन्तं वस्तुम्, द्रव्यम् = पदार्थः वित्तं वा, ईरितम् = कथितम्, सपशुधान्यवस्त्रादितृणान्तम्—सपशु = पशुसहितम्, धान्यवस्त्रादितृणान्तम् = अन्नवसनादिहरितान्तम्, धनसंज्ञिकम् = धनमिति नाम्ना ख्याताः॥ ३५४॥

हिन्दी—लोकव्यवहार के लिए राजचिह्नाङ्कित चाँदी, सोना और ताँबे के ढले सिक्के का व्यवहार करना चाहिए। कौड़ी से लेकर रत्न तक किमती पत्थर को द्रव्य कहते हैं। पशु, वस्त्र, धान्य से लेकर घास-फूस तक धन कहलाते हैं॥ ३५४॥

रजतेति। व्यवहारार्थमुद्रितं लोकव्यवहाराय कृतमुद्रणं रजतस्वर्णताम्रादिव्यवहार्य्यं लोकैरिति शेषः। वराटाद्यं वराटकप्रभृतिरत्नान्तं रत्नपर्य्यन्तं वस्तु द्रव्यम् ईरितं कथितम्। तथा सपशु पशुसहितं धान्यवस्त्रादितृणान्तं तृणपर्य्यन्तं वस्तु धनसंज्ञिकं धनमिति नाम्ना प्रसिद्धम्॥ ३५४॥

व्यवहारे चाधिकृतं स्वर्णाद्यं मूल्यतामियात्॥ ३५५॥

अन्वयः—च व्यवहारे अधिकृतं स्वर्णाद्यं मूल्यताम् इयात्॥ ३५५॥

व्याख्या—च = पुनः, व्यवहारे = लोकाचाराय, अधिकृतम् = निर्धारितम्, स्वर्णाद्यम् = कनकाद्यम्, मूल्यताम् = अवक्रयताम्, इयात् = लभेत॥ ३५५॥

हिन्दी—राजा के द्वारा लोकव्यवहार के लिए अधिकृत स्वर्णादि मुद्रा मूल्यनिर्धारक होता है॥ ३५५॥

व्यवहारे इति। व्यवहारे च अधिकृतं व्यवहारार्थं निर्धारितं स्वर्णाद्यं मूल्यतामियात् मूल्यत्वं प्राप्नुयात्॥ ३५५॥

कारणादिसमायोगात् पदार्थस्तु भवेद्भुवि।
येन व्ययेन संसिद्धस्तद्व्ययस्तस्य मूल्यकम्॥ ३५६॥

अन्वयः—भुवि कारणादिसमायोगात् येन व्ययेन पदार्थः संसिद्धः तद्व्ययस्तु तस्य मूल्यकम्॥ ३५६॥

व्याख्या—भुवि = पृथिव्याम्, कारणादिसमायोगात् = हेत्वादीनां संयोगात्, येन = तथोक्तेन, व्ययेन = धननिर्गमेन, पदार्थः = द्रव्यम्, संसिद्धः = निर्मितः, तत् = पूर्वोक्तम्, व्ययस्तु = निर्गमस्तु, तस्य = पूर्वोक्तस्य, द्रव्यस्य = पदार्थस्य, मूल्यकम् = मूल्यं भवति॥ ३५६॥

हिन्दी—संसार में कारणों के संयोग से जो पदार्थ जितने व्यय में सिद्ध होता है; उतना व्यय उसका मूल्य होता है॥ ३५६॥

कारणादिति। भुवि पृथिव्यां कारणादिसमायोगात् कारणादीनां संयोगात् येन व्ययेन पदार्थः द्रव्यं संसिद्धः निर्मितः, तद्व्ययस्तु तस्य द्रव्यस्य मूल्यकम् ॥ २५६ ॥

सुलभासुलभत्वाच्चागुणत्वगुणसंश्रयैः ।
यथाकामात् पदार्थानामर्घं हीनाधिकं भवेत् ॥ ३५७ ॥

अन्वयः—पदार्थानां सुलभासुलभत्वात् तथा अगुणत्वगुणसंश्रयैः अर्घं यथाकामात् हीनाधिकं च भवेत् ॥ ३५७ ॥

व्याख्या—पदार्थानाम् = वस्तूनाम्, सुलभासुलभत्वात् = सुप्राप्यदुष्प्राप्यत्वात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, अगुणत्वगुणसंश्रयैः = निर्गुणत्वसगुणत्वाच्च, अर्घम् = मूल्यम्, यथाकामात् = अभिमतात्, हीनाधिकम् = न्यूनं बहु च, भवेत् = स्यात् ॥ ३५७ ॥

हिन्दी—किसी वस्तु की सुलभता या दुर्लभता से अथवा उसकी अच्छाई या बुराई से विक्रेता उसकी कीमत अपनी इच्छा के अनुसार कम या ज्यादा रखता है ॥ ३५७ ॥

सुलभेति। पदार्थानां वस्तूनां सुलभासुलभत्वात् सुलभत्वात् दुर्लभत्वाच्च तथा अगुणत्वगुणसंश्रयैः सगुणत्वात् निर्गुणत्वाच्च अर्घं मूल्यं यथाकामात् यथेच्छं हीनाधिकम् अल्पं बहु च भवेत् ॥ ३५७ ॥

न हीनं मणिधातूनां क्वचिन्मूल्यं प्रकल्पयेत् ।
मूल्यहानिस्तु चैतेषां राजदौष्ट्येन जायते ॥ ३५८ ॥

अन्वयः—क्वचित् मणिधातूनां हीनं मूल्यं न प्रकल्पयेत् । च एतेषां मूल्यहानिः तु राजदौष्ट्येन जायते ॥ ३५८ ॥

व्याख्या—क्वचित् = कस्मिंश्चिदपि देशे, मणीनाम् = रत्नानाम्, धातूनाम् = सुवर्णरजतादीनाम्, हीनम् = स्वल्पम्, मूल्यम् = अर्घः, न = नहि, प्रकल्पयेत् = अवधारयेत्, नृपेणेति भावः। च = पुनः, एतेषाम् = मणिसुवर्णरजतादीनाम्, मूल्यहानिः—मूल्यस्य = अर्घस्य, हानिः = अल्पत्वम्, न, तु = इति निश्चयेन, राजदौष्ट्येन—राज्ञः = नृपस्य, दौष्ट्येन = दोषेण, जायते = उत्पन्नो भवति, न तु प्रजादोषेणेति भावः ॥ ३५८ ॥

हिन्दी—किसी देश में प्रशासक रत्न तथा सोना-चाँदी आदि धातुओं का अवमूल्यन न करे। राजा की दुष्टता के कारण ही इनकी कीमत घटती है ॥ ३५८ ॥

नेति। क्वचित् प्रदेशे मणीनां रत्नानां धातूनां स्वर्णरजतादीनाञ्च मूल्यं हीनम् अल्पं न प्रकल्पयेत् नावधारयेत् राजेति शेषः। एतेषां मणिधातूनाञ्च मूल्यहानिः मूल्याल्पता राज्ञः दौष्ट्येन दोषेण जायते ॥ ३५८ ॥

दीर्घे चतुर्भागभूतपत्रे तिर्य्यग्गतावलिः ।
त्र्यंशगाभ्यन्तरगता चार्द्धगा पादगापि वा ।
कार्य्या व्यापकव्याप्यानां लेखने पदसंज्ञिका ॥ ३५९ ॥

अन्वयः—व्याप्यव्यापकानां लेखने दीर्घे चतुर्भागभूतपत्रे त्र्यंशगा च अर्द्धगा वा पादपा अभ्यन्तरगता तिर्यग्गता पदसंज्ञिका आवलिः कार्या ॥ ३५९ ॥

व्याख्या—व्याप्यव्यापकानाम् = बह्वल्पविषयाणाम्, लेखने = लिपिकरणे, दीर्घे = आयते,

चतुर्भागभूतपत्रे = खण्डचतुष्टयीकृतपत्रे, त्र्यंशगाः = तृतीयांशव्यापिनी, च = पुनः, अर्द्धगाः = अर्द्धांशव्यापिनी, वा = अथवा, पादपाः = चतुर्थांशव्यापिनी, अभ्यन्तरगता = मध्यभागसञ्जाता, तिर्यग्गता = वक्रत्वेन विन्यस्ता, पदसंज्ञिका = पदाख्या, आवलिः = अक्षरपङ्क्तिः, कार्या = लेखनीया ॥ ३५९ ॥

हिन्दी—थोड़ा या ज्यादे विषयानुसार लेख लिखने के लिए लम्बे कागज के ऊपर उसे चार भाग करने पर उसके तीन भाग के भीतर आधे या चौड़ाई हिस्से में आड़ी-तिरछी लकीरों की पंक्ति बनाकर पत्र लिखना चाहिए ॥ ३५९ ॥

सम्प्रति लेखनप्रकारमाह दीर्घे इत्यादि समासत इत्यन्तेन। **दीर्घे इति**। व्याप्यव्यापकानाम् अल्पाधिकानां विषयाणां लेखने दीर्घे प्रशस्ते चतुर्भागपत्रे विभागचतुष्टयीकृतपत्रे त्र्यंशगा तृतीयांशव्यापिनी अर्द्धगा अर्द्धव्यापिनी वा पादपा चतुर्थांशव्यापिनी अभ्यन्तरगता तिर्य्यग्गता तिर्य्यग्भावेन विन्यस्ता पदसंज्ञिका आवलिः पदावलिरित्यर्थः, कार्य्या लेख्या इत्यर्थः ॥ ३५९ ॥

श्रेष्ठाभ्यन्तरगा तासु वामतः त्र्यंशगाप्यनु।
दक्षत्र्यंशगता चानु ह्यर्द्धगा पादगा ततः ॥ ३६० ॥

अन्वयः—तासु वामतः त्र्यशंगा अभ्यन्तरगा श्रेष्ठा दक्षत्र्यंशगताः अनु अर्द्धगा ततः अनु पादगा ततः ॥ ३६० ॥

व्याख्या—तासु = त्रिविधासु पदावलिषु, वामतः = दक्षिणेतरभागेषु, अभ्यन्तरगता = मध्यभागोन्मुखा, त्र्यंशगा = तृतीयांशव्यापिनी, पदावलिः श्रेष्ठा = उत्तमा भवति, दक्षत्र्यंशगता—दक्षे = दक्षिणभागे, त्र्यंशगा = तृतीयांशव्यापिनी, अनु = तत्पश्चात्, न्यूना, अर्द्धगा = अर्द्धभागगामिनी पदावलिः, ततः = तत्पश्चादपि न्यूना, पादगा = चतुर्थांशव्यापिनी, ततः = तत्पश्चादपि न्यूना ॥ ३६० ॥

हिन्दी—पूर्वकथित तीन तरह की पदावलियों में जो पत्र बायें से दाहिनी ओर भीतर तीन भागों में लिखा होता है, वह श्रेष्ठ पत्र है। ठीक इसके विपरीत दायें से बायें की ओर तीन भाग में जो पत्र लिखा होता है, वह पहले की अपेक्षा हीन होता है। अर्द्धांश में लिखा उससे हीन और चतुर्थांश में लिखा सबसे घटिया पत्र होता है ॥ ३६० ॥

श्रेष्ठेति। तासु त्रिविधासु पदावलिषु वामतः वामभागे अभ्यन्तरगता त्र्यंशगा तृतीयांशगामिनी पदावलिः श्रेष्ठा। दक्षत्र्यंशगता दक्षिणभागे तृतीयांशव्यापिनी अनु तत्पश्चात् तदपेक्षया न्यूना इत्यर्थः, अप्रशस्तेति यावत्। अर्द्धगा ततः अनु इत्यर्थः, पादगा चतुर्थांशगामिनी ततः तदपेक्षया हीना अप्रशस्ता इत्यर्थः ॥ ३६० ॥

स्वभ्यन्तरे स्वभेदाः स्युः सदृशाः सदृशे पदे।
स्वारम्भपूर्त्तिसदृशे पदगे स्तः सदैव हि ॥ ३६१ ॥

अन्वयः—स्वभ्यन्तरे सदृशे पदे स्वभेदाः सदृशाः स्युः। किञ्च पदगे सदैव स्वारम्भपूर्त्तिसदृशे हि स्तः ॥ ३६१ ॥

व्याख्या—स्वभ्यन्तरे—सु = सुष्ठु, अभ्यन्तरे = मध्यभागम्, यस्य = पत्रस्य, तादृशे = तद्वति, सदृशे = समविन्यस्ते, पदे = सुप्तिङन्तरूपे, स्वभेदाः—सु = शोभनम्, अभेदः = समानता,

येषां तथोक्ताः, अत एव सदृशाः = तत्तुल्याः, स्युः = भवेयुः। किञ्च पदगम्—पदम् = सुप्तिङन्तम्, गच्छतीति = यातीति, पदगम् = पत्रम्, तस्मिन्, सदैव = सर्वदैव, स्वारम्भपूर्तिसदृशे—स्वस्य = आत्मनः पत्रगतलेख्यस्य, यः आरम्भः = प्रारम्भः, तस्य या पूर्तिः = सम्पूरणम्, तत्सदृशम् = तत्तुल्यम्, हि = इति निश्चयेन, स्तः = भवतः॥ ३६१ ॥

हिन्दी—पंक्तियों की दूरी समरूप हों, अक्षरों की लिखावट भी समान हों। समान पद में अक्षरों की समता होनी चाहिए। आरम्भित विषयों की सम्पूर्त्ति के अनुरूप उसके अक्षर तथा उसकी पंक्ति की दूरी हों॥। ३६१ ॥

स्वभ्यन्तरे इति। शोभनम् अभ्यन्तरं यस्य तादृश सदृशे समविन्यस्तपदे सुप्तिङन्तरूपे वर्णा इति अध्याहर्त्तव्यम्। स्वभेदाः सुष्ठु अभेदः येषां तथोक्ताः अत एव सदृशाः समानाः तुल्याकाराः स्युः भवेयुः। किञ्च पदं गच्छतीति पदगं पत्रमित्यर्थः, सदैव स्वस्य लेख्यस्य यः आरम्भः कार्य्यं विषय इत्यर्थः, तस्य या पूर्त्तिः पूरणं तत्सदृशं स्यात् हिशब्दः पादपूरणार्थः॥ ३६१ ॥

राजा स्वलेख्यचिह्नं तु यथाभिलषितं तथा।
लेखानुपूर्वं कुर्य्याद्धि दृष्ट्वा लेख्यं विचार्य्य च॥ ३६२॥

अन्वयः—राजा लेख्यं दृष्ट्वा विचार्य च लेखानुपूर्वं यथाभिलषितं तथा स्वस्य लेख्यचिह्नं कुर्यात्॥ ३६२ ॥

व्याख्या—राजा = नृपतिः, लेख्यम् = लिखितविषयम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, विचार्य = चिन्तनं कृत्वा, च = पुनः, लेखानुपूर्वम् = लिखनानुसारेण, यथाभिलषितम् = यथाभिमतम्, यथोक्त्या, स्वस्य = आत्मनः, लेख्यचिह्नम् = अक्षराङ्कितम्, कुर्यात् = विदध्यात्॥ ३६२ ॥

हिन्दी—राजा पत्रगत लेख देखकर, उस पर विचार कर लेखानुसार जैसा चाहे वैसा अपना अभिमत उस पर लिख दे॥ ३६२ ॥

राजेति। राजा लेख्यं दृष्ट्वा विचार्य्य च लेखानुपूर्वं यथा तथा लिखनानुसारेणेत्यर्थः, यथाभिलषितं यथेच्छं यथा तथा स्वस्य आत्मनः लेख्यचिह्नम् अक्षराङ्कितं कुर्यात्॥ ३६२ ॥

मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितो दूतसंज्ञकः।
स्वाविरुद्धं लेख्यमिदं लिखेयुः प्रथमं त्विमे॥ ३६३॥

अन्वयः—मन्त्री प्राड्विवाकः पण्डितः दूतसंज्ञकश्च इमे तु प्रथमं स्वाविरुद्धम् इदं लेख्यं लिखेयुः॥ ३६३ ॥

व्याख्या—मन्त्री = आप्तसचिवः, प्राड्विवाकः = विधिवेत्ता, पण्डितः = विपश्चित्, दूतसंज्ञकश्च = राजप्रतिनिधिश्च, इमे = एते, तु = निश्चयेन, प्रथमम् = नृपावलोकनात्पूर्वम्, स्वाविरुद्धम् = निजसत्त्वाविरोधि, इदम् = एतत्, लेख्यम् = स्वस्वमन्तव्यम्, लिखेयुः = पत्रे निवेशनं कुर्य्युः॥ ३६३ ॥

हिन्दी—मंत्री, विधिवेत्ता, विद्वान् तथा राजप्रतिनिधि अपना-अपना अभिमत लिखने के बाद ही राजा के सामने उस पत्र को उपस्थित करें॥ ३६३ ॥

मन्त्री चेति। मन्त्री प्राड्विवाकः विचारपतिः पण्डितः दूतसंज्ञकः दूतश्च इमे तु प्रथमं राजदर्शनार्थमित्यर्थः, स्वाविरुद्धं स्वाधिकाराविरोधि इदं लेख्यं लिखेयुः॥ ३६३ ॥

अमात्यः साधु लिखनमस्त्येतत् प्राग्लिखेदयम्।
सम्यग्विचारितमिति सुमन्त्रो विलिखेत् ततः ॥ ३६४ ॥

अन्वयः—अयम् अमात्यः एतत् साधु लिखनम् अस्ति इति प्राक् लिखेत्। ततः सुमन्त्रः सम्यक् विचारितम् इति विलिखेत् ॥ ३६४ ॥

व्याख्या—अयम् = एषः, अमात्यः = मन्त्री, एतत् = इदम्, लिखनम् = लेख्यम्, साधु = समुचितम्, अस्ति, इति = इत्थम्, प्राक् = प्रथमम् लिखेत् = पत्रे निवेशयेत्। ततः = तत्पश्चात्, सुमन्त्रः = सुष्ठु विचारकः, सम्यक् = सुष्ठुतया, विचारितम् = पर्यालोचितम्, इति = एवम्, विलिखेत् = विन्यसेत् ॥ ३६४ ॥

हिन्दी—सर्वप्रथम 'यह लेख अच्छा है' ऐसा अपना अभिमत उस पत्र पर अमात्य लिखे। फिर सुमन्त्र 'मैंने इस पर भलीभाँति विचार किया है' इस प्रकार अभ्युक्ति लिखे ॥ ३६४ ॥

अमात्य इति। अयम् अमात्यः एतत् साधु लिखनम् अस्ति इति प्राक् लिखेत्। ततः सुमन्त्रः सम्यक् विचारितं दृष्टमेतत् इति विलिखेत् ॥ ३६४ ॥

सत्यं यथार्थमिति च प्रधानश्च लिखेत् स्वयम्।
अङ्गीकर्त्तुं योग्यमिति ततः प्रतिनिधिर्लिखेत् ॥ ३६५ ॥

अन्वयः—प्रधानश्च यथार्थं सत्यं स्वयं लिखेत्। ततः प्रतिनिधिः अङ्गीकर्त्तुं योग्यम् इति लिखेत् ॥ ३६५ ॥

व्याख्या—प्रधानः = राजप्रमुखः, सत्यम् = अवितथम्, यथार्थम् = अर्थानुगतम्, इदम् = एतत्, स्वयम् = आत्मना, लिखेत् = विन्यसेत्। ततः = तत्पश्चात्, प्रतिनिधिः = राजप्रतिपुरुषः, अङ्गीकर्त्तुम् = स्वीकर्त्तुम्, योग्यम् = युक्तम्, इति = इत्थम्, लिखेत् = निवेशयेत् ॥ ३६५ ॥

हिन्दी—'वस्तुतः यह यथार्थ है' ऐसा प्रधान स्वयं लिखे। उसके बाद राजप्रतिनिधि 'यह स्वीकार करने योग्य हैं' इस प्रकार लिखे ॥ ३६५ ॥

सत्यमिति। प्रधानश्च प्रधानाख्यः राजपुरुष इत्यर्थः, सत्यं यथार्थम् अर्थानुगतमिदम् इति स्वयम् आत्मना लिखेत्। ततः प्रतिनिधिः राज्ञ इति शेषः, अङ्गीकर्त्तुं ग्रहीतुं योग्यमिदम् इति लिखेत् ॥ ३६५ ॥

अङ्गीकर्त्तव्यमिति च युवराजो लिखेत् स्वयम्।
लेख्यं स्वाभिमतं चैतद् विलिखेच्च पुरोहितः ॥ ३६६ ॥

अन्वयः—युवराजश्च अङ्गीकर्त्तव्यम् इति स्वयं लिखेत्। ततः पुरोहितः एतत् लेख्यं स्वाभिमतम् इति विलिखेत् ॥ ३६६ ॥

व्याख्या—युवराजश्च = राजकुमारश्च, अङ्गीकर्त्तव्यम् = इदं स्वीकर्त्तव्यम्, इति = एवम्, लिखेत् = विन्यसेत्। ततः = तत्पश्चात्, पुरोहितः = पुरोधाः, एतत् = इदम्, लेख्यम् = लिखितविषयम्, स्वाभिमतम्—स्वस्य = आत्मनः, अभिमतम् = इष्टम्, इति = एवम्, विलिखेत् = विशेषरूपेणास्य सन्निवेशं कुर्यादिति ॥ ३६६ ॥

हिन्दी—'यह लेख स्वीकार करने योग्य है' ऐसी अभ्युक्ति राजकुमार की हो तथा पुरोहित 'यह लेख मुझे अभिमत है' इस प्रकार लिखे ॥ ३६६ ॥

अङ्गीकर्त्तव्यमिति। युवराजश्च इदम् अङ्गीकर्त्तव्यं ग्राह्यमिति स्वयं लिखेत्। पुरोहितस्य एतत् लेख्यं स्वाभिमतम् आत्मनः सम्मतमिति विलिखेच्च ॥ ३६६ ॥

स्वस्वमुद्राचिह्नितं च लेख्यान्ते कुर्य्युरेव हि।
अङ्गीकृतमिति लिखेन्मुद्रयेच्च ततो नृपः ॥ ३६७ ॥

अन्वयः—लेख्यान्ते स्वस्वमुद्राचिह्नितं कुर्य्युः हि। ततः नृपः अङ्गीकृतम् इति लिखेत् मुद्रयेत् च ॥ ३६७ ॥

व्याख्या—लेख्यान्ते—लेख्यस्य = लिखितविषयस्य, अन्ते = शेषे, स्वस्वमुद्राचिह्नितम्—स्वस्वमुद्राभिः = निजनिजप्रत्ययकारिणीनामाङ्कनीभिः, चिह्नितम् = अङ्कितम्, कुर्य्युः = विधेयुः, हि = इति पादर्पूर्त्यर्थम्। ततः = तत्पश्चात्, नृपः = राजा, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, इति = एवम्, लिखेत् = निष्पादयेत्, च = पुनः, मुद्रयेत् = मुद्राङ्कनं कुर्यात् ॥ ३६७ ॥।

हिन्दी—लेख पर मंत्री प्रभृति सभी लोग अपनी-अपनी मुहर लगा दें। इसके बाद सबसे अन्त में राजा—'यह मुझे स्वीकृत है' इस प्रकार लिखकर अपनी मुहर लगाये ॥ ३६७ ॥

स्वेति। लेख्यान्ते लेख्यस्य अन्ते शेषे स्वस्वमुद्राभिः चिह्नितं कुर्य्युरेव मन्त्र्यादय इति शेषः, हिशब्दः पादपूरणार्थः। ततः नृपः अङ्गीकृतं स्वीकृतम् इति लिखेत् मुद्रयेच्च स्वनामाङ्कितं कुर्य्याच्च ॥ ३६७ ॥

कार्य्यान्तरस्याकुलत्वात् सम्यग्द्रष्टुं न शक्यते।
युवराजादिभिर्लेख्यं तदनेन च दर्शितम् ॥ ३६८ ॥

अन्वयः—युवराजादिभिः कार्यान्तरस्य आकुलत्वात् सम्यक् द्रष्टुं न शक्यते, तत् अनेन च दर्शितं लेख्यम् ॥ ३६८ ॥

व्याख्या—युवराजादिभिः = राजकुमारादिभिः, कार्यान्तरस्य = अन्यमहत्त्वपूर्णकार्यस्य, अत्र सम्बन्धविवक्षया करणे षष्ठी, आकुलत्वात् = अतिव्यस्तत्वात्, सम्यक् = सुष्ठुतया, द्रष्टुम् = अवलोकयितुम्, न = नहि, शक्यते = समर्थोऽस्ति, तत् = तस्मात्, अनेन = जनेन, सचिवेनेत्यर्थः, दर्शितम् = विचारपूर्वकेणावलोकितम्, लेख्यम् = लिखितविषयमिति ॥ ३६८ ॥

हिन्दी—दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहने के कारण युवराज प्रभृति इस व्यक्ति के लेख के सम्पूर्ण विषयों को नहीं पढ सके, अतः मैंने इस लेख के सम्पूर्ण विषय का ठीक से अवलोकन किया है ॥ ३६८ ॥

कार्य्यान्तरस्येति। युवराजादिभिः कार्य्यान्तरस्य कार्य्यान्तरेणेत्यर्थः सम्बन्धविवक्षया करणे षष्ठी। आकुलत्वात् व्यस्तत्वात् सम्यक् द्रष्टुं न शक्यते, तत् तस्मात् तैः अनेन जनेन दर्शितं सम्यक् विवेचितमिति च लेख्यम् ॥ ३६८ ॥

समुद्रं विलिखेयुर्वै सर्वे मन्त्रिगणास्ततः।
राजा दृष्टमिति लिखेद् द्राक् सम्यग्दर्शनाक्षमः ॥ ३६९ ॥

अन्वयः—ततः सर्वे मन्त्रिगणाः समुद्रं वै विलिखेयुः। सम्यग्दर्शनाक्षमः राजा द्राक् दृष्टमिति लिखेत् ॥ ३६९ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, सर्वे = सकलाः, मन्त्रिगणाः = सचिवादयः, समुद्रम्—

मुद्रया = नामाङ्कितया, सहितम् = युक्तम्, वै = इत्यवधारणे, विलिखेयुः = विशेषेणाङ्कनं कुर्युः, सम्यक् = सुष्ठुतया, दर्शनाऽक्षमः = अवलोकनेऽसमर्थः, बहुकार्यव्यस्तत्वादिति, राजा = नृपः, द्राक् = शीघ्रम्, दृष्टम् = अवलोकितम्, इति = एवम्, लिखेत् = पत्रे निवेशयेदिति ॥ ३६९ ॥

हिन्दी—मंत्रिगण उन लेखों को पढ़ने के बाद उन्हें हस्ताक्षरित कर उन पर अपनी मुहर लगा दें। मंत्रियों के प्रति विश्वस्त कार्यव्यस्तता के कारण ठीक से उन पत्रों को पढ़ने में असमर्थ राजा भी 'मैंने इसे देखा' इस प्रकार लिखकर हस्ताक्षरित कर अपनी मुहर शीघ्र लगा दे ॥३६९ ॥

समुद्रमिति। सर्वे मन्त्रिगणाः समुद्रं मुद्रया सहितं मुद्राङ्कितमित्यर्थः, यथा तथा विलिखेयुः वैशब्दः अवधारणे। ततः सम्यग्दर्शनाक्षमः बहुकार्य्यव्यापृतत्वादिति भावः, राजा द्राक् झटिति दृष्टमिति लिखेत् मन्त्र्यादिषु विश्वासादिति भावः ॥ ३६९ ॥

आयमादौ लिखेत् सम्यग् व्ययं पश्चात् तथागतम्।
वामे वायं व्ययं दक्षे पत्रभागे च लेखयेत् ॥ ३७० ॥

अन्वयः—आदौ सम्यक् आयं पश्चात् यथागतं व्ययं लिखेत्। वामे पत्रभागे वा आयं दक्षे च व्ययं लिखेत् ॥ ३७० ॥

व्याख्या—आदौ = आद्ये, सम्यक् = सुष्ठुतया, आयम् = धनागमम्, पश्चात् = येन प्रकारेण धननिर्गतम्, तथा व्ययम् = निर्गमम्, लिखेत् = पत्रे सन्निवेशयेत्। वामे = सव्ये, पत्रभागे = पत्रांशे, वा = इत्यवधारणे, आयम् = धनागमम्, दक्षे च = दक्षिणभागे च, व्ययम् = धननिर्गमम्, लिखेत् = निवेशयेत् ॥ ३७० ॥

हिन्दी—खाते पर पहले ठीक से सारी आमदनी लिखे, बाद में खर्च का ब्यौरा लिखे। खाते की बाँयी ओर आमदनी तथा दाहिनी ओर खर्च लिखे ॥ ३७० ॥

आयमिति। आदौ सम्यक् समग्रम् आयं पश्चात् यथागतं व्ययं लिखेत्। वामे पत्रभागे वा एव वाशब्दोऽवधारणे। आयं दक्षे पत्रभागे च व्ययं लेखयेत् ॥ ३७० ॥

यत्रोभौ व्यापकव्याप्यौ वामोद्र्ध्वभागगौ क्रमात्।
आधाराधेयरूपौ वा कालार्थौ गणितं हि तत् ॥ ३७१ ॥

अन्वयः—यत्र उभौ व्यापकव्याप्यौ वा आधाराधेयरूपौ तत् क्रमात् वामोद्र्ध्वभागगौ कार्यौ। तत् हि गणितं कालार्थम् ॥ ३७१ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने, उभौ = द्वौ, व्यापकव्याप्यौ = अधिकाल्पौ, वा = अथवा, आधाराधेयरूपौ = आश्रयाश्रयिणौ स्याताम्, तत्र, तौ = लेखनीयविषयौ, क्रमात् = यथाक्रमेण, वामोर्ध्वभागगौ = पत्रस्य सव्यभागोर्ध्वभागयोर्विन्यस्तौ, कार्यौ = सम्पाद्यौ, तत् = लेखनम्, हि = यतः, गणितम् = संख्यानम्, कालार्थम् = समयार्थम्, भवतीति भावः ॥ ३७१ ॥

हिन्दी—जहाँ आमदनी और खर्च—ये दोनों ज्यादे या कम या आधाराधेय रूप में हों, वहाँ पर उन दोनों को वहीं बाँयी ओर यथाक्रम नीचे से ऊपर की ओर रखना चाहिए। नियम के लिए यही व्याख्या है ॥ ३७१ ॥

यत्रेति। यत्र उभौ लेखनीयौ विषयौ व्यापकव्याप्यौ अधिकाल्पौ वा आधाराधेयरूपौ आश्रयाश्रयिणौ स्यातामिति शेषः तत्र तौ क्रमात् यथाक्रमेण वामोर्ध्वभागगौ पत्रस्य

वामभागीयोर्ध्वस्थानविन्यस्तौ कार्य्यौ इति शेषः। तत् गणितं संख्यानं व्यवस्थापनमित्यर्थः, कालार्थं समयार्थं नियमार्थमिति यावत्, हिशब्दोऽवधारणार्थः॥ ३७१ ॥

अधोऽधश्च क्रमात् तत्र व्यापकं वामतो लिखेत्।
व्याप्यानां मूल्यमानादि तत्पङ्क्त्यां विनिवेशयेत्॥ ३७२॥

अन्वयः—तत्र व्यापकं क्रमात् वामतः अधोऽधश्च लिखेत्। व्याप्यानाञ्च मूल्यमानादि तत् पङ्क्त्यां विनिवेशयेत्।

व्याख्या—तत्र = तस्मिन् लेखे, व्यापकम् = आच्छादकम्, क्रमात् = यथाक्रमेण, वामतः = सव्यभागस्य, अधोऽधः = अधोभागे, च, लिखेत् = निवेशयेत्। व्याप्यानाञ्च = अनुमानितव्ययानाञ्च, मूल्यम् = अर्घ्यम्, मानादि = भारादि, तत् = तेषाम्, पङ्क्त्याम् = श्रेण्याम्, विनिवेशयेत् = लिखेत् ॥ ३७२ ॥

हिन्दी—उसमें व्यापक को क्रमशः नीचे की ओर बाँयी ओर लिखे और व्ययों की कीमत एवं भार उन्हीं की पंक्ति में लिखे॥ ३७२ ॥

अध इति। तत्र व्यापकं क्रमात् वामतः वामभागस्य अधः अधः लिखेत्। व्याप्यानाञ्च मूल्यं मानादि च तत्पङ्क्त्यां तेषां व्याप्यानां श्रेण्याञ्च विनिवेशयेत् लिखेत्॥ ३७२ ॥

ऊर्ध्वगानां तु गणितमधःपङ्क्त्यां प्रजायते।
यत्रोभौ व्यापकव्याप्यौ व्यापकत्वेन संस्थितौ॥ ३७३॥

अन्वयः—यत्र उभौ व्यापकव्याप्यौ व्यापकत्वेन संस्थितौ ऊर्ध्वगानं गणितम् अधःपङ्क्त्यां प्रजायते॥ ३७३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् पत्रे, उभौ = व्यापकव्याप्यौ, व्यापकत्वेन = अधिकत्वेन, संस्थितौ = उपस्थितौ, तत्र ऊर्ध्वगानाम् = उपरिस्थितानाम्, तेषाम्, गणितम् = संख्यानम्, अधःपङ्क्त्याम् = निम्नश्रेण्याम्, प्रजायते = भवतीति भावः॥ ३७३ ॥

हिन्दी—जहाँ पर वे दोनों व्यापक और व्याप्य बहुसंख्यक हों, वहाँ पर ऊपर वालों की गणना नीचे की पंक्ति में होती है॥ ३७३ ॥

ऊर्ध्वगानामिति। यत्र उभौ व्यापकव्याप्यौ व्यापकत्वेन बहुत्वेन संस्थितौ बहुसंख्यकावित्यर्थः, तत्र ऊर्ध्वगानाम् उपरिस्थितानां तेषां गणितं संख्यानम् अधःपङ्क्त्यां प्रजायते भवति॥ ३७३ ॥

व्यापकं बहुवृत्तित्वं व्याप्यं स्यान्न्यूनवृत्तिकम्।
व्याप्याश्चावयवाः प्रोक्ता व्यापकोऽवयवी स्मृतः॥ ३७४॥

अन्वयः—बहुवृत्तित्वं व्यापकं न्यूनवृत्तित्वं व्याप्यं स्यात्। अवयवाः व्याप्याः प्रोक्ताः, अवयवी व्यापकः च स्मृतः॥ ३७४ ॥

व्याख्या—बहुवृत्तित्वम् = अधिकक्षेत्रप्रसारित्वम्, व्यापकम्, न्यूनवृत्तित्वम् = अल्पक्षेत्रप्रसारित्वम्, व्याप्यम्, स्यात् = भवेत्, अवयवाः = अंशाः, व्याप्याः, प्रोक्ताः = कथिताः, अवयवी = अङ्गी, व्यापकः च, स्मृतः = कथितः॥ ३७४ ॥

हिन्दी—बहुत स्थलों पर रहने वाले को व्यापक तथा कम क्षेत्र में रहने वाले को व्याप्य कहते हैं। व्याप्य अवयव कहलाते हैं तथा व्याप्य को अवयवी कहा गया है॥ ३७४ ॥

व्यापकमिति। बहुवृत्तित्वं व्यापकं व्यापकधर्म इत्यर्थः, न्यूनवृत्तिकम् अल्पदेशव्यापि व्याप्यं स्यात्। अवयवा व्याप्याः प्रोक्ताः कथिताः, अवयवी व्यापकः स्मृतः॥ ३७४॥

सजातीनां च लिखनं कुर्य्याच्च समुदायतः।
यथाप्राप्तं तु लिखनमाद्यन्तसमुदायतः॥ ३७५॥

अन्वयः—सजातीनां लिखनं च समुदायतः कुर्यात्। आद्यन्तसमुदायतः यथाप्राप्तं लिखनम्।

व्याख्या—सजातीनाम्—समाना = तुल्या, जातिर्येषां तादृशानां विषयाणाम्, एकविधानाम्, लिखनम् = निवेशनम्, समुदायतः = साकल्येन, कुर्यात् = विदध्यात्। एकस्मिन्नेव स्थाने समावेशनीयम्, आद्यन्तसमुदायतः—आदौ = प्रारम्भिकभागे, अन्ते = अन्तिमे भागे, समुदायतः = सर्वत्र, यथाप्राप्तम् = यथोपस्थितम्, यथा तथा लिखनं कुर्यात्॥ ३७५॥

हिन्दी—सजातीय विषयों का एक स्थान पर ही उल्लेख करना चाहिए और अनेक तरह के विषयों का यहाँ-वहाँ जहाँ मौका मिले आदि हो या अन्त सर्वत्र लिखना चाहिए॥ ३७५॥

सजातीनामिति। समाना जातिर्येषां तादृशानाम् एकविधानामित्यर्थः, विषयाणां लिखनं समुदायतः साकल्येन कुर्य्यात् एकस्मिन्नेव स्थाने इति अध्याहार्य्यम्। आद्यन्तसमुदायतः आदौ अन्ते समुदायतः सर्वत्र च यथाप्राप्तं यथोपस्थितं यथा तथा लिखनं कर्त्तव्यमिति नानाविधानां विषयाणामिति च शेषः॥ ३७५॥

व्यापकाश्च पदार्था वा यत्र सन्ति स्थलानि हि।
व्याप्यमायव्ययं तत्र कुर्य्यात् कालेन सर्वदा॥ ३७६॥

अन्वयः—यत्र पदार्थाः व्यापकाः स्थलानि सन्ति तत्र सर्वदा आयव्ययं कालेन कुर्यात्॥ ३७६॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थले, पदार्थाः = वस्तूनि, व्यापकाः = अधिकांशव्यापिनः, स्थलानि = स्थानानि, सन्ति = भवन्ति, तत्र = तस्मिन् स्थले, सर्वदा = सततम्, आयव्ययम् = आगमनिर्गमम्, कालेन = समयेन, कुर्यात्॥ ३७६॥

हिन्दी—जहाँ वस्तुओं की बहुलता हों और स्थानों की कमी न हों, वहाँ हमेशा आमदनी और खर्च के समय का उल्लेख कर देना चाहिए॥ ३७६॥

व्यापकाश्चेति। यत्र पदार्थाः वस्तूनि व्यापकाः बहवः, स्थलानि स्थानानि च बहूनीत्यर्थः, सन्ति हि वर्त्तन्त एव तत्र सर्वदा आयव्ययं कालेन व्याप्यं कुर्य्यात्॥ ३७६॥

स्थानटिप्पनिका चैषा ततोऽन्यत् सङ्घटिप्पनम्।
विशिष्टसंज्ञितं तत्र व्यापकं लेख्यभाषितम्॥ ३७७॥

अन्वयः—एषा स्थानटिप्पनिका ततः अन्यत् सङ्घटिप्पनं तत्र लेख्यभाषितं व्यापकं विशिष्टसंज्ञितम्॥ ३७७॥

व्याख्या—एषा = इयम्, स्थानटिप्पनिका—स्थानानाम् = विभिन्नजनपदानाम्, टिप्पनिका = विवरणम्, ततः = तत्पश्चात्, अन्यत् = तद्भिन्नम्, सङ्घटिप्पनम् = सामूहिकविवरणम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, लेख्यभाषितम् = लिखितपत्रोक्तम्, व्यापकम् = क्षेत्रबहुलव्यापिनम्, विशिष्टसंज्ञितम् = विशिष्टम् इत्याख्यम्॥ ३७७॥

हिन्दी—वह स्थान सम्बन्धी विवरण अलग है और वस्तुसमुदाय सम्बन्धी विवरण अलग। इनमें लेख के अनुसार 'व्यापक' विशिष्ट को कहा गया है ॥ ३७७ ॥

स्थानेति। एषा स्थानानां टिप्पनिका विवरणम् अन्या इति शेषः, सङ्घानां वस्तुसमूहानाञ्च टिप्पनं विवरणं ततः स्थानटिप्पनिकायाः अन्यत्। तत्र लेख्यभाषितं लेख्योक्तं व्यापकं विशिष्टसंज्ञितं विशिष्टमिति संज्ञया प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ३७७ ॥

आयाः कति व्ययाः कस्य शेषं द्रव्यस्य चास्ति वै।
विशिष्टसंज्ञकैरेषां संविज्ञानं प्रजायते ॥ ३७८ ॥

अन्वयः—आयाः कति, व्ययाश्च कति, कस्य द्रव्यस्य शेषं वै अस्ति? विशिष्टसंज्ञकैः एषां सविज्ञानं प्रजायते ॥ ३७८ ॥

व्याख्या—आयाः = धनागमाः, कति = किं संख्याकाः? व्ययाश्च = निर्गमाश्च, कति = किं संख्याकाः? कस्य द्रव्यस्य = कस्य धनस्य, शेषम् = अवशिष्टम्, वै = इत्यवधारणे, अस्ति = जायते? विशिष्टसंज्ञकैः = व्यापकलेख्यविशेषैः, एषाम् = आयव्ययादीनाम्, संविज्ञानम् = सुष्ठुज्ञानम्, प्रजायते = भवति ॥ ३७८ ॥

हिन्दी—आमदनी कितनी है, खर्च कितना है और शेष कितना है? उसका भलीभाँति ज्ञान पूर्वोक्त विशिष्टसंज्ञक लेख से होता है ॥ ३७८ ॥

आया इति। आयाः कति, व्ययाश्च कति, कस्य द्रव्यस्य शेषम् अवशेषं वक्रीत्यर्थः, अस्ति वैशब्दोऽवधारणार्थः। विशिष्टसंज्ञकैः व्यापकलेख्यविशेषैः एषाम् आयादीनां संविज्ञानं सम्यक् ज्ञानं प्रजायते ॥ ३७८ ॥

आदौ लेख्यं यथाप्राप्तं पश्चात् तद्गणितं लिखेत्।
यथा द्रव्यं च स्थानं चाधिकसंज्ञं च टिप्पनैः ॥ ३७९ ॥

अन्वयः—आदौ यथाप्राप्तं पश्चात् तत् गणितं लिखेत्। टिप्पनैः यथा द्रव्यं च स्थानम् अधिकसंज्ञं च ॥ ३७९ ॥

व्याख्या—आदौ = प्रारम्भे, यथाप्राप्तम् = येन रूपेणाधिगतं वस्तु, तेनैव प्रकारेण लेख्यम्, पश्चात् = तत्पश्चात्, तत् = तस्य प्राप्तस्य वस्तुनः, गणितम् = संख्या, लिखेत् = निवेशयेत्। ततश्च, टिप्पनैः = विवरणैः सह, यथा = यादृशम्, द्रव्यम् = वस्तु, स्थानम् = भूभागः, अधिकसंज्ञम् = अधिकाख्यञ्च भवेत्, तेषां तेनैव रूपेण लिखेत् = लेख्ये निवेशयेदिति ॥ ३७९ ॥

हिन्दी—सबसे पहले जो वस्तु जिस रूप में प्राप्त हो उसे उसी रूप में लिखे। उसके बाद विवरण के साथ जो वस्तु, पदार्थ या शेष जिस रूप में मिले उसका उसी रूप में उल्लेख करे ॥ ३७९ ॥

आदाविति। आदौ प्रथमतः यथाप्राप्तं पश्चात् तदनन्तरं तस्य प्राप्तस्य गणितं संख्या लेख्यम्। ततश्च टिप्पनैः विवरणैः सह यथा यादृशं द्रव्यं स्थानम् अधिकसंज्ञञ्च तथा लिखेत् ॥ ३७९ ॥

शेषायव्ययविज्ञानं क्रमाल्लेख्यैः प्रजायते।
स्थूलायव्ययविज्ञानं व्यापकं स्थूलतो भवेत् ॥ ३८० ॥

अन्वयः—शेषाव्ययविज्ञानं क्रमात् लेख्यैः प्रजायते। व्यापकं स्थलायव्ययविज्ञानं स्थलतो भवेत् ॥ ३८० ॥

व्याख्या—शेषायव्ययविज्ञानम्—शेषस्य = अवशिष्टस्य, आयस्य = धनागमस्य, च = पुनः, व्ययस्य = निर्गमस्य, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, क्रमात् = यथाक्रमेण, लेख्यैः = लिखितविषयैः, प्रजायते = भवति, किञ्च स्थलायव्ययविज्ञानम्—स्थलस्य = स्थानविषयस्य, आयव्यययोः = आगमनिर्गमयोः, विज्ञानम् = विशिष्टबोधम्, व्यापकम् = बहुस्थलस्य, स्थलतः = स्थानविशेषस्य नाम्ना एव, भवेत् = जायते ॥ ३८० ॥

हिन्दी—बचे हुए आय और व्यय की पूरी जानकारी बहीखाते से ही मिलती है और बहुत स्थानों के आय-व्यय की जानकारी तो उस जगह के नाम से ही हो जाती है ॥ ३८० ॥

शेषेति। शेषायव्यययोः अवशिष्टस्य आयस्य व्ययस्य च क्रमात् लेख्यैः प्रजायते भवति। किञ्च व्यापकं बहुलस्थलस्य आयव्ययविज्ञानं स्थलतः स्थलभागज्ञानादेवेत्यर्थः भवेत् ॥ ३८० ॥

पदार्थस्य स्थलानि स्युः पदार्थाश्च स्थलस्य तु।
व्याप्यास्तिथ्यादयश्चापि यथेष्टा लेखने नृणाम् ॥ ३८१ ॥

अन्वयः—स्थलानि पदार्थस्य पदार्थाश्च स्थलस्य व्याप्याः स्युः। तिथ्यादयश्चापि नृणां लेखने यथेष्टाः ॥ ३८१ ॥

व्याख्या—स्थलानि = स्थानानि, पदार्थस्य = द्रव्यस्य, पदार्थाश्च = द्रव्याणि च, स्थलस्य = स्थानविशेषस्य, व्याप्याः = अनुमानानुगम्याः, स्युः = भवेयुः। अतः तिथ्यादयश्चापि = दिवसादयश्चापि, नृणाम् = नराणाम्, लेखने = लेखपत्रे, यथेष्टाः = इच्छानुसारेण निवेशनीयाः ॥ ३८१ ॥

हिन्दी—स्थान पदार्थ के साथ और पदार्थ स्थान के साथ अनुमानगम्य होते हैं। अतः वहीं पर इनके साथ इनकी प्राप्ति-तिथि आदि का उल्लेख मनुष्यों को अवश्य करना चाहिए ॥ ३८१ ॥

पदार्थस्येति। स्थलानि पदार्थस्य द्रव्यस्य पदार्थाश्च द्रव्याणि च स्थलस्य व्याप्याः स्युः भवेयुः। तिथ्यादयश्च नृणां लेखने यथा इष्टाः इच्छानुसारेण निवेश्याः ॥ ३८१ ॥

निश्चितान्यस्वामिकाद्या आया ये इतरान्तगाः।
विशिष्टसंज्ञिका ये च पुनरावर्त्तकादयः।
व्ययाश्च परलेखान्ता अन्तिमव्यापकाश्च ते ॥ ३८२ ॥

अन्वयः—निश्चितान्यस्वामिकाद्याः ये आयाः ये च इतरान्तगाः ये च विशिष्टसंज्ञकाः पुनरावर्त्तकादयः व्ययाः ते परलेखान्ताः अन्तिमव्यापकाश्चेति ॥ ३८२ ॥

व्याख्या—निश्चितान्यस्वामिकाद्याः—निश्चिताः = नियताः, अन्ये = अपरे, स्वामिनः = प्रभवः, येषां तत्प्रभृतयः, तथा ये = पूर्वोक्ताः, आयाः = आगमाः, इतरान्तगाः = अन्याधिकारे स्थिताः, ये च विशिष्टसंज्ञकाः = 'विशिष्ट' नामानः, पुनरावर्त्तकादयः = पौनःपुन्येन परिवर्त्तमानप्रभृतयः, व्ययाः = निर्गमाः, ते = व्ययाः, परलेखान्ताः—परेषाम् = अन्येषाम्, लेखः = लेखनम्, अन्ते = अवसाने, येषां तथोक्ताः, तथा अन्तिमव्यापकाश्च = अवसाने बहवः शेषाश्च ॥ ३८२ ॥

हिन्दी—दूसरे के अधीन जो आय हैं, उससे लेकर पार्थिवभिन्न जड़-जङ्गम, चुंगी आदि से प्राप्त आमदनी तक तथा 'विशिष्ट' नामवाले, फिर से लौटकर आने वाले व्यय—ये सभी दूसरों के लेख के विषय हैं। इनके अन्त में अत्यधिक शेष रहता है ॥ ३८२ ॥

निश्चितेति। निश्चिताः अन्ये स्वामिनः येषां तत्प्रभृतयः तथा इतरान्तगाः अपरसमीपस्थिताः ये आयाः, ये च विशिष्टसंज्ञकाः विशिष्टनामानः पुनरावर्त्तकादयः व्ययाः ते परलेखान्ताः परेषां लेखः लेखनम् अन्ते येषां तथोक्ताः तथा अन्तिमव्यापकाश्च शेषबहवः॥ ३८२ ॥

इच्छया ताडितं कृत्वादौ प्रमाणफलं ततः।
प्रमाणभक्तं तल्लब्धं भवेदिच्छाफलं नृणाम्॥ ३८३ ॥

अन्वयः—आदौ प्रमाणफलम् इच्छया ताडितं कृत्वा प्रमाणभक्तं तल्लब्धं नृणाम् इच्छाफलं भवेत्॥ ३८३ ॥

व्याख्या—आदौ = प्रथमतः, प्रमाणफलम् = सिद्धं वस्तु, इच्छया = साध्यवस्तुना, ताडितम् = गुणितम्, कृत्वा = विधाय, प्रमाणभक्तम्—प्रमाणेन = साधनेन, भक्तम् = विभज्य, यल्लब्धम् = यल्लब्धाङ्कः, नृणाम् = पुरुषाणाम्, इच्छाफलम् = परिणामम्, भवेत् = जायेत॥ अत्र त्रैराशिकविधिना आयव्ययान् निरूपितः। लीलावत्यां भास्करेणोक्तम्—

"प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोः स्तः फलमन्यजातिः।
मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत्स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे॥"

हिन्दी—पहले सिद्ध वस्तु को साध्य वस्तु से गुणित कर साधन से भाग देने पर जो लब्धि आये वही मनुष्य का इच्छाफल होता है॥ ३८३ ॥

सम्प्रति त्रैराशिकविधिना आयव्ययान् निरूपयति—**इच्छयेति**। आदौ प्रमाणफलं सिद्धं वस्तु इच्छया साध्यवस्तुना ताडितं हतं गुणितमित्यर्थः, कृत्वा प्रमाणेन भक्तं सत् यत् लब्धं तत् नृणाम् इच्छाफलं भवेत्। उक्तं लीलावत्यां भास्करेण—'प्रमाणमिच्छा च समानजाती आद्यन्तयोः स्तः फलमन्यजातिः। मध्ये तदिच्छाहतमाद्यहृत् स्यादिच्छाफलं व्यस्तविधिर्विलोमे' इति॥ ३८३ ॥

समासतो लेख्यमुक्तं सर्वेषां स्मृतिसाधनम्॥ ३८४ ॥

अन्वयः—समासतः सर्वेषां स्मृतिसाधनं लेख्यम् उक्तम्॥ ३८४ ॥

व्याख्या—समासतः = सङ्क्षेपेण, सर्वेषाम् = सकलानां वस्तूनाम्, स्मृतिसाधनम् = स्मरणकारणम्, लेख्यम् = लिखितविषयम्, उक्तम् = कथितम्॥ ३८४ ॥

हिन्दी—इस प्रकार संक्षेप में सभी विषयों के स्मृतिसाधन लेखपत्र का वर्णन किया गया॥ ३८४ ॥

समासत इति। समासतः सङ्क्षेपेण सर्वेषां स्मृतिसाधनं स्मरणकारणं लेख्यम् उक्तम्॥ ३८४ ॥

गुञ्जा माषस्तथा कर्षः पदार्द्धः प्रस्थ एव हि।
यथोत्तरा दशगुणाः पञ्च प्रस्थस्य चाढकाः। ३८५ ॥

अन्वयः—गुञ्जा माषः कर्षः पदार्द्धः प्रस्थ एव हि—एते यथोत्तरा दशगुणाः च पञ्चप्रस्थस्य आढकाः॥ ३८५ ॥

व्याख्या—गुञ्जा = रक्तिका, माषः = हेमः, कर्षः = लघुभारमानमेकम्, पदार्द्धः = द्रव्यमापकः, प्रस्थः = भारमापकः, एते = पूर्वोक्ताः, यथोत्तरा = क्रमेणोत्तरा, दशगुणाः; तद्यथा—दशगुञ्जाः = एकः माषः, दशमाषाः = एकः कर्षः, दशकर्षाः = एकः पदार्द्धः, दशपदार्द्धाः = एकः प्रस्थः, पञ्चप्रस्थाः = आढकाः॥ ३८५ ॥

हिन्दी—रत्ती, मासा, रुपया, पदार्द्ध और प्रस्थ—ये सभी उत्तरोत्तर दश गुना होते हैं। अर्थात् दस रत्ती का एक मासा, दस मासा का एक रुपया, दस रुपये का एक पदार्द्ध, दस पदार्द्ध का एक प्रस्थ और पाँच प्रस्थों का एक आढक होता है ॥ ३८४ ॥

सम्प्रति मानान्याह—**गुञ्जेति**। गुञ्जा, माषः, कर्षः, पदार्द्धः तथा प्रस्थः एते यथोत्तराः दशगुणाः हिशब्दोऽवधारणार्थः। अयमर्थः—गुञ्जा प्रसिद्धा। दश गुञ्जाः माषः। दश माषाः कर्षः। दश कर्षाः पदार्द्धः। पदार्द्धाः प्रस्थ इति। पस्थस्य पञ्च पञ्चकमित्यर्थः, पञ्च प्रस्था इति यावत् आढकः ॥ ३८५ ॥

ततश्चाष्टाढकः प्रोक्तो ह्यर्मणस्ते तु विंशतिः।
खारिका स्याद्भिद्यते तद् देशे देशे प्रमाणकम् ॥ ३८६ ॥

अन्वयः—ततश्चाष्टाढकः अर्मणः प्रोक्तः हि। ते तु विंशतिः खारिका स्यात्। तद् देशे देशे प्रमाणकं स्यात् ॥ ३८६ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, च = पुनः, अष्टाढकः = अष्टौ आढकाः, अर्मणः, प्रोक्तः = कथितः, हि = इत्यवधारणे, ते = पूर्वोक्ताः विंशतिः अर्मणाः, खारिका, स्यात् = भवेत्, देशे देशे = जनपदभेदेन, तत् प्रमाणकम् = परिमाणम्, भिद्यते = भिन्नं भिन्नं भवति ॥ ३८६ ॥

हिन्दी—इसके बाद आठ आढकों का एक अर्मण तथा बीस अर्मणों की एक खारिका होती है। देशभेद से परिमाणों में भिन्नताएँ होती हैं ॥ ३८६ ॥

तत इति। ततश्च अष्टाढकः अष्टौ आढका इत्यर्थः, अर्मणः प्रोक्तः कथितः हिशब्दोऽवधारणार्थः। ते विंशतिः अर्मणाः खारिका स्यात्। देशे देशे देशभेदेनेत्यर्थः, तत् प्रमाणकं परिमाणं भिद्यते विभिन्नं भवति ॥ ३८६ ॥

पञ्चाङ्गुलावटं पात्रं चतुरङ्गुलविस्तृतम्।
प्रस्थपादं तु तज्ज्ञेयं परिमाणे सदा बुधैः ॥ ३८७ ॥

अन्वयः—पञ्चाङ्गुलावटं चतुरङ्गुलविस्तृतं यत् पात्रं बुधैः सदा परिमाणे प्रस्थपादं तत् तु ज्ञेयम् ॥ ३८७ ॥

व्याख्या—पञ्चाङ्गुलावटम् = पञ्चाङ्गुलपरिमाणं दीर्घम्, चतुरङ्गुलविस्तृतम् = तस्य विस्तारं चतुरङ्गुलिमानम्, तत्पात्रम् = भाजनम्, बुधैः = विज्ञैः, सदा = सर्वदा, परिमाणे = प्रमाणे, तत् = पात्रम्, प्रस्थपादम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्, तु = इत्यवधारणे ॥ ३८७ ॥

हिन्दी—पाँच अंगुल गहरा, चार अंगुल चौड़े पात्र को समझदार लोग प्रस्थपाद कहते हैं ॥ ३८७ ॥

पञ्चेति। पञ्चाङ्गुलावटं पञ्चाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तृतं यत् पात्रं बुधैः पण्डितैः सदा परिमाणे तत् प्रस्थपादं ज्ञेयं तुशब्दोऽवधारणार्थः ॥ ३८७ ॥

उर्ध्वाङ्कश्च यथासंज्ञस्तदधःस्थाश्च वामगाः।
क्रमात् स्वदशगुणिताः परार्द्धान्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ३८८ ॥

अन्वयः—ऊर्ध्वाङ्कश्च यथासंज्ञः तदधःस्थाः वामगाः क्रमात् स्वदशगुणिताः परार्द्धान्ताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३८८ ॥

व्याख्या—उद्ध्वाङ्कश्च = उपरिस्थितः अङ्कश्च, यथासंज्ञः = संज्ञापरिमितः, तदधःस्थाः—तत् = तस्य ऊद्ध्र्वाङ्कस्य, अधःस्थाः = अधोभागे वर्त्तमानाः, वामगाः = सव्यभागे स्थिताः अङ्काः, क्रमात् = अनुक्रमेण, स्वदशगुणिताः—स्वैः = निजैः, दशभिः = दशसंख्याभिः, गुणिताः = गुणीकृताः, परार्द्धान्ताः = अपरार्द्धं यावत्, प्रकीर्त्तिताः = कथिताः ॥ ३८८ ॥

हिन्दी—नामानुसार ऊपर लिखे हुए अंक के नीचे बाँई ओर एक-एक ईकाई क्रम से बढ़ाने पर अपने से दस गुनी अधिक परार्द्ध पर्य्यन्त अंकों की गिनती होती है ॥ ३८८ ॥

ऊद्ध्र्वाङ्क इति। ऊर्ध्वाङ्कः उपरिस्थितः अङ्कः यथासंज्ञः संज्ञापरिमितः। तदधःस्थाः तस्य ऊद्ध्र्वाङ्कस्य अधःस्थिताः वामगाः वामभागवर्त्तिनः अङ्का इति शेषः, क्रमात् स्वदशगुणिताः स्वैः दशभिः गुणिताः सन्तः परार्द्धान्ताः परार्द्धपर्य्यन्ताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३८८ ॥

न कर्त्तुं शक्यते संख्यासंज्ञा कालस्य दुर्गमात्।
ब्रह्मणो द्विपरार्द्धं तु आयुरुक्तं मनीषिभिः ॥ ३८९ ॥

अन्वयः—कालस्य दुर्गमात् संख्यासंज्ञात् कर्त्तुं न शक्यते। तु मनीषिभिः ब्रह्मणो द्विपरार्धम् आयुः उक्तम् ॥ ३८९ ॥

व्याख्या—कालस्य = समयस्य, दुर्गमात् = दुरारोहात्, संख्यासंज्ञात्, संख्यानाम् = अङ्कानाम्, संज्ञा = नाम, परार्द्धाधिका = परार्द्धोपरि, कर्त्तुम् = विधातुम्, न = नहि, शक्यते = कोऽपि समर्थो भवति। तथाहि मनीषीभिः = विपश्चिद्भिः, ब्रह्मणो द्विपरार्द्धम्—ब्रह्मणः = विधातुः, द्विपरार्द्धम् = परार्द्धद्वयपरिमितम्, आयुः = वयः, विजीतितञ्च, उक्तम् = कथितम् ॥ ३९९ ॥

हिन्दी—काल की समाप्ति होना असंभव है। अतः संख्या की गणना परार्द्ध से अधिक नहीं हो सकती। मनीषियों ने ब्रह्मा की आयु का प्रमाण दो परार्द्ध माना है। अतः परार्द्ध से ऊपर संख्या की कोई संज्ञा नहीं होती ॥ ३८९ ॥

नेति। कालस्य दुर्गमात् दुरवसानात् संख्यानां संज्ञा परार्द्धाधिका इत्यर्थः, कर्त्तुं न शक्यते। तथाहि मनीषिभिः विद्वद्भिः ब्रह्मणः विधातुः द्विपरार्द्धं परार्द्धद्वयपरिमितम् आयुः जीवनकालः उक्तं परार्द्धातिरिक्तायाः संख्यासंज्ञाया अभावादिति भावः ॥ ३८९ ॥

एको दश शतं चैव सहस्रं चायुतं क्रमात्।
नियुतं प्रयुतं कोटिरर्बुदं चाब्जखर्वकौ।
निखर्वपद्मशङ्खाब्धिमध्यमान्तपरार्द्धकाः ॥ ३९० ॥

अन्वयो व्याख्या चेति—एकः = एकाङ्कः, दश = अङ्कगणनायां द्वितीयस्थानम्, शतम् = शतकं, सहस्रम् = दशशतम्, अयुतम् = सहस्रदशकम्, नियुतम् = लक्षदशकम्, प्रयुतम् = लक्षसमूहम्, कोटिः = शतलक्षसंख्या, अर्बुदम् = दशकोटिसंख्या, अब्जम् = शतकोटयः, खर्वः = अर्वदशकम्, निखर्वः = अर्वशतकम्, पद्मम् = षोडशस्थानिनी संख्या, शङ्खः = दशनिखर्वसंख्या, अब्धिः = सप्तेति संख्या, मध्यम्, अन्तः = पर्यवसानम्, परार्द्धम्, इति संख्या संज्ञकाः इति शेषः ॥ ३९० ॥

हिन्दी—ईकाई, दहाई, सैंकड़ा, हजार, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, पद्म, शंख, अब्धि, मध्य, अन्त और परार्द्ध—ये सभी संख्याओं के नाम हैं ॥ ३९० ॥

एक इति। एकः, दश, शतं, सहस्रम्, अयुतं, नियुतं, प्रयुतं लक्षमित्यर्थः, कोटिः, अर्बुदम्, अब्जं, खर्वः, निखर्वः, पद्मं, शङ्कुः, अब्धिः, मध्यम्, अन्तः, परार्द्धम् इति संख्यासंज्ञका इति शेषः ॥ ३९० ॥

कालमानं त्रिधा ज्ञेयं चान्द्रं सौरं च सावनम्।
भृतिदाने सदा सौरं चान्द्रं कौसीदवृद्धिषु।
कल्पयेत् सावनं नित्यं दिनभृत्येऽवधौ सदा ॥ ३९१ ॥

अन्वयः—कालमानं त्रिधा ज्ञेयम्—चान्द्रं, सौरं सावनं च। भृतिदाने सदा सौरम्, कौसीदवृद्धिषु नित्यं चान्द्रम्, दिनभृत्येऽवधौ सदा सावनं कल्पयेत् ॥ ३९१ ॥

व्याख्या—कालमानम्—कालस्य = समयस्य, मानम् = परिमाणम्, त्रिधा = त्रिप्रकारकम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्, चान्द्रम् = चन्द्रमासावधि, सौरम् = सूर्यैकराशिभोगावच्छिन्नमासावधि, च = पुनः, सावनम् = उत्पत्तिदिनावधिकम्। तद्यथा—भृतिदाने—भृत्याः = वेतनस्य, दाने = प्रदाने, सदा = सर्वदा, सौम् = सौरगासावधि, कौसीदवृद्धिषु = ऋणव्यवहारेषु, नित्यम् = सततम्, चान्द्रम् = चन्द्रमासावधिकम्, दिनभृत्ये = दैनिकवेतनभोगीसेवके, अवधौ = समयसीमायाञ्च, सदा = सर्वदा, सावनम् = उत्पत्तिदिनावधिकञ्च, कल्पयेत् = उद्भावयेत् ॥ ३९१ ॥

हिन्दी—कालमान अर्थात् महीने की समय-सीमा तीन तरह की होती है—चान्द्रमास अर्थात् चन्द्रमा की वृद्धिक्रम से यानी शुक्ल प्रतिपदा से अमावास्या तक, सौरमास अर्थात् एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक, सावन अर्थात् जिस दिन से कोई काम प्रारम्भ किया जाय उसके तीसवें दिन तक। सेवकों को वेतन देने में सदा सौरमास का, ऋण देने में हमेशा चान्द्रमास का तथा दैनिक वेतनभोगी को वेतन देने में सावनमास का व्यवहार करना चाहिए ॥ ३९१ ॥

कालमानमिति। कालस्य मानं परिमाणं त्रिधा ज्ञेयं, चान्द्रं चन्द्रवृद्ध्यावधिकं शुक्लप्रतिपदादिरूपमित्यर्थः, सौरं सङ्क्रमणादिनावधिकं सावनम् उत्पत्तिदिनावधिकञ्च। भृत्या वेतनस्य दाने सौरं, कौसीदवृद्धिषु ऋणव्यवहारेष्वित्यर्थः, नित्यं चान्द्रं, दिनभृत्ये दैनिकपरिचारके अवधौ च सदा सावनं कल्पयेत् व्यवहरेत् ॥ ३९१ ॥

कार्य्यमाना कालमाना कार्य्यकालमितिस्त्रिधा।
भृतिरुक्ता तु तद्विज्ञैः सा देया भाषिता यथा ॥ ३९२ ॥

अन्वयः—कार्यमाना कालमाना कार्यकालमितिः त्रिधा भृतिः तद्विज्ञैः उक्ता। यथा भाषिता सा देया ॥ ३९२ ॥

व्याख्या—कार्यमाना—कार्यस्य = कर्मणः, माना = परिमाणानुसारेण देया, कालमाना—कालस्य = समयस्य, माना = परिमिता देया, तथा कार्यकालमिति = कार्यकालोभयपरिमिता भृतिः, त्रिधा = त्रिप्रकारका, भृतिः = वेतनम्, तद्विज्ञैः—तत् = तस्य, विज्ञैः = वेतृभिः, उक्ता = कथिता, यथा = येन रूपेण, भाषिता = कथिता, तेनैव रूपेण, सा = भृतिः देया = दातुं योग्या ॥ ३९२ ॥

हिन्दी—काम की मात्रा के अनुसार, समय की अवधि के अनुसार या काम या समय दोनों के अनुसार मजदूरी या वेतन तीन तरह के विशेषज्ञों ने कहा है। जैसा विशेषज्ञों ने कहा है, उसी तरह उसका हिसाब कर वेतन देना चाहिए ॥ ३९२ ॥

कार्य्यमानेति। कार्य्यमाना कार्य्यपरिमिता, कालमाना कालपरिमिता, तथा कार्य्यकालमितिः कार्यकालोभयपरिमितां इत्यर्थः, त्रिधा त्रिविधा भृतिः तज्ज्ञैः पण्डितैः उक्ता, यथा भाषिता उक्ता, सा भृतिः देया॥ ३९२ ॥

अयं भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वैतावतीं भृतिम्।
दास्यामि कार्य्यमाना सा कीर्त्तिता तन्निदेशकैः॥ ३९३ ॥

अन्वयः—त्वया तत्र अयं भारः स्थाप्यः, एतावतीं भृतिं दास्यामि तन्निदेशकैः सा भृतिः कार्यमाना कीर्त्तिता॥ ३९३ ॥

व्याख्या—त्वया = भवता, तत्र = तस्मिन्स्थाने, अयम् = एषः, भारः = वोढव्यं, पर्याहारो वा, स्थाप्यः = निवेशितव्यः, मया एतावतीम् = इयतीम्, भृतिम् = वेतनम्, दास्यामि = भरिष्यामि, तुभ्यमिति या कथिता, तन्निदेशकैः = तत्प्रख्यापकैः, सा = पूर्वकथिता, भृतिः = वेतनम्, कार्यमाना = कार्यपरिमिता, कीर्त्तिता = कथितेति॥ ३९३ ॥

हिन्दी—"यह भार यहाँ से उठाकर वहाँ रख दो" इसके लिए तुम्हें इतनी मजदूरी दी जायेगी; इस वेतन को विशेषज्ञों ने 'कार्यमाना' कहा है॥ ३९३ ॥

अयमिति। त्वया तत्र अयं भारः स्थाप्यः रक्षितव्यः, मया एतावतीं भृतिं वेतनं दास्यामि तुभ्यमिति शेषः, इत्येवं या परिभाषिता इति अध्याहार्य्यं तन्निदेशकैः तन्निर्देशकारिभिः विद्वद्भिः सा भृतिः कार्य्यमाना कीर्त्तिता॥ ३९३ ॥

वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
एतावतीं भृतिं तेऽहं दास्यामीति च कालिका॥ ३९४ ॥

अन्वयः—वत्सरे वत्सरे मासि मासि वा दिने दिने एतावतीं ते भृतिं दास्यामि इति कालिकेति॥ ३९४ ॥

व्याख्या—वत्सरे वत्सरे = प्रतिवत्सरम्, मासि मासि = प्रतिमासम्, वा = अथवा, दिने दिने = प्रतिदिनम्, एतावतीम् = इयतीम्, ते = तुभ्यमहम्, भृतिम् = वेतनम्, दास्यामि = प्रयच्छिष्यामि, इति = इत्थं, या भाषिता, सा कालिकेति = कालपरिमिता भृतिः, इति ज्ञेयम्॥ ३९४ ॥

हिन्दी—'प्रतिवर्ष, प्रतिमास एवं प्रतिदिन इतना वेतन मैं तुम्हें दूँगा' इसे कालमाना भृति कहते हैं॥ ३९४ ॥

वत्सर इति। वत्सरे वत्सरे प्रतिवत्सरं मासि मासि प्रतिमासं वा दिने दिने प्रतिदिनं ते तुभ्यम् एतावतीं भृतिं दास्यामीति या परिभाषितेति शेषः, सा कालिका कालमाना भृतिः॥ ३९४ ॥

एतावता कार्य्यमिदं कालेनापि त्वया कृतम्।
भृतिमेतावतीं दास्ये कार्य्यकालमिता च सा॥ ३९५ ॥

अन्वयः—त्वया एतावता कालेन इदं कार्यं कृतं तदा एतावतीं भृतिं दास्ये, सा च कार्यकालमिता॥ ३९५ ॥

व्याख्या—त्वया = भवता, एतावता = इयता, कालेन = समयेन, इदम् = एतत्, कार्यम् = कृत्यम्, कृतम् = सम्पादितम्, यदीति तदा, एतावतीम् = इयतीम्, भृतिम् = वेतनम्, दास्ये = दास्यामि, अनेन रूपेण या भृतिः परिभाषिता, सा = पूर्वोक्ता च, कार्यकालमिता = कार्यकालयोः परिमिता भृतिरिति॥ ३९५ ॥

हिन्दी—'इतने समय के भीतर यह काम समाप्त करने पर मैं तुम्हें यह वेतन दूँगा' इस अनुबन्ध को कार्यकालमिता कहते हैं ॥ ३९५ ॥

एतावतेति। त्वया एतावता कालेन इदं कार्य्यं कृतं यदीति अध्याहार्य्यं तदा एतावतीं भृतिं दास्ये इत्येवं परिभाषिता या भृतिः सा कार्य्यकालमिता ॥ ३९५ ॥

न कुर्य्याद् भृतिलोपं तु तथा भृतिविलम्बनम्।
अवश्यपोष्यभरणा भृतिर्मध्या प्रकीर्त्तिता ॥ ३९६ ॥
परिपोष्या भृतिः श्रेष्ठा समान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्य भरणं यया सा हीनसंज्ञिका ॥ ३९७ ॥

अन्वयः—भृतिलोपं तथा भृतिविलम्बनं तु न कुर्यात्। अवश्यपोष्यभरणा भृतिः मध्या, परिपोष्या भृतिः श्रेष्ठा, अन्नाच्छादनार्थिका समा प्रकीर्त्तिता; किञ्च यया एकस्य भरणं भवेत् सा हीनसंज्ञका ॥ ३९६-३९७ ॥

व्याख्या—भृतिलोपम् = वेतनच्छेदम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, भृतिविलम्बनम् = अतिकालेन वेतनदानञ्च, न = नहि, कुर्यात् = विधेयात्। अवश्यपोष्यभरणा—अवश्यपोष्याणाम् = मातापित्रादिगुरुजनानाम्, भरणम् = पोषणम्, यया सा भृतिः = वेतनम्, मध्या = मध्यमा, परिपोष्या = सामान्यजनसंवर्द्धनीया भृतिः, श्रेष्ठा = उत्तमा, अन्नाच्छादनार्थिका = अन्नवसनमात्रपर्याप्ता भृतिः, समा = समाख्या, प्रकीर्तिता = कथिता, किञ्च यया = भृत्या, एकस्य = आत्मनः एव, भरणम् = पालनम्, भवेत् = स्यात्, सा = भृतिः, हीनसंज्ञका = नीचनाम्ना भवेदिति ॥ ३९६-३९७ ॥

हिन्दी—वेतन देने में देर या कटौती नहीं करनी चाहिए। माता-पिता या पारिवारिक जनों का जिस वेतन से भरण-पोषण हो, वह मध्यम एवं इनके अतिरिक्त अन्य जनों का भी भरण-पोषण जिससे हो, वह वेतन एवं अन्न-वस्त्र मात्र जुटाने में समर्थ वेतन सम तथा जिससे केवल अपना ही भरण-पोषण हो वह हीनसंज्ञक होता है ॥ ३९६-३९७ ॥

नेत्यादि। भृतिलोपं वेतनच्छेदं भृतिविलम्बनञ्च न कुर्य्यात्। अवश्यपोष्याणां मातापित्रादीनां भरणं यया सा भृतिः मध्या, परिपोष्या अवश्यपोष्यव्यतिरिक्तानामपि पोषणकारिणी भृतिः श्रेष्ठा तथा अन्नाच्छादनार्थिका अन्नवस्त्रमात्रपर्य्याप्ता भृतिः समा प्रकीर्त्तिता, किञ्च यया एकस्य जनस्य भरणं भवेत् सा हीनसंज्ञका हीना नाम भृतिः भवेत् ॥ ३९६-३९७ ॥

यथा यथा तु गुणवान् भृतकस्तद्भृतिस्तथा।
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्महिताय वै ॥ ३९८ ॥

अन्वयः—भृतकस्तु यथा यथा गुणवान् तथा तस्य भृतिः नृपेण आत्महिताय वै प्रयत्नेन संयोज्या ॥ ३९८ ॥

व्याख्या—भृतकस्तु = सेवकस्तु, यथा यथा = येन प्रकारेण, गुणवान् = गुणी, अनुभवी च भवेत्, तथा = तेनैव रूपेण, तस्य = सेवकस्य, भृतिः = वेतनम्, नृपेण = राज्ञा, आत्महिताय = स्वसंरक्षणाय, वै = इति निश्चयेन, प्रयत्नेन = प्रयासपूर्वकेण, संयोज्या = संवर्द्धनीयेति ॥ ३९८ ॥

हिन्दी—नौकर का अनुभव जैसे-जैसे बढ़ता जाय, आत्महित के लिए प्रयासपूर्वक राजा को चाहिए कि उसकी वेतन-वृद्धि उसी के अनुपात में योग्यतानुसार करें ॥ ३९८ ॥

यथेति। भृतकः भृत्यः यथा यथा गुणवान् तथा तथा तस्य भृतिः नृपेण आत्महिताय प्रयत्नेन संयोज्या कल्पनीया वैशब्दोऽवधारणार्थः॥ ३९८ ॥

अवश्यपोष्यवर्गस्य भरणं भृतकाद् भवेत्।
तथा भृतिस्तु संयोज्या तद्योग्यभृतकाय वै॥ ३९९ ॥

अन्वयः—अवश्यपोष्यवर्गस्य भरणं यथा भृतकाद् भवेत् तद्योग्यभृतकाय तथा भृतिस्तु वै संयोज्या॥ ३९९ ॥

व्याख्या—अवश्यपोष्यवर्गस्य = अनिवार्यपालनीयसमूहस्य, भरणम् = पालनम्, यथा = येन प्रकारेण, भवेत् = जायेत, तद्योग्यभृतकाय—तत् = तस्य, योग्यभृतकाय = समर्थसेवकाय, तथा तस्य योग्यतानुसारेण, भृतिस्तु = वेतनस्तु, संयोज्या = प्रदातव्येति॥ ३९९ ॥

हिन्दी—वेतनभोगी सेवक के अनिवार्य आश्रितों का जितने से भरण-पोषण हो सके, उसकी योग्यता के अनुसार उसे उतना वेतन देना चाहिए॥ ३९९ ॥

अवश्येति। भृतकात् अवश्यपोष्यवर्गस्य तन्मातापित्रादेः यथा भरणं भवेत् सम्पद्येत, तद्योग्यभृतकाय तथा भृतिस्तु संयोज्या देया, वैशब्दोऽवधारणार्थः॥ ३९९ ॥

ये भृत्या हीनभृतिकाः शत्रवस्ते स्वयं कृताः।
परस्य साधकास्ते तु छिद्रकोशप्रजाहराः॥ ४०० ॥

अन्वयः—ये भृत्याः हीनभृतिकाः ते स्वयं कृताः शत्रवः, ते तु परस्य साधकाः छिद्रकोशप्रजाहराः॥ ४०० ॥

व्याख्या—ये भृत्याः = ये सेवकाः, हीनभृतिकाः = अल्पवेतनभोगिनः, ते = सेवकाः, स्वयम् = राज्ञः आत्मनः एव, शत्रवः = अरयः, कृताः = निर्मिताः, यतस्ते = सेवकास्तु, परस्य = अन्यजनस्य, साधकाः = कार्यकारिणः, तथा छिद्रकोशप्रजाहराः = छिद्रान्वेषिणः, प्रभुधनापहारकाः, प्रजापीडकाश्च भवन्ति॥ ४०० ॥

हिन्दी—कम वेतन देकर राजा स्वयं उन सेवकों को अपना शत्रु बना लेता है। वे पेट न भरने के कारण राजकार्य छोड़कर दूसरों का काम करते हैं तथा राजा के छिद्रान्वेषी बन जाते हैं, उनका धन लूटते हैं तथा प्रजा को भी सताते हैं॥ ४०० ॥

ये इति। ये भृत्याः हीनभृतिकाः अत्यल्पवेतनाः ते स्वयं प्रभुणेति शेषः, शत्रवः कृताः ते तु परस्य अन्यस्य साधकाः कार्य्यकारिणः प्रभुकार्य्यं परिहत्येति भावः, तथा छिद्रकोशप्रजाहराः छिद्रान्वेषिणः प्रभुधनापहारकाः प्रजानाञ्च पीडका इत्यर्थः॥ ४०० ॥

अन्नाच्छादनमात्रा हि भृतिः शूद्रादिषु स्मृता।
तत्पापभागन्यथा स्यात् पोषको मांसभोजिषु॥ ४०१ ॥

अन्वयः—शूद्रादिषु अन्नाच्छादनमात्रा भृतिः स्मृता। अन्यथा मांसभोजिषु पोषकः तत्पापभाक् स्यात्॥ ४०१ ॥

व्याख्या—शूद्रादिषु = वृषलादिषु, अन्नाच्छादनमात्रा = भोजनवसनमात्रपर्याप्ता, भृतिः = वेतनम्, स्मृता = कथिता, अन्यथा = इतरथा, मांसभोजिषु = पललभक्षकेषु शूद्रादिषु, पर्याप्तवेतनदानेन, तेषु पोषकः = पालकः नृपोऽपि, तत्पापभाक्—तत् = तस्य मांसभक्षकस्य, पापस्य = अधर्मस्य, भाक् = भागी, स्यात् = जायेत॥ ४०१ ॥

हिन्दी—शूद्रादि नीचजातीय सेवकों को अन्न-वस्त्र की सम्पूर्ति जितने में हो उतना भर ही वेतन देना चाहिए। इससे अतिरिक्त वेतन देने पर वे मांसभक्षण करेंगे और अभक्ष्य भोजनजन्य पाप का भागी उनका पोषक राजा को भी होना पड़ेगा ॥४०१॥

अन्नेति। शूद्रादिषु नीचजातिषु भृतिः अन्नाच्छादनमात्रा ग्रासाच्छादनमात्रपर्य्याप्ता स्मृता कथिता, अन्यथा अन्येन प्रकारेण अतिरिक्तभृतिदानेनेत्यर्थः, मांसभोजिषु नीचजातिषु पोषकः नीचजातिपोषणकारीत्यर्थः, प्रभुः तेषां पापभाक् स्यात् भवेत् ॥४०१॥

यद् ब्राह्मणेनापहृतं धनं तत् परलोकदम्।
शूद्राय दत्तमपि यन्नरकायैव केवलम् ॥४०२॥

अन्वयः—ब्राह्मणेन यत् धनं अपहृतं तत् परलोकदं, यत् शूद्राय दत्तमपि केवलं नरकायैव ॥४०२॥

व्याख्या—ब्राह्मणेन = विप्रेण, यत् धनम् = यद्द्रव्यम्, अपहृतम् = बलान्नीतम्, तत् = धनम्, परलोकदम् = कल्याणप्रदम्, भवति, यत् = यद्धनम्, शूद्राय = वृषलाय, दत्तमपि = स्वहस्तेन प्रदत्तमपि, केवलम् = मात्रं, नरकायैव = दुर्गतिप्रदानायैव भवति ॥४०२॥

हिन्दी—ब्राह्मण यदि किसी का धन अपहृत कर ले तो भी उस व्यक्ति का कल्याण ही होता है, किन्तु शूद्र को यदि स्वयं भी हाथ उठाकर वही धन दिया जाय तो वह भी दुर्गति का कारण बन जाता है ॥४०२॥

यदिति। ब्राह्मणेन यद् धनम् अपहृतं चोरितं तदपि परलोकदं शुभदमित्यर्थः, यत्तु धनं शूद्राय दत्तमपि केवलं नरकाय भवतीति शेषः ॥४०२॥

मन्दो मध्यस्तथा शीघ्रस्त्रिविधो भृत्य उच्यते।
समा मध्या च श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमात् स्मृता ॥४०३॥

अन्वयः—भृत्यः त्रिविधः उच्यते—मन्दः, मध्यः तथा शीघ्रः। तेषां भृतिश्च समा, मध्या तथा श्रेष्ठा क्रमात् स्मृता ॥४०३॥

व्याख्या—भृत्यः = सेवकः, त्रिविधः = त्रेधा, उच्यते = कथ्यते, मन्दः = अलसः कार्यविमुखश्च, मध्यः = सामान्यकार्यकर्त्ता, तथा = तेनैव प्रकारेण, श्रेष्ठा = द्रुतकार्यकारी। तेषाम् = भृत्यानाम्, समा = सामान्यस्तरीया, मध्या = मध्यस्तरीया, तथा श्रेष्ठा = उच्चस्तरीया, भृतिः, क्रमात् = क्रमेण, स्मृता = देया प्रशस्तेति ॥४०३॥

हिन्दी—नौकर भी तीन तरह के होते हैं—सुस्त, सामान्य तथा शीघ्रकार्यकारी। इन्हें इनकी योग्यता के अनुसार क्रमशः सामान्य, मध्यम एवं उच्चस्तरीय वेतन देना चाहिए ॥४०३॥

मन्द इति। भृत्यः त्रिविध उच्यते, मन्दः चिरक्रियः, मध्यः तथा शीघ्रः क्षिप्रकारीत्यर्थः। तेषां भृतिश्च समा मध्या तथा श्रेष्ठा क्रमात् स्मृता निरूपिता ॥४०३॥

भृत्यानां गृहकृत्यार्थं दिवा यामं समुत्सृजेत्।
निशि यामत्रयं नित्यं दिनभृत्येऽर्द्धयामकम् ॥४०४॥

अन्वयः—भृत्यानां गृहकृत्यार्थं दिवा यामं निशि यामत्रयं नित्यम् समुत्सृजेत्। दिनभृत्ये अर्द्धयामकम् ॥४०४॥

व्याख्या—भृत्यानाम् = सेवकानाम्, गृहकृत्यार्थम् = गृहाकार्यसम्पादनार्थम्, दिवा = दिने, यामम् = होरात्रयं प्रहरमेकं वा, निशि = रात्रिकार्यसम्पादनार्थम्, यामत्रयम् = प्रहरत्रयम्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, समुत्सृजेत् = अवकाशं दद्यात्। दिनभृत्ये = दैनिकवेतनभोगी, अर्द्धयामकम् = सार्द्धप्रहरमवकाशं देयम् ॥४०४॥

हिन्दी—नौकरों को अपने घर के काम के लिए दिन में एक पहर और रात में तीन पहर की छुट्टी देनी चाहिए। दैनिक वेतनभोगी सेवक को डेढ़ पहर की छुट्टी देनी चाहिए ॥४०४॥

भृत्यानामिति। भृत्यानां गृहकृत्यार्थं गृहकार्य्यनिमित्तं दिवा दिवसे प्रहरमेकं तथा निशि रात्रौ यामत्रयं प्रहरत्रयं नित्यं प्रतिदिनं समुत्सृजेत् अवकाशं दद्यादित्यर्थः, दिनभृत्ये दैनिकभृत्ये अर्द्धयामकम् अवकाशदानमिति शेषः ॥४०४॥

तेभ्यः कार्य्यं कारयीत ह्युत्सवाद्यैर्विना नृपः।
अत्यावश्यं तूत्सवेऽपि हित्वा श्राद्धदिनं सदा ॥४०५॥

अन्वयः—नृपः उत्सवाद्यैः विना तेभ्यः कार्यं कारयीत उत्सवेऽपि श्राद्धदिनं हित्वा सदा कारयीत ॥४०५॥

व्याख्या—नृपः = राजा, उत्सवाद्यैः = पर्वाद्यवसरैः, विना = अन्तरेण, तेभ्यः = सेवकेभ्यः, कार्यम् = कृत्यम्, कारयीत = कारयेत्। उत्सवेऽपि = पर्वण्यपि, श्राद्धदिनम् = श्राद्धदिवसम्, हित्वा = परित्यज्य, सदा = सर्वदा, अत्यावश्यम् = अनिवार्यकार्यम्, कारयीत = कारयेत्। अत्र कारयीत आर्षप्रयोगः ॥४०५॥

हिन्दी—पर्व-त्यौहार के दिनों को छोड़कर वेतनभोगी सेवकों से हर रोज काम ले। श्राद्ध के दिन को छोड़कर अत्यावश्यक कार्य उत्सव के दिन भी कराये ॥४०५॥

तेभ्य इति। नृपः उत्सवाद्यैः विना उत्सवदिवसव्यतिरेकेण तेभ्यः भृत्येभ्यः कार्य्यं कारयेत् तेभ्य इति अपादानविवक्षायां करणे पञ्चमी। कारयीतेति आर्षः प्रयोगः। किञ्च उत्सवेऽपि श्राद्धदिनं हित्वा अत्यावश्यं कार्य्यं सदा कारयेदिति शेषः ॥४०५॥

पादहीनां भृतिं त्वार्त्ते दद्यात् त्रैमासिकीं ततः।
पञ्चवत्सरभृत्ये तु न्यूनाधिक्यं यथा तथा ॥४०६॥

अन्वयः—भृत्ये तु आर्त्ते पादहीनां भृतिं दद्यात्। ततः त्रैमासिकीं पञ्चवत्सरभृत्ये तु यथा तथा न्यूनाधिक्यम् ॥४०६॥

व्याख्या—भृत्ये = सेवके, आर्त्ते = रुग्णावस्थायां पीडिते, पादहीनाम् = चतुर्थांशन्यूनाम्, भृतिम् = वेतनम्, दद्यात् = प्रयच्छेत्। ततः = तत्पश्चात्, त्रैमासिकीम् = मासत्रयाणामेव भृतिर्दद्यात्, पञ्चवत्सरभृत्ये तु = पञ्चवर्षपर्यन्तकार्यरतभृत्ये तु, न्यूनाधिक्यम् = यथा रोगादीनां तथा वेतनं दद्यादिति ॥४०६॥

हिन्दी—पाँच वर्ष तक कार्यरत रहने के बाद बीमार सेवकों को एक चौथाई वेतन काटकर भृति दे। इसके बाद यदि वह वर्षभर बीमार रहे तो त्रैमासिक वेतन दे या बीमारी जैसी हो उसी तरह कम या ज्यादा वेतन दे ॥४०६॥

पादहीनामिति। भृत्ये आर्त्ते पीडिते तु पादहीनां चतुर्थांशन्यूनां भृतिं दद्यात् एतच्च पञ्चवर्षभृत्यस्योपादानात्। वत्सरावधिपीडिते तु त्रैमासिकीं भृतिं भृतेश्चतुर्थांशमित्यर्थः दद्यात्।

पञ्चवत्सरभृत्ये तु पीडिते इति शेषः, न्यूनाधिक्यं यथा पीडादीनामिति शेषः, तथा भृतिं दद्यादिति निष्कर्षः ॥४०६ ॥

षाण्मासिकीं तु दीर्घार्त्ते तदूद्ध्वं न च कल्पयेत्।
नैव पक्षार्द्धमार्त्तस्य हातव्याल्पापि वै भृतिः ॥ ४०७ ॥

अन्वयः—दीर्घार्त्ते तु षाण्मासिकीं भृतिः तदूद्ध्वं न च कल्पयेत्। किञ्च पक्षार्द्धम् आर्त्तस्य अल्पापि भृतिः नैव हातव्या ॥४०७ ॥

व्याख्या—दीर्घार्त्ते = चिरकालपर्यन्तरोगग्रस्ते, तु, षाण्मासिकीम् = अर्द्धवार्षिकीम्, भृतिर्देया, तदूद्ध्वम् = अतः परम्, न च = नैव, कल्पयेत् = वेतनं दद्यात्, किञ्च पक्षार्द्धम् = सप्ताहमेकम्, आर्त्तस्य = रुग्णस्य, अल्पामपि = स्तोकमपि, भृतिः = वेतनम्, नैव = नास्त्येव, हातव्या = छेदनीया ॥४०७ ॥

हिन्दी—और बहुत दिनों तक बीमार रहने पर अर्द्धवार्षिक वेतन देना चाहिए। इसके ऊपर बीमार रहने पर पूरा वेतन काट ले। एक सप्ताह तक बीमार नौकरों का वेतन बिलकुल न काटे ॥४०६ ॥

षाण्मासिकीमिति। दीर्घार्त्ते दीर्घकालपीडिते संवत्सरादूद्ध्वमपीति शेषः, षाण्मासिकीं भृतिं दद्यात्। तदूद्ध्वं न च कल्पयेत् नैव दद्यादित्यर्थः। किञ्च पक्षार्द्धं सप्ताहमित्यर्थः, आर्त्तस्य अल्पापि भृतिः नैव हातव्या नैव छेत्तव्या इत्यर्थः ॥४०७ ॥

संवत्सरोषितस्यापि ग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः।
सुमहद्गुणिनं त्वार्त्तं भृत्यर्द्धं कल्पयेत् सदा ॥ ४०८ ॥

अन्वयः—संवत्सरोषितस्याऽपि प्रतिनिधिः ग्राह्यः। ततः सुगुणिनं सदा अर्द्धं भृतिः कल्पयेत् ॥४०८ ॥

व्याख्या—संवत्सरोषितस्याऽपि = वर्षपर्यन्तव्याधितस्याऽपि, प्रतिनिधिः = प्रतिपुरुषः, ततः = तस्मादेव राजसेवकात्, ग्राह्यः = स्वीकार्यः। किञ्च, सुमहत् गुणिनम् = अत्यन्तगुणशालिनम्, व्याधिग्रस्तसेवकम्, सदा = सर्वदा, भृतेः = वेतनस्य, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, कल्पयेत् = देयमिति ॥४०८ ॥

हिन्दी—यदि कोई राजसेवक बीमारी के कारण एक साल की छुट्टी ले तो उसकी जगह उसी के द्वारा निर्णीत व्यक्ति को उसका प्रतिनिधि स्वीकार करे और यदि वह सेवक अत्यन्त गुणवान् हो तो हर स्थिति में उसे उसका आधा वेतन देना चाहिए ॥४०८ ॥

संवत्सरोषितस्येति। संवत्सरोषितः वर्षं यावत् रोगार्त्तस्य इत्यर्थः, प्रतिनिधिः ततः तस्मादेव भृत्यात् ग्राह्यः। किञ्च सुमहद्गुणिनम् अति गुणवन्तम् आर्षप्रयोग एषः। आर्त्तं भृत्यं प्रतीति शेषः, सदा भृतेः अर्द्धं कल्पयेत् व्यवस्थापयेत् ॥४०८ ॥

सेवां विना नृपः पक्षं दद्याद् भृत्याय वत्सरे ॥ ४०९ ॥

अन्वयः—नृपः सेवां विना भृत्यां वत्सरे पक्षं दद्यात् ॥४०९ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, सेवां = कैङ्कर्यम्, विना = अन्तरेण, भृत्याय = राजसेवकाय, वत्सरे = वर्षे, पक्षम् = अर्द्धमासिकीम्, भृतिम् = वेतनम्, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥४०९ ॥

हिन्दी—राजा प्रत्येक राजसेवक को वर्ष में पन्द्रह दिन का अधिलाभांश (Bonus) दे ॥४०९ ॥

चत्वारिंशत् समा नीताः सेवया येन वै नृपः।
ततः सेवां विना तस्मै भृत्यर्द्धं कल्पयेत् सदा ॥४१० ॥

अन्वयः—येन सेवया चत्वारिंशत् समा नीता, नृपः ततः सेवां विना सदा तस्मै भृत्यर्द्धं कल्पयेत् ॥४१० ॥

व्याख्या—येन = सेवकेन, सेवया = सेवाकार्येण, चत्वारिंशत् समा = चत्वारिंशत् वर्षाणि, नीता = व्यतीता, नृपः = राजा, ततः = तदनन्तरम्, सेवाम् = कैङ्कर्यम्, विना = अन्तरेण, सदा = सर्वदा, तस्मै = भृत्याय, भृत्यर्द्धम् = वेतनार्द्धम्, कल्पयेत् = दद्यात् ॥४१० ॥

हिन्दी—जिस राजसेवक ने सेवा करते हुए लगभग चालीस साल की अवधि पूरी कर ली है, राजा को उसे घर बैठा कर आधा वेतन पेंशन (Pension) के रूप में देना चाहिए ॥४१० ॥

चत्वारिंशदिति। येन भृत्येन सेवया चत्वारिंशत् समा वत्सराः नीताः वैशब्दोऽवधारणार्थः। नृपः ततः तदनन्तरं सेवां विना सदा तस्मै भृत्याय भृत्यर्द्धं वेतनार्द्धं कल्पयेत् दद्यात् ॥४१० ॥

यावज्जीवं तु तत्पुत्रेऽक्षमे बाले तदर्द्धकम्।
भार्य्यायां वा सुशीलायां कन्यायां वा स्वश्रेयसे ॥४११ ॥

अन्वयः—यावज्जीवम् अक्षमे तत्सुते तु बाले वा सुशीलायां भार्यायां वा कन्यायां स्वश्रेयसे तदर्द्धकम् ॥४११ ॥

व्याख्या—यावज्जीवम् = जीवनपर्यन्तम्, अक्षमे = अवकाशप्राप्तासमर्थे सेवके, तत् = तस्य सेवकस्य, सुते = पुत्रे, बाले = अवयस्कावस्थापर्यन्तम्, वा = किं, सुशीलायाम् = शीलवत्याम्, भार्यायाम् = पत्न्याम्, वा = अथवा, कन्यायाम् = अनूढायां दुहितरि, स्वश्रेयसे—स्वस्य = आत्मनः, श्रेयसे = कल्याणाय, तत् = तस्यावकाशप्राप्तसेवकस्य, वेतनार्द्धस्य, अर्द्धकम् = अर्द्धवेतनम्, दद्यात् ॥४११ ॥

हिन्दी—पेंशनभोगी कर्मचारी के बेटा जब तक अवयस्क रहे, उसकी पेंशन की आधी रकम उसे दे। इसी तरह अपने कल्याण के लिए राजा कर्मचारी की पेंशन कर आधा भाग उसकी सच्चरित्रा पत्नी अथवा अविवाहिता कन्या को दे ॥४११ ॥

यावज्जीवमिति। यावज्जीवम् अक्षमे कार्य्याक्षमे तस्य भृत्यस्य पुत्रे बाले अप्राप्तव्यवहारे च तत्पुत्रे बाल्यपर्य्यन्तमिति भावः, सुशीलायां सुचरित्रायां तस्य भार्य्यायां वा एतच्च यावज्जीवपर्य्यन्तमिति भावः, कन्यायाम् अनूढायां दुहितरि च स्वस्य आत्मनः श्रेयसे कल्याणाय तदर्द्धकं तस्य वेतनार्द्धस्य अर्द्धकं दद्यादिति शेषः ॥४११ ॥

अष्टमांशं पारितोष्यं दद्याद् भृत्याय वत्सरे।
कार्य्याष्टमांशं वा दद्यात् कार्य्यं द्रागधिकं कृतम् ॥४१२ ॥

अन्वयः—वत्सरे भृत्याय अष्टमांशं पारितोष्यं दद्यात्, किञ्च द्राक् अधिकं कार्यं कृतं तदा कार्यस्य अष्टमांशं वा दद्यात् ॥४१२ ॥

व्याख्या—वत्सरे = प्रतिवर्षम्, भृत्याय = सेवकाय, अष्टमांशम् = तस्य वेतनस्याष्टमभागम्, पारितोष्यम् = पुरस्कारस्वरूपम्, दद्यात् = प्रयच्छेत, किञ्च द्राक् = शीघ्रम्, अधिकम् = प्रचुरम्, कार्यम् = कृत्यम्, कृतम् = सम्पादितम्, तदा = तर्हि, कार्यस्य = तत्कृत्यस्य, अष्टमांशम् = अष्टमभागम्, दद्यात् = प्रयच्छेत ॥४१२ ॥

हिन्दी—कर्मचारी के लिए प्रतिवर्ष उसके वेतन का आठवाँ भाग पुरस्कार के रूप में दे तथा शीघ्र अतिरिक्त कार्यसम्पादन (Overtime) के लिए भी वेतन का अष्टमांश दे ॥४१२ ॥

अष्टमांशमिति। वत्सरे प्रतिवर्षं भृत्याय अष्टमांशं भृतेरिति शेषः, पारितोष्यं पुरस्कारं दद्यात्, किञ्च द्राक् झटिति अधिकं कार्य्यं कृतं यदीति शेषः, तदा कार्य्यस्य अष्टमांशं पारितोष्यं दद्यात् वाशब्दः अवधारणार्थः ॥४१२ ॥

स्वामिकार्य्ये विनष्टो यस्तत्पुत्रे तद्भृतिं वहेत्।
यावद् बालोऽन्यथा पुत्रगुणान् दृष्ट्वा भृतिं वहेत् ॥ ४१३ ॥

अन्वयः—यः स्वामिकार्ये विनष्टः तत्पुत्रे यावत् बालः तद्भृतिं वहेत्। अन्यथा पुत्रगुणान् दृष्ट्वा भृतिं वहेत् ॥४१३ ॥

व्याख्या—यः = सेवकः, स्वामिकार्ये—स्वामिनः = राज्ञः, कार्ये = कृत्ये, विनष्टः = मृतो भवेत्, तत् = तस्य, पुत्रे = सुते, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, बालः = अवयस्कः, तावत्कालपर्यन्तम्, तत् = तस्य कर्मचारिणः, भृतिम् = वेतनम्, वहेत् = आप्नुयात्, अन्यथा = इतरथा, पुत्रगुणान्—पुत्रस्य = सुतस्य, गुणान् = दक्षताः, दृष्ट्वा = अवलोक्य, भृतिम् = वेतनम्, वहेत् = दद्यात् ॥४१३ ॥

हिन्दी—राजकीय कार्यसम्पादन करते हुए (Duty hour) में कोई पदाधिकारी या कर्मचारी मर जाय तो उसका पूरा वेतन उसके नाबालिग बेटे को मिलना चाहिए। बालिग हो जाने पर उसकी योग्यता के अनुसार उसे वेतन देना चाहिए ॥४१३ ॥

स्वामिकार्य्य इति। यः भृत्यः स्वामिनः कार्य्ये विनष्टः भवेदिति शेषः, तस्य पुत्रः यावद्बालः यावत्पर्य्यन्तं शिशुः तावत्कालपर्य्यन्तं तस्य भृतिं वहेत् प्राप्नुयात्। अन्यथा शैशवापगमे इत्यर्थः, पुत्रस्य गुणान् दृष्ट्वा भृतिं वहेत् दद्यादित्यर्थः ॥४१३ ॥

षष्ठांशं वा चतुर्थांशं भृतेर्भृत्यस्य पालयेत्।
दद्यात् तदर्द्धं भृत्याय द्वित्रिवर्षेऽखिलं तु वा ॥ ४१४ ॥

अन्वयः—भृत्यस्य भृतेः षष्ठांशं वा चतुर्थांशं पालयेत्। द्वित्रिवर्षे भृत्याय तदर्द्धं वा अखिलं दद्यात् ॥४१४ ॥

व्याख्या—भृत्यस्य = सेवकस्य, भृतेः = वेतनस्य, षष्ठांशम् = षष्ठभागम्, चतुर्थांशम् = चतुर्थभागम्, पालयेत् = रक्षेत्। द्वित्रिवर्षे व्यतीते सेवकाय, तदर्द्धम् = रक्षितधनस्यार्द्धभागम्, वा = अथवा, अखिलम् = सम्पूर्णसञ्चितधनम्, दद्यात् = समर्पयेत् ॥४१४ ॥

हिन्दी—जीवन आरक्षानिधि (provident fund) पदाधिकारी या कर्मचारी के पूरे वेतन का छठा या चौथा भाग काटकर जमा करते रहे। दो-तीन साल की लम्बी बीमारी में भविष्यनिधि कोष में जमा राशि का आधा भाग या पूरी राशि उसे लौटा दे ॥४१४ ॥

षष्ठांशमिति। भृत्यस्य भृतेः षष्ठांशं वा चतुर्थांशं पालयेत् रक्षेत् दद्यादित्यर्थः, एतच्च यथायथम् कालविशेषे बोद्धव्यम्। द्वित्रिवर्षे पीडिते भृत्याय तदर्द्धं वा अखिलं समग्रं दद्यात् एतच्च गुणवत्त्वातिगुणवत्त्वाभ्यां व्यवस्थेयम् ॥४१४॥

वाक्पारुष्यान्न्यूनभृत्या स्वामी प्रबलदण्डतः।
भृत्यं प्रशिक्षयेन्नित्यं शत्रुत्वं त्वपमानतः॥४१५॥

अन्वयः—स्वामी वाक्पारुष्यात् न्यूनभृत्या प्रबलदण्डतः अपमानतः भृत्यं नित्यं शत्रुत्वं प्रशिक्षयेत्॥४१५॥

व्याख्या—स्वामी = राजा, वाक्पारुष्यात् = कठोरवचनात्, न्यूनभृत्या = अल्पतरवेतनदानेन, प्रबलदण्डतः = कठोरदण्डप्रदानात्, अपमानतः = अनादरात्, भृत्यम् = सेवकम्, नित्यम् = प्रतिदिवसम्, शत्रुताम् = अरित्वम्, प्रशिक्षयेत् = शिक्षणं ददाति॥४१५॥

हिन्दी–यदि कोई स्वामी अपने सेवक से बेरहमी से बातें करता हैं, पूरा वेतन नहीं देता, कठोर दण्ड देता या अपमानित करता है तो उसे अपने ही विरुद्ध शत्रुता सिखलाता है॥४१५॥

वाक्पारुष्यादिति। स्वामी वाक्पारुष्यात् निर्भर्त्सनात् न्यूनभृत्या वेतनखण्डनेन प्रबलदण्डतः गुरुदण्डात्, अपमानतः अन्यस्मादपि मानखण्डनादित्यर्थः, भृत्यं नित्यं सततं शत्रुत्वं प्रशिक्षयेत् शिक्षयति भृत्यमनसि शत्रुभावमुपदिशतीत्यर्थः, तादृशव्यवहारेण भृत्याः शत्रवो भवन्तीति भावः॥४१५॥

भृतिदानेन सन्तुष्टा मानेन परिवर्द्धिताः।
सान्त्विता मृदुवाचा ये न त्यजन्त्वधिपं हि ते॥४१६॥

अन्वयः—ये भृतिदानेन सन्तुष्टाः मानेन परिवर्द्धिताः मृदुवाचा सान्त्विताः ते हि अधिपं न त्यजन्ति॥४१६॥

व्याख्या—ये = सेवकाः, भृतिदानेन = वेतनार्पणेन, सन्तुष्टाः = तृप्ताश्चानुनीताः, मानेन = समादरेण, परिवर्द्धिताः = वृद्धिं नीताः अथवा आप्यायिताः, मृदुवाचा = कोमलवचनेन, सान्त्विताः = आश्वासिताः, तें = भृत्याः, हि = इति निश्चयेन, अधिपम् = नृपम्, न = नहि, त्यजन्ति = परित्यागं कुर्वन्ति॥४१६॥

हिन्दी—जो स्वामी सेवक को समय पर वेतन देकर सन्तुष्ट करता है, सम्मानपूर्वक यथावसर प्रोन्नत (Promotion) करता है तथा मीठी बातों से समझाता है, उसे सेवक कभी नहीं छोड़ते हैं॥४१६॥

भृतिदानेनेति। ये भृत्याः भृतिदानेन सन्तुष्टाः मानेन परिवर्द्धिताः तथा मृदुवाचा मधुरवचसा सान्त्विताः, ते हि निश्चितम् अधिपं स्वामिनं न त्यजन्ति॥४१६॥

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ तु मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥४१७॥

अन्वयः—अधमाः धनम् इच्छन्ति, तु मध्यमाः धनमानौ, उत्तमास्तु मानम् इच्छन्ति। हि मानः महतां धनम्॥४१७॥

व्याख्या—अधमाः = नीचजनाः, धनम् = केवलं वित्तम्, इच्छन्ति = अभिलषन्ति, तु = किन्तु, मध्यमाः = मध्यमकोटयः जनाः, धनमानौ = द्रव्यसम्मानौ, उत्तमास्तु = श्रेष्ठजनास्तु, मानम् = आदरम्, इच्छन्ति = वाञ्छन्ति, हि = यतः, मानः = प्रतिष्ठा, महताम् = महनीयजनानाम्, धनम् = द्रव्यम् अस्ति ॥४१७॥

हिन्दी—नीच लोग केवल धन चाहते हैं, मध्यम कोटि के लोग धन और मान दोनों ही चाहते हैं, किन्तु उत्तम जन केवल प्रतिष्ठा अर्थात् सम्मान चाहते हैं। क्योंकि सम्मान ही महान् लोगों का धन होता है ॥४१७॥

अधमा इति। अधमाः जनाः धनम् इच्छन्ति, मध्यमाः धनमानौ, उत्तमास्तु केवलं मानम् इच्छन्ति हि यतः मानः महतां धनम् ॥४१७॥

यथागुणान् स्वभृत्यांश्च प्रजाः संरञ्जयेन्नृपः।
शाखाप्रदानतः कांश्चिदपरान् फलदानतः ॥ ४१८ ॥
अन्यान् सुचक्षुषा हास्यैस्तथा कोमलया गिरा।
सुभोजनैः सुवसनैस्ताम्बूलैश्च धनैरपि ॥ ४१९ ॥
कांश्चित् सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानतः।
वाहनानां प्रदानेन योग्याभरणदानतः ॥ ४२० ॥
छत्रातपत्रचमरदीपिकानां प्रदानतः।
क्षमया प्रणिपातेन मानेनाभिगमेन च ॥ ४२१ ॥
सत्कारेण च ज्ञानेन ह्यादरेण शमेन च।
प्रेम्णा समीपवासेन स्वार्द्धासनप्रदानतः।
सम्पूर्णासनदानेन स्तुत्योपकारकीर्त्तनात् ॥ ४२२ ॥

अन्वयः—नृपः यथागुणान् स्वभृत्यान् च प्रजाः संरञ्जयेत्। तथा च कांश्चित् शाखाप्रदानतः अपरान् फलदानतः अन्यान् सुचक्षुषा हास्यैः तथा कोमलया गिरा सुभोजनैः, सुवसनैः ताम्बूलैः तथा धनैरपि, कांश्चित् कुशलप्रश्नैः अधिकारप्रदानतः वाहनानां प्रदानेन योग्याभरणदानतः छत्रातपत्रचमरदीपिकानां प्रदानतः क्षमया प्रणिपातेन मानेन च अभिगमेन सत्कारेण ज्ञानेन हि आदरेण च शमेन प्रेम्णा समीपवासेन स्वार्द्धासनप्रदानतः सम्पूर्णासनदानेन स्तुत्या उपकारकीर्त्तनात् सर्वान् यथायोग्यान् रञ्जयेत् ॥४१८-४२२॥

व्याख्या—नृपः = राजा, यथागुणान् = गुणानुसारेण, स्वभृत्यान्—स्वस्य = आत्मनः, भृत्यान् = सेवकान्, च = पुनः, प्रजाः = जनाः, संरञ्जयेत् = आह्लादयेत्। तथा च कांश्चित् शाखाप्रदानतः = यत्किञ्चिद्दानेन, अपरान् = अन्यजनान्, फलदानतः = कर्मभोगप्रदानेन, अन्यान् = अपरान् जनान्, सुचक्षुषा = शोभनदृष्ट्या, हास्यैः = मन्दस्मितैः, तथा = तेनैव रूपेण, कोमलया = मधुरया, गिरा = वाचा, सुभोजनैः = रुचिराहारैः, सुवसनैः = शोभनवस्त्रैः, ताम्बूलैः = नागरवल्लीदलैः, तथा धनैः = सम्पद्भिरपि, कांश्चित् = जनान्, कुशलप्रश्नैः = सुष्ठुक्षेमादिजिज्ञासाभिः, अधिकारप्रदानतः = कार्यभारसमर्पणेन, वाहनानाम् = अधिरोहणानाम्, प्रदानेन = प्रत्यर्पणेन, योग्याभरणप्रदानतः = युक्ताऽलङ्कारदानेन, छत्रातपत्रचमरदीपिकानाम् = छत्रकातपवारणव्यजनीप्रकाशकानाम्, प्रदानतः

= प्रत्यर्पणेन, क्षमया = मर्षेण दोषदण्डमुक्तेन वा, सम्पूर्णासनदानेन = समस्तोपवेशनाधार-प्रत्यर्पणेन, स्तुत्या = गुणकीर्त्तनेन, उपकारकीर्त्तनात् = उपकृतिवर्णनात्, सर्वान् = सकलान्, यथायोग्यान् = यथोचितान्, रञ्जयेत् = तोषयेत् ॥ ४१८-४२२ ॥

हिन्दी—राजा किसी को थोड़ा और किसी को कुछ ज्यादा देकर, किसी को सहानुभूतिपूर्वक देखकर तो किसी के साथ मुस्कुराकर, किसी के साथ मीठी-मीठी बातें कर, किसी को रुचिकर भोजन देकर, किसी को कीमती पोशाक देकर, किसी को पान का बीड़ा हाथ में थमाकर, किसी से कुशलक्षेम पूछकर, किसी को विभागीय कार्यभार सौंपकर, किसी को अच्छी सवारी देकर, किसी को उपयुक्त आभूषण देकर, किसी को छतरी, छाता, चमर या दीपक देकर, किसी की गलती अनदेखी कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के साथ कुछ कदम चहलकदमी कर, किसी का सत्कार कर, किसी को अपने ज्ञान से प्रबुद्ध कर, किसी को सम्मान, शान्ति या प्रीति प्रदर्शित कर, किसी को पास बुलाकर, किसी को बगल में बिठाकर, किसी को अपने आसन पर बैठाकर तथा किसी की प्रशस्ति या पूर्वकृत उपकार का वर्णन कर सेवक तथा प्रजाजन को संतुष्ट करें।

यथेत्यादि। नृपः यथागुणं गुणानुसारेण स्वभृत्यान् प्रजाश्च संरञ्जयेत् सन्तोषयेत् तथा च कांश्चित् जनान् शाखाप्रदानतः शाखाप्रदानेन यत्किञ्चनदानेनेत्यर्थः, अपरान् जनान् फलदानेन ततोऽप्यधिकदानेनेत्यर्थः, अन्यान् जनान् सुचक्षुषा शोभनदर्शनेन, हास्यैः कोमलया मधुरया गिरा वाचा, सुभोजनैः सुमिष्टाहारदानैः, सुवसनैः शोभनवस्त्रदानैः ताम्बूलैः ताम्बूलदानैः तथा धनैरपि, कांश्चित् जनान् सुकुशलप्रश्नैः सुमङ्गलवार्त्तापृच्छाभिः, अधिकारप्रदानतः कार्य्यभारप्रदानैः, वाहनानां हस्त्यश्वादीनां प्रदानेन, योग्यानाम् आभरणानां प्रदानतः प्रदानेन, छत्राणां पत्रनिर्मितवृष्टिरौद्रादिनिवारकाणाम् आतपत्राणां वस्त्रनिर्मितवृष्ट्यादिनिवारकाणां चमराणां चामराणामित्यर्थः, तथा दीपिकानां प्रदानतः प्रदानेन, क्षमया दोषमार्जनेन, प्रणिपातेन गुरुजनप्रणामेन, मानेन अभिगमेन समभिव्याहारगमनेन, सत्कारेण पूजनेन, ज्ञानेन शास्त्रीयप्रसङ्गेन, आदरेण यत्नेन, शमेन शान्त्या, प्रेम्णा स्नेहेन, समीपवासेन सन्निधिस्थित्या, स्वस्य अर्द्धासनस्य आसनार्द्धस्य प्रदानतः प्रदानेन सम्पूर्णस्य आसनस्य स्वोपवेशनीयस्य दानेन, स्तुत्या गुणकीर्त्तनेन तथा उपकारकीर्त्तनात् कृतज्ञतयेत्यर्थः, सर्वान् जनान् यथायोग्यं रञ्जयेदिति समुदायार्थः ॥ ४१८-४२२ ॥

यत्कार्य्ये विनियुक्ता ये कार्य्याङ्कैरङ्कयेच्च तान्।
लोहजैस्ताम्रजै रीतिभवै रजतसम्भवैः ॥ ४२३ ॥
सोवर्णै रत्नजैर्वापि यथायोग्यैः स्वलाञ्छनैः।
प्रविज्ञानाय दूरात् तु वस्त्रैश्च मुकुटैरपि ॥ ४२४ ॥

अन्वयः—ये यत्कार्ये विनियुक्ताः तान् दूरात् प्रविज्ञानाय लोहजैः ताम्रजैः रीतिभवैः रजतसम्भवैः सौवर्णैः वा यथायोग्यैः स्वलाञ्छनैः वस्त्रैश्च मुकुटैरपि कार्याङ्कैः अङ्कयेत् ॥ ४२३-४२४ ॥

व्याख्या—ये = भृत्याः, यत्कार्ये = यस्मिन् कर्मणि, विनियुक्ताः = विनियोजिताः, तान् = राजसेवकान्, दूरात् = आरात्, प्रविज्ञानाय = प्रत्यभिज्ञानाय, लोहजैः = लौहोत्पन्नैः, ताम्रजैः = मुनिपित्तलनिर्मितैः, रीतिभवैः = पित्तलसम्भवैः, रजतसम्भवैः = रौप्यमयैः, सौवर्णैः = स्वर्णरचितैः,

रत्नैः = रत्ननिर्मितैः, वा = अथवा, यथायोग्यैः = यथोचितैः, स्वलाञ्छनैः = राजचिह्नयुक्तैः, वस्त्रैश्च = परिधानैश्च, मुकुटैः = शिरोभूषणैरपि, अङ्कयेत् = चिह्नयेत् ॥४२३-४२४ ॥

हिन्दी—पोशाक (Uniform), बैज या बिल्ला (Badge), शिरोभूषण (a covering for the head, Hat) देखकर दूर से ही लोग पहचान ले कि ये किस विभाग के पदाधिकारी (Officer) या कर्मचारी हैं—इसके लिए राजा को चाहिए कि इन्हें इनके पदानुरूप लोहे, ताम्बे, पीतल, चाँदी, सोने या रत्न के बने बैज या बिल्ला, विशेष ढंग की पोशाक तथा शिर पर रखने के लिए यथास्तरीय कलगीदार पगड़ियाँ दे ॥४२३-४२४ ॥

यत्कार्य्ये इति। सौवर्णैरिति। ये भृत्याः यत्कार्य्ये यस्मिन् कार्य्ये विनियुक्ताः, तान् दूरात् प्रविज्ञानाय अस्मिन् कार्य्ये अयं नियुक्त इति झटिति परिज्ञानाय लोहजैः ताम्रजैः रीतिभवैः पित्तलजैरित्यर्थः, रजतसम्भवैः रौप्यनिर्मितैः सौवर्णैः सुवर्णजैः रत्नजैः वापि यथायोग्यैः स्वलाञ्छनैः स्वज्ञापकैः वस्त्रैः मुकुटैश्च कार्य्याङ्कैः कार्य्यचिह्नैः अङ्कयेत् चिह्नितान् कुर्यात् ॥४२३-४२४ ॥

वाद्यवाहनभेदैश्च भृत्यान् कुर्य्यात् पृथक् पृथक्।
स्वविशिष्टं च यच्चिह्नं न दद्याद् कस्यचिन्नृपः ॥ ४२५ ॥

अन्वयः—नृपः भृत्यान् वाद्यवाहनभेदैश्च पृथक् पृथक् कुर्यात्। स्वविशिष्टं यत् चिह्नं कस्यचित् न दद्यात् ॥४२५ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, भृत्यान्, वाद्यवाहनभेदैश्च—वाद्यानाम् = वादित्राणाम्, वाहनानाम् = यानानाम्, भेदैः = अन्तरैः, अर्थात् अस्य सेवकस्य यातायातादिषु वादित्रं भवेत् किंवाऽयञ्च सेवकः यानेन गमनागमनं कुर्यादित्येवंरूपैः विशेषैश्च सामान्यसेवकान् विशिष्टाञ्च पदाधिकारिणः पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, कुर्यात् = सम्पादयेत्, तथा स्वविशिष्टम्—स्वस्य = आत्मनः, विशिष्टम् = असामान्यम्, यत् चिह्नम् = छत्रमुकुटाद्यभिज्ञानम्, तत् कस्यचित् = केषाञ्चिदपि, न = नहि, दद्यात् = प्रत्यर्पयेत् ॥४२५ ॥

हिन्दी—यातायात के क्रम में विशिष्ट पदाधिकारी एवं सामान्य कर्मचारियों के भेद को स्पष्ट करने के लिए अलग-अलग वाद्य एवं वाहनों की व्यवस्था राजा को करनी चाहिए। राजा अपने विशेष राज्यचिह्न; जैसे छत्र-चामरादि किसी अन्य के उपयोग में कदापि न दे ॥४२५ ॥

वाद्येति। किञ्चेति चार्थः। नृपः भृत्यान् वाद्यानां वाहनानाञ्च भेदैः अस्य भृत्यस्य गमनागमनादिषु वाद्यं स्यात् अयञ्च वाहनेन यातायातं कुर्यादित्येवंरूपैः विशेषैश्च भृत्यान् विशिष्टान् अधिकारिण इत्यर्थः, पृथक् पृथक् विशेषचिह्नितान् इत्यर्थः कुर्यात्। तथा स्वस्य विशिष्टं यत् चिह्नं छत्रचामरादिकं तत् कस्यचित् न दद्यात् ॥४२५ ॥

दश प्रोक्ताः पुरोधाद्या ब्राह्मणाः सर्व एव ते।
अभावे क्षत्रिया योज्यास्तदभावे तथोरुजाः ॥ ४२६ ॥

अन्वयः—पुरोधाद्या ये दश प्रोक्ताः ते सर्वे एव ब्राह्मणाः। अभावे क्षत्रियाः, तदभावे ऊरुजाः योज्याः ॥४२६ ॥

व्याख्या—पुरोधाद्याः = पुरोहितप्रभृतयः, ये = जनाः, दश = प्रधानपुरुषाः, प्रोक्ताः = कथिताः, ते = जनाः, सर्वे एव = सकलाः एव, ब्राह्मणाः = विप्राः। अभावे = ब्राह्मणाभावे, क्षत्रियाः = राजन्याः, तदभावे = क्षत्रियाभावे, ऊरुजाः = वैश्याः, योज्याः = नियोक्तव्या इति ॥४२६ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त पुरोहितादि दस प्रधान पुरुषों के पद पर केवल ब्राह्मणों को ही नियुक्त करना चाहिए। ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रियों को और क्षत्रियों के अभाव में उक्त पदों पर वैश्यों को नियुक्त करना चाहिए॥४२६॥

दशेति। पुरोधाद्याः पुरोहितप्रभृतयः सन्धिरार्षः। ये दश प्रकृतय इत्यर्थः प्रोक्ताः कथिताः, ते सर्वे एव ब्राह्मणाः भवेयुरित्यर्थः, अभावे ब्राह्मणानामिति शेषः क्षत्रियाः, तदभावे क्षत्रियाभावे ऊरुजाः वैश्या इत्यर्थः, योज्याः तत्तत्कर्म्मणीति शेषः॥४२६॥

नैव शूद्रास्तु संयोज्या गुणवन्तोऽपि पार्थिवैः॥४२७॥

अन्वयः—पार्थिवैः गुणवन्तोऽपि शूद्राः नैव योज्याः॥४२६॥

व्याख्या—पार्थिवैः = राजभिः, गुणवन्तोऽपि = सुदक्षाः अपि, शूद्राः = वृषलाः, उक्तप्रधानपदानामुपरि, नैव = कदाचिदपि न, योज्याः = नियोक्तव्याः॥४२७॥

हिन्दी—उक्त दस प्रधान पुरुषों के पदों पर सुदक्ष होने के बावजूद शूद्रों की नियुक्ति कोई राजा न करे॥४३७॥

नैवेति। शूद्रास्तु गुणवन्तोऽपि पार्थिवैः नैव संयोज्याः तत्तत्प्रकृतिकर्म्मणीति शेषः॥ ४२७॥

भागग्राही क्षत्रियस्तु साहसाधिपतिश्च सः।
ग्रामपो ब्राह्मणो योज्यः कायस्थो लेखकस्तथा॥४२८॥

अन्वयः—क्षत्रियस्तु भागग्राही साहसाधिपतिश्च, सः ब्राह्मणः ग्रामपः तथा कायस्थः लेखकः योज्यः॥४२८॥

व्याख्या—क्षत्रियस्तु = राजन्यस्तु, भागग्राही = राजस्वसङ्कलने समाहर्त्तापदे नियुक्तः, स एव = क्षत्रिय एव, साहसाधिपतिः = प्रशासनाधिकारी, आरक्षी अधीक्षकपदे नियोक्तव्यः, ब्राह्मणः = विप्रः, ग्रामपः = ग्रामाध्यक्षो भवेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, कायस्थः = मसिजीवी, लेखकः = लेखपालः, योज्यः = नियोक्तव्यः॥४२८॥

हिन्दी—समाहर्त्ता (Collector) एवं प्रशासक (Administrator, as superintendent of police) के पद पर क्षत्रिय, ग्रामप्रमुख के पद पर ब्राह्मण एवं हिसाब-किताब लिखने वाले (Accountant) के पद पर कायस्थ को नियुक्त करना चाहिए॥४२८॥

भागग्राहीति। क्षत्रियः भागग्राही राजकरग्रहणे नियुक्तः तथा साहसाधिपतिः साहसकार्य्यदत्तपारुष्यादिरूपकार्य्याणाम् अधिपतिः शासनाधिकारीत्यर्थः, ब्राह्मणः ग्रामपः ग्रामाध्यक्षः तथा कायस्थः लेखकः योज्यः नियोक्तव्यः॥४२८॥

शुल्कग्राही तु वैश्यो हि प्रतिहारश्च पादजः।
सेनाधिपः क्षत्रियस्तु ब्राह्मणस्तदभावतः॥४२९॥

अन्वयः—वैश्यः शुल्कग्राही च पादजः प्रतिहारः सेनाधिपः क्षत्रियः तदभावतः ब्राह्मणः॥४२९॥

व्याख्या—वैश्यः = वणिक्, हि = इति निश्चयेन, शुल्कग्राही—शुल्कानाम् = वाणिज्यादिषु राजकराणाम्, ग्राही = सङ्कलनकर्त्ता, पादजः = शूद्रस्तु, प्रतिहारः = द्वारपालः, सेनाधिपः = बलाध्यक्षः, क्षत्रियः = राजन्यः, तदभावतः—तत् = तस्य, अभावतः = अविद्यमानतः, ब्राह्मणः = विप्रः, नियोज्यः॥४२९॥

हिन्दी—चूंगी-वसूलकर्त्ता (Sales tax Inspector) के पद पर वैश्य को, द्वारपाल (Door Keeper) के पद पर शूद्र को, सेनाध्यक्ष के पद पर क्षत्रिय तथा क्षत्रिय के अभाव में ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिए ॥४२९ ॥

शुल्कग्राहीति। वैश्यः शुल्कानां वाणिज्यादिषु राजकराणां ग्राही पादजः शूद्रः प्रतिहारः द्वारपालः क्षत्रियः सेनाधिपः तदभावे क्षत्रियाभावे ब्राह्मणश्च सेनाधिपः नियोक्तव्य इति शेषः ॥४२९ ॥

न वैश्यो न च वै शूद्रः कातरश्च कदाचन।
सेनापतिः शूर एव योज्यः सर्वासु जातिषु ॥४३० ॥

अन्वयः—कदाचन वैश्यो न शूद्रश्च न च कातरश्च न। सर्वासु जातिषु शूर एव सेनापतिः योज्यः ॥४३० ॥

व्याख्या—कदाचन = कस्यामपि अवस्थायाम्, वैश्यः = वणिक्, न = नहि, शूद्रश्च = वृषलश्च, न = नहि, कातरश्च = भीतश्च, न = नैव, प्रत्युत सर्वासु = सकलासु, जातिषु = वर्णेषु, शूर एव = वीर एव, सेनापतिः = बलाध्यक्षः, योज्यः = नियोक्तव्यः ॥४३० ॥

हिन्दी—वैश्य, शूद्र या कायर को सेनापति के पद पर कभी नियुक्त नहीं करना चाहिए। किन्तु सभी जातियों में जो वीर एवं सुयोग्य होता है, वही सेनापति के पद पर नियुक्त होता है ॥४३० ॥

नेति। कदाचन वैश्यः सेनापतिर्न, शूद्रः न कातरः भीतश्च न भवेदिति शेषः। सर्वासु जातिषु शूर एव बलवानेव सेनापतिः योज्यः ॥४३० ॥

ससङ्करचतुर्वर्णधर्मोऽयं नैव यावनः।
यस्य वर्णस्य यो राजा स वर्णः सुखमेधते ॥४३१ ॥

अन्वयः—अयं ससङ्करचतुर्वर्णधर्मः न यावनः। यस्य वर्णस्य यः राजा स वर्णः सुखम् एधते ॥४३१ ॥

व्याख्या—अयम् = एषः, ससङ्कराणाम् = समाकीर्णजातिसंहितानाम्, चतुर्वर्णानाम्—चतुर्णाम् = चतुःसंख्यकानाम्, वर्णानाम् = जातीनाम्, धर्मः, न = नहि, यावनः = यवनजाातीनाम्। यस्य, वर्णस्य = जातेः, यः राजा = नृपतिः, सः = असौ, वर्णः = जातिः, सुखम् = आनन्दम्, एधते = वर्द्धते ॥४३१ ॥

हिन्दी—यवनों को छोड़कर सङ्कीर्ण जाति सहित चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों) का यही धर्म है। जिस जाति का राजा होता है, उस राज्य में उस जाति के लोग सुखी होते हैं ॥४३१ ॥

ससङ्करेति। अयं ससङ्कराणां मूर्द्धाभिषिक्ताम्बष्ठाप्रभृतिसहितानां चतुर्णां वर्णानां ब्राह्मणादीनां धर्मः राजधर्मः न यातनः पापाश्रयादिति भावः। यस्य वर्णस्य जातेरित्यर्थः, यः राजा यद्वर्णीय इत्यर्थः, स वर्णः सुखम् एधते प्राप्नोति ॥४३१ ॥

नोपकृतं मन्यते स्म न तुष्यति सुसेवनैः।
कथान्तरे न स्मरति शङ्क्ते प्रलपत्यपि।
क्षुब्धस्तनोति मर्माणि तं नृपं भृतकस्त्यजेत् ॥४३२ ॥

अन्वयः—यः उपकृतं न मन्यते स्म, सुसेवनैः न तुष्यति, कथान्तरे न स्मरति प्रत्युत शङ्कते, प्रलपत्यपि क्षुब्धः सन् मर्माणि तनोति; भृतकः तं नृपं त्यजेत् ॥ ४३२ ॥

व्याख्या—यः = राजा, उपकृतम् = कृतोपकारम्, न = नहि, मन्यते स्म = स्वीकरोति, सुसेवनैः = शोभनोपासनैः, न = नहि, तुष्यति = आप्यायति, कथान्तरे = प्राप्तप्रसङ्गे, न = नहि, स्मरति = स्मरणं करोति, प्रत्युत शङ्कते = सन्दिग्धो भवति, प्रलपति = निरर्थकं वदति, तथा क्षुब्धः सन् = उद्विग्नो भूत्वा, मर्माणि = मर्मस्थलानि, तनोति = पीडयति, च, तम् = नृपम्, भृतकः = सेवकः, त्यजेत् = परिहरेत् ॥ ४३२ ॥

हिन्दी—जो किसी के उपकार को न माने, अच्छी सेवा से भी संतुष्ट न हो, वार्त्तालाप के क्रम में सेवक को भूल जाय, बात-बात पर सन्देह करे, निरर्थक बकवास करे, व्याकुल होकर मर्मभेदी वचन बोले; ऐसे राजा को सेवक छोड़ दे ॥ ४३२ ॥

नेति। यः नृपतिः उपकृतम् उपकारं न मन्यते न स्वीकरोति, सुसेवनैः सुपरिचर्याभिश्च न तुष्यति न तुष्टो भवति, कथान्तरे प्रसङ्गविशेषे न स्मरति प्रत्युत शङ्कते तथा प्रलपति वृथा वाक्यं कथयति तथा क्षुब्धः सन् मर्माणि तनोति पीडयति च भृतकः भृत्यः तं नृपं त्यजेत् ॥ ४३२ ॥

लक्षणं युवराजादेः कृत्यमुक्तं समासतः ॥ ४३३ ॥

इति शुक्रनीतौ युवराजादिलक्षणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अन्वयः—युवराजादेः लक्षणं कृत्यञ्च समासतः उक्तम् ॥ ४३३ ॥

व्याख्या—युवराजादेः = राजकुमारादेः, लक्षणम् = परिभाषा, कृत्यञ्च = कार्य्यञ्च, समासतः = सङ्क्षेपेण, उक्तम् = कथितम् ॥ ४३३ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में 'युवराजादिलक्षण' नामक द्वितीय अध्याय की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

हिन्दी—इस तरह युवराजादि के लक्षण एवं उनके कार्यों का संक्षेप में वर्णन किया गया ॥ ४३३ ॥

लक्षणमिति। युवराजादेः लक्षणं कृत्यञ्च समासतः सङ्क्षेपेण उक्तम् ॥ ४३३ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता द्वितीयाध्यायव्याख्या समाप्ता ॥

तृतीयोऽध्यायः

अथ साधारणं नीतिशास्त्रं सर्वेषु चोच्यते।
सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ १॥

अन्वयः—अथ सर्वेषु साधारणं नीतिशास्त्रम् उच्यते। सर्वभूतानां सर्वाः प्रवृत्तयः सुखार्थाः मताः॥ १॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, सर्वेषु = सकलजनेषु, साधारणम् = सार्वजनिकम्, नीतिशास्त्रम् = नयविद्याशास्त्रम्, उच्यते = कथ्यते। सर्वभूतानाम् = सकलजनानाम्, सर्वाः = सकलाः, प्रवृत्तयः = कार्यनिर्वाहाः, सुखार्थाः = हर्षाभिलाषार्थाः, मताः = अभिप्रायाः॥ १॥

हिन्दी—इसके बाद अब सर्वसाधारण के लिए नीतिशास्त्र का वर्णन करते हैं। सभी प्राणियों में काम करने की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सभी आत्मसुख के लिए ही हैं॥ १॥

अथेति। अथ युवराजलक्षणादिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः, सर्वेषु राजप्रजासाधारणेषु नीतिशास्त्रम् उच्यते। सर्वभूतानां सर्वेषां प्राणिनां सर्वाः प्रवृत्तयः कार्य्येषु समुद्योगाः सुखार्थाः सुखमात्रप्रयोजनसाधनाः मताः॥ १॥

सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत्।
त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत् तं चाविरोधयन्।
अनुयायात् प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमः॥ २॥

अन्वयः—धर्मात् विना सुखं न भवति, तस्मात् धर्मपरो भवेत्। त्रिवर्गशून्यम् आरम्भं न भजेत्। तम् अविरोधयन् मध्यमः सर्वधर्मेषु प्रतिपदम् अनुनयात्॥ २॥

व्याख्या—धर्मम् = पुण्यम्, विना = अन्तरेण, सुखम् = सौख्यं भोगं वा, न = नहि भवति, तस्मात् = तेन हेतुना, धर्मपरः = धर्मनिष्ठः, भवेत् = स्यात्। त्रिवर्गशून्यम्—त्रयाणाम् = धर्मकामार्थानाम्, वर्गः = समूहः, त्रिवर्गस्तेन शून्यम् = रहितम्, आरम्भम् = उपक्रमम्, न = नहि, भजेत् = कुर्यात्, तञ्च = त्रिवर्गम्, अविरोधयन् = अत्यजन्, मध्यमः = मध्यवर्त्ती सन्, सर्वधर्मेषु, —सर्वेषु = सकलेषु, धर्मेषु = पुण्येषु, प्रतिपदम् = पदे पदे, अनुयायात् = अनुसरणं कुर्यात्॥ २॥

हिन्दी—धर्म के बिना सुख नहीं होता है, अतः धर्मनिष्ठ बनना चाहिए। धर्म, अर्थ और काम के समूह को त्रिवर्ग कहते हैं। त्रिवर्ग रहित कोई काम न करे। इनके विरोध को बचाते हुए मध्यवर्ती होकर सभी काम में पग–पग पर इनका अनुसरण करना चाहिए॥ २॥

टिप्पणी—(१) त्रिवर्ग—सांसारिक जीवन के तीन पदार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ और काम।

(२) तीन स्थितियाँ—हानि, स्थिरता और वृद्धि।

'क्षयः स्थानञ्च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीतिवेदिनाम्'। (अमरकोष)

सुखमिति। धर्मात् विना सुखं न भवति, तस्मात् धर्मपरः धर्मनिष्ठः भवेत्। त्रयाणां धर्मकामार्थानां वर्गः त्रिवर्गः तेन शून्यम् आरम्भं कर्म न भजेत् न कुर्यात्। तञ्च त्रिवर्गम् अविरोधयन् अत्यजन् मध्यमः मध्यवर्त्ती सन् सर्वधर्मेषु सर्वेषु कार्य्येषु प्रतिपदम् अनुयायात् अनुगच्छेत् ॥ २ ॥

नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः ।
स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेशोऽनुल्वणोज्ज्वलः ।
धारयेत् सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः ॥ ३ ॥

अन्वयः—नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेशः तथा अनुल्वणः उज्ज्वलश्च सन् रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः सततं धारयेत् ॥ ३ ॥

व्याख्या—नीचाः = नताः, कर्त्तनादिति, रोमाणि = केशाः, नखाः = कररुहाः, श्मश्रवश्च = कूर्चाश्च, यस्य तथोक्तस्य, निर्मलानि = विमलानि, अङ्घ्री = चरणौ, मलायनानि = इन्द्रियद्वाराणि, यस्य तथाभूतः, स्नानशीलः = कृतमवगाहनम्, सुसुरभिः = शोभनसौरभानुलिप्तः, सुवेशः = सुवसनः, तथा अनुल्वणः = अनुद्धतः, उज्ज्वलश्च = रुचिरश्च सन्, रत्नानि = अश्मभेदाः, सिद्धमन्त्राणि = अनुष्ठितवेदवाक्यानि, महौषधीश्च = उत्कृष्टतमभेषजम्, सततम् = अनवरतम्, धारयेत् = ग्रहणं कुर्यात् ॥ ३ ॥

हिन्दी—नख, बाल, दाढ़ी, मूँछ कटवा कर हाथ, पैर, कान, आँख, मुँह को साफ कर, स्नानोपरान्त सुगन्धित द्रव्यों का लेप कर, विनीत, विमल सुन्दर वेश बनाकर, रत्नसाधित मंत्र एवं उत्कृष्टतम औषधि हमेशा धारण करना चाहिए ॥ ३ ॥

नीचेति। नीचाः खर्वाः कर्त्तनादिति भावः, रोमाणि नखाः श्मश्रवश्च यस्य तथोक्तः निर्मलानि परिशोधितानि अङ्घ्री पादौ मलायनानि मलस्थानानि इन्द्रियद्वाराणीत्यर्थः, तथाभूतः स्नानशीलः कृतस्नानः सुसुरभिः गन्धद्रव्यानुलिप्तः सुवेशः शोभनपरिच्छदः तथा अनुल्वणः अनुद्धतः उज्ज्वलश्च सन् रत्नानि सिद्धमन्त्राणि महौषधीश्च सततं धारयेत् ॥ ३ ॥

सातपत्रपदत्राणो विचरेद् युगमात्रदृक् ।
निशि चात्ययिके कार्य्ये दण्डी मौली सहायवान् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सातपत्रपदत्राणः युगमात्रदृक् विचरेत्। निशि च आत्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान् विचरेत् ॥ ४ ॥

व्याख्या—आतपत्रपदत्राणः– आतपत्रेण = आतपवारणेन, पदत्राणाभ्याञ्च = उपानहाभ्याञ्च, सहितः, युगमात्रदृक्– युगमात्रे = योक्त्रपरिमिते भूभागे, दृष्टिः = अवलोकनम्, यस्य तथाभूतस्य, विचरेत् = भ्रमणं कुर्यात्। च = पुनः, निशि = रात्रौ, आत्ययिके = अपरिहार्ये विनाशकरे वा, कार्ये = कृत्ये, दण्डी—दण्डमस्यास्तीति दण्डी = दण्डधरः, मौली = शिरस्त्राणयुतम्, सहायवान् = ससहायः, विचरेत् = भ्रमणं कुर्यात् ॥ ४ ॥

हिन्दी—सिर पर छाता, पैरों में जूते डालकर जुए भर जमीन पर आँखें टिकाये राह में चलना चाहिए। किसी दुर्घटनावश रात में यदि घर से बाहर निकलना अनिवार्य हो तो हाथ

में डंडा, सिर पर पगड़ी बाँधकर तथा साथ में किसी सहायक को लेकर ही निकलना चाहिए ॥ ४ ॥

सातपत्रेति। आतपत्रेण छत्रेण पदत्राणाभ्यां पादुकाभ्याञ्च सहितः तथा युगमात्रदृक् युगमात्रे युगाख्यरथकाष्ठपरिमिते भूभागे दृक् दृष्टिर्यस्य तथोक्तः सन् बहुदूरदर्शने पदस्खलनसम्भवादिति भावः, विचरेत् एतच्च दिवारात्रसाधारणविषयम्। निशि रात्रौ आत्ययिके अमङ्गलजनके कार्य्ये व्यापारे उपस्थिते इति शेषः, दण्डी यष्टिपाणिः मौली उष्णीषादिना बद्धशिराः तथा सहायवान् ससहायः विचरेदिति शेषः ॥ ४ ॥

न वेगितोऽन्यकार्य्ये स्यान्न वेगान् धारयेत् बलात्।
भक्त्या कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ॥ ५ ॥

अन्वयः—वेगितः अन्यकार्ये न स्यात्, बलात् वेगान् न धारयेत्। किञ्च इतरदूरगः भक्त्या कल्याणमित्राणि सेवेत ॥ ५ ॥

व्याख्या—वेगितः = मलमूत्रादिवेगवान्, अन्यकार्ये – अन्यस्मिन् = अपरस्मिन्, कार्ये = कृत्ये, तत्परो न स्यात् = न भवेत्, बलात् = सामर्थ्यात्, वेगान् = मूत्रविष्ठादिनिर्गमप्रवृत्तीः, न = नहि, धारयेत् = अवरोधयेत्। किञ्च इतरदूरगः = दुर्जनदूरगो भूत्वा, भक्त्या = निष्ठापूर्वकेन, कल्याणानि = मङ्गलानि, मित्राणि = सुहृदश्च, सेवेत = सेवनं कुर्यात् ॥ ५ ॥

हिन्दी—मल-मूत्र निकलने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोककर कोई अन्य काम नहीं करना चाहिए। दुर्जनों से दूर रहकर कल्याणकारी काम करते हुए निष्ठापूर्वक मित्रों का आनन्द लेना चाहिए ॥ ५ ॥

नेति। वेगितः मलमूत्रादिवेगवान् अन्यकार्य्ये अन्यस्मिन् कर्मणि तत्परः न स्यात्। वेगान् बलाच्च न धारयेत् वेगसन्धारणं न कुर्य्यात्। किञ्च इतरदूरगः निकटगः दूरगश्च भक्त्या कल्याणानि मित्राणि च सेवेत ॥ ५ ॥

हिंसास्तेयान्यथाकामपैशुन्यं परुषानृतम्।
सम्भिन्नालापव्यापादममिथ्यादृग्विपर्य्ययम्।
पापकर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हिंसास्तेयान्यथाकामपैशुन्यं परुषानृतं सम्भिन्नालापव्यापादममिथ्यादृग्विपर्ययम् इति कायवाङ्मनसैः दशधा पापकर्म त्यजेत् ॥ ६ ॥

व्याख्या—हिंसा = अपकृतिः, स्तेयम् = परद्रव्यहरणम्, अन्यथाकामः = अवैधरतिः, पैशुन्यम् = परोक्षपरीवादः, परुषम् = कठोरता, अनृतम् = अलीकम्, सम्भिन्नेन = भेदयुक्तेन, आलापेन = सम्भाषणेन, व्यापः = मनोभङ्गापादनम्, अदमः = अनिग्रहः, मिथ्यादृक् = नास्तिकता, "मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता" इत्यमरः। विपर्ययः = व्यत्यासः, इति = इत्येवम्, कायवाङ्मानसैः = शरीरवचनचेतोभिः, सम्पादितम्, दशधा = पूर्वोक्तानि दशपापकर्माणि, त्यजेत् = परिहरेत् ॥ ६ ॥

हिन्दी–हत्या, चोरी, अवैध रति, चुगलखोरी, दुर्वचन, झूठ, मर्मभेदी वार्त्तालाप, अशिष्टता, नास्तिकता और विरोध—ये दस पापकर्म हैं। देह, वचन और मन से भी इन्हें नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥

हिंसेति। हिंसा प्राणिहत्या, स्तेयं चौर्य्यम्, अन्यथाकामः अवैधरतिरित्यर्थः, पैशुन्यं खलता,

परुषं निष्ठुरता, अनृतं मिथ्या सम्भिन्नेन सम्यक् विभिन्नेन आलापेन व्यापः मनोभङ्गापादनम्, अदमः अविनयः, मिथ्यादृक् नास्तिकता, 'मिथ्यादिष्टर्नास्तिकता' इत्यमरः। विपर्य्ययः अवैधाचरणम् इत्येवं कायवाङ्मानसैः कृतं दशधा पापकर्म त्यजेत् ॥६॥

धर्मकार्य्यं यतन् शक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र वै नास्ति संशयः ॥७॥

अन्वयः—चेत् मानवः शक्त्या यतन् धर्मकार्यं न प्राप्नोति, अत्र तत् पुण्यं प्राप्तो भवति वै संशयः न अस्ति ॥७॥

व्याख्या—चेत् = यदि, मानवः = नरः, शक्त्या = आत्मसामर्थ्येन, यतन् = प्रयत्नं कुर्वन्, धर्मकार्यम् – धर्मस्य = पुण्यकर्मणः, कार्यम् = फलम्, न = नहि, प्राप्नोति = आप्नोति, तदा सः, अत्र = अस्मिन् संसारे, तत् = तस्य धर्मकार्यस्य, पुण्यम् = अनुष्ठानजनितपुण्यफलं, वै = इति निश्चयेन, प्राप्तः = अधिगतः, भवति = जाायते, अत्र संशयः = सन्देहः, न = नहि, अस्ति = भवति ॥७॥

हिन्दी—कोई व्यक्ति अपने सामर्थ्यभर प्रयास करने के बावजूद अपने किये गये धर्म का फल नहीं पाता है तो निश्चय ही इसी संसार में उसे कृतधर्म का फल मिलेगा ही, इसमें सन्देह नहीं है ॥७॥

धर्मकार्य्यमिति। चेत् यदि मानवः शक्त्या यतन् यतमानः आर्षोऽयं प्रयोगः। धर्मकार्य्यं न प्राप्नोति अन्तराविघ्नापातादिति भावः, तदा सः अत्र इह लोके तत्पुण्यं तस्य धर्मकार्य्यस्य पुण्यम् अनुष्ठानजनितमित्यर्थः, प्राप्तः भवति, वैशब्दोऽवधारणे। संशयः नास्ति निश्चितमेव प्राप्नोतीत्यर्थः ॥७॥

मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नाभिरोचयेत्।
तत् प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥८॥

अन्वयः—मनसा पापं चिन्तयन् कर्मणा न अभिरोचयेत्। इत्येवं तस्य तत् फलं प्राप्नोति इति धर्मविदः विदुः ॥८॥

व्याख्या—मनसा = चेतसा, पापम् = दुष्कृतम्, चिन्तयन् = विचारयन्, कर्मणा = कार्यरूपेण, न = नहि, अभिरोचयेत् = अभिलषेत्। इत्येवं सति, तस्य = कर्मणः, तत्फलम् = अपकर्मपरिणामः, प्राप्नोति = आप्नोति, इति = एवम्, धर्मविदः = धर्मज्ञाः, विदुः = जानन्ति ॥८॥

हिन्दी—मन से पापों का अनुचिन्तन करते हुए भी उसे कार्यरूप में परिणत करने की बात सोचे भी नहीं। क्योंकि अपने कुकर्म का फल व्यक्ति को भुगतना ही पड़ता है–ऐसा धर्मज्ञों का कहना है ॥८॥

मनसेति। मनसा पापं चिन्तयन् कर्मणा न अभिरोचयेत् न इच्छेत्। एवं सति पापकर्मणि कृते सतीत्यर्थः, तस्य कर्मणः तत् फलं प्राप्नोति इति धर्मविदः धर्मज्ञाः पण्डिताः विदुः जानन्ति ॥८॥

अवृत्तिव्याधिशोकार्त्ताननुवर्त्तेत शक्तितः।
आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ॥९॥

अन्वयः—अवृत्तीन् व्याधिशोकार्त्तान् शक्तितः अनुवर्त्तेत। कीटपिपीलिकमपि सततम् आत्मवत् पश्येत् ॥ ९ ॥

व्याख्या—अवृत्तीन् = जीविकाशून्यजनान्, व्याधिशोकार्त्तान् = व्याधिपीडितान्, रोगग्रस्तान्, शोकार्त्तान् = परितप्तान्, शक्तितः = सामर्थ्यानुसारतः, अनुवर्त्तेत = सहयोगेनोपकुर्यात्। कीटपिपीलिकमपि – कीटान् = कृमीन्, पिपीलिकाश्च = पिलुकान्, चापि, सततम् = निरन्तरम्, आत्मवत् = आत्मतुल्यम्, पश्येत् = अवलोकयेत् ॥ ९ ॥

हिन्दी—जीविकारहित, व्याधिपीड़ित एवं शोकार्त्त व्यक्ति की यथाशक्ति मदद करनी चाहिए। कीड़े-मकोड़े को भी दुःख में अपने दुःख की तरह जानना चाहिए ॥ ९ ॥

अवृत्तीति। अवृत्तीन् वृत्तिरहितान् जीविकाशून्यानित्यर्थः, तथा व्याधिशोकार्त्तान् रोगार्त्तान् शोकार्त्तांश्च शक्तितः यथाशक्ति अनुवर्त्तेत साहाय्यदानेन उपकुर्य्यादित्यर्थः। किञ्च कीटपिपीलिकमपि कीटान् पिपीलिकाश्च क्षुद्रजीवानपि सततम् आत्मवत् पश्येत् ॥ ९ ॥

उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ।
सम्पद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्षेत् फले न तु ॥ १० ॥

अन्वयः—अपकारपरेऽपि अरौ उपकारप्रधानः, सम्पद्विपत्सु एकमनाः स्यात्। हेतौ ईर्षेत् न तु फले ॥ १० ॥

व्याख्या—अपकारपरेऽपि = अहितसाधनतत्परेऽपि, अरौ = रिपौ, उपकारप्रधानः = हितसाधने तत्परः, सम्पद्विपत्सु—सम्पत्सु = ऐश्वर्येषु, विपत्सु = विपन्नावस्थासु च, एकमनाः = अवहितचित्तः, स्यात् = भवेत्। हेतौ = कारणे एव, ईर्षेत् = विद्विष्यात्, न = नहि, तु = किन्तु, फले = परिणामे ईर्षेत् ॥ १० ॥

हिन्दी—अहितसाधन में तत्पर अपने दुश्मन का भी हितसाधन ही करना चाहिए। सम्पन्नता और विपन्नता दोनों स्थितियों में एकचित्त रहना चाहिए। किसी की उन्नति के कारण से ईर्ष्या होनी चाहिए, न कि उस उन्नति के परिणाम से ॥ १० ॥

उपकारेति। अपकारपरेऽपि अरौ शत्रौ उपकारप्रधानः उपकारपरः तथा सम्पद्विपत्सु सम्पत्सु विपत्सु च एकमनाः अविचलितचित्तः स्यात्। किञ्च हेतौ कारणे सति ईर्षेत् विद्विष्यात् परमिति शेषः, तु किन्तु फले न, न विद्विष्यादित्यर्थः, विद्वेषेण फलहानिर्न कर्त्तव्येति भावः ॥ १० ॥

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम्।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः ॥ ११ ॥

अन्वयः—पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः काले हितं मितम् अविसंवादि पेशलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥

व्याख्या—पूर्वाभिभाषी = पूर्वालापकारी, सुमुखः = सुवदनम्, सुशीलः = शिष्टः, करुणामृदुः—करुणया = दयया, मृदुः = कोमलः, काले = यथावसरे, हितम् = हितकरम्, मितम् = परिमितम्, अविसंवादि = सुसंवासः, पेशलम् = मृदुवचनम्, ब्रूयात् = वदेत् ॥ ११ ॥

हिन्दी—किसी के साथ प्रसन्नवदन होकर स्वयं अपनी ओर से ही वार्त्तालाप प्रारम्भ करना चाहिए। व्यक्ति को सुशील, दयालु एवं कोमलचित्त होना चाहिए। अवसर आने पर थोड़े शब्दों में हितकर धोखाधड़ी रहित मधुर बातें बोलनी चाहिए ॥ ११ ॥

काले इति। पूर्वाभिभाषी पूर्वालापकारी निरहङ्कारत्वादिति भावः, सुमुखः प्रसन्नवदनः सुशीलः सच्चरित्रः करुणामृदुः दयाशीलः सन् काले योग्ये काले हितं मितं परिमितं न तु वृथाबहुलमित्यर्थः, अविसंवादि सुसङ्गतं पेशलं मधुरञ्च वचः ब्रूयात् ॥११॥

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शङ्कितः ॥१२॥

अन्वयः—एकः न सुखी, सर्वत्र न विस्रब्धः च न शङ्कितः भवेत् ॥१२॥

व्याख्या—एकः = एकाकी एव, न = नहि, सुखी = सुखोपभोगी, सर्वत्र = सर्वस्मिन् जने, न = नहि, विश्रब्धः = विश्वस्तः, च = पुनः, न = नहि, शङ्कितः = सन्दिग्धः भवेदिति ॥१२॥

हिन्दी—अकेले सुखासक्त नहीं होना चाहिए। न सबका विश्वास करना चाहिए और न सब पर सन्देह ही ॥१२॥

नेति। एकः एकाकी न सुखी सुखासक्तः न, सर्वत्र सर्वस्मिन् जने विश्रब्धः विश्वासी न, तथा शङ्कितश्च न भवेदिति शेषः ॥१२॥

न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ॥१३॥

अन्वयः—कञ्चिदात्मनः शत्रुं न आत्मानं कश्चित् रिपुं न। प्रभोः अपमानात् निःस्नेहतां च न प्रकाशयेत् ॥१३॥

व्याख्या—कञ्चित् = कमपि जनम्, आत्मनः = स्वस्य, शत्रुम् = अरिम्, न = नहि, आत्मानञ्च = स्वञ्च, कस्यचित् = जनस्य, रिपुम् = शत्रुम्, न = नहि। प्रभोः = स्वामिनः सकाशात्, अपमानात् = परिभवात्, निःस्नेहताम् = निष्ठुरताम्, च, न = नहि, प्रकाशयेत् = कथयेत् ॥१३॥

हिन्दी—स्वयं न किसी का शत्रु बने और न किसी को अपना शत्रु बनने दे। स्वामी द्वारा किया गया अपमान या निष्ठुर व्यवहार किसी से न कहे ॥१३॥

नेति। कञ्चित् जनम् आत्मनः शत्रुं न आत्मानञ्च कस्यचित् रिपुं शत्रुं न, प्रभोः सकाशात् अपमानं न, निःस्नेहतां स्नेहशून्यताञ्च न प्रकाशयेत् ॥१३॥

जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति।
तं तथैवानुवर्त्तेत पराराधनपण्डितः ॥१४॥

अन्वयः—पराराधनपण्डितः जनस्य आशयम् आलक्ष्य यो यथा परितुष्यति तं तथैवानुवर्त्तेत ॥१४॥

व्याख्या—पराराधनपण्डितः—परेषाम् = अन्येषाम्, आराधने = प्रसादने, पण्डितः = कुशलजनः, जनस्य = लोकस्य, आशयम् = मनोभावम्, आलक्ष्य = अनुभूय, यः = जनः, यथा = येन रूपेण, परितुष्यति = सन्तुष्यति, तम् = जनम्, तथैव = तेनैव रूपेण, अनुवर्त्तेत = अनुवर्त्तनं कुर्यात् ॥१४॥

हिन्दी—दूसरों को प्रसन्न करने में निपुण व्यक्ति को चाहिए कि वे लोगों के मनोभावों को जानकर जो जैसे खुश हो उसके साथ वैसा व्यवहार करे ॥१४॥

जनस्येति। पराराधनपण्डितः पररञ्जकः जनः जनस्य आशयम् अभिप्रायम् आलक्ष्य विविच्य यः जनः यथा येन प्रकारेण परितुष्यति तं जनं तथैव तेनैव प्रकारेण अनुवर्त्तेत ॥१४॥

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ १५ ॥

अन्वयः—इन्द्रियाणि न पीडयेत्, एतानि न च अतिलालयेत्, इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मनः प्रसभं हरति ॥ १५ ॥

व्याख्या—इन्द्रियाणि = चक्षुरादिपञ्चकरणानि, न = नहि, पीडयेत् = क्लिश्यात्, बलपूर्वकेन विषयभोगव्यावर्त्तनेन नातिशयं पीडयेत्। एतानि = पञ्चेन्द्रियाणि, न च, अतिलालयेत् = अत्यासक्तानि कुर्यात्, इन्द्रियाणि = करणानि, प्रमाथीनि = सन्तप्तकारीणि, अतिप्रबलानि च, मनः = चेतः, प्रसभम् = बलपूर्वकेण, हरन्ति = आकर्षयन्ति, वशीकुर्वन्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

हिन्दी—इन्द्रियों को बलपूर्वक उनके विषयों से अलग हटाकर न तो अधिक पीडित करे और न अधिक छूट देकर उन्हें विषयासक्त ही बनायें। ये इन्द्रियाँ अत्यधिक शक्तिशालिनी हैं। ये बलपूर्वक मन को अपनी ओर खींचती हैं। अतः इनके साथ न तो अधिक सख्ती बरतनी चाहिए और न इन्हें अधिक छूट देनी चाहिए। प्रत्युत संयमित होकर समभाव से इनका उपभोग करना चाहिए ॥ १५ ॥

नेति। इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि न पीडयेत्, तत् तद्विषयभोगव्यावर्त्तनेन न क्लिश्यात्। एतानि इन्द्रियाणि न च अतिलालयेत् स्वस्वविषयेषु नातिसक्तानि कुर्य्यात्। यथायथं वैधभावेन इन्द्रियतृप्तिः कार्य्येति भावः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि प्रमन्थनसमर्थानि अतिप्रबलानि चेत् मनः प्रसभं बलात् हरन्ति वशीकुर्वन्तीत्यर्थः, अतस्तानि दमनीयानीति भावः ॥ १५ ॥

एणो गजः पतङ्गश्च भृङ्गो मीनस्तु पञ्चमः।
शब्दस्पर्शरूपगन्धरसैरेते हताः खलु ॥ १६ ॥

अन्वयः—एणः, गजः, पतङ्गः, भृङ्गः, पञ्चमस्तु मीनः—एते शब्दस्पर्शरूपगन्धरसैः खलु हताः ॥ १६ ॥

व्याख्या—एणः = कृष्णमृगः, एति द्रुतं गच्छतीत्येणः; तद्यथा—"अनृचो मानवो ज्ञेयः एणः कृष्णमृगः स्मृतः। रुरुर्गौरमुखः प्रोक्तः शंवरैः शोण उच्यते" ॥ स तु कृष्णमृगः, शब्देन = वंशीरवेण, आसक्तो भूत्वा पलायनेऽक्षमः व्याधेन बध्यते। गजः = हस्ती, स्पर्शेन = करिणीशरीरस्पर्शेण, सुखेन, सुखासक्तो भूत्वा पलायनेऽसमर्थः सन् गजाजीवैर्बध्यते। पतङ्गः = पत्रचिल्लः, रूपेण = सौन्दर्येण, पतङ्गो हि दीपशिखायाः रूपदर्शनोन्मत्तो भूत्वा तत्रैव पतनान्म्रियते। भृङ्गः = भ्रमरः, गन्धेन = पुष्पसुगन्धेन, भ्रमरो हि सौगन्ध्येनाकर्षितो भूत्वा पद्मोत्पलयोरभ्यन्तरवर्त्ती भूत्वा बन्धनमाप्नोति। पञ्चमस्तु मीनः = मत्स्यः, रसैः = आस्वादैः, मीनो हि मांसरसास्वादेनाकर्षितो भूत्वा वडिशविद्धो भवतीति भावः ॥ १६ ॥

हिन्दी—हिरण, हाथी, फतिङ्गा, भौंरा और मछली—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा रस इन पाँचों विषयों के सेवन से निश्चय ही मारे जाते हैं ॥ १६ ॥

एण इति। एणः हरिणः, गजः हस्ती, पतङ्गः क्षुद्रपक्षिविशेषः, भृङ्गः भ्रमरः, पञ्चमः मीनः मत्स्यः, एते शब्दस्पर्शरूपगन्धरसैः इन्द्रियभोग्यैः विषयैः यथाक्रमं हताः खलु हता एव। तथाहि एणः सुस्वरगानश्रवणासक्तोऽपलायमानः मृगयुभिर्बध्यते। गजः करिणीस्पर्शसुखासक्तोऽपलायमानः तद्ग्राहभिर्बध्यते। पतङ्गः प्रदीपशिखायाः रूपदर्शनोन्मत्तस्तत्रैव पतनात् म्रियते। भृङ्गः गन्धलोभेन

पद्मोत्पलयोरभ्यन्तरवर्त्ती भवति। मत्स्यश्च आमिषरसास्वादलोभेन वडिशविद्धो भवतीति ॥ १६ ॥

टिप्पणी—हिरण व्याधे की बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनते ही श्रवण-सुख में लीन होकर भागने में असमर्थ होकर उसी व्याधे से मारा जाता है। हाथी हथिनी के शरीर-स्पर्शसुख से आकर्षित होकर महावत से पकड़ा जाता है। फतिङ्गा दीपशिखा के रूप पर मोहित होकर उसी पर गिर कर प्राण त्याग देता है। भौंरा सुगन्ध में उन्मत्त होकर कमल-कोष में बन्दी बन जाता है। मछली माँस के लोभ से काँटे में फँसकर तड़प कर मर जाती है। अतः इन शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा रस इन्द्रियों के पाँच विषयों से सदैव सावधान रहना चाहिए ॥ १६ ॥

एषु स्पर्शो वरस्त्रीणां स्वान्तहारी मुनेरपि।
अतोऽप्रमत्तः सेवेत विषयांस्तु यथोचितान् ॥ १७ ॥

अन्वयः—एषु वरस्त्रीणां स्पर्शः मुनेरपि स्वान्तहारी। अतः अप्रमत्तः तु यथोचितान् विषयान् सेवेत ॥ १७ ॥

व्याख्या—एषु = पूर्वोक्तेषु शब्दादिषु, वरस्त्रीणाम् = दिव्याङ्गनानाम्, स्पर्शः = संसर्गः, मुनेरपि = तपिस्वनोऽपि, स्वान्तहारी = चेतोऽपि हारी। अतः = अस्मात्कारणात्, अप्रमत्तः = प्रमादरहितः सन्, तु इतिपादपूर्त्यर्थम्, यथोचितान् = यथायोग्यान्, विषयान् = इन्द्रियान्, सेवेत = सेवनं कुर्यात् ॥ १७ ॥

हिन्दी—इन शब्दादि विषयों में दिव्याङ्गना के शरीर का स्पर्श मुनियों के मन को भी मोहने वाला है। अतः सावधान होकर इन विषयों का यथोचित सेवन करना चाहिए ॥ १७ ॥

एष्विति। एषु शब्दादिषु मध्ये वरस्त्रीणाम् उत्तमाङ्गनानां स्पर्शः मुनेरपि स्वान्तहारी मनोहारी, अतः अप्रमत्ताः सावधानः सन् यथोचितान् विषयान् सेवेत ॥ १७ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नात्यन्तैकान्तिकं वसेत्।
यथा सम्बन्धमाहूयादाभाष्याश्वास्य वै स्त्रियम्।
स्वीयां तु परकीयां च सुभगे! भगिनीति च ॥ १८ ॥

अन्वयः—मात्रा स्वस्रा दुहित्रा अत्यन्तैकान्तिकं न वसेत्। स्वीयां परकीयां च यथासम्बन्धं सुभगे, भगिनि इति च आभाष्य आश्वास्य स्त्रियम् आहूयात् ॥ १८ ॥

व्याख्या—मात्रा = स्वजनन्या, स्वस्रा = सोदरया, दुहित्रा = पुत्र्या, वा सह, अत्यन्तैकान्तिकम् = अतिविजनम्, यथा स्यात् तथा न, वसेत् = तिष्ठेत्। स्वीयाम् = स्वकीयाम्, परकीयाम् = परपुरुषानुरागिणीम्, च, यथासम्बन्धम् = बन्धुतानुरूपेण, हे सुभगे = हे पतिप्रिये! भगिनि = हे स्वसरि! इति च = अनेन रूपेण, आभाष्य = सम्बोध्य, आश्वास्य = समाश्वास्य, स्त्रियम् = नारीम्, आहूयात् = आह्वानं कुर्यात् ॥ १८ ॥

हिन्दी—अपनी या दूसरों की पत्नी को सम्बन्धानुसार हे पतिवल्लभे! हे बहन! ऐसा सम्बोधन कर उसे अच्छी तरह आश्वस्त कर अपने पास बुलाये। माँ-बहन या बेटी के साथ भी एकान्तवास न करे ॥ १८ ॥

मात्रेति। मात्रा जनन्या, स्वस्रा भगिन्या, दुहित्रा कन्यया वा सह अत्यन्तैकान्तिकम् अतिनिर्जनं यथा तथा न वसेत्। किञ्च स्वीयां स्वसम्पर्कीयां परकीयाञ्च नारीं यथासम्बन्धं सम्बन्धानुसारेण सुभगे! भागिनि! इति च आभाष्य आश्वास्य च आहूयात् आह्वयेत् ॥ १८ ॥

सहवासोऽन्यपुरुषैः प्रकाशमपि भाषणम्।
स्वातन्त्र्यं न क्षणमपि ह्यावासोऽन्यगृहे तथा॥ १९॥

अन्वयः—अन्यपुरुषैः सहवासः प्रकाशमपि भाषणं क्षणमपि स्वातन्त्र्यं तथा अन्यगृहे आवासो न॥ १९॥

व्याख्या—अन्यपुरुषैः = परपुरुषैः, सहवासः = सहवसतिः, तथा प्रकाशमपि = सम्मुखे वार्त्तालापोऽपि, भाषणम् = कथोपकथनम्, क्षणमपि = अत्यपल्पसमयोऽपि, स्वातन्त्र्यम् = स्वच्छन्दताम्, तथा = तेन रूपेणैव, अन्यगृहे = परसदने, आवासः = निवासः, न = कदाचिन्नैव कर्त्तव्यम्, एतानि नारीणां दूषणानि सन्ति॥ १९॥

हिन्दी—पर-पुरुषों के साथ अधिक देर तक रहना, उनके साथ खुलकर बातचीत करना, एक पल के लिए भी उन्हें स्वतन्त्रता देना तथा दूसरे के घर में निवास करना स्त्रियों के लिए दोष हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए॥ १९॥

सहवास इति। अन्यपुरुषैः सहवासः तथा प्रकाशमपि का कथा विजने इति भावः, भाषणं कथोपकथनं क्षणमपि स्वातन्त्र्यं स्वाधीनता तथा अन्यगृहे परगृहे आवासः स्त्रीणां दूषणमिति शेषः॥ १९॥

भर्त्रा पित्राथवा राज्ञा पुत्रश्वशुरबान्धवैः।
स्त्रीणां नैव तु देयः स्याद् गृहकृत्यैर्विना क्षणः॥ २०॥

अन्वयः—भर्त्रा पित्राऽथवा राज्ञा पुत्रश्वसुरबान्धवैः स्त्रीणां गृहकृत्यैः विना क्षणः नैव देयः स्यात्॥ २०॥

व्याख्या—भर्त्रा = पत्या, पित्रा = जनकेन, अथवा = वा, पुत्रेण = सुतेन, श्वसुरेण = पतिपित्रा, बान्धवैः = अन्यसम्बन्धिभिः, राज्ञा = नृपेण, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, गृहकृत्यैः = गार्हस्थ्यकार्यैः, विना = विहाय, क्षणः = मुहूर्त्तः, नैव = नास्त्येव, देयः = दातुं योग्यः, स्यात् = भवेत्॥ २०॥

हिन्दी—पति, पिता, पुत्र, ससुर, बन्धुजन एवं राजा को चाहिए कि गृहकार्य के अतिरिक्त एक पल के लिए अन्य कार्य के लिए औरतों को फुर्सत न दे॥ २०॥

भर्त्रेति। भर्त्रा स्वामिना, पित्रा, राज्ञा तथा पुत्रश्वशुरबान्धवैः स्त्रीणां गृहकृत्यैः गार्हस्थ्यकार्य्यैः विना क्षणः अल्पोऽपि समयः नैव देयः स्यात्॥ २०॥

चण्डं षण्डं दण्डशीलमकामं सुप्रवासिनम्।
सुदरिद्रं रोगिणं च ह्यन्यस्त्रीनिरतं सदा॥ २१॥
पतिं दृष्ट्वा विरक्ता स्यान्नारी वान्यं समाश्रयेत्।
त्यक्त्वैतान् दुर्गुणान् यत्नादतो रक्ष्याः स्त्रियो नरैः॥ २२॥

अन्वयः—नारी पतिं चण्डं षण्डं दण्डशीलम् अकामं सुप्रवासिनं सुदरिद्रं रोगिणं तदा अन्यस्त्रीनिरतं दृष्ट्वा विरक्ता स्यात्, वा अयं समाश्रयेत्। अतः एतान् दुर्गुणान् त्यक्त्वा नरैः यत्नात् स्त्रियः रक्ष्याः॥ २१-२२॥

व्याख्या—नारी = स्त्री, पतिम् = स्वामिनम्, चण्डम् = क्रूरम्, षण्डम् = नपुंसकम्, दण्डशीलम् = निग्रहशीलम्, अकामम् = अनासक्तम्, तु इतिपादपूर्त्यर्थम्, सुप्रवासिनम् =

चिरप्रोषितं विदेशवासिनं वा, सुदरिद्रम् = अत्यन्ताकिञ्चनम्, रोगिणम् = व्याधिग्रस्तम्, सदा = निरन्तरम्, अन्यस्त्रीनिरतम् = परदारासक्तम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, विरक्ता = अनासक्ता, स्यात् = भवेत्, वा = अथवा, अन्यम् = अपरजनम्, समाश्रयेत् = अवलम्बयेत्। अतः = अनेन कारणेन, एतान् = पूर्वोक्तान्, दुर्गुणान् = दोषान्, त्यक्त्वा = विहाय, नरैः = पुरुषैः, यत्नात् = प्रयत्नपूर्वकात्, स्त्रियः = नार्यः, रक्ष्याः = पालनीयाः ॥ २१-२२ ॥

हिन्दी—अतिक्रूर, नपुंसक, सदा सजा देने वाला, कामनारहित, निःस्पृह, चिरप्रवासी, अतिनिर्धन, रोगी तथा सदैव परदाराभिगामी अपने पति को देखकर पत्नी विरक्त हो जाती है अथवा किसी दूसरे मर्द का हाथ पकड़ लेती है। अतः इन दोषों से बचकर पुरुषों को सदैव स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए ॥ २१-२२ ॥

चण्डमिति। पतिमिति। नारीं पतिं चण्डम् उग्रं षण्डं क्लीवं दण्डशीलं दण्डकरम् अकामम् अननुरक्तं सुप्रवासिनं दीर्घप्रवासरतं सुदरिद्रम् अतिनिर्धनं रोगिणं नित्यरोगिणं तथा सदा अन्यस्त्रीरतं दृष्ट्वा विरक्ता स्यात् भवेत् वा अथवा अन्यं समाश्रयेत्। अतः कारणात् एतान् दुर्गुणान् उग्रत्वादिकान् त्यक्त्वा परित्यज्य नरैः यत्नात् स्त्रियः नार्य्यः रक्ष्याः ॥ २१-२२ ॥

वस्त्रान्नभूषणप्रेममृदुवाग्भिश्च शक्तितः।
स्वात्यन्तसन्निकर्षेण स्त्रियं पुत्रं च रक्षयेत् ॥ २३ ॥

अन्वयः—वस्त्रान्नभूषणदानेन प्रेम्णा मृदुभिः वाग्भिः स्वात्यन्तसन्निकर्षेण शक्तितः स्त्रियं च पुत्रं रक्षयेत् ॥ २३ ॥

व्याख्या—वस्त्रान्नभूषणदानेन—वस्त्रम् = वसनम्, अन्नम् = भक्ष्यपदार्थः, भूषणञ्च = अलङ्कारञ्च, दानेन, प्रेम्णा = प्रीत्या, मृदुभिः = मधुराभिः, वाग्भिः = गीर्भिः, स्वात्यन्तसन्निकर्षेण—स्वस्य = आत्मनः, अत्यन्तसन्निकर्षेण = अतिशयसान्निध्येन, शक्तितः = सामर्थ्यात्, स्त्रियम् = भार्याम्, च = पुनः, पुत्रम् = सुतम्, रक्षयेत् = गोपयेत् ॥ २३ ॥

हिन्दी—अन्न, वस्त्र, आभूषण देकर, प्रेम से, मीठी बातों से अपने पास रखकर अपने सामर्थ्यभर अपनी पत्नी और पुत्र की रक्षा करे ॥ २३ ॥

वस्त्रेति। वस्त्रान्नभूषणदानेन प्रेम्णा स्नेहेन मृदुभिः मधुराभिः वाग्भिः तथा स्वस्य आत्मनः अत्यन्तसन्निकर्षेण अतिसान्निध्येन शक्तितः यथाशक्ति स्त्रियं पुत्रञ्च रक्षयेत् ॥ २३ ॥

चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन्।
नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवाऽपि च ॥ २४ ॥

अन्वयः—चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन् शर्करालोष्टबलिस्नानभुवापि च न आक्रमेत् ॥ २४ ॥

व्याख्या—चैत्यान् = अश्वस्य वृक्षान्, यज्ञशालाश्च, पूज्यान् = श्रेष्ठजनान्, ध्वजान् = पताकाः, अशस्तानाम् = अप्रशस्तवस्तूनाम्, छायाः = प्रतिकृतीः, भस्मानि = भसितान्, तुषान् = कडङ्गरान्, अशुचीन् = अपवित्रान्, शर्कराः = सिकताकणान्, बलीन् = पूजोपकरणानि, तथा स्नानभूमीश्च = स्नानागाराणि, न = नहि, आक्रमेत् = लङ्घयेत् ॥ २४ ॥

हिन्दी—देवाधिष्ठित चौराहे के पेड़, श्रेष्ठ पुरुष, अप्रशस्त वस्तुओं की छाया, राख, भूसी, पताका, अपवित्र वस्तु, बालू, ढेला, पूजनपदार्थ तथा स्नानभूमि को लाँघना नहीं चाहिए ॥ २४ ॥

चैत्येति। चैत्यान् रथ्यावृक्षविशेषान् पूज्यान् पूजनीयान् गुरुजनानित्यर्थः, ध्वजान् पताकादण्डान्, अशस्तानाम् अप्रशस्तवस्तूनां छायाः भस्मानि तुषान् अशुचीन् अपवित्रान्, शर्कराः लोष्टान्, बलीन् पूजाद्रव्याणि तथा स्नानभूमीश्च न आक्रमेत् न अतिक्रमेत् ॥ २४ ॥

नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निं छन्नमभिव्रजेत्।
सन्दिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद् दुष्टयानकम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—बाहुभ्यां नदीं न तरेत्, छन्नम् अग्निं न अभिव्रजेत् तथा दुष्टयानकं सन्दिग्धनावं च वृक्षं न आरोहयेत् ॥ २५ ॥

व्याख्या—बाहुभ्याम् = भुजदण्डाभ्याम्, नदीम् = सरितम्, न = नहि, तरेत् = पारं गच्छेत्, छन्नम् = पिहितम्, अग्निम् = वह्निम्, न = नहि, अभिव्रजेत् = सम्मुखं गच्छेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, दुष्टयानकम्—दुष्टम् = दुर्वृत्तम्, यानकम् = वाहनम्, सन्दिग्धनावम् = संशययुक्ततरिणीम्, भारवहने समर्थाऽसमर्था वेति निश्चयाभावात्, न = नहि, तथा वृक्षम् = द्रुमम्, न = नहि, आरोहेत् = उद्गमनं कुर्यात् ॥ २५ ॥

हिन्दी—हाथ से तैर कर नदी पार नहीं करना चाहिए, ढकी आग को नहीं लाँघना चाहिए, भार वहन करने में सक्षम है या अक्षम ऐसी संदिग्ध नाव या पेड़ की डाली पर नहीं चढ़ना चाहिए तथा दुष्ट वाहन पर भी सवार नहीं होना चाहिए ॥ २५ ॥

नदीमिति। बाहुभ्यां नदीं न तरेत्। छन्नम् आच्छादितम् अग्निं न अभिव्रजेत् आच्छादिताग्न्यभिमुखं न गच्छेत्। तथा दुष्टयानकम दुष्टं यानं वाहनम् अश्वादिकं सन्दिग्धनावं तरणे शक्ता वा अशक्तेति सन्देहयुक्तां नावं नौकां भारधारणे क्षमो वा अक्षमो इति सन्देहयुक्तं वृक्षञ्च न आरोहेत् ॥ २५ ॥

नासिकां न विकृष्णीयान्नाकस्माद् विलिखेद् भुवम्।
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥ २६ ॥

अन्वयः—नासिकां न विकृष्णीयात्। अकस्मात् भुवं न विलिखेत्। संहताभ्यां पाणिभ्याम् आत्मनः शिरः न कण्डूयेत् ॥ २६ ॥

व्याख्या—नासिकाम् = गन्धवहाम्, न = नहि, विकृष्णीयात् = अङ्गुल्याकर्त्तनं कुर्यात्। अकस्मात् = सहसा, भुवम् = पृथिवीम्, न = नहि, विलिखेत् = ईषक्षतं कुर्यात्। संहताभ्याम् = युक्ताभ्याम्, पाणिभ्याम् = कराभ्याम्, आत्मनः = स्वस्य, शिरः = शीर्षः, न = नहि, कण्डूयेत् = नखैः त्वचं घर्षयेत् ॥ २६ ॥

हिन्दी—नाक को अँगुली से नहीं कुरेदना चाहिए। अचानक धरती नहीं खरोचना चाहिए। अपने सिर को दोनों हाथों से एक साथ नहीं खुजलाना चाहिए ॥ २६ ॥

नासिकामिति। नासिकां न विकृष्णीयात् न विशेषेण आकर्षेत्। अकस्मात् विना हेतुं भुवं भूमिं न विलिखेत्। तथा संहताभ्यां युक्ताभ्यां पाणिभ्याम् आत्मनः शिरः न कण्डूयेत् ॥ २६ ॥

नाङ्गैश्चेष्टेत विगुणं नासीतोत्कटुकश्चिरम्।
देहवाक्चेतसां चेष्टाः प्राक् श्रमाद् विनिवर्त्तयेत् ॥ २७ ॥

अन्वयः—अङ्गैः विगुणं न चेष्टेत। उत्कटुकः चिरं न आसीत। श्रमात् प्राक् देहवाक्चेतसां चेष्टाः विनिवर्त्तयेत् ॥ २७ ॥

व्याख्या—अङ्गैः = शरीरावयवैः, विगुणम् = निगुणं विपरीतं वा, न = नहि, चेष्टेत = अङ्गं विक्षेपयेत्। उत्कटुकः = उत्सुकः, चिरम् = बहुकालम्, न = नहि, आसीत = अवतिष्ठेत्। श्रमात् = परिश्रमात्, प्राक् = पूर्वम्, देहवाक्चेतसाम् = शरीरवाङ्मनसाम्, चेष्टाः = हस्तादिकचालनम्, विनिवर्त्तयेत् = अवरोधयेत् ॥ २७ ॥

हिन्दी—देह के अङ्गों को मरोड़ना नहीं चाहिए। कठोर आसन पर बहुत देर तक एक आसन से नहीं बैठना चाहिए। मानसिक, वाचिक और शारीरिक कार्यों को थकावट महसूस होने के पहले ही बन्द कर देना चाहिए ॥ २६ ॥

नेति। अङ्गैः अवयवैः विगुणं विरुद्धं न चेष्टेत, उत्कटुकः उत्कण्ठितः चिरं न आसीत नावतिष्ठेत् तथा श्रमात् प्राक् परिश्रमात् पूर्वम् आर्त्तितः पूर्वमित्यर्थः, देहवाक्चेतसां शरीरवाङ्मनसां चेष्टाः विनिवर्त्तयेत् यथा क्लान्तिर्न भवेत् तथा शारीरादिव्यापारान् कुर्य्यादिति भावः ॥ २७ ॥

नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्नक्तं सेवेत न द्रुमम्।
तथा चत्वरचैत्यं न चतुष्पथसुरालयान् ॥ २८ ॥

अन्वयः—ऊर्ध्वजानुः चिरं न तिष्ठेत्। नक्तं द्रुमं न सेवेत, तथा चत्वरचैत्यं चतुष्पथसुरालयान् न सेवेत ॥ २८ ॥

व्याख्या—ऊर्ध्वजानुः = उपरिक्षिप्तोरुपर्वसन्, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, न = नहि, तिष्ठेत् = समासीनो भवेत्। नक्तम् = रात्रौ, द्रुमम् = वृक्षम्, न = नहि, सेवेत = आश्रयेत, तथा चत्वरचैत्यम् = प्राङ्गणस्थवनस्पतिविशेषम्, तथा चतुष्पथे = चतुष्के, सुरालयान् = देवालयान्, न = नहि, सेवेत = आश्रयेत ॥ २८ ॥

हिन्दी—देर तक ऊकडूँ नहीं बैठना चाहिए। रात में पेड़ के नीचें, आँगन के चबूतरे पर, चौराहे पर तथा देवमन्दिरों में नहीं सोना चाहिए ॥ २८ ॥

नेति। ऊर्ध्वजानुः उत्क्षिप्तजानुकः सन् चिरं बहुक्षणं न तिष्ठेत् तथात्वे जान्वचलनसम्भवादिति भावः, नक्तं वातान्दोलितं द्रुमं तथा चत्वरचैत्यं प्राङ्गणस्थितं वनस्पतिविशेषं तथा चतुष्पथेषु ये सुरालयाः देवालयाः तान् न सेवेत न आश्रयेत ॥ २८ ॥

शून्याटवीशून्यगृहश्मशानानि दिवापि न।
सर्वथेक्षेत नादित्यं न भारं शिरसा वहेत् ॥ २९ ॥

अन्वयः—दिवाऽपि शून्याटवीशून्यगृहश्मशानानि न, सर्वथा आदित्यं न ईक्षेत। शिरसा भारं न वहेत् ॥ २९ ॥

व्याख्या—दिवाऽपि = दिनेऽपि, रात्रौ का कथा, शून्याटवीम् = जनशून्यारण्यम्, शून्यगृहाणि = निर्जनभवनानि, श्मशानानि = पितृवनानि, न = नहि, निवसितव्यम्, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, आदित्यम् = सूर्यम्, न = नहि, ईक्षेत = पश्येत्। शिरसा = मस्तकेन, भारम् = वोढव्यम्, न = नहि, वहेत् = नयेत् ॥ २९ ॥

हिन्दी—सुनसान जंगल में, वीरान घर में, घोर श्मसान में रात की बात तो दूर रहीं, दिन में भी नहीं रहना चाहिए। किसी भी स्थिति में देर तक सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए

तथा शिर से बोझा नहीं उठाना चाहिए ॥२९ ॥

शून्येति। दिवापि का कथा रात्रौ इति शून्याटवीं शून्यकाननं शून्यगृहाणि श्मशानानि च, न तथा सर्वथा सर्वैः प्रकारैः सम्यगित्यर्थः, आदित्यञ्च न ईक्षेत न पश्येत्। किञ्च शिरसा मस्तकेन भारं न वहेत् ॥ २९ ॥

नेक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्तामेध्याप्रियाणि च ॥ ३० ॥

अन्वयः—सततं सूक्ष्मं दीप्तम् अमेध्यानि अप्रियाणि च न ईक्षेत ॥ ३० ॥

व्याख्या—सततम् = निरन्तरम्, बहुकालपर्यन्तम्, सूक्ष्मम् = अतिगहनपदार्थम्, दीप्तम् = ज्वलितम्, अमेध्यानि = अपवित्राणि, अप्रियाणि = अरुचिकराणि, द्रव्याणि च, न = नहि, ईक्षेत = अवलोकयेत् ॥ ३० ॥

हिन्दी—अत्यन्त गहन वस्तु, चमकीले पदार्थ, अपवित्र एवं अरुचिकर वस्तु को लगातार देर तक नहीं देखना चाहिए ॥ ३० ॥

नेक्षेतेति। सततं सूक्ष्मं पदार्थमिति शेषः, दीप्तं दीप्तियुक्तं पदार्थम् अमेध्यानि अपवित्राणि अप्रियाणि च द्रव्याणि न ईक्षेत न पश्येत् ॥ ३० ॥

सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनम्।
मद्यविक्रयसन्धानदानादानानि नाचरेत् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—सन्ध्यासु अभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनं मद्यविक्रयसन्धानदानादानानि च न आचरेत् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—सन्ध्यासु = सायंकालेषु, अभ्यवहारम् = भोजनम्, स्त्रीम् = रतिक्रियाम्, स्वप्नम् = स्वापम्, अध्ययनम् = पाठनपठनम्, चिन्तनम् = विषयविचारणम्, मद्यम् = मदिरापानम्, विक्रयम् = विपणः, सन्धानम् = सुरासज्जीकरणम्, दानम् = प्रत्यर्पणम्, आदानम् = ग्रहणम्, एव च, न = नहि, आचरेत् = अनुतिष्ठेत् ॥ ३१ ॥

हिन्दी—सायंकाल में सोना, खाना, नारीसंगम, पढ़ना, सोचना, शराब पीना, बेचना, चुलाना, तथा लेना-देना—ये काम नहीं करने चाहिए ॥ ३१ ॥

सन्ध्यास्विति। सन्ध्यासु अभ्यवहारम् आहारं स्त्रीं स्त्रीसङ्गं स्वप्नं निद्राम् अध्ययनं शास्त्रपठनं चिन्तनं विषयभवनं मद्यं सुरापानं विक्रयं सन्धानं दानम् आदानं ग्रहणञ्च न आचरेत् नानुतिष्ठेत् ॥ ३१ ॥

आचार्य्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः।
अनुकुर्य्यात् तमेवातो लौकिकार्थे परीक्षकः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—धीमतः सर्वचेष्टासु लोकः एव हि आचार्यः। अतः परीक्षकः लौकिकार्थे तम् एव अनुकुर्यात् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—धीमतः = बुद्धिमान् जनः, सर्वचेष्टासु = सकलक्रियासु, लोकः = सामाजिकः, एव, हि = यतः, आचार्यः = उपदेष्टा गुरुः। अतः = अस्मात्कारणात्, परीक्षकः = विचारकः, लौकिकार्थे = सांसारिकव्यवहारे, तम् = जनम्, एव, अनुकुर्यात् = अनुसरेत् ॥ ३२ ॥

हिन्दी—ज्ञानी जन की प्रत्येक क्रिया लोकव्यवहार से प्रभावित होती है। लोकव्यवहार ही उनका उपदेष्टा है। अतः विवेचकों का यही कर्तव्य है कि वे लौकिक कार्यों में लोक का ही

अनुसरण करे ॥ ३२ ॥

आचार्य्य इति। धीमतः बुद्धिमतः जनस्य सर्वचेष्टासु सर्वक्रियासु लोकः समाजस्थजन एव आचार्य्यः गुरुः उपदेशक इत्यर्थः, अतः कारणात् परीक्षकः विवेचकः जनः लौकिकार्थे सामाजिकविषये तं समाजस्थजनमेव अनुकुर्य्यात् अनुसरेत् लोकव्यवहारो लोकादेव शिक्षणीय इति भावः ॥ ३२ ॥

राजदेशकुलज्ञातिसद्धर्मान् नैव दूषयेत्।
शक्तोऽपि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—राजदेशकुलज्ञातिसद्धर्मान् नैव दूषयेत्। शक्तोऽपि लौकिकाचारं न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—राजधर्मान् = नृपतिधर्मान्, देशधर्मान् = राष्ट्रधर्मान्, कुलधर्मान् = आनुवंशिकधर्मान्, ज्ञातिधर्मान् = सगोत्रधर्मान्, सद्धर्मान् = साधुधर्मान्, नैव = नास्त्येव, दूषयेत् = दोषारोपणं कुर्यात्। शक्तोऽपि = समर्थोऽपि, मनसाऽपि = चेतसाऽपि, लौकिकाचारं = लोकव्यवहारम्, न = नहि, लङ्घयेत् = उल्लङ्घनं कुर्यात् ॥ ३३ ॥

हिन्दी—राजा, राष्ट्र, कुल, सम्बन्धी और सज्जनों के धर्म में दोषारोपण नहीं करना चाहिए। सामर्थ्य रहते हुए भी लोकाचार का उल्लंघन मन से भी नहीं करना चाहिए ॥ ३३ ॥

राजेति। राजधर्म्मान् देशधर्म्मान् कुलधर्म्मान् ज्ञातिधर्म्मान् सद्धर्म्मान् साधुधर्म्मांश्च नैव दूषयेत्। किञ्च शक्तोऽपि समर्थोऽपि मनसापि लौकिकाचारं न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥

अयुक्तं यत् कृतं चोक्तं न बलाद्धेतुनोद्धरेत् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यत् अयुक्तं कृतम् उक्तञ्च तत् बलात् हेतुना न उद्धरेत् ॥ ३४ ॥

व्याख्या—यत् = यत्किञ्चित्, अयुक्तम् = अनुचितम्, कृतम् = सम्पादितम्, उक्तञ्च = कथितञ्च, तत् = सर्वम्, बलात् = हठात्, हेतुना = युक्त्या तर्केण वा, न = नहि, उद्धरेत् = अपलपेत् ॥ ३४ ॥

हिन्दी—किसी ने अगर अनुचित ढंग से कुछ किया या कहा हो तो दुराग्रहपूर्वक अपने तर्क से उचित सिद्ध न करे ॥ ३४ ॥

अयुक्तिमिति। यत् अयुक्तं कृतम् उक्तञ्च तत् बलात् बलमाश्रित्य हेतुना वा न उद्धरेत् न अपलपेत् ॥ ३४ ॥

दुर्गुणस्य च वक्तारः प्रत्यक्षं विरला जनाः।
लोकतः शास्त्रतो ज्ञात्वा ह्यतस्त्याज्यांस्त्यजेत् सुधीः।
अनयं नयसङ्काशं मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—प्रत्यक्षं दुर्गुणस्य च वक्तारः विरलाः जनाः। अतः लोकतः शास्त्रतश्च ज्ञात्वा सुधीः त्याज्यान् त्यजेत्। किञ्च मनसापि अनयम् नयसङ्काशं न चिन्तयेत् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—च = पुनः, प्रत्यक्षम् = नयनयोः पुरतः, दुर्गुणस्य = अवगुणस्य, च, वक्तारः = कथकाः, विरलाः = दुर्लभाः, जनाः = लोकाः, सन्ति। अतः = अस्मात् कारणात्, लोकतः = लौकिकव्यवहारतः, च = पुनः, शास्त्रतः = शास्त्रीयदृष्ट्या, ज्ञात्वा = परिज्ञाय, सुधीः = विद्वान्, त्याज्यान्

= परिहार्यान्, त्यजेत् = परिहरेत्, किञ्च, मनसाऽपि = चित्तेनाऽपि, अनयम् = नीतिविरुद्धम्, नयसङ्काशम् = नीतिसदृशम्, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥३५ ॥

हिन्दी—और किसी के सामने उनके अवगुणों को कहने वाले लोग विरले होते हैं। अतएव लोक और शास्त्र की दृष्टि से विचार कर बुद्धिमान् व्यक्ति को त्याज्य विषयों का परित्याग कर देना चाहिए और 'अनीति नीति की तरह है' ऐसी मन से भी कल्पना नहीं करनी चाहिए ॥ ३५ ॥

दुर्गुणस्येति। प्रत्यक्षं समक्षं दुर्गुणस्य वक्तारः जनाः विरलाः अल्पाः, अतः अस्मात् कारणात् लोकतः शास्त्रतश्च ज्ञात्वा सत्यासत्यं निश्चित्य इति यावत्, सुधीः पण्डितो जनः त्याज्यान् त्यागयोग्यांश्चेत् तादृशान् दुर्भाषिणः त्यजेत्। किञ्च मनसापि अनयं दुर्नयं नयसङ्काशं नीतितुल्यं न चिन्तयेत् ॥ ३५ ॥

अयं सहस्रापराधी किमेकेन भवेन्मम।
मत्वा नाघं स्मरेदीषद्विन्दुना पूर्य्यते घटः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—अयं सहस्रापराधी मम एकेन किं भवेत्? इति मत्वा ईषत् अघं न स्मरेत्। यतः विन्दुना घटः पूर्यते ॥ ३६ ॥

व्याख्या—अयम् = एषो जनः, सहस्रापराधी = दशशतदोषी, मम = मदीयः, एकेन = एकसंख्यकेन दोषेण, किं भवेत् = न किमपि स्यादित्थं, मत्वा = ज्ञात्वा, ईषत् = अत्यल्पमपि, अघम् = अपकर्म, न = नहि, स्मरेत् = चिन्तयेत्। यतः, विन्दुना = विन्दुमात्रेण, क्रमशः पतितेन, घटः = कुम्भः, पूर्यते = भरति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—यह व्यक्ति तो हजार पापों से भरा है, फिर यदि मुझमें एक दोष है ही तो उससे क्या बिगड़ता है? ऐसा मानकर थोड़ा भी पाप का चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि बिन्दु-बिन्दु से घड़ा भर जाता है ॥ ३६ ॥

अहमिति। अयं जनः अपरो लोकः सहस्रापराधी सहस्रदोषी, मम एकेन दोषेण किं भवेत् इति मत्वा ईषत् अल्पमपि अघं पापं न स्मरेत् न कर्त्तुं चिन्तयेदित्यर्थः, यतः विन्दुना क्रमशः पतितेन इत्यर्थः, घटः पूर्य्यते ॥ ३६ ॥

नक्तं दिनानि मे यान्ति कथम्भूतस्य सम्प्रति।
दुःखभाङ्न भवेदेवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सम्प्रति कथम्भूतस्य मे नक्तं दिनानि च यान्ति, एवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः दुःखभाक् न भवति ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सम्प्रति = अधुना, कथम्भूतस्य = केन प्रकारेणाचरतः, मे = मम, नक्तम् = रजन्यः, दिनानि = अहानि, च = पुनः, यान्ति = गच्छन्ति, एवम् = अनेन रूपेण, नित्यम् = प्रतिदिनम्, सन्निहितस्मृतिः = निकटस्यानुचिन्तनम्, दुःखभाक् = क्लेशितः, न = नहि, भवेत् = स्यात् ॥ ३७ ॥

हिन्दी—इस समय हमारे दिन-रात कैसे कट रहे हैं? इस पर जो निरन्तर अनुचिन्तन करता है वह कभी दुःखी नहीं होता ॥ ३७ ॥

नक्तमिति। सम्प्रति इदानीं कथम्भूतस्य किंरूपमाचरतः मे मम नक्तं रात्रयः दिनानि च यान्ति सुखेनेति भावः, एवं नित्यं सततं सन्निहितस्मृतिः पर्य्यालोचयन् जनः दुःखभाक् न भवेत् ॥ ३७ ॥

समासव्यूहहेत्वादिकृतेच्छार्थं विहाय च।
स्तुत्यर्थवादान् सन्त्यज्य सारं सङ्गृह्य यत्नतः ॥ ३८ ॥
धर्मतत्त्वं हि गहनमतः सत्सेवितं नरः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां कर्म कुर्य्याद् विचक्षणः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—विचक्षणः श्रुतिस्मृतिपुराणानां समासेन व्यूहेन हेत्वादिना च कृतम् इच्छार्थं विहाय, स्तुत्यर्थवादान् सन्त्यज्य यत्नतः सारं सङ्गृह्य च हि धर्मतत्त्वं गहनम्, अतः सत्सेवितं; तेन कर्म कुर्यात् ॥ ३८-३९ ॥

व्याख्या—विचक्षणः = विचारशीलजनः, श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् = वेदार्यधर्मशास्त्रब्रह्मविष्णु-शिवपुराणानाम्, समासेन = बहुव्रीहितत्पुरुषादिसामासिकपदैक्यविधानेन, व्यूहेन = तर्केण, हेत्वादिना = युक्त्यादिना, च = पुनः, कृतम् = सम्पादितम्, इच्छार्थम् = स्वसमासार्थम्, विहाय = परित्यज्य, स्तुत्यर्थवादान् = प्रशंसावादान् च, सन्त्यज्य = त्यक्त्वा, सारम् = तत्त्वम्, सङ्गृह्य = सङ्ग्रहं कृत्वा, च = पुनः, हि = यतः, सर्वतत्त्वं गहनम् = अतिगूढम्, अतः = अस्मात् कारणात्, सत्सेवितम् = सज्जनोपासितम्, तेन = धर्मतत्त्वयुक्तेन, कर्म = कृत्यम्, कुर्यात् = अनुष्ठेयात् ॥ ३८-३९ ॥

हिन्दी—विचारवान् व्यक्ति वेद-स्मृति और पुराण के वचनों में व्याकरणसम्मत समास, तर्क एवं युक्ति से स्वसम्मत अर्थ एवं प्रशंसापरक अर्थवाद को छोड़कर सप्रयास उनके सारभाग को ग्रहण कर सत्पुरुष-सेवित गहन धर्म समझ कर तदनुकूल काम करे ॥ ३८-३९ ॥

समासेति। धर्मतत्त्वमिति। विचक्षणः नरः श्रुतिस्मृतिपुराणानां समासेन तत्पुरुषबहुव्रीह्यादिरूपपदैक्यकरणेन व्यूहेन विशिष्टतर्केण हेत्वादिना च कृतम् इच्छार्थं स्वाभिमतपोषकार्थं विहाय त्यक्त्वा स्तुत्यर्थवादान् प्रशंसावादांश्च सन्त्यज्य यत्नतः सारं सङ्गृह्य च हि यतः सर्वतत्त्वं गहनम् अतिदुर्बोधम् अतः सत्सेवितं तेन धर्मतत्त्वेन समन्वितं कर्म कुर्य्यात् ॥ ३८-३९ ॥

न गोपयेद् वासयेच्च राजा मित्रं सुतं गुरुम्।
अधर्मनिरतं स्तेनमाततायिनमप्युत ॥ ४० ॥

अन्वयः—राजा मित्रं सुतं गुरुमपि अधर्मनिरतम् आततायिनम् उत न गोपयेत् च वासयेत् ॥४० ॥

व्याख्या—राजा = नृपतिः, मित्रम् = सुहृदम्, सुतम् = पुत्रम्, गुरुमपि = मन्त्रोपदेशकमपि, स्तेनम् = चौरम्, अधर्मनिरतम् = पापकर्मणि प्रवृत्तः, आततायिनम् = परधनदारादिहारिणम्, उत = चेत्, न = नहि, गोपयेत् = रक्षेत्, वासयेत् = देशान्तरं प्रेषयेत् ॥ ४० ॥

हिन्दी—पापकर्म में लिप्त मित्र, पुत्र, गुरु, चोर या आततायी की रक्षा राजा न करे। इन्हें अपने राज से बाहर कर दे ॥ ४० ॥

नेति। राजा मित्रं सुतं गुरुमपि अधर्मनिरतं स्तेनं चोरम् आततायिनं वधोद्यतम् उत चेत् न गोपयेत् न रक्षेत् न वासयेच्च द्वीपान्तरं प्रेषयेदिति शेषः ॥ ४० ॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैतान् षडविद्यादाततायिनः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—अग्निदः, गरदः, शस्त्रोन्मत्तः, धनापहः, क्षेत्रहारी तथा दारहरः; एतान् षट् आततायिनः विद्यात् ॥४१ ॥

व्याख्या—अग्निदः = सदनसन्दीप्तकः, गरदः = गरलप्रयोक्ता, शस्त्रोन्मत्तः—शस्त्रेण = आयुधेन, उन्मत्तः = मारणे विचेतनः, धनापहः = वित्तापहारकः, क्षेत्रहारी = भूस्वामित्वहरः, दारहरः = परपत्न्यापहारकः, एतान् = पूर्वोक्तान्, षट् = षट्संख्याकाः, आततायिनः = घोरपापिनः, विद्यात् = जानीयात् ॥४१ ॥

हिन्दी—किसी के खेत-खलिहान, घर या सम्पत्ति में आग लगाने वाला, जान लेने के लिए जहर देने वाला, हथियार उठाकर हत्या करने वाला, धरती और धन हड़पने वाला तथा परस्त्री का अपहरण करने वाला—ये छः प्रकार के काम करने वाले को आततायी जानना चाहिए ॥४१ ॥

अग्निद इति। अग्निदः गृहे अग्निदाता, गरदः विषप्रयोक्ता शस्त्रेण उन्मत्तः मारणोद्यतः, धनापहः मूलधनहारकः क्षेत्रहारी भूमिहरः तथा दारहरः भार्य्याहारी एतान् षट् आततायिनः विद्यात् ॥४१ ॥

नोपेक्षेत स्त्रियं बालं रोगं दासं पशुं धनम्।
विद्याभ्यासं क्षणमपि सत्सेवां बुद्धिमान् नरः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—बुद्धिमान् नरः स्त्रियं बालं रोगं दासं पशुं धनं विद्याभ्यांसं सत्यसेवां क्षणमपि न उपेक्षेत ॥४२ ॥

व्याख्या—बुद्धिमान् = ज्ञानी, नरः = जनः, स्त्रियम् = नारीम्, बालम् = शिशुम्, रोगम् = रुजाम्, दासम् = भृत्यम्, पशुम् = चतुष्पदम्, धनम् = वित्तम्, विद्याभ्यासम् = विद्याध्ययनम्, तत्सेवाम् = सज्जनाराधनम्, क्षणमपि = मुहूर्त्तमपि, न = नहि, उपेक्षेत = अवधीरयेत् ॥४२ ॥

हिन्दी—औरत, बच्चे, रोग, नौकर, पशु, धन, अध्ययन और सज्जन-सेवा की उपेक्षा बद्धिमान् व्यक्ति को एक क्षण के लिए भी नहीं करनी चाहिए ॥४२ ॥

नेति। बुद्धिमान् नरः स्त्रियं बालं शिशुं रोगं दासं भृत्यं पशुं धनं विद्याभ्यासं तथा सत्सेवां साधुसेवां क्षणमपि न उपेक्षेत ॥४२ ॥

विरुद्धो यत्र नृपतिर्धनिकः श्रोत्रियो भिषक्।
आचारश्च तथा देशो न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—यत्र नृपतिः धनिकः श्रोत्रियः भिषक् आचारः देशश्च विरुद्धः; तत्र दिवसमपि न वसेत् ॥४३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्स्थाने, नृपतिः = राजा, धनिकः = सम्पत्तिशाली, श्रोत्रियः = वेदज्ञ-ब्राह्मणः, भिषक् = चिकित्सकः, आचारः = व्यवहारः, देशः = राष्ट्रश्च, विरुद्धः = विपरीतः, तत्र = तस्मिन् स्थाने, दिवसमपि = एकस्मिन्नपि दिनम्, रात्रेः का कथा, न = नहि, वसेत् = निवासं कुर्यात्।

हिन्दी—जहाँ राजा, धनी, वेदज्ञ ब्राह्मण, वैद्य, व्यवहार और स्थान विपरीत हो, वहाँ एक दिन भी टिकना उचित नहीं है ॥४३ ॥

विरुद्ध इति। यत्र देशे नृपतिः राजा, धनिकः श्रोत्रियः वेदज्ञब्राह्मणः भिषक् वैद्यः तथा आचारो देशश्च विरुद्धः, तत्र दिवसमपि न वसेत् ॥४३ ॥

नपुसंकश्च स्त्री बालश्चण्डो मूर्खश्च साहसी।
यत्राधिकारिणश्चैते न तत्र दिवसं वसेत्॥४४॥

अन्वयः—यत्र नपुंसकः स्त्री बालः चण्डः मूर्खः च साहसी—एते अधिकारिणः, तत्र दिवसमपि न वसेत्॥४४॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् देशे, नपुंसकः = पण्डः, स्त्री = नारी, बालः = शिशुः, चण्डः = क्रूरः, मूर्खः = अज्ञः, च = पुनः, साहसी = धृष्टः, एते = इमे, अधिकारिणः = प्रभवः स्वत्ववन्तो वा, तत्र = तस्मिन् देशे, दिवसमपि = दिनमपि, न वसेत् = न निवेषे॥४४॥

हिन्दी—जहाँ हिजड़ा, औरत, बालक, क्रूर, मूर्ख और धृष्ट अधिकारी हो, वहाँ दिन में भी निवास न करे॥४४॥

नपुंसक इति। यत्र नपुंसकः क्लीवः, स्त्री, बालः, चण्डः कोपनः, मूर्खः वा साहसी अविवेकी एते अधिकारिणः स्वामिनः, तत्र दिवसं न वसेत्॥४४॥

अविवेकी यत्र राजा सभ्या यत्र तु पाक्षिकाः।
सन्मार्गोज्झितविद्वांसः साक्षिणोऽनृतवादिनः॥४५॥
दुरात्मनां च प्राबल्यं स्त्रीणां नीचजनस्य च।
तत्र नेच्छेद् धनं मानं वसतिञ्चापि जीवितम्॥४६॥

अन्वयः—यत्र राजा अविवेकी, यत्र तु सभ्याः पाक्षिकाः, सन्मार्गोज्झितविद्वांसः, साक्षिणोऽनृतवादिनः; यत्र च दुरात्मनां स्त्रीणां तथा नीचजनस्य प्राबल्यं; तत्र धनं मानं वसतिं जीवितञ्चापि न इच्छेत्॥४५-४६॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने, राजा = नृपतिः, अविवेकी = अन्यायकारिणः, सभ्याः = सांसदः, पाक्षिकाः = पक्षधराः, सन्मार्गोज्झितविद्वांसः—सन्मार्गेण = सत्पथा, उज्झिताः = त्यक्ताः, विद्वांसः = पण्डिताः, तथा साक्षिणः = निदर्शकाः, अनृतवादिनः = असत्यवादिनः, यत्र = यस्मिन्स्थाने, दुरात्मनाम् = दुर्वत्तानाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, तथा, नीचजनस्य = अधर्मस्य, प्राबल्यम् = प्रभुत्वम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, धनम् = वित्तम्, मानम् = सम्मानम्, वसतिम् = वासम्, जीवितञ्चापि = जीवनं चापि, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत्॥४५-४६॥

हिन्दी—जहाँ विवेकहीन राजा, पक्षपाती सांसद, सदाचारविहीन पण्डित, झूठी गवाही हो तथा दुष्टों, औरतों एवं नीचों की प्रबलता हो; वहाँ धन, इज्जत, आवास और सुरक्षित जीवन की इच्छा भी न करे॥४५-४६॥

अविवेकीत्यादि। यत्र राजा अविवेकी अविमृष्यकारी यथेच्छाचारीत्यर्थः, यत्र तु सभ्याः राजसभासदः पाक्षिकाः पक्षपातिनः सन्मार्गेण सदाचारेण उज्झिताः त्यक्ताः विद्वांसः तथा साक्षिणः अनृतवादिनः मिथ्यावादरताः, यत्र च दुरात्मनां स्त्रीणां तथा नीचजनस्य प्राबल्यं वृद्धिः तत्र धनं मानं वसतिं जीवितञ्च अपि न इच्छेत्॥४५-४६॥

माता न पालयेद् बाल्ये पिता साधु न शिक्षयेत्।
राजा यदि हरेद् वित्तं का तत्र परिदेवना?॥४७॥

अन्वयः—यदि बाल्ये माता न पालयेत्, पिता न साधु शिक्षयेत्, राजा वित्तं हरेत् तत्र का परिदेवना ? ॥४७ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, बाल्ये = शैशवे, माता = जननी, न = नहि, पालयेत् = रक्षेत्, तथा पिता = जनकः, न = नहि, साधु = सुष्ठु, शिक्षयेत् = विद्यामभ्यासयेत्, राजा = नृपतिः, वित्तम् = धनम्, हरेत् = अपहरेत्, तत्र का परिदेवना = विलापः, विलापस्य न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ॥४७ ॥

हिन्दी—बचपन में यदि माँ पाले नहीं, पिता अच्छी शिक्षा न दिलाये, राजा धन छीन ले तो इसमें रोने-धोने से क्या लाभ ? अर्थात् कुछ नहीं ॥४७ ॥

मातेति। यदि बाल्ये शैशवे माता न पालयेत्, पिता न शिक्षयेत् न विद्यामभ्यासयेत्, तथा राजा वित्तं धनं हरेत्, तत्र परिदेवना विलापः का ? ॥४७ ॥

सुसेविताः प्रकुप्यन्ति मित्रस्वजनपार्थिवाः ।
गृहमग्न्यशिनहतं का तत्र परिदेवना ? ॥४८ ॥

अन्वयः—यत्र मित्रस्वजनपार्थिवाः अपि प्रकुप्यन्ति, गृहञ्च अग्न्यशनिहतं तत्र का परिदेवना ॥४८ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने, मित्राणि = सुहृदः, स्वजनाः = आत्मीयजनाः, पार्थिवाः = राजानः, सुसेविताः = सम्यग्रूपेणोपासिताः अपि, प्रकुप्यन्ति = क्रुद्धाः भवन्ति, गृहञ्च = भवनञ्च, अग्निना = वह्निना, अशनिना = वज्रेण, हतम् = विनष्टम्, तत्र = तस्मिन् विषये, का परिदेवना = विलापः ? ॥४८ ॥

हिन्दी—जहाँ मित्रगण, आत्मीय जन एवं राजा अच्छी सेवा के बावजूद भी गुस्सा जाये, घर, आग से या बिजली गिरने से विनष्ट हो जाय तो इसमें रोने से क्या लाभ ? ॥४८ ॥

सुसेविता इति। यत्र मित्राणि सुहृदः स्वजनाः बन्धवः तथा पार्थिवाः राजानः सुसेविता अपि प्रकुप्यन्ति, गृहञ्च अग्निना वज्रेण वा हतं तत्र का परिदेवना ? ॥४८ ॥

आप्तवाक्यमनादृत्य दर्पेणाचरितं यदि ।
फलितं विपरीतं तत् का तत्र परिदेवना ? ॥४९ ॥

अन्वयः—यदि आप्तवाक्यम् अनादृत्य दर्पेण आचरितं विपरीतं फलितं, तत्र का परिदेवना ? ॥४९ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, आप्तवाक्यम्—आप्तानाम् = अधिगतानाम्, वाक्यम् = कथनम्, अनादृत्य = तिरस्कृत्य, दर्पेण = गर्वेण, आचरितम् = अनुष्ठितम्, विपरीतम् = विरुद्धम्, फलितम् = प्राप्तफलम्, भवेत्, तत्र = तस्मिन् विषये, का = न काऽपि, परिदेवना = पश्चात्तापः ? ॥४९ ॥

हिन्दी—अहंकारवश हितकर बातों की अवहेलना कर यदि कोई मनमानी कर बुरे कर्म का फल पाता है तो इस पर पछताने से क्या लाभ ? ॥४९ ॥

आप्तवाक्यमिति। यदि आप्तानां विश्वस्तानां हितैषिणां वा वाक्यम् अनादृत्य अवज्ञाय दर्पेण आचरितं व्यवहृतं विपरीतं यथा तथा फलितं, भवेदिति शेषः, तत्र का परिदेवना ? ॥४९ ॥

सावधानमना नित्यं राजानं देवतां गुरुम् ।
अग्निं तपस्विनं धर्मज्ञानवृद्धं सुसेवयेत् ॥५० ॥

अन्वयः—सावधानमनाः राजानं देवतां गुरुम् अग्निं तपस्विनं धर्मज्ञानवृद्धं नित्यं सुसेवयेत् ॥ ५० ॥

व्याख्या—सावधानमनाः = अवहितचित्ताः, राजानम् = नृपतिम्, देवताम् = दिवौकसम्, गुरुम् = मन्त्रदम्, अग्निम् = वह्निम्, तपस्विनम् = तापसम्, धर्मज्ञानवृद्धम्—धर्मस्य = पुण्यकर्मणः, ज्ञानम् = बोधः, तस्मिन् बोधे, वृद्धः = अनुभूतिसम्पन्नः, तम् = जनम्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, सुसेवयेत् = सम्यग्रूपेण परिचरेत् ॥ ५० ॥

हिन्दी—अत्यन्त सावधानी के साथ प्रतिदिन राजा, देवता, गुरु, अग्नि, तपस्वी और धर्मज्ञ जनों की ठीक ढंग से सेवा करनी चाहिए ॥ ५० ॥

सावधानमना इति। सावधानमनाः सन् राजानं देवतां गुरुम् अग्निं तपस्विनं धर्म्मज्ञानवृद्धं धर्मवृद्धं ज्ञानवृद्धञ्च जनं सुसेवयेत् ॥ ५० ॥

मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिष्वपि ।
न विरुध्येन्नापकुर्यान्मनसापि क्षणं क्वचित् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिष्वपि क्वचित् मनसापि न विरुध्येत् नापकुर्यात् ।

व्याख्या—मातरि = जनन्याम्, पितरि = जनके, गुरौ = आचार्ये, स्वामिनि = प्रभौ, भ्रातरि = सोदरे, पुत्रे = सुते, सखिषु = सुहृत्सु, चाऽपि, क्वचिदपि = कदाचिदपि, मनसाऽपि = चेतसाऽपि, न = नहि, विरुध्ये = विरोधमाचरेत्, नापकुर्यात् = अपकारञ्च नैवानुष्ठेयात् ॥ ५१ ॥

हिन्दी—माँ, बाप, गुरु, मालिक, भाई, बेटा तथा मित्रों का मन से भी क्षणभर के लिए भी विरोध या अपकार नहीं करना चाहिए ॥ ५१ ॥

मात्रेति। मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिषु क्वचिदपि कदाचिदपि मनसापि का कथा कार्य्येणेति भावः, क्षणं न विरुध्येत् न विरोधमाचरेत् नापि अपकुर्य्यात् ॥ ५१ ॥

स्वजनैर्न विरुध्येत न स्पर्द्धेत बलीयसा ।
न कुर्य्यात् स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषु च विवादनम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—स्वजनैः न विरुध्येत, बलीयसा न स्पर्द्धेत स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषु च विवादनं न कुर्यात् ॥ ५२ ॥

व्याख्या—स्वजनैः = आत्मीयैः, न = नहि, विरुध्येत = विरोधं कुर्यात्, बलीयसा = बलवता सह, न = नहि, स्पर्द्धेत = ईर्ष्येत्, तथा = तेन प्रकारेण, स्त्रीषु = नारीषु, बालेषु = बालकेषु, वृद्धेषु = वचस्केषु, मूर्खेषु = अज्ञेषु, विवादनम् = वाक्युद्धम्, तर्कवितर्कम्, न = नहि, कुर्यात् = अनुष्ठेयात् ॥ ५२ ॥

हिन्दी—बान्धवों के साथ विरोध, बलवानों से स्पर्धा एवं स्त्री, बालक, वृद्ध और मूर्खों के साथ विवाद कभी नहीं करना चाहिए ॥ ५२ ॥

स्वजनैरिति। स्वजनैः बान्धवैः सह न विरुध्येत न विरोधमाचरेत्, बलीयसा प्रबलेन जनेन न स्पर्द्धेत न स्पर्द्धां कुर्य्यात्, तथा स्त्रीषु बालकेषु मूर्खेषु च विवादनं विवादं न कुर्य्यात् ॥ ५२ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको नं गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥ ५३ ॥

अन्वयः—एकः स्वादु न भुञ्जीत, एकश्च अर्थान् न चिन्तयेत्, एकः अध्वानं न गच्छेत्, एकः सुप्तेषु न जागृयात् ॥५३ ॥

व्याख्या—एकः = एकाकी एव, स्वादु = सुस्वादुभोजनम्, न = नहि, भुञ्जीत = खादेत्, एकश्च = एकाकी एव जनः, अर्थान् = प्रयोजनानि, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत्, एकः = एकाकी एव, अध्वानम् = मार्गम्, न = नहि, गच्छेत् = चलेत्, एकः = एकाक्येव, सुप्तेषु = प्रसुप्तेषु जनेषु मध्ये, न = नहि, जागृयात् = जागरणं कुर्यात् ॥५३ ॥

हिन्दी—अकेले स्वादिष्ट भोजन नहीं खाना चाहिए। अकेले किसी काम का चिन्तन नहीं करना चाहिए। अकेले मार्ग में नहीं चलना चाहिए और न तो सोये हुए लोगों के बीच अकेले जगना चाहिए ॥५३ ॥

एक इति। एकः एकाकी जनः स्वादु सुस्वादुद्रव्यं न भुञ्जीत। एकश्च अर्थान् कार्य्याणि न चिन्तयेत्। एकः अध्वानं न गच्छेत्। एकः सुप्तेषु जनेषु मध्ये न जागृयात् ॥५३ ॥

नान्यधर्मं हि सेवेत न द्रुह्याद् वै कदाचन।
हीनकर्म्मगुणैः स्त्रीभिर्नासीतैकासने क्वचित् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—अन्यधर्मं न सेवेत, कदाचन न द्रुह्यात् वै क्वचित्। हीनकर्मगुणैः स्त्रीभिश्च सह एकासने न आसीत ॥५४ ॥

व्याख्या—अन्यधर्मम् = अपरजनधर्मम्, न सेवेत = नाश्रयेत्, कदाचन = कस्मैचिदपि, न = नहि, द्रुह्यात् = द्रोहं कुर्यात्, वै = इति निश्चयेन। क्वचित् = कुत्राऽपि स्थाने, हीनकर्मगुणैः = दुष्टपुरुषैः, स्त्रीभिश्च = नारीमिश्च सह, एकासने = एकस्मिन्नेवोपवशने, नासीत = नोपविशेदिति ॥५४ ॥

हिन्दी—कभी भी दूसरे धर्म को न तो स्वीकार करे और न उसका विरोध ही करे। नीच व्यक्ति और स्त्रियों के साथ एक आसन पर कभी न बैठे ॥५४ ॥

नेति। अन्यधर्मम् अपरधर्मं न सेवेत नाश्रयेत्, कदाचन न द्रुह्येत् कस्मैचिदपीति शेषः। क्वचित् कुत्रापि स्थाने हीनकर्म्मगुणैः दुर्जनैरित्यर्थः, स्त्रीभिश्च सह एकासने न आसीत नोपविशेत् ॥५४ ॥

षड् दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।
प्रभवन्ति विघाताय कार्य्यस्यैते न संशयः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—भूतिम् इच्छता पुरुषेण इह निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता एते षड्दोषाः हातव्याः। एते कार्यविघाताय प्रभवन्ति, अत्र न सन्देहः ॥५५ ॥

व्याख्या—भूतिम् = ऐश्वर्यम्, इच्छता = अभिलषता, पुरुषेण = व्यक्तिना, इह = संसारे, निद्रा = स्वापः, तन्द्रा = शयालुता, भयम् = भीतिः, क्रोधः = कोपः, आलस्यम् = मान्द्यम्, तन्द्रिका च, दीर्घसूत्रता = चिरक्रियता, एते = इमे, षड्दोषाः = षड्दुर्गुणाः, हातव्याः = परित्याज्याः, एते = षड्दोषाः, कार्यविघाताय—कार्यस्य = कर्मणः, विघाताय = विनाशाय, प्रभवन्ति = जायन्ते, अत्र न किमपि सन्देहः = संशय इति ॥५५ ॥

हिन्दी—इस संसार में अधिक सोना, ऊँघना, डरना, गुस्साना, काम में काहिली, देर से काम करने का स्वभाव—इन छः दुर्गुणों को ऐश्वर्य चाहने वाले व्यक्ति को छोड़ देना चाहिए। अन्यथा ये दुर्गुण किसी भी काम को विनष्ट करने में समर्थ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं॥५५॥

षडिति। भूतिं सम्पदम् इच्छता अभिलषता जनेन इह संसारे निद्रा, तन्द्रा अनुत्साहः, भयं, क्रोधः, आलस्यं तथा दीर्घसूत्रता चिरक्रियता एते षट् दोषाः हातव्याः त्यक्तव्याः। एते दोषाः कार्यस्य विघाताय प्रभवन्ति समर्था भवन्ति न संशयः सन्देहो नास्तीत्यर्थः॥५५॥

उपायज्ञश्च योगज्ञस्तत्त्वज्ञः प्रतिभानवान्।
स्वधर्म्मनिरतो नित्यं परस्त्रीषु पराङ्मुखः।
वक्तोहवांश्चित्रकथः स्यादकुण्ठितवाक् सदा॥५६॥

अन्वयः—उपायज्ञः योगज्ञः तत्त्वज्ञः प्रतिभानवान् नित्यं स्वधर्मनिरतः परस्त्रीषु पराङ्मुखः वक्ता ऊहवान् चित्रकथः अकुण्ठितवाक् सदा स्यात्॥५६॥

व्याख्या—उपायज्ञः= साधनवेत्ता, योगज्ञः= कर्मकौशली, तत्त्वज्ञः= सारसङ्ग्रही, प्रतिभानवान् = सप्रतिभः, नित्यम् = अनवरतम्, स्वधर्मनिरतः—स्वस्य = आत्मनः, धर्मे = सुकृतौ, निरतः= तत्परः, परस्त्रीषु = परनारीषु, पराङ्मुखः= विमुखः, वक्ता = वाग्मी, ऊहवान् = तर्कशीलः, पदा प्रतिप्रदा चिन्तको वा, चित्रकथाः= मधुरवाक्, तथा सदा = सर्वदा, अकुण्ठितवाक् = अनिष्प्रभीकृत्, स्यात् = भवेत्॥५६॥

हिन्दी—व्यक्ति को कार्यसम्पादन के साधन का ज्ञान होना चाहिए। कर्मकुशल, तत्त्ववेत्ता, प्रतिभावान्, सदा स्वधर्म में तत्पर एवं पराई औरत से दूर रहने वाला, बोलने में चतुर, तर्कशील, मधुरभाषी एवं हमेशा बोलने में कुण्ठा रहित होना चाहिए॥५६॥

उपायज्ञ इति। उपायज्ञः योगज्ञः कर्म्मकौशली तत्त्वज्ञः सारज्ञः प्रतिभानवान् प्रतिभान्वितः नित्यं स्वधर्म्मनिरतः, परस्त्रीषु पराङ्मुखः वक्ता वाक्पटुः ऊहवान् तर्कनिपुणः सदा चित्रकथः मधुरवाक् तथा अकुण्ठितवाक् स्यात् भवेत्॥५६॥

चिरं संश्रृणुयान्नित्यं जानीयात् क्षिप्रमेव च।
विज्ञाय प्रभजेदर्थान् न कामं प्रभजेत् क्वचित्॥५७॥

अन्वयः—चिरम् अर्थान् नित्यं संश्रृणुयात्, च क्षिप्रमेव जानीयात् तथा विज्ञाय प्रभजेत्, क्वचिदपि कामं न प्रभजेत्॥५७॥

व्याख्या—चिरम् = दीर्घकालिकम्, साभिनिवेशं यथा स्यात्तथा, अर्थान् = शब्दाशयान्, नित्यम् = सततम्, संश्रृणुयात् = सम्यक् प्रकारेणाकर्ण्यात्, च = पुनः, क्षिप्रमेव = शीघ्रमेव, जानीयात् = बोधं प्राप्नुयात्, तथा = तदेव, विज्ञाय = ज्ञात्वा, प्रभजेत् = सेवेत, क्वचिदपि = कुत्रापि, कामम् = इन्द्रियाणां विषयप्रवृत्तिम्, न = नहि, प्रभजेत् = सेवेत॥५६॥

किसी की पूरी बातें एकाग्रचित्त होकर सुननी चाहिए। शीघ्रवक्ता की बातें भी समझनी चाहिए और समझ कर ही कोई काम करना चाहिए। मनमानी कभी नहीं करनी चाहिए॥५६॥

चिरमिति। चिरं बहुक्षणं साभिनिवेशं यथा तथा इत्यर्थः, अर्थान् नित्यं सततं संश्रृणुयात्, क्षिप्रं शीघ्रमेव जानीयात् बुध्येत्, तथा विज्ञाय विशेषण प्रभजेत् सेवेत, क्वचिदपि कामं न प्रभजेत् कामवशो न भवेदित्यर्थः॥५७॥

क्रयविक्रयातिलिप्सां स्वदैन्यं दर्शयेन्न हि।
कार्य्यं विनान्यगेहे न नाज्ञातः प्रविशेदपि ॥ ५८ ॥

अन्वयः—क्रयविक्रयेषु अतिलिप्सां स्वदैन्यं नहि दर्शयेत्। अपि कार्यं विना न अज्ञातश्च अन्यगेहे न प्रविशेत् ॥ ५८ ॥

व्याख्या—क्रयविक्रयेषु = मूल्येन वस्तुविनिमयेषु, अतिलिप्साम् = लोलुपताधिक्यम्, स्वदैन्यम्—स्वस्य = आत्मनः, दैन्यम् = अकिञ्चनत्वम्, नहि, दर्शयेत् = प्रकाशयेत्। अपि च = अन्यच्च, कार्यम् = प्रयोजनम्, विना = अन्तरेण, न = नहि, अज्ञातश्च = अबुद्धश्च, अन्यगेहे = परगृहे, न = नहि, प्रविशेत् = प्रवेशं कुर्यात् ॥ ५८ ॥

हिन्दी—किसी वस्तु की खरीद-बिक्री में बहुत लोभ तथा हर किसी के सामने अपनी दीनता का प्रकाशन नहीं करना चाहिए। निष्प्रयोजन किसी अनजान के घर में नहीं घुसना चाहिए ॥ ५८ ॥

क्रयेति। क्रयविक्रयेषु अतिलिप्साम् अत्याग्रहं स्वस्य आत्मनः दैन्यं कातरताञ्च न हि दर्शयेत् नैव प्रकाशयेत् तथात्वे स्वस्य लाभहानिर्लाघवञ्च भवेदिति भावः। किञ्चेति अपिशब्दार्थः कार्य्यं विना न, अज्ञातश्च न अन्यगेहे प्रविशेत् ॥ ५८ ॥

अपृष्टो नैव कथयेद् गृहकृत्यं तु कं प्रति।
बह्वर्थाल्पाक्षरं कुर्य्यात् सल्लापं कार्य्यसाधकम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—अपृष्टस्तु कं प्रति गृहकृत्यं नैव कथयेत्। किञ्च बह्वर्थम् अल्पाक्षरं कार्यसाधकं सल्लापं कुर्यात् ॥ ५९ ॥

व्याख्या—अपृष्टः = अजिज्ञासितः, तु = सन्, कं प्रति = यस्मै कस्मै जनाय, गृहकृत्यम् = भवनानुष्ठेयस्य, नैव = नास्त्येव, कथयेत् = कुत्राऽपि प्रकाशयेत्। किञ्च बह्वर्थम् = बहुप्रयोजनम्, अल्पाक्षरम् = मिताक्षरम्, कार्यसाधकम् = प्रयोजननिष्पादकः, सल्लापम् = वार्त्तालापम्, कुर्यात् = विधेयात् ॥ ५९ ॥

हिन्दी—बिना पूछे किसी को अपने घर की बात नहीं बतानी चाहिए। कम शब्दों में अधिक अर्थ के प्रतिपादक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। निष्प्रयोजन किसी अनजान व्यक्ति के घर में नहीं घुसना चाहिए ॥ ५९ ॥

अपृष्ट इति। अपृष्टः सन् कं तु कमपि प्रति गृहकृत्यं नैव कथयेत्, किञ्च बह्वर्थं बहुप्रयोजनं किन्तु अल्पाक्षरं कार्य्यसाधकं सल्लापं सदालापं कुर्य्यात् ॥ ५९ ॥

न दर्शयेत् स्वाभिमतमनुभूताद् विना सदा।
ज्ञात्वा परमतं सम्यक्त्वेनाज्ञातोत्तरं वदेत् ॥ ६० ॥

अन्वयः—अनुभूतात् विना सदा स्वाभिमतं न दर्शयेत्। तथा परमतं सम्यक्त्वेन ज्ञात्वा अज्ञातोत्तरं न वदेत् ॥ ६० ॥

व्याख्या—अनुभूतात् = परिज्ञानात्, विना = विहाय, सदा = सर्वदा, स्वाभिमतम्—स्वस्य = आत्मनः, अभिमतम् = अभिप्रेतम्, न = नहि, दर्शयेत् = प्रकाशयेत्। तथा = तेनैव प्रकारेण, परमतम् = अन्यजनस्य विचारम्, सम्यक्त्वेन = साम्यरूपेण, ज्ञात्वा = परिज्ञाय, अज्ञातोत्तरम् =

अविदितसिद्धान्तञ्च, न = नहि, वदेत् = कथयेत् ॥ ६० ॥

हिन्दी—अनजाने किसी विषय में अपना विचार हमेशा प्रकट नहीं करना चाहिए और दूसरों के विचार को ठीक से समझे बिना कोई उत्तर नहीं देना चाहिए ॥ ६० ॥

नेति। अनुभूताद् तथ्यज्ञानात् विना सदा स्वस्य अभिमतं न दर्शयेत्, तथा परमतं सम्यक्त्वेन सम्यग्रूपेणेत्यर्थः, ज्ञात्वा अज्ञातोत्तरम् अविदितसिद्धान्तञ्च न वदेदिति एकेन नञा उभयत्र सम्बन्धः ॥ ६० ॥

दम्पत्योः कलहे साक्ष्यं न कुर्य्यात् पितृपुत्रयोः।
सुगुप्तकृत्यमन्त्रः स्यान्न त्यजेच्छरणागतम् ॥ ६१ ॥

अन्वयः—दम्पत्योः पितृपुत्रयोः कलहे साक्ष्यं न कुर्यात्। सुगुप्तकृत्यमन्त्रः स्यात्। शरणागतं न त्यजेत् ॥ ६१ ॥

व्याख्या—दम्पत्योः = स्त्रीपुरुषयोः, पितृपुत्रयोश्च = जन्यजनकयोश्च, कलहे = पारस्परिकविवादे, साक्ष्यम् = प्रामाण्यम्, न = नहि, कुर्यात् = निष्पादयेत्। किञ्च, सुगुप्तौ = सुष्ठुतया गूहने, कृत्यमन्त्रौ = कार्यविचारणे, येन तथोक्तः = कार्यविचारगोपकः, स्यात् = भवेत्। तथा शरणागतम् = शरणापन्नम्, न = नहि, त्यजेत् = परिहरेत् ॥ ६१ ॥

हिन्दी—पति-पत्नी या पिता-पुत्र के आपसी झगड़े में किसी की ओर से गवाही नहीं देनी चाहिए। अपने काम और विचार को निष्पन्न होने से पूर्व गुप्त रखना चाहिए। शरण में आये हुए विपन्न लोगों का परित्याग नहीं करना चाहिए ॥ ६१ ॥

दम्पत्योरिति। दम्पत्योः भार्य्यापत्योः पितृपुत्रयोश्च कलहे साक्ष्यं न कुर्य्यात्। किञ्च सुगुप्तौ कृत्यमन्त्रौ येन तथोक्तः कार्य्यमन्त्रगोपकः स्यात्। शरणागतञ्च न त्यजेत् ॥ ६१ ॥

यथाशक्ति चिकीर्षेत कुर्वन् मुह्येच्च नापदि।
कस्यचिन्न स्पृशेन्मर्म्म मिथ्यावादं न कस्यचित् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—यथाशक्ति चिकीर्षेत, कुर्वन् आपदि न मुह्येत्। कस्यचित् मर्म न स्पृशेत्, मिथ्यावादञ्च कस्यचित् न ॥ ६२ ॥

व्याख्या—यथाशक्ति = शक्तिमनतिक्रम्य, चिकीर्षेत = कार्यं कर्त्तुमिच्छेत्, कुर्वन् = कार्यं सम्पादयन्, आपदि = विपदि, तं कार्यम्, न = नहि, मुह्येत् = परित्यजेत्। कस्यचित् = जनस्य, मर्म = मर्मस्थलम्, न = नहि, स्पृशेत् = पीडयेत्, मिथ्यावादञ्च = अनृतकथनञ्च, न = नहि, वदेत् ॥ ६२ ॥

हिन्दी—सामर्थ्यभर काम की इच्छा रखनी चाहिए और काम करते हुए विपत्ति आने पर विचलित नहीं होना चाहिए। किसी के दिल को चुभने वाली बातें नहीं कहनी चाहिए। झूठी बातें नहीं बोलनी चाहिए ॥ ६२ ॥

यथाशक्तीति। यथाशक्ति चिकीर्षेत कर्त्तुमिच्छेत् कार्य्यमिति शेषः, कुर्वन् आपदि न मुह्येत् न विचलेत्। कस्यचित् मर्म्म न स्पृशेत् न पीडयेत् मिथ्यावादञ्च कस्यचित् न स्पृशेत् न कथयेदित्यर्थः ॥ ६२ ॥

नाश्लीलं कीर्त्तयेत् कञ्चित् प्रलापं न च कारयेत् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—अश्लीलं न कीर्त्तयेत्, कञ्चित् प्रलापं च न कारयेत् ॥ ६३ ॥

व्याख्या—अश्लीलम् = अवाच्यम्, न = नहि, कीर्त्तयेत् = वदेत्, कञ्चित् = किमपि, प्रलापम् = अपलापम्, च = पुनः, न = नहि, कारयेत् = सम्पादयेत् ॥ ६३ ॥

हिन्दी—फूहड़ बातें नहीं बोलनी चाहिए और किसी के साथ व्यर्थ की बकवाद नहीं करनी चाहिए ॥ ६३ ॥

नेति। अश्लीलं घृणालज्जाकुत्साजनकं वाक्यं न कीर्त्तयेत्, कञ्चित् प्रलापम् अनर्थकं वाक्यञ्च न कारयेत् ॥ ६३ ॥

अस्वर्ग्यं स्याद्धर्म्यमपि लोकविद्वेषितं तु यत्।
स्वहेतुभिर्न हन्येत कस्य वाक्यं कदाचन ॥ ६४ ॥

अन्वयः—यत् तु लोकविद्वेषितं तत् धर्म्यमपि अस्वर्ग्यं स्यात्। कदाचन कस्यापि वाक्यं स्वहेतुभिः न हन्येत ॥ ६४ ॥

व्याख्या—यत् = कार्यम्, तु, लोकविद्वेषितम् = लोकनिन्दितम्, तत्कार्यम्, धर्म्यमपि = पुण्यकर्म अपि, अस्वर्ग्यम् = नारकीयम्, स्यात् = भवेत्, कदाचन, कस्य = जनस्यापि, वाक्यम् = कथनम्, स्वहेतुभिः—स्वस्य = आत्मनः, हेतुभिः = निमित्तैः, न = नहि, हन्येत = कर्त्तयेत् ॥ ६४ ॥

हिन्दी—लोकाचार के विरुद्ध धार्मिक कृत्य भी नारकीय होता है। अपने कारण किसी की बात न काटे ॥ ६४ ॥

अस्वर्ग्यमिति। यत् कार्य्यं लोकविद्वेषितं लोकनिन्दितं तत् धर्म्यं धर्मयुक्तमपि अस्वर्ग्यं स्यात्, अतस्तत् न कुर्य्यादिति भावः। कदाचन कस्यापि वाक्यं स्वस्य आत्मनः हेतुभिः न हन्येत ॥ ६४ ॥

प्रविचार्य्योत्तरं देयं सहसा न वदेत् क्वचित्।
शत्रोरपि गुणा ग्राह्या गुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणाः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—प्रविचार्य उत्तरं देयम्, सहसा क्वचित् न वदेत्। शत्रोरपि गुणाः ग्राह्याः, गुरोः दुर्गुणास्तु त्याज्याः ॥ ६५ ॥

व्याख्या—प्रविचार्य = सुचिन्त्य, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, देयम् = दातुं योग्यं भवति, सहसा = हठात्, क्वचित् = कुत्रापि, न = नहि, वदेत् = कथयेत्। शत्रोरपि = अरेरपि, गुणाः = सद्गुणाः, ग्राह्याः = ग्रहणकर्त्तुं योग्याः भवन्ति, गुरोः = आचार्यस्यापि, दुर्गुणास्तु = दोषास्तु, त्याज्याः = त्यक्तुं योग्याः भवन्ति ॥ ६५ ॥

हिन्दी—काफी विचार कर ही किसी को उत्तर देना चाहिए। हड़बडाकर कुछ भी नहीं बोलना चाहिए। दुश्मन से भी शुभ गुण लेना चाहिए और गुरु के दोषों को भी छोड़ देना चाहिए ॥ ६५ ॥

प्रविचार्य्येति। प्रविचार्य्य प्रकर्षेण विचारं कृत्वा उत्तरं देयं सहसा क्वचित् न वदेत्। शत्रोः अपि गुणाः ग्राह्याः, गुरोर्दुर्गुणास्तु त्याज्याः न ग्राह्याः इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

उत्कर्षो नैव नित्यः स्यान्नापकर्षस्तथैव न्न।
प्राक्कर्म्मवशतो नित्यं सधनो निर्धनो भवेत् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—नित्यः उत्कर्षः तथैव अपकर्षः च नैव स्यात्। प्राक्कर्मवशतः नित्यं सधनः निर्धनः भवेत् ॥ ६६ ॥

व्याख्या—नित्यः = अनवरतः, उत्कर्षः = महत्त्वम्, समृद्धिश्च, तथैव = तेनैव प्रकारेण, अपकर्षः = पातनम्, अवनतिश्च, नैव = नास्त्येव, स्यात् = भवेत्, प्राक्कर्मवशतः = पूर्वजन्मार्जितकर्माधीनः, नित्यम् = सततम्, सधनः—धनेन = वित्तेन, सहितः = युक्तः, धनवान्, तथा निर्धनः = दरिद्रः, भवेत् = स्यात् ॥ ६६ ॥

हिन्दी—मनुष्य की उन्नति या अवनति सदैव एक जैसी नहीं बनी रहती है। पूर्वजन्म में किये गये कर्म के अनुसार कोई धनी या निर्धन होता है ॥ ६६ ॥

उत्कर्ष इति। नित्यः सततः उत्कर्षः सुखावस्था तथा अपकर्षः दुःखावस्था च नैव स्यात्। प्राक्कर्मवशतः पूर्वजन्मकर्मवशात् नित्यं सधनः निर्धनश्च भवेत् ॥ ६६ ॥

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मैत्रीं नैव च हापयेत् ॥ ६७ ॥

अन्वयः—तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मैत्रीं च नैव हापयेत् ॥ ६७ ॥

व्याख्या—तस्मात् = अनवरतैकावस्थाभावात्, सर्वेषु = सकलेषु, भूतेषु = जीवेषु, मैत्रीम् = सौहार्दम्, च = पुनः, नैव = कदाचिन्नास्ति, हापयेत् = परित्यजेत् ॥ ६७ ॥

हिन्दी—अतः सभी जीवों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना कभी न भूले ॥ ६७ ॥

तस्मादिति। तस्मात् संततसमावस्थविरहात् सर्वेषु भूतेषु मैत्रीं सद्भावं नैव हापयेत् नैव त्यजेत्, सर्वेषु सन्तुष्टेषु नितरां क्लेशो न भवतीति भावः ॥ ६७ ॥

दीर्घदर्शी सदा च स्यात् प्रत्युत्पन्नमतिः क्वचित्।
साहसी सालसी चैव चिरकारी भवेन्न हि ॥ ६८ ॥

अन्वयः—सदा दीर्घदर्शी प्रत्युत्पन्नमतिः, क्वचित् साहसी सालसी च चिरकाली नहि भवेत् ॥ ६८ ॥

व्याख्या—सदा = सर्वदा, दीर्घदर्शी = दूरदर्शकः, प्रत्युत्पन्नमतिः = तत्कालधीः, क्वचिदपि = कुत्राऽपि, साहसी = हठकारी, सालसी = उद्योगविमुखः, च = पुनः, चिरकाली = दीर्घसूत्री, नहि = न, भवेत् = स्यात् ॥ ६८ ॥

हिन्दी—हमेशा दूर तक सोचने वाला हाजिर-जवाब होना चाहिए। किसी भी स्थिति में साहसी, आलसी या दीर्घसूत्री नहीं होना चाहिए ॥ ६८ ॥

दीर्घदर्शीति। सदा दीर्घदर्शी विमृष्यकारी प्रत्युत्पन्नमतिः उपस्थितबुद्धिश्च स्यात्, क्वचिदपि साहसी अविमृष्यकारी सालसी आलस्यपरतन्त्रः चिरकारी दीर्घसूत्रश्च न हि भवेत् ॥ ६८ ॥

यः सुदुर्निष्फलं कर्म ज्ञात्वा कर्त्तुं व्यवस्यति।
द्रागादौ दीर्घदर्शी स्यात् स चिरं सुखमश्नुते ॥ ६९ ॥

अन्वयः—यः सुदुर्निष्फलं कर्म ज्ञात्वा कर्त्तुं व्यवस्यति स आदौ द्राक् दीर्घदर्शी स्यात्, चिरं सुखम् अश्नुते ॥ ६९ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, सुदुर्निष्फलम् = शुभाशुभफलं विचार्य, कर्म = कर्त्तव्यम्, ज्ञात्वा = अवबुध्य, कर्त्तुम् = विधातुम्, व्यवस्यति = यतते, सः = जनः, आदौ = प्रथमम्, द्राक् = झटिति,

दीर्घदर्शी = सुविचारकः, स्यात् = भवेत्, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, सुखम् = आनन्दम्, अश्नुते = प्राप्नुयात् ॥६९ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति किसी भी काम के शुभाशुभ परिणाम को सोचकर, दूरदृष्टि एवं पक्का इरादा के साथ शीघ्र ही अपना काम प्रारंभ करता है, वह निश्चय ही बहुत दिनों तक सुखी रहता है ॥६९ ॥

य इति। यः सुदुर्निष्फलम् अतिविफलम् अशक्यसाधनमित्यर्थः, कर्म ज्ञात्वा कर्त्तुं व्यवस्यति चेष्टते स आदौ द्राक् झटिति दीर्घदर्शी सुविविच्यकारी स्यात् तदा सः चिरं सुखम् अश्नुते प्राप्नोति तेन कर्मणेति भावः ॥६९ ॥

प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तां क्रियां कर्त्तुं व्यवस्यति।
सिद्धिः सांशयिकी तत्र चापल्यात् कार्यगौरवात् ॥७० ॥

अन्वयः—यः प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तां क्रियां कर्त्तुं व्यवस्यति, तत्र चापल्यात् कार्यगौरवात् सांशयिकी सिद्धिः भवति ॥७० ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, प्रत्युत्पन्नमतिः = कुशाग्रीयबुद्धिः, प्राप्ताम् = अधिगताम्, क्रियाम् = चेष्टाम्, कर्त्तुम् = विधातुम्, व्यवस्यति = चेष्टते, तत्र = तस्मिन् कार्ये, चापल्यात् = चाञ्चल्यात्, कार्यगौरवात्—कार्यस्य = कृत्यस्य, गौरवात् = गुरुतावशात्, सांशयिकी = सन्दिग्धा, सिद्धिः = सफलता, भवति ॥७० ॥

हिन्दी—अपनी हाजिरजवाबी के कारण सामने आये काम को सम्पन्न करने की जो चेष्टा करता है, उस काम में जल्दीबाजी या काम की महत्ता की दृष्टि से सफलता में संदेह बना रहता है ॥७० ॥

प्रत्युत्पन्नमतिरिति। यः प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्ताम् उपस्थितां क्रियां कर्त्तुं सहसेति भावः, व्यवस्यति चेष्टते, तत्र क्रियायां चापल्यात् कार्य्यगौरवात् कार्य्यस्य गुरुत्वाच्च सिद्धिः सांशयिकी भवेत् कार्य्यसिद्धिर्भवति न वेति संशयः स्यादिति निष्कर्षः ॥७० ॥

यतते नैव कालेऽपि क्रियां कर्त्तुं च सालसः।
न सिद्धिस्तस्य कुत्रापि स नश्यति च सान्वयः ॥७१ ॥

अन्वयः—यः सालसः कालेऽपि क्रियां कर्त्तुं नैव यतते, तस्य कुत्रापि सिद्धिः न; स च सान्वयः नश्यति ॥७१ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, सालसः = आलस्येन युक्तः, कालेऽपि = उपयुक्तावसरेऽपि, क्रियाम् = चेष्टाम्, कर्त्तुम् = विधातुम्, नैव, यतते = प्रयत्नं कुरुते, तस्य = जनस्य, कुत्राऽपि = क्वचिदपि, सिद्धिः = सफलता, न = न भवति, स च = असौ, सान्वयः = सवंशः, नश्यति = विनष्टो भवति ॥७१ ॥

हिन्दी—जो आलसी व्यक्ति उपयुक्त अवसर आने पर भी काम करने का प्रयास नहीं करता, उसे सफलता तो मिलती ही नहीं; प्रत्युत सपरिवार वह विनष्ट हो जाता है ॥७१ ॥

यतते इति। यः सालसः आलस्ययुक्तः कालेऽपि क्रियां कर्त्तुं नैव यतते, कुत्रापि तस्य न सिद्धिर्भवति, सः सान्वयः सवंशः नश्यति च ॥७१ ॥

क्रियाफलमविज्ञाय यतते साहसी च सः।
दुःखभागी भवत्येव क्रियया तत्फलेन वा॥७२॥

अन्वयः—यः क्रियाफलम् अविज्ञाय यतते स च साहसी क्रियया वा तत्फलेन दुःखभागी भवत्येव॥७२॥

व्याख्या—यः = जनः, क्रियाफलम् = कर्मपरिणामम्, अविज्ञाय = अज्ञात्वा, यतते = चेष्टते, सः = जनः, च = पुनः, साहसी = प्रगल्भः, क्रियया = कर्मणा, वा = अथवा, तत्फलेन = कृतकर्मपरिणामेन, दुःखभागी = पीडितः, भवति = जायते इति॥७२॥

हिन्दी—जो साहसी व्यक्ति कृतकर्म के परिणाम को सोचे-समझे बिना एकाएक कोई भी काम करने का प्रयास करता है तो उस काम से अथवा उस काम के परिणाम से वह दुःखी होता है॥७२॥

क्रियेति। यः क्रियाफलम् अविज्ञाय यतते चेष्टते, स साहसी अविवेकी क्रियया कर्मणा तत्फलेन वा दुःखभागी भवत्येव॥७२॥

महत्कालेनाल्पकर्म चिरकारी करोति च।
स शोचत्यल्पफलतो दीर्घदर्शी भवेदतः॥७३॥

अन्वयः—यः चिरकारी महत्कालेन अल्पकर्म करोति सः अल्पफलतः शोचति। अतः दीर्घदर्शी भवेत्॥६३॥

व्याख्या—यो जनः, चिरकारी = दीर्घसूत्री, महत्कालेन—महता = बृहता, कालेन = समयेन, प्रयोगोऽयमार्षः, अल्पकर्म = लघुकृत्यम्, करोति = सम्पादयति, सः = असौ, अल्पफलतः = तुच्छपरिणामात्, शोचति = चिन्तयति। अतः = अस्मात्कारणात्, दीर्घदर्शी = दूरदर्शकः, भवेत् = स्यात्॥७३॥

हिन्दी—जो दीर्घसूत्री देर तक काम करके भी थोड़ा ही काम निपटा पाता है, वह उससे थोड़ा परिणाम पाकर उस पर अनुताप करता है। अतः दूरदर्शी होना चाहिए॥७३॥

महदिति। यः चिरकारी दीर्घसूत्रः महत्कालेन महता कालेन आर्षोऽयं प्रयोगः। अल्पकर्म यत् किञ्चित् कार्य्यं करोति सः अल्पफलतः कार्य्यस्य अल्पफलात् शोचति अनुतपति अतः अस्मात् कारणात् दीर्घदर्शी विविच्यकारी भवेत्॥७३॥

सुफलं तु भवेत् कर्म कदाचित् सहसा कृतम्।
निष्फलं वापि प्रभवेत् कदाचित् सुविचारितम्॥७४॥

अन्वयः—सहसा कृतं कर्म कदाचित् सुफलं भवेत्, सुविचारितं वापि कदाचित् निष्फलं भवेत्॥७४॥

व्याख्या—सहसा = हठात्, कृतम् = सम्पादितम्, कर्म = कार्यम्, कदाचित् = स्यात्, सुफलम् = सुष्ठुफलदायकम्, भवेत् = स्यात्, सुविचारितम् = सुष्ठुतया विवेचितम्, कार्यं वाऽपि, कदाचित् = सम्भवेत्, निष्फलम् = परिणामशून्यम्, भवेत् = स्यादिति॥७४॥

हिन्दी—एकाएक किया गया काम भी कभी-कभी सफल होता है और ठीक इसके विपरीत सुविचारित कर्म भी कभी निष्फल होता है॥७४॥

सुफलमिति। सहसा कृतं कर्म कदाचित् सुफलं भवेत्, सुविचारितञ्च कर्म कदाचित् निष्फलं प्रभवेत् न तु सर्वदेति भावः ॥७४॥

तथापि नैव कुर्वीत सहासानर्थकारि तत्।
कदाचिदपि सञ्जातमकार्य्यादिष्टसाधनम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—तथापि सहसा नैव कुर्वीत, तत् अनर्थकारि। कदाचिदपि अकार्यात् इष्टसाधनं सञ्जातम् ॥७५॥

व्याख्या—तथापि = एवं सत्यपि, सहसा = हठात्, नैव = नास्त्येव, कुर्वीत = विदधीत, तत् = सहसा कृतं कर्म, अनर्थकारि = अयुक्तजनकम्, कदाचिदपि = स्यादपि, अकार्यात् = अकर्त्तव्यात्, इष्टसाधनम् = अभीष्टसिद्धिः, सञ्जातम् = अभवत् ॥७५॥

हिन्दी—फिर भी बिना सोचे-विचारे हठात् कोई काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे काम अनिष्टकर ही होते हैं। कभी-कभी नहीं करने योग्य काम से भी अभीष्ट की सिद्ध हो जाती है ॥७५॥

तथापीति। तथापि कदाचित् साफल्येऽपि सहसा कार्य्यं नैव कुर्वीत, तत् सहसाकरणम् अनर्थकारि अनिष्टजनकम्। कदाचिदपि, अकार्य्यात् इष्टसाधनं सञ्जातं दृश्यते इति विविच्य अकार्य्यं न कर्त्तव्यमिति भावः ॥७५॥

यदनिष्टं तु सत्कार्य्यान्नाकार्य्यप्रेरकं हि तत् ॥ ७६ ॥

अन्वयः—सत्कार्यात् यत् अनिष्टं तत् न अकार्यप्रेरकं भवति ॥७६॥

व्याख्या—सत्कार्यात् = शुभकर्मणः, यदनिष्टम् = यदमङ्गलम्, तत् = अशुभकर्म, न = नहि, अकार्यप्रेरकम्– अकार्यस्य = अपकर्मणः, प्रेरकम् = प्रोत्साहकम्, भवति ॥७६॥

हिन्दी—कभी-कभी अच्छे कर्म का परिणाम भी अमङ्गलदायक होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह अपकर्म करने का प्रेरक हो ॥७६॥

यदिति। सत्कार्य्यात् यत् अनिष्टं जायते इति शेषः, तत् न अकार्य्यप्रेरकम् अकार्य्यसाधकं हि काकतालीयवत् तत्पतनादिति भावः ॥७६॥

भृत्यो भ्रातापि वा पुत्रः पत्नी कुर्य्यान्न चैव यत्।
विधास्यन्ति च मित्राणि तत्कार्यमविशङ्कितम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—भृत्यः भ्राता पुत्रः वा पत्नी यत् न कुर्यात् तत् कार्यम् अविशङ्कितं मित्राणि विधास्यन्ति ॥७७॥

व्याख्या—भृत्यः = सेवकः, भ्राता = सोदरः, पुत्रः = सुतः, वा = अथवा, पत्नी = भार्या, यत् = कार्यम्, न = नहि, कुर्यात् = करोति, तत्कार्यम् = तत्कृत्यम्, अविशङ्कितम् = निःशङ्को भूत्वा, मित्राणि = सुहृदः, विधास्यन्ति = निष्पादयिष्यन्ति ॥७७॥

हिन्दी—जो काम नौकर, भाई, बेटा या पत्नी से पूरा नहीं होता उसे मित्रमण्डल निःशङ्क होकर पूरा कर देते हैं ॥७७॥

भृत्य इति। भृत्यः भ्राता पुत्रः पत्नी वा यत् कार्य्यं नैव कुर्य्यात् नैव करोति किन्तु मित्राणि तत् कार्य्यम् अविशङ्कितं निःशङ्कं यथा तथा विधास्यन्ति करिष्यन्ति कार्य्यम्। मित्रोत्कर्षार्थमिदमिति बोध्यम् ॥७७॥

योहि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति॥७८॥

अन्वयः—यो हि मन्दधीः याथातथ्येन मित्रम् अविज्ञाय मित्रार्थे एनम् अर्थं योजयति, तस्य स अर्थः अवसीदति॥७८॥

व्याख्या—यो हि = पुरुषः, मन्दधीः = मन्दमतिः, याथातथ्येन = यथार्थरूपेण, मित्रम् = सुहृदम्, अविज्ञाय = अज्ञात्वा, मित्रार्थे = मित्रहेतवे, एनम् = एतम्, अर्थम् = प्रयोजनम्, योजयति = घटयति, तस्य = जनस्य, सः = तत्, अर्थः = प्रयोजनम्, अवसीदति = विनश्यति॥७८॥

हिन्दी—जो मूर्ख मित्र के गुण-दोषों को जाने बिना मित्रता के लिए हाथ बढ़ाता है, उसके मैत्री रूप प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है॥७८॥

य इति। यः मन्दधीः मूढमतिः याथातथ्येन मित्रम् अविज्ञाय मित्रस्य अभिप्रायमबुद्ध्वेत्यर्थः, मित्रार्थे एनम् अर्थं कार्य्यं योजयति घटयति तस्य सः अर्थः अवसीदति नश्यति, अभिप्रायमज्ञात्वा कस्यापि अर्थे न यतितव्यमिति भावः॥७८॥

न हि मानसिको धर्मः कस्यचिज्ज्ञायतेऽञ्जसा।
अतो यतेत तत्प्राप्तौ मित्रलब्धिर्वरा नृणाम्॥७९॥

अन्वयः—कस्यचित् मानसिकः धर्मः अञ्जसा नहि ज्ञायते, अतः तत्प्राप्तौ यतेत। अतः नृणां मित्रलब्धिः वरा॥७९॥

व्याख्या—कस्यचित् = जनस्य, मानसिकः = हार्दिकः मनोभवो वा, धर्मः = स्वभावः, अञ्जसा = निष्कपटेन, न हि ज्ञायते = नावबुध्यते, अतः = अस्मात् कारणात्, तत् = तस्य मित्रस्य, प्राप्तौ = उपलब्धिहेतौ, यतेत = प्रयत्नं कुर्यात्। अतः नृणाम् = मनुष्याणाम्, मित्रलब्धिः— मित्राणाम् = सुहृदाम्, लब्धिः = प्राप्तिः, वरा = अन्यलाभेन श्रेष्ठा॥७९॥

हिन्दी—किसी के मनोभाव को सही-सही परखा नहीं जा सकता है, अतः अच्छे मित्र की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। क्योंकि अच्छे मित्र की प्राप्ति से बढ़कर कोई दूसरा लाभ श्रेष्ठ नहीं है॥७९॥

न हीति। कस्यचित् जनस्य मानसिकः धर्मः अञ्जसा तत्त्वतः न हि ज्ञायते, केवलं मित्रस्य ज्ञायते इत्याशयेनाह अत इति। अतः तस्य मित्रस्य प्राप्तौ प्राप्तिनिमित्तं यतेत, अतः नृणां मानवानां मित्रलब्धिः मित्रलाभः वरा श्रेष्ठा अन्यलाभेभ्य इति शेषः॥७९॥

नात्यन्तं विश्वसेत् कञ्चिद् विश्वस्तमपि सर्वदा।
पुत्रं वा भ्रातरं भार्य्याममात्यमधिकारिणम्॥८०॥

अन्वयः—विश्वस्तमपि कञ्चित् पुत्रं भ्रातर भार्याम् अमात्यम् अधिकारिणं सर्वदा अत्यन्तं न विश्वसेत्॥८०॥

व्याख्या—विश्वस्तम् = विश्रम्भभाजनम्, कञ्चित् = जनम्, किं बहुना, पुत्रम् = सुतम्, भ्रातरम् = सोदरम्, भार्याम् = पत्नीम्, अमात्यम् = सचिवम्, अधिकारिणम् = पदाधिकारिवर्गम्, सर्वदा = सततम्, अत्यन्तम् = एकान्तिकम्, न = नहि, विश्वसेत् = विश्वासं कुर्यादिति॥८०॥

हिन्दी—हमेशा किसी विश्वासपात्र व्यक्ति का; यहाँ तक कि बेटे, भाई, पत्नी, सचिव, पदाधिकारीगण का भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिए॥८०॥

नेति। विश्वस्तमपि कञ्चित् जनं बहुना पुत्रं भ्रातरं भार्य्याम् अमात्यम् अधिकारिणं कर्मचारिणमपि सर्वदा अत्यन्तं न विश्वसेत्॥८०॥

धनस्त्रीराज्यलोभो हि सर्वेषामधिको यतः।
प्रामाणिकञ्चानुभूतमाप्तं सर्वत्र विश्वसेत्॥८१॥

अन्वयः—यतः सर्वेषां धनस्त्रीराज्यलोभः हि अधिकः सर्वत्र प्रामाणिकम् अनुभूतम् आप्तं विश्वसेत्॥८१॥

व्याख्या—यतः=यस्मात्, सर्वेषाम्=सकलानां जनानाम्, धनस्त्रीराज्यलोभः—धनेषु=वित्तेषु, स्त्रीषु=नारीषु, राज्येषु=जनपदेषु, लोभः=लोलुपता, हि=इति निश्चयेन, अधिकः=प्रभूतः, अतः, सर्वत्र=सर्वस्मिन्स्थाने, प्रामाणिकम्=विश्वसनीयम्, अनुभूतम्=परीक्षितम्, आप्तम्=भ्रान्तिशून्यहितैषिणम्, विश्वसेत्=विश्वासं कुर्यात्॥८१॥

हिन्दी—क्योंकि सभी को धन, औरत और राज्य का लोभ अधिक होता है, अतः सभी जगह विश्वस्त, सुपरीक्षित भ्रान्तिशून्य हितैषियों पर ही विश्वास करना चाहिए॥८१॥

धनेति। यतः यस्मात् सर्वेषां जनानां धनस्त्रीराज्येषु लोभः हि निश्चयेन अधिकः प्रबलः, अतः सर्वत्र प्रामाणिकं विश्वस्तत्वेन प्रमाणसिद्धम् अनुभूतं सुपरिचितम् आप्तं हितैषिणं जनं विश्वसेत्॥८१॥

विश्वसित्वात्मवद् गूढस्तत्कार्यं विमृशेत् स्वयम्।
तद्वाक्यं तर्कतोऽनर्थं विपरीतं न चिन्तयेत्॥८२॥

अन्वयः—आत्मवत् विश्वसित्वा गूढः स्वयं तत्कार्यं विमृशेत्। तद्वाक्यं तर्कतः अनर्थं विपरीतं न चिन्तयेत्॥८२॥

व्याख्या—आत्मवत्=स्वात्मानमिव, विश्वसित्वा=विश्रब्धो भूत्वा, गूढः=प्रच्छन्नः सन्, स्वयम्=आत्मनः एव, तत्=तस्य जनस्य, कार्यम्=कृत्यम्, विमृशेत्=विचारयेत्। तद्वाक्यम्= तस्य कथनम्, तर्कतः=युक्तिपूर्वकेण, अनर्थम्=अयुक्तार्थम्, विपरीतम्=विरुद्धम्, न=नहि, चिन्तयेत्=विचारयेत्॥८२॥

हिन्दी—अपनी तरह जिस पर विश्वास करना हो उसके काम की भी छिपकर परीक्षा लेनी चाहिए। परीक्षित व्यक्ति के कथन में तर्क से यदि कुछ अयुक्त भी हो तो उस पर ध्यान नहीं देना चाहिए॥८२॥

विश्वसित्वेति। आत्मवत् आत्मानमिव विश्वसित्वा गूढः सन् स्वयं तत्कार्य्यं विमृशेत् विविच्य पश्येत्, तद्वाक्यं तस्य विश्वस्तस्य वाक्यञ्च तर्कतः तर्केण अनर्थविपरीतम् अनर्थेन विरुद्धं यथा तथा न चिन्तयेत्॥८२॥

चतःषष्टितमांशं तन्नाशितं क्षमयेदथ।
स्वधर्मनीतिबलवांस्तेन मैत्रीं प्रधारयेत्॥८३॥

अन्वयः—अथ स्वधर्मनीतिबलवान् तन्नाशितं चतुष्षष्टितमांशं क्षमयेत्, तेन मैत्रीं प्रधारयेत् ॥ ८३ ॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, स्वधर्मनीतिबलवान्—यदि स्वस्य = आत्मनः, धर्मे = स्वभावे, नीतौ = युक्तौ, बलवान् = शक्तिशाली भवेत्, तदा तेन = विश्वस्तेन, नाशितम् = विनष्टीकृतम्, चतुःषष्टितमांशम् = कार्यस्य चतुःषटिभागस्यैकभागम्, तथापि तं क्षमयेत् = मर्षणं कुर्यात्, तेन = विश्वस्तेन, मैत्रीम् = सौहार्दम्, प्रधारयेत् = अङ्गीकुर्यात् ॥ ८३ ॥

हिन्दी—यदि वह व्यक्ति अपने स्वभाव और युक्ति में सशक्त है तो फिर उसके द्वारा अनुष्ठित काम का कुछ अंश अगर विनष्ट भी हो जाय तो उसे माफ कर उससे मैत्री करनी चाहिए ॥ ८३ ॥

चतुःषष्टीति। यदि स्वधर्मनीतिषु बलवान् भवेदिति शेषः, तदा तेन विश्वस्तेन नाशितं क्षयीकृतं चतुःषष्टितमांशं कार्य्यस्य चतुःषष्टिभागैकभागं क्षमयेत् न गणयेदित्यर्थः। तेन मैत्रीञ्च प्रधारयेत् रक्षेत् ॥ ८३ ॥

दानैर्मानैश्च सत्कारैः सुपूज्यान् पूजयेत् सदा ॥ ८४ ॥

अन्वयः—दानैः मानैः सत्कारैः सुपूज्यान् सदा पूजयेत् ॥ ८४ ॥

व्याख्या—दानैः = वितरणैः, मानैः = सम्मानैः, सत्कारैः = समादरैः, सुपूज्यान् = श्रेठजनान्, सदा = सर्वदा, पूजयेत् = सम्मानयेत् ॥ ८४ ॥

हिन्दी—दान, मान और सत्कार से अत्यन्त पूजनीय जनों की सदा पूजा करे ॥ ८४ ॥

दानैरिति। दानैः मानैः सत्कारैः सेवाभिश्च सुपूज्यान् सदा पूजयेत् ॥ ८४ ॥

कदापि नोग्रदण्डः स्यात् कटुभाषणतत्परः।
भार्य्या पुत्रोऽप्युद्विजते कटुवाक्यात् प्रदण्डतः ॥ ८५ ॥

अन्वयः—कदापि उग्रदण्डः कटुभाषणतत्परश्च न स्यात्। कटुवाक्यात् प्रदण्डतः भार्या पुत्रोऽपि उद्विजते ॥ ८५ ॥

व्याख्या—कदापि = कथमपि, उग्रदण्डः = प्रचण्डनिग्रहः, कटुभाषणतत्परः = अप्रियवचनतत्परः, न = नहि, स्यात् = भवेत्। कटुवाक्यात् = अप्रियवचनात्, प्रदण्डतः = प्रचण्डदण्डाच्च, अन्यस्य का कथा, भार्या = पत्नी, पुत्रोऽपि = सुतोऽपि, उद्विजते = उद्वेगं गच्छति ॥ ८५ ॥

हिन्दी—कभी भी किसी को न तो प्रचण्ड दण्ड दे और न किसी से कटु वचन बोले। कठोर दण्ड देने वाले तथा कटु बोलने वाले से पत्नी-पुत्र भी बेचैन हो जाते हैं।।८५ ॥

कदापीति। कदापि उग्रदण्डः तीक्ष्णदण्डः कटुभाषणतत्परश्च न स्यात्। कटुवाक्यात् प्रदण्डतः तीक्ष्णदण्डाच्च भार्य्या पुत्रोऽपि किमन्ये इति भावः, उद्विजते विरज्यते ॥ ८५ ॥

पशवोऽपि वशं यान्ति दानैश्च मृदुभाषणैः ॥ ८६ ॥

अन्वयः—पशवोऽपि दानैः मृदुभाषणैश्च वशं यान्ति ॥ ८६ ॥

व्याख्या—पशवोऽपि = लोमशृङ्गविषाणादियुक्तजन्तवोऽपि, दानैः = आहारादिप्रदानैः, मृदुभाषणैः = मधुरवचनैश्च, वशं यान्ति = वशवर्त्तिनो भवन्ति ॥ ८६ ॥

हिन्दी—पशु आहार देने से तथा मीठी बातों से वशवर्त्ती हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

पशव इति। पशवः अपि दानैः शष्पादिप्रदानैः मृदुभाषणैश्च वशं यान्ति वशीभूता भवन्ति ॥८६॥

न विद्यया न शौर्य्येण धनेनाभिजनेन च।
न बलेन प्रमत्तः स्याच्चातिमानी कदाचन॥८७॥

अन्वयः—विद्यया न शौर्येण न धनेन न अभिजनेन बलेन च न प्रमत्तः अतिमानी च कदाचन स्यात्॥८७॥

व्याख्या—विद्यया = ज्ञानेन, न = नहि, शौर्येण = पराक्रमेण, न, धनेन = वित्तेन, न, अभिजनेन = कुलेन, न, बलेन = शक्त्या, च न, प्रमत्तः = मदोन्मत; अतिमानी = अतिगर्वी च, कदाचन = कथमपि, न, स्यात् = भवेत्॥८७॥

हिन्दी—विद्या, वीरता, धन, कुल और बल के मद से न तो उन्मत्त होना चाहिए और न जातिघमण्डी ही॥८७॥

नेति। विद्यया न, शौर्य्येण न, धनेन न, अभिजनेन अन्वयेन न, बलेन च न प्रमत्तः अतिमानी च कदाचन स्यात्॥८७॥

नाप्तोपदेशं संवेत्ति विद्यामत्तः स्वहेतुभिः।
अनर्थमप्यभिप्रेतं मन्यते परमार्थवत्॥८८॥

अन्वयः—विद्यामत्तः स्वहेतुभिः आप्तोपदेशं न संवेत्ति। अनर्थमप्यभिप्रेतं परमार्थवत् मन्यते॥८८॥

व्याख्या—विद्यामत्तः—विद्यया = ज्ञानेन, मत्तः = उद्दण्डः, स्वहेतुभिः—स्वस्य = आत्मनः, हेतुभिः = कारणैः, आप्तानाम् = हितैषिणाम्, उपदेशः = हितकरवचनम्, न = नहि, संवेत्ति = सुष्ठुतया जानाति। अनर्थमपि = अनिष्टमपि, अभिप्रेतम् = अभिलाषितम्, परमार्थवत् = परमार्थ इव, मन्यते = स्वीक्रियते॥८८॥

हिन्दी—विद्या के मद से उन्मत्त जन अपने तर्कों के सामने परम हितैषी जनों के उपदेश की भी अवहेलना कर देते हैं तथा अनिष्ट को भी अभीष्ट मान कर परमार्थ की तरह स्वीकार करते हैं॥८८॥

नेति। विद्यया मत्तः उद्धतः जनः स्वहेतुभिः निजतर्कैः आप्तस्य विश्वस्तस्य गुरुजनस्य उपदेशं न संवेत्ति नावबुध्यते। अनर्थमपि अभिप्रेतं स्वाभिमतं परमार्थवत् परमार्थतुल्यं मन्यते॥८८॥

महाजनैर्धृतः पन्था येन सन्त्यज्यते बलात्।
शौर्य्यमत्तस्तु सहसा युद्धं कृत्वा जहात्यसून्।
व्यूहादियुद्धकौशल्यं तिरस्कृत्यं च शस्त्रवान्॥८९॥

अन्वयः—येन महाजनैः धृतः पन्थाः बलात् सन्त्यज्यते, सः शौर्येण मत्तः व्यूहादियुक्तकौशलं तिरस्कृत्य शस्त्रवान् सहसा युद्धं कृत्वा असून् जहाति॥८९॥

व्याख्या—येन = पुरुषेण, महाजनैः = सत्पुरुषैः, धृतः = सेवितः, पन्थाः = मार्गम्, बलात् = हठात्, सन्त्यज्यते = परित्यजति, सः = असौ, शौर्येण = शूरत्वदर्पेण, मत्तः = उन्मत्तो भूत्वा, व्यूहादियुद्धकौशलम् = सैन्यसंस्थानादियुद्धरचनाचातुर्यम्, तिरस्कृत्य = अनादृत्य, शस्त्रवान् =

आयुधसमन्वितोऽपि, सहसा = अकस्मात्, युद्धम् = समरम्, कृत्वा = अनुष्ठीय, असून् = प्राणान्, जहाति = परित्यजति ॥ ८९ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति वीरता के दर्प से उन्मत्त होकर सत्पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग का परित्याग कर युद्ध करने की समस्त कलाओं की अवहेलना कर अचानक युद्ध के मैदान में उतर जाता हैं, वह हथियारबन्द होते हुए भी रणभूमि में खेत आता है ॥ ८९ ॥

महाजनैरिति। येन महाजनैः साधुभिः धृतः सेवितः पन्थाः आचारः बलात् बलमाश्रित्य त्यज्यते सः, तथा शौर्येण बलेन मत्तः व्यूहादियुद्धेषु कौशल्यं नैपुण्यं तिरस्कृत्य अगणयित्वा शस्त्रवान् शस्त्रधारी जनः सहसा युद्धं कृत्वा असून् प्राणान् जहाति त्यजति ॥ ८९ ॥

श्रीमत्तः पुरुषो वेत्ति न दुष्कीर्त्तिमजो यथा।
स्वमूत्रगन्धं मूत्रेण मुखमासिञ्चते स्वकम् ॥ ९० ॥

अन्वयः—श्रीमत्तः पुरुषः अजः स्वमूत्रगन्धं यथा दुष्कीर्तिं न वेत्ति, प्रत्युत मूत्रेण स्वकं मुखम् आसिञ्चते ॥ ९० ॥

व्याख्या—श्रीमत्तः = धनवत्तः, पुरुषः, अजः = छागः, स्वमूत्रगन्धम्—स्वस्य = आत्मनः, मूत्रगन्धम् = प्रस्रावववासः, यथा = येन प्रकारेण, दुष्कीर्त्तिम् = अपयशः, न = नहि, वेत्ति = जानाति, प्रत्युत, मूत्रेण = प्रस्रावेण, अन्यत्र कुख्यात्या, स्वकम् = निजम्, मुखम् = आननम्, आसिञ्चते = प्रोक्षयति, अन्यत्र अवनमयति ॥ ९० ॥

हिन्दी—जैसे बकरा अपने पेशाब की बदबू से अनजान उसी मूत से अपने मुँह को सींचता रहता है, उसी तरह धनमद से उन्मत्त पुरुष अपनी कुख्याति से अनजान अपना मुँह झुकाता है ॥ ९० ॥

श्रीमत्त इति। श्रीमत्तः ऐश्वर्य्यमत्तः पुरुषः अजः छागः स्वस्य मूत्रगन्धं यथा दुष्कीर्त्तिम् अख्यातिं न वेत्ति न जानाति प्रत्युत मूत्रेण अन्यत्र अकीर्त्या स्वकं निजं मुखम् आसिञ्चते विलिम्पति अन्यत्र अवनमयति ॥ ९० ॥

तथाभिजनमत्तस्तु सर्वानेवावमन्यते।
श्रेष्ठानपीतरान् सम्यगकार्य्ये कुरुते मतिम् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—तथा अभिजनेन मत्तः तु सर्वान् एव श्रेष्ठान् इतरान् अवमन्यते, अकार्ये सम्यक् मतिं कुरुते ॥ ९१ ॥

व्याख्या—तथा = तेनैव प्रकारेण, अभिजनेन = कौलीन्येन, मत्तः = उन्मत्तः, तु = बलार्थे प्रयोगः, सर्वान् = सकलान् एव, श्रेष्ठान् = पूज्यपुरुषान्, इतरान् = अन्यगुरुजनान्, अवमन्यते = अवहेलनां कुरुते, अकार्ये = कुकृत्ये, सम्यक् = सुष्ठुतया, मतिम् = अभिरुचिम्, कुरुते = अभिधत्ते ॥ ९१ ॥

हिन्दी—अपनी कुलीनता के मद से उन्मत्त व्यक्ति पूज्य गुरुजन एवं सामान्य व्यक्ति सभी को अपमानित कर अपकर्म करने में अपनी बुद्धि का उपयोग करता है ॥ ९० ॥

तथेति। तथा अभिजनेन कौलीन्येन मत्तः जनः सर्वानपि श्रेष्ठान् गुरून् इतरान् अन्यांश्च अवमन्यते, अकार्य्ये सम्यक् मतिं कुरुते च ॥ ९१ ॥

बलमत्तस्तु सहसा युद्धे विदधते मनः।
बलेन बाधते सर्वान् पश्वादीनपि ह्यन्यथा॥ ९२॥

अन्वयः—बलमत्तस्तु सहसा युद्धे मनः विदधते। अन्यथा पश्वादीनपि सर्वान् बलेन बाधते॥ ९२॥

व्याख्या—बलमत्तः—बलेन = शक्त्या, मत्तः = उन्मतः, तु = बलार्थे प्रयोगः, सहसा = झटिति, युद्धे = समरे, मनः = चित्तः, विदधते। अन्यथा = इतरथा, पश्वादीनपि = चतुष्पदादीनपि, सर्वान् = सकलान्, बलेन = शक्त्या, बाधते = पीडयति॥ ९२॥

हिन्दी—अपनी ताकत के दर्प से उन्मत्त बना व्यक्ति बिना विचारे एकाएक युद्ध ठान देता है तथा सबको सताता है। यहाँ तक कि पशुओं को भी पीड़ित करने में नहीं चुकता॥ ९२॥

बलमत्त इति। बलेन मत्तस्तु जनः सहसा युद्धे मनः विदधते तथा सर्वदा पश्वादीनपि सर्वान् बलेन बाधते पीडयति॥ ९२॥

मानमत्तो मन्यते स्म तृणवच्चाखिलं जगत्।
अनर्होऽपि च सर्वेभ्यस्त्वत्यर्घासनमिच्छति॥ ९३॥

अन्वयः—मानमत्तः अखिलं जगत् तृणवत् मन्यते स्म। अनर्होऽपि सर्वेभ्यः अत्यर्घासनम् इच्छति॥ ९३॥

व्याख्या—मानमत्तः—मानेन = दर्पेण, मत्तः = उन्मत्तः जनः, अखिलम् = समग्रम्, जगत् = संसारम्, तृणवत् = तुच्छ इव, मन्यते स्म = ज्ञायते स्म। तथा अनर्होऽपि = स्वयमयोग्योऽपि, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः जनेभ्यः, अत्यर्घासनम् = अत्युच्चासनम्, इच्छति = अभिलषति॥ ९३॥

हिन्दी—अति अंहकारी व्यक्ति समस्त दुनिया को घास-पात की तरह तुच्छ समझता है। स्वयं अयोग्य होने के बावजूद सर्वश्रेष्ठ आसन पाने की कामना रखता है॥ ९३॥

मानमत्त इति। मानेन अभिमानेन गर्वेणेत्यर्थः, मत्तः जनः अखिलं समग्रं जगत् तृणवत् मन्यते स्म, तथा अनर्होऽपि अयोग्योऽपि सर्वेभ्यः जनेभ्यः अत्यर्घासनम् अतिश्रेष्ठासनम् इच्छति॥ ९३॥

मदा एतेऽवलिप्तानां सतामेति दमाः स्मृताः॥ ९४॥

अन्वयः—अवलिप्तानाम् एते मदाः, सताम् एते दमाः स्मृताः॥ ९४॥

व्याख्या—अवलिप्तानाम् = गर्वितानाम्, एते = पूर्वोक्ताः श्रीमत्तादयः, मदाः = दर्पोत्पादकाः सन्ति, अन्यथा सताम् = सज्जनानाम्, एते = पूर्वोक्ताः, दमाः = विनयोत्पादकाः, स्मृताः = कथिताः॥ ९४॥

हिन्दी—गर्वीले लोगों के लिए पूर्वोक्त विद्यादि जहाँ उन्मत्त बनाने के साधन हैं, वहीं वे सज्जनों के पास आकर उन्हें विनम्र बना देते हैं॥ ९४॥

मदा इति। अवलिप्तानां गर्वितानाम् एते मानादयः मदाः मत्तताजनकाः, सतां साधूनाम् एते मानादयः दमाः विनयजनकाः स्मृता उक्ताः॥ ९४॥

विद्यायाश्च फलं ज्ञानं विनयश्च फलं श्रियः।
यज्ञदानं बलफलं सद्रक्षणमुदाहृतम्॥ ९५॥

अन्वयः—विद्यायाः फलं ज्ञानं विनयश्च श्रियः फलं यज्ञः दानञ्च बलस्य फलं सतां रक्षणम् उदाहृतम् ॥९५॥

व्याख्या—विद्यायाः = बोधस्य, फलम् = परिणामम्, ज्ञानम् = बोधः, विनयश्च = विनम्रता च, श्रियः = लक्ष्म्याः, फलम् = परिणामम्, यज्ञः = याजनम्, दानञ्च = वितरणञ्च, बलस्य = शक्तेः, फलम्, सताम् = सज्जनानाम्, रक्षणम् = त्राणम्, उदाहृतम् = उक्तमिति ॥९५॥

हिन्दी—विद्या का फल ज्ञान और विनय है, धनी होने का फल यज्ञ और दान है तथा बलवान् होने का फल सत्पुरुषों का संरक्षण है ॥९५॥

विद्याया इति। विद्यायाः फलं ज्ञानं विनयश्च श्रियः सम्पदः फलं यज्ञः दानञ्च, बलस्य फलं सतां साधूनां रक्षणम् उदाहृतं कथितम् ॥९५॥

नामिताः शत्रवः शौर्य्यफलं च करदीकृताः।
शमो दमश्चार्जवं चाभिजनस्य फलं त्विदम्।
मानस्य तु फलं चैतत् सर्वे स्वसदृशा इति ॥९६॥

अन्वयः—शौर्यफलं शत्रवः नामिताः करदीकृताश्च अभिजनस्य तु फलमिदं शमः दमः आर्जवञ्च मानस्य च एतत् फलं सर्वे स्वसदृशाः इति ॥९६॥

व्याख्या—शौर्यफलम्—शौर्यस्य = पराक्रमस्य, फलम् = परिणामम्, शत्रवः = अरयः, नामिताः = विनम्रीकृताः, करदीकृताः = राजस्वप्रदातारः कृताः, अभिजनस्य = कुलीनस्य, फलम् = परिणामम्, इदम् = एतत्, शमः = शान्तिः, दमः = दमनश्च, आर्जवञ्च = निष्कपटवाक्च, मानस्य = गर्वस्य, एतत् = इदम्, फलम् = परिणामम्, सर्वे = सकलाः जनाः, स्वसदृशाः = आत्मतुल्याः, इति = एवम् ॥९६॥

हिन्दी—पराक्रम का परिणाम दुश्मनों का शिर नीचा करना तथा उन्हें उनसे कर वसूलना है। कुलीनता का फल है—मन की शान्ति, इन्द्रियों का दमन एवं स्वभाव की सरलता तथा मान का फल है—सबको अपनी तरह सम्मानित समझना ॥९६॥

नामिता इति। शौर्य्यस्य फलं शत्रवः नामिताः करदीकृताश्च। अभिजनस्य च फलमिदं शमः, शान्तिः दमः विनयः, आर्जवञ्च मानस्य च एतत् फलं यथा सर्वे स्वस्य सदृशा इति ॥९६॥

सुविद्यामन्त्रभैषज्यस्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।
गृह्णीयात् सुप्रयत्नेन मानमुत्सृज्य साधकः ॥९७॥

अन्वयः—साधकः मानम् उत्सृज्य दुष्कुलादपि सुविद्यामन्त्रभैषज्यस्त्रीरत्नञ्च सुप्रयत्नेन गृह्णीयात् ॥९७॥

व्याख्या—साधकः = सिद्धिकरः, मानम् = अभिमानः, उत्सृज्य = परित्यज्य, दुष्कुलादपि = नीचकुलादपि, सुविद्याम् = शोभनज्ञानम्, मन्त्रम् = वेदवाक्यम्, भैषज्यम् = औषधम्, स्त्रीरत्नञ्च = नारीरत्नञ्च, सुप्रयत्नेन = प्रयासपूर्वकेन, गृह्णीयात् = ग्रहणं कुर्यात् ॥९७॥

हिन्दी—काम साधने वाला व्यक्ति अभिमान छोड़कर नीच कुल से भी सुन्दर विद्या, मंत्र, दवाई, स्त्रियों में उत्तम नारी को प्रयासपूर्वक ग्रहण करे ॥९७॥

सुविद्येति। साधकः कार्य्यार्थी जनः मानम् उत्सृज्य त्यक्त्वा दुष्कुलादपि सुविद्यां मन्त्रं भैषज्यम् औषधं स्त्रीरत्नञ्च सुप्रयत्नेन गृह्णीयात् आहरेत् ॥९७॥

उपेक्षेत प्रनष्टं यत् प्राप्तं यत् तदुपाहरेत्।
न बालं न स्त्रियं चातिलालयेत् ताडयेन्न च।
विद्याभ्यासे गृह्यकृत्ये तावुभौ योजयेत् क्रमात्॥ ९८॥

अन्वयः—यत् प्रनष्टम् उपेक्षेत, यत् प्राप्तं तत् उपाहरेत्। किञ्च न बालं न स्त्रियं च न अतिलालयेत् न च अतिताडयेत्। विद्याभ्यासे गृह्यकृत्ये तौ उभौ क्रमात् योजयेत्॥९८॥

व्याख्या—यत् = वस्तु, प्रनष्टम् = विनाशमगमत्, तद्वस्तु उपेक्षेत = अवधीरयेत्, यत् = द्रव्यम्, प्राप्तम् = लब्धम्, तत् उपाहरेत् = गृह्णीयात्। किञ्च, न बालम् = शिशुम्, न स्त्रियम् = नारीम्, च = पुनः, न = नहि, अतिलालयेत् = अतिस्पर्द्धयेत्, न च = नापि च, अतिताडयेत् = अत्यधिक ताडनं कुर्यात्। विद्याभ्यासे = अध्ययने, गृह्यकृत्ये = गृहकर्मणि, तौ = बालवनिते, उभौ = द्वौ, क्रमात् = क्रमशः, योजयेत् = नियुञ्ज्यात्॥९८॥

हिन्दी—जो वस्तु विनष्ट हो गयी उसकी उपेक्षा तथा जो वस्तु प्राप्त हुई उसे ग्रहण करे। बच्चे और औरतों को अधिक लाड़-प्यार अथवा डाँट-फटकार अनुचित है। बच्चे को अध्ययन में और औरतों को गृहकार्य में लगना चाहिए॥९८॥

उपेक्षेतेति। यत् द्रव्यं प्रनष्टं तत् उपेक्षेत, यत् प्राप्तं तत् उपाहरेत् गृह्णीयात्। किञ्च बालं शिशुं न स्त्रियञ्च न अतिलालयेत् स्पर्द्धयेत्, न च अतिताडयेत्, विद्याभ्यासे गृहकृत्ये च तौ उभौ क्रमात् योजयेत् नियुञ्ज्यात्॥९८॥

परद्रव्यं क्षुद्रमपि नादत्तं संहरेदणु।
नोच्चारयेदघं कस्य स्त्रियं नैव च दूषयेत्॥ ९९॥

अन्वयः—क्षुद्रमपि परद्रव्यम् अदत्तं न संहरेत्। कस्यापि अणु अघं न उच्चारयेत् च स्त्रियं नैव दूषयेत्॥९९॥

व्याख्या—क्षुद्रमपि = अत्यल्पमपि, परद्रव्यम् = परधनम्, अदत्तम् = अनर्पितम्, न = नहि, संहरेत् = गृह्णीयात्। कस्याऽपि = जनस्य, अघम् = पापम्, अणु = अल्पमपि, न = नहि, उच्चारयेत् = वदेत्, च = पुनः, स्त्रियम् = नारीम्, नैव, दूषयेत् = दोषमारोपयेत्॥९९॥

हिन्दी—बिना दिये दूसरों की क्षुद्र वस्तु भी न ले। किसी के छोटे पाप का भी उल्लेख न करे और किसी भी औरत पर दोषारोपण न करे॥९९॥

परद्रव्यमिति। क्षुद्रम् अल्पमपि परद्रव्यम् अदत्तं न संहरेत् न गृह्णीयात्, कस्यापि अणु अल्पमपि अघं पापं न उच्चारयेत् न कीर्त्तयेत् तथा स्त्रियमपि नैव दूषयेत्॥९९॥

न ब्रूयादनृतं साक्ष्यं कृतं साक्ष्यं न लोपयेत्।
प्राणात्ययेऽनृतं ब्रूयात् सुमहत्कार्य्यसाधने॥ १००॥

अन्वयः—अनृतं साक्ष्यं न ब्रूयात्, कृतं साक्ष्यं न लोपयेत्। प्राणात्यये तथा सुमहत्कार्यसाधने अनृतं ब्रूयात्॥१००॥

व्याख्या—अनृतम् = असत्यम्, साक्ष्यम् = साक्षित्वम्, न = नहि, ब्रूयात् = वदेत्, कृतम् = निष्पादितम्, साक्ष्यम् = साक्षिता न = नहि, लोपयेत् = अपलपेत्। प्राणात्यये = प्राणविनाशकाले, सुमहत्कार्यसाधने = अतिमहत्त्वपूर्णकार्यसम्पादने, अनृतम् = मिथ्या, ब्रूयात् = वदेत्॥१००॥

हिन्दी—न झूठी गवाही और न दी हुई गवाही से मुकरे। प्राणसंकट उपस्थित होने पर या बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि के लिए ही झूठ बोलना पड़े तो बोले॥१००॥

नेति। अनृतं मिथ्यासाक्ष्यं न ब्रूयात्, कृतं दत्तञ्च साक्ष्यं न लोपयेत् नान्यथयेत्। प्राणात्यये तथा सुमहत्कार्य्यसाधनेऽपि अनृतं ब्रूयादिति अनृतवचनप्रतिप्रसवोऽयम्॥१००॥

कन्यादात्रे तु ह्यधनं दस्यवे सधनं नरम्।
गुप्तं जिघांसवे नैव विज्ञातमपि दर्शयेत्॥१०१॥

अन्वयः—कन्यादात्रे अधनं नरं दस्यवे सधनं नरं जिघांसवे गुप्तं विज्ञातमपि नैव दर्शयेत्॥१०१॥

व्याख्या—कन्यादात्रे = दारिकादात्रे, अधनम् = निर्धनम्, नरम् = पुत्रीपतिम्, दस्यवे = लुण्ठकाय, सधनम् = धनी, नरम् = जनम्, जिघांसवे = हन्तुमुद्यताय जनाय, गुप्तम् = प्रच्छन्नम्, विज्ञातमपि = जानन्नपि, न = नहि, दर्शयेत् = निर्दिशेत्॥१०१॥

हिन्दी—कन्यादाता के सामने जमाई को गरीब, डाकू को धनी तथा मारने वाले को जानते हुए भी छिपे व्यक्ति के बारे में न बताये या बोले॥१०१॥

कन्यादात्रे इति। कन्यादात्रे अधनं निर्धनं नरं जामातृत्वेन अभिप्रेतमित्यर्थः, दस्यवे सधनं नरं तथा जिघांसवे हन्तुमिच्छवे जनाय गुप्तं जनं विज्ञातमपि न दर्शयेत्॥१०१॥

जायापत्योश्च पित्रोश्च भ्रात्रोश्च स्वामिभृत्ययोः।
भगिन्योर्मित्रयोर्भेदं न कुर्य्याद् गुरुशिष्ययोः॥१०२॥
न मध्याद् गमनं भाषाशालिनोः स्थितयोरपि।
सुहृदं भ्रातरं बन्धुमुपचर्य्यात् सदात्मवत्॥१०३॥

अन्वयः—जायापत्योश्च पित्रोश्च भ्रात्रोश्च स्वामिभृत्ययोः भगिन्योः गुरुशिष्ययोः भेदं न कुर्यात्। भाषाशालिनोः स्थितयोरपि मध्यात् गमनं न। सुहृदं भ्रातरं बन्धुं सदा आत्मवत् उपचर्यात्।

व्याख्या—जायापत्योश्च = स्त्रीपुरुषयोः, पित्रोश्च = जननीजनकयोः, भ्रात्रोः = सोदरयोः, स्वामिभृत्ययोः = सेवकसेव्ययोः, भगिन्योः = सोदरयोः, गुरुशिष्ययोः = आचार्यान्तेवासिनोः, भेदम् = अन्तरम्, न = नहि, कुर्यात् = निष्पादयेत्। भाषाशालिनोः = परस्परं कथनोपकथनं कुर्वतोः, स्थितयोरपि = विद्यमानयोरपि, मध्यात् = अभ्यन्तरात्, गमनम् = सञ्चरणम्, न कुर्यात्। सुहृदम् = सखायम्, भ्रातरम् = सोदरम्, बन्धुम् = बान्धवम्, सदा = सर्वदा, आत्मवत् = स्वात्मानमिव, उपचर्यात् = उपचारं कुर्यादिति॥१०२-१०३॥

हिन्दी—पति-पत्नी, माँ-बाप, भाई-भाई, नौकर-मालिक, बहन-बहन, मित्र-मित्र और गुरु-शिष्य के बीच फूट न डाले। आपस में वार्त्तालाप करते हुए दो व्यक्ति के बीच से न गुजरे। भाई, बन्धु और मित्र के साथ सदैव अपनी आत्मा की तरह व्यवहार करे॥१०२-१०३॥

जायापत्योरिति। **नेति**। जायापत्योः दम्पत्योः पित्रोः मातापित्रोः भ्रात्रोः स्वामिभृत्ययोः भगिन्योः मित्रयोश्च भेदं मनोभङ्गं न कुर्य्यात्। तथा भाषाशालिनोः परस्परं कथोपकथनं कुर्वतोः स्थितयोः द्वयोः मध्यात् गमनञ्च न कुर्य्यात्। किञ्च सुहृदं भ्रातरं बन्धुं स्वजनं सदा आत्मवत् उपचर्य्यात् व्यवहरेत्॥१०२-१०३॥

गृहागतं क्षुद्रमपि यथार्हं पूजयेत् सदा।
तदीयकुशलप्रश्नैः शक्त्या दानैर्जलादिभिः ॥ १०४ ॥

अन्वयः—गृहागतं क्षुद्रमपि सदा यथार्हं तदीयकुशलप्रश्नैः शक्त्या जलादिभिः दानैः च पूजयेत् ॥ १०४ ॥

व्याख्या—गृहागतम्—गृहे = सदने, आगतम् = सम्प्राप्तम्, क्षुद्रमपि = अधममपि जनम्, सदा = सर्वदा, यथार्हम् = यथायोग्यम्, तदीयकुशलप्रश्नैः—तदीयैः = तत्सम्बन्धिभिः, कुशलप्रश्नैः = क्षेमादिपृच्छाभिः, जलादिभिः = सलिलादिभिः, दानैः = प्रदानैः, च, पूजयेत् = सम्मानयेत् ॥ १०४ ॥

हिन्दी—अपने घर पर आये हुए अदना आदमी को भी जैसा चाहिए वैसा उसका कुशल-मंगल पूछकर अपनी शक्ति के अनुसार अन्न-जल देकर उसका सत्कार करना चाहिए ॥ १०४ ॥

गृहागतमिति। गृहागतं क्षुद्रमपि नीचमपि जनं सदा यथार्हं यथायोग्यं तदीयकुशलप्रश्नैः शक्त्या यथाशक्ति जलादिभिः दानैश्च पूजयेत् ॥ १०४ ॥

सपुत्रस्तु गृहे कन्यां सपुत्रां वासयेन्न हि।
सभर्तृकां च भगिनीमनाथे ते तु पालयेत् ॥ १०५ ॥

अन्वयः—सपुत्रः गृहे सपुत्रां कन्यां न सभर्तृकां भगिनीं च न वासयेत्। ते अनाथे तु पालयेत् ॥ १०५ ॥

व्याख्या—सपुत्रः = पुत्रेण युक्तः सुतान्वितो जनः, गृहे = स्वकीयसदने, सपुत्राम् = सुतान्विताम्, कन्याम् = सुताम्, सभर्तृकाम् = पतियुक्ताम्, भगिनीम् = सहोदराम्, न = नहि, वासयेत् = वासो दद्यात्, कलहसम्भवादित्यर्थः। ते = सुतासोदरे, तु, अनाथे = असहाये, पालयेत् = पालनं कुर्यात् ॥ १०५ ॥

हिन्दी—बेटा के साथ बेटी को, बहनोई के साथ बहिन को अपने घर में सदा के लिए वास न दे। हाँ, यदि वे असहाय हों तो उसकी रक्षा अवश्य करे ॥ १०५ ॥

सपुत्र इति। सपुत्रः पुत्रवान् जनः गृहे सपुत्रां पुत्रवतीं कन्यां सभर्तृकां भगिनीञ्च न हि वासयेत् सर्वदा कलहसम्भवादिति भावः। ते कन्याभगिन्यौ अनाथे अनाश्रये तु पालयेत् रक्षेत् ॥ १०५ ॥

सर्पोऽग्निर्दुर्जनो राजा जामाता भगिनीसुतः।
रोगः शत्रुर्नावमान्योऽप्यल्प इत्युपचारतः ॥ १०६ ॥

अन्वयः—सर्पः अग्निः दुर्जनः राजा जामाता भगिनीसुतः रोगः शत्रुश्च अल्पः बालको वा उपचारतः नावमान्यः ॥ १०६ ॥

व्याख्या—सर्पः = नागः, अग्निः = वह्निः, दुर्जनः = दुर्वृत्तः, राजा = नृपः, जामाता = पुत्रीपतिः, भगिनीसुतः = भागिनेयः, रोगः = व्याधिः, शत्रुश्च = रिपुश्च, अल्पः = क्षुद्रः, बालकः = शिशुः, वा, उपचारतः = सेवार्थे, न = नहि, अवमान्यः = तिरस्करणीयः ॥ १०६ ॥

हिन्दी—साँप, आग, दुष्ट आदमी, राजा, जमाई, भगिना, रोग, दुश्मन छोटा है या बच्चा यह समझ कर उनका तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिए ॥ १०६ ॥

सर्प इति। सर्पः, अग्निः, दुर्जनः, राजा, जामाता, भगिनीसुतः, रोगः, शत्रुश्च अल्पः क्षुद्रः बालको वा उपचारतः सेवार्थे नावमान्यः॥१०६॥

क्रौर्य्यात्तैक्ष्ण्याद्दुःस्वभावात् स्वामित्वात्पुत्रिकाभयात्।
स्वपूर्वजपिण्डदत्वाद् वृद्धिभीभ्यामुपाचरेत्॥१०७॥

अन्वयः—क्रौर्य्यात् तैक्ष्ण्यात् दुःस्वभावात् स्वामित्वात् पुत्रिकाभयात् स्वपूर्वजपिण्डदत्वात् वृद्धिभीभ्याम् उपाचरेत्॥१०७॥

व्याख्या—क्रौर्यात् = क्रूरत्वात् सर्पम्, तैक्ष्ण्यात् = प्रचण्डदाहकत्वात् अग्निम्, दुःस्वभावात् = दुर्वृत्तत्वात् दुर्जनम्, स्वामित्वात् = सम्प्रभुत्वाद्राजानम्, पुत्रिकाभयात् = सुतायाः पीडाभीत्याः, जामातरम्, स्वपूर्वजपिण्डदत्वात्—स्वस्य = आत्मनः, पूर्वजेभ्यः = पूर्वपुरुषेभ्यः, पिण्डदत्वात् = पिण्डनिर्वापकत्वात्, भागिनेयम्, वृद्धिः = वर्धनशीलत्वात् रोगम्, भियाः = भीत्याः, शत्रुञ्च, उपाचरेत् = सेवेत॥१०७॥

हिन्दी—जालिम होने के कारण साँप से, असहनीय दाह के कारण आग से, दुष्ट स्वभाव होने के कारण दुर्जन से, सम्प्रभुतासम्पन्न होने के कारण राजा से, बेटी को दुःख देने के डर से जमाई से, अपने पूर्वजों को पिंडदान करने वाला होने के कारण भगिने से, बढ़ जाने के डर से रोग से तथा भय होने के कारण दुश्मनों से सँभलकर ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि वे किसी तरह की हानि न पहुँचा सकें॥१०७॥

क्रौर्य्यादिति। कौर्य्यात् हेतोः सर्पं, तैक्ष्ण्यात् दाहकत्वात् अग्निं, दुःस्वभावात् दुर्जनं, स्वामित्वात् राजानं, पुत्रिकाभयात् कन्यायाः क्लेशभयात्, जामातरं, स्वस्य पूर्वजेभ्यः पित्रादिभ्यः पिण्डदत्वात् भगिनीसुतं वृद्धेः रोगं भियाः शत्रुञ्च उपाचरेत् सेवेत॥१०७॥

ऋणशेषं रोगशेषं शत्रुशेषं न रक्षयेत्।
याचकाद्यैः प्रार्थितः सन्न तीक्ष्णं चोत्तरं वदेत्।
तत्कार्य्यं तु समर्थश्चेत् कुर्य्याद् वा कारयीत च॥१०८॥

अन्वयः—ऋणशेषं रोगशेषं शत्रुशेषञ्च न रक्षयेत्। किञ्च याचकाद्यैः प्रार्थितः सन् तीक्ष्णम् उत्तरं न वदेत्। तत्कार्यं तु चेत् समर्थः कुर्यात् वा कारयीत॥१०८॥

व्याख्या—ऋणशेषम् = अवशिष्टपर्युदञ्चनम्, रोगशेषम् = रोगावशिष्टम्, शत्रुशेषम् = अल्पानपि शत्रून्, न = नहि, रक्षयेत् = न्यसेत्। किञ्च, याचकाद्यैः = प्रार्थकाद्यैः, प्रार्थितः सन् = याचितः सन्, तीक्ष्णम् = अतिकटु, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, न = नहि, वदेत् = कथयेत्। तत् = तस्य, कार्यम् = प्रपार्थितं वस्तु, तु = इति बलार्थे, चेत् = यदि, समर्थः = स्वयं शक्तः, तदा कुर्यात् = निष्पादयेत्, अन्यथान्येन जनेन, कारयीत = कारयेत्। 'कारयीत' इत्यार्षप्रयोगः॥१०८॥

हिन्दी—ऋण, रोग और दुश्मनों का थोड़ा भी शेष नहीं रखना चाहिएं। किसी भी माँगने वालों के माँगने पर उन्हें तीखा जवाब नहीं देना चाहिए; प्रत्युत स्वयं समर्थ रहने पर उसका काम पूरा कर दे या किसी अन्य से कहकर पूरा करवा दे॥१०८॥

ऋणशेषमिति। ऋणशेषं रोगशेषं तथा शत्रुशेषं न रक्षयेत्। किञ्च याचकाद्यैः भिक्षुप्रभृतिभिः प्रार्थितः सन् तीक्ष्णं कर्कशम् उत्तरं न वदेत्। समर्थः शक्तश्चेत् तत्कार्य्यं याचककार्य्यं कुर्य्याद् वा कारयीत च इति आर्षोऽयं प्रयोगः कारयेद् वा॥१०८॥

दातृणां धार्मिकाणां च शूराणां कीर्त्तनं सदा।
श्रणुयात् तु प्रयत्नेन तच्छिद्रं नैव लक्षयेत्॥ १०९॥

अन्वयः—सदा दातृणां धार्मिकाणां शूराणां कीर्त्तनं प्रयत्नेन शृणुयात्। तत् छिद्रं नैव लक्षयेत् ॥ १०९ ॥

व्याख्या—सदा = सततम्, दातृणाम् = दानकर्तृणाम्, धार्मिकाणाम् = पुण्यशीलानाम्, शूराणाम् = वीराणाम्, च, कीर्त्तनम् = प्रशंसनम्, प्रयत्नेन = सायासेन, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्। तत् = तेषाम्, छिद्रम् = अवगुणम्, नैव = नास्त्येव, लक्षयेत् = अवलोकयेत् ॥ १०९ ॥

हिन्दी—दानी, पुण्यात्मा और शूरों की प्रशंसा प्रयत्नपूर्वक सदैव सुननी चाहिए। इनके दुर्गुणों की ओर ध्यान कदापि नहीं देना चाहिए॥ १०९ ॥

दातृणामिति। सदा दातृणां धार्मिकाणां शूराणाञ्च कीर्त्तनं प्रयत्नेन शृणुयात् तेषां छिद्रं दोषन्तु न लक्षयेत् ॥ १०९ ॥

काले हितमिताहारविहारी विघसाशनः।
अदीनात्मा च सुस्वप्नः शुचिः स्यात् सर्वदा नरः ॥ ११० ॥

अन्वयः—नरः काले हितमिताहारविहारी विघसाशनः अदीनात्मा सुस्वप्नः सर्वदा शुचिः स्यात् ॥ ११० ॥

व्याख्या—नरः = पुरुषः, काले = यथावसरे, हितः = हितकरः, मितः = परिमितः, आहारः = भोजनम्, विहारश्च = विहरणञ्च, स्यात् = भवेत्, विघसाशनः = देवादिनिवेदितान्नभोजी, अदीनात्मा—नास्ति दीनः अदीनः = अकातरः, स्वभावः = शीलः, यस्यासौ, सुस्वप्नः = सुखदस्वापः, सर्वदा = सततम्, शुचिश्च = पवित्रश्च, स्यात् = भवेत् ॥ ११० ॥

हिन्दी—मनुष्य को सदा समय पर हितकर एवं अल्पाहार लेना चाहिए। संयमित विहार करना चाहिए। देवताओं को भोग लगाकर नैवद्य ग्रहण करना चाहिए। दीनता कहीं प्रकट न करे। अच्छी तरह सोना तथा देह और मन से सदैव पवित्र रहना चाहिए॥ ११० ॥

काले इति। नरः काले यथासमये हितः पथ्यः मितः परिमितः आहारः विहारश्च विद्यते अस्येति तथाभूतः, विघसाशनः देवादिनिवेदितान्नभोजी अदीनात्मा अकातरस्वभावः सुस्वप्नः सुनिद्रः सर्वदा शुचिश्च स्यात् ॥ ११० ॥

कुर्य्याद् विहारमाहारं निर्हारं विजने सदा।
व्यवसायी सदा च स्यात् सुखं व्यायाममभ्यसेत्॥ १११ ॥

अन्वयः—सदा विजने विहारम् आहारं निर्हारं कुर्यात्, च सदा व्यवसायी स्यात्। सुखं व्यायामम् अभ्यसेत् ॥ १११ ॥

व्याख्या—सदा = सततम्, विजने = जनशून्यस्थाने, विहारम् = सम्भोगः, च = पुनः, सदा = सर्वदा, आहारम् = भोजनम्, निर्हारञ्च = पुरीषोत्सर्गञ्च, कुर्यात्, सदा = सर्वदा, व्यवसायी = उद्योगी, स्यात् = भवेत्। सुखम् = आनन्देन युक्तम्, व्यायामम् = बलवर्द्धकश्रमः, अभ्यसेत् = अभ्यासं कुर्यात् ॥ १११ ॥

हिन्दी—हमेशा रतिक्रिया, भोजन एवं मल-मूत्रादि का त्याग जनशून्य स्थान में करे और

हमेशा किसी-न-किसी उद्योग में अपने को लगाये रखे। सुखपूर्वक व्यायाम भी करना चाहिए ॥ १११ ॥

कुर्य्यादिति। सदा सर्वस्मिन् समये विजने निर्जने विहारं स्त्रीसम्भोगम् आहारं निर्हारं मलमूत्रादित्यागञ्च कुर्य्यात्। सदा व्यवसायी उद्योगी स्यात् सुखं यथा तथा व्यायामम् अभ्यसेच्च ॥ १११ ॥

अन्नं न निन्द्यात् सुस्वस्थः स्वीकुर्य्यात् प्रीतिभोजनम्।
आहारं प्रवरं विद्यात् षड्रसं मधुरोत्तरम् ॥ ११२ ॥

अन्वयः--अन्नं न निन्द्यात्। सुस्वस्थः प्रीतिभोजनं स्वीकुर्यात्। षड्रसं मधुरोत्तरम् आहारं प्रवरं विद्यात् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—अन्नम् = भक्ष्यपदार्थः, न = नहि, निन्द्यात् = भर्त्सयेत्। सुस्वस्थः = दत्तावधानः सन्, प्रीतिभोजनम् = भोजनोत्सवः, भोजनार्थप्रीतिपूर्वकनिमन्त्रणम्, स्वीकुर्यात् = अङ्गीकुर्यात्। षड्रसम् = स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तरसाः यस्मिन् तादृशम्, मधुरोत्तरम् = मिष्टान्नबहलुम्, आहारम् = भोजनम्, प्रवरम् = उत्तमोत्तमम्, विद्यात् = जानीयात् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—भक्ष्य पदार्थ की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। अगर कोई प्रीतिभोज में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करे तो उसे पूर्ण सावधानी के साथ स्वीकार करे। मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़ुवा, कसैला और तीता—इन छः रसों से युक्त मिष्ठान्न-बहुल भोजन उत्कृष्ट भोजन कहलाता है ॥ ११२ ॥

अन्नमिति। अन्नं न निन्द्यात् न कुत्सयेत्। सुस्वस्थः सन् प्रीतिभोजनं प्रणयभोजनं निमन्त्रणाहारमित्यर्थः, स्वीकुर्य्यात् गृह्णीयात् तादृशाहारस्य गुरुत्वादिति भावः। षड्रसं षट् तिक्तकटुलवणाम्लकषायमधुराः रसाः यस्मिन् तादृशं मधुरोत्तरं मधुररसभूयिष्ठम् आहारं प्रवरं श्रेष्ठं विद्यात् ॥ ११२ ॥

विहारं चैव स्वस्त्रीभिर्वेश्याभिर्न कदाचन।
नियुद्धं कुशलैः सार्द्धं व्यायामं नतिभिर्वरम् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—स्वस्त्रीभिः विहारं कुर्यात्, वेश्याभिः कदाचन न। कुशलैः सार्द्धं नतिभिः वरं व्यायामं नियुद्धं कुर्यात् ॥ ११३ ॥

व्याख्या—स्वस्त्रीभिः = स्वकीयाभिः पत्नीभिः, सार्द्धम् = सह, विहारम् = विहरणं सुरतञ्च कुर्यात्, वेश्याभिः = गणिकाभिः सह, कदाचन = कस्मिन्नपि काले, न = नहि, विहारं कुर्यात्। कुशलैः = सुदक्षैः, जनैः, सार्द्धम् = सह, नतिभिः = प्रणतिभिः, वरम् = श्रेष्ठम्, व्यायामरूपम् नियुद्धम् = युद्धविशेषं कुर्यात् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—अपनी पत्नी के साथ विहार करना चाहिए, न कि किसी भी स्थिति में वेश्याओं के साथ। मल्लविद्या में निपुण लोगों के साथ विनत होकर व्यायाम सीखना चाहिए ॥ ३१३ ॥

विहारमिति। स्वस्त्रीभिः स्वकीयाभिः स्त्रीभिश्च विहारं कुर्य्यादिति अध्याहार्य्यम्। वेश्याभिः कदाचन न। किञ्च कुशलैः निपुणैः जनैः सार्द्धं सह नतिभिः प्रणतिभिः वरं श्रेष्ठं व्यायामरूपं नियुद्धं युद्धविशेषञ्च कुर्य्यादिति शेषः ॥ ११३ ॥

हित्वा प्राक्पश्चिमौ यामौ निशि स्वापो वरो मतः।
दीनान्धपङ्गुबधिरा नोपहास्याः कदाचन ॥ ११४ ॥

अन्वयः—प्राक्पश्चिमौ यामौ हित्वा निशि स्वापः वरं मतः। दीनान्धपङ्गुबधिराः कदाचन न उपहास्याः ॥ ११४ ॥

व्याख्या—प्राक्पश्चिमौ = प्रथमान्तिमौ, यामौ = प्रहरौ, हित्वा = परित्यज्य, निशि = रात्रौ, स्वापः = स्वपनम्, वरः = उत्तमः, मतः = विचारः। दीनाः = दरिद्राः, अन्धाः = नेत्रविहीनाः, पङ्गवः = खञ्जाः, बधिराः = अकर्णाश्च, कदाचन = कस्यांश्चिदवस्थायाम्, न = नहि, उपहास्याः = उपहासः कर्त्तव्याः ॥ ११४ ॥

हिन्दी—रात के चार पहरों में अगला-पिछला छोड़कर बीच के दो पहरों में सोना उचित है। गरीब, अंधे, लंगड़े और बधिरों की कभी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिए ॥ ११४ ॥

हित्वेति। प्राक्पश्चिमौ प्रथमशेषौ यामौ प्रहरौ हित्वा मध्यमप्रहरद्वयं यावदित्यर्थः, निशि रात्रौ स्वापः निद्रा वरः श्रेष्ठः मतः कथितः। दीनाः दरिद्राः अन्धाः पङ्गवः पदद्वयहीनाः बधिराः श्रोत्रेन्द्रियहीनाश्च कदाचन न उपहास्याः ॥ ११४ ॥

नाकार्य्ये तु मतिं कुर्य्याद् द्राक् स्वकार्य्यं प्रसाधयेत्।
उद्योगेन बलेनैव बुद्ध्या धैर्य्येण साहसात्।
पराक्रमेणार्जवेन मानमुत्सृज्य साधकः ॥ ११५ ॥

अन्वयः—अकार्ये मतिं न कुर्यात्। साधकः मानमुत्सृज्य उद्योगेन बलेनैव धैर्येण आर्जवेन पराक्रमेण साहसात् द्राक् स्वकार्यं प्रसाधयेत् ॥ ११५ ॥

व्याख्या—अकार्ये = दुष्कृत्ये, मतिम् = बुद्धिम्, न = नहि, कुर्यात्, साधकः = कार्यार्थी, मानम् = दर्पम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, उद्योगेन = उद्यमेन, बलेन = शक्त्या, एव, धैर्येण = धीरत्वेन, आर्जवेन = ऋजुत्वेन, पराक्रमेण = पौरुषेण, साहसात् = निर्भीको भूत्वा, द्राक् = झटिति, स्वकार्यम् = निजकृत्यम्, साधयेत् = निष्पादयेत् ॥ ११५ ॥

हिन्दी—कुकृत्य के चिन्तन में अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिए। काम साधने वाले के लिए यह उचित है कि वह अपने अंहकार को छोड़कर उद्यम से, बल से, धीरज से, सरलता से, पुरुषार्थ से साहसपूर्वक शीघ्र अपना काम पूरा करे ॥ ११५ ॥

नाकार्य्ये इति। अकार्य्ये मतिं न कुर्य्यात्। किञ्च साधकः कार्य्यार्थी मानमुत्सृज्य त्यक्त्वा उद्योगेन बलेन बुद्ध्या धैर्य्येण पराक्रमेण आर्जवेन सारल्येन वा साहसात् साहसम् अवलम्ब्येत्यर्थः, द्राक् झटिति स्वकार्य्यं प्रसाधयेत् ॥ ११५ ॥

यदि सिध्यति येनार्थः कलहेन वरस्तु सः।
अन्यथायुर्धनसुहृद्यशः सुखहरः स्मृतः ॥ ११६ ॥

अन्वयः—यदि येन कलहेन अर्थः सिध्यति सः वरः। अन्यथा आयुर्धनसुहृद्यशः सुखहरः स्मृतः ॥ ११६ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, येन = पूर्वोक्तेन, कलहेन = विवादेन, अर्थः = प्रयोजनम्, सिध्यति = सिद्धो भवति, सः = विवादः, वरः = उत्तमः, अन्यथा = इतरथा, सः कलहः, आयुः = जीवनघातकः,

धनम् = वित्तविनाशकः, सुहृद् = मित्रविच्छेदकः, यशः = कीर्त्तिक्षयकरः, सुखहरः = सुखसुविधाविनाशकः, स्मृतः = कथितः ॥ ११६ ॥

हिन्दी—अगर झंझट करने से मतलब सधता हो तो वैसा झंझट करना भी ठीक है। अन्यथा यह कलह जीवन, धन, मित्र, यश और सुख के लिए घातक है ॥ ११६ ॥

यदीति। यदि येन कलहेन अर्थः सिध्यति सः कलहः वरः श्रेष्ठः अभिमतः कार्य्यसिद्धिकरत्वादिति भावः। अन्यथा कार्य्यासिद्धौ कलहः जीवनक्षयकरः धनहरः सुहृद्विच्छेदकरः यशःक्षयकरः सुखहरश्च स्मृतः ॥ ११६ ॥

नानिष्टं प्रवदेत् कस्मिन् न छिद्रं कस्य लक्षयेत्।
आज्ञाभङ्गस्तु महतां राज्ञः कार्य्यो न वै क्वचित् ॥ ११७ ॥

अन्वयः—कस्मिन्नपि अनिष्टं न प्रवदेत्। कस्यापि छिद्रं न लक्षयेत्। महतां राज्ञः आज्ञाभङ्गः क्वचित् न कार्यः ॥ ११७ ॥

व्याख्या—कस्मिन्नपि = कस्मैचिदपि जनाय, अनिष्टम् = अनभिलषितम्। अहितकरं वा, न = नहि, प्रवदेत् = ब्रूयात्। कस्यापि = जनस्य, छिद्रम् = दोषम्, न = नहि, लक्षयेत् = पश्येत्। महताम् = श्रेष्ठजनानाम्, विशेषतः राज्ञः = नृपस्य, आज्ञाभङ्गः = आदेशानुलङ्घनम्, क्वचित् = कस्यामप्यवस्थायाम्, न = नहि, कार्यः = विधेयः ॥ ११७ ॥

हिन्दी—किसी भी व्यक्ति को दुर्वचन न कहे। किसी का दोष न देखे। महापुरुषों की, खासकर राजा की आज्ञा का उल्लंघन किसी भी स्थिति मे नहीं करना चाहिए ॥ ११७ ॥

नानिष्टमिति। कस्मिन् अपि जने अनिष्टं दुर्वचनं न प्रवदेत् तथा कस्य अपि छिद्रं दोषं न लक्षयेत्। महतां जनानां विशेषतः राज्ञः आज्ञाभङ्गः क्वचित् कदाचिदपि न वै नैव कार्य्यः ॥ ११७ ॥

असत्कार्य्यनियोक्तारं गुरुं वापि प्रबोधयेत्।
नातिक्रामेदपि लघुं क्वचित् सत्कार्य्यबोधकम् ॥ ११८ ॥

अन्वयः–असत्कार्यनियोक्तारं गुरुमपि प्रबोधयेत्। क्वचिदपि लघुं सत्कार्यबोधकं न अतिक्रामेत् ॥ ११८ ॥

व्याख्या—असत्कार्यनियोक्तारम्—असति = अनर्गले, कार्ये = कृत्ये, नियोक्तारम् = नियोजकम्, गुरुम् = उपदेशकम् अपि, प्रबोधयेत् = उद्बोधयेत्। क्वचिदपि = कुत्रापि, लघुम् = नीचमपि जनम्, सत्कार्यबोधकम् = शुभकर्मोपदेशकम्, न = नहि, अतिक्रामेत् = अतिक्रमणं कुर्यात् ॥ ११८ ॥

हिन्दी—बुरे काम की ओर प्रेरित करने वाले गुरु को भी यथार्थ ज्ञान देना चाहिए। ठीक इसके विपरीत नीच व्यक्ति भी यदि कहीं शुभ कर्म की प्रेरणा दे तो उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥ ११८ ॥

असदिति। असति कुत्सिते कार्ये नियोक्तारं गुरुमपि प्रबोधयेत् तथा क्वचित् कदाचिदपि लघुं क्षुद्रं जनमपि सत्कार्य्यबोधकं सदुपदेशकं न अतिक्रामेत् ॥ ११८ ॥

कृत्वा स्वतन्त्रां तरुणीं स्त्रियं गच्छेन्न वै क्वचित्।
स्त्रियो मूलमनर्थस्य तरुण्यः किं परैः सह ॥ ११९ ॥

अन्वयः—तरुणीं स्त्रियं स्वतन्त्रां कृत्वा क्वचित् वै न गच्छेत्। स्त्रियः अनर्थस्य मूलं, परैः सह तरुण्यः किम्? ॥११९॥

व्याख्या—तरुणीम् = युवावस्थायाम्, स्त्रियम् = पत्नीम्, स्वतन्त्राम् = स्वच्छन्दाम्, कृत्वा = विधाय, क्वचिदपि = कुत्रापि, न = नहि, वै = निश्चयेन, गच्छेत् = प्रव्रजेत्। स्त्रियः = नार्यः, अनर्थस्य = अनिष्टस्य, मूलम् = आधारः, कारणम्, परैः = परपुरुषैः, सह = सार्द्धम्, तरुण्यः = युवत्यः, किम् = का कथेति? ॥११९॥

हिन्दी—अपनी युवती पत्नी को प्रतिबंधमुक्त कर निश्चितरूप से अकेले छोड़कर कहीं न जाय। क्योंकि स्त्रियाँ अनर्थ की जड़ होती हैं, फिर दूसरे पुरुष के साथ युवती का पूछना ही क्या? ॥११९॥

कृत्वेति। तरुणीं युवतीं स्त्रियं भार्य्यां स्वतन्त्रां स्वाधीनाम् अरक्षितामित्यर्थः, कृत्वा क्वचिदपि न वै नैव गच्छेत्, स्त्रियः अनर्थस्य मूलं कारणं परैः परपुरुषैः सह वर्त्तमाना इति शेषः, तरुण्यः किम्? तादृश्यस्तरुण्यः अनर्थमूलमिति किं वक्तव्यमित्यर्थः॥११९॥

न प्रमाद्येन्मदद्रव्यैर्न विमुह्येत् कुसन्ततौ॥१२०॥

अन्वयः—मदद्रव्यैः न प्रमाद्येत्, कुसन्ततौ न विमुह्येत्॥१२०॥

व्याख्या—मदद्रव्यैः = मदोत्पादकपदार्थैः, न = नहि, प्रमाद्येत् = उपेक्षां कुर्यात्, तथा कुसन्ततौ = कुत्सिते—अधमे निन्दिते वा, सन्ततौ = अपत्ये, न = नहि, विमुह्येत् = मोहं कुर्यात्॥१२०॥

हिन्दी—अहंकार पैदा करने वाली वस्तु के प्रति कभी भी असावधान नहीं रहना चाहिए तथा अधम संतान के प्रति ममत्व भी नहीं रखना चाहिए॥१२०॥

नेति। मदद्रव्यैः मादकैर्द्रव्यैरैश्वर्य्यैरित्यर्थः, न प्रमाद्येत् तथा कुसन्ततौ कुत्सिते सन्ताने कुपुत्रे इत्यर्थः, न विमुह्यात् पुत्र इति ममतां न कुर्य्यादित्यर्थः॥१२०॥

साध्वी भार्य्या पितृपत्नी माता बाला पिता स्नुषा।
अभर्तृकानपत्या या साध्वी कन्या स्वसापि च॥१२१॥
मातुलानी भ्रातृभार्य्या पितृमातृस्वसा तथा।
मातामहोऽनपत्यश्च गुरुश्वशुरमातुलाः॥१२२॥
बालोऽपिता च दौहित्रो भ्राता च भगिनीसुतः।
एतेऽवश्यं पालनीयाः प्रयत्नेन स्वशक्तितः॥१२३॥

अन्वयः—साध्वी भार्या पितृपत्नी माता बाला पिता स्नुषा अभर्तृका अनपत्या साध्वी कन्या स्वसा मातुलानी भ्रातृभार्या तथा पितृमातृस्वसा अनपत्यः मातामहः गुरुश्वशुरमातुलाः च अपिता बालः च दौहित्रः च भ्राता भगिनीसुतश्च—एते प्रयत्नेन स्वशक्तितः अवश्यं पालनीयाः॥१२१-१२३॥

व्याख्या—साध्वी = सच्चरित्रा, भार्या = पत्नी, पितृपत्नी = मातृसपत्नी, माता = निजजननी, बाला = प्रमदा, वा कन्या, पिता = जनकः, स्नुषा = पुत्रवधूः, अभर्तृका = पतिविहीना, अनपत्या = सन्ततिविहीना, साध्वी कन्या = सुशीलापुत्री, स्वसापि च = भगिनी च, मातुलानी =

मातुलपत्नी, भ्रातृभार्या = सोदरपत्नी, तथा, पितुः = जनकस्य, स्वसा = भगिनी, मातुः = जनन्याः, स्वसा = भगिनी, अनपत्यः = सन्ततिविहीनः, मातमहः = मातुर्जनकः, गुरुः = आचार्यः, श्वशुरः = पत्नीपिता, मातुलः = मातुः भ्राता, अपिता = पितृविहीनः, बालः = शिशुः, दौहित्रः = दुहितापुत्रः, भ्राता = सोदरः, भगिनीसुतः = भागिनेयः, एते = पूर्वोक्ताः, प्रयत्नेन = सायासेन, शक्तितः = आत्मशक्त्यानुरूपेण, अवश्यम् = दुर्निवारत्वेन, पालनीयाः = रक्षणीयाः ॥१२१-१२३ ॥

हिन्दी—अच्छे चाल-चलन की औरत, सौतेली माँ, माँ, कुमारी कन्या, बाप, बहू, सुशीला, संतानहीन बेवा, बहन, बूआ, मौसी, भौजाई, निर्वंश नाना, नाती, ससुर, बापविहीन बेटा, मामा, भाई, भानजा तथा गुरु—इन सभी का अनिवार्य रूप से अपनी ताकत भर प्रयासपूर्वक पालन करना चाहिए ॥१२१-१२३ ॥

साध्वीत्यादि। साध्वी सुशीला भार्य्या, पितृपत्नी विमाता माता जननी, बाला अविवाहिता कन्या, पिता, स्नुषा पुत्रवधूः अभर्तृका अनपत्या अपुत्रा साध्वी कन्या, स्वसा च भगिनी मातुलानी, भ्रातृभार्य्या, पितुःस्वसा, मातुःस्वसा, अनपत्यः मातामहः, गुरुः श्वशुरः, मातुलः, अपिता पितृहीनः बालकः दौहित्रः भ्राता, भगिनीसुतश्च एते प्रयत्नेन स्वशक्तितः निजशक्त्यनुसारेण अवश्यं पालनीयाः रक्षणीयाः ॥ १२१-१२३ ॥

अविभवेऽपि विभवे पितृमातृकुलं सुहृत्।
पत्न्याः कुलं दासदासीभृत्यवर्गांश्च पोषयेत् ॥ १२४ ॥

अन्वयः—अविभवेऽपि एते पालनीयाः। विभवे सुहृद् पितृमातृकुलं पत्न्याः कुलं दासदासीभृत्यवर्गांश्च पोषयेत् ॥ १२४ ॥

व्याख्या—अविभवेऽपि = सत्यपि धनाभावे, एते = पूर्वोक्ताः, पालनीयाः। विभवे = सतिसम्पदि, तु सुहृद् = मित्रम्, पितृकुलम् = पितुः वंशम्, मातृकुलम् = मातुः वंशम्, पत्न्याः = भार्यायाः, कुलम् = वंशम्, तथा दासदासीभृत्यवर्गांश्च = सेवकसेविकाकिङ्करसमूहाश्च, पोषयेत् = पालयेत् ॥ १२४ ॥

हिन्दी—गरीबी के बावजूद ऊपर परिगणित लोगों का पालन-पोषण करना चाहिए। सम्पत्ति रहने पर पितृकुल, मातृकुल, मित्र एवं दास-दासी और नौकरों के समूहों का भरण-पोषण करना चाहिए ॥ १२४ ॥

अविभवे इति। अविभवे असम्पदि अपि एते पूर्वोक्ताः पालनीयाः विभवे सम्पदि तु सुहृत् सद्भावसम्पन्नं पितृमातृकुलं पत्न्याः कुलं श्वशुरकुलमित्यर्थः, तथा दासदासीभृत्यवर्गांश्च पोषयेत् ॥ १२४ ॥

विकलाङ्गान् प्रव्रजितान् दीनानाथांश्च पालयेत् ॥ १२५ ॥

अन्वयः—विकलाङ्गान् प्रव्रजितान् दीनान् अनाथान् च पालयेत् ॥ १२५ ॥

व्याख्या—विकलाङ्गान् = अङ्गविहीनान्, प्रव्रजितान् = परिव्राजकान्, दीनान् = दरिद्रान्, अनाथान् = असहायान्, च = पुनः, पालयेत् = पोषयेत् ॥ १२५ ॥

हिन्दी—लंगड़े लूले काने संन्यासी, गरीब और असहायों का पालन करना चाहिए ॥ १२५ ॥

विकलाङ्गानिति। विकलाङ्गान् काणखञ्जादीन् प्रव्रजितान् संन्यासिनः दीनान् दरिद्रान् अनाथांश्च पालयेत् ॥ १२५ ॥

कुटुम्बभरणार्थेषु यत्नवान् न भवेच्च यः।
तस्य सर्वगुणैः किन्तु जीवन्नेव मृतश्च सः ॥ १२६ ॥

अन्वयः—यः कुटुम्बभरणार्थेषु यत्नवान् न भवेत् तस्य सर्वगुणैः किम्?स तु जीवन्नेव मृतश्चेति ॥ १२६ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, कुटुम्बभरणार्थेषु—कुटुम्बानाम् = गृहजनानाम्, भरणार्थेषु = पोषणार्थेषु, यत्नवान् = चेष्टावान्, न = नहि, भवेत् = स्यात्, तस्य = जनस्य, सर्वगुणैः = सकलप्रभावैः, किम् = इति प्रश्ने, अर्थात् न किमपि प्रयोजनम्? स तु = सो जनस्तु, जीवन्नेव = जीवितेव, मृतः = मृततुल्यो भवतीति भावः ॥ १२६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति कुटुम्बों के भरण-पोषण के लिए प्रयत्नशील नहीं होते वे जीवित रहते हुए सर्वगुणसम्पन्न होकर भी मरे हुए के समान हैं ॥ १२६ ॥

कुटुम्बेति। यः कुटुम्बानां पोष्याणां भरणार्थेषु भरणविषयेषु यत्नवान् न भवेत् तस्य सर्वैः गुणैः विद्यादिभिः किम्? स तु जीवन्नेव मृतश्च ॥ १२६ ॥

न कुटुम्बं भृतं येन नाशिताः शत्रवोऽपि न।
प्राप्तं संरक्षितं नैव तस्य किं जीवितेन वै ? ॥ १२७ ॥

अन्वयः—येन कुटुम्बं न भृतं, शत्रवोऽपि न नाशितं प्राप्तं, नैव संरक्षितं; तस्य जीवितेन वै किम्? ॥ १२७ ॥

व्याख्या—येन = जनेन, कुटुम्बम् = परिजनम्, न = नहि, भृतम् = पालितम्, शत्रवोऽपि = रिपवोऽपि, न = नहि, नाशितम् = विनष्टीकृतम्, प्राप्तम् = अधिगतम्, धनम्, नैव = नास्त्येव, संरक्षितम् = सुरक्षतिम्, तस्य = जनस्य, जीवितेन = जीवितस्थितेन, वै = इति निश्चयेन, किम् = न किमपीत्यर्थः ॥ १२७ ॥

हिन्दी—जिस व्यक्ति ने अपने पारिवारिक जनों का पालन-पोषण नहीं किया तथा दुश्मनों को भी विनष्ट नहीं किया, प्राप्तवस्तु की रक्षा नहीं कर सका; इसके जिन्दा रहने से क्या लाभ? ॥ १२७ ॥

नेति। येन कुटुम्बं न भृतं न पालितं शत्रवः रिपवश्च न नाशिताः, तथा प्राप्तं वस्तु न संरक्षितम् अपव्ययादिना क्षयितमित्यर्थः, तस्य जीवितेन किम्? ॥ १२७ ॥

स्त्रीभिर्जितो ऋणी नित्यं सुदरिद्रश्च याचकः।
गुणहीनोऽर्थहीनः सन् मृता एते सजीवकाः ॥ १२८ ॥

अन्वयः—स्त्रीभिर्जितः नित्यम् ऋणी सुदरिद्रः याचकः गुणहीनः अर्थहीनश्च सन् एते सजीवकाः मृताः ॥ १२८ ॥

व्याख्या—स्त्रीभिः = प्रमदाभिः, जितः = विजितः स्त्रैण्यः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, ऋणी = अधमर्णः, सुदरिद्रः = अतिदीनः, याचकैः = प्रार्थकैः, गुणहीनः = चातुर्यरहितः, अर्थहीनः = धनविहीनश्च, एते = पुरुषविशेषाः, सजीवकाः = जीवन्तोऽपि, मृताः = मृत्युमुपगताः, एवेति ॥ १२८ ॥

हिन्दी—स्त्रियों के वशवर्ती हमेशा कर्ज में डूबे, अत्यन्त दरिद्र, भिखारी, गुणहीन एवं धनहीन जन जिन्दा रहकर भी मरे हुए के सदृश हैं ॥१२८॥

स्त्रीभिरिति। स्त्रीभिः जितः वशीकृतः स्त्रैण इत्यर्थः, नित्यम् ऋणी सुदरिद्रः याचकः गुणहीनः अर्थहीनश्च एते जनाः सजीवका जीवन्तोऽपि मृताः॥१२८॥

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्।
दानमानापमानं च नवैतानि सुगोपयेत्॥ १२९॥

अन्वयः—आयुः वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजं दानमानापमानञ्च एतानि नव सुगोपयेत्॥१२९॥

व्याख्या—आयुः= वयः, वित्तम् = धनम्, गृहच्छिद्रम्—गृहस्य = सदनस्य, छिद्रम् = दोषम्, मन्त्रम् = इष्टसाधकगुरुमन्त्रम्, मैथुनम् = सहवासम्, भैषजम् = औषधिम्, दानम् = वितरणञ्च, मानम् = सम्मानम्, अपमानम् = अनादरञ्च, एतानि = पूर्वोक्तानि, नव = नवसंख्याकानि, सुगोपयेत् = सुष्ठुतया गूहयेत्॥१२९॥

हिन्दी—आयु, वित्त, घर का दोष, मन्त्र, मैथुन, ओ़षधि, दान और मान-अपमान—इन नौ को अच्छी तरह छिपाये॥१२९॥

आयुरिति। आयुर्जीवनकालं, वित्तं धनं, गृहच्छिद्रं मन्त्रं, मैथुनम्, औषधं, दानं, मानम्, अपमानञ्च एतानि नव सुगोपयेत् न प्रकाशयेदित्यर्थः॥१२९॥

देशाटनं राजसभावेशनं शस्त्रचिन्तनम्।
वेश्यादिदर्शनं विद्वन्मैत्रीं कुर्य्यादतन्द्रितः॥ १३०॥

अन्वयः—देशाटनं राजसभावेशनं शास्त्रचिन्तनं वेश्यादिदर्शनं विद्वन्मैत्रीम् अतन्द्रितः कुर्यात्॥१३०॥

व्याख्या—देशाटनम् = भूभ्रमणम्, राजसभावेशनम्—राजसभासु = राजकीयसंसत्सु, वेशनम् = उपगमनम्, शास्त्रचिन्तनम्—शास्त्राणाम् = धर्मग्रन्थानाम्, चिन्तनम् = विचारणम्, वेश्यादिदर्शनम्—वेश्यादीनाम् = गणिकाप्रभृतीनाम्, दर्शनम् = अवलोकनम्, विद्वन्मैत्रीम्—विद्वद्भिः= प्राज्ञैः सह, मैत्रीम् = सौहार्दम्, अतन्द्रितः= निरलसो भूत्वा, कुर्यात् = सम्पादयेत्॥१३०॥

हिन्दी—आलस्य रहित होकर देशाटन, राजसभा में प्रवेश, शास्त्रों का अनुचिन्तन, वेश्या आदि के दर्शन तथा विद्वानों की मैत्री करना चाहिए॥१२९॥

देशाटनमिति।अतन्द्रितः अनलसः सन् देशाटनं देशपर्य्यटनं, राजसभासु वेशनं प्रवेशनं, शास्त्रचिन्तनं शास्त्राणां बहूनां चिन्तनं, वेश्यादीनां दर्शनं तथा विद्वद्भिः मैत्रीं प्रणयं कुर्य्यात्॥१३०॥

अनेकाश्च तथा धर्म्माः पदार्थाः पशवो नराः।
देशाटनात् स्वानुभूताः प्रभवन्ति च पर्वताः॥ १३१॥

अन्वयः—देशाटनात् अनेकाश्च धर्माः पदार्थाः पशवः नराः पर्वताः स्वानुभूताः प्रभवन्ति॥१३१॥

व्याख्या—देशाटनात् = देशविदेशभ्रमणात्, अनेकाश्च = बहवः, धर्माः = सम्प्रदायाः, पदार्थाः = वस्तूनि, पशवः = मृगाः, नराः = मनुष्याः, पर्वताः = गिरयः, स्वानुभूताः—स्वस्य = आत्मनः, अनुभूताः = साक्षाज्ज्ञाताः, प्रभवन्ति = प्रकर्षेण प्रजायन्ते ॥ १३१ ॥

हिन्दी—पर्यटन से मनुष्य को अनेक प्रकार के धर्म, पदार्थ, पशु, मानव और पहाड़ों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १३१ ॥

देशाटनफलमाह—**अनेका इति**। देशाटनात् अनेके बहवः धर्माः सम्प्रदायानां बाहुल्यादिति भावः, पदार्थाः वस्तूनि, पशवः नराः पर्वताश्च स्वानुभूताः स्वस्य अनुभवविषयाः सम्यक् विदिताः इत्यर्थः प्रभवन्ति ॥ १३१ ॥

कीदृशा राजपुरुषा न्यायान्यायं च कीदृशम्।
मिथ्याविवादिनः के च के वै सत्यविवादिनः ॥ १३२ ॥
कीदृशी व्यवहारस्य प्रवृत्तिः शास्त्रलोकतः।
सभागमनशीलस्य तद्विज्ञानं प्रजायते ॥ १३३ ॥

अन्वयः—सभागमनशीलस्य राजपुरुषाः कीदृशाः, न्यायान्यायं कीदृशं, के च मिथ्याविवादिनः, के च सत्यविवादिनः, शास्त्रलोकतः व्यवहारस्य प्रवृत्तिः कीदृशी ? तद्विज्ञानं प्रजायते ॥ १३२-१३३ ॥

व्याख्या—सभागमनशीलस्य = राज्यपरिषत्सु प्रवेशनशीलस्य जनस्य, राजपुरुषाः = राज्यपदाधिकारिणः, कीदृशाः = किं विधाः, न्यायान्यायम् = न्याय्यताऽऽन्याय्यता च, कीदृशम् = किम्प्रकारकम्, के = जनाश्च, मिथ्याविवादिनः = अनृताभियोगशीलाः, के च = जनाः, सत्यविवादिनः = सत्यव्यवहर्तारः, शास्त्रतः = शास्त्रानुसारेण, लोकतः = लोकदृष्ट्या, व्यवहारस्य = अभियोगस्य, प्रवृत्तिः = कार्यनिर्वाहः, कीदृशी = किं विधा, तत् = तेषाम्, विज्ञानम् = विशेषज्ञानम्, प्रजायते = भवति ॥ १३२-१३३ ॥

हिन्दी—राजपरिषद् में जाने से मनुष्य को राज़ के पदाधिकारी कैसे हैं ? वहाँ न्याय-अन्याय कैसा होता है ? झूठे और सच्चे मुकदमा करने वाले लोग कैसे होते हैं ? शास्त्र और लोकदृष्टि से मुकदमे का फैसला कैसा होता है ? इन विषयों का विशिष्ट ज्ञान होता है ॥ १३२-१३३ ॥

सभागमनफलमाह—**कीदृशाः इत्यादि**। सभागमनशीलस्य राजसभाप्रविष्टस्य जनस्य राजपुरुषाः कीदृशाः, न्यायान्यायं विचाराविचाररूपं कीदृशं, के जनाः मिथ्याविवादिनः, के च सत्यविवादिनः, शास्त्रतः शास्त्रानुसारेण लोकतः लौकिकाचाराच्च व्यवहारस्य ऋणंदानादिरूपस्य विवादविषयस्य प्रवृत्तिः निष्पत्तिश्च कीदृशी ? इत्येतत् विज्ञानं प्रजायते ।। १३२-१३३ ॥

नाहङ्कारी च धर्म्मान्धः शास्त्राणां तत्त्वचिन्तनैः।
एकं शास्त्रमधीयानो न विद्यात् कार्य्यनिर्णयम् ॥ १३४ ॥

अन्वयः—शास्त्राणां तत्त्वचिन्तनैः अहङ्कारी धर्मान्धश्च न भवेत्। एकं शास्त्रमधीयानः कार्यनिर्णयं न विद्यात्।

व्याख्या—शास्त्राणाम् = धर्मग्रन्थानाम्, तत्त्वचिन्तनैः = तथ्यविचारणैः, अहङ्कारी = गर्वितः, धर्मान्धश्च—धर्मेण = स्वाचरितधर्मेण, अन्धः = उन्मत्तः, न = नहि, भवेत् = स्यात्। एकम् = केवलमेकमेव, शास्त्रमधीयानः—शास्त्रस्य = धर्मग्रन्थस्य, अधीयानः = अध्ययनेन

कार्यनिर्णयम्—कार्यस्य = तत्त्वस्य, निर्णयम् = निश्चयम्, न = नहि, विद्यात् = भवेदिति ॥ १३४ ॥

हिन्दी—अनेक शास्त्रों के तत्त्वचिन्तन से न तो अंहकारी और न धर्मान्ध ही होना चाहिए। केवल एक धर्मग्रन्थ के अध्ययन से किसी तथ्य का निर्णय नहीं किया जा सकता है ॥ १३४ ॥

शास्त्रचिन्तनफलमाह—नेति। शास्त्राणां बहूनां तत्त्वचिन्तनैः अहङ्कारी धर्मान्धश्च नं भवेत्। एकं शास्त्रमधीयानो जनः कार्य्यस्य निर्णयं तत्त्वनिश्चयं न विद्यात् ॥१३४॥

स्याद् बह्वागमसन्दर्शी व्यवहारो महानतः।
बुद्धिमानभ्यसेन्नित्यं बहुशास्त्राण्यतन्द्रितः ॥ १३५ ॥

अन्वयः—बह्वागमसन्दर्शी महानतः व्यवहारः स्यात्। अतः बुद्धिमान् नित्यं बहुशास्त्राणि अतन्द्रितः अभ्यसेत् ॥ १३५ ॥

व्याख्या—बह्वागमसन्दर्शी—बहून् = अनेकविधान्, आगमान् = शास्त्राणि, सन्दृष्टवान् = सम्यग्रूपेणावलोकितवान्, इति तथोक्तः जनः, महानतः = विशिष्टरूपेण, व्यवहारः = आचारः, अर्थात् लोकतत्त्वस्य दर्शी, स्यात् = भवेत्। अतः = अनेन कारणेन, बुद्धिमान् = धीमान्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, बहुशास्त्राणि = अनेकविधाः धर्मग्रन्थाः, अतन्द्रितः = आलस्यरहितो भूत्वा, अभ्यसेत् = अभ्यासं कुर्यात् ॥ १३५ ॥

हिन्दी—जिसने अनेक शास्त्रों का अनुचिन्तन किया है, वही लोकव्यवहार का विशिष्ट ज्ञाता हो सकता है। अतः निरलस होकर प्रतिदिन शास्त्रों का अनुचिन्तन करना चाहिए ॥ १३५ ॥

स्यादिति। बहून् आगमान् शास्त्राणि सन्दृष्टवान् इति तथोक्तः जनः महान् व्यवहारः लोकतत्त्वदर्शीत्यर्थः स्यात्, अतः बुद्धिमान् मानवः अतन्द्रितः अनलसः सन् नित्यं बहूनि शास्त्राणि अभ्यसेत् ॥ १३५ ॥

तदर्थं गृहीत्वापि तदधीना न जायते।
वेश्या तथाविधा वापि वशीकर्त्तुं नरं क्षमा।
नेयात् कस्य वशं तद्वत् स्वाधीनं कारयेज्जगत् ॥ १३६ ॥

अन्वयः—वेश्या तदर्थं गृहीत्वापि तदधीना न जायते। तथाविधा वाऽपि नरं वशीकर्त्तुं क्षमा किन्तु कस्यापि वशं न इयात्, तद्वत् जगत् स्वाधीनं कारयेत् ॥ १३६ ॥

व्याख्या—वेश्या = गणिका, तस्य = जनस्य, अर्थम् = धनम्, गृहीवाऽपि = नीत्वाऽपि, तदधीना—तत् = तस्य, अधीना = वशीभूता, न = नहि, जायते = भवति। तथाविधाऽपि = तादृश्यपि, नरम् = पुरुषम्, वशीकर्त्तुम् = वशवर्तिनं विधातुम्, क्षमा = समर्था भवति, किञ्च सा स्वयम्, कस्य = जनस्यापि, वशम् = अधीनम्, न = नहि, इयात् = व्रजेत्, तद्वत् = गणिकेव, जगत् = सकलं संसारम्, स्वाधीनम् = निजायत्तम्, कारयेत् = कुर्यात् ॥ १३६ ॥

हिन्दी—जैसे रंडी किसी आदमी से धन लेकर भी उसकी वशवर्तिनी नहीं होती और खुद तो उसके अधीन नहीं होती, पर उसे अपने अध्धीन बनाने में पूरी सक्षम होती है; ठीक उसी तरह व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी के अधीन न होकर सारी दुनिया को अपने अधीन बनाये ॥ १३६ ॥

वेश्यादिदर्शनफलमाह—**तदर्थमिति**। वेश्या तस्य अर्थं गृहीत्वापि तस्य अधीना न जायते, तथाविधा तादृशी अपि नरं वशीकर्त्तुं क्षमा शक्ता, किन्तु कस्यापि वशं न इयात् न गच्छेत्। तद्वत् वेश्यावत् जगत् स्वाधीनं निजायत्तं कारयेत् कुर्य्यात् स्वार्थे ञयन्तोऽयं कृधातुः॥ १३६॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामर्थविज्ञानमेव च।
सहवासात् पण्डितानां बुद्धिः पण्डा प्रजायते॥ १३७॥

अन्वयः—पण्डितानां सहवासात् श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् अर्थं विज्ञानं पण्डा बुद्धिश्च प्रजायते॥ १३७॥

व्याख्या—पण्डितानाम् = विपश्चिताम्, सहवासात् = संसर्गात्, श्रुतिस्मृतिपुराणानाञ्च—श्रुतीनाम् = वेदानाम्, स्मृतीनाम् = मनुस्मृत्याधार्यधर्मशास्त्राणाम्, पुराणानाञ्च = ब्रह्मविष्णुशिवपुराणादीनाञ्च, अर्थविज्ञानम्—अर्थस्य = शब्दाशयस्य, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, पण्डा = उज्ज्वला, बुद्धिश्च = मतिश्च, प्रजायते = उत्पन्ना भवति॥ १३७॥

हिन्दी—पण्डितों की संगति से श्रुति-स्मृति और पुराणों के अर्थ का विशिष्ट ज्ञान से बुद्धि मँजती है॥ १३७॥

विद्वन्मैत्रीफलमाह—**श्रुतीति**। पण्डितानां विदुषां सहवासात् सहवाससंसर्गात् श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् अर्थविज्ञानं पण्डा उज्ज्वला बुद्धिश्च प्रजायते॥ १३७॥

देवपित्रतिथिभ्योऽन्नमदत्त्वा नाश्नीयात् क्वचित्।
आत्मार्थं यः पचेन्मोहान्नरकार्थं स जीवति॥ १३८॥

अन्वयः—देवपित्रतिथिभ्यः अन्नं अदत्त्वा क्वचित् न अश्नीयात्। यः मोहात् आत्मार्थं पचेत् सः नरकार्थं जीवति॥ १३८॥

व्याख्या—देवपित्रतिथिभ्यः—देवेभ्यः = देवताभ्यः, पितृभ्यः = पूर्वपुरुषेभ्यः, अतिथिभ्यश्च = गृहागतेभ्यश्च, अन्नम् = भोज्यपदार्थम्, अदत्त्वा = विनाप्रदानेन, क्वचित् = कुत्रापि, न = नहि, अश्नीयात् = भक्षयेत्। यः = पुरुषः, मोहात् = भ्रमवशात्, आत्मार्थम् = स्वार्थम्, पचेत् = पाकं कुर्यात्, सः = नरः, नरकार्थम् = नरकायैव, जीवति = जीवनं धारयति॥ १३८॥

हिन्दी—देवता, पितर और अतिथियों को दिये बिना किसी भी स्थिति में स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति मोहवश केवल अपने लिए भोजन बनाता है वह नरक के लिए ही जीता है॥ १३८॥

देवेति। देवेभ्यः पितृभ्यः अतिथिभ्यश्च अन्नम् अदत्त्वा क्वचित् न अश्नीयात्। यः मोहात् अज्ञानात् आत्मार्थं स्वार्थं पचेत् पाकं कुर्य्यात् सः नरकार्थं जीवति॥ १३८॥

मार्गं गुरुभ्यो बलिने व्याधिताय शवाय च।
राज्ञे श्रेष्ठाय व्रतिने यानगाय समुत्सृजेत्॥ १३९॥

अन्वयः—गुरुभ्यः बलिने व्याधिताय शवाय राज्ञे श्रेष्ठाय व्रतिने यानगाय मार्गं समुत्सृजेत्॥ १३९॥

व्याख्या—गुरुभ्यः = श्रेष्ठजनेभ्यः, बलिने = शक्तिशालिने, व्याधिताय = रोगिणे, शवाय =

मृतकाय, राज्ञे = नृपाय, श्रेष्ठाय = गुरुजनाय, व्रतिने = ब्रह्मचारिणे, यानगाय = वाहनाधिरूढाय, मार्गम् = पथम्, समुत्सृजेत् = परित्यजेत् ॥ १३९ ॥

हिन्दी—गुरुजन, बलवान्, रोगी, शवयात्री, राजा, माननीय व्यक्ति, ब्रह्मचारी और सवारी पर आरूढ व्यक्ति को जाने के लिए स्वयं हटकर उन्हें राह देनी चाहिए ॥ १३९ ॥

मार्गमिति। गुरुभ्यः गुरुजनेभ्यः, बलिने बलवते, व्याधिताय रोगिणे, शवाय मृतदेहोद्वहनायेत्यर्थः, राज्ञे श्रेष्ठाय मान्यजनाय व्रतिने शास्त्रीयकार्य्ये नियुक्ताय, तथा यानगाय वाहनाधिरूढाय जनाय मार्गं पन्थानं समुत्सृजेत् त्यजेत् नावरुन्ध्यादिति भावः ॥ १३९ ॥

शकटात् पञ्चहस्तं तु दशहस्तं तु वाजिनः।
दूरतः शतहस्तं च तिष्ठेन्नागाद् वृषाद् दश ॥ १४० ॥

अन्वयः—शकटात् पञ्चहस्तं वाजिनस्तु दशहस्तं नागात् शतहस्तं वृषात् दशहस्तं दूरतः तिष्ठेत् ॥ १४० ॥

व्याख्या—शकटात् = प्रवहणात्, पञ्चहस्तम् = पञ्चहस्तपरिमितम्, वाजिनस्तु = अश्वात्, दशहस्तम्, नागात् = गजात्, शतहस्तम्, तथा वृषात् = वृषभात्, दशहस्तपरिमितम्, दूरतः = दूरादेव, तिष्ठेत् = निवसेत् ॥ १४० ॥

हिन्दी—गाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से सौ हाथ तथा साँढ़ से दस हाथ की दूरी पर रहना चाहिए ॥ १४० ॥

शकटादिति। शकटात् अश्वादियुक्तवाहनात् पञ्चहस्तं, वाजिनः अश्वाद् दशहस्तं, नागात् हस्तिनः शतहस्तं तथा वृषात् दशहस्तं दूरतः तिष्ठेद् ॥ १४० ॥

शृङ्गिणां च नखिनां च दंष्ट्रिणां दुर्जनस्य च।
नदीनां वसतौ स्त्रीणां विश्वासं नैव कारयेत् ॥ १४१ ॥

अन्वयः—शृङ्गिणां नखिनां दंष्ट्रिणां दुर्जनस्य नदीनां स्त्रीणाञ्च वसतौ विश्वासं नैव कारयेत् ॥ १४१ ॥

व्याख्या—शृङ्गिणाम् = शृङ्गवतां पशूनाम्, नखिनाम् = नखवताम्, दंष्ट्रिणाम् = विषदन्तवताम्, दुर्जनस्य = दुष्टस्य, नदीनाम् = सरिताम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, वसतौ = निवासे, विश्वासम् = प्रत्ययम्, नैव = नहि, कारयेत् = कुर्यात् । १४१ ॥

हिन्दी—सींग वाले तथा नाखून से प्रहार करने वाले पशुओं का, विषैले दाँतवाले साँप, सूअर, सिंहादि जन्तुओं का, नदियों का तथा औरतों के साथ रहने का विश्वास नहीं करना चाहिए ॥ १४१ ॥

शृङ्गिणामिति। शृङ्गिणां वृषादीनां नखिनां नखायुधानां श्वापदानां दंष्ट्रिणां वराहादीनां दुर्जनस्य नदीनां स्रोतःस्वतीनां स्त्रीणाञ्च वसतौ समीपे विश्वासं नैव कारयेत् ॥ १४१ ॥

खादन् न गच्छेदध्वानं न च हास्येन भाषणम्।
शोकं न कुर्य्यान्नष्टस्य स्वकृतेरपि जल्पनम् ॥ १४२ ॥

अन्वयः—खादन् अध्वानं न गच्छेत्, न च हास्येन भाषणम्, नष्टस्य शोकं स्वकृतेः अपि जल्पनं न कुर्यात् ॥ १४२ ॥

व्याख्या—खादन् = भक्षयन्, अध्वानम् = मार्गम्, न = नहि, गच्छेत् = व्रजेत्, न च, हास्येन = हसितेन, भाषणम् = कथनम्, नष्टस्य = विनष्टस्य, शोकम् = आर्तिः, न = नहि, स्वकृतेः = आत्मकर्मणः, जल्पनम् = प्रशंसावाक्यम्, न कुर्यात् = न कथयेत् ॥ १४२ ॥

हिन्दी—खाते हुए राह नहीं चलनी चाहिए, हँसते हुए बातें नहीं करनी चाहिए, विनष्ट वस्तु के लिए शोक नहीं करना चाहिए तथा अपने कृतकर्म की प्रशंसा अपने मुँह से नहीं करनी चाहिए ॥ १४२ ॥

खादन्निति। खादन् भक्षयन् सन् अध्वानं पन्थानं न गच्छेत् किञ्च हास्येन सह भाषणं कथनं न, नष्टस्य गतस्य शोकं न, तथा स्वकृतेः निजकार्य्यस्य जल्पनं व्याख्यानञ्च न कुर्य्यात् ॥१४२ ॥

स्वशङ्कितानां सामीप्यं त्यजेद् वै नीचसेवनम्।
संलापं नैव शृणुयाद् गुप्तः कस्यापि सर्वदा ॥ १४३ ॥

अन्वयः—स्वशङ्कितानां सामीप्यं नीचसेवनं वै त्यजेत्। गुप्तः सर्वदा कस्यापि संलापं न शृणुयात् ॥ १४३ ॥

व्याख्या—स्वशङ्कितानाम्—स्वेन = आत्मना, शङ्कितानाम् = सन्दिग्धानाम्, सामीप्यम् = सान्निध्यम्, नीचसेवनम् = अधमोपासनम्, च, वै = इति निश्चेयन, त्यजेत् = परिहरेत्। गुप्तः = प्रच्छन्नो भूत्वा, सर्वदा = सततम्, कस्यापि = जनस्य, संलापम् = कथोपकथनम्, न = नहि, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात् ॥ १४३ ॥

हिन्दी—अपने ऊपर संदेह रखने वाले और दुर्जनों के पास नहीं रहना चाहिए। नीच लोगों की सेवा छोड़ देनी चाहिए। हमेशा छिपकर किसी की बातें नहीं सुननी चाहिए ॥ १४३ ॥

स्वशङ्कितानामिति। स्वेन आत्मना शङ्कितानां जनानां सामीप्यं नीचसेवनञ्च त्यजेत् वैशब्दोऽवधारणे। किञ्च गुप्तः सन् सर्वदा कस्यापि जनस्य संलापं परस्परकथोपकथनं न संशृणुयात् ॥१४३ ॥

उत्तमैरननुज्ञातं कार्य्यं नेच्छेच्च तैः सह।
देवैः साकं सुधापानाद्राहोश्छिन्नं शिरो यतः ॥ १४४ ॥

अन्वयः—उत्तमैः अननुज्ञातं कार्यं तैः सह न इच्छेत्। यतः देवैः साकं सुधापानात् राहोः शिरः छिन्नम् ॥ १४४ ॥

व्याख्या—उत्तमैः = वरेण्यैः, अननुज्ञातम् = अनादिष्टः, कार्यम् = कृत्यम्, तैः = वरेण्यपुरुषैः, सह = सार्द्धम्, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत्। यतः = यस्मात्, देवैः = सुरैः, साकम् = सार्द्धम्, सुधापानात् = अमृतपानात्, राहोः = सिंहिकापुत्रस्य, शिरः = मस्तकः, छिन्नम् = खण्डितम् ॥१४४ ॥

हिन्दी—उत्कृष्ट व्यक्ति के आदेश के बिना उनके साथ काम करने की इच्छा जाहिर न करे। क्योंकि देवताओं के आदेश के बिना उनके साथ अमृत पीने के कारण राहु को अपना सिर कटवाना पड़ा ॥ १४४ ॥

उत्तमैरिति। उत्तमैः साधुभिः श्रेष्ठैर्वा अननुज्ञातं प्रतिषिद्धं कार्य्यं तैः उत्तमैः सह न इच्छेत् न अभिलषेत्। यतः दैवैः साकं सह सुधापानात् अनुज्ञातादिति भावः, राहोरसुरभेदस्य शिरः छिन्नम् ॥१४४ ॥

महतोऽसत्कृतमपि भवेत् तद्भूषणाय वै।
विषपानं शिवस्यैव त्वन्येषां मृत्युकारकम् ॥१४५॥

अन्वयः—असत्कृतमपि तत् महतः भूषणाय वै भवेत्। यथा विषपानं शिवस्य भूषणाय, अन्येषां तु मृत्युकारकम् ॥ १४५ ॥

व्याख्या—असत्कृतमपि = अभद्रानुष्ठितमपि, तत् = प्रसिद्धं कर्म, महतः = श्रेष्ठजनस्य, भूषणाय = अलङ्करणाय, भवेत् = स्यात्। यथा विषपानम् = गरलगलाधःक्करणम्, शिवस्य = महादेवस्य, भूषणाय भवेत्, किञ्च तद्विषपानम्, अन्येषाम् = जीवजन्तूनाम्, तु, मृत्युकारकम् = मृत्योः कारणं भेवत् ॥१४५॥

हिन्दी—कभी-कभी अभद्र कर्म भी बड़े लोगों के लिए भूषण बन जाता है। जैसे विषपान शिव के लिए भूषण, परन्तु दूसरों के लिए जानलेवा बन जाता है ॥ १४५ ॥

महत इति। असत्कृतमपि सज्जनानाचरितमपि तत् प्रसिद्धमित्यर्थः, कर्म तच्छब्दस्य प्रसिद्धार्थत्वात् न यच्छब्दापेक्षेति बोध्यम्। महतः जनस्य भूषणाय भवतीति शेषः, यथा विषपानं शिवस्य भूषणम् अन्येषान्तु मृत्युकारकम् ॥ १४५ ॥

तेजस्वी क्षमते सर्वं भोक्तुं वह्निरिवानघः।
न साम्मुख्यं गुरोः स्थेयं राज्ञः श्रेष्ठस्य कस्यचित् ॥ १४६ ॥

अन्वयः—तेजस्वी अनघः वह्निरिव सर्वं भोक्तुं क्षमते। किञ्च गुरोः राज्ञः कस्यचित् श्रेष्ठस्य साम्मुख्यं न स्थेयम् ॥ १४६ ॥

व्याख्या—तेजस्वी = वर्चस्वी, अनघः = निष्पापः, वह्निरिव = अग्निरिव, सर्वम् = सकलम्, भोक्तुम् = अशितुम्, क्षमते = समर्थो भवति। किञ्च गुरोः = आचार्यस्य, राज्ञः = नृपस्य, कस्यचित् = कस्यापि, श्रेष्ठस्य = श्रेष्ठजनस्य, साम्मुख्यम् = अभिमुखे, न = नहि, स्थेयम् = तिष्ठेत् ॥ १४६ ॥

हिन्दी—निष्पाप वचर्स्वस्वाले व्यक्ति आग की तरह कुछ भी खाकर पचाने में सामर्थ्यवान् होते हैं। गुरु, राजा और श्रेष्ठ व्यक्ति के सामने बिना अनुमति के नहीं बैठना चाहिए ॥ १४६ ॥

तेजस्वीति। तेजस्वी जनः अनघः अपापः वह्निरिव सर्वं भोक्तुं क्षमते शक्नोति। किञ्च गुरोः राज्ञः कस्यचित् श्रेष्ठस्य वा साम्मुख्ये न स्थेयम् ॥१४६॥

राजा मित्रमिति ज्ञात्वा न कार्य्यं मानसेप्सितम्।
नेच्छेन्मूर्खस्य स्वामित्वं दास्यमिच्छेन्महात्मनाम्।
विरोधं न ज्ञानलवदुर्विदग्धस्य रञ्जनम् ॥ १४७ ॥

अन्वयः—राजा मित्रमिति ज्ञात्वा मानसेप्सितं न कार्यम्। मूर्खस्य स्वामित्वं दास्यञ्च महात्मनां विरोधं ज्ञानलवदुर्विदग्धस्य रञ्जनं न इच्छेत् ॥ १४७ ॥

व्याख्या—राजा = नरपतिः, मित्रमिति = मम सखेति, ज्ञात्वा = मत्वा, मनसा = चेतसा, ईप्सितम् = अभिलषितम्, न = नहि, कार्यम् = अनुष्ठेयम् मूर्खस्य = अज्ञजनस्य, स्वामित्वम् = प्रभुत्वम्, च = पुनः, दास्यम् = सेवकत्वम्, महात्मनाम् = महापुरुषाणाम्, विरोधम् = वैरम्,

ज्ञानलवदुर्विदग्धस्य—ज्ञानस्य = बोधस्य, लवेन = विन्दुना, दुर्विदग्धस्य = अकुशलस्य मूर्खस्य, रञ्जनम् = आह्लादनम्, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत् ॥ १४७ ॥

हिन्दी—मूर्खों का न स्वामी बने, न सेवक; बड़ों का विरोध न करे, 'राजा मेरा मित्र है' यह सोचकर कभी मनमानी न करे। थोड़े ज्ञान से ही अपने को ज्ञानी समझने वाले अकुशल व्यक्ति को खुश करने की इच्छा न करे ॥१४७ ॥

राजेति। राजा मित्रं मम बन्धुरिति ज्ञात्वा मानसेप्सितं यथेप्सितं मानसमित्यर्थः न कार्य्यम्। किञ्च मूर्खस्य स्वामित्वं प्रभुत्वं दास्यञ्च, महात्मनां विरोधं महात्मभिर्विरोधमित्यर्थः, तथा ज्ञानलवेन ज्ञानविन्दुना स्वल्पेन ज्ञानेनेत्यर्थः, दुर्विदग्धस्य दुष्टस्य जनस्य रञ्जनं तोषणं न इच्छेत् ॥ १४७ ॥

अत्यावश्यमनावश्यं क्रमात् कार्य्यं समाचरेत्।
प्राक् पश्चाद्द्राग्विलम्बेन प्राप्तं कार्य्यं तु बुद्धिमान् ॥ १४८ ॥

अन्वयः—बुद्धिमान् अत्यावश्यम् अनावश्यं क्रमात् कार्यं प्राप्तं प्राक् पश्चात् द्राक् समाचरेत् ॥ १५८ ॥

व्याख्या—बुद्धिमान् = विपश्चिज्जनः, अत्यावश्यम् = अनिवार्यम्, अनावश्यम् = अनपेक्षितम्, क्रमात् = क्रमशः, कार्यम् = करणीयम्, प्राप्तम् = उपस्थितम्, प्राक् = पूर्वम्, पश्चात् = तत्पश्चात्, द्राक् = झटिति, समाचरेत् = कुर्यादिति ॥ १४८ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् व्यक्ति के हाथ में एक साथ यदि बहुत सारे काम आ जायें तो क्रमशः पहले अत्यावश्यक कार्य शीघ्र पूरा कर ले, फिर देर-सबेर अनावश्यक कार्य भी पूरा करे ॥ १४८ ॥

अत्यावश्यमिति। बुद्धिमान् जनः अत्यावश्यम् अनावश्यं, क्रमात् कार्यं तथा प्राप्तं हस्तगतं कार्य्यं प्राक् पश्चात् द्राग्विलम्बेन समाचरेत् तथा च अत्यावश्यं प्राक् प्रथमम् अनावश्यं पश्चात् परतः, क्रमात् कार्य्यं द्राक् झटिति, प्राप्तं विलम्बेनेति यथायथं वेदितव्यम् ॥ १४८ ॥

पित्राज्ञप्तेनापि मातृवधरूपे सुपूजिता।
धृता गोतमपुत्रेण ह्यकार्य्ये चिरकारिता ॥ १४९ ॥

अन्वयः—पित्राज्ञप्तेनापि गोतमपुत्रेण मातृवधरूपे अकार्ये चिरकारिता धृता सा सुपूजिता ॥१४९ ॥

व्याख्या—पित्राज्ञप्तेनापि = जनकेन समादिष्टेनापि, गोतमपुत्रेण = शतानन्देन, मातृवधरूपे- मातुः = जनन्याः, वधरूपे = हननस्वरूपे, अकार्ये = अपकर्मणि, चिरकारिता धृता = विलम्बः कृतः, सा = चिरकारिता, प्रशंसिता ॥ १४९ ॥

हिन्दी—पिता गौतम के आदेश देने के बावजूद शतानन्द ने अपनी माँ अहल्या के वध जैसे अपकर्म करने में देर लगा दिया। वह देरी भी लोगों में पूजित हुई ॥ १४९ ॥

पित्रेति। पित्राज्ञप्तेन अपि गोतमपुत्रेण शतानन्देन मातुः अहल्यायाः देवराजकृतव्यभिचारजनितदोषात् वधरूपे अकार्य्ये या चिरकारिता धृता विलम्बः कृत इत्यर्थः, सा सुपूजिता विलम्बात् तस्यां क्रोधोपशमात् गौतमस्य क्षमा आसीदिति भावः ॥ १४९ ॥

प्रेम्णा समीपवासेन स्तुत्या नत्या च सेवया।
कौशल्येन कलाभिश्च कथाभिर्ज्ञानतोऽपि च॥ १५०॥
आदरेणार्जवेनैव शौर्य्याद् दानेन विद्यया।
प्रत्युत्थानाभिगमनैरानन्दस्मितभाषणैः।
उपकारैः स्वाशयेन वशीकुर्य्याज्जगत् सदा॥ १५१॥

अन्वयः—सदा प्रेम्णा समीपवासेन स्तुत्या नत्या च सेवया कौशल्येन कलाभिश्च कथाभिः ज्ञानतोऽपि च आदरेण आर्जवेनैव शौर्यात् दानेन विद्यया प्रत्युत्थानाभिगमनैः आनन्दस्मितभाषणैः उपकारैः स्वाशयेन जगत् वशीकुर्यात्॥ १५०-१५१॥

व्याख्या—सदा = सततम्, प्रेम्णा = प्रीत्या, समीपवासेन = पार्श्वस्थितेन, स्तुत्या = प्रशंसावचनेन, नत्या = प्रणामेन, सेवया = सुश्रूषया, कौशल्येन = चातुर्येण, कलाभिश्च = शिल्पादिकलाभिश्च, कथाभिः = आख्यायिकाभिः, ज्ञानतः = बोधोपदेशेन, च = पुनः, आदरेण = सत्कारेण, आर्जवेण = निष्कापट्येन, शौर्यात् = वीरकर्मणा, दानेन = वित्तवितरणेन, विद्यया = शास्त्रीयबोधेन, प्रत्युत्थानेन = अभ्युत्थानेन, अभिगमनेन च = उपसर्पणेन, आनन्दस्मितभाषणैः—आनन्देन = प्रसन्नमुखेन, स्मितभाषणैः = मधुरालापैः, उपकारैः = हितैः, स्वाशयेन = शोभनाभिप्रायेण, जगत् = अखिलं संसारम्, वशीकुर्यात् = वशवर्तिनो विधेयात्॥ १५०-१५१॥

हिन्दी—कोई व्यक्ति हमेशा प्रेम से, साथ में रहकर, गुणकीर्तन से, प्रणाम कर, सेवा से, चतुरता से, अपनी कला का प्रदर्शन कर, कहानी सुनाकर, ज्ञान का उपदेश देकर, सम्मान कर, अपनी निष्कपटता से, वीरकर्म से, दान देकर, विद्या से, सामने आने पर आसन से उठकर अगवा कर ले आने से, प्रसन्नवदन मुस्कुराते हुए वार्तालाप कर, उपकार कर तथा अपना सुन्दर अभिप्राय व्यक्त कर संसार को वशवर्ती बना ले॥ १५०-१५१॥

टिप्पणी—इस अध्याय के १४४वें श्लोक में पौराणिक पात्र राहु की चर्चा की गई है तथा १४९वें श्लोक में गौतम-अहल्या और शतानन्द स्मृत है। इनका वृत्त इस प्रकार है—

राहु—राहु एक राक्षस का नाम है। विप्रचित और सिंहिका का पुत्र एक विशिष्ट ग्रह के रूप में पूज्य है। जब समुद्रमंथन के परिणामस्वरूप समुद्र से निकला अमृत देवताओं को परोसा जाने लगा तो राहु ने वेश बदल कर उनके साथ अमृत पीना चाहा। किन्तु सूर्य और चन्द्रमा को जब इस षड्यंत्र का पता चला तो उन्होंने इसकी सूचना भगवान् विष्णु को दे दी। विष्णु ने राहु का सिर काट डाला, किन्तु इससे पूर्व वह थोड़ा-सा अमृत पी चुका था, इसलिए उसका सिर अमर हो गया। किन्तु कहते हैं कि पूर्णिमा और अमावास्या को वे दानों चन्द्र और सूर्य को सताते रहते हैं। ज्योतिष में राहु को केतु की भाँति समझा जाता है। यह आठवाँ ग्रह है या चन्द्रमा का शिरोरोही बिन्दु है।

अहल्या—अहल्या गौतम ऋषि की पत्नी का नाम है। रामायण की कथा के अनुसार अहल्या सबसे पहली नारी थी जिसे ब्रह्मा ने उत्पन्न किया और उसे गौतम को दे देया। इन्द्र ने उसके पति का रूप धारण कर उसे सत्पथ से डिगा दिया, उसे धोखा देकर भ्रष्ट किया। दूसरी कथा के अनुसार वह इन्द्र को पहले से जानती थी और उससे अनुराग करती थी। इन्द्र की नम्रता के वशीभूत होकर उसकी चापलूसी का शिकार बन गई। इसके अतिरिक्त

एक और कहानी है, उसके अनुसार इद्र ने चन्द्रमा की सहायता प्राप्त की। चन्द्रमा ने मुर्गा बनकर आधी रात को ही वाँग दे दी। इस वाँग ने गौतम को अपने प्रातःकालीन नित्य कृत्य करने के लिए जगा दिया। इन्द्र ने कुटिया में घुसकर गौतम की जगह ली। जब गौतम को अहल्या के पथभ्रष्ट होने का बोध हुआ तो उसने उसे आश्रम से निर्वासित कर दिया और श्राप दिया कि वह पत्थर बन जाय और तब तक उस अवस्था में पड़ी रहे जब तक दशरथ के पुत्र राम का चरणस्पर्श न हो, जो कि अहल्या को फिर पूर्व रूप प्रदान करेगा। राम ने उसका उद्धार किया। फिर उसका अपने पति से मिलन हुआ। शुक्रनीति के अनुसार गौतम ने अपने पुत्र शतानन्द को अहल्या का वध करने का आदेश दिया, किन्तु पुत्र ने इसमें आनाकानी की। फलतः देर होने से गौतम का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया ॥ १५०-१५१ ॥

प्रेम्णेत्यादि। सदा प्रेम्णा स्नेहेन, समीपवासेन, स्तुत्या गुणकीर्तनेन, नत्या प्रणामेन, सेवया, कौशल्येन नैपुण्येन, कलाभिः गीतवादित्रादिचतुःषष्टिप्रकाराभिः विद्याभिः, कथाभिः ज्ञानतः ज्ञानोपदेशेन, आदरेण, आर्जवेन सारल्येन, शौर्य्यात्, दानेन, विद्यया, प्रत्युत्थानेन, अभिगमनेन, आनन्दस्मितसहितभाषणेन, उपकारैः, स्वाशयेन सुष्ठु चित्तानुवर्त्तनेन च जगत् वशीकुर्य्यात् ॥ १५०-१५१ ॥

एते वश्यकरोपाया दुर्जने निष्फलाः स्मृताः।
तत्सन्निधिं त्यजेत् प्राज्ञः शक्तस्तं दण्डतो जयेत्।
छलभूतैस्तु तद्रूपैरुपायैरेभिरेव वा ॥ १५२ ॥

अन्वयः—एते वश्यकरोपायाः दुर्जने निष्फलाः स्मृताः। प्राज्ञः तत्सन्निधिं त्यजेत्। शक्ताः तं दण्डतः छलभूतैः तद्रूपैः एभिरुपायैः एव वा जयेत् ॥ १५२ ॥

व्याख्या—एते = पूर्वोक्ताः, वश्यकरोपायाः = स्वायत्तीकरस्य युक्तयः, दुर्जने = दुष्टे, निष्फलाः = फलहीनाः, स्मृताः = कथिताः। प्राज्ञः = प्रकृष्टज्ञानीजनः, तत् = तस्य दुर्जनस्य, सन्निधिम् = संसर्गः, त्यजेत् = परिहरेत्। किञ्च शक्तः = समर्थश्चेत्, दण्डतः = दण्डैः, छलभूतैः = कपटस्वरूपैः, तद्रूपैः = पूर्वोक्तस्वरूपैः, एभिरुपायैः = वर्णितोपायैः, तम् = दुष्टजनम्, जयेत् = वश्यं कुर्यात् ॥ १५२ ॥

हिन्दी—ये पूर्ववर्णित वशीकरण के उपाय दुर्जनों पर प्रयुक्त होकर भी निष्फल हो जाते हैं। अतः बुद्धिमानों को उनकी संगति छोड़ देनी चाहिए। यदि सामर्थ्य हो तो उन्हें दण्ड देकर अथवा बनावटी पूर्वोक्त उपायों से उन्हें वशवर्ती बनाना चाहिए ॥ १५२ ॥

एते इति। एते वश्यकरोपायाः वशीकरणोपायाः प्रेमादयः दुर्जने निष्फलाः स्मृताः, दुर्जनस्य एतैरपि अवश्यत्वादिति भावः। प्राज्ञः जनः तस्य दुर्जनस्य सन्निधिं त्यजेत्। किञ्च शक्तः समर्थश्चेत् दण्डतः दण्डैः छलभूतैः तद्रूपैः प्रेमादिरूपैः एभिरुपायैः कौशलैश्च तं दुर्जनं जयेत् ॥ १५२ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामभ्यासः सर्वदा हितः।
साङ्गानां सोपवेदानां सकलानां नरस्य हि ॥ १५३ ॥

अन्वयः—साङ्गानां सोपवेदानां सकलानां श्रुतिस्मृतिपुराणानां सर्वदा अभ्यासः नरस्य हि हितः ॥ १५३ ॥

व्याख्या—साङ्गानाम् = समस्तशिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतिष-छन्दादिषडङ्गसहितानाम्, सोपवेदानाम् = धनुर्वेदायुर्वेदादिचतुरुपवेदसहितानाम्, सकलानाम् = सम्पूर्णानाम्, श्रुतिस्मृतिपुराणानाम्—श्रुतीनाम् = ऋग्यजुःसामाथर्ववेदानाम्, स्मृतीनाम् = मन्वाद्यष्टादशस्मृतीनाम्, पुराणानाम् = शिव-विष्णु-ब्रह्माद्यष्टादशपुराणानाञ्च, सर्वदा = निरन्तरम्, अभ्यासः = अनुशीलनम्, नरस्य = जनस्य, हि = यतः हितकरो भवति ॥ १५३ ॥

हिन्दी—मनुष्य के लिए सर्वदा सम्पूर्ण शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्यातिष—इन छः अङ्गों सहित; ऋक्, यजुः, साम, अथर्व—इन चार वेदों; धनुर्वेद, आयुर्वेदादि चार उपवेदों; अठारह मन्वादि स्मृतियों और अठारह शिवादि पुराणों का अभ्यास करना हितकर है ॥१५३ ॥

श्रुतीति। साङ्गानां व्याकरणादिषडङ्गसहितानां श्रुतिस्मृतिपुराणानां सकलानाम् उपवेदानां धनुर्वेदायुर्वेदादीनाञ्च सर्वदा अभ्यासः अनुशीलनं नरस्य हितः हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ १५३ ॥

मृगयाक्षाः स्त्रियः पानं व्यसनानि नृणां सदा।
चत्वार्य्येतानि सन्त्यज्य युक्त्या संयोजयेत् क्वचित् ॥ १५४ ॥

अन्वयः—मृगया अक्षाः स्त्रियः पानञ्च एतानि सदा नृणां व्यसनानि। एतानि चत्वारि सन्त्यज्य युक्त्या क्वचित् संयोजयेत् ॥ १५४ ॥

व्याख्या—मृगया = आखेटः, अक्षाः = द्यूतानि, स्त्रियः = नार्यः, पानञ्च = मदिरासेवनञ्च, एतानि = इमानि, सदा = सततम्, नृणाम् = पुरुषाणाम्, व्यसनानि = दोषाः। एतानि चत्वारि = पूर्वोक्तानि, सन्त्यज्य = परित्यज्य, युक्त्या = चातुर्येण, क्वचित् = यदा कदा, संयोजयेत् = सेवनं कुर्यात् ॥ १५४ ॥

हिन्दी—जूआ खेलना, शिकार करना, स्त्रीसंभोग एवं शराब पीना—ये चार मनुष्य के दुर्व्यसन हैं। इनका निरन्तर सेवन हानिकार है, अतः इनका सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिए ॥ १५४ ॥

मृगयेति। मृगया अक्षाः द्यूतानि, स्त्रियः स्त्रीसम्भोगाः पानञ्च एतानि सदा सन्ततानि नृणां व्यसनानि दोषाः। कदाचित् करणे न व्यसनमिति भावः। एतानि चत्वारि सन्त्यज्य सातत्येन त्यक्त्वा युक्त्या क्वचित् संयोजयेत् व्यवहरेदित्यर्थः, मृगयादिकमिति शेषः ॥ १५४ ॥

कूटेन व्यवहारं तु वृत्तिलोपं न कस्यचित्।
न कुर्याच्चिन्तयेत् कस्य मनसाप्यहितं क्वचित् ॥ १५५ ॥

अन्वयः—कूटेन व्यवहारं कस्यचित् वृत्तिलोपं कस्यापि अहितं च क्वचिदपि न कुर्यात् न च चिन्तयेत् ॥ १५५ ॥

व्याख्या—कूटेन = कपटेन, व्यवहारम् = वर्तनम्, कस्यचित् = केषाञ्चिदपि, वृत्तिलोपम् = जीविकाहानिः, कस्यापि = जनस्य, अहितम् = हानिम्, च, क्वचिदपि = कुत्रापि, न = नहि, कुर्यात् = विदध्यात्, मनसापि न च, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ १५५ ॥

हिन्दी—किसी के साथ कपटपूर्ण व्यवहार या उसकी आजीविका का हनन नहीं करना चाहिए। किसी का अहित मन से भी नहीं सोचना या करना चाहिए ॥ १५५ ॥

कूटेनेति। कूटेन कपटेन व्यवहारं कस्यचित् वृत्तिलोपं जीविकाच्छेदं कस्यापि अहितञ्च क्वचिदपि मनसापि न कुर्य्यात् नापि चिन्तयेत् ॥ १५५ ॥

तत्कार्य्यं तु सुखं यस्माद् भवेत् द्वैकालिकं दृढम्।
मृते स्वर्गं जीवति च विन्द्यात्कीर्त्तिदृढां शुभाम्॥ १५६॥

अन्वयः—यस्मात् द्वैकालिकं दृढं सुखं भवेत् तत्कार्यं मृते स्वर्गं जीवति च शुभां कीर्त्ति विन्द्यात्॥ १५६॥

व्याख्या—यस्मात् = कर्मणः, द्वैकालिकम् = ऐहिकं पारलौकिकञ्च, दृढम् = स्थायी, सुखम् = आनन्दम्, भवेत् = स्यात्, मृते = पञ्चत्वं गते, स्वर्गम् = सुरलोकम्, जीवति = जीवितावस्थायाम्, शुभाम् = मङ्गलदाम्, कीर्त्तिम् = यशः, विन्द्यात् = प्राप्नुयात्, तत्कार्यम् = तदेव कर्म करणीयमिति॥ १५६॥

हिन्दी—जिस काम से लोक-परलोक में स्थायी सुख की प्राप्ति हो अर्थात् मरने,पर स्वर्ग और जिन्दा रहने पर शुभकीर्ति का लाभ हो–वही काम करना चाहिए॥ १५६॥

तदिति। यस्मात् कार्य्यात् द्वैकालिकम् ऐहिकं पारत्रिकञ्चेत्यर्थः, दृढं स्थिरं सुखं भवेत् यथा मृते स्वर्गं जीवति च दृढां स्थिरां शुभां कीर्त्ति विन्द्यात् लभेत तत् कार्यं कर्त्तव्यम्॥ १५६॥

जागर्त्ति च सचिन्तो य आधिव्याधिनिपीडितः।
जारश्चोरो बलिद्विष्टो विषयी धनलोलुपः॥ १५७॥
कुसहायी कुनृपतिर्भिन्नामात्यसुहृत्प्रजः।
कुर्य्याद्यथा समीक्ष्यैतत् सुखं स्वप्याच्चिरं नरः॥ १५८॥

अन्वयः—यः सचिन्तः आधिव्याधिनिपीडितः जारः चोरः बलिद्विष्टः विषयी धनलोलुपः कुसहायी भिन्नामात्यसुहृत्प्रजः कुनृपतिः सः जागर्त्ति। अतः समीक्ष्य नरः तथा कुर्यात् यथा चिरं सुखं स्वप्यात्॥ १५८॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, सचिन्तः = चिन्ताकुलः, आधिना = मानस्या व्यथया, व्याधिना = आमयेन, निपीडितः = सन्तापितः, जारः = परदारलम्पटः, चोरः = तस्करः, बलिद्विष्टः—बलिना = शक्तिशालिना शत्रुणा, द्विष्टः = सापत्यभावमापन्नः, विषयी = कामी, धनलोलुपः = धनलुब्धः, कुसहायी = अधमोपकारी, भिन्नामात्यसुहृत्प्रजः = असम्बद्धसचिवसखाप्रजः, कुनृपतिः = कुत्सितराजा, सः = असौ, जागर्त्ति = रात्रौ निद्रां न लभते। अतः समीक्ष्य = सुष्ठुतया विचार्य, नरः = पुरुषः, तथा कुर्यात् = कार्यं निष्पादयेत्, यथा = येन विधिना, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, सुखम् = आनन्दम्, यथा तथा स्वप्यात् = चिरं निद्रां लभेत॥ १५७-१५८॥

हिन्दी—जो व्यक्ति चिन्तातुर, मानसिक रोग से परेशान, व्याधिग्रस्त, व्यभिचारी, चोर, शक्तिशाली शत्रु का शिकार बना, कामी, धनलोलुप, कुत्सितसहायक युक्त ऐसा राजा जिनसे मंत्री, मित्र और प्रजा विरक्त हो—ये रात में सुख से सो नहीं पाते। अतः मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि किसी काम को सुन्दर ढंग से विचार करने के बाद ही करे, ताकि बहुत दिनों तक रात में सुख की नींद सो सके॥ १५७-१५८॥

जागर्त्तीति। **कुसहायीति**। यः सचिन्तः चिन्तायुक्तः आधिना मानस्या व्यथया व्याधिना रोगेण वा निपीडितः जारः उपपतिः, चोरः बलिद्विष्टः बलिना प्रबलेन शत्रुणा द्विष्टः विद्वेषं गतः प्रबलशत्रुरित्यर्थः, विषयी ऐश्वर्य्यवान्, तथा धनलोलुपः यश्च कुसहायी कुत्सितसहायवान् भिन्नामात्यसुहृत्प्रजः विरक्तामात्यबन्धुप्रजः कुनृपतिः सः जागर्त्ति नैव निद्रां लभते इत्यर्थः। अतः

समीक्ष्य विचार्य्य नरः तथा कुर्य्यात् यथा चिरं सुखं यथा तथा स्वप्यात् निद्रां लभेत् ॥ १५७-१५८ ॥

राज्ञो नानुकृतिं कुर्य्यान्न च श्रेष्ठस्य कस्यचित्।
नैको गच्छेद् व्यालव्याघ्रचोरेषु च प्रबाधितुम्॥ १५९ ॥

अन्वयः—राज्ञः श्रेष्ठस्य कस्यचित् अनुकृतिं न कुर्यात्। एकः व्यालव्याघ्रचोरेषु प्रबाधितुं न गच्छेत् ॥ १५९ ॥

व्याख्या—राज्ञः = नृपस्य, तथा श्रेष्ठस्य = प्रशस्तमस्य, कस्यचिज्जनस्य, अनुकृतिम् = अनुकरणम्, न = नहि, कुर्यात् = सम्पादयेत्। एकः = एकाकिन एव, व्यालेषु = सर्पेषु, व्याघ्रेषु = हिंसकशार्दूलादिपशुषु, चोरेषु = तस्करेषु, च तान् प्रबाधितुम् = आक्रमितुम्, न = नहि, गच्छेत् = प्रस्थानं कुर्यात् ॥ १५९ ॥

हिन्दी—राजा या किसी श्रेष्ठ पुरुष की नकल नहीं करनी चाहिए। साँप, चोर या बाघ को अकेले मारने या पकड़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए ॥ १५९ ॥

राज्ञ इति। राज्ञः तथा श्रेष्ठस्य कस्यचित् जनस्य अनुकृतिं तुल्यव्यवहारं न कुर्य्यात्। एकः एकाकी च व्यालेषु हिंस्रेषु सर्पादिषु व्याघ्रेषु चोरेषु च आपतितेषु तान् प्रबाधितुं न गच्छेत् ॥ १५९ ॥

जिघांसन्तं जिघांसीयाद् गुरुमप्याततायिनम्।
कलहे न सहायः स्यात् संरक्षेद् बहुनायकम्॥ १६० ॥

अन्वयः—जिघांसन्तम् आततायिनं गुरुमपि जिघांसीयात्। कलहे सहायः न स्यात्। बहुनायकं संरक्षेत् ॥ १६० ॥

व्याख्या—जिघांसन्तम् = हन्तुमिच्छन्तम्, आततायिनम् = अत्याचारिणम्, गुरुमपि = आचार्यमपि, जिघांसीयात् = हन्यात्। कलहे = विसंवादे, सहायः = सहयोगी, न = नहि, स्यात् = भवेत्, बहुनायकम्—बहूनाम् = अनेकानाम्, नायकम् = अधिपतिम्, संरक्षेत् = सम्यग्रूपेण रक्षां कुर्यात् ॥ १६० ॥

हिन्दी—मारने की इच्छा रखने वाले आततायी गुरुजन का भी वध कर देना चाहिए। दो पक्षों के झगड़े में किसी का पक्षधर नहीं होना चाहिए। बहुत सारे लोगों के नेता की रक्षा करनी चाहिए ॥ १६० ॥

जिघांसन्तमिति। जिघांसन्तं हन्तुमिच्छन्तम् आततायिनं गुरुमपि जिघांसीयात्। कलहे विवादे सति सहायः एकपक्षावलम्बी न स्यात्। बहुनायकञ्च बहूनां नायकं स्वामिनं भर्त्तारमित्यर्थः, संरक्षेत् ॥ १६० ॥

गुरूणां पुरतो राज्ञो न चासीत महासने।
प्रौढपादो न तद्वाक्यं हेतुभिर्विकृतिं नयेत्॥ १६१ ॥

अन्वयः—गुरूणां राज्ञश्च पुरतः महासने न आसीत। प्रौढपादः तद्वाक्यं हेतुभिः विकृतिं न नयेत् ॥ १६१ ॥

व्याख्या—गुरूणाम् = पूज्यानाम्, राज्ञश्च = नृपस्य च, पुरतः = सम्मुखे, महासने = उच्चासने, न = नहि, आसीत = उपविशेत्। तथा प्रौढपादः = प्रोपचितचरणः सन्, अर्थात्पादोपरि

पादं विन्यस्य, तत् = तेषां, वाक्यम् = कथनम्, हेतुभिः = तर्कैः, विकृतिम् = खण्डनम्, न = नहि, नयेत् = प्रापयेत् ॥ १६१ ॥

हिन्दी—गुरुजनों और राजा के आगे ऊँचे आसन पर या पैर-पर-पैर रख कर नहीं बैठना चाहिए और इनके कथन का तर्क द्वारा खण्डन भी नहीं करना चाहिए ॥ १६१ ॥

गुरूणामिति। गुरूणां पित्रादीनां राज्ञश्च पुरतः अग्रतः महासने उन्नतासने न आसीत नोपविशेत्। तथा प्रौढपादः उत्क्षिप्तचरणः सन् तेषां वाक्यं हेतुभिः तर्कवादैः न विकृतिं नयेत् न खण्डयेदित्यर्थः ॥ १६१ ॥

यत् कर्त्तव्यं न जानाति कृतं जानाति चेतरः।
नैव वक्ति च कर्त्तव्यं कृतं यश्चोत्तमो नरः ॥ १६२ ॥

अन्वयः—इतरः यत् कर्त्तव्यं तन्न जानाति कृतं जानाति। यश्च नरः उत्तमः सः कर्त्तव्यं कृतन्न वक्ति ॥ १६२ ॥

व्याख्या—इतरः = अधमो जनः, यत्कर्त्तव्यम् = करणीयं कर्म, तन्न = नहि, जानाति = वेत्ति, केवलम्, कृतम् = सम्पादितं कर्म एव, जानाति = वेत्ति। यश्च नरः = पुरुषः, उत्तमः = श्रेष्ठः, सः कर्त्तव्यम् = करणीयम्, कृतम् = सम्पादितमपि कर्म, न = कुत्रापि नहि, वक्ति = प्रकाशयति ॥ १६२ ॥

हिन्दी—नीच व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को नहीं पहचानता है, प्रत्युत किये हुए कर्म को ही जानता है। किन्तु उत्तम कोटि का व्यक्ति न तो अपने कत्तर्व्य को और न किये हुए को कहीं प्रकाशित करता है ॥ १६२ ॥

यदिति। इतरः नीचः कर्त्तव्यं यत् तत् न जानाति केवलं कृतं जानाति च। यश्च नरः उत्तमः, सः कर्त्तव्यं कृतञ्च न वक्ति न कथयति ॥ १६२ ॥

न प्रियाकथितं सम्यङ्मन्येतानुभवं विना।
अपराधं मातृस्नुषाभ्रातृपत्नीसपत्निजम् ॥ १६३ ॥

अन्वयः—प्रियया कथितं मातृस्नुषाभ्रातृपत्नीसपत्निजम् अपराधं अनुभवं विना सम्यक् न मन्येत ॥ १६३ ॥

व्याख्या—प्रियया = पत्न्या, कथितम् = निवेदितम्, मात्रा = जनन्या, स्नुषया = पुत्रवध्वा, भ्रातृपत्न्या = सोदरवध्वा, सपत्निजम् = समानपतिकाकृतम्, अत्र सपत्निजम् इत्यार्षप्रयोगः। अपराधम् = स्खलितः, अनुभवम् = साक्षादुपलब्धं ज्ञानम्, विना = विहाय. सम्यक् = सामस्त्येन साधु, न = नहि, मन्येत = मन्तव्यमिति ॥ १६३ ॥

हिन्दी—प्रत्यक्ष देखे या समझे बिना अपनी प्रिय पत्नी के कहने मात्र से माँ, पुत्रवधू. भाई की पत्नी या विमाता के अपराध को नहीं मानना चाहिए ॥ १६३ ॥

नेति। प्रियया भार्य्यया कथितं मातृस्नुषाभ्रातृपत्नीसपत्निजम् अपराधम् अनुभवं विना निजानुभवमन्तरेण सम्यक् सत्यं न मन्येत सपत्निजम् इति आर्षः प्रयोगः ॥ १६३ ॥

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दया दर्पः स्त्रीणामष्टौ स्वदुर्गुणाः ॥ १६४ ॥

अन्वयः—स्त्रीणाम् अष्टौ स्वदुर्गुणाः; यथा—अनृतम्, साहसम्, माया, मूर्खत्वम्, अतिलोभता, अशौचम्, निर्दया, दर्पः ॥ १६४ ॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = नारीणाम्, अष्टौ = अष्टानां संख्यानाम्, स्वदुर्गुणाः = आत्मदोषाः, भवन्ति, तद्यथा—अनृतम् = असत्यम्, धृष्टता, माया = छलम्, मूर्खता = अज्ञानता, अतिलोभता = लोलुपताबाहुल्यम्, अशौचम् = अपवित्रता, निर्दया = निष्ठुरता, दर्पः = अहङ्कारिता चेति ॥ १६४ ॥

हिन्दी—झूठ बोलना, साहस करना, ढोंग रचना, मूर्खता, अतिलोलुपता, अपवित्रता, निर्दयता तथा अहंकार—ये नारी के दोष हैं ॥ १६४ ॥

अनृतमिति। स्त्रीणाम् अष्टौ स्वदुर्गुणाः निजदोषाः यथा अनृतं मिथ्या १, साहसं २, माया कापट्यं ३, मूर्खत्वं निर्बोधता ४, अतिलोभता ५, अशौचम् अपवित्रता ६, निर्दया दयाराहित्यं ७, दर्पः ८ ॥ १६४ ॥

षोडशाब्दात् परं पुत्रं द्वादशाब्दात् परं स्त्रियम्।
न ताडयेद् दुष्टवाक्यैः पीडयेन्न स्नुषादिकम् ॥ १६५ ॥

अन्वयः—षोडशाब्दात् परं पुत्रं द्वादशाब्दात् परं स्त्रियं न ताडयेत्। स्नुषादिकं दुष्टवाक्यैः न पीडयेत् ॥ १६५ ॥

व्याख्या—षोडशाब्दात् = षोडशवर्षात्, परम् = अनन्तरम्, पुत्रम् = सुतम्, द्वादशाब्दात् = द्वादशवर्षाद्, परम् = तदनु, स्त्रियम् = नारीम्, न = नहि, ताडयेत् = तर्जयेत्। स्नुषादिकम् = पुत्रवध्वादिकम्, दुष्टवाक्यैः = दुर्वचनैः, न = नहि, पीडयेत् = व्यथयेत् ॥ १६५ ॥

हिन्दी—बेटे को सोलह साल के बाद, बेटियों को बारह साल के बाद डाँट-डपट नहीं करना चाहिए। पुत्रवधू प्रभृति को कटुवचनों से क्लेश नहीं पहुँचाना चाहिए।। १६५ ॥

षोडशाब्दादिति। षोडशाब्दात् षोडशवत्सरात् परं पुत्रं द्वादशाब्दात् परं स्त्रियं न ताडयेत् न शासयेत्। स्नुषादिकं पुत्रवधूप्रभृतिकं दुष्टवाक्यैः न पीडयेच्च ॥ १६५ ॥

पुत्राधिकाश्च दौहित्रा भागिनेयाश्च भ्रातरः।
कन्याधिकाः पालनीया भ्रातृभार्य्या स्नुषा स्वसा ॥ १६६ ॥

अन्वयः—दौहित्राः भागिनेयाः भ्रातरश्च पुत्राधिकाः, भ्रातृभार्या स्नुषा स्वसा कन्याधिकाः पालनीयाः ॥ १६६ ॥

व्याख्या—दौहित्राः = दुहितुः पुत्राः, भागिनेयाः = भगिनीसुताः, भ्रातरश्च = सोदराश्च, पुत्राधिकाः = सुतादप्यधिकाः, भ्रातृभार्या = सोदरपत्नी, स्नुषा = पुत्रवधू, स्वसा = भगिनी, कन्याधिकाः = स्वात्मजायाः अप्यधिकाः, पालनीयाः = रक्षणीयाः ॥ १६६ ॥

हिन्दी—बेटे से बढ़कर नाती, भानजा और भाइयों का और बेटी से बढ़कर भाई की पत्नी, पुत्रवधू और बहन का पालन-पोषण करना चाहिए ॥ १६६ ॥

पुत्राधिका इति। दौहित्राः भागिनेयाः भ्रातरश्च पुत्राधिकाः, भ्रातृभार्य्या स्नुषा स्वसा भगिनी च कन्याधिकाः यथा तथा पालनीयाः ॥ १६६ ॥

आगमार्थं हि यतते रक्षणार्थं हि सर्वदा।
कुटुम्बपोषणे स्वामी तदन्ये तस्करा इव ॥ १६७ ॥

अन्वयः—स्वामी कुटुम्बपोषणे आगमार्थं रक्षणार्थञ्च सर्वदा यतते हि। तदन्ये तस्करा इव ॥ १६७ ॥

व्याख्या—स्वामी = गृहपतिः, कुटुम्बपोषणे = गृहजनपालने, आगमार्थम् = धनप्राप्तिनिमित्तम्, तथा रक्षणार्थम् = तेषां त्राणार्थम्, सर्वदा = सततम्, यतते = प्रयत्नं कुरुते, हि = इति निश्चयेन। तदन्ये = तद्भिन्ने जनाः, तस्कराः = चौराः, इव = यथा, यतन्ते ॥ १६७ ॥

हिन्दी—गृहपति सदैव गृहीजनों के पालन-पोषण हेतु तथा उनकी रक्षा के लिए धनोपार्जन हेतु प्रयत्नशील रहता है। जो गृहपति ऐसा नहीं करता है वह चोर की तरह है ॥ १६७ ॥

आगमार्थमिति। स्वामी कुटुम्बपोषणेआगमार्थं धनागमनिमित्तं रक्षणार्थञ्च सर्वदा यतते हि। तदन्ये स्वामिव्यतिरिक्ताः तस्करा इव चौरा इव यतन्ते इति शेषः ॥ १६७ ॥

अनृतं साहसं मौर्ख्यं कामाधिक्यं स्त्रियां यतः।
कामाद् विनैकशयने नैव सुप्यात् स्त्रिया सह ॥ १६८ ॥

अन्वयः—यतः स्त्रियाम् अनृतं साहसं मौर्ख्यं तथा कामाधिक्यम्, अतः कामात् विना स्त्रिया सह एकशयने न सुप्यात् ॥ १६८ ॥

व्याख्या—यतः = यस्मात् कारणात्, स्त्रियाम् = प्रमदायाम्, अनृतम् = असत्यम्, साहसम् = प्रगल्भता, मौर्ख्यम् = अबोधकत्वम्, तथा कामाधिक्यम् = वासनाप्राचुर्यम्, विद्यते, अत एव कामात् विना = मैथुनेच्छां विना, स्त्रिया = प्रमदया, सह = सहितम्, एकशयने = एकस्यां शय्यायाम्, न = नहि, सुप्यात् = शयनं कुर्यात् ॥ १६८ ॥

हिन्दी—क्योंकि औरतों में झूठ, साहस, मूर्खता और वासना की अधिकता होती है; अतः मैथुनेच्छा के बिना स्त्री के साथ एक बिछावन पर कभी नहीं सोना चाहिए ॥ १६८ ॥

अनृतमिति। यतः स्त्रियाम् अनृतं, साहसम् अविविच्यकारित्वं, मौर्ख्यं निर्बोधता, तथा कामाधिक्यं विद्यते इति शेषः, अतः कामात् विना स्त्रिया सह एकशयने एकशय्यायां नैव सुप्यात् ॥ १६८ ॥

दृष्ट्वा धनं कुलं शीलं रूपं विद्यां बलं वयः।
कन्यां दद्यादुत्तमं चेन्मैत्रीं कुर्य्यादथात्मनः ॥ १६९ ॥

अन्वयः—धनं कुलं शीलं रूपं विद्यां बलं वयश्च दृष्ट्वा कन्यां दद्यात्। उत्तमं चेत्तदा आत्मनः मैत्रीं कुर्यात् ॥ १६९ ॥

व्याख्या—धनम् = सम्पदाम्, कुलम् = वंशम्, शीलम् = स्वभावम्, रूपम् = शारीरिकसौन्दर्यम्, विद्याम् = अध्ययनम्, बलम् = शक्तिम्, वयः = अवस्था च, दृष्ट्वा = अवलोक्य विचार्य च, कन्याम् = पुत्रीम्, दद्यात् = प्रयच्छेत्। उत्तमम् = सर्वविधवरेण्यम्, चेत् = भवति, तदा = तर्हि, आत्मनः = स्वस्य, मैत्रीम् = सौहार्दम्, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ १६९ ॥

हिन्दी—सम्पत्ति, शील, वंश, रूप, विद्या, बल और अवस्था देखकर सर्वाङ्गसुन्दर वर के साथ कन्या का विवाह करना चाहिए। उत्तम व्यक्ति के साथ सबन्ध जोड़ना ही उचित होता है ॥ १६९ ॥

दृष्ट्वेति। धनं कुलं शीलं रूपं विद्या बलं वयश्च दृष्ट्वा कन्यां दद्यात्, उत्तमं सर्वाङ्गसुन्दरं चेत् भवति तदा आत्मनः मैत्रीं कुर्यात् ॥ १६९ ॥

भार्य्यार्थिनं वयोविद्यारूपिणं निर्धनं त्वपि।
न केवलेन रूपेण वयसा न धनेन च॥ १७०॥

अन्वयः—भार्यार्थिनं वयोविद्यारूपिणं निर्धनमपि केवलेन रूपेण वयसा न तु अपि केवलेन धनेन न दद्यात्॥ १७०॥

व्याख्या—भार्यार्थिनम् = पत्नीच्छुकम्, वयः = अल्पवयसम्, विद्याम् = कलावन्तम्, रूपिणम् = स्वरूपवन्तम्, निर्धनमपि = दरिद्रजनमपि, कन्यां दद्यादिति शेषः, केवलेन रूपेण = मात्रस्वरूपेण, न = नहि, केवलेन वयसा = मात्रकैशोरावस्थया, न = नहि, तथा केवलेन धनेन = मात्रधनं दृष्ट्वा कन्यां न दद्यादिति॥ १७०॥

हिन्दी—विवाह करने के लिए इच्छुक व्यक्ति की उम्र, विद्या एवं स्वरूपयोग्यता देखकर गरीब होने के बावजूद उसे कन्यादान करना चाहिए; न कि केवल रूप, केवल उम्र या धन देखकर कन्यादान करना चाहिए॥ १७०॥

भार्य्यार्थिनमिति। भार्य्यार्थिनं वयोविद्यारूपिणम् अल्पवयसं विद्यावन्तं रूपवन्तञ्च निर्धनमपि आहूय कन्यां दद्यादिति पदत्रयमूह्यं, केवलेन रूपेण न, केवलेन वयसा न, तथा केवलेन धनेन च न दद्यादिति शेषः॥ १७०॥

आदौ कुलं परीक्षेत ततो विद्यां ततो वयः।
शीलं धनं ततो रूपं देशं पश्चाद् विवाहयेत्॥ १७१॥

अन्वयः—आदौ कुलं ततः विद्यां ततः वयः ततः शीलं ततः धनं ततः रूपं ततः देशं परीक्षेत, पश्चात् विवाहयेत्॥ १७१॥

व्याख्या—आदौ = पूर्वम्, सर्वप्रथमे वा, कुलम् = वरस्य वंशम्, ततः = तत्पश्चात्, विद्याम् = ज्ञानम्, ततः = तदनन्तरम्, वयः = आयुः, ततः = तदनु, शीलम् = चरित्रम्, ततः = तदनन्तरम्, धनम् = सम्पदम्, ततः = अनन्तरम्, रूपम् = स्वरूपम्, ततः = अनन्तरम्, देशम् = निवासस्थानम्, परीक्षेत, पश्चात् = सर्वान्ते, विवाहयेत् = कन्यादानं कुर्यात्॥ १७१॥

हिन्दी—सबसे पहले वर का खानदान, फिर उसकी पढ़ाई, उसके बाद उसकी उम्र, फिर उसका चरित्र, उसके बाद उसकी आर्थिक स्थिति, फिर उसका रूप और अन्त में उसके निवासस्थान का ठीक ढंग से जाँच करने के पश्चात् कन्या का विवाह करना चाहिए॥ १७१॥

आदाविति। आदौ प्रथमतः कुलं, ततः विद्यां, ततः वयः, ततः शीलं, ततः धनं, ततः रूपं ततश्च देशं परीक्षेत, पश्चात् विवाहयेत् कन्यां दद्यादित्यर्थः॥ १७१॥

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥ १७२॥

अन्वयः—कन्या रूपं वरयते, माता वित्तं, पिता श्रुतं, बान्धवाः कुलम्, इतरे जनाः मिष्टान्नम् इच्छन्ति॥ १७२॥

व्याख्या—कन्या = कुमारी, रूपम् = वरस्य सौन्दर्यम्, वरयते = वृणुते, माता = जननी, वित्तम् = धनसम्पदम्, पिता = जनकः, श्रुतम् = ख्यातिम्, बान्धवाः = गोत्रजाः, कुलम् = वंशम्, इतर जनाः = वरयात्रिणः, मिष्टान्नम् = मधुर भोजनम्, इच्छन्ति = अभिलषन्ति॥ १७२॥

हिन्दी—कन्या वर का सौन्दर्य, माँ धन, पिता ख्याति, बन्धु-बान्धव खानदान तथा वरयात्रीगण केवल मिष्ठान्न चाहते हैं ॥ १७२ ॥

कन्येति। कन्या रूपं वरयते प्रार्थयते, माता वित्तं धनं, पिता श्रुतं विद्यां, बान्धवाः भ्रात्रादयः कुलम्, इतरे जनाः मिष्टान्नम् इच्छन्ति ॥ १७२ ॥

भार्य्यार्थं वरयेत् कन्यामसमानर्षिगोत्रजाम्।
भ्रातृमतीं सुकुलां च योनिदोषविवर्जिताम् ॥ १७३ ॥

अन्वयः—भार्य्यार्थम् असमानर्षिगोत्रजां भ्रातृमतीं सुकुलां च योनिदोषविवर्जितां कन्यां वरयेत् ॥ १७३ ॥

व्याख्या—भार्यार्थम् = पत्नीप्राप्त्यर्थम्, असमानर्षेः = भिन्नऋषेः, असमानगोत्रजाम् = अतुल्यगोत्रोत्पन्नाम्, भ्रातृमतीम् = सोदरवतीम्, सुकुलाम् = कुलीनाम्, योनिदोषविवर्जिताम् = मातृदुर्गुणरहिताम्, कन्याम् = कुमारीम्, वरयेत् = विवाहयेत् ॥ १७३ ॥

हिन्दी—पत्नी बनाने के लिए अपने से भिन्न ऋषि एवं गोत्रवाली, भाई वाली, अच्छे खानदान में जन्म लेने वाली तथा निर्दोष माँ के पेट से जन्म लेने वाली कन्या का वरण करना वर के लिए उत्तम है ॥ १७३ ॥

भार्य्यार्थमिति। भार्य्यार्थम् असमानर्षिगोत्रजाम् असमानार्षेयीम् असमानगोत्रां भ्रातृमतीं सुकुलां सत्कुलोत्पन्नां योनिदोषविवर्जितां मातृदोषशून्यां कन्यां वरयेत् ॥ १७ ॥

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।
न त्याज्यौ तु क्षणकणौ नित्यं विद्याधनार्थिना ॥ १७४ ॥

अन्वयः—क्षणशः कणशः एव विद्याम् अर्थञ्च साधयेत्। विद्याधनार्थिना नित्यं क्षणकणौ तु न त्याज्यौ ॥ १७४ ॥

व्याख्या—क्षणशः = प्रतिक्षणम्, कणशः = प्रतिकणम्, क्रमशः विद्याम् = ज्ञानम्, अर्थञ्च = धनञ्च, साधयेत् = उपार्जयेत्। विद्यार्थिना = ज्ञानार्थिना, धनार्थिना = वित्तार्थिना च, नित्यं = सततम्, क्षणकणौ = पललवौ, न = नहि, त्याज्यौ = त्यक्तव्यौ ॥ १७४ ॥

हिन्दी—विद्या तथा धन चाहने वाले व्यक्ति को प्रत्येक क्षण एवं प्रत्येक कण का उपयोग करना चाहिए। विद्या एवं धन चाहने वाले व्यक्ति को एक पल एवं कण भी नहीं छोड़ना चाहिए ॥ १७४ ॥

क्षणश इति। क्षणशः क्षणे क्षणे कणशः अल्पशः विद्याम् अर्थञ्च साधयेत् अर्जयेत्, विद्याधनार्थिना जनेन नित्यं सततं क्षणकणौ न त्याज्यौ न हातव्यौ ॥ १७४ ॥

सुभार्य्यापुत्रमित्रार्थं हितं नित्यं धनार्जनम्।
दानार्थं च विना त्वेतैः किं धनैश्च जनैश्च किम्? ॥ १७५ ॥

अन्वयः—सुभार्यार्थं पुत्रार्थं मित्रार्थं दानार्थञ्च नित्यं धनार्जनं हितम्। एतैः विना धनैः किम्? जनैः किम्? ॥ १७५ ॥

व्याख्या—सुभार्यार्थम् = शीलवत्यै पत्न्यै, पुत्रार्थम् = पुत्रनिमित्तम्, मित्रार्थम् = सुहृन्निमित्तम्, दानार्थम् = दानाय, च, नित्यम् = निरन्तरम्, धनार्जनम्—धनस्य = सम्पदः,

अर्जनम् = उपार्जनम्, हितम् = लाभकरं भवति, एतैः = पूर्वोक्तैः सुभार्यादिभिः, विना = विहाय, धनैः = वित्तैः, किम्? न किमपि, जनैः = इतरैः सेवकाद्यैः, किम् = न किमपीत्यर्थः ॥ १७५ ॥

हिन्दी—सुशील पत्नी, पुत्र, मित्र एवं दान के लिए तो नित्य धनार्जन करना हितकर है। इनके बिना धनार्जन एवं सेवकादि का प्रयोजन ही क्या है? अर्थात् कुछ नहीं ॥ १७५ ॥

सुभार्य्येति। सुभार्य्यार्थं पुत्रार्थं मित्रार्थं दानार्थञ्च नित्यं सततं धनार्जनं हितम्। एतैः सुभार्य्यादिभिः विना तु धनैश्च जनैः अपरैः भृत्यवर्गैश्च किम्? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ॥ १७५ ॥

भाविसंरक्षणक्षमं धनं यत्नेन रक्षयेत्।
जीवामि शतवर्षं तु नन्दामि च धनेन वै ॥ १७६ ॥
इति बुद्ध्या सञ्चिनुयाद्धनं विद्यादिकं सदा।
पञ्चविंशत्यब्दपूरं तदर्द्धं वा तदर्द्धकम् ॥ १७७ ॥

अन्वयः—भाविसंरक्षणक्षमं धनं यत्नेन रक्षयेत्। शतवर्षं जीवामि, धनेन च दै नन्दामि इदि बुद्ध्या पञ्चविंशत्यब्दपूरं तदर्द्धं वा तदर्द्धकं विद्यादिकं धनं सदा सञ्चिनुयात् ॥ १७६-१७७ ॥

व्याख्या—भाविनाम् = आगामिनामुपभोगानाम्, संरक्षणे = गोपने, क्षमम् = शक्तं समर्थं वा, धनम् = वित्तम्, यत्नेन = प्रयत्नेन, रक्षयेत् = गोपयेत्। शतवर्षम् = वत्सरशतपर्यन्तम्, जीवामि = जीवनधारणं करोमि, अतः, धनेन = सञ्चितेन सम्पदा, नन्दामि = आनन्दं लभे, इति बुद्ध्या = एवं सञ्चिन्त्य, पञ्चविंशत्यब्दपूरम् = पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तम्, तदर्द्धम् = सार्द्धद्वादशवर्षम्, वा = अथवा, तदर्द्धकम् = सपादषड्वर्षं यावत्, विद्यादिकम् = ज्ञानार्जनादिकम्, धनम् = वित्तम्, च, सदा = सततम्, सञ्चिनुयात् = सञ्चयं कुर्यात् ॥ १७६-१७७ ॥

हिन्दी—भविष्य की रक्षा करने में समर्थ धन की प्रयासपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। सौ साल तक मैं जिन्दा रहूँगा और इस धन से आनन्द प्राप्त करूँगा, इस बुद्धि से धन और विद्या का पच्चीस वर्षों तक या उसका आधा साढ़े बारह वर्षों तक अथवा उसका आधा सवा छः वर्षों तक सदा संग्रह करना चाहिए ॥ १७६-१७७ ॥

भावीति। इतीति। भाविनां भविष्यतां विषयाणां संरक्षणक्षमं धनं यत्नेन रक्षयेत्। शतवर्षं जीवामि, धनेन च नन्दामि आनन्दं लभे इति बुद्ध्या पञ्चविंशत्यब्दपूरं पञ्चविंशतिवर्षं तदर्द्धं सार्द्धद्वादशाब्दं वा तदर्द्धकं सपादषड्वर्षं यावत् विद्यादिकं धनं सदा सञ्चिनुयात् सङ्गृह्णीयात् ॥ १७६-१७७ ॥

विद्याधनं श्रेष्ठतरं तन्मूलमितरद्धनम्।
दानेन वर्द्धते नित्यं न भाराय न नीयते ॥ १७८ ॥

अन्वयः—विद्याधनं श्रेष्ठतरम्, इतरद्धनं तन्मूलम्। एतच्च दानेन नित्यं वर्द्धते, न भाराय न नीयते ॥ १७८ ॥

व्याख्या—विद्याधनम् = विद्यारूपं सम्पदम्, श्रेष्ठतरम् = सकलधनेभ्यो वरेण्यम्, इतरत् = अन्यत्, धनम् = वित्तम्, तन्मूलम् = विद्यामूलम्, एतच्च, दानेन = वितरणेन, नित्यम् = सततम्, वर्द्धते = वृद्धिं याति, भाराय = दुर्वहणाय, न = नहि, भवति, न च अन्यैः नीयते = अपह्रियते ॥ १७८ ॥

हिन्दी—विद्या रूपी धन सभी धनों से श्रेष्ठतर धन है, क्योंकि अन्य सभी धन विद्यामूलक ही हैं। बाँटने से यह हमेशा बढ़ता है। यह न तो भारी है और न कोई इसे छीन ही सकता है ॥१७८ ॥

विद्याधनमिति। विद्याधनं विद्यारूपं धनं श्रेष्ठतरं सर्वधनेभ्यः श्रेष्ठम् इतरत् अन्यत् धनं तन्मूलं विद्यामूलं विद्ययैव अन्यत् धनमुपार्ज्यते इति भावः। एतच्च दानेन नित्यं सततं वर्द्धते, न भाराय भवति, नापि अन्यैः नीयते नाप्यपह्रियते इत्यर्थः ॥ १७८ ॥

अस्ति यावत् तु सधनस्तावत् सर्वैस्तु सेव्यते।
निर्धनस्त्यज्यते भार्य्यापुत्राद्यैः सगुणोऽप्यतः ॥ १७९ ॥
संसृतौ व्यवहाराय सारभूतं धनं स्मृतम्।
अतो यतेत तत्प्राप्तौ नरा ह्युपायसाहसैः ॥ १८० ॥

अन्वयः–यावत् सधनः अस्ति तावत् सर्वैः सेव्यते। निर्धनस्तु सगुणोऽपि भार्यापुत्राद्यैः त्यज्यते। अतः संसृतौ व्यवहाराय धनं सारभूतं स्मृतम्। अतो हि नरः उपायैः साहसैः तत्प्राप्तौ यतेत ॥१८० ॥

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, जनः, सधनः—धनेन = वित्तेन, सहितः, अस्ति = भवति, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, सर्वैः = सकलजनैः, सेव्यते = समाद्रियते। निर्धनस्तु—तु = किन्तु, निर्धनः = धनहीनो जनः, सगुणोऽपि = गुणान्वितोऽपि, भार्यापुत्राद्यैः = पत्नीपुत्राद्यैः, त्यज्यते = विसृज्यते। अतः = अस्मात् कारणात्, संसृतौ = संसारे, व्यवहाराय = वर्त्तनाय, धनम् = वित्तम्, सारभूतम् = तत्त्वस्वरूपम्, स्मृतम् = कथितम्। अतः = अस्मात् कारणात्, हि = इति निश्चयेन, नरः = मानवः, उपायैः = उपकरणैः, साहसैः = धैर्यैः, तत् = तद्धनस्य, प्राप्तौ = लाभाय, यतेत = चेष्टेत ॥ १७९-१८० ॥

हिन्दी—मनुष्य के पास जब तक धन रहता है तब तक सभी उसकी सेवा करते हैं और वही जब धनहीन हो जाता है तो गुणवान् होने के बावजूद औरों की तो बात दूर रही; पत्नी-पुत्र भी साथ छोड़ देते हैं। अतः सांसारिकता के निर्वाह हेतु धन को ही सारभूत कहा गया है और इसीलिए धनप्राप्ति के लिए मनुष्य को उपाय एवं साहस के साथ प्रयास करना चाहिए ॥१७९-१८० ॥

अस्तीति। संसृताविति। यावत् सधनः अस्ति, तावत् सर्वैः जनैः सेव्यते आद्रियते, निर्धनस्तु सगुणोऽपि गुणवानपि भार्य्यापुत्राद्यैः त्यज्यते। अतः अस्मात् कारणात् संसृतौ संसारव्यवहाराय धनं सारभूतं स्मृतम्। अतो हि नरः मानवः उपायैः साहसैः प्राणसंशयकरैः कार्य्यैरपि तस्य धनस्य प्राप्त्यै प्राप्तिनिमित्तं यतेत चेष्टेत ॥ १७९-१८० ॥

सुविद्यया सुसेवाभिः शौर्य्येण कृषिभिस्तथा।
कौसीदवृद्ध्या पण्येन कलाभिश्च प्रतिग्रहैः ॥ १८१ ॥
यया कया चापि वृत्त्या धनवान् स्यात्तथाचरेत् ॥ १८१ ॥
तिष्ठन्ति सधनद्वारे गुणिनः किङ्करा इव ॥ १८२ ॥

अन्वयः—सुविद्यया सुसेवाभिः शौर्येण तथा कृषिभिः कौसीदवृद्ध्या पण्येन कलाभिश्च प्रतिग्रहैः यया कयाऽपि वृत्त्या यथा धनवान् भवेत् तथा आचरेत्। अतः गुणिनः सधनद्वारे किङ्कराः इव तिष्ठन्ति ॥ १८१-१८२ ॥

व्याख्या—सुविद्यया = सुष्ठुज्ञानेन, सुसेवाभिः = सुन्दरपरिचर्याभिः, शौर्येण = पराक्रमेण, तथा कृषिभिः = हलभृतिभिः, कौसीदवृद्ध्या = वार्द्धुषिकैः, पण्येन = क्रय-विक्रयेण, विपणिभिश्च, कलाभिश्च = निपुणताप्रदर्शनैः, प्रतिग्रहैः = दानग्रहणैः, किं बहुना, यया कयाऽपि वृत्त्या = येन केनाऽपि व्यवहारेण, यथा धनवान् = सधनः, भवेत् = स्यात्, तथा = तेन प्रकारेण, आचरेत् = व्यवहरेत् । अतः = अस्मादेव कारणात्, गुणिनः = गुणवन्तो जनाः, सधनस्य = धनवतः, द्वारे = प्रतिहारे, किङ्कराः = दासाः, इव = यथा, तिष्ठन्ति = निवसन्ति ॥ १८२--१८२ ॥

हिन्दी—सुन्दर ज्ञान से, अच्छी सेवा से, पराक्रम से, खेतीवारी से, सूदखोरी से, दूकानदारी से, कलाप्रदर्शन से, दान लेकर; अधिक क्या? जिस किसी उपाय से मनुष्य धनी बन सके वह करना चाहिए। क्योंकि धनियों के दरवाजे पर गुणवान् लोग हाथ जोडे दासों की तरह खडे रहते हैं ॥ १८१-१८२ ॥

सुविद्ययेति। तिष्ठन्तीति। सुविद्यया शोभनविद्योपार्जनेन, सुसेवाभिः अनीचदासभावैः, शौर्य्येण, कृषिभिः कौसीदवृद्ध्या दत्तानाम् ऋणानां लाभेन, पण्येन विक्रेयद्रव्येण, कलाभिः सङ्गीतादिभिः, प्रतिग्रहैः दानग्रहणैः, किं बहुना? यया कयापि वृत्त्या यथा धनवान् भवेत् तथा आचरेत्। यतः गुणिनः गुणवन्तः जनाः सधनानां धनिनां द्वारे किङ्करा इव तिष्ठन्ति ॥ १८१-१८२ ॥

दोषा अपि गुणायन्ते दोषायन्ते गुणा अपि।
धनवतो निर्धनस्य निन्द्यते निर्धनोऽखिलैः ॥ १८३ ॥

अन्वयः—धनवतः दोषाः अपि गुणायन्ते। निर्धनस्य गुणाः अपि दोषायन्ते। अतः निर्धनः अखिलैः निन्द्यते ॥ १८३ ॥

व्याख्या—धनवतः = धनिकस्य, दोषाः = दुर्गुणाः, अपि = चेत्, गुणायन्ते = गुणा इवाचरन्ति। निर्धनस्य = दरिद्रस्य, गुणाः = सद्गुणाः, अपि, दोषायन्ते = दुर्गुणा इव मन्यन्ते। अतः, निर्धनः = दरिद्रः, अखिलैः = सकलैः जनैः, निन्द्यते = भर्त्सनामुपलभते ॥ १८३ ॥

हिन्दी—धनियों के दुर्गुण भी गुण की तरह हो जाते हैं। दरिद्रों के गुण भी दोष की तरह हो जाते हैं। अतः गरीब व्यक्ति की सभी भर्त्सना करते हैं ॥ १८३ ॥

दोषा इति। धनवतः दोषा अपि गुणायन्ते, निर्धनस्य तु गुणा अपि दोषायन्ते। तस्मात् निर्धनः जनः अखिलैः सर्वैः निन्द्यते ॥ १८३ ॥

सुनिर्धनत्वं प्राप्यैके मरणं भेजिरे जनाः।
ग्रामायैकेऽचलायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ १८४ ॥

अन्वयः—एके जनाः सुनिर्धनत्वं प्राप्य मरणं भेजिरे। एके ग्रामाय, एके अचलाय, एके नाशाय प्रवव्रजुः ॥ १८४ ॥

व्याख्या—एके = केचित्, जनाः = लोकाः, निर्धनत्वम् = दारिद्र्यम्, प्राप्य = लब्ध्वा, मरणम् = मृत्युम्, भेजिरे = भजन्ते। एके = केचित् जनाः, ग्रामाय = ग्रामान्तराय, एके = केचिज्जनाः, अचलाय = पर्वताय, केचिज्जनाः आत्मविनाशाय, प्रवव्रजुः = गताः ॥ १८४ ॥

हिन्दी—कितने लोग गरीबी में तड़प कर मर गये, कितने देशान्तर चले गये, कितने पहाड़ों पर जा बसें और कितने मरण का वरण किये ॥ १८४ ॥

सुनिर्धनत्वमिति। एके केचित् जनाः सुनिर्धनत्वं सुदारिद्र्यं प्राप्य मरणं भेजिरे मृता इत्यर्थः।

एके जनाः ग्रामाय देशान्तराय, एके अपरे जनाः अचलाय पर्वताय, एके अन्ये जनाः नाशाय आत्महत्यायै प्रवव्रजुः गता इत्यर्थः ॥ १८४ ॥

उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम्।
दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥ १८५ ॥

अन्वयः—अर्थहेतुना एके उन्मादं पुष्यन्ति, अन्ये द्विषतां वशं यान्ति, एके च परेषां दास्यं गच्छन्ति ॥ १८५ ॥

व्याख्या—अर्थहेतुना = धनप्रयोजनेन, एके = कश्चिज्जनाः, उन्मादम् = उन्मत्तावस्थाम्, पुष्यन्ति = व्रजन्ति, अन्ये = अपरे च, द्विषताम् = रिपूणाम्, वशे = अधीने, यान्ति = गच्छन्ति, एके = अन्ये जनाः, परेषाम् = शत्रूणाम्, दास्यम् = किङ्करत्वम्, गच्छन्ति = व्रजन्ति ॥ १८५ ॥

हिन्दी—धन के फेरे में पड़कर सोचते-सोचते कितने पागल हो जाते हैं, कितने शत्रुओं की अधीनता कबूल कर लेते हैं और कुछ तो अपने दुश्मनों की दासता ही स्वीकार कर लेते हैं ॥१८५ ॥

उन्मादमिति। अर्थहेतुना धनार्थम् एके उन्मादं पुष्यन्ति चिन्तया उन्मादग्रस्ता भवन्तीत्यर्थः, अन्ये द्विषतां शत्रूणां वशं यान्ति प्राप्नुवन्ति एके अपरे च शत्रूणां दास्यं गच्छन्ति ॥ १८५ ॥

यथा न जानन्ति धनं सञ्चितं कति कुत्र वै।
आत्मस्त्रीपुत्रमित्राणि सलेखं धारयेत् तथा ॥ १८६ ॥

अन्वयः—यथा आत्मनः स्त्रीपुत्रमित्राणि धनं कति कुत्र सञ्चितं न जानन्ति वै तथा सलेखं धारयेत् ॥ १८६ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, आत्मनः = स्वस्य, स्त्रीपुत्रमित्राणि = पत्नीपुत्रसुहृदः, धनम् = अर्थम्, कति = कियत्, कुत्र = कस्मिन् स्थाने, सञ्चितम् = एकत्रीकृतमिति, न = नहि, जानन्ति = विदन्ति, वै = इत्यवधारणे, तथा = तेनैव प्रकारेण, सलेखम् = लेखसहितम्, धारयेत् = ऋणं दद्यात् ॥ १८६ ॥

हिन्दी—अपनी पत्नी, अपने बेटे और मित्रों तक को भी इसकी जानकारी न होनी चाहिए कि इसने कितना और कहाँ धन इकट्ठा कर रखा है। धन को घर में रखने की अपेक्षा साक्ष्य के आधार पर लिखा-पढ़ी के साथ सूद पर बढते रहने के लिए लगा देना चाहिए ॥ १८६ ॥

यथेति। यथा आत्मनः स्त्रीपुत्रमित्राणि धनं कति कियत् कुत्र सञ्चितं न जानन्ति वैशब्दोऽवधारणार्थः। तथा सलेखं लेखसहितं धारयेत् ऋणं दद्यात् वर्द्धनार्थमिति भावः, स्त्रीपुत्रादिज्ञाने तु धनरक्षाया दुष्करत्वमिति बोध्यम् ॥ १८६ ॥

नैवास्ति लिखितादन्यत् स्मारकं व्यवहारिणाम्।
न लेख्येन विना कुर्य्याद् व्यवहारं सदा बुधः ॥ १८७ ॥

अन्वयः—व्यवहारिणां लिखितात् अन्यत् स्मारकं नैवास्ति। लेख्येन विना बुधः सदा न व्यवहारं कुर्यात् ॥ १८७ ॥

व्याख्या—व्यवहारिणाम् = व्यवसायिनाम्, लिखितात् = लिपिबद्धात्, विना, अन्यत् = अपरः, स्मारकम् = अनुबोधकम्, नैव = नास्त्येव, अस्ति = भवति, लेख्येन = अङ्कितेन, विना =

विहाय, बुधः = ज्ञानीजनः, सदा = सर्वदा, कस्यांश्चिदवस्थायाम्, व्यवहारम् = व्यवसायम्, न = नहि, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ १८७ ॥

हिन्दी—व्यवसायियों के लिए लेख से बढ़कर दूसरा 'स्मारक' नहीं है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को सदैव रुपये-पैसे का लेन-देन बिना लिखा-पढ़ी के नहीं करना चाहिए ॥ १८७ ॥

नैवेति। व्यवहारिणां व्यवसायिनां लिखितात् अन्यत् स्मारकं स्मरणचिह्नं नैव अस्ति, तस्मात् लेख्येन विना बुधः पण्डितो जनः सदा कदाचिदपीत्यर्थः, न व्यवहारं कुर्य्यात् ॥ १८७ ॥

निर्लोभे धनिके राज्ञि विश्वस्ते क्षमिणां वरे।
सुसञ्चितं धनं धार्य्यं गृहीतलिखितं तु वा ॥ १८८ ॥

अन्वयः—निर्लोभे धनिके विश्वस्ते क्षमिणां वरे राज्ञि च सुसञ्चितं धनं धार्यं वा गृहीतलिखितं धार्यम् ॥ १८८ ॥

व्याख्या—निर्लोभे = निष्पृहे, धनिके = धनिनि, विश्वस्ते = विश्वासमापन्ने, क्षमिणाम् = क्षमावताम्, वरे = वरेण्ये, राज्ञि = नृपतौ, च, सुसञ्चितम् = सम्यक् प्रकारेण सङ्गृहीतम्, धनम् = वित्तम्, धार्यम् = रक्षणीयम्, वा = अथवा, गृहीतम् = स्वीकृतम्, लिखितम् = लिपिबद्धम्, यस्य तथाभूतं कृत्वा यत्र कुत्रापि, धार्यम् = रक्षणीयम् ॥ १८८ ॥

हिन्दी—निर्लोभी धनी या विश्वस्त अथवा क्षमाशील किंवा पुरुषश्रेष्ठ तथा राजा--- इनमें से किसी के पास सुसंचित धन रखना चाहिए। अथवा रखने के लिए स्वीकृत धन की लिखा-पढ़ी हो जाने के बाद कहीं भी रख देना चाहिए ॥ १८८ ॥

निर्लोभे इति। निर्लोभे लोभरहिते धनिके धनवति, विश्वस्ते क्षमिणां वरे श्रेष्ठे राज्ञि च सुसञ्चितं धनं धार्य्यं रक्षणीयं, वा गृहीतं लिखितं यस्य तथाभूतं कृत्वा यत्र कुत्रापि धार्य्यमित्यर्थः ॥ १८८ ॥

मैत्र्यर्थे याचितं दद्यादकुसीदं धनं सदा।
तस्मिन् स्थितं चेन्न बहु हानिकृच्च तथाविधम् ॥ १८९ ॥

अन्वयः—मैत्र्यर्थे सदा अकुसीदं याचितं धन दद्यात्। चेत् तस्मिन् तथाविधं बहु स्थितं तत् न हानिकृत् ॥ १८९ ॥

व्याख्या—मैत्र्यर्थे = सौहार्दनिमित्तम्, सदा = सततम्, अकुसीदम् = वृद्धिरहितम्, धनम् = अर्थम्, याचितम् = प्रार्थितम्, दद्यात् = प्रयच्छेत्। चेत् = यदि, तस्मिन् = मित्रे, तथाविधम् = तेन रूपम्, बहु = प्रचुरधनम्, स्थितम् = रक्षितम्, तदा तन्न हानिकृत् = अलाभकरो भवति ॥ १८९ ॥

हिन्दी—मित्र के माँगने पर बिना व्याज के उसे धन देना चाहिए। यदि उसके यहाँ अधिक बकाया हो जाय तो भी वह नुकसान पहुँचाने वाला नहीं होता ॥ १८९ ॥

मैत्र्यर्थे इति। मैत्र्यर्थे मित्रतानिमित्तं सदा अकुसीदम् अवृद्धिकं याचितं मित्रेणेति शेषः, दद्यात्, चेत् यदि तस्मिन् मित्रे तथाविधं याचितं बहु धनं स्थितं तदा तत् न हानिकृत् हानिकरं भवतीत्यर्थः ॥ १८९ ॥

दृष्ट्वाधमर्णं वृद्ध्यापि व्यवहारक्षमं सदा।
सबन्धं सप्रतिभुवं धनं दद्याच्च साक्षिमत् ॥ १९० ॥

गृहीतलिखितं योग्यमानं प्रत्यागमे सुखम्।
न दद्याद् वृद्धिलोभेन नष्टं मूलधनं भवेत्॥ १९१ ॥

अन्वयः—अधमर्णं वृद्ध्या व्यवहारक्षमं दृष्ट्वा सदा सबन्धं सप्रतिभुवं साक्षिमत् गृहीतलिखितं योग्यमानं प्रत्यागमे सुखं कृत्वा धनं दद्यात्, वृद्धिलोभेन न दद्यात्। तथा सति मूलधनं नष्टं भवेत्॥ १९०-१९१ ॥

व्याख्या—अधमर्णम् = ऋणग्रहीतारम्, वृद्ध्या = कुसीददानेन, व्यवहारक्षमम् = कुसीदप्रदाने सशक्तम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, सदा = सर्वदा, सबन्धम् = बन्धकान्वितम्, सप्रतिभुवम् = प्रतिभूतिसहितम्, वा = अथवा, साक्षिमत् = साक्षियुक्तम्, गृहीतम् = स्वीकृतम्, लिखितम् = लिपिबद्धम्, यस्य तत्, योग्यमानम् = सुयोग्यपरिमितम्, प्रत्यागमे = प्रत्यावर्त्तने, च, सुखम् = सहजम्, कृत्वा, धनम् = ऋणम्, दद्यात् = प्रयच्छेत्, वृद्धिलोभेन = केवलकुसीदलोभेन, यस्मै कस्मै = यथा कथञ्चित्, न = नहि, दद्यात् = प्रयच्छेत्। तथा कृते सति मूलधनमपि, नष्टम् = विनष्टम्, भवेत् = जायेत॥ १९०-१९१ ॥

हिन्दी—ऋण लेने वाले को सूद देने में समर्थ देखकर हमेशा बन्धक या किसी के जमानत पर या किसी की गवाही के साथ लिखा-पढ़ी के बाद उचित मात्रा में आसानी से लौटाने योग्य धन देना चाहिए। अधिक व्याज के लोभ से ऊपर वर्णित शर्तों के बिना धन देने पर उसे समूल नष्ट होने की संभावना रहती है॥ १९०-११९१ ॥

दृष्ट्वेति। गृहीतेति। अधमर्णं खातकम् ऋणग्रहीतारमित्यर्थः, वृद्ध्या वृद्धिदानेन व्यवहारक्षमं वृद्धिदाने शक्तमित्यर्थः, दृष्ट्वा सदा सबन्धं बन्धकसहितं सप्रतिभुवं प्रतिभूसहितं वा साक्षिमत् साक्षियुक्तं गृहीतं लिखितं यस्य तत् योग्यमानं सुयोग्यपरिमितं प्रत्यागमे आदाये च सुखं सुखकरं कृत्वा धनं दद्यात्। वृद्धिलोभेन यथाकथञ्चिदपि न दद्यात् तथा सति मूलधनं नष्टं भवेत्॥ १९०-१९१ ॥

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।
धनं मैत्रीकरं दाने चादाने शत्रुकारणम्॥ १९२ ॥

अन्वयः—आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्। धनं दाने मैत्रीकरम् आदाने च शत्रुकारणम्॥ १९२ ॥

व्याख्या—आहारे = भोजने, व्यवहारे = ऋणदाने, च, त्यक्तलज्जः = विसृष्टव्रीडः, जनः, सुखी = वीतचिन्तः, भवेत् = स्यात्। धनम् = अर्थम्, दाने = वितरणे, मैत्रीकरम् = मित्रताविधायकम्, आदाने = स्वीकरणे, च, शत्रुकारकम् = शत्रुत्वविधायकम्, भवति॥ १९२ ॥

हिन्दी—आहार और व्यवहार में लज्जा का परित्याग करने वाला व्यक्ति सुखी होता है। लेने बे समय धन दोस्ती कराता है, पर वहीं धन देने के समय दुश्मनी का कारण बन जाता है॥१९२॥

आहार इति। आहारे व्यवहारे ऋणदानादिकर्मणि च त्यक्तलज्जः जनः सुखी भवेत्। धनं दाने मैत्रीकरम् आदाने च शत्रुकारकं भवति॥ १९२ ॥

कृत्वा स्वान्ते तथौदार्य्यं कार्पण्यं बहिरेव च।
उचितं तु व्ययं काले नरः कुर्य्यान्न चान्यथा॥ १९३ ॥

अन्वयः—नरः स्वान्ते औदार्यं तथा बहिः कार्पण्यं कृत्वा काले तु उचितं व्ययं कुर्यात्, अन्यथा न॥१९३॥

व्याख्या—नरः = पुरुषः, स्वान्ते = अन्तश्चेतसि, औदार्यम् = उदारतां, बहिः = बाह्ये, कार्पण्यम् = कृपणताम्, कृत्वा = विधाय, काले = यथावसरे, उचितम् = युक्तिसङ्गतम्, व्ययम् = वित्तविनियोगः, कुर्यात् = विधेयात्, अन्यथा = इतरथा, न = नहि॥१९३॥

हिन्दी—भीतर से उदार तथा बारह से कृपण बने रह कर उचित अवसर पर मनुष्य को खर्च करना चाहिए, अन्यथा नहीं॥१९३॥

कृत्वेति। नरः स्वान्ते मनसि औदार्य्यं तथा बहिः बाह्ये कार्पण्यं कृत्वा काले उपयुक्तकाले उचितं व्ययं कुर्य्यात् अन्यथा न॥१९३॥

सुभार्य्यापुत्रमित्राणि शक्त्या संरक्षयेद्धनैः।
नात्मा पुनरतो त्मानं सर्वैः सर्वं पुनर्भवेत्॥१९४॥

अन्वयः—शक्त्या धनैः सुभार्यापुत्रमित्राणि संरक्षयेत्। आत्मा पुनर्न भवेत् अतः आत्मानं सर्वैः सरंक्षयेत्, यतः सर्वं पुनर्भवेत्॥१९४॥

व्याख्या—शक्त्या = सामर्थ्येण, धनैः = वित्तैः, सुभार्यापुत्रमित्राणि = सुलक्षणापत्नीपुत्रसुहृदः, संरक्षयेत् = गोपयेत्। आत्मा = जीवः, पुनः = भूयः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, अतः = अनेन कारणेन, आत्मानम् = प्राणम्, सर्वैः = सकलैः भार्यादिभिरपि, संरक्षयेत् = रक्षां कुर्यात्, यतः, सर्वम् = भार्यादिकं सकलम्, पुनर्भवेत् = पुनः स्यात्॥१९४॥

हिन्दी—अपने धन और बल से सुलक्षणा पत्नी, पुत्र और मित्र की रक्षा करनी चाहिए और इन सबों से अपने आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि पत्नी-पुत्रादि तो दुबारा मिल जाते हैं, परन्तु यह आत्मा इस देह को दुबारा नहीं मिलती है॥१९४॥

सुभार्य्येति। शक्त्या यथाशक्ति धनैः सुभार्य्यापुत्रमित्राणि संरक्षयेत्, आत्मा पुनर्न भवेत् अतः कारणात् आत्मानं सर्वैः भार्य्यादिभिरपि संरक्षयेत् यतः सर्वं भार्य्यादिकं पुनर्भवेत्। अतः आत्मानं सततं गोपायीतेति श्रुतिः। आत्मानम् इति सन्धिरत्रार्ष इति बोध्यम्॥१९४॥

पश्यति स्म सजीवश्चेन्नरो भद्रशतानि च।
सदारप्रौढपुत्रान् द्राक् श्रेयोऽर्थी विभजेत् पिता॥१९५॥

अन्वयः—सजीवः नरः चेत् भद्रशतानि पश्यति स्म। तदा पिता श्रेयोऽर्थी द्राक् सदारप्रौढपुत्रान् विभजेत्॥१९५॥

व्याख्या—सजीवः = जीवन्, नरः = पुरुषः, चेत् = यदि, भद्रशतानि—भद्राणाम् = मङ्गलानाम्, शतानि = शतसंख्यकानि, पश्यति स्म = अवलोकयति स्म, तदा पिता = जनकः, श्रेयोऽर्थी = कल्याणकामी सन्, द्राक् = शीघ्रमेव, सदारप्रौढपुत्रान्—सदारान् = पत्नीसहितान्, प्रौढान् = परिपक्वविचारान्, पुत्रान् = सुतान्, विभजेत् = विभागं कुर्यात्॥१९५॥

हिन्दी—यदि मनुष्य जीवित रहता है तो सैंकड़ों कल्याणों को देखता है। अपना कल्याण चाहने वाला पिता विवाहित प्रौढ पुत्रों को शीघ्र विभक्त कर अलग कर दे॥१९५॥

पश्यतीति। सजीवः जीवन् नरः चेत् यदि भद्राणि मङ्गलानि शतानि पश्यति स्म तदा पिता श्रेयोऽर्थी मङ्गलार्थी सन् आत्मनः इति शेषः, द्राक् झटिति सदारप्रौढपुत्रान् स्त्रीसहितान् प्रौढान्

गृहकर्मक्षमान् पुत्रान् विभजेत् भाविकलहनिवारणार्थमिति भावः ॥ १९५ ॥

सदारभ्रातरः प्रौढा विभजेयुः परस्परम् ।
एकोदरा अपि प्रायो विनाशायान्यथा खलु ॥ १९६ ॥

अन्वयः—प्रौढाः सदारभ्रातरः एकोदराः अपि प्रायः विभजेयुः । अन्यथा यः विनाशाय खलु ॥ १९६ ॥

व्याख्या—प्रौढाः = परिपक्वाः, सदारभ्रातरः = सपत्नीकाः सोदराः, विभजेयुः = पृथग् भवेयुः, एकोदराः = सोदराः अपि, विभजेयुः = भिन्नाः भवेयुः । अन्यथा = इतरथा विभागाकरणे, प्रायः = बहुधा, विनाशाय, खलु = निश्चयेन भवन्ति ॥ १९६ ॥

हिन्दी—कल्याणकामी पिता प्रौढपुत्रों को पत्नी के साथ बाँट दे । इसी प्रकार विवाहोपरान्त एक भाई दूसरे भाई के साथ बटवारा कर ले । अन्यथा उनका विनाश निश्चित है ॥ १९६ ॥

सदारेति । प्रौढाः सदारभ्रातरः स्त्रीसहिताः भ्रातरः एकोदराः सहोदरा अपि परस्परं विभजेयुः विभक्ता भवेयुः, अन्यथा विभागाकरणे प्रायः बाहुल्येन विनाशाय खलु निश्चितम् ॥ १९६ ॥

नैकत्र संवसेच्चापि स्त्रीद्वयं मनुजस्य तु ।
कथं वसेत् तद्बहुत्वं पशूनां तु नरद्वयम् ॥ १९७ ॥

अन्वयः—मनुजस्य स्त्रीद्वयं पशूनां नरद्वयम् एकत्र न संवसेत्, तद्बहुत्वं कथं वसेत् ॥ १९७ ॥

व्याख्या—मनुजस्य = नरस्य, स्त्रीद्वयम् = पत्नीद्वयम्, पशूनाम् = चतुष्पदानाम्, नरद्वयम् = पुम्पशुद्वयम्, तु = इत्यवधारणे, एकत्र = एकस्मिन् स्थाने, न = नहि, संवसेत् = सहैव निवासं कुर्यात्, तथा तद्बहुत्वम्—तत् = तेषाम्, बहुत्वम् = आधिक्यम्, कथम् = केन प्रकारेण, वसेत् = निवसेत्, अर्थात् न कथमपि ॥ १९७ ॥

हिन्दी—एक पुरुष की दो पत्नियाँ और एक मादा पशु के दो नरपशु एक साथ नहीं रहते, रह ही नहीं सकते ॥ १९७ ॥

नैकत्रेति । मनुजस्य मानवस्य स्त्रीद्वयं पशूनां नरद्वयन्तु तुशब्दश्चार्थः पुम्पशुद्वयञ्चेत्यर्थः, एकत्र न संवसेच्च, तद्बहुत्वं स्त्रीबहुत्वं पुम्पशुबहुत्वञ्च कथं वसेत् न कथमपीत्यर्थः, अतो विभज्य वस्तव्यमिति भावः ॥ १९७ ॥

विभजेयुर्न तत् पुत्रा यद्धनं वृद्धिकारणम् ।
अधमर्णस्थितं चापि यद्देयं चौत्तमर्णिकम् ॥ १९८ ॥

अन्वयः—तत्पुत्राः यद्धनं वृद्धिकारणम् अधमर्णे स्थितं यच्च औत्तमर्णिकं देयं तन्न विभजेयुः ॥ १९८ ॥

व्याख्या—तत् = तेषां गृहस्थानाम्, पुत्राः = सुताः, यद्धनम् = वित्तम्, वृद्धिकारणम्—वृद्धेः = धनवर्द्धनस्य, कारणम् = हेतुः, च = पुनः, यद्धनम्, अधमर्णे = खातके, स्थितम् = स्थापितम्, तच्च, औत्तमर्णिकम् = ऋणदम्, देयम् = दातुं योग्यम्, तत् = धनम्, न = नहि, विभजेयुः = विभक्तं कुर्य्युः ॥ १९८ ॥

हिन्दी—गृहपति के पुत्रों को आपस में उस धन का बटवारा नहीं करना चाहिए जो कहीं सूद पर लगा हो और किसी कर्जदार के पास या महाजन को देने के लिए रखा हो ॥ १९८ ॥

विभजेयुरिति। तत्पुत्राः तस्य गृहपतेः पुत्राः यत् धनं वृद्धिकारणम् अधमर्णे खातके स्थितं यच्च औत्तमर्णिकम् उत्तमर्णाय इत्यर्थः, देयं तत् न विभजेयुः॥ १९८॥

यस्येच्छेदुत्तमां मैत्रीं कुर्य्यान्नार्थाभिलाषकम्।
परोक्षे तद्गृहश्चारं तत्स्त्रीसम्भाषणं तथा॥ १९९॥

अन्वयः—यस्य उत्तमां मैत्रीम् इच्छेत् तत् अर्थाभिलाषकं परोक्षे तद्गृहश्चारं तथा तत्स्त्रीसम्भाषणं न कुर्यात्॥ १९९॥

व्याख्या—यस्य = येन पुरुषेण सह, अत्र सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी, उत्तमाम् = श्रेष्ठतमाम्, मैत्रीम् = सौहार्दम्, इच्छेत् = अभिलषेत्, तत् = तस्य, अर्थाभिलाषकम्—अर्थेषु = धनेषु, अभिलाषम् = स्पृहाम्, परोक्षे = अनुपस्थितौ, तत् = तन्मित्रस्य, रहसि = एकान्ते, चारम् = सञ्चरणम्, तथा तस्य स्त्रिया सह = पत्न्या सह, सम्भाषणम् = एकान्तं प्रेमालापम्, न = नहि, कुर्यात् = विदध्यात्॥ १९९॥

हिन्दी—अगर किसी के साथ कोई अच्छी दोस्ती निभाना चाहे तो दोस्त के साथ रुपये की लेन-देन की इच्छा न रखे। उसकी अनुपस्थिति में उसके घर के भीतर आना-जाना न करे। साथ ही मित्र की पत्नी से एकान्त में प्रेमालाप न करे॥ १९९॥

यस्येति। यस्य येनेत्यर्थः सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी। उत्तमां मैत्रीम् इच्छेत् तस्य अर्थाभिलाषकम् अर्थेषु अभिलाषं परोक्षे अज्ञाते तस्य रहसि अभ्यन्तरे चारं गमनं तथा तस्य स्त्रिया सह सम्भाषणं रहस्यालापं न कुर्य्यात् तथात्वे मैत्रीभङ्गप्रसङ्गादिति भावः॥ १९९॥

तन्न्यूनदर्शनं नैव तत् प्रतीपविवादनम्।
असाहाय्यं च तत्कार्य्ये ह्यनिष्टोपेक्षणं न च॥ २००॥

अन्वयः—किञ्च तन्न्यूनदर्शनं तत् प्रतीपविवादनं तत्कार्ये असाहार्य्यं चहि अनिष्टोपेक्षणं न कुर्यात्॥ २००॥

व्याख्या—किञ्च, तत् = तन्मित्रस्य, न्यूनदर्शनम् = हीनदृष्ट्याऽवलोकनम्, तत् = तस्य, प्रतीपम् = विपरीतम्, यथा स्यात् तथा, विवादनम् = विप्रलपनम्, तत् = तस्य, कार्ये = कृत्ये, असाहाय्यम् = असहयोगम्, च = पुनः, हीति निश्चयेन, तस्य अनिष्टेऽपि, उपेक्षणम् = औदासीन्यम्, न = नहि, कुर्यात् = विदध्यात्॥ २००॥

हिन्दी—मित्र को हीनदृष्टि से कभी न देखे। उसके विरुद्ध कुतर्क या विवाद न करे। उसके कार्य में असहयोग न करे तथा उसके अहित की उपेक्षा न करे॥ २००॥

तदिति। किञ्च तस्य न्यूनदर्शनं तं प्रति दृष्टेः ह्रासतामित्यर्थः, तस्य प्रतीपं प्रतिकूलं यथा तथा विवादनं तस्य कार्य्ये असाहाय्यं साहाय्यकरणं तथा तस्य अनिष्टपातेऽपि उपेक्षणं न कुर्य्यादिति पूर्वेणान्वयः॥ २००॥

सकुसीदमकुसीदं धनं यच्चौत्तमर्णिकम्।
दद्यादगृहीतमिव नोभयोः क्लेशकृद् यथा॥ २०१॥
तत्साक्षिमल्लिखितमृणपत्रस्य पृष्ठतः॥ २०२॥

अन्वयः—सकुसीदम् अकुसीदं वा यच्चौत्तमर्णिकं तत् यथा उभयोः क्लेशकृत् न तथा

नासाक्षिमत् ऋणपत्रस्य पृष्ठतः अलिखितम् अगृहीतमिव दद्यात् ॥ २०१-२०२ ॥

व्याख्या—सकुसीदम् = वार्द्धुष्यरहितम्, अकुसीदम् = लाभरहितम्, वा, यत् = धनम्, औत्तमर्णिकम् = महाजनेन प्रदत्तधनम्, तत् = धनम्, यथा = येन रूपेण, उभयोः = मित्रयोः, क्लेशकृत् = कष्टकरम्, न = नहि, भवेत्, तथा = तेन प्रकारेण, नासाक्षिमत् = साक्षियुक्तं विना, ऋणपत्रस्य = व्यवहारलेख्यस्य, पृष्ठतः = पृष्ठभागे, अलिखितम् = लेखं विना अगृहीतमिव, दद्यात् ॥ २०१-२०२ ॥

हिन्दी—सूद पर या बिना सूद का जो धन महाजन का हो, वह दोनों पक्षों को दुःखद न हो, इसलिए बिना गवाही या बिना दस्तावेज की पीठ पर लिखाये नहीं देना चाहिए ॥ २०१-२०२ ॥

सकुसीदमिति। दद्यादिति। सकुसीदं सवृद्धिकम् अकुसीदमवृद्धिकं वा यत् औत्तमर्णिकं महाजनीयं धनं, तत् यथा उभयोः मित्रयोः क्लेशकृत् क्लेशकरं न भवेदिति शेषः, तथा नासाक्षिमत् साक्षियुक्तमपि ऋणपत्रस्य पृष्ठतः अलिखितं कृत्वा अगृहीतमिव दद्यात् ॥ २०१-२०२ ॥

आत्मपितृमातृगुणैः प्रख्यातश्चोत्तमोत्तमः ।
गुणैरात्मभवैः ख्यातः पैतृकैर्मातृकैः पृथक् ॥ २०३ ॥
उत्तमो मध्यमो नीचोऽधमो भ्रातृगुणैर्नरः ।
कन्यास्त्रीभगिनीभाग्यो नरोऽधमतमो मतः ॥ २०४ ॥

अन्वयः—आत्मपितृमातृगुणैः प्रख्यातः उत्तमोत्तमः आत्मभवैः पैतृकैः गुणैः पृथक् उत्तमः मध्यमः नीचः ख्यातः भ्रातृगुणैः नरः अधमः स्यात्, कन्यास्त्रीभगिनीभाग्यः नरैः अधमतमः मतः ॥ २०३-२०४ ॥

व्याख्या—आत्मपितृमातृगुणैः—आत्मनः = स्वस्य, पितुः = जनकस्य, मातुः = जनन्याः, गुणैः = प्रभावैः, प्रख्यातः = लोकविश्रुतः, स जनः उत्तमोत्तमः—उत्तमेषु = श्रेष्ठेषु, उत्तमः = श्रेष्ठतमो भवति, आत्मभवैः = स्वकीयैः, पैतृकैः = पितृसम्भवैः, मातृकैः = मातृसम्भवैः, गुणैः = प्रभावैः, पृथक् = क्रमेण, उत्तमः = उत्कृष्टः, मध्यमः = सामान्यः, तथा हीनः = न्यूनः, ख्यातः = प्रसिद्धो भवति, भ्रातृगुणैः—भ्रातुः = सोदरस्य, गुणैः = प्रभावैः, नरः = जनस्तु, अधमः = निकृष्टः, ख्यातः = प्रसिद्धः, किञ्च, कन्यास्त्रीभगिनीभाग्यः—कन्यायाः = पुत्र्याः, स्त्रियाः = पत्न्याः, भगिन्याः = स्वसुः, नरः = जनः, अधमतमः = निकृष्टतमः, मतः = ख्यातः ॥ २०३-२०४ ॥

हिन्दी—जो पुरुष अपने माता और पिता के गुणों से विख्यात होता है वह अत्युत्तम पुरुष होता है और जो केवल अपने ही गुणों से विख्यात होता है वह उत्तम कहलाता है। जो केवल पिता के गुणों से ख्यात होता है वह मध्यम तथा केवल माता के गुणों से ख्यात नीच कहलाता है। भाई के गुणों से ख्यात अधम तथा बेटी, बहिन और पत्नी के भाग्य से उन्हीं के सहारे गले में लटक कर जो जीता है वह निकृष्टतम कहलाता है ॥ २०३-२०४ ॥

आत्मेति। उत्तम इति। आत्मनः पितुः मातुश्च गुणैः प्रख्यातः जनः उत्तमोत्तमः अत्युत्तमः। आत्मभवैः स्वकीयैः पैतृकैः मातृकैश्च गुणैः पृथक् क्रमेण उत्तमः, मध्यमः तथा नीचः ख्यातः, आत्मगुणैरुत्तमः, पैतृकैः मध्यमः, मातृकैस्तु नीच इत्यर्थः। भ्रातृगुणैः नरः अधमः ख्यातः। किञ्च कन्यास्त्रीभगिनीभाग्यः कन्यायाः स्त्रियाः भगिन्या वा गलग्रहः नरः अधमतमः मतः ख्यातः ॥ २०३-२०४ ॥

भूत्वा महाधनः सम्यक् पोष्यवर्गं तु पोषयेत्।
अदत्त्वा यत् किञ्चिदपि न नयेद् दिवसं बुधः ॥ २०५ ॥

अन्वयः—महाधनः भूत्वा पोष्यवर्गं सम्यक् पोषयेत्। बुधः यत्किञ्चिदपि अदत्त्वा दिवसं न नयेत् ॥ २०५ ॥

व्याख्या—महाधनः = अतिसम्पन्नः, भूत्वा = सम्भूय, पोष्यवर्गम् = संवर्द्धनीयसमूहम्, सम्यक् = सुष्ठुरूपेण, पोषयेत् = पालयेत्, बुधः = ज्ञानवान्, यत्किञ्चिदपि = स्तोकमपि, अदत्त्वा = विसृष्टं विना, दिवसं = दिनम्, न नयेत् = न यापयेत् ॥ २०५ ॥

हिन्दी—विपुल धनसम्पन्न होने के बावजूद उन्हीं का पालन-पोषण करना चाहिए जो उसके हकदार हैं। एक भी दिन ऐसा न हो जिस दिन किसी को कुछ न दे ॥ २०५ ॥

भूत्वेति। महाधनः धनसम्पन्नः भूत्वा पोष्यवर्गं सम्यक् पोषयेत्। किञ्च बुधः विद्वान् जनः यत् किञ्चिदपि अदत्त्वा कस्मैचिदपीति शेषः, दिवसं न नयेत् क्षपयेत् ॥ २०५ ॥

स्थितो मृत्युमुखे चाहं क्षणमायुर्ममास्ति न।
इति मत्वा दानधर्मौ यथेष्टौ तु समाचरेत् ॥ २०६ ॥
न तौ विना मे परत्र सहायाः सन्ति चेतरे।
दानशीलाश्रयाल्लोको वर्त्तते न शठाश्रयात् ॥ २०७ ॥

अन्वयः—अहं मृत्युमुखे स्थितः, मम क्षणमपि आयुः न अस्ति। तथा तौ दानधर्मौ विना मे परत्र इतरे सहायाः न सन्ति। लोकः दानशीलाश्रयात् वर्त्तते न शठाश्रयात् इति मत्वा यथेष्टौ दानधर्मौ समाचरेत् ॥ २०६-२०७ ॥

व्याख्या—अहम् मृत्युमुखे = निधनानने, स्थितः = विद्यमानः, मम = मदीयम्, क्षणमपि = अत्यल्पमपि, आयुः = जीवनम्, न = नहि, अस्ति = विद्यते, तथा तौ = उभौ, दानधर्मौ, विना = विहाय, मे = मम, परत्र = परलोके, इतरे = अन्याः, सहायाः = सहायकाः, न = नहि, सन्ति = विद्यन्ते, लोकः = संसारः, दानशीलाश्रयात्—दानशीलानाम् = दानस्वभावानाम्, आश्रयात् = अवलम्बनात्, वर्त्तत = अस्ति, न = नहि, शठाश्रयात् = धूर्त्तावलम्बनात्, इति = इत्थम्, मत्वा = विचार्य, यथेष्टौ = पर्याप्तौ, दानधर्मौ समाचरेत् = निष्पादयेत् ॥ २०६-२०७ ॥

हिन्दी—मैं मौत के मुँह में खड़ा हूँ, मेरी आयु अब एक क्षण भी बची नहीं है। दान-धर्म को छोड़कर परलोक में मेरा कोई अन्य सहायक नहीं हैं। दानशील व्यक्तियों के सहारे यह संसार टिका है, धूर्त्तों के सहारे नहीं; यह मानकर पर्याप्त दानधर्म करना चाहिए ॥ २०६-२०७ ॥

स्थित इति। **नेति**। अहं मृत्युमुखे स्थितः, मम क्षणम् अल्पसमयमपि आयुः न अस्ति, तथा तौ दानधर्मौ विना मे मम परत्र परलोके इतरे सहायाः न सन्ति, किञ्च लोकः जगत् दानशीलाम् आश्रयात् वर्त्तते तिष्ठति, शठानां दुर्जनानाम् आश्रयात् न इति मत्वा येथेष्टौ यथाभिलषितौ दानधर्मौ दानं धर्मञ्च समाचरेत् अनुतिष्ठेत् ॥ २०६-२०७ ॥

भवन्ति मित्रा दानेन द्विषन्तोऽपि च किं पुनः ॥ २०८ ॥

अन्वयः—द्विषन्तोऽपि दानेन मित्राः भवन्ति च किं पुनः? २०८ ॥

व्याख्या—द्विषन्तोऽपि = अरयोऽपि, दानेन = प्रदानेन, मित्राः इत्यार्षप्रयोगः = सुहृदः, भवन्ति = जायन्ते, च = पुनः, किम् = न किमपीत्यर्थः ॥ २०८ ॥

हिन्दी—औरों की बात ही क्या ? कुछ देने से दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं ॥ २०८ ॥

भवन्तीति। द्विषन्तोऽपि शत्रवोऽपि दानेन मित्राः सुहृदः भवन्ति किं पुनः अद्विषन्त इति शेषः, मित्रा इति पुंलिङ्गनिर्देश आर्षः ॥ २०८ ॥

देवतार्थं च यज्ञार्थं ब्राह्मणार्थं गवार्थकम्।
यद्दत्तं तत्पारलौक्यं संविद्दत्तं तदुच्यते ॥ २०९ ॥

अन्वयः—देवतार्थं च यज्ञार्थं ब्राह्मणार्थं गवार्थकं यत् दत्तं तत् पारलौक्यं तत् संविद्दत्तम् उच्यते ॥ २०९ ॥

व्याख्या—देवतार्थम् = देवसेवानिमित्ताय, यज्ञार्थम् = मखहेतवे, ब्राह्मणार्थम् = विप्राय, गवार्थम् = गोनिमित्ताय, यत् = धनम्, दत्तम् = अर्पितम्, तत् = अर्पितधनम्, पारलौक्यम् = पारलौकिकसुखसाधनाय, भवति। तद्धनम्, संविद्दतम्—संविदा = ज्ञानेन, विवेचकबुद्ध्या, दत्तम् = अर्पितम्, धनम् उच्यते = कथ्यते ॥ २०९ ॥

हिन्दी—देवता या ब्राह्मण तथा गायों के लिए जो धन दिया जाता है, वह परलोक के सुखसाधन हेतु होता है। इसे ही ज्ञानपुरस्कार देना कहते हैं ॥ २०९ ॥

देवतार्थमिति। देवतार्थं देवसेवार्थं यज्ञार्थं ब्राह्मणार्थं गवार्थकं गोपालनार्थकञ्च यत् दत्तं तत् पारलौक्यं परलोकसुखसाधनार्थम्। तच्च संविद्दत्तं संविदा ज्ञानेन अवश्यदेयबुद्ध्या इति यावत् दत्तम् उच्यते ॥ २०९ ॥

वन्दिमागधमल्लादिनटनार्थं च दीयते।
पारितोष्यं यशोऽर्थं तु श्रिया दत्तं तदुच्यते ॥ २१० ॥

अन्वयः—वन्दिमागधमल्लादिनटनार्थं यत् पारितोष्यं दीयते तत् यशोऽर्थं तु श्रिया दत्तं तत् उच्यते ॥ २१० ॥

व्याख्या—वन्दिनः = चारणाः, मागधाः = वन्दीजनाः, मल्लाः = बाहुयोधिनः, आदिर्येषां, तेषाम्, नटनार्थम् = तत्तत्कार्यार्थम्, यत् = धनम्, पारितोष्यम् = पुरस्कारस्वरूपम्, दीयते = सनुते, तत् = धनम्, यशोऽर्थम् = कीर्त्तिवर्द्धकम्, तु = किन्तु, श्रिया = सम्पदा, दत्तम् = वितरितम्, तत् = धनम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २१० ॥

हिन्दी—वंदी, मागध, योद्धा प्रभृति जनों को अपनी-अपनी कला-प्रदर्शन के निमित्त जो पुरस्कार दिया जाता है, उसे 'पारितोष्य' कहते हैं तथा यशोवर्द्धन हेतु जो धन सम्पत्ति के अनुसार दिया जाता है, उसे यशोऽर्थक श्रियादत्त कहते हैं ॥ २१० ॥

वन्दीति। वन्दिनः स्तुतिपाठकाः मागधाः जातिभेदाः मल्लाः वीराः आदयः येषां तेषां नटनार्थं तत्तत्कार्य्यार्थं, यत् पारितोष्यं पुरस्काररूपं दीयते तत् यशोऽर्थं यशोवर्द्धकं तच्च श्रिया दत्तं सम्पद्दत्तम् उच्यते ॥ ११० ॥

उपायनीकृतं यत् तु सुहृत्सम्बन्धिबन्धुषु।
विवाहादिषु चाचारदत्तं ह्रीदत्तमेव तत् ॥ २११ ॥

अन्वयः—सुहृत्सम्बन्धिबन्धुषु विवाहादिषु यत् उपायनीकृतम् आचारदत्तं, तत् ह्रीदत्तम् एव ॥ २११ ॥

व्याख्या—सुहृत्सु = मित्रेषु, सम्बन्धिषु = कुटुम्बेषु, बन्धुषु = आत्मीयेषु, विवाहादिषु = परिणयादिकृत्येषु, यत् = धनम्, उपायनीकृतम् = धनादिकस्योपहारीकृतम्, यत् = धनम्, आचारदत्तम् = व्यवहारेण प्रदत्तम्, तत् = धनम्, ह्रीदत्तम्—ह्रिया = लज्जया, दत्तम् = प्रदत्तमिति कथितम् ॥ २११ ॥

हिन्दी—विवाह आदि शुभ अवसरों पर मित्रों, सम्बन्धियों और बन्धुओं को जो उपहार दिया जाता है उसे व्यवहार से दिया हुआ आचारदत्त कहा जाता है। उसे ही ह्रीदत्त अर्थात् लजा कर दिया हुआ भी कहते हैं ॥ २११ ॥

उपायनीकृतमिति। सुहृत्सु सम्बन्धिषु आत्मीयेषु विवाहादिकार्य्येषु विषयेषु यत् उपायनीकृतम् उपढौकनत्वेन दत्तं यत् आचारदत्तं व्यवहारनिबन्धनं तच्च ह्रीदत्तं ह्रिया लज्जया दत्तम् ॥ २११ ॥

राज्ञे च बलिने दत्तं कार्य्यार्थं कार्य्यघातिने।
पापभीत्याथवा यच्च तत् तु भीदत्तमुच्यते ॥ २१२ ॥

अन्वयः—राज्ञे बलिने कार्यघातिने कार्यार्थम् अथवा पापभीत्या यत् दत्तं तत्तु भीदत्तम् उच्यते ॥ २१२ ॥

व्याख्या—राज्ञे = नरपतये, बलिने = शक्तिशालिने, कार्यघातिने = कार्यविघातकाय, कार्यार्थम् = कार्यहेतवे, अथवा पापभीत्या—पापस्य = अधर्मस्य, भीत्या = भयेन, यत् = धनम्, दत्तम् = विश्राणितम्, तत् = धनम्, तु, भीदत्तम्—भिया = भीत्या, दत्तम् = विसृष्टम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २१२ ॥

हिन्दी—राजा, ताकतवर तथा क़ाम बिगाड़ने वाले लोगों को जो धन काम के लिए दिया जाता है अथवा—'न देने में पाप है' इस दृष्टि से जो धन दिया जाता है, उसे 'भीदत्त' अर्थात् डरकर दिया हुआ कहते हैं ॥ २१२ ॥

राज्ञे इति। राज्ञे बलिने बलवते कार्य्यघातिने च कार्य्यार्थं अथवा पापभीत्या अदाने पापभयादित्यर्थः, यत् दत्तं तत् तु भीदत्तम् उच्यते ॥ २१२ ॥

यद्दत्तं हिंस्रवृद्ध्यर्थं नष्टं द्यूतविनाशितम्।
चौरैर्हतं पापदत्तं परस्त्रीसङ्गमार्थकम् ॥ २१३ ॥

अन्वयः—हिंस्रवृद्ध्यर्थं यत् दत्तं द्यूतविनाशितं चौरैर्हतं पापदत्तं परस्त्रीसङ्गमार्थकं यत् तत् नष्टं भवति ॥ २१३ ॥

व्याख्या—हिंस्रवृद्ध्यर्थम्—हिंस्राणाम् = घातकानाम्, वृद्ध्यर्थम् = वर्धनाय, यत् = धनम्, दत्तम् = अर्पितम्, द्यूतविनाशितम्—द्यूतेन = देवनेन, विनाशितम् = विध्वंसितम्, चौरैः = तस्करैः, हृतम् = चौरितम्, पापकृतम्—पापाय = अधर्माय, दत्तम् = विसृष्टम्, परस्त्रीसङ्गमार्थकम् = परदारसमागमहेतवे, यत् = धनम्, नष्टम् = भ्रष्टमित्युच्यते ॥ २१३ ॥

हिन्दी—घातकों को बढावा देने के लिए, जुए में हारे हुए, चोरों से चुराये गये, पापियों को दिया हुआ, पराई औरतों के साथ संसर्ग के लिए जो धन दिया गया उसे नष्टधन कहा जाता है ॥ २१३ ॥

यदिति। हिंस्राणां वृद्ध्यर्थं दत्तं, द्यूतेन अक्षक्रीडया विनाशितं चौरैः हृतं, पापदत्तं पापाय दत्तं, परस्त्रीसङ्गमार्थकञ्च यत् धनं तत् नष्टं भवति॥२१३॥

आराधयति यं देवं तमुत्कृष्टतरं वदेत्।
तन्न्यूनतां नैव कुर्य्याज्जोषयेत् तस्य सेवनम्॥२१४॥

अन्वयः—यं देवम् आराधयति तम् उत्कृष्टतरं वदेत्, तत् न्यूनतां नैव कुर्यात्। तस्य सेवनञ्च जोषयेत्॥२१४॥

व्याख्या—यम् = विशिष्टं, देवं = दैवतम्, आराधयति = अर्चयति, तम् = देवविशेषम्, उत्कृष्टतरम् = प्रशस्ततरम्, वदेत् = कथयेत्, तत् = तस्य देवस्य, न्यूनताम् = अल्पताम्, नैव = कदाचिदपि नैव, कुर्यात् = विदध्यात्। तस्य = पूजितदेवस्य, सेवनञ्च = आराधनञ्च, जोषयेत् = प्रसन्नतया सेवेत॥२१४॥

हिन्दी—जिस देवता की पूजा करे उसे सर्वाधिक श्रेष्ठ माने, उसे कभी भी किसी से कम न समझे। उसकी खुशी-खुशी सतत आराधना करे॥२१४॥

आराधयतीति। यं देवम् आराधयति सेवते तं देवम् उत्कृष्टतरं सर्वदेवेभ्यः इति शेषः, वदेत् कीर्त्तयेत्। तस्य न्यूनतां लाघवं नैव कुर्य्यात् तस्य सेवनञ्च जोषयेत् हर्षेण कारयेत्॥२१४॥

विना दानार्जवाभ्यां न भुव्यस्ति च वशीकरम्।
दानक्षीणो विवर्द्धिष्णुः शशी वक्रोऽप्यतः शुभः॥२१५॥

अन्वयः—दानार्जवाभ्यां वा विना भुवि वशीकरं न अस्ति। अतः दानक्षीणः विवर्द्धिष्णुः शशी वक्रोऽपि शुभः॥२१५॥

व्याख्या—दानार्जवाभ्याम्—दानेन = प्रत्यर्पणेन, आर्जवेण = सरलत्वेन, विना = विहाय, भुवि = अस्मिन् संसारे, वशीकरम् = वशीकरणोपायभूतम्, अन्यत्किमपि, न = नहि, अस्ति = विद्यते। अतः = अस्मात् कारणात्, दानक्षीणः—दानेन = अमृतदानेन, क्षीणः = दुर्बलः, शशी = प्रतिपच्चन्द्रः, विवर्द्धिष्णुः = वर्द्धनशीलः, वक्रोऽपि = कुटिलोऽपि, शुभः = माङ्गलिको भवति॥२१५॥

हिन्दी—संसार में वशीकरण का उपाय दान और सरलता को छोड़कर और कुछ नहीं है। अमृत दान कर क्षीण बना किन्तु वर्द्धिष्णु वक्र चन्द्रमा भी शुभावह होता है॥२१५॥

विनेति। दानार्जवाभ्यां दानेन आर्जवेन वा विना भुवि पृथिव्यां वशीकरं वशीकरणोपायभूतम् अन्यत् न अस्ति। अतः कारणात् दानक्षीणः विवर्द्धिष्णुः वर्द्धनशीलः शशी चन्द्रः वक्रोऽपि असरलोऽपि शुभः वर्द्धनशीलत्वात् भविष्यद्दानप्रत्याशासम्भवादिति भावः॥२१५॥

विचार्य्य स्नेहं द्वेषं वा कुर्य्यात् कृत्वा न चान्यथा।
नापकुर्य्यान्नोपकुर्य्याद्भवतोऽनर्थकारिणौ॥२१६॥

अन्वयः—स्नेहं वा द्वेषं विचार्य कुर्यात्, कृत्वा च अन्यथा न कुर्यात्। तथा च न अपकुर्यात् नापि उपकुर्यात्, अनर्थकारिणौ भवतः॥२१६॥

व्याख्या—स्नेहम् = प्रेम, वा = अथवा, द्वेषम् = सापत्न्यम्, विचार्य = अनुचिन्त्य, कुर्यात् = विदध्यात्, कृत्वा = स्नेहं द्वेषञ्च वा विधाय, अन्यथा = विपरीतम्, न = नहि,

कुर्यात् = आचरेत्। तथा च स्निग्धं प्रति, न = नहि, अपकुर्यात् = अभद्रमाचरेत्, नापि = न च, मत्सरिणम्, उपकुर्यात् = हितं विधेयात्, तथात्वे सति, तौ = उभौ, अनर्थकारिणौ = विपरीतविधायकौ, भवतः = स्तः ॥ २१६ ॥

हिन्दी—काफी विचार के बाद ही किसी के साथ दोस्ती या दुश्मनी करनी चाहिए, करके फिर उसके विपरीत नहीं जाना चाहिए। अतः दोस्त का अपकार एवं दुश्मनों का उपकार कभी नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत कर्म सदैव अनर्थकारी होते हैं ॥ २१६ ॥

विचार्य्येति। स्नेहं द्वेषं वा विचार्य्य कार्य्यं कुर्य्यात् कृत्वा च स्नेहद्वेषानुसारेणेति भावः, अन्यथा न कुर्य्यादिति शेषः। तथा च न अपकुर्य्यात् स्निग्धं प्रतीति शेषः, नापि उपकुर्य्यात् द्वेषं प्रतीति। शेषः तथात्वे तौ उभौ अनर्थकारिणौ अनिष्टकारकौ भवतः ॥ २१६ ॥

नातिक्रौर्य्यं नातिशाठ्यं धारयेन्नातिमार्दवम्।
नातिवादं नातिकार्य्यासक्तिमत्याग्रहं न च ॥ २१७ ॥

अन्वयः—अतिक्रौर्यं न अतिशाठ्यं न अतिमार्दवं न अतिवादं न अतिकार्यासक्तिं न; न च अत्याग्रहं धारयेत् ॥ २१७ ॥

व्याख्या—अतिक्रौर्यम् = अत्यन्तक्रूरताम्, न = नहि, अतिशाठ्यम् = अत्यधिकं धूर्त्तताम्, न = नहि, अतिमार्दवम् = अत्यन्तं कोमलत्वम्, न = नहि, अतिवादम् = अतिप्रशंसाम्, न = नहि, अतिकार्यासक्तिम्—अत्यन्तं कार्येषु = कृत्येषु, आसक्तिम् = तत्परताम्, न = नहि, न च, अत्याग्रहम् = अतियाचनाम्, धारयेत् = निष्पादयेत् ॥ २१७ ॥

हिन्दी—अत्यन्त क्रूरता, अतिधूर्त्तता, अतिशय कोमलता, अत्यधिक प्रशंसा, किसी काम में अति उतावलापन तथा किसी बात के लिए अतिहठ कदापि नहीं करना चाहिए ॥ २१७ ॥

नेति। अतिक्रौर्य्यम् अतिनिष्ठुरतां न, अतिशाठ्यम् अतिशठतां न, अतिमार्दवम् अतिमृदुतां न, अतिवादम् अतिविवादं वा अतिप्रशंसां न, अतिकार्य्यासक्तिं कार्य्येषु अत्यासक्तिं न, तथा अत्याग्रहम् अतिनिर्बन्धञ्च न धारयेत् कुर्य्यात् ॥ २१७ ॥

अति सर्वं नाशहेतुर्ह्यतोऽत्यन्तं विवर्जयेत्।
उद्वेजते जनः क्रौर्य्यात् कार्पण्यादतिनिन्दति ॥ २१८ ॥

अन्वयः—सर्वम् अति नाशहेतुः हि, अतः अत्यन्तं विवर्जयेत्। जनः क्रौर्यात् उद्वेजते, कार्पण्यात् अतिनिन्दति ॥ २१८ ॥

व्याख्या—सर्वम् = सकलम्, अति = अतिशयः, नाशहेतुः = विनाशकारणम्, हि = इति निश्चयेन, अतः = अस्मात् कारणात्, अत्यन्तम् = अत्यधिकम्, विवर्जयेत् = विशिष्टरूपेण त्यजेत्। जनः = लोकः, क्रौर्यात् = निर्दयत्वात्, उद्वेजते = क्षुब्धं कुरुते, कार्पण्यात् = दारिद्र्यात्, अतिनिन्दति = अतिशयनिन्दितो भवति ॥ २१८ ॥

हिन्दी—किसी वस्तु की अतिशयता ही उसके विनाश का कारण बन जाती है, अतः अति का सर्वत्र परित्याग कर देना चाहिए। निर्दयता मनुष्य को क्षुब्ध बनाती है और कृपणता अतिनिन्दित ॥ २१८ ॥

अतीति। सर्वम् अति अत्यन्तं नाशहेतुः हि अवधारणे, अतः कारणात् अत्यन्तं विवर्जयेत् त्यजेत्। जनः क्रौर्य्यात् नैष्ठुर्य्यात् उद्वेजते विरज्यते, कार्पण्यात् अतिनिन्दति ॥ २१८ ॥

मार्दवान्नैव गणयेदपमानोऽतिवादतः ।
अतिदानेन दारिद्र्यं तिरस्कारोऽतिलोभतः ॥ २१९ ॥

अन्वयः—मार्दवात् नैव गणयेत्, अतिवादतः अपमानः, अतिदानेन दारिद्र्यं तथा अतिलोभतः तिरस्कारः भवति ॥ २१९ ॥

व्याख्या—मार्दवात् = अतिमृदुलत्वात्, नैव = नास्त्येव, गणयेत् = अनुमोदयेत्, अतिवादतः = अत्यन्तालापात्, अपमानः = अनादरो भवति, अतिदानेन = अत्यधिकवितरणेन, दारिद्र्यम् = अकिञ्चनत्वम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, अतिलोभतः = अत्यधिकलोभात्, तिरस्कारः = अवहेलना, भवति = जायते ॥ २१९ ॥

हिन्दी—अत्यन्त सरल व्यक्ति से कोई जी नहीं लगाता है, बहुत अधिक बोलने से अपमान होता है, अधिक दान करने से गरीबी आती है तथा बहुत लोभ करने से तिरस्कार होता है ॥ २१९ ॥

मार्दवादिति। मार्दवात् नैव गणयेत्। अतिवादतः अतिवादात् अपमानः, अतिदानेन दारिद्र्यं तथा अतिलोभतः तिरस्कारः भवति ॥ २१९ ॥

अत्याग्रहान्नरस्यैव मौर्ख्यं सञ्जायते खलु।
अनाचाराद्धर्महानिरत्याचारस्तु मूर्खता ॥ २२० ॥

अन्वयः—नरस्य अत्याग्रहात् मौर्ख्यम्, अनाचारात् धर्महानिः सञ्जायते खलु। अत्याचारः तु मूर्खता ॥ २२० ॥

व्याख्या—नरस्य = जनस्य, अत्याग्रहात्—आग्रहस्य = आवेशस्य, अतिशयात् = अत्याधिक्यात्, मौर्ख्यम् = अबोधत्वम्, अनाचारात् = कदाचारात्, धर्महानिः—धर्मस्य = पुण्यस्य, हानिः = क्षतिः, सञ्जायते = भवति, खलु = निश्चयेन। अत्याचारः = क्रूरकर्म, तु = इत्यवधारणे, मूर्खता = अज्ञानता भवति ॥ २२० ॥

हिन्दी—किसी वस्तु के लिए अति आग्रह उसकी मूर्खता का द्योतक होता है। दुराचार से निश्चित रूप से धर्म की हानि होती है और क्रूर कर्म करने से कर्त्ता की मूर्खता प्रतीत होती है ॥ २२० ॥

अत्याग्रहादिति। नरस्य अत्याग्रहात् आग्रहस्य निर्बन्धस्य अतिशयात् मौर्ख्यं मूर्खता निर्बोधत्वमित्यर्थः, तथा अनाचारात् असदाचारात् आचाराभावाच्च धर्महानिः सञ्जायते खलु। अत्याचारस्तु आचारविरुद्धाचरणन्तु एव तुशब्दोऽवधारणार्थः, मूर्खता ॥ २२० ॥

ह्यधिकोऽस्मीति सर्वेभ्यो ह्यधिकज्ञानवानहम्।
धर्मतत्त्वमिदमिति नैवं मन्येत बुद्धिमान् ॥ २२१ ॥

अन्वयः—अहं हि सर्वेभ्यः अधिकः अस्मि, सर्वेभ्यः अधिकः ज्ञानवान् अस्मि, इदमेव धर्मतत्त्वम् एवं बुद्धिमान् न मन्येत ॥ २२१ ॥

व्याख्या—अहम्, हि = इत्यवधारणे, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, अधिकः = प्रभूतः, अस्मि = भवामि, सर्वेभ्यः अधिकः = बहु, ज्ञानवान् = बुद्धिमान्, अस्मि, इदमेव = एतदेव, धर्मतत्त्वम्—धर्मस्य = पुण्यस्य, तत्त्वम् = सारम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, बुद्धिमान् = प्राज्ञो जनः, न = नहि, मन्येन = अनुचिन्तयेत् ॥ २२१ ॥

हिन्दी—मैं ही सबसे अधिक श्रेष्ठ ज्ञानी हूँ, धर्म का बस यही तत्त्व है, ऐसा बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं मानते हैं ॥ २२१ ॥

हीति। बुद्धिमान् जनः अस्मि अहं सर्वेभ्यः अधिकः हि एव अवधारणार्थोऽयं हिशब्दः। अहं हि सर्वेभ्यः अधिकज्ञानवान् इति इदं धर्मस्य तत्त्वम् इत्येवञ्च न मन्येत ॥ २२१ ॥

तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः।
कश्चित्तु तद्गिलोऽस्तीति मत्वा मन्येत सर्वदा ॥ २२२ ॥

अन्वयः—तिमिङ्गिलगिलः अपि अस्ति, तद्गिलोऽपि राघवः अस्ति। कश्चित् तु तद्गिलोऽपि अस्ति इति सर्वदा मन्येत ॥ २२२ ॥

व्याख्या—तिमिङ्गिलगिलः—तिमिः = समुद्रचरो बृहदाकारमत्स्यविशेषः, तं गिलः = तिमिङ्गिलः = तस्मादपि बृहत्तरो मत्स्यः, तस्यापि गिलः = तस्मादपि बृहत्तरो मत्स्यः अस्ति, किञ्च तत् = तस्यापि, गिलः = भक्षकः, राघवः = बृहदाकारमत्स्यः, अस्ति = भवति, कश्चित् = कोऽपि, तु = इत्यवधारणे, तत् = तस्यापि, गिलः = भक्षकः, कोऽप्यस्ति = भवति, इति = इत्थम्, सर्वदा = सततम्, मन्येत = अनुचिन्तयेत् ॥ २२२ ॥

हिन्दी—'तिमि' नामक एक बड़ी समुद्री मछली को निगलने वाली उससे बड़ी 'तिमिङ्गिल' (Whale) मछली होती है। उसे निगलने वाली उससे भी बड़ी मछली ' तिमिङ्गिलगिल' मछली होती है। उसे भी निगलने वाली उससे बड़ी मछली 'राघव' होती है। उसे भी निगलने वाली कोई और बड़ी मछली होती है—ऐसा समझ कर सदा इसकी भावना मन में करते रहनी चाहिए। क्योंकि एक पर एक बड़ा है ॥ २२२ ॥

तिमीति। तिमिङ्गिलगिलः तिमिर्नाम समुद्रचरः महान् जलजन्तुः तं गिलतीति तिमिङ्गिलः तस्यापि गिलः जीवविशेषोऽपि अस्ति, किञ्च तद्गिलः तस्यापि गिलः राघवः तदाख्यः जन्तुविशेषः अस्ति, अपरञ्च कश्चित् तद्गिलोऽपि तस्य राघवस्य गिलोऽप्यस्ति इति मत्वा विज्ञाय सर्वदा मन्येत भावयेत् ॥ २२२ ॥

नेच्छेत् स्वाम्यं तु देवेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च।
महानर्थकरं ह्येतत् समग्रकुलनाशनम् ॥ २२३ ॥

अन्वयः—देवेषु च गोषु च ब्राह्मणेषु स्वाम्यं न इच्छेत्। एतत् महानर्थकरं कुलनाशनं च भवति ॥ २२३ ॥

व्याख्या—देवेषु = देवतासु, गोषु = धनेषु, ब्राह्मणेषु = विप्रेषु च, स्वाम्यम् = प्रभुत्वम्, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत्। एतत् = प्रभुत्वम्, महानर्थकरम् = महानिष्टकरम्, च = पुनः, कुलनाशनम् = वंशविघातनम्, भवतीति भावः ॥ २२३ ॥

हिन्दी—देवता, गाय और ब्राह्मण पर प्रभुत्व रखने की कभी इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि ऐसी इच्छा महानिष्टकर एवं वंशविनाशक होती है ॥ २२३ ॥

नेच्छेदिति। देवेषु गोषु ब्राह्मणेषु च स्वाम्यम् आधिपत्यं न इच्छेत्। एतत् स्वाम्यं समग्रकुलनाशनं सर्वकुलक्षयकरम् अत एव महानर्थकरम् अत्यनिष्टसाधकम् ॥ २२३ ॥

भजनं पूजनं सेवामिच्छेदेतेषु सर्वदा।
न ज्ञायते ब्रह्मतेजः कस्मिन् कीदृक् प्रतिष्ठितम्॥ २२४॥

अन्वयः—एतेषु सर्वदा भजनं पूजनं सेवाञ्च इच्छेत्। यतः कस्मिन् कीदृक् ब्रह्मतेजः प्रतिष्ठितं न ज्ञायते॥२२४॥

व्याख्या—एतेषु = पूर्वोक्तेषु गवादिषु, सर्वदा = सततम्, भजनम् = सततस्मरणम्, पूजनम् = अर्चनम्, सेवाञ्च = परिचर्याञ्च, इच्छेत् = अभिलषेत्। यतः कस्मिन् = केषु, कीदृक् = किम्प्रकारकः, ब्रह्मतेजः—ब्रह्मणः = जगत्कर्त्तुः परमेश्वरस्य, तेजः = पराक्रमः, प्रतिष्ठितम् = प्रतिष्ठापितम्, न = नहि, ज्ञायते = बुध्यते॥२२४॥

हिन्दी—इनकी निरन्तर भक्ति, पूजा और सेवा करनी चाहिए। पता नहीं, इन सबों के बीच किन में कैसा ईश्वरीय पराक्रम प्रतिष्ठापित है?॥२२४॥

भजनमिति। एतेषु देवादिषु सर्वदा भजनं पूजनं सेवाञ्च इच्छेत्। यतः कस्मिन् कीदृक् ब्रह्मतेजः ऐश्वरिकं तेजः प्रतिष्ठितं स्थितं तत् न ज्ञायते॥२२४॥

पराधीनं नैव कुर्य्यात् तरुणीधनपुस्तकम्।
कृतं चेल्लभ्यते दैवाद् भ्रष्टं नष्टं विमर्दितम्॥ २२५॥

अन्वयः—तरुणीं धनं पुस्तकं पराधीनं नैव कुर्यात्। कृतं चेत् भ्रष्टं नष्टं विमर्दितञ्च दैवात् लभ्यते॥२२५॥

व्याख्या—तरुणीम् = युवास्त्रियम्, धनम् = वित्तम्, पुस्तकञ्च, पराधीनम् = अन्यावलम्बनम्, नैव = नास्त्येव, कुर्यात् = विदध्यात्। कृतम् = अनुष्ठितम्, चेत् = यदि, तर्हि, भ्रष्टम् = दूषितम्, नष्टम् = विनाशमुपगतम्, विमर्दितम् = खण्डितम्, दैवात् = भाग्यादेव, लभ्यते = प्राप्यते॥२२५॥

हिन्दी—युवापत्नी, धन एवं पुस्तक दूसरों के हाथ में नहीं सौंपना चाहिए। यदि ऐसा किया जाय तो फिर ये संयोग से ही लौटते हैं। लौटने पर भी नारी भ्रष्ट, धन विनष्ट और पुस्तक फटी मिलती है॥२२५॥

पराधीनमिति। तरुणीं धनं पुस्तकञ्च पराधीनं नैव कुर्य्यात् कृतञ्चेत् भ्रष्टं नष्टं विमर्दितञ्च भवेत्, दैवात् लभ्यते च॥२२५॥

बह्वर्थं न त्यजेदल्पहेतुनाल्पं न साधयेत्।
बह्वर्थव्ययतो धीमानभिमानेन वै क्वचित्॥ २२६॥

अन्वयः—धीमान् अल्पहेतुना बह्वर्थं न त्यजेत्। क्वचित् अभिमानेन बह्वर्थव्ययतः अल्पं न साधयेत् वै॥२२६॥

व्याख्या—धीमान् = ज्ञानीजनः, अल्पहेतुना—अल्पेन = स्वल्पेन, हेतुना = कारणेन, बहु = अधिकम्, अर्थम् = धनम्, न = नहि, त्यजेत् = परित्यजेत्। किञ्च, क्वचित् = कुत्रापि, अभिमानेन = दर्पेण, बहूनाम् = अत्यधिकानाम्, अर्थानाम् = धनानाम्, व्ययतः = निर्गमात्, अल्पम् = स्तोकम्, न = नहि, साधयेत् = निष्पादयेत्॥२२६॥

हिन्दी—ज्ञानीजन थोड़े से काम के लिए बहुत अधिक धन का व्यय न करे। साथ ही

अभिमानवश छोटे काम को सिद्ध करने के लिए अधिक धन का भी व्यय न करे ॥ १२६ ॥

बह्वर्थमिति। धीमान् बुद्धिमान् जनः अल्पहेतुना अल्पेन कारणेन बह्वर्थं बहुधनं न त्यजेत्, किञ्च क्वचित् अभिमानेन बहूनामर्थानां व्ययात् अल्पं विषयं न साधयेत् ॥ २२६ ॥

बह्वर्थव्ययभीत्या तु सत्कीर्त्तिं न त्यजेत् सदा।
भटानामसदुक्त्या तु नेर्ष्येत् कुप्यान्न तैः सह ॥ २२७ ॥

अन्वयः—बह्वर्थव्ययभीत्या तु सदा सत्कीर्त्तिं न त्यजेत्। भटानाम् असदुक्त्या न ईर्ष्येत्, तैः सह न कुप्याच्च ॥ २२७ ॥

व्याख्या—बह्वर्थव्ययभीत्या—बहूनाम् = प्रचूराणाम्, अर्थानाम् = धनानाम्, व्ययात् = निर्गमात्, भीत्या = भयेन, तु = इति पादपूर्त्यर्थम्, सदा = सततम्, सत्कीर्त्तिम् = सुयशः, न = नहि, त्यजेत् = परिहरेत्। किञ्च भटानाम् = सैनिकानाम्, असदुक्त्या = दुर्वचनेन, न = नहि, ईर्ष्येत् = मात्सर्यं कुर्यात्, तैः = सैनिकैः, सह = सार्द्धम्, न = नहि, कुप्यात् = क्रुध्यात् ॥ २२७ ॥

हिन्दी—'इस काम में बहुत अधिक धन व्यय होगा' इस डर से सुकीर्त्ति का अवसर नहीं खोना चाहिए। वीर सैनिकों के कठोर बातें कहने पर न तो उनके साथ द्वेष करना चाहिए और न क्रोध ही ॥ २२७ ॥

बह्वर्थेति। बहूनामर्थानां व्ययात् भीत्या तु सदा सत्कीर्त्तिं न त्यजेत्। किञ्च भटानां योद्धॄणाम् असदुक्त्या मन्दवाक्येन न ईर्ष्येत् तैः सह न कुप्याच्च ॥ २२७ ॥

लज्ज्यते च सुहृद् येन भिद्यते दुर्मना भवेत्।
वक्तव्यं न तथा किञ्चिद् विनोदेऽपि च धीमता ॥ २२८ ॥

अन्वयः—येन सुहृद् लज्ज्यते भिद्यते च दुर्मनाः भवेत्, धीमता विनोदेऽपि तथा किञ्चित् न वक्तव्यम् ॥ २२८ ॥

व्याख्या—येन = कथनेन, सुहृद् = मित्रम्, लज्ज्यते = त्रपते, भिद्यते = भिन्नति, च = पुनः, दुर्मनाः = दुःखितः, भवेत् = स्यात्, धीमता = ज्ञानीजनेन, विनोदेऽपि = परिहासेऽपि, तथा = तेन प्रकारेण, किञ्चित् = स्तोकमपि, न = नहि, वक्तव्यम् = गदितव्यम् ॥ २२८ ॥

हिन्दी—जिस बात से मित्र लजाये, दुःखी हो या उसके मन में फर्क पड़े वैसी थोड़ी भी बात बुद्धिमान् जन कदापि न करे ॥ २२८ ॥

लज्ज्यते इति। येन वाक्येन सुहृद् लज्ज्यते, भिद्यते वा दुर्मनाः दुःखितचित्तः भवेत्, धीमता बुद्धिमता जनेन विनोदेऽपि आमोदेऽपि परिहासेऽपीत्यर्थः, तथा किञ्चित् न वक्तव्यम् ॥ २२८ ॥

यस्मिन् सूक्तं दुरुक्तं च समं स्याद् वा निरर्थकम्।
न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥ २२९ ॥

अन्वयः—यस्मिन् सूक्तं दुरुक्तं समं वा निरर्थकं स्यात्, तत्र प्राज्ञः बधिरेषु गायनम् इव न प्रलपेत् ॥ २२९ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = जने, सूक्तम् = सुष्ठुवचनम्, दुरुक्तम् = दुर्वचनम्, वा = अथवा, समम् = समानम्, च = पुनः, निरर्थकम् = अर्थहीनम्, स्यात् = भवेत्, तत्र = तस्मिन् जने, प्राज्ञः =

बुद्धिमान् नरः, बधिरेषु = अकर्णेषु, गायनम् = सङ्गीतम्, इव = यथा, न = नहि, प्रलपेत् = निरर्थकप्रलापं कुर्यात् ॥ २२९ ॥

हिन्दी—जिस आदमी के सामने अच्छा या बुरा कहना दोनों ही यदि बराबर या बेकार हो तो बुद्धिमान् व्यक्ति उसके सामने बे-मतलव बकवास न करे। क्योंकि उसके साथ बात करना बहरे के सामने गीत गाने की तरह है ॥ २२९ ॥

यस्मिन्निति। यस्मिन् जने सूक्तं शोभनं वचनं दुरुक्तं दुर्वचनञ्च समं निरर्थकं विफलं स्यात् तत्र प्राज्ञो जनः बधिरेषु गायनो गायक इव न प्रलपेत् न किञ्चित् वदेत् ॥ २२९ ॥

व्यसने सज्जमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ २३० ॥

अन्वयः—यः व्यसने सज्जमानं मित्रं यथाशक्ति अनुनीय न अभिपद्यते, बुधाः तं नृशंसं विदुः ॥ २३० ॥

व्याख्या—यः = जनः, व्यसने = अनिष्टकाले विपदि वा, सज्जमानम् = आपतितम्, मित्रम् = सुहृदम्, यथाशक्ति = शक्त्यनुसारेण, अनुनीय = विनयं कृत्वा, न = नहि, अभिपद्यते = निवारयति, बुधाः = पण्डिताः, तम् = जनम्, नृशंसम् = कठोरहृदयम्, विदुः = जानन्ति ॥ २३० ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति विपत्ति में फँसे अपने मित्र को अपने सामर्थ्य भर समझा-बुझाकर उस व्यसन से अलग नहीं करता, उन्हें बुद्धिमान् जन निष्ठुर समझते हैं ॥ २३० ॥

व्यसने इति। यः जनः व्यसने मृगयादिदोषे वा विपदि सज्जमानं मित्रं यथाशक्ति अनुनीय न अभिपद्यते न निवारयति वा अनुवर्त्तते बुधाः तं नृशंसं निष्ठुरं विदुः जानन्ति ॥ २३० ॥

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ २३१ ॥

अन्वयः—ज्ञातीनां मिथः भेदे यत् मित्रं सर्वप्रयत्नेन माध्यस्थ्यं न अभिपद्यते, बुधाः तत् मित्रं न विदुः ॥ २३१ ॥

व्याख्या—ज्ञातीनाम् = सगोत्राणां बान्धवानाम्, मिथः = अन्योऽन्यम्, भेदे = मतभिन्नतायाम्, यत् = यः, मित्रम् = सुहृदम्, सर्वप्रयत्नेन = सकलप्रयासेन, माध्यस्थ्यम् = मध्यस्थताम्, न = नहि, अभिपद्यते = आश्रयते, बुधाः = पण्डिताः, तत् = तम्, मित्रम् = सखा, न = नहि, विदुः = मन्यन्ते ॥ २३१ ॥

हिन्दी—बन्धु-बान्धवों के बीच आपसी मनमुटाव होने पर यदि कोई मित्र बीच में पड़कर पूरे प्रयास के साथ विवाद नहीं मिटाता है तो उसे ज्ञानीजन मित्र नहीं मानते हैं ॥ २३१ ॥

ज्ञातीनामिति। ज्ञातीनां भ्रात्रादीनां मिथः परस्परं भेदे मनोभङ्गे आपतिते इत्यर्थः, यत् मित्रं सर्वयत्नेन सर्वप्रकारेण माध्यस्थ्यम् औदासीन्यं न अभिपद्यते नावलम्बते, बुधाः पण्डिताः तत् मित्रं न विदुः ॥ २३१ ॥

आजन्मसेवितं दानैर्मानैश्च परिपोषितम्।
तीक्ष्णवाक्यान्मित्रमपि तत्कालं याति शत्रुताम्।
वक्रोक्तिशल्यमुद्धर्तुं न शक्यं मानसं यतः ॥ २३२ ॥

अन्वयः—आजन्मसेवितं दानैः मानैश्च परिपोषितमपि मित्रं तीक्ष्णवाक्यात् तत्कालं शत्रुतां याति। यतः मानसं वक्रोक्तिशल्यम् उद्धर्तुं न शक्यम् ॥ २३२ ॥

व्याख्या—आजन्म = जीवनपर्यन्तम्, सेवितम् = आराधितम्, दानैः = ददनैः, मानैश्च = सम्मानैश्च, परिपोषितमपि = सुसंवर्धितमपि, मित्रम् = सखा, तीक्ष्णवाक्यात् = कर्णकटुकठोरवचनात्, तत्कालम् = तत्क्षणमेव, शत्रुताम् = अरिभावम्, याति = प्राप्नोति। यतः = यस्मात् कारणात्, मानसम् = चेतसम्, वक्रोक्तिशल्यम्—वक्रोक्तिः = काकूक्तिः, तदेव शल्यम् = कण्टकम्, उर्द्धत्तुम् = निष्कासितुम्, न = नहि, शक्यम् = समर्थो भवति ॥ २३२ ॥

हिन्दी—सारी जिन्दगी सेवित, दान और मान से परिवर्द्धित मित्र भी कठोर वचन से उसी क्षण शत्रु बन जाता है। क्योंकि कुटिल वचन रूपी काँटा जब मन में चुभ जाता है तो उसे निकालना आसान नहीं होता ॥ २३२ ॥

आजन्मेति। आजन्म सेवितं दानैः मानैश्च परिपोषितमपि मित्रं तीक्ष्णवाक्यात् तत्कालं तदानीमेव शत्रुतां याति शत्रुभावम् अवलम्बते। यतः यस्मात् मानसं चित्तं वक्रोक्तिः कटुवाक्यमेव शल्यम् उद्धर्तुं न शक्यं न समर्थम् ॥ २३२ ॥

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् स्यात् स्वबलाधिकः।
ज्ञात्वा नष्टबलं तं तु भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि ॥ २३३ ॥

अन्वयः—यावत् स्वबलाधिकः स्यात् अमित्रं स्कन्धेन वहेत्, तं तु नष्टबलं ज्ञात्वा अश्मनि घटमिव भिन्द्यात् ॥ २३३ ॥

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, स्वबलाधिकः—स्वस्य = आत्मनः, बलात् = शक्त्याः, अधिकः = प्रभूतः, स्यात् = भवेत्, तावत् तम् अमित्रम् = शत्रुम्, स्कन्धेन = अंसेन, वहेत् = नयेत्, तम् = अमित्रम्, तु = किन्तु, नष्टबलम् = विनष्टशक्तिः, ज्ञात्वा = परिज्ञाय, अश्मनि = पाषाणे, घटम् = मृत्तिकाकुम्भम्, इव = यथा, भिन्द्यात् = स्फोटयेत् ॥ २३३ ॥

हिन्दी—जब तक दुश्मन अपने से अधिक बलशाली प्रतीत हो उसे अपने कन्धे पर ढोये और वही दुश्मन जब क्षीणबल हो जाय तो उसे पत्थर पर मिट्टी के घड़े को पटक कर फोड़ने की तरह विनष्ट कर दे ॥ २३३ ॥

वहेदिति। यावत् स्वस्य बलात् अधिकः स्यात् अमित्र इति शेषः, तावत् तममित्रं स्कन्धेन वहेत्। तन्तु नष्टबलं ज्ञात्वा अश्मनि पाषाणे घटमिव भिन्द्यात् ॥ २३३ ॥

न भूषयत्यलङ्कारो न राज्यं न च पौरुषम्।
न विद्या न धनं तादृग् यादृक् सौजन्यभूषणम् ॥ २३४ ॥

अन्वयः—सौजन्यभूषणं यादृग् अलङ्कारः तादृग् न राज्यं न च पौरुषं न विद्या न धनं न भूषयति ॥ २३४ ॥

व्याख्या—सौजन्यमेव = सज्जनता एव, भूषणम् = अलङ्कारम्, यादृक् = यत्प्रकारकम्, अलङ्कारः = आभूषणम्, तादृग् = तत्प्रकारकम्, न = नहि, राज्यम् = जनपदप्रभुत्वम्, न च पौरुषम् = पुरुषार्थम्, न = नहि, विद्या = शास्त्रीयज्ञानम्, न च धनम् = वित्तम्, तादृक् न भूषयति = अलङ्करोति ॥ २३४ ॥

हिन्दी—राज्य, पौरुष, विद्या या धन रूपी अलंकार से मनुष्य की उतनी शोभा नहीं बढ़ती, जितनी शोभा सुजनता रूपी अलंकार से होती है॥२३४॥

नेति। सौजन्यमेव भूषणं यादृक्, अलङ्कारस्तादृक् न, राज्यं तादृक् न, पौरुषं पराक्रमस्तादृक् न, विद्या तादृक् न, धनञ्च तादृक् न भूषयति॥२३४॥

अश्वे जवो वृषे धौर्य्यं मनौ कान्तिः क्षमा नृपे।
हावभावौ च वेश्यायां गायके मधुरस्वरः॥२३५॥
दातृत्वं धनिके शौर्य्यं सैनिके बहुदुग्धता।
गोषु दमस्तपस्विषु विद्वत्सु वावदूकता।२३६॥
सभ्येष्वपक्षपातस्तु तथा साक्षिषु सत्यवाक्।
अनन्यभक्तिर्भृत्येषु सुहितोक्तिश्च मन्त्रिषु॥२३७॥
मौनं मूर्खेषु च स्त्रीषु पातिव्रत्यं सुभूषणम्।
महादुर्भूषणं चैतद् विपरीतममीषु च॥२३८॥

अन्वयः—अश्वे जवः, वृषे धौर्यं, मणौ कान्तिः, नृपे क्षमा, वेश्यायां हावभावौ, गायके मधुरस्वरः, धनिके दातृत्वं, सैनिके शौर्यं, गोषु बहुदुग्धता, तपस्विषु दमः, विद्वत्सु वावदूकता, सभ्येषु अपक्षपातः, साक्षिषु सत्यवाक्, भृत्येषु अनन्यभक्तिः, मन्त्रिषु सुहितोक्तिः, मूर्खेषु मौनं, स्त्रीषु पातिव्रत्यं च सुभूषणम्। अमीषु एतद् विपरीतं महादुर्भूषणम्॥२३५-२३८॥

व्याख्या—अश्वे = घोटके, जवः = त्वरा, वृषे = वृषभे, धौर्यम् = धुर्वहत्वम्, मणौ = माणिक्ये, कान्तिः = दीप्तिः, नृपे = राज्ञि, क्षमा = क्षान्तिः, वेश्यायाम् = गणिकायाम्, हावभावौ = पुरुषमनोहारीस्त्रीचेष्टाभेदौ, गायके = गेष्णे, मधुरस्वरः = श्रुतिमधुरस्वनः, धनिके = धनिनि, दातृत्वम् = दानशीलत्वम्, सैनिके = भटे, शौर्यम् = वीरत्वम्, गोषु = धेनुषु, बहुदुग्धता = बहुक्षीरात्वम्, तपस्विषु = तपोधनेषु, दमः = इन्द्रियनिग्रहः, विद्वत्सु = विपश्चित्सु, वावदूकता = वाचालता, सभ्येषु = सभासत्सु, अपक्षपातः = समदृष्टित्वम्, साक्षिषु = प्रत्यक्षदर्शिषु, सत्यवाक् = ऋतवादनम्, भृत्येषु = सेवकेषु, अनन्यभक्तिः = एकनिष्ठसेवकता, मन्त्रिषु = सचिवेषु, सुहितोक्तिः = सुहितकरं वचनम्, मूर्खेषु = अज्ञजनेषु, मौनम् = वाक्स्तम्भः, स्त्रीषु = नारीषु, पातिव्रत्यम् = सतीत्वम्, सुभूषणम् = शोभनाऽलङ्करणम्, अमीषु = पूर्वोक्तेषु, एतत् = जवादिगुणम्, विपरीतम् = विरुद्धम्, महादुर्भूषणम् = अत्यन्तदुष्टालङ्करणम्, सज्जनताविघातकं भवति॥२३५-२३८॥

हिन्दी—घोड़े में अधिक वेग, बैलों में भारवहन करने की क्षमता, मणि में कान्ति, राजा में क्षमा, वेश्या में हावभाव, गवैये में मधुर आवाज, धनी में दानशीलता, सैनिक में शूरता, गायों में अधिक दूध देना, तपस्वियों में इन्द्रियदमन, विद्वानों में वाग्मिता, सभासदों में तटस्थता, गवाहों में सच्ची गवाही देना, नौकरों में स्वामीभक्ति, मन्त्रियों में हितकर एवं मनोहर बातें करना, मूर्खों में मौन रहना तथा स्त्रियों में सतीत्व ही सुन्दर आभूषण है। ठीक इन गुणों के विपरीत उनके सौन्दर्यविघातक होते हैं॥२३५-२३८॥

अश्वे इत्यादि। अश्वे जवः वेगः, वृषे धौर्य्यं धुर्वहत्वं, मणौ रत्ने कान्तिः, नृपे क्षमा, वेश्यायां

हावभावौ विभ्रमविलासौ, गायके मधुरस्वरः, धनिके दातृत्वं सैनिके शौर्य्यं, गोषु बहुदुग्धता, तपस्विषु दमः इन्द्रियनिग्रहः, विद्वत्सु वावदूकता वाग्मिता, सभ्येषु अपक्षपातः समदर्शित्वं, साक्षिषु सत्यवाक्, भृत्येषु अनन्यभक्तिः स्वाम्यनुरागः, मन्त्रिषु सुहितोक्तिः सुहितवचनं, मूर्खेषु मौनम् अवचनं, तथा स्त्रीषु पातिव्रत्यं सुभूषणम्। अमीषु अश्वादिषु एतद्विपरीतं जवाभावादिकं महादुर्भूषणं साधुत्वापहारकमित्यर्थः॥ २३५-२३८ ॥

गृहं बहुकुटुम्बेन दीपैर्गोभिः सुबालकैः।
भात्येकनायकं नित्यं न गृहं बहुनायकम्॥ २३९ ॥

अन्वयः—एकनायकं गृहं बहुकुटुम्बेन दीपैः गोभिः सुबालकैश्च नित्यं भाति। बहुनायकैः गृहं न शोभते॥ २३९ ॥

व्याख्या—एकनायकम् = एकाधिपतिम्, गृहम् = सदनम्, बहुकुटुम्बेन = अधिकपारिवारिकसदस्येन, दीपैः = बहुदीपिकालोकैः, गोभिः = धेनुभिः, सुबालकैः = सुन्दरशिशुभिश्च, नित्यम् = सततम्, भाति = शोभते। तथा बहुनायकैः—बहवः = अनेकाः, नायकाः = प्रमुखाः, यस्य तादृशम्, गृहम् = भवनम्, नैव शोभते॥ २३९ ॥

हिन्दी—घर में जब बहुत सारे परिवार के लोग, अनेक जगमगाते दीपक, बहुत सारी गायें और अनेक सुन्दर बच्चें तथा एक कोई गृहपति हो तो उसकी निरन्तर शोभा देखते बनती है। किन्तु ठीक इसके विपरीत जिस घर में अनेक मालिक हों, उसकी शोभा वैसी नहीं होती है॥ २२९ ॥

गृहमिति। एकनायकम् एकस्वामिकं गृहं बहुकुटुम्बेन बहुपरिजनेन, दीपैः, गोभिः, सुबालकैश्च नित्यं भाति शोभते, बहवो नायका यस्य तादृशं गृहं नैव शोभते इति शेषः। बहुनायकत्वे सततविरोधप्रसङ्गादिति भावः॥ २३९ ॥

न च हिंस्रमुपेक्षेत शक्तो हन्याच्च तत्क्षणे॥ २४० ॥

अन्वयः—शक्तः हिंस्रं न च उपेक्षेत च तत्क्षणे हन्यात्॥ २४० ॥

व्याख्या—शक्तः = समर्थो जनः, हिंस्रम् = घातकजीवम्, न च = नैव, उपेक्षेत = उपेक्षां कुर्यात्, तत्क्षणमेव = तत्काले एव, हन्यात् = घातयेत्॥ २४० ॥

हिन्दी—हिंसक पुरुषों या पशुओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अगर सामर्थ्य हो तो उन्हें उसी क्षण विनष्ट कर दे॥ २४० ॥

न चेति। शक्तः समर्थः जनः हिस्रं न च उपेक्षेत, तत्क्षणे हन्याच्च॥ २४० ॥

पैशुन्यं चण्डता चौर्य्यं मात्सर्य्यमतिलोभता।
असत्यं कार्य्यघातित्वं तथालसकताप्यलम्।
गुणिनामपि दोषाय गुणानाच्छाद्य जायते॥ २४१ ॥

अन्वयः—पैशुन्यं चण्डता चौर्यं मात्सर्यम् अतिलोभता असत्यं कार्यघातित्वं तथा अलसकताऽपि गुणिनामपि अलं दोषाय भवति। एतत् गुणान् आच्छाद्य जायते॥ २४१ ॥

व्याख्या—पैशुन्यम् = द्विजिह्वता, चण्डता = उग्रता च क्रूरता, चौर्यम् = स्तेयम्, मात्सर्यम् = परोत्कर्षद्वेषत्वम्, अतिलोभता = अत्यन्तलोलुपता, असत्यम् = अनृतम्, कार्यघातित्वम् =

कार्यविनाशकत्वम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, अलसकताऽपि = आलस्यमपि, गुणिनाम् = गुणज्ञानामपि, अलम् = अत्यर्थम्, दोषाय = दुर्गुणाय भवति। एतच्च = पैशुन्यादिकञ्च, गुणान् = सत्त्वानि, आच्छाद्य = तिरोहितं कृत्वा, जायते = उत्पद्यते ॥ २४१ ॥

हिन्दी—चुगलखोरी, अधिक गुस्सा, चोरी, दूसरों की उन्नति से जलन, अधिक लोभ, असत्य भाषण, काम बिगाडना तथा अति आलस्य—ये सभी दुर्गुण हैं। अतः ये यदि गुणवानों को भी हों तो उनके सभी गुणों को ढक लेने में समर्थ होते हैं ॥ २४१ ॥

पैशुन्यमिति। पैशुन्यं शठता, चण्डता, तीक्ष्णता, चौर्य्यं मात्सर्य्यम् अन्यशुभद्वेषः अतिलोभता, असत्यं कार्य्यघातित्वं तथा अलसकता आलस्यं गुणिनामपि अलम् अत्यर्थं दोषाय भवति, एतच्च पैशुन्यादिकं गुणान् आच्छाद्य जायते ॥ २४१ ॥

मातुः प्रियायाः पुत्रस्य धनस्य च विनाशनम्।
बाल्ये मध्ये च वार्द्धक्ये महापापफलं क्रमात् ॥ २४२ ॥

अन्वयः—बाल्ये मातुः मध्ये प्रियायाः वार्द्धक्ये पुत्रस्य धनस्य च विनाशनं क्रमात् महापापफलं भवति ॥ २४२ ॥

व्याख्या—बाल्ये = शैशवे, मातुः = जनन्याः, मध्ये = तारुण्ये, प्रियायाः = प्रियपत्न्याः, वार्द्धक्ये = वृद्धावस्थायाम्, पुत्रस्य = सुतस्य, वित्तस्य च, विनाशम् = अवसादनम्, क्रमात् = क्रमशः, महापापफलम्—महान् चासौ पापः महापापः = महापातकः, तस्य फलम् = परिणामो भवति ॥ २४२ ॥

हिन्दी—बचपन में माँ का, जवानी में प्रियपत्नी का, बुढौती में बेटे और वित्त का विनाश—ये क्रमशः महापाप के परिणाम होते हैं ॥ २४२ ॥

मातुरिति। बाल्ये शैशवे मातुः, मध्ये मध्यमे वयसि यौवने इत्यर्थः, प्रियायाः स्त्रियाः, वार्द्धक्ये पुत्रस्य धनस्य च विनाशनं क्रमात् महापापफलम् ॥ २४२ ॥

श्रीमतामनपत्यत्वमधनानां च मूर्खता।
स्त्रीणां षण्डपतित्वं च न सौख्यायेष्टनिर्गमः ॥ २४३ ॥

अन्वयः—श्रीमताम् अनपत्यत्वं च अधनानां मूर्खता स्त्रीणां षण्डपतित्वम् इष्टानां निर्गमः न सौख्याय ॥ २४३ ॥

व्याख्या—श्रीमताम् = ऐश्वर्यवताम्, अनपत्यत्वम् = निःसन्तानत्वम्, च = पुनः, अधनानाम् = धनहीनानाम्, मूर्खता = मौर्ख्यम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, षण्डपतित्वम् = क्लीबस्वामित्वम्, इष्टानाम् = अभीप्सितवस्तूनाम्, निर्गमः = विच्छेदः, सौख्याय = सुखप्रदाय, न = नहि भवति ॥ २४३ ॥

हिन्दी—श्रीमानों की संतानहीनता, गरीबों की मूर्खता, औरतों के पतियों की नपुंसकता और अभीप्सित वस्तुओं की विनष्टि कभी भी सुखदायक नहीं होती है ॥ २४३ ॥

श्रीमतामिति। श्रीमताम् ऐश्वर्य्यशालिनाम् अनपत्यत्वम्, अधनानां दरिद्राणां मूर्खता, स्त्रीणां षण्डपतित्वं क्लीबपतित्वं तथा इष्टानां प्रियाणां वस्तूनां निर्गमः विच्छेदः न सौख्याय सुखाय न भवति केवलं दुःखायैवेत्यर्थः ॥ २४३ ॥

मूर्खः पुत्रोऽथवा कन्या चण्डी भार्य्या दरिद्रता।
नीचसेवा ऋणं नित्यं नैतत् षट्कं सुखाय च॥ २४४॥

अन्वयः—मूर्खः पुत्रः अथवा कन्या चण्डी भार्या दरिद्रता नीचसेवा नित्यं ऋणम् एतत् षट्कं सुखाय न भवति ॥ २४३ ॥

व्याख्या—मूर्खः = अज्ञः, पुत्रः = सुतः, अथवा = वा, कन्या = पुत्री, चण्डी = प्रचण्डकोपना, भार्या = पत्नी, दरिद्रता = निर्धनता, नीचसेवा—नीचस्य = अधमस्य, सेवा = परिचर्या, नित्यम् = प्रतिदिनम्, ऋणम् = पर्युदञ्चनम्, एतत् = पूर्वोक्तम्, षट्कम् = षड्विधम्, सुखाय = सुखप्रदाय, न = नहि, भवति ॥ २४४ ॥

हिन्दी—मूर्ख बेटा अथवा मूर्खा बेटी, क्रोध में जलने वाली पत्नी, गरीबी तथा नीच की सेवा, नित्य ऋण लेना—ये छः कभी सुखदायक नहीं होते हैं ॥ २४४ ॥

मूर्ख इति। मूर्खः पुत्रः अथवा मूर्खा कन्या, चण्डी कोपना भार्य्या, दरिद्रता, नीचसेवा, तथा नित्यं सततम् ऋणम् एतत् षट्कं सुखाय न, केवलं दुःखाय भवतीत्यर्थः ॥ २४४ ॥

नाध्यापने नाध्ययने न देवे न गुरौ द्विजे।
न कलासु न सङ्गीते सेवायां नार्जवे स्त्रियाम्॥ २४५॥
न शौर्य्ये न च तपसि साहित्ये रमते मनः।
यस्य मुक्तः खलः किं वा नररूपपशुश्च सः॥ २४६॥

अन्वयः—यस्य मनः अध्यापने न अध्ययने न देवे न गुरौ न द्विजे न कलासु न सङ्गीते न सेवायां न आर्जवे न स्त्रियां न शौर्ये न तपसि न साहित्ये रमते; सः मुक्तः वा खलः वा नररूपपशुः भवति ॥ २४५-२४६ ॥

व्याख्या—यस्य = जनस्य, मनः = चेतः, अध्यापने = पाठने, अध्ययने = पठने, न = नहि, देवे = देवार्चने, न, गुरौ = आचार्ये, न, द्विजे = ब्राह्मणसेवने, न, कलासु = अभिनयनृत्यादिषु, न, सङ्गीते = गायने, न, सेवायाम् = परिचर्यायाम्, न, आर्जवे = सरलव्यवहारे, न, स्त्रियाम् = नार्याम्, न, शौर्ये = पराक्रमे, न, तपसि = तपश्चर्यायाम्, न, साहित्ये = काव्यशास्त्रानुचिन्तने, न, रमते = अनुरज्यते, सः = जनः, मुक्तः = संसारबन्धनविमुक्तः, अथवा खलः = दुर्वृत्तः, अथवा, नररूपपशुः = पुच्छविषाणहीनः पशुतुल्यो भवति ॥ २४५-२४६ ॥

हिन्दी—जिसका मन पढ़ाने या पढ़ने में, देवकार्य में, गुरु में, ब्राह्मण में, कला में, संगीत में, नौकरी करने में, सरल व्यवहार में, स्त्री में, वीरता में, तपस्या में या साहित्य में न लगे वह या तो जीवन्मुक्त है या दुष्ट है अथवा नररूप में पशु है ॥ २४५-२४६ ॥

नेति। नेति। यस्य मनः अध्यापने न, अध्ययने न, देवे न, गुरौ न, द्विजे न, कलासु नृत्यादिषु न, सङ्गीते न, सेवायां न, आर्जवे सारल्यव्यवहारे न, स्त्रियां न, शौर्य्ये पराक्रमे न तपसि तपश्चय्यार्यां न, साहित्ये काव्यशास्त्रालोचनायाञ्च न रमते सः मुक्तः वा खलः वा नररूपपशुर्वा ॥ २४५-२४६ ॥

अन्योदयासहिष्णुश्च छिद्रदर्शी विनिन्दकः।
द्रोहशीलः स्वान्तमलः प्रसन्नास्यः खलः स्मृतः॥ २४७॥

अन्वयः—यः अन्योदयासहिष्णुश्च छिद्रदर्शी विनिन्दकः द्रोहशीलः प्रसन्नास्यः स्वान्तमलः खलः स्मृतः ॥ २४७ ॥

व्याख्या—यः = जनः, अन्योदयासहिष्णुश्च—अन्यस्य = अपरस्य, उदये = समुन्नतौ, असहिष्णुः = अमर्षणः, छिद्रदर्शी = दोषद्रष्टा, विनिन्दकः = अभ्यसूयकः, द्रोहशीलः = अन्यानिष्टचिकीर्षकः, प्रसन्नास्यः = प्रसन्नवदनः, किञ्च स्वान्तमलः = मलपूर्णान्तःकरणः, खलः = दुष्टः, स्मृतः = कथितः ॥ २४७ ॥

हिन्दी—जो दूसरों की तरक्की नहीं देख सकता, दूसरों के अवगुण ही ढूँढता है, दूसरों की निन्दा चाव से करता है, दूसरों का अहित ही सोचता है ऐसे ऊपर से हँसमुख और भीतर से गन्दे व्यक्ति को लोग खल कहते हैं ॥ २४७ ॥

अन्योदयासहिष्णुरिति। यः अन्यस्य उदये उन्नतौ असहिष्णुः छिद्रदर्शी दोषदर्शी, विनिन्दकः द्रोहशीलः अनिष्टकरणशीलः प्रसन्नास्यः प्रसन्नमुखः किन्तु स्वान्तमलः मलपूर्णान्तःकरणः, स खलः स्मृतः कथितः ॥ २४७ ॥

एकस्यैव न पर्य्याप्तमस्ति यद् ब्रह्मकोशजम्।
आशया वर्द्धितस्यास्ति तस्याल्पमपि पूर्त्तिकृत् ॥ २४८ ॥

अन्वयः—ब्रह्मकोशजं यत् पर्याप्तम् अस्ति तत् आशया वर्द्धितस्य तस्य एकस्यापि अल्पमपि पूर्त्तिकृत् न भवति ॥ २४८ ॥

व्याख्या—ब्रह्मकोशजम् = अखिलब्रह्माण्डे स्थितम्, यत् = वस्तु, पर्याप्तम् = प्रचुरम्, अस्ति = विद्यते, तदपि, आशया = आकाङ्क्षया, वर्द्धितस्य, तस्य = जनस्य, एकस्याऽपि = एकमात्रमपि, अल्पमपि = स्तोकमपि, पूर्त्तिकृत् = इच्छानिरोधकम्, न = नहि, भवति ॥ २४८ ॥

हिन्दी—ब्रह्माण्ड में विद्यमान जितनी वस्तुएँ हैं वे सभी आकांक्षा से बढ़ी किसी एक व्यक्ति को भी थोड़ी-सी इच्छा की भी संपूर्त्ति के लिए पर्याप्त नहीं होती है ॥ २४८ ॥

एकस्येति। ब्रह्मकोशजं ब्रह्माण्डजनितं यत् पर्य्याप्तं प्रचुरं वस्तु अस्ति तत् आशया वर्द्धितस्य प्रबलतृष्णस्य तस्य एकस्यापि अल्पमपि पूर्त्तिकृत् आशानिवारकं न ॥ २४८ ॥

करोत्यकार्य्यं साशोऽन्यं बोधयत्यनुमोदते ॥ २४९ ॥

अन्वयः—साशः अकार्यं करोति अन्यं बोधयति अनुमोदते च ॥ २४९ ॥

व्याख्या—साशः = आशया सह जनः, अकार्यम् = कुकृत्यम्, करोति = सम्पादयति, अन्यम् = अपरजनं, बोधयति = कर्त्तुं प्रेरयति, कृतञ्चाकार्यम्, अनुमोदयते = अनुमोदनं कुरुते ॥ २४९ ॥

हिन्दी—ऐसा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति स्वयं कुकर्म करता है, दूसरों को ऐसे काम करने के लिए उकसाता है तथा ऐसे कामों का अनुमोदन करता है ॥ २४९ ॥

करोतीति। साशः आशायुक्तः जनः अकार्य्यं करोति अन्यं बोधयति अकार्य्यकरणायेति शेषः अनुमोदते च ॥ २४९ ॥

भवन्त्यन्योपदेशार्थे धूर्त्ताः साधुसमाः सदा।
स्वकार्य्यार्थं प्रकुर्वन्ति ह्यकार्य्याणि शतन्तु ते ॥ २५० ॥

अन्वयः—धूर्त्ताः अन्योपदेशार्थे सदा साधुसमाः भवन्ति। स्वकार्यार्थम् ह्यकार्याणां शतं प्रकुर्वन्ति ॥ २५० ॥

व्याख्या—धूर्त्ताः = वञ्चकाः, अन्योपदेशार्थे—अन्यान् = अपरान् जनान् प्रति, उपदेशार्थे = उपदेशहेतवे, सदा = सर्वदा, साधुसमाः = सज्जनपुरुषाः इव भवन्ति, तु = किन्तु, ते = धूर्त्ताः, स्वकार्यार्थम् = निजकार्यसम्पादनाय, अकार्याणाम् = अपकर्मणाम्, शतम् = शतसंख्यकम्, प्रकुर्वन्ति = सम्पादयन्ति ॥ २५० ॥

हिन्दी—दूसरों को उपदेश देने के लिए धूर्त्त लोग सज्जनों की तरह व्यवहार करते हैं, किन्तु जब उनका स्वयं का काम उपस्थित होता है तो सैकड़ों कुकर्म करते हैं ॥ २५० ॥

भवन्तीति। धूर्त्ता जनाः अन्योपदेशार्थे अन्यान् प्रति उपदेशविषये सदा साधुतमाः भवन्ति, तु किन्तु ते धूर्त्ताः स्वकार्य्यार्थम् अकार्य्याणां शतं प्रकुर्वन्ति स्वयमिति शेषः ॥ २५० ॥

पित्रोराज्ञां पालयति सेवने च निरालसः।
छायेव वर्त्तते नित्यं यतते चागमाय वै ॥ २५१ ॥
कुशलः सर्वविद्यासु स पुत्रः प्रीतिकारकः।
दुःखदो विपरीतो यो दुर्गुणो धननाशकः ॥ २५२ ॥

अन्वयः—यः पुत्रः पित्रोः आज्ञां पालयति च सेवने निरालसः छाया इव नित्यं वर्त्तते, आगमाय वै यतते, तथा सर्वविद्यासु कुशलः सः पुत्रः प्रीतिकारकः। यश्च दुःखदः दुर्गुणः धननाशकः सः पुत्रः विपरीतो भवति ॥ २५१-२५२ ॥

व्याख्या—यः पुत्रः = सुतः, पित्रोः = जननीजनकयोः, आज्ञाम् = आदेशम्, पालयति = अनुकूलमाचरति, च = पुनः, सेवने = सेवकत्वे, निरालसः = आलस्यरहितः, सन्, छाया = भावानुगा, इव = यथा, नित्यम् = अहर्निशम्, वर्त्तते = विद्यते, आगमाय = धनप्राप्त्यर्थम्, वेदार्थज्ञानाय, वा, यतते = प्रयत्नं कुरुते, तथा सर्वविद्यासु = सकलशास्त्रेषु, कुशलः = प्रवीणः, सः = असौ, पुत्रः = सुतः, प्रीतिकारकः = प्रेमोत्पादको भवति। यश्च दुःखदः = क्लेशदः, दुर्गुणः = दुष्टगुणान्वितः, धननाशकश्च = धनविनाशकरश्च, स पुत्रः विपरीतः = दुःखदायको भवति ॥ २५१-२५२ ॥

हिन्दी—जो बेटा माँ-बाप की आज्ञा का पालन करता है, आलस्य छोड़कर उनकी सेवा करता है, छाया की तरह निरन्तर उनका अनुगमन करता है, धन और विद्या के अर्जन में निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, हरफनमौला (सभी विद्याओं में निपुण) होता है; वही बेटा माँ-बाप के लिए सुखदायी होता है। ठीक इसके विपरीत जो बेटा माँ-बाप की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करता है, दुराचारी होता है, संचित धन विनष्ट करता है; वह बेटा दुःखदायी होता है ॥ २५१-२५२ ॥

पित्रोरिति। कुशल इति। यः पुत्रः पित्रोः मातापित्रोः आज्ञां पालयति, सेवने परिचर्य्यायां पित्रोरिति शेषः, निरालसः आलस्यरहितः सन् छाया इव नित्यं वर्त्तते पितरौ ऽनुगच्छतीत्यर्थः, आगमाय धनागमाय वेदार्थज्ञानाय वा यतते चेष्टते तथा सर्वविद्यासु कुशलः निपुणः भवति सः पुत्रः प्रीतिकारकः पित्रोरानन्दवर्द्धनः। यश्च दुःखदः दुर्गुणः दोषवान् धननाशकश्च सः पुत्र विपरीतः केवलं क्लेशवर्द्धन इत्यर्थः ॥ २५१-२५२ ॥

पत्यौ नित्यं चानुरक्ता कुशला गृहकर्मणि।
पुत्रप्रसूः सुशीला या प्रिया पत्युः सुयौवना॥ २५३॥

अन्वयः—या पत्यौ नित्यम् अनुरक्ता च गृहकर्मणि कुशला पुत्रप्रसूः सुशीला तथा सुयौवना; सा पत्युः प्रिया भवति॥ २५३॥

व्याख्या—या = तरुणी, पत्यौ = स्वामिनि, नित्यम् = अहर्निशम्, अनुरक्ता = आसक्तचित्ता, च = पुनः, गृहकर्मणि = सदनकृत्ये, कुशला = दक्षा, पुत्रप्रसूः—पुत्राणाम् = सुतानाम्, प्रसूः = प्रसविनी, सुशीला = सच्चरित्रा, तथा = तेन प्रकारेण, सुयौवना = सुन्दरतरुणी, सा = युवती, पत्युः = स्वामिनः, प्रिया = प्रीतिकरा भवति॥ २५३॥

हिन्दी—जो नारी अहर्निश पति में आसक्त, गृहकार्य में निपुण, बेटों को जन्म देने वाली, सच्चरित्रा तथा सुन्दर युवती हो, वह पति को प्यारी होती है॥ २५३॥

पत्याविति। या नारी पत्यौ स्वामिनि नित्यं सततम् अनुरक्ता अनुरागिणी, गृहकर्म्मणि कुशला निपुणा, पुत्रप्रसूः पुत्रजननी, सुशीला तथा सुयौवना सा पत्युः प्रिया॥ २५३॥

पुत्रापराधान् क्षमते या पुत्रपरिपोषिणी।
सा माता प्रीतिदा नित्यं कुलटान्यातिदुःखदा॥ २५४॥

अन्वयः—या पुत्रापराधं क्षमते तथा पुत्रपरिपोषिणी सा माता नित्यं प्रीतिदा। अन्या कुलटा अतिदुःखदा भवति॥ २५४॥

व्याख्या—या = जननी, पुत्रापराधान्—पुत्राणाम् = सुतानाम्, अपराधान् = स्खलितानि, क्षमते = मृष्यति, तथा पुत्रपरिपोषिणी—पुत्राणां = सुतानाम्, परिपोषिणी = पालिनी, भवति, सा = माता = जननी, नित्यम् = सततम्, प्रीतिदा = आनन्ददायिनी भवति। अन्या = एतदतिरिक्ता, कुलटा = पुंश्चली माता, अतिदुःखदा = अत्यन्तपीडाप्रदा भवति॥ २५४॥

हिन्दी—जो माता पुत्रों के अपराधों को क्षमा करती है तथा उनके पालन-पोषण में निरत रहती है, वह माँ सदैव सुख देने वाली होती है तथा इसके विपरित व्यभिचारिणी माँ सदैव अत्यन्त दुःखदायिनी होती है॥ २५४॥

पुत्रापराधानिति। या माता पुत्रापराधान् क्षमते सहते तथा पुत्रपरिपोषिणी पुत्रपोषणे रता भवति सा माता नित्यं प्रीतिदा आनन्ददायिनी। अन्या एतद्व्यतिरिक्ता कुलटा व्यभिचारिणी माता अतिदुःखदा अत्यन्तदुःखदायिनी भवति॥ २५४॥

विद्यागमार्थं पुत्रस्य वृत्त्यर्थं यतते च यः।
पुत्रं सदा साधु शास्ति प्रीतिकृत् स पितानृणी॥ २५५॥

अन्वयः—यः पुत्रस्य विद्यागमार्थं वृत्त्यर्थं यतते, सदा पुत्रं साधु शास्ति च; सः पिता प्रीतिकृत् अनृणी च भवति॥ २५५॥

व्याख्या—यः = पिता, पुत्रस्य = तनयस्य, विद्यागमार्थम् = विद्याप्राप्त्यर्थम्, वृत्त्यर्थम् = आजीविकार्थम्, यतते = चेष्टते, सदा = सर्वदा, पुत्रम् = आत्मजम्, साधु = सुष्ठु, शास्ति = उपदिशति, च, सः पिता = जनकः, प्रीतिकृत् = आनन्ददायकः, अनृणी = पुत्रगतादृणान्मुक्तो भवति॥ २५५॥

हिन्दी—जो पिता पुत्र को विद्वान् बनाने के लिए तथा उसके जीवन-निर्वाह के लिए प्रयास करता है, बेटे को सदैव शुभ शिक्षण देता है एवं उस पर किसी के ऋण का भार नहीं सौंपता; वह आनन्ददायक पिता होता है और पुत्र के ऋण से मुक्त होता है ॥ २५५ ॥

विद्येति। यः पिता पुत्रस्य विद्यागमार्थं वृत्त्यर्थं जीवनार्थञ्च यतते, सदा सततं पुत्रं साधु शास्ति उपदिशति च सः पिता प्रीतिकृत् अनृणी च पुत्रागतादृणात् मुक्तः भवति ॥ २५५ ॥

यः सहायं सदा कुर्य्यात् प्रतीपं न वदेत् क्वचित्।
सत्यं हितं वक्ति याति दत्ते गृह्णाति मित्रताम् ॥ २५६ ॥

अन्वयः—यः सदा सहायं कुर्यात्, क्वचित् प्रतीपं न वदेत्, तथा सत्यं हितं वक्ति; सः मित्रतां याति दत्ते गृह्णाति ॥ २५६ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, सदा = सर्वदा, सहायम् = साहाय्यम्, कुर्यात् = विदध्यात्, क्वचित् = जने स्थाने च, प्रतीपम् = प्रतिकूलम्, न = नहि, वदेत् = कथयेत्, तथा सत्यम् = ऋतवचनम्, हितम् = हितकरम्, वक्ति = वदति, सः = असौ, मित्रताम् = सौहार्दताम्, याति = गच्छति, दत्ते = प्रदाने, गृह्णाति = ग्रहणं करोति ॥ २५६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति सदा सहायता करे, कभी विरोध में बात न करे, सच और हितकर वचन कहे, कुछ दे और प्रेमवश कुछ ले भी; वह स्वतः मित्र बन जाता है ॥ २५६ ॥

य इति। यः सदा सहायं कुर्य्यात्, क्वचिदपि जने प्रतीपं प्रतिकूलं न वदेत् तथा सत्यं हितं वक्ति वदति सः मित्रतां याति प्राप्नोति, दत्ते ददाति गृह्णाति च ॥ २५६ ॥

नीचस्यातिपरिचयो ह्यन्यगेहे सदा गतिः।
जातौ सङ्घे प्रातिकूल्यं मानहान्यै दरिद्रता ॥ २५७ ॥

अन्वयः—नीचस्य अतिपरिचयः, अन्यगेहे सदा गतिः, जातौ च सङ्घे प्रातिकूल्यं तथा दरिद्रता मानहान्यै भवति ॥ २५७ ॥

व्याख्या—नीचस्य = अधमस्य, अतिपरिचयः = अत्यभिज्ञता, अन्यगेहे = इतरजनगृहे, सदा = सर्वदा, गतिः = गमनम्, जातौ = वर्णविशेषे, च = पुनः, सङ्घे = समूहे, प्रातिकूल्यम् = वैपरीत्यम्, तथा दरिद्रता = अकिञ्चनता, मानहान्यै = अवधीरणाय भवति ॥ २५७ ॥

हिन्दी—नीचों के साथ अतिघनिष्ठता, दूसरों के घर बराबर आना-जाना, अपनी जाति या समाज के प्रतिकूल आचरण करना तथा गरीबी—ये मानहानि के कारण होते हैं ॥ २५७ ॥

नीचस्येति। नीचस्य इतरजनस्य अतिपरिचयः अतिसंसर्गः, अन्येषां गेहे सदा गतिः गमनं, जातौ ब्राह्मणक्षत्रियादिश्रेण्यां सङ्घे च समूहे च प्रातिकूल्यं प्रतिकूलाचरणं तथा दरिद्रता मानहान्यै मानक्षयाय भवतीति शेषः ॥ २५७ ॥

व्याघ्राग्निसर्पहिंस्त्राणां न हि सङ्घर्षणं हितम्।
सेवितत्वात्तु राज्ञो नैते मित्राः कस्य सन्ति किम्? ॥ २५८ ॥

अन्वयः—राज्ञः सेवितत्वात् तथा व्याघ्राग्निसर्पहिंस्त्राणां सङ्घर्षणं नहि हितम्। एते किं कस्यापि मित्राः सन्ति? ॥ २५८ ॥

व्याख्या—राज्ञः = नृपस्य, सेवितत्वात् = उपासितत्वादर्थात् मया नृपस्य सुष्ठुतया सेवा कृता, तेन सः प्रसन्नोऽस्ति, मम किं करिष्यति, इति साहसादिति, तथा व्याघ्राग्निसर्पहिंस्राणाम्—व्याघ्राणाम् = शार्दूलानाम्, अग्नेः = वह्नेः, सर्पाणाम् = नागानाम्, अन्येषाम् हिंस्राणाम् = हिंसकजन्तूनाम्, सङ्घर्षणम् = विजिगीषा, नहि = नैव, हितम् = लाभकरम्। एते = नृपव्याघ्रादयः, किमिति प्रश्ने, कस्यापि = जनस्य, मित्राः = सुहृदः, इति आर्षप्रयोगः, सन्ति = भवन्ति, नास्तीति भावः॥ २५८ ॥

हिन्दी—मैंने इनकी सेवा की हैं, इस साहस से राजा, बाघ, आग, साँप या अन्य हिंसक जन्तु को जीतने की इच्छा कभी हितकर नहीं होती। क्योंकि ये किसी के मित्र नहीं होते॥ २५८ ॥

व्याघ्रेति। राज्ञः सेवितत्वात् मया राजा सेवितः अन्ये मम के इति साहसादिति भावः, तथा व्याघ्राणाम् अग्नेः सर्पाणाम् अन्येषां हिंस्राणाञ्च सङ्घर्षणम् आक्रमणं न हि नैव हितम्। एते नृपव्याघ्रादयः किं कस्यापि मित्राः सन्ति? वशतामापद्यन्ते? न कस्यापीत्यर्थः॥ २५८ ॥

दौर्मनस्यं च सुहृदां सुप्राबल्यं रिपोः सदा।
विद्वत्स्वपि च दारिद्र्यं दारिद्र्ये बह्वपत्यता॥ २५९ ॥
धनिगुणिवैद्यनृपजलहीने सदा स्थितः।
दुःखाय कन्यकाप्येका पित्रोरपि च याचनम्॥ २६० ॥

अन्वयः—सुहृदां दौर्मनस्यं च सदा रिपोः सुप्राबल्यं विद्वत्स्वपि दारिद्र्यं दारिद्र्ये बह्वपत्यता धनिगुणिवैद्यनृपजलहीने सदा स्थितिः पित्रोः एका कन्या तथा याचनं दुःखाय भवति॥ २४९-२६२ ॥

व्याख्या—सुहृदाम् = मित्राणाम्, दौर्मनस्यम् = वैमनस्यम्, च = पुनः, सदा = सर्वदा, रिपोः = शत्रोः, सुप्राबल्यम् = सुप्रभविष्णुत्वम्, विद्वत्स्वपि = विपश्चित्स्वपि, दारिद्र्यम् = दरिद्रता, दारिद्र्ये = निर्धनत्वे, बह्वपत्यता = सन्तानाधिक्यता, धनिभिः = धनिकैः, गुणिभिः = गुणविद्भ्यः, वैद्यैः = चिकित्सकैः, नृपेण = राज्ञा, जलेन = सलिलेन, च = पुनः, हीने = रहिते, सदा = सर्वदा, स्थितिः = अवस्थानम्, पित्रोः = मातापित्रोः, एका = एकमात्राऽपि, कन्या = पुत्री, तथा = तेनैव प्रकारेण, याचनम् = भिक्षाटनम्, दुःखाय = क्लेशाय भवति॥ २५९ ॥

हिन्दी—मित्रों का मनमुटाव, दुश्मनों की हमेशा प्रबलता, विद्वानों की गरीबी, गरीबों की अधिक संतति, धनी, गुणी, वैद्य, राजा तथा जल से रहित देश में सदा निवास करना माँ-बाप के लिए बेटी का जन्म और किसी से कुछ भी माँगना—ये सभी दुःखदायी होते हैं॥ २५९-२६० ॥

दौर्मनस्यमिति। **धनीति**। सुहृदां बन्धूनां दौर्मनस्यं दुःखितमनस्कत्वं सदा रिपोः शत्रोः प्राबल्यं प्रबलता, विद्वत्स्वपि पण्डितेषु अपि दारिद्र्यं निर्धनत्वं, दारिद्र्ये बह्वपत्यता बहुपुत्रत्वं, धनिभिः गुणिभिः वैद्यैः नृपेण जलेन च हीने देशे इति शेषः, सदा स्थितिः अवस्थानं, पित्रोः मातापित्रोः एका एकमात्रा कन्या, तथा याचनं भिक्षा दुःखाय भवतीति शेषः॥ २५९-२६० ॥

सुरूपः सधनः स्वामी विद्वानपि बलाधिकः।

न कामयेद् यथेष्ट यत् स्त्रीणां नैव सुसौख्यकृत्॥ २६१ ॥

अन्वयः—सुरूपः सधनः विद्वान् बलाधिकः स्वामी यत् यथेष्टं न कामयेत् तदा स्त्रीणां सुसौख्यकृत् नैव ॥ २६१ ॥

व्याख्या—सुरूपः = सुन्दरः, सधनः = धनी, विद्वान् = ज्ञानवान्, बलाधिकः = शक्तिसम्पन्नोऽपि, स्वामी = पतिः, यत् = यदि, यथेष्टम् = यथेप्सितम्, न = नहि, कामयेत् = अभिलषेत्, तदासौ स्त्रीणाम् = नारीणाम्, नैव, सुसौख्यकृत् = अत्यानन्ददायकः, न = नहि, भवतीति शेषः ॥ २६१ ॥

हिन्दी—पति भले ही सुन्दर, धनी, बली और विद्वान् हो, पर पत्नी से प्रेम न करे तो स्त्री के लिए वह आनन्ददायक नहीं होता; क्योंकि नारी प्रेमदीवानी होती है ॥ २६१ ॥

सुरूप इति। सुरूपः रूपवान् सधनः धनवान् विद्वान् बलाधिकः बलवानपि स्वामी यत् यदि यथेष्टं न कामयेत् न प्रणयं दर्शयेत् तदासौ स्त्रीणां नैव सुसौख्यकृत् सुखकरः न भवतीत्यर्थः ॥ २६१ ॥

यो यथेष्टं कामयते स्त्री तस्य वशगा भवेत्।
सन्धारणाल्लालनाच्च यथा याति वशं शिशुः ॥ २६२ ॥

अन्वयः—यः यथेष्टं कामयते स्त्री तस्य वशगा भवेत्। यथा शिशुः सन्धारणात् लालनात् वशं याति ॥ २६२ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, यथेष्टम् = पर्याप्तम्, कामयते = प्रणयं प्रदर्शयति, स्त्री = नारी, तस्य = पुरुषस्य, वशगा = वशवर्त्तिनी, भवेत् = जायेत। यथा = येन प्रकारेण, शिशुः = बालः, सन्धारणात् = क्रोडे वहनात्, लालनात् = संवर्द्धनात्, वशम् = अधीनस्थम्, याति = गच्छतीति ॥ २६२ ॥

हिन्दी—जो पुरुष स्त्री से जितना अधिक प्यार करता है, वह नारी उतना ही अधिक उसकी वशवर्तिनी होती है। ठीक उस बच्च की तरह जिसे गोद में उठाकर लाड़-प्यार देकर वशवर्ती बनाया जाता है ॥ २६२ ॥

य इति। यः स्वामी यथेष्टं कामयते प्रणयं दर्शयति स्त्री तस्य वशगा वशवर्त्तिनी भवेत्। यथा शिशुः सन्धारणात् सम्यक् क्रोडे धारणादित्यर्थः, लालनाच्च वशं याति तद्वदिति भावः ॥ २६२ ॥

कार्य्यं तत्साधकादींश्च तद्व्ययं सुविनिर्गमम्।
विचिन्त्य कुरुते ज्ञानी नान्यथा लघ्वपि क्वचित् ॥ २६३ ॥

अन्वयः—ज्ञानी कार्यं तत्साधकादीन् तद्व्ययं सुविनिर्गमं विचिन्त्य कुरुते। अन्यथा लघ्वपि क्वचित् न कुर्यात् ॥ २६३ ॥

व्याख्या—ज्ञानी = बुद्धिमान् जनः, कार्यम् = अनुष्ठेयकृत्यम्, तत् = तस्य कार्यस्य, साधकादीन् = साधनानि च, तत् = तस्मिन् कृत्ये, यः व्ययः = निर्गमः, तम्, सुविनिर्गमम् = सुनिश्चितं व्ययम्, विचिन्त्य = विचार्य, कुरुते = निष्पादयेत्। अन्यथा = इतरथा, लघ्वपि = क्षुद्रोऽपि, क्वचित् = कदाचित्, न विधेयात् ॥ २६३ ॥

हिन्दी—जानकार व्यवसायी किसी भी काम को शुरू करने के पहले यह काम कैसा है? इसके साधन क्या हैं? इस काम का लागत कितना है? इसकी खपत क्या है? अथवा किये

गये व्यय पर क्या लाभ होगा? इन समस्त बातों पर भलीभाँति विचार कर ही कोई काम शुरू करता है। अन्यथा बिना विचारे वह छोटे-से-छोटे काम को भी नहीं करता है ॥ २६३ ॥

कार्य्यमिति। ज्ञानी जनः कार्य्यं तत्साधकादीन् तस्य कार्य्यस्य उपायान् तद्व्ययं तस्मिन् कार्य्ये यः व्ययः तं सुविनिर्गमं सुनिश्चितं विनिर्गमं विचिन्त्य विविच्य कुरुते कुर्य्यात्। अन्यथा लघु अपि कार्य्यं क्वचित् कदाचित् न कुर्य्यादिति भावः॥ २६३ ॥

न च व्ययाधिकं कार्य्यं कर्त्तुमीहेत पण्डितः।
लाभाधिक्यं यत् क्रियते तत् सेव्यं व्यवसायिभिः।
मूल्यं मानञ्च पण्यानां याथात्म्यान्मृग्यते सदा॥ २६४॥

अन्वयः—पण्डितः व्ययाधिकं कार्यं कर्त्तुं न ईहेत। यत् लाभाधिक्यं क्रियते तत् व्यवसायिभिः सेव्यम्। सदा च पण्यानां मूल्यं मानं परिमाणञ्च याथात्म्यात् मृग्यते ॥ २६४ ॥

व्याख्या—पण्डितः = ज्ञानीजनः, व्ययाधिकम् = वित्ताधिक्यविनियोगम्, कार्यम् = व्यवसायम्, कर्त्तुम् = अनुष्ठातुम्, न = नहि, ईहेत = चेष्टेत। यत् = विधेयम्, लाभाधिक्यम् = अधिकलाभप्रदम्, तत् = कार्यम्, क्रियते = विधेयात्। तत् = तदेव कार्यम्, व्यवसायिभिः = उद्यमिभिः, सेव्यम् = कारणीयम्। सदा च = सर्वदा च, पण्यानाम् = क्रयविक्रयवस्तूनाम्, मूल्यम् = वस्नं पण्यो वा, मानम् = यौतवम्, द्रुवयं वा, परिमाणञ्च = वस्तूनां मात्रा, इयत्ता वा, याथात्म्यात् = यथार्थरूपेण, मृग्यते = अन्विष्यते ॥ २६४ ॥

हिन्दी—ज्ञानीजन को अधिक खर्च और कम आमदनी वाले काम करने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। अधिक लाभ वाले काम ही उद्यमियों को शुरू करना चाहिए, अन्य कम लाभ वाले काम को तो छोड़ ही देना चाहिए। हमेशा बेचने वाली वस्तु का मूल्य, तौल और मात्रा की सही जानकारी रखनी चाहिए ॥ २६४ ॥

न चेति। पण्डितः जनः व्ययाधिकम् अधिकव्ययम् अल्पलाभमिति भावः, कार्य्यं कर्तुं न च ईहेत चेष्टेत। यत् कार्य्यं लाभाधिक्यं क्रियते तत् कार्य्यं व्यवसायिभिः सेव्यम् अन्यत् अल्पलाभजनकं कार्य्यं न करणीयमिति भावः। सदा च पण्यानां विक्रेयद्रव्याणां मूल्यं मानं परिमाणञ्च याथात्म्यात् सत्यरूपेण मृग्यते अन्विष्यते ॥ २६४ ॥

तपःस्त्रीकृषिसेवासूपभोग्ये नापि भक्षणे।
हितः प्रतिनिधिर्नित्यं कार्य्येऽन्ये तं नियोजयेत्॥ २६५ ॥

अन्वयः—तपःस्त्रीकृषिसेवासु उपभोग्ये भक्षणे च प्रतिनिधिः न हितः। अन्ये कार्ये नित्यं तं नियोजयेत् ॥ २६५ ॥

व्याख्या—तपः = नियमस्थितिः, स्त्री = पत्नी, कृषिः = हलभृतिः, सेवा = भृत्यभावः, एतासु = पूर्वोक्तासु, उपभोग्ये = सुखास्वादने, भक्षणे = भोजनविषये च, प्रतिनिधिः = प्रतिहस्तकः, न = नहि, हितः = लाभकरः भवति। अन्ये = अन्यस्मिन्, आर्षोऽयं प्रयोगः, कार्ये = कर्मणि, नित्यम् = अनुपलम्, तम् = प्रतिनिधिम्, नियोजयेत् = प्रेरयेत् ॥ २६५ ॥

हिन्दी—तपस्या, स्त्री, खेती, नौकरी के उपभोग में तथा भोजन में अपना प्रतिनिधि किसी को बनाना कभी लाभदायक नहीं होता है। इनसे भिन्न कार्यों के लिए प्रतिनिधि का नियोजन ठीक होता है ॥ २६५ ॥

तप इति। तपः तपश्चरणं स्त्री पत्नी कृषिः कर्षणं सेवा एतासु उपभोग्ये भक्षणे च विषये प्रतिनिधिः न हितः। अन्ये अन्यस्मिन् आर्षोऽयं प्रयोगः, कार्य्ये नित्यं सततं तं प्रतिनिधिं योजयेत् ॥ २६५ ॥

निर्जनत्वं मधुरभुग् जारश्चोरः सदेच्छति।
साहाय्यन्तु बलिद्विष्टो वेश्या धनिकमित्रताम् ॥ २६६ ॥

अन्वयः—मधुरभुक् जारः चोरः सदा निर्जनत्वं बलिद्विष्टः साहाय्यं तथा वेश्या धनिकमित्रताम् इच्छति ॥ २६६ ॥

व्याख्या—मधुरभुक् = मिष्टान्नभोजी, जारः = परदारलम्पटः, चोरः = तस्करः, सदा = सर्वदा, निर्जनत्वम् = जनशून्यत्वम्, बलिद्विष्टः = सशक्तशत्रुः, साहाय्यम् = सहायकः, तथा = तेनैव रूपेण, वेश्या = गणिका, धनिकमित्रताम्—धनिकैः = धनिभिः, सह मित्रताम् = सौहार्दम्, इच्छति = अभिलषति ॥ २६६ ॥

हिन्दी—मिठाई खाने वाला, व्यभिचारी और चोर हमेशा एकान्त स्थान चाहते हैं। शक्तिशाली शत्रु से सताया गया व्यक्ति किसी की सहायता खोजता है और वेश्या धनिकों के साथ दोस्ती चाहती है ॥ २६६ ॥

निर्जनत्वमिति। मधुरभुक् मिष्टभोजी जारः परस्त्रीकामुकः चोरश्च सदा निर्जनत्वं बलिद्विष्टः प्रबलशत्रुः साहाय्यं, तथा वेश्या धनिकमित्रतां धनिभिः बन्धुत्वम् इच्छति ॥ २६६ ॥

कुनृपश्च छलं नित्यं स्वामिद्रव्यं कुसेवकः।
तत्त्वन्तु ज्ञानवान् दम्भं तपोऽग्निं देवजीवकः ॥ २६७ ॥

अन्वयः—कुनृपः छलं कुसेवकः स्वामिद्रव्यं ज्ञानवान् तत्त्वं तु देवजीवकः दम्भं तपः अग्निश्च इच्छति ॥ २६७ ॥

व्याख्या—कुनृपः—कुत्सितः = गर्हितः, नृपः = राजा, छलम् = कपटम्, कुसेवकः = कुत्सितकिङ्करः, स्वामिनः = प्रभोः, द्रव्यम् = धनम्, ज्ञानवान् = ज्ञानीजनः, तत्त्वम् = सारम्, तु = किन्तु, देवजीवकः = वेतनभोगी प्रतिमापूजकः, दम्भम् = पाखण्डम्, तपः = तपस्या, च = पुनः, अग्निः = वह्निः, इच्छतीति पूर्वेणान्वयः ॥ २६७ ॥

हिन्दी—नीच राजा छल की, दुष्ट नौकर मालिक के धन की, ज्ञानीजन तत्त्व जानने की, वेतनभोगी पुजारी पाखण्ड, तप और आग की हमेशा इच्छा करते हैं ॥ २६७ ॥

कुनृप इति। कुनृपः कुत्सितो राजा छलं, कुसेवकः कुभृत्यः स्वामिनः द्रव्यं, ज्ञानवान् तत्त्वं तथा देवजीवकः देवसेवकः दम्भं तपः अग्निञ्च इच्छतीति पूर्वेणान्वयः ॥ २६७ ॥

योग्या कान्तं च कुलटा जारं वैद्यं च व्याधितः।
धृतपण्यो महार्घत्वं दानशीलन्तु याचकः।
रक्षितारं मृगयते भीतश्छिद्रन्तु दुर्जनः ॥ २६८ ॥

अन्वयः—योग्या कान्तं कुलटा जारं व्याधितः वैद्यं धृतपण्यः महार्घत्वं याचकः दानशीलं भीतः रक्षितारं तथा दुर्जनः तु छिद्रं मृगयते ॥ २६८ ॥

व्याख्या—योग्या = युवतीकुलवधूः, कान्तम् = निजपतिम्, कुलटा = व्यभिचारिणी स्त्री,

जारम् = उपपतिम्, व्याधितः = रोगग्रस्तः, वैद्यम् = चिकित्सकम्, धृतपण्यः = आपणिकः, महार्घत्वम् = बहुमूल्यता, याचकः = भिक्षुकः, दानशीलम् = दानीजनम्, भीतः = भयाक्रान्तः, रक्षितारम् = गोप्तारम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, दुर्जनः = दुष्टः, छिद्रम् = दोषम्, मृगयते = अन्विष्यते ॥ २६८ ॥

हिन्दी—युवा कुलवधू अपने पति को, कुलटा औरत जार को, रोगी वैद्य को, दूकानदार महँगाई को, भिखारी दाता को, डरा हुआ आदमी बचाने वाले को, दुर्जन दूसरों के दोष को या बुराई के अवसर को सदैव दूढ़ते रहते हैं ॥ २६८ ॥

योग्या इति। योग्या समर्था कुलवधूः कान्तं पतिं, कुलटा व्यभिचारिणी जारम् उपपतिं, व्याधितः रोगी वैद्यं, धृतपण्यः पण्यविक्रयी महार्घत्वं द्रव्यस्य महामूल्यतां, याचकः भिक्षुः दानशीलं जनं, भीतः रक्षितारं, तथा दुर्जनः छिद्रं छलं मृगयते अन्वेषति ॥ २६८ ॥

चण्डायते विवदते स्वपित्यश्नाति मादकम्।
करोति निष्फलं कर्म मूर्खो वा स्वेष्टनाशनम्॥ २६९ ॥

अन्वयः—मूर्खः चण्डायते, विवदते, स्वपिति, मादकम् अश्नाति, कर्म निष्फलं करोति वा स्वेष्टनाशनं करोति ॥ २६९ ॥

व्याख्या—मूर्खः = अज्ञः, चण्डायते = प्रचण्ड इवाचरति, विवदते = अकारणविवादं कुरुते, स्वपिति = अनवसरे अपि निद्राति, मादकम् = मदजनकपदार्थम्, अश्नाति = भक्षयति, कर्म = कृत्यम्, निष्फलम् = परिणामशून्यं, करोति = विदधति, वा = अथवा, स्वेष्टनाशनम्—स्वस्य = आत्मनः, इष्टनाशनम् = अभीष्टविनाशम्, करोतीति भावः ॥ २६९ ॥

हिन्दी—मूर्खजन कभी क्रोधी की तरह आचरण करता है, कभी झगड़ता है, कभी अनवसर ही सोता है, तो कभी मादक पदार्थ का सेवन करता है, कभी काम बिगाड़ता है तो कभी अपना अभीष्ट ही समाप्त कर देता है ॥ २६९ ॥

चण्डायते इति। मूर्खः जनः चण्डायते तीक्ष्णवत् आचरति, विवदते कलहं करोति, स्वपिति अधिकं निद्रातीत्यर्थः, मादकं मत्तताजनकं द्रव्यम् अश्नाति भक्षयति, कर्म्म निष्फलं करोति, स्वस्य आत्मनः इष्टनाशनं वा करोति, वाशब्दः समुच्चयार्थः ॥ २६९ ॥

तमोगुणाधिकं क्षात्रं ब्राह्मं सत्त्वगुणाधिकम्।
अन्यद्रजोऽधिकं तेजस्तेषु सत्त्वाधिकं वरम्॥ २७० ॥

अन्वयः—क्षात्रं तमोगुणाधिकं तेजः ब्राह्मं सत्त्वगुणाधिकम् अन्यत् रजोऽधिकं तेजः। तेषु सत्त्वाधिकं वरम् ॥ २७० ॥

व्याख्या—क्षात्रम् = क्षत्रियसम्बन्धिनम्, तेजः = वर्चस्वः, तमोगुणाधिकम् = तमोगुणबहुलम्, ब्राह्मणम् = ब्राह्मणसम्बन्धि, तेजः = ओजः, सत्त्वगुणाधिकम् = सात्त्विकगुणविशिष्टम्, अन्यत् = वैश्यादिकं तेजस्तु, रजोऽधिकं = रजोगुणबहुलं भवति। तेषु = त्रिषु मध्ये, सत्त्वाधिकम् = ब्राह्मतेजः, वरम् = श्रेष्ठम्, भवति ॥ २७० ॥

हिन्दी—क्षत्रियों का तेज अधिक तमोगुणी, ब्राह्मणों का तेज अधिक सत्त्वगुणी तथा अन्यों का अर्थात् वैश्यों का तेज अधिक रजोगुणी होता है। इन सबों में सतोगुणी ब्राह्मतेज ही श्रेष्ठ है ॥ २७० ॥

तम इति। क्षात्रं क्षत्रियसम्बन्धि तेजः तमोगुणाधिकम् अधिकतमोगुणं, ब्राह्मं तेजः सत्त्वगुणाधिकम् अन्यत् वैश्यादिकं तेजः रजोऽधिकं तेषु मध्ये सत्त्वाधिकं तेजः ब्राह्ममित्यर्थः, वरं श्रेष्ठम् ॥ २७० ॥

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणा।
तत्तेजसोऽनुतेजांसि सन्ति च क्षत्रियादिषु ॥ २७१ ॥

अन्वयः—ब्राह्मणस्तु स्वकर्मणा सर्वाधिकः हि जायते। क्षत्रियादिषु तत् तेजसः अनुतेजांसि सन्ति ॥ २७१ ॥

व्याख्या—ब्राह्मणस्तु = विप्र एव, स्वकर्मणा—स्वेन = निजेन, कर्मणा = कार्येण, सर्वाधिका = सर्वातिशायी तेजः, जायते = भवति, क्षत्रियादिषु = क्षत्रियवैश्यादिषु, तत् = तस्य, तेजसः = ओजसः, अनु = तस्मात् हीनानि, तेजांसि = ओजांसि, सन्ति = भवन्ति ॥ २७१ ॥

हिन्दी—और इन सबों में ब्राह्मण ही अपने अध्ययन-अध्यापनादि छः कर्मों से सर्वातिशायी श्रेष्ठ होता है। क्षत्रियादि अन्य वर्णों के तेज ब्राह्मणतेज की अपेक्षा कम होता है ॥ २७१ ॥

सर्वाधिक इति। ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण एव स्वकर्म्मणा निजेन कर्म्मणा अध्यापनादिकर्म्मषट्केन सर्वाधिकः सर्वश्रेष्ठः जायते। क्षत्रियादिषु तस्य ब्राह्मणस्य यत् तेजः तस्य अनु तस्मात् हीनानीत्यर्थः तेजांसि सन्ति ॥ २७१ ॥

स्वधर्मस्थं ब्राह्मणं हि दृष्ट्वा बिभ्यति चेतरे।
क्षत्रियाद्या नान्यथा स्वधर्मञ्चातः समाचरेत् ॥ २७२ ॥

अन्वयः—ब्राह्मणं स्वधर्मस्थं दृष्ट्वा इतरे क्षत्रियाद्याश्च बिभ्यति, अन्यथा न। अतः स्वधर्मं समाचरेत् ॥ २७२ ॥

व्याख्या—ब्राह्मणं = विप्रम्, स्वधर्मस्थम् = निजधर्मे स्थितम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, इतरे = भिन्नजनाः क्षत्रियाद्याश्च = क्षत्रियप्रभृतयश्च, बिभ्यति = भीता भवन्ति, अन्यथा = इतरथा, न = नहि। अतः = अस्मात् कारणात्, स्वधर्मम् = आत्मनः धर्मम्, समाचरेत् = सुष्ठुतया आचरेत् ॥ २७२ ॥

हिन्दी—ब्राह्मण को अपने धर्म में लगे देखकर प्रायः क्षत्रियादि सभी जाति के लोग उससे डरते हैं; अन्यथा नहीं। अतः ब्राह्मण को अपने धर्म का सदैव पालन करना चाहिए ॥ २७२ ॥

स्वधर्म्मस्थमिति। ब्राह्मणं स्वधर्म्मस्थं दृष्ट्वा इतरे जनाः क्षत्रियाद्याश्च बिभ्यति भीता भवन्ति अन्यथा न, स्वधर्म्मभ्रंशे नेत्यर्थः। अतः कारणात् स्वधर्मं समाचरेत् ब्राह्मण इति शेषः ॥ २७२ ॥

न स्यात् स्वधर्महानिस्तु यया वृत्त्या च सा वग।
स देशः प्रवरो यत्र कुटुम्बपरिपोषणम् ॥ २७३ ॥

अन्वयः—यया वृत्त्या स्वधर्महानिः न स्यात् सा वरा, यत्र कुटुम्बपोषणं सः देशः प्रवरो भवति ॥ २७३ ॥

व्याख्या—यया वृत्त्या = जीविकया, स्वधर्महानिः—स्वस्य = आत्मनः, धर्मस्य = पुण्यकर्मणः, हानिः = क्षतिः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, सा = वृत्तिः, वरा = श्रेष्ठा भवति, यत्र = यस्मिन् स्थाने,

कुटुम्बपरिपोषणम्—कुटुम्बानाम् = पोष्यवर्गाणाम्, परिपोषणम् = सुष्ठुरूपेण पालनं भवति, सः = असौ, देशः = जनपदः, प्रवरः = श्रेष्ठतमो भवति ॥ २७३ ॥

हिन्दी—जिस आजीविका से अपने धर्म की हानि न हो, वही आजीविका श्रेष्ठ है। जिस स्थान में अपने कुटुम्बों का ठीक ढंग से भरण-पोषण हो, वही देश सर्वोत्कृष्ट देश है ॥ २७३ ॥

नेति। यया वृत्त्या जीविकया स्वस्य धर्महानिः न स्यात् सा वृत्तिः वरा श्रेष्ठा, यत्र कुटुम्बानां पोष्यवर्गाणां परिपोषणं सर्वतोभावेन पोषणं भवति सः देशः प्रवरः श्रेष्ठः ॥ २७३ ॥

कृषिस्तु चोत्तमा वृत्तिर्या सरिन्मातृका मता।
मध्यमा वैश्यवृत्तिस्तु शूद्रवृत्तिस्तु चाधमा ॥ २७४ ॥

अन्वयः—सरिन्मातृका या कृषिः सा उत्तमा वृत्तिः मता, वैश्यानां वृत्तिः मध्यमा, शूद्राणान्तु वृत्तिः अधमा ॥ २७४ ॥

व्याख्या—सरिन्मातृका = नदीमातृका, या कृषिः = हलभृतिः, सा उत्तमा = श्रेष्ठतमा, वृत्तिः = आजीविका, मता = कथिता, वैश्यानाम् = वणिजाम्, वृत्तिः = पण्याजीविका, मध्यमा, शूद्राणाम् = दासानाम्, वृत्तिः = सेवावृत्तिः, अधमा = निकृष्टा भवति ॥ २७४ ॥

हिन्दी—नदी से सींची जाने वाली खेती उत्तम आजीविका है, व्यापार या दुकानदारी मध्यम वृत्ति है तथा शूद्रों की आजीविका सेवाकर्म निकृष्ट कहा जाता है ॥ २७४ ॥

कृषिरिति। सरिन्मातृका नदीमातृका या कृषिः सा उत्तमा वृत्तिः मता, वैश्यानां वृत्तिः व्यवसायात्मिकेत्यर्थः, मध्यमा शूद्राणान्तु वृत्तिः सेवारूपेत्यर्थः अधमा ॥ २७४ । ।

याच्ञाधमतरा वृत्तिर्ह्युत्तमा सा तपस्विषु।
क्वचित् सेवोत्तमा वृत्तिर्धर्मशीलनृपस्य च ॥ २७५ ॥

अन्वयः—याच्ञा वृत्तिः अधमतरा, सा तपस्विषु हि उत्तमा। क्वचित् धर्मशीलनृपस्य च सेवा उत्तमा ॥ २७५ ॥

व्याख्या—याच्ञा = भिक्षा, वृत्तिः = आजीविका, अधमतरा = निकृष्टतरा, सा = याच्ञावृत्तिः, तपस्विषु = तापसेषु, हि = इति निश्चयेन, उत्तमा = उत्कृष्टा वृतिर्भवति। क्वचित् = कुत्रापि, धर्मशीलनृपस्य = धर्मात्मनो राज्ञः, सेवा = सेवावृत्तिरपि, उत्तमा = उत्कृष्टा भवति ॥ २७५ ॥

हिन्दी—भीख माँगना निकृष्ट कोटि की आजीविका है; किन्तु वही भिक्षावृत्ति तपस्वियों के लिए उत्कृष्ट कोटि की आजीविका मानी जाती है। कहीं पर धर्मशील राजा की सेवा भी उत्तम मानी गई है ॥ २७५ ॥

याच्ञेति। याच्ञा वृत्तिः अधमतरा अत्यधमा, सा तपस्विषु उत्तमा हि। क्वचित् धर्म्मशीलनृपस्य सेवारूपा वृत्तिः उत्तमा ॥ २७५ ॥

आध्वर्य्यवादिकं कर्म कृत्वा या गृह्यते भृतिः।
सा किं महाधनायैव? वाणिज्यमलमेव किम्? ॥ २७६ ॥

अन्वयः—आध्यर्यवादिकं कर्म कृत्वा या भृतिः गृह्यते सा किं महाधनायैव? वाणिज्यम् अलं महाधनाय किम्? ॥ २७६ ॥

CC-0. Nepal Sahskrit Academy, Kathmandu Collection

व्याख्या—अध्वर्यवादिकम् = यज्ञे यजुर्वेदमन्त्रपाठादिकम्, कर्म = अनुष्ठानम्, कृत्वा = सम्पाद्य, या भृतिः = आजीविका, गृह्यते = स्वीक्रियते, तत् = दक्षिणास्वरूपप्राप्तद्रव्यम्, महाधनाय = अतिसम्पदे, किमिति प्रश्ने? यत्किञ्चिद्दक्षिणां स्वीकृत्य कोऽपि जनः महाधनी भवितुं न शक्यते इत्यर्थः। तथैव वाणिज्यम् = व्यापारम्, अलम् = पर्याप्तम्, महाधनाय = अतिसम्पन्नाय, किमिति प्रश्ने, नैवेत्यर्थः ॥ २७६ ॥

हिन्दी—यज्ञ में यजुर्वेदोक्त मंत्रों का पाठ कर उसके बदले थोड़ी दक्षिणा स्वीकार कर कोई महाधनी बन सकता है? अथवा वाणिज्य-व्यापार के माध्यम से ही कोई पर्याप्त धनी बन सकता है? अर्थात् नहीं ॥ २७६ ॥

आध्वर्य्यवादिकमिति। आध्वर्य्यवादिकम् अध्वर्य्युकर्म्मादि यजुर्वेदादिविहितं कर्म्म कृत्वा या भृतिः दक्षिणारूपं वेतनं गृह्यते, सा भृतिः महाधनाय किं? नैव महाधनाय भवति तस्या यत्किञ्चिद्रूपत्वादिति भावः, तथा वाणिज्यम् अलं पर्य्याप्तं महाधनायेति शेषः किम्? नैवेत्यर्थः ॥ २७६ ॥

राजसेवां विना द्रव्यं विपुलं नैव जायते।
राजसेवातिगहना बुद्धिमद्भिर्विना न सा।
कर्त्तुं शक्या चेतरेण ह्यसिधारेव सा सदा ॥ २७७ ॥

अन्वयः—राजसेवां विना विपुलं धनं नैव जायते। किन्तु सा राजसेवा अतिगहना बुद्धिमद्भिः विना इतरेण सा असिधारा इव सदा न कर्त्तुं शक्या ॥ २७७ ॥

व्याख्या—राजसेवां = नृपतिभृत्यभावम्, विना = विहाय, विपुलम् = प्रचुरम्, धनम् = सम्पदम्, नैव = नास्त्येव, जायते = भवति। किन्तु, सा = राजसेवा, अतिगहना = अतिदुर्बोधा, बुद्धिमद्भिः = ज्ञानवद्भिः, विना, न = नहि, इतरेण = सामान्यजनेन, सा = राजसेवा, असिधारा = निशितिकरवालः, इव = यथा, सदा = सर्वदा, न = नहि, कर्तुम् = अनुष्ठातुम्, शक्या = समर्थेति।

हिन्दी—राजसेवा के बिना विशाल धन की प्राप्ति नहीं हो सकती है, किन्तु राजसेवा अत्यन्त दुर्बोध है। बुद्धिमानों को छोड़कर सामान्य जन के लिए सेवा अतिकठिन है। वह तेज तलवार की धार की तरह है। उस पर अज्ञानी जन हमेशा चल ही नहीं सकते ॥ २०६ ॥

राजसेवामिति। राजसेवां विना विपुलं द्रव्यं धनं नैव जायते, किन्तु सा राजसेवा, अतिगहना दुःसम्पादनीयेत्यर्थः, बुद्धिमद्भिः सुचतुरैः विना सा न शक्येत्यर्थः, इतरेण अज्ञेन च सा राजसेवा असिधारा इव अतिभीषणेत्यर्थः, सदा न कर्त्तुं शक्या अज्ञैरित्यर्थः ॥ २७७ ॥

व्यालग्राही यथा व्यालं मन्त्री मन्त्रबलात् नृपम्।
करोत्यधीनन्तु नृपे भयं बुद्धिमतां महत् ॥ २७८ ॥

अन्वयः—व्यालग्राही व्यालं यथा मन्त्री मन्त्रबलात् नृपम् अधीनं करोति। तु बद्धिमतां नृपे सदा महद्भयम् ॥ २७८ ॥

व्याख्या—व्यालग्राही = अहितुण्डिकः, व्यालम् = विषधरम्, यथा = येन प्रकारेण, मन्त्री = विचारणाविचक्षणो जनः, मन्त्रबलात् = मन्त्रणाबलात्, नृपम् = राजानम्, अधीनम् = वशीभूतम्, करोति = विदधाति। तु = किन्तु, बुद्धिमताम् = ज्ञानवताम्, नृपे = राज्ञि, सदा = सर्वदा, महत् = बृहत्, भयम् = भीतिः कुर्यात् ॥ २७८ ॥

हिन्दी—सँपेरा जैसे मंत्रबल से साँप को वश में करता है, उसी तरह मंत्रणा-कुशल मंत्री अपने विचार से राजा को वश में करता है। किन्तु बुद्धिमान् मंत्रियों से राजा को सदैव सतर्क व्यवहार करना चाहिए॥ २७८ ॥

व्यालग्राहीति। व्यालग्राही सर्पधारकः व्यालं सर्पं यथा मन्त्री मन्त्रणाकुशलो जनः मन्त्रबलात् नृपम् अधीनं करोति, तु किन्तु बुद्धिमतां जनानां नृपे राज्ञि सदा महत् भयं कर्त्तव्यमिति शेषः॥ २७८ ॥

ब्राह्मं तेजो बुद्धिमत्सु क्षात्रं राज्ञि प्रतिष्ठितम्।
आरादेव सदा चास्ति तिष्ठन् दूरेऽपि बुद्धिमान्॥ २७९ ॥
बुद्धिपाशैर्बन्धयित्वा सन्ताडयति कर्षति।
समीपस्थोऽपि दूरेऽस्ति ह्यप्रत्यक्षसहायवान्॥ २८० ॥

अन्वयः—बुद्धिमत्सु ब्राह्मं तेजः तथा राज्ञि क्षात्रं तेजः प्रतिष्ठितम्। बुद्धिमान् दूरेऽपि तिष्ठन् सदा आरात् एव अस्ति। बुद्धिपाशैः बन्धयित्वा सन्ताडयति, कर्षति, समीपस्थेऽपि दूरे अस्ति॥ २७९-२८० ॥

व्याख्या—बुद्धिमत्सु = ज्ञानवत्सु जनेषु, ब्राह्मम् = ब्राह्मणसम्बन्धिनम्, तेजः = ओजः, तथा = तेनैव प्रकारेण, राज्ञि = नृपतौ, क्षात्रम् = क्षत्रियसम्बन्धिनम्, तेजः = ओजः, प्रतिष्ठितम् = स्थितम्। बुद्धिमान् = ज्ञानीजनः, दूरेऽपि = दूरस्थेऽपि, तिष्ठन् = स्थितः, सन्, सदा = सर्वदा, आरात् = समीपे, एवास्ति = विद्यते। बुद्धिपाशैः = ज्ञानरज्जुभिः, बन्धयित्वा = निगडयित्वा, सन्ताडयति = सम्यग्रूपेण प्रहरति, कर्षयति = बलात् दिशाविशेषे प्रेरयति, समीपस्थेऽपि = पार्श्वस्थितेऽपि, दूरे तिष्ठति = स्थितो भवति॥ २७९-२८० ॥

हिन्दी—बुद्धिमानों में ब्राह्मतेज रहता है तथा राजा में क्षात्रतेज रहता है। अतः बुद्धिमान् जन सदैव दूर रह कर भी सदा समीप ही रहता है। बुद्धिरूपी रस्सी से बाँधकर राजा शत्रु को अच्छी तरह खबर लेता है, खींचता है और छिपकर अपने साथियों के साथ समीप में रहकर भी दूरवर्त्ती बना रहता है॥ २७९-२८० ॥

ब्राह्ममिति। बुद्धिपाशैरिति। बुद्धिमत्सु जनेषु ब्राह्मं तेजः तथा राज्ञि क्षात्रं तेजः प्रतिष्ठितं स्थितमित्यर्थः। बुद्धिमान् जनः दूरेऽपि तिष्ठन् सदा आरात् समीपे एव अस्ति विद्यते, बुद्धिपाशैः बुद्धिरूपरज्जुभिः बन्धयित्वा सन्ताडयति सम्यक् प्रहरति कर्षति च नृपमिति शेषः, तथा समीपस्थोऽपि अप्रत्यक्षसहायवान् अविदितसहायसम्पन्नः सन्दूरे तिष्ठति॥ २७९-२८० ॥

नानुवाकहता बुद्धिर्व्यवहारक्षमा भवेत्।
अनुवाकहता या तु न सा सर्वत्रगामिनी॥ २८१ ॥

अन्वयः—अनुवाकहता बुद्धिः व्यवहारक्षमा न भवेत्। अतः या अनुवाकहता सा सर्वत्रगामिनी न भवति॥ २८१ ॥

व्याख्या—अनुवाकेन = वेदविभागविशेषेण, हता = निषूदिता, बुद्धिः = प्रज्ञा, व्यवहारक्षमा —व्यवहारे = आचारे, क्षमा = समर्था, न = नहिं, भवेत् = स्यात्। अतः = अस्मात् कारणात्,

या = बुद्धिः, अनुवाकहता, सा = बुद्धिः, सर्वत्रगामिनी—सर्वत्र = सर्वदिग्देशकाले, गामिनी = चलित्री, न = नहि, भवति = अस्ति ॥ २८१ ॥

हिन्दी—अनुवाक की आलोचना करने से मारी गई बुद्धि लौकिक व्यवहार समझने में असमर्थ होती है। क्योंकि अनुवाकहत बुद्धि सर्वत्रगामिनी नहीं होती है ॥ २८१ ॥

नेति। अनुवाकेन वेदविभागविशेषेण तदालोचनयेत्यर्थः, हता बुद्धिः व्यवहारक्षमा न भवेत्। अतः या तु अनुवाकहता सा सर्वत्रगामिनी न भवतीत्यर्थः ॥ २८१ ॥

तथादौ पादगमनं यानगत्वमनन्तरम्।
सुखाय कल्पते नित्यं दुःखाय विपरीतकम् ॥ २८२ ॥

अन्वयः—आदौ निर्धनत्वं वरम्, अनन्तरं धनिकत्वं तथा आदौ पादगमनम् अनन्तरं यानगत्वं सुखाय कल्पते, विपरीतकं नित्यं दुःखाय ॥ २८२ ॥

व्याख्या—आदौ = प्रारम्भिकावस्थायाम्, निर्धनत्वम् = दारिद्र्यम्, वरम् = श्रेष्ठम्, अनन्तरम् = तत्पश्चात्, धनिकत्वम् = सम्पन्नता, तथा = तेनैव प्रकारेण, आदौ = प्रथमतः, पादगमनम्—पद्भ्याम् = चरणाभ्याम्, गमनं = चलनम्, वरम्, तदनन्तरम् = तत्पश्चात्, यानगत्वम्—यानेन = वाहनेन, गमनम् = चलनम्, सुखाय = आनन्दाय, कल्पते = भवति। विपरीतकम् = एतद्भिन्नम्, नित्यम् = सततम्, दुःखाय = दुःखदो भवति ॥ २८२ ॥

हिन्दी—पहले गरीबी बाद में अमीरी, पहले पैदल घूमना बाद में सवारी पर चलना सुखकारी होता है। इसके विपरीत अर्थात् उलटा होने पर दुःख ही दुःख है ॥ २८२ ॥

आदाविति। आदौ प्रथमतः निर्धनत्वं वरं किन्तु अनन्तरं शेषावस्थायामित्यर्थः, धनिकत्वं तथा आदौ पादगमनं पद्भ्यां गमनं वरं किन्तु अनन्तरं यानगत्वं यानेन वाहनेन अश्वादिना गमनं नित्यं सुखाय कल्पते। विपरीतकम् आदौ धनिकत्वं पश्चात् निर्धनत्वमित्यर्थः, दुःखाय भवतीति शेषः ॥ २८२ ॥

वरं हि त्वनपत्यत्वं मृतापत्यवतः सदा।
दुष्टयानात् पादगमो ह्यौदासीन्यं विरोधतः ॥ २८३ ॥

अन्वयः—मृतापत्यवतः सदा अनपत्यत्वं, दुष्टयानात् पादगमः तथा विरोधतः औदासीन्यं वरम् ॥ २८३ ॥

व्याख्या—मृतापत्यवतः = हतसन्तानवतः, सदा = सर्वदा, अनपत्यत्वम् = निःसन्तानत्वम्, दुष्टयानात्—दुष्टात् = खलात्, यानात् = वाहनात्, पादगमः = यानं विना पादचारी भूत्वा गमनम्, तथा = तेन प्रकारेण, विरोधतः = सापत्न्यात्, औदासीन्यम् = निःस्पृहत्वम्, वरम् = श्रेष्ठम्, भवति ॥ २८३ ॥

हिन्दी—सन्तान होकर मर जाने की अपेक्षा निःसन्तान रहना, दुष्ट सवारी की अपेक्षा पैदल चलना, झगड़ा करने की अपेक्षा उदासीन रहना उत्तम है ॥ २८३ ॥

वरमिति। मृतापत्यवतः मृतपुत्रात् सदा अनपत्यत्वम् अपुत्रत्वं दुष्टयानात् दुष्टात् यानात् अश्वादेः पादगमः पदव्रजेन गमनं तथा विरोधतः विवादात् औदासीन्यं माध्यस्थं वरं श्रेष्ठम् ॥ २८३ ॥

वरं देशाच्छादनतश्चर्मणा पादगूहनम्।
ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता प्रवरा मता॥ २८४॥

अन्वयः—देशाच्छादनतः चर्मणा पादगहनं वरं तथा ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यात् अज्ञता प्रवरा मता॥ २८४॥

व्याख्या—देशाच्छादनतः—देशस्य = समस्तजनपदस्य, आच्छादनतः = अवगुण्ठनात्, पादगूहनम्—पादयोः = चरणयोः, गूहनम् = उपानद्भ्यां रक्षणम्, वरम् = श्रेष्ठम्, तथा = तेनैव रूपेण, ज्ञानलवेन = अल्पज्ञानेन, दौर्विदग्ध्यात् = चातुर्यात्, अज्ञता = अज्ञानता, प्रवरा = प्रकर्षेण श्रेष्ठतरा, मता = कथिता॥ २८४॥

हिन्दी—चलने-फिरने की जगह को चमड़े से ढक देने की उपेक्षा चमड़े के जूते से पैरों की रक्षा करना और थोड़े ज्ञान से चतुर बनने की अपेक्षा मूर्ख्र बनना अच्छा होता है॥ २८४॥

वरमिति। देशाच्छादनतः समस्तदेशाच्छादनात् चर्म्मणा चर्म्मपादुकाभ्यामित्यर्थः, पादगूहनं चरणरक्षणं वरं श्रेष्ठम्। तथा ज्ञानलवेन अल्पज्ञानेन दौर्विदग्ध्यात् चातुर्य्यात् अज्ञता मूर्खता प्रवरा श्रेष्ठा मता॥ २८४॥

परगृहनिवासाद्ध्यरण्ये निवसनं वरम्।
प्रदुष्टभार्य्यागार्हस्थ्याद् भैक्ष्यं वा मरणं वरम्॥ २८५॥

अन्वयः—परगृहनिवासात् अरण्ये निवसनं वरं, प्रदुष्टभार्यागार्हस्थ्यात् भैक्ष्यं वा मरणं वरम्॥ २८५॥

व्याख्या—परगृहे = अन्यजनसदने, निवासात् = निवसनात्, अरण्ये = वने, निवसनम् = वासम्, वरम् = श्रेष्ठं भवति, तथा प्रदुष्टया = दुराचारीण्या, भार्यया = पत्न्या, सह, गार्हस्थ्यात् = गृहस्थजीवनात्, भैक्ष्यम् = भिक्षाटनम्, वा = अथवा, मरणम् = जीवनान्तम्, वरम् = श्रेष्ठम्॥२८५॥

हिन्दी—दूसरों के घर में रहने कीं अपेक्षा जंगल में रहना और दुराचारिणी स्त्री से घर चलाने की अपेक्षा भीख माँगना या मर जाना अच्छा है॥ २८५॥

परगृहेति। परगृहे निवासात् अरण्ये निवसनं वासः वरं तथा प्रदुष्टया सह गार्हस्थ्यात् गृहित्वात् भैक्ष्यं सन्यासित्वं वा मरणं वरम्॥ २८५॥

श्वमैथुनमृणं गर्भाधानं स्वामित्वमेव च।
खलसख्यमपथ्यन्तु प्राक् सुखं दुःखनिर्गमम्॥ २८६॥

अन्वयः—श्वमैथुनम् ऋणं गर्भाधानं स्वामित्वं खलसख्यम् अपथ्यं प्राक् सुखं दुःखनिर्गमम्॥ २८६॥

व्याख्या—शूनाम् = सारमेयानाम्, मैथुनम् = सुरतम्, ऋणम् = पर्युदञ्चनम्, गर्भाधानम् = गर्भधारणम्, स्वामित्वम् = प्रभुत्वम्, खलसख्यम्—खलैः = दुष्टैः, सह, सख्यम् = मैत्रीम्, अपथ्यम् = कुपथ्यम्, प्राक् सुखम् = प्रथमन्तु सुखकरम्, पश्चात् दुःखनिर्गमम् = परिणामे पीडकम्, भवति॥ २८६॥

हिन्दी—कुत्तों का मैथुन करना, कर्ज लेना, गर्भ रह जाना, प्रभुता, दुष्टों की संगति तथा

अपथ्य-भोजन—ये सभी पहले तो सुखकर होते हैं, पर इनका परिणाम दुःखदायी होता है ॥ २८६ ॥

श्वमैथुनमिति। शूनां कुक्कुराणां मैथुनम् ऋणं गर्भाधानं, स्वामित्वं खलेन सह सख्यम् अपथ्यम् अहिताहारश्च प्राक्सुखम् आपातसुखकरं तु किन्तु दुःखनिर्गमं परिणामदुःखकरम् ॥ २८६ ॥

कुमन्त्रिभिर्नृपो रोगी कुवैद्यैः कुनृपैः प्रजा।
कुसन्तत्या कुलं चात्मा कुबुद्ध्या हीयतेऽनिशम् ॥ २८७ ॥

अन्वयः—कुमन्त्रिभिः नृपः, कुवैद्यैः रोगी, कुनृपैः प्रजा, कुसन्तत्या कुलं कुबुद्ध्या च आत्मा अनिशं हीयते ॥ २८७ ॥

व्याख्या—कुमन्त्रिभिः = कुत्सितामात्यैः, नृपः = राजा, कुवैद्यैः = कुत्सितचिकित्सकैः, रोगी = व्याधिग्रस्तजनः, कुनृपैः = कुत्सितराजभिः, प्रजा = जनाः, कुसन्तत्या = कुत्सितैः पुत्रैः, कुलम् = वंशम्, कुबुद्ध्या = कुत्सितज्ञानेन आत्मा = स्वात्मा, अनिशम् = अहर्निशम्, हीयते = क्षीयते ॥ २८७ ॥

हिन्दी—दुष्ट मंत्रियों से राजा, अनाड़ी वैद्यों से रोगी, खराब राजे से प्रजा, कपूतों से खानदान तथा भ्रष्ट बुद्धि से आत्मा दिनानुदिन छीन जाती है ॥ २८७ ॥

कुमन्त्रिभिरिति। कुमन्त्रिभिः नृपः कुवैद्यैः रोगी कुनृपैः प्रजा कुसन्तत्या कुपुत्रेण कुलं तथा कुबुद्ध्या आत्मा अनिशं निरन्तरं हीयते हीनो भवति ॥ २८७ ॥

हस्त्यश्ववृषबालस्त्रीशुकानां शिक्षको यथा।
तथा भवन्ति ते नित्यं संसर्गगुणधारकाः ॥ २८८ ॥

अन्वयः—ये हस्त्यश्ववृषबालस्त्रीशुकानां शिक्षको यथा तथा ते नित्यं संसर्गगुणधारकाः भवन्ति ॥ २८८ ॥

व्याख्या—ये = नृपादयः, हस्तीनाम् = गजानाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, वृषाणाम् = वृषभानाम्, बालानाम् = शिशूनाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, शुकानाम् = पक्षिविशेषाणाम्, शिक्षकः = उपदेशकः, यथा = येन रूपेण, तथा = तेनैव रूपेण, ते = जनाः, नित्यम् = सततम्, संसर्गगुणधारकाः = सम्पर्कजन्यगुणवन्तः, भवन्ति = जायन्ते ॥ २८८ ॥

हिन्दी—हाथी, घोड़ा, बैल, बालक, नारी तथा सुग्गे को जैसे सिखाने वाले होते हैं, उनके अनुसार ही वे संसर्गवश अच्छे या बुरे गुणों को धारण कर लेते हैं ॥ २८८ ॥

हस्तीति। ते नृपादयः हस्तिनाम् अश्वानां वृषाणां बालानां शिशूनां स्त्रीणां शुकानां पक्षिविशेषाणाञ्च शिक्षको यथा तथा नित्यं सततं संसर्गगुणधारकाः संसर्गेण कुमन्त्र्यादीनामित्यर्थः, गुणधारकाः तत्तद्गुणवन्तः भवन्ति ॥ २८८ ॥

स्याज्जयोऽवसरोक्त्या सद्वसनैः सुप्रसिद्धता।
सभायां विद्यया मानस्त्रितयं त्वधिकारतः ॥ २८९ ॥

अन्वयः—अवसरे उक्त्या जयः स्यात्, सद्वसनैः सुप्रसिद्धता, विद्यया सभायां मानः, तु अधिकारतः त्रितयं भवति ॥ २८९ ॥

व्याख्या—अवसरे = समये, उक्त्या = कथनेन, जयः = विजयः, स्यात् = भवेत्, सद्वसनैः = आकर्षकावरणैः, सुप्रसिद्धता = सुष्ठु ख्यातिः, तथा विद्यया = ज्ञानेन, सभायां = समाजे, मानः = सम्मानः, स्यात्, तु = किन्तु, अधिकारतः = प्रभुत्वात्, एतत् त्रयं स्वतः एव समायान्ति ॥ २८९ ॥

हिन्दी—यथावसर सही बोलने से कार्य की सिद्धि होती है, सुवस्त्र पहनने से ख्याति मिलती है तथा विद्या से सभा में सम्मान मिलता है; किन्तु प्रभुत्व मिलने पर ये तीनों गुण स्वतः आ जाते हैं ॥ २८९ ॥

स्यादिति। अवसरे समये उक्त्या कथनेन जयः कार्य्यसिद्धिरित्यर्थः, स्यात्, सद्वसनैः शोभनपरिच्छदैः सुप्रसिद्धता आपाततः शोभा स्यात् तथा विद्यया सभायां मानः स्यात् तु किन्तु अधिकारतः स्वामित्वे सति एतत् त्रितयं भवतीति शेषः ॥ २८९ ॥

सुभार्य्या सुष्ठु चापत्यं सुविद्या सुधनं सुहृत्।
सुदासदास्यौ सद्देहः सद्वेश्म सुनृपः सदा।
गृहिणां हि सुखायालं दशैतानि न चान्यथा ॥ २९० ॥

अन्वयः—सुभार्या च सुष्ठु अपत्यं सुविद्या सुधनं सुहृत् सुदासदास्यौ सद्देहः सद्वेश्म सुनृपः एतानि दश गृहिणां हि सुखाय अलम् अन्यथा न ॥ २९० ॥

व्याख्या—सुभार्या = सुशीला पत्नी, च = पुनः, सुष्ठु = सद्गुणान्विता, अपत्यम् = सन्ततिः, सुविद्या = सुष्ठुज्ञानम्, सुधनम् = पर्याप्तद्रव्यम्, सुहृत् = सुमित्रम्, सुदासः = आज्ञाकारी किङ्करः, सुदासी = शीलवती सेविका, सद्देहः = सुन्दरं शरीरम्, स्वस्थञ्च, सद्वेश्म = सुन्दरं भवनम्, सुनृपः = सदाचारी राजा, एतानि = पूर्वोक्तानि, दश = दशसंख्यकानि, गृहिणाम् = गृहस्थानाम्, सदा = सर्वदा, सुखाय = आनन्दाय, अलम् = पर्याप्तानि सुखकराणि भवन्ति, अन्यथा = इतरथा, न = नास्त्येवेति ॥ २९० ॥

हिन्दी—सुशीला पत्नी, गुणज्ञ सन्तति, उत्तम विद्या, पर्याप्त धन, अच्छा मित्र, अच्छा नौकर, अच्छी नौकरानी, स्वस्थ एवं सुन्दर शरीर, सुन्दर भवन तथा सुन्दर राजा—ये दस किसी भी गृहस्थ के लिए सुखद हैं, अन्यथा दुःख ही है ॥ २९० ॥

सुभार्य्येति। सुभार्य्या सुष्ठु शोभनम् अपत्यं सुविद्या, सुधनं सुहृत् सुदासः सुदासी सद्देहः रोगादिना अनभिभूतं शरीरमित्यर्थः, सद्वेश्म सुन्दरं गृहं तथा सुनृपः एतानि दश गृहिणां सदा सुखाय अलं पर्य्याप्तानि हि सुखकराणीत्यर्थः, अन्यथा उक्तवैपरीत्ये न सुखायेत्यर्थः ॥ २९० ॥

वृद्धाः सुशीला विश्वस्ताः सदाचाराः स्त्रियो नराः।
क्लीवा वान्तःपुरे योज्या न युवा मित्रमप्युत ॥ २९१ ॥

अन्वयः—वृद्धाः सुशीलाः विश्वस्ताः सदाचाराः स्त्रियः वा क्लीवाः नराः अन्तःपुरे योज्याः, युवा मित्रमपि उत न ॥ २९१ ॥

व्याख्या—वृद्धाः = स्थविराः, सुशीलाः = सच्चरित्राः, विश्वस्ताः = विश्वासमापन्नाः, सदाचाराः = शिष्टाः, स्त्रियः = नार्यः, वा = अथवा, क्लीवाः = षण्डाः, नराः = पुरुषाः, अन्तःपुरे = अवरोधे, योज्याः = नियोक्तव्याः, युवाः = तरुणः, मित्रमपि = सुहृदपि, उत = सन्दिग्धार्थेऽव्ययोऽयं प्रयुक्तः, न = कदापि न नियोक्तव्याः ॥ २९१ ॥

हिन्दी—वृद्धा, सुशीला, विश्वासपात्र तथा शिष्ट औरतों या नपुंसक पुरुषों को अन्तःपुर की सेवा में नियुक्त करना चाहिए। किन्तु यदि मित्र भी युवा पुरुष हो तो अन्तःपुर में उसकी नियुक्ति नहीं करनी चाहिए॥२९१॥

वृद्धा इति। वृद्धाः सुशीलाः सुचरित्राः विश्वस्ताः सदाचाराः स्त्रियः नराश्च वा क्लीवाः अन्तःपुरे योज्याः नियोक्तव्याः युवा मित्रमपि उत न योज्य इति भावः॥२९१॥

कालं नियम्य कार्य्याणि ह्याचरेन्नान्यथा क्वचित्।
गवादिष्वात्मवज्ज्ञानमात्मानं चार्थधर्मयोः।
नियुञ्जीतान्नसंसिद्ध्यै मातरं शिक्षणे गुरुम्॥२९२॥
गच्छेदनियमेनैव सदैवान्तःपुरं नरः॥२९३॥

अन्वयः—कालं नियम्य कार्याणि आचरेत् अन्यथा क्वचित् न। किञ्च गवादिषु आत्मवत् ज्ञानम् आचरेत्। च अर्थधर्मयोः आत्मानं अन्नसंसिद्ध्यै मातरं शिक्षणे च गुरुं नियुञ्जीत। अनियमेनैव नरः सदैव अन्तःपुरं गच्छेत्॥२९२-२९३॥

व्याख्या—कालम् = समयम्, नियम्य = निर्धार्य, कार्याणि = कृत्यानि, आचरेत् = निष्पादयेत्, अन्यथा = इतरथा, क्वचित् = कुत्रापि, न = नहि। किञ्च, गवादिषु = धेन्वादिषु पशुषु, आत्मवत् = स्वसदृशम्, ज्ञानम् = विचारम्, आचरेत् = कुर्यात्। किञ्च नरः अर्थधर्मयोः = अर्थोपार्जने धार्मिकानुष्ठाने च, आत्मानम् = स्वम्, अन्नसंसिद्ध्यै = पाककर्मणि, मातरम् = जननीम्, शिक्षणे = अध्यापने, गुरुम् = आचार्यम्, नियुञ्जीत = नियोक्तव्यमिति भावः। अनियमेनैव = समयनिर्धारणं विनैव, नरः = जनः, सदैव = सर्वदा, अन्तःपुरम् = अवरोधे, गच्छेत् = व्रजेत्, अन्तःपुरे सम्भाव्यमानानियमतानिवारणाय गन्तव्यमिति॥२९२-२९३॥

हिन्दी—समय बाँधकर काम करना चाहिए, समय निर्धारित किये बिना कोई काम नहीं करना चाहिए। गवादि पशुओं का पालन आत्मबुद्धि से करना चाहिए। अर्थ एवं धर्म के उपार्जन में अपने को लगाना चाहिए। भोजन बनाने में माँ को तथा शिक्षा देने के लिए गुरु को नियुक्त करना चाहिए। मनुष्य को अन्तःपुर में सदैव बिना समय निर्धारण के ही पहुँचना चाहिए॥ २९२-२९३॥

कालमिति। कालं नियम्य निर्धार्य्य कार्य्याणि आचरेत्, अन्यथा कालनियमेनेत्यर्थः, क्वचित् न। किञ्च गवादिषु गवादिषु पशुषु आत्मवत् ज्ञानम् आचरेत् आत्मवत् गवादिकं पालयेदित्यर्थः। किञ्च नरः अर्थधर्म्मयोः आत्मानम् अन्नसंसिद्ध्यै भोजनसम्पादनाय मातरं शिक्षणे च गुरुं नियुञ्जीत तथा अनियमेनैव समयासमयविचारेणेत्यर्थः, सदैव अन्तःपुरं गच्छेत् तत्र सम्भाव्यमानदुराचारनिवारणायेति भावः॥२९२-२९३॥

भार्य्यानपत्या सद्यानं भारवाही सुरक्षकः।
परदुःखहरा विद्या सेवकश्च निरालसः।
षडेतानि सुखायालं प्रवासे तु नृणां सदा॥२९४॥

अन्वयः—प्रवासे तु नृणाम् अनपत्या भार्या, सत् यानं, भारवाही, सुरक्षकः, परदुःखहरा विद्या निरालसः सेवकश्च एतानि षट् सदा सुखाय अलं भवन्ति॥२९४॥

व्याख्या—प्रवासे = विदेशवासे, तु = इत्यवधारणे, अनपत्या = सन्ततिहीना, भार्या = पत्नी, सत् = उत्कृष्टं, यानम् = वाहनम्, भारवाही = भारहरः, सुरक्षकः = आरक्षकः, परदुःखहरा—परेषाम् = अन्येषाम्, दुःखहारिणी = क्लेशविघातिनी, विद्या = शुभज्ञानम्, निरालसः = आलस्यविहीनः, क्षिप्रकार्यकरश्च, सेवकः = किङ्करः, एतानि = पूर्वोक्तानि, षट्, सदा = सर्वदा, सुखाय = आनन्दाय, अलम् = पर्याप्तम्, भवन्ति ॥ २९४ ॥

हिन्दी—प्रवास में मनुष्यों को सन्ततिविहीन पत्नी, अच्छी सवारी, सामान ढोने वाला कुली, रक्षा करने वाला सिपाही, दूसरों के दुःख को दूर करने वाली विद्या तथा फुर्तीला नौकर—ये छः सदैव सुखकर होते हैं ॥ २९४ ॥

भार्य्येति। प्रवासे तु नृणां मानवानाम् अनपत्या भार्य्या सत् उत्तमं यानं वाहनं भारवाही सुरक्षकः परेषां दुःखहारिणी विद्या तथात्वे परो वश्यः भवतीति भावः, निरालसः आलस्यहीनः सेवकश्च एतानि षट् सदा सुखाय अलं पर्य्याप्तानि भवन्तीत्यर्थः ॥ २९४ ॥

मार्गं निरुध्य न स्थेयं समर्थेनापि कर्हिचित्।
सद्यानेनापि गच्छेन्न हट्टमार्गे नृपोऽपि च ॥ २९५ ॥

अन्वयः—समर्थेनाऽपि कर्हिचित् मार्गम् अवरुध्य न स्थेयम्। नृपोऽपि सद्यानेन हट्टमार्गे न गच्छेत् ॥ २९५ ॥

व्याख्या—समर्थेनाऽपि = सशक्तेनाऽपि, कर्हिचित् = कुत्राऽपि, मार्गम् = पन्थानम्, अवरुध्य = निरुध्य, न = नहि, स्थेयम् = स्थातव्यम्, नृपोऽपि = राजाऽपि, सद्यानेन—सता = समुत्कृष्टेन, यानेन = वाहनेन, अदुष्टाश्वादिना, हट्टमार्गे = विपणिपथि, न = नहि, गच्छेत् = व्रजेत् ॥ २९५ ॥

हिन्दी—शक्तिशाली रहने के बावजूद किसी की राह रोक कर खड़ा नहीं होना चाहिए। राजा को भी नियन्त्रित सवारी के बावजूद बाजार के व्यस्त मार्ग में नहीं जाना चाहिए ॥ २९५ ॥

मार्गमिति। समर्थेन शक्तेनापि कर्हिचित् कदाचित् मार्गं पन्थानं निरुध्य अवरुध्य न स्थेयं न स्थातव्यम्। नृपोऽपि सता उत्कृष्टेन अदुष्टेन यानेन वाहनेनापि हट्टमार्गे क्रयविक्रयसङ्कुलमार्गे न गच्छेत् ॥ २९५ ॥

ससहायः सदा च स्यादध्वगो नान्यथा क्वचित्।
समीपसन्मार्गजलाभयग्रामेऽध्वगो वसेत् ॥ २९६ ॥
अतादृशे च विरमेन्न मार्गे विपिनेऽपि न ॥ २९७ ॥

अन्वयः—अध्वगः सदा ससहायः स्यात् क्वचित् च अन्यथा न। अध्वगः समीपे सन्मार्गजलाभयग्रामे वसेत्। अतादृशे मार्गे न विरमेत् विपिनेऽपि न ॥ २९६-२९७ ॥

व्याख्या—अध्वगः = पथिकः, ससहायः = सहायकेनापरजनेन सह, स्यात् = भवेत्, च = पुनः, क्वचित् = कुत्राऽपि, अन्यथा = एतद्विपरीतमसहायवान्, न = नहि, भवेत्। किञ्च अध्वगः = पान्थः, समीपे = अन्तिके, सन्, मार्गः = पथः, जलञ्च = सलिलञ्च, यस्य तादृशे अभये = भयरहिते, ग्रामे वसेत् = निवासं कुर्यात्, अतादृशे = एतद्भिन्ने, मार्गे = पथि, न = नहि, विरमेत् = तिष्ठेत्, विपिने = अरण्येऽपि, रात्रौ, न = नहि, विरमेत् = विश्रामः कुर्यात् ॥ २९६-२९७ ॥

हिन्दी—पथिक को साथी के बिना अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिए। जहाँ रास्ता और

पानी की सुविधा हो तथा किसी तरह का भय न हो, यात्रा के समय ऐसे ही गाँव में रुकना चाहिए। इसके विपरीत स्थान या जंगल में विश्राम नहीं करना चाहिए ॥ २९६-२९७ ॥

ससहाय इति। अध्वगः पथिकः सदा ससहायः सहायवान् स्यात् क्वचित् कुत्रापि अन्यथा असहाय इत्यर्थः। न भवेदिति शेषः। किञ्च अध्वगः समीपे सन् मार्गः जलञ्च यस्य तादृशे अभये भयरहितग्रामे वसेत् अतादृशे च मार्गे न विरमेत्। तादृशे एव पथि विरमेत् इत्यर्थः। विपिने वनेऽपि न विरमेत् न विश्रामं गच्छेदित्यर्थः। एकत्र निर्भयत्वात् अन्यत्र सभ्यत्वादिति भावः ॥ २९६-२९७ ॥

अत्यटनं चानशनमतिमैथुनमेव च।
अत्यायासश्च सर्वेषां द्राग्जराकरणं महत् ॥ २९८ ॥

अन्वयः—अत्यटनम्, अनशनम्, अतिमैथुनम्, अत्यायासः सर्वेषां द्राक् महत् जराकरणं भवति ॥ २९८ ॥

व्याख्या—अत्यटनम् = अत्यधिकपर्यटनम्, च = पुनः, अनशनम् = अत्यधिकव्रतोपवासः, अतिमैथुनम् = अत्यधिकसम्भोगः, अत्यायासः = अतिशयपरिश्रमश्च, सर्वेषाम् = जनानाम्, द्राक् = शीघ्रमेव, महत् = अधिकः, जराकरणम् = वार्द्धक्यजननं भवति ॥ २९८ ॥

हिन्दी—अत्यधिक पर्यटन, उपवास, अधिक सहवास, अधिक मेहनत—इन सबों से शीघ्र बुढौती आ जाती है ॥ २८९ ॥

अत्यटनमिति। अत्यटनम् अतिभ्रमणम् अनशनम् अनाहारः अतिमैथुनम् अत्यायासः अतिशयपरिश्रमश्च सर्वेषां जनानां द्राक् झटिति महत् जराकरणं वार्द्धक्यजननम् ॥ २९८ ॥

अत्यायासो हि विद्यासु जराकारी कलासु च ॥ २९९ ॥

अन्वयः—सर्वासु विद्यातु कलासु च अत्यायासः हि जराकारी भवति ॥ २९९ ॥

व्याख्या—सर्वासु = सकलासु, विद्यासु = ज्ञानेषु, कलासु = शिल्पादिज्ञानेषु च, अत्यायासः = अतिपरिश्रमः, हि = इति निश्चयेन, जराकारी = वृद्धत्वकारी भवति ॥ २९९ ॥

हिन्दी—विद्याध्ययन तथा कलाओं के सीखने में अत्यन्त परिश्रम करना भी बुढौती का कारण होता है ॥ २९९ ॥

सर्वविद्यास्विति। सर्वासु विद्यासु कलासु च शिल्पिविद्यासु अत्यायासः अतिपरिश्रमः हि जराकारी जराजननः भवतीति शेषः ॥ २९९ ॥

दुर्गुणं तु गुणीकृत्य कीर्त्तयेत् स प्रियो भवेत्।
गुणाधिक्यं कीर्त्तयति यः किं स्यान्न पुनः सखा? ॥ ३०० ॥

अन्वयः—यः दुर्गुणं गुणीकृत्य कीर्त्तयेत् सः लोकस्य प्रियः भवेत्। यः गुणाधिक्यं कीर्त्तयति पुनः किं सखा न स्यात्? ॥ ३०० ॥

व्याख्या—यः = जनः, दुर्गुणम् = दोषम्, गुणीकृत्य = गुणत्वेनारोप्य, कीर्त्तयेत् = वर्णनं करोति, सः = असौ, लोकस्य = जनस्य, प्रियः = प्रीतिकरः, भवेत् = स्यात्, यः = जनः, गुणाधिक्यम् = गुणातिशय्यम्, कीर्त्तयति = कथयति, सः = असौ, किमिति प्रश्ने, सखा = मित्रम्, न = नहि, स्यात् = भवेत्, अर्थात् भवत्येवेति निश्चितम् ॥ ३०० ॥

हिन्दी—जो किसी दुर्गुण को गुण बतला कर वर्णन करता है, वह लोकप्रिय होता है और जो किसी के गुण को बढ़ा-चढ़ा कर कहता है, वह भला किसी का मित्र क्यों न हो जाय? ॥ ३०० ॥

दुर्गुणमिति। यः दुर्गुणं दोषं गुणीकृत्य गुणत्वेनारोप्य कीर्त्तयेत् सः लोकस्य प्रियः भवेत्। यः पुनः गुणाधिक्यं गुणातिशय्यं कीर्त्तयति सः किं सखा न स्यात्? अपितु सखा एव स्यादित्यर्थः॥ ३०० ॥

दुर्गुणं वक्ति सत्येन प्रियोऽपि सोऽप्रियो भवेत्।
गुणं हि दुर्गुणीकृत्य वक्ति यः स्यात् कथं प्रियः? ॥ ३०१ ॥

अन्वयः—यः सत्येन दुर्गुणं वक्ति सः प्रियोऽपि अप्रियो भवेत्। यश्च गुणं दुर्गुणीकृत्य वक्ति सः कथं प्रियः स्यात् ॥ ३०१ ॥

व्याख्या—यः= जनः, सत्येन = ऋतेन. दुर्गुणम् = दोषम्, वक्ति = कथयति, सः= असौ, प्रियोऽपि = प्रेमपात्रोऽपि, अप्रियः= अनभिमतः, भवेत् = स्यात्। यः= पुरुषः, गुणम् = दाक्षिण्यम्, दुर्गुणीकृत्य = दोषत्वेनारोप्य, वक्ति = वदति, सः= असौ, कथम् = केन रूपेण, प्रियः= अभिमतः, स्यात् = भवेत् ॥ ३०१ ॥

हिन्दी—जो यथार्थ दुर्गुण को दुर्गुण कहता है, वह प्रिय होते हुए भी अप्रिय हो जाता है। जो गुणों को ही दुर्गुण कहता है, वह किसी का प्रिय कैसे हो सकता है? ॥ ३०१ ॥

दुर्गुणमिति। यः सत्येन दुर्गुणं वक्ति वदति सः प्रियोऽपि अप्रियो भवेत्। यस्तु गुणं दुर्गुणीकृत्य दोषत्वेनारोप्य वक्ति सः कथं प्रियः स्यात्? न कथमपीत्यर्थः॥ ३०१ ॥

स्तुत्या वशं यान्ति देवा ह्यञ्जसा किं पुनर्नराः?।
प्रत्यक्षं दुर्गुणान् नैव वक्तुं शक्नोति कोऽप्यतः ॥ ३०२ ॥

अन्वयः—देवाः अपि स्तुत्या अञ्जसा वशं यान्ति, नराः पुनः किम्? अतः कोऽपि प्रत्यक्षं दुर्गुणान् वक्तुं नैव शक्नोति ॥ ३०२ ॥

व्याख्या—देवाः= सुराः, अपि = चेत्, स्तुत्या = स्तवेन, अञ्जसा = शीघ्रमेव, वशम् = अधीनम्, यान्ति = प्राप्नुवन्ति, तर्हि नराः= सामान्याः जनाः, पुनः= भूयः, किम् = न किमपीत्यर्थः। अतः= अस्मात् कारणात्, कोऽपि = जनः, प्रत्यक्षम् = सम्मुखे, दुर्गुणान् = दोषान्, वक्तुम् = कथितुम्, न = नहि, शक्नोति = समर्थो भवति ॥ ३०२ ॥

हिन्दी—स्तुति सुनने के बाद जब देवता भी शीघ्र वशवर्त्ती हो जाते हैं तो मनुष्यों का क्या पूछना? यही कारण है कि किसी के आमने-सामने कोई उसका दोष नहीं कह पाता है ॥ ३०२ ॥

स्तुत्या इति। देवा अपि स्तुत्या गुणकीर्त्तनेन अञ्जसा झटिति वशं यान्ति नराः मानवाः पुनः किम्? अतः कोऽपि प्रत्यक्षं समक्षं दुर्गुणान् दोषान् वक्तुं नैव शक्नोति ॥ ३०२ ॥

स्वदुर्गुणान् स्वयं चातो विमृशेल्लोकशास्त्रतः ॥ ३०३ ॥

अन्वयः—अतः स्वयं लोकतः शास्त्रतश्च स्वदुर्गुणान् विमृशेत् ॥ ३०३ ॥

व्याख्या—अतः= अस्मात्कारणात्, स्वयम् = आत्मनैव, लोकतः= लोकव्यवहारतः, शास्त्रतः

= शास्त्रदृष्ट्या, स्वदुर्गुणान् = आत्मदोषान्, विमृशेत् = विचारयेत् ॥ ३०३ ॥

हिन्दी—अतः स्वयं ही लोक एवं शास्त्र दृष्टि से अपने दुर्गुणों पर विचार करना चाहिए ॥ ३०३ ॥

स्वदुर्गुणानिति। अतः स्वयं लोकतः शास्त्रतश्च स्वदुर्गुणान् निजदोषान् विमृशेत् विवेचयेत् ॥ ३०३ ॥

स्वदुर्गुणश्रवणतो यस्तुष्यति न क्रुध्यति।
स्वदोषस्य प्रविज्ञाने यतते त्यजति श्रुते।
स्वगुणश्रवणान्नित्यं समस्तिष्ठति नाधिकः ॥ ३०४ ॥
दुर्गुणानां खनिरहं गुणाधानं कथं मयि?।
मय्येव चाज्ञताप्यस्ति मन्यते सोऽधिकोऽखिलात् ॥ ३०५ ॥
स साधुस्तस्य देवा हि कलालेशं लभन्ति न ॥ ३०६ ॥

अन्वयः—यः स्वदुर्गुणश्रवणतः तुष्यति न क्रुध्यति, स्वदोषस्य प्रविज्ञाने यतते, श्रुते त्यजति, स्वगुणश्रवणात् समः तिष्ठति, अधिकः न तथा अहं दुर्गुणानां खनिः, मयि गुणाधानं कथं? च मय्येव अज्ञताऽपि अस्ति इति मन्यते; सः अखिलान् अधिकः। स एव साधुः, देवाः अपि तस्य कलालेशं न लभन्ति ॥ ३०४-३०६ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, स्वदुर्गुणश्रवणतः—स्वस्य = आत्मनः, दुर्गुणानाम् = दोषाणाम्, श्रवणतः = आकर्णनात्, तुष्यति = तोषं प्राप्नोति, न = नहि, क्रुध्यति = कुप्यति, स्वदोषस्य = आत्मदुर्गुणस्य, प्रविज्ञाने = प्रकर्षेण ज्ञानलाभे, यतते = चेष्टते, श्रुते = स्वदुर्गुणश्रवणे, तम् = दोषम्, त्यजति = जहाति, किञ्च स्वगुणश्रवणात्—स्वस्य = आत्मनः, गुणानाम् = दाक्षिण्यानाम्, श्रवणतः = आकर्णनात्, समः = अविकृतः, तिष्ठति = स्थितो भवति, अधिकः न = अधिकचञ्चलो न भवति, तथा = तेनैव प्रकारेण, अहम् = व्यक्तिविशेषः, दुर्गुणानाम् = दोषाणाम्, खनिः = आकरः, मयि = व्यक्तिविशेषे, कथम् = केन रूपेण, गुणानाम् = चातुर्याणाम्, आधानम् = अवस्थानम्, मयि एव = व्यक्तिविशेषे एव, मूर्खता = अज्ञता, अस्ति = विद्यते, इति = एवम्, मन्यते = विचार्यते, सः = असौ, अखिलात्जगतः, अधिकः = श्रेष्ठः। सः = असौ, एव साधुः = साधुपुरुषः, देवाः = सुराः, अपि = चेत्, तस्य = पूर्वोक्तनिर्दिष्टजनस्य, कलालेशम् = अंशुविन्दुम्, न = नहि, लभन्ति = आप्नुवन्ति ॥ ३०४-३०६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अपने दुर्गुणों को सुनकर संतुष्ट होता है, क्रोध नहीं करता है; अपने दोषों को जानने का प्रयासे करता है और दोषों की जानकारी मिलने पर उसका परित्याग कर देता है; अपने गुणों को सुनकर चंचल नहीं होता एवं मैं तो दुर्गुणों का खजाना हूँ, मुझ में गुण कैसे आ सकता है? क्योंकि मूर्खता तो केवल मुझमें ही है; ऐसा जो समझता है, वह समस्त संसार में सबसे बड़ा महान् होता है। वही साधु-पुरुष कहलाता है; देवगण भी उसकी कला का एक अंश भी नहीं पा सकते हैं ॥ ३०४-३०६ ॥

स्वदुर्गुणेत्यादि। यः स्वस्य दुर्गुणानां दोषाणां श्रवणतः श्रवणात् तुष्यति, न क्रुध्यति स्वस्य दोषस्य प्रविज्ञाने प्रकर्षेण विज्ञाने विशेषज्ञानार्थमित्यर्थः, यतते, श्रुते स्वदोष इति शेषः, त्यजति तं दोषमिति शेषः, किञ्च स्वस्य गुणश्रवणात् समः अविकृतः इत्यर्थः, तिष्ठति न

अधिकः न स्फुर्त्तिमान् भवतीत्यर्थः, तथा अहं दुर्गुणानां दोषाणां खनिः आकरः, मयि कथं गुणानाम् आधानम् अवस्थानं सम्भवतीति शेषः, मयि एव अज्ञता मूर्खता अस्ति इति मन्यते सः अखिलात् जगतः अधिकः महान्। स एव साधुः देवाः अपि तस्य कलालेशम् अशंविन्दुं न लभन्ति न प्राप्नुवन्ति ॥ ३०४-३०६ ॥

सदाल्पमप्युपकृतं महत् साधुषु जायते।
मन्यते सर्षपादल्पं महच्चोपकृतं खलः ॥ ३०७ ॥

अन्वयः—साधुषु सदा अल्पमपि उपकृतं महत्जायते। खलः महच्च उपकृतं सर्षपादपि अल्पं मन्यते ॥ ३०७ ॥

व्याख्या—साधुषु = सत्पुरुषेषु, अल्पमपि = स्तोकमपि, उपकृतम् = अनुगृहीतम्, महत् = अधिकम्, जायते = भवति, खलः = दुष्टजनः, महच्च = अधिकमपि, उपकृतम् = उपकारः, सर्षपादपि = शुभकादपि, अल्पम् = स्तोकम्, मन्यते = बुध्यते ॥ ३०७ ॥

हिन्दी—सज्जन थोड़े भी किये गये उपकार को बहुत बड़ा मानते हैं तथा दुर्जन इसके विपरीत बहुत बड़े किये गये उपकार को भी बहुत कम मानते हैं ॥ ३०७ ॥

सदेति। साधुषु जनेषु सदा अल्पमपि उपकृतं महत् जायते। खलः दुर्जनः महच्च अधिकमपि उपकृतं सर्षपादपि अल्पं मन्यते ॥ ३०७ ॥

क्षमिणं बलिनं साधुर्मन्यते दुर्जनोऽन्यथा।
दुरुक्तमप्यतः साधोः क्षमयेद् दुर्जनस्य न ॥ ३०८ ॥

अन्वयः—साधुः क्षमिणं बलिनं मन्यते, दुर्जनः अन्यथा। अतः साधोः दुरुक्तमपि क्षमयेत् दुर्जनस्य च न ॥ ३०८ ॥

व्याख्या—साधुः = सत्पुरुषः, क्षमिणम् = क्षमाशीलजनम्, बलिनम् = शक्तिशालिनम्, मन्यते = बोधते, दुर्जनः = खलः, अन्यथा = विपरीतं मन्यते। अतः = अस्मात् कारणात्, साधोः = सत्पुरुषस्य, दुरुक्तमपि = दुर्वचनमपि, क्षमयेत् = मृष्येत्, दुर्जनस्य = खलस्य, न = नहि, मृष्येत् ॥ ३०८ ॥

हिन्दी—सत्पुरुष क्षमाशील व्यक्ति को शक्तिशाली तथा दुर्जन ठीक इसके विपरीत दुर्बल मानता है। अतः सत्पुरुषों का दुर्वचन भी सह लेना चाहिए, परन्तु दुष्टों का कदापि नहीं सहना चाहिए ॥ ३०८ ॥

क्षमिणमिति। साधुर्जनः क्षमिणं क्षमावन्तं जनं बलिनं बलवन्तं दुर्जनस्तु अन्यथा क्षमिणं दुर्बलमित्यर्थः मन्यते। अतः साधोः सत्पुरुषस्य दुरुक्तमपि दुर्वाक्यमपि क्षमयेत् दुर्जनस्य असाधोः न क्षमयेत् ॥ ३०८ ॥

तथा न क्रीडयेत् कैश्चित् कलहाय भवेद् यथा।
विनोदेऽपि वदेन्नैवं ते भार्य्या कुलटास्ति किम् ॥ ३०९ ॥

अन्वयः—कैश्चित् तथा न क्रीडयेत् यथा तत् कलहाय भवेत्। विनोदेऽपि ते भार्या कुलटा अस्ति किम्? एवं न वदेत् ॥ ३०९ ॥

व्याख्या—कैश्चित् = जनैः सह, तथा = तेन रूपेण, न = नहि, क्रीडयेत् = खेलयेत्,

यथा = येन प्रकारेण क्रीडनम्, कलहाय = विवादाय, भवेत् = स्यात्। विनोदेऽपि = कौतुके परिहासेऽपि वा, ते = तव, भार्या = पत्नी, कुलटा = व्यभिचारिणी, अस्ति = विद्यते, किमिति प्रश्ने, एवम् = इत्थम्, न = नहि, वदेत् = कथयेत् ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—ऐसा खेल कभी न खेले जिससे झगड़ा खड़ा हो जाय। तुम्हारी पत्नी व्यभिचारिणी है क्या? ऐसा किसी से हँसी-मजाक में भी न कहे ॥ ३०९ ॥

तथेति। कैश्चित् जनैः तथा न क्रीडयेत् न क्रीडां कुर्य्यात् यथा तत् क्रीडनं कलहाय विवादाय भवेत्। विनोदेऽपि आमोदेऽपि कौतुकार्थमपीत्यर्थः, ते तव भार्य्या कुलटा व्यभिचारिणी अस्ति किम्? एवम्प्रकारेण न वदेत् न दुर्वाक्यं ब्रूयादित्यर्थः ॥ ३०९ ॥

अपशब्दाश्च नो वाच्या मित्रभावाच्च केष्वपि।
गोप्यं न गोपयेन्मित्रे तद्गोप्यं न प्रकाशयेत् ॥ ३१० ॥

अन्वयः—केष्वपि मित्रभावाच्च अपशब्दाश्च न वाच्याः। मित्रे गोप्यं न गोपयेत्, तद्गोप्यं न प्रकाशयेत् ॥ ३१० ॥

व्याख्या—केष्वपि = जनेष्वपि, मित्रभावाच्च = सख्यभावादपि, अपशब्दाः = परुषोक्तयः, न = नहि, वाच्याः = वक्तव्याः। मित्रे = सुहृदि, गोप्यम् = गोपनीयम्, न = नहि, गोपयेत् = संवरणं कुर्यात्, तत् = तस्य, गोप्यम् = रहस्यम्, न = नहि, प्रकाशयेत् = प्रकाशं नयेत् ॥ ३१० ॥

हिन्दी—किसी भी व्यक्ति को मित्रभाव से भी गाली नहीं देनी चाहिए। मित्र से अपना रहस्य न छिपाये और मित्र के रहस्य को कभी भी प्रकाशित न करे ॥ ३१० ॥

अपशब्दा इति। केषु अपि जनेषु मित्रभावाच्च बन्धुभावादपि अपशब्दाः कटुवचनानि नो वाच्याः न वक्तव्याः। किञ्च मित्रे सुहृदि गोप्यं गोपनीयं रहस्यमित्यर्थः, न गोपयेत् तथा तस्य मित्रस्य गोप्यं गोपनीयविषयं किमपि न प्रकाशयेत् ॥ ३१० ॥

वैरीभूतोऽपि पश्चात् प्राक्कथितं वापि सर्वदा।
विज्ञातमपि यद् दौष्ट्यं दर्शयेत्तन्न कर्हिचित् ॥ ३११ ॥

अन्वयः—पश्चात् वैरीभूतोऽपि प्राक् कथितं वा दौष्ट्यं यत् विज्ञातं तत् कर्हिचित् सर्वदा न दर्शयेत् ॥ ३११ ॥

व्याख्या—पश्चात् = तदनन्तरम्, वैरीभूतोऽपि = शत्रुत्वमापन्नोऽपि, प्राक् = पूर्वम्, कथितम् = निवेदितम्, वा = अथवा, दौष्ट्यं = दोषम्, यत् विज्ञातम् = विदितम्, मित्रस्य, तत् = रहस्यम्, कर्हिचित् = कुत्रापि, सर्वदा = सततम्, न = नहि, दर्शयेत् = प्रकाशे नयेत् ॥ ३११ ॥

हिन्दी—किसी कारण से दोस्त के दुश्मन बन जाने पर मित्रावस्था में पहले कही गई बातों को तथा उसके दोषों को कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिए ॥ ३११ ॥

वैरीभूत इति। पश्चात् वैरीभूतः शत्रुतामापन्नोऽपि सुहृदित्यर्थः, प्राक् प्रणयकाले कथितं मित्रेणेति शेषः, वा दौष्ट्यं दोषमित्यर्थः, यत् विज्ञातं विदितं मित्रस्येति भावः, तत् कर्हिचित् कदाचित् अमित्रत्वेऽपीत्यर्थः, न दर्शयेत् न प्रकाशयेत् ॥ ३११ ॥

प्रतिकर्त्तुं यतेतैव गुप्तः कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ३१२ ॥

अन्वयः—गुप्तः एव प्रतिकर्त्तुं यतेत, प्रतिक्रियां कुर्यात् ॥ ३१२ ॥

व्याख्या—गुप्तः = अन्तरितो भूत्वा, एव प्रतिकर्त्तुम् = प्रतिकारं कर्त्तुम्, यतेत = चेष्टेत, प्रतिक्रियाम् = निवारणोपायः, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ ३१२ ॥

हिन्दी—छिप कर शत्रुभूत मित्र की दुर्भावना को दूर करने का प्रयास करना चाहिए ॥ ३१२ ॥

प्रतिकर्त्तुमिति। गुप्तः स्वयं सुरक्षितः सन् प्रतिकर्त्तुं शत्रोरिति शेषः यतेत, प्रतिक्रियां प्रतिकारं कुर्य्याच्च ॥ ३१२ ॥

यथार्थमपि न ब्रूयाद् बलवद् विपरीतकम्।
दृष्टं त्वदृष्टवत् कुर्य्याच्छ्रुतमप्यश्रुतं क्वचित्॥ ३१३ ॥

अन्वयः—यथार्थमपि बलवतां विपरीतकं न ब्रूयात्। क्वचित् दृष्टमपि अदृष्टवत् श्रुतमपि अश्रुतं कुर्यात् ॥ ३१३ ॥

व्याख्या—यथार्थमपि = तथ्यमपि, बलवताम् = शक्तिशालिनाम्, विपरीतकम् = विरुद्धम्, न = नहि, ब्रूयात् = वदेत्। क्वचित् = कुत्रचित्, दृष्टम् = अवलोकितमपि, अदृष्टवत् = अनवलोकितमिव, श्रुतमपि = आकर्णितमपि, अश्रुतम् = अनाकर्णितमिव, कुर्यात् = आचरेत् ॥ ३१३ ॥

हिन्दी—बलवान् पुरुषों के विरुद्ध यदि कोई यथार्थ बात भी हो तो उसके सामने न कहे तथा जो देखा हो उसे अनदेखा कर दे, जो सुना हो उसे अनसुना कर दे ॥ ३१३ ॥

यथार्थमिति। यथार्थमपि सत्यमपि बलवतां प्रबलानां विपरीतकं कुत्साजनकं किमपि न ब्रूयात् न वदेत्। क्वचित् कुत्रचित् दृष्टमपि अदृष्टवत्, श्रुतमपि अश्रुतम् अश्रुतवदित्यर्थः कुर्य्यात् ॥ ३१३ ॥

मूकोऽन्धो बधिरः खञ्जः स्वापत्काले भवेन्नरः।
अन्यथा दुःखमाप्नोति हीयते व्यवहारतः ॥ ३१४ ॥

अन्वयः—नरः स्वापत्काले मूकः बधिरः खञ्जः भवेत्। अन्यथा दुःखमाप्नोति, व्यवहारतः हीयते ॥ ३१४ ॥

व्याख्या—नरः = जनः, स्वापत्काले—स्वस्य = आत्मनः, आपत्काले = दुस्समये, मूकः = अवाच्, अन्धः = नेत्रहीनः, बधिरः = श्रवणहीनः, खञ्जः = चरणविकलः, स्यात् = भवेत्। अन्यथा = शक्तिशालिनां विपरीतगमने, दुःखम् = कष्टम्, आप्नोति = प्राप्नोति, तथा = तेनैव प्रकारेण, व्यवहारतः = लोकव्यवहाराच्च, हीयते = हीनो भवति ॥ ३१४ ॥

हिन्दी—मनुष्य पर जब स्वयं आपत्ति आ जाय तो किसी प्रबल व्यक्ति को यथार्थ कहने में गूंगा बन जाय, बुराई के लिए अन्धा, बुराई सुनने के लिए बहरा, बुराई करने के लए दौड़-धूप करने में लंगड़ा बन जाय। अन्यथा दुःख तो भोगेगा ही, साथ ही लोकदृष्टि में भी गिर जायेगा ॥ ३१४ ॥

मूक इति। नरः स्वस्य आपत्काले कदाचिदिति शेषः, मूकः वर्णानुच्चारकः, अन्धः दर्शनेन्द्रियहीनः, बधिरः श्रोत्रेन्द्रियरहितः तथा खञ्जः चरणविकलः भवेत्। अन्यथा प्रबलानां कुत्साकथने दुःखम् आप्नोति, व्यवहारतः लोकाचाराच्च हीयते भ्रष्टो भवति ॥ ३१४ ॥

वदेद् वृद्धानुकूलं यन्न बालसदृशं क्वचित्।
परवेश्मगतस्तत् स्त्रीवीक्षणं न च कारयेत्॥ ३१५॥

अन्वयः—वृद्धानुकूलं यत् तत् वदेत् क्वचित् बालसदृशं न। परवेश्मगतः तत् नारीदर्शनं न कारयेत्॥ ३१५॥

व्याख्या—वृद्धानुकूलम्—वृद्धानाम् = अनुभूतिसम्पन्नानां ज्ञानीजनानाम्, अनुकूलम् = हितकरम्, यत् वचनम्, तत्, वदेत् = ब्रूयात्, क्वचित् = क्वापि, बालसदृशम् = बालक इव, न = नहि, ब्रूयात्। तथा च परवेश्मगतः—परस्य = अन्यजनस्य, वेश्मगतः = सदनसमागतो जनः, तत् = तस्य, स्त्रीवीक्षणम् = गृहे स्थितानां नारीणाम्, वीक्षणम् = अवलोकनम्, न = नहि, कारयेत् = कुर्यादिति। स्वार्थे ण्यन्तप्रयोगोऽयम्॥ ३१५॥

हिन्दी—बड़े-बूढ़ों की तरह उनके अनुकूल बातें बोलनी चाहिए। कही भी बचकानी बातें न बोलें। किसी के घर पहुँचकर उस घर की औरतों को नहीं घूरना चाहिए॥ ३१५॥

वदेदिति। वृद्धानुकूलं वृद्धानां विज्ञानाम् अनुकूलम् अविरोधि इत्यर्थः, यत् तत् वचनं वदेत् क्वचित् बालसदृशं बालकवदित्यर्थः न वदेत्। किञ्च परस्य अन्यस्य वेश्मगतः गृहगतः जनः तस्य स्त्रीवीक्षणं नारीदर्शनं न कारयेत् न कुर्य्यात् स्वार्थे ण्यन्तोऽयं कृधातुः॥ ३१५॥

अधनादननुज्ञातान्न गृह्णीयात् तु स्वामिताम्।
स्वशिशुं शिक्षयेदन्यशिशुं नाप्यपराधिनम्॥ ३१६॥

अन्वयः—अधनात् अननुज्ञातात् स्वामितां न गृह्णीयात्। स्वशिशुं शिक्षयेत्, अन्यशिशुम् अपराधिनमपि न॥ ३१६॥

व्याख्या—अधनात् = दरिद्रात्, अननुज्ञातात् = तस्य विनानुमतेः, स्वामिताम् = प्रभुत्वम्, न = नहि, गृह्णीयात् = अधिकृतं कुर्यात्। स्वशिशुम्—स्वस्य = आत्मनः, शिशुम् = बालकम्, शिक्षयेत् = कृतापराधे उपदिशेत्, अन्यशिशुम्—अन्येषाम् = अपराणाम्, शिशून् = बालकान्, अपराधिनमपि = दोषवन्तमपि, न = नहि, दण्डयेत्॥ ३१६॥

हिन्दी—किसी गरीब का अधिकार उसकी अनुमति के बिना स्वीकार नहीं करना चाहिए। अपने बच्चे को अनुशासित करना चाहिए, दूसरों के अपराधी बच्चों को भी स्वयं सजा नहीं देनी चाहिए॥ ३१६॥

अधनादिति। अधनात् निर्धनात् जनात् अननुज्ञातां तेन अननुमतां स्वामितां तस्य कस्मिन्नपि कर्मणि प्रभुतां न गृह्णीयात् तस्य तन्मात्रजीविकत्वादिति भावः। किञ्च स्वशिशुं निजबालकं शिक्षयेत् उपदिशेत् अन्यशिशुं न, अपराधिनं दोषिणञ्च न शिक्षयेदित्यर्थः॥ ३१६॥

अधर्मनिरतो यस्तु नीतिहीनश्चलान्तरः।
सङ्कर्षकोऽतिदण्डी तद्ग्रामं त्यक्त्वान्यतो वसेत्॥ ३१७॥

अन्वयः—यः अधर्मनिरतः नीतिहीनः चलान्तरः सङ्कर्षकः अतिदण्डी तत् ग्रामं त्यक्त्वा अन्यतः वसेत्॥ ३१७॥

व्याख्या—यः = ग्रामप्रधानः, अधर्मनिरतः = पापाचारे निमग्नः, नीतिहीनः = अनयी, चलान्तरः—चलम् = चञ्चलम्, अन्तरम् = चित्तम्, यस्य सः अव्यवस्थितचित्तः, सङ्कर्षकः = शोषकः,

तथा अतिदण्डी = प्रचण्डदण्डविधाता, तत् = तस्य प्रधानस्य, ग्रामम् = आवसतिम्, त्यक्त्वा = विहाय, अन्यतः = अन्यस्मिन् ग्रामे, वसेत् = निवासं कुर्यात् ॥ ३१७ ॥

हिन्दी—यदि ग्रामप्रधान पापी हो, अन्यायी हो, अव्यवस्थित चित्त वाला हो, शोषक हो तथा कठोर दण्ड देने वाला हो तो उस गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव में बसना चाहिए ॥ ३१७ ॥

अधर्मनिरत इति। यस्तु अधर्मनिरतः अधर्मासक्तः, नीतिहीनः दुर्नीतिसम्पन्नः चलं चञ्चलम् अन्तरं मनो यस्य सः अव्यवस्थितचित्त इत्यर्थः, सङ्कर्षकः अर्थशोषकः तथा अतिदण्डी तीक्ष्णदण्डः भवति, तस्य ग्रामं त्यक्त्वा अन्यतः अन्यत्र कस्मिन्नपि ग्रामे वसेत् ॥ ३१७ ॥

यथार्थमपि विज्ञातमुभयोर्वादिनोर्मतम्।
अनियुक्तो न वै ब्रूयाद्धीनः शत्रुर्भवेदतः ॥ ३१८ ॥

अन्वयः—यतः हीनः शत्रुः भवेत्, अतः उभयोः वादिनोः मतं यथार्थं विज्ञातमपि अनियुक्तः वै न ब्रूयात् ॥ ३१८ ॥

व्याख्या—यतः = यस्मात्, हीनः = हारितो जनः, शत्रुः = रिपुः, भवेत् = स्यात्, अतः = अस्मात् कारणात्, उभयोः = द्वयोः, वादिनोः = वादिप्रतिवादिनोः, मतम् = विचारम्, यथार्थम् = तथ्यस्वरूपम्, विज्ञातमपि = जानन्नपि, अनियुक्तः नृपेण न्यायाधीशेन वा अपृष्टः सन्, न = नहि, वै = निश्चयेन, ब्रूयात् = वदेत् ॥ ३१८ ॥

हिन्दी—वादी और प्रतिवादी दोनों को सही ढंग से जानते हुए भी जब तक राजा या न्यायाधीश न पूछे तब तक अपने मन से कुछ न कहें। क्योंकि जो हारेगा वह दुश्मन बन जायेगा ॥ ३१८ ॥

यथार्थमिति। यतः हीनः पराजितः जनः शत्रुः भवेत् अतः उभयोः वादिनोः अर्थिप्रत्यर्थिनोरित्यर्थः, मतं यथार्थं विज्ञातमपि अनियुक्तः राज्ञा विचारकेण वा अपृष्टः सन् न वै ब्रूयात् नैव कथयेत् ॥ ३१८ ॥

गृहीत्वान्यविवादं तु विवदेन्नैव केनचित्।
मिलित्वा सङ्घशो राजमन्त्रं नैव तु तर्कयेत् ॥ ३१९ ॥

अन्वयः—अन्यविवादं गृहीत्वा केनचित् नैव विवदेत्। सङ्घशः मिलित्वा राजमन्त्रं नैव तर्कयेत् ॥ ३१९ ॥

व्याख्या—अन्यविवादम् = अन्येषां जनानाम्, विवादम् = कलहम्, गृहीत्वा = अवलम्ब्य, केनचित् = केनापि सह, नैव = नास्त्येव, विवदेत् = कलहं कुर्यात्। सङ्घशः = सङ्घे, मिलित्वा = सम्मिल्य, राजमन्त्रम् = राजकीयविचारम्, नैव, तर्कयेत् = विचारयेत् ॥ ३१९ ॥

हिन्दी—दूसरों के झगड़े में पड़कर किसी का झगड़ा स्वयं मोल नहीं लेना चाहिए। राजकीय विचार के विरुद्ध किसी दल में सम्मिलित होकर तर्क नहीं करना चाहिए ॥ ३१९ ॥

गृहीत्वेति। अन्यविवादं गृहीत्वा आश्रित्य केनचित् सह नैव विवदेत्। किञ्च दलबन्धने मिलित्वा राजमन्त्रं राजकीयमन्त्रणाविषयं नैव तर्कयेत् ॥ ३१९ ॥

अज्ञातशास्त्रो न ब्रूयात् ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्।
नीति दण्डं चिकित्साञ्च प्रायश्चित्तं क्रियाफलम् ॥ ३२० ॥

अन्वयः—अज्ञातशास्त्रः ज्योतिषं धर्मनिर्णयं नीतिं चिकित्सां प्रायश्चित्तं तथा क्रियाफलं न ब्रूयात् ॥ ३२० ॥

व्याख्या—अज्ञातशास्त्रः—अज्ञातम् = अपरिचितम्, शास्त्रम् = विज्ञानम्, येन सः शास्त्रानभिज्ञः, ज्योतिषम् = ज्योतिःशास्त्रम्, धर्मनिर्णयम् = धर्मशास्त्रीयविषयम्, दण्डनीतिम् = दण्डनीतिविषयम्, चिकित्साम् = रोगोपचारम्, तथा क्रियाफलम्—क्रियाणाम् = कृत्याणाम्, फलम् = परिणामम्, न = नहि, ब्रूयात् = वदेत् ॥ ३२० ॥

हिन्दी—शास्त्रीय ज्ञान के बिना ज्योतिष, धर्मनिर्णय, दण्डनीति, रोग, चिकित्सा तथा प्रायश्चित्त या किसी काम का परिणाम किसी को न कहे या स्वयं न करे ॥ ३२० ॥

अज्ञातशास्त्र इति। अज्ञातम् अविदितं शास्त्रं येन सः शास्त्रानभिज्ञ इत्यर्थः, ज्योतिषं, धर्मनिर्णयं धर्मतत्त्वं नीतिं दण्डं दण्डनीतिविवरणं चिकित्सां प्रायश्चित्तं तथा क्रियाणां कार्य्याणां फलं न ब्रूयात् न कथयेत् ॥ ३२० ॥

पारतन्त्र्यात् परं दुःखं न स्वातन्त्र्यात् परं सुखम्।
अप्रवासी गृही नित्यं स्वतन्त्रः सुखमेधते ॥ ३२१ ॥

अन्वयः—पारतन्त्र्यात् परं दुःखं न, स्वातन्त्र्यात् परं सुखं न। अप्रवासी स्वतन्त्रः गृही नित्यं सुखम् एधते ॥ ३२१ ॥

व्याख्या—पारतन्त्र्यात् = परतन्त्रतायाः, परम् = अधिकम्, दुःखम् = कष्टम्, न = नहि, स्वातन्त्र्यात् = स्वतन्त्रतायाः, परम् = अधिकम्, सुखम् = आनन्दम्, न = नहि, भवति, अप्रवासी = अविदेशी, स्वतन्त्रः = स्वाधीनः, गृही = गृहनिवासीजनः, नित्यम् = सततम्, सुखम् = आनन्दम्, एधते = आप्नोति ॥ ३२१ ॥

हिन्दी—पराधीनता से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं है और स्वाधीनता से बढ़कर कोई सुख नहीं है। जिसे विदेश में नहीं रहना पड़ता है, स्वतंत्र होकर सदैव घर में रहता है, उसका सुख सदैव बढ़ता है ॥ ३२१ ॥

पारतन्त्र्यादिति। पारतन्त्र्यात् पराधीनतायाः परं दुःखं न स्वातन्त्र्यात् स्वाधीनतायाश्च परं सुखं न अस्तीति शेषः। अप्रवासी अविदेशी स्वतन्त्रः स्वाधीनः गृही नित्यं सततं सुखम् एधते प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ३२१ ॥

नूतनप्राक्तनानां च व्यवहारविदां धिया।
प्रतिक्षणं चाभिनवो व्यवहारो भवेदतः ॥ ३२२ ॥
वक्तुं न शक्यते प्रायः पत्यक्षादनुमानतः।
उपमानेन तज्ज्ञानं भवेदाप्तोपदेशतः ॥ ३२३ ॥

अन्वयः—नूतनप्राक्तनानां च व्यवहारविदां धिया प्रतिक्षणं अभिनवव्यवहारः भवेत्। अतः प्रायः वक्तुं न शक्यते। प्रत्यक्षात् अनुमानतः उपमानेन आप्तोपदेशतः तज्ज्ञानं भवेत् ॥ ३२२-३२३ ॥

व्याख्या—नूतनानाम् = नवीनानाम्, प्राक्तनानाम् = प्राचीनानाम्, व्यवहारविदाम् = वृत्तवेदिनाम्, धिया = बुद्ध्या ज्ञानेन वा, प्रतिक्षणम् = प्रतिपलम्, अभिनवः = नूतनः,

व्यवहारः = आचारः, भवेत् = स्यात् । अतः = अस्मात्कारणात्, प्रायः = बाहुल्येन, वक्तुम् = वदितुम्, न = नहि, शक्यते = समर्थो भवति । प्रत्यक्षात् = दृग्गोचरात्, अनुमानतः = अभ्यूहनात्, उपमानेन = दृष्टान्तेन, आप्तानाम् = भ्रान्तिशून्यानाम्, तत् = तस्य, ज्ञानम् = बोधम्, भवेत् = स्यात् ॥ ३२२-३२३ ॥

हिन्दी—नये या पुराने व्यवहार में दक्ष लोगों की बुद्धि से प्रत्येक क्षण नये आचार का निर्माण होता रहता है। अतः बहुधा उन सबों का वर्णन कठिन है। अतः आँखों से देखकर, अनुमान लगाकर, दृष्टान्त से तथा भ्रान्तिशून्य लोगों के कथन से उन सबों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥ ३२२-२३२ ॥

नूतनेति । वक्तुमिति । नूतनानाम् इदानीन्तनानां प्राक्तनानां पूर्वतनानाञ्च व्यवहारविदाम् आचारदर्शिनां धिया बुद्ध्या प्रतिक्षणम् अभिनवः व्यवहारः आचारः भवेत् उत्पद्यते । अतः अस्मात् कारणात् प्रायः बाहुल्येनेत्यर्थः, सः वक्तुं न शक्यते । प्रत्यक्षात् अनुमानतः अनुमानात् उपमानेन दृष्टान्तेन आप्तानां विश्वस्तानाम् उपदेशतः उपदेशाच्च तस्य व्यवहारस्य ज्ञानं भवेत् । ३२२-२३ ॥

कथितं तु समासेन सामान्यं नृपराष्ट्रयोः ।
नीतिशास्त्रं हितायालं यद् विशिष्टं नृपे स्मृतम् ॥ ३२४ ॥

इति शुक्रनीतौ नृपराष्ट्रसामान्यलक्षणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

अन्वयः—समासेन नृपराष्ट्रयोः सामान्यं कथितं नीतिशास्त्रं हिताय अलं यत् नृपे विशिष्टं स्मृतम् ॥ ३२४ ॥

व्याख्या—समासेन = सङ्क्षेपेण, नृपराष्ट्रयोः—नृपस्य = राज्ञः, राष्ट्रस्य = जनपदस्थितजनस्य, सामान्यम् = साधारणम्, कथितम = उक्तम्, नीतिशास्त्रम् = नयविद्या, हिताय = लाभाय, अलम् = पर्याप्तम्, यत् = कथनम्, नृपे = राज्ञि विषये, विशिष्टम् = असामान्यम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ २३४ ॥

हिन्दी—इस तरह संक्षेप में साधारणतया राजा और प्रजा दोनों के सम्बन्ध में, विशेषकर राजा के लिए नीति हितकर है—कहा गया ॥ ३२४ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में 'नृपराष्ट्रसामान्यलक्षण' नामक तृतीय अध्याय की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

कथितमिति । समासेन सङ्क्षेपेण नृपराष्ट्रयोः नृपस्य राष्ट्रस्य राज्यस्थस्य साधारणस्य च सामान्यं साधारणं कथितं नीतिशास्त्रं हिताय सर्वेषामिति शेषः, अलं पर्य्याप्तं हितजनकमित्यर्थः। यत् नीतिशास्त्रं नृपे राज्ञि विषये विशिष्टं स्मृतं विशेषेण हितकरत्वाद्राज्ञ इति भावः ॥ ३२४ ॥

इति जीवानन्दविद्यासागरविरचिता तृतीयाध्यायव्याख्या समाप्ता ।

चतुर्थोऽध्यायस्य प्रथमं प्रकरणम्

अथ मिश्रप्रकरणं प्रवक्ष्यामि समासतः।
लक्षणं सुहृदादीनां समासाच्छृणुताधुना॥ १ ॥

अन्वयः—अथ मिश्रप्रकरणं समासतः प्रवक्ष्यामि। सुहृदादीनां लक्षणं समासात् अधुना शृणुत॥ १ ॥

व्याख्या—अथ = तत्पश्चात्, मिश्रप्रकरणम्—मिश्राणाम् = मिश्रितानेकविषयाणाम्, प्रकरणम् = परिच्छेदः, समासतः = सङ्क्षेपेण, प्रवक्ष्यामि = कथयामि। तत्र सुहृदादीनाम् = मित्रप्रभृतीनाम्, लक्षणम् = चिह्नम्, समासात् = संक्षेपात्, अधुना = इदानीम्, शृणुत = आकर्ण्यतामित्यर्थः॥ १ ॥

हिन्दी—अब अनेक विषयों का प्रकरण सङ्क्षेप में कहता हूँ। उनमें सर्वप्रथम मित्र के लक्षण संक्षेप में इस समय आप लोग सुनें॥ १ ॥

अथेति। अथ अनन्तरं मिश्राणां विवधविषयाणां प्रकरणं सङ्क्षेपात् प्रवक्ष्यामि। तत्र सुहृदादीनां लक्षणं समासतः सङ्क्षेपात् अधुना साम्प्रतं प्रथममित्यर्थः शृणुत।।१॥

मित्रः शत्रुश्चतुर्धा स्यादुपकारापकारयोः।
कर्त्ता कारयिता चानुमन्ता यश्च सहायकः॥ २ ॥

अन्वयः—उपकारापकारयोः मित्रः शत्रुश्च चतुर्धा स्यात्। कर्त्ता कारयिता अनुमन्ता च यः सहायकः॥ २ ॥

व्याख्या—उपकारापकारयोः = हिताहितयोः, क्रमेण मित्रः = सुहृद, च = पुनः, शत्रुः = रिपुः, अत्र मित्रशब्दस्य पुंल्लिङ्गप्रयोगः आर्षत्वादिति, चतुर्धा = चतुर्विधः, स्यात् = भवेत्। कर्त्ता = स्वयमनुष्ठाता, कारयिता = प्रेरकः, अनुमन्ता = अनुमतिप्रदाता, च = पुनः, यश्च सहायकः = सहायः स्यात्॥ २ ॥

हिन्दी—मनुष्य किसी का उपकार या अपकार करने से मित्र या शत्रु बन जाता है। ये मित्र एवं शत्रु चार तरह के होते हैं। क्रमशः उपकार एवं अपकार करने वाला, कराने वाला, अनुमति देने वाला तथा सहायक; इन चार भेदों से चार तरह के मित्र एवं शत्रु होते हैं॥ २ ॥

मित्र इति। उपकारापकारयोः सतो क्रमेण मित्रः शत्रुश्च स्यात्। स च प्रत्येकं चतुर्धा चतुर्विधः कर्त्ता, कारयिता, अनुमन्ता तथा यश्च सहायकः साहाय्यकारी सः तथा च कर्त्ता मित्रः, कारयिता मित्रः, अनुमन्ता मित्रः, सहायमित्रः। कर्त्ता शत्रुः कारयिता शत्रुः अनुमन्ता शत्रुः सहायः शत्रुः, मित्रशब्दश्चात्र पुंल्लिङ्ग आर्षः॥ २ ॥

यस्य सुद्रवते चित्तं परदुःखेन सर्वदा।
इष्टार्थे यततेऽप्यप्रेरितः सत्करोति यः॥ ३ ॥

आत्मस्त्रीधनगुह्यानां शरणं समये सुहृत्।
प्रोक्तोत्तमोऽयमन्यश्च त्रिद्व्येकपदमित्रकः ॥ ४ ॥

अन्वयः—यस्य चित्तं परदुःखेन सर्वदा सुद्रवते, यः अन्यस्य इष्टार्थे यतते, तथा अप्रेरितः सत्करोति, समये आत्मनः स्त्रियाः धनानां गुह्यानां शरणं; सः अयं उत्तमः सुहृत् प्रोक्तः। अन्यश्च त्रिद्व्येकपदमित्रकः अस्ति ॥ ३-४ ॥

व्याख्या—यस्य = जनस्य, चित्तम् = हृदयम्, परदुःखेन—परेषाम् = अन्येषाम्, दुःखेन = पीडया, सुद्रवते = सुष्ठुतया गलति, सर्वदा = सततम्, यः = पुरुषः, अन्यस्य = परस्य, इष्टार्थे = वाञ्छितार्थसाधने, यतते = प्रयत्नं कुरुते, तथा अप्रेरितः = अप्रचोदितः, सत्करोति = हितङ्करोति, समये = यथावसरे, आत्मनः = स्वस्य, स्त्रियाः = पत्न्याः, धनानाम् = वित्तानाम्, गुह्यानाम् = परेषां गुप्तविषयाणाम्, शरणम् = आश्रयस्थानम्, सोऽयम् = एषः, उत्तमः = उत्कृष्टः, सुहृत् = मित्रम्, प्रोक्तम् = कथितम्। अन्यश्च = अपरश्च, त्रिद्व्येकपदमित्रमस्ति। अर्थात् परपीडया यस्य चित्तं सुद्रवते, यश्चान्याभिलषितार्थप्राप्तये प्रयत्नं करोति, तथाऽप्रचोदितः सन्नपि सत्केरोति सः त्रिपदमित्रकः, यस्य हृदयम् परपीडया द्रवति, पराभिलषितार्थे यतते, सः द्विपदमित्रकः, यस्य जनस्य हृदयं परदुःखेनैव गलति सः एकपदमित्रको भवति ॥ ३-४ ॥

हिन्दी—जिसका हृदय अपने मित्र के दुःख से महादुःखी रहता है और जो अपने मित्र की अभीष्ट सिद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है तथा बिना कहे ही मित्र का हितसाधन करता है एवं मित्र की स्त्री, धन और गोपनीय विषयों की समय आने पर रक्षा करता है, वह उत्कृष्ट मित्र कहलाता है। इससे भिन्न योग्यतानुसार कम पादवाला होने से त्रिपद, द्विपद तथा एकपद मित्र कहलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका हृदय मित्र-दुःख से कातर है, जो मित्र की अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयास करता है तथा बिना कहे ही उसका उपकार करता है, वह त्रिपदमित्रक होता है। जिसका मन मित्र के दुःख से दुःखी होता है तथा मित्र की अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयास करता है, वह द्विपद मित्र कहलाता है तथा जिसका हृदय केवल मित्र के दुःख से दुःखी होता है, वह एकपद मित्र कहलाता है ॥ ३-४ ॥

यस्येति। आत्मेति। यस्य चित्तं परदुःखेन सर्वदा सुद्रवते, गलति, यः अन्यस्य इष्टार्थे अभिप्रेतार्थसाधने यतते, तथा अप्रेरितः अकथितः सन्नपि सत्करोति उपकरोति। किन्तु यः समये यथासमये आत्मनः स्त्रियाः धनानां गुह्यानाम् अन्येषां गुप्तविषयाणां शरणं रक्षिताः, सः अयम् उत्तमः सुहृत् प्रोक्तः कथितः। प्रोक्तोत्तम इति सन्धिरार्षः। अन्यश्च त्रिद्व्येकपदमित्रकः अस्ति तथाहि यस्य चित्तं परदुःखेन गलति, यश्च अन्यस्य इष्टार्थे यतते तथा अप्रेरितोऽपि सत्करोति सः त्रिपदमित्रकः, यस्य चित्तं परदुःखेन गलति, यश्च अन्यस्य इष्टार्थे यतते, सः द्विपदमित्रकः, यस्य चित्तं परदुःखेन गलति सः एकपदमित्रक इति भावः ॥ ३-४ ॥

अनन्यस्वत्वकामत्वमेकस्मिन् विषये द्वयोः।
वैरिलक्षणमेतद् वान्येष्टनाशनकारिता ॥ ५ ॥

अन्वयः—द्वयोः एकस्मिन् विषये अनन्यस्वत्वकामत्वं वा अन्येष्टनाशनकारिता एतत् वैरिलक्षणम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—द्वयोः = उभयोः पुंसोः, एकस्मिन् = कस्मिंश्चित्, विषये = व्यापारे, अनन्य-

स्वत्वकामित्वम् = स्वस्वामित्वमात्राभिलाषत्वम्, वा = अथवा, अन्येष्टनाशनकारिता— अन्येषाम् = आत्मभिन्नजनानाम्, इष्टानाम् = अभिलषितानाम्, नाशनकारिता = विघातकत्वम्, एतत् = पूर्वोक्तद्वयम्, वैरिलक्षणम् = शत्रुताविधायकम् ॥ ५ ॥

हिन्दी—एक ही वस्तु के विषय में दो आदमी का अपना वर्चस्व कायम करना अथवा एक-दूसरे की अभिलषित वस्तु को विनष्ट करना—ये दोनों लक्षण वैरभाव रखने के हैं ॥ ५ ॥

अनन्येति। द्वयोः एकस्मिन् विषये वस्तुनि अनन्यस्वत्वकामत्वं निजस्वामित्वमात्रकामना वा अथवा अन्येषाम् इष्टानां नाशनकारिता विनाशकत्वमित्यर्थः, एतत् उभयं वैरिलक्षणं शत्रुताप्रयोजकमित्यर्थः ॥ ५ ॥

भ्रात्रभावे पितृद्रव्यमखिलं मम वै भवेत्।
न स्यादेतस्य वश्येऽयं ममैव स्यात् परस्परम् ॥ ६ ॥
भोक्ष्येऽखिलमहं चैतद्विनान्यं स्तः सुवैरिणौ।
द्वेष्टि द्विष्ट उभौ शत्रू स्तश्चैकतरसंज्ञकौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—भ्रातुः अभावे अखिलं पितृद्रव्यं मम वै भवेत्, एतस्य न स्यात्, अयञ्च ममैव वश्यं स्यात्। अहम् अन्यं विना अखिलम् एतत् भोक्ष्ये, परस्परं द्वौ तौ सुवैरिणौ स्तः। यश्च द्वेष्टि द्विष्टः तौ एकतरसंज्ञकौ शत्रू स्तः ॥ ६-७ ॥

व्याख्या—भ्रातुः = सोदरस्य, अभावे = सत्ताभावे, अखिलम् = सकलम्, पितृद्रव्यम् = आनुवांशिकधनम्, ममैव = मदीयैव, वै = इति निश्चयेन, भवेत् = स्यात्, एतस्य = भ्रातुः न = नहि, स्यात् = भवेत्, अयञ्च = एषश्च, विना = विहाय, अखिलम् = समग्रम्, एतत् = धनं वस्तुजातम्, च, भोक्ष्ये = उपभोगं करिष्यामि, अनेन प्रकारेण, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, यौ = भ्रातारौ, विचारयतः इति शेषः, तौ = भ्रातारौ, सुवैरिणौ = घोरारी, स्तः = भवतः। यश्च = यो हि भ्राता, द्वेष्टि = द्वेषं करोति, यश्च = भ्राता, द्विष्टः = सापत्न्यभावभूतः, तौ = सोदरौ, एकतरसंज्ञकौ = एकतरनामानौ, शत्रू = रिपू, स्तः = भवतः ॥ ६-७ ॥

हिन्दी—अपने भाई के रहने के बावजूद भी पिता का अर्जित सारा धन मेरा ही है हो, किसी दूसरे भाई के हाथ न लगे, दूसरा भाई मेरे अधीन रहे, मैं किसी के अधीन न रहूँ; इसे अलग हटा कर सम्पूर्ण धन का मैं अकेले उपभोग करूँ—इस प्रकार जो परस्पर भाई लोग एक-दूसरे के प्रति विचार रखते हैं, वे एक-दूसरे के परम शत्रु कहलाते हैं। जो केवल द्वेष करता है या किसी के द्वेष का पात्र होता है, वे दानों एकतरफा दुश्मन कहलाते हैं ॥ ६-७ ॥

उभयप्रकारं दृष्टान्तेन दर्शयति—**भ्रात्रभावे** इति। **भोक्ष्ये** इति। भ्रातुः अभावे अविद्यमानतायामपीत्यर्थः, अखिलं समग्रं पितृद्रव्यं मम वै ममैव वैशब्दोऽवधारणे। भवेत्, एतस्य भ्रातुः न स्यात्, अयञ्च भ्राता ममैव वश्यः स्यात्। अहम् अन्यं विना अखिलं समग्रम् एतत् वस्तु भोक्ष्ये इत्येवं परस्परं यौ मन्त्रयत इति शेषः, तौ सुवैरिणौ परमशत्रू स्तः भवतः। यश्च द्वेष्टि, द्वेषं करोति, यश्च द्विष्टः द्वेषविषयीभूतः तौ एकतरसंज्ञकौ एकतरनामानौ शत्रू स्तः भवतः ॥ ६-७ ॥

शूरस्योत्थानशीलस्य बलनीतिमतः सदा।
सर्वे मित्रा गूढवैरा नृपाः कालप्रतीक्षकाः ॥ ८ ॥

भवन्तीति किमाश्चर्य्यं राज्यलुब्धा न ते हि किम्?।
न राज्ञो विद्यते मित्रं राजा मित्रं न कस्य वै॥ ९॥

अन्वयः—शूरस्य सदा उत्थानशीलस्य बलनीतिमतः सर्वे गूढवैराः कालप्रतीक्षकाः नृपाः मित्राः भवन्ति इति आश्चर्यं किम्? ते हि किं राज्यलुब्धाः न? राज्ञः मित्रं न विद्यते, राजाऽपि कस्य मित्रं न वै॥ ८-९॥

व्याख्या—शूरस्य = पराक्रमशालिनः, सदा = सर्वदा, उत्थानशीलस्य = उन्नतिशीलस्य, तथा बलनीतिमतः = शक्तिशालिनो नयशालिनो जनस्य, सर्वे = सकलाः, गूढवैराः = प्रच्छन्नशत्रुत्वम्, कालप्रतीक्षकाः = समयापेक्षिणः, नृपाः = राजानः, मित्राः = सुहृद्भूताः, भवन्ति = जायन्ते, इति = अस्मिन् विषये, आश्चर्यम् = विस्मयः, किम् = इति प्रश्ने? ते = नृपाः, हि = यतः, किमिति प्रश्ने, राज्यलुब्धाः = जनपदगृध्नवः, न = नहि, अपितु, राज्यलुब्धाः एव, केवलं कालं प्रतीक्षन्ते एव। कोऽपि जनः राज्ञः = नृपस्य, मित्रम् = सुहृत्, न = नहि, विद्यते = अस्ति, राजाऽपि = नृपोऽपि, कस्यापि, मित्रम् = सुहृद्, न = नहि, वै = इति निश्चयेन भवतीति॥ ८-९॥

हिन्दी—जो राजा शूर, सदा उन्नतिशील, बल तथा नीति से युक्त होता है, उसके सभी राजा लोग मौके का इन्तजार करने वाले होते हैं। वे छिपे ढंग से दुश्मनी तथा ऊपर से मित्रता करने वाले होते हैं। इस बात पर आश्चर्य करना क्या उचित है? क्या वे राजे राज्य के लोभी नहीं होते हैं? अर्थात् अवश्य होते हैं। इससे यही सिद्ध हुआ कि न तो राजा का कोई मित्र होता है और न राजा किसी का मित्र होता है॥ ८-९॥

शूरस्येति। भवन्तीति। शूरस्य विक्रमशालिनः सदा उत्थानशीलस्य उद्योगिनः तथा बलनीतिमतः बलशालिनो नीतिपरायणस्य च जनस्य सर्वे गूढवैराः गुप्तशात्रवाः कालप्रतीक्षकाः समयापेक्षिणः नृपाः मित्राः मित्रभूताः भवन्ति इत्यत्र आश्चर्य्यं किम्? ते हि नृपाः किं राज्यलुब्धाः न? अपितु राज्यलुब्धा एव केवलं कालं प्रतीक्षन्ते इति भावः। कोऽपि जनः राज्ञः मित्रं न विद्यते, राजापि कस्यापि मित्रं न वै नैवेत्यर्थः॥ ८-९॥

प्रायः कृत्रिममित्रे ते भवतश्च परस्परम्।
केचित् स्वभावतो मित्राः शत्रवः सन्ति सर्वदा॥ १०॥

अन्वयः—प्रायः ते परस्परं कृत्रिममित्रे भवतः। च केचित् स्वभावतः मित्राः शत्रवः सर्वदा सन्ति॥ १०॥

व्याख्या—प्रायः = बहुधा, ते = नृपाः, परस्परम् = अन्योन्यम्, कृत्रिममित्रे = अनैसर्गिकसुहृदौ, भवतः = स्तः, च = पुनः, केचित् = कश्चन, स्वभावतः = निसर्गतः, मित्राः इत्यार्षप्रयोगः, सुहृदः, शत्रवः = अरयः, सर्वदा = कदाचित्, सन्ति = भवन्तीति भावः॥ १०॥

हिन्दी—प्रायः वे राजे आपस में बनावटी मित्र बने रहते हैं। किन्तु इनमें कुछ ऐसे भी होते हैं, जो निःस्वार्थ प्रेम करते हैं या शत्रु बन जाते हैं॥ १०॥

प्राय इति। प्रायः बाहुल्येन तौ प्रजाराजानौ परस्परं कृत्रिममित्रे कार्य्यजबन्धू भवतः। किञ्च केचित् स्वभावतः मित्राः सर्वदा कदाचिदित्यर्थः, शत्रवः सन्ति भवन्ति॥ १०॥

माता मातृकुलं चैव पिता तत् पितरौ तथा।
पितृपितृव्यात्मकन्या पत्नी तत् कुलमेव हि॥ ११ ॥
पितृमात्रात्मभगिनीकन्यकासन्ततिश्च या।
प्रजापालो गुरुश्चैव मित्राणि सहजानि हि॥ १२ ॥

अन्वयः—माता मातृकुलं पिता तत् पितरौ तथा पितृपितृव्यात्मकन्या पत्नी तत् कुलमेव हि पितृमात्रात्मभगिनीकन्यकासन्ततिः च प्रजापालः गुरुः हि एतानि सहजानि मित्राणि॥ ११-१२ ॥

व्याख्या—माता = जननी, मातृकुलम् = मातामहप्रभृतयः, पिता = जनकः, तत् = तस्य पितुः, पितरौ—माता च पिता च पितरौ = पितामहः पितामही च, तथा, पितुः पितृव्यः = पितुः पितृसोदरः, आत्मकन्या = स्वसुता, पत्नी = भार्या, तत् = तस्याः, कुलम् = श्वसुरादयः, पितृभगिनी = पितृष्वसा, मातृभगिनी = मातृष्वसा, आत्मभगिनी = स्वसहोदरा, तासाम् = भगिनीनाम्, कन्यकाश्च = सुताश्च, या च सन्ततिः तासाम्, सन्ततिः = प्रसवः, प्रजापालः = प्रजारक्षको नृपतिः, तथा गुरुः = शुभचिन्तकः आचार्यः, हि = इति निश्चयेन, एतानि = पूर्वोक्तानि, सहजानि = स्वाभाविकाः, मित्राणि = सुहृदो भवन्तीति भावः॥ ११-१२ ॥

हिन्दी—माता, ननिहाल के सम्बन्धी वर्ग, पिता, दादा-दादी तथा पिता के चाचा, अपनी बेटी, पत्नी तथा ससुराल के सम्बन्धी वर्ग, फूफी, मौसी, बहन और इनकी सन्तान, प्रजापालक राजा और शुभचिन्तक गुरु—ये सभी किसी भी व्यक्ति के स्वाभाविक मित्र होते हैं॥ ११-१२ ॥

मातेति। माता, मातृकुलं मातामहादिः पिता तथा तस्य पितुः पितरौ मातापितरौ पितामहः पितामही चेत्यर्थः, पितुः पितृव्यः, आत्मकन्या, पत्नी, तस्याः कुलं श्वशुरादिः, पितृभगिनी, मातृभगिनी, आत्मभगिनी, तासां कन्यकाश्च या च सन्ततिः पुत्र इत्यर्थः, प्रजापालः, भूपतिः, तथा गुरुः एतानि सहजानि मित्राणि हिशब्दोऽवधारणार्थः॥ ११-१२ ॥

विद्या शौर्य्यञ्च दाक्ष्यञ्च बलं धैर्य्यञ्च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्त्तयन्ति हि तैर्बुधाः॥ १३ ॥

अन्वयः—विद्या शौर्य्यं दाक्ष्यं बलं तथा पञ्चमं धैर्यं सहजानि मित्राणि आहुः। हि बुधाः तैः वर्त्तयन्ति॥ १३ ॥

व्याख्या—विद्या = ज्ञानम्, शौर्यम् = पराक्रमः, दाक्ष्यम् = कौशलम्, बलम् = शक्तिम्, तथा पञ्चमम्, धैर्यम् = धीरत्वम्, मनःस्थैर्यमित्यर्थः, एतानि सहजानि = स्वाभाविकानि, मित्राणि = सुहृदः, आहुः = कथयन्ति। हि, बुधाः = पण्डिताः, तैः = पूर्वोक्तैः विद्यादिभिः, वर्त्तयन्ति = जीवन्ति॥ १३ ॥

हिन्दी—विद्या, वीरता, चतुरता, शक्ति तथा धैर्य—ये पाँचों किसी भी व्यक्ति के सहज मित्र कहलाते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति इन्हीं के सहारे अपनी आजीविका का निर्वाह करते हैं॥ १३ ॥

विद्येति। विद्या, शौर्य्यं दाक्ष्यं नैपुण्यं, बलं तथा पञ्चमं धैर्य्यम् एतानि सहजानि मित्राणि आहुः कथयन्ति बुधा इति शेषः, बुधाः पण्डिताः तैः विद्यादिभिः वर्त्तयन्ति जीवन्ति॥ १३ ॥

पित्रोर्निर्देशवर्त्ती यः स पुत्रोऽन्वर्थनामवान्।
श्रेष्ठ एकस्तु गुणवान् किं शतैरपि निर्गुणैः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यः पित्रोः निदेशवर्त्ती सः पुत्रः अन्वर्थनामवान्। एकः गुणवान् श्रेष्ठः, निर्गुणैः शतैरपि किम्? ॥ १५ ॥

व्याख्या—यः = पुत्रः, पित्रोः = जननी-जनकयोः, निदेशवर्त्ती = आज्ञापालकः, सः = असौ, पुत्रः = सुतः, अन्वर्थनामवान् = सार्थकनामा, भवतीति भावः। एकः = एकमात्रः, गुणवान् = गुणज्ञः, श्रेष्ठः = उत्कृष्टः, निर्गुणैः = गुणहीनैः, शतैः = शतसंख्यकैः, अपि किम् = न किमपीत्यर्थः ॥ १४ ॥

हिन्दी—माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला पुत्र ही सार्थक पुत्र है, क्योंकि सैकड़ों निर्गुण पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान् पुत्र ही श्रेष्ठ होता है ॥ १४ ॥

पित्रोरिति। यः पुत्रः पित्रोः मातापित्रोः निदेशवर्त्ती आज्ञावर्त्ती सः पुत्रः अन्वर्थनामवान् यथार्थनामा इत्यर्थः। एकः गुणवान् पुत्रः श्रेष्ठः, निर्गुणैः शतैरपि किम्? न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः ॥ १४ ॥

स्वभावतो भवन्त्येते हिंस्रो दुर्वृत्त एव च।
ऋणकारी पिता शत्रुर्माता स्त्री व्यभिचारिणी ॥ १५ ॥

अन्वयः—एते स्वभावतः मित्राणि भवन्ति। तथाहि—हिंस्रः दुर्वृत्तः तथा ऋणकारी पिता व्यभिचारिणी माता च स्त्री शत्रुः ॥ १५ ॥

व्याख्या—एते = पूर्वोक्ताः, स्वभावतः = निसर्गतः, मित्राण्यपि = सुहृदोऽपि, कदाचित्कारणवशाच्छत्रवो भवन्ति। तथाहि हिंस्रः = हिसंकः, दुर्वृत्तः = दुराचारी, तथा ऋणकारी = ऋणकर्त्ता, पिता = जनकः, व्यभिचारिणी = पुंश्चली, माता = जननी, च = पुनः, स्त्री = भार्या, शत्रुः = रिपुः, भवतीति भावः ॥ १५ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त स्वाभाविक मित्र भी कारणवश कभी शत्रु बन जाते हैं। जैसे ऋणकर्त्ता पिता, दुराचारिणी माता एवं पत्नी दुश्मन होते हैं ॥ १५ ॥

स्वभावत इति। एते पूर्वोक्ताः मात्रादयः स्वभावतः मित्राणि अपि कदाचित् शत्रवः भवन्तीत्यन्वयः। तथाहि हिंस्रः दुर्वृत्तः तथा ऋणकारी पिता, व्यभिचारिणी माता स्त्री च शत्रुः ॥ १५ ॥

आत्मपितृभ्रातरश्च तत् स्त्रीपुत्राश्च शत्रवः।
स्नुषा श्वश्रूः सपत्नी च ननान्दा यातरस्तथा ॥ १६ ॥

अन्वयः—आत्मपितृभ्रातरश्च तत् स्त्रीपुत्राश्च तथा स्नुषा श्वश्रूः, सपत्नी ननान्दा यातरः शत्रवः भवन्ति ॥ १६ ॥

व्याख्या—आत्मनः = स्वस्य, पितुः = जनकस्य, भ्रातरः = सोदराः, अर्थात् पितृव्यश्च, तथा तत् = तेषाम्, स्त्रियः = पत्न्यः, पुत्राश्च = सुताश्च, तथा स्नुषा = पुत्रवधूः, श्वश्रूः = पतिपत्नीप्रसूः, सपत्नी = समानः पतिर्यस्याः सा = समानपतिका, ननान्दा = भर्तृपत्नी, यातरः = ज्येष्ठस्य जाया देवरपत्न्यश्च वेति, कदाचित् शत्रवः = रिपवो भवन्ति, विपरीताचारादिति ॥ १६ ॥

हिन्दी—सगे भाई, चाचा, चाची, चचेरा भाई, सास-पतोहू, सौत-सौत, ननद-भौजाई तथा जेठानी-देवरानी—ये सभी प्रायः परस्पर शत्रु होते हैं ॥ १६ ॥

आत्मेति। आत्मनः पितुश्च भ्रातरः सोदराः पितृव्याश्च इत्यर्थः, तेषां स्त्रियः पुत्राश्च तथा स्नुषा पुत्रवधूः, श्वश्रूः श्वशुरपत्नी, सपत्नी, ननान्दा, यातरः देवरपत्न्यश्च कदाचिद्विरुद्धाचाराः शत्रवः भवन्तीति शेषः ॥ १६ ॥

मूर्खः पुत्रः कुवैद्यश्चारक्षकस्तु पतिः प्रभुः।
चण्डश्चण्डा प्रजा शत्रुरदाता धनिकश्च यः ॥ १७ ॥

अन्वयः—मूर्खः पुत्रः, कुवैद्यः, अरक्षकः पतिः, चण्डः प्रभुः, चण्डाः प्रजा तथा यः धनिकः च अदाता सः शत्रुः ॥ १७ ॥

व्याख्या—मूर्खः = निर्बुद्धिः, पुत्रः = सुतः, कुवैद्यः = कुत्सितचिकित्सकः, अरक्षकः = अत्राणदः, पतिः = स्वामी, चण्डः = कोपनः, प्रभुः = स्वामी, चण्डा = अतिकोपना, प्रजा = जनाश्च, तथा च यः = पुरुषः, धनिकः = सम्पत्तिशाली, अथ च अदाता = कृपणः, सः = असौ, शत्रुः = रिपुः, भवतीति ॥ १७ ॥

हिन्दी—मूर्ख बेटा, अधकचरा वैद्य, पालने में अक्षम पति, क्रोधी राजा, क्रोधी प्रजा या सन्तान तथा नहीं देने वाला कंजूस धनी—ये सभी शत्रु होते हैं ॥ १७ ॥

मूर्ख इति। मूर्खः पुत्रः, कुवैद्यः कुचिकित्सकः, अरक्षकः पतिः चण्डः कोपनः प्रभुः स्वामी चण्डा प्रजा च तथा यः धनिकः धनवान् अथ च अदाता कृपणः सः शत्रुः ॥ १७ ॥

दुष्टानां नृपतिः शत्रुः कुलटानां पतिव्रता।
साधुः खलानां शत्रुः स्यान्मूर्खाणां बोधको रिपुः ॥ १८ ॥

अन्वयः—नृपतिः दुष्टानां शत्रुः, पतिव्रता कुलटानां, साधुः खलानां शत्रुः, बोधकः मूर्खाणां रिपुः स्यात् हि ॥ १८ ॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, दुष्टानाम् = दुर्वृत्तानाम्, शत्रुः = रिपुः, पतिव्रता = साध्वी, कुलटानाम् = पुंश्चलीनाम्, साधुः = सत्पुरुषः, खलानाम् = दुर्वत्तानां, शत्रु = रिपुः, भवन्तीति, बोधकः = ज्ञापकः, मूर्खाणाम् = अज्ञानाम्, शत्रुः = रिपुः, स्यात् = भवेत् ॥ १८ ॥

हिन्दी—दुश्चरित्रों के लिए राजा शत्रु होता है, व्यभिचारिणी औरतों के लिए सच्चरित्र नारी, सज्जनों के लिए दुर्जन शत्रु होते हैं और मूर्खों के लिए उपदेशक ही शत्रु होता है ॥ १८ ॥

दुष्टानामिति। नृपतिः दुष्टानां शत्रुः, पतिव्रता कुलटानां व्यभिचारिणीनां शत्रुः, साधुः खलानां दुर्जनानां शत्रुः, बोधकः उपदेशकः मूर्खाणां शत्रुः स्यात् ॥ १८ ॥

उपदेशो हि मूर्खाणां क्रोधायैव शमाय न।
पयःपानं भुजङ्गानां विषायैवामृताय न ॥ १९ ॥

अन्वयः—मूर्खाणाम् उपदेशः क्रोधाय एव न शमाय। भुजङ्गानां पयःपानं विषाय एव न अमृताय ॥ १९ ॥

व्याख्या—मूर्खाणाम् = ज्ञानहीनानाम्, उपदेशः = बोधनम्, क्रोधाय = कोपाय, एव = केवलं भवति, न = नहि, शमाय = शान्तये भवति। यथा भुजङ्गानाम् = सर्पाणाम्, पयःपानम् = क्षीरभोजनम्, विषाय = विषवर्द्धनाय, एव = केवलं भवति, न = नहि, अमृताय = सुधाच्यवनायेति ॥ १९ ॥

हिन्दी—मूर्खों को उपदेश देना उसके क्रोध को बढ़ाना है, न कि उसकी शान्ति के लिए होता है। साँप को दूध पिलाने से उसका जहर ही बढ़ता है, न कि अमृत चूता है॥१९॥

उपदेश इति। मूर्खाणाम् उपदेशः क्रोधाय एव कोपवर्द्धनाय, न शमाय न शान्तये। अस्तीति शेषः। सर्पाणां पयःपानं दुग्धपानं विषाय विषवर्द्धनाय अमृताय न अमृतक्षरणाय इत्यर्थः॥१९॥

आसमन्ताच्चतुर्दिक्षु सन्निकृष्टाश्च ये नृपाः।
तत्परास्तत्परा येऽन्ये क्रमाद्धीनबलारयः॥२०॥
शत्रूदासीनमित्राणि क्रमात् ते स्युस्तु प्राकृताः।
अरिर्मित्रमुदासीनोऽनन्तरस्तत्परः परः॥२१॥
क्रमशो वा नृपा ज्ञेयाश्चतुर्दिक्षु तथारयः।
स्वसमीपतरा भृत्या ह्यमात्याद्याश्च कर्षिताः॥२२॥

अन्वयः—आसमन्तात् चतुर्दिक्षु ये नृपाः सन्निकृष्टाः ये च तत्पराः पुनश्च तत्पराः, ये अन्ये ते क्रमात् हीनबलारयः ते तु क्रमात् प्राकृताः मित्राणि उदासीनाः तथा शत्रवः स्युः। किञ्च अरिः मित्रम् उदासीनः अनन्तरः तत्परः तथा परः एते चतुर्दिक्षु क्रमशः नृपाः ज्ञेयाः। तथा स्वसमीपतराः भृत्याः कर्षिताः अमात्याद्याश्च अरयः ज्ञेयाः॥२०-२२॥

व्याख्या—आसमन्तात् = परितः, चतुर्दिक्षु = समन्तात्, ये नृपाः = राजानः, सन्निकृष्टाः = समीपवर्त्तिनः, ये = नृपाः, च = पुनः, तत्पराः—तत् = तस्य, पराः = परवर्त्तिनः, पुनश्च = भूयश्च, तत्पराः = तदनन्तरवर्त्तिनः, अन्ये = अपरे राजानः, ते = नृपाः, क्रमात् = क्रमशः, हीनबलारयः—हीनानि = अल्पतराणि, बलानि = सामर्थ्याणि, अरयः = शत्रवश्च, येषां तादृशाः भवन्ति। ते = नृपास्तु, क्रमात् = आनुपूर्व्येण, प्राकृताः = स्वाभाविकाः, मित्राणि = सुहृदः, उदासीनाः = तटस्थाः निःस्पृहाः वा, तथा शत्रवः = अरयः, स्युः = भवेयुः। किञ्च, अरिः = शत्रुः, मित्रम् = सुहृद्, उदासीनः = तटस्थः, अनन्तरः = पश्चात्, तत्परः—तत् = तस्य, परः = परवर्त्ती, तथा परः = अन्यः, एते = पूर्वोक्ताः चतुर्दिक्षु = सर्वतः, क्रमशः = आनुपूर्व्येण, स्थिताः, नृपाः = राजानः, प्राकृताः मित्रशत्रवः, ज्ञेयाः = बोध्याः। तथा स्वसमीपतराः— स्वस्य = आत्मनः, समीपतराः = अतिसन्निकृष्टाः, भृत्याः = सेवकाः, कर्षिताः = क्लेशिताः, अमात्याद्याश्च = आप्तसचिवादयश्च, अरयः = शत्रवो भवन्ति॥२०-२२॥

हिन्दी—किसी भी राजा के राज्य की सभी ओर चारों दिशाओं में अत्यन्त निकटवर्त्ती राजे तथा उस राज्य के बाद वाले राजे के रास्ते तथा उनकी सीमा से बाहर के राजे क्रमशः स्वाभाविक रूप से समीपवर्त्ती राजे दुश्मन, उनके बाद वाले राजे उदासीन तथा उनके बादवाले राजे मित्र होते हैं। फिर कम ताकत वाले दुश्मन भी पार्श्ववर्त्ती, मध्यवर्ती एवं दूरवर्ती होने के कारण क्रम से शत्रु, उदासीन एवं मित्र होते हैं। फिर दुश्मन, दोस्त और उदासीन राजाओं के भी उनके चारों ओर रहने वाले पार्श्ववर्ती राजे दुश्मन, मध्यवर्त्ती राजे उदासीन एवं दूरवर्त्ती राजे मित्र होते हैं। अपने अत्यन्त निकटवर्त्ती सेवक एवं मंत्री प्रभृति भी राजा के द्वारा कष्ट दिये जाने पर भी दुश्मन बन जाते हैं॥२०-२२॥

आसमन्तादित्यादि। आसमन्तात् सर्वतः चतुर्दिक्षु ये नृपाः निकटवर्त्तिनः, ये च तत्पराः तदनन्तरवर्त्तिनः तत्पराः पुनश्च तदनन्तरवर्त्तिनः अन्ये नृपाः ते क्रमात् हीनानि बलानि अरयः शत्रवश्च

येषां तादृशाः भवन्ति। ते तु क्रमात् प्राकृताः सहजाः मित्राणि उदासीनाः मध्यस्थाः तथा शत्रवः स्युः। किञ्च अरिः मित्रम् उदासीनः, अनन्तरः तत्परः तथापरः अन्यः एते चतुर्दिक्षु क्रमशः स्थिताः नृपाः प्राकृताः मित्रशत्रवः ज्ञेयाः। तथा स्वस्य समीपतराः अतिसन्निकृष्टाः भृत्याः कर्षिताः क्लेशिताः अमात्याद्याश्च अरयः शत्रवः ज्ञेया इति शेषः॥ २०-२२॥

बृंहयेत् कर्षयेत् मित्रं हीनाधिकबलं क्रमात्॥ २३॥

अन्वयः—हीनाधिकबलं मित्रं क्रमात् बृंहयेत् कर्षयेच्च॥ २३॥

व्याख्या—हीनाधिकबलम्—हीनबलम् = न्यूनशक्तिम्, अधिकबलम् = आत्मनोऽधिकशक्तिशालिनम्, मित्रम् = सुहृदम्, क्रमात् = क्रमशः, बृंहयेत् = वर्द्धयेत्, हीनबलम्, अधिकबलम् = निजाधिकबलशालिनो मित्रराजानम्, च = पुनः, कर्षयेत् = क्षीणं कुर्यात्॥ २३॥

हिन्दी—कम बल वाले और अधिक बल वाले राजाओं को भी क्रमशः कम बल वाले को अधिक बलशाली तथा अपने से अधिक बलशाली को क्षीणबल बनाना चाहिए॥ २३॥

बृंहयेदिति। हीनाधिकबलं हीनबलम् अधिकबलञ्च मित्रं बृंहयेत् वर्द्धयेत् कर्षयेच्च कृशीकुर्य्यात्॥ २३॥

भेदनीया कर्षणीयाः पीडनीयाश्च शत्रवः।
विनाशनीयास्ते सर्वे सामादिभिरुपक्रमैः॥ २४॥

अन्वयः—ते सर्वे शत्रवः सामादिभिः उपक्रमैः भेदनीयाः कर्षणीयाः पीडनीयाः च विनाशनीयाः॥ २४॥

व्याख्याः—ते = पूर्वोक्ताः, सर्वे = सकलाः, शत्रवः = अरयः, सामादिभिः = सामदानभयभेदादिभिः, उपक्रमैः = उपायज्ञानपूर्वकारम्भैः, भेदनीयाः = विदारणीयाः, कर्षणीयाः = क्षरणीयाः, पीडनीयाः = क्लेशनीयाः, च = पुनः, विनाशनीयाः = विध्वंसनीयाः॥ २४॥

हिन्दी—और जो राजे दुश्मन हैं उनमें सामादि उपायों से भेद डालकर उन्हें कमजोर बना कर एवं सता कर विनष्ट कर देना चाहिए॥ २४॥

भेदनीया इति। ते सर्वे शत्रवः सामादिभिः सामदानभेदाद्यैः उपायैः भेदनीयाः प्रकृतिषु मनोभङ्गं प्रापणीयाः कृशीकरणीयाः विनाशनीयाश्च॥ २४॥

मित्रं शत्रुं यथायोग्यैः कुर्य्यात् स्ववशवर्त्तिनम्।
उपायेन यथा व्यालो गजः सिंहोऽपि साध्यते॥ २५॥

अन्वयः—उपायेन यथा व्यालः गजः सिंहोऽपि साध्यते। तथा यथायोग्यैः मित्रं शत्रुं स्ववशवर्त्तिनं कुर्यात्॥ २५॥

व्याख्या—उपायेन = उचितसाधनेन, यथा = येन प्रकारेण, व्यालः = सर्पः, गजः = द्विपः, सिंहोऽपि = मृगराजोऽपि, साध्यते = वशीक्रियते, तथा = तेनैव प्रकारेण, यथायोग्यैः = यथार्हैः, साधनैः, मित्रम् = सुहृदम्, शत्रुम् = रिपुम्, च, स्ववशवर्त्तिनम्—स्वस्य = आत्मनः, वशवर्त्तिनम् = वशानुगम्, कुर्यात् = विधेयात्॥ २५॥

हिन्दी—जैसे सही उपाय से लोग विषैले साँप, मतवाले हाथी और सिंह को वशवर्त्ती

बना लेते हैं, उसी तरह अच्छे साधनों से दोस्त और दुश्मनों को अपना वशानुगामी बनाना चाहिए ॥ २५ ॥

मित्रमिति। यथा उपायेन व्यालः सर्पः सिंहः गजः हस्ती च साध्यते वशीक्रियते तथा यथायोग्यैः उपायैरित्यर्थः, मित्रं शत्रुञ्च स्वस्य वशवर्त्तिनं कुर्य्यात् ॥ २५ ॥

भूमिष्ठाः स्वर्गमायान्ति वज्रं भिन्दन्त्युपायतः ॥ २६ ॥

अन्वयः—उपायतः भूमिष्ठाः स्वर्गम् आयान्ति च वज्रं भिन्दन्ति ॥ २६ ॥

व्याख्या—उपायतः = सदुपायेन, भूमिष्ठाः = धरास्थाः जनाः, स्वर्गम् = अपरलोकम्, आयान्ति = व्रजन्ति, च = पुनः, वज्रम् = ऐन्द्रास्त्रम्, भिन्दन्ति = स्फोटयन्ति ॥ २६ ॥

हिन्दी—क्योंकि उपाय से मनुष्य धरती पर रहकर भी स्वर्ग में पहुँच जाते हैं और वज्र को भी चीर डालते हैं ॥ २६ ॥

भूमिष्ठा इति। उपायतः उपायेन भूमिष्ठाः पृथिवीस्था जनाः स्वर्गम् आयान्ति गच्छन्ति, वज्रं भिन्दन्ति च ॥ २६ ॥

सुहृत्सम्बन्धिस्त्रीपुत्रप्रजाशत्रुषु ते पृथक्।
सामदानभेददण्डाश्चिन्तनीयाः स्वयुक्तितः ॥ २७ ॥

अन्वयः—ते सामदानभेददण्डाः स्वयुक्तितः सुहृत्सम्बन्धिस्त्रीपुत्रप्रजाशत्रुषु च पृथक् पृथक् चिन्तनीयाः ॥ २७ ॥

व्याख्या—ते = पूर्वोक्ताः, सामदानभेददण्डाः = उपायभेदाः, स्वयुक्तितः = आत्मकौशलेन, सुहृत्सु = मित्रवर्गेषु, सम्बन्धिषु = बान्धवेषु, स्त्रीषु = नारीषु, पुत्रेषु = सुतेषु, प्रजासु = प्रशासितजनेषु, शत्रुषु = रिपुषु, च = पुनः, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, चिन्तनीयाः = विचारणीयाः ॥ २७ ॥

हिन्दी—मित्रवर्ग, सम्बन्धी, बेटे, प्रजा और शत्रु—इन सबों के बारे में पूर्वोक्त साम, दान तथा दण्ड का प्रयोग अपनी युक्ति से अलग-अलग सोचना चाहिए ॥ २७ ॥

सुहृदिति। ते सामदानभेददण्डाः स्वयुक्तितः निजयुक्त्यनुसारेण सुहृत्सु सम्बन्धिषु, स्त्रीषु, पुत्रेषु प्रजासु शत्रुषु च पृथक् पृथक् चिन्तनीयाः ॥ २७ ॥

एकशीलवयोविद्याजातिव्यसनवृत्तयः ।
साहचर्य्ये भवेन्मित्रमेभिर्यदि तु सार्जवैः ॥ २८ ॥
त्वत्समस्तु सखा नास्ति मित्रे साम इदं स्मृतम्।
मम सर्वं तवैवास्ति दानं मित्रे सजीवितम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—ये एकशीलवयोविद्याजातिव्यसनवृत्तयः सार्जवैः एभिः साहचर्ये यदि मित्रं भवेत् तदा मित्रे त्वया समः सखा नास्ति, इदं साम स्मृतम्। किञ्च मित्रे मम सर्वं तवैवास्ति इदं सजीवितं दानं स्मृतम् ॥ २८-२९ ॥

व्याख्या—ये = पूर्वोक्ताः, एकः = समानः, शीलम् = स्वभावम्, वयः = अवस्थाक्रमः, विद्या = ज्ञानम्, जातिः = कुलं, व्यसनम् = दोषः, वृत्तिः = आजीविका, येषां ते तथोक्ताः, सार्जवैः = कपटशून्यैः, एभिः = एतैः, साहचर्ये = सहवर्त्तित्वे, यदि = चेत्, मित्रम् = मित्रत्वम्,

भवेत् = स्यात्, तदा = तस्मिन् मित्रे, त्वया = भवता, समः = सदृशः, सखा = मित्रम्, नास्ति = न विद्यते। इदम् = एतत्, साम = सान्त्वनावचनम्, स्मृतम् = कथितम्। किञ्च तथाविधे मित्रे, मम = मदीयम्, सर्वम् = सकलम्, वस्तु, तवैव = भवतः एव, अस्ति = विद्यते, इदम् = एतत्, सजीवितम् = जीवनसहितम्, दानम् = प्रदानवचनम्, स्मृतम् = कथितमिति शेषः॥ २८-२९॥

हिन्दी—जिनके आपस में स्वभाव, उम्र, ज्ञान, जाति, आदत और आजीविका—ये सभी बातें समान हैं, वे यदि निष्कपटभाव से सरल होकर एक जगह मिलते हैं तो परस्पर मित्र बन जाते हैं। ऐसे मित्रों के साथ 'तुम्हारे समान मेरा दूसरा कोई मित्र नहीं है' ऐसा कहना ही 'साम' कहलाता है तथा 'मेरी सारी वस्तु ही नहीं मेरी जान भी तुम्हारी ही है' ऐसा कहना मित्र के लिए 'दानवाक्य' कहलाता है॥ २८-२९॥

एकेति। त्वत्सम इति। ये एकः समानः शीलं वयः वयः क्रमः विद्या जातिः व्यसनं दोषः वृत्तिः जीवनोपायश्च येषां ते तथोक्ताः, सार्जवैः अकपटैः एभिः साहचर्य्ये यदि मित्रं मित्रत्वमित्यर्थः, भावप्रधानो निर्देशः, भवेत् तदा तस्मिन् मित्रे त्वया समः सखा नास्ति इदं साम सान्त्ववचनं स्मृतम्। किञ्च तथाविधे मित्रे मम सर्वं वस्तु तवैव अस्ति, इदं सजीवितं जीवनसहितं दानं दानवाक्यं स्मृतमिति शेषः॥ २८-२९॥

मित्रेऽन्यमित्रसुगुणान् कीर्त्तयेद् भेदनं हि तत्।
मित्रे दण्डो न करिष्ये मैत्रीमेवंविधोऽसि चेत्॥ ३०॥

अन्वयः—मित्रे अन्यमित्रसुगुणान् यत् कीर्त्तयेत् तत् हि भेदनम्। चेत् एवंविधोऽसि मैत्रीं न करिष्ये इति मित्रे दण्डः॥ ३०॥

व्याख्या—मित्रे = सुहृत्सम्मुखे, अन्येषाम् = अपरेषाम्, मित्राणाम् = सुहृदाम्, सुगुणान् = श्रेष्ठगुणान्, यत्कीर्त्तयेत् = वर्णयेत्, तद्गुणकथनम्, तस्य = मित्रस्य, भेदनम् = भेदकम्, हि = इति निश्चयेन भवति। चेत् = यदि, एवंविधः = एतादृशः, असि = भवसि, तदा भवता सह, मैत्रीम् = सौहार्दम्, न = नहि, करिष्ये = विधास्ये, इति वचनम्, मित्रे = सुहृदि, दण्डः = दण्डाख्यो भेदः, कथितः इति शेषः॥ ३०॥

हिन्दी—मित्र के सामने अन्य मित्रों के सुन्दर गुणों का बखान करना उस मिंत्र के लिए भेदवाक्य होता है और 'तुम यदि ऐसे हो तो तुम्हारे साथ दोस्ती नहीं करूँगा' यह कहना ही मित्र के लए 'दण्ड' वाक्य है॥ ३०॥

मित्रे इति। मित्रे अन्येषां मित्राणां सुगुणान् उत्तमगुणान् यत् कीर्त्तयेत् तत् कीर्त्तनं तस्य मित्रस्य भेदनं मनोभङ्गकरणं हि। चेत् यदि त्वम् एवंविधः एतादृशः असि, तदा त्वया सह मैत्रीं न करिष्ये इति वचनं मित्रे दण्डः स्मृत इति शेषः॥ ३०॥

यो न संयोजयेदिष्टमन्यानिष्टमुपेक्षते।
उदासीनः स न कथं भवेच्छत्रुः सुसान्धिकः?॥ ३१॥

अन्वयः—यः इष्टं न संयोजयेत् अन्यानिष्टं उपेक्षते, सः उदासीनः सुसान्धिकः शत्रुः कथं न भवेत्?॥ ३१॥

व्याख्या—यः = जनः, इष्टम् = अभिलषितम्, न = नहि, संयोजयेत् = सम्मेलयेत्, तथा अन्यकृतम् = अपरजनसम्पादितम्, अनिष्टम् = अनभिलषितम्, उपेक्षते = उपेक्षां कुरुते, सः

उदासीनः = निःस्पृहः, सः = असौ, सुसान्धिकः = सुष्ठुतया सन्धिना साध्यः, शत्रुः = रिपुः, कथम् = केन प्रकारेण, न = नहि, भवेत् = स्यात्, अपितु रिपुरेव भवेदिति ॥ ३१ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अपनी अभिलषित वस्तु की सिद्धि न करे और दूसरों के द्वारा किये गये अनभिलषित काम की उपेक्षा करे, ऐसा निःस्पृह व्यक्ति भलीभाँति सन्धि करने के बावजूद भी भला कयों न दुश्मन हो ? ॥ ३१ ॥

य इति। यः इष्टं न संयोजयेत् न कुर्य्यात्, तथा अन्यकृतमनिष्टम् उपेक्षते न पश्यति स उदासीनः, सः सुसान्धिकः सुष्ठु सन्धिना साध्यः शत्रुः कथं न भवेत् ? अपितु शत्रुरेव ॥ ३१ ॥

परस्परमनिष्टं न चिन्तनीयं त्वया मया।
सुसाहाय्यं हि कर्त्तव्यं शत्रौ साम प्रकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—त्वया मया च परस्परं अनिष्टं न चिन्तनीयं प्रत्युत सुसाहाय्यं कर्त्तव्यम्, इति शत्रौ साम प्रकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—त्वया = भवता, मया च परस्परम्, अनिष्टम् = अहितम्, न = नहि, चिन्तनीयम् = विचारणीयम्, प्रत्युत = अपितु, सुसाहाय्यम् = सुष्ठूपकृतिः, कर्त्तव्यम् = अनुष्ठेयम्, इति = एवम्, शत्रौ = रिपौ, साम = उपायभेदः, प्रकीर्तितम् = कथितम् ॥ ३२ ॥

हिन्दी—तुम्हें और हमें परस्पर एक-दूसरे के अनिष्ट का विचार नहीं रखना चाहिए, प्रत्युत एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए—इस प्रकार कहना शत्रु के लिए सामवाक्य कहलाता है ॥ ३२ ॥

परस्परमिति। त्वया मया च परस्परं परस्परस्य अनिष्टं न चिन्तनीयं प्रत्युत सुसाहाय्यं कर्त्तव्यं हि इति वचनं शत्रौ साम प्रकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥

करैर्वा प्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरे प्रबलं रिपुम्।
तोषयेत् तद्धि दानं स्याद् यथायोग्येषु शत्रुषु ॥ ३३ ॥

अन्वयः—यथायोग्येषु शत्रुषु प्रबलं रिपुं वत्सरे प्रमितैः करैः ग्रामैः वा यत् तोषयेत् तत् हि दानम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—यथायोग्येषु = यथोचितेषु, शत्रुषु = रिपुषु मध्ये, प्रबलम् = प्रकर्षबलशालिनम्, रिपुम् = अरिम्, वत्सरे = प्रतिवर्षे, प्रमितैः = प्रमाणितैः, स्तोकैः, करैः = राजस्वैः, ग्रामैर्वा = वसतिभिर्वा, यत् तोषयेत् = तृप्येत् मोदयेद्वा, तत् हि = तदेव, तादृशे शत्रौ दानम्, कथितमिति शेषः ॥ ३३ ॥।

हिन्दी—अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु को वार्षिक मालगुजारी देकर या छोटा-सा कोई गाँव देकर या यथोचित कुछ देकर उसे संतुष्ट कर लेता है, वही दान कहलाता है ॥ ३३ ॥

करैरिति। यथायोग्येषु शत्रुषु मध्ये प्रबलं रिपुं शत्रुं वत्सरे वत्सरे प्रमितैः परिमितैः करैः राजस्वैः ग्रामैर्वा त्यक्तैरिति शेषः, यत् तोषयेत् तत् हि तदेव तादृशे शत्रौ दानं प्रकीर्त्तितमिति शेषः ॥ ३३ ॥

शत्रुसाधकहीनत्वकरणात् प्रबलाश्रयात्।
तद्धीनतोज्जीवनाच्च शत्रुभेदनमुच्यते ॥ ३४ ॥

अन्वयः—शत्रुसाधकहीनत्वकरणात् प्रबलाश्रयात् तद्धीनतोज्जीवनाच्च शत्रुभेदनम् उच्यते ॥ ३४ ॥

व्याख्या—शत्रोः = रिपोः, साधकम् = पराभवसाधनम्, यत् हीनत्वकरणम् = अकिञ्चनत्वं साधनम्, तस्मात् प्रबलस्य = प्रकर्षबलशालिनः, आश्रयात् = अवष्टम्भात्, तस्मात् रिपोः ये हीनाः = निकृष्टाः, तेषां भावः, तद्धीनता = तस्मान्निकृष्टता, तस्या उज्जीवनात् = तद्धीनानां प्रबलीकरणात्, शत्रुभेदनम्—शत्रौ = रिपौ, भेदनम् = छेदनम्, शत्रुभेद इति कथ्यते ॥ ३४ ॥

हिन्दी—दुश्मन के समस्त साधनों को निकृष्ट बनाकर दुश्मन से अधिक ताकतवर का सहारा लेकर और शत्रुहीन बल वालों को शक्तिशाली बनाकर शत्रु को कमजोर बनाना 'शत्रुभेदन' कहलाता है ॥ ३४ ॥

शत्रिति। शत्रोः साधकं पराजयसाधनं यत् हीनत्वकरणं लाघवसम्पादनं तस्मात् प्रबलस्य शत्रोरधिकस्य बलवतः आश्रयात् शत्रोः ये हीनाः खर्वाः निकृष्टा इत्यर्थः, तेषां भावः तद्धीनता तस्या उज्जीवनात् तन्निकृष्टानां प्रबलीकरणाच्च इत्यर्थः, शत्रुभेदनं शत्रौ भेद उच्यते ॥ ३४ ॥

दस्युभिः पीडनं शत्रोः कर्षणं धनधान्यतः।
तच्छिद्रदर्शनादुग्रबलैर्नीत्या प्रभीषणम्।
प्राप्तयुद्धानिवृत्तित्वैस्त्रासनं दण्ड उच्यते ॥ ३५ ॥

अन्वयः—दस्युभिः शत्रोः पीडनं धनधान्यतः कर्षणं तत् छिद्रदर्शनात् उग्रबलैः नीत्या प्रभीषणं प्राप्तयुद्धानिवृत्तित्वैः त्रासनं दण्डः उच्यते ॥ ३५ ॥

व्याख्या—दस्युभिः = तस्करैः, शत्रोः = रिपोः, पीडनम् = अर्दनम्, धनधान्यतः = अर्थान्नतः, कर्षणम् = आकर्षः, तत् = तस्य शत्रोः, छिद्रदर्शनात् = दोषावलोकनात्, उग्रबलैः = प्रचण्डशक्तिभिः, नीत्या = युक्त्या, प्रभीषणम् = त्रासनम्, प्राप्तयुद्धानिवृत्त्वैः—प्राप्तम् = अधिगतम्, युद्धात् = सङ्गरात्, अनिवृत्तित्वम् = अपराङ्मुखत्वम्, यैः = तादृशैः, त्रासनम् = भयोत्पादनम्, शत्रौ दण्डः इति, उच्यते = कथ्यते ॥ ३५ ॥

हिन्दी—तस्करों से लुटवा कर शत्रु को पीड़ा पहुँचाना, उनके अन्न एवं धन को क्षति पहुँचाना, उनमें खोट निकालना, अपनी प्रचण्ड सेना एवं सफल नीति से डराना तथा युद्धकाल में जम कर मुकाबला करते हुए उसे डराना शत्रु के लिए 'दण्ड' कहलाता है ॥ ३५ ॥

दस्युभिरिति। दस्युभिः शत्रोः पीडनं धनधान्यतः कर्षणं खर्वीकरणञ्च तथा तस्य छिद्रदर्शनात् दोषादर्शनात् उग्रबलैः समधिकबलशालिभिः नीत्या प्रभीषणं किञ्च प्राप्तं युद्धात् अनिवृत्तित्वं यैः तादृशैः युद्धादपराङ्मुखैरित्यर्थः, त्रासनं भयजननं दण्डः शत्रौ इति शेषः उच्यते ॥ ३५ ॥

क्रियाभेदादुपाया हि भिद्यन्ते च यथार्हतः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—उपायाः यथार्हतः क्रियाभेदात् हि भिद्यन्ते ॥ ३६ ॥

व्याख्या—उपायाः = सामदामादयः, यथार्हतः = यथोचितः, क्रियाभेदात् = व्यापारविशेषात्, हीति निश्चेयन, उपायाः भिद्यन्ते = भेदाः भवन्ति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—योग्यता के अनुसार क्रिया में भिन्नता होने से सामादिक उपायों में भी भिन्नता होती हैं ॥ ३६ ॥

क्रियाभेदादिति। उपायाः सामादयः, यथार्हतः यथायोग्यतः क्रियाभेदात् अनुष्ठानतारतम्येनेत्यर्थः, उपायाः भिद्यन्ते हिशब्दश्चावधारणार्थः॥ ३६ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्य्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथा स्वाभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यथा मित्रोदासीनशत्रवः स्वाभ्यधिकाः न स्युः तथा नीतिज्ञः पृथिवीपतिः सर्वोपायैः, कुर्यात् ॥ ३६ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, मित्राणि = सुहृदः, उदासीनाः = मध्यस्थाः, च = पुनः, शत्रवः = रिपवः, स्वस्मात् = आत्मनः, अभ्यधिकाः = अतिप्रबलाः, न = नहि, स्युः = भवेयुः, तथा = तेन प्रकारेण, नीतिज्ञः = नीतिवेत्ता, पृथिवीपतिः, सर्वैः = सकलैः, उपायैः = युक्तिभिः, तथा = तद्वत्, कुर्यात् = सम्पादयेत् ॥ ३७ ॥

हिन्दी—मित्र राजे, मध्यस्थ राजे तथा शत्रु राजे कहीं अपने से अधिक बलशाली न हो जाँय इसके लिए नीतिज्ञ राजे को सभी तरह के उपायों का सहारा लेना चाहिए ॥ ३७ ॥

सर्वोपायैरिति। यथा मित्राणि उदासीनाः शत्रवश्च न स्वस्मात् अभ्यधिका अतिप्रबलाः न स्युः नीतिज्ञः पृथिवीपतिः सर्वैः उपायैः तथा कुर्य्यात् ॥ ३७ ॥

सामैव प्रथमं श्रेष्ठं दानं तु तदनन्तरम्।
सर्वथा भेदनं शत्रोर्दण्डनं प्राणसंशये ॥ ३८ ॥

अन्वयः—प्रथमं सामैव श्रेष्ठम्। तदनन्तरं तु दानं, सर्वथा शत्रोः भेदनं, प्राणसंशये शत्रोः दण्डनं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

व्याख्या—प्रथमम् = आदौ, सामैव = सान्त्वनमेव, श्रेष्ठम् = वरम्, तदनन्तरम् = तदशक्ते, दानम् = प्रदानम्, श्रेष्ठम्। सर्वथा = तत्कृतेऽप्यशक्तो चेत्तदा सर्वैः प्रकारैः, भेदनम् = शत्रोः मनोभङ्गकरणम्, तत्कृतोऽप्यक्षमे प्राणसंशये = जीवनसङ्कटसमुपस्थिते, शत्रोः दण्डनम् = दमनम्, कुर्यादिति शेषः ॥ ३८ ॥

हिन्दी—शत्रु के लिए सर्वप्रथम सामनीति का प्रयोग श्रेष्ठ है। इसमें असफल होने पर दाननीति का प्रयोग, इसके बाद भेदनीति का प्रयोग, सर्वथा हारने पर यदि प्राणसंकट उपस्थित हो जाय तब शत्रुओं का दमन करना चाहिए ॥ ३८ ॥

सामैवेति। प्रथमं साम सान्त्वमेव श्रेष्ठं, तदनन्तरं तदशक्तावित्यर्थः दानं, तथाप्यशक्तौ सर्वथा सर्वैः प्रकारैः भेदनं मनोभङ्गकरणं, तथाप्यशक्तौ प्राणसंशये जीवनसङ्कटे उपस्थिते इत्यर्थः, शत्रोः दण्डनं क़र्त्तव्यमिति शेषः ॥ ३८ ॥

प्रबलेऽरौ सामदानौ सामभेदोऽधिके स्मृतौ।
भेददण्डौ समे कार्य्यौ दण्डः पूज्यः प्रहीनके ॥ ३९ ॥

अन्वयः—अरौ प्रबले सामदानौ स्मृतौ। अधिके सामभेदश्च, समे भेददण्डौ कार्य़ौ, प्रहीनके दण्डः पूज्यः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—अरौ = रिपौ, प्रबले = प्रचण्डबलशालिनि, सामदानौ = राजनीतिकोपायभेदौ, दानशब्दस्य पुल्लिङ्गप्रयोगोऽऽर्षः। स्मृतौ = कथितौ, अधिके = स्वबलाधिके शत्रौ,

सामभेदश्च = समनं मनोभङ्गरणञ्च ज्ञेयौ, समे = स्वबलतुल्यशत्रौ, भेददण्डौ = भेदनं दमनञ्च, कार्यौ = विधेयौ, प्रहीनके = आत्मनः हीनबले शत्रौ, दण्डः = दमनः, पूज्यः = माननीयः ॥ ३९ ॥

हिन्दी—अपने से अत्यधिक शक्तिशाली शत्रुओं के लिए साम और दान का, अपने से अधिक बलवान् शत्रु के लिए साम और भेद का, अपने से बराबर शत्रु के लिए भेद तथा दण्ड का और अपने से हीन शत्रु के लिए दण्ड का प्रयोग करना ही प्रशंसनीय होता है ॥ ३९ ॥

प्रबले इति। अरौ शत्रौ प्रबले सामदानौ उपायौ दानशब्दः पुंलिङ्गोऽत्रार्षः, स्मृतौ। अधिके बलाधिके रिपौ सामभेदश्च स्मृत इति शेषः। समे समाने रिपौ भेददण्डौ उपायौ कार्य्यौ, प्रहीनके दुर्बले शत्रौ दण्डः पूज्यः प्रशंसनीयः ॥ ३९ ॥

मित्रे च सामदानौ स्तो न कदा भेददण्डने ॥ ४० ॥

अन्वयः—मित्रे सामदानौ स्तः, कदापि भेददण्डने न ॥ ४० ॥

व्याख्या—मित्रे = सुहृदि, सामदानौ = उपायौ, स्तः = भवतः, कदापि = कस्यापि स्थितौ, भेददण्डने, न = नहि, प्रयोज्ये ॥ ४० ॥

हिन्दी—मित्र के लिए साम और दान का ही प्रयोग उचित है। कभी भी मित्रों के लिए भेद और दण्ड का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥ ४० ॥

मित्रे इति। मित्रे सुहृदि सामदानौ स्तः, कदापि भेददण्डने न प्रयोज्ये इति शेषः ॥ ४० ॥

रिपोः प्रजानां सम्भेदपीडनं स्वजयाय वै।
रिपुप्रपीडितानां च साम्ना दानेन सङ्ग्रहः।
गुणवतां च दुष्टानां हितं निर्वासनं सदा ॥ ४१ ॥

अन्वयः—प्रजानां सम्भेदेन रिपोः पीडनं वै स्वजयाय। च रिपुप्रपीडितानां साम्ना दानेन सङ्ग्रहः। च गुणवतां दुष्टानां सदा निर्वासनं हितम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—प्रजानाम् = जनानाम्, सम्भेदेन = सहयोगेन, रिपोः = शत्रोः, पीडनम् = बाधनम्, वै = इति निश्चयेन, स्वजयाय—स्वस्य = आत्मनः, जयाय = विजयाय, भवतीति भावः। रिपुप्रपीडितानाम्—रिपुभिः = शत्रुभिः, प्रपीडितानाम् = अतिशयेन व्यथितानां जनानाम्, साम्ना = सामोपायेन, दानेन = उत्सर्जनेन, च = पुनः, सङ्ग्रहः = एकत्रीकरणम्। च = पुनः, गुणवताम् = गुणशालिनाम्, दुष्टानाम् = दुर्वृत्तानाम्, सदा = सर्वदा, निर्वासनम् = स्वदेशान्निष्कासनम्, हितम् = कल्याणाय भवतीति भावः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—दुश्मन राजा की प्रजा से मेलकर उसे सताना अपनी विजय का कारण बन जाता है। शत्रु राजा से पीडित लोगों को सान्त्वना एवं कुछ देकर अपना पक्षधर बनाना चाहिए। गुणवान् होने के बावजूद यदि व्यक्ति दुष्ट हो तो उसे सदा के लिए देश से निकाल देना हितकर होता है ॥ ४१ ॥

रिपोरिति। प्रजानां सम्भेदेन योगेन रिपोः पीडनं स्वस्य जयाय भवतीति शेषः, रिपुभिः प्रपीडितानां जनानां साम्ना दानेन च सङ्ग्रहः कार्य्य इति शेषः। किञ्च गुणवतां दुष्टानां सदा निर्वासनं देशात् बहिष्करणं हितं तेषां देशस्थितौ महानिष्टकरणसम्भवादिति भावः ॥ ४१ ॥

स्वप्रजानां न भेदेन नैव दण्डेन पालनम्।
कुर्वीत सामदानाभ्यां सर्वदा यत्नमास्थितः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—सर्वदा यत्नमास्थितः सामदानाभ्यां स्वप्रजानां पालनं कुर्वीत, भेदेन दण्डेन नैवेति ॥ ४२ ॥

व्याख्या—सर्वदा = सततम्, यत्नमास्थितः—यत्नम् = प्रयत्नं चेष्टितं वा, आस्थितः = उषितः, आश्रितः सन्, सामदानाभ्याम्—सामेन = सामोपायेन, दानेन = दानोपायेन, च, स्वप्रजानाम्—स्वस्य = आत्मनः, प्रजानाम् = जनानाम्, पालनम् = रक्षणम्, कुर्वीत = विधेयात् शिष्याद्वा, भेदेन = भेदनीत्या, न = नहि, दण्डेन = दण्डनीत्या, न = नहि, पालनीयेति शेषः ॥ ४२ ॥

हिन्दी—हमेशा प्रयासपूर्वक साम तथा दान नीति से प्रजा का पालन करना चाहिए, न कि भेद और दण्डनीति से ॥ ४२ ॥

स्वप्रजानामिति। सर्वदा यत्नमास्थितः यत्नवान् सन् सामदानाभ्यां स्वस्य प्रजानां पालनं कुर्वीत, भेदेन मनोभङ्गापादनेन न दण्डेन च न ॥ ४२ ॥

स्वप्रजादण्डभेदैश्च भवेद्राज्यविनाशनम्।
हीनाधिका यथा न स्युः सदा रक्ष्यास्तथा प्रजाः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—स्वप्रजादण्डभेदैश्च राज्यविनाशनं भवेत्। यथा प्रजाः हीनाः वा अधिकाः न स्युः तथा सदा रक्ष्याः ॥ ४३ ॥

व्याख्या—स्वप्रजानाम् = आत्मजनानाम्, दण्डैः भेदैश्च = दण्डोपायैः भेदोपायैश्च, राज्यविनाशनम् = राष्ट्रस्य विनाशम्, भवेत = स्यात्। तस्मात्, यथा = येन प्रकारेण, प्रजाः = जनाः, हीनाः = अधमाः निकृष्टाः, वा = अथवा, अधिकाः = प्रबलाः, न = नहि, स्युः = भवेयुः, तथा = तेन प्रकारेण, सदा = सर्वदा, रक्ष्याः = पालनीयेति यावत् ॥ ४३ ॥

हिन्दी—दण्ड या भेद नीति से अपनी प्रजा का पालन करने से राज्य विनष्ट हो जाता है। अतः जिससे प्रजा न तो हीनबल या प्रबल न हो, प्रत्युत समबल रहे; वैसे उसका पालन करना चाहिए ॥ ४३ ॥

स्वप्रजेति। स्वप्रजानां दण्डैः भेदैश्च राज्यविनाशनं भवेत् तस्मात् यथा प्रजाः हीनाः वा अधिकाः प्रबलाः न स्युः, तथा सदा सर्वस्मिन् काले रक्ष्याः पालनीयाः ॥ ४३ ॥

निवृत्तिरसदाचाराद् दमनं दण्डतश्च तत्।
येन सन्दम्यते जन्तुरुपायो दण्ड एव सः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—दण्डतः असदाचारात् निवृत्तिः दमनञ्च। तत् येन उपायेन जन्तु सन्दम्यते स एव दण्डः ॥ ४४ ॥

व्याख्या—दण्डतः = दण्डविधानात्, असदाचारात् = सच्चर्याविहीनात्, निवृत्तिः = विरतिः, दमनम् = विराधनञ्च। तत् = तस्मात्, येनोपायेन = येन विधिना, जन्तुः = जीवः, सन्दम्यते = सम्यग्रूपेण वशवर्त्तिनो भवेत्, सः = असौ, उपायः = साधनम्, दण्डः एवेति भावः ॥ ४४ ॥

हिन्दी—दण्ड से या बुरे आचरण से मनुष्य का दमन होता है। अतः जिस साधन से जीव का अच्छी तरह दमन होता है, उसे ही दण्ड कहते हैं ॥ ४४ ॥

निवृत्तिरिति। दण्डतः दण्डात् असदाचारात् निवृत्तिः दमनञ्च तत् तस्मात् येन उपायेन जन्तुः जीवः सन्दम्यते सम्यक् शास्यते सः उपायः दण्डः एव ॥ ४४ ॥

स उपायो नृपाधीनः स सर्वस्य प्रभुर्यतः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—स उपायः नृपाधीनः यतः सः सर्वस्य प्रभुः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—सः = तत्, उपायः = साधनम्, नृपाधीनम् = नृपायत्तः, यतः = यस्मात् कारणात्, सः = राजा, सर्वस्य = जनस्य, प्रभुः = स्वामी वर्त्तते ॥ ४५ ॥

हिन्दी—राजा सभी का स्वामी होता है, अतः वह दण्ड नामक उपाय उसी के अधीन होता है ॥ ४५ ॥

स इति। सः दण्डरूपः उपायः नृपाधीनः राजायत्तः, यतः सः राजा सर्वस्य लोकस्य प्रभुः स्वामी, दण्डकर्त्तृत्वं स्वामिन एव युज्यते इति भावः ॥ ४५ ॥

निर्भर्त्सनं चापमानोऽनशनं बन्धनं तथा।
ताडनं द्रव्यहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने ॥ ४६ ॥
व्यस्तक्षौरमसद्यानमङ्गच्छेदो वधस्तथा ।
युद्धेमेते ह्युपायाश्च दण्डस्यैव प्रभेदकाः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—निर्भर्त्सनम्, अपमानम्, अनशनं तथा बन्धनं, ताडनं, द्रव्यहरणं, पुरात् निर्वासनम्, अङ्कनं, व्यस्तक्षौरम्, असद्यानम्, अङ्गच्छेदः, वधः तथा युद्धम्—एते उपायाः दण्डस्यैव प्रभेदकाः ॥ ४५-४७ ॥

व्याख्या—निर्भर्त्सनम् = तर्जनम्, अपमानः = अनादरः, अनशनम् = अन्नपानं विनाऽवस्थापनम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, बन्धनम् = निगडम्, ताडनम् = प्रहरणम्, द्रव्यहरणम् = धनापहरणम्, पुरात् = नगरात्, निर्वासनम् = निष्कासनम्, अङ्कनम् = तप्तलोहमुद्रया शरीरे चिह्नदानम्, व्यस्तक्षौरम् = अव्यवस्थितकेशछेदनम्, असद्यानम् = गर्दभाद्युपरि स्थाप्य परिचालनम्, अङ्गच्छेदः = अङ्गभङ्गकरणम्, तथा = तेन प्रकारेणैव, वधः = हननम्, युद्धम् = समरम्, एते = निर्भर्त्सनादयः, उपायाः = शत्रुविजययुक्तयः, दण्डस्यैव = दण्डनीतेरेव, प्रभेदकाः = प्रकाराः, सन्तीति शेषः ॥ ४६-४७ ॥

हिन्दी—झिड़कना, अपमानित करना, भूखे रखना, बाँधना, पीटना, धन छीन लेना, नगर से निकाल देना, देह दगवाना, बुरे ढंग से सिर मुड़वा देना, गदहे पर चढ़ाकर घूमाना, अङ्ग-भङ्ग करवा देना तथा जान से मरवा डालना या युद्ध करना—ये सभी दण्डनीति के ही भेद हैं ॥ ४६-४७ ॥

निर्भर्त्सनमिति। व्यस्तेति। निर्भर्त्सनं तिरस्कारः, अपमानः मानच्युतिकरणम् अनशनम् अनाहारेण अवस्थापनं, बन्धनं ताडनं प्रहारः, द्रव्यहरणं, पुरात् नगरात् निर्वासनं बहिष्करणम्, अङ्कनं शरीरे चिरस्थायिचिह्नकरणं, व्यस्तक्षौरं मस्तकमुण्डनादिरूपं विपरीतं क्षौरकर्म, असद्यानं गर्दभाद्यारोहणेन गमनम् अङ्गस्य अवयवस्य हस्तपदादेः छेदः, वधः प्राणदण्डः, तथा युद्धम् एते निर्भर्त्सनादयः उपायाः दण्डस्यैव प्रभेदकाः विशेषा इत्यर्थः ॥ ४६-४७ ॥

जायते धर्मनिरता प्रजा दण्डभयेन च।
करोत्याधर्षणं नैव तथा चासत्यभाषणम् ॥ ४८ ॥
क्रूराश्च मार्दवं यान्ति दुष्टा दौष्ट्यं त्यजन्ति च।
पशवोऽपि वशं यान्ति विद्रवन्ति च दस्यवः ॥ ४९ ॥
पिशुना मूकतां यान्ति भयं यान्त्याततायिनः।
करदाश्च भवन्त्यन्ये वित्रासं यान्ति चापरे।
अतो दण्डधरो नित्यं स्यात् नृपो धर्मरक्षणे ॥ ५० ॥

अन्वयः—दण्डभयेन प्रजा धर्मनिरता जायते, आधर्षणं तथा असत्यभाषणं नैव करोति, क्रूराः मार्दवं यान्ति च दुष्टाः दौष्ट्यं त्यजन्ति, पशवोऽपि वशं यान्ति च दस्यवः विद्रवन्ति, पिशुना मूकतां यान्ति, आततायिनः भयं यान्ति च अन्ये करदाः भवन्ति, अपरे वित्रासं यान्ति। अतः नृपः धर्मरक्षणे नित्यं दण्डधरः स्यात् ॥ २४८-२५० ॥

व्याख्या—दण्डभयेन—दण्डस्य = दमस्य, भयेन = भीत्या, प्रजाः = जनाः, धर्मनिरताः = पुरायपरायणाः, जायन्ते = भवन्ति, आधर्षणम् = अबलजनमर्दनम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, असत्यभाषणम् = मिथ्यावचनम्, नैव = नास्त्येव, करोति = वदति, क्रूराः = परपीडकाः नृशंसाः, मार्दवम् = कोमलताम्, यान्ति = प्राप्नुवन्ति, च = पुनः, दुष्टाः = दुर्वृत्ताः, दौष्ट्यम् = दौर्जन्यम्, त्यजन्ति = परिहरन्ति, पशवोऽपि = सिंहव्याघ्रगोमहिषादयोऽपि, वशम् = अधीनताम्, यान्ति = प्राप्नुवन्ति, च = पुनः, दस्यवः = तस्कराः, विद्रवन्ति = पलायन्ते, पिशुनाः = परिवादरताः, मूकताम् = निर्गिरः, यान्ति = भवन्ति, आततायिनः = उत्कटपापकारिणो जनाः, भयम् = त्रासम्, यान्ति = प्राप्नुवन्ति, च = पुनः, अन्ये = अकरदाः, करदाः = राजस्वदायिनः, भवन्ति = जायन्ते, अपरे = अन्ये, वित्रासम् = भयाक्रान्तम्, यान्ति = भवन्ति, अतः = अस्मात् कारणात्, नृपः = राजा, धर्मरक्षणे = धर्मपालने, नित्यम् = सततम्, दण्डधरः = दण्डप्रदाता, स्यात् = भवेत् ॥ ४८-५० ॥

हिन्दी—जुर्माने के डर से प्रजा अपने कर्त्तव्य में स्थिर रहती है, न कोई किसी दुर्बल को सताता है और न झूठ बोलने की हिम्मत करता है, जालिम भी दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं, बुरे लोग बुराई करना बन्द कर देते हैं, पशु भी वशवर्त्ती बन जाते हैं, चोर-उच्चके भाग जाते हैं, चुगलखोर अपनी जबान बन्द कर लेते हैं, आततायी डरते हैं, टैक्स नहीं देने वाले लोग टैक्स देने लगते हैं तथा निडर डरते हैं। अतः राजा को सदैव दण्डधर होना चाहिए ॥ ४८-५० ॥

जायते इत्यादि। दण्डभयेन प्रजा धर्मनिरता धर्मनिष्ठा जायते, आधर्षणं दुर्बलाक्रमणं तथा असत्यभाषणञ्च नैव करोति। क्रूराः दुर्जनाः मार्दवं मृदुत्वं यान्ति प्राप्नुवन्ति, दुष्टाः जनाः दौष्ट्यं दोषं त्यजन्ति च। पशवः अपि वशं यान्ति, दस्यवः विद्रवन्ति पलायन्ते च। पिशुनाः खलाः धूर्त्ता इत्यर्थः, मूकतां मौनभावं यान्ति, आततायिनः, उत्कटपापकारिणः जनाः भयं यान्ति च। अन्ये अकरदा जना इत्यर्थः, करदाः राजस्वदायिनः भवन्ति, अपरे वित्रासं विशेषेण त्रासं यान्ति च। अतः अस्मात् कारणात् नृपः धर्मरक्षणे विषये नित्यं सततं दण्डधरः स्यात् ॥ ४८-५० ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्य्यं भवति शासनम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—अवलिप्तस्य कार्याकार्यम् अजानतः उत्पथं प्रतिपन्नस्य गुरोरपि शासनं कार्यं भवति ॥ ५१ ॥

व्याख्या—अवलिप्तस्य = गर्वितस्य, कार्याकार्यम् = कर्त्तव्याकर्त्तव्यम्, अजानतः = अपरिचितः, उत्पथम् = कुमार्गम्, प्रतिपन्नस्य = अधिगतस्य, गुरोरपि = आचार्यस्यापि, शासनम् = नियमनम्, कार्यम् = करणीयम्, भवति = जायते ॥ ५१ ॥

हिन्दी—'क्या करना चाहिए, क्या नहीं?' इससे अनजान घमंड में चूर, हमेशा खराब रास्ते पर चलने वाले गुरुजनों को भी दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य है ॥ ५१ ॥

गुरोरिति। अवलिप्तस्य उद्धतस्य कार्य्याकार्य्यं कर्त्तव्याकर्त्तव्यम् अजानतः उत्पथं प्रतिपन्नस्य गतस्य गुरोरपि शासनं दण्डनं कार्य्यं करणीयं भवति ॥ ५१ ॥

राज्ञां सदण्डनीत्या हि सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
दण्ड एव हि धर्माणां शरणं परमं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—राज्ञां सदण्डनीत्या सर्वे उपक्रमाः हि सिध्यन्ति । हि दण्डः एव धर्माणां परमं शरणं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

व्याख्या—राज्ञाम् = भूपतीनाम्, सदण्डनीत्या—सदण्डया = दण्डसहितया, नीत्या = नयेन, सर्वे = निखिलाः, उपक्रमाः = उपायज्ञानापूर्वकारम्भाः, हीति निश्चयेन, सिद्ध्यन्ति = निष्पन्नाः भवन्ति । हि = यतः, दण्डः = दमनः, एव, धर्माणाम् = अभ्युदयनिः श्रेयससाधको गुणकर्मसमूहानाम्, परमम् = उत्कृष्टम्, शरणम् = त्राणस्थानम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ५२ ॥

हिन्दी—दण्डनीति का प्रयोग करने से राजा के सभी काम स्वतः सधते हैं। क्योंकि राजधर्म का परम रक्षक दण्ड ही माना जाता है ॥ ५२ ॥

राज्ञामिति। राज्ञां सदण्डनीत्या सदण्डया दण्डसहितया नीत्या सर्वे उपक्रमाः कार्य्याणि सिध्यन्ति हि। हि यतः दण्डः एव धर्माणां परमं शरणम् आश्रयः स्मृतम् ॥ ५२ ॥

अहिंसैवासाधुहिंसा पशुवच्छ्रुतिचोदनात् ॥ ५३ ॥

अन्वयः—श्रुतिचोदनात् पशुवत् असाधुनाम् हिंसा अहिंसा एव ॥ ५३ ॥

व्याख्या—श्रुतिचोदनात् = वैदिकविचारात्, पशुवत् = छागादि इव, असाधूनाम् = खलानाम्, हिंसा = हननम्, अहिंसा = हिंसात्यागः एव। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति। यथा यज्ञे पशुवधः शास्त्रीयत्वादहिंसैवेति ॥ ५३ ॥

हिन्दी—वेद के अनुदेश से जैसे यज्ञ में पशु की हिंसा अहिंसा मानी जाती है, ठीक उसी तरह दुष्टों की हिंसा अहिंसा ही होती है ॥ ५३ ॥

अहिंसैवेति। श्रुतिचोदनात् शास्त्रदर्शनात् पशुवत् असाधूनां हिंसा अहिंसा एव यथा यज्ञे पशुवधः शास्त्रीयत्वादहिंसैवेति भावः ॥ ५३ ॥

दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यमदण्ड्यस्य च दण्डनात् ।
अतिदण्डाच्च गुणिभिस्त्यज्यते पातकी भवेत् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—दण्ड्यस्य अदण्डनात् अदण्ड्यस्य दण्डनात् नित्यम् अतिदण्डात् गुणिभिः त्यज्यते पातकी भवेत् ॥५४॥

व्याख्या—दण्ड्यस्य = दमनीयजनस्य, अदण्डनात् = अदमनात्, अदण्ड्यस्य = अदमनीयजनस्य, दण्डनात् = दमनात्, नित्यम् = निरन्तरम्, अतिदण्डात् = अत्यधिकदमनात्, गुणिभिः = दक्षजनैः, त्यज्यते = परिहरति, राजेति कर्मफलमध्याहार्यम्, च = पुनः, एवंविधो राजा, पातकी = पापकर्मी, भवेत् = स्यात् ॥५४॥

हिन्दी—दण्ड पाने योग्य व्यक्ति को दण्ड न देने वाले, निरपराध को राजा देने वाले तथा अपराध से अधिक दण्ड देने वाले राजा को लोग छोड़ देते हैं तथा ऐसा काम करने वाला राजा पातकी कहलाता है ॥५४॥

दण्ड्यस्येति। दण्ड्यस्य दण्डार्हस्य अदण्डनात् दण्डाकरणात् अदण्ड्यस्य अदण्डनीयस्य दण्डनात् तथा नित्यं सततम् अतिदण्डात् अधिकदण्डनाच्च गुणिभिः विद्वद्भिः त्यज्यते राजेति कर्मपदमध्याहार्य्यम्। पातकी पापी भवेच्च तत्कातरी राजेति शेषः ॥५४॥

अल्पदानात् महत् पुण्यं दण्डप्रणयनात् फलम्।
शास्त्रेषूक्तं मुनिवरैः प्रवृत्त्यर्थं भयाय च ॥५५॥

अन्वयः—अल्पदानात् महत् पुण्यं, प्रवृत्त्यर्थं दण्डप्रणयनात् महत् फलं च भयाय मुनिवरैः शास्त्रेषु उक्तम् ॥५५॥

व्याख्या—अल्पदानात् = क्षुद्रपरिमाणेऽपि प्रदानात्, महत् = श्रेष्ठम्, फलम् = पुण्यम्, भवति, प्रवृत्त्यर्थम् = दानधर्मादिकार्येषु प्रवर्त्तनाय, तथा दण्डप्रणयनात् = शास्त्रविहितदण्डप्रदानात्, महत्फलम् = उत्कृष्टपुण्यम्, तथा भयाय = जनानां भयोत्पादनाय, मुनिवरैः = श्रेष्ठैः मुनिभिः, शास्त्रेषु = धर्मग्रन्थेषु, एवम्, उक्तम् = कथितम् ॥५५॥

हिन्दी—तुच्छ दान से भी बड़ा पुण्य होता है तथा शास्त्रानुसार अपराधियों को भी दण्ड देने से श्रेष्ठ फल होता है; ऐसा मुनियों ने लोक में भयोत्पादन के लिए शास्त्रों में कहा है ॥५५॥

अल्पदानादिति। अल्पदानात् यत्किञ्चनदानात् महत् पुण्यं प्रवृत्त्यर्थं दानादिधर्मकार्य्ये प्रवर्त्तनाय, तथा दण्डप्रणयनात् यथाशास्त्रदण्डकरणात् महत् फलं भयाय लोकानां भयप्रदर्शनाय मुनिवरैः शास्त्रेषु उक्तं कथितम् ॥५५॥

अश्वमेधादिभिः पुण्यं तत् किं स्यात् स्तोत्रपाठतः ?।
क्षमया यत्तु पुण्यं स्यात्तत् किं दण्डनिपातनात्? ॥५६॥

अन्वयः—अश्वमेधादिभिः यत् पुण्यं तत् स्तोत्रपाठतः किं स्यात्? क्षमया यत् पुण्यं स्यात् तत् किं दण्डनिपातनात् स्यात्? ॥५६॥

व्याख्या—अश्वमेधादिभिः = वाजिमेधादियागैः, यत्पुण्यम् = सुकृतम्, भवति, तत् = पुण्यम्, स्तोत्रपाठतः = स्तुतिकरणात्, किं स्यात् = भवेत्, नैवेत्यर्थः। तथा क्षमया = क्षान्त्या, यत्पुण्यम् = धर्मम्, भवति, तत् = धर्मम्, किम्, दण्डनिपातनात् = दमनात्, स्यात् = भवेत्? नैवेत्यर्थः ॥५६॥

हिन्दी—अश्वमेध प्रभृति यागों से जो पुण्यफल मिलता है, वह क्या केवल स्तुति करने से हो सकता है? कदापि नहीं। ठीक उसी तरह क्षमा करने से जो पुण्य होता है वह क्या

दण्ड देने से होगा? कदापि नहीं ॥५६ ॥

अश्वमेधादिभिरिति। अश्वमेधादिभिः यागैः यत् पुण्यं भवतीति शेषः तत् स्तोत्रपाठतः स्तवपाठात् किं स्यात्? नैवेत्यर्थः। तथा क्षमया यत् पुण्यं स्यात्, दण्डनिपातनात् तत् पुण्यं किं स्यात्? नैवेत्यर्थः॥५६ ॥

स्वप्रजादण्डनाच्छ्रेयः कथं राज्ञो भविष्यति?।
तद्दण्डाज्जायते कीर्त्तिधनपुण्यविनाशनम्॥५७॥

अन्वयः—स्वस्य प्रजानां दण्डनात् राज्ञः श्रेयः कथं भविष्यति? तत् दण्डात् कीर्त्तिधनपुण्यविनाशनं जायते ॥५७ ॥

व्याख्या—स्वस्यः = आत्मनः, प्रजानाम् = जनानाम्, दण्डनात् = दमनात्, राज्ञः = नृपस्य, श्रेयः = कल्याणम्, कथम् = केन प्रकारेण, भविष्यति = यास्यति? नैवेत्यर्थः, प्रत्युत, तत् = प्रजानाम्, दण्डात् = दमनात्, कीर्त्याः = यशसः, धनस्य = अर्थस्य, पुण्यानाम् = सुकृतानाम्, च, विनाशनम् = विध्वंसनम्, जायते = भवति ॥५७ ॥

हिन्दी—अपनी प्रजा को दण्ड देने से राजा का कल्याण कैसे होगा? अर्थात् कभी नहीं। उलटे उसके यश, धन और पुण्य का विनाश ही होगा ॥५७ ॥

स्वप्रजेति। स्वस्य प्रजानां दण्डनात् राज्ञः श्रेयः कथं भविष्यति? नैवेत्यर्थः। प्रत्युत तद्दण्डात् तासां दण्डनात् कीर्त्तिधनपुण्यानां विनाशनं भवति ॥५७ ॥

नृपस्य धर्मपूर्णत्वाद् दण्डः कृतयुगे न हि।
त्रेतायुगे पूर्णदण्डः पादाधर्माः प्रजा यतः॥५८॥
द्वापरे चार्द्धधर्मत्वात् त्रिपाद्दण्डो विधीयते।
प्रजा निःस्वा राजदौष्ट्याद् दण्डार्द्धं तु कलौ तथा॥५९॥

अन्वयः—कृतयुगे नृपस्य धर्मपूर्णत्वात् दण्डः न हि। त्रेतायुगे यतः प्रजा पादाधर्माः अतः पूर्णदण्डः। द्वापरे चार्द्धधर्मत्वात् त्रिपाद्दण्डः विधीयते। कलौ राज्ञः दौष्ट्यात् प्रजाः निःस्वाः अतः दण्डार्द्धं विधीयते ॥५८-५९ ॥

व्याख्या—कृतयुगे = सत्ययुगे, नृपस्य = राज्ञः, धर्मपूर्णत्वात् = धर्मनिष्ठत्वात्, दण्डः = दमनः, न = नहि, आसीदिति। त्रेतायुगे = द्वितीययुगे, यतः = यस्मात् कारणात्, प्रजाः = जनाः, पादाधर्माः = अधर्मैकपादनिष्ठाः, अतः पूर्णदण्डः = समग्रदमनः, आसीदिति। द्वापरे = तृतीययुगे, अर्द्धधर्मत्वात् = धर्मार्द्धत्वात्, त्रिपाद्दण्डः = पादत्रयदमनः, विधीयते = अनुष्ठीयते। तथा कलौ = कलियुगे, राज्ञः = नृपस्य, दौष्ट्यात् = दुष्टत्वात्, प्रजाः = जनाः, निःस्वाः = दरिद्राः, भवन्ति = जायन्ते, अतः दण्डार्धम् = अर्द्धदण्डम्, विधीयते = क्रियते, इति ॥५८-५९ ॥

हिन्दी—सत्ययुग में धर्म चारों चरणों से मौजूद था, अतः उस युग में दण्ड का कोई विधान नहीं था। त्रेता में प्रजा के बीच तीन चरण धर्म और एक चरण पाप था, अतः उस युग में पूरा दण्ड दिया जाता था। द्वापर में आधा धर्म और आधा अधर्म था, अतः उस युग में तीन चौथाई दण्ड का विधान था। कलियुग में राजा की दुष्टता से प्रजा निर्धन है, अतः इस युग में आधे दण्ड का विधान है ॥५८-५९ ॥

नृपस्येति। कृतयुगे नृपस्य धर्मपूर्णत्वात् दण्डः न हि आसीदित्यर्थः, त्रेतायुगे यतः प्रजाः पादाधर्माः अधर्मैकपादनिष्ठा इत्यर्थः, अतः पूर्णदण्डः आसीत्। द्वापरे तु अर्द्धधर्मत्वात् त्रिपाद्दण्डः विधीयते व्यवस्थीयते। तथा कलौ राज्ञः दौष्ट्यात् दोषात् प्रजा निःस्वाः निर्धना भवन्ति, अतः दण्डार्द्धम् अर्द्धदण्डः विधीयते इति शेषः॥५८-५९॥

युगप्रवर्त्तको राजा धर्माधर्मप्रशिक्षणात्।
युगानां न प्रजानां न दोषः किन्तु नृपस्य हि॥६०॥

अन्वयः—राजा धर्मस्य अधर्मस्य च प्रशिक्षणात् युगप्रवर्त्तकः, युगानां न प्रजानां न दोषः किन्तु नृपस्य हि॥६०॥

व्याख्या—राजा = भूपतिः, धर्मस्य = सुकृतस्य, अधर्मस्य च = पापस्य च, प्रशिक्षणात् = शिक्षादानात्, युगप्रवर्त्तकः = युगसंस्थापकः, अतः युगानां = कृतादियुगानाम्, न = नहि, प्रजानाम् = जनानाम्, च, न = नहि, दोषः = अपराधः, किन्तु नृपस्य = राज्ञः, एव दोष इति॥६०॥

हिन्दी—प्रजा को धर्म या अधर्म का प्रशिक्षण राजा देता है, अतः राजा ही युगनिर्माता होता है। इसमें न युग का दोष है और न राजा का ही॥६०॥

युगेति। राजा धर्मस्य अधर्मस्य च प्रशिक्षणात् शिक्षादानात् युगप्रवर्त्तकः सत्यादियुगानां प्रवर्त्तयिता, अतः युगानां न प्रजानाञ्च न दोषः, किन्तु नृपस्य हि राज्ञ एव दोष इत्यर्थः॥६०॥

प्रसन्नो येन नृपतिस्तदाचरति वै जनः।
लोभाद्भयाच्च किं तेन शिक्षितं नाचरेत् कथम्?॥६१॥

अन्वयः—नृपतिः येन प्रसन्नः वै जनः लोभात् भयाच्च तत् आचरति, तेन शिक्षितं किं कथं न आचरेत्॥६१॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, येन = कर्मणा, प्रसन्नः = आनन्दो भवति, वै = इति निश्चयेन जनः = प्रजा, लोभात् = लिप्सायाः, भयात् = भीतेश्च, तत् = कर्म, आचरति = करोति, तेन = राज्ञा, शिक्षितम् = उपदिष्टम्, किम्, कथम् = नहि, आचरेत् = कुर्यात्॥६१॥

हिन्दी—लोभ से या डर से प्रजा वैसे ही आचरण करती है जिससे राजा प्रसन्न हो, तो फिर राजा की शिक्षा की वह अवहेलना कैसे करेगी?॥६१॥

प्रसन्न इति। राजा येन कर्मणा प्रसन्नः प्रीतः भवति, जनः प्रजा लोभात् भयाच्च तत् आचरति वै करोत्येव, तेन राज्ञा शिक्षितम् उपदिष्टं किं किमपीत्यर्थः, कथं न आचरेत्? अपि तु आचरेदेवेत्यर्थः॥६१॥

सुपुण्यो यत्र नृपतिर्धर्मिष्ठास्तत्र हि प्रजाः।
महापापी यत्र राजा तत्राधर्मपरो जनः॥६२॥

अन्वयः—यत्र नृपतिः सुपुण्यः तत्र हि प्रजाः धर्मिष्ठाः। यत्र राजा महापापी तत्र जनः अधर्मपरः॥६२॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् देशे, नृपतिः = राजा, सुपुण्यः = अतिधार्मिकः, तत्र = तस्मिन्राज्ये, हि = इति निश्चयेन, प्रजाः = जनाः, धर्मिष्ठाः = पुण्यकर्मिणो भवन्ति, यत्र = यस्मिन् राष्ट्रे, राजा =

नृपतिः, महापापी = घोर-अधार्मिकः, तत्र = तस्मिन् देशे, जनः = लोकः, अधर्मपरः = पापे रतः, भवति ॥ ६२ ॥

हिन्दी—जिस देश का राजा धर्मात्मा होता है, उस देश की प्रजा भी धर्मनिष्ठ होती है। जिस देश का राजा महापापी होता है, उस देश की प्रजा भी घोर पापकर्मी होती है ॥ ६२ ॥

सुपुण्य इति। यत्र नृपतिः सुपुण्यः धार्मिकः तत्र प्रजाः धर्मिष्ठाः हि। यत्र तु राजा महापापी तत्र जनः अधर्मपरः अधार्मिकः ॥ ६२ ॥

न कालवर्षी पर्जन्यस्तत्र भूर्न महाफला।
जायते राष्ट्रह्रासश्च शत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—तत्र पर्जन्यः कालवर्षी न, भूः महाफला न, च राष्ट्रह्रासः शत्रुवृद्धिः धनक्षयः जायते ॥ ६३ ॥

व्याख्या—तत्र = तस्मिन् राष्ट्रे, यत्र राजा अधर्मिको भवति, पर्जन्यः = मेघः, कालवर्षी = यथावसरे जलदः, न = नहि, भूः = धरित्री, महाफला = अतिफलदा, उर्वरा, न = नहि, च = पुनः, राष्ट्रह्रासः—राष्ट्रस्य = जनपदस्य, ह्रासः = क्षयः, शत्रुवृद्धिः—शत्रूणाम् = रिपूणाम्, वृद्धिः = सर्वतोऽभिवर्धनम्, धनक्षयः—धनानाम् = अर्थानाम्, क्षयः = ह्रासः, जायते = भवति ॥ ६३ ॥

हिन्दी—अधर्मी राजा के राज्य में समय पर बादल नहीं बरसते, धरती बंजर हो जाती है और राष्ट्र का ह्रास होता है एवं चारों ओर दुश्मन बढ़ जाते हैं तथा धन विनष्ट हो जाता है ॥ ६३ ॥

नेति। तत्र अधार्मिके राजनि सतीत्यर्थः, पर्जन्यः मेघः न कालवर्षी यथासमये न वर्षतीत्यर्थः, भूः पृथ्वी न महाफला भवतीति शेषः। राष्ट्रस्य राज्यस्य ह्रासः शत्रुवृद्धिः धनक्षयश्च जायते ॥ ६३ ॥

सुराप्यपि वरो राजा न स्त्रैणो नातिकोपवान्।
लोकांश्चण्डस्तापयति स्त्रैणो वर्णान् विलुम्पति ॥ ६४ ॥
मद्यप्येकश्च भ्रष्टः स्याद् बुद्ध्या च व्यवहारतः।
कामक्रोधौ मद्यतमौ सर्वमद्याधिकौ यतः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—राजा सुरापी अपि वरः; स्त्रैणः न, अतिकोपवान् न। चण्डः लोकान् तापयति, स्त्रैणः वर्णान् विलुम्पति। मद्यपी एकश्च बुद्ध्या व्यवहारतः भ्रष्टः स्यात्। कामक्रोधौ मद्यतमौ, यतः तौ सर्वमद्याधिकौ ॥ ६४-६५ ॥

व्याख्या—राजा = भूपतिः, सुरापी = मद्यपायी, अपि = चेत्, वरम् = वरेण्यम्, स्त्रैणः = स्त्रीजितः, न = नहि, अतिकोपवान् = प्रचण्डक्रोधी, न = नोत्तमः। चण्डः = अतिक्रोधी राजा, लोकान् = जनान्, तापयति = अतिपीडयति, स्त्रैणः = रमणीरतः, वर्णान् = ब्राह्मणादीन्, विलुम्पति = दुराचारेण कलुषयति। मद्यपी = सुरासुः, एकश्च = एक एव, आत्मनैव, बुद्ध्या = ज्ञानेन, व्यवहारतः = वर्त्तनेन आचारेण वा, भ्रष्टः = नष्टः, स्यात् = भवेत्। कामक्रोधौ = कामकोपौ, मद्यतमौ = सुरादधिकौ, यतः, तौ = कामक्रोधौ, सर्वेषाम् = सकलानाम्, मद्यानाम् = सुराणाम्, अधिकौ = प्रभूतौ प्रबलतरौ, भवतः इति ॥ ६४-६५ ॥

हिन्दी—कामी और अतिक्रोधी राजा के होने की अपेक्षा उसका शराबी होना अच्छा है। क्योंकि कामी राजा संकर उत्पन्न कर वर्णव्यवस्था को लुप्त करता है तथा अति क्रोधी राजा प्रजा को पीड़ित करता है। शराबी राजा केवल अपनी बुद्धि एवं अपने आचरण में ही भ्रष्ट होता है, किन्तु कामी एवं क्रोधी राजा का कुप्रभाव एवं दुश्चरित्र का परिणाम प्रजा को झेलना पड़ता है। अतः राजा का कामी और क्रोधी होने की अपेक्षा शराबी होना उत्तम है ॥६४-६५ ॥

सुरापीति। मद्यपीति। राजा सुरापी सुरापायी अपि वरः प्रशस्यः, स्त्रैणः स्त्रीपरतन्त्रः न, अतिकोपवान् च न वर इति शेषः। तथाहि चण्डः अतिकोपनः लोकान् प्रजाः तापयति नितरां पीडयति, स्त्रैणः स्त्रीकामुकः वर्णान् ब्राह्मणादीन् विलुम्पति व्यभिचारेण सङ्करजात्युत्पादनेन दूषयतीत्यर्थः। मद्यपी सुरापायी एकश्च एक एव बुद्ध्या व्यवहारतश्च भ्रष्टः स्यात् प्रजाः न भ्रंशयेदिति भावः। कामक्रोधौ मद्यतमौ मद्यादधिकौ यतः तौ सर्वेषां मद्यानां मादकानां वस्तूनाम् अधिकौ श्रेष्ठौ ॥६४-६५ ॥

धनप्राणहरो राजा प्रजायाश्चातिलोभतः।
तस्मादेतत् त्रयं त्यक्त्वा दण्डधारी भवेत् नृपः ॥ ६६ ॥

अन्वयः—राजा अतिलोभतः प्रजायाः धनप्राणहरः। तस्मात् नृपः एतत्त्रयं त्यक्त्वा दण्डधारी भवेत् ॥ ६६ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, अतिलोभतः = लिप्सातिशयेन, प्रजायाः = जनानाम्, धनप्राणहरः—धनानाम् = वित्तानाम्, प्राणानाम् = असूनाम्, हरः = हरणकर्त्ता भवति। तस्मात् = तेन कारणेन, नृपः = राजा, एतत्त्रयम् = कामक्रोधादित्रयम्, त्यक्त्वा = परिहृत्य, दण्डधारी = दमनकारी, भवेत् = स्यात् ॥ ६६ ॥

हिन्दी—राजा अत्यन्त लोभवश प्रजा का धन और प्राण का हरणकर्त्ता होता है। अतः काम, क्रोध और लोभ—इन तीनों को छोड़कर राजा को दमनकारी बनना चाहिए ॥ ६६ ॥

धनेति। राजा अतिलोभतः लोभातिशयात् प्रजायाः जातावेकवचनम्, प्रजानामित्यर्थः धनप्राणहरः भवति, तस्मात् नृपः एतेषां कामक्रोधलोभानां त्रयं त्यक्त्वा दण्डधारी दमनकारी भवेत् ॥ ६६ ॥

अन्तर्मृदुर्बहिः क्रूरो भूत्वा स्वां दण्डयेत् प्रजाम्।
अत्युग्रदण्डकल्पः स्यात् स्वभावा हितकारिणः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—राजा अन्तः मृदुः बहिः क्रूरः भूत्वा स्वां प्रजां दण्डयेत्। अत्युग्रदण्डकल्पः स्यात् स्वभावाः हितकारिणः ॥ ६७ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, अन्तः = अन्तःकरणे, मृदु = कोमलः, बहिः = बाह्ये, क्रूरः = निष्ठुरः, भूत्वा = सम्भूय, स्वाम् = स्वकीयाम्, प्रजाम् = जनम्, दण्डयेत् = दमयेत्, अत्युग्रदण्डकल्पः = बाह्ये अतितीव्रदण्डसदृशः, स्यात् = भवेत्, किन्तु स्वभावाः = प्रकृत्या, हितकारिणः = लाभकारिणो भवेयुरिति ॥ ६७ ॥

हिन्दी—राजा को भीतर से कोमल और ऊपर से कठोर होकर प्रजा को दण्ड देना चाहिए। ऊपर से अत्यन्त कठोर दीखते हुए स्वभाव से लोकहितैषी होना चाहिए ॥ ६७ ॥

अन्तरिति। राजा अन्तर्मृदुः कोमलान्तःकरणः किन्तु बहिःक्रूरः बाह्यकर्कशः भूत्वा स्वां प्रजां दण्डयेत् शासयेत्। अत्युग्रदण्डकल्पः बाह्ये अतितीक्ष्णदण्डसदृशः स्यात् किन्तु स्वभावाः हितकारिणः भवेयुरिति शेषः॥६७॥

राष्ट्रं कर्णेजपैर्नित्यं हन्यते च स्वभावतः।
अतो नृपः सूचितोऽपि विमृशेत् कार्य्यमादरात्॥६८॥

अन्वयः—कर्णेजपैः स्वभावतः नित्यं राष्ट्रं हन्यते। अतः नृपः सूचितोऽपि आदरात् कार्यं विमृशेत्॥६८॥

व्याख्या—कर्णेजपैः = पिशुनैः वा पृष्ठमांसादैः, स्वभावतः = प्रकृत्या, नित्यम् = निरन्तरम्, राष्ट्रम् = राज्यम्, हन्यते = विनाशयितुं यतते। अतः = अस्मात्कारणात्, नृपः = राजा, सूचितोऽपि = ज्ञापितोऽपि, आदरात् = सम्मानपूर्वकात्, कार्यम् = कृत्यम्, विमृशेत् = विचारयेत्॥६८॥

हिन्दी—चुगलखोर अपने स्वभाव से परस्पर द्वेष उत्पन्न कर निरन्तर राष्ट्र की जड़ खोदने में लगे रहते हैं। अतः उनकी बातें सम्मानपूर्वक सुनकर भी विचारपूर्वक ही कोई काम करे॥६८॥

राष्ट्रमिति। कर्णेजपैः जनैः स्वभावतः नित्यं राष्ट्रं राज्यं हन्यते परस्परमनोभङ्गजननेन उच्छेत्तुं चेष्ट्यते, अतः नृपः सूचितः तेषां परामर्शेन दूषितोऽपि आदरात् यत्नतः कार्य्यं विमृशेत् विचार्य्य कुर्य्यादित्यर्थः॥६८॥

आत्मनश्च प्रजायाश्च दोषदर्श्युत्तमो नृपः।
विनियच्छति चात्मानमादौ भृत्यांस्ततः प्रजाः॥६९॥

अन्वयः—उत्तमः नृपः आत्मनः प्रजायाश्च दोषदर्शी। आदौ आत्मानं ततः भृत्यान् ततः प्रजाः विनियच्छति॥६९॥

व्याख्या—उत्तमः = श्रेष्ठः, नृपः = राजा, आत्मनः = स्वस्य, प्रजायाश्च = जनानाञ्च, दोषदर्शी = न्यूनताप्रेक्षको भवति। आदौ = प्रथमतः, आत्मानम् = स्वम्, ततः, भृत्यान् = राजपुरुषान्, तत्पश्चात्, प्रजाः = जनान्, विनियच्छति = विशेषेण नियन्त्रयति॥६३॥

हिन्दी—अपना तथा प्रजा का दोष देखने वाला राजा उत्तम कोटि का होता है। सर्वप्रथम राजा अपने को दोषमुक्त करता है, फिर राजपुरुषों को, बाद में प्रजा को भी दोषमुक्त करता है॥६९॥

आत्मन इति। उत्तमः नृपः आत्मनः स्वस्य प्रजायाश्च दोषदर्शी भवति, अतः राजा आदौ अग्रतः आत्मानं ततः भृत्यान् राजपुरुषान् ततश्च प्रजाः विनियच्छति विशेषेण नियमयतीत्यर्थः॥६९॥

कायिको वाचिको मानसिकः सांसर्गिकस्तथा।
चतुर्विधोऽपराधः स बुद्ध्यबुद्धिकृतो द्विधा॥७०॥

अन्वयः—अपराधः कायिकः वाचिकः मानसिकः तथा सांसर्गिकः चतुर्विधः। सः च बुद्ध्यबुद्धिकृतः द्विधा॥७०॥

व्याख्या—अपराधः = दोषः, कायिकः = शारीरिकः, वाचिकः = वाग्विषयकः, मानसिकः =

चैत्तः, तथा = तेनैव प्रकारेण, सांसर्गिकः = सम्पर्कजन्यः, चतुर्विधः = चतुर्धा । सः च = असौ पुनः, द्विधा = द्विप्रकारको भवति, तद्यथा—बुद्धिकृतः = विचारपूर्वकं कृतं स्खलितम्, तथा अबुद्धिकृतः = अज्ञातस्खलितम् ॥७० ॥

हिन्दी—अपराध चार तरह के होते हैं—शारीरिक, मानसिक, वाचिक और सम्पर्कजन्य। और इनमें से प्रत्येक के पुनः दो-दो भेद हैं—अनजाने अपराध तथा जान-बूझकर किये गये अपराध ॥७० ॥

कायिक इति। अपराधः कायिकः शरीरजः वाचिकः वाक्योत्पन्नः मानसिकः मनोजनितः तथा सांसर्गिकः संसर्गज इति चतुर्विधः स च बुद्धिकृतः अबुद्धिकृतश्चेति द्विधा भवतीति शेषः ॥७० ॥

पुनर्द्विधा कारितश्च तथा ज्ञेयोऽनुमोदितः ।
सकृदसकृदभ्यस्तस्वभावैः स चतुर्विधः ॥७१ ॥

अन्वयः—सः पुनर्द्विधा ज्ञेयः—कारितः तथा अनुमोदितः। स च सकृत्-असकृत्-अभ्यस्तस्वभावैः चतुर्विधः ॥७१ ॥

व्याख्या—सः = अपराधः, पुनः = भूयः, द्विधा = द्विप्रकारकः, ज्ञेयः = बोध्यः। कारितः = अन्यैः जनैः सम्पादितः, तथा अनुमोदितः = समर्थितः, स चापराधः, सकृत् = वारमेकं कृतः, असकृत् = पौनःपुन्येन कृतः, अभ्यस्तः = निरन्तरकृतः, स्वभावैः = प्रकृत्या सम्पादितैः, चतुर्विधः = चतुर्धा भवतीति भावः ॥७१ ॥

हिन्दी—वह अपराध पुनः दो प्रकार का होता है—एक किसी के द्वारा कराया गया तथा दूसरा समर्थन किया गया। फिर ये दोनों चार तरह के होते हैं—एक बार किया गया, अनेक बार किया गया, निरन्तर किया गया तथा स्वाभाविक रूप से किया गया ॥७१ ॥

पुनरिति। सः अपराधः पुनर्द्विधा द्विप्रकारः ज्ञेयः, कारितः तथा अनुमोदितश्च। स च सकृत्कृतः, असकृत्कृतः तथा अभ्यस्तकृतः स्वभावकृत इति चतुर्विधः ॥७१ ॥

नेत्रवक्त्रविकाराद्यैर्भावैर्मानसिकं तथा ।
क्रियया कायिकं वीक्ष्य वाचिकं क्रूरशब्दतः ॥७२ ॥
सांसर्गिकं साहचर्य्यैर्ज्ञात्वा गौरवलाघवम् ।
उत्पन्नोत्पत्स्यमानानां कार्य्याणां दण्डमावहेत् ॥७३ ॥

अन्वयः—नेत्रवक्त्रविकाराद्यैः भावैः मानसिकं क्रियया वीक्ष्य कायिकं क्रूरशब्दतः वाचिकं साहचर्य्यैः सांसर्गिकं गौरवलाघवम् अपराधं ज्ञात्वा उत्पनान्नां तथा उत्पत्स्यमानानाम् कार्याणां दण्डम् आवहेत् ॥७२-७३ ॥

व्याख्या—नेत्रवक्त्रविकाराद्यैः = चक्षुराननविकृतिभिः, भावैः = मनोविकारैः, मानसिकम् = हार्दिकम्, क्रियया = कर्मणा, वीक्ष्य = अवलोक्य, कायिकम् = शारीरिकम्, क्रूरशब्दतः = नृशंसवचनात्, वाचिकम् = वाग्विषयकम्, साहचर्यैः = सहवासैः, साांसर्गिकम् = सम्पर्कजन्यम्, गौरवलाघवम् = गुरुत्वं लघुत्वं च, अपराधम् = दोषम्, ज्ञात्वा = विज्ञाय, उत्पन्नानाम् = उद्भूतानाम्, उत्पत्स्यमाानानाम् = सम्भाव्यानाम्, कार्याणाम् = कृत्यानाम्, दण्डम् = दमनम्, आवहेत् = विचारयेत् ॥७२-७३ ॥

हिन्दी—आँख और मुँह की विकृति से उनके मनोभावों को समझकर उनके मानसिक अपराध को तथा उनके काम से उनका शारीरिक, निष्ठुर वचन से वाचिक, सहवास से सांसर्गिक अपराध की लघुता और गुरुता को समझ कर उससे हुए या होने वाले अपराधों के सम्बन्ध में दण्ड-विचार करना चाहिए ॥७२-७३ ॥

नेत्रेति। सांसर्गिकमिति। नेत्रवक्त्राद्यैः नयनमुखभङ्गिप्रभृतिभिर्भावैः धर्मैः मानसिकं, क्रियया कार्य्येण कायिकं क्रूरशब्दतः कर्कशवाक्यात् वाचिकं साहचर्य्यैः सहवासैः सांसर्गिकं गौरवलाघवं गुरुं लघुञ्च अपराधं ज्ञात्वा उत्पन्नानां तथा उत्पत्स्यमानानां कार्य्याणां पापकर्मणां दण्डम् आवहेत् कुर्य्यात् ॥७२-७३ ॥

प्रथमं साहसं कुर्वन्नुत्तमो दण्डमर्हति।
न्याय्यं किमिति सम्पृच्छेत् तवैवेयमसत् कृतिः ? ॥ ७४ ॥

अन्वयः—उत्तमः कुर्वन् प्रथमं साहसं दण्डम् अर्हति, किं न्याय्यं तव एव इयम् असत् कृतिः? इति सम्पृच्छेत् ॥७४ ॥

व्याख्या—उत्तमः = श्रेष्ठः पुरुषः, कुर्वन् = दोषं निष्पादयन्, प्रथमम् = आदौ, साहसम् = धार्ष्ट्यम्, दण्डम् = दमनम्, अर्हति = योग्योऽस्ति, किञ्च, एतत्कार्यम्, किमिति प्रश्ने, न्याय्यम् = न्याय्यता, तव = भवतः, एव, इयम् = एषा, असत्कृतिः = दुष्कृतिः, इति = एवम्, सम्पृच्छेत् = जिज्ञासां कुर्यात् ॥७४ ॥

हिन्दी—यदि कोई भला आदमी पहली बार छोटा-मोटा दुष्कर्म करने का दुस्साहस करे तो—'क्या तुम्हारा यह काम न्यायसंगत है? क्या तुमने ही ऐसा अपराध किया है?' इस प्रकार प्रश्न उससे पूछकर छोड़ देना चाहिए ॥७४ ॥

प्रथममिति। उत्तमः उत्कृष्टो जनः कुर्वन् पापमिति शेषः, प्रथमं साहसं दण्डम् अर्हति, किञ्च एतत्कार्य्यं किं न्याय्यं न्यायादनपेतम्? तव एव इयम् असत्कृतिः अकार्य्यम् इति तं सम्पृच्छेत् ॥७४ ॥

अपराधं यथोक्तं च द्विगुणं त्रिगुणं ततः।
मध्यमं साहसं कुर्वन्नुत्तमो दण्डमर्हति ॥ ७५ ॥

अन्वयः—उत्तमः ततः अपराधं कुर्वन् मध्यमं साहसं दण्डं यथोक्तम् अपराधं द्विगुणं त्रिगुणं वा ॥७५ ॥

व्याख्या—उत्तमः = उत्कृष्टो जनः, ततः = पूर्वापेक्षयाऽधिकमपराधं, कुर्वन् = विदधन्, मध्यमम् = साधारणः, साहसम् = अर्थदण्डम्, यथोक्तम् = पूर्वोक्तमेतत्कार्यं न्याय्यम्? इत्यादिप्रकारकं दण्डम्, तदधिकम्, द्विगुणम्, वा = अथवा, त्रिगुणं विधेयमिति ॥७५ ॥

हिन्दी—अच्छा आदमी यदि दूसरी बार फिर अपराध करे तो उसे पूर्वकथित साहस दण्ड का दूना अर्थदण्ड करे। यदि वह पुनः अपराध करे तो उसे तिगुना अर्थदण्ड दे ॥७५ ॥

अपराधमिति। उत्तमः जनः ततः तदपेक्षया पूर्वापेक्षयेत्यर्थः, अधिकं पापं कुर्वन् मध्यमं साहसं दण्डं, यथोक्तम् एतत् कार्य्यं किं न्याय्यमित्यादिकम् अपराधं द्विगुणं, त्रिगुणं वा पापानुसारेणेति भावः अर्हति ॥७५ ॥

धिग्दण्डं प्रथमं चाद्यसाहसं तदनन्तरम्।
यथोक्तं तु तथा सम्यग् यथावृद्धि ह्यनन्तरम्॥७६॥

अन्वयः—प्रथमं धिग्दण्डं, तदनन्तरम् आद्यसाहसं तथा यथावृद्धि तु यथोक्तं सम्यक् दण्डम्॥७६॥

व्याख्या—प्रथमम् = प्रारम्भिकस्वल्पापराधः, धिग्दण्डम् = भर्त्सनां कुर्यात्, तदनन्तरम् = तत्पश्चात् पुनः कृतापराधे, आद्यसाहसम् = प्रथमसाहसिकार्थदण्डं कुर्यात्, तथा = अनन्तरम्, यथावृद्धि = यया रीत्याऽपराधानामुत्कर्षो भवति तदनुरूपम्, यथोक्तम् = पूर्ववर्णितरीत्या, सम्यक् = सर्वथा, दण्डम् = दमनम्, कुर्यात्॥७६॥

हिन्दी—पहली बार छोटा-मोटा अपराध करने पर धिक्कारना चाहिए। उसके बाद फिर अपराध करने पर प्रथम अर्थदण्ड देना चाहिए। उसके बाद यदि उस व्यक्ति की आपराधिक प्रवृत्ति बढती जाय तो उसे यथोचित पूर्ण दण्ड देना चाहिए॥७६॥

धिग्दण्डमिति। प्रथमम् अल्पापराधे इति शेषः, धिक् त्वां निन्दामीति दण्डं तदनन्तरं द्वितीयापराधे इत्यर्थः, आद्यसाहसं प्रथमसाहसाख्यं दण्डं, तथा अनन्तरं यथावृद्धि अपराधानामिति शेषः, तदनुरूपं यथोक्तम् उक्तरूपं सम्यक् दण्डं कुर्य्यादिति क्रियापदमध्याहार्य्यम्॥७६॥

उत्तमं साहसं कुर्वन्नुत्तमो दण्डमर्हति ॥७७॥

अन्वयः—उत्तमः कुर्वन् उत्तमं साहसं दण्डम् अर्हति॥७७॥

व्याख्या—उत्तमः = उत्कृष्टो जनः, अपराधं, कुर्वन् = निष्पादयन्, उत्तमम् = अधिकम्, साहसदण्डम् = अर्थदण्डम्, अर्हति = योग्यो भवति॥७७॥

हिन्दी—श्रेष्ठ जन जब गम्भीर अपराध करे तो उसे अच्छा अर्थदण्ड मिलना चाहिए॥७७॥

उत्तममिति। उत्तमः जनः कुर्वन् अधिकापराधमिति शेषः, उत्तमं साहसं दण्डम् अर्हति॥७७॥

प्रथमं साहसं चादौ मध्यमं तदनन्तरम्।
यथोक्तं द्विगुणं पश्चादवरोधं ततःपरम्॥७८॥

अन्वयः—आदौ प्रथमं साहसं तदनन्तरं मध्यमं पश्चात् यथोक्तं द्विगुणं ततःपरम् अवरोधम्॥७८॥

व्याख्या—आदौ = प्रारम्भिकापराधे, प्रथमम् = अग्रिमम्, साहसम् = अर्थदण्डम्, तदनन्तरम् = तत्पश्चात्, मध्यमम् = मध्यस्थितम्, साहसम् = अर्थदण्डम्, कुर्यादिति शेषः, पश्चात् = तदनन्तरम्, कृतेऽपराधे, यथोक्तम् = पूर्वोक्तरीत्या, द्विगुणं दण्डम्, ततःपरम् = इतोऽप्यधिकं, कृतमपराधम्, अवरोधम् = कारागृहे निक्षेपं कुर्यादिति॥७८॥

हिन्दी—प्रारम्भिक अपराध में प्राथमिक अर्थदण्ड देना चाहिए। पुनः अपराध करने पर मुख्य दण्ड का विधान है। उसके बाद भी अपराध करने पर पूर्वकथित दण्ड का दूना दण्ड देना चाहिए। इसके बाद भी अपराध करने पर जेल में डाल् देना चाहिए॥७८॥

प्रथममिति। आदौ प्रथमापराधे प्रथमं साहसं तदनन्तरं मध्यमं साहसं पश्चात् तदनन्तरमपि

अपराधे इत्यर्थः, यथोक्तम् उक्तरूपं द्विगुणं दण्डं, ततः परम् अवरोधं कारानिरोधरूपं दण्डम् अर्हतीति शेषः ॥७८॥

बुद्धिपूर्वनृघातेन विनैतद् दण्डकल्पनम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—बुद्धिपूर्वनृघातेन विना एतत् दण्डकल्पनम् ॥७९॥

व्याख्या—बुद्धिपूर्वनृघातेन = विचारपूर्वकनरहत्यया, विना = विहाय, एतत् = एतेषां पूर्वोक्तानाम्, दण्डानाम् = दमनानाम्, कल्पनम् = विधानमिति शेषः ॥७९॥

हिन्दी—विचारपूर्वक नरहत्या को छोड़कर अन्य अपराधों के लिए एक ही पूर्वोक्त दण्ड देना विधान है ॥७९॥

बुद्धीति। बुद्धिपूर्वनृघातेन ज्ञानपूर्वकनरहत्यया विना तादृशनरहत्याव्यतिरिक्तस्थाने इत्यर्थः, एतेषां पूर्वोक्तानां दण्डानां प्रथमसाहसादीनां प्रकल्पनं व्यवस्थापनं कार्य्यमिति शेषः ॥७९॥

उत्तमत्वं मध्यमत्वं नीचत्वं चात्र कीर्त्त्यते।
गुणेनैव तु मुख्यं हि कुलेनापि धनेन च ॥ ८० ॥

अन्वयः—अत्र उत्तमत्वं मध्यमत्वं नीचत्वं कीर्त्त्यते, तत् गुणेन कुलेन धनेन च मुख्यम् ॥८०॥

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् विषये, उत्तमत्वम् = उत्कृष्टता, मध्यमत्वम् = सामान्यत्वम्, नीचत्वम् = अधमत्वम्, यत्कीर्त्त्यते = कथ्यते, तत् सर्वम्, अपराधिनः, गुणेन = धर्मेण, कुलेन = वंशेन, च = पुनः, धनेन = वित्तेन, मुख्यम् = प्रधानम्, बोध्यमिति ॥८०॥

हिन्दी—इस विषय में उत्तम, मध्यम और अधम की व्याख्या मुख्य रूप से अपराधी के गुण, कुल और धन के अनुसार ही जानना चाहिए ॥८०॥

उत्तमत्वमिति। अत्र प्रकरणे यत् उत्तमत्वं मध्यमत्वं नीचत्वम् अधमत्वञ्च कीर्त्त्यते, तत् गुणेन कुलेन धनेन च मुख्यं प्रधानं सम्यक् इत्यर्थः, यथा तथा ज्ञेयमिति शेषः ॥८०॥

प्रथमं साहसं कुर्वन् मध्यमो दण्डमर्हति।
धिग्दण्डमर्द्धदण्डं च पूर्णदण्डमनुक्रमात् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—मध्यमः कुर्वन् प्रथमं साहसं धिग्दण्डम्, अर्द्धदण्डं पूर्णदण्डं वा अनुक्रमात् दण्डमर्हति ॥८१॥

व्याख्या—मध्यमः = मध्यमकोटिपुरुषः, कुर्वन् = अपराधं निष्पादयन्, प्रथमम् = प्रारम्भिकम्, साहसम् = अपराधम्, करोति, तर्हि तमपराधिनम्, धिग्दण्डम् = भर्त्सनरूपम्, अर्द्धदण्डम् = आंशिकदमनम्, वा = अथवा, पूर्णदण्डम् = पूर्णरूपेण दमनम्, अनुक्रमात् = अपराधस्यानुपूर्व्येण, गुरुतां लघुताञ्च विचार्य, दण्डम् = दमनं कर्त्तुम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥८१॥

हिन्दी—साधारण व्यक्ति यदि पहली बार अपराध करे तो उसे धिक्कार देकर छोड़ देना चाहिए। किन्तु इसके बाद यदि वह बार-बार अपराध करे तो उसके अपराध की बड़ाई-छोटाई पर विचार कर उसे आधे या पूरे दण्ड का हकदार समझना चाहिए ॥८१॥

प्रथममिति। मध्यमः कुर्वन् पापमिति शेषः, प्रथमं साहसं धिग्दण्डं त्वां धिगिति निभर्त्सनरूपम्

अर्द्धदण्डं वा पूर्णदण्डम् अनुक्रमात् अपराधस्य पौनःपुन्येन गौरवलाघवाभ्यां वा दण्डम् अर्हति ॥८१ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं पश्चात् संरोधं नीचकर्म च।
मध्यमं साहसं कुर्वन् मध्यमो दण्डमर्हति ॥ ८२ ॥

अन्वयः—मध्यमः कुर्वन् मध्यमं साहसं द्विगुणं त्रिगुणं वा संरोधं नीचकर्म दण्डमर्हति ॥८२ ॥

व्याख्या—मध्यमः = साधारणो जनः, अपराधं कुर्वन् = निष्पादयन्, मध्यमम् = सामान्यम्, साहसम् = अर्थदण्डम्, विधेयः, वा तस्य द्विगुणं, त्रिगुणं दण्डं कुर्यात्, तत्पश्चात् संरोधम् = कारागृहेऽवरोधम्, तत्र नीचकर्म = अधमकृत्यम्, दण्डम् = दमनं प्राप्तुम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥८२ ॥

हिन्दी—सामान्य व्यक्ति यदि साधारण अपराध करे तो उसे प्राथमिक अर्थदण्ड या उसका दूना, तिगुना अर्थदण्ड करना चाहिए। इसके बाद भी यदि वह अपराध करे तो उसे जेल में बन्द कर देना चाहिए तथा नीचकर्म करने पर वह व्यक्ति अपराध की लघुता या गुरुता के अनुसार दण्ड पाने योग्य होता है ॥८२ ॥

द्विगुणमिति। मध्यमः पापं कुर्वन् मध्यमं साहसं द्विगुणं त्रिगुणं वा पश्चात् संरोधं कारावरोधं तत्र नीचकर्म निकृष्टकार्य्यकरणरूपञ्च दण्डम् अर्हति अपराधतारतम्येनेदमिति ज्ञेयम् ॥८२ ॥

पूर्वसाहसमादौ तु यथोक्तं द्विगुणं ततः।
ताडनं बन्धनं पश्चात् पुरान्निर्वासनाङ्कने।
उत्तमं साहसं कुर्वन् मध्यमो दण्डमर्हति ॥ ८३ ॥

अन्वयः—मध्यमः पापं कुर्वन् आदौ पूर्वसाहसम्, ततः यथोक्तं द्विगुणं, पश्चात् ताडनं, ततः बन्धनं पुरात् निर्वासनम् अङ्कनम् उत्तमं साहसदण्डम् अर्हति ॥८३ ॥

व्याख्या—मध्यमः = सामान्यापराधः, कुर्वन् = निष्पादयन्, आदौ = प्रारम्भे, पूर्वसाहसम् = प्राथमिक-अर्थदण्डम्, ततः = तत्पश्चात् पुनः कृतेऽपराधे, यथोक्तम् = पूर्ववर्णितमर्थदण्डस्य द्विगुणं दण्डं विधेयम्, ततोऽपि कृतापराधे, ताडनम् = प्रहरणम्, ततः = तदनन्तरम्, बन्धनम् = कारागारे निक्षेपणम्, पुरात् = नगरात्, निर्वासनम् = निष्कासनम्, अङ्कनम् = तप्तलौहमुद्रणम्, उत्तमम् = उत्कृष्टम्, साहसदण्डम् = अर्थदण्डम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥८३ ॥

हिन्दी—साधारण व्यक्ति यदि सामान्य अपराध करे तो उसे पहली बार अपराध के लिए प्राथमिक अर्थदण्ड का विधान है। पुनः अपराध करने पर दुगुना अर्थदण्ड देना चाहिए। इसके बाद अपराध करने पर पिटाई करनी चाहिए। फिर अपराध करे तो जेल में बंद कर देना चाहिए। पुनः देश से निष्कासन तथा दाग कर अपराध के अनुसार दण्ड का विधान करना चाहिए ॥८२ ॥

पूर्वेति। मध्यमः पापं कुर्वन् आदौ पूर्वसाहसं प्रथमं साहसं ततः तदनन्तरं यथोक्तं द्विगुणं पश्चात् ताडनं प्रहारं ततः बन्धनं पुरात् नगरात् निर्वासनं बहिष्करणम् अङ्कनं गात्रे चिरचिह्नकरणम् उत्तमं साहसञ्च दण्डम् अर्हति ॥८३ ॥

मध्यमं साहसं चादौ यथोक्तं तदनन्तरम्।
द्विगुणं त्रिगुणं पश्चाद् यावज्जीवं तु बन्धनम्।
प्रथमं साहसं कुर्वन्नधमो दण्डमर्हति ॥ ८४ ॥

अन्वयः—अधमः पापं कुर्वन् आदौ प्रथमं साहसं, तदनन्तरं मध्यमं साहसं, ततः यथोक्तं द्विगुणं त्रिगुणं पश्चात् यावज्जीवं बन्धनम् अर्हति ॥ ८४ ॥

व्याख्या—अधमः = नीचः, पापं कुर्वन् = निष्पादयन्, आदौ = प्रारम्भिकापराधे, प्रथमं साहसम् = प्राथमिक-अर्थदण्डम्, तदनन्तरम् = तत्पश्चात्, मध्यमं साहसम् = मध्यस्तरीयार्थदण्डम्, ततः = तत्पश्चात्, द्विगुणं त्रिगुणम् अर्थदण्डं कुर्यात्, ततोऽपि कृतापराधे, यावज्जीवम् = जीवनपर्यन्तम्, बन्धनम् = कारागारे निक्षेपणम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥ ८६ ॥

हिन्दी—नीच व्यक्ति यदि प्रथम अपराध करे तो उसे प्राथमिक अर्थदण्ड, दुबारा अपराध के लिए मध्यमस्तरीय अर्थदण्ड, पुनः अपराध करने पर पूर्वोक्त रीति से दूना, तिगुना, फिर सारी जिन्दगी कैदखाने में डाल देना चाहिए ॥ ८४ ॥

मध्यममिति। अधमः पापं कुर्वन् आदौ प्रथमं साहसं ततः मध्यमं साहसं तदनन्तरं यथोक्तम् उक्तरूपं द्विगुणं त्रिगुणं पश्चात् यावज्जीवं बन्धनं कारावासरूपं दण्डम् अर्हति ॥ ८४ ॥

अर्द्धं यथोक्तं द्विगुणं त्रिगुणं बन्धनं ततः।
मध्यमं साहसं कुर्वन्नधमो दण्डमर्हति ॥ ८५ ॥

अन्वयः—अधमः पापं कुर्वन् यथोक्तम् अर्द्धं द्विगुणं त्रिगुणं ततः बन्धनं मध्यमं साहसदण्डं अर्हति ॥ ८५ ॥

व्याख्या—अधमः = नीचः, पापम्, कुर्वन् = निष्पादयन्, यथोक्तम् = पूर्वोक्तरूपम्, अर्द्धम् = अर्द्धार्थदण्डम्, द्विगुणम्, त्रिगुणम्, ततः = तत्पश्चात्, बन्धनम् = कारागृहे निंक्षेपणम्, मध्यमम् = मध्यस्तरीयम्, साहसम् = अर्थदण्डम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥ ८५ ॥

हिन्दी—नीच व्यक्ति पाप करते हुए पहले प्राथमिक अर्थदण्ड, तत्पश्चात् पूर्ववर्णित अर्थदण्ड का आधा, दुगुना, तिगुना; पुनः आजीवन कारावास अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए ॥ ८५ ॥

अर्द्धमिति। अधमः पापं कुर्वन् यथोक्तम् अर्द्धद्विगुणं त्रिगुणं ततः बन्धनं मध्यमं साहसं दण्डम् अर्हति। एतच्च पापविशेषेणेति ज्ञेयम् ॥ ८५ ॥

पूर्वसाहसमादौ तु यथोक्तं द्विगुणं ततः।
ततः संरोधनं नित्यं मार्गसंस्करणार्थकम्।
उत्तमं साहसं कुर्वन् अधमो दण्डमर्हति ॥ ८६ ॥
मध्यमं साहसं चादौ यथोक्तं द्विगुणं ततः।
यावज्जीवं बन्धनं च नीचकर्मैव केवलम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—अधमः पापं कुर्वन् आदौ पूर्वसाहसं, ततः यथोक्तं द्विगुणं, ततः नित्यं मार्गसंस्करणार्थकं संरोधनम् उत्तमसाहसञ्च अथवा आदौ मध्यमं साहसं, ततः द्विगुणं यावज्जीवं बन्धनं केवलं नीचकर्म च दण्डम् अर्हति ॥ ८६-८७ ॥

व्याख्या—अधमः = नीचः, पापं कुर्वन् = विदधन्, आदौ = प्राथमिकापराधे, पूर्वसाहसम् = प्रथमार्थिदण्डम्, कुर्यात्, ततः = तत्पश्चात्, यथोक्तम् = येन प्रकारेण पूर्वनिगदितं तथैव, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, ततः = तत्पश्चाद्विहितापराधे, नित्यम् = अनवरतम्, मार्गसंस्करणार्थकम्—मार्गस्य = पथः, संस्करणार्थकम् = संशोधनार्थकम्, संरोधनम् = सम्यगवरोधम्, च = पुनः, उत्तमसाहसम् = सर्वाधिकदण्डम्, अथवा आदौ = प्रारम्भे, मध्यमम् = मध्यमस्तरीयम्, साहसम् = अर्थदण्डम् ततः = ततोऽपि, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, यावज्जीवम् = आजीवनम्, बन्धनम् = अवरोधनम्, केवलम् = सामस्त्येन, नीचकर्म च = अधमकृत्यरूपञ्च, दण्डम् = दमनम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥८६-८७ ॥

हिन्दी—नीच व्यक्ति यदि सामान्य अपराध करे तो उसे प्राथमिक अर्थदण्ड देना चाहिए, इसके बाद दूना अर्थदण्ड देना चाहिए; इसके बाद कैदखाने तथा फिर अपराध करने पर नित्य सड़क पर झाड़ू लगवाना चाहिए। अथवा—अधम पुरुष यदि लगातार अपराध करे तो उसे कठोर दण्ड दे। इससे भी अगर न माने तो दूना अर्थदण्ड। उसके बाद आजीवन कारावास तथा मल-मूत्रादि की सफाई का काम सौंपना चाहिए ॥८६-८७ ॥

पूर्वसाहसमिति। मध्यममिति। अधमः पापं कुर्वन् आदौ पूर्वसाहसं प्रथमसाहसं ततः यथोक्तं द्विगुणं ततः नित्यं मार्गस्य पथः संस्करणार्थकम् परिष्कारकरणार्थमित्यर्थः, संरोधनम् अवरोधम् उत्तमसाहसञ्च अथवा आदौ मध्यमं साहसं ततः तथोक्तं द्विगुणं यावज्जीवं बन्धनं केवलं नीचकर्म च निकृष्टकार्य्यकरणरूपञ्च दण्डम् अर्हति ॥८६-८७ ॥

हरेत् पादं धनात् तस्य यः कुर्य्याद्धनगर्वतः।
पूर्वं ततोऽर्द्धमखिलं यावज्जीवं तु बन्धनम् ॥८८ ॥

अन्वयः—यः धनगर्वात् पापं कुर्यात् पूर्वं तस्य धनात् पादं, ततः अर्द्धं, ततः अखिलं धनं हरेत्। ततः यावज्जीवं बन्धनम् ॥८८ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, धनगर्वतः—धनस्य = वित्तस्य, गर्वतः = दर्पात्, पापम्, कुर्यात् = विधेयात्, पूर्वम् = प्रथमापराधे, तस्य = जनस्य, धनात् = अर्जितसम्पदः, पादम् = चतुर्थांशः, ततः = ततोऽपि द्वितीयापराधे, अर्द्धम् = धनस्यार्द्धभागम्, ततः = तदनन्तरं, तृतीयापराधे कृते सति, अखिलम् = सकलं धनम्, हरेत्। ततोऽपि कृतापराधे, यावज्जीवम् = आजीवनम्, बन्धनम् = कारागृहे वासरूपं दण्डं कुर्यात् ॥८८ ॥

हिन्दी—अपने धन के गर्व से जो अपराध करे, पहली बार उसके धन का चौथा हिस्सा दण्ड के रूप में ले ले, दूसरी बार अपराध करने पर आधा तथा तीसरे अपराध में सम्पूर्ण धन छीन ले। इसके बाद भी यदि वह अपराध करे तो उसे आजीवन कारावास की सजा देनी चाहिए ॥८८ ॥

हरेदिति। यः धनगर्वतः पापं कुर्य्यात् पूर्वं प्रथमापराधे इत्यर्थः, तस्य धनात् पादं, ततः द्वितीयापराधे इत्यर्थः, अर्द्धं ततः तृतीयापराधे अखिलं समस्तं धनमित्यर्थः, हरेत्। तदनन्तरापराधे यावज्जीवं बन्धनं कारावरोधरूपं दण्डनं कर्त्तव्यमिति शेषः ॥८८ ॥

सहायगौरवाद् विद्यामदाच्च बलदर्पतः।
पापं करोति यस्तं तु बन्धयेत् ताडयेत् सदा ॥८९ ॥

अन्वयः—यः सहायगौरवात् विद्यामदात् च बलदर्पतः पापं करोति, तं तु सदा बन्धयेत् च ताडयेत् ॥ ८९ ॥

व्याख्या—यः = जनः, सहायस्य = सहायकस्य, गौरवात् = अहङ्कारात्, विद्यामदात्—विद्यायाः = ज्ञानस्य, मदात् = दर्पात्, च = पुनः, बलदर्पतः—बलस्य = पराक्रमस्य, दर्पतः = अभिमानात्, पापम् = अपराधम्, करोति = निष्पादयति, तम् = जनम्, तु, सदा = सर्वदा, बन्धयेत् = कारागारेऽवरुन्ध्यात्, च = पुनः, ताडयेत् = प्रहरणं कुर्यादिति ॥ ८९ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अपने सहायक, अपनी विद्या या अपने बल के दर्प से पाप या अपराध करता है, उसे सदा के लिए जेल में डाल देना चाहिए या मार-पीटकर ठीक करना चाहिए ॥ ८९ ॥

सहायेति। यः सहायस्य गौरवात् विद्यामदात् विद्याजनिताहङ्कारात् तथा बलदर्पतः सामर्थ्याहङ्कारात् पापं करोति तं तु सदा बन्धयेत् कारायाम् अवरुन्ध्यात् ताडयेच्च ॥ ८९ ॥

भार्य्या पुत्रश्च भगिनी शिष्यो दासः स्नुषानुजः।
कृतापराधास्ताड्यास्ते तनुरज्जुसुवेणुभिः ॥ ९० ॥
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्चन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरंश्चोरवद्दण्डमर्हति ॥ ९१ ॥

अन्वयः—भार्य्या पुत्रः भगिनी शिष्यः दासः स्नुषा अनुजः ते कृतापराधाः तनुभिः रज्जुभिः सुवेणुभिः शरीरस्य पृष्ठतस्तु ताड्याः। कदाचन उत्तमाङ्गे न, अन्यथा तु प्रहरन् चोरवत् दण्डम् अर्हति ॥ ९०-९१ ॥

व्याख्या—भार्य्या = पत्नी, पुत्रः = सुतः, भगिनी = सोदरा, शिष्यः = छात्रः, दासः = सेवकः, स्नुषा = पुत्रवधूः, अनुजः = कनिष्ठभ्राता, ते = सर्वे, कृतापराधाः = अपराधिनः, तनुभिः = प्रतनुभिः, रज्जुभिः = दामभिः, सुवेणुभिः = कोमलवंशखण्डैः, शरीरस्य = देहस्य, पृष्ठतः = पृष्ठभागे, ताड्याः = प्रहरणीयाः। कदाचन = कथमपि, उत्तमाङ्गे = शिरसि, न = नहि, ताड्याः, अन्यथा तु इत्यव्यये, प्रहरन् = प्रहारं कुर्वन्, चोरवत् = तस्कर इव, दण्डम् = दमनम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥ ९०-९१ ॥

हिन्दी—अपनी पत्नी, पुत्र, छोटी बहन, छात्र, नौकर, पतोहू और छोटा भाई यदि अपराध करे तो चाबुक या पतली छड़ी से पीटना चाहिए। पिटाई पीठ की हो, शिर की नहीं। जो व्यक्ति इनकी पीठ छोड़कर शरीर के अन्य अङ्ग पर प्रहार करता है, उसे चोर की तरह दण्ड देना चाहिए ॥ ९०-९१ ॥

भार्य्येति। पृष्ठत इति। भार्य्या पुत्रः भगिनी शिष्यः दासः, स्नुषा पुत्रवधूः अनुजः कनिष्ठभ्राता, ते कृतापराधाः तनुभिः रज्जुभिः सुवेणुभिः शरीरस्य पृष्ठतस्तु पृष्ठभागे एव ताड्याः प्रहार्य्याः कदाचन उत्तमाङ्गे शिरसि न ताड्या इत्यर्थः, अतः अस्मात् उक्तात् अन्यथा अन्यप्रकारेण तु प्रहरन् चोरवत् तस्कर इव दण्डम् अर्हति ॥ ९०-९१ ॥

नीचकर्मकरं कुर्य्याद् बन्धयित्वा तु पापिनम्।
माससमात्रं त्रिमासं वा षण्मासं वापि वत्सरम्।
यावज्जीवं तु वा कश्चित् न कश्चिद् वधमर्हति ॥ ९२ ॥

अन्वयः—कश्चित् पापिनं मासमात्रं त्रिमासं वा षण्मासं वापि वत्सरं वा यावज्जीवं बन्धयित्वा नीचकर्मकरं कुर्यात्, किन्तु कश्चित् वधं न अर्हति ॥ ९२ ॥

व्याख्या—कश्चित् = कोऽपि, पापिनम् = अपराधिनम्, मासमात्रम् = मासमेकावधिम्, त्रिमासम् = मासत्रयावधिम्, वा = अथवा, षण्मासम् = षण्मासावधिम्, वा, वत्सरम् = वर्षमेकम्, वा = अथवा, अपराधानुसारम्, यावज्जीवनम् = आजीवनम्, बन्धयित्वा = कारागारे निक्षिप्य, नीचकर्मकरम् = मलवाहादिनीचकर्मकारिणम्, कुर्यात् = विदध्यात्, किन्तु कश्चित् = कोऽपि, वधम् = मृत्युदण्डम्, न = नहि, अर्हति = योग्यो भवति ॥ ९२ ॥

हिन्दी—किसी भी अपराधी को एक महीना, तीन महीना, छः महीना, पूरा साल अथवा जीवनभर कैद की सजा देकर मल-मूत्रादि फेंकवाने जैसे नीच कर्म कराये; किन्तु किसी को भी मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिए ॥ ९२ ॥

नीचकर्मेति। कञ्चित् पापिनं मासमात्रं त्रिमासं वा षण्मासं वा वत्सरं वा यावज्जीवं व्याप्य बन्धयित्वा कारायां निरुध्य नीचकर्मकरं निकृष्टकर्मकारिणं कुर्यात्, किन्तु कश्चित् कोऽपि वधं वधदण्डं न अर्हति ॥ ९२ ॥

न निहन्याच्च भूतानि त्विति जागर्त्ति वै श्रुतिः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वधदण्डं त्यजेत् नृपः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—भूतानि न निहन्यात्, इति श्रुतिः जागर्त्ति वै। तस्मात् नृपः सर्वप्रयत्नेन वधदण्डं त्यजेत् ॥ ९३ ॥

व्याख्या—भूतानि = प्राणिनः, न = नहि, निहन्यात् = हननं कुर्यात्, इति = इत्थम्, श्रुतिः = वेदवचनम्, जागर्त्ति = बोधयति, वै = इति निश्चयेन। तस्मात् = तेन हेतुना, नृपः = राजा, सर्वप्रयत्नेन = सर्वतोभावेन, वधदण्डम् = मृत्युदण्डम्, त्यजेत् = परिहरेत् ॥ ९३ ॥

हिन्दी—वेद का वचन है–किसी की हत्या नहीं करनी चाहिए। अतः राजा को प्रयासपूर्वक किसी को मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिए ॥ ९३ ॥

नेति। भूतानि प्राणिनः न निहन्यात् इति श्रुतिः जागर्त्ति, वैशब्दोऽवधारणार्थः। तस्मात् नृपः सर्वप्रयत्नेन वधदण्डं त्यजेत् ॥ ९३ ॥

अवरोधाद् बन्धनेन ताडनेन च कर्षयेत्।
लोभान्न कर्षयेद्राजा धनदण्डेन वै प्रजाम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—राजा अवरोधात् बन्धनेन ताडनेन च प्रजां कर्षयेत्, लोभात् धनदण्डेन वै न कर्षयेत् ॥ ९४ ॥

व्याख्या—राजा = नृपतिः, अवरोधात् = निरोधात्, बन्धनेन = कारायां स्थापनेन, ताडनेन = प्रहरणेन, च, प्रजाम् = जनान्, कर्षयेत् = पीडयेत्, लोभात् = परद्रव्याभिलाषात्, धनदण्डेन = अर्थदण्डेन, प्रजाम्, न = नहि, कर्षयेत् = पीडयेत् ॥ ९४ ॥

हिन्दी—हाथो में कड़ी, पैरों में बेड़ी देकर जेल में डाल देना, मारना-पीटना, पीड़ा पहुँचाना उचित है; किन्तु लोभवश प्रजा को अर्थदण्ड से पीड़ित करना उचित नहीं है ॥ ९४ ॥

अवरोधादिति। राजा अवरोधात् बन्धनेन ताडनेन प्रहारेण च प्रजां कर्षयेत् पीडयेत्, लोभात् धनदण्डेन न कर्षयेत् ॥ ९४ ॥

नासहायास्तु पित्राद्या दण्ड्याः स्युरपराधिनः ।
क्षमाशीलस्य वै राज्ञो दण्डग्रहणमीदृशम् ॥ ९५ ॥

अन्वयः—अपराधिनः असहायाः पित्राद्याः न दण्ड्याः स्युः वै। क्षमाशीलस्य राज्ञः ईदृशं दण्डग्रहणम् ॥ ९५ ॥

व्याख्या—अपराधिनः = पापिनो जनस्य, असहायाः = निराश्रयाः, पित्राद्याः = परिजनाः, न = नहि, दण्ड्याः = दमनीयाः, स्युः = भवेयुः। वै = इति निश्चयेन। क्षमाशीलस्य = गुणिनः, राज्ञः = नृपस्य, ईदृशम् = पूर्वोक्तरूपम्, दण्डग्रहणम् = दमनम् इति ॥ ९५ ॥

हिन्दी—अपराधी के असहाय माता-पिता या आश्रितजनों को दण्ड नहीं देना चाहिए। क्षमावान् राजा को इस प्रकार ही अपराधी को दण्डित करना चाहिए ॥ ९५ ॥

नेति। अपराधिनः जनस्य असहायाः पित्राद्याः परिजनाः न दण्ड्याः दण्डनीयाः स्युः। क्षमाशीलस्य राज्ञः ईदृशम् उक्तरूपं दण्डग्रहणं शासनमित्यर्थः ॥ ९५ ॥

नापराधं तु क्षमते प्रदण्डो धनहारकः ।
नृपो यदा तदा लोकः क्षुभ्यते भिद्यते परैः ॥ ९६ ॥

अन्वयः—यदा नृपः प्रदण्डः तु धनहारकः सन् अपराधं न क्षमते तदा लोकः क्षुभ्यते, परैः भिद्यते ॥ ९६ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, नृपः = राजा, प्रदण्डः = प्रचण्डदण्डः, तु = तथा, धनहारकः = धनापहर्त्ता, सन्, अपराधम् = दोषः, न = नहि, क्षमते = मर्षते, तदा = तस्मिन् काले, लोकः = जनः, क्षुभ्यते = क्रुद्ध्यते, वा, अशान्तो भवति, परैः = शत्रुभिः, भिद्यते = संसृज्यते ॥ ९६ ॥

हिन्दी—राजा जब अपराधी को तीक्ष्ण दण्ड देता है या अपराध क्षमा न कर उसका धन हरण करता है, तब उसकी प्रजा क्रुद्ध हो उठती है तथा दुश्मन उसे फोड़कर अपने पक्ष में मिला लेते हैं ॥ ९६ ॥

नापराधमिति। यदा नृपः प्रदण्डः तीक्ष्णदण्डः तथा धनहारकः सन् न क्षमते, तदा लोकः क्षुभ्यते विरज्यते परैः राजशत्रुभिः भिद्यते संसृज्यते इति यावत् ॥ ९६ ॥

अतः सुभागदण्डी स्यात् क्षमावान् रञ्जको नृपः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—अतः नृपः सुभागदण्डी क्षमावान् तथा रञ्जकः स्यात् ॥ ९७ ॥

व्याख्या—अतः = अस्माद्धेतोः, नृपः = राजा, सुभागदण्डी = अपराधं सम्यग् विभज्य दण्डकर्त्ता, क्षमावान् = सहिष्णुः, तथा, रञ्जकः = प्रजानामानन्ददायकः, स्यात् = भवेत् ॥ ९७ ॥

हिन्दी—अतः राजा को अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड देना चाहिए तथा क्षमाशील एवं प्रजारंजक होना चाहिए ॥ ९७ ॥

अत इति। अतः अस्मात् करणात् नृपः सुभागदण्डी सुष्ठु विभज्य दण्डयतीति तथोक्तः, क्षमावान् तथा रञ्जकः प्रजानामिति शेषः, स्यात् भवेत् ॥ ९७ ॥

मद्यपः कितवः स्तेनो जारश्चण्डश्च हिंसकः ।
त्यक्तवर्णाश्रमाचारो नास्तिकः शठ एव हि ॥ ९८ ॥

मिथ्याभिशापकः कर्णेजपार्य्यदेवदूषकौ।
असत्यवाङ्न्यासहारी तथा वृत्तिविघातकः॥ ९९॥
अन्योदयासहिष्णुश्च ह्युत्कोचग्रहणे रतः।
अकार्य्यकर्त्ता मन्त्राणां कार्य्याणां भेदकस्तथा।
अनिष्टवाक् परुषवाग्जलारामप्रबाधकः।
नक्षत्रसूची राजद्विट् कुमन्त्री कूटकार्य्यवित्॥ १००॥
कुवैद्यामङ्गलाशौचशीलो मार्गनिरोधकः।
कुसाक्ष्युद्धतवेशश्च स्वामिद्रोही व्ययाधिकः॥ १०१॥
अग्निदो गरदो वेश्यासक्तः प्रबलदण्डकृत्।
तथा पाक्षिकसभ्यश्च बलाल्लिखितग्राहकः॥ १०२॥
अन्यायकारी कलहशीलो युद्धे पराङ्मुखः।
साक्ष्यलोपी पितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः॥ १०३॥
असूयकः शत्रुसेवी मर्मभेदी च वञ्चकः।
स्वकीयद्विड्गुप्तवृत्तिर्वृषलो ग्रामकण्टकः॥ १०४॥
विना कुटुम्बभरणात् तपोविद्यार्थिनः सदा।
तृणकाष्ठादिहरणे शक्तः सन् भैक्ष्यभोजकः॥ १०५॥
कन्याया अपि विक्रेता कुटुम्बवृत्तिह्रासकः।
अधर्मासूचकश्चापि राजानिष्टमुपेक्षकः॥ १०६॥
कुलटा पतिपुत्रघ्नी स्वतन्त्रा वृद्धनिन्दिता।
गृहकृत्योज्झिता नित्यं दुष्टाचाराप्रियस्नुषा।
स्वभावदुष्टानेतान् हि ज्ञात्वा राष्ट्राद् विवासयेत्॥ १०७॥

अन्वयः—मद्यपः कितवः स्तेनः जारः चण्डः हिंसकः त्यक्तवर्णाश्रमाचारः नास्तिकः शठः मिथ्याभिशापकः कर्णेजपार्यदेवदूषकौ असत्यवाक् न्यासहारी तथा वृत्तिविघातकः च अन्योदयासहिष्णुः उत्कोचग्रहणे रतः अकार्यकर्त्ता तथा मन्त्राणां कार्याणां भेदकः अनिष्टवाक् परुषवाक् जलारामप्रबाधकः नक्षत्रसूची राजद्विट् कुमन्त्री कूटकार्यवित् कुवैद्यामङ्गलाशौचशीलः मार्गनिरोधकः कुसाक्षी उद्धतवेशः स्वामिद्रोही व्ययाधिकः अग्निदः गरदः वेश्यासक्तः प्रबलदण्डकृत् पाक्षिकसभ्यः बलाल्लिखितग्राहकः अन्यायकारी कलहशीलः युद्धे पराङ्मुखः साक्ष्यलोपी पितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः असूयकः शत्रुसेवी मर्मभेदी वञ्चकः स्वकीयद्विड्गुप्तवृत्तिः वृषलः ग्रामकण्टकः कुटुम्बभरणात् विना सदा तपोविद्यार्थिनः तृणकाष्ठादिहरणे शक्तः सन् भैक्ष्यभोजकः कन्यायाः अपि विक्रेता कुटुम्बानां वृत्तिह्रासकः अधर्मासूचकः अपि राजानिष्टम् उपेक्षकः कुलटा पतिपुत्रघ्नी स्वतन्त्रा वृद्धनिन्दिता गृहकृत्योज्झिता नित्यं दुष्टाचारा अप्रियस्नुषा—एतान् स्वभावदुष्टान् ज्ञात्वा राष्ट्रात् विवासयेत्॥ ९८-१०७॥

व्याख्या—मद्यपः = सुरासुः, कितवः = वञ्चकः, स्तेनः = चौरः, जारः = परदारलम्पटः, चण्डः = प्रचण्डक्रोधी, हिंसकः = घातकः, त्यक्तवर्णाश्रमाचारः—वर्णानाम् = विप्रादीनाम्, आश्रमाणाम् = ब्रह्मचर्यादीनाम्, त्यक्ताचारः = आचारत्यागी, नास्तिकः = अनीश्वरवादी, शठः = मायावी, मिथ्याभिशापकः = असत्यदोषारोपकः, कर्णेजपः = पिशुनः, आर्यान् = भद्रपुरुषान्, देवान् = सुरान्, दूषयति = कलङ्कयतीति तौ, असत्यवाक् = अनृतभाषी, न्यासहारी = स्थाप्यापहारी, वा निक्षेपितधनापहर्त्ता, तथा = तेनैव रूपेण, वृत्तिविघातकः = जीविकापहर्त्ता, अन्योदयाऽसहिष्णुः—अन्येषाम् = अपराणाम्, उदयानाम् = उत्थानानाम्, असहिष्णुः = असहनशीलः, च = पुनः, उत्कोचग्रहणे = उपायनस्वीकरणे, रतः = तत्परः, अकार्यकर्त्ता = कुत्सितकर्मी, मन्त्राणाम् = रहस्यानाम्, तथा कार्याणाम् = कृत्यानाम्, भेदकः = भेत्ता, अनिष्टवाक् = अनभिलषितवादी, परुषवाक् = कटुभाषी, जलारामप्रबाधकः—जलस्य = सलिलस्य, आरामस्य = गृहोद्यानस्य च, प्रबाधकः = विघातकः, नक्षत्रसूची = वृथादैवज्ञः, राजद्विट् = राजद्रोही, कुमन्त्री = कुत्सितसचिवः, कूटकार्यवित्—कूटानाम् = छलानाम्, कार्याणां वेत्ता, कुवैद्यः = कुत्सितचिकित्सकः, अमङ्गलाशौचशीलः—अमङ्गलशीलः = अकल्याणकरी, अशुचिः = अपवित्रः, मार्गनिरोधकः = पथप्रविबाधकः, कुसाक्षी = कुत्सितनिदर्शकः, उद्धतवेशः = अविनीतपरिधानम्, स्वामीद्रोही = प्रभुद्वेष्टा, व्ययाधिकः = अपरिमितव्ययकर्त्ता, अग्निदः = गृहादिज्वालकः, गरदः = विषप्रयोक्ता, गरलप्रयोगेन जीवहन्ता, वेश्यासक्तः = वेश्यागामी, प्रबलदण्डकृत् = प्रचण्डदमनकारी, तथा पाक्षिकः = पक्षधराः, चः = पुनः, सभ्यः = सभासद्, बलाल्लिखितग्राहकः—बलात् = बलपूर्वकात्, लिखितस्य = लेखस्य, ग्राहकः = ग्रहणकर्त्ता, अन्यायकारी = अनीतिकर्मी, कलहशीलः = विसंवादी, युद्धे = समरे, पराङ्मुखः = विमुखः सैनिकः, साक्ष्यलोपी = प्रामाण्यविलोपकः, पितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः—पितृद्रोही = जनकाहितचिकीर्षकः, मातृद्रोही = जनन्यानिष्टकारी, सतीस्त्रीद्रोही = पतिव्रतावैरी, मित्रद्रोही = सुहृद्विरोधी, असूयकः = परगुणेषु दोषारोपकः शत्रुसेवी = रिपुराराधकः, मर्मभेदी = रहस्यप्रकाशकः, च = पुनः, वञ्चकः = प्रतारकः, स्वकीयद्विड्—स्वकीयानाम् = आत्मीयानाम्, द्वेष्टा = द्रोहकर्त्ता, गुप्तवृत्तिः = गूढजीविकः, वृषलः = धर्माघातकः, ग्रामकण्टकः = ग्राम्यजनपीडकः, कुटुम्बभरणात्—कुटुम्बानाम् = पुत्रकलत्रादीनाम्, भरणाद्विना = पालनं विहाय, सदा = सर्वदा, तपोविद्यार्थिनः—तपसि = तपस्यायां विद्यायां वा, आसक्तो जनः, तृणकाष्ठादिहरणे—तृणकाष्ठादीनाम् = पलालेन्धनादीनाम्, हरणे = आहरणे, शक्तोऽपि = समर्थोऽपि, भैक्ष्यभोजकः = भिक्षावृत्तिः, कन्यायाः = सुतायाः, अपि = चेत्, विक्रेता = विक्रयी, कुटुम्बवृत्तिह्रासकः—कुटुम्बानाम् = आश्रितजनानाम्, वृत्तिह्रासकः = जीविकाविघातकः, अधर्मा = पापी, सूचकः = विश्वासघातकः, राजानिष्टमुपेक्षकः—राज्ञः = नृपस्य, अनिष्टस्य = अनभिलषितस्य, उपेक्षकः = निःस्पृहः, तथा कुलटा = पुंश्चली, पतिपुत्रघ्नी = पतिपुत्रहन्त्री, स्वतन्त्रा = स्वैरिणी, वृद्धनिन्दिता = वृद्धजनेभ्यः गर्हिता, गृहकृत्योज्झिता = परित्यक्तगृहकृत्या, नित्यम् = सततम्, दुष्टाचारा = आचारभ्रष्टा, अप्रिया = अरुचिकरा, स्नुषा = पुत्रवधूः, एतान् = पूर्ववर्णितान्, स्वभावदुष्टान् = प्रकृतितः दुर्वृत्तान्, ज्ञात्वा = विज्ञाय, राष्ट्रात् = राज्यात्, विवासयेत् = निर्वासयेत्, राजा इति कर्त्तृपदमध्याहार्यम् ॥९८-१०७॥

हिन्दी—शराबी, धूर्त्त, चोर, परस्त्रीगामी, अत्यधिक क्रोधी, खूनी, वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला, परलोक को नहीं मानने वाला, धोखेबाज, झूठा दोषारोपण करने वाला,

चुगलखोर, मान्य जनों पर दोषारोपण करने वाला तथा देवमूर्त्तियों को दूषित करने वाला, झूठे, धरोहर पचाने वाला, किसी की जीविका हरनेवाला, असहन, घूसखोर, कुकर्मी, किसी का भेद खोलने वाला या काम बिगाड़ने वाला, बुराई बोलने वाला, कटुभाषी, जलाशय दूषित करने वाला, बगीचे विनष्ट करने वाला, ढोंगी भविष्यवक्ता, राजद्रोही, दुष्टमन्त्री, जालसाज, अनाड़ी वैद्य, अभद्र आचरण वाला, उद्धत वेशभूषा वाला, राह रोकने वाला, अनुचित गवाही देने वाला, अपवित्र रहने वाला, अपने पालक या संरक्षक का विरोध करने वाला, अनाप-शनाप खर्च करने वाला, आग लगाने वाला, जहर देकर किसी को मारने वाला, रंडीबाज, कठोर दण्ड देने वाला पदाधिकारी, पक्षपाती सभासद्, जबरदस्ती दस्तावेज लिखवाने वाला, अन्यायी, झगडालू, लड़ाई का मैदान छोड़कर भागने वाले सिपाही, साक्ष्य मिटानेवाला, माँ-बाप, मित्र तथा सती नारी की बुराई करने वाला, ईर्ष्यालु, शत्रु की सेवा करनेवाला, किसी के दिल पर चोट पहुँचाने वाला, ठगने वाला, अपने लोगों के साथ विरोध करने वाला, चोरबाजारी करने वाला, पापी और दुष्कर्मी, सीधे-सादे ग्रामीणों को सताने वाला, गृहस्थ होकर भी परिवार का पालन-पोषण किये बिना तप या विद्याध्ययन करने वाला, घास-फूस और लकड़ी लाकर जीविका चलाने में समर्थ होकर भी भीख माँगकर पेट पालने वाला, बेटी बेचने वाला, परिजनों की आजीवका घटाने वाला, दुराचारी, अनर्गल सूचना देने वाला, राजा के अहित की चिन्ता न करने वाला, व्यभिचारिणी औरत, पति और पुत्र की हत्या करने वाली, स्वेच्छाचारिणी, बड़े-बूढों से निन्दित, घरेलू काम-काज से मुँह मोड़ने वाली, हमेशा दुष्ट आचरण करने वाली, गुरुजनों के साथ अप्रिय व्यवहार करने वाली पतोहू जिसे अच्छी न लगे—ऐसे पुरुषों और औरतों को स्वभाव से दुष्ट जानकर राजा अपने राज्य से निकाल दे ॥ ९८-१०७ ॥

मद्यप इत्यादि। मद्यपः सुरापायी, कितवः धूर्त्तः, स्तेनः तस्करः, जारः उपपतिः, चण्डः अतिकोपनः, हिंसकः, त्यक्तवर्णाश्रमाचारः वर्णानां ब्राह्मणादीनाम् आश्रमाणां ब्रह्मचर्य्यादीनाञ्च आचारत्यागी, नास्तिकः, शठः, खलः, मिथ्याभिशापकः मिथ्यादोषारोपकः, कर्णेजपः अन्यं प्रति अन्यस्य विरागोत्पादकः, आर्य्यान् साधून् देवांश्च दूषयतीति तथोक्तः, असत्यवाक् मिथ्यावादी, न्यासापहारी गच्छितधनापहारकः, वृत्तिविघातकः जीविकाव्याघातकारी, अन्यस्य उदयासहिष्णुः अभ्युदयासहनः उत्कोचग्रहणे रतः, अकार्य्यकर्त्ता दुष्कर्मी, मन्त्राणां तथा कार्य्याणां भेदकः भङ्गकृत्, अनिष्टवाक्, अप्रियवादी, परुषवाक् निष्ठुरभाषी, जलस्य आरामस्य उद्यानस्य च प्रबाधकः बाधाकारी, नक्षत्रसूची वृथादैवज्ञः, राजद्विट् राजद्रोही, कुमन्त्री, कूटकार्य्यवित् कूटानां कपटानां कार्य्याणां वेत्ता, कुवैद्यः कुचिकित्सकः, अमङ्गलशीलः अशुचिः, मार्गनिरोधकः अध्वप्रतिबन्धकः, कुसाक्षी, उद्धतवेशः, स्वामीद्रोही प्रभुद्वेष्टा, व्ययाधिकः अपरिमितव्ययशीलः, अग्निदः अग्निदानेन गृहादिदाहकः, गरदः विषप्रयोगेण प्राणहन्ता, वेश्यासक्तः, प्रबलदण्डकृत् तीक्ष्णदण्डकारी राजपुरुषः, पाक्षिकः पक्षपाती, सभ्यः विचारदर्शी पुरुषः, बलात् लिखितस्य लेख्यस्य ग्राहकः ग्रहणकारी, अन्यायकारी अविचारकः, कलहशीलः विवादप्रियः, युद्धपराङ्मुखः सैनिकपुरुषः, साक्ष्यलोपी साक्ष्यलोपकारी, पितृद्रोही, मातृद्रोही, सतीस्त्रीद्रोही, मित्रद्रोही, असूयकः परगुणेषु दोषारोपणकृत्, शत्रुसेवी शत्रुपक्षः, मर्मभेदी, असह्यकर्मकारी, वञ्चकः प्रतारकः, स्वकीयानाम् आत्मीयानां द्वेष्टा, गुप्तवृत्तिः गूढजीविकः, वृषलः धर्मघाती ग्रामकण्टकः, कुटुम्बभरणात् कुटुम्बानां परिजनानां भरणात् विना, भरणमकृत्वा इत्यर्थः, सदा तपोविद्यार्थिनः तपसि विद्यायां वा आसक्ताः पुरुषाः, कुटुम्बानाम-

वश्यपोष्यत्वात् तेषां तपोविद्यानुष्ठानमकिञ्चित्करमिति भावः। तृणकाष्ठादीनां हरणे सङ्ग्रहणे शक्तः समर्थोऽपि भैक्ष्यभोजकः भिक्षावृत्तिः, कन्याया विक्रेता कन्याविक्रयी, कुटुम्बानां पोष्यवर्गाणां वृत्तिह्रासकः जीविकाह्रासकारी, अधर्मा अधार्मिकः सूचकः दुर्जनः, राज्ञः अनिष्टम् उपेक्षकः केनचित् क्रियमाणस्य राजानिष्टस्य उपेक्षाकारीत्यर्थः, तथा कुलटा व्यभिचारिणी, पतिपुत्रघ्नी स्वामिसुतनाशिनी, स्वतन्त्रा स्वेच्छाचारिणी, वृद्धनिन्दिता प्राचीनगर्हिता, गृहकृत्योज्झिता त्यक्तगृहकृत्या, नित्यं सततं दुष्टाचारा दुराचारा, अप्रिया स्नुषा पुत्रवधूः, एतान् स्वभावदुष्टान् ज्ञात्वा राष्ट्रात् राज्यात् विवासयेत् निर्वासयेत् राजेति कर्त्तृपदमूह्यम् ॥ ९८-१०७ ॥

द्वीपे निवासितव्यास्ते बद्ध्वा दुर्गोदरेऽथवा।
मार्गसंस्करणे योज्याः कदन्नन्यूनभोजनाः ॥ १०८ ॥

अन्वयः—ते द्वीपे निवासितव्याः अथवा दुर्गोदरे बद्ध्वा मार्गसंस्करणे कदन्नन्यूनभोजनाः योज्याः ॥ १०८ ॥

व्याख्या—ते = मद्यपादयः पूर्वोक्ताः, द्वीपे = जलवेष्टितभूम्यन्तरे, निवासितव्याः = स्थापितव्याः, अथवा = वा, दुर्गोदरे = कोटाभ्यन्तरे, बद्ध्वा = सन्नियम्य, मार्गसंस्करणे = पथपरिष्करणे, कदन्नम् = कुत्सितान्नम्, तदपि न्यूनम् = अत्यल्पम्, भुञ्जते = खाद्यते, इति तथोक्ताः कृत्वा, योज्याः = देयाः ॥ १०८ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त शराबी प्रभृति जनों को किसी टापू में रखना चाहिए। अथवा किसी किले के भीतर बंधन में डाल देना चाहिए। उनसे सड़क की सफाई का काम लेना चाहिए। खाने के लिए उन्हें आधा पेट दो। मरुआ, साँवा जैसे खराब अन्न देना चाहिए ॥ १०८ ॥

द्वीपे इति। ते पूर्वोक्ताः मद्यपादयः द्वीपे द्वीपान्तरे निवासितव्याः अथवा दुर्गोदरे दुर्गाभ्यन्तरे बद्ध्वा मार्गसंस्करणे अध्वपरिष्करणे कदन्नन्यूनभोजनाः कुत्सितान्नं तदपि न्यूनं भुञ्जते इति तथोक्ताः कृत्वा योज्याः नियोक्तव्याः ॥ १०८ ॥

तत् तत् जात्युक्तकर्माणि कारयीत च तैर्नृपः ॥ १०९ ॥

अन्वयः—नृपः तैः तत्तत् जात्युक्तकर्माणि कारयीत ॥ १०९ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, तैः = पूर्वोक्तैः, तत् तत् = तैः तैः, जात्युक्तैः = वंशानुकूलैः, कर्माणि = कार्याणि, कारयीत = कारयेत्, आर्षप्रयोगोऽयं कारयीत ॥ १०९ ॥

हिन्दी—और उन सबों से उनके जाति के अनुकूल काम राजा को लेना चाहिए ॥ १०९ ॥

तत्तदिति। नृपः तैः मद्यपादिभिः तत्तज्जात्युक्तकर्माणि च कारयीत कारयेत्, कारयीत इति आर्षोऽयं प्रयोगः ॥ १०९ ॥

एवंविधानसाधूंश्च संसर्गेण च दूषितान्।
दण्डयित्वा च सन्मार्गे शिक्षयेत् तान् नृपः सदा ॥ ११० ॥

अन्वयः—नृपः एवंविधान् असाधून् च संसर्गेण दूषितान् दण्डयित्वा सदा सन्मार्गे तान् शिक्षयेत् ॥ ११० ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, एवंविधान् = एतत्तुल्यान्, असाधून् = दुर्वृत्तान्, च = पुनः, संसर्गेण = सम्पर्केण, दूषितान् = कलुषितान्, दण्डयित्वा = ताडनं कृत्वा, सदा = सर्वदा,

सन्मार्गे = सुपथि, तान् = पूर्वोक्तान्, शिक्षयेत् = उपदिशेत् ॥ ११० ॥

हिन्दी—राजा इसी तरह पूर्वोक्त दुष्टों को तथा उनके सम्पर्क से कलुषित हुए लोगों को दण्ड देकर सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा दे ॥ ११० ॥

एवंविधानिति। नृपः एवंविधान् उक्तप्रकारान् असाधून् दुर्जनान् तथा संसर्गेण तेषां पापिनां साहचर्य्येण दूषितांश्च जनान् दण्डयित्वा सदा सन्मार्गे सदाचारे तान् शिक्षयेत् । । ११० ॥

राज्ञो राष्ट्रस्य विकृतिं तथा मन्त्रिगणस्य च।
इच्छन्ति शत्रुसम्बन्धाद्ये तान् हन्याद्धि द्राङ्नृपः ॥ १११ ॥

अन्वयः—ये शत्रुसम्बन्धात् राज्ञः राष्ट्रस्य तथा मन्त्रिगणस्य विकृतिम् इच्छन्ति, नृपः द्राक् तान् हन्यात् हि ॥ १११ ॥

व्याख्या—ये = पुरुषाः, शत्रुसम्बन्धात् = रिपोः सम्पर्कात्, राज्ञः = नृपस्य, राष्ट्रस्य = राज्यस्य, तथा = तेनैव प्रकारेण, च = पुनः, मन्त्रिगणस्य = सचिवानाम्, विकृतिम् = परिवृत्तिम्, इच्छन्ति = अभिलषन्ति, नृपः = राजा, द्राक् = झटिति, तान् = शत्रोः परामर्शदातॄन्, हन्यात् = विनष्टं कुर्यात्, हि = इति निश्चयेन ॥ १११ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति राजा राज्य या मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध शत्रु से मिलकर इन्हें हानि पहुँचाना चाहते हों, उनका राजा शीघ्र वध कर दे ॥ १११ ॥

राज्ञ इति। ये जनाः शत्रुसम्बन्धात् शत्रोरुपजापात् परामर्शादित्यर्थः, राज्ञः राष्ट्रस्य राज्यस्थजनस्य तथा मन्त्रिगणस्य विकृतिं वैपरीत्यम् इच्छन्ति, नृपः द्राक् झटिति तान् हन्यात् हि नाशयेदेव हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ १११ ॥

नेच्छेच्च युगपद् ह्रासं गणदौष्ट्ये गणस्य च।
एकैकं घातयेद्राजा वत्सोऽश्नाति यथा स्तनम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—राजा गणदौष्ट्ये गणस्य युगपद् ह्रासं न इच्छेत्। यथा वत्सः स्तनम् एकैकम् अश्नाति तथा घातयेत् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, गणदौष्ट्ये—गणानाम् = समुदायानाम्, दौष्ट्ये = दौर्जन्ये, गणस्य = वर्गस्य, युगपद् = सहैव, ह्रासम् = विनाशम्, न = नहि, इच्छेत् = अभिलषेत्। यथा = येन प्रकारेण, वत्सः = गोशावकः, स्तनम् = पयोधरम्, एकैकम् = क्रमशः, अश्नाति = पिबति, तथैव दुर्जनमेकैकम्, घातयेत् = मारयेत् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—यदि कोई एक समुदाय-विरुद्ध हो जाय तो उन सबों को एक साथ विनाश करने की अपेक्षा एक-एक कर मारे। जैसे गाय का बछड़ा क्रमशः एक-एक थन का दूध पीता है, न कि चारों थन का एक साथ ॥ ११२ ॥

नेच्छेदिति। राजा गणानां समूहानां दौष्ट्ये दुष्टतायां गणस्य समूहस्य युगपद् समकालमेव ह्रासं विनाशं न इच्छेत्, यथा वत्सः शिशुः स्तनम् एकैकमित्यर्थः, अश्नाति पिबति तथा एकैकं दुर्जनं क्रमशः घातयेत् तद्दर्शनेन अपरे तत्पापात् निवर्तन्तामिति भावः ॥ ११२ ॥

अधर्मशीलो नृपतिर्यदा तं भीषयेज्जनः।
धर्मशीलातिबलवद्रिपोराश्रयतः सदा ॥ ११३ ॥

अन्वयः—यदा नृपतिः अधर्मशीलः तदा जनः धर्मशीलस्य अतिबलवतः रिपोः आश्रयतः तं सदा भीषयेत् ॥ ११३ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, नृपति = राजा, अधर्मशीलः = अधार्मिको भवति, तदा, जनः = लोकः, प्रजा, धर्मशीलस्य = धर्मात्मनः, अतिबलवतः = अतिशक्तिशालिनः, रिपो = शत्रोः, आश्रयतः = अवलम्बनेन, तम् = नृपम्, सदा = सर्वदा, भीषयेत् = भयमुत्पादयेत् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—राजा यदि अधर्मी हो तो उसकी प्रजा का यह कर्त्तव्य है कि उसका शत्रु राजा, जो उससे अधिक शक्तिशाली और धर्मात्मा हो, उसका सहारा लेकर उसे डराकर धर्मपथ पर चलने को विवश करे ॥ ११३ ॥

अधर्मशील इति। यदा नृपतिः अधर्मशीलः दुराचारः भवेत् तदा जनः धर्मशीलस्य अतिबलवतः रिपोः राजविपक्षस्य आश्रयतः आश्रयेण तं नृपतिं सदा भीषयेत् भयं दर्शयेत् ॥ ११३ ॥

यावत् तु धर्मशीलः स्यात् स नृपस्तावदेव हि।
अन्यथा नश्यते लोको द्राङ्नृपोऽपि विनश्यति ॥ ११४ ॥

अन्वयः—यावत् नृपः धर्मशीलः स्यात् तावदेव सः नृपः हि। अन्यथा लोकः नश्यते, नृपोऽपि सः द्राक् विनश्यति ॥ ११४ ॥

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, नृपः = राजा, धर्मशीलः = धार्मिकः, स्यात् = भवेत्, तावदेव = तावत्कालमेव, सः = असौ, नृपः = राजा भवति। अन्यथा = इतरथा, लोकः = प्रजा, नश्यते = विनष्टो भवति, नृपोऽपि = राजाऽपि, सः = असावधार्मिकः, द्राक् = शीघ्रमेव, विनश्यति = नष्टो भवति ॥ ११४ ॥

हिन्दी—राजा जब तक धर्मात्मा है तभी तक राजा है। अन्यथा प्रजा तो नष्ट होती ही है, वह राजा भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है ॥ ११४ ॥

यावदिति। यावत् नृपः धर्मशीलः स्यात् तावदेव सः नृपः हि राजा सन् तिष्ठतीति भावः। अन्यथा तस्य अधर्मशीलत्वे इत्यर्थः, लोकः नश्यते, नृपोऽपि सः द्राक् झटिति विनश्यति ॥ ११४ ॥

मातरं पितरं भार्य्यां यः सन्त्यज्य विवर्त्तते।
निगडैर्बन्धयित्वा तं योजयेन्मार्गसंस्कृतौ।
तद्भृत्यर्द्धं तु सन्दद्यात् तेभ्यो राजा प्रयत्नतः ॥ ११५ ॥

अन्वयः—यः मातरं पितरं भार्य्यां च सन्त्यज्य विवर्त्तते, राजा तं निगडैः बन्धयित्वा मार्गसंस्कृतौ योजयेत्। तथा तद्भृत्यर्द्धं तेभ्यः प्रयत्नतः राजा सन्दद्यात् ॥ ११५ ॥

व्याख्या—यः = जनः, मातरम् = जननीम्, पितरम् = जनकम्, भार्याम् = पत्नीम्, च = पुनः, सन्त्यज्य = विहाय, विवर्त्तते = यथाभिलषितं व्यवहरति, राजा = नृपतिः, तम् = जनम्, निगडैः = पादशृङ्खलैः, बन्धयित्वा = निगडयित्वा, मार्गाणाम् = पथाम्, संस्कृतौ = परिष्करणे, योजयेत् = निवेशयेत्। तथा, तत् = तस्य पूर्वोक्तजनस्य, भृत्यर्द्धम् = वेतनस्यार्द्धभागम्, तेभ्यः = मातृपित्रादिभ्यः, प्रयत्नतः = सायासेन, सन्दद्यात् = सम्यग्रूपेण प्रयच्छेत् ॥ ११५ ॥

हिन्दी—जो कर्मचारी माँ-बाप और पत्नी को छोड़ मनमाना व्यवहार करे, राजा उसके पैरों में बेड़ी डालकर कैद कर ले तथा उससे सड़क बनवाये या सड़क की सफाई का काम ले

और उसके वेतन का आधा हिस्सा काटकर माँ-बाप तथा पत्नी के भरण-पोषण हेतु प्रयासपूर्वक उन्हें दे दे ॥ ११५ ॥

मातरमिति। यः मातरं पितरं भार्य्याञ्च सन्त्यज्य विवर्त्तते यथेच्छं व्यवहरतीत्यर्थः, राजा तं निगडैः पादशृङ्खलैः बन्धयित्वा मार्गाणां पथां संस्कृतौ बन्धनादिकर्मणि योजयेत्, तथा तस्य भृत्यर्द्धं तेभ्यः तत् पितृमात्रादिभ्यः प्रयत्नतः यत्नेन सन्दद्यात् ॥ ११५ ॥

विद्यात् पणसहस्रं तु दण्ड उत्तमसाहसः।
दशमाषमितं ताम्रं तत् पणो राजमुद्रितम्।
वराटिसार्द्धशतकमूल्यः कार्षापणश्च सः॥ ११६॥

अन्वयः—पणसहस्रं उत्तमसाहसः दण्डः पणश्च दशमाषमितं राजमुद्रितं तत् ताम्रं सः वराटिसार्द्धशतकमूल्यः कार्षापणञ्च विद्यते ॥ ११६ ॥

व्याख्या—पणानाम् = पणमुद्राणाम्, सहस्रम् = दशशतसंख्यकम्, उत्तमसाहसः = उत्तमसाहसाख्यः, दण्डः = दमनः, पणश्च = पणमुद्रा च, दशभिर्माषैः, मितम् = परिमितम्, राजमुद्रितम् = नृपमुद्राङ्कितम्, तत् = विख्यातम्, ताम्रम् = ताम्रमुद्राम्, सः = असौ पणः, वराटीनाम् = कपर्दिकाणाम्, सार्द्धशतकम् = पञ्चाशदधिकशतम्, मूल्यम् = अर्थः, यस्य तादृशः कार्षापणश्च, विद्यते = कथ्यते, इति ॥ ११६ ॥

हिन्दी—एक हजार पैसों का दण्ड उत्तमसाहस कहलाता है। राजमुद्रांकित दश मासा भर ताँबा के सिक्के को पण कहते हैं। १५० कौडियों के मूल्य के उसी सिक्के को कार्षापण भी कहते हैं ॥ ११६ ॥

विद्यादिति। पणानां सहस्रम् उत्तमसाहसः उत्तमसाहसाख्यः दण्डः, पणश्च दशभिर्माषैः मितं परिमितं राजमुद्रितं तत् प्रसिद्धं ताम्रं ताम्रमुद्रा इत्यर्थः। स पणः वराटीनां सार्द्धशतकं मूल्यं यस्य तादृशः कार्षापणश्च कथ्यते इति विद्यात् ॥ ११६ ॥

तदर्द्धश्च तदर्द्धश्च मध्यमः प्रथमः क्रमात्।
प्रथमे साहसे दण्डः प्रथमश्च क्रमात् परौ॥ ११७॥

अन्वयः—तदर्द्धः मध्यमः तदर्द्धः प्रथमः क्रमात् प्रथमे साहसे प्रथमः दण्डः क्रमात् परौ ॥ ११७ ॥

व्याख्या—तत् = तस्य, अर्द्धः = अर्द्धभागः, अर्थादुत्तमसाहसस्यार्द्धभागं मध्यमसाहसो भवति, तदर्द्धश्च प्रथमः = साहसः, क्रमात् = क्रमशः, बोद्धव्यः, प्रथमे साहसे, प्रथमो दण्डः = दमनः, क्रमात् = क्रमशः, परौ = मध्यमसाहसोत्तमसाहसौ ज्ञेयौ ॥ ११७ ॥

हिन्दी—और क्रमशः एक हजार के आधे पाँच सौ पैसे के जुर्माने को प्रथम साहसदण्ड कहते हैं। प्रथम श्रेणी के अपराध में प्रथम साहसदण्ड अर्थात् ढाई सौ पैसे का, मध्यम साहस में पाँच सौ पैसे का विधान है ॥ ११७ ॥

तदर्द्ध इति। तदर्द्धः तस्य उत्तमसाहसस्य अर्द्धः मध्यमः साहसः तदर्द्धश्च प्रथमसाहसः क्रमात् बोद्धव्य इति शेषः। प्रथमे साहसे प्रथमो दण्डः, क्रमात् परौ मध्यमसाहसोत्तमसाहसौ वेद्यौ ॥ ११७ ॥

मध्यमे मध्यमो धार्यश्चोत्तमे तूत्तमो नृपैः ।
सोपायाः कथिता मिश्रे मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ११८ ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्यायस्य सुहृदादिलक्षणं नाम प्रथमं प्रकरणम् ।

अन्वयः—नृपैः मध्यमे मध्यमः, उत्तमे उत्तमः धार्यः । मिश्रे सोपायाः कथिताः ॥ ११८ ॥

व्याख्या—नृपैः = राजभिः, मध्यमे = मध्यमे साहसे, मध्यमो दण्डः, उत्तमे = प्रथमकोटिकापराधे, उत्तमो साहसदण्डः, धार्यः = विधेयः । मिश्रे = मिश्राध्याये, सोपायाः—उपायैः = सामदानादिभिः, सहिताः = संवलिताः, मित्रोदासीनशत्रवः, कथिताः = निगदिताः ॥ ११८ ॥

हिन्दी—मध्यम कोटि के अपराध में मध्यम साहसदण्ड तथा उत्तम कोटि के अपराध में उत्तम साहसदण्ड राजा को दण्ड देना चाहिए । इस तरह इस मिश्र अध्याय में सामादिक उपायों के साथ मित्र, उदासीन एवं शत्रुओं के बारे में कहा गया है ॥ ११८ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'सुहृदादिलक्षण' नामक प्रथम प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

मध्यमे इति । नृपैः मध्यमे पापे मध्यमो दण्डः, उत्तमे उत्तमः दण्डः धार्य्यः कार्य्यः । मिश्रे मिश्राध्याये सोपायाः उपायैः सामादिभिः सहिताः मित्रोदासीनशत्रवः कथिताः उक्ताः ॥ ११८ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य प्रथमप्रकरणव्याख्या समाप्ता ।

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयं प्रकरणम्

अथ कोशप्रकरणं ब्रुवे मिश्रे द्वितीयकम्।
एकार्थसमुदायो यः स कोशः स्यात् पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ मिश्रे द्वितीयकं कोशप्रकरणं बुवे। एकार्थसमुदायः यः सः पृथक् पृथक् कोशः स्यात् ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, मिश्रे = अस्मिन् संसृष्टाऽध्याये, द्वितीयकम् = अपरम्, कोशप्रकरणम् = अभिधानपरिच्छेदः, बुवे = वदामि। एकार्थसमुदायः—एकेषाम् = कतिपयानाम्, अर्थानाम् = धनानाम्, प्रयोजनानां वा, समुदायः = समूहः, यः = समष्टिः, सः = असौ, कोशः = इत्याख्यः, स्यात् = भवेदिति ॥ १ ॥

हिन्दी—अब इस मिश्र अध्याय के भीतर दूसरा 'कोशप्रकरण' का वर्णन करता हूँ। किसी भी एक तरह की वस्तुओं के समूह को 'कोश' कहते हैं। यह अलग-अलग कई तरह के होते हैं ॥ १ ॥

अथेति। अथ अनन्तरं मिश्रे अध्याये द्वितीयकं कोशप्रकरणं ब्रुवे कथयामि, एकेषां कतिपयानाम् अर्थानां समुदायः समष्टिः यः, सः पृथक् पृथक् विविधप्रकारः कोशः स्यात् ॥ १ ॥

येन केन प्रकारेण धनं सञ्चिनुयात् नृपः।
तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

अन्वयः—नृपः येन केन प्रकारेण धनं सञ्चिनुयात्। तेन च राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः संरक्षयेत् ॥ २ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, येन केन प्रकारेण = यया कया रीत्या, धनम् = अर्थम्, सञ्चिनुयात् = सङ्गृह्णीयात्, तेन = वित्तेन, राष्ट्रम् = राष्ट्रवासिनः, बलम् = सैन्यम्, यज्ञादिकाः = यागादिकाः, क्रियाः = कर्माणि, संरक्षयेत् = सम्यग्रूपेण रक्षां कुर्यादिति ॥ २ ॥

हिन्दी—राजा को जैसे-तैसे धन इकट्ठा करना चाहिए। ताकि उस संचित धन से राष्ट्र, सेना एवं धार्मिक कृत्यों की रक्षा की जा सके ॥ २ ॥

येनेति। नृपः येन केन प्रकारेण धनं सञ्चिनुयात् सङ्गृह्णीयात्, तेन च धनेन राष्ट्रं राज्यरक्षार्थपुरुषं बलं सैन्यं यज्ञादिकाः क्रियाश्च संरक्षेत् ॥ २ ॥

बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोशसङ्ग्रहः।
परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः ॥ ३ ॥

अन्वयः—बलानां प्रजानां च रक्षणार्थं यज्ञार्थं नृपस्य कोशसङ्ग्रहः परत्र च इह सुखप्रदः, अन्यश्च दुःखदः ॥ ३ ॥

व्याख्या—बलानाम् = सैन्यानाम्, प्रजानाम् = जनानाञ्च, रक्षणार्थम् = त्राणाय, यज्ञार्थञ्च = यागाय च, नृपस्य = राज्ञः, कोशसङ्ग्रहः = कोशसञ्चयनम्, परत्र = परलोके, च = पुनः, इह = अस्मिन्संसारे, सुखप्रदः = आनन्ददायकः, अन्यः = एतद्भिन्नः धनसङ्ग्रहः, दुःखदः = कष्टदायको भवति ॥ ३ ॥

हिन्दी—प्रजा, सेना एवं धार्मिक कृत्यों के लिए राजा का धनसंग्रह संसार और संसार से परे दोनों लोकों के लिए सुखद होता है। इससे भिन्न कार्यों के लिए कोशसंग्रह दुःखदायी होता है ॥ ३ ॥

बलेति। बलानां सैन्यनां प्रजानाञ्च रक्षणार्थं यज्ञार्थञ्च कोशसङ्ग्रहः धनसञ्चयः नृपस्य परत्र परकाले इह च अस्मिन् काले च सुखप्रदः, अन्यः तद्व्यतिरिक्त इत्यर्थः, धनसञ्चयः दुःखदः ॥३ ॥

स्त्रीपुत्रार्थं कृतो यश्च स्वोपभोगाय केवलम्।
नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रदः ॥ ४ ॥

अन्वयः—केवलं स्त्रीपुत्रार्थं च स्वोपभोगाय यः कृतः सः नरकाय एव ज्ञेयः, च परत्र न सुखप्रदः ॥ ४ ॥

व्याख्या—केवलम् = मात्रं, स्त्रीपुत्रार्थम् = पत्नीपुत्रपालनाय, च = पुनः, स्वोपभोगाय— स्वस्य = आत्मनः, उपभोगाय = आस्वादाय, व्यवहाराय वेति, यः = राजा किं वा जनः, धनसङ्ग्रहः कृतः = सम्पादितः, सः = जनः, नरकाय = निरयाय, एव = केवलम्, ज्ञेयः = अवगन्तव्यः, च = पुनः, परत्र = परलोके, न = नहि, सुखप्रदः = आनन्ददायको भवति ॥ ४ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति पत्नी और पुत्र के लिए ही अथवा मात्र अपनी सुख-सुविधा के लिए धन बटोरता है, वह संचय सुखप्रद तो होता ही नहीं प्रत्युत नरक का साधन बन जाता है ॥ ४ ॥

स्त्रीपुत्रार्थमिति। केवलं स्त्रीपुत्रार्थं भार्य्यासुतभरणार्थं स्वस्य आत्मनः उपभोगाय च यः सञ्चयः कृतः, स नरकाय एव ज्ञेयः परत्र न सुखप्रदश्च ॥ ४ ॥

अन्यायेनार्जितो यस्माद् येन तत् पापभाक् च सः।
सुपात्रतो गृहीतं यद् दत्तं वा वर्द्धते च तत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—येन यः अन्यायेन उपार्जितः सः तत् पापभाक् सुपात्रतः गृहीतं वा दत्तम्, तत् वर्द्धते ॥ ५ ॥

व्याख्या—येन = पुरुषेण, यः = धनम्, अन्यायेन = अनीत्या, उपार्जितः = सङ्गृहीतः, सः = जनः, तत् = तस्योपार्जितधनस्य, पापभाक् = अधर्मभागी भवति, च = पुनः, यत् = धनम्, सुपात्रः = योग्यजनात्, गृहीतम् = प्राप्तम् अधिगतम्, वा = अथवा, दत्तम् = प्रदत्तम्, तत् = धनम्, वर्द्धते = एधते ॥ ५ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अनीति से धन उपार्जित करता है उसके पाप का फल भी उसे ही भोगना पड़ता है। सुयोग्य जन से प्राप्त धन या साधु पुरुषों को दिया गया धन बढ़ता ही रहता है ॥ ५ ॥

अन्यायेनेति। येन जनेन यः अर्थः अन्यायेन उपार्जितः स्यात्, सः जनः तस्य अन्यायोपार्जनस्य पापभाक् भवति। यत् धनं सुपात्रतः साधोः सकाशात् गृहीतं वा दत्तं सुपात्रे इति शेषः, तत् वर्द्धते वृद्धिं प्राप्नोति ॥५॥

स्वागमी सद्व्ययी पात्रमपात्रं विपरीतकम्।
अपात्रस्य हरेत् सर्वं धनं राजा न दोषभाक् ॥६॥

अन्वयः—स्वागमी तथा सद्व्ययी पात्रं विपरीतकम् अपात्रम्। राजा अपात्रस्य सर्वं धनं हरेत् न दोषभाक् ॥६॥

व्याख्या—स्वागमी = सुष्ठु आगमो यस्यासौ, सुनीत्या धनोपार्जकः, तथा सद्व्ययी = सन्मार्गे व्ययशीलः, पात्रम् = सुयोग्यजनो भवति, तद्विपरीतकम् = विरुद्धाचरणशीलो जनः, अपात्रम् = कुपात्रो भवति, राजा = नृपः, अपात्रस्य = कुजनस्य, सर्वम् = सकलम्, धनग् = वित्तम्, हरेत् = गृह्णीयात्, अस्मिन् कार्ये राजा, दोषभाक् = दोषी न भवतीति भावः ॥६॥

हिन्दी—जो व्यक्ति न्यायपूर्वक धनोपार्जन करता है तथा उपार्जित धन का व्यय सत्कर्म में करता है, वह सुपात्र कहलाता है। इसके विपरीत अन्यायपूर्वक धनोपार्जन करने वाला तथा कुमार्ग में खर्च करने वाला कुपात्र कहलाता है। कुपात्र के धन का राजा को अपहरण कर लेना चाहिए, इसमें उसे कोई दोष नहीं होता है ॥६॥

स्वागमीति। स्वागमी सुष्ठु आगमवान् न्यायोपार्जक इत्यर्थः, तथा सद्व्ययी सत्कार्य्ये व्ययशीलः जनः पात्रं, तस्य विपरीतकम् अपात्रम्, राजा अपात्रस्य सर्वं धनं हरेत् तत्र न दोषभाक् भवतीति शेषः ॥६॥

अधर्मशीलात् नृपतिः सर्वशः संहरेद्धनम्।
छलाद् बलाद् दस्युवृत्त्या परराष्ट्राद्धरेत् तथा ॥७॥

अन्वयः—नृपतिः अधर्मशीलात् धनं सर्वशः छलात् बलात् दस्युवृत्त्या हरेत् तथा परराष्ट्रात् हरेत् ॥७॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, अधर्मशीलात् = पापिनो जनात्, धनम् = वित्तम्, सर्वशः = सर्वैः प्रकारैः, छलात् = कपटात्, बलात् = सामर्थ्यात्, वा = अथवा, दस्युवृत्त्या = लुण्ठनैः, हरेत् = बलादपहरेत्, तथा च = पुनः तेनैव प्रकारेण, परराष्ट्रात् = रिपुराज्यात्, हरेत् = हरणं कुर्यात् ॥७॥

हिन्दी—राजा को चाहिए कि अधर्मी लोगों की सम्पूर्ण सम्पदा छल, बल या डकैती से भी छीन लेना चाहिए। इसी तरह दुश्मन राजे का भी धन हर लेना चाहिए ॥७॥

अधर्मेति। नृपः अधर्मशीलात् जनात् धनं सर्वशः सर्वैः प्रकारैः छलात् बलात् दस्युवृत्त्या वा हरेत्, तथा परराष्ट्रात् शत्रुराज्यात् सर्वैः प्रकारैः हरेत् राजेति शेषः ॥७॥

त्यक्त्वा नीतिबलं स्वीयप्रजापीडनतो धनम्।
सञ्चितं येन तत्तस्य सराज्यं शत्रुसाद्भवेत् ॥८॥

अन्वयः—येन नीतिबलं त्यक्त्वा स्वीयप्रजापीडनतः धनं सञ्चितम्, तस्य तत् धनं सराज्यं शत्रुसात् भवेत् ॥८॥

व्याख्या—येन = राज्ञा, नीतिबलम् = नयमार्गः, त्यक्त्वा = परित्यज्य, स्वीयप्रजापीडनम्—

स्वीयम् = स्वकीयम्, प्रजानाम् = जनानाम्, पीडंनतः = क्लेशनात्, धनम् = अर्थम्, सञ्चितम् = सङ्ग्रहीतम्, तस्य = राज्ञः, तत् = पूर्वोक्तम्, धनम् = सम्पदम्, सराज्यम् = राज्यसहितम्, शत्रुसात् = रिपुकरगतम्, भवेत् = स्यात् ॥ ८ ॥

हिन्दी—जिसने नीतिबल छोड़कर अन्यायपूर्वक प्रजा को पीड़ित कर धन इकट्ठा किया है, उसका संचित धन राज्य के साथ शत्रुओं के हाथ में चला जाता है ॥ ८ ॥

त्यक्त्वेति। येन नीतिबलं त्यक्त्वा स्वीयप्रजानां पीडनतः पीडनात् धनं सञ्चितं, तस्य तत् धनं सराज्यं राज्यसहितं शत्रुसात् भवेत् शत्रुहस्तगतं भवेत् ॥ ८ ॥

दण्डभूभागशुल्कानामाधिक्यात् कोशवर्द्धनम्।
अनापदि न कुर्वीत तीर्थदेवकरग्रहात् ॥ ९ ॥

अन्वयः—अनापदि दण्डभूभागशुल्कानाम् आधिक्यात् तथा तीर्थदेवकरग्रहात् कोशवर्द्धनं न कुर्यात् ॥ ९ ॥

व्याख्या—अनापदि = विपत्कालाभावे, दण्डानाम् = दमनानाम्, भूभागानाम् = भूखण्डानाम्, शुल्कानाम् = कराणाम्, आधिक्यात् = प्राचुर्यात् बाहुल्याद्वा, तथा तीर्थदेवकरग्रहात्—तीर्थानाम् = धर्मस्थानानां काशीप्रयागादीनाम्, देवानाम् = रामेश्वरजगन्नाथादीनाम्, करस्य = देवदर्शनार्थराजस्वरूपधनस्य, ग्रहात् = सङ्ग्रहात्, कोशवर्द्धनम्—कोशस्य = निधेः, वर्द्धनम् = अभिवृद्धिम्, न = नहि, कुर्वीत = सम्पादयेदिति। अनापदीत्यभिधानादापत्काले ह्युपस्थिते तु एवं सङ्ग्रहणं कर्त्तव्यमिति भावः ॥ ९ ॥

हिन्दी—देश में आपत्काल नहीं रहने पर प्रजा के ऊपर अधिक जुर्माना, मालगुजारी या चुंगी लगाकर तथा तीर्थस्थान एवं देवोत्तर संपत्ति पर कर लगाकर राजा को अपना खजाना नहीं भरना चाहिए ॥ ९ ॥

दण्डेति। अनापदि अविपन्नावस्थायां दण्डानां भूभागानां शुल्कानाञ्च आधिक्यात् वृद्धिकरणात् तथा तीर्थानां पुण्यक्षेत्राणां गयादीनां देवानां जगन्नाथादीनां करस्य दर्शनादिषु देयत्वेन निर्दिष्टस्य धनस्य ग्रहात् ग्रहणात् कोशवर्द्धनं धनवृद्धिं न कुर्वीत राजेति शेषः। अनापदीत्यभिधानात् आपदि ग्रहणे न दोष इति सूचितम् ॥ ९ ॥

यदा शत्रुविनाशार्थं बलसंरक्षणोद्यतः।
विशिष्टदण्डशुल्कादि धनं लोकात् तदा हरेत् ॥ १० ॥

अन्वयः—यदा शत्रुविनाशार्थं च बलंसरक्षणाय उद्यतः तदा लोकात् विशिष्टदण्डशुल्कादि धनं हरेत् ॥ १० ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, शत्रुविनाशार्थम्—शत्रूणाम् = रिपूणाम्, विनाशार्थम् = विघाताय, बलसंरक्षणाय—बलानाम् = सैन्यानाम्, संरक्षणाय = गोपनाय, उद्यतः = तत्परो भवति, तदा, लोकात् = जनात्, विशिष्टम् = असामान्यम्, वर्द्धितम्, दण्डशुल्कादि = दण्डराजस्वादिकम्, धनम् = अर्थम्, हरेत् = आहरेदिति ॥ १० ॥

हिन्दी—आपत्काल (Emergency period) में शत्रुसंहार करने के लिए सेना की रक्षा के लिए राजा तत्पर हो, उस समय विशेष ढंग का अधिक जुर्माना या चुंगी लगाकर प्रजा से राजस्व की वसूली उचित है ॥ १० ॥

यदेति। यदा शत्रुविनाशार्थं बलानां सैन्यानां संरक्षणाय उद्यतः भवति, तदा लोकात् विशिष्टं वर्द्धितं दण्डशुल्कादि धनम् आहरेत् गृह्णीयात् ॥१०॥

धनिकेभ्यो भृतिं दत्त्वा स्वापत्तौ तद्धनं हरेत्।
राजा स्वापत्समुत्तीर्णस्तत् स्वं दद्यात् सवृद्धिकम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—राजा स्वापत्तौ भृतिं दत्त्वा धनिकेभ्यः यत् धनं हरेत् स्वापत्समुत्तीर्णः तत् स्वं सवृद्धिकं दद्यात् ॥११॥

व्याख्या—राजा = भूभृत्, स्वापत्तौ—स्वस्य = आत्मनः, आपत्तौ = विपदि, भृतिम् = भरण्यम्, दत्त्वा = आश्वास्य, यत् = यत्किञ्चित्, धनम् = अर्थम्, हरेत् = सङ्गृह्णीयात्, स्वापत्समुत्तीर्णः—स्वस्य = स्वकीयराष्ट्रस्य, आपदः = विपदः, समुत्तीर्णः = पारङ्गतः सन्, तत् = पूर्वं गृहीतं तेभ्यः, स्वम् = धनम्, सवृद्धिकम् = वार्द्धुष्यसहितम्, दद्यात् = प्रत्यर्पयेत् ॥११॥

हिन्दी—'सूद सहित लिया गया धन लौटा दूँगा' ऐसा आश्वासन देकर आपत्काल में लिया गया धन राजा आपत्काल हटते ही सूद सहित धनिकों से लिया गया धन उन्हें लौटा दे ॥११॥

धनिकेभ्य इति। राजा स्वस्य आपत्तौ आपदि भृतिं वृद्धिं दत्त्वा दास्यामीति प्रतिज्ञायेत्यर्थः, धनिकेभ्यः यत् धनं हरेत् ऋणरूपेण गृह्णीयात्, स्वस्य आपदः समुत्तीर्णः सन् तत् स्वं धनं सवृद्धिकं वृद्धिसहितं दद्यात् तेभ्य इति शेषः ॥११॥

प्रजान्यथा हीयते च राज्यं कोशो नृपस्तथा।
हीनाः प्रबलदण्डेन सुरथाद्या नृपा यतः ॥ १२ ॥

अन्वयः—अन्यथा प्रजा राज्यं कोशः तथा नृपः प्रबलदण्डेन हीयते। यतः सुरथाद्याः नृपाः हीनाः ॥१२॥

व्याख्या—अन्यथा = इतरथा, धनाभावात् सैन्यसंरक्षणेऽसमर्थो भूत्वा, प्रजा = जनाः, राज्यम् = राष्ट्रम्, कोशः = निधिः, तथा = तेनैव प्रकारेण, नृपः = राजा, प्रबलदण्डेन = सबलशत्रुणा, हीयते = हीनो भवति। यतः = यस्माद्धेतोः, सुरथाद्याः = सुरथप्रभतयः, नृपाः = राजानः, हीनाः = क्षीणाः, प्रबलदण्डेनाभवन् ॥१२॥

हिन्दी—अन्यथा अर्थात् धनाभाव के कारण सेना की रक्षा करने में असमर्थ राजा प्रजा, राष्ट्र और कोश रहित हो जाता है। क्योंकि सबल शत्रु के कारण ही सुरथ प्रभृति राजे हीन अर्थात् राज्यच्युत हो गये ॥१२॥

टिप्पणी—प्राचीन काल में स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्र वंश में उत्पन्न सुरथ नाम के एक राजा थे। समस्त भूमण्डल पर उनका अधिकार था। वे अपनी प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करते थे। किन्तु सैन्यबल उनका कमजोर था। दक्षिण के 'कोला' नगरी के क्षत्रियों ने इन पर आक्रमण कर दिया। राजा सुरथ की दण्डनीति अतिप्रबल थी। शत्रुओं के साथ उन्होंने जम कर संग्राम किया। यद्यपि कोलाविध्वंसियों की सैन्यसंख्या इनसे कम थी, फिर भी युद्ध में उनसें पराजित होकर सुरथ अपनी राजधानी लौट आये। अब वे केवल अपने देशमात्र के राजा थे। यहाँ भी शत्रुओं ने उनका पीछा किया। राजा का बल क्षीण हो चुका था। मंत्रियों ने उनकी सेना और कोश अपना लिये। उनका प्रभुत्व नष्ट हो गया और वे अरण्यवासी बन गये ॥१२॥

प्रजेति। अन्यथा धनाभावात् बलसंरक्षणे अकृते इत्यर्थः, प्रजा राज्यं कोशः धनं तथा नृपः प्रबलदण्डेन शत्रुणा हीयते, यतः सुरथाद्या अपि नृपाः हीनाः प्रबलदण्डेनेत्यपि अत्र योज्यम् ॥ १२ ॥

दण्डभूभागशुल्कैस्तु विना कोशाद् बलस्य च।
संरक्षणं भवेत् सम्यग् यावद्‌विंशतिवत्सरम्।
तथा कोशस्तु सन्धार्य्यः स्वप्रजारक्षणक्षमः ॥ १३ ॥

अन्वयः—दण्डभूभागशुल्कैः विना कोशात् यावद्‌विंशतिवत्सरं सम्यक् बलस्य संरक्षणं भवेत् तथा स्वप्रजारक्षणक्षमः कोशः सन्धार्यः ॥ १३ ॥

व्याख्या—दण्डभूभागशुल्कैः—दण्डैः = दमननीत्योपलब्धैः, भूभागैः = भूमिविभागोपलब्धैः, राजस्वैः, शुल्कैः = वाणिज्यादिलब्धकरैः, विना = विहाय, कोशात् = निधानात्, यावद्विंशतिवत्सरम् = विंशतिवर्षपर्यन्तम्, सम्यक् = सुष्ठुतया, बलस्य = सैन्यस्य, संरक्षणम् = गोपनम्, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव रूपेण, स्वप्रजारक्षणक्षमः—स्वस्य = आत्मनः, प्रजानाम् = जनानाम्, रक्षणे = गोपने, क्षमः = समर्थः, कोशः = निधिः, सन्धार्यः = सुष्ठुतया सङ्ग्राह्यः ॥ १३ ॥

हिन्दी—बिना जुर्माना, मालगुजारी एवं चुंगी से प्राप्त धन के भी केवल राजा के खजाने से ही बीस वर्षों तक सेना की रक्षा ठीक ढंग से जितने से हो सके, मात्र उतने ही खजाने का अपनी प्रजा की रक्षा के लिए उपयुक्त धन का संग्रह राजा को करना चाहिए ॥ १३ ॥

दण्डेति। दण्डभूभागशुल्कैः दण्डैः दण्डलब्धैः भूभागैः भूमिविभागलब्धैः करैः तथा शुल्कैः वाणिज्यादिलब्धैः राजकरैः विना एतान् अगृहीत्वेत्यर्थः, कोशात् यादृशादिति शेषः, यावत् विंशतिवत्सरं विंशतिवर्षपर्य्यन्तं सम्यक् बलस्य सैन्यस्य संरक्षणं भवेत्, तथा तादृशः स्वप्रजानां रक्षणे क्षमः कोशः धनराशिः सन्धार्य्यः सञ्चेयः ॥ १३ ॥

बलमूलो भवेत् कोशः कोशमूलं बलं स्मृतम्।
बलसंरक्षणात् कोशराष्ट्रवृद्धिररिक्षयः ॥ १४ ॥

अन्वयः—कोशः बलमूलो भवेत्, बलञ्च कोशमूलं स्मृतम्। बलसंरक्षणात् कोशराष्ट्रवृद्धिः अरिक्षयः भवति ॥ १४ ॥

व्याख्या—कोशः = निधिः, बलमूलः—बलम् = सैन्यम्, मूलम् = आदिकारणम्, यस्य तथासौ, सैन्यसामर्थ्यादेव कोशसञ्चयो भवतीति भावः, बलम् = सैन्यञ्च, कोशमूलम्—कोशः = निधिश्च, मूलम् = हेतुभूतम्, यस्य तथाविधम्, स्मृतम् = कथितम्। बलसंरक्षणात्—बलानाम् = सैन्यानाम्, संरक्षणात् = गोपनात्, कोशराष्ट्रवृद्धिः—कोशस्य = निधानस्य, च = पुनः, राष्ट्रस्य = राज्यस्य, वृद्धिः = अभिवर्द्धनम्, अरिक्षयः = शत्रुहानिः, भवतीति भावः ॥ १४ ॥

हिन्दी—खजाने का मूल कारण सेना है, क्योंकि सेना के द्वारा ही कोश संचित होता है और सेना का मूलाधार कोश होता है, क्योंकि कोश से ही सेना का संरक्षण होता है। सेना तथा कोश की रक्षा करने से कोश एवं राज्य की वृद्धि तथा शत्रुओं का नाश होता है ॥ १४ ॥

बलमूल इति। कोशः बलं मूलं यस्य तथाभूतः, बलानामेव सामर्थ्यात् कोशसञ्चय इति भावः, बलञ्च कोशमूलं धनमूलं स्मृतं धनेनैव तेषां रक्षणादिति भावः। बलानां संरक्षणात् कोशानां धनानां राष्ट्राणाञ्च वृद्धिः अरीणां शत्रूणां क्षयश्च भवतीति शेषः ॥ १४ ॥

जायते तत् त्रयं स्वर्गः प्रजासंरक्षणेन वै ॥ १५ ॥

अन्वयः—प्रजासंरक्षणेन तत् त्रयं च स्वर्गः वै जायते ॥ १५ ॥

व्याख्या—प्रजासंरक्षणेन—प्रजानाम् = जनानाम्, संरक्षणेन = सम्यग्रूपेण पालनेन, तत् = पूर्वोक्तम्, त्रयम् = कोशानां, राष्ट्राणाञ्च वृद्धिस्तथा शत्रुहानिः; एतत्त्रयम्, तथा स्वर्गः = अन्ते सुरलोकः, वै = इति निश्चयेन, जायते = प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

हिन्दी—प्रजा की रक्षा करने से पूर्वोक्त कोश और राज्य की वृद्धि तथा शत्रु का विनाश तो होता ही है, अन्त में स्वर्ग भी मिलता है ॥ १५ ॥

जायते इति। प्रजानां संरक्षणेन सम्यक् पालनेन तत् त्रयं कोशानां राष्ट्राणां वृद्धिररिक्षयश्च एतत् त्रयं सर्गश्च जायते वैशब्दोऽवधारणार्थः ॥ १५ ॥

यज्ञार्थं द्रव्यमुत्पन्नं यज्ञः स्वर्गसुखायुषे।
अर्य्यभावो बलं कोशो राष्ट्रवृद्ध्यै त्रयं त्विदम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—यज्ञार्थं द्रव्यम् उत्पन्नं, यज्ञः स्वर्गसुखायुषे अर्यभावः बलं कोशः राष्ट्रवृद्ध्यै तु इदं त्रयम् ॥ १६ ॥

व्याख्या—यज्ञार्थम् = यागनिमित्ताय, द्रव्यम् = धनम्, उत्पन्नम् = उद्‌भूतम्, यज्ञः = क्रतुः, स्वर्गाय = देवलोकाय, सुखाय = सुखप्राप्त्यर्थम्, आयुषे = दीर्घजीवनाय च भवति, अर्यभावः—अरीणाम् = शत्रूणाम्, अभावः = अविद्यमानता, बलम् = सैन्यम्, कोशः = निधिः, इदम् = एतत्, त्रयम् = त्रिसंख्यकम्, तु, राज्यसंवर्द्धनाय भवतीति भावः ॥ १६ ॥

हिन्दी—यज्ञ के लिए धन उत्पन्न हुआ है और यज्ञ स्वर्गसुख एवं आयुवृद्धि के लिए है तथा शत्रु का अभाव, सेना एवं कोश—ये तीनों राष्ट्र की वृद्धि के लिए हैं ॥ १६ ॥

यज्ञार्थमिति। यज्ञार्थं यागानुष्ठानार्थं द्रव्यं धनम् उत्पन्नं यज्ञः स्वर्गाय सुखाय, आयुर्वर्द्धनाय च भवति। अर्य्यभावः शत्रोरभावः बलं सैन्यं कोशः धनम् इदं त्रयन्तु राष्ट्रस्य वृद्ध्यै भवतीति शेषः ॥ १६ ॥

तद् वृद्धिर्नीतिनैपुण्यात् क्षमाशीलनृपस्य च।
जायतेऽतो यतेतैव यावत् बुद्धिबलोदयम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—क्षमाशीलस्य नृपस्य नीतिनैपुण्यात् तत् वृद्धिः जायते। अतः यावत् बुद्धिबलोदयं यतेत एव ॥ १७ ॥

व्याख्या—क्षमाशीलस्य = क्षमावतः, नृपस्य = राज्ञः, नीतिनैपुण्यात् = नयकौशल्यात्, तत् = पूर्वोक्तानाम् अर्य्यभावादीनाम्, वृद्धिः = अभिवर्द्धनम्, जायते = भवति। अतः = अस्माद्धेतोः, यावत् = यावत्पर्यन्तम्, बुद्धिबलोदयम्—बुद्धेः = प्रज्ञायाः, बलस्य = सैन्यबलस्य, उदयः = ऊर्ध्वगमनम्, तावत्, यतेत = प्रयत्नं कुर्यादेवेति ॥ १७ ॥

हिन्दी—क्षमाशील राजा अपनी नीतिकुशलता के कारण ही किसी से वैरभाव मिटाता है, सेना और कोश बढ़ता है। अतः जहाँ तक बुद्धिबल का प्रयोग किया जा सकता है, इन तीनों को बढ़ाते रहना चाहिए ॥ १७ ॥

तदिति। क्षमाशीलस्य नृपस्य नीतिनैपुण्यात् तद् वृद्धिः तेषाम् अर्य्यभावादीनां वृद्धिः

जायते, अतः अस्मात् कारणात् यावत् बुद्धिबलोदयं बुद्धिबलोदयानुसारेण यतेत एव तद्वृद्धये इति शेषः॥ १७ ॥

मालाकारस्य वृत्त्यैव स्वप्रजारक्षणेन च।
शत्रुं हि करदीकृत्य तद्धनैः कोशवर्द्धनम्॥ १८ ॥
करोति स नृपश्रेष्ठो मध्यमो वैश्यवृत्तितः।
अधमः सेवया दण्डतीर्थदेवकरग्रहैः॥ १९ ॥

अन्वयः—यः मालाकारस्य वृत्त्या इव स्वप्रजारक्षणेन शत्रुं हि करदीकृत्य तद्धनैः कोशवर्द्धनं करोति सः नृपश्रेष्ठः। यः वैश्यवृत्तितः मध्यमः, अधमः सेवया दण्डतीर्थदेवकरग्रहैः॥ १८-१९ ॥

व्याख्या—यः = नृपः, मालाकारवृत्त्या—मालाकारस्य = उद्यानपालस्य, वृत्त्या = प्रकृत्या, इव = यथा, स्वप्रजारक्षणेन—स्वस्य = आत्मनः, प्रजानाम् = जनानाम्, रक्षणेन = गोपनेन, शत्रुम् = रिपुम्, करदीकृत्य—अकरदान् = राजस्वादातॄणि, करदान् = राजस्वदातॄणि, कृत्वा = विधाय, अधीनीकृत्य, तत् = तस्य, धनैः = अर्थैः, कोशवर्द्धनं करोति = सम्पादयति, सः = एवंविधः, नृपश्रेष्ठः = राजसूत्तमः। यः वैश्यवृत्तितः = वणिग्वृत्त्या, कोशवर्द्धनं करोति, सः मध्यमः = सामान्यराजा भवति, अधमस्तु = नीचस्तु, सेवया = सेवकत्वेन, दण्डतीर्थदेवकरग्रहैः—दण्डेन = दमनदेयराशिना, तीर्थेण = तीर्थदेयोत्करेण, देवेन = देवदर्शनदेयधनेन, कराणाम् = राजस्वानाम्, ग्रहैः = ग्रहणैः, कोशवर्द्धनं करोतीति॥ १८-१९ ॥

हिन्दी—जो राजा माली की तरह व्यवहार रखकर प्रजा की रक्षा करते हुए शत्रु राजा को कर देने वाला बनाकर उसके दिये राजस्व से अपना खजाना बढ़ाता है, वह राजाओं के बीच श्रेष्ठ राजा कहलाता है। जो वणिक् वृत्ति से अपना खजाना भरता है, वह मध्यम कोटि का राजा कहलाता है तथा जो सेवा से, जुर्माना से, तीर्थस्थान एवं देवालय पर टैक्स लगाकर अपना खजाना भरता है, वह अधम कोटि का राजा कहलाता है॥ १८-१९ ॥

मालाकारस्येति। करोतीति। यः मालाकारस्य वृत्त्या व्यवहारेण इव स्वप्रजारक्षणेन शत्रुं करदीकृत्य अकरदान् करदान् कृत्वा अधिनीकृत्येत्यर्थः, तस्य धनैः कोशवर्द्धनं करोति, सः नृपश्रेष्ठः। यः वैश्यवृत्तितः व्यवसायादिना इत्यर्थः, कोशवर्द्धनं करोति स मध्यमः, अधमः सेवया भृत्यभावेन दण्डदेयानां तीर्थदेयानां देवदर्शनदेयानां कराणां ग्रहैः ग्रहणैः कोशवर्द्धनं करोतीत्यर्थः॥ १८-१९ ॥

प्रजा हीनधना रक्ष्या भृत्या मध्यधनाः सदा।
यथाधिकृत् प्रतिभुवोऽधिकद्रव्यास्तथोत्तमाः॥ २० ॥

अन्वयः—हीनधनाः तथा मध्यधनाः प्रजाः भृत्याः सदा रक्ष्याः। अधिकद्रव्याः उत्तमास्तु अधिकृत् यथा प्रतिभुवः॥ २० ॥

व्याख्या—हीनधनाः = धनहीनाः, तथा मध्यधनाः = सामान्याः, प्रजाः = जनाः, भृत्याः = कर्मण्याः, दत्वा, सदा = सर्वदा, रक्ष्याः = पालनीयाः। अधिकद्रव्याः = सधनाः, उत्तमाः = श्रेष्ठाः, प्रजाः = जनाः, तु, अधिकृत् यथा = अधिकारीव, प्रतिभुवः = लग्नकः, दत्वा पालनीयेति भावः॥ २० ॥

हिन्दी—धनहीन एवं सामान्य प्रजा की रक्षा एक स्वामी की तरह राजा को करनी चाहिए तथा धनी एवं श्रेष्ठ प्रजा का संरक्षण एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह करना चाहिए ॥ २० ॥

प्रजेति। हीनधनाः तथा मध्यधनाः प्रजाः भृत्या वेतनादिना सदा रक्ष्याः पालनीयाः, अधिकद्रव्याः महाधनाः उत्तमास्तु प्रजाः अधिकृत् प्रभुर्यथा स्वामीव प्रतिभुवः कृत्वा रक्ष्याः राज्ञेति शेषः ॥ २० ॥

धनिकाश्चोत्तमधना न हीना नाधिका नृपैः ॥ २१ ॥

अन्वयः—उत्तमधनाः धनिकाः नृपैः न हीनाः न च अधिकाः ॥ २१ ॥

व्याख्या—उत्तमधनाः = अतिधनवन्तो जनाः, धनिकाः = धनिनः, नृपैः = राज्ञैः, न = नहि, हीनाः = न्यूनाः, न च अधिकाः = विशिष्टाः, इति ज्ञेयाः ॥ २१ ॥

हिन्दी—क्योंकि अत्यन्त वैभवशाली धनी प्रजा न तो राजा से कम या अधिक अर्थात् राजतुल्य होती है ॥ २१ ॥

धनिका इति। उत्तमधना धनिकाः धनवन्तश्च नृपैः न हीनाः न च अधिकाः नृपतुल्या इत्यर्थः, भवन्तीति शेषः ॥ २१ ॥

द्वादशाब्दप्रपूरं यद्धनं तन्नीचसंज्ञकम्।
पर्य्याप्तं षोडशाब्दानां मध्यमं तद्धनं स्मृतम्।
त्रिंशदब्दप्रपूरं यत् कुटुम्बस्योत्तमं धनम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—यत् धनं कुटुम्बस्य द्वादशाब्दप्रपूरं तत् नीचसंज्ञकम्, यत् षोडशाब्दानां पर्याप्तं तत् धनं मध्यमम्, यच्च त्रिंशदब्दप्रपूरं तत् उत्तमं स्मृतम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—यद्धनम् = या सम्पद्, कुटुम्बस्य = परिजनस्य, द्वादशाब्दप्रपूरम् = द्वादशाब्दपर्यन्तविनियोगोपयुक्तम्, तत् = धनम्, नीचसंज्ञकम् = अधमाख्यं भवति। यत् = धनम्, षोडशाब्दानाम् = षोडशवर्षपर्यन्तानाम्, पर्याप्तम् = विनियोगार्थमुपपन्नम्, तत् = पूर्वोक्तम्, धनम् = वित्तम्, मध्यमम् = सामान्यस्तरीयं भवति, यच्च = पुनः, यद्धनम् = वित्तम्, त्रिंशदब्दप्रपूरम् = त्रिंशद्वर्षपर्यन्तव्ययोपयुक्तम्, तत् = धनम्, उत्तमम् = श्रेष्ठं धनम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ २२ ॥

हिन्दी—जो धन परिवार की रक्षा करने में केवल बारह साल तक ही सक्षम है, वह नीच धन है। जो धन सोलह साल तक परिवार की रक्षा कर सकता है और जो कम-से-कम तीस साल तक परिवार का पोषण कर सकता है, उसे उत्तम धन कहते हैं ॥ २२ ॥

द्वादशेति। यत् धनं कुटुम्बस्य परिवारस्य द्वादशाब्दप्रपूरं द्वादशवर्षव्ययोपयुक्तं तद् नीचसंज्ञकम् अधममित्यर्थः, यत् षोडशाब्दानां पर्य्याप्तं व्ययोपयुक्तं तत् मध्यमं, यच्च त्रिंशदब्दप्रपूरं त्रिंशद्वत्सरव्ययोपयुक्तं तत् उत्तमं स्मृतम् ॥ २२ ॥

क्रमादर्थं रक्षयेद् वा स्वापत्तौ नृप एषु वै ॥ २३ ॥

अन्वयः—नृपः स्वापत्तौ एषु वै क्रमात् अर्थं वा रक्षयेत् ॥ २३ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, स्वापत्तौ—स्वस्य = आत्मनः, आपत्तौ = विपत्काले, एषु = पूर्वोक्तेषु धनिकेषु, क्रमात् = अनुक्रमेण, अर्थम् = धनम्, वा नाम विकल्पेन, रक्षयेत् = स्थापयेदिति ॥ २३ ॥

हिन्दी—अपने ऊपर आपत्ति आने पर राजा ऊपरवर्णित नीचादि क्रम से इन सबों के पास रक्षा के लिए रख दे ॥ २३ ॥

क्रमादिति। नृपः स्वस्य आपत्तौ आपदि एषु पूर्वोक्तेषु धनिकेषु क्रमात् अर्थं रक्षयेत् स्थापयेत् वा वाशब्दः विकल्पार्थः ॥ २३ ॥

मूलैर्व्यवहरन्त्यर्घैर्न वृद्ध्या वणिजः क्वचित्।
विक्रीणन्ति महार्घे तु हीनार्घे सञ्चयन्ति हि ॥ २४ ॥

अन्वयः—वणिजः क्वचित् अर्द्धैः मूलैः व्यवहरन्ति, न वृद्ध्या। किञ्च महार्घे विक्रीणन्ति, हीनार्थे हि सञ्चयन्ति ॥ २४ ॥

व्याख्या—वणिजः = उद्यमिनः, क्वचित् = कुत्रापि, अर्घैः = मूल्यैः, मूलैः = मूलधनैः, व्यवहरन्ति = व्यवसायं सञ्चारयन्ति। न = नहि, वृद्ध्या = लाभहेतुना, किञ्च महार्घे = महामूल्ये, विक्रीणन्ति = विपणयन्ति, हीनार्थे = अल्पमूल्ये, सञ्चयन्ति = सङ्ग्रहं कुर्वन्ति ॥ २४ ॥

हिन्दी—व्यापारी मूल्यभूत मूल धन से व्यापार करते हैं, केवल सूद पर ही अपना सारा धन नहीं लगाते। मंहगी में अपनी वस्तु बेचते हैं और सस्ती आने पर अपनी वस्तु संचित करते हैं ॥ २४ ॥

मूलैरिति। वणिजः व्यवसायिनः क्वचित् कदाचित् अर्घैः मूल्यभूतैः मूलैः मूलधनैः व्यवहरन्ति क्रयविक्रयव्यवहारान् कुर्वन्ति, न वृद्ध्या न लाभेनेत्यर्थः। किञ्च महार्घे महामूल्ये विक्रीणन्ति, हीनार्थे अल्पमूल्ये सञ्चयन्ति क्रीणन्तीत्यर्थः, हिशब्दश्चावधारणार्थः ॥ २४ ॥

व्यवहारे धृतं वैश्यैस्तद्धनेन विना सदा।
अन्यथा स्वप्रजातापो नृपं दहति सान्वयम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—व्यवहारे वैश्यैः धृतं तत् धनेन विना सदा अन्यथा स्वप्रजातापः सान्वयं नृपं दहति ॥ २५ ॥

व्याख्या—व्यवहारे = क्रयविक्रयार्थम्, वैश्यैः = वणिग्भिः, धृतम् = सञ्चितम्, यत् = वस्तु, तत् = विक्रेयम्, धनेन = मूल्येन, विना = अदत्त्वा, सदा = कथमपि, कदापि न नेतव्यम्, अन्यथा = इतरथा, स्वप्रजातापः—स्वस्य = आत्मनः, प्रजानां = जनानाम्, तापः = मानसिकपीडा, सान्वयम्—अन्वयेन = समस्तेन वंशेन, सहितम् = युक्तम्, नृपम् = भूपतिम्, दहति = सन्तापयति ॥ २५ ॥

हिन्दी—क्रय-विक्रय के लिए बनिये की वस्तु की कीमत चुकाये बिना राजा को नहीं लेना चाहिए। अगर राजा ऐसा करता है तो प्रजा के मन में राजा के विरुद्ध धधकती आग उसे सम्पूर्ण खानदान के साथ विनष्ट कर देती है ॥ २५ ॥

व्यवहारे इति। व्यवहारे वाणिज्यायेत्यर्थः, यत् वैश्यैः वणिग्भिः धृतं वस्तु तद् धनेन मूल्येन विना सदा कदाचिदपीत्यर्थः, न ग्रहणीयं बलात् राज्ञेति पदत्रयमध्याहार्य्यम्। अन्यथा बलात् हरणे इत्यर्थः, स्वस्य प्रजानां वणिजामित्यर्थः, तापः मनःक्षोभः सान्वयं सवंशं नृपं दहति ॥ २५ ॥

धान्यानां सङ्ग्रहः कार्य्यो वत्सरत्रयपूर्त्तिदः।
तत्तत्काले स्वराष्ट्रार्थं नृपेणात्महिताय च।
चिरस्थायी समुद्रानामधिको वापि चेष्यते ॥ २६ ॥

अन्वयः—नृपेण आत्महिताय च स्वराष्ट्रार्थं तत्तत्काले वत्सरत्रयपूर्त्तिदः धान्यानां सङ्ग्रहः कार्यः। वापि समृद्धानां चिरस्थायी अधिकः च इष्यते ॥ २६ ॥

व्याख्या—नृपेण = राज्ञा, आत्महिताय—आत्मनः = स्वस्य, हिताय = लाभाय, च = पुनः, स्वराष्ट्रार्थम्—स्वस्य = आत्मनः, राष्ट्रार्थम् = राज्याय, तत्तत्काले = यथावसरे, वत्सरत्रयपूर्त्तिदः = वर्षत्रयपर्यन्तव्यवहारोपयुक्तः, धान्यानाम् = अन्नानाम्; सङ्ग्रहः = सञ्चयः, कार्यः = विधेयः, वा = अथवा, अपि = चेत्, समृद्धानाम् = सम्पत्तिशालिनाम्, चिरस्थायी = बहुकालपर्यन्तस्थितिशीलम्, अधिकः = ततोऽपि बहुलम्, धान्यसङ्ग्रहः, इष्यते = करणीयमिति ॥ २६ ॥

हिन्दी—राजा को अपने लाभ के लिए तथा राज्य की रक्षा के लिए यथावसर तीन साल तक खाने योग्य अन्नों का संग्रह करना चाहिए और सम्पन्न लोगों को उससे भी अधिक काल तक काम चलने लायक अधिक अन्न का संग्रह करना चाहिए ॥ २६ ॥

धान्यानामिति। नृपेण आत्महिताय स्वस्य राष्ट्ररक्षार्थं तत्तत् काले यथायथसमये वत्सरत्रयपूर्त्तिदः त्रिवर्षव्ययोपयुक्तः धान्यानां सङ्ग्रहः सञ्चयः कार्य्यः। वापि अपि वा अथवा इत्यर्थः, समृद्धानाम् ऐश्वर्य्यशालिनां चिरस्थायी ततोऽपि अधिककालस्थायी अधिकः धान्यसङ्ग्रहः इष्यते ॥ २६ ॥

सुपुष्टं कान्तिमज्जातिश्रेष्ठं शुष्कं नवीनकम्।
ससुगन्धवर्णरसं धान्यं संवीक्ष्य रक्षयेत्।
सुसमृद्धं चिरस्थायि महार्घमपि नान्यथा ॥ २७ ॥

अन्वयः—सुपुष्टं कान्तिमत् जातिश्रेष्ठं शुष्कं नवीनकं ससुगन्धवर्णरसं सुसमृद्धं चिरस्थायि संवीक्ष्य महार्घमपि रक्षयेत्, अन्यथा न ॥ २७ ॥

व्याख्या—सुपुष्टम् = सम्यक्पोषितम्, कान्तिमत् = दीप्तिमत् उज्ज्वलं वा, जातिश्रेष्ठम् = उत्कृष्टप्रकारः, शुष्कम् = निरुदकम्, नवीनकम् = नूतनम्, ससुगन्धवर्णरसम्—ससुगन्धम् = सौरभयुक्तम्, सवर्णम् = सुकान्तियुतम्, सरसम् = आस्वादयुक्तम्, सुसमृद्धम् = सुसम्पंन्नम्, चिरस्थायि = सुदीर्घकालेऽपि स्थितिशीलः, संवीक्ष्य = अवलोक्य परीक्ष्य च, महार्घमपि = बहुमूल्यमपि, रक्षयेत् = सञ्चयेत्, अन्यथा = एतद्भिन्ने, न = नहि, सञ्चयेदिति ॥ २७ ॥

हिन्दी—अच्छी तरह पका हुआ, स्वच्छ, अच्छी किस्म का, सूखा हुआ, नया, सुगन्धित, देखने में सुपुष्ट, आस्वादयुक्त, सुन्दर तथा टिकाऊ दानें देखकर किमती होने के बावजूद इनका संग्रह करना उचित है। अगर ऐसे अन्न न मिले तो उनका संग्रह करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥

सुपुष्टमिति। सुपुष्टं कान्तिमत् उज्ज्वलं जातिश्रेष्ठम् उत्कृष्टजातिकं शुष्कं नवीनकं नूतनं ससुगन्धवर्णरसं सौरभवर्णरसयुक्तं सुसमृद्धं सुचारु चिरस्थायी सुदीर्घकालेऽपि अनश्वरमित्यर्थः, संवीक्ष्य सम्यक् परीक्ष्य महार्घं महामूल्यमपि रक्षयेत्, अन्यथा एतद्वैपरीत्ये न ॥ २७ ॥

विषवह्निहिमव्याप्तं कीटजुष्टं न धारयेत्।
निःसारतां न हि प्राप्तं व्यये तावन्नियोजयेत् ॥ २८ ॥

अन्वयः—विपवह्निहिमव्याप्तं कीटजुष्टं न धारयेत्। निःसारतां प्राप्तं व्यये तावत् न नियोजयेत् ॥ २८ ॥

व्याख्या—विपेण = हालाहलेन, वह्निना = अग्निना, हिमेन = तुषारेण, व्याप्तम् = अन्तःप्रसृतम्, स्वत्वहीनं मृतम्, कीटजुष्टम् = कृमिव्याप्तम्, न = नहि, धारयेत् = सञ्चयेत्। किञ्च निःसारताम् = असारत्वं प्राप्ते सति, व्यये = व्यवहारे, तावत्, धान्यम् = एवंविधान्नम्, न = नहि, नियोजयेत = संयोजयेत् ॥ २८ ॥

हिन्दी—जहरीले, आग और पाले से प्रदूषित तथा कीड़ाखोरी के शिकार वाले अनाजों का संग्रह नहीं करना चाहिए और जब तक ये अनाज खोखले न हो जाय तभी तक व्यवहार में लाना चाहिए ॥ २८ ॥

विपेति। विपेण गरलेन वह्निना अग्निना हिमेन च व्याप्तं प्राप्तं कीटजुष्टं कीटाक्रान्तञ्च न धारयेत्, किञ्च निःसारताम् असारतां प्राप्तम् असारमित्यर्थः, धान्यं व्यये न नियोजयेत् ॥ २८ ॥

व्ययीभूतं तु यद् दृष्ट्वा तत्तुल्यं तु नवीनकम्।
गृह्णीयात् सुप्रयत्नेन वत्सरे वत्सरे नृपः ॥ २९ ॥

अन्वयः—यत् व्ययीकृतं तत् दृष्ट्वा नृपः तत्तुल्यं नवीनकं वत्सरे वत्सरे सुप्रयत्नेन गृह्णीयात् ॥ २९ ॥

व्याख्या—यत् = धान्यम्, व्ययीकृतम् = विसर्जितम्, तत् = उत्सर्जनम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, नृपः = राजा, तत्तुल्यम् = तत्सदृशमेव, नवीनकम् = अभिनवमन्नम्, वत्सरे वत्सरे = प्रतिवर्षम्, सुप्रयत्नेन = प्रयासपूर्वकेण, गृह्णीयात् = सङ्ग्रहं कुर्यात् ॥ २९ ॥

हिन्दी–राजा जितना अनाज हर साल खर्च करे, उतना नया अनाज पुनः संग्रह कर ले ॥ २९ ॥

व्ययीभूतमिति। यत् व्ययीकृतं तत् दृष्ट्वा राजा तत्तुल्यं तत्सदृशं नवीनकं नूतनं वत्सरे वत्सरे प्रतिवर्षं सुप्रयत्नेन गृह्णीयात् ॥ २९ ॥

ओषधीनां च धातूनां तृणकाष्ठादिकस्य च।
यन्त्रशस्त्रास्त्राग्निचूर्णभाण्डादेर्वाससां तथा ॥ ३० ॥
यद्यच्च साधकं द्रव्यं यद्यत्कार्य्ये भवेत् सदा।
सङ्ग्रहस्तस्य तस्यापि कर्त्तव्यः कार्य्यसिद्धिदः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—ओषधीनां च धातूनां तृणकाष्ठादिकस्य च यन्त्रशस्त्रास्त्राग्निचूर्णभाण्डादेः तथा वाससां यत् यत् साधकं द्रव्यं सदा कार्ये भवेत्, तस्य तस्यापि कार्यसिद्धिदः सङ्ग्रहः कर्त्तव्यः ॥ ३०-३१ ॥

व्याख्या—ओषधीनाम् = अन्नशाकादीनाम्, च = पुनः, धातूनाम् = गैरिकादिखनिजभेदानाम्, तृणकाण्ठादिकस्य = नालदारुप्रभृतीनाम्, यन्त्राणाम् = उपकरणानाम्, शस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, अग्निचूर्णानाम् = शतघ्नीनाम्, भाण्डादीनाम् = भाजनानाम्, च = पुनः, वाससाम् = परिधानानाम्, यत् यत् साधकम् = सिद्धिकरम्, द्रव्यम् = सामग्री, सदा = सर्वदा, कार्ये = कृत्ये, भवेत् = कार्यसम्पादनार्थं भवति, तस्य तस्य = तत्तत्, अपि = चेत्, कार्यसद्धिदः = कार्यसम्पादकः, सङ्ग्रहः = सञ्चयः, कर्त्तव्यः = विधेयः ॥ ३०-३१ ॥

हिन्दी—खाद्य पदार्थ, खनिज पदार्थ, तृण, काष्ठ, मशीन, हथियार, तोप, बारुद, बरतन तथा वस्त्र—इनमें जिन कार्यों के लिए जो उपयोगी हैं, समय पर कार्यसिद्धि हेतु उन आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना राजा के लिए उचित है ॥ ३०-३१ ॥

ओषधीनामिति। यदिति। ओषधीनां धान्यादीनां धातूनां तेजसानां खनिजद्रव्याणामित्यर्थः, तृणकाष्ठादिकस्य, यन्त्राणां शस्त्राणाम् अस्त्राणाम् अग्निचूर्णानां भाण्डादेः स्थाल्यादेः तथा वाससां वस्त्राणां मध्ये यत् यत् साधकं कार्य्योपयोगीत्यर्थः, यत् यच्च द्रव्यं सदा कार्य्ये भवेत् कार्य्यसाधनार्थं भवति, तस्य तस्य अपि कार्य्यसिद्धिदः सङ्ग्रहः सञ्चयः कर्त्तव्यः ॥ ३०-३१ ॥

संरक्षयेत् प्रयत्नेन सङ्गृहीतं धनादिकम्।
आर्जने तु महद् दुःखं रक्षणे तच्चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—सङ्गृहीतं धनादिकं प्रयत्नेन संरक्षयेत्। आर्जने तु महत् दुःखं, तद्रक्षणे चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—सङ्गृहीतम् = सञ्चितम्, धनादिकम् = सम्पदम्, प्रयत्नेन = सयत्नेन, संरक्षयेत् = रक्षां कुर्यात्। आर्जने = धनोपार्जने, तु = किन्तु, महत् = अत्यधिकम्, दुःखम् = कष्टं भवति, तस्य = अर्जितधनस्य, रक्षणे = गोपने, चतुर्गुणम्, दुःखं भवतीति भावः ॥ ३२ ॥

हिन्दी—संग्रहीत धन की रक्षा प्रयासपूर्वक करनी चाहिए। क्योंकि धन संग्रह करने में घोर कष्ट उठाना पड़ता है और उसकी रक्षा में उससे चार गुना अधिक कष्ट होता है ॥ ३२ ॥

संरक्षयेदिति। सङ्गृहीतं धनादिकं प्रयत्नेन संरक्षयेत्, आर्जने उपार्जने तु महत् दुःखम् अस्ति, परं रक्षणे तस्य आर्जनदुःखस्य चतुर्गुणं दुःखं भवतीति शेषः ॥ ३२ ॥

क्षणं चोपेक्षितं यत्तद्विनाशं द्राक् समाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—यत् क्षणम् उपेक्षितं तत् द्राक् विनाशं समाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—यत् = सम्पद्, क्षणम् = क्षणमात्रमपि, उपेक्षितम् = अवधीरितम्, तत् = सम्पद्, द्राक् = झटिति, विनाशम् = निर्मूलनम्, समाप्नुयात् = प्राप्नुयात् ॥ ३३ ॥

हिन्दी—एक पल भी जिस धन की रक्षा की उपेक्षा की जाती है, वह धन शीघ्र समाप्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

क्षणमिति। यत् धनं क्षणम् उपेक्षितं, तंत् द्राक् झटिति विनाशं समाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

आर्जकस्यैव दुःखं स्यात् तथार्जितविनाशने।
स्त्रीपुत्राणामपि तथा नान्येषां तु कथं भवेत् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—आर्जकस्य दुःखं तथा अर्जितविनाशने दुःखं स्यात्। स्त्रीपुत्राणामपि तथा अन्येषां तु कथं न भवेत्? ॥ ३४ ॥

व्याख्या—आर्जकस्य = उपार्जनकर्त्तुः जनस्य, उपार्जने, दुःखम् = कष्टम्, भवतीति शेषः, तथा = तेनैव प्रकारेण, अर्जितस्य = उपार्जितधनस्य, विनाशने = विध्वंसेऽपि, दुःखम् = कष्टम्, स्यात् = भवेत्। स्त्रीपुत्राणाम् = पत्नीपुत्राणाम्, अपि = चेत्, यथा दुःखम् = पीडा भवेत्, तथैव, अन्येषाम् = अपराणां वस्तूनाम्, विनाशनेऽपि कथं न = नहि, दुःखम्, भवेत् = स्यात् ॥ ३४ ॥

हिन्दी—धन अर्जित करने में उपार्जित करने वाले को उतना ही या वैसे ही कष्ट होता है जैसे धन के विनष्ट होने पर। पत्नी और पुत्र के विनष्ट होने पर यदि कष्ट होता है तो फिर अन्य वस्तुओं के विनष्ट होने पर क्यों न कष्ट हो? ॥ ३४ ॥

आर्जकस्येति। आर्जकस्य उपार्जकस्य अर्जने इति शेषः, दुःखं तथा अर्जितस्य विनाशनेऽपि दुःखं स्यात्। स्त्रीपुत्राणामपि विनाशेन यथा दुःखं भवेत् तथा अन्येषां वस्तूनां विनाशनेऽपि कथं न भवेत् अपि तु भवेदेवेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

स्वकार्य्ये शिथिलो यः स्यात् किमन्ये न भवन्ति हि।
जागरूकः स्वकार्य्ये यस्तत् सहायाश्च तत्समाः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—यः स्वकार्ये शिथिलः स्यात्, अन्ये किं न भवन्ति? यः स्वकार्ये जागरूकः तत् सहायाः तत्समाः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—यः = जनः, स्वकार्ये—स्वस्य = आत्मनः, कार्ये = करणीये, शिथिलः = उदासीनः, स्यात् = भवेत्, तस्य अन्ये = सहायकाः, किं = कथम्, न = नहि, श्लथाः, भवन्ति = जायन्ते? यः = पुरुषः, स्वकार्ये = आत्मकृत्ये, जागरूकः = सावधानः, तत् = तस्य, सहायाः = अनुगामिनः, तत् = तस्य, समाः = सदृशाः भवन्ति ॥ ३५ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति अपने कार्य में आप उदासीन हो तो फिर उसके काम में उनके सहायक क्यों न उदासीन हो? जो व्यक्ति अपने काम में स्वयं जागरूक होता है, उनके सहायक भी उन्हीं की तरह कार्यतत्पर होते हैं ॥ ३५ ॥

स्वकार्य्ये इति। यः स्वस्य कार्य्ये शिथिलः अलसः स्यात् तस्य अन्ये अनुगामिनो लोकाः किं कथं शिथिलाः न भवन्ति? अपितु भवन्त्येव। यः स्वकार्य्ये जागरूकः अशिथिल इत्यर्थः, तस्य सहायाश्च तस्य समाः कार्य्यतत्पराः भवन्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

यो जानात्यर्जितुं सम्यगर्जितं न हि रक्षितुम्।
नातः परतरो मूर्खो वृथा तस्यार्जनश्रमः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यः अर्जितुं जानाति, अर्जितं सम्यक् रक्षितुं न; अतः परतरः मूर्खो न हि। तस्य अर्जनश्रमः वृथा ॥ ३६ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषविशेषः, अर्जितुम् = धनोपार्जनं कर्तुम्, जानाति = वेत्ति, अर्जितम् = उपार्जितं धनम्, सम्यक् = सुष्ठुतया, रक्षितुम् = रक्षाकर्तुं, न = नहि, जानाति, अतः = अनेन कारणेन, अस्मात् = एवंविधाज्जनात्, परतरः = श्रेष्ठतरः, मूर्खः = अज्ञः नास्ति। यतः, तस्य = एवंविधजनस्य, अर्जनश्रमः = धनोपार्जने कृतः परिश्रमः, वृथा = निष्प्रयोजनमेवेति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति धन कमाना तो अच्छी तरह जानता है, परन्तु उसकी रक्षा करना बिलकुल नहीं जानता, वह एक मूर्ख से बढ़कर कुछ नहीं है। क्योंकि धन-रक्षण के अभाव में उसका उर्पाजन में किया गया श्रम निरर्थक होता है ॥ ३६ ॥

य इति। यः अर्जितुम् उपार्जयितुमित्यर्थः, जानाति, परम् अर्जितं धनं सम्यक् रक्षितुं नहि जानाति, अतः अस्मात् जनात् परतरः श्रेष्ठतरः मूर्खः न अस्तीति शेषः, यतः तस्य अर्जनश्रमः उपार्जनपरिश्रमः वृथा निष्फल इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

एकस्मिन्नधिकारे तु यो द्वावधिकरोति सः।
मूर्खो जीवद् द्विभार्य्यश्च ह्यतिविस्त्रम्भवांस्तथा॥ ३७॥
महाधनाशो ह्यलसः स्त्रीभिर्निर्जित एव हि।
तथा यः साक्षितां पृच्छेच्चोरजाराततायिषु॥ ३८॥

अन्वयः—यः एकस्मिन् अधिकारे द्वौ अधिकरोति सः, यः जीवद् द्विभार्यः, यः अतिविश्रब्धवान् यश्च महाधनाशः अथ च अलसः स्त्रीभिः निर्जितः एव तथा यः चोरजाराततायिषु साक्षितां पृच्छेत्; स च मूर्खः॥ ३७-३८॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, एकस्मिन् = एकमात्रे, अधिकारे = स्वामित्वे, द्वौ = प्रकरणद्वयम्, अधिकरोति = स्वायत्तीकरोति, सः = पुरुषः, एकस्यैव प्रभुत्वस्य संरक्षणं दुःसाध्यम्, पुनरधिकारद्वयस्य का वार्त्तेति, यः = जनः, जीवन् सन् = जीवितेऽपि, विभार्यः = भार्याविहीनः, अथवा जीवन्त्यौ, द्वे = उभे, भार्ये = पत्न्यौ, यस्य सः, यो जनः, अतिविश्रम्भवान् = अतिविश्वस्तः, यश्च पुरुषः पुनः दुर्वृत्तानां सुवृत्तानां जनानां सत्यासत्यकथने कृतविश्वासः सः, यश्च महाधनाशः = अत्यधिकधनप्राप्तिलिप्सः, अथ च, अलसः = आलस्यशीलः, स्त्रीभिः = नारीभिः, निर्जतः = विजितः, एव = एवेति निश्चयेन, तथा = तेन प्रकारेण, यः = पुरुषः, चोरजाराततायिषु—चोरेषु = पाटच्चरेषु, जारेषु = परदारलम्पटेषु, आततायिषु = घोरपापिषु, साक्षिताम् = साक्ष्यम्, पृच्छेत् = प्रश्नयेत्, सः = असौ, च = पुनः, मूर्खः = ज्ञानहीनोऽस्ति॥ ३७-३८॥

हिन्दी—जो एक अधिकार के बावजूद दूसरे अधिकार पर हावी होता है, जो जीवित पत्नी रहने के बावजूद दूसरी शादी रचाता है, जो बिना विचारे हर व्यक्ति पर विश्वास रखता है, जो अतिधनाढ्य बनने की इच्छा के बावजूद आलसी बना रहता है तथा जो स्त्री के अधीन रहता है और जो चोर, लंपट एवं आततायी के विषय में गवाह माँगता है—वह व्यक्ति मूर्ख है॥ ३७-३८॥

एकस्मिन्निति। महाधनाश इति। यः एकस्मिन् अधिकारे द्वौ अधिकरोति सः एकाधिकारस्यैव रक्षणस्य दुःसाध्यत्वादिति भावः, यः जीवन् सन् विभार्य्यः भार्य्याशून्यः अथवा जीवन्त्यौ द्वे भार्य्ये यस्य सः, यः अतिविश्रम्भवान् अतिविश्वस्तः सर्वेषां सतामसताञ्च वचसि कृतविश्वासः सः, यश्च महाधनाशः अधिकतः स्पृहः अथ च अलसः स्त्रीभिः निर्जितः अधीनीकृतश्च सः, यः चोरजाराततायिषु तस्करेषु उपपतिषु आततायिषु विषयेषु साक्षितां पृच्छेत् स च मूर्खः॥ ३७-३८॥

संरक्षयेत् कृपणवत् काले दद्याद्विरक्तवत्।
मूर्खत्वमन्यथा याति स्वधनव्ययतोऽपि च॥ ३९॥

अन्वयः—कृपणवत् संरक्षयेत्, काले विरक्तवत् दद्यात्। अन्यथा स्वधनव्ययतोऽपि मूर्खत्वं याति॥ ३९॥

व्याख्या—कृपणवत् = अमुक्तहस्त इव, धनम्, संरक्षयेत् = रक्षां कुर्यात्, काले = यथावसरे प्राप्ते, विरक्तवत् = निष्प्रयोजनमिव, दद्यात् = प्रयच्छेत्। अन्यथा = इतरथा, स्वधनव्ययतोऽपि—स्वस्य = आत्मनः, धनस्य = अर्थस्य, व्ययतोऽपि = वित्तविनियोगेऽपि, मूर्खत्वम् = निर्बुद्धित्वम्, याति = प्राप्नोति॥ ३९॥

हिन्दी—धन की रक्षा कंजूस की तरह करनी चाहिए और समय आने पर मुक्तहस्त होकर खर्च करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते, वे खर्च करने के बावजूद बेवकूफ समझे जाते हैं ॥ ३९ ॥

संरक्षयेदिति। कृपणवत् धनं संरक्षयेत्, काले यथासमये विरक्तवत् दद्यात्। अन्यथा एतद्वैपरीत्ये स्वधनानां व्ययतः व्ययेन मूर्खत्वं याति प्राप्नोति ॥ ३९ ॥

वस्तुयाथात्म्यविज्ञाने स्वयमेव यतेत् सदा।
परीक्षकैः स्वयं राजा रत्नादीन् वीक्ष्य रक्षयेत् ॥ ४० ॥

अन्वयः—वस्तुयाथात्म्यविज्ञाने सदा स्वयमेव यतेत्। राजा स्वयं परीक्षकैः रत्नादीन् वीक्ष्य रक्षयेत् ॥ ४० ॥

व्याख्या—वस्तूनाम् = पदार्थानाम्, याथात्म्यस्य = यथार्थस्वरूपस्य, विज्ञाने = सूक्ष्मनिरूपणे, सदा = सर्वदा, स्वयमेव = आत्मनैव, यतेत् = प्रयत्नं, कुर्यात्। राजा = नृपः, स्वयम् = स्वत एव, परीक्षकैः = रत्नकारैः, रत्नादीन् = मणिगणादीन्, वीक्ष्य = अवलोक्य परीक्ष्य वा, रक्षयेत् = संरक्षणं कुर्यात् ॥ ४० ॥

हिन्दी—प्रत्येक वस्तु या पदार्थ का सही रूप जानने के लिए स्वयं प्रयास करना चाहिए। अतः राजा खुद एवं जौहरियों से रत्न की परख करवाने के बाद ही उसका संचयन करे ॥ ४० ॥

वस्त्विति। वस्तूनां द्रव्याणां याथात्म्यस्य स्वरूपस्य विज्ञाने विशेषज्ञाने सदा स्वयमेव यतेत्। राजा स्वयं परीक्षकैश्च रत्नादीन् वीक्ष्य परीक्ष्य रक्षयेत् गृह्णीयादित्यर्थः ॥ ४० ॥

वज्रं मुक्ता प्रवालं च गोमेदश्चन्द्रनीलकः।
वैदूर्य्यं पुष्परागश्च पाचिर्माणिक्यमेव च।
महारत्नानि चैतानि नव प्रोक्तानि सूरिभिः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—वज्रं, मुक्ता, प्रवालं, गोमेदः, इन्द्रनीलकः, वैदूर्यं, पुष्परागः, पाचिः तथा माणिक्यम्—एतानि नव सूरिभिः महारत्नानि प्रोक्तानि ॥ ४१ ॥

व्याख्या—वज्रम् = हीरः, मुक्ता = शुक्तिजम्, प्रवालम् = विद्रुमः, गोमेदः = राहुरत्नम्, इन्द्रनीलकः = नीलोत्पलः, वैदूर्यम् = केतुरत्नम्, पुष्परागः = पीतस्फटिकः, पाचिः = मरकतम्, तथा = एवम्, माणिक्यम् = पद्मरागः, एतानि = पूर्वोक्तानि, नव = नवसंख्यकानि, सूरिभिः = विद्वद्भिः, महारत्नानि = श्रेष्ठाश्मभेदानि, प्रोक्तानि = कथितानि ॥ ४० ॥

हिन्दी—हीरा, मोती, मूंगा, गोमेद, नीलम, लहसुनिया, पन्ना, मरकतमणि तथा लाल रत्न या चुन्नी—ये नौ महारत्न हैं, ऐसा जानकारों का कहना है ॥ ४१ ॥

वज्रमिति। वज्रं हीरकं, मुक्ता मौक्तिकं, प्रवालं, गोमेदः, इन्द्रनीलः वैदूर्य्यं, पुष्परागः पद्मरागः, पाचिः मरकतं तथा माणिक्यम्, एतानि नव सूरिभिर्विद्वद्भिः महारत्नानि प्रोक्तानि कथितानि ॥ ४१ ॥

रवेः प्रियं रक्तवर्णं माणिक्यं त्विन्द्रगोपरुक्।
रक्तपीतसितश्यामच्छविर्मुक्ता प्रिया विधोः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—इन्द्रगोपरुक् रक्तवर्णं माणिक्यं रवेः प्रियम्। रक्तपीतसितश्यामच्छविः मुक्ता विधोः प्रिया ॥४२॥

व्याख्या—इन्द्रगोपरुक्—इन्द्रगोपस्य = वर्षाकालीनकीटविशेषस्य, रुक् = छविरिव छविर्यस्य तादृशम्, रक्ताभम्, माणिक्यम् = मरकतमणिः, रवेः = सूर्यस्य, प्रियम् = रुचिकरं भवति। पीता = हरिद्राभा, सिता = भास्वरा, श्यामा = तप्तकाञ्चनवर्णाभा, च, छविः = कान्तिर्यस्याः तथाभूता, मुक्ता = मौक्तिकः, 'मुक्ता मौक्तिकपुंश्चल्योः' इति हैमः; विधोः = चन्द्रस्य, प्रिया = रुचिकरा भवति ॥४२॥

हिन्दी—वीरबहूटी बरसाती कीड़े के रंग की तरह लाल रंग का माणिक सूर्य को प्रिय होता है तथा लाल-पीला, श्वेत और श्याम वर्ण के शतरंगी कान्तिवाला मोती चन्द्रमा को प्रिय होता है ॥४२॥

विशेष—**इन्द्रगोप**—मखमल के समान चिकने और चमकदार शरीरवाला वह लाल रंग का छोटा कीड़ा, जो वर्षाऋतु के प्रारंभ में उत्पन्न होता है और जो सहस्रों की संख्या में खुले मैदान या कोमल हरी घास पर रेंगते दिखाई देते हैं; इसे लोग वीरबहूटी, वीरवधूटी या इन्द्रवधू भी कहते हैं।

माणिक्य—लाल रंग का यह एक कीमती रत्न है। इसे माणिक, लाल पद्मराग या चुन्नी भी कहा जाता है। यह पत्थर सूर्य को प्रिय होता है।

मुक्ता—मोती—'करीन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्यादिशुक्त्युद्भववेणुजानि। मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शक्त्युद्भवमेव भूरि'॥ (मल्लिनाथ) मुक्ता अर्थात् मोती एक प्रसिद्ध बहुमूल्य रत्न है। ऊपरलिखित अनेक स्रोतों से वे उपलब्ध बताये जाते हैं, किन्तु विशेषकर छिछले समुद्रों में सीपी में से निकलता है ॥४२॥

रवेरिति। इन्द्रगोपस्य कीटविशेषस्य कीटविशेपस्य रुक् कान्तिरिव कान्तिर्यस्य तादृशं रक्तवर्णं रवेः सूर्यस्य प्रिया रक्ता पीता सिता श्यामा च छविः कान्तिर्यस्याः तथाभूता मुक्ता विधोः चन्द्रस्य प्रिया ॥४२॥

सपीतरक्तरुग्भौमप्रियं विद्रुममुत्तमम्।
मयूरचाषपत्राभा पाचिर्बुधहिता हरित् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—सपीतरक्तरुक् उत्तमं विद्रुमं भौमप्रियम्। मयूरचाषपत्राभा हरित् पाचिः बुधस्य हिता भवति ॥४३॥

व्याख्या—पीतया = हरिद्राभया, रक्तया = लोहितया, च रुचा = कान्त्या, सहितम्, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, विद्रुमम् = प्रवालम्, भौमस्य = धरणीसुतस्य, प्रियम् = रुचिकरम्, भवति। मयूरस्य = कलापिनः, चापस्य = नीलकण्ठस्य, च, पत्रस्य = पक्षस्य, इव आभा = कान्तिः, यस्यास्तथाभूतायाः, हरित् = पलाशवर्णा, पाचिः = मरकतम्, बुधस्य = चन्द्रसुतस्य, हिता = रुचिकरा भवति ॥४३॥

हिन्दी—थोड़ा पीलापन लिये लाल रंग का उत्तम मूंगा मंगल को प्रिय होता है। मोर तथा नीलकंठ की पाँखों की तरह हरे रंग का चमकीला पन्ना बुध को प्रिय होता है ॥४३॥

विशेष—**विद्रुम**—विद्रुम का अर्थ होता है प्रवाल या मूंगा। 'विशिष्टो द्रुमः विद्रुमः' अर्थात् लाल रंग के मूल्यवान् मूंगों को पैदा करने वाला वृक्ष। इससे प्रमाणित होता है कि मूंगों के

वृक्ष होते हैं, किन्तु विशेषज्ञों का कहना है कि समुद्र में रहने वाले एक प्रकार के कृमियों की लाल ठठरी, जिसकी गिनती रत्नों में की जाती है।

पाचि—इसे मरकतमणि या पन्ना भी कहते हैं। फिरोजे की जाति का हरे रंग का एक रत्न।

सपीतेति। पीतया रक्तया च रुचा कान्त्या सहितम् उत्तमं विद्रुमं प्रवालं भौमस्य मङ्गलस्य प्रियम्। मयूरस्य चाषस्य पक्षिभेदस्य च पत्रस्य पक्षस्येव आ' . यस्याः तथोक्ता हरित् हरितवर्णा पाचिः मरकतं बुधस्य हिता प्रिया ॥४३॥

स्वर्णच्छविः पुष्परागः पीतवर्णो गुर्रुप्रियः।
अत्यन्तविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम्॥४४॥

अन्वयः—स्वर्णच्छविः पीतवर्णः पुष्परागः गुरुप्रियः। अत्यन्तं विशदं तारकाभं वज्रं कवेः प्रियम्॥४४॥

व्याख्या—स्वर्णच्छविः—स्वर्णस्य = कनकस्य, छविः = कान्तिरिव, कान्तिर्यस्यासौ, पीतवर्णः = हरिद्राभः, पुष्परागः = पीतस्फटिकः, गुरोः = बृहस्पतेः, प्रियः = रुचिकरो भवति। अत्यन्तम् = अत्यधिकम्, विशदम् = निर्मलम्, स्वच्छम् = तारातुल्यकान्तियुक्तम्, वज्रम् = हीरकम्, कवेः = शुक्रस्य, प्रियम् = रुचिकरम्, भवति॥४४॥

हिन्दी—सोने की तरह पीताभ पुखराज गुरु अर्थात् बृहस्पति को प्रिय है तथा अत्यन्त स्वच्छ तारे की तरह चमकने वाला हीरा शुक्र को प्रिय होता है॥४४॥

विशेष—पुष्पराग—इसे लोग पुखराज भी कहते हैं। एक प्रकार का हलका नीलापन या हरापन लिये पीले रंग का रत्न। इसकी कान्ति सोने की तरह चमकती है।

वज्रमणी—यह लोक में 'हीरा' के नाम से विख्यात है। यह एक बहुमूल्य कीमती पत्थर या रत्न है। यह अपनी शुभ्र चमक और कड़ाई के लिए प्रसिद्ध है।

स्वर्णेति। स्वर्णस्येव छविः कान्तिर्यस्य तथोक्तः पीतवर्णः पुष्परागः गुरोः बृहस्पतेः प्रियः। अत्यन्तविशदम् अतिस्वच्छं तारकाभं तारासदृशं वज्रं हीरकं कवेः शक्रस्य प्रियम्॥४४॥

हितः शनेरिन्द्रनीलो ह्यसितो घनमेघरुक्।
गोमेदः प्रियकृद्राहोरीषत्पीतारुणप्रभः॥४५॥

अन्वयः—घनमेघरुक् असितः इन्द्रनीलः शनेः हितः। ईषत्पीता अरुणप्रभः राहोः प्रियकृत्॥४५॥

व्याख्या—घनस्य = अतिसान्द्रस्य, मेघस्य = जलदस्य, रुक् = छविर्यस्य तादृशः, असितः = कृष्णवर्णः, इन्द्रनीलः = मरकतः वा हरिन्मणिः, शनेः = रवेः सुतस्य, हितः = प्रियो भवति। ईषत् = स्तोकम्, पीता = हरिद्राभा, अरुणप्रभः—अरुणा = मञ्जिष्ठा, प्रभा = कान्तिर्यस्य तथाभूतः, गोमेदः = राहुरत्नः, राहोः = सिंहिकापुत्रस्य, प्रियकृत् = रुचिकरो भवति॥४५॥

हिन्दी—सघन बादल की तरह कान्ति वाला नीले रंग का नीलम होता है, जो शनि ग्रह को प्रिय है। कुछ पीली एवं रक्ताभ कान्ति युक्त लहसुनिया रंग का गोमेद राहु को प्रिय होता है॥४५॥

हित इति। घनस्य निविडस्य मेघस्येव रुक् कान्तिर्यस्य तादृशः असितः श्यामलः इन्द्रनीलः शनेः हितः प्रियः। ईषत् पीता अरुणा रक्ता प्रभा यस्य तथाभूतः गोमेदः राहोः प्रियकृत् ॥४५॥

ओत्वक्ष्याभश्चलत्तन्तुर्वैदूर्य्यः केतुप्रीतिकृत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—ओत्वक्ष्याभः चलत् तन्तुः वैदूर्यः केतुप्रीतिकृत् ॥४६॥

व्याख्या—ओतोः = मार्जारस्य, अक्ष्णः = नेत्रस्य, आभा = कान्तिः इव कान्तिर्यस्य तथाभूतः, चलन् = सञ्चरन्, तन्तुः = शिखा, यस्य तथोक्तः, वैदूर्यः = केतुरत्नम्, केतोः = ग्रहविशेषस्य, प्रीतिकृत् = रुचिकरो भवति ॥४६॥

हिन्दी—बिलार की आँखों के समान जिसकी कान्ति हों तथा जो किरणों से युक्त हो, उसे वैदुर्य या लहसुनियाँ कहते हैं, जो केतु को प्रिय होता है ॥४६॥

ओत्विति। ओतोर्विडालस्य अक्ष्ण इव आभा यस्य तथाभूतः चलन् तन्तुः शिखा यस्य तथोक्तः वैदूर्य्यः केतोः ग्रहस्य प्रीतिकृत् ॥४६॥

रत्नश्रेष्ठतरं वज्रं नीचे गोमेदविद्रुमे।
गारुत्मतं तु माणिक्यं मौक्तिकं श्रेष्ठमेव हि।
इन्द्रनीलं पुष्परागो वैदूर्य्यं मध्यमं स्मृतम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—वज्रं रत्नश्रेष्ठतरं, गोमेदविद्रुमे नीचे, गारुत्मतं माणिक्यं मौक्तिकं हि श्रेष्ठम् एव। इन्द्रनीलं पुष्परागः वैदूर्यं मध्यमं स्मृतम् ॥४७॥

व्याख्या—वज्रम् = हीरकम्, रत्नश्रेष्ठतरम्—रत्नेषु = मणिषु, श्रेष्ठतरम् = सर्वश्रेष्ठम्, गोमेदविद्रुमे = राहुरत्नप्रवाले, नीचे = सकलरत्नेष्वधमे, गारुत्मतम् = पाचिः, माणिक्यम् = पद्मरागः, मौक्तिकम् = मुक्ता, एव = इति निश्चयेन, श्रेष्ठम् = रत्नेषूत्तमम्, इन्द्रनीलम् = नीलोपलः, पुष्परागः = पुखराजः, इति नाम्ना प्रसिद्धः, तथा वैदूर्यम् = केतुरत्नम्, मध्यमम् = सामान्यस्तरीयम्, स्मृतम् = कथितम् ॥४७॥

हिन्दी—रत्नों में सर्वश्रेष्ठ हीरा होता है। गोमेद और मूंगा रत्नों में निकृष्ट रत्न होते हैं। पन्ना, पुखराज और मोती सर्वश्रेष्ठ रत्न कहलाते हैं। नीलम, पुखराज और लहसुनियाँ सामान्य रत्न कहलाते हैं ॥४७॥

रत्नश्रेष्ठतरमिति। वज्रं रत्नेषु सर्वश्रेष्ठतरं सर्वश्रेष्ठं, गोमेदविद्रुमे नीचे सर्वरत्नाधमे, गारुत्मतं पाचिः माणिक्यं तथा मौक्तिकं श्रेष्ठम्। इन्द्रनीलं पुष्परागः तथा वैदूर्य्यं मध्यमं स्मृतं कथितम् ॥४७॥

रत्नश्रेष्ठो दुर्लभश्च महाद्युतिरहेर्मणिः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—अहेः मणिः महाद्युतिः रत्नश्रेष्ठः च दुर्लभः ॥४८॥

व्याख्या—अहेः = विषधरस्य, मणिः = रत्नम्, महाद्युतिः = अत्यधिककान्तियुक्तम्, रत्नश्रेष्ठः—रत्नेषु = मणिषु, श्रेष्ठः = उत्कृष्टतमः, च = पुनः, दुर्लभः = दुष्प्राप्यो भवति ॥४८॥

हिन्दी—रत्नों में सर्वश्रेष्ठ सर्वाधिक कान्तिसम्पन्न तथा अति दुर्लभ सर्पमणि होता है ॥४८॥

रत्नश्रेष्ठ इति। अहेः सर्पस्य मणिः महाद्युतिः अत्युज्ज्वलः रत्नश्रेष्ठः दुर्लभश्च ॥४८॥

अजालगर्भं सद्वर्णं रेखाविन्दुविवर्जितम्।
सत्कोणं सुप्रभं रत्नं श्रेष्ठं रत्नविदो जगुः ॥ ४९ ॥

अन्वयः—अजालगर्भं सद्वर्णं रेखाविन्दुविवर्जितं सत्कोणं सुप्रभं रत्नं रत्नविदः श्रेष्ठं जगुः ॥ ४९ ॥

व्याख्या—अजालगर्भम् = अन्तर्जालरहितम्, सद्वर्णम् = सुकान्तिसम्पन्नम्, रेखाविन्दुविवर्जितम् = रेखादिहीरकदोषरहितम्, सत्कोणम् = सुष्ठुकोणयुक्तम्, सुप्रभम् = सुकान्तिमयम्, रत्नम् = मणिः, रत्नविदः = रत्नविशेषज्ञः, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टम्, जगुः = कथितवन्तः ॥ ४९ ॥

हिन्दी—जिसके भीतर किसी तरह की जाली न हो, अच्छे रंग का, रेखा एवं विन्दु जैसे रत्नदोषों से रहित, आकर्षक कोणों वाला, अति कान्तियुक्त रत्नों को जौहरियों ने श्रेष्ठ रत्न कहा है ॥ ४९ ॥

अजेति। अजालगर्भं सद्वर्णं रेखेति विन्दुभिश्च विवर्जितं सत्कोणम् उत्तमकोणविशिष्टं सुप्रभं समुज्ज्वलं रत्नं, रत्नविदः रत्नतत्त्वज्ञाः जनाः श्रेष्ठं जगुः गीतवन्तः ॥ ४९ ॥

शर्कराभं दलाभञ्च चिपिटं वर्त्तुलं हि तत्।
वर्णाः प्रभाः सिता रक्ताः पीतकृष्णास्तु रत्नजाः ॥ ५० ॥

अन्वयः—तत् शर्कराभं च दलाभं चिपिटं तथा वर्त्तुलं रत्नजाः वर्णाः प्रभाः सिताः रक्ताः पीतकृष्णाश्च ॥ ५० ॥

व्याख्या—तत् = रत्नम्, शर्कराभम् = शर्कराच्छविः, च = पुनः, दलाभम् = किसलयकान्तिः, चिपिटम् = समरेखः, तथा = तेनैव प्रकारेण, वर्त्तुलम् = चक्राकारम्, रत्नजाः = मणिजाः, वर्णाः = रङ्गाः, प्रभाः = कान्तय, सिताः = शुक्लवर्णाः, रक्ताः = लोहिताः, पीताः = हरिद्राभाः, च = पुनः, कृष्णाः = कृष्णवर्णाः ॥ ५० ॥

हिन्दी—वह रत्न शक्कर एवं किसलय वर्ण का तथा कोई गोल या कोई चपटा होता है। इन रत्नों के वर्ण की कान्ति श्वेत, श्याम, रक्त और पीत होती हैं ॥ ५० ॥

शर्कराभमिति। तत् रत्नं शर्कराभं शर्कराच्छवि, दलाभं पत्रकान्तिः, चिपिटं चिपिटाकारं तथा वर्त्तुलञ्च। रत्नजा मणिजा वर्णाः प्रभाश्च सिताः श्वेताः रक्ताः पीताः कृष्णाश्च ॥ ५० ॥

यथावर्णं यथाच्छायं रत्नं यद् दोषवर्जितम्।
श्रीपुष्टिकीर्त्तिशौर्य्यायुः करमन्यदसत् स्मृतम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यत् रत्नं यथावर्णं यथाच्छायं दोषवर्जितं तत् श्रीपुष्टिकीर्त्तिशौर्यायुःकरम् अन्यद् असत् स्मृतम् ॥ ५१ ॥

व्याख्या—यद्रत्नम् = यन्मणिः, यथावर्णम् = वर्णानुरूपम्, यथाच्छायम् = कान्तियुक्तम्, दोषवर्जितम् = दोपरहितम्, निर्दुष्टम्, तद्रत्नम्, श्रीकीर्तिशौर्य्यायुःकरम्—श्रीकरम् = लक्ष्मीवृद्धिकरम्, पुष्टिकरम् = संवर्द्धनार्थम्, कीर्त्तिकरम् = यशोवर्द्धनार्थम्, शौर्यकरम् = वीरत्वाय, आयुःकरम् = जीवनदायकञ्च, भवति, अन्यत् = एतद्भिन्नम्, असत् = दुष्टः, स्मृतम् = कथितम् ॥ ५१ ॥

हिन्दी—अपने-अपने रंग तथा कान्ति से युक्त तथा दोषमुक्त जो रत्न होता है, वही लक्ष्मी,

पुष्टि, कीर्त्ति, वीरता या आयु बढ़ाने वाला होता है। इससे भिन्न रत्न दुष्ट होता है तथा बुरा फल देने वाला कहा गया है ॥५१ ॥

यथेति! यत् रत्नं यथावर्णं वर्णेषु यथाच्छायं कान्तिषु दोषवर्जितं निर्दोषं तत् श्रीपुष्टिकीर्त्तिशौर्य्यायुःकरं श्रीवृद्धिकरं पुष्टिवर्द्धनं कीर्त्तिकरं शौर्य्यस्य आयुषश्च वर्द्धकम्। अन्यत् तद्भिन्नम् असत् स्मृतम् ॥५१ ॥

वर्णमाक्रमते छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥ ५२ ॥

अन्वयः—छाया वर्णम् आक्रमते, प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥५२ ॥

व्याख्या—छाया = छविः, वर्णम् = रत्नस्वरूपम्, आक्रमते = परिवेष्टयति, प्रभा = तस्य च कान्तिः, वर्णप्रकाशिनी = स्वरूपद्योतिनी भवति ॥५२ ॥

हिन्दी—छाया रत्न की कान्ति को चमकाती है तथा प्रभा उसे प्रकाशित करती है ॥ ५२ ॥

वर्णमिति। छाया कान्तिः वर्णम् आक्रमते उज्ज्वलयति, प्रभा च कान्तिश्च वर्णप्रकाशिनी भवति ॥५२ ॥

पद्मरागस्तु माणिक्यभेदः कोकनदच्छविः ।
न धारयेत् पुत्रकामा नारी वज्रं कदाचन ॥ ५३ ॥

अन्वयः—पद्मरागस्तु मणिक्यभेदः कोकनदच्छविः। पुत्रकामा नारी कदाचन वज्रं न धारयेत्।

व्याख्या—पद्मरागस्तु = शोणरत्नन्तु, माणिक्यभेदः—मणिक्यस्य = शोणरत्नस्य एव, भेदः = प्रकारः, स च रत्नः, कोकनदच्छविः—कोकनदस्य = रक्तोत्पलस्य, छविः = कान्तिः, यस्यासौ, पुत्रकामा = पुत्रार्थिनी नारी, कदाचन = कथमपि, वज्रम् = हीरकम्, न = नहि, धारयेत् = धारणं कुर्यात् ॥५३ ॥

हिन्दी—पद्मराग तो माणिक का ही भेद होता है, इसका रंग लाल कमल की तरह होता है। पुत्र की कामना रखने वाली नारी कभी भी हीरा न धारण करे ॥५३ ॥

पद्मराग इति। पद्मरागस्तु माणिक्यस्य भेदः विशेषः, स च कोकनदच्छविः रक्तोत्पलकान्तिः 'रक्तोत्पलं कोकनदमि'त्यमरः। पुत्रकामा पुत्रार्थिनी नारी कदाचन वज्रं हीरकं न धारयेत् ॥५३ ॥

कालेन हीनं भवति मौक्तिकं विद्रुमं धृतम्।
गुरुत्वात् प्रभया वर्णाद् विस्तारादाश्रयादपि ॥ ५४ ॥

अन्वयः—मौक्तिकं विद्रुमं धृतं कालेन गुरुत्वात् प्रभया वर्णात् विस्तारात् आश्रयात् हीनं भवति।

व्याख्या—मौक्तिकम् = शौक्तिकम्, विद्रुमम् = प्रवालः, धृतम् = परिधारितम्, कालेन = कालक्रमेण, गुरुत्वात् = तोलात्, प्रभया = कान्त्या, वर्णात् = स्वरूपात्, विस्तारात् = आयामात्, आश्रयात् = आलम्बात्, हीनम् = निकृष्टम्, भवति = जायते ॥५४ ॥

हिन्दी—मूंगा और मोती बहुत दिन तक धारण करने पर वजन, कान्ति, रंग, विस्तार और अवलम्बन के कारण खराब हो जाते हैं ॥५४ ॥

कालेनेति। मौक्तिकं विद्रुमञ्च धृतं परिहितं कालेन समयक्रमेण गुरुत्वात्, प्रभया वर्णात्, विस्तारात् तथा आश्रयात् उत्कृष्टाधारात् हीनं भवति ॥५४ ॥

आकृत्या चाधिमूल्यं स्याद्रत्नं यद्दोषवर्जितम्।
नायसोल्लिख्यते रत्नं विना मौक्तिकविद्रुमात्।
पाषाणेनापि च प्राय इति रत्नविदो जगुः ॥५५॥

अन्वयः—यद्रत्नम् आकृत्या दोषवर्जितं तत् अधिमूल्यं स्यात्। मौक्तिकविद्रुमात् विना रत्नं अयसा पाषाणेन च प्रायः न उल्लिख्यते इति रत्नविदः जगुः ॥५५॥

व्याख्या—यद्रत्नम् = यन्मणिः, आकृत्या = स्वरूपेण, दोषवर्जितम् = निर्दुष्टम्, तत् = रत्नम्, अधिमूल्यम् = अधिकमूल्यम्, स्यात् = भवति। किञ्च विद्रुमात् = प्रवालात्, मौक्तिकात् = शौक्तिकात्, विना = विहाय, रत्नम् = मणिः, अयसा = लौहेन, पाषाणेन = उपलेन, च = पुनः, प्रायः = बहुशः, न = नहि, उल्लिख्यते = उद्धृष्यते, इति = एवम्, रत्नविदः = मणिविशेषज्ञाः, जगुः = निगदन्ति स्म ॥५५॥

हिन्दी—दोष रहित रत्न की कीमत वजन के आधार पर अधिक होती है। मूंगे और मोती को छोड़कर अन्य रत्नों पर लोहे और पत्थर से घिसने पर प्रायः लकीर नहीं पड़ती है, ऐसा रत्न के पारखी जौहरियों का कहना है ॥५५॥

आकृत्येति। यत् रत्नम् आकृत्या आकारेण दोषवर्जितं तत् अधिमूल्यम् अधिकमूल्यं स्यात् भवति। किञ्च विद्रुमात् मौक्तिकाच्च विना विद्रुममौक्तिकभिन्नमित्यर्थः, रत्नम् अयसा लौहेन पाषाणेन च प्रायः न उल्लिख्यते उद्धृष्यते इति रत्नविदः जनाः जगुः गायन्ति स्म ॥५५॥

मूल्याधिक्याय भवति यद्रत्नं लघुविस्तृतम्।
गुर्वल्पं हीनमौल्याय स्याद्रत्नं त्वपि सद्गुणम् ॥५६॥

अन्वयः—यद्रत्नं लघुविस्तृतं मूल्याधिक्याय भवति, यच्च गुर्वल्पं तत् सद्गुणम् अपि हीनमौल्याय स्यात् ॥५६॥

व्याख्या—यद्रत्नम् = यन्मणिः, लघु = अल्पभारः, अथ च विस्तृतम् = आकृत्या आयतः, तत् = रत्नम्, मूल्याधिक्याय = महार्घाय, भवति, यच्च गुरु = तौले भाराधिक्यम्, किञ्च आकारे, अल्पम् = क्षुद्रं भवति, तद्रत्नं सद्गुणमपि = उत्कृष्टगुणशालिनमपि, हीनमौल्याय = सुखक्रेयाय, स्यात् = भवेत् ॥५६॥

हिन्दी—उत्कृष्ट गुण वाला रत्न भी तौल में हलका और आकार में बड़ा हो तो वह कीमती होता है और जो तोल में वजनी और आकार में छोटा होता है, वह कम कीमत का होता है ॥५६॥

मूल्याधिक्यायेति। यत् रत्नं लघु अथ च विस्तृतं विशालं तत् मूल्याधिक्याय अधिकमूल्याय भवति। यच्च गुरुभारवत् अथ च अल्पं क्षुद्र तत् सद्गुणम् उत्कृष्टगुणमपि हीनमौल्याय अल्पमूल्यत्वाय स्यात् ॥५६॥

शर्कराभं हीनमौल्यं चिपिटं मध्यमं स्मृतम्।
दलाभं श्रेष्ठमूल्यं स्याद् यथाकामात्तु वर्त्तुलम् ॥५७॥

अन्वयः—शर्कराभं हीनमूल्यं चिपिटं मध्यमं स्मृतम्। दलाभं श्रेष्ठमूल्यं वर्त्तुलं यथाकामात् स्यात् ॥५० ॥

व्याख्या—शर्कराभम् = शार्ककान्तिरत्नम्, हीनमूल्यम् = अल्पमूल्यकं भवति, चिपिटम् = सपाटरत्नम्, मध्यमम् = सामान्यमूल्यकं रत्नम्, स्मृतम् = कथितम्, दलाभम् = किसलयकान्तिरत्नम्, श्रेष्ठमूल्यम् = बहुमूल्यम्, तथा वर्त्तुलम् = गोलाकारं रत्नम्, यथाकामात् = क्रेतुर्विक्रेतुरिच्छावशात्, रत्नस्य मूल्यं स्यात् ॥५७॥

हिन्दी—शक्कर की तरह रंग वाला रत्न कम कीमत का होता है। चिपटा रत्न मध्यम दर्जे का होता है, इसकी कीमत सामान्य होती है, किसलय वर्णी रत्न कीमती होता है तथा गोलाकार रत्न खरीद-बिक्री करने वाले की इच्छा के अनुसार कम या ज्यादा कीमत का होता है ॥५७॥

शर्कराभमिति। शर्कराभं रत्नं हीनमूल्यं चिपिटं रत्नं मध्यमं मध्यममूल्यं स्मृतम्। दलाभं पत्रकान्ति रत्नं श्रेष्ठमूल्यं महामूल्यं तथा वर्त्तुलं यथाकामात् क्रेतुर्विक्रेतुश्च इच्छावशात् मूल्यवत् स्यात् ॥५७॥

न जरां यान्ति रत्नानि विद्रुमं मौक्तिकं विना।
राजदौष्ट्याच्च रत्नानां मूल्यं हीनाधिकं भवेत् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—विद्रुमं मौक्तिकं विना रत्नानि जरां न यान्ति। राजदौष्ट्यात् रत्नानां मूल्यं हीनाधिकं भवेत् ॥५८॥

व्याख्या—विद्रुमम् = प्रवालम्, मौक्तिकञ्च = शौक्तिकञ्च, विना = विहाय, रत्नानि = मणयः, जराम् = पुरातनत्वम्, न = नहि, यान्ति = अवाप्नुवन्ति। राज्ञः = नृपस्य, दौष्ट्यात् = दोषात्, रत्नानाम् = मणीनाम्, मूल्यम् = अर्घः, हीनम् = अल्पम्, अधिकम् = बहुत्वञ्च, भवेत् = स्यात् ॥५८॥

हिन्दी—मूंगा और मोती को छोड़कर शेष रत्नों पर पुराना होने का दोष नहीं होता है। राजा की गलती के कारण रत्नों की कीमत घट या बढ़ जाती है ॥५८॥

नेति। विद्रुमं प्रवालं मौक्तिकञ्च विना विद्रुममौक्तिकभिन्नानीत्यर्थः, रत्नानि जरां वार्द्धक्यं हीनावस्थामित्यर्थः, न यान्ति न प्राप्नुवन्ति। राज्ञः दौष्ट्यात् दोषात् रत्नानां मूल्यं हीनम् अधिकञ्च भवेत् ॥५८॥

मत्स्याहिशङ्खवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः
जायते मौक्तिकं तेषु भूरि शुक्त्युद्भवं स्मृतम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—मौक्तिकं मत्स्याहिशङ्खवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः जायते। तेषु शुक्त्युद्भवं भूरि स्मृतम् ॥५९॥

व्याख्या—मौक्तिकम् = शौक्तिकम्, मत्स्यात् = मीनात्, अहेः = सर्पात्, शङ्खात् = कम्बोजात्, वाराहात् = शूकरात्, वेणुतः = कीचकात्, जीमूतात् = मेघात्, शुक्तितः = मुक्तामातुः, जायते = उत्पन्नो भवति। तेषु = रत्नेषु मध्ये, शुक्त्युद्भवम् = शुक्तिजम्, भूरि = अधिकञ्च, स्मृतम् = कथितम् ॥५९॥

हिन्दी—मछली, साँप, शंख, सूअर, बाँस, मेघ तथा सीप से मोती निकलता है। इसमें अधिकतर सीप से ही मोती निकलता है ॥५९॥

मत्स्येति। मौक्तिकं मत्स्यात्, अहेः सर्पात्, शङ्खात्, वराहात्, वेणुतः वंशात्, जीमूतात् मेघात्, शक्तितश्च जायते, तेषु मध्ये शुक्त्युद्भवं शुक्तिजं भूरि प्रचुरं स्मृतम् ॥५९॥

कृष्णं सितं पीतरक्तं द्विचतुःसप्तकञ्चुकम्।
त्रिपञ्चसप्तावरणमुत्तरोत्तरमुत्तमम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—मौक्तिकं कृष्णं सितं पीतरक्तं द्विचतुःसप्तकञ्चुकं त्रिपञ्चसप्तावरणम् उत्तरोत्तरम् उत्तमम् ॥ ६० ॥

व्याख्या—शुक्तिसम्भवं मौक्तिकम्, कृष्णम् = नीलाभम्, सितम् = भास्वरम्, पीतरक्तम्—पीतम् = हरिद्राभम्, रक्तम् = रक्तवर्णम्, द्विचतुःसप्तकञ्चुकम्—द्विकञ्चुकम् = निर्मोकद्वय-युक्तम्, चतुःकञ्चुकम् = चतुःस्तरः, सप्तकञ्चुकम् = सप्तावरणम्, त्रिपञ्चसप्तावरणम्—त्रिकञ्चुकम् = कञ्चुकत्रययुक्तम्, पञ्चकञ्चुकम् = पञ्चस्तरयुक्तम्, सप्तकञ्चुकम् = सप्तस्तरीयम्, उत्तरोत्तरम् = अनुपूर्वशः, उत्तमम् = उत्कृष्टम् ॥ ६० ॥

हिन्दी—मोती काला, सफेद, पीला एवं लाल रंग वाला; दो, चार या सात परत वाला या तीन, पाँच या सात स्तर वाला क्रमशः एक-दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है ॥ ६० ॥

कृष्णमिति। शुक्त्युद्भवं मौक्तिकं कृष्णं श्यामलं, सितं शुभ्रं, पीतरक्तं पीताभया युक्तलोहितवर्णं द्विचतुःसप्तकञ्चुकं कञ्चुकमावरणविशेषः, द्विकञ्चुकं चतुःकञ्चुकं सप्तकञ्चुकं त्रिपञ्चसप्तावरणं त्रिकञ्चुकं पञ्चकञ्चुकं सप्तकञ्चुकं वा भवति एतेषामुत्तरोत्तरम् उत्तमम् ॥ ६० ॥

कृष्णं सितं क्रमाद्रक्तं पीतन्तु जरठं विदुः।
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं क्रमाच्छुक्त्युद्भवं विदुः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—शुक्त्युद्भवं क्रमात् कृष्णं कनिष्ठं सितं मध्यं रक्तं श्रेष्ठं पीतं जरठं विदुः ॥ ६१ ॥

व्याख्या—शुक्त्युद्भवम् = शौक्तिकम्मुक्ता, क्रमात् = क्रमशः, कृष्णम् = श्यामलम्, कनिष्ठम् = हीनम्, सितम् = श्वेताभम्, मध्यमम् = मध्यस्तरीयम्, रक्तम् = रक्तवर्णम्, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टम्, पीतम् = हरिद्राभम्, जरठम् = वृद्धम्, रत्नविशेषज्ञाः, विदुः = जानन्ति ॥ ६१ ॥

हिन्दी—जौहरियों की जानकारी के अनुसार काले रंग का मोती निचले दर्जे का, सफेद रंग वाला सामान्य, लाल रंग वाला उत्तम तथा पीले रंग वाला पुराना माना गया है ॥ ६१ ॥

कृष्णमिति। शुक्त्युद्भवं शुक्तिजं मौक्तिकं क्रमात् कृष्णं सितं रक्तं पीतं तथा जरठं विदुः जानन्ति मौक्तिकज्ञा इति शेषः। तच्च कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठञ्च क्रमात् विदुः ॥ ६१ ॥

तदेव हि भवेद् वेध्यमवेध्यानीतराणि च।
कुर्वन्ति कृत्रिमं तद्वत् सिंहलद्वीपवासिनः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—तत् एव वेध्यम् इतराणि अवेध्यानि भवेत्। तद्वत् कृत्रिमं सिंहलद्वीपवासिनं कुर्वन्ति ॥ ६२ ॥

व्याख्या—तदेव = शुक्तिजं मौक्तिकमेव, वेध्यम् = वेधनीयम्, इतराणि = तद्भिन्नानि, अवेध्यानि = अच्छेदनानि, भवेत् = स्यात्। तद्वत् = शौक्तिकसदृशम्, कृत्रिमम् = अनैसर्गिकम्, सिंहलद्वीपवासिनः = सैंहलाः, कुर्वन्ति = रचयन्ति ॥ ६२ ॥

हिन्दी—सीप के मोती में ही छेद किया जा सकता है, अन्य मोती में छेद नहीं हो सकता है। सिंहल देशवासी असली मोती के समान नकली मोती बनाते हैं ॥ ६२ ॥

तदेवेति। तदेव मौक्तिकमेव वेध्यं वेधनीयम् इतराणि अन्यानि अवेध्यानि। सिंहलद्वीपवासिनः जनाः तद्वत् यथार्थसदृशं कृत्रिमं मौक्तिकं कुर्वन्ति ॥ ६२ ॥

तत्सन्देहविनाशार्थं मौक्तिकं सुपरीक्षयेत्।
उष्णे सलवणस्नेहे जले निश्युषितं हि तत् ॥ ६३ ॥
व्रीहिभिर्मर्दितं नेयाद् वैवर्ण्यं तदकृत्रिमम्।
श्रेष्ठाभं शुक्तिजं विद्यान्मध्याभं त्वितरद् विदुः ॥ ६४ ॥

अन्वयः—तत्सन्देहविनाशार्थं मौक्तिकं सुपरीक्षयेत्। तत् उष्णे सलवणस्नेहे जले निशि उषितं व्रीहिभिः मर्दितं तत् वैवर्ण्यं न इयात्। तत् श्रेष्ठाभम् अकृत्रिमं शुक्तिजं विद्यात्, मध्याभम् इतरत् विदुः ॥ ६३-६४ ॥

व्याख्या—तत् = तेषु मौक्तिकेषु, सन्देहविनाशार्थम्—सन्देहस्य = संशयस्य, विनाशार्थम् = विघाताय, मौक्तिकम् = मुक्ताम्, सुपरीक्षयेत् = सुष्ठुतया विचारयेत्, तत् = शौक्तिकम्, उष्णे = तप्ते, सलवणस्नेहे = लवणतैलयुक्ते जले, निशि = रात्रौ, उषितम् = निक्षिप्तम्, तत्पश्चात्, व्रीहिभिः = धान्यैः, मर्दितम् = घर्षितम्, तत्, वैवर्ण्यम् = वैरूप्यम्, न = नहि, इयात् = जायेत। तत् = रत्नम्, श्रेष्ठाभम् = उत्कृष्टकान्तिम्, अकृत्रिमम् = नैसर्गिकम्, शुक्तिजम् = शुक्तिसम्भवम्, विद्यात् = ज्ञेयम्, मध्याभम् = सामान्यकान्तिसम्पन्नम्, इतरत् = अन्यत्, विदुः = जानन्ति ॥ ६३-६४ ॥

हिन्दी—संदेह दूर करने के लिए मोती की जाँच ठीक से करनी चाहिए। गर्म पानी में नमक और तेल मिलकार रातभर उसमें छोड़ दे, अगली सुबह उसे उस पानी से निकालकर धान मिलाकर खूब रगड़े। रगड़ने के बाद यदि रंग बदल जाय तो मोती नकली, नहीं तो असली समझना चाहिए। उत्तम कान्ति वाला मोती असली और मध्यम कान्ति वाला नकली मोती होता है ॥ ६३-६४ ॥

तदिति। व्रीहिभिरिति। तेषु सन्देहविनाशार्थं मौक्तिकं सुपरीक्षयेत्। यत् मौक्तिकम् उष्णे उत्तप्ते सलवणस्नेहे लवणतैलसमन्विते जले निशि रात्रौ उषितं निक्षिप्तं पश्चात् व्रीहिभिः धान्यैः मर्दितं सत् वैवर्ण्यं वर्णविकृतिं न इयात् तत् श्रेष्ठाभम् उज्ज्वलप्रभम् अकृत्रिमं शुक्तिजं विद्यात्। मध्याभं मध्यविधप्रभायुक्तम् इतरत् कृत्रिमं विदुः जानन्ति ॥ ६३-६४ ॥

तुलाकल्पितमूल्यं स्याद्रत्नं गोमेदकं विना ॥ ६५ ॥

अन्वयः—गोमेदकं रत्नं विना तुलाकल्पितमूल्यं स्यात् ॥ ६५ ॥

व्याख्या—गोमेदकं रत्नम् = राहुरत्नम्, विना = विहाय, अन्यदखिलं रत्नम्, तुलया = भारानुसारेण, कल्पितम् = उद्भावितम्, मूल्यम् = पण्यः, स्यात् = भवेत् ॥ ६५ ॥

हिन्दी—गोमेद को छोड़कर शेष रत्नों का मूल्य तौल के अनुसार होता है ॥ ६५ ॥

तुलेति। गोमेदकं रत्नं विना अन्यत् रत्नं तुलया तुलादण्डेन कल्पितं मूल्यं यस्य तथाभूतं स्यात् तुलया अन्येषां मूल्यं कल्पनीयमित्यर्थः ॥ ६५ ॥

क्षुमाविंशतिभी रक्ती रत्नानां मौक्तिकं विना।
रक्तित्रयं तु मुक्तायाश्चतुःकृष्णलकं भवेत् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—मौक्तिकं विना रत्नानां क्षुमाविंशतिभिः रक्तिः स्यात्। कृष्णलकैः तु चतुः मुक्तायाः रक्तित्रयं भवेत् ॥ ६६ ॥

व्याख्या—मौक्तिकम् = शौक्तिकम्, विना = विहाय, रत्नानाम् = अन्येषाम्मणीनाम्, क्षुमाविंशतिभिः = विंशतिक्षुगाभिः, रक्तिः = रक्तिका, स्यात् = भवेत्, चतुःकृष्णलकैः = चतुर्भिः परिमाणविशेषैः, मुक्तायाः = मौक्तिकस्य, रक्तित्रयम्, भवेत् = स्यात् ॥ ६६ ॥

हिन्दी—मोती को छोड़कर शेष रत्नों के लिए एक रत्ती बीस जौ की मानी जाती है तथा चार कृष्णलों की तीन रत्ती मोती होता है ॥ ६६ ॥

क्षुमेति। मौक्तिकं विना अन्येषां रत्नानां क्षुमाविंशतिभिः विंशतिक्षुमाभिरित्यर्थः, रक्तिः स्यात्। चतुःकृष्णलकैः चतुर्भिः कृष्णलकैः परिमाणविशेषैः मुक्तायाः रक्तित्रयं भवेत् ॥ ६६ ॥

चतुर्विंशतिभिस्ताभी रत्नटङ्कस्तु रक्तिभिः।
टङ्कैश्चतुर्भिस्तोलः स्यात् स्वर्णविद्रुमयोः सदा ॥ ६७ ॥

अन्वयः—चतुर्विंशतिभिः ताभिः रक्तिभिः रत्नटङ्कः चतुर्भिः टङ्कैः सदा स्वर्णविद्रुमयोः तोलः स्यात् ॥ ६७ ॥

व्याख्या—चतुर्विंशतिभिः = विंशत्यधिकचतसृभिः, ताभिः = पूर्वोक्ताभिः, रक्तिकाभिः = रक्तिकापरिमाणेभ्यः, रत्नटङ्कः = चतुर्माषकात्मकः, चतुर्विंशतिरक्तिकात्मको वा रत्नतोलभेदः, चतुर्भिः = चतुःसंख्यकैः = माषात्मकतोलभेदैः, सदा = सर्वदा, स्वर्णस्य = कनकस्य, विद्रुमस्य = प्रवालस्य च, तोल = भारः, स्यात् = भवेत् ॥ ६७ ॥

हिन्दी—रत्नों को तौलने के लिए चौबीस रत्तियों का एक रत्न होता है। सोने और मूंगे तौलने के लिए चार टङ्कों का एक तोला होता है ॥ ६७ ॥

चतुरिति। चतुर्विंशतिभिः ताभिः रक्तिभिः रत्नटङ्कः भवेदिति शेषः। चतुर्भिः टङ्कैः सदा स्वर्णस्य विद्रुमस्य च तोलः स्यात् ॥ ६७ ॥

एकस्यैव हि वज्रस्य त्वेकरक्तिमितस्य च।
सुविस्तृतदलस्यैव मूल्यं पञ्चसुवर्णकम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—एकरक्तिमितस्य एकस्यैव सुविस्तृतदलस्य वज्रस्य हि मूल्यं पञ्चसुवर्णकम् ॥ ६८ ॥

व्याख्या—एकरक्तिमितस्य = एकरक्तिकापरिमाणस्य, एकस्यैव = एकरक्तिकामात्रपरिमाणस्यैव, सुविस्तृतदलस्य = आयतदलस्य, वज्रस्य = हीरकस्य, मूल्यम् = पणः, पञ्चसुवर्णकम्—सुवर्णानाम् = काञ्चनानाम्, अशीतिरक्तिकस्वर्णानाम्, पञ्चकम् = पञ्चसंख्यकम्, भवति ॥ ६८ ॥

हिन्दी—मोटे दल वाले एक रत्ती के हीरे की कीमत पाँच सोने की अशर्फी होती है। दस माशे वजन की एक अशर्फी होती है ॥ ६८ ॥

एकस्येति। एकरक्तिमितस्य सुविस्तृतदलस्य एकस्यैव वज्रस्य हीरकस्य मूल्यं पञ्चसुवर्णकं सुवर्णानाम् अशीतिरत्तिकस्वर्णानां पञ्चकम् ॥ ६८ ॥

रक्तिकादलविस्ताराच्छ्रेष्ठं पञ्चगुणं यदि।
यथा यथा भवेन्मूल्यं हीनमौल्यं तथा तथा ॥ ६९ ॥

अन्वयः—यदि रक्तिकादलविस्तारात् श्रेष्ठं तदा पञ्चगुणम्। किञ्च यथा यथा न्यूनं तथा तथा हीनमूल्यं भवेत् ॥६९ ॥

व्याख्या—यदि रक्तिकादलविस्तारात्—रक्तिकायाः = गुञ्जायाः, दलात् = छदनात्, विस्तारात् = विशालात्, च, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टम्, हीरकं भवति, तदा तस्य पूर्वोक्तात् पञ्चगुणं मूल्याधिक्यं भवति। किञ्च यथा यथा = येन प्रकारेण क्रमशः, न्यूनम् = गुञ्जापटलविस्तारादल्पं भवति, तथा = तेनैव क्रमेण, हीनमूल्यम् = अल्पमूल्यं भवेत् ॥६९ ॥

हिन्दी—जैसे-जैसे वजन और दल का विस्तार बढ़ता जायेगा, उसी अनुपात में हीरे की कीमत पहले से पाँच गुणा अधिक बढ जायेगी। फिर जैसे-जैसे दल का विस्तार और रत्ती का वजन कम हो जायेगा, हीरे की कीमत भी उसी अनुपात में कम होगी ॥६९ ॥

रक्तिकेति। यदि रक्तिकादलविस्तारात् रक्तिकायाः दलात् विस्ताराच्च श्रेष्ठं वज्रं भवति तदा पञ्चगुणं पूर्वोक्तात् पञ्चगुणं मूल्यं भवति। किञ्च यथा यथा न्यूनं रक्तिकादलविस्तारादिति भावः, तथा हीनमौल्यं मूल्यहानिर्भवेदित्यर्थः ॥६९ ॥

अत्राष्टरक्तिको माषो दशमाषैः सुवर्णकः।
स्वर्णस्य तत् पञ्चमूल्यं राजताशीतिकर्षकम् ॥७० ॥

अन्वयः—अत्र अष्टरक्तिकः माषः, दशमाषः सुवर्णकः, राजताशीतिकर्षकं तत् स्वर्णस्य पञ्चमूल्यम् ॥७० ॥

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् रत्नतोलनविषये, अष्टरक्तिकः = अष्टरक्तिकापरिमाणम्, माषः = धानकः, भवेत्, दशमाषः—दशभिः = दशसंख्याभिः, माषैः = हेमैः, एकः सुवर्णको भवति, राजताशीतिकर्षकम् = अशीतिराजरौप्यम्, स्वर्णस्य = सुवर्णमुद्रायाः, तत् = पूर्वोक्तम्, पञ्चमूल्यम् = पञ्चानां सुवर्णमुद्रानाम्, मूल्यम् = पण्यो भवति ॥७० ॥

हिन्दी—रत्न के तौल में आठ रत्ती का एक माशा होता है, दस माशा की एक सोने की अशरफी होती है और पाँच अशरफी की कीमत अस्सी चाँदी के रुपये भर होती है ॥७० ॥

अत्रेति। अत्र रत्नतोलनविषये अष्टरक्तिकः माषः भवेत्, दशभिः माषैः सुवर्णकः। राजताशीतिकर्षकम् अशीतिकर्षपरिमितरजतं स्वर्णस्य सुवर्णस्य तत् प्रसिद्धं पञ्चमूल्यं पञ्चानां सुवर्णानां मूल्यमित्यर्थः ॥७० ॥

यथा गुरुतरं वज्रं तन्मूल्यं रक्तिवर्गतः।
तृतीयांशविहीनन्तु चिपिटस्य प्रकीर्त्तितम् ॥७१ ॥

अन्वयः—वज्रं यथा गुरुतरं तन्मूल्यं रक्तिवर्गतः, चिपिटस्य तृतीयांशविहीनं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७१ ॥

व्याख्या—वज्रम् = हीरकम्, यथा = यादृशम्, गुरुतरम् = महत्तरम्, तत् = तस्य हीरकस्य, मूल्यम् = अर्घः, रक्तिवर्गतः = रक्तिकापरिमाणतः, भवतीति बोध्यम्, चिपिटस्य = सपाटहीरकस्य, तृतीयांशविहीनम्—तृतीयांशेन = भागत्रयेण, हीनम् = रहितम्, रत्नस्य मूल्यम्, प्रकीर्त्तितम् = कथितम् ॥७१ ॥

हिन्दी—हीरा चाहे जितना भारी हो, उसकी कीमत उसके रत्ती-समूह के अनुसार होगी। चिपटे हीरे की कीमत एक तिहाई कम हो जाती है ॥७१ ॥

यथेति। वज्रं यथा यादृशं गुरुतरं तन्मूल्यं तस्य मूल्यं रक्तिवर्गतः रक्तिगणनया वेदितव्यमिति शेषः, चिपिटस्य चिपिटाकारस्य वज्रस्य मूल्यं तृतीयांशेन विहीनं प्रकीर्त्तितम् ॥७१॥

अर्द्धन्तु शर्कराभस्य चोत्तमं मूल्यमीरितम्।
रक्तिकायाश्च द्वे वज्रे तदर्द्धं मूल्यमर्हतः ॥७२॥

अन्वयः—शर्कराभस्य उत्तमं मूल्यम् अर्द्धम् ईरितम्। द्वे वज्रे रक्तिकायाः तत् अर्द्धं मूल्यम् अर्हतः ॥७२॥

व्याख्या—शर्कराभस्य = सिकताकणकान्त्याः, हीरकस्य, उत्तमं मूल्यम् = उत्कृष्टहीरकमूल्यात्, अर्द्धम् = अर्द्धांशमेव, ईरितम् = प्रोक्तम्। द्वे = उभे, वज्रे = हीरके, रक्तिकायाः = गुञ्जायाः, हेतुना, गुञ्जैकपरिमिते, तत् = तस्य उत्कृष्टहीरकस्य, अर्द्धम् = अर्द्धांशमेव, मूल्यम् = पण्यः, अर्हतः = योग्यः ॥७२॥

हिन्दी—उत्तम हीरे के मूल्य से आधा मूल्य चीनी की तरह आकार वाले हीरे का होता है। दो हीरे यदि एक रत्ती के हों तो दोनों की कीमत उत्कृष्ट हीरे की कीमत की आधी होती है ॥७२॥

अर्द्धमिति। शर्कराभस्य वज्रस्य उत्तमं मूल्यम् अर्द्धम् उत्कृष्टवज्रमूल्यादिति भावः, ईरितं कथितम्। द्वे वज्रे रक्तिकायाः हेतुना एकरक्तिपरिमिते इत्यर्थः, तस्य उत्कृष्टस्य वज्रस्य अर्द्धं मूल्यम् अर्हतः ॥७२॥

तदर्द्धं बहवोऽर्हन्ति मध्या हीना यथा गुणैः।
उत्तमार्घं तदर्द्धं वा हीरका गुणहानतः ॥७३॥

अन्वयः—यथागुणैः मध्याः हीनाः बहवः हीरकाः तदर्द्धम् अर्हन्ति। हीरकाः गुणहानतः उत्तमार्घं तदर्द्धम् वा अर्हन्ति ॥७३॥

व्याख्या—यथागुणैः = गुणानुरूपैः, मध्याः = मध्यमाः, हीनाः = न्यूनाश्च, बहवः = अनेकाः, हीरकाः = वज्रमणयः, तत् = तस्य मूल्यस्य, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, अर्हन्ति = प्राप्तुं योग्याः भवन्ति। हीरकाः = वज्रमणयः, गुणहानतः = विशिष्टगुणह्रासात्, उत्तमार्घम् = उत्कृष्टमूल्यम्, तत् = तस्योत्कृष्टमूल्यस्य, अर्द्धम् = अर्द्धभागमेव, अर्हन्ति = प्राप्तुं योग्याः भवन्ति ॥७३॥

हिन्दी—यदि गुणों के अनुसार साधारण या निकृष्ट बहुत से हीरे एकरत्ती के बराबर हों तो उसकी कीमत उससे भी आधी हो जायेगी। इसी प्रकार गुणहीनता के अनुसार हीरे की कीमत आधी या उससे भी आधी होती है ॥७३॥

तदर्द्धमिति। यथागुणैः उपयुक्तगुणैरित्यर्थः, मध्याः मध्यमाः, हीनाश्च बहवः हीरकाः तदर्द्धं तस्य मूल्यस्य अर्द्धम् अर्हन्ति। हीरकाः गुणहानतः गुणह्रासात् उत्तमार्घम् उत्तममूल्यं तदर्द्धं तस्य उत्तमस्य अर्द्धं वा अर्हन्तीति शेषः ॥७३॥

वर्गरक्तिषु सन्धार्य्यं कलानां नवकं पृथक्।
तथांशपञ्चकं पूर्वं त्रिंशद्भिस्तद्भजेत् ततः ॥७४॥
लब्धं कलासु संयोज्यं कलानां षोडशांशकैः।
[illegible] [illegible] [illegible] यथा ॥७५॥

अन्वयः—वर्गरक्तिषु पृथक् कलानां नवकं तथा अंशपञ्चकं सन्धार्यम्। तत्र पूर्वं त्रिंशद्भिः भजेत्, ततः लब्धं कलासु संयोज्यम्। कलानां षोडशांशकैः मुक्तानां यथा हीनमध्योत्तमं मूल्यं कल्पयेत् ॥७४-७५ ॥

व्याख्या—वर्गरक्तिषु = समद्विहतासु, रक्तिषु = गुञ्जासु, पृथक् = भिन्नम्, कलानां नवकम् = नवकलेत्यर्थः, तथा अंशपञ्चकम् = पञ्चभागम्, सन्धार्यम् = संरक्ष्यम्। तत्र = वर्गरक्तिषु, पूर्वम् = कलानवकम्, त्रिंशद्भिः, भजेत् = विभक्तं कुर्यात्, ततः = तत्पश्चात्, लब्धम् = भागेन प्राप्तम्, कलासु संयोज्यम्। कलानां षोडशांशकैः = पोडशभिः, अंशैः = भागैः, मुक्तानाम् = शौक्तिकानाम्, हीनमध्योत्तमम् = निकृष्टसामान्योत्कृष्टानुसारेण, मूल्यम् = पणः, कल्पयेत् = चिन्तयेत् ॥७४-७५ ॥

हिन्दी—मोती की रत्तियों के वर्ग में प्रत्येक रत्ती की नौ-नौ कला समझनी चाहिए। फिर उन रत्तियों को पाँच गुना करके तीस से भाग दे और जो लब्धि हो, उसे कलाओं में जोड़ दे। फिर उसमें सोलह का भाग दे और जो लब्धि हो, उससे मोती का मूल्य निर्धारित करना चाहिए। अथवा—निकृष्ट, सामान्य या उत्कृष्ट गुणों के अनुसार मोती की कीमत जाननी चाहिए ॥७४-७५ ॥

वर्गेति। लब्धमिति। वर्गरक्तिषु समद्विहतासु रक्तिषु पृथक् पृथक् कलानां नवकं नवकला इत्यर्थः, तथा अंशपञ्चकं सन्धार्य्यं रक्ष्यं, तत्रं पूर्वं कलानवकमित्यर्थः, त्रिंशद्भिः भजेत् विभक्तं कुर्य्यात्। ततः लब्धं विभागलब्धं कलासु संयोज्यम्। कलानां षोडशांशकैः पोडशभिः अंशैः मुक्तानां हीनमध्यमोत्तमानुसारेणेत्यर्थः, मूल्यं कल्पयेत् ॥७४-७५ ॥

सहस्रादधिके मुक्तारक्तिवर्गशते शते।
कलात्रिंशतकं त्यक्त्वा शेषान्मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥७६ ॥

अन्वयः—मुक्तारक्तिवर्गशते सहस्रादधिके शते कलात्रिंशतकं त्यक्त्वा शेषात् मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥७६ ॥

व्याख्या—मुक्तायाः = मौक्तिकस्य, रक्तीनाम् = गुञ्जानाम्, यो वर्गः = समद्विघातः, तस्य, शते = शतगुणिते, तस्मिन्, सहस्रात् = दशशतात्, अधिके = प्रभूते, शते = शतसंख्यके सति, कलानाम् = षोडशचन्द्रांशानाम्, त्रिंशतकम् = त्रिंशदङ्कम्, त्यक्त्वा = विहाय, तस्मात्, शेषात् = अवशिष्टात्, मूल्यम् = पणः, प्रकल्पयेत् = निर्धारयेत् ॥७६ ॥

हिन्दी—मोती तौल में जितनी रत्तियों का हो, उनकी संख्या का परस्पर गुणा करके वर्ग निकाल ले। अर्थात् चार रत्ती होने पर चार से ही गुणा कर सोलह रत्ती का वर्ग हुआ। उसे सौ से गुणा करने पर यदि संख्या हजार से अधिक हो तो उसमें तीस कला घटाकर जो शेष बच जाय, उसी पर उसका मूल्य निर्धारित करे ॥७६ ॥

सहस्रादिति। मुक्तारक्तीनां यो वर्गः समद्विघातः तस्य शते शतगुणिते तस्मिन्नित्यर्थः। सहस्रादधिके शते सति कलानां त्रिंशतकं त्यक्त्वा तस्मादिति भावः, शेषात् अवशिष्टात् मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥७६ ॥

शतादूर्ध्वं रक्तिवर्गाद्ध्रसो विंशतिरक्तिकाः।
प्रतिशतात् तु वज्रस्य सुविस्तृतदलस्य च।

तथैव चिपिटस्यापि विस्तृतस्य च ह्रासयेत् ॥ ७७ ॥
शर्कराभस्य पञ्चाशच्चत्वारिंशच्च वैकतः ॥ ७८ ॥

अन्वयः—ह्रसः सुविस्तृतदलस्य वज्रस्य शतात् रक्तिवर्गात् विंशतिरक्तिकाः विस्तृतस्य चिपिटस्यापि वज्रस्य प्रतिशतात् ऊर्ध्वं पञ्चाशत् रक्तिकाः शर्कराभस्य एकतः पञ्चाशत् वा चत्वारिंशत् रक्तिका ह्रासयेत् ॥ ७७-७८ ॥

व्याख्या—ह्रसः = ह्रासपटुः, सुविस्तृतदलस्य = आयतछदनस्य, वज्रस्य = हीरकस्य, शतात् = शतसंख्यकात्, रक्तिवर्गात्—रक्तीनाम् = गुञ्जानाम्, वर्गात् = समद्विघातात्, विंशतिरक्तिकाः = विंशतिरक्तयः, विस्तृतस्य = विशालस्य, चिपिटस्यापि = सपाटस्यापि, वज्रस्य, प्रतिशतात्, ऊद्ध्र्वम् = उपरिष्टात्, पञ्चाशत् रक्तिकाः = गुञ्जाः, तथा शर्कराभस्य = शर्करातुल्यस्य, वज्रस्य प्रतिशतात्, एकतः = एकस्मात्, चत्वारिंशत् रक्तिका, ह्रासयेत् = ह्रासं कुर्यात् ॥ ७७-७८ ॥

हिन्दी—जो हीरा विशाल दल वाला या चिपटा होते हुए भी आयत दल वाला हो और सौ रत्ती से ऊपर वजन का हो तो प्रति सैकड़ा बीस रत्ती की कीमत घटाकर उसकी कीमत होगी; और शक्कर वाले रंग के हीरे के लिए प्रति सैकड़ा चालीस या पच्चास रत्ती की कीमत घटाकर कीमत होती है ॥ ७७-७८ ॥

शतादिति। शर्कराभस्येति। ह्रसः ह्रासपटुः जनः सुविस्तृतदलस्य वज्रस्य शतात् रक्तिवर्गात् रक्तीनां वर्गात् समभिघातात् ऊद्ध्र्वं विंशतिरक्तिकाः, विस्तृतस्य चिपिटस्य चिपिटाकारस्य वज्रस्य प्रतिशतात् ऊद्ध्र्वं पञ्चाशत् रक्तिकाः तथा शर्कराभस्य शर्करासदृशस्य वज्रस्य प्रतिशतात् एकतः चत्वारिंशत् रक्तिका ह्रासयेत् न्यूनयेत् ॥ ७७-७८ ॥

रत्नं न धारयेत् कृष्णरक्तविन्दुयुतं सदा ॥ ७९ ॥

अन्वयः—कृष्णैः रक्तैश्च विन्दुभिर्युतं रत्नं सदा न धारयेत् ॥ ७९ ॥

व्याख्या—कृष्णैः = श्यामलैः, रक्तैश्च = लोहितैश्च, विन्दुभिः, युक्तम् = विन्दुसमन्वितम्, रत्नम् = मणिः, सदा = सर्वदा, न = नहि, धार्यम् = धारणं कुर्यात् ॥ ७९ ॥

हिन्दी—काले या लाल धब्बे वाले रत्न हमेशा धारण नहीं करना चाहिए ॥ ७९ ॥

रत्नमिति। कृष्णैः श्यामलैः रक्तैश्च विन्दुभिर्युतं रत्नं सदा न धारयेत् ॥ ७९ ॥

गारुत्मतं तूत्तमं चेन्माणिक्यं मूल्यमर्हतः ।
सुवर्णं रक्तिमात्रं चेद् यथा रक्तिस्तथा गुरु ॥ ८० ॥

अन्वयः—रक्तिमात्रं गारुत्मतं माणिक्यञ्च रत्नम् उत्तमं चेत् तदा सुवर्णं मूल्यम् अर्हतः। यथा रक्तिः तथा गुरुः मूल्यं भवेत् ॥ ८० ॥

व्याख्या—रक्तिमात्रम् = गुञ्जापरिमितम्, गारुत्मतम् = हरिन्मणिः, माणिक्यञ्च = शोणरत्नम्, पद्मरागो वा, रत्नम् = मणिः, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, चेत् = यदि, तदा सुवर्णम् = सुवर्णमुद्रैकम्, मूल्यम् = पणः, अर्हतः = भवतः, यथा = यावती, रक्तिः = गुञ्जा, तथा = तादृश एव, गुरुः = अधिकमूल्यो भवति ॥ ८० ॥

हिन्दी—यदि पन्ना और पद्मराग दोनों उत्तम कोटि के हों तो दोनों की कीमत एक जैसी

होती है। एक रत्ती पन्ना या पद्मराग की कीमत एक अशरफी। रत्ती के तौल के अनुसार ही इनकी कीमत निर्धारित की जाती है ॥८० ॥

गारुत्मतमिति। रक्तिमात्रं रक्तिपरिमितं गारुत्मतं माणिक्यञ्च रत्नम् उत्तमं चेत् तदा सुवर्णं मूल्यम् अर्हतः। यथा यावती रक्तिः तथा गुरु मूल्यं भवेदित्यर्थः ॥८० ॥

रक्तिमात्रः पुष्परागो नीलः स्वर्णार्घमर्हतः।
चलत्त्रिसूत्रो वैदूर्य्यश्चोत्तमं मूल्यमर्हति ॥ ८१ ॥

अन्वयः—रक्तिमात्रः पुष्परागः नीलः स्वर्णार्द्धमर्हतः चलत्त्रिसूत्री वैदूर्यः उत्तमं वैदूर्यः उत्तमं मूल्यम् अर्हति ॥८१ ॥

व्याख्या—रक्तिमात्रः = गुञ्जापरिमितः, पुष्परागः = पीतस्फटिकः, नीलः = नीलमणिः, स्वर्णार्द्धमर्हतः—स्वर्णस्य = सुवर्णमुद्रायाः, अर्द्धम् = अर्द्धभागमेकम्, मूल्यम् = अर्थः, अर्हतः = भवतः, चलत्त्रिसूत्रः—चलन्ति = गच्छन्ति, त्रीणि = त्रिसंख्यकानि, सूत्राणि = रेखानि, यस्य तादृशः, वैदूर्यः = केतुरत्नम्, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, मूल्यम् = अर्घः, अर्हति = योग्यो भवति ॥८१ ॥

हिन्दी—एक रत्ती का पुखराज या नीलम की कीमत आधा अशरफी अर्थात् पाँच मासा सोना होती है और जिसमें चलते हुए तीन धागे दिखलाई पड़े, ऐसे वैदूर्यमणि की कीमत ऊँचे दर्जे की होती है ॥८१ ॥

रक्तिमात्र इति। रक्तिमात्रः रक्तिपरिमितः पुष्परागः नीलश्च स्वर्णस्य अर्घं मूल्यम् अर्हतः। चलन्ति त्रीणि सूत्राणि यस्य तादृशः वैदूर्य्यः उत्तमं मूल्यम् अर्हति ॥८१ ॥

प्रवालं तोलकमितं स्वर्णार्द्धं मूल्यमर्हति।
अत्यल्पमूल्यो गोमेदो नोन्मानन्तु यतोऽर्हति ॥ ८२ ॥

अन्वयः—तोलकमितं प्रवालं स्वर्णस्य अर्द्धं मूल्यम् अर्हति। गोमेदः अत्यल्पमूल्यः, यतः उन्मानं मूल्यं न अर्हति ॥८७ ॥

व्याख्या—तोलकमितम् = षण्णवतिरक्तिपरिमाणम्, प्रवालम् = विद्रुमः, स्वर्णस्य = स्वर्णमुद्रायाः, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, मूल्यम् = पण्यः, अर्हति = योग्यो भवति। गोमेदः = राहुरत्नः, अत्यल्पमूल्यः = अत्यन्तस्वल्पमूल्यो भवति, यतः = यस्मात् कारणात्, अस्य गोमेदस्य, उन्मानम् = तोलनम्, न = नहि, अर्हति = योग्यो भवति ॥८२ ॥

हिन्दी—एक तोला मूंगे के वजन की कीमत आधी अशरफी अर्थात् पाँच माशा सोना होती है। गोमेद की कीमत बहुत कम होती है, अतः उसे तौलकर बेचा नहीं जाता ॥८२ ॥

प्रवालमिति। तोलकमितं तोलकपरिमितं प्रवालं स्वर्णस्य अर्द्धं मूल्यम् अर्हति। गोमेदः अत्यल्पमूल्यः, यतः उन्मानं तोलनं न अर्हति ॥८२ ॥

संख्यातः स्वल्परत्नानां मूल्यं स्याद्धीरकाद्विना।
अत्यन्तरमणीयानां दुर्लभानां च कामतः।
भवेन्मूल्यं न मानेन तथातिगुणशालिनाम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—हीरकात् विना स्वल्परत्नानां संख्यातः मूल्यं स्यात्। अत्यन्तरमणीयानां दुर्लभानां च कामतः तथा अतिगुणशालिनां मानेन मूल्यं न भवेत् ॥८३ ॥

व्याख्या—हीरकात् = वज्रमणेः, विना = विहाय, स्वल्परत्नानाम्—स्वल्पानाम् = तुच्छानाम्, रत्नानाम् = मणीनाम्, संख्यातः = गणनां कृत्वा, मूल्यम् = अर्घः, स्यात् = निर्धारितं भवेत्। अत्यन्तरमणीयानाम् = अतिसुरूपाणाम्, च = पुनः, दुर्लभानाम् = दुरधिगमानाम्, कामतः = इच्छानुसारेण, मूल्यं निर्धारितं भवेत्, तथा अतिगुणशालिनाम् = अत्यन्तगुणसम्पन्नानाम्, मानेन = तौलनेन, मूल्यम् = अर्घः, न = नहि, स्यात् = भवेत् ॥ ८३ ॥

हिन्दी—हीरे को छोड़कर क्षुद्र रत्नों की कीमत गणना के आधार पर निर्धारित की जाती है। अत्यन्त सुन्दर और दुर्लभ रत्नों की कीमत इच्छानुसार कम या ज्यादे होती है। लेकिन अत्यन्त गुणशाली रत्नों की कीमत वजन के आधार पर निर्भर नहीं करती ॥ ८३ ॥

संख्यात इति। हीरकात् विना स्वल्पानां क्षुद्राणां रत्नानां संख्यातः गणनया मूल्यं स्यात्। अत्यन्तरमणीयानां दुर्लभानाञ्च रत्नानां कामतः इच्छानुसारेण मूल्यं स्यात्। किञ्च अतिगुणशालिनां रत्नानां मानेन परिमाणेन मूल्यं न भवेत् ॥ ८३ ॥

व्यङ्घ्रिचतुर्दशहतो वर्गो मौक्तिकरक्तिजः।
चतुर्विंशतिभिर्भक्तो लब्धान्मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥ ८४ ॥

अन्वयः—मौक्तिकरक्तिजः वर्गः व्यङ्घ्रिः चतुर्दशहतः चतुर्विंशतिभिः भक्तः लब्धात् मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥ ८४ ॥

व्याख्या—मौक्तिकरक्तिजः = शौक्तिकगुञ्जासम्भवः, वर्गः = समद्विघातः, व्यङ्घ्रिः = पादहीनः, चतुर्दशभिर्हतः—चतुर्दशभिः, हतः = गुणितः, तथा चतुर्विंशतिभिः, भक्तः = विभाजितः सन्, यो लब्धात् = लब्धो भवेत्, तस्मात् लब्धात् = लब्धाङ्कात्, मूल्यम् = अर्घः, प्रकल्पयेत् = चिन्तयेत् ॥ ८४ ॥

हिन्दी—मोती तौल में जितनी रत्तियों का हो, उनकी संख्या को परस्पर गुणा करके वर्ग निकाल ले, चौथाई घटा दे, फिर चौदह से गुणा कर दे। उसे चौबीस से भाग देने पर जो लब्धाङ्क हो, उसी पर मोती का मूल्य निर्धारित करना चाहिए ॥ ८४ ॥

व्यङ्घ्रीति। मौक्तिकरञ्जितः वर्गः व्यङ्घ्रिः पादहीनः चतुर्दशभिर्हतः गुणितः तथा चतुर्विंशतिभिः भक्तः सन् यो लब्धो भवेत् तस्मात् लब्धात् मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥ ८४ ॥

उत्तमन्तु सुवर्णार्घमूनमूनं यथागुणम् ॥ ८५ ॥

अन्वयः—उत्तमं तु सुवर्णार्घमूनमूनं यथागुणम् ॥ ८५ ॥

व्याख्या—उत्तमम् = श्रेष्ठशौक्तिकम्, तु, सुवर्णार्घम् = सुवर्णमुद्रायाः अर्द्धपरिमितम्, मूल्यम् = अर्घः, ऊनम् = ततो न्यूनम्, सामान्यम्, पुनश्च ऊनम् = ततोऽपि अपकृष्टम्, अधमकोटिकम्, यथागुणम् = गुणानुरूपम् ॥ ८५ ॥

हिन्दी—उत्तम मोती की कीमत आधी अशरफी अर्थात् पाँच माशा सोना होती है। उसके बाद गुणानुसार मध्यम तथा अधम होने के कारण उत्तरोत्तर कीमत कम होती है ॥ ८५ ॥

उत्तममिति। उत्तमं मौक्तिकं सुवर्णार्घं स्वर्णमूल्यम्, ऊनं ततः अपकृष्टं मध्यममित्यर्थः, पुनश्च ऊनं ततोऽप्यपकृष्टम्, अधममित्यर्थः, यथागुणं गुणानुसारेण मूल्यवदित्यर्थः ॥ ८५ ॥

रक्तं पीतं वर्त्तुलं चेन्मौक्तिकं चोत्तमं सितम्।
अधमं चिपिटं शर्कराभमन्यत् तु मध्यमम्॥८६॥

अन्वयः—रक्तं पीतं तथा सितं मौक्तिकं वर्त्तुलं चेत् उत्तमम्, चिपिटं च शर्कराभम् अधमम्, अन्यत् तु मध्यमम्॥८६॥

व्याख्या—रक्तम् = लोहितम्, पीतम् = हरिद्राभम्, तथा सितम् = श्वेतवर्णम्, मौक्तिकम् = शौक्तिकम्, वर्त्तुलम् = गोलाकारम्, चेत् = यदि, तदा उत्तमम् = उत्कृष्टम्, चिपिटम् = चिपिटाकारम्, च = पुनः, शर्कराभम् = शार्कककान्तिः, मध्यमम् = निकृष्टम्, अन्यत् = एतद्भिन्नम्, मध्यमम् = सामान्यम्॥८६॥

हिन्दी—लाल, पीला तथा सफेद गोलाकार मोती उत्कृष्ट होता है। चिपटा एवं शक्कर रंग का निकृष्ट तथा इससे भिन्न मोती औसत दर्जे का होता है॥८६॥

रक्तमिति। रक्तं पीतं तथा सितं श्वेतवर्णं मौक्तिकं वर्त्तुलं चेत् उत्तमम्। चिपिटं चिपिटाकारं तथा शर्कराभं मौक्तिकम् अधमम्। अन्यत् एतद्व्यतिरिक्तन्तु मध्यमम्॥८६॥

रत्ने स्वाभाविका दोषाः सन्ति धातुषु कृत्रिमाः।
अतो धातून् सम्परीक्ष्य तन्मूल्यं कल्पयेद् बुधः॥८७॥

अन्वयः—रत्ने स्वाभाविकाः दोषाः सन्ति, धातुषु कृत्रिमाः। अतः धातून् सम्परीक्ष्य बुधः तन्मूल्यं कल्पयेत्॥८७॥

व्याख्या—रत्ने = मणौ, स्वाभाविकाः = नैसर्गिकाः, दोषाः = दुर्गुणाः, सन्ति = भवन्ति, धातुषु = खनिजेषु द्रव्येषु, तु = किन्तु, कृत्रिमाः = कृतकाः, दोषाः भवन्ति। अतः = अस्मात् कारणात्, बुधः = प्राज्ञः, धातून् = खनिजान्, सम्परीक्ष्य = सम्यग्रूपेण परीक्षणं कृत्वा, तत् = तस्य, मूल्यम् = अर्घः, कल्पयेत् = निश्चयं कुर्यात्॥८७॥

हिन्दी—रत्नों में स्वाभाविक दोष होते हैं, किन्तु धातुओं में मिलावट के कारण बनावटी दोष पाये जाते हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति इसे ठीक से जाँच कर ही इसकी कीमत निर्धारित करे॥८७॥

रत्ने इति। रत्ने स्वाभाविकाः अकृत्रिमाः दोषाः सन्ति, किन्तु धातुषु खनिजेषु द्रव्येषु तु कृत्रिमाः सन्तीति शेषः। अतः अस्मात् कारणात् बुधः धातून् सम्परीक्ष्य तेषां मूल्यं कल्पयेत्॥८७॥

सुवर्णं रजतं ताम्रं वङ्गं सीसञ्च रङ्गकम्।
लोहं च धातवः सप्त ह्येषामन्ये तु सङ्कराः॥८८॥

अन्वयः—धातवः सप्त; यथा—सुवर्णं, रजतं, ताम्रं, वङ्गं, सीसं, रङ्गकं लोहं च। एषाम् अन्ये तु सङ्कराः॥८८॥

व्याख्या—धातवः = खनिजाः द्रव्याः, सप्त = सप्तविधम्, यथा सुवर्णम् = कनकम्, रजतम् = रूप्यम्, ताम्रम् = रविप्रियम्, वङ्गम् = पित्तलकम्, सीसम् = सुवर्णारिः, रङ्गकम् = त्रपुः, लोहम् = अयस्कम्। एषाम् = एतेषाम्, अन्ये = भिन्ने, सङ्कराः = मिश्राः भवन्ति॥८८॥

हिन्दी—सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, सीसा, राँगा और लोहा—ये सात शुद्ध धातु हैं। इनसे भिन्न इनकी मिलावट से बनी संकर जाति की धातु कहलाती है॥८८॥

धातूनाह—**सुवर्णमिति**। धातवः सप्त; यथा सुवर्णं, रजतं, ताम्रं, वङ्गं, सीसं, रङ्गकं लोहञ्च। अन्ये एतद्व्यतिरक्तास्तु सङ्कराः मिश्राः॥८८॥

यथापूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात् स्वर्णं श्रेष्ठतरं मतम्।
वङ्गताम्रभवं कांस्यं पित्तलं ताम्ररङ्गजम्॥८९॥

अन्वयः—यथापूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात्, स्वर्णं तु श्रेष्ठतरं मतम्। कांस्यं वङ्गताम्रभवं पित्तलं ताम्ररङ्गकम्॥८९॥

व्याख्या—यथापूर्वम्=पूर्वानुक्रमेण, तु=किन्तु, श्रेष्ठम्=उत्कृष्टम्, स्यात्=भवेत्, स्वर्णम्=कनकम्, तु, श्रेष्ठतरम्=उत्कृष्टतरम्, मतम्=मान्यम्। कांस्यम्=ताम्रार्द्धम्, वङ्गताम्रभवम्=वङ्गताम्राभ्यां मिश्राभ्यां समुत्पन्नम्, पित्तलम्=पीतलकम्, ताम्ररङ्गाभ्यां मिश्राभ्यां जातमिति॥८९॥

हिन्दी—पूर्ववर्णित सात धातुएँ अन्तिम लोहा से पूर्वानुक्रम में एक-दूसरे से श्रेष्ठ हैं। इनमें सोना सर्वश्रेष्ठ धातु मानी जाती है। वंग एवं कांसे के मिश्रण से ताँबा तथा ताँबा एवं राँगा के मेल से पित्तल बनता है॥८९॥

यथापूर्वमिति। यथापूर्वम् एषां पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठं स्यात्, स्वर्णन्तु श्रेष्ठतरं मतम्। कांस्यं वङ्गताम्रभवं वङ्गताम्राभ्यां मिश्राभ्यां जातम्। किञ्च पित्तलं ताम्ररङ्गजं ताम्ररङ्गाभ्यां मिश्राभ्याम् उत्पन्नमित्यर्थः॥८९॥

मानसममपि स्वर्णं तनु स्यात् पृथुलाः परे॥९०॥

अन्वयः—स्वर्णं मानसमं तनु स्यात्, परे पृथुलाः स्युः॥९०॥

व्याख्या—स्वर्णम्=कनकम्, मानेन=परिमाणेन, समम्=समानमपि, तनु=अत्यल्पम्, स्यात्=भवेत्, परे=अपरे धातवः, कनकतुल्यपरिमाणा अपि, पृथुलाः=स्थूलाः, स्युः=भवेयुरिति॥९०॥

हिन्दी—तौल में बराबर होने के बावजूद अन्य धातूओं की अपेक्षा सोना पतला होता है और सोने की अपेक्षा तौल में बराबर होने पर भी अन्य धातुएँ मोटी होती हैं॥९०॥

मानसममिति। स्वर्णं मानेन परिमाणेन समं तुल्यमपि तनु स्वल्पं स्यात् अन्यापेक्षयेति शेषः, परे अन्ये धातवः स्वर्णसमपरिमाणा अपि पृथुलाः स्थूलाः स्युः स्वर्णापेक्षयेति भावः॥९०॥

एकच्छिद्रसमाकृष्टे समखण्डे द्वयोर्यदा।
धातोः सूत्रं मानसमं निर्दुष्टस्य भवेत् तदा॥९१॥

अन्वयः—यदा द्वयोः समे खण्डे एकेन छिद्रेण समाकृष्टो भवतः, तदा निर्दुष्टस्य धातोः सूत्रं मानसमं भवेत्॥९१॥

व्याख्या—यदा=यस्मिन् काले, द्वयोः=उभयोः, धात्वोः, समे=समाने, खण्डे=शकले, एकेन=अद्वितीयेन, छिद्रेण=विवरेण, समाकृष्टे=समानभावेन, आकृष्टे=बलाद्बहिर्निष्कासने, भवतः=संयातः, तदा=तस्मिन् काले, निर्दुष्टस्य=दोषरहितस्य, धातोः=खनिजस्य द्रव्यस्य, सूत्रम्=तारः तन्तुर्वा, मानसमम्—मानेन=परिमाणेन, समम्=समानम्, भवेत्=स्यात्॥९१॥

हिन्दी—जब दो धातुओं के दो समान टुकड़ों को एक छिद्र में डालकर तार खींचा जाय तो यदि शुद्ध धातु होगी तो उसके तार भी मान में बराबर ही होंगे ॥ ९१ ॥

एकेति। यदा द्वयोः धात्वोः समे तुल्ये खण्डे एकेन छिद्रेण समाकृष्टे भवतः, तदा निर्दुष्टस्य दोषरहितस्य धातोः सूत्रं मानसमं परिमाणेन तुल्यं भवेत् ॥ ९१ ॥

यन्त्रशस्त्रास्त्ररूपं यन्महामूल्यं भवेदयः ।
रजतं षोडशगुणं भवेत् स्वर्णस्य मूल्यकम् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—यन्त्रशस्त्रास्त्ररूपं यत् अयः महामूल्यं भवेत् । किञ्च स्वर्णस्य मूल्यकं षोडशगुणं रजतं भवेत् ॥ ९३ ॥

व्याख्या—यन्त्ररूपम् = उपकरणस्वरूपम्, शस्त्रास्त्ररूपम् = आयुधस्वरूपम्, यद्, अयः = लौहः, तत्, महामूल्यम् = महार्घम्, भवेत् = स्यात् । किञ्च, स्वर्णस्य = कनकस्य, मूल्यकम् = पणः, षोडशगुणमधिकम्, रजतम् = रूप्यम्, भवेत् = स्यात् ॥ ९२ ॥

हिन्दी—यंत्र तथा आयुध निर्माण में लगे लोहे की कीमत बहुत अधिक बढ जाती है। चाँदी से सोलह गुने अधिक सोने की कीमत होती है ॥ ९२ ॥

यन्त्रेति। यन्त्ररूपं शस्त्ररूपञ्च अयः लोहं महामूल्यं महार्घं भवेत् । किञ्च स्वर्णस्य मूल्यकं षोडशगुणं रजतं भवेत् ॥ ९२ ॥

ताम्रं रजतमूल्यं स्यात् प्रायोऽशीतिगुणं तथा ।
ताम्राधिकं सार्द्धगुणं वङ्गं वङ्गात् तथा परे ॥ ९३ ॥
रङ्गसीसे द्वित्रिगुणे ताम्राल्लोहन्तु षड्गुणम् ।
मूल्यमेतद्विशिष्टन्तु ह्युक्तं प्राङ्मूल्यकल्पनम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—प्रायः अशीतिगुणं ताम्रं रजतमूल्यं स्यात् । सार्द्धगुणं वङ्गं ताम्राधिकं तथा परे वङ्गात् रङ्गसीसे ताम्रात् द्वित्रिगुणे लोहं तु ताम्रात् षड्गुणम् । एतत् मूल्यं विशिष्टं, हि प्राक् मूल्यकल्पनं उक्तम् ॥ ९३-९४ ॥

व्याख्या—प्रायः = अनेकशः, अशीतिगुणम् = रजतापेक्षयाऽशीतिगुणान्वितम्, ताम्रम् = मुनिपित्तलम्, रजतस्य = रूप्यस्य, मूल्यम् = अर्घः, स्यात् = भवेत् । सार्द्धगुणम् = अर्द्धसहितैकगुणितम्, वङ्गम् = त्रपुः ताम्राधिकम्—ताम्रस्य = मुनिपित्तलस्य, अधिकम् = प्रचुरम्, मूल्यमिति । तथा = तेनैव प्रकारेण, परे = अन्ये, वङ्गात् = त्रपोः, सार्द्धैकगुणितात् मूल्यवन्त इति शेषः, रङ्गसीसे—रङ्गम् = वङ्गम्, सीसञ्च = सीसकञ्च, ताम्रात् = मुनिपित्तलात्, द्वित्रिगुणे, क्रमेण = क्रमशः, तद्यथा—रङ्गं ताम्रस्य द्विगुणम्, सीसं ताम्रस्य त्रिगुणमिति । लौहम् = अयस्कम्, तु, ताम्रात् षड्गुणम् = षड्गुणाधिक्यम्, एतत् मूल्यम्, विशिष्टम् = प्रसिद्धम्, उक्तम् । हि = यतः, प्राक् = पूर्वम्, मूल्यस्य = अर्घस्य, कल्पनम् = चिन्तनम्, उक्तम् = कथितम् ॥ ९३-९४ ॥

हिन्दी—ताँबे से चाँदी की कीमत अस्सी गुणा अधिक होती है। राँगे से डेढ़ गुणा अधिक ताँबे की कीमत होती है और वंग से अन्य राँगा तथा सीसा क्रमशः ताँबे से दुगुना एवं तिगुना मिलते हैं और लोहा छः गुना मिलते हैं। यह कीमत प्रसिद्ध है, क्योंकि पहले से ही इनकी कीमतों का वर्णन किया जा चुका है ॥ ८३-८४ ॥

ताम्रमिति। रङ्गेति। प्रायः बाहुल्येन अशीतिगुणं रजतापेक्षयेति शेषः, ताम्रं रजतस्य मूल्यं स्यात्। सार्द्धगुणम् अर्द्धसहितैकगुणितं वङ्गं ताम्राधिकं ताम्रस्य अधिकं मूल्यमित्यर्थः। तथा परे अन्ये धातवः वङ्गात् सार्द्धैकगुणितात् मूल्यवन्त इति शेषः। रङ्गसीसे रङ्गं सीसञ्चेत्यर्थः, ताम्रात् द्वित्रिगुणे क्रमेण रङ्गं ताम्रस्य द्विगुणं सीसं ताम्रस्य त्रिगुणं ताम्रेण सममिति भावः। लौहन्तु षड्गुणं ताम्रादिति शेषः, षड्गुणं लौहम् एकगुणेन ताम्रेण सममिति भावः। एतत् मूल्यं विशिष्टं विशेषेण उक्तं हि यतः प्राक् पूर्वं मूल्यकल्पनम् उक्तम् ॥९३-९४॥

सुशृङ्गवर्णा सुदुघा बहुदुग्धा सुवत्सका।
तरुण्यल्पा वा महती मूल्याधिक्याय गौर्भवेत्॥ ९५॥

अन्वयः—सुशृङ्गवर्णा सुदुघा बहुदुग्धा सुवत्सका तरुणी अल्पा वा महती गौः मूल्याधिक्याय भवेत् ॥९५॥

व्याख्या—सुशृङ्गवर्णा—सुष्ठुविषाणा, सुवर्णा = रुचिरवर्णका, सुदुघा = सहजदोहना, बहुदुग्धा = बहुक्षीरा, सुवत्सका = सुवत्सा, तरुणी = युवा, अल्पा = अल्पशरीरा, वा = अथवा, महती = विशिष्टा, गौः = धेनुः, मूल्याधिक्याय = अधिकमूल्याय, भवेत् = स्यात् ॥९५॥

हिन्दी—सुन्दर सींग, रुचिकर रंग, दूहने में आसान, अधिक दूध देने वाली, सुन्दर बछड़े वाली, छोटी या बड़ी गाय की कीमत अधिक होती है ॥९५॥

सुशृङ्गेति। सुशृङ्गवर्णा शोभनशृङ्गा सुवर्णा सुदुघा अक्लेशदोहना बहुदुग्धा समधिकदुग्धवती सुवत्सका तरुणी अल्पा वा महती गौः मूल्याधिक्याय अधिकमूल्याय भवेत् ॥९५॥

पीतवत्सा प्रष्ठदुग्धा तन्मूल्यं राजतं पलम्।
अजायाश्च गवार्द्धं स्यान्मेष्या मूल्यमजार्द्धकम्॥ ९६॥

अन्वयः—पीतवत्सा प्रष्ठदुग्धा तत् मूल्यं पलं राजतम्, अजायाः च मूल्यं गवार्द्धं, मेष्याः मूल्यम् अजार्द्धकं स्यात् ॥९६॥

व्याख्या—पीतवत्सा = हरिद्राभवत्सवती, प्रष्ठः = प्रशंसनीयः, दुग्धा = क्षीरदा, गौः, चेत् = यदि, तदा तत् = तस्याः, मूल्यम् = अर्घः, पलम् = चतुस्तोलकम्, राजतम् = रूप्यम्, भवति, अजायाः = छाग्याः, मूल्यम् = पणः, गवार्द्धम् = धेनुमूल्यार्द्धं भवति, तथा मेष्याः मूल्यम् = अर्घः, अजार्द्धकम् = अजामूल्यस्य अर्द्धकं भवति ॥९६॥

हिन्दी—पीले रंग के बछड़े वाली गौ यदि अच्छा दूध देने वाली हो तो उसकी कीमत चार तोला चाँदी होती है और बकरी की कीमत गाय की कीमत की आधी होती है तथा भेड़ी की कीमत बकरी की आधी होती है ॥९६॥

पीतेति। पीतवत्सा पीतवर्णवत्सवती गौः प्रष्ठदुग्धा प्रशंसनीयदुग्धा चेत् तदा तस्या मूल्यं राजतं पलं पलपरिमितरजतम्। अजायाः छाग्याः मूल्यं गवार्द्धं गोमूल्यार्द्धं तथा मेष्या मूल्यम् अजाया मूल्यार्द्धकम् ॥९६॥

दृढस्य युद्धशीलस्य पलं मेषस्य राजतम्।
दश वाष्टौ पलं मूल्यं राजतं तूत्तमं गवाम्॥ ९७॥

अन्वयः—दृढस्य युद्धशीलस्य मेषस्य मूल्यं पलं राजतं, गवां तु उत्तमं मूल्यं दश वा अष्टौ राजतं पलम् ॥ ९७ ॥

व्याख्या—दृढस्य = सबलाङ्गस्य, युद्धशीलस्य = युयुत्सोः, मेषस्य = एडकस्य, मूल्यम् = अर्घः, पलम् = चतुस्तोलकम्, राजतम् = रूप्यम्, गवाम् = धेनूनाम्, तु = किन्तु, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, मूल्यम् = अर्घः, दश, वा = अथवा, अष्टौ, राजतं = रौप्यम्, पलं भवेत् ॥ ९७ ॥

हिन्दी—मजबूत कद-काठी के लड़ाकू भेड़े की कीमत चार तोला चाँदी होती है और गाय का उत्तम मूल्य दस या आठ पल चाँदी हैं ॥ ९७ ॥

दृढस्येति। दृढस्य समर्थस्य पुष्टदेहस्येत्यर्थः, युद्धशीलस्य मेषस्य मूल्यं राजतं पलम्। गवान्तु उत्तमं मूल्यं दश वा अष्टौ राजतं पलम् ॥ ९७ ॥

पलं मेष्या अवेश्चापि राजतं मूल्यमुत्तमम्।
गवां समं सार्द्धगुणं महिष्या मूल्यमुत्तमम् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—मेष्याः अवेश्चापि उत्तमं मूल्यं राजतं पलम्। महिष्याः उत्तमं मूल्यं सार्द्धगुणं गवां समम् ॥ ९८ ॥

व्याख्या—मेष्याः = एडकायाः, अवेश्चापि = मेषस्यापि, उत्तमम् = उत्कृष्टम्, मूल्यम् = अर्घः, राजतम् = रजतसम्भवम्, पलम्, महिष्याः = मन्दगमनायाः, उत्तमं मूल्यम्, सार्द्धगुणम् = अर्द्धैकगुणितम्, गवाम् = धेनूनाम्, समम् = तुल्यम्, भवति ॥ ९८ ॥

हिन्दी—भेंड या भेड़ी का उत्तम मूल्य एक पल चाँदी है। भैंस का उत्तम मूल्य गाय के समान या उससे डेढ़ गुना अधिक होता है ॥ ९८ ॥

पलमिति। मेष्याः अवेः मेषस्य च उत्तमं मूल्यं राजतं पलम्। महिष्याः उत्तमं मूल्यं सार्द्धगुणं सार्द्धैकुगुणितं गवां समं मूल्यसममित्यर्थः ॥ ९८ ॥

सुश्रृङ्गवर्णबलिनो वोढुः शीघ्रगमस्य च।
अष्टतालवृषस्यैव मूल्यं षष्टिपलं स्मृतम् ॥ ९९ ॥

अन्वयः—सुश्रृङ्गवर्णबलिनः वोढुः शीघ्रगमस्य अष्टतालवृषस्य मूल्यं षष्टिपलं स्मृतम् ॥ ९९ ॥

व्याख्या—सुश्रृङ्गवर्णबलिनः—सुश्रृङ्गस्य = सुष्ठुविषाणस्य, सुवर्णस्य = रुचिकरस्वरूपस्य, बलिनः = शक्तिशालिनः, वोढुः = वहनशीलस्य, शीघ्रगमस्य = त्वरितगामिनः, अष्टतालस्य = एतत्परिमितस्य, वृषस्य = वृषभस्य, मूल्यम् = अर्घः, षष्टिपलम् = पलषष्टिपरिमितम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ९९ ॥

हिन्दी—सुन्दर सींग वाला, अच्छे रंग का, शक्तिशाली, बोझा ढोने में समर्थ, जल्द चलने वाला तथा आठ ताल अर्थात् चार हाथ लम्बे बैल की कीमत ६० पल चाँदी होती है ॥ ९९ ॥

सुश्रृङ्गेति। सुश्रृङ्गस्य सुवर्णस्य बलिनः वोढुः वहनक्षमस्य शीघ्रगमस्य शीघ्रगामिनः अष्टतालवृषस्य मूल्यं षष्टिपलं स्मृतं कथितम् ॥ ९९ ॥

महिषस्योत्तमं मूल्यं सप्त चाष्टौ पलानि च।
द्वित्रिचतुःसहस्रं वा मूल्यं श्रेष्ठं गजाश्वयोः ॥ १०० ॥

अन्वयः—महिषस्य उत्तमं मूल्यं सप्त च अष्टौ पलानि। गजाश्वयोः द्वित्रिचतुःसहस्रं वा श्रेष्ठं मूल्यम् ॥ १०० ॥

व्याख्या—महिषस्य = सैरिभस्य, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, मूल्यम् = अर्घः, सप्त, च = अथवा, अष्टौ पलानि भवन्ति, गजाश्वयोः—गजस्य = हस्तिनः, अश्वस्य = घोटकस्य, च, द्विसहस्रम् = विंशतिशतम्, त्रिसहस्रम् = त्रिंशच्छतम्, चतुःसहस्रम् = चत्वारिंशच्छतम्, वा = अथवा, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टम्, मूल्यं भवति ॥ १०० ॥

हिन्दी—भैंस का उत्कृष्ट मूल्य सात या आठ पल चाँदी होता है। हाथी और घोड़े का श्रेष्ठ मूल्य दो, तीन या चार हजार चाँदी के सिक्के हैं ॥ १०० ॥

महिषस्येति। महिषस्य उत्तमं मूल्यं सप्त अष्टौ च पलानि, चशब्दो विकल्पार्थः। गजाश्वयोः गजस्य अश्वस्य च द्विसहस्रं त्रिसहस्रं चतुःसहस्रं वा श्रेष्ठं मूल्यं गुणानुसारेण वेदितव्यमिति शेषः ॥ १०० ॥

उष्ट्रस्य माहिषसमं मूल्यमुत्तममीरितम् ॥ १०१ ॥

अन्वयः—उष्ट्रस्य उत्तमं मूल्यं माहिषसमम् ईरितम् ॥ १०१ ॥

व्याख्या—उष्ट्रस्य = दासेरकस्य, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, मूल्यम् = पण्यः, माहिषेण = महाक्षीरेण, समम् = तुल्यम्, ईरितम् = निगदितम् ॥ १०१ ॥

हिन्दी—ऊँट का उत्तम मूल्य भैंस के उत्तम मूल्य के बराबर होता है ॥ १०१ ॥

उष्ट्रस्येति। उष्ट्रस्य उत्तमं मूल्यं माहिषेण महिषमूल्येन समम् ईरितं कथितम् ॥ १०१ ॥

योजनानां शतं गन्ता चैकेनाह्नाश्व उत्तमः।
मूल्यं तस्य सुवर्णानां श्रेष्ठं पञ्चशतानि हि ॥ १०२ ॥

अन्वयः—एकेन अह्ना योजनानां शतं गन्ता अश्वः उत्तमः। तस्य उत्तमं मूल्यम् सुवर्णानां पञ्चशतानि हि ॥ १०२ ॥

व्याख्या—एकेन = एकमात्रेण, अह्ना = दिनेन, योजनानाम् = चतुक्रोशात्मकानाम्, शतम् = शतसंज्ञकं, गन्ता = गमनशक्ता, अश्वः = घोटकः, उत्तमः = उत्कृष्टो भवति, तस्य उत्तमम् = श्रेष्ठम्, मूल्यम् = अर्घः, सुवर्णानाम् = स्वर्णमुद्राणाम्, पञ्चशतानि, हि = इति निश्चयेन भवति ॥ १०२ ॥

हिन्दी—एक दिन में चार सौ कोस की दूरी तय करने वाला घोड़ा उत्तम होता है। उसका श्रेष्ठ मूल्य पाँच सौ अशरफी होता है ॥ १०२ ॥

योजनानामिति। एकेन अह्ना दिवसेन योजनानां शतं गन्ता गन्तुं समर्थः अश्वः उत्तमः, सुवर्णानां पञ्चशतानि तस्य श्रेष्ठं मूल्यं हि, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ १०२ ॥

त्रिंशद्योजनगन्ता वै उष्ट्रः श्रेष्ठस्तु तस्य वै।
पलानां तु शतं मूल्यं राजतं परिकीर्त्तितम् ॥ १०३ ॥

अन्वयः—यः उष्ट्रः त्रिंशद्योजनगन्ता सः श्रेष्ठः। तस्य मूल्यं पलानां राजतं शतं परिकीर्तितम् ॥ १०३ ॥

व्याख्या—यः उष्ट्रः = कमेलकः, त्रिंशद्योजनगन्ता = एकस्मिन् दिने त्रिंशद्योजनपर्यन्तं गन्तुं समर्थः, सः = असौ, श्रेष्ठः = उत्कृष्टः। तस्य = उष्ट्रस्य, मूल्यम् = पण्यः, पलानाम् =

तोलकानाम्, राजतम् = रूप्यकम्, शतम् = शतसंख्यकम्, पलम्, परिकीर्त्तितम् = कथितम् ॥ १०३ ॥

हिन्दी—एक दिन में तीस योजन अर्थात् (१ योजन = ४कोश) १२० कोस चलने वाला ऊँट श्रेष्ठ होता है। इसकी कीमत एक सौ पल चाँदी हैं। (एक पल = चार तोला चाँदी) ॥ १०३ ॥

त्रिंशदिति। यः उष्ट्रः त्रिंशद्योजनगन्ता स श्रेष्ठः, तस्य मूल्यं पलानां राजतं शतं शतपलपरिमितराजतमित्यर्थः परिकीर्त्तितम् ॥ १०३ ॥

बलेनोच्चेन युद्धेन मदेनाप्रतिमो गजः।
यस्तस्य मूल्यं निष्काणां द्विसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०४ ॥

अन्वयः—यः गजः उच्चेन बलेन युद्धेन मदेन अप्रतिमः। तस्य मूल्यं निष्काणां द्विसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०४ ॥

व्याख्या—यः गजः = हस्ती, उच्चेन = महता, बलेन = शक्त्या, युद्धेन = समरेण, मदेन = दर्पेण, अप्रतिमः = अतुल्यः। तस्य = गजस्य, मूल्यम् = अर्घः, निष्काणाम् = स्वर्णमुद्राणाम्, वा कर्षाणाम्, द्विसहस्रम् = विंशतिशतम्, भवति ॥ १०४ ॥

हिन्दी—जो हाथी अति शक्तिशाली, जुझारु, मदमस्त एवं अप्रतिम (अतुलनीय) होता है। उसकी कीमत दो हजार स्वर्णमुद्रा होती है ॥ १०४ ॥

बलेनेति। यः गजः उच्चेन महता बलेन युद्धेन मदेन च अप्रतिमः असदृशः, तस्य निष्काणां द्विसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०४ ॥

चतुर्माषमितं स्वर्णं निष्क इत्यभिधीयते।
पञ्चरक्तिमितो माषो गजमौल्ये प्रकीर्त्तितः ॥ १०५ ॥

अन्वयः—चतुर्माषमितं स्वर्णं निष्क इति अभिधीयते। गजमौल्ये पञ्चरक्तिमितः माषः प्रकीर्तितः ॥ १०५ ॥

व्याख्या—चतुर्भिः = तुरीयैः, माषैः = अष्टगुञ्जामाशैः, मितम् = परिमितम्, स्वर्णम् = सुवर्णम्, निष्कः = स्वर्णमुद्रैका, इति = इत्थम्, अभिधीयते = कथ्यते। गजमौल्ये—गजस्य = हस्तिनः, मौल्यै = पण्यविषये, पञ्चरक्तिमितः—पञ्चानाम् = पञ्चसंख्यकानाम्, रक्तीनाम् = गुञ्जानाम्, मितः = परिमितः, वस्तुविशेषः, माषः = माषकः धानको वेति, प्रकीर्त्तितः = ख्यातः ॥ १०५ ॥

हिन्दी—चार माशा सोने का एक सिक्का होता है। हाथी की कीमत निर्धारित करने में पाँच रत्ती का एक माशा होता है ॥ १०५ ॥

चतुरिति। चतुर्भिः माषैः मितं परिमितं स्वर्णं निष्क इति अभिधीयते कथ्यते, गजमौल्ये हस्तिमूल्यविषये पञ्चरक्तिमितः पञ्चरक्तिपरिमाणः वस्तुविशेषः माषः प्रकीर्त्तितः कथितः ॥ १०५ ॥

रत्नभूतन्तु तत्तत् स्याद् यद्यदप्रतिमं भुवि।
यथादेशं यथाकालं मूल्यं सर्वस्य कल्पयेत् ॥ १०६ ॥

अन्वयः—भुवि यद्यद् अप्रतिमं स्यात् तत्तद्रत्नभूतम्। अतः यथादेशं यथाकालं सर्वस्य मूल्यं कल्पयेत् ॥ १०६ ॥

व्याख्या—भुवि = संसारे, यत् यत् = यत्किञ्चिद्वस्तु, अप्रतिमम् = अतुल्यम्, स्यात् = भवेत्, तत्तद् = तद्वस्तु, रत्नभूतम् = रत्नस्वरूपं भवति। अतः यथादेशम् = देशानुसारेण, यथाकालम् = कालानुसारेण, सर्वस्य = सकलस्य, वस्तुनः, मूल्यम् = अर्घः, कल्पयेत् = निर्धारयेत् ॥ १०६ ॥

हिन्दी—संसार में जो भी वस्तु अतुलनीय है, वह रत्नस्वरूप है। अतः उनकी कीमत देश और काल के अनुसार ही निर्धारित करनी चाहिए ॥ १०६ ॥

रत्नभूतमिति। भुवि पृथिव्यां यत् यत् वस्तु अप्रतिमम् असदृशम् असाधारणमित्यर्थः; तत् तत् रत्नभूतं रत्नस्वरूपम्। अतः यथादेशं देशानुसारेण यथाकालं कालानुसारेण सर्वस्य रत्नभूतस्य वस्तुनः मूल्यं कल्पयेत् ॥ १०६ ॥

न मूल्यं गुणहीनस्य व्यवहाराक्षमस्य च।
नीचमध्योत्तमत्वन्तु सर्वस्मिन् मूल्यकल्पने।
चिन्तनीयं बुधैर्लोकाद् वस्तुजातस्य सर्वदा ॥ १०७ ॥

अन्वयः—गुणहीनस्य च व्यवहाराक्षमस्य मूल्यं न। किञ्च बुधैः सर्वस्मिन् मूल्यकल्पने लोकात् वस्तुजातस्य नीचमध्योत्तमत्वं सर्वदा चिन्तनीयम् ॥ १०७ ॥

व्याख्या– गुणहीनस्य = निर्गुणस्य, च = पुनः, व्यवहाराक्षमस्य– व्यवहारे = लोकाचारे, अक्षमस्य = असमर्थस्य, वस्तुनः = वस्तुजातस्य, मूल्यम् = अर्घः, न = न किमपि भवति। किञ्च बुधैः = विज्ञैः, सर्वस्मिन् = अखिलवस्तुनि, मूल्यकल्पने = मूल्यनिर्धारणे, लोकात् = लोकव्यवहारात्, वस्तुजातस्य = विभिन्नपदार्थस्य, नीचमध्योत्तमत्वम्—नीचत्वम् = अधमत्वम्, मध्यमत्वम् = सामान्यत्वम्, उत्तमत्वम् = उत्कृष्टत्वम्, सर्वदा = सदा, चिन्तनीयम् = विचारणीयम् ॥ १०७ ॥

हिन्दी—गुणहीन एवं व्यवहार में अयोग्य वस्तु की कीमत कुछ भी नहीं होती है। बुद्धिमान् व्यक्ति लोक-परम्परा के अनुसार समस्त वस्तुओं की अधमता, सामान्यता एवं उत्कृष्टता समझ कर ही उसका मूल्य निर्धारित करते हैं ॥ १०७ ॥

नेति। गुणहीनस्य व्यवहाराक्षमस्य कार्य्यायोग्यस्य वस्तुनः मूल्यं नास्ति, किञ्च बुधैः विद्वद्भिः सर्वस्मिन् मूल्यकल्पने लोकात् लोकपरम्परातः वस्तुजातस्य समस्तस्य वस्तुनः नीचमध्योत्तमत्वम् अधमत्वं मध्यमत्वम् उत्तमत्वञ्च सर्वदा चिन्तनीयम् ॥ १०७ ॥

विक्रेतृक्रेतृतो राजभागः शुल्कमुदाहृतम्।
शुल्कदेशा हट्टमार्गाः करसीमाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १०८ ॥

अन्वयः—विक्रेतृक्रेतृतः राजभागः शुल्कम् उदाहृतम्। शुल्कदेशाः हट्टमार्गाः करसीमाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १०८ ॥

व्याख्या—विक्रेतुः = विक्रयिकस्य, क्रेतुः = क्रयिकस्य, समीपात्, राजभागः—राज्ञः = नृपस्य, भागः = अंशः, शुल्कम् = घट्टपथादीनां करः, उदाहृतम् = कथितम्। शुल्कदेशाः = करग्रहणस्थलानि, हट्टमार्गाः = आपणपन्थाः, करसीमाः—करस्य = शुल्कस्य, सीमा = प्रान्तः पर्यन्तो वेति। शुल्कशब्दोऽत्रोभयलिङ्गी वर्तते, तथाप्यत्र नपुंसकत्वं विधेयप्राधान्यानुरोधादेव ॥ १०८ ॥

हिन्दी—खरीद-बिक्री करने वाले से राजा जो अपना कर वसूल करता है, उसे 'शुल्क' कहते हैं। बाजार की राह में चुंगी या टैक्स वसूले जाते हैं तथा जहाँ चुंगी वसूली जाती है, उन्हें करसीमा या चुंगीघर कहते हैं ॥ १०८ ॥

विक्रेत्रिति। विक्रेतुः क्रेतुश्च सकाशात् राजभागः राजप्राप्यांशः शुल्कम् उदाहृतं कथितं विधेयप्राधान्यात् नपुंसकत्वं ज्ञेयम्। शुल्कदेशाः शुल्कग्रहणस्थानानि हट्टमार्गाः व्यवसायस्थानानि करसीमाः करस्य शुल्कस्य सीमाः निर्दिष्टा अवधयश्च प्रकीर्त्तिताः॥ १०८॥

वस्तुजातस्यैकवारं शुल्कं ग्राह्यं प्रयत्नतः।
क्वच्चिन्नैवासकृच्छुल्कं राष्ट्रे ग्राह्यं नृपैश्छलात्॥ १०९॥

अन्वयः—नृपैः वस्तुजातस्य प्रयत्नतः च एकवारं शुल्कं ग्राह्यम्। क्वचित् राष्ट्रे छलात् असकृत् शुल्कं नैव ग्राह्यम्॥ १०९॥

व्याख्या—नृपैः = राजभिः, वस्तुजातस्य = पदार्थसमूहस्य, प्रयत्नतः = प्रयासपूर्वकेण च, एकवारम् = सकृदेव, शुल्कम् = करम्, ग्राह्यम् = ग्रहीतव्यम्। क्वचित् = कुत्रापि, राष्ट्रे = जनपदे, छलात् = कपटमाश्रित्य, असकृत् = वारं वारम्, शुल्कम् = करम्, नैव = नास्त्येव, ग्राह्यम् = नेयमिति॥ १०९॥

हिन्दी—राजा को चाहिए कि हर वस्तु पर प्रयत्नपूर्वक एक बार ही चुंगी लगाये। अपने राज्य में राजा कभी भी छल से एक ही वस्तु पर दुहरी चुंगी न लगाये॥ १०९॥

वस्तुजातस्येति। नृपैः वस्तुजातस्य वस्तुसमूहस्य प्रयत्नतः प्रयत्नेन च एकवारं शुल्कं ग्राह्यं, क्वचित् राष्ट्रे छलात् छलमाश्रित्येति यावत्, असकृत् वारं वारं शुल्कं नैव ग्राह्यम्॥ १०९॥

द्वात्रिंशांशं हरेद्राजा विक्रेतुः क्रेतुरेव वा।
विंशांशं वा षोडशांशं शुल्कं मूल्याविरोधकम्॥ ११०॥

अन्वयः—राजा विक्रेतुः क्रेतुः वा मूल्याविरोधकं यथा तथा द्वात्रिंशांशं विंशांशं वा षोडशांशं शुल्कं हरेत्॥ ११०॥

व्याख्या—राजा = नृपः, विक्रेतुः = विपणितुः, वा = अथवा, क्रेतुः = ग्राहकस्य, समीपात्, मूल्याविरोधकम्—मूल्यस्य = अर्घस्य, अविरोधकम् = अप्रतिकूलम्, यथा तथा, द्वात्रिंशांशम् = द्वयाधिकत्रिंशत्, अंशम् = भागम्, विंशांशम् = विंशतिभागम्, वा = अथवा, षोडशांशम् = षोडशभागम्, शुल्कम् = करम्, हरेत् = स्वीकुर्यात्॥ ११०॥

हिन्दी—राजा बेचने या खरीदने वालों से किसी वस्तु की कीमत का बत्तीसवाँ भाग कर के रूप में स्वीकार करे अथवा मूलधन को छोड़कर लाभ का बीसवाँ या सोलहवाँ भाग कर स्वीकार करे॥ ११०॥

द्वात्रिंशांशमिति। राजा विक्रेतुः क्रेतुः वा सकाशात् मूल्याविरोधकं मूल्याविरुद्धं यथा तथा द्वात्रिंशांशं विंशांशं षोडशांशं वा शुल्कं हरेत् गृह्णीयात्। विकल्पश्चैषः द्रव्यस्य मूल्यस्य च तारतम्यानुसारेण वेदितव्यः॥ ११०॥

न हीनसममूल्याद्धि शुल्कं विक्रेतृतो हरेत्।
लाभं दृष्ट्वा हरेच्छुल्कं क्रेतृतश्च सदा नृपः॥ १११॥

अन्वयः—विक्रेतृतः हीनसममूल्यात् शुल्कं न हरेत्। नृपः लाभं दृष्ट्वा क्रेतृतश्च सदा शुल्कं हरेत्॥ १११॥

व्याख्या—विक्रेतृतः = विपणितुः सकाशात्, हीनसममूल्यात्—हीनात् = क्रयमूल्यतः अल्पतरात्, समात् = क्रयमूल्यतुल्यात्, हि = इति निश्चयेन, शुल्कम् = करम्, न = नहि, हरेत् = नयेत्, गृह्णीयादित्यर्थः। नृपः = राजा, लाभम् = अधिगमनम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, क्रेतृतश्च = ग्राहकसकाशात्, सदा = सर्वदा, शुल्कम् = करम्, हरेत् = गृह्णीयात् ॥ १११ ॥

हिन्दी—किसी बेचने वाले को यदि किसी वस्तु की कीमत मूल धन से कम या उतना ही लेना पड़े तो उस वस्तु पर चुंगी नहीं वसूले। कम पैसे लगाकर अधिक लाभ कमाने वाले से राजा सदा चुंगी वसूल करे ॥ १११ ॥

नेति। विक्रेतृतः विक्रेतुः सकाशात् हीनात् क्रयमूल्यतः न्यूनात् समात् तुल्याच्च शुल्कं न हरेत् हि नैव गृह्णीयादित्यर्थः। नृपः लाभम् अल्पमूल्येन अधिकद्रव्यलाभं दृष्ट्वा क्रेतृतश्च क्रेतुः सकाशाच्च सदा शुल्कं हरेत् ॥ १११ ॥

बहुमध्याल्पफलितां भुवं मानमितां सदा।
ज्ञात्वा पूर्वं भागमिच्छुः पश्चाद्भागं विकल्पयेत् ॥ ११२ ॥

अन्वयः—सदा भागमिच्छुः पूर्वं बहुमध्याल्पफलितां मानमितां भुवं ज्ञात्वा पश्चात् भागं विकल्पयेत् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—सदा = सर्वदा, भागमिच्छुः = करांशग्रहणाभिलाषी नृपः, पूर्वम् = प्रथमम्, बहुमध्याल्पफलिताम्—बहुफलाम् = अधिकपरिणामप्रदाम्, मध्यफलाम् = सामान्यलाभदाम्, अल्पफलाम् = न्यूनपरिणामप्रदाम्, मानमिताम् = फलेन कृतमानाम्, भुवम् = स्थानम्, ज्ञात्वा = अवबुध्य, पश्चात् = तत्पश्चात्, भागम् = करांशम्, विकल्पयेत् = विचिन्तयेत् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—मालगुजारी चाहने वाला राजा सदा धरती का पैमाइश करवा कर पहले उसकी अधिक, साधारण या कम उपज की जानकारी लेकर पीछे उसकी मालगुजारी तय करे ॥ ११२ ॥

बह्विति। सदा भागमिच्छुः शुल्कभागाकाङ्क्षी राजा पूर्वं प्रथमं बहुफलां मध्यफलां वा अल्पफलां मानमितां परिमाणेन कृतमानां भुवं भूमिं ज्ञात्वा पश्चात् भागं शुल्कस्येति शेषः, विकल्पयेत् विशेषेण निर्दिशेत् ॥ ११२ ॥

हरेच्च कर्षकाद्भागं यथा नष्टो भवेन्न सः।
मालाकार इव ग्राह्यो भागो नाङ्गारकारवत् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—यथा सः नष्टः न भवेत् कर्षकात् (तथा) भागं हरेत्। मालाकार इव अङ्गारकारवत् भागः न ग्राह्यः ॥ ११३ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, सः = करदाता, नष्टः = विनष्टः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, कर्षकात् = कृषकात्, तथा, भागम् = करम्, हरेत् = ग्रहणं कुर्यात्। मालाकारः = उद्यानपालः, इव = यथा, अङ्गारकारवत् = दग्धकाष्ठखण्डनिर्मातिव, भागः = करांशः, न = नहि, ग्राह्यः = स्वीकर्त्तव्यम् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—क़िसानों से मालगुज़ारी उतनी ही वसूल की जाय जितने से वह क्षतिग्रस्त न हो सके। माली की तरह संग्रह करना चाहिए, न कि कोयला बनाने वाले की तरह ॥ ११३ ॥

हरेदिति। यथा सः भूशुल्कदाता नष्टः क्षतिग्रस्तः न भवेत् कर्षकात् कृषीबलात् तथा भागं

हरेत्। मालाकार इव माली यथा तरुलताभ्यः अल्पम् अल्पं पुष्पं चिनोति तथेति भावः। अङ्गारकारवत् अङ्गारकारेण तुल्यं यथा तथा भागः शुल्करूपांशः न ग्राह्यः॥११३॥

बहुमध्याल्पफलतस्तारतम्यं विमृश्य च।
राजभागादिव्ययतो द्विगुणं लभ्यते यतः।
कृषिकृत्यन्तु तच्छ्रेष्ठं तन्न्यूनं दुःखदं नृणाम्॥११४॥

अन्वयः—बहुमध्याल्पफलतः तारतम्यं विमृश्य यतः राजभागादिव्ययतः द्विगुणं लभ्यते, तत्तु कृषिकृत्यं श्रेष्ठम्, तत् न्यूनं नृणां दुःखदम्॥११४॥

व्याख्या—बहुमध्याल्पफलतः—बहुफलतः = अत्यधिकोत्पादनानुसारेण, मध्यफलतः = सामान्यकृषिफलानुसारेण, अल्पफलतः = न्यूनशस्योत्पादनानुसारेण, तारतम्यम् = न्यूनाधिकत्वम्, विमृश्य = विचार्य, यतः = यस्मात्कारणात् कृषिकर्मणः, राजभागादिव्ययतः—राजभागादीनाम् = नृपदेयभूमिकरादीनाम्, व्ययतः = विनियोगात्, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, कृषिफलम्, लभ्यते = प्राप्यते, तत्तु = तदेव, कृषिकृत्यम् = कृषिफलम्, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टम्, तत् = तस्मात्, न्यूनम् = अल्पतरम्, नृणाम् = नराणाम्, दुःखदम् = कष्टकरम्, भवतीति भावः॥११४॥

हिन्दी—अधिक, सामान्य और कम पैदावार की कमी-बेशी के हिसाब से तरतीब सोचकर तदनुसार मालगुजारी लेनी चाहिए। खेत पर दी गई मालगुजारी एवं उत्पादन पर लागत खर्च काट कर जिस खेती में लागत से दूना लाभ हो, वह उत्तम होती है तथा लागत से कम आमदनी वाली खेती किसानों के लिए दुःखद होती है॥११४॥

बह्विति। बहुमध्याल्पफलतः बहुफलानुसारेण मध्यफलानुसारेण अल्पफलानुसारेण च तारतम्यं भूमेर्गुणागुणमित्यर्थः, विमृश्य विविच्य यतः कृषिकृत्यात् कृषिकार्य्यात् राजभागादिव्ययतः राजदेयशुल्कादीनां व्ययात् द्विगुणं लभ्यते तत् तु तदेव कृषिकृत्यं श्रेष्ठं, तस्मात् न्यूनं यत्किञ्चिल्लाभकरमित्यर्थः, कृषिकृत्यं नृणां दुःखदं दुःखदायकम्॥११४॥

तडागवापिकाकूपमातृकाद्देवमातृकात्।
देशान्नदीमातृकात् तु राजानुक्रमतः सदा॥११५॥
तृतीयांशं चतुर्थांशमर्द्धांशन्तु हरेत् फलम्।
षष्ठांशमूषरात् तद्वत् पाषाणादिसमाकुलात्॥११६॥

अन्वयः—राजा सदा तडागवापिकाकूपमातृकात् देवमातृकात् नदीमातृकात् देशात् तृतीयांशं, चतुर्थांशं तथा अर्द्धांशम् अनुक्रमतः तद्वत् ऊषरात् वा पाषाणादिसमाकुलात् देशाच्च षष्ठांशं फलं हरेत्॥११५-११६॥

व्याख्या—राजा = नृपः, सदा = सर्वदा, तडागवापिकाकूपमातृकात् = कासारदीर्घिकाकूपसलिलैः, सिञ्चितकृषेः, देवमातृकात् = मेघजलसिञ्चितकृषेः, नदीमातृकात् = शैवलिनीसिञ्चितकृषेश्च, देशात् = क्षेत्रात्, तृतीयांशम् = तृतीयभागम्, चतुर्थांशम् = तुरीयभागम्, अर्द्धांशम् = अर्द्धभागम्, वा, अनुक्रमतः = यथाक्रमेण, तद्वत् = तथैव, ऊषरात् = अनुर्वरात्, वा, पाषाणादिसमाकुलात् = पापाणशकलाच्छादितात्, देशाच्च = क्षेत्राच्च, षष्ठांशम् = षष्ठभागम्, फलम् = शस्यम्, हरेत् = गृह्णीयात्॥११५-११६॥

हिन्दी—राजा क्रमानुसार हमेशा तालाब, बावड़ी या कुँए से सींचे जाने वाले खेतों की उपज का तीसरा हिस्सा, वर्षा के द्वारा सिंचाई होने वाले खेतों की उपज का चौथा भाग तथा नदी से सिंचाई होने वाले खेतों की उपज का आधा हिस्सा और बंजर या पथरीली धरती की उपज का छठा हिस्सा मालगुजारी के रूप में ग्रहण करे॥११५-११६॥

तडागेति। तृतीयांशमिति। राजा सदा तडागवापिकाकूपमातृकात् सरोवरदीर्घिकाकूपजलैः सम्पाद्यकृषेः देवमातृकात् वृष्टिजलसम्पाद्यकृषेरित्यर्थः, नदीमातृकात् नदीजलैः सम्पाद्यकृषेश्च देशात् तृतीयांशं चतुर्थांशं तथा अर्द्धांशम् अनुक्रमतः यथाक्रमेण तद्वत् तथा ऊपरात् अनुर्वरात् वा पाषाणादिसमाकुलात् प्रस्तरप्रधानात् देशाच्च षष्ठांशं फलं हरेत्॥११५-११६॥

राजभागस्तु रजतशतकर्षमितो यतः।
कर्षकाल्लभ्यते तस्मै विंशांशमुत्सृजेन्नृपः॥११७॥

अन्वयः—यतः कर्षकात् रजतशतकर्षमितः राजभागः लभ्यते, नृपः तस्मै विंशांशम् उत्सृजेत्॥११७॥

व्याख्या—यतः = यस्माद्धेतोः, कर्षकात् = कृषकात्, रजतशतकर्षमितः—रजतानाम् = रुप्याणाम्, शतकर्षमितः = शतरजतमुद्रापरिमितः, राजभागः = राजस्वः, लभ्यते = प्राप्यते, नृपः = राजा, तस्मै = क्षेत्रिणे, विंशांशम् = विंशतितमम्भागम्, तम्, उत्सृजेत् = दद्यात्॥११७॥

हिन्दी—जिस किसान से राजा को मालगुजारी के रूप में चाँदी के सौ सिक्के मिलते हों, उनमें से उसे उसका बीसवाँ भाग दे देना चाहिए॥११७॥

राजभाग इति। यतः कर्षकात् कृषीबलात् रजतानां शतकर्षमितः शतरजतकर्षपरिमितः राजभागः लभ्यते, नृपः तस्मै कर्षकाय विंशांशं स्वप्राप्यात् विंशतिभागैकभागम् उत्सृजेत् त्यजेत्॥११७॥

स्वर्णादर्द्धं च रजतात् तृतीयांशञ्च ताम्रतः।
चतुर्थांशन्तु षष्ठांशं लोहाद् वङ्गाच्च सीसकात्॥११८॥
रत्नार्द्धं चैव क्षारार्द्धं खनिजाद् व्ययशेषतः।
लाभाधिक्यं कर्षकादेर्यथा दृष्ट्वा हरेत् फलम्।
त्रिधा वा पञ्चधा कृत्वा सप्तधा दशधापि वा॥११९॥

अन्वयः—खनिजात् व्ययशेषतः स्वर्णात् अर्द्धं रजतात् तृतीयांशं ताम्रतः चतुर्थांशं लोहात् वङ्गात् सीसकात् च षष्ठांशं रत्नानाम् अर्द्धं क्षाराणाम् अर्द्धं कर्षकादेः लाभाधिक्यं दृष्ट्वा त्रिधा पञ्चधा सप्तधा वा दशधा कृत्वा यथा फलं हरेत्॥११८-११९॥

व्याख्या—खनिजात् = आकरजपदार्थात्, व्ययशेषतः = विनियोगावशिष्टात्, स्वर्णात् = कनकात्, अर्द्धम् = अर्द्धांशम्, रजतात् = रौप्यात्, तृतीयांशम् = तृतीयभागम्, ताम्रतः = मुनिपित्तलात्, चतुर्थांशम् = तुरीयभागः, लोहात् = अयस्कात्, वङ्गात् = त्रपुषात्, सीसकात् = सीसपत्रकात्, च = पुनः, षष्ठांशम् = षष्ठभागम्, रत्नानाम् = मणीनाम्, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, क्षाराणाम् = लवणानाम्, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, कर्षकादेः = क्षेत्राजीवादेः, लाभाधिक्यम् = प्राप्तिबाहुल्यम्, दृष्ट्वा = विचार्य, त्रिधा = त्रिभागम्, पञ्चधा = पञ्चमांशम्, सप्तधा =

सप्तमांशम्, वा = अथवा, दशधा = दशभागम्, कृत्वा = सम्पाद्य, यथा = तदनुरूपम्, फलम् = शुल्कम्, हरेत् = गृह्णीयात् ॥ ११८-१९ ॥

हिन्दी—खर्च काटकर खान से निकलने वाले सोने का आधा हिस्सा, चाँदी की एक तिहाई, ताँबा से एक चौथाई, लोहे, राँगे और सीसे से छठा भाग, रत्नों एवं क्षारीय द्रव्यों से आधा भाग तथा किसानों के लाभ की अधिकता को देखते हुए तदनुसार उनका तीसरा, पाँचवाँ, सातवा या दसवाँ भाग राजस्व के रूप में ग्रहण करना चाहिए ॥ ११८-११९ ॥

स्वर्णादिति। रत्नार्द्धमिति। व्ययशेषत इति सर्वत्र सम्बध्यते। खनिजात् व्ययशेषतः व्ययावशिष्टात् स्वर्णात् अर्द्धं रजतात् तृतीयांशं, ताम्रतः ताम्रात् चतुर्थांशं, लोहात् वङ्गात् सीसकाच्च षष्ठांशं, रत्नानां हीरकादीनाम् अर्द्धं क्षाराणां लवणानाञ्च अर्द्धं तथा कर्षकादेः लाभाधिक्यं दृष्ट्वा विविच्येत्यर्थः, त्रिधा पञ्चधा सप्तधा वा दशधा कृत्वा यथा यथोपयुक्तं फलं हरेत् राजेति शेषः ॥ १८-१९ ॥

तृणकाष्ठादिहरकाद् विंशत्यंशं हरेत् फलम्।
अजाविगोमहिष्याश्ववृद्धितोऽष्टांशमाहरेत् ।
महिष्यजाविगोदुग्धात् षोडशांशं हरेन्नृपः ॥ १२० ॥

अन्वयः—नृपः तृणकाष्ठादिहरकात् विंशत्यंशं फलं हरेत्। अजाविगोमहिष्याश्ववृद्धितः अष्टमांशं हरेत्। तथा महिष्यजाविगोदुग्धात् षोडशांशं हरेत् ॥ १२० ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, तृणकाष्ठादिहरकात् = तृणदारु-आहरणकर्त्तुः जनात्, विंशत्यंशम् = विंशांशम्, फलम् = करम्, हरेत् = ग्रहणं कुर्यात। अजानाम् = छागानाम्, अवीनाम् = मेषाणाम्, गवाम् = धेनूनाम्, महिषीणाम् = बहुक्षीराणाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, वृद्धितः = वृद्धेः, अष्टांशम् = अष्टमभागम्, हरेत् = आहरेत्। तथा महिषीणाम् = बहुक्षीराणाम्, अजानाम् = छागीनाम्, अवीनाम् = मेषीणाम्, गवाञ्च = धेनूनाञ्च, दुग्धात् = पयसः, षोडशांशम् = षोडशं भागम्, हरेत् = राजस्वरूपेण गृह्णीयात् ॥ १२० ॥

हिन्दी—घसियारे तथा लकड़हारों की आमदनी का बीसवाँ भाग कर के रूप में वसूल करना चाहिए। भेंड, बकरी, गायें, भैंसें और घोड़ों की वृद्धि पर उनका आठवाँ भाग कर के रूप में राजा ग्रहण करे। भैंस, बकरी और गाय के दूध में से सोलहवाँ भाग कर ग्रहण करे ॥ १२० ॥

तृणेति। नृपः तृणकाष्ठादिहरकात् तृणकाष्ठानाम् आहरणकारिणः जनात् विंशत्यंशं फलं हरेत्। अजानां छागानाम् अवीनां मेषाणां गवां महिषीणाम् अश्वानाञ्च वृद्धितः वृद्धेः अष्टांशम् अष्टमं भागं हरेत्। तथा महिषीणाम् अजानां छागीनाम् अवीनां मेषीणां गवाञ्च दुग्धात् षोडशांशं हरेत् ॥ १२० ॥

कारुशिल्पिगणात् पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत्।
तस्य वृद्ध्यै तडागं वा वापिकां कृत्रिमां नदीम् ॥ १२१ ॥
कुर्वन्त्यन्यत् तद्विधं वा कर्षन्त्यभिनवां भुवम्।
तद्व्ययद्विगुणं यावन्न तेभ्यो भागमाहरेत् ॥ १२२ ॥

अन्वयः—कारुशिल्पिगणात् पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत्। ये च तस्य वृद्ध्यै तडागं वापिकां वा कृत्रिमां नदीम् अथवा अन्यत् तद्विधं कुर्वन्ति, अभिनवां भुवं कर्षन्ति, यावत् तद्व्ययात् द्विगुणं तावत् तेभ्यः भागं न आहरेत् ॥ १२१-१२२ ॥

व्याख्या—कारुगणान् = कर्मकारसमूहान्, शिल्पिगणांश्च = शिल्पकुशलांश्च, पक्षे = मासार्द्धे, दैनिकम् = एकाह्निकसाध्यम्, कर्म = तस्य कृत्यम्, कारयेत् = साधयेत्, तदेव तेषां राजस्वमिति भावः। ये = जनाः, तस्य = नृपस्य, वृद्ध्यै = अभ्युदयाय, तडागम् = सरोवरम्, वापिकाम् = दीर्घिकाम्, वा = अथवा, कृत्रिमाम् = अनैसर्गिकाम्, नदीम् = तटिनीम्, कुल्याम् इति भावः, अथवा अन्यत् = अपरम्, तद्विधम् = तत्प्रकारकम्, कर्म = कृत्यम्, कुर्वन्ति = सम्पादयन्ति, तथा ये च अभिनवाम् = प्रत्यग्राम्, भुवम् = पृथिवीम्, कर्षन्ति = कृषिकर्म कुर्वन्ति, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, तत् = तस्य कर्मणः, व्ययात् = विनियोगात्, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, लाभं न प्राप्यते, तावत् तेभ्यः = शिल्पिगणेभ्यः, भागम् = राजदेयशुल्कम्, न = नहि, आहरेत् = आहरणं कुर्यात् ॥ १२१-१२२ ॥

हिन्दी—बढई एवं शिल्पियों से कर के रूप में पन्द्रह दिनों में एक दिन मुफ्त काम लेना चाहिए। राज्य की उन्नति के लिए जो तालाब, बावड़ी, नहर या ऐसे ही कुछ और काम करते हैं, उनसे तथा जो नई धरती जोत कर आबाद करते हैं; उनसे जब तक लागत-खर्च काट कर दूना लाभ न हो तब तक राजस्व वसूल नहीं करना चाहिए ॥ १२१-१२२ ॥

कार्विति। कुर्वन्तीति ॥ कारुगणान् शिल्पिगणांश्च पक्षे पञ्चदशदिनाभ्यन्तरे दैनिकम् एकदिनसाध्यं कर्म्म कारयेत्, एतदेव तेषां राजभागदानमिति भावः। ये च तस्य राज्ञः वृद्ध्यै राज्योन्नत्यै तडागं वापिकां दीर्घिकां वा कृत्रिमां नदीम् अथवा अन्यत् तद्विधं तद्रूपं कर्म्म कुर्वन्ति, ये च अभिनवां नवोत्थितां भुवं कर्षन्ति कर्षणेन उर्वरां कुर्वन्तीत्यर्थः, यावत् तद्व्ययात् तस्य कर्मणः व्ययात् द्विगुणं लभ्यते इति शेषः, तावत् तेभ्यः कर्म्मकरेभ्यः भागं राजांशं न आहरेत्, द्विगुणातिरिक्ते तु आहरेदेवेत्यर्थः ॥ १२१-१२२ ॥

भुवि भागं भृतिं शुल्कं वृद्धिमुत्कोचकं करम्।
सद्य एव हरेत् सर्वं न तु कालविलम्बनैः ॥ १२३ ॥

अन्वयः—भुवि भागं भृतिं शुल्कं वृद्धिम् उत्कोचकं करं सर्वं सद्यः एव हरेत्, कालविलम्बनैः न तु ॥ १२३ ॥

व्याख्या—भुवि = संसारे, भागम् = अंशम्, भृतिम् = वेतनम्, शुल्कम् = करम्, वृद्धिम् = कुसीदम्, उत्कोचकम् = उपायनम्, करम् = राजस्वम्, एतत् सर्वम् = सकलम्, सद्यः एव = तत्काल एव, हरेत् = स्वीकुर्यात्, कालविलम्बनैः = अत्यधिकविलम्बनैः, न = नहि, कुर्यादिति ॥ १२३ ॥

हिन्दी—अपनी जमीन का हिस्सा, वेतन, चुंगी, व्याज, घूस और मालगुजारी—इन्हें शीघ्र ले लेना चाहिए, इनमें देर करना उचित नहीं है ॥ १२३ ॥

भुवीति। भुवि पृथिव्यां भागं भृतिं वेतनं शुल्कं वृद्धिं कुसीदम् उत्कोचकं भागविहित-कार्य्यकरणोत्साहदानार्थं देयं धनं तथा करं राजस्वम् एतत् सर्वं सद्य एव हरेत् कालविलम्बनैः न तु नैव ॥ १२३ ॥

दद्यात् प्रतिकर्षकाय भागपत्रं स्वचिह्नितम्।
नियम्य ग्रामभूभागमेकस्माद् धनिकाद्धरेत्॥ १२४॥
गृहीत्वा तत्प्रतिभुवं धनं प्राक् तत्समं तु वा।
विभागशो गृहीत्वापि मासि मासि ऋतौ ऋतौ॥ १२५॥

अन्वयः—प्रतिकर्षकाय स्वचिह्नितं भागपत्रं दद्यात्। वा ग्रामभूभागं नियम्य एकस्मात् धनिकात् हरेत्। तत्प्रतिभुवं गृहीत्वा वा तत्समं धनं प्राक् मासि मासि ऋतौ ऋतौ विभागशः हरेत्॥ १२४-१२५॥

व्याख्या—प्रतिकर्षकाय = प्रत्येकं क्षेत्राजीवाय, स्वचिह्नितम्—स्वस्य = आत्मनः, चिह्नितम् = मुद्रयाऽङ्कितम्, भागपत्रम् = शुल्कप्राप्तिपत्रम्, दद्यात् = देयात्, वा = अथवा, ग्रामभूभागम्—ग्रामस्य = निवसथस्य, भूभागम् = क्षेत्रखण्डम्, नियम्य = निर्धार्य, एकस्मात् धनिकात् = धनवतो जनात्, तत् = तस्य धनिनः, प्रतिभुवम् = लग्नकम्, गृहीत्वा = नीत्वा, वा = अथवा, तत्समम् = तत्तुल्येन, धनम् = अर्थम्, प्राक् = पूर्वम्, गृहीत्वाऽपि, मासि मासि = प्रतिमासम्, ऋतौ ऋतौ = प्रतिद्विमासात्मकं कालम्, विभागशः = विभागक्रमेण राजस्वम्, हरेत् = स्वीकुर्यात्॥ १२४-१२५॥

हिन्दी—राजा हर किसान को मालगुजारी पाने की रसीद लिखकर उस पर अपनी मुहर लगाकर उसे दे दे। अथवा गाँव की पूरी जमीन की मालगुजारी नियत कर उसी गाँव के किसी धनी व्यक्ति से सारी मालगुजारी एक साथ वसूल करे और उस धनी व्यक्ति को वहाँ के किसानों का जामिनदार बना दे। वह जामिनदार हर महीने या हर ऋतु में सबसे अलग-अलग मालगुजारी वसूल कर राजा को एक साथ दे॥ १२४-१२५॥

दद्यादिति। गृहीत्वेति। प्रतिकर्षकाय प्रत्येकं कृषिकारिणे इत्यर्थः; स्वचिह्नितं स्वाक्षरितं भागस्य राजांशस्य पत्रं लेख्यं दद्यात्। वा अथवा ग्रामभूभागं नियम्य निरूप्य निर्धार्य्य इत्यर्थः, एकस्मात् धनिकात् धनवतः जनात् तस्य धनिकस्य प्रतिभुवं प्रतिरूपं गृहीत्वा वा तत्समं राजदेयधनसमानं धनं प्राक् लेख्यदानात् पूर्वं गृहीत्वा किंवा मासि मासि प्रतिमासम् ऋतौ ऋतौ प्रतिद्विमासं विभागशः विभागक्रमेण उक्तं ग्रामभुवो भागं राजस्वमित्यर्थः, हरेत् गृह्णीयात्॥ १२४-१२५॥

षोडशद्वादशदशाष्टांशतो वाधिकारिणः।
स्वांशात् षष्ठांशभागेन ग्रामपान् सन्नियोजयेत्॥ १२६॥

अन्वयः—षोडशद्वादशदशाष्टांशतः स्वांशात् षष्ठांशभागेन ग्रामपान् अधिकारिणः वा सन्नियोजयेत्॥ १२६॥

व्याख्या—ग्रामात् राजस्वरूपेण प्राप्तधनस्य, षोडशांशात् = दशाधिकषड्भागात्, द्वादशांशात् = द्वयाधिकदशभागात्, दशांशात् = दशभागात्, अष्टांशात् = अष्टमभागात्, स्वांशात्—स्वस्य = आत्मनः राज्ञः, अंशात् = भागात्, षष्ठांशभागेन, यथायथषष्ठभागरूपेण वेतनेन, ग्रामपान् = ग्रामपालकान्, अधिकारिणः = समाहर्त्तारः, योजयेत्॥ १२६॥

हिन्दी—योग्यतानुसार सोलहवाँ, बारहवाँ, दसवाँ या आठवाँ भाग, जो राजा को मिलने वाला कर या मालगुजारी हो; उसका छठा भाग वेतन के रूप में देकर राजा ग्रामपाल या समाहर्त्ता की नियुक्ति करे॥ १२६॥

षोडशेति। षोडशांशात् द्वादशांशात् दशांशात् अष्टांशाच्च स्वांशात् राजप्राप्यांशात् षष्ठांशभागेन यथायथषष्ठभागरूपेण वेतनेन ग्रामपान् ग्रामपालकान् अधिकारिणः भृत्यान् वा सन्नियोजयेत् ॥ १२६ ॥

गवादिदुग्धान्नफलं कुटुम्बार्थाद्धरेन्नृपः ।
उपभोगे धान्यवस्त्रं क्रेतृतो नाहरेत् फलम् ॥ १२७ ॥

अन्वयः—नृपः कुटुम्बार्थात् गवादिदुग्धात् फलं न हरेत्। उपभोगे धान्यवस्त्रं क्रेतृतः फलं न आहरेत् ॥ १२७ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, कुटुम्बार्थात् = परिवारपालनार्थात्, गवादीनाम् = धेनुप्रभृतीनाम्, दुग्धात् = पयसः, फलम् = राजस्वम्, न = नहि, हरेत् = गृह्णीयात्। उपभोगे = आत्मव्यवहारे, धान्यन् = अन्नम्, वस्त्रञ्च = वसनञ्च, क्रेतृतः = क्रेतुः ग्राहकात् वा, फलम् = करम्, न = नहि, आहरेत् = गृह्णीयात् ॥ १२६ ॥

हिन्दी—अपने पारिवाररिक उपभोग के लिए संचित गाय, भैंस आदि के दूध पर राजा कर न लगाये और न तो अपने उपभोग के लिए खरीदे गये अन्न-वस्त्र पर कर लगाये ॥ १२७ ॥

गवादीति। नृपः कुटुम्बार्थात् परिवारभरणार्थात् गवादीनां दुग्धात् फलं करं न हरेत्। तथा उपभोगे स्वव्यवहारार्थं न तु व्यवसायार्थमित्यर्थः। धान्यं वस्त्रञ्च क्रेतृतः क्रेतुः सकाशात् फलं शुल्कं न आहरेत् ॥ १२७ ॥

वार्द्धुषिकाच्च कौसीदाद् द्वात्रिंशांशं हरेन्नृपः ।
गृहाद्याधारभूशुल्कं कृष्टभूमेरिवाहरेत् ॥ १२८ ॥

अन्वयः—नृपः वार्द्धुषिकात् कौसीदात् द्वात्रिंशांशं हरेत्। कृष्टभूमेरिव गृहाद्याधारभूशुल्कम् आहरेत् ॥ १२८ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, वार्द्धुषिकात् = वृद्ध्याजीवात्, कौसीदात् = वृद्ध्या ऋणदातुः सकाशात्, द्वात्रिंशांशम् = द्वयाधिकत्रिंशद्भागम्, हरेत् = गृह्णीयात्। कृष्टभूमेः = कर्षणभूमेः, इव = तुल्यम्, गृहादीनाम् = भवनादीनाम्, आधारभुवः = निवासभूम्याः, शुल्कम् = करम्, आहरेत् = ग्रहणं कुर्यात् ॥ १२८ ॥

हिन्दी—व्यापारियों और सूदखोरों से लाभांश का बत्तीसवाँ भाग कर के रूप में राजा को लेना चाहिए। इसी तरह जोतने की जमीन की तरह ही वासभूमि की भी मालगुजारी लेनी चाहिए ॥ १२८ ॥

वार्द्धुषिकादिति। नृपः वार्द्धुषिकात् वृद्धिजीविनः कौसीदात् ऋणदातुः सकाशात् त्रिंशांशं करं हरेत्। तथा कृष्टभूमेरिव गृहादीनाम् आधारभुवः वासभूम्याः शुल्कं हरेत् ॥ १२८ ॥

तथा चापणिकेभ्यस्तु पण्यभूशुल्कमाहरेत् ।
मार्गसंस्काररक्षार्थं मार्गगेभ्यो हरेत् फलम् ॥ १२९ ॥

अन्वयः—राजा आपणिकेभ्यः पण्यभूशुल्कम् आहरेत् तथा मार्गगेभ्यः मार्गसंस्काररक्षार्थं फलं हरेत् ॥ १२९ ॥

व्याख्या—राजा, आपणिकेभ्यः = वणिग्भिः, पण्यभूशुल्कम् = विक्रयभूमिकरम्, आहरेत् = गृह्णीयात्, तथा मार्गगेभ्यः = पथिकेभ्यः, मार्गसंस्काररक्षार्थम् = पथपरिष्कारार्थं संरक्षणार्थञ्च, फलम् = शुल्कम्, हरेत् = स्वीकुर्यात् ॥ १२९ ॥

हिन्दी—दूकानदारों से दूकान की भूमि सहित कर लेना चाहिए तथा पथ की सफाई और संरक्षण के लिए यात्रियों से भी कर वसूल करना चाहिए ॥ १२९ ॥

तथेति। राजा अपिणिकेभ्यः विपणिजीविभ्यः पण्यभूशुल्कं विक्रयस्थानशुल्कम् आहरेत्। तथा मार्गगेभ्यः पथिकेभ्यः मार्गसंस्काररक्षार्थं फलं शुल्कं हरेत् ॥ १२९ ॥

सर्वतः फलभुग्भूत्वा दासवत् स्यात्तु रक्षणे।
इति कोशप्रकरणं समासात् कथितं किल ॥ १३० ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्यायस्य कोशनिरूपणं नाम द्वितीयं प्रकरणम्।

अन्वयः—राजा सर्वतः रक्षणे दासवत् फलभुक् स्यात्। इति समासात् कोशप्रकरणं किल कथितम् ॥ १३० ॥

व्याख्या—राजा सर्वतः = सकलजनसमूहात्, रक्षणे = संरक्षणार्थम्, दासवत् = सेवक इव, फलभुक् = राजस्वरूपवेतनभोगी, स्यात् = भवेत्। इति = इत्थम्, समासात् = सङ्क्षेपात्, कोशप्रकरणम्, किल = निश्चितम्, कथितम् = अस्मिन् प्रकरणे वर्णितम् ॥ १३० ॥

हिन्दी—राजा सबसे कर लेकर दास की तरह उस धन की रक्षा करे। इस तरह संक्षेप में कोश-प्रकरण का वर्णन किया गया ॥ १३० ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'कोशनिरूपण' नामक द्वितीय प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

सर्वत इति। राजा सर्वतः सर्वस्मात् जनात् रक्षणे रक्षणार्थं दासवत् भृत्यवत् फलभुक् राजस्वरूपवेतनभोगी स्यात्। इति अनेन प्रकारेण समासात् सङ्क्षेपात् कोशप्रकरणं किल निश्चितं कथितम् ॥ १३० ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयं प्रकरणम्

अथ मिश्रे तृतीयन्तु राष्ट्रं वक्ष्ये समासतः।
स्थावरं जङ्गमञ्चापि राष्ट्रशब्देन गीयते॥ १॥

अन्वयः—अथ मिश्रे तृतीयं राष्ट्रं समासतः वक्ष्ये। राष्ट्रशब्देन स्थावरं जङ्गमञ्चापि गीयते॥ १॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, मिश्रे = अस्मिन्प्रकरणे, तृतीयम् = तृतीयाध्याये, राष्ट्रम् = जनपदम्, समासतः = सङ्क्षेपतः, वक्ष्ये = कथयिष्यामि। अत्र राष्ट्रशब्देन = राष्ट्रपदेन, स्थावरम् = निश्चतद्रुमलतादिकम्, जङ्गमम् = गमनशीलं गोमानुषादिकम्, च, गीयते = वर्ण्यते॥ १॥

हिन्दी—इसके बाद इस मिले-जुले तृतीय प्रकरण में राष्ट्र का वर्णन करेंगे। राष्ट्र शब्द से यहाँ तात्पर्य जड़-चेतन दोनों से हैं॥ १॥

अथेति। अथ अनन्तरं मिश्रे अध्याये तृतीयं राष्ट्रं राज्यप्रकरणं समासतः सङ्क्षेपेण वक्ष्ये कथयिष्यामि। राष्ट्रशब्देन स्थावरं स्थितिशीलं वृक्षपर्वतादि जङ्गमं गोमनुष्यादिकञ्च गीयते कथ्यते॥ १॥

यस्याधीनं भवेद् यावत् तद्राष्ट्रं तस्य वै भवेत्॥ २॥

अन्वयः—यस्य यावत् राज्यम् अधीनं भवेत् तस्य तत् राष्ट्रं भवेत्॥ २॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, यावत् = यत्परिमितम्, राज्यम् = भूभागम्, अधीनम् = आज्ञानुवर्त्तिनम्, भवेत् = स्यात्, तत् = भूभागम्, राष्ट्रम् = जनपदम्, भवेत् = स्यात्॥ २॥

हिन्दी—जिस राजा के अधीन जहाँ तक का जनपद होता है, उस सीमा तक उसका वह राष्ट्र कहलाता है॥ २॥

यस्येति। यस्य राज्ञः यावत् यत्परिमितं राज्यम् अधीनं तस्य तत् राष्ट्रं भवेत्॥ २॥

कुवेरता शतगुणाधिका सर्वगुणात् ततः।
ईशता चाधिकतरा सा नाल्पतपसः फलम्॥ ३॥

अन्वयः—कुवेरता शतगुणेभ्यः अधिका, ईशता ततः सर्वगुणात् अधिकतरा, सा च अल्पतपसः फलं न॥ ३॥

व्याख्या—कुवेरता = राजराजत्वम्, शतगुणेभ्यः = गुणशतेभ्योऽपि, अधिका = विशिष्टतरा, भवति, ईशता = सर्वस्वामित्वम्, तु, ततः = ततोऽपि, सर्वगुणात् = सकलगुणसमूहात्, अधिकतरा = श्रेष्ठतरा भवति, सा = कुवेरता ईशता च, अल्पतपसः = तुच्छतपस्यायाः, फलम् = परिणामम्, न = नहि, भवत्येवेति निश्चितमिति॥ ३॥

हिन्दी—सर्वगुणसम्पन्न होने की अपेक्षा सौ गुना अधिक श्रेष्ठ धनकुबेर होना है। उसके

बाद प्रभुत्वसम्पन्न राजा होना सबसे अधिक श्रेष्ठ है, जो सामान्य तप का फल नहीं है ॥३ ॥

कुवेरतेति। कुवेरता धनपतित्वं शतगुणेभ्यः अधिका श्रेष्ठा ईशता स्वामित्वन्तु ततः सर्वगुणात् अधिकतरा श्रेष्ठतरा। सा कुवेरता ईशता च अल्पतपसः फलं न, बहुतपस्यायाः फलमित्यर्थः ॥ ३ ॥

स दीव्यति पृथिव्यां तु नान्यो देवो यतः स्मृतः ॥ ४ ॥

अन्वयः—सः पृथिव्यां दीव्यति, यतः अन्यः देवः न स्मृतः ॥ ४ ॥

व्याख्या—सः = असौ, धनपतिरीशश्च, पृथिव्याम् = भुवि, दीव्यति = विलसति, यतः = यस्मात्कारणात्, अन्य = अपरः, देवः = प्रभुत्वसम्पन्नो जनः, तथा, न = नहि, स्मृतः = कथितः ॥ ४ ॥

हिन्दी—क्योंकि वह पुरुष संसार में देवता की तरह विलास करता है, अतः उसकी तरह कोई अन्य व्यक्ति नहीं माना जाता है ॥ ४ ॥

स इति। सः धनस्वामी प्रभुश्च पृथिव्यां दीव्यति क्रीडति विराजते इत्यर्थः। अतः अन्यः जनः देवः न स्मृतः न कथितः, धनवान् प्रभुरेव देवशब्देनाभिधीयते इति भावः ॥ ४ ॥

यस्याश्रितो भवेल्लोकस्तद्वदाचरति प्रजा।
भुङ्क्ते राष्ट्रफलं सम्यगतो राष्ट्रकृतं त्वघम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—लोकः यस्य आश्रितः भवेत् प्रजा तद्वत् आचरति। अतः राष्ट्रफलं राष्ट्रकृतम् अघं सम्यक् भुङ्क्ते ॥ ५ ॥

व्याख्या—लोकः = जनः, यस्य = राज्ञः, आश्रितः = अवलम्बितः, भवेत् = स्यात्, प्रजा = जनाः, तद्वत् = नृपतिरिव, आचरति = व्यवहरति। अतः = अस्मात् कारणात्, राष्ट्रफलम्— राष्ट्रस्य = जनपदस्य, फलम् = परिणामम्, सुखसुविधादिकम्, राष्ट्रकृतम् = जनसम्पादितम्, अघम् = पापम्, तु = पुनः, सम्यक् = सुष्ठुतया, भुङ्क्ते = सुखदुःखादीनामनुभवति ॥ ५ ॥

हिन्दी—राजा जैसा आचरण करता है, उसकी आश्रित प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है। अतः राजा भी प्रजाकृत पाप-पुण्य का फल दुःख या सुख का भलीभाँति अनुभव करता है ॥ ५ ॥

तस्येति। लोकः यस्य प्रभोः आश्रितः भवेत्, प्रजा तद्वत् प्रभुवत् प्रभुमतानुसारेणेत्यर्थः आचरति। अतः कारणात् स्वामी राष्ट्रफलं सुखादिकं राष्ट्रकृतम् अघं पापञ्च, तुशब्दश्चार्थः। सम्यक् भुङ्क्ते ॥ ५ ॥

स्वस्वधर्मपरो लोको यस्य राष्ट्रे प्रवर्त्तते।
धर्मनीतिपरो राजा चिरं कीर्त्तिं स चाश्नुते ॥ ६ ॥

अन्वयः—यस्य राष्ट्रे लोकः स्वस्वधर्मपरः प्रवर्त्तते, स राजा धर्मनीतिपरः चिरं कीर्त्तिं च अश्नुते ॥ ६ ॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, राष्ट्रे = राज्ये, लोकः = प्रजा, स्वस्वधर्मपरः = स्वकीयधर्मतत्परः, प्रवर्त्तते = भवति, सः = असौ, राजा = नृपः, धर्मनीतिपरः = धर्मानुष्ठाने नीतिनिर्वाहे च तत्परो भवति, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, कीर्त्तिम् = यशः, अश्नुते = उपभुङ्क्ते ॥ ६ ॥

हिन्दी—जिस राजा के राज्य में प्रजा अपने-अपने धर्म में तत्पर रहती है, वह राजा स्वयं धर्म और नीति के मार्ग पर चलकर बहुत दिनों तक यश का उपभोग करता है ॥ ६ ॥

स्वेति। यस्य राष्ट्रे लोकः स्वस्वधर्म्मपरः निजनिजानुष्ठानतत्परः प्रवर्त्तते चलति, सः राजा धर्मनीतिपरः भवतीति शेषः, चिरं कीर्त्तिञ्च अश्नुते लभते ॥ ६ ॥

भूमौ यावद् यस्य कीर्त्तिस्तावत् स्वर्गे स तिष्ठति ॥ ७ ॥

अन्वयः—यस्य भूमौ यावत् कीर्त्तिः तिष्ठति तावत् सः स्वर्गे तिष्ठति ॥ ७ ॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, भूमौ = पृथिव्याम्, यावत् = यावदवधि, कीर्त्तिः = यशः, तिष्ठति = अवतिष्ठति, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, सः = असौ, स्वर्गे = देवलोके, तिष्ठति = निवसति ॥ ७ ॥

हिन्दी—धरती पर जिसकी कीर्त्ति जब तक रहती है तब तक वह स्वर्ग में निवास करता है ॥ ७ ॥

भूमाविति। यस्य भूमौ पृथिव्यां यावत् यावत्कालं कीर्त्तिस्तिष्ठतीति शेषः, सः तावत् तावत्कालं स्वर्गे तिष्ठति ॥ ७ ॥

अकीर्त्तिरिव नरको नान्योऽस्ति नरको दिवि।
नरदेहाद् विना त्वन्यो देहो नरक एव सः ॥ ८ ॥

अन्वयः—अकीर्त्तिः एव नरकः, दिवि अन्यः नरकः न, नरदेहात् विना अन्यः देहः सः नरकः एव ॥ ८ ॥

व्याख्या—अकीर्त्तिः = अपयशः, एव = इति निश्चयेन, नरकः = दुर्गतिकारणम्, दिवि = स्वर्गे, अन्यः = अपकीर्तिभिन्नः, नरकः = निरयः, न = नास्ति, नरदेहात् = मानवशरीरात्, विना = विहाय, अन्यः = अपरः, यो देहः = या योनिः, सः, तदेव नरकः = निरय एवेति ॥ ८ ॥

हिन्दी—अपकीर्त्ति ही नरक है, परलोक में इसके सिवा और कोई दूसरा नरक नहीं है। मानव देह को छोड़कर दूसरी योनि तो नरक ही है ॥ ८ ॥

अकीर्त्तिरिति। अकीर्त्तिः अयश एव नरकः दुर्गतिकारणं, दिवि परलोके अन्यः अपरः अकीर्त्तिभिन्न इत्यर्थः, नरकः न अस्ति। नरदेहात् विना अन्यो यो देहः, सः नरक एव ॥ ८ ॥

महत् पापफलं विद्यादाधिव्याधिस्वरूपकम्।
स्वयं धर्मपरो भूत्वा धर्मे संस्थापयेत् प्रजाः।
प्रमाणभूतं धर्मिष्ठमुपसर्पन्त्यतः प्रजाः ॥ ९ ॥

अन्वयः—आधिव्याधिस्वरूपकं महत् पापफलं विद्यात्। स्वयं धर्मपरो भूत्वा धर्मे प्रजाः संस्थापयेत्। अतः प्रजाः प्रमाणभूतं धर्मिष्ठम् उपसर्पन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—आधिः = मानसी व्यथा, व्याधिः = दैहिकपीडा, तयोः स्वरूपकम् = तत्तद्रूपम्, महत् = प्रचण्डम्, पापस्य = किल्बिषस्य, फलम् = परिणामम्, विद्यात् = ज्ञेयात्। अतः राजा, स्वयम् = आत्मनः एव, धर्मपरः = धर्मनिष्ठः, भूत्वा = भूय, धर्मे = शुभकृत्ये, प्रजाः = जनाः, संस्थापयेत् = प्रवर्त्तयेत्। अतः = धर्मप्रवर्तनात्, प्रजाः = जनाः, प्रमाणभूतम् = निदर्शनस्वरूपं, धर्मिष्ठम् = धार्मिकं नृपम्, उपसर्पन्ति = अनुसरन्ति ॥ ९ ॥

हिन्दी—मानसिक पीड़ा या शारीरिक रोग किसी बड़े पाप का ही परिणाम समझना चाहिए। अतः राजा स्वयं धार्मिक होकर प्रजा को भी धर्म में स्थापित करे। इससे प्रजा भी धर्मनिष्ठ राजा को प्रमाण मानकर उसका अनुसरण करेगी ॥ ९ ॥

महदिति। आधिः मानसी व्यथा, व्याधिः शरीरपीडा तयोः स्वरूपकं तत्तद्रूपमित्यर्थः, महत् पापस्य फलं विद्यात्, अतः राजा स्वयं धर्म्मपरः धर्म्मनिष्ठः भूत्वा प्रजाः धर्मे संस्थापयेत्। अतः धर्म्मसंस्थापनात् प्रजाः प्रमाणभूतं निदर्शनस्वरूपं धर्मिष्ठं राजानम् उपसर्पन्ति अनुवर्त्तन्ते ॥ ९ ॥

देशधर्मा जातिधर्माः कुलधर्माः सनातनाः।
मुनिप्रोक्ताश्च ये धर्माः प्राचीना नूतनाश्च ये ॥ १० ॥
ते राष्ट्रगुप्त्यै सन्धार्य्या ज्ञात्वा यत्नेन सन्नृपैः।
धर्मसंस्थापनाद्राजा श्रियं कीर्त्तिं प्रविन्दति ॥ ११ ॥

अन्वयः—सनातनाः ये देशधर्माः जातिधर्माः कुलधर्माः तथा मुनिप्रोक्ताः ये प्राचीनाः नूतनाः धर्माः सन्नृपैः ते ज्ञात्वा राष्ट्रगुप्त्यै यत्नेन सन्धार्याः। राजा धर्मसंस्थापनात् श्रियं कीर्त्तिं च प्रविन्दति ॥ १०-११ ॥

व्याख्या—सनातनाः= क्रमागतपुरातनाः, ये देशधर्माः= राष्ट्रीयधर्माः, जातिधर्माः= जातीयधर्माः, कुलधर्माः= कुलपरम्परागतधर्माः, तथा= तेनैव प्रकारेण, मुनिप्रोक्ताः= ऋषिगणनिर्दिष्टाः, ये प्राचीनाः= पुरातनाः, नूतनाः= नवीनाः, धर्माः= अभ्युदयनिःश्रेयसगुणकर्मसमूहसाधको नियमाः, सन्नृपैः= साधुभिः राजभिः, ते= धर्माः, ज्ञात्वा= परिज्ञाय, राष्ट्रगुप्त्यै—राष्ट्रस्य= जनपदस्य, गुप्त्यै= रक्षणाय, यत्नेन= प्रयासपूर्वकेण, सन्धार्याः= धारणीयाः पालनीयाश्च। राजा= नृपः, धर्मसंस्थापनात्= धर्मप्रतिपालनात्, श्रियम्= लक्ष्मीम्, कीर्त्तिम्= यशश्च, प्रविन्दति= प्रकर्षेण प्राप्नोति ॥ १०-११ ॥

हिन्दी—बहुत दिनों से प्रचलित देशधर्म, जातिधर्म तथा कुलधर्म एवं मुनियों के द्वारा कहे गये धर्म, नये-पुराने धर्म—इन सबों को जानकर अच्छे राजे अपने राष्ट्र की रक्षा के निमित्त प्रयासपूर्वक इनका पालन करते हैं। क्योंकि धर्म की स्थापना से ही कोई राजा लक्ष्मी और कीर्त्ति पाता है ॥ १०-११ ॥

देशधर्मा इति। ते इति। सनातनाः चिरं प्रचलिताः ये देशधर्माः जातिधर्माः कुलधर्माः तथा मुनिभिः प्रोक्ताः कथिताः प्राचीनाः नूतनाश्च ये धर्माः नियमाः, सन्नृपैः साधुभिः राजभिः ते धर्माः ज्ञात्वा राष्ट्रस्य गुप्त्यै रक्षायै यत्नेन सन्धार्य्याः पालनीयाः। राजा धर्मसंस्थापनात् तत्तद्धर्म्मप्रतिपालनात् श्रियं लक्ष्मीं कीर्त्तिञ्च प्रविन्दति प्रकर्षेण लभते ॥ १०-११ ॥

चतुर्धा भेदिता जातिर्ब्रह्मणा कर्मभिः पुरा।
तत्तत्साङ्कर्य्यासाङ्कर्य्यात् प्रतिलोमानुलोमतः।
जात्यानन्त्यन्तु सम्प्राप्तं तद्वक्तुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥

अन्वयः—पुरा ब्रह्मणा कर्मभिः तत्तज्जातिः चतुर्धा भेदिता। तेषां साङ्कर्यासाङ्कर्यात् तथा प्रतिलोमानुलोमतः जात्यानन्त्यम्, तत् वक्तुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—पुरा = प्राचीनकाले, ब्रह्मणा = वेधसा, कर्मभिः = तेषां कार्यैः, तत्तज्जातिः = तेषां तेषां जातिविशेषाणाम्, चतुर्धा = चतुःप्रकारेण, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्ररूपेण, भेदिता = विभाजिता, तेषाम् = जातिविशेषाणाम्, साङ्कर्यासाङ्कर्यात् = अन्योन्यसम्मिश्रणासम्मिश्रणात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रतिलोमानुलोमतः = प्रतिकूलेनावरोहक्रमेण च, जात्यानन्त्यम्—जातीनाम् = वर्णानाम्, आनन्त्यम् = असंख्यत्वम्, तत् = समग्रम्, वक्तुम् = कथितुम्, नैव = नास्त्येव, शक्यते = शक्तुं समर्थो भवति ॥ १२ ॥

हिन्दी—पहले ब्रह्मा ने काम के अनुसार मानव की चार जातियाँ बनाईं। उनमें प्रत्येक जाति में मिश्रण होने पर उन मिश्रित जातियों का भी सांकर्य प्रतिलोभ अर्थात् पिता निम्न कुल का एवं माता उच्च कुल की तथा अनुलोम अर्थात् पिता उच्च वर्ग का एवं माता निम्न वर्ग होने से असंख्य जातियाँ हो गईं, जिनकी गिनती संभव नहीं है ॥ १२ ॥

चतुर्धेति। पुरा पूर्वकाले ब्रह्मणा कर्म्मणा तत्तज्जातिविशेषनिष्ठकार्य्येण चतुर्धा जातिः भेदिता, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्ररूपेण विभक्ता। तेषां तेषाञ्च साङ्कर्य्यासाङ्कर्य्यात् परस्परमिश्रणामिश्रणात् तथा प्रतिलोमानुलोमतः प्रातिलोम्येन आनुलोम्येन च जात्यानन्त्यं जातीनाम् आनन्त्यम् असङ्ख्यत्वं सम्प्राप्तं जातं, तत् वक्तुं कथयितुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥

मन्यन्ते जातिभेदं ये मनुष्याणां तु जन्मना।
त एव हि विजानन्ति पार्थक्यं नामकर्म्मभिः ॥ १३ ॥

अन्वयः—ये जन्मना मनुष्याणां जातिभेदं मन्यन्ते, ते एव नामकर्मभिः पार्थक्यं विजानन्ति ॥ १३ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, जन्मना = जननानुसारेण, मनुष्याणाम् = मानवानाम्, जातिभेदम्—जातीनाम् = वर्णानाम्, भेदम् = भिन्नता, मन्यन्ते = स्वीकुर्वन्ति, ते = पूर्वोक्ताः जनाः, एव = इति निश्चयेन, नामकर्मभिः—नामभिः = अभिधानैः, कर्मभिः = कार्यैः, पार्थक्यम् = मानवानां भिन्नत्वम्, विजानन्ति = विन्दन्ते ॥ १२ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति जन्म से मनुष्य की जाति मानते हैं, वे ही नाम से या कर्म से जातिगत भेद भी मानते हैं ॥ १३ ॥

मन्यन्त इति। ये जन्मना जननानुसारेण मनुष्याणां जातिभेदं मन्यन्ते, ते एव नामकर्म्मभिः नामभिः कर्मभिश्च मनुष्याणामिति शेषः, पार्थक्यं विभिन्नतां विजानन्ति हि ॥ १३ ॥

जरायुजाण्डजा स्वेदोद्भिज्जा जातिः सुसङ्ग्रहात्।
उत्तमो नीचसंसर्गाद् भवेन्नीचस्तु जन्मना ॥ १४ ॥

अन्वयः—जातिः सुसङ्ग्रहात् जरायुजाण्डजा स्वेदोद्भिज्जा। उत्तमः नीचसंसर्गात् जन्मना नीचः भवेत् ॥ १४ ॥

व्याख्या—जातिः = वर्णः, सुसङ्ग्रहात् = सुसङ्क्षेपात्, जरायुजाः = गर्भाशयजाताः, अण्डजाः = खगसर्पमीनादयो जीवाः, स्वेदजाः = घर्मजाताः, तथा उद्भिज्जाः = तरुगुल्मादयः, चतुर्धा, उत्तमः = श्रेष्ठजातिः, नीचसंसर्गात् = अधमसम्पर्कात्, जन्मना = जननेन, नीचः = अधमः, एव भवेत् = जायेत ॥ १४ ॥

हिन्दी—प्राणियों के चार भेद हैं—जरायुज मानवादि, अण्डज पक्षी, स्वेदज जूँ, खटमल

आदि तथा उद्भिज वृक्षादि। श्रेष्ठ जाति के लोग नीच के सम्पर्क से नीच हो जाते हैं, किन्तु नीच कुल में उत्पन्न नीच ही होते हैं ॥ १४ ॥

जरायुजेति। जातिः सुसङ्ग्रहात् सुसङ्क्षेपात् जरायुजा, अण्डजा, स्वेदजा तथा उद्भिज्जा इति चतुर्धा भवतीति शेषः। उत्तमः उत्कृष्टजातिः नीचसंसर्गात् जन्मना उत्पत्त्या नीचस्तु नीच एव भवेत् ॥ १४ ॥

नीचो भवेन्नोत्तमस्तु संसर्गाद् वापि जन्मना।
कर्म्मणोत्तमनीचत्वं कालतस्तु भवेद् गुणैः।
विद्याकलाश्रयेणैव तन्नाम्ना जातिरुच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः—नीचः तु संसर्गात् जन्मना वा उत्तमः न भवेत्, कर्मणा उत्तमनीचत्वं गुणैः कालतः उत्तमनीचत्वं भवेत्। किञ्च विद्याकलाश्रयेणैव तन्नाम्ना जातिः उच्यते ॥ १५ ॥

व्याख्या—नीचस्तु = अधमस्तु, संसर्गात् = सम्पर्कात्, जन्मना = उत्पत्त्या, वा = अथवा, उत्तमः = उत्कृष्टः, न = नहि, भवेत् = स्यात्, कर्मणा = कार्येण, उत्तमनीचत्वम् = उत्कर्षापकर्षभावः, तथा गुणैः = धर्मैः, कालतः = समयानुसारेण, उत्तमः = उत्कृष्टः, नीचत्वम् = अधमत्वम्, भवेत् = जायेत। किञ्च, विद्यानाम् = बोधानाम्, कलानाम् = नृत्यसङ्गीतादीनाम्, च आश्रयेण = अवलम्बनेन, एव, तत् = विद्याकलानाम्, नाम्ना = अभिधानेन, जातिः = वर्णः, उच्यते = कथ्यते ॥ १५ ॥

हिन्दी—जन्म से नीच वर्ण का व्यक्ति संसर्ग से उत्तम नहीं हो सकता, किन्तु कर्म से व्यक्ति तत्काल उत्तम या नीच कहलाने लगता है। विद्या और कला के अवलम्बन से भी उसके नामानुसार अनेक जातियों की कल्पना की जाती है ॥ १५ ॥

नीच इति। नीचस्तु संसर्गात् जन्मना वा उत्तमः न भवेत्। कर्म्मणा कार्य्येण उत्तमनीचत्वम् उत्कर्षापकर्षभावः क्षिप्रमिति शेषः, तथा गुणैः विद्याविद्यादिभिस्तु कालतः कालक्रमेण उत्तमनीचत्वं भवेत्। किञ्च विद्यानां कलानां सङ्गीतादीनाञ्च आश्रयेण एव तन्नाम्ना तत्तद्विद्याकलानां नाम्ना जातिः उच्यते कथ्यते; यथा अयं दार्शनिकः, अयं नैयायिकः, अयं गायक इत्यादि ॥ १५ ॥

इज्याध्ययनदानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम्।
प्रतिग्रहोऽध्यापनञ्च याजनं ब्राह्मणेऽधिकम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—द्विजन्मनाम् इज्याध्ययनदानानि कर्माणि। प्रतिग्रहः अध्यापनं याजनं च ब्राह्मणे अधिकम् ॥ १६ ॥

व्याख्या—द्विजन्मनाम् = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम्, द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायतेति द्विजः; "ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां संस्कारादद्विज उच्यते" इति प्रामाण्येन ब्राह्मणादिवर्णत्रयस्य द्विजत्वेनाभिधानात्; इज्याध्ययनदानानि—इज्या = यागाद्यनुष्ठानम्, अध्ययनम् = पठनम्, दानम् = उत्सर्जनम्, एतानि त्रीणि कर्माणि = कृत्यानि, ब्राह्मणे = विप्रे तु, प्रतिग्रहः = आदानम्, अध्यापनम् = पाठनम्, तथा याजनम् = यजमानाय पौरोहित्यम्, एतत् त्रयम्, अन्यवर्णादधिकम् = विशिष्टम्, तेन हि ब्राह्मणः षट्कर्मी भवतीति भावः ॥ १६ ॥

हिन्दी—यज्ञ करना, अध्ययन करना तथा दान देना—ये तीन कर्म द्विजन्मा अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए समानरूप से कर्त्तव्य हैं। किन्तु ब्राह्मणों के लिए तीन और अधिक कर्म हैं—यज्ञ करना, अध्यापन और दान लेना ॥ १६ ॥

इज्येति। द्विजन्मनां द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां संस्कारात् द्विज उच्यते इति वचनेन ब्राह्मणादिवर्णत्रयस्य द्विजत्वेनाभिधानात्। इज्याध्ययनदानानि इज्या यज्ञानुष्ठानम् अध्ययनं दानञ्च एतानि त्रीणि कर्माणि। ब्राह्मणे तु प्रतिग्रहः ग्रहणम् अध्यापनं तथा याजनं परार्थे यज्ञकरणम् एतत् त्रयम् अधिकम् ॥ १६ ॥

सद्रक्षणं दुष्टनाशः स्वांशादानन्तु क्षत्रिये।
कृषिगोगुप्तिवाणिज्यमधिकन्तु विशां स्मृतम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—क्षत्रिये तु सद्रक्षणं दुष्टनाशः स्वांशादानम् अधिकम्। विशां कृषिगोगुप्तिवाणिज्यम् अधिकं स्मृतम् ॥ १७ ॥

व्याख्या—क्षत्रिये = राजन्ये तु, सद्रक्षणम्—सताम् = साधूनाम्, रक्षणम् = गोपनम्, दुष्टनाशः—दुष्टानाम् = दुर्वृत्तानाम्, नाशः = विनाशनम्, स्वांशादानम्—स्वस्य = आत्मनः, अंशस्य = लभ्यशुल्कस्य, आदानम् = स्वीकरणम्, एतत्त्रयमधिकम्, विशाम् = वैश्यानाम्, कृषिः = भूकर्षणम्, गोगुप्तिः—गवाम् = पशूनाम्, गुप्तिः = पालनम्, तथा वाणिज्यम् = व्यापारम्, चैतत्त्रयम्, अधिकम् = विशिष्टम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ १७ ॥

हिन्दी—सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का विनाश करना तथा जीविका के लिए कर ग्रहण करना—ये तीन कर्म क्षत्रियों के अधिक हैं। इसी तरह कृषि, गोपालन एवं वाणिज्य ये तीन वैश्यों के अधिक कर्म हैं ॥ १७ ॥

सद्रक्षणमिति। क्षत्रिये तु सद्रक्षणं सतां साधूनां रक्षणं, दुष्टनाशः दुष्टानां दमनं तथा स्वांशस्य राजलभ्यांशस्य आदानं ग्रहणञ्च एतत्त्रयम् अधिकम्। विशां वैश्यानान्तु कृषिः गोगुप्तिः गवां पशूनां गुप्तिः पालनं तथा वाणिज्यम् एतत्त्रयम् अधिकं स्मृतम् ॥ १७ ॥

दानं सेवैव शूद्रादेर्नीचकर्म्म प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—शूद्रादेः दानं सेवा तथा नीचकर्म प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—शूद्रादेः—शूद्रस्य = वृषलस्य, आदिपदेन तत्समानजातेश्च, दानम् = उत्सर्जनम्, सेवा = परिचर्या, तथा नीचकर्म = समाजसंरक्षणार्थं परिमार्जनादिकञ्च निकृष्टकर्म, प्रकीर्त्तितम् = कथितम् ॥ १८ ॥

हिन्दी—दान देना, जीविका के लिए नौकरी करना एवं पथ-परिमार्जनादि निकृष्ट कर्म शूद्रों के लिए विहित कर्म कहे गये हैं ॥ १८ ॥

दानमिति। शूद्रादेः शूद्रस्य तत्समानजातेश्च दानं सेवा दासवृत्तिः तथा नीचकर्म निकृष्टकार्य्यं पदसेवागृहमार्जनादिकञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

क्रियाभेदैस्तु सर्वेषां भृतिवृत्तिरनिन्दिता।
सीरभेदैः कृषिः प्रोक्ता मन्वाद्यैर्ब्राह्मणादिषु ॥ १९ ॥

अन्वयः—क्रियाभेदैः तु सर्वेषां भृतिवृत्तिः अनिन्दिता। यथा मन्वाद्यैः सीरभेदैः ब्राह्मणादिषु कृषिः प्रोक्ता ॥ १९ ॥

व्याख्या—क्रियाभेदैः—क्रियाणाम् = व्यापाराणाम्, भेदैः = प्रकारैः, सर्वेषाम् = सकलानां ब्राह्मणादीनाम्, भृतिवृत्तिः = जीवनयापनार्थं या निर्दिष्टा वृत्तिः = आजीविका, सा

अनिन्दिता = अनिन्दनीया। यथा मन्वाद्यैः = मनुप्रभृतिभिः मुनिभिः, सीरभेदैः—सीराणाम् = हलानाम्, भेदैः = प्रभेदैः, ब्राह्मणादिषु = विप्रादिषु, कृषिः = हलभृतिः, प्रोक्ता = कथिता ॥ १९ ॥

हिन्दी—जीवन-यापन के लिए काम करने के ढंग अलग-अलग बतलाये गये हैं, जो निन्दा करने योग्य नहीं है। जैसे मनु प्रभृति स्मृतिकारों ने हल के भेद से ब्राह्मणों के लिए भी कृषिकर्म को विहित माना है ॥ १९ ॥

क्रियेति। क्रियाणां कार्य्याणां भेदैः प्रभेदैः सर्वेषां ब्राह्मणादीनां भृतिवृत्तिः भरणार्थं निर्दिष्टा वृत्तिः जीवनोपायः अनिन्दिता। यथा मन्वाद्यैः मुनिभिः सीराणां लाङ्गलानां भेदैः विशेषैः ब्राह्मणादिषु कृषिः प्रोक्ता कथिता ॥ १९ ॥

ब्राह्मणैः षोडशगवं चतुरूनं यथा परैः।
द्विगवं वान्त्यजैः सीरं दृष्ट्वा भूमार्दवं तथा ॥ २० ॥

अन्वयः—ब्राह्मणैः षोडशगवं सीरं तथा परैः चतुरूनम्। तथा अन्त्यजैः भूमार्दवं दृष्ट्वा द्विगवं सीरम् ॥ २० ॥

व्याख्या—ब्राह्मणैः = क्षेत्राजीवैः विप्रैः, षोडशगवम् = षोडशभिः वृषभैः वाह्यम्, सीरम् = हलम्, तथा परैः = अन्यैः क्षत्रियवैश्यशूद्रैः, क्रमशः चतुः, ऊनम् = हीनम्, यथा क्षत्रियैः द्वादशगवम्, वणिग्भिः अष्टगवम्, वृषलैश्चतुर्गवं वहनीयम्। सीरम् = हलम्, तथा अन्त्यजैः = रजकादिभिः; तद्यथा—

"रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड एव च।
कैवर्त्तभेदभिल्लश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥" (यमवचनम्)

भूमार्दवम्—भुवः = पृथिव्याः, मार्दवम् = कोमलत्वम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, द्विगवम् = द्वाभ्यां वृषभाभ्यां वाह्यं हलं कर्त्तव्यमिति ॥ २० ॥

हिन्दी—ब्राह्मणों को एक हल पर सोलह बैल रखकर खेत जुतवाना चाहिए और क्रमशः उत्तरोत्तर चार-चार कम बैलों से अर्थात् क्षत्रियों को बारह बैल, वैश्यों को आठ बैल तथा शूद्रों को चार बैल एक हल पर रख कर खेत जुतवाना चाहिए। इसी तरह एक हल पर दो बैल अंत्यजों को रखना चाहिए। यह विभाजन धरती की कोमलता पर ध्यान में रखकर किया गया है ॥ २० ॥

ब्राह्मणैरिति। ब्राह्मणैः कृषिजीविभिरिति भावः, षोडशगवं षोडशभिः गोभिः वाह्यं सीरं तथा परैः अन्यैः क्षत्रियादिभिरित्यर्थः, क्रमशः चतुरूनं क्षत्रियैः द्वादशगवं, वैश्यैः अष्टगवं, शूद्रैः चतुर्गवमित्यर्थः, सीरं तथा अन्त्यजैः चाण्डालादिभिः भूमार्दवं भुवः भूमेर्मार्दवं मृदुत्वं दृष्ट्वा द्विगवं सीरं कर्त्तव्यमिति शेषः ॥ २० ॥

ब्राह्मणेन विनान्येषां भिक्षावृत्तिर्विगर्हिता ॥ २१ ॥

अन्वयः—ब्राह्मणेन विना अन्येषां भिक्षावृत्तिः विगर्हिता ॥ २१ ॥

व्याख्या—ब्राह्मणेन = विप्रेण, विना = विहाय, अन्येषाम् = क्षत्रियादीनाम्, भिक्षावृत्तिः = याच्ञाजीविका, विगर्हिता = विशेषरूपेण निन्दितेति ॥ २१ ॥

हिन्दी—ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य जातियों के लिए भिक्षावृत्ति विशेष रूप से निन्दित है ॥ २१ ॥

ब्राह्मणेनेति। ब्राह्मणेन विना अन्येषां क्षत्रियादीनां भिक्षावृत्तिः विगर्हिता विशेषेण निन्दिता॥ २१ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना॥ २२ ॥

अन्वयः—द्विजन्मना विविधैः विधिचोदितैः तपोविशेषैः च व्रतैः सरहस्यः वेदः कृत्स्नः अधिगन्तव्यः॥ २२ ॥

व्याख्या—द्विजन्मना = ब्राह्मणादिना, विविधैः = अनेकविधैः, विधिचोदितैः = नियमपूर्वकैः, तपोविशेषैः = नियमस्थितिभिः, च = पुनः, व्रतैः = उपोषणैः, सरहस्यः = उपनिषत्सहितः, कृत्स्नम् = समग्रम्, वेदः = श्रुतिः, अधिगन्तव्यः = ज्ञातव्यः॥ २२ ॥

हिन्दी—ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को नियमपूर्वक अनेक तप एवं व्रतों का सम्पादन करते हुए उपनिषदों के साथ समग्र वेदों को जानना चाहिए॥ २२ ॥

तपोविशेषैरिति। द्विजन्मना द्विजेन विविधैः विधिचोदितैः विहितैः तपोविशेषैः व्रतैश्च सरहस्यः उपनिषत्सहितः समग्रः वेदः अधिगन्तव्यः वेदितव्यः॥ २२ ॥

योऽधीतविद्यः सकलः स सर्वेषां गुरुर्भवेत्।
न च जात्यानधीतो यो गुरुर्भवितुमर्हति॥ २३ ॥

अन्वयः—यः अधीतविद्यः सकलः सः सर्वेषां गुरुः भवेत्। अनधीतः जात्या गुरुः भवितुं न अर्हति॥ २३ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, अधीतविद्यः सकलः = सकलासु लौकिककलासु विद्यासु च कृतपरिश्रमः, सः = एवंविधो द्विजः, गुरुः = उपदेष्टा, भवेत् = जायेत। अनधीतः = शास्त्राध्ययनरहितः, जात्या = मात्रद्विजकुलोत्पन्नेन, गुरुः = उपदेष्टा, भवितुं, न = नहि, अर्हति = शक्नोति॥ २३ ॥

हिन्दी—जिस द्विज ने समस्त विद्या का अध्ययन किया है, वही गुरु हो सकता है। बिना अध्ययन किये केवल जातिमात्र से कोई गुरु नहीं बन सकता है॥ २३ ॥

य इति। यः अधीतविद्यः तथा सकलः कलाभिः लौकिकविद्यादिभिः सहितः, स. सर्वेषां गुरुः भवेत्। यस्तु अनधीतः अकृतविद्यः सः जात्या केवलयेति शेषः, गुरुः भवितुं न अर्हति॥ २३ ॥

विद्या ह्यनन्ताश्च कलाः संख्यातुं नैव शक्यते।
विद्या मुख्याश्च द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिः कलाः स्मृताः॥ २४ ॥

अन्वयः—विद्याः कलाश्च अनन्ताः हि, ताः संख्यातुं नैव शक्यते। मुख्याः विद्याः द्वात्रिंशत् कलाश्च चतुःषष्टिः स्मृताः॥ २४ ॥

व्याख्या—विद्याः = बोधाः, कलाश्च = नृत्यगीतादिशिल्पविद्याः, अनन्ताः = अन्तहीनाः, हि = यतः, ताः = विद्याः कलाश्च, संख्यातुम् = गणनाकर्त्तुम्, नैव = नास्त्येव, शक्यते = अर्हति। 'शक्यते' इति आर्षप्रयोगः। तत्र मुख्याः = प्रमुखाः, विद्याः = ज्ञानानि, द्वात्रिंशत्, तथा कलाः = शिल्पविद्याः, चतुःषष्टिः, स्मृताः = कथिताः॥ २४ ॥

हिन्दी—विद्या एवं कलाओं का कोई अन्त नहीं हैं, इनकी गिनती कोई नहीं कर सकता है। फिर भी बत्तीस मुख्य विद्याएँ एवं चौसठ कलाएँ मानी जाती हैं ॥ २४ ॥

विद्या इति। विद्या कलाश्च अनन्ता हि ताः संख्यातुम् इयत्तया परिच्छेत्तुं नैव शक्यते शक्यन्ते आर्षोऽयं प्रयोगः। तत्र मुख्याः विद्याः द्वात्रिंशत्, तथा कलाश्च चतुःषष्टिः स्मृताः ॥ २४ ॥

यद् यत् स्याद् वाचिकं सम्यक् कर्म विद्याभिसंज्ञकम्।
शक्तो मूकोऽपि यत् कर्त्तुं कलासंज्ञन्तु तत् स्मृतम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—यत् यत् कर्म सम्यक् वाचिकं तत्तत् विद्याभिसंज्ञकम्। यत् मूकोऽपि कर्त्तुं शक्तः तत्तु कलासंज्ञं स्मृतम् ॥ २५ ॥

व्याख्या—यत् यत् कर्म = यानि यानि कार्याणि, सम्यक् = सुष्ठुतया, वाचिकम् = वाचा पूर्णतया निष्पाद्यम्, तत्तत् = कर्म, विद्या = बोधः, अभिसंज्ञकः = नाम्नाख्यातम्, यत्तु, मूकोऽपि = वाणिहीनोऽपि, कर्त्तुम् = निष्पादितुम्, शक्तः = समर्थः, तत्तु, कला = नृत्यादिकं शिल्पविद्यानाम्ना, स्मृतम् = ख्यातम् ॥ २५ ॥

हिन्दी—जो-जो काम बोल कर ठीक ढंग से पूरा किया जा सकता है, वह विद्या है और जिन्हें गूंगा व्यक्ति भी हाथ-पैरों की सहायता से कर सकता है, वह कला कहलाती है ॥ २५ ॥

यदिति। यत् यत् कर्म सम्यक् सम्पूर्णरूपेण वाचिकं वाचा निष्पाद्यं, ततत् विद्याभिसंज्ञकं विद्येति नाम्ना कथितम्। यत्तु मूकोऽपि वर्णोच्चारणासमर्थोऽपि कर्त्तुं शक्तः (यथा नृत्यादिकमिति भावः), तत्तु कलासंज्ञं कलेति नाम्ना कथितम् ॥ २५ ॥

उक्तं सङ्क्षेपतो लक्ष्म विशिष्टं पृथगुच्यते।
विद्यानाञ्च कलानाञ्च नामानि तु पृथक् पृथक् ॥ २६ ॥

अन्वयः—विद्यानाञ्च कलानाञ्च लक्ष्म सङ्क्षेपतः उक्तम्, विशिष्टं तु पृथक् उच्यते; नामानि पृथक् पृथक् सन्ति ॥ २६ ॥

व्याख्या—विद्यानाम् = ज्ञानविज्ञानानाम्, कलानाञ्च = शिल्पविद्यानाञ्च, लक्ष्म = लक्षणम्, सङ्क्षेपतः = समासेन, उक्तम् = कथितम्, विशिष्टम् = विलक्षणम्, तु पृथक् = भिन्नम्, उच्यते = कथ्यते, नामानि = अभिधानानि, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, सन्तीति ॥ २६ ॥

हिन्दी—विद्या और कला के सामान्य लक्षण संक्षेप में कह दिया, अब इनके विशिष्ट लक्षण अलग बतलाते हैं; इनके अलग-अलग नाम हैं ॥ २६ ॥

उक्तमिति। विद्यानाञ्च कलानाञ्च लक्ष्म लक्षणं सङ्क्षेपतः उक्तं विशिष्टन्तु पृथक् उच्यते कथ्यते, आसां नामानि पृथक् पृथक् सन्तीति शेषः ॥ २६ ॥

ऋग्यजुः साम चाथर्वा वेदा आयुर्धनुः क्रमात्।
गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २७ ॥

अन्वयः—ऋक् यजुः साम अथर्वा—एते वेदाः, आयुः धनुः गान्धर्वः तन्त्राणि च क्रमेण उपवेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २७ ॥

व्याख्या—ऋक् = ऋग्वेदः, यजुः = यजुर्वेदः, साम = सामवेदः, अथर्वा = अथर्ववेदः, एते = चत्वारः, क्रमेण = क्रमशः, उपवेदाः = प्रधानवेदातिरिक्ताः, एते चत्वारः गौणा वेदाः,

प्रकीर्त्तिताः = कथिताः, तन्त्राणि तु स्थापत्यवेदनाम्ना ख्यातेति ॥ २७ ॥

हिन्दी—ये विद्याएँ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—ये चार वेद हैं तथा क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा तन्त्र अर्थात् स्थापत्यवेद—ये चार उपवेद हैं ॥ २७ ॥

ऋगिति। ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्वा एते चत्वारः वेदाः। आयुर्वेदः, धनुर्वेदः, गान्धर्वः तन्त्राणि च एते उपवेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २७ ॥

शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
छन्दः षडङ्गानीमानि वेदानां कीर्त्तितानि हि ॥ २८ ॥

अन्वयः—शिक्षा, व्याकरणं, कल्पः, निरुक्तं, ज्योतिषं तथा छन्दः—इमानि षट् वेदानाम् अङ्गानि कीर्त्तितानि ॥ २८ ॥

व्याख्या—शिक्षा = अध्ययनाध्यापनसम्बन्धिवेदाङ्गविशेषः, व्याकरणम् = व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति शब्दशास्त्रस्वरूपवेदाङ्गः, कल्पः = धर्मकृत्यविधायको वेदाङ्गभेदः, निरुक्तम् = यास्कमुनिप्रणीतः ग्रन्थविशेषः, ज्योतिषम् = ज्योतिर्विद्या, तथा छन्दः = वृत्तशास्त्रम्, इमानि षट्, वेदानाम् = श्रुतीनाम्, अङ्गानि, हि = अवधारणार्थोऽयं शब्दः, कीर्त्तितानि = कथितानि ॥२८ ॥

हिन्दी—शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द—ये छः वेदाङ्ग कहलाते हैं ॥ २८ ॥

शिक्षेति। शिक्षा व्याकरणं कल्पः निरुक्तं ज्योतिषः तथा छन्दः इमानि षट् वेदानाम् अङ्गानि कीत्तितानि, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ २८ ॥

मीमांसातर्कसांख्यानि वेदान्तो योग एव च।
इतिहासाः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम् ॥ २९ ॥
अर्थशास्त्रं कामशास्त्रं तथा शिल्पमलङ्कृतिः।
काव्यानि देशभाषावसरोक्तिर्यावनं मतम्।
देशादिधर्मा द्वात्रिंशदेता विद्याभिसंज्ञिताः ॥ ३० ॥

अन्वयः—मीमांसा तर्कः सांख्यं वेदान्तः योगः इतिहासाः पुराणानि स्मृतयः नास्तिकं मतम् अर्थशास्त्रं कामशास्त्रं शिल्पम् अलङ्कृतिः काव्यानि देशभाषा अवसरोक्तिः यावनं मतं देशादिधर्माः—एताः द्वात्रिंशत् विद्याभिसंज्ञिताः ॥ २९-३० ॥

व्याख्या—मीमांसा = दर्शनशास्त्रविशेषः, तर्कः = न्यायशास्त्रम्, सांख्यम् = महर्षिकपिलप्रणीतो दर्शनग्रन्थविशेषः, वेदान्तः = अध्यात्मविद्या ज्ञानकाण्डं वा, योगः = चित्तवृत्तिनिरोधात्मकदर्शनशास्त्रविशेषः, इतिहासाः = पूर्ववृत्तानि, पुराणानि = हिन्दूनामष्टादश आख्यानग्रन्थाः, ब्रह्मविष्णु-शिवपुराणादिः, स्मृतयः = मन्वाद्यार्यधर्मशास्त्राणि, नास्तिकं मतम् = अनीश्वरवादिनः सिद्धान्तः, अर्थशास्त्रम् = धनप्राप्तिरक्षावृद्ध्याद्युपायदर्शकं शास्त्रम्, कामशास्त्रम् = प्रेमविज्ञानम्, रतिशास्त्रं वा, शिल्पम् = हस्तव्यवसायशास्त्रम्, अलङ्कृतिः = अलङ्कारशास्त्रम्, काव्यानि = कविकृतयः, देशभाषा = राष्ट्रभाषा, अवसरोक्तिः = सूक्तिशास्त्रम्, यावनं मतम् = यूनानवासीनां धार्मिकसिद्धान्तः, देशादिधर्माः = वैदेशिकधर्मसिद्धान्ताः, एताः द्वात्रिंशत् = द्वयाधिकत्रिंशत्, विद्याभिसंज्ञिताः = विद्या इति नाम्ना विख्यातेति ॥ २९-३० ॥

हिन्दी—मीमांसा, न्याय, सांख्य, वेदान्त, योग, इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकमत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, काव्य, राष्ट्रभाषा, सूक्तिशास्त्र, यवनों का मत तथा वैदेशिक धर्मग्रन्थ—ये बत्तीस विद्या नाम से जाने जाते हैं॥२९-३०॥

मीमांसेति। अर्थेति। मीमांसा, तर्कः, साङ्ख्यं, वेदान्तः, योगः, इतिहासाः, पुराणानि, स्मृतयः, नास्तिकमतम्, अर्थशास्त्रं, कामशास्त्रं, शिल्पम्, अलङ्कृतिः, काव्यानि, देशभाषा, अवसरोक्तिः, यावनं मतं तथा देशादिप्रचलितधर्माः एताः द्वात्रिंशत् विद्याभिसंज्ञिता विद्यानाम्ना ख्याता इत्यर्थः॥२९-३०॥

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनाम प्रोक्तमृगादिषु॥३१॥

अन्वयः—ऋगादिषु मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनाम प्रोक्तम्॥३१॥

व्याख्या—ऋगादिषु = ऋग्यजुःसामाथर्वसु, मन्त्रात्मकः, ब्राह्मणश्चेति तयोः, वेद इति नाम = अभिधानम्, इति प्रोक्तम् = कथितम्॥३१॥

हिन्दी—चारों वेद दो खण्डों में विभक्त हैं—एक मन्त्रात्मक और दूसरा ब्राह्मण॥३१॥

मन्त्रेति। ऋगादिषु ऋक्यजुःसामाथर्वसु मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनाम वेद इति नाम प्रोक्तं कथितं तथा च वेदः द्विविधः—मन्त्रात्मकः ब्राह्मणश्चेति भावः॥३१॥

जपहोमार्चनं यस्य देवताप्रीतिदं भवेत्।
उच्चारान्मन्त्रसंज्ञं तद्विनियोगि च ब्राह्मणम्॥३२॥

अन्वयः—यस्य उच्चारात् जपहोमार्चनं देवताप्रीतिदं भवेत्, तत् मन्त्रसंज्ञं च तद्विनियोगि ब्राह्मणम्॥३२॥

व्याख्या—यस्य = वेदभागस्य, उच्चारात् = उच्चारणात्, जपः = मुहुर्मुहुर्मन्त्रोच्चारणम्, होमः = देवयज्ञः, अर्चनम् = देवाराधनम्, देवतानाम् = सुराणाम्, प्रीतिदं = हर्षदायकम्, भवेत् = स्यात्, तत् = वेदभागः, मन्त्रसंज्ञम् = मन्त्रनाम्ना विख्यातम्, च = पुनः, तद्विनियोगि = तद्व्यतिरिक्तम्, अथवा तत्प्रमाणस्वरूपम्, ब्राह्मणम् = ब्राह्मणसंज्ञकम्॥३२॥

हिन्दी—वेदों के जिस भाग का उच्चारण करके जप, होम और देवार्चन से देवताओं को प्रसन्न किया जाता है, उसे मंत्रखण्ड कहते हैं तथा उन भागों के विनियोग जिसमें हो, उस वेदभाग को ब्राह्मण कहते हैं॥३२॥

जपेति। यस्य वेदभागस्य उच्चारात् उच्चारणात् जपः होमः अर्चनं देवपूजनं देवतानां प्रीतिदं भवेत् तत् मन्त्रसंज्ञं मन्त्रनाम्ना ख्यातम्। तद्विनियोगि तद्व्यतिरक्तं वा तत्प्रमाणस्वरूपं ब्राह्मणं स्मृतमिति शेषः॥३२॥

ऋग्रूपा यत्र ये मन्त्राः पादशोऽर्द्धर्चशोऽपि वा।
येषां हौत्रं स ऋग्भागः समाख्यानं च यत्र वा॥३३॥

अन्वयः—यत्र ऋग्रूपाः ये मन्त्राः पादशः अर्द्धर्चशः वा येषां होत्रं न, यत्र वा समाख्यानं, सः ऋग्भागः॥३३॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्, ऋग्रूपाः = ऋचास्वरूपाः स्तुतिपरकाः, ये मन्त्राः = वेदानां संहिताभागः, पादशः = चतुर्थचरणेन, अर्द्धर्चशः = ऋचायाः अर्द्धांशेन, वा = अथवा, येषाम्,

होत्रम् = हवननिष्पादकत्वम्, च = पुनः, यत्र = यस्मिन् स्थाने, समाख्यानम् = सम्यग्रूपेण आख्यानम् = कथनम्, सः = ऋग्भागः, ऋग्वेद इति नाम्ना प्रसिद्धः ॥ ३३ ॥

हिन्दी—जिसमें ऋचास्वरूप स्तुतिपरक मन्त्र हों अथवा जो एक चरण या आधी ऋचा के रूप में पढ़ा जाता हों तथा जिन मंत्रों के द्वारा होम किया जाता हो या जिनमें अच्छी तरह आख्यान कहा गया हो, वह ऋग्वेद कहलाता है ॥ ३३ ॥

ऋगिति। यत्र ऋग्रूपाः ये मन्त्राः पादशः अर्द्धर्चशः वा पठिता इति शेषः, येषां मन्त्राणां होत्रं होमसम्पादकत्वं, यत्र वा समाख्यानं सम्यक् अख्यानं कथनं, सः ऋग्भागः ऋग्वेदः ॥ ३३ ॥

प्रश्लिष्टपठिता मन्त्रा वृत्तगीतिविवर्जिताः ।
आध्वर्य्यवं यत्र कर्म्म त्रिगुणं यत्र पाठनम् ।
मन्त्रब्राह्मणयोरेव यजुर्वेदः स उच्यते ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यत्र मन्त्राः प्रश्लिष्टं पठिताः तथा वृत्तगीतिविवर्जिताः, यत्र च आध्वर्यवं कर्म, यत्र च मन्त्रब्राह्मणयोरेव त्रिगुणं पठितं, सः यजुर्वेदः उच्यते ॥ ३४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्, मन्त्राः = संहिताभागाः, प्रश्लिष्टम् = युक्तियुक्ताः, यथा तथा पठिताः = उद्घोषिताः, तथा = तेनैव प्रकारेण, वृत्तेन = छन्दसा, गीत्या = गायनेन, च = पुनः, विवर्जिताः = रहिताः, यत्र च आध्वर्यवम् = ऋत्विग्विहितं कर्म प्रोक्तम्, यत्र च मन्त्रब्राह्मणयोः = उभयोरेव, त्रिगुणम् = त्रिरावृत्तम्, पठितम् = उच्चारितम्, सः = असौ, यजुर्वेदः, इति नाम्ना, उच्यते = कथ्यते ॥ ३४ ॥

हिन्दी—जिसमें अलग-अलग मंत्र पढ़े जाते हों, ये मंत्र छन्द और गान से रहित हों, ऋत्विग् के कर्म विहित हों तथा जिसमें मंत्र और ब्राह्मण भाग का तीन आवृत्ति के साथ पाठ होता हो, उसे युजुर्वेद कहते हैं ॥ ३४ ॥

प्रश्लिष्टेति। यत्र मन्त्राः प्रश्लिष्टं यथा तथा पठिताः तथा वृत्तेन छन्दसा गीत्या च विवर्जिताः विरहिताः, यत्र च आध्वर्य्यवम् अध्वर्युविहितं कर्म्म प्रोक्तमिति शेषः, यत्र च मन्त्रब्राह्मणयोरुभयोरेव त्रिगुणं त्रिरावृत्तं पठितं सः यजुर्वेदः उच्यते ॥ ३४ ॥

उद्गीथं यस्य शस्त्रादेर्यज्ञे तत् सामसंज्ञकम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—शस्त्रादेः यज्ञे यस्य उद्गीथं तत् सामसंज्ञकम् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—शस्त्रादेः = आयुधादेः, यज्ञे = यागे, यस्य = आयुधस्य, उद्गीथम् = उच्चैः गायनं भवति, तत् सामसंज्ञकं = सामवेद इति नाम्ना कथितम् ॥ ३५ ॥

हिन्दी—यज्ञ में हथियारों की स्तुति ऊँची आवाज में गाकर जिस संहिता में की जाती हो, उसे सामवेद कहा जाता है ॥ ३५ ॥

उद्गीथमिति। शस्त्रादेः यज्ञे यस्य उद्गीथम् उच्चैर्गीतं विहितमिति शेषः, तत् सामसंज्ञकं सामनाम्ना कथितम् ॥ ३५ ॥

अथर्वाङ्गिरसो नाम ह्युपास्योपासनात्मकः ।
इति वेदचतुष्कन्तु ह्युद्दिष्टं समासतः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—उपास्योपासनात्मकः अथर्वाङ्गिरसः नाम। इति वेदचतुष्कं समासतः हि उद्दिष्टम् ॥ ३६ ॥

व्याख्या—उपास्यानाम् = उपासनीयानां देवानाम्, उपासनात्मकः = आराधनात्मको वेदभागः, अथर्वाङ्गिरसः = अथर्ववेदः इति नाम्ना ख्यातः। इति = अनेन प्रकारेण, वेदचतुष्कम् = चत्वारो वेदाः, समासतः = सङ्क्षेपेण, उद्दिष्टम् = कथितम् ॥ ३६ ॥

हिन्दी—वेद के जिस भाग में उपासनीय देवताओं का तथा उनकी उपासना का वर्णन हो, उसे अथर्वाङ्गिरस अर्थात् अथर्ववेद कहते हैं। इस प्रकार संक्षेप में चारों वेदों का रूप बतलाया गया है ॥ ३६ ॥

अथर्वेति। उपास्यानाम् आराध्यानां देवानाम् उपासनात्मकः वेदभागः अथर्वाङ्गिरसः नाम। इति उक्तप्रकारं वेदचतुष्कं समासतः सङ्क्षेपेण उद्दिष्टं कथितं हि, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ ३६ ॥

विन्दत्यायुर्वेत्ति सम्यगाकृत्यौषधिहेतुतः।
यस्मिन्नृग्वेदोपवेदः स चायुर्वेदसंज्ञकः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यस्मिन् आयुः विन्दति आकृत्या औषधिहेतुतः सम्यक् वेत्ति, सः ऋग्वेदोपवेदः आयुर्वेदसंज्ञकः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = विदिते भागे, तदनुष्ठानात् आयुः = दीर्घजीवनम्, विन्दति = प्राप्नुवति, यस्मिंश्च, आकृत्या = रोगाणां स्वरूपज्ञानेन, औषधिहेतुतः = चिकित्साविज्ञानेन, हेतुतः = कारणेन, आयुः = जीवनम्, वेत्ति = जानाति, रोगाणामिति भावः, सः = संहिताभागः, ऋग्वेदस्योपवेदः, आयुर्वेदसंज्ञकः = आयुर्वेदाख्य इति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—जिसमें बतलाई गई विधि का पालन करने से मनुष्य दीर्घजीवी होता है और जिसके द्वारा रोगों के लक्षण, उपयुक्त औषधि एवं चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त होता है; उसकी आयु का पता चलता है, वह ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद कहलाता है ॥ ३७ ॥

विन्दतीति। यस्मिन् विदिते इति भावः, आयुः विन्दति लभते जन इति शेषः, तद्विहितस्य अनुष्ठानात् दीर्घायुर्लाभ इति भावः, यस्मिंश्च आकृत्या रोगाणामाकारज्ञानेन ओषधिहेतुतः ओषधिविज्ञानेन च हेतुना इत्यर्थः, आयुः वेत्ति जानाति रोगिणामिति शेषः, सः ऋग्वेदस्य उपवेदः आयुर्वेदसंज्ञक आयुर्वेद इति नाम्ना प्रसिद्धः ॥ ३७ ॥

युद्धशस्त्रास्त्रव्यूहादिरचनाकुशलो भवेत्।
यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदस्तु येन सः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—येन युद्धशस्त्रास्त्रव्यूहादिरचनाकुशलो भवेत्, सः अयं यजुर्वेदोपवेदः धनुर्वेदो भवति ॥ ३८ ॥

व्याख्या—येन = ज्ञानेन, युद्धेषु = समरेषु, शस्त्रेषु = प्रहरणेषु, अस्त्रेषु = आयुधेषु, व्यूहादि = सैन्यादि, रचनासु = विन्यासेषु, च, कुशलः = दक्षः, भवेत् = स्यात्, यजुर्वेदस्य = यजुःश्रुतेः, उपवेदः = प्रधानवेदातिरिक्तगौणवेदः, धनुर्वेदः = धनुर्विद्यानिरूपकशास्त्रम्, इति ख्यातः ॥ ३८ ॥

हिन्दी—जिस वेद के ज्ञान से मानव युद्ध में आयुध-प्रहार एवं सैन्यसंस्थापन रचना में कुशल होता है, वह वेद यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद कहलाता है ॥ ३८ ॥

युद्धेति। येन ज्ञातेन इत्यर्थः, युद्धेषु शस्त्रेषु अस्त्रेषु व्यूहादिरचनासु च कुशलः निपुणः भवेत् यजुर्वेदस्य उपवेदः, स च धनुर्वेद इति ख्यातः॥ ३८ ॥

स्वरैरुदात्तादिधर्मैस्तन्त्रीकण्ठोत्थितैः सदा।
सतालैर्गानविज्ञानं गान्धर्वो वेद एव सः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—येन उदात्तादिधर्मैः तथा तन्त्रीकण्ठोत्थितैः सतालैः सदा गानविज्ञानं, स एव गान्धर्वो वेद इति ॥ ३९ ॥

व्याख्या—येन = वेदेन, उदात्तादिधर्मैः = उदात्तानुदात्तस्वरितस्वरूपैः, तथा तन्त्रीकण्ठोत्थितैः = वीणागलोत्पन्नैः निषादादिभिः सप्तभिः स्वरैः, सतालैः = सङ्गीते कालक्रियासहितैः गानविज्ञानम् = गीतविज्ञानम्, भवति, सः = असौ, सदा = सर्वदा, गान्धर्ववेदः सामवेदस्योपवेदः इति ज्ञातव्यः॥ ३९ ॥

हिन्दी—जिस वेद के ज्ञान से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, स्वर तथा वीणा और कंठ से निकले निषादादि स, रे, ग, म, प, ध, नि —इन सात स्वरों में ताल के साथ गाने का ज्ञान होता है, वह सामवेद का उपवेद 'गान्धर्ववेद' कहलाता है॥ ३९ ॥

स्वरैरिति। येनं उदात्तादिधर्मैः उदात्तानुदात्तस्वरितैः तथा तन्त्रीकण्ठोत्थितैः निषादादिभिः सप्तभिः स्वरैः सतालैः तालसहितैः गानविज्ञानं भवति स गान्धर्वो वेदः स तु सामवेदस्य उपवेद इति बोद्धव्यः॥ ३९ ॥

विविधोपास्यमन्त्राणां प्रयोगाः सुविभेदतः।
कथिताः सोपसंहारास्तद्धर्मनियमैश्च षट्।
अथर्वणां चोपवेदस्तन्त्ररूपः स एव हि॥ ४० ॥

अन्वयः—यत्र विविधोपास्यमन्त्राणां सोपसंहाराः षट् प्रयोगाः धर्मनियमैः सह सुविभेदतः कथिताः, स एव अथर्वणाम् उपवेदः तन्त्रस्वरूपः एव हि॥ ४० ॥

व्याख्या—यत्र, विविधानाम् = अनेकानाम्, उपास्यानाम् = आराध्यानाम्, मन्त्राणाम् = वेदवाक्यानाम्, सोपसंहाराः—उपसंहारेण = पर्यवसानेन सहिताः, षट् प्रयोगाः = षट् तान्त्रिकोपचाराः, तेषां धर्मनियमैः सह = धर्मनियोगैः सह, सुविभेदतः = सुष्ठुतया भेदप्रभेदानुसारेण, कथिताः, स एव = तदेव, अथर्वणामुपवेदः = गौणवेदः, तन्त्ररूपः = तन्त्रस्वरूपः एव, हि इत्यवधारणे॥ ४० ॥

हिन्दी—जिसमें अनेक प्रकार के उपास्य देवों के मंत्रों के प्रयोग तथा मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, आकर्षण और स्तम्भन—इन छः प्रयोगों के भेद, प्रयोग तथा उपसंहार धर्म तथा नियम के साथ वर्णित हों, उसे अथर्ववेद का उपवेद तंत्र या आगम कहते हैं॥ ४० ॥

विविधेति। यत्र विविधानाम् उपास्यानां मन्त्राणां सोपसंहाराः उपसंहारसहिताः षट् प्रयोगाः तेषां धर्म्मनियमैश्च सह सुविभेदतः विशिष्टप्रभेदानुसारेण कथिताः सः अथर्वणाम् उपवेदः तन्त्ररूपः हि तन्त्रस्वरूप एव॥ ४० ॥

स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
सवनाद्यैश्च सा शिक्षा वर्णानां पाठशिक्षणात्॥ ४१ ॥

अन्वयः—यच्च स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः सवनाद्यैः वर्णानां पाठशिक्षणात् सा शिक्षा ॥४१ ॥

व्याख्या—यच्च, स्वरतः = उदात्तानुदात्तादिभेदेन, कालतः = समयानुसारेण, स्थानात् = कण्ठ्यताल्वादिप्रदेशात्, प्रयत्नानुप्रदानतः = प्रयत्नसहकारेण, सवनाद्यैः = यज्ञस्नानोत्पत्यादिभिः, वर्णानाम् = अक्षराणाम्, पाठस्य = वाचनस्य, शिक्षणम् = पाठनम्, सा = उक्ता, शिक्षा = पूर्ववर्णितसन्दर्भः शिक्षाग्रथः इति ॥४२ ॥

हिन्दी—जिसमें उदात्त, अनुदात्त तथा स्वारित स्वरों से समयानुसार स्थान और प्रयत्न के साथ वर्णों के पढने की शिक्षा हो, उसे शिक्षा कहते हैं ॥४१ ॥

स्वरत इति। यच्च स्वरतः उदात्तादिभेदेन कालतः कालक्रमेण स्थानात् कण्ठताल्वादिप्रदेशात् प्रयत्नानुप्रदानतः प्रयत्नसहकारेण सवनाद्यैः उत्पत्त्यादिभिः उच्चारणादिभिरित्यर्थः, पाठस्य शिक्षणं सा शिक्षा तादृशशिक्षासमन्वितः सन्दर्भः शिक्षाग्रन्थः इति भावः ॥४१ ॥

प्रयोगो यत्र यज्ञानामुक्तो ब्राह्मणशेषतः ।
श्रौतकल्पः स विज्ञेयः स्मार्त्तकल्पस्तथेतरः ॥४२ ॥

अन्वयः—यत्र ब्राह्मणशेषतः यज्ञानां प्रयोगः उक्तः, सः श्रौतकल्पः विज्ञेयः, तथा इतरः स्मार्तकल्पः ॥४२ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् ग्रन्थे, ब्राह्मणशेषतः—ब्राह्मणस्य = मन्त्रेतरवेदभागस्य, शेषतः = अवशिष्टभागात्, यज्ञानाम् = यागानाम्, प्रयोगः = व्यवहारः, उक्तः = कथितः, सः = एतत् ग्रन्थः, श्रौतकल्पः = यज्ञविधायकग्रन्थविशेषः, विज्ञेयः = ज्ञातव्यः, तथा इतरः = एतद्भिन्नः ग्रन्थः, स्मार्त्तकल्पः = स्मृतिसम्मतधर्मग्रन्थः उक्तः ॥४२ ॥

हिन्दी—जिसमें ब्राह्मणभाग के शेष अंश से यज्ञों का प्रयोग कहा गया है, उसे श्रौतकल्प कहते हैं, इससे भिन्न को स्मार्तकल्प कहते हैं ॥४२ ॥

प्रयोग इति। यत्र ब्राह्मणशेषतः ब्राह्मणस्य मन्त्रेतरवेदभागस्य शेषतः शेषांशात् यज्ञानां प्रयोगः उक्तः सः श्रौतकल्पः विज्ञेयः, तथा इतरः अन्यः स्मार्त्तकल्पः ॥४२ ॥

व्याकृताः प्रत्ययाद्यैश्च धातुसन्धिसमासतः ।
शब्दा यत्र व्याकरणमेतद्धि बहुलिङ्गतः ॥४३ ॥

अन्वयः—यत्र शब्दाः प्रत्ययाद्यैः धातुसन्धिसमासतः बहुलिङ्गतः व्याकृतः, एतद्धि व्याकरणम् ॥४३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् ग्रन्थे, शब्दाः = पदानि, प्रत्ययाद्यैः = प्रकृत्युत्तरं जायमानैः शब्दांशैः, धातुभिः = क्रियाभिः, सन्धिभिः = संयोगादिभिः, समासैः = तत्पुरुषादिसमासैः, बहुभिः = पुं-स्त्रीक्लीबभेदैः लिङ्गैश्च, व्याकृताः = साधिताः, एतत् हि = एतदेव हि, व्याकरणम् = व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति बोध्यः ॥४३ ॥

हिन्दी—जिसमें प्रत्यय, उपसर्ग, धातु, संधि, समास और लिङ्गों के द्वारा शब्द सिद्ध किये जाते हैं, उसे व्याकरण कहते हैं ॥४३ ॥

व्याकृता इति। यत्र शब्दाः प्रत्ययाद्यैः धातुभिः सन्धिभिः समासैः बहुभिः पुंस्त्रीक्लीबभेदैः लिङ्गैश्च व्याकृताः साधिताः एतत् हि एतदेव व्याकरणम् ॥४३ ॥

शब्दनिर्वचनं यत्र वाक्यार्थैकार्थसङ्ग्रहः ।
निरुक्तं तत् समाख्यानाद् वेदाङ्गं श्रोत्रसंज्ञकम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—यत्र शब्दनिर्वचनं वाक्यार्थैकार्थसङ्ग्रहः तत् निरुक्तं वेदाङ्गं समाख्यानात् श्रोत्रसंज्ञकम् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् ग्रन्थे, शब्दानाम् = पदानाम्, निर्वचनम् = निष्कर्षेण कथनम्, तथा वाक्यार्थानाम् = वाक्याभिप्रायाणाम्, एकार्थसङ्ग्रहः = समुच्चयः, तत् = असौ, निरुक्तं नाम, वेदाङ्गम् = वेदस्य अङ्गम्, तच्च समाख्यानात् = सुष्ठुतया शब्दार्थप्रतिपादनात्, श्रोत्रसंज्ञकम् = श्रोत्राख्यया ख्यातमिति ॥ ४४ ॥

हिन्दी—जिस ग्रंथ में शब्दों का निष्कर्ष के साथ कथन तथा वाक्यार्थों का एक अर्थ में संग्रह किया गया हो, उसे निरुक्त कहते हैं। शब्दों का अर्थ भलीभाँति कहने के कारण वह वेद का श्रोत्र अंग माना जाता है ॥ ४४ ॥

शब्दनिर्वचनमिति। यत्र शब्दानां निर्वचनं निष्कर्षेण कथनं तथा वाक्यर्थानाम् एकार्थसङ्ग्रहः, तत् निरुक्तं नाम वेदाङ्गं, तच्च समाख्यानात् सम्यक् शब्दार्थकथनात् श्रोत्रसंज्ञकं श्रोत्राख्यया कथितम् ॥ ४४ ॥

नक्षत्रग्रहगमनैः कालो येन विधीयते ।
संहिताभिश्च होराभिर्गणितैर्ज्योतिषं हि तत् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—येन नक्षत्रग्रहगमनैः संहिताभिः होराभिः गणितैः कालः विधीयते, तत् हि ज्योतिषम् ॥ ४५ ॥

व्याख्या—येन = ग्रन्थेन, नक्षत्राणाम् = तारासमूहाणाम्, ग्रहाणाम् = मङ्गलादिग्रहाणाम्, गमनैः = चलनैः, संहिताभिः = धर्मसंहिताभिः, होराभिः = राश्यार्द्धैः, गणितैश्च, कालः = समयः, विधीयते = निर्णीयते, तत् हि = तदेव हि, ज्योतिषम् = वेदाङ्गस्वरूपं ज्योतिषशास्त्रम्, कथ्यते ॥ ४५ ॥

हिन्दी—जिससे नक्षत्रों और ग्रहों की गति द्वारा समय निर्धारित किया जाता है और जिसके संहिता, होरा तथा गणित—ये तीन स्कन्द है, उसे ज्योतिष कहते हैं ॥ ४५ ॥

नक्षत्रेति। येन नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च गमनैः संहिताभिः होराभिः गणितैश्च कालः विधीयते पृथक् पृथक् निर्दिश्यते, तत् हि तदेव ज्योतिषम् ॥ ४५ ॥

म्यरस्तजभ्रगैर्लान्तैः पद्यं यत्र प्रमाणतः ।
कल्प्यते छन्दःशास्त्रं तद् वेदानां पादरूपधृक् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—म्यरस्तजभ्रगैर्लान्तैः पद्यं यत्र प्रमाणतः यत्र पद्यं कल्प्यते, तत् छन्दःशास्त्रं, तच्च वेदानां पादरूपधृक् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—मः = त्रिगुरुः, यः = आदिगुरुः, रः = लघुमध्यः, सः = अन्तगुरुः, तः = अन्तलघुः, जः = गुरुमध्यः, मः = आदिगुरुः, नः = त्रिलघुः, गः = गुरुः, लः = लघुः, एभिः प्रमाणतः = परिमाणैः, यत्र = यस्मिन्, पद्यम् = श्लोकः, काव्यं वा, कल्प्यते = कल्पनां क्रियते, तत् छन्दःशास्त्रम् = वृत्तव्यवस्थापकशास्त्रम्, तच्च वेदानाम् = श्रुतीनाम्, पादरूपधृक् = चरणव्यवस्थापकमिति ॥ ४६ ॥

हिन्दी—जिसमें मगण (तीन गुरु ऽऽऽ), यगण (आदिलघु ।ऽऽ), रगण (मध्यलघु ऽ।ऽ), सगण (अन्तगुरु ।।ऽ), तगण (अन्तलघु ऽऽ।), जगण (गुरुमध्य ।ऽ।), भगण (आदिगुरु ऽ।।), नगण (तीनों लघु ।।।), गुरु (ऽ) तथा (।)—इनके प्रमाण से पद्यों की कल्पना की गई हो, उसे वेदों के चरण की व्यवस्था करने वाला 'छन्दःशास्त्र' कहते हैं।

म्यरस्तजभ्नगैरिति। मस्त्रिगुरुः, यः आदिगुरुः, रः लघुमध्यः, सः अन्तगुरु, तः अन्तलघुः, जः गुरुमध्यः, भः आदिगुरुः, नः त्रिलघुः, गः गुरुः, लः लघुः एभिः प्रमाणतः परिमाणैः यत्र पद्यं कल्प्यते, तत् छन्दःशास्त्रं तच्च वेदानां पादरूपधृक् चरणव्यवस्थापकमित्यर्थः ॥४६॥

यत्र व्यवस्थिता चार्थकल्पना विधिभेदतः।
मीमांसा वेदवाक्यानां सैव न्यायश्च कीर्त्तितः ॥४७॥
भावाभावपदार्थानां प्रत्यक्षादिप्रमाणतः।
सविवेको यत्र तर्कः कणादादिमतं च यत् ॥४८॥

अन्वयः—यत्र वेदवाक्यानां विधिभेदतः अर्थकल्पना व्यवस्थिता, सा एव मीमांसा। यत्र भावा- भावपदार्थानां प्रत्यक्षादिप्रमाणतः सविवेकः तर्कः यच्च कणादादिमतं सैव न्यायः कीर्त्तितः ॥४७-४८॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्ग्रन्थे, वेदवाक्यानाम् = मन्त्राणाम्, विधिभेदतः = नियोगभेदात्, अर्थकल्पना = अर्थोद्भावना, व्यवस्थिता = शास्त्रनिरूपिता, सा एव मीमांसा = दर्शनशास्त्रविशेषः, यत्र च भावानाम् = सत्तानाम्, अभावानाम् = अविद्यमानानाम्, पदार्थानाम् = द्रव्यगुणकर्मादिप्रमेयविषयाणाम्, प्रत्यक्षादिप्रमाणतः = इन्द्रियग्राह्यानुमानादिभिः प्रमाणैः, सविवेकः = मिथो व्यावृत्त्या वस्तुस्वरूपनिश्चयात्मकज्ञानसहितः, तर्को भवति, यच्च कणादादीनाम् = मुनिकणादादिप्रभृतीनाम्, वैशेषिकदार्शनिकानाम्, मतम् = विचारम्, सः = असौ, न्यायः = युक्तिवादः, कीर्त्तितः = कथितः ॥४७-४८॥

हिन्दी—जिसमें वेदवाक्यों की अनुष्ठान-भेद से अर्थकल्पना व्यवस्थित की गई है, उसे मीमांसा कहा जाता है। जिसमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव—इन सप्त पदार्थों का प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द प्रमाणों के द्वारा विचारपूर्वक तर्क किया जाता है तथा जो मुनि कणाद प्रभृति वैशेषिक दार्शनिकों का मत है, उसे तर्क या न्यायशास्त्र कहते हैं ॥४७-४८॥

यत्रेति। भावेति। यत्र वेदवाक्यानां विधिभेदतः अनुष्ठानभेदात् अर्थकल्पना व्यवस्थिता, सा एव मीमांसा। यत्र च भावानाम् अभावानाञ्च पदार्थानां प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रत्यक्षानुमानादिभिः प्रमाणैः सविवेकः सविचारः तर्कः भवति, यच्च कणादादीनां वैशेषिकदार्शनिकानां मतं, सः न्यायः कीर्त्तितः। एतेन न्यायदर्शनं वैशेषिकदर्शनञ्च प्रायशः समरूपत्वात् एकमेवेति अभिहितमिति बोध्यम् ॥४७-४८॥

पुरुषोऽष्टौ प्रकृतयो विकाराः षोडशेति च।
तत्त्वादिसंख्यावैशिष्ट्यात् सांख्यमित्यभिधीयते ॥४९॥

अन्वयः—पुरुषः अष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराः तत्त्वादिसंख्यावैशिष्ट्यात् सांख्यम् इति अभिधीयते ॥४९॥

व्याख्या—पुरुषः = कूटस्थः एकः, अष्ट प्रकृतयस्तद्यथा—प्रकृतिः, महत्तत्त्वम्, अहङ्कारः, पञ्च तन्मात्रास्तद्यथा—शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाः इति नव, ततः पञ्च महाभूतानि; तद्यथा—पृथिव्याकाशवाय्वग्निजलानि इति चतुर्दशानि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि—हस्त-पाद-रसना-लिङ्गापानानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि—श्रवण-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राणानि इति चतुर्विंशतिः, मनश्च इति पञ्चविंशतितत्त्वानि। इत्येवं पञ्चविंशतितत्त्वादीनां संख्यायाः गणनावैशिष्ट्यात् सांख्य इत्यभिधीयते। सांख्यदर्शने 'प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिः' इत्येषः सिद्धान्तो निरूपितस्तस्मात् सांख्यम् इत्येतां ख्यातिं भजते दर्शनमिदम्। प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातिरेव संख्या इति प्रोच्यते। संख्यापदस्यार्थोऽस्ति—'सम्यग् ज्ञानम्'। उक्तञ्च शाङ्करविष्णुसहस्रनामभाष्ये—"शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।" तत्त्वानां संख्यायाः निर्धारणीकृतत्वादस्य दर्शनस्य नाम सांख्यमिति प्रथते स्म इति च विद्वन्मतम्। महाभारते प्रोक्तम्—

"संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिञ्च प्रचक्षते'
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्याः प्रकृतिताः॥"

सांख्यदर्शनम् पञ्चविंशतितत्त्वानि मन्यते, तानि सन्तीमानि—पुरुषः, प्रकृतिः, महत्, अहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राः, पञ्चभूतानि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, मनः। आह च सांख्यकारिका—

"मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥"

एतेषां तत्त्वानां ज्ञानेन मानवः कामं स संन्यासी स्यात् वा ब्रह्मचारी वा गृहस्थः दुःखेभ्यो मुक्तो भवति। उक्तञ्च सांख्यसङ्ग्रहे—

"पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यन्न कुत्राश्रमे रतः।
मुण्डी जटी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥" इति।

हिन्दी—जिसमें एक पुरुष, आठ प्रकृति, सोलह विकार अर्थात् १. कूटस्थ पुरुष, २. प्रकृति, ३. महत्तत्त्व, ४. अहङ्कार, ५. तन्मात्राएँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये आठ प्रकृतियाँ तथा १. आकाश, २. वायु, ३. अग्नि, ४. जल, ५. पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हैं। हाथ, पैर, जिह्वा, लिङ्ग और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। श्रवण, त्वक्, चक्षु, रसना और प्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मन उभयेन्द्रिय है। कुल मिलाकर सोलह विकार हैं। इस तरह पचीस तत्त्वादि की संख्या की विशेषता है। अतः इसे सांख्यशास्त्र कहते हैं॥४९॥

पुरुष इति। पुरुषः एकः, अष्टौ प्रकृतयः, विकाराः षोडश, तथाहि एकः कूटस्थः पुरुषः, प्रकृतिः, महान्, अहङ्कारः, पञ्चतन्मात्राणि इति नव, ततः महाभूतानि पञ्चीकृतानि पञ्च पञ्च, कर्मेन्द्रियाणि हस्तपदादीनि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, मनश्च इति षोडश। इत्येवं पञ्चविंशतितत्त्वादीनां संख्यायाः गणनाया वैशिष्ट्यात् सांख्यम् इति अभिधीयते॥४९॥

ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यान्नाना नेहास्ति किञ्चन।
मायिकं सर्वमज्ञानाद् भाति वेदान्तिनां मतम्॥५०॥

अन्वयः—एकं किञ्चन ब्रह्म स्यात्, इह नाना नास्ति सर्वं मायिकम् अज्ञानात् भाति, इति वेदान्तिनं मतम्॥५०॥

व्याख्या—एकम् = अतुलनीयम्, किञ्चन = किमपि वस्तु, ब्रह्म = परमेश्वरः, स्यात् = भवेत्, इह = अस्मिन् संसारे, नाना = बहुविधम्, ब्रह्म, न = नहि, अस्ति = भवति, अन्यत् सर्वम् = सकलम्, मायिकम् = मायामयम्, मिथ्यास्वरूपम्, अज्ञानात् सत्यवत्प्रतीयते, इति = एवम्, वेदान्तिनम्, मतम् = सिद्धान्तम्। वेदान्तदर्शनं सर्वदर्शनमूर्धन्यमस्ति। शारीरकमीमांसेत्येतयापि समाख्ययेदं शास्त्रं सर्वविदितमेव। सन्त्यस्योपजीव्या उपनिषद एव। वेदस्यान्तिमसिद्धान्तस्य निरूपकत्वादुपनिषदामिवास्यापि वेदान्त इत्येषा संज्ञाऽन्वर्था ॥५० ॥

हिन्दी—इस संसार में 'ब्रह्म' अतुलनीय और अनिर्वचनीय है, ब्रह्म अनेक नहीं होते । इनसे भिन्न जो कुछ दृश्य हैं, वे सभी 'माया' हैं। माया से उत्पन्न अज्ञानवश ही लोगों को असत्य में सत्य की प्रतीति होती है; यह वेदान्तियों का मत है ॥५० ॥

ब्रह्मेति। एकम् अद्वितीयं किञ्चन किमपि वस्तु ब्रह्म स्यात्, इह जगति नाना विविधं ब्रह्म न अस्ति। अन्यत् सर्वं मायिकं मायामयं मिथ्यास्वरूपम् अज्ञानात् भाति विराजते, इति वेदान्तिनां मतम् ॥५० ॥

चित्तवृत्तिनिरोधस्तु प्राणसंयमनादिभिः ।
तद् योगशास्त्रं विज्ञेयं यस्मिन् ध्यानसमाधितः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यस्मिन् ध्यानसमाधितः प्राणसंयमनादिभिः चित्तवृत्तिनिरोधस्तु तत् योगशास्त्रं विज्ञेयम् ॥५१ ॥

व्याख्या–यस्मिन् = विषये, ध्यानसमाधितः = एकाग्रचित्तेन ब्रह्मणि मनोनिवेशनेन, प्राणसंयमनादिभिः—प्राणानाम् = अन्तश्चराणां वायूनाम्, संयमनादिभिः = नियन्त्रणादिभिः, चित्तवृत्तिनिरोधः—चित्तवृत्तेः = मनोवृत्तेः, निरोधः = अवरोधः, कथितः, तत् योगशास्त्रम् = मोक्षोपायकदर्शनशास्त्रविशेषः, विज्ञेयम् = ज्ञातव्यम्।

यावच्चित्ते विकारा जायन्ते तावत्तस्मिन्नात्मनः प्रकाशोऽवतरति, विवेकज्ञानाभावात् पुरुषस्तेष्वेव विकारेषु स्वसत्ताया अनुभूतिं कर्तुमारभते। सांसारिकेषु च विषयेषु सुखदुःखरागद्वेषाधिक्यं निबध्नाति। आत्मनः पुरुषस्य एवंविधतैव बन्धनमिति कथ्यते। एतस्माद्बन्धनान्मुक्तिअवाप्तिनिमित्तेन शरीरेन्द्रियमनश्चित्तवृत्तीनां निरोधोऽपेक्ष्यते। यदाहि कार्यभूतचित्तस्य धाराप्रवाहश्छिद्यते, भवति च तत् कारणभूतचित्तेः शान्तावस्थायामवस्थितिं तदात्मा स्वकीयस्य यथार्थस्य स्वरूपस्य ज्ञानमश्नुते। अवगच्छति च तत् आत्मानं शरीरमन आदितो भिन्नम् अवेति च स्वं नित्यं मुक्तं शुद्धं चैतन्यरूपञ्च। चित्तवृत्तिनिरोधेनात्मनः स्वरूपेऽवस्थापनमेवास्य योगशास्त्रस्योद्देश्यम् ॥५१ ॥

हिन्दी—जिसमें एकग्रता के साथ ध्यान एवं कुम्भकादि प्राणायाम द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध करना बतलाया गया हो, उसे योगशास्त्र कहते हैं ॥५१ ॥

चित्तेति। यस्मिन् ध्यानसमाधितः ऐकाग्र्येण चिन्तनेन प्राणानाम् अन्तश्चराणां मरुतां संयमनादिभिः कुम्भकादिभिरिति भावः, चित्तवृत्तेः मनोवृत्तेः निरोधः विषयान्तरेभ्यः व्यावृत्तिः कथित इति शेषः, तत् योगशास्त्रं विज्ञेयम् ॥५१ ॥

प्राग्वृत्तकथनं चैकराजकृत्यमिषादितः ।
यस्मिन् स इतिहासः स्यात् पुरावृत्तः "स एव हि ॥ ५२ ॥

अन्वयः—यस्मिन् एकराजकृत्यमिषादितः यत् प्राग्वृत्तस्य कथनं, सः इतिहासः स्यात्; स एव हि पुरावृत्तः ॥५२ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = गन्थे, एकराजस्य = एकस्य राज्ञः, कृत्यस्य = कर्मणः, मिषात् = व्यपदेशात् , इतः यत्प्राग्वृत्तस्य = पूर्ववृत्तान्तस्य, कथनम् = ख्यापनम्, सः इतिहासः, स्यात् = भवेत्, स एव = तदेव, पुरावृत्तः, हिशब्दोऽत्र पादपूर्त्यर्थमिति ॥५२ ॥

हिन्दी—जिसमें किसी एक राजा के चरित्र-वर्णन के व्याज से प्राचीन व्यवहारों का वर्णन हो, उसे इतिहास कहते हैं; इसे ही पुरावृत्त भी कहा गया है ॥५२ ॥

प्रागिति। यस्मिन् एकराजस्य एकस्य नृपस्य कृत्यस्य चरितस्य मिषादितः वर्णनाच्छलादिभिः यत् प्राग्वृत्तस्य पुरावृत्तस्य कथनं सः इतिहासः स्यात्, स एव पुरावृत्तः हिशब्दः पादपूरणार्थः ॥५२ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद् विकीर्त्तितम् ॥५३ ॥

अन्वयः—यस्मिन् सर्गः प्रतिसर्गः वंशः मन्वन्तराणि च तथा वंशानुचरितं तत् पुराणं विकीर्त्तितम् ॥५३ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = ग्रन्थे, सर्गः = जगदुत्पत्तिः, प्रतिसर्गः = प्रलयः, वंशः = श्रीमतां कुलम्, मन्वन्तराणि = ब्रह्मादिनस्य चतुर्दशो भागः, वा, एकसप्ततिचतुर्युग्यात्मकः कालः, च = पुनः, तथा = तेनैव रूपेण, वंशानुचरितम् = एकस्य परिवारस्य कुलस्य वा, परिचयः, प्रकीर्त्तितमिति शेषः, तत् = शास्त्रम्, पुराणम्, विकीर्त्तितम् = कथितम् ॥५३ ॥

पुरातनत्वादत्यन्तपुरातनत्वाच्च सम्भवतः पुराणमित्येतेन नाम्ना इमानि सन्ति सुप्रथितानि। पुराणानां गणना क्वाऽपि क्वापीतिहासेऽपि क्रियते परं वस्तुतः पुराणानि न सन्तीतीहासान्तर्गतानि। इतिहासः अतीतघटनावर्णनपरत्वान्नापुराणम्। पुराणमितिहासाङ्गीकृतं विषयं सीमितपरिधेराकृष्य तं विस्तृतं स्वरं व्यापकतरं च कुरुते। तस्मादितिहासपुराणे स्व-स्ववैशिष्ट्यवत्वाच्छुक्राचार्येण पृथक् पृथगेव लक्षणं प्रोक्तम्। किञ्च पुराणमाश्रित्य तेन यदुक्तं—

> “सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
> वंशानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद् विकीर्त्तितम् ॥”

तन्न युक्तितरं प्रतिभाति। यतो ह्येतस्मिंल्लक्षणे येषां विषयाणां निर्देशः कृतस्तेभ्योऽप्यधिकाः विषया वर्णिताः प्राप्यन्ते। पुष्कलविविधविषयनिधित्वादग्निपुराणन्तु भारतीयज्ञानकोष इति नाम्ना सुविदितमेव। अनेकानि पुराणानि तु एतादृश्यान्यपि दृश्यन्ते येषूपर्युक्तं लक्षणनिर्दिष्टाः पञ्चापि विषयाः न प्राप्यन्ते ॥५३ ॥

हिन्दी—जिस ग्रन्थ में संसार की उत्पत्ति एवं विनष्टि, महापुरुषों के वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का वर्णन हो, उसे पुराण कहते हैं ॥५३ ॥

सर्ग इति। यस्मिन् सर्गः सृष्टिः, प्रतिसर्गः, प्रलयः, वंशः महापुरुषाणां कुलं, मन्वन्तराणि तथा वंशानुचरितं कथितमिति शेषः तत् पुराणं विकीर्त्तितम् ॥५३ ॥

वर्णादिधर्म्मस्मरणं यत्र वेदाविरोधकम्।
कीर्त्तनं चार्थशास्त्राणां स्मृतिः सा च प्रकीर्त्तिता॥ ५४॥

अन्वयः—यत्र वेदाविरोधकं वर्णादिधर्मस्मरणं च अर्थशास्त्राणां कीर्त्तनं, सा स्मृतिः प्रकीर्त्तिताः॥५४॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् ग्रन्थे, वेदाविरोधकम्—वेदानाम् = श्रुतीनाम्, अविरोधकम् = अविसंवादः, वर्णादिधर्मस्मरणम्—वर्णादीनाम् = ब्राह्मणादीनाम्, आदिपदेनाश्रमादीनाञ्च, धर्मस्य = कर्त्तव्यस्य, स्मरणम् = अनुचिन्तनम्, च = पुनः, अर्थशास्त्राणाम् = धनप्राप्तिरक्षावृद्ध्युपायदर्शकं शास्त्रम्, तेषां कीर्त्तनम् = कथनम्, सा, स्मृतिः = आर्यधर्मशास्त्रम्, प्रकीर्त्तितः = कथितः॥५४॥

हिन्दी—जिसमें वेदसम्मत चारों वर्णों एवं आश्रमों का वर्णन तथा अर्थशास्त्र का भलीभाँति प्रतिपादन किया गया हो, उसे 'स्मृति' कहते हैं॥५४॥

वर्णादीति। यत्र वेदाविरोधकं श्रुत्यविरुद्धं वर्णादीनां ब्राह्मणादीनाम् आदिपदेन आश्रमादीनाञ्च धर्म्मस्य स्मरणं तथा अर्थशास्त्राणां कीर्त्तनञ्च, सा स्मृतिः प्रकीर्त्तिता॥५४॥

युक्तिर्बलीयसी यत्र सर्वं स्वाभाविकं मतम्।
कस्यापि नेश्वरः कर्त्ता न वेदो नास्तिकं हि तत्॥ ५५॥

अन्वयः—यत्र युक्तिर्बलीयसी, सर्वं स्वाभाविकं मतं कस्यापि कर्त्ता ईश्वरः न वेदश्च न, तत् नास्तिकाम्॥५५॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्सिद्धान्ते, युक्तिः = ऊहा, बलीयसी = अतिबलवती, सर्वम् = निखिलं वस्तु, स्वाभाविकम् = नैसर्गिकम्, मतम् = निष्पादितम्, कस्यापि = वस्तुनः, कर्त्ता = निर्माता, ईश्वरः = परमात्मा, न = नहि, अस्तीति भावः, तथा = तेनैव प्रकारेण, वेदः = श्रुतिश्च, न = नास्त्येव, इत्येवं व्यवस्थेति, तत् = एवंविधः, हि = इति निश्चयेन, नास्तिकम् = नास्तिकग्रन्थविशेष इति॥५५॥

नास्तिकदर्शनं प्रत्यक्षमेव प्रमाणं स्वीकुरुते। तद्वादोऽयं यदीन्द्रियैरेव विष्वासार्हं ज्ञानमवाप्तुं शक्यम्। इन्द्रियजनितज्ञानमेव यथार्थज्ञानमस्ति। प्रत्यक्षं विहाय नेदं दर्शनं दर्शनान्तरमतान्यनुमानशब्दानि प्रमाणानि प्रमाणत्वेन मन्यन्ते।

हिन्दी—जिसमें तर्क को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना गया हो एवं प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति स्वभावसिद्ध मानी गई हो तथा ईश्वर को जगत् का कर्त्ता न माना गया हो, वेद को अमान्य करता हो, उसे नास्तिक दर्शन कहते हैं॥५५॥

युक्तिरिति। यत्र युक्तिः तर्कः बलीयसी अतिप्रबला, सर्वं वस्तु स्वाभाविकं स्वभावसिद्धं मतं कथितं, कस्यापि कर्त्ता कारकः ईश्वरः न अस्तीति शेषः, तथा वेदश्च न। अकिञ्चित्कर इत्यर्थः, इत्येवं व्यवस्था इति शेषः, तत् हि नास्तिकं नास्तिकग्रन्थ इत्यर्थः॥५५॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृत्तादिशासनम्।
सुयुक्त्यार्थार्जनं यत्र ह्यर्थशास्त्रं तदुच्यते॥५६॥

अन्वयः—यत्र श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृत्तादिशासनं सुयुक्त्यार्थार्जनं, तद् अर्थशास्त्रम् उच्यते॥५६॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् शास्त्रे, श्रुतिस्मृत्यविरोधेन—श्रुतीनाम् = वेदानाम्, स्मृतीनाम् = मन्वादिस्मृतीनाम्, अविरोधेन = अविरुद्धेन, राजवृत्तादिशासनम् = राज्ञः = नृपस्य, वृत्तादीनाम् = आचारादीनाम्, शासनम् = उपदेशः, तथा सुयुक्त्या = सुचातुर्येण, अर्थार्जनम्—अर्थानाम् = धनानाम्, अर्जनम् = उपार्जनम्, कथितम्, तत् हि अर्थशास्त्रम्, उच्यते = प्रचक्षते ॥ ५६ ॥

हिन्दी—जिसमें वेद और स्मृतिसम्मत राजाओं के लिए आचरण के विषय में उपदेश दिया गया हो तथा चतुराई से धनार्जन करने की विधि बतलाई गई हो, उसे अर्थशास्त्र कहते हैं ॥ ५६ ॥

श्रुतीति। यत्र श्रुतीनां स्मृतीनाञ्च अविरोधेन राज्ञः वृत्तादीनाम् आचरितादीनां शासनम् उपदेशः तथा सुयुक्त्या सुकौशलेन अर्थानां धनानाम् अर्जनम् उपार्जनं वर्णितमिति शेषः, तत् अर्थशास्त्रम् उच्यते ॥ ५६ ॥

शशादिभेदतः पुंसामनुकूलादिभेदतः ।
पद्मिन्यादिप्रभेदेन स्त्रीणां स्वीयादिभेदतः ।
तत् कामशास्त्रं सत्त्वादेर्लक्ष्म यत्रास्ति चोभयोः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—पुंसां शशादिभेदतः तथा अनुकूलादिभेदतः स्त्रीणां पद्मिन्यादिप्रभेदेन तथा स्वीयादिभेदतः यत्र उभयोः सत्त्वादेः लक्ष्म तत् कामशास्त्रम् ॥ ५७ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् शास्त्रे, पुंसाम् = नराणाम्, शशादिभेदतः = शशकमृगाश्वगजजातिभेदात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, अनुकूलादिभेदतः = अनुकूलशठधृष्टादिभेदात्, तथा स्त्रीणाम् = नारीणाम्, पद्मिन्यादिभेदतः = पद्मिनीशङ्खिनीचित्रिणिहस्तिन्यादिजातिभेदात्, तथा स्वीयादिभेदतः = स्वकीयापरकीयादिप्रभेदात्, उभयोः = स्त्रीपुरुषयोः, सत्त्वादेः = सात्त्विकभावादेः, लक्ष्म = लक्षणम्, यत्रास्ति, तत् = असौ, कामशास्त्रं, प्रचक्षते ॥ ५७ ॥

हिन्दी—जिस शास्त्र में पुरुषों के शश, मृग, अश्व और हस्ती रूप जातिगत भेद से; अनुकूल, शठ एवं धृष्ट नायक के भेद से; स्त्रियों के पद्मिनी, चित्रिणी शङ्खिनी तथा हस्तिनी रूप जातिगत भेद से; स्वीया, परकीया एवं सामान्या आदि नायिका-भेद से तथा दोनों स्त्री-पुरुषों के अनुरागादि भेद के लक्षण का विशेष रूप से वर्णन हो, उसे कामशास्त्र कहा जाता है ॥ ५७ ॥

शशादीति। यत्रेत्यध्याहार्य्यम्। यत्र पुंसां शशादिभेदतः शशकमृगाश्वहस्तिजातिभेदात् तथा अनुकूलादिभेदतः अनुकूलधृष्टशठादिविशेषात् किञ्च स्त्रीणां पद्मिन्यादिभेदेन पद्मिनीशङ्खिनीचित्रिणीहस्तिनीरूपजातिभेदेन तथा स्वीयादिभेदतः स्वीयापरकीयासाधारणीरूपविशेषेण उभयोः स्त्रीपुंसयोः सत्त्वादेः अनुरागादेः लक्ष्म लक्षणम् अस्ति, तत् कामशास्त्रम् ॥ ५७ ॥

प्रासादप्रतिमारामगृहवाप्यादिसत्कृतिः ।
कथिता यत्र तच्छिल्पशास्त्रमुक्तं महर्षिभिः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—यत्र प्रासादप्रतिमारामगृहवाप्यादिसत्कृतिः कथिताः महर्षिभिः, तत् शिल्पशास्त्रम् उक्तम् ॥ ५८ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् शास्त्रे, प्रासादानाम् = सौधानां, नृपसदनानां वा, प्रतिमानाम् = आलेख्यानाम्, मूर्त्तीनाञ्च, आरामगृहाणाम् = उपवनसदनानाम्, वाप्यादीनाम् = पुष्करादीनाम्,

सत्कृतिः = सुनिर्माणम्, कथिताः = उक्ताः, महर्षिभिः = मुनिभिः, तत् शिल्पशास्त्रम्, उक्तम् = कथितम् ॥५८ ॥

हिन्दी—जिस शास्त्र में राजभवन या देवमन्दिर, प्रतिमा, उद्यानगृह, बावड़ी प्रभृति का सुन्दर ढंग से निर्माण का तरीका वर्णित हो, उसे महर्षियों ने शिल्पशास्त्र कहा है ॥५८ ॥

प्रासादेति। यत्र प्रासादानां राजभवनानां देवालयानां वा प्रतिमानाम् अरामगृहाणाम् उद्यानगृहाणां वाप्यादीनां सरोवरादीनाञ्च सत्कृतिः सुनिर्माणं संस्कारश्च कथिता, महर्षिभिः तत् शिल्पशास्त्रम् उक्तम् ॥५८ ॥

समन्यूनाधिकत्वेन सारूप्यादिप्रभेदतः ।
अन्योऽन्यगुणभूषा तु वर्ण्यतेऽलङ्कृतिश्च सा ॥ ५९ ॥

अन्वयः—समन्यूनाधिकत्वेन सारूप्यादिप्रभेदतः अन्योऽन्यगुणभूषा सा अलङ्कृतिः वर्ण्यते ॥५९ ॥

व्याख्या—समत्वेन = तुल्यत्वेन, न्यूनत्वेन = ऊनत्वेन, आधिक्येन = बहुत्वेन, वा = अथवा, सारूप्यादिप्रभेदतः = सादृश्यादिभेदेन, अन्योन्यस्य = परस्परस्य, गुणानाम् = धर्माणाम्, यत् वर्ण्यते = वर्णनं क्रियते, सा = तद्ग्रन्थः, अलङ्कृतिः = अलङ्कारशास्त्रम् इति कथ्यते ॥५९ ॥

हिन्दी—जिसमें समानता, न्यूनता एवं अधिकता और सादृश्य आदि भेद से परस्पर शब्द और अर्थ के गुणों के वैचित्र्य का वर्णन हो, उसे अलङ्कारशास्त्र कहते हैं ॥५९ ॥

समेति। समत्वेन न्यूनत्वेन आधिक्येन वा सारूप्यादिप्रभेदतः सादृश्यादिभेदेन अन्योऽन्यस्य परस्परस्य गुणानां भूषा वैचित्र्यमित्यर्थः, यत् वर्ण्यते सा अलङ्कृतिः तद्ग्रन्थश्च अलङ्कार इति व्यपदिश्यते ॥५९ ॥

सरसालङ्कृतादुष्टशब्दार्थं काव्यमेव तत् ।
विलक्षणचमत्कारबीजं पद्यादिभेदतः ॥ ६० ॥

अन्वयः—सरसालङ्कृतादुष्टशब्दार्थं तत् काव्यमेव पद्यादीनां भेदतः विलक्षणचमत्कारबीजम् ॥६० ॥

व्याख्या—सरसौ = रसान्वितौ, अलङ्कृतौ = अलङ्कारसहितौ, अदुष्टौ = दोषरहितौ, शब्दार्थौ —शब्दश्च = सार्थकपदश्च, अर्थश्च = शब्दार्थौ, यत् तत् काव्यमेव, तच्च पद्यादीनाम् = श्लोकादीनाम्, भेदतः = भेदेन, विलक्षणस्य = अलौकिकस्य चमत्कारस्य, साश्चर्यानन्दस्य, बीजम् = कारणमिति बोध्यम् ॥६० ॥

हिन्दी—दोष रहित रस और अलंकारों से युक्त शब्द और अर्थ युक्त कविकर्म को काव्य कहते हैं। पद्य और गद्य के भेद से विलक्षण और चमत्कारजनक काव्य होता है ॥६० ॥

सरसेति। सरसौ रसयुक्तौ अलङ्कृतौ अलङ्कारयुक्तौ अदुष्टौ दोषरहितौ शब्दार्थौ यत्र तत् काव्यमेव, तच्च पद्यादीनां भेदतः वैशिष्ट्यात्, विलक्षणस्य अलौकिकस्य चमत्कारस्य साश्चर्य्यानन्दस्य बीजं कारणम् ॥६० ॥

लोकसङ्केततोऽर्थानां सुग्रहा वाक् तु दैशिकी ॥ ६१ ॥

अन्वयः—लोकसङ्केततः अर्थानां सुग्रहा वाक् तु दैशिकी भवति ॥६१ ॥

व्याख्या—लोकसङ्केततः—लोकानाम् = जनानाम्, सङ्केततः = अभिप्रायव्यञ्जकचेष्टया, अर्थानाम् = शब्दाशयानाम् सुग्रहाः = सुष्ठुतया ग्राह्याः, वाक् = वाणी, तु, दैशिकी = देशभाषा भवति ॥ ६१ ॥

हिन्दी—लोगों के अभिप्रायव्यञ्जक चेष्टा से शब्दों के आशय को सुग्राह्य बनाने वाली वाणी को देशभाषा कहते हैं ॥ ६१ ॥

लोकेति। लोकानां सङ्केततः सङ्केतेन अर्थानां सुग्रहा सुखग्राह्यार्था इत्यर्थः, वाक् तु दैशिकी देशभाषारूपा ॥ ६१ ॥

विना कौशिकशास्त्रीयसङ्केतैः कार्य्यसाधिका।
यथाकालोचिता वाग् वावसरोक्तिश्च सा स्मृता ॥ ६२ ॥

अन्वयः—कौशिकशास्त्रीयसङ्केतैः विना कार्यसाधिका यथाकालोचिता या वाक् सा अवसरोक्तिः स्मृता ॥ ६२ ॥

व्याख्या—कौशिकैः = शब्दसङ्ग्राहकग्रन्थैः, शास्त्रीयसङ्केतैः = शास्त्रविषयकाभिप्रायव्यञ्जकचेष्टाभिः, विना = अन्तरेण, कार्यसाधिका = अभिप्रायव्यञ्जिका, यथाकालोचिता = समयानुसारिणी, या वाक् = वाणी, सा अवसरोक्तिः, स्मृता = कथिता ॥ ६२ ॥

हिन्दी—शब्दकोश एवं शास्त्रसम्मत अभिप्रायव्यञ्जक अर्थों के बिना ही अभिप्राय समझाने वाली समय के अनुसार उचित बोली गई वाणी को 'अवसरोक्ति' कहते हैं ॥ ६२ ॥

विनेति। कौशिकैः वृत्तिभेदैः शास्त्रीयसङ्केतैश्च विना कार्य्यसाधिका अर्थबोधिका यथाकालोचिता कालानुसारिणी या वाक्, सा अवसरोक्तिः स्मृता ॥ ६२ ॥

ईश्वरः कारणं यत्रादृश्योऽस्ति जगतः सदा।
श्रुतिस्मृती विना धर्माधर्मौ स्तस्तच्च यावनम्।
श्रुत्यादिभिन्नधर्मोऽस्ति यत्र तद् यावनं मतम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—यत्र सदा अदृश्यः ईश्वरः जगतः कारणम् अस्ति तथा श्रुतिस्मृती विना धर्माधर्मौ स्तः, तत् यावनम्। यत्र च श्रुत्यादिभिन्नः धर्मः अस्ति तत् यावनं मतम् ॥ ६३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विचारे, सदा = सर्वदा, अदृश्यः = अगोचरः, ईश्वरः = परमात्मा, जगतः = संसारस्य, कारणम् = हेतुः, अस्ति = भवति, तथा = तेनैव प्रकारेण, श्रुतिस्मृती—श्रुतिश्च = वेदश्च, स्मृतिश्च = आर्याणां धर्मग्रन्थश्च, तौ विना = विहाय, धर्माधर्मौ = पापापापौ, स्तः = विद्येते, तत् यावनम् = यवनसम्बन्धिनम्, यत्र च श्रुत्यादिभिन्नः = वेदस्मृत्यादिपृथक्, धर्मः = पुण्यकर्म, तत्यावनम्, मतम् = सिद्धान्तम् ॥ ६३ ॥

हिन्दी—जिसमें सदा अदृश्य रहने वाले परमात्मा को सृष्टि का मूल कारण माना गया हो तथा वेद और स्मृति के बिना ही पाप-पुण्य की व्यवस्था की गई हो, उसे यवनों का धर्म-ग्रन्थ कहते हैं। जिसमें वेदादि के विचारों के बिना धर्म का प्रतिपादन किया जाता हो, उसे यवनों का मत कहते हैं ॥ ६३ ॥

ईश्वर इति। यत्र सदा अदृश्यः ईश्वरः जगतः कारणम् अस्ति, तथा श्रुतिस्मृती विना धर्माधर्मौ स्तः विद्येते, तत् यावनं यवनग्रन्थ इत्यर्थः। यत्र च श्रुत्यादिभिन्नः वेदादिविरुद्धः धर्मः अस्ति तत् यावनं मतम् ॥ ६३ ॥

कल्पितश्रुतिमूलो वामूलो लोकैर्धृतः सदा।
देशादिधर्म्मः स ज्ञेयो देशे देशे कुले कुले॥ ६४॥

अन्वयः—यः देशे देशे कुले कुले लोकैः कल्पिता श्रुतिमूलः वा अमूलः सदा धृतः सः देशादिधर्मः ज्ञेयः॥ ६४॥

व्याख्या—यः = धर्मः, देशे देशे = प्रतिदेशम्, कुले कुले = प्रतिकुलम्, लोकैः = जनैः, कल्पिता = स्थापिता, श्रुतिमूलः—श्रुतिः = वेदः, मूलम् = बीजम्, यस्य तथाभूतः, वा = अथवा, अमूलः = मूलरहितः, आचारः, सदा = सर्वदा, धृतः = स्वीकृतः, सः = असौ, देशादिधर्मः = देशविशेषस्य धर्मः, ज्ञेयः = विज्ञेयः॥ ६४॥

हिन्दी—हर देश तथा हर कुल में जो लोगों के द्वारा विचारित वैदिक या अवैदिक आचार हमेशा मान्य रहा हो, उसे देशादिधर्म कहते हैं॥ ६४॥

कल्पितेति। यः देशे देशे प्रतिदेशं कुले कुले प्रतिकुलं लोकैः कल्पिता रचिता श्रुतिः मूलं यस्य तथाभूतः वा अमूलः मूलरहितः आचार इति शेषः, सदा धृतः, सः देशादिधर्मः विज्ञेयः॥ ६४॥

पृथक् पृथक् तु विद्यानां लक्षणं सम्प्रकाशितम्।
कलानां न पृथङ्नाम लक्ष्म चास्तीह केवलम्॥ ६५॥

अन्वयः—विद्यानां पृथक् पृथक् लक्षणं सम्प्रकाशितम्, केवलं कलानां पृथक् नाम लक्ष्म इह न अस्ति॥ ६५॥

व्याख्या—विद्यानाम् = विज्ञानानाम्, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, लक्षणम् = परिभाषा, सम्प्रकाशितम्—सम्यग्रूपेण प्रकाशितम् = कथितम्, केवलम् = मात्रम्, कलानाम् = शिल्पविद्यानाम्, पृथक् = भिन्नम्, नाम = अभिधानम्, लक्ष्म = लक्षणञ्च, इह = अत्र, न = नहि, अस्ति = विद्यते॥ ६५॥

हिन्दी—इस तरह अलग-अलग विद्या की परिभाषा तो की जा चुकी है, किन्तु केवल कलाओं के नाम तथा लक्षण भिन्न-भिन्न रूप में यहाँ नहीं कहा जा सका है॥ ६५॥

पृथगिति। विद्यानाम् उक्तानां पृथक् पृथक् लक्षणं सम्प्रकाशितम्, केवलं कालानां पृथक् नाम लक्ष्म लक्षणञ्च इह न अस्ति॥ ६५॥

पृथक् पृथक् क्रियाभिर्हि कलाभेदस्तु जायते।
यां यां कलां समाश्रित्य तन्नाम्ना जातिरुच्यते॥ ६६॥

अन्वयः—पृथक् पृथक् क्रियाभिः कलाभेदस्तु जायते। यां यां कलां समाश्रित्य तन्नाम्ना जातिः उच्यते॥ ६६॥

व्याख्या—पृथक् पृथक् = विविधाभिः, क्रियाभिः = व्यापारैः, कलाभेदस्तु—कलानाम् = शिल्पानाम्, भेदः = भिन्नता, तु, जायते = भवति, यां यां कलाम् = शिल्पविद्याम्, समाश्रित्य = अवलम्ब्य, तन्नाम्ना = तत्तदाख्यया, जातिः = कलानां भेदः, उच्यते = कथ्यते॥ ६६॥

हिन्दी—किसी भी कला का भेद अलग-अलग व्यापार से ही बोध होता है और जिन

कलाओं का आश्रय लेकर लोग जीविका चलाते हैं, उस कला के नाम से उसकी जाति का बोध होता है ॥६६ ॥

पृथगिति। पृथक् पृथक् विभिन्नाभिरित्यर्थः, क्रियाभिः अनुष्ठानैः कलाभेदस्तु जायते, यां यां क्रियां समाश्रित्य तन्नाम्ना तत्तदाख्ययेत्यर्थः, जातिः कलानामिति शेषः उच्यते ॥६६ ॥

हावभावादिसंयुक्तं नर्त्तनं तु कला स्मृता।
अनेकवाद्यकरणे ज्ञानं तद्वादने कला ॥६७ ॥

अन्वयः—हावभावादिभिः संयुक्तं नर्तनं कला स्मृता। अनेकवाद्यकरणे ज्ञानं तत् वादने कला ॥६७ ॥

व्याख्या—हावभावादिभिः = पुरुषमनोहारीस्त्रीचेष्टाभेदादिभिः, संयुक्तम् = समन्वितम्, नर्त्तनम् = नृत्यम्, कला = शिल्पविद्या, स्मृता = कथिता। अनेकेषाम् = विविधानाम्, वाद्यानाम् = वादित्राणाम्, करणे = सम्पादने, ज्ञानम् = बोधः, तेषां कला = शिल्पविद्या, स्मृतेति भावः ॥६७ ॥

हिन्दी—विलास-विभ्रम के साथ नाचने की कला को नृत्यकला क़हते हैं। अनेक तरह के बाजे बजाने के ज्ञान को वाद्य अथवा वादन कला कहते हैं ॥६७ ॥

हावेति। हावभावादिभिः संयुक्तं नर्त्तनं नृत्यं कला स्मृता। तथा अनेकेषां वाद्यानां करणे निर्माणे, तेषां वाद्यानां वादने च ज्ञानं कला स्मृतेति शेषः ॥६७ ॥

वस्त्रालङ्कारसन्धानं स्त्रीपुंसोश्च कला स्मृता।
अनेकरूपाविर्भावकृतिज्ञानं कला स्मृता ॥६८ ॥

अन्वयः—स्त्रीपुंसोः वस्त्रालङ्कारसन्धानं कलाः स्मृता। अनेकरूपाविर्भावकृतिज्ञानं कला स्मृता ॥६८ ॥

व्याख्या—स्त्रीपुंसोः = नरनार्योः, वस्त्राणाम् = परिधानानाम्, अलङ्काराणाञ्च = आभूषणानाञ्च, सन्धानम् = संयोजनम्, कला = परिधानकलेति, स्मृता = ख्याता। तथा च, अनेकरूपाणाम् = विविधानां स्वरूपाणाम्, आविर्भावाणाम् = प्राकट्यानाम् , कृतौ = निष्पादने, ज्ञानम् = बोधः, कला = कथिता ॥६८ ॥

हिन्दी—नर-नारी को वस्त्राभूषणों से सजाने की कला को 'वस्त्रालङ्कारसंधान' कला कहते हैं। अनेक तरह के रूप प्रकट करने की कला को 'रूपप्रकाशन कला' (बहुरूपिया) कहते हैं ॥६८ ॥

वस्त्रेति। स्त्रीपुंसोः स्त्रीपुरुषयोः वस्त्राणाम् अलङ्काराणाञ्च सन्धानं सम्यक् सुचारुतयेत्यर्थः, धानं परिधानं कला स्मृता। तथा अनेकरूपाणां विविधानाम् आविर्भावाणां प्रकाशानां कृतौ अनुष्ठाने ज्ञानं कला स्मृता ॥६८ ॥

शय्यास्तरणसंयोगपुष्पादिग्रथनं कला।
द्यूताद्यनेकक्रीडाभी रञ्जनं तु कला स्मृता ॥६९ ॥

अन्वयः—शय्यास्तरणसंयोगपुष्पादिग्रथनं कला स्मृता। तथा द्यूताद्यनेकक्रीडाभिः रञ्जनं कला स्मृता ॥६९ ॥

व्याख्या—शय्यानाम् = पर्यङ्कानाम्, आस्तरणानाम् = कुथानाम्, संयोगः = सम्यक्सम्पादनम्,

पुष्पादीनाम् = प्रसूनादीनाम्, ग्रथनम् = सङ्ग्रन्थनम्, कला = शिल्पविद्या, स्मृता = कथिता। तथा—द्यूतादिभिः = कैतवादिभिः, अनेकाभिः = विविधाभिः, क्रीडाभिः = खेलनैः, रञ्जनम् = लोकानां मनोरञ्जनम्, कला स्मृता ॥ ६९ ॥

हिन्दी—पलंग पर बिछावन बिछाकर पुरुषों को सुलाने की विधि को भी कला कहते हैं। जुआ प्रभृति अनेक खेलों द्वारा मनोरंजन करना भी कला है ॥ ६९ ॥

शय्येति। शय्यानाम् आस्तरणानाञ्च संयोगः सम्यक् योगः अनुष्ठानं पुष्पादीनाञ्च ग्रथनं कला स्मृता। तथा द्यूतादिभिः अनेकाभिः क्रीडाभिः रञ्जनं लोकानामिति शेषः कला स्मृता ॥ ६९ ॥

अनेकासनसन्धानै रतेर्ज्ञानं कला स्मृता।
कलासप्तकमेतद्धि गान्धर्वे समुदाहृतम् ॥ ७० ॥

अन्वयः—अनेकासनसन्धानैः रतेः ज्ञानं कला स्मृता। एतद्धि कलासप्तकं गान्धर्वे समुदाहृतम् ॥ ७० ॥

व्याख्या—अनेकैः = बहुविधैः, आसनैः = उपवेशनप्रकारैः, रतेः = मैथुनक्रियायाः, ज्ञानम् = बोधः, कला, स्मृता = कथिता। तथा एतत् = पूर्वोक्तम्, कलानाम् = रतिकलानाम्, सप्तकम् = सप्तविधम्, गान्धर्वे = गन्धर्ववेदे, समुदाहृतम् = सम्यक्प्रकारेणोदाहृतम् ॥ ७० ॥

हिन्दी—आसन बदल कर संभोग करने की क्रिया को भी कला कहते हैं। इन सात प्रकार की रतिक्रिया का वर्णन उदाहरण के साथ गान्धर्ववेद में किया गया है ॥ ७० ॥

अनेकेति। अनेकैः विविधैः आसनैः सन्धानैश्च रतेः सुरतस्य ज्ञानं कला स्मृता। एतत् उक्तरूपं कलानां सप्तकं गान्धर्वे गान्धर्ववेदे समुदाहृतं हि, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ ७० ॥

मकरन्दासवादीनां मद्यादीनां कृतिः कला।
शल्यगूढाहृतौ ज्ञानं शिराव्रणव्यधे कला ॥ ७१ ॥

अन्वयः—मकरन्दासवादीनां मद्यादीनां कृतिः कला। शल्यगूढाहृतौ ज्ञानं शिराव्रणव्यधे कला ॥ ७१ ॥

व्याख्या—मकरन्दः = प्रसूनरसः, तेन आसवादीनाम् = मदिरादीनाम्, मद्यादीनाम् = सुराप्रभृतीनाम्, कृतिः = निष्पादनम्, कला भवति। तथा शक्यस्य = कण्टकविद्धस्य, गूढम् = क्लेशरहितं मन्दम्, यथा तथा आहृतौ = निष्कासने, शिरासु व्रणानाम् = स्फोटकादीनाम्, व्यधे = विद्धकरणे च, ज्ञानम् = बोधः, कला भवति ॥ ७१ ॥

हिन्दी—फूलों के रस से आसव तथा सुरा प्रभृति बनाने की विधि को कला कहते हैं। शरीर में चुभे काँटें आसानी से निकालने की क्रिया तथा सिर के घावों को चीरकर बहाने की क्रिया को भी कला कहते हैं ॥ ७१ ॥

मकरन्देति। मकरन्दः पुष्परसः तेन आसवादीनां मादकद्रव्याणां तथा मद्यादीनां सुराप्रभृतीनां कृतिः अनुष्ठानं कला। तथा शल्यस्य पादादिविद्धस्य गूढं मन्दम् अक्लेशकरमित्यर्थः, यथा तथा आहृतौ बहिष्करणे शिरासु व्रणानां स्फोटकादीनां व्यधे विद्धकरणे च ज्ञानं कला ॥ ७१ ॥

हिङ्ग्वादिरससंयोगादन्नादिपचनं कला।

वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला ॥ ७२ ॥

अन्वयः—हिङ्ग्वादिरससंयोगात् अन्नादिपचनं कला। वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला ॥७२ ॥

व्याख्या—हिङ्ग्वादीनाम् = बाह्लीकादीनाम्, रससंयोगात्—रसानाम् = साराणाम्, संयोगात् = सम्मिश्रणात्, अन्नादीनाम् = भोज्यपदार्थादीनाम्, पचनम् = पाककरणम्, कला। तथा = तेनैव प्रकारेण, वृक्षादीनाम् = तरुगुल्मप्रभृतीनाम्, प्रसवस्य = फलस्य, आरोपः = रोपणम्, तत्पालनादिश्च = संरक्षणादिकञ्च कलेति कथिता ॥७२ ॥

हिन्दी—हिंग आदि द्रव्य के रसों को मिलाकर सुन्दर ढंग से भोजन बनाने की क्रिया को भी कला कहते हैं। पेड़-पौधे को फलने, उन्हें रोपने और उनकी रक्षा करने की क्रिया भी एक कला है ॥७२ ॥

हिङ्ग्वादीति। हिङ्ग्वादीनां हिङ् इति नाम्ना प्रसिद्धद्रव्यविशेषाणां रससंयोगात् अन्नादीनां पचनं पाककरणं कला, तथा वृक्षादीनां प्रसवस्य फलस्य यः आरोपः रोपणं तत्पालनादिश्च तत्कृतिः तदनुष्ठानं कला ॥७२ ॥

पाषाणधात्वादिदृतिस्तद्भस्मीकरणं कला।
यावदिक्षुविकाराणां कृतिज्ञानं कला स्मृता ॥७३ ॥

अन्वयः—पाषाणधात्वादिदृतिस्तद्भस्मीकरणं कला। यावदिक्षुविकाराणां कृतिज्ञानं कला स्मृता ॥७३ ॥

व्याख्या—पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, धात्वादीनाम् = स्वर्णरौप्यादीनाम्, दृतिः = विदारणम्, तेषां भस्मीकरणम् = तापनम्, कला, तथा यावत् = यथायथम्, इक्षुविकाराणाम् = गुडाणाञ्च, कृतेः = पाककरणस्य, ज्ञानम् = बोधोऽपि, कला एवेति, स्मृता = कथिता ॥७३ ॥

हिन्दी—पत्थर तोड़कर तथा सोना-चाँदी को गलाकर भस्म बनाना भी एक कला है। गुड़पाक बनाने की क्रिया भी एक कला ही है ॥७३ ॥

पाषाणेति। पाषाणानां प्रस्तराणां धात्वादीनां स्वर्णादीनाञ्च दृतिः विदारणं तेषां भस्मीकरणञ्च कला, तथा यावत् यथायथम् इक्षुविकाराणां गुडाणाञ्च कृतौ अनुष्ठाने ज्ञानं कला स्मृता ॥७३ ॥

धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता।
धातुसाङ्कर्य्यपार्थक्यकरणन्तु कला स्मृता ॥७४ ॥

अन्वयः—धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता। धातुसाङ्कर्यपार्थक्यकरणं तु कला स्मृता ॥ ७४ ॥

व्याख्या—धातूनाम् = खनिजानाम्, औषधीनाम् = भैषज्यानाम्, संयोगस्य = सम्मिश्रणस्य, क्रियायाः = निष्पादनस्य, च, ज्ञानम् = बोधः, कला स्मृता। तथा धातूनाम् = अश्मभेदानाम्, साङ्कर्यात् = सम्मिश्रणात्, पार्थक्यकरणम् = भिन्नकरणम्, कला, स्मृता = कथिता ॥७४ ॥

हिन्दी—खनिजों के साथ औषधियों के सम्मिश्रण एवं प्रयोग करने के ज्ञान को भी कला कहते हैं। स्वर्णादि धातुओं के संमिश्रण को अलग-अलग करने की क्रिया को भी कला कहते हैं ॥७४ ॥

धात्विति। धातूनां स्वर्णरजतादीनाम् औषधीनाञ्च संयोगस्य क्रियायाः अनुष्ठानस्य च ज्ञानं कला स्मृता । तथा धातूनां साङ्कर्यात् मिश्रणात् पार्थक्यकरणं पृथक्करणं कला स्मृता ॥७४ ॥

संयोगापूर्वविज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता।
क्षारनिष्कासनज्ञानं कलासंज्ञन्तु तत् स्मृतम्।
कलादशकमेतद्धि ह्यायुर्वेदागमेषु च ॥७५॥

अन्वयः—धात्वादीनां संयोगापूर्वविज्ञानं कला स्मृता। क्षारनिष्कासनं ज्ञानं कलासंज्ञं तु तत् स्मृतम्। एतत् हि कलादशकम् आयुर्वेदागमेषु च ॥७५॥

व्याख्या—धात्वादीनाम् = खनिजप्रभृतीनाम्, संयोगस्य = सम्मिश्रणस्य, अपूर्वम् = अभूतपूर्वम्, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, कला, स्मृता = कथिता। तथा क्षाराणाम् = लवणादीनाम्, निष्कासने = प्रकाशने, वा द्रव्यान्तराद् बहिष्करणे, यत्ज्ञानम् = कौशलम्, तदपि कलेति नाम्ना ख्याता। एतत् = पूर्वोक्तम्, दशकम् = दशसंख्यकम्, आयुर्वेदागमे = आयुर्वेदशास्त्रे वर्णितम्।

हिन्दी—खनिज द्रव्यों को अभूतपूर्व ढंग से मिलाने के ज्ञान को भी कला कहते हैं। नमक निकालने की प्रक्रिया को भी कला कहते हैं। ऊपर वर्णित दस कलाओं का उल्लेख आयुर्वेदशास्त्र में हैं ॥७५॥

संयोगेति। धात्वादीनां धातुप्रभृतीनां संयोगस्य मिश्रीभावस्य अपूर्वं प्रथमं विज्ञानं कला स्मृता। तथा क्षाराणां लवणादीनां निष्कासने आविष्करणे वा द्रव्यान्तराद् बहिष्करणे यत् ज्ञानं तत् कलासंज्ञं कलेति नाम्ना स्मृतम्। एतत् कलानां दशकम् आयुर्वेदशास्त्रे अन्तर्भूतमिति शेषः, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥७५॥

शस्त्रसन्धानविक्षेपः पदादिन्यासतः कला।
सन्ध्याघाताकृष्टिभेदैर्मल्लयुद्धं कला स्मृता ॥७६॥

अन्वयः—पदादिन्यासतः शस्त्रसन्धानविक्षेपः कला तथा सन्ध्याघाताकृष्टिभेदैः मल्लयुद्धं कला ॥७६॥

व्याख्या—पदादीनाम् = चरणादीनाम्, न्यासतः = स्थापनक्रमेण, शस्त्राणाम् = आयुधानाम्, सन्धानम् = संयोजनम्, कला, तथा सन्धिषु = सन्धिस्थलेषु, ये आघाताः = आक्रमणम्, प्रक्षेपो वा, आकृष्टयः = आकर्षणानि, च, तेषां भेदैः = प्रकारैः, यत् मल्लयुद्धम् = नियुद्धमपि, कला, स्मृता = ख्याता ॥७६॥

हिन्दी—पैंतरे बदलते हुए निशाने साध कर हथियार चलाने की क्रिया को कला कहते हैं तथा अनेक दाव-पेंचों के साथ सन्धिस्थल पर चोट कर और खींच कर कुश्ती लड़ना भी कला है ॥७६॥

शस्त्रेति। पदादीनां न्यासतः विन्यासक्रमेण शस्त्राणां सन्धानं सम्यक् लक्ष्यीकरणं विक्षेपश्च कला। तथां सन्धिषु स्थानविशेषेषु ये आघाताः प्रहाराः आकृष्टयः आकर्षणानि च तेषां भेदैः यत् मल्लयुद्धं मल्लयोः वीरयोः युद्धं परस्परसङ्ग्रामः तत् कला स्मृता ॥७६॥

बाहुयुद्धन्तु मल्लानामशस्त्रं मुष्टिभिः स्मृतम्।
मृतस्य तस्य न स्वर्गो यशो नेहापि विद्यते ॥७७॥

अन्वयः—मल्लानाम् अशस्त्रं यत् बाहुयुद्धं तत् मुष्टिभिः स्मृतम्। तस्य मृतस्य स्वर्गः तथा यशश्च इह न विद्यते ॥७७॥

व्याख्या—मल्लानाम् = बाहुयोद्धृणाम्, अशस्त्रम् = आयुधरहितम्, यत् बाहुयुद्धम् = मल्लयुद्धम्, तत = तस्मिन् युद्धे, मुष्टिभिः = मुष्टिप्रहारैः, स्मृतम् = कथितम्। तत्र = तस्मिन् युद्धे, मृतस्य = हतस्य, तस्य = वीरस्य, स्वर्गः = अपरलोकः, यशश्च = कीर्त्तिश्चापि, इह = संसारे, न = नहि, विद्यते = भवतीति ॥७७॥

हिन्दी—बिना हथियार चलाये मुक्के से जहाँ युद्ध होता है, उसे मल्लयुद्ध कहते हैं। इस युद्ध में मरने वालों को न तो स्वर्ग मिलता है और न संसार में यश ही मिलता है ॥७७॥

बाहुयुद्धमिति। मल्लानां वीराणाम् अशस्त्रं शस्त्राघातरहितं यत् बाहुयुद्धं तत् मुष्टिभिः मुष्टिप्रहारैः स्मृतं कथितं, तत्र मृतस्य तस्य वीरस्य स्वर्गः तथा यशश्च इह न विद्यते ॥७७॥

बलदर्पविनाशान्तं नियुद्धं यशसे रिपोः।
न कस्यासीद्धि कुर्य्याद् वै प्राणान्तं बाहुयुद्धकम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—रिपोः बलदर्पविनाशान्तं नियुद्धं कस्य यशसे न आसीत् हि। अपितु प्राणान्तं बाहुयुद्धकं हि कुर्यात् ॥७८॥

व्याख्या—रिपोः = अरेः, बलदर्पयोः = सामर्थ्यगवयोः, विनाशान्तम् = विनाशपर्यन्तम्, नियुद्धम् = बाहुयुद्धम्, कस्य = कस्यापि जनस्य, यशसे = कीर्त्तये, न = नहि, आसीत्, हीति निश्चयेन, अपितु सकलसमाजहेतवे भवति, अतः प्राणान्तम् = प्राणान्तपर्यन्तम्, बाहुयुद्धम् = मुष्टिप्रहारम्, वै = इति निश्चयेन, कुर्यात् = विदध्यात् ॥७८॥

हिन्दी—शत्रु की शक्ति और दर्प नाश के लिए प्राणनाश तक युद्ध चलना चाहिए। यह बाहुयुद्ध किसी व्यक्ति-विशेष के यश हेतु नहीं है। अतः जब तक दुश्मन की जान न निकल जाय तब तक इस युद्ध को चलते रहना चाहिए ॥७८॥

बलेति। रिपोः शत्रोः बलदर्पयोः विनाशान्तं विनाशावधिकं नियुद्धं कस्य यशसे न आसीत्? हि निश्चितम्। अपितु सर्वस्यैव यशसे इत्यर्थः, अतः प्राणान्तं बाहुयुद्धकं कुर्य्यात् वै कुर्य्यादेव वैशब्दोऽवधारणार्थः ॥७८॥

कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सुसङ्कटैः।
सन्निपातावघातैश्च प्रमादोन्मथनैस्तथा।
कृतं निपीडनं ज्ञेयं तन्मुक्तिस्तु प्रतिक्रिया ॥ ७९ ॥
कलाभिलक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रनिपातनम्।
वाद्यसङ्केततो व्यूहरचनादि कला स्मृता ॥ ८० ॥

अन्वयः—कृतप्रतिकृतैः चित्रैः सुसङ्कटैः बाहुभिः सन्निपातावघातैश्च तथा प्रमादोन्मथनैः यत्कृतं तन्निपीडनं ज्ञेयम्। तन्मुक्तिस्तु प्रतिक्रिया सा कला। अभिलक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रनिपातनं तथा वाद्यसङ्केततः व्यूहरचनादि कला स्मृता ॥७९-८०॥

व्याख्या—कृतैः = बाहुभ्यां प्रहरणैः, प्रतिकृतैः = शत्रुकृतप्रहारावरोधनैः, चित्रैश्च = विविधैश्च, सुसङ्कटैः = अतिभीषणप्रहरणैः, बाहुभिः = बाहुप्रहारैः, सन्निपातैः = शत्रोरुपरि सम्यक्पातनैः, अवघातैः = प्रहारैः, तथा प्रमादे = स्तोकमपि सावधानताऽभावे, उन्मथनैः = पेषणैः,

यत्कृतम् = यदनुष्ठितम्, तत् = कर्म, निपीडनम् = सन्तापनं वा अर्दनम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्। तत् = तस्मात्, मुक्तिस्तु = अतिक्रमस्तु, प्रतिक्रिया = प्रतिकारः, सा = एवंविधा क्रिया, कला ज्ञेया। किञ्च अभिलक्षिते = अभीप्सिते, देशे = स्थानविशेषे, यन्त्रादीनाम् = प्रहारकयुद्धयन्त्रादीनाम्, तथा अस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, निपातनम् = प्रहरणम्, तथा वाद्यानाम् = वादनयन्त्राणाम्, सङ्केततः = सङ्केतेन, व्यूहरचनादि = सैन्यसंरचनादि, कला, स्मृता = कथिता ॥७९-८० ॥

हिन्दी—बाँहों से वार करना, अपने पर किये गये वारों से बचना, पैंतरे बदल कर बाँहों से वार करना, बाँहों से भीषण प्रहार करना, शत्रु पर लगातार टूट पड़ना, हाथों से ही उसे चोट पहुँचाना तथा थोड़ा भी असावधान होने पर दुश्मन को हाथों से मसल डालना—ऐसे बाहुयुद्ध को 'निपीड़न' कहा जाता है। ऐसे आक्रमणों से अपने को बचा लेना 'प्रतिक्रिया' कहलाती है। इसे मल्लयुद्ध कहते हैं, यह भी एक कला है। लक्ष्यस्थान पर निशाना साधकर युद्धयंत्र या हथियार चलाना भी एक कला है। जुझाऊ बाजे के इशारे पर सैन्य-संरचना भी एक कला है ॥७९-८० ॥

कृतेति। कलेति। कृतैः प्रतिकृतैः चित्रैः विविधैः सुसङ्कटैः अतिभीषणैः बाहुभिः बाहुप्रहारैरित्यर्थः, सन्निपातैः सम्यक् पातनैः शत्रोरुपरीति शेषः, अवघातैः आघातैः तथा प्रमादे अनवधानतायां शत्रोरिति शेषः, उन्मथनैः मर्दनैः यत् कृतं तत् निपीडनं निःशेषेण पीडनं ज्ञेयं, तस्मात् मुक्तिस्तु अतिक्रमस्तु प्रतिक्रिया प्रतिकारः सा कला। किञ्च अभिलक्षिते लक्ष्यीकृते देशे यन्त्रादीनां युद्धयन्त्रादीनाम् अस्त्राणाञ्च निपातनं तथा वाद्यानां सङ्केततः इङ्गितेन व्यूहरचनादि सैन्यरचनादि कला स्मृता ॥७९-८० ॥

गजाश्वरथगत्या तु युद्धसंयोजनं कला।
कलापञ्चकमेतद्धि धनुर्वेदागमे स्थितम् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—गजाश्वरथगत्या युद्धसंयोजनं कला। एतत् कलापञ्चकं हि धनुर्वेदागमे स्थितम् ॥८१ ॥

व्याख्या—गजानाम् = हस्तिनाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, रथानाञ्च = स्यन्दनानाञ्च, गत्या = गतिविशेषेण, युद्धसंयोजनम् = रणनीतिनिर्धारणम्, कला = कलाख्येति। एतत् = पूर्वोक्तं सकलम्, कलापञ्चकम् = एषा पञ्चविधा कला, हि = यतः, धनुर्वेदागमे = धनुर्वेदशास्त्रे, स्थितम् = वर्णितमस्ति ॥८१ ॥

हिन्दी—हाथी, घोड़े और रथ की चाल पर ध्यान रखते हुए रणनीति का निर्धारण करना भी एक कला है। ये पाँच कलाएँ धनुर्वेदशास्त्र में वर्णित हैं ॥८१ ॥

गजेति। गजानाम् अश्वानां रथानाञ्च गत्या गमनवैशिष्ट्येन युद्धसंयोजनं सङ्ग्रामायोजनं कला। एतत् कलापञ्चकं धनुर्वेदागमे धनुर्वेदशास्त्रे स्थितं हि, हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥८१ ॥

विविधासनमुद्राभिर्देवतातोषणं कला।
सारथ्यं च गजाश्वादेर्गतिशिक्षा कला स्मृता ॥ ८२ ॥

अन्वयः—विविधासनमुद्राभिः देवतातोषणं कला। सारथ्यं गजाश्वादेः च गतिशिक्षा कला स्मृता ॥८२ ॥

व्याख्या—विविधेन = अनेकप्रकारकेण, आसनेन = उपवेशनाधारेण, मुद्राभिः = शरीरावयवविन्यासैः, देवतानाम् = सुराणाम्, तोषणम् = प्रीणनम्, कला। तथा सारथ्यम् = रथसञ्चालनम्, गजानाम् = करिणाम्, अश्वानाञ्च = हयानाञ्च, गतिशिक्षा = सञ्चालनबोधः, च, कला स्मृता = कथिता ॥ ८२ ॥

हिन्दी—अनेक प्रकार के आसनों और मुद्राओं से देवताओं को प्रसन्न करना भी एक कला है तथा रथ हाँकना और हाथी-घोड़े को चाल सिखाना भी कला है ॥ ८२ ॥

विविधेति। विविधेन आसनेन उपवेशनेन मुद्राभिः हस्तादीनां रचनाविशेषैश्च देवतानां सन्तोषणं प्रीणनं कला। तथा सारथ्यं सूतकार्य्यं गजानाम् अश्वानाञ्च गतिशिक्षा च कला स्मृता ॥ ८२ ॥

मृत्तिकाकाष्ठपाषाणधातुभाण्डादिसत्क्रिया ।
पृथक् कलाचतुष्कं तु चित्राद्यालेखनं कला ॥ ८३ ॥

अन्वयः—मृत्तिकाकाष्ठपाषाणधातुभाण्डादिसत्क्रिया कला, चित्राद्यालेखनं कला। एतत् कलाचतुष्कं तु पृथक् उक्तम् ॥ ८३ ॥

व्याख्या—मृत्तिकानां = मृदानाम्, काष्ठानाम् = दारूणाम्, पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, धातूनाञ्च = खनिजानाञ्च, ये भाण्डादयः = पात्रादयः, सत्क्रिया = सुष्ठुरूपेण तेषां रचना, तत् कलेति, तथा चित्रादीनाम् = आलेख्यादीनाम्, आलेखनम् = चित्राङ्कनम्, कला। एतत् = पूर्वोक्तम्, चतुष्कम् = चतुःप्रकारकम्, कला, पृथक् = अन्यत्, उक्तम् ॥ ८३ ॥

हिन्दी—मिट्टी, काठ, पत्थर और धातु के बर्त्तन आदि को सुन्दर ढंग से बनाना भी कला है तथा चित्र बनाना भी कला ही है। ये अलग से चार कलाएँ हैं ॥ ८३ ॥

मृत्तिकेति। मृत्तिकानां काष्ठानां पाषाणानां धातूनाञ्च ये भाण्डादयः तेषां सत्क्रिया सुनिर्माणं कला। तथा चित्रादीनाम् आलेखनं सम्यक् लेखनं कला। एतत् कलाचतुष्कं पृथक् उक्तमिति शेषः ॥ ८३ ॥

तडागवापीप्रासादसमभूमिक्रिया कला।
घट्याद्यनेकयन्त्राणां वाद्यानान्तु कृतिः कला ॥ ८४ ॥

अन्वयः—तडागवापीप्रासादसमभूमिक्रिया कला। तथा घट्याद्यनेकयन्त्राणां वाद्यानां तु कृतिः कला ॥ ८४ ॥

व्याख्या—तडागानाम् = सरोवराणाम्, वापीनाम् = वापिकानाम्, प्रासादानाम् = राजभवनानाम्, समभूमीनाञ्च—भूम्याः = पृथिव्याः, समानीकरणस्य क्रिया कलेति, तथा घट्यादीनाम् = समयनिरूपकादीनाम्, अनेकेषाम् = विविधानाम्, यन्त्राणाम्, वाद्यानाम् = वादनयन्त्राणाञ्च, कृतिः = क्रिया, कलेति ॥ ८४ ॥

हिन्दी—तालाब, बावड़ी, राजभवन तथा धरती को समतल बनाने की क्रिया भी एक कला है। घड़ी बनाने की क्रिया भी एक कला ही है और विविध बाजे बनाना भी कला ही है ॥ ८४ ॥

तडागेति। तडागानां सरसां वापीनां दीर्घिकाणां प्रासादानां हर्म्याणां समभूमीनाञ्च क्रिया करणं कला। तथा घट्यादीनां समयनिरूपकादीनाम् अनेकेषां विविधानां यन्त्राणां वाद्यानाञ्च कृतिः निर्माणं कला ॥ ८४ ॥

हीनमध्यादिसंयोगवर्णाद्यै रञ्जनं कला।
जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैश्च क्रिया कला॥ ८५॥

अन्वयः—हीनमध्यादिसंयोगवर्णाद्यैः रञ्जनं कला। जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैः क्रिया कला॥ ८५॥

व्याख्या—हीनमध्यादयः = मन्दमध्यादिकाः, संयोगाः = संश्लेषाः, येषाम्, तैः वर्णाद्यैः = रागाद्यैः, रञ्जनम् = चित्राङ्कनमपि, कला। तथा जलानाम् = सलिलानाम्, वायूनाम् = पवनानाम्, अग्नीनाञ्च = वह्नीनाञ्च, संयोगैः = सम्मिश्रणैः, निरोधैश्च = अवरोधैश्च, या क्रिया = वाष्पीययन्त्रेण कृत्यसम्पादनमपि कला एवेति॥ ८५॥

हिन्दी—हलका, गाढ़ा या सामान्य रंग मिला कर कपड़े रंगने का काम भी कला है तथा आग, पानी और हवा के संयोग और निरोध से वाष्पयंत्र द्वारा काम करना भी कला है॥ ८५॥

हीनेति। हीनमध्यादयः अल्पमध्योत्तमाः संयोगाः येषां तैः वर्णाद्यैः रञ्जनं वस्त्रादीनामिति शेषः कला। तथा जलानां वायूनाम् अग्नीनाञ्च संयोगैः निरोधैश्च या क्रिया वाष्पीयन्त्रेण कार्य्यकरणं सा कला॥ ८५॥

नौकारथादियानानां कृतिज्ञानं कला स्मृता।
सूत्रादिरज्जुकरणविज्ञानन्तु कला स्मृता॥ ८६॥

अन्वयः—नौकारथादियानानां कृतिज्ञानं कला स्मृता। सूत्रादिरज्जुकरणविज्ञानं तु कला स्मृता॥ ८६॥

व्याख्या—नौकानाम् = तरणीनाम्, रथानाम् = स्यन्दनानाम्, यानादीनाम् = शकटादीनाम्, कृतौ = रचनायाम्, ज्ञानम् = बोधः, कला, स्मृता = कथिता। तथा सूत्रादीनाम् = तन्त्वादीनाम्, रज्जूनाञ्च = दाम्नाञ्च, करणे = निर्माणे, ज्ञानम् = बोधः, कला, स्मृता = कथिता॥ ८६॥

हिन्दी—नाव, रथ और सवारी गाड़ी बनाने के ज्ञान को भी कला कहते हैं तथा धागे या वस्तुओं से रस्सी बनाने के ज्ञान को भी कला कहते हैं॥ ८६॥

नौकेति। नौकानां रथानां यानादीनां शकटादीनाञ्च कृतौ निर्माणे ज्ञानं कला स्मृता। तथा सूत्रादीनां रज्जूनाञ्च करणे विज्ञानं विशेषेण ज्ञानं कला स्मृता॥ ८६॥

अनेकतन्तुसंयोगैः पटबन्धः कला स्मृता।
वेधादिसदसज्ज्ञानं रत्नानाञ्च कला स्मृता॥ ८७॥

अन्वयः—अनेकतन्तुसंयोगैः पटबन्धः कला स्मृता। रत्नानाञ्च वेधादिसदसज्ज्ञानं कला स्मृता॥ ८७॥

व्याख्या—अनेकेषाम् = विविधानाम्, तन्तूनाम् = सूत्राणाम्, संयोगैः = सम्मिश्रणैः, पटबन्धः—पटानाम् = वस्त्राणाम्, बन्धः = वयनमपि, कला, स्मृता = ख्यातेति। रत्नानाम् = मणीनाम्, वेधादिषु = छिद्रादिषु, सदसज्ज्ञानम् = उत्कृष्टापकृष्टत्वबोधः, कला, स्मृता = कथिता॥ ८७॥

हिन्दी—अनेक रंग के धागों को मिलाकर कपड़ा बुनना भी एक कला है। रत्नों में छेद करना तथा उसके अच्छे और बुरे की जानकारी भी कला ही है॥ ८७॥

अनेकेति। अनेकेषां तन्तूनां सूत्राणां संयोगैः पटबन्धः वस्त्रवयनं कला स्मृता। तथा रत्नानां वेधादिषु छिद्रादिषु सदसज्ज्ञानम् उत्कर्षापकर्षज्ञानं कला स्मृता ॥८७॥

स्वर्णादीनान्तु याथात्म्यविज्ञानञ्च कला स्मृता।
कृत्रिमस्वर्णरत्नादिक्रियाज्ञानं कला स्मृता ॥ ८८ ॥

अन्वयः—स्वर्णादीनां याथात्म्यविज्ञानं कला स्मृता। कृत्रिमस्वर्णरत्नादिक्रियाज्ञानं कला स्मृता ॥८८॥

व्याख्या—स्वर्णादीनाम् = कनकप्रभृतीनाम्, याथात्म्यस्य = यथार्थस्वरूपस्य, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, कला, स्मृता = कथिता। तथा कृत्रिमाणाम् = अनैसर्गिकानाम्, स्वर्णरत्नादीनाम् = सुवर्णमाणिक्यादीनाम्, क्रियाज्ञानम् = रचनाकौशलम्, कला, स्मृता = कथिता ॥८८॥

हिन्दी—सुवर्णादि धातुओं की परख भी कला है। नकली सोना और रत्न भी बनाना एक कला है ॥८८॥

स्वर्णादीनामिति। स्वर्णादीनां याथात्म्यस्य यथास्वरूपस्य विज्ञानं विशेषेण ज्ञानं कला स्मृता। तथा कृत्रिमाणां स्वर्णरत्नादीनां क्रियाज्ञानं करणविज्ञानं कला स्मृता ॥८८॥

स्वर्णाद्यलङ्कारकृतिः कला लेपादिसत्कृतिः।
मार्दवादिक्रियाज्ञानं चर्मणान्तु कला स्मृता ॥ ८९ ॥

अन्वयः—स्वर्णाद्यलङ्कारकृतिः लेपादिसत्कृतिः कला। चर्मणां मार्दवादिक्रियाज्ञानं कला स्मृता ॥८९॥

व्याख्या—स्वर्णादीनाम् = सुवर्णप्रभृतीनां धातूनाम्, अलङ्कारकृतिः = आभूषणनिर्माणम्, लेपादिसत्कृतिः = तदुपरिप्रलेपनकृत्यम्, कला। चर्मणाम् = अजिनानाम्, मार्दवादीनाम् = कोमलीकरणादीनाम्, क्रिया = कृतिः (The art of converting row ride in to Leather or weather tannig), ज्ञानम् = बोधः, कला, स्मृता = कथिता ॥८९॥

हिन्दी—सोने-चाँदी के जेवर बनाना उन पर सोने का पानी चढ़ाना भी कला है। चमड़े को सिझाकर कोमल बनाना (Leather Tanning) भी एक कला है ॥८९॥

स्वर्णेति। स्वर्णादीनाम् अलङ्कारकृतिः अलङ्कारनिर्माणं लेपादिसत्कृतिः प्रलेपाद्यनुष्ठानञ्च कला। चर्मणां मार्दवादीनां क्रियायां ज्ञानं कला स्मृता ॥८९॥

पशुचर्माङ्गनिर्हारक्रियाज्ञानं कला स्मृता।
दुग्धदोहादिविज्ञानं घृतान्तन्तु कला स्मृता ॥ ९० ॥

अन्वयः—पशुचर्मणाम् अङ्गेभ्यः निर्हारस्य क्रियायां ज्ञानं कला। दुग्धदोहादीनां घृतान्तं विज्ञानं कला स्मृता ॥९०॥

व्याख्या—पशुचर्मणाम् = अजिनानाम्, अङ्गेभ्यः = पशुशरीरावयवेभ्यः, निर्हारस्य = निष्कासनस्य, क्रियायाम् = कृतौ, ज्ञानम् = बोधः, कला, स्मृता = कथिता। दुग्धदोहादीनाम् = गवादिदुग्धदोहनादीनाम्, घृतान्तम् = दुग्धात् घृतनिष्कासनपर्यन्तम्, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, कला, स्मृता = कथितेति ॥९०॥

हिन्दी—पशु की देह से चमड़ी उतारने की रीति को भी कला कहते हैं। दूध दुहने से घी निकालने तक की क्रिया भी एक कला ही है ॥९० ॥

पश्विति। पशुचर्मणाम् अङ्गेभ्यः पशूनामिति भावः, निर्हारस्य निष्कासनस्य क्रियायां ज्ञानं कला स्मृता। दुग्धदोहादीनां पशुदोहनादीनां घृतान्तं घृतसम्पादनपर्य्यन्तं विज्ञानं कला स्मृता ॥९० ॥

सीवने कञ्चुकादीनां विज्ञानन्तु कलात्मकम्।
बाह्वादिभिश्च तरणं कलासंज्ञं जले स्मृतम् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—कञ्चुकादीनां सीवने विज्ञानं कलात्मकं जले बाह्वादिभिः तरणं कलासंज्ञं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

व्याख्या—कञ्चुकादीनाम् = लम्बाङ्गिकादीनाम्, सीवने = सूचीकर्मणि, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, कलात्मकम् = कलासंज्ञकम्, तथा, जने = सलिले, बाह्वादिभिः = दोर्दण्डादिभिः, तरणम् = सन्तरणम्, कलासंज्ञम् = कलानाम, इति, स्मृतम् = कथितम् ॥९१ ॥

हिन्दी—पहनावे के वस्त्र सीना भी कला है और पानी में बाँहों के सहारे तैरना भी कला है ॥९१ ॥

सीवने इति। कञ्चुकादीनां गात्राच्छादनीभूतानां सीवने स्यूतीकरणे विज्ञानं कलात्मकं कलेति प्रसिद्धम्। बाह्वादिभिश्च जले बाहुप्रभृतिभिः तरणं सन्तरणं कलासंज्ञं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

मार्जने गृहभाण्डादेर्विज्ञानन्तु कला स्मृता।
वस्त्रसम्मार्जनञ्चैव क्षुरकर्म कले ह्युभे ॥ ९२ ॥

अन्वयः—गृहभाण्डादेः मार्जने विज्ञानं तु कला स्मृता। वस्त्रसम्मार्जनं क्षुरकर्म च उभे हि कले ॥९२ ॥

व्याख्या—गृहाणाम् = सदनानाम्, भाण्डादेः = प्रयुक्तपात्रादेः, मार्जने = परिष्करणे, यद्विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम् तु, कला, स्मृता = कथिता। वस्त्रसम्मार्जनम् = वसनादिप्रक्षालनम्, तथा, क्षुरकर्म = केशकर्त्तनादिकम्, च एते, उभे = द्वे, हीति निश्चयेन, कलेति बोध्यम् ॥९२ ॥

हिन्दी—धातु-निर्मित घरेलू बरतन-बासन की सफाई कला है। वस्त्रों की सफाई और बाल बनाने की क्रिया—ये दोनों कला हैं ॥९२ ॥

मार्जने इति। गृहभाण्डादेः गृहतैजसपात्रादेः मार्जने शोधने विज्ञानं कला स्मृता। वस्त्राणां सम्मार्जनं सम्यक् शोधनं तथा क्षुरकर्म्म एते उभे कले ॥९२ ॥

तिलमांसादिस्नेहानां कला निष्कासने कृतिः।
सीराद्याकर्षणे ज्ञानं वृक्षाद्यारोहणे कला ॥ ९३ ॥

अन्वयः—तिलमांसादिस्नेहानां निष्कासने कृतिः सीराद्याकर्षणे ज्ञानं वृक्षाद्यारोहणे कला ॥९३ ॥

व्याख्या—तिलानाम् = जटुलानाम्, मांसादीनाम् = पिशितादीनाम्, च ये स्नेहाः = तैलानि, तेषाम्, निष्कासने = बहिष्करणे, या कृतिः = क्रिया, सापि कला। किञ्च सीरादीनाम् = गोदारणादीनाम्, आकर्षणे = आलेखने, वृक्षादीनाम् = तरूणाम्, आरोहणे = उपरिगमने, यत् ज्ञानम् = बोधः, सा कलेति ॥९३ ॥

हिन्दी—तिल और मांस से तेल निकालने की क्रिया भी कला है। हल चलाना और पेड़ पर चढना भी एक कला है ॥९३ ॥

तिलेति। तिलानां मांसादीनाञ्च ये स्नेहाः तैलानि, तेषां निष्कासने बहिष्करणे कृतिः कला। किञ्च सीरादीनां लाङ्गलादीनाम् आकर्षणे तथा वृक्षादीनाम् आरोहणे ज्ञानं कला ॥९३ ॥

मनोऽनुकूलसेवायाः कृतिज्ञानं कला स्मृता।
वेणुतृणादिपात्राणां कृतिज्ञानं कला स्मृता ॥ ९४ ॥

अन्वयः—मनोऽनुकूलसेवायाः कृतौ ज्ञानं कला स्मृता। तथा वेणुतृणादिपात्राणां कृतिज्ञानं कला स्मृता ॥९४ ॥

व्याख्या—मनोऽनुकूलायाः= चित्तानुसारिण्याः, सेवायाः= परिचर्यायाः, कृतौ= निष्पादने, ज्ञानम्= बोधः, कलेति। तथा वेणूनाम्= वंशानाम्, तृणादीनाञ्च= घासादीनाञ्च, यानि पात्राणि तेषां कृतौ= करणे, ज्ञानम्, कला स्मृता= कथिता ॥९४ ॥

हिन्दी—मनोनुकूल सेवा करने की क्रिया जानना भी कला है। बाँस एवं घास की टोकरी बनाना भी कला ही है ॥९४ ॥

मन इति। मनोऽनुकूलायाः चित्तानुसारिण्याः सेवायाः परिचर्य्यायाः कृतौ अनुष्ठाने ज्ञानं कला स्मृता। तथा वेणूनां वंशानां तृणादीनाञ्च यानि पात्राणि तेषां कृतौ करणे ज्ञानं कला स्मृता ॥९४ ॥

काचपात्रादिकरणविज्ञानन्तु कला स्मृता।
संसेचनं संहरणं जलानां तु कला स्मृता ॥ ९५ ॥

अन्वयः—काचपात्रादीनां करणे विज्ञानं कला स्मृता। तथा जलानां संसेचनं संहरणं कला स्मृता ॥९५ ॥

व्याख्या—काचपात्रादीनां= स्फटिकभाजनादीनां, करणे= निर्माणे, विज्ञानम्= विशिष्टज्ञानम्, कला स्मृता= कथिता। तथा जलानाम्= सलिलानाम्, संसेचनम्= सम्यगभ्युक्षणम्, संहरणम्= सङ्कोचनम्, 'कला' स्मृता= कथिता ॥९५ ॥

हिन्दी—सीसे के बरतन बनाने की क्रिया भी कला है। पानी से सिंचाई करना, उसे रोकना या निकालना भी कला ही है ॥९५ ॥

काचेति। काचपात्रादीनां करणे विज्ञानं कला स्मृता। तथा जलानां संसेचनं सम्यक् सेचनं संहरणञ्च कला स्मृता ॥९५ ॥

लोहाभिसारशस्त्रास्त्रकृतिज्ञानं कला स्मृता।
गजाश्ववृषभोष्ट्राणां पल्याणादिक्रिया कला ॥ ९६ ॥

अन्वयः—लोहाभिसारशस्त्रास्त्रकृतिज्ञानं कला। गजाश्ववृषभोष्ट्राणां पल्याणादिक्रिया कला ॥९६ ॥

व्याख्या—लोहाः= अयस्काः, अभिसाराः= उपादानानि, येषां तादृशानाम्, शस्त्राणाम्= आयुधानाम्, अस्त्राणाम्= प्रहरणानाम्, कृतौ= करणे, ज्ञानम्= बोधः, कला, स्मृता= कथिता। तथा गजानाम्= हस्तिनाम्, अश्वानाम्= हयानाम्, वृषभानाम्= बलीवर्दाणाम्, उष्ट्राणाम्= दीर्घवक्रग्रीवानाम्, पल्याणादीनाम्= पृष्ठास्तरणविशेषाणाम्, क्रिया= कृतिः, च कलेति ॥९६ ॥

हिन्दी—लोहे के हथियार बनाने की क्रिया भी कला है। हाथी, घोड़े, बैल और ऊँटों के पीठ पर रखने की गद्दी बनाना भी कला ही है ॥९६॥

लोहेति। लोहाः अभिसाराः उपादानानि येषां तादृशानां शस्त्राणाम् अस्त्राणाञ्च कृतौ ज्ञानं कला स्मृता। तथा गजानाम् अश्वानां वृषभाणाम् उष्ट्राणाञ्च पल्याणादीनां पृष्ठास्तरणविशेषाणां क्रिया अनुष्ठानं कला ॥९६॥

शिशोः संरक्षणे ज्ञानं धारणे क्रीडने कला।
सुयुक्तताडनज्ञानमपराधिजने कला ॥ ९७ ॥

अन्वयः—शिशोः संरक्षणे क्रीडने च ज्ञानं कला। तथा अपराधिजने सुयुक्तताडनज्ञानं कला ॥९७॥

व्याख्या—शिशोः = बालकस्य, संरक्षणे = रक्षाकरणे, क्रीडने = खेलने च, यत् ज्ञानम् = बोधः, सोऽपि कला, तथा अपराधिजने = दोषीजने, सुयुक्तम् = यथोपयुक्तम्, ताडनम् = हननं, तस्योचितं ज्ञानम् = बोधः, अपि कला भवति ॥९७॥

हिन्दी—बच्चों का पालन, गोद लेना या खेलाना भी एक कला है। अपराधियों की सही ढंग से पीटाई की जानकारी भी कला है ॥९७॥

शिशोरिति। शिशोः बालकस्य संरक्षणे क्रीडने च ज्ञानं कला। तथा अपराधिजने सुयुक्तं यथोपयुक्तं यत् ताडनं दण्डनं तस्य ज्ञानं कला ॥९७॥

नानादेशीयवर्णानां सुसम्यग् लेखने कला।
ताम्बूलरक्षादिकृतिविज्ञानन्तु कला स्मृता ॥ ९८ ॥

अन्वयः—नानादेशीयवर्णानां सुसम्यग् लेखने कला। तथा ताम्बूलरक्षादिकृतिविज्ञानं कला स्मृता ॥९८॥

व्याख्या—नानादेशीयानाम् = विविधजनपदीयानाम्, वर्णानाम् = अक्षराणाम्, सुसम्यक् = सुष्ठुतया, लेखनम् = अङ्कनम्, कला भवति। तथा ताम्बूलानाम् = नागवल्लीदलानाम्, रक्षादौ = संरक्षणे, या कृतिः = क्रिया, तस्य विज्ञानम् = विशिष्टज्ञानम्, कला स्मृता = कथितेति ॥९८॥

हिन्दी—अनेक देश की लिपि को सुन्दर ढंग से लिख लेना भी कला है। पान फेरने की क्रिया का ज्ञान भी कला है ॥९८॥

नानेति। नानादेशीयानां वर्णानाम् अक्षराणां सुसम्यक् लेखनं कला। तथा ताम्बूलानां रक्षादौ या कृतिः तस्या विज्ञानं कला स्मृता ॥९८॥

आदानमाशुकारित्वं प्रतिदानं चिरक्रिया।
कलासु द्वौ गुणौ ज्ञेयौ द्वे कले परिकीर्त्तिते ॥ ९९ ॥

अन्वयः—कलासु आशुकारित्वम् आदानं, चिरक्रिया प्रतिदानं द्वौ गुणौ ज्ञेयौ, द्वे कले परिकीर्त्तिते ॥९९॥

व्याख्या—कलासु = पूर्वोक्तासु विविधासु कलासु, आशुकारित्वं = शीघ्रकारित्वम्, आदानम् = स्वीकरणम्, चिरक्रिया = विलम्बेन कार्यकारित्वम्, प्रतिदानम् = प्रत्यर्पणम्, कलासु एतौ द्वौ, गुणौ = धर्मौ, ज्ञेयौ = ज्ञातव्यौ, तस्मात् द्वे = उभे, कले, परिकीर्त्तिते = कथिते ॥९९॥

हिन्दी—कला-सम्पादन में शीघ्रता 'आदान' कहलाता है और 'विलम्ब' प्रतिदान कहलाता है। अथवा किसी के ग्रहण करने में शीघ्रता तथा देने में विलम्ब करना यद्यपि ये दोनों गुण हैं तथापि भिन्न-भिन्न दो कलाएँ मानी जाती हैं ॥९९ ॥

आदानमिति। कलासु आशुकारित्वम् आदानं, चिरक्रिया प्रतिदानम्। कलासु एतौ द्वौ गुणौ ज्ञेयौ, तस्मात् द्वे कले परिकीर्त्तिते ॥९९ ॥

चतुःषष्टिकला ह्येताः सङ्क्षेपेण निदर्शिताः।
यां यां कलां समाश्रित्य निपुणो यो हि मानवः।
नैपुण्यकरणे सम्यक् तां तां कुर्य्यात् स एव हि ॥ १०० ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्यायस्य राष्ट्रे आद्यं विद्याकलानिरूपणं नाम तृतीयं प्रकरणम्।

अन्वयः—एताः चतुःषष्टिकलाः सङ्क्षेपेण निदर्शिताः। यः मानवः यां यां कलां समाश्रित्य निपुणः हि स एव हि सम्यक् नैपुण्यकरणे तां तां कुर्यात् ॥१०० ॥

व्याख्या—एताः= पूर्वोक्ताः, चतुःषष्टिः= चतुरधिकषष्टिः, कलाः= शिल्पविद्याः, सङ्क्षेपेण= समासेन, निदर्शिताः= कथिताः। यो मानवः= यो हि पुरुषः, यां यां कलाम्= यां यां शिल्पविद्याम्, आश्रित्य= अवलम्ब्य, निपुणः= कुशलः, हि= निश्चितम्, सः= असौ, एव हि सम्यक्= सुष्ठुतया, नैपुण्यकरणे= कुशलताप्राप्त्यर्थम्, तां तां कलाम्= शिल्पविद्याम्, कुर्यात्= सर्वथा अभ्यसेत् ॥१०० ॥

हिन्दी—संक्षेप में चौसठ कलाएँ कही गई हैं। इनमें जिन कलाओं का आश्रय लेकर मनुष्य निपुणता प्राप्त करता है, उसे उन्हीं कलाओं का सदा अभ्यास कर उनमें दक्षता प्राप्त करनी चाहिए ॥१०० ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'विद्याकलानिरूपण' नामक तृतीय प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

चतुरिति। एताः चतुःषष्टिः कलाः सङ्क्षेपेण निदर्शिताः। यः मानवः यां यां कलां समाश्रित्य निपुणः हि निश्चितं स एव हि सम्यक् सर्वथा नैपुण्यकरणे सुष्ठुकरणे तां तां कलां कुर्य्यात् ॥१०० ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य तृतीयप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थं प्रकरणम्

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिः क्रमात्।
चत्वार आश्रमश्चैते ब्राह्मणस्य सदैव हि।
अन्येषामन्त्यहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम्॥ १ ॥

अन्वयः—ब्रह्मचारी, गृहस्थः, वानप्रस्थः तथा यतिः एते चत्वारः आश्रमाः ब्राह्मणस्य सदैव हि। अन्येषां क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाञ्च अन्त्येन हीनाः वेदितव्याः॥ १ ॥

व्याख्या—ब्रह्मचारी = प्रथमाश्रमिन् व्रतिंश्च, गृहस्थः = ज्येष्ठाश्रमिन् गृहमेधिश्च, वानप्रस्थः = तृतीयाश्रमः, तथा यतिः = चतुर्थाश्रमी वा संन्यासिन्, एते = पूर्वोक्ताः चत्वारः आश्रमाः, मनुष्यायुषः चत्वारो विभागास्तद्यथा— ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमाः, ब्राह्मणस्य = विप्रस्य, सदैव = सर्वदैव, हिशब्दोऽत्र पादपूर्त्यर्थमेव। अन्येषाम् = ब्राह्मणेतराणाम्, क्षत्रियाणाम् = राजन्यानाम्, विशाम् = वणिजाम्, शूद्राणाञ्च = वृषलाणाञ्च, अन्त्येन = संन्यासाश्रमेण, हीनाः = रहिताः, आश्रमाः वेदितव्या इति॥ १ ॥

हिन्दी—बह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये चारों आश्रम सदैव क्रमशः ब्राह्मणों के लिए होते हैं। इनमें अन्तिम संन्यास को छोड़कर शेष तीन आश्रम ब्राह्मणेतर क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए भी होते हैं॥ १ ॥

ब्रह्मचारीति। ब्रह्मचारी, गृहस्थः, वानप्रस्थः तथा यतिः, एते चत्वारः आश्रमाः ब्राह्मणस्य सदैव, हिशब्दः पादपूरणार्थः। अन्येषां क्षत्रियाणां विशां शूद्राणाञ्च अन्त्येन यत्याश्रमेण हीनाः त्रयः ब्रह्मचर्य्यादयः आश्रमाः वेदितव्या इति शेषः॥ १ ॥

विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् सर्वेषां पालने गृही।
वानप्रस्थः सन्दमने संन्यासी मोक्षसाधने॥ २ ॥

अन्वयः—विद्यार्थं ब्रह्मचारी, सर्वेषां पालने गृही, सन्दमने वानप्रस्थः, मोक्षसाधने संन्यासी स्यात्॥ २ ॥

व्याख्या—विद्यार्थम् = ज्ञानोपार्जनाय, ब्रह्मचारी = व्रती, सर्वेषाम् = सकलानां जनानाम्, पालने = भरणपोषणार्थम्, गृही = गृहस्थः, सन्दमने = इन्द्रियनिग्रहार्थम्, वानप्रस्थः = वैखानसः, मोक्षसाधने = मुक्तिलाभाय, संन्यासी = परिव्राजकः, स्यात् = भवेत्॥ २ ॥

हिन्दी—विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचारी, सबों के भरण-पोषण हेतु गृहस्थ, आत्मसंयम एवं इन्द्रियदमन के लिए वानप्रस्थ तथा मुक्ति के लिए संन्यासी बनना चाहिए॥ २ ॥

विद्यार्थमिति। विद्यार्थं विद्योपार्जनार्थं ब्रह्मचारी, सर्वेषां पालने पालनार्थमित्यर्थः गृही, सन्दमने सम्यक् इन्द्रियदमनार्थं वानप्रस्थः, तथा मोक्षसाधने मुक्तिलाभार्थं संन्यासी स्यात्॥ २ ॥

वर्त्तयन्त्यन्यथा दण्ड्या या वर्णाश्रमजातयः ॥ ३ ॥

अन्वयः—याः वर्णाश्रमजातयः अन्यथा वर्त्तयन्ति ताः दण्ड्याः ॥ ३ ॥

व्याख्या—याः = ये जनाः, वर्णानाम् = ब्राह्मणादीनाम्, आश्रमाणाम् = ब्रह्मचर्याद्याश्रमाणाम्, जातयः = जनसमूहाः, अन्यथा = इतरथा, वर्त्तयन्ति = व्यवहरन्ति, ताः = जातयः, दण्ड्याः = दण्डनीया नृपेणेति शेषः ॥ ३ ॥

हिन्दी—जो लोग जिस वर्ण या आश्रम के हैं, यदि उस वर्ण या आश्रमीय धर्म के विरुद्ध आचरण करते हैं तो वे दण्डनीय होते हैं ॥ ३ ॥

वर्त्तयन्तीति। याः वर्णानां ब्राह्मणादीनाम् आश्रमाणाञ्च जातयः अन्यथा अन्येन प्रकारेण शास्त्रबाह्यमार्गेणेत्यर्थः, वर्त्तयन्ति ताः दण्ड्याः राज्ञेति शेषः ॥ ३ ॥

कुलान्यकुलतां यान्ति ह्यकुलानि कुलीनताम्।
यदि राज्ञोपेक्षितानि दण्डतोऽशिक्षितानि च ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदि राज्ञा उपेक्षितानि च दण्डतः अशिक्षितानि कुलानि अकुलताम् अकुलानि कुलीनतां यान्ति ॥ ४ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, राज्ञा = नृपेण, उपेक्षितानि = अवहेलितानि, च = पुनः, दण्डतः = दण्डेन, अशिक्षितानि = शिक्षारहितानि, तदा कुलानि = समुन्नतवंशाः, अकुलताम् = अकुलीनत्वम्, अकुलानि = कुलहीनानि, कुलीनताम् = उच्चकुलत्वम्, यान्ति = प्राप्नुवन्ति। एवं सति सर्वे नैजं कौलाचारं विहाय स्वेच्छाचारिणो भवन्ति ॥ ४ ॥

हिन्दी—यदि राजा उपेक्षा करे, दण्डस्वरूप अशिक्षित रखे तो अभिजात अनभिजात एवं अकुलीन कुलीन बन जायेंगे; समाज उच्छृंखल एवं स्वेच्छाचारी बन जायेगा ॥ ४ ॥

कुलानीति। यदि राज्ञा उपेक्षितानि तथा दण्डतः दण्डेन अशिक्षितानि, तदा कुलानि अकुलतां तथा अकुलानि कुलीनतां यान्ति प्राप्नुवन्ति सर्वे यथेच्छचारिणो भवन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

जपं तपस्तीर्थसेवां प्रव्रज्यां मन्त्रसाधनम्।
देवपूजां नैव कुर्य्यात् स्त्रीशूद्रस्तु पतिं विना।
न विद्यते पृथक् स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—स्त्रीशूद्रस्तु जपं तपः तीर्थसेवां प्रव्रज्यां मन्त्रसाधनं देवपूजां नैव कुर्यात्। स्त्रीणां पतिं विना पृथक् त्रिवर्गाणां साधनं न विद्यते ॥ ५ ॥

व्याख्या—स्त्री = नारी, च = पुनः, शूद्रः = वृषलः, जपम् = मुहुर्मुहुर्मन्त्रजपनम्, तपः = नियमस्थितिः, तीर्थसेवाम् = पुण्यक्षेत्रे भ्रमणम्, प्रव्रज्याम् = वैराग्यम्, मन्त्रसाधनम् = अभिचारानुष्ठानम्, देवपूजां = देवताऽऽराधनम्, नैव = नास्त्येव, कुर्यात् = विधेयात्। स्त्रीणाम् = नारीणाम्, पतिम् = पतिसेवाम्, विना = विहाय, पृथक् = अन्यत्, त्रिवर्गाणाम् = धर्मार्थकामानाम्, साधनम् = अनुष्ठानम्, न = नहि, विद्यते = अस्ति ॥ ५ ॥

हिन्दी—स्त्री तथा शूद्र को स्वामी की सेवा छोड़कर जप, तप, तीर्थाटन, मंत्रसाधन, संन्यास एवं देवपूजा नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों के लिए पति की सेवा छोड़कर अन्य कोई धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए साधन नहीं है ॥ ५ ॥

जपमिति। तुशब्दश्चार्थः। स्त्री शूद्रस्तु शूद्रश्च जपं तपः तपस्यां तीर्थसेवां प्रव्रज्यां संन्यासं मन्त्रसाधनं तथा देवपूजां नैव कुर्य्यात्। किञ्च स्त्रीणां पतिं पतिसेवां विना पृथक् अन्यत् त्रिवर्गाणां धर्मार्थकामानां साधनं न विद्यते॥५॥

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च।
उत्थाप्य शयनीयानि कृत्वा वेश्मविशोधनम्॥६॥
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सानलं यवसाङ्गणम्।
शोधयेद् यज्ञपात्राणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा॥७॥
प्रोक्षणीयानि तान्येव यथास्थाने प्रकल्पयेत्।
शोषयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत्॥८॥

अन्वयः—स्त्री पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय शयनीयानि उत्थाप्य मार्जनैः लेपनैश्च वेश्मविशोधनं कृत्वा सानलं यवसाङ्गणं प्राप्य यज्ञपात्राणि शोधयेत्। तानि च स्निग्धानि उष्णेन वारिणा प्रोक्षणीयानि यथास्थाने प्रकल्पयेत्। तानि शोषयित्वा पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत्॥६-८॥

व्याख्या—स्त्री = पत्नी, पत्युः = भर्त्तुः, पूर्वम् = प्रथमम्, समुत्थाय = सुसज्जीभूत्वा, देहशुद्धिम् = मूत्रपुरीषोत्सर्गं मुखप्रक्षालनादिकञ्च, विधाय = कृत्वा, शयनीयानि = शय्योपकरणानि, उत्थाप्य = उन्नयनं कृत्वा, मार्जनैः = प्रक्षालनैः, लेपनैः = उपनाहनैश्च, वेश्मनः = गेहस्य, विशोधनम् = परिष्करणम्, कृत्वा = सम्पाद्य, तथा सानलम् = वह्निसमायुक्तम्, यवसाङ्गणम् = तृणाच्छादितचत्वरम्, प्राप्य = गत्वा, यज्ञपात्राणि = यागभाजनानि, शोधयेत् = परिष्कुर्यात्। तानि च = यज्ञपात्राणि च, स्निग्धानि = घृततैलयुक्तानि, पुनः, उष्णेन = तप्तेन, वारिणा = जलेन, प्रोक्षणीयानि कृत्वा = निर्धर्षणं विधाय, यथास्थाने = यथोचितस्थले, प्रकल्पयेत् = स्थापयेत्। किञ्च तानि = यज्ञपात्राणि, शोषयित्वा = शुष्कतां विधाय, पुनः, पूरयित्वा = घृतादीनां पूर्णं कृत्वा, धारयेत् = विहितस्थाने स्थापयेत्॥६-८॥

हिन्दी—पत्नी को पति से पहले बिछावन छोड़ देना चाहिए। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर बिस्तर उठा देना चाहिए। फिर जिस घर में रहे उसकी सफाई करनी चाहिए। फिर उस आँगन की सफाई करनी चाहिए, जिसमें आग जल रही हो और घास-फूस बिखरे हों। फिर घी से चिकने बने यज्ञपात्रों को गर्म पानी से धो-पोंछ कर, सुखाकर उन्हें यथास्थान रख दे। रखने के पूर्व उन पात्रों को घी तथा यज्ञ के अन्य उपकरणों से भर दे॥६-८॥

पत्युरिति। **मार्जनैरिति**। **प्रोक्षणीयानीति**। स्त्रीति प्रकरणादध्याहार्य्यम्। स्त्री पत्युः स्वामिनः पूर्वं समुत्थाय शय्याया इति शेषः, देहशुद्धिं मुखप्रक्षालनादिकं विधाय कृत्वा, शयनीयानि शय्याः उत्थाप्य, मार्जनैः लेपनैश्च वेश्मनः गृहस्य विशोधनं कृत्वा तथा सानलम् अग्नियुक्तं यवसाङ्गणं घाससहितचत्वरभूमिं प्राप्य यज्ञपात्राणि शोधयेत्। तानि च स्निग्धानि तैलयुक्तानि पुनः उष्णेन वारिणा प्रोक्षणीयानि कृत्वा यथास्थाने प्रकल्पयेत् स्थापयेत्। किञ्च तानि पात्राणि शोषयित्वा शुष्कीकृत्य पुनः पूरयित्वा धारयेत् यथास्थानं रक्षेत्॥६-८॥

महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्ष्याल्य सर्वशः।
मृद्भिस्तु शोधयेच्चुल्ली तत्राग्नि सेन्धनं न्यसेत्॥ ९॥

अन्वयः—महानसस्य सर्वशः पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य मृद्भिः चुल्लीं शोधयेत्। तत्र सेन्धनम् अग्निं न्यसेत् ॥९ ॥

व्याख्या—महानसस्य = पाकशालायाः, सर्वशः = सकलानि, पात्राणि = भाजनानि, बहिः = बाह्यप्रदेशे, प्रक्षाल्य = परिमार्ज्य, मृद्भिः = मृत्तिकाभिः, चुल्लीम् = अदिकाम्, शोधयेत् = संशुद्धिं कुर्यात्। तत्र = तस्मिन् गृहे, सेन्धनम् = ईन्धनसहितम्, अग्निम् = वह्निम्, न्यसेत् = स्थापयेत् ॥९ ॥

हिन्दी—इसके बाद रसोईघर के बरतनों को बाहर निकाल कर चारों तरफ से माँज-धोकर तथा मिट्टी से चुल्हा एवं रसोईघर लीप-पोतकर वहाँ पर आग और जलावन रख दे।।९ ॥

महानसस्येति। महानसस्य रन्धनागारस्य सर्वशः सर्वाणि पात्राणि बहिः बाह्यदेशे प्रक्षाल्य मृद्भिः मृत्तिकाभिः चुल्लीं शोधयेत्। ततः तत्र चुल्ल्या सेन्धनं काष्ठसहितम् अग्निं न्यसेत् ॥९ ॥

स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसान्नद्रविणानि च।
कृतपूर्वाह्णकृत्येयं श्वशुरावभिवादयेत्॥ १०॥

अन्वयः—कृतपूर्वाह्णकृत्या इयं नियोगपात्राणि रसान्नद्रविणानि च स्मृत्वा श्वशुरौ अभिवादयेत् ॥१० ॥

व्याख्या—अनया रीत्या, कृतपूर्वाह्णकृत्या = त्रिधाविभक्तदिवसस्य प्रथमभागस्य निष्पादितकृत्या, इयम् = एषा नारी, नियोगपात्राणि = व्यावहारिकभाण्डानि, रसान् = आस्वाद्यवस्तूनि, अन्नानि = भक्ष्यपदार्थाः, द्रविणानि = धनानि च, स्मृत्वा = एतेषामनुचिन्तनं कृत्वा, श्वशुरौ = श्वश्रूं श्वशुरश्च, अभिवादयेत् = प्रणमेत् ॥१० ॥

हिन्दी—उस दिन काम में आने वाले बरतनों, रसों, अन्न तथा धन का ख्याल करके ही उसकी व्यवस्था करे। इस तरह दिन के पहले भाग के काम समाप्त कर स्त्री अपने सास-श्वशुर के पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम करे॥१० ॥

स्मृत्वेति। इत्थं कृतपूर्वाह्णकृत्या सम्पादितप्रातःकृत्या इयं स्त्रीनियोगपात्राणि व्यावहारिकभाजनानि, रसान् पेयद्रव्याणि अन्नानि द्रविणानि धनानि च स्मृत्वा यथायथं कार्य्योपयोगित्वेन चिन्तयित्वा श्वशुरौ श्वश्रूं श्वशुरञ्च अभिवादयेत् प्रणमेत् ॥१० ॥

ताभ्यां भर्त्रा पितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः।
वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत्॥ ११॥

अन्वयः—ताभ्यां भर्त्रा पितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः प्रदत्तानि वस्त्रालङ्काररत्नानि धारयेत् ॥११ ॥

व्याख्या—ताभ्याम् = श्वश्रु-श्वशुराभ्याम्, भर्त्रा = पत्या, पितृभ्याम् = मात्रा च पित्रा च, वा = अथवा, भ्रातृमातुलबान्धवैः—भ्रातृभिः = सोदरैः, मातुलैः = पितृश्यालैः, बान्धवैश्च = ज्ञातिभिश्च, प्रदत्तानि = अर्पितानि, वस्त्रालङ्काररत्नानि—वस्त्राणि = वासांसि, अलङ्काराणि = आभूषणानि, रत्नानि = माणिक्यानि च, धारयेत् = धारणङ्कुर्यात् ॥११ ॥

हिन्दी—वह नारी अपने सास-ससुर, पति, माँ, बाप, भाई, मामा या सगे-सम्बन्धियों द्वारा प्रदत्त कपड़े, जेवर या कीमती रत्न पहनें ॥ ११ ॥

ताभ्यामिति। ताभ्यां श्वश्रूश्वशुराभ्यां भर्त्रा स्वामिना पितृभ्यां मातापितृभ्यां भ्रातृमातुलबान्धवैश्च प्रदत्तानि वस्त्राणि अलङ्कारान् रत्नानि च धारयेत् ॥ ११ ॥

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्त्तिनी।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीव दिष्टकार्य्येषु भार्य्या भर्त्तुः सदा भवेत्॥ १२ ॥

अन्वयः—भार्या मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा स्वच्छा पतिदेशानुवर्तिनी, भर्त्तुः छाया इव अनुगता, हितकर्मसु सखी इव सदा दिष्टकार्येषु दासी इव भवेत् ॥ १२ ॥

व्याख्या—भार्या = पत्नी, मनसा = चित्तेन, वाचा = कथनेन, कर्मणा = कार्येण, च, शुद्धा = पवित्रा, स्वच्छा = निर्मला, पत्युः = भर्त्तुः, देशानुवर्त्तिनी = आज्ञाकारिणी, भर्त्तुः = पत्युः, छाया = प्रतिकृतिः, इव = यथा, अनुगता = अनुसारिणी, हितकर्मसु = लाभप्रदकृत्येषु, सखी = सहचरी, इव = यथा, सदा = सर्वदा, दिष्टकार्येषु = निर्दिष्टकर्मसु, दासी = किङ्करी, इव = यथा, भवेत् = स्यात् ॥ १२ ॥

हिन्दी—मन, वचन और कर्म से पवित्र रहकर पति की आज्ञा के अनुसार चलने वाली, छाया की भाँति अनुगमन करने वाली, लाभप्रद कार्यों में मित्र की तरह सहयोगी बनकर तथा बतलाये गये काम में दासी की तरह सदा स्त्री को पति के निकट रहना चाहिए ॥ १२ ॥

मन इति। भार्य्या मनसा वाचा कर्मणा च शुद्धा पवित्रा स्वच्छा निर्मला, पत्युः देशानुवर्त्तिनी आज्ञापरा, भर्त्तुः छाया इव अनुगता सङ्गिनी हितकर्मसु सखी इव सदा दिष्टकार्येषु निर्दिष्टकर्मसु दासी इव भवेत् ॥ १२ ॥

ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य सा।
वैश्वदेवोद्धृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत्॥ १३ ॥

अन्वयः—ततः सा अन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य वैश्वदेवोद्धृतैः अन्नैः भोजनीयान् भोजयेत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—ततः = पाकसम्पादनानन्तरम्, सा = नारी, अन्नसाधनम् = रन्धनम्, कृत्वा = सम्पाद्य, पतये = भर्त्रे, विनिवेद्य = विशेषरूपेण भोजयित्वा, वैश्वदेवोद्धृतैः = बलिवैश्वदेवेभ्यः, उद्धृतैः = अवशिष्टैः, अन्नैः = पक्वान्नैः, भोजनीयान् = श्वशुरादीनन्यजनान्, भोजयेत् = भोजनं दद्यात् ॥ १३ ॥

हिन्दी—इसके बाद वह नारी भोजन बनाकर पति के सामने रखकर बलिवैश्वदेव से बचे अन्न से भोजन करने योग्य व्यक्ति को भोजन कराये ॥ १३ ॥

तत इति। ततः अभिवादनानन्तरं सा अन्नसाधनं रन्धनमित्यर्थः, कृत्वा पतये विनिवेद्य दत्त्वा वैश्वदेवोद्धृतैः वैश्वदेवबलिप्रदानानन्तरम् उद्धृतैः अन्नैः भोजनीयान् श्वशुरादीन् भोजयेत् ॥ १३ ॥

पतिं च तदनुज्ञाता शिष्टमन्नाद्यमात्मना।
भुक्त्वा नयेदहःशेषं सदायव्ययचिन्तया॥ १४॥

अन्वयः—पतिश्च तदनुज्ञाता आत्मना शिष्टम् अन्नाद्यं भुक्त्वा सदा आयव्ययचिन्तया अहःशेषं नयेत्॥ १४॥

व्याख्या—पतिश्च = निजस्वामिनं भोजयित्वा ततस्तेन, अनुज्ञाता = अनुमतिप्राप्ता, आत्मना = स्वयम्, शिष्टम् = अवशिष्टम्, अन्नाद्यम् = भक्ष्यपदार्थम्, भुक्त्वा = भोजनं कृत्वा, सदा = सततम्, आयव्ययानाम् = धनागमनिर्गमानाम्, चिन्तया = अनुचिन्तनेन, अहःशेषम् = अवशिष्टदिनम् नयेत् = यापयेत्॥ १४॥

हिन्दी—और स्वामी को भोजन कराने के बाद उसकी अनुमति से बचा हुआ भोजन स्वयं ग्रहण करे। भोजनोपरान्त दिन के बचे समय में अनुपल अपनी आमदनी और अपने खर्च पर विचार करे॥ १४॥

पतिमिति। पतिश्च भोजयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। ततः तेन पत्या अनुज्ञाता आत्मना स्वयं शेषम् अवशिष्टम् अन्नाद्यं भुक्त्वा सदा आयव्ययानां चिन्तया अहःशेषम् अपराह्णभागं नयेत्॥ १४॥

पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च।
कृतान्नसाधना साध्वी सभृत्यं भोजयेत् पतिम्॥ १५॥

अन्वयः—साध्वी पुनः सायं पुनः प्रातः गृहशुद्धिं विधाय कृतान्नसाधना सभृत्यं पतिं भोजयेत्॥ १५॥

व्याख्या—साध्वी = सच्चरित्रा सा नारी, पुनः = भूयः, सायं = सन्ध्याकाले, पुनः = पौनःपुन्येन, प्रातः = पूर्वाह्णकृत्यमिव, गृहशुद्धिम्—गृहस्य = सदनस्य, शुद्धिम् = परिमार्जनम्, विधाय = सम्पाद्य, कृतान्नसाधना—कृता = निष्पादिता, अन्नस्य = भोज्यपदार्थस्य, साधना = रन्धना, यया तया, सभृत्यम् = सेवकैः सहितम्, पतिम् = स्वामिनम्, भोजयेत् = भोजनं प्रयच्छेत्॥ १५॥

हिन्दी—फिर शाम को सुबह की तरह दुबारा घर की सफाई कर, भोजन तैयार कर वह साध्वी नारी अपने पति को अन्य घरेलू सेवकों के साथ भोजन कराये॥ १५॥

पुनरिति। साध्वी स्त्री पुनः सायं, पुनः प्रातः गृहशुद्धिं विधाय कृतान्नसाधना कृतरन्धना सती सभृत्यं भरणीयवर्गसहितं पतिं भोजयेत्॥ १५॥

नातितृप्ता स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च।
आस्तृत्य साधु शयनं ततः परिचरेत् पतिम्॥ १६॥

अन्वयः—ततः स्वयं भुक्त्वा नातितृप्ता गृहनीतिं विधाय शयनम् आस्तृत्य पतिं साधु परिचरेत्॥ १६॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, स्वयम् = आत्मना, भुक्त्वा = भोजनं कृत्वा, नातितृप्ता—न = नहि, अतितृप्ता = गरिष्ठभोजना, भवेत्, गृहनीतिम्—गृहस्य = सदनस्य, नीतिम् = अवशिष्टकार्यम्, विधाय = कृत्वा, शयनम् = संवेशनम्, आस्तृत्य = विस्तरणं विधाय, पतिम् = स्वामिनम्, साधु = सुष्ठुरूपेण, परिचरेत् = परिचर्यां कुर्यात्॥ १६॥

हिन्दी—इसके बाद वह नारी स्वयं हलका भोजन कर पहले घर के बचे-खुचे कामों को समाप्त कर बिछावन बिछाकर पति को सुलाकर उसकी परिचर्या प्रारम्भ करे ॥ १६ ॥

नेति। ततः स्वयं भुक्त्वा नातितृप्ता नातिप्रचुरभोजना इत्यर्थः, सती गृहनीतिं गृहस्य शेषकार्य्यं विधाय, शयनं शय्याम् आस्तृत्य पातयित्वा पतिं साधु सम्यक् परिचरेत् सेवेत ॥ १६ ॥

सुप्ते पत्यौ तदध्यास्य स्वयं तद्गतमानसा।
अनग्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेन्द्रिया ॥ १७ ॥

अन्वयः—पत्यौ सुप्ते तद्गतमानसा तत् अध्यास्य अनग्ना अप्रमत्ता निष्कामा जितेन्द्रिया च शयीत ॥ १७ ॥

व्याख्या—पत्यौ = भर्तरि, सुप्ते = निद्रिते सति, तद्गतमानसा = स्वामिगतहृदया, तत् = शयनम्, अध्यास्य = विस्तृर्य, अनग्ना = अविवसना, अप्रमत्ता = अमदोन्मत्ता, निष्कामा = कामनारहिता, जितेन्द्रिया = शान्ता च, शयीत = शयनं कुर्यादिति शेषः ॥ १७ ॥

हिन्दी—पति के सो जाने पर उसमें अपने मन को लगाते हुए, नंगी न होते हुए, बिना मन्दोन्मत्त बने, निष्काम भाव से अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए स्वयं भी सो जाय ॥ १७ ॥

सुप्ते इति। पत्यौ सुप्ते निद्रिते सति तद्गतमानसा भर्तृगतचित्ता सती तत् शयनम् अध्यास्य अनग्ना अविवसना अप्रमत्ता अवहिता निष्कामा निराकाङ्क्षा जितेन्द्रिया च शयीत इति शेषः ॥ १७ ॥

नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बह्वाहूतिमप्रियम्।
न केनचिच्च विवदेदप्रलापविवादिनी ॥ १८ ॥

अन्वयः—उच्चैः न, परुषं न, बह्वाहूतम् अप्रियं केनचित् न विवदेत्। अप्रलापविवादिनी न ॥ १८ ॥

व्याख्या—उच्चैः = तारस्वरैः, न = न वदेत्, परुषम् = कठोरवचनम्, न = न वदेत्, बहवः = अनेकशः, कस्यचिज्जनस्य, आहूतयः = आह्वानानि, यत्र तादृशीं वाचं न, तथा अप्रियम् = अरुचिकरम्, न = नहि, वदेत्, केनचिदपि, न = नहि, विवदेत् = विवादं कुर्यात्, कृतेऽपि विवादे, अप्रलापम्—नास्ति प्रलापः = निरर्थकवचः, यस्मिन् तत् यथा तथा, विवादिनी = कलहकारिणी, न भवेदिति ॥ १८ ॥

हिन्दी—ऊँची आवाज में बात न करे, कड़वी बोली न बोले, किसी को लगातार जोर-जोर से न बुलावे, किसी को अप्रिय बात न कहे तथा किसी के साथ कलह न करे। अगर झगड़ा हो ही जाय तो उस झगड़े में निरर्थक बकवास न करे ॥ १८ ॥

नेति। उच्चैः न, परुषं कर्कशं न, बहवः आहूतयः आह्वानानि यत्र तादृशीं वाचं न, तथा अप्रियं न वदेत्। किञ्चेति चार्थः। किञ्च केनचित् न विवदेत् विवादे कर्त्तव्ये च नास्ति प्रलापः अनर्थकं वचः यस्मिन् तद् यथा तथा विवादिनी न भवेदिति शेषः ॥ १८ ॥

न चास्य व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावञ्चनं चातिमानिताम् ॥ १९ ॥

पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहङ्कारदर्पताम् ।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान् साध्वी विवर्जयेत् ॥ २० ॥

अन्वयः—अस्य व्ययशीला न धर्मार्थविरोधिनी च न स्यात्। साध्वी प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावचनानि अतिनिन्दितां पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहङ्कारदर्पतां नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान् विवर्जयेत् ॥ १९-२० ॥

व्याख्या—अस्य = भर्तुः, व्ययशीला = अमितव्ययशालिनी, न = नहि, भवेत्, धर्मस्य = पुण्यस्य, अर्थस्य = धनस्य च, तयोः विरोधिनी = विसंवादिनी च, न = नहि, स्यात् = भवेत्। किञ्च साध्वी = सच्चरित्रा नारी, प्रमादस्य = अनवधानस्य, उन्मादस्य = चित्तविभ्रमस्य, रोषस्य = क्रोधस्य, ईर्ष्यायाः = असूयायाः, वचनानि = कथनानि, अतिनिन्दिताम् = अतिगर्हिताम्, पैशुन्यम् = परोक्षपरीवादत्वम्, हिंसाम् = घातनम्, विषयमोहम् = कामलोलुपता अर्थोन्मादं वा, अहङ्कारम् = गर्वम्, दर्पताम् = उद्धतताम्, नास्तिक्यम् = नास्तिकता, साहसम् = धौर्ष्ट्यम्, स्तेयम् = चौर्यम्, दम्भम् = कापट्यञ्च, विवर्जयेत् = परित्यजेत् ॥ १९-२० ॥

हिन्दी—पति की कमाई पर अधिक खर्चीली न हो, पति के धर्म-धनार्जन सम्बन्धी कामों का कभी विरोध न करे। सच्चरित्रा नारी कभी असावधान न रहे। क्रोध और ईर्ष्या प्रकट करने वाली बातें मुँह से कभी न निकालें। अतिनिन्दित, चुगलखोरी, हिंसा, विषयों के प्रति मोह, अहङ्कार, अपनी श्रेष्ठता, नास्तिकता, धृष्टता, चोरी और दम्भ—इन्हें छोड़ देना चाहिए ॥ १९-२० ॥

न चेति। पैशुन्येति। अस्य स्वामिनः व्ययशीला अतिव्ययकारिणीत्यर्थः न, धर्मार्थयोः विरोधिनी विरुद्धचारिणी च न स्यात्। किञ्च साध्वी स्त्री प्रमादस्य अनवधानतायाः उन्मादस्य रोषस्य ईर्ष्यायाश्च वचनानि, अतिनिन्दितां पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहङ्कारदर्पतां पैशुन्यं कापट्यं, हिंसां विद्वेषं, विषयमोहं धनमदम्, अहङ्कारं दर्पताम् आत्मगौरवञ्चेत्यर्थः, तथा नास्तिक्यं, साहसं, स्तेयं चौर्य्यं दम्भञ्च विवर्जयेत् त्यजेत् ॥ १९-२० ॥

एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम्।
यशस्यमिह यात्येव परत्रैषा सलोकताम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—एवं परमदैवतं पतिं परिचरन्ती सा यशस्यं परत्र सलोकताम् एषा याति एव ॥ २१ ॥

व्याख्या—एवम् = अनया रीत्या सेवमाना, सा = नारी, परमदैवतम् = उत्कृष्टाराध्यरूपं, पतिम् = स्वामिनम्, परिचरन्ती = सेवमाना, इह = संसारे, यशस्यम् = कीर्तिम्, परत्र = परलोके, सलोकताम् = पत्या सह परलोकम्, प्राप्नोति = लभते, एव ॥ २१ ॥

हिन्दी—इस तरह अपने पति को ही परम देवता मानकर उसकी सेवा-सुश्रूषा करने वाली साध्वी नारी संसार में तो यश पाती ही है, मरणोपरान्त पति के साथ परलोक भी पाती है ॥ २१ ॥

एवमिति। सा एषा नारी एवम्प्रकारेण परमदैवतं परमदेवतास्वरूपं पतिं परिचरन्ती शुश्रूषमाणा इह अस्मिन् लोके यशस्यं यश एव यशस्यं सुख्यातिमित्यर्थः, स्वार्थे ष्यञ्प्रत्ययः। परत्र च परलोके सलोकतां पत्युरिति शेषः, पतिलोकमित्यर्थः, प्राप्नोति एव ॥ २१ ॥

योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते।
रजसो दर्शनादेषा सर्वमेव परित्यजेत्॥ २२॥

अन्वयः—योषितः नित्यकर्म उक्तम्, अथ नैमित्तिकम् उच्यते। एषा रजसः दर्शनात् सर्वमेव परित्यजेत्॥ २२॥

व्याख्या—योषितः= साध्वीस्त्रियाः, नित्यकर्म= दैनन्दिनकार्यम्, उक्तम्= कथितम्, अथ = तदनन्तरम्, नैमित्तिकं कर्म= निमित्तजन्यकृत्यम्, उच्यते= कथ्यते। एषा= नारी, रजसः दर्शनात्= आत्मनः रजस्वलात्वमवलोक्य, सर्वमेव= पूर्वनिर्दिष्टं सकलमेव कार्यम्, परित्यजेत्= विवर्जयेत्॥ २२॥

हिन्दी—साध्वी नारियों के नित्यकर्म का निर्देश कर अब उनके नैमित्तिक कर्मों का वर्णन करते हैं। यह नारी रजोदर्शन के दिन से पूर्वनिर्दिष्ट सभी कार्यों का परित्याग कर दे॥२२॥

योषित इति। योषितः नार्य्याः नित्यकर्म उक्तम्, अथ अनन्तरं नैमित्तिकं कर्म उच्यते। एषा नारी रजसः दर्शनात् आत्मनः रजस्वलात्वं दृष्ट्वेत्यर्थः, सर्वमेव कार्य्यं पूर्वोक्तं परित्यजेत्॥ २२॥

सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत्।
एकाम्बरा कृशा दीना स्नानालङ्कारवर्जिता॥ २३॥

अन्वयः—सर्वैः अलक्षिता एकाम्बरा कृशा दीना स्नानालङ्कारवर्जिता लज्जिता शीघ्रम् अन्तर्गृहे वसेत्॥ २३॥

व्याख्या—सर्वैः= सकलैः जनैः, अलक्षिता= अनवलोकिता, एकाम्बरा= एकमात्रवस्त्रधारिणी, कृशा= क्षामा, दीना= खिन्ना, स्नानालङ्कारवर्जिता—स्नानेन= अवगाहनेन, अलङ्कारेण = आभूषणेन, वर्जिता= रहिता, लज्जिता= त्रपिता, शीघ्रम्= त्वरितम्, अन्तर्गृहे= गृहमध्यवर्त्तिकक्षे, वसेत्= निवसेत्॥ २३॥

हिन्दी—सबकी नजर बचाकर शर्मीली, घर के भीतरी भाग के किसी कमरे में रहे। इस स्थिति में वह एकवस्त्रा, क्षामा तथा खिन्न रहते हुए स्नान और साज-शृंगार रहित होकर रहे॥२३॥

सर्वैरिति। सर्वैः जनैः अलक्षिता अदृष्टा, एकाम्बरा एकवसना कृशा दीना कातरा स्नानेन अलङ्कारेण च वर्जिता अस्नाता अनलङ्कारा चेत्यर्थः, तथा लज्जिता सती शीघ्रम् अन्तर्गृहे गृहमध्ये वसेत्॥ २३॥

स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम्।
स्नायीत सा त्रिरात्र्यन्ते सचेलाभ्युदिते रवौ॥ २४॥

अन्वयः—अप्रमत्ता भूमौ स्वपेत्, एवम् अहस्त्रयं क्षपेत्। सा त्रिरात्र्यन्ते रवौ अभ्युदिते सचेला स्नायीत॥ २४॥

व्याख्या—अप्रमत्ता= अमदोन्मत्ता, भूमौ= पृथिव्याम्, स्वपेत्= शयनं कुर्यात्, एवम्= अनेन प्रकारेण, अहस्त्रयम्= दिनत्रयम्, क्षपेत्= यापयेत्। सा= रजस्वला, त्रिरात्र्यन्ते= त्रिरात्रिं व्यतीत्य, रवौ= सूर्ये, अभ्युदिते= समुदिते सति, सचेला= सवस्त्रा, स्नायीत= स्नानं कुर्यात्॥ २४॥

हिन्दी—इस तरह सावधानी से धरती पर सोकर तीन रात बिताकर चौथे दिन सूर्योदय के बाद अपने सभी वस्त्रों के साथ स्नान करे॥ २४॥

स्वपेदिति। किञ्च अप्रमत्ता प्रमादरहिता सती भूमौ स्वपेत्। एवम्प्रकारेण अहस्त्रयं दिनत्रयं क्षपेत् यापयेत्। अथ सा त्रिरात्र्यन्ते रात्रित्रयावसाने रवौ सूर्य्ये अभ्युदिते सति सचेला वस्त्रसहिता स्नायीत स्नानं कुर्य्यात्॥ २४॥

विलोक्य भर्तृवदनं शुद्धा भवति धर्म्मतः।
कृतशौचा पुनः कर्म्म पूर्ववच्च समाचरेत्॥ २५॥

अन्वयः—भर्तृवदनं विलोक्य धर्मतः शुद्धा भवति। पुनः कृतशौचा पूर्ववत् कर्म समाचरेत्॥ २५॥

व्याख्या—तत्पश्चात्, भर्तृवदनम् = पत्याननम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, धर्मतः = पुण्येन, शुद्धा = पवित्रा, भवति = जायते। पुनश्च = भूयश्च, कृतशौचा = सम्पादितशुचिकर्म, पूर्ववत् = यथापूर्वम्, कर्म = नित्यकृत्यम्, समाचरेत् = अनुष्ठानं कुर्यात्॥ २५॥

हिन्दी—इसके बाद पति का मुख देखकर वह पुण्यकर्म करने योग्य हो जाती है। फिर पवित्र होने के बाद वह अपना नित्यकर्म पहले जैसे ही प्रारंभ कर दे॥ २५॥

विलोक्येति। ततः भर्त्तुः वदनं विलोक्य दृष्ट्वा धर्मेण शुद्धा पवित्रा भवति। पुनश्च कृतशौचा शुद्धिमती सती पूर्ववत् कर्म समाचरेत्॥ २५॥

द्विजस्त्रीणामयं धर्म्मः प्रायोऽन्यासामपीष्यते।
कृषिपण्यादिपुङ्कृत्ये भवेयुस्ताः प्रसाधिकाः॥ २६॥

अन्वयः—द्विजस्त्रीणाम् अयं धर्मः अन्यासाम् अपि प्रायः इष्यते। ताः कृषिपण्यादिपुंकृत्येषु प्रसाधिकाः भवेयुः॥ २६॥

व्याख्या—द्विजस्त्रीणाम्—द्विजातानाम् = ब्राह्मणादीनाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, अयम् = एषः, धर्मः = पुण्यकर्म, अन्यासाम् = द्विजन्मेतराणामपरजातिस्त्रीणाम्, अपि = चेत्, प्रायः = बाहुल्येन, इष्यते = उचितमस्ति, ताः = शूद्रादीनां स्त्रियः, कृषिपण्यादिषु = हलभृत्यापणिकादिषु, पुंकृत्येषु = पुरुषकृत्येषु, प्रसाधिकाः = सहयोगिनी, भवेयुः = स्युरिति॥ २६॥

हिन्दी—ये कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों की पत्नियों के लिए विहित हैं। इनसे भिन्न औरतों के लिए भी प्रायः यही कर्म विहित हैं। एतदतिरिक्त वे औरतें कृषि और बाजारी जैसे पुरुषकर्म में भी सहयोगिनी होना चाहिए॥ २६॥

द्विजस्त्रीणामिति। द्विजस्त्रीणां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यस्त्रीणाम् अयं धर्मः अपरजातिस्त्रीणाम् अपि प्रायः बाहुल्येन इष्यते। ताः शूद्रादीनां स्त्रियम् इत्यर्थः, कृषिपण्यादिषु पुंकृत्येषु पुरुषकार्य्येषु प्रसाधिकाः सहकारिण्यः भवेयुः॥ २६॥

सङ्गीतैर्मधुरालापैः स्वायत्तस्तु पतिर्यथा।
भवेत् तथाऽऽचरेयुर्वै मायाभिः कामकेलिभिः॥ २७॥

अन्वयः—पतिः यथा स्वायत्तः भवेत् तथा सङ्गीतैः मधुरालापैः मायाभिः कामकेलिभिः वै आचरेयुः॥ २७॥

व्याख्या—पतिः = स्वामी, यथा = येन प्रकारेण, स्वायत्तः = स्वाधीनः, भवेत् = स्यात्, तथा = तेन रूपेण, सङ्गीतैः = गायनैः, मधुरैः = मनोहरैः, आलापैः = वार्त्तालापैः, मायाभिः = मोहकस्वरूपाभिः, कामकेलिभिश्च = सुरतप्रसङ्गैश्च, वै = इति निश्चयेन, आचरेयुः = आचरणं कुर्युः ॥ २७ ॥

हिन्दी—पति जिस तरह अपने अधीऩ हो, इसके लिए नारी को प्रयत्नशील होना चाहिए। गीत गाकर, मीठी बातें बोलकर, आकर्षक भावभङ्गिमा या कामक्रीड़ा से उसे वश में लाना चाहिए ॥ २७ ॥

सङ्गीतैरिति। पतिः यथा येन प्रकारेण स्वायत्तः स्वाधीनः भवेत्, सङ्गीतैः मधुरैः आलापैः मायाभिः स्नेहरूपाभिः मोहनप्रकाराभिरित्यर्थः, कामकेलिभिः सुरतप्रसङ्गैश्च तथा आचरेयुः ॥ २७ ॥

मृते भर्तरि सङ्गच्छेद् भर्त्तुर्वा पालयेद् व्रतम्।
परवेश्मरुचिर्न स्याद् ब्रह्मचर्य्ये स्थिता सती ॥ २८ ॥

अन्वयः—भर्तरि मृते सति सङ्गच्छेत् वा भर्त्तुः व्रतं पालयेत्। ब्रह्मचर्ये स्थिता सती परवेश्मरुचिः न स्यात् ॥ २८ ॥

व्याख्या—भर्त्तरि = पत्यौ, मृते सती = उपरते सती, सङ्गच्छेत् = सहैव गमनं कुर्यात्, वा = अथवा, भर्त्तुः = पत्युः, व्रतम् = नियमम्, गार्हस्थ्यं संरक्षेत्, किञ्च ब्रह्मचर्ये = नियमपालने स्थिता सती, परवेश्मरुचिः—परेषाम् = अन्येषाम्, वेश्मनि = गृहे, रुचिः = निवासाभिरुचिः, न = नहि, स्यात् = भवेत् ॥ २८ ॥

हिन्दी—पति के मरने पर उसे सती हो जाना चाहिए अथवा वैधव्यावस्था में गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए ब्रह्मचारिणी बनी रहे तथा कभी दूसरों के घर में निवास न करे ॥ २८ ॥

मृते इति। भर्त्तरि मृते सति सङ्गच्छेत् सहगमनं कुर्य्यात् पत्या सहेति शेषः, वा अथवा भर्त्तुः व्रतं गार्हस्थ्यं नियमं पालयेत्। किञ्च ब्रह्मचर्य्ये स्थिता सती परवेश्मरुचिः परगृहवासिनी न स्यात् ॥ २८ ॥

मण्डनं वर्जयेन्नित्यं तथा प्रोषितभर्तृका।
देवताराधनपरा तिष्ठेद् भर्तृहिते रता।
धारयेन्मङ्गलार्थानि किञ्चिदाभरणानि च ॥ २९ ॥

अन्वयः—प्रोषितभर्त्तृका नित्यं मण्डनं वर्जयेत् तथा देवताराधनपरा भर्त्तृहिते रता च तिष्ठेत्। किञ्च मङ्गलार्थानि किञ्चित् आभरणानि धारयेत् ॥ २९ ॥

व्याख्या—प्रोषितभर्तृका = प्रवासितपतिका, नित्यम् = प्रतिदिनम्, मण्डनम् = अलङ्करणम्, वर्जयेत् = त्यजेत्, तथा देवतानाम् = देवानाम्, आराधने = पूजने, रता = तत्परा, भर्त्तुः = पत्युः, हिते = लाभे, रता = निरता च, तिष्ठेत् = स्थिता भवेत्। किञ्च मङ्गलार्थानि = अभीष्टसिद्ध्यर्थानि, किञ्चित् = स्वल्पानि, आभरणानि = आभूषणानि, धारयेत् = धारणं कुर्यात् ॥ २९ ॥

हिन्दी—जिसका पति परदेश चला गया हो, वह नारी आभूषण प्रभृति शृंगार करना बन्द कर दे। पति की मंगलकामना से देवाराधन में तत्पर रहे और सधवासूचक मंगलार्थ कुछ आभूषण ग्रहण करे ॥ २९ ॥

मण्डनमिति। प्रोषितभर्तृका प्रवासस्थपतिका नारी मण्डनं भूषणं वर्जयेत् तथा देवतानाम् आराधने रता भर्त्तुः हिते रता च तिष्ठेत्। किञ्च मङ्गलार्थानि न तु विलासार्थानीत्यर्थः, किञ्चित् अल्पानि किञ्चिदित्यव्ययम् आभरणानि कङ्कणादीनि धारयेच्च ॥ २९ ॥

नास्ति भर्तृसमो नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखम्।
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्त्ता वै शरणं स्त्रियाः ॥ ३० ॥

अन्वयः—भर्तृसमः नाथः नास्ति, भर्तृसमं सुखं नास्ति। विसृज्य धनसर्वस्वं वै स्त्रियाः शरणं भर्त्ता ॥ ३० ॥

व्याख्या—भर्तृसमः = स्वामिना सदृशः, नाथः = अधिपतिः, नास्ति = न विद्यते, भर्तृसमम् = पत्युः तुल्यम्, सुखम् = आनन्दम्, नास्ति = न विद्यते। विसृज्य = विसर्जनं कृत्वा, धनसर्वस्वम्—धनम् = वित्तम्, सर्वस्वम् = अखिलं वस्तु च, वै = इति निश्चयेन, स्त्रियाः = नार्यः, शरणम् = आश्रयः, भर्त्ताः = पतिरेवास्ति ॥ ३० ॥

हिन्दी—पति के समान कोई दूसरा स्वामी नहीं है और पति की सेवा की तरह कोई दूसरा सुख नहीं है। अपनी सारी वस्तु एवं धन का परित्याग कर रहने वाली औरत का आश्रय केवल पति ही होता है ॥ ३० ॥

नास्तीति। भर्तृसमः पत्या तुल्यः नाथः आश्रयः न अस्ति, तथा भर्तृसमं पत्युः सदृशं सुखं न अस्ति। किञ्च विसृज्य अन्यत् सर्वं त्यक्त्वा स्थिताया इति शेषः, स्त्रियाः भर्त्ता वै पतिरेव शरणम् आश्रय इत्यर्थः, धनसर्वस्वं धनं सर्वस्वं सर्वं वस्तु च ॥ ३० ॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य प्रदातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्? ॥ ३१ ॥

अन्वयः—पिता मितं भ्राता मितं सुतश्च मितं ददाति। अतः का नारी अमितस्य प्रदातारं भर्त्तारं न पूजयेत्? ॥ ३१ ॥

व्याख्या—पिता = जनकः, मितम् = सीमितम्, भ्राता = सोदरः, मितम् = स्तोकम्, सुतः = पुत्रः, सीमितं सुखम्, ददाति = प्रयच्छति। अतः = अस्मात्कारणात्, का = नारी, अमितस्य = निःसीमस्य सुखस्य, प्रदातारम् = समर्पकम्, भर्तारम् = स्वामिनम्, न = नहि, पूजयेत् = पूजां कुर्यात् ॥ ३१ ॥

हिन्दी—पिता, भाई और बेटा सीमित सुख देने वाले हैं। अतः वह कौन नारी है, जो अमित सुखदाता पति को नहीं पूजती है? ॥ ३१ ॥

मितमिति। पिता मितं परिमितं, भ्राता मितं, सुतश्च मितं ददाति हिशब्दः अवधारणार्थः। अतः का नारी अमितस्य अपरिमितस्य प्रदातारं भर्त्तारं न पूजयेत् ॥ ३१ ॥

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद् धर्ममर्हति।
वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ।
पुराणाद्युक्तमन्त्रैश्च नमोऽन्तैः कर्म केवलम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—वर्णः चतुर्थोऽपि शूद्रः वर्णत्वात् वेदमन्त्रैः स्वधास्वाहावषट्कारादिभिः विना केवलं नमोऽन्तैः पुराणाद्युक्तमन्त्रैः धर्मं केवलं कर्म अर्हति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—चतुर्थः = तुरीयः, वर्णः = जातिः, शूद्रोऽपि = वृषलोऽपि, वर्णत्वात् = वर्णविहितधर्माणां अवश्यकर्त्तव्यत्वात्, वेदमन्त्रैः = श्रुतिमन्त्रैः, स्वधास्वाहावषट्कारादिभिः, विना = विहाय, केवलम् = मात्रम्, नमोऽन्तैः = मन्त्रान्ते नमः, पुराणादिषु = शिवमार्कण्डेय-पुराणादिषु, उक्तैः = कथितैः, मन्त्रैः, धर्म्यम् = धर्मान्वितम्, कर्म = कृत्यम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥३२॥

हिन्दी—शूद्र भी चौथा वर्ण कहा जाता है। अतः चतुर्थ वर्ण होने के कारण उसे भी धर्म करना उचित है। अतएव वह वेदमंत्र, स्वधा, स्वाहा एवं वषट्कार आदि का उच्चारण किये बिना केवल पुराण में कथित मंत्रों से अन्त में 'नमः' पद जोड़कर कर्म करने योग्य होता है ॥३२॥

शूद्र इति। चतुर्थः वर्णः शूद्रोऽपि वर्णत्वात् वर्णविहितधर्माणामवश्यकर्त्तव्यत्वादिति भावः, वेदमन्त्रैः स्वधास्वाहावषट्कारादिभिः विना केवलं नमोऽन्तैः नममन्त्रावसानैः पुराणादिषु उक्तैः मन्त्रैः धर्म्यं धर्मयुक्तं कर्म अर्हति ॥३२॥

विप्रवद् विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत्।
प्रजाताः कर्म्म कुर्य्युर्वै वैश्यविन्नासु वैश्यवत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—विप्रविन्नासु प्रजाताः विप्रवत् क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् वैश्यविन्नासु वैश्यवत् कर्म कुर्यात् ॥३३॥

व्याख्या—विप्रविन्नासु = ब्राह्मणविवाहितासु, प्रजाताः = समुत्पन्नाः, विप्रवद् = ब्राह्मण इव, क्षत्रविन्नासु = क्षत्रियपरिणीतासु, प्रजाताः, क्षत्रवत् = क्षत्रियतुल्यम्, तथा वैश्यविन्नासु = वैश्य-विवाहितासु, प्रजाताः = समुत्पन्नाः, वैश्यवत् = वैश्य इव, कर्म = कृत्यम्, कुर्य्युः = विधेयुः ॥३३॥

हिन्दी—ब्राह्मण की विवाहिता पत्नी से उत्पन्न लोगों को ब्राह्मण की तरह, क्षत्रियों की परिणीता पत्नी से उत्पन्न लोगों को क्षत्रिय की तरह, वैश्यों की विवाहिता पत्नी से उत्पन्न लोगों को वैश्यों की तरह कर्म करने चाहिए ॥३३॥

विप्रेति। विप्रविन्नासु ब्राह्मणपरिणीतासु प्रजाताः उत्पन्नाः विप्रवत्, क्षत्रविन्नासु क्षत्रियपरिणीतासु प्रजाताः क्षत्रवत् तथा वैश्यविन्नासु प्रजाताः वैश्यवत् कर्म कुर्य्युः वै, वैशब्दोऽवधारणार्थः ॥३३॥

वैश्यासु क्षत्रविप्राभ्यां जातः शूद्रासु शूद्रवत्।
अधमादुत्तमायान्तु जातः शूद्राधमः स्मृतः।
स शूद्रादनु सत् कुर्य्यान्नाममन्त्रेण सर्वदा ॥ ३४ ॥

अन्वयः—क्षत्रविप्राभ्यां वैश्यासु शूद्रासु जातः शूद्रवत् अधमात् उत्तमायां जातः शूद्रादपि अधमः स्मृतः। सः शूद्रादनु नाममन्त्रेण सर्वदा सत् कार्यं कुर्यात् ॥३४॥

व्याख्या—क्षत्रविप्राभ्याम् = ब्राह्मणक्षत्रियाभ्याम्, वैश्यासु, शूद्रासु = वृषलीषु नारीषु, जातः = उत्पन्नः, पुत्रः, शूद्रवत् कार्यम् = कर्म, कुर्युः, अधमात् = नीचवर्णात्, उत्तमायाम् = उत्कृष्टजात्याम्, जातः, शूद्रादपि अधमः = नीचः, जातः, स च शूद्रात् = वृषलात्, अनु = हीनः, नाममन्त्रेण सर्वदा सत्कार्यं कुर्यात् ॥३४॥

हिन्दी—ब्राह्मण या क्षत्रिय से वैश्य या शूद्र जाति की नारी से उत्पन्न शूद्र की तरह कर्म करे। अधम से उत्तम कुल की स्त्री में उत्पन्न लोग शूद्राधम कहे जाते हैं। अतः वे शूद्र से हीन होने के कारण मंत्र की जगह नाम लेकर सत्कर्म करे॥ ३४॥

वैश्यास्विति। क्षत्रविप्राभ्यां ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां वैश्यासु शूद्रासु स्त्रीषु जातः पुत्रः शूद्रवत् कर्म कुर्य्यादिति शेषः। अधमात् निकृष्टजातेरित्यर्थः, उत्तमायाम् उत्कृष्टजात्यामित्यर्थः, जातः शूद्रादपि अधमः नीचः स्मृतः। स च शूद्रात् अनु हीनेन इत्यर्थः, नाममन्त्रेण सर्वदा सत् कार्य्यं कुर्य्यात्॥ ३४॥

ससङ्करचतुर्वर्णा एकत्रैकत्र यावनाः।
वेदभिन्नप्रमाणास्ते प्रत्यगुत्तरवासिंनः॥ ३५॥

अन्वयः—एकत्र ससङ्कराः चतुर्वर्णाः एकत्र यावनाः ते वेदभिन्नप्रमाणाः प्रत्यगुत्तरवासिनः॥ ३५॥

व्याख्या—एकत्र = निवसथस्यैकदेशे, ससङ्कराः = मिश्रजजातिसहिताः, चतुर्वर्णाः = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः, तिष्ठन्ति, एकत्र = अन्यक्षेत्रे, यावनाः = म्लेच्छाः, तिष्ठन्ति, ते = म्लेच्छाः वेदभिन्नप्रमाणाः = यवनधर्मावलम्बिनः, तथा प्रत्यगुत्तरवासिनः = पश्चिमोत्तरे स्थिताः यूनानवासिनः॥३५॥

हिन्दी—एक ओर संकीर्ण जातियों के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं तथा दूसरी ओर यूनानी वेद-विरुद्ध कुरान-धर्मावलम्बी मुसलमान लोग भी रहते हैं।।३५॥

ससङ्करेति। एकत्र एकस्मिन् प्रदेशे ससङ्कराः सङ्कीर्णजातिसहिताः चतुर्वर्णाः चत्वारः वर्णा ब्राह्मणादयः, एकत्र अन्यत्रेत्यर्थः, यावनाः तिष्ठन्तीति शेषः। ते यावनाः वेदभिन्नप्रमाणाः वेदविरुद्धधर्मिणः तथा प्रत्यगुत्तरवासिनः पश्चिमोत्तरप्रदेशस्थिता इत्यर्थः।।३५॥

तदाचार्य्यैश्च तच्छास्त्रं निर्मितं तद्धितार्थकम्।
व्यवहाराय या नीतिरुभयोरविवादिनी॥ ३६॥

अन्वयः—तत् आचार्यैः तत् हितार्थकं शास्त्रञ्च निर्मितम्। तथा व्यवहाराय उभयोः अविवादिनी नीतिः॥ ३६॥

व्याख्या—तत् = तेषां यूनानवासिनाम्, आचार्यैः = यवनधर्मोपदेशकैः, तत् = तेषां यवनानाम्, हितार्थकम् = मङ्गलार्थम्, शास्त्रम् = धर्मग्रन्थः, निर्मितम् = विरचितम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, व्यवहाराय = आचाराय, उभयोः = द्वयोर्लोकयोः, अविवादिनी = अविरोधिनी, नीतिश्च = नियमश्च, विनिर्मितम्॥ ३६॥

हिन्दी—उन यवनों के धर्मगुरुओं ने उनके कल्याण हेतु शास्त्रों का भी निर्माण किया। उन शास्त्रों में उनके व्यवहार के लिए लोक और परलोक के विरुद्ध न पड़ने वाली नीति का वर्णन किया गया है॥ ३६॥

तदाचार्य्यैरिति। तेषां यवनानाम् आचार्य्यैः गुरुभिः तद्धितार्थकं तेषां हितार्थं शास्त्रञ्च निर्मितं प्रणीतम्। तथा व्यवहाराय उभयोर्लोकयोरित्यर्थः, अविवादिनी अविरोधिनी नीतिश्च निर्मितेति शेषः॥ ३६॥

कदाचिद् बीजमाहात्म्यात् क्षेत्रमाहात्म्यतः क्वचित्।
नीचोत्तमत्वं भवति श्रेष्ठत्वं क्षेत्रबीजतः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—कदाचित् बीजानां माहात्म्यात् क्वचित् क्षेत्राणां माहात्म्यतः नीचोत्तमत्वं कदाचिच्च क्षेत्रबीजतः माहात्म्यात् श्रेष्ठत्वं भवति ॥ ३७ ॥

व्याख्या—कदाचित् = स्यात् सम्भवेद्वा, बीजानाम् = पुरुषाणाम्, माहात्म्यात् = महिम्नः, क्वचित् = कुत्रचित्, क्षेत्राणाम् = स्त्रीणाम्, माहात्म्यतः = गरिम्नः, नीचोत्तमत्वम् = अधमोत्कर्षत्वम्, कदाचिच्च = सम्भवेच्च, क्षेत्रबीजतः—क्षेत्रस्य = स्त्रियाः, बीजस्य = पुरुषस्य, चोभयोः माहात्म्यात् = गौरवात्, श्रेष्ठत्वम् = उत्तमत्वम्, भवति ॥ ३६ ॥

हिन्दी—कभी पुरुष की गुरुता से और कभी नारी की महत्ता से संतान नीचता या श्रेष्ठता प्राप्त करती है और कभी पुरुष-नारी दोनों की महत्ता से श्रेष्ठता प्राप्त करती है ॥ ३७ ॥

कदाचिदिति। कदाचित् बीजानां पुरुषाणामित्यर्थः, माहात्म्यात् गौरवात्, क्वचित् क्षेत्राणां नारीणां माहात्म्यात् गौरवात् नीचोत्तमत्वम् अपकर्षोत्कर्षभावः, कदाचिच्च क्षेत्रबीजतः क्षेत्रस्य बीजस्य च उभयोरित्यर्थः, माहात्म्यात् श्रेष्ठत्वं भवति ॥ ३७ ॥

विश्वामित्रो वशिष्ठश्च मतङ्गो नारदादयः।
तपोविशेषैः सम्प्राप्ता उत्तमत्वं न जातितः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—विश्वामित्रः वशिष्ठः मतङ्गः नारदादयश्च तपोविशेषैः उत्तमत्वं सम्प्राप्ताः, जातितः न ॥ ३८ ॥

व्याख्या—विश्वामित्रः = गाधिपुत्रः, वशिष्ठः = सूर्यवंशीयक्षत्रियाणां गुरुः, मतङ्गः = प्रसिद्ध ऋषिः, नारदादयश्च अनेके ऋषयः, तपोविशेषैः = विशिष्टतपसा, उत्तमत्वम् = श्रेष्ठत्वम्, सम्प्राप्ताः = अधिगताः, न तु जात्या = जातिमात्रेण, विश्वामित्रो हि क्षत्रियः, वेश्यापुत्रो वशिष्ठः, मतङ्गो हि सामान्ययोनिसमुत्पन्नः, नारदस्य दासीगर्भजत्वाच्चेति ॥ ३८ ॥

हिन्दी—क्षत्रिय से उत्पन्न विश्वामित्र, स्वर्ग की वेश्या से उत्पन्न वसिष्ठ, साधारण जाति में उत्पन्न मतङ्ग और दासी के पुत्र नारद प्रभृति विशेष तप से ही महत्त्व को प्राप्त किये, न कि उत्तम जाति के कारण ॥ ३८ ॥

विश्वामित्र इति। विश्वामित्रः वशिष्ठः मतङ्गः नारदादयश्च तपोविशेषैः उत्तमत्वं श्रेष्ठत्वं सम्प्राप्ताः जातितः जात्या न, विश्वामित्रस्य क्षत्रजत्वात् वशिष्ठस्य वेश्याजातत्वात् मतङ्गस्य सामान्ययोनिजत्वात् नारदस्य दासीगर्भजत्वाच्चेति भावः ॥ ३८ ॥

स्वस्वजात्युक्तधर्मो यः पूर्वैराचरितः सदा।
तमाचरेच्च सा जातिर्दण्ड्या स्यादन्यथा नृपैः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यः पूर्वैः स्वस्वजात्युक्तधर्मः आचरितः सा जातिः सदा तम् आचरेत्। अन्यथा नृपैः दण्ड्या स्यात् ॥ ३९ ॥

व्याख्या—यः = जनः, पूर्वैः = पूर्वपुरुषैः, स्वस्वजात्युक्तधर्मः = निजनिजजातिविहितधार्मिककृत्यः, आचरितः = अनुष्ठितः, सा जातिः = वर्णः, सदा = सर्वदा, तम् = धर्मम्, आचरेत् = व्यवहरेत्। अन्यथा नृपैः = भूभृद्भिः, दण्ड्याः = दण्डनीयाः, स्यात् = भवेत् ॥ ३९ ॥

हिन्दी—जिस व्यक्ति के पूर्वजों ने अपनी जाति के लिए विहित धर्म का सदा व्यवहार किया है, उसी का उसे आचरण करना चाहिए। अन्यथा आचरण करने पर उस जाति के लोग राजा द्वारा दण्डनीय होते हैं ॥ ३९ ॥

स्वेति। यः पूर्वैः पूर्वपुरुषैः स्वस्वजातिविहितः धर्मः आचरितः सा जातिः तज्जातीयो नरः सदा तं धर्मम् आचरेत्, अन्यथा नृपैः दण्ड्या दण्डनीया स्यात् ॥ ३९ ॥

जातिवर्णाश्रमान् सर्वान् पृथक् चिह्नैः सुलक्षयेत्।
यन्त्राणि धातुकाराणां संरक्षेद् वीक्ष्य सर्वदा ॥ ४० ॥

अन्वयः—पृथक् चिह्नैः जातिवर्णाश्रमान् सर्वान् सुलक्षयेत्। धातुकाराणां यन्त्राणि वीक्ष्य सदा संरक्षेत् ॥ ४० ॥

व्याख्या—पृथक् चिह्नैः = भिन्नलाञ्छनैः, जातीनाम् = ब्राह्मणादीनाम्, वर्णानाम्, आश्रमाणाम् = ब्रह्मचर्यादीनाम्, सर्वान् = सकलान्, धर्मान्, सुलक्षयेत् = चिह्नयेत्। तथा धातुकाराणाम् = स्वर्णादिशिल्पकाराणाम्, यन्त्राणि, वीक्ष्य = अवलोक्य, सर्वदा = सततम्, संरक्षेत् = पालयेत्, नृप इति शेषः ॥ ४० ॥

हिन्दी—जाति, वर्ण और आश्रम के सभी लोगों को अलग-अलग चिह्नों द्वारा पहचान लेना चाहिए। सुनार आदि शिल्पकारों के औजारों का परीक्षण कर राजा को उनके पास रहने देना चाहिए ॥ ४० ॥

जातिवर्णाश्रमानिति। पृथक् चिह्नैः जातीनां सङ्कीर्णानां वर्णानां ब्राह्मणादीनाम् आश्रमाणां ब्रह्मचारिप्रभृतीनां सर्वान् धर्मान् सुलक्षयेत्। तथा धातुकाराणां स्वर्णादिशिल्पकाराणां यन्त्राणि वीक्ष्य परीक्ष्य सर्वदा संरक्षेत् नृप इति शेषः ॥ ४० ॥

कारुशिल्पिगणान् राष्ट्रे रक्षेत् कार्य्यानुमानतः।
अधिकान् कृषिकृत्ये वा भृत्यवर्गे नियोजयेत् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—कार्यानुमानतः राष्ट्रे कारुशिल्पिगणान् रक्षेत्। अधिकान् कृषिकृत्ये वा भृत्यवर्गे नियोजयेत् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—कार्यानुमानतः—कार्याणाम् = कृत्यानाम्, अनुमानेन = अभ्यूहनेन, राष्ट्रे = जनपदे, कारुशिल्पिगणान् = वर्द्धकिचित्रकारवर्गान्, रक्षेत् = निवासयेत्। तथा कृषिकृत्ये = हलभृत्यादिकार्ये, वा = अथवा, भृत्यवर्गे = सेवकसाध्यकार्ये, अधिकान् = बहुलान् जनान्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात् ॥ ४१ ॥

हिन्दी—काम की अधिकता या कमी का विचार कर राज्य में राजा बढई या शिल्पकारों को बसाये। अगर इनकी संख्या अधिक हों तो इन्हें खेती के कामों में या सामान्य सेवकों के काम में राजा लगाये ॥ ४१ ॥

कारुशिल्पीति। कार्य्यानुमानतः कार्य्याणाम् अनुमानेन गौरवलाघवविवेचनेन इत्यर्थः, राष्ट्रे राज्ये कारुशिल्पिगणान् रक्षेत् वासयेत्। तथा कृषिकृत्ये भूमिकर्षणादिकार्य्ये वा भृत्यवर्गसाध्ये कर्मणि निमित्ते अधिकान् जनान् नियोजयेत् राजेति शेषः ॥ ४१ ॥

चौराणां पितृभूतास्ते स्वर्णकारादयस्त्वतः ।
गञ्जागृहं पृथग् ग्रामात् तस्मिन् रक्षेत्तु मद्यपान् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—स्वर्णकारादयस्तु चौराणां पितृभूताः, अतः ते ग्रामात् पृथक् रक्षेत्। तस्मिन् तु गञ्जागृहं मद्यपान् रक्षेत् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—स्वर्णकारादयस्तु = धातुकारादयस्तु, चौराणाम् = तस्कराणाम्, पितृभूताः = जनकस्थानीयाः, यतो हि ते चौरान् स्वपुत्रानिव पालयन्ति, अतः = अस्मात् कारणात्, ते = स्वर्णकाराः, ग्रामात् = आवसथात्, पृथक् = दूरमेव, रक्षणीयाः = निवासनीयाः नृपेणेति। यच्च तस्मिन् = ग्रामाद्भिन्नक्षेत्रे, गञ्जागृहम् = मदिरालयमस्ति, तस्मिन् = तत्र, मद्यपान् = सुरापान्, रक्षेत् = वासयेत् राजेति ॥ ४२ ॥

हिन्दी—सुनार चोरों की रक्षा उनके बाप की तरह करते हैं, अतः उन्हें गाँव से बाहर ही रखना चाहिए और मदिरालय भी गाँव से बाहर रखकर उनमें शराबियों को रखना चाहिए ॥ ४२ ॥

चौराणामिति। स्वर्णकारादयः चौराणां पितृभूताः पितृस्थानीयाः पितृवत् चौरान् पालयन्तीत्यर्थः, अतः ते ग्रामात् पृथक् रक्षणीया राज्ञा इति शेषः। यच्च तस्मिन् ग्रामात् पृथक् प्रदेशे इत्यर्थः, गञ्जागृहं मदिरागृहम् अस्ति, तस्मिन् मद्यपान् रक्षेत् राजेति शेषः ॥ ४२ ॥

न दिवा मद्यपानं तु राष्ट्रे कुर्य्याद्धि कश्चन ॥ ४३ ॥

अन्वयः—राष्ट्रे कश्चन दिवा मद्यपानं न तु कुर्यात् हि ॥ ४३ ॥

व्याख्या—राष्ट्रे = राज्ये, कश्चन = कोऽपि जनः, दिवा = दिवसे, मद्यपानम् = सुरापानम्, न तु = नैव, कुर्यात् ॥ ४३ ॥

हिन्दी—और राज्य में किसी को दिन में शराब पीने की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए ॥ ४३ ॥

नेति। राष्ट्रे राज्ये कश्चन जनः दिवा दिवसे मद्यपानं न हि तु कुर्य्यात् ॥ ४३ ॥

ग्रामे ग्राम्यान् वने वन्यान् वृक्षान् संरक्षयेन्नृपः ।
उत्तमान् विंशतिकरैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः ॥ ४४ ॥
सामान्यान् दशहस्तैश्च कनिष्ठान् पञ्चभिः करैः ।
अजाविगोशकृद्भिर्वा जलैर्मांसैश्च पोषयेत् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—नृपः ग्रामे ग्राम्यान् वने वन्यान् वृक्षान् संरक्षयेत्। तेषु उत्तमान् विंशतिकरैः मध्यमान् तिथिहस्ततः सामान्यान् दशहस्तैश्च कनिष्ठान् पञ्चभिः करैः अजाविगोशकृद्भिः वा जलैः मांसैश्च पोषयेत् ॥ ४४-४५ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, ग्रामे = निवसथे, ग्राम्यान् = ग्रामे भवितुं योग्यान् वृक्षान्, वने = अरण्ये, वन्यान् = वने भवितुं योग्यान्, वृक्षान् = पादपान्, संरक्षयेत् = संरोपयेत्। तेषु = पादपेषु, उत्तमान् = उत्कृष्टान् बृहद्वृक्षान्, विंशतिहस्तान्तरालैः, मध्यमान् = सामान्यवृक्षान्, तिथिहस्ततः = पञ्चदशकरैः, ततो निकृष्टान् वृक्षान् दशकरैः, तथा कनिष्ठान् = लघुवृक्षान्, पञ्चभिः करैः, विच्छिद्य संरोपयेदिति, तांश्च वृक्षान्, अजानाम् = छागानाम्, अवीनाम् = मेषाणाम्, गवाञ्च,

शकृद्भिः = पुरीषैः, जलैः = सलिलैः, मांसैः = पिशितैश्च, पोषयेत् = संवर्द्धयेदिति ॥ ४४-४५ ॥

हिन्दी—गाँव में पनपने वाले पेड़ों को गाँव में, जंगल में उगने वाले पौधों को जंगल में राजा रोपण कराये। उनमें बड़े पेड़ों की परस्पर दूरी बीस हाथ, औसत सूक्ष्म दर्जे के पेड़ों की दूरी पन्द्रह हाथ, सामान्य पेड़ों की दूरी दस हाथ और छोटे-छोटे पेड़ों की दूरी पाँच हाथ होनी चाहिए। उन पेड़ों में बकरी, भेड़ और गाय के गोबर की खाद, पानी तथा मांस डाल कर संवर्द्धन करवाना चाहिए ॥ ४४-४५ ॥

ग्रामे इति। सामान्यानिति। नृपः ग्रामे ग्राम्यान्, वने वन्यान् वृक्षान् संरोपयेत्। तेषु उत्तमान् वृक्षान् विंशतिहस्तैः, मध्यमान् वृक्षान् तिथिहस्ततः पञ्चदशकरैरित्यर्थः, सामान्यान् ततो निकृष्टान् दशहस्तैः तथा कनिष्ठान् अधमान् वृक्षान् पञ्चभिः करैः विच्छिद्य वासयेदिति शेषः। तांश्च अजानां छागानाम् अवीनां मेषाणां गवाञ्च शकृद्भिः पुरीषैः जलैः मांसैश्च पोषयेत् पुष्टिं नयेत् ॥ ४४-४५ ॥

उदुम्बराश्वत्थवटचिञ्चाचन्दनजम्भलाः ।
कदम्बाशोकबकुलबिल्वामृतकपित्थकाः ॥ ४६ ॥
राजादनाम्रपुन्नागतूदकाष्ठाम्लचम्पकाः ।
नीपकोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटभिस्मटाः ॥ ४७ ॥
शिंशपाशिम्भुवदरनिम्बजम्बीरक्षीरिकाः ।
खर्जूरदेवकरजफल्गुतापिञ्छसिम्भलाः ॥ ४८ ॥
कुद्दालो लवली धात्री क्रमुको मातुलुङ्गकः ।
लकुचो नारिकेलश्च रम्भाद्याः सत्फला द्रुमाः ।
सुपुष्पाश्चैव ये वृक्षा ग्रामाभ्यर्णे नियोजयेत् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—उदुम्बराश्वत्थवटचिञ्चाचन्दनजम्भलाः कदम्बाशोकबकुलबिल्वामृतकपित्थकाः राजादनाम्रपुन्नागतूदकाष्ठाम्लचम्पकाः नीपकोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटभिस्मटाः शिंशपाशिम्भुवदरनिम्बजम्बीरक्षीरिकाः खर्जूरदेवकरजफल्गुतापिञ्छसिम्भलाः कुद्दालः लवली धात्री क्रमुकः मातुलुङ्गकः लकुचः नारिकेलः च रम्भाद्याः अन्ये ये सत्फलाः द्रुमाः सुपुष्पाश्चैव वृक्षाः तान् ग्रामाभ्यर्णे नियोजयेत् ॥ ४६-४९ ॥

व्याख्या—उदुम्बराः = क्षीरवृक्षाः, अश्वत्थाः = पिप्पलाः, वटाः = न्यग्रोधाः, चिञ्चाः = आम्लीकाः, चन्दनाः = गन्धसाराः, जम्भलाः = जम्बीराः, कदम्बाः = नीपाः, अशोकाः = रक्तपल्लवाः, बकुलाः = सिंहकेसराः, बिल्वाः = श्रीफलानि, अमृताः = आमलाः, कपित्थकाः = खदिराः, राजादनाः = चारबीजानि, आम्राः = रसालाः, पुन्नागाः, तूदकाष्ठाः = ब्रह्मकाष्ठाः, अम्लाः, चम्पकाः = हेमपुष्पाणि, नीपाः = कदम्बाः, कोकाम्राः = कोकमाः, सरलाः = पुष्पवृक्षाणि, दाडिमाः = शुकवल्लभाः, अक्षोटाः = अक्षोटवृक्षाणि, भिस्मटाः, शिम्भवः = शिंशपाः, वदराः = वदरिकाः, निम्बाः = तिक्तद्रुमाः, जम्बीराः = अम्लनीराः, क्षीरिकाः = पायसवृक्षाः, खर्जूराः = दुरारोहाः, देवकरजाः, शिघ्नु = रुचिराञ्जनाः, फल्गवः = अंजीरः, तापिच्छाः = तमालाः, सिम्भलाः, कुद्दालाः, लवली = हरिपवरयः, धात्री = आमलकी, क्रमुकः = पुगीफलम्, मातुलुङ्गकः = लकुचः रोचनः, दन्तीघाती वा, नारिकेलः, रम्भाद्याः = कदलीफलप्रभृतयः, अन्ये = अपरे, ये सत्फलाः =

उत्कृष्टफलशालिनः, सुपुष्पाश्च पादपाः सन्ति, तान् = सर्वान्, ग्रामाभ्यर्णे आवसथसमीपे, नियोजयेत् = रोपणं कुर्यात् ॥ ४६-४९ ॥

हिन्दी—गूलर, पीपल, बरगद, इमली, चन्दन, जभीरीनीबू, कदम्ब, अशोक, बकुल, बिल्व, आमड़ा, कैथ, चिरौंजी, आम, पुंनाम, तूत, अमरा, चम्पा, जलकदम्ब, कोकम, चीड़, अनार, अखरोट, मिस्सट, शीशम, सहिजन, बैर, नीम, जमीरी नींबू, खिरजी, खजूर, देवकरंज, अंजीर, तमाल, शिम्भल, कुद्दाल, हरफारेवडी, आमला, सुपारी, बिजौरानींबू, बड़हर, नारियल, केला प्रभृति तथा अन्य भी अच्छे फलवाले जो पेड़-पौधें हों, उन्हें गाँव के आसपास लगाना चाहिए ॥ ४६-४७ ॥

उदुम्बरेत्यादि। उदुम्बराः, अश्वत्थाः, वटाः, चिञ्चाः, चन्दनाः, जम्भलाः, कदम्बाः, अशोकाः, बकुलाः, बिल्वाः, अमृताः, कपित्थकाः, राजादनाः, आम्राः, पुन्नागाः, तूदकाष्ठाः, अम्लाः, चम्पकाः, नीपाः, कोकाम्राः, सरलाः, दाडिमाः, अक्षोटाः, भिस्मटाः, शिंशपाः, शिम्भवः, वदराः, निम्बाः, जम्बीराः, क्षीरिकाः, खर्जूराः, देवकरजाः, फल्गवः, तापिञ्छाः, सिम्भलाः, कुद्दालः, लवली, धात्री, क्रमुकः, मातुलुङ्गकः, लकुचः, नारिकेलः, रम्भाद्याः, अन्ये ये सत्फलाः, उत्तमफलशालिनः सुपुष्पाश्च वृक्षाः सन्ति, तान् ग्रामाभ्यर्णे ग्रामसमीपे नियोजयेत् रोपयेत् ॥ ४६-४९ ॥

वामभागेऽथवोद्यानं कुर्य्याद् वासगृहे शुभम् ।
सायं प्रातस्तु घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ।
वसन्ते पञ्चमेऽह्नस्तु सेच्या वर्षासु न क्वचित् ॥ ५० ॥

अन्वयः—वामभागे अथवा वासगृहे शुभम् उद्यानं कुर्यात् । घर्मान्ते सायं प्रातश्च शीतकाले दिनान्तरे वसन्ते पञ्चमे अह्नस्तु सेच्याः, वर्षासु क्वचिदपि न सेच्येति ॥ ५० ॥

व्याख्या—वामभागे = वासगृहस्य सव्यभागे, अथवा = वा, वासगृहे = निवासभवने, शुभम् = कल्याणप्रदम्, उद्यानम् = वाटिकाम्, कुर्यात् = निर्मातव्यम् । किञ्च घर्मान्ते = निदाघान्ते, सायम् = सन्ध्याकाले, प्रातः = प्रभाते, शीतकाले = शिशिर-ऋतौ, दिनान्तरे = दिवसावसाने, वसन्ते = ऋतुराजसमये, अह्नः = दिनस्य, पञ्चमे मुहूर्ते, सेच्याः = सेचनीयाः, वाटिका-वृक्षाः, वर्षासु = वर्षाऋतौ, क्वचिदपि = कदापि, न = नहि, सेच्याः = सेचनीयाः ॥ ५० ॥

हिन्दी—निवासगृह के बाँयी ओर अथवा घर के अहाते के भीतर ही सुन्दर उद्यान बनाना चाहिए। ग्रीष्म ऋतुओं में प्रातः और सायं काल दोनों समय, जाड़े में एक दिन के बाद, वसन्त ऋतु में दुपहरिया ढलने के बाद अथवा चार दिन के बाद पौधे की सिंचाई करनी चाहिए, किन्तु वर्षा ऋतु में सिंचाई कदापि उचित नहीं है ॥ ५० ॥

वामभागे इति। वामभागे वासगृहस्येति शेषः, अथवा वासगृहे वासभूम्यन्तरे इत्यर्थः, शुभम् उद्यानं कुर्य्यात् । किञ्च घर्मान्ते निदाघावसाने सायं प्रातश्च, शीतकाले दिनान्तरे दिनावसाने वसन्ते अह्नः दिवसस्य पञ्चमे मुहूर्त्ते इति शेषः, सेच्याः उद्यानवृक्षा इति शेषः, वर्षासु क्वचिदपि न सेच्या इति शेषः ॥ ५० ॥

फलनाशे कुलुत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलैः ।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥ ५१ ॥

अन्वयः—फलनाशे कुलुत्थैः माषैः मुद्गैः यवैः तिलैः शृतशीतपयःसेकः सर्वदा फलपुष्पाय भवति ॥ ५१ ॥

व्याख्या—फलानाम् = वृक्षस्य प्रसवाणाम्, नाशे = उच्छेदे सति, कुलुत्थैः = कालवृन्तैः, माषैः = कुरुविन्दैः, मुद्गैः = सूपश्रेष्ठैः, यवैः = प्रवेटैः अश्वप्रियैर्वा, तिलैः = पूतधान्यैः, सह, शृतशीतपयःसेकः—शृतैः = उष्णीकृतैः, पश्चात् शीतैः = शीतलैः, पयोभिः = सलिलैः, सेकः = सिञ्चनम्, सर्वदा = सततम्, फलाय = शस्याय, पुष्पाय = कुसुमाय, भवतीति शेषः॥५१॥

हिन्दी—यदि पेड़ के फल नष्ट हो तो उसके लिए कुलथी, उडद, जौ, मूंग तथा तिल में से किसी एक को पानी में डालकर उबाल ले। फिर पानी ठंडा कर उससे सिंचाई करने पर फल पेड़ में टिकेंगे॥५१॥

फलनाशे इति। फलानां नाशे वृक्षस्येति शेषः, कुलुत्थैः, माषैः, मुद्गैः, यवैः, तिलैर्वा सह शृतशीतपयोभिः उष्णीकृतैः पश्चात् शीतलैः पयोभिः जलैः सेकः सर्वदा फलपुष्पाय फलानां पुष्पाणाञ्च अनाशाय भवति॥५१॥

मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम्॥ ५२॥

अन्वयः—मत्स्याम्भसा सेकेन शाखिनां वृद्धिः भवति॥५२॥

व्याख्या—मत्स्याम्भसा = मीनप्रक्षालनजलेन, सेकेन = सिञ्चनेन, शाखिनाम् = वृक्षाणाम्, वृद्धिः = संवर्द्धनं भवति॥५२॥

हिन्दी—मछलियों के धोवन से सिंचाई करने पर पौधे बढ़ते हैं॥५२॥

मत्स्याम्भसेति। मत्स्याम्भसा मत्स्यक्षालनजलेन सेकेन शाखिनां वृक्षाणां वृद्धिः भवति॥५२॥

आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च।
गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत्।
उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः॥ ५३॥

अन्वयः—आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत्। उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलानां पुष्पाणाञ्च वृद्धिदः भवति॥५३॥

व्याख्या—आविकाजानाम् = एडकानाम् अजानाञ्च, यानि शकृन्ति = पुरीषाणि, तेषां चूर्णे = क्षोदे, यवचूर्णम् = यज्ञान्नपिष्टम्, तिलानि = पूतधान्यानि, गोमांसम्, उदकञ्च = जलञ्च, सम्मेल्य, सप्तरात्रम् = सप्तरात्रिपर्यन्तम्, निधापयेत् = वृक्षमूलेषु स्थायेत्। उत्सेकः = उक्तचूर्णादिमिश्रितजलसिञ्चनम्, सर्वेषाम् = सकलानां वृक्षाणाम्, फलानाम् = शस्यानाम्, पुष्पाणाम् = कुसुमादीनाम्, च, वृद्धिदः = वर्द्धको भवति॥५३॥

हिन्दी—भेंड और बकरी की विष्ठा का चूर्ण, तिल और जौ के चूर्ण, गोमांस और पानी मिलाकर सात रात तक जिस पेड़ की जड़ में दिया जाय, उसकी वृद्धि निश्चित होगी॥५३॥

आविकेति। आविकाजानां मेषछागलानां यानि शकृन्ति पुरीषाणि तेषां चूर्णं यवचूर्णं तिलानि गोमांसम् उदकञ्च सप्तरात्रं निधापयेत् वृक्षमूलेषु दद्यादित्यर्थः। उत्सेकः उक्तचूर्णादिदानं सर्वेषां वृक्षाणां फलानां पुष्पाणाञ्च वृद्धिदः वर्द्धकः॥५३॥

ये च कण्टकिनो वृक्षाः खदिराद्यास्तथा परे।
आरण्यकास्ते विज्ञेयास्तेषां तत्र नियोजनम्॥ ५४॥

अन्वयः—ये वृक्षाः कण्टकिनः अपरे खदिराद्याः ते आरण्यकाः विज्ञेयाः। तत्र तेषां नियोजयेत् ॥५४॥

व्याख्या—ये वृक्षाः = तरवः, कण्टकिनः = कण्टकाकीर्णाः, अपरे = अन्ये, खदिराद्याः = कपित्थप्रभृतयः, ते = वृक्षाः, आरण्यकाः = वन्याः, विज्ञेयाः = ज्ञातव्याः। तेषाम् = वृक्षाणाम्, तत्र = अरण्ये एव, नियोजयेत् = रोपयेदिति ॥५४॥

हिन्दी—जो पेड़ कंटीले और कत्था आदि के हैं वे जंगली हैं। उन्हें जंगल में ही लगाना चाहिए ॥ ५४ ॥

ये चेति। ये वृक्षाः कण्टकिनः कण्टकावृताः, तथा अपरे खदिराद्याश्च ते आरण्यकाः वन्याः विज्ञेयाः, तेषां वृक्षाणां तत्र अरण्ये नियोजनं रोपणं कार्य्यमिति शेषः ॥५४॥

खदिराश्मन्तशाकाग्निमन्थश्योनाकबब्बुलाः ।
तमालशालकुटजधवार्जुनपलाशकाः ॥५५॥
सप्तपर्णशमीतुन्नदेवदारुविकङ्कताः ।
करमर्देङ्गुदीभूर्जविषमुष्टिकरीरकाः ॥५६॥
शल्लकी काश्मरी पाठा तिन्दुको बीजहारकः ।
हरीतकी च भल्लातः शम्पाकोऽर्कश्च पुष्करः ॥५७॥
अरिमेदश्च पीतद्रुः शाल्मलिश्च विभीतकः ।
नरवेलो महावृक्षोऽपरे ये मधुकादयः ॥५८॥
प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यो गुल्मिन्यश्च तथैव च।
ग्राम्या ग्रामे वने वन्या नियोज्यास्ते प्रयत्नतः ॥५९॥

अन्वयः—खदिराश्मन्तशाकाग्निमन्थश्योनाकबब्बुलाः तमालशालकुटजधवार्जुनपलाशकाः सप्तपर्णशमीतुन्नदेवदारुविकङ्कताः करमर्देङ्गुदीभूर्जविषमुष्टिकरीरकाः शल्लकी काश्मरी पाठा तिन्दुकः बीजहारकः हरीतकी भल्लातः शम्पाकः अर्कः पुष्करः अरिमेदः पीतद्रुः शाल्मलिः विभीतकः नरवेलः महावृक्षः च तथा मधुकादयः अपरे ये वृक्षाः याश्च प्रतानवल्यः स्तम्बिन्यः गुल्मिन्यः ते ग्राम्याः ग्रामे वन्याः वने प्रयत्नतः नियोज्याः ॥५५-५९॥

व्याख्या—खदिरः = कपित्यः, अश्मन्तशाकः = सागवानः, अग्निमन्थः = अरणी, श्योनाकः = श्येनिकः बब्बुलः = बर्बुरः, कण्टालुश्चेति, तमालः = कालस्कन्धः, शालः = शङ्कुवृक्षः, कुटजः = आवखोटः, धवः = पिशाचवृक्षः, अर्जुनः = अरण्यवृक्षः, पलाशः = किंशुकः, सप्तपर्णः = सप्तच्छदः, शमी = शिवा वा केशमथनी, तुन्नः = नदीवृक्षः, देवदारुः = अमर्त्यतरुः, विकङ्कतः = विकङ्कः, करमर्दः = 'करौंदा' इति भाषायाम्, इङ्गुदी = वृक्षविशेषः, भूर्जः = भोजपत्रवृक्षः, विषमुष्टिः = कुचिला, करीरकः = क्रकरः गूढपत्रो वेति, शल्लकी = 'सलई' इति ख्यातः, काश्मरी = खम्भारः, पाठा = पाडरः, तिन्दुकः = कालस्कन्धः, बीजसारकः = विजयसारः, हरीतकी = अभया वा रसायनफला, भल्लातः = शम्पाकः, अर्कः = मन्दारः, पुष्करः = पोहकरः, अरिमेदः = दुर्गन्धः, पीतद्रुः = खदिरः, शाल्मलिः = तूलवृक्षः, विभीतकः = कलिद्रुमः भूतवासो वा, नरवेलः, महावृक्षः = विशालतरुः, तथा मधुकादयः = मधुद्रुमादयः, अपरे = अन्ये, ये = द्रुमाः, याश्च प्रतानवत्यः = दीर्घशाखिनः, स्तम्बिन्यः = स्तबकशालिन्यः, गुल्मिन्यः = गुल्मवत्यः, मूलवत्यश्च लताः, ते = ताश्च,

ग्राम्याश्चेत् = ग्रामिका भवेत्, ग्रामे = आवसथे, चेत् = यदि, वन्याः = आरण्यकाः, तर्हि वने = अरण्ये, प्रयत्नतः = सायासेन, नियोज्याः = रोपणीयाः इति ॥ ५५-५९ ॥

हिन्दी—खैर, अश्मन्तक (वृक्ष-विशेष, जिसके रेशों से ब्राह्मण की तगड़ी बनाई जाती है), सागवान, अरणी के पेड़, सोनापाठा, बबूल, आबनूस, सखुआ, कुटज (खोरयाँ), अर्जुन, पलाश, धव (एक प्रकार का पेड़), छतवन, शमी, तूत, देवदारु, विकङ्कत, करौंदा, इंगुदी, भोजपत्र, कुचिला, करीर, सलई, खम्भार, पाढर, तेंदू, विजयसार, हरड़, भिलावा, शम्पाक, आक, पोहकर, दुर्गन्ध, खैर, पीतद्रु, सेमल, बहेड़ा नरवेल, महावृक्ष और अन्य जो महुआ आदि एवं लम्बी-पतली डालों वाली, गुच्छों वाली, गुल्मों वाली लताएँ हैं—इनमें जो गाँव में होने वाली हैं, इन्हें गाँव में और जो जंगली हैं, इन्हें जंगल में ही लगाना चाहिए ॥ ५५-५९ ॥

खदिरेत्यादि। खदिरः, अश्मन्तशाकः, अग्निमन्थः, श्योनाकः, बब्बुलः, तमालः, शालः, कुटजः, धवः, अर्जुनः, पलाशः, सप्तपर्णः, शमी, तुन्नः, देवदारुः, विकङ्कतः, करमर्दः, इङ्गुदी, भूर्जः, विषमुष्टिः, करीरकः, शल्लकी, काश्मरी, पाठा, तिन्दुकः, बीजसारकः, हरीतकी, भल्लातः, शम्पाकः, अर्कः, पुष्करः, अरिमेदः, पीतद्रुः शाल्मलिः, विभीतकः, नरवेलः, महावृक्षः तथा मधूकादयः अपरे ये वृक्षाः, याश्च प्रतानवत्यः विस्तारवत्यः स्तम्बिन्यः गुच्छवत्यः गुल्मिन्यः मूलवत्यश्च लताः, ते ताश्च ग्राम्याश्चेत् ग्रामे, वन्याश्चेत् वने प्रयत्नतः नियोज्याः रोपणीयाः ॥ ५५-५९ ॥

कूपवापीपुष्करिण्यस्तडागाः सुगमास्तथा।
कार्य्याः खाताद् द्वित्रिगुणविस्तारपदधानिकाः।
यथा तथा ह्यनेकाः स्युः राष्ट्रे स्याद्विपुलं जलम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—कूपवापीपुष्करिण्यः तडागाः तथा कार्याः यथा खातात् द्वित्रिगुणविस्तारपदधानिकाः सुगमाश्च अनेकाः स्युः। राष्ट्रे विपुलं जलं स्यात् ॥ ६० ॥

व्याख्या—कूपाः = जलरन्ध्राः, वाप्यः = दीर्घिकाः, पुष्करिण्यः = कासाराः, तडागाश्च = सरोवराश्च, तथा कार्याः = विधेयाः, यथा = येन, खातात् = परिखातः, द्वित्रिगुणाः = द्विगुणाः वा त्रिगुणाः, विस्ताराः = विस्तृताः, यासां तादृश्यः, पदधानिकाः = पदस्थापनस्थानानि, येषां = यासां, वा तादृशाः तादृश्यश्च, सुगमाश्च = सुकराश्च, अनेकाः = एकाधिकाश्च, स्युः = भवेयुः। तथा कृते सति, राष्ट्रे = जनपदे, विपुलम् = अत्यधिकम्, जलम् = सलिलम्, स्यात् = भवेत् ॥ ६० ॥

हिन्दी—कुआँ, बावड़ी, छोटा या बड़ा तालाब, जलाशय प्रभृति ऐसे बनवाने चाहिए जिसमें लोग आसानी से उतर सकें। जलाशय की गहराई से दुगुना या तीन गुना फैलाव में उसके चारों ओर सीढियाँ बनवानी चाहिए ॥ ६० ॥

कूपेति। कूपाः वाप्यः दीर्घिकाः पुष्करिण्यः तडागाश्च तथा कार्य्याः, यथा खातात् द्वित्रिगुणाः विस्ताराः यासां तादृश्यः पदधानिकाः पादसञ्चारस्थानानि येषां यासां वा तादृशाः तादृश्यश्च सुगमाश्च अनेकाश्च स्युः। तथा सति राष्ट्रे विपुलं प्रचुरं जलं स्यात् ॥ ६० ॥

नदीनां सेतवः कार्य्या विविधाः सुमनोहराः।
नौकादिजलयानानि पारगाणि नदीषु च ॥ ६१ ॥

अन्वयः—नदीनां विविधाः सुमनोहराः सेतवः कार्याः, च नदीषु पारगाणि नौकादिजलयानानि ॥ ६१ ॥

व्याख्या—नदीनाम् = तटिनीनाम्, विविधाः = अनेकधाः, सुमनोहराः = सुष्ठुतया हृदयहारिणः, सेतवः = वारणाः, कार्याः = निर्मातव्याः, च = पुनः, नदीषु = स्रोतस्विनीषु, पारगाणि = पारगमनसाधनानि, नौकादि = तरण्यादि, जलयानानि = पोताश्च, रक्षणीयानीति ॥ ६१ ॥

हिन्दी—नदियों में अनेक मनोहर पुलों का निर्माण करवाना चाहिए। साथ ही नदियों को पार करने के लिए नाव एवं जहाजों की भी व्यवस्था करनी चाहिए ॥ ६१ ॥

नदीनामिति। नदीनां विविधाः सुमनोहराः सेतवः कार्य्याः, तथा नदीषु पारगाणि पारगमनसाधनानि नौकादिजलयानानि रक्षणीयानीति शेषः ॥ ६१ ॥

यज्जातिपूज्यो यो देवस्तद्विद्यायाश्च यो गुरुः।
तदालयानि तज्जातिगृहपङ्क्तिमुखे न्यसेत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—यः देवः यज्जातिपूज्यः तद्विद्यायाः च यः गुरुः तज्जातिगृहपङ्क्तिमुखे तत् आलयानि न्यसेत् ॥॥ ६२ ॥

व्याख्या—यः = यत्, देवः = सुरः, यज्जातिपूज्यः—यत् = यस्याः, जातेः = वर्णस्य, पूज्यः = आराध्यः, तत् = तेषाम्, विद्यायाः = ज्ञानस्य, यः गुरुः = आचार्यः, तत् = तेषाम्, आलयानि = गृहाणि, तत् = तेषाम्, जातीनाम् = वर्णानाम्, गृहपङ्क्तिमुखे = भवनश्रेण्यग्रे, न्यसेत् = स्थापयेत् ॥ ६२ ॥

हिन्दी—जिस जाति के जो आराध्य देवता हो तथा उन्हें विद्या सिखलाने वाला जो गुरु हो, उनका मन्दिर या घर उस जाति के लोगों की गृहशृंखला के सामने होना चाहिए ॥ ६२ ॥

यदिति। यो देवः यज्जातिपूज्यः यस्याः जातेः पूजनीयः, तद्विद्यायाः तद्देवसम्बन्धिन्याः विद्यायाः यो गुरुः, तदालयानि तस्य गृहाणि तज्जातीनां गृहपङ्क्तिमुखे गृहश्रेणीसम्मुखे न्यसेत् कुर्य्यात् ॥ ६२ ॥

शृङ्गाटके ग्राममध्ये विष्णोर्वा शङ्करस्य च।
गणेशस्य रवेर्देव्याः प्रासादान् क्रमतो न्यसेत् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—शृङ्गाटके वा ग्राममध्ये विष्णोः शङ्करस्य गणेशस्य रवेः च देव्याः क्रमतः प्रासादान् न्यसेत् ॥ ६३ ॥

व्याख्या—शृङ्गाटके = ग्रामस्य चतुष्पथे वा, ग्राममध्ये = आवसथान्तराले, विष्णोः = हरेः, शङ्करस्य = हरस्य, गणेशस्य = विनायकस्य, रवेः = सूर्यस्य, देव्याः = दुर्गायाः, क्रमतः = क्रमेण, प्रासादान् = देवालयान्, न्यसेत् = स्थापयेत् ॥ ६३ ॥

हिन्दी—गाँव के चौराहे या गाँव के बीच में विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी—इन पाँच देवताओं का मन्दिर क्रमशः बनवाना चाहिए ॥ ६३ ॥

शृङ्गाटके इति। शृङ्गाटके चतुष्पथे वा ग्राममध्ये विष्णोः शङ्करस्य गणेशस्य रवेः सूर्य्यस्य देव्याश्च प्रासादान् भवनानि क्रमात् न्यसेत् कुर्य्यात् ॥ ६३ ॥

मेर्वादिषोडशविधलक्षणान् सुमनोहरान्।
वर्तुलांश्चतुरस्रान् वा सप्ताकारान् समण्डपान् ॥ ६४ ॥

प्राकारगोपुरगणयुतान् द्वित्रिगुणोच्छ्रितान्।
यथोक्तान्तःसुप्रतिमान् जलमूलान्विचित्रितान्॥ ६५॥

अन्वयः—मेर्वादिषोडशविधलक्षणान् सुमनोहरान् वर्त्तुलान् चतुरस्रान् वा यन्त्राकारान् समण्डपान् प्राकारगोपुरगणयुतान् द्वित्रिगुणोच्छ्रितान् यथोक्तान्तःसुप्रतिमान् जलमूलान् विचित्रितान्॥ ६४-६५॥

व्याख्या—मेरुः= सुरालयः, आदिर्येषां तादृशानि षोडशविधानि= षोडशप्रकाराणि, लक्षणानि= अभिज्ञानानि, येषां तान्, सुमनोहरान्= सुष्ठुहृदयहारिणः, वर्त्तुलान्= गोलाकारान्, चतुरस्रान्= चतुष्कोणान्, यन्त्राकारान्= यन्त्रस्वरूपान्, समण्डपान्= मण्डपयुक्तान्, प्राकारैः= प्राचीरैः, गोपुरैः= पुरद्वारैः, गणैः= सेवकसमूहैः, युतान्= समन्वितान्, द्वित्रिगुणोच्छ्रितान्= द्विगुणितान् त्रिगुणितान् वा, उच्छ्रितान्= दैर्घ्यविस्तारापेक्षयेति, यथोक्तानाम्= पूर्वनिर्दिष्टानाम्, अन्तः= अन्तराले मध्ये वा, सुप्रतिमान्= सुन्दरदेवमूर्तियुक्तान्, जलमूलान्= चतुर्दिग् सलिलयुक्तान्, तथा विचित्रितान्= विशिष्टरूपेण चित्रितान्, प्रासादान् इति पूर्वेणान्वयः॥ ६४-६५॥

हिन्दी—जो मन्दिर मेरु आदि सोलह प्रकार के लक्षणों से युक्त, अत्यन्त आकर्षक गोलाकार, चौकोर या यंत्राकार युक्त मण्डप, परकोटा तथा प्रधान विशाल द्वारों से युक्त, सेवक-समूहों से युक्त, लम्बाई चौड़ाई से दूना या तिगुना ऊँचा हो, जिसके बीच में शास्त्रोक्त रीति से बनी सुन्दर देवमूर्तियाँ रखी हों और जिसके चारों ओर खाई में पानी भरा हो तथा जिसमें अनेक तरह के चित्र बने हों॥ ६४-६५॥

प्रासादान् विशिनष्टि—**मेर्वादीति**। **प्राकारेति**। मेरुः आदिर्येषां तादृशानि षोडशविधानि लक्षणानि येषां तान्। सुमनोहरान् वर्त्तुलान् गोलाकृतीन् चतुरस्रान् चतुष्कोणान् यन्त्राकारान् समण्डपान् सगृहान् प्राकारैः प्राचीरैः, गोपुरैः पुरद्वारैः गणैः परिचारकवर्गैश्च युतान् द्वित्रिगुणोच्छ्रितान् दैर्घ्यविस्तारापेक्षयेति शेषः, यथोक्तानामन्तः मध्ये शोभना प्रतिमा येषां तान् जलमूलान् जलयुक्तान् तथा विचित्रितान् विशेषेण चित्रितान् प्रासादानिति पूर्वेणान्वयः॥ ६४-६५॥

रम्यः सहस्रशिखरः सपादशतभूमिकः।
सहस्रहस्तविस्तारोच्छ्रायः स्यान्मेरुसंज्ञकः॥ ६६॥

अन्वयः—सहस्रशिखरः सपादशतभूमिकः, सहस्रहस्तविस्तारोच्छ्रायः मेरुसंज्ञकः स्यात्॥ ६६॥

व्याख्या—सहस्रम्= दशशतम्, शिखरम्= सानुम्, यस्य सः, पादशतैः= शतपादयुक्तैः, सह वर्त्तमाना भूमिः= पृथिवीम्, यस्य तथाभूतः, सहस्रहस्तविस्तारः= दशशतहस्तदीर्घः, तथा सहस्रहस्तोच्छ्रायः= उन्नतः, रम्यः= आकर्षकः, मन्दिरः, मेरुसंज्ञकः= मेरुनाम्ना ख्यातो भवतीति॥ ६६॥

हिन्दी—जिस मन्दिर में एक हजार कंगूरे हों, एक सौ पचीस पग धरती में बने हों तथा हजार हाथ जिसका विस्तार एवं ऊँचाई हो, उसे मेरु कहा जाता है॥ ६६॥

मेरुप्रभृतीन् क्रमशः लक्षयति—**रम्य इति**। सहस्रं शिखरं यस्य सः सहस्रशृङ्ग इत्यर्थः, पादशतैः सह वर्त्तमाना भूमिः यस्य तथाभूतः, सहस्रहस्तविस्तारः तथा सहस्रहस्तोन्नतः रम्यः प्रासादः मेरुसंज्ञकः मेरुरिति प्रसिद्धः॥ ६६॥

ततस्ततोऽष्टांशहीना अपरे मन्दरादयः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—अपरे मन्दरादयः ततः अष्टांशहीनाः ॥ ६७ ॥

व्याख्या—अपरे = अन्ये, मेरुभिन्नाः मन्दरादयः, ततस्ततः = तत्पश्चात्, अष्टांशहीनाः = भागाष्टन्यूनाः। तद्यथा—मेरोः मन्दराष्टांशहीनः, अक्षमाली मन्दराष्टांशहीनः द्युमणिः ऋक्षमालिनः अष्टांशहीनः ॥ ६७ ॥

हिन्दी—इससे उत्तरोत्तर अष्टांशहीन अन्य मन्दर आदि नाम वाले मन्दिर हैं ॥ ६७ ॥

तत इति। अपरे मेरुभिन्नाः मन्दरादयः ततः ततः अष्टांशहीनाः, तथा च मन्दरः मेरोः अष्टांशहीनः, ऋक्षमाली मन्दरात् अष्टांशहीनः, द्युमणिः ऋक्षमालिनः अष्टांशहीन इत्यादि ॥ ६७ ॥

मन्दरो ऋक्षमाली च द्युमणिश्चन्द्रशेखरः।
माल्यवान् पारियात्रश्च रत्नशीर्षश्च धातुमान् ॥ ६८ ॥
पद्मकोशः पुष्पहासः श्रीकरः स्वस्तिकाभिधः।
महापद्मः पद्मकूटः षोडशो विजयाभिधः ॥ ६९ ॥

अन्वयो व्याख्या च सहैव नाममात्रोच्चारणत्वात्। अन्यान् पञ्चदश मन्दरादीन् निर्वक्ति—मन्दरः, ऋक्षमाली, द्युमणिः, चन्द्रशेखरः, माल्यवान्, पारियात्रः, रत्नशीर्षः, धातुमान्, पद्मकोशः पुष्पहासः श्रीकरः स्वस्तिकाभिधः महापद्मः, पद्मकूटः तथा विजयः इति प्रसिद्धाः षोडशः ॥ ६८-६९ ॥

हिन्दी—जिनके नाम क्रमशः मन्दर, ऋक्षमाली, द्युमणि, चन्द्रशेखर, माल्यवान्, पारियात्र, रत्नशीर्ष, धातुमान्, पद्मकोश, पुष्पहास, श्रीकर, स्वस्तिक, महापद्म, पद्मकूट और विजय—ये पन्द्रह (आकृति के आधार पर मन्दिर के नाम) हैं ॥ ६८-६९ ॥

अपरान् पञ्चदश मन्दरादीन् निर्वक्ति—**मन्दर** इत्यादि। मन्दरः, ऋक्षमाली, द्युमणिः, चन्द्रशेखरः, माल्यवान्, पारियात्रः, रत्नशीर्षः, धातुमान्, पद्मकोशः, पुष्पहासः, श्रीकरः, स्वस्तिकाभिधः स्वस्तिक इति प्रसिद्धः महापद्मः, पद्मकूटः तथा विजयाभिधः विजय इति प्रसिद्धः षोडशः ॥ ६८-६९ ॥

तन्मण्डपश्च तत्तुल्यः पादन्यूनोच्छ्रितः पुरः।
स्वाराध्यदेवताध्यानैः प्रतिमास्तेषु योजयेत् ॥ ७० ॥

अन्वयः—तत् मण्डपः तत्तुल्यः पादन्यूनोच्छ्रितः पुरः। तेषु स्वाराध्यदेवताध्यानैः प्रतिमाः योजयेत् ॥ ७० ॥

व्याख्या—तत् = तेषु मेर्वादयेषु, मण्डपः = देवगृहम्, तत् = तेषाम्, देवानाम्, तुल्यः = सदृशः, पादन्यूनोच्छ्रितः = चतुर्थांशेन हीनोन्नतः, पुरः = अग्रे कार्यः। तेषु = मण्डपेषु, स्वाराध्यायाः—स्वस्य = आत्मनः, आराध्यायाः = पूजनीयस्य, देवताध्यानैः = आराध्यानुचिन्तनैः, प्रतिमाः = तन्मूर्त्तीः, योजयेत् = स्थापयेत् ॥ ७० ॥

हिन्दी—उन मन्दिरों के मण्डप उन्हीं के अनुरूप उनकी ऊँचाई से चतुर्थांश कम ऊँचे आगे की ओर बनाना चाहिए। उनमें अपने आराध्य देवताओं के ध्यान के अनुसार देवमूर्त्तियाँ स्थापित करनी चाहिए ॥ ७० ॥

तदिति। तेषु मेरुप्रभृतिषु मण्डपः देवभवनं [illegible] तत्तुल्यः पादन्यूनोच्छ्रितः चतुर्थांशेन

हीनोच्छ्रायः पुरः पुरतः अग्रे कार्य्य इति शेषः, अत्र मण्डप इति पुंलिङ्गनिर्देश आर्षः। तेषु मण्डपेषु स्वाराध्यायाः देवतायाः ध्यानैः चिन्तनैः प्रतिमाः योजयेत् विन्यसेत् ॥७०॥

ध्यानयोगस्य संसिद्ध्यै प्रतिमालक्षणं स्मृतम्।
प्रतिमाकारको मर्त्त्यो यथा ध्यानरतो भवेत्।
तथा नान्येन मार्गेण प्रत्यक्षेणापि वा खलु ॥७१॥

अन्वयः—ध्यानयोगस्य संसिद्ध्यै प्रतिमाकारकः मर्त्यः यथा ध्यानरतो भवेत् तथा प्रतिमालक्षणं स्मृतम्। तथा अन्येन मार्गेण प्रत्यक्षेणापि न खलु ॥७१॥

व्याख्या—ध्यानयोगस्य = मोक्षोपायस्य, संसिद्ध्यै = सुष्ठुतया निष्पत्त्यै, प्रतिमाकारकः = मूर्त्तिकारः, मर्त्यः = मानवः, यथा = येन प्रकारेण, ध्यानरतः = अनुचिन्तनतत्परः, भवेत् = स्यात्, तथा = तेन रूपेण, प्रतिमायाः = मूर्तेः, लक्षणम् = अभिज्ञानम्, स्मृतम् = कथितम्। अन्येन = एतद्भिन्नेन, मार्गेण = पथा, प्रत्यक्षेणापि = अवलोकितेनापि, न = नहि, खलु = निश्चयेनेति ॥७१॥

हिन्दी—ध्यानयोग की भलीभाँति सिद्धि के लिए प्रतिमा रूपी साधन मुख्य कहा गया है। क्योंकि मूर्त्तिकार मानव जैसे ध्यान में लीन हो जाता है, वैसे निश्चय ही अन्य मार्ग से या प्रत्यक्ष देवदर्शन से भी ध्यान में लीन नहीं हो सकता है ॥७१॥

ध्यानेति। ध्यानयोगस्य संसिद्ध्यै सम्यक् सिद्धये प्रतिमाकारकः प्रतिमानिर्माणकर्त्ता मर्त्त्यः यथा ध्यानपरः भवेत् तथा प्रतिमालक्षणं स्मृतं निरूपितम्, अन्येन मार्गेण पथा प्रकारेणेत्यर्थः, प्रत्यक्षेणापि दृष्टेनापि न खलु नैव ॥७१॥

प्रतिमा सैकती पैष्टी लेख्या लेप्या च मृण्मयी।
वार्क्षी पाषाणधातूत्था स्थिरा ज्ञेया यथोत्तरा ॥७२॥

अन्वयः—प्रतिमा सैकती पैष्टी लेख्या लेप्या मृण्यमयी वार्क्षी पाषाणधातूत्था च यथोत्तरा स्थिरा ज्ञेया ॥७२॥

व्याख्या—प्रतिमा = अनुकृतिः, सैकती = सिकतानिर्मिता, पैष्टी = चूर्णिततण्डुलादिनिर्मिता, लेख्या = चित्रिता, लेप्या = लेपमयी, मृण्मयी = मृत्तिकानिर्मिता, वार्क्षी = काष्ठनिर्मिता, पाषाणनिर्मिता, धातूत्था = धातुनिर्मिता च, यथोत्तरा = पूर्वापेक्षया चोत्तरा, स्थिरा = स्थायिनी, ज्ञेया = बोध्या ॥७२॥

हिन्दी—प्रतिमा बालू की, चावल आदि के पिसान की, चित्र की, लेप की, मिट्टी की, काठ की, पत्थर की और धातु की बनती है। ये उत्तरोत्तर अधिक स्थायी होती हैं ॥७२॥

सम्प्रति प्रतिमाया उपादानान्याह—**प्रतिमेति**। प्रतिमा सैकती सिकतामयी, पैष्टी पिष्टमयी, लेख्या चित्रिता, लेप्या लेपमयी, मृण्मयी, वार्क्षी, दारुमयी, पाषाणमयी, धातूत्था धातुमयी च यथोत्तरा स्थिरा स्थायिनी ज्ञेया, तथा च सैकतीमपेक्ष्य पैष्टी, पैष्टीमपेक्ष्य लेख्या, लेख्यामपेक्ष्य मृण्मयी, मृण्मयीमपेक्ष्य वार्क्षी, वार्क्षीमपेक्ष्य पाषाणमयी, पाषाणमयीमपेक्ष्य धातूमयी स्थिरेति निष्कर्षः ॥७२॥

यथोक्तावयवैः पूर्णा पुण्यदा सुमनोहरा।
अन्यथायुर्धनहरा नित्यं दुःखविवर्द्धिनी ॥७३॥

अन्वयः—यथोक्तावयवैः पूर्णा सुमनोहरा च पुण्यदा। अन्यथा आयुर्धनहरा नित्यं दुःखविवर्धिनी ॥७३॥

व्याख्या—यथोक्तेन = यथाशास्त्रनिर्दिष्टेन, अवयवेन = गात्रेण, पूर्णा = परिपूर्णा, प्रतिमा = मूर्त्तिः, सुमनोहरा = सुष्ठुचेतोहरा, च = पुनः, पुण्यदा = पुण्यप्रदा। अन्यथा = विपरीते सति, आयुः = जीवनम्, धनम् = वित्तञ्च, हरा = हारिणी च, तथा नित्यम् = सततम्, दुःखविवर्द्धिनी = कष्टदायिनी च भवति ॥७३॥

हिन्दी—शास्त्रवर्णित नियम के अनुसार यदि प्रतिमा सर्वाङ्गपूर्ण हो तो वह पुण्य देने वाली एवं मनोहारिणी होती है। अन्यथा निरन्तर दुःख तो बढ़ाती ही है, आयु और धन भी हर लेती है ॥७३॥

यथोक्तेति। यथोक्तेन यथाशास्त्रकथितेन अवयवेन पूर्णा प्रतिमा पुण्यदा सुमनोहरा च। अन्यथा आयुर्धनहरा जीवनहारिणी चेत्यर्थः, तथा नित्यं सततं दुःखविवर्द्धिनी भवति ॥७३॥

देवानां प्रतिबिम्बानि कुर्य्याच्छ्रेयस्कराणि च।
स्वर्ग्याणि मानवादीनामस्वर्ग्याण्यशुभानि च॥७४॥

अन्वयः—देवानां प्रतिबिम्बानि श्रेयस्कराणि च कुर्यात् स्वर्ग्याणि च। मानवादीनाम् अशुभानि अस्वर्ग्याणि चेति ॥७४॥

व्याख्या—देवानाम् = देवतानाम्, प्रतिबिम्बानि = प्रतिरूपाणि, श्रेयस्कराणि = कल्याणसाधकानि, कुर्यात् = सम्पादयेत्, च = पुनः, स्वर्ग्याणि = स्वर्गसाधकानि। मानवादीनाम् = मनुष्यप्रभृतीनां, प्रतिमा, अशुभानि = अमङ्गलानि, अस्वर्ग्याणि = नरकाय, च भवति ॥७४॥

हिन्दी—देवप्रतिमा की स्थापना शुभद एवं स्वर्गसाधक होती है, किन्तु मानवादि की प्रतिमा की स्थापना अमंगलदायक एवं नरक के लिए ही होती है ॥७४॥

देवानामिति। देवानां प्रतिबिम्बानि प्रतिमाः श्रेयस्कराणि शुभकराणि कुर्य्यात्, तानि मानवादीनां स्वर्ग्याणि स्वर्गसाधनानि, अशुभानि तु अस्वर्ग्याणि भवन्तीति शेषः ॥७४॥

मानतो नाधिकं हीनं तद्बिम्बं रम्यमुच्यते॥७५॥

अन्वयः—तद्बिम्बं मानतः अधिकं हीनं वा रम्यं न उच्यते ॥७५॥

व्याख्या—तत् = तेषां देवतानाम्, बिम्बम् = प्रतिमूर्त्तिः, मानतः = परिमाणात्, अधिकम् = प्रभूतम्, हीनम् = न्यूनम्, वा रम्यम् = रमणीयम्, न = नहि, उच्यते = कथ्यते ॥७५॥

हिन्दी—देवप्रतिमा शास्त्रोक्त मान से न अधिक और न कम होने पर ही रमणीय एवं कल्याणकारी होती है ॥७५॥

मानत इति। तद्बिम्बं तेषां देवानां बिम्बं प्रतिमा मानतः परिमाणात् अधिकं हीनं वा रम्यं श्रेयस्करं न उच्यते, तस्मात् यथोक्तानुरूपमेव कर्त्तव्यमिति भावः ॥७५॥

अपि श्रेयस्करं नृणां देवबिम्बमलक्षणम्।
सलक्षणं मर्त्यबिम्बं न हि श्रेयस्करं सदा॥७६॥

अन्वयः—अलक्षणं देवबिम्बं नृणां श्रेयस्करं, किन्तु सलक्षणं मर्त्यबिम्बं सदा नहि श्रेयस्करम् ॥७६॥

व्याख्या—अलक्षणम् = विपरीतलक्षणमपि, देवबिम्बम् = देवतायाः प्रतिमा, नृणाम् = पुरुषाणाम्, श्रेयस्करम् = कल्याणकरं भवति। किञ्च, सलक्षणम् = शुभलक्षणयुक्तमपि, मर्त्यबिम्बम् = मनुष्यमूर्त्तिः, सदा = सततम्, नहि = नैव, श्रेयस्करम् = शुभावहं भवति ॥७६ ॥

हिन्दी—देवप्रतिमा शास्त्रोक्त लक्षणों से रहित होने के बावजूद मनुष्य के लिए कल्याणकारक होती है। किन्तु मनुष्य की प्रतिमा सुलक्षण युक्त होने पर भी सदा कल्याणकारिणी नहीं ही होती है ॥७६ ॥

अपीति। अलक्षणं विरुद्धलक्षणमपि देवबिम्बं देवमूर्त्तिः नृणां श्रेयस्करं, किन्तु सलक्षणं सुष्ठु लक्षणयुक्तमपि मर्त्यबिम्बं मानवप्रतिमूर्त्तिः सदा नहि नैव श्रेयस्करं, तस्मात् मानवप्रतिमूर्त्तिर्नैव रक्षणीयेति भावः ॥७६ ॥

सात्त्विकी राजसी देवप्रतिमा तामसी त्रिधा।
विष्ण्वादीनां च या यत्र योग्या पूज्या तु तादृशी ॥ ७७ ॥

अन्वयः—देवप्रतिमा त्रिधा- सात्त्विकी, राजसी तामसी च। यत्र विष्ण्वादीनां या योग्या तादृशी तु पूज्या ॥७७ ॥

व्याख्या—देवप्रतिमा = देवानां मूर्त्तयः, त्रिधा = त्रिप्रकारकाः भवन्ति, सात्त्विकी = सतोगुणसम्पन्ना, राजसी = रजोगुणसम्पन्ना, तामसी = तमोगुणसमन्विता, च। यत्र = यस्मिन् स्थाने, विष्ण्वादीनाम् = विष्णुप्रभृतीनाम्, या = प्रतिमा, योग्या = अनुरूपा, तादृशी = तदनुरूपा, पूज्या = पूजनीयेति ॥७७ ॥

हिन्दी—विष्णु प्रभृति देवताओं की प्रतिमा तीन तरह की होती हैं—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। फिर जहाँ के लिए जो प्रतिमा उपयुक्त हो वहाँ उसी की पूजा करनी चाहिए ॥७७ ॥

सात्त्विकीति। देवप्रतिमा त्रिधा, सात्त्विकी राजसी तामसी च। यत्र विष्ण्वादीनां विष्णुप्रभृतीनां या मूर्तिः योग्या यदनुरूपा तादृशी पूज्या तदनुरूपा पूजा कार्य्येत्यर्थः ॥७७ ॥

योगमुद्रान्विता स्वस्था वराभयकरान्विता।
देवेन्द्रादिस्तुतनुता सात्त्विकी सा प्रकीर्त्तिता ॥ ७८ ॥

अन्वयः—या योगमुद्रान्विता स्वस्था वराभयकरान्विता देवेन्द्रादिस्तुतनुता सा सात्त्विकी प्रकीर्त्तिता ॥७८ ॥

व्याख्या—या = प्रतिमा, योगमुद्रान्विता—योगस्य = चित्तवृत्तिनिरोधस्य, या मुद्रा = शरीरस्य तदवयवानाञ्च स्थितिविशेषः, तया अन्विता = युक्ता, स्वस्था = स्वभावस्थिता, वराभयकरान्विता = अनुग्रहाभयदानोद्यतभुजा, तथा देवेन्द्रादिभिः = सुरेन्द्रप्रभृतिभिः, स्तुता = ईडिता, नुता = नमस्कृता, सा मूर्त्तिः सात्त्विकी = सतोगुणसम्पन्ना, प्रकीर्त्तिता = कथितेति ॥७८ ॥

हिन्दी—जो प्रतिमा योगमुद्रायुक्त, स्वाभाविक अवस्था में स्थित, वरदान और अभयदान देने की मुद्रा से युक्त हाथों वाली है तथा इन्द्र प्रभृति देवगण जिसकी स्तुति और नुति कर रहे हों, वह प्रतिमा सात्त्विकी कहलाती है ॥७८ ॥

योगमुद्रेति। या मूर्त्तिः योगमुद्रान्विता योगेन युक्त्या मुद्रया यथोक्तभङ्ग्या च अन्विता, स्वस्था स्वभावस्थिता वराभयकरान्विता वरदानाभयदानोद्यतभुजा, तथा देवेन्द्रादिभिः स्तुता नुता प्रणता, सा सात्त्विकी प्रकीर्त्तिता ॥७८ ॥

तिष्ठन्ती वाहनस्था वा नानाभरणभूषिता।
या शस्त्रास्त्राभयवरकरा सा राजसी स्मृता॥७९॥

अन्वयः—या वाहनस्था तिष्ठन्ती नानाभरणभूषिता तथा शस्त्रास्त्राभयकरा, सा राजसी स्मृता॥७९॥

व्याख्या—या = प्रतिमा, वाहने = याने, स्थिता, नानाभरणभूषिता = अनेका- लङ्कारशोभिता, तथा शस्त्रास्त्राभयवरकरा = करैरायुधधारिणी, अभयदायिनी वरदायिनी च, सा = मूर्त्तिः, राजसी = रजोगुणसम्पन्ना, स्मृता = कथितेति॥७९॥

हिन्दी—जो प्रतिमा किसी सवारी पर बैठी हो, अनेक आभूषणों से सुशोभित हो, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो तथा वरदान एवं अभयदान की मुद्रा में हो तो उसे राजसी प्रतिमा कहते हैं॥७९॥

तिष्ठन्तीति। या मूर्त्तिः वाहने सिंहादौ स्थिता नानाभरणभूषिता तथा शस्त्रास्त्राभयवरकरा करैः शस्त्रधारिणी अस्त्रधारिणी अभयदायिनी वरदायिनी चेत्यर्थः, सा राजसी स्मृता॥७९॥

शस्त्रास्त्रैर्दैत्यहन्त्री या ह्युग्ररूपधरा सदा।
युद्धाभिनन्दिनी सा तु तामसी प्रतिमोच्यते॥८०॥

अन्वयः—या शस्त्रास्त्रैः दैत्यहन्त्री सदा उग्ररूपधरा युद्धाभिनन्दिनी सा तामसी प्रतिमा उच्यते॥८०॥

व्याख्या—या = मूर्त्तिः, शस्त्रैः = आयुधैः, अस्त्रैश्च = क्षेपणिभिश्च, दैत्यहन्त्रीम् = दानवविनाशिनीम्, सदा = सततम्, उग्ररूपा = प्रचण्डाकृतिः, युद्धाभिनन्दिनी = समरोत्सुका, सा = मूर्तिः, तामसी = तमोगुणसम्पन्ना, प्रतिमा = मूर्त्तिः, उच्यते = कथ्यते॥८०॥

हिन्दी—जो प्रतिमा हथियार लिए दैत्यों को मारने के लिए तैयार हो, प्रचण्ड रूप धारण करने वाली हो, युद्ध के लिए सदैव समुद्यत हो, उसे तामसी प्रतिमा कहते हैं॥८०॥

शस्त्रास्त्रैरिति। या प्रतिमा शस्त्रैः अस्त्रैश्च दैत्यहन्त्री दितिजसंहारिणी, सदा उग्ररूपधरा भीषणाकृतिः युद्धाभिनन्दिनी समरोत्सुका, सा तामसी उच्यते॥८०॥

सङ्क्षेपतस्तु ध्यानादि विष्ण्वादीनां तथोच्यते।
प्रमाणं प्रतिमानां च तदङ्गानां सुविस्तरम्॥८१॥

अन्वयः—विष्ण्वादीनां ध्यानादिः प्रतिमानां तदङ्गानां सुविस्तरं प्रमाणं सङ्क्षेपतः उच्यते॥८१॥

व्याख्या—विष्ण्वादीनाम् = विष्णुप्रभृतिदेवतानाम्, ध्यामादिः = चित्तस्थैर्यकरणोपायादिः, प्रतिमानाम् = मूर्त्तीनाम्, तदङ्गनाम्—तत = तेषाम्, अङ्गानाम् = शरीरावयवानाम्, सुविस्तृतम् = सुष्ठुतया विस्तारसहितम्, प्रमाणम् = निदर्शनम्, सङ्क्षेपतः = समासेन, उच्यते = कथ्यते॥८१॥

हिन्दी—विष्णु प्रभृति देवताओं का ध्यान तथा उनकी प्रतिमाओं के अङ्गों का जैसा प्रमाण मिलता है, उसका अब संक्षेप में हम वर्णन करते हैं॥८१॥

सङ्क्षेपत इति। विष्ण्वादीनां ध्यानादि, तथा प्रतिमानां तदङ्गानां सुविस्तरं प्रमाणं सङ्क्षेपतः उच्यते॥८१॥

स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थोंऽशो ह्यङ्गुलं परिकीर्त्तितम्।
तदङ्गुलैर्द्वादशभिर्भवेत् तालस्य दीर्घता ॥ ८२ ॥

अन्वयः—स्वस्वमुष्टेः चतुर्थः अंशः अङ्गुलं परिकीर्त्तितम्। तदङ्गुलैः द्वादशभिः तालस्य दीर्घता भवेत् ॥८२ ॥

व्याख्या—स्वस्वमुष्टेः—स्वस्य = आत्मनः, स्वस्य च = आत्मनश्च, मुष्टेः = मुष्टिकायाः, चतुर्थः = तुरीयः, अंशः = भागः, अङ्गुलं, परिकीर्त्तितम् = कथितम्। तदङ्गुलैः—तत् = तैः, अङ्गुलैः = अङ्गुलिभिः, द्वादशभिः = द्वयाधिकदशभिः, दीर्घता = लम्बता, तालस्य = तालाख्यस्य, भवेत् = स्यात् ॥८२ ॥

हिन्दी—अपनी-अपनी मुट्ठी की एक चौथाई एक अंगुल कहलाती है और बारह अंगुलियों की लम्बाई एक ताल मानी जाती है ॥८२ ॥

स्वस्वेति। स्वस्वमुष्टेः आत्मनः मुष्टेः चतुर्थः अंशः अङ्गुलं परिकीर्त्तितम्। द्वादशभिः तैः अङ्गुलैः तालस्य दीर्घता भवेत् तालाख्यं परिमाणं भवेदित्यर्थः ॥८२ ॥

वामनी सप्तताला स्यादष्टताला तु मानुषी।
नवताला स्मृता दैवी राक्षसी दशतालिका ॥ ८३ ॥

अन्वयः—सप्तताला वामनी स्यात्, अष्टताला तु मानुषी, नवताला दैवी तथा दशतालिका राक्षसी स्मृता ॥८३ ॥

व्याख्या—सप्तताला = सप्तहस्तप्रमाणा मूर्त्तिः, वामनी = खर्वा खट्टनी वा, स्यात् = भवेत्, अष्टताला = अष्टतालमिता, तु मानुषी = मानुषीया, प्रतिमा भवति, नवताला = नवतालमिता मूर्त्तिः, दैवी = देवतासम्बन्धिनी भवति, तथा दशतालिका = दशतालमिता प्रतिमा तु, राक्षसी = दानवी, स्मृता = कथिता ॥८३ ॥

हिन्दी—सात ताल ऊँची प्रतिमा वामनी, आठ ताल ऊँची मानुषी, नौ ताल ऊँची दैवी तथा दश ताल ऊँची प्रतिमा दानवी कहलाती है ॥८३ ॥

वामनीति। सप्तताला सप्ततालपरिमिता मूर्त्तिः वामनी स्यात्, अष्टताला तु मानुषी, नवताला दैवी तथा दशतालिका राक्षसी स्मृता ॥८३ ॥

सप्ततालाद्युच्चता वा मूर्त्तीनां देशभेदतः।
सदैव स्त्री सप्तताला सप्ततालश्च वामनः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—वा देशभेदतः मूर्त्तीनां सप्ततालाद्युच्चता। स्त्री सदैव सप्तताला, किञ्च वामनः सप्ततालः ॥८४ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, देशभेदतः = स्थानभेदेन, मूर्त्तीनाम् = प्रतिमानाम्, सप्ततालाद्युच्चता = सप्ततालमितोच्चता। तथा च स्त्री = देवीनां प्रतिमा, सदैव = सर्वस्मिन् काले स्थाने वा, सप्तताला = सप्ततालपरिमिता एव कार्येति। किञ्च वामनः = विष्णोः वामनमूर्त्तिः, सप्ततालः = सप्ततालपरिमितैव कार्यः ॥८४ ॥

हिन्दी—अथवा देशभेद के कारण ही प्रतिमा की ऊँचाई सात ताल मानी गई है। अन्यथा देवी की मूर्त्ति एवं भगवान् विष्णु की वामन मूर्त्ति सात ताल ऊँची ही मानी गई है ॥८४ ॥

सप्तेति। वा अथवा देशभेदतः देशभेदेन मूर्त्तीनां सप्ततालाद्युच्चता, तथा च कुत्रचित् देशे सप्तताला, कुत्रचित् अष्टताला, क्वचिद्वा नवताला इत्यादि। स्त्री देवमूर्त्तिरित्यर्थः, सदैव सप्तताला सप्ततालपरिमिता कार्य्येति शेषः। किञ्च वामनः वामनमूर्त्तिः विष्णुः सप्ततालः कार्य्य इति शेषः॥ ८४॥

नरो नारायणो रामो नृसिंहो दशतालकः।
दशतालः स्मृतो बाणो बलीन्द्रो भार्गवोऽर्जुनः॥ ८५॥

अन्वयः—नरः नारायणः रामः नृसिंहः दशतालकः। बाणः बली इन्द्रः भार्गवः अर्जुनः दशतालः स्मृतः॥ ८५॥

व्याख्या—नरः= नराख्यो मूर्त्तिभेदः, नारायणः= विष्णुः, रामः= दाशरथिः, नृसिंहः= नरसिंहश्च, एतेषां देवतानां प्रतिमा, दशतालकः= दशतालमितोच्चा, भवितव्या। तथा च बाणः= एतदाख्यः, बली= दैत्यराजः, इन्द्रः= सुरपतिः, भार्गवः= परशुरामः, अर्जुनः= पार्थश्च, एतेषां प्रतिमानाम् उच्चता, दशतालः= दशतालपरिमितमेव भवितव्यम्॥ ८५॥

हिन्दी—नर, नारायण, राम और नृसिंह की प्रतिमा दशताल ऊँची होनी चाहिए तथा बाणासुर, बली, इन्द्र, परशुराम तथा अर्जुन की प्रतिमा भी दस ताल ऊँची होनी चाहिए॥ ८५॥

नर इति। नरः नराख्यः मूर्त्तिभेदः, नारायणः रामः नृसिंहश्च दशतालकः दशतालपरिमितः। तथा बाणः बली इन्द्रः भार्गवः अर्जुनश्च तत्तदाख्यमूर्त्तिभेद इत्यर्थः, दशतालः स्मृतः॥ ८५॥

चण्डी भैरववेतालनरसिंहवराहकाः।
क्रूरा द्वादशतालाः स्युर्हयशीर्षादयस्तथा।
ज्ञेया षोडशताला तु पैशाची वासुरी सदा॥ ८६॥

अन्वयः—चण्डी भैरववैतालनरसिंहवराहकाः तथा हयशीर्षादयः क्रूराः द्वादशतालाः स्युः। पैशाची तथा राक्षसी मूर्त्तिः सदा षोडशताला ज्ञेया॥ ८६॥

व्याख्या—चण्डी= पार्वती, भैरवः= शङ्करः, वैतालः= भूतभेदः, नरसिंहः= विष्णोश्चतुर्थावतारः, वाराहः= शूकरः विष्णोरवतारविशेषः, तथा हयशीर्षादयः= हयग्रीवप्रभृतयः, ये, क्रूराः= भीषणाः, देवमूर्त्तयः, तेषां द्वादशतालाः= द्वादशतालपरिमितोच्चाः, मूर्त्तयः, स्युः= भवेयुरिति। पैशाची= आसुरी, तथा राक्षसी= दानवी प्रतिमा, सदा= सर्वदा, षोडशताला= षडधिकदशतालपरिमिता मूर्त्तिः, ज्ञेया= बोध्या॥ ८६॥

हिन्दी—चण्डी, भैरव, वैताल, नरसिंह, वराह तथा हयग्रीव आदि क्रूर देवताओं की प्रतिमा बारह ताल ऊँची तथा पैशाची और राक्षसी प्रतिमा सोलह ताल ऊँची सदा बनाने को कही गई है॥ ८६॥

चण्डीति। चण्डी, भैरवः, वेतालः, नरसिंहः, वराहः, तथा हयशीर्षादयः क्रूराः भीषणाः मूर्त्तिभेदाः द्वादशतालाः स्युः। पैशाची तथा राक्षसी मूर्त्तिः सदा षोडशताला ज्ञेया॥ ८६॥

हिरण्यकशिपुर्वृत्रो हिरण्याक्षश्च रावणः।
कुम्भकर्णोऽथ नमुचिर्निशुम्भः शुम्भ एव हि।
एते षोडशतालाः स्युर्महिषो रक्तबीजकः॥ ८७॥
पञ्चतालाः स्मृता बालाः षट्तालाश्च कुमारकाः॥ ८८॥

अन्वयः—हिरण्यकशिपुः वृत्रः हिरण्याक्षः रावणः कुम्भकर्णः नमुचिः निशुम्भः शुम्भः माहिषः तथा रक्तबीजकः एते षोडशतालाः स्युः। बालाः पञ्चतालाः तथा कुमारकाः षट्तालाः स्मृताः ॥ ८७-८८ ॥

व्याख्या—हिरण्यकशिपुः = हिरण्याक्षभ्राता, प्रह्लादस्य पिता दैत्यविशेषः, वृत्रः = वृत्रासुरः, हिरण्याक्षः = हिरण्यकशिपोः भ्राता, रावणः = लङ्काधिपतिः, कुम्भकर्णः = रावणभ्राता, नमुचिः = दैत्यविशेषः, निशुम्भः = शुम्भस्य भ्राता, शुम्भः = निशुम्भस्य भ्राता, माहिषः = महिषासुरः, तथा रक्तबीजकः = असुरविशेषः, एते = दानवमूर्त्तिभेदाः, षोडशतालाः = षोडशतालमिताः समुन्नताः, स्युः = भवेयुरिति। बालाः = शिशुप्रतिमाः, पञ्चतालाः = पञ्चतालमितोच्चाः, तथा कुमारकाः = शैशवातिक्रान्ताः प्रतिमाः, षट्तालाः = षट्तालमितोच्चाः, स्मृताः = कथिताः ॥ ८७-८८ ॥

हिन्दी—हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, नमुचि, निशुम्भ, शुम्भ, महिषासुर तथा रक्तबीज—इन सभी असुरों की प्रतिमाएँ सोलह ताल ऊँची होती हैं। बालभाव की प्रतिमा पाँच ताल ऊँची तथा कुमारभाव की प्रतिमा छः ताल ऊँची बनानी चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

हिरण्येति। हिरण्यकशिपुः, वृत्रः, हिरण्याक्षः, रावणः, कुम्भकर्णः, नमुचिः, निशुम्भः, शुम्भः, माहिषः महिषासुरः तथा रक्तबीजकः एते असुरमूर्त्तिभेदाः षोडशतालाः स्युः। किञ्च बालाः शिशुमूर्त्तयः पञ्चतालाः तथा कुमारकाः शैशवातिक्रान्ताः अतरुणाश्च मूर्त्तयः षट्तालाः स्मृताः ॥ ८७-८८ ॥

दशताला कृतयुगे त्रेतायां नवतालिका।
अष्टताला द्वापरे तु सप्तताला कलौ स्मृता ॥ ८९ ॥

अन्वयः—कृतयुगे दशताला, त्रेतायां नवतालिका, द्वापरे अष्टताला, कलौ तु सप्तताला स्मृता ॥ ८९ ॥

व्याख्या—कृतयुगे = सत्ययुगे, देवमूर्त्तिः, दशताला = दशतालपरिमितोच्चा, त्रेतायाम् = त्रेतायुगे, देवमूर्त्तिः, नवतालिका = नवतालपरिमितोच्चा, द्वापरे = द्वापरयुगे, अष्टताला = अष्टतालपरिमितोच्चा मूर्त्तिः, कलौ = कलियुगे, सप्तताला = सप्ततालोच्चा मूर्त्तिः स्युरिति ॥ ८९ ॥

हिन्दी—सत्ययुग में दश ताल ऊँची प्रतिमा, त्रेता में नौ ताल, द्वापर में आठ ताल, कलियुग में सात ताल ऊँची प्रतिमा बनाने का विधान है ॥ ८९ ॥

अथ सामान्येन मूर्त्तिभेदं निरूपयति—**दशेति**। कृतयुगे सत्ये मूर्त्तिः दशताला, त्रेतायां नवतालिका, द्वापरे अष्टताला, कलौ सप्तताला स्मृता ॥ ८९ ॥

नवतालप्रमाणे तु मुखं तालिमितं स्मृतम्।
चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादधो नासा तथैव च ॥ ९० ॥

अन्वयः—नवतालप्रमाणे मुखं तालिमितं स्मृतम्। ललाटं चतुरङ्गुलं, तदधः नासा तथैव स्यात् ॥ ९० ॥

व्याख्या—नवतालप्रमाणे = नवतालपरिमितं, प्रतिमानिर्माणे, मुखम् = आननम्, तालिमितम् = एकतालप्रमाणम्, स्मृतम् = कथितम्। ललाटम् = भालम्, चतुरङ्गुलम् = तुरीयाङ्गुलिपरिमितम्, तत् = तस्य, अधः = अधोभागे, नासा = नासिका, तथैव = पूर्वरूपेणैव चतुरङ्गुलेति यावत् ॥ ९० ॥

हिन्दी—यदि नौ ताल ऊँची प्रतिमा हो तो उसका मुख एकताल, उसका ललाट चार अंगुल तथा उसके नीचे नाक तक का भाग दो अंगुल का होना चाहिए ॥९० ॥

नवेति। नवतालप्रमाणे नवतालपरिमितमूर्त्तिनिर्माणे इत्यर्थः, मुखं तालिमितम् एकतालपरिमितं स्मृतं, ललाटं चतुरङ्गुलं, तदधः नासा तथैव चतुरङ्गुला इत्यर्थः स्यात् ॥९० ॥

नासिकाधश्च हन्वन्तं चतुरङ्गुलमीरितम्।
चतुरङ्गुला भवेद् ग्रीवा तालेन हृदयं पुनः ॥९१ ॥

अन्वयः—नासिकाधश्च हन्वन्तं चतुरङ्गुलम् ईरितम्। ग्रीवा च चतुरङ्गुला भवेत्, पुनः हृदयं तालेन ॥९१ ॥

व्याख्या—नासिकाधश्च—नासिकायाः = घ्राणस्य, अधः = निम्नभागे, च = पुनः, हन्वन्तम् = कपोलद्वयपरमुखभागपर्यन्तमं, चतुरङ्गुलम् = चतुरङ्गुलिमितम्, ईरितम् = कथितम्। च = पुनः, ग्रीवा = कण्ठः, चतुरङ्गुला = चतुरङ्गुलिप्रमाणमेव, भवेत्, पुनः = भूयः, हृदयम् = वक्षःस्थलम्; तालेन = तालपरिमाणेन स्यादिति ॥९१ ॥

हिन्दी—नाक के नीचे ठुड्डी तक का भाग चार अंगुल का बनाना चाहिए। फिर चार अंगुल का कंठ तथा एकताल का हृदय होना चाहिए ॥९१ ॥

नासिकाध इति। नासिकाया अधः निम्ने च हन्वन्तं हनुपर्य्यन्तं चतुरङ्गुलम् ईरितम् उक्तम्। ग्रीवा च चतुरङ्गुला भवेत्, हृदयं पुनः वक्षःस्थलन्तु तालेन परिमाणेन भवेदिति शेषः ॥९१ ॥

नाभिस्तस्मादधः कार्य्या तालेनैकेन शोभिता।
नाभ्यधश्च भवेन्मेढ्रं भागेनैकेन वा पुनः ॥९२ ॥

अन्वयः—तस्मादधः एकेन तालेन शोभिता नाभिः कार्या। नाभेः अधः एकेन भागेन मेढ्रं भवेत् ॥९२ ॥

व्याख्या—तस्मात् = वक्षःस्थलात्, अधः = निम्नभागे, एकेन = मात्रैकेन, तालेन = तालप्रमाणेन, शोभिता = भूषिता, नाभिः = उदरावर्त्तः, कार्या = विधेया। नाभेः = तुन्दिकायाः, अधः = अधोभागे, एकेन भागेन = अनुरूपांशेन, मेढ्रम् = लिङ्गम्, भवेत् = स्यात् ॥९२ ॥

हिन्दी—छाती के नीचे एकताल की दूरी पर सुन्दर नाभि का निर्माण करना चाहिए और नाभिकुंड से नीचे लिंग पर्यन्त एक ताल की दूरी होनी चाहिए ॥९२ ॥

नाभिरिति। तस्मात् हृदयात् अधः एकेन तालेन शोभिता शोभना नाभिः कार्य्या। नाभेः अधश्च एकेन भागेन केनचित् अनुरूपेण अंशेन इत्यर्थः मेढ्रं लिङ्गं भवेत् ॥९२ ॥

द्वितालौ ह्यायतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले।
जङ्घे ऊरुसमे कार्य्ये गुल्फाधश्चतुरङ्गुलम् ॥९३ ॥

अन्वयः—ऊरू द्वितालौ आयतौ चतुरङ्गुले जानुनी जङ्घे ऊरुसमे कार्ये, गुल्फाधः चतुरङ्गुलम् ॥९३ ॥

व्याख्या—ऊरू = सक्थिनी, जानूपरिभागौ, द्वितालौ = तालद्वयपरिमितौ, आयतौ = दीर्घौ, जानुनी = ऊरुपर्वणी, चतुरङ्गुले = तुरीयाङ्गुलिप्रमाणे, जङ्घे = टक्किके च, ऊरुसमे = ऊरुतुल्ये

कार्ये, गुल्फयोश्च = घुटिकयोश्च, अधः = निम्नभागे, चतुरङ्गुलम् = अङ्गुलिचतुष्टयपरिमितम्, सम्पाद्यमिति ॥९३ ॥

हिन्दी—दो ताल लम्बी दोनों जाँघें, चार अंगुल परिमित दोनों घुटने, जंघे की तरह ही दोनों घुटने और एडी के ऊपर की गाँठ को चार अंगुल परिमित बनाना चाहिए ॥९३ ॥

द्वितालाविति। ऊरू द्वितालौ तालद्वयपरिमितौ आयतौ दीर्घौ, जानुनी च चतुरङ्गुले, जङ्घे च ऊरुसमे कार्य्ये। गुल्फयोश्च अधः चतुरङ्गुलम् अङ्गुलचतुष्टयपरिमितं कार्य्यमिति शेषः॥९३ ॥

नवतालात्मकमिदमूर्ध्वमानं बुधैः स्मृतम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—इदं नवतालात्मकं बुधैः ऊर्ध्वमानं स्मृतम् ॥९४ ॥

व्याख्या—इदम् = एतत्, नवतालात्मकम् = नवतालपरिमितम्, बुधैः = पण्डितैः, ऊर्ध्वमानम् = प्रतिमायाः उच्चता, स्मृतम् = कथितम् ॥९४ ॥

हिन्दी—इस तरह शास्त्रज्ञों ने नौ ताल ऊँची प्रतिमा का विभागपूर्वक वर्णन किया है ॥९४ ॥

नवेति। इदं नवतालात्मकं बुधैः पण्डितैः ऊर्ध्वमानं दैर्घ्यपरिमाणं स्मृतम् ॥९४ ॥

शिखावधि तु केशान्तं त्र्यङ्गुलं सर्वमानतः ।
दिशानया च विभजेत् सप्ताष्टदशतालिकम् ॥ ९५ ॥

अन्वयः—सर्वमानतः शिखावधि केशान्तं त्र्यङ्गुलम्। अनया दिशा सप्ताष्टदशतालिकं विभजेत् ॥९५ ॥

व्याख्या—सर्वमानतः—सर्वस्मिन् = समग्रे, मानतः = परिमाणे, शिखावधि = जुटिकापर्यन्तम्, केशान्तम् = कचपर्यन्तम्, त्र्यङ्गुलम् = अङ्गुलित्रयमानम्। अनया दिशा = अनेन मार्गेण, नवतालप्रमाणोक्तरीत्या, सप्ताष्टदशतालिकम् = सप्ततालपरिमितम्, अष्टतालमितम्, दशतालप्रमाणञ्च, विभजेत् = त्रैराशिकविधिना विभागं कुर्यात् ॥९५ ॥

हिन्दी—प्रतिमा चाहे जिस माप की हो, सभी मापों में चोटी तक केशों का मान तीन अंगुल ही होना चाहिए। इस तरह सात, आठ और दस ताल ऊँची प्रतिमा का अंग-विभाजन त्रैराशिक नियम से करना चाहिए ॥९५ ॥

शिखावधीति। सर्वमानतः सर्वस्मिन् परिमाणे शिखावधि केशान्तं परिमाणं त्र्यङ्गुलम् अङ्गुलत्रयं ज्ञेयमिति शेषः। अनया दिशा नवतालप्रमाणोक्तया रीत्या इत्यर्थः, सप्ताष्टदशतालिकं सप्ततालप्रमाणम् अष्टतालप्रमाणं दशतालप्रमाणञ्च विभजेत् त्रैराशिकक्रमेण विभक्तं कुर्य्यादित्यर्थः ॥९५ ॥

चतुस्तालात्मकौ बाहू ह्यङ्गुल्यन्तावुदाहृतौ ।
स्कन्धादिकूर्परान्तं च विंशत्यङ्गुलमुत्तमम् ॥ ९६ ॥

अन्वयः—अङ्गुल्यन्तौ बाहू चतुस्तालात्मकौ उदाहृतौ। स्कन्धादिकूर्परान्तं विंशत्यङ्गुलम् उत्तमम् ॥९६ ॥

व्याख्या—अङ्गुल्यन्तौ = अङ्गुलिपर्यन्तम्, चतुस्तालात्मकौ = तालतुरीयपरिमितौ, उदाहृतौ = कथितौ। स्कन्धादिकूर्परान्तम् = भुजमूलात् कूर्परपर्यन्तम्, विंशत्यङ्गुलम् = विंशतिअङ्गुलिपरिमाणम्, उत्तमम् = उत्कृष्टं भवति ॥९६ ॥

हिन्दी–कंधे से लेकर अंगुली तक दोनों बाहों की लम्बाई चार ताल कही गई है। कंधे से केहुनी तक की लम्बाई बीस अंगुल बतलाई गई है ॥९६॥

चतुरिति। अङ्गुल्यन्तौ अङ्गुलिपर्य्यन्तौ बाहू चतुस्तालात्मकौ तालचतुष्टयपरिमितौ उदाहृतौ कथितौ। स्कन्धादि कूर्परान्तं कफोणिपर्य्यतं विंशत्यङ्गुलं विंशत्या अङ्गुलैः परिमितम् उत्तमं ज्ञेयमिति अध्याहार्य्यम् ॥९६॥

त्रयोदशाङ्गुलं चाधः कक्षायाः कूर्परान्तकम्।
अष्टाविंशत्यङ्गुलस्तु मध्यमान्तः करः स्मृतः ॥९७॥

अन्वयः—कक्षायाः अधः कूर्परान्तकं त्रयोदशाङ्गलं मध्यमान्तः अष्टाविंशत्यङ्गुलः करः स्मृतः ॥९७॥

व्याख्या—कक्षायाः = भुजकोटरात्, अधः = अधोभागे, कूर्परान्तकम् = कूर्परपर्यन्तम्, त्रयोदशाङ्गुलम् = त्रयोदशभिः अङ्गुलैः परिमाणं भवेदिति, तथा मध्यमान्तः = मध्यमाऽङ्गुलिपर्यन्तः, अष्टाविंशात्यङ्गुलैः, मितम्, करः = हस्तः, स्मृतः = कथितः इति ॥९७॥

हिन्दी—काँख से लेकर केहुनी तक की लम्बाई तेरह अंगुल होनी चाहिए। केहुनी से लेकर मध्यमा अंगुली तक हाथ की लम्बाई अट्ठाईस अंगुल होनी चाहिए ॥९७॥

त्रयोदशेति। कक्षायाः अधः कूर्परान्तकं कफोणिपर्य्यन्तं त्रयोदशाङ्गुलं त्रयोदशभिरङ्गुलैः परिमितं स्यादित्यर्थः, तथा मध्यमान्तः मध्यामाङ्गुलिपर्य्यन्तः अष्टाविंशत्या अङ्गुलैः परिमितः करः स्मृतः ॥९७॥

सप्ताङ्गुलं करतलं मध्या पञ्चाङ्गुला मता।
सार्द्धत्रयाङ्गुलोऽङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलपर्वभाक् ॥९८॥
पर्वद्वयात्मकोऽन्यासां पर्वाणि त्रीणि त्रीणि तु।
अर्द्धाङ्गुलेनाङ्गुलेन हीनानामा च तर्जनी।
कनिष्ठिकानामिकातोऽङ्गुलोना च प्रकीर्त्तिता ॥९९॥

अन्वयः—करतलं सप्ताङ्गुलं मध्या पञ्चाङ्गुला मता। अङ्गुष्ठः सार्द्धत्रयाङ्गुलः तर्जनीमूलपर्वभाक् पर्वद्वयात्मकः अन्यासां त्रीणि त्रीणि पर्वाणि भवन्ति। अनामा अर्द्धाङ्गुलेन च तर्जनी अङ्गुलेन हीना तथा कनिष्ठिका अङ्गुलोना प्रकीर्त्तिता ॥९८-९९॥

व्याख्या—करतलम् = हस्ततलं प्रहस्तो वा, सप्ताङ्गुलम्—सप्तभिः = ऋषिभिः, अङ्गुलैः = करशाखाभिः, परिमितम्, मध्या = मध्यमा, अङ्गुलिः, पञ्चाङ्गुला = पञ्चभिः अङ्गुलैः मिता, अङ्गुष्ठः = वृद्धाङ्गुलिः, सार्द्धत्रयाङ्गुलः—सार्द्धेन = अर्द्धेन सह अङ्गुलत्रयेण परिमितः, तर्जन्या = अङ्गुष्ठ- समीपाङ्गुल्या, मूलपर्वभाक् = प्रथमपर्वपर्यन्तोन्नतः, पर्वद्वयात्मकः = अङ्गुलिग्रन्थद्वितययुक्तः, भवेत्, अन्यासाम् = तर्जनीप्रभृतीनाम्, त्रीणि त्रीणि, पर्वाणि = ग्रन्थानि, भवन्ति, अनामा = अनामिकाङ्गुलिः, अर्द्धाङ्गुलेन = अर्द्धाङ्गुलपरिमितेन, तर्जनी = प्रदेशिनी, अङ्गुलेन = करशाखया, हीना = न्यूना, मध्यमाया इति। तथा कनिष्ठिका = कनीनी अङ्गुलिस्तु, अनामिकातः = उपकनिष्ठिकाया अङ्गुलोना = एकाङ्गुलेन हीना प्रकीर्त्तिता = कथिता ॥९८-९९॥

हिन्दी—उनमें हथेली सात अंगुल की और मध्यमा अंगुली पाँच अंगुल लम्बी मानी गई

है। अंगूठे की लम्बाई साढ़े तीन अंगुल और तर्जनी के मूल भाग तक पहुँचाने वाली एवं दो पोर वाली होनी चाहिए और अन्य सभी अंगुलियों में तीन पोर होने चाहिए। मध्यमा अंगुली से आधी अंगुली छोटी अर्थात् साढ़े तीन अंगुल लम्बी अनामिका अंगुली और एक अंगुल छोटी तर्जनी अंगुली होनी चाहिए॥९८-९९॥

सप्ताङ्गुलमिति। पर्वद्वयात्मक इति। करतलं सप्ताङ्गुलं सप्तभिरङ्गुलैः परिमितं, मध्या मध्यमा अङ्गुलिः पञ्चाङ्गुला पञ्चभिः अङ्गुलैः परिमिता, अङ्गुष्ठः सार्द्धत्रयाङ्गुलः सार्द्धेन अङ्गुलत्रयेण परिमितः, तर्जन्या मूलपर्वभाक् प्रथमपर्वपर्य्यन्तोन्नतः पर्वद्वयात्मकः पर्वद्वितययुक्तः भवेदिति शेषः। अन्यासां तर्जनीप्रभृतीनां त्रीणि त्रीणि पर्वाणि भवन्ति। अनामा अनामिका अङ्गुलिः अर्द्धाङ्गुलेन, तर्जनी अङ्गुलेन हीना मध्यमाया इति शेषः। तथा कनिष्ठिका कनिष्ठा अङ्गुलिस्तु अनामिकातः अनामायाः अङ्गुलोना एकाङ्गुलहीना प्रकीर्त्तिता॥९८-९९॥

चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ ह्यङ्गुष्ठो द्व्यङ्गुलो मतः।
सार्द्धद्वयाङ्गुलोऽङ्गुष्ठस्तन्मिता वा प्रदेशिनी।
प्रदेशिनी द्व्यङ्गुला तु सार्द्धाङ्गुलमथेतराः॥१००॥

अन्वयः—पादौ चतुर्दशाङ्गुलौ। तत्र अङ्गुष्ठः द्व्यङ्गुलः मतः, गुल्फः सार्द्धद्वयाङ्गुलः प्रदेशिनी तन्मिता वा द्व्यङ्गुला, इतराः सार्द्धाङ्गुलम्॥१००॥

व्याख्या—पादौ = चरणौ, चतुर्दशाङ्गुलौ = चतुरधिकदशाङ्गुलिपरिमितौ, तत्र, अङ्गुष्ठः = वृद्धाङ्गुलिः, द्व्यङ्गुलः = अङ्गुलिद्वयपरिमितः, मतः = कथितः, अङ्गुष्ठः = गुल्फः, सार्द्धद्वयाङ्गुलः = अर्द्धेण सहितमङ्गुलिद्वयपरिमितः, प्रदेशिनी = तर्जनी, तन्मिता = सार्द्धद्वितयाङ्गुलपरिमिता, वा = अथवा, द्व्यङ्गुला = अङ्गुलिद्वितयपरिमिता, इतराः = मध्यमादयः, सार्द्धाङ्गुलम् = अर्द्धेण सहैकाङ्गुलपरिमितेति॥१००॥

हिन्दी—चौदह अंगुल लम्बे दोनों पैर होने चाहिए। उनमें अगुंठा दो अंगुल लम्बा और तर्जनी भी दो अंगुल प्रमाण की अथवा अँगूठा और तर्जनी ढाई अंगुल प्रमाण की तथा अन्य अंगुलियाँ डेढ़-दो अंगुल प्रमाण की होनी चाहिए॥१००॥

चतुर्दशाङ्गुलाविति। पादौ चतुर्दशाङ्गुलौ चतुर्दशाङ्गुलपरिमितौ, तत्र अङ्गुष्ठः द्व्यङ्गुलः अङ्गुलद्वयपरिमितः मतः कथितः। गुल्फः सार्द्धद्वयाङ्गुलः सार्द्धद्वितयाङ्गुलपरिमितः। प्रदेशिनी तर्जनी तन्मिता सार्द्धद्वितयाङ्गुलपरिमिता वा द्व्यङ्गुला अङ्गुलद्वयपरिमिता। इतराः मध्यमादयः सार्द्धाङ्गुलं सार्द्धाङ्गुलपरिमिता इत्यर्थः॥१००॥

शिरोज्झितौ पाणिपादौ गूढगुल्फौ प्रकीर्त्तितौ॥१०१॥

अन्वयः—पाणिपादौ शिरोज्झितौ तथा गुल्फौ गूढ़ौ प्रकीर्त्तितौ॥१०१॥

व्याख्या—पाणिपादौ = करचरणौ, शिराभिः = धमनीभिः (Vein), उज्झितौ = रहितौ, तथा गुल्फौ = घुण्टकौ, गूढौ = प्रच्छन्नौ, प्रकीर्त्तितौ = कथितौ॥१०१॥

हिन्दी—हाथ और पैरों का निर्माण ऐसा होना चाहिए जिनमें नसें और गाँठें न दीख पड़ें॥१०१॥

शिरोज्झितौ इति। पाणिपादौ शिराभिः उज्झितौ विरहितौ तथा गुल्फौ गूढौ अप्रकाशी प्रकीर्त्तितौ कथितौ॥१०१॥

तद्विज्ञैः प्रस्तुता ये ये मूर्त्तेरवयवाः सदा।
न हीना नाधिका मानात् ते ते ज्ञेयाः सुशोभनाः ॥ १०२ ॥

अन्वयः—ये ये मूर्त्तेः अवयवाः सदा तद्विज्ञैः प्रस्तुताः ते ते मानात् न हीनाः नाधिकाः सुशोभनाः ज्ञेयाः ॥ १०२ ॥

व्याख्या—ये ये = यानि यानि, मूर्तेः = प्रतिमायाः, अवयवाः = अङ्गानि, सदा = नित्यम्, तत् = तेषाम्, विदैः = विज्ञैः, प्रस्तुताः = निर्मिताः, ते ते मानात् = परिमाणात्, न = नहि, हीनाः = न्यूनाः, न = नहि, अधिकाः = विशेषाः, प्रत्युत अनुरूपाः, अत एव सुशोभनाः = आकर्षकाः, ज्ञेयाः = बोध्याः ॥ १०२ ॥

हिन्दी—अच्छे मूर्त्तिकार के द्वारा निर्मित मूर्त्ति के जो-जो अवयव हों वे सब यदि शास्त्रोक्त मान से न कम और न ज्यादे हों, तभी उसे अत्यन्त सुन्दर मानना चाहिए ॥ १० २ ॥

तद्विज्ञैरिति। ये ये मूर्त्तेः अवयवाः अङ्गानि सदा तद्विज्ञैः मूर्त्यभिज्ञैः प्रस्तुताः प्रशंसिताः, ते ते मानात् परिमाणात् न हीना अन्यूना इत्यर्थः, तथा नाधिकाः अनधिकाः अनुरूपा इत्यर्थः, अत एव सुशोभनाः ज्ञेयाः ॥ १० २ ॥

न स्थूला न कृशा वापि सर्वे सर्वमनोरमाः ॥ १०३ ॥

अन्वयः—किञ्च सर्वे न स्थूलाः तथा न कृशाश्चेत् सर्वमनोरमाः भवन्ति ॥ १० ३ ॥

व्याख्या—किञ्च, सर्वे = सकलाङ्गानि, न = नहि, स्थूलाः = तुन्दिलाः, तथा = तेनैव प्रकारेण, न = नहि, कृशाः = दुर्बलाः, चेत् = भवेत्, तदा सर्वमनोरमाः = सर्वेषां हृदयहारिणी भवन्ति ॥

हिन्दी—और प्रतिमा के सभी अवयव यदि न अधिक मोटे हों और न अधिक पतले, तभी हर तरह से उन्हें सुन्दर मानना चाहिए ॥ १० ३ ॥

नेति। किञ्च सर्वे अवयवाः न स्थूलाः तथा न कृशाश्चेत् तथा सर्वमनोरमाः भवन्तीति शेषः ॥ १० ३ ॥

सर्वाङ्गैः सर्वरम्यो हि कश्चिल्लक्षे प्रजायते।
शास्त्रमानेन यो रम्यः स रम्यो नान्य एव हि ॥ १०४ ॥

अन्वयः—कश्चित् लक्षे सर्वाङ्गैः सर्वरम्यः हि प्रजायते, किञ्च शास्त्रमानेन यः रम्यः अन्यः न हि ॥ १० ४ ॥

व्याख्या—कश्चित् = कोऽपि मूर्त्तिभेदः, लक्षे = लक्षसंख्यकावधिमिते, सर्वाङ्गैः = सर्वतोभावेन, रम्यः = मनोरमः, प्रजायते = भवत्येव, हि = यतः, शास्त्रमानेन, = शास्त्रमितेन, यः = या मूर्त्तिः, रम्यः = आकर्षकः, स एव = तदेव, रम्यः = सुन्दरम्, अन्यः = शास्त्रमानविरहितः, न हि = नैव मनोरमो भवति ॥ १० ४ ॥

हिन्दी—लाखों में कोई एक प्रतिमा ही सबके लिए सर्वाङ्गसुन्दर बनती है, परन्तु शास्त्रविधान की दृष्टि से जो सुन्दर है वही सुन्दर है; अन्य नहीं ॥ १० ४ ॥

सर्वाङ्गैरिति। कश्चित् मूर्त्तिभेदः लक्षे लक्षसंख्यकावधिमिते सर्वाङ्गैः सर्वेषां रम्यः मनोरमः प्रजायते हि भवत्येव किन्तु शास्त्रमानेन शास्त्रपरिमाणेन यः रम्यः स एव रम्यः अन्यः शास्त्राप्रमाणेन न हि नैव रम्य इत्यर्थः ॥ १० ४ ॥

एकेषामेव तद्रम्यं लग्नं यत्र च यस्य हृत् ॥ १०५ ॥

अन्वयः—यत्र च यस्य हृत् लग्नं तत् रम्यम् इति एकेषामेव ॥ १०५ ॥

व्याख्या—च = पुनः, यत्र = यस्यां प्रतिमायाम्, यस्य = जनस्य, हृत् = चित्तम्, लग्नम् = आसक्तम्, तत् = सैव प्रतिमा, तस्मै मनोहरा, इति एकेषाम् = केषांश्चित् जनानां मते ॥ १०५ ॥

हिन्दी—कुछ लोगों के विचार में जिसका मन जिस प्रतिमा में लग गया, वही उसके लिए सुन्दर है ॥ १०५ ॥

शास्त्रेति। शास्त्रमानविहीनं शास्त्रीयपरिमाणविरुद्धं यत् प्रतिबिम्बं तत् विपश्चितां विदुषाम् अरम्यं न मनोरममित्यर्थः। यत्र च यस्य हृत् हृदयं लग्नं तत् रम्यम् इति एकेषां केषाञ्चित् मतमिति शेषः ॥ १०५ ॥

शास्त्रमानविहीनं यदरम्यं तद्विपश्चिताम्।
अष्टाङ्गुलं ललाटं स्यात् तावन्मात्रौ भ्रुवौ मतौ ॥ १०६ ॥

अन्वयः—शास्त्रमानविहीनं यत् विपश्चितां तत् अरम्यम्। ललाटम् अष्टाङ्गुलं स्यात्, भ्रुवौ तावन्मात्रौ मतौ ॥ १०६ ॥

व्याख्या—शास्त्रमानविहीनम्—शास्त्रस्य = धर्मग्रन्थस्य, यन्मानम् = परिमाणम्, तेषां विहीनम् = रहितम्, यत् = या मूर्त्तिः, विपश्चिताम् = विदुषाम्, तत् = प्रतिमा, अरम्यम् = अमनोरमा। ललाटम्, तस्याः प्रमाणितायाः मूर्त्तेः, अष्टाङ्गुलम् = अङ्गुल्याष्टपरिमितम्, स्यात् = भवेत्, भ्रुवौ = चिल्लिके, तावन्मात्रौ = अष्टाङ्गुलिपरिमाणौ, मतौ ॥ १०६ ॥

हिन्दी—किन्तु विद्वानों की दृष्टि में जो शास्त्रीय मान के विरुद्ध प्रतिमा बनी है, वही असुन्दर है। वैसे मूर्त्ति का ललाट आठ अंगुल चौड़ा तथा दोनों भौंहें मिलाकर उतनी ही होनी चाहिए ॥ १०६ ॥

अष्टाङ्गुलमिति। ललाटम् अष्टाङ्गुलम् अष्टाङ्गुलपरिमितं स्यात्। भ्रुवौ च तावन्मात्रे अष्टाङ्गुलपरिमाणे मते ॥ १०६ ॥

अर्द्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवायता।
नेत्रे च त्र्यङ्गुलायामे द्व्यङ्गुले विस्तृते शुभे ॥ १०७ ॥

अन्वयः—भ्रुवोः लेखा अर्द्धाङ्गुलमध्ये धनुरिवायता। नेत्रे च त्र्यङ्गुलायामे द्व्यङ्गुले विस्तृते शुभे ॥ १०७ ॥

व्याख्या—भ्रुवोः = भ्रूलतयोः, लेखा = रेखा, मध्ये = मध्यभागे, अर्द्धाङ्गुला = अङ्गुलार्धपरिमिता, तथा धनुरिव = धनुषाकारमिव, आयता = विस्तृता। नेत्रे = नयने, च, त्र्यङ्गुलायामे = अङ्गुलत्रयपरिमितविस्तारे, तथा विस्तृते = दीर्घे च, द्व्यङ्गुले = अङ्गुलिद्वयपरिमितविस्तारे, शुभे = मङ्गलदे च भवति ॥ १०७ ॥

हिन्दी—दोनों भौंहों की चौडाई आधा अंगुल और बीच में धनुष की तरह कुछ ऊपर उठी हुई होनी चाहिए। आँखों की लम्बाई तीन अंगुल और चौड़ाई दो अंगुल तथा देखने में सुन्दर प्रतीत हों ॥ १०७ ॥

अर्द्धाङ्गुलेति। भ्रुवोः लेखा रेखा मध्ये अर्द्धाङ्गुला अङ्गुलार्द्धपरिमिता तथा धनुरिव आयता

विस्तृता। नेत्रे च द्व्यङ्गुलायामे अङ्गुलद्वयदीर्घे तथा विस्तृते विस्तारे च द्व्यङ्गुले अङ्गुलद्वयमिते शुभे शोभने च कार्य्ये इति शेषः॥१०७॥

तारका तत्तृतीयांशा नेत्रयोः कृष्णरूपिणी।
द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्यं नासामूलमथाङ्गुलम्॥१०८॥

अन्वयः—नेत्रयोः तारका कृष्णरूपिणी तत्तृतीयांशा, भ्रुवोर्मध्यं तु द्व्यङ्गुलं, नासामूलञ्च अथाङ्गुलम्॥१०८॥

व्याख्या—नेत्रयोः = नयनयोः, तारका = कनीनिका, कृष्णरूपिणी = असितवर्णा, तत्तृतीयांशः—तत् = तस्य नेत्रस्य, तृतीयांशः = तृतीयभागपरिमिता, कार्या, भ्रुवोः = चिल्लिकयोः, मध्यं तु = मध्यभागं तु, द्व्यङ्गुलम् = अङ्गुलद्वयपरिमितम्, नासामूलञ्च = नासिकायाः मूलभागम्, मूलांशम्, अङ्गुलम् = एकाङ्गुलपरिमितं विधेयमिति भावः॥१०९॥

हिन्दी—दोनों आँखों की काली पुतलियाँ आँखों के तीसरे भाग पर होनी चाहिए और दोनों भौंहों के बीच का भाग दो अंगुल चौड़ा तथा नाक का मूल भाग एक अंगुल चौड़ा होना चाहिए॥१०९॥

तारकेति। नेत्रयोः तारका कृष्णरूपिणी कृष्णवर्णा तत्तृतीयांशा तस्य नेत्रस्य तृतीयांशपरिमिता कार्य्या इति शेषः। भ्रुवोः मध्यन्तु द्व्यङ्गुलं अङ्गुलद्वयपरिमितम्। नासामूलञ्च अङ्गुलम् एकाङ्गुलमितं कार्य्यमिति शेषः॥१०८॥

नासाग्रविस्तरं तद्वद् द्व्यङ्गुलं तद्विलद्वयम्।
शुकनासाकृतिर्नासा पुष्पवद् द्विविधा शुभा॥१०९॥

अन्वयः—नासाग्रविस्तरं द्व्यङ्गुलं तद्वत् तद्विलद्वयं नासा शुकनासाकृतिः पुष्पवद् द्विविधा शुभा॥१०९॥

व्याख्या—नासाग्रविस्तरम् = नासिकायाः प्रसारम्, विस्तारमित्यत्रार्षत्वान्नपुंसकत्वमिति, द्व्यङ्गुलम् = अङ्गुलिद्वयपरिमितम्, तद्वत् = तेनैव प्रकारेण, तत् = तस्य, विलद्वयम् = छिद्रद्वयम्, तथा, नासा = नासिका, शुकनासाकृतिः = कीरनासिकास्वरूपमिव, वा, पुष्पवत् = कुसुमदलमिव, द्विधा = खण्डद्वये विभक्ता, शुभा = मङ्गलप्रदेति॥१०९॥

हिन्दी—नाक के अगले हिस्से का फैलाव दो अंगुल तथा उनके छेदों का विस्तार भी उतना ही होना चाहिए। सुग्गे की नाक की तरह थोड़ी टेढ़ी या सीधी दो में से किसी एक तरह की नाक की बनावट होनी चाहिए॥१०९॥

नासेति। नासाग्रस्य विस्तरं (क्लीबत्वमार्षं बोध्यं) द्व्यङ्गुलं तद्वत् तथा तस्य विलद्वयञ्च द्व्यङ्गुलमित्यर्थः। नासा नासिका शुकस्य पक्षिणः नासाकृतिः पुष्पवत् पुष्पाकृतिश्च इति द्विविधा शुभा शुभकरी॥१०९॥

निष्पावसदृशं नासापुटयुग्मं सुशोभनम्॥११०॥

अन्वयः—निष्पावसदृशं नासापुटयुग्मं सुशोभनम्॥११०॥

व्याख्या—निष्पावसदृशम्—निष्पावेण = वस्तुविशेषेण, सदृशम् = तुल्यम्, नासापुटयोः = नासिकाछिद्रयोः, युग्मम् = द्वयम्, सुशोभनम् = अतिसुन्दरम्॥११०॥

हिन्दी—दोनों नासापुट निष्पाव (द्रव्य-विशेष) की तरह अत्यन्त सुन्दर बनाना चाहिए ॥११० ॥

निष्पावेति। निष्पावेण शस्यविशेषेण सदृशं 'नासापुटयोः युग्मं द्वयं सुशोभनम् अतिसुन्दरम् ॥ ११० ॥

कर्णौ च भ्रूसमौ ज्ञेयौ दीर्घौ च चतुरङ्गुलौ।
कर्णपाली त्र्यङ्गुला स्यात् स्थूला चार्द्धाङ्गुला मता ॥ १११ ॥

अन्वयः—कर्णौ भ्रूसमौ दीर्घौ च चतुरङ्गुलौ ज्ञेयौ। कर्णपाली त्र्यङ्गुला स्यात्, स्थूला च अर्द्धाङ्गुला मता ॥ १११ ॥

व्याख्या—कर्णौ = श्रवणेन्द्रियौ, भ्रूसमौ = भ्रूतुल्यौ, दीर्घौ = आयतौ, च = पुनः, चतुरङ्गुलौ = अङ्गुलचतुष्टयपरिमितौ, ज्ञेयौ = बोध्यौ। कर्णपाली = श्रवणायतनम्, त्र्यङ्गुला = अङ्गुलत्रयपरिमिता, स्यात् = भवेत्, तथा स्थूला = स्थूलतायाम्, अर्द्धाङ्गुला = अङ्गुल्यार्द्धपरिमिता, मता = कथिता ॥ १११ ॥

हिन्दी—दोनों कान भी भौंहों के समान ही चार-चार अंगुल लम्बे होने चाहिए। कर्णपाली तीन अंगुल लम्बी और आधी अंगुल मोटी होनी चाहिए ॥ १११ ॥

कर्णाविति। कर्णौ भ्रूसमौ भ्रूभ्यां सदृशौ दीर्घौ चतुरङ्गुलौ च स्याताम्। कर्णपाली कर्णायतनं त्र्यङ्गुला अङ्गुलत्रयपरिमिता स्यात् तथा स्थौल्ये स्थूलतायाम् अर्द्धाङ्गुला मता ॥ १११ ॥

नासावंशस्त्र्यङ्गुलस्तु श्लक्ष्णः सार्द्धाङ्गुलोन्नतः ॥ ११२ ॥

अन्वयः—नासावंशः त्र्यङ्गुलः सार्द्धाङ्गुलोन्नतः श्लक्ष्णः ॥ ११२ ॥

व्याख्या—नासावंशः = नासिकादण्डः, त्र्यङ्गुलः = अङ्गुलित्रयं परिमितम्, सार्द्धाङ्गुलोन्नतः = अर्द्धाङ्गुलपरिमितम्, उन्नतम्, श्लक्ष्णः = चिक्कणः, स्यात् = भवेत् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—नाक की पोर तीन अंगुल लम्बी, डेढ़ अंगुल ऊँची तथा चिकनी होनी चाहिए ॥ ११२ ॥

नासेति। नासावंशः नासिकादण्डः त्र्यङ्गुलः अङ्गुलत्रयपरिमितः सार्द्धाङ्गुलोन्नतः श्लक्ष्णश्चिक्कणश्च स्यात् ॥ ११२ ॥

ग्रीवामूलाच्च स्कन्धान्तमष्टाङ्गुलमुदाहृतम्।
बाह्वन्तरं द्वितालं स्यात् तालमात्रं स्तनान्तरम् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—ग्रीवामूलात् स्कन्धान्तम् अष्टाङ्गुलम् उदाहृतम्। बाह्वन्तरं द्वितालं स्यात्, स्तनान्तरं तालमात्रम् ॥ ११३ ॥

व्याख्या—ग्रीवामूलात् = कन्धरब्रध्नात्, स्कन्धान्तम् = भुजमूलपर्यन्तम्, अष्टाङ्गुलम् = अङ्गुलाष्टकपरिमितम्, अवकाशमुदाहृतम् = कथितम्। किञ्च बाह्वन्तरम्—बाह्वोः = भुजयोः, अन्तरम् = दूरता, द्वितलम् = तालद्वयपरिमितम्, स्यात् = भवेत्, स्तनान्तरम्—स्तनयोः = कुचयोः, अन्तरम् = पार्थक्यम्, तालमात्रम् = एकतालमेव, स्यात् = भवेत् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—गर्दन की जड़ से कंधे तक की दूरी आठ अंगुल होनी चाहिए। दोनों बाँहों के बीच अर्थात् छाती की चौड़ाई दो ताल होनी चाहिए। दोनों स्तनों के बीच की दूरी एक ताल होनी चाहिए ॥ ११३ ॥

ग्रीवेति। ग्रीवामूलात् स्कन्धान्तं स्कन्धपर्य्यन्तम् अष्टाङ्गुलम् उदाहृतं कथितम्। किञ्च बाह्वोः भुजयोरन्तरं वक्ष इत्यर्थः, द्वितालं तालद्वयपरिमितं तथा स्तनयोरन्तरं मध्यभागः तालमात्रम् एकतालपरिमितं स्यात् ॥ ११३ ॥

षोडशाङ्गुलमात्रं तु कर्णयोरन्तरं स्मृतम्।
कर्णहन्वग्रान्तरं तु सदैवाष्टाङ्गुलं मतम् ॥ ११४ ॥

अन्वयः—कर्णयोरन्तरं षोडशाङ्गुलमात्रं स्मृतम्। कर्णहन्वग्रान्तरं सदैव अष्टाङ्गुलं मतम् ॥११४॥

व्याख्या—कर्णयोः= उभयोः श्रवणयोः, अन्तरम्=पार्थक्यम्, षोडशाङ्गुलमात्रं =षोडशाङ्गुलप्रमाणमेव, स्मृतम् = कथितम्। किञ्च कर्णस्य=श्रोत्रेन्द्रियस्य, हनोः= चिबुकयोः, अग्रस्य=अग्रभागस्य च, अन्तरम्=अन्तरालम्, सदैव=सर्वत्र सर्वदैव, अष्टाङ्गुलम्=अङ्गुलाष्टकपरिमितम्, मतम्=प्रोक्तम् ॥ ११४ ॥

हिन्दी—एक कान से दूसरे कान की दूरी सोलह अंगुल होनी चाहिए और कान से ठुड्डी की दूरी सदैव आठ अंगुल होनी चाहिए ॥ ११४ ॥

षोडशेति। कर्णयोरन्तरं मध्यभागः षोडशाङ्गुलमात्रं स्मृतम्। किञ्च कर्णस्य हनोरग्रस्य च अन्तरं सदैव अष्टाङ्गुलम् अङ्गुलाष्टकपरिमितं मतम् ॥ ११४ ॥

नासाकर्णान्तरं तद्वत् तदर्द्धं कर्णनेत्रयोः।
मुखं तालतृतीयांशमोष्ठावर्द्धाङ्गुलौ मतौ ॥ ११५ ॥

अन्वयः—नासाकर्णान्तरं तद्वत्। कर्णनेत्रयोः तदर्द्धं मुखं तालतृतीयांशम्। ओष्ठौ तु अर्द्धाङ्गुलम् ॥ ११५ ॥

व्याख्या—नासाकर्णयोः=नासिकाश्रवणयोः, अन्तरम्=पार्थक्यम्, तद्वत्=पूर्ववदेवाष्टाङ्गुलम्, कर्णनेत्रयोः=श्रवणनयनयोः, तत्=तस्य, अर्द्धम्=अर्द्धभागमर्थाच्चतुरङ्गुलम्, मुखम्=आननम्, तालस्य=पूर्वोक्तपरिमाणस्य, तृतीयांशम्=तृतीयभागमेव, ओष्ठौ=अधरौ, अर्द्धाङ्गुलौ=अङ्गुलेरर्द्धभागमेव, मतम्=प्रोक्तम् ॥ ११५ ॥

हिन्दी—नाक और कान के बीच की दूरी उसी तरह आठ अंगुल होनी चाहिए। इसी तरह कान से आँख की दूरी उससे आधा चार अंगुल होनी चाहिए। मुँह की चौडाई एक ताल माप का तीसरा भाग होना चाहिए। दोनों ओठों की दूरी आधा अंगुल होनी चाहिए ॥ ११५ ॥

नासेति। नासाकर्णयोरन्तरं तद्वत् अष्टाङ्गुलमित्यर्थः। कर्णनेत्रयोस्तु अन्तरं तदर्द्धं चतुरङ्गुलमित्यर्थः। मुखं तालस्य उक्तस्य परिमाणस्य तृतीयांशम्। ओष्ठौ तु अर्द्धाङ्गुलौ मतौ ॥ ११५ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलः प्रोक्तः परिधिर्मस्तकस्य च।
दशाङ्गुला विस्तृतिस्तद् द्वादशाङ्गुलदीर्घता ॥ ११६ ॥

अन्वयः—मस्तकस्य परिधिः द्वात्रिंशदङ्गुलः प्रोक्तः। तद्विस्तृतिः दशाङ्गुला, द्वादशाङ्गुलदीर्घता स्यात् ॥ ११६ ॥

व्याख्या—मस्तकस्य=मस्तिष्कस्य, परिधिः=परिवेशः, द्वात्रिंशदङ्गुलः=द्वात्रिंशदङ्गुलपरिमितः, प्रोक्तः=कथितः। तत्=तस्य मस्तकस्य, विस्तृतिः=विस्तारः, दशाङ्गुला=अङ्गुलदशपरिमिता, द्वादशाङ्गुलदीर्घता = तस्य दैर्घ्यं द्वादशाङ्गुलपरिमितम्, स्यादिति ॥ ११६ ॥

हिन्दी—शिर की परिधि बत्तीस अंगुल होनी चाहिए। मस्तक की चौड़ाई दस अंगुल तथा लम्बाई बारह अंगुल होनी चाहिए॥११६॥

द्वात्रिंशदिति। मस्तकस्य परिधिः वेष्टनमित्यर्थः, द्वात्रिंशदङ्गुलः प्रोक्तः कथितः। तदित्यव्ययं, तत् तस्य मस्तकस्येत्यर्थः, विस्तृतिः विस्तारः दशाङ्गुला द्वादशाङ्गुलदीर्घता च दीर्घे द्वादशाङ्गुलता इत्यर्थः, स्यादिति शेषः॥११६॥

ग्रीवामूलस्य परिधिर्द्वाविंशत्यङ्गुलात्मकः।
हृन्मध्यपरिधिर्ज्ञेयश्चतुःपञ्चाशदङ्गुलः ॥११७॥

अन्वयः—ग्रीवामूलस्य परिधिः द्वाविंशत्यङ्गुलात्मकः। हृन्मध्यस्य परिधिः चतुःपञ्चाशदङ्गुलः ज्ञेयः॥११७॥

व्याख्या—ग्रीवामूलस्य = कण्ठाधारस्य, परिधिः = परिवेशः, द्वाविंशतिः अङ्गुलाः, आत्मानः, यस्यार्थात् द्वाविंशत्यङ्गुलपरिमितः। हृन्मध्यस्य = वक्षोमध्यस्य, परिधिः = परिणाहः, चतुःपञ्चाशदङ्गुलः = चतुःपञ्चाशदङ्गुलपरिमितः, ज्ञेयः = बोध्यः॥११७॥

हिन्दी—गर्दन के जड़ की परिधि बाईस अंगुल होनी चाहिए। छाती के मध्य भाग की परिधि चौवन अंगुल होनी चाहिए॥११७॥

ग्रीवेति। ग्रीवामूलस्य परिधिः द्वाविंशतिः अङ्गुलाः आत्मानः यस्य तथोक्तः द्वाविंशत्यङ्गुलपरिमित इत्यर्थः। हृन्मध्यस्य वक्षोमध्यस्येत्यर्थः, परिधिः चतुःपञ्चाशदङ्गुलपरिमित इत्यर्थः॥११७॥

हीनाङ्गुलचतुस्तालपरिधिर्हृदयस्य च।
आस्तनात् पृष्ठदेशान्ता पृथुता द्वादशाङ्गुला॥११८॥

अन्वयः—हृदयस्य परिधिः हीनाङ्गुलचतुस्तालः। आस्तनात् पृष्ठदेशान्ता पृथुता द्वादशाङ्गुला॥११८॥

व्याख्या—हृदयस्य = चित्तस्य, परिधिः = मण्डलम्, हीनाङ्गुलचतुस्तालः = एकाङ्गुलरहिततालचतुष्टयपरिमितः। किञ्च आस्तनात् = स्तनावधि, पृष्ठदेशान्ता = पृष्ठदेशपर्यन्ता, पृथुता = स्थूलता, द्वादशाङ्गुला = द्वादशाङ्गुलपरिमिता, स्यात् = भवेत्॥११८॥

हिन्दी—छाती का घेरा एक अंगुल कम चार तालपरिमित होना चाहिए। छाती से लेकर पीठ तक की मोटाई बारह अंगुल होनी चाहिए॥११८॥

हीनेति। हृदयस्य परिधिः हीनाङ्गुलचतुस्तालः एकाङ्गुलहीनतालचतुष्टयपरिमित इत्यर्थः। किञ्च आस्तनात् स्तनावधि पृष्ठदेशान्ता पृष्ठपर्य्यन्ता पृथुता स्थूलता द्वादशाङ्गुला द्वादशाङ्गुलपरिमिता स्यादित्यर्थः॥११८॥

सार्द्धत्रितालपरिधिः कट्याश्च द्व्यङ्गुलाधिकः।
चतुरङ्गुल उत्सेधो विस्तारः स्यात् षडङ्गुलः॥ ११९॥

अन्वयः—कट्याश्च सार्द्धत्रितालपरिधिः द्व्यङ्गुलाधिकः। उत्सेधः विस्तारः षडङ्गुलः स्यात्॥११९॥

व्याख्या—कट्याश्च = काञ्चीपदस्य च, सार्द्धत्रितालपरिधिः = अर्द्धसहिततालत्रयमितः,

परिधिः = वेष्टनम्, द्व्यङ्गुलाधिकः = अङ्गुलद्वयाधिकः, उत्सेधः = उच्चता, चतुरङ्गुलः = अङ्गुलचतुष्टयमितः, तथा विस्तारः = दीर्घता, षडङ्गुलः = अङ्गुलषट्कमितः, स्यात् = भवेत् ॥ ११९ ॥

हिन्दी—कमर का घेरा दो अंगुल अधिक तीन ताल माप का होना चाहिए। उसकी ऊँचाई चार अंगुल और फैलाव छः अंगुल होना चाहिए ॥ ११९ ॥

सार्द्धेति। कट्यश्च सार्द्धत्रितालपरिधिः अर्द्धसहिततालत्रयमितः परिधिः द्व्यङ्गुलाधिकः अङ्गुलद्वयाधिकः, उत्सेधः उच्छ्रायः चतुरङ्गुलः अङ्गुलचतुष्टयमितः तथा विस्तारः षडङ्गुलः अङ्गुलषट्कमितः स्यात् ॥ ११९ ॥

पश्चाद्भागे नितम्बस्य स्त्रीणामङ्गुलतोऽधिकः ।
बाह्वग्रमूलपरिधिः षोडशाष्टादशाङ्गुलः ॥ १२० ॥

अन्वयः—स्त्रीणां नितम्बस्य पश्चाद्भागे परिधिः अङ्गुलतोऽधिकः। बाह्वग्रमूलपरिधिः षोडशाङ्गुलः अष्टादशाङ्गुलः स्यात् ॥ १२० ॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = देवीप्रतिमानाम्, नितम्बस्य = कटिप्रोथस्य, पश्चाद्भागे = पृष्ठस्याङ्गे, परिधिः = मण्डलम्, अङ्गुलतः = एकाङ्गुलेन, अधिकः = विशेषः, सार्द्धत्रितालपरिमितः, पुरुषमूर्त्तीनान्तु सार्द्धत्रिताल एवेति। बाह्वोः = भुजयोः, अग्रमूलस्य—अग्रस्य = अग्रभागस्य, मूलस्य = आरम्भिकभागस्य च, परिधिः = आवेष्टनम्, क्रमात्, षोडशाङ्गुलपरिमितः, अष्टादशाङ्गुलपरिमितश्च भवति ॥ १२० ॥

हिन्दी—देवीप्रतिमा के नितम्ब के पिछले हिस्से में देवप्रतिमा की अपेक्षा परिधि एक अंगुल अधिक साढे तीन ताल की होनी चाहिए। देवीप्रतिमा की बाँहों के अगले भाग का घेरा सोलह अंगुल तथा बाँहों के मूल भाग का घेरा अठारह अंगुल होना चाहिए ॥ १२० ॥

पश्चादिति। स्त्रीणां देवीमूर्त्तीनां नितम्बस्य पश्चाद्भागे परिधिः अङ्गुलतः एकाङ्गुलेन अधिकः सार्द्धत्रितालपरिमितः पुम्मूर्त्तीनान्तु सार्द्धत्रिताल एव इत्यर्थः। बाहोः अग्रस्य मूलस्य च परिधिः क्रमात् षोडशाङ्गुलः अष्टादशाङ्गुलश्च भवति ॥ १२० ॥

हस्तमूलाग्रपरिधिश्चतुर्दशदशाङ्गुलः ।
पञ्चाङ्गुला पादकरतलयोर्विस्तृतिः स्मृता ॥ १२१ ॥

अन्वयः—हस्तमूलाग्रपरिधिः चतुर्दशदशाङ्गुलः। पादकरतलयोः विस्तृतिः पञ्चाङ्गुला स्मृता ॥ १२१ ॥

व्याख्या—हस्तस्य = करस्य, मूले = प्रारम्भिकभागे, अग्रे = अग्रिमांशे च, परिधिः = वेष्टनम्, क्रमात् चतुर्दशाङ्गुलः = चतुर्दशाङ्गुलपरिमितः, दशाङ्गुलश्च = दशाङ्गुलपरिमितश्च भवति। पादकरतलयोः = चरणहस्ततलयोः, विस्तृतिः = विततिः, पञ्चाङ्गुला = अङ्गुलिपञ्चात्मिका, स्मृता = कथिता ॥ १२१ ॥

हिन्दी—बाँहों की जड़ भाग का घेरा चौदह अंगुल तथा हाथों के आगे का घेरा दस अंगुल का होना चाहिए। तलवा और हथेली का फैलाव पाँच अंगुल होना चाहिए ॥ १२१ ॥

हस्तेति। हस्तस्य मूले अग्रे च परिधिः क्रमात् चतुर्दशाङ्गुलः दशाङ्गुलश्च भवति। पादकरतलयोः चरणस्य करतलस्य च विस्तृतिः विस्तारः पञ्चाङ्गुला अङ्गुलपञ्चकपरिमिता स्मृता ॥ १२१ ॥

ऊरुमूलस्य परिधिर्द्वात्रिंशदङ्गुलात्मकः ।
ऊनविंशत्यङ्गुलः स्यादूर्वग्रपरिधिः स्मृतः ॥ १२२ ॥

अन्वयः—ऊरुमूलस्य परिधिः द्वात्रिंशदङ्गुलात्मकः। ऊर्वोः अग्रयोः परिधिः ऊनविंशत्यङ्गुलः स्यात् ॥ १२२ ॥

व्याख्या—ऊरुमूलस्य = जङ्घामूलस्य, परिधिः = वेष्टनम्, द्वात्रिंशदङ्गुलात्मकः = द्वात्रिंशदङ्गुलिपरिमितः, स्यात्। ऊर्वोः = जङ्घयोः, अग्रयोः = अग्रभागयोः, परिधिः = मण्डलम्, ऊनविंशत्यङ्गुलः = ऊनविंशत्यङ्गुलात्मको भवति ॥ १२२ ॥

हिन्दी—ऊरु के मूल भाग का घेरा बत्तीस अंगुल का तथा उसके अगले हिस्से का घेरा उन्नीस अंगुल का होना चाहिए ॥ १२२ ॥

ऊरुमूलस्येति। ऊरुमूलस्य परिधिः द्वात्रिंशदङ्गुलात्मकः द्वात्रिंशदङ्गुलपरिमितः। ऊर्वोः अग्रयोः परिधिः ऊनविंशत्यङ्गुलः स्यात् ॥ १२२ ॥

जङ्घामूलाग्रपरिधिः षोडशद्वादशाङ्गुलः ।
मध्यमामूलपरिधिर्विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः ॥ १२३ ॥

अन्वयः—जङ्घामूलाग्रपरिधिः षोडशद्वादशाङ्गुलः। मध्यमामूलपरिधिः चतुरङ्गुलः विज्ञेयः ॥ १२३ ॥

व्याख्या—जङ्घामूलस्य = जानुब्रध्नस्य, अग्रस्य = अग्रभागस्य च, परिधिः = वेष्टनम्, क्रमात् षोडशाङ्गुलः = अङ्गुलिषोडशपरिमितः, तथा द्वादशाङ्गुलः = द्वादशाङ्गुलात्मको भवति। मध्यमायाः = मध्यमाङ्गुल्याः, मूलस्य = ब्रध्नस्य, परिधिः = परिवेशः, चतुरङ्गुलः = चतुरङ्गुलात्मकः, विज्ञेयः = ज्ञातव्य इति ॥ १२३ ॥

हिन्दी—जाँघों के मूलभाग का घेरा सोलह अंगुल एवं अगले हिस्से का घेरा बारह अंगुल होना चाहिए। मध्यमा-अंगुलि के मूलभाग की परिधि चार अंगुल की होनी चाहिए ॥ १२३ ॥

जङ्घेति। जङ्घायाः मूलस्य अग्रस्य च परिधिः क्रमात् षोडशाङ्गुलः द्वादशाङ्गुलश्च भवति। मध्यमायाः अङ्गुल्याः मूलपरिधिः चतुरङ्गुलः विज्ञेयः ॥ १२३ ॥

तर्जन्यनामिकामूलपरिधिः सार्द्धत्र्यङ्गुलः ।
कनिष्ठिकायाः परिधिर्मूले त्र्यङ्गुल एव हि ॥ १२४ ॥

अन्वयः—तर्जन्याः अनामिकायाः च मूलपरिधिः सार्द्धत्र्यङ्गुलः। कनिष्ठिकायाः मूले परिधिः त्र्यङ्गुलः एव हि ॥ १२४ ॥

व्याख्या—तर्जन्याः = प्रदेशिन्याः, अनामिकायाश्च = उपकनिष्ठिकायाश्च, मूलस्य = मूलभागस्य, परिधिः = परिवेष्टनम्, सार्द्धत्र्यङ्गुलः = अर्द्धेण सहितमङ्गुलित्रयात्मकः, स्यात्, कनिष्ठिकायाः = कनीन्याः, मूले = मूलभागे, परिधिः = वेष्टनम्, त्र्यङ्गुलः = अङ्गुलित्रयपरिमितिः, एव = इति निश्चयेन, हि ॥ १२४ ॥

हिन्दी—तर्जनी और अनामिका अंगुली के मूल भाग का घेरा साढ़े तीन अंगुल का होना चाहिए। किन्तु कनिष्ठा अंगुलि के मूल भाग की परिधि तीन ही अंगुल की होनी चाहिए ॥ १२४ ॥

तर्जनीति। तर्जन्याः अनामिकायाश्च मूलपरिधिः सार्द्धत्र्यङ्गुलः अर्द्धसहिताङ्गुलत्रयपरिमितः। कनिष्ठिकायाः मूले परिधिः त्र्यङ्गुलः अङ्गुलत्रितयमित एव, हिशब्दः पादपूरणार्थः॥ १२४॥

स्वमूलपरिधेः पादहीनोऽग्रे परिधिः स्मृतः।
हस्तपादाङ्गुष्ठयोश्च चतुःपञ्चाङ्गुलं क्रमात्॥ १२५॥

अन्वयः—स्वमूलपरिधेः पादहीनोऽग्रे परिधिः स्मृतः। हस्तपादाङ्गुष्ठयोः च क्रमात् चतुःपञ्चाङ्गुलम्॥ १२५॥

व्याख्या—स्वमूलपरिधेः—स्वस्य = आत्मनः, मूले = मूलभागे, या परिधिः = परिवेष्टनम्, उक्तः, अग्रे तस्य, पादहीनः = चतुर्थांशन्यूनः, परिधिः = मण्डलम्, स्मृतः = कथितः। हस्तपादाङ्गुष्ठयोः—हस्ताङ्गुष्ठस्य = कराङ्गुष्ठस्य, च = पुनः, पादाङ्गुष्ठस्य = चरणाङ्गुष्ठस्य च, परिधेः = वेष्टनस्य, मानम्, क्रमात् चतुःपञ्चाङ्गुलम् = चतुरङ्गुलं पञ्चाङ्गुलञ्चेति॥ १२५॥

हिन्दी—और प्रत्येक अंगुलियों के अपने-अपने मूलभाग की परिधियों की अपेक्षा अगले हिस्से का घेरा माप में एक चौथाई कम होता है। जैसे मध्यमा के मूल भाग की परिधि चार अंगुल की है तो उसके अग्रभाग की परिधि चतुर्थांशहीन अर्थात् तीन अंगुल की होती है। इसी तरह दूसरी अंगुलियों के लिए भी व्यवस्था है। हाथ तथा पैर के अंगुठे की परिधि क्रमशः चार और पाँच अंगुल की होनी चाहिए॥१२५॥

स्वेति। स्वस्य मूले यः परिधिः उक्त इति शेषः, अग्रे तस्येति शेषः, पादहीनः चतुर्थांशन्यूनः परिधिः स्मृतः, एतच्च अनुक्ताग्रपरिधेरिति बोध्यम्। हस्तपादाङ्गुष्ठयोः हस्ताङ्गुष्ठस्य पादाङ्गुष्ठस्य च परिधेर्मानं क्रमात् चतुःपञ्चाङ्गुलं चतुरङ्गुलं पञ्चाङ्गुलञ्चेत्यर्थः॥ १२५॥

पादाङ्गुलीनां परिधिस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः।
मण्डलं स्तनयोर्नाभेः सार्द्धाङ्गुलमथाङ्गुलम्॥ १२६॥

अन्वयः—पादाङ्गुलीनां परिधिः त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः। स्तनयोः नाभेश्च मण्डलं सार्द्धाङ्गुलम् एकाङ्गुलम्॥ १२६॥

व्याख्या—पादाङ्गुलीनाम् = अङ्गुष्ठस्य पूर्वमुक्तत्वात् तद्व्यतिरिक्तानां चरणाङ्गुलीनाम्, परिधिः = वेष्टनम्, त्र्यङ्गुलः = अङ्गुलित्रयपरिमितम्, समुदाहृतः = कथितः। स्तनयोः = कुचयोः, नाभेश्च = उदरावर्त्तस्य च, मण्डलम् = वेष्टनम्, सार्द्धाङ्गुलम् = अर्द्धेण सहितमङ्गुल्येकपरिमितम्, विज्ञेयमिति॥ १२६॥

हिन्दी—पैरों की अन्य अंगुलियों की परिधि तीन अंगुल की होनी चाहिए। स्तनों का घेरा डेढ़ अंगुल तथा नाभि का घेरा एक अंगुल का होना चाहिए॥ १२६॥

पादाङ्गुलीनामिति। पादाङ्गुलीनाम् अङ्गुष्ठव्यतिरिक्तानामित्यर्थः, अङ्गुष्ठस्य पूर्वमुक्तत्वादिति भावः, परिधिः त्र्यङ्गुलः अङ्गुलत्रयमितः समुदाहृतः। स्तनयोः नाभेश्च मण्डलं परिधिः सार्द्धाङ्गुलम् अर्द्धसहितैकाङ्गुलम् अङ्गुलम् एकाङ्गुलपरिमितञ्च क्रमात् विज्ञेयमिति शेषः॥ १२६॥

सर्वाङ्गानां यथाशोभि पाटवं परिकल्पयेत्।
नोर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिं मीलिताक्षीं प्रकल्पयेत्।
नोग्रदृष्टिन्तु प्रतिमां प्रसन्नाक्षीं विचिन्तयेत्॥ १२७॥

अन्वयः—यथाशोभि तथा सर्वाङ्गानां पाटवं परिकल्पयेत्। ऊर्ध्वदृष्टिम् अधोदृष्टिं मीलिताक्षीं न प्रकल्पयेत्। उग्रदृष्टिं न प्रसन्नाक्षीं प्रतिमां प्रकल्पयेत् ॥ १२७ ॥

व्याख्या—यथाशोभि—यथा = येन प्रकारेण, शोभी = शोभते, तथा सर्वाङ्गानाम् = सकलावयवानाम्, पाटवम् = कौशलम्, परिकल्पयेत् = कल्पनां कुर्यात्। तथा ऊर्ध्वदृष्टिम् = उपर्यवलोकनम्, अधोदृष्टिम् = अधस्ताद्दृग्पातः, मीलिताक्षीम् = निमीलितनयनाम्, न = नहि, प्रकल्पयेत् = रचयेत्। उग्रदृष्टिम् = प्रचण्डाक्षीम्, न = नहि, प्रत्युत प्रसन्नाक्षीम् = निर्मलनयनाम्, प्रतिमाम् = मूर्त्तिम्, प्रकल्पयेत् = रचयेत् ॥ १२७ ॥

हिन्दी—ऊपर या नीचे दृष्टिवाली, मुँदी आँखों वाली, भयानक आँखों वाली प्रतिमा नहीं बनानी चाहिए, प्रत्युत प्रसन्ननयना मूर्त्ति बनानी चाहिए ॥ १२७ ॥

सर्वाङ्गानामिति। यथाशोभि यथा शोभते इत्यर्थः, तथा सर्वाङ्गानां पाटवं सौष्ठवं परिकल्पयेत्। तथा ऊर्ध्वदृष्टिम् अधोदृष्टिं वा मीलिताक्षीं मुद्रितनयनां मूर्तिमिति शेषः, न प्रकल्पयेत्। किञ्च उग्रदृष्टिं भीषणाक्षीं प्रतिमां प्रसन्नाक्षीं प्रसन्ननयनां न विचिन्तयेत् ॥ १२७ ॥

प्रतिमायास्तृतीयांशमर्द्धांशं तत् सुपीठकम् ॥ १२८ ॥

अन्वयः—प्रतिमायाः तत् सुपीठकं तृतीयांशम् अर्द्धांशं वा ॥ १२८ ॥

व्याख्या—प्रतिमायाः = प्रकल्पितमूर्त्तेः, तत् = प्रख्यातम्, सुपीठकम्—सु = सुष्ठु, पीठकम् = आसनम्, तृतीयांशम् = मूर्त्तेरायामस्य भागत्रयपरिमितम्, वा, अर्द्धांशम् = भागार्द्धम्, रचयेत् ॥ १२८ ॥

हिन्दी—प्रतिमा का एक सुन्दर आसन होना चाहिए। आसन का मान प्रतिमा के मान का तृतीयांश या आधा होना चाहिए ॥ १२८ ॥

प्रतिमाया इति। प्रतिमायाः तत् प्रसिद्धमित्यर्थः, सुपीठकं शोभनं पीठम् आसनमित्यर्थः, तृतीयांशम् अर्द्धांशं वा यादृशी प्रतिमा तत्तृतीयांशं वा इत्यर्थः, कल्पयेदिति पूर्वेणान्वयः ॥ १२८ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं द्वारं प्रतिमायाश्चतुर्गुणम्।
एकद्वित्रिचतुर्हस्तं पीठं देवालयस्य च ॥ १२९ ॥

अन्वयः—देवालयस्य द्वारं प्रतिमायाः द्विगुणं त्रिगुणं वा चतुर्गुणम्। पीठञ्च एकद्वित्रिचतुर्हस्तं कल्पनीयम् ॥ १२९ ॥

व्याख्या—देवालयस्य = देवमन्दिरस्य, द्वारम् = अररं प्रतिहारं वा, प्रतिमायाः = मूर्त्तेः, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, त्रिगुणम् = त्रिगुणितम्, वा चतुर्गुणं = चतुर्गुणितम्, निर्मातव्यम्। पीठञ्च = आसनञ्च, एकद्वित्रिचतुर्हस्तम् = एकहस्तम्, द्विहस्तम्, त्रिहस्तम्, चतुर्हस्तं वा, मूर्तिभेदेनासनभेदमपि कथनीयम् ॥ १२९ ॥

हिन्दी—देवमन्दिर का द्वार प्रतिमा के मान से दूना, तिगुना या चौगुना बड़ा बनाना चाहिए और तदनुसार प्रतिमा का आसन एक, दो, तीन या चार हाथ का बनाना चाहिए ॥ १२९ ॥

द्विगुणमिति। देवालयस्य द्वारं प्रतिमायाः द्विगुणं त्रिगुणं वा चतुर्गुणं कर्त्तव्यमिति शेषः। पीठञ्च एकद्वित्रिचतुर्हस्तम् एकहस्तं द्विहस्तं त्रिहस्तं चतुर्हस्तं वा प्रतिमाभेदेन कल्पनीयमिति शेषः ॥ १२९ ॥

पीठतस्तु समुच्छ्रायो भित्तेर्दशकराधिकः।
द्वारात् तु द्विगुणोच्छ्रायः प्रसादस्योद्र्ध्वभूमिभाक्।
शिखरं चोच्छ्रायसमं द्विगुणं त्रिगुणं तु वा॥१३०॥

अन्वयः—भित्तेः समुच्छ्रायः पीठतः दशकराधिकः। प्रासादस्य द्वारात् द्विगुणोच्छ्रायः ऊर्ध्वभूमिभाक् शिखरम् उच्छ्रायेण समं द्विगुणं त्रिगुणं वा कल्पयेत् ॥१३०॥

व्याख्या—भित्तेः=देवालयस्य कुड्यस्य, समुच्छ्रायः=उच्चता, पीठतः=धरातलात्, दशकराधिकः=दशहस्तविशेषः, कार्यः। प्रासादस्य=देवालयस्य, द्वारात्=प्रतीहारात् द्विगुणोच्छ्रायः=द्विगुणितमौन्नत्यम्, ऊर्ध्वभूमिभाक्=उपरितनगामी स्यात्, किञ्च शिखरम्=प्रासादस्योच्चतमो भागः, उच्छ्रायेण=औन्नत्येन, समम्=तुल्यम् अनुरूपं वा, द्विगुणम्=द्विगुणितम्, त्रिगुणम्=त्रिगुणितम्, वा रचयेत् ॥१३०॥

हिन्दी—मन्दिर की दीवारों की ऊँचाई धरातल से दस हाथ अधिक करनी चाहिए। देवालय के ऊपर की भूमि दरवाजे से दूनी ऊँची होनी चाहिए और देवालय का शिखर ऊँचाई के अनुसार दूना या तिगुना होना चाहिए॥१३०॥

पीठत इति। भित्तेः देवगृहस्येति शेषः, समुच्छ्रायः औन्नत्यं पीठतः पीठात् दशकराधिकः दशहस्ताधिकः कार्य्य इति शेषः। प्रासादस्य द्वारात् द्विगुणोच्छ्रायः द्विगुणमौन्नत्यम् ऊद्र्ध्वभूमिभाक् उपरितनगामी स्यात्। किञ्च शिखरं प्रासादस्येति शेषः, उच्छ्रायेण समं सदृशम् अनुरूपमित्यर्थः, द्विगुणं त्रिगुणं वा कल्पयेदिति शेषः॥१३०॥

एकभूमिं समारभ्य सपादशतभूमिकम्।
प्रसादं कारयेच्छक्त्या ह्यष्टास्रं पद्मसन्निभम्।
चतुर्दिङ्मण्डपं वापि चतुःशालं समन्ततः॥१३१॥

अन्वयः—एकभूमिं समारभ्य सपादशतभूमिकम् अष्टास्रम् पद्मसन्निभं चतुर्दिक् मण्डपं समन्ततः चतुःशालं वा प्रासादं शक्त्या कारयेत्॥१३१॥

व्याख्या—एकभूमिम्=कोष्ठैकम्, समारभ्य=प्रारभ्य, सपादशतभूमिकम्=पादाधिकशतकोष्ठपर्यन्तम्, अष्टास्रम्=अष्टकोणम्, पद्मसन्निभम्=कमलमिव, चतुर्दिक्=समन्ततः, मण्डपम्=लघुगृहसमन्वितम्, समन्ततः=सर्वतः, चतुःशालम्=गृहचतुष्टयसमन्वितम्, वा=अथवा, प्रसादम्=भव्यमन्दिरम्, शक्त्या=सामर्थ्यानुसारेण, कारयेत्=निर्माणं कुर्यात्॥१३१॥

हिन्दी—एक मंजिला से लेकर सवा सौ मंजिले तक का अठपहला, कमलदल के समान चारों ओर मण्डपों या महलों से घिरे भव्य मन्दिर का निर्माण यथाशक्ति करवाना चाहिए॥१३१॥

एकभूमिमिति। एकभूमिम् एकां भूमिं समारभ्य सपादशतभूमिकं पादाधिकशतभूमिपर्य्यन्तम् अष्टास्रम् अष्टकोणं पद्मसन्निभं पद्माकारं चतुर्दिङ्मण्डपं चतुर्दिग्वर्त्तिगृहसमन्वितं समन्ततः चतुःशालं गृहचतुष्टययुक्तं वा प्रासादं शक्त्या शक्त्यनुसारेण कारयेत्॥१३१॥

सहस्रस्तम्भसंयुक्तश्चोत्तमोऽन्यः समोऽधमः॥१३२॥

अन्वयः—सहस्रस्तम्भसंयुक्तः उत्तमः अन्यः समः अन्यः अधमः॥१३२॥

व्याख्या—सहस्रेण = दशशतेन, स्तम्भेन = उपस्तम्भेन, संयुक्तः = समन्वितः, प्रासादः, उत्तमः = उत्कृष्टः, अन्यः = ततोऽल्पम्, समम् = सामान्यम्, ततोऽपि न्यूनः, अधमः = निकृष्टो भवति ॥ १३२ ॥

हिन्दी—हजार खम्भों वाला मन्दिर उत्कृष्ट तथा उससे कम खंभों वाला सामान्य तथा उससे भी कम खम्भे वाला प्रासाद निकृष्ट कोटि का होता है ॥ १३२ ॥

सहस्रेति। सहस्रस्तम्भेन संयुक्तः प्रासादः उत्तमः, ततो न्यूनः समः मध्यमः, ततोऽपि न्यूनः अधमः ॥ १३२ ॥

प्रासादे मण्डपे वापि शिखरं यदि कल्प्यते।
स्तम्भास्तत्र न कर्त्तव्या भित्तिस्तत्र सुखप्रदा ॥ १३३ ॥

अन्वयः—प्रासादे मण्डपे वापि यदि शिखरं कल्प्यते, तदा तत्र स्तम्भाः न कर्त्तव्याः, तत्र भित्तिरेव सुखप्रदा ॥ १३३ ॥

व्याख्या—प्रासादे = भव्यमन्दिरे, मण्डपे = भवने, वा = अथवा, यदि = चेत्, शिखरम् = भवनस्योच्चतमो भागः, कल्प्यते, तदा तत्र = तस्मिन् भवने, स्तम्भाः = स्थूलाः, न कर्त्तव्याः, तत्र भित्तिरेव, सुखप्रदा = कल्याणदा भवति ॥ १३३ ॥

हिन्दी—जिस मंदिर य मण्डप पर कंगूरे बनवाना हो तो वहाँ पर खम्भें नहीं लगवाना चाहिए, क्योंकि वहाँ तो दीवार ही सुखप्रद होती है ॥ १३३ ॥

प्रासादे इति। प्रासादे मण्डपे वापि यदि शिखरं कल्प्यते, तदा तत्र स्तम्भाः न कर्त्तव्याः, तत्र भित्तिरेव सुखप्रदा शोभना इत्यर्थः ॥ १३३ ॥

प्रासादमध्यविस्तारः प्रतिमायाः समन्ततः।
षाड्गुणोऽष्टगुणो वापि पुरतो वा सुविस्तरः ॥ १३४ ॥

अन्वयः—प्रासादमध्यसमन्ततः विस्तारः प्रतिमायाः षड्गुणः अष्टगुणो वा पुरतः सुविस्तरः ॥ १३४ ॥

व्याख्या—प्रासादमध्यस्य = मन्दिराभ्यन्तरभागस्य, समन्ततः = सर्वतः, विस्तारः = विस्तृतिः, प्रतिमायाः = देवमूर्त्तेः, षड्गुणः = षड्गुणितः, अष्टगुणः = अष्टगुणितः, वा = अथवा, कल्प्यः, पुरतः = प्रतिमायाः अग्रतः, सुविस्तरः = समधिकप्रसारो विचार्यः ॥ १३४ ॥

हिन्दी—मन्दिर के भीतरी भाग का फैलाव चारों ओर प्रतिमा से छः गुना या आठ गुना अधिक होना चाहिए और मूर्त्ति से आगे सर्वाधिक विस्तार होना चाहिए ॥ १३४ ॥

प्रासादेति। प्रासादमध्यस्य प्रासादाभ्यन्तरभागस्य समन्ततः विस्तारः प्रतिमायाः षड्गुणः अष्टगुणो वा, पुरतः अग्रतस्तु प्रतिमाया इति शेषः, विस्तारः सुविस्तारः समधिकः कल्प्य इति शेषः ॥ १३४ ॥

वाहनं मूर्त्तिसदृशं सार्द्धं वा द्विगुणं स्मृतम्।
यत्र नोक्तं देवताया रूपं तत्र चतुर्भुजम् ॥ १३५ ॥

अन्वयः—वाहनं मूर्त्तिसदृशं सार्द्धं वा द्विगुणं स्मृतम्। यत्र देवतायाः रूपं न उक्तं तत्र चतुर्भुजं ज्ञेयम् ॥ १३५ ॥

व्याख्या—वाहनम् = देवतायाः अध्यारोहणम्, मूर्त्तिसदृशम् = प्रतिमातुल्यम्, सार्द्धम् = अर्द्धेण सहैकम्, वा = अथवा, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, त्रिगुणम् = त्रिगुणितम्, वा = अथवा, स्मृतम् = कथितम्। यत्र = यस्मिन् मन्दिरे, देवतायाः = प्रतिष्ठितमूर्तेः, रूपम् = आकारम्, न = नहि, उक्तम् = प्रोक्तम्, तत्र = तस्मिन् मन्दिरे, चतुर्भुजम्, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ १३५ ॥

हिन्दी—देवता या देवी का वाहन उनकी मूर्त्ति के अनुरूप डेढ़ गुना या दुगुना बड़ा होना चाहिए। जहाँ देव-विग्रह में बाँहों का उल्लेख न हों, वहाँ चार बाँहों वाली मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए ॥ १३५ ॥

वाहनमिति। वाहनं देवताया इति शेषः, मूर्त्तिसदृशं सार्द्धं अर्द्धसहितं वा द्विगुणं मूर्त्तेरिति शेषः, स्मृतं कथितम्। यत्र देवतायाः रूपं न उक्तं तत्र चतुर्भुजं ज्ञेयमिति शेषः ॥ १३५ ॥

अभयं च वरं दद्याद् यत्र नोक्तं यदायुधम्।
अधःकरे तूर्ध्वकरे शङ्खं चक्रं तथाङ्कुशम् ॥ १३६ ॥
पाशं वा डमरुं शूलं कमलं कलसं स्रुवम्।
लड्डुकं मातुलुङ्गं वीणां मालां च पुस्तकम् ॥ १३७ ॥

अन्वयः—यत्र यत् आयुधं न उक्तं तत्र अधःक्करे अभयं वरञ्च, ऊर्ध्वकरे शङ्खं चक्रम् अङ्कुशं पाशं डमरुं शूलं कमलं कलसं स्रुवं लड्डुकं मातुलुङ्गं वीणां मालां वा पुस्तकम् ॥ १३६-१३७ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने, यत् = यस्य देवस्य, आयुधम् = प्रहरणम्, न = नहि, उक्तम् = कथितम्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, अधःक्करे = निम्नहस्ते, अभयम् = निर्भयम्, च = पुनः, वरम् = वरदम्, ऊर्ध्वकरे = उपरिहस्ते, शङ्खम् = कम्बुम्, चक्रम् = अस्त्रभेदः, अङ्कुशम् = सृणिः, पाशम् = वागुराख्यशस्त्रभेदः, डमरुम् = गुटिकाद्वययुक्तो वाद्यभेदः, शूलम् = त्रिशूलम्, कमलम् = पद्मम्, कलसम् = घटः, स्रुवम् = यागावयवविशेषः, लड्डुकम् = मोदकः, मातुलुङ्गम्, वीणा = वल्लकी, मालाम् = स्रक्, वा पुस्तकम्, यथामति दद्यात् ॥ १३६-१३७ ॥

हिन्दी—जहाँ देवता के अस्त्र-शस्त्र का उल्लेख न हो, वहाँ पर नीचे के हाथों में क्रमशः अभय तथा मुद्रा का अंकन करना चाहिए और ऊपर के हाथों में शंख, चक्र, अंकुश, पाश, डमरु, शूल, कमल, कलश, स्रुवा, लड्डू, मातुलुङ्ग, वीणा, माला और पुस्तक का अंकन करना चाहिए ॥ १३६-१३७ ॥

अभयमिति। पाशमिति। यत्र यस्य देवस्य आयुधम् अस्त्रं न उक्तं, तत्र अधःक्करे अभयं वरञ्च यथाक्रमेण, ऊर्ध्वकरे तु शङ्खं चक्रम् अङ्कुशं पाशं डमरुं शूलं कमलं कलसं स्रुवं यज्ञाङ्गविशेषं, लड्डुकं, मातुलुङ्गं, वीणां, माला वा पुस्तकं यथारुचि दद्यात् ॥ १३६-१३७ ॥

मुखानां यत्र बाहुल्यं तत्र पङ्क्त्या निवेशनम्।
तत् पृथग्ग्रीवमुकुटसुमुखं स्वक्षिकर्णयुक् ॥ १३८ ॥

अन्वयः—यत्र मुखानां बाहुल्यं तत्र पङ्क्त्या निवेशनम्। तत् पृथग्ग्रीवमुकुटसुमुखं स्वक्षिकर्णयुक् ॥ १३८ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्मूर्त्तौ, मुखानाम् = आननानाम्, बाहुल्यम् = आधिक्यम्, तत्र = तस्यां प्रतिमायाम्, पङ्क्त्या = श्रेणीक्रमेण, निवेशनम् = स्थापनम्। तत् = तदाननम्, पृथक् =

भिन्नं भिन्नम्, ग्रीवम् = कण्ठम्, मुकुटम् = किरीटम्, सुमुखम् = प्रसन्नवदनम्, स्वक्षिकर्णयुक् = सुलोचनश्रवणान्वितम्, कार्यम् ॥ १३८ ॥

हिन्दी—जिस प्रतिमा में बहुत सारे मुख बनाने हों, वहाँ उन्हें श्रेणीबद्ध बनाना चाहिए। उनके कण्ठ, मुकुट, मुख, आँखें और कानों का भिन्न-भिन्न निर्माण सुन्दर ढंग से होना चाहिए ॥ १३८ ॥

मुखानामिति। यत्र मुखानां बाहुल्यं बहुमुखमित्यर्थः, तत्र पङ्क्त्या श्रेणीक्रमेण निवेशनं मुखानामिति कार्य्यमिति च शेषः। तत् प्रत्येकं मुखमित्यर्थः, पृथग्ग्रीवमुकुटं पृथग्ग्रीवं पृथङ्मुकुटं सुमुखं सुप्रसन्नवदनं स्वक्षिकर्णयुक् शोभननयनकर्णयुतं कार्य्यमिति शेषः ॥ १३८ ॥

भुजानां यत्र बाहुल्यं न तत्र स्कन्धभेदनम् ॥ १३९ ॥

अन्वयः—यत्र भुजानां बाहुल्यं तत्र स्कन्धभेदनं न कुर्यात् ॥ १३९ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्यां प्रतिमायाम्, भुजानाम् = बाहूनाम्, बाहुल्यम् = आधिक्यम्, तत्र = तस्मिन्, स्कन्धस्य = कण्ठस्य, भेदनम् = बाहुल्यम्, नहि, कार्यम् ॥ १३९ ॥

हिन्दी—जिस मूर्त्ति में अनेक बाँहें बनानी हों वहाँ कन्धों की अधिकता नहीं होनी चाहिए ॥ १३९ ॥

भुजानामिति। यत्र भुजानां बाहुल्यं बहुभुजमूर्त्तिरित्यर्थः, तत्र मूर्त्तौ स्कन्धयोः भेदनं बाहुल्यं न कार्य्यम् ॥ १३९ ॥

कूर्परोर्ध्वन्तु सूक्ष्माणि चिपिटानि दृढानि च।
भुजमूलानि कार्य्याणि पक्षमूलानि वै यथा ॥ १४० ॥

अन्वयः—कूर्परोर्ध्वन्तु भुजमूलानि यथा पक्षमूलानि तथा सूक्ष्माणि चिपिटानि दृढानि कार्याणि ॥ १४० ॥

व्याख्या—कूर्परस्य = कफोणेः, ऊर्ध्वन्तु = उपरिभागे तु, भुजमूलानि = बाहुकूपानि, यथा, पक्षयोः = पार्श्वयोः, मूलानि, तथा = तेनैव प्रकारेण, सूक्ष्माणि = गहनानि, चिपिटानि = सपाटानि, दृढानि = सबलानि, कार्याणि = निर्मातव्यानि ॥ १४० ॥

हिन्दी—केहुनी के ऊपर बाँहों की जड़ दोनों बगलों के मूल भाग की तरह सूक्ष्म, चिपटे तथा मजबूत बनानी चाहिए ॥ १४० ॥

कूर्परोर्ध्वमिति। कूर्परस्य कफोणेः ऊर्ध्वन्तु भुजमूलानि यथा पक्षयोः पार्श्वयोः मूलानि, तथा सूक्ष्माणि चिपिटानि दृढानि च कार्य्याणि ॥ १४० ॥

ब्रह्मणस्तु चतुर्दिक्षु मुखानां विनियोजनम् ॥ १४१ ॥

अन्वयः—ब्रह्मणस्तु मुखानां चतुर्दिक्षु विनियोजनम् ॥ १४१ ॥

व्याख्या—ब्रह्मणस्तु = सृष्टिकर्तुस्तु, मुखानाम् = आननानाम्, चतुर्दिक्षु = चतुर्णां दिक्षु, विनियोजनम् = स्थापनम्, कुर्यात् ॥ १४१ ॥

हिन्दी—ब्रह्मा की मूर्त्ति में चारों ओर एक-एक मुख का निर्माण करना चाहिए ॥ १४१ ॥

ब्रह्मण इति। ब्रह्मणस्तु मुखानां चतुर्णां विनियोजनं विनिवेशनं चतुर्दिक्षु कर्त्तव्यं न तु पङ्क्तिक्रमेणेत्यर्थः ॥ १४१ ॥

हयग्रीवो वराहश्च नृसिंहश्च गणेश्वरः।
मुखैर्विना नराकारो नृसिंहश्च नखैर्विना॥ १४२॥

अन्वयः—हयग्रीवः वराहः नृसिंहः गणेश्वरश्च मुखैः विना नराकारः कार्यः। तथा च नृसिंहः नखैश्च विना नराकारः कार्यः ॥ १४२ ॥

व्याख्या—हयग्रीवः = अश्वकण्ठः, वराहः = शूकरमुखम्, नृसिंहः = सिंहमुखम्, गणेश्वरः = गजाननम्, मुखैः = आननैः, विना = विहाय, नराकारः = मनुष्याकृतिः, कार्यः = कर्त्तव्यः। तथा नृसिंहः = नरसिंहस्य मूर्त्तिः, नखैः = नखरैः, विना = विहाय, नराकारः = मानवाकारः, कार्यः = निर्मातव्यः इति ॥ १४२ ॥

हिन्दी—हयग्रीव, वराह, नृसिंह और गणेश्वर—इन चार देवताओं की मूर्त्तियों में मुँह छोड़कर शेष अंगों का निर्माण मानवाकार होना चाहिए। नरसिंह की मूर्त्ति को भी नखों को छोड़कर मानवाकार बनानी चाहिए ॥ १४२ ॥

हयग्रीव इति। हयग्रीवः वराहः नृसिंहः गणेश्वरश्च मुखैर्विना नराकारः मानवाकृतिः कार्य्यः, तथा च हयग्रीवस्य मुखम् अश्वस्येव, वराहस्य मुखं शूकरस्येव, नृसिंहस्य मुखं सिंहस्येव, गणेश्वरस्य मुखं हस्तिन इवेति बोध्यम्। नृसिंहः नखैश्च विना नराकारः कार्य्यः नृसिंहस्य नखाः सिंहस्येवेति भावः ॥ १४२ ॥

तिष्ठतीं सूपविष्टां वा स्वासने वाहनस्थिताम्।
प्रतिमामिष्टदेवस्य कारयेदुक्तलक्षणाम्॥ १४३॥
हीनश्मश्रुनिमेषां च सदा षोडशवार्षिकीम्।
दिव्याभरणवस्त्राढ्यां दिव्यवर्णक्रियां सदा।
वस्त्रैरापादगूढां च दिव्यालङ्कारभूषिताम्॥ १४४॥

अन्वयः—स्वासने तिष्ठतीं सूपविष्टां वाहनस्थितां हीनश्मश्रुनिमेषां सदा षोडशवार्षिकीं दिव्याभरणवस्त्राढ्यां दिव्यवर्णक्रियां वस्त्रैरापादगूढां दिव्यालङ्कारभूषिताम् उक्तलक्षणाम् इष्टदेवस्य प्रतिमां कारयेत् ॥ १४३-१४४ ॥

व्याख्या—स्वासने—स्वस्य = आत्मनः, आसने = उपवेशने, तिष्ठतीम् = विराजतीम्, सूपविष्टाम् = सुखेनोपविशन्तीं वा, वाहने = आरोहणे, सिंहादौ, स्थिताम् = आरूढाम्, हीनश्मश्रुनिमेषाम् = श्मश्रुरहितां निर्निमेषाम्, सदा = सर्वदा, षोडशवार्षिकीम् = तरुणीरूपाम्, दिव्याभरणवस्त्राढ्याम्—दिव्यैः = स्वर्गीयैः, आभरणैः = आभूषणैः, वस्त्राढ्यैः = वसनप्रभृतिभिः, समन्विताम् = संयुक्ताम्, दिव्यवर्णक्रियाम्—दिव्या = स्वर्गीया, वर्णाः = आकृतयः, क्रियाश्च यस्याः ताम्, वस्त्रैः = वसनैः, आपादगूढाम् = चरणपर्यन्तप्रच्छन्नाम्, तथा दिव्यालङ्कारशोभिताम् अलौकिकाभरणभूषिताम्, उक्तलक्षणाम्, देवीप्रतिमां कारयेत् = रचयेत् ॥ १४३ ॥

हिन्दी—अपने आसन पर विराजती अथवा सुखपूर्वक बैठी हुई अथवा वाहन पर स्थित दाढ़ी-मूँछ रहित, पलक न झपकाने वाली, सदा षोडशी, दिव्य आभूषण एवं वस्त्रों वाली, दिव्यवर्ण एवं क्रिया वाली, वस्त्रों से पैर तक ढकी हुई, दिव्य अंलकारों से भूषित, पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त अपने इष्टदेव या देवी की प्रतिमा बनवानी चाहिए ॥ १४३-१४४ ॥

तिष्ठतीमिति। हीनेति। स्वस्य आसने तिष्ठतीं दण्डायमानां सूपविष्टां सुखेन उपविष्टां वा वाहने सिंहादौ स्थितां हीनश्मश्रुनिमेषां श्मश्रुरहितां निर्निमेषाञ्च इत्यर्थः, सदा षोडशवर्षवयस्कां दिव्याभरणवस्त्राढ्यां दिव्यैः आभरणैः वस्त्राद्यैश्च समन्वितां दिव्यवर्णक्रियां दिव्या वर्णाः क्रियाश्च यस्याः तां वस्त्रैः आपादगूढां पादपर्य्यन्तगुप्तां तथा दिव्यालङ्कारशोभिताम् उक्तलक्षणाम् इष्टदेवस्य प्रतिमां कारयेत् ॥ १४३-१४४ ॥

हीनाङ्ग्यो नाधिकाङ्ग्यश्च कर्त्तव्या देवताः क्वचित्।
हीनाङ्गी स्वामिनं हन्ति ह्यधिकाङ्गी च शिल्पिनम् ॥ १४५ ॥

अन्वयः—क्वचित् देवताः हीनाङ्ग्यः अधिकाङ्ग्यश्च न कर्त्तव्याः। हीनाङ्गी स्वामिनं हन्ति, अधिकाङ्गी शिल्पिनं च हन्ति ॥ १४५ ॥

व्याख्या—क्वचित् = कदाचित्, देवताः = देवप्रतिमाः, हीनाङ्ग्यः = अङ्गविहीनाः, अधिकाङ्ग्यश्च = विशेषावयवाश्च, न = नहि, कर्त्तव्याः = रचितव्याः। यतः, हीनाङ्गी = अङ्गविहीनः देवता, स्वामिनम् = कर्त्तारम्, हन्ति = विनाशयति, अधिकाङ्गी = विशेषावयवा, शिल्पिनं घातयति ॥ १४५ ॥

हिन्दी—किसी भी स्थिति में अङ्गविहीन या अधिक अङ्गवाली देवप्रतिमा नहीं पूजनी चाहिए। क्योंकि हीनाङ्गी प्रतिमा निर्माता को तथा विशेष अङ्गवाली प्रतिमा शिल्पि को विनष्ट करती है ॥ १४५ ॥

हीनाङ्ग्य इति। क्वचित् कदाचित् देवताः हीनाङ्ग्यः अङ्गविकलाः अधिकाङ्ग्यश्च न कर्त्तव्याः। हीनाङ्गी देवता स्वामिनं कर्त्तारम्, अधिकाङ्गी च शिल्पिनं हन्ति नाशयति ॥ १४५ ॥

कृशा दुर्भिक्षदा नित्यं स्थूला रोगप्रदा सदा।
गूढसन्ध्यस्थिधमनी सर्वदा सौख्यवर्द्धिनी ॥ १४६ ॥

अन्वयः—कृशा नित्यं दुर्भिक्षदा स्थूला सदा रोगप्रदा गूढसन्ध्यस्थिधमनी सर्वदा सौख्यवर्द्धिनी ॥ १४६ ॥

व्याख्या—कृशा = दुर्बला देवप्रतिमा, नित्यम् = सततम्, दुर्भिक्षदा = अकालप्रदा भवति, स्थूला = तुन्दिला प्रतिमा, सदा = सर्वदा, रोगप्रदा = रोगकारिणी भवति, तथा गूढसन्ध्यस्थिधमनी = गुप्तसन्धिस्थाना, गुप्तास्थिका आवृतशिरा च प्रतिमा, सर्वदा = सदा, सौख्यप्रदा = सुखकारिणी च भवति ॥ १४६ ॥

हिन्दी—दुबली-पतली प्रतिमा दुर्भिक्ष देने वाली होती है, मोटी प्रतिमा रोग देने वाली होती है तथा जिस प्रतिमा का सन्धिस्थल, धमनी और शिरा ढकी और सुपुष्ट होती है, वह सदैव सुखकारिणी होती है ॥ १४६ ॥

कृशेति। कृशा कृशाङ्गी देवता नित्यं दुर्भिक्षदा अभावदायिनी, स्थूला स्थूलाङ्गी सदा रोगप्रदा रोगदायिनी गूढसन्ध्यस्थिधमनी गुप्तसन्धिस्थाना गुप्तास्थिका गुप्तशिरा च सौख्यवर्द्धिनी सुखवृद्धिकरी भवति ॥ १४६ ॥

वराभयाब्जशङ्खाढ्यहस्ता विष्णोश्च सात्त्विकी।
मृगवाद्याभयवरहस्ता सोमस्य सात्त्विकी ॥ १४७ ॥

वराभयाब्जलड्डुकहस्तेभास्यस्य सात्त्विकी।
पद्ममालाभयवरकरा सत्त्वाधिका रवेः ॥ १४८ ॥
वीणालुङ्गाभयवरकरा सत्त्वगुणा श्रियः ॥ १४९ ॥

अन्वयः—विष्णोः वराभयाब्जशङ्खाढ्यहस्ता सात्त्विकी। सोमस्य मृगवाद्याभयवरहस्ता सात्त्विकी। इभास्यस्य वराभयाब्जलड्डुकहस्ता सात्त्विकी। रवेः पद्ममालाभयवरकरा सत्त्वाधिका। श्रियः वीणालुङ्गाभयवरकरा सत्त्वगुणा ॥ १४७-१४९ ॥

व्याख्या—विष्णोः = माधवस्य, वराभयाब्जशङ्खाढ्यहस्ता, करैश्चतुर्भिः, वरम् = अनुग्रहम्, अभयम् = अभीतिकरम्, अब्जम् = कमलम्, शङ्खाढ्यः = कम्बुप्रभृतयः, क्रमेण दधती मूर्त्तिः, सात्त्विकी = सतोगुणप्रधाना कीर्त्तिता। सोमस्य = चन्द्रस्य, मृगवाद्याभयवरहस्ता—भुजचतुष्टयेन, मृगम् = हिरणम्, वाद्यम् = वाद्ययन्त्रम्, अभयम् = अभयदानार्थोत्थितकरम्, वरञ्च = मनोरथ-पूर्त्यर्थवरदकरम्, क्रमेण दधतीति मूर्त्तिः, सात्त्विकी = सतोगुणप्रधाना भवति। इभास्यस्य = गणेशस्य, वराभयाब्जलड्डुकहस्ता—चतुर्भुजेन वरम् = आशीषम्, अभयम् = अभीतकराश्वासनम्, अब्जम् = पद्मम्, लड्डुकम् = मोदकम्, धारयन्ती मूर्त्तिः, सात्त्विकी = सत्त्वगुणप्रधाना भवति। रवेः = सूर्यस्य, पद्ममालाभयवरकरा—भुजचतुष्टयेन पद्मम् = कमलम्, मालां = स्रजाम्, अभयं वरञ्च धृता मूर्त्तिः, सत्त्वाधिका = सात्त्विकी भवति। श्रियः = लक्ष्म्याः, वीणालुङ्गाभयवरकरा—भुजचतुष्टयेन, वीणाम् = वल्लकीम्, लुङ्गम्, अभयम् = अभयमुद्राम्, वरम् = वरदमुद्राम्, धारयन्ती मूर्त्तिः, सत्त्वगुणा = सत्त्वगुणप्रधाना भवति ॥ १४७-१४९ ॥

हिन्दी—विष्णु की जिस मूर्त्ति में क्रम से वर तथा अभय दान की मुद्रा, कमल तथा शंख से युक्त चारों हाथ होते हैं, वह सात्त्विक प्रतिमा कहलाती है। चन्द्रमा की वह मूर्त्ति, जिसके चारों हाथों में क्रमशः मृग, वाद्य, अभय एवं वरद मुद्रा होती है, वह सात्त्विक प्रतिमा होती है। गणेशजी की सात्त्विक प्रतिमा के चारों हाथों में क्रमशः वरदमुद्रा, अभयदानमुद्रा तथा कमल और लड्डु होते हैं। सूर्य की सात्त्विक मूर्त्ति के चारों हाथों में क्रमशः कमल, माला, वरद एवं अभयदान की मुद्रा होती है। लक्ष्मी की सात्त्विक प्रतिमा के चारों हाथों में क्रमशः वीणा, लुङ्ग तथा वरद एवं अभय दान की मुद्रा होती है ॥ १४७-१४९ ॥

वरेत्यादि। विष्णोः वराभयाब्जशङ्खाढ्यहस्ता भुजैश्चतुर्भिर्वरम्, अभयम्, अब्जं पद्मं, शङ्खञ्च क्रमेण दधतीत्यर्थः, मूर्त्तिः सात्त्विकी सत्त्वगुणा। सोमस्य चन्द्रस्य मृगवाद्याभयवरहस्ता भुजचतुष्टयेन मृगं वाद्यम् अभयं वरञ्च क्रमेण दधतीत्यर्थः, मूर्त्तिः सात्त्विकी। इभास्यस्य हस्तिशुण्डस्य गणेशस्य इत्यर्थः, वराभयाब्जलड्डुकहस्ता भुजचतुष्टयेन वरम् अभयम् अब्जं लड्डुकञ्च दधतीत्यर्थः, मूर्त्तिः सात्त्विकी। रवेः सूर्य्यस्य पद्ममालाभयवरकरा भुजचतुष्टयेन पद्मं मालाम् अभयं वरञ्च दधतीत्यर्थः, मूर्त्तिः सत्त्वाधिका सात्त्विकीत्यर्थः। श्रियः लक्ष्म्याः वीणालुङ्गाभयवरकरा भुजचतुष्टयेन वीणां लुङ्गम् अभयं वरञ्च दधतीत्यर्थः, मूर्त्तिः सत्त्वगुणा सात्त्विकीत्यर्थः ॥ १४७-१४९ ॥

शङ्खचक्रगदापद्मैरायुधैरादितः पृथक्।
षट् षड्भेदाश्च मूर्त्तीनां विष्ण्वादीनां भवन्ति हि ॥ १५० ॥

अन्वयः—विष्ण्वादीनां मूर्त्तीनां शङ्खचक्रगदापद्मैः पृथक् आयुधैः आदितः षट् षट् भेदाश्च भवन्ति हि ॥ १५० ॥

व्याख्या—विष्ण्वादीनाम् = लक्ष्मीपतिप्रभृतीनाम्, मूर्त्तीनाम्, शङ्खचक्रगदापद्मैः = कम्बु-चक्रलोहमयशस्त्रकमलैः, पृथक् = भिन्नैः, आयुधैः = प्रहरणैः, आदितः = प्रथमतः, षट् षट्, भेदाः = प्रकाराः, भवन्ति = जायन्ते, हि ॥ १५० ॥

हिन्दी—विष्णु प्रभृति देवताओं की मूर्त्ति के पहले से लेकर चौथे हाथ तक में शंख, चक्र, गदा, पद्म और आयुधों के धारण करने में भिन्नता होने के कारण छः-छः भेद होते हैं ॥ १५० ॥

शङ्खेति। विष्ण्वादीनां मूर्त्तीनां शङ्खचक्रगदापद्मैः पृथक् विभिन्नैः आयुधैरस्त्रैश्च आदितः प्रथमतः षट् षट् भेदाश्च भवन्ति हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ १५० ॥

यथोपाधिप्रभेदेन स्वसंयोगविभागतः ।
समस्तव्यस्तवर्णादिभेदज्ञानं प्रजायते ॥ १५१ ॥

अन्वयः—उपाधिप्रभेदेन यथा स्वसंयोगविभागतः समस्तव्यस्तवर्णादिभेदज्ञानं प्रजायते ॥ १५१ ॥

व्याख्या—उपाधीनाम् = स्वधर्मस्यान्यगततयावभासकवस्तूनां वा नाम्नाम्, प्रभेदेन = प्रकारेण, यथा = इव, स्वसंयोगविभागतः—स्वस्य = आत्मनः, संयोगानाम् = अनेकायुधवाहनादिसंश्लेषाणाम्, विभागेन = पार्थक्येन, समस्तानाम् = सकलानाम्, व्यस्तानाम् = व्यासक्तानाम्, वर्णादीनाम् = जात्यादीनाम्, भेदज्ञानम् = प्रभेदबोधः, प्रजायते = सञ्जायते ॥ १५१ ॥

हिन्दी—मूर्त्तियों की जैसी उपाधि है तदनुसार भेद होने से और वाहन तथा आयुधों के संयोग या अलगाव के कारण पूरा या अलग-अलग रूप से वर्णों का भेद जाना जाता है ॥ १५१ ॥

यथेति। उपाधीनां नाम्नां प्रभेदेन यथा इव स्वसंयोगविभागतः स्वस्य संयोगानां वाहनास्त्रादियोगानां विभागेन पार्थक्येन समस्तानां समग्राणां व्यस्तानाम् एकैकेषाञ्च वर्णादीनां भेदज्ञानं प्रजायते भवति ॥ १५१ ॥

लेख्या लेप्या सैकती च मृण्मयी पैष्टिकी तथा ।
एतासां लक्षणाभावे न कैश्चिद् दोष ईरितः ॥ १५२ ॥

अन्वयः—लेख्या, लेप्या, सैकती, मृण्मयी तथा पैष्टिकी—एतासां लक्षणाभावे कैश्चित् दोषः न ईरितः ॥ १५२ ॥

व्याख्या—लेख्या = चित्रिता, लेप्या = उपलेपनमयी, सैकती = सिकतासमुद्भवा, मृण्मयी = मृत्तिकानिर्मिता, तथा, पैष्टिकी = तण्डुलचूर्णनिर्मिता, एतासाम् = प्रतिमानाम्, लक्षणाभावे—लक्षणस्य = निर्दिष्टस्वरूपस्य, अभावे = अनस्तित्वे सति, कैश्चित् = जनैः, दोषः = अपराधः, न = नहि, ईरितः = कथितः ॥ १५२ ॥

हिन्दी—चित्र, लेप, बालू, मिट्टी तथा चावल के चूरा से निर्मित मूर्त्ति में कोई-कोई शास्त्र-विहित लक्षणों के अभाव में भी दोष नहीं मानते हैं ॥ १५२ ॥

लेख्येति। लेख्या चित्रिता, लेप्या लेपमयी, सैकती सिकतामयी, मृण्मयी मृत्तिकामयी तथा

पैष्टिकी पिष्टमयी च याः प्रतिमाः उक्ताः, एतासां लक्षणाभावे लक्षणस्य अभावे असत्तायां कैश्चित् जनैः दोषः न ईरितः उक्तः, एता यथारुचि कर्त्तव्या इति भावः ॥ १५२ ॥

बाणलिङ्गे स्वयम्भूते चन्द्रकान्तसमुद्भवे ।
रत्नजे गण्डकोद्भूते मानदोषो न सर्वथा ।
पाषाणधातुजायां तु मानदोषान् विचिन्तयेत् ॥ १५३ ॥

अन्वयः—स्वयम्भूते चन्द्रकान्तसमुद्भवे रत्नजे गण्डकोद्भूते च बाणलिङ्गे सर्वथा मानदोषः न। केवलं पाषाणधातुजायाञ्च मानदोषान् विचिन्तयेत् ॥ १५३ ॥

व्याख्या—स्वयम्भूते = आत्मनः एव सम्भूते, चन्द्रकान्तसमुद्भवे = चन्द्रकान्तमणिसम्भूते, रत्नजे = मणिना समुत्पन्ने, गण्डकोद्भूते = गण्डकीनद्यः समुत्पन्ने, च = पुनः, बाणलिङ्गे, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, मानदोषः = परिमाणदोषः, न भवतीति भावः। किञ्च केवलम्, पाषाणमय्याम् = प्रस्तरनिर्मिताम्, धातुजाम् = धातुनिर्मिताम्, मानदोषान् = परिमाणदोषान्, विचिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ १५३ ॥

हिन्दी—स्वयं समुद्भूत, चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न, रत्न से उत्पन्न तथा गण्डक नदी से उत्पन्न शालिग्राम—ये सभी बाणलिङ्ग हैं। इन मूर्त्तियों में पूर्वोक्त मान सम्बन्धी दोषों का सर्वथा विचार नहीं किया जाता है। ये विचार तो केवल पत्थर या धातु निर्मित प्रतिमा में ही विचारना चाहिए ॥ १५३ ॥

बाणलिङ्गे इति। स्वयम्भूते, चन्द्रकान्तसमुद्भवे चन्द्रमणिसम्भूते, रत्नजे, गण्डकोद्भूते च बाणलिङ्गे सर्वथा सर्वप्रकारेण मानदोषः परिमाणदोषः न अस्तीति शेषः। केवलं पाषाणधातुजायां पाषाणमय्यां धातुमय्याञ्च प्रतिमायां मानदोषान् विचिन्तयेत् ॥ १५३ ॥

श्वेतपीतारक्तकृष्णपाषाणैर्युगभेदतः ।
प्रतिमां कल्पयेच्छिल्पी यथारुच्यपरैः स्मृता ॥ १५४ ॥

अन्वयः—शिल्पी युगभेदतः श्वेतपीतारक्तकृष्णपाषाणैः प्रतिमां कल्पयेत्। यथारुचि अपरैः स्मृता ॥ १५४ ॥

व्याख्या—शिल्पी = मूर्त्तिकारः, युगभेदतः = युगभेदानुरूपेण, श्वेतैः = शुक्लवर्णैः, पीतैः = पीतवर्णैः, आरक्तैः = आलोहितैः, कृष्णैः = सितैः, पाषाणैः, प्रतिमाम् = मूर्त्तिम्, कल्पयेत् = रचयेत्। यथारुचि = रुच्यनुरूपेण, अपरैः = काष्ठादिभिः, स्मृता = शास्त्रविहिता प्रतिमेति बोध्या ॥ १५४ ॥

हिन्दी—मूर्त्तिकार गुणभेद के अनुसार सफेद, पीले, थोड़े लाल तथा काले पत्थरों की मूर्त्ति का निर्माण करे। इनसे भिन्न काठ आदि की प्रतिमा अपनी रुचि के अनुसार बनाये ॥ १५४ ॥

श्वेतेति। शिल्पी युगभेदतः युगभेदानुसारेण श्वेतैः पीतैः आरक्तैः आलोहितैः कृष्णैश्च पाषाणैः प्रतिमां कल्पयेत्। यथारुचि अपरैः दार्वादिभिश्च स्मृता शास्त्रे कथिता प्रतिमेति शेषः ॥ १५४ ॥

श्वेता स्मृता सात्त्विकी तु पीता रक्ता तु राजसी ।
तामसी कृष्णवर्णा तु ह्युक्तलक्ष्मयुता यदि ॥ १५५ ॥

अन्वयः—यदि उक्तलक्ष्मयुता (तदा) श्वेता सात्त्विकी स्मृता। पीता रक्ता तु राजसी, कृष्णवर्णा तु तामसी ॥ १५५ ॥

व्याख्या—यदि, उक्तलक्ष्मयुता—उक्तैः= पूर्वकथितैः, लक्ष्मभिः= लक्षणैः, युता= समन्विता, (तदा) श्वेता = सिता, प्रतिमा, सात्त्विकी = सत्त्वगुणसम्पन्ना, स्मृता = कथिता। पीता = पीतवर्णा, रक्ता = लोहिता, प्रतिमा, राजसी कथिता, कृष्णवर्णा = असितप्रस्तरनिर्मिता तु, तामसी प्रतिमा, स्मृता = कथिता ॥ १५५ ॥

हिन्दी—पहले कहे गये लक्षणों से युक्त सफेद प्रतिमा सात्त्विकी होती है। पीत और रक्त वर्ण की प्रतिमा राजसी तथा काले पत्थर की प्रतिमा तामसी होती है ॥ १५५ ॥

श्वेतेति। यदि उक्तैः पूर्वकथितैः लक्षणैः युता, तदा श्वेता श्वेतवर्णा प्रतिमा सात्त्विकी स्मृता। पीता पीतवर्णा रक्ता रक्तवर्णा च राजसी। कृष्णवर्णा तु तामसी स्मृता ॥ १५५ ॥

सौवर्णी राजती ताम्री रैतिकी वा कृतादिषु ॥ १५६ ॥

अन्वयः—कृतादिषु सौवर्णी राजती ताम्री वा रैतिकी ॥ १५६ ॥

व्याख्या—कृतादिषु—कृत आदिर्यस्य, तेषु = सत्यत्रेताद्वापरकलिषु चतुर्षु युगेषु, क्रमेण सौवर्णी = सुवर्णनिर्मिता, राजती = रजतमयी, ताम्री = ताम्रमयी, रैतिकी = पित्तलमयी, प्रतिमा निर्मातव्येति ॥ १५६ ॥

हिन्दी—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में क्रमशः सोने, चाँदी, ताँबा एवं पित्तल की प्रतिमा बनवानी चाहिए ॥ १५६ ॥

सौवर्णीति। कृतादिषु सत्यत्रेताद्वापरकलिषु यथाक्रमं सौवर्णी, राजसी, ताम्री रैतिकी पित्तलमयी ॥ १५६ ॥

शाङ्करी श्वेतवर्णा वा कृष्णवर्णा तु वैष्णवी।
सूर्य्यशक्तिगणेशानां ताम्रवर्णा स्मृतापि च।
लोहसीसमयी वापि यथोद्दिष्टा स्मृता बुधैः ॥ १५७ ॥

अन्वयः—शाङ्करी श्वेतवर्णा वा वैष्णवी कृष्णवर्णा सूर्यशक्तिगणेशानां च ताम्रवर्णा स्मृता। वापि लोहसीसमयी यथोद्दिष्टा बुधैः स्मृताः ॥ १५७ ॥

व्याख्या—शाङ्करी = शङ्करस्य मूर्त्तिः, श्वेतवर्णा = सितवर्णा, वा = अथवा, वैष्णवी = विष्णोः मूर्त्तिः, कृष्णवर्णा = असितवर्णा, सूर्यशक्तिगणेशानाम्—सूर्यस्य = रवेः, शक्तेः = देव्याः, गणेशस्य = विनायकस्य च, मूर्त्तिः, ताम्रवर्णा = लोहितायसवर्णा, स्मृता = कथिता। वाऽपि = अथवा, लोहसीसमयी—लोहमयी = आयसनिर्मिता, सीसमयी = महाबलनिर्मिता, यथा = येन रूपेण, उद्दिष्टा = शास्त्रे निर्देशिता, बुधैः = पण्डितैः, स्मृताः = तथैव कथिताः ॥ १५७ ॥

हिन्दी—शंकर की मूर्त्ति सफेद रंग की, विष्णु की प्रतिमा काले रंग की, सूर्य, शक्ति तथा गणेश की मूर्त्ति ताम्र रंग की अथवा लोहा और सीसे की मूर्त्ति शास्त्र में जैसा कहा गया है ज्ञानीजन वैसे ही बतलाते हैं ॥ १५७ ॥

शाङ्करीति। शाङ्करी शिवमूर्त्तिः श्वेतवर्णा, वैष्णवी विष्णुमूर्त्तिः कृष्णवर्णा, सूर्य्यशक्तिगणेशानां सूर्य्यस्य शक्तेः गणेशस्य च इत्यर्थः, मूर्त्तिः ताम्रवर्णा स्मृता, वापि अथवा लोहसीसमयी लोहमयी सीसमयी च यथा उद्दिष्टा शास्त्रे कथिता तथा बुधैः स्मृताः ॥ १५७ ॥

चलार्चायां स्थिरार्चायां प्रासादाद्युक्तलक्षणाम्।
प्रतिमां स्थापयेन्नान्यां सर्वसौख्यविनाशिनीम्॥ १५८॥

अन्वयः—चलार्चायां वा स्थिरार्चायां प्रासादादिषु उक्तलक्षणां प्रतिमां स्थापयेत्। अन्यां सर्वसौख्यविनाशिनीं न॥१५८॥

व्याख्या—चलार्चायाम्=चरिष्णुपूजायाम्, वा=अथवा, स्थिरार्चायाम्=स्थायीपूजार्थम्, प्रासादादिषु=भव्यमन्दिरेषु, उक्तलक्षणाम्=पूर्ववर्णितशुभलक्षणसम्पन्नाम्, प्रतिमाम्=देवमूर्त्तिम्, स्थापयेत्=स्थापनां कुर्यात्। अन्याम्=पूर्ववर्णितलक्षणहीनां प्रतिमाम्, अत एव सर्वसौख्यविनाशिनीम्=सकलसुखविघातिनीम्, न=कदाचिदपि न, स्थापयेत्॥१५८॥

हिन्दी—थोड़े दिन के लिए हो या बहुत दिनों के लिए पूजनार्थ मन्दिर आदि में पूर्ववर्णित लक्षणों से युक्त प्रतिमा की ही स्थापना करनी चाहिए। इससे भिन्न तरह की मूर्त्ति की स्थापना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह सभी सुखों को विनष्ट कर देती है॥१५८॥

चलार्चायामिति। चलार्चायां स्वल्पदिनवृत्तिपूजायां वा स्थिरार्चायां चिरपूजायां प्रासादादिषु उक्तलक्षणां प्रतिमां स्थापयेत् न अन्याम् उक्तविलक्षणामित्यर्थः, अत एव सर्वसौख्यविनाशिनीम् अखिलसुखविध्वंसिनीं प्रतिमामिति शेषः॥१५८॥

सेव्यसेवकभावेषु प्रतिमालक्षणं स्मृतम्॥ १५९॥

अन्वयः—सेव्यसेवकभावेषु प्रतिमालक्षणं स्मृतम्॥१५९॥

व्याख्या—सेव्यसेवकभावेषु=उपास्योपासकविषयेष्वेव न तु हास्यविनोदार्थेषु, प्रतिमायाः=मूर्त्तेः, लक्षणम्=स्वरूपम्, स्मृतम्=वर्णितम्॥१५९॥

हिन्दी—जहाँ उपास्य-उपासक भाव से प्रतिमा का निर्माण किया जाता है, वहीं के लिए ये सभी लक्षण बतलाये गये हैं; हास्यविनोदहेतु बनने वाली प्रतिमा के लिए नहीं॥१५९॥

सेव्येति। सेव्यसेवकभावेषु विषयेषु न तु आमादप्रमोदार्थेपु तत्र यथेच्छकल्पनासम्भवादिति भावः, प्रतिमाया लक्षणम् उक्तरूपं स्मृतं कथितम्॥१५९॥

प्रतिमायाश्च ये दोषा ह्यर्चकस्य तपोबलात्।
सर्वत्रेश्वरचित्तस्य नाशं यान्ति क्षणात् किल॥ १६०॥

अन्वयः—प्रतिमायाश्च ये दोषाः अर्चकस्य तपोबलात् सर्वत्र ईश्वरचित्तस्य किल क्षणात् नाशं यान्ति॥१६०॥

व्याख्या—प्रतिमायाश्च=मूर्त्तेश्च, ये=लक्षणहीनताजन्याः, दोषाः=दुर्गुणाः, ते अर्चकस्य=पूजकस्य भक्तस्य, तपोबलात्=तपस्याशक्तेः, सर्वत्र=सर्वथा, सर्वप्रकारेण, ईश्वरचित्तस्य=जगदीश्वरानुरक्तस्य, पूजकस्य, किल=निश्चयेन, तपोबलात्, क्षणात्=क्षणमात्रमेव, नाशम्=विनाशम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति॥१६०॥

हिन्दी—और प्रतिमा के जो पूर्ववर्णित दोष हैं, वे हर तरह से ईश्वर में अनुरक्त चित्तवाले भक्त पूजक के तपोबल से क्षण मात्र में विनष्ट हो जाते हैं॥१६०॥

प्रतिमाया इति। प्रतिमायाश्च ये दोषाः, ते सर्वथा सर्वप्रकारेण ईश्वरचित्तस्य ईश्वरानुरक्तस्य

अर्चकस्य सेवकस्य तपोबलात् क्षणात् किल निश्चितं नाशं यान्ति विनश्यन्तीत्यर्थः, यदि प्रतिमायां कश्चित् दोषः अस्ति तदा सेवकः तपोबलेन तज्जनितदुरदृष्टं नाशयितुं शक्नोतीति भावः॥ १६० ॥

देवतायाश्च पुरतो मण्डपे वाहनं न्यसेत्।
द्विबाहुर्गरुडः प्रोक्तः सुचञ्चुः स्वक्षिपक्षयुक्॥ १६१ ॥
नराकृतिश्चञ्चुमुखो मुकुटी कवचाङ्गदी।
बद्धाञ्जलिर्नम्रशीर्षः सेव्यपादाब्जलोचनः॥ १६२ ॥

अन्वयः—देवतायाः पुरतः मण्डपे वाहनं न्यसेत्। गरुडः द्विबाहुः सुचञ्चुः स्वक्षिपक्षयुक् नराकृतिः चञ्चुमुखः मुकुटी कवचाङ्गदी बद्धाञ्जलिः नम्रशीर्षः सेव्यपादाब्जलोचनः॥ १६१-१६२ ॥

व्याख्या—देवतायाः= देवमूर्तेः, पुरतः सम्मुखे, मण्डपे= मन्दिरे, वाहनम्= आरोहणम्, न्यसेत्= स्थापयेत्। गरुडः= वैनतेयः, विष्णुवाहनः, द्विबाहुः= द्विभुजः, सुचञ्चुः= सुन्दरचञ्चुकः, स्वक्षिपक्षयुक्= शोभनपक्षः, सुनयनः, नराकृतिः= मनुष्याकारः, चञ्चुमुखः= चञ्चुयुक्ताननः, मुकुटी= किरीटी, कवचाङ्गदी—कवचः= सन्नाहः, अङ्गदी= अङ्गदवान्, बद्धाञ्जलिः= अञ्जलिबद्धः, नम्रशीर्षः= नताननः, तथा सेव्यस्य= निजाराध्यस्य, पादाब्जे= चरणकमले, [illegible]ने= नयने, यस्य तथाभूतः निर्मातव्यः॥ १६१-१६२ ॥

हिन्दी—देवता की मूर्त्ति के सामने मण्डप में उनके वाहन की स्थापना करनी चाहिए। विष्णुवाहन गरुड की मूर्त्ति में दो बाँहें, चोंच और दो आँखें तथा दो पाँखें सुन्दर ढंग से बनानी चाहिए। मुँह में चोंच बनाकर शेष अंगों को मनुष्य की तरह बनाना चाहिए। माथे पर मुकुट, देह में कवच, बाँहों में बाजूबन्द, हाथ जोड़े, नतानन तथा अपने आराध्य के चरणकमलों की ओर देखते जैसी प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए॥ १६१-१६२ ॥

देवतायाश्चेति। नराकृतिरिति। देवतायाः पुरतः अग्रतः मण्डपे वाहनं न्यसेत् स्थापयेत्। गरुडः विष्णुवाहनं द्विबाहुः द्विभुजः सुचञ्चुः शोभनचञ्चुः, स्वक्षिपक्षयुक् शोभनपक्षः सुनयनः नराकृतिः मानवावयवः चञ्चुमुखः मुकुटी मुकुटधारी कवचाङ्गदी कवची अङ्गदवान्, बद्धाञ्जलिः कृताञ्जलिः नम्रशीर्षः नतशिराः तथा सेव्यस्य स्वप्रभोः पादाब्जे पादपद्मे लोचने नयने यस्य तथाभूतः स्थाप्य इति शेषः॥ १६१-१६२ ॥

वाहनत्वं गता ये ये देवतानां च पक्षिणः।
कामरूपधरास्ते ते तथा सिंहवृषादयः॥ १६३ ॥
स्वनामाकृतयश्चैते कार्य्या दिव्या बुधैः सदा।
सुभूषिता देवताग्रमण्डपे ध्यानतत्पराः॥ १६४ ॥

अन्वयः—ये ये पक्षिणः तथा सिंहवृषादयः देवतानां वाहनत्वं गताः, ते ते कामरूपधराः। एते च बुधैः स्वनामाकृतयः दिव्याः सुभूषिताः तथा ध्यानतत्पराः देवतानां सदा अग्रे कार्याः॥ १६३-१६४ ॥

व्याख्या—ये ये पक्षिणः= खगाः, सिंहवृषादयः= वृषभवनराजादयः, देवतानाम्= देवानाम्, वाहनत्वम्= यानत्वम्, गताः= प्राप्ताः, ते ते= सर्वे, कामरूपधराः= [illegible]माधीनस्वरूपाः, एते बुधैः= विद्वद्भिः, स्वनामाकृतयः स्वस्य= आत्मनः, नाम= नाम [illegible]रेण, आकृतयः=

आकाराः, येषां तथाभूताः, दिव्याः = भास्वराः, सुभूषिताः = सुष्ठुतयाऽलङ्कृताः, तथा ध्यानतत्पराः = एकाग्रचित्तेन तन्निष्ठाः, देवतानाम्, अग्रे = सम्मुखे, कार्य्या = स्थापितव्याः ॥ १६३-१६४ ॥

हिन्दी—देवता के वाहनस्वरूप जो पक्षी या बैल हैं, वे सभी अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले हैं। विद्वानों को देवता के मण्डप में उनके सामने ध्यानस्थ, दिव्य, ठीक ढंग से आभूषित, अपने नाम के अनुसार आकृति वाले उक्त वाहनों का निर्माण करना चाहिए ॥ १६३-१६४ ॥

वाहनत्वमिति। स्वनामाकृतय इति। ये ये पक्षिणः तथा सिंहवृषादयः देवतानां वाहनत्वं गताः, ते ते कामरूपधराः च स्वेच्छाधीनविग्रहाः। एते च बुधैः विद्वद्भिः स्वनामाकृतयः स्वनाम्ना निजनामानुसारेण आकृतयः येषां तथाभूताः दिव्याः सुभूषिताः सुष्ठु अलङ्कृताः तथा ध्यानतत्पराः ध्याननिष्ठाः देवतानाम् अग्रे सदा कार्य्याः ॥ १६३-१६४ ॥

मार्जाराकृतिकः पीतः कृष्णचिह्नो बृहद्वपुः।
असटो व्याघ्र इत्युक्तः सिंहः सूक्ष्मकटिर्महान् ॥ १६५ ॥
बृहद्भ्रूगण्डनेत्रस्तु बालवेशो मनोहरः।
सटावान् धूसरोऽकृष्णलाञ्छनश्च महाबलः ॥ १६६ ॥

अन्वयः—मार्जाराकृतिकः पीतः कृष्णचिह्नः बृहद्वपुः असटः व्याघ्र इत्युक्तः। सूक्ष्मकटिः महा बृहद्भ्रूगण्डनेत्रः बालवेशः मनोहरः सटावान् धूसरः अकृष्णलाञ्छनः महाबलः सिंहः इति उक्तः ॥ १६५-१६६ ॥

व्याख्या—मार्जारस्य = बिडालस्य, आकृतिः = आकारः, इव आकृतिर्यस्यासौ, पीतः = हरिद्वर्णः, कृष्णचिह्नः = कर्बुरितः, बृहद्वपुः = विशालकायः, असटः = सटारहितः, व्याघ्रः = चुलुकः, इति = इत्थम्, उक्तः = कथितः। तथा सूक्ष्मकटिः = प्रतनुकाञ्चीपदम्, महान् = विशालकायः, बृहद्भ्रूगण्डनेत्रः—बृहद्भ्रू = विशालभ्रू, बृहद्गण्डः = विशालगल्लः, बृहन्नेत्रः = विशालनयनः, बालवेशः = शिशुवेषधरोऽतिसुन्दरः, सटावान् = आबालयुक्तः, धूसरः = धूम्रवर्णः, अकृष्णलाञ्छनः = असितचिह्नम्, महाबलः = अतिशक्तिसम्पन्नः, सिंहः = वनराजः, इति, उक्तः = कथ्यते ॥ १६५-१६६ ॥

हिन्दी—जो बिल्ली की आकृतिवाला, पीला, काले धब्बे वाला, विशालकाय तथा जटारहित पशु होता है, उसे बाघ कहते हैं। पतली कमर, भरी देह, भौंहें बड़ी, जबड़ा विशाल, लम्बी गरदन, विशाल आँखें, शिशु-सौन्दर्य से स्नात, अति मनोहर आयालों से भरे कन्धे, काले धब्बे रहित विशाल देह तथा भूरे रंग का पशु सिंह कहलाता है ॥ १६५-१६६ ॥

मार्जाराकृतिक इति। बृहदिति। मार्जारस्य आकृतिरिव आकृतिर्यस्य तादृशः पीतः पीतवर्णः कृष्णचिह्नः श्यामलचिह्नविशिष्टः बृहद्वपुः महाकायः असटः जटारहितः जन्तुः व्याघ्र इति उक्तः कथितः। सूक्ष्मकटिः सूक्ष्ममध्यभागः महान् बृहदाकारः बृहद्भ्रूगण्डनेत्रः विशालभ्रूः बृहद्गण्डः दीर्घचक्षुः बालवेशः शिशुवेशधरः मनोहरः सटावान् जटावान् धूसरः धूसरवर्णः अकृष्णलाञ्छनः अश्यामचिह्नः महाबलश्च सिंहः इति उक्तः ॥ १६५-१६६ ॥

भेदः सटालाञ्छनतो नाकृत्या व्याघ्रसिंहयोः ॥ १६७ ॥

अन्वयः—सटालाञ्छनतः व्याघ्रसिंहयोः भेदः आकृत्या न ॥ १६७ ॥

व्याख्या,—सटाभिः = आयालैः, लाञ्छनैः = कर्बुरैः, व्याघ्रसिंहयोः = भेलमृगेन्द्रयोः, भेदः = भिन्नत्वम्, अन्यथा, आकृत्या = आकारेण, भेदो नास्ति ॥ १६७ ॥

हिन्दी—बाघ और सिंह दोनों में जटा और काले चिह्नों का ही भेद होता है। दोनों के आकार करीब-करीब एक जैसे ही हैं ॥ १६७ ॥

भेद इति। सटाभिः जटाभिः लाञ्छनैः कृष्णचिह्नैश्च व्याघ्रसिंहयोः भेदः आकृत्या अवयवेन न, आकृतिरनयोः प्रायशस्तुल्यैव केवलं जटाचिह्नैः भेद इत्यर्थः॥१६७ ॥

गजाननं नराकारं ध्वस्तकर्णं पृथूदरम्।
बृहत्सङ्‌क्षिप्तगहनपीनस्कन्धाङ्‌घ्रिपाणिनम् ॥ १६८ ॥
बृहच्छुण्डं भग्नवामरदमीप्सितवाहनम्।
ईषत्कुटिलदण्डाग्रवामशुण्डमदक्षिणम् ।
सन्ध्यस्थिधमनीगूढं कुर्य्यान्मानमितं सदा ॥ १६९ ॥

अन्वयः—नराकारं ध्वस्तकर्णं पृथूदरं बृहत्सङ्‌क्षिप्तगहनपीनस्कन्धाङ्‌घ्रिपाणिनं बृहच्छुण्डं भग्नवामरदम् ईप्सितवाहनम् ईषत्कुटिलदण्डाग्रवामशुण्डम् अदक्षिणं सन्ध्यस्थिधमनीगूढं मानमितं गजाननं सदा कुर्यात् ॥ १६८-१६९ ॥

व्याख्या—नराकारम् = मनुष्याकृतिः, ध्वस्तकर्णम् = लम्बकर्णम्, पृथूदरम् = तुन्दिलं, बृहन्तः = विशालाः, सङ्‌क्षिप्ताः = संहताः, गहनाः = गूढाः, पीनाः = स्थूलाः, स्कन्धौ = अंसौ, अङ्‌घ्री = चरणौ, पाणयः = हस्ताश्च, यस्य तथोक्तम्, बृहच्छुण्डम् = विशालकरम्, भग्नवामरदम् = गुठितवामदन्तम्, ईप्सितवाहनम् = अभीप्सितारोहणम्, ईषत् = किञ्चित्, कुटिलेन = वक्रेण, दण्डाग्रेण = शुण्डादण्डाग्रभागेन, वामा = शोभना, शुण्डा = करः, यस्य तम्, अदक्षिणम्—नास्ति दक्षिणः = अग्रे पूजनीयः, यस्मात् तादृशम्, सन्ध्यस्थिधमनीगूढम्—सन्धिषु = अवयवसंस्थेषु, अस्थिषु = कीकसेषु, धमनीषु = शिरासु च, गूढम् = आवृतम् अव्यक्तं वा, सदा = सर्वदा, मानमितम् = यथाप्रमाणम्, गजाननम् = विनायकम्, कुर्यात् = स्थापयेत् ॥ १६८-१६९ ॥

हिन्दी—गणेशजी की मूर्त्ति में मुख हाथी के समान तथा अन्य अंग मनुष्य के समान बनाने चाहिए। कान हाथी के समान लम्बा-चौड़ा, पेट तुंदिल, बृहत्, संक्षिप्त, गूढ और स्थूल कन्धे, पैर तथा हाथ बनाने चाहिए। सूँढ लम्बी, बायाँ दाँत टूटा यथाभिलषित वाहन बनाना चाहिए। सूँढ बाँई ओर झुकी तथा सन्धिस्थल, हड्डियों और धमनी ढकी होनी चाहिए। गणेश की मूर्त्ति सदा इसी तरह होनी चाहिए ॥ १६८-१६९ ॥

सम्प्रति गणेशाकृतिं निरूपयति—गजाननमिति। वृहदिति। नराकारं ध्वस्तकर्णं लम्बकर्णं पृथूदरं स्थूलोदरं बृहन्तः, संक्षिप्ताः गहनाः घनाः पीनाः स्थूलाश्च स्कन्धौ अङ्‌घ्री चरणौ पाणयः कराश्च यस्य तथोक्तं बृहच्छुण्डं विशालशुण्डादण्डं भग्नवामरदं वामदन्तहीनम् ईप्सितवाहनं प्रियवाहनम् ईषत्कुटिलेन दण्डाग्रेण वामा शोभना शुण्डा यस्य तम् अदक्षिणं नास्ति दक्षिणः अग्रवर्त्ती अग्रे पूजनीयः यस्मात् तादृशं सर्वाग्रे पूज्यमित्यर्थः, सन्ध्यस्थिधमनीगूढं सन्धिषु अवयवसंस्थेषु अस्थिषु, धमनीषु शिरासु च गूढम् अव्यक्तसन्धिम् अव्यक्तास्थिम् अव्यक्तधमनीञ्चेत्यर्थः, तथा सदा मानमितं यथाप्रमाणं गजाननं गणेशं कुर्य्यात् ॥ १६८-१६९ ॥

सार्द्धचतुस्तालमितः शुण्डादण्डः समन्ततः ।
दशाङ्गुलं मस्तकञ्च भ्रूगण्डश्चतुरङ्गुलः ॥ १७० ॥

अन्वयः—समन्ततः सार्द्धचतुस्तालमितः शुण्डादण्डः दशाङ्गुलं मस्तकं चतुरङ्गुलः भ्रूगण्डलः कार्यः ॥१७० ॥

व्याख्या—समन्ततः= सर्वतः, सार्द्धचतुस्तालमितः—सार्द्धैः= अर्द्धेन सहितैः, चतुर्भिः= तुरीयैः, तालैः= अर्द्धहस्तैः मितः= परिमितः, शुण्डादण्डः= हस्तिहस्तः, दशाङ्गुलम्= अङ्गुलदशकपरिमितम्, मस्तकम्= भालम्, चतुरङ्गुलः= अङ्गुलिचतुःपरिमितम्, भ्रूमण्डलः= नयनोद्ध्र्ववर्त्तिरोमराजिपरिवेशः कार्य इति ॥ १७० ॥

हिन्दी—पूरा सूँड साढे चार बित्ते का, माथा दस अंगुल और भौंह चार अंगुल का बनाना चाहिए ॥ १७० ॥

सार्द्धेति। समन्ततः सर्वतः सार्द्धैः चतुर्भिः तालैः मितः परिमितः शुण्डादण्डः दशाङ्गुलम् अङ्गुलदशकमितं मस्तकं, चतुरङ्गुलः भ्रूदण्डश्च कार्य्य इति शेषः ॥ १७० ॥

नासोत्तरोष्ठरूपा च शेषा शुण्डा सपुष्करा ।
दशाङ्गुलं कर्णदैर्घ्यं तदष्टाङ्गुलविस्तृतम् ॥ १७१ ॥

अन्वयः—शुण्डा नासोत्तरोष्ठरूपा शेषा सपुष्करां कर्णदैर्घ्यं दशाङ्गुलं तदष्टाङ्गुलविस्तृतम् ॥ १७१ ॥

व्याख्या—शुण्डा= करिकरः, नासायाः= नासिकायाः, उत्तरः= उपरि, यः ओष्ठः= दन्तच्छदः, ऊर्ध्वोष्ठयोः वा, तद्रूपा कियतीति, शेषा= अवशिष्टा, सपुष्करा= गजशुण्डाग्रसहिता, कर्णदैर्घ्यम्—कर्णस्य= श्रवणस्य, दैर्घ्यम्= आयामः, दशाङ्गुलम्= अङ्गुलदशकपरिमितम्, तत्= तस्य कर्णस्य, विस्तृतम्= विस्तारः, अष्टाङ्गुलः= अष्टाङ्गुलपरिमितम्, कार्यः ॥ १७१ ॥

हिन्दी—नाक और ओठ के बीच सूँड की जगह होनी चाहिए। ऊपरी ओठ ही सूँड का मूल भाग तथा शेष सूँड के अग्रभाग तक सूँड कहलाता है। इसके कान की लम्बाई दस अंगुल तथा चौड़ाई आठ अंगुल की होनी चाहिए॥ १७१ ॥

नासेति। शुण्डा नासाया उत्तरः परवर्त्ती य ओष्ठः तद्रूपा कियतीत्यर्थः, शेषा अवशिष्टा सपुष्करा पुष्करसहिता कार्य्या इति शेषः, कर्णयोः देर्घ्यं दशाङ्गुलं तयोः कर्णयोः अष्टाङ्गुलविस्तृतम् अङ्गुलाष्टकं विस्तार इत्यर्थः ॥ १७१ ॥

कर्णयोरन्तरे व्यासो द्व्यङ्गुलस्तालसम्मितः ।
मस्तकेऽस्यैव परिधिर्ज्ञेयः षट्त्रिंशदङ्गुलः ॥ १७२ ॥

अन्वयः—कर्णयोरन्तरे व्यासः द्व्यङ्गुलस्तालसम्मितः। अस्यैव मस्तके परिधिः षट्त्रिंशदङ्गुलः ज्ञेयः ॥ १७२ ॥

व्याख्या—कर्णयोः= श्रवणयोः, अन्तरे= अन्तराले, व्यासः= विस्तारः, द्व्यङ्गुलस्तालसम्मितः= अङ्गुलिद्वयाधिकः, तालसम्मितः= तालपरिमितः। अस्यैव= गणेशस्यैव, मस्तके= भाले, परिधिः= परिवेशः, षट्त्रिंशदङ्गुलः, ज्ञेयः= बोध्यः ॥ १७२ ॥

हिन्दी—दोनों कानों के बीच का व्यास एक बित्ता दो अंगुल होना चाहिए। माथे पर इस

कान की परिधि छत्तीस अंगुल की होनी चाहिए ॥ १७२ ॥

कर्णयोरिति। कर्णयोः अन्तरे मध्ये व्यासः वेधपरिमाणमित्यर्थः, द्व्यङ्गुलः अङ्गुलद्वयाधिकः तालसम्मितः तालप्रमाणः। अस्यैव गणेशस्य मस्तके परिधिः षट्त्रिंशदङ्गुलः ज्ञेयः ॥ १७२ ॥

नेत्रोपान्ते च परिधिः शीर्षतुल्यः सदा मतः।
सद्व्यङ्गुलद्वितालः स्यान्नेत्राधः परिधिः करे ॥ १७३ ॥
कराग्रे परिधिर्ज्ञेयः पुष्करे च दशाङ्गुलः।
त्र्यङ्गुलं कण्ठदैर्घ्यं तत्परिधिस्त्रिंशदङ्गुलः ॥ १७४ ॥

अन्वयः—नेत्रोपान्ते च परिधिः सदा शीर्षतुल्यः मतः। नेत्राधः परिधिः सद्व्यङ्गुलद्वितालः स्यात्। करे कराग्रे पुष्करे च परिधिः दशाङ्गुलः ज्ञेयः। कण्ठदैर्घ्यं त्र्यङ्गुलं, तत्परिधिः त्रिंशदङ्गुल ज्ञेयः ॥ १७३-१७४ ॥

व्याख्या—नेत्रयोः = नयनयोः, उपान्ते = अन्तसमीपभागे, च = पुनः, यः परिधिः = परिवेशः, सः तदा, शीर्षतुल्यः = मस्तकसदृशः, मतः = कथितः। नेत्राधः—नेत्रयोः = नयनयोः, अधः = अधोभागे, परिधिश्च = मण्डलञ्च, द्व्यङ्गुलद्वितालः = अङ्गुलिद्वयाधिकद्वितालः, स्यात् = भवेत्। करे = हस्तिहस्ते, कराग्रे = शुण्डादण्डाग्रे, पुष्करे = गजशुण्डाग्रे च, परिधिः = परिणाहः, दशाङ्गुलः = अङ्गुलिदशपरिमितः, ज्ञेयः = बोध्यः। कण्ठस्य = गलप्रदेशस्य, दैर्घ्यम् = आयामः, त्र्यङ्गुलः = अङ्गुलित्रयपरिमितम्, तत् = तस्य, च परिधिः = विस्तारः, त्रिंशदङ्गुलः = त्र्योऽधिकदशाङ्गुलपरिमितः, ज्ञेयः = बोध्यः ॥ १७३-१७४ ॥

हिन्दी—दोनों आँखों के पार्श्ववर्ती स्थानों की परिधि सदा माथे के समान ही होनी चाहिए। आँखों के नीचले भाग की परिधि दो अंगुल ज्यादा दो वित्ता होनी चाहिए। सूँड में सूँड की जड़ तथा उसकी अन्तिम छोर की परिधि दस अंगुल होनी चाहिए। कंठ की लम्बाई तीन अंगुल तथा इसका विस्तार तीस अंगुल होना चाहिए ॥ १७३-१७४ ॥

नेत्रोपान्ते इति। **कराग्रे इति**। नेत्रयोः उपान्ते च यः परिधिः सः तदा शीर्षतुल्यः मस्तकसदृशः मतः कथितः। नेत्रयोः अधः निम्नदेशे परिधिश्च सद्व्यङ्गुलद्वितालः अङ्गुलद्वयसहितद्वितालः स्यात्। करे शुण्डादण्डे कराग्रे शुण्डाग्रे पुष्करे च परिधिः दशाङ्गुलः ज्ञेयः। कण्टकस्य दैर्घ्यं त्र्यङ्गुलम् अङ्गुलत्रयपरिमितं तस्य कण्ठस्य परिधिश्च त्रिंशदङ्गुलः ज्ञेय इति शेषः ॥ १७३-१७४ ॥

परिणाहस्तूदरे च चतुस्तालात्मिकः सदा।
षडङ्गुलो नियोक्तव्योऽष्टाङ्गुलो वापि शिल्पिभिः ॥ १७५ ॥

अन्वयः—उदरे परिणाहः सदा चतुस्तालात्मिकः षडङ्गुलः वा अष्टाङ्गुलः वापि शिल्पिभिः सदा नियोक्तव्यः ॥ १७५ ॥

व्याख्या—उदरे = तुन्दे, परिणाहः = परिधिः, सदा = सर्वदा, चतुस्तालात्मिकः = तालचतुष्टयपरिमितः, षडङ्गुलः = अङ्गुलषट्काधिकः, वा = अथवा, अष्टाङ्गुलः = अङ्गुलाष्टाधिकः, शिल्पिभिः = मूर्तिकारैः, सदा = सततम्, नियोक्तव्यः = नियोजनीयः ॥ १७५ ॥

हिन्दी—मूर्त्तिकार को हमेशा इनके पेट की लम्बाई छः या आठ अंगुल अधिक चार वित्ते की बनानी चाहिए ॥ १७५ ॥

परिणाह इति। उदरे च परिणाहः दैर्घ्यं चतुस्तालात्मिकः तालचतुष्टयप्रमाणः षडङ्गुलः अङ्गुलषट्काधिकः वा अष्टाङ्गुलः अङ्गुलाष्टकाधिकः शिल्पिभिः निर्मातृभिः सदा नियोक्तव्यः कार्य इत्यर्थः ॥ १७५ ॥

दन्तः षडङ्गुलो दीर्घस्तन्मूलपरिधिस्तथा।
षडङ्गुलश्चाधरोष्ठः पुष्करं कमलान्वितम् ॥ १७६ ॥

अन्वयः—दन्तः षडङ्गुलः दीर्घः, तत् मूलपरिधिः तथा अधरोष्ठश्च षडङ्गुलः तथा पुष्करं कमलान्वितम् ॥ १७६ ॥

व्याख्या—दन्तः = रदः, षडङ्गुलः = अङ्गुलषट्कमितः, दीर्घः = आयतः, तस्य = दशनस्य, मूलपरिधिः = मूलवेष्टनम्, तथा = तथैव, षडङ्गुलः = अङ्गुलषट्कैव, अधरोष्ठश्च—अधरः = अधस्तनः ओष्ठः, ओष्ठश्च = दन्तच्छद च, षडङ्गुलः = अङ्गुलषट्कमेव, तथा पुष्करम् = गजशुण्डाग्रभागश्च, कमलेन = पद्मेन, अन्वितम् = सहितम्, निर्मातव्यमिति शेषः ॥ १७६ ॥

हिन्दी—दाँत की लम्बाई छः अंगुल तथा उसकी जड़ की परिधि भी छः अंगुल ही होना चाहिए। अधेराष्ठ भी छः अंगुल का तथा सूँड का अगला भाग कमल की तरह होना चाहिए ॥ १७६ ॥

दन्त इति। दन्तः दैर्घ्ये षडङ्गुलः, तस्य दन्तस्य मूलपरिधिः मूलवेष्टनञ्च तथा षडङ्गुल इ[illegible]यर्थ. अधरोष्ठश्च षडङ्गुलः तथा पुष्करं कमलेन पद्मेन अन्वितं युक्तं कार्य्यमिति शेषः ॥ १७६ ॥

ऊरुमूलस्य परिधिः षट्त्रिंशदङ्गुलो मतः।
त्रयोविंशत्यङ्गुलः स्यादूर्वग्रपरिधिस्तथा ॥ १७७ ॥

अन्वयः—ऊरुमूलस्य परिधिः षट्त्रिंशदङ्गुलः मतः, तथा ऊर्वग्रपरिधिः त्रयोविंशत्यङ्गुलः स्यात् ॥ १७७ ॥

व्याख्या—ऊरुमूलस्य = जङ्घाप्रारम्भिकभागस्य, परिधिः = वेष्टनम्, षट्त्रिंशदङ्गुलः, मतः = कथितः, तथा ऊर्वोः = जङ्घायाः, अग्रस्य = अग्रभागस्य, परिधिः = परिवेशः, त्रयोविंशत्यङ्गुलः, स्यात् = भवेत् ॥ १७७ ॥

जंघा के प्रारंभिक भाग का विस्तार या घेरा छत्तीस अंगुल तथा उसके अग्रभाग का घेरा तेईस अंगुल का होना चाहिए ॥ १७७ ॥

ऊरुमूलस्येति। ऊरुमूलस्य परिधिः षट्त्रिंशदङ्गुलः मतः, तथा ऊर्वोः अग्रस्य परिधिः त्रयोविंशत्यङ्गुलः स्यात् ॥ १७७ ॥

जङ्घामूले तु परिधिर्विंशत्यङ्गुलसम्मितः।
परिधिर्बाहुमूलादेरधिको द्व्यङ्गुलोऽङ्गुलः ॥ १७८ ॥

अन्वयः—जङ्घामूले तु परिधिः विंशत्यङ्गुलसम्मितः। बाहुमूलादेः परिधिः द्व्यङ्गुलोऽङ्गुलः अधिकः वा ॥ १७८ ॥

व्याख्या—जङ्घामूले—जङ्घयोः = ऊर्व्योः, मूले = आदिभागे, परिधिः = वेष्टनम्, विंशत्यङ्गुलः = विंशत्यङ्गुलपरिमितः, सम्मितः = कथितः। बाहुमूलादेः = भुजयोरग्रभागादेः, परिधिः = विस्तारः, द्व्यङ्गुलः = अङ्गुलिद्वयपरिमितः, अङ्गलो वा = त्र्यङ्गलो वेति स्यात् ॥ १७८ ॥

हिन्दी—जाँघों के प्रारंभिक भाग का घेरा बीस अंगुल का और बाँहों के आरभिक भाग का घेरा उससे दो अंगुल अधिक अर्थात् बाईस अंगुल का तथा उनका अग्रभाग मात्र एक अंगुल अधिक अर्थात् इक्कीस अंगुल होना चाहिए ॥ १७८ ॥

जङ्घेति। जङ्घयोर्मूले परिधिः विंशत्यङ्गुलसम्मितः, तथा बाहुमूलादेः परिधिः अधिकद्व्यङ्गुलः अङ्गुल, अङ्गुलत्रयपरिमित इत्यर्थः ॥ १७८ ॥

कर्णनेत्रान्तरं नित्यं विज्ञेयं चतुरङ्गुलम्।
मूलमध्याग्रान्तरं तु दशसप्तषडङ्गुलम्।
नेत्रयोः कथितं तज्ज्ञैर्गणपस्य विशेषतः ॥ १७९ ॥

अन्वयः—कर्णनेत्रान्तरं नित्यं चतुरङ्गुलं विज्ञेयम्। मूलमध्याग्रान्तरं तु दशसप्तषडङ्गुलं तज्ज्ञैः गणपस्य नेत्रयोः विशेषतः कथितम् ॥ १९९ ॥

व्याख्या—कर्णनेत्रयोः = श्रवणनयनयोः, अन्तरम् = मध्यभागः, नित्यम् = निरन्तरम्, चतुरङ्गुलम् = अङ्गुलचतुष्टयात्मकं, विज्ञेयम्। तथा अनयोः मूलान्तरम् = मध्यान्तरम्, अग्रान्तरन्तु, दशसप्तषडङ्गुलम् = क्रमशः दशाङ्गुलपरिमितं सप्ताङ्गुलपरिमितं तथा षडङ्गुलपरिमितम्, ज्ञेयम्। तज्ज्ञैः = तद्विशेषज्ञैः, गणपस्य = गजाननस्य, नेत्रयोः = लोचनयोः, इत्थम् = एवम्प्रकारेण, कथितम् = उक्तम् ॥ १७९ ॥

हिन्दी—कान और आँखों के बीच का अन्तराल सदैव चार अंगुल होना चाहिए। दोनों आँखों के मूल, मध्य तथा अग्रभाग का अन्तर क्रमशः दस, सात एवं छः अंगुल का विशेषज्ञों गणेशमूर्त्ति के सम्बन्ध में बतलाया है ॥ १७९ ॥

कर्णेति। कर्णनेत्रयोः अन्तरं मध्यभागः नित्यं सततं चतुरङ्गुलं, तथा अनयोः मूलान्तरं मध्यान्तरम् अग्रान्तरन्तु दशसप्तषडङ्गुलं क्रमेण दशाङ्गुलं सप्ताङ्गुलं षडङ्गुलञ्चेत्यर्थः, विज्ञेयम्। तज्ज्ञैः तद्विज्ञैः पण्डितैः गणपस्य गणेशस्य नेत्रयोः विशेषतः विशेषेण नेत्रयोः इत्थं कथितम् ॥ १७९ ॥

उत्सेधः पृथुता स्त्रीणां स्तने पञ्चाङ्गुला मता ॥ १८० ॥

अन्वयः—स्त्रीणां स्तने उत्सेधः पृथुता च पञ्चाङ्गुला मता ॥ १८० ॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = देवीप्रतिमानाम्, स्तने = कुचे, उत्सेधः = औन्नत्यम्, पृथुता = पीनत्वम्, च, पञ्चाङ्गुला = अङ्गुलिपञ्चकम्, मता = कथिता ॥ १८० ॥

हिन्दी—देवी की मूर्त्ति में स्तन की ऊँचाई एवं मोटाई पाँच अंगुल की होनी चाहिए ॥ १८० ॥

उत्सेध इति। स्त्रीणां शक्तिमूर्त्तीनां स्तने उत्सेधः उच्छ्रायः पृथुता स्थूलता च पञ्चाङ्गुला अङ्गुलपञ्चकपरिमिता मता ॥ १८० ॥

स्त्रीकट्यां परिधिः प्रोक्तस्त्रितालो द्व्यङ्गुलाधिकः।
स्त्रीणामवयवान् सर्वान् सप्ततालैर्विभावयेत् ॥ १८१ ॥

अन्वयः—स्त्रीणां कट्यां परिधिः द्व्यङ्गुलाधिकः त्रितालः प्रोक्तः। स्त्रीणां सर्वान् अवयवान् सप्ततालैः विभावयेत् ॥ १८१ ॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = देवीमूर्त्तीनाम्, कट्याम् = काञ्चीपदम्, परिधिः = वेष्टनम्, द्व्यङ्गु-

लाधिकः = अङ्गुलिद्वयाधिकपरिमितः, त्रितालः = तालत्रयात्मकः, प्रोक्तः = कथितः। स्त्रीणाम् = शक्तिमूर्त्तीनाम्, सर्वान् = सकलान्, अवयवान् = देहाङ्गान्, सप्ततालैः = सप्तभिः तालाख्यप्रमाणैः, विभावयेत् = अनुचिन्तयेत् ॥ १८१ ॥

हिन्दी—नारीमूर्त्ति की कमर का घेरा दो अंगुल अधिक तीन बित्ते का होना चाहिए तथा उनके सभी अंगों का कुल मिलाकर योग सात बित्ता होना चाहिए ॥ १८१ ॥

स्त्रीकट्यामिति। स्त्रीणां शक्तिमूर्त्तीणां कट्यां परिधिः द्व्यङ्गुलाधिकः अङ्गुलद्वयाधिकः त्रितालः तालत्रयमितः प्रोक्तः कथितः। स्त्रीणां सर्वान् अवयवान् सप्ततालैः सप्तभिः तालाख्यप्रमाणैः विभावयेत् विचिन्तयेत् सप्ततालपरिमितान् कुर्य्यादित्यर्थः ॥ १८१ ॥

सप्ततालादिमानेऽपि मुखं स्याद् द्वादशाङ्गुलम्।
बालादीनामपि सदा दीर्घता तु पृथक् पृथक् ॥ १८२ ॥

अन्वयः—सप्ततालादिमानेऽपि मुखं द्वादशाङ्गुलं स्यात्। बालादीनामपि दीर्घता सदा पृथक् पृथक् ज्ञेया ॥ १८२ ॥

व्याख्या—सप्ततालादिमानेऽपि = तालसप्तकादिपरिमितेऽपि, मुखम् = देवीमूर्त्तीनामाननम्, द्वादशाङ्गुलम् = द्वादशाङ्गुलपरिमितमेव, स्यात् = भवेत्। बालादीनामपि = बालादिमूर्त्तिभे[illegible]मपि, सदा = सर्वदा, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, दीर्घता = विस्तृतिः, ज्ञेया = बोध्या ॥ [illegible]८२॥

हिन्दी—सात बित्ते अवयवों के संयोग का प्रमाण होने के बावजूद इनके मुखों का म[illegible]ान बारह अंगुल ही होता है। फिर बाला प्रभृति मूर्त्तिभेदों की लम्बाई सदा भिन्न-भिन्न [illegible] है ॥१८२ ॥

सप्तेति। सप्ततालादिमाने तालसप्तकादिपरिमाणे सत्यपि मुखं द्वादशाङ्गुलं स्यात् स्त्रीणामिति शेषः। किञ्च नालादीनां देवमूर्त्तिभेदानाम् अपि सदा पृथक् पृथक् दीर्घता ज्ञेया इति शेषः ॥ १८२ ॥

शिशोस्तु कन्धरा ह्रस्वा पृथु शीर्षं प्रकीर्त्तितम्।
कण्ठाधो वर्द्धते यादृक् तादृक् शीर्षं न वर्द्धते ॥ १८३ ॥

अन्वयः—शिशोस्तु कन्धरा ह्रस्वा शीर्षं पृथु प्रकीर्त्तितम्। कण्ठाधः यादृक् वर्द्धते तादृक् शीर्षं न वर्द्धते ॥ १८३ ॥

व्याख्या—शिशोः = बालदेवमूर्तेः, कन्धरा = शिरोधरा, ह्रस्वा = आयामशून्या, तथा = तेनैव प्रकारेण, शीर्षम् = मस्तकम्, पृथु = स्थूलम्, प्रकीर्त्तितम् = कथितम्। यतः कण्ठाधः—कण्ठस्य = ग्रीवायाः, अधः = निम्नभागः, यादृक् = यत्प्रकारकः, वर्द्धते = एधते, तादृक् = तत्प्रकारकः, शीर्षम् = मस्तकम्, न = नहि, वर्द्धते = एधते ॥ १८३ ॥

हिन्दी—शिशुमूर्त्ति की गर्दन छोटी तथा माथा बड़ा बनाना चाहिए। क्योंकि गर्दन के नीचे का हिस्सा जैसा बढ़ता है वैसा माथा नहीं बढ़ता ॥ १८३ ॥

शिशोरिति। शिशोः बालकस्य देवमूर्त्तिभेदस्य कन्धरा ग्रीवा ह्रस्वा खर्वा, तथा शीर्षं मस्तकं पृथु विशालं प्रकीर्त्तितं, यतः कण्ठाधः कण्ठस्य अधः निम्नदेशः यादृक् वर्द्धते शीर्षं तादृक् न वर्द्धते ॥ १८३ ॥

कण्ठाधो मुखमानेन बालः सार्द्धचतुर्गुणः।
द्विगुणः शिश्नपर्य्यन्तो ह्यधः शेषन्तु सक्थितः ॥ १८४ ॥

अन्वयः—बालः मुखमानेन कण्ठाधः सार्द्धचतुर्गुणः। सक्थितः शेषन्तु अधः शिश्नपर्यन्तं द्विगुणः कार्यः ॥ १८४ ॥

व्याख्या—बालः = शिशुदेवमूर्त्तिभेदः, मुखमानेन = सुखस्य = आननस्य, मानेन = परिमाणेन, कण्ठाधः—कण्ठस्य = ग्रीवायाः, अधः = अधोभागः, सार्द्धचतुर्गुणः = अर्द्धेण सहितं चतुर्गुणितपरिमितम्। सक्थितः = ऊरुप्रदेशात्, शेषम् = अवशिष्टम्, अधः = निम्नभागः, शिश्नपर्यन्तम् = आलिङ्गम्, द्विगुणः = द्विगुणितः कार्यः ॥ १८४ ॥

हिन्दी—बालमूर्त्ति में मुख की अपेक्षा गर्दन के नीचे का भाग साढ़े चार गुना बड़ा होता है। उसमें लिंग तक का भाग लम्बाई में मुँह से दूना तो अवश्य ही होता है ॥ १८४ ॥

कण्ठाध इति। बालः शिशुः देवमूर्त्तिभेदः मुखमानेन मुखस्य परिमाणापेक्षयेत्यर्थः, कण्ठस्य अधः निम्नदेशे सार्द्धचतुर्गुणः अर्द्धसहितचतुर्गुणप्रमाण इत्यर्थः। सक्थितः ऊरुदेशात् शेषम् अवशिष्टम् अधः निम्नभागः शिश्नपर्य्यन्तं द्विगुणः कार्य्य इति शेषः ॥ १८४ ॥

सपादद्विगुणौ हस्तौ द्विगुणौ वा मुखेन हि।
स्थौल्ये तु नियमो नास्ति यथाशोभि प्रकल्पयेत् ॥ १८५ ॥

अन्वयः—हस्तौ मुखेन हि सपादद्विगुणौ वा द्विगुणौ कार्यौ, स्थौल्ये तु नियमः नास्ति। यथाशोभि प्रकल्पयेत् ॥ १८५ ॥

व्याख्या—हस्तौ = करौ, मुखेन = आननेन, हि = इति निश्चयेन, सपादद्विगुणौ = पादैकसहितं द्विगुणितम्, वा = अथवा, द्विगुणौ = मात्रद्विगुणितावेव, कार्यौ, स्थौल्ये = पीनत्वे, तु नियमः = व्यवस्था, नास्ति = न विद्यते। यथाशोभि = सौन्दर्यानुरूपेण, प्रकल्पयेत् = निर्माणं कुर्यात् ॥ १८५ ॥

हिन्दी—जंघा से लेकर नीचे का समस्त भाग सवा दो गुना ज्यादे, मुँह की अपेक्षा दोनों हाथ सवा दो गुना अथवा दूना लम्बा होता है, किन्तु मोटाई में कोई नियम नहीं है। देखने में वह जैसे सुन्दर लगे वैसे ही बनाना चाहिए ॥ १८५ ॥

सपादेति। हस्तौ मुखेन मुखपरिमाणापेक्षयेत्यर्थः, सपादद्विगुणौ वा द्विगुणौ कार्य्यौ इति शेषः। स्थौल्ये स्थूलतायान्तु नियमः नास्ति, यथाशोभि तथा प्रकल्पयेत् कुर्य्यादित्यर्थः ॥ १८५ ॥

नित्यं प्रवर्द्धते बालः पञ्चाब्दात् परतो भृशम्।
स्यात् षोडशेऽब्दे सर्वाङ्गपूर्णा स्त्री विंशतौ पुमान् ॥ १८६ ॥

अन्वयः—बालः पञ्चाब्दात् परतः नित्यं भृशं प्रवर्द्धते। स्त्री षोडशे अब्दे सर्वाङ्गपूर्णा, पुमान् विंशतौ अब्दे ॥ १८६ ॥

व्याख्या—बालः = शिशुमूर्त्तिः, पञ्चाब्दात् = पञ्चवर्षात्, परतः = ऊर्ध्वम्, नित्यम् = सततम्, भृशम् = अतिशयेन, प्रवर्द्धते = वृद्धिं प्राप्नोति। स्त्री = नारी, षोडशे अब्दे = षोडशे वर्षे, सर्वाङ्गपूर्णा = पूर्णावयवा, पुमान् = पुरुषः, विंशतौ = विंशतिवर्षे, सर्वाङ्गपूर्णो भवति ॥ १८६ ॥

हिन्दी—बालक पाँच साल तक प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ता है, किन्तु पाँच वर्ष के बाद खूब तेज बढता है। स्त्री सोलह साल में तथा पुरुष बीस साल में सर्वाङ्गपूर्ण होता है॥१८६॥

नित्यमिति। बालः पञ्चाब्दात् पञ्चवत्सरात् परतः ऊर्ध्वं नित्यं भृशम् अतिशयेन प्रवर्द्धते वृद्धिं गच्छति। स्त्री षोडशे अब्दे वत्सरे सर्वाङ्गपूर्णा, पुमान् पुरुषः विंशतौ अब्दे सर्वाङ्गपूर्णः स्यात्॥१८६॥

ततोऽर्हति प्रमाणन्तु सप्ततालादिकं सदा।
कश्चिद्बाल्येऽपि शोभाढ्यस्तारुण्ये वार्द्धके क्वचित्॥१८७॥

अन्वयः—ततः सप्ततालादिकं प्रमाणं सदा अर्हति। कश्चित् बाल्येऽपि शोभाढ्यः तारुण्ये वार्द्धके क्वचित्॥१८७॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात् यौवने, सप्ततालादिकम्, प्रमाणम् = अङ्गपरिमितम्, सदा = सर्वदा, अर्हति = समर्थो भवति। कश्चित् = कोऽपि मूर्त्तिभेदः, बाल्येऽपि = शैशवेऽपि, शोभाढ्यः = शोभासम्पन्नः, तारुण्ये = तरुणावस्थायाम्, वार्द्धके = वृद्धावस्थायाम्, क्वचित्, शोभाढ्यः = शोभासम्पन्नो भवति॥१८७॥

हिन्दी—युवावस्था के लिए ही सात बित्ते का प्रमाण मान्य है। कोई बाल्यवस्था में, कोई जवानी में और कोई वृद्धावस्था में शोभासम्पन्न होता है॥१८७॥

तत इति। ततः यौवने इत्यर्थः, सप्ततालादिकं प्रमाणम् अवयवपरिमाणं सदा अर्हति। कश्चित् मूर्त्तिभेदः बाल्येऽपि शैशवेऽपि शोभाढ्यः शोभनः, तारुण्ये यौवने, वार्द्धके वृद्धावस्थायाञ्च क्वचित् शोभाढ्य इति शेषः॥१८७॥

मुखाधस्त्र्यङ्गुला ग्रीवा हृदयं तु नवाङ्गुलम्।
तथोदरं च वस्तिश्च सक्थि त्वष्टादशाङ्गुलम्॥१८८॥
त्र्यङ्गुलन्तु भवेज्जानु जङ्घा त्वष्टादशाङ्गुला।
गुल्फाधस्त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं सप्ततालस्य सर्वदा॥१८९॥

अन्वयः—मुखाधः त्र्यङ्गुला, ग्रीवा हृदयं नवाङ्गुलं तथा उदरं वस्तिः च नवाङ्गुलं, सक्थि अष्टादशाङ्गुलम्, जानुः त्र्यङ्गुलं, जङ्घा अष्टादशाङ्गुला तथा गुल्फस्य अधः त्र्यङ्गुलम्। एतत् सप्ततालस्य प्रमाणं सर्वदा ज्ञेयम्॥१८८-१८९॥

व्याख्या—मुखस्य = आननस्य, अधः = अधोभागे, ग्रीवा = कण्ठः, हृदयम् = वक्षःस्थलम्, नवाङ्गुलम् = अङ्गुलनवात्मकम्, तथा उदरम् = कुक्षिः, वस्तिः = मूत्राशयः, पेडू इति भाषायाम्, नवाङ्गुलमेव, सक्थि = जानूपरिभागस्तु, अष्टादशाङ्गुलम् = अष्टादशाङ्गुलपरिमितम्, ज्ञेयम्। जानु = ऊरुपर्व, त्र्यङ्गुलम् = अङ्गुलित्रयपरिमितम्, जङ्घा = ऊरुः, अष्टादशाङ्गुला एव, तथा गुल्फस्य = घुण्टकस्य, अधः = निम्नभागः, त्र्यङ्गुलम् = अङ्गुलित्रयमेव ज्ञेयम्। एतत् = सर्वम्, सप्ततालस्य = सप्ततालमितस्य प्रतिमाभेदस्य प्रमाणम्, सदा = सर्वदा, ज्ञेयम्॥१८८-१८९॥

हिन्दी—मुँह के नीचे का भाग गला तीन अंगुल का होना चाहिए। छाती, पेट और पेडू नौ अंगुल का होना चाहिए। जंघा अठारह अंगुल का, घुटना तीन अंगुल का तथा एडी पर की गाँठ के नीचे का भाग भी तीन अंगुल का ही होना चाहिए। यह माप सात बित्ते अर्थात्

साढ़े तीन हाथ वाली मूर्त्ति के अङ्ग-निर्माण के लिए सदा मान्य है ॥१८८-१८९ ॥

सप्ततालस्य मूर्त्तिभेदस्य प्रकारमाह—**मुखाध इति। त्र्यङ्गुलमिति च**। मुखस्य अधः निम्नतः ग्रीवा त्र्यङ्गुला अङ्गुलत्रयमिता, हृदयं वक्षः नवाङ्गुलं नवाङ्गुलप्रमाणं, तथा उदरं वस्तिः नाभ्यधोभागश्च नवाङ्गुलमिति शेषः, सक्थि ऊरुस्तु अष्टादशाङ्गुलं विज्ञेयमिति। जानु त्र्यङ्गुलं, जङ्घा अष्टादशाङ्गुला तथा गुल्फस्य अधः निम्नभागः त्र्यङ्गुलम् एतत् सप्ततालस्य सप्ततालमूर्त्तिभेदस्य प्रमाणं सर्वदा ज्ञेयम् ॥१८८-१८९ ॥

वेदाङ्गुला भवेद् ग्रीवा हृदयन्तु दशाङ्गुलम्।
दशाङ्गुलं चोदरं स्याद् वस्तिश्चैव दशाङ्गुलः ॥ १९० ॥
एकविंशाङ्गुलं सक्थि जानु स्याच्चतुरङ्गुलम्।
एकविंशाङ्गुला जङ्घा गुल्फाधश्चतुरङ्गुलम् ॥ १९१ ॥
अष्टतालप्रमाणस्य मानमुक्तमिदं सदा ॥ १९२ ॥

अन्वयः—ग्रीवा वेदाङ्गुला हृदयं तु दशाङ्गुलं भवेत्। उदरं दशाङ्गुलं वस्तिश्चैव दशाङ्गुलं स्यात्। सक्थिः एकविंशाङ्गुलं जानु चतुरङ्गुलं स्यात्। जङ्घा एकविंशाङ्गुला तथा गुल्फस्य अधः चतुरङ्गुलं स्यात्। अष्टतालप्रमाणस्य इदं मानं सदा उक्तम् ॥१९०-१९२ ॥

व्याख्या—ग्रीवा = कण्ठः, वेदाङ्गुला = चतुरङ्गुलमिता, तथा हृदयम् = उरस्तु, दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुलपरिमितम्, भवेत् = स्यात्। उदरम् = जठरम्, दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुलात्मकम्, वस्तिश्च = नाभेरधोभागश्च, दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुलपरिमितम्, स्यात् = भवेत्। सक्थि = जानूपरिभागः, एकविंशाङ्गुलम् = एकाधिकविंशत्यङ्गुलपरिमितम्, तथा जानु = अष्ठीवान्, चतुरङ्गुलम् = वेदाङ्गुलम्, स्यात् = भवेत्। जङ्घा = प्रसृता टक्किका वेति, तथा गुल्फस्य = घुण्टकस्य, अधः = निम्नप्रदेशः, चतुरङ्गुलम् = वेदाङ्गुलम्, स्यात् = भवेत्। इदम् = सर्वम्, अष्टतालप्रमाणस्य = चतुर्हस्तपरिमितस्य, मूर्त्तिभेदस्य, मानम् = प्रमाणम्, उक्तम् = कथितम् ॥ १९०-१९२ ॥

हिन्दी—दस अंगुल का गला, दस अंगुल की छाती, दस अंगुल का पेट तथा दस अंगुल का पेडू, इक्कीस अंगुल की जंघा, बारह अंगुल का घुटना, इक्कीस अंगुल का टखने से लेकर घुटने तक का भाग तथा एडी की गाँठ से नीचे का भाग चार अंगुल का—इस तरह आठ वित्ते अर्थात् चार हाथ की मूर्त्ति के अंगों का प्रमाण सदा होता है ॥१९०-१९२ ॥

अष्टतालप्रमाणमाह—**वेदेत्यादि**। ग्रीवा वेदाङ्गुला चतुरङ्गुला तथा हृदयं दशाङ्गुलं भवेत्। उदरं दशाङ्गुलं वस्तिश्च दशाङ्गुलः स्यात्। सक्थि एकविंशाङ्गुलं तथा जानु चतुरङ्गुलं स्यात्। जङ्घा एकविंशाङ्गुला तथा गुल्फस्य अधः चतुरङ्गुलं स्यात्। अष्टतालप्रमाणस्य मूर्त्तिभेदस्य इदं मानं सदा उक्तम् ॥१९०-१९२ ॥

त्रयोदशाङ्गुलं ज्ञेयं मुखञ्च हृदयं तथा ॥ १९३ ॥
उदरञ्च तथा वस्तिर्दशतालेषु सर्वदा।
गुल्फाधश्च तथा ग्रीवा जानु पञ्चाङ्गुलं स्मृतम् ॥ १९४ ॥
षड्विंशत्यङ्गुलं सक्थि तथा जङ्घा प्रकीर्त्तिता।
एकाङ्गुलो मूर्ध्नि मणिर्दशताले प्रकल्पयेत्।

पञ्चाशदङ्गुलौ बाहू दशताले स्मृतौ सदा॥ १९५॥

अन्वयः—दशतालेषु मुखं हृदयम् उदरं तथा वस्तिश्च सर्वदा त्रयोदशाङ्गुलं ज्ञेयम्। गुल्फस्य अधः ग्रीवा तथा जानु पञ्चाङ्गुलं स्मृतम्। सक्थि तथा जङ्घा षड्विंशत्यङ्गुलं प्रकीर्त्तिता। दशताले मूर्ध्नि मणिम् एकाङ्गुलं प्रकल्पयेत् तथा दशताले बाहू पञ्चाशदङ्गुलौ स्मृतौ॥ १९३-१९५॥

व्याख्या—दशतालेषु = पञ्चहस्तप्रमाणेषु मूर्त्तिभेदेषु, मुखम् = आननम्, हृदयम् = वक्षःस्थलम्, उदरम् = कुक्षिः, तथा वस्तिश्च = मूत्राशयश्च, सर्वदा = सततम्, त्रयोदशाङ्गुलम् = त्रयोदशाङ्गुलपरिमितम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्। गुल्फस्य = घुण्टकस्य, अधः = निम्नभागः, ग्रीवा = कण्ठः, तथा जानु = चक्रिका, पञ्चाङ्गुलम् = पञ्चाङ्गुलपरिमितम्, स्मृतम् = कथितम्। सक्थि = जानूपरिभागः, तथा जङ्घा = ऊरुः, षड्विंशत्यङ्गुला, प्रकीर्त्तिता = कथिता। दशताले = दशतालात्मके, मूर्ध्नि = मस्तके, स्थितम्, मणिम् = रत्नम्, एकाङ्गुलम् = अङ्गुल्यैकपरिमितम्, प्रकल्पयेत् = चिन्तयेत्, तथा दशताले = दशतालात्मके मूर्त्तौ, बाहू = भुजौ, पञ्चाङ्गुलौ = पञ्चाङ्गुलिपरिमितौ, स्मृतौ = कथितौ॥ १९३-१९५॥

हिन्दी—पाँच हाथ वाली मूर्त्ति में सदा मुँह, छाती, पेट तथा पेडू प्रत्येक तेरह अंगुल का होना चाहिए। एडी की गाँठ के नीचे का भाग गला तथा घुटना प्रत्येक पाँच अंगुल का कहा गया है। ऊरु और जँघा प्रत्येक छब्बीस अंगुल का होना चाहिए। शिर का मुकुटमणि एक अंगुल तथा दोनों बाहें अलग-अलग पन्द्रह अंगुलियों के होने चाहिए॥ १९३-१९५॥

दशतालप्रमाणमाह—**त्रयोदशाङ्गुलमित्यादि**। दशतालेषु मूर्त्तिभेदेषु मुखं हृदयं जठरं तथा वस्तिश्च सर्वदा त्रयोदशाङ्गुलं ज्ञेयम्। गुल्फस्य अधः, ग्रीवा तथा जानु पञ्चाङ्गुलं स्मृतम्। सक्थि षड्विंशत्यङ्गुलं तथा जङ्घा षड्विंशत्यङ्गुला प्रकीर्त्तिता। दशताले मूर्ध्नि शिरसि स्थितं मणिम् एकाङ्गुलं प्रकल्पयेत्। तथा दशताले बाहू पञ्चाशदङ्गुली सदा स्मृतौ॥ १९३-१९५॥

द्व्यङ्गुलौ द्व्यङ्गुलौ चोनौ ततो हीनप्रमाणके।
पाटवं तु यथाशोभि सर्वमानेषु कल्पयेत्॥ १९६॥

अन्वयः—ततः हीनप्रमाणके द्व्यङ्गुलौ द्व्यङ्गुलौ ऊनौ च कार्यौ। पाटवं तु सर्वमानेषु यथाशोभि कल्पयेत्॥ १९६॥

व्याख्या—ततः = तेभ्यः दशतालादिभ्यः, हीनप्रमाणके = निम्ननिदर्शने, द्व्यङ्गुलौ द्व्यङ्गुलौ = देहस्य प्रत्येकावयवं चाङ्गुलिद्वयमितम्, ऊनौ = हीनौ, कार्यौ। पाटवम् = परिकाल्पनिकचातुर्यम्, सर्वमानेषु = सकलविधपरिमाणेषु, यथाशोभि = शोभानुसारम्, कल्पयेत् = निर्मापयेत्॥ १९६॥

हिन्दी—दस बित्ते से कम माप वाली मूर्त्ति में हरेक बाँह की माप दो-दो अंगुल कम होनी चाहिए और सभी प्रकार की मापों वाली मूर्त्ति के अंगो की सजावट उसकी शोभा के अनुसार होनी चाहिए॥ १९६॥

द्व्यङ्गुलाविति। ततः तेभ्यः दशतालादिभ्यः हीनप्रमाणके न्यूनपरिमाणे सति द्व्यङ्गुलौ द्व्यङ्गुलौ प्रत्येकाङ्गम् अङ्गुलद्वयमित्यर्थः, ऊनौ कार्य्यौ इति शेषः। पाटवं पारिपाट्यं सज्जादिकमित्यर्थः सर्वमानेषु सर्वप्रकारपरिमाणेषु यथाशोभि कल्पयेत्॥ १९६॥

नवतालप्रमाणे न ह्यनाधिक्यं प्रकल्पयेत्॥ १९७॥

अन्वयः—नवतालप्रमाणे ऊनाधिक्यं न हि प्रकल्पयेत् ॥ १९७ ॥

व्याख्या—नवतालप्रमाणे = नवतालमिते मूर्त्तौ, तु, ऊनाधिक्यम् = अल्पाधिक्यम्, न हि = नैव, प्रकल्पयेत् = रचयेत् ॥ १९७ ॥

हिन्दी—और नौ बित्ते मापवाली मूर्त्ति में अङ्गों की माप में कमी-बेशी नहीं ही होनी चाहिए ॥ १९७ ॥

नवतालेति। नवतालप्रमाणे तु ऊनाधिक्यं न हि नैव ऊनाधिक्यं प्रकल्पयेत् कुर्य्यादित्यर्थः ॥ १९७ ॥

दशताले तु विज्ञेयौ पादौ पञ्चदशाङ्गुलौ।
एकैकाङ्गुलहीनौ स्तस्ततो न्यूनप्रमाणके।
दशतालोद्ध्र्वमाने तु ताले तालेऽधिकाङ्गुलम्।
कल्पयेन्मुखतो धीमान् शिल्पवित्सु यथा तथा ॥ १९८ ॥

अन्वयः—दशताले तु पादौ पञ्चदशाङ्गुलौ विज्ञेयौ। ततः न्यूनप्रमाणके पादौ एकाङ्गुलहीनौ स्तः। दशतालोद्ध्र्वमाने तु ताले ताले अधिकाङ्गुलं कार्यम्। धीमान् शिल्पवित्सु मुखतः यथा तथा कल्पयेत् ॥ १९८ ॥

व्याख्या—दशताले = दशतालमिते मूर्त्तौ, तु = किन्तु, पादौ = चरणौ, पञ्चदशाङ्गुलौ = पञ्चदशाङ्गुलमितौ, विज्ञेयौ = कार्यौ। ततः = दशतालात्, न्यूनप्रमाणके = ऊनपरिमिते पादौ, एकाङ्गुल- हीनौ = एकेनाङ्गुलेन, हीनौ = ऊनौ, स्तः = भवतः। दशतालात् = दशतालपरिमितात्, ऊर्ध्वमाने = उपरिपरिमिते, ताले ताले = प्रतिताले, अधिकाङ्गुलम् = एकाङ्गुलाधिक्यम्, निर्मातव्यम्। धीमान् = बुद्धिमान्, शिल्पवित् = मूर्त्तिकारः, मुखतः = आननादारभ्य, यथा = येन प्रकारेण सुन्दरं भवेत्, तथा = तेनैव रूपेण, कल्पयेत् = रचयेत् ॥ १९८ ॥

हिन्दी—दस बित्ते माप की मूर्त्ति में दोनों पैर अलग-अलग पन्द्रह अंगुल माप के बनाने चाहिए। इससे कम माप की मूर्त्ति में दोनों पैर एक-एक अंगुल कम माप का होना चाहिए। दस बित्ते से अधिक माप की मूर्त्ति में प्रत्येक बित्ते पर एक-एक अङ्गुल अधिक माप अङ्गों की करनी चाहिए और बुद्धिमान् मूर्त्तिकार को मुँह से शुरू कर पैर तक के अंगों को जैसे सुन्दर बन सके बनाना चाहिए ॥ १९८ ॥

दशताले इति। दशतालें तु पादौ पञ्चदशाङ्गुलौ कार्य्यौ इति शेषः। ततः दशतालात् न्यूनप्रमाणके न्यूनपरिमाणे पादौ एकाङ्गुलहीनौ एकेन अङ्गुलेन हीनौ स्तः भवत इत्यर्थः। पतितम् इति। दशतालात् ऊर्ध्वमाने तु ताले ताले प्रतितालम् अधिकाङ्गुलम् एकाङ्गुलाधिकं कार्य्यमिति शेषः। धीमान् शिल्पवित् शिल्पज्ञः मुखतः मुखादारभ्य इत्यर्थः, यथा सुष्ठु भवेत् तथा कल्पयेत् ॥ १९८ ॥

दीर्घोरुजङ्घा विकटा क्रूरा स्याद्भीषणासुरी।
पैशाची प्रतिमा ज्ञेया राक्षसी सुकृशापि वा ॥ १९९ ॥

अन्वयः—दीर्घोरुजङ्घा विकटा क्रूरा तथा भीषणा प्रतिमा आसुरी स्यात्। सुकृशापि प्रतिमा पैशाची वा राक्षसी ज्ञेया ॥ १९९ ॥

व्याख्या—दीर्घोरुजङ्घा = यस्याः मूर्त्तेः, ऊरुः = सक्थि, जङ्घा = प्रसृता, विकटा = भयप्रदा, तथा भीषणा = भयङ्करा, प्रतिमा = मूर्त्तिः, आसुरी = असुरसम्बन्धिनी प्रतिमा, स्यात् = भवेत्, तादृश्यपि सुकृशा = अतिदुर्बला, प्रतिमा = मूर्त्तिः, पैशाची = बीभत्सा, वा = अथवा, राक्षसी = दानवी, ज्ञेया = बोध्या ॥ १९९ ॥

हिन्दी—जिस मूर्त्ति की ऊरू एवं जाँघें लम्बी हों, वह देखने में विकट, क्रूर एवं भीषण आकारवाली हो, उसे आसुरी या उक्तलक्षण से युक्त अति दुबली मूर्त्ति हो, उसे राक्षसी या पैशाची मूर्त्ति समझनी चाहिए ॥ १९९ ॥

दीर्घेति। दीर्घोरुजङ्घा विकटा क्रूरा तथा भीषणा प्रतिमा आसुरी स्यात्। तादृशी अपि सुकृशा अतिक्षीणा प्रतिमा पैचाशी वा राक्षसी ज्ञेया ॥ १९९ ॥

न पञ्चाङ्गुलतो हीना न षडङ्गुलतोऽधिका।
करस्य मध्यमा प्रोक्ता सर्वमानेषु तद्विदैः ॥ २०० ॥

अन्वयः—पञ्चाङ्गुलतः हीना न षडङ्गुलतः अधिका न। तद्विदैः सर्वमानेषु करस्य मध्यमा प्रोक्ता ॥ २०० ॥

व्याख्या—पञ्चाङ्गुलतः = पञ्चाङ्गुलपरिमितात्, हीना = ऊना, न = नहि, षडङ्गुलतः = षडङ्गुलपरिमितात्, अधिकः = विशेषः, न = नहि। तद्विदैः—तत् = तस्याः मूर्त्तेः, विज्ञैः = भिज्ञैः, सर्वमानेषु = सकलपरिमाणेषु, करस्य = हस्तस्य, मध्यमा = मध्यस्थाङ्गुलिः, प्रोक्ता = कथिता ॥ २०० ॥

हिन्दी—सभी माप की मूर्त्ति में हाथ की बीच वाली अंगुली की माप माननी चाहिए। मूर्त्तिकला के विशेषज्ञों के अनुसार पाँच अंगुल से कम और छः अंगुल से ज्यादे नहीं होनी चाहिए ॥ २०० ॥

नेति। तद्विदैः तद्विज्ञैः पण्डितैः सर्वमानेषु करस्य मध्यमा पञ्चाङ्गुलतः न हीना, षडङ्गुलतश्च नाधिका प्रोक्ता कथिता ॥ २०० ॥

क्वचित् तु बालसदृशं सदैव तरुणं वपुः।
मूर्त्तीनां कल्पयेच्छिल्पी न वृद्धसदृशं क्वचित् ॥ २०१ ॥

अन्वयः—शिल्पी सदैव बालसदृशं वा तरुणं वपुः कल्पयेत्। क्वचित् वृद्धसदृशं न कल्पयेत् ॥ २०१ ॥

व्याख्या—शिल्पी = मूर्त्तिकारः, सदैव = सततम्, बालसदृशम् = बालस्वरूपम्, मूर्त्तीनाम् = देवप्रतिमानाम्, वा = अथवा, तरुणम् = युवारूपम्, वपुः = देवमूर्त्तिदेहम्, कल्पयेत् = रचयेत्। क्वचित् = कदाचित्, वृद्धसदृशम् = वार्द्धक्यरूपम्, न = नहि, प्रकल्पयेत् = रचयेत् ॥ २०१ ॥

हिन्दी—मूर्त्तिकार देवप्रतिमा कहीं बालरूप में, कहीं युवा रूप में बनाये। किसी भी परिस्थिति में देवता की मूर्त्ति वृद्धावस्था की नहीं बनानी चाहिए ॥ २०१ ॥

क्वचिदिति। शिल्पी शिल्पकुशलः सदैव बालसदृशं वा तरुणं वपुः देवमूर्त्तिशरीरं कल्पयेत्, क्वचित् कदाचित् वृद्धसदृशं न कल्पयेदित्यर्थः ॥ २०१ ॥

एवंविधान् नृपो राष्ट्रे देवान् संस्थापयेत् सदा।
प्रतिसंवत्सरं तेषामुत्सवान् सम्यगाचरेत् ॥ २०२ ॥

अन्वयः—नृपः राष्ट्रे सदा एवंविधान् देवान् संस्थापयेत् तथा प्रतिसंवत्सरं तेषाम् उत्सवान् सम्यक् आचरेत् ॥ २०२ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, राष्ट्रे = स्वशासितप्रदेशे, एवंविधान् = इत्थम्, देवान् = देवप्रतिमाः, संस्थापयेत् = स्थापनां कुर्यात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रतिसंवत्सरम् = वत्सरे वत्सरे, तेषाम् = तत्तद्देवविशेषाणाम्, उत्सवान् = उद्धवान्, सम्यक् = सुष्ठुतया, आचरेत् = अनुतिष्ठेत् ॥ २०२ ॥

हिन्दी—राजा अपने राज्य में ऐसी ही देवप्रतिमाओं की स्थापना करे तथा हर वर्ष उनका उत्सव उत्तम रीति से मनाये ॥ २०२ ॥

एवंविधानिति। नृपः राष्ट्रे सदा एवंविधान् देवान् संस्थापयेत् तथा प्रतिसंवत्सरं तेषां देवानाम् उत्सवांश्च सम्यक् आचरेत् अनुतिष्ठेत् ॥ २०२ ॥

देवालये मानहीनां मूर्त्तिं भग्नां न धारयेत्।
प्रासादांश्च तथा देवाञ्जीर्णानुद्धृत्य यत्नतः ॥ २०३ ॥
देवतां तु पुरस्कृत्य नृत्यादीन् वीक्ष्य सर्वदा।
न मनः स्वोपभोगार्थं विदध्याद् यत्नतो नृपः ॥ २०४ ॥

अन्वयः—नृपः देवालये मानहीनां तथा भग्नां मूर्त्तिं न धारयेत्। तथा जीर्णान् प्रासादान् देवांश्च यत्नतः उद्धृत्य सर्वदा देवतां तु पुरस्कृत्य नृत्यादीन् वीक्ष्य मनः स्वोपभोगार्थं यत्नतः न विदध्यात् ॥ २०३-२०४ ॥

• **व्याख्या**—नृपः = राजा, देवालये = मन्दिरे, मानहीनाम् = प्रमाणरहिताम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, भग्नाम् = खण्डिताम्, मूर्त्तिम् = देवप्रतिमाम्, न = नहि, धारयेत् = रक्षेत्। तथा जीर्णान् = शीर्णान्, प्रासादान् = मन्दिरान्, देवांश्च = प्रतिमांश्च, यत्नतः = प्रयासपूर्वकेण, उद्धृत्य = उद्धारं कृत्वा, सर्वदा = सततम्, देवताम् = देवम्, पुरस्कृत्य = अग्रे निधाय, नृत्यादीन् = नर्तनादिकान् उत्सवादिव्यापारान्, वीक्ष्य = अवलोक्य, मनः = चित्तम्, स्वोपभोगार्थम्—स्वस्य = आत्मनः, उपभोगार्थम् = आस्वादनाय, यत्नतः = सायासेन, न = नहि, विदध्यात् = नियुञ्ज्यात् ॥ २०३-२०४ ॥

हिन्दी–राजा का यह कर्त्तव्य है कि पूर्ववर्णित मापरहित एवं खण्डित देवप्रतिमा की मन्दिर में स्थापना न करे। देवमन्दिर या प्रतिमा जीर्ण होने पर यत्नपूर्वक उसका पुनः संस्कार कर दे। देवता के आगे नृत्य प्रभृति देखते हुए राजा अपने राजोचित भोग भोगने में मन को लिप्त न करे, प्रयासपूर्वक इससे बचे ॥ २०३-२०४ ॥

देवालये इति। देवतामिति। नृपः देवालये मानहीनाम् अप्रमाणां तथा भग्नां मूर्त्तिं न धारयेत् रक्षेत् तथा जीर्णान् प्रासादान् देवांश्च यत्नतः उद्धृत्य संस्कृत्य सर्वदा देवतां पुरस्कृत्य सम्पूज्य नृत्यादीन् उत्सवादिव्यापारान् वीक्ष्य दृष्ट्वा मनः चित्तं स्वोपभोगार्थं स्वस्य उपभोगाय यत्नतः यत्नेन न विदध्यात् न नियुञ्ज्यात् भोगासक्तं न कुर्यादित्यर्थः ॥ २०३-२०४ ॥

प्रजाभिर्विधृता ये ये ह्युत्सवास्तांश्च पालयेत्।
प्रजानन्देन सन्तुष्येत् तद्दुःखैर्दुःखितो भवेत्॥ २०५॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्यायस्य राष्ट्रे मध्यं लोकधर्मनिरूपणं नाम चतुर्थं प्रकरणम्।

* * *

अन्वयः—प्रजाभिश्च ये ये उत्सवा विधृताः तांश्च पालयेत्। प्रजानाम् आनन्देन सन्तुष्येत् तथा तद्दुःखैः दुःखितो भवेत्॥ २०५॥

व्याख्या—प्रजाभिः = जनैः, ये ये = यत् यत्, उत्सवाः = उल्लासाः, विधृताः = कृताः, तांश्च = उत्सवान्, राजाऽपि, पालयेत् = संरक्षणं कुर्यात्। प्रजानाम् = जनानाम्, आनन्देन = हर्षेण, सन्तुष्येत् = सन्तुष्टो भवेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, तासाम् = प्रजानाम्, दुःखैः = कष्टैः, दुःखितः = पीडितः, भवेत् = स्यात्॥ २०५॥

हिन्दी—राज्य में प्रजा के द्वारा संचालित उत्सवों की रक्षा राजा को करनी चाहिए। प्रजा के सुख में संतुष्ट और दुःख में दुःखी होना चाहिए॥ २०५॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'लोकधर्मनिरूपण' नामक चतुर्थ प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

* * *

प्रजाभिरिति। प्रजाभिश्च ये ये उत्सवाः विधृताः कृताः तांश्च पालयेत् रक्षेत्, प्रजानाम् आनन्देन सन्तुष्येत् सन्तुष्टो भवेत् तथा तासां दुःखैश्च दुःखितः भवेत्॥ २०५॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

* * *

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमं प्रकरणम्

दुष्टनिग्रहणं कुर्य्याद् व्यवहारानुदर्शनैः।
स्वाज्ञया वर्त्तितुं शक्ता स्वाधीना च सदा प्रजा॥ १॥

अन्वयः—व्यवहाराणाम् अनुदर्शनैः दुष्टानां निग्रहणं कुर्यात्। प्रजा स्वाधीना स्वाज्ञया सदा वर्त्तितुं शक्ता भवति॥ १॥

व्याख्या—व्यवहाराणाम् = अभियोगानाम्, अनुदर्शनैः = सम्यगवलोकनैः, दुष्टानाम् = दुर्वृत्तानाम्, निग्रहम् = नियन्त्रणम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्। प्रजा = जनाः, चेत्, स्वाधीना = स्वच्छन्दा, स्वाज्ञया—स्वस्य = आत्मनः, आज्ञया = आदेशेन, सदा = सततम्, वर्त्तितुम् = व्यवहर्त्तुम्, शक्ता = समर्था भवति॥ १॥

हिन्दी—विवाद का विषय उपस्थित होने पर उस पर भलीभाँति विचार कर दुष्टों को नियंत्रित करना चाहिए। ऐसा करने से प्रजा निरंकुश नहीं हो पाती तथा सदैव राजा के आदेशानुसार काम करने में समर्थ होती है॥ १॥

दुष्टेति। व्यवहाराणां विवादविषयाणाम् अनुदर्शनैः सम्यक् दर्शनैः दुष्टानां निग्रहं कुर्य्यात्, प्रजा स्वाधीना चेत् स्वाज्ञया निजाज्ञया स्वेच्छया इत्यर्थः, सदा वर्त्तितुं व्यवहर्त्तुं शक्ता भवति, तस्मात् प्रजा यथा स्वेच्छया न व्यवहरेयुः तथा कार्य्यमिति भावः॥ १॥

स्वेष्टहानिकरः शत्रुर्दुष्टः पापप्रचारवान्।
इष्टसम्पादनं न्याय्यं प्रजानां पालनं हि तत्॥ २॥

अन्वयः—दुष्टः पापप्रचारवान् शत्रुः स्वेष्टहानिकरः इष्टस्य सम्पादनं न्याय्यम्, तत् हि प्रजानां पालनम्॥ २॥

व्याख्या—दुष्टः = दुर्वृत्तः, पापस्य = अधर्मस्य, प्रचारवान् = प्रचलनकर्त्ता, शत्रुः = रिपुः, स्वेष्टहानिकरः—स्वस्य = आत्मनः, इष्टस्य = अभीप्सितस्य, हानिकरः = विनाशकः, इष्टस्य = अभिलषितस्य वस्तुनः, सम्पादनम् = निष्पादनम्, न्याय्यम् = न्यायादनपेतम्, तत् = न्याय्यम्, हि = यतः, प्रजानाम् = जनानाम्, पालनम् = संरक्षणम्, भवति॥ २॥

हिन्दी—अपने आचरण से पाप का प्रचार करने वाला व्यक्ति दुष्ट कहलाता है तथा अपनी अभिलषित वस्तु की हानि करने वाला व्यक्ति शत्रु कहलाता है। न्यायपूर्वक प्रजा के अभीष्ट का साधन ही प्रजापालन है॥ २॥

स्वेष्टेति। दुष्टः पापप्रचारवान् पापाशयः शत्रुः स्वस्य इष्टहानिकरः इष्टस्य अभिलषितस्य च सम्पादनं सम्यक् साधनं न्याय्यं न्यायादनपेतं राज्ञ इति शेषः, यथा शत्रुभिरिष्टनाशो न क्रियते तथा कार्य्यमिति भावः तत् हि तदेव इष्टसम्पादनमेव प्रजानां पालनम्॥ २॥

शत्रोरनिष्टकरणान्निवृत्तिः शत्रुनाशनम्।
पापाचारनिवृत्तिर्यैर्दुष्टनिग्रहणं हि तत्॥३॥

अन्वयः—शत्रोः अनिष्टकरणात् निवृत्तिः शत्रुनाशनम्। यैः पापाचारात् निवृत्तिः तत् हि दुष्टनिग्रहणम्॥३॥

व्याख्या—शत्रोः= रिपोः, अनिष्टकरणात्= अनभिलषितनिष्पादनात्, निवृत्तिः= उपरमः प्रवृत्त्यभावो वा, शत्रुनाशनम्—शत्रोः= रिपोः, नाशनम्= विध्वंसनम्। यैः= क्रियाभिः, पापाचारात्= अधर्माचरणात्, निवृत्तिः= दुष्टस्योपशमनम्, भवति, तत् हि= तदेव, दुष्टनिग्रहणम्—दुष्टानाम्= दुर्वृत्तानाम्, निग्रहणम्= नियन्त्रणम्, भवति॥३॥

हिन्दी—अनिष्ट साधन में शत्रुओं को रोक देना ही 'शत्रुविनाश' कहलाता है। दुष्टों को पाप के आचरण से विरत कर देना ही 'दुष्टदमन' कहलाता है॥३॥

शत्रोरिति। शत्रोः अनिष्टकरणात् निवृत्तिः शत्रुनाशनं पापाचारात् निवृत्तिश्च शत्रोरिति शेषः, तत् हि तदेव दुष्टनिग्रहणम्॥३॥

स्वप्रजाधर्म्मसंस्थानं सदसत्प्रविचारतः।
जायते चार्थसंसिद्धिर्व्यवहारस्तु येन सः॥४॥

अन्वयः—येन सदसत्प्रविचारतः स्वप्रजाधर्मसंस्थानं च अर्थसंसिद्धिः जायते सः व्यवहारः॥४॥

व्याख्या—येन= कर्मणा, सदसत्प्रविचारतः—सत्सु= साधुषु, असत्सु= असाधुषु, च= पुनः, प्रविचारतः= सुष्ठुविचारेण, स्वप्रजाधर्मसंस्थानम्—स्वस्य= आत्मनः, प्रजानाम्= जनानाम्, धर्मे= पुण्यकर्मणि, संस्थानम्= सुष्ठुस्थितिः, च= पुनः, अर्थसंसिद्धिः—अर्थानाम्= कार्याणाम्, संसिद्धिः= सम्यक्सफलता, जायते= भवति, सः= असौ, व्यवहारः प्रोक्तः॥४॥

हिन्दी—जिसके द्वारा सही और गलत विषय की जानकारी प्राप्त कर प्रजा की धार्मिक स्थिति तथा उनके कार्य-कलापों की सही जानकारी की सिद्धि हो, उसे व्यवहार मुकदमा कहते हैं॥४॥

स्वेति। येन सदसत्प्रविचारतः सत्सु असत्सु च प्रविचारतः सम्यक् विचारेण स्वस्य प्रजानां धर्मसंस्थानं धर्मे सम्यक् स्थितिः अर्थानां कार्य्याणां संसिद्धिः समीचीना सिद्धिः जायते सः व्यवहारः॥४॥

धर्म्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः।
सप्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः।
समाहितमतिः पश्येद् व्यवहाराननुक्रमात्॥५॥

अन्वयः—क्रोधलोभविवर्जितः सप्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः तथा समाहितमतिः सन् धर्मशास्त्रानुसारेण अनुक्रमात् व्यवहारान् पश्येत्॥५॥

व्याख्या—राजा, क्रोधलोभविवर्जितः= कोपलिप्सारहितः, सप्राड्विवाकः= अधिवक्तासहितः, सामात्यः= सचिवैः सह, सब्राह्मणपुरोहितः—ब्राह्मणैः= विप्रैः, पुरोहितैः= सौवस्तिकैः,

सहितः, तथा = तेनैव प्रकारेण, समाहितमतिः = एकनिष्ठचित्तो भूत्वा, धर्मशास्त्रानुसारेण = धर्मसंहितानुकूलेन, अनुक्रमात् = आनुपूर्व्यात्, व्यवहारान् = अभियोगान्, पश्येत् = अवलोकयेत् ॥ ५ ॥

हिन्दी—राजा स्वयं क्रोध एवं लोभ को छोड़कर अधिवक्ता, अमात्य, ब्राह्मण एवं पुरोहितों के साथ एकनिष्ठ मन से न्यायार्थ उपस्थित होकर क्रमशः मुकदमों को देखे ॥ ५ ॥

धर्मशास्त्रेति। राजा क्रोधलोभविवर्जितः सप्राड्विवाकः प्राड्विवाकेन सहितः सामात्यः अमात्यपरिवृतः सब्राह्मणपुरोहितः ब्राह्मणैः पुरोहितैश्च सहितः तथा समाहितमतिः अवहितचित्तः सन् धर्मशास्त्रानुसारेण अनुक्रमात् यथाक्रमं व्यवहारान् पश्येत् ॥ ५ ॥

नैकः पश्येच्च कार्य्याणि वादिनोः शृणुयाद् वचः।
रहसि च नृपः प्राज्ञः सभ्याश्चैव कदाचन ॥ ६ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः नृपः रहसि च वादिनः कार्याणि कदाचन न पश्येत्, वचश्च न शृणुयात्, सभ्याश्च न पश्येयुः ॥ ६ ॥

व्याख्या—प्राज्ञः = बुद्धिमान्, नृपः = राजा, एकः = एकाकी, च = पुनः, रहसि = एकान्ते, वादिनोः = अभियोगिनोः, कार्याणि = व्यवहाराः, कदाचन = कदापि, न पश्येत् = अवलोकयेत्, वचश्च = कथनञ्च, न = नहि, शृणुयात् = आकर्णयेत्, सभ्याश्च = सभासदश्च, न पश्येयुः = शृणुयुः ॥ ६ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा और उनके सभासद अकेले एकान्त में वादी-प्रतिवादी के मुकदमों को कभी न देखें और न उनकी बातें ही सुनें ॥ ६ ॥

नैक इति। प्राज्ञः नृपः एकः एकाकी रहसि निर्जने वादिनोः कार्य्याणि कदाचन न पश्येत् वचश्च वचनञ्च न शृणुयात्, सभ्याश्च न पश्येयुः नापि शृणुयुरित्यर्थः ॥ ६ ॥

पक्षपाताधिरोपस्य कारणानि च पञ्च वै।
रागलोभभयद्वेषा वादिनोश्च रहःश्रुतिः ॥ ७ ॥

अन्वयः—रागलोभभयद्वेषाः वादिनोः रहःश्रुतिः पक्षपाताधिरोपस्य वै पञ्च कारणानि ॥ ७ ॥

व्याख्या—रागः = अभिमतविषयाभिलाषः, लोभः = लिप्सा, भयः = भीतिः, द्वेषाः = सापत्न्य-भावाश्च, रहः = निर्जने, श्रुतिः = अभियोगश्रवणञ्च, पक्षपाताधिरोपस्य = पक्षपातरूपदोषस्य, वै = इति निश्चयेन, एतानि पञ्च = पूर्वपरिगणितपञ्च, कारणानि = निमित्तानि, वा भवन्ति ॥ ७ ॥

हिन्दी—राग, द्वेष, लोभ, भय और वादी-प्रतिवादी की एकान्त में बातें सुनना—निश्चित रूप से ये पाँच पक्षपात के कारण माने जाते हैं ॥ ७ ॥

पक्षेति। रागलोभभयद्वेषाः वादिनोः अर्थिप्रत्यर्थिनोः रहःश्रुतिः विजने वाक्यश्रवणञ्च एतानि पञ्च पक्षपाताधिरोपस्य पक्षपातरूपदोषस्य कारणनि वैशब्दोऽवधारणे ॥ ७ ॥

पौरकार्य्याणि यो राजा न करोति सुखे स्थितः।
व्यक्तं स नरके घोरे पच्यते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यः राजा सुखे स्थितः पौरकार्याणि न करोति, सः व्यक्तं नरके पच्यते, न अत्र संशयः ॥ ८ ॥

व्याख्या—यः = अविवेकी, राजा = नरपतिः, सुखे = आत्मोपभोगे, स्थितः = निरतः सन्, पौरकार्याणि—पौराणाम् = पुरवासिनां, प्रजानाम्, कार्याणि = कृत्यानि, न = नहि, करोति = सम्पादयति, सः = राजा, व्यक्तम् = स्पष्टमेव, घोरे = भयङ्करे, नरके = निरये, पच्यते = पतति, अत्र = अस्मिन् विषये, न = नहि, संशयः = सन्देहः, कार्यः = विधेयः ॥ ८ ॥

हिन्दी—जो राजा अपने सुखोपभोग में डूबा रहकर नागरिकों के हितसाधन नहीं करता, निश्चय ही वह घोर नरक में गिरता है; इसमें कतई सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

पौरेति। यः राजा सुखे स्थितः सुखासक्तः सन् पौराणां पुरवासिनां प्रजानामित्यर्थः, कार्य्याणि न करोति, स व्यक्तं निश्चितं घोरे नरके पच्यते, अत्र संशयः नास्ति ॥ ८ ॥

यस्त्वधर्मेण कार्य्याणि मोहात् कुर्य्यान्नराधिपः ।
अचिरात् तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥

अन्वयः—यः नराधिपः मोहात् अधर्मेण कार्याणि कुर्यात्, शत्रवः अचिरात् तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—यः = अज्ञानी, नराधिपः = राजा, मोहात् = अज्ञानात्, अधर्मेण = धर्मविरुद्धाचरणेन, कार्याणि = प्रजाकृत्यानि, कुर्यात् = निष्पादयेत्, शत्रवः = अरयः, अचिरात् = शीघ्रमेव, तम् = विवेकशून्यम्, दुरात्मानम् = दुर्वृत्तम्, वशे = आत्माधीने, कुर्वन्ति = निष्पादयन्ति ॥ ९ ॥

हिन्दी—जो राजा अज्ञानतावश धर्मविरुद्ध आचरण करता है, उस दुरात्मा को शत्रु शीघ्र ही अपने अधीन कर लेते हैं ॥ ९ ॥

य इति। यः नराधिपः मोहात् अज्ञानात् अधर्मेण कार्य्याणि कुर्य्यात्, शत्रवः अचिरात् तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति ॥ ९ ॥

अस्वर्ग्या लोकनाशाय परानीकभयावहा ।
आयुर्वीजहरी राज्ञामस्ति वाक्ये स्वयं कृतिः ॥ १० ॥

अन्वयः—वाक्ये स्वयं कृतिः राज्ञाम् अस्वर्ग्या परानीकभयावहा आयुर्वीजहरी लोकनाशाय भवति ॥ १० ॥

व्याख्या—वाक्ये = वादिप्रतिवादिनोः कथने, स्वयम् = सभ्यनिरपेक्षेणात्मनैव, कृतिः = विचारदर्शनम्, राज्ञाम् = भूपतीनाम्, अस्वर्ग्या = नरकपातिनी, तथा परानीकभयावहा—परानीकेभ्यः = शत्रुसैन्येभ्यः, भयम् = भीतिः, आवहति = वहनं करोतीति तथोक्ता, अत एव आयुर्वीजहरी = जीवनविघातिनी सती, लोकानाम् = प्रजानाम्, नाशाय = विघाताय, भवति = अस्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

हिन्दी—वादी-प्रतिवादी की बातों को सुनकर राजा यदि सभासदों की राय लिये बिना स्वयं कोई निर्णय करता है तो उससे उसे नरक की प्राप्ति, प्रजा का नाश, शत्रुसेना से भय तथा आयु का नाश होता है ॥ १० ॥

अस्वर्ग्येति। वाक्ये वादिनोर्वचने स्वयं कृतिः सभ्यनिरपेक्षेण स्वयं विचारदर्शनं राज्ञाम् अस्वर्ग्या अस्वर्गसाधनी तथा परानीकभयावहा परानीकेभ्यः शत्रुसैन्येभ्यः भयम् आवहतीति तथोक्ता शत्रुवृद्धिकरीत्यर्थः, अत एव आयुर्वीजहरी आयुःक्षयकरीत्यर्थः, सती लोकानां प्रजानां नाशाय अस्ति भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

तस्माच्छास्त्रानुसारेण राजा कार्य्याणि साधयेत् ॥ ११ ॥

अन्वयः—तस्मात् राजा शास्त्रानुसारेण कार्याणि साधयेत् ॥ ११ ॥

व्याख्या—तस्मात् = अस्मादेव कारणात्, राजा = भूपतिः, शास्त्रानुसारेण = शास्त्रीयनिर्देशानुकूलेन, कार्याणि = अभियोगानि, साधयेत् = निष्पादयेत् ॥ ११ ॥

हिन्दी—अतः राजा को विधिसम्मत मुकदमें की सुनवाई करनी चाहिए ॥ ११ ॥

तस्मादिति। तस्मात् राजा शास्त्रानुसारेण कार्य्याणि साधयेत् सम्पश्येत् ॥ ११ ॥

यदा न कुर्य्यान्नृपतिः स्वयं कार्य्यविनिर्णयम्।
तदा तत्र नियुञ्जीत ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ १२ ॥
दान्तं कुलीनं मध्यस्थमनुद्वेगकरं स्थिरम्।
परत्र भीरुं धर्मिष्ठमुद्युक्तं क्रोधवर्जितम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—यदा नृपतिः स्वयं न कुर्यात् तदा तत्र कार्यविनिर्णये वेदपारगं कुलीनं मध्यस्थम् अनुद्वेगकरं स्थिरं परत्र भीरुं धर्मिष्ठम् उद्युक्तं क्रोधवर्जितं ब्राह्मणं नियुञ्जीत ॥ १२-१३ ॥

व्याख्या—यदा = यस्यां स्थितौ, नृपतिः = राजा, स्वयम् = आत्मनैव, न = नहि, कुर्यात् = अभियोगं पश्येत्, तदा = तस्यां स्थितौ, तत्र = तस्मिन् व्यवहारे, कार्यविनिर्णये = व्यवहारनिष्पादने, वेदपारगम् = वेदाधीतिनम्, दान्तम् = विनीतम्, कुलीनम् = अभिजातम्, मध्यस्थम् = प्रमाणपुरुषम्, अनुद्वेगकरम् = शान्तप्रकृतिम्, स्थिरम् = अविचलम्, परत्र भीरुम् = परलोकत्रस्नुम्, धर्मिष्ठम् = धर्मनिरतम्, उद्युक्तम् = उद्यमिनम्, क्रोधवर्जितम् = अक्रोधिनम्, ब्राह्मणम् = भूसुरम्, नियुञ्जीत = नियुक्तं कुर्यात् ॥ १२-१३ ॥

हिन्दी—राजा यदि किसी कारण से मुकदमे का फैसला खुद न कर सके तो इसके लिए वेद का अच्छा ज्ञान रखने वाला विनम्र, खानदानी, तटस्थ, शान्तचित्त, स्थिर, परलोक से डरने वाला, धर्मात्मा, उद्योगी एवं क्रोधहीन ब्राह्मण को इस काम के लिए नियुक्त करे ॥ १२-१३ ॥

यदेति। **दान्तमिति**। यदा नृपतिः स्वयं न कुर्यात् तदा तत्र कार्य्यविनिर्णये विषये वेदपारगं, दान्तं विनीतं, कुलीनं सत्कुलप्रसूतं मध्यस्थम् उदासीनम् अपक्षपातिनमित्यर्थः, अनुद्वेगकरं शान्तप्रकृतिं स्थिरम् अचञ्चलं परत्र भीरुं परलोकभयशीलं धर्मिष्ठं धार्मिकम् उद्युक्तं यत्नवन्तं तथा क्रोधवर्जितं ब्राह्मणं नियुञ्जीत ॥ १२-१३ ॥

यदा विप्रो न विद्वान् स्यात् क्षत्रियं तत्र योजयेत्।
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—यदा विद्वान् विप्रः न स्यात् तदा तत्र धर्मशास्त्रज्ञं क्षत्रियं वा वैश्यं योजयेत्। शूद्रन्तु यत्नेन वर्जयेत् ॥ १४ ॥

व्याख्या—यदा = यस्यां स्थितौ, विद्वान् = ज्ञानवान्, विप्रः = ब्राह्मणः, न = नहि, स्यात् = उपलभेत्, तत्र = तस्मिन् व्यवहारे, धर्मशास्त्रज्ञम् = धर्मशास्त्रवेत्तारम्, क्षत्रियम् = राजन्यम्, वा = अथवा, वैश्यम् = वणिजम्, योजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्। शूद्रन्तु = वृषलन्तु, यत्नेन = सायासेन, वर्जयेत् = परित्यजेत् ॥ १४ ॥

हिन्दी—यदि उक्त निर्णायक पद के लिए तथाकथित विद्वान् ब्राह्मण न मिले तो उसकी

जगह क्षत्रिय अथवा वैश्य को नियुक्त करना चाहिए। शूद्र को इस काम के लिए प्रयासपूर्वक छोड़ देना चाहिए ॥१४॥

यदेति। यदा विद्वान् विप्रः ब्राह्मणः न स्यात् तदा तत्र कार्य्यनिर्णये धर्मशास्त्रज्ञं क्षत्रियं वा वैश्यं योजयेत् नियुञ्ज्यात्, शूद्रन्तु यत्नेन वर्जयेत् त्यजेत्, शूद्रो विचारदर्शने न नियोक्तव्य इति भावः ॥१४॥

यद्वर्णजो भवेद्राजा योज्यस्तद्वर्णजः सदा।
तद्वर्ण एव गुणिनः प्रायशः सम्भवन्ति हि॥१५॥

अन्वयः—राजा यद्वर्णजः भवेत् तद्वर्णजः सदा योज्यः। प्रायशः तद्वर्णजः एव गुणिनः सम्भवन्ति हि॥१५॥

व्याख्या—राजा = नृपः, यद्वर्णजः = यस्मिन् वर्णे समुत्पन्नो भवेत्, तद्वर्णजः = तस्मिन्वर्णे समुत्पन्नो जनः, सदा = सर्वदा, तत्र = तस्मिन् व्यवहारे, योज्यः = नियोक्तव्यः, हि = यतः, तस्मिन् वर्णे एव, प्रायशः = आधिक्येन, गुणिनः = गुणवन्तो जनाः, सम्भवन्ति = समुत्पन्नो भवन्ति ॥१५॥

हिन्दी—जिस जाति का राजा हो, मुकदमे के फैसले हेतु उसी जाति का अपना प्रतिनिधि चुनना चाहिए। क्योंकि बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिस जाति का राजा होता है, उस जाति के लोग अधिक गुणवान् होते हैं ॥१५॥

यदिति। राजा यद्वर्णजः यस्मिन् वर्णे ब्राह्मणादौ जातः भवेत्, तद्वर्णजः तस्मिन् वर्णे जातः ब्राह्मणादिः सदा तत्र योज्यः नियोक्तव्यः। हि यतः तस्मिन् वर्णे एव प्रायशः बाहुल्येन गुणिनः गुणवन्तः जनाः सम्भवन्ति जायन्ते ॥१५॥

व्यवहारविदः प्राज्ञा वृत्तशीलगुणान्विताः।
रिपौ मित्रे समा ये च धर्मज्ञाः सत्यवादिनः॥१६॥
निरालसा जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदाः।
राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वासु जातिषु॥१७॥

अन्वयः—सर्वासु जातिषु ये च व्यवहारविदः प्राज्ञाः वृत्तशीलगुणान्विताः रिपौ मित्रे च समाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः निरालसाः जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदाः, ते राज्ञा सभ्याः नियोक्तव्याः ॥१६-१७॥

व्याख्या—सर्वासु = सकलासु, जातिषु = वर्णेषु मध्ये, ये = जनाः, व्यवहारविदः = विचारदर्शनाभिज्ञाः, प्राज्ञः = ज्ञानवन्तः, वृत्तशीलगुणान्विताः = चरित्रस्वभावप्रभावसम्पन्नाः, रिपौ = शत्रौ, मित्रे = सुहृदि, च = पुनः, समाः = समदर्शिनः, धर्मज्ञाः = धर्मज्ञानवन्तः, सत्यवादिनः = सत्यभाषिणः, निरालसाः = आलस्यरहिताः, जितक्रोधकामलोभाः = क्रोधकामलोभविजेतारः, प्रियंवदाः = प्रियवक्तारः, ते = एवंविधाः जनाः, राज्ञा = नृपेण, सभ्याः = सभासदः, नियोक्तव्याः = नियोजितव्याः ॥१६-१७॥

हिन्दी—विधिवेत्ता, ज्ञानी, चरित्रवान्, शील और गुण से युक्त, रागद्वेषरहित, धर्मात्मा, आलस्यहीन, काम, क्रोध और लोभ को जीतने वाले तथा प्रियवादी व्यक्ति—चाहे वे जिसकिसी भी जाति के हों, उन्हें जूरी पंच के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१६-१७॥

व्यवहारविद इति। निरालसा इति। सर्वासु जातिषु मध्ये ये जनाः व्यवहारविदः विचारदर्शनाभिज्ञाः प्राज्ञाः बुद्धिमन्तः वृत्तशीलगुणान्विताः सुचरित्राः सुस्वभावाश्च इत्यर्थः, रिपौ शत्रौ मित्रे सुहृदि च समाः समदर्शिनः धर्मज्ञाः, सत्यवादिनः निरालसाः आलस्यवर्जिताः जितक्रोधकामलोभाः कामक्रोधलोभविरहिता इत्यर्थः, तथा प्रियंवदाः प्रियभाषिणः, ते राज्ञाः नियोक्तव्याः ॥ १६-१७ ॥

कीनाशाः कारुकाः शिल्पिकुसीदश्रेणिनर्त्तकाः ।
लिङ्गिनस्तस्कराः कुर्य्युः स्वेन धर्मेण निर्णयम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—कीनाशाः कारुकाः शिल्पिकुसीदश्रेणिनर्त्तकाः लिङ्गिनः तस्कराः स्वेन धर्मेण निर्णयं कुरु ॥ १८ ॥

व्याख्या—कीनाशाः = कृषकाः, कारुकाः = वर्द्धकिनः, कर्मकाराः, शिल्पिनः = चित्रकारादयः, कुसीदिनः = वार्द्धुषिकाः, श्रेणयः = समव्यवसायिसङ्घाः, नर्त्तकाः = लयालम्बाः, लिङ्गिनः = धर्मध्वजिनः, तथा तस्कराः = दस्यवः, स्वेन = आत्मना, धर्मेण = पुण्यकर्मणा, निर्णयम् = स्वजात्युक्तकर्मनिरूपणम्, कुर्यात् = निष्पादयेत् ॥ १८ ॥

हिन्दी—किसान, बढई, कारीगर, सूदखोर, समान व्यवसायीसंघ, नचनियाँ, धर्मध्वजी तथा दस्युवर्ग के लोग सभी अपने-अपने धर्म के अनुसार अपने जातिगत विवादों का निर्णय अपनी पंचायत में ही करें ॥ १८ ॥

कीनाशा इति। कीनाशाः कृषीबलाः कारुकाः कर्मकारविशेषाः शिल्पिनः कुसीदिनः वृद्धिजीविनः श्रेणयः निकृष्टजातीनां सङ्घाः नर्त्तकाः नटजातयः लिङ्गिनः भण्डयोगिप्रभृतयः तथा तस्कराः जातिविशेषाश्च स्वेन निजेन धर्मेण निर्णयं स्वस्वजात्युक्तकार्य्यनिरूपणं कुर्य्युः ॥ १८ ॥

अशक्यो निर्णयो ह्यन्यैस्तज्ज्ञैरेव तु कारयेत् ॥ १९ ॥

अन्वयः—अन्यैः निर्णयः अशक्यः, तस्मात् तज्ज्ञैः एव कारयेत् ॥ १९ ॥

व्याख्या—अन्यैः = तज्जातिभिन्नैः जनैः, निर्णयः = आधर्षणम्, अशक्यः = अनिष्पाद्यः, एव = इति निश्चयेन, तस्मात् = तेन हेतुना, तज्ज्ञैरेव = तदभिज्ञैरेव, कारयेत् = निर्वाहयेत्, नृपः इति ॥ १९ ॥

हिन्दी—क्योंकि उनकी जाति के धर्म को न जानने वाले लोग से उनके विवाद का निर्णय होना असंभव है। अतः जिस जाति के लोगों का विवाद हो, उसका निर्णय उसी जाति के लोगों से कराना चाहिए ॥ १९ ॥

अशक्य इति। अन्यैः तत्तज्जात्युक्तधर्मानधिज्ञैः निर्णयः अशक्यः कर्त्तुमिति शेषः, तस्मात् तज्ज्ञैः तदभिज्ञैरेव कारयेत् कार्य्यनिर्णयं राजेति शेषः ॥ १९ ॥

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्य्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान्नृपो धर्मे चिकीर्षुर्हितमात्मनः ॥ २० ॥

अन्वयः—आत्मनः हितं चिकीर्षुः नृपः आश्रमेषु मिथः कार्ये विवदतां द्विजातीनां धर्मे न विब्रूयात् ॥ २० ॥

व्याख्या—आत्मनः = स्वस्य, हितम् = कल्याणम्, चिकीर्षुः = कर्त्तुमिच्छुः, नृपः = राजा,

आश्रमेषु = ब्रह्मचर्यादिषु तिष्ठताम्, मिथः = अन्योन्यम्, कार्ये = कर्मणि, विवदताम् = विवादं कुर्वताम्, धर्मे = विषये, न = नहि, विब्रूयात् = विरुद्धं वदेत् ॥ २० ॥

हिन्दी—अपना हित चाहने वाले राजा को ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में रहकर परस्पर किसी काम को लेकर विवाद करने वाले द्विजातियों के धर्म के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहिए ॥२० ॥

आश्रमेष्विति। आत्मनः हितं चिकीर्षुः नृपः आश्रमेषु ब्रह्मचर्य्यादिषु तिष्ठतामिति शेषः, मिथः परस्परं कार्य्ये विवदतां द्विजातीनां धर्मे विषये न विब्रूयात् विरुद्धं न ब्रूयादित्यर्थः ॥ २० ॥

तपस्विनां तु कार्य्याणि त्रैविद्यैरेव कारयेत्।
मायायोगविदाञ्चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ २१ ॥

अन्वयः—तपस्विनां मायायोगविदां तु कार्याणि त्रैविद्यैरेव कारयेत्, कोपकारणात् स्वयं न ॥ २१ ॥

व्याख्या—तपस्विनाम् = तपोधनानाम्, मायायोगविदाम्—मायिनाम् = ऐन्द्रजालिकादीनाम्, योगविदाम् = योगिनाञ्च, कार्याणि = व्यवहाराणि, त्रैविद्यैरेव = त्रिवेद्यैरेव, कारयेत् = सम्पादयेत्, कोपकारणात् = कदाचिद्विपरीतनिर्णयात् कुपितो भवेदिति विचार्य नान्यैः कारयेत्, स्वयम् = आत्मनः, तेषां व्यवहारे किमपि निर्णयम्, न = नहि कुर्यात् ॥ २१ ॥

हिन्दी—तापसों, जादूगरों और योगिनियों के विवाद का निर्णय वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा ही करवाना चाहिए। क्योंकि विपरीत निर्णय से वे कुपित न हो जायें, अतः उनके विवाद का निर्णय राजा को स्वयं नहीं देना चाहिए ॥ २१ ॥

तपस्विनामिति। तपस्विनां मायायोगविदां मायिनां योगिनाञ्चेत्यर्थः, कार्य्याणि त्रैविद्यैः त्रिवेदिभिः त्रयीविद्यापारीणैरित्यर्थः, एव न त्वन्यैरित्यर्थः, कारयेत्, कोपकारणात् यदि तेषां कोपो भवेदिति आलोच्येत्यर्थः, स्वयं न कुर्य्यादिति शेषः ॥ २१ ॥

सम्यग्विज्ञानसम्पन्नो नोपदेशं प्रकल्पयेत्।
उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वाचार्य्यतपस्विनाम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—सम्यग्विज्ञानसम्पन्नः उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वाचार्यतपस्विनाम् उपदेशं न प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

व्याख्या—सम्यग् = सुष्ठुतया, विज्ञानसम्पन्नः = विशिष्टज्ञानयुक्तो राजा, उत्कृष्टजातिशीलानाम् = प्रशस्तकुलशीलवताम्, गुरूणाम् = मन्त्रोपदेशकानाम्, आचार्याणाम् = अध्यापकानाम्, तपस्विनाम् = तापसानाम्, उपदेशम् = बोधनं वाऽनुशासनम्, न = नहि, प्रकल्पयेत् = विचारयेत् ॥२२ ॥

हिन्दी—स्वयं विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न होने के बावजूद राजा को प्रशस्त कुलशील वाले गुरु, आचार्य एवं तापसों को उपदेश देने का विचार भी नहीं करना चाहिए ॥ २२ ॥

सम्यगिति। सम्यग् विज्ञानसम्पन्नः राजा उत्कृष्टजातिशीलानाम् अत्युत्कर्षवतामित्यर्थः, गुरूणाम् आचार्य्याणां तपस्विनाञ्च उपदेशं न प्रकल्पयेत् न दद्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

आरण्यास्तु स्वकैः कुर्य्युः सार्थिकाः सार्थिकैः सह।
सैनिकाः सैनिकैरेव ग्रामेऽप्युभयवासिभिः ॥ २३ ॥

अभियुक्ताश्च ये यत्र यन्निबन्धनियोजनाः ।
तत्रत्यगुणदोषाणां त एव हि विचारकाः ॥ २४ ॥

अन्वयः—आरण्याः स्वकैः सार्थिकाः सार्थिकैः सैनिकाः सैनिकैः सह कुर्युः, किञ्च ग्रामेऽपि उभयवासिभिः। यत्र ये अभियुक्ताः यन्निबन्धनियोजनाः, ते एव तत्रत्यगुणदोषाणां विचारकाः ॥ २३-२४ ॥

व्याख्या—आरण्याः = वनवासिनः, स्वकैः = वनवासिभिरेव, सार्थिकाः = व्यापारिणः, व्यापारिभिरेव, सैनिकाः = सामरिकाः, सैनिकैः = सामरिकैरेव, सह व्यवहारनिर्णयम्, कुर्युः = विदध्युः, किञ्च ग्रामेऽपि, उभयवासिभिः = ग्रामारण्यनिवासिभिः। यत्र = यस्मिन् विषये, ये = पुरुष-विशेषाः, अभियुक्ताः = प्रत्यर्थिनः, यन्निबन्धनियोजनाः—यत् = यस्मिन्, निबन्धे = नियमने प्रबन्धे वा, नियोजनाः = नियुक्ताः, ते = जनाः, एव, तत्रत्यानाम् = तेषां विषयाणाम्, गुणदोषाणाम् = गुणावगुणानाम्, विचारकाः = चिन्तकाः भवन्ति ॥ २३-२४ ॥

हिन्दी—जंगली लोग जंगलियों के द्वारा, व्यापारीसंघ अपने समूहों के द्वारा, सैनिक सैनिकों द्वारा और ग्रामीण जन ग्रामारण्य दोनों के निवासियों द्वारा ही अपने विवाद का निर्णय करायें। राजा के द्वारा जिस कार्य के लिए जो जहाँ नियुक्त किये गये हैं, वस्तुतः वे ही वहाँ के गुण और अवगुणों के वास्तविक विचारक होते हैं ॥ २३-२४ ॥

आरण्या इति। अभियुक्ता इति। आरण्याः वन्याः किरातादयः स्वकैः आरण्यैः सार्थिकाः सम्भूयकारिणः सार्थिकैः, सैनिकाः सैनिकैश्च सह कार्य्यनिर्णयं कुर्य्युरित्यर्थः, किञ्च ग्रामेऽपि उभयवासिभिः उभयैः वासिभिः निवासिभिः यत्र विषये ये अभियुक्ताः तथा यन्निबन्धनियोजनाः यदर्थनियुक्ताः ते एव तत्रत्यानां गुणदोषाणां विचारकाः भवन्तीत्यर्थः। । २३-२४ ॥

राजा तु धार्मिकान् सभ्यान् नियुञ्ज्यात् सुपरीक्षितान्।
व्यवहारधुरं वोढुं ये शक्ताः पुङ्गवा इव ॥ २५ ॥

अन्व्यः—ये पुङ्गवाः इव व्यवहारधुरं वोढुं शक्ताः राजा तान् धार्मिकान् सुपरीक्षितान् सभ्यान् नियुञ्ज्यात् ॥ २५ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, पुङ्गवाः = वृषभाः मानवोत्तमाः वा, इव = यथा, व्यवहारधुरम् = कार्ययुगम्, वोढुम् = वहनकर्त्तुम्, शक्ताः = समर्थाः, तान् = एतादृशान्, पुरुषान्, धार्मिकान् = पुण्यात्मनः, सुपरीक्षितान् = सुष्ठुसमीक्षितान्, सभ्यान् = सांसदः, नियुञ्ज्यात् = नियुक्तं कुर्यात् ॥ २५ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति सशक्त बैलों की तरह विवाद-निर्णय के भार को वहन करने में समर्थ हों, पूर्णरूप से समीक्षित हों, धार्मिक हों; वैसे लोगों को राजा जूरीपंच के पद पर नियुक्त करे ॥ २५ ॥

राजेति। ये जनाः पुङ्गवाः वृषभा इव व्यवहारधुरं वोढुं शक्ताः समर्थाः भवन्ति, राजा तान् धार्मिकान् सुपरीक्षितान् सभ्यान् नियुञ्ज्यात् ॥ २५ ॥

लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः सप्त पञ्च त्रयोऽपि वा।
यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सा यज्ञसदृशी सभा ॥ २६ ॥

अन्वयः—यत्र सप्त पञ्च त्रयोऽपि वा लोकवेदधर्मज्ञाः विप्राः उपविष्टाः स्युः, सा सभा यज्ञसदृशी ॥ २६ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्यां सभायाम्, सप्त = सप्तसंख्यकाः, पञ्च = पञ्चसंख्यकाः, वा = अथवा, त्रयोऽपि = त्रिसंख्यकोऽपि, लोकवेदधर्मज्ञाः = लोकाचारविशेषज्ञाः, वेदवेत्तारः, धर्मस्य तत्त्वविदः, विप्राः = ब्राह्मणाः, उपविष्टाः = स्थिताः, सा सभा = परिषद्, यज्ञसदृशी = यज्ञस्थलमिवातिशुचिः स्यात् ॥ २६ ॥

हिन्दी—जिस सभा में सात, पाँच या कम-से-कम तीन लौकिक एवं वैदिक कृत्यों के जानकार धर्मज्ञ ब्राह्मण बैठे हों, वह सभा यज्ञभूमि की तरह अतिपवित्र होती है ॥ २६ ॥

लोकेति। यत्र सभायां सप्त पञ्च अपि वा अथवा त्रयः लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः लोकाचारज्ञाः वेदज्ञाः धर्मज्ञाश्च विप्राः उपविष्टाः सा सभा यज्ञसदृशी यज्ञस्थानसमा अतिपवित्रा इत्यर्थः ॥ २६ ॥

श्रोतारो वणिजस्तत्र कर्त्तव्याः सुविचक्षणाः ॥ २७ ॥

अन्वयः—तत्र सुविचक्षणाः वणिजः श्रोतारः कर्त्तव्याः ॥ २७ ॥

व्याख्या—तत्र = तस्यां सभायाम्, सुविचक्षणाः = सुबुद्धिमन्तः, वणिजः = व्यापारिणः, श्रोतारः = श्रावकाः, कर्त्तव्याः = नियोक्तव्याः ॥ २७ ॥

हिन्दी—और उस सभा में श्रोता के रूप में प्रखर बुद्धिमान् वैश्यों को भी नियुक्त करना चाहिए ॥ २७ ॥

श्रोतार इति। तत्र विचारदर्शनस्थाने सुविचक्षणाः वणिजः श्रोतारः कर्त्तव्याः नियोक्तव्या इत्यर्थः, ते हि यथा स्वर्णादिपरीक्षकाः तथा कार्य्यनिर्णयस्यापि परीक्षका भवन्तीति भावः ॥ २७ ॥

अनियुक्तो नियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति।
दैवीं वाचं स वदति यः शास्त्रमुपजीवति ॥ २८ ॥

अन्वयः—धर्मज्ञः अनियुक्तः नियुक्तः वा वक्तुम् अर्हति, यः शास्त्रमुपजीवति सः दैवीं वाचं वदति ॥ २८ ॥

व्याख्या—धर्मज्ञः = धर्मवेत्ता, अनियुक्तः = अनियोजितः, वा = अथवा, नियुक्तः = नियोजितः जनः, वक्तुम् = कथितुम्, अर्हति = समर्थो भवति, यतः, यः = जनः, शास्त्रम् = धर्मग्रन्थम्, उपजीवति = अनुसृत्य चलति, सः = असौ, दैवीम् = अलौकिकीम्, वाचम् = वचनम्, वदति = कथयति ॥ २८ ॥

हिन्दी—धर्मशास्त्र का जानकार व्यक्ति चाहे नियुक्त हो या अनियुक्त, सभा में बोलने का उसे हक है; क्योंकि ऐसे लोग शास्त्रानुसार आचरण भी करते हैं तथा इनकी वाणी अलौकिक होती है ॥ २८ ॥

अनियुक्त इति। धर्मज्ञः धर्मशास्त्रज्ञः जनः अनियुक्तः नियुक्तः वा वक्तुमर्हति, यतः यः शास्त्रम् उपजीवति शास्त्रमनुसृत्य चलतीत्यर्थः, सः दैवीं वाचं देववाणीं वदति, तद्वाक्ये असत्यतायाः असम्भवादिति भावः ॥ २८ ॥

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ २९ ॥

अन्वयः—सभा न प्रवेष्टव्या वा समञ्जसं वा वक्तव्यम्। अब्रुवन् वा विब्रुवन् नरः किल्विषी भवति ॥ २९ ॥

व्याख्या—सभा = विचारसंसदि, न = नहि, प्रवेष्टव्या = प्रवेशं कर्त्तव्या, वा = अथवा, समञ्जसम् = न्याय्यम् उचितं वा, वक्तव्यम् = कथितम्, यदि सभायां, प्रवेशस्यावसरो मिलति। अब्रुवन् = अवदन्, वा = अथवा, विब्रुवन् = विरुद्धं ब्रुवन्, नरः, किल्विषी = पापी, भवति = अस्ति ॥ २९ ॥

हिन्दी—पहले तो विचार कर सभा में जाना ही नहीं चाहिए और यदि चला जाय तो जो उचित हो वह अवश्य कहे। क्योंकि सभा में जाकर भी जो न्यायसंगत नहीं बोलता, वह पापी है ॥ २९ ॥

सभेति। सभा विचारसभा न प्रवेष्टव्या वा, समञ्जसं सत्यं वा सत्यमेव वक्तव्यं यदि प्रविशति सभायामिति शेषः। अब्रुवन् ज्ञात्वेति शेषः, वा विब्रुवन् विरुद्धं ब्रुवनित्यर्थः, नरः किल्विषी पापी भवति ॥ २९ ॥

राज्ञा ये विदिताः सम्यक् कुलश्रेणिगणादयः।
साहसस्तेयवर्ज्यानि कुर्य्युः कार्य्याणि ते नृणाम्॥ ३० ॥

अन्वयः—ये कुलश्रेणिगणादयः राज्ञा सम्यक् विदिताः, ते नृणां साहसस्तेयवर्ज्यानि कार्याणि कुर्युः ॥ ३० ॥

व्याख्या—ये = जनाः, कुलानि = वंशाः, श्रेणयः = पङ्क्तयः, गणादयश्च = वर्गादयश्च, राज्ञा = नृपेण, सम्यक् = सामस्त्येन, विदिताः = न्यायशीलत्वेन विज्ञाताः, ते = सर्वे, नृणाम् = मनुष्याणाम्, साहसस्तेयवर्ज्यानि = धाष्टर्यचौर्यव्यतिरिक्तानि, कार्याणि = अभियोगनिर्णयादिकञ्च, कुर्युः = निष्पादयेयुरिति ॥ ३० ॥

हिन्दी—राजा जिन्हें भलीभाँति न्यायपरायण समझता हो, ऐसे कुल, श्रेणि और गण के लोगों को चोरी-डकैती के मुकदमों को छोड़कर अन्य मुकदमों का फैसला करने को दे ॥ ३० ॥

राज्ञेति। ये कुलानि श्रेणयः गणादयश्च राज्ञा सम्यक् विदिताः, न्यायपरायणत्वेन विज्ञाताः, ते नृणां मानवानां तज्जातीयानामित्यर्थः, साहसस्तेयवर्ज्यानि दस्युताचौर्य्यव्यतिरिक्तानि कार्य्याणि कुर्य्युः ॥ ३० ॥

विचार्य्यं श्रेणिभिः कार्य्यं कुलैर्यन्न विचारितम्।
गणैश्च श्रेण्यविज्ञातं गणाज्ञातं नियुक्तकैः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—कुलैः यत् न विचारितं तत् श्रेणिभिः विचार्यम्। श्रेण्यविज्ञातं गणैश्च, गणाज्ञातं नियुक्तकैः विचार्यमिति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—कुलैः = व्यापारिसङ्घैः, यत् = व्यवहारम्, न = नहि, विचारितम् = सिद्धान्तितम्, तत् = कार्याणि, श्रेणिभिः = तत्परवर्त्तिभिः, जातिभिः, विचारकैः, विचार्यम् = आलोचनीयम्। यदि श्रेणिभिः, अविज्ञातम् = अविदितम्, तर्हि, गणैश्च = तदुत्तरवर्त्तिसङ्घैश्च, विचार्यम् = अनुचिन्तनीयम्, गणाज्ञातम्—गणैः = सङ्घैः, अज्ञातम् = अनिर्णीतम्, तु, नियुक्तैः = नृपनियोजितैः प्राड्विवाकादिभिः, विचार्यम् = निर्णेतव्यम् ॥ ३१ ॥

हिन्दी—यदि उपयुक्त व्यापारी-वर्गों द्वारा मुकदमे का फैसला न हो सके तो उसका निर्णय श्रेणियों (पंचसमूहों) द्वारा करवाना चाहिए। पंचों द्वारा भी उचित निर्णय यदि न हो सके तो गणों अर्थात् जूरीपंचों द्वारा फैसला करवाना चाहिए। यदि यह वर्ग भी असफल रहे तो राजा द्वारा नियुक्त जजों द्वारा फैसला करवाना चाहिए ॥ ३१ ॥

विचार्य्येति। कुलैः प्रथमविचारनियुक्तैः जातिविशेषैः यत् कार्य्यं न विचारितं सिद्धान्तितं, तत् श्रेणिभिः तत्परवर्त्तिभिः विचारकैः जातिविशेषैः विचार्य्यम्। श्रेणिभिः अविज्ञातम् अविदितं कार्य्यं गणैश्च तदुत्तरविचारदर्शिभिः जातिविशेषैः विचार्य्यं, गणाज्ञातं गणैरज्ञातन्तु नियुक्तकैः राजनियुक्तकैः प्राड्विवाकादिभिः विचार्य्यमित्यर्थः ॥ ३१ ॥

कुलादिभ्योऽधिकाः सभ्यास्तेभ्योऽध्यक्षोऽधिकः कृतः।
सर्वेषामधिको राजा धर्माधर्मनियोजकः ॥ ३२ ॥
उत्तमाधममध्यानां विवादानां विचारणात्।
उपर्य्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सभ्याः कुलादिभ्यः अधिकाः, अध्यक्षः तेभ्यः अधिकः कृतः, धर्माधर्मनियोजकः राजा तु उत्तमाधममध्यानां विवादानां विचारणात् सर्वेषाम् अधिकः। यतः ईश्वरबुद्धयः बुद्धीनाम् उपरि उपरि चरन्ति ॥ ३२-३३ ॥

व्याख्या—सभ्याः = सांसदः, कुलादिभ्यः = जातिभ्यः, अधिकाः = प्रकृष्टाः, अध्यक्षः = विचारार्थनियुक्तप्रधानपुरुषः, तेभ्यः = सांसद्भ्यः, अधिकः = श्रेष्ठः, स्मृतः = विहितः, धर्माधर्मनियोजकः—धर्मश्च = नयश्च, अर्धमश्च = अनयश्च, धर्माधर्मौ, तयोः नियोजकः = नियन्ता, राजा तु, उत्तमाधममध्यानाम्—उत्तमानाम् = प्रशस्तानाम्, अधमानाम् = निकृष्टकोटीनाम्, मध्यानाम् = सामान्यानाम्, विवादानाम् = अभियोगानाम्, विचारणात् = आलोचनात्, सर्वेषाम् = सकलानाम्, अधिकः = उत्कृष्टतमः। यतः ईश्वरबुद्धयः—ईश्वरस्य = नृपस्य, बुद्धयः = धियः, बुद्धीनाम् = सामान्यजनमतीनाम्, उपरि उपरि = उपरिष्टात्, चरन्ति = विचरन्ति ॥ ३२-३३ ॥

हिन्दी—मुकदमों के फैसले में बड़ों की अपेक्षा जूरियों का निर्णय अधिक मान्य होता है, उनसे अधिक जज का निर्णय मान्य होता है और इन सबों से अधिक नीति-अनीति के निर्णय में राजा का फैसला अधिक मान्य होता है। क्योंकि राजा उत्तम, सामान्य एवं निकृष्ट कोटि के सभी मुकदमों का निर्णायक प्रधान रूप से होता है। उसकी बुद्धि साधारण निर्णायकों की बुद्धि की अपेक्षा अधिक ऊँची होती है ॥ ३२-३३ ॥

कुलादिभ्य इति। **उत्तमेति**। सभ्याः विचारनियुक्ताः पुरुषाः कुलादिभ्यः अधिकाः श्रेष्ठाः, अध्यक्षः प्रधानविचारपतिः तेभ्यः सभ्येभ्यः अधिकः स्मृतः। धर्माधर्मनियोजकः धर्माधर्मनियन्ता राजा तु उत्तमाधममध्यानाम् उत्तमानाम् अधमानां मध्यमानाञ्च विवादानां विचारणात् सर्वेषाम् अधिकः श्रेष्ठतमः, यतः ईश्वरबुद्धयः प्रभूणां मतयः बुद्धीनां सामान्यजनधियाम् उपरि उपरि चरन्ति ॥ ३२-३३ ॥

एकं शास्त्रमधीयानो न विन्द्यात् कार्य्यनिर्णयम्।
तस्माद् बह्वागमः कार्य्यो विवादेषूत्तमो नृपः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—एकं शास्त्रम् अधीयानः कार्यनिर्णयं न विन्द्यात्। तस्मात् नृपैः विवादेषु बह्वागमः कार्यः ॥ ३४ ॥

व्याख्या—एकम् = मात्रैकम्, शास्त्रम् = धर्मग्रन्थः, अधीयानः = अध्ययनं कुर्वतो जनः, कार्यनिर्णयम् = अभियोगनिश्चयः, न = नहि, विन्द्यात् = जानीयात्। तस्मात् = तेन हेतुना, नृपैः = राजभिः, विवादेषु = अभियोगेषु, बह्वागमः = अनेकशास्त्रदर्शनम्, कार्यः = स्थाप्य इति ॥ ३४ ॥

हिन्दी—केवल एक शास्त्र का जानकार व्यक्ति किसी विवाद का सही निर्णय नहीं दे सकता है। अतः अनेक शास्त्रों के ज्ञाता किसी सत्पुरुष को ही राजा अभियोगनिर्णायक के पद पर नियुक्त करे ॥ ३४ ॥

एकमिति। एकम् एकमात्रं शास्त्रम् अधीयानः पठन् जनः कार्य्यनिर्णयं न विन्द्यात् न जानीयात्, तस्मात् नृपैः विवादेषु विषयेषु बह्वागमः बहुशास्त्रदर्शनमित्यर्थः कार्य्यः ॥ ३४ ॥

स ब्रूते यं धर्मः स्यादेको वाध्यात्मचिन्तकः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—आत्मतत्त्वचिन्तकः एकं यं ब्रूते स वा धर्मः स्यात् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—आत्मतत्त्वचिन्तकः = आत्मज्ञानविचारकः, एकम् = एकमात्रमेव, यम् = धर्मम्, ब्रूते = कथ्यते, स वा = तदेव, धर्मः = अभ्युदयनिःश्रेयससाधको गुणकर्मसमूहः, स्यात् = भवेत् ॥ ३५ ॥

हिन्दी—और आत्मतत्त्व का जानकार व्यक्ति अकेले ही जो कुछ कहता है, वही धर्म माना जाता है। अर्थात् इसका निर्णय सर्वमान्य होता है ॥ ३५ ॥

स इति। यस्तु अध्यात्मचिन्तकः आत्मतत्त्वज्ञानवान्, स एकः एकाकी यं धर्मं ब्रूते स वा स एव धर्मः स्यात् ॥ ३५ ॥

एकद्वित्रिचतुर्वारं व्यवहारानुचिन्तनम्।
कार्य्यं पृथक् पृथक् सभ्यै राज्ञा श्रेष्ठोत्तरैः सह ॥ ३६ ॥

अन्वयः—राज्ञा श्रेष्ठोत्तरैः सभ्यैः सह पृथक् पृथक् एकद्वित्रिचतुर्वारं व्यवहारानुचिन्तनं कार्यम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, श्रेष्ठोत्तरैः—श्रेष्ठेषु = उत्तमेषु, उत्तरैः = प्रधानपुरुषैः, सभ्यैः = सांसद्भिः, सह = साकम्, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, एकद्वित्रिचतुर्वारम् = एकवारम्, द्विवारम्, त्रिवारम्, चतुर्वारम्, व्यवहारानुचिन्तनम्—व्यवहारस्य = अभियोगस्य, अनुचिन्तनम् = विवेचनम्, कार्यम् = विधेयम् ॥ ३६ ॥

हिन्दी—राजा उत्कृष्ट सांसदों के साथ मिलकर अलग-अलग जैसा मुकदमा हो वैसा ही एक, दो, तीन या चार बार विचार कर फैसला दे ॥ ३६ ॥

एकेति। राज्ञा श्रेष्ठोत्तरैः श्रेष्ठेषु प्रधानैः सभ्यैः सह पृथक् पृथक् एकद्वित्रिचतुर्वारम् एकवारं द्विवारं त्रिवारं चतुर्वारं वा कार्य्यगौरवलाघवापेक्षयेति भावः, व्यवहारस्य अनुचिन्तनं तत्त्वनिर्णय इत्यर्थः कार्य्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिनौ सभ्यान् लेखकप्रेक्षकांश्च यः।
धर्मवाक्यै रञ्जयति स सभ्य[illegible] ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यः अर्थिप्रत्यर्थिनौ सभ्यान् लेखकान् प्रेक्षकान् धर्मवाक्यैः रञ्जयति, स सभाः तारताम् इयात् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—यः = विवादविचारकः सांसद्वा, अर्थिप्रत्यर्थिनौ = वादि-प्रतिवादिनौ, सभ्यान् = सांसदः, लेखकान् = पञ्जीकारान्, प्रेक्षकान् = दर्शकान्, च = पुनः, धर्मवाक्यैः = स्वपुण्यवचनैः, रञ्जयति = परितोषयति, सः = निर्णायकः, सभाः = संसदः, तारताम् = तारयति, अलुक् उपपदसमासोऽत्र, तस्य भावस्ताम्, इयात् = आप्नुयादिति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—जो निर्णायक वादी, प्रतिवादी, सांसदों, लेखकों तथा दर्शकों को अपने धार्मिक वचनों से संतुष्ट करता है, वह सभा में सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

अर्थीति। यः विचारपतिः अन्यो वा सभ्यः अर्थिप्रत्यर्थिनौ वादिप्रतिवादिनौ सभ्यान् लेखकान् प्रेक्षकान् दर्शकांश्च धर्मवाक्यैः रञ्जयति प्रीणयति सः सभास्तारतां सभाः तारयति पापात् मोचयतीति सभास्तारः अलुक् उपपदसमासः। तस्य भावः ताम् इयात् प्राप्नुयात् ॥ ३७ ॥

नृपोऽधिकृतसभ्याश्च स्मृतिर्गणकलेखकौ।
हेमाग्न्यम्बुस्वपुरुषाः साधनाङ्गानि वै दश ॥ ३८ ॥

अन्वयः—नृपः अधिकृतसभ्याः स्मृतिः गणकलेखकौ हेमाग्न्यम्बुस्वपुरुषाः एतानि दश साधनस्य अङ्गानि ॥ ३८ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अधिकृतसभ्याः = अधिकारिणः सांसदः, स्मृतिः = आर्यधर्मशास्त्राणि अनुचिन्तनं वा, गणकः = गणितज्ञः, लेखकः = लिपिकारः, हेम = काञ्चनम्, अग्निः = वह्निः, अम्बुम् = सलिलम्, स्वम् = धनम्, पुरुषः = सेवकः, एतानि = पूर्वोक्तानि, दश = दशसंख्यकानि, साधनस्य = व्यवहारनिर्णयस्य, अङ्गानि = अवयवानि सन्ति ॥ ३८ ॥

हिन्दी—राजा, अधिकृत सांसद्, मन्वादि स्मृति, गणितज्ञ, लेखक, सुवर्ण, आग, पानी, धन और कर्मचारी—ये दस मुकदमे के फैसले में साधन के अङ्ग हैं ॥ ३८ ॥

नृप इति। नृपः, अधिकृतसभ्याः, स्मृतिः धर्मशास्त्रं, गणकः, लेखकः, हेम काञ्चनम्, अग्निः, अम्बु जलं स्वं धनं, पुरुषः भृत्यरूपः एतानि दश साधनस्य कार्य्यनिर्वाहस्य अङ्गानि साधकानीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

एतद्दशाङ्गकरणं यस्यामध्यास्य पार्थिवः।
न्यायान् पश्येत् कृतमतिः सा सभाध्वरसन्निभा ॥ ३९ ॥

अन्वयः—कृतमतिः पार्थिवः यस्याम् एतत् दशाङ्गकरणम् अध्यास्य न्यायान् पश्येत् सा सभा अध्वरसन्निभा भवति ॥ ३९ ॥

व्याख्या—कृतमतिः = परिमार्जितबुद्धिः, पार्थिवः = राजा, यस्याम् = विचारगोष्ठ्याम्, एतत् = पूर्ववर्णितम्, दशाङ्गकरणम् = अङ्गदशकरूपं साधनम्, अध्यास्य = समाश्रित्य, न्यायात् = नीतिपूर्वकात्, पश्येत् = विचारयेत्, सा सभा = गोष्ठी, अध्वरसन्निभा = यज्ञतुल्या भवतीति भावः ॥ ३९ ॥

हिन्दी—इस तरह परिमार्जित बुद्धिवाला राजा जिस सभा में ऊपर बतलाये गये ये दस साधनों का आश्रय लेकर न्यायपूर्वक मुकदमें को देखता है, वह सभा निश्चय ही यज्ञसभा की तरह पवित्र होती है ॥ ३९ ॥

एतदिति। कृतमतिः मार्जितबुद्धिः पार्थिवश्च यस्यां सभायाम् एतत् पूर्वोक्तं दशाङ्गकरणम् अङ्गदशकरूपं साधनम् अध्यास्य आश्रित्य न्यायान् विचारान् पश्येत्, सा सभा अध्वरसन्निभा यज्ञसदृशी ॥ ३९ ॥

दशानामपि चैतेषां कर्म प्रोक्तं पृथक् पृथक्।
वक्ताध्यक्षो नृपः शास्ता सभ्याः कार्य्यपरीक्षकाः ॥ ४० ॥

अन्वयः—एतेषां दशानाञ्च पृथक् पृथक् कर्म प्रोक्तम्। अध्यक्षः वक्ता, नृपः शास्ता, सभ्याः कार्यपरीक्षकाः भवन्तीति ॥ ४० ॥

व्याख्या—एतेषाम् = पूर्वोक्तानाम्, दशानाञ्च = दशसंख्यकानाम्, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, कर्म = कृत्यम्, प्रोक्तम् = कथितम्। अध्यक्षः = विचारपतिः, वक्ता = अभियोगप्रकाशकः, नृपः = राजा, शास्ता = शासनकर्त्ता, सभ्याः = सांसदः, कार्यपरीक्षकाः—कार्यस्य = व्यवहारस्य, परीक्षकाः = निर्णायकाः, भवन्तीति ॥ ४० ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त दस साधनों के काम भी अलग-अलग है। अध्यक्ष विवाद-निर्णय का प्रकाशक होता है। राजा शासन करने वाला है। सांसद निर्णय के औचित्य का परीक्षण करते हैं ॥ ४० ॥

दशानामिति। एतेषां दशानाञ्च पृथक् पृथक् कर्म प्रोक्तम्। अध्यक्षः अधिकृतः पुरुषः वक्ता कार्य्यनिर्णयस्य प्रकाशकः, नृपः शास्ता शासकः, तथा सभ्याः कार्य्यस्य परीक्षकाः ॥ ४० ॥

स्मृतिर्विनिर्णयं ब्रूते जपं दानं दमं तथा ॥ ४१ ॥

अन्वयः—स्मृतिः विनिर्णयं जपं दानं दमं ब्रूते ॥ ४१ ॥

व्याख्या—स्मृतिः = धर्मसंहिता, विनिर्णयम् = अभियोगनिश्चयम्, जपम् = मुहुर्मुहुर्मन्त्रोच्चारणम्, दानम् = उत्सर्जनम्, दमम् = आत्मसंयमः, ब्रूते = निर्दिशति ॥ ४१ ॥

हिन्दी—मन्वादि स्मृतियाँ अभियोग का निर्णय मंत्र का जप, दान तथा आत्मसंयम का उपदेश देती है ॥ ४१ ॥

स्मृतिरिति। स्मृतिः धर्मसंहिता विनिर्णयं कार्य्यनिश्चयं, जपं मन्त्रजपं, दानं तथा दमम् इन्द्रियादिनिग्रहं ब्रूते उपदिशति ॥ ४१ ॥

शपथार्थे हिरण्याग्नी अम्बु तृषितक्षुब्धयोः।
गणको गणयेदर्थं लिखेन्याय्यं च लेखकः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—शपथार्थे हिरण्याग्नी अम्बु तृषितक्षुब्धयोः गणकः अर्थं गणयेत् च लेखकः न्याय्यं लिखेत् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—शपथार्थे = प्रतिज्ञाप्रयोजनाय, हिरण्यम् अग्निश्च साधनम्, अम्बु = सलिलम्, तृषितक्षुब्धयोः—तृषार्त्तस्य = तृष्णाकुलस्य, क्षुब्धस्य च = भीतस्य च, साधनम्, गणकः = गणितज्ञश्च, अर्थम् = अभियोगनिर्णयस्य शुभाशुभम्, गणयेत् = गणनां कुर्यात्, लेखकश्च = लिपिकारश्च, न्याय्यम् = न्यायोपेतं विषयम्, लिखेत् = लेखनं कुर्यात् ॥ ४२ ॥

हिन्दी—कसम खाने के लिए सोना और आग, प्यासे और डरे लोगों के लिए पानी, अभियोग के शुभ-अशुभ परिणामों की गिनती के लिए गणक तथा न्यायसंगत विषयों को लिखने

के लिए लेखक साधन का अंग बनता है ॥४२ ॥

शपथार्थे इति। शपथार्थे दिव्यकरणार्थं हिरण्यम् अग्निश्च साधनम् अम्बु जलं तृषितक्षुब्धयोः तृष्णार्त्तस्य क्षुब्धस्य वायुरोगग्रस्तस्य साधनम्। गणकः अर्थं कार्य्यस्य शुभाशुभं गणयेत्, लेखकश्च न्याय्यं प्रकृतं विषयं लिखेत् ॥४२ ॥

शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ गणनाकुशलौ शुची।
नानालिपिज्ञौ कर्त्तव्यौ राज्ञा गणकलेखकौ ॥ ४३ ॥

अन्वयः—शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ गणनाकुशलौ शुची नानालिपिज्ञौ गणकलेखकौ राज्ञा कर्त्तव्यौ ॥४३ ॥

व्याख्या—शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ = शब्दार्थतथ्यज्ञानवन्तौ, गणनायाम् = संख्याने, कुशलौ = दक्षौ, शुची = पवित्रौ, नानालिपिज्ञौ = अनेकविधलेखनविशेषज्ञौ, गणकलेखकौ = गणितज्ञ-लिपिकारौ, राज्ञा = नृपेण, कर्त्तव्यौ = नियोक्तव्यौ ॥४३ ॥

हिन्दी—शब्द और अर्थ के तत्त्वज्ञ, गिनती करने में कुशल, पवित्र तथा बहुविध लिपियों के जानकार व्यक्ति को राजा गणक एवं लिपिकार पद पर नियुक्त करे ॥४३ ॥

शब्देति। शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ शब्दतत्त्वज्ञौ अर्थतत्त्वज्ञौ चेत्यर्थः, गणनायां कुशलौ निपुणौ शुची निर्दोषौ नानालिपिज्ञौ विविधलेखनविज्ञौ गणकलेखकौ कर्त्तव्यौ नियोक्तव्यौ ॥४३ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेण ह्यर्थशास्त्रविवेचनम्।
यत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हि तत् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—यत्र स्थाने धर्मशास्त्रानुसारेण अर्थशास्त्रविवेचनम् अधिक्रियते तत् हि धर्माधिकरणम् ॥४४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्, स्थाने = देशे, धर्मशास्त्रानुसारेण = धर्मग्रन्थानुकूलेन, अर्थशास्त्राणाम् = धनप्राप्तिरक्षावृद्ध्याद्युपायदर्शकशास्त्राणाम्, विवेचनम् = गुणदोषविचारणम्, अधिक्रियते —अधिकम् = विशिष्टम्, यथा तथा क्रियते = निष्पाद्यते, तद् हि = तदेव, धर्माधिकरणम् = प्राड्विवाकस्थलं कथ्यते ॥४४ ॥

हिन्दी—जिस स्थान में धर्मशास्त्र के अनुसार अर्थशास्त्र की विवेचना विशिष्ट रूप से की जाय, उस स्थान को न्यायालय कहते हैं ॥४४ ॥

धर्मेति। यत्र स्थाने धर्मशास्त्रानुसारेण अर्थशास्त्राणां विवेचनम् अधिक्रियते अधिकं यथा तथा क्रियते, तत् हि तदेव धर्माधिकरणम् ॥४४ ॥

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत् सभाम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—व्यवहारान् दिदृक्षुः पार्थिवः विनीतः सन् मन्त्रज्ञैः ब्राह्मणैः मन्त्रिभिश्च सह सभां प्रविशेत् ॥४५ ॥

व्याख्या—व्यवहारान् = अभियोगान्, दिदृक्षुः = द्रष्टुमिच्छुः, पार्थिवः = राजा, विनीतः सन् = विनम्रो भूत्वा, मन्त्रज्ञैः = मन्त्रणाकुशलैः, ब्राह्मणैः = भूदेवैः, मन्त्रिभिश्च = सचिवैश्च, सह = सार्द्धम्, सभाम् = विचारगोष्ठीम्, प्रविशेत् = प्रवेशं कुर्यात् ॥४५ ॥

हिन्दी—मुकदमे को देखने की इच्छा रखने वाला राजा विनम्र भाव से सलाह देने में कुशल ब्राह्मणों एवं मन्त्रियों के साथ न्यायालय में प्रवेश करे ॥ ४५ ॥

व्यवहारानिति। व्यवहारान् दिदृक्षुः द्रष्टुमिच्छुः पार्थिवः विनीतः सन् मन्त्रज्ञैः मन्त्रणाकुशलैः ब्राह्मणैः मन्त्रिभिश्च सह सभां प्रविशेत् ॥ ४५ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय कार्य्यदर्शनमारभेत्।
पूर्वोत्तरसमो भूत्वा राजा पृच्छेद् विवादिनौ ॥ ४६ ॥

अन्वयः—राजा धर्मासनम् अधिष्ठाय कार्यदर्शनम् आरभेत्। पूर्वोत्तरसमः भूत्वा राजा विवादिनौ पृच्छेत् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—राजा = पार्थिवः, धर्मासनम् = न्यायासनम्, अधिष्ठाय = स्थितो भूत्वा, कार्यदर्शनम् = व्यवहारावलोकनम्, आरभेत् = प्रारम्भं कुर्यात्। पूर्वोत्तरसमः = वादिप्रतिवादिषु समदर्शी भूत्वा, विवादिनौ = वादिप्रतिवादिनौ, पृच्छेत् = प्रश्नं कुर्यात् ॥ ४६ ॥

हिन्दी—इस तरह राजा न्यायासन पर बैठकर मुकदमा देखना प्रारंभ करे। वादी एवं प्रतिवादी में समदृष्टि रखकर राजा उनसे सवाल करे ॥ ४६ ॥

धर्मासनमिति। राजा धर्मासनं विचारासनम् अधिष्ठाय कार्य्यदर्शनम् आरभेत्। पूर्वोत्तरसमः अर्थिप्रत्यर्थिषु समदर्शी भूत्वा विवादिनौ अर्थिप्रत्यर्थिनौ पृच्छेत् ॥ ४६ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणिधर्मांस्तथैव च।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणिधर्मान् तथैव कुलधर्मान् समीक्ष्य स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, देशदृष्टैः = लोकाचारेष्ववलोकितैः, शास्त्रदृष्टैश्च = धर्मग्रन्थेषु निरूपितैश्च, हेतुभिः = कारणैः, जातिजानपदान् = जातिगतान् दैशीयांश्च, धर्मान् = सदाचारान्, श्रेणिधर्मान् = वर्गगताचारान्, कुलधर्मान् = कौलिकसुकृतानि च, समीक्ष्य = समीक्षां कृत्वा, स्वधर्मम् = राजकृत्यम्, प्रतिपालयेत् = निर्वाहयेत् ॥ ४७ ॥

हिन्दी—हर रोज लोक और शास्त्रों में देखे गये कारणों से जाति, देश, श्रेणि और आनुवंशिक धर्मों की भलीभाँति समीक्षा कर राजा को राजधर्म का प्रतिपालन करना चाहिए ॥ ४७ ॥

प्रत्यहमिति। प्रत्यहं प्रतिदिनं देशदृष्टैः लौकिकैरित्यर्थः, शास्त्रदृष्टैः शास्त्रीयैश्च हेतुभिः जातिजानपदान् जातीयान् जानपदान् दैशिकांश्चेत्यर्थः धर्मान् श्रेणीनां धर्मान् कुलधर्मांश्च समीक्ष्य सम्यक् दृष्ट्वा स्वधर्मं राजधर्मं विचारदर्शित्वरूपं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥

देशजातिकुलानां च ये धर्माः प्राक् प्रवर्त्तिताः।
तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा ॥ ४८ ॥

अन्वयः—देशजातिकुलानां च ये धर्माः प्राक् प्रवर्त्तिताः ते तथैव पालनीयाः। अन्यथा प्रजा प्रक्षुभ्यते ॥ ४८ ॥

व्याख्या—देशानाम् = स्थानविशेषाणाम्, जातीनाम् = वर्णानाम्, कुलानाम् = वंशानाम्, च,

ये धर्माः = आचाराः, प्राक् = पूर्वम्, प्रवर्त्तिताः = सञ्चालिताः, ते = धर्माः, तथैव = तेनैव रूपेण, पालनीयाः = सञ्चालनीयाः। अन्यथा = इतरथा, प्रजा = जनाः, प्रक्षुभ्यते = प्रकर्षेणोद्वेगं प्राप्नुवन्ति ॥४८ ॥

हिन्दी—देश, जाति एवं कुल के जो धर्म जिस तरह पहले से प्रचलित हों, उनका उसी रूप में पालन होना चाहिए। अन्यथा परिवर्त्तन से प्रजा क्षुब्ध हो जाती है ॥४८ ॥

देशेति। देशानां जातीनां कुलानाञ्च ये धर्माः प्राक् पूर्वं प्रवर्त्तिताः प्रचलिताः, ते तथैव पूर्ववदेव पालनीयाः रक्षणीयाः, अन्यथा तदपालने इत्यर्थः, प्रजा प्रक्षुभ्यते प्रकर्षेण क्षोभं प्राप्नोति ॥४८ ॥

उदूह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः।
मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥४९ ॥

अन्वयः—दाक्षिणात्यैः द्विजैः मातुलस्य सुता उदूह्यते। मध्यदेशे कर्मकराः, शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥४९ ॥

व्याख्या—दाक्षिणात्यैः = दक्षिणप्रदेशनिवासिभिः, द्विजैः = ब्राह्मणैः, मातुलस्य = मातृभ्रातुः, सुता = दुहिता, उदूह्यते = परिणीयते, मध्यदेशे = हिमाचलविन्ध्याचलकुरुक्षेत्रप्रयागमध्यस्थदेशे, मध्यप्रदेशे, कर्मकराः = लोहकराः, च = पुनः, शिल्पिनः = गृहसंवेशकाः, गवाशिनः = गोमांसभक्षकाः भवन्ति ॥४९ ॥

हिन्दी—जैसे दक्षिण प्रदेश के ब्राह्मण अपनी ममेरी बहिन से शादी करते हैं तथा मध्यप्रदेश के कुम्हार और शिल्पि गोमांस खाते हैं ॥४९ ॥

उदूह्यते इति। दाक्षिणात्यैः दक्षिणदिग्वासिभिः द्विजैः मातुलस्य सुता उदूह्यते परिणीयते, मध्यदेशे च कर्मकराः कर्माराः शिल्पिनश्च सूत्रधरादयः गवाशिनः गोखादकाः ॥४९ ॥

मत्स्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः।
उत्तरे मद्यपा नार्य्यः स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ॥५० ॥

अन्वयः—उत्तरे सर्वे नराः मत्स्यादाः, स्त्रियः व्यभिचाररताः, मद्यपाः तथा रजस्वलाः अपि नार्यः नृणां स्पृश्याः (भवन्ति) ॥५० ॥

व्याख्या—उत्तरे = देशस्योत्तराञ्चले, सर्वे = सकलाः, नराः = जनाः, मत्स्यादाः = मत्स्यभक्षकाः भवन्ति, स्त्रियः = नार्यः, व्यभिचाररताः = कुलटाः, पुरुषान्तर्गामिन्यः, मद्यपाः = सुरापायिन्यश्च भवन्ति, तथा रजस्वलाः = ऋतुमत्यः, नार्यः = स्त्रियोऽपि, नृणाम् = नराणाम्, स्पृश्याः = स्पर्शयोग्याः भवन्ति ॥५० ॥

हिन्दी—देश के उत्तरी भाग में सभी लोग मछली खाते हैं, औरतें व्यभिचारिणी एवं शराबी होती हैं और निषिद्ध रजस्वला नारी का भी पुरुष स्पर्श करते हैं ॥५० ॥

मत्स्यादाश्चेति। उत्तरे देशे सर्वे नराः मत्स्यादाः मत्स्याशिनः, स्त्रियः व्यभिचाररताः यथेच्छं पुरुषान्तरगामिन्य इत्यर्थः, मद्यपाः सुरापायिन्यः, तथा रजस्वलाः ऋतुमत्यः अपि नृणां स्पृश्याः स्पर्शनीयाः ॥५० ॥

खशजाताः प्रगृह्यन्ति भ्रातृभार्य्यामभर्तृकाम्।
अनेन कर्मणा नैते प्रायश्चित्तदमार्हकाः ॥५१ ॥

अन्वयः—खशजाताः अभर्तृकां भ्रातृभार्यां प्रगृह्यन्ति। अनेन कर्मणा एते प्रायश्चित्तदमार्हकाः न भवन्ति ॥५१॥

व्याख्या—खशजाताः= 'खश'जातिविशेषोत्पन्नाः जनाः, अभर्तृकाम्=विधवाम्, भ्रातृभार्याम्=सोदरपत्नीम्, प्रगृह्यन्ति=पाणिग्रहणं कुर्वन्ति। अनेन=एतेन पूर्वोक्तेन, कर्मणा=कृत्येन, खशाः, न प्रायश्चित्तम्=पापविशुद्धिकरणम्, नापि, दमम्=दण्डम्, नृपेण अर्हन्ति=प्राप्तुं शक्नुवन्ति ॥५१॥

हिन्दी—खश जाति के लोग अपने भाई की विधवा से विवाह करते हैं। ऐसे पूर्वोक्त निषिद्ध कर्म करने के बावजूद ये राजा के द्वारा न तो प्रायश्चित्त करवाये जाते हैं और न दण्डित ही होते हैं ॥५१॥

खशेति। खशजाताः खशजातीयाः नरा अभर्तृकां विधवां भ्रातृभार्य्यां प्रगृह्यन्ति परिणयन्ति। अनेन कर्मणा भ्रातृभार्य्यापरिणयेन एते खशाः न प्रायश्चित्तदमार्हकाः न प्रायश्चित्तं नापि दमं दण्डम् अर्हन्तीत्यर्थः ॥५१॥

येषां परम्पराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्ठिताः।
त एव तैर्न दुष्येयुराचारान्नेतरस्य तु ॥५२॥

अन्वयः—येषां ये परम्पराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्ठिताः, ते तैः इतरस्य आचारान् न दुष्येयुः ॥५२॥

व्याख्या—येषाम्=जनानाम्, कुलानां स्थानविशेषाणाञ्च, ये=धर्माः, परम्पराप्राप्ताः= पूर्वप्रचलिता धर्माः, पूर्वजैः=पूर्वपुरुषैः, अनुष्ठिताः=आचरिताः, ते=धर्माः, तैः=जनैः, तथैवानुष्ठेयाः, अत्र इतरस्य=अन्यजनस्य, आचारान्=सदाचारान्, न=नहि, दुष्येयुः, दूषितान् कुर्युः ॥५२॥

हिन्दी—जिस जाति अथवा कुल के लोगों का जो भी परम्परागत धर्म हों, उन्हें उसी का अनुपालन करना चाहिए। अतः राजे एक-दूसरे के धर्म को दूषित न होने दें। यही उनका कर्त्तव्य हैं ॥५२॥

येषमिति। येषां जातीयानां देशानाञ्च कुलानाञ्च ये परम्पराप्राप्ताः चिरं प्रचलिताः धर्माः पूर्वजैः पूर्वपुरुषैः अनुष्ठिताः, ते धर्माः तैः तथैव अनुष्ठेया इति पूरयित्वा व्याख्येयम्, अतः इतरस्य अपरस्य आचारान् न दुष्येयुः न दूषितान् कुर्य्युरित्यर्थः, राजान इति शेषः ॥५२॥

परस्त्रीधनसंलुब्धा मद्यासक्तरताः कलौ।
विज्ञानलवदुर्दग्धाः प्रायः श्रीसंयुताश्च ये ॥५३॥
तन्त्रकर्मरता वेदविमुखाः स्युः सदैव हि।
महादण्डेन चैतेषां कुर्य्यात् संसाधनं नृपः ॥५४॥

अन्वयः—कलौ ये श्रीसंयुताः प्रायः ते सदैव परस्त्रीधनसंलुब्धाः मद्यासक्तरताः विज्ञानलवदुर्दग्धाः तन्त्रकर्मरताः वेदविमुखाः स्युः, नृपः महादण्डेन एतेषां संसाधनं कुर्यात् ॥५३-५४॥

व्याख्या—कलौ=कलियुगे, ये=जनाः, श्रीसंयुताः=लक्ष्मीवन्तः, ते=जनाः, प्रायः= बहुधा, सदैव=सर्वदैव, परस्त्रीधनसंलुब्धाः—परस्त्रीपु=परनारीषु, परधनेषु=अन्यजनार्थेषु, च, संलुब्धाः—सम्यक् प्रकारेण लुब्धाः=गृध्नवः, मद्यासक्तरताः=सुरापाने निरताः,

विज्ञानलवदुर्दग्धाः—विज्ञानस्य = ज्ञानस्य, लवेन = लेशेन, दुर्दग्धाः = अतीवगर्विताः, तन्त्रकर्मरताः—तन्त्रकर्मणि = तान्त्रिककृत्येषु, रताः = सदैवासक्ताः, तथा वेदविमुखाः = वैदिकधर्मपराङ्मुखाः, स्युः = भवेयुः, नृपः = राजा, महादण्डेन = महान् चासौ दण्डः महादण्डस्तेन, एतेषाम् = पूर्वोक्तानां जनानाम्, संसाधनम् = सुष्ठुतया दमनं, कुर्यात् = विधेयात् ॥ ५३ ॥

हिन्दी—कलियुग में जो धनवान् हैं वे प्रायः दूसरों के धन और औरत के लोभी होते हैं, शराबी होते हैं, थोड़े ज्ञान में भी अपने को महाज्ञानी समझते हैं, तान्त्रिक अनुष्ठान में संलग्न रहते हैं तथा वैदिक धर्म से विमुख होते हैं। राजा ऐसे लोगों का महादण्ड से दमन करे ॥ ५३-५४ ॥

परस्त्रीति। तन्त्रेति। कलौ ये श्रीसंयुताः श्रीमन्तः, ते प्रायः बाहुल्येन सदा परस्त्रीधनसंलुब्धाः परस्त्रीषु परधनेषु च सम्यक् लुब्धाः, मद्यासक्तरताः सुरापानसक्ताः, विज्ञानलवेन ज्ञानलेशेन दुर्दग्धाः गर्विताः, तन्त्रकर्मणि तन्त्रोक्तकार्य्येषु रताः, तथा वेदविमुखाः वेदबाह्यधर्मावलम्बिनः स्युः भवेयुः। नृपः महादण्डेन एतेषां संसाधनं सम्यक् दण्डं कुर्य्यात् ॥ ५३-५४ ॥

न्यायान् पश्येत्तु मध्याह्ने पूर्वाह्णे स्मृतिदर्शनम्।
मनुष्यमारणे स्तेये साहसेऽत्ययिके सदा ॥ ५५ ॥
न कालनियमस्तत्र सद्य एव विवेचनम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—मध्याह्ने न्यायान् पश्येत्, पूर्वाह्णे स्मृतिदर्शनम्। मनुष्यमारणे स्तेये साहसे अत्ययिके च सदा तत्र कालनियमः न, सद्यः एव विवेचनम् ॥ ५५-५६ ॥

व्याख्या—मध्याह्ने = दिवसस्य मध्यभागे, न्यायान् = अपराधानुरूपविचारान्, पश्येत् = अवलोकयेत्, पूर्वाह्णे = त्रिधाविभक्तस्य दिवसस्य पूर्वभागे, स्मृतिदर्शनम्—स्मृतीनाम् = धर्मसंहितानाम्, दर्शनम् = पर्यालोचनम्, कुर्यात्। मनुष्यमारणे = नरहत्यायाम्, स्तेये = चौर्ये, साहसे = दस्युकर्मणि, अत्ययिके = विनाशजनके व्यापारे च, सदा = सततम्, विचारणीयम्। तत्र = तस्मिन् कर्मणि, कालनियमः = समयप्रतिबन्धः, न = नास्ति, अस्मिन्कर्मणि, सद्यः एव = तत्काल एव, विवेचनम् = पर्यालोचनम्, कर्त्तव्य इति ॥ ५५-५६ ॥

हिन्दी—राजा दोपहर दिन में मुकदमों को देखे, पूर्वाह्ण (दोपहर के पहले) में धर्मसंहिता का अनुचिन्तन करे। किन्तु, खून, चोरी, डकैती या कोई अत्यधिक विनाशजनक मुकदमे को देखने में समय का कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए; प्रत्युत इसकी सुनवाई तत्क्षण होनी चाहिए ॥ ५५-५६ ॥

न्यायानिति। नेति। मध्याह्ने न्यायान् विचारान्, पश्येत् पूर्वाह्णे स्मृतिदर्शनं स्मृतीनां धर्मशास्त्राणां दर्शनं पर्य्यालोचनं कुर्य्यात्। मनुष्यमारणे नरहत्यायां, स्तेये चौर्य्ये, साहसे दस्युकर्मणि, अत्ययिके नाशजनके अन्यस्मिन् व्यापारे च सदा पूर्वाह्णे सायाह्णे वा रात्रौ इत्यर्थः, न्यायान् पश्येत्। तत्र कालनियमः नास्ति, सद्य एव विवेचनं विचारः कर्त्तव्य इति शेषः ॥ ५५-५६ ॥

धर्मासनगतं दृष्ट्वा राजानं मन्त्रिभिः सह।
गच्छेन्निवेद्यमानं यत् प्रतिरुद्धमधर्मतः ॥ ५७ ॥
यथासत्यं चिन्तयित्वा लिखित्वा च समाहितः।
नत्वा च प्राञ्जलिः प्रह्वो ह्यर्थी कार्य्यं निवेदयेत् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—धर्मासनगतं मन्त्रिभिः सह राजानं दृष्ट्वा अर्थी गच्छेत्। तत्र प्रतिरुद्धमधर्मतः यत् निवेद्यमानं यथासत्यं चिन्तयित्वा समाहितः, लिखित्वा च नत्वा प्राञ्जलिः प्रह्वः कार्यं निवेदयेत् ॥ ५७-५८ ॥

व्याख्या—धर्मासनगतम् = न्यायासनासीनम्, मन्त्रिभिः = सचिवैः, सह परिवृतम्, राजानम् = नृपम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, अर्थी = प्रार्थी, वादी वा, गच्छेत् = समीपं व्रजेत्। तत्र सन्निधिं गत्वा च, अधर्मतः = अधर्मात्, प्रतिरुद्धम् = प्रातिकूल्यम्, यत् = वस्तु, निवेद्यमानम् = प्रार्थनीयम्, तत् = अभियोगम्, यथासत्यम् = सत्यानुकूलम्, चिन्तयित्वा = विचारयित्वा, समाहितः = अवहितचित्ताः, लिखित्वा = लिपिबद्धं कृत्वा, च = पुनः, प्राञ्जलिः = कृताञ्जलिः, तथा प्रह्वः = विनम्रो भूत्वा, कार्यम् = अभियोगम्, निवेदयेत् = प्रार्थयेत् ॥ ५७-५८ ॥

हिन्दी—न्याय के आसन पर मंत्रियों से घिरे राजा को बैठे देखकर प्रार्थी उनके पास जाये। पास जाकर अधर्म रहित जो कुछ निवेदन करना हो, उसे यथार्थ रूप से विचार कर, सावधान मन होकर, लिखित रूप से हाथ जोड़कर विनत भाव से दावा दाखिल करे ॥ ५७-५८ ॥

धर्मासनगतमिति। यथेति। धर्मासनगतं विचारासनोपविष्टं मन्त्रिभिः सह परिवृतं राजानं दृष्ट्वा अर्थी गच्छेत् तत् सन्निधिमिति शेषः, गत्वा च अधर्मतः अधर्मात् प्रतिरुद्धं निवृत्तम् अधर्मरहितमित्यर्थः, निवेद्यमानं यत् वस्तु, तत् यथासत्यं चिन्तयित्वा समाहितः अवहितमनाः लिखिवा च नत्वा च प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः तथा प्रह्वः नम्रः सन् कार्य्यं निवेदयेत् ॥ ५७-५८ ॥

यथार्हमेनमभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—पार्थिवः ब्राह्मणैः सह एनं यथार्हम् अभ्यर्च्य सान्त्वेन आदौ प्रशमय्य स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ५९ ॥

व्याख्या—पार्थवः = राजा, ब्राह्मणैः = विप्रैः, सह = साकम्, एनम् = अभ्यर्थिनम्, यथार्हम् = यथायोग्यम्, अभ्यर्च्य = सम्मान्य, सान्त्वेन = सान्त्वनाप्रदानेन, आदौ = प्रथमम्, प्रशमय्य = आश्वासनं दत्वा, स्वधर्मम् = राजधर्मम्, प्रतिपादयेत् = निष्पादयेत् ॥ ५९ ॥

हिन्दी—ब्राह्मणों के साथ राजा उस प्रार्थी का यथोचित सम्मान कर सर्वप्रथम उसे आश्वासन देकर मुकदमा देखना प्रारंभ करे ॥ ५९ ॥

यथार्हमिति। पार्थिवः ब्राह्मणैः सभ्यैः सह एनम् अर्थिनं यथार्हं यथायोग्यम् अभ्यर्च्य सम्मान्य सान्त्वेन सान्त्ववादेन आदौ प्रशमय्य प्रबोध्य आश्वास्य इत्यर्थः, स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ५९ ॥

काले कार्य्यार्थिनं पृच्छेत् प्रणतं पुरतः स्थितम्।
किं कार्य्यं का च ते पीडा मा भैषीर्ब्रूहि मानव! ॥ ६० ॥

अन्वयः—काले प्रणतं पुरतः स्थितं कार्यार्थिनं पृच्छेत्—हे मानव! किं कार्यं ते पीडा च का? मा भैषीः, वद ॥ ६० ॥

व्याख्या—काले = यथावसरे, प्रणतम् = विनतम्, पुरतः = अग्रे, स्थितम् = समुपस्थितम्, कार्यार्थिनम् = अभियोगिनम्, पृच्छेत्—हे मानव! किमिति प्रश्ने, कार्यम् = अभियोगम्, ते = तव, पीडा = कष्टम्, का? मा भैषीः = भयं मा कुरु, ब्रूहि = कथय ॥ ६० ॥

हिन्दी—विनम्र भाव से सामने खड़े उस अभियोगी से राजा पूछे—हे भले आदमी! तुम्हें क्या काम है? क्या कष्ट है? डरो मत, मुझसे कहो ॥६० ॥

काले इति। काले यथासमये प्रणतं पुरतः अग्रतः स्थितं कार्य्यार्थिनं पृच्छेत्, हे मानव! किं कार्य्यं ते तव पीडा च का, मा भैषीः, ब्रूहि वद ॥६० ॥

केन कस्मिन् कदा कस्मात् पीडितोऽसि दुरात्मना।
एवं पृष्ट्वा स्वभावोक्तं तस्य संशृणुयाद् वचः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—कस्मिन् कदा केन दुरात्मना कस्मात् पीडितोऽसि? एवं पृष्ट्वा तस्य स्वभावोक्तं वचः संशृणुयात् ॥६१ ॥

व्याख्या—कस्मिन् = स्थाने, कदा = कस्मिन् समये, केन = जनेन, दुरात्मना = दुष्टेन, कस्मात् = कारणात्, पीडितोऽसि = क्लेशितोऽसि, एवम् = अनेन प्रकारेण, पृष्ट्वा = अनुयुज्य, तस्य = अभियोगिनः, स्वभावोक्तम् = सहजोक्तम्, वचः = वचनम्, संशृणुयात् = सम्यक् प्रकारेणाकर्णयेत् ॥६१ ॥

हिन्दी—तुम्हें किस दुष्ट ने कहाँ, किस समय और क्यों पीड़ा पहुँचाई है? इस तरह पूछकर उसकी सहज बातें सुने ॥६१ ॥

केनेति। कस्मिन् स्थाने कदा कस्मिन् समये केन दुरात्मना कस्मात् कारणात् पीडितोऽसि, एवं पृष्ट्वा तस्य वादिनः स्वभावोक्तं न तु काल्पनिकमित्यर्थः, वचः वचनं संशृणुयात् ॥६१ ॥

प्रसिद्धलिपिभाषाभिस्तदुक्तं लेखको लिखेत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—लेखकः तदुक्तं प्रसिद्धलिपिभाषाभिः लिखेत् ॥६२ ॥

व्याख्या—लेखकः = लिपिकारः, तत् = अभियोगिनः, उक्तम् = निवेदितम्, प्रसिद्धाभिः = प्रचलिताभिः, लिपिभिः = अक्षरैः, भाषाभिः = गिराभिः, लिखेत् = लेखनं कुर्यात् ॥६२ ॥

हिन्दी—और लेखक उसकी कही बातों को उस समय की प्रचलित लिपि और भाषा में लिखे ॥६२ ॥

प्रसिद्धेति। लेखकः तदुक्तं तेन वादिना उक्तं कथितं प्रसिद्धाभिः चलिताभिः लिपिभिः अक्षरैः भाषाभिश्च लिखेत् ॥६२ ॥

अन्यदुक्तं लिखेदन्यद्योऽर्थिप्रत्यर्थिनां वचः।
चौरवत् शासयेद्राजा लेखकं द्रागतन्द्रितः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—यः अर्थिप्रत्यर्थिनाम् अन्यत् उक्तं वचः अन्यत् लिखेत्, राजा अतन्द्रितः सन् तं द्राक् चौरवत् शासयेत् ॥६३ ॥

व्याख्या—यः = लिपिकारः, अर्थिनाम् = वादिनाम्, प्रत्यर्थिनाम् = प्रतिवादिनाम्, अन्यत् उक्तम् = कथितम्, वचः = वचनम्, अन्यत् = भिन्नरूपेण, लिखेत् = लिपिबद्धं कुर्यात्, राजा = नृपः, अतन्द्रितः = अनलसो भूत्वा, तम् = लेखकम्, द्राक् = झटिति, चौरवत् = तस्कर इव, शासयेत् = दमयेत् ॥६३ ॥

हिन्दी—यदि कोई लेखक वादी-प्रतिवादी की कही हुई बातों को जैसा वह कहे, उससे भिन्न लिखे, तो राजा तत्परता के साथ उस लेखक को चोर की तरह दण्ड दे ॥६३ ॥

अन्यदुक्तमिति। यः लेखकः अर्थिनां प्रत्यर्थिनाञ्च अन्यत् उक्तं वचः वाक्यम् अन्यत् अन्यथेत्यर्थः, लिखेत्, राजा अतन्द्रितः अनलसः क्षिप्रकारीत्यर्थः, सन् तं लेखकं द्राक् झटिति चौरवत् शासयेत् दण्डयेत् ॥६३॥

लिखितं तादृशं सभ्या न विब्रूयुः कदाचन।
बलाद् गृह्णन्ति लिखितं दण्डयेत् तांस्तु चौरवत्॥६४॥

अन्वयः—सभ्याश्च तादृशं लिखितं कदाचन न विब्रूयुः। यदि बलात् गृह्णन्ति तांस्तु चौरवत् दण्डयेत् ॥६४॥

व्याख्या—सभ्याश्च = सांसदश्च, तादृशम् = पूर्वोक्तमिव, लिखितम् = अङ्कितम्, कदाचन = कदापि, न = नहि, विब्रूयुः = अनुमोदेरन्। यदि ते तादृशं लिखितम्, बलात् = हठात्, गृह्णन्ति = ग्रहणं कुर्वन्ति, तान् = सभ्यान्, तु चौरवत् = तस्कर इव, दण्डयेत् = दण्डं दद्यात् ॥६४॥

हिन्दी—सांसद भी उक्त रीति से लिखे गये बयान का अनुमोदन न करे। यदि वे अपने अधिकार के बल पर वैसा करे तो राजा उन्हें चोर की तरह दण्ड दे ॥६४॥

लिखितमिति। सभ्याश्च तादृशं लिखितं कदाचन न विब्रूयुः न अनुमोदेरन्नित्यर्थः, यदि ते सभ्याः तादृशं लिखितं बलात् बलमाश्रित्य इत्यर्थः, गृह्णन्ति तांस्तु तांश्च चौरवत् दण्डयेत् ॥६४॥

प्राड्विवाको नृपाभावे पृच्छेदेवं सभागतम्॥६५॥

अन्वयः—प्राड्विवाकः नृपस्य अभावे सभागतम् एवं पृच्छेत् ॥६५॥

व्याख्या—प्राड्विवाकः = विचारपतिः, नृपस्य = राज्ञः, अभावे = अनुपस्थितौ, सभागतम् = सभायां सभागतमभ्यर्थिनम्, एवम् = पूर्वोक्तमिव, पृच्छेत् = जिज्ञासां कुर्यात् ॥ ६५ ॥

हिन्दी—राजा की अनुपस्थिति में विचारपति न्यायालय में उपस्थित अभ्यर्थी से उसी प्रकार पूछे ॥६५॥

प्राड्विवाक इति। प्राड्विवाकः विचारपतिः नृपस्य अभावे सभागतम् अर्थिनम् एवं पूर्ववत् पृच्छेत् ॥६५॥

वादिनौ पृच्छति प्राड् वा विवाको विविनक्त्यतः।
विचारयति सभ्यैर्वा धर्माधर्मान् विवक्ति वा॥६६॥

अन्वयः—वादिनौ पृच्छति प्राड् वा विविनक्ति इति विवाकः। अतः सः वा सभ्यैः सह धर्माधर्मान् विचारयति वा विवक्ति ॥६६॥

व्याख्या—वादिनौ = वादिप्रतिवादिनौ, पृच्छति = जिज्ञासयतीति प्राड्, विविनक्ति = विचारयतीति विवाकः अर्थात् विशिष्टो वाको यस्येति विवाकः = न्यायाधीशः, सः वा = स एव, वा नृपाभावे, सभ्यैः = सांसद्भिः सह, धर्माधर्मान् = कर्त्तव्याकर्त्तव्यान्, विचारयाति = चिन्तयति, वा विवक्ति = विशेषरूपेण वदतीति ॥६६॥

हिन्दी—वह वादी-प्रतिवादी से पूछता है, अतः प्राड् कहलाता है और विचार करता है अतः विवाक कहलाता है। अतः दोनों मिलकर प्राडविवाक कहलाता है और वही न्यायाधीश

सांसदों से मिलकर धर्माधर्म का विचार करते हुए अपना निर्णय देता है ॥ ६६ ॥

वादिनाविति। वादिनौ अर्थिप्रत्यर्थिनौ पृच्छतीति प्राड्, विविनक्ति विचारयतीति विवाकः, अतः असौ विचारपतिः प्राड्विवाक इत्यर्थः। सः वा स एव राजाभावे इत्यर्थः, सभ्यैः सह धर्माधर्मान् विचारयति वा विवक्ति विशेषेण वदति ॥ ६६ ॥

सभायां ये हिता योग्याः सभ्यास्ते चापि साधवः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—सभायां ये हिताः योग्याः साधवः सभ्याः ते चापि पश्येयुरिति ॥ ६७ ॥

व्याख्या—सभायाम् = न्यायालये, ये = जनाः, हिताः = हितेच्छुकाः, योग्याः = कार्यनिपुणाः, साधवः = सत्पुरुषाः, सभ्याः = सभासदः, ते चापि विवादं पश्येयुरिति ॥ ६७ ॥

हिन्दी—न्यायालय में जो व्यक्ति विचारवान् तथा कार्यचतुर एवं सज्जन हों, उन्हें सभासद बनाना चाहिए ॥ ६७ ॥

सभायामिति। सभायां ये हिताः योग्याः कर्मदक्षाः साधवः सुजनाः सभ्याः, ते च कार्य्यं पश्येयुरिति शेषः ॥ ६७ ॥

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेण परैः आधर्षितः चेत् राज्ञे आवेदयति तत् हि व्यवहारपदम् ॥ ६८ ॥

व्याख्या—स्मृत्याः = धर्मसंहितायाः, आचारः = सत्पुरुषानुष्ठितव्यवहारः, तत् = तस्य, व्यपेतेन = विपरीतेन, मार्गेण = पथा, परैः = अन्यैः, आधर्षितः = व्यथितो जनः, चेत् = यदि, राज्ञे = नृपाय, आवेदयति = प्रार्थयति, तत् = आवेदनम्, हि = निश्चयेन, व्यवहारपदम् = विवादस्थानम्, भवति ॥ ६८ ॥

हिन्दी—धर्मसंहिता में वर्णित आचरण के विपरीत राह पकड़कर यदि कोई किसी को सताता है तो उसके विरुद्ध न्यायालय में राजा के पास जो दावा पेश करता है, उसे 'व्यवहारपद' अर्थात् मुकदमा दायर करना कहते हैं ॥ ६८ ॥

स्मृतीति। स्मृतिः धर्मशास्त्रम् आचारः सज्जनानुष्ठितः व्यवहारः तद्व्यपेतेन तद्विरुद्धेन मार्गेण पथा कार्य्येणेत्यर्थः, परैः अन्यैः आधर्षितः पीडितः जनः चेत् यदि राज्ञे आवेदयति तत् आवेदनं व्यवहारपदं विवादस्थानं हि हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥ ६८ ॥

नोत्पादयेत् स्वयं कार्य्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः।
न रागेण न लोभेन न क्रोधेन ग्रसेन्नृपः।
परैरप्रापितानर्थान्न चापि स्वमनीषया ॥ ६९ ॥

अन्वयः—राजा स्वयं न अस्य पूरुषोऽपि न कार्यम् उत्पादयेत्। किञ्च नृपः रागेण न लोभेन न क्रोधेन च न ग्रसेत्, परैः अप्रापितान् अर्थान् स्वमनीषया न उत्पादयेत्।। ६९ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, स्वयम् = आत्मनैव, न = नहि, अस्य = एतस्य नृपस्य, पूरुषोऽपि = राजसेवकोऽपि, न = नहि, कार्यम् = विवादम्, उत्पादयेत् = घटयेत्। किञ्च, नृपः = राजा, रागेण = प्रेम्णा, न = नहि, लोभेन = लिप्सया, न = नहि, क्रोधेन = कोपेन च,

न = नहि, ग्रसेत् = कमपि पीडयेत्। अन्यच्च परैः = अन्यैः, अर्थिप्रत्यर्थिभिः, अप्रापितान् = अनावेदितान्, अर्थान् = व्यवहाराणि, स्वमनीषया—स्वस्य = आत्मनः, मनीषया = बुद्ध्या, न = नहि, उत्पादयेत् = घटयेदिति ॥६९ ॥

हिन्दी—राजा या राजपुरुष स्वयं कोई मुकदमा न्यायालय में दायर न करे। राजा प्रेम, लोभ या क्रोध के वशीभूत होकर किसी को न सताये तथा वादी-प्रतिवादी के बिना ही स्वयं अपनी बुद्धि की उपज के कारण कोई मुकदमा न्यायालय में दायर न करे ॥६९ ॥

नोत्पादयेदिति। राजा स्वयं न, अस्य राज्ञः पुरुषोऽपि न कार्य्यम् उत्पादयेत् विवादं न घटयेदित्यर्थः। किञ्च नृपः रागेण कस्मिन्नपि अनुरागेण न, लोभेन न, क्रोधेन च न ग्रसेत् पीडयेत् कमपीति शेषः। अपरञ्च परैः अर्थिप्रत्यर्थिप्रभृतिभिः अप्रापितान् अनावेदितान् अर्थान् कार्य्याणि स्वमनीषया निजबुद्ध्या न उत्पादयेदिति शेषः॥६९ ॥

छलानि चापराधांश्च पदानि नृपतेस्तथा।
स्वयमेतानि गृह्णीयान्नृपस्त्वावेदकैर्विना।
सूचकस्तोभकाभ्यां वा श्रुत्वा चैतानि तत्त्वतः ॥७० ॥

अन्वयः—नृपः आवेदकैः विना स्वयं छलानि अपराधान् तथा नृपतेः स्वस्य पदानि तथा सूचकस्तोभकाभ्यां श्रुत्वा एतानि तत्त्वतः गृह्णीयात् ॥७० ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, आवेदकैः = अभ्यर्थिभिः, विना = अभावे, स्वयम् = आत्मनः एव, छलानि = कपटानि, अपराधान् = दोषान्, तथा नृपतेः = राज्ञः, स्वस्य = आत्मनः, पदानि = विवादस्थानानि, तथा सूचकस्तोभकाभ्याम् = गुप्तचरगूढपुरुषाभ्याम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, एतानि = पूर्वोक्तानि, तत्त्वतः = याथार्थ्येन, गृह्णीयात् = स्वीकुर्यात् ॥७० ॥

हिन्दी—किसी के द्वारा मुकदमा दायर किये बिना भी राजा खुद आगे कहे जाने वाले छल, अपराध एवं विवादस्थल—इन्हें गुप्तचर एवं मुखबिरों से सुनकर इनके बारे में सही जानकारी लेकर स्वयं मुकदमा दायर करे ॥७१ ॥

छलानीति। नृपः आवेदकैः निवेदकैः विना निवेदनमन्तरेणेत्यर्थः, स्वयं छलानि अपराधान् तथा नृपतेः स्वस्य पदानि विवादस्थानानि, तथा सूचकस्तोभकाभ्यां श्रुत्वा एतानि तदुक्तानि तत्त्वतः याथार्थ्येन गृह्णीयात् ॥७० ॥

शास्त्रेणानिन्दितस्त्वर्थी नापि राज्ञा प्रचोदितः।
आवेदयति यत् पूर्वं स्तोभकः स उदाहृतः ॥७१ ॥

अन्वयः—यः शास्त्रेण अनिन्दितः तथा राज्ञा प्रचोदितः न किन्तु पूर्वम् आवेदयति, सः अर्थी स्तोभकः उदाहृतः ॥७१ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, शास्त्रेण = धर्मग्रन्थेन, अनिन्दितः = निन्दारहितः, तथा = तेनैव प्रकारेण, राज्ञा = नृपेण, प्रचोदितश्च = प्रेरितश्च, न = नहि, किन्तु, पूर्वम् = प्राक्, आवेदयति = प्रार्थयति, सः = असौ, अर्थी, स्तोभकम्, उदाहृतः = कथितः ॥७१ ॥

हिन्दी—जो शास्त्र में निन्दित न हो, राजा ने उसे आवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित न किया हो, यदि वह पहले ही आकर राजा से निवेदित करता है, उसे स्तोभ कहते हैं ॥७१ ॥

स्तोभकं लक्षयति—**शास्त्रेणेति**। यः शास्त्रेण अनिन्दितः तथा राज्ञा प्रचोदितश्च न, किन्तु पूर्वम् आवेदयति ज्ञापयति सः अर्थी स्तोभक उदाहृतः ख्यातः ॥७१ ॥

नृपेण विनियुक्तो यः परदोषानुवीक्षणे।
नृपं संसूचयेज्ज्ञात्वा सूचकः स उदाहृतः ॥ ७२ ॥

अन्वयः—यः परदोषानुवीक्षणे नृपेण विनियुक्तः सन् नृपं संसूचयेत्, सः सूचकः उदाहृतः ॥७२ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, परदोषानुवीक्षणे = अन्यापराधनिरीक्षणे, नृपेण = राज्ञा, विनियुक्तः = विशेषरूपेण नियुक्तः, सन्, नृपम् = राजानम्, संसूचयेत् = सम्यक् प्रकारेण निवेदयेत्, सः = असौ, सूचकः = गुप्तचरः, उदाहृतः = ख्यातः ॥७२ ॥

हिन्दी—राजा जिसे दूसरों के अपराध की जानकारी के लिए नियुक्त करता है और वह सारी सूचनाएँ इकठ्ठी कर राजा के सामने प्रस्तुत करता है, उसे संसूचक अर्थात् गुप्तचर कहते हैं ॥७२ ॥

सूचकं लक्षयति—**नृपेणेति**। यः परदोषानुवीक्षणे परदोषदर्शनार्थं नृपेण राज्ञा विनियुक्तः सन् नृपं संसूचयेत् नृपसमीपे परदोषान् प्रकाशयेत् स सूचकः उदाहृतः ॥७२ ॥

पथिभङ्गी पराक्षेपी प्राकारोपरि लङ्घकः।
निपानस्य विनाशी च तथा चायतनस्य च ॥ ७३ ॥
परिखापूरकश्चैव राजच्छिद्रप्रकाशकः।
अन्तःपुरं वासगृहं भाण्डागारं महानसम् ॥ ७४ ॥
प्रविशत्यनियुक्तो यो भोजनञ्च निरीक्षते।
विण्मूत्रश्लेष्मवातानां क्षेप्ता कामान्नृपाग्रतः ॥ ७५ ॥
पर्य्यङ्कासनबन्धी चाप्यग्रस्थानविरोधकः।
नृपातिरिक्तवेशश्च विधृतः प्रविशेत्तु यः ॥ ७६ ॥
यश्चापद्वारेण विशेदवेलायां तथैव च।
शय्यासने पादुके च शयनासनरोहणे ॥ ७७ ॥
राजन्यासन्नशयने यस्तिष्ठति समीपतः।
राज्ञो विद्विष्टसेवी चाप्यदत्तविहितासनः ॥ ७८ ॥
अन्यवस्त्राभरणयोः स्वर्णस्य परिधायकः।
स्वयंग्राहेण ताम्बूलं गृहीत्वा भक्षयेत्तु यः ॥ ७९ ॥
अनियुक्तप्रभाषी च नृपाक्रोशक एव च।
एकवासास्तथाभ्यक्तो मुक्तकेशोऽवकुण्ठितः ॥ ८० ॥
विचित्रिताङ्गः स्रग्वी च परिधानविधूनकः।
शिरःप्रच्छादकश्चैव छिद्रालोकप्रपातकः ॥ ८१ ॥

आसङ्गी मुक्तवेशश्च घ्राणकर्णाक्षिदर्शकः।
दन्तोल्लेखनकश्चैव कर्णनासाविशोधकः।
राज्ञः समीपे पञ्चाशच्छलान्येतानि सन्ति हि॥ ८२॥

अन्वयः—पथिभङ्गी पराक्षेपी प्राकारोपरि लङ्घकः निपानस्य विनाशी च आयतनस्य विनाशी परिखापूरकः राजछिद्रप्रकाशकः यश्च अनियुक्तः अन्तःपुरं वासगृहं भाण्डागारं महानसं प्रविशति; यश्च भोजनं निरीक्षते, विण्मूत्रश्लेष्मवातानां कामात् क्षेप्ता नृपस्य अग्रतः पर्यङ्कासनबन्धी अग्रस्थानविरोधकः नृपातिरिक्तवेशश्च तथा यः विधृतः प्रविशेत्, यश्चापद्वारेण तथा अवेलायां विशेत् शय्यासने तथा पादुके शयनासनरोहणे यश्च आसन्नशयने राजनि समीपतः तिष्ठति, राज्ञः विद्विष्टसेवी अदत्तविहितासनः अन्यवस्त्राभरणयोः स्वर्णस्य च परिधायकः, यश्च स्वयंग्राहेण ताम्बूलं गृहीत्वा भक्षयेत्, अनियुक्तप्रभाषी च नृपाक्रोशकः एकवासाः अभ्यक्तः मुक्तकेशः अवकुण्ठितः विचित्रिताङ्गः स्रग्वी परिधानविधूनकः शिरःप्रच्छादकः छिद्रान्वेषणतत्परः आसङ्गी मुक्तवेशश्च घ्राणकर्णाक्षिदर्शकः दन्तोल्लेखनकः कर्णनासाविशोधकः —राज्ञः समीपे एतानि पञ्चाशत् छलानि सन्ति॥ ७३-८२॥

व्याख्या—पथिभङ्गी = मार्गावरोधकः, परस्य = अन्यजनस्य, आक्षेपी = दोषारोपणकारी, प्राकारस्य = प्राचीरस्य, उपरि = उपरिष्टात्, लङ्घकः = लङ्घनकारी, निपानस्य = पयः शालायाः, तथा आयतनस्य = निवासस्य, विनाशकः, परिखाणाम् = खातानाम्, नगरवेष्टनीभूतानां जलाधाराणाञ्च, पूरकः = मुक्तिकादिभिः भरणकारी, राज्ञः = नृपस्य, छिद्रस्य = दोषस्य, प्रकाशकः = स्थापकः, यश्च = यो हि नरः, अनियुक्तः = अननुमतः सन्, अन्तःपुरम् = अवरोधः, वासगृहम् = निवाससदनम्, भाण्डागारम् = धान्यकोशः निधानं वेति, महानसम् = पाकशालाम्, प्रविशति = प्रवेशं करोति, यश्च = पुरुषविशेषः, भोजनम् = भक्ष्यम्, निरीक्षते = अवलोक्यते, विण्मूत्रश्लेष्मवातानाम् = मलमूत्रकफानाम् अधोवातानाञ्च, कामात् = स्वेच्छापूर्वकात्, क्षेप्ता = प्रयोक्ता, नृपस्य = राज्ञः, अग्रतः = सम्मुखे, पर्यङ्कासनबन्धी = वीरासनोपविष्टः, अग्रस्थानस्य = नृपसम्मुखावस्थानस्य विरोधकारी, नृपातिरिक्तवेशः = पार्थिवाधिकवेशधरः, तथा च यः = पुरुषः, विधृतः = विशेषेण धारितः, प्रविशेत् = प्रवेशं कुर्यात्, यश्चापद्वारेण = मुख्यद्वारविपरीतमार्गेण, तथा अवेलायाम् = असमये, विशेत् = परगृहं प्रविशेत्, शय्यासने—शय्यायाम् = पर्यङ्के, आसने = उपवेशने च, तथा पादुके = पादुकायाम् = चरणरक्षिकायाम्, पादुके इत्यत्र नपुंसकलिङ्गनिर्देशः, आर्षत्वात्; शयनासनरोहणे—शयने = शय्याम्, आसने = उपवेशने, चरणस्पर्शे, अननुमत्यैव तत्तत्कारीति, यश्च आसन्नशयने = शय्यायामारोहणे, राज्ञि = राजनि, समीपतः = तस्य सन्निधौ तिष्ठति, राज्ञः = नृपस्य, विद्विष्टसेवी = शत्रुसेवकः, अदत्तविहितासनः—अदत्तम् = अविसृष्टम्, विहितम् = गृहीतम्, आसनम् = उपवेशनम्, येन तथोक्तः, अन्यस्य = अपरजनस्य, वस्त्राभरणयोः = वसनभूषणयोः, स्वर्णस्य = कनकस्य च, परिधायकः = धारणकर्त्ता, यश्च स्वयम् = आत्मनैव, ग्राहेण = बलेन, परकीयताम्बूलम् = नागवल्लीदलम्, गृहीत्वा = नीत्वा, भक्षयेत् = खादयेत्, अनियुक्तः सन् = नियोजनरहितोऽपि, प्रभाषी—प्रकर्षेण, भाषी = वक्ता, नृपाक्रोशकः—नृपस्य = राज्ञः, आक्रोशकः = निन्दकः, एकवासाः = एकमात्रवस्त्रधारकः, अभ्यक्तः = तैलाक्तशरीरम्, मुक्तकेशः = अबद्धशिरः, अवकुण्ठितः = कातरः, भीरुश्च, विचित्रिताङ्गः—विशेषेण चित्रितः = शबलितः, अङ्गम् = शरीरम्, यस्य सः, स्रग्वी = मालाधारी, परिधानस्य =

परिधेयवस्त्रस्य, विधूनकः = कम्पकः, शिरःप्रच्छादकः = अवगुण्ठितः, छिद्रान्वेषणतत्परः = परदोपदर्शने निरतः, आसङ्गी = व्यसनासक्तः, मुक्तवेशः = परित्यक्तपरिच्छदः, घ्राणकर्णाक्षिदर्शकः = नासिकाश्रोत्रनयनप्रदर्शनकारी, तथा दन्तोल्लेखनकः—दन्तानाम् = दशनानाम्, उल्लेखनकः = खनकः, तथा कर्णनासाविशोधकः = श्रवणघ्राणपरिशोधनकारी, राज्ञः = नृपस्य, समीपे = पार्श्वे, एतानि = पूर्वोक्तानि पञ्चाशत्, छलानि = दोषाः, सन्ति ॥७३-८२ ॥

हिन्दी–१. राह रोकने वाला, २. दूसरे को अनादर करने वाला, ३. चहारदीवारी फाँदने वाला, ४. प्याऊ को गंदा करने वाला, ५. निवासस्थान को नष्ट करने वाला, ६. खाई को पाटने वाला, ७. राजा के दुर्गुण को बतलाने वाला, ८. बिना पूछे अन्तःपुर में घुस जाना, ९. बिना पूछे ही किसी के निवासगृह में घुसने वाला, १०. भण्डारघर में घूसने वाला, ११. रसोईघर में झाँकने वाला, १२. भोजन करते समय किसी को एकटक निहारने वाला, १३. जानबूझ कर विष्टा, १४. पेशाब, १५. कफ एवं १६. हवा छोड़ने वाला, १७. राजा के सामने वीरासन में अकड़ कर बैठने वाला, १८. राजा के बैठने के आगे की जगह छेकनेवाला, १९. राजा से अधिक भड़कीली पोशाक पहन कर राजा के सामने आने वाला, २०. बिना तैनाती, खाशकर पकड़ा कर राजा के सामने आने वाला, २१. किसी के घर में सामने का दरवाजा छोड़कर पिछली राह घुसने वाला, २२. असमय किसी के घर जाने वाला, २३. अनकहे किसी के बिछावन पर सोने वाला, २४. बिना कहे किसी के आसन पर बैठने वाला, २५. बिना पूछे किसी के खडाऊँ अथवा जूते पहनने वाला, २६. राजा को सोने के लिए पलंग पर पहुँच जाने के बाद भी उनके सामने ठहरने वाला, २७. राजा के दुश्मन की सेवा करने वाला, २८. बिना कहे किसी के घर ठहर जाने वाला, २९. अनकहे किसी के कपड़े, ३०. जेवर या ३१. सोना लेने वाला, ३२. जबरदस्ती दूसरों के पान का बीड़ा चबाने वाला, ३३. बिना कहे भाषण देने वाला, ३४. राजा की निन्दा करने वाला, ३५. केवल एक वस्त्र पहन कर राजा के सामने जाने वाला, ३६. देह में तेल लगा कर जाने वाला, ३७. केश खोलकर सामने आने वाला, ३८. मुँह ढककर या भयभीत होकर सामने आने वाला, ३९. अङ्गों को विचित्र बनाकर सामने आने वाला, ४०. माला पहनकर जाने वाला, ४१. पहने हुए कपड़े को हिलाने वाला, ४२. शिर को ढकने वाला, ४३. दूसरों के दोषों को ढूंढने वाला, ४४. शराब आदि पीने वाला, ४५. वेशभूषा का परित्याग करने वाला, ४६. अपनी नाक, ४७. अपने कान तथा ४८. अपनी आँखों का प्रदर्शन करने वाला, ४९. दाँतों को कुरेदने वाला और ५०. कान का मैल तथा नाक से नकटी निकालने वाला—राजा के सामने ये पचास छल (दोष) माने जाते हैं ॥७३-८२ ॥

सम्प्रति पञ्चाशच्छलान्याह—**पथीत्यादि**। पथिभङ्गी रथ्याभङ्गकरः १, पराक्षेपी परस्य अन्यस्य आक्षेपकारी अवमाननाकरः २, प्राकारस्य उपरि लङ्घकः प्राचीरलङ्घनकारी ३, निपानस्य पानशालायाः तथा आयतनस्य आवासस्य विनाशी नाशकः ४-५, परिखाणां नगरवेष्टनीभूतजलाधारस्य पूरकः मृत्तिकाक्षेपादिति शेषः ६, राज्ञः छिद्रस्य दोषस्य प्रकाशकः ७, यश्च अनियुक्तः अननुमतः सन् अन्तःपुरं वासगृहं भाण्डागारं धनगृहं वा महानसं रन्धनशालां प्रविशति ८-११, यश्च भोजनं निरीक्षते भोजनदर्शनस्य निषिद्धत्वादिति भावः १२, विण्मूत्रश्लेष्मवातानां विष्ठामूत्रश्लेष्मणाम् अधोवातानाञ्च कामात् क्षेप्ता प्रयोप्ता १३-१६, नृपस्य अग्रतः समक्षं पर्य्यङ्कासनबन्धी वीरासनोपविष्टः १७, अग्रस्थानस्य सम्मुखस्थानस्य विरोधकारी १८, नृपातिरिक्तवेशः

राजाधिकवेशधरः १९, तथा यः विधृतः विशेषेण धृतः न तु नियोगमात्रेणेति भावः, प्रविशेत् प्रभुसन्निधिमिति शेषः २०, यश्च अपद्वारेण द्वारव्यतिरिक्तेन मार्गेणेत्यर्थः, तथा अवेलायाम् अयथासमये इत्यर्थः, विशेत् परगृहमिति शेषः २१-२२, शय्यासने शय्यायाम् आसने च तथा पादुके इति नपुंसकनिर्देश आर्षः; पादुकायामित्यर्थः, शयनासनरोहणे शयने आसने उपवेशने रोहणे पादस्पर्शने च सर्वत्र परकीये इति बोद्धव्यम्, अननुमत्या तत्तत्कारीत्यर्थः २३-२५, यश्च आसन्नशयने शयनारूढे राज्ञि समीपतः सत्सन्निधौ तिष्ठति २६, राज्ञः विद्विष्टसेवी शत्रुसेवकः २७, अदत्तं विहितं गृहीतम् आसनम् अवस्थानं येन तथोक्तः अननुमत्या परगृहस्थायीत्यर्थः २८, अन्यस्य वस्त्राभरणयोः स्वर्णस्य च परिधायकः २९-३१, यश्च स्वयंग्राहेण बलेन ताम्बूलं परकीयमिति भावः, गृहीत्वा भक्षयेत् ३२, अनियुक्तः सन् प्रभाषी वक्ता ३३, नृपाक्रोशकः राजनिन्दकः ३४, एकवासाः एकवस्त्रः ३५, अभ्यक्तः तैलाक्तदेहः ३६, मुक्तकेशः अबद्धशिराः ३७, अवकुण्ठितः ३८, विचित्रिताङ्गः चित्रितशरीरः ३९, स्रग्वी ४०, परिधानस्य परिधेयवसनस्य विधूनकः कम्पकः ४१, शिरःप्रच्छादकः अवगुण्ठितः ४२, छिद्रान्वेषणतत्परः परदोषानुसन्धायी ४३, आसङ्गी व्यसनासक्तः ४४, मुक्तवेशः त्यक्तपरिच्छदः ४५, घ्राणकर्णाक्षिदर्शकः नासाकर्णनेत्राणां प्रदर्शनकारी ४६-४८, दन्तोल्लेखनकः दन्तानाम् उल्लेखनकारी ४९, तथा कर्णनासाविशोधकः ५०, राज्ञः समीपे एतानि पञ्चाशत् छलानि दोषाः सन्ति हिशब्दोऽवधारणार्थः ॥७३-८२ ॥

आज्ञोल्लङ्घनकारित्वं स्त्रीवधो वर्णसङ्करः ।
परस्त्रीगमनं चौर्य्यं गर्भश्चैव पतिं विना ॥ ८३ ॥
वाक्पारुष्यमवाच्याद्यं दण्डपारुष्यमेव च ।
गर्भस्य पातनं चैवेत्यपराधा दशैव तु ॥ ८४ ॥

अन्वयः—आज्ञोल्लङ्घनकारित्वं स्त्रीवधः वर्णसङ्करः परस्त्रीगमनं चौर्यं पतिं विना गर्भः वाक्पारुष्यम् अवाच्याद्यं दण्डपारुष्यं गर्भस्य पातनञ्च—एते तु दश अपराधाः ॥८३-८४ ॥

व्याख्या—आज्ञायाः = आदेशस्य, उल्लङ्घनकारित्वम् = व्यतिक्रमत्वम्, स्त्रीवधः = नारीहत्या, वर्णसङ्करः = साङ्करिकः, परस्त्रीगमनम् = परदारानुरागी, चौर्य्यम् = तस्करत्वम्, पतिं विना गर्भः = अन्यपुरुषेण गर्भधारणम्, वाक्पारुष्यम् = कठोरवाक्यत्वम्, अवाच्याद्यम् = अकथनीयशब्दानां प्रयोगः, दण्डपारुष्यम् = कठोरप्रहारः, गर्भस्य = भ्रूणस्य, पातनम् = विनाशनम्, एते = पूर्वपरिगणिताः, दश = दशसंख्यकाः, अपराधाः = दोषाः, भवन्तीति ॥८३-८४ ॥

हिन्दी—१. आज्ञा का उल्लंघन करना, २. नारी की हत्या करना, ३. विजातीय विवाह से वर्णसंकर पैदा करना, ४. परस्त्रीगामी होना, ५. चोरी करना, ६. पति के अलावा अन्य पुरुष से गर्भ धारण करना, ७. कठोर वचन बोलना, ८. नहीं बोलने योग्य बातें बोलना, ९. कठोर दण्ड देना और १०. गर्भपात करना—ये दस अपराध हैं ॥८३-८४ ॥

आज्ञेति। वागिति। आज्ञाया उल्लङ्घनकारित्वम् आज्ञालङ्घनं १, स्त्रीवधः २, वर्णसङ्करः ३, परस्त्रीगमनं ४, चौर्य्यं ५, पतिं विना गर्भः अन्येनेति भावः ६, वाक्पारुष्यं ७, अवाच्याद्यम् अवक्तव्यवाक्यप्रयोगादि ८, दण्डपारुष्यं प्रहारः ९, गर्भस्य पातनञ्च १०, एते दश अपराधाः ॥८३-८४॥

उत्कृती शस्यघाती चाप्यग्निदश्च तथैव च।
राज्ञो द्रोहप्रकर्त्ता च तन्मुद्राभेदकस्तथा ॥ ८५ ॥
तन्मन्त्रस्य प्रभेत्ता च बद्धस्य च विमोचकः।
अस्वामिविक्रयं दानं भागं दण्डं विचिन्वति ॥ ८६ ॥
पटहाघोषणाच्छादी द्रव्यमस्वामिकञ्च यत्।
राजावलीढद्रव्यं च यच्चैवाङ्गविनाशनम् ॥ ८७ ॥
द्वाविंशतिपदान्याहुर्नृपज्ञेयानि पण्डिताः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—उत्कृती शस्यघाती तथैव अग्निदः राज्ञः द्रोहकर्त्ता तन्मुद्राभेदकः तथा तन्मन्त्रस्य प्रभेत्ता च बद्धस्य विमोचकः अस्वामिविक्रयं दानं भागं दण्डञ्च विचिन्वति, पटहाघोषणाच्छादी अस्वामिकं यत् द्रव्यं च राजावलीढद्रव्यं तथा अङ्गविनाशनम्—एतानि द्वाविंशतिपदानि नृपज्ञेयानि पण्डिताः आहुः ॥ ८५-८८ ॥

व्याख्या—उत्कृती = उद्वेजकः, शस्यघाती = शस्यनाशकः, अग्निदः = धान्यागारगृहादिषु चाग्निदायी, राज्ञः = नृपस्य, द्रोहकर्त्ता = विद्वेषी, तन्मुद्राभेदकः—तत् = तस्य नृपस्य, मुद्राभेदकः = राजकीयचिह्नविनाशकः, तस्य = नृपस्य, मन्त्रस्य = गुप्तरहस्यस्य, प्रभेत्ता = भेदकः, बद्धस्य = कारानिबद्धस्य, विमोचकः = मुक्तकारी, यः = पुरुषः, अस्वामिकम् = स्वामिविहीनम्, द्रव्यस्य = धनस्य, विक्रयम् = विपणनम्, दानम् = प्रत्यर्पणम्, भागम् = अंशम्, दण्डश्च = दमनश्च, विचिन्वति = अन्विच्छति, सः पटहाघोषणाच्छादी—पटहेन = डिण्डिभेण, यत् आघोषणम् = प्रख्यापणम्, तस्य आच्छादी = प्रच्छादनकारी, किञ्च अस्वामिकम् = अदायिकः, द्रव्यम् = धनम्, राजावलीढद्रव्यम् = नृपाधिकृतं धनम्, तथा अङ्गविनाशनम् = शरीरावयवविनाशकरणम्, एतानि = पूर्ववर्णितदशापराधसहितानि, द्वाविंशतिपदानि = द्वयाधिकविंशतिविवादस्थानानि, नृपेण = राज्ञा, ज्ञेयानि = बोध्यानि, इति, पण्डिताः = बुद्धिमन्तो जनाः, आहुः = कथयन्ति ॥ ८५-८८ ॥

हिन्दी—१. बेचैन करने वाला, २. फसल नष्ट करने वाला, ३. घर में आग लगाने वाला, ४. राजद्रोह करने वाला, ५. राजचिह्न को मिटाने वाला, ६. राजा के गुप्त रहस्य को प्रकाशित करनें वाला, ७. कैदियों को जेल से भगाने वाला, ८. लावारिस वस्तुओं को बेचने वाला, ९. किसी के दान, हिस्सा या दण्ड को समाप्त कर देने वाला, १०. राजा ने जिसकी डुग्गी पिटवाई हो, उसे छिपाने वाला, ११. लावारिस धन लेने वाला तथा १२. किसी को काटकर अङ्गहीन बनाने वाला—पहले कहे गये दस अपराधों के साथ ये कुल बाईस राजा के द्वारा पद अर्थात् विवाद के स्थान बतलाये गये हैं, जिन्हें बुद्धिमानों को जानना चाहिए ॥ ८५-८८ ॥

उत्कृतीत्यादि। उत्कृती उद्वेजकः १, शस्यघाती शस्यनाशकः २, अग्निदः गृहादिषु अग्निदायी ३, राज्ञः द्रोहकर्त्ता अनिष्टकारकः ४, तन्मुद्राभेदकः तस्य राज्ञः मुद्राभेदकः चिह्नाशकः ५, तस्य मन्त्रस्य प्रभेत्ता प्रकाशकः ६, बद्धस्य कारास्थितस्य विमोचकः विमोचनकारी ७, यः अस्वामिविक्रयं स्वामिशून्यस्य द्रव्यस्य विक्रयं दानं भागं दण्डश्च विचिन्वति अन्विच्छति सः ८, पटहेन वाद्यविशेषेण यत् आघोषणं तस्य आच्छादी गोपनकारकः ९, एतेषां कार्य्याणीति शेषः, किञ्च अस्वामिकं द्रव्यं १०, राजावलीढद्रव्यं राजग्रस्तम् अन्यस्वामिकं द्रव्यमित्यर्थः ११, तथा

अङ्गविनाशनम् अङ्गहानिकरणम् १२, एतानि पूर्वोक्तदशापराधसहितानि द्वाविंशतिपदानि विवादस्थानानि नृपेण ज्ञेयानि इति पण्डिताः आहुः कथयन्ति ॥ ८५-८८ ॥

उद्धतः क्रूरवाग्वेशो गर्वितश्चण्ड एव हि।
सहासनश्चातिमानी वादी दण्डमवाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

अन्वयः—वादी उद्धतः क्रूरवाक् क्रूरवेशः गर्वितः चण्डः सहासनः अतिमानी च दण्डम् अवाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

व्याख्या—वादी = अभियोगी, चेत् = यदि, उद्धतः = उद्दण्डः, क्रूरवाक् = तीक्ष्णभाषी, क्रूरवेशः = निर्दयकर्मकरणोपयोगिवेशः, गर्वितः = अहङ्कारी, चण्डः = प्रचण्डक्रोधी, सहासनः = विचारपतिना सह समानोपवेशने उपविष्टः, अतिमानी = अत्यन्ताभिमानी, भवेत्तदा, दण्डम् = दमनम्, अवाप्नुयात् = प्राप्नुयात् ॥ ८९ ॥

हिन्दी—जो अभियोगी उद्दण्ड स्वभाव वाला, कठोर वचन बोलने वाला, निर्दय वेश-भूषा वाला, गर्वीला, अत्यन्त क्रोधी, विचारपति के साथ उसी के आसन पर बैठने वाला तथा अति अभिमानी यदि हो तो उसे दण्ड देना चाहिए ॥ ८९ ॥

उद्धत इति। वादी उद्धतः कर्कशः, क्रूरवाक् निष्ठुरभाषी, क्रूरवेशः निष्ठुरकार्य्यकरणोपयोगिवेशः, गर्वितः चण्डः कोपनः सहासनः विचारपतिना सहासनोपविष्टः, अतिमानी च चेत् तदा दण्डम् अवाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

अर्थिना कथितं राज्ञे तदावेदनसंज्ञकम्।
कथितं प्राड्विवाकादौ सा भाषाखिलबोधिनी ॥ ९० ॥
स पूर्वपक्षः सभ्यादिस्तं विमृश्य यथार्थतः।
अर्थितः पूरयेद्धीनं तत्साक्ष्यमधिकं त्यजेत् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—अर्थिना राज्ञे यत् कथितं तत् आवेदनसंज्ञकं प्राड्विवाकादौ कथितम्, यत् सा अखिलबोधिनी भाषा सः पूर्वपक्षः उच्यते। सभ्यादिः अर्थितः सन् तं यथार्थतः विमृश्य तत् हीनं चेत् पूरयेत् अधिकञ्च तत् साक्ष्यं त्यजेत् ॥ ९०-९१ ॥

व्याख्या—अर्थिना = अभ्यर्थिना, राज्ञे = नृपाय, यत् कथितम् = लिखितम्, तत् = लेखपत्रम्, आवेदनम् = आवेदनसंज्ञकम्, भवति, यत्, प्राड्विवाकादौ = न्यायाधीशप्रभृतौ, कथितम् = वाचा निवेदितम्, सा = वाणी, अखिलबोधिनी = सर्वज्ञापिनी, भाषा इति कथिता, सः = तदेव, पूवपक्ष इत्युच्यते, सभ्यादिः = विचारार्थनियुक्तसांसदादयः, अर्थितः = याचितः सन्, तम् = पूर्वपक्षम्, यथार्थतः = तथ्यतः, विमृश्य = विचार्य, हीनम् = अल्पम्, चेत् = यदि, पूरयेत् = पूर्णं कुर्यात्, अधिकम् = विशेषम्, चेत्, तदा = तस्य पूर्वपक्षस्य, साक्ष्यम् = प्रेक्षकम्, त्यजेत् = परित्यागं कुर्यात् ॥ ९०-९१ ॥

हिन्दी—राजा के पास अभियोगी जो प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करता है, उसे आवेदन अर्थात् दावा या अर्जी कहते हैं और जज के सामने वादी जो कुछ कहता है, उसे भाषा अर्थात् बयान कहते हैं। यह बयान सभी बातों को समझाने वाला होता है, इसे पूर्वपक्ष कहते हैं। जूरी प्रभृति उसी बयान पर यथार्थ रूप से विचार कर जो कमी हो उसे वादी से पूछकर उसे पूरा

कर ले और यदि अधिक हो तो गवाही के आधार पर उसे छोड़कर विचार करे ॥ ९०-९१ ॥

अर्थिनेति। स इति। अर्थिना राज्ञे यत् कथितं तत् आवेदनसंज्ञकम् आवेदनमिति कथितमित्यर्थः, प्राड्विवाकादौ कथितं यत् सा अखिलबोधिनी समग्रप्रबोधिका भाषा। स पूर्वपक्षश्च उच्यते इति शेषः। सभ्यादिः विचारालयनियुक्तः पुरुषादिः अर्थितः प्रार्थितः सन् अर्थिनेति शेषः, तं पूर्वपक्षं यथार्थतः विमृश्य विविच्य हीनं चेत् पूरयेत्, अधिकञ्च तत्साक्ष्यं तस्य पूर्वपक्षस्य साक्ष्यं त्यजेत् ॥ ९०-९१ ॥

वादिनश्चिह्नितं साक्ष्यं कृत्वा राजा विमुद्रयेत् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—राजा साक्ष्यं वादिनः चिह्नितं कृत्वा विमुद्रयेत् ॥ ९२ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, साक्ष्यम् = प्रत्यक्षम्, वादिनः = अभ्यर्थिनः, चिह्नितम् = हस्ताक्षरितम्, कृत्वा = विधाय, विमुद्रयेत् = विशेषरूपेण तमावेदनं मुद्राङ्कितं कुर्यात् ॥ ९२ ॥

हिन्दी—उस बयान पर उसके अंगूठे का निशान लेकर राजा उस पर अपनी मुहर लगा दे। वादी का यह बयान भी एक तरह का साक्ष्य ही है ॥ ९२ ॥

वादिन इति। राजा साक्ष्यं वादिनः चिह्नितं कृत्वा विमुद्रयेत् विशेषेण मुद्राङ्कितं कुर्य्यात् ॥ ९२ ॥

अशोधयित्वा पक्षं ये ह्युत्तरं दापयन्ति तान्।
रागाल्लोभाद् भयाद् वापि स्मृत्यर्थे वाधिकारिणः।
सभ्यादीन् दण्डयित्वा तु ह्यधिकारान्निवर्त्तयेत् ॥ ९३ ॥

अन्वयः—ये अधिकारिणः रागात् लोभात् भयात् वा पक्षम् अशोधयित्वा उत्तरं दापयन्ति, तान् स्मृत्यर्थे दण्डयित्वा अधिकारात् निवर्त्तयेत् ॥ ९३ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, अधिकारिणः = पदाधिकारिवर्गः, लोभात् = लिप्सायाः, रागात् = अनुरागात्, भयात् = भीत्याः, वा = अथवा, पक्षम् = पूर्वपक्षम्, अशोधयित्वा = संशोधनं कृतं विना, उत्तरम् = प्रतिपक्षात्प्रतिवचनम्, दापयन्ति = गृह्णन्ति, तान् = सांसदः, स्मृत्यर्थे = निन्दितं कृतमिदमिति स्मरणार्थम्, दण्डयित्वा = दमनं कृत्वा, अधिकारात् = सांसदपदात्, निवर्त्तयेत् = परावर्त्तयेदिति ॥ ९३ ॥

हिन्दी—जो सभासद प्रेम, लोभ या भय से वादीपक्ष का सही ढंग से जाँच किये बिना ही प्रतिवादी पक्ष से उत्तर दिलवाते हैं, उन्हें 'भविष्य में ऐसा न करें' इसकी स्मृति हेतु उन पदाधिकारी जूरी-पंचों को राजा पदच्युत कर दे ॥ ९३ ॥

अशोधयित्वेति। ये अधिकारिणः राजपुरुषाः रागात् लोभात् भयाद् वा पक्षं पूर्वपक्षम् अशोधयित्वा उत्तरं दापयन्ति तान् सभ्यादीन् स्मृत्यर्थे एतत् गर्हितं कृतमिति स्मरणार्थमित्यर्थः, दण्डयित्वा अधिकारात् तत्तत्पदान्निवर्त्तयेत् भ्रंशयेत् ॥ ९३ ॥

ग्राह्याग्राह्यं विवादन्तु सुविमृश्य समाश्रयेत्।
सञ्जातपूर्वपक्षं तु वादिनं सन्निरोधयेत् ॥ ९४ ॥
राजाज्ञया सत्पुरुषैः सत्यवाग्भिर्मनोहरैः।
निरालसैरिङ्गितज्ञैश्च दृढशस्त्रास्त्रधारिभिः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—राजा विवादं ग्राह्याग्राह्यं सुविमृश्य समाश्रयेत्। सञ्जातपूर्वपक्षं वादिनम् आज्ञया सत्यवाग्भिः मनोहरैः निरालसैः इङ्गितज्ञैः दृढशस्त्रास्त्रधारिभिः सत्पुरुषैः सन्निरोधयेत् ॥ ९४-९५ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, विवादम् = कलहम्, ग्राह्याग्राह्यम्—ग्राह्यम् = ग्रहणीयम्, अग्राह्यम् = अस्वीकार्यम्, सुविमृश्य = सुष्ठुतया विचार्य, ग्राह्यं चेत्, समाश्रयेत् = सम्यक्प्रकारेण गृह्णीयात्। किञ्च सञ्जातपूर्वपक्षम् = कृतपूर्वपक्षम्, वादिनम्, आज्ञया = निजादेशेन, सत्यवाग्भिः = सत्यवादिभिः, मनोहरैः = सुदर्शनैः, निरालसैः = आलस्यरहितैः, इङ्गितज्ञैः = सङ्केतज्ञैः, दृढशस्त्रास्त्रधारिभिः = सबलसायुधैः, सत्पुरुषैः = सज्जनैः, सन्निरोधयेत् = आसेधयेत् ॥ ९४-९५ ॥

हिन्दी—राजा मुकदमा लेने योग्य है अथवा नहीं—इसका ठीक ढंग से विचार कर यदि योग्य हो तो उसे स्वीकार करे। फिर वादी का बयान जब पूरा हो जाय तब उसे अपनी आज्ञा से सत्यवादी, सुन्दर, तत्पर और इशारे को समझने वाले सबल हथियारबन्द सज्जन सिपाहियों से आगे कुछ कहने से रोकवा दे ॥ ९४-९५ ॥

ग्राह्येति। राजेति। राजा विवादं ग्राह्याग्राह्यं ग्राह्यम् अग्राह्यं वा सुविमृश्य सुविविच्य ग्राह्यञ्चेत् समाश्रयेत् गृह्णीयात्। किञ्च सञ्जातपूर्वपक्षं कृतपूर्वपक्षं वादिनम् आज्ञया स्वस्य आदेशेन सत्यवाग्भिः मनोहरैः निरालसैः इङ्गितज्ञैः दृढशस्त्रास्त्रधारिभिः सत्पुरुषैः सन्निरोधयेत् आसेधयेत् ॥ ९४-९५ ॥

वक्तव्येऽर्थे ह्यतिष्ठन्तमुत्क्रामन्तं च तद्वचः।
आसेधयेद् विवादार्थी यावदाह्वानदर्शनम्।
प्रत्यर्थिनं तु शपथैराज्ञया वा नृपस्य च ॥ ९६ ॥

अन्वयः—विवादार्थी वक्तव्ये अर्थे अतिष्ठन्तं तद्वचः उत्क्रामन्तं प्रत्यर्थिनं यावदाह्वानदर्शनं शपथैः वा नृपस्य आज्ञया आसेधयेत् ॥ ९६ ॥

व्याख्या—विवादार्थी = अभ्यर्थी जनः, वक्तव्ये = कथनीये, अर्थे = प्रयोजने, अतिष्ठन्तम् = न स्थितो भवन्तम्, तत् = तस्य, वचः = वचनम्, उत्क्रामन्तम् = अतिक्रामन्तम्, प्रत्यर्थिनम् = प्रतिवादिनम्, यावदाह्वानदर्शनम्—यावदित्यवधारणे, आह्वानदर्शनम् = आकारितावलोकनमात्रेण, शपथैः = प्रतिज्ञाभिः, वा = अथवा, नृपस्य = राज्ञः, आज्ञया = आदेशेन, आसेधयेत् = अवरोधयेत् ॥ ९६ ॥

हिन्दी—वादी यदि अपना वक्तव्य दे रहा हो या उसके वक्तव्य का अतिक्रमण कर बुलाने पर प्रतिवादी आ जाय तो उसे देखते ही 'सौगन्ध' दिलाकर या राजा की आज्ञा से रोक देना चाहिए ॥ ९६ ॥

वक्तव्ये इति। विवादार्थी जनः वक्तव्ये अर्थे अतिष्ठन्तं तद्वचः तस्य वचनम् उत्क्रामन्तम् अतिक्रामन्तं प्रत्यर्थिनं यावदाह्वानदर्शनम् आह्वानानन्तरदर्शनमात्रेणेत्यर्थः, शपथैः वा नृपस्य आज्ञया आसेधयेत् अवरोधयेत् ॥ ९६ ॥

स्थानसेधः कालकृतः प्रवासात् कर्मणस्तथा।
चतुर्विधः स्यादासेधो नासिद्धस्तं विलङ्घयेत् ॥ ९७ ॥

अन्वयः—आसेधः चतुर्विधः स्यात्—स्थानसेधः, कालकृतः, प्रवासात् तथा कर्मणः। आसिद्धः तं न विलङ्घयेत् ॥९७॥

व्याख्या—आसेधः = अवरोधः, चतुर्विधः = चतुःप्रकारकः, स्यात् = भवेत्, तद्यथा—स्थानसेधः = क्षेत्रीयावरोधः, कालकृतः = समयसापेक्ष्यावरोधः, प्रवासात् = प्रवासजन्यावरोधः, तथा कर्मासेधः—कर्मणा = स्वकर्मणा, समुत्पनावरोधः, आसिद्धः = प्रतिरुद्धः। तथा, तम् = आसेधम्, न = नहि, विलङ्घयेत् = अतिक्रमेत् ॥९७॥

हिन्दी—आसेध अर्थात् 'रोक' चार तरह की होती है—स्थानजन्य रोक, समयसापेक्ष रोक, प्रवासजन्य रोक तथा स्वकर्मकृत रोक। प्रतिरुद्ध व्यक्ति इस रोक का अतिक्रमण न करे ॥९७॥

स्थानासेध इति। आसेधः चतुर्विधः—स्थानासेधः, कालकृतः, प्रवासात् प्रवासासेध इत्यर्थः, तथा कर्मणः कर्मासेध इत्यर्थः। आसिद्धः तथा अवरुद्धः जनः तम् आसेधं न विलङ्घयेत् ॥९७॥

यस्त्विन्द्रियनिरोधेन व्याहारोच्छासनादिभिः।
आसेधयदनासेधैः स दण्ड्यो न त्वतिक्रमी ॥९८॥

अन्वयः—यस्तु इन्द्रियनिरोधेन व्याहारेण उच्छासनादिभिः अनासेधैः आसेधयेत् सः दण्ड्यः, न तु अतिक्रमी ॥९८॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, इन्द्रियनिरोधेन—इन्द्रियाणाम् = मलमूत्रादिद्वाराणाम्, निरोधेन = प्रतिरोधेन, व्याहारेण = निष्ठुरवचनेन, उच्छासनादिभिः = कठोरादेशादिभिः, अनासेधैः = अनर्गलावरोधैः, आसेधयेत् = वादिप्रतिवादिनावरोधयेत्, सः = आसेधकः, दण्ड्यः = दण्डनीयः, न तु, अतिक्रमी = आसेधातिक्रमणकारीति ॥९८॥

हिन्दी—यदि कोई मल-मूत्र त्याग कर निरोध से, कठोर वचनों से अथवा अनर्गल प्रशासन जैसे अयोग्य रोक लगाकर वादी या प्रतिवादी को राके तो ऐसे रोक लगाने वाला अधिकारी दण्डनीय होता है, न कि रोक नहीं मानने वाला व्यक्ति ॥९८॥

य इति। यस्तु इन्द्रियनिरोधेन इन्द्रियाणां मलमूत्रादिद्वाराणां निरोधेन व्याहारेण कटुवाक्येन उच्छासनादिभिः उत्कटशासनादिभिश्च अनासेधैः अयोग्यासेधप्रकारैरित्यर्थः, आसेधयेत् अवरोधयेत् वादिनं प्रतिवादिनं वा इति शेषः, सः दण्ड्यः दण्डनीयः, न तु अतिक्रमी एतद्वैपरीत्येन आसेधकारी न तु दण्ड्या इति भावः ॥९८॥

आसेधकाल आसिद्ध आसेधं योऽतिवर्त्तते।
स विनेयोऽन्यथा कुर्वन्नासेद्धा दण्डभाग् भवेत् ॥९९॥

अन्वयः—यः आसेधकाले आसिद्धः आसेधम् अतिवर्त्तते सः विनेयः। आसेद्धा च अन्यथा कुर्वन् दण्डभाक् भवति ॥९९॥

व्याख्या—यः = जनः, आसेधकाले = अवरोधसमये, आसिद्धः = प्रतिरुद्धः, तत्पश्चात्, आसेधम् = अवरोधम्, अतिवर्त्तते = उल्लङ्घयति, सः = असौ, विनेयः = दण्ड्यः। च = पुनः, आसेद्धा = प्रतिरोधकर्त्ताऽपि, अन्यथा = इतरथा, कुर्वन् = विदधन्, दण्डभाक् = दण्डभागी च, भवेत् = स्यात् ॥९९॥

हिन्दी—जो अवरोध के समय अवरुद्ध होकर फिर अवरोध का उल्लङ्घन करता है, वह

दण्डनीय होता है। फिर अनुचित रोक लगाने वाला पदाधिकारी भी दण्डभागी होता है ॥९९ ॥

आसेधकाल इति। यः आसेधकाले अवरोधकाले आसिद्धः अवरुद्धः आसेधम् अतिवर्त्तते लङ्घयतीत्यर्थः, सः विनेयः दण्ड्यः, आसेद्धा च अन्यथा कुर्वन् दण्डभाक् भवेत् ॥९९ ॥

यस्याभियोगं कुरुते तत्त्वेनाशङ्कयाथवा।
तमेवाह्वानयेद्राजा मुद्रया पुरुषेण वा ॥ १०० ॥

अन्वयः—तत्त्वेन अथवा आशङ्कया यस्य अभियोगं कुरुते, राजा मुद्रया वा पुरुषेण तम् एव आह्वानयेत् ॥१०० ॥

व्याख्या—तत्त्वेन = तथ्येन, अथवा = वा, आशङ्कया = सन्देहेन, यस्य = जनस्य अभियोगम् = व्यवहारम्, कुरुते, राजा = नृपः, मुद्रया = स्वनामाङ्कितलेख्येन, वा = अथवा, पुरुषेण = राजपुरुषेण, तम् = अभियोगिनम् एव, आह्वानयेत् = आकारयेत् ॥१०० ॥

हिन्दी—वस्तुतः या संदेहवश जिसके ऊपर मुकदमा दायर किया गया हो, उसे ही राजकीय मुहर लगे पत्र द्वारा या सरकारी सेवक भेजकर न्यायालय में बुलाये ॥१०० ॥

यस्येति। तत्त्वेन याथार्थ्येन अथवा आशङ्कया सन्देहेन यस्य अभियोगं कुरुते, राजा मुद्रया स्वनामाङ्कितलेख्येन वा पुरुषेण राजपुरुषेण तम् एव आह्वानयेत् आह्वयेदित्यर्थः ॥१०० ॥

शङ्कासतां तु संसर्गादनुभूतकृतेस्तथा।
होढाभिदर्शनात् तत्त्वं विजानाति विचक्षणः ॥ १०१ ॥

अन्वयः—असतां संसर्गात् तथा अनुभूतकृतेः होढाभिदर्शनात् विचक्षणः तत्त्वं विजानाति ॥१०१ ॥

व्याख्या—असताम् = दुर्जनानाम्, संसर्गात् = सम्पर्कात्, तथा अनुभूतकृतेः—अनुभूता = साक्षाज्ज्ञाता, या कृतिः = क्रिया, तथा शङ्का = सन्देहः, तथा होढाभिदर्शनात्—होढा = अपहृतद्रव्यम्, लोप्त्रम्, अभिदर्शनात् = तस्यावलोकनात्, विचक्षणः = विद्वज्जनः, तत्त्वम् = तथ्यम्, विजानाति = विशेषेणावगच्छतीति ॥१०१ ॥

हिन्दी—दुर्जनों के साथ सम्पर्क होने या अपराधी के किसी काम को देखकर अनुमान करके अभियुक्त पर अपराध की आशंका होती है और लुटे गये धन को देखकर बुद्धिमान् लोग अपराध की वास्तविकता को जान लेते हैं ॥१०१ ॥

शङ्केति। असतां दुर्जनानां संसर्गात् तथा अनुभूतकृतेः अनुभूता अनुमिता या कृतिः क्रिया तथा अनुमापककार्य्यादित्यर्थः, शङ्का तथा होढाभिदर्शनात् होढा लोप्त्रम् अपहृतद्रव्यमित्यर्थः, तस्य अभिदर्शनात् विचक्षणः विज्ञो जनः तत्त्वं निश्चयं विजानाति ॥१०१ ॥

अकल्यबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान्।
कार्य्यातिपातिव्यसनिनृपकार्य्योत्सवाकुलान्।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्त्तभृत्यान् नाह्वानयेन्नृपः ॥ १०२ ॥

अन्वयः—नृपः अकल्यबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान् कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान् मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्त्तभृत्यान् न आह्वानयेत् ॥१०२ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अकल्यान् = रोगग्रस्तान्, बालान् = बालकान्, स्थविरान् = वृद्धान्,

विषमस्थान् = विपन्नान्, क्रियाकुलान्—अनेकाभिरनतिक्रमणीयाभिः क्रियाभिः, आकुलान् = व्यस्तान्, कार्यातिपातिनः = अभियोगकालेऽनुपस्थितान्, व्यसनिनः = सुरापानादिव्यसनासक्तान्, नृपकार्यैः = राजकृत्यैः, वा, उत्सवैः = अन्यसमारोहैः, आकुलान् = व्यस्तान्, मत्तान् = प्रमत्तान्, उन्मत्तान् = क्षिप्तान्, प्रमत्तान् = अनवधायिनः, आर्त्तान् = दुःखीजनान्, भृत्यान् = सेवकान्, न = नहि, आह्वानयेत् = आह्वयेत् ॥ १०२ ॥

हिन्दी—रोगी, बालक, बूढे, विषम स्थिति में फँसे, अनेक कार्यों में व्यस्त, मुकदमा दायर होने के समय गैरहाजिर, व्यसनी, राजा के या किसी अन्य महोत्सव में संलग्न, शराबी, पागल, असावधान तथा दुःखी—ऐसे सेवकों को अपराधी को बुलाने के लिए राजा कभी भी न भेजे ॥ १०२ ॥

अकल्येति। नृपः अकल्यान् रोगिणः बालान् शिशून् स्थविरान् वृद्धान् विषमस्थान् विपन्नान् क्रियाकुलान् बहुभिः क्रियाभिरनतिक्रमणीयाभिः आकुलान् व्यस्तान् कार्य्यातिपातिनः अभियोगकाले अनुपस्थितान् व्यसनिनः कामादिव्यसनासक्तान् नृपकार्य्यैः वा उत्सवैः आकुलान् मत्तान् सुरापानमत्तान् उन्मत्तान् क्षिप्तान् प्रमत्तान् अनवधायिनः आर्त्तान् तथा भृत्यान् न आह्वानयेत् ॥ १०२ ॥

न हीनपक्षां युवतीं कुले जातां प्रसूतिकाम्।
सर्ववर्णोत्तमां कन्यां नाज्ञातप्रभुकाः स्त्रियः ॥ १०३ ॥

अन्वयः—हीनपक्षां युवतीं कुले जातां प्रसूतिकां न सर्ववर्णोत्तमां कन्यां न अज्ञातप्रभुकाः स्त्रियः नृपः न आह्वानयेत् ॥ १०३ ॥

व्याख्या—हीनपक्षाम् = असहायाम्, युवतीम् = तरुणीम्, न = नहि, कुले = सद्वंशे, जाताम् = समुत्पन्नां कुलीनाम्, प्रसूतिकाम् = प्रसविनीम्, न सर्ववर्णोत्तमाम्—सर्वेषाम् = सकलानाम्, वर्णानाम् = जातीनाम्, उत्तमाम् = श्रेष्ठाम्, ब्राह्मणीम्, कन्याम् = बालिकाम्, न, अज्ञातप्रभुकाः—अज्ञातः = अविदितः, प्रभुः = पतिर्यासां तादृशीः, स्त्रियः = नार्यः, नृपः न आह्वानयेदिति ॥ १०३ ॥

हिन्दी—अनाथ युवती, कुलीन, प्रसूता, ब्राह्मण की कन्या या जिनके पतिओं का पता न हों—ऐसी स्त्रियों को राजा न्यायालय में न बुलाये ॥ १०३ ॥

नेति। हीनपक्षाम् अनाथां युवतीं, कुले जातां कुलीनां कन्यां, प्रसूतिकां प्रसविनीं सर्ववर्णोत्तमां सर्वजातिश्रेष्ठां कन्यां न, तथा अज्ञातः प्रभुः पतिर्यासां तादृशीः स्त्रियश्च न आह्वानयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १०३ ॥

निर्वेष्टुकामो रोगार्त्तो यियक्षुर्व्यसने स्थितः।
अभियुक्तस्तथान्येन राजकार्य्योद्यतस्तथा ॥ १०४ ॥
गवां प्रचारे गोपालाः शस्यावापे कृषीवलाः।
शिल्पिनश्चापि तत्कालमायुधीयाश्च विग्रहे ॥ १०५ ॥
अप्राप्तव्यवहारश्च दूतो दानोन्मुखो व्रती।
विषमस्थाश्च नासेध्या न चैतानाह्वयेन्नृपः ॥ १०६ ॥

अन्वयः—निर्वेष्टुकामः रोगार्त्तः यियक्षुः व्यसने स्थितः तथा अन्येन अभियुक्तः राजकार्योद्यतः गवां प्रचारे गोपालाः शस्यावापे कृषीवलाः तत्काले शिल्पिनः विग्रहे आयुधीयाः अप्राप्तव्यवहारः दूतः दानोन्मुखः व्रती तथा विषमस्थाः न आसेध्याः। नृपः एतान् न आह्वयेत् ॥ १०४-१०६ ॥

व्याख्या—निर्वेष्टुकामः = परिणयेच्छुः, रोगार्त्तः = व्याधिपीडितः, यियक्षुः = यज्ञकर्त्तुमिच्छुकः, व्यसने = विषये, स्थितः = आसक्तः, तथा अन्येन = भिन्नजनेन, अभियुक्तः = प्रत्यर्थी, राजकार्योद्यतः = नृपकर्मकर्त्तुमुद्यतः, गवाम् = धेनूनाम्, प्रचारे = चारणसमये, गोपालाः = गोचारकाः, शस्यावापे = धान्यवपनकर्मसमये, कृषीवलाः = कृषकाः, तत्काले = शिल्पकर्मकाले, शिल्पिनः, विग्रहे = युद्धे, आयुधीयाः = सैनिकाः, अप्राप्तव्यवहारः = ऊनषोडशवर्षः, दूतः = दौत्यकर्मणि नियुक्तः, दानोन्मुखः = उत्सर्जने समुद्यतः, व्रती = ब्रह्मचारी, तथा, विषमस्थाः = विपद्ग्रस्ताः जनाः, न = नहि, आसेध्याः = अवरोधनीयाः, नृपः = राजा, एतान् = पूर्वोक्तान् जनान्, न = नहि, आसेध्याः = अवरोधनीयाः ॥ १०४-१०६ ॥

हिन्दी—शादी के लिए तैयार, रोग से पीड़ित, यज्ञ करने के लिए उद्यत, विपद्ग्रस्त, दूसरों के द्वारा मुकदमे में फँसाया गया व्यक्ति, राजा के काम में लगे सेवक, गायों को चराते हुए अहीर, खेत में बीज बोते समय किसान, काम करते समय कारीगर, युद्ध में लड़ते समय हथियारबन्द सिपाही, कमसिन दूत, दान करने के लिए तैयार आदमी, ब्रह्मचारी या तापस तथा विपत्ति में फँसे लोग मुकदमे की तारीख के समय पेश करने योग्य नहीं होते हैं। अतः राजा इन्हें न बुलाये ॥ १०४-१०६ ॥

निर्वेष्टुकाम इत्यादि। निर्वेष्टुकामः विवाहार्थी, रोगार्त्तः यियक्षुः यागार्थी, व्यसने मृगयादौ स्थितः आसक्तः, अन्येन अभियुक्तः, राजकार्य्योद्यतः, गवां प्रचारे गोचारणकाले गोपालाः, शस्यावापे शस्यवपनकर्मकाले कृषीवलाः कर्षकाः, तत्काले शिल्पकर्मकाले शिल्पिनः, विग्रहे सङ्ग्रामकाले आयुधीयाः सैनिकपुरुषाः, अप्राप्तव्यवहारः ऊनषोडशवर्षः, दूतः दौत्यकार्य्योद्यतः, दानोन्मुखः दानकर्मणि उद्युक्तः, व्रती, वैधकर्मणि नियुक्तः तथा विषमस्थाः विपन्नाश्च जनाः न आसेध्याः न अवरोधनीयाः। नृपः एतान् निर्वेष्टुकामादींश्च न आह्वानयेत्। अत्र च आसेधांशे विधिराह्वानांशे अनुवादो विशेषबोधार्थ इति सुधीभिर्विभाव्यम् ॥ १०४-१०६ ॥

नदीसन्तारकान्तारदुर्देशोपप्लवादिषु ।
आसिद्धस्तं परासेधमुत्क्रामन् नापराध्नुयात् ॥ १०७ ॥

अन्वयः—नदीसन्तरणे कान्तारे दुर्देशे उपप्लवादिषु आसिद्धः तं परासेधम् उत्क्रामन् न अपराध्नुयात् ॥ १०७ ॥

व्याख्या—नदीसन्तरणे = तटीनीपारकरणे, कान्तारे = गहनवनमार्गे, दुर्देशे = दुर्गमक्षेत्रे, उपप्लवादिषु = राजोपद्रवादिषु, आसिद्धः = अवरुद्धो जनः, परासेधम्—परस्य = अन्यकृतस्य, आसेधम् = अवरोधम्, उत्क्रामन् = अतिक्रामन्, न = नहि, अपराध्नुयात् = अपराधी भवेदिति ॥ १०७ ॥

हिन्दी—नदी एवं दुर्गम जंगल पार करने की कठिनाई से किसी दुर्गम देश या उपद्रव में फँस जाने से यदि कोई मुकदमे की तारीख में उपस्थित न हो सके, तो अन्यकृत अवरोध मानकर उसे अपराधी नहीं मानना चाहिए ॥ १०७ ॥

नदीति। नदीसन्तरणे, कान्तारे दुर्गमवनमार्गे, दुर्देशे उपप्लवादिषु राजोपद्रवादिषु आसिद्धः जनः तं परासेधं परस्य आसेधं परकर्त्तृकमवरोधम् उत्क्रामन् अतिक्रामन् न अपराध्नुयात् न अपराधी भवेदित्यर्थः ॥ १०७ ॥

कालं देशं च विज्ञाय कार्य्याणां च बलाबलम्।
अकल्यादीनपि शनैर्यानैराह्वानयेन्नृपः ॥ १०८ ॥

अन्वयः—नृपः कालं देशं कार्याणाञ्च बलाबलं विज्ञाय अकल्यादीन् अपि यानैः शनैः आह्वानयेत् ॥१०८ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, कालम् = समयम्, देशम् = स्थानविशेषम्, कार्याणाञ्च = अनुष्ठेयकृत्याणाञ्च, बलाबलम् = गौरवलाघवम्, च, विज्ञाय = ज्ञात्वा, अकल्यादीनपि = व्याधिग्रस्तजनप्रभृतीनपि, यानैः = वाहनैः, शनैः = मन्दं मन्दम्, आह्वानयेत् = आकारयेत् ॥ १०८ ॥

हिन्दी—समय, स्थान और काम की गुरुता एवं लघुता का विचार कर असमर्थ व्यक्ति को राजा धीरे-धीरे सवारी से बुलवाये ॥ १०८ ॥

कालमिति। नृपः कालं देशं कार्य्याणां बलाबलं गौरवलाघवञ्च विज्ञाय अकल्यादीन् रोगिप्रभृतीनपि यानैः शिविकादिभिः शनैः मन्दं मन्दम् आह्वानयेत् ॥ १०८ ॥

ज्ञात्वाभियोगं येऽपि स्युर्वने प्रव्रजितादयः।
तानप्याह्वानयेद्राजा गुरुकार्य्येष्वकोपयन् ॥ १०९ ॥

अन्वयः—ये अभियोगं ज्ञात्वा प्रव्रजितादयः स्युः, राजा गुरुकार्येषु तानपि अकोपयन् आह्वानयेत् ॥ १०९ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, अभियोगम् = विवादम्, ज्ञात्वा = विज्ञाय, वने = अरण्ये, प्रव्रजितादयः = सन्यासिप्रभृतयः, आदिपदेनात्र वानप्रस्थब्रह्मचारिणोर्ग्रहणम्, स्युः = भवेयुरिति, राजा गुरुकार्येषु तानपि, अकोपयन् = अक्रोधयन्, सन्, आह्वानयेत् = आकारयेदिति ॥ १०९ ॥

हिन्दी—और जो लोग संन्यास ग्रहण कर अरण्यवासी बने हैं, उन पर भी यदि अभियोग लगे तो उन्हें भी सम्मानपूर्वक इस तरह बुलाना चाहिए कि उन्हें क्रोध न हों ॥ १०९ ॥

ज्ञात्वेति। ये जनाः अभियोगं ज्ञात्वा वने प्रव्रजितादयः सन्यासिधर्मावलम्बिप्रभृतयः आदिपदेन वानप्रस्थब्रह्मचारिणोर्ग्रहणम्, स्युः भवेयुः, राजा गुरुकार्य्येषु तान् अपि अकोपयन् सन् आह्वानयेत् ॥ १०९ ॥

व्यवहारानभिज्ञेन ह्यन्यकार्य्याकुलेन च।
प्रत्यर्थिनार्थिना तज्ज्ञः कार्य्यः प्रतिनिधिस्तदा ॥ ११० ॥

अन्वयः—प्रत्यर्थिना अर्थिना च व्यवहारानभिज्ञेन वा अन्यकार्याकुलेन तदा तज्ज्ञः प्रतिनिधिः कार्यः ॥ ११० ॥

व्याख्या—प्रत्यर्थिना = प्रतिवादिना, च = पुनः, अर्थिना = वादिना, व्यवहारानभिज्ञेन—व्यवहारे = अभियोगव्यापारे, अनभिज्ञेन = अनुभवशून्येन, वा = अथवा, अन्यकार्याकुलेन = कार्यान्तरव्यस्तेन, सता तदा, तज्ज्ञः = कार्यज्ञः, प्रतिनिधिः = प्रतिपुरुषः, कार्यः = विधेयः ॥ ११० ॥

हिन्दी—मुकदमा लड़ने की जानकारी नहीं रहने के कारण या किसी अन्य कार्य में व्यस्तता के कारण यदि कोई चाहे तो अपना प्रतिनिधि भेज सकता है ॥ ११० ॥

व्यवहारानभिज्ञेनेति। प्रत्यर्थिना प्रतिवादिना अर्थिना वादिना च व्यवहारानभिज्ञेन व्यवहारे अभियोगव्यापारे अनभिज्ञेन अविचक्षणेन वा अन्यकार्य्याकुलेन कार्य्यान्तरासक्तेन सता तदा तज्ज्ञः व्यवहारज्ञः प्रतिनिधिः कार्य्यः ॥ ११० ॥

अप्रगल्भजडोन्मत्तवृद्धस्त्रीबालरोगिणम् ।
पूर्वोत्तरं वदेद् बन्धुर्नियुक्तो वाथवा नरः ॥ १११ ॥

अन्वयः—बन्धुः अथवा नियुक्तः नरः अप्रगल्भजडोन्मत्तवृद्धस्त्रीबालरोगिणं पूर्वोत्तरं वदेत् ॥ १११ ॥

व्याख्या—बन्धुः= सजातीयः, अथवा = वा, नियुक्तः= नियोजितः, नरः= प्रतिनिधिपुरुषः, अप्रगल्भानाम् = अकुशलानाम्, जडानाम् = मन्दबुद्धीनाम्, उन्मत्तानाम् = विक्षिप्तानाम्, वृद्धानाम् = स्थविराणाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, बालानाम् = शिशूनाम्, रोगिणाम् = व्याधिग्रस्तानाम्, पूर्वोत्तरम् = अभियोगं प्रत्यभियोगञ्च, वदेत् = कथयेत् ॥ १११ ॥

हिन्दी—बेवकूफ, मन्दबुद्धि, पागल, बूढे, औरत, बच्चे और रोगी—उनका पूर्वपक्ष हो या उत्तर-पक्ष, इनके बन्धु या इनके द्वारा प्रतिनियुक्त प्रतिनिधि उपस्थित करे ॥ १११ ॥

अप्रगल्भेति। बन्धुः पितृस्वस्रीयादिः अथवा नियुक्तः प्रतिनिधित्वेनेति भावः, नरः अप्रगल्भानाम् अचतुराणां जडानाम् उन्मत्तानां वृद्धानां स्त्रीणां बालानां रोगिणाञ्च पूर्वोत्तरम् अभियोगं प्रत्यभियोगञ्च वदेत् ॥ १११ ॥

पिता माता सुहृद् बन्धुर्भ्राता सम्बन्धिनोऽपि च ।
यदि कुर्य्युरुपस्थानं वादं तत्र प्रवर्त्तयेत् ॥ ११२ ॥

अन्वयः—पिता माता सुहृद् बन्धुः भ्राता च सम्बन्धिनोऽपि यदि उपस्थानं कुर्युः, तदा तत्र वादं प्रवर्त्तयेत् ॥ ११२ ॥

व्याख्या—पिता = जनकः, माता = जननी, सुहृद् = मित्रम्, बन्धुः= ज्ञातयः, भ्राता = सोदरः, च = पुनः, सम्बन्धिनः= सम्बन्धविशिष्टाः, यदि = चेत्, उपस्थानम् = अभियोगार्थमुपागमनम्, कुर्युः= विधेयुः, तदा= तर्हि, तत्र = तस्मिन् न्यायालये, वादम् = अभियोगम्, प्रवर्त्तयेत् = सञ्चालयेत् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—मुद्दई के माँ, बाप, भाई, मित्र या सम्बन्धी दावे को सही ढंग से कह सके तों मुकदमे की काररवाई शुरू कर देनी चाहिए ॥ ११२ ॥

पितेति। पिता, माता, सुहृत्, बन्धुः, भ्राता अथवा सम्बन्धिनः यदि उपस्थानम् अभियोगादेरुपस्थितिं कुर्य्युः तदा तत्र वादं विचारं प्रवर्त्तयेत् चालयेत् ॥ ११२ ॥

यः कश्चित् कारयेत् किञ्चिन्नियोगाद् येन केनचित् ।
तत् तेनैव कृतं ज्ञेयमनिवार्य्यं हि तत् स्मृतम् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—येन केनचित् नियोगात् यः कश्चित् किञ्चित् कार्यं कारयेत्, तत् तेनैव कृतं ज्ञेयम् । तत् अनिवार्यं स्मृतम् ॥ ११३ ॥

व्याख्या—येन केनचित् = येन केनाऽपि जनेन, नियोगात् = प्रतिनिधित्वात्, यः कश्चित् = यः कोऽपि जनः, किञ्चित् = किमपि, कार्यम् = व्यवहारम्, कारयेत् = निष्पादनं कारयेत्, तत् = कर्म, तेनैव = प्रेरकेनैव, कृतम् = सम्पादितम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्। तत् = कृत्यम्, अनिवार्यम् = अपरिहार्यम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—यदि कोई किसी को अपना प्रतिनिधि बनाकर जो कुछ उससे करवाता है तो वह काम उसी का किया हुआ समझना चाहिए। इसे बदला नहीं जा सकता है ॥ ११३ ॥

य इति। येन केनचित् जनेन नियोगात् यः कश्चित् जनः किञ्चित् कार्य्यं कारयेत् तत् तेनैव नियोजकेनेत्यर्थः, कृतं ज्ञेयम्। तत् नियुक्तकृतम् अनिवार्य्यं ग्राह्यमित्यर्थः स्मृतम् ॥ ११३ ॥

नियोगितस्यापि भृतिं विवादात् षोडशांशिकीम्।
विंशत्यंशां तदर्द्धां वा तदर्द्धां च तदर्द्धिकाम् ॥ ११४ ॥

अन्वयः—नियोगितस्य भृतिं विवादात् षोडशांशिकीं विशंत्यंशां तदर्द्धां वा तदर्द्धां च तदर्द्धिकां दद्यात् ॥ ११४ ॥

व्याख्या—नियोगितस्य = व्यवहारदर्शकपदेन नियुक्तस्य जनस्य, भृतिम् = पारिश्रमिकम्, विवादात् = विवादीयधनात्, षोडशांशिकीम् = षोडशांशपरिमिताम्, विंशत्यंशाम् = विंशतिभागमिताम्, तदर्द्धाम् = दशभागमिताम्, तदर्द्धाम् = पञ्चमभागपरिमिताम्, तदर्द्धाम् = सार्द्धद्वयभागमिताम्, वा = अथवा, कार्यस्य बलाबलत्वं विचार्येत्यर्थे वैकल्पम् ॥ ११४ ॥

हिन्दी—मुकदमे में बहाल किये गये वकील की फीस मुकदमे की हैसियत से सोलहवें हिस्से के बराबर या बीसवें, दशवें पाँचवें या ढाई हिस्से के बराबर देना चाहिए ॥ ११४ ॥

नियोगितस्येति। नियोगितस्य नियुक्तस्य भृतिं वेतनं विवादात् विवादीयधनात् षोडशांशिकीं षोडशभागमितां विंशत्यंशां विंशभागैकभागमितां तदर्द्धां दशमभागपरिमितां तदर्द्धां पञ्चमभागमितां तदर्द्धिकां सार्द्धद्वितीयभागसम्मतां वा कार्य्यगौरवलाघवापेक्षो विकल्प इति बोध्यम्। दद्यादिति अध्याहृतेन क्रियापदेन सम्बन्धः ॥ ११४ ॥

यथा द्रव्याधिकं कार्य्यं हीना हीना भृतिस्तथा।
यदि बहुनियोगी स्यादन्यथा तस्य पोषणम् ॥ ११५ ॥

अन्वयः—यदि बहुनियोगी स्यात् तदा कार्यं यथा द्रव्याधिकं तथा हीना हीना भृतिः। अन्यथा तस्य पोषणं कार्यम् ॥ ११५ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, बहुनियोगी = अनेकजननियुक्तकारी, स्यात् = भवेत्, तदा कार्यम् = कृत्यम्, यथा = येन रूपेण, द्रव्याधिक्यम् = अधिकधनसमन्वितम्, तदा हीना = अल्पा, हीना = तदपि स्वल्पा, भृतिः = पारिश्रमिकीम्, कार्या। अन्यथा = इतरथा, तस्य = नियुक्तस्य, पोषणम् = प्रतिपालनम्, कार्यम् ॥ ११५ ॥

हिन्दी—यदि नियोगियों की संख्या बहुत अधिक हो तो फीस कम-कम कर देना चाहिए। अन्यथा वकील का पालन-पोषण करना चाहिए ॥ ११५ ॥

यथेति। यदि बहुनियोगी बहुजननियुक्तकारी स्यात् तदा कार्य्यं यथा द्रव्याधिकम् अधिकद्रव्ययुक्तं, तथा हीना हीना भृतिः कार्य्या इति शेषः, अन्यथा अधिकधनाभियोगे बहुभ्यः

पूर्वोक्तांशरूपभृतिदाने बहुधनक्षयसम्भवादिति भावः। अन्यथा वेतनदानाशक्तौ तस्य नियुक्तस्य पोषणं प्रतिपालनं कार्य्यमिति शेषः॥ ११५ ॥

धर्मज्ञो व्यवहारज्ञो नियोक्तव्योऽन्यथा न हि।
अन्यथा भृतिगृह्णन्तं दण्डयेच्च नियोगिनम्॥ ११६ ॥

अन्वयः—व्यवहारज्ञः धर्मज्ञः नियोक्तव्यः, अन्यथा न हि। अन्यथा भृतिगृह्णन्तं नियोगिनं दण्डयेत्॥ ११६ ॥

व्याख्या—व्यवहारज्ञः=अभियोगादिकर्मकुशलो जनः, धर्मज्ञः=धर्मविद्, नियोक्तव्यः=सम्भाषकपदेन नियोजनीयः, अन्यथा=पूर्वोक्तगुणवर्जितो जनः प्रतिनिधिपदेन, न हि=नास्त्येव नियोक्तव्य इति। किञ्च अन्यथा=असङ्गतरूपेण, भृतिगृह्णन्तम्=पारिश्रमिकस्वीकुर्वन्तं सम्भाषकम्, नियोगिनम्=नियुक्तं जनम्, दण्डयेत्=दण्डं दद्यात्॥ ११६ ॥

हिन्दी—विधि-विशेषज्ञ धार्मिक व्यक्ति को वकील के पद पर नियुक्त करना चाहिए। वकील यदि अधिक फीस ले तो राजा को उसे दण्ड देना चाहिए॥ ११६ ॥

धर्मज्ञ इति। व्यवहारज्ञः अभियोगादिव्यापारकुशलः जनः धर्मज्ञः धार्मिकश्चेत् नियोक्तव्यः प्रतिनिधित्वेनेति भावः। अन्यथा अधार्मिकत्वे इत्यर्थः, न हि नैव नियोक्तव्य इत्यर्थः। किञ्च अन्यथा अयुक्तरूपेणेत्यर्थः, भृतिगृह्णन्तं वेतनम् आददानम् अत्र समासस्त्वार्षः। नियोगिनं नियुक्तं प्रतिनिधिमित्यर्थः, दण्डयेच्च राजेति शेषः॥ ११६ ॥

कार्य्यो नित्यो नियोगी न नृपेण स्वमनीषया।
लोभेन त्वन्यथा कुर्वन् नियोगी दण्डमर्हति॥ ११७ ॥

अन्वयः—नृपेण स्वमनीषया नित्यं नियोगी न कार्यः। नियोगी लोभेन अन्यथा कुर्वन् दण्डम् अर्हति॥ ११७ ॥

व्याख्या—नृपेण=राज्ञा, स्वमनीषया—स्वस्य=आत्मनः, मनीषा=बुद्धिः, तया=आत्मबुद्ध्या, नित्यम्=सततम्, नियोगी=नियुक्तम्, न=नहि, कार्यः=विधेयः। नियोगी=नियुक्तः, लोभेन=लिप्सया, अन्यथा कुर्वन्=नियुक्तकार्यमतिक्रामन्, दण्डम्=दमनम्, अर्हति=योग्यो भवति॥ ११७ ॥

हिन्दी—राजा अपनी ही बुद्धि से विचार कर सदैव मुकदमे में प्रतिनिधि नियुक्त न करे। क्योंकि लोभवश प्रतिनिधि यदि कुछ गलत करे तो वह दण्डनीय होता है॥ ११७ ॥

कार्य्य इति। नृपेण स्वमनीषया निजबुद्ध्या नित्यं सततं नियोगी नियुक्तः न कार्य्यः विवादिनैव कार्य्य इत्यर्थः। नियोगी लोभेन अन्यथा कुर्वन् नियुक्तकार्य्यमतिक्रामन् दण्डमर्हति दण्डनीयो भवतीत्यर्थः॥ ११७ ॥

यो न भ्राता न च पिता न पुत्रो न नियोगकृत्।
परार्थवादी दण्ड्यः स्याद् व्यवहारेषु विब्रुवन्॥ ११८ ॥

अन्वयः—यः भ्राता न, पिता न, पुत्रः न, नियोगकृत् च न; सः चेत् परार्थवादी व्यवहारेषु विब्रुवन् दण्ड्यः स्यात्॥ ११८ ॥

व्याख्या—यः = जनः, भ्राता = सोदरः, न = नहि, भवति, पिता = जनकः, न = नहि, पुत्रः = जातः, न = नहि, नियोगकृत् = नियोगी, अपि न, विवादिनेति, सः = असौ, यदि, परार्थवादी—परार्थे = अन्यार्थे, वादी = वक्ता सन्, व्यवहारे = अभियोगे, विब्रुवन् = विरुद्धं वदन्, विपरीतवक्ता भवति, तदा सः दण्ड्यः = दण्डनीयः, स्यात् = भवेत् ॥ ११८ ॥

हिन्दी—जो भाई, बाप, बेटा या वकील से भिन्न व्यक्ति होकर दूसरों के लिए कुछ कहता है या मुकदमे में विपरीत बातें करता है, वह दण्डनीय होता है ॥ ११८ ॥

य इति। यः भ्राता न, पिता न, पुत्रः न, नियोगकृत् नियुक्तश्च न विवादिनां इति शेषः, सः चेत् परार्थवादी परार्थे अन्यार्थे वादी सन् व्यवहारेषु विब्रुवन् विरुद्धं वदन् विरुद्धवादी भवतीत्यर्थः, तदा दण्ड्यः स्यात् ॥ ११८ ॥

तदधीनकुटुम्बिन्यः स्वैरिण्यो गणिकाश्च याः।
निष्कुला याश्च पतितास्तासामाह्वानमिष्यते ॥ ११९ ॥

अन्वयः—याः तदधीनकुटुम्बिन्यः स्वैरिण्यः गणिकाः निष्कुलाः तथा याश्च पतिताः तासाम् आह्वानम् इष्यते ॥ ११९ ॥

व्याख्या—याः = नार्यः, तदधीनकुटुम्बिन्यः—तत् = तस्याः, अधीनाः = आश्रिताः, कुटुम्बिनः = परिजनाः, परिजनपरिपालिन्याः याः नार्यः इति भावः, स्वैरिण्यः = स्वेच्छाचारिण्यः, गणिकाः = वेश्याः, निष्कुलाः = कुलहीनाः, तथा याश्च = स्त्रियः, पतिताः = समाजात् बहिष्कृताः अधमाः, नार्यः तासाम् = एवंविधानां नारीणाम्, आह्वानम् = न्यायालये आकारणम्, इष्यते = वाञ्छति ॥ ११९ ॥

हिन्दी—जो स्त्रियाँ स्वयं कमाकर परिवार का पालन करती हैं, स्वेच्छाचारिणी या वेश्यावृत्ति करने वाली हैं या समाज से बहिष्कृता या कुलहीन हैं, उन्हें न्यायालय में उपस्थित होने का राजा आदेश दे सकता है ॥ ११९ ॥

तदधीनेति। याः स्त्रियः तदधीनकुटुम्बिन्यः स्वाधीनपरिजनाः, स्वैरिण्यः स्वेच्छावर्त्तिन्यः गणिकाः वेश्या निष्कुलाः अकुलीनाश्च तथा याश्च पतिताः ब्रह्महत्यादिपञ्चविधान्यतमपापकारिण्यः, तासाम् आह्वानं विचारालये इति भावः इष्यते ॥ ११९ ॥

प्रवर्त्तयित्वा वादन्तु वादिनौ तु मृतौ यदि।
तत्पुत्रो विवदेत् तज्ज्ञो ह्यन्यथा तु निवर्त्तयेत् ॥ १२० ॥

अन्वयः—वादं प्रवर्त्तयित्वा वादिनौ यदि मृतौ तदा तज्ज्ञः तत्पुत्रः विवदेत्, अन्यथा तु निवर्त्तयेत् ॥ १२० ॥

व्याख्या—वादम् = अभियोगम्, प्रवर्त्तयित्वा = व्यवहारसञ्चालनं कृत्वा, वादिनौ = वादिप्रतिवादिनौ, यदि = चेत्, मृतौ = उपरतौ, तदा, तज्ज्ञः = व्यवहारज्ञः, तत् = तस्य, पुत्रः = सुतः, विवदेत् = अभियोगं सञ्चालयेत्, अन्यथा = इतरथा, निवर्त्तयेत् = विरमेत् ॥ १२० ॥

हिन्दी—मुकदमा दायर कर यदि वादी या प्रतिवादी मर जाय तो उसका बेटा मुकदमा लड़ सकता है। यदि वह मुकदमा लड़ना न चाहे तो राजा उस मुकदमे को खारिज कर सकता है ॥ १२० ॥

प्रवर्त्तयित्वेति। वादं विवादं प्रवर्त्तयित्वा प्रक्रम्य वादिनौ अर्थिप्रत्यर्थिनौ यदि मृतौ भवतः, तदा तज्ज्ञः विवादज्ञः तत्पुत्रः तस्य वादिनः प्रतिवादिनश्च पुत्रः विवदेत् वादं चालयेत् अन्यथा

अनभिज्ञत्वे तु निवर्त्तयेत् विरमेदित्यर्थः ॥ १२० ॥

मनुष्यमारणे स्तेये परदाराभिमर्शने ।
अभक्ष्यभक्षणे चैव कन्याहरणदूषणे ॥ १२१ ॥
पारुष्ये कूटकरणे नृपद्रोहे च साहसे ।
प्रतिनिधिर्न दातव्यः कर्त्ता तु विवदेत् स्वयम् ॥ १२२ ॥

अन्वयः—मनुष्यमारणे स्तेये परदाराभिमर्शने अभक्ष्यभक्षणे कन्याहरणदूषणे पारुष्ये कूटकरणे नृपद्रोहे तथा साहसे प्रतिनिधिः न दातव्यः, कर्त्ता स्वयं विवदेत् ॥ १२१-१२२ ॥

व्याख्या—मनुष्यमारणे = नरहत्यायाम्, स्तेये = चौर्ये, परदाराभिमर्शने = अन्यस्त्रीबलात्कारे, अभक्ष्यभक्षणे = निषिद्धभोजनकरणे, कन्याहरणदूषणे—कन्यायाः = अनूढायाः, हरणे = अपहरणे, वा, पारुष्ये = कठोरवचने दण्डे च, कूटकरणे = जालानुष्ठाने, नृपद्रोहे = राजविद्रोहकरणे, तथा साहसे = दुर्वृत्तकरणे, विवादविषये प्रतिनिधिः = प्रतिपुरुषः, न = नहि, दातव्यः = देयः, प्रत्युत कर्त्ता = निष्पादकः, स्वयम् = आत्मनैव, विवदेत् = व्यवहारं कुर्यात् ॥ १२१-१२२ ॥

हिन्दी—नरहत्या, चोरी, बलात्कार, अभक्ष्यभक्षण, कन्यापहरण, कठोर वचन का प्रयोग, जालसाजी, राजद्रोह तथा डकैती जैसे मुकदमे में प्रतिनिधि नहीं देना चाहिए; प्रत्युत कर्त्ता स्वयं कचहरी में उपस्थित होकर मुकदमा लड़े ॥ १२१-१२२ ॥

मनुष्यमारणे इति । पारुष्ये इति । मनुष्यमारणे नरहत्यायां स्तेये चौर्य्ये, परदाराभिमर्षणे परस्त्रीबलात्कारे, अभक्ष्यभक्षणे, कन्याहरणदूषणे कन्यायाः अनूढायाः हरणे वा, पारुष्ये वाक्पारुप्यदण्डपारुष्योभयरूपे, कूटकरणे जालानुष्ठाने नृपद्रोहे राजानिष्टकरणे तथा साहसे दस्युवृत्त्यादौ विवादविषये प्रतिनिधिः न दातव्यः कर्त्ता तु कर्त्ता एव स्वयं विवदेत् ॥ १२१-१२२ ॥

आहूतो यत्र नागच्छेद् दर्पाद् बन्धुबलान्वितः ।
अभियोगानुरूपेण तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ १२३ ॥

अन्वयः—यत्र आहूतः बन्धुबलान्वितः दर्पात् न आगच्छेत्, तस्य अभियोगानुरूपेण दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ १२३ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विवादे, आहूतः = आकारितः सन्नपि, बन्धुबलान्वितः = बान्धवशक्तिसम्पन्नो जनः, दर्पात् = गर्वात्, न = नहि, आगच्छेत् = नृपाहूतोऽपि न्यायालये न समागच्छेत्, तस्य = अनागतस्यापराधिनः, अभियोगानुरूपेण—अभियोगस्य = विवादस्य, अनुरूपेण = अनुसारेण, तस्य दण्डम्, प्रकल्पयेत् = प्रयच्छेत् ॥ १२३ ॥

हिन्दी—किन्तु उक्त मुकदमे में अपराधी अपने बन्धुबल के घमण्ड से राजा के बुलाने पर भी न्यायालय में न उपस्थित न हो, तो उसके अपराध के मुताबिक राजा उसे दण्ड दे अर्थात् एकतरफा डिग्री दे ॥ १२३ ॥

आहूत इति । यत्र विवादे विषये आहूतः राज्ञेति शेषः, बन्धुबलान्वितः बन्धुबलसहायवान् जनः दर्पात् अहङ्कारात् न आगच्छेत् विचारालयमिति शेषः, तस्य अनागतस्य जनस्य अभियोगानुसारेण अभियोगस्य गौरवलाघवापेक्षया इत्यर्थः, दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ १२३ ॥

दूतेनाह्वानितं प्राप्ताधर्षकं प्रतिवादिनम्।
दृष्ट्वा राज्ञा तयोश्चिन्त्यो यथार्हप्रतिभूस्त्वतः ॥ १२४ ॥

अन्वयः—दूतेन आह्वानितं प्राप्ताधर्षकः प्रतिवादिनं दृष्ट्वा राज्ञा तयोः यथार्हप्रतिभूः चिन्त्यः ॥ १२४ ॥

व्याख्या—दूतेन = नृपसन्देशहरेण, आह्वानितम् = आकारितम्, प्राप्ताधर्षकम् = पीडाप्राप्तम् अभ्यर्थिनम्, तथा = तेनैव रूपेण, प्रतिवादिनम् = प्रत्यर्थिनम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, अतः = अस्मात्कारणात्, राज्ञा = नृपेण, तयोः = वादिनोः, यथार्हप्रतिभूः = यथायोग्यप्रतिरूपः, चिन्त्यः = विचारणीयः ॥ १२४ ॥

हिन्दी—दूत के द्वारा बुलाने से आये हुए अपराधी या प्रतिवादी को देखकर राजा उन दोनों के लिए योग्य जमानतदार को सोच-समझ कर स्वीकार करे ॥ १२४ ॥

दूतेनेति। दूतेन राजवार्त्ताहरेण आह्वानितं कृताह्वानं प्राप्ताधर्षकं प्राप्तपीडं वादिनमित्यर्थः, तथा प्रतिवादिनं दृष्ट्वा अतः अस्मात् परमित्यर्थः, राज्ञा तयोः वादिनोः यथार्हप्रतिभूः यथायोग्यप्रतिरूपः चिन्त्यः ॥ १२४ ॥

दास्याम्यदत्तमेतेन दर्शयामि तवान्तिके।
एनमाधिं दापयिष्ये ह्यस्मात्ते न भयं क्वचित् ॥ १२५ ॥
अकृतञ्च करिष्यामि ह्यनेनायञ्च वृत्तिमान्।
अस्तीति न च मिथ्यैतदङ्गीकुर्य्यादतन्द्रितः ॥ १२६ ॥
प्रगल्भो बहुविश्वस्तानधीनो विश्रुतो धनी।
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्य्यनिर्णये ॥ १२७ ॥

अन्वयः—अहम् एतेन अदत्तं दास्यामि, एनं तव अन्तिके दर्शयामि, एनम् आधिं दापयिष्ये, अस्मात् क्वचित् ते भयं न, अनेन अकृतं कार्यम् अहं करिष्यामि, अयञ्च वृत्तिमान् अतन्द्रितः अस्ति—इति एतत् न च मिथ्या अङ्गीकुर्यात्। प्रगल्भः बहुविश्वस्तः अनधीनः विश्रुतः धनी तथा समर्थः प्रतिभूः उभयोः कार्यनिर्णये ग्राह्यः ॥ १२५-१२७ ॥

व्याख्या—अहम् = प्रतिभूकर्त्ता, एतेन = वादिना वा प्रतिवादिना, अदत्तम् = अनर्पितम्, दास्यामि = प्रयच्छिष्यामि, अहम् एनम् = वादिनम्, तव = भवतः, अन्तिके = समीपे, दर्शयामि = प्रदर्शयामि, एनम् = समुपस्थितं जनम्, आधिम् = द्रव्यम्, दापयिष्ये = बन्धकत्वेन स्थापयिष्ये, अस्मात् = जनात्, क्वचित् = कदाचिदपि, ते = तव, भयम् = त्रासम्, न = नहि, अस्ति = भवति, अनेन = जनेन, अकृतम् = अनिष्पादितम्, कार्यम् = कर्म, अहम् = प्रतिभूकर्त्ता, करिष्यामि, अयञ्च = एष जनः, वृत्तिमान् = संस्थानसम्पन्नः, अतन्द्रितः = आलस्यरहितश्च, अस्ति, इति = हेतोः, एतत् न च मिथ्या = अनृतः, अङ्गीकुर्यात् = स्वीकुर्यात्। प्रगल्भः = निपुणः, बहुविश्वस्तः = लोके विश्वसनीयः, अनधीनः—न कस्याऽपि अधीनः = पराश्रयी, विश्रुतः = विख्यातः, धनी = धनवान्, तथा समर्थः = सशक्तः, उक्तरूपः त्रिविधः प्रतिभूः, उभयोः = अर्थिप्रत्यर्थिनोः, कार्यनिर्णये = व्यवहारे, ग्राह्यः = ग्रहणीयो भवति ॥ १२५-१२७ ॥

हिन्दी—जमानतदार सावधान होकर स्वीकार करे कि यदि किसी का रुपया यह न दे तो

मैं देने को तैयार हूँ। यदि अपराधी नियत तारीख पर नहीं आयेगा तो उसे आपके सामने हाजिर करा दूँगा और जो कुछ इसके पास धरोहर रूप में रखा होगा उसे मैं दिला दूँगा। इससे आपको कभी डर नहीं होना चाहिए। यह अब तक जो नहीं कर पाया है उसे मैं इसी से पूरा करवा दूँगा। यह स्थिर आजीविका वाला है, कोई दरिद्र नहीं है। यह कभी झूठा व्यवहार नहीं करने वाला है। इस प्रकार बोलने में चतुर लोगों में विश्वस्त, स्वाधीन, विख्यात धनी एवं कार्यनिर्णय में समर्थ व्यक्ति हो—ऐसे जमानतदार को राजा स्वीकार करे॥ १२५-१२७ ॥

प्रतिभूप्रकारमाह—**दास्यामीत्यादि**। अहम् एतेन अदत्तं दास्यामि एतेन दानप्रतिभूरुक्तः। अहम् एनं तव अन्तिके समीपे दर्शयामि एतेन दर्शनप्रतिभूरुक्तः। एनं जनम् आधिं द्रव्यं दापयिष्ये बन्धकत्वेनेति शेषः, अस्मात् जनात् क्वचित् कदाचिदपीत्यर्थः, ते तव भयं न अस्तीति शेषः, अनेन अकृतं कार्य्यम् अहं करिष्यामि, अयञ्च वृत्तिमान् संस्थानसम्पन्नः अतन्द्रितः अनलसश्च अस्ति इति हेतोः एतत् न च मिथ्या अङ्गीकुर्यात् एतेन प्रत्ययप्रतिभूरुक्तः। प्रगल्भः चतुरः बहुविश्वस्तः बहुजनेषु विश्वासी, अनधीनः स्वाधीनः विश्रुतः विख्यातः धनी तथा समर्थः यथोक्तवचनानुरूपानुष्ठाने सक्षमः उक्तरूपः त्रिविधः प्रतिभूः उभयोः वादिप्रतिवादिनोः कार्य्यनिर्णये कार्य्यनिरूपणार्थं ग्राह्यः॥ १२५-१२७ ॥

विवादिनौ सन्निरुध्य ततो वादं प्रवर्त्तयेत्।
स्वपुष्टौ परपुष्टौ वा स्वभृत्या पुष्टरक्षकौ।
ससाधनौ तत्त्वमिच्छुः कूटसाधनशङ्कया॥ १२८ ॥

अन्वयः—ससाधनौ स्वपुष्टौ परपुष्टौ स्वभृत्या पुष्टरक्षकौ विवादिनौ सन्निरुध्य ततः कूटसाधनशङ्कया तत्त्वम् इच्छुः सन् वादं प्रवर्त्तयेत्॥ १२८ ॥

व्याख्या—ससाधनौ = विवादसाधनसहितौ, स्वपुष्टौ = स्वाधीनौ, परपुष्टौ = पराधीनौ, वा, स्वभृत्या—स्वस्य = आत्मनः, भृत्या = वेतनेन, पुष्टरक्षकौ = पोष्यपालकौ, विवादिनौ, सन्निरुद्ध्य = अवरुद्धं कृत्वा, ततः = तत्पश्चात्, कूटसाधनशङ्कया = मिथ्यानिष्पादनसन्देहेन, तत्त्वम् = तथ्यम्, इच्छुः = अभीप्सुः सन्, वादम् = अभियोगम्, प्रवर्त्तयेत् = चालयेत्॥ १२८ ॥

हिन्दी—कोई वादी या प्रतिवादी ने अपने-अपने साधनों में कोई जालसाजी तो नहीं की हैं। इसलिए तथ्य को जानने का इच्छुक राजा यह देख ले कि वादी और प्रतिवादी दोनों ही अपने-अपने पक्षों की पुष्टि कर रहे हैं या नहीं? राजा के द्वारा उसकी पुष्टि हो रही है या नहीं? अपनी-अपनी नौकरी प्रमाणों की पुष्टि की रक्षा कर रहे हैं या नहीं और अपने-अपने मुकदमे के सम्पूर्ण साधनों से युक्त है या नहीं? इस परीक्षण के बाद राजा वादी-प्रतिवादी को सामने उपस्थित कर मुकदमे की तहकीकात प्रारंभ करे॥ १२८ ॥

विवादिनाविति। ससाधनौ विवादसाधनसमेतौ, स्वपुष्टौ स्वाधीनौ, परपुष्टौ पराधीनौ वा स्वभृत्या निजवेतनेन पुष्टरक्षकौ पोष्यपालकौ विवादिनौ सन्निरुध्य ततः अनन्तरं कूटसाधनशङ्कया अलीकधनसन्देहेन तत्त्वं याथार्थ्यम् इच्छुः सन् वाढं प्रवर्त्तयेत् राजेति शेषः॥ १२८ ॥

प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तं साध्यं सत्कारणान्वितम्।
निश्चितं लोकसिद्धञ्च पक्षं पक्षविदो विदुः॥ १२९ ॥

अन्वयः—पक्षविदः प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तं सत्कारणान्वितं निश्चितं लोकसिद्धञ्च साध्यं पक्षं विदुः ॥ १२९ ॥

व्याख्या—पक्षविदः = भाषाभिज्ञाः विद्वांसः, प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तम् = सङ्कल्पनिर्देशः, तस्याः दोषेण = दुर्गुणेन, निर्मुक्तम् = उन्मूलितम्, सत् = साधु, कारणेन = हेतुना, अन्वितम् = युक्तम्, निश्चितम् = संशयशून्यम्, लोकसिद्धम् = लोकानुष्ठितम्, साध्यम् = विवादविषयम्, पक्षम् = व्यवहारपक्षम्, विदुः = जानन्ति ॥ १२९ ॥

हिन्दी—पूर्वकृत प्रतिज्ञा के दोष से जो मुक्त हो, अच्छे कारणों से युक्त साधनों द्वारा सिद्ध किया जाने वाला, निश्चित किया जाने वाला तथा लोकसिद्ध हो, उसे पक्षवेत्ता जन 'पक्ष' कहते हैं ॥ १२९ ॥

प्रतिज्ञेति। पक्षविदः भाषाभिज्ञाः पण्डिताः प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तं प्रतिज्ञा प्रथमनिर्देशः तस्याः दोषेण निर्मुक्तं रहितं सत्कारणान्वितं सुसाधनसम्पन्नं निश्चितम् असन्दिग्धं लोकसिद्धं न त्वलौकिकमित्यर्थः, साध्यम् अभियोगविषयं पक्षं विदुः जानन्ति ॥ १२९ ॥

अन्यार्थमर्थहीनं च प्रमाणागमवर्जितम् ।
लेख्यहीनाधिकं भ्रष्टं भाषादोषा उदाहृताः ॥ १३० ॥

अन्वयः—अन्यार्थम् अर्थहीनं प्रमाणागमवर्जितं लेख्यहीनाधिकं वा भ्रष्टं भाषादोषाः उदाहृताः ॥ १३० ॥

व्याख्या—अन्यार्थम् = भिन्नार्थबोधकम्, अर्थहीनम् = इष्टार्थबोधनेऽक्षमम्, प्रमाणागमवर्जितम्—प्रमाणेन = निदर्शनेन, आगमेन = शब्दप्रमाणेन, च, वर्जितम् = रहितम्, लेख्यहीनाधिकम्—हीनलेख्यम् = न्यूनप्रतिपाद्यविषयकं व्यवहारपत्रम्, अधिकलेख्यम् = अतिरिक्तविषयकव्यवहारपत्रम्, वा, भ्रष्टम् = च्युतम्, केनाप्यंशेन, एते, भाषादोषाः—भाषायाः = प्रतिज्ञावचनस्य, दोषाः = दुर्गुणाः, उदाहृताः = कथिताः ॥ १३० ॥

हिन्दी—जो अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ अथवा अर्थविहीन प्रमाण या लोकाचार-विरुद्ध लिखने में कम या ज्यादा अथवा भ्रष्ट हो, उसे भाषादोष कहते हैं। अर्थात् अर्जी-दावापत्र के ये सभी दुर्गुण माने गये हैं ॥ १३० ॥

अन्यार्थमिति। अन्यार्थम् अपरार्थबोधकम् अर्थहीनम् अभिप्रेतार्थविरहितं प्रमाणागमवर्जितं प्रमाणेन आगमेन हेतुविशेषेण च वर्जितं लेख्यहीनाधिकं हीनलेख्यम् अधिकलेख्यं वा भ्रष्टं च्युतं केनापि अंशेनेत्यर्थः, एते भाषादोषाः भाषायाः प्रतिज्ञावाक्यस्य दोषाः उदाहृताः उक्ताः ॥ १३० ॥

अप्रसिद्धं निराबाधं निरर्थं निष्प्रयोजनम् ।
असाध्यं वा विरुद्धं वा पक्षाभासं विवर्जयेत् ॥ १३१ ॥

अन्वयः—अप्रसिद्धं निराबाधं निष्प्रयोजनं निरर्थम् असाध्यं वा विरुद्धं तं पक्षाभासं विवर्जयेत् ॥ १३१ ॥

व्याख्या—अप्रसिद्धम् = ख्यातिरहितम्, निराबाधम् = बाधारहितम्, निष्प्रयोजनम् = प्रयोजनातीतम्, निरर्थम् = अर्थविहीनम्, असाध्यम् = अनिष्पाद्यम्, वा = अथवा, विरुद्धं साध्यम्, पक्षाभास उच्यते, तं पक्षाभासम्, विवर्जयेत् = विशेषरूपेण परित्यजेत् ॥ १३१ ॥

हिन्दी—जो अपसिद्ध, निर्बाध, निरर्थक, निष्प्रयोजन, असाध्य अथवा विपरीतपक्ष हो, उसे

पक्षाभास कहते हैं। पक्षाभास को राजा छोड़ दे ॥१३१॥

अप्रसिद्धमिति। अप्रसिद्धं निराबाधं निर्बाधं निष्प्रयोजनम् असाध्यं साध्यातीतं वा विरुद्धं साध्यं पक्षाभास उच्यते इति शेषः, तं पक्षाभासं विवर्जयेत् न गृह्णीयात् राजेति शेषः॥१३१॥

न केनचिच्छ्रुतो दृष्टः सोऽप्रसिद्ध उदाहृतः।
अहं मूकेन संशप्तो वन्ध्यापुत्रेण ताडितः॥१३२॥

अन्वयः—यः केनचित् न श्रुतः दृष्टश्च सः अप्रसिद्धः उदाहृतः। यथा अहं मूकेन संशप्तः वन्ध्यापुत्रेण ताडितश्च॥१३२॥

व्याख्या—यः = वस्तु, केनचित् = केनाऽपि, न = नहि, श्रुतः = आकर्णितः, दृष्टश्च = अवलोकितश्च, सः = असौ, अप्रसिद्धः = अख्यातः, उदाहृतः = निर्देशितः। यथा—अहम् = मया, मूकेन = वाग्विहीनेन, संशप्तः = शापितः, तथा वन्ध्यापुत्रेण—वन्ध्यायाः = अजातपुत्रायाः, पुत्रेण = सुतेन, ताडितः इति॥१३२॥

हिन्दी—जो किसी से न सुना हो और न देखा हो, उसे अप्रसिद्ध कहते हैं। जैसे मुझे गूंगे ने गाली दी है और बाँझ औरत के बेटे ने पीटा है॥१३२॥

नेति। यः केनचित् न श्रुतः दृष्टश्च सः अप्रसिद्धः उदाहृतः उक्तः। यथा अहं मूकेन वर्णानुच्चारकेण शप्तः, तथा वन्ध्यापुत्रेण वन्ध्यायाः अजातपुत्रायाः पुत्रेण ताडित इति॥१३२॥

अधीते सुस्वरं गाति स्वगेहे विहरत्ययम्।
धत्ते मार्गमुखद्वारं मम गेहसमीपतः।
इति ज्ञेयं निराबाधं निष्प्रयोजनमेव तत्॥१३३॥

अन्वयः—निराबाधं यत् निष्प्रयोजनं तत् यथा अयं स्वगेहे सुस्वरम् अधीते, गाति, स्वगेहे अयं विहरति तथा मम गेहसमीपतः मार्गमुखद्वारं धत्ते इति ज्ञेयम्॥१३३॥

व्याख्या—निराबाधम् = निर्बाधम्, यत् निष्प्रयोजनम् = निरर्थकम्, तत् = तदेव, यथा—अयम् = एषः, स्वगेहे = निजगृहे, सुस्वरम् = तारस्वरेण, अधीते = पठति, वा गाति = गायनं करोति, 'गाति' इत्यार्षप्रयोगः, तथा तत्रैव विहरति = विचरणं करोति, किञ्च मम गेहसमीपतः = मदीयगृहपार्श्वे, मार्गस्य = पथः, मुखे = सम्मुखे, द्वारम्, धत्ते = ददाति इति॥१३३॥

हिन्दी—वह अपने घर में रहकर ऊँची आवाज से पढता है या गीत गाता है या विहार करता है अथवा मेरे घर के पास ही राह की ओर अपने घर का दरवाजा बनाता है—इन सब को 'निराबाध' या 'निष्प्रयोजन' कहते हैं। क्योंकि ऐसा करने में किसी को कोई रोक नहीं लगा सकता है। इसलिए इसे निराबाध या निष्प्रयोजन कहा जाता है॥१३३॥

अधीते इति। निराबाधं यत् निष्प्रयोजनश्च तत् यथा अयं स्वगेहे निजगृहे सुस्वरम् अधीते पठति गाति गायतीत्यर्थः, आर्षोऽयं प्रयोगः। तथा विहरति, किञ्च मम गेहसमीपतः मद्गृहसमीपे मार्गस्य पथः मुखे द्वारं धत्ते ददाति इति॥१३३॥

सदा मद्दत्तकन्यायां जामाता विहरत्ययम्।
गर्भं धत्ते न वन्ध्येयं मृतोऽयं न प्रभाषते।
किमर्थमिति तज्ज्ञेयमसाध्यञ्च विरुद्धकम्॥१३४॥

अन्वयः—अयं जामाता मद्दत्तकन्यायां सदा विहरति तथापि गर्भं न धत्ते। इयञ्च वन्ध्या किमर्थम् इति असाध्यम्। अयं मृतः न प्रभाषते किमर्थमिति विरुद्धकं ज्ञेयम् ॥१३४॥

व्याख्या—अयम्=एष पुरुषः, जामाता=मम पुत्रीपतिः, मद्दत्तकन्यायाम्—मत्=अस्मत्, दत्ता=समर्पिता, कन्यया=सुतया सह, सदैव=सततमेव, विहरति=रमयति, कथम्? इयञ्च=एषा च, वन्ध्या=प्रसवशून्यनारी, गर्भम्=भ्रूणः, किमर्थम्, न=नहि, धत्ते=धारयति? इति असाध्यम्। अयम्=एषः, मृतः=प्राणहीनो जनः, किमर्थञ्च, न=नहि, प्रभाषते=वदति, इति तु विरुद्धकम्, ज्ञेयम्=बोध्यम् ॥१३४॥

हिन्दी—यह मेरा दामाद मेरी दी हुई कन्या के साथ सदा विहार क्यों करता है? तथा यह बाँझ गर्भधारण क्यों नहीं करती है? ऐसा प्रशन असाध्य है और यह मरा हुआ आदमी बोलता क्यों नहीं है? इसे विरुद्ध जानना चाहिए ॥१३४॥

सदेति। अयं जामाता मद्दत्तकन्यायां सदा विहरति, तथापि गर्भं न धत्ते, इयञ्च वन्ध्या किमर्थमिति असाध्यम्। अयं मृतः न प्रभाषते न कथयति किमर्थमिति विरुद्धकं ज्ञेयम् ॥१३४॥

मद्दुःखसुखतो लोको दूयते न च नन्दति।
निरर्थमिति वा ज्ञेयं निष्प्रयोजनमेव वा ॥१३५॥

अन्वयः—लोकः मद्दुःखसुखतः न दूयते न च नन्दति इति निरर्थं वा निष्प्रयोजनं ज्ञेयम् ॥१३५॥

व्याख्या—लोकः=जनः, मत्=मम, दुःखेन=पीडया, च=पुनः, सुखेन=आनन्देन च, न, दूयते=दुःखितो भवति, न च नन्दति=आनन्दितो भवति, इति=इत्थम्, निरर्थम्=अर्थविहीनम्, वा निष्प्रयोजनम्, ज्ञेयम्=बोध्यम् ॥१३५॥

हिन्दी—मेरे द्वारा प्रदत्त दुःख या सुख से लोग दुःखी या प्रसन्न क्यों होते हैं? ऐसा पूछना या समझना निरर्थक या निष्प्रयोजन कहा जाता है ॥१३५॥

मद्दुःखेति। लोकः मम दुःखेन सुखेन च न दूयते न दुःखितो भवति न च नन्दति इति निरर्थं वा निष्प्रयोजनं वा ज्ञेयम् ॥१३५॥

श्रावयित्वा तु यत् कार्य्यं त्यजेदन्यद् वदेदसौ।
अन्यपक्षाश्रयाद् वादी हीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः ॥१३६॥

अन्वयः—यत् कार्यं श्रावयित्वा त्यजेत् असौ अन्यत् वदेत्, सः अन्यत् पक्षाश्रयात् हीनः दण्ड्यः च स्मृतः ॥१३६॥

व्याख्या—यत्=यः वादी, कार्यम्=विवादमेकम्, श्रावयित्वा=वदित्वा, तत्=कार्यम्, त्यजेत्=परित्यागं कुर्यात्, असौ=वादी, अन्यत्=तद्भिन्नम्, वदेत्=कथयेत्, सः=वादी, अन्यपक्षाश्रयात्=विपरीतपक्षावलम्बनात्, हीनः=विवादात् भ्रष्टः, अग्राह्याभियोग इति, अतः दण्ड्यः=दण्डार्हः, च, स्मृतः=कथितः ॥१३६॥

हिन्दी—जो वादी विवाद के सम्बन्ध में एक बार अपना अभिमत सुनाकर उसे छोड़ दे और उसके विरुद्ध पक्ष से मिलकर दूसरे ढंग से बोले तो वह हीन समझा जाता है और दण्ड का भागी होता है ॥१३६॥

श्रावयित्वेति। यः वादी कार्य्यम् एकमित्यर्थः, श्रावयित्वा त्यजेत् तत् इति शेषः, असौ वादी अन्यत् वदेच्च सः वादी अन्यपक्षाश्रयात् हीनः अभियोगात् भ्रष्टः अग्राह्याभियोग इत्यर्थः, दण्ड्यश्च स्मृतः ॥ १३६ ॥

विनिश्चिते पूर्वपक्षे ग्राह्याग्राह्यविशोधिते।
प्रतिज्ञाते स्थिरीभूते लेखयेदुत्तरं ततः ॥ १३७ ॥

अन्वयः—प्रतिज्ञाते पूर्वपक्षे ग्राह्याग्राह्याभ्यां विशोधिते अत एव विनिश्चिते तथा स्थिरीभूते ततः उत्तरं लेखयेत् ॥ १३७ ॥

व्याख्या—प्रतिज्ञाते = प्रतिश्रुते, पूर्वपक्षे = अभियोगे, ग्राह्याग्राह्याभ्याम् = उपादेयानुपादेयाभ्याम्, स्वीकार्यास्वीकार्याभ्यामंशाभ्यां वेति, विशोधिते = परिष्कृते, अत एव, विनिश्चिते = विशेषेण शान्तचित्ते, स्थिरीभूते = स्थिरीकृते सति, ततः = तत्पश्चात्, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, लेखयेत् = लिपिबद्धं कुर्यात् ॥ १३७ ॥

हिन्दी—जब अर्जी-दावा पूरा हो जाय और उसमें से स्वीकार करने योग्य तथा अस्वीकार करने योग्य बातों का निर्णय हो जाय तथा प्रतिश्रुत अर्थ का निश्चय हो जाय, तब उसके बाद उसका उत्तर लिखना चाहिए ॥ १३७ ॥

विनिश्चिते इति। प्रतिज्ञाते पूर्वपक्षे ग्राह्याग्राह्याभ्याम् अंशाभ्यां विशोधिते संस्कृते अत एव विनिश्चिते तथा स्थिरीभूते सति ततः उत्तरं लेखयेत् प्रतिवादिनेति शेषः ॥ १३७ ॥

तत्राभियोक्ता प्राक् पृष्टो ह्यभियुक्तस्त्वनन्तरम्।
प्राड्विवाकः सदस्याद्यैर्दाप्यते ह्युत्तरं ततः ॥ १३८ ॥

अन्वयः—तत्र प्राक् अभियोक्ता ततः अभियुक्तः पृष्टः। अनन्तरम् उभयोः सदस्याद्यैः प्राड्विवाकः उत्तरं दाप्यते ॥ १३८ ॥

व्याख्या—तत्र = तस्मिन् विवादे, प्राक् = प्रथमम्, अभियोक्ता = वादी, ततः = तदनन्तरम्, अभियुक्तः = प्रतिवादी, पृष्टः = जिज्ञासितो भवेत्। अनन्तरम् = तत्पश्चात्, उभयोः = द्वयोः पृच्छानन्तरम्, सदस्याद्यैः = सांसदप्रभृतिभिः, प्राड्विवाकः = न्यायाधीशः, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, दाप्यते = विचारयेत् ॥ १३८ ॥

हिन्दी—उनमें पहले वादी से, फिर प्रतिवादी से पूछना चाहिए। दोनों से पूछने के बाद जज जूरीपंचों से इसका उत्तर दिलवाए ॥ १३८ ॥

तत्रेति। तत्र विवादे प्राक् अभियोक्ता अर्थी, तदनन्तरम् अभियुक्तः प्रत्यर्थी पृष्टः जिज्ञासितः स्यात्, ततः उभयोः पृच्छानन्तरं सदस्याद्यैः विचारनियुक्तपुरुषादिभिः प्राड्विवाकः उत्तरं दाप्यते सिद्धान्तपक्षमाश्रित्य प्राड्विवाको विचारयेदिति भावः ॥ १३८ ॥

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ।
पक्षस्य व्यापकं सारमसन्दिग्धमनाकुलम्।
अव्याख्यागम्यमित्येतन्निर्दुष्टं प्रतिवादिना ॥ १३९ ॥

अन्वयः—प्रतिवादिना पूर्वावेदकसन्निधौ श्रुतार्थस्य पक्षस्य व्यापकं सारम् असन्दिग्धम् अनाकुलम् अव्याख्यागम्यम् उत्तरं लेख्यम्, इति एतत् निर्दुष्टं स्यात् ॥ १३९ ॥

व्याख्या—प्रतिवादिना = प्रत्यर्थिना, पूर्वावेदकस्य = अभ्यर्थिनः, सन्निधौ = समीपे, श्रुतार्थस्य = अभिय्रोगविषयीभूतस्य, पक्षस्य = समूहस्य, व्यापकम् = आच्छादकम्, सारम् = तथ्यम्, असन्दिग्धम् = सन्देहशून्यम्, अनाकुलम् = सहजभावेन ग्राह्यमर्थम्, अव्याख्यागम्यम् = सुबोध्यम्, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, लेख्यम् = लिखितव्यम्, इति = इत्थम्, एतत् = उत्तरम्, निर्दुष्टम् = दोषरहितं ज्ञेयम् ॥ १३९ ॥

हिन्दी—सुने हुए अर्थ का उत्तर पहले दावा करने वाले के पास में लिखे, जिसमें उसके पक्ष का व्यापक वर्णन होते हुए संक्षिप्त या तथ्यपूर्ण हो, कहीं संदिग्ध या त्रुटि न हो, फिर सुबोध हो, व्याख्या-सापेक्ष न हो। प्रतिवादी द्वारा किसी तरह की आपत्ति न उठाई जाय, ऐसा लेख होना चाहिए ॥ १३९ ॥

श्रुतार्थस्येति। प्रतिवादिना पूर्वावेदकस्य वादिनः सन्निधौ श्रुतार्थस्य अभियोगविषयीभूतस्य पक्षस्य व्यापकम् आच्छादकं सारम् असन्दिग्धं सन्देहरहितम् अनाकुलं सुखेन बोध्यप्रतिपाद्यमित्यर्थः, अव्याख्यागम्यं सुबोधमित्यर्थः, उत्तरं लेख्यम् इति एवंरूपम् एतत् उत्तरं निर्दुष्टं दोषरहितं भवतीति शेषः ॥ १३९ ॥

सन्दिग्धमन्यत् प्रकृतादत्यल्पमतिभूरि च।
पक्षैकदेशे व्याप्यं यत् तत्तु नैवोत्तरं भवेत् ॥ १४० ॥

अन्वयः—सन्दिग्धं प्रकृतात् अन्यत् अत्यल्पं च अतिभूरि वा तथा पक्षैकदेशे व्याप्यं यत् तत् उत्तरं नैव भवेत् ॥ १४० ॥

व्याख्या—सन्दिग्धम् = संशयपूर्णम्, प्रकृतात् = प्रस्तुतात्, अन्यत् = भिन्नम्, अत्यल्पम् अतितुच्छं वा, अतिभूरि = अत्यधिकम्, तथा पक्षैकदेशे—पक्षस्य = तत्पक्षस्य, एकदेशे = एकस्मिन् अंशे, व्याप्यम् = व्याप्तुं योग्यम्, यत् तत् उत्तरम् = प्रतिवचनम्, नैव = नास्त्येव, भवेत् = स्यात् ॥ १४० ॥

हिन्दी—और जो उत्तर संदेहयुक्त, प्रसंग से बाहर, अतिसंक्षिप्त या अतिविस्तृत, पक्ष के एक भाग में व्याप्त रहने वाला हो, उसे नहीं लिखना चाहिए ॥ १४० ॥

सन्दिग्धमिति। सन्दिग्धं सन्देहयुक्तम् इदं वा एतद्वेति द्वैधयुक्तं प्रकृतात् प्रस्तुतात् अन्यत् भिन्नम् अत्यल्पम् अतिभूरि अत्यधिकं वा तथा पक्षैकदेशे एकस्मिन् पक्षांशे व्याप्यं न तु सर्वस्मिन्नित्यर्थः, यत् तत् उत्तरं नैव भवेत् ॥ १४० ॥

न चाहूतो वदेत् किञ्चिद्धीनो दण्ड्यश्च स स्मृतः ॥ १४१ ॥

अन्वयः—यः आहूतः सन् न किञ्चित् वदेत् सः हीनः दण्ड्यश्च भवेत् ॥ १४१ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, आहूतः = आकारितः सन्, न = नहि, किञ्चित् = किमपि, वदेत् = कथयेत्, सः = असौ, हीनः = आश्रितः, दण्ड्यः = दण्डनीयश्च, भवेत् = स्यात् ॥ १४१ ॥

हिन्दी—और बुलाने पर भी जो वादी या प्रतिवादी उत्तर न दे, वह हीन एवं दण्डनीय होता है ॥ १४१ ॥

न चेति। यः अर्थी प्रत्यर्थी वा आहूतः सन् न किञ्चित् वदेत्, सः हीनः पराजितः दण्ड्यश्च

पूर्वपक्षे यथार्थे तु न दद्यादुत्तरन्तु यः।
प्रत्यर्थी दापनीयः स्याद् सामादिभिरुपक्रमैः ॥ १४२ ॥

अन्वयः—यथार्थे पूर्वपक्षे यः प्रत्यर्थी उत्तरं न दद्यात् सः सामादिभिः उपक्रमैः दापनीयः ॥ १४२ ॥

व्याख्या—यथार्थे = तथ्यपूर्णे, सति, पूर्वपक्षे = वादीपक्षे, यः = पुरुषः, प्रत्यर्थी = प्रतिवादी, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, न = नहि, दद्यात् = प्रयच्छेत्, सः = वादी, सामादिभिः = सामदानदण्डादिभिः, उपक्रमैः = उपायैः, दापनीयः = वादीधनम् अर्पयितव्यः ॥ १४२ ॥

हिन्दी—वादी का पक्ष सत्य सिद्ध होने पर प्रतिवादी उत्तर न दे तो प्रतिवादी पर डिग्री कर देना चाहिए और साम-दानादि उपायों से वादी को उसका धन दिलवा देना चाहिए ॥ १४२ ॥

पूर्वपक्षे इति। यथार्थे पूर्वपक्षे सतिः यः प्रत्यर्थी उत्तरं न दद्यात् सः सामादिभिः सान्त्ववादादिभिः उपक्रमैः उपायैः दापनीयः अभियुक्तधनमिति शेषः स्यात् ॥ १४२ ॥

मोहाद् वा यदि वा शाठ्याद् यन्नोक्तं पूर्ववादिना।
उत्तरान्तर्गतं वा तत् प्रश्नैर्ग्राह्यं द्वयोरपि ॥ १४३ ॥

अन्वयः—मोहात् वा शाठ्यात् वा पूर्ववादिनाः यत् न उक्तं यच्च उत्तरान्तर्गतं तत् द्वयोरपि प्रश्नैः ग्राह्यम् ॥ १४३ ॥

व्याख्या—मोहात् = प्रपञ्चात्, वा = अथवा, शाठ्यात् = दौर्जन्यात्, यत् = किञ्चिदपि, न = नहि, उक्तम् = कथितम्, वा = अथवा, यच्च = यदुत्तरम्, उत्तरान्तर्गतम् = प्रतिवादिनः उत्तर-वाक्यान्तरालपतितम्, तत् = सकलम्, द्वयोः = पूर्वापरपक्षयोः समीपात्, पश्नैः = पृच्छाभिः, ग्राह्यम् = ग्रहणं कर्त्तव्यमिति ॥ १४३ ॥

हिन्दी—अज्ञान या शठतावश पहले वादी ने जो कुछ नहीं कहा, प्रतिवादी के उत्तर में वह छूट गया, उसे न्यायाधीश दोनों से पूछ कर साफ कर ले ॥ १४३ ॥

मोहादिति। मोहात् अज्ञानात् वा शाठ्यात् वा पूर्ववादिना अर्थिना यत् न उक्तं पूर्वपक्षे इति भावः, यच्च उत्तरान्तर्गतं प्रतिवादिनः उत्तरवाक्यमध्यपतितं मोहनिबन्धनं शाठ्यनिबन्धनं वा किञ्चित्, तत् सर्वम् उभयोः वादिप्रतिवादिना सकाशात् प्रश्नैः पृच्छाभिः ग्राह्यं प्रश्नचातुर्य्येण मोहस्खलितं वा शाठ्यविजृम्भितं बहिष्करणीयमिति भावः ॥ १४३ ॥

सत्यं मिथ्योत्तरञ्चैव प्रत्यवस्कन्दनं तथा।
पूर्वन्यायविधिश्चैवमुत्तरं स्याच्चतुर्विधम् ॥ १४४ ॥

अन्वयः—उत्तरं चतुर्विधं स्यात्। यथा सत्यं मिथ्योत्तरं प्रत्यवस्कन्दनं तथा पूर्वन्याय-विधिः ॥ १४४ ॥

व्याख्या—उत्तरम् = प्रतिवचनम्, चतुर्विधम् = चतुप्रकारकम्, स्यात् = भवेत्। यथा—सत्यम् = यथार्थम्, मिथ्योत्तरम् = असत्योत्तरम्, प्रत्यवस्कन्दनम्, पूर्वन्यायविधिश्च ॥ १४४ ॥

हिन्दी—उत्तर चार प्रकार के होते हैं। जैसे—सत्य, मिथ्या, प्रत्यवस्कन्द एवं पूर्वन्याय-विधि ॥ १४४ ॥

सत्यमिति। उत्तरं चतुर्विधं स्यात्। यथा—सत्यं, मिथ्योत्तरं तथा प्रत्यवस्कन्दनं, पूर्वन्यायविधिश्च ॥ १४४ ॥

अङ्गीकृतं यथार्थं यद्वाद्युक्तं प्रतिवादिना।
सत्योत्तरन्तु तज्ज्ञेयं प्रतिपत्तिश्च सा स्मृता ॥ १४५ ॥

अन्वयः—वादिना उक्तं यथार्थं यद्वाक्यं प्रतिवादिना अङ्गीकृतं तत् सत्योत्तरं विज्ञेयम्। सा च प्रतिपत्तिः स्मृता ॥ १४५ ॥

व्याख्या—वादिना = अभियोगिना, उक्तम् = कथितम्, यथार्थम् = सत्यम्, यत् = किञ्चित्, वाक्यम् = कथनम्, प्रतिवादिना = प्रत्यर्थिना, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, तत् = वाक्यम्, सत्योत्तरम् = सत्यारोपम्, विज्ञेयम् = विशेपेण ज्ञातव्यम्, सा = वाणी, प्रतिपत्तिः = उपलब्धिः, स्मृता = कथिता ॥ १४५ ॥

हिन्दी—वादी ने जो कुछ कहा वह सत्य है, ऐसा यदि प्रतिवादी स्वीकार कर ले तो इस उत्तर को सत्य कहते हैं। इसी सत्य उत्तर को प्रतिपत्ति अर्थात् उपलब्धि भी कहते हैं ॥ १४५ ॥

अङ्गीकृतमिति। वादिना उक्तं यथार्थं यत् वाक्यं प्रतिवादिना अङ्गीकृतञ्चेत् तत् सत्योत्तरं विज्ञेयं सा च प्रतिपत्तिः स्मृता ॥ १४५ ॥

श्रुत्वा भाषार्थमन्यस्तु यदि तं प्रतिषेधति।
अर्थतः शब्दतो वापि मिथ्या तज्ज्ञेयमुत्तरम् ॥ १४६ ॥

अन्वयः—अन्यस्तु भाषार्थं श्रुत्वा अर्थतः शब्दतः वापि यदि तं प्रतिषेधति तदा तत् मिथ्योत्तरं ज्ञेयम् ॥ १४६ ॥

व्याख्या—अन्यस्तु = प्रत्यर्थी तु, भाषार्थम् = अभियोगपक्षम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, अर्थतः = आशयतः, शब्दतः = वाक्याच्च, यदि तम् = कथनम्, प्रतिषेधति = विरोधं करोति, तदा तत् = उत्तरम्, मिथ्योत्तरम् = असत्यप्रतिवचनम्, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ १४६ ॥

हिन्दी—वादी की अर्जी को सुनकर यदि प्रतिवादी उसे स्वीकार न करे तो उसे मिथ्या उत्तर कहते हैं। यह प्रतिषेध चाहे अर्थ से हो या शब्द से हो ॥ १४६ ॥

श्रुत्वेति। अन्यस्तु प्रतिवादी तु भाषार्थं पूर्वपक्षं श्रुत्वा अर्थतः शब्दतश्च यदि तं प्रतिषेधति न स्वीकरोतीत्यर्थः, तदा तत् मिथ्योत्तरं ज्ञेयम् ॥ १४६ ॥

मिथ्यैतन्नाभिजानामि तदा तत्र न सन्निधिः।
अजातश्चास्मि तत्काले इति मिथ्या चतुर्विधम् ॥ १४७ ॥

अन्वयः—मिथ्या च चतुर्विधम्—एतत् मिथ्या, अहं न अभिजानामि, तत्र न मम सन्निधिः, तत्काले अहं अजातः च अस्मि ॥ १४७ ॥

व्याख्या—मिथ्या = अनृतम्, च चतुर्विधम् = चतुःप्रकारकम्, तद्यथा—एतत् = अभियोगः, मिथ्या = अनर्गल आरोपः, एतत् = कथनम्, अहम् = प्रतिवादी, न = नहि, अभिजानामि = अवगतोऽस्मि, तत्र = तस्मिन् स्थाने, न = नहि, मम = प्रत्यर्थ्यर्थिनः, सन्निधिः = सामीप्यम्, तत्काले = तस्मिन्समये, अहम्, अजातः अस्मि = अनुत्पन्नोऽस्मि ॥ १४७ ॥

हिन्दी—झूठा उत्तर चार प्रकार का होता है। जैसे—यह झूठ है, इसे मैं नहीं जानता हूँ, उस समय मैं वहाँ मौजूद नहीं था और मेरा तो उस समय जन्म भी नहीं हुआ था ॥ १४७ ॥

मिथ्येति। मिथ्या च चतुर्विधम्, यथा—एतत् मिथ्या, एतत् अहं न अभिजानामि, तदा यत्कालिकः अभियोग इत्यर्थः, तत्र तस्मिन् स्थाने न मम सन्निधिः सन्निधानम् अवस्थानमित्यर्थः, तत् काले अहम् अजातश्च अस्मि इति ॥ १४७ ॥

अर्थिना लिखितो ह्यर्थः प्रत्यर्थी यदि तं तथा।
प्रपद्य कारणं ब्रूयात् प्रत्यवस्कन्दनं हि तत् ॥ १४८ ॥

अन्वयः—अर्थिना यः अर्थः लिखितः प्रत्यर्थी यदि तं तथा प्रपद्य कारणं ब्रूयात् तदा तत् प्रत्यवस्कन्दनं हि ॥ १४८ ॥

व्याख्या—अर्थिना = वादिना, यः = यत्, अर्थः = अभिप्रेतार्थः, लिखितः = लिपिबद्धः कृतः, यदि तम् = अभियोगपत्रम्, तथा प्रपद्य = स्वीकृत्य, कारणम् = तस्य हेतुः, ब्रूयात् = वदेत्, तदा तत् = उत्तरम्, प्रत्यवस्कन्दनं, कथ्यते, हि = इत्यवधारणे ॥ १४८ ॥

हिन्दी—दावापत्र में वादी ने जो कुछ लिखा है उसे यदि प्रतिवादी स्वीकार कर के भी उसमें दोष दिखलाये तथा उन दोषों का कारण बतलाये तो इस उत्तर को अवस्कन्दन कहते हैं। पहले मानकर फिर उसे काटना कहते हैं ॥ १४८ ॥

अर्थिनेति। अर्थिना यः अर्थः लिखितः, प्रत्यर्थी यदि तं लिखितम् अर्थं तथा प्रपद्य स्वीकृत्य कारणं ब्रूयात् तदा तत् प्रत्यवस्कन्दनं हि, हिशब्दः अवधारणार्थः ॥ १४८ ॥

अस्मिन्नर्थे समानेन वादः पूर्वमभूत् तदा।
जितोऽयमिति चेद्ब्रूयात् प्राङ्न्यायः स उदाहृतः ॥ १४९ ॥

अन्वयः—अस्मिन् अर्थे पूर्वम् अनेन मम वादः अभूत् तदा अयं जितः, इति चेत् ब्रूयात् सः प्राङ्न्यायः उदाहृतः ॥ १४९ ॥

व्याख्या—अस्मिन् अर्थे = विषयेऽस्मिन्, पूर्वम् = प्राक्, अनेन = वादिना, मम = प्रतिवादिनः, वादः = विवादः, अभूत् = सञ्जातः, तदा, अयम् = एषः, जितः = विजयी अभवत्, इति = अभियुक्तः, यदि = चेत्, ब्रूयात् = वदेत्, तदा सः प्राङ्न्यायविधिः, उदाहृतः = कथितः ॥ १४९ ॥

हिन्दी—इसके साथ इस तरह का मेरा विवाद पहले हो चुका है, इसमें हमारी जीत हो चुकी है, ऐसा जवाब यदि प्रतिवादी का हो तो इस उत्तर को प्राङ्न्यायविधि या पूर्वन्याय कहते हैं ॥ १४९ ॥

अस्मिन्निति। अस्मिन् अर्थे विषये पूर्वमनेन मम वादः अभूत्, तदा अयं जितः मया पराजित इति प्रत्यर्थी यदि ब्रूयात् तदा सः प्राङ्न्यायः उदाहृतः उक्तः ॥ १४९ ॥

जयपत्रेण सभ्यैर्वा साक्षिभिर्भावयाम्यहम्।
मया जितः पूर्वमिति प्राङ्न्यायस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १५० ॥

अन्वयः—प्राङ्न्यायः त्रिविधः स्मृतः। यथा—अयं मया पूर्वं जितः इति जयपत्रेण सभ्यैः वा साक्षिभिः अहं भावयामि ॥ १५० ॥

व्याख्या—प्राङ्न्यायः त्रिविधः = त्रिप्रकारकः, स्मृतः = कथितः, यथा—अयम् = एष जनः, मया = प्रतिवादिना, जितः = विजितः, इति जयपत्रेण = विजयप्रमाणपत्रेण, सभ्यैः = सांसद्भिः, वा = अथवा, साक्षिभिः, अहम् = प्रतिवादी, भावयामि = प्रतिपादयामि ॥ १५० ॥

हिन्दी—जयपत्र अर्थात् मुकदमे की डिग्री सांसदों अर्थात् जूरीपंचों या गवाहियों के द्वारा मेरी जीत हो चुकी है, इसे मैं प्रमाणित कर रहा हूँ, ऐसे उत्तर वाले प्राङ्न्याय के ऊपर-लिखित तीन भेद होते हैं॥ १५० ॥

जयपत्रेणेति। प्राङ्न्यायः त्रिविधः स्मृतः।यथा—अयं मया पूर्वं जित इति जयपत्रेण, सभ्यैः, वा साक्षिभिः भावयामि प्रतिपादयामि, उपायस्य त्रैविध्यादिति भावः॥ १५० ॥

अन्योऽन्ययोः समक्षन्तु वादिनोः पक्षमुत्तरम्।
न हि गृह्णन्ति ये सभ्या दण्ड्यास्ते चौरवत् सदा॥ १५१ ॥

अन्वयः—ये सभ्याः वादिनोः अन्योऽन्ययोः समक्षं पक्षं वा उत्तरं न नहि गृह्णन्ति ते चौरवत् सदा दण्ड्याः॥ १५१ ॥

व्याख्या—ये सभ्याः= विचारार्थनियोजितसांसदः, वादिनोः= वादिप्रतिवादिनोः, अन्योऽन्ययोः= परस्परयोः, समक्षम्= सम्मुखे एव, पक्षम्= अभियोगम्, वा उत्तरम्, तस्य प्रतिवचनम्, नहि= नास्ति, गृह्णन्ति= लिखन्ति, ते= विचारपुरुषाः, चौरवत्= तस्कर इव, सदा= सर्वदा, दण्ड्याः= दण्डनीयाः॥ १५१ ॥

हिन्दी—जो सभासद परस्पर एक-दूसरे के सामने ही वादी और प्रतिवादी के अभियोग एवं उत्तर को सुनकर स्वीकार नहीं करते या लिख नहीं लेते, विचारार्थ नियुक्त वे सभासद सदैव चोर की तरह दण्डनीय होते हैं॥ १५१ ॥

अन्योऽन्ययोरिति। ये सभ्याः विचारनियुक्ताः पुरुषाः वादिनोः अर्थिप्रत्यर्थिनोः अन्योऽन्ययोः परस्परयोः समक्षं पक्षं वा उत्तरं न हि गृह्णन्ति, ते चौरवत् सदा दण्ड्याः॥ १५१ ॥

लिखिते शोधिते सम्यक् सति निर्दोष उत्तरे।
अर्थिप्रत्यर्थिनोर्वापि क्रिया कारणमिष्यते॥ १५२ ॥

अन्वयः—लिखिते उत्तरे सम्यक् शोधिते निर्दोषे सति अर्थिप्रत्यर्थिनोः क्रिया कारणम् इष्यते॥ १५२ ॥

व्याख्या—लिखते= लिपिबद्धकृते, उत्तरे= प्रतिवचने, सम्यक्= सुष्ठुतया, शोधिते= परिमार्जिते, अत एव निर्दोषे= दोषरहिते सति, अर्थिप्रत्यर्थिनोः= वादिप्रतिवादिनोः, क्रिया= प्रमाणप्रस्तुतीकरणादिरूपा, कारणम्= जयपत्रस्य साधनम्, इष्यते= अभिलषते, अन्विष्यते वेति॥१५२ ॥

हिन्दी—लिखित उत्तर के भलीभाँति संशोधित हो जाने पर जब दोषरहित सिद्ध हो जाय तब वादी और प्रतिवादी की क्रिया अर्थात् जयपत्र के कारणभूत गवाही का लेखपत्र प्रदर्शन जैसी क्रिया प्रारम्भ करे॥ १५२ ॥

लिखिते इति। लिखिते उत्तरे सम्यक् शोधिते अत एव निर्दोषे सति अतःपरमित्यर्थः, अर्थिप्रत्यर्थिनोः क्रिया साक्षिलेख्यादिप्रमाणप्रदर्शनादिरूपा कारणं जयपत्रस्येति भावः इष्यते॥ १५२ ॥

पूर्वपक्षः स्मृतः पादो द्वितीयश्चोत्तरात्मकः।
क्रियापादस्तृतीयस्तु चतुर्थो निर्णयाभिधः॥ १५३ ॥

अन्वयः—पूर्वपक्षः पादः, उत्तरात्मकः द्वितीयः, क्रियापादः तृतीयः चतुर्थः तु निर्णयाभिधः स्मृतः॥ १५३ ॥

व्याख्या—पूर्वपक्षः = विवादस्य प्रथमः पादः, उत्तरात्मकः = अभियोगस्य प्रतिवचनात्मकः द्वितीयः पादः, क्रिया तु = विचारप्रक्रिया तु, तृतीयः पादः, चतुर्थः पादः, निर्णयाभिधः = विचारपतिना प्रदत्तसिद्धान्तस्तु व्यवहारस्य चतुर्थः पादः, स्मृतः = उक्तः ॥ १५३ ॥

हिन्दी—इस तरह किसी भी मुकदमे के चार चरण होते हैं—अभियोग पहला चरण है, उसका उत्तर दूसरा चरण, विचार-प्रक्रिया तीसरा चरण तथा निर्णय अन्तिम अर्थात् चौथा चरण होता है ॥ १५३ ॥

पूर्वपक्ष इति। पूर्वपक्षः पादः प्रथम इति भावः, उत्तरात्मकः द्वितीयः पादः, क्रियापादः तृतीयः, चतुर्थस्तु पादः निर्णयाभिधः सिद्धान्तरूप इत्यर्थः, एतेन व्यवहारस्य चतुष्पादत्वयुक्तम् ॥ १५३ ॥

कार्य्यं हि साध्यमित्युक्तं साधनन्तु क्रियोच्यते।
अर्थी तृतीयपादे तु क्रियया प्रतिपादयेत् ॥ १५४ ॥

अन्वयः—साध्यं हि कार्यम् इत्युक्तं, क्रिया साधनम् इत्युच्यते। अर्थी तु तृतीयपादे क्रियया प्रतिपादयेत् ॥ १५४ ॥

व्याख्या—साध्यम् = अनुष्ठेयम्, हि = यतः, कार्यम्, इति = एवम्, उक्तम् = कथितम्, क्रिया = व्यवहारे साक्षिकथनलेख्यादि, साधनम् = साध्यस्योपकरणम्, उच्यते, तस्मात् अर्थी = वादी, तृतीयपादे = व्यवहारस्य तृतीयचरणे, तु, क्रियया = पूर्वकथितरूपेण, प्रतिपादयेत् = साध्यं सम्पादयेदिति ॥ १५४ ॥

हिन्दी—कार्य को साध्य और साधन को क्रिया कहते हैं। अतः वादी को मुकदमे की तहकीकात (तीसरा चरण) समाप्त हो जाने पर साधन अर्थात् प्रमाणों को न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत कर देना चाहिए ॥ १५४ ॥

कार्य्यमिति। साध्यं कार्य्यमिति उक्तं, क्रिया साक्षिलेख्यादिः साधनं साध्यस्य प्रमाणम् उच्यते, तस्मात् अर्थी तृतीयपादे व्यवहारस्य तृतीयचरणे क्रियया उक्तरूपया प्रतिपादयेत् साध्यं प्रमापयेदित्यर्थः ॥ १५४ ॥

चतुष्पाद् व्यवहारः स्यात् प्रतिपत्त्युत्तरं विना ॥ १५५ ॥

अन्वयः—प्रतिपत्त्युत्तरं विना व्यवहारः चतुष्पाद् स्यात् ॥ १५५ ॥

व्याख्या—प्रतिपत्तिः = उपलब्धिर्वाऽधिगमनस्वरूपम्, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, विना = विहाय, अपरेषु त्रिषु उत्तरेषु, व्यवहारः = कार्यः, चतुष्पाद् = चतुश्चरणम्, स्यात् = भवेत् ॥ १५५ ॥

हिन्दी—प्रतिपत्ति अर्थात् सत्य उत्तर में जहाँ वादी प्रतिवादी के अभियोग को सीधा स्वीकार कर लेता है, वहाँ मुकदमा दो चरण का ही होता है। शेष स्थिति में मुकदमे के चार चरण होते हैं ॥ १५५ ॥

चतुष्पादिति। प्रतिपत्तिरूपम् उत्तरं विना अपरेषु त्रिषु उत्तरेषु इत्यर्थः, व्यवहारः चतुष्पाद् स्यात्, प्रतिपत्त्युत्तरेषु द्विपादे च तत्र क्रियापादस्य निर्णयपादस्य वा प्रयोजनकत्वादिति भावः ॥ १५५ ॥

क्रमागतान् विवादांस्तु पश्येद् वा कार्य्यगौरवात् ॥ १५६ ॥

अन्वयः—क्रमागतान् विवादान् वा कार्य्यस्य गौरवात् पश्येत् ॥ १५६ ॥

व्याख्या—क्रमागतान् = क्रमेण = आनुपूर्व्येण, आगतान् = सम्प्राप्तान्, विवादान् =

व्यवहारान्, वा = अथवा, कार्यस्य = व्यवहारस्य, गौरवात् = लाघवगौरवमपेक्ष्य, अत्र यदर्थे पञ्चमी विभक्तिः, पश्येत् = अवलोकयेत् ॥ १५६ ॥

हिन्दी—राजा मुकदमे को क्रमानुसार अथवा मुकदमे की लघुता-गुरुता के अनुसार जैसा उचित समझे तहकीकात करे ॥ १५६ ॥

क्रमागतानिति। क्रमागतान् यथाक्रमेण उपस्थितान् विवादान् क्रमेण वा कार्य्यस्य गौरवात् गौरवमपेक्ष्य इत्यर्थः, यदर्थे पञ्चमी, पश्येत् ॥ १५६ ॥

यस्य वाभ्यधिका पीडा कार्य्यं वाभ्यधिकं भवेत्।
वर्णानुक्रमतो वापि नयेत् पूर्वं विवादयेत्॥ १५७ ॥

अन्वयः—वा यस्य पीडा अभ्यधिका वा कार्यम् अधिकं भवेत् वाऽपि वर्णानुक्रमतः पूर्वं नयेत् विवादयेत् च ॥ १५७ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, यस्य = अभियोगिनः, पीडा = कष्टम्, अभ्यधिका = अत्यधिका, वा = अथवा, कार्यम् = कृत्यम्, व्यवहारञ्च, अधिकम् = बहुलम्, भवेत् = स्यात्, इत्यनुचिन्त्य, वाऽपि = अथवा, वर्णानुक्रमतः = जात्यानुक्रमेण, पूर्वम् = प्रथमम्, नयेत् = व्यवहारं गृहीत्वा, विवादयेत् = विचारयेत् ॥ १५७ ॥

हिन्दी—जिस वादी को अधिक पीड़ा हो अथवा अधिक कार्य हो, इसका विचार कर वर्णानुक्रम से मुकदमे की पहली पेशी में लेकर निर्णय करे ॥ १५७ ॥

यस्येति। यस्य वा पीडा अभ्यधिका, वा कार्य्यम् अभ्यधिकम् अत्यधिकं भवेत् एवं विविच्येति शेषः, वापि अथवा वर्णानुक्रमतः ब्राह्मणादिक्रमेण पूर्वं नयेत् विवादयेच्च अभियोगं गृहीत्वा विचारयेदित्यर्थः ॥ १५७ ॥

कल्पयित्वोत्तरं सभ्यैर्दातव्यैकस्य भावना ॥ १५८ ॥

अन्वयः—सभ्यैः उत्तरं कल्पयित्वा एकस्य भावना दातव्या ॥ १५८ ॥

व्याख्या—सभ्यैः = सांसद्भिः, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, कल्पयित्वा = यथोक्तरीत्या प्रतिवादिनः समीपात् सङ्गृह्य, एकस्य = अभियोगिनः, भावना = चिन्तनस्यावसरः, दातव्या = प्रदानं कर्त्तव्येति ॥ १५८ ॥

हिन्दी—सांसदों अर्थात् विचारकों को चाहिए कि प्रतिवादी से उत्तर सुनकर वादी को सोचने-विचारने का कुछ अवसर अवश्य दे ॥ १५८ ॥

कल्पयित्वेति। सभ्यैः राजपुरुषैः उत्तरं कल्पयित्वा यथोक्तरूपेण प्रतिवादिनः सकाशात् आदाय इत्यर्थः, एकस्य वादिनः भावना चिन्ता साध्यसाधनार्थं चिन्तावसर इत्यर्थः दातव्या ॥ १५८ ॥

साध्यस्य साधनार्थं हि निर्दिष्टा यस्य भावना।
विभावयेत् प्रतिज्ञातं सोऽखिलं लिखितादिना ॥ १५९ ॥

अन्वयः—साध्यस्य साधनार्थं यस्य भावना निर्दिष्टा, सः लिखितादिना अखिलं प्रतिज्ञातं विभावयेत् ॥ १५९ ॥

व्याख्या—साध्यस्य = अभियोगस्य, साधनार्थम् = प्रमाणितार्थम्, यस्य = अभियोगिनः, भावना = अनुचिन्तनम्, निर्दिष्टा = कथिता, सः लिखितादिना = विभिन्नसाधनेन,

अखिलम् = समस्तम्, प्रतिज्ञातम् = संश्रुतम्, विभावयेत् = प्रतिपादयेत् ॥ १५९ ॥

हिन्दी—अभियोग सिद्ध करने वाले साधनों को जुटाने के लिए वादी को जो मौका दिया गया, वह लिखित या साक्ष्य जैसे साधनों की सहायता से सम्पूर्ण अभियोग को प्रमाणित करे ॥ १५९ ॥

साध्यस्येति। साध्यस्य पक्षस्य साधनार्थं प्रामाण्यार्थं यस्य वादिनः भावना निर्दिष्टा कथिता, सः लिखितादिना साधनेन अखिलं समस्तं प्रतिज्ञातं विभावयेत् प्रतिपादयेत् प्रमापयेदित्यर्थः ॥ १५९ ॥

न चैकस्मिन् विवादे तु क्रिया स्याद् वादिनोर्द्वयोः ॥ १६० ॥

अन्वयः—एकस्मिन् विवादे द्वयोः वादिनोः क्रिया न च स्यात् ॥ १६० ॥

व्याख्या—एकस्मिन् = एकमात्रे, विवादे = व्यवहारे, द्वयोः = उभयोः, वादिनोः = वादिप्रतिवादिनोः, क्रिया = उपकरणनिश्चयार्थम्, न च = नैव, स्यात् = भवेत् ॥ १६० ॥

हिन्दी—एक ही मुकदमे में दोनों वादी और प्रतिवादी को एक ही साथ अपने-अपने पक्ष की सम्पुष्टि हेतु प्रमाण उपस्थित करने का आदेश देना उचित नहीं होता है ॥ १६० ॥

न चेति। एकस्मिन् विवादे द्वयोः वादिनोः अर्थिप्रत्यर्थिनोः क्रिया साधननिर्देशार्थं प्रयासः न च स्यात् एकेनैव क्रिया निर्देश्या इति भावः ॥ १६० ॥

मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि।
प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम् ॥ १६१ ॥

अन्वयः—मिथ्या पूर्ववादे तथा कारणे प्रतिवादिनि क्रिया प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी क्रियां निर्दिशेत् ॥ १६१ ॥

व्याख्या—मिथ्या = असत्योत्तरे, पूर्ववादे = प्रथमाभियोगिनि, कारणे = प्रत्यवस्कन्दने उत्तरे, प्रतिवादिनि = प्रत्यर्थिनि, क्रिया = साधननिर्देशादिप्रकिया, प्राङ्न्यायकारणोक्तौ = प्राङ्न्यायविधिना साधनोक्तौ, तु प्रत्यर्थी = प्रतिवादी, क्रियाम् = व्यवहारनिर्देशिकां क्रियाम्, निर्दिशेत् = निर्देशं कुर्यात् ॥ १६१ ॥

हिन्दी—यदि प्रतिवादी का उत्तर झूठा हो तो वादी को उसे असत्य सिद्ध करने के लिए अवसर देना चाहिए और यदि प्रतिवादी का प्रमाण झूठा हो तो उसे सत्य सिद्ध करने का प्रमाण माँगना चाहिए। यदि प्रतिवादी यह कहे कि इस विषय पर इनके साथ मेरा विवाद पहले भी हुआ है, जिसमें मेरी जीत हुई है तो इसका भी प्रमाण माँगना चाहिए ॥ १६१ ॥

मिथ्येति। मिथ्योत्तरे पूर्ववादे प्रथमवादिनि, तथा कारणे प्रत्यवस्कन्दने उत्तरे प्रतिवादिनि क्रिया साधननिर्देशभारः स्यादित्यर्थः, प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी प्रतिवादी क्रियां निर्दिशेत् ॥ १६१ ॥

कारणात् पूर्वपक्षोऽपि उत्तरत्वं प्रपद्यते ॥ १६२ ॥

अन्वयः—पूर्वपक्षोऽपि कारणात् उत्तरत्वं प्रपद्यते ॥ १६२ ॥

व्याख्या—पूर्वपक्षोऽपि = अभियोगी अपि, कारणात् = कस्मादपि हेतोः, कदाचित्, उत्तरत्वम् = उत्तरपक्षत्वम्, प्रपद्यते = आश्रयते ॥ १६२ ॥

हिन्दी—पूर्वपक्ष भी कभी-कभी कारणवश उत्तरपक्ष का अवलम्बन करता है ॥ १६२ ॥

कारणादिति। पूर्वपक्षोऽपि कारणात् कस्मादपि हेतोरित्यर्थः, कदाचित् उत्तरत्वम् उत्तरपक्षत्वं प्रपद्यते अवलम्बते ॥ १६२ ॥

ततोऽर्थी लेखयेत् सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम्।
तत् साधनन्तु द्विविधं मानुषं दैविकं तथा ॥ १६३ ॥

अन्वयः—ततः अर्थी सद्यः प्रतिज्ञातस्य अर्थस्य साधनं लेखयेत्। तत् साधनं तु द्विविधम्—मानुषं दैविकं च ॥ १६३ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, अर्थादुत्तरप्रदानानन्तरम्, अर्थी = वादी, सद्यः = तत्क्षणमेव, प्रतिज्ञातस्य = प्रतिश्रुतस्य, अर्थस्य = विषयस्य, साधनम् = प्रामाण्यम्, कारणम् = हेतुः, लेखयेत् = लिपिबद्धं कुर्यात्, तत् साधनन्तु, द्विविधम् = प्रकारद्वयमस्ति—मानुषम् = मानवीयम्, तथा दैविकम् = देवतासम्बन्धिनम् ॥ १६३ ॥

हिन्दी—पूर्वपक्ष के उत्तर देने के बाद वादी उसी समय उस उत्तर को प्रतिश्रुत विषय को सिद्ध करने के लिए उसे सप्रमाण लिखवा दे। यह प्रमाण मानवीय एवं दैवी दो तरह का होता है ॥१६३ ॥

तत इति। ततः उत्तरदानानन्तरम् अर्थी सद्यः तत्क्षणात् प्रतिज्ञातस्य अर्थस्य विषयस्य साधनं प्रमाणभूतं कारणं लेखयेत्, तत् साधनन्तु द्विविधं, मानुपं तथा दैविकम् ॥ १६३ ॥

क्रिया स्याल्लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति मानुषम्।
दैवं घटादि तद्भव्यं भूतालाभान्नियोजयेत् ॥ १६४ ॥

अन्वयः—लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्च इति क्रिया मानुषं स्यात्। घटादि दैवं भूतस्य अलाभात् तद् भव्यं नियोजयेत् ॥ १६४ ॥

व्याख्या—लिखितम् = लिपिबद्धम्, भुक्तिः = भोगः, साक्षिणः = प्रेक्षकाश्च, इति = इत्यम्, त्रिविधा क्रिया, मानुपम् = मानवीयम्, स्यात् = भवेत्। घटादि = तुलादण्डादिरूपं, दैवीम्, भूतस्य = यथार्थस्य, अलाभात् = अप्राप्तेः, तत् = भव्यादिकम्, नियोजयेत् = नियोजनं कुर्यात् ॥ १६४ ॥

हिन्दी—इसमें लिखित, अधिकृत एवं साक्षी—ये तीन मानवीय प्रमाण होते हैं। तुलादण्डादिरूप प्रमाण को दैवी कहते हैं, इसी को भव्य भी कहते हैं। इनका उपयोग यथार्थ का निश्चय न होने पर किया जाता है ॥ १६४ ॥

क्रियेति। लिखितं, भुक्तिः भोगः, साक्षिणश्च इति त्रिविधा क्रिया मानुषं, घटादि तुलादण्डादिरूपं दैवम्। भूतस्य यथार्थस्य अलाभात् अप्राप्तेः तद् भव्यं घटादि नियोजयेत् ॥ १६४ ॥

तत्त्वाच्छलानुसारित्वाद् भूतं भव्यं द्विधा स्मृतम्।
तत्त्वं सत्यार्थाभिधायि कूटाद्यभिहितं छलम् ॥ १६५ ॥

अन्वयः—तत्त्वस्य छलस्य च अनुसारित्वात् साधनं द्विधा भूतं भव्यं स्मृतम्। सत्यार्थस्य अभिधायि तत्त्वं कूटाद्यभिहितं छलम् ॥ १६५ ॥

व्याख्या—तत्त्वस्य = यथार्थस्य, छलस्य = कपटस्य, च, अनुसारित्वात् = अनुकूलत्वात्,

साधनम् = उपकरणम्, द्विधा = प्रकारद्वयम्, स्मृतम् = कथितम्। तद्यथा—भूतम् = मानवीयम्, भव्यम् = दैवीम्, स्मृतम् = कथितम्, सत्यार्थस्य = यथार्थस्य, अभिधायि = प्रतिपादकं साधनम्, तत्त्वम्, कूटाद्यभिहितम् = कपटादिसमन्वितम्, साधनं, छलं स्मृतम्॥१६५॥

हिन्दी—तत्त्व तथा छल के अनुसार भूत एवं भव्य दो प्रकार के साधन कहे गये हैं। यथार्थ का प्रतिपादक साधन तत्त्व एवं तथा कपटयुक्त साधन छल है॥१६५॥

तत्त्वेति। तत्त्वस्य छलस्य च अनुसारित्वात् साधनं द्विविधं भूतं भव्यञ्च। सत्यार्थस्य अभिधायि प्रतिपादकं साधनं तत्त्वं, कूटाद्यभिहितं कपटादियुक्तं साधनं छलम्॥१६५॥

छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान् नयेन्नृपः।
युक्त्यानुमानतो नित्यं सामादिभिरुपक्रमैः॥१६६॥

अन्वयः—नृपः युक्त्या अनुमानतः च सामादिभिः उपक्रमैः छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान् नित्यं नयेत्॥१६६॥

व्याख्या—नृपः = राजा, युक्त्या = कौशलेन, अनुमानतः = अभ्यूहनेन, सामादिभिः = सामदानादिभिः, उपक्रमैः = उपायैश्च, छलम् = कपटम्, निरस्य = परित्यज्य, भूतेन = याथार्थ्येन, व्यवहारान् = विवादान्, नित्यम् = सततं, नयेत् = विचारयेदिति॥१६६॥

हिन्दी—राजा युक्ति, अनुमान तथा सामादि उपायों से छल को हटाकर यथार्थ साधनों की सहायता से सदा मुकदमें पर विचार करे॥१६६॥

छलमिति। नृपः युक्त्या अनुमानतः अनुमानेन च सामादिभिः उपक्रमैः उपायैश्च छलं निरस्य भूतेन याथार्थ्येन व्यवहारान् नित्यं सदा नयेत् पश्येदित्यर्थः॥१६६॥

न कालहरणं कार्य्यं राज्ञा साधनदर्शने।
महान् दोषो भवेत् कालाद्धर्मव्यापत्तिलक्षणः॥१६७॥

अन्वयः—राज्ञा साधनदर्शने कालहरणं न कार्यम्। कालात् धर्मव्यापत्तिलक्षणः महान् दोषः भवेत्॥१६७॥

व्याख्या—राजा = नृपेण, व्यवहारस्य = विवादस्य, दर्शने = अवलोकने, कालहरणम् = समयविनष्टम्, न = नहि, कार्यम् = विधेयम्। कालात् = समयातिपातात् कालक्षेपाद्वा, धर्मव्यापत्तिलक्षणः = धर्महानिरूपः, महान् = अतीव, दोषः = अपराधः, भवेत् = स्यादिति॥१६७॥

हिन्दी—राजा वादी-प्रतिवादी के साक्ष्यों को देखने में कालक्षेप न करे। क्योंकि ऐसा करने से धर्मतत्त्व की हानि रूप महान् अपराध होता है॥१६७॥

नेति। राज्ञा साधनदर्शने कालहरणं न कार्य्यं, कालात् कालहरणात् धर्मव्यापत्तिलक्षणः धर्महानिरूपः महान् दोषः भवेत्॥१६७॥

अर्थिप्रत्यर्थिप्रत्यक्षं साधनानि प्रदर्शयेत्।
अप्रत्यक्षं तयोर्नैव गृह्णीयात् साधनं नृपः॥१६८॥

अन्वयः—नृपः अर्थिप्रत्यर्थिप्रत्यक्षं साधनानि प्रदर्शयेत्। तयोः अप्रत्यक्षं साधनं नैव गृह्णीयात्॥१६८॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अर्थिप्रत्यर्थिनोः = वादिप्रतिवादिनोः, प्रत्यक्षम् = नयनयोः पुरतः, साधनानि = लिखिताद्युपकरणानि, प्रदर्शयेत् = दृग्गोचरं कारयेत्। तयोः = वादिप्रतिवादिनोः, अप्रत्यक्षम् = असमक्षम्, साधनम् = उपकरणम्, नैव = नास्त्येव, गृह्णीयात् = स्वीकुर्यात् ॥१६८॥

हिन्दी—राजा वादी-प्रतिवादी दोनों के सामने ही मुकदमे के साधनों को दिलवाये। उनके परोक्ष में उन साधनों को न देखे॥१६८॥

अर्थीति। नृपः अर्थिप्रत्यर्थिनोः प्रत्यक्षं साधनानि प्रदर्शयेत्, तयोः अप्रत्यक्षम् असमक्षं साधनं नैव गृह्णीयात् ॥१६८॥

साधनानाञ्च ये दोषा वक्तव्यास्ते विवादिना।
गूढास्तु प्रकटाः सभ्यैः काले शास्त्रप्रदर्शनात् ॥ १६९ ॥

अन्वयः—साधनानाञ्च ये दोषाः ते विवादिना वक्तव्याः। गूढास्तु सभ्यैः काले शास्त्रप्रदर्शनात् प्रकटाः ॥१६९॥

व्याख्या—साधनानाम् = प्रमाणाद्युपकरणानाम्, ये दोषाः = दुर्गुणाः, ते = सर्वे, विवादिना = वादिना वा प्रतिवादिना, वक्तव्याः = कथितव्याः। गूढाः = प्रच्छन्नाः दोषाः, सभ्यैः = विचारनियुक्तैः राजपुरुषैः, काले = यथावसरे, शास्त्राणाम् = धर्मग्रन्थानाम्, प्रदर्शनात् = प्रकाशनात्, प्रकटाः = स्पष्टाः, यथा तथा वक्तव्याः इति ॥१६९॥

हिन्दी—वादी या प्रतिवादी एक-दूसरे के साधनों के दोषों को खुलकर बतलाये तथा छिपे हुए साधन-दोषों को विचार के लिए नियुक्त राजपुरुषों के सामने यथासमय शास्त्र के आधार पर प्रकट रूप से कहने चाहिए॥१६९॥

साधनानामिति। साधनानां प्रमाणानां ये दोषाः, ते विवादिना अर्थिना प्रत्यर्थिना वा वक्तव्याः, गूढाः गुप्तास्तु दोषाः सभ्यैः विचारनियुक्तैः पुरुषैः काले विचारकाले शास्त्राणां प्रदर्शनात् प्रकटाः प्रस्फुटाः यथा तथा वक्तव्या इति शेषः॥१६९॥

अन्यथा दूषयन् दण्ड्यः साध्यार्थादेव हीयते।
विमृश्य साधनं सम्यक् कुर्य्यात् कार्य्यविनिर्णयम् ॥ १७० ॥

अन्वयः—अन्यथा दूषयन् दण्ड्यः साध्यार्थात् एव हीयते। साधनं सम्यक् विमृश्य कार्यनिर्णयं कुर्यात् ॥१७०॥

व्याख्या—अन्यथा = अन्येन प्रकारेण, दूषयन् = दोषारोपणं कुर्वन्, दण्ड्यः = दण्डनीयो भवति, साध्यार्थात् = उपकरणहेतोः, हीयते = प्रभ्रश्यते च। तस्मात्, साधनम्, सम्यक् = सुष्ठुतया, विमृश्य = अनुचिन्त्य, कार्यनिर्णयम्—कार्य्यस्य = व्यवहारस्य, निर्णयम् = निश्चयं कुर्यात् ॥१७०॥

हिन्दी—वादी या प्रतिवादी शास्त्र-विरुद्ध व्यर्थ किसी साधन में दोष दिखलाता है तो वह दण्डनीय होता है और जिसे सिद्ध करना चाहता है, उसे यदि प्रमणित नहीं कर पाता है तो मुकदमा खारिज कर देना चाहिए। अतः राजा प्रमाणों पर पूरा विचार कर ही मुकदमे का फैसला सुनाये॥१७०॥

अन्यथेति। अन्यथा अन्येन प्रकारेण अशास्त्रमार्गेणेत्यर्थः, दूषयन् दण्ड्यः दण्डनीयः भवति,

साध्यार्थात् साधनीयात् विषयात् हीयते प्रभ्रश्यते च। तस्मात् साधनं सम्यक् विमृश्य विविच्य कार्य्यनिर्णयं कुर्य्यात् ॥ १७० ॥

कूटसाधनकारी तु दण्ड्यः कार्य्यानुरूपतः।
द्विगुणं कूटसाक्षी तु साक्ष्यलोपी तथैव च ॥ १७१ ॥

अन्वयः—कूटसाधनकारी कार्यानुरूपतः दण्ड्यः। कूटसाक्षी तथैव साक्ष्यलोपी द्विगुणं दण्ड्यः ॥ १७१ ॥

व्याख्या—कूटम् = कपटम्, साधनम् = उपकरणम्, करोतीति तथोक्तः, वादी वा प्रतिवादी, कार्यस्य = व्यवहारस्य, अनुरूपात् = अनुसारात्, दण्ड्यः = दण्डनीयः। कूटसाक्षी = कपटप्रेक्षकः, तथा = तेनैव प्रकारेण, साक्ष्यलोपी = प्रमाणविनष्टा, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, दण्ड्यः = दण्डनीयः ॥ १७१ ॥

हिन्दी—झूठा प्रमाण उपस्थित करने वाले वादी या प्रतिवादी को मुकदमे के अनुसार कम या ज्यादे दण्ड देना चाहिए। झूठी गवाही देने वाले तथा अपराध के प्रमाण को नष्ट करने वाले को उससे दूना जुर्माना या दण्ड देना चाहिए ॥ १७१ ॥

कूटेति। कूटं कपटं साधनं करोतीतिं तथोक्तः वादी वा प्रतिवादी कार्य्यानुरूपतः कार्य्यस्य अनुरूपात् गौरवलाघवानुसारादित्यर्थः दण्ड्यः। कूटसाक्षी तथा साक्ष्यलोपी साक्ष्यमन्यथा कुर्वन्नित्यर्थः, जनः द्विगुणं यथा तथा दण्ड्य इति शेषः ॥ १७१ ॥

अधुना लिखितं वच्मि यथावदनुपूर्वशः।
अनुभूतस्मारकन्तु लिखितं ब्रह्मणा कृतम् ॥ १७२ ॥

अन्वयः—अधुना यथावदनुपूर्वशः लिखितं वच्मि। ब्रह्मणा अनुभूतस्मारकं लिखितं कृतम् ॥ १७२ ॥

व्याख्या—अधुना = सम्प्रति, यथावत् = यद्वत्, अनुपूर्वशः = आनुपूर्व्येण, लिखितम् = साधनम्, वच्मि = वदामि, ब्रह्मणा = विधिना, अनुभूतस्मारकम् = पूर्वकृतस्मरणार्थम्, लिखितम् = लेखनविधिम्, कृतम् = रचितम् ॥ १७२ ॥

हिन्दी—इस समय मैं एक के बाद दूसरा ज्यों-के-त्यों लिखित साधन के बारे में बतलाता हूँ। ब्रह्मा ने किये गये कर्म की याद दिलाने के लिए ही लिखित साधन की रचना की है ॥ १७२ ॥

अधुनेति। अधुना सम्प्रति यथावत् अनुपूर्वशः अनुक्रमेण लिखितं साधनमित्यर्थः, वच्मि ब्रवीमि। ब्रह्मणा विधात्रा अनुभूतस्मारकं पूर्वकृतस्मरणार्थमित्यर्थः लिखितं कृतं निर्मितम् ॥ १७२ ॥

राजकीयं लौकिकञ्च द्विविधं लिखितं स्मृतम्।
स्वहस्तलिखितं वान्यहस्तेनापि विलेखितम्।
असाक्षिमत् साक्षिमच्च सिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः ॥ १७३ ॥

अन्वयः—लिखितं द्विविधं स्मृतं—राजकीयं लौकिकञ्च, स्वहस्तलिखतं वा अन्यहस्तेनापि विलेखितम् असाक्षिमत् साक्षिमत् देशस्थितेः तयोः सिद्धिः भवेत् ॥ १७३ ॥

व्याख्या—लिखितम् = लिपिबद्धम्, द्विविधम् = प्रकारद्वयम्, स्मृतम् = कथितम्, राजकीयम्

= प्रशासकीयम्, च = पुनः, लौकिकम् = व्यावहारिकमाचारिकं वेति, तदपि द्विविधम्—स्वहस्तलिखितम्—स्वस्य = आत्मनः, हस्तेन = करेण, लिखितम् = लिपिबद्धं कृतम्, वा = अथवा, अन्यहस्तलिखितम्—अन्यस्य = अपरस्य जनस्य, हस्तेन = करेण, लिखितम् = अङ्कितम्, विलेखितम् = विशिष्टेन लिंखितम्, पुनश्च द्विविधम्—आसाक्षिमत् = प्रेक्षकहस्ताक्षरविहीनम्, च = पुनः, साक्षिमत् = प्रेक्षकहस्ताक्षरसमन्वितम्, देशस्थितेः = स्थानानुसारेण, तयोः = उभयोः साक्षिकासाक्षिकयोः, सिद्धिः = साफल्यम्, भवेदिति ॥ १७३ ॥

हिन्दी—लिखित साधन दो प्रकार के होते हैं—राजकीय एवं लौकिक और इनमें से प्रत्येक लिखित फिर अपने हाथ से या दूसरे के हाथ से लिखा होने के कारण दो प्रकार का होता है। पुनः सभी प्रकार के लेख गवाह के हस्ताक्षर सहित एवं गवाही रहित होते हैं ॥ १७३ ॥

राजकीयमिति। लिखितं द्विविधं स्मृतं राजकीयं लौकिकञ्च। तदपि द्विविधं स्वहस्तलिखितम् अन्यहस्तलिखितं वा। पुनश्च द्विविधम् असाक्षिकं साक्षिमच्च, देशस्थितेः स्थानानुसारेण उभयोः ससाक्षिकासाक्षिकयोः सिद्धिः भवेदित्यर्थः ॥ १७३ ॥

भागदानक्रियादानसंविद्दानऋणादिभिः ।
सप्तधा लौकिकं चैतत् त्रिविधं राजशासनम् ।
शासनार्थं ज्ञापनार्थं निर्णयार्थं तृतीयकम् ॥ १७४ ॥

अन्वयः—लौकिकं च एतत् भागदानक्रियादानसंविद्दानऋणादिभिः सप्तधा। राजशासनं तु त्रिविधम्—शासनार्थम्, ज्ञापनार्थं निर्णयार्थम् ॥ १७४ ॥

व्याख्या—लौकिकम् = व्यावहारिकं लिखितं च, एतत् भागैः = अंशैः, दानैः = प्रदानैः, क्रियाभिः = आचारैः, आदानैः = न्यासैः, संविद्भिः = प्रतिज्ञातैः, ऋणादिभिः = पर्युदञ्चनादिभिः, सप्तधा = सप्तप्रकारकं भवति, राजशासनन्तु, त्रिविधम्, शासनार्थम् = प्रशासनाय एकम्, ज्ञापनार्थम् = सूचनाय द्वितीयम्, तृतीयं तु निर्णयार्थम् = सिद्धान्तार्थम्, भवति ॥ १७४ ॥

हिन्दी—बटवारा, दान, आचार, धरोहर, इकरारनामा, सेवा तथा ऋण प्रभृति—ये लौकिक लेख के सात भेद होते हैं तथा राजकीय लेख शासन के लिए, सूचना देने के लिए तथा निर्णय देने के लिए—तीन तरह के होते हैं ॥ १७४ ॥

भागेति। लौकिकञ्च लिखितम् एतत् भागदानक्रियादानसंविद्दानऋणादिभिः निमित्तभूतैः सप्तधा सप्तविधमित्यर्थः, राजशासनन्तु त्रिविधं, शासनार्थम् एकं, ज्ञापनार्थं द्वितीयं, निर्णयार्थं तृतीयम् ॥ १७४ ॥

साक्षिमद्रिक्थ्यभिमतं भागपत्रं सुभक्तियुक् ।
सिद्धिकृच्चान्यथा पित्रा कृतमप्यकृतं स्मृतम् ॥ १७५ ॥

अन्वयः—साक्षिमत् रिक्थ्यभिमतं सुभक्तियुक् भागपत्रं सिद्धिकृत्, अन्यथा पित्रा कृतमपि अकृतं स्मृतम् ॥ १७५ ॥

व्याख्या—साक्षिमत् = ससाक्षिकं, रिक्थिभिः = गोत्रजैः, अभिमतम् = सम्मतम्, सुभक्तियुक् = सुष्ठुतया विभाजितम्, भागपत्रम् = वण्टनलेख्यम्, सिद्धिकृत् = निर्णीतम्, निर्धारितं वा, अन्यथा = इतरथा, पित्रा कृतमपि = जनकेन विभाजितमपि, भागपत्रम् = वण्टनलेख्यम्, अकृतम् = अस्वीकार्यम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ १७५ ॥

हिन्दी—बटवारे के दस्तावेज पर गवाही का हस्ताक्षर हो, पट्टीदारों की स्वीकृति हो, अच्छी तरह बटवारे की वस्तु का निर्णय किया गया हो, वह माननीय होता है; नहीं तो बाप का किया गया बटवारे का लेख भी अमान्य होता है ॥ १७५ ॥

साक्षिमदिति। साक्षिमत् ससाक्षिकं रिक्थिभिः दायादैः अभिमतं सुभक्तियुक् सुष्ठुरचनायुक्तं भागपत्रं वण्टनलेख्यं सिद्धिकृत्, अन्यथा अतथात्वे इत्यर्थः, पित्रा कृतमपि भागपत्रम् अकृतं स्मृतम् अग्राह्यमित्यर्थः ॥ १७५ ॥

दायादाभिमतं दानक्रयविक्रयपत्रकम् ।
स्थावरस्य ग्रामपादिसाक्षिकं सिद्धिकृत् स्मृतम् ॥ १७६ ॥

अन्वयः—स्थावरस्य दानक्रयविक्रयपत्रकं दायादाभिमतं ग्रामपादिसाक्षिकं सिद्धिकृत् स्मृतम् ॥ २७६ ॥

व्याख्या—स्थावरस्य = अचलस्य सम्पदः, दानपत्रम् = दानलेखः, क्रयपत्रम् = मूल्येन क्रीत-पदार्थलेखः, विक्रयपत्रम् = विपणनपत्रम्, च, दायादाभितम्—दायादैः = गोत्रजैः, अभिमतम् = मनोनीतम्, ग्रामपादिसाक्षिकम् = ग्रामप्रधानादिसाक्ष्यसहितम्, सिद्धिकृत् = निर्णीतपत्रम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ १७६ ॥

हिन्दी—अचल सम्पत्ति-विषयक दानपत्र, खरीदपत्र एवं विक्रयपत्र यदि पट्टीदारों से अनुमोदित, ग्राममुखिया की गवाही हो तो माननीय है, अन्यथा अमान्य होता है ॥ १७६ ॥

दायादेति। स्थावरस्य भूम्यादेः दानविक्रयपत्रं दानपत्रं विक्रयपत्रं क्रयपत्रञ्च दायादाभिमतं दायादैः अभिमतं सम्मतं ग्रामपादिसाक्षिकं ग्रामाध्यक्षसमेतं सत् सिद्धिकृत् स्मृतम् ॥ १७६ ॥

राज्ञा स्वहस्तसंयुक्तं स्वमुद्राचिह्नितं तथा ।
राजकीयं स्मृतं लेख्यं प्रकृतिभिश्च मुद्रितम् ॥ १७७ ॥

अन्वयः—राजकीयं लेख्यं राज्ञा स्वहस्तसंयुक्तं वा स्वमुद्राचिह्नितम् अथवा प्रकृतिभिश्च मुद्रितम् ॥ १७७ ॥

व्याख्या—राजकीयम् = प्रशासकीयम्, लेख्यम् = लेखपत्रम्, राज्ञा = नृपेण, स्वहस्तसंयुक्तम् = स्वकीयहस्ताक्षरेण सहितम्, वा स्वमुद्राचिह्नितम् = राजमुद्राङ्कितम्, अथवा नृपाभिमतेन प्रकृतिभिः = राजपुरुषैः, मुद्रितम् = अङ्कितम्, स्यादिति ॥ १७७ ॥

हिन्दी—जिस लेख पर राजा का हस्ताक्षर हो अथवा राजमुद्रा अंकित हो या राजा के आदेश से मंत्रियों की मुहर लगी हो, उसे राजकीय पत्र कहते हैं ॥ १७७ ॥

राज्ञेति। राजकीयं लेख्यं राज्ञा स्वहस्तसंयुक्तं स्वहस्ताक्षरितं वा स्वस्य मुद्रया चिह्नितम् अथवा राजानुमत्या प्रकृतिभिः राजपुरुषैः मुद्रितं भवतीति शेषः ॥ १७७ ॥

निवेश्य कालं वर्षं च मासं पक्षं तिथिं तथा ।
वेलां प्रदेशं विषयं स्थानं जात्याकृती वयः ॥ १७८ ॥
साध्यं प्रमाणं द्रव्यं च सङ्ख्यां नाम तथात्मनः ।
राज्ञां च क्रमशो नाम निवासं साध्यनाम च ॥ १७९ ॥
क्रमात् पितॄणां नामानि पीडामाहर्तृदायकौ ।
क्षमालिङ्गानि चान्यानि पक्षे सङ्कीर्त्य लेखयेत् ॥ १८० ॥

अन्वयः—पक्षे कालं वर्षं मासं पक्षं तिथिं तथा वेलां प्रदेशं विषयं स्थानं जात्या आकृती वयः साध्यं प्रमाणं संख्याम् आत्मनः नाम च तथा क्रमशः राज्ञां नाम निवासं साध्यनाम पितृणाम् आत्मनः नामानि पीडाम् आहर्तृदायकौ क्षमालिङ्गानि अन्यानि सङ्कीर्त्य लेखयेत् ॥ १७८-१८० ॥

व्याख्या—पक्षे = साध्ये, कालम् = समयम्, वर्षम् = अब्दम्, मासम् = पक्षद्वयावधिम्, पक्षम् = मासार्द्धम्, तिथिम् = दिनम्, प्रदेशम् = क्षेत्रम्, विषयम् = मण्डलम्, स्थानम् = ग्रामम्, जात्याकृती—जातिम् = वर्णम्, आकृतिम् = आकारम्, वयः = अवस्था, साध्यम् = प्रमाणम्, द्रव्यम् = धनम्, संख्याम् = अङ्कः, आत्मनः = स्वस्य, नाम = अभिधानम्, निवेश्य = उल्लिख्य, क्रमशः = क्रमेण, राज्ञाम् = नृपाणाञ्च, नाम = अभिधानम्, निवासम् = निवासस्थानम्, साध्यनाम—साध्यस्य = विवादस्य, नाम = संज्ञा, पितृणाम् = जनकानाम्, आत्मनः = स्वस्य, राज्ञाञ्चेति शेषः, नामानि = अभिधानानि, पीडाम् = कष्टम्, अभियोगभूततथ्यम्, आहर्तृदायकौ = उपार्जकदातारौ, नाम्नी, क्षमालिङ्गानि—क्षमायाः = सहिष्णुतायाः, लिङ्गानि = चिह्नानि, अन्यानि = अपराणि, आवश्यकवस्तूनि, सङ्कीर्त्य = कथयित्वा, लेखयेत् = उल्लेखं कारयेत् ॥ १७८-१८० ॥

हिन्दी—दावा में समय, साल, महीना, पक्ष, दिन, काल, प्रान्त, जिला, ग्राम, जाति, आकार, अवस्था, अभियोग, प्रमाण, धन और उनकी संख्या तथा अपना नाम लिखकर क्रमशः राजा का नाम, उनका निवासस्थान तथा साध्य का नाम, पिता-पितामह प्रभृति का नाम, अपनी पीडा, अर्जित करने वाले का नाम, देने वाले का नाम, क्षमा के चिह्न तथा इनके अतिरिक्त अन्य जो कुछ आवश्यक तथ्य हों, उसका नाम कहकर लिखवा दे ॥ १७८-१८० ॥

सम्प्रति लेखनप्रकारमाह—**निवेश्येत्यादि**। पक्षे साध्ये कालं वर्षं मासं पक्षं तिथिं वेलां प्रदेशं विषयं स्थानं जात्याकृती जातिम् आकृतिञ्चेत्यर्थः, वयः यौवनादिकं साध्यं प्रमाणं द्रव्यं संख्याम् आत्मनः नाम च निवेश्य, तथा क्रमशः यथाक्रमं राज्ञां नाम, निवासं साध्यानाम्, पितृणाम् आत्मनः राज्ञाञ्चेति शेषः, नामानि, पीडाम् अभियोगहेतुभूतामित्यर्थः, आहर्तृदायकौ अर्जकं दातारञ्चेत्यर्थः, क्षमालिङ्गानि क्षमायाः चिह्नानि अन्यानि आवश्यकानि च सङ्कीर्त्य लेखयेत् ॥ १७८-१८० ॥

यत्रैतानि न लिख्यन्ते हीनं लेख्यं तदुच्यते।
भिन्नक्रमं व्युत्क्रमार्थं प्रकीर्णार्थं निरर्थकम् ॥ १८१ ॥
अतीतकाललिखितं न स्यात् तत् साधनक्षमम्।
अप्रगल्भेन च स्त्रिया बलात्कारेण यत् कृतम् ॥ १८२ ॥

अन्वयः—यत्र एतानि न लिख्यन्ते तत् हीनं लेख्यम् उच्यते। यत् भिन्नक्रमं व्युत्क्रमार्थं, प्रकीर्णार्थं निरर्थकं वा अतीतकाललिखितं; यच्च अप्रगल्भेन स्त्रिया बलात्कारेण कृतं, तत् साधनक्षमं न स्यात् ॥ १८१-१८२ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्लेखे, एतानि = पूर्वोक्तानि, न = नहि, लिख्यन्ते, तत् = लेख्यम्, हीनम् = प्रमाणशून्यम्, निकृष्टम्, उच्यते = कथ्यते। यत् = लेखम्, भिन्नक्रमम् = क्रमभङ्गान्वितम्, व्युत्क्रमार्थम् = विपरीतार्थम्, प्रकीर्णार्थम् = विश्लिष्टार्थम्, निरर्थकम् = अर्थशून्यं, वा,

अतीतकाललिखितम् = कालान्तरे लिखितम्, यच्च, अप्रगल्भेन = अकुशलेन, वा, स्त्रियाः = नारीजनेन, अथवा बलात्कारेण = बलपूर्वकेण, कृतम् = लिखितम्, तत् = लेखम्, साधनक्षमम् = प्रामाणिकम्, तथ्ययुक्तं वा, न = नहि, स्यात् = भवेत् ॥ १८१-१८२ ॥

हिन्दी—जिस लेख में ऊपरलिखित बातों का उल्लेख न हो, वह अप्रामाणिक या हीन होता है। जो लेख सिलसिलेवार न लिखा गया हो या उलटे अर्थ को बतलाने वाला हो या बिखरे अर्थ को बतलाने वाला हो, निरर्थक हो, कालान्तर का लिखा हो वह लेख प्रामाणिक नहीं माना जाता है। जो लेख अप्रबुद्ध व्यक्ति का लिखा हो या किसी और का लिखा हो अथवा जबर्दस्ती लिखवाया गया हो, वह लेख भी अप्रामाणिक माना जाता है ॥ १८१-१८२ ॥

यत्रेति। अतीतेति। यत्र एतानि उक्तानि न लिख्यन्ते तत् लेख्यं हीनम् अप्रमाणमित्यर्थः, उच्यते। यत् भिन्नकर्म क्रमभङ्गयुतं व्युत्क्रमार्थं विपरीतार्थं प्रकीणार्थं विक्षिप्तप्रतिपाद्यं निरर्थकम् अर्थशून्यं वा अतीतकाललिखितं कालान्तरे लिखितं, यच्च अप्रगल्भेन अचतुरेण निर्बोधेनेत्यर्थः, वा स्त्रिया स्त्रीलोकेन अथवा बलात्कारेण कृतं लिखितं तत् लेख्यं साधनक्षमं प्रामाणिकं न स्यात् ॥ १८१-१८२ ॥

सद्भिर्लेख्यैः साक्षिभिश्च भोगैर्दिव्यैः प्रमाणताम्।
व्यवहारे नरो याति चेहामुत्राश्नुते सुखम् ॥ १८३ ॥

अन्वयः—नरः सद्भिः लेख्यैः साक्षिभिः भोगैः दिव्यैः प्रमाणतां याति। एवम् इह अमुत्र च सुखम् अश्नुते ॥ १८३ ॥

व्याख्या—नरः = पुरुषः, सद्भिः = दोषशून्यैः, लेख्यैः = साध्यैः, साक्षिभिः = प्रत्यक्षदर्शकैः, भोगैः = उपभोगैः, दिव्यैः = घटादिभिश्च, व्यवहारे प्रमाणताम्, याति = प्राप्नोति, इह = संसारे, अमुत्र = परलोके च, सुखम् = आनन्दम्, अश्नुते = भुङ्क्ते ॥ १८३ ॥

हिन्दी—कोई भी आदमी निर्दोष लिखित प्रमाणों से गवाही के द्वारा किसी सम्पत्ति पर कब्जा होने से, दिव्य प्रमाणों से व्यावहारिकता में प्रमाण प्राप्त करता है, ऐसा व्यक्ति ही संसार तथा संसार से परे सुख भोगता है ॥ १८३ ॥

सद्भिरिति। नरः सद्भिः निर्दोषैः लेख्यैः साक्षिभिः भोगैश्च तथा दिव्यैः घटादिभिश्च व्यवहारे प्रमाणतां याति प्राप्नोति, इह अस्मिन् लोके अमुत्र परलोके च सुखम् अश्नुते ॥ १८३ ॥

स्वेतरः कार्य्यविज्ञानी यः स साक्षी त्वनेकधा।
दृष्टार्थश्च श्रुतार्थश्च कृतश्चैवाकृतो द्विधा ॥ १८४ ॥

अन्वयः—यः स्वेतरः कार्यविज्ञानी सः साक्षी, स तु अनेकधा, दृष्टार्थः श्रुतार्थश्च द्विधा, पुनः कृतः अकृतश्चेति द्विविधः ॥ १८४ ॥

व्याख्या—यः = नरः, स्वेतरः—स्वस्य = आत्मनः, इतरः = भिन्नो जनः, तस्य कार्यविज्ञानी = कार्यवेत्ता, भवति, सः = असौ, साक्षी = प्रेक्षको भवति, सः = साक्षी, तु अनेकधा = बहुविधा भवन्ति, दृष्टार्थः = प्रत्यक्षद्रष्टा, श्रुतार्थश्च = श्रोता च, द्विविधः, सः तु पुनः कृतः = वादिना समुपस्थितः, अकृतश्च = नृपेणाहूतः द्विविधः ॥ १८४ ॥

हिन्दी—जो अपना सम्बन्धी न हो पर मुकदमे की जानकारी रखता हो, वह गवाह मानने लायक होता है। गवाह अनेक तरह के होते हैं—कोई प्रत्यक्षदर्शी होता है तो कोई केवल सुनने वाला ही होता है। फिर ये दो तरह के होते हैं—एक वह जो वादी द्वारा उपस्थित किया जाता है, उसे 'कृति' कहते हैं। दूसरा वह जिसे राजा बुलवाता है, वह अकृत कहलाता है ॥ १८४ ॥

स्वेतर इति। यः स्वेतरः स्वस्मात् आत्मनः इतरः अन्यः सन् कार्य्यविज्ञानी कार्य्यज्ञानवान् भवति सः साक्षी, स तु अनेकधा, दृष्टार्थः श्रुतार्थश्चेति द्विविधः, स पुनः कृतः अकृतश्चेति द्विविधः ॥ १८४ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यादनुभूतं तु प्राग् यथा।
दर्शनैः श्रवणैर्येन स साक्षी तुल्यवाग् यदि ॥ १८५ ॥

अन्वयः—येन प्राक् अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यात् दर्शनैः श्रवणैः वा यथा अनुभूतं सः यदि तुल्यवाग् तदा साक्षी भवति ॥ १८५ ॥

व्याख्या—येन = जनेन, प्राक् = पूर्वम्, अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यात् = वादिप्रतिवादिसामीप्यात्, दर्शनैः = अवलोकनैः, श्रवणैः = आकर्णनैः, वा = अथवा, यथा अनुभूतम् = अनुभवगम्यम्, सः = असौ, यदि, तुल्यवाक् = समानकथनम्, भवति, तदा साक्षी = प्रेक्षको भवति ॥ १८५ ॥

हिन्दी—वादी या प्रतिवादी के पास रहने से जैसा पहले देखने या सुनने से मुकदमे के बारे में अनुभव हुआ हो और उसी के अनुरूप कहने वाला हो तो उसे ही गवाही कहते हैं ॥ १८५ ॥

अर्थीति। येन प्राक् पूर्वम् अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यात् वादिप्रतिवादिसकाशात् दर्शनैः श्रवणैर्वा यथा अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतं सः यदि तुल्यवाक् अविरुद्धवाक् भवति तदा साक्षी भवति ॥ १८५ ॥

यस्य नोपहता बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च नित्यशः।
सुदीर्घेणापि कालेन स वै साक्षित्वमर्हति ॥ १८६ ॥

अन्वयः—यस्य बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च सुदीर्घेणापि न उपहता (भवति) सः वै नित्यशः साक्षित्वं भवेत् ॥ १८६ ॥

व्याख्या—यस्य = जनस्य, बुद्धि = मतिः, स्मृतिः = स्मरणशक्तिः, श्रोत्रम् = श्रवणशक्तिश्च, सुदीर्घेणापि = बहुकालात्ययेनापि, न = नहि, उपहता = विनष्टा भवति, सः = असौ, वै = इति निश्चयेन, नित्यशः = सततम्, साक्षित्वम् = प्रेक्षकत्वम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥ १८६ ॥

हिन्दी—बहुत समय बीत जाने के बावजूद जिसकी बुद्धि, स्मरणशक्ति और सुनने की शक्ति क्षीण न हुई हो, वही व्यक्ति सचमुच गवाही देने योग्य होता है ॥ १८६ ॥

यस्येति। यस्य बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रञ्च सुदीर्घेणापि बहुनापि कालेन न उपहता न विलुप्ता भवति, स वै स एव नित्यशः सततं साक्षित्वम् अर्हति ॥ १८६ ॥

अनुभूतः सत्यवाग्यः सैव साक्षित्वमर्हति।
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्म्मवित् ॥ १८७ ॥

अन्वयः—यः अनुभूतः सत्यवाक् स एव साक्षित्वम् अर्हति, यश्च धर्मवित् उभयानुमतः सः एकोऽपि साक्षी भवति ॥ १८७ ॥

व्याख्या—यः = जनः, अनुभूतः = साक्षात् ज्ञातः, सत्यवाक् = सत्यवचनवादी, स एव, साक्षित्वम् = साक्षिता, अर्हति = योग्यो भवति, यश्च = यो हि जनः, धर्मविद् = धार्मिकः, उभयानुमतः = अर्थिप्रत्यर्थिभ्यां सम्मतः, सः = असौ, एकोऽपि = एकेनैवोभयपक्षस्य, साक्षी = प्रेक्षकः भवति ॥ १६७ ॥

हिन्दी—मुकदमे का जिसने अनुभव किया है तथा सत्यवादी है, वही गवाह बनने योग्य होता है और कोई धर्मात्मा अकेले ही वादी और प्रतिवादी दोनों के लिए गवाही के रूप में मान्य हाता है ॥ १८७ ॥

अनुभूत इति। यः अनुभूतः अनुभवशक्तिसम्पन्नस्तथा सत्यवाक् सैव स एव (सन्धिरार्षः) साक्षित्वम् अर्हति। यश्च धर्मवित् धार्मिकः उभयानुमतः वादिप्रतिवादिभ्यां सम्मतः स एकोऽपि साक्षी भवति ॥ १८७ ॥

यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु साक्षिणः।
गृहिणो न पराधीनाः सूरयश्चाप्रवासिनः ॥ १८८ ॥

अन्वयः—यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु साक्षिणः गृहिणः न पराधीना सूरयश्च अप्रवासिनः साक्षिणः भवन्ति ॥ १८८ ॥

व्याख्या—यथाजाति = जात्यनुरूपेण, यथावर्णम् = वर्णानुसारेण, सर्वे = सकलाः, सर्वेषु = सकलेषु, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, गृहिणः = गृहस्थाः, न = नहि, पराधीनाः = परतन्त्राः, सूरयश्च = विद्वांसः, तथा अप्रवासिनः जनाः, साक्षिणः = प्रेक्षकाः भवन्तीति ॥ १८८ ॥

हिन्दी—जाति और वर्ण के अनुसार सभी जाति में सभी जाति के लोग गवाह बन सकते हैं। गृहस्थ, किसी के अधीन न रहने वाले, विद्वान्, परदेश में नहीं रहने वाले लोग गवाह हो सकते हैं ॥ १८८ ॥

यथेति। यथाजाति जात्यनुसारेण यथावर्णं वर्णानुसारेण सर्वेषु विषयेषु सर्वे गृहिणः सर्वे गृहस्थाः न पराधीनाः स्वाधीना इत्यर्थः, सूरयः विद्वांसः तथा अप्रवासिनः जनाः साक्षिणः भवन्तीति शेषः ॥ १८८ ॥

युवानः साक्षिणः कार्य्याः स्त्रियः स्त्रीषु च कीर्त्तिताः ॥ १८९ ॥

अन्वयः—युवानः साक्षिणः कार्याः च स्त्रीषु स्त्रियः कीर्त्तिताः ॥ १८९ ॥

व्याख्या—युवानः = तरुणाः, न तु वृद्धाः बालकाश्च, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, कार्याः = विधेयाः, च = पुनः, स्त्रीषु = नारीविषयेषु, स्त्रियः = नार्यः एव, साक्षिण्यः = प्रेक्षिकाः, कीर्त्तिताः = कथिताः ॥ १८९ ॥

हिन्दी—युवा व्यक्ति ही गवाह बनाने योग्य होते हैं तथा औरतों के मुकदमे में औरतों को ही गवाही देनी चाहिए ॥ १८९ ॥

युवान इति। युवानः न तु बालका वा वृद्धा इत्यर्थः, साक्षिणः, तथा स्त्रीषु विषयेषु स्त्रियः साक्षिण्य इत्यर्थः कीर्त्तिताः ॥ १८९ ॥

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ १९० ॥

अन्वयः—साहसेषु सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु तथा वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये साक्षिणः न परीक्षेत ॥ १९० ॥

व्याख्या—साहसेषु = कुकृत्येषु, सर्वेषु = सकलेषु, स्तेयसङ्ग्रहणेषु = चौर्यादिजघन्यकृत्येषु, तथा वाग्दण्डयोः = वाचस्तथा दण्डस्य, च, पारुष्ये = कार्कश्ये, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, न = नहि, परीक्षेत = परीक्षणं कुर्यात् ॥ १९० ॥

हिन्दी—डकैती, चोरी, बलात्कार या अपहरण, कठोर वचन तथा कठोर दण्ड जैसे जघन्य अपराधों में गवाही का विशेष परीक्षण नहीं होता। क्योंकि ऐसे मुकदमे में कोई भी गवांह बन सकता है ॥ १९० ॥

साहसेष्विति। सर्वेषु साहसेषु दस्युव्यवहारेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु चौर्य्येषु बलात्कारेषु च तथा वाग्दण्डयोः पारुष्ये साक्षिणः न परीक्षेत ये केचन साक्षिणो भवन्तीति भावः ॥ १९० ॥

बालोऽज्ञानादसत्यात् स्त्री पापाभ्यासाच्च कूटकृत्।
विब्रूयाद् बान्धवः स्नेहाद्वैरनिर्य्यातनादरिः ॥ १९१ ॥
अभिमानाच्च लोभाच्च विजातिश्च शठस्तथा।
उपजीवनसङ्कोचाद्भृत्यश्चैते ह्यसाक्षिणः।
नार्थसम्बन्धिनो विद्यायौनसम्बन्धिनोऽपि न ॥ १९२ ॥

अन्वयः—बालः अज्ञानात्, स्त्री असत्यात्, कूटकृत् पापाभ्यासात्, बान्धवः स्नेहात्, अरिः वैरनिर्यातनात्, विजातिः अभिमानात्, शठः लोभात् तथा भृत्यः उपजीवनसङ्कोचात् विब्रूयात्। तस्मात् एते असाक्षिणः किञ्च अर्थसम्बन्धिनः विद्यायौनसम्बन्धिनोऽपि नेति ॥ १९१-१९२ ॥

व्याख्या—बालः = बालकः, अज्ञानात् = ज्ञानहीनत्वात्, स्त्री = नारी, असत्यात् = मिथ्यावादनाभ्यासात्, कूटकृत् = मायिकः, पापाभ्यासात्—पापस्य = अधर्मस्य, अभ्यासात् = सततानुशीलनात्, बान्धवः = सम्बन्धिनः, स्नेहात् = प्रेम्णः, अरिः = रिपुः, वैरनिर्यातनात् = शत्रुत्वनिष्कासनात्, विजातिः = अपकृष्टजातिः, अभिमानात् = स्वदर्पात्, शठः = धूर्तः, लोभात् = लिप्सायाः, तथा भृत्यः = सेवकः, उपजीवनसङ्कोचात्—उपजीवनस्य = जीविकायाः, सङ्कोचात् = विनाशभयात्, विब्रूयात् = विरुद्धं विपरीतं वा वदेत्। तस्मात् हेतोः, एते = पूर्वोक्ताः सर्वे, असाक्षिणः = साक्षित्वं नार्हन्ति, किञ्च अर्थसम्बन्धिनः—अर्थेन = धनेन, सम्बन्धवन्तः = संसर्गवन्तः, न = नहि, तथा विद्यायौनसम्बन्धिनः—विद्यासम्बन्धिनः = सहाध्यायिनः, यौनसम्बन्धिनः = जामात्रादयः, न = नहि, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, भवन्ति ॥ १९१-१९२ ॥

हिन्दी—बालक अज्ञानी होने के कारण, झूठ बोलने के अभ्यास के कारण औरत, जालसाजी करने के कारण जालसाज, स्नेह के कारण सम्बन्धी, शत्रुता साधने के कारण शत्रु, संमान-वृद्धि के दंभ से हीन जाति के लोग तथा नौंकरी छूट जाने के डर से नौकर विरुद्ध बोल सकते हैं। अतः ये गवाह बनने योग्य नहीं होते और किसी तरह धन से जुडे लोग या सहपाठी और जमाई जैसे सम्बन्धी जन भी गवाह नहीं हो सकते हैं ॥ १९१-१९२ ॥

बाल इत्यादि। बालः शिशुः अज्ञानात्, स्त्री असत्यात्, कूटकृत् कपटकारी पापाभ्यासात् पापानुष्ठानसातत्यात्, बान्धवः स्नेहात्, अरिः शत्रुः वैरनिर्य्यातनात्, विजातिः अपकृष्टजातिः अभिमानात् आत्मनः मानवर्द्धनप्रत्याशायोगादित्यर्थः, शठः लोभात्, तथा भृत्यः उपजीवनसङ्कोचात् उपजीवनस्य जीविकायाः सङ्कोचो भवेदिति भयादित्यर्थः, विब्रूयात् विरुद्धं वदेत्, तस्मात् एते बालादयः असाक्षिणः साक्षित्वं नार्हन्तीत्यर्थः, किञ्च अर्थसम्बन्धिनः अर्थेन सम्बन्धवन्तः न, तथा विद्यायौनसम्बन्धिनः सहाध्यायिनः जामात्रादयश्चेत्यर्थः न साक्षिणो भवन्तीत्यर्थः॥ १९१-१९२ ॥

श्रेण्यादिषु च वर्गेषु कश्चिच्चेद् द्वेष्यतामियात्।
तस्य तेभ्यो न साक्ष्यं स्याद्द्वेष्टारः सर्व एव ते॥ १९३ ॥

अन्वयः—श्रेण्यादिषु वर्गेषु चेत् कश्चित् द्वेष्यताम् इयात् तदा तेभ्यः तस्य साक्ष्यं न स्यात्। ते सर्वे एव द्वेष्टारः॥ १९३ ॥

व्याख्या—श्रेण्यादिषु = जातिविशेषेषु, वर्गेषु = समूहेषु, च चेत् = यदि, कश्चित् = कोऽपि जनः, द्वेष्यताम् = वैरित्वम्, इयात् = इच्छेत्, तदा तेभ्यः = श्रेण्यादिभ्यः वर्गेभ्यश्च, समीपात्, तस्य = जनस्य, साक्ष्यम् = प्रेक्षकत्वम्, न = नहि, स्यात् = भवेत्। ते सर्वे एव जनाः, द्वेष्टारः = विद्वेषिणो भवन्तीति॥ १९३ ॥

हिन्दी—कारीगरों के समूह में यदि किसी एक व्यक्ति को विद्वेष हो जाय तो उस समूह से किसी को गवाह नहीं मानना चाहिए। क्योंकि एकता के कारण वे सभी विद्वेषी हो जाते हैं॥ १९३ ॥

श्रेण्यादिषु इति। श्रेण्यादिषु जातिविशेषेषु वर्गेषु गणेषु सम्प्रदायविशेषेषु च मध्ये चेत् यदि कश्चित् जनः द्वेष्यतां शत्रुताम् इयात् तदा तेभ्यः श्रेण्यादिभ्यः वर्गेभ्यश्च सकाशात् तस्य विद्वेषिणः जनस्य साक्ष्यं न स्यात्। यस्मात् ते सर्व एक द्वेष्टारः विद्वेषिणः भवन्तीति शेषः॥ १९३ ॥

न कालहरणं कार्य्यं राज्ञा साक्षिप्रभाषणे।
अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्ये साध्यार्थेऽपि च सन्निधौ॥ १९४॥
प्रत्यक्षं वादयेत् साक्ष्यं न परोक्षं कथञ्चन।
नाङ्गीकरोति यः साक्ष्यं दण्ड्यः स्याद्देशितो यदि॥ १९५ ॥

अन्वयः—राज्ञा अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्ये साक्षिप्रभाषणे सन्निधौ साध्यार्थे कालहरणं न कार्यम्। प्रत्यक्षं साक्ष्यं वादयेत् कथञ्चन परोक्षं न। यश्च देशितः यदि साक्ष्यं न अङ्गीकरोति स दण्ड्यः स्यात्॥ १९४-१९५ ॥

व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, अर्थिप्रत्यर्थिनोः = वादिप्रतिवादिनोः, सान्निध्ये = सामीप्ये, साक्षिप्रभाषणे—साक्षिणाम् = प्रेक्षकानाम्, प्रभाषणे = प्रकर्षेण वचने, तथा सन्निधौ = सामीप्ये, तयोः समक्षम्, साध्यार्थे = साधनीयप्रयोजनेऽपि, कालहरणम् = कालक्षेपम्, न = नहि, कार्यम् = विधेयम्। किञ्च प्रत्यक्षम् = तयोः वादिप्रतिवादिनोः समक्षम्, साक्ष्यम् = साक्षित्वम्, वादयेत् = वादितुं प्रेरयेत्, कश्चन = कोऽपि, परोक्षे = अनुपस्थितौ, न वादयेत्। यश्च = पुरुषश्च, देशितोऽपि = नृपेणादिष्टोऽपि, साक्ष्यम् = साक्षित्वम्, न = नहि, अङ्गीकरोति = स्वीकरोति, सः = पुरुषः, दण्ड्यः = दण्डनीयः, स्यात् = भवेत्॥ १९४-१९५ ॥

हिन्दी—वादी-प्रतिवादी की उपस्थिति में गवाह से गवाही लेने में राजा कालक्षेप न करे, साथ ही मुकदमे की सुनवाई में भी देर न करे। वादी-प्रतिवादी के सामने ही सदा गवाही लेनी चाहिए, इनकी अनुपस्थिति में नहीं। राजा की आज्ञा के बावजूद यदि कोई गवाह गवाही देना स्वीकार न करे तो वह दण्डनीय होता है ॥ १९४-१९५ ॥

नेति। राज्ञा अर्थिप्रत्यर्थिनोः सान्निध्ये समक्षं साक्षिप्रभाषणे साक्षिणां प्रभाषणे वचने तथा सन्निधौ तयोः समक्षमित्यर्थः, साध्यार्थे साधनीये अर्थे विषयेऽपि कालहरणं न कार्य्यम्। किञ्च प्रत्यक्षम् उभयोः समक्षं साक्ष्यं वादयेत्, कथञ्चन परोक्षं न वादयेदित्यर्थः। यश्च देशितः यदि आदिष्टोऽपीत्यर्थः, साक्ष्यं न अङ्गीकरोति सः दण्ड्यः स्यात् ॥ १९४-१९५ ॥

यः साक्षान्नैव निर्दिष्टो नाहूतो नैव देशितः।
ब्रूयात् मिथ्येति तथ्यं वा दण्ड्यः सोऽपि नराधमः ॥ १९६ ॥

अन्वयः—यः साक्षात् नैव निर्दिष्टः न आहूतः नैव देशितः, सः मिथ्या वा तथ्य ब्रूयात्, सदा सः अपि नराधमः दण्ड्यः ॥ १९६ ॥

व्याख्या–यः = पुरुषः, साक्षात् = विचारपतिसम्मुखे, नैव = नास्त्येव, निर्दिष्टः = साक्षित्वेनोपस्थापितः, न = नहि, राज्ञा, आहूतः = आकारितः, न च देशितः = आदिष्टः, सः = एवंविधो जनः, मिथ्या = असत्यम्, वा = अथवा, तथ्यम् = सत्यम्, ब्रूयात् = वदेत्, सदा सोऽपि, नराधमः = नीचपुरुषः, दण्ड्यः = दण्डनीयो भवति ॥ १९६ ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति विचारपति के सामने गवाही देने के लिए उपस्थित न किया गया हो, उसे न बुलाया गया हो तथा न वह राजा से आदेशित हो; ऐसा नराधम व्यक्ति चाहे सच कहे या झूठ दण्डनीय होता है ॥ १९६ ॥

य इति। यः साक्षात् विचारकसन्निधाने इत्यर्थः, निर्दिष्टः साक्षित्वेन प्रदर्शित इत्यर्थः, न आहूतः न देशितः आदिष्टश्च न, स चेत् मिथ्या वा तथ्यं ब्रूयात् सदा सः अपि नराधमः दण्ड्यः दण्डनीयो भवतीत्यर्थः ॥ १९६ ॥

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां वचः।
तत्राधिकगुणानां च गृहणीयाद्वचनं सदा ॥ १९७ ॥

अन्वयः—द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां वचः अधिकगुणानां वचनं सदा गृह्णीयात् ॥ १९७ ॥

व्याख्या—द्वैधे = संशये, बहूनाम् = अनेकानाम्, वचनम् = कथनम्, समेषु = समानेषु तुल्येषु वा, मध्ये, गुणिनाम् = गुणवताम्, वचः, तत्राऽपि = सर्वेषु गुणिषु, अधिकगुणानाम् = सर्वाधिकगुणवताम्, वचनम् = कथनम्, सदा = सर्वदा, गृह्णीयात् = ग्रहणं कुर्यात् ॥ १९७ ॥

हिन्दी—अनेक गवाहों के विभिन्न कथनों के कारण यदि निर्णय लेने में संदेह पैदा हो तो बहुसंख्यक की बातों की मान्यता होनी चाहिए। यदि समान संख्यावालों में विभिन्नता हो तो जिधर गुणीजन अधिक हो उधर की बातें माननी चाहिए। यदि गुणियों की बातों में भी भेद हो तो सर्वाधिक गुणवानों की बातें मान्य होनी चाहिए ॥ १९७ ॥

द्वैधे इति। द्वैधे साक्षिणां वचनेषु अनैक्यकारणात् संशये सतीत्यर्थः, बहूनां वचनं, समेषु तुल्येषु समसंख्येषु भिन्नवचनेष्वित्यर्थः, मध्ये गुणिनां गुणवतां वचः, तत्रापि सर्वेषु गुणिष्वित्यर्थः,

अधिकगुणानां वचनं सदा गृह्णीयात् ॥ १९७ ॥

यत्रानियुक्तोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन।
पृष्टस्तत्रापि सो ब्रूयाद् यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ १९८ ॥

अन्वयः—यत्र अनियुक्तोऽपि यदि किञ्चन ईक्षेत वा शृणुयात्, तत्र सः पृष्टः सन् यथादृष्टं यथाश्रुतं ब्रूयात् ॥ १९८ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विषये, अनियुक्तोऽपि = नियोजनरहितोऽपि, कोऽपि जनः यदि, किञ्चित् = किमपि, ईक्षेत = पश्येत्, वा = अथवा, शृणुयात् = श्रवणं कुर्यात्, तत्र = तस्मिन् विषये, सः = जनः, पृष्टः = जिज्ञासितः, सन्, यथादृष्टम् = यद्वदालोकितम्, यथाश्रुतम् = यादृशमाकर्णितम्, तथैव ब्रूयात् = वदेत् ॥ १९८ ॥

हिन्दी–कोई व्यक्ति बिना नियुक्ति के भी यदि कुछ देखे या सुने तो उस विषय में पूछे जाने पर वह जैसा देखा या सुना हो, वैसा ही कहे ॥ १९८ ॥

यत्रेति। यत्र अनियुक्तोऽपि जनः यदि किञ्चन ईक्षेत वा शृणुयात् तत्र सः पृष्टः सन् यथादृष्टं यथाश्रुतं ब्रूयात् ॥ १९८ ॥

विभिन्नकाले यज्ज्ञातं साक्षिभिश्चांशतः पृथक्।
एकैकं वादयेत्तत्र विधिरेष सनातनः ॥ १९९ ॥

अन्वयः—विभिन्नकाले साक्षिभिः अंशतः पृथक् यत् ज्ञातं तत् एकैकं वादयेत्। तत्र एष विधिः सनातनः ॥ १९९ ॥

व्याख्या—विभिन्नकाले = अनेकसमये, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, अंशतः = खण्डतः, तत् ज्ञातम् = अवगतम्, तत् = सर्वम्, एकैकंम् = एकैकशः, वादयेत् = वाचयेत्, एषः विधिः = रीतिः, सनातनः = पुरातनः इति ॥ १९९ ॥

हिन्दी—जहाँ विभिन्न समयों में विभिन्न गवाहों ने मुकदमे के विभिन्न विषयों की जानकारी दी है, उसे जानने के लिए प्रत्येक की गवाही लेनी चाहिए। वहाँ यही सनातन रीति है ॥ १९९ ॥

विभिन्नकाले इति। विभिन्नकाले पृथक् पृथक् समये साक्षिभिः अंशतः पृथक् पृथक् यत् ज्ञातं, तत् एकैकं वादयेत्, वाचयेत्। तत्र एषः विधिः एकैकवादनरूपः सनातनः चिरप्रचलित· ॥ १९९ ॥

स्वभावोक्तं वचस्तेषां गृहणीयान्न बलात् क्वचित्।
उक्ते तु साक्षिणा साक्ष्ये न प्रष्टव्यं पुनः पुनः ॥ २०० ॥

अन्वयः—तेषां स्वभावोक्तं वचः गृह्णीयात्, बलात् क्वचित् न। साक्षिणा साक्ष्ये उक्ते पुनः पुनः न प्रष्टव्यम् ॥ २०० ॥

व्याख्या—तेषाम् = प्रेक्षकानाम्, स्वभावोक्तम् = स्वाभाविकरूपेण कथितम्, वचः = वचनम्, गृह्णीयात् = ग्रहणं कुर्यात्, बलात् = बलपूर्वकेन, क्वचित् = कदाचित्, न = नहि, गृह्णीयात्। साक्षिणा = प्रेक्षकेन, साक्ष्ये = साक्षित्वे, उक्ते = कथिते, पुनः पुनः = वारं-वारम्, न = नहि, प्रष्टव्यम् = जिज्ञासितव्यम् ॥ २०० ॥

हिन्दी—गवाहों के स्वाभाविक ढंग से कहे गये वचन ही स्वीकार करने चाहिए। किसी

के दबाव में कही गई बातों को कभी न माने। गवाह एक बार यदि अपना बयान दे चुका हो तो फिर बार-बार उससे पूछना नहीं चाहिए ॥ २०० ॥

स्वभावोक्तमिति। तेषां साक्षिणां स्वभावोक्तं स्वाभाविकं वचः गृह्णीयात् बलात् बलमाश्रित्य इत्यर्थः, क्वचित् कदाचित् न गृह्णीयादित्यर्थः। साक्षिणा च साक्ष्ये उक्ते सति पुनः पुनः न प्रष्टव्यं तं साक्षिणं प्रतीति शेषः ॥ २०० ॥

आहूय साक्षिणः पृच्छेन्नियम्य शपथैर्भृशम्।
पौराणैः सत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्त्तनैः।
अनृतस्यातिदोषैश्च भृशमुत्त्रासयेच्छनैः ॥ २०१ ॥

अन्वयः—साक्षिणः आहूय शपथैः भृशं नियम्य पृच्छेत्। पौराणैः सत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्त्तनैः अनृतस्य अतिदोषैः भृशं शनैः उत्त्रासयेत् ॥ २०१ ॥

व्याख्या—साक्षिणः = प्रेक्षकान्, आहूय = आह्वानं कृत्वा, शपथैः = प्रतिज्ञावचनैः, भृशम् = अत्यर्थम्, नियम्य = आयत्तीकृत्य, पृच्छेत् = पृच्छां कुर्यात्। पौराणैः = पुराणोक्तवचनैः, सत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्त्तनैः—सत्यवचनरूपधर्मस्य = ऋतकधनस्वरूपस्य धर्मस्य, माहात्म्यकीर्त्तनैः = महिम्नगुणकथनैः, अनृतस्य = मिथ्याकथनस्य, अतिदोषैः = बहुदोषकीर्त्तनैः, भृशम् = अत्यर्थम्, शनैः = मन्दं-मन्दम्, उत्त्रासयेत् = भयाक्रान्तं कुर्यात् ॥ २०१ ॥

हिन्दी—गवाहों को बुलाकर खाश ढंग से उन्हें सौगन्ध खिलाकर पुराणों में वर्णित सत्यवचन रूपी धर्म के माहात्म्य का वर्णन कर पूछे। फिर झूठ बोलने में अत्यन्त पाप होता है, इसी की पुष्टि पुराणों से कर उसे धीरे-धीरे इस अपकर्म का भय दिलाये ॥ २०१ ॥

आहूयेति। साक्षिणः आहूय शपथे भृशम् अत्यर्थं नियम्य आयत्तीकृत्य पृच्छेत् तथा पौराणैः पुराणोक्तैः सत्यवचनरूपधर्मस्य माहात्म्यकीर्त्तनैः, अनृतस्य असत्यस्य अतिदौषैः अतिदोषकीर्त्तनैश्च वक्ष्यमाणैरिति शेषः, भृशम् अत्यर्थं शनैः मन्दं मन्दम् उत्त्रासयेत् ॥ २०१ ॥

देशे काले कथं कस्मात् किं दृष्टं वा श्रुतं त्वया।
लिखितं लेखितं यत् तद् वद सत्यं तदेव हि ॥ २०२ ॥

अन्वयः—देशे काले कथं कस्मात् त्वया किं दृष्टं श्रुतं यच्च लिखितं लेखितं तत् तत् सत्यं वद ॥ २०२ ॥

व्याख्या—देशे = कस्मिन् स्थानविशेषे, काले = कस्मिन् समये, कथम = केन प्रकारेण, कस्माद्धेतोः, त्वया किं दृष्टम् = अवलोकितम्, वा = अथवा, श्रुतम् = आकर्णितम्, यच्च, लिखितम् = लिपिबद्धं कृतम्, लेखितन्, तत् तत्, सत्यम् = ऋतम्, वद = कथय ॥ २०२ ॥

हिन्दी—तुमने कहाँ, किस समय, कैसे, किस वजह से, क्या देखा और क्या सुना? जो लिखा गया या लिखवाया गया वह सच-सच बतलाओ? ॥ २०२ ॥

पृच्छाप्रकारमाह—**देशे इति**। देशे कस्मिन् स्थाने, काले कस्मिन् समये, कथं केन प्रकारेण कस्मात् हेतोः त्वया किं दृष्टं वा श्रुतं, यच्च लिखितं लेखितञ्च तत् तत् सत्यं वद हिशब्दः अवधारणार्थः ॥ २०२ ॥

सत्यं साक्ष्यं ब्रुवन् साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥ २०३॥

अन्वयः—साक्षी सत्यं साक्ष्यं बुवन् पुष्कलान् लोकान् इह च अनुत्तमां कीर्त्तिम् आप्नोति। एषा वाक् ब्रह्मपूजिता॥ २०३॥

व्याख्या—साक्षी = प्रेक्षकः, सत्यम् = ऋतम्, साक्ष्यम् = साक्षित्वम्, बुवन् = वदन्, पुष्कलान् = विपुलान् महतः वा, लोकान्, इह च = अस्मिन् संसारे च, अनुत्तमाम् = उत्कृष्टतराम्, कीर्त्तिम् = यशः, आप्नोति = प्राप्नोति। एषा वाक् = वाणी, ब्रह्मणा = विधिना, पूजिता = प्रशंसिते॥ २०३॥

हिन्दी—जो गवाह सच्ची गवाही देता है उसे उत्तम लोक की प्राप्ति होती है तथा इस संसार में वह उत्कृष्ट यशस्वी होता है। उसकी वाणी की विधाता भी प्रशंसा करते हैं॥ २०३॥

सत्यमिति। साक्षी सत्यं साक्ष्यं बुवन् पुष्कलान् महतः लोकान्, इह च अनुत्तमां कीर्त्तिम् आप्नोति, एषा वाक् ब्रह्मपूजिता ब्रह्मणा प्रशंसिता॥ २०३॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ २०४॥

अन्वयः—साक्षी सत्येन पूयते, धर्मः सत्येन वर्द्धते। तस्मात् सर्ववर्णेषु साक्षिभिः सत्यं हि वक्तव्यम्॥ २०४॥

व्याख्या—साक्षी = प्रेक्षकः, सत्येन = अवितथेन, पूयते = पवित्रो भवति, धर्मः = पुण्यः सत्येन = तत्त्वेन, वर्द्धते = एधते। तस्माद्धेतोः, सर्ववर्णेषु = सकलजातिषु, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, सत्यम् = यथार्थमेव, वक्तव्यम् = कथनीयमिति॥ २०४॥

हिन्दी—सच बोलने से गवाह पवित्र हो जाता है, सच कहने से धर्म बढ़ता है। अतः सभी वर्णों के गवाहों को सच ही बोलना चाहिए॥ २०४॥

सत्येनेति। साक्षी सत्येन पूयते पवित्रो भवति, धर्मः सत्येन सत्यकथनेन वर्द्धते। तस्मात् सर्ववर्णेषु साक्षिभिः सत्यं हि सत्यमेव वक्तव्यम्॥ २०४॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मैव ह्यात्मनः।
मावसंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षित्वमुत्तमम्॥ २०५॥

अन्वयः—आत्मा एव आत्मनः साक्षी, आत्मा एव आत्मनः गतिः। तस्मात् स्वं नृणाम् उत्तमं साक्षित्वम् आत्मानं मा अवसंस्थाः॥ २०५॥

व्याख्या—आत्मा एव = शरीरस्थः साक्षी पुरुष एव, आत्मनः = स्वस्य, साक्षी = प्रेक्षकः, आत्मा = जीवः, एव, आत्मनः = जीवस्य, गतिः = आश्रयः। तस्मात् स्वम् = आत्मानम्, नृणाम् = अभियोगमापन्नानाम्, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, साक्षिणम्, तस्मात्, आत्मानम् = अन्तःस्थ-परमपुरुषम्, मा = नहि, अवमंस्थाः = अवमानितं कार्षीः॥ २०५॥

हिन्दी—मनुष्य की अपनी आत्मा ही उसकी गवाही है, वही उसकी गति है; इसलिए मानव का उत्तम साक्षी (गवाह) उसकी आत्मा है। अतः इसका तिरस्कार मत करो। अर्थात् अपनी आत्मा की आवाज सुनो या पहचानो॥ २०५॥

आत्मैवेति। आत्मा एव अन्तर्यामी पुरुष एव आत्मनः जीवस्य साक्षी पापपुण्यकर्मणां द्रष्टा,

आत्मा एव आत्मनः गतिः आश्रयः, तस्मात् त्वं नृणाम् अभियोगमापन्नानाम् उत्तमं साक्षिणम् आत्मानं मा अवमंस्थाः अवमानितं मा कार्षीरित्यर्थः॥२०५॥

मन्यते वै पापकारी न कश्चित् पश्यतीति माम्।
तांश्च देवाः प्रपश्यन्ति तथा ह्यन्तरपूरुषः॥२०६॥

अन्वयः—पापकारी कश्चित् मां न पश्यतीति मन्यते वै, देवाः तथा अन्तरपूरुषः तांश्च प्रपश्यन्ति॥२०६॥

व्याख्या—पापकारी = पापात्मा, कश्चित् = कोऽपि जनः, माम् = पापिनम्, न = नहि, पश्यति = अवलोकयति, इति मन्यते = बुद्ध्यते, वै = इति निश्चयेन, किञ्च, देवाः = देवताः, तथा अन्तरपूरुषः = अन्तर्यामी, तान् = साक्षिणः, प्रपश्यन्ति = अवलोकयन्ति॥२०६।

हिन्दी—पापी यह समझता है कि कोई पाप करते समय मुझे नहीं देखा रहा है, किन्तु उसका यह समझना ठीक नहीं है। क्योंकि उसे देवता लोग और उसकी अन्तरात्मा सब कुछ देख रही है॥२०६॥

मन्यते इति। पापकारी जनः, कश्चित् मां न पश्यतीति मन्यते वैशब्दोऽवधारणार्थः। देवाः तथा अन्तरपूरुषः अन्तर्यामी तान् साक्षिणः प्रपश्यन्ति॥२०६॥

सुकृतं यत् त्वया किञ्चित् जन्मान्तरशतैः कृतम्।
तत् सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा।
समाप्नोषि च तत्पापं शतजन्मकृतं सदा॥२०७॥
साक्षिणं श्रावयेदेव सभायामरहोगतम्॥२०८॥

अन्वयः—त्वया जन्मान्तरशतैः यत्किञ्चित् सुकृतं कृतं, तत् सर्वं यं मृषा पराजयसे तस्य जानीहि, किञ्च शतजन्मकृतं तत्पापं सदा समाप्नोषि। एवं सभायाम् अरहोगतं साक्षिणं श्रावयेत्॥२०७-२०८॥

व्याख्या—त्वया = भवता, जन्मान्तरशतैः = शतान्यपरजन्मनि, यत्किञ्चित् = यत्किमपि, सुकृतम् = पुण्यम्, कृतम् = अनुष्ठितम्, तत् सर्वम् = सकलम्, यम् = व्यक्तिविशेषम्, मृषा = असत्येन, पराजयसे = पराजितं कुरुषे, तस्य = जनस्य भवेत्, किञ्च, शतजन्मकृतम् = जन्मान्तरशतमर्जितम्, तत्पापम् = तत्कृतं पापम्, तस्य पराजेतुमभीष्टस्य जनस्य पापम्, सदा = सर्वदा, समाप्नोषि = लभसे च। एवं प्रकारेण, सभायाम् = विचारसमितौ, अरहोगतम् = सकलजनसमक्षवर्त्तिनम्, साक्षिणम् = प्रेक्षकम्, श्रावयेत्॥२०७-२०८॥

हिन्दी—सैंकड़ों जन्म में तुमने जो पुण्य अर्जित किया है, वह उसका हो जायेगा, जिसे तुमने झूठ बोलकर पराजित किया है तथा उस पराजित व्यक्ति के सैंकड़ों जन्म के संचित पाप तुम्हारे हो जायेंगे, इसे जान लो। इस तरह भरी सभा में सबके सामने गवाही देने वाले व्यक्ति को अवश्य सुना दे॥२०७-२०८॥

सुकृतमिति। समाप्नोषीति। त्वया जन्मान्तरशतैः यत् किञ्चित् सुकृतं कृतं तत् सर्वं, यं मृषा असत्यवचनेन पराजयसे तस्य भवेदिति शेषः, जानीहि बुध्यस्व। किञ्च शतजन्मकृतं तत्पापं तस्य पराजेतुमिष्टस्य जनस्य पापं सदा समाप्नोषि लभसे च, एवम्प्रकारेण सभायाम् अरहोगतं

सर्वसमक्षवर्त्तिनं साक्षिणं श्रावयेत् ॥ २०७-२०८ ॥

दद्याद्देशानुरूपं तु कालं साधनदर्शने।
उपाधिं वा समीक्ष्यैव दैवराजकृतं सदा ॥ २०९ ॥

अन्वयः—राजा देशानुरूपं वा दैवराजकृतम् उपाधिं समीक्ष्य साधनदर्शने कालं दद्यात् ॥२०९ ॥

व्याख्या—राजा, देशानुरूपम् = स्थानविशेषानुसारम्, वा = अथवा, दैवराजकृतम्—दैवकृतम् = भाग्यानुष्ठितम्, राजकृतम् = नृपकृतम्, वा, उपाधिम् = उपद्रवः, समीक्ष्य = अनुचिन्त्य, साधनदर्शने = प्रमाणावलोकने, कालम् = समयम्, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ २०९ ॥

हिन्दी—देश के अनुरूप तथा राजा एवं दैव कृत उपद्रवों को ठीक से विचार कर प्रमाण दिखलाने का समय दे ॥ २०९ ॥

दद्यादिति। राजा सदा देशानुरूपं स्थानोपयुक्तं वा दैवराजकृतम् उपाधिं निमित्तं समीक्ष्य विविच्य साधनदर्शने प्रमाणप्रदर्शने कालं समयं दद्यात् ॥ २०९ ॥

विनष्टे लिखिते राजा साक्षिभोगैर्विचारयेत्।
लेखसाक्षिविनाशे तु सद्भोगादेव चिन्तयेत् ॥ २१० ॥

अन्वयः—लिखिते विनष्टे राजा साक्षिभिः भोगैश्च विचारयेत्। लेखसाक्षिविनाशे तु सद्भोगादेव चिन्तयेत् ॥ २१० ॥

व्याख्या—लिखिते = लिपिबद्धप्रमाणे, विनष्टे = निर्मूलिते सति, राजा = नृपः, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, भोगैश्च = प्रमाणैश्च, विचारयेत् = चिन्तयेत्। तथा लेखस्य—लिखितप्रमाणस्य, साक्षिणश्च = प्रेक्षकस्य च, विनाशे = विनष्टे सति, सद्भोगात् = उत्तमात् भोगादेव, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ २१० ॥

हिन्दी—लिखित प्रमाण नष्ट हो जाने पर गवाही एवं कब्जे पर विचार करना चाहिए। जहाँ लेख और गवाह दोनों विनष्ट हो गये हों, वहाँ निश्चित-कब्जा देखकर ही विचार करना चाहिए ॥ २१० ॥

विनष्टे इति। लिखिते लेख्ये प्रमागे विनष्टे सति राजा साक्षिभिः भोगैश्च प्रमाणैः विचारयेत्। तथा लेखस्य साक्षिणश्च विनाशे सति सद्भोगात् उत्तमात् अक्षुण्णादित्यर्थः, भोगात् एव चिन्तयेत् विचारयेत् ॥ २१० ॥

सद्भोगाभावतः साक्षिलेखतो विमृशेत् सदा।
केवलेन च भोगेन लेखेनापि च साक्षिभिः ॥ २११ ॥

अन्वयः—सद्भोगाभावतः सदा साक्षिलेखतः विमृशेत्। किञ्च केवलेन भोगेन लेखेन साक्षिभिश्च विमृशेत् ॥ २११ ॥

व्याख्या—सद्भोगाभावतः = श्रेष्ठस्वामित्वाभावे, सदा = सर्वदा, साक्षिलेखतः—साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, लेख्यैः = लिखितविषयैः, विमृशेत् = विचारयेत्। केवलेन = एकमात्रेण, भोगेन = स्वाामत्वेन, केवलेन लेखेन = लिखितविषयेण वा, केवलैः साक्षिभिश्च = प्रेक्षकैश्च, विमृशेत् = विचारयेत् ॥ २११ ॥

हिन्दी—उत्तम स्वामित्व के अभाव में गवाह या लिखित प्रमाण के आधार पर विचार करना चाहिए। केवल स्वामित्व, दस्तावेज या केवल गवाही के आधार पर विचार करना चाहिए ॥ २११ ॥

सद्भोगाभावत इति। सद्भोगाभावतः उत्तमभोगाभावे सतीत्यर्थः, सदा साक्षिलेखतः साक्षिभिः लेख्यैश्च विमृशेत् विचारयेत्। किञ्च केवलेन भोगेन, केवलेन लेखेन वा केवलैः साक्षिभिश्च विमृशेत् ॥ २११ ॥

कार्य्यं न चिन्तयेद्राजा लोकदेशादिधर्मतः ॥ २१२ ॥

अन्वयः—लोकदेशादिधर्मतः राजा कार्यं न चिन्तयेत् ॥ २१२ ॥

व्याख्या—लोकदेशादिधर्मतः—लोकम् = जनम्, अर्थात् अयं हि श्रेष्ठो वा निकृष्टो जनः इत्थं विचार्य, देशादिम् = अयं हि महान् देशो वा हीनदेशः एवं सञ्चित्य, धर्मञ्च = अयं हि स्वधर्मः वा परधर्म इति विविच्य, कार्यम् = व्यवहारम्, राजा = नृपः, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ २१२ ॥

हिन्दी—यह बड़ा आदमी है और यह छोटा, यह उत्तम देश है और यह अधम अथवा यह स्वधर्म है और यह परधर्म, ऐसा सोचकर राजा मुकदमे का फैसला न करे ॥ २१२ ॥

कार्य्यमिति लोकदेशादिधर्मतः लोकं देशादिं स्थानप्रभृतिं धर्मञ्च अनुरुध्य इत्यर्थः, यवर्थे पञ्चमी। अयं महान् वा निकृष्टः अयम् उत्कृष्टो देशः वा नीचदेशः अयं परधर्मः वा नीचधर्म इत्येवं विविच्य इत्यर्थः, कार्य्यं न चिन्तयेत् न विचारयेत् इत्यर्थः ॥ २१२ ॥

कुशला लेख्यबिम्बानि कुर्वन्ति कुटिलाः सदा।
तस्मान्न लेख्यसामर्थ्यात् सिद्धिरैकान्तिकी मता ॥ २१३ ॥

अन्वयः—कुशलाः कुटिलाः सदा लेख्यबिम्बानि कुर्वन्ति। तस्मात् लेख्यस्य सामर्थ्यात् ऐकान्तिकी सिद्धिः न मता ॥ २१३ ॥

व्याख्या—कुशलाः = दक्षाः, कुटिलाः = दुष्टाः, सदा = सर्वदा, लेख्यबिम्बानि = अनुरूपाणि लेख्यानि, कुर्वन्ति = निष्पादयन्ति, तस्मात् = कारणात्, लेख्यस्य = लिपिबद्धविषयस्य, सामर्थ्यात् = शक्त्याः, ऐकान्तिकी = सम्पन्ना, सिद्धिः = सफलता, न = नहि, मता = सम्मता इति ॥ २१३ ॥

हिन्दी—चतुर जालसाज किसी दस्तावेज की हूबहू नकल कर लेते हैं। अतः केवल लेख के आधार पर फैसला करना पूर्णरूप से उचित नहीं कहा गया है ॥ २१३ ॥

कुशला इति। कुशलाः निपुणाः कुटिलाः दुर्जनाः सदा लेख्यबिम्बानि अनुरूपाणि लेख्यानि कुर्वन्ति। तस्मात् लेख्यस्य सामर्थ्यात् बलात् ऐकान्तिकी सिद्धिः न मता ॥ २१३ ॥

स्नेहलोभभयक्रोधैः कूटसाक्षित्वशङ्कया।
केवलैः साक्षिभिर्नैव कार्य्यं सिध्यति सर्वदा ॥ २१४ ॥

अन्वयः—स्नेहलोभभयक्रोधैः तथा कूटसाक्षित्वशङ्कया केवलैः साक्षिभिः सर्वदा कार्यं नैव सिद्ध्यति ॥ २१४ ॥

व्याख्या—स्नेहेन = रागेण, लोभेन = लिप्सया, क्रोधेन = कोपेन, तथा

कूटसाक्षित्वशङ्कया = मिथ्यासाक्ष्यसन्देहेन, केवलैः = मात्रैः, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, सदा = सर्वदा, कार्यम् = व्यवहारः, नैव = नास्त्येव, सिद्ध्यति = सफलतां याति ॥ २१४ ॥

हिन्दी—प्रीति, लालच, डर या गुस्से में आकर मनुष्य झूठी गवाही दे सकता है, इस आशंका से केवल गवाही के आधार पर सदा मुकदमे का उचित फैसला नहीं किया जा सकता है ॥ २१४ ॥

स्नेहेति। स्नेहेन, लोभेन, भयेन, क्रोधेन च तथा कूटसाक्षित्वशङ्कया केवलैः साक्षिभिः सर्वदा कार्य्यं नैव सिध्यति ॥ २१४ ॥

अस्वामिकं स्वामिकं वा भुङ्क्ते यद् बलदर्पतः।
इति शङ्कितभोगैर्न कार्य्यं सिध्यति केवलैः ॥ २१५ ॥

अन्वयः—यत् बलदर्पतः अस्वामिकं स्वामिकं वा भुङ्क्ते, इति शङ्कितभोगैः केवलैः कार्यं न सिध्यति ॥ २१५ ॥

व्याख्या—यत् = यस्मात्, लोकः, बलर्दपतः—बलात् = शक्त्याः, दर्पात् = अभिमानात् गर्वाद्वा, अस्वामिकम् = दायादरहितम्, स्वामिकम् = सस्वामिकम्, वा = अथवा, भुङ्क्ते = उपभोगं कुरुते, इति = इत्थम्, शङ्कितभोगैः = सन्दिग्धैः भोगैः, केवलैः, कार्यम् = व्यवहारः, न = नहि, सिध्यति = साफल्यं भवति ॥ २१५ ॥

हिन्दी—अपनी ताकत के घमण्ड में आकर मनुष्य चाहे अपनी वस्तु हो या पराई, उस पर जबर्दस्ती अधिकार जमा कर स्वामित्व कायम कर लेता है; ऐसी स्थिति में स्वामित्व के संदेह में केवल वस्तु पर कब्जा के आधार पर मुकदमे का फैसला उचित नहीं होता ॥ २१५ ॥

अस्वामिकमिति। यत् यस्मात् लोकः बलदर्पतः बलात् दर्पाच्च अस्वामिकं सस्वामिकमित्यर्थः, वा भुङ्क्ते, इति शङ्कितभोगैः इत्थं शङ्कायुक्तैः केवलैः भोगैरित्यर्थः, कार्य्यं न सिध्यति ॥ २१५ ॥

शङ्कितव्यवहारेषु शङ्केयेदन्यथा न हि।
अन्यथा शङ्कितान् सभ्यान् दण्डयेच्चोरवन्नृपः ॥ २१६ ॥

अन्वयः—नृपः शङ्कितव्यवहारेषु शङ्कयेत्, अन्यथा न हि। अन्यथा शङ्कितान् सभ्यान् चोरवत् दण्डयेत् ॥ २१६ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, शङ्कितव्यवहारेषु = सन्दिग्धकार्येषु, शङ्कयेत् = शङ्कां कुर्यात्, अन्यथा = इतरथा, न हि = नैव कुर्यात्। अन्यथा = अन्यप्रकारेण, शङ्कितान् = सन्दिग्धान्, सभ्यान् = सभासदः, चोरवत् = तस्कर इव, दण्डयेत् = दमनं कुर्यात् ॥ २१६ ॥

हिन्दी—जिस मुकदमे में उचित संदेह एक बार प्रकट किया जा चुका है, उसमें पुनः विपरीत सन्देह नहीं करना चाहिए। दूसरे ढंग से संदेह पैदा करने वाले सभासदों को राजा चोर की तरह दण्ड दे ॥ २१६ ॥

शङ्कितेति। नृपः शङ्कितव्यवहारेषु शङ्कायुक्तेषु व्यवहारेषु शङ्कयेत् अन्यथा न हि नैव शङ्कयेदित्यर्थः। अन्यथा शङ्कितान् सभ्यान् चोरवत् दण्डयेत् ॥ २१६ ॥

अन्यथा शङ्कनान्नित्यमनवस्था प्रजायते।
लोको विभिद्यते धर्मो व्यवहारश्च हीयते ॥ २१७ ॥

अन्वयः—अन्यथा शङ्कनात् नित्यम् अनवस्था प्रजायते, लोकः विभिद्यते, धर्मः व्यवहारश्च हीयते ॥ २१७ ॥

व्याख्या—अन्यथा = इतरथा, शङ्कनात् = सन्देहात्, नित्यम् = निरन्तरम्, अनवस्था = अव्यवस्था, प्रजायते = उत्पन्नो भवति, लोकः = जनः, विभिद्यते = भेदं गच्छति, धर्मः = आचारः, व्यवहारश्च = कार्यश्च, हीयते = हीनो भवति ॥ २१७ ॥

हिन्दी—विपरीत सन्देह करने से व्यवहार में अनवस्था उत्पन्न होती है, निरर्थक फैसले में देर होती है, इससे लोकधर्म नष्ट होता है और व्यवहार भी हीन हो जाता है ॥ २१७ ॥

अन्यथेति। अन्यथा शङ्कनात् नित्यं सततम् अनवस्था अस्थितिः प्रजायते, लोकः विभिद्यते भेदं गच्छति, धर्मः व्यवहाश्च हीयते विच्युतो भवति ॥ २१७ ॥

सागमो दीर्घकालश्च निराक्रोशो निरन्तरः ।
प्रत्यर्थिसन्निधानश्च भुक्तो भोगः प्रमाणवत् ॥ २१८ ॥

अन्वयः—आगमः दीर्घकालश्च निराक्रोशः निरन्तरः प्रत्यर्थिसन्निधानश्च भुक्तः भोगः प्रमाणवत् ॥ २१८ ॥

व्याख्या—आगमः = आगमनं प्राप्तिर्वा, दीर्घकालश्च = चिरकालिकः, निराक्रोशः = अन्याक्षेपरहितः, निरन्तर = क्रमागतः, प्रत्यर्थिसन्निधानः = प्रतिवादिसन्निहितश्च, भुक्तः = उपभुक्तः, भोगः = स्वामित्वम्, प्रमाणवत् = प्रमाण इवेति ॥ २१८ ॥

हिन्दी—लेख सहित बहुत दिनों से कब्जा प्रामाणिक होता है। यदि मालिक का अपनी वस्तु से विलगाव हो गया या उसने उस वस्तु का त्याग ही कर दिया हो और प्रतिवादी उसका पार्श्ववर्त्ती हो तो उसका अधिकार वहाँ प्रमाणित माना गया है ॥ २१८ ॥

सागम इति। सागमः आगमेन प्रतिग्रहक्रयादिरूपेण अर्जनेन सहितः, दीर्घकालः बहुकालिकः निराक्रोशः अन्याक्रोशरहितः निरन्तरः क्रमागतः प्रत्यर्थिसन्निधानः प्रतिवादिसन्निहितश्च भुक्तः भोगः प्रमाणवत् प्रमाणतुल्यः ॥ २१८ ॥

सम्भोगं कीर्त्तयेद्यस्तु केवलं नागमं क्वचित् ।
भोगच्छलापदेशेन विज्ञेयः स तु तस्करः ॥ २१९ ॥

अन्वयः—यस्तु केवलं सम्भोगं कीर्त्तयेत् क्वचित् आगमं न, सः तु भोगच्छलापदेशेन तस्करः विज्ञेयः ॥ २१९ ॥

व्याख्या—यः = जनः, केवलम् = मात्रम्, सम्भोगम् = सम्यगधिकारम्, कीर्त्तयेत् = कथयेत्, क्वचित् = कदाचित्, आगमम् = आगमनम्, न = नहि, सः = असौ तु, भोगच्छलापदेशेन = स्वामित्वरूपकपटाश्रयेण, तस्करः = चौरः, विज्ञेयः = विशेषरूपेण ज्ञातव्यः इति ॥ २१९ ॥

हिन्दी—जो केवल भलीभाँति अपना कब्जा ही दिखलाता है, कोई अभिलेख नहीं, वह कब्जा बलपूर्वक कहा जाता है और कब्जा करने वाला चोर की तरह दण्डनीय होता है ॥ २१९ ॥

सम्भोगमिति। यस्तु केवलं सम्भोगं कीर्त्तयेत् क्वचित् कदाचित् आगमं न, स तु भोगच्छलापदेशेन भोगरूपच्छलावलम्बेन तस्करः चौरः विज्ञेयः ॥ २१९ ॥

आगमेऽपि बलं नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र नो॥ २२०॥

अन्वयः—यत्र स्तोकाऽपि भुक्तिः नो तत्र आगमेऽपि बलं नैव॥२२०॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विषये, स्तोकाऽपि = अल्पापि, भुक्तिः = अधिकारः, नो = न विद्यते, तत्र आगमेऽपि = आगमनेऽपि, बलम् = प्रमाणम्, नास्ति = न भवति॥२२०॥

हिन्दी—जहाँ थोड़ा भी कब्जा नहीं है वहाँ पर केवल लेख का प्रमाण मान्य नहीं ही होता है॥२२०॥

आगमेऽपि इति। यत्र स्तोका अल्पापि भुक्तिः नो न विद्यते इत्यर्थः, तत्र आगमेऽपि बलं न अस्तीति शेषः। एतेन सागमो भोग एव प्रमाणमित्युक्तम्॥२२०॥

यं कञ्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी।
भुज्यमानं परैरर्थं न स तं लब्धुमर्हति॥ २२१॥

अन्वयः—धनी यं कश्चित् अर्थं परैः सन्निधौ दशवर्षाणि भुज्यमानं प्रेक्षते, सः तम् अर्थं लब्धुं न अर्हति॥२२१॥

व्याख्या—धनी = धनवान्, यम् = व्यक्तिविशेषम्, कञ्चित् = किमपि, अर्थम् = धनम्, परैः = अन्यैः, सन्निधौ = सामीप्ये, दशवर्षाणि = दशवर्षपर्यन्तम्, भुज्यमानम्, प्रेक्षते = अवलोक्यते, सः = असौ, तम् = अर्थम्, लब्धुम् = प्राप्तुम्, न = नहि, अर्हति = समर्थो भवति॥२२१॥

हिन्दी—धनी अपनी वस्तु के पास रहकर भी उस पर दूसरे का कब्जा देखकर भी यदि उसे नहीं रोकता है और उस वस्तु पर यदि दस साल तक उसका कब्जा बरकरार रह जाता है तो बाद में विरोध करने पर भी उसका उस धन पर स्वामित्व नहीं रहता है॥२२१॥

यमिति। धनी यं कञ्चित् अर्थं परैः अन्यैः सन्निधौ स्वसमीपे इत्यर्थः, दशवर्षाणि व्याप्य भुज्यमानं प्रेक्षते, सः तम् अर्थं लब्धुं न अर्हति न समर्थो भवतीत्यर्थः॥२२१॥

वर्षाणि विंशतिर्यस्य भूर्भुक्ता तु परैरिह।
सति राज्ञि समर्थस्य तस्य सेह न सिध्यति॥ २२२॥

अन्वयः—इह यस्य भूः विंशतिः वर्षाणि परैः भुक्ता सति राज्ञि समर्थस्य तस्य सः इह न सिध्यति॥२२२॥

व्याख्या—इह = संसारे, यस्य = जनस्य, भूः = पृथिवी, विंशतिः, वर्षाणि = अब्दानि, व्याप्य, परैः = अन्यैः, भुक्ता = उपभुक्ता, सति, राज्ञि = राजनि विद्यमानेऽपि, समर्थस्य = सशक्तस्य, तस्य = जनस्य, सा = भूमिः, इह = जगति, न = नहि, सिध्यति = प्रमाणयति॥२२२॥

हिन्दी—जिसकी जमीन पर बीस साल से कोई कब्जा कर लिया हो और ताकत रहते हुए भी यदि भूस्वामी ने उसका विरोध न किया हो, तो राजा के रहते हुए भी इस संसार में उस जमीन पर उसका अधिकार नहीं हो सकता॥२२२॥

वर्षाणीति। इह जगति यस्य भूः भूमिः विंशतिः वर्षाणि व्याप्य परैः भुक्ता सति, राज्ञि राजनि विद्यमानेऽपि समर्थस्य बलवतोऽपि तस्य सा भूः इह संसारे न सिध्यति न घटते इत्यर्थः॥२२२॥

अनागमं तु यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि।
चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत् पृथिवीपतिः ॥ २२३ ॥

अन्वयः—यः बहूनि अब्दशतानि अनागमं भुङ्क्ते, पृथिवीपतिः चौरदण्डेन तं दण्डयेत् ॥ २२३ ॥

व्याख्या—यः = जनः, बहूनि = बहुकालानि, अब्दशतानि = वर्षशतानि, व्याप्य, अनागमम् = आगमं विनैवान्यस्य धनस्योपभोगं कुरुते, पृथिवीपतिः = राजा, तम् = पापम्, चौरदण्डेन = तस्कर इव दण्डेन, दण्डयेत् = दण्डं कुर्यात् ॥ २२३ ॥

हिन्दी—बिना किसी लिखित प्रमाण के किसी भूमि को कई सौ साल से यदि कोई ऐसे ही हथिया लिया हो, किन्तु जब उसके असली मालिक का पता चल जाय तो कब्जा करने वाले उस पापी को राजा चोर की तरह दण्ड दे ॥ २२३ ॥

अनागममिति। यः बहूनि अब्दशतानि वर्षशतानि व्याप्य अनागमम् आगमं विना परद्रव्यं भुङ्क्ते, पृथिवीपतिः चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत् ॥ २२३ ॥

अनागमापि या भुक्तिर्विच्छेदोपरमोज्झिता।
षष्टिवर्षात्मिका सापहर्त्तुं शक्या न केनचित् ॥ २२४ ॥

अन्वयः—या भुक्तिः अनागमाऽपि षष्टिवर्षात्मिका तथा विच्छेदोपरमोज्झिता सा केनचित् अपहर्त्तुं न शक्या ॥ २२४ ॥

व्याख्या—या भुक्तिः = लौकिकसुखोपभोगः, अनागमाऽपि = प्राप्तिरहिताऽपि, षष्टिवर्षात्मिका = षष्ट्याब्दव्यापिनी, तथा विच्छेदोपरमोज्झिता—विच्छेदेन = पृथक्स्थितेन, उपरमेण = विश्रान्तेन, च, उज्झिता = अधिकारविहीना भवति, सा = सम्पद्, केनचित् = केनाऽपि, अपहर्त्तुम् = अधिकर्त्तुम्, न = नहि, शक्या = समर्थेति ॥ २२४ ॥

हिन्दी—किसी वस्तु पर बिना लेख का किसी का कब्जा हो, मालिक उसे बिलकुल छोड़ दिया हो और यह कब्जा बे-रोक-टोक साठ साल तक चलता रहे तो फिर वहाँ से उसे कोई अनधिकृत नहीं कर सकता ॥ २२४ ॥

अनागमापीति। या भुक्तिः अनागमा आगमेन विरहितापि षष्टिवर्षात्मिका षष्टिवर्षव्यापिनी तथा विच्छेदोपरमोज्झिता विच्छेदेन उपरमेण निवृत्त्या च उज्झिता हीना भवति, सा केनचित् केनापि अपहर्त्तुं न शक्या ॥ २२४ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिस्तथा।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ २२५ ॥

अन्वयः—आधिः, सीमा, बालधनं, निक्षेपः तथा उपनिधिः, राजस्वं च श्रोत्रियस्वं भोगेन न प्रणश्यति ॥ २२५ ॥

व्याख्या—आधिः = बन्धकधनम्, सीमा = ग्रामसीमा, बालधनम् = अवयस्कस्य शिशोः धनम्, निक्षेपः = न्यासः, तथा = तेनैव प्रकारेण, उपनिधिः = उपन्यस्तं वस्तु, राजस्वम् = नृपाधिपत्यम्, श्रोत्रियस्वम् = वेदपाठकस्य धनम्, भोगेन = उपभोगेन, न = नहि, प्रणश्यति = विनष्टो भवति ॥ २२५ ॥

हिन्दी—बन्धक रखी गई वस्तु, गाँव की सीमान्त भूमि, नाबालिग का धन, धरोहर, स्त्रीधन, राजधन तथा वेदपाठी ब्राह्मण के धन पर कब्जा कर लेने से ही कोई उसे पा नहीं सकता ॥ २२५ ॥

आधिरिति। आधिः बन्धकद्रव्यं सीमा, बालधनम् आप्राप्तवयस्कस्य धनं निक्षेपः गच्छितद्रव्यम् उपनिधिः विश्वासात् परहस्ते न्यासीकृतं गृहक्षेत्रादि निक्षेपोपनिध्योरस्थावरत्व-स्थावरत्वाभ्यां विशेषोऽवगन्तव्यः। तथा राजस्वं श्रोत्रियस्वञ्च ब्रह्मस्वमित्यर्थः, भोगेन न प्रणश्यति ॥ २२५ ॥

उपेक्षां कुर्वतस्तस्य तूष्णीम्भूतस्य तिष्ठतः।
काले विपन्ने पूर्वोक्ते तत् फलं नाप्नुते धनी ॥ २२६ ॥

अन्वयः—उपेक्षां कुर्वतः तूष्णीम्भूतस्य तिष्ठतः तस्य पूर्वोक्ते काले विपन्ने धनी तत् फलं न आप्नुते ॥ २२६ ॥

व्याख्या—उपेक्षाम् = औदासीन्यम्, कुर्वतः = विदधतः, तूष्णीम्भूतस्य = मौनसाधकस्य, तिष्ठतः = स्थितः, तस्य = धनिनः, पूर्वोक्ते = निर्धारिते, काले = समये, विपन्ने = व्यतीते सति, धनिकः, तत् = तस्य, फलम् = परिणामम्, न = नहि, अश्नुते = भुङ्क्ते ॥ २२६ ॥

हिन्दी—यदि कोई स्वामी अपनी वस्तु पर किसी के कब्जे को देखकर भी इसकी उपेक्षा कर दे या चुप लगा जाय और ऊपरलिखित समय भी बीत जाय तो फिर वह उस धन को पाने का अधिकारी नहीं हो सकता है ॥ २२६ ॥

उपेक्षामिति। उपेक्षां कुर्वतः तूष्णीम्भूतस्य तिष्ठतः तस्य धनिन इत्यर्थः, पूर्वोक्ते निर्धारिते काले द्रव्यभोगस्येति भावः, विपन्ने अतीते सति धनी तत् फ़लं तस्य द्रव्यस्य फलं न आप्नुते न लभते, कालातिक्रमस्य स्वत्वध्वंसकत्वेन निर्द्धारणादिति भावः ॥ २२६ ॥

भोगः सङ्क्षेपतश्चोक्तस्तथा दिव्यमथोच्यते।
प्रमादाद्धनिनो यत्र त्रिविधं साधनं न चेत् ॥ २२७ ॥
अर्थं चापह्नुते वादी तत्रोक्तस्त्रिविधो विधिः ॥ २२८ ॥

अन्वयः—भोगः सङ्क्षेपतः तथा उक्तः, अथ दिव्यम् उच्यते। यत्र धनिनः प्रमादात् त्रिविधं साधनं न चेत् वादी अर्थम् अपह्नुते तत्र त्रिविधः विधिः उक्तः ॥ २२७-२२८ ॥

व्याख्या—भोगः = भुक्तिः, सङ्क्षेपतः = समासेन, तथा = तेनैव प्रकारेण, उक्तः = वर्णितः, अथ = अधुना, दिव्यम् = प्रमाणम्, उच्यते = कथ्यते। यत्र = यस्मिन् स्थाने, धनिनः = धनिकाः, प्रमादात् = आलस्यवशात्, त्रिविधम् = उक्तरूपं लेख्यसाक्षिभोगात्मकम्, साधनम् = प्रमाणम्, न चेत् = घटते, वादी = अभियुक्तः, च = पुनः, अर्थम् = धनम्, अपह्नुते = निगूहते, तत्र = तस्मिन् विषये, त्रिविधः = त्रिप्रकारकः, विधिः = उपायः, उक्तः = कथितः ॥ २२७-२२८ ॥

हिन्दी—कब्जा करने के सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से अब तक कहा गया है, अब दिव्य अर्थात् प्रमाण के सम्बन्ध में बतलाते हैं। यदि किसी धन के मालिक के आलस्य से जिस मुकदमे में पूर्वोक्त तीन तरह के लेख, कब्जा और गवाह जैसे साधन न हो सके और वादी उसकी वस्तु हड़पना चाहे तो ऐसी स्थिति में तीन तरह की विधि बतलाई गई है ॥ २२७-२२८ ॥

भोग इति। भोगः सङ्क्षेपतः सङ्क्षेपेण तेन प्रकारेण उक्तः कथितः, अथ इदानीं दिव्यं प्रमाणम् उच्यते, यत्र धनिनः प्रमादात् अनवधानवशात् त्रिविधम् उक्तरूपं लेख्यसाक्षिभोगात्मकं साधनं प्रमाणं न चेत् घटते वादी च अर्थम् अपह्नुते वञ्चयति तत्र त्रिविधः विधिः उपायः उक्तः॥ २२७-२२८ ॥

चोदनाप्रतिकालश्च युक्तिलेशस्तथैव च।
तृतीयः शपथः प्रोक्तस्तैरेवं साधयेत् क्रमात्॥ २२९ ॥

अन्वयः—चोदनाप्रतिकालः युक्तिलेशः तथैव शपथः च तृतीयः प्रोक्तः। तैः क्रमात् साधयेत् ॥२२९ ॥

व्याख्या—चोदनाप्रतिकालः = भूयोभूयः प्रेरितोऽप्यनुत्तरितः प्रथमः, युक्तिलेशः = चातुर्यप्रयोगो द्वितीयः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, शपथः = प्रतिज्ञा, तृतीयः, तैः = त्रिभिर्विधिभिः, क्रमात् = क्रमशः, साधयेत् = तथ्यस्य निर्णयं कुर्यात् ॥ २२९ ॥

हिन्दी—बार-बार प्रेरित करने पर भी वादी के वचन का उत्तर न देना पहला, युक्तियों का प्रयोग दूसरा और शपथ तीसरा—इन तीनों का क्रमशः उपयोग कर कार्य साधे ॥ २२९ ॥

चोदनेति। चोदनाप्रतिकालः प्रथमः, युक्तिलेशः द्वितीयः, शपथः तृतीयः प्रोक्तः कथितः। तैः त्रिभिर्विधिभिः क्रमात् साधयेत् तत्त्वं निश्चिनुयादित्यर्थः॥ २२९ ॥

विशिष्टतर्किता या च शास्त्रशिष्टाविरोधिनी।
योजना स्वार्थसंसिद्ध्यै सा युक्तिस्तु न चान्यथा॥ २३० ॥

अन्वयः—विशिष्टतर्किता शास्त्रशिष्टाविरोधिनी या योजना स्वार्थसंसिद्ध्यै सा युक्तिः अन्यथा न ॥२३० ॥

व्याख्या—विशिष्टतर्किता = विलक्षणतर्कसहिता, शास्त्रैः = धर्मशून्यैः, शिष्टैः = सभ्यैः, अविरोधिनी = विरोधरहिता, या योजना, सा = युक्तिः, सा एव, स्वार्थस्य—स्वस्य = आत्मनः, अर्थस्य = प्रयोजनस्य, संसिद्ध्यै = सम्यग्रूपेण सिद्धये भवति, अन्यथा = अन्यप्रकारेण, न = न भवति ॥ २३० ॥

हिन्दी—सुन्दर तर्कयुक्त, शास्त्र और सभ्यजन सम्मत स्वार्थसिद्धि के लिए बनाई गई योजना को युक्ति कहते हैं, दूसरे ढंग से बनी हुई को नहीं ॥ २३० ॥

विशिष्टेति। विशिष्टतर्किता विशिष्टतर्कसमेता शास्त्रैः शिष्टैश्च अविरोधिनी शास्त्रशिष्टसम्मता इत्यर्थः, या योजना सा युक्तिः सा एव स्वार्थस्य स्वकार्य्यस्य संसिद्ध्यै सम्यक् सिद्ध्यै भवति, अन्यथा न हि नैव ॥ २३० ॥

दानं प्रज्ञापना भेदः सम्प्रलोभक्रिया च या।
चित्तापनयनं चैव हेतवो हि विभावकाः॥ २३१ ॥

अन्वयः—दानं प्रज्ञापना भेदः च या सम्प्रलोभक्रिया चित्तापनयनं चैव हि विभावकाः हेतवः॥ २३१ ॥

व्याख्या—दानम् = प्रत्यर्पणम्, प्रज्ञापना—प्रकर्षेण, ज्ञपना = बोधः, भेदः = उपजापः, चः = पुनः, या सम्प्रलोभक्रिया = सुष्ठुतया लोभप्रदर्शनम्, तथा चित्तस्य = मनसः,

अपनयनम् = अपसारणम्, एते = पञ्च, विभावकाः = साधकाः, हेतवः = निमित्तानि ॥ २३१ ॥

हिन्दी—दान देना, समझाना, फूट डालना, लुभाना और मन को प्रतिकूल करना—ये पाँचों विषय के कारण कहे जाते हैं ॥ २३१ ॥

दानमिति। दानं प्रज्ञापना प्रकर्षेण ज्ञापनं भेदः मनोभङ्गः सम्प्रलोभक्रिया सम्यक् लोभप्रदर्शनं तथा चित्तस्य मनसः अपनयनम् अपसारणं निश्चितविषयेभ्य इति शेषः, एते पञ्च विभावकाः साधका हेतवः ॥ २३१ ॥

अभीक्ष्णं चोद्यमानोऽपि प्रतिहन्यान्न तद्वचः ।
त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा परतोऽर्थं स दाप्यते ॥ २३२ ॥

अन्वयः—अभीक्ष्णं त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा चोद्यमानोऽपि तत् वचः न प्रतिहन्यात्, तदा परतः स अर्थं दाप्यते ॥ २३२ ॥

व्याख्या—अभीक्ष्णम् = पौनःपुन्येन, त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा, चोद्यमानोऽपि = प्रेरितो भूत्वाऽपि, तत् = तस्य, वचः = वाणी, अनुरोधकथनम्, न = नहि, प्रतिहन्यात्, तदा परतः = प्रतिवादीतः, सः अर्थं दाप्यते ॥ २३२ ॥

हिन्दी—बार-बार अनुरोध करने पर भी जो प्रतिवादी के वचन को न काटे, उत्तर न दे; ऐसा तीन, चार या पाँच बार करने पर भी उत्तर न देना उस प्रतिवादी को धन दिलाने वाला हो जाता है। अर्थात् वादी का अभियोग सत्य प्रमाणित हो जाने पर वह विजयी होता है ॥२३२ ॥

अभीक्ष्णमिति। अभीक्ष्णं पुनः पुनः त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा चोद्यमानः अनुरुध्यमानः अपि यदा तत् वचः अनुरोधवचनं न प्रतिहन्यात् तदा परतः अनन्तरं सः अर्थं दाप्यते ॥ २३२ ॥

युक्तिष्वप्यसमर्थासु दिव्यैरेनं विमर्दयेत् ॥ २३३ ॥

अन्वयः—युक्तिषु अपि असमर्थासु दिव्यैः एनं विमर्दयेत् ॥ २३३ ॥

व्याख्या—युक्तिष्वपि = उपायेष्वपि, असमर्थासु = अशक्तासु सतीषु, दिव्यैः = शपथादिभिः, एनम् = प्रत्यर्थिनम्, विमर्दयेत् = प्रशासयेत् ॥ २३३ ॥

हिन्दी—जहाँ युक्तियों से भी काम नहीं चले, वहाँ दिव्य शपथ देकर प्रतिवादी को प्रशासित करना चाहिए ॥ २३३ ॥

युक्तिष्विति। युक्तिषु असमर्थासु अवसन्नासु सतीषु दिव्यैः शपथादिभिः एवं प्रतिवादिनं विमर्दयेत् शासयेत् ॥ २३३ ॥

यस्माद्देवैः प्रयुक्तानि दुष्करार्थे महात्मभिः ।
परस्परविशुद्ध्यर्थं तस्माद्दिव्यानि नामतः ॥ २३४ ॥

अन्वयः—यस्मात् महात्मभिः देवैः दुष्करार्थे परस्परविशुद्ध्यर्थं प्रयुक्तानि तस्मात् नामतः दिव्यानि उच्यन्ते ॥ २३४ ॥

व्याख्या—यस्मात् = हेतोः, महात्मभिः = उदारचरितैः, देवैः = देवताभिः, परस्परविशुद्ध्यर्थम् = इतरेतरसन्देहनिवारणार्थम्, दुष्करार्थे = दुरूहविषये, प्रयुक्तानि = व्यवहृतानि, तस्मात् = तेन हेतुना, नामतः = नाम्ना, दिव्यानि उच्यन्ते = कथ्यन्ते ॥ २३४ ॥

हिन्दी—साधनविहीन व्यवहार में कठिनाई आने पर महात्माओं एवं देवताओं ने दिव्य

शपथों का प्रयोग किया है। इसीलिए वादी-प्रतिवादी के परस्पर विशुद्धिकरण नाम से ये दिव्य शपथ कहलाते हैं ॥ २३४ ॥

यस्मादिति। यस्मात् महात्मभिः देवैः दुष्करार्थे असाध्यविषये परस्परविशुद्ध्यर्थं प्रयुक्तानि, तस्मात् नामतः नाम्ना दिव्यानि उच्यन्ते इति शेषः ॥ २३४ ॥

सप्तर्षिभिश्च भिस्मार्थे स्वीकृतान्यात्मशुद्धये ॥ २३५ ॥

अन्वयः—सप्तर्षिभिः भिस्मार्थे आत्मशुद्धये स्वीकृतानि ॥ २३५ ॥

व्याख्या—सप्तर्षिभिः = मरीच्यादिभिः, भिस्मार्थे = अन्नहेतवे, आत्मशुद्धये = आत्मनः पवित्रीकरणाय, दिव्यानि शपथानि, स्वीकृतानि = प्रतिगृहीतानि ॥ २३५ ॥

हिन्दी—अन्नहरण रूप दोष उपस्थित होने पर आत्मशुद्धि के लिए सप्तर्षियों ने भी दिव्य शपथ को स्वीकार किया था ॥ २३५ ॥

सप्तर्षिभिरिति। सप्तर्षिभिः मरीच्यादिभिश्च भिस्मार्थे अन्नार्थे आत्मशुद्धये अन्नहरणदोषक्षालनायेत्यर्थः, दिव्यानि स्वीकृतानि अङ्गीकृतानि ॥ २३५ ॥

स्वमहत्त्वाच्च यो दिव्यं न कुर्य्यात् ज्ञानदर्पतः ।
वसिष्ठाद्याश्रितं नित्यं स नरो धर्मतस्करः ॥ २३६ ॥

अन्वयः—यः स्वमहत्त्वात् ज्ञानदर्पतः नित्यं वसिष्ठाद्याश्रितं दिव्यं न कुर्यात्, सः नरः धर्मतस्करः ॥ २३६ ॥

व्याख्या—यः = नरः, स्वस्य = आत्मनः, महत्त्वात् = उत्तमत्वात्, ज्ञानदर्पात्—ज्ञानस्य = बोधस्य, दर्पात् = गौरवात्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, वसिष्ठादिभिः = वसिष्ठादिमुनिभिः, आश्रितम् = स्वीकृतम्, दिव्यम्, न = नहि, कुर्यात् = निष्पादयेत्, सः = असौ, नरः = मानवः, धर्मतस्करः = धर्मचौरः भवति ॥ २३६ ॥

हिन्दी—जो अपने बड़प्पन और ज्ञान के गर्व से दिव्य शपथों को स्वीकार नहीं करता है, जिसे वसिष्ठादि महर्षियों ने भी सद्यः ग्रहण किया था; ऐसा आदमी धर्मचोर कहलाता है ॥२३६ ॥

स्वमहत्त्वादिति। यच्च स्वस्य महत्त्वात् ज्ञानदर्पतः ज्ञानदर्पाच्च नित्यं वसिष्ठादिभिः सप्तर्षिभिः आश्रितं स्वीकृतं दिव्यं न कुर्य्यात् स नरः धर्मतस्करः ॥ २३६ ॥

प्राप्ते दिव्येऽपि न शपेद् ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
संहरन्ति च धर्मार्थं तस्य देवा न संशयः ॥ २३७ ॥

अन्वयः—ज्ञानदुर्बलः ब्राह्मणः दिव्ये प्राप्तेऽपि न शपेत्, देवाः तस्य धर्मार्थं संहरन्ति; न संशयः ॥ २३७ ॥

व्याख्या—ज्ञानदुर्बलः = ज्ञानहीनः, ब्राह्मणः = विप्रः, दिव्ये = भास्वरे, प्राप्तेऽपि = उपलब्धेऽपि, न = नहि, शपेत् = कुर्यात्, देवाः = देवताः, तस्य = एवंविधस्य ब्राह्मणस्य, धर्मम् = पुण्यम्, अर्थम् = वित्तञ्च, संहरन्ति = विनाशं कुर्वन्ति, अस्मिन् विषये, न = नहि, संशयः = सन्देहः कर्त्तव्यः ॥२३७ ॥

हिन्दी—जो मूर्ख ब्राह्मण अवसर मिलने पर भी दिव्यशपथ का प्रयोग नहीं करता है, देवता उसके धर्म और अर्थ दोनों का निःसंदेह अपहरण कर लेते हैं ॥२३७ ॥

प्राप्ते इति। यः ज्ञानदुर्बलः ज्ञानहीनः ब्राह्मणः दिव्ये प्राप्ते उपस्थितेऽपि न शपेत् न दिव्यं कुर्य्यात्, देवाः तस्य धर्मार्थं धर्मम् अर्थञ्च संहरन्ति न संशयः॥ २३७ ॥

यस्तु स्वशुद्धिमन्विच्छन् दिव्यं कुर्य्यादतन्द्रितः।
विशुद्धो लभतें कीर्त्तिं स्वर्गं चैवान्यथा न हि॥ ३३८॥

अन्वयः—यस्तु स्वशुद्धिम् अन्विच्छन् अतन्द्रितः सन् दिव्यं कुर्यात् सः विशुद्धः सन् कीर्त्ति स्वर्गञ्च लभते, अन्यथा न हि॥ २३८ ॥

व्याख्या—यस्तु = यो जनस्तु, स्वस्य = आत्मनः, शुद्धिम् = नैर्मल्यम्, अन्दिष्यन् = अनुसन्धानं कुर्वन्, अतन्द्रितः = अनलसः सन्, दिव्यम् = शपथम्, कुर्यात् = अनुष्ठानं कुर्यात्, सः = असौ, विशुद्धः सन् = पवित्रः सन्, कीर्त्तिम् = यशः, स्वर्गम् = अपरलोकम्, च, लभते = आप्नोति, अन्यथा = इतरथा, न हि = नैव॥ ३३८ ॥

हिन्दी—आत्मशुद्धि को खोजते हुए जो आलस्य छोड़कर दिव्य शपथ ग्रहण करता है, वह पवित्र होकर लोक में यश और परलोक में स्वर्ग पाता है; अन्यथा नहीं॥ २३८ ॥

य इति। यस्तु स्वबुद्धिम् अन्विच्छन् अनुसरन् अतन्द्रितः अनलसः सन् दिव्यं कुर्य्यात्, सः विशुद्धः सन् कीर्त्ति स्वर्गञ्च लभते, अन्यथा दिव्याकरणे इत्यर्थः, न हि नैव लभते इत्यर्थः॥ २३८ ॥

अग्निर्विषं घटस्तोयं धर्माधर्मौ च तण्डुलाः।
शपथाश्चैव निर्दिष्टा मुनिभिर्दिव्यनिर्णये॥ २३९ ॥

अन्वयः—अग्निः विषं घटः तोयं धर्माधर्मौ च तण्डुलाः शपथाश्च—एते मुनिभिः दिव्यनिर्णये निर्दिष्टाः॥ २३९ ॥

व्याख्या—अग्निः = वह्निः, विषम् = गरलम्, घटः = कुम्भः, तोयम् = जलम्, धर्मः = सुकृतः, अधर्मश्च = पापश्च, तण्डुलाः = धान्यसाराः, शपथाश्च, एते = पूर्वोक्ताः, मुनिभिः = ऋषिभिः, दिव्यनिर्णये, निर्दिष्टाः = निर्देशं कृताः॥ २३९ ॥

हिन्दी—दिव्य परीक्षा द्वारा निर्णय करने में आग, विष, घट, जल, धर्म, अधर्म, चावल और शपथ—इन सबों का र्निदेश मुनियों ने किया है॥ २३९ ॥

अग्निरिति। अग्निः, विषं, घटः, तोयं जलं, धर्मः अधर्मः तण्डुलाः शपथाश्च एते मुनिभिः दिव्यनिर्णये निर्द्दिष्टाः॥ २३९ ॥

पूर्वं पूर्वं गुरुतरं कार्य्यं दृष्ट्वा नियोजयेत्।
लोकप्रत्ययतः प्रोक्तं सर्वं दिव्यं गुरु स्मृतम्॥ २४० ॥

अन्वयः—कार्यं दृष्ट्वा लोकप्रत्ययतः पूर्वं पूर्वं गुरुतरं दिव्यं नियोजयेत्। प्रोक्तं सर्वं दिव्यं गुरु स्मृतम्॥ २४० ॥

व्याख्या—कार्यस्य = व्यवहारस्य, गुरुताम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, लोकप्रत्ययतः—लोकानाम् = जनानाम्, प्रत्ययतः = विश्वासात्, पूर्वं पूर्वम् = प्राक् प्राक्, गुरुतरम् = श्रेष्ठतरम्, दिव्यम् = शपथम्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्। प्रोक्तम् = कथितम्, सर्वम् = निखिलम्, दिव्यम् = अलौकिकम्, गुरु, स्मृतम् = कथितम्॥ २४० ॥

हिन्दी—इनमें बाद की अपेक्षा पहले के दिव्य-तण्डुल आदि अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग यथायोग्य कार्य की गुरुता देखकर ही किया जाता है। लोगों का विश्वास होने के कारण सभी दिव्यशपथ गौरवपूर्ण माने जाते हैं ॥ २४० ॥

पूर्वमिति। कार्य्यं दृष्ट्वा लोकप्रत्ययतः लोकानां विश्वासात् पूर्वं पूर्वं गुरुतरं दिव्यं नियोजयेत्, किन्तु प्रोक्तं कथितं सर्वमेव दिव्यं गुरु स्मृतम् ॥ २४० ॥

तप्तायोगोलकं धृत्वा गच्छेन्नवपदं करे।
तप्ताङ्गारेषु वा गच्छेत् पद्भ्यां सप्त पदानि हि ॥ २४१ ॥
तप्ततैलगतं लोहमाषं हस्तेन निर्हरेत्।
सुतप्तलोहपत्रं वा जिह्वया संलिहेदपि ॥ २४२ ॥

अन्वयः—करे तप्तायोगोलकं धृत्वा नवपदं गच्छेत्, वा तप्ताङ्गारेषु पद्भ्यां सप्तपदानि गच्छेत्, वा हस्तेन तप्ततैलगतं लोहमाषं निर्हरेत्, वा जिह्वया सुतप्तलोहपत्रं संलिहेत् ॥ २४१-२४२ ॥

व्याख्या—करे = हस्ते, तप्तम् = ज्वलितम्, अयोगोलकम् = लौहपिण्डम्, धृत्वा = गृहीत्वा, नवपदम् = अल्पान्तरं नवपदम्, गच्छेत् = चलेत्, वा = अथवा, तप्तेषु = प्रज्वलितेषु अङ्गारेषु = दग्धकाष्ठखण्डेषु, पद्भ्याम् = चरणाभ्याम्, सप्तपदानि, गच्छेत् = चलेत्, किंवा हस्तेन = करेण, तप्ततैलगतम्—तप्तेषु = ज्वलितेषु, तैलेषु = स्नेहेषु, स्थितम्, लोहमाषम् = माषपरिमितं लौहखण्डम्, निर्हरेत् = निष्काशयेत्, वा = अथवा, जिह्वया = रसनया, सुतप्तम् = अत्यन्तज्वलत्; लोहपत्रम् = लौहखण्डम्, संलिहेत् = सम्यग्रूपेण स्पृशेत् ॥ २४१-२४२ ॥

हिन्दी—अग्नि द्वारा दिव्य परीक्षा की विधि—आग द्वारा तपे (लाल) हुए लोहा के गोले को हाथ में रखकर नौ कदम चले, यदि हाथ न जले या जलते हुए अंगारों पर सात कदम नंगे पैरों से चले, यदि पैर न जलें या खौलते हुए तेल में से एक माषा लोहा को निकाले, यदि हाथ न जले अथवा अत्यन्त तपी हुई लोहे की पत्ती को जीभ से चाटे, यदि जीभ न जले तो उस व्यक्ति को निर्दोष समझे ॥ २४१-२४२ ॥

अग्निपरीक्षामाह—**तप्तेति**। करे हस्ते तप्तम् अयोगोलकं लौहपिण्डं धृत्वा नवपदं गच्छेत्। वा अथवा तप्तेषु ज्वलत्सु अङ्गारेषु पद्भ्यां सप्तपदानि गच्छेत्। किंवा हस्तेन तप्ततैलगतं तप्तेषु तैलेषु स्थितं लोहमाषं माषपरिमितं लौहं निर्हरेत् तस्मात् निष्काशयेदित्यर्थः। वा अथवा जिह्वया सुतप्तम् अतितप्तं ज्वलदित्यर्थः, लोहपत्रं लौहदण्डं संलिहेत् सम्यक् स्पृशेदित्यर्थः ॥ २४१-२४२ ॥

गरं प्रभक्षयेद्धस्तैः कृष्णसर्पं समुद्धरेत् ॥ २४३ ॥

अन्वयः—गरं प्रभक्षयेत् वा हस्तैः कृष्णसर्पं समुद्धरेत् ॥ २४३ ॥

व्याख्या—गरम् = गरलम्, प्रभक्षयेत् = प्रचुरमात्रायां, पिबेत्, वा = अथवा, हस्तैः = करैः, कृष्णसर्पम् = अत्यन्तविषधरम्, सर्पम्, समुद्धरेत् = सर्पदंशं कारयेत् ॥ २४३ ॥

हिन्दी—जहर खा ले या बाँबी से काले नाग को हाथ से निकालते समय डँसवा ले, फिर भी जहर का असर न हो तो निर्दोष माने ॥ २४३ ॥

विषपरीक्षामाह—**गरमिति**। गरं विषं प्रभक्षयेत् वा हस्तैः कृष्णसर्पं समुद्धरेत् ॥ २४३ ॥

कृत्वा स्वस्य तुलासाम्यं हीनाधिक्यं विशोधयेत् ॥ २४४ ॥

अन्वयः—स्वस्य तुलासाम्यं कृत्वा हीनाधिक्यं विशोधयेत् ॥ २४४ ॥

व्याख्या—स्वस्य = आत्मनः, तुलासाम्यम् = समरूपं तुलाम्, कृत्वा = विधाय, हीनाधिक्यम्—हीनः = अल्पम्, अधिकम् = विशेषम्, भवति तदा विशोधयेत् = विशेषेण शुद्धिं कुर्यात् ॥ २४४ ॥

हिन्दी—तराजू के एक पलड़े पर स्वयं बैठे और दूसरे पर बाट रख कर तौले। कम या ज्यादे होने पर विशुद्धि का परीक्षण करे ॥ २४४ ॥

घटपरीक्षामाह—**कृत्वेति**। स्वस्य आत्मनः तुलासाम्यं कृत्वा हीनाधिक्यं विशोधयेत्, यदि हीनः वा अधिकः भवति तदा शुद्ध्येदिति भावः ॥ २४४ ॥

स्वेष्टदेवस्नपनजमद्यादुदकमुत्तमम् ।
यावन्नियमितः कालस्तावदप्सु निमज्जयेत् ॥ २४५ ॥

अन्वयः—स्वेष्टदेवस्नपनजम् उत्तमम् उदकम् अद्यात्। ततः यावन्नियमितः कालः तावत् अप्सु निमज्जयेत् ॥ २४५ ॥

व्याख्या—स्वस्य = आत्मनः, यः इष्टदेवः = कुलदेवता, तस्य, स्नपनात् = कृतस्नानात्, जनितम् = जातम्, उत्तमम् = महत्तमम्, उदकम् = जलम्, अद्यात् = पिबेत्, अभियुक्तः। तत्पश्चात्, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, नियमितः = निर्धारितः समयः, तावत् कालं व्याप्यः, अप्सु = जलेषु, निमज्जयेत् = स्नापयेत् अभियुक्तं राजेति ॥ २४५ ॥

हिन्दी—अपने कुलदेवता को स्नान कराये गये उत्तम जल अर्थात् चरणामृत पीकर शपथ ग्रहण करे कि मैंने अमुक अपराध नहीं किया है, यदि किया हो तो वह नाश कर दे। जितने समय तक का नियम किया गया हो उतने समय तक जल में डूब कर पड़े रहना निर्दोष समझा जाता है ॥ २४५ ॥

तोयपरीक्षामाह—**स्वेष्टेति**। स्वस्य आत्मनः यः इष्टदेवः तस्य स्नपनात् जनितम् उत्तमम् उदकम् अद्यात् पिबेत् अभियुक्त इति शेषः। ततः यावन्नियमितः निर्द्धारितः कालः, तावत् कालं व्याप्येत्यर्थः, अप्सु जलेषु निमज्जयेत् अभियुक्तं राजेति पदद्वयमूह्यम् ॥ २४५ ॥

अधर्मधर्ममूर्त्तीनामदृष्टहरणं तथा ॥ २४६ ॥

अन्वयः—अधर्मधर्ममूर्त्तीनाम् अदृष्टस्य हरणं तथा ॥ २४६ ॥

व्याख्या—अधर्ममूर्त्तीनाम्—अधर्माणाम् = पापानाम्, मूर्त्तीनाम् = स्वरूपाणाम्, पापिनाम्, धर्माणाम् = पुण्यानाम्, मूर्त्तीनाम् = स्वरूपाणाम् = सुकृतानाञ्च, अदृष्टस्य = अलक्षितस्य, हरणम् = वर्द्धनञ्च विनाशयेत् ॥ २४६ ॥

हिन्दी—अधर्म और धर्म की मूर्त्तियों में से किसी एक को उत्तम आँखों में पट्टी बाँध कर उठाना, यदि धर्म की मूर्त्ति उठती है तो निर्दोष, अन्यथा दोषी माना जाता है ॥ २४६ ॥

धर्माधर्मपरीक्षामाह—**अधर्मेति**। अधर्ममूर्त्तीनां पापानां धर्ममूर्त्तीनां सुकृतानाञ्च अदृष्टस्य फलजनकापूर्वस्य हरणं वर्द्धनं नाशश्चेत्यर्थः कर्त्तव्यमिति शेषः। अयमर्थः—यदि मया एतत् दुष्कृतं कृतं तदा मम सर्वाणि सुकृतानि विफलानि भवन्तु दुष्कृतानि च वर्द्धन्ताम् इत्येवंरूपः शपथः कर्त्तव्य इति ॥ २४६ ॥

कर्षमात्रांस्तण्डुलांश्च चर्वयेच्च विशङ्कितः ॥ २४७ ॥

अन्वयः—विशङ्कितः कर्षमात्रान् तण्डुलान् च चर्वयेत् ॥ २४७ ॥

व्याख्या—विशङ्कितः = शङ्कारहितः सन्, कर्षमात्रान् = राजमुद्रापरिमितान्, तण्डुलान् = धान्यसारान् चर्वयेत् = दन्तैः निष्पेषयेत् ॥ २४७ ॥

हिन्दी—एक रुपये भर चावलों को निःशङ्क होकर चबाये। यह लोकप्रसिद्ध है कि दोषी के मुँह से खून निकलने लगता है ॥ २४७ ॥

तण्डुलपरीक्षामाह—**कर्षमात्रानिति**। विशङ्कितः निःशङ्कः सन् कर्षमात्रान् कर्षपरिमितान् तण्डुलान् चर्वयेच्च ॥ २४७ ॥

स्पर्शयेत् पूज्यपादांश्च पुत्रादीनां शिरांसि च।
धनानि संस्पृशेद्द्राक् तु सत्येनापि शपेत् तथा।
दुष्कृतं प्राप्नुयां यद्यत् सर्वं नश्येत्तु सत्कृतम् ॥ २४८ ॥

अन्वयः—पूज्यपादान् स्पर्शयेत्, पुत्रादीनां शिरांसि च धनानि संस्पृशेत्, तथा द्राक् सत्येनापि शपेत्। यत् यत् दुष्कृतमस्ति तत्तत् प्राप्नुयां सर्वञ्च सत्कृतं नश्येत् ॥ २४८ ॥

व्याख्या—पूज्यपादान् = पूज्यचरणान् गुरून्, स्पर्शयेत् = स्पर्शं कुर्यात्, पुत्रादीनाम् = सुतप्रभृतीनाम्, शिरांसि = मस्तकानि, च = पुनः, धनानि = वित्तानि, संस्पृशेत् = स्पर्शं कुर्यात्, तथा द्राक् = झटिति, सत्येनापि = अवितथेनापि, शपेत् = शपथं गृह्णीयात्। यद्येवं मया दुर्वृत्तमाचरितं तथा मम गुरवः निरये पतन्तु, पुत्रादयः धनानि च नश्यन्तु, ऋतञ्चानृतं भवतु सकलम्, इत्येवं शपेत्। किञ्च यत् यद् दुष्कृतमस्ति तत्तत् अहं प्राप्नुयाम्, सर्वञ्च = सकलञ्च, सत्कृतम् = पुण्यम्, विनष्टो भवेत् ॥ २४८ ॥

हिन्दी—पूज्य गुरुजनों के चरणों, पुत्रादिकों के मस्तकों का स्पर्श एवं धनादि का स्पर्श कर शपथ ले। इससे अपराधी का नाश हो जाता है, उसका वंश और धनादि विनष्ट हो जाते हैं। सत्य की दुहाई देकर भी शपथ ले। यदि मैं अपराधी होऊँ तो मुझे जो-जो पाप है वह मिले और मेरा सारा सुकृत विनष्ट हो जाय ॥ २४८ ॥

अन्यान् शपथानाह—**स्पर्शयेदिति**। पूज्यपादान् गुरून् स्पर्शयेत्, पुत्रादीनां शिरांसि धनानि संस्पृशेत् तथा द्राक् झटिति सत्येनापि शपेत् यदि मया एतत् दुष्कृतं कृतं तदा मम गुरवः नरके निपतन्तु, पुत्रादयः धनानि च नश्यन्तु, सत्यञ्च सर्वं मिथ्या भवतु इत्येवं शपथं कुर्यादिति भावः। किञ्च यत् यत् दुष्कृतमस्ति तत्तत् अहं प्राप्नुयां, सर्वञ्च सत्कृतं नश्येत् तुशब्दः अवधारणार्थः ॥ २४८ ॥

सहस्रेऽपहृते चाग्निः पादोने च विषं स्मृतम्।
त्रिभागोने घटः प्रोक्तो ह्यर्द्धे च सलिलं तथा ॥ २४९ ॥

अन्वयः—सहस्रे अपहृते अग्निः स्मृतः, च पादोने अपहृते विषं स्मृतम्, त्रिभागोने घटः प्रोक्तः तथा अर्द्धे सलिलं प्रोक्तमिति ॥ २४९ ॥

व्याख्या—सहस्रे = दशशते, सुवर्णमुद्रा, अपहृते = अपहरणकृते, अग्निः = वह्निपरीक्षा, स्मृतः = कथितः, च = पुनः, पादोने = पादैकहीने, पञ्चसप्ततिशते, अपहृते = चोरिते, विषम् = गरलपरीक्षा, स्मृतम् = विहितम्, त्रिभागोने = तृतीयभागहीने सहस्रे, अपहृते = बलान्नीते, घटः = तुलापरीक्षणम्, प्रोक्तः = कथितः, तथा अर्द्धे = सहस्रार्द्धे,

अपहृते = नीते, सलिलम् = जलपरीक्षणम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ २४९ ॥

हिन्दी—एक हजार मुद्रा का यदि अपहरण हुआ हो तो अग्निपरीक्षा, चतुर्थांश कम अर्थात् सात सौ पचीस रुपये अपहृत हो तो विषपरीक्षा, तृतीयांश हीन अर्थात् नौ सौ सड़सठ रुपये की चोरी हो तो तुला-परीक्षा तथा आधा सहस्र अर्थात् पाँच सौ के अपहण में जलपरीक्षा कही गई है ॥ २४९ ॥

सहस्र इति। सहस्रे अपहृते अग्निः स्मृतः। पादोने चतुर्थभागहीने सहस्रे पञ्चाशदधिकसप्तशते इत्यर्थः, अपहृते विषं स्मृतम्। त्रिभागेण ऊने तृतीयभागहीने सहस्रे अपहृते घटः प्रोक्तः। अर्द्धे पञ्चशते अपहृते तु इत्यर्थः, सलिलं स्मृतम् ॥ २४९ ॥

धर्माधर्मौ तदर्धे च ह्यष्टमांशे च तण्डुलाः।
षोडशांशे च शपथा एवं दिव्यविधिः स्मृतः ॥ २५० ॥

अन्वयः—तदर्द्धे धर्माधर्मौ स्मृतौ, अष्टमांशे तण्डुलाः स्मृताः, षोडशांशे च शपथाः एवं दिव्यविधिः स्मृतः ॥ २५० ॥

व्याख्या—तदर्द्धे—तत् = तस्या अर्द्धसहस्रस्य, अर्द्धे = पञ्चाशदधिकशतद्वयेऽपहृते, धर्माधर्मौ, स्मृतौ = कथितौ, अष्टमांशे = पञ्चविंशत्यधिकशते, अपहृते, तण्डुलाः = तण्डुलपरीक्षणम्, स्मृताः, षोडशांशे = सार्द्धद्विषष्टिसंज्ञके नीते सति अन्ये शपथाः, स्मृताः = कथिताः, एवम् = अनेन प्रकारेण, दिव्यविधिः, कथितः = स्मृतः ॥ २५० ॥

हिन्दी—हजार का चौथा भाग अगर अपहृत हो तो धर्म-अधर्म परीक्षा, हजार का अगर आठवाँ भाग अपहृत हो तो चावल-परीक्षा तथा हजार का सोलहवाँ भाग अगर अपहृत हो तो उसे सौगन्ध खिलाना—इस प्रकार यह दिव्यविधि कहलाती है ॥ २५० ॥

धर्मेति। तदर्द्धे पञ्चाशदधिकशतद्वये अपहृते इत्यर्थः, धर्माधर्मौ स्मृतौ अष्टमांशे पञ्चविंशत्यधिकशते अपहृते इत्यर्थः, तण्डुलाः स्मृताः। षोडशांशे सार्द्धद्विषष्टिसंख्यके अपहृते इत्यर्थः, अन्ये शपथाः स्मृताः। एवम् उक्तरूपः दिव्यविधिः स्मृतः कथितः ॥ २५० ॥

एषा संख्या निकृष्टानां मध्यानां द्विगुणा स्मृता।
चतुर्गुणोत्तमानां च कल्पनीया परीक्षकैः ॥ २५१ ॥

अन्वयः—परीक्षकैः निकृष्टानाम् एषा संख्या, मध्यानां द्विगुणा स्मृता, उत्तमानां च चतुर्गुणा कल्पनीया ॥ २५१ ॥

व्याख्या—परीक्षकैः = विचारकैः राजपुरुषैः, निकृष्टानाम् = निम्कोटिपुरुषाणाम्, एषा = पूर्वोक्ता, संख्या = परिगणना, मध्यानाम् = मध्यमकोटिपुरुषाणाम्, एतत् पूर्वोक्ता संख्या, द्विगुणा = द्विगुणिता, स्मृता = कथिता, उत्तमानाञ्च = उत्तमकोटिजनानाम्, चतुर्गुणा, कल्पनीया = विहितव्या ॥ २५१ ॥

हिन्दी—यह संख्या निम्न दिव्य परीक्षा की है, मध्यम दर्जे की दिव्य परीक्षा में ऊपर लिखित संख्या दूनी होती है तथा उत्तम दिव्य परीक्षा में परीक्षकों द्वारा यह संख्या चौगुनी विहित होनी चाहिए ॥ २५१ ॥

एषेति। परीक्षकैः राजपुरुषैः निकृष्टानां नीचानाम् एषा उक्तरूपा संख्या, मध्यानां मानवानाम् एतद् द्विगुणा स्मृता। उत्तमानाञ्च चतुर्गुणा कल्पनीया ॥ २५१ ॥

शिरोवर्त्ती यदा न स्यात् तदा दिव्यं न दीयते।
अभियोक्ता शिरःस्थाने दिव्येषु परिकीर्त्त्यते॥ २५२ ॥

अन्वयः—यदा अभियोक्ता शिरोवर्त्ती न स्यात् तदा दिव्यं न दीयते। अभियोक्ता दिव्येषु शिरःस्थाने परिकीर्त्यते ॥ २५२ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, अभियोक्ता = वादी, शिरोवर्त्ती = सम्मुखस्थः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, तदा = तस्मिन् काले, दिव्यम् = दिव्यशपथम्, न = नहि, दीयते = दातव्यम्। अभियोक्ता = वादी, दिव्येषु = दीयमानेषु, शिरःस्थाने = अग्रस्थाने, परिकीर्त्यते = कथ्यते ॥२५२ ॥

हिन्दी—दिव्यशपथ लेने वाला जब तक शिर हिलाकर स्वीकृति न दे तब तक शपथ नहीं दिलानी चाहिए। अथवा जब तक वादी सामने उपस्थित न हो तब तक प्रतिवादी को शपथ नहीं दिलानी चाहिए, क्योंकि दिव्य शपथ में अभियोक्ता शिरःस्थानीय है ॥ २५२ ॥

शिर इति। यदा अभियोक्ता शिरोवर्त्ती अग्रवर्त्ती सम्मुखस्थितः न स्यात् तदा दिव्यं न दीयते अभियोक्ता दिव्येषु दीयमानेष्वित्यर्थः, शिरःस्थाने परिकीर्त्त्यते शिरोवर्त्ती भवेदिति कथ्यते ॥ २५२ ॥

अभियुक्ताय दातव्यं दिव्यं श्रुतिनिदर्शनात्।
न कश्चिदभियोक्तारं दिव्येषु विनियोजयेत्॥ २५३ ॥

अन्वयः—अभियुक्ताय श्रुतिनिदर्शनात् दिव्यं दातव्यम्। कश्चित् अभियोक्तारं दिव्येषु न विनियोजयेत् ॥ २५३ ॥

व्याख्या—अभियुक्ताय = प्रतिवादिने, श्रुतिनिदर्शनात् = वेदनिर्देशात्, दिव्यम् = दिव्यशपथम्, दातव्यम् = प्रदातव्यम्। कश्चित् = कोऽपि जनः, अभियोक्तारम् = वादिनम्, दिव्येषु = दीयमानेषु शपथेषु, न = नहि, विनियोजयेत् = प्रेरयेत् ॥ २५३ ॥

हिन्दी—वेद-निर्देशित होने के कारण दिव्यशपथ प्रतिवादी को ही दिलवाना चाहिए। अतः कोई वादी को दिव्यशपथ न दिलवाये ॥ २५३ ॥

अभियुक्तायेति। श्रुतिनिदर्शनात् वेदनिधानात् अभियुक्ताय दिव्यं दातव्यम्। कश्चित् जनः अभियोक्तारं दिव्येषु न विनियोजयेत् ॥ २५३ ॥

इच्छया त्वितरः कुर्य्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः ॥ २५४ ॥

अन्वयः—इच्छया तु इतरः कुर्यात् तदा इतरः शिरः वर्त्तयेत् ॥ २५४ ॥

व्याख्या—इच्छया = अभियुक्तस्येच्छया, तु, इतरः = अन्यः, अभियोक्ता, कुर्यात् = दिव्यं सम्पादयेत्, तदा इतरः = स एव, शिरः = अभियोक्तृमस्तके सम्मुखे वा, तिष्ठेत् ॥ २५४ ॥

हिन्दी—प्रतिवादी की इच्छा से यदि वादी दिव्यशपथ ग्रहण करे तो प्रतिवादी की उपस्थिति आवश्यक है। क्योंकि ऐसी स्थिति में वही शिरःस्थानीय होता है ॥ २५४ ॥

इच्छयेति। इच्छया तु अभियुक्तस्येति भावः, इतरः अभियोक्ता कुर्य्यात् दिव्यमिति शेषः। तदा इतरः स एव शिरः वर्त्तयेत् अभियोक्तृशिरसि तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २५४ ॥

पार्थिवैः शङ्कितानां च निर्दिष्टानां च दस्युभिः।
आत्मशुद्धिपराणां च दिव्यं देयं शिरो विना ॥ २५५ ॥

अन्वयः—दस्युभिः निर्दिष्टानाम् अतः पार्थिवैः शङ्कितानाम् आत्मशुद्धिपराणां शिरः विना दिव्यं देयम् ॥ २५५ ॥

व्याख्या—दस्युभिः = लुण्ठकैः, निर्दिष्टानाम् = सङ्केतितानाम्, अत एव, पार्थिवैः = नृपैः, शङ्कितानाम् = सन्दिग्धानाम्, आत्मशुद्धिपराणाम्—आत्मनः = स्वस्य, शुद्धिः = पवित्रीकरणम्, तस्मिन् पराणाम् = तत्पराणाम्, शिरः = कस्यापि जनस्य मस्तके स्थितम्, विना = विहाय, दिव्यम् = भास्वरं शपथम्, देयम् = दातुं योग्यमस्ति ॥ २५५ ॥

हिन्दी—राजा का जिन पर अपराधी होने का संदेह किया गया हो, अथवा डाकू आदि ने अपराध करने में जिनका नाम निर्देशित किया हो या जो स्वयं अपनी निर्दोषिता सिद्ध करना चाहते हों, उन्हें विराधी पक्ष की उपस्थिति या सिर हिलाकर स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥ २५५ ॥

पार्थिवैरिति। दस्युभिः निर्दिष्टानां दूषितत्वेन प्रदर्शितानाम् अत एव पार्थिवैः राजभिः शङ्कितानाम् आत्मशुद्धिपराणां स्वदोषक्षालनार्थिनां मानवानां शिरः कस्यापि शिरसि अवस्थानं विना दिव्यं देयम् ॥ २५५ ॥

परदाराभिशापे च ह्यगम्यागमनेषु च।
महापातकशस्ते च दिव्यमेव न चान्यथा ॥ २५६ ॥

अन्वयः—परदाराभिशापे अगम्यागमनेषु तथा महापातकशस्ते दिव्यमेव, अन्यथा च न ॥ २५६ ॥

व्याख्या—परदाराभिशापे = परनारीगमनाभियोगे, च = पुनः, अगम्यानाम् = दुर्गमानां नारीणाम्, गमनेषु = मैथुनेषु, तथा = तेनैव प्रकारेण, महापातकशस्ते = ब्रह्महत्यादिमहापातकाभियोगे, दिव्यमेव = पूर्वोक्तदिव्यशपथमेव, देयम्, अन्यथा = अन्यप्रकारेण, न = नहि ॥ २५६ ॥

हिन्दी—परनारीगमन का अभियोग लगने पर, अगम्या नारी के साथ गमन का अभियोग लगने पर अथवा ब्रह्महत्या जैसे जघन्य अपराध के अभियोग में ही दिव्यशपथ का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा नहीं ॥ २५६ ॥

परदारेति। परदाराभिशापे परस्त्रीगमनाभियोगे, अगम्यानां विमातृप्रभृतीनां गमनेषु तथा महापातकशस्ते ब्रह्महत्यादिमहापापाभियोगे च दिव्यमेव शोधनमित्यर्थः, अन्यथा न शुद्धिरित्यर्थः ॥ २५६ ॥

चौर्य्याभिशङ्कायुक्तानां तप्तमाषो विधीयते ॥ २५७ ॥

अन्वयः—चौर्याभिशङ्कायुक्तानां तप्तमाषः विधीयते ॥ २५७ ॥

व्याख्या—चौर्याभिशङ्कायुक्तानाम् = स्तेयापयशग्रस्तानाम्, तप्तमाषः = तापिततैलगतमाषपरिमितलोहपिण्डम्, विधीयते = विधानमस्ति ॥ २५७ ॥

हिन्दी—जिस पर चोरी जैसे अभियोग का संदेह किया गया हो, ऐसे अपराधी के लिए खौलते तेल में हाथ डालकर तपे लोहे के उरदों को निकालने का विधान है ॥ २५७ ॥

चौर्य्येति। चौर्य्याभिशङ्कायुक्तानां चौर्य्यापवादग्रस्तानां मानवानां तप्तमाषः तप्ततैलगतमाषपरिमितलोहपिण्डं विधीयते ॥ २५७ ॥

प्राणान्तिकविवादे तु विद्यमानेऽपि साधने।
दिव्यमालम्बते वादी न पृच्छेत् तत्र साधनम्॥ २५८॥

अन्वयः—प्राणान्तिकविवादे साधने विद्यमानेऽपि वादी दिव्यम् आलम्बते। तत्र साधनं न पृच्छेत्॥ २५८॥

व्याख्या—प्राणान्तिकविवादे = प्राणघातकव्यवहारे समुपस्थिते, साधने = अपरस्मिन् उपकरणे प्रमाणे वा, विद्यमानेऽपि = उपस्थितेऽपि, वादी = अभियोगी, दिव्यम् = प्रमाणम्, आलम्बते = आलम्बनं कुरुते, तत्र = तस्मिन्स्थाने, साधनम् = उपकरणं प्रमाणं वा, न = नहि, पृच्छेत् = जिज्ञासां कुर्यात्॥ २५८॥

हिन्दी—प्राणसंकट उपस्थित होने वाले मुकदमे में भले ही साधन उपस्थित हो, फिर भी अभियुक्त दिव्य साधन का सहारा ले सकता है। पर वहाँ साधन के सन्दर्भ में वादी को कोई प्रश्न नहीं पूछना चाहिए॥ २५८॥

प्राणान्तिकेति। प्राणान्तिकविवादे उपस्थिते इत्यर्थः, साधने अन्यस्मिन् प्रमाणे विद्यमानेऽपि वादी दिव्यं प्रमाणम् आलम्बते आश्रयति, तत्र साधनम् अन्यदिति भावः न पृच्छेत्॥ २५८॥

सोपधं साधनं यत्र तद्राज्ञे श्रावितं यदि।
शोधयेत्तत्तु दिव्येन राजा धर्मासनस्थितः॥ २५९॥

अन्वयः—यत्र साधनं सोपधं तत् यदि राज्ञे श्रावितं धर्मासनगतः राजा तत् दिव्येन शोधयेत्॥ २५९॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विवादे, साधनम् = प्रमाणम्, सोपधम् = छलयुक्तम्, तच्च यदि = चेत्, राज्ञे = भूभृति, श्रावितम् = सूचितं स्यात्, तदा धर्मासनगतः = न्यायासने स्थितः, राजा = नृपः, तत् = विवादम्, दिव्येन = प्रमाणेन, शोधयेत् = विचारयेत्॥ २५९॥

हिन्दी—यदि किसी मुकदमे में प्रमाण जाली हो और इसकी सूचना राजा को मिल जाय, तो न्याय के आसन पर बैठा राजा दिव्यशपथ के द्वारा इसकी परीक्षा करे॥ २५९॥

सोपधमिति। यत्र साधनं प्रमाणं सोपधं कापट्यपूर्णं, तच्च यदि राज्ञे श्रावितं स्यात् तदा धर्मासनगतः राजा दिव्येन तत् शोधयेत्॥ २५९॥

यन्नामगोत्रैर्यल्लेख्यतुल्यं लेख्यं यदा भवेत्।
अगृहीतधने तत्र कार्य्यो दिव्येन निर्णयः॥ २६०॥

अन्वयः—यदा यत् लेख्यं यन्नामगोत्रैः लेख्यस्य तुल्यं भवेत्, तदा तत्र अगृहीतधने दिव्येन निर्णयः कार्यः॥ २६०॥

व्याख्या—यदा यल्लेख्यम् = व्यवहारपत्रम्, यन्नामगोत्रैः = यथाविधिनामगोत्रैः, लेख्यस्य = तात्त्विकविवादपत्रस्य, तुल्यम् = समम्, भवेत्, तदा तत्र = तस्मिन्विवादे अभियुक्ते, अगृहीतधने—न, गृहीतम् = नीतम्, धनम् = अर्थम्, येन तस्मिन् धनाग्राहिणि वादिसकाशात्, दिव्येन = प्रमाणेन, निर्णयः = दण्डाज्ञा, कार्यः = विधेयः॥ २६०॥

हिन्दी—रुपया न लेने के बावजूद यदि कोई नामगोत्र के साथ जाली ऋणपत्र तैयार कर दावा ठोक दे तो राजा सत्यासत्य का निर्णय दिव्यशपथ द्वारा करे॥ २६०॥

यदिति। यदा यत् लेख्यं यन्नामगोत्रैः यथायथनामगोत्रैः लेख्यस्य तात्त्विकस्य तुल्यं भवेत् तदा तत्र अभियुक्ते अगृहीतधने धनाग्राहिणि वादिसकाशात् आत्मानम् अगृहीतधनत्वेन मन्यमाने इत्यर्थः, दिव्येन निर्णयः कार्य्यः॥ २६० ॥

मानुषं साधनं न स्यात्तत्र दिव्यं प्रदापयेत्।
अरण्ये निर्जने रात्रावन्तर्वेश्मनि साहसे॥ २६१ ॥
स्त्रीणां शीलाभियोगेषु सर्वार्थापह्नवेषु च।
प्रदुष्टेषु प्रमाणेषु दिव्यैः कार्य्यं विशोधनम्॥ २६२ ॥

अन्वयः—यत्र मानुषं साधनं न स्यात् तत्र दिव्यं प्रदापयेत्। तथा च अरण्ये निर्जने रात्रौ अन्तर्वेश्मनि साहसे स्त्रीणां शीलाभियोगेषु सर्वेषाम् अर्थानाम् अपह्नवेषु तथा प्रमाणेषु प्रदुष्टेषु च दिव्यैः विशोधनं कार्यम्॥ २६१-२६२ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विवादे, मानुषम् = लौकिकम्, साधनम् = उपकरणम्, न = नहि, स्यात् = भवेत्; तत्र = तस्मिन् विवादे, दिव्यम् = दिव्यप्रमाणम्, प्रदापयेत् = प्रयच्छेत्, तथा च अरण्ये = वने, निर्जने = जनशून्यस्थाने, रात्रौ = निशायाम्, अन्तर्वेश्मनि = गृहाभ्यन्तरे, साहसे = दस्युतायाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, शीलाभियोगेषु = चरित्रहननेषु, सर्वेषाम् = सकलानाम्, अर्थानाम् = धनानाम्, अपह्नवेषु = प्रच्छादनेषु, तथा प्रमाणेषु लौकिकेषु, प्रदुष्टेषु = प्रकर्षेण दूषितेषु, दिव्यैः = शपथैः, विशोधनम् = परिष्करणम्, कार्यम् = विधेयम्॥ २६१-२६२ ॥

हिन्दी—जहाँ पर कोई लौकिक प्रमाण न मिले वहाँ दिव्यशपथ दिलाना चाहिए। जंगल, जनशून्य स्थान, रात, घर का भीतरी भाग, डकैती प्रभृति साहसिक कर्म और स्त्रियों के आचरण—इन सबों के विषय में सम्बद्ध अभियोग में और जहाँ सम्पूर्ण अर्थ का रहस्य स्पष्ट न हो, जो कुछ प्रमाण हो वह भी दूषित हो तो वहाँ दिव्यशपथ द्वारा अपराधी की परीक्षा करनी चाहिए॥ २६१-२६२ ॥

मानुषमिति। स्त्रीणामिति। यत्र मानुषं साधनं लौकिकं प्रमाणं न स्यात् न विद्यते, तत्र दिव्यं प्रदापयेत्। तथा च अरण्ये, निर्जने, रात्रौ, अन्तर्वेश्मनि गृहाभ्यन्तरे, साहसे दस्युतायां स्त्रीणां शीलाभियोगेषु चरित्रदूषणेषु सर्वेषाम् अर्थानाम् अपह्नवेषु तथा प्रमाणेपु लौकिकेषु प्रदुष्टेषु प्रकर्षेण दूषितेषु च दिव्यैः विशोधनं कार्य्यम्॥ २६१-२६२ ॥

महापापाभिशापेषु निक्षेपहरणेषु च।
दिव्यैः कार्य्यं परीक्षेत राजा सत्स्वपि साक्षिषु॥ २६३ ॥

अन्वयः—राजा महापापाभिशापेषु च निक्षेपहरणेषु च साक्षिषु सत्स्वपि दिव्यैः कार्यं परीक्षेत॥ २६३ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, महापापाभिशापेषु = ब्रह्महत्यादिमहापातकाभियोगेषु, तथा निक्षेपाणाम् = न्यस्तधनानाम्, हरणेषु = बलान्नीतेषु च, साक्षिषु = प्रेक्षकेषु, सत्स्वपि = विद्यमानेष्वपि, दिव्यैः, कार्यम् = व्यवहारम्, परीक्षेत = परीक्षां कुर्यात्॥ २६३ ॥

हिन्दी—राजा साक्षी के रहने के बावजूद बड़े अपराधों, धरोहर पचा जाने जैसे कुकृत्यों का निर्णय दिव्यशपथ द्वारा ही करे॥ २६३ ॥

महेति। राजा महापापाभिशापेषु महापातकाभियोगेषु तथा निक्षेपाणां न्यस्तद्रव्याणां हरणेषु च साक्षिषु सत्स्वपि विद्यमानेषु अपि दिव्यैः कार्य्यं परीक्षेत ॥ २६३ ॥

प्रथमा यत्र भिद्यन्ते साक्षिणश्च तथा परे।
परेभ्यश्च तथा चान्ये तं वादं शपथैर्नयेत् ॥ २६४ ॥

अन्वयः—यत्र प्रथमाः तथा परे परेभ्यश्च अन्ये साक्षिणः भिद्यन्ते, तत्र शपथैः तं वादं नयेत् ॥ २६४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विवादे, प्रथमाः = उत्तमाः, तथा परे = मध्यमाः, तथा परेभ्यश्च = अन्येभ्यश्च, अन्ये = इतरे, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, भिद्यन्ते = भेदं गच्छन्ति, तत्र = तस्मिन् विवादे, शपथैः = दिव्यैः, वादम् = व्यवहारम्, नयेत् = विचारयेत् ॥ २६४ ॥

हिन्दी—जहाँ पर उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोटि के गवाह दूसरों के द्वारा फोड़ लिये गये हों, वहाँ दिव्यशपथ के द्वारा अभियोग का निर्णय करना चाहिए ॥ २६४ ॥

प्रथमां इति। यत्र प्रथमाः श्रेष्ठाः तथा परे मध्यमा इत्यर्थः, तथा परेभ्यश्च अन्ये साक्षिणः भिद्यन्ते भेदं गच्छन्ति तत्र शपथैः वादं नयेत् निष्पादयेदित्यर्थः ॥ २६४ ॥

स्थावरेषु विवादेषु पूगश्रेणिगणेषु च।
दत्तादत्तेषु भृत्यानां स्वामिनां निर्णये सति ॥ २६५ ॥
विक्रयादानसम्बन्धे क्रीत्वा धनमनिच्छति।
साक्षिभिर्लिखितेनाथ भुक्त्या चैतान् प्रसाधयेत् ॥ २६६ ॥

अन्वयः—स्थावरेषु पूगश्रेणिगणेषु भृत्यानां दत्तादत्तेषु विवादेषु स्वामिनां निर्णये विक्रयादानसम्बन्धे धनं क्रीत्वा अनिच्छति। साक्षिभिः लिखितेन तथा भुक्त्या एतान् प्रसाधयेत् ॥ २६५-२६६ ॥

व्याख्या—स्थावरेषु = अचलासु सम्पत्सु भूम्यादिषु च, पूगश्रेणिगणेषु—पूगाः = जातिविशेषस्य समुच्चयाः, श्रेणयः = समव्यवसायिसङ्घाः, गणाः = अनुचरवर्गाः, तेषु, भृत्यानाम् = सेवकानाम्, दत्तादत्तेषु = अर्पितानर्पितेषु, वेतनस्य, विवादेषु = व्यवहारेषु, स्वामिनाम् = प्रभूणाम्, निर्णये = निश्चये, केऽस्य स्वामिनः इत्येवं निश्चये, विक्रयादानसम्बन्धे—विक्रयः = कृतविक्रयः, अदाने = अनुत्सर्जने, तथा धनम् = द्रव्यम्, क्रीत्वा = मूल्येनाधिगम्य, अनिच्छति = अगृह्णाति सति, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, लिखितेन = लिपिबद्धकृतेन, तथा भुक्त्या = भोगेन, एतान् = विवादान्, प्रसाधयेत् = सम्पादयेत् ॥ २६५-२६६ ॥

हिन्दी—अचल सम्पत्ति-विषयक विवाद, पूग अर्थात् एक प्रकार की जाति का समुच्चय, श्रेणी, व्यवसायिकों के संघ, गण अर्थात् अनुचरों का समूह-विषयक विवाद एवं सेवकों के वेतन-भुगतान विषयक, किसी धन के स्वामित्व-विषयक निर्णय के सम्बन्ध में, बेची गयी वस्तु को न देने के सम्बन्ध में तथा वस्तु खरीद कर उसे न लेने की इच्छा के सम्बन्ध में विवाद उपस्थित होने पर गवाह, दस्तावेज एवं कब्जा के आधार पर इनका निर्णय करे ॥ २६५-२६६ ॥

स्थावरेष्विति। **विक्रयेति**। स्थावरेषु भूम्यादिषु विषयेषु पूगश्रेणिगणेषु पूगाः जातिविशेषसङ्घाः

श्रेणयः विभिन्नजातिसङ्घाः गणाः एकविधजातिसङ्घाः तेपु, भृत्यानां दत्तादत्तेषु वेतनस्येति भावः, विवादे तथा स्वामिनां निर्णये के अस्य स्वामिनः इत्येवं निश्चये सति, विक्रयादानसम्बन्धे विक्रीय अदाने इत्यर्थः, तथा धनं द्रव्यं क्रीत्वा अनिच्छति अगृह्णति सति साक्षिभिः लिखितेन तथा भुक्त्या एतान् विवादान् प्रसाधयेत निष्पादयेत् ॥ २६५-२६६ ॥

विवाहोत्सवद्यूतेषु विवादे समुपस्थिते।
साक्षिणः साधनं तत्र न दिव्यं न च लेख्यकम् ॥ २६७ ॥

अन्वयः—विवाहोत्सवद्यूतेषु विवादे समुपस्थिते तत्र साक्षिणः साधनं दिव्यं न लेख्यकञ्च नेति ॥ २६७ ॥

व्याख्या—विवाहे = पाणिग्रहणसंस्कारे, उत्सवे = महे, तथा, द्यूतेषु = पणनेषु, विवादे = व्यवहारे, समुपस्थिते = समागते सति, तत्र = तस्मिन् विषये, साक्षिणः = प्रेक्षकाः, साधनम् = प्रमाणम्, दिव्यम् = दिव्यशपथम्, न = नास्ति, प्रमाणं, लेख्यकञ्च = लिपिबद्धपत्रञ्च, साधनम् = प्रमाणम्, न भवेत् ॥ २६७ ॥

हिन्दी—विवाह, उत्सव, एवं जुए के सम्बन्ध में विवाद उपस्थित होने पर गवाह को ही मुख्य प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसमें न तो दिव्यशपथ चलता है और न लिखित प्रमाण ही माँगा जाता है ॥ २६७ ॥

विवाहेति। विवाहे उत्सवे तथा द्यूतेषु विवादे समुपस्थिते सति तत्र साक्षिणः साधनं प्रमाणं, दिव्यं न, लेख्यकञ्च न साधनमित्यर्थः ॥ २६७ ॥

द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहादिषु तथा।
भुक्तिरेव तु गुर्वी स्यान्न दिव्यं न च साक्षिणः ॥ २६८ ॥

अन्वयः—द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहादिषु भुक्तिः एव गुर्वी स्यात्, न दिव्यं न च साक्षिणः ॥ २६८ ॥

व्याख्या—द्वारे = द्वारानुष्ठाने, मार्गे = मार्गकरणे, भोग्यानाम् = उपभोग्यानाम्, क्रमागतम्, जलवाहादिषु = जलनिः सारणादिषु, भुक्तिः = भोगः एव, गुर्वी = गम्भीरप्रमाणम्, स्यात्, दिव्यम् = शपथम्, साक्षिणश्च = प्रेक्षकादीनाञ्च, प्रमाणं न भवति ॥ २६८ ॥

हिन्दी—घर का दरवाजा, निकलने की राह, पानी का निकास, अधिकृत वस्तु के सम्बन्ध में उपस्थित मुकदमे में किसका अधिकार है? यह कब्जा ही महत्त्वपूर्ण प्रमाण माना जाता है; न तो दिव्य शपथ या गवाह ही ॥ २६८ ॥

द्वारेति। द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहादिषु द्वारानुष्ठाने मार्गकरणे भोग्यानां क्रमागतं जलनिःसारणादिषु भुक्तिः भोगः एव गुर्वी प्रमाणं स्यात्, दिव्यं न साक्षिणश्च न प्रमाणमित्यर्थः ॥ २६८ ॥

यद्येको मानुषीं ब्रूयादन्यो ब्रूयात्तु दैविकीम्।
मानुषीं तत्र गृह्णीयान्न तु दैवीं क्रियां नृपः ॥ २६९ ॥

अन्वयः—यदि एकः मानुषीं ब्रूयात् अन्यः दैविकीं, नृपः तत्र मानुषीं क्रियां गृह्णीयात्; न तु दैवीम् ॥ २६९ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, एकः = वादी वा प्रतिवादी, मानुषीम् = मानवीम्, क्रियाम् = प्रमाणम्, ब्रूयात् = वदेत्, अन्यः = अपरः, दैवीं क्रियाम् = दिव्यशपथम्, ब्रूयात् = वदेत्, तदा, नृपः = राजा, तत्र = विवादे, मानुषीम् = मानवीम्, क्रियाम् = प्रमाणम्, गृह्णीयात् = स्वीकुर्यात्, न तु दैवीम् इति ॥ २६९ ॥

हिन्दी—वादी-प्रतिवादी में से कोई एक यदि मानवीय प्रमाण तथा दूसरा दैवी प्रमाण के बारे में कहे तो राजा को चाहिए कि वह मानवीय प्रमाण ही माने, न कि दैवी प्रमाण ॥ २६९ ॥

यदीति। यदि एकः जनः मानुषीं क्रियां ब्रूयात्, अन्यस्तु प्रतिवादी तु दैविकीं ब्रूयात् तत्र नृपः मानुषीं क्रियां गृह्णीयात् न तु दैवीम् ॥ २६९ ॥

यद्येकदेशप्राप्तापि क्रिया विद्येत मानुषी।
सा ग्राह्या न तु पूर्णापि दैविकी वदतां नृणाम् ॥ २७० ॥

अन्वयः—यदि मानुषी क्रिया एकदेशप्राप्ताऽपि विद्येत सा ग्राह्या, न तु पूर्णापि दैविकीं वदतां नृणां न ग्राह्येति ॥ २७० ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, मानुषीम् = मानवीम्, क्रियाम् = प्रमाणम्, एकदेशप्राप्ताऽपि—एकदेशे = विवादस्यैकांशे, प्राप्ता = अधिगताऽपि, विद्येत = भवेत्, तदा सा = क्रिया, ग्राह्या = स्वीकार्या, पूर्णापि = सम्पूर्णांशव्याप्ताऽपि, दैविकीम्, वदताम् = निर्दिष्टताम्, नृणाम् = नराणाम्, न तु, ग्राह्या = स्वीकार्या ॥ २७० ॥

हिन्दी—भले ही मानुषी क्रिया विवाद के एक पक्ष की ही सम्पुष्टि करती हो, फिर भी वह स्वीकार्य है। विवाद के पूरे अंशों की सम्पुष्टि करने वाली दैवी क्रिया किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं होनी चाहिए ॥ २७० ॥

यदीति। यदि मानुषी क्रिया एकदेशप्राप्तापि अभियोगस्य कियत्यपि अंशे प्राप्तापि विद्येत, तदा सा ग्राह्या। पूर्णापि दैविकी वदतां नृणां न तु ग्राह्या इत्यर्थः ॥ २७० ॥

प्रमाणैर्हेतुचरितैः शपथेन नृपाज्ञया।
वादिसम्प्रतिपत्त्या वा निर्णयः षड्विधः स्मृतः ॥ २७१ ॥

अन्वयः—प्रमाणैः हेतुचरितैः शपथेन नृपाज्ञया वादिना सम्प्रतिपत्त्या वा षड्विधः निर्णयः स्मृतः ॥ २७१ ॥

व्याख्या—प्रमाणैः = साक्ष्यादिसाधनैः, हेतुभिः = निमित्तैः, चरितैः = आचारैः, शपथेन = सङ्कल्पेन, नृपाज्ञया—नृपस्य = राज्ञः, आज्ञया = आदेशेन, वादिना = अभ्यर्थिना, सम्प्रतिपत्त्या = विचारेण वा, एभिः = षड्भिः, निष्पाद्यत्वात्, निर्णयः = निष्पत्तिः, षड्विधः = षट्प्रकारकः, स्मृतः = कथितः ॥ २७१ ॥

हिन्दी—गवाह या लेख जैसे प्रमाण, प्रयोजन, आचारण, सौगन्ध, राजा का हुक्म तथा वादी की इच्छा—इन छः प्रकारों से निष्पन्न होने के कारण निर्णय छः तरह के होते हैं ॥ ७० २ ॥

प्रमाणैरिति। प्रमाणैः साक्षिलेख्यादिभिः हेतुभिः कारणैः, चरितैः, आचरणैः, शपथेन, नृपाज्ञया राजादेशेन, वादिनः सम्प्रतिपत्त्या सम्मत्या वा एभिः षड्भिः निष्पाद्यत्वात् निर्णयः निष्पत्तिः षड्विधः स्मृतः ॥ २७१ ॥

लेख्यं यत्र न विद्येत न भुक्तिर्न च साक्षिणः ।
न च दिव्यावतारोऽस्ति प्रमाणं तत्र पार्थिवः ॥ १७२ ॥

अन्वयः—यत्र लेख्यं न भुक्तिश्च न साक्षिणश्च न विद्येत, दिव्यावतारश्च न अस्ति, तत्र पार्थिवः प्रमाणं कुर्यात् ॥ २७२ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् विवादे, लेख्यम् = लिपिबद्धप्रमाणम्, न = नास्ति, भुक्तिश्च = भोगश्च, न = नैव, साक्षिणः = प्रेक्षकाश्च, न विद्यते = नास्ति, दिव्यावतारश्च = दिव्यशपथस्यावसरोऽपि, न = नास्ति, तत्र = तस्मिन् विवादे, पार्थिवः = राजा, प्रमाणम् = निदर्शनम्, कुर्यात् = स्यात् ॥ २७२ ॥

हिन्दी—जहाँ लिखित प्रमाण, कब्जा, गवाह या दिव्यशपथ—इनमें किसी का प्रमाण न दिया गया हो, वहाँ राजा का निर्णय ही प्रमाण माना जाता है ॥ २७२ ॥

लेख्यमिति। यत्र लेख्यं न भुक्तिश्च न विद्यते, साक्षिणश्च न सन्ति, दिव्यावतारश्च न अस्ति, तत्र पार्थिवः राजा प्रमाणं यथाभिमतं कुर्य्यादित्यर्थः ॥ २७२ ॥

निश्चेतुं ये न शक्याः स्युर्वादाः सन्दिग्धरूपिणः ।
सीमाद्यास्तत्र नृपतिः प्रमाणं स्यात् प्रभुर्यतः ॥ २७३ ॥

अन्वयः—ये सन्दिग्धरूपिणः सीमाद्याः वादाः निश्चेतुं न शक्याः स्युः, तत्र नृपतिः प्रमाणं स्यात्; यतः सः प्रभुः ॥ २७३ ॥

व्याख्या—ये = विवादाः, सन्दिग्धरूपिणः = शङ्काभिराक्रान्ताः, सीमाद्याः = प्रान्तादिसङ्क्रमिताः, वादाः = विवादाः, निश्चेतुम् = निर्णेतुम्, न = नहि, शक्याः = समर्थाः, स्युः = भवेयुः, तत्र = तस्मिन् विवादे, नृपतिः = राजा एव, प्रमाणम् = निदर्शनम्, स्यात्, यतः = यस्माद्धेतोः, सः = राजा, प्रभुः = सर्वेषां जनानां स्वामी भवति ॥ २७३ ॥

हिन्दी—सीमा-विवाद जैसे सन्दिग्ध मुकदमे में जिनका निश्चयपूर्वक निर्णय नहीं किया जा सके, ऐसे मामलों में राजा का निर्णय ही निष्पत्ति है; क्योंकि वह सबका स्वामी होता है।

निश्चेतुमिति। ये सन्दिग्धरूपिणः सन्देहसङ्कुलाः सीमाद्याः सीमादिसङ्क्रान्ताः वादा विवादाः निश्चेतुं न शक्याः स्युः, तत्र नृपतिः प्रमाणं स्यात्, यतः सः प्रभुः ॥ २७३ ॥

स्वतन्त्रः साधयन्नर्थान् राजापि स्याच्च किल्बिषी ।
धर्मशास्त्राविरोधेन ह्यर्थशास्त्रं विचारयेत् ॥ २७४ ॥

अन्वयः—राजाऽपि स्वतन्त्रः अर्थान् साधयन् किल्बिषी स्यात्, तस्मात् धर्मशास्त्राविरोधेन अर्थशास्त्रं विचारयेत् ॥ २७४ ॥

व्याख्या—राजापि = नृपोऽपि, स्वतन्त्रः = स्वेच्छाचारी भूत्वा, अर्थान् = धनानि, साधयन् = निष्पादयन्, किल्बिषी = पापी, स्यात् = भवेत्, तस्मात् = कारणात्, धर्मशास्त्राविरोधेन = धर्मग्रन्थानुसारेण, अर्थशास्त्रम् = धनप्राप्तिरक्षावृद्ध्याद्युपायदर्शकं शास्त्रम्, विचारयेत् = चिन्तयेत् ॥ २७४ ॥

हिन्दी—स्वेच्छाचारी राजा भी पापी होता है। अतः धर्मशास्त्र के अनुसार ही उसे अर्थशास्त्र का अनुचिन्तन करना चाहिए ॥ २७४ ॥

स्वतन्त्र इति। राजापि स्वतन्त्रः स्वेच्छाचारी अर्थात् कार्य्याणि साधयन् समादधानः किल्बिषी पापी स्यात्। तस्मात् धर्मशास्त्राविरोधेन अर्थशास्त्रं विचारयेत् तथात्वे पापस्पर्शो न भवेदिति भावः॥ २७४॥

राजामात्यप्रलोभेन व्यवहारस्तु दुष्यति।
लोकोऽपि च्यवते धर्मात् कूटार्थे सम्प्रवर्त्तते॥ २७५॥

अन्वयः—राजामात्यप्रलोभेन व्यवहारः दुष्यति। लोकोऽपि धर्मात् च्यवते कूटार्थे च सम्प्रवर्त्तते॥ २७५॥

व्याख्याः—राज्ञः = नृपस्य, अमात्यानाञ्च = मन्त्रिणाञ्च, प्रलोभेन = प्रकर्षेण लिप्सया, व्यवहारः = आचारविचारः, दुष्यति = दूषितो भवति, लोकोऽपि = प्रजाऽपि, धर्मात् = सुकर्मणः, च्यवते = भ्रश्यति, कामाचारी भवतीत्यर्थः, कूटार्थे = कपटकृत्ये, च = पुनः, सम्प्रवर्त्तते = प्रवृत्तो भवति॥ २७५॥

हिन्दी—राजा और मन्त्रियों की लिप्सा के कारण मुकदमे का निर्णय कलुषित हो जाता है। प्रजा भी भ्रष्ट हो जाती है, उनका व्यवहार भी कपटपूर्ण होने लगता है॥ २७५॥

राजेति। राज्ञः अमात्यानाञ्च प्रलोभेन लोभातिशयेन व्यवहारः विचारः दुष्यति सदोषो भवति, लोकोऽपि धर्मात् च्यवते भ्रश्यति यथेच्छं व्यवहरतीत्यर्थः, कूटार्थे कपटकार्य्ये सम्प्रवर्त्तते च॥ २७५॥

अतिकामक्रोधलोभैर्व्यवहारः प्रवर्त्तते।
कर्तॄनथो साक्षिणश्च सभ्यान् राजानमेव च।
व्याप्नोत्यतस्तु तन्मूलं छित्वा तं विमृशं नयेत्॥ २७६॥

अन्वयः—अतिकामक्रोधलोभैः व्यवहारः प्रवर्त्तते, कर्तॄन् साक्षिणः सभ्यान् राजानञ्च व्याप्नोति। अतः तन्मूलं छित्वा तं विमृशं नयेत्॥ २७६॥

व्याख्या—अतिकामक्रोधलोभैः—अतिशयकामेन = वासनया, क्रोधातिशयेन = अतिशयकोपेन, लोभेन = लोभातिशयेन, यदि व्यवहारः = विवादः, प्रवर्त्तते = आचरते, तदा एव तज्जनितम्, पापं कर्तॄन् = अधर्मकारिणः, साक्षिणः = प्रेक्षकान्, सभ्यान् = पारिषदः, राजानञ्च = नृपञ्च, व्याप्नोति = अवलम्बते। अतः = अस्मात् कारणात्, तत् = तस्य पापस्य, मूलम् = कामादीनामातिशय्यम्, छित्वा = विहाय, तम् = विवादम्, विमृशम् = विशिष्टविवेकम्, नयेत् = प्रापयेत्॥ २७६॥

हिन्दी—जब काम, क्रोध और लोभ की अधिकता से मनुष्य का व्यवहार दूषित होने लगता है तब वह फैलकर कर्त्ता, गवांह, पारिषद और राजा में भी व्याप्त हो जाता है। अतः राजा उसके मूल कारण कामादि को हटाकर विवाद का विवेक से पूर्ण विचार कर निर्णय करे॥ २७६॥

अतीति। अतिकामक्रोधलोभैः कामातिशयेन क्रोधातिशयेन लोभातिशयेन च यदि व्यवहारः प्रवर्त्तते चलति तदा एव तज्जनितं पापं कर्तॄन् पापकारिणः साक्षिणः सभ्यान् राजानञ्च व्याप्नोति आश्रयति, अतः तस्य पापस्य मूलं कामादीनाम् आतिशय्यं छित्वा निरस्य तं व्यवहारं विमृशं विशिष्टविवेकं नयेत् प्रापयेत् विचिच्य विचारयेदित्यर्थः॥ २७६॥

अनर्थं चार्थवत् कृत्वा दर्शयन्ति नृपाय ये।
अविचिन्त्य नृपस्तथ्यं मन्यते तैर्निदर्शितम्।
स्वयं करोति तद्वृत्तौ भुज्यतेऽष्टगुणं त्वघम्॥ २७७॥

अन्वयः—ये अनर्थम् अर्थवत् कृत्वा नृपाय दर्शयन्ति, यश्च नृपः अविचिन्त्य तैः निदर्शितं तथ्यं मन्यते तथा स्वयं करोति; तैः तद्वृत्तौ अष्टगुणम् अघं भुज्यते॥ २७७॥

व्याख्या—ये = सचिवाः, अनर्थम् = अयुक्तम्, अर्थवत् = अभीष्टमिव, कृत्वा = विचार्य, नृपाय = राज्ञे, दर्शयन्ति = प्रदर्शयन्ति, यश्च राजा अविचिन्त्य = विचारं विहाय, तैः = सचिवैः, निदर्शितम् = निर्देशितम्, तथ्यम् = यथार्थम्, मन्यते = अवगम्यते, तथा स्वयम् = आत्मनः, करोति = निष्पादयति, तेषां, कथनानुसारेण निष्पत्तिं ददाति, तैः = राज्ञा अमात्यैश्च, तत् = तथा, वृत्तौ = व्यवहारे च, अष्टगुणम् अधिकम्, अघम् = पापञ्च, भुज्यते = प्राप्नुते॥ २७७॥

हिन्दी—जो विचारपति अनिष्ट को इष्ट की तरह मानकर राजा को दिखलाता है और उस पर बिना विचार किये राजा उसे सच मानकर उसी के अनुसार स्वयं भी व्यवहार करता है; तो वैसा करने पर उनसे आठ गुना अधिक पाप निर्णायक को लगता है॥ २७७॥

अनर्थमिति। ये अमात्याः अनर्थम् अनिष्टम् अर्थवत् इष्टवत् कृत्वा नृपाय दर्शयन्ति, यश्च नृपः अविचिन्त्य अविविच्य तैः अमात्यैः निदर्शितं प्रदर्शितं तथ्यं सत्यं मन्यते तथा स्वयं करोति तेषां मतानुसारेण वादं निष्पादयति, तैः राज्ञा अमात्यैश्च तद्वृत्तौ तथा व्यवहारे सति अष्टगुणम् अघं पापं भुज्यते॥ २७७॥

अधर्मतः प्रवृत्तं तं नोपेक्षेरेन् सभासदः।
उपेक्ष्यमाणाः सनृपा नरकं यान्त्यधोमुखाः॥ २७८॥

अन्वयः—सभासदः अधर्मतः प्रवृत्तं तं न उपेक्षेरन्, उपेक्ष्यमाणाः सनृपाः अधोमुखाः नरकं यान्ति॥ २७८॥

व्याख्या—सभासदः = सभ्याः, अधर्मतः = अधर्मे निरतम्, तम् = राजानम्, न = नहि, उपेक्षेरन् = वारयेयुः, उपेक्ष्यमाणाः = अवारयन्तः, सनृपाः = राजासहिताः, अधोमुखाः = नीचाननाः सन्, नरकम् = निरयम्, यान्ति = गच्छन्ति॥ २७८॥

हिन्दी—जो विचारपति अधर्म में प्रवृत्त राजा को वैसा करने से नहीं रोकते, वे राजा के साथ ही अधोमुख होकर नरकगामी होते हैं॥ २७८॥

अधर्मत इति। सभासदः अमात्यादयः अधर्मतः अधर्मे प्रवृत्तं तं नृपं न उपेक्षेरन् वारयेयुरित्यर्थः, उपेक्ष्यमाणाः अवारयन्तः सनृपाः नृपसहिताः अधोमुखाः नरकं यान्ति गच्छन्ति॥ २७८॥

धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डः सभ्यायत्तौ तु तावुभौ।
अर्थदण्डवधावुक्तौ राजायत्तावभावपि॥ २७९॥

अन्वयः—धिग्दण्डः तथा वाग्दण्डः तौ उभौ सभ्यायत्तौ। अर्थदण्डः वधदण्डः उभावपि नृपाधीनौ उक्तौ॥ २७९॥

व्याख्या—धिग्दण्डः = त्वां धिक् इत्येवंरूपो दण्डः, तथा वाग्दण्डः—वाक्येन = वचसा, अपमानस्वरूपः दण्डः, तौ उभौ = द्वावपि, सभ्यानाम् = सांसदाम्, आयत्तौ = अधीनौ, सभ्याः

पूर्वोक्तौ दण्डौ कर्त्तुं शक्नुवन्ति। अर्थदण्डः= आर्थिकदण्डस्तथा वधदण्डः= मृत्युदण्डश्च, उभौ= द्वौ, अपि, नृपायत्तौ= राजाधीनौ, उक्तौ= कथितौ ॥ २७९ ॥

हिन्दी—किसी को धिक्कार देने या डाँट-फटकार देने का अधिकार सभासदों को हैं तथा अर्थदण्ड एवं प्राणदण्ड देने का अधिकार राजा को है ॥ २७९ ॥

धिगिति। धिग्दण्डः त्वां धिक् इत्येवं निर्भर्त्सनरूपो दण्डः तथा वाग्दण्डः वाक्येन तिरस्करणरूपः दण्डः तौ उभौ अपि सभ्यानाम् आयत्तौ अधीनौ, सभ्याः एतौ एव दण्डौ कर्त्तुं शक्नुवन्तीत्यर्थः। अर्थदण्डः वधदण्डश्च उभौ अपि राजायत्तौ नृपाधीनौ उक्तौ, नृपः अर्थदण्डं वधदण्डं कर्त्तुं शक्नोतीत्यर्थः ॥ २७९ ॥

तीरितं चानुशिष्टञ्च यो मन्येत विधर्मतः।
द्विगुणं दण्डमाधाय पुनस्तत् कार्य्यमुद्धरेत् ॥ २८० ॥

अन्वयः—यः तीरितम् अनुशिष्टं विधर्मतः मन्येत सः द्विगुणं दण्डम् आधाय पुनः तत् कार्यम् उद्धरेत् ॥ २८० ॥

व्याख्याः—यः= अभ्यर्थी, तीरितम्= निर्णीतम्, अनुशिष्टम्= आदिष्टञ्च पराजयलक्षणम्, विधर्मतः= अधर्मेण युक्तम्, मन्येत= अवगम्येत, सः= अर्थी, द्विगुणम्, दण्डम्, आधाय= दत्त्वा, पुनः= भूयः, तत्= कार्यम्, उद्धरेत्= चालयेत् ॥ २८० ॥

हिन्दी—यदि कोई विवादी यह समझे कि मुकदमे का फैसला जो हुआ है वह न्यायसंगत नहीं है, तो दूना दण्ड देकर उस मुकदमे की अपील कर सकता है ॥ २८० ॥

तीरितमिति। यः विवादी तीरितं निष्पादितम् अनुशिष्टम् आज्ञप्तञ्च पराजयलक्षणं विधर्मतः अधर्मेण युक्तमिति भावः, विशेषणे तृतीया। मन्येत, सः द्विगुणं दण्डम् आधाय दत्त्वा पुनस्तत् कार्यम् उद्धरेत् चालयेत् ॥ २८० ॥

साक्षिसभ्यावसन्नानां दूषणे दर्शनं पुनः।
स्वचर्चावसितानां च प्रोक्तः पौनर्भवो विधिः ॥ २८१ ॥

अन्वयः—साक्षिसभ्यावसन्नानां दूषणे पुनः दर्शनं च स्वचर्चावसितानां पौनर्भवः विधिः प्रोक्तः ॥ २८१ ॥

व्याख्या—साक्षिभिः= प्रेक्षकैः, सभ्यैः= सांसद्भिः, अवसन्नानाम्= विषण्णानाम्, दूषणे= सदोषे, पुनर्दर्शनम्= पुनरावलोकनम्, कर्त्तव्यः, च= पुनः, स्वस्य= आत्मनः, नृपस्य, चर्चया= व्यवहारदर्शनेन, अवसितानाम्= समाप्तानाम्, पौनर्भवः विधिः= पुनरीक्षणं संशोधनञ्च, प्रोक्तः= कथितः ॥ २८१ ॥

हिन्दी—गवाह एवं विचारपतियों के द्वारा यदि किसी की हार हुई हो तो मुकदमे पर पुनः विचार किया जाता है या स्वयं विचार करने में राजा या सभासद आदि की त्रुटि हो गई हो तो भी फिर से विचार करना उचित होता है ॥ २८१ ॥

साक्षीति। साक्षिभिः सभ्यैरमात्यैश्च अवसन्नानां हारितानां दूषणे पराजयपत्रस्येति भावः, बहिष्कृते सतीत्यर्थः, पुनर्दर्शनं पुनर्विचारः कर्त्तव्य इति शेषः, किञ्चेति चार्थः, स्वस्य राज्ञश्चर्चया व्यवहारदर्शनेन अवसितानां निष्पादितानाञ्च पौनर्भवः विधिः पुनर्विचार इत्यर्थः प्रोक्तः ॥ २८१ ॥

अमात्यः प्राड्विवाको वा ये कुर्य्युः कार्य्यमन्यथा।
तत्सर्वं नृपतिः कुर्य्यात्तान् सहस्रन्तु दण्डयेत्॥ २८२॥

अन्वयः—अमात्यः प्राड्विवाकः वा ये च अन्यथा कार्यं कुर्युः, तत् सर्वं नृपतिः कार्यं कुर्यात्, तान् सहस्रं दण्डयेत्॥ २८२॥

व्याख्या—अमात्यः = सचिवः, प्राड्विवाकः = न्यायाधिपतिः, वा = अथवा, ये = सभ्याः, अन्यथा = इतरथा, कार्यम् = व्यवहारम्, कुर्युः = विधेयुः, तत् = पूर्वोक्तम्, सर्वम् = सकलम्, नृपतिः = राजा, कार्यम् = व्यवहारम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्, तान् = सभ्यादीन्, सहस्रम् = दशशतम्, दण्डयेत् = दण्डं कुर्यात्॥ २८२॥

हिन्दी—यदि सभासद् या विचारपति कोई नियम-विरुद्ध फैसला करे तो राजा स्वयं उस पर पुनर्विचार कर सही फैसला दे और दोषी पदाधिकारियों को हजार रुपये का जुर्माना करे॥ २८२॥

अमात्य इति। अमात्यः प्राड्विवाको वा विचारपतिर्वा ये चान्ये सभ्याः कार्य्यम् अन्यथा कुर्य्युः, तत् सर्वं कार्यं नृपतिः कुर्यात् तत्त्वेन निष्पादयेत्, तांश्च अमात्यादीन् सहस्रं दण्डयेत्॥२८२॥

न हि जातु विना दण्डं कश्चिन्मार्गेऽवतिष्ठते।
सन्दर्शिते सभ्यदोषे तदुद्धृत्य नृपो नयेत्॥ २८३॥

अन्वयः—दण्डं विना कश्चित् जातु मार्गे न हि अवतिष्ठते। सभ्यदोषे सन्दर्शिते नृपः तत् उद्धृत्य नयेत्॥ २८३॥

व्याख्या—दण्डम् = दमनम्, विना = विहाय, कश्चित् = कोऽपि जनः, जातु = कदाचित्, मार्गे = सत्पथि, न हि = नैव, अवतिष्ठते = स्थिरो भवति। सभ्यदोषे—सभ्यानाम् = सभासदाम्, दोषे = अवगुणे, सन्दर्शिते = सम्यग्रूपेण प्रदर्शिते, नृपः = राजा, उद्धृत्य = उपन्यस्तं कृत्वा, नयेत् = निष्पादयेत्॥ २८३॥

हिन्दी—बिना दण्डभय से कोई कभी सही राह पर नहीं चलता। विवादियों द्वारा फैसले में सभासदों का दोष दिखलाये जाने पर उस दोष का निराकरण कर राजा स्वयं फैसला करे॥२८३॥

नेति। दण्डं विना कश्चिदपि जनः जातु कदाचित् मार्गे सदाचाररूपे पथि न हि नैव अवतिष्ठते। सभ्यानां दोषे सन्दर्शिते सम्यक् प्रदर्शिते सति विवादिनेति शेषः, नृपः तत् दूषणम् उदधृत्य नयेत् विवादं निष्पादयेत्॥ २८३॥

प्रतिज्ञाभावनाद्वादी प्राड्विवाकादिपूजनात्।
जयपत्रस्य चादानाज्जयी लोके निगद्यते॥ २८४॥

अन्वयः—वादी प्रतिज्ञाभावनात् प्राड्विवाकादिपूजनात् तथा जयपत्रस्य आदानात् लोके जयी निगद्यते॥ २८४॥

व्याख्या—वादी = अभ्यर्थी, प्रतिज्ञायाः = प्रतिश्रवस्य, साध्यस्य, भावनात् = प्रमाणीकरणात्, प्राड्विवाकादीनाम् = न्यायाधीशादीनाम्, पूजनात् = प्रशंसनात्, तथा जयपत्रस्य = विजयलेख्यस्य, आदानात् = स्वीकरणात्, लोके = संसारे, जयीति, निगद्यते = निष्पाद्यते॥ २८४॥

हिन्दी—वादी का दावा प्रमाणित हो जाने पर, विचारपतियों द्वारा मुकदमा प्रशंसित या अनुमोदित होने पर तथा डिग्री हासिल हो जाने पर संसार में वादी विजयी माना जाता है ॥ २८४ ॥

प्रतिज्ञेति। वादी प्रतिज्ञायाः साध्यस्य भावनात्, प्रमाणीकरणात्, प्राड्विवाकादीनां पूजनात् सत्याभियोक्तृत्वेन प्रशंसनात् तथा जयपत्रस्य आदानात् ग्रहणाच्च लोके जयीति निगद्यते कथ्यते ॥ २८४ ॥

सभ्यादिभिर्विनिर्णिक्तं विधृतं प्रतिवादिना।
दृष्ट्वा राजा तु जयिने प्रदद्याज्जयपत्रकम् ॥ २८५ ॥

अन्वयः—राजा तु सभ्यादिभिः विनिर्णिक्तं प्रतिवादिना च विधृतं दृष्ट्वा जयिने जयपत्रकं दद्यात् ॥ २८५ ॥

व्याख्या—राजा = नृपस्तु, सभ्यादिभिः = सभासद्भिः, विनिर्णिक्तम् = विशेषेण निर्धारितम् = यथार्थरूपेणावधारितम्, प्रतिवादिना = प्रत्यर्थिना, च = पुनः, विधृतम् = विशिष्टरूपेण, धृतम् = अङ्गीकृतम्, साध्यमिति, दृष्ट्वा = अवलोक्य, जयिने = विजयिने, जयपत्रकम् = आधिकरणिकपत्रम्, प्रदद्यात् = समर्पयेत् ॥ २८५ ॥

हिन्दी—विचारपतियों ने मुकदमे की सत्यता प्रमाणित कर दी और प्रतिवादी ने उसे स्वीकार कर लिया, यह देखकर राजा मुकदमे में जिसकी जीत हुई उसे डिग्री दे दे ॥ २८५ ॥

सभ्यादिभिरिति। राजा तु सभ्यादिभिः विचारनियुक्तैः विनिर्णिक्तं विशेषेण निर्द्धारितं तथ्यतया अवधारितं प्रतिवादिना च विधृतं स्वीकृतं साध्यमिति शेषः, दृष्ट्वा जयिने जयपत्रकं प्रदद्यात् ॥ २८५ ॥

अन्यथा ह्यभियोक्तारं निरुध्याद् बहुवत्सरम्।
मिथ्याभियोगसदृशमर्हयेदभियोगिनम् ॥ २८६ ॥

अन्वयः—अन्यथा अभियोगस्य अभियोक्तारं मिथ्याभियोगसदृशं बहुवत्सरं निरुद्ध्यात् तथा अभियोगिनम् अभियुक्तम् अर्हयेत् ॥ २८६ ॥

व्याख्या—अन्यथा = असत्यपरके, अभियोगस्य = दोषारोपणस्य, अभियोक्तारम् = वादिनम्, मिथ्याभियोगसदृशम् = अतात्त्विकदोषारोपणयुक्तम्, यथा तथा, बहुवत्सरम् = अनेकवर्षपर्यन्तम्, निरुध्यात् = कारागारे निवासयेत्, अभियोगिनम्, अभियुक्तम् = प्रतिवादिनम्, अर्हयेत् = पूजयेत् ॥ २८६ ॥

हिन्दी—झूठा विवाद उपस्थित करने वाले वादी को अनेक सालों के लिए जेल के सिखचों में बन्द कर दे। जिस पर इल्जाम लगाया गया हो, उसे ससम्मान छोड़ दे ॥ २८६ ॥

अन्यथेति। अन्यथा अभियोगस्य अतात्त्विकत्वे इत्यर्थः, अभियोक्तारं मिथ्याभियोगसदृशम् अलीकाभियोगोपयुक्तं यथा तथा बहुवत्सरं निरुध्यात् कारायां वासयेत्। तथा अभियोगिनम् अभियुक्तं जनम् अर्हयेत् पूजयेत् ॥ २८६ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति।
प्रजास्तमनुवर्त्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ २८७ ॥

अन्वयः—यः कामक्रोधौ संयम्य धर्मेण अर्थान् पश्यति प्रजाः सिन्धवः समुद्रमिव तम् अनुवर्त्तन्ते ॥ २८७ ॥

व्याख्या—यः = राजा, कामक्रोधौ—कामश्च = वासना च, क्रोधश्च = कोपश्च, तौ, संयम्य = आत्मनियन्त्रणं कृत्वा, धर्मेण = सुकृतिना, अर्थान् = व्यवहारान्, पश्यति = अवलोकयति, प्रजाः = जनाः, सिन्धवः = नद्यः, समुद्रमिव = जलधिरिव, तम् = नृपम्, अनुवर्त्तन्ते = अनुसरन्ति ॥ २८७ ॥

हिन्दी—जो राजा काम-क्रोध को नियंत्रित कर व्यवहार का निर्णय करता है, प्रजा उसका उसी तरह अनुसरण करती है जैसे नदियाँ सागर का ॥ २८७ ॥

कामक्रोधाविति। यः कामक्रोधौ संयम्य धर्मेण अर्थान् कार्य्याणि पश्यति, प्रजाः सिन्धवः नद्यः समुद्रमिव तम् अनुवर्त्तन्ते ॥ २८७ ॥

जीवतोरस्वतन्त्रः स्याज्जरयापि समन्वितः ।
तयोरपि पिता श्रेयान् बीजप्राधान्यदर्शनात् ॥ २८८ ॥

अन्वयः—जरयाऽपि समन्वितः जीवितोः मातापित्रोः अस्वतन्त्रः भवेत् । तयोः बीजप्राधान्यदर्शनात् पिता श्रेयान् ॥ २८८ ॥

व्याख्या—जरयाऽपि = वार्द्धक्येनापि, समन्वितः = संयुक्तः, जीवितोः = सजीवयोः, मातापित्रोः = जननीजनकयोः, अस्वतन्त्रः = अस्वच्छन्दः, पुत्रो भवेत् = स्यात् । तयोः = उभयोर्मध्ये, बीजप्राधान्यदर्शनात्—बीजस्य = वीर्यस्य, प्राधान्यदर्शनात् = उत्तमत्वावलोकनात्, पिता = जनकः, एव श्रेयान् = श्रेष्ठत्वमस्ति ॥ २८८ ॥

हिन्दी—माँ-बाप के जिन्दा रहते, बूढ़े हो जाने पर भी बेटा स्वच्छन्द होकर धन का स्वामी नहीं हो सकता है। उन दोनों में भी बीज की प्रधानता होने के कारण पिता की प्रधानता ही मान्य है ॥ २८८ ॥

सम्प्रति दायप्रकरणमुद्दिशति—**जीवतोरिति**। जरया वार्द्धकेन समन्वितोऽपि पुत्र इति शेषः, जीवतोः मातापित्रोः अस्वतन्त्रः अस्वेच्छाचारी भवेदित्यर्थः, तयोः मातापित्रोः मध्येऽपि बीजस्य प्राधान्यदर्शनात् पिता श्रेयान् श्रेष्ठतरः ॥ २८८ ॥

अभावे बीजिनो माता तदभावे तु पूर्वजः ।
स्वातन्त्र्यं तु स्मृतं ज्येष्ठे ज्यैष्ठ्यं गुणवयः कृतम् ॥ २८९ ॥

अन्वयः—बीजिनः अभावे माता, तदभावे तु पूर्वजः । यतः ज्येष्ठे स्वातन्त्र्यं स्मृतम्, ज्यैष्ठ्यञ्च गुणवयः कृतम् ॥ २८९ ॥

व्याख्या—बीजिनः = जनकस्य, अभावे = अनस्तित्वे, माता = जननी, श्रेयसी, तत् = तस्याः, अभावे = अविद्यमानत्वे, तु, पूर्वजः = अग्रजन्मा, श्रेयः । यतः, ज्येष्ठे स्वातन्त्र्यम् = स्वाधीनत्वम्, स्मृतम् = कथितम्, ज्यैष्ठ्यञ्च = ज्येष्ठत्वं च, गुणेन = धर्मेण, वयसा = जीवितकालेन च, उभाभ्यां श्रेष्ठत्वम् ॥ २८९ ॥

हिन्दी—पिता के अभाव में माता और माता के अभाव में बड़ा भाई ही श्रेष्ठ माना ज़ाता है। श्रेष्ठता गुण और उम्र दोनों दृष्टि से मान्य है। ऐसा ही बड़ा भाई स्वतंत्र होकर धन-सम्पत्ति का स्वामी होगा, न कि केवल उम्र से बड़ा ॥ २८९ ॥

अभावे इति। बीजिनः पितुः अभावे माता श्रेयसी, तदभावे तस्या मातुरभावे पूर्वजः ज्येष्ठः श्रेयान्, यतः ज्येष्ठे स्वातन्त्र्यं स्वाधीनत्वं स्मृतं, ज्यैष्ठ्यञ्च ज्येष्ठत्वञ्च गुणेन वयसा च कृतं केवलं वयसा ज्यैष्ठ्यं न श्रेष्ठं गुणेन वयसा च उभाभ्यान्तु श्रेष्ठमित्यर्थः॥ २८९ ॥

याः सर्वाः पितृपत्न्यः स्युस्तासु वर्त्तेत मातृवत्।
स्वसमैकेन भागेन सर्वास्ताः प्रतिपालयन्॥ २९० ॥

अन्वयः—याः सर्वाः पितुः पत्न्यः स्युः, तासु मातृवत् वर्त्तेत तथा स्वसमैकेन भागेन ताः सर्वाः प्रतिपालयन्॥ २९० ॥

व्याख्या—याः= नार्यः, सर्वाः= सकलाः, पितुः= जनकस्य, पत्न्यः= विवाहिताः, स्यु= भवेयुः, तासु= स्त्रीषु, मातृवत्= स्वजननीव, वर्त्तेत= व्यवहरेत्, तथा स्वस्य= आत्मनः, समेन= तुल्येन, एकेन= एकमात्रेण, भागेन= अंशेन, ताः= सर्वाः मातरः, प्रतिपालयेत्= पोषयेत्॥ २९० ॥

हिन्दी—पिता की चाहे जितनी पत्नियाँ हो सबों को अपनी जननी की तरह ही सम्मानित करना चाहिए। अपनी तरह एक-एक हिस्से से उनका भरण-पोषण करना चाहिए॥ २९० ॥

या इति। याः सर्वाः पितुः पत्न्याः स्युः, तासु मातृवत् वर्त्तेत व्यवहरेत् तथा स्वस्य आत्मनः समेन समानेन एकेन भागेन ताः सर्वाः मातृः प्रतिपालयेत्॥ २९० ॥

अस्वतन्त्राः प्रजाः सर्वाः स्वतन्त्रः पृथिवीपतिः।
अस्वतन्त्रः स्मृतः शिष्य आचार्य्ये तु स्वतन्त्रता॥ २९१ ॥

अन्वयः—सर्वाः प्रजाः अस्वतन्त्राः, पृथिवीपतिस्तु स्वतन्त्रः। शिष्यः अस्वतन्त्रः स्मृतः, आचार्ये तु स्वतन्त्रता॥ २९१ ॥

व्याख्या—सर्वाः= सकलाः, प्रजाः= जनाः, अस्वतन्त्राः= पराधीनाः, स्युः, तु= किन्तु, पृथिवीपतिः= नृपतिः, स्वतन्त्रः= आत्माधीनः स्यात्, शिष्यः= अन्तेवासी, अस्वतन्त्रः= पराधीनः, स्मृतः= कथितः, आचार्ये= उपाध्याये, स्वतन्त्रता= स्वाधीनता वर्त्तते॥ २८९ ॥

हिन्दी—सभी पजा पराधीन हैं, केवल राजा ही स्वतंत्र होता है। शिष्य पराधीन होता है, किन्तु आचार्य में स्वतन्त्रता होती है॥ २९१ ॥

अस्वतन्त्रा इति। सर्वाः प्रजाः अस्वतन्त्राः पराधीनाः, पृथिवीपतिस्तु स्वतन्त्रः स्वाधीनः। शिष्यः अस्वतन्त्रः स्मृतः, आचार्य्ये तु स्वतन्त्रता अस्तीति शेषः॥ २९१ ॥

सुतस्य सुतदाराणां वशित्वमनुशासने।
विक्रये चैव दाने च वशित्वं न सुते पितुः॥ २९२ ॥

अन्वयः—सुतस्य सुतदाराणाम् अनुशासने वशित्वं किञ्च सुते विक्रये दाने च पितुः वशित्वं न॥ २९२ ॥

व्याख्या—सुतस्य= पुत्रस्य, सुतदाराणाम्= पुत्रवधूनाम्, अनुशासने= उपदेशे वा शासने, वशित्वम्= स्वातन्त्र्यमस्ति, किञ्च सुते= पुत्रविषये, विक्रये= विपणने, दाने= समर्पणे, पितुः= जनकस्य, वशित्वम्= स्वातन्त्र्यम्, न= नास्ति॥ २९२ ॥

हिन्दी—पुत्र और पुत्रवधुओं को पिता या श्वसुर की आज्ञा मानने में पराधीनता मानी गई है। किन्तु समर्थ पुत्र के लिए वस्तु बेचने या दान देने में पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं मानी गई है ॥ २९२ ॥

सुतस्येति। सुतस्य पुत्रस्य सुतदाराणां स्नुषाणाञ्च अनुशासने उपदेशे दमने वा वशित्वं स्वातन्त्र्यम् अस्तीति शेषः, किन्तु सुते पुत्रे विषये विक्रये दाने च पितुः वशित्वं स्वातन्त्र्यं न अस्तीति शेषः ॥ २९२ ॥

स्वतन्त्राः सर्व एवैते परतन्त्रेषु नित्यशः।
अनुशिष्टौ विसर्गे वाऽविसर्गे चेश्वरा मताः ॥ २९३ ॥

अन्वयः—परतन्त्रेषु एते सर्वे एव नित्यशः स्वतन्त्राः, यतः अनु यतः अनुशिष्टौ विसर्गे वा अविसर्गे ईश्वराः मताः ॥ २९३ ॥

व्याख्या—परतन्त्रेषु = पराधीनेषु, एते सर्वे = सकलाः, एव = प्रायः, नित्यशः = सततम्, स्वतन्त्राः = स्वाधीनाः, यतः अनुशिष्टौ = अनुशासने जनकेन सह मन्त्रणे, विसर्गे = उत्सर्जने, अविसर्गे = अनुत्सर्जने च, ईश्वराः = स्वामिनः, मताः = प्रोक्ता ॥ २९३ ॥

हिन्दी—पराधीन होने के बावजूद ये सभी बेटे सदा स्वाधीन नहीं होते हैं, क्योंकि पिता के साथ मंत्रणा करने, देने या न देने में ये स्वाधीन माने गये हैं ॥ २९३ ॥

स्वतन्त्रा इति। परतन्त्रेषु पराधीनेषु मध्ये एते सर्वे पुत्रा एव नित्यशः सततं स्वतन्त्राः प्रायेण स्वाधीना इत्यर्थः, स्वाधीनवदाचरन्तीति भावः, यतः अनुशिष्टौ अनुशासने पित्रा सह मन्त्रणे विसर्गे दाने अविसर्गे च ईश्वराः स्वाधीनाः मताः कथिताः ॥ २९३ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः।
स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः ॥ २९४ ॥

अन्वयः—पिता मणिमुक्तप्रवालानां प्रभुः, किन्तु सर्वस्य स्थावरस्य पिता न पितामहश्च न प्रभुः ॥ २९४ ॥

व्याख्या—पिता = जनकः, मणीनाम् = रत्नानाम्, मुक्तानाम् = प्रवालानाम्, अन्यस्य = सर्वस्यैव = चलसम्पदः, प्रभुः = स्वामी, पिता = जनकः, एव, किन्तु, सर्वस्य = सकलस्य, स्थावरस्य = अचलस्य, पिता = जनकः, न = नहि, पितामहस्य च, न = नहि, प्रभुः = स्वामित्वं वर्त्तते ॥ २९४ ॥

हिन्दी—मणि, मोती, मूंगा आदि सम्पूर्ण चल सम्पत्ति के ऊपर पिता का प्रभुत्व रहता है, किन्तु सभी अचल सम्पत्ति के ऊपर न तो पिता का और न तो पितामह का ही पूर्ण प्रभुत्व रहता है। इन पर इनका आंशिक ही प्रभुत्व रहता है ॥ २९४ ॥

मणीति। पिता मणीनां मुक्तानां प्रवालानाम् अन्यस्य सर्वस्य अस्थावरस्य इत्यर्थः, प्रभुः यथेच्छं व्यवहारक्षम इत्यर्थः, किन्तु सर्वस्य स्थावरस्य पिता न पितामहश्च न प्रभुरित्यर्थः, स्थावरे पितुः स्वाधीनता नास्तीति भावः, सर्वस्येत्युपादानात् कियदंशस्थावरदानादिषु पितुः स्वाधीनतेति सूच्यते ॥ २९४ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः।
यत् ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् ॥ २९५ ॥

अन्वयः—भार्या पुत्रः दासः एते त्रय एव अधनाः स्मृताः। ते यत् समधिगच्छन्ति तत् एते यस्य तस्य ॥ २९५ ॥

व्याख्या—भार्या = जाया, पुत्रः = सुतः, दासः = सेवकः, एते = पूर्वपरिगणिताः, त्रयः = भार्यादयः, एव, अधनाः = प्रभुत्वहीनाः, परतन्त्राः, स्मृताः = कथिताः। ते = भार्यादयः, यत् = सम्पदम्, समधिगच्छन्ति = प्राप्नुवन्ति, तत् = धनम्, एते = पत्न्यादयः, यस्य तस्यैवास्तीति भावः ॥ २९५ ॥

हिन्दी—पत्नी, पुत्र और नौकर ये तीनों ही क्रम से पति, पिता और मालिक के रहते दम तक अधन अर्थात् धन के स्वामित्व से हीन होते हैं। जहाँ कहीं जो कुछ ये उपार्जित करते हैं वे क्रमशः ये जिनके अधीन हैं उन्हीं का हो जाता है। इसीलिए इन्हें अधन कहा गया है ॥ २९५ ॥

भार्य्या इति। भार्य्या पत्नी, पुत्रः दासः भृत्यश्च एते त्रय एव अधनाः अस्वामिनः अस्वतन्त्राः इत्यर्थः, स्मृताः उक्ताः, ते भार्य्यादयः यत् धनं समधिगच्छन्ति अर्जयन्ति, तत् धनम् एते भार्य्यादयः यस्य, तस्य भवतीति शेषः ॥ २९५ ॥

वर्त्तते यस्य यद्धस्ते तस्य स्वामी स एव न।
अन्यस्वमन्यहस्तेषु चौर्य्याद्यैः किं न दृश्यते ? ॥ २९६ ॥

अन्वयः—यत् यस्य हस्ते वर्त्तते स एव तस्य स्वामी न। चौर्याद्यैः अन्यस्वम् अन्यहस्तेषु किं न दृश्यते ? ॥ २९६ ॥

व्याख्या—यत् = धनम्, यस्य = जनस्य, हस्ते = करे, वर्त्तते = तिष्ठति, सः = असौ, एवेति बलार्थकः, तस्य = धनस्य, स्वामी = प्रभुः, न = नास्ति, तथाहि, चौर्याद्यैः = तस्करप्रभृतिभिः, अन्यस्वम् = अपरजनस्य धनम्, अन्यहस्तेषु = अपरजनानां करेषु, किमिति प्रश्ने, न = नहि, दृश्यते = अवलोक्यते ? ॥ २९६ ॥

हिन्दी—जो धन जिसके हाथ में रहता है, उस धन का वही मालिक नहीं माना जाता है। चोरी के कारण क्या दूसरे का धन दूसरों के हाथ में नहीं देखा जाता ? ॥ २९६ ॥

वर्त्तते इति। यत् धनं यस्य हस्ते वर्त्तते तिष्ठति, स एव तस्य धनस्य स्वामी न, तथाहि चौर्य्याद्यैः हेतुभिः अन्यस्वम् अपरधनम् अन्यहस्तेषु अपरजनानां तस्करादीनामित्यर्थः, हस्ते किं न दृश्यते ? अपितु दृश्यत एव ॥ २९६ ॥

तस्माच्छास्त्रत एव स्यात् स्वाम्यं नानुभवादपि।
अस्यापहृतमेतेन न युक्तं वक्तुमन्यथा ॥ २९७ ॥

अन्वयः—तस्मात् शास्त्रतः एव स्वाम्यं स्यात्, अनुभवात् अपि न। अन्यथा एतेन अस्य जनस्य अपहृतं वक्तुं न युक्तम् ॥ २९७ ॥

व्याख्या—तस्मात् = तेन हेतुना, शास्त्रतः = धर्मग्रन्थनिर्देशानुसारेण, एव, स्वाम्यम् = प्रभुत्वम्, स्यात् = भवेत्, अनुभवात् = प्रत्यक्षदर्शनादिकारणात्, अपि = चेत्, न = अस्ति। अन्यथा = इतरथा, एतेन = जनेन, अस्य = जनस्य, अपहृतम् = धनं बलादधिकृतम्, इत्थम्, वक्तुम् = वदितुम्, न = नहि, युक्तम् = उंचितं भवति ॥ २९७ ॥

हिन्दी—अतः शास्त्रानुसार ही किसी धन का कोई मालिक हो सकता है, केवल

अनुभव से नहीं। अन्यथा इसका धन इसने हड़प लिया, यह कहंना भी उचित नहीं होता॥२९७॥

तस्मादिति। तस्मात् शास्त्रतः एव शास्त्रानुसारेणैव स्वाम्यं स्यात्, अनुभवात् प्रत्यक्षदर्शनादिकारणात् अपि न स्वाम्यमित्यर्थः। अन्यथा एतेन अस्य जनस्य अपहृतम् इति वक्तुं न युक्तम् अपहर्त्तुः तत्र स्वाम्यादिति भावः॥२९७॥

विदितोऽर्थागमः शास्त्रे तथा वर्णः पृथक् पृथक्।
शास्ति तच्छास्त्रधर्मं यत्म्लेच्छानामपि तत् सदा।
पूर्वाचार्य्यैस्तु कथितं लोकानां स्थितिहेतवे॥२९८॥

अन्वयः—यथावर्णं पृथक् पृथक् अर्थागमः शास्त्रे विदितः। तस्य शास्त्रस्य यत् धर्मः तत् सदा म्लेच्छानामपि शास्ति। एतच्च लोकानामपि हेतवे पूर्वाचार्यैः तु कथितम्॥२९८॥

व्याख्या—यथावर्णम् = वर्णानुकूलेन, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, अर्थागमः—अर्थस्य = धनस्य, आगमः = प्राप्तिः, शास्त्रे = धर्मग्रन्थे, विदितः = विख्यातः, तस्य = पूर्वोक्तस्य, शास्त्रस्य = धर्मग्रन्थस्य, यत् = निर्धारितम्, धर्मः = कर्त्तव्यः, तत् = धर्मः, सदा = सर्वदा, म्लेच्छानाम् = वर्णाश्रमधर्मविहीनानामपि, शास्ति = उपदिशति, एतच्च लोकानामपि = सर्वसाधारणजनानामपि, स्थितिहेतवे = सदाचाररक्षणाय, पूर्वाचार्यैः = पुरोवर्तिभिः विद्वद्भिः, कथितम् = निगदितम्॥२९८॥

हिन्दी—वर्णानुसार प्रत्येक जाति के लिए अलग-अलग धन कमाने का मार्ग शास्त्र में निर्दिष्ट हैं। धर्नाजन के लिए जो धर्मशास्त्र में निर्दिष्ट है वह म्लेच्छों के लिए भी मान्य है। पूर्वाचार्यों ने लोक के सदाचार की रक्षा के लिए दूसरी जगह भी ऐसा ही कहा है॥२९८॥

विदित इति। यथावर्णं वर्णानुसारेण पृथक् पृथक् अर्थागमः धनार्जनोपायः स्वामीरिक्थ क्रयेत्यादि शास्त्रे विदितः। तस्य शास्त्रस्य यत् धर्मं तत् सदा म्लेच्छानामपि शास्ति म्लेच्छानामिति कर्मणि षष्ठी। म्लेच्छा अपि तं शास्त्रमनुसृत्य अर्थागमेषु व्यवहरन्तीत्यर्थः। एतच्च लोकानां स्थितिहेतवे सदाचाररक्षणाय पूर्वाचार्य्यैः पूर्वपण्डितैः कथितम्॥२९८॥

समानभागिनः कार्य्याः पुत्राः स्वस्य च वै स्त्रियः।
स्वभागार्द्धहरा कन्या दौहित्रस्तु तदर्द्धभाक्॥२९९॥

अन्वयः—स्वस्य च स्त्रियः वै पुत्राश्च समानभागिनः कार्याः। कन्या स्वभागार्द्धहरा, दौहित्रस्तु तदर्द्धभाक्॥२९९॥

व्याख्या—स्वस्य च = आत्मनश्च, स्त्रियः = भार्याः, वै = तथा, पुत्राश्च = सुताश्च, समानभागिनः = तुल्यांशिनः, कार्याः। कन्या = अनूढा पुत्री, तद्भागार्द्धहरा—तत् = तस्य पुत्रस्य, यः भागः = अंशः, तस्य = भागस्य, अर्द्धहराः = अर्द्धांशहरा भवति, दौहित्रस्तु = दुहितापुत्रस्तु, तदर्द्धभाक्—तस्य = कन्याप्राप्यांशस्य अर्द्धभागभागिनो भवति॥२९९॥

हिन्दी—पत्नी और पुत्र का हिस्सा सम्पत्ति में धनपति के हिस्से के बराबर होना चाहिए। अपने हिस्सा का आधा भाग अपनी अविवाहिता बेटी का होना चाहिए तथा उसके हिस्से का आधा भाग नाती का हिस्सा होना चाहिए॥२८९॥

समानेति। स्वस्य आत्मनः पुत्राः स्त्रियश्च समानभागिनः कार्य्याः, कन्या अनूढा दुहिता तद्भागार्द्धहराः तस्य पुत्रस्य यो भागः तस्य अर्द्धहरा, दौहित्रस्तु तदर्द्धभाक् तस्य कन्याप्राप्यांशस्य अर्द्धभाक् भवेदित्यर्थः॥२९९॥

मृतेऽधिपेऽपि पुत्राद्या उक्तभागहराः स्मृताः ॥ ३०० ॥

अन्वयः—अधिपे मृतेऽपि पुत्राद्याः उक्तभागहराः भवन्ति॥३००॥

व्याख्या—अधिपे = धनस्वामिनि, मृतेऽपि = उपरतेऽपि, पुत्राद्याः = सुतदारादयः, उक्तभागहराः = तुल्यांशिनः भवन्ति॥३००॥

हिन्दी—धनपति के मर जाने पर पूर्वोक्त ढंग से धन का बटवारा पुत्र प्रभृति के बीच करना चाहिए, ऐसा कहा गया है॥३००॥

मृते इति। अधिपे स्वामिनि पितरि इत्यर्थः, मृतेऽपि पुत्राद्या पुत्रप्रभृतयः उक्तभागहराः समभागिन इत्यर्थः स्मृताः॥३००॥

मात्रे दद्याच्चतुर्थांशं भगिन्यै मातुरर्द्धकम्।
तदर्द्धं भागिनेयाय शेषं सर्वं हरेत् सुतः ॥ ३०१ ॥

अन्वयः—सुतः मात्रे चतुर्थांशं, भगिन्यै मातुरर्द्धकं, तदर्द्धं भागिनेयाय, शेषं सर्वं स्वयं हरेत्॥३०१॥

व्याख्या—सुतः = पुत्रः, मात्रे = जनन्यै, चतुर्थांशम् = स्वचतुर्थभागस्यैकभागम्, भगिन्यै = सोदरायै, मातुः = जनन्याः, अर्द्धकम् = अर्द्धांशम्, तत् = तस्याः, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, दद्यात् = दातव्यम्, शेषम् = धनस्यावशिष्टाद्यंशम्, सर्वम् = सकलम्, स्वयम्, हरेत् = स्वीकुर्यात्॥३०१॥

हिन्दी—बेटा माँ के लिए अपने हिस्से का चौथाई धन दे, माँ को जितना हिस्सा मिले उसका आधा हिस्सा बहिन को दे, बहिन के हिस्से का आधा भाग भगिने को दे तथा शेष बचे सारे धन का अधिकारी पुत्र स्वयं हो॥३०१॥

मात्रे इति। सुतः मात्रे चतुर्थांशं स्वचतुर्थभागैकभागं भगिन्यै मातुः अर्द्धकम् अष्टमभागैकभागमित्यर्थः, तथा भागिनेयाय तदर्द्धं षोडशभागैकभागमित्यर्थः दद्यात्, शेषम् अवशिष्टं सर्वं स्वयं हरेत् गृह्णीयात्॥३०१॥

पुत्रो नप्ता धनं पत्नी हरेत् पुत्री च तत्सुतः।
माता पिता च भ्राता च पूर्वालाभाच्च तत्सुतः ॥ ३०२ ॥

अन्वयः—पुत्रो नप्ता पत्नी पुत्री तत्सुतः माता पिता भ्राता च तथा पूर्वेषाम् अलाभात् तत् सुतः धनं हरेत्॥३०२॥

व्याख्या—पुत्रः = आत्मजः, नप्ता = पौत्रः, पत्नी = भार्या, पुत्री = सुता, तत् = तस्याः, सुतः = पुत्रः, दौहित्रः, माता = जननी, पिता = जनकः, भ्राता = सोदरः, च = पुनः, तथा = तेनैव प्रकारेण, पूर्वेषाम् = उक्तानाम्, अलाभात् = पुत्रादीनामभावात्, तत् = तस्य, सुतः = पुत्रः, सोदरसुतः, धनम् = सम्पदम्, हरेत् = नयेत्॥३०२॥

हिन्दी—बेटा, पोता, भार्या, बेटी, नाती, माँ, बाप और भाई क्रमशः एक के बाद दूसरा धन का अधिकारी होता है। इन सबों के अभाव में अन्त में भतीजा उत्तराधिकारी होता है॥३०२॥

पुत्र इति। पुत्रः, नप्ता पौत्रः, पत्नी, पुत्री कन्या, तत्सुतः दौहित्रः, माता, पिता भ्राता च यथाक्रमं, तथा पूर्वेषाम् उक्तानां पुत्रादीनाम् अलाभात् अभावाच्च तत्सुतः भ्रातृसुतः, धनं हरेत् ॥ ३०२ ॥

सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते।
विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि ॥ ३०३ ॥

अन्वयः—स्त्रीणां सौदायिकं धनं प्राप्य स्वातन्त्र्यम् इष्यते। स्थावरेष्वपि विक्रये दाने च यथेष्टं स्वातन्त्र्यम् ॥ ३०३ ॥

व्याख्या—स्त्रीणां = नारीणाम्, सौदायिकम् = युतकम्, धनम् = द्रव्यम्, प्राप्य = लब्ध्वा, स्वातन्त्र्यम् = स्वाधीनताम्, इष्यते = वाञ्छति। स्थावरेष्वपि = अचलेष्वपि, विक्रये = विपणने, दाने = प्रदाने, च, यथेष्टम् = पर्याप्तम्, स्वातन्त्र्यमस्ति ॥ ३०३ ॥

हिन्दी—उपहार में प्राप्त धन को पाकर नारी उसका उपभोग स्वतन्त्ररूप से कर सकती है। स्त्री धन के रूप में प्राप्त अचल सम्पत्ति को भी किसी के हाथ बेच देने में या किसी को दान दे देने में यथेच्छ स्वतंत्र है ॥ ३०३ ॥

सौदायिकमिति। स्त्रीणां सौदायिकं धनं प्राप्य स्वातन्त्र्यम् इष्यते, स्थावरेषु अपि सौदायिकेषु इत्यर्थः, विषयेषु विक्रये दाने च यथेष्टं स्वातन्त्र्यमस्तीति शेषः ॥ ३०३ ॥

ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहाच्च यत्।
मातृपित्रादिभिर्दत्तं धनं सौदायिकं स्मृतम् ॥ ३०४ ॥

अन्वयः—ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहात् दत्तं यत् धनं तत् सौदायिकं स्मृतम् ॥ ३०४ ॥

व्याख्या—ऊढया = विवाहितया, कन्यया = अविवाहितयाऽपि च, पत्युः गृहात् = स्वामिनः सदनात्, पितृगृहाच्च = पितृसकाशाच्च, जननीजनकादिभिः, दत्तम् = उपहृतम्, यत् = धनम्, प्राप्तम्, तद्धनं सौदायिकम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ३०४ ॥

हिन्दी—विवाहिता या अविवाहिता कन्या को पति के घर से या पिता के घर से या माता-पिता की ओर से जो धन मिलता है, उसे सौदायिक कहते हैं ॥ ३०४ ॥

ऊढयेति। ऊढया परिणीतया कन्यया अनूढया अपि पत्युः सकाशात् पितृगृहाच्च मातृपित्रादिभिः दत्तं यत् धनं प्राप्तमिति शेषः, तत् सौदायिकं स्मृतम् ॥ ३०४ ॥

पित्रादिधनसम्बन्धहीनं यद्यदुपार्जितम्।
येन सः काममश्नीयादविभाज्यं धनं हि तत् ॥ ३०५ ॥

अन्वयः—पित्रादिधनसम्बन्धहीनं यत् यत् उपार्जितं तत् तत् सः कामम् अश्नीयात्। हि तत् धनम् अविभाज्यम् ॥ ३०५ ॥

व्याख्या—पित्रादिधनसम्बन्धहीनम् = पैत्रिकसम्पत्तिसाहाय्यविहीनम्, यत् यत् = यत् किञ्चित्, उपार्जितम् = धनं सङ्गृहीतम्, तत् तत् = सकलं धनम्, सः = उपार्जकः, कामम् = यथेच्छम्, अश्नीयात् = उपभोगं कुर्यात्, हि = यतः, तत् = धनम्, अविभाज्यम् = भ्रात्रादिभिर्न विभजनीयम् ॥ ३०५ ॥

हिन्दी—जो धन पैत्रिक सम्पत्ति की सहायता के बिना उपार्जित किया गया हो, उस धन का उपभोग यथेच्छ रूप से उपार्जक कर सकता है। क्योंकि इसके बटवारे का कोई दूसरा हकदार नहीं होता है ॥ ३०५ ॥

पित्रादीति। पित्रादिधनसम्बन्धहीनं पैतृकधनसाहाय्यं विनेत्यर्थः, यत् यत् उपार्जितं तत् तत् सः उपार्जकः कामं यथेष्टम् अश्नीयात् उपभुञ्ज्यात्। हि यतः तत् धनम् अविभाज्यं भ्रात्रादिभिर्न विभजनीयम् ॥ ३०५ ॥

जलतस्करराजाग्निव्यसने समुपस्थिते।
यस्तु स्वशक्त्या संरक्षेत् तस्यांशो दशमः स्मृतः ॥ ३०६ ॥

अन्वयः—यत्तु जलतस्करराजाग्निव्यसने समुपस्थिते स्वशक्त्या संरक्षेत्, तस्य दशमः अंशः स्मृतः ॥ ३०६ ॥

व्याख्या—यत्तु = यः कश्चित्, जलतस्कर‌राजाग्निव्यसने—जलम् = जलस्वरूपे, तस्करः = चोररूपे, राजरूपे, व्यसने = विपदि, उपस्थिते सति, स्वशक्त्या = आत्मसामर्थ्येन, संरक्षेत् = परधनस्य सम्यक् रूपेण रक्षां कुर्यात्, तस्य = धनस्य, दशमांशः = दशमो भागः स्मृतः = कथितः ॥ ३०६ ॥

हिन्दी—यदि कोई व्यक्ति, पानी, चोर, राजा या अग्नि के संकट से घिरी किसी की सम्पत्ति की रक्षा अपनी समस्त शक्ति लगा कर कर लेता है तो उस धन के दशवें हिस्से का वह हकदार हो जाता है ॥ ३०६ ॥

जलेति। यत्तु जलतस्कर‌राजाग्निव्यसने जलरूपे चोररूपे राजरूपे तथा अग्निरूपे व्यसने विपदि समुपस्थिते सति स्वशक्त्या निजसामर्थ्येन संरक्षेत् अपरधनमिति शेषः, तस्य दशमः अंशः स्मृतः, तद्धनात् स दशमभागं लभेतेत्यर्थः ॥ ३०६ ॥

हेमकारादयो यत्र शिल्पं सम्भूय कुर्वते।
कार्य्यानुरूपं निर्वेशं लभेरंस्ते यथार्हतः ॥ ३०७ ॥

अन्वयः—यत्र हेमकारादयः सम्भूय शिल्पं कुर्वते ते यथार्हतः कार्यानुरूपं निर्वेशं लभेरन् ॥ ३०७ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् कर्मणि, हेमकारादयः = स्वर्णकारप्रभृतयः, सम्भूय = सम्मिल्य, शिल्पम् = हस्तकर्म, कुर्वते = निष्पाद्यते, ते = सर्वे, यथार्हतः = यथायोग्यम्, कार्यानुरूपम् = कार्यानुसारेण, निर्वेशम् = भृतिः, लभेरन् ॥ ३०७ ॥

हिन्दी—जहाँ कई सोनार मिलकर एक साथ कोई हस्तकर्म करे, वहाँ काम के अनुसार उन्हें पारिश्रमिक देना चाहिए ॥ ३०७ ॥

हेमेति। यत्र हेमकारादयः स्वर्णकारप्रभृतयः व्यवसायिन इत्यर्थः, सम्भूय मिलित्वा शिल्पं कुर्वते, ते यथार्हतः यथायोग्यं कार्य्यानुरूपं निर्वेशं भृतिं भोगं वा 'निर्वेशो भृतिभोगयोरि'त्यमरः। लभेरन् ॥ ३०७ ॥

संस्कर्त्ता तत्कलाभिज्ञः शिल्पी प्रोक्तो मनीषिभिः ॥ ३०८ ॥

अन्वयः—संस्कर्त्ता तत् कलाभिज्ञः मनीषिभिः शिल्पी प्रोक्तः ॥ ३०८ ॥

व्याख्या—संस्कर्त्ता = परिष्कर्त्ता, तत्कलासु = तत्तत्कलासु, अभिज्ञः = विशेषज्ञः वेत्ता च, मनीषिभिः = विद्वद्भिः, शिल्पी = हस्तकर्मकुशलः, प्रोक्तः = कथितः ॥ ३०८ ॥

हिन्दी—किसी कला का विशिष्ट जानकार होते हुए उनकी खामियों का सुधार करने वाले को ज्ञानीजन 'शिल्पी' कहते हैं ॥ ३०८ ॥

संस्कर्त्तेति। संस्कर्त्ता संस्कारकः कार्य्यशोधक इत्यर्थः तत्कलासु संस्कारकार्य्यविभागेषु अभिज्ञः जनः मनीषिभिः विद्वद्भिः शिल्पी प्रोक्तः ॥ ३०८ ॥

हर्म्यं देवगृहं वापि वापिकोपस्करणि च।
सम्भूय कुर्वतां तेषां प्रमुख्यो द्व्यंशमर्हति ॥ ३०९ ॥

अन्वयः—हर्म्यं देवगृहं वा वापिकोपस्कराणि च सम्भूय कुर्वतां तेषां प्रमुख्यः द्व्यंशम् अर्हति ॥ ३०९ ॥

व्याख्या—हर्म्यम् = राजभवनम्, देवगृहम् = देवालयम्, वा = अथवा, वापिकाम् = दीर्घिकाम्, उपस्कराणि = गृहोपकरणानि, सङ्कटकानि च, च = पुनः, सम्भूय = मिलित्वा, कुर्वताम् = विदधताम्, तेषाम् = जनानाम्मध्ये, प्रमुख्यः = प्रधानतमः, द्व्यंशम् = भागद्वयम्, अर्हति = प्राप्तुं योग्यो भवति ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—राजमहल, देवमन्दिर अथवा बावड़ी या घरेलू उपकरणों को मिलकर बनाने वाले कारीगरों के बीच जो प्रमुख कारीगर है वह दूनी मजदूरी पाने का हकदार होता है ॥ ३०९ ॥

हर्म्यमिति। हर्म्यं देवगृहं वा वापिकां दीर्घिकाम् उपस्कराणि गृहोपकरणानि च सम्भूय कुर्वतां तेषां व्यवसायिनां मध्ये प्रमुख्यः प्रधानतमः द्व्यंशं द्वौ भागौ अर्हति लभते ॥ ३०९ ॥

नर्त्तकानामेव धर्मः सद्भिरेष उदाहृतः।
तालज्ञो लभतेऽर्थार्द्धं गायनास्तु समांशिनः ॥ ३१० ॥

अन्वयः—नर्त्तकानाम् एव एषः धर्मः सद्भिः उदाहृतः। तालज्ञः अर्थार्द्धं लभते, अन्ये गायनास्तु समांशिनः ॥ ३१० ॥

व्याख्या—नर्त्तकानाम् = लयावलम्बानाम्, एव = अपि, एषः = अयमेव, धर्मः = विधिः, सद्भिः = सज्जनैः, उदाहृतः = वर्णितः। तालज्ञः = सङ्गीते कालक्रियामानज्ञः, अर्थार्द्धम्—अर्थस्य = उपार्जितस्य धनस्य, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, लभते = आप्नोति, अन्ये = गायकास्तु, समांशिनः = समभागिनः भवन्ति ॥ ३१० ॥

हिन्दी—सज्जनों ने नर्त्तकों के लिए भी यही विधि बतलाई है। इनमें तालविशेषज्ञ अर्जित धन के आधे भाग का हकदार है। शेष आधे में सभी बराबर बटवारा कर ले ॥ ३१० ॥

नत्र्तकानामिति। नर्त्तकानाम् एव शब्दोऽप्यर्थः नटानामपीत्यर्थः एषः धर्मः सद्भिः साधुभिः उदाहृतः निरूपितः। यथा तालाः अथार्द्ध धनस्य अर्जितस्य अर्द्ध लभते, अन्ये गायनास्तु संमाशिनः समभागिनः भवन्ति ॥ ३१० ॥

परराष्ट्राद्धनं यत् स्याच्चौरैः स्वाम्याज्ञया हृतम्।
राज्ञे षष्ठांशमुद्धृत्य विभजेरन् समांशकम् ॥ ३११ ॥

अन्वयः—स्वाम्याज्ञया चौरैः परराष्ट्रात् यत् धनं हृतम्, षष्ठांशं राज्ञे उद्धृत्य समांशकं विभजेरन् ॥ ३११ ॥

व्याख्या—स्वामिनः = प्रभोः, आज्ञया = आदेशेन, चौरैः = तस्करैः, परराष्ट्रात् = अन्यदेशात्, यत् धनम् = द्रव्यम्, हृतम् = चोरितम्, ते, तस्य = प्राप्तधनस्य, षष्ठांशम् = षष्ठभागम्, राज्ञे = नृपाय, उद्धृत्य = निष्कास्य, अवशिष्टस्य समांशकम् = समरूपेण, विभजेरन् = वण्टनं कुर्युः ॥ ३११ ॥

हिन्दी—मालिक के हुक्म से चोर लोग दूसरे राज्य से जो धन चुरा कर लाते हैं, उनका छठा हिस्सा राजा को देकर शेष का आपस में बराबर बटवारा करना चाहिए ॥ ३११ ॥

परराष्ट्रादिति। स्वामिनः आज्ञया चौरैः परराष्ट्रात् यत् धनं हृतं, ते तस्य षष्ठांशं राज्ञे स्वामिने उद्धृत्य दत्त्वा समांशकं विभजेरन् ॥ ३११ ॥

तेषां चेत् प्रसृतानां च ग्रहणं समवाप्नुयात् ।
तन्मोक्षार्थं च यद्दत्तं वहेयुस्ते समांशतः ॥ ३१२ ॥

अन्वयः—प्रसृतानां तेषां चेत् ग्रहणं समवाप्नुयात् तन्मोक्षार्थं यद्दत्तं ते समांशतः वहेयुः ॥ ३१२ ॥

व्याख्या—प्रसृतानाम् = चौरकर्मणि प्रचलितानाम्, तेषाम् = चौराणाम्, मध्ये, चेत् = यदि, कश्चित्, ग्रहणम् = धृतः, समवाप्नुयात् = सम्यक्प्रकारेणावाप्नुयात्, अर्थात् कारागृहे निक्षिप्तो भवेत्, तदा तस्य मोक्षार्थम् = मुक्त्यर्थम्, यद्दत्तम्, तत् = परिजनैः, ते = तस्कराः, तत् = तेषां प्रदत्तं धनम्, समांशतः = समभागेन, वहेयुः = दद्युः ॥ ३१२ ॥

हिन्दी—और यदि चोरी करते वे पकड़ लिये जाये तो उसे छुड़वाने के लिए जो धन खर्च हो, उसे समान भाग से बाँटकर अपने-अपने हिस्से में से दे दें ॥ ३१२ ॥

तेषामिति। प्रसृतानां चौर्यकर्म्मणि प्रवृत्तानां तेषां मध्ये यदि कश्चित् ग्रहणं समवाप्नुयात् धृतो भवेदित्यर्थः, तदा तस्य मोक्षार्थम् उद्धारार्थं यत् दत्तं तत् परिजनैरिति भावः, ते चौराः तत् दत्तं धनं समांशतः वहेयुः दद्युरित्यर्थः ॥ ३१२ ॥

प्रयोगं कुर्वते ये तु हेमधान्यरसादिना ।
समन्यूनाधिकैरंशैर्लाभस्तेषां तथाविधः ॥ ३१३ ॥

अन्वयः—ये तु हेमधान्यरसादिना प्रयोगं समन्यूनाधिकैः अंशैः तेषां तथाविधः लाभः ॥ ३१३ ॥

व्याख्या—ये = जनाः, तु, हेमधान्यरसादिना—हेम्ना = सुवर्णेन, धान्येन = अन्नेन, रसादिना = द्रव्येण, प्रयोगम् = मिलित्वा वाणिज्यं प्रकुर्वते, तेषाम् = व्यापारिणाम्, धनानुरूपतः समन्यूनाधिकैः, अंशैः = भागैः, तथाविधः = तेन रूपेण, लाभः = प्राप्तिः, भवतीत्यर्थः ॥ ३१३ ॥

हिन्दी—जो लोग मिलकर सोना, अन्न एवं रसादि द्रव्यों का कोई व्यवसाय करते हैं और उनमें जिनका जैसा काम हो या धन लगा हो, उसके अनुरूप बराबर, कम या ज्यादे भाग में लाभांश में से उसे मिलता है ॥ ३१३ ॥

प्रयोगमिति। ये तु हेमधान्यरसादिना हेम्ना धान्येन रसादिना द्रव्येण प्रयोगं सम्भूय वाणिज्यमित्यर्थः, कुर्वते, तेषां कार्य्यानुरूपतः अर्थानुरूपतश्च समन्यूनाधिकैः अंशैः तथाविधः लाभः भवतीत्यर्थः ॥ ३१३ ॥

समो न्यूनोऽधिको ह्यंशो योऽनुक्षिप्तस्तथैव सः।
व्ययं दद्यात् कर्म कुर्य्यात् लाभं गृहणीत चैव हि॥ ३१४॥

अन्वयः—यः समः न्यूनः अधिकः वा अंशः अनुक्षिप्तः सः तथैव व्ययं दद्यात्, कर्म कुर्यात्, लाभं गृह्णीत हि॥३१४॥

व्याख्या—यः = व्यवसायी, समः = समानः, न्यूनः = हीनः, अधिकः = विशेषः, वा अंशः = भागः, अनुक्षिप्तः = निर्धारितः, पूर्वमिति, सः = भागः, तथैव = तेनैव प्रकारेण, व्ययम् = वित्तविनियोगः, दद्यात् = समर्पयेत्, कर्म = कार्यम्, कुर्यात् = विदध्यात्, तथा = तेनैव रूपेण, लाभम् = प्राप्तिः, गृह्णीत = ग्रहणं कुर्यात् ॥३१४॥

हिन्दी—व्यवसाय के प्रारम्भ में उन लोगों ने बराबर, कम या ज्यादे अंश में जो द्रव्य लगाया हो, उसी के अनुसार उनका हिस्सा होता है। फिर वे उसी के अनुसार खर्च और काम करते हैं तथा लाभ भी पाते हैं॥३१४॥

सम इति। यः समः तुल्यः, न्यूनः अल्पः अधिको वा अंशः अनुक्षिप्तः निर्द्धारितः पूर्वमिति शेषः, सः भागः तथैव स्यात्। व्ययं यथाभागं दद्यात् कर्म यथाभागं कुर्य्यात् तथा लाभं यथाभागं गृह्णीत हिशब्दः अवधारणार्थः॥३१४॥

वणिजानां कर्षकाणामेष एव विधिः स्मृतः॥ ३१५॥

अन्वयः—वणिजानां कर्षकाणाञ्च एषः एव विधिः स्मृतः॥३१५॥

व्याख्या—वणिजानाम् = व्यवसायिनाम्, कर्षकाणाञ्च = कृषकानाञ्च, एषः = पूर्वोक्तः, एव = इति निश्चयेन, विधिः = रीतिः, स्मृतः = कथितः॥३१५॥

हिन्दी—यही विधि बनियों और किसानों के लिए बतलाई गई है॥३१५॥

वणिजानामिति। वणिजानां कर्षकाणाञ्च एषः एव विधिः स्मृतः कथितः॥३१५॥

सामान्यं याचितं न्यास अधिर्दासश्च तद्धनम्।
अन्वाहितं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति।
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः॥ ३१६॥

अन्वयः—सामान्यं याचितं न्यासः आधिः दासश्च तद्धनम् अन्वाहितं च निक्षेपः अन्वये सति सर्वस्वम् एतानि नववस्तूनि पण्डितैः आपत्स्वपि न देयानि॥३१६॥

व्याख्या—सामान्यम् = विभाजनोपरान्तप्राप्तसाधारणधनम्, याचितम् = प्रत्यर्पणात् प्रार्थ्यमानीतं धनम्, न्यासः = स्थापितधनम्, आधिः = बन्धकत्वेन स्थापितं धनम्, दासः = सेवकः, तत् = तस्य धनम्, अन्वाहितम् = अन्यहस्तगतं धनम्, निक्षेपः = अवपातितं धनम्, अन्वये = सन्ताने सति, सर्वस्वम् = सकलं धनम्, एतानि = पूर्वोक्तानि, नववस्तूनि = नवसंख्यकानि वस्तूनि, पण्डितैः = विद्वद्भिः, आपत्स्वपि = घोरसङ्कटेऽपि, न = नहि, देयानि = अन्यहस्ते प्रत्यर्पितानि॥३१६॥

हिन्दी—बटवारें में प्राप्त साधारण धन, फिर से लौटाने की शर्त पर माँग कर लाया गया धन, धरोहर में रखा गया धन, बन्धक रखा गया धन, दास, दास का धन, दूसरे के हाथ में रखने के लिए दिया हुआ धन, कारीगर के हाथ में ठीक करने के लिए दिया गया धन तथा

सन्तान रहने के बावजूद अपना सर्वस्व धन घोर विपत्ति के आने के बावजूद भी दूसरों के हाथ में नहीं देना चाहिए॥३१६॥

सामान्यमिति। सामान्यं साधारणं धनं, याचितं प्रत्यर्पयिष्यामीत्युक्त्वा प्रार्थ्य आनीतं, न्यासः गच्छितं धनम् आधिः बन्धकं दासः, तद्धनं दासधनम् अन्वाहितम् अन्यहस्ते अर्पितं धनं निक्षेपः शिल्पिहस्ते संस्कारार्थं निक्षिप्तं द्रव्यं तथा अन्वये सन्ताने सति सर्वस्वं सर्वं धनम् एतानि नववस्तूनि पण्डितैः आपत्सु अपि न देयानि न अन्यहस्ते दानविक्रयादिना अर्पणीयानीत्यर्थः॥३१६॥

अदेयं यश्च गृह्णाति यश्चादेयं प्रयच्छति।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ चोत्तमसाहसम्॥३१७॥

अन्वयः—यः अदेयं गृह्णाति, यश्च अदेयं प्रयच्छति, तौ उभौ चौरवत् शास्यौ उत्तमसाहसं दाप्यौ च॥३१७॥

व्याख्या—यः=जनः, अदेयम्=दातुं न योग्यं वस्तु, गृह्णाति=ग्रहणं करोति, यश्च, अदेयम्=दाने प्रतिषिद्धं वस्तु, प्रयच्छति=ददाति, तौ=पूर्वोक्तौ, उभौ=द्वौ, चौरवत्=तस्कर इव, शास्यौ=दण्डनीयौ, उत्तमसाहसम्=एतदाख्यं दण्डम्, दाप्यौ=देयौ चेति॥३१७॥

हिन्दी—यदि न देने योग्य किसी वस्तु को कोई किसी को देता है या किसी से लेता है तो वे दोनों देने और लेने वाले चोर की तरह जुर्माना करने लायक होते हैं तथा पूर्ववर्णित उत्तमसाहस नामक दण्ड के हकदार होते हैं॥३१७॥

अदेयमिति। यः अदेयं दाने प्रतिषिद्धं वस्तु गृह्णाति, यश्च अदेयं प्रयच्छति ददाति तौ उभौ चौरवत् शास्यौ उत्तमसाहसं दाप्यौ च॥३१७॥

अस्वामिकेभ्यश्चौरेभ्यो विगृह्णाति धनं तु यः।
अव्यक्तमेव क्रीणाति स दण्ड्यश्चौरवन्नृपैः॥३१८॥

अन्वयः—यः अस्वामिकेभ्यः चौरेभ्यः धनं विगृह्णाति वा अव्यक्तमेव क्रीणाति, सः नृपैः चौरवत् दण्ड्यो भवति॥३१८॥

व्याख्या—यः=पुरुषविशेषः, अस्वामिकेभ्यः=अदायिकेभ्यः, चौरेभ्यः=तस्करेभ्यः, धनम्=वित्तम्, विगृह्णाति=विशिष्टरूपेण स्वीकरोति, सः=एवंविधः पुरुषः, चौरवत्=तस्कर इव, दण्ड्यः=दण्डनीयो भवति॥३१८॥

हिन्दी—लावारिस धन खरीदने वालों, चोरी का माल खरीदने वालों तथा गुप-चुप माल खरीदने वालों को राजा चोर की तरह दण्ड दे॥३१८॥

अस्वामिकेभ्य इति। यः अस्वामिकेभ्यः चौरेभ्यः धनं विगृह्णाति अव्यक्तं गूढं यथा तथा क्रीणाति च सः नृपैः चौरवत् दण्ड्यः॥३१८॥

ऋत्विक् याज्यमदुष्टं यस्त्यजेदनपकारिणम्।
अदुष्टं चर्त्विजं याज्यो विनेयौ तावुभावपि॥३१९॥

अन्वयः—यः ऋत्विक् अदुष्टम् अनपकारिणं याज्यं तथा याज्यः अदुष्टम् ऋत्विजं त्यजेत्, तौ उभौ अपि विनेयौ भवतः॥३१९॥

व्याख्या—यः=पुरुषः, ऋत्विक्=पुरोहितः, अदुष्टम्=दुष्टतारहितम्, अनपकारिणम्=नाहितकारिणम्, याज्यम्=यजमानम्, तथा याज्यः=यजमानश्च, अदुष्टम्=दोषरहितम्,

ऋत्विजम् = पुरोहितम्, त्यजेत् = परित्यागं कुर्यात्, तौ = यजमान-पुरोहितौ, उभौ = द्वौ अपि, विनेयौ = विशिष्टरूपेण दण्डनीयौ स्तः॥ ३१९ ॥

हिन्दी—जो पुरोहित अपने निर्दोष एवं अनपकारी यजमान को तथा जो यजमान अपने निर्दोष एवं अनपकारी पुरोहित को छोड़ देता है, वे दानों ही दण्डनीय होते हैं॥ ३१९ ॥

ऋत्विगिति। यः ऋत्विक् पुरोहितः अदुष्टं निर्दोषम् अनपकारिणं याज्यं यजमानं, तथा याज्यः यजमानश्च अदुष्टम् ऋत्विजं त्यजेत् तौ उभौ अपि विनेयौ दण्ड्यौ भवतः॥ ३१९ ॥

द्वात्रिंशांशं षोडशांशं लाभं पण्ये नियोजयेत्।
नान्यथा तद्व्ययं ज्ञात्वा प्रदेशाद्यनुरूपतः॥ ३२० ॥

अन्वयः—वणिक् पण्ये प्रदेशाद्यनुरूपतः तत् व्ययं ज्ञात्वा द्वात्रिंशांशं षोडशांशं वा लाभं नियोजयेत्, अन्यथा नेति॥ ३२० ॥

व्याख्या—व्यवसायी, पण्ये = पणितव्ये वस्तुनि, प्रदेशादीनाम् = स्थानविशेषाणाम्, अनुरूपतः = अनुकूलत्वेन, तत् = तस्य विक्रेयवस्तुनः, व्ययम् = वित्तविनियोगम्, ज्ञात्वा = विज्ञाय, द्वात्रिंशांशम् = द्वात्रिंशद्भागम्, वा = अथवा, लाभम् = प्राप्तिः, नियोजयेत् = व्यवस्थापयेत्, अन्यथा = इतरथा, न = नहि॥ ३२० ॥

हिन्दी—स्थान और समय के अनुसार विक्रेय वस्तु पर लागत व्यय को जानकर व्यवसायी के लाभांश का बत्तीसवाँ या सोलहवाँ भाग राजा को राजस्व के रूप में लेना चाहिए, अन्यथा नहीं। अर्थात् इससे अधिक न ले॥ ३२० ॥

द्वात्रिंशांशमिति। वणिक् पण्ये विक्रये वस्तुनि प्रदेशादीनां देशकालादीनाम् अनुरूपतः तद् व्ययं तस्य पण्यस्य व्ययं ज्ञात्वा द्वात्रिंशांशं षोडशांशं वा लाभं नियोजयेत् व्यवस्थापयेत् अन्यथा न ततोऽधिकं नेत्यर्थः॥ ३२० ॥

वृद्धिं हित्वा ह्यर्द्धधनैर्वाणिज्यं कारयेत् सदा॥ ३२१ ॥

अन्वयः—वृद्धिं हित्वा अर्द्धधनैः सदा वाणिज्यं कारयेत्॥ ३२१ ॥

व्याख्या—वृद्धिम् = लाभः, हित्वा = परित्यज्य, अथवा—लाभः नाङ्गीकरिष्यामीत्युक्त्वा, अर्द्धधनैः = मूलधनस्यार्द्धभागैः, अथवा—अर्द्धानि वाणिज्यप्राप्तानि धनानि दास्यामीति स्वीकारवचनैः, सदा = सर्वदा, वाणिज्यम् = व्यापारम्, कारयेत् = कर्तुं प्रेरयेत्, वणिज इति॥ ३२१ ॥

हिन्दी—'मैं लाभांश नहीं लूँगा' ऐसा कहकर और 'व्यापार में प्राप्त धन का आधा धन व्यापार के लिए बनिये को दूँगा' ऐसी स्वीकृति देकर व्यापार कराये; अथवा—राजा मुनाफा छोड़कर मूल धन के आधे से व्यापारियों द्वारा व्यापार संचालित कराये॥ ३२१ ॥

वृद्धिमिति। वृद्धिं हित्वा वृद्धिं न ग्रहीष्यामीत्युक्त्वा अर्द्धधनैः अर्द्धानि वाणिज्यलब्धानि धनानि दास्यामीति अङ्गीकारवचनैः सदा वाणिज्यं कारयेत्॥ ३२१ ॥

मूलात्तु द्विगुणा वृद्धिर्गृहीता चाधमर्णिकात्।
तदोत्तमर्णमूलं तु दापयेन्नाधिकं ततः॥ ३२२ ॥

अन्वयः—यदा मूलात् द्विगुणा वृद्धिः अधमर्णिकात् गृहीता, तदा उत्तमर्णमूलं दापयेत्, ततः अधिकं न॥ ३२२ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, मूलात् = मूलधनात्, द्विगुणा = द्विगुणिता, वृद्धिः = लाभः, अधमर्णिकात् = ऋणिनः, गृहीता = नीता, तदा = तर्हि, उत्तमर्णस्य = महाजनस्य, मूलम् = मूलधनमेव, दापयेत् = दातुं प्रेरयेत् ततोऽधिकं न दापयेत् ॥ ३२२ ॥

हिन्दी—यदि महाजन कर्जदार से मूल धन का दूना मुनाफा पा चुका हो तो राजा उसे केवल मूल धन ही दिलाये, उससे अधिक नहीं ॥ ३२२ ॥

मूलादिति। यदा मूलात् मूलधनात् द्विगुणा वृद्धिः अधमर्णिकात् गृहीता, तदा उत्तमर्णस्य मूलन्तु मूलमेव दापयेत् राजेति शेषः, न अधिकं दापयेदित्यर्थः ॥ ३२२ ॥

धनिकाश्चक्रवृद्ध्यादिमिषतस्तु प्रजाधनम्।
संहरन्ति ह्यतस्तेभ्यो राजा संरक्षयेत् प्रजाम्॥ ३२३ ॥

अन्वयः—धनिकाः चक्रवृद्ध्यादिमिषतः प्रजानां धनं संहरन्ति हि। अतः राजा तेभ्यः प्रजां संरक्षयेत् ॥ ३२३ ॥

व्याख्या—धनिकाः = महाजनाः, चक्रवृद्धिः = चक्रवार्द्धुष्यम्, तस्य मिषतः = कपटप्रबन्धात्, प्रजानाम् = जनानाम्, धनम् = द्रव्यम्, संहरन्ति = अपहरन्ति। हि = यतः, राजा, तेभ्यः = धनिकेभ्यः, प्रजाम् = जनान्, संरक्षयेत् = रक्षां कुर्यात् ॥ २२३ ॥

हिन्दी—महाजन सूद-दर-सूद के बहाने कर्जदार का धन हर लेते हैं। राजा को ऐसे सूदखोर महाजन से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए ॥ २२३ ॥

धनिका इति। धनिकाः धनिनः चक्रवृद्धिः वृद्धेर्वृद्धिः तस्याः मिषतः छलात् प्रजानां धनं संहरन्ति हि, अतः राजा तेभ्यः धनिकेभ्यः प्रजाः संरक्षयेत् स्वार्थे ञयन्तोऽयं रक्षधातुः ॥ २२३ ॥

यमर्थः सन्न ददाति गृहीतं धनिकाद्धनम्।
राजा सन्दापयेत्तस्मात् सामदण्डविकर्षणैः ॥ ३२४ ॥

अन्वयः—यः समर्थः सन् धनिकात् गृहीतं धनं न ददाति, राजा सामदण्डविकर्षणैः तस्मात् सन्दापयेत् ॥ ३२४ ॥

व्याख्याः—यः = अधमर्णः, समर्थः = सशक्तः, सन्नपि, धनिकात् = महाजनात्, गृहीतम् = नीतम्, धनम् = द्रव्यम्, न = नहि, ददाति = प्रयच्छति, राजा, सामदण्डविकर्षणैः = सान्त्वनादण्डविकर्षणैः, तस्मात् = अधमर्णात्, सन्दापयेत् = प्रदापयेत् ॥ ३२४ ॥

हिन्दी—यदि लौटाने में समर्थ होकर भी कोई कर्जदार महाजन का धन न लौटाना चाहे तो राजा उसे समझा-बुझाकर या दण्ड देकर महाजन का धन दिलवा दे ॥ ३२४ ॥

समर्थ इति। यः समर्थः शक्तः सन् धनिकात् गृहीतं धनं न ददाति, राजा सामदण्डविकर्षणैः सान्त्ववादैः दण्डप्रयोगैश्च तस्मात् अधर्मणात् सन्दापयेत् ॥ ३२४ ॥

लिखितं तु यदा यस्य नष्टं तेन प्रबोधितम्।
विज्ञाय साक्षिभिः सम्यक् पूर्ववद्दापयेत्तदा ॥ ३२५ ॥

अन्वयः—यदा यस्य लिखितं नष्टं तदा तेन प्रबोधितं साक्षिभिः सम्यक् विज्ञायं पूर्ववत् सदा दापयेत् ॥ ३२५ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, यस्य = महाजनस्य, लिखितम् = लिखितम् ऋणपत्रम्,

नष्टम् = विनष्टमभवत्, तदा तेन = धनिकेन, प्रबोधितम् = राज्ञे पूर्वनिवेदितम्, साक्षिभिः = प्रेक्षकैः, सम्यक् = सुष्ठुतया, विज्ञाय = ज्ञात्वा, पूर्ववत् = अनष्टलेख्येव, सदा = सर्वदा, धनिकाय, दापयेत् = दातुमादिशेत् ॥ ३२५ ॥

हिन्दी—यदि महाजन के पास से किसी कारणवश दस्तावेज (ऋणपत्र) नष्ट हो जाय और वह इसकी सूचना राजा को दे तो इसे ठीक से समझ कर गवाही द्वारा प्रमाणित हो जाने पर पहले की तरह जैसे उसका दस्तावेज मौजूद हो मानकर कर्जदार से महाजन को राजा रुपये दिलवा दे ॥ ३२५ ॥

लिखितमिति। यदा यस्य लिखितं ऋणलेख्यं नष्टं तदा तेन धनस्वामिना प्रबोधितं विज्ञापितं राज्ञे इति शेषः, साक्षिभिः सम्यक् विज्ञाय प्रमाणीकृत्य पूर्ववत् अनष्टलेख्यवत् सदा दापयेत् धनिकाय राजेति पदद्वयमध्याहार्य्यम् ॥ ३२५ ॥

अदत्तं यश्च गृहणाति सुदत्तं पुनरिच्छति।
दण्डनीयावुभावेतौ धर्मज्ञेन महीक्षिता ॥ ३२६ ॥

अन्वयः—यश्च अदत्तं गृह्णाति सुदत्तं पुनः इच्छति, एतौ उभौ धर्मज्ञेन महीक्षिता दण्डनीयौ ॥ ३२६ ॥

व्याख्या—यश्च = पुरुषः, अदत्तम् = विनाप्रदत्तम्, गृह्णाति = नयति, च = पुनः, यः पुरुषः, सुदत्तम् = सम्यग्रूपेण प्रदत्तं धनम्, पुनः = भूयः, तस्मात्, ग्रहीतुम्, इच्छति = अभिलषति, तौ = पुरुषौ, उभौ = द्वौ प्रकारकौ, धर्मज्ञेन = धर्मवेत्रा, महीक्षिता = राज्ञा, दण्डनीयौ = दमनीयाविति ॥ ३२६ ॥

हिन्दी—जो बिना दिये ही किसी की वस्तु लेता है तथा जो किसी को दी गई वस्तु पुनः पाने की इच्छा करता है तो ये दोनों व्यक्ति धर्मवेत्ता से दण्डनीय होते हैं ॥ ३२६ ॥

अदत्तमिति। यश्च अदत्तं गृह्णाति यश्च सुदत्तं धनं पुनः ग्रहीतुम् इच्छति, एतौ उभौ धर्मज्ञेन महीक्षिता राज्ञा दण्डनीयौ ॥ ३२६ ॥

कूटपण्यस्य विक्रेता स दण्ड्यश्चौरवत् सदा ॥ ३२७ ॥

अन्वयः—यः कूटपण्यस्य विक्रेता सः सदा चौरवत् दण्ड्यः ॥ ३२७ ॥

व्याख्या—यः = वणिक्, कूटपण्यस्य—कूटेन = छलेन, पण्यस्य = विक्रेयवस्तुनः, विक्रेता = विक्रयिकः, सः = वणिक्, सदा = सर्वदा, चौरवत् = तस्कर इव, नृपेण, दण्ड्यः = दण्डं दातुं योग्यः ॥ ३२७ ॥

हिन्दी—जो किसी वस्तु को किसी के हाथ धोखा देकर बेचता है, वह सदा राजा के द्वारा चोर की तरह दण्डनीय होता है ॥ ३२७ ॥

कूटेति। यः कूटपण्यस्य कपटविक्रेयस्य विक्रेता, सः सदा चौरवत् दण्ड्यः ॥ ३२७ ॥

दृष्ट्वा कार्य्याणि च गुणान् शिल्पिनां भृतिमावहेत् ॥ ३२८ ॥

अन्वयः—शिल्पिनां कार्याणि गुणांश्च दृष्ट्वा भृतिम् आवहेत् ॥ ३२८ ॥

व्याख्या—शिल्पिनाम् = हस्तकर्मविशेषज्ञानाम्, कार्याणि = कृत्यानि, गुणांश्च = धर्मांश्च, दृष्ट्वा = अवलोक्य, भृतिम् = वेतनम्, आवहेत् = दद्यात् ॥ ३२८ ॥

हिन्दी—कारीगरों के काम और उनके गुणों को देखकर ही उसकी मजदूरी तय करे ॥ ३२८ ॥

दृष्ट्वेति। शिल्पिनां कार्य्याणि गुणांश्च दृष्ट्वा भृतिं वेतनम् आवहेत् दद्यात् ॥ ३२८ ॥

पञ्चमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं तु कर्षयेत्।
अर्द्धं वा राजताद्राजा नाधिकं तु दिने दिने ॥ ३२९ ॥

अन्वयः—राजा दिने दिने राजतात् पञ्चमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं वा अर्द्धं कर्षयेत्, न तु अधिकम् ॥ ३२९ ॥

व्याख्या—राजा = भूपतिः, दिने दिने = प्रतिदिनम्, राजतात् = रौप्यविक्रयात्, पञ्चमांशम् = पञ्चमो भागः, चतुर्थांशम् = चतुर्थो भागः, तृतीयांशम् = तृतीयो भागः, वा = अथवा, अर्द्धम् = अर्द्धांशम्, कर्षयेत् = ग्रहणं कुर्यात्, न तु अधिकम् = अतोऽधिकं न गृह्णीयात् ॥ ३२९ ॥

हिन्दी—राजा प्रतिदिन चाँदी की बिक्री में से लाभ का पाँचवाँ, चौथा या तीसरा भाग अथवा आधा भाग राजस्व के रूप में ले और इससे अधिक न ले ॥ ३२९ ॥

पञ्चामांशमिति। राजा दिने दिने प्रतिदिनं राजतात् रौप्यविक्रयात् पञ्चमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं वा अर्द्धं कर्षयेत् गृह्णीयात् न अधिकम् अर्द्धादप्यधिकं न गृह्णीयादित्यर्थः ॥ ३२९ ॥

विद्रुतं न तु हीनं स्यात् स्वर्णं पलशतं शुचिः।
चतुःशतांशं रजतं ताम्रं न्यूनं शतांशकम् ॥ ३३० ॥

अन्वयः—पलशतं शुचिः स्वर्णं विद्रुतं हीनं न तु स्यात्। रजतं चतुःशतांशकं तथा ताम्रं शतांशकं न्यूनं न स्यात् ॥ ३३० ॥

व्याख्या—पलशतम् = शतसंख्यकपलपरिमितम्, शुचिः = परिष्कृतम्, स्वर्णम् = कनकम्, विद्रुतम् = विगलितम्, सत्, हीनम् = भारेऽल्पम्, न तु = नैव, स्यात् = भवेत्। रजतम् = रौप्यम्, चतुःशतांशम् = चतुःशतभागः,' तथा ताम्रम् = मुनिपित्तलम्, शतांशकम् = शतभागपरिमितम्, न्यूनम् = हीनम्, स्यात् = भवेत् ॥ ३३० ॥

हिन्दी—सौ पल अर्थात् चार सौ भर शुद्ध सोना गलाने पर वजन में कम नहीं होना चाहिए। सौ पल शुद्ध चाँदी गलाने पर उसका चारसौवाँ भाग तथा तथा ताँबे पर सौवाँ भाग कम होना चाहिए ॥ ३३० ॥

विद्रुतमिति। पलशतं शतपलमितं शुचिः निर्दोषं स्वर्णं विद्रुतं विगलितं सत् हीनं तौल्ये अल्पं न तु नैव स्यात्। रजतं चतुःशतांशं, तथा ताम्रं शतांशकं न्यूनं स्यात् ॥ ३३० ॥

वङ्गं च जसदं सीसं हीनं स्यात् षोडशांशकम्।
अयोऽष्टांशं त्वन्यथा तु दण्ड्यः शिल्पी सदा नृपैः ॥ ३३१ ॥

अन्वयः—वङ्गं जसदं तथा सीसं षोडशांशकं हीनं स्यात्, अयः अष्टांशम्। अन्यथा शिल्पी सदा नृपैः दण्डनीयः ॥ ३३१ ॥

व्याख्या—वङ्गम् = त्रपुः, जसदम् = सुवर्णारिः, तथा सीसम् = महाबलम्, षोडशांशकम् = षोडशभागपर्यन्तम्, हीनम् = तौल्येऽल्पम्, स्यात् = भवेत्, अयः = लोहम्, अष्टांशम् =

अष्टभागपरिमितम्, हीनं भवेत्। अन्यथा = एतत्परिमिताधिक्यहानौ, शिल्पी = हस्तकर्मकारः, सदा = सर्वदा, नृपैः = भूभृद्भिः, दण्ड्यः = दण्डनीयो भवति ॥ ३३१ ॥

हिन्दी—राँगा, जस्ता और सीसा गलाने पर सोलहवाँ हिस्सा कम हो जाता है और लोहा गलाने पर आठवाँ हिस्सा कम होता है। इससे कम तौल होने पर राजा कारीगर को दण्ड दे ॥ ३३१ ॥

वङ्गमिति। वङ्गं रङ्गमित्यर्थः, जसदं धातुविशेषः तदा सीसं षोडशांशकं हीनं स्यात्। अयः लौहस्तु अष्टांशं हीनं स्यादित्यर्थः, अन्यथा तु उक्ताधिक्यहानौ इत्यर्थः, नृपैः, शिल्पी तत्तद्धातुशिल्पकरः सदा दण्ड्यः ॥ ३३१ ॥

सुवर्णं द्विशतांशं तु रजतं च शतांशकम्।
हीनं सुघटिते कार्य्ये सुसंयोगे तु वर्द्धते ॥ ३३२ ॥

अन्वयः—सुघटिते कार्ये सुवर्णं द्विशतांशं च रजतं शतांशकं हीनं सुसंयोगे तु वर्द्धते ॥ ३३२ ॥

व्याख्या—सुघटिते = सुरचिते, कार्ये = निर्माणे, सुवर्णम् = कनकम्, द्विशतांशम् = शतद्वयभागपरिमितम्, च = पुनः, रजतम् = रौप्यम्, शतांशकम् = शतभागमितम्, हीनम् = अल्पम्, भवति, सुसंयोगे = सुष्ठुतयाऽन्यद्रव्यसम्मेलने, तु, वर्द्धते = एधते ॥ ३३२ ॥

हिन्दी—सुन्दर आभूषण तैयार करने के क्रम में छीलने के कारण सोने का दोसौवाँ भाग तथा चाँदी का सौवाँ भाग छीलता है अर्थात् तौल में घटता है और सुन्दर ढंग से आभूषण तैयार करने में टाँके लगाने के कारण सोलहवाँ भाग तौल में बढ़ जाता है ॥ ३३२ ॥

सुवर्णमिति। सुघटितकार्य्ये सुवर्णं द्विशतांशं, रजतं शतांशकं हीनं भवति, सुसंयोगे तु शोभनद्रव्यसंयोगे तु वर्द्धते वृद्धिं गच्छति ॥ ३३२ ॥

षोडशांशं त्वन्यथा हि दण्ड्यः स्यात् स्वर्णकारकः।
संयोगघटनं दृष्ट्वा वृद्धिं ह्रासं प्रकल्पयेत् ॥ ३३३ ॥

अन्वयः—अन्यथा तु स्वर्णकारकः षोडशांशं दण्ड्यः स्यात्। संयोगघटनं दृष्ट्वा वृद्धिं ह्रासं प्रकल्पयेत् ॥ ३३३ ॥

व्याख्या—अन्यथा = इतरथा, तु, स्वर्णकारकः = सुवर्णशिल्पी, षोडशांशम् = षोडशभागमितम्, दण्ड्यः = दण्डनीयः, स्यात् = भवेत्, संयोगघटनम् = सुसंयोगं कुसंयोगं वा, दृष्ट्वा = अवलोक्य, वृद्धिम् = तौल्ये वर्द्धनम्, ह्रासम् = हीनम्, वा, प्रकल्पयेत् = कल्पनां कुर्यात् ॥ ३३३ ॥

हिन्दी—और जिस तरह टाँका आदि देने में मिलावट की जाती है उसी तरह विचारक सोने की बढ़ोतरी या कमी की कल्पना करे। इससे भिन्न स्थिति में सोनार को दण्ड देना चाहिए ॥ ३३३ ॥

षोडशांशमिति। अन्यथा उक्ताधिक्यहानौ इत्यर्थः, स्वर्णकारकः षोडशांशं दण्ड्यः स्यात्। किञ्च संयोगघटनं सुसंयोगं कुसंयोगं वा दृष्ट्वा वृद्धिं ह्रासं वा प्रकल्पयेत् यदि सुसंयोगो भवेत् तदा वृद्धिः सुसंयोगे तु ह्रास एवेत्यर्थः ॥ ३३३ ॥

स्वर्णस्योत्तमकार्य्ये तु भृतिस्त्रिंशांशकी मता।
षष्ठ्यंशकी मध्यकार्य्ये हीनकार्य्ये तदर्द्धकी।
तदर्द्धा कटके ज्ञेया विद्रुते तु तदर्द्धकी ॥ ३३४ ॥

अन्वयः—स्वर्णस्योत्तमकार्ये त्रिंशांशकी, मध्यकार्ये षष्ट्यंशकी तथा हीनकार्ये तदर्द्धकी भृतिः मता। कटके तदर्द्धा तथा विद्रुते कार्ये तदर्द्धकी भृतिः ज्ञेया ॥ ३३४ ॥

व्याख्या—स्वर्णस्य = चामीकरस्य, उत्तमः = उत्कृष्टः, कार्ये = निर्माणे, त्रिंशांशकी = त्रिंशद्भागस्यैकभागः, मध्यकार्ये = सामान्यनिर्माणे, षष्ट्यंशकी = षष्टिभागस्यैकभागः, हीनकार्ये = निकृष्टनिर्माणे, तदर्द्धकी = विंशत्यधिकशततमभागस्यैकभागः, भृतिः = पारिश्रमिकः, मता = कथिता। कटके = वलयनिर्माणे, तदर्द्धा = चत्वारिंशदधिकशतद्वयैकभागस्यैकभागः, तथा विद्रुते = मात्रगलितकार्ये, तदर्द्धकी = अशीत्यधिकचतुःशततमभागस्यैकभागः, भृतिः = वेतनम्, ज्ञेया = बोध्या ॥ ३३४ ॥

हिन्दी—उत्तम कोटि के स्वर्णालङ्कार-निर्माण की मजदूरी उस अलंकार के मूल्य के तीसवें भाग के बराबर होती है। मध्यम दर्जे के आभूषण की मजदूरी साठवाँ भाग, निकृष्ट कोटि के आभूषण की मजदूरी उसके एक सौ बीसवाँ भाग, केवल बल्ले की मजदूरी दो सौ चालीसवाँ भाग और केवल सौ सोना गलाने की मजदूरी अस्सीवाँ भाग होनी चाहिए ॥ ३३४ ।।

स्वर्णस्येति। स्वर्णस्य उत्तमकार्य्ये उत्कृष्टनिर्माणे त्रिंशांशकी त्रिंशभागैकभाग इत्यर्थः, मध्यकार्य्ये षष्ट्यंशकी षष्टिभागैकभाग इत्यर्थः, तथा हीनकार्य्ये अपकृष्टकर्मणि तदर्द्धकी विंशत्यधिकशततमभागैकभाग इत्यर्थः, भृतिः वेतनं मता। कटके वलये कार्य्ये इत्यर्थः, तदर्द्धा चत्वारिंशदधिकशतद्वयभागैकभाग इत्यर्थः, तदा विद्रुते गलितमात्रे कार्य्ये तदर्द्धकी अशीत्यधिकचतुःशततमभागैकभाग इत्यर्थः, भृतिः ज्ञेया ॥ ३३४ ॥

उत्तमे राजते त्वर्द्धा तदर्द्धा मध्यमे स्मृता।
हीने तदर्द्धा कटके तदर्द्धा सम्प्रकीर्त्तिता ॥ ३३५ ॥

अन्वयः—उत्तमे राजते त्वर्द्धा, मध्यमे तदर्द्धा स्मृता। हीने तदर्द्धा, कटके तदर्द्धा सम्प्रकीर्त्तिता ॥३३५ ॥

व्याख्या—उत्तमे = उत्कृष्टे, राजते = रौप्ये, कार्ये, अर्द्धा = अर्द्धभागमिता, भृतिः, मध्यमे = मध्यमराजताभूषणनिर्माणे, तदर्द्धा = चतुर्थभागः, भृतिः, स्मृता = ज्ञेया। हीने = निकृष्ट-निर्माणे, राजते = रौप्ये, तदर्द्धा = अष्टमभागः, वेतनं स्मृतम्, तथा कटके = वलये, तदर्द्धा = षोडशभागः, भृतिः = वेतनम्, प्रकीर्त्तिता = कथिता ॥ ३३५ ॥

हिन्दी—अच्छे ढंग के चाँदी के जेवर की मजदूरी जेवर के वजन का आधा भाग, मध्यम दर्जे के बने जेवर की मजदूरी चौथा भाग, हीन दर्जे के जेवर की मजदूरी आठवाँ भाग और केवल चाँदी के कड़े की मजदूरी सोलहवाँ भाग होती है ॥ ३३५ ॥

उत्तमे इति। उत्तमे राजते कार्य्ये अर्द्धा, मध्यमे राजते तदर्द्धा चतुर्थभाग इत्यर्थः, भृतिः स्मृता। हीने अपकृष्टे राजते तदर्द्धा अष्टमभाग इत्यर्थः, तथा कटके तदर्द्धा षोडशभाग इत्यर्थः, भृतिः सम्प्रकीर्त्तिता ॥ ३३५ ॥

पादमात्रा भृतिस्ताम्रे वङ्गे च जसदे तथा।
लोहेऽर्द्धा वा समा वापि द्विगुणाष्टगुणाथवा ॥ ३३६ ॥

अन्वयः—ताम्रे वङ्गे तथा जसदे च कार्ये पादमात्रा लोहे अर्द्धा वा समा वा द्विगुणा अथवा अष्टगुणा ॥ ३३६ ॥

व्याख्या—ताम्रे = मुनिपित्तले, वङ्गे = कस्तीरे, जसदे = यशदे, च = पुनः, कार्ये = वस्तुनिर्माणे, पादमात्रा = चतुर्थांशमेव, लोहे = अयस्के, अर्द्धा = अर्द्धभागः, वा = अथवा, समा = तुल्या, वा द्विगुणा = द्विगुणिता, अथवा अष्टगुणा = वसुगुणिता, भृतिः = वेतनम्, विज्ञेया ॥३३६ ॥

हिन्दी—ताँबा, राँगा अथवा जस्ता की बनी वस्तुओं की मजदूरी चौथे भाग के बराबर होती है। लोहे की बनी वस्तुओं की मजदूरी आधी, बराबर, दुगुनी अथवा आठगुनी होती है ॥ ३३६ ॥

पादमात्रेति। ताम्रे वङ्गे जसदे च कार्य्ये पादमात्रा चतुर्थभागः, लोहे अर्द्धा वा समा वा द्विगुणा अथवा अष्टगुणा भृतिः ज्ञेयेति शेषः, विकल्पश्च कार्य्यगौरवलाघवापेक्षो बोद्धव्यः॥ ३३६ ॥

धातूनां कूटकारी तु द्विगुणो दण्डमर्हति॥ ३३७॥

अन्वयः—धातूनां कूटकारी द्विगुणं दण्डम् अर्हति ॥ ३३७ ॥

व्याख्या—धातूनाम् = खनिजभेदानाम्, सुवर्णादीनां, कूटकारी = जालकरः, द्विगुणः = द्विगुणितम्, दण्डम् = दमनम्, अर्हति = समर्थो भवति ॥ ३३७ ॥

हिन्दी—धातुओं में यदि कोई मिलावट या जालसाजी करे तो मूल धन का दूना उसे जुर्माना होना चाहिए ॥ ३३७ ॥

धातूनामिति। धातूनां स्वर्णादीनां कूटकारी जालकरः द्विगुणं दण्डम् अर्हति लभते ॥ ३३७ ॥

लोकप्रचारैरुत्पन्नो मुनिभिर्विधृतः पुरा।
व्यवहारोऽनन्तपथः स वक्तुं नैव शक्यते॥ ३३८॥

अन्वयः– लोकप्रचारैः उत्पन्नः पुरा मुनिभिः विधृतः व्यवहारः अनन्तपथः। सः वक्तुं नैव शक्यते ॥ ३३८ ॥

व्याख्या—लोकानाम् = जनानाम्, प्रचारैः = प्रचलनैः, उत्पन्नः = सञ्जातः, पुरा = प्राचीनसमये, मुनिभिः = ऋषिभिः, विधृतः = विशेषेण निरूपितः, व्यवहारः = आचारः, अनन्तपथः = अन्तहीनमार्गः। सः = एवंविधव्यवहारः, वक्तुम् = साकल्येन व्याख्यातुम्, नैव = नास्त्येव, शक्यते = शक्यो भवति ॥ ३३८ ॥

हिन्दी—लोगों के अनेक तरह के आचरणों से उत्पन्न तथा प्राचीन काल में मुनियों द्वारा निरूपित व्यवहार के रास्ते अन्तहीन हैं। अतः उनका यथावत् निरूपण करना सम्भव नहीं है ॥ ३३८ ॥

लोकेति। लोकानां प्रचारैः गतिभिः उत्पन्नः जातः पुरा पूर्वस्मिन् काले मुनिभिः विधृतः निरूपितः व्यवहारः अनन्तपथः अशेष इत्यर्थः। सः व्यवहारः वक्तुं साकल्येनेति भावः, नैव शक्यते ॥ ३३८ ॥

उक्तं राष्ट्रप्रकरणं समासात् पञ्चमं तथा।
अत्रानुक्ता गुणा दोषास्ते ज्ञेया लोकशास्त्रतः ॥ ३३९ ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाऽध्यायस्य राष्ट्रेऽन्त्यं राजधर्मनिरूपणं नाम पञ्चमं प्रकरणम्।

अन्वयः—पञ्चमं राष्ट्रप्रकरणं समासात् उक्तम्। अत्र गुणाः दोषाश्च अनुक्ताः, ते लोकशास्त्रतः ज्ञेयाः॥ ३३९ ॥

व्याख्या—पञ्चमम् = पञ्चमाख्यम्, राष्ट्रप्रकरणम् = एतदाख्योऽध्यायः, समासात् = सङ्क्षेपेण, उक्तम् = कथितम्। अत्र = अस्मिन् ग्रन्थे, गुणाः = उत्कृष्टगुणाः, दोषाः = दुर्गुणाः, च, अनुक्ताः = अकथिताः, ते = व्यवहाराणि, लोकशास्त्रतः—लोकतः = लोकव्यवहारात्, शास्त्रतः = शास्त्रव्यवहारात्, ज्ञेयाः = बोध्याः॥ ३३९ ॥

हिन्दी—इस तरह संक्षेप में पञ्चराष्ट्र-प्रकरण का मैंने निरूपण किया। इसमें इनके जो गुण या दोष नहीं कहे जा सके उन्हें लोक तथा शास्त्रों के व्यवहार से जान लेना चाहिए॥ ३३९ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'राजधर्मनिरूपण' नामक पञ्चम प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

उक्तमिति। पञ्चमं राष्ट्रप्रकरणं समासात् सङ्क्षेपेण उक्तम्। अत्र प्रकरणे गुणा दोषाश्च अनुक्ताः अकथिताः ते गुणदोषाः लोकशास्त्रतः लोकतः शास्त्रतश्च ज्ञेयाः॥ ३३९ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

चतुर्थाध्यायस्य षष्ठं प्रकरणम्

षष्ठं दुर्गप्रकरणं प्रवक्ष्यामि समासतः ।
खातकण्टकपाषाणैर्दुष्पथं दुर्गमैरिणम् ॥ १ ॥

अन्वयः—षष्ठं दुर्गप्रकरणं समासतः प्रवक्ष्यामि। खातकण्टकपाषाणैः दुष्पथं दुर्गमम् ऐरिणम् ॥ १ ॥

व्याख्या—षष्ठम् = षष्ठसंज्ञकम्, दुर्गप्रकरणम् = दुर्गाख्योऽध्यायः, समासतः = सङ्क्षेपेण, प्रवक्ष्यामि = कथयामि; खातकण्टकपाषाणैः—खातेन = परिखया, कण्टकेन = विघ्नकरेण, पाषाणेन = प्रस्तरखण्डेन, दुष्पथम् = दुर्गमम्, दुर्गम् = कोटः, ऐरिणम् = एतदाख्यं प्रकरणम्, कथितमिति शेषः ॥ १ ॥

हिन्दी—अब छठे दुर्ग-प्रकरण को संक्षेप में बतलाता हूँ। खाई, काँटे तथा पत्थरों से घिरे दुर्गम पथ वाले दुर्ग को 'ऐरिण' कहते हैं ॥ १ ॥

षष्ठमिति। षष्ठं दुर्गप्रकरणं समासतः सङ्क्षेपेण प्रवक्ष्यामि। खातकण्टकपाषाणैः खातेन कण्टकेन पाषाणेन च दुष्पथं दुर्गममित्यर्थः, दुर्गम् ऐरिणं स्मृतमिति शेषः ॥ १ ॥

परितस्तु महाखातं पारिखं दुर्गमेव तत्।
इष्टकोपलमृद्भित्तिप्राकारं पारिघं स्मृतम् ॥ २ ॥

अन्वयः—परितः महाखातं तत् दुर्गं पारिखं एव। तथा इष्टकोपलमृद्भित्तिप्राकारं दुर्गं पारिघं स्मृतम् ॥ २ ॥

व्याख्या—परितः = सर्वतः, महाखातम् = दीर्घपरिखा, यस्य तादृशम्, तत् = पूर्वोक्तम्, दुर्गमेव = कोट एव, पारिखम् = परिखयाऽऽवृतमेव, तथा, इष्टकैः = इष्टिकाभिः, उपलैः = पाषाणैः, वा = अथवा, मृद्भिः = मृत्तिकाभिः, दुर्गम् = कोटिः, पारिघम् = एतदाख्यं कोटम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ २ ॥

हिन्दी—और जिस के चारों ओर बड़ी खाई हो, उसे पारिख दुर्ग कहते हैं। जिसके चारों ओर ईंट, पत्थर और मिट्टी की दिवालों का परकोटा बना हो, उसे पारिघ दुर्ग कहा जाता है ॥२ ॥

परित इति। परितः सर्वतः चतुर्दिक्षु इत्यर्थः, महाखातं महत्खातं यस्य तादृशं तत् दुर्गं परिखमेव तथा इष्टकैः उपलैः पाषाणैः मृद्भिर्वा भित्तिप्राकारो यस्य तादृशं दुर्गं पारिघं स्मृतम् ॥ २ ॥

महाकण्टकवृक्षौघैर्व्याप्तं तद्वनदुर्गमम्।
जलाभावस्तु परितो धन्वदुर्गं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—महाकण्टकवृक्षौघैः व्याप्तं तत् वनदुर्गं, पारितः जलाभावस्तु धन्वदुर्गं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—महाकण्टकवृक्षौघैः = सघनशल्यतरुसमूहैः, व्याप्तम् = वेष्टितम्, तत् = दुर्गम्, वनदुर्गम् = एतदाख्यदुर्गम्, ख्यातम् ।तथा परितः = चतुर्दिक्षु, जलाभावः—यस्य जलस्य = सलिलस्य,अभावः = अविद्यमानता,तत्,धन्वदुर्गम् = एतादाख्यःकोटः,प्रकीर्तिम् = कथितम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—जो किला बड़े-बड़े कटीले पेड़ों के समूह से चारों ओर घिरा हो, उन्हें वनदुर्गम या वनदुर्ग कहते हैं तथा जिस किले के दूर-दूर तक पानी का बिलकुल अभाव हो अर्थात् मरुभूमि से घिरा हो, उसे धन्वदुर्ग कहा जाता है ॥ ३ ॥

महेति। महाकण्टकवृक्षसमूहैः व्याप्तं वेष्टितं तत् दुर्गं वनदुर्गमं वनदुर्गमित्यर्थः। परितः समन्तात् यस्य जलाभावः, तत् धन्वदुर्गं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥

जलदुर्गं स्मृतं तज्ज्ञैरासमन्तान्महाजलम्।
सुवारिपृष्ठोच्चघरं विविक्ते गिरिदुर्गमम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—आसमन्तात् महाजलं दुर्गं तज्ज्ञैः जलदुर्गं स्मृतम् । तथा विविक्ते सुवारिपृष्ठोच्चघरं गिरिदुर्गमम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—आसमन्तात् = चतुर्दिक्षु, महाजलम् = गम्भीरजलपूर्णखातैरावेष्टितम्, तज्ज्ञैः = दुर्गाभिज्ञैः, जलदुर्गम् = एतदाख्यकोटः, स्मृतम् = कथितम् । तथा विविक्ते = निर्जनस्थाने, सुवारीणि = सुष्ठुजलाशययुक्तम्, पृष्ठे = पर्वतोपरि, यस्य तथाभूतम्, उच्चघरम् = उन्नतगृहम्, यस्मिन् तथोक्तं दुर्गम्, गिरिदुर्गमम् = गिरिदुर्गम्, प्रकीर्त्तितमिति शेषः ॥ ४ ॥

हिन्दी—जिस किले के चारों ओर बहुत दूर-दूर तक फैली जलराशि हो, उसे जलदुर्ग कहते हैं तथा जो एकान्त में किसी पहाड़ी पर बना हो एवं पानी का पूरा प्रबन्ध हो, उसे गिरिदुर्ग कहते हैं ॥ ४ ॥

जलेति। आसमन्तात् महाजलं चतुर्दिक्षु महाजलाशयवेष्टितं दुर्गं तज्ज्ञैः दुर्गाभिज्ञैः जलदुर्गं स्मृतम् । तथा विविक्ते विजने सुवारीणि पृष्ठे यस्य तथाभूतम् उच्चघरम् उन्नतगृहं यस्मिन् तथोक्तं दुर्गं गिरिदुर्गमं गिरिदुर्गम् ॥ ४ ॥

अभेद्यं व्यूहविद्वीरव्याप्तं तत् सैन्यदुर्गमम्।
सहायदुर्गं तज्ज्ञेयं शूरानुकूलबान्धवम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अभेद्यं व्यूहविद्वीरव्याप्तं तत् सैन्यदुर्गम्। शूरानुकूलबान्धवं तत् सहायदुर्गं ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—अभेद्यम् = अरिभिरखण्डनीयम्, व्यूहविद्भिः = बलविन्यासविशेषज्ञैः, वीरैः, व्याप्तम् = पूरितम्, तत् = दुर्गम्, सैन्यदुर्गम् = सैन्यदुर्गमिति कथितम्। तथा शूराः = वीरपुरुषाः, अनुकूलाः = हितकराः, बान्धवाः = परिजनाः, यस्मिन् तथोक्तम्, तत् = दुर्गम्, सहायदुर्गम् = एतदाख्यम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ५ ॥

हिन्दी—व्यूहरचना में कुशल वीरों से भरे अभेद्य किले को सैन्यदुर्ग कहते हैं तथा जिसमें वीर एवं सदैव अनुकूल रहने वाले परिजन रहते हो उसे सहायदुर्ग कहा जाता है ॥ ५ ॥

अभेद्यमिति। अभेद्यं शत्रुभिः दुर्भेद्यं व्यूहविद्‌भिः बलविन्यासविज्ञैः वीरैः व्याप्तं तत् दुर्गं सैन्यदुर्गमं सैन्यदुर्गम्। तथा शूराः बलवन्तः अनुकूलाः बान्धवा यस्मिन् तथोक्तं तत् दुर्गं सहायदुर्गं ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

परिखादैरिणं श्रेष्ठं पारिघं तु ततो वनम्।
ततो धन्वजलं तस्माद्गिरिदुर्गं ततः स्मृतम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—परिखात् ऐरिणं श्रेष्ठम्, ततः पारिघम्, पारिघात् वनदुर्गं, ततः धन्वदुर्गं, ततः जलं, तस्मात् गिरिदुर्गं श्रेष्ठम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—परिखात् = परिखावेष्टितकोटात्, ऐरिणं दुर्गम, श्रेष्ठम् = उत्कृष्टं भवतिः, ततः = तस्मादैरिणात्, पारिघं दुर्गं वरम्, ततः = तस्मात् पारिघात्, वनम् = वनदुर्गम्, श्रेष्ठम्, ततः = तस्मात् वनदुर्गात्, धन्वदुर्गम्, ततः = धन्वदुर्गात्, जलम् = जलदुर्गम्, जलदुर्गात्, गिरिदुर्गम् श्रेष्ठम् = उत्तमं भवति ॥ ६ ॥

हिन्दी—पारिख दुर्ग से श्रेष्ठ ऐरिण दुर्ग, ऐरिण से श्रेष्ठ पारिघ दुर्ग, उससे भी श्रेष्ठ वनदुर्ग, वनदुर्ग से श्रेष्ठ जलदुर्ग और उससे भी श्रेष्ठ गिरिदुर्ग माना जाता है ॥ ६ ॥

सहायसैन्यदुर्गे तु सर्वदुर्गप्रसाधके।
ताभ्यां विनान्यदुर्गाणि निष्फलानि महीभुजाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—सहायसैन्यदुर्गे सर्वदुर्गप्रसाधके, ताभ्यां विना अन्यदुर्गे महीभुजां निष्फलानि ॥ ७ ॥

व्याख्या—सहायसैन्यदुर्गे = सहायदुर्गं सैन्यदुर्गञ्च, सर्वेषाम् = सकलानां, दुर्गाणाम्, प्रसाधके = मण्डनकारके, ताभ्याम् = पूर्वोक्ताभ्यामुभाभ्याम्, विना = विहाय, अन्यदुर्गे—अन्यानि = अपराणि, दुर्गाणि = कोटाः, महीभुजाम् = नृपाणाम्, निष्फलानि = निष्प्रयोजनानि ॥ ७ ॥

हिन्दी—सैन्यदुर्ग एवं सहायदुर्ग सभी दुर्गों के आभूषण हैं। इन्हें छोड़कर अन्य दुर्ग राजा के लिए निष्फल हैं ॥ ७ ॥

सहायेति। सहायसैन्यदुर्गे सहायदुर्गं सैन्यदुर्गञ्च सर्वेषां दुर्गाणां प्रसाधके अलङ्कारके सम्पादके वा, यतः ताभ्यां सहायसैन्याभ्यां विना महीभुजां राज्ञाम् अन्यानि दुर्गाणि निष्फलानि भवन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

श्रेष्ठं तु सर्वदुर्गेभ्यः सेनादुर्गं स्मृतं बुधैः।
तत्साधकानि चान्यानि तद्रक्षेन्नृपतिः सदा ॥ ८ ॥

अन्वयः—सेनादुर्गं सर्वदुर्गेभ्यः श्रेष्ठं बुधैः स्मृतम्। अन्यानि तत् साधकानि, तत् नृपतिः सदा रक्षेत् ॥ ८ ॥

व्याख्या—सेनादुर्गम् = प्रशिक्षितसैन्यकोटम्, सर्वेभ्यः = अखिलेभ्यः, दुर्गेभ्यः = कोटेभ्यः, श्रेष्ठः = उत्कृष्टः, बुधैः = पण्डितैः, स्मृतम् = कथितम्। अन्यानि = अपराणि, दुर्गाणि = कोटाः, तत् = तेषाम्, साधकानि = तदुपजीव्यानि, तस्मात् = तेन हेतुना, नृपतिः = राजा, सदा = सर्वदा, तत् = सैन्यदुर्गम्, रक्षेत् = सर्वतोभावेन रक्षां कुर्यात् ॥ ८ ॥

हिन्दी—विद्वानों ने सभी दुर्गों में सैन्यदुर्ग को सर्वश्रेष्ठ दुर्ग माना है। अतः राजा को

सब तरफ से सैन्यदुर्ग की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि अन्य सभी दुर्ग तो इसके साधन मात्र हैं ॥८॥

श्रेष्ठमिति। सेनादुर्गं सर्वदुर्गेभ्यः श्रेष्ठं बुधैः स्मृतम्, अन्यानि दुर्गाणि तत्साधकानि तेषां पोषकाणि अथवा तानि साधकानि येषां तथोक्तानि तदुपजीव्यानीत्यर्थः। तस्मात् नृपतिः सदा तत् सैन्यदुर्गं रक्षेत् ॥८॥

सेनादुर्गं तु यस्य स्यात् तस्य वश्या तु भूरियम्।
विना तु सैन्यदुर्गेण दुर्गमन्यत्तु बन्धनम्॥९॥

अन्वयः—यस्य सेनादुर्गं स्यात् तस्य इयं भू वश्या। सैन्यदुर्गेण विना अन्यदुर्गं बन्धनम् ॥९॥

व्याख्या—यस्य = राज्ञः, सेनादुर्गम् = सैन्यकोटः, स्यात् = भवेत्, तस्य = नृपस्य, इयम् = एषा, भूः = पृथिवी, वश्या = वशवर्त्तिनी, भवेत्। सैन्यदुर्गेण = सेनाकोटेन, विना = विहाय, अन्यत् = भिन्नम्, दुर्गम् = कोटः, बन्धनम् = कारागारमिवेति ॥९॥

हिन्दी—जिस राजा के पास सैन्यदुर्ग है सारी धरती उसकी वशवर्तिनी है और सैन्य-दुर्ग को छोड़कर सारे दुर्ग बन्धन मात्र है ॥९॥

सेनादुर्गमिति। यस्य सेनादुर्गं स्यात् तस्य इयं भूः वश्या वशवर्त्तिनी भवेदित्यर्थः, सैन्यदुर्गेण विना तु अन्यत् दुर्गं बन्धनं कारातुल्यमित्यर्थः ॥९॥

आपत्कालेऽन्यदुर्गाणामाश्रयश्चोत्तमो मतः॥१०॥

अन्वयः—आपत्काले अन्यदुर्गाणाम् आश्रयः उत्तमः मतः॥१०॥

व्याख्या—आपत्काले = विपत्समये, अन्यदुर्गाणाम्—अन्येषाम् = अपरेषाम्, दुर्गाणाम् = कोटानाम्, आश्रयः = अवलम्बनः, उत्तमः = श्रेयस्करः, मतः = प्रथितः॥१०॥

हिन्दी—वस्तुतः विपत्काल में ही अन्य दुर्गों का आश्रय लेना श्रेयस्कर कहा गया है ॥१०॥

आपत्काले इति। आपत्काले तु दुर्गाणाम् आश्रयः उत्तमः श्रेयस्करः मतः॥१०॥

एकः शतं योधयति दुर्गस्थोऽस्त्रधरो यदि।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं समाश्रयेत्॥११॥

अन्वयः—दुर्गस्थः यदि अस्त्रधरः एकोऽपि शतं योधयति, शतं सहस्राणि, तस्मात् दुर्गं समाश्रयेत् ॥११॥

व्याख्या—दुर्गस्थः = दुर्गे स्थितो जनः, यदि = चेत्, अस्त्रधरः = सायुधः, भवेत्, तदा, एकोऽपि = एकमात्रोऽपि, शतम् = शतसंख्यकं, सैन्यम्, योधयति = युद्धं करोति, शतम् = शतसंख्यकम्, सैन्यम्, सहस्राणि = दशशतानि शत्रुबलानि, योधयति, तस्मात् = तेन कारणेन, दुर्गम् = कोटः, समाश्रयेत् = आश्रयणं कुर्यात् ॥११॥

हिन्दी—किले के भीतर हथियारबन्द एक सिपाही भी बाहर की सैकड़ों शत्रुसेना से लोहा ले सकता है। अगर किले में सौ हथियारबन्द सैनिक हों तो बाहर की हजारों सेना से युद्ध कर सकते हैं। अतः राजा को किले का आश्रय लेना चाहिए ॥११॥

एक इति। दुर्गस्थः जनः यदि अस्त्रधरः भवेत् तदा सः एकोऽपि शतं योधयति, शतं शतसङ्ख्यकः जन इत्यर्थः, दशसहस्राणि योधयेत् तस्मात् दुर्गं समाश्रयेत् ॥११॥

शूरस्य सैन्यदुर्गस्य सर्वं दुर्गमिव स्थलम्।
युद्धसम्भारपुष्टानि राजा दुर्गाणि धारयेत्।
धान्यवीरास्त्रपुष्टानि कोशपुष्टानि वै तथा ॥ १२ ॥

अन्वयः—शूरस्य सैन्यदुर्गस्य सर्वं स्थलं दुर्गमिव, किञ्च राजा युद्धसम्भारपुष्टानि धान्यवीरास्त्रपुष्टानि तथा कोशपुष्टानि दुर्गाणि धारयेत् ॥ १२ ॥

व्याख्या—शूरस्य = महाबलशालिनः, सैन्यदुर्गस्य = सेनापूरितकोटस्य, सर्वम् = सकलम्, स्थलम् = स्थानम्, दुर्गमिव = कोट इव, भवति, किञ्च, राजा = भूपतिः, युद्धसम्भारपुष्टानि = युद्धस्य = समरस्य, सम्भारपुष्टानि = उपकरणपूर्णानि, च = पुनः, धान्यवीरास्त्रपुष्टानि– धान्यैः = अन्नै; वीरैः = शूरसैन्यैः, अस्त्रैः = प्रहरणैश्च, पुष्टानि = पूर्णानि, तथा कोशपुष्टानि = धनपूर्णानि, दुर्गाणि = कोटाः, धारयेत् = अवलम्बयेत् ॥ १२ ॥

हिन्दी—वीर सैनिकों के लिए तो सभी जगह सैन्यदुर्गों की भाँति होती हैं, किन्तु राजा यद्ध की सामग्रियों से भरे अन्न, आयुध, वीर सैनिक एवं खजाने से भरे किले का आश्रय ही ग्रहण करे ॥ १२ ॥

शूरस्येति। शूरस्य अतिबलवतः सैन्यदुर्गस्य सर्वं स्थलं स्थानं दुर्गमिव भवति। किञ्च राजा युद्धसम्भारपुष्टानि सङ्ग्रामोपकरणपूर्णानि धान्यैर्वीरैः अस्त्रैश्च पुष्टानि तथा कोशपुष्टानि धनपूर्णानि दुर्गाणि धारयेत् आश्रयेत् ॥ १२ ॥

सहायपुष्टं यद्दुर्गं तत्तु श्रेष्ठतरं मतम्।
सहायपुष्टदुर्गेण विजयो निश्चयात्मकः ॥ १३ ॥

अन्वयः—सहायपुष्टं यद्दुर्गं तत्तु श्रेष्ठतरं मतम्। सहायपुष्टदुर्गेण विजयः निश्चंयात्मकः ॥ १३ ॥

व्याख्या—सहायपुष्टं—सहायैः = सहायकैः, पुष्टं = परिपूर्णम्, यत् = पूर्वोक्तप्रकारकम्, दुर्गम् = कोटः, तत्तु = तत्कोटस्तु, श्रेष्ठतरम् = उत्कृष्टतरम्, मतम् = कथितम्। सहायपुष्टदुर्गेण = सहायकपूर्णकोटेन, विजयः = जयः, निश्चयात्मकः = निश्चितो भवतीति भावः ॥ १३ ॥

हिन्दी—अतः युद्धसहायक-सामग्रियों से भरा जो दुर्ग होता है वही श्रेष्ठतर माना जाता है। जिस राजा का किला उक्त सहायकों से भरा होता है, युद्ध में उसकी जीत निश्चित रूप से होती है ॥ १३ ॥

सहायेति। सहायपुष्टं सहायैः पूर्णं यत् दुर्गं तत्तु श्रेष्ठतरं मतम्। सहायपुष्टदुर्गेण विजयः निश्चयात्मकः निश्चितः ॥ १३ ॥

यद्यत् सहायपुष्टं तु तत्सर्वं सफलं भवेत्।
परस्परानुकूल्यं तु दुर्गाणां विजयप्रदम् ॥ १४ ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्याये दुर्गनिरूपणं नाम षष्ठं प्रकरणम्।

अन्वयः—यत् यत् दुर्गं सहायपुष्टं तत् सर्वं सफलं भवेत्। दुर्गाणां तु परस्परानुकूल्यं विजयप्रदम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—यत् यत् दुर्गम् = यो हि कोटः, सहायपुष्टम् = सहायकैः परिपूर्णो भवति, तत् = कोटः, सर्वम् = सकलम्, सफलम् = सार्थकम्, भवेत् = स्यात्। दुर्गाणाम् = कोटानाम्, परस्परानुकूल्यम् = अन्योऽन्यसाहाय्यम्, विजयप्रदम् = जयलाभाय, भवति ॥ १४ ॥

हिन्दी—जो किला सहायकों से भरा होता है राजा के लिए वह लाभप्रद होता है। किलों का आपस में एक-दूसरे का सहायक होना विजयप्रद होता है ॥ १४ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'दुर्गनिरूपण' नामक षष्ठ प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ॥

यदिति। यत् यत् दुर्गं सहायपुष्टं तत् सर्वं सफलं भवेत्। दुर्गाणां परस्परानुकूल्यम् अन्योऽन्यसाहाय्यं विजयप्रदं विजयावहं भवति ॥ १४ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य षष्ठप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

चतुर्थाध्यायस्य सप्तमं प्रकरणम्

दौर्गं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं सैन्यं सप्तममुच्यते।
सेना शस्त्रास्त्रसंयुक्तमनुष्यादिगणात्मिका ॥ १ ॥

अन्वयः—दौर्गं सङ्क्षेपतः प्रोक्तम्, सप्तमं प्रकरणं सैन्यम् उच्यते। शस्त्रास्त्रसंयुक्तमनुष्यादिगणात्मिका सेना उच्यते ॥ १ ॥

व्याख्या—दौर्गम् = दुर्गविषयकं प्रकरणम्, सङ्क्षेपतः = समासेन, प्रोक्तम् = निगदितम्, सप्तमम् = वर्त्तमानम्, प्रकरणम् = अध्यायः, सैन्यम् = सेनाविषयकम्, उच्यते = कथ्यते। शस्त्रैः = आयुधैः, अस्त्रैः = प्रहरणैश्च, संयुक्ताः = संवलिताः, ये मनुष्यादयः = मानवादयः, पदातिहस्त्यश्वरथाः, तेषां गणः = समूहः, तेषाम् आत्मा = जीवितम्, यस्याः तथोक्ताः, सेना = बलम्, उच्यते ॥ १ ॥

हिन्दी—इस प्रकार दुर्गनिरूपण नामक छठा अध्याय संक्षेप में वर्णन किया। अब इस सप्तम प्रकरण में सेना का निरूपण करता हूँ। हथियारबन्द सिपाहियों के पैदल, गजारोही, अश्वारोही तथा रथारोही को सेना कहा जाता है ॥ १ ॥

दौर्गमिति। दौर्गं दुर्गविषयं प्रकरणं सङ्क्षेपतः प्रोक्तम्। सप्तमं प्रकरणं सैन्यं सेनासङ्क्रान्तम् उच्यते। शस्त्रैः अस्त्रैश्च संयुक्ता ये मनुष्यादयः पादातहस्त्यश्वरथा इत्यर्थः, तेषां गणः आत्मा यस्याः तथोक्ताः सेना उच्यते इति शेषः ॥ १ ॥

स्वगमान्यगमा चेति द्विधा सैव पृथक् त्रिधा।
दैव्यासुरी मानवी च पूर्वपूर्वा बलाधिका ॥ २ ॥

अन्वयः—सा स्वगमा अन्यगमा चेति द्विधा। पृथक् सैव दैवी आसुरी मानवी चेति त्रिधा, पूर्वपूर्वा बलाधिका ॥ २ ॥

व्याख्या—सा = सेना, स्वगमा = स्वयं गन्त्रीं, अन्यगमा = वाहनगा, चेति, द्विधा = द्विप्रकारका, भवति, पृथक् = पुनश्च, सा एव = सैव सेना, दैवी = देवतासम्बन्धिनी, आसुरी = दानवी, मानवी = मानुषी, चेति, त्रिधा = त्रिविधा भवति, तासु पूर्वपूर्वा = आनुपूर्व्येण, बलाधिका = अधिकबलवती भवति ॥ २ ॥

हिन्दी—सेना दो तरह की होती है—पदाति तथा सवारी से चलने वाली। पुनः इन दोनों के दैवी, दानवी और मानवी के रूप में तीन-तीन भेद हैं। ये तीनों पूर्वानुक्रम से अर्थात् मानवी से दानवी, दानवी से दैवी सेना अधिक शक्तिशालिनी होती है ॥ २ ॥

स्वगमेति। सा स्वगमा अन्यगमा चेति द्विधा, पृथक् पुनश्च सा एव दैवी आसुरी मानवी चेति त्रिधा, तासु पूर्वपूर्वा बलाधिका अधिकबलशालिनीत्यर्थः, तथा च दैवी सर्वश्रेष्ठा, ततः आसुरी, ततश्च मानवीति भावः ॥ २ ॥

स्वगमा या स्वयं गन्त्री यानगाऽन्यगमा स्मृता।
पादातं स्वगमं चान्यद्रथाश्वगजगं त्रिधा॥ ३॥

अन्वयः—या स्वयं गन्त्री सा स्वगमा, यानगा अन्यगमा स्मृता। यथा पादातं स्वगमम् अन्यत् रथाश्वगजगं त्रिधा॥ ३॥

व्याख्या—या = सेना, स्वयम् = आत्मनैव, गन्त्री = गमनं कुर्वती, सा = सेना, स्वगमा = स्वयं गन्त्री, यानगा—या सेना यानैः = वाहनैः, गच्छन्तीति सा, अन्यत् = यानगा भवति, स्मृतम् = कथितम्। यथा पादातम् = पदातिवर्गः, स्वगमम् = स्वयं पादाचारेण गच्छति, अन्यत् = अन्यगम्, गजाश्वरथगमिति, इति त्रिधा = त्रिप्रकारकम्॥ ९॥

हिन्दी—जो स्वयं गमन करने वाली सेना होती है, वह स्वगमा और जो दूसरों के द्वारा गमन करने वाली होती है, वह अन्यगमा कहलाती है। अन्यगमा हाथी घोड़ा और रथारोही होने के कारण तीन तरह की होती है॥ ९॥

स्वगमेति। या सेना स्वयं गन्त्री सा स्वगमा, यानगा अन्यगमा स्मृता। यथा पादातं पदातिवर्गः स्वगमं स्वयं पादचारेण गच्छतीत्यर्थः। अन्यत् अन्यगं रथाश्वगजगमिति त्रिधा तथा च केचित् रथैः, केचिदश्वैः केचिच्च गजैर्गच्छन्तीत्यर्थः॥ ९॥

सैन्याद्विना नैव राज्यं न धनं न पराक्रमः।
बलिनो वशगाः सर्वे दुर्बलस्य च शत्रवः।
भवन्त्यल्पजनस्यापि नृपस्य तु न किं पुनः॥ ४॥

अन्वयः—सैन्यात् विना राज्यं न, धनं न, पराक्रमः न। यदा सर्वे बलिनः वशगाः दुर्बलस्य च शत्रवः भवन्ति तदा अल्पजनस्य नृपस्यापि तु किं पुनः न?॥ ४॥

व्याख्या—सैन्यात् = सैनिकात्, विना = परित्यज्य, राज्यम् = राष्ट्रम्, न = नहि, धनम् = वित्तम्, न, पराक्रमश्च = वीरताऽपि च, न = नहि, तिष्ठेत्। यदा सर्वे = सकलाः जनाः, बलिनः = शक्तिशालिनो जनस्य, वशगाः = वशवर्त्तिनी भवन्ति, तथा दुर्बलस्य = शक्तिहीनस्य, शत्रवः = अरयः, तदा अल्पजनस्य = अनधिकसैन्यवतः, नृपस्यापि = राज्ञोऽपि, किमिति प्रश्ने, पुनः = भूयः, न = नहि, शत्रवः = रिपवः, भवन्ति = जायन्ते, अपितु भवन्त्येवेति॥ ४॥

हिन्दी—सेना के बिना राज्य, धन और पराक्रम कुछ स्थिर नहीं रह सकता है। सभी लोग बलवानों के वशवर्त्ती एवं दुर्बलों के शत्रु होते ही हैं तो फिर थोड़ी सेना रखने वाले राजा के लोग क्या शत्रु नहीं होते हैं? अर्थात् होते ही हैं॥ ४॥

सैन्यादिति। सैन्यात् विना राज्यं न, धनं, न, पराक्रमश्च न तिष्ठेदित्यर्थः, यदा सर्वे जनाः बलिनः बलवतः जनस्य वशगाः वशवर्त्तिनः, दुर्बलस्य च शत्रवः भवन्ति, तदा अल्पजनस्य अनधिकसैन्यवतः नृपस्यापि किं पुनः न शत्रवो भवन्ति? अपितु भवन्त्येवेत्यर्थः॥ ४॥

शारीरं हि बलं शौर्य्यबलं सैन्यबलं तथा।
चतुर्थमास्त्रिकबलं पञ्चमं धीबलं स्मृतम्।
षष्ठमायुर्बलं त्वेतैरुपेतो विष्णुरेव सः॥ ५॥

अन्वयः—शारीरं हि बलं शौर्यबलं तथा सैन्यबलं चतुर्थम् आस्त्रिकबलं पञ्चमं धीबलं षष्ठम् आयुर्बलं स्मृतम्। एतैः उपेतः सः विष्णुः एवेति ॥५॥

व्याख्या—शारीरं = दैहिकं, हि, बलं = शक्तिः, शौर्यस्य = पराक्रमस्य, बलम्, तथा सैन्यस्य = सैनिकस्य च, बलं = सामर्थ्यम्, चतुर्थम् = तुरीयम्, आस्त्रिकस्य = अस्त्रधारिणः, बलं = सामर्थ्यम्, पञ्चमम्, धीबलं = बुद्धिबलं, षष्ठम्, आयुर्बलम् = जीवनसामर्थ्यम्, स्मृतम् = कथितम्। यस्तु, एतैः = पूर्वोक्तैः बलैः, उपेतः = समन्वितः, सः = नृपतिस्तु, साक्षात्, विष्णुः = जनार्दनः, एवेति निश्चयः ॥५॥

हिन्दी—देह का, पराक्रम का, सेना का, हथियार का, बुद्धि का एवं आयु का- इस तरह ये छः प्रकार के बल कहे गये हैं। जिसमें ये सभी बल मौजूद हैं, वह साक्षात् विष्णु का स्वरूप है ॥५॥

शारीरमिति। शारीरं बलं, शौर्य्यबलं स्ववीर्य्यबलं सैन्यबलं चतुर्थम् आस्त्रिकबलम् अस्त्रप्रयोगसामर्थ्यमित्यर्थः, पञ्चमं धीबलं बुद्धिबलं षष्ठम् आयुर्बलं जीवनसामर्थ्यं स्मृतम्। यस्तु एतैः बलैः उपेतः अन्वितः, सः विष्णुरेव ॥५॥

न बलेन विनाप्यल्पं रिपुं जेतुं क्षमाः सदा।
देवासुरनरास्त्वन्योपायैर्नित्यं भवन्ति हि ॥६॥

अन्वयः—बलेन विना अल्पमपि रिपुं जेतुं सदा न क्षमाः। हि देवासुरनराः अन्योपायैः तु एव नित्यं भवन्ति ॥६॥

व्याख्या—बलेन = सैन्येन, विना = विहाय, अल्पमपि = तुच्छमपि, रिपुम् = शत्रुम्, जनाः, जेतुम् = विजेतुम्, सदा = सर्वदा, न = नहि, क्षमाः = शक्ताः, भवन्ति। हि = यतः, देवासुरनराः = सुरासुरमानवाः, अन्योपायैः = अपरसाधनैः, तु = इत्यवधारणे, एव = इति निश्चयेन, नित्यम् = शाश्वतम्, भवन्ति = जायन्ते ॥६॥

हिन्दी—शक्ति के बिना लोग सामान्य दुश्मन को भी जीत नहीं सकते। क्योंकि देवता, दानव और मानव भी बल न रहने पर अन्य साधनों से शत्रुओं को जीतने के लिए नित्य प्रयत्नशील रहते हैं ॥६॥

नेति। बलेन विना जनाः अल्पं क्षुद्रमपि रिपुं शत्रुं सदा जेतुं न क्षमाः न समर्थाः, हि यतः देवासुरनराः सुरदैत्यमानवाः अन्योपायैः स्वबलव्यतिरिक्तैः उपायैः सैन्यादिबलैः तु एव तुशब्दश्चावधारणे नित्यं भवन्ति उद्युञ्जते इत्यर्थः ॥६॥

बलमेव रिपोर्नित्यं पराजयकरं परम्।
तस्माद् बलमभेद्यं तु धारयेद्यत्नतो नृपः ॥७॥

अन्वयः—बलमेव रिपोः नित्यं परं पराजयकरम्। तस्मात् नृपः अभेद्यं बलमेव तु यत्नतः धारयेत् ॥७॥

व्याख्या—बलमेव = सैन्यमेव, रिपोः = शत्रोः, नित्यम् = सततम्, परम् = उत्कृष्टम्, पराजयकरम् = पराजितुं समर्थः, तस्मात् = तेन कारणेन, नृपः = राजा, अभेद्यम् = रिपुदुर्धर्षम्, बलम् = सैन्यम्, यत्नतः = प्रयासपूर्वकेण, धारयेत् = धारणं कुर्यात् ॥७॥

हिन्दी—शत्रु को पराजित करने के लिए मनुष्य का एकमात्र बल ही निरन्तर समर्थ

होता हैं। अतः प्रयासपूर्वक शत्रुओं के लिए दुर्भेद्य बल को राजा निरन्तर धारण करे ॥७॥

बलमिति। बलमेव रिपोः शत्रोः नित्यं परं श्रेष्ठं पराजयकरम्। तस्मात् नृपः अभेद्यं शत्रुदुर्धर्षं बलमेव यत्नतः धारयेत् ॥७॥

सेनाबलं तु द्विविधं स्वीयं मैत्रं च तद् द्विधा।
मौलसाद्यस्कभेदाभ्यां सारासारं पुनर्द्विधा ॥८॥

अन्वयः—सेनाबलं स्वीयं मैत्रञ्च द्विविधम्। तच्च मौलसाद्यस्कभेदाभ्यां द्विधा, पुनः सारम् असारञ्च द्विधा ॥८॥

व्याख्या—सेनाबलम् = सैन्यशक्तिः, स्वीयम् = स्वकीयम्, तथा मैत्रम् = मित्रबलम् द्विविधम् = प्रकारद्वयम्, तच्च, मौलसाद्यस्कभेदाभ्याम् = परम्पराप्राप्तसाम्प्रतिकाभ्यां भेदाभ्याम्, द्विधा = द्विप्रकारका, तदपि = तावुभावपि, सारम् = तत्त्वम्, असारम् = मूलतत्त्वविहीनञ्चेति, द्विधा = द्विविधेति भावः ॥८॥

हिन्दी—सैन्यशक्ति भी दो तरह की होती है—अपना सैन्यबल और मित्रों का सैन्यबल। ये भी परम्परागत एवं आधुनिक के भेद से दो तरह के होते हैं। पुनः इनका सार एवं असार के रूप में दो भेद होते हैं ॥८॥

सेनाबलमिति। सेनाबलं स्वीयं मैत्रञ्चेति द्विविधम्। तच्च मौलसाद्यस्कभेदाभ्यां क्रमागताधुनिकभेदाभ्यां कियन्ति क्रमागतानि कियन्ति वा आधुनिकानीति विशेषाभ्यां द्विधा, तदपि पुनः सारम् असारञ्चेति द्विधा ॥८॥

अशिक्षितं शिक्षितञ्च गुल्मीभूतमगुल्मकम्।
दत्तास्त्रादि स्वशस्त्रास्त्रं स्ववाहि दत्तवाहनम् ॥९॥

अन्वयः—तत् अशिक्षितं शिक्षितञ्च गुल्मीभूतम् अगुल्मकं दत्तास्त्रादि स्वशस्त्रास्त्रं स्ववाहि दत्तवाहनम् ॥९॥

व्याख्या—तत् = पूर्वोक्तं, सैन्यबलम्, अशिक्षितम् = प्रशिक्षणविहीनम्, च = पुनः, शिक्षितम् = प्रशिक्षणप्राप्तम्, गुल्मीभूतम् = हस्त्यश्वादिसेनाविभागभेदयुक्ताम्, अगुल्मकम् = सेनाविभागभेदरहितम्, दत्तास्त्रादि—दत्तानि = प्रदत्तानि, अस्त्राणि = आयुधानि, यस्मै तत्, स्वशस्त्रास्त्रम् = निजशस्त्रास्त्रसंयुतम्, स्ववाहि—स्वस्य = आत्मनः, वाहि = वाहनयुतम्, दत्तवाहनम्—दत्तम् = समर्पितम्, वाहनम् = यानम्, यस्मै तथाभूतमिति, अनेन प्रकारेण प्रत्येकं द्विविधम् ॥९॥

हिन्दी—इनमें प्रत्येक प्रशिक्षणरहित एवं प्रशिक्षणप्राप्त तथा अश्वारोही, गजारोही, रथारोही एवं पदाति के रूप में विभक्त सेना और अगुल्मक अर्थात् सर्वसम्मिलित सेना पुनः अपनी सवारी वाली सेना तथा दूसरों के द्वारा दी गई सवारी वाली सेना के भेदों से दो प्रकार की होती है ॥९॥

अशिक्षितमिति। किञ्च तत् सेनाबलम् अशिक्षितं, गुल्मीभूतम्, अगुल्मकं, दत्तास्त्रादि दत्तानि अस्त्रादीनि यस्मै तत्, स्वशस्त्रास्त्रं निजशस्त्रास्त्रयुक्तं, स्ववाहि निजवाहनान्वितं दत्तवाहनं दत्तं वाहनम् अश्वादि यस्मै तथाभूतमिति प्रत्येकं द्वैधीभावेन बहुविधमिति भावः ॥९॥

सौजन्यात् साधकं मैत्रं स्वीयं भृत्या प्रपालितम्।
मौलं बह्वब्दानुबन्धि साद्यस्कं यत् तदन्यथा॥ १०॥

अन्वयः—सौजन्यात् साधकं मैत्रं भृत्या प्रपालितं स्वीयं बह्वब्दानुबन्धि मौलं तदन्यथा यत् साद्यस्कम्॥ १०॥

व्याख्या—सौजन्यात् = सुजनतावशात्, साधकम् = परकार्यसहायकम्, सैन्यम्, मैत्रम् = मित्रसंज्ञकम्, भृत्या = वेतनेन, प्रपालितम् = पोषितम्, सैन्यम्, स्वीयम् = आत्मीयम्, बह्वब्दानुबन्धि—बहून् = कतिपयान्, अब्दान् = वर्षाणि, अनुबध्नाति = निबध्नाति, इति तथोक्तं सैन्यम्, मौलम् = मूलायत्वम्, तदन्यथा—तत् = तेषाम्, अन्यथा = भिन्नम्, सैन्यम्, साद्यस्कम् = सद्योभवत्वम्, नूतनमिति भावः॥ १०॥

हिन्दी—मित्रतावश युद्ध में साथ देने वाली सेना को मित्रसेना कहते हैं। वेतन पर पलने वाली सेना स्वीय अर्थात् निजी होती है। इसी तरह बहुत वर्षों से नियुक्त सेना को मौल तथा तत्काल नियुक्त सेना को साद्यस्क कहते हैं॥ १०॥

सौजन्यादिति। सौजन्यात् साधकं कार्य्यनिर्वाहकं सैन्यं मैत्रं, भृत्या वेतनेन प्रपालितं परिपालितं सैन्यं स्वीयम्। बहून् अब्दान् वत्सरान् अनुबध्नाति इति तथोक्तं सैन्यं मौलं मूलायतत्वादिति भावः, तदन्यथा तद्भिन्नम् अल्पदिननियुक्तमित्यर्थः, सैन्यं साद्यस्कं सद्योभवत्वादिति भावः॥ १०॥

सुयुद्धकामुकं सारमसारं विपरीतकम्।
शिक्षितं व्यूहकुशलं विपरीतमशिक्षितम्॥ ११॥

अन्वयः—सुयुद्धकामुकं सारं विपरीतकम् असारं व्यूहकुशलं शिक्षितं विपरीतम् अशिक्षितम्॥ ११॥

व्याख्या—सुयुद्धकामुकम् = सुष्ठुतया योद्धुं, समुत्सुकं सैन्यम्, सारम्, विपरीतकम् = एतद्भिन्नं सैन्यम्, असारम् = साररहितम्, व्यूहकुशलम् = गुल्मरचनायां प्रवीणम्, शिक्षितम् = प्रशिक्षणप्राप्तसैन्यम्, विपरीतम् = तद्भिन्नम्, अशिक्षितं सैन्यं भवति॥ ११॥

हिन्दी—अच्छी तरह युद्ध के लिए तैयार सेना को सार तथा इससे भिन्न को असार और व्यूह रचना में प्रवीण सेना को शिक्षित, इससे भिन्न को अशिक्षित कहते हैं॥ ११॥

सुयुद्धेति। सुयुद्धकामुकं सुयुद्धे समुत्सुकं सैन्यं सारं विपरीतकं तद्भिन्नम् असारम् व्यूहेषु कुशलं निपुणं शिक्षितं, विपरीतम् अकुशलमित्यर्थः, अशिक्षितम्॥ ११॥

गुल्मीभूतं साधिकारि स्वस्वामिकमगुल्मकम्।
दत्तास्त्रादि स्वामिना यत् स्वशस्त्रास्त्रमतोऽन्यथा॥ १२॥

अन्वयः—साधिकारि गुल्भीभूतं स्वस्वाामिकम् अगुल्मकं स्वामिना यत् तत् दत्तास्त्रादि अतोऽन्यथा स्वशस्त्रास्त्रम्॥ १२॥

व्याख्या—साधिकारि—अधिकारिणा = सेनापतिना, सहितम् = युक्तम्, सैन्यम्, गुल्मीभूतम् = सेनाविभागभेदयुक्तं भवति, स्वस्वामिकम् = निजाधिकारस्थमर्थात् स्वामिकम्, स्वाधीनं सैन्यम् अगुल्मकम् = सेनाविभागादिभेदरहितं भवति, तथा, यत् = यस्मै, स्वामिना = सेनानायकेन,

अस्त्रादि दीयते, तत् = सैन्यम्, दत्तास्त्रादि = प्रदत्तायुधादि, अतः = एतत्, अन्यथा = भिन्नः, सैन्यम्, स्वशस्त्रास्त्रम् = निजायुधमिति कथ्यते ॥ १२ ॥

हिन्दी—सेनापति के साथ रहने वाली सेना को 'गुल्मीभूत' तथा सेनापति के बिना ही स्वतंत्र रूप से लड़ने वाली सेना को 'अगुल्मीभूत' कहते हैं। इसी तरह स्वामी ने जिसे हथियार दिया है, वह सेना 'दत्तास्त्रादि' तथा निजी हथियार से लड़ने वाली सेना को 'स्वशस्त्रास्त्र' कहते हैं ॥ १२ ॥

गुल्मीभूतमिति। साधिकारि सस्वामिकं सेनापतिसहितमित्यर्थः, सैन्यं गुल्मीभूतं, स्वस्वामिकं स्वाधीनमित्यर्थः, सैन्यम् अगुल्मकम्। स्वामिना यदित्यव्ययं यस्मै इत्यर्थः, अस्त्रादि दीयते इति शेषः, तत् दत्तास्त्रादि, अतः अन्यथा एतद्व्यतिरिक्तं सैन्यं स्वशस्त्रास्त्रम् ॥ १२ ॥

कृतगुल्मं स्वयंगुल्मं तद्वच्च दत्तवाहनम्।
आरण्यकं किरातादि यत् स्वाधीनं स्वतेजसा ॥ १३ ॥

अन्वयः—तद्वत् कृतगुल्मं स्वयंगुल्मं दत्तवाहनं यत् स्वतेजसा स्वाधीनं किरातादि तत् आरण्यकम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—तद्वत् = तथैव, कृतगुल्मम् = राज्ञा सेनाध्यक्षेषु सैन्येषु निवेशितम्, स्वयंगुल्मस्वयम् = निजेच्छया गुल्माध्यक्षो भूतम्, दत्तवाहनम् = नरपतिना प्रदत्तयानम्, यत् स्वतेजसा = निजपराक्रमेण, स्वाधीनम् = स्वतन्त्रम्, किरातादि = वनेचरादि, तत् = सैन्यम्, आरण्यकम् = आटवीम्, कथितम् ॥ १३ ॥

हिन्दी—इसी तरह कृतगुल्म अर्थात् राजा ने सेनापति से युक्त सेना में जिसकी गणना की हो तथा स्वयंगुल्म अर्थात् अपनी इच्छा से गुल्मनायक बना हो, सेना के नायक दत्तवाहन अर्थात् जिसे राजा के द्वारा वाहन प्रदत्त हो एवं अपने तेज से स्वाधीन बनी रहने वाली किरातों की सेना को आरण्यक कहते हैं ॥ १३ ॥

कृतेति। तद्वत् तथा कृतगुल्मं स्वामिना सेनापत्यधिष्ठितेषु सैन्येषु निवेशितं, स्वयं गुल्मं स्वेच्छया गुल्माधिपतीभूतमित्यर्थः, दत्तवाहनं पूर्वमुक्तम्। यत् स्वतेजसा स्वाधीनं किरातादि, तत् आरण्यकं सैन्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥

उत्सृष्टं रिपुणा वापि भृत्यवर्गे निवेशितम्।
भेदाधीनं कृतं शत्रोः सैन्यं शत्रुबलं स्मृतम्।
उभयं दुर्बलं प्रोक्तं केवलं साधकं न तत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—रिपुणा उत्सृष्टं भृत्यवर्गे निवेशितं वाऽपि शत्रोः भेदाधीनं कृतं सैन्यं शत्रुबलं स्मृतम्। उभयं दुर्बलं प्रोक्तं तत् केवलं साधकं नेति ॥ १४ ॥

व्याख्या—रिपुणा = शत्रुणा, उत्सृष्टं = परित्यक्तम्, भृत्यवर्गे = निजसैन्यदले, निवेशितम् = नियोजितम्, वाऽपि = किंवा, शत्रोः = रिपोः, भेदाधीनम्—भेदेन = विभेदकरणेन, अधीनम् = स्वायत्तम्, सैन्यम्, शत्रुबलम् = रिपुसैनिकम्, स्मृतम् = प्रोक्तम्। उभयम् = एतद्द्विप्रकारकं सैन्यम्, दुर्बलम् = अविश्वसनीयम्, प्रोक्तम् = कथितम्, तस्मात्, केवलम् = नाममात्रमेव सैन्यम्, तत् = शत्रुबलम्, साधकम् = समरकार्यनिर्वाहकम्, न = नास्त्येवेति ॥ १४ ॥

हिन्दी—जिसमें शत्रु के द्वारा निकाले गये सैनिकों को वेतन देकर अपनी सेना में रख

दिये गये हों अथवा जो शत्रु की सेना भेदनीति से अपने अधीन कर ली गई हो, उसे शत्रुबल कहते हैं। ये दोनों तरह की सेना दुर्बल अर्थात् अविश्वसनीय होती हैं। इन पर भरोसा रखकर युद्ध संचालित नहीं किया जा सकता है ॥ १४ ॥

उत्सृष्टमिति। रिपुणा शत्रुणा उत्सृष्टं त्यक्तं सत् भृत्यवर्गे सैन्यदले निवेशितं वापि अथवा शत्रोः भेदाधीनं भेदेन विच्छेदेन अधीनम् आयत्तं सैन्यं शत्रुबलं स्मृतम्। एतदुभयं सैन्यं दुर्बलं प्रोक्तं कथितम् अविश्वसनीयत्वादिति भावः, तस्मात् केवलं स्वसैन्यासमभिव्याहृतं तत् न साधकं न कार्य्यनिर्वाहकमित्यर्थः ॥ १४ ॥

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यायामैर्नतिभिस्तथा ।
वर्द्धयेद् बाहुयुद्धार्थं भोज्यैः शारीरकं बलम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—समैः नियुद्धकुशलैः व्यायामैः नतिभिः बाहुयुद्धार्थं भोज्यैः शारीरकं बलं वर्द्धयेत् ॥१५ ॥

व्याख्या—समैः = समानबलैः, नियुद्धकुशलैः = युद्धप्रवीणैः, वीरैः, सह, बाहुयुद्धार्थम् = मलयुद्धाय, व्यायामैः = बलवर्द्धकश्रमैः, नतिभिः = गुरुजनप्रणतिभिः, तथा = तेनैव प्रकारेण, भोज्यैः = पौष्टिकाऽऽहारैः, शारीरकम् = दैहिकम्, बलम् = शक्तिम्, वर्द्धयेत् = संवर्द्धयेदिति ॥ १५ ॥

हिन्दी—मल्लयुद्ध में कुशल समान शक्ति वाले के साथ कुश्ती लड़ा कर तथा व्यायाम कराकर एवं गुरुजनों को प्रणाम कराकर, पौष्टिक आहार देकर बाहुयुद्ध के लिए सैनिकों के दैहिक बल को बढ़ाना चाहिए ॥ १५ ॥

समैरिति। समैः तुल्यबलैः नियुद्धकुशलैः सङ्ग्रामदक्षैः वीरैः सह बाहुयुद्धार्थं व्यायामैः अङ्गचालनाभिः, नतिभिः गुरुजनप्रणतिभिः तथा भोज्यैः बलकरैरन्नादिभिः शारीरकं बलं वर्द्धयेत् गुरुजनप्रणत्या तेषाम् आशीर्वादाद् बलवृद्धिरिति भावः ॥ १५ ॥

मृगयाभिस्तु व्याघ्राणां शस्त्रास्त्राभ्यासतः सदा।
वर्द्धयेच्छूरसंयोगात् सम्यक् शौर्य्यबलं नृपः ॥ १६ ॥

अन्वयः—नृपः व्याघ्राणां मृगयाभिः सदा शस्त्रास्त्राभ्यासतः तथा शूरसंयोगात् शौर्यबलं सम्यक् वर्द्धयेत् ॥ १६ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, व्याघ्राणाम् = शार्दूलादीनां हिंसकानां, मृगयाभिः = आखेटकादिभिः, सदा = सर्वदा, शस्त्रास्त्राणाम् = प्रहरणादीनाम्, अभ्यासतः = सततव्यवहारेण, तथा = तेनैव प्रकारेण, शूरसंयोगात्—शूराणाम् = वीराणाम्, संयोगात् = सम्पर्कात्, शौर्यबलम् = वीरत्वबलम्, सम्यक् = सुष्ठुतया, वर्द्धयेत् = संवर्द्धनं कुर्यात् ॥ १६ ॥

हिन्दी—और हमेशा व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं का शिकार, हथियार चलाने का अभ्यास एवं शूरवीरों की संगति से सैनिकों के शौर्यबल को राजा बढाये ॥ १६ ॥

मृगयाभिरिति। नृपः व्याघ्राणाम् उपलक्षणमेतत् हिंस्रजन्तूनामित्यर्थः, मृगयाभिः शरव्यकरणैः, सदा शस्त्रास्त्राणाम् अभ्यासतः पुनः पुनः चालनेन तथा शूराणां वीराणां संयोगात् संसर्गात् शौर्य्यबलं सम्यक् वर्द्धयेत् ॥ १६ ॥

सेनाबलं सुभृत्या तु तपोऽभ्यासैस्तथास्त्रिकम्।
वर्द्धयेच्छास्त्रचतुरसंयोगाद्धीबलं सदा ॥ १७ ॥

अन्वयः—सुभृत्या सेनाबलं तथा तपोऽभ्यासैः तु आस्त्रिकं सदा शस्त्रचतुरसंयोगात् धीबलं वर्द्धयेत् ॥ १७ ॥

व्याख्या—सुभृत्या = सुष्ठुवेतनदानेन, सेनाबलम् = सैन्यशक्तिम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, तपोभिः = तपस्याभिः, अभ्यासैश्च = अनुशीलनैश्च, आस्त्रिकम् = आयुधप्रयोगशक्तिम्, तथा, सदा = सर्वदा, शास्त्राणाम् = धर्मग्रन्थानाम्, चतुराणाम् = कुशलानाम्, संयोगात् = सम्पर्कात्, धीबलम् = बुद्धिबलम्, वर्द्धयेत् = वर्द्धनं कुर्यात् ॥ १७ ॥

हिन्दी—अच्छा वेतन देकर सैन्यबल तथा तपस्या और अभ्यास से दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर आयुधबल एवं शास्त्र तथा चतुर लोगों की संगति से सदा बुद्धिबल बढ़ाना चाहिए ॥ १७ ॥

सेनाबलमिति। सुभृत्या सुवेतनेन सेनाबलं, तपोभिः अभ्यासैश्च आस्त्रिकम् अस्त्रप्रयोगबलं तथा सदा शास्त्राणां चतुराणाञ्च संयोगात् संसर्गात् धीबलं बुद्धिबलं वर्द्धयेत् । । १७ ॥

सत्क्रियाभिश्चिरस्थायि नित्यं राज्यं भवेद्यथा।
स्वगोत्रे तु तथा कुर्य्यात् तदायुर्बलमुच्यते।
यावद्गोत्रे राज्यमस्ति तावदेव स जीवति॥ १८॥

अन्वयः—यथा नित्यं सत्क्रियाभिः राज्यं चिरस्थायि भवेत् तथा स्वगोत्रे कुर्यात् तदेव आयुर्बलम् उच्यते। गोत्रे यावत् राज्यम् अस्ति सः तावदेव जीवति ॥ १८ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, नित्यम् = सततम्, सत्क्रियाभिः = उत्कृष्टकर्मभिः, राज्यम् = राष्ट्रम्, चिरस्थायि = अशीघ्रनाशि, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव रूपेण, स्वगोत्रे = निजान्वये, कुर्यात् = विदध्यात्, तत् = तदेव, आयुर्बलम् = जीवनशक्तिः, उच्यते = कथ्यते। यस्मात्, गोत्रे = स्वकीयान्वये, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, राज्यम् = राष्ट्रम्, अस्ति = तिष्ठति, सः = असौ, तावदेव = तावत्कालपर्यन्तमेव, जीवति = स्थिरो भवति ॥ १८ ॥

हिन्दी—राजा को सतत अपने सत्कर्म से राज्य को अपनी सन्तान में चिरस्थायी करने का प्रयास करना चाहिए, इसी को 'आयुर्बल' कहते हैं। क्योंकि उसके वंश में जब तक राज्य रहता है तभी तक वह जीवित है ॥ १८ ॥

सत्क्रियाभिरिति। यथा नित्यं सततं सत्क्रियाभिः राज्यं चिरस्थायि भवेत् तथा स्वगोत्रं निजसन्ताने कुर्य्यात् तदेव आयुर्बलम् उच्यते, यस्मात् गोत्रे स्वसन्ताने यावत् राज्यम् अस्ति तिष्ठति, सः तावदेव तावत्कालपर्य्यन्तमित्यर्थः, जीवति ॥ १८ ॥

चतुर्गुणं हि पादातमश्वतो धारयेत् सदा।
पञ्चमांशांस्तु वृषभानष्टांशांश्च क्रमेलकान्॥ १९॥
चतुर्थांशान् गजानुष्ट्राद् गजार्द्धांश्च रथान् सदा।
रथात्तु द्विगुणं राजा बृहन्नालीकमेव च॥ २०॥

अन्वयः—चतुर्थांशानिति राजा अश्वतः चतुर्गुणं पादातं पञ्चमांशान् वृषभान् तथा अष्टांशान् क्रमेलकान् उष्ट्रात् चतुर्थांशान् गजान् गजार्द्धान् रथान् तथा रथात् द्विगुणं बृहन्नालीकं सदा धारयेत् ॥ १९-२०॥

व्याख्या—चतुर्थांशान् = तुरीयभागान्, राजा = नरपतिः, अश्वतः = अश्वारोहीसैन्यतः, चतुर्गुणम्, पादातम् = पदातिसैन्यम्, पञ्चमांशान् = पञ्चमभागान्, वृषभान् = बलदान्, तथा = तेनैव रूपेण, अष्टांशान् = अष्टमभागान्, क्रमेलकान् = दीर्घजङ्घान्, उष्ट्रात् = दासेरकात्, चतुर्थांशान् = तुरीयभागान्, गजान् = हस्तिनः, गजार्द्धान्—गजस्य = द्विरदस्य, अर्द्धान् = अर्द्धभागान्, रथान् = स्यन्दनान्, तथा रथात् = स्यन्दनात्, द्विगुणम् = द्विगुणितम्, बृहन्नालीकम् = शतघ्नीम्, सदा = सर्वदा, धारयेत् = धारणं कुर्यात् ॥ १९-२० ॥

हिन्दी—घुड़सवारों से चौगुनी पैदल सेना, घुड़सवारों का पाँचवाँ भाग बैल, आठवाँ हिस्सा ऊँट और ऊँटों का चौथा भाग हाथी, हाथी का आधा रथ और रथ का दूना तोप— इन्हें राजा सदैव अपनी सेना में रखे ॥ १९-२० ॥

चतुर्गुणमिति। चतुर्थांशानिति राजा अश्वतः अश्वसैन्यात् चतुर्गुणं पादातं पदातिसैन्यं, पञ्चमांशान् वृषभान्, तथा अष्टांशान् क्रमेलकान् उष्ट्रान् उष्ट्रात् उष्ट्रसैन्यात् चतुर्थांशान् गजान् गजार्द्धान् गजसैन्यात् अर्द्धसंख्यकान् रथान् तथा रथात् द्विगुणं बृहन्नालीकं बृहन्नालीकास्त्रसैन्यं सदा धारयेत् रक्षेत् ॥ १९-२० ॥

पदातिबहुलं सैन्यं मध्याश्वं तु गजाल्पकम्।
तथा वृषोष्ट्रसामान्यं रक्षेन्नागाधिकं न हि ॥ २१ ॥

अन्वयः—पदातिबहुलं मध्याश्वं गजाल्पकं तथा वृषोष्ट्रसामान्यं सैन्यं रक्षेत्, नागाधिकं न हि ॥ २१ ॥

व्याख्या—पदातिबहुलम् = बहुसंख्यकपदातिसैन्यम्, मध्याश्वम् = मध्यमस्तरीयं अश्वारोहीसैन्यम्, गजाल्पकम् = अल्पसंख्यकं गजारोहीसैन्यम्, तथा = तेन प्रकारेण, वृषोष्ट्रसामान्यम् = सामान्यसंख्यकं वृषारोही उष्ट्रारोही च, सैन्यम् = सैनिकम्, राजा, रक्षेत् = धारयेत्, नागाधिकम् = बहुसंख्यकं वाजञ्च, न = न हि, धारयेत् ॥ २१ ॥

हिन्दी—राजा की सेना में पैदल सिपाहियों की संख्या अधिक होनी चाहिए, अश्वारोहियों की मध्यम दर्जे की होनी चाहिए और गजारोहियों की संख्या सबसे कम होनी चाहिए, न कि इनकी संख्या अधिक हों ॥ २१ ॥

पदातीति। पदातिबहुलं बहुसंख्यकपदातिवर्गं मध्याश्वं मध्यविधसंख्यकतुरङ्गं गजाल्पकम् अल्यसंख्यकगजं तथा वृषोष्ट्रसामान्यं साधारणसंख्यकवृषोष्ट्रं सैन्यं रक्षेत् नागाधिकम् अधिकगजं न हि नैव रक्षेदित्यर्थः ॥ २९ ॥

सवयः सारवेशोच्चशस्त्रास्त्रं तु पृथक् शतम्।
लघुनालिकयुक्तानां पदातीनां शतत्रयम् ॥ २२ ॥
अशीत्यश्वान् रथं चैकं बृहन्नालद्वयं तथा।
उष्ट्रान् दश गजौ द्वौ तु शकटौ षोडशर्षभान् ॥ २३ ॥
तथा लेखकषट्कं हि मन्त्रित्रितयमेव च।
धारयेन्नृपतिः सम्यग्वत्सरे लक्षकर्षभाक् ॥ २४ ॥

अन्वयः—वत्सरे लक्षकर्षभाक् नृपतिः सवयः सारवेशोच्चशस्त्रास्त्रं च पृथक् शतं लघुनालिकयुक्तानां पदातीनां शतत्रयम् अशीत्यश्वान् एकं रथं बृहन्नालद्वयं दश उष्ट्रान्

द्वौ गजौ द्वौ शकटौ षोडश ऋषभान् लेखकषट्कं तथा मन्त्रित्रितयं सम्यक् धारयेत् ॥२२-२४॥

व्याख्या—वत्सरे = प्रतिवर्षे, लक्षकर्षभाक् = लक्षस्वर्णमुद्रागमवान्, नृपतिः = राजा, सवयः = तुल्यवयस्कम्, सारवेशम् = पराक्रमीप्रसाधनम्, उच्चानि = उत्कृष्टाणि, शस्त्राणि = आयुधानि, अस्त्राणि = प्रहरणानि, च यस्य तादृशम्, पृथक् = भिन्नम्, शतम् = शतसंख्यकम्, लघुनालिकयुक्तानाम् = नालास्त्रसैनिकानाम्, पदातीनाम् = पदगानाम्, शतत्रयम् = त्रिशतसंख्यकम्, अशीत्यश्वान् = अशीतिसंख्यकान् घोटकान्, एकम् = एकमात्रमेव, रथम् = स्यन्दनम्, बृहन्नालद्वयम् = द्वावेव शतघ्नीचालकौ गोलक्षेपकौ वेति, दश उष्ट्रान् = दशसंख्यकान् क्रमेलकान्, द्वौ गजौ = द्वौ द्विरदौ, द्वौ शकटौ = प्रवहणेऽपि द्वे, षोडशान् = षोडशसंख्यकान्, ऋषभान् = अनडुहः, लेखकषट्कम् = षट्संख्यकान् लिपिकारान्, तथा = अपि च, मन्त्रित्रितयम् = त्रीन् मन्त्रिणः, सम्यक् = सुष्ठुतया, धारयेत् = स्वायत्तीकुर्यात् ॥२२-२४॥

हिन्दी—जिस राजे की वार्षिक आय एक लाख मुद्रा हो वह एक ही उम्र के तरुणों को, जिनकी पोशाकें पराक्रमी हो, कद ऊँची हों ऐसे हथियारबन्द सौ जवानों की एक अलग टुकड़ी तैयार कर ले; तीन सौ बन्दूकयों की एक टुकड़ी अलग तैयार कर ले; अस्सी घोड़े, एक रथ, दो तोपची या गोलंदाज, दस ऊँट, दो हाथी, दो बैलगाड़ी, सोलह बैल, छः लेखक और तीन मंत्रियों के समूह को एक सेना के अन्दर ठीक ढंग से रखे ॥२२-२४॥

सवय इत्यादि। वत्सरे लक्षकर्षभाक् लक्षमुद्रागमवान् नृपतिः राजा सवयः समानवयस्कं सारवेशं कठिनपरिच्छदम् उच्चानि उन्नतानि शस्त्राणि अस्त्राणि यस्य तादृशं पृथक् विभिन्नं शतं शतसङ्ख्यापादातं लघुनालिकयुक्तानां क्षुद्रनालिकास्त्रधारिणां पदातीनां शतत्रयम्, अशीतिसंख्यकान् अश्वान् एकं रथं बृहन्नालद्वयं बृहन्नालिकास्त्रधारिणौ द्वौ, दश उष्ट्रान् द्वौ गजौ द्वौ शकटौ षोडश वृषभान् लेखकषट्कं षट् लेखकान् तथा मन्त्रित्रितयं त्रीन् मन्त्रिणः सम्यक् यथा तथा धारयेत् रक्षेत् ॥२२-२४॥

सम्भारदानभोगार्थं धनं सार्द्धसहस्रकम्।
लेखकार्थे शतं मासि मन्त्र्यर्थे तु शतत्रयम् ॥२५॥
त्रिशतं दारपुत्रार्थे विद्वदर्थे शतद्वयम्।
साद्यश्वपदगार्थं हि राजा चतुःसहस्रकम् ॥२६॥
गजोष्ट्रवृषनालार्थं व्ययीकुर्य्याच्चतुःशतम्।
शेषं कोशे धनं स्थाप्यं राज्ञा सार्द्धसहस्रकम् ॥२७॥

अन्वयः—राजा मासि सम्भारदानभोगार्थं सार्द्धसहस्रकं लेखकार्थे शतं मन्त्र्यर्थे शतत्रयं दारपुत्रार्थे त्रिशतं विद्वदर्थे शतद्वयं साद्यश्वपदगार्थं चतुःसहस्रकं गजोष्ट्रवृषनालार्थं चतुःशतं व्ययीकुर्यात्। राज्ञा शेषं सार्द्धसहस्रकं धनं कोशे स्थाप्यम् ॥२५-२७॥

व्याख्या—राजा = नृपः, मासि = प्रतिमासम्, सम्भारार्थम् = समाहरणार्थम्, दानार्थम् = उत्सर्जनार्थम्, च = पुनः, भोगार्थम् = निजोपभोगाय, सार्द्धसहस्रकम् = पञ्चदशशतम्, लेखकार्थे = लिपिकाराय, शतम् = मासैकशतम्, मन्त्र्यर्थे = मन्त्रिणां निमित्ते, शतत्रयम् = त्रिशतम्,

दारपुत्रार्थे = पत्नीपुत्रनिमित्तम्, त्रिशतम् = शतत्रयम्, विद्वदर्थे—विदुषाम् = विपश्चिताम्, अर्थे = निमित्ताय, शतद्वयम् = द्विशतम्, साद्यश्वपदगार्थम्—सादिनाम् = अश्वारोहिणाम्, अश्वानाम् = घोटकानाम्, पदगानाम् = पदातीनाम्, निमित्तम्, चतुःसहस्रकम् = चत्वारिंशच्छतम्, गजोष्ट्रवृषनालार्थम्—गजानाम् = नागानाम्, उष्ट्राणाम् = दासेरकाणाम्, वृषाणाम् = वृषभाणाम्, नालानाम् = शतघ्नीचालकानाम्, निमित्तम्, चतुःशतम् = तुरीयशतम्, व्ययी कुर्यात् = व्ययं कर्त्तव्यम्, राज्ञा = नृपेण, शेषम् = अवशिष्टम्, सार्द्धसहस्रकम् = पञ्चदशशतम्, कोशे = भाण्डागारे, स्थाप्यम् = निःक्षेप्यम् ॥ २५-२७ ॥

हिन्दी—समाहरण, दान तथा आत्मभोग के लिए प्रतिमास डेढ़ हजार, प्रति लेखक सौ रुपये, मन्त्रियों के लिए तीन सौ, स्त्री-पुत्र के लिए तीन सौ, विद्वानों के सम्मानार्थ दो सौ, अश्वारोही एवं पैदल सिपाहियों के लिए चार हजार, ऊँट, बैल तथा बन्दूकची के लिए चार सौ रुपये प्रतिमास खर्च करे। शेष धन राजा राजकोष में सुरक्षित रख दे ॥ २५-२७ ॥

लक्षमुद्राणां व्ययनियममाह—**सम्भारेति**। राजा मासि प्रतिमासं सम्भारार्थं निजभोगार्थञ्च सार्द्धसहस्रकं पञ्चदशशतानि इत्यर्थः १५००, लेखकार्थे लेखकानां निमित्तं शतं १००, मन्त्रार्थे मन्त्रिणां निमित्तं शतत्रयं ३००, दारपुत्रार्थे स्त्रीपुत्रनिमित्तं त्रिशतं ३००, विद्वदर्थे विदुषां सम्मानार्थे शतद्वयं २००, साद्यश्वपदगार्थं सादिनाम् अश्वारोहिणाम् अश्वानां पदगानां पदातीनाञ्च निमित्तं चतुःसहस्रकं ४०००, गजानाम् उष्ट्राणां वृषाणां नालानां नालिकाख्यास्त्रधारिणां निमित्तं चतुःशतं ४०० व्ययीकुर्य्यात्। राज्ञा शेषम् अवशिष्टं सार्द्धसहस्रकं १५०० कोशे भाण्डारे स्थाप्यम् ॥ २५-२७ ॥

प्रतिवर्षं स्ववेशार्थं सैनिकेभ्यो धनं हरेत् ॥ २८ ॥

अन्वयः—प्रतिवर्षं स्ववेशार्थं सैनिकेभ्यः धनं हरेत् ॥ २८ ॥

व्याख्या—प्रतिवर्षम् = वर्षे वर्षे, स्ववेशार्थम् = निजनिजगणवेशार्थम्, सैनिकेभ्यः = रक्षापुरुषेभ्यः, धनम् = अर्थम्, हरेत् = दद्यादिति ॥ २८ ॥

हिन्दी—प्रतिवर्ष सेना के यूनिफार्म (गणवेश) के लिए सैनिकों को धन देना चाहिए ॥ २८ ॥

प्रतिवर्षमिति। प्रतिवर्षं वर्षे वर्षे स्ववेशार्थं निजनिजपरिच्छदार्थं सैनिकेभ्यः धनं हरेत् दद्यादित्यर्थः ॥ २८ ॥

लोहसारमयश्चक्रसुगमो मञ्चकासनः।
स्वान्दोलायितरूढस्तु मध्यमासनसारथिः ॥ २९ ॥
शस्त्रास्त्रसन्धार्य्युदर इष्टच्छायो मनोरमः।
एवंविधो रथो राज्ञा रक्ष्यो नित्यं सदश्वकः ॥ ३० ॥

अन्वयः—लोहसारमयः चक्रसुगमः मञ्चकासनः स्वान्दोलायितरूढः मध्यमासनसारथिः शस्त्रास्त्रसन्धार्य्युदरः इष्टच्छायः मनोरमः तथा सदश्वकः—एवंविधः रथः राज्ञा नित्यं रक्ष्यः ॥ २९-३० ॥

व्याख्या—लोहसारमयः = उत्तमलौहरचितः, चक्रसुगमः—चक्रैः = रथाङ्गैः, सुगमेन = अनायासेन, गच्छति = यातीति तथोक्तः, मञ्चकासनः—मञ्चकम् = खट्वा, इव आसनम् = उपवेशनप्रकारः, यस्मिन् सः = रथः, पर्य्यङ्कासनयुक्तः, स्वेन = आत्मना, आन्दोलायितः = असकृत्

कम्पायितः, रूढः = आरोही, यस्मिन् तथाभूतः, मध्यमम् = मध्यस्तरीयम्, आसनम् = उपवेशनम्, यस्य तादृशः, सारथिः = रथचालकः, यस्मिन् सः, शस्त्राणि = शत्रुघ्नानि, अस्त्राणि = प्रहरणानि, च, सन्धारयतीति = स्थापयतीति, तादृशम्, उदरम् = अभ्यन्तरम्, यस्य तथोक्तः, इष्टच्छायः = मनोऽनुकूलच्छायः, मनोरमः = मनोज्ञः, तथा सदश्वकः = श्रेष्ठघोटकान्वितः, एवंविधः = एतादृशः, रथः = स्यन्दनः, राज्ञा = नृपेण, नित्यम् = सततम्, रक्ष्यः = रक्षणीयः ॥ २९-३० ॥

हिन्दी—उत्कृष्ट लोहे का बना हुआ, अति सुगमता से घुमने वाले चक्के वाले, सुखपूर्वक पंलग की तरह बैठने वाली जगह वाला, जिसमें बैठने से देह स्वयं झूले की तरह हिचकोला खाये अर्थात् कमानीदार, जिसके अगले हिस्से के बीच में सारथी के बैठने की जगह हो, अनेक हथियारों से भीतरी भाग भरा पड़ा हो, अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हों, ऐसा सुन्दर रथ राजा को हमेशा अपने पास रखना चाहिए ॥ २९-३० ॥

लोहेति। शस्त्रेति। लोहसारमयः उत्कृष्टलौहनिर्मितः, चक्रसुगमः चक्रैः सुखेन गच्छतीति तथोक्तः, मञ्चकम् आसनं यस्मिन् सः पर्य्यङ्कासनसहितः स्वेन आत्मना आन्दोलितः रूढः आरोही यस्मिन् तथाभूतः, मध्यमम् आसनं यस्य तादृशः सारथिर्यस्मिन् सः, शस्त्राणि अस्त्राणि च सन्धारयतीति तादृशम् उदरम् अभ्यन्तरं यस्य तथोक्तः इष्टच्छायः अभिलषितच्छायः मनोरथः तथा सदश्वकः उत्कृष्टाश्वसंयुतः एवंविधः रथः राज्ञा नित्यं सततं रक्ष्यः ॥ २९-३० ॥

नीलतालुर्नीलजिह्वो वक्रदन्तो ह्यदन्तकः ।
दीर्घद्वेषी क्रूरमदस्तथा पृष्ठविधूनकः ॥ ३१ ॥
दशाष्टोननखो मन्दो भूविशोधनपुच्छकः ।
एवंविधोऽनिष्टगजो विपरीतः शुभावहः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—नीलतालुः नीलजिह्वः वक्रदन्तः वा अदन्तकः दीर्घद्वेषी क्रूरमदः तथा पृष्ठविधूनकः दशाष्टोननखः मन्दः भूविशोधनपुच्छकः एवंविधः गजः अनिष्टः विपरीतः शुभावहः ॥ ३१-३२ ॥

व्याख्या—नीलतालुः = कृष्णकाकुदः, नीलजिह्वः = कृष्णजिह्वः, वक्रदन्तः = कुटिलरदः, वा = अथवा, अदन्तकः = दन्तविहीनः, दीर्घद्वेषी = चिरस्थायि क्रोधः, क्रूरमदः = विशृङ्खलमदस्रावी, तथा पृष्ठविधूनकः = पृष्ठकम्पकः, दशाष्टोननखः—दशभिः अष्टाभिर्वा, ऊनाः = हीनाः, नखाः यस्य तादृशः, मन्दः = स्थिरगमनशीलः, भूविशोधनपुच्छकः—पुच्छेन = लाङ्गुलेन, भूमेः = पृथिव्याः, विशोधनकारी = सम्मार्जनकारी, एवंविधः = एतादृशः, गजः = हस्ती, अनिष्टः = अमङ्गलकरः, विपरीतः = पूर्वोक्तलक्षणविरुद्धः, शुभावहः = मङ्गलदायकः ॥ ३१-३२ ॥

हिन्दी—नीले तालु और जीभ वाला, टेढ़े दाँत वाला या फिर बिना दाँत के, देर तक गुस्सा रखने वाला, अनियमित मद चुलाने वाला, पीठ हिलाने वाला, अठारह से कम नाखून वाला, मन्दगति अर्थात् धीरे-धीरे चलने वाला तथा धरती तक लटकी लम्बी पूँछ वाला हाथी अनिष्ट फल देने वाला होता है और ऊपरवर्णित लक्षणों से भिन्न लक्षण वाला हाथी शुभ फल देने वाला होता है ॥ ३१-३२ ॥

नीलेति। दशेति। नीलतालुः नीलवर्णतालुदेशः, नीलजिह्वः, वक्रदन्तः वा अदन्तकः, दीर्घद्वेषी दीर्घकालस्थायिक्रोधः, क्रूरमदः विशृङ्खलमदवर्षी पृष्ठविधूनकः पृष्ठकम्पकः, दशाष्टोननखः दशभिः अष्टाभिर्वा ऊनाः नखाः यस्य तादृशः मन्दः अल्पगामी, भूविशोधनपुच्छकः पुच्छेन भूमेर्विशोधनकारीत्यर्थः, एवंविधः गजः अनिष्टः अशुभकरः, विपरीतस्तु शुभावहः ॥ ३१-३२ ॥

भद्रो मन्द्रो मृगो मिश्रो गजो जात्या चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—गजः भद्रः मन्द्रः मृगः मिश्रः इति जात्या चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

व्याख्या—गजः = हस्ती, भद्रः = शिष्टः, मन्द्रः = मनोहरः गम्भीरो वा, मृगः = वन्यपशुः, मिश्रः = मिश्रितलक्षणयुक्तः, जात्या = जातिभेदेन, चतुर्विधः = चतुष्प्रकारको भवतीति ॥ ३३ ॥

हिन्दी—भद्र, मंद्र, मृग और मिश्र भेद से हाथी की चार प्रजातियाँ होती हैं ॥ ३३ ॥

भद्र इति। गजः भद्रः, मन्द्रः, मृगः, मिश्रः इति जात्या जातिभेदेन चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

मध्वाभदन्तः सबलः समाङ्गो वर्त्तुलाकृतिः ।
सुमुखोऽवयवश्रेष्ठो ज्ञेयो भद्रगजः सदा ॥ ३४ ॥

अन्वयः—मध्वाभदन्तः सबलः समाङ्गः वर्त्तुलाकृतिः सुमुखः अवयवश्रेष्ठः सदा भद्रगजः ज्ञेयः ॥ ४० ॥

व्याख्या—तत्र भद्रगजस्य लक्षणमाह– मध्वाभदन्तः– मधुनः = पुष्परसस्य दुग्धस्य वा, आभा = कान्तिरिव कान्तिः, ययोः तादृशौ, दन्तौ = रदनौ, यस्य तथोक्तः, सबलः = शक्तिसम्पनः, समाङ्गः—समानि = तुल्यानि, अङ्गानि = शरीरावयवानि, यस्य सः, वर्त्तुलाकृतिः = गोलाकारः, सुमुखः—सुष्ठु, मुखः = आननः, यस्य तादृशः गजः, अवयवश्रेष्ठः—अवयवेषु = शरीराङ्गेषु, अन्येभ्यः गजेभ्यः श्रेष्ठः = उत्कृष्टः, सदा = सर्वदा, भद्रगजः, ज्ञेयः = बोध्यः ॥ ३४ ॥

हिन्दी—शहद अथवा दूध की तरह कान्ति से युक्त दाँतों वाला, बलवान्, समतल अंगोंवाला, गोल आकारवाला, सुन्दर मुँह वाला, उत्कृष्ट शरीरावयवों वाले हाथी को सदैव ‘भद्रगज’ जानना चाहिए ॥ ३४ ॥

तत्र भद्रमाह– **मध्वाभेति**। मध्वाभदन्तः मधुनः आभा इव आभा ययोः तादृशौ दन्तौ यस्य तथोक्तः सबलः अतिबलान् समाङ्गः समानि न तु विसदृशानीत्यर्थः, अङ्गानि यस्य सः, वर्त्तुलाकृतिः सुगोलावयवः सुमुखः तथा अवयवेषु अङ्गेषु अन्येभ्यः श्रेष्ठः गजः सदा भद्रगजः ज्ञेयः ॥ ३४ ॥

स्थूलकुक्षिः सिंहदृक् च बृहत्त्वग्गलशुण्डकः ।
मध्यमावयवो दीर्घकायो मन्द्रगजः स्मृतः ॥ ३५ ॥

अन्वय–स्थूलकुक्षिः सिंहदृक् बृहत्त्वग्गलशुण्डकः मध्यमावयवः दीर्घकायः मन्द्रगजः स्मृतः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—स्थूलकुक्षिः = दीर्घोदरः, सिंहदृक् = वनराजदृष्टिः, बृहत्त्वग्गलशुण्डकः—बृहत्यः = विशालाः, त्वचा = चर्म, गलः = कण्ठः, शुण्डा = करश्च, यस्य तथोक्तः, मध्यमावयवः = मध्यस्तरीयशरीरावयवः, तथा दीर्घकायः = विशालदेहः, गजः, मन्द्रगजः, स्मृतः = कथितः ॥ ३४ ॥

हिन्दी—लम्बा पेट, आँखें सिंह की तरह, चमडा मोटा, गला और सूँढ लम्बी, शरीर के अङ्ग मध्यम दर्जे के और देह विशाल, ऐसे हाथी को ‘मन्द्र’ जानना चाहिए ॥ ३४ ॥

मन्द्रमाह–**स्थूलेति**। स्थूलकुक्षिः बृहदुदरः सिंहदृक् सिंहदृष्टिः बृहत्त्वग्गलशुण्डकः बृहत्यः त्वचः गलः शुण्डा च यस्य तथोक्तः मध्यमावयवः मध्यमशरीरः तथा दीर्घकायः गजः मन्द्रगजः स्मृतः ॥ ३५ ॥

तनुकण्ठदन्तकर्णशुण्डः स्थूलाक्ष एव हि।
सुह्रस्वाधरमेढ्रस्तु वामनो मृगसंज्ञकः॥ ३६॥

अन्वयः—तनुकण्ठदन्तकर्णशुण्डः स्थूलाक्षः सुह्रस्वाधरमेढ्रः वामनः मृगसंज्ञकः ज्ञेयः॥ ३६॥

व्याख्या—तनुकण्ठदन्तकर्णशुण्डः= कृशकण्ठदशनश्रवणशुण्डारः, स्थूलाक्षः= नतोन्नतनयनः, सुह्रस्वाधरमेढ्रः= अतिलघु अधस्तनः ओष्ठः उपस्थश्च, तथा वामनः= लघुकायः, गजः= हस्ती, मृगसंज्ञकः= मृगगजः, इति ज्ञेयः= ज्ञातव्य इति॥ ३६॥

हिन्दी—जिसके गर्दन, दाँत, कान और सूँढ पतले हों; आँखें बेडौल, ओठ और लिंग बहुत छोटे तथा शरीर भी छोटा हो, उसे 'मृगगज' कहते हैं॥ ३६॥

मृगमाह— **तन्विति**। तनुकण्ठदन्तकर्णशुण्डः क्षुद्रकण्ठदन्तकर्णशुण्डः स्थूलाक्षः स्थूलनेत्रः सुह्रस्वाधरमेढ्रः अतिक्षुद्राधरः अतिक्षुद्रोपस्थश्च तथा वामनः खर्वकायः गजः मृगसंज्ञकः मृगगज इति ख्यातः॥ ३६॥

एषां लक्ष्मैर्विमिलितो गजो मिश्र इति स्मृतः।
भिन्नं भिन्नं प्रमाणन्तु त्रयाणामपि कीर्त्तितम्॥ ३७॥

अन्वयः—एषां लक्ष्मैः विमिलितः गजः मिश्र इति स्मृतः। त्रयाणामपि प्रमाणं तु भिन्नं भिन्नं कीर्त्तित्तम्॥ ३७॥

व्याख्या—एषाम्= पूर्वोक्तानां त्रयाणां गजानाम्, लक्ष्मैः= लक्षणैः, विमिलितः= विशिष्टरूपेण, मिलितम्= मिश्रितम्, गजः= करी, मिश्रगजः, इति स्मृतः= कथितः, त्रयाणामपि= भद्रादिगजानामपि, प्रमाणम्= उपपत्तिः, भिन्नं भिन्नं= पृथक् पृथक्, कीर्त्तितम्= कथितम्॥३७॥

हिन्दी—इन सबों के कुछ-कुछ लक्षण जिसमें मिलते हों, उसे मिश्रगज समझना चाहिए। उक्त तीनों गजों के प्रमाण भी अलग-अलग बताये जा चुके हैं॥ ३७॥

मिश्रमाह— **एषामिति**। एषां भद्रादीनां त्रयाणां लक्ष्मैः चिह्नैः विमिलितः विशेषेण मिलितः गजः मिश्रः इति स्मृतः। अन्येषां त्रयाणां गजानां प्रमाणं भिन्नं भिन्नं पृथक् पृथक् कीर्त्तितम्॥३७॥

गजमाने ह्यङ्गुलं स्यादष्टभिस्तु यवोदरैः।
चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तैः करः प्रोक्तो मनीषिभिः॥ ३८॥

अन्वयः—गजमाने अष्टभिः यवोदरैः अङ्गुलं स्यात्, तैः चतुर्विंशत्यङ्गुलैः मनीषिभिः करः प्रोक्तः॥ ३८॥

व्याख्या—गजमाने—गजस्य= नागस्य, माने= मापने, अष्टभिः= अष्टाभिः, यवभिः= यवोदरैः= धान्यराजान्तरैः, अङ्गुलम्= अङ्गुलिमानम्, स्यात्= भवेत्, तैः= यवोदरैः, चतुर्विंशतिः= चतुरधिकविंशतिः, अङ्गुलैः= अङ्गुलिभिः, मनीषिभिः= विद्वद्भिः, करः= हस्तः, प्रोक्तः= कथितः॥ ३८॥

हिन्दी—गजों को नापने के लिए आठ जौ की एक अंगुल और चौबीस अंगुल का एक हाथ विद्वानों ने माना है॥ ३८॥

गजमाने इति। गजमाने हस्तिपरिमाणे अष्टभिः यवोदरैः अङ्गुलं स्यात्, तैः चतुर्विंशत्यङ्गुलैः मनीषिभिः करः प्रोक्तः॥ ३८॥

सप्तहस्तोन्नतिर्भद्रे ह्यष्टहस्तप्रदीर्घता ।
परिणाहो दशकर उदरस्य भवेत् सदा ॥ ३९ ॥

अन्वयः—भद्रे सप्तहस्ता उन्नतिः अष्टहस्तप्रदीर्घता उदरस्य परिणाहः दशकरः सदा भवेत् ॥ ३९ ॥

व्याख्या—भद्रे = भद्रगजे, सप्तहस्ता = सप्तहस्तपरिमिता, उन्नतिः = उच्चता भवति, अष्टहस्तप्रदीर्घता = अष्टहस्तमिताऽयामः, उदरस्य = मध्यभागस्य, परिणाहः = विस्तारः, दशकरः = दशहस्तः, सदा = सर्वदा, भवेत् = स्यात् ॥ ३९ ॥

हिन्दी—भद्रगज की ऊँचाई सात हाथ, लम्बाई आठ हाथ और पेट का विस्तार दश हाथ होता है ॥ ३९ ॥

सप्तेति। भद्रे हस्तिनि सप्तहस्ता उन्नतिः, अष्टहस्तप्रदीर्घता अष्टहस्ताः दीर्घता, उदरस्य परिणाहः विस्तारः दशकरः सदा भवेत् ॥ ३९ ॥

प्रमाणं मन्द्रमृगयोर्हस्तहीनं क्रमादतः ।
कथितं दैर्घ्यसाम्यन्तु मुनिभिर्भद्रमन्द्रयोः ॥ ४० ॥

अन्वयः—मन्द्रमृगयोः प्रमाणम् अतः क्रमात् हस्तहीनं तथा भद्रमन्द्रयोः दैर्घ्यसाम्यं मुनिभिः कथितम् ॥ ४० ॥

व्याख्या—मन्द्रमृगयोः = मन्द्रगजस्य मृगगजस्य च, प्रमाणम् = निदर्शनम्, अतः = अस्मात्, कारणात्, क्रमात् = अनुक्रमेण, हस्तहीनम् = करैकन्यूनम्, तथा भद्रमन्द्रयोः = भद्रगजस्य मन्द्रगजस्य, च, दैर्घ्यसाम्यम् = लम्बतातुल्यम्, मुनिभिः = ऋषिभिः, कथितम् = प्रोक्तम् ॥४० ॥

हिन्दी—मन्द्र और मृग गज की ऊँचाई का प्रमाण भद्रगज से क्रमशः एक-एक हाथ छोटी होती है। किन्तु मुनियों ने भद्र और मन्द्र की लम्बाई एक जैसी बतलायी है ॥४० ॥

प्रमाणमिति। मन्द्रमृगयोः गजयोः प्रमाणम् अतः भद्रगजात् क्रमात् क्रमेण हस्तहीनं तथा भद्रमन्द्रयोः दैर्घ्यसाम्यं मुनिभिः कथितम् ॥४० ॥

बृहद्भ्रूगण्डफालस्तु धृतशीर्षगतिः सदा ।
गजः श्रेष्ठस्तु सर्वेषां शुभलक्षणसंयुतः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—बृहद्भ्रूगण्डफालः सदा धृतशीर्षगतिः शुभलक्षणसंयुतः गजः सर्वेषां श्रेष्ठः ॥ ४१ ॥

व्याख्या—बृहद्भ्रूगण्डफालः = विशालचिल्लिकाकपोलदेशः, सदा = सर्वदा, धृतशीर्षगतिः = उत्कृष्टगमनकारी, शुभलक्षणसंयुक्तः = माङ्गलिकलक्षणसमन्वितः, गजः = हस्ती, सर्वेषाम् = सकलानाम्, हस्तिनाम्, श्रेष्ठः = उत्कृष्टः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—जिस हाथी के भौंह, कपोल तथा मस्तक विशाल हो, जिसकी चाल शीघ्र गति युक्त हो, जो समस्त शुभ लक्षणों से युक्त हो, वह हाथियों में सर्वश्रेष्ठ हाथी होता है ॥ ४१ ॥

बृहदिति। बृहद्भ्रूगण्डफालः विशालभ्रूगण्डदेशः सदा धृतशीर्षगतिः गृहीतोत्कृष्टगतिः शुभलक्षणसंयुतः गजः सर्वेषां गजानां श्रेष्ठः ॥ ४१ ॥

पञ्चयवाङ्गुलेनैवं वाजिमानं पृथक् स्मृतम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—पञ्चभिः यवैः अङ्गुलेन पृथक् वाजिमानं स्मृतम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—पञ्चभिर्यवैः = पञ्चयवपरिमितैः, अङ्गुलेन = अङ्गुलियकेन करेण, पृथक् = भिन्नम्, वाजिनाम् = घोटकानाम्, मापम्, स्मृतम् = कथितम् ॥४२ ॥

हिन्दी—घोड़ों का माप हाथियों के माप से भिन्न होता है। इसमें पाँच जौ का एक हाथ होता है ॥४२ ॥

पञ्चेति। पञ्चभिर्यवैः अङ्गुलेन पृथक् वाजिमानम् अश्वपरिमाणं स्मृतम् ॥४२ ॥

चत्वारिंशाङ्गुलमुखो वाजी यश्चोत्तमोत्तमः ।
षट्त्रिंशदङ्गुलमुखो ह्युत्तमः परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—यः वाजी चत्वारिंशाङ्गुलमुखः सः उत्तमोत्तमः। षट्त्रिंशदङ्गुलमुखः वाजी उत्तमः परिकीर्त्तितः ॥४३ ॥

व्याख्या—यः = यथानिर्दिष्टः, वाजी = अश्वः, चत्वारिंशत् अङ्गुलानि परिमाणमस्येति तथोक्तम्, मुखम् = आननम्, यस्य तथाभूतः, सः = वाजी, उत्तमोत्तमः—उत्तमेषु = उत्कृष्टेषु, उत्तमः = उत्कृष्टः। षट्त्रिंशदङ्गुलमुखः घोटकस्तु, उत्तमः = श्रेष्ठः, परिकीर्त्तितः = कथितः ॥४३ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े का मुख चालीस अंगुलि का होता है, वह घोड़ा अति उत्कृष्ट माना जाता है और जिसका मुँह छत्तीस अंगुली का होता है, वह उत्तम कहा गया है ॥४३ ॥

चत्वारिंशेति। यः वाजी अश्वः चत्वारिंशत् अङ्गुलानि परिमाणमस्येति तथोक्तं मुखं यस्य तथाभूतः, सः उत्तमोत्तमः अत्युत्तमः। षट्त्रिंशदङ्गुलमुखः वाजी उत्तमः परिकीर्त्तितः ॥४३ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलमुखो मध्यमः स उदाहृतः ।
अष्टाविंशत्यङ्गुलो यो मुखे नीचः प्रकीर्त्तितः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—द्वात्रिंशदङ्गुलमुखः यः वाजी सः मध्यमः उदाहृतः। यः मुखे अष्टाविंशत्यङ्गुलः सः नीचः प्रकीर्त्तितः ॥४४ ॥

व्याख्या—द्वात्रिंशदङ्गुलमुखः = द्वात्रिंशत् अङ्गुलानि परिमाणमस्येति तथोक्तम्, मुखम् = आननम्, यस्य तथाभूतः, यः वाजी = घोटकः, सः = अश्वः, मध्यमः = सामान्यः, उदाहृतः = प्रोक्तः। यश्च मुखे = आनने, अष्टाविंशत्यङ्गुलः, सः = वाजी, नीच = अधमः, प्रकीर्त्तितः = कथितः ॥४४ ॥

हिन्दी—बत्तीस अंगुल के मुख वाला घोड़ा मध्यम दर्जे का समझा जाता है और जिस घोड़े का मुँह अट्ठाइस अंगुल का होता है, वह अधम कोटि का घोड़ा माना जाता है ॥४४ ॥

द्वात्रिंशदिति। द्वात्रिंशदङ्गुलमुखः यः वाजी सः मध्यमः उदाहृतः कथितः। यश्च मुखे अष्टाविंशत्यङ्गुलः सः नीचः प्रकीर्त्तितः ॥४४ ॥

वाजिनां मुखमानेन सर्वावयवकल्पना ।
औच्चन्तु मुखमानेन त्रिगुणं परिकीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—वाजिनां मुखमानेन सर्वावयवकल्पना औच्चं तु मुखमानेन त्रिगुणं परिकीर्त्तितम् ॥४५ ॥

व्याख्या—वाजिनाम् = घोटकानाम्, मुखमानेन = आननमितेन, सर्वेषाम् = सकलानाम्, अवयवानाम् = अङ्गानाम्, कल्पना = विचारणा, कार्या, औच्चम् = आरोहः, तु, मुखमानेन—मुखस्य, मानेन = परिमाणेन, त्रिगुणम् = गुणत्रयम्, परिकीर्त्तितम् = कथितम् ॥४५ ॥

हिन्दी—घोड़ों के मुँह की माप के अनुसार ही देह के अन्य अङ्गों की माप की कल्पना करनी चाहिए। मुँह के माप की तिगुनी घोड़े की उँचाई होनी चाहिए ॥ ४५ ॥

वाजिनामिति। वाजिनाम् अश्वानां मुखमानेन मुखपरिमाणेन सर्वेषाम् अन्येषाम् अवयवानां कल्पना कार्य्या इति शेषः। औच्चन्तु उच्चता तु मुखमानेन मुखपरिमाणादित्यर्थः, करणविवक्षया तृतीया, त्रिगुणं परिकीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥

शिरोमणिं समारभ्य पुच्छमूलान्तमेव हि।
तृतीयांशाधिकं दैर्घ्यं मुखमानाच्चतुर्गुणम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—शिरोमणिं समारभ्य पुच्छमूलान्तं दैर्घ्यं मुखमानात् तृतीयांशेन अधिकं चतुर्गुणम् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—शिरोमणिम् = घोटकस्य लक्षणविशेषः चूडामणिः, समारभ्य = प्रारभ्य, पुच्छमूलान्तम् = पुच्छमूलपर्यन्तम्, दैर्घ्यम् = दीर्घता, मुखामानात्—मुखस्य = आननस्य, मानात् = परिमाणात्, तृतीयांशेन = भागत्रयेण, अधिकम् = अतिरिक्तम्, चतुर्गुणम्भवति ॥ ४६ ॥

हिन्दी—घोड़े के शिर पर उगे मणिचिह्नों से लेकर पूँछ के मूल भाग तक की लम्बाई मुँह के माप की तिगुनी से अधिक चौगुनी होनी चाहिए ॥ ४६ ॥

शिरोमणिमिति। शिरोमणिम् अश्वानां शिरस्थचिह्नविशेषमित्यर्थः, समारभ्य पुच्छमूलान्तं पुच्छमूलपर्य्यन्तं दैर्घ्यं मुखमानात् तृतीयांशेन अधिकं युक्तं चतुर्गुणम् ॥ ४६ ॥

परिणाहस्तूदरस्य त्रिगुणस्त्र्यङ्गुलाधिकः।
साधारणमिदं मानमुच्यते विस्तरादथ ॥ ४७ ॥

अन्वयः—उदरस्य परिणाहः तु त्र्यङ्गुलाधिकः त्रिगुणः। इदं मानं साधारणम्, अथ विस्तरात् उच्यते ॥ ४७ ॥

व्याख्या—उदरस्य = तुन्दस्य, परिणाहः = विस्तारः, तु, त्र्यङ्गुलाधिकः—अङ्गुलित्रयेण, अधिकम् = अतिरिक्तम्, त्रिगुणः = गुणत्रयम्, इदम् = एतत्, मानम् = परिमाणम्, साधारणम् = सामान्यम्, कथितम्, अथ = अनन्तरम्, विस्तरात् = विस्तारात्, उच्यते = कथ्यते ॥ ४७ ॥

हिन्दी—और पेट का फैलाव मुँह के माप से तीन अंगुल ज्यादा तिगुना होता है। यह घोड़ा की साधारण माप कही गई, इसके बाद विस्तारपूर्वक कहते हैं ॥ ४७ ॥

परिणाह इति। उदरस्य परिणाहः विस्तारस्तु त्र्यङ्गुलाधिकः अङ्गुलत्रयेण अधिकः युक्त त्रिगुणः। इदं मानं परिमाणं साधारणं सामान्यम् उक्तमिति शेषः, अथ विस्तरात् उच्यते कथ्यते ॥ ४७ ॥

अष्टाविंशाङ्गुलमुखं पुरस्कृत्य यथा तथा।
शफोच्चं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं मणिबन्धोऽङ्गुलाधिकः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—अष्टाविंशाङ्गुलमुखं नीचं पुरस्कृत्य यथा शफोच्चं त्र्यङ्गुलं तथा मणिबन्धः अङ्गुलाधिकः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—अष्टाविंशाङ्गुलमुखम् = मुखमानमष्टाविंशत्यङ्गुलम्, यस्याश्वस्य तत्, नीचम् = अधमम्, पुरस्कृत्य = आश्रित्य, शफानाम् = खुराणाम्, औच्चम् = उच्चता, त्र्यङ्गुलम् = अङ्गुलित्रयम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, मणिबन्धः = शफोपरिभागः, अङ्गुलाधिकः = अङ्गुल्येकमेवाधिकम् अर्थात् चतुरङ्गुलं भवति ॥ ४८ ॥

हिन्दी—यदि अट्ठाईस अंगुल मुँह के माप वाला नीचसंज्ञक घोड़ा हो तो उसके खुर की ऊँचाई तीन अंगुल की होती है और खुर से ऊपर वाले भाग अर्थात् मणिबंध की ऊँचाई इससे एक अंगुल ज्यादा अर्थात् चार अंगुल की होती है ॥ ४८ ॥

अष्टेति। अष्टाविंशाङ्गुलमुखं नीचम् अश्वमित्यर्थः,पुरस्कृत्य अवलम्ब्य यथा शफानां खुराणाम् औच्चम् औन्नत्यं त्र्यङ्गुलम् अङ्गुलत्रयमितं, तथा मणिबन्धः खुरोपरिभागः अङ्गुलाधिकः त्र्यङ्गुलः चतुरङ्गुल इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

चतुर्हस्ताङ्गुला जङ्घा त्र्यङ्गुलं जानु कीर्त्तितम्।
चतुर्दशाङ्गुलावूरू कूर्परान्तः स्मृतौ बुधैः ॥ ४९ ॥

अन्वयः—जङ्घा चतुर्हस्ताङ्गुला तथा जानु त्र्यङ्गुलं कीर्त्तितम्। कूर्परान्तम् ऊरू चतुर्दशाङ्गुलौ बुधैः स्मृतौ ॥ ४९ ॥

व्याख्या—जङ्घा = टक्किका, चतुर्हस्ताङ्गुला = तुरीयकराङ्गुलिमिता, तथा = तेनैव रूपेण, जानु = ऊरुपर्वन्, त्र्यङ्गुलम् = अङ्गुलित्रयमितम्, कीर्त्तितम् = कथितम्, कूर्परान्तम् = कपोणिपर्यन्तम्, ऊरू = जानुपरिभागः, चतुर्दशाङ्गुलौ, बुधैः = पण्डितैः, स्मृतौ = कथितौ ॥ ४९ ॥

हिन्दी—जंघा अर्थात् टखने से घुटने तक का भाग चार हाथों की अंगुलि प्रमाण की, जानु अर्थात् ऊरुपर्व या घुटना तीन अंगुलि की माप का कहा गया है। जानु के ऊपर के भाग से लेकर केहुनी तक चौदह अंगुलियों का पण्डितों ने कहा है ॥ ४९ ॥

चतुरिति। जङ्घा चतुर्हस्ताङ्गुला, तथा जानु त्र्यङ्गुलम् अङ्गुलत्रयमितं कीर्त्तितम्। कूर्परान्तं कपोणिपर्य्यन्तम् ऊरू चतुर्दशाङ्गुलौ बुधैः स्मृतौ ॥ ४९ ॥

अष्टत्रिंशाङ्गुलं ज्ञेयं स्कन्धान्तं कूर्परादितः।
प्रत्यगूरू मुखसमौ जङ्घोना पादमानतः ॥ ५० ॥

अन्वयः—इतः कूर्परात् स्कन्धान्तम् अष्टत्रिंशत्यङ्गुलं ज्ञेयम्। प्रत्यगूरू मुखसमौ, जङ्घा पादमानतः ऊनाः ॥ ५० ॥

व्याख्या—इतः = अस्मात् कूर्परात् प्रारभ्य, स्कन्धान्तम् = भुजमूलपर्यन्तम्, अष्टत्रिंशाङ्गुलम् = अष्टत्रिंशाङ्गुलिमितम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्, प्रत्यगूरू = पश्चिमावूरू, मुखसमौ = मुखपरिमाणसमौ, जङ्घा = पश्चिमजङ्घा, पादमानतः = अपरजङ्घा चतुर्थमानात्, ऊना = हीना, बोध्येति ॥ ५० ॥

हिन्दी—केहुनी से लेकर कंधे तक घोड़े की ऊँचाई अड़तीस अंगुल की होती है और पीछे से दोनों ऊरू मुख के समान अट्ठाईस अंगुल प्रमाण के होते हैं। पीछे की जंघा चौथाई मान से कम की होती हैं ॥ ५० ॥

अष्टेति। इतः अस्मात् कूर्परात् आरभ्येति शेषः, स्कन्धान्तं स्कन्धपर्य्यन्तम् अष्टत्रिंशाङ्गुलम् अष्टत्रिंशाङ्गुलपरिमाणं ज्ञेयम्। प्रत्यगूरू पश्चिमावूरू मुखसमौ मुखपरिमाणसमौ अष्टाविंशाङ्गुलावित्यर्थः। जङ्घा प्रत्यग्जङ्घा इत्यर्थः, पादमानतः अपरजङ्घाः चतुर्थमानात् ऊना हीना इत्यर्थः ॥ ५० ॥

प्रोक्तोच्चता चाथ दैर्घ्यमुच्यते शास्त्रसङ्गतम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—उच्चता प्रोक्ता, अथ दैर्घ्यं शास्त्रसङ्गतम् उच्यते ॥ ५१ ॥

व्याख्या—उच्चता = अश्वस्यौन्नत्यम्, प्रोक्ता = कथिता, अथ = अनन्तरम्, दैर्घ्यम् = लम्बता, शास्त्रसङ्गतम् = शास्त्रविहितम्, उच्यते = कथ्यते ॥५१ ॥

हिन्दी—इस प्रकार अंगों की ऊँचाई का वर्णन किया गया, अब इनकी लम्बाई का शास्त्रसंगत वर्णन करते हैं ॥५१ ॥

प्रोक्तेति। उच्चता प्रोक्ता कथिता, अथ अनन्तरं दैर्घ्यम् उच्यते ॥५१ ॥

षष्ठांशेनाधिका ग्रीवा द्विगुणा सुप्रसारिता।
मुखतश्चोच्छ्रिता सार्द्धपादहीना तु पूर्वतः ॥५२॥

अन्वयः—सुप्रसारिता ग्रीवा दैर्घ्ये षष्ठांशेन अधिका द्विगुणा तथा पूर्वतः सार्द्धपादहीना उच्छ्रिता ॥५२ ॥

व्याख्या—सुप्रसारिता = अतिविस्तृता, ग्रीवा = कन्धरः, दैर्घ्ये = लम्बतायाम्, मुखतः = आननात्, षष्ठांशेन = षष्ठभागेन, अधिका = अतिरिक्तांशयुक्ता, द्विगुणा = द्विगुणिता, तथा पूर्वतः = मुखतः, सार्द्धपादहीना = अर्द्धेण सहैकपादहीना = ऊना, उच्छ्रिता = उन्नता, भवतीति भावः ॥५२ ॥

हिन्दी—विस्तृत गर्दन की लम्बाई में मुँह की अपेक्षा छठा भाग अधिक दुगुना होता है तथा मुँह से साढ़े चौथाई भाग कम ऊँचा होता है ॥५२ ॥

षष्ठांशेनेति। सुप्रसारिता सुविस्तृता ग्रीवा दैर्घ्ये मुखतः मुखात् षष्ठांशेन अधिका युक्ता द्विगुणा तथा पूर्वतः मुखत इत्यर्थः, सार्द्धपादहीना उच्छ्रिता उन्नता ॥५२ ॥

स्कन्धादि मुष्कमूलान्तं ग्रीवातुल्यन्तु तत्र हि।
द्व्यंशषष्ठं त्रिकं यावत् शेषमंसं प्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—तत्र स्कन्धादि मुष्कमूलान्तं ग्रीवातुल्यं त्रिकं यावत् शेषम् अंसं द्व्यंशषष्ठं प्रकल्पयेत् ॥४३ ॥

व्याख्या—तत्र = घोटकेषु, स्कन्धादि = शिरोमूलमारभ्य, मुष्कमूलान्तम् = अण्डकोषमूलपर्यन्तम्, ग्रीवातुल्यम् = कन्धरासदृशम्, त्रिकम् = पृष्ठवंशाधोभागम्, यावत् = समस्तम्, शेषम् = अवशिष्टम्, अंसम् = स्कन्धम्, द्व्यंशषष्ठम् = भागद्वयं षष्ठभागतुल्यम्, प्रकल्पयेत् = चिन्तयेत् ॥५३ ॥

हिन्दी—घोड़ों में कन्धे से लेकर अण्डकोष के मूल भाग तक की लम्बाई गर्दन की तरह लम्बी होती है। रीढ़ के नीचले भाग तक बचे अंश कंधे की लम्बाई गर्दन के दो भाग के छठे भाग की तरह होती है ॥५३ ॥

स्कन्धादीति। तत्र अश्वेषु स्कन्धादि मुष्कमूलान्तम् अण्डकोषमूलपर्य्यन्तं ग्रीवातुल्यम्। त्रिकं पृष्ठवंशाधोभागं यावत् 'पृष्ठवंशाधरे त्रिकमि'त्यमरः। शेषम् अंसं स्कन्धं द्व्यंशषष्ठं प्रकल्पयेत् ॥५३ ॥

मुखार्द्धं पुच्छदण्डं च शिश्न आण्डौ तदर्द्धकौ।
कर्णः षडङ्गुलो दीर्घश्चतुःपञ्चाङ्गुलः क्वचित् ॥५४॥

अन्वयः—पुच्छदण्डं शिश्नश्च मुखार्द्धम्, आण्डौ तदर्द्धकौ, कर्णः षडङ्गुलः, क्वचित् दीर्घः चतुःपञ्चाङ्गुलः ॥५४ ॥

व्याख्या—पुच्छदण्डम् = लाङ्गुलदण्डम्, शिश्नश्च = लिङ्गञ्च, मुर्खाद्धम्—मुखस्य = आननस्य, अर्द्धम् = अर्द्धभागमितम्, आण्डौ = मुष्कौ, तदर्द्धकौ, तस्य = शिश्नस्य, अर्द्धकौ = अर्द्धभागपरिमितौ, कर्णः = श्रोत्रम्, षडङ्गुलः = षडङ्गुलिपरिमितः, क्वचित् = कुत्रचित्, दीर्घः = श्रवणस्य दैर्घ्यम्, चतुःपञ्चाङ्गुलश्च = चतुरङ्गुलः वा पञ्चाङ्गुलः प्रोक्तः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—घोड़े की पूँछ का डंडा और उनके लिंग की लम्बाई मुँह के लम्बाई की आधी होती है। दोनों अण्डकोषों की लम्बाई लिङ्ग के लम्बाई की आधी होती है। कान की लम्बाई छः अंगुल की होती है; कहीं-कहीं चार या पाँच अंगुल की भी कही गई है ॥ ५४ ॥

मुखार्द्धमिति। पुच्छदण्डं शिश्नश्च मुखार्द्धं मुखस्य अर्द्धम् अर्द्धपरिमितम्। आण्डौ अण्डौ एव स्वार्थे ष्णप्रत्ययः। अण्डकोषौ तदर्द्धांशे शिश्नार्द्धपरिमितौ। कर्णः षडङ्गुलः, क्वचिद् दीर्घः कर्णस्य दैर्घ्यमित्यर्थः, चतुःपञ्चाङ्गुलः चतुरङ्गुलः पञ्चाङ्गुलश्च ॥ ५४ ॥

परिणाहः शफस्योक्तो मुखार्द्धेनाङ्गुलाधिकः।
तदर्द्धो मणिबन्धस्य जङ्घायाः परिधिः स्मृतः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—शफस्य परिणाहः मुखार्द्धेन अङ्गुलाधिकः प्रोक्तः। मणिबन्धस्य जङ्घायाश्च परिधिः तदर्द्धः स्मृतः ॥ ५५ ॥

व्याख्या—शफस्य = खुरस्य, परिणाहः = विस्तारः, मुखार्द्धेनाङ्गुलाधिकः—मुखस्य = आननस्य, अर्द्धेन = अर्द्धपरिमाणेन, अङ्गुलाधिकः = एकाङ्गुलातिरिक्तः, प्रोक्तः = कथितः, मणिबन्धस्य = पादमूलस्य, जङ्घायाश्च = ऊरोश्च, परिधिः = मण्डलम्, तदर्द्ध—तत् = तस्य, अर्द्धः = अर्द्धांशः, स्मृतः = कथितः ॥ ५५ ॥

हिन्दी—खुर का फैलाव मुँह के माप का आधा परन्तु एक अंगुल ज्यादा होता है तथा पाद-मूल और जंघा का घेरा उसका आधा होता है ॥ ५५ ॥

परिणाहमिति। शफस्य खुरस्य परिणाहः विस्तारः अङ्गुलाधिकः मुखार्द्धेन मुखार्द्धपरिमाणेन तुल्यः एकाङ्गुलाधिकमुखार्द्धपरिमाणतुल्यः। मणिबन्धस्य जङ्घायाश्च परिधिः वेष्टनं तदर्द्धः स्मृतः ॥ ५५ ॥

दशैकाङ्गुलपरिधी रम्योरोः कीर्त्तितो बुधैः।
पृष्ठोरुपरिधिर्मूले त्रिः षष्ठांशो मुखेषु च ॥ ५६ ॥

अन्वयः—रम्यस्य ऊरोः दशैकाङ्गुलपरिधिः बुधैः कीर्त्तितः। पृष्ठोरुपरिधिर्मूले त्रिः मुखेषु षष्ठांशः ॥ ५६ ॥

व्याख्या—रम्यस्य = सुरूपस्य, ऊरोः = जङ्घायाः, दशैकाङ्गुलपरिधिः = एकादशाङ्गुलमितवेष्टनम्, बुधैः = पण्डितैः, कीर्त्तितः = कथितः। पृष्ठस्य = पश्चिमस्य, ऊरोः = जङ्घायाः, परिधिः = वेष्टनं, मूले = आदौ, त्रिः = अङ्गुलित्रयमितः, मुखेषु = अग्रेषु, च = पुनः, षष्ठांशः = षष्ठभागः ॥ ५६ ॥

हिन्दी—पण्डितों ने सुन्दर जंघा का घेरा ग्यारह अंगुल कहा है। पिछली जंघा का घेरा मूल भाग से तीन अंगुल और आगे से छः अंश का होता है ॥ ५६ ॥

दशेति। रम्यस्य रमणीयस्य ऊरोः दशैकाङ्गुलपरिधिः एकादशाङ्गुलमितः परिधिः बुधैः

कीर्त्तितः। पृष्ठस्य पश्चिमस्य ऊरोः परिधिः मूले त्रिः अङ्गुलत्रयमितः, मुखेषु अग्रेषु च षष्ठांशः ॥५६ ॥

बहिरन्तर्धनुःखण्डसदृशाः सरभोग्रजाः ।
मणिबन्धमणेर्ज्ञेयः परिधिश्च नवाङ्गुलः ।
अन्त्यजङ्घादिपरिधिर्विज्ञेयः पूर्ववद् बुधैः ॥५७ ॥

अन्वयः—मणिबन्धस्य मणेः परिधिः नवाङ्गुलः च अन्त्यजङ्घादिपरिधिः पूर्ववत् बुधैः ज्ञेयः ॥५७ ॥

व्याख्या—मणिबन्धस्य = पादमूलस्य, मणिः = अश्वस्य चिह्नविशेषः, परिधिः = वेष्टनम्, नवाङ्गुलः = नवाङ्गुलिपरिमितः, तथा अन्त्यजङ्घादिपरिधिः = अन्तिमोरोर्वेष्टनम्, पूर्ववत् = पूर्वोक्तमिव, बुधैः = विपश्चितैः, ज्ञेयः = बोध्यः ॥५७ ॥

हिन्दी—मणिबन्ध के मणि का घेरा नौ अंगुल का होता है तथा अन्तिम जंघा आदि का घेरा पण्डितों को पूर्व की तरह ही जानना चाहिए ॥५७ ॥

मणिबन्धेति। मणिबन्धस्य मणेः चिह्नविशेषस्य परिधिः नवाङ्गुलः तथा अन्त्यजङ्घादिपरिधिः पूर्ववत् प्रथमवत् बुधैः ज्ञेयः ॥५७ ॥

अथोर्वोरन्तरे चिह्नमङ्गुष्ठं पक्षमूलयोः ॥५८ ॥

अन्वयः—ऊर्वोः अन्तरे पक्षमूलयोः चिह्नम् अङ्गुलम् ॥५८ ॥

व्याख्या—ऊर्वोः = जङ्घयोः, अन्तरे = मध्ये, पक्षमूलयोः = पार्श्वमूलयोः, चिह्नम् = लक्ष्म, अङ्गुष्ठम् = एकाङ्गुलिप्रमाणमितमिति ॥५८ ॥

हिन्दी—और दोनों जङ्घाओं के बीच पार्श्वमूल का चिह्न एक अङ्गुल का होता है ॥५८ ॥

अथेति। ऊर्वोः अन्तरे मध्ये पार्श्वमूलयोः चिह्नम् अङ्गुलम् अङ्गुलपरिमितम् ॥५८ ॥

सार्द्धाङ्गुलं सटास्थानं ग्रीवोपरि सुविस्तृतम् ।
शिरोमणिं समारभ्य दीर्घं स्कन्धान्तमुत्तमम् ॥५९ ॥

अन्वयः—ग्रीवोपरि सुविस्तृतं शिरोमणिं समारभ्य स्कन्धान्तम् उत्तमं सटानां स्थानं सार्द्धाङ्गुलं दीर्घम् ॥५९ ॥

व्याख्या—ग्रीवोपरि—ग्रीवायाः = कण्ठस्य, उपरि = उपरिष्टात्, सुविस्तृतम् = अतिप्रसृतम्, शिरोमणिम् = मस्तकस्य चिह्नविशेषं चूडामणिं वा, समारभ्य = प्रारभ्य, स्कन्धान्तम् = स्कन्धपर्यन्तम्, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, सटानाम् = जटानाम्, स्थानम् = स्थलम्, सार्द्धाङ्गुलम् = अर्द्धेन सहितैकाङ्गुलमितम्, दीर्घः = लम्बः, बोध्यः ॥५९ ॥

हिन्दी—गर्दन के ऊपर काफी फैले हुए शिरामणि से लेकर कन्धे तक उत्तम आयाल का स्थान डेढ अंगुल लम्बा होता है ॥५९ ॥

सार्द्धाङ्गुलमिति। ग्रीवाया उपरि सुविस्तृतं शिरोमणिं समारभ्य स्कन्धान्तं स्कन्धपर्य्यन्तम् उत्तमं सटानां जटानां स्थानं सार्द्धाङ्गुलं दीर्घः ॥५९ ॥

अधोगमा सटा कार्य्या हस्तमात्रायता शुभा ।
सार्द्धहस्ता द्विहस्ता वा पुच्छबालाः सुशोभनाः ॥६० ॥

अन्वयः—अधोगमा हस्तमात्रायता शुभा जटा कार्या। पुच्छबालाः सार्द्धहस्ताः वा द्विहस्ताः सुशोभनाः ॥ ६० ॥

व्याख्या—अधोगमा = अधस्ताल्लम्बमाना, हस्तमात्रायता = हस्तैकपरिमिता दीर्घा, शुभा = मङ्गलप्रदा, जटा = सटा, कार्या = सम्पादिता। पुच्छस्य = लाङ्गुलस्य, बालाः = केशाः, सार्द्धहस्ताः = अर्द्धेण सहितैकहस्ताः, वा = अथवा, द्विहस्ताः = करद्वयमिताः, सुशोभनाः = सुरम्याः कार्याः ॥ ६० ॥

हिन्दी—नीचे की ओर लटकती हुई हाथभर लम्बी सटा (आयाल) करनी चाहिए। साथ ही पूँछ के सुरम्य बाल डेढ़ या दो हाथ लम्बे होने चाहिए ॥ ६० ॥

अधोगमेति। अधोगमा अधोलम्बमाना हस्तमात्रायता हस्तमात्रदीर्घा शुभा जटा कार्या। पुच्छस्य बालाः केशाः सार्द्धहस्ताः वा द्विहस्ताः सुशोभनाः कार्य्या इति शेषः ॥ ६० ॥

सप्ताष्टनवदशभिरङ्गुलैः कर्णदीर्घता।
तथा तद्विस्तृतिर्ज्ञेया त्र्यङ्गुला चतुरङ्गुला ॥ ६१ ॥

अन्वयः—कर्णस्य दीर्घता सप्ताष्टनवदशभिः अङ्गुलैः तथा तद्विरतृतिः त्र्यङ्गुला चतुरङ्गुला वा ज्ञेया ॥ ६१ ॥

व्याख्या—कर्णस्य = श्रोत्रस्य, दीर्घता = आयता, सप्ताष्टनवदशभिः = सप्तभिः अष्टभिः नवभिः वा दशभिः, अङ्गुलैः = अङ्गुलिमितैः, भवति, तथा तत् = तस्य, कर्णस्य = श्रवणस्य, विस्तृतिः = विस्तारः, त्र्यङ्गुला = अङ्गुलित्रयमिता, वा चतुरङ्गुला भवति, ज्ञेया = बोध्या ॥ ६१ ॥

हिन्दी—कान की लम्बाई सात, आठ, नौ या दश अंगुल की होनी चाहिए तथा इसकी चौड़ाई तीन या चार अंगुल की होनी चाहिए ॥ ६१ ॥

सप्तेति। कर्णस्य दीर्घता सप्तभिः अष्टभिः नवभिः दशभिर्वा अङ्गुलैः भवति। तथा तस्य कर्णस्य विस्तृतिः त्र्यङ्गुला अङ्गुलत्रयमिता वा चतुरङ्गुला अङ्गुलचतुष्टयमिता ज्ञेया ॥ ६१ ॥

न स्थूला नापि चिपिटा ग्रीवा मयूरसन्निभा।
ग्रीवाग्रपरिधिस्तुल्यो मुखेनाधिकमुष्टिकः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—ग्रीवा मयूरसन्निभा न स्थूला नापि चिपिटा ग्रीवाग्रपरिधिः मुखेनाधिकमुष्टिकः तुल्यः ॥ ६२ ॥

व्याख्या—ग्रीवा = अश्वस्य कण्ठः, मयूरसन्निभा = बर्हिणः सदृशी, न = नहि, स्थूला = पीना, नापि, चिपिटा = सपाटा, भवति। ग्रीवाग्रस्य = कण्ठपुरोभागस्य, परिधिः = आवेष्टनः, मुखेन = आननपरिमाणेन, तुल्यः = सदृशः, च = पुनः, अधिकमुष्टिकम् = मुष्ट्यैकातिरिक्तमिति ॥ ६२ ॥

हिन्दी—और गला न अधिक मोटा हो और न अधिक सपाट प्रत्युत मोरकण्ठ के समान होना चाहिए। इसके अगले भाग का घेरा मुख के घेरे से एक अंगुल ज्यादा होना चाहिए ॥ ६२ ॥

नेति। ग्रीवा अश्वस्येति शेषः, मयूरसन्निभा शिखिसदृशी, न स्थूला, नापि चिपिटा चिपिटाकृतिः भवतीति शेषः। ग्रीवाग्रस्य परिधिः मुखेन मुखपरिमाणेन तुल्यः अधिकमुष्टिकश्च एकमुष्ट्यधिकमुखपरिमाणतुल्य इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

ग्रीवामूलस्य परिधिर्द्विगुणो विदशाङ्गुलः।
तृतीयांशविहीनं तु सत्क्रोडं वक्ष ईरितम्॥ ६३॥

अन्वयः—ग्रीवामूलस्य परिधिः विदशाङ्गुलः द्विगुणः सत्क्रोडं वक्षः तृतीयांशेन विहीनम् ईरितम्॥६३॥

व्याख्या—ग्रीवामूलस्य = शिरोऽधोमूलस्य, परिधिः = वेष्टनम्, विदशाङ्गुलः = दशाङ्गुलो हीनः, द्विगुणः = मुखस्य द्विगुणितः, तथा सत्क्रोडम् = उत्कृष्टोत्सङ्गम्, वक्षः = उरप्रदेशम्, तृतीयांशेन = तृतीयभागेन, मुखस्य विहीनम् = रहितम्, ईरितम् = कथितम्॥६३॥

हिन्दी—गर्दन का घेरा मुँह के माप से दस अंगुल कम दूना होना चाहिए और उत्तम उत्संग वाली छाती का मान मुख-मान से तीन हिस्सा कम कहा गया है॥६३॥

ग्रीवामूलस्येति। ग्रीवामूलस्य परिधिः विदशाङ्गुलः दशाङ्गुलः हीनः द्विगुणः मुखस्येति शेषः। तथा सत्क्रोडम् उकृष्टोत्सङ्गं वक्षः वक्षःस्थलं तृतीयांशेन विहीनं मुखस्येति शेषः, ईरितम् उक्तम्॥६३॥

नेत्रोपरि परीणाहो मुखेनाष्टाङ्गुलाधिकः।
नासिकोपरि नेत्राधो मुखस्य परिधिस्तु यः।
तृतीयांशविहीनेन मुखेन सदृशो भवेत्॥ ६४॥

अन्वयः—नेत्रोपरि परीणाहः मुखेनाष्टाङ्गुलाधिकः, नासिकोपरि नेत्राधः मुखस्य यः परिधिः सः तृतीयांशविहीनेन मुखेन सदृशः भवेत्॥ ६४॥

व्याख्या—नेत्रस्य = नयनस्य, उपरि = उपरिष्टात्, परीणाहः = विस्तारः, मुखेन = आननेन, सदृशः = तुल्यः, अष्टाङ्गुलः = अङ्गुल्यष्टमितः, अधिकः = अतिरिक्तः, नासिकायाः = घ्राणेन्द्रियस्य, उपरि, नेत्राधः = नयनस्याधोभागे, मुखस्य = आननस्य, यः परिधिः = परिवेष्टनम्, सः तृतीयांशविहीनेन = भागत्रयरहितेन, मुखेन = आननमितेन, सदृशः = तुल्यः, भवेत् = स्यात्॥६४॥

हिन्दी—आँखों के ऊपर का फैलाव मुँह के माप से आठ अंगुल अधिक होता है। नाक के ऊपर और आँखों के नीचे जो मुँह का घेरा है वह मुँह के माप के समान होता है, किन्तु तृतीयांश कम ही होता है॥६४॥

नेत्रोपरीति। नेत्रस्य उपरि परिणाहः विस्तारः मुखेन सदृशः अष्टाङ्गुलाधिकश्च। नासिकोपरि नेत्राधः मुखस्य यः परिधिः, सः तृतीयांशविहीनेन मुखेन मुखपरिमाणेन सदृशः भवेत्॥ ६४॥

द्व्यङ्गुलं नेत्रविस्तृतिस्त्र्यङ्गुला तस्य दीर्घता।
अर्द्धाङ्गुलाधिका वापि विस्तृतिर्दीर्घताङ्गुला॥ ६५॥

अन्वयः—नेत्रस्य विस्तृतिः द्व्यङ्गुलं तस्य दीर्घता त्र्यङ्गुला वापि विस्तृतिः अर्द्धाङ्गुलाधिका दीर्घता च अङ्गुला॥ ६५॥

व्याख्या—नेत्रस्य = लोचनस्य, विस्तृतिः = विस्तारः, द्व्यङ्गुलम् = अङ्गुलिद्वयमितम्, तस्य = नेत्रस्य, दीर्घता = लम्बता, त्र्यङ्गुला = अङ्गुलित्रयमिता, वापि = अथवा, विस्तृतिः = विस्तारः, अर्द्धाङ्गुलाधिका = सार्द्धद्वयाङ्गुलाधिका, दीर्घता च = लम्बता च, अङ्गुला = अङ्गुल्यैकाधिकेति ज्ञेया॥ ६५॥

हिन्दी—आँखों के विस्तार का मान दो अंगुल तथा उसकी लम्बाई का मान तीन अंगुल का होता है। अथवा इनका विस्तार कई अंगुल तथा लम्बाई तीन अंगुली की होनी चाहिए॥ ६५ ॥

द्व्यङ्गुलमिति। नेत्रस्य विस्तृतिः द्व्यङ्गुलं तस्य नेत्रस्य दीर्घता त्र्यङ्गुला। वापि अथवा विस्तृतिः अर्द्धाङ्गुलाधिका, सार्द्धद्व्यङ्गुला इत्यर्थः, दीर्घता च अङ्गुला अङ्गुलाधिका त्र्यङ्गुला इत्यर्थः॥ ६५ ॥

मुखतृतीयांशमेतदूर्वोर्मध्येऽन्तरं स्मृतम्।
नेत्राग्रयोरन्तरं तु पञ्चमांशं मुखस्य हि॥ ६६ ॥

अन्वयः—ऊर्वोः मध्ये एतत् अन्तरं मुखतृतीयांशं तथा नेत्राग्रयोः अन्तरं तु मुखस्य पञ्चमांशं स्मृतम्॥ ६६ ॥

व्याख्या—ऊर्वोः = जङ्घयोः, मध्ये = अन्तराले, एतत्, अन्तरम् = भिन्नता, मुखस्य = आननस्य, तृतीयांशं = तृतीयभागम्, तथा नेत्राग्रयोः = लोचनस्याग्रभागयोः, अन्तरम् = पार्थक्यम्, मुखस्य = आननस्य, पञ्चमांशम् = पञ्चमभागम्, स्मृतम् = कथितम्॥ ६६ ॥

हिन्दी—जाँघों के बीच की यह भिन्नता मुँह के तृतीयांश के समान होती है तथा आँखों के दोनों अगले हिस्से का अन्तर मुँह के माप का पाँचवाँ भाग होना चाहिए॥ ६६ ।।

मुखेति। ऊर्वोः मध्ये एतत् अन्तरं मुखतृतीयाशं तथा नेत्राग्रयोः अन्तरन्तु मुखस्य पञ्चमांशं स्मृतम्॥ ६६ ॥

कर्णयोरन्तरं तद्वत् कर्णनेत्रान्तरं तथा।
भूस्थयोः शफयोः प्रोक्तं यदेतत् कर्णसम्मितम्॥ ६७ ॥

अन्वयः—कर्णयोः अन्तरं तद्वत् तथा कर्णनेत्रान्तरं तथा भूस्थयोः शफयोः यत् एतत् तत् कर्णसम्मितं प्रोक्तम्॥ ६७ ॥

व्याख्या—कर्णयोः = श्रवणयोः, अन्तरम् = दूरता, तद्वत् = तत्सदृशमेव, तथा = तेनैव प्रकारेण, कर्णनेत्रान्तरम् = श्रवणनयनयोः पार्थक्यम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, भूस्थयोः = भूमिस्थितयोरुभयोः, शफयोः = खुरयोः, यत् पार्थक्यम्, एतत् = अन्तरम्, तत् कर्णसम्मितम् = श्रवणपरिमाणसदृशम्, प्रोक्तम्॥६७॥

हिन्दी—दोनों कानों की दूरी भी उसी तरह तथा कान और आँख की दूरी भी उसी तरह होती है। धरती पर मौजूद दोनों खुरों की जो दूरी है वह अन्तर कान के मान के समान है॥६७॥

कर्णयोरिति। कर्णयोः अन्तरं तद्वत् तथा कर्णनेत्रान्तरं तथा भूस्थयोः शफयोः यत् एतत् अन्तरमित्यर्थः, तत् कर्णसम्मितं कर्णपरिमाणतुल्यं प्रोक्तम्॥६७॥

मणिनेत्रप्रान्तरञ्च भ्रुवोरन्तरमेव हि।
सक्थ्यङ्गुलं तृतीयांशं नासानेत्रान्तरं तथा॥ ६८ ॥

अन्वयः—मणिनेत्रयोः प्रान्तरं भ्रुवोः अन्तरं तथा नासानेत्रयोः अन्तरं सक्थ्यङ्गुलं तृतीयांशम्॥ ६८ ॥

व्याख्या—मणिनेत्रयोः = मणिलोचनयोः, अन्तरम् = पार्थक्यम्, भ्रुवोः = भ्रूलतयोः, अन्तरम्

= दूरता, तथा = तेनैव प्रकारेण, नासानेत्रयोः = नासिकाचक्षुषोः, अन्तरम् = दूरता, सक्थ्नः = ऊरोः, अङ्गुलानाम्, तृतीयांशम् = तृतीयभागम्, बोध्यम् ॥ ६९ ॥

हिन्दी—मणि और आँखों की दूरी, दोनों भौंहों की दूरी तथा नाक और आँख का अन्तर जाँघ के अंगुलों का तीसरा भाग मानना चाहिए ॥ ६८ ॥

मणीति। मणिनेत्रयोः प्रान्तरम् अन्तरमित्यर्थः, भ्रुवोः अन्तरं तथा नासानेत्रयोरन्तरं सक्थ्नः ऊरोरङ्गुलानां तृतीयांशं ज्ञेयमिति शेषः ॥ ६८ ॥

त्रिभागपूरणं प्रोथः सोष्ठश्च परिकीर्त्तितः।
नासारन्ध्रान्तरं चैव तद्दैर्घ्यनवमांशकम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः—सोष्ठः प्रोथः त्रिभागपूरणं परिकीर्त्तितः तथा नासारन्ध्रयोः अन्तरं तयोः दैर्घ्य-नवमांशकम् ॥ ६९ ॥

व्याख्या—सोष्ठः—ओष्ठेन = अधरेण, सहितः = युक्तः, सोष्ठः, प्रोक्थः = मुखस्याग्रभागः, त्रिभागपूरणम् = मुखमितस्य तृतीयांशम्, परिकीर्त्तितः = कथितः, तथा = तेनैव रूपेण, नासारन्ध्रयोः = नासिकाछिद्रयोः, अन्तरम् = अन्तरालम्, तयोः = उभयोः, दैर्घ्यस्य = दीर्घतायाः, नवमांशकम् = नवमभागमिति बोध्यः ॥ ६९ ॥

हिन्दी—और होठों सहित थूथन मुँह की माप के तीसरे भाग की तरह लम्बी कही गई हैं तथा दोनों नाकों के पोरों का अन्तर उन दोनों की लम्बाई की माप का नौवाँ हिस्सा होता है ॥ ६९ ॥

त्रिभागेति। सोष्ठः ओष्ठसहितः प्रोथः मुखाग्रभागः त्रिभागपूरणः मुखस्य तृतीयांश इत्यर्थः परिकीर्त्तितः। तथा नासारन्ध्रयोरन्तरं तयोः दैर्घ्यस्य नवमांशकं ज्ञेयमिति शेषः ॥ ६९ ॥

कायो नरार्द्धविस्तारस्त्रिके हृदयसम्मितः।
चतुर्थांशं तु हृदयं बाहुमूलादधः स्मृतम् ॥ ७० ॥

अन्वयः—कायः नरार्द्धविस्तारः त्रिके हृदयसम्मितः, तु हृदयं बाहुमूलात् अधः चतुर्थांशं स्मृतम् ॥ ७० ॥

व्याख्या—कायः = देहम्, नरार्द्धविस्तारः—नरस्य = मानवस्य, अर्द्धविस्तारः = अर्द्धप्रसृतिः, त्रिके = पृष्ठवंशाधोभागे, हृदयसम्मितः = वक्षःस्थलतुल्यविस्तारः इति, तु = तथा, हृदयम् = वक्षःस्थलम्, बाहुमूलात् = भुजमूलात्, अधः = अधोभागे, चतुर्थांशम् = चतुर्थभागम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ७० ॥

हिन्दी—देह मनुष्य-देह की लम्बाई का आधा और रीढ के नीचे का भाग छाती के फैलाव के समान होता है तथा हृदय बाहुमूल के नीचे एक चौथाई के बराबर होता है ॥ ७० ॥

काय इति। कायः शरीरं नरार्द्धविस्तारः मनुष्यार्द्धविस्तृतिः त्रिके पृष्ठवंशाधोभागे हृदयसम्मितः वक्षःसदृशः विस्तार इत्यर्थः। तथा हृदयं बाहुमूलात् अधः चतुर्थांशं स्मृतम् ॥ ७० ॥

षष्ठांशमन्तरं बाह्वोर्हृत्समीपे प्रकीर्त्तितम्।
अधरोष्ठोऽनुचिबुकं सार्द्धाङ्गुलमथोन्नतम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—हृत्समीपे बाह्वोः अन्तरम् षष्ठांशं प्रकीर्त्तितम्। अधरोष्ठात् अथ अनुचिबुकं सार्द्धाङ्गुलम् उन्नतम् ॥ ७१ ॥

व्याख्या—हृत्समीपे = उरःसन्निहिते, बाह्वोः = भुजयोः, अन्तरम् = दूरता, षष्ठांशम् = षष्ठभागम्, प्रकीर्त्तितम् = कथितम्। अधरोष्ठात् = रदनच्छदाधःस्तनोष्ठात्, अथ = आरभ्य, अनुचिबुकम् = हनुपर्यन्तम्, सार्द्धाङ्गुलम् = अर्द्धसहितैकाङ्गुलम्, उन्नतम् = उच्चम्, ज्ञेयमिति शेषः॥ ७१॥

हिन्दी—होठ और होठ से लेकर ठुढी तक की ऊँचाई डेढ़ अंगुल होनी चाहिए तथा छाती के समीप दोनों बाहों की दूरी छठे भाग की तरह होनी चाहिए॥ ७१॥

षष्ठांशमिति। हृत्समीपे वक्षःसन्निधौ बाह्वोः भुजयोः अन्तरं पष्ठांशं प्रकीर्त्तितम्। अधरोष्ठादथ अनुचिबुकं सार्द्धाङ्गुलम् उन्नतम्॥ ७१॥

शोभते चोन्नतग्रीवो नतपृष्ठः सदा हयः॥ ७२॥

अन्वयः—उन्नतग्रीवः नतपृष्ठः हयः सदा शोभते॥ ७२॥

व्याख्या—उन्नतः = उद्गतः, ग्रीवा = कन्धरा, यस्यासौ, नतपृष्ठः = अवनतपश्चभागम्, हयः = अश्वः, सदा = सर्वदा, शोभते = शोभायमानो भवति॥७२॥

हिन्दी—घोड़ा सदैव ऊँची गर्दन तथा नीची पीठ वाला शोभता है॥७२॥

शोभते इति। उन्नतग्रीवः नतपृष्ठः हयः सदा शोभते॥ ७२॥

यद्रूपं कर्त्तुमुद्युक्तस्तद् बिम्बं वीक्ष्य सर्वतः।
अदृष्ट्वा कस्य यद्रूपं न कर्त्तुं क्षमते हि तत्॥ ७३॥

अन्वयः—यत् रूपं कर्त्तुम् उद्युक्तः सर्वतः वीक्ष्य तद्बिम्बं कस्य यत् तत् अदृष्ट्वा तत् कर्त्तुं न क्षमते॥ ७३॥

व्याख्या—यत् = यस्य, रूपम् = स्वरूपम्, कर्त्तुम् = रचयितुम्, उद्युक्तः = उद्यतः स्यात्, सर्वतः = सर्वतोभावेन, वीक्ष्य = अवलोक्य, तत् = तस्य, बिम्बम् = प्रतिकृतिम्, रचयेदिति भावः, कस्य = कस्यापि, यत् = रूपम्, तत् = आकृतिम्, अदृष्ट्वा = अनवलोक्य, तत् = तस्य, प्रतिबिम्बं कर्त्तुम् = विधातुम्, न = नहि, क्षमते = समर्थो भवति॥ ७३॥

हिन्दी—जिसकी आकृति बनाने के लिए जो तैयार हो, वह उसे हर ओर से देखकर ही उसकी आकृति का निर्माण करे। जिसका जो रूप हो, उसे बिना देखे कोई उसकी मूर्त्ति बनाने में समर्थ नहीं हो सकता है॥७३॥

यदिति। यस्य रूपम् आकृतिं कर्त्तुम् उद्युक्तः, सर्वतः वीक्ष्य तस्य बिम्बं प्रतिकृतिं कुर्य्यादिति शेषः, कस्य कस्यापीत्यर्थः, यत् रूपं तत् अदृष्ट्वा तत् प्रतिबिम्बं कर्तुं न क्षमते कोऽपीत्यर्थः॥ ७३॥

शिल्पाग्रे वाजिनं ध्यात्वा कुर्य्यादवयवानतः।
दिशानया च विभूतेः सर्वमानानि वाजिनाम्॥ ७४॥

अन्वयः—अतः शिल्पी अग्रे वाजिनं ध्यात्वा अवयवान् कुर्यात्। अनया दिशा वाजिनां विभूतेः सर्वाणि मानानि॥ ७४॥

व्याख्या—अतः = अस्मात् कारणात्, शिल्पी = चित्रकारः, अग्रे = सम्मुखे, वाजिनम् = अश्वम्, ध्यात्वा = ध्यानं कृत्वा, अवयवान् = शरीराङ्गानि, कुर्यात्। अनया दिशा = अनया रीत्या,

वाजिनाम् = घोटकानाम्, विभूतेः = ऐश्वर्यस्य, सर्वाणि = सकलानि, मानानि = परिमाणानि, विधेयानि इति ॥ ७४ ॥

हिन्दी—अतः मूर्त्तिकार पहले घोड़े का ध्यान कर पीछे उसके अङ्गों का निमार्ण करे। इसी ढंग से घोड़े के सामस्त अवयवों के सभी मानों की कल्पना करे ॥७४ ॥

शिल्पीति। अतः अस्मात् कारणात् शिल्पी अग्रे वाजिनम् अश्वं ध्यात्वा चिन्तयित्वा अवयवान् कुर्य्यात्। अनया दिशा रीत्या वाजिनां विभूतेः विभवस्य सर्वाणि मानानि परिमाणानि कार्य्याणीति शेषः ॥ ७४ ॥

श्मश्रुहीनमुखः कान्तप्रगल्भोत्तुङ्गनासिकः।
दीर्घोद्धतग्रीवमुखो ह्रस्वकुक्षिखुरश्रुतिः ॥ ७५ ॥
तुरप्रचण्डवेगश्च हंसमेघसमस्वनः।
नातिक्रूरो नातिमृदुर्देवसत्त्वो मनोरमः।
सुकान्तिगन्धवर्णश्च सद्गुणभ्रमरान्वितः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—श्मश्रुहीनमुखः कान्तप्रगल्भोतुङ्गनासिकः दीर्घोद्धतग्रीवमुखः ह्रस्वकुक्षिखुरश्रुतिः तुरप्रचण्डवेगश्च हंसमेघसमस्वनः नातिक्रूरः नातिमृदुः देवसत्त्वः मनोरमः सुकान्तिगन्धवर्णश्च सद्गुणभ्रमरान्वितः ॥ ७५-७६ ॥

व्याख्या—श्मश्रुभिः = कूर्चैः, हीनम् = रहितम्, मुखम् = आननम्, यस्य तादृशः, कान्तः = मनोहरः, प्रगल्भः = चतुरः, तथा उत्तुङ्गा = उन्नता, नासिका = नासा, यस्य तथाभूतः, दीर्घा = लम्बायमाना, उद्धता = उग्रा विशिष्टा वा, ग्रीवा = कण्ठः यस्य तादृशम्, मुखम् = आननम्, यस्य तथोक्तः, ह्रस्वा = लघ्वी, कुक्षिः = उदरम्, खुराः = शफाः, श्रुतयः = श्रोत्राणि, यस्य सः, प्रचण्डवेगः = तीव्रगतिः, हंसस्य = मरालस्य, मेघस्य = जलदस्य, च, समस्वनः = सदृशध्वनिः, नातिक्रूरः = नातिनृशंसः, नातिमृदुः = नातिकोमलः, देवसत्त्वः = अलौकिकबलसम्पन्नः, मनोरमः = आकर्षकः, सुकान्तिगन्धवर्णः = अत्याकर्षकगन्धः, तथा वर्णः = स्वरूपः, यस्य तादृशः, सद्गुणेन = शुभगुणान्वितेन, भ्रमरस्य = आवर्त्तस्य, अन्वितः = मिलितः, तुरगः = अश्वः ॥७५-७६ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के मुँह पर दाढ़ी की तरह लट के बाल न हो, चेहरा आकर्षक हो, नाक सुन्दर और ऊँची हो, गर्दन और मुँह लम्बे हों, कुछ ऊपर की ओर उठे हों, पेट, खुर और कान छोटे हो, अति तीव्रगामी हो, हंस और मेघ की तरह आवाज हो, स्वभाव से न अत्यन्त क्रूर हो और न अधिक कोमल, देवताओं के घोड़ों की तरह प्रचण्ड वेगवान् एवं अतिपराक्रमी हो; ऐसा मनमोहक घोड़ा उत्तम होता है तथा इनकी कान्ति सुन्दर और अच्छे गुण एवं भौंरी भी होनी चाहिए ॥७५-७६ ॥

श्मश्रुहीनेति। **तुरगेति**। श्मश्रुभिः हीनं मुखं यस्य तादृशः, कान्तः सुन्दरः प्रगल्भः तथा उत्तुङ्गा उन्नता नासिका यस्य तथाभूतः, दीर्घा उद्धता उत्कण्ठा ग्रीवा यस्य तादृशं मुखं यस्य तथोक्तः ह्रस्वाः कुक्षिः उदरं खुराः श्रुतयः कर्णा यस्य सः प्रचण्डवेगः, हंसस्य मेघस्य च समस्वनः तुल्यध्वनिः नातिक्रूरः, नातिमृदुः देवसत्त्वः अलौकिकबलसम्पन्नः, शोभनाः कान्तिगन्धवर्णाः यस्य तादृशः सद्गुणेन भ्रमरेण आवर्त्तविशेषेण च अन्वितः तुरगः मनोरमः अतिहृद्यः ॥७५-७६ ॥

भ्रमरस्तु द्विधावर्त्ती वामदक्षिणभेदतः।
पूर्णोऽपूर्णः पुनर्द्वेधा दीर्घो ह्रस्वस्तथैव च॥ ७७॥

अन्वयः—वामदक्षिणभेदतः द्विधावर्त्ती भ्रमरः। स तु पूर्णः अपूर्णः तथा दीर्घः ह्रस्वः चेति पुनः द्वेधा॥ ७७॥

व्याख्या—वामदक्षिणभेदतः= वामवर्त्ती तथा दक्षिणवर्त्ती, भेदात्= प्रकारात्, द्विधा= द्विप्रकारः, आवर्त्तः= घोटकशरीरस्थरोमवर्त्तुलम्, भवति। पुनः= भूयः, सः पूर्णः= पूरितः, अपूर्णः= असम्भृतः, तथा दीर्घः= विस्तृतः, ह्रस्वः= लघुश्च, द्विधा= द्विप्रकारका भवति॥७७॥

हिन्दी—फिर घोड़े की देह वाली भौंरी बाँयी या दाँयी ओर घुमी होती है। यह पुनः पूर्ण या अपूर्ण तथा बड़ा या छोटा आकार के भेद से दो प्रकार का होता है॥७७॥

भ्रमर इति। वामदक्षिणभेदतः वामांशदक्षिणांशभेदात् द्विधा द्विप्रकारः आवर्त्तः घूर्णरूपचिह्नविशेषः भ्रमरः। स तु पूर्णः अपूर्णः तथा दीर्घः ह्रस्वश्चेति पुनर्द्विधा द्विविधः॥ ७७॥

स्त्रीपुंदेहे वामदक्षौ यथोक्तफलदौ क्रमात्।
न तथा विपरीतौ तु शुभाशुभफलप्रदौ॥ ७८॥

अन्वयः—वामदक्षौ स्त्रीपुंदेहे क्रमात् यथोक्तफलदौ विपरीतौ तु तथा शुभाशुभफलप्रदौ न॥७८॥

व्याख्या—वामदक्षौ= सव्यासव्यौ, तौ= भ्रमरौ, स्त्रीपुंदेहे= अश्वायाः अश्वस्य च शरीरे, घोटिकायाः वामांशे तुरगस्य च दक्षिणांशे स्थितौ भ्रमरौ, यथोक्तौ= पूर्वकथितौ, फलदौ= परिणामप्रदौ, विपरीतौ= तद्विरुद्धौ, तु तथा= तेन रूपेण, शुभाशुभफलप्रदौ= कल्याणाकल्याणपरिणामप्रदौ, न भवतः, यतो हि—'वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणे' इति प्रामाण्यात्॥ ७८॥

हिन्दी—किन्तु ये भौंरियाँ तभी यथोक्त फल देने वाली होती हैं जब घोड़ी की बाँयी ओर तथा घोड़े की दाँई ओर घुमाव वाली हों। इसके विपरीत होने पर शुभ या अशुभ कोई फल नहीं मिलता॥ ७८॥

स्त्रीति। वामदक्षौ वामांशदक्षिणांशस्थितौ तौ भ्रमरौ स्त्रीपुंदेहे क्रमात् यथोक्तफलदौ अश्वाया वामांशे अश्वस्य दक्षिणांशे स्थिताविति भावः, 'वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः' इति वचनात् विपरीतौ तु तथा शुभाशुभफलप्रदौ न भवत इति शेषः॥ ७८॥

नीचोर्द्ध्वतिर्य्यङ्मुखतः फलभेदो भवेत्तयोः॥ ७९॥

अन्वयः—तयोः नीचोर्द्ध्वतिर्यङ्मुखतः फलभेदः भवेत्॥ ७९॥

व्याख्या—तयोः= पूर्वोक्तयोः भ्रमरयोः, नीचोर्द्ध्वतिर्यङ्मुखतः—नीचमुखतः= अधोमुखतः, ऊर्द्ध्वमुखतः= उन्नतमुखतः, तिर्यङ्मुखतः= वक्रस्वरूपात् च, फलभेदः—फलानाम्= परिणामानाम्, भेदः= प्रभेदः, भवेत्= स्यात्॥७९॥

हिन्दी—यदि ये भौंरियाँ नीची, ऊँची या टेढी झुकी हो तो तदनुसार फल में भी भेद होता है॥ ७९॥

नीचेति। तयोः भ्रमरयोः नीचादर्द्ध्वतिर्य्यङ्मुखतः निम्नमुखतः ऊर्द्ध्वमुखतः तिर्य्यङ्मुखतश्च फलभेदः फलानां प्रभेदः भवेत्॥७९॥

शङ्खचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः ।
प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः ।
स्वस्तिकस्रङ्मीनखड्गश्रीवत्साभः शुभो भ्रमः ॥ ८० ॥

अन्वयः—शङ्खचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः तथा प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः स्वस्तिकस्रङ्मीनखड्गश्रीवत्साभः भ्रमः शुभः ॥८० ॥

व्याख्या—शङ्खचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः—शङ्खसदृशः = कम्बुतुल्यः, चक्रसन्निभः = चक्रतुल्यः, गदासन्निभः = लौहमयशस्त्रभेदतुल्यः, पद्मसन्निभः = कमलतुल्यः, वेदिसन्निभः = वेदितुल्यः, स्वस्तिकम् = माङ्गलिकचिह्नयुक्तम्, तथा = तेनैव रूपेण, प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः—प्रासादाकृतिः = हर्म्यसदृशः, तोरणाकृतिः = बहिर्द्वाराकारः, धनुषाकृतिः, सुपूर्णकलशाकृतिः = सुपूरितकलशतुल्यः, तथा = किञ्च, स्वस्तिकस्रक् = माङ्गलिका माला, तत्समः, मीनाकृतिः = मत्स्याकारः, खड्गाकृतिः = करवालरूपः, श्रीवत्सः = विष्णुवक्षःस्थदक्षिणावर्त्तरोमावलिः, तत्समः, भ्रमः = आवर्त्तः, शुभः = कल्याणप्रदः ॥८० ॥

हिन्दी—घोड़ों की भौंरी शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेदी तथा स्वस्तिक के चिह्न की किंवा महल, राजद्वार, धनुष या पूर्णकलश के आकार की होती है। स्वस्तिक, माला, तलवार तथा श्रीवत्स के समान आकार वाली भौंरी शुभ मानी जाती है ॥ ८० ॥

भ्रमरस्यास्य आकृतिभेदं शुभकरत्वञ्च दर्शयति—शङ्खेति। शङ्खचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः शङ्खसदृशः चक्रसदृशः गदासदृशः पद्मसदृशः वेदिसदृशः स्वस्तिकं माङ्गलिकद्रव्यभेदः तत्सदृशः तथा प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशाकृतिः हर्म्यसदृशः तोरणप्रभः धनुषा तुल्यः सुपूर्णकुम्भाकृतिः किञ्च स्वस्तिकस्रङ्मीनखड्गश्रीवत्साभः स्वस्तिकस्रक् माङ्गलिका माला, तत्समः मीनरूपः खड्गाकृतिः श्रीवत्सः मणिविशेषः, तत्समः भ्रमः भ्रमरः शुभः ॥ ८० ॥

नासिकाग्रे ललाटे च शङ्खे कण्ठे च मस्तके।
आवर्त्तो जायते येषां ते धन्यास्तुरगोत्तमाः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—येषां नासिकाग्रे ललाटे शङ्खे कण्ठे च मस्तके आवर्त्तः जायते, ते तुरगोत्तमाः धन्याः ॥ ८१ ॥

व्याख्या—येषाम् = अश्वानाम्, नासिकाग्रे = नासाग्रभागे, ललाटे = भाले, शङ्खे = गण्डस्थले, कण्ठे = गलप्रदेशे, च = पुनः, मस्तके = शीर्षे, आवर्त्तः = भ्रमरी, जायते = भवति, ते = घोटकाः, तुरगोत्तमाः—तुरगेषु = तुरङ्गमेषु, उत्तमाः = उत्कृष्टाः भवन्ति ॥ ८१ ॥

हिन्दी—जिन घोड़ों की नाक के ऊपर ललाट, कनपटी, कण्ठ या माथे में भौंरी हो, वे अन्य घोड़ों में उत्कृष्ट माने जाते हैं ॥ ८१ ॥

नासिकाग्रे इति। येषां नासिकाग्रे, ललाटे, शङ्खे ललाटास्थ्नि कर्णसमीपस्थास्थ्नि वा कण्ठे मस्तके च आवर्त्तः भ्रमरचिह्नं जायते ते तुरगोत्तमाः धन्याः ॥ ८१ ॥

हृदि स्कन्धे गले चैव कटिदेशे तथैव च।
नाभौ कुक्षौ च पार्श्वाग्रे मध्यमाः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ८२ ॥

अन्वयः—हृदि स्कन्धे गले कटिदेशे तथैव नाभौ कुक्षौ पार्श्वाग्रे मध्यमाः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥८२ ॥

व्याख्या—हृदि = वक्षःस्थले, स्कन्धे = भुजमूले, गले = कण्ठे, कटिदेशे = मध्याङ्गे, तथैव = तेनैव प्रकारेण, नाभौ = उदरावर्त्ते, कुक्षौ = उदरे, पार्श्वाग्रे = पार्श्वयोः अग्रभागे, येषाम् = अश्वानाम्, आवर्त्तस्ते मध्यमाः = सामन्यस्तरीयाः घोटकाः, सम्प्रकीर्त्तिताः = कथिताः ॥८२ ॥

हिन्दी—जिन घोड़ों की छाती, कन्धा, गला, कमर, नाभि, पेट तथा बगल के अगले हिस्से में भौंरी होती हैं, वे मध्यम दर्जे के घोड़े कहे जाते हैं ॥ ८२ ॥

हृदीति। हृदि वक्षसि, स्कन्धे, गले, कटिदेशे, नाभौ, कुक्षौ, पार्श्वाग्रे च येषाम् आवर्त्तः ते मध्यमाः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ८२ ॥

ललाटे यस्य चावर्त्तद्वितयस्य समुद्भवः ।
मस्तके च तृतीयस्य पूर्णहर्षोऽश्व उत्तमः ॥ ८३ ॥

अन्वयः—यस्य ललाटे आवर्त्तद्वितयस्य मस्तके च तृतीयस्य समुद्‌भवः सः पूर्णहर्षः अश्वः उत्तमः ॥ ८३ ॥

व्याख्या—यस्य = अश्वस्य, ललाटे = भाले, आवर्त्तद्वितयस्य = भ्रमरकद्वयस्य, मस्तके = शीर्षे च, तृतीयस्य = आवर्त्तस्य, समुद्‌भवः = उत्पत्तिः, सः = अश्वः, पूर्णहर्षः = सकलानन्दः, अश्वः = घोटकः, उत्तमः = उत्कृष्टो भवेत् ॥८३ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के ललाट पर दो भौंरियाँ हों तथा तीसरी माथे पर हो, वह घोड़ा पूरी खुशी देने वाला उत्तम कोटि का माना जाता है ॥८३ ॥

ललाटे इति। यस्य ललाटे आवर्त्तद्वितयस्य मस्तके च तृतीयस्य आवर्त्तस्य समुद्‌भवः, सः पूर्णहर्षः पूर्णहर्षवर्द्धकत्वात् पूर्णानन्दः अश्वः उत्तमः ॥८३ ॥

पृष्ठवंशे यदावर्त्तो यस्यैकः सम्प्रजायते ।
स करोत्यश्वसङ्घातान् स्वामिनः सूर्य्यसंज्ञकः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—यदा यस्य पृष्ठवंशे एकः आवर्त्तः सम्प्रजायते, सः सूर्यसंज्ञकः स्वामिनः अश्वसङ्घातान् करोति ॥ ८४ ॥

व्याख्या—यदा = यत्र, यस्य = अश्वस्य, पृष्ठवंशे = कशेरुकायाम्, एकः = एकैव, आवर्त्तः = भ्रमिः, सम्प्रजायते = भवति, सः = असौ, सूर्यसंज्ञकः = सूर्य इत्याख्यः, अश्वो भवति, सोऽश्वः स्वामिनः = प्रभोः, अश्वसङ्घातान् = घोटकसमूहान्, करोति = अभिवर्द्धनं करोति ॥८४ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की रीढ़ पर एक भौंरी हो वह सूर्य नामक घोड़ा कहलाता है। यह घोड़ा अपने मालिक के घोड़ों को बढ़ाता है ॥ ८४ ॥

पृष्ठवंशे इति। यदा यस्य पृष्ठवंशे एकः आवर्त्तः सम्प्रजायते, सः सूर्य्यसंज्ञकः सूर्याख्यः अश्वः स्वामिनः अश्वसङ्घातान् अश्वसमूहान् करोति वर्द्धयति ॥ ८४ ॥

त्रयो यस्य ललाटस्था आवर्त्तास्तिर्य्यगुत्तराः ।
त्रिकूटः स परिज्ञेयो वजिवृद्धिकरः सदा ॥ ८५ ॥

अन्वयः—यस्य ललाटस्थाः त्रयः आवर्त्ताः तिर्यगुत्तराः सः त्रिकूटः सदा वाजिवृद्धिकरः ॥८५ ॥

व्याख्या—यस्य = घोटकस्य, ललाटस्थाः = भाले स्थिताः, त्रयः, आवर्ताः = भ्रमयः, तिर्यगुत्तराः = वक्रप्रधानाः, सः = असौ वाजी, त्रिकूटः = त्रिकूटसंज्ञकः अश्वः, सदा = सर्वदा, वाजिनाम् = घोटकानाम्, वृद्धिकरः = वर्द्धकरो भवति ॥८५ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के ललाट में तीन भौंरियाँ हों और तिरछे मुँह वाली हों तो वह त्रिकूटसंज्ञक घोड़ा होता है। वह जिसके घर होता है, उसके घर सदा घोड़ों की वृद्धि होती है ॥ ८५ ॥

त्रय इति। यस्य ललाटस्थाः त्रयः आवर्त्ताः तिर्य्यगुत्तराः कुटिलप्रधानाः, सः त्रिकूटः त्रिकूटनामा अश्वः सदा वाजिनां वृद्धिकरः ॥८५ ॥

एवमेव प्रकारेण त्रयो ग्रीवां समाश्रिताः।
समावर्त्ताः स वाजीशो जायते नृपमन्दिरे ॥ ८६ ॥

अन्वयः—एवमेव प्रकारेण यस्य त्रयः समावर्ताः ग्रीवां समाश्रिताः स वाजीशः नृपमन्दिरे जायते ॥ ८६ ॥

व्याख्या—एवमेव प्रकारेण = अनेनैव रूपेण, यस्य = अश्वस्य, त्रयः समावर्त्ताः = भ्रमयः, ग्रीवाम् = गलप्रदेशे, समाश्रिताः = समुत्पन्नाः, सः = असौ, वाजीशः—वाजिनाम् = अश्वानाम्, ईशः = प्रभुः, घोटकोत्तम इति, नृपमन्दिरे = राजगृहे एव, जायते = तिष्ठतीति भावः ॥ ८६ ॥

हिन्दी—इसी तरह जिस घोड़े के गले में ताने भौंरियाँ हों, वह सर्वश्रेष्ठ घोड़ा कहलाता है। ऐसा घोड़ा राजमन्दिर में ही पाया जाता है ॥ ८६ ॥

एवमिति। एवम्प्रकारेण एव यस्य त्रयः समावर्त्ताः ग्रीवां समाश्रिताः ग्रीवायामुत्पन्ना इत्यर्थः, स वाजीशः अश्वश्रेष्ठः नृपमन्दिरे जायते भवति तिष्ठतीत्यर्थः ॥८६ ॥

कपोलस्थौ यदावर्त्तौ दृश्येते यस्य वाजिनः।
यशोवृद्धिकरौ प्रोक्तौ राज्यवृद्धिकरौ मतौ ॥ ८७ ॥

अन्वयः—यदा यस्य वाजिनः कपोलस्थौ द्वौ आवर्त्तौ दृश्येते तदा तस्य तौ यशोवृद्धिकरौ प्रोक्तौ ॥ ८७ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्, यस्य वाजिनः = अश्वस्य, कपोलस्थौ = गण्डस्थितौ, द्वौ, आवर्तौ = रोमचक्रे, दृश्येते = अवलोक्येते, तदा = तस्मिन् काले, तस्य = अश्वस्य, तौ = आवर्त्तौ, यशोवृद्धिकरौ = कीर्त्तिसंवर्द्धकौ, प्रोक्तौ = कथितौ, तथा राज्यवृद्धिकरौ = समृद्धिसंवर्द्धकौ, मतौ = कथितौ ॥८७ ॥

हिन्दी—यदि किसी घोड़े के दोनों गालों पर दो भौरियाँ हों तो ये दोनों मालिक की कीर्त्ति एवं राज्य बढ़ाने वाली मानी गई हैं ॥ ८७ ॥

कपोलस्थाविति। यदा यस्य वाजिनः अश्वस्य कपोलस्थौ यौ आवर्त्तौ दृश्येते, तदा तस्य तौ आवर्त्तौ यशोवृद्धिकरौ प्रोक्तौ तथा राज्यवृद्धिकरौ मतौ ॥ ८७ ॥

एको वाथ कपोलस्थो यस्यावर्त्तः प्रदृश्यते।
सर्वनामा स विख्यातः स इच्छेत् स्वामिनाशनम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः—अथवा यस्य एकः कपोलस्थः आवर्त्तः प्रदृश्यते सः सर्वनामा विख्यातः, स च स्वामिनाशनम् इच्छेत् ॥ ८८ ॥

व्याख्या—अथवा = वा, यस्य = अश्वस्य, एकः = मात्रैकः, कपोलस्थः = गण्डस्थले स्थितः, आवर्त्तः = रोमचक्रम्, प्रदृश्यते = अवलोक्यते, सः = अश्वः, सर्वनामा = 'सर्व' इत्याख्यः,

विख्यातः = लोके प्रसिद्धः, स च = अश्वः, स्वामिनाशनम्—स्वामिनः = प्रभोः, नाशनम् = विनाशम्, इच्छेत् = अभिलषेत् ॥ ८८ ॥

हिन्दी—अथवा-जिस घोड़े के एक गाल पर एक ही भौंरी हो, वह 'सर्व' नाम से जाना जाता है। यह घोड़ा अपने मालिक का विनाश चाहता है ॥ ८८ ॥

एक इति। अथ वा यस्य एकः कपोलस्थः आवर्त्तः प्रदृश्यते, स अश्वः सर्वनामा विख्यातः, स च स्वामिनाशनम् इच्छेत् ॥ ८८ ॥

गण्डसंस्थो यदावर्त्तो वाजिनो दक्षिणाश्रितः।
स करोति महासौख्यं स्वामिनं शिवसंज्ञकः ॥ ८९ ॥

अन्वयः—यदा यस्य वाजिनः गण्डसंस्थः आवर्त्तः दक्षिणाश्रितः सः शिवसंज्ञकः स्वामिनं महासौख्यं करोति ॥ ८९ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, यस्य वाजिनः = यस्याश्वस्य, गण्डसंस्थः = कपोलस्थः, आवर्त्तः = भ्रमिः, दक्षिणाश्रितः = सव्येतरकपोलस्थितः, सः = अश्वः, शिवसंज्ञकः = शिवाख्यः, घोटकः, स्वामिनम् = स्वपतिम्, महासौख्यम् = अतिसुखिनम्, करोति = निष्पादयति ॥ ८९ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के दायें गाल पर एक भौंरी हो, वह 'शिव' नामक घोड़ा मालिक के लिए सदा सुखकारी होता है ॥ ८९ ॥

गण्डेति। यदा यस्य वाजिनः गण्डसंस्थः आवर्त्तः दक्षिणाश्रितः दक्षिणगण्डस्थित इत्यर्थः, सः शिवसंज्ञकः शिवाख्यः अश्वः स्वामिनं महासौख्यम् अतिसुखिनं करोति । । ८९ ॥

तद्वद्वामाश्रितः क्रूरः प्रकरोति धनक्षयम्।
इन्द्राक्षौ तावुभौ शस्तौ नृपराज्यविवृद्धिदौ ॥ ९० ॥

अन्वयः—तद्वत् वामाश्रितः आवर्त्तः क्रूरः धनक्षयं प्रकरोति। तौ उभौ इन्द्राक्षौ शस्तौ नृपराज्यविवृद्धिदौ ॥ ९० ॥

व्याख्या—तद्वत् = तथैव, वामाश्रितः = सव्यकपोलस्थः, आवर्त्तः = रोमचक्रम्, क्रूरः सन्, धनक्षयम् = धननाशम्, प्रकरोति = विदधाति। तौ उभौ = युगपदुभयकपोलस्थितौ, चेत्, इन्द्राक्षौ = एतदाख्यौ, शस्तौ = विख्यातौ, नृपस्य = राज्ञः, राज्यविवृद्धिदौ = राज्यवृद्धिकरौ स्तः ॥ ९० ॥

हिन्दी—इसी तरह बाँयी ओर गाल पर यदि घोड़े को भौंरी हो तो वह घोड़ा क्रूरसंज्ञक होता है तथा स्वामी के धन का विनाश करता है। यदि गण्डस्थल के दोनों और भौरियाँ पड़ी हों तो वह घोड़ा 'इन्द्र' नामक होता है। ऐसा घोड़ा उत्तम एवं राजा के राज्य की वृद्धि कराने वाला होता है ॥ ९० ॥

तद्वदिति। तद्वत् तथा वामाश्रितः वामगण्डस्थ इत्यर्थः, आवर्त्तः क्रूरः सन् धनक्षयं प्रकरोति। तौ उभौ युगपत् उभयगण्डस्थौ चेत् इन्द्राक्षौ शस्तौ कथितौ, नृपस्य राज्यवृद्धिदौ च ॥ ९० ॥

कर्णमूले यदावर्त्तौ स्तनमध्ये तथापरौ।
विजयाख्यौ उभौ तौ तु युद्धकाले यशःप्रदौ ॥ ९१ ॥

अन्वयः—यदा कर्णमूले आवर्त्तौ तथा स्तनमध्ये अपरौ तदा तौ विजयाख्यौ युद्धकाले यशःप्रदौ ॥ ९१ ॥

व्याख्या—यदा कर्णमूले—कर्णस्य = श्रवणस्य, मूले = मूलभागे, आवर्त्तौ = रोमचक्रे, स्तः, तदा = तेनैव रूपेण, स्तनमध्ये = कुचान्तराले, अपरौ = अन्यौ, द्वौ = उभौ, आवर्त्तौ = रोमवर्त्तुले, भवेताम्, तदा तौ, उभौ = द्वौ, विजयाख्यौ = विजयनाम्नि, युद्धकाले = समराङ्गणे, यशःप्रदौ = कीर्त्तिकरौ भवेताम् ॥ ९१ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के कान की जड़ में दो तथा स्तनों के बीच दो भौरियाँ हों, वे 'विजय' नाम के होते हैं। ये युद्धकाल में विजयी एवं यशस्वी बनाते हैं ॥ ९१ ॥

कर्णमूले इति। यदा कर्णमूले आवर्त्तौ तथा स्तनमध्ये अपरौ द्वौ आवर्त्तौ भवेतां तदा तौ उभौ विजयाख्यौ युद्धकाले यशःप्रदौ च ॥ ९१ ॥

स्कन्धपार्श्वे यदावर्त्तौ स भवेत् पद्मलक्षणः।
करोति विविधान् पद्मान् स्वामिनः सततं मुखम् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—यदा स्कन्धपार्श्वे आवर्त्तौ तदा सः अश्वः पद्मलक्षणः भवेत्। स च स्वामिनः विविधान् पद्मान् सततं सुखं करोति ॥९२ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, स्कन्धपार्श्वे—स्कन्धयोः = अंसयोः, पार्श्वेः = समीपे, आवर्त्तौ = घोटकशरीरस्थरोमवर्तुले, भवेताम्, तदा = तस्मिन् काले, सः = अश्वः, पद्मलक्षणः = पद्माख्यः, भवेत् = स्यात्। स चाश्वः, स्वामिनः = प्रभोः, विविधान् = अनेकान्, पद्मान् = पद्मसंख्यकान् धनानि, तथा सततम् = निरन्तरम्, सुखम् = आनन्दम्, करोति = प्रददाति ॥ ९२ ॥

हिन्दी—कन्धे के दोनों ओर यदि भौंरियाँ हों तो वह घोड़ा 'पद्म' नामक होता है। ऐसा घोड़ा मालिक के सुख की वृद्धि और अनन्त धनराशि देने वाला होता है ॥ ९२ ॥

स्कन्धपार्श्वे इति। यदा स्कन्धयोः पार्श्वे आवर्त्तौ भवेतां तदा सः अश्वः पद्मलक्षणः पद्मनामा भवेत्, स च स्वामिनः विविधान् पद्मान् पद्मसंख्यकधनानि इत्यर्थः, तथा सततं सुखं करोति ॥९२ ॥

नासामध्ये यदावर्त्त एको वा यदि वा त्रयम्।
चक्रवर्त्ती स विज्ञेयो वाजी भूपालसंज्ञकः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—यदा नासामध्ये एको वा आवर्त्तः यदि वा त्रयं सः वाजी भूपालसंज्ञकः चक्रवर्त्ती विज्ञेयः ॥ ९३ ॥

व्याख्या—यदा = यदि, नासामध्ये = नासिकायारन्तराले, एकः = मात्रैकः, वा = अथवा, आवर्त्तः = रोमचक्रम्, यदि = चेत्, वा = अथवा, त्रयम् = त्रिसंख्यकम्, आवर्त्तः = रोमवर्त्तुलम्, स्यात् = भवेत्, तदा सः = असौ, वाजी = अश्वः, भूपालसंज्ञकः = 'भूपालः' इत्याख्यः, चक्रवर्त्ती = अश्वानां सम्राट् इति, विज्ञेयः = विशेषेण बोध्यः ॥ ९३ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की नाक के बीच में एक या तीन भौंरी हो, वह 'भूपाल' नामक घोड़ा होता है तथा उसे अश्वसम्राट् जानना चाहिए ॥ ९३ ॥

नासेति। यदा नासायाः नासिकायाः मध्ये एको वा आवर्त्तः यदि वा त्रयम् आवर्त्तानामिति शेषः, स्यात् स वाजी भूपालसंज्ञकः भूपालाख्यश्चक्रवर्त्ती अश्वसम्राट् विज्ञेयः ॥९३ ॥

कण्ठे यस्य महावर्त्तो एकः श्रेष्ठः प्रजायते।
चिन्तामणिः स विज्ञेयश्चिन्तितार्थसुखप्रदः ॥ ९४॥

अन्वयः—यस्य कण्ठे एकः श्रेष्ठः महावर्त्तः प्रजायते सः चिन्तामणिः विज्ञेयः, चिन्तितार्थसुखप्रदः॥ ९४॥

व्याख्या—यस्य = अश्वस्य, कण्ठे = गलप्रदेशे, एकः = मात्रैकः, श्रेष्ठः = उत्कृष्टः, महान् = विशालः, आवर्त्तः = रोमवर्त्तुलम्, प्रजायते = समुत्पन्नो भवति, सः = अश्वः, चिन्तामणिः = चिन्तामणिनामा, विज्ञेयः = बोध्यः, चिन्तितार्थसुखप्रदः = अभिलषितार्थेषु आनन्दप्रदो भवति ॥९४॥

हिन्दी—जिस घोड़े के गले में एक उत्कृष्ट बड़ी-सी भौंरी हो, वह घोड़ा 'चिन्तामणि' नाम से जाना जाता है। वह जिसके पास होता है, उसे समस्त अभिलषित वस्तु देता है ॥ ९४॥

कण्ठे इति। यस्य कण्ठे एकः श्रेष्ठः उत्कृष्टः महान् आवर्त्तः प्रजायते सः अश्वः चिन्तामणिः विज्ञेयः, चिन्तामणिनामा चिन्तितार्थेषु अभिलपितार्थेपु सुखप्रदः॥ ९४॥

शुल्काख्यौ भालकण्ठस्थौ आवर्त्तौ वृद्धिकीर्त्तिदौ ॥ ९५॥

अन्वयः—भालकण्ठस्थौ आवर्त्तौ शुल्काख्यौ वृद्धिकीर्त्तिदौ ॥९५॥

व्याख्या—भालकण्ठस्थौ = ललाटगलदेशस्थितौ, आवर्त्तौ = रोमवर्त्तुले, शुल्काख्यौ = शुल्कनाम्नी, वृद्धिकीर्त्तिदौ = अभ्युदययशस्करौ भवतः॥९५॥

हिन्दी—जिस घोड़े के ललाट और कण्ठ में दो भौंरियाँ होती हैं, वे दोनों शुल्कसंज्ञक होती हैं। ये घोड़े अभ्युदय एव कीर्त्ति देने वाले होते हैं ॥९५॥

शुल्काविति। भालकण्ठस्थौ कपालकण्ठवर्त्तिनौ आवर्त्तौ शुल्काख्यौ वृद्धिकीर्त्तिदौ अभ्युदययशस्करौ च॥ ९५॥

यस्यावर्त्तौ वक्त्रगतो कुक्ष्यन्ते वाजिनो यदि।
स नूनं मृत्युमाप्नोति कुर्य्याद्वा स्वामिनाशनम्॥ ९६॥

अन्वयः—यदि यस्य वाजिनः वक्त्रगतौ कुक्ष्यन्ते च आवर्त्तः सः नूनं मृत्युमाप्नोति वा स्वामिनाशनं कुर्यात्॥ ९६॥

व्याख्या—यदि = चेत्, यस्य = पूर्वोक्तस्य, वाजिनः = अश्वस्य, वक्त्रगतौ = मुखवर्त्तिनौ, कुक्ष्यन्ते = उदरस्थे, च = पुनः, आवर्त्तः = घोटकशरीरस्थरोममण्डलम्, सः = घोटकः, नूनम् = निश्चितम्, मृत्युम् = मरणम्, आप्नोति = प्राप्नोति, वा = अथवा, स्वामिनाशनम् = प्रभुविघातनम्, कुर्यात् = विदध्यात्॥ ९६॥

हिन्दी—यदि किसी घोड़े के मुँह में या पेट के अन्तिम भाग में भौंरियाँ हों तो वह घोड़ा या तो स्वयं मरेगा या मालिक को ही ले डूबेगा॥ ९६॥

यस्येति। यदि यस्य वाजिनः वक्त्रगतौ मुखवर्त्तिनौ तथा कुक्ष्यन्ते जठरप्रान्ते च आवर्त्तः, सः नूनं निश्चितं मृत्युमाप्नोति वा स्वामिघातनं कुर्य्यात्॥ ९६॥

जानुसंस्था यदावर्त्ताः प्रवासक्लेशकारकाः।
वाजिमेढ्रे यदावर्त्तो विजयश्रीविनाशनः॥ ९७॥

अन्वयः—यत् आवर्त्ताः जानुसंस्थाः ते प्रवासे क्लेशकारकाः। वाजिनः मेढ्रे यः आवर्त्तः सः विजयश्रीविनाशनः ॥ ९७ ॥

व्याख्या—यत् = ये, आवर्त्ताः = रोमवर्त्तुलानि, जानुसंस्थाः = ऊरुसन्ध्यस्थले स्थिताः, ते प्रवासे = विदेशे, क्लेशकारकाः– यः क्लेशः = कष्टम्, तं कुर्वन्ति = निष्पादयन्ति इति तथोक्ताः, भवन्ति। वाजिनः = अश्वस्य यस्य मेढ्रे = लिङ्गे, यः आवर्त्तः = रोमभ्रमिः, सः = असौ, विजयश्रीः = जयनं लक्ष्मींश्च, विनाशनम् = विघातकम्भवति ॥ ९७ ॥

हिन्दी—जिन घोड़ों के घुटनों पर भौंरियाँ हों, उनसे मालिक को परदेश में विशेष कष्ट होता है। जिस घोड़े के लिङ्ग पर भौंरी हो, वे मालिक की विजय और लक्ष्मी का विनाशक होता है।

जान्विति। यदावर्त्ताः ये आवर्त्ता जानुसंस्थाः, ते प्रवासे यः क्लेशः तं कुर्वन्तीति तथोक्ताः भवन्ति। वाजिनः मेढ्रे शिश्ने यः आवर्त्तः, सः विजयश्रीविनाशनः भवति ॥ ९७ ॥

त्रिकसंस्थो यदावर्त्तस्त्रिवर्गस्य प्रणाशनः।
पुच्छमूले यदावर्त्तो धूमकेतुरनर्थकृत् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—यत् आवर्त्तः त्रिकसंस्थः सः त्रिवर्गस्य प्रणाशनः, पुच्छमूले यत् आवर्त्तः सः धूमकेतुः अनर्थकृत् ॥ ९८ ॥

व्याख्या—यत् = यः, आवर्त्तः = घोटकशरीरस्थरोमवर्त्तुलम्, त्रिकसंस्थः = पृष्ठवंशे स्थितः, सः = असौ, त्रिवर्गस्य = धर्मार्थकामानाम्, प्रणाशनः = विघातकः, पुच्छमूले—पुच्छस्य = लाङ्गुलस्य, मूले = मूलभागे, यत् = यः, आवर्त्तः = रोममण्डलम्, सः = असौ, धूमकेतुः = धूमकेतुनामा, अनर्थकृत् = अनिष्टकारको भवति ॥ ९८ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की रीढ की हड्डी के निचले भाग में भौंरी हो तो वह धर्म-अर्थ-काम का नाशक होता है। घोड़े के दुम के मूल में यदि भौंरी हो तो वह धूमकेतुसंज्ञक होता है तथा अनर्थकारी होता है ॥ ९८ ॥

त्रिकेति। य आवर्त्तः त्रिकसंस्थः पृष्ठवंशाधोभागस्थः, सः त्रिवर्गस्य त्रयाणां वर्गः त्रिवर्गः तस्य धर्मार्थकामानामित्यर्थः प्रणाशनः। पुच्छमूले यः आवर्त्तः, सः धूमकेतुः धूमकेतुनामा अत एव अनर्थकृत् अनिष्टकारकः ॥ ९८ ॥

गुह्यपुच्छत्रिकावर्त्ती स कृतान्तो भयप्रदः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—यः गुह्ये पुच्छे त्रिके च आवर्त्ती सः कृतान्तः भयप्रदः ॥ ९९ ॥

व्याख्या—यः = घोटकः, गुह्ये = गुह्याङ्गे, पुच्छे = लाङ्गुले, त्रिके = पृष्ठाधारे, च = पुनः, आवर्त्ती = रोममण्डलवान् भवेत्, सः = असौ, कृतान्तः = कृतान्तसंज्ञकः, तथा भयप्रदः = भीतिकरो भवति ॥ ९९ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की गुदा, पूँछ तथा रीढ की हड्डी के नीचले भाग में भौंरी हों, उसका नाम 'कृतान्त' है तथा वह अनर्थकारी होता है ॥ ९९ ॥

गुह्येति। यः अश्वः गुह्ये मलद्वारे, पुच्छे, त्रिके च आवर्त्ती आवर्त्तवान् सः कृतान्तः कृतान्तनामा अत एव भयप्रदः ॥ ९९ ॥

मध्यदण्डा पार्श्वगमा सैव शतपदी कचे।
अतिदुष्टाङ्गुष्ठमिता दीर्घा दुष्टा यथा यथा ॥ १०० ॥

अन्वयः—पार्श्वगमा मध्यदण्डा अङ्गुष्ठमिता अतिदुष्टा सैव शतपदी कचे यथा यथा दीर्घा तथा तथा दुष्टा भवति॥ १०० ॥

व्याख्या—पार्श्वगमा = उभयोः पार्श्वयोः गमनशीला, मध्यदण्डा = घोटकस्य मध्यदण्डाख्य-चिह्नविशेषः, अङ्गुष्ठमिता = अङ्गुल्यैकमिता, चेत् = यदि, अतिदुष्टा = अधिकक्रूरा, सैव, शतपदी = शतचरणा, कचे = केशे, वर्त्तमाना सती, यथा यथा दीर्घा = लम्बायमाना, तथा तथा दुष्टा = दुर्वृत्ता भवतीति भावः॥ १०० ॥

हिन्दी—जिसकी पूँछ दोनों बगल की ओर आये और बीच में दण्डाकार चिह्न हो और वह एक अंगुल लम्बा हो तो उसे मध्यदण्ड या शतपदी कहते हैं। यह अतिदुष्ट मानी जाती है। फिर जैसे-जैसे यह बढती है इसकी दुष्टता भी बढ़ती जाती है॥ १०० ॥

मध्यदण्डेति। पार्श्वगमा पार्श्ववर्त्तिनी मध्यदण्डा अश्वस्य तदाख्यचिह्नविशेष इत्यर्थः, अङ्गुष्ठमिता चेत् अतिदुष्टा, सैव शतपदी शतचरणा शतशाखा करे केशे वर्त्तमाना सती यथा यथा दीर्घा तथा तथा दुष्टा भवतीत्यर्थः॥ १०० ॥

अश्रुपातो हनुगण्डहृद्गलप्रोथवस्तिषु।
कटिशङ्खजानुमुष्ककुन्नाभिगुदेषु च।
दक्षकुक्षौ दक्षपादे त्वशुभो भ्रमरः सदा॥ १०१ ॥

अन्वयः—हनुगण्डहृद्गलप्रोथवस्तिषु तथा कटिशङ्खजानुमुष्ककुन्नाभिगुदेषु भ्रमरः अश्रुपातः किञ्च दक्षकुक्षौ दक्षपादे च सदा अशुभः॥१०१ ॥

व्याख्या—हनुगण्डहृद्गलप्रोथवस्तिषु—हनुः = चिबुकः, गण्डः = गल्लः, हृद् = वक्षःस्थलम्, गलः = ग्रीवा, प्रोथः = अश्वनासारन्ध्रम्, वस्तिः = नाभेरधोभागः मूत्राशयश्चेति, तेषु, तथा कटिशङ्खजानुमुष्ककुन्नाभिगुदेषु—कटिः = काञ्चीपदम्, शङ्खः = अश्वगण्डः, जानुः = ऊरुपर्व, मुष्कः = अण्डकोशः, ककुद् = अंसकूटः, नाभिः = तुन्दकूपी, गुदम् = मलद्वारम्, तेषु च भ्रमरः = घोटकशरीरस्थरोमवर्त्तुलम्, अश्रुपातः = क्रन्दनकारकः, किञ्च दक्षकुक्षौ = दक्षिणोदरे, दक्षपादे = सव्येतरचरणे च, सदा = सर्वदा, अशुभः = अकल्याणकरो भवति॥१०१ ॥

हिन्दी—यदि घोड़े की ठुड्डी, कनपटी, छाती, गला, थूथन, पेड़ू, कमर, कनपटी के समीप की जगह, घुटने, अण्डकोश, कंधे के मांसपिण्ड (डिल्ला या कुबर), ढोढी या तुन्नी एवं मलद्वार में भौंरी हो तो वह मालिक को रुलाने वाली होती है और दायें पेट या दायें पैर में भौंरी हो तो हमेशा अशुभ फल देने वाली हाती है॥ १०१ ॥

अश्रुपातेति। हनुगण्डहृद्गलप्रोथवस्तिषु हनुः कपोलस्य उपरिभागः, गण्डः कपोलः, हृद् हृदयं, गलः कण्ठः, प्रोथः मुखाग्रभागः, वस्तिः नाभ्यधोभागः, तेषु तथा कटिशङ्खजानुमुष्ककुन्नाभिगुदेषु कटिः मध्यदेशः, शङ्खः ललाटास्थि, जानु, मुष्कः, ककुद्, नाभिः गुदम् अपानदेशः तेषु च भ्रमरः अश्रुपातः क्रन्दनकारकः, किञ्च दक्षकुक्षौ दक्षपादे च सदा अशुभः॥ १०१ ॥

गलमध्ये पृष्ठमध्ये उत्तरोष्ठेऽधरे तथा।
कर्णनेत्रान्तरे वामकुक्षौ चैव तु पार्श्वयोः।

ऊरुषु च शुभावर्त्तौ वाजिनामग्रपादयोः॥ १०२ ॥

अन्वयः—वाजिनां गलमध्ये पृष्ठमध्ये उत्तरोष्ठे अधरे कर्णनेत्रयोः अन्तरे वामकुक्षौ पार्श्वयोः ऊरुषु तथा अग्रपादयोः शुभावर्त्तौ ॥१०२॥

व्याख्या—वाजिनाम् = घोटकानाम्, गलमध्ये = कण्ठस्यान्तरे, पृष्ठमध्ये = अश्वपृष्ठस्य मध्यभागे, उत्तरोष्ठे = ऊर्ध्वोष्ठे, अधरे = अधस्तने ओष्ठे, कर्णनेत्रयोः = श्रवणनयनयोः, अन्तरे = मध्ये, वामकुक्षौ = सव्योदरे, पार्श्वयोः = पार्श्वपक्षयोः, ऊरुषु = जानूपरिभागेषु, तथा = तेनैव प्रकारेण, अग्रपादयोः = सम्मुखस्थचरणयोः, आवर्त्तौ = रोममण्डले, शुभौ = मङ्गलदायकौ वा कल्याणकरौ भवतीत्यर्थः॥ १०२ ॥

हिन्दी—घोड़े के गले या पीठ के बीच में ऊपर या नीचे के होठ पर, कान और आँख के बीच में बाँये पेट पर, दोनों बगलों में, दोनों जंघाओं पर, दोनों अगले पावों में यदि भौंरियाँ हों तो अत्यधिक कल्याणकारी होती हैं॥ १०२ ॥

गलमध्ये इति। वाजिनाम् अश्वानां गलमध्ये, पृष्ठमध्ये, उत्तरोष्ठे, अधरे, कर्णनेत्रयोः अन्तरे मध्ये वामकुक्षौ पार्श्वयोः ऊरुषु तथा अग्रपादयोः सम्मुखस्थपादयोः शुभावर्त्तौ आवर्त्तौ शुभकरावित्यर्थः॥ १०२ ॥

आवर्त्तौ सान्तरौ भाले सूर्य्यचन्द्रौ शुभप्रदौ।
मिलितौ तौ मध्यफलौ ह्यतिलग्नौ तु दुष्फलौ॥ १०३॥

अन्वयः—भाले सान्तरौ आवर्त्तौ सूर्यचन्द्रौ शुभप्रदौ। हि तौ मिलितौ मध्यफलौ अतिलग्नौ दुष्फलौ॥ १०३ ॥

व्याख्या—भाले = मूर्धनि, सान्तरौ = अन्तरालेन सहितौ, आवर्त्तौ = रोमवर्त्तुले, सूर्यचन्द्रौ = सूर्यचन्द्राख्यौ, शुभप्रदौ = कल्याणकरौ भवतः। तौ = आवर्त्तौ, मिलितौ = समीपस्थौ, मध्यफलौ = सामान्यलाभकरौ भवतः, तथा अतिलग्नौ = अतिनिकटस्थौ, चेत् तदा, दुष्फलौ = अशुभफलदौ भवतः॥१०३॥

हिन्दी—घोड़ों के ललाट पर यदि कुछ दूरी पर दो भौंरियाँ हों तो वे सूर्य-चन्द्र नामवाली होती हैं। ये भौंरियाँ शुभफलदायी होती हैं। यदि थोड़ी सटी हों तो मध्यम फलदायी होती हैं और अत्यधिक सटी भौंरियाँ दुष्ट फल देनेवाली होती हैं॥ १०३ ॥

आवर्त्ताविति। भाले ललाटे सान्तरौ पृथक् स्थानस्थौ आवर्त्तौ सूर्य्यचन्द्रौ सूर्य्यचन्द्रनामानौ शुभप्रदौ भवतः। तौ मिलितौ अपृथक्स्थौ मध्यफलौ, अतिलग्नौ परस्परातिसन्निहितौ तु दुष्फलौ मन्दफलौ भवतः॥१०३॥

आवर्त्तत्रितयं भाले शुभं चोद्ध्र्वन्तु सान्तरम्।
अशुभं चातिसंलग्नमावर्त्तद्वितयं तथा॥ १०४॥

अन्वयः—भाले ऊद्ध्र्वं सान्तरम् आवर्त्तत्रितयं शुभम्। अतिसंलग्नम् आवर्त्तद्वितयं अशुभम्॥१०४॥

व्याख्या—भाले = ललाटे, उद्ध्र्वम् = उपरिमुखम्, सान्तरम् = पृथक्स्थानस्थम्, आवर्त्तत्रितयम् = त्रिसंख्यकानि रोमवर्त्तुलानि, शुभम् = शुभकरम्, तथा अतिसंलग्नम् = अतिसन्निकटवर्त्तिनम्, आवर्त्तद्वितयम् = द्विसंख्यकौ, आवर्त्तौ = रोममण्डले, अशुभम् = अशुभफलदं भवति॥१०४॥

हिन्दी—यदि घोड़े के ललाट में ऊपर की ओर मुख किये तीन भौंरियाँ अलग-अलग हो तों शुभ फलदायक होती हैं। वही दो भौंरियाँ यदि सटी हुई ललाट पर हों तो अशुभ फलदायक होती हैं॥ १०४॥

आवर्त्तेति। भाले ऊद्ध्र्वम् ऊद्ध्र्वमुखं सान्तरं पृथक्स्थम् आवर्त्तत्रितयं शुभम्। तथा अतिसंलग्नम् अतिसन्निहितम् आवर्त्तद्वितयम् अशुभम्॥ १०४॥

त्रिकोणं त्रितयं भाले आवर्त्तानां तु दुःखदम्।
गलमध्ये शुभस्त्वेकः सर्वाशुभनिवारणः॥ १०५॥

अन्वयः—भाले आवर्तानां त्रिकोणं त्रितयं दुःखदम्। गलमध्ये तु एकः शुभः सर्वाशुभनिवारणः॥ १०५॥

व्याख्या—भाले = ललाटे, यदि आवर्त्तानाम् = रोमवर्त्तुलानाम्, त्रिकोणम् = त्रिकोणाकारम्, त्रितयम् = आवर्त्तत्रयम्, दुःखदम् = क्लेशकारकं भवति, गलमध्ये = कण्ठमध्ये, तु = यदि, एकः = मात्रैकः, आवर्त्तः = रोममण्डलम्, शुभः = शुभकरः, सर्वेषाम् = सकलानाम्, अशुभानाम् = अहितानाम्, निवारणः = अपसारणं भवति॥ १०५॥

हिन्दी—यदि घोड़े के ललाट में त्रिकोणाकार तीन भौंरियाँ हों तो वे दुःखदायी होती हैं और गले के बीच में यदि एक भौंरी हो तो वह शुभफल देने वाली तथा सभी तरह के अशुभ फलों को दूर करने वाली होती है॥ १०५॥

त्रिकोणमिति। भाले आवर्त्तानां त्रिकोणं त्रितयं त्रिकोणावर्त्तत्रयमित्यर्थः दुःखदम्। गलमध्ये तु एकः आवर्त्तः शुभः शुभकरः, सर्वेषाम् अशुभानां निवारणश्च भवति॥१०५॥

अधोमुखः शुभः पादे भाले चोद्ध्र्वमुखो भ्रमः।
न चैवात्यशुभा पृष्ठमुखी शतपदी मता॥ १०६॥

अन्वयः—पादे अधोमुखः भाले ऊद्ध्र्वमुखः भ्रमः शुभः। पृष्ठमुखी प्रत्यङ्मुखी शतपदी अत्यशुभा न च मता॥ १०६॥

व्याख्या—पादे = चरणे, अधोमुखः = नताननः, भाले = मूर्धनि, ऊद्ध्र्वमुखः = उन्नताननः, भ्रमः = आवर्त्तः, शुभः = कल्याणप्रदो भवति। पृष्ठमुखी = पश्चिमाङ्गोन्मुखी, प्रत्यङ्मुखी, अन्तर्मुखी, विरुद्धोन्मुखी वा, शतपदी = कर्णकीटी, अत्यशुभा = अत्यमङ्गला, न च = नैव, मता = कथिता॥१०६॥

हिन्दी—घोड़े के पैरों में अधोमुख तथा ललाट में ऊर्ध्वोन्मुख भौंरी होती है। पीठ की ओर मुख वाली या भीतर की ओर मुख वाली शतपदी भौंरी होती है। यह सदैव अशुभ फल देने वाली ही नहीं होती है॥ १०६॥

अधोमुख इति। पादे अधोमुखः, तथा भाले ऊद्ध्र्वमुखः भ्रमः आवर्त्तः शुभः। पृष्ठमुखी प्रत्यङ्मुखी शतपदी अत्यशुभा अत्यन्ताशुभकरी न च मता॥ १०६॥

मेढ्रस्य पश्चाद् भ्रमरी स्तनी वाजी स चाशुभः।
भ्रमः कर्णसमीपे तु शृङ्गी चैकः स निन्दितः॥ १०७॥

अन्वयः—यः वाजी मेढ्रस्य पश्चात् भ्रमरी वा स्तनी स च अशुभः कर्णसमीपे भ्रमः सः शृङ्गी स एकः निन्दितः॥ १०७॥

व्याख्या—यः वाजी = घोटकः, मेढ्रस्य = शिशनस्य, पश्चात् = तदूद्र्ध्वम्, भ्रमरी = आवर्त्तवान्, वा = अथवा, स्तनी = कुचाकारचिह्नविशेषशाली, स चाश्वः, अशुभः = अमङ्गलकारी, कर्णसमीपे—कर्णस्य = श्रोत्रस्य, समीपे = पार्श्वे, यस्य भ्रमः = आवर्त्तः, सः = असौ, शृङ्गी = शृङ्गी इत्याख्यः, स चाश्वः, एकः = केवलः, निन्दितः = गर्हितः ॥१०७ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के लिङ्ग के पीछे भौंरी अथवा स्तन हो तो वह अमङ्गलकारी होता है तथा जिसके कान के समीप भौंरी होती है, वह घोड़ा एकशृङ्गी कहलाता है और निन्दित होता है ॥ १०७ ॥

मेढ्रस्येति। यः वाजी अश्वः मेढ्रस्य पश्चात् भ्रमरी भ्रमरवान् वा स्तनी स्तनाकारचिह्नविशेषशाली, स च अशुभः। कर्णसमीपे यस्य भ्रमः, स शृङ्गी, स च एकः केवलः निन्दितः ॥ १०७ ॥

ग्रीवोद्ध्र्वपार्श्वे भ्रमरी ह्येकरश्मिः स चैकतः ।
पादोद्ध्र्वमुखभ्रमरी कीलोत्पाटी स निन्दितः ॥ १०८ ॥

अन्वयः—यः ग्रीवोद्ध्र्वपार्श्वे भ्रमरी एकतः एकरश्मिश्च पादोद्ध्र्वमुखभ्रमरी कीलोत्पाटी सः निन्दितः ॥ १०८ ॥

व्याख्या—यः, ग्रीवायाः = कन्धरायाः, ऊद्ध्र्वपार्श्वे = उपरिभागसमीपे, भ्रमरी = आवर्त्तवान्, एकतः = एकस्मिन् पार्श्वे, एकरश्मिः—एकः = केवलः, रश्मिः = एतदाख्यः चिह्नविशेषः, यस्य तथा- भूतस्य, पादोद्ध्र्वमुखभ्रमरी—पादानाम् = चरणानाम्, ऊर्ध्वे = उपरिभागे, मुखे = मूले, च, भ्रमरी = भ्रमरवान्, किञ्च कीलोत्पाटी--- कीलम् = शङ्कुम्, उत्पाटयति इति कीलोत्पाटी = एतदाख्यः, सः = असौ, निन्दितः = गर्हितः ॥ १०८ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की गर्दन के ऊपर बगल में भौंरी होती है वह एकरश्मि कहलाती है तथा निन्दित होती है। पैरों के ऊपर ऊर्ध्वमुख भौंरी कीलोत्पाटी कहलाती है तथा यह भी निन्दित होती है ॥ १०८ ॥

ग्रीवेति। यः ग्रीवाया ऊद्ध्र्वपार्श्वे भ्रमरी भ्रमरवान्, एकतः एकस्मिन् पार्श्वे एकरश्मिश्च एकः रश्मिः तदाख्यचिह्नविशेष इत्यर्थः, यस्य तथाभूतः तथा पादोद्ध्र्वमुखभ्रमरी पादानाम् ऊद्ध्र्वे अग्रे मुखे मूले च भ्रमरी किञ्च कीलोत्पाटी कीलं शङ्कुम् उत्पाटयतीति तथोक्तः, सः निन्दितः ॥ १०८ ॥

शुभाशुभौ भ्रमौ यस्मिन् स वाजी मध्यमः स्मृतः ।
मुखे पत्सु सितः पञ्चकल्याणोऽश्वः सदा मतः ॥ १०९ ॥

अन्वयः—यस्मिन् भ्रमौ शुभाशुभौ सः वाजी मध्यमः स्मृतः। मुखे पत्सु सितः अश्वः पञ्चकल्याणः मृतः ॥ १०९ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = अश्वे, भ्रमौ = आवर्तौ, शुभाशुभौ = मङ्गलामङ्गलप्रदौ, सः = असौ, वाजी = घोटकः, मध्यमः = मध्यकोटिकः, स्मृतः = कथितः। यस्य = अश्वस्य, मुखे = आनने, पत्सु = चरणेषु, च, सितः = शुक्लवर्णः, सः = अश्वः, पञ्चकल्याणः = कल्याणप्रदः, सदा = सर्वदा, मतः = कथितः ॥ १०९ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े में शुभ और अशुभ दोनों तरह की भौंरियाँ पाई जाती हैं, वह

मध्यम कोटि का घोड़ा होता है और जिसके मुख और चारों पैर सफेद होते हैं, वह सदा पंचकल्याण होता है॥ १०९ ॥

शुभाशुभाविति। यस्मिन् वाजिनि भ्रमौ शुभाशुभौ, स वाजी मध्यमः स्मृतः। यश्च मुखे पत्सु पादेषु च सितः श्वेतः, स अश्वः पञ्चकल्याणः पञ्चधा शुभकरः सदा मतः ख्यातः॥ १०९ ॥

स एव हृदये स्कन्धे पुच्छे श्वेतोऽष्टमङ्गलः।
कर्णे श्यामः श्यामकर्णः सर्वतस्त्वेकवर्णभाक्।
तत्रापि सर्वतः श्वेतो मेध्यः पूज्यः सदैव हि॥ ११० ॥

अन्वयः—स एव हृदये, स्कन्धे तथा पुच्छे श्वेतः, कर्णे च श्यामश्चेत् अष्टमङ्गलः श्यामकर्णः सर्वतः एकवर्णभाक्, तथापि सर्वतः श्वेतः सदैव हि मेध्यः पूज्यः॥ ११० ॥

व्याख्या—सः= असौ, एव अश्वः, हृदये = वक्षःस्थले, स्कन्धे = ग्रीवायाम्, तथा पुच्छे = लाङ्गुले, श्वेतः= सितवर्णः, कर्णे = श्रोत्रे च, श्यामः= कृष्णवर्णश्चेत्, तद् अष्टमङ्गलः= अष्टविध-मङ्गलदायको भवति, किञ्च श्यामकर्णः= कृष्णवर्णकर्णः, तथा सर्वतः= सकलशरीरे, एकवर्णभाक्, तत्राऽपि, सर्वतः= सकलशरीरावयवतः, श्वेतः= शुक्लवर्णश्चेत्, सदैव = सर्वदा, हि = इति निश्चयेन, मेध्यः= अश्वमेधयज्ञस्य योग्यः, अत एव पूज्यः= पूजनीयो भवेत्॥ ११० ॥

हिन्दी—उसी श्यामकर्ण घोड़े की छाती, कंधा और पूँछ में अगर सफेदी हो तो वह अष्ट-मंगल कहलाता है अर्थात् जहाँ रहता है वहाँ आठ तरह के मंगल का विधान करता है। जिस घोड़े का समस्त शरीर एकवर्ण आर केवल कान काला हो तो घोड़ा श्यामकर्ण कहलाता है। उसमें भी समस्त देह श्वेतवर्ण और केवल कान श्यामवर्ण हो तो वह घोड़ा अश्वमेध यज्ञ के योग्य होता है तथा सर्वदा पूज्य होता है॥ ११० ॥

स इति। स एव अश्वः हृदये स्कन्धे तथा पुच्छे श्वेतः, कर्णे च श्यामश्चेत् अष्टमङ्गलः अष्टमङ्गलजनकः। किञ्च श्यामकर्णः किन्तु सर्वतः सर्वस्मिन् अवयवे एकवर्णभाक्, तत्रापि सर्वतः श्वेतवर्णश्चेत् सदैव मेध्यः पूज्यः हिशब्दः अवधारणे॥ ११० ॥

वैदूर्यसन्निभे नेत्रे यस्य स्तो जयमङ्गलः।
मिश्रवर्णस्त्वेकवर्णः पूज्यः स्यात् सुन्दरो यदि॥ १११ ॥

अन्वयः—यस्य नेत्रे वैदूर्यसन्निभे स्तः सः मिश्रवर्णः जयमङ्गलः, यदि एकवर्णः सुन्दरः स्यात् तदा पूज्यः॥ १११ ॥

व्याख्या—यस्य = घोटकस्य, नेत्रे = लोचने, वैदूर्यसन्निभे = केतुरत्नतुल्ये, स्तः= भवतः, सः चेत्, मिश्रवर्णः= विविधवर्णः, तदा सः जयमङ्गलः= विजयकल्याणदायकः, भवति। तत्रापि, एकवर्णः= मात्रैकवर्णः, अथ च, सुन्दरः= मनोहरः, यदि = चेत्, स्यात् = भवेत्, तदा सोऽश्वः, पूज्यः= श्लाघ्यः॥१११ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े की आँखें वैदूर्यमणि की तरह कालापन लिये श्वेत वर्ण की हों तो वह जयमंगल नामक घोड़ा सदैव विजय और मंगल देता है। कोई भी घोड़ा चितकबरा हो या एक वर्ण का हो, यदि देखने में वह सुन्दर हो तो पूज्य है॥ १११ ॥

वैदूर्येति। यस्य अश्वस्य नेत्रे नयने वैदूर्यसन्निभे वैदूर्य्यरत्नसदृशे स्तः भवतः, सः चेत्

मिश्रवर्णः नानावर्णः, तदा जयमङ्गलः जयमङ्गलसाधकः भवति। तत्रापि एकवर्णः अथ च सुन्दरः यदि स्यात् तदा पूज्यः॥ १११ ॥

कृष्णपादो हरिर्निन्द्यस्तथा श्वेतैकपादपि।
रूक्षो धूसरवर्णश्च गर्दभाभोऽपि निन्दितः ॥ ११२ ॥

अन्वयः—कृष्णपादः श्वेतैकपाद् अपि हरिः निन्द्यः, किञ्च रूक्षः धूसरवर्णः गर्दभाभः अपि निन्दितः॥ ११२ ॥

व्याख्या—कृष्णपादः = श्यामवर्णचरणः, तथा श्वेतैकपात् = अश्वस्यैकचरणस्तु शुक्लवर्णः, तथा रूक्षवर्णः = अनाकर्षकवर्णः, धूसरवर्णः = आपाण्डुवर्णः, गर्दभाभः = रासभतुल्यवर्णः, अपि = चेत्, निन्दितः = गर्हितः ॥११२ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के पैर काले हों अथवा एक ही पैर सफेद हो और रंग बेढ़ंग या गदहे की तरह धूसर वर्ण का हो तो वह बड़ा ही निन्दनीय होता है ॥ ११२ ॥

कृष्णपाद इति। कृष्णपादः कृष्णवर्णचरणः तथा श्वेतैकपात् श्वेतवर्णैकचरणः अपि हरिः अश्वः निन्द्यः। किञ्च रूक्षवर्णः धूसरवर्णः तथा गर्दभाभः गर्दभसदृशवर्णः अपि निन्दितः॥ ११२ ॥

कृष्णतालुः कृष्णजिह्वः कृष्णोष्ठश्च विनिन्दितः।
सर्वतः कृष्णवर्णो यः पुच्छे श्वेतः स निन्दितः ॥ ११३ ॥

अन्वयः—कृष्णतालुः कृष्णजिह्वः कृष्णोष्ठश्च विनिन्दितः। यः सर्वतः कृष्णवर्णः पुच्छे श्वेतः सः निन्दितः॥ ११३ ॥

व्याख्या—कृष्णतालुः = श्यामवर्णकाकुदम्, कृष्णजिह्वः = श्यामरसनः, तथा कृष्णोष्ठः = श्यामवर्णोष्ठः, विनिन्दितः = गर्हितः, यः = अश्वः, सर्वतः = सकलशरीरावयवतः, कृष्णवर्णः = श्यामवर्णः, किञ्च, पुच्छे = लाङ्गुले, श्वेतः = शुभ्रवर्णः, सः = असौ, निन्दितः = गर्हितः ॥ ११३ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के तालु, जीभ और होठ काले हों तथा समस्त देह काली हो, किन्तु पूँछ सफेद हो तो वह निन्दित होता है ॥ ११३ ॥

कृष्णतालुरिति। कृष्णतालुः कृष्णवर्णतालुदेशः कृष्णजिह्वः कृष्णवर्णरसनः तथा कृष्णोष्ठश्च विनिन्दितः। यश्च सर्वतः सर्वस्मिन् अवयवे कृष्णवर्णः किन्तु पुच्छे श्वेतः, सः निन्दितः॥ ११३ ॥

उच्चैःपदन्यासगतिर्द्विपव्याघ्रगतिश्च यः।
मयूरहंसतित्तिरपारावतगतिश्च यः।
मृगोष्ट्रवानरगतिः पूज्यो वृषगतिर्हयः ॥ ११४ ॥

अन्वयः—यः उच्चैःपदन्यासगतिः यश्च द्विपव्याघ्रगतिः यश्च मयूरहंसतित्तिरपारावतगतिः मृगोष्ट्रवानरगतिः वृषगतिः हयः पूज्यः॥ ११४ ॥

व्याख्या—यः = अश्वः, उच्चैः = उन्नतैः, पदानाम् = चरणानाम्, न्यासः = निधानम्, यत्र तादृशी गतिर्यस्य तथोक्तः, यश्च = अश्वः, द्विपस्य = गजस्य, व्याघ्रस्य = शार्दूलस्य, च इव गतिर्यस्य तथाभूतः, तथा मयूरस्य = कलापिनः, वावर्षामदस्य, हंसस्य = मरालस्य, पारावतस्य = कपोतस्य, इव गतिर्यस्य, किञ्च यः = अश्वः, मृगस्य = हरिणस्य, उष्ट्रस्य = क्रमेलकस्य,

वानरस्य = मर्कटस्य, गतिर्यस्य तादृशः, तथा वृषस्य = बलीवर्दस्येव गतिर्यस्य तथाभूतः, हयः = वाजी, पूज्यः = पूजनीयो भवति ॥ ११४ ॥

हिन्दी—जो घोड़ा ऊँचा पैर उठा कर चलता हो या जिसकी चाल हाथी, सिंह, मयूर, हंस, तीतर, कबूतर, हिरण, ऊँट या बैल की तरह हो, वह घोड़ा पूजनीय होता है ॥ ११४ ॥

उच्चैरिति। यः उच्चैः पादानां न्यासा यत्र तादृशी गतिर्यस्य तथोक्तः, यश्च द्विपस्य हस्तिनः व्याघ्रस्य च इव गतिर्यस्य तथाभूतः, तथा मयूरस्य हंसस्य पारावतस्य इव गतिर्यस्य सः, किञ्च यः मृगस्य उष्ट्रस्य वानरस्येव गतिर्यस्य तादृशः तथा वृषस्येव गतिर्यस्य तथाभूतः हयः अश्वः पूज्यः ॥ ११४ ॥

अतिभुक्तोऽतिपीतोऽपि यया सादी न पीड्यते।
श्रेष्ठा गतिस्तु सा ज्ञेया स श्रेष्ठस्तुरगो मतः ॥ ११५ ॥

अन्वयः—सादी अतिभुक्तः तथा अतिपीतः अपि यया न पीड्यते सा गतिस्तु श्रेष्ठा ज्ञेया, सः तुरगस्तु श्रेष्ठः मतः ॥ ११५ ॥

व्याख्या—सादी = अश्वारोही, अतिभुक्तः = अतिजग्धः भक्षितो वा, अतिपीतः = कृताधिकपानम्, अपि = चेत्, यया = गत्या, न = नहि, पीड्यते = क्लिश्यते, सा = पूर्वोक्ता, गतिः = गमनम्, तु = किन्तु, श्रेष्ठा = उत्कृष्टा, ज्ञेया = बोध्या, सः = तादृग्गुणविशेषेण विभूषितः, तुरगः = घोटकः, श्रेष्ठः = घोटकेपूत्कृष्टः, मतः = ख्यातः ॥ ११५ ॥

हिन्दी—घोडे की वही चाल अच्छी चाल मानी जाती है जिससे काफी खा-पीकर भी सवारी करने पर भी सवार को किसी तरह की पीड़ा महसूस न हो और ऐसी ही चाला वाला घोड़ा उत्कृष्ट माना जाता है ॥ ११५ ॥

अतिभुक्त इति। सादी आरोही अतिभुक्तः अधिकाहारः तथा अतिपीतः अत्यधिकपानकारी अपि यया गत्या न पीड्यते क्लिश्यते सा गतिस्तु गमनमेव श्रेष्ठा ज्ञेया सः तादृशगतिशीलः तुरगः श्रेष्ठः मतः ॥ ११५ ॥

सुश्वेतभालतिलको विद्धो वर्णान्तरेण च।
स वाजी दलभञ्जी तु यस्य सैवातिनिन्दितः ॥ ११६ ॥

अन्वयः—यः सुश्वेतभालतिलकः यस्य सः वर्णान्तरेण विद्धः तथा दलभञ्जी सः च अतिनिन्दितः ॥ ११६ ॥

व्याख्या—सः = वाजी, सुश्वेतम् = सुष्ठुतया शुक्लवर्णम्, भाले = ललाटे, तिलकम् = चिह्नविशेषः, यस्य सः वर्णान्तरेण = सितातिरिक्तेन वर्णेन, विद्धः = मिश्रितः, तथा दलानाम् = घोटकवर्णानाम्, भञ्जी = भञ्जकः, सः किञ्च, यस्य च = जनस्य च, सः = अश्वः अस्ति, अतिनिन्दितः = अत्यन्तगर्हितो भवति, अत्र सैवेति आर्षप्रयोगः ॥ ११५ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के माथे पर सफेद तिलक अन्य रंगो से मिले हो, वह घोड़ा दलभंज़ी कहलाता है। वह घोड़ा और उसका मालिक दोनों निन्दित माने जाते हैं ॥ ११५ ॥

सुश्वेतेति। यः वाजी सुश्वेतं भाले तिलकं तिलकाकारचिह्नविशेषः यस्य सः वर्णान्तरेण श्वेतातिरिक्तेन वर्णेन विद्धः युक्तः तथा दलभञ्जी दलानाम् अश्वीयानां भङ्गकारकः सः किञ्च यस्य च सः वाजी अस्ति स च अतिनिन्दितः। सैवेति सन्धिरार्षः ॥ ११६ ॥

संहन्याद्वर्णजान् दोषान् स्निग्धवर्णो भवेद् यदि।
बलाधिकश्च सुगतिर्महान् सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ११७ ॥

अन्वयः—यदि स्निग्धवर्णः बलाधिकः सुगतिः महान् सर्वाङ्गसुन्दरः च भवेत्, वर्णजान् दोषान् संहन्यात् ॥ ११७ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, वाजी, स्निग्धवर्णः = मसृणवर्णकः, बलाधिकः = महाबलः, सुगतिः = सुष्ठुगमनशीलः, महान् = उन्नतः, तथा सर्वाङ्गेषु = सकलावयवेषु, सुन्दरः = कान्तः, भवेत् = स्यात्, तदा वर्णजान् = विपरीतवर्णोत्पन्नान्, दोषान् = दुर्गुणान्, संहन्यात् = सम्यक् प्रकारेण विनष्टं कुर्यात् ॥ ११७ ॥

हिन्दी—घोड़ा यदि शक्तिशाली, अच्छी चाल वाला, ऊँचे कद का सर्वाङ्गसुन्दर मसृण वर्ण का हो तो रंग से उत्पन्न होने वाले समस्त दोषों को नष्ट कर देता है ॥ ११७ ॥

संहन्यादिति। यदि अश्वः स्निग्धवर्णः बलाधिकः सुगतिः महान् तथा सर्वाङ्गेषु सुन्दरः भवेत् तदा वर्णजान् विरुद्धवर्णजातान् दोषान् संहन्यात् नाशयेत् ॥ ११७ ॥

नातिक्रूरः सदा पूज्यो भ्रमाद्यैरपि दूषितः ॥ ११८ ॥

अन्वयः—भ्रमाद्यैः दूषितोऽपि नातिक्रूरः सदा पूज्यः ॥ ११८ ॥

व्याख्या—भ्रमाद्यैः = आवर्त्तचिह्नैः, दूषितोऽपि = कलुषितोऽपि, नातिक्रूरः = सुदर्शनः, अश्वः, सदा = सर्वदा, पूज्यः = श्लाघ्यो भवति ॥ ११८ ॥

हिन्दी—कोई घोड़ा यदि सुदर्शन हो बदमाश न हो तो भौंरी के दोष से कलुषित रहने के बावजूद वह सदा श्लाघ्य होता है ॥ ११८ ॥

नेति। भ्रमाद्यैः आवर्त्ताद्यैः चिह्नैः दूषितोऽपि नातिक्रूरः सौम्यदर्शनः अश्वः सदा पूज्यः ॥ ११८ ॥

वाजिनामत्यवहनात् सुदोषाः सम्भवन्ति हि।
कृशो व्याधिपरीताङ्गो जायतेऽत्यन्तवाहनात् ॥ ११९ ॥

अन्वयः—अत्यवहनात् वाजिनां सुदोषाः सम्भवन्ति, अत्यन्तवाहनात् कृशः व्याधिपरीताङ्गः जायते ॥ ११९ ॥

व्याख्या—अत्यवहनात् = अत्यधिकवहनाभावे, वाजिनाम् = अश्वानाम्, सुदोषाः = अत्यधिकदोषाः, निश्चितम्, भवन्ति = जायन्ते, किञ्च, अत्यन्तवाहनात् = अत्यधिकवहनादपि, कृशः = दुर्बलः, तथा व्याधिपरीताङ्गः = रुग्णशरीरश्च, जायते = भवतीति ॥ ११९ ॥

हिन्दी—यदि घोड़े अच्छे हों और अधिकतर सवारी न की जाय तो वे बिगड़ जाते हैं और अधिक सवारी करने से भी दुबले तथा रोगी हो जाते हैं। अतः क्षमतानुसार उन्हें सवारी में लेना चाहिए ॥ ११९ ॥

वाजिनामिति। अत्यवहनात् अतिशयेन अवाहनात् वहनाभावात् वाजिनां सुदोषाः हि निश्चितं सम्भवन्ति। किञ्च अत्यन्तवहनात् कृशः व्याधिपरीताङ्गः रुग्णदेहश्च जायते ॥ ११९ ॥

अवाहितो भवेन्मन्दः सर्वकर्मसु निन्दितः।
अपोषितो भवेत् क्षीणो रोगी चात्यन्तपोषणात् ॥ १२० ॥

अन्वयः—अवाहितः मन्दः सर्वकर्मसु निन्दितः भवेत्। अपोषितः क्षीणः च अत्यन्तपोषणात् रोगी भवति॥ १२०॥

व्याख्या—अवाहितः—न = नहि, वाहितः = स्थानान्तरे चालितः सन्, मन्दः = निस्तेजस्को भवति, सर्वकर्मसु—सर्वेषु = सकलेषु, कर्मसु = कृत्येषु, निन्दितः = कुत्सितः, भवेत् = स्यात्, किञ्च, अपोषितः = पौष्टिकभोजनाभावे, क्षीणः = दुर्बलः, तथा अत्यन्तपोषणात् = अत्यधिकाहारप्रदानात्, रोगी = रुग्णः, भवेत् = स्यात्॥१२०॥

हिन्दी—और बिना सवारी के भी घोड़ा सुस्त हो जाता है तथा बिना पौष्टिक आहार के कमजोर हो जाता है और अधिक पौष्टिक आहार देकर सवारी नहीं करने से भी घोड़ा रोगी हो जाता है॥ १२०॥

अवाहित इति। अवाहितः एकान्तं न वाहितः मन्दः जडः, सर्वकर्मसु निन्दितश्च भवेत्। किञ्च अपोषितः अपालितः क्षीणः दुर्बलः कृश इत्यर्थः, तथा अत्यन्तपोषणात् अत्याहारदानात् रोगी भवेत्॥ १२०॥

सुगतिर्दुर्गतिर्नित्यं शिक्षकस्य गुणागुणैः॥ १२१॥

अन्वयः—शिक्षकस्य गुणागुणैः नित्यं सुगतिः दुर्गतिश्च भवेत्॥१२१॥

व्याख्या—वाजी, शिक्षकस्य = प्रशिक्षणदातुः, गुणागुणैः = गुणदोषैः, नित्यम् = निरन्तरम्, सुगतिः—शोभनं गतिः = गमनम्, यस्यासौ, दुर्गतिः = मन्दगमनम्, भवेत्॥ १२१॥

हिन्दी—घोड़े की चाल अच्छी या बुरी होने का कारण उसका प्रशिक्षक होता है। क्योंकि हमेशा वह जैसी चाल सिखलाता है वैसे ही वह चलता है॥ १२१॥

सुगतिरिति। अश्वः शिक्षकस्य गुणागुणैः गुणदोषैः नित्यं सततं सुगतिः सुन्दरगमनः दुर्गतिः मन्दगमनश्च भवेत्॥ १२१॥

जान्वधश्चलपादः स्यादृजुकायः स्थिरासनः।
तुलाधृतखलीनः स्यात् काले देशे सुशिक्षकः॥ १२२॥

अन्वयः—यः जान्वधः चलपादः ऋजुकायः स्थिरासनः काले देशे तुलाधृतखलीनः सुशिक्षकः स्यात्॥ १२२॥

व्याख्या—यः जान्वोः = वाजिनः, ऊरुपर्वणः, अधः = नीचैः, चलौ = चञ्चलौ, पादौ = चरणौ, यस्य सः, ऋजुकायः = कोमलशरीरः, तथा स्थिरम् = अचलम्, आसनम् = उपवेशनम्, यस्य तादृशः, स्यात् = भवेत्, तथा काले = समये, देशे = स्थानविशेषे, तुलया = सादृश्येन, धृतम् = गृहीतम्, खलीनम् = अश्वताडनी, येन तादृशः स्यात्, सः सुशिक्षकः = सुन्दरवाजिविनेता स्यात्॥ १२२॥

हिन्दी—घोड़े को चाल सिखाने वाला सवार घुटनों से नीचे पैर को हिलाते हुए देह को ढीला छोड़कर सीधा स्थिर आसन से बैठ कर संतुलित लगाम को थामे॥ १२२॥

जान्विति। यः जान्वोः अश्वस्येति भावः, अधः निम्नदेशे चलौ पादौ यस्य सः ऋजुपादः सरलशरीरः तथा स्थिरं निश्चलम् आसनं यस्य तादृशः स्यात् तथा काले समये देशे स्थानभेदे तुलया साम्येन धृतं खलीनं कविका येन तादृशः स्यात् सः सुशिक्षकः॥ १२२॥

मृदुना नातितीक्ष्णेन कशाघातेन ताडयेत्।
ताडयेन्मध्यघातेन स्थाने स्वश्वं सुशिक्षकः ॥ १२३ ॥

अन्वयः—सुशिक्षकः मृदुना नातितीक्ष्णेन कशाघातेन ताडयेत्। मध्यघातेन नातिमृदुना स्थाने स्वश्वं ताडयेत् ॥ १२३ ॥

व्याख्या—सुशिक्षकः = सुवाजिविनेता, मृदुना = कोमलेन, नातितीक्ष्णेन = नातिकठोरेण, कशाघातेन = कशया ताडनेन, स्वश्वम् = शोभनं वाजिनम्, ताडयेत् = ताडनं कुर्यात्, किञ्च मध्यघातेन = मध्यप्रहारेण, स्थाने = मर्मादिरहितशरीरावयवे, स्वश्वम् = शोभनं घोटकम्, ताडयेत् = प्रहारं कुर्यात् ॥ १२३ ॥

हिन्दी—समय और स्थान के अनुसार न अतिकोमल और न अतिकठोर चाबुक से घोड़े को मार कर चाल सिखलाये। सुन्दर सिखलाने वाला घोड़े के मार्मिक अङ्ग को छोड़कर चाबुक की हलकी चोट से चाल सिखलाये ॥१२३ ॥

मृदुनेति। सुशिक्षकः मुदुना कोमलेन नातितीक्ष्णेन कशाघातेन स्वश्वं शोभनम् अश्वं ताडयेत्। किञ्च मध्यघातेन नातिमृदुना नातिक्रूरेण च प्रहारेण इत्यर्थः, स्थाने मर्मादिव्यतिरिक्ते अवयवे इत्यर्थः स्वश्वं ताडयेत् ॥१२३ ॥

हेषिते कक्षयोर्हन्यात् स्खलिते पक्षयोस्तथा।
भीते कर्णान्तरे चैव ग्रीवासून्मार्गगामिनि ॥ १२४ ॥

अन्वयः—हेषिते कक्षयोः तथा स्खलिते पक्षयोः भीते कर्णान्तरे च उन्मार्गगामिनि ग्रीवासु हन्यात् ॥ १२४ ॥

व्याख्या—हेषिते = ह्रेषिते, शब्दविशेषं कृते सति, कक्षयोः = पादमूलयोः, तथा, स्खलिते = पतिते वा विचलिते, पक्षयोः = कुक्षयोः, भीते = भयाक्रान्ते, कर्णान्तरे = श्रोत्रयोर्मध्ये, च = पुनः, उन्मार्गगामिनि = कुपथागामिनि, ग्रीवासु = गलप्रदेशेषु हन्यात् = प्रहारं कुर्यात् ॥१२४ ॥

हिन्दी—ज्यादा हिनहिनाने पर पादमूल में, फिसलने पर दोनों बगलों में, भड़कने पर दोनों कानों के बीच तथा बेराह चलने पर कन्धे पर मारना चाहिए ॥ १२४ ॥

हेषिते इति। हेषिते हेषा अश्वस्य शब्दविशेषः सा अस्य जाता इति हेषितः तस्मिन् इतोऽस्य जाते इति इतच्प्रत्ययः। हेषाशब्दं कुर्वति सति कक्षयोः स्खलिते पादस्खलने पक्षयोः पार्श्वयोः, भीते सति कर्णान्तरे कर्णमध्ये, तथा उन्मार्गगामिनि कुपथगे सति ग्रीवासु हन्यात् प्रहरेत् ॥ १२४ ॥

कुपिते बाहुमध्ये च भ्रान्तचित्ते तथोदरे।
अश्वः सन्ताड्यते प्राज्ञैर्नान्यस्थानेषु कर्हिचित् ॥१२५ ॥

अन्वयः—कुपिते बाहुमध्ये च भ्रान्तचित्ते उदरे अश्वः सन्ताड्यते, प्राज्ञैः कर्हिचित् अन्यस्थानेषु नेति ॥ १२५ ॥

व्याख्या—कुपितं = क्रुद्धे सति, बाहुमध्ये = अग्रिमचरणयोर्मध्ये, च = पुनः, भ्रान्तचित्ते = प्रमदितमनसि, उदरे = कुक्षौ, सन्ताड्यते = सम्यक् प्रकारेण हन्यते, प्राज्ञैः = बुद्धिमद्भिः, कर्हिचित् = कदाचित्, अन्यस्थानेषु = उपरिवर्णितस्थानव्यतिरिक्तेषु, नेति = न ताडयेत् ॥ १२५ ॥

हिन्दी—दोनों अगले पैरों को उठा कर खड़े होने पर अगले पैरों के बीच में और भ्रान्तचित्त होने पर पेट में बुद्धिमान् सवार मारे। इससे भिन्न स्थानों में कभी भी न मारे ॥ १२५ ॥

कुपिते इति। प्राज्ञैः विज्ञैः जनैः कुपिते सति बाहुमध्ये तथा भ्रान्तचित्ते उद्भ्रान्तचेतसि सति उदरे अश्वः सन्ताड्यते सम्यक् आहन्यते, कर्हिचित् कदाचित् अन्यस्थानेषु न॥१२५॥

अथवा हेषिते स्कन्धे स्खलिते जघनान्तरम्।
भीते वक्षःस्थलं हन्याद् वक्त्रमुन्मार्गगामिनि।
कुपिते पुच्छसङ्घाते भ्रान्ते जानुद्वयं तथा॥१२६॥

अन्वयः—अथवा हेषिते स्कन्धे स्खलिते जघनान्तरं भीते वक्षःस्थलम् उन्मार्गगामिनि वक्त्रं कुपिते पुच्छसङ्घातं तथा भ्रान्ते जानुद्वयं हन्यात्॥१२६॥

व्याख्या—अथवा = वा, हेषिते = हेषा, वाजिनः शब्दविशेषः, सा अस्य जाता इति हेषितः, तस्मिन् 'इतोऽस्य जाते' इत्यनेन इतच्प्रत्ययः, तेन हेषिते सति, स्कन्धे = ग्रीवायाम्, स्खलिते = विचलिते सति, जघनान्तरम् = नितम्बमध्यम्, भीते = भयाक्रान्ते, सति, वक्षःस्थलम् = ऊरुप्रदेशम्, उन्मार्गगामिनि = कुमार्गगामिनि, वक्त्रं = मुखम्, कुपिते = क्रुद्धे सति, पुच्छसङ्घातम् = पुच्छे हननं वा पुच्छसमूहम्, तथा भ्रान्ते = उद्भ्रान्ते सति, जानुद्वयम् = ऊरुपर्वणी, हन्यात् = ताडयेत्॥१२६॥

हिन्दी—अथवा अधिक हिनहिनाने पर कन्धे में, फिसलने पर जाँघों के बीच, डरने पर छाती में, गलत राह पकड़ने पर मुँह में, गुस्साने पर दुम में तथा चित्तभ्रमित होने पर दोनों जानुओं के बीच में प्रहार करे॥१२६॥

अथवेति। अथवा किंवा हेषिते सति स्कन्धे स्खलिते सति जघनान्तरं जघनमध्यं, भीते सति वक्षःस्थलम्, उन्मार्गगामिनि सति वक्त्रं मुखं कुपिते सति पुच्छसङ्घातं, तथा भ्रान्ते जानुद्वयं हन्यात्॥१२६॥

नासकृत् ताडयेदश्वमकाले च विदेशके।
अकालस्थानघातेन वाजिदोषान् वितन्वते॥१२७॥

अन्वयः—अकाले विदेशके असकृत् अश्वं न ताडयेत्। अकालस्थानघातेन वाजिदोषान् वितन्वते॥१२७॥

व्याख्या—अकाले = असमये, विदेशके = अस्थाने, असकृत् = वारंवारम्, अश्वम् = घोटकम्, न = नहि, ताडयेत् = प्रहारं कुर्यात्। यतः, अकालस्थानघातेन = असमयस्थानप्रहारेण, वाजिदोषान् = अश्वदुर्गुणान्, वितन्वते = विस्तारं कुर्वन्ति॥१२७॥

हिन्दी—घोड़े को बार-बार असमय कुठांव में नहीं मारना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से घोड़े में दुर्गुणों की वृद्धि होती है॥१२७॥

नेति। अकाले असमये विदेशके अस्थाने च असकृत् पुनः पुनः अश्वं न ताडयेत् यतः अकालस्थानघातेन असमयस्थानप्रहारेण वाजिदोषान् वितन्वते विस्तारयन्ति जनयन्ति इत्यर्थः॥१२७॥

तावद् भवन्ति ते दोषा यावज्जीवत्यसौ हयः।
दुष्टं दण्डेनाभिभवेन्नारोहेद्दण्डवर्जितः॥१२८॥

अन्वयः—यावत् असौ हयः जीवति तावत् ते दोषाः भवन्ति। दुष्टं दण्डेन अभिभवेत्, दण्डवर्जितः न आरोहेत्॥१२८॥

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, असौ = सः, हयः = वाजी, जीवति = जीवनं धारयति, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, ते = पूर्वोक्ताः, दोषाः = दुर्गुणाः, भवन्ति = सन्त्येव। दुष्टम् = क्रूरं घोटकम्, दण्डेन = प्रहारेण, अभिभवेत् = वशं नयेत्, तथा दण्डवर्जितः = आघातरहितः, अश्वम्, न = नहि, आरोहेत् = आरोहणं कुर्यात् ॥ १२८ ॥

हिन्दी—और वे दोष घोड़े में तब तक बने रहते हैं जब तक वह घोड़ा जिन्दा रहता है। दुष्ट घोड़े को मार-मारकर वशवर्त्ती बना ले, बिना दण्ड दिये दुष्ट घोड़े पर सवार नहीं होना चाहिए ॥१२८ ॥

तावदिति। यावत् असौ हयः अश्वः जीवति तावत् ते दोषाः वाजिदोषाः भवन्ति। दुष्टम् अश्वं दण्डेन अभिभवेत् तथा दण्डवर्जितः कशारहितः न आरोहेत् ॥ १२८ ॥

गच्छेत् षोडशमात्राभिरुत्तमोऽश्वो धनुःशतम्।
यथा यथा न्यूनगतिरश्वो हीनस्तथा तथा ॥ १२९ ॥

अन्वयः—उत्तमोऽश्वः षोडशमात्राभिः धनुःशतं गच्छेत्। अश्वः यथा यथा न्यूनगतिः तथा तथा हीनः भवेत् ॥ १२९ ॥

व्याख्या—उत्तमः = उत्कृष्टः, अश्वः = हयः, षोडशमात्राभिः = पूर्णमानैः, धनुःशतम् = चतुःशतहस्तम्, गच्छेत् = गमयेत्। अश्वः, यथा यथा = येन प्रकारेण, न्यूनगतिः = हीनगमनम्, तथा तथा = तेनैव प्रकारेण, हीनः = अधमः, भवेत् = स्यात् ॥ १२९ ॥

हिन्दी—उत्तम घोड़ा सोलह मात्रा का उच्चारण करते-करते चार सौ हाथ की दूरी तय कर लेता है। इस अनुपात में उसकी गति जैसे-जैस कम होती है उसी अनुपात में वह घोड़ा हीन होता है ॥ १२९ ॥

गच्छेदिति। उत्तमः अश्वः षोडशमात्राभिः पूर्णमानैरित्यर्थः, धनुःशतं चतुःशतहस्तं गच्छेत् एकप्रयत्नेनेति भावः। अश्वः यथा यथा न्यूनगतिः, तथा तथा हीनः भवेत् ॥ १२९ ॥

सहस्रचापप्रमितं मण्डलं गतिशिक्षणे।
उत्तमं वाजिनो मध्यं नीचमर्द्धं तदर्द्धकम् ॥ १३० ॥

अन्वयः—वाजिनः गतिशिक्षणे सहस्रचापप्रमितं मण्डलम् उत्तमम्, तदर्द्धं मध्यं, तदर्द्धकं नीचम् ॥ १३० ॥

व्याख्या—वाजिनः = हयस्य, गतिशिक्षणे = गमनशिक्षायाम्, सहस्रचापप्रमितम् = चतुःसहस्रहस्तमितम्, मण्डलम् = भ्रमणाय गोलाकारम्, उत्तमम् = उत्कृष्टम्, अर्द्धम् = पञ्चशतहस्तपरिमितम्, मध्यमम् = मध्यमानम्, तदर्द्धम् = पञ्चाशदधिकशतद्वयहस्तम्, नीचम् = अधमम् ॥ १३० ॥

हिन्दी—चाल सिखाने में घोड़े के लिए एक मण्डल का प्रमाण चार हजार हाथ का होता है, जो उत्तम कहलाता है। उसका आधा पाँच सौ हाथ का मण्डल मध्यम दर्जे के घोड़े के लिए होता है और उसका आधा दो सौ पचास हाथ का मण्डल अधम माना गया है ॥ १३० ॥

सहस्रेति। वाजिनः अश्वस्य गतिशिक्षणे गतिशिक्षायां सहस्रचापप्रमितं चतुःसहस्रहस्तमितं मण्डलं मण्डलाकारेण भ्रमणम् उत्तमं श्रेष्ठम् अर्द्धं पञ्चशतहस्तमितं मध्यम्, तदर्द्धकं पञ्चाशदधिकशतद्वयहस्तं नीचम् ॥ १३० ॥

अल्पं शतधनुः प्रोक्तमत्यल्पं च तदर्द्धकम् ॥ १३१ ॥

अन्वयः—शतधनुः अल्पं तथा तदर्द्धकम् अत्यल्पं प्रोक्तम् ॥ १३१ ॥

व्याख्या—शतधनुः = चतुःशतहस्तमितम्, मण्डलम्, अल्पम् = लघुः, तदर्द्धकम् = पञ्चाशदधिकशतद्वयमितम्, अत्यल्पम् = अतितुच्छम्, प्रोक्तम् = कथितम् ॥ १३१ ॥

हिन्दी—और चार सौ हाथ का मण्डल छोटा तथा उसका आधा अतितुच्छ होता है ॥ १३१ ॥

अल्पमिति। शतधनुः चतुःशतहस्तमितं मण्डलमिति शेषः, अल्पं तथा तदर्द्धकं द्विशतहस्तमितम् अत्यल्पं प्रोक्तम् ॥ १३१ ॥

शतयोजनगन्ता स्याद् दिनैकेन यथा हयः।
गतिं संवर्द्धयेन्नित्यं तथा मण्डलविक्रमैः ॥ १३२ ॥

अन्वयः—हयः यथा दिनैकेन शतयोजनगन्ता स्यात्, नित्यं मण्डलविक्रमैः तथा गतिं संवर्द्धयेत् ॥ १३२ ॥

व्याख्या—हयः = वाजी, यथा = येन प्रकारेण, दिनैकेन = एकेनैव दिवसेन, शतयोजनगन्ता = योजनशतं गन्तुं समर्थः, स्यात् = भवेत्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, मण्डलविक्रमैः—मण्डलस्य = गोलाकारभ्रमणस्य, विक्रमैः = शौर्यैः, तथा = तदनुकूला, गतिम् = वेगम्, संवर्द्धयेत् = एधेत, संवर्द्धनं कुर्यात् वेति ॥ १३२ ॥

हिन्दी—घोड़ा एक दिन में सौ याजन अर्थात् दो सौ कोस की दूरी तय करे; इसके लिए उसे प्रतिदिन मैदान में चक्कर लगवाकर उसके दौड़ने की शक्ति बढानी चाहिए ॥ १३२ ॥

शतेति। हयः अश्वः यथा दिनैकेन एकेन दिनेन शतयोजनगन्ता स्यात्, नित्यं सततं मण्डलविक्रमैः मण्डलाकारभ्रमणैः तथा गतिं संवर्द्धयेत् ॥ १३२ ॥

सायं प्रातश्च हेमन्ते शिशिरे कुसुमागमे।
सायं ग्रीष्मे तु शरदि प्रातरश्वं वहेत् सदा ॥ १३३ ॥

अन्वयः—हेमन्ते शिशिरे कुसुमागमे च सायं प्रातश्च ग्रीष्मे तु सायं शरदि तु प्रातः अश्वं सदा वहेत् ॥ १३३ ॥

व्याख्या—हेमन्ते = हिमागमे ऋतौ, शिशिरे = शीतऋतौ, कुसुमागमे = वसन्ततौं, सायम् = सन्ध्याकाले, च = पुनः, प्रातः = प्रभाते, ग्रीष्मे = निदाघकाले तु, सायम् = सन्ध्यासमये, शरदि = वर्षावसानकाले, तु, प्रातः = प्रभातवेलायाम्, सदा = सर्वदा, अश्वम् = घोटकम्, वहेत् = प्रशिक्षयेत् ॥ १३३ ॥

हिन्दी—हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त ऋतु में शाम-सुबह, ग्रीष्म ऋतु में सायंकाल तथा शरद् ऋतु में प्रातःकाल सदा घोड़े को शिक्षा देनी चाहिए ॥ १३३ ॥

सायमिति। हेमन्ते, शिशिरे, कुसुमागमे वसन्ते च सायं प्रातश्च, ग्रीष्मे तु सायं शरदि तु प्रातः, सदा सर्वस्मिन् दिने अश्वं वहेत् ॥ १३३ ॥

वर्षासु न वहेदीषत्तथा विषमभूमिषु ॥ १३४ ॥

अन्वयः—वर्षासु तथा विषमभूमिपु ईषत् न वहेत् ॥ १३४ ॥

व्याख्या—वर्षासु = वर्षाऋतौ, तथा = पुनः, विषमभूमिषु = उच्चावच्चस्थानेषु, ईषद् = अल्पमपि, न = नहि, वहेत् = अश्वं चालयेदिति ॥ १३४ ॥

हिन्दी–वर्षा ऋतु में तथा विषम भूमि में घोड़े को थोड़ा भी नहीं दौड़ाना चाहिए ॥ १३४ ॥

वर्षास्विति। वर्षासु तथा विषमभूमिषु उन्नतानतप्रदेशेषु ईषत् अल्पमपि न वहेत् अश्वमिति शेषः ॥ १३४ ॥

सुगत्याग्निर्बलं दार्ढ्यमारोग्यं वर्द्धते हरेः ॥ १३५ ॥

अन्वयः—सुगत्या हरेः अग्निः बलं दार्ढ्यम् आरोर्ग्यम् वर्द्धते ॥ १३५ ॥

व्याख्या—सुगत्या = सुष्ठुगमनेन, अग्नेः = जठराग्नेः, बलम् = शक्तिम्, दार्ढ्यम् = स्थैर्यम्, आरोग्यम् = नैरुज्यम्, च, वर्द्धते = वृद्धिं गच्छति ॥ १३५ ॥

हिन्दी—घाड़े की सुन्दर चाल से उसकी पाचन शक्ति, शरीर की दृढता और आरोग्य की वृद्धि होती है ॥ १३५ ॥

सुगत्येति। सुगत्या शोभनेन गमनेन हरेः अश्वस्य अग्निः, बलं दार्ढ्यं शरीरकाठिन्यञ्च वर्द्धते ॥ १३५ ॥

भारमार्गपरिश्रान्तं शनैश्चङ्क्रामयेद्धयम् ।
स्नेहं सम्पाययेत् पश्चाच्छर्करासक्तुमिश्रितम् ॥ १३६ ॥

अन्वयः—भारमार्गपरिश्रान्तं हयं शनैः चङ्क्रामयेत्, पश्चात् शर्करासक्तुमिश्रितं स्नेहं सम्पाययेत् ॥ १३६ ॥

व्याख्या—भारेण = भारवहनेन, तथा मार्गेण = अध्वगमनेन, च परिश्रान्तम् = क्लान्तम्, हयम् = घोटकम्, शनैः = मन्दं मन्दम्, चङ्कामयेत् = भ्रामयेत्, पश्चात् = तदनन्तरम्, शर्करा = गुडचूर्णम्, सक्तुमिश्रितम्—सक्तुभिश्च मिश्रितम् = संसृष्टः, स्नेहम् = तैलभेदं घृतं वा, सम्पाययेत् = पाययेत् ॥ १३६ ॥

हिन्दी—भार ढोने तथा राह चलने से थके घोड़े को पहले धीरे-धीरे टहलाये, फिर उसे शक्कर और सत्तू मिलाकर घी पिलाये ॥ १३६ ॥

भारेति। भारेण मार्गेण अध्वगमनेन च परिश्रान्तं हयम् अश्वं शनैः मन्दं मन्दं चङ्क्रामयेत् पुनः पुनः भ्रामयेत् पश्चात् चङ्क्रमणानन्तरं शर्कराभिः सक्तुभिश्च मिश्रितं स्नेहं तैलभेदं सम्पाययेत् ॥ १३६ ॥

हरिमन्थांश्च माषांश्च भक्षणार्थं मकुष्ठकान् ।
शुष्कानार्द्रांश्च मांसानि सुस्विन्नानि प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥

अन्वयः—भक्षणार्थं हरिमन्थान् माषान् मकुष्ठकान् शुष्कान् आर्द्रान् सुस्विन्नानि मांसानि प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥

व्याख्या—भक्षणार्थम् = भोजनाय, हरिमन्थान् = चणकान्, माषान् = कुरुविन्दान्, मकुष्ठकान् = वन्यमुद्गान्, शुष्कान् = विरसान्, आर्द्रान् = क्लिन्नान्, सुस्विन्नानि = सुपक्वानि, मांसानि च, प्रदापयेत् = दद्यात् ॥ १३७ ॥

हिन्दी—और घोड़े को खाने के लिए चने, उडद तथा मोठ अर्थात् वनमूंग सूखे पानी में भिंगोया हुआ दे और ठीक से पके मांस भी खिलाये ॥ १३७ ॥

हरीति। किञ्चेति चार्थः भक्षणार्थं हरिमन्थान् चणकान् माषान् मकुष्ठकान् वन्यमुद्गान् शुष्कान् आर्द्रान् आर्द्रकान् सुस्विन्नानि सुपक्वानि मांसानि च प्रदापयेत् ॥ १३६ ॥

यद्यत्र स्खलितं गात्रं तत्र दण्डं न पातयेत्।
नावतारितपल्याणं हयं मार्गसमागतम्।
दत्त्वा गुडं सलवणं बलसंरक्षणाय च ॥ १३८ ॥

अन्वयः—यदि अत्रापि स्खलितं गात्रं तत्र दण्डं न पातयेत्। अवतारितपल्याणं मार्गसमागतं हयं बलसंरक्षणाय सलवणं गुडं दत्त्वा न प्रहरेत् ॥ १३८ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, अत्राऽपि = चिकित्सितेऽपि, गात्रम् = शरीरम्, स्खलितम् = पतितम्, तत्र = तस्मिन्स्थाने, दण्डम् = अश्वताडनीम्, न = नहि, पातयेत् = निपातयेत्, अवतारितम् = नामितम्, पल्याणम् = पर्याणम्, यस्य तथोक्तम्, मार्गसमागतम् = समागतस्य दूरवर्त्मनः, हयम् = घोटकम्, तथा बलसंरक्षणाय = शक्तिसंवर्द्धनाय, सलवणम् = लवणसहितम्, गुडम् = शर्कराम्, दत्त्वा कशाघातं न कुर्यात् ॥ १३८ ॥

हिन्दी—यदि घोड़े को किसी अङ्ग में मोच लग जाय तो उस जगह चाबुक नहीं मारना चाहिए। राह चलकर आये थके घोड़े की पीठ से बिना जीन उतारे उसकी ताकत बढ़ाने के लिए उसे नमक मिला कर गुड़ पिलाना चाहिए ॥ १३८ ॥

यदीति। यदि अपिरत्राध्याहार्य्यः अत्रापि चिकित्सतेऽपीत्यर्थः, मात्रं स्खलितं श्लथीभूतम् अस्ति, तदा तत्र दण्डं न पातयेत्। किञ्च अवतारितं नामितं पल्याणं पृष्ठास्तरणं यस्य तथोक्तं मार्गसमागतं पथः समायातं हयं तथा बलसंरक्षणाय सलवणं गुडं दत्त्वा न प्रहरेदिति शेषः ॥ १३८ ॥

गतस्वेदस्य शान्तस्य सुरूपमुपतिष्ठतः।
मुक्तपृष्ठादिबन्धस्य खलीनमवतारयेत् ॥ १३९ ॥

अन्वयः—गतस्वेदस्य शान्तस्य सुरूपम् उपतिष्ठतः मुक्तपृष्ठादिबन्धस्य खलीनं अवतारयेत् ॥ १३९ ॥

व्याख्या—गतस्वेदस्य = विगतघर्मस्य, शान्तस्य = स्वस्थचित्तस्य, सुरूपम् = स्वाभाविकावस्थायाम्, उपतिष्ठतः = स्थितस्य, मुक्तपृष्ठादिबन्धस्य = पल्ययनमुक्तपृष्ठस्य, अश्वस्य, खलीनम् = अवक्षेपणीम्, अवतारयेत् = उन्मोचयेत् ॥ १३९ ॥

हिन्दी—जब घोड़े का पसीना सूख जाय और घोड़ा शान्त होकर अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाय तब उसकी पीठ से जीन खोलकर मुँह से लगाम निकाल ले ॥ १३९ ॥

गतस्वेदस्येति। गतस्वेदस्य विगतघर्मस्य शान्तस्य सुरूपं शोभनं यथा तथा उपतिष्ठतः स्थितस्य मुष्कपृष्ठादिषु बन्धो यस्य तादृशस्य अश्वस्य खलीलं कविकाम् अवतारयेत् भ्रंशयेत् ॥ १३९ ॥

मर्दयित्वा तु गात्राणि पांशुमध्ये विवर्त्तयेत्।
स्नानपानावगाहैश्च ततः सम्यक् प्रपोषयेत् ॥ १४० ॥

अन्वयः—गात्राणि मर्दयित्वा पांशुमध्ये विवर्त्तयेत्। ततः स्नानपानावगाहैः च सम्यक् प्रपोषयेत् ॥ १४० ॥

व्याख्या—गात्राणि = शरीराणि, मर्दयित्वा = मर्दनं कृत्वा, पांशुमध्ये = धूलिमध्ये, विववर्त्तयेत् = सहसा विलुण्ठयेत्, ततः = तत्पश्चात्, स्नानपानावगाहैः—स्नानेन = आप्लवेन, पानेन = पीत्या, च = पुनः, अवगाहनेन = जले प्रविश्य विलोडनेन, सम्यक् = सुष्ठुतया, प्रपोषयेत् = पालयेत् ॥ १४० ॥

हिन्दी—और घोड़े को खरहरा कर के धूल में लोटने को छोड़ दे। फिर उसे बहलाकर, पानी पिला कर और पानी मैं तैराकर तरोताजा कर दे ॥ १४० ॥

मर्दयित्वेति। अथ गात्राणि मर्दयित्वा पांशुमध्ये धूलिमध्ये विवर्त्तयेत् उद्गण्ठयेत् ततः अनन्तरं स्नानपानावगाहैः स्नानेन पानेन अवगाहनेन च सम्यक् पोषयेत् पुष्टिं नयेत् ॥ १४० ॥

सर्वदोषहरोऽश्वानां मद्यजङ्गलयोः रसः ।
शक्त्या सम्पाययेत् क्षीरं घृतं वा वारि सक्तुकम् ॥ १४१ ॥

अन्वयः—मद्यजङ्गलयोः रसः सर्वदोषहरः शक्त्या क्षीरं घृतं वा वारि सक्तुकं सम्पाययेत् ॥ १४१ ॥

व्याख्या—मद्यजङ्गलयोः—मद्यस्य = मदिरायाः, जङ्गलस्य = वन्यजीवानां मांसस्य, रसः = सारः, सर्वदोषहरः—सर्वेषाम् = सकलानाम्, दोषाणाम् = रक्तपित्तादिविकाराणाम्, हरः = विनाशकः, शक्त्या = सामर्थ्यानुसारेण, क्षीरम् = दुग्धम्, घृतम् = आज्यम्, वा = अथवा, वारि = जलम्, सक्तुकम् = सक्तुयुतम्, सम्पाययेत् = सम्यक् प्रकारेण पानं कारयेत् ॥१४ ॥

हिन्दी—घोड़ों के लिए शराब तथा जंगली जीवों के मांस का रस पिलाना हर तरह के दोषों को मिटाने वाला है। अपनी शक्ति के अनुसार दूध, घी या पानी में सत्तू घोलकर पिलाना चाहिए ॥ १४१ ॥

सर्वेति। मद्यजङ्गलयोः सुरायाः जङ्गलस्य मांसस्य च रसः सर्वेषां दोषाणां हरः नाशकः शान्तिकर इत्यर्थः। किञ्च शक्त्या शक्त्यनुसारेण क्षीरं दुग्धं घृतं वा ससक्तुकं सक्तुसहितं वारि वा सम्पाययेत् ॥ १४१ ॥

अन्नं भुक्त्वा जलं पीत्वा तत्क्षणाद्वाहितो हयः ।
उत्पद्यन्ते तदाश्वानां कासश्वासादिका गदाः ॥ १४२ ॥

अन्वयः—अन्नं भुक्त्वा जलं पीत्वा हयः तत्क्षणात् वाहितः तदा अश्वानां कासश्वासादिकाः गदाः उत्पद्यन्ते ॥ १४२ ॥

व्याख्या—अन्नम् = भक्ष्यपदार्थम्, भुक्त्वा = खादित्वा, जलम् = सलिलम्, पीत्वा = पानं कृत्वा, हयः = वाजी, तत्क्षणात् = तस्मादेव कालात्, वाहितः = आरोहितः, चेत्, तदा, अश्वानाम् = घोटकानाम्, कासश्वासादिकाः = एतदाख्याः, गदाः = रोगाः, उत्पद्यन्ते = उत्पन्ना भवन्ति ॥१४२ ॥

हिन्दी—यदि दाना खिलाने के बाद पानी पिला कर उसी समय घोड़े पर सवारी की जाय तो उससे घोड़े को खाँशी और दमे की बीमारी हो जाती है ॥ १४२ ॥

अन्नमिति। अन्नं भुक्त्वा जलं पीत्वा स्थित इति शेषः, हयः अश्वः तत्क्षणात् वाहितः भवति चेत् तदा अश्वस्य कासश्वासादिकाः गदाः रोगाः उत्पद्यन्ते ॥ १४२ ॥

यवाश्च चणकाः श्रेष्ठा मध्या माषा मकुष्ठकाः ।
नीचा मसूरा मुद्गाश्च भोजनार्थं तु वाजिनः ॥ १४३ ॥

अन्वयः—वाजिनः भोजनार्थं यवाः चणकाः श्रेष्ठाः, माषाः मकुष्ठकाः मध्याः, मसूराः मुद्गाश्च नीचाः भवन्ति ॥ १४३ ॥

व्याख्या—वाजिनः = घोटकस्य, भोजनार्थम् = भक्षणाय, यवाः = प्रवेटाः, चणकाश्च, श्रेष्ठाः = उत्तमाः, माषाः = कुरुविन्दाः, मकुष्ठकाः = वन्यमुद्गाः, मध्याः = मध्यमस्तरीयाः, मसूराः = मसूरकाः, मुद्गाश्च, नीचाः = अधमाः भवन्ति ॥ १४३ ॥

हिन्दी—घोड़ों के भोजन के लिए जौ और चना देना उत्तम हैं, उड़द और मोठ मध्यम तथा मसूर और मूँग देना अधम हैं ॥ १४३ ॥

यवा इति। वाजिनः अश्वस्य भोजनार्थं यवाः चणकाश्च श्रेष्ठाः माषाः मकुष्ठकाः वन्यमुद्गाः मध्याः मसूराः मुद्गाश्च नीचाः अधमाः ॥ १४३ ॥

गतयः षड्विधा धारास्कन्दितं रेचितं प्लुतम्।
धौरीतकं वल्गितञ्च तासां लक्ष्म पृथक् पृथक् ॥ १४४ ॥

अन्वयः—गतयः षड्विधाः—धारा, आस्कन्दितम्, रेचितम्, प्लुतम्, धौरीतकं, वल्गितं च। तासां लक्ष्म पृथक् पृथक् ॥ १४४ ॥

व्याख्या—वाजीनाम्, गतयः = गमनानि, षड्विधाः = षट्प्रकारकाः भवन्ति, धारा = वेगयुक्तगमनम्, आस्कन्दितम् = आकुञ्चिताभ्याम् अग्रपादाभ्यामुत्प्लुत्य गमनम्, रेचितम् = ईषदुत्प्लुत्या खण्डगमनम्, प्लुतम् = पादैश्चतुभिरुत्प्लुत्य मृगवद्गमनम्, धौरीतकम् = आकुञ्चिताभ्यां पद्भ्यां सुव्यक्तद्रुतगमनम्, च = पुनः, वल्गितम् = मयूर इव उन्नतग्रीवस्तथा दोलायितार्द्धदेहस्य कुञ्चिताभ्यां पद्भ्यां गमनम्। तासाम् = गतीनाम्, लक्ष्म = लक्षणं, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, उच्यते इति शेषः ॥ १४४ ॥

हिन्दी—धारा, आस्कन्दित, रेचित, प्लुत, धौरीतक और वल्गित—इन छः भेदों से घोड़े का गतिभेद माना गया है। अब इनके लक्षण अलग-अलग कहते हैं ॥ १४४ ॥

गतय इति। अश्वानां गतयः षड्विधाः, धारा १। आस्कन्दितं २। रेचितं ३। प्लुतं ४। धौरीतकं ५। वल्गितञ्च ६। तासां गतीनां लक्ष्म लक्षणं पृथक् पृथक् विभिन्नमित्यर्थः ॥ १४४ ॥

धारागतिः सा विज्ञेया यातिवेगतरा मता।
पार्ष्णितोदातिनुदितो यस्यां भ्रान्तो भवेद्धयः ॥ १४५ ॥

अन्वयः—या अतिवेगतरा मता, यस्यां पार्ष्णितोदातिनुदितः भ्रान्तः भवेत्, सा धारा गतिः विज्ञेया ॥ १४५ ॥

व्याख्या—या = गतिः, अतिवेगतरा = अत्यधिकवेगशालिनी, मता = ज्ञाता, यस्याम् = गत्याम्, घोटकः, पार्ष्णिभ्याम् = पादमूलाभ्याम्, तोदेन = आघातेन, अतिनुदितः = विशिष्टरूपेण प्रेरितः सन्, भ्रान्तः = चक्रवच्चालः, भवेत् = स्यात्, सा = गतिः, धारा गतिः = इत्याख्या, विज्ञेया = ज्ञातव्या ॥ १४५ ॥

हिन्दी—सवार की एडी की चोट से प्रेरित होकर जो घोड़ा अत्यन्त वेग से दौड़ लगाये, उस गति को धारागति कहते हैं ॥ १४५ ॥

धारेति। या गतिः अतिवेगतरा अतिवेगवती मता, यस्याञ्च हयः पार्ष्णिभ्यां तोदेन प्रहारेण अतिनुदितः अतिप्रेरितः सन् भ्रान्तः भवेत् सा धारा विज्ञेया ॥ १४५ ॥

आकुञ्चिताग्रपादाभ्यामुत्प्लुत्योत्प्लुत्य या गतिः।
आस्कन्दिता च सा ज्ञेया गतिविद्भिस्तु वाजिनाम् ॥ १४६ ॥

अन्वयः—आकुञ्चिताभ्याम् अग्रपादाभ्याम् उत्प्लुत्य उत्प्लुत्य या गतिः सा वाजिनां विद्भिः आस्कन्दिता ज्ञेया ॥ १४६ ॥

व्याख्या—आकुञ्चिताभ्याम् = सङ्कोचिताभ्याम्, अग्रपादाभ्याम् = द्वाभ्यामग्रचरणाभ्याम्, उत्प्लुत्य उत्प्लुत्य = उत्पत्य उत्पत्य, या = गतिः, साः = गतिः, वाजिनाम् = अश्वानाम्, विद्भिः = ज्ञातृभिः, आस्कन्दिता = एतदाख्या, ज्ञेया = बोद्धव्या ॥ १४६ ॥

हिन्दी—जो घोड़े अगले पैरों को सिकोड़ते हुए उछल-उछल कर दौड़े, उस घोड़े की गति को घोड़े की चाल के जानकार 'आस्कन्दित' कहते हैं ॥ १४६ ॥

आकुञ्चितेति। आकुञ्चिताभ्याम् अग्रपादाभ्याम् उत्प्लुत्य उत्प्लुत्य या गतिः सा वाजिनां गतिविद्भिः आस्कन्दिता च ज्ञेया ॥ १४६ ॥

ईषदुत्प्लुत्य गमनमखण्डं रेचितं हि तत्।
पादैश्चतुर्भिरुत्प्लुत्य मृगवत् सा प्लुता गतिः ॥ १४७ ॥

अन्वयः—ईषत् उत्प्लुत्य अखण्डं गमनं यत् तत् रेचितं, या चतुर्भिः पादैः उत्प्लुत्य मृगवत् गतिः सा प्लुता ॥ १८७ ॥

व्याख्या—ईषत् = अल्पम्, उत्प्लुत्य = उत्पत्य, अखण्डम् = क्रमिंकम्, यत् = गमनम्, तत्, रेचितम् एतदाख्यम्, तथा या = गतिः, चतुर्भिः, पादैः = चरणैः, उत्पलुत्य = उत्पत्य, मृगवत् = हरिण इव, गतिः = गमनम्, सा = गतिः, प्लुता = एतदाख्या, स्मृता = कथिता ॥ १४७ ॥

हिन्दी—थोड़ा उछल कर लगातार चलने वाली घोड़े की गति को 'रेचित' कहते हैं तथा चारों पैरों से हिरण की तरह चौकड़ी भर कर चलने वाली घोड़े की चाल को 'प्लुत' कहते हैं ॥ १४७ ॥

ईषदिति। ईषत् उत्प्लुत्य अखण्डं क्रमिकं गमनं यत् तत् हि रेचितम्। या चतुर्भिः पादैः उत्प्लुत्य मृगवत् गतिः सा प्लुता ॥ १४७ ॥

असंवलितपद्भ्यां तु सुव्यक्तं गमनं तुरम्।
धौरीतकं च तज्ज्ञेयं रथसंवाहने वरम् ॥ १४८ ॥

अन्वयः—असंवलितपद्भ्यां यत् सुव्यक्तं तुरं गमनं तत् धौरीतकं ज्ञेयम्, तत् रथसंवाहने वरम् ॥१४० ॥

व्याख्या—अंसवलितपद्भ्याम् = असङ्कोचिताभ्याम्, पद्भ्याम् = चरणाभ्याम्, यत् सुव्यक्तम् = सुस्पष्टम्, तुरम् = द्रुतम्, गमनम् = गतिः, तत् धौरीतकम् = एतदाख्यम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्, तत्, रथसंवाहने = स्यन्दनसंवाहने, वरम् = श्रेष्ठम्, ज्ञेयम् ॥ १४० ॥

हिन्दी—जो घोड़ा बिना अगले पैरों को मोड़े तेज गति से दौडे वह रथ में जोतने योग्य धौरीतक गति वाला जानना चाहिए ॥ १४८ ॥

असंवलितेति। असंवलिताभ्याम् अकुञ्चिताभ्यां पद्भ्यां यत् सुव्यक्तं तुरं द्रुतं गमनं तत् धौरीतकं ज्ञेयं, तत्तु रथसंवाहने वरं श्रेष्ठम् ॥ १४८ ॥

प्रसंवलितपद्भ्यां यो मयूरो धृतकन्धरः।
दोलायितशरीरार्द्धकायो गच्छति वल्गितम् ॥ १४९ ॥

अन्वयः—मयूरः धृतकन्धरः दोलायितशरीरार्द्धकायः प्रसंवलितपद्भ्यां यः गच्छति सः वल्गितम् ॥ १४९ ॥

व्याख्या—मयूरः= शिखी, इव यः= अश्वः, धृतकन्धरः= उन्नतग्रीवः, तथा दोलायितः= विचलितः, शरीस्य= देहस्य, अर्द्धकायः= भागार्द्धः, यस्य तथाभूतः सन्, प्रसंवलिताभ्याम्= कुञ्चिताभ्याम्, पद्भ्याम्= चरणाभ्याम्, यत् गच्छति= चलति, तत् वल्गितम्= एतदाख्यं कथितमिति शेषः ॥ १४९ ॥

हिन्दी—अगले दोनों पैरों को सिकोड़े हुए, मयूर की तरह गर्दन ऊपर उठाये, आधी देह को हिंडोले की तरह हिलाते हुए जो घोड़ा दौडता है, उस चाल को वल्गित कहते हैं ॥ १४९ ॥

प्रसंवलितेति। मयूरः इव यः अश्वः धृरकन्धरः उन्नतग्रीवः तथा दोलायितः शरीरस्य अर्द्धकायः अर्द्धभागः यस्य तथाभूतः सन् प्रसंवलिताभ्यां कुञ्चिताभ्यां पद्भ्यां यत् गच्छति तत् वल्गितम् ॥ १४९ ॥

परिणाहो वृषमुखादुदरे तु चतुर्गुणः।
सककुत् त्रिगुणोच्चन्तु सार्द्धत्रिगुणदीर्घता ॥ १५० ॥

अन्वयः—वृषस्य मुखात् उदरे परिणाहः चतुर्गुणः सककुत् त्रिगुणोच्चं सार्द्धत्रिगुणदीर्घता ॥ १५० ॥

व्याख्या—वृषस्य= बलीवर्दस्य, मुखात्= आननात्, उदरे= तुन्दे, परिणाहः= कुक्षिविस्तारः, चतुर्गुणः, सककुत्= अंसकुटसहितम्, त्रिगुणम्= त्रिगुणात्मकम्, मुखादिति, उच्चम्= उन्नतम्, सार्द्धत्रिगुणदीर्घता= मुखादुदरस्य दीर्घता= लम्बता, अर्द्धेण सहिता त्रिगुणा ज्ञेया ॥ १५० ॥

हिन्दी—बैल के मुँह के माप से चार गुना अधिक पेट का माप और बैल की पीठ पर के टिल्ले पेट सहित मुँह से तीन गुना ऊँचा तथा पेट की लम्बाई साढ़े तीन गुना अधिक होनी चाहिए ॥ १५० ॥

सम्प्रति वृषस्य विवरणमाचष्टे- **परिणाह इति**। वृषस्य मुखात् उदरे परिणाहः उदरविस्तार इत्यर्थः, चतुर्गुणः। सककुत् ककुत्सहितम् उदरं त्रिगुणं मुखादिति शेषः, उच्चम् उन्नतम्। सार्द्धत्रिगुणदीर्घता मुखात् उदरस्य दीर्घता सार्द्धत्रिगुणा ॥ १५० ॥

सप्ततालो वृषः पूज्यो गुणैरेभिर्युतो यदि ॥ १५१ ॥

अन्वयः—सप्ततालः वृषः यदि एभिः गुणैः युतः पूज्यः ॥ १५१ ॥

व्याख्या- सप्ततालः= परिमाणविशेषः, सप्त तालाः परिमाणमस्येति सप्ततालः, वृषः= वृषभः, यदि = चेत्, एभिः= वक्ष्यमाणैः, गुणैः, युतः= सहितः, भवेत्= स्यात्, तदा, श्रेष्ठः= पूज्यो भवेदिति ॥ १५१ ॥

हिन्दी—सात ताल प्रमाण ऊँचा होते हुए भी निम्नलिखित गुणों से युक्त यदि बैल हो तो वह बैल उत्तम होता है ॥ १५१ ॥

सप्तताल इति। सप्ततालः तालः परिमाणविशेषः सप्ततालाः परिमाणमस्येति सप्ततालः वृषः यदि एभिर्वक्ष्यमाणैः गुणैः युतः भवेत् तदा पूज्यः॥१५१॥

न स्थायी न च वै मन्दः सुवोढा स्वङ्गसुन्दरः।
नातिक्रूरः सुपृष्ठश्च वृषभः श्रेष्ठ उच्यते॥ १५२॥

अन्वयः– यः वृषभः न स्थायी न च मन्दः सुवोढा स्वङ्गसुन्दरः नातिक्रूरः सुपृष्ठः वृषभः श्रेष्ठः उच्यते॥१५२॥

व्याख्या—यो हि, वृषभः = बलीवर्दः, न = नहि, स्थायी = गतिविच्छेदकः, न च मन्दः = सलसगतिशीलः, सुवोढा = सुवहनशीलः, स्वङ्गसुन्दरः = सुपुष्टशरीरावयवैः रुचिरः, नातिक्रूरः = नातिनिर्दयः, सुपृष्ठश्च = पश्चिमाङ्गसुन्दरः, वृषभः = वृषः, श्रेष्ठः = उत्तमः, उच्यते = कथ्यते॥१५२॥

हिन्दी—जो चलते-चलते रुकने वाला न हो, जो धीरे-धीरे न चलता हो, जो अत्यन्त क्रूर न हो, वहने में अच्छा हो, जिसकी पीठ अच्छी हो, जिसकी देह के समस्त अंग-प्रत्यंग सुपुष्ट एवं आकर्षक हो; बैलों में ऐसा बैल श्रेष्ठ होता है॥१५२॥

गुणानाह– **नेति।** यः वृषः न स्थायी न स्थितिशीलः, न च मन्दः मृदुः, सुवोढा सुवाहकः, स्वङ्गसुन्दरः शोभनाङ्गतया सुन्दर इत्यर्थः, नातिक्रूरः नातितीक्ष्णः सुपृष्ठश्च सः वृषभश्रेष्ठः वृषभेषु श्रेष्ठः उच्यते॥१५२॥

त्रिंशद्योजनगन्ता वा प्रत्यहं भारवाहकः।
नवतालश्च सुदृढः सुमुखोष्ट्रः प्रशस्यते॥ १५३॥

अन्वयः—त्रिंशद्योजनगन्ता प्रत्यहं भारवाहकः वा नवतालः सुदृढः सुमुखोष्ट्रः प्रशस्यते॥१५३॥

व्याख्या—विंशत्यधिकशतक्रोशगमनशीलः, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, भारवाहकः = भारवाही, नवतालः = नवतालोन्नतः, सुदृढः = अतिबलिष्ठः, सुमुखः = सुवदनम्, उष्ट्रः = महाग्रीवः, प्रशस्यते = प्रशंसनीयो भवति॥१५३॥

हिन्दी—प्रतिदिन १२० कोश चलने वाला, वजन ढोने वाला, साढ़े चार हाथ ऊँचा, मजबूत कद-काठी और सुन्दर मुँह वाला ऊँट प्रशंसनीय होता है॥१५३॥

उष्ट्रमाह– **त्रिंशदिति।** त्रिंशद्योजनगन्ता विंशत्यधिकशतक्रोशगामी प्रत्यहं भारवाहकः भारवहनशीलः नवतालः नवतालपरिमितः सुदृढः कठिनशरीरः सुमुखः उष्ट्रः प्रशस्यते॥१५३॥

शतमायुर्मनुष्याणां गजानां परमं स्मृतम्।
मनुष्यगजयोर्बाल्यं यावद्विंशतिवत्सरम्॥ १५४॥

अन्वयः—मनुष्याणां गजानाञ्च परमम् आयुः शतं स्मृतम्। मनुष्यगजयोः बाल्यं विंशतिवत्सरं यावत्॥१५४॥

व्याख्या—मनुष्याणाम् = नराणाम्, च = पुनः, गजानाम् = हस्तिनाम्; परमायुः = जीवनकालः, शतम् = शतवर्षपर्यन्तम्, स्मृतम् = कथितम्। मनुष्यगजयोः = नरहस्तिनोः, बाल्यञ्च = शैशवञ्च, विंशतिः, वत्सरम् = वर्षम्, यावत् = पर्यन्तमिति ज्ञेयम्॥१५४॥

हिन्दी—आदमी और हाथी का जीवनकाल सौ साल का होता है और उनका बचपन बीस साल तक माना जाता है ॥ १५४ ॥

शतमिति। मनुष्याणां गजानाञ्च परमम् आयुः जीवनकालः शतं शतवर्षं स्मृतम्। मनुष्यगजयोः बाल्यञ्च विंशतिवत्सरं यावत् विंशतिवर्षपर्य्यन्तमित्यर्थः ॥ १५४ ॥

नृणां हि मध्यमं यावत् षष्टिवर्षं वयः स्मृतम्।
अशीतिवत्सरं यावद्गजस्य मध्यमं वयः ॥ १५५ ॥

अन्वयः—नृणां मध्यमं वयः षष्टिवर्षं यावत् स्मृतम्। गजस्य मध्यमं वयः अशीतिवत्सरं यावत् ॥ १५५ ॥

व्याख्या—नृणाम् = नराणाम्, मध्यमम् = मध्यभागः, वयः = अवस्था, षष्टिवर्षम् = षष्टिवत्सरम्, यावत् = पर्यन्तम्, तथा गजस्य = हस्तिनः, मध्यमं वयः = प्रौढावस्था, अशीतिवत्सरम् = अशीतिवर्षम्, यावत् = पर्यन्तम्, बोध्यम् ॥ १५५ ॥

हिन्दी—मानव की प्रौढावस्था साठ साल तक तथा हाथी की प्रौढावस्था अस्सी साल की मानी गई है ॥ १५५ ॥

नृणामिति। नृणां मानवानां मध्यमं वयः षष्टिवर्षं यावत् तथा गजस्य अशीतिवत्सरं यावत् मध्यमं वयः स्मृतम् ॥ १५५ ॥

चतुस्त्रिंशत्तु वर्षाणामश्वस्यायुः परं स्मृतम्।
पञ्चविंशतिवर्षं हि परमायुर्वृषोष्ट्रयोः ॥ १५६ ॥

अन्वयः—अश्वस्य परमायुः वर्षाणां चतुस्त्रिंशत् तथा वृषोष्ट्रयोः परमायुः पञ्चविंशतिवर्षं स्मृतम् ॥ १५६ ॥

व्याख्या—अश्वस्य = घोटकस्य, परमायुः = जीवनकालः, वर्षाणाम् = वत्सराणाम्, चतुःत्रिंशत् = चतुरधिकत्रिंशत्वर्षपरिमितम्, स्मृतम् = कथितम्। तथा वृषोष्ट्रयोः—वृषस्य = बलीवर्दस्य, च = पुनः, उष्ट्रस्य = महाङ्गस्य, परमायुः = जीवनकालः, पञ्चविंशतिवर्षम् = पञ्चाधिकविंशतिवर्षपर्यन्तम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ १५६ ॥

हिन्दी—घोड़े की परमायु चौंतीस वर्ष की मानी गई है तथा बैल और ऊँट की परमायु पच्चीस वर्ष तक की ही मानी गई है ॥ १५६ ॥

चतुस्त्रिंशदिति। अश्वस्य परम् आयुः वर्षाणां चतुस्त्रिंशत् चतुस्त्रिंशद्वर्षमित्यर्थः, तथा वृषोष्ट्रयोः वृषस्य उष्ट्रस्य च परमायुः पञ्चविंशतिवर्षं स्मृतम् ॥ १५६ ॥

बाल्यमश्ववृषोष्ट्राणां पञ्चमं वत्सरं मतम्।
मध्यं यावत् षोडशाब्दं वार्द्धक्यन्तु ततः परम् ॥ १५७ ॥

अन्वयः—अश्ववृषोष्ट्राणां बाल्यं पञ्चमं वत्सरं, मध्यं षोडशाब्दं यावत्, ततः परं वार्द्धक्यं मतम् ॥ १५७ ॥

व्याख्या—अश्वस्य = वाजिनः, वृषस्य = बलीवर्दस्य, उष्ट्रस्य = क्रमेलकस्य च, बाल्यम् = शैशवम्, पञ्चमं वत्सरम् = पञ्चवर्षपर्यन्तम्, मध्यम् = तारुण्यम्, षोडशाब्दम् = षोडवर्षपर्यन्तम्, ततः परम् = तत्पश्चात्, वार्द्धक्यम् = वृद्धावस्था, स्मृतम् = कथितम् ॥ १५७ ॥

हिन्दी—घोड़ा, बैल और ऊँटों का बचपन पाँच साल तक होता है, जवानी सोलह तक होती है और इसके बाद वृद्धावस्था आ जाती है ॥ १५७ ॥

बाल्यमिति। अश्ववृषोष्ट्राणाम् अश्वानां वृषाणाम् उष्ट्राणाञ्च बाल्यं शैशवं पञ्चमं वत्सरं यावत्, मध्यं यौवनमित्यर्थः, षोडशाब्दं यावत् ततः परं वार्द्धक्यं स्मृतम् ॥ १५७ ॥

दन्तानामुद्गमैर्वर्णैरायुर्ज्ञेयं वृषाश्वयोः ॥ १५८ ॥

अन्वयः—दन्तानाम् उद्गमैः वर्णैश्च वृषाश्वयोः आयुः ज्ञेयम् ॥ १५८ ॥

व्याख्या—दन्तानाम् = दशनानाम्, उद्गमैः = जननैः, वर्णैश्च = स्वरूपैश्च, वृषस्य = बलीवर्दस्य, अश्वस्य = हयस्य च, आयुः = वयः, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ १५८ ॥

हिन्दी—बैल तथा घोड़े की उम्र का ज्ञान उनके दाँत निकलने तथा दाँतों के रंग-रूप से किया जाता है ॥। १५८ ॥

दन्तानामिति। दन्तानाम् उद्गमैः जननैः वर्णैश्च वृपाश्वयोः वृषस्य अश्वस्य च आयुः ज्ञेयम् ॥ १५८ ॥

अश्वस्य षट् सिता दन्ताः प्रथमाब्दे भवन्ति हि।
कृष्णलोहितवर्णास्तु द्वितीयेऽब्दे ह्यधोगताः ॥ १५९ ॥

अन्वयः—अश्वस्य प्रथमाब्दे षट् सिताः दन्ताः भवन्ति। कृष्णलोहितवर्णाः तु द्वितीये अब्दे अधोगताः हि ॥ १५९ ॥

व्याख्या—अश्वस्य = घोटकस्य, प्रथमाब्दे = प्रथमवर्षे, षट् सिताः = श्वेतवर्णाः षट्, दन्ताः = रदनाः, भवन्ति = जायन्ते, द्वितीये अब्दे = पुनः द्वितीयवर्षे, कृष्णलोहितवर्णाः = श्यामरक्तरङ्गाः, दन्ताः, अधोगताः = निम्नगामिनः, हि इति निश्चयेन, भवन्ति = जायन्ते ॥ १५९ ॥

हिन्दी—पहले वर्ष घोड़े के ऊपरी भाग में छः सफेद दाँत निकलते हैं और दूसरे साल में काले लाल मिले रंग के छः दाँत नीचे निकलते हैं ॥ १५९ ॥

अश्वस्येति। अश्वस्य प्रथमाब्दे जननप्रथमवत्सरे षट् सिता श्वेतवर्णाः दन्ताः भवन्ति। द्वितीये अब्दे कृष्णलोहितवर्णाः अधोगताः निम्नगामिनः भवन्ति हिशब्दश्चावधारणार्थः ॥ १५९ ॥

तृतीयेऽब्दे तु सन्दंशौ क्रमात् कृष्णौ षडब्दतः।
तत्पार्श्ववर्त्तिनौ तौ तु चतुर्थे पुनरुद्गतौ ॥ १६० ॥

अन्वयः—तृतीयेऽब्दे सन्दंशौ षडब्दतः क्रमात् कृष्णौ, चतुर्थे तु तत् पार्श्ववर्त्तिनौ तौ पुनः उद्गतौ ॥ १६० ॥

व्याख्या—तृतीयेऽब्दे = तृतीयवर्षे तु, सन्दंशौ = द्वे रदने, षडब्दतः = षड्वर्षपर्यन्तम्, क्रमात् = क्रमशः, कृष्णौ = श्यामवर्णौ भवतः, तथा चतुर्थे = तुरीये, वर्षे, तत् = तयोः रदनयोः, पार्श्ववर्त्तिनौ = समीपस्थितौ, तौ = दन्तौ, पुनः = भूयः, उद्गतौ = जातौ ॥ १६० ॥

हिन्दी—तीसरे साल में दो दाँत छः साल तक क्रमशः काले हो जाते हैं और चौथे साल उन दोनों दाँतों के बगल में और दो दाँत निकल आते हैं ॥ १६० ॥

तृतीये इति। तृतीये अब्दे वत्सरे तु सन्दंशौ, दशनौ च षडब्दतः पड्वर्षपर्यन्तं क्रमात् कृष्णौ भवतः। चतुर्थे तु वर्षे तयोः दशनयोः पार्श्ववर्त्तिनौ तौ दशनौ पुनः उद्गतौ भवत इति शेषः ॥ १६० ॥

अन्त्यौ द्वौ पञ्चमाब्दे तु सन्दंशौ पुनरुद्गतौ।
मध्यपार्श्वान्तगौ द्वौ द्वौ क्रमात् कृष्णौ षडब्दतः ॥ १६१ ॥

अन्वयः—पञ्चमाब्दे अन्त्यौ द्वौ सन्दंशौ पुनरुद्गतौ, मध्यपार्श्वान्तगौ द्वौ द्वौ षडब्दतः क्रमात् कृष्णौ ॥ १६१ ॥

व्याख्या—पञ्चमाब्दे = पञ्चमे वर्षे, अन्त्यौ = अन्ते समुत्पन्नौ, द्वौ = उभौ, सन्दंशौ = सुष्ठुदशनौ, पुनः = भूयः, उद्गतौ = समुत्पन्नौ, भवतः, मध्यपार्श्वान्तगौ = मध्ये समुत्पन्नौ तथा पार्श्वान्तभागे जातौ द्वौ द्वौ रदनौ, षडब्दतः = षड्वर्षपर्यन्तम्, क्रमात् = अनुक्रमात्, कृष्णौ = श्यामवर्णौ जातौ ॥ १६१ ॥

हिन्दी—पाँचवें साल के अन्त में फिर दो दाँत निकल आते हैं। छः साल के भीतर क्रमशः बीच के तथा पार्श्ववर्त्ती अन्तिम दो-दो दाँत काले हो जाते हैं ॥ १६१ ॥

अन्त्याविति। पञ्चमाब्दे पञ्चमवर्षे अन्त्यौ अन्तेभवौ द्वौ सन्दंशौ पुनरुद्गतौ भवतः। मध्यपार्श्वान्तगौ मध्यपार्श्वयोः अन्तगौ द्वौ द्वौ दशनौ षडब्दतः षड्वर्षं यावत् क्रमात् कृष्णौ भवतः ॥ १६१ ॥

नवमाब्दात् क्रमात् पीतौ तौ सितौ द्वादशाब्दतः।
दशपञ्चाब्दतस्तौ तु काचाभौ क्रमशः स्मृतौ ॥ १६२ ॥

अन्वयः—तौ क्रमात् नवमाब्दात् पीतौ, ततः द्वादशाब्दतः सितौ, ततः दशपञ्चाब्दतः तौ क्रमशः काचाभौ स्मृतौ ॥ १६२ ॥

व्याख्या—तौ = दशनौ, क्रमात् = क्रमशः, नवमाब्दात् = नवमवर्षात्, पीतौ = पीतवर्णौ, जातौ, ततः = तत्पश्चात्पुनः द्वादशाब्दतः = द्वादशवर्षं यावत् तौ दशनौ, सितौ = श्वेतवर्णौ भवतः, ततश्च = तत्पश्चात्, दशपञ्चाब्दतः = पञ्चदशवर्षात्, तौ = दन्तौ, क्रमशः = अनुक्रमात्, काचाभौ = स्फटिक इव समुज्ज्वलौ, स्मृतौ = कथितौ ॥ १६२ ॥

हिन्दी—नौवें साल से वे दोनों दाँत क्रमशः पीले रंग के, उसके बाद पुनः बारहवें साल में सफेद रंग के हो जाते हैं। फिर पन्द्रहवें साल तक वे दोनों काँच की तरह उज्ज्वल हो जाते हैं ॥ १६२ ॥

नवामाब्दादिति। तौ दशनौ क्रमात् नवमाब्दात् पीतौ, ततः पुनः द्वादशाब्दतः सितौ श्वेतौ। ततश्च दशपञ्चाब्दतः पञ्चदशवर्षात् तौ क्रमशः काचाभौ काचवदुज्ज्वलौ स्मृतौ ॥ १६२ ॥

अष्टादशाब्दतस्तौ हि मध्वाभौ भवतः क्रमात्।
शङ्खाभौ चैकविंशाब्दाच्चतुर्विंशाब्दतः सदा ॥
छिद्रं सञ्चलनं पातो दन्तानाञ्च त्रिके त्रिके ॥ १६३ ॥

अन्वयः—तौ अष्टादशाब्दतः क्रमात् मध्वाभौ भवतः। ततः एकविंशाब्दात् शङ्खाभौ भवतः। ततः चतुर्विंशाब्दतः त्रिके त्रिके क्रमात् दन्तानां छिद्रं सञ्चलनं पातश्च भवति ॥ १६३ ॥

व्याख्या—पुनश्च, तौ = दशनौ, अष्टादशाब्दतः = अष्टाधिकदशवत्सरात्, क्रमात् = क्रमशः, मध्वाभौ = मधु इव कान्तिसम्पन्नौ भवतः। ततश्च = तत्पश्चात्, एकविंशाब्दात् = एकाधिकविंशतिवर्षात्, शङ्खाभौ = शङ्खसदृशौ भवतः। ततः = तत्पश्चात्, चतुर्विंशाब्दतः =

चतुरधिकविंशत्यब्दात्, त्रिके त्रिके = तृतीये तृतीये वर्षे, क्रमात् = अनुक्रमात्, दन्तानाम् = दशनानाम्, छिद्रम् = विवरम्, सञ्चलनम् = वेपनं कम्पनञ्चेति, पातः = पतनञ्च भवति ॥ १६३ ॥

हिन्दी—फिर अठारहवें साल तक उन दानों दाँतों का रंग मधु की तरह रक्ताभ हो जाता है। पुनः इक्कीसवें साल तक उनका रंग शंख की तरह सफेद हो जाता है। फिर चौबीसवें साल तक तीन-तीन दाँतों में पहले छेद होता है, फिर हिलने लगते हैं और बाद में उनका टूट कर गिरना शुरू हो जाता है ॥ १६३ ॥

अष्टादशाब्दत इति। पुनश्च तौ अष्टादशाब्दतः अष्टादशवर्षात् क्रमात् मध्वाभौ मधुसदृशौ भवतः। ततश्च एकविंशाब्दात् शङ्खाभौ भवतः। ततः चतुर्विंशाब्दतः त्रिके त्रिके तृतीये तृतीये वर्षे क्रमात् दन्तानां छिद्रं, सञ्चलनं पातश्च भवति ॥ १६३ ॥

प्रोथे सुवलयस्तिस्रः पूर्णायुर्यस्य वाजिनः।
यथा यथा तु हीनास्ता हीनमायुस्तथा तथा ॥ १६४ ॥

अन्वयः—यस्य वाजिनः पूर्णायुः तस्य प्रोथे तिस्रः सुवलयः ताः यथा यथा हीनाः तथा तथा हीनमायुः ॥ १६४ ॥

व्याख्या—यस्य = पूर्वोक्तस्य, वाजिनः = हयस्य, पूर्णायुः = जीवनकालसमाप्तप्रायः, तस्य = अश्वस्य, प्रोथे = अश्वस्य लम्बास्याग्रे, तिस्रः = त्रिसंख्यकाः, सुवलयः = सुरेखाः, जायन्ते, ताः = वलयः, यथा यथा = येन प्रकारेण, हीनाः = वियुक्ताः, तथा तथा = तेनैव रूपेण, आयुः = वयः, हीनम् = क्षीणम्, भवन्ति ॥ १६४ ॥

हिन्दी—जिस घोड़े के थूथन में तीन रेखाएँ ऊभरी हों, उसे पूर्णायु माने और इन रेखाओं में जैसे-जैसे कमी हो वैसे-वैसे ही क्षीण आयु मानना चाहिए ॥ १६४ ॥

प्रोथे इति। यस्य वाजिनः अश्वस्य पूर्णायुः आयुः पूर्णमित्यर्थः, तस्य प्रोथे मुखाग्रे तिस्रः सुवलयः सुष्ठु वलयः रेखाविशेषाः भवन्तीत्यर्थः। ताः रेखाः यथा यथा हीनाः, तथा तथा आयुः हीनं भवति ॥ १६४ ॥

जानूत्पाता त्वोष्ठवाद्यो धूतपृष्ठो जलासनः।
गतिमध्यासनः पृष्ठपाती पश्चाद्गमोद्ध्वर्पात् ॥ १६५ ॥
सर्पजिह्वश्चर्क्षकान्तिर्भीरुरश्वोऽतिनिन्दितः ।
सच्छिद्रभालतिलकी निन्द्य आश्रयकृत्तथा ॥ १६६ ॥

अन्वयः—जानूत्पाता ओष्ठवाद्यः धूतपृष्ठः जलासनः गतिमध्यासनः पृष्ठपाती पश्चाद्गमः उद्ध्वर्पात् सर्पजिह्वः ऋक्षकान्तिः भीरुः अश्वः अतिनिन्दितः तथा सच्छिद्रभालतिलकी आश्रयकृत् अश्वः निन्द्यः ॥ १६५-१६६ ॥

व्याख्या—जानूत्पाता—जानूनि = ऊरुपर्वाणि, उत्पाति = उत्क्षिपति, इति जानूत्पाता = जानूत्क्षेपणकारी, ओष्ठवाद्यः—ओष्ठेन = अधरेण, वाद्यः = वादयिता, ओष्ठवाद्यः = अधरवादकः, धूतपृष्ठः = कम्पितपृष्ठदेशः, जलासनः = सलिलस्थाने स्थितः, गतिमध्यासनः = गमनान्तराले स्थितिशीलः, पृष्ठपाती = पृष्ठात्पातयालुः, पश्चाद्गमः = अनुगमनकारी, ऊर्ध्वपात् = उत्क्षिप्तपाद, सर्पजिह्वः—सर्पस्य = नागस्य इव जिह्वा = रसना यस्य सः = नागजिह्वः, ऋक्षकान्तिः—

ऋक्षस्य = भल्लुकस्य, इव कान्तिः = आभा, यस्यासौ, भीरुः = भीतः, अश्वः = घोटकः, अतिनिन्दितः = अत्यन्तगर्हितः, तथा = तेनैव प्रकारेण, सच्छिद्रभालतिलकी—सच्छिद्रम् = रन्ध्रेण सहितम्, भाले = ललाटे, यत् तिलकम् = तिलकचिह्नयुक्तः, आश्रयकृत्—आश्रयम् = स्वामिनम्, कृन्तति = कर्त्तनं करोतीति तथोक्तः स्वामिहन्ता, अश्वः = हयः, निन्द्यः = निन्दनीयो भवति ॥ १६५-१६६ ॥

हिन्दी—जाँघों को हिलाने वाला, होठों को बजाने वाला, पीठ कँपाने वाला, पानी में या चलते-चलते बैठ जाने वाला, पीठ पर से सवार को गिराने वाला, पीछे की ओर खिसकने वाला, पैरों को ऊपर की ओर फेंकने वाला, साँप की तरह जीभ लपलपाने वाला, भालू की तरह कान्ति वाला और डरपोक घोड़ा अत्यन्त निन्दनीय होता है। इसी तरह जिस घोड़े के माथे में छेद वाला तिलक चिह्न हो, वह भी निन्दनीय तो होता ही है, साथ ही अपने आश्रयदाता का ही नाश कर देता है ॥ १६५-१६६ ॥

जानूत्पाता इति। सर्पजिह्व इति। जानूनि उत्पाति उत्क्षिपतीति जानूत्पाता जानूत्क्षेपणशीलः ओष्ठवाद्यः ओष्ठेन वाद्यकारकः, धूतपृष्ठः कम्पितपृष्ठदेशः, जलासनः जलस्थानस्थितः गतिमध्यासनः गतिमध्ये गमनमध्ये आसनम् उपवेशनं यस्य सः गच्छन् गच्छन् स्थितिशील इत्यर्थः, पृष्ठपाती पृष्ठपातकः पश्चाद्गमः पश्चाद्गमनशीलः उद्र्ध्वपाद् उत्क्षिप्तचरणः, सर्पस्येव जिह्वा यस्य सः, ऋक्षकान्तिः भल्लूकप्रभः, तथा भीरुः अश्वः अतिनिन्दितः। तथा सच्छिद्रभालतिलकी सच्छिद्रं सरन्ध्रं भाले यत् तिलकं तिलकाकृतिचिह्नविशेषः तद्विशिष्टः आश्रयकृत् आश्रयं कृन्तति छिनत्तीति तथोक्तः आश्रयध्वंसकारकः अश्वः निन्द्यः ॥ १६५-१६६ ॥

वृषस्याष्टौ सिता दन्ताश्चतुर्थेऽब्देऽखिलाः स्मृताः।
द्वावन्त्यौ पतितोत्पन्नौ पञ्चमेऽब्दे हि तस्य वै ॥ १६७ ॥

अन्वयः—वृषस्य चतुर्थेऽब्दे अखिलाः सिताः अष्टौ दन्ताः स्मृताः। तस्य पञ्चमेऽब्दे अन्त्यौ द्वौ वै पतितोत्पन्नौ ॥ १६७ ॥

व्याख्या—वृषस्य = बलीवर्दस्य, चतुर्थे = तुरीये, अब्दे = वर्षे, अखिलाः = समग्राः, सिताः = श्वेतवर्णाः, अष्टौ दन्ताः = दशनाः, जाताः, इति स्मृताः = कथिताः। तस्य = वृषभस्य, पञ्चमेऽब्दे = पञ्चमे वर्षे, अन्त्यौ = अन्तिमौ, द्वौ = उभौ, दन्तौ, पतित्वा = स्खलित्वा, पुनः उत्पन्नौ = समुद्भूतौ भवतः, हि, इत्यवधारणे, वै इति निश्चये ॥ १६७ ॥

हिन्दी—चार साल की उम्र तक बैलों के सभी सफेद दाँत निकल आते हैं और पाँचवें साल अन्तिम दो दाँत गिरकर फिर निकल आते हैं ॥ १६७ ॥

वृषस्येति। वृषस्य चतुर्थे अब्दे अखिलाः समग्राः सिताः श्वेतवर्णाः अष्टौ दन्ताः स्मृताः। तस्य पञ्चमे अब्दे वर्षे अन्त्यौ चरमौ द्वौ दन्तौ पतितोत्पन्नौ पतित्वा पुनरुत्पन्नौ भवत इत्यर्थः, हिशब्दः अवधारणार्थः, वैशब्दश्च पादपूरणार्थः ॥ १६७ ॥

षष्ठे तूपान्त्यौ भवतः सप्तमे तत्समीपगौ।
अष्टमे पतितोत्पन्नौ मध्यमौ दशनौ खलु ॥ १६८ ॥

अन्वयः—षष्ठे तु उपान्त्यौ दशनौ भवतः, सप्तमे तत्समीपगौ मध्यमौ दशनौ, अष्टमे खलु पतितोत्पन्नौ ॥ १६८ ॥

व्याख्या—षष्ठे तु = षष्ठे वर्षे, उपान्त्यौ = अन्तिमदन्तपार्श्वस्थितौ, द्वौ दशनौ = रदनौ, भवतः = जातौ, सप्तमे = सप्तमवर्षे, तत् = तस्य, समीपगौ = पार्श्वस्थितौ, मध्यमौ = मध्ये स्थितौ, दशनौ = रदनौ, जातौ, अष्टमे वर्षे, खलु = निश्चयेन, पतित्वा = स्खलित्वा, पुनरुत्पन्नौ = जाताविति ॥१६८॥

हिन्दी—छठे साल में बैलों के अन्तिम दो दाँत, सातवें साल उसके पास के दो दाँत तथा आठवें साल में बीच के दो दाँत गिरकर उग आते हैं ॥१६८॥

षष्ठे इति। षष्ठे तु वर्षे उपान्त्यौ अन्त्यसमीपस्थौ दशनौ भवतः। सप्तमे वर्षे तयोः दशनयोः समीपगौ समीपस्थौ अपरौ दशनौ भवतः। मध्यमौ दशनौ अष्टमे वर्षे खलु निश्चितं पतितोत्पन्नौ पतित्वा पुनरुत्पन्नौ भवतः ॥१६८॥

कृष्णपीतसितारक्तशङ्खच्छायौ द्विके द्विके।
क्रमादब्दे च भवतश्चलनं पतनं ततः ॥१६९॥

अन्वयः—ततः द्विके द्विके अब्दे तौ क्रमात् कृष्णपीतसितारक्तशङ्खच्छायौ, ततः चलनं पतनं भवतः ॥१६९॥

व्याख्या—ततः = अष्टमवत्सरात् परम्, द्विके द्विके = द्वितीये द्वितीये, अब्दे = वर्षे, तौ = रदनौ, क्रमात् = क्रमशः, कृष्णपीतसितारक्तशङ्खच्छायौ—कृष्णप्रभौ = श्यामवर्णौ, पीतप्रभौ = पीतवर्णौ, सितप्रभौ = श्वेतरङ्गौ, आरक्तप्रभौ = रक्तवर्णौ, तथा शङ्खप्रभौ = शङ्खवर्णौ, भवतः, ततः = तत्पश्चात्, चलनम् = कम्पमानम्, पश्चात् पतनम् = भञ्जनम्, दशानानां भवन्ति ॥१६९॥

हिन्दी—आठ साल के बाद दो-दो वर्ष के अन्तराल में क्रमशः दो-दो दाँत काले, पीले, सफेद, लाल तथा शंख रंग के हो जाते हैं। इसके बाद वे हिलने लगते हैं और अन्त में टूटकर गिर जाते हैं ॥१६९॥

कृष्णेति। ततः अष्टमाब्दात् परं द्विके द्विके द्वितीये द्वितीये वर्षे दशमे द्वादशे इत्यादावित्यर्थः, तौ दशनौ क्रमात् कृष्णपीतसितारक्तशङ्खच्छायौ कृष्णप्रभौ, पीतप्रभौ, सितप्रभौ आरक्तप्रभौ तथा शङ्खप्रभौ भवतः। ततः अनन्तरं चलनं पश्चात् पतनं दन्तानामिति शेषः भवति ॥१६९॥

उष्ट्रस्योक्तप्रकारेण वयोज्ञानन्तु वा भवेत् ॥१७०॥

अन्वयः—उक्तप्रकारेण उष्ट्रस्य तु वयसः वयोज्ञानं वा भवेत् ॥१७०॥

व्याख्या—उक्तप्रकारेण = पूर्वोक्तरीत्या, उष्ट्रस्य = दीर्घाङ्गस्य, तु = अपि, वयसः = अवस्थायाः, ज्ञानम् = बोधः, वा = अवधारणार्थः, भवेत् = जायेत ॥१७०॥

हिन्दी—उसी तरह ऊँटों की उम्र का भी पता चलता है ॥१७०॥

उष्ट्रस्येति। उक्तप्रकारेण अश्वोक्तरीत्या उष्ट्रस्य तु उष्ट्रस्यापि तुशब्दोऽप्यर्थः। वयसः जीवनकालस्य ज्ञानं भवेत् वाशब्दश्चावधारणार्थः ॥१७०॥

प्रेरकाकर्षकमुखोऽङ्कुशो गजविनिग्रहे।
हस्तिपकैर्गजस्तेन विनेयः सुगमाय हि ॥१७१॥

अन्वयः—प्रेरकम् आकर्षकं मुखोऽङ्कुशः गजविनिग्रहे हस्तिपकैः सुगमाय तेन गजः विनेयः ॥१७१॥

व्याख्या—प्रेरकम् = प्रोत्साहकम्, आकर्षकम् = आकर्षम्, मुखम् = आननम्, यस्य तथाभूतस्य, अङ्कुशः = शृणिः, गजानाम् = हस्तिनाम्, विनिग्रहे = नियन्त्रणे, स्मृतः, हस्तिपकैः = गजाजीवैः, सुगमाय = सुष्ठुतया गमनाय, तेन = अङ्कुशेन, गजः = करी, विनेयः = दण्डनीयः ॥ १७१ ॥

हिन्दी—हाथी को प्रोत्साहित करने वाले सुन्दर मुख वाले खिंचाव युक्त नुकीले, टेढे अंकुश से महावत हाथी को अच्छे ढंग से चलने को विनेय बनाये ॥ १७१ ॥

प्रेरकेति। प्रेरकं सञ्चालकम् आकर्षकम् आकर्षतुल्यं मुखं यस्य तादृशः अङ्कुशः गजानां विनिग्रहे दमने दमनार्थमित्यर्थः, स्मृत इति शेषः, हस्तिपकैः गजपालकैः सुगमाय सुगमनाय तेन अङ्कुशेन गजः विनेयः दण्ड्यः ॥ १७१ ॥

खलीनस्योद्ध्र्वखण्डौ द्वौ पार्श्वगौ द्वादशाङ्गुलौ।
तत्पार्श्वान्तर्गताभ्यान्तु सुदृढाभ्यां तथैव च॥ १७२॥
वारकाकर्षखण्डाभ्यां रज्ज्वर्थवलयैर्युतौ।
एवंविधखलीनेन वशीकुर्य्यात्तु वाजिनम्॥ १७३॥

अन्वयः—खलीनस्य पार्श्वगौ द्वादशाङ्गुलौ द्वौ ऊद्ध्र्वखण्डौ तत्पार्श्वान्तर्गताभ्यां तथा सुदृढाभ्यां वारकाकर्षखण्डाभ्यां रज्ज्वर्थवलयैः युतौ एवंविधेन खलीनेन तु वाजिनं वशीकुर्यात् ॥ १७२-१७३ ॥

व्याख्या—खलीनस्य = अश्वक्षेपण्यः, पार्श्वगौ = समीपस्थौ, द्वादशाङ्गुलौ = द्वयाधिकदशाङ्गुलौ, द्वौ = उभौ, ऊद्ध्र्वखण्डौ = खलीनस्योपरिखण्डद्वौ, तत् = तयोः, पार्श्वान्तर्गताभ्याम् = समीपाभ्यन्तर्गताभ्याम्, तथा सुदृढाभ्याम् = सुस्थिराभ्याम्, वारकौ = अवरोधकौ, यौ आकर्षखण्डौ = आकर्षाकृतिखण्डौ, ताभ्याम्, तथा रज्ज्वर्थवलयैः = दामनिमित्तकरकैः, युतौ = कार्यौ, एवंविधेन = अनेन रूपेण, खलीनेन = कविकया, अश्वम् = घोटकम्, वशीकुर्यात् = वशमानयेत् ॥ १७२-१७३ ॥

हिन्दी—घोड़े की लगाम के ऊपर दो खण्ड होते हैं। लौहनिर्मित ये दोनों खण्ड मुँह के दोनों बगल तक होते हैं। इनकी माप बारह अंगुल होती है। दोनों ओर के खण्ड मजबूत एवं खींचने योग्य होते हैं। इनमें रस्सी फँसाने के लिए दोनों ओर दो कड़े लगे रहते हैं। इन्हें आवश्कतानुसार सवार खींचते हुए घोड़े को अपने वशवर्त्ती बनाता है ॥ १७२-१७३ ॥

खलीनस्येति। खलीनस्य कविकायाः पार्श्वगौ पार्श्ववर्त्तिनौ द्वादशाङ्गुलौ द्वौ ऊद्ध्र्वण्डौ तयोः पार्श्वान्तर्गताभ्यां तथा सुदृढाभ्यां कठिनाभ्यां वारकाकर्षखण्डाभ्यां वारकौ निवारकौ यौ आकर्षखण्डौ आकर्षकृतिखण्डौ ताभ्यां तथा रज्ज्वर्थवलयैः रज्जुनिमित्तवलयैः युतौ कार्य्याविति शेषः। एवंविधेन खलीनेन कविकया वाजिनम् अश्वं वशीकुर्य्यात् दमयेत् ॥ १७२-१७३ ॥

नासिकाकर्षरज्ज्वा तु वृषोष्ट्रं विनयेद् भृशम्।
तीक्ष्णाग्रीयः सप्तफालः स्यादेषां मलशोधने॥ १७४॥

अन्वयः—नासिकाकर्षरज्ज्वा वृषोष्ट्रं भृशं विनयेत्। एषां मलशोधने तीक्ष्णाग्रीयः सप्तफालः स्यात् ॥ १७४ ॥

व्याख्या—नासिकाकर्षरज्ज्वा—नासिकायाम् = नासायाम्, या आकर्षा = बलात् दिशाविशेषे नयनी रज्जुः, तथा वृषोष्ट्रम्—वृषम् = वृषभम्, उष्ट्रञ्च = महाङ्गञ्च, भृशम् = अत्यर्थम्, विनयेत् = दण्डयेत्। एषाम् = वृषोष्ट्राणाम्, मलशोधने = अपस्करनिर्मलीकरणे, तीक्ष्णम् = तीव्रम्, अग्रम् = अग्रभागम्, यस्य सः एव तीक्ष्णाग्रीयः, सप्तफालः = सप्तकृषिकः, स्यात् = भवेत् ॥ १७४ ॥

हिन्दी—नाक में नाथ पहनाकर बैल तथा ऊँट को वश में लाना चाहिए। इनके मल-मूत्रों की सफाई के लिए सतफारा नुकीले औजार का प्रयोग करना चाहिए ॥ १७४ ॥

नासिकेति। नासिकाकर्षरज्ज्वा नासिकायां या आकर्षा आकर्षणी रज्जुः तया वृषोष्ट्रं वृषम् उष्ट्रञ्च भृशम् अत्यर्थं विनयेत् दण्डयेत्। एषां वृषोष्ट्राणां मलशोधने दोषनिराकरणे तीक्ष्णम् अग्रं यस्य स एव तीक्ष्णाग्रीयः सप्तफालः दण्डविशेषः स्यात् ॥ १७४ ॥

सुताडनैर्विनेया हि मनुष्याः पशवः सदा।
सैनिकास्तु विशेषेण न ते वै धनदण्डतः ॥ १७५ ॥

अन्वयः—मनुष्याः पशवश्च सदा सुताडनैः विनेयाः। सैनिकास्तु विशेपेण न ते धनदण्डतः वै ॥ १७५ ॥

व्याख्या—मनुष्याः = नराः, पशवश्च = लोमलाङ्गुलवज्जीवाश्च, सदा = सर्वदा, सुताडनैः = उपयुक्तदण्डैः, विनेयाः = दण्डनीयाः। सैनिकास्तु = आयुधिकास्तु, विशेषेण = विशिष्टरूपेण, विनेयाः = दमनीयाः, यतः ते = सैनिकाः, धनदण्डतः = अर्थदण्डेन, न = नहि, विनेयाः = दमनीयाः भवन्ति ॥ १७५ ॥

हिन्दी—मनुष्य और पशु को सदैव ताड़ना देकर दमन करना चाहिए। सैनिकों को विशेष रूप से दण्डित करना चाहिए, क्योंकि अर्थदण्ड से उन्हें दण्डित नहीं किया जा सकता ॥ १७५ ॥

सुताडनैरिति। मनुष्याः पशवश्च सदा सुताडनैः उपयुक्तदण्डैरित्यर्थः, सदा विनेयाः दमनीयाः सैनिकास्तु विशेषेण सुताडनैः विनेया इति यतः ते सैनिकाः धनदण्डतः अर्थदण्डेन न विनेया भवन्ति वैशब्दः अवधारणार्थः ॥ १७५ ॥

अनूपे तु वृषाश्वानां गजोष्ट्राणान्तु जङ्गले।
साधारणे पदातीनां निवेशाद्रक्षणं भवेत् ॥ १७६ ॥

अन्वयः—अनूपे तु वृषाश्वानां जङ्गले गजोष्ट्राणां साधारणे पदातीनां निवेशात् रक्षणं भवेत् ॥ १७६ ॥

व्याख्या—अनूपे तु = जलप्रायप्रदेशे तु, वृषाश्वानाम्—वृषाणाम् = वृषभाणाम्, अश्वानाम् = घोटकानाञ्च, जङ्गले = वन्यप्रदेशे, गजोष्ट्राणाम्—गजानाम् = हस्तिनाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, तथा साधारणे = स्थितिविधायिके सामान्यस्थाने, पदातीनाम् = पदगानाम्, निवेशात् = स्थापनात्, रक्षणम् = गोपनम्, भवेत् = स्यात् ॥ १७६ ॥

हिन्दी—पानी की सुविधा वाले क्षेत्र में बैलों तथा घोड़ों को, जंगली क्षेत्र में ऊँटों और हाथियों को तथा सामान्य क्षेत्र में पैदल सैनिकों को रखने से उनका संरक्षण होता है ॥ १७६ ॥

अनूपे इति। अनूपे सजलदेशे वृषाणाम् अश्वानाञ्च, जाङ्गले जङ्गलमये देशे गजानाम् उष्ट्राणाञ्च, तथा साधारणे सर्वथा स्थितिविधायके इत्यर्थः, स्थाने पदातीनां निवेशात् स्थापनात् रक्षणं भवेत् ॥ १७६ ॥

शतं शतं योजनान्ते सैन्यं राष्ट्रे नियोजयेत् ॥ १७७ ॥

अन्वयः—राष्ट्रे योजनान्ते शतं शतं सैन्यं नियोजयेत् ॥ १७७ ॥

व्याख्या—राज्ये, योजनान्ते = प्रतिचतुष्क्रोशान्ते, शतं शतम् = शतसंख्यकम्, सैन्यम् = आयुधिकम्, नियोजयेत् = स्थापयेत् ॥ १७७ ॥

हिन्दी—राज्य में प्रति चार कोश पर सौ-सौ सैनिकों की टुकड़ियों को रखना चाहिए ॥ १७७ ॥

शतमिति । राष्ट्रे राज्ये योजनान्ते प्रतिचतुक्रोशान्ते शतं शतं सैन्यं नियोजयेत् स्थापयेत् ॥१७७ ॥

गजोष्ट्रवृषभाश्वाः प्राक् श्रेष्ठाः सम्भारवाहनैः ।
सर्वेभ्यः शकटाः श्रेष्ठा वर्षाकालं विना स्मृताः ॥ १७८ ॥

अन्वयः—प्राक् गजोष्ट्रवृषभाश्वाः सम्भारवाहने श्रेष्ठाः। वर्षाकालं विना सर्वेभ्यः शकटाः श्रेष्ठाः स्मृताः ॥ १७८ ॥

व्याख्या—प्राक् = सर्वप्रथमम्, गजोष्ट्रवृषभाश्वाः—गजाः = हस्तिनः, उष्ट्राः = क्रमेलकाः, वृषभाः = बलीवर्दाः, अश्वाश्च = हयाश्च, सम्भारवाहने—सम्भाराणाम् = वस्तुजातानाम्, वाहने = नयने, श्रेष्ठाः = उत्कृष्टाः, वर्षाकालम् = घनकालम्, विना = विहाय, सर्वेभ्यः = सकलेभ्यः, शकटाः = प्रवहणाः, श्रेष्ठाः, स्मृताः = कथिताः ॥ १७८ ॥

हिन्दी—सर्वप्रथम हाथी, बैल, घोड़े सामग्री ढोने में श्रेष्ठ होते हैं। वर्षाकाल छोड़कर अन्य सभी समय के लिए सामान ढोने के लिए बैलगाड़ी ही ठीक होती है ॥ १७८ ॥

गजेति। प्राक् प्रथमं सम्भारवाहने सम्भाराणां सामग्रीणां वाहने विषये गजाः उष्ट्राः वृषभाः अश्वाश्च श्रेष्ठाः। वर्षाकालं विना शकटाः सर्वेभ्यः वाहकेभ्य इत्यर्थः, श्रेष्ठाः स्मृताः ॥ १७८ ॥

न चाल्पसाधनो गच्छेदपि जेतुमरिं लघुम् ।
महतात्यन्तसाद्यस्कबलेनैव सुबुद्धियुक् ॥ १७९ ॥

अन्वयः—अल्पसाधनः लघुमपि अरिं जेतुं न गच्छेत्। सुबुद्धियुक् महता अत्यन्तसाद्यस्कबलेन एव ॥ १७९ ॥

व्याख्या—अल्पसाधनः = स्तोकबलः सन्, लघुमपि = तुच्छमपि, अरिम् = रिपुम्, जेतुम् = विजेतुम्, न = नहि, गच्छेत् = व्रजेत् । सुबुद्धियुक् = सुष्ठुबुद्धिसम्पन्नः, राजा, महता = बृहता, अत्यन्तेन = अमितेन, साद्यस्कबलेन—साद्यस्केन = शीघ्रभाविना, बलेन = सैन्येन, एव गच्छेत्, यानस्य औचित्यात् ॥ १७९ ॥

हिन्दी—सेना की छोटी टुकड़ी से अति क्षुद्र शत्रु को भी जीता नहीं जा सकता। अतः अत्यन्त प्रबल सेना के साथ ही यान-बल की सहायता से राजा को चढ़ाई करनी चाहिए ॥ १७९ ॥

नेति। अल्पसाधनः अल्पबलः सन् लघुमपि क्षुद्रमपि अरिं शत्रुं जेतुं न गच्छेत्। सुबुद्धियुक् सुप्राज्ञः नृपः महता बहुना अत्यन्तसाद्यस्कबलेन एव अत्यन्तेन प्रबलेन साद्यस्कबलेन पूर्वोक्तेन तु मौलेन तस्य प्रबलारिषु यानस्यौचित्यादिति भावः, बलेन सैन्येन एव गच्छेदित्यर्थः॥ १७९ ॥

अशिक्षितमसारञ्च साद्यस्कं तूलवच्च तत्।
युद्धं विनान्यकार्य्येषु योजयेत् मतिमान् सदा॥ १८०॥

अन्वयः—मतिमान् अशिक्षितम् असारञ्च साद्यस्कं तूलवत् तद्बलं युद्धं विना अन्यकार्येषु सदा योजयेत्॥ १८० ॥

व्याख्या—मतिमान् = बुद्धिमान् राजा, अशिक्षितम् = सैन्यशिक्षारहितम्, असारञ्च = निःसारञ्च, साद्यस्कम् = आधुनिकं सैन्यम्, तूलवत्—तूलेन = कार्पासेन, वत् = इव, अत्यन्त-लघुरिति, तत् = पूर्वोक्तं साद्यस्कम्, बलम् = सैन्यम्, युद्धम् = सङ्गरम्, विना = विहाय, अन्य-कार्येषु = अपरकृत्येषु, सदा = सर्वदा, योजयेत् = नियोजयेत्॥ १८० ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा अप्रशिक्षित, इसीलिए निस्सार रूई की तरह अतितुच्छ नवनियुक्त सैनिकों को युद्ध में भेजने की अपेक्षा किसी दूसरे काम में लगाये॥ १८० ॥

अशिक्षितमिति। मतिमान् बुद्धिमान् नृपः अशिक्षितम् असारं साद्यस्कम् आधुनिकं बलं तूलवत् तुलेन तुल्यम् अतिलघु इत्यर्थः। तत् बलं युद्धं विना अन्यकार्य्येषु सदा योजयेत्॥१८० ॥

विकर्त्तुं यततेऽल्पोऽपि प्राप्ते प्राणात्ययेऽनिशम्।
न पुनः किन्तु बलवान् विकारकरणक्षमः॥ १८१॥

अन्वयः—प्राणात्यये प्राप्ते अल्पोऽपि विकर्त्तुम् अनिशं यतते किन्तु बलवान् विकारकरणक्षमः न पुनः॥ १८१ ॥

व्याख्या—प्राणात्यये = प्राणसंशये, प्राप्ते = समुपस्थिते सति, अल्पः = स्वल्पो जनः, विकर्त्तुम् = विपरीतमाचरितुम्, अपि = चेत्, अनिशम् = अहर्निशम्, यतते = प्रयत्नं कुरुते, किन्तु, बलवान् = शक्तिशाली जनः, विकारकरणक्षमः = विपरीताचरणे समर्थः, अपि, न पुनः = तथा कर्त्तुं न यतते॥१८१ ॥

हिन्दी–क्षुद्रबलसम्पन्न सेना प्राणसंकट उपस्थित होने पर विपरीत आचरण करने के लिए सदा तत्पर हो जाती है। किन्तु शक्तिशाली सेना कभी विपरीत आचरण नहीं करती है॥१८१ ॥

विकर्त्तुमिति। प्राणात्यये जीवनविनाशे प्राप्ते उपस्थिते सति अल्पः क्षुद्रः जनः विकर्त्तुं विपरीतमाचरितुम् अपि अनिशं सततं यतते, किन्तु बलवान् विकारकरणक्षमः विपरीताचरणक्षमः अपि न पुनः नैव विपरीतमाचरितुं यतते इत्यर्थः॥ १८१ ॥

अपि बहुबलोऽशूरो न स्थातुं क्षमते रणे।
किमल्पसाधनाशूरः स्थातुं शक्तोऽरिणा समम्?॥ १८२॥

अन्वयः—बहुबलोऽपि अशूरः रणे स्थातुं न क्षमते। अल्पसाधनः अशूरः अरिणा समं स्थातुं किं शक्तः॥ १८२ ॥

व्याख्या—बहुबलोऽपि = शक्तिसम्पन्नोऽपि, अशूरः = वीरत्वविहीनो जनः, रणे = युद्धे, स्थातुम् = योद्धुम्, न = नहि, क्षमते = समर्थो भवति। अल्पसाधनः = स्वल्पबलः, अथ च,

अशूरः = अपराक्रमी जनः, अरिणा = शत्रुणा, समम् = सह, स्थातुम् = योद्धुम्, किम्, शक्तः = समर्थः? न शक्तो भवतीति भावः॥१८२॥

हिन्दी—अधिक बलसम्पन्न रहने के बावजूद भी पराक्रमविहीन जन रणाङ्गण में नहीं टिक सकता है। तब अल्पशक्तिसम्पन्न पराक्रमहीन जन शत्रु के साथ युद्ध के मैदान में क्या टिक सकता है? अर्थात् कभी नहीं॥१८२॥

अपीति। बहुबलः अपि अशूरः अपराक्रमी जनः रणे स्थातुं न क्षमते न शक्नोति। अल्पसाधनः अल्पबलः अथ च अशूरः जनः अरिणा शत्रुणा समं सह स्थातुं किं शक्तः? न समर्थ इत्यर्थः॥१८२॥

सुसिद्धाल्पबलः शूरो विजेतुं क्षमते रिपुम्।
महान् सुसिद्धबलयुक् शूरः किं न विजेष्यति?॥१८३॥

अन्वयः—सुसिद्धाल्पबलः शूरः रिपुं विजेतुं क्षमते। महान् सुसिद्धबलयुक् शूरः किं न विजेष्यति?॥१८३॥

व्याख्या—सुसिद्धम् = सुष्ठुप्रशिक्षितम्, अल्पम् = अल्पसंख्यकम्, बलम् = सैन्यम्, यस्य तथोक्तस्य, शूरः = पराक्रमी जनः, रिपुम् = शत्रुम्, विजेतुम् = पराजितं कर्त्तुम्, क्षमते = शक्यते, महान् = अतिविक्रान्तः, सुसिद्धबलयुक् = सुष्ठुप्रशिक्षितसैन्ययुक्, शूरः = पराक्रमी, किम् = कथम्, न = नहि, विजेष्यति = विजयी भविष्यति, अपितु भविष्यत्येव॥१८३॥

हिन्दी–जब सुप्रशिक्षित सेना की छोटी टुकड़ी की सहायता से वीर पुरुष शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है तो विशाल प्रशिक्षित सेना लेकर वीर पुरुष क्या नहीं जीत सकता?॥१८३॥

सुसिद्धेति। सुसिद्धं सुशिक्षितम् अल्पं बलं यस्य यथोक्तः शूरः विक्रान्तः जनः रिपुं विजेतुं क्षमते। महान् प्रबलः सुसिद्धबलयुक् सुशिक्षितबलशाली शूरः किं कथं न विजेष्यति? अपि तु जेष्यत्येवेत्यर्थः॥१८३॥

मौलशिक्षितसारेण गच्छेद्राजा रणे रिपुम्।
प्राणात्ययेऽपि मौलं न स्वामिनं त्यक्तुमिच्छति॥१८४॥

अन्वयः—राजा मौलशिक्षितसारेण रणे रिपुं गच्छेत्। मौलं प्राणात्ययेऽपि स्वामिनं त्यक्तुं न शक्यते॥१८४॥

व्याख्या—राजा = नृपः, मौलशिक्षितसारेण—मौलेन = मूलायातेन, शिक्षितसारेण = सुप्रशिक्षितेषु मध्ये सुस्थिरेण बलेन, रणे = समरभूमौ, रिपुम् = शत्रुम्, जेतुम् = विजेतुम्, गच्छेत् = व्रजेत्, यस्मात्, मौलम् = पुरातनम्, बलम् = सैन्यम्, प्राणात्ययेऽपि = जीवनसङ्कटेऽपि, स्वामिनम् = भूभृतम्, त्यक्तुम् = परिहर्त्तुम्, न = नहि, इच्छति = वाञ्छति॥१८४॥

हिन्दी—अपनी पुरानी प्रशिक्षित सेना के साथ शत्रुविजय के लए राजा को समरभूमि के लिए प्रस्थान करना चाहिए। क्योंकि प्रणसंकट के समय भी पुरानी प्रशिक्षित सेना राजा का साथ नहीं छोडना चाहती।१८४॥

मौलेति राजा मौलेन मूलायातेन शिक्षितसारेण शिक्षितेषु मध्ये सारेण स्थिरतरेण बलेन रणे रिपुं गच्छेत् शत्रुं प्रति यायात्। यस्मात् मौलं बलं प्राणात्ययेऽपि स्वामिनं त्यक्तुं न इच्छति॥१८४॥

वाग्दण्डपरुषेणैव भृतिह्रासेन भीतितः ।
नित्यं प्रवासायासाभ्यां भेदोऽवश्यं प्रजायते ॥ १८५ ॥

अन्वयः—वाग्दण्डपरुषेणैव भृतिह्रासेन भीतितः नित्यं प्रवासायासाभ्यां भेदः अवश्यं प्रजायते ॥ १८५ ॥

व्याख्या—वाग्दण्डपरुषेणैव = कठोरवचनेन कठोरदण्डेन च एव, भृतिह्रासेन = न्यूनवेतनकरणेन, भीतितः = भयाक्रान्तकरणेन, नित्यम् = सततम्, प्रवासेन = विदेशस्थित्या, आयासेन = परिश्रमेण च, अवश्यम् = निश्चितमेव, भेदः = भङ्गः, सैन्येषु, प्रजायते = भवत्येवेति ॥ १८५ ॥

हिन्दी—हमेशा कठोर वचन से, कठोर दण्ड से, वेतन की कटौती से, भयभीत करने से, निरन्तर परदेश में भेजते रहने से तथा कठोर मेहनत कराने से निश्चय ही सेना में फूट डाली जा सकती है ॥ १८५ ॥

वागिति। वाग्दण्डपरुषेण वाक्पारुष्येण दण्डपारुष्येण चेत्यर्थः, भृतिह्रासेन वेतनलघूकरणेन भीतितः भयप्रदर्शनेन, नित्यं प्रवासायासाभ्यां विदेशस्थित्या परिश्रमेण चेत्यर्थः, अवश्यं भेदः भङ्गः बलानामिति शेषः प्रजायते ॥ १८५ ॥

बलं यस्य तु सम्भिन्नं मनागपि जयः कुतः ? ।
शत्रोः स्वस्यापि सेनाया अतो भेदं विचिन्तयेत् ॥ १८६ ॥

अन्वयः—यस्य बलं सम्भिन्नं मनागपि जयः कुतः? अतः शत्रोः स्वस्यापि सेनायाः भेदं विचिन्तयेत् ॥ १८६ ॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, बलम् = सैन्यम्, सम्भिन्नम् = भेदमुपगतम्, तस्य नृपस्य, मनागपि = स्तोकमपि, जयम् = विजयम्, कुतः = न कुतोऽपीत्यर्थः, अतः = अनेन कारणेन, शत्रोः = रिपोः, स्वस्यापि = आत्मनोऽपि, सेनायाः = बलस्य, भेदः = भङ्गः, विचिन्तयेत् = विविच्य कार्यं चिन्तयेत् ॥ १८६ ॥

हिन्दी—जिसकी सेना में भेद हो, उसे थोड़ी भी विजय कहाँ ? अतः अपनी तथा दुश्मन की सेना में भेद के सम्बन्ध में सदैव सतर्क होकर विचार करना चाहिए ॥ १८६ ॥

बलमिति। यस्य बलं सम्भिन्नं सम्यक् भेदं प्राप्तं तस्य मनाक् अपि अल्पोऽपि जयः कुतः? न कुतोऽपि तस्य जयो भवतीत्यर्थः। अतः अस्मात् कारणात् शत्रोः स्वस्यापि आत्मनोऽपि सेनायाः भेदं विचिन्तयेत् यथा शत्रोर्बलभङ्गः स्यात् आत्मनो न तथा विविच्य व्यवहरेदित्यर्थः ॥ १८६ ॥

यथा हि शत्रुसेनाया भेदोऽवश्यं भवेत्तथा ।
कौटिल्येन प्रदानेन द्राक् कुर्य्यात् नृपतिः सदा ॥ १८७ ॥

अन्वयः—यथा शत्रुसेनायाः अवश्यं भेदो भवेत् तथा नृपतिः सदा कौटिल्येन प्रदानेन द्राक् शत्रुसैन्यं कुर्यात् ॥ १८७ ॥

व्याख्या—यथा = येन रूपेण, शत्रुसेनायाः = रिपुबलस्य, अवश्यम् = निश्चितरूपेण, भेदम् = भङ्गम्, भवेत् = जायेत, तथा नृपतिः = राजा, सदा = सर्वदा, कौटिल्येन = कुटिलत्वेन, प्रदानेन = धनदानेन, द्राक् = त्वरितमेव, शत्रुसैन्यम् = रिपुबलम्, तथा कुर्यात् = विधेयात् ॥ १८७ ॥

हिन्दी—जैसे भी हो शत्रुसेना में फूट पैदा हो—इसके लिए कूटनीति से अथवा धनादि देकर शत्रुसेना में फूट डालने का राजा को शीघ्र प्रयास करना चाहिए॥१८७॥

यथेति। यथा येन प्रकारेण शत्रुसेनायाः अवश्यं भेदः भवेत् नृपतिः सदा कौटिल्येन कापट्येन प्रदानेन अर्थदानेन द्राक् झटिति शत्रुसैन्यं तथा कुर्य्यात्॥१८७॥

सेवयात्यन्तप्रबलं नत्या चारिं प्रसाधयेत्।
प्रबलं मानदानाभ्यां युद्धैर्हीनबलं तथा।
मैत्र्या जयेत् समबलं भेदैः सर्वान् वशं नयेत्॥१८८॥

अन्वयः—अत्यन्तप्रबलम् अरिं सेवया नत्या च प्रबलम् अरिं मानदानाभ्यां तथा हीनबलम् अरिं युद्धैः प्रसाधयेत्; किञ्च समबलम् अरिं भेदैः सर्वान् वशं नयेत्॥१८८॥

व्याख्या—अत्यन्तप्रबलम् = अतिबलवन्तम्, अरिम् = शत्रुम्, सेवया = सुश्रूषया, नत्या = प्रणत्या, च = पुनः, प्रबलम् = प्रकर्षबलसम्पन्नम्, अरिम् = शत्रुम्, मानदानाभ्याम् = सम्मानधनदानाभ्याम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, हीनबलम् = अल्पबलयुक्तम्, अरिम् = शत्रुम्, युद्धैः = समरैः, प्रसाधयेत् = वशं नयेत्, किञ्च समबलम् = समानशक्तिशालिनम्, अरिम् = रिपुम्, भेदैः = मनोभङ्गकरणैः, सर्वान् = सकलान्, वशम् = वशवर्त्तिनम्, नयेत् = कुर्यात्॥१८८॥

हिन्दी—अपने से अत्यधिक बलवान् शत्रु को परिचर्या और विनम्रता प्रदर्शित कर, साधारण बलवान् शत्रु को कुछ देकर तथा उनके प्रति सम्मान प्रकट कर, हीनबल वाले शत्रु को युद्ध में पराजित कर और समान बलशाली शत्रु को दोस्ती का हाथ बढ़ाकर तथा फूट डाल कर हर तरह से अनुकूल बनाना चाहिए॥१८८॥

सेवयेति। अत्यन्तप्रबलम् अरिं सेवया नत्या च, प्रबलम् अरिं मानदानाभ्यां तथा हीनबलं दुर्बलम् अरिं युद्धैः प्रसाधयेत् वशीकुर्य्यात्। किञ्च मैत्र्या सौजन्येन समबलम् अरिं भेदैः मनोभङ्गकरणैः सर्वान् वशं नयेत् वशीकुर्य्यात्॥१८८॥

शत्रुसंसाधनोपायो नान्यः सुबलभेदतः।
तावत् परो नीतिमान् स्याद्यावत् सुबलवान् स्वयम्।
मित्रं तावच्च भवति पुष्टाग्नेः पवनो यथा॥१८९॥

अन्वयः—सुबलभेदतः अन्यः शत्रुसंसाधनोपायः न यावत् स्वयं सुबलवान् तावत् परः नीतिवान् स्यात्, पुष्टाग्नेः पवनः यथा तावत् मित्रं भवति॥१८९॥

व्याख्या—सुबलानाम् = प्रशिक्षितसैन्यबलानाम्, भेदतः = मनोभङ्गात्, अन्यः = अपरः, शत्रूणाम् = अरीणाम्, संसाधने = वशीकरणे, उपायः = शत्रुविजययुक्तिः, न = नास्ति, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, स्वयम् = आत्मना, सुबलवान् = प्रशिक्षितसैन्यसम्पन्नः, भवेत् = स्यात्, तावत् = तावत्कालपर्यन्तमेव, परः = रिपुः, नीतिमान् = नीतिसम्पन्नः, स्यात् = भवेत्, किञ्च पुष्टाग्नेः—पुष्टस्य = प्रज्ज्वलितस्य, अग्नेः = वह्नेः, पवनः = वायुः, इव = यथा, मित्रम् = सहायकम्, भवति॥१८९॥

हिन्दी—प्रशिक्षित सेना में फूट डालने के सिवा उन्हें जीतने का अन्य कोई साधन नहीं है। जब तक प्रशिक्षित सेना से राजा बलवान् रहता है तब तक वह नीतिमान् बना रहता है

और तभी तक उसके सभी मित्र बने रहते हैं; ठीक उसी तरह जैसे प्रज्ज्वलित आग के लिए पवन मित्र का काम करता है॥१८९॥

शत्रुसंसाधनोपाय इति। सुबलानां सुशिक्षितसैन्यानां भेदतः भेदात् अन्यः शत्रूणां संसाधने वशीकरणे उपायः न अस्तीति शेषः। यावत् स्वयं सुबलवान् सुशिक्षितबलसम्पन्नः भवेत् तावत् परः शत्रुः नीतिमान् स्यात्। किञ्च पुष्टाग्नेः पुष्टस्य वृद्धिं गतस्य अग्नेः पवनः यथा पवन इव तावत् मित्रं भवति॥१८९॥

त्यक्तं रिपुबलं धार्य्यं न समूहसमीपतः।
पृथक् नियोजयेत् प्राग्वा युद्धार्थं कल्पयेच्च तत्।
मैत्र्यमारात् पृष्ठभागे पार्श्वयोर्वा बलं न्यसेत्॥१९०॥

अन्वयः—त्यक्तं रिपुबलं समूहसमीपतः न धार्यम्, तत् प्राक् रिपुबलं पृथक् नियोजयेत् युद्धार्थं कल्पयेच्च। किञ्च मैत्र्यम् आरात् पृष्ठभागे पार्श्वयोः वा बलं न्यसेत्॥१९०॥

व्याख्या—त्यक्तम् = रिपुणा विसृष्टम्, रिपुबलम् = शत्रुसैन्यम्, समूहसमीपतः = निजसैन्यसमक्षम्, न = नहि, धार्य्यम् = ग्राह्यम्, तच्च = रिपुबलम्, प्राक् = एकान्ते, स्थापनीयमिति शेषः, रिपुबलम् = शत्रुसैन्यम्, पृथक् = भिन्नम्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्, युद्धार्थम् = समरनिमित्ताय, कल्पयेत् = भावयेत्, किञ्च मैत्र्यम् = सौहार्द्रम्, आरात् = समीपे, निजसम्मुखे इत्यर्थः, पृष्ठभागे = पश्चाद्देशे, पार्श्वयोः = पार्श्वपक्षभागयोः, बलम् = शत्रुसैन्यम्, न्यसेत् = स्थापयेत्॥१९०॥

हिन्दी—फोड़ ली गई शत्रुसेना को अपनी सैनिक-छावनी में रहने की जगह न दे, किन्तु युद्ध के समय उस टुकड़ी को अपनी सेना के अग्रभाग में लड़ने के लिए नियुक्त करे। जो सेना मित्रभावसम्पन्न हो, उसे समराङ्गण में अपनी सेना के समीप पीछे या बगल में लड़ने के लिए रखनी चाहिए॥१९०॥

त्यक्तमिति। त्यक्तं शत्रुणेति शेषः, रिपोः शत्रोः बलं समूहसमीपतः साधारणसमक्षं न धार्य्यं न ग्रहणीयम्। तच्च प्राक् एकान्ते गृहीतमिति शेषः, रिपुबलं पृथक् नियोजयेत् युद्धार्थं कल्पयेच्च किञ्च मित्रम् आरात् समीपे आत्मसम्मुखे इत्यर्थः, पृष्ठभागे पार्श्वयोर्वा बलम् अपरसैन्यं न्यसेत्॥१९०॥

अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्।
अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुन्तादिकञ्च यत्॥१९१॥

अन्वयः—यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिः वा अस्यते क्षिप्यते तत् अस्त्रम्, तदन्यतः यत् असिकुन्तादिकं तत् शस्त्रम्॥१९२॥

व्याख्या—यत्तु = आयुधम्, मन्त्रयन्त्राग्निभिः—मन्त्रेण = गोप्येन, यन्त्रेण = आयुधाद्यधिष्ठानेन, अग्निना = वह्निना, वा, अस्यते = निःसार्यते, वा = अथवा, क्षिप्यते = प्रक्षिप्यते, तत् = बाणकुन्तादिकं, क्षेपणायुधम् अस्त्रम् इत्याख्यम्, तदन्यतः = तद्भिन्नम्, यत् अस्यादिकम्, तत् = आयुधम्, शस्त्रम् = शस्त्राख्यमिति॥१९१॥

हिन्दी—मंत्र, यंत्र या आग के द्वारा जो हथियार फेंककर चलाया जाय उसे अस्त्र तथा इससे भिन्न जिन्हें हाथ में रखकर प्रहार किया जाय उसे शस्त्र कहते हैं॥१९१॥

अस्यते इति। यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिः मन्त्रेण यन्त्रेण अग्निना वा अस्यते निःसार्य्यते वा क्षिप्यते तत् अस्त्रं तदन्यतः तद्भिन्नं यत् असिकुन्तादिकं तत् शस्त्रम् ॥१९१॥

अस्त्रन्तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा ॥ १९२ ॥

अन्वयः—अस्त्रं द्विविधं ज्ञेयम्—नालिकं तथा मान्त्रिकम् ॥१९२॥

व्याख्या—अस्त्रम् = क्षेपणायुधम्, द्विविधम् = द्विप्रकारकम्, ज्ञेयम् = बोध्यम्, नालिकम् = गुलिकास्त्रम्, मान्त्रिकम् = मन्त्रसञ्चालितास्त्रञ्च ॥१९२॥

हिन्दी—अस्त्र दो तरह के होते हैं—एक तोप या बन्दूक, दूसरा मंत्रसंचालित आयुध ॥१९२॥

अस्त्रमिति। अस्त्रं द्विविधं ज्ञेयं नालिकं तथा मान्त्रिकम् ॥१९२॥

यदा तु मान्त्रिकं नास्ति नालिकं तत्र धारयेत्।
सह शस्त्रेण नृपतिर्विजयार्थन्तु सर्वदा ॥ १९३ ॥

अन्वयः—यदा तु मान्त्रिकं नास्ति तत्र नृपतिः सर्वदा विजयार्थं शस्त्रेण सह नालिकं धारयेत् ॥१९३॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, मान्त्रिकं = मन्त्रप्रयोज्यम्, आयुधम्, नास्ति = न विद्यते, तत्र = तदा, नृपतिः = राजा, विजयार्थम् = विजयाय, सर्वदा = सततम्, शस्त्रेण = प्रहरणेन सह, नालिकम् = आग्नेयास्त्रम्, धारयेत् = धारणं कुर्यात् ॥१९३॥

हिन्दी—राजा सर्वदा विजयप्राप्ति के लिए मंत्रसंप्रेषित हथियार के अभाव में आग्नेयास्त्र अवश्य धारण करे ॥१९३॥

यदेति। यदा तु मान्त्रिकं मन्त्रप्रयोज्यं न अस्ति, तत्र तदा नृपतिः विजयार्थं सर्वदा शस्त्रेण सह नालिकं धारयेत् ॥१९३॥

लघुदीर्घाकारधाराभेदैः शस्त्रास्त्रनामकम्।
प्रथयन्ति नवं भिन्नं व्यवहाराय तद्विदः ॥ १९४ ॥

अन्वयः— तद्विदव्यवहाराय लघुदीर्घाकारधाराभेदैः शस्त्रास्त्रनामकं नवं भिन्नं प्रथयन्ति ॥१९४॥

व्याख्या—तद्विदः = शस्त्रज्ञाः, व्यवहाराय = प्रयोगार्थम्, लघुदीर्घाकारधाराभेदैः—लघवः = अल्पाः, दीर्घाः = विशालाः, महान्तः = विशिष्टाः, ये आकाराः = स्वरूपाः, तेषां धाराभेदाः = प्रयोगरीतिविशेषाः, तैः, शस्त्रास्त्रनामकम्—शस्त्राणाम् = प्रहरणानाम्, अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, नामानि, नवम् = नूतनम्, भिन्नम् = विशेषितम्, यथा स्यात् तथा, प्रथयन्ति = कथयन्ति ॥१९४॥

हिन्दी—हथियारों के जानकार लोगों व्यवहार के लिए छोटे-बड़े आकारों के धारा अर्थात् प्रयोग करने की रीति विशेष के भेद से शस्त्रास्त्र के नामों में नये-नये भेद बतलाये हैं ॥१९४॥

लघ्विति। तद्विदः शस्त्रज्ञाः जनाः व्यवहाराय लघुदीर्घाकारधाराभेदैः लघवः क्षुद्राः दीर्घाः महान्तः ये आकाराः अवयवाः तेषां धाराभेदाः प्रयोगरीतिविशेषाः तैः शस्त्रास्त्रनामकं शस्त्राणाम् अस्त्राणाञ्च नामानीत्यर्थः, नवं नूतनं भिन्नं विशेषितं यथा तथा प्रथयन्ति प्रकाशयन्ति ॥१९४॥

नालिकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्क्षुद्रविभेदतः ॥ १९५ ॥

अन्वयः—नालिकं बृहत्क्षुद्रविभेदतः द्विविधं ज्ञेयम् ॥१९५॥

व्याख्या—नालिकम् = आग्नेयास्त्रम्, बृहत्क्षुद्रविभेदतः = गुरुलघुभेदात्, द्विविधम् = प्रकारद्वयम्, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ १९५ ॥

हिन्दी—आग्नेयास्त्र तोप और बन्दूक के भेद से दो प्रकार का होता है ॥ १९५ ॥

नालिकमिति। नालिकम् अस्त्रं बृहत्क्षुद्रविभेदतः गुरुलघुभेदादित्यर्थः, द्विविधं ज्ञेयं बृहन्नालिकं क्षुद्रनालिकञ्चेत्यर्थः ॥ १९५ ॥

तिर्य्यगूर्द्ध्वच्छिद्रमूलं नालं पञ्चवितस्तिकम्।
मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदितिलविन्दुयुतं सदा ॥ १९६ ॥
यन्त्राघाताग्निकृद् ग्रावचूर्णधृक्कर्णमूलकम्।
सुकाष्ठोपाङ्गबुध्नञ्च मध्याङ्गुलविलान्तरम् ॥ १९७ ॥
स्वान्तेऽग्निचूर्णसन्धातृ शलाकासंयुतं दृढम्।
लघुनालिकमप्येतत् प्रधार्य्यं पत्तिसादिभिः ॥ १९८ ॥

अन्वयः—तिर्यगूर्ध्वछिद्रमूलं पञ्चवितस्तिकं मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि सदा तिलविन्दुयुतं यन्त्राघाताग्निकृत् ग्रावचूर्णधृक् कर्णमूलकं सुकाष्ठोपाङ्गबुध्नञ्च मध्याङ्गुलविलान्तरं स्वान्तेऽग्निचूर्णसन्धातृ शलाकासंयुतं दृढम् एतत् लघुनालिकमपि पत्तिसादिभिः प्रधार्यम् ॥१९६-१९८ ॥

व्याख्या—तिर्यक् = वक्रम्, ऊर्ध्वम् = उपरिष्टात्, छिद्रम् = विवरम्, मूले = शिफे, यस्य तत्, पञ्चवितस्तिकम् = सार्द्धद्वयहस्तमितम्, मूलाग्रयोः—मूले = ब्रध्ने, अग्रे = अग्रभागे च, लक्ष्यभेदि = वेध्यभेदकम्, यत् तिलविन्दु = तिललवः, तेन युतम् = समन्वितम्, यन्त्रस्य = यन्त्रकारस्य, आघातेन = प्रहारेण, अग्निकृत् = वह्न्युद्दीपकम्, यत् ग्रावस्य = प्रस्तरखण्डस्य, चूर्णम् = क्षोदः, तस्य धृक् = धारकः, कर्णमूलम् = मूलस्य कर्णभागे स्थितम्, यस्य तादृशम्, सुकाष्ठस्य = सुष्ठुदारुणः, उपाङ्गे = अङ्गसमीपे, बुध्नम् = मूलम्, यस्य तत्, मध्यम् = मध्यमम्, अङ्गुलविलम् = अङ्गुलिमितविस्तृतछिद्रम्, अन्तरे = मध्ये, यस्य तत्, स्वान्ते—स्वस्य = आत्मनः, अन्ते = अभ्यन्तरे, अग्निचूर्ण-सन्धातृ—अग्निचूर्णम् = स्फोटकचूर्णम्, तस्य सन्धातृ = सम्यग्रूपेण धारकम्, शलाकया = धातु- निर्मितयष्टिकया, संयुतम् = समन्वितम्, दृढम् = सुस्थिरम्, नालम् = गुलिकास्त्रम्, एतत् = पूर्वोक्तम् आग्नेयास्त्रम्, लघुनालिकमपि = गुलिकास्त्रमपि, पत्तिभिः = पदातिभिः, सादिभिश्च = अश्वारोहिभिश्च, प्रधार्यम् = सन्धार्यमिति ॥ १९६-१९८ ॥

हिन्दी—लकड़ी के कुन्दे में लगी लोहे की लम्बी नली ऐसी हो जिसकी जड़ में तिरछा ऊपर की ओर तक छेद हो और वह ढाई हाथ लम्बी हो तथा इसके मूल एवं अग्रभाग में लक्ष्य बेंधने में सहायक के रूप में एकतिल विन्दु अर्थात् मक्खी लगी हो। इस आयुध से आबाद होने पर आग पैदा करने वाला बारुद मूल के किसी भाग में भरा हो। हाथ से पकड़ने वाला मूल भाग सुन्दर काठ का बना हो। बाल का छेद एक अंगुल चौड़ा हो, इसमें बारुद भरी जाती हों। इसके साथ बारुद भरने की मजबूत एक शलाका लगी हो। इस यंत्र को बन्दूक कहते हैं। पैदल एवं घड़सवारों को इन्हें साथ रखना चाहिए ॥ १९६-१९८ ॥

तिर्य्यगित्यादि। तिर्य्यक् वक्रम् ऊद्ध्र्वं छिद्रं मूले यस्य तत्, पञ्चवितस्तिकं सार्द्धद्विहस्तं मूलाग्रयोः मूले अग्रे च लक्ष्यभेदि लक्ष्यभेदकं यत् तिलविन्दु तेन युतं, यन्त्रस्य आघातेन अग्निकृत्

अग्न्युद्दीपकं यत् ग्रावचूर्णं प्रस्तरचूर्णं तस्य धृक् धारकः कर्णमूलं यस्य तादृशं सुकाष्ठस्य उपाङ्गे अङ्गसमीपे अवयवप्रान्ते इत्यर्थः, बुध्नं मूलं यस्य तत्, मध्यम् अङ्गुलबिलम् अन्तरे यस्य तत् स्वान्ते स्वस्य अन्ते अग्निचूर्णसन्धातृ अग्निचूर्णं (बारुद इति प्रसिद्धः) तस्य सन्धातृ धारकं शलाकया संयुतं दृढं कठिनं नालं (बन्दुक) इति प्रसिद्धम्। एतत् लघुर्नालिकमपि पत्तिभिः पादातैः सादिभिश्च सन्धार्य्यम् ॥ १९६-१९८ ॥

यथा यथा तु त्वक्सारं यथा स्थूलबिलान्तरम्।
यथा दीर्घं बृहद्गोलं दूरभेदि तथा तथा ॥ १९९ ॥

अन्वयः—त्वक्सारं यथा यथा तु यथा स्थूलबिलान्तरं यथा दीर्घं बृहद्गोलं तथा तथा दूरभेदि ॥ १९९ ॥

व्याख्या—त्वक्सारम् = फलकपत्रम्, यथा यथा = येन येन रूपेण, यथा च स्थूलम् = बृहत्, बिलम् = छिद्रम्, अन्तरे = अभ्यन्तरे, यस्य तथोक्तम्, यथा वा दीर्घम् = विशालम्, गोलञ्च = गौलाकारपिण्डञ्च, तथा तथा = तेनैव रूपेण, दूरभदि = दूरस्थलक्ष्यभेदनं करोति ॥ १९९ ॥

हिन्दी—चदरा की मोटाई के अनुसार नाल की लम्बाई तथा छेद का आकार बड़ा होगा। इसी तरह गोले का आकार जितना बड़ा होगा तोप की मार उतनी दूर तक होगी ॥ १९९ ॥

यथेति। त्वक्सारं वंशः यथा यथा, यथा च स्थूलं बृहत् बिलं रन्ध्रम् अन्तरे यस्य तथोक्तं, यथा वा दीर्घं बृहत् गोलञ्च, तथा तथा दूरभेदि दूरस्थलक्ष्यभेदकं भवति ॥ १९९ ॥

मूलकीलभ्रमाल्लक्ष्यसमसन्धानभाजि यत्।
बृहन्नालिकसंज्ञं तत् काष्ठबुध्नविनिर्मितम्।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजयप्रदम् ॥ २०० ॥

अन्वयः—यत् मूलकीलभ्रमात् लक्ष्यसमसन्धानभाजि काष्ठबुध्नविनिर्मितं तत् बृहन्नालिकसंज्ञं शकटाद्यैः प्रवाह्यं सुयुक्तं विजयप्रदम् ॥ २०० ॥

व्याख्या—यत् = पूर्वोक्तरूपं त्वक्सारम्, मूले = ब्रध्ने, कीलः = शङ्कुः, भ्रमात् = घूर्णनात्, लक्ष्यस्य = वेध्यस्य, समम् = अनुरूपम्, यत् सन्धानम् = अभिषवः, तत् भजते इति, तथाभूतः काष्ठस्य दारुणः, यत् बुध्नम् = मूलम्, तेन विनिर्मितम् = रचितम्, तत् बृहन्नालिकसंज्ञम् = बृहन्नालिकनाम, शकटाद्यैः = यानाद्यैः, प्रवाह्यम् = प्रवहनीयम्, सुयुक्तम् = सुष्ठुतया प्रयुक्तम्, विजयप्रदम् = युद्धजयाय भवति ॥ २०० ॥

हिन्दी—और जिसके मूल भाग में लगी हुई कील को घुमाने से वह लक्ष्य के अनुरूप गोले को फेंकने वाली होती है, उसका मूलभाग काठ का बना होता है। वह गाड़ी से ढोया जा सकता है। यदि उसका उचित रूप से प्रयोग किया जाय तो युद्ध में विजय निश्चित रूप से होती है ॥२०० ॥

मूलेति। यत् पूर्वोक्तरूपं त्वक्सारं मूले यः कीलः शङ्कुः तस्य भ्रमात् भ्रमणात् लक्ष्यस्य समं योग्यम् अनुरूपमित्यर्थः, यत् सन्धानं तत् भजते इति तथाभूतं काष्ठस्य यत् बुध्नं मूलं ग्रन्थिरित्यर्थः तेन विनिर्मितं तत् बृहन्नालिकसंज्ञं बृहन्नालिकं नाम (कामान) इति भाषा। शकटाद्यैः प्रवाह्यं प्रवहनीयं बहुभारवत्त्वात् न मनुष्येण नापि हस्तिप्रभृतिभिः पशुभिरिति भावः, सुयुक्तं सुप्रयुक्तिमित्यर्थः, विजयप्रदं जयसाधनं भवति ॥ २०० ॥

सुवर्चिलवणात् पञ्च पलानि गन्धकात् पलम्।
अन्तर्धूमविपक्वार्कस्नुह्याद्यङ्गारतः पलम्॥ २०१॥
शुद्धात् सङ्ग्राह्य सञ्चूर्ण्य सम्मील्य प्रपुटेद्रसैः।
स्नुह्यर्काणां रसोनस्य शोषयेदातपेन च।
पिष्ट्वा शर्करवच्चैतदग्निचूर्णं भवेत् खलु॥ २०२॥

अन्वयः—सुवर्चिलवणात् पञ्चपलानि गन्धकात् पलम् अन्तर्धूमविपक्वार्कस्नुह्याद्यङ्गारतः शुद्धात् पलं संग्राह्य सञ्चूर्ण्य तथा सम्मील्य स्नुह्यर्काणां रसैः प्रपुटेत्। ततश्च रसोनस्य आतपेन शोषयेत्। अनन्तरं शर्करवच्चैतदग्निचूर्णं खलु भवेत्॥ २०१-२०२॥

व्याख्या—सुवर्चिलवणात् = विक्षारलवणात्, पञ्चपलानि = विंशतोलकानि, गन्धकात् = गन्धाश्मनः, पलम् = चतुस्तोलकानि, तथा अन्तर्धूमः = सधूमः, अग्निः = वह्निः, तेन विपक्वाः = दग्धाः, ये अर्काः = मन्दाराः, स्नुह्यादयः = सिजवृक्षादयश्च, तेषाम् अङ्गारात् = दग्धकाष्ठात्, शुद्धात् = अविमिश्रात्, पलम् = चतुस्तोलकमितम्, संग्राह्य = सम्यग्रूपेण नीत्वा, सञ्चूर्ण्य = सम्यक् प्रकारेण चूर्णं कृत्वा, तथा सम्मील्य = सम्यक्प्रकारेण मिश्रणं कृत्वा, स्नूहीनाम् = अर्कादीनाम्, रसैः = द्रवैः, प्रपुटेत् = पुटपाकं कुर्यात्, ततश्च, रसोनस्य = उग्रगन्धस्य, पाकेन = पाचनेन, आतपेन = तापनेन, शोषयेत् = शुष्कं कुर्यात्, अनन्तरम्, शर्करवत् = बालुकेव, एतत् = पूर्वोक्तं सकलम्, पिष्ट्वा = चूर्णीकृत्वा, यत् लब्धम्, तत् खलु अग्निचूर्णम् = स्फोटकचूर्णम्, भवेत् = स्यात्॥ २०१-२०२॥

हिन्दी—सोड़ा बीस तोला, गन्धक चार तोला, आक तथा थूहर आदि के धुआँ के साथ जले हुए कोयले शुद्ध चार तोला लेकर सबों को मिलाकर बारीक बुकनी बना ले। फिर आक, थूहर तथा लहसुन के रस में पका ले। फिर धूप में सुखाकर चूर्ण बना ले। बालू की तरह बुकनी बारुद कहलाती है॥ २०१-२०२॥

अग्निचूर्णं निरूपयति- **सुवर्चिलवणादिति**। सुवर्चिलवणात् (सोरा) इति प्रसिद्धात् पञ्च पलानि कषचतुष्टयपरिमाणानि, गन्धकात् पलं कर्षचतुष्टयमितं गन्धकमित्यर्थः, तथा अन्तर्धूमः सधूमः अग्निः तेन विपक्वा दग्धाः ये अर्काः आकन्देति प्रसिद्धा वृक्षाः स्नुह्यादयः सिजवृक्षादयश्च तेषाम् अङ्गारात् शुद्धात् अविमिश्रादित्यर्थः, पलं सङ्ग्राह्य सम्यक् गृहीत्वा सञ्चूर्ण्य तथा सम्मील्य मिश्रयित्वा स्नूहीनाम् अर्काणाञ्च रसैः प्रपुटेत पचेत्। ततश्च रसोनस्य पाकेन क्षीणरसस्य कर्म्मणि षष्ठी आतपेन शोषयेत्। अनन्तरं शर्करवत् एतत् पिष्ट्वा चूर्णयित्वा यत् लब्धमिति शेषः, तत् खलु अग्निचूर्णं भवेत्॥ २०१-२०२॥

सुवर्चिलवणाद्भागाः षड्वा चत्वार एव वा।
नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे तु गन्धाङ्गारौ तु पूर्ववत्॥ २०३॥

अन्वयः—सुवर्चिलवणात् षड् वा चत्वारः एव भागाः गन्धाङ्गारौ पूर्ववत् नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे तु॥ २०३॥

व्याख्या—सुवर्चिलवणात् = विक्षारात्, षट्पलानि = चतुर्विंशतितोलकानि, वा = अथवा, चत्वारः = षोडशतोलकानि, एव भागाः = अंशाः, नियोक्तव्याः, गन्धाङ्गारौ = गन्धाश्मनः,

दग्धकाष्ठखण्डानि च, पूर्ववत् = यथा पूर्वपलमिति, नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे—नालास्त्राणाम् = गुलिकास्त्राणाम्, अर्थे = निमित्ते, यत् अग्निचूर्णम् = स्फोटकचूर्णं नियोक्तव्यम् ॥ २०३ ॥

हिन्दी—अथवा बन्दूक के लिए जो बारुद बनाई जाती हैं उसमें सोड़ा चौबीस तोला अथवा सोलह तोला दिया जा सकता है। शेष गन्धक या अंगार की मात्रा पहले जैसे ही हो सकती है ॥ २०२ ॥

सुवर्चीति। नालास्त्राणामर्थे निमित्ते यत् अग्निचूर्णं तस्मिन् सुवर्चिलवणात् षट् वा चत्वार एव वा भागाः नियोक्तव्या इत्यर्थः, गन्धाङ्गारौ गन्धकानि अङ्गाराश्च इत्यर्थः, पूर्ववत् पलपरिमितावित्यर्थः ॥ २०३ ॥

गोलो लोहमयो गर्भघुटिकः केवलोऽपि वा।
सीसस्य लघुनालार्थे ह्यन्यधातुभवोऽपि वा ॥ २०४ ॥

अन्वयः—लघुनालार्थे केवलोऽपि लोहमयः गोलः गर्भघुटिकः वा सीसस्य वा अन्यधातुमयः ॥ २०४ ॥

व्याख्या—लघुनालार्थे = गुलिकास्त्रनिमित्ते, केवलोऽपि = अमिश्रितोऽपि, लोहमयः = लोहनिर्मितम्, गोलः = गुटिका, गर्भघुटिकः = अन्तर्भागस्थितगुटिका, वा = अथवा, सीसस्य = काचस्य, गुटिका, वा = अथवा, अन्यधातुमयः = अन्यधातुनिर्मितगुटिका गाह्यः ॥ २०४ ॥

हिन्दी—तोप का गोला लोहे का या उसके भीतर छाटी-छोटी गोलियाँ भरी रहती हैं, दोनों तरह के होते हैं और बन्दूक के लिए सीसे की या अन्य धातु की बनी हुई बडी गोलियाँ या छर्रे होते हैं ॥ २०४ ॥

गोल इति। लघुनालार्थे क्षुद्रनालास्त्रनिमित्तं केवलः अविमिश्र इत्यर्थः, लोहमयः गोलः गर्भघुटिकः अथवा सीसस्य गर्भघुटिकः अपि वा अन्यधातुमयः गर्भघुटिकः ग्राह्य इति शेषः ॥ २०४ ॥

लोहसारमयं वापि नालास्त्रं त्वन्यधातुजम्।
नित्यसम्मार्जनस्वच्छमस्त्रपातिभिरावृतम् ॥ २०५ ॥

अन्वयः—नालास्त्रं लोहसारमयं वा अन्यधातुजं नित्यसम्मार्जनस्वच्छमस्त्रपातिभिः आवृतम् ॥ २०५ ॥

व्याख्या—नालास्त्रम् = आग्नेयास्त्रम्, लोहसारमयम् = लोहपिण्डनिर्मितम्, वा = अथवा, अन्यधातुजम् = अन्यखनिजनिर्मितम्, चेत्, नित्यसम्मार्जनेन = सततपरिष्करणेन, स्वच्छम् = निर्मलम्, तथा अस्त्रपातिभिः = आयुधधारकैः शूरैः, आवृतम् = परिवृतं विधेयम् ॥ २०५ ॥

हिन्दी—तोप या बन्दूक फौलाद या अन्य धातु के बनाये जाते हैं। उन्हें नित्य झाड़-पोंछ कर स्वच्छ बनाये रखना चाहिए। इसके आस-पास इसे चलाने वाले रहते हैं।

लोहसारमयमिति। नालास्त्रं लोहसारमयं वा अन्यधातुजं चेत् नित्यसम्मार्जनेन सततपरिष्करणेन स्वच्छं तथा अस्त्रपातिभिः अस्त्रक्षेपिभिः वीरैः आवृतं कार्य्यमिति शेषः ॥ २०५ ॥

अङ्गारस्यैव गन्धस्य सुवर्चिलवणस्य च।
शिलाया हरितालस्य तथा सीसमलस्य च ॥ २०६ ॥
हिङ्गुलस्य तथा कान्तरजसः कर्पूरस्य च।
जतोर्नील्याश्च सरलनिर्य्यासस्य तथैव च ॥ २०७ ॥

समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ।
कल्पयन्ति च तद्विद्याश्चन्द्रिकाभादिमन्ति च ॥ २०८ ॥

अन्वयः—अङ्गारस्य गन्धस्य च सुवर्चिलवणस्य शिलायाः हरितालस्य तथा सीसमलस्य हिङ्गुलस्य कान्तरजसः च कर्पूरस्य जतोः नील्याश्च सरलनिर्यासस्य समन्यूनाधिकैः अंशैः अनेकशः, चन्द्रिकाभादिमन्ति अग्निचूर्णानि तद्विद्याः जनाः कल्पयन्ति ॥ २०६-२०७ ॥

व्याख्या—अङ्गारस्य = दग्धकाष्ठस्य, गन्धस्य = गन्धाश्मनः, सुवर्चिलवणस्य = विक्षारस्य, शिलायाः = नैपाल्यः, हरितालस्य = चित्रगन्धस्य, सीसमलस्य = सीसकिट्टकस्य, हिङ्गुलस्य = बाह्लीकस्य, कान्तरजसः = कान्तिसारलौहस्य, कर्पूरस्य = सिताङ्गस्य, जतोः = लाक्षायाः, नील्याः = सालरसस्य, तथा सरलनिर्यासस्य = सर्जरसस्य, समैः = समभागैः, न्यूनैः = अल्पैः, अधिकैः = विशेषैश्च यथोक्तैः, अंशैः, अनेकशः = नानाविधानि, अग्निचूर्णानि = स्फोटकचूर्णानि, तत् = तस्य, विद्याः = विशेषज्ञाः, जनाः = लोकाः, कल्पयन्ति = भावयन्ति ॥ २०६-२०७ ॥

हिन्दी—कोयला, गन्धक, सोड़ा, मैनसिल, हरताल, सीसे का जमा हुआ मैल, हींग, बढिया लोहा, कपूर, लाख, राल तथा देवदारु का गोंद—इन सबों के समान, कम या ज्यादा भाग मिलाकर बनाने से अनेक तरह की बारुद उसके जानकार लोग बनाते हैं। इसे जलाने पर चाँदनी की तरह स्वच्छ प्रकाश निकलता है ॥ २०६-२०८ ॥

पुनश्च अग्निचूर्णानि निरूपयति—अङ्गारस्येत्यादि। अङ्गारस्य, गन्धस्य गन्धकस्य, सुवर्चिलवणस्य, शिलायाः प्रस्तरस्य, हरितालस्य, सीसमलस्य हिङ्गुलस्य, कान्तरजसः लोहचूर्णस्य, कर्पूरस्य, जतोः, नील्याः तथा सरलनिर्य्यासस्य सर्जरसस्य समैः न्यूनैः अधिकैश्च यथोक्तैः अंशैः अनेकशः बहुविधानि चन्द्रिकाभादिमन्ति ज्योत्स्नाप्रभादियुक्तानि अग्निचूर्णानि तद्विद्याः तेषु विद्या येषां तादृशाः तद्भिज्ञा इत्यर्थः, जनाः कल्पयन्ति ॥ २०६-२०८ ॥

क्षिपन्ति चाग्निसंयोगाद्गोलं लक्ष्य सुनालगम् ॥ २०९ ॥

अन्वयः—अग्निसंयोगात् सुनालगं गोलं लक्ष्यं क्षिपन्ति ॥ २०९ ॥

व्याख्या–अग्निसंयोगात् = दहनवर्त्तिसम्पर्कात्, सुनालगम्—सुनालात् = शतघ्न्याः, गच्छतीति तादृशम्, गोलम् = गर्भघुटिकम्, लक्ष्ये = वेध्ये, क्षिपन्ति = क्षेपणं कुर्वन्ति द्विशेषज्ञाः ॥ २०९ ॥

हिन्दी—तोपची बारुद में पलीते लगाकर लक्ष्य की ओर गोले फेंकते हैं ॥ २०९ ॥

क्षिपन्तीति। अग्निसंयोगात् सुनालगं सुनालात् गच्छतीति तादृशं गोलं गोलाकारं गर्भघुटिकं लक्ष्ये लक्षणीये अरौ इति शेषः, क्षिपन्ति तद्विद्या इति शेषः ॥ २०९ ॥

नालास्त्रं शोधयेदादौ दद्यात्तत्राग्निचूर्णकम् ।
निवेशयेत्तद्दण्डेन नालमूले यथा दृढम् ॥ २१० ॥

अन्वयः—आदौ नालास्त्रं शोधयेत्, तत्र अग्निचूर्णं दद्यात्। नालमूले दण्डेन यथा दृढं निवेशयेत् ॥ २१० ॥

व्याख्या—आदौ = प्रथमम्, नालास्त्रम् = स्फोटकास्त्रम्, शोधयेत् = परिष्कुर्यात्, तत्र = तस्मिन् स्थाने, अग्निचूर्णम् = स्फोटकद्रव्यम्, दद्यात् = स्थापयेत्, नालमूले = आग्नेयास्त्रमूलभागे, दण्डेन = शलाकया, यथा = येन प्रकारेण, दृढम् = सुस्थिरम्, यथा भवेत् तथा, तत् = पूर्वोक्तम्, अग्निचूर्णम् = स्फोटकचूर्णम्, निवेशयेत् = प्रवेशयेत् ॥ २१० ॥

हिन्दी—पहले तोप या बन्दूक की नली साफ कर उसमें लोहे की मजबूत शलाका से बारुद ठूँस-ठूँस कर भर दे। फिर नालमूल में गोले या गोली रख दे ॥ २१० ॥

नालास्त्रमिति। आदौ नालास्त्रं शोधयेत् परिष्कुर्य्यात्, ततः तत्र अग्निचूर्णकं पूर्वोक्तं दद्यात्, नालमूले दण्डेन यथा दृढं दृढं यथा तथेत्यर्थः, तत् अग्निचूर्णं निवेशयेत् प्रवेशयेत् ॥ २१० ॥

ततः सुगोलकं दद्यात् ततः कर्णेऽग्निचूर्णकम्।
कर्णचूर्णाग्निदानेन गोलं लक्ष्ये निपातयेत् ॥ २११ ॥

अन्वयः—ततः सुगोलकं दद्यात्, ततश्च कर्णे अग्निचूर्णं दद्यात्। कर्णचूर्णग्निदानेन गोलं लक्ष्ये निपातयेत् ॥ २११ ॥

व्याख्या—ततः = स्फोटकचूर्णनिवेशनानन्तरम्, सुगोलकम् = लौहपिण्डम्, दद्यात् = स्थापयेत्, ततश्च, कर्णे = कर्णभागे, अग्निचूर्णकं दद्यात्, तत्पश्चात् कर्णे चूर्णाग्निः = कर्णस्थाग्निचूर्णे, अग्निदानेन = दहनवर्त्तिकया वह्निप्रदानेन, लक्ष्ये = शरव्ये, गोलम् = लौहसीसपिण्डं वा, निपातयेत् = क्षिपेत् ॥ २११ ॥

हिन्दी—इसके बाद तोप या बन्दूक के बगल के छेद में बारुद भरकर उसमें आग लगाकर गोला या गोली लक्ष्य साधकर उस पर चला दे ॥ २११ ॥

तत इति। ततः अग्निचूर्णनिवेशनानन्तरं तत्र सुगोलकं, ततश्च कर्णे अग्निचूर्णकं दद्यात्। अनन्तरं कर्णे चूर्णाग्निदानेन कर्णस्थाग्निचूर्णे अग्निदानेन लक्ष्ये गोलं निपातयेत् ॥ २११ ॥

लक्ष्यभेदी यथा बाणो धनुर्ज्याविनियोजितः।
भवेत् तथा तु सन्धाय द्विहस्तश्च शिलीमुखः ॥ २१२ ॥

अन्वयः—यथा बाणः धनुर्ज्याविनियोजितः लक्ष्यभेदी भवेत्, तथा सन्धाय द्विहस्तश्च शिलीमुखः कार्यः ॥ २१२ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, बाणः = शरः, धनुर्ज्याविनियोजितः = धनुषो विक्षिप्तः सन्, लक्ष्यभेदी = शरव्यभेदनकारी, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव रूपेण, सन्धाय = लक्ष्यसन्धानं कृत्वा, द्विहस्तः = हस्तद्वयपरिमितः, शिलीमुखः = शरः कुर्यात् ॥ २१२ ॥

हिन्दी—धनुष की डोरी पर ऐसा निशाना साधकर बाण चलाये कि लक्ष्य का भेदन अवश्य हो और बाण की लम्बाई दो हाथ की होनी चाहिए ॥ २१२ ॥

लक्ष्यभेदीति। यथा बाणः धनुर्ज्याविनियोजितः धनुषो विक्षिप्त इत्यर्थः, सन् लक्ष्यभेदी भवेत् तथा सन्धाय द्विहस्तः हस्तद्वयमितः शिलीमुखः बाणः कार्य्य इति शेषः ॥ २१२ ॥

अष्टाश्रा पृथुबुध्ना तु गदा हृदयसम्मिता।
पट्टीशः स्वसमो हस्तबुध्नश्चोभयतोमुखः ॥ २१३ ॥

अन्वयः—पृथुबुध्ना अष्टाश्रा हृदयसम्मिता गदा पट्टीशः स्वसमः हस्तबुध्नः उभयतोमुखः स्यात् ॥ २१३ ॥

व्याख्या—पृथुबुध्ना = मूले स्थूला, अष्टाश्रा = अष्टकोणा, हृदयसम्मिता = वक्षःस्थलपर्यन्तोन्नतः, गदा = लोहमयशस्त्रभेदः कार्या, पट्टीशः = क्षुरोपमतीक्ष्णधारः लौहदण्डः, 'पट्टीशः

लौहदण्डो यस्तीक्ष्णधारः क्षुरोपमः' (वैजयन्ती)। स्वसमः = निजतुल्यः, हस्तबुध्नः = हस्तप्रमाणः, उभयतोमुखः = मूलाग्रजमुखः कार्यः ॥ २१३ ॥

हिन्दी—मूल भाग जिसका मोटा हो, आठ पहल वाली, छाती तक ऊँची गदा बनाये तथा अपने बराबर ऊँची दोनों ओर तेज धार वाली जिसे बीच में से हाथ से पकड़ा जाय ऐसा पट्टीश शस्त्र बनाये ॥ २१३ ॥

अष्टेति। पृथुबुध्ना स्थूलमूलदेशा अष्टाश्रा अष्टकोणा हृदयसम्मिता वक्षःस्थलसमाना गदा कार्य्या इति शेषः। पट्टीशः अस्त्रविशेषः स्वसमः क्षेप्तृसमपरिमाणः हस्तबुध्नश्च हस्तप्रमाणः वा, उभयतोमुखः मूलाग्रमुखः कार्य्य इति शेषः ॥ २१३ ॥

ईषद्वक्रश्चैकधारो विस्तारे चतुरङ्गुलः।
क्षुरप्रान्तो नाभिसमो दृढमुष्टिः सुचन्द्ररुक् ॥ २१४ ॥

अन्वयः—एकधारः ईषद्वक्रः विस्तारे चतुरङ्गुलः क्षुरप्रान्तः नाभिसमः दृढमुष्टिः सुचन्द्ररुक् ॥ २१४ ॥

व्याख्या—एकधारः = अस्त्रविशेषः, ईषद्वक्रः = किञ्चित्कुटिलः, विस्तारे = परिणाहे, चतुरङ्गलः = अङ्गुलचतुष्टयप्रमाणः, क्षुरप्रान्तः = अस्त्रभेदः, नाभिसमः = निपातने नाभिपर्यन्तप्रमाणः, दृढमुष्टिः = सुस्थिरमुष्टिः, सुचन्द्ररुक् = सुन्दरराशिप्रभः, कार्यः ॥ २१४ ॥

हिन्दी—एक ओर धार वाली, कुछ टेढ़ी, चार अंगुल चौड़ी, छुरे की तरह तेज धार वाली, नाभी तक ऊँची, मजबूत मूठ वाली तथा चाँद की तरह चमकने वाली तलवार होती है ॥ २१४ ॥

ईषदिति। एकधारः अस्त्रविशेषः ईषद्वक्रः, विस्तारे चतुरङ्गुलः, अङ्गुलचतुष्टयप्रमाणः, क्षुरप्रान्तः अस्त्रभेदः नाभिसमः क्षेप्तृनाभिपर्य्यन्तपरिमाणः दृढमुष्टिः तथा सुचन्द्ररुक् शोभनचन्द्रप्रभः कार्य्य इति शेषः ॥ २१४ ॥

खड्गः प्रासश्चतुर्हस्तदण्डबुध्नः क्षुराननः।
दशहस्तमितः कुन्तः फालाग्रः शङ्कुबुध्नकः ॥ २१५ ॥

अन्वयः—खड्गः प्रासश्च चतुर्हस्तदण्डबुध्नः क्षुराननः कुन्तः दशहस्तमितः फालाग्रः शङ्कुबुध्नक ॥ २१५ ॥

व्याख्या—खड्गः = करवालः, प्रासश्च = कुन्तश्च, चतुर्हस्तदण्डबुध्नः = तुरीयहस्तदण्डप्रमाणः, क्षुराननः—क्षुरः = खुरः, इव आननम् = मुखम्, यस्यासौ, कुन्तः = भल्लः, दशहस्तमितः = दशहस्तपरिमितः, फालाग्रः—फालस्य = कुशिलस्य, अग्रम् = अग्रभागम्, यस्य तथाभूतः, तथा शङ्कु- बुध्नकः = शङ्कुतुल्यः, यथा स्यात् तथेति ॥ २१५ ॥

हिन्दी—चार हाथ लम्बे डंडे के आगे छुरे के समान तेज धार वाला बच्छीं नामक हथियार होता है और दश हाथ लम्बे डंडे के आगे तेज धार वाला फाल कील के सहारे जिसमें लगा होता है उसे भाला कहते हैं ॥ २१५ ॥

खड्ग इति। खड्गः प्रासश्च अस्त्रभेदः चतुर्हस्तदण्डबुध्नः चतुर्हस्तदण्डप्रमाणः क्षुराननः क्षुरवत् आननं यस्य सः। कुन्तः दशहस्तमितः फालाग्रः फालस्य लाङ्गुलमुखवर्त्तिनो लौहस्य इव अग्रं यस्य तथाभूतः तथा शङ्कुबुध्नकः शङ्कुसदृश इत्यर्थः ॥ २१५ ॥

चक्रं षड्ढस्तपरिधि क्षुरप्रान्तं सुनाभियुक् ।
त्रिहस्तदण्डस्त्रिशिखो लोहरज्जुः सुपाशकः ॥ २१६ ॥

अन्वयः—चक्रं षड्ढस्तपरिधि क्षुरप्रान्तं सुनाभियुक् सुपाशकः त्रिहस्तदण्डः त्रिशिखः लोहरज्जुः ॥ २१६ ॥

व्याख्या—चक्रम् = चक्राकारायुधम्, षड्ढस्तपरिधिः—षड्हस्तम् = हस्तषड्कम्, परिधि = वेष्टनम्, यस्य तत्, क्षुरप्रान्तम्—क्षुरः = खुर इव, प्रान्तम् = अग्रभागम्, यस्य तत् तथा, सुनाभियुक् = सुष्ठुमध्यसमन्वितम्, सुपाशकः = सुजालकः, त्रिहस्तदण्डः = हस्तत्रयदण्डयुतः, त्रिशिखः = शिखरत्रयसमन्वितम्, तथा लोहरज्जुः = लोहतारसंयुक्तो भवति ॥ २१६ ॥

हिन्दी—जिसके घेरे की लम्बाई छः हाथ की हो तथा इसके गोल आकार का अगला हिस्सा छुरे की तरह तेज धार वाला हो और बीच का भाग सुन्दर एवं सुदृढ़ हो, ऐसे हथियार को 'चक्र' कहते हैं। पाश नामक शस्त्र का डंडा तीन हाथ लम्बा होता है तथा इसके तीन छोर लोहे के मजबूत तार से घिरे होते हैं ॥ २१६ ॥

चक्रमिति । चक्रं चक्राकारः अस्त्रविशेषः षड्ढस्तपरिधि हस्तषट्कवेष्टनं क्षुरस्येव प्रान्तं यस्य तत्, तथा सुनाभियुक् सुमध्यमित्यर्थः। सुपाशकः पाशनामा अस्त्रविशेषः त्रिहस्तदण्डः हस्तत्रयमितः दण्डाकृतिश्च इत्यर्थः, त्रिशिखः शिखात्रययुतः तथा लोहरज्जुः लौहतारवान् ।। २१६ ॥

गोधूमसम्मितस्थूलपत्रं लोहमयं दृढम् ।
कवचं सशिरस्त्राणमूद्र्ध्वकायविशोभनम् ॥ २१७ ॥

अन्वयः—गोधूमसम्मितस्थूलपत्रं दृढं लोहमयं सशिरस्त्राणम् ऊद्र्ध्वकायविशोभनं कवचम् ॥ २१७ ॥

व्याख्या—गोधूमसम्मितस्थूलपत्रम्—गोधूमेन = निस्तुषेण, सम्मितम् = सदृशम्, स्थूलम् = पीवरम्, पत्रम् = आवरणम्, यस्य तथाभूतस्य, लोहमयम् = लौहनिर्मितम्, दृढम् = सुस्थिरम्, सशिरस्त्राणम् = शिरसंरक्षकसहितम्, ऊर्ध्वकायविशोभनम् = मस्तकशोभाजनकम्, कवचम् = सन्नाहः कार्यः ॥ २१७ ॥

हिन्दी—गेहूँ के बराबर मोटे लोहे के चदरे से बने या मजबूत शरीर की रक्षा के लिए बने आवरण को कवच कहते हैं। शिर की रक्षा के लिए सुन्दर ढंग से बने टोप भी इसके साथ लगे होते हैं, इसे कवच कहा जाता है ॥ २१७ ॥

गोधूमेति । गोधूमेन सम्मितं तुल्यं स्थूलं पत्रं यस्य तत् लोहमयं दृढं कठिनं सशिरस्त्राणं शिरस्त्राणसहितम् ऊद्र्ध्वकायविशोभनम् ऊद्र्ध्वदेहशोभाजनकं कवचं कार्य्यमिति शेषः ॥ २१७ ॥

तीक्ष्णाग्रं करजं श्रेष्ठं लोहसारमयं दृढम् ॥ २१८ ॥

अन्वयः—तीक्ष्णाग्रं लोहसारमयं दृढं करजं श्रेष्ठम् ॥ २१८ ॥

व्याख्या—तीक्ष्णाग्रम् = सुष्ठुधारयुक्तम्, लौहसारमयम् = उत्कृष्टलोहनिर्मितम्, दृढम् = शक्तिसम्पन्नम्, करजम् = नखतुल्यास्त्रविशेषः, श्रेष्ठः = उत्तमो भवति ॥ २१८ ॥

हिन्दी—इस्पात के बने मजबूत नाखून की तरह नुकीले तेज धार वाले हथियार को 'करज' अर्थात् बघनखा कहते हैं ॥ २१८ ॥

तीक्ष्णाग्रं सुधारं लोहसारमयम् उत्कृष्टलोहमयं दृढं करजम् अस्त्रविशेषः कार्य्यमिति शेषः ॥२१८ ॥

यो वै सुपुष्टसम्भारस्तथा षड्गणमन्त्रवित् ।
बह्वस्त्रसंयुतो राजा योद्धुमिच्छेत् स एव हि ।
अन्यथा दुःखमाप्नोति स्वराज्याद्भ्रश्यतेऽपि च ॥ २१९ ॥

अन्वयः—यः वै राजा सुपुष्टसम्भारः षड्गुणमन्त्रवित् तथा बहुभिः अस्त्रैः संयुतः स एव हि योद्धुम् इच्छेत्, अन्यथा दुःखम् आप्नोति च स्वराज्यात् भ्रश्यते ॥ २१९ ॥

व्याख्या—यः = यत्, वै = इति निश्चयेन, राजा = नृपः, सुपुष्टसम्भारः = वस्तुजातैः परिपुष्टः, षड्गुणमन्त्रवित्—षड्गुणाः = सन्धिविग्रहादिकगुणाः—सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावाः षड्गुणाः, मन्त्राश्च, तान् वेत्ति = जानातीति तथोक्तम्, तथा बहुभिः = अनेकैः, अस्त्रैः = आयुधैः, संयुतः = समन्वितः, सः = असौ राजा एव, योद्धुम् = युद्धं कर्त्तुम्, इच्छेत् = अभिलषेत्, अन्यथा = इतरथा समरकरणे, दुःखम् = कष्टम्, आप्नोति = प्राप्नोति, स्वराज्यात् = निजराष्ट्रात्, भ्रश्यते = भ्रष्टो भवति ॥ २१९ ॥

हिन्दी—जो राजा युद्ध के लिए उपयुक्त साधनों से सम्पन्न और समयानुसार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय एवं द्वैधीभाव—इन छः गुणों एवं मन्त्रणाओं का जानकार एवं बहुविध आयुधों से युक्त हो, उसे ही युद्ध की इच्छा करनी चाहिए। अन्यथा युद्ध करने पर वह खुद तो दुःख पाता ही है राज्य से भी हाथ धोना पड़ता है ॥ २१९ ॥

य इति। यः राजा सुपुष्टसम्भारः परिपुष्टसामग्रीकः, षड्गुणमन्त्रवित् षट् गुणाः सन्ध्यादयः 'सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षट् गुणाः' इत्यमरः। मन्त्राश्च तान् वेत्तीति तथोक्तः तथा बहुभिः अस्त्रैः संयुतः, स एव योद्धुम् इच्छेत्, अन्यथा युद्धकरणे दुःखम् आप्नोति, स्वराज्यात् भ्रश्यते च विच्युतः भवति च ॥ २१९ ॥

आबिभ्रतोः शत्रुभावमुभयोः संयतात्मनोः ।
अस्त्राद्यैः स्वार्थसिद्ध्यर्थं व्यापारो युद्धमुच्यते ॥ २२० ॥

अन्वयः—शत्रुभावम् आबिभ्रतोः संयतात्मनोः उभयोः स्वार्थसिद्ध्यर्थम् अस्त्राद्यैः व्यापारः युद्धम् उच्यते ॥ २२० ॥

व्याख्या—शत्रुभावम् = पारस्परिकशत्रुता, आबिभ्रतोः = धारयतोः, संयतात्मनोः = नियतात्मनोः, उभयोः = द्वयोः, स्वार्थसिद्ध्यर्थम् = आत्मप्रयोजननिष्पादनाय, अस्त्राद्यैः = आयुधादिभिः, व्यापारः = कार्यम्, युद्धम् = समरम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २२० ॥

हिन्दी—परस्पर वैरभाव रखते हुए संयतात्मक होकर दो व्यक्ति हथियारों का संचालन करते हुए स्वार्थसिद्धि के लिए जो काम करते हैं, उसे युद्ध कहते हैं ॥ २२० ॥

आबिभ्रतोरिति। शत्रुभावम् आबिभ्रतोः धारयतोः संयतात्मनोः निश्चलमनसो उभयोः स्वार्थसिद्ध्यर्थम् अस्त्राद्यैः व्यापारः युद्धम् उच्यते ॥ २२० ॥

मन्त्रास्त्रैर्दैविकं युद्धं नालाद्यस्त्रैस्तथाऽऽसुरम् ।
शस्त्रबाहुसमुत्थन्तु मानवं युद्धमीरितम् ॥ २२१ ॥

अन्वयः—मन्त्रास्त्रैः दैविकं तथा नालाद्यस्त्रैः आसुरं शस्त्रबाहुसमुत्थं मानवं युद्धम् ईरितम् ॥ २२१ ॥

व्याख्या—मन्त्राद्यैः = मन्त्रादिप्रयुक्तैः, अस्त्रैः = आयुधैः, कृतयुद्धस्य नाम, दैविकम् = अमानवीम्, तथा = नालाद्यस्त्रैः = आग्नेयाद्यायुधैः, कृतयुद्धम्, आसुरम् = असुरसम्बन्धिनम्, शस्त्रबाहुसमुत्थम्—शस्त्रैः = खड्गादिभिः, बाहुभिश्च = दोर्दण्डैश्च, समुत्थम् = जातयुद्धम्, मानवम् = मनुष्यकृतम्, युद्धम्, ईरितम् = कथितम् ॥ २२१ ॥

हिन्दी—जिस युद्ध में मन्त्र द्वारा आयुध संचालित हो, उसे दैवी तथा जिसमें आग्नेयास्त्र प्रयुक्त हो, उसे आसुरी एवं तलवार प्रभृति शस्त्रों का बाहों से जो युद्ध किया जाय, उसे मानवी युद्ध कहते हैं ॥ २२१ ॥

मन्त्रास्त्रैरिति। मन्त्रास्त्रैर्दैविकं, नालादिभिः अस्त्रैः आसुरं शस्त्रबाहुसमुत्थं शस्त्रैः तलवारादिभिः बाहुभिश्च समुत्पन्नं मानवं युद्धम् ईरितम् उक्तम् ॥ २२१ ॥

एकस्य बहुभिः सार्द्धं बहूनां बहुभिश्च वा।
एकस्यैकेन वा द्वाभ्यां द्वयोर्वा तद्भवेत् खलु ॥ २२२ ॥

अन्वयः—तत् एकस्य बहुभिः सार्द्धं वा बहूनां बहुभिः एकस्य एकेन वा द्वयोः द्वाभ्यां खलु भवेत् ॥ २२२ ॥

व्याख्या—तत् = समरम्, एकस्य = जनस्यैकस्य, बहुभिः = अनेकजनैः, सार्द्धम् = सह, वा = अथवा, एकस्य = एकमात्रजनस्य, एकेन = एकमात्रेण जनेन, सार्द्धम् = सह, वा = अथवा, द्वयोः = उभयोः, द्वाभ्याम् = उभाभ्याम्, सार्द्धम् = सह, खलु = निश्चयेन, भवेत् = स्यात् ॥ २२२ ॥

हिन्दी—और यह युद्ध कभी एक का अनेकों के साथ अथवा बहुतों का बहुतों के साथ, एक का एक के साथ अथवा दो का दो के साथ होता है ॥ २२२ ॥

एकस्येति। तत् युद्धम् एकस्य बहुभिः सार्द्धं सह, बहूनां बहुभिश्च, सार्द्धम् एकस्य एकेन सार्द्धं द्वयोः द्वाभ्यां वा सार्द्धं खलु निश्चितं भवेत् ॥ २२२ ॥

कालं देशं शत्रुबलं दृष्ट्वा स्वीयबलं ततः।
उपायान् षड्गुणं मन्त्रं भवेच्च युद्धकामुकः ॥ २२३ ॥

अन्वयः—कालं देशं शत्रुबलं स्वीयबलम् उपायान् षड्गुणं मन्त्रं च दृष्ट्वा युद्धकामुकः भवेत् ॥ २२३ ॥

व्याख्या—कालम् = समयम्, देशम् = स्थानम्, शत्रुबलम् = रिपुशक्तिम्, स्वीयबलम् = आत्मशक्तिः, उपायान् = सामदानादिशत्रुविजययुक्तीः, सामदानभेददण्डमित्युपायचतुष्टयम्, षड्गुणम् = सन्धिविग्रहादिकं षड्गुणम्, सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावाः षड्गुणाः, मन्त्रम् = मन्त्रणाशक्तिः, दृष्ट्वा = विचार्य, युद्धकामुकः = सङ्ग्रामेच्छुकः, भवेत् = स्यात् ॥ २२३ ॥

हिन्दी—देश, काल, आत्मशक्ति, शत्रुशक्ति, सामदानादिक उपाय, सन्धि-विग्रहादिक षड्गुण और मंत्रणाशक्ति पर अच्छी तरह विचार कर लेने के बाद ही युद्ध में प्रवृत्त हो ॥ २२३ ॥

कालमिति। कालं समयं देशं स्थानं शत्रुबलं स्वीयबलम् उपायान् सामादीन् 'सामदानभेददण्डमित्युपायचतुष्टयमि'त्यमरः। षड्गुणं सन्ध्यादिकं मन्त्रञ्च दृष्ट्वा समीक्ष्य युद्धकामुकः सङ्ग्रामार्थी भवेत् ॥ २२३ ॥

शरद्धेमन्तशिशिरकालो युद्धेषु चोत्तमः।
वसन्तो मध्यमो ज्ञेयोऽधमो ग्रीष्मः स्मृतः सदा॥ २२४॥

अन्वयः—युद्धेषु शरद्धेमन्तशिशिरकालश्च उत्तमः, वसन्तः मध्यमः ज्ञेयः, ग्रीष्मस्तु सदा अधमः स्मृतः॥ २२४॥

व्याख्या—युद्धेषु = सङ्गरेषु, शरद् = वर्षान्तः, हेमन्तः = हिमागमः, शिशिरकालश्च = शीतकालश्च, उत्तमः = उत्कृष्टः, वसन्तः = ऋतुराजः, मध्यमः = मध्यः, ज्ञेयः = बोध्यः, ग्रीष्मस्तु = तपनकालस्तु, सदा = सर्वदा, अधमः = हीनसमयः, स्मृतः = कथितः॥ २२४॥

हिन्दी—युद्ध के लिए उपयुक्त समय शरद्, हेमन्त और शिशिर कहा गया है। वसन्त ऋतु का समय मध्यम वर्ष का तथा ग्रीष्म ऋतु को अधम काल कहा गया है॥ २२४॥

शरदिति। युद्धेषु शरत् हेमन्तः शिशिरकालश्च उत्तमः, वसन्तः मध्यमः ज्ञेयः, ग्रीष्मस्तु सदा अधमः स्मृतः॥ २२४॥

वर्षासु न प्रशंसन्ति युद्धं साम स्मृतं तदा॥ २२५॥

अन्वयः—वर्षासु युद्धं न प्रशंसन्ति, तदा साम स्मृतः॥ २२५॥

व्याख्या—वर्षासु = मेघागमेषु, युद्धम् = समरम्, न = नहि, प्रशंसन्ति = प्रशंसनीयो भवति, तदा = तस्मिन्काले, साम = सन्धिरेव, स्मृतम् = कथितम्॥ २२५॥

हिन्दी—वर्षाऋतु में युद्ध करना सर्वथा अप्रशंसनीय है, उस समय तो किसी भी तरह दुश्मनों से सन्धि करना ही कहा गया है॥ २२५॥

वर्षास्विति। वर्षासु युद्धं न प्रशंसन्ति, तदा वर्षास्वित्यर्थः, साम सन्धिः स्मृतम्॥ २२५॥

युद्धसम्भारसम्पन्नो यदाधिकबलो नृपः।
मनोत्साही सुशकुनोत्पाती कालस्तदा शुभः॥ २२६॥

अन्वयः—यदा नृपः युद्धसम्भारसम्पन्नः अधिकबलः मनोत्साही तदा सुशकुनोत्पाती शुभः कालः॥ २२६॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, नृपः = राजा, युद्धसम्भारसम्पन्नः = समरोपयुक्तसाधनसम्पन्नः, अधिकबलः = अत्यधिकशक्तिसम्पन्नः, मनोत्साही—मनसा = चित्तेन, उत्साही = साहसी, अत्र सन्धिरार्षः, तदा = तस्मिन्काले, सुशकुनोत्पाती—सुशकुनानाम् = सुष्ठुलक्षणानाम्, उत्पातः = समु- दयः, यस्मिन् तथाभूतः, अत एव शुभः = शुभलक्षणः, कालः = युद्धस्य समय इति ज्ञेयम्॥ २२६॥

हिन्दी—जब राजा के पास युद्धोपयोगी सामग्रियों की पूर्णता हो, अधिक शक्तिसम्पन्न हो और मन में युद्ध के लिए उत्साहित हो तथा अच्छे शकुन दिखाई पड़ते हों तो उस समय युद्ध में प्रवृत्त होना शुभ फलदायक होता है॥ २२६॥

युद्धेति। यदा नृपः युद्धसम्भारसम्पन्नः सङ्ग्रामसामग्रीपरिपुष्टः अधिकबलः मनोत्साही उत्साहान्वितमनाः सन्धिरत्रार्षः। तदा सुशकुनोत्पाती सुशकुनानां सुलक्षणानाम् उत्पातः उत्पतनम् उदय इत्यर्थः, यस्मिन् तथाभूतः अत एव शुभः सुमङ्गलः कालः सङ्ग्रामस्येति शेषः॥ २२६॥

कार्येऽत्यावश्यके प्राप्ते कालो नो चेद्यदा शुभः।
विधाय हृदि विश्वेशं गेहे भक्त्या न्वियात् तदा॥ २२७॥

अन्वयः—यदा शुभः कालः नो चेत् अत्यावश्यके कार्ये प्राप्ते हृदि गेहे विश्वेशं भक्त्या विधाय नु इयात् ॥ २२७ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन्काले, शुभः = माङ्गलिकः, कालः = समयः, चेत् = यदि, न = नहि, किञ्च, अत्यावश्यके = अत्यावश्यककर्त्तव्ये, कार्ये = कर्मणि, प्राप्ते = उपस्थिते, हृदि = चित्तस्वरूपे, गेहे = गृहे, विश्वेशम् = परमात्मानम्, भक्त्या = भक्तिपूर्वकेन, विधाय = संस्थाप्य, नु = नूनम्, इयात् = व्रजेत् ॥ २२७ ॥

हिन्दी—यदि किसी अत्यावश्यक कार्यवश युद्ध करना अनिवार्य हो जाय और उस समय यदि शुभफलद समय उपस्थित न हो तो हृदय रूपी घर में भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाय ॥ २२७ ॥

कार्य्ये इति। यदा चेत् यदि शुभः कालः नो प्राप्यते इत्यर्थः, तदा अत्यावश्यके कार्य्ये प्राप्ते आपतिते हृदि हृदयरूपे गेहे विश्वेशं भक्त्या विधाय नु निधाय इयात् गच्छेत् सङ्ग्रामायेति शेषः ॥ २२७ ॥

न कालनियमस्तत्र गोस्त्रीविप्रविनाशने ॥ २२८ ॥

अन्वयः—गोस्त्रीविप्रविनाशने तत्र न कालनियमः ॥२२८ ॥

व्याख्या—गोस्त्रीविप्रविनाशने—गवाम् = धेनूनाम्, स्त्रीणाम् = नारीणाम्, वा = अथवा, विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, विनाशने = विध्वंसने, तत्र = तस्मिन् समरे, न = नहि, कालनियमः = समयविचारः, अर्थात् पूर्वोक्तकार्ये समुपस्थिते सर्वस्मिन्नेव काले युद्धाय सन्नद्धो भवेत् ॥ २२८ ॥

हिन्दी—गाय, औरत और ब्राह्मणों का विनाश यदि उपस्थित हो जाय तो उन्हें बचाने के निमित्त युद्ध करने में किसी प्रकार कालनियम का विचार नहीं करना चाहिए ॥ २२८ ॥

नेति। गोस्त्रीविप्रविनाशने गवां स्त्रीणां विप्राणां वा विनाशने सति तत्र युद्धे न कालनियमः सर्वस्मिन्नेव काले सङ्ग्रामाय यायादिति भावः ॥ २२८ ॥

यस्मिन् देशे यथाकालं सैन्यव्यायामभूमयः ।
परस्य विपरीताश्च स्मृतो देशः स उत्तमः ॥ २२९ ॥

अन्वयः—यस्मिन् देशे यथाकालं सैन्यव्यायामभूमयः परस्य विपरीताः सः देशः उत्तमः स्मृतः ॥ २२९ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = यत्र, देशे = स्थाने, यथाकालम् = यथावसरम्, सैन्यानाम् = बलानाम्, व्यायामभूमयः = सैन्यशिक्षाभ्यासस्थानानि, सन्तीति शेषः, तथा = तेनैव रूपेण, परस्य = रिपोः, विपरीताः = विरुद्धाः, सः = तत्, देशः = स्थानम्, उत्तमः = श्रेष्ठः, स्मृतः = कथितः ॥ २२९ ॥

हिन्दी—जिस स्थान पर समयानुसार सैनिकों को कवायद कराने के लिए योग्य भूमि हो और वह दुश्मनों को विपरीत पड़े तो वही स्थान युद्ध के लिए चुनना उत्तम होता है ॥ २२९ ॥

यस्मिन्निति। यस्मिन् देशे यथाकालं समये समये इत्यर्थः, सैन्यानां व्यायामभूमयः रणव्यापारशिक्षाभ्यासस्थानानि सन्तीति शेषः, तथा परस्य शत्रोः विपरीताः न सन्तीति भावः, सः देशः उत्तमः स्मृतः ॥ २२९ ॥

आत्मनश्च परेषां च तुल्यव्यायामभूमयः ।
यत्र मध्यम उद्दिष्टो देशः शास्त्रविचिन्तकैः ॥ २३० ॥

अन्वयः—यत्र आत्मनः परेषां तुल्यव्यायामभूमयः देशः शास्त्रविचिन्तकैः मध्यमः उद्दिष्टः ॥ २३० ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने, आत्मनः = स्वस्य, परेषाम् = अन्येषां शत्रूणाम्, तुल्याः = समानाः, व्यायामभूमयः = प्रशिक्षणस्थानानि सन्ति, सः = असौ, देशः = स्थानम्, शास्त्रविचिन्तकैः = शास्त्रज्ञैः, मध्यमः = सामान्यः, उद्दिष्टः = कथितः ॥ २३० ॥

हिन्दी—और जहाँ अपने तथा दुश्मन की सेना के लिए समान रूप से कवायद के लिए उपयुक्त स्थान उपलब्ध हो, वह शास्त्रज्ञों की दृष्टि में मध्यम दर्जे का रणक्षेत्र कहा गया है ॥ २३० ॥

आत्मन इति। यत्र यस्मिन् देशे आत्मनः परेषां शत्रूणाञ्च तुल्याः समानाः व्यायामभूमयः सन्तीति शेषः, स देशः शास्त्रविचिन्तकैः मध्यमः उद्दिष्टः कथितः ॥ २३० ॥

अरातिसैन्यव्यायामसुपर्य्याप्तमहीतलः ।
आत्मनो विपरीतश्च स वै देशोऽधमः स्मृतः ॥ २३१ ॥

अन्वयः—यः देशः वै अरातिसैन्यव्यायामसुपर्याप्तमहीतलः आत्मनः विपरीतश्च सः अधमः स्मृतः ॥ २३१ ॥

व्याख्या—यः = यत्, देशः = राष्ट्रः, अरातिसैन्यानाम् = रिपुबलानाम्, व्यायामेषु = सेनाव्यायामेषु, सुपर्याप्तम् = सूपयुक्तम्, महीतलम् = क्रीडाक्षेत्रं रणक्षेत्रं वा, यस्मिन् तथाभूतः, आत्मनः = स्वस्य, विपरीतश्च = विरुद्धश्च, सः = देशः, अधमः = हीनः, स्मृतः = कथितः ॥ २३१ ॥

हिन्दी—जहाँ शत्रुसेना को व्यायाम करने के लिए पर्याप्त समतल भूखण्ड हो तथा अपने लिए ठीक उसके विपरीत स्थित हो–वह क्षेत्र युद्ध के लिए अधम कहा जाता है ॥ २३१ ॥

अरातीति। यः देशः अरातिसैन्यानां शत्रुबलानां व्यायामेषु सुपर्य्याप्तं महीतलं यस्मिन् तथाभूतः, आत्मनः विपरीतश्च न तथेत्यर्थः, सः अधमः स्मृतः ॥ २३१ ॥

स्वसैन्यात् तु तृतीयांशहीनं शत्रुबलं यदि।
अशिक्षितमसारं वा साद्यस्कं स्वजयाय वै॥ २३२ ॥

अन्वयः—यदि शत्रुबलं स्वसैन्यात् तृतीयांशहीनम् अशिक्षितम् असारं वा साद्यस्कं वै स्वजयाय ॥ २३२ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, शत्रुबलम् = रिपुसैन्यम्, स्वसैन्यात्—स्वस्य = आत्मनः, सैन्यात् = बलात्, तृतीयांशहीनम् = भागत्रयहीनम्, अशिक्षितम् = प्रशिक्षणविहीनम्, असारम् = साररहितम्, वा = अथवा, साद्यस्कम् = नवनियोजितम्, तदा, वै इति निश्चयेन, स्वजयाय—स्वस्य = आत्मनः, जयाय = विजयाय, भवति ॥ २३२ ॥

हिन्दी—यदि अपनी सेना से तीन चौथाई कम दुश्मन की सेना हो, वह भी अप्रशिक्षित, सारहीन एवं नवनियुक्त हो तो अपनी विजय निश्चित है ॥ २३२ ॥

स्वेति। यदि शत्रुबलं स्वसैन्यात् तृतीयांशहीनम् अशिक्षितम् असारं वा साद्यस्कम् आधुनिकं तदा वै निश्चितं स्वस्य जयाय भवतीति शेषः ॥ २३२ ॥

पुत्रवत् पालितं यत् तु दानमानविवर्द्धितम्।
युद्धसम्भारसम्पन्नं स्वसैन्यं विजयप्रदम्॥ २३३॥

अन्वयः—यत्तु स्वसैन्यं पुत्रवत् पालितं दानेन मानेन विवर्धितं युद्धसम्भारैः सम्पन्नं तत् विजयप्रदम्॥ २३३॥

व्याख्या—यत् = बलम्, तु = बलार्थे, स्वसैन्यम्—स्वस्य = आत्मनः, सैन्यम् = बलम्, पुत्रवत् = सुत इव, पालितम् = पोषितम्, दानेन = किमपि यथावसरं प्रदानेन, मानेन = आदरेण, विवर्द्धितम् = विशेषेण वृद्धिं प्रापितम्, युद्धसम्भारैः = सङ्ग्रामसामग्रीभिः, सम्पन्नम् = परिपुष्टम्, तत् = सैन्यम्, विजयप्रदम् = विजयाय भवति॥ २३३॥

हिन्दी—यदि अपनी सेना बेटे की तरह पालित हो, दान-मान से सम्मानित हो, युद्धसामग्री से परिपुष्ट हो तो विजय निश्चित होती है॥ २३३॥

पुत्रवदिति। यत्तु स्वसैन्यं पुत्रवत् पालितं दानेन मानेन च विवर्द्धितं विशेषतः वृद्धिं प्रापितं तथा युद्धसम्भारैः युद्धसामग्रीभिः सम्पन्नं युक्तं तत् विजयप्रदं जयावहम्॥ २३३॥

सन्धिं च विग्रहं यानमासनं च समाश्रयम्।
द्वैधीभावं च संविद्यान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्॥ २३४॥

अन्वयः—सन्धिं विग्रहं यानम् आसनं समाश्रयं द्वैधीभावं च एतान् तु मन्त्रस्य षड्गुणान् संविद्यात्॥ २३४॥

व्याख्या—सन्धिम् = मैत्रीकरणम्, राज्यरक्षायाः गुणविशेषः, अन्योऽन्यसहकारित्वेन नियमबन्धम्, विग्रहम् = परस्परविरुद्धाचरणेन समासाङ्गविश्लेषणम्, यानम् = शत्रुं प्रति प्रस्थानम्, आसनम् = शत्रुदुर्गादीनवरुध्य स्थितिः, समाश्रयम् = एकेन पीडितस्य शक्तिशालिनं शरणापन्नम्, द्वैधीभावम् = स्वस्वार्थसिद्धये उपायविशेषः, एतान् = पूर्वोक्तान्, मन्त्रस्य = मन्त्रणायाः, षड्गुणान् = षडुपायान्, संविद्यात् = सम्यक् प्रकारेण जानीयादिति॥ २३४॥

हिन्दी—युद्धकाल उपस्थित होने पर विरोधी राजा के साथ मेल-जोल कर लेने को सन्धि, विपरीत आचरण से विरोध प्रकट करने को विग्रह, दुश्मन पर चढ़ाई करने को यान, दुश्मन के किले को घेर कर रहना आसन, किसी से पीड़ित होने पर दूसरे उससे प्रबल का शरणगत होना समाश्रय तथा फूट डालकर विजय पाना—इन छः मंत्रणा के गुणों का बोध होना चाहिए॥ २३४॥

सन्धिमिति। सन्धिं परस्परसाहाय्यार्थं हस्त्यश्वादिदानेन आवाभ्यामन्योऽस्य उपकर्त्तव्यमित्येवं विग्रहे नियमबन्धं, विग्रहं विरुद्धाचरणाधिक्येन वैरभावं, यानं शत्रुं प्रति गमनम् आसनम् उपेक्षणं, समाश्रयम् एकेन पीडितस्य अपरप्रबलतराश्रयणं, द्वैधीभावं स्वार्थसिद्धये स्वबलस्य द्वैधीकरणम् एतान् मन्त्रस्य षड्गुणान् संविद्यात् सम्यक् जानीयात्॥ २३४॥

याभिः क्रियाभिर्बलवान् मित्रतां याति वै रिपुः।
सा क्रिया सन्धिरित्युक्ता विमृशेत् तां तु यत्नतः॥ २३५॥

अन्वयः—बलवान् रिपुः याभिः क्रियाभिः मित्रतां वै याति सा क्रिया सन्धिः इति उक्ता। तां तु यत्नतः विमृशेत्॥ २३५॥

व्याख्या–बलवान् = बलशालिन्, रिपुः = शत्रुः, याभिः = पूर्वोक्ताभिः, क्रियाभिः = व्यापारैः, वै इति निश्चयेन, मित्रताम् = सख्यम्, याति = प्राप्नोति, पूर्वोक्ताः, क्रिया = कर्म, सन्धिः = मिलनम्, इति = एव, उक्ता = कथिता, ताम् = क्रियाम्, तु, यत्नतः = प्रयासेन, विमृशेत् = विचारयेत् ॥२३५ ॥

हिन्दी—अतिशक्तिशाली शत्रु भी जिस काम से मित्र बन जाय उसे सन्धि कहते हैं। इस के लिए सतत प्रयास करना चाहिए ॥ २३५ ॥

याभिरिति। बलवान् रिपुः याभिः क्रियाभिः अनुष्ठानैः वै निश्चितं मित्रतां याति प्राप्नोति सा सन्धिः इति उक्ता, तां क्रियां यत्नतः विमृशेत् विवेचयेत् ॥ २३५ ॥

विकर्षितः सन् वाधीनो भवेच्छत्रुस्तु येन वै।
कर्मणा विग्रहस्तं तु चिन्तयेन्मन्त्रिभिर्नृपः ॥ २३६ ॥

अन्वयः—येन कर्मणा शत्रुः विकर्षितः सन् अधीनो भवेत् तं विग्रहं नृपः मन्त्रिभिः सह चिन्तयेत् ॥ २३६ ॥

व्याख्या—येन = विहितेन, कर्मणा = क्रियया, शत्रुः = रिपुः, विकर्षितः = विशेषेण पीडितः सन्, वा = अथवा, अधीनः = वशवर्त्ती, भवेत् = स्यात्, तम् = कर्म, विग्रहम् = विरुद्धाचरणम्, नृपः = राजा, मन्त्रिभिः = सचिवैः, सह = साकम्, चिन्तयेत् = विचारयेत् ॥ २३६ ॥

हिन्दी—जिस काम से शत्रु पीडित होकर अधीनता कबूल कर ले, उसे विग्रह कहते हैं। अपने मंत्रियों के साथ विचार कर राजा को विग्रह करना चाहिए ॥ २३६ ॥

विकर्षित इति। येन कर्मणा व्यापारेण शत्रुः विकर्षितः पीडितः अधीनः वा अधीन एव वाशब्दः अवधारणार्थः। भवेत् तं विग्रहं नृपः मन्त्रिभिः सह चिन्तयेत् ॥ २३६ ॥

शत्रुनाशार्थगमनं यानं स्वाभीष्टसिद्धये।
स्वरक्षणं शत्रुनाशो भवेत् स्थानात् तदासनम् ॥ २३७ ॥

अन्वयः—स्वाभीष्टसिद्धये शत्रुनाशार्थगमनं यानम्। स्थानं स्वरक्षणं शत्रुनाशः भवेत् तत् आसनम् ॥ २३७ ॥

व्याख्या—स्वाभीष्टसिद्धये—स्वस्य = आत्मनः, अभीष्टसिद्धये = अभिलषितसाफल्याय, तथा, शत्रुनाशार्थगमनम् = रिपुविनाशाय प्रस्थानम्, यानम् = गमनम्, तथा स्थानात् = यस्मादवस्थानात्, स्वरक्षणम्—स्वस्य = आत्मनः, रक्षणम् = त्राणम्, शत्रुनाशश्च = रिपुविध्वंसश्च, भवेत् = स्यात्, तत् = स्थितिः, आसनम् = शत्रुदुर्गादीनवरुध्य स्थितिः ॥ २३७ ॥

हिन्दी—अपनी मनोवांछित वस्तु की सिद्धि के लिए तथा शत्रुओं के विनाशार्थ चढ़ाई को यान कहते हैं। जहाँ पड़े रहने से आत्मरक्षा एवं शत्रुविनाश की संभावना हो, उसे आसन कहते हैं ॥ २३७ ॥

शत्रुनाशार्थमिति। स्वस्य अभीष्टसिद्धये स्वमनोरथसाधनाय शत्रुनाशार्थगमनं यानम्। स्थानात् यस्मात् अवस्थानात् उपेक्षणादित्यर्थः, स्वरक्षणं शत्रुनाशश्च भवेत् तत् आसनम् ॥ २३७ ॥

यैर्गुप्तो बलवान् भूयाद् दुर्बलोऽपि स आश्रयः।
द्वैधीभावः स्वसैन्यानां स्थापनं गुल्मगुल्मतः ॥ २३८ ॥

अन्वयः—दुर्बलोऽपि यैः गुप्तः बलवान् भूयात् स आश्रयः। स्वसैन्यानां गुल्मगुल्मतः स्थापनं द्वैधीभावः॥ २३८ ॥

व्याख्या—दुर्बलोऽपि = निर्बलोऽपि, यैः = सशक्तैः, गुप्तः = रक्षितः सन्, बलवान् = शक्तिशालिन्, भूयात् = भवेत्, सः = असौ, आश्रयः = शरणस्थलम्, स्वसैन्यानाम्—स्वस्य = आत्मनः, सैन्यानाम् = बलानाम्, गुल्मः = सैन्यविभागतः स्थापनम्, द्वैधीभावः = उपायविशेषो भवति॥ २३८ ॥

हिन्दी—शक्तिहीन भी जिस शक्तिशाली की शरण में जाकर शक्तिसम्पन्न बन जाता हो, उस प्रबल राजा को आश्रय कहते हैं। अपनी सेना को टुकड़ियों में बाँटकर रखने की स्थिति को द्वैधीभाव कहते हैं॥ २३८ ॥

यैरिति। दुर्बलोऽपि यैः गुप्तः रक्षितः सन् बलवान् भवेत् तेषामाश्रयणं समाश्रयः। स्वसैन्यानां गुल्गुल्मतः प्रतिगुल्मं स्थापनं द्वैधीभावः॥ २३८ ॥

बलीयसाभियुक्तस्तु नृपोऽनन्यप्रतिक्रियः।
आपन्नः सन्धिमन्विच्छेत् कुर्वाणः कालयापनम्॥ २३९ ॥

अन्वयः—बलीयसा अभियुक्तः अनन्यप्रतिक्रियः अत एव आपन्नः नृपः कालयापनं कुर्वाणः सन्धिम् अन्विच्छेत्॥ २३९ ॥

व्याख्या—बलीयसा = बलवता वा प्रबलेन, नृपेण, अभियुक्तः = आक्रान्तः, अनन्यप्रतिक्रियः = अन्योपायशून्यः, अत एव आपन्नः = विपद्ग्रस्तः, नृपः = राजा, कालयापनम् = समयक्षेपणम्, कुर्वाणः = उपयुक्तसमयप्रतीक्षमाणः, सन्, सन्धिम् = राज्यरक्षार्थमैत्रीकरणम्, अन्विच्छेत् = अन्वेषणं कुर्यात्॥ २३९ ॥

हिन्दी—किसी बलवान् शत्रु से आक्रमित होकर विपत्ति में घिरा प्रतिकारशून्य असहाय राजा अपने अच्छे समय की प्रतीक्षा करते हुए उससे सन्धि कर ले॥ २३९ ॥

बलीयसेति। बलीयसा अतिबलवता अभियुक्तः आक्रान्तः अनन्यप्रतिक्रियः अन्यप्रतिकाररहितः अत एव आपन्नः आपद्गतः नृपः कालयापनं कुर्वाणः कालं प्रतीक्षमाणः सन् सन्धिम् अन्विच्छेत् कुर्य्यादित्यर्थः॥ २३९ ॥

एक एवोपहारस्तु सन्धिरेष मतो हितः।
उपहारस्य भेदास्तु सर्वेऽन्ये मैत्रवर्जिताः॥ २४० ॥

अन्वयः—एक एव हितः उपहारः एषः सन्धिः मतः। मैत्रवर्जिताः सर्वे अन्ये भेदाः तु उपहारस्य॥ २४० ॥

व्याख्या—एकः = केवलः, एव, हितः = हितसाधकः, उपहारः = उपायनम्, एषः, सन्धिः = मैत्रीकरणम्, मतः = सिद्धान्तः, मैत्रवर्जिताः = मित्रतां परिहार्य, सर्वे = सकलाः, अन्ये = अपरे सम्मेलनप्रकाराः, उपहारस्य = उपदायाः, भेदाः = प्रकाराः एव॥ २४० ॥

हिन्दी—ऐसी स्थिति में भेंट देकर सन्धि करना ही हितकर है। मित्रता को छोड़कर सन्धि के जो भी अन्य तरीके हैं वे सभी इसी भेंट के भेद हैं॥ २४० ॥

एक इति। एकः केवलः हितः हितकरः उपहारः उपदा एव एषः सन्धिः मतः। मैत्रवर्जिताः मैत्रं विना इत्यर्थः, सर्वे अन्ये सम्मेलनप्रकारा इत्यर्थः, उपहारस्य भेदास्तु विशेषा एव॥ २४० ॥

अभियोक्ता बलीयस्त्वादलब्ध्वा न निवर्त्तते।
उपहारादृते तस्मात् सन्धिरन्यो न विद्यते॥ २४१॥

अन्वयः—अभियोक्ता बलीयस्त्वात् अलब्ध्वा न निवर्त्तते, तस्मात् उपहारात् ऋते अन्यः सन्धिः न विद्यते॥ २४१॥

व्याख्या—अभियोक्ता = आक्रामकः, प्रबलः राजा, बलीयस्त्वात् = शक्तिसम्पन्नत्वात्, अलब्ध्वा = किमपि अप्राप्य, न = नहि, निवर्त्तते = जहाति, तस्मात् = तेन हेतुना, उपहारात् = उपायनात्, ऋते = विहाय, अन्यः = अपरः, सन्धिः = मैत्रीकरणम्, न = नहि, विद्यते = अस्ति॥ २४१॥

हिन्दी—आक्रमणकारी राजा यदि अत्यधिक बलशाली हो तो बिना उपहार पाये वह लौट नहीं सकता है। अतः उपहार को छोड़कर कोई अन्य साधन सन्धि के लिए नहीं है।। २४१॥

अभियोक्तेति। अभियोक्ता आक्रमणकारी प्रबलः राजा बलीयस्त्वात् प्रबलत्वात् अलब्ध्वा उपहारमिति शेषः, न निवर्त्तते, तस्मात् उपहारात् ऋते विना अन्यः सन्धिः न विद्यते॥ २४१॥

शत्रोर्बलानुसारेण उपहारं प्रकल्पयेत्।
सेवां वापि च स्वीकुर्य्याद्दद्यात् कन्यां भुवं धनम्॥ २४२॥

अन्वयः—शत्रोर्बलानुसारेण उपहारं प्रकल्पयेत्, तथाहि सेवां वा स्वीकुर्यात् वा कन्यां भुवं वा धनं दद्यात्॥ २४२॥

व्याख्या—शत्रोः = रिपोः, बलानुसारेण = यथाशक्तिम्, उपहारम् = उपायनम्, प्रकल्पयेत् = चिन्तयेत्, तथाहि—कुत्रचित्, सेवाम् = परिचर्यां वा, स्वीकुर्यात् = दासत्वमङ्गीकुर्यात्, अथवा = वा, कन्याम् = दुहितरम्, भुवम् = **धरित्रीम्**, वा = अथवा, धनम् = सम्पदम्, दद्यात् = प्रयच्छेत्। २४२॥

हिन्दी—शत्रु की शक्ति के अनुसार उसके उपहार की कल्पना की जाती है। उपहार में उसकी दासता कबूल करनी पड़ती है अथवा अपनी कुमारी बेटी या राज्य का कोई भाग अथवा धन देना पड़ता है॥ २४२॥

शत्रोरिति। शत्रोः बलानुसारेण यथाबलमित्यर्थः, उपहारं प्रकल्पयेत्, तथाहि कुत्रचित् सेवां दासभावं वा स्वीकुर्य्यात् अथवा कन्यां भुवं भूमिं वा धनं दद्यात्॥ २४२॥

स्वसामन्तांश्च सन्धीयात् मन्त्रेणान्यजयाय वै।
सन्धिः कार्य्योऽप्यनार्य्येण सम्प्राप्योत्सादयेद्धि सः॥ २४३॥

अन्वयः—नृपः अन्यजयाय मन्त्रेण स्वसामन्तान् सन्धीयात्। अनार्येणाऽपि सन्धिः कार्यः, हि सः सम्प्राप्य उत्सादयेत्॥ २४३॥

व्याख्या—नृपः, अन्यजयाय = अपररिपुविजयाय, मन्त्रेण = विचारचातुर्येण, स्वसामन्तान्—स्वस्य = आत्मनः, सामन्तान् = गणाधिपतीन्, सन्धीयात् = सन्धिं कुर्यात्, किञ्च, अनार्येण = क्षुद्राशयेनापि, सन्धिः = मैत्रीकरणम्, कार्यः = सम्पादनीयो विधेयो वेति, हि = यतः, सः = दुष्टः, सम्प्राप्य = सुयोगमुपलभ्य, उत्सादयेत् = पीडयेत्॥ २४३॥

हिन्दी—शत्रुओं को जीतने के लिए पार्श्ववर्त्ती सामन्तों के साथ विचार-विमर्श कर सन्धि कर ले। दुर्जन के साथ भी सन्धि कर लेनी चाहिए, क्योंकि ऐसा नहीं करने से मौका मिलते ही वह तंग कर सकता है॥ २४३॥

स्वेति। नृपः अन्यजयाय अपरशत्रुजयार्थं मन्त्रेण मन्त्रकौशलेन स्वस्य सामन्तान् अधीनस्थनृपान् सन्धीयात्। किञ्च अनार्य्येण दुर्जनेनापि सन्धिः कार्य्यः, हि यतः सः अनार्य्यः सम्प्राप्य सुयोगमिति भावः, उत्सादयेत् उत्सन्नं कुर्य्यादित्यर्थः॥२४३॥

सङ्घातवान् यथा वेणुर्निविडैः कण्टकैर्वृतः।
न शक्यते समुच्छेत्तुं वेणुः सङ्घातवांस्तथा॥ २४४॥

अन्वयः—यथा निविडैः कण्टकै वृतः सङ्घातवान् वेणुः समुच्छेत्तुं न शक्यते, तथा सङ्घातवान् वेणुः॥२४४॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, निविडैः = सघनैः, कण्टकैः = द्रुमनखैः, वृतः = परिवृतः, सङ्घा- तवान् = समूहवान्, वेणुः = वंशवृक्षः, समुच्छेत्तुम् = कर्त्तितुम्, न = नहि, शक्यते = समर्थो भवति, तथा = तेनैव रूपेण, सङ्घातवान् = सहायतासम्पन्नो नृपः, कोऽपि, समुच्छेत्तुम् = विनाशितुम्, न शक्यते॥२४४॥

हिन्दी—जिस तरह अपनी ही डालियों में एक-दूसरे से उलझे बाँसों के झुरमुट से एक बाँस को काट कर या उखाड़ कर निकालना आसान नहीं होता है; उसी तरह चारों ओर से सहायतासम्पन्न राजा को पराजित करना आसान नहीं होता है॥२४४॥

सङ्घातवानिति। यथा निविडैः घनैः कण्टकैः वृतः सङ्घातवान् समूहात्मकः वेणुः वंशः समुच्छेत्तुं नैव शक्यते तथा सङ्घातवान् नृपश्च समुच्छेत्तुं न शक्यते अतो नृपेण स्वबलविरोधो न कर्त्तव्य इति भावः॥२४४॥

सन्धिश्चातिबले युद्धं साम्ये यानन्तु दुर्बले।
सुहृद्भिराश्रयः स्थानं दुर्गाभिभजनं द्विधा॥ २४५॥

अन्वयः—अतिबले सन्धिः, साम्ये युद्धं, दुर्बले यानं, सुहृद्भिः आश्रयः स्थानं तथा दुर्गाभिभजनं द्विधा॥२४५॥

व्याख्या—अतिबले = अत्यन्तशक्तिशालिने, सन्धिः = मैत्रीकरणम्, साम्ये = तुल्यबले, युद्धम् = समरम्, दुर्बले = अबले, रिपौ, यानम् = आक्रमणम्, सुहृद्भिः = मित्रैः, सह, आश्रयः = अवष्टम्भः, स्थानम् = अवस्थितिः वा आसनम्, तथा दुर्गाभिभजनम्—दुर्गे = कोटे, विभज्य = विभाजनं कृत्वा, द्विधा = खण्डद्वये सैन्यस्थापनं कर्त्तव्यम्॥२४५॥

हिन्दी—अत्यन्त शक्तिशाली राजा के साथ सन्धि, समान बलशालियों के साथ युद्ध, दुर्बलों पर आक्रमण, मित्र राजाओं के साथ आसन तथा किले के भीतर दो खण्डो में बाँट कर सैन्य-टुकडियों की स्थापना करनी चाहिए॥२४५॥

सन्धिरिति। अतिबले अतिप्रबले शत्रौ सन्धिः साम्ये तुल्यकक्षतायां, युद्धं दुर्बले शत्रौ यानं युद्धार्थम् आक्रमणं, सुहृद्भिः आश्रयः स्थानम् आसनं तथा दुर्गाभिभजनं दुर्गे विभज्य द्विधा सैन्यस्थापनं कर्त्तव्यमिति शेषः॥२४५॥

बलिना सह सन्धाय भये साधारणे यदि।
आत्मानं गोपयेत् काले बह्वमित्रेषु बुद्धिमान्॥ २४६॥

अन्वयः—यदि बह्वमित्रेषु तथा साधारणे भये यः बलिना सह सन्धाय काले आत्मानं गोपयेत् सः बुद्धिमान्॥२४६॥

व्याख्या—यदि = चेत्, बहुषु = अनेकेषु, अमित्रेषु = रिपुषु सत्सु, तथा = तेनैव रूपेण, साधारणे = सामान्ये, भये = त्रासे, सति, यः = राजा, बलिना = शक्तिशालिना, सह = साकम्, सन्धाय = मैत्रीं विधाय, काले = समये, आत्मानम् = स्वम्, गोपयेत् = रक्षेत्, सः = असौ, बुद्धिमान् = धीमान् भवति ॥ २४६ ॥

हिन्दी—यदि किसी राजा को एक साथ अनेक दुश्मनों का समान रूप से भय हो तो उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली से संधि कर आत्मरक्षा करनी चाहिए ॥ २४६ ॥

बलिनेति। यदि बहुषु अमित्रेषु शत्रुषु सत्सु तथा साधारणे भये सति यः बलिना प्रबलेन सह सन्धाय मिलित्वा काले समये आत्मानं गोपयेत् रक्षेत् सः बुद्धिमान् ॥ २४६ ॥

बलिना सह योद्धव्यमिति नास्ति निदर्शनम्।
प्रतिवातं न हि घनः कदाचिदपि सर्पति ॥ २४७ ॥

अन्वयः—बलिना सह न योद्धव्यम् इति निदर्शनम् अस्ति। हि घनः कदाचिदपि प्रतिवातं न सर्पति ॥ २४७ ॥

व्याख्या—बलिना = शक्तिशालिना, सह = साकम्, न = नहि, योद्धव्यम् = युद्धं कर्त्तव्यम्, इति = अत्र, निदर्शनम् = उदाहरणम्, अस्ति = भवति। हि = तथाहि, घनः = मेघः, कदाचिदपि, प्रतिवातम् = प्रतिकूलपवनम्, न = नहि, सर्पति = व्रजति ॥ २४७ ॥

हिन्दी—अपने से अधिक बलशाली के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप हम कह सकते हैं कि प्रतिकूल हवा की दिशा में बादल भी नहीं जाता है ॥ २४७ ॥

बलिनेति। बलिना प्रबलेन सह न योद्धव्यम् इति अत्र निदर्शनं दृष्टान्तः अस्ति, हि तथाहि घनः मेघः कदाचिदपि प्रतिवातं प्रतिकूलं वायुम् अथवा वातं प्रति न सर्पति न गच्छति ॥ २४७ ॥

बलीयसि प्रणमतां काले विक्रमतामपि।
सम्पदो न विसर्पन्ति प्रतीपमिव निम्नगाः ॥ २४८ ॥

अन्वयः—बलीयसि प्रणमतां तथा काले विक्रमतामपि सम्पदः निम्नगाः इव प्रतीपं न विसर्पन्ति ॥ २४८ ॥

व्याख्या—बलीयसि = सबलतरे, प्रणमताम् = प्रणामं कुर्वताम्, तथा काले = समये, विक्रमतामपि = पराक्रमतामपि, राज्ञाम्, सम्पदः = विभवाः, निम्नगाः = नद्यः, इव = यथा, प्रतीपम् = विरुद्धम्, न = नहि, विसर्पन्ति = चलन्ति ॥ २४८ ॥

हिन्दी—जो अपने से अधिक शक्तिशाली राजा के सामने सिर झुका कर समय की प्रतीक्षा करते हैं और अनुकूल समय पाकर उससे युद्ध करते हैं; ऐसे राजे की सम्पदा उनसे कभी अलग नहीं हटतीं। जैसे नदियाँ कभी विपरीत दिशा में प्रवाहित नहीं होती हैं ॥ २४८ ॥

बलीयसीति। बलीयसि बलवत्तरे प्रणमतां तथा काले समये विक्रमतां जनानां सम्पदः निम्नगाः नद्य इव प्रतीपं प्रतिकूलं न विसर्पन्ति न गच्छन्तीत्यर्थः ॥ २४८ ॥

राजा न गच्छेद्विश्वासं सन्धितोऽपि हि बुद्धिमान्।
अद्रोहसमयं कृत्वा वृत्रमिन्द्रः पुरावधीत् ॥ २४९ ॥

अन्वयः—बुद्धिमान् राजा सन्धितोऽपि हि विश्वासं न गच्छेत्। पुरा इन्द्रः अद्रोहसमयं कृत्वा वृत्रम् अवधीत् ॥ २४९ ॥

व्याख्या—बुद्धिमान् = धीमान्, राजा = नृपतिः, सन्धितोऽपि = मैत्रीकृतोऽपि, हि इति निश्चयेन, विश्वासम् = प्रत्ययः, न = नहि, गच्छेत् = व्रजेत्। पुरा = प्राचीनकाले, इन्द्रः = शचीपतिः, अद्रोहसमयम्—परस्परम् द्रोहम् = अनिष्टम्, न करोमीत्येवंरूपम्, समयम् = नियमबन्धं, कृत्वा, वृत्रम् = एतदाख्यदानवम्, अवधीत् = वधमकरोत् ॥ २४९ ॥

हिन्दी—ज्ञानी राजा दुश्मन के साथ सन्धि होने के बावजूद उस पर विश्वास नहीं करता। प्राचीन काल में परस्पर द्रोह न करने की प्रतिज्ञा के बावजूद इन्द्र ने वृत्र का वध कर दिया ॥ २४९ ॥

राजेति। बुद्धिमान् राजा सन्धितोऽपि कृतसन्धिरपि विश्वासं न गच्छेत् हिशब्दः अवधारणार्थः। पुरा पूर्वस्मिन् काले इन्द्रः अद्रोहसमयं परस्परं द्रोहम् अनिष्टमित्यर्थः, न करोमीत्येवंरूपं समयं नियमबन्धं कृत्वा वृत्रम् अवधीत् ॥ २४९ ॥

आपन्नोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा।
देशकालबलोपेतः प्रारभेत च विग्रहम् ॥ २५० ॥

अन्वयः—परेण पीड्यमानः आपन्नः देशकालबलोपेतः अभ्युदयाकाङ्क्षी विग्रहं च प्रारभेत ॥ २५० ॥

व्याख्या—परेण = शत्रुणा, पीड्यमानः = क्लेश्यमानः, अत एव आपन्नः = विपद्ग्रस्तः, नृपः = राजा, देशकालबलोपेतः = स्थानसमयशक्तिपरिपुष्टः, सन्, अभ्युदयाकाङ्क्षी = शुभावसराभिलाषी, विग्रहम् = समरम्, प्रारभेत = प्रारम्भं कुर्यात् ॥ २५० ॥

हिन्दी—जो राजा विपत्ति में घिरकर दूसरों से पीड़ित होते हुए भी पुनः यदि अपना अभ्युदय चाहता हो तो देश, काल और उपयुक्त बल मिलते ही युद्ध प्रारम्भ कर दे ॥ २५० ॥

आपन्न इति। परेण पीड्यमानः अत एव आपन्नः आपद्ग्रस्तः नृपः देशकालबलोपेतः समयस्थानबलपरिपुष्टः सन् अभ्युदयाकाङ्क्षी अभ्युदयार्थमित्यर्थः, विग्रहं युद्धं प्रारभेत च ॥ २५० ॥

प्रहीनबलमित्रन्तु दुर्गस्थं शत्रुमागतम्।
अत्यन्तविषयासक्तं प्रजाद्रव्यापहारकम्।
भिन्नमन्त्रिबलं राजा पीडयेत् परिवेष्टयन् ॥ २५१ ॥

अन्वयः—राजा प्रहीनबलमित्रं तु दुर्गस्थम् अत्यन्तविषयासक्तं प्रजाद्रव्यापहारकं भिन्नमन्त्रिबलम् आगतं शत्रुं परिवेष्टयन् पीडयेत् ॥ २५१ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, प्रहीनबलमित्रम् = सैन्यसुहृद्हीनम्, दुर्गस्थम् = दुर्गगतम्, अत्यन्तविषयासक्तम् = अतिभोगपरायणम्, प्रजानाम् = जनानाम्, धनापहारकम् = धनलुण्ठकम्, भिन्नमन्त्रिबलम्—भिन्नम् = भेदं गतम्, मन्त्रिबलम् = मन्त्रणाशक्तिः, यस्य तादृशम्, आगतम् = प्राप्तम्, शत्रुम् = रिपुम्, परिवेष्टयन् = संवलयन्, पीडयेत् = पराजयेत् ॥ २५१ ॥

हिन्दी—सैन्यशक्ति एवं मित्रबल से हीन, अपने ही दुर्ग में घिरा, अत्यन्त विषयासक्त, प्रजा के धन को लूटने वाले, फूट डाले गये मंत्री एवं सैन्यशक्ति वाले दुश्मनों को घेर कर पराजित करना चाहिए ॥ २५१ ॥

प्रहीनेति। राजा प्रहीनबलमित्रं दुर्गस्थं दुर्गतम् अत्यन्तविषयासक्तम् अतिव्यसनिनं प्रजानां धनापहारकं भिन्नमन्त्रिबलं भिन्नं भेदं गतं मन्त्रिबलं यस्य तादृशम् आगतम् उपस्थितं शत्रुं परिवेष्टयन् पीडयेत् हन्यादित्यर्थः॥ २५१ ॥

विग्रहः स च विज्ञेयो ह्यन्यश्च कलहः स्मृतः ॥ २५२ ॥

अन्वयः—स च विग्रहः विज्ञेयः अन्यश्च कलहः स्मृतः॥ २५२ ॥

व्याख्या—सः = पूर्ववर्णितः, च = पुनः, विग्रहः = आक्रमणम्, विज्ञेयः = बोध्यः, अन्यश्च = तद्भिन्नश्च, कलहः = विवादः, स्मृतः = कथितः॥ २५२ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्त ढंग के आक्रमण को विग्रह जानना चाहिए, इससे भिन्न तो केवल कलह होता है॥ २५२ ॥

विग्रह इति। स च विग्रहः विज्ञेयः, अन्यस्तु तद्व्यतिरिक्तस्तु कलहः स्मृतः॥ २५२ ॥

बलीयसात्यल्पबलः शूरेण न च विग्रहम्।
कुर्य्याद्धि विग्रहे पुंसां सर्वनाशः प्रजायते॥ २५३ ॥

अन्वयः—अत्यल्पबलः बलीयसा शूरेण सह विग्रहं न कुर्यात्। हि पुंसां सर्वनाशः प्रजायते॥ २५३ ॥

व्याख्या—अत्यल्पबलः = हीनसैन्यो नृपः, बलीयसा = बलवत्तरेण, शूरेण = वीरेण, रिपुना, सह, विग्रहम् = कलहम्, न = नहि, कुर्यात् = विदध्यात्। हि = यस्मात् तथा सति, विग्रहे = युद्धे, पुंसाम् = नृणाम्, सर्वनाशः = समूलोच्छेदः, प्रजायते = भवति॥ २५३ ॥

हिन्दी—कमजोर सैन्यबल वाले दुर्बल राजा को प्रबल शक्तिशाली वीर राजा के साथ युद्ध बिलकुल नहीं करना चाहिए। ऐसा करने वाले का सर्वनाश हो जाता है॥ २५३ ॥

बलीयसेति। अत्यल्पबलः राजा बलीयसा शूरेण शत्रुणा सह विग्रहं न च कुर्य्यात्। हि यस्मात् तथा सति विग्रहे पुंसां सर्वनाशः प्रजायते॥ २५३ ॥

एकार्थाभिनिवेशित्वं कारणं कलहस्य वा।
उपायान्तरनाशे तु ततो विग्रहमाचरेत्॥ २५४॥

अन्वयः—एकार्थाभिनिवेशित्वं कलहस्य कारणं वा तु उपायान्तरनाशे ततः विग्रहम् आचरेत्॥ २५४ ॥

व्याख्या—एकार्थाभिनिवेशित्वम् = द्रव्यस्यैकस्य प्राप्त्यर्थं पक्षद्वयस्याभिलाषित्वम्, कलहस्य = विवादस्य, कारणम् = हेतुः, वा इत्यवधारणे, तु = तस्मात्, उपायान्तरनाशे = अन्योपायाभावे, सति, विग्रहम् = युद्धम्, आचरेत् = कुर्यात्॥ २५४ ॥

हिन्दी–युद्ध का कारण किसी एक ही वस्तु के लिए दो व्यक्तियों का समान आग्रह होता हो अथवा युद्धशान्ति के लिए जब कोई उपाय शेष न रह जाय, तभी युद्ध करना चाहिए॥२५४॥

एकेति। एकार्थाभिनिवेशित्वम् एकद्रव्याभिलाषित्वं कलहस्य कारणं वा हेतुरेव वाशब्दश्चावधारणार्थः। तस्मात् उपायान्तरनाशे गत्यन्तराभावे सति विग्रहम् आचरेत्॥ २५४॥

विगृह्य सन्धाय तथा सम्भूयाथ प्रसङ्गतः।
उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम्॥ २५५ ॥

अन्वयः—निपुणैः यानं पञ्चविधं स्मृतम्। यथा विगृह्य यानं सन्धाय यानं सम्भूय यानम् अथ वा प्रसङ्गतः किंवा उपेक्षया यानम् ॥ २५५ ॥

व्याख्या—निपुणैः = चतुरैः जनैः, यानम् = शत्रुं प्रति प्रयाणम्, पञ्चविधम् = पञ्चधा, स्मृतम् = कथितम्, यथा = येन प्रकारेण, विगृह्य = बलात्कारेण गृहीत्वा, शत्रुं प्रति गमनम्, सन्धाय यानम् = शत्रुभिः सह सन्धिं विधायाक्रमणं सन्धाययानम्, सम्भूययानम् = शक्तिशौर्ययुतैः, शत्रुं प्रति गमनं सम्भूययानम्, अथवा = वा, प्रसङ्गतः = अन्यत्र प्रस्थितः प्रसङ्गादन्यत्राक्रमणं प्रसङ्गयानम्, किंवा उपेक्षया = उपेक्षापूर्वकेण गमनम् ॥ २५५ ॥

हिन्दी—विद्वानों ने पाँच प्रकार के यानों का उल्लेख किया है। जैसे—विगृह्ययान, संधाययान, संभूययान, प्रसङ्गयान तथा उपेक्षायान ॥ २५५ ॥

विगृह्येति। निपुणैः विज्ञैः जनैः यानं शत्रुं प्रति गमनं पञ्चविधं स्मृतं यथा विगृह्ययानं सन्धाययानं सम्भूययानम् अथवा प्रसङ्गतः छलतः यानं किंवा उपेक्षया यानम् ॥ २५५ ॥

विगृह्य याति हि यदा सर्वाञ्छत्रुगणान् बलात्।
विगृह्ययानं यानज्ञैस्तदाचार्य्यैः प्रचक्ष्यते ॥ २५६ ॥

अन्वयः—यदा बलात् सर्वान् शत्रुगणान् विगृह्य याति तत् यानज्ञैः आचार्यैः विगृह्ययानं प्रचक्ष्यते ॥ २५६ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, बलात् = हठात्, सर्वान् = सकलान्, शत्रुगणान् = अरिवर्गान्, विगृह्य = विशेषेण विग्रहेण पराजित्य, याति, तत् यानम् = आक्रमणम्, यानज्ञैः = यानविशेपज्ञैः, आचार्यैः = गुरुभिः, विगृह्ययानम्, प्रचक्ष्यते = कथ्यते ॥ २५६ ॥

हिन्दी—जब कोई राजा जबरदस्ती युद्ध का कोई कारण बतलाकर शत्रुसमूहों पर आक्रमण कर देता है तो यानविशेषज्ञ राजनीति के आचार्य उसे विगृह्ययान कहते हैं ॥ २५६ ॥

विगृह्येति। यदा बलात् बलमाश्रित्य सर्वान् शत्रुगणान् विगृह्य विग्रहेण पराजित्य याति, तत् यानं यानज्ञैः आचार्य्यैः गुरुभिः विगृह्ययानं प्रचक्ष्यते ॥ २५६ ॥

अरिमित्राणि सर्वाणि स्वमित्रैः सर्वतो बलात्।
विगृह्य चारिभिर्गन्तुं विगृह्यगमनन्तु वा ॥ २५७ ॥

अन्वयः—सर्वाणि अरिमित्राणि सर्वतः स्वमित्रैः बलात् विगृह्य चारिभिः गन्तुं यत् गमनं तत् विगृह्यगमनं वा ॥ २५७ ॥

व्याख्या—सर्वाणि = सकलानि, अरिमित्राणि—अरेः = शत्रोः, मित्राणि = सुहृदः, सर्वतः = सर्वैः, स्वमित्रैः—स्वस्य = आत्मनः, मित्रैः = सुहृद्भिः, करणभूतैः, बलात् = शक्तिपूर्वकात्, विगृह्य = गृहीत्वा, अरिभिः = शत्रुभिः सह, गन्तुम् = विग्रहीतुम्, यत् गमनम् = प्रस्थानम्, तत् विगृह्यगमनं वेति ॥ २५७ ॥

हिन्दी—अथवा कुछ आचार्यों के मत से शत्रुओं को अपने चारों ओर से लड़ाकर उन्हें थकाकर अपने मित्रबल के साथ उन पर बलात् आक्रमण करना विगृह्यगमन कहलाता है ॥ २५७ ॥

अरीति। सर्वाणि अरिमित्राणि शत्रोः मित्राणि सर्वतः सर्वैः स्वमित्रैः आत्मबन्धुभिः करणभूतैः बलात् विगृह्य अरिभिः सह गन्तुं विग्रहीतुमित्यर्थः, यत् गमनं तत् विगृह्यगमनं वा ॥ २५७ ॥

सन्धायान्यत्र यात्रायां पार्ष्णिग्राहेण शत्रुणा।
सन्धायगमनं प्रोक्तं तज्जिगीषोः फलार्थिनः ॥ २५८ ॥

अन्वयः—अन्यत्र यात्रायां पार्ष्णिग्राहेण शत्रुणा सन्धाय फलार्थिनः जिगीषोः यत् यानं तत् सन्धायगमनं प्रोक्तम् ॥ २५८ ॥

व्याख्या– अन्यत्र = अन्यस्मिन् रिपौ, यात्रायाम् = रणक्षेत्रप्रयाणे, पार्ष्णिग्राहेण = स्वपृष्ठभागस्थितप्रतिवेशिशत्रुभिः सह, सन्धाय = सन्धिं विधाय, फलार्थिनः = परिणामेच्छुकानाम्, जिगीषोः = विजयेच्छुकस्य राज्ञः, यत् यानम् = गमनम्, तत् सन्धाय = सन्धिं विधाय, गमनम् = आक्रमणम्, प्रोक्तम् = कथितम् ॥ २५८ ॥

हिन्दी—विजय चाहने वाले राजा को विशेष फल की इच्छा रखने वाले विद्वान् अन्यत्र किसी शत्रु पर चढ़ाई करने के समय उसके पूर्व अपने पृष्ठभाग स्थित पड़ोसी शत्रु राजा के साथ सन्धि करके चढ़ाई करने को सन्धायगमन कहते हैं ॥ २५८ ॥

सन्धायेति। अन्यत्र अन्यस्मिन् शत्रौ यात्रायां युद्धयात्रायां पार्ष्णिग्राहेण पृष्ठानुधाविना शत्रुणा सह सन्धाय मिलित्वा फलार्थिनः जिगीषोः यत् यानं तत् सन्धायगमनं प्रोक्तम् ॥ २५८ ॥

एको भूपो यदैकत्र सामन्तैः साम्परायिकैः।
शक्तिशौर्य्ययुतैर्यानं सम्भूयगमनं हि तत् ॥ २५९ ॥

अन्वयः—एकः भूपः शक्तिशौर्ययुतैः साम्परायिकैः सामन्तैः एकत्र यत् यानं तत् सम्भूयगमनं हि ॥ २५९ ॥

व्याख्या—एकः = केवलः, भूपः = नृपः, शक्तिशौर्ययुतैः = बलवीर्यसमन्वितैः, साम्परायिकैः = युद्धकुशलैः, सामन्तैः = गणाधिपतिभिः, सह, एकत्र = एकस्मिन् रिपौ, यत् यानम् = गमनम्, तत् = गमनम्, सम्भूयगमनम्, हि इति निश्चयेन ॥ २५९ ॥

हिन्दी—यदि कोई राजा अकेला शक्ति और शूरता से सम्पन्न, युद्ध करने में माहिर सामन्तों के साथ मिलकर किसी एक दुश्मन पर चढ़ाई करे तो उसे सम्भूयगमन कहते हैं ॥२५९ ॥

एक इति। एकः भूपः शक्तिशौर्ययुतैः साम्परायिकैः सङ्ग्रामनिपुणैः सामन्तैः अधीनस्थराजवर्गैः सह एकत्र एकस्मिन् शत्रौ यत् यानं तत् सम्भूययानं हि ॥ २५९ ॥

अन्यत्र प्रस्थितः सङ्गादन्यत्रैव च गच्छति।
प्रसङ्गयानं तत् प्रोक्तं यानविद्भिश्च मन्त्रिभिः ॥ २६० ॥

अन्वयः—अन्यत्र प्रस्थितः सङ्गात् यत् अन्यत्र एव च गच्छति तत् यानविद्भिः च प्रसङ्गयानं प्रोक्तम् ॥ २६० ॥

व्याख्या—अन्यत्र = अपरत्र, प्रस्थितः = चलितः, नृपः = राजा, सङ्गात् = प्रसङ्गवशात् छलाद्वा, यत् अन्यत्र = अपरस्मिन् स्थाने, गच्छति = आक्रमणं करोति, तत्, यानविद्भिः = यानविशेषज्ञैः, मन्त्रिभिः = सचिवैः, प्रसङ्गयानम्, प्रोक्तम् = कथितम् ॥ २६० ॥

हिन्दी—दूसरी जगह किसी राजा पर चढाई करने के लिए चल चुकने पर रास्ते में यदि प्रसंगवश किसी अन्य राजा पर चढ़ाई करना पड़े तो उसे यानविशेषज्ञ मन्त्रिगण प्रसङ्गयान कहते हैं ॥ २६० ॥

अन्यत्रेति। अन्यत्र प्रस्थितः नृपः सङ्गात् प्रसङ्गात् छलादित्यर्थः, यत् अन्यत्र गच्छति तत् यानविद्भिः मन्त्रिभिः प्रसङ्गयानं प्रोक्तम् ॥ २६० ॥

रिपुं यातस्य बलिनः सम्प्राप्य विकृतं फलम्।
उपेक्ष्य तस्मिन् तद्यानमुपेक्षायानमुच्यते ॥ २६१ ॥

अन्वयः—रिपुं यातस्य बलिनः विकृतं फलं सम्प्राप्य तस्मिन् उपेक्ष्य यत् यानं तत् उपेक्षायानम् उच्यते ॥ २६१ ॥

व्याख्या—रिपुम् = शत्रुम्प्रति, यातस्य = आक्रमतः, बलिनः = शक्तिशालिनः नृपस्य, विकृतम् = विरुद्धम्, फलम् = परिणामम्, सम्प्राप्य = उपलभ्य, तस्मिन्, उपेक्ष्य = अवहेलनं कृत्वा, यत् यानम् = गमनम्, तत् = आक्रमणम्, उपेक्षायानम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २६१ ॥

हिन्दी—जो शत्रु पराजित होकर विपन्नावस्था में पड़ गया हो तो उसकी स्थिति की उपेक्षा कर उस पर चढ़ाई कर दी जाय तो उसे उपेक्षायान कहते हैं ॥ २६१ ॥

रिपुमिति। रिपुं शत्रुं प्रति यातस्य गतस्य आक्रमतः बलिनः बलवतः नृपस्य विकृतं विपरीतं फलं पराजयरूपमित्यर्थः, सम्प्राप्य तस्मिन् उपेक्ष्य यत् यानं गमनं स्वनगर्य्यामिति शेषः, निवर्त्तनमिति भावः, तत् उपेक्षायानम् उच्यते ॥ २६१ ॥

दुर्वृत्तेऽप्यकुलीने तु बलं दातरि रज्यते।
हृष्टं कृत्वा स्वीयबलं पारितोष्यप्रदानतः ॥ २६२ ॥
नायकः पुरतो यायात् प्रवीरपुरुषावृतः।
मध्ये कलत्रं कोशश्च स्वामी फल्गु च यद्धनम्।
ध्वजिनीञ्च सदोद्युक्तः स गोपायेद्दिवानिशम् ॥ २६३ ॥

अन्वयः—दुर्वृत्ते अपि अकुलीने दातरि बलं रज्यते, तस्मात् पारितोष्यप्रदानतः स्वीयबलं हृष्टं कृत्वा नायकः प्रवीरपुरुषैः आवृतः पुरतः यायात्। मध्ये कलत्रं कोशश्च स्वामी फल्गु च यद्धनं तत्, सः सदोद्युक्तः दिवानिशं ध्वजिनीं गोपायेत् ॥ २६२-२६३ ॥

व्याख्या—दुर्वृत्तेऽपि = दुश्चरित्रेऽपि, अकुलीने = असत्कुलजेऽपि राजनि, दातरि = दानशीले सति, बलम् = सैन्यम्, रज्यते = अनुरक्तम्भवति, तस्मात्, पारितोष्यप्रदानतः = पारितोषिकप्रदानेन, स्वीयबलम् = निजसैन्यम्, हृष्टम् = सन्तुष्टम्, कृत्वा = विधाय, नायकः = सेनानायकः, प्रवीरपुरुषैः = श्रेष्ठवीरपुरुषैः, आवृतः = परिवृतः सन्, पुरतः = अग्रतः, यायात् = व्रजेत्। मध्ये = तन्मध्ये, कलत्रम् = नारीवर्गः, कोशः = आकरः, स्वामी = अधिपतिः, फल्गु = साधारणधनम्, तत् यायात्। सः = सेनापतिः, सदोद्युक्तः—सदा = सर्वदा, उद्युक्तः = उद्योगे निरतः सन्, दिवानिशम् = अहर्निशम्, ध्वजिनीम् = सेनाम्, गोपायेत् = संरक्षणं कुर्यात् ॥ २६२-२६३ ॥

हिन्दी—राजा चाहे दुराचारी हो या अकुलीन हो, किन्तु यदि वह दाता हो तो सेना उससे संतुष्ट रहती है। अतः पुरस्कारों से प्रसन्न अपनी सेना और वीर योद्धाओं से घिरा राजा अपनी सेना के आगे रहे, फिर सेनानायक शत्रु पर चढ़ाई करे। सेना के बीच में स्त्रीवर्ग, खजाना एवं साधारण धन रखकर इनकी और अपनी सेना की दिन-रात सावधानीपूर्वक सेनानायक रक्षा करे ॥ २६२-६३ ॥

दुर्वृत्ते इति। नायक इति। दुर्वृत्ते दुराचारेऽपि अकुलीने असंद्वशप्रसूतेऽपि राजनि दातरि दानशीले सति बलं रज्यते अनुरक्तं भवति, तस्मात् पारितोष्यप्रदानतः पुरष्कारदानेन स्वीयबलं हृष्टं सन्तुष्टं कृत्वा नायकः सेनापतिः प्रवीरपुरुषैः आवृतः सन् पुरतः अग्रतः यायात् गच्छेत् मध्ये कलत्रं स्त्रीवर्गः कोशः द्रव्यसमूहः स्वाभी प्रभुः यच्च फल्गु सारं धनं तत् यायात्। सः नायकः सदोद्युक्तः सदा उद्योगी सन् दिवानिशं ध्वजिनीं गोपायेत् रक्षेत् ॥ २६२-२६३ ॥

नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत्।
सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद् व्यूहकृतैर्बलैः ॥ २६४ ॥

अन्वयः—नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत् तत्र तत्र सेनापतिः व्यूहकृतैः बलैः गच्छेत् ॥ २६४ ॥

व्याख्या—नदीषु = सरित्सु, अद्रिषु = पर्वतेषु, वनेषु = अरण्येषु, दुर्गेषु = दुर्गमस्थानेषु च, यत्र यत्र = यस्मिन् यस्मिन् स्थाने, भयम् = त्रासम्, भवेत् = स्यात्, तत्र तत्र = तस्मिन् तस्मिन् स्थाने, सेनापतिः = सेनानायकः, व्यूहकृतैः = सम्पादितिसैन्यविन्यासैः, गच्छेत् = व्रजेत् ॥ २६४ ॥

हिन्दी—रास्ते में नदी, पहाड़, जंगल या दुर्गम स्थान के कारण जहाँ-जहाँ डर की संभावना हो, वहाँ-वहाँ सेनानायक सेना को व्यूह बनाकर आगे बढे ॥ २६४ ॥

नदीति। नदीषु अद्रिषु वनेषु दुर्गेषु दुर्गमस्थानेषु च यत्र यत्र भयं भवेत् सेनापतिः व्यूहकृतैः कृतव्यूहैः बलैः तत्र तत्र गच्छेत् ॥ २६४ ॥।

यायाद् व्यूहेन महता मकरेण पुरोभये।
श्येनेनोभयपक्षेण सूच्या वा धीरवक्त्रया ॥ २६५ ॥

अन्वयः—पुरोभये महता मकरेणं व्यूहेन उभयपक्षेण श्येनेन धीवक्त्रया वा सूच्या व्यूहेन यायात् ॥ २६५ ॥

व्याख्या—पुरः = अग्रे, भये = त्रासे, समुपस्थिते सति, महता = विशालेन, मकरेण = ग्राहेण, व्यूहेन = सैन्यविन्यासेन, उभयपक्षेण = पक्षद्वययुक्तेन, श्येनेन = कपोतारिणा, व्यूहेन, वा = अथवा, धीरवक्त्रया = गभीराननेन, सूच्या = सूचीमुखमिव तीव्रेण, व्यूहेन = सैन्यविन्यासेन, यायात् = गच्छेत् ॥ २६५ ॥

हिन्दी—यदि आगे से भय की संभावना हो तो बड़े मगर के आकार की व्यूहरचना कर चले अथवा दो पाँख वाले बाज पक्षी की तरह अथवा नुकीली सूई के आकार की व्यूह-रचना कर चले ॥ २६५ ॥

यायादिति। पुरः अग्रे भये उपस्थिते सति महता मकरेण व्यूहेन, उभयपक्षेण श्येनेन व्यूहेन वा धीरवक्त्रया धीरमुखया सूच्या व्यूहेन यायात् ॥ २६५ ॥

पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञिकम्।
सर्वतः सर्वतोभद्रं चक्रं व्यालमथापि वा।
यथादेशं कल्पयेद्वा शत्रुसेनाविभेदकम् ॥ २६६ ॥

अन्वयः—पश्चात् भये शकटं पार्श्वयोः वज्रसंज्ञिकं, सर्वतः भये सर्वतोभद्रं चक्रम् अथवा व्यालं शत्रुसेनाविभेदकं व्यूहं वा यथादेशं कल्पयेत् ॥ २६६ ॥

व्याख्या—पश्चात् = पृष्ठभागे, भये = त्रासे सम्भवति, शकटमयानाकारम्, पार्श्वयोः = पार्श्वभागयोः, भये = भीतौ, आपतिते, वज्रसंज्ञिकम् = वज्राख्यम्, सर्वतः = चतुर्दिक्, भये = त्रासे, समुपस्थिते, चक्रम् = चक्राकारम्, अथवा व्यालम् = सर्पाख्यम्, वर्त्तुलम्, शत्रुसेनाविभेदकम् = रिपुबलभञ्जकम्, व्यूहम् = सैन्यसंस्थापनम्, यथाप्रदेशम् = देशानुरूपम्, वा = विकल्पेन, कल्पयेत् = रचयेत् ॥ २६६ ॥

हिन्दी—पीछे से यदि भय की आशंका हो तो शकटाकार व्यूह की रचना कर, दोनों बाजू की ओर से भय की संभावना में वज्रव्यूह तथा चारों ओर से भय की आंशका में च्रकव्यूह अथवा सर्पाकार व्यूह की रचना करनी चाहिए अथवा देशानुसार शत्रुसेना को विनष्ट करने वाली व्यूहरचना करनी चाहिए ॥ २६६ ॥

पश्चादिति। पश्चात् भये सम्भवति शकटं शकटाकारं पार्श्वयोः भये आपतिते वज्रसंज्ञिकं वज्राख्यं सर्वतः भये उपस्थिते सर्वतोभद्रं चक्रम् अथवा व्यालं शत्रुसेनाविभेदकं शत्रुबलभञ्जकं व्यूहं यथाप्रदेशं कल्पयेद्वा रचयेदेव ॥ २६६ ॥

व्यूहरचनसङ्केतान् वाद्यभाषासमीरितान्।
स्वसैनिकैर्विना कोऽपि न जानीयात् तथाविधान् ॥ २६७ ॥

अन्वयः—स्वसैनिकैः विना कोऽपि वाद्यभाषासमीरितान् तथाविधान् व्यूहरचनसङ्केतान् न जानीयात् ॥ २६७ ॥

व्याख्या—स्वसैनिकैः = निजबलैः, विना = विहाय, कोऽपि = जनः, वाद्यध्वनिना = वाद्यध्वनिविशेषेण, समीरितान् = सूचितान्, तथाविधान् = तद्रूपान्, व्यूहरचनानाम् = सैन्यस्थापनानाम्, सङ्केतान् = इङ्गितानि, न = नहि, जानीयात् = सङ्केतग्रहणं कुर्यात् ॥ २६७ ॥

हिन्दी—और बाजा बजाने के ढंग से किये गये व्यूह की रचना के संकेत ऐसे हों जिन्हें अपनी सेना के अलावा दूसरा कोई सैनिक न जानता हो ॥ २६७ ॥

व्यूहेति। स्वसैनिकैः विना कोऽपि जनः वाद्यभाषया समीरितान् वाद्यध्वनिविशेषसूचितान् तथाविधान् व्यूहरचनानां सङ्केतान् न जानीयात् ॥ २६७ ॥

नियोजयेच्च मतिमान् व्यूहान् नानाविधान् सदा ॥ २६८ ॥

अन्वयः—मतिमान् नानाविधान् व्यूहान् सदा नियोजयेत् ॥ २६८ ॥

व्याख्या—मतिमान् = बुद्धिमान् राजा, नानाविधान् = अनेकविधान्, व्यूहान् = सैन्यविन्यासान्, सदा = सर्वस्मिन् समये, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात् ॥ २६८ ॥

हिन्दी—इस तरह बुद्धिमान् राजा सदा अनेक प्रकार की व्यूहरचना में सैनिकों को रखे ॥ २६८ ॥

नियोजयेदिति। मतिमान् भूपः नानाविधान् व्यूहान् सदा सर्वस्मिन् समये नियोजयेच्च ॥ २६८ ॥

अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां पृथक् पृथक्।
उच्चैः संश्रावयेद् व्यूहसङ्केतान् सैनिकान् नृपः ॥ २६९ ॥

अन्वयः—नृपः अश्वानां च गजानां च पदातीनां पृथक् पृथक् सैनिकान् व्यूहसङ्केतान् उच्चैः संश्रावयेत् ॥ २६९ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अश्वानाम् = घोटकानाम्, गजानाम् = हस्तिनाम्, पदातीनाम् = पदगामिनां सैन्यानाम्, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, सैनिकान् = सैन्यम्, व्यूहसङ्केतान् = सैन्यविन्यासेङ्गितान्, उच्चैः = उन्नतैः, संश्रावयेत् ॥ २६९ ॥

हिन्दी—अश्वारोही, गजारोही एवं पैदल सैनिकों को अलग-अलग बुलाकर राजा व्यूह-रचना के संकेतों को ठीक से समझा दे ॥ २६९ ॥

अश्वानामिति। नृपः अश्वानां गजानां पदातीनाञ्च पृथक् पृथक् सैनिकान् व्यूहसङ्केतान् उच्चैः यथा तथा संश्रावयेत् ॥ २६९ ॥

वामदक्षिणसंस्थो वा मध्यस्थो वाग्रसंस्थितः।
श्रुत्वा तान् सैनिकैः कार्य्यमनुशिष्टं यथा तथा ॥ २७० ॥

अन्वयः—वामदक्षिणसंस्थः वा मध्यस्थः वा अग्रसंस्थितः सैनिकैः तान् श्रुत्वा यथा अनुशिष्टं तथा कार्यम् ॥ २७० ॥

व्याख्या—वामदक्षिणसंस्थः—वामसंस्थः = सव्ये स्थितः, दक्षिणसंस्थः = वामेतरे स्थितः, वा = अथवा, मध्ये = केन्द्रे, स्थितः, वा = अथवा, अग्रतः = पुरतः, स्थितः = संस्थः अस्तु, किञ्च तैः तैः सैनिकैः = सेनाचरैः, तान् = पूर्वोक्तसङ्केतान्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, यथा = येन प्रकारेण, अनुशिष्टम् = उपदिष्टम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, कार्यम् = अनुष्ठेयम् ॥ २७० ॥

हिन्दी—बायें, दायें, बीच तथा अगले भाग में स्थित सैनिक उन संकेतों को सुनकर जैसा उन्हें समझाया गया हो वैसा ही काम करें ॥ २७० ॥

वामेति। सैनिकपुरुषः वामदक्षिणसंस्थः वामसंस्थः वा दक्षिणसंस्थः वा मध्यस्थः अथवा अग्रतः स्थितः अस्तु किन्तु तैः तैः सैनिकैः तान् सङ्केतान् श्रुत्वा यथा अनुशिष्टं कर्त्तुं सङ्केतितं तथा कार्य्यम्।

सम्मीलनं प्रसरणं परिभ्रमणमेव च।
आकुञ्चनं तथा यानं प्रयाणमपयानकम् ॥ २७१ ॥
पर्य्यायेण च साम्मुख्यं समुत्थानञ्च लुण्ठनम्।
संस्थानं चाष्टदलवच्चक्रवद्गोलतुल्यकम् ॥ २७२ ॥
सूचीतुल्यं शकटवदर्द्धचन्द्रसमन्तु वा।
पृथग्भवनमल्पाल्पैः पर्य्यायैः पङ्क्तिवेशनम् ॥ २७३ ॥
शस्त्रास्त्रयोर्धारणञ्च सन्धानं लक्ष्यभेदनम्।
मोक्षणञ्च तथास्त्राणां शस्त्राणां परिघातनम् ॥ २७४ ॥
द्राक् सन्धानं पुनः पातो ग्रहो मोक्षः पुनः पुनः।
स्वगूहनं प्रतीघातः शस्त्रास्त्रपदविक्रमैः ॥ २७५ ॥
द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा पङ्क्तितो गमनं ततः।
तथा प्राग्भवनं चापसरणं तूपसर्जनम् ॥ २७६ ॥

अन्वयः—सम्मीलनं प्रसरणं परिभ्रमणम् आकुञ्चनं यानं प्रयाणम् अपयानकं पर्य्यायेण च साम्मुख्यं समुत्थानं लुण्ठनम् अष्टदलवत् संस्थानं चक्रवत् गोलतुल्यकं सूचीतुल्यं शकटवत् वा

अर्द्धचन्द्रसमं वा पृथक् भवनम् अल्पाल्पैः पर्यायैः पङ्क्तिवेशनं शस्त्रास्त्रयोः धारणं सन्धानम् लक्ष्यभेदनम् अस्त्राणां मोक्षणं शस्त्राणां परिघातनं प्राक् सन्धानं पुनः पातः ग्रहः मोक्षः स्वगूहनं शस्त्रास्त्रपदविक्रमैः प्रतीघातः द्वाभ्यां त्रिभिः चतुर्भिः वा पङ्क्तितः गमनं तथा प्राग्भवनम् अपसरणं तथा उपसर्जनम् ॥ २७१-२७६ ॥

व्याख्या—सम्मीलनम् = सम्मिश्रणम्, संयुक्तं वा, प्रसरणम् = विततिः, परिभ्रमणम् = विचरणम्, आकुञ्चनम् = सङ्कोचनम्, यानम् = गमनम्, प्रयाणम् = प्रस्थानम्, अपयानकम् = पश्चाद्गमनम्, पर्यायेण = पर्यायक्रमेण, साम्मुख्यम् = सम्मुखे गमनम्, समुत्थानम् = उत्थानम्, लुण्ठनम् = लोटनम्, अष्टदलवत् = अष्टदलकमलमिव, संस्थानम् = स्थितिः, चक्रवत् = चक्राकारमिव, गोलतुल्यकम् = गोलाकारेणोत्थापनम्, वेष्टनं वा, सूचीतुल्यम् = सूचीसदृशम्, शकटवत् = यानाकारमिव, वा = अथवा, अर्द्धचन्द्रसमम् = अर्द्धचन्द्राकारमिव, पृथक् = विभिन्नम्, भवनम् = वर्चनम्, अल्पाल्पैः = अतिस्वल्पैः, पर्यायैः = आनुपूर्व्यैः, पङ्क्तिवेशनम्—पङ्क्तिषु = श्रेणीषु, वेशनम् = प्रवेशनम्, शस्त्रास्त्रयोः = आयुधानाम्, धारणम् = सज्जीकरणम्, सन्धानम् = चापे बाणयोजनम्, लक्ष्यभेदनम् = वेध्यवेधनम्, अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, मोक्षणम् = निक्षेपः, शस्त्राणाम् = आयुधविशेषाणाम्, परिघातनम् = परिक्षेपणं प्रहरणं वा, द्राक् = झटिति, सन्धानम् = अभिषवः, पुनः = भूयोभूयः, पातः = पतनम्, ग्रहः = ग्रहणम्, मोक्षः = मोचनम्, स्वगूहनम्—स्वस्य = आत्मनः, गूहनम् = रक्षणम्, शस्त्रास्त्रपदविक्रमैः—शस्त्रैः = आयुधैः, अस्त्रैः = प्रहरणैः, पदविक्रमैः = पदातीनां पराक्रमैः, प्रतीघातः = प्रतिप्रहारः, द्वाभ्याम् = उभाभ्याम्, त्रिभिः = त्रिसंख्यकैः, चतुर्भिः = चतुसंख्यकैः, वा = अथवा, पङ्क्तितः = श्रेणीबद्धेन, गमनम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्राग्भवनम् = पुरेवर्चनम्, अपसरणम् = पुरतः पलायनम्, तथा उपसर्जनम् = समीपगमनञ्चेति ॥ २२७१-२७६ ॥

हिन्दी—संकेतानुसार कभी सबों को इकट्ठा हो जाना, फैल जाना, चारों ओर घूम जाना, सिकुड़ जाना, धीरे-धीरे बढ़ना, तेज चलना, पीछे हटना, एक-एक कर सामने आना, खड़े हो जाना, लौटना, अष्टकुल कमल की तरह व्यूह बना कर खड़ा होना या चक्राकार गोल बाँधकर खड़ा होना, कभी सूई तो कभी शकट या अर्द्धचन्द्राकार व्यूह बनाकर खड़ा होना, पर्याय-क्रम से थोड़ी सेना की टुकड़ी बनाकर अलग-अलग हो जाना या कतार बनाकर बैठ जाना, आयुध धारण कर लक्ष्य का संधान एवम् उसका भेदन करना, हथियारों से पैंतरा बदल कर प्रहार करना, जल्दी से धनुष पर बाण चढ़ाना, छोड़ना, फिर तीर खींचना और छोड़ना; बार-बार ऐसा करते हुए अपने को प्रतिघात से बचाना, अस्त्र-शस्त्रों का पैंतरा बदल कर प्रयोग करना, कभी दो, तीन या चार की पंक्ति बनाकर चलना, आवश्यकतानुसार आगे बढना, पीछे हटना या यथास्थान पहले की तरह खड़ा रहना, आगे बढना, पीछे हटना या समीप जाकर आक्रमण करना—सैनिकों को ये सारी बातें संकतानुसार करनी चाहिए ॥ २७१-२७६ ॥

व्यूहस्थदैनिककार्य्याण्याह—**सम्मीलनमित्यादि**। सम्मीलनं प्रसरणं परिभ्रमणम् आकुञ्चनं यानं प्रयाणम् अपयानकं पर्य्यायेण साम्मुख्यं समुत्थानं लुण्ठनम् अष्टदलवत् संस्थानं चक्रवत् गोलतुल्यकं गोलाकारेण वेष्टनमित्यर्थः, सूचीतुल्यं शकटवत् शकटाकारं वा अर्द्धचन्द्रसमं पृथक् विभिन्नं भवनं वर्चनम् अल्पाल्पैः पर्य्यायैः पङ्क्तिवेशनं पङ्क्तिषु प्रवेशनं शस्त्रास्त्रयोः धारणं सन्धानं लक्ष्यभेदनम् अस्त्राणां मोक्षणं निक्षेपः शस्त्राणां परिघातनं शस्त्रैः प्रहरणमित्यर्थः, द्राक् झटिति

सन्धानं पुनः पुनः पातः पतनं ग्रहः ग्रहणं मोक्षः त्यागः स्वस्य आत्मनः गूहनं रक्षणं शस्त्रास्त्रपदविक्रमैः शस्त्रैः अस्त्रैः पदविक्रमैश्च प्रतीघातः द्वाभ्यां त्रिभिः चतुर्भिर्वा पङ्क्तितः पङ्क्तिक्रमेण गमनम्। तथा प्राग्भवनं पुरोवर्त्तनम् अपसरणं पुरतः पलायनं तथा उपसर्जनं समीपगमनञ्च ॥ २७१-२७६ ॥

अपसृत्यास्त्रसिद्ध्यर्थमुपसृत्य विमोक्षणे।
प्राग्भूत्वा मोचयेदस्त्रं व्यूहस्थः सैनिकः सदा ॥ २७७ ॥

अन्वयः—व्यूहस्थः सैनिकः अस्त्रसिद्ध्यर्थम् अपसृत्य विमोक्षणे उपसृत्य प्राग्भूत्वा सदा अस्त्रं मोचयेत् ॥ २७७ ॥

व्याख्या—व्यूहस्थः = सैन्यविन्यासमध्यस्थितसेनाचरः, अस्त्रसिद्ध्यर्थम् = आयुधसञ्चालनसौकर्यार्थम्, अपसृत्य = अपसरणं कृत्वा, विमोक्षणे = अस्त्रत्यागे, उपसृत्य = समीपं गत्वा, तथा प्राग् = पुरः गत्वा, सदा = सर्वदा, अस्त्रम् = प्रहरणम्, मोचयेत् = त्यागं कुर्यात् ॥ २७७ ॥

हिन्दी—व्यूहस्थ सैनिक को हथियार चलाने की सुविधा के लिए पीछे हटकर, पास जाकर सामने से हथियार चलाना चाहिए ॥ २७७ ॥

अपसृत्येति। व्यूहस्थः विन्यस्तबलमध्यवर्ती सैनिकः अस्त्रसिद्ध्यर्थम् अपसृत्य विमोक्षणे अस्त्रत्यागे उपसृत्य समीपं गत्वा तथा प्राग् अग्रगो भूत्वा सदा अस्त्रं मोचयेत् ॥ २७७ ॥

आसीनः स्याद्विमुक्तास्त्रः प्राग्वा चापसरेत् पुनः।
प्रागासीनं तूपसृतो दृष्ट्वा स्वास्त्रं विमोचयेत्।
एकैकशो द्विशो वापि सङ्घशो बोधितो यथा ॥ २७८ ॥

अन्वयः—विमुक्तास्त्रः आसीनः स्यात् वा प्राक् अपसरेत्, तु उपसृतः। प्रागासीनं दृष्ट्वा यथा बोधितः तथा एकैकशः द्विशः वा सङ्घशः स्वास्त्रं विमोचयेत् ॥ २७८ ॥

व्याख्या—विमुक्तास्त्रः = विमोचितायुधः, सैनिकः, आसीनः = उपविष्टः, स्यात् = भवेत्, वा = अथवा, प्राक् = अग्रे, अपसरेत् = अपसरणं कुर्यात्, पुनश्च = भूयश्च, उपसृतः = समीपं गच्छतः सन्, प्राक् आसीनम् = उपविष्टम्, रिपुम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, यथा = येन प्रकारेण, बोधितः = उपदिष्टः, तथा एकैकशः = एकम् एकं कृत्वा, द्विशः वा, अथवा सङ्घशः = सामूहिकरूपेण बहुशः, स्वस्य = आत्मनः, अस्त्रम् = प्रहरणम्, मोचयेत् = त्यजेत् ॥ २७८ ॥

हिन्दी—सैनिक हथियार चलाने के बाद बैठ जाये अथवा आगे की ओर बढ जाये, आगे बैठे शत्रु को देखकर उसके पास जाकर अपने आयुध का प्रयोग करे। एक-एक, दो-दो या समूह रूप में पूर्वसंकेतित ढंग से सैनिक चले ॥ २७८ ॥

आसीन इति। विमुक्तास्त्रः विक्षिप्तास्त्रः सैनिकः आसीनः उपविष्टः स्यात् वा अथवा प्राक् अपसरेत्। पुनश्च उपसृतः सन्निहितः सन् प्राक् आसीनं रिपुं दृष्ट्वा यथा बोधितः सङ्केतितः तथा एकैकशः द्विशः वा सङ्घशः बहुशः स्वस्य आत्मनः अस्त्रं विमोचयेत् विक्षिपेत् ॥ २७८ ॥

क्रौञ्चानां खे गतिर्यादृक् पङ्क्तिशः सम्प्रजायते।
तादृक् सञ्चारयेत् क्रौञ्चव्यूहं देशबलं यथा ॥ २७९ ॥

अन्वयः—खे क्रौञ्चानां यादृक् पङ्क्तिशः गतिः सम्प्रजायते तादृक् देशबलं क्रौञ्चव्यूहं सञ्चारयेत् ॥ २७९ ॥

व्याख्या—खे = आकाशे, क्रौञ्चानाम् = कुञ्चानाम्, यादृक् = यत् सदृशम्, पङ्क्तिशः = श्रेणीबद्धेन, गतिः = गमनम्, जायते = भवति, देशबलम् = स्थानीयबलानुसारेण, कौञ्चव्यूहम् = क्रौञ्चाख्यसैन्यसंस्थानम् सञ्चारयेत् = विन्यसेत् ॥ २७९ ॥

हिन्दी—आकाश में जैसे बगुले पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं, उसी प्रकार क्रौञ्चव्यूह की रचना कर सैनिक स्थानीय बल के अनुसार आगे बढ़ें ॥ २७९ ॥

क्रौञ्चव्यूहमाह– **क्रौञ्चानामिति**। खे आकाशे कौञ्चानां बकानां यादृक् पङ्क्तिशः पङ्क्तिक्रमेण गतिः जायते, देशबलं स्थानीयबलं यथा स्थानीयबलानुसारेण इत्यर्थः, क्रौञ्चव्यूहं तादृक् यथा तथा सञ्चारयेत् विन्यसेत् ॥ २७९ ॥

सूक्ष्मग्रीवं मध्यपुच्छं स्थूलपक्षन्तु पङ्क्तितः।
बृहत्पक्षं मध्यगलपुच्छं श्येनं मुखे तनु ॥ २८० ॥

अन्वयः—सूक्ष्मग्रीवं मध्यपुच्छं स्थूलपक्षं पङ्क्तितः बृहत्पक्षं मध्यगलपुच्छं मुखे तनु श्येनम् ॥ २८० ॥

व्याख्या—सूक्ष्मग्रीवम्—सूक्ष्मा = क्षीणा, ग्रीवा = कण्ठः, यस्य तत्, मध्ये = मध्यमे, पुच्छः = लाङ्गुलभागः, स्थूलपक्षम्—स्थूलौ = पीनौ, पक्षौ = पक्षभागौ, यस्य तथाभूतस्य तम्, पङ्क्तितश्च, मुखे = मुखभागे, तनु = सूक्ष्मम्, श्येनम् = श्येनव्यूहं भवति ॥ २८० ॥

हिन्दी—जिसके दोनों बगल के भाग विशाल हों तथा गले का भाग पतला हो, पूँछ वाला भाग मध्यम हो एवं मुखभाग पतला हो, ऐसी सैनिकों की पंक्ति को श्येनव्यूह कहा जाता है ॥ २८० ॥

श्येनव्यूहमाह—**सूक्ष्मेति**। सूक्ष्मा ग्रीवा यस्य तत् मध्ये पुच्छं यस्य तथोक्तं स्थूलौ विशालौ पक्षौ यस्य तथाभूतं पङ्क्तितश्च बृहत्पक्षं दीर्घपार्श्वं मध्ये गले च पुच्छं यस्य तादृशं तथा मुखे तनु सूक्ष्मं स्वल्पमित्यर्थः, श्येनं श्येनव्यूह इत्यर्थः ॥ २८० ॥

चतुष्मात् मकरो दीर्घस्थूलवक्त्रद्विरोष्ठकः।
सूची सूक्ष्ममुखो दीर्घसमदण्डान्तरन्ध्रयुक् ॥ २८१ ॥

अन्वयः—चतुष्पात् दीर्घस्थूलवक्त्रद्विरोष्ठकः मकरः सूक्ष्ममुखः दीर्घसमदण्डान्तरन्ध्रयुक् सूची ॥ २८१ ॥

व्याख्या—चतुष्पात् = चतुष्पदः, दीर्घम् = लम्बम्, स्थूलम् = पीनम्, मुखम् = आननम्, यस्य तादृशः, द्विरोष्ठकः = अधरद्वयसंयुक्तः, मकरः = मकराकृतिः, ग्राह इव आकृतिर्यस्य तथाभूतः मकरव्यूहः, सूक्ष्ममुखः = साग्राननः, तथा दीर्घस्य = लम्बस्य, दण्डस्य = लगुडस्य, अन्ते = अन्तिमभागे, रन्ध्रयुक्तः = छिद्रसमन्वितः, सूचीव्यूहः = व्यधनीव्यूहः, इति ख्यात इति ॥ २८१ ॥

हिन्दी—जिसके चार भाग में चार चरण हों, लम्बा और मोटा मुँह वाला हिस्सा हो, उसमें नीचे-ऊपर दो होठ भाग हों, ऐसी पंक्ति में स्थित सेना को मकरव्यूह कहा जाता है। फिर जिसका अगला भाग सूई की तरह नुकीला हो तथा बीच का हिस्सा समान रूप से डंडे की तरह लम्बा हो और अन्त अर्थात् मूल भाग में छेद हो, ऐसी सेना की पंक्ति को सूचीमुखव्यूह कहते हैं ॥ २८१ ॥

चक्रव्यूहश्चैकमार्गो ह्यष्टधा कुण्डलीकृतः ।
चतुर्दिक्ष्वष्टपरिधिः सर्वतोभद्रसंज्ञकः ॥ २८२ ॥
अमार्गश्चाष्टवलयी गोलकः सर्वतोमुखः ।
शकटः शकटाकारो व्यालो व्यालाकृतिः सदा ॥ २८३ ॥

अन्वयः—अष्टधा कुण्डलीकृतः एकमार्गः चक्रव्यूहः। चतुर्दिक्षु अष्टपरिधिः अमार्गः अष्टवलयी गोलकः सर्वतोमुखः सर्वतोभद्रसंज्ञकः। शकटः शकटाकारः, व्यालः सदा व्यालाकृतिः ॥ २८२-२८३ ॥

व्याख्या—अष्टधा = अष्टप्रकारकः, कुण्डलीकृतः = वर्तुलाकारेण वेष्टितः, एक एव = मात्रैकः, मार्गः = पन्थाः, यस्य तथाभूतः, व्यूहः = सैन्यसंरचना, चक्रव्यूहः = चक्रव्यूहाख्यो भवति। चतुर्दिक्षु = परितः, अष्टपरिधिः = अष्टधा मण्डलीकृतः, अमार्गः = पथहीनः, अष्टवलयी = अष्टमण्डलयुतः, गोलकः = गोलाकारः, सर्वतः = अभितः, मुखम् = आननम्, यस्य तादृशः, व्यूहः = सैन्यविन्यासः, सर्वतोभद्रः इति ख्यातः, शकटः = यानः, शकटस्येव = यानस्येव, आकारः = स्वरूपः, यस्य सः शकटव्यूह इति, व्यालः = सर्पः, व्यालस्येव = नागस्येव, आकृतिः = आकारः, यस्य सः व्यालव्यूही नाम्ना ख्यातः ॥ २८२-२८३ ॥

हिन्दी—जो व्यूह चक्के की तरह गोल हो तथा बीच में आठ खण्डों में बँटा हुआ हो तथा उसकी आकृति वर्तुलाकार हो एवं उसमें घुसने का एक ही रास्ता हो, उसे 'चक्रव्यूह' कहते हैं। जिस व्यूह के चारों ओर आठ पहलू में सेना विभक्त हो तो उसे 'सर्वतोभद्र' व्यूह कहा जाता है। अथवा—सभी ओर जिसके मुँह हों तथा आठ गोलाकार पंक्तियों से बना हो तथा उसमें घुसने की कोई राह न हो, तो उसे भी सर्वतोभद्रव्यूह ही कहा जाता है। गाड़ी की तरह सैन्य-संरचना को शकटव्यूह एवं सर्पाकार सैन्य-संरचना को व्यालव्यूह कहा जाता है ॥२८३-२८३ ॥

चक्रसर्वतोभद्रशकटव्यालव्यूहान् निर्वक्ति—**चक्रेति**। **अमार्ग इति**। अष्टधा कुण्डलीकृतः वेष्टितः एक एव मार्गः पन्थाः यस्य तथाभूतः व्यूहः चक्रव्यूहः। चतुर्दिक्षु अष्टपरिधिः अष्टधा कुण्डलीकृत इत्यर्थः, अमार्गः अपथः अष्टवलयी वेष्टनाष्टकयुतः गोलकः मण्डलाकृतिः सर्वतोमुखः व्यूहः सर्वतोभद्रसंज्ञकः सर्वतोभद्र इति प्रसिद्धः। शकटः शकटस्येव आकारः यस्य सः। व्यालः सदा व्यालस्येव सर्पस्येव आकृतिर्यस्य तथाभूतः ॥ २८२-२८३ ॥

सैन्यमल्पं बृहद्वापि दृष्ट्वा मार्गं रणस्थलम् ।
व्यूहैर्व्यूहेन व्यूहाभ्यां सङ्करेणापि कल्पयेत् ॥ २८४ ॥

अन्वयः—सैन्यम् अल्पं वा बृहत् दृष्ट्वा व्यूहेन व्यूहाभ्यां वा व्यूहैः सङ्करेणापि मार्गं रणस्थलं कल्पयेत् ॥ २८४ ॥

व्याख्या—सैन्यम् = बलम्, अल्पम् = स्तोकम्, वा = अथवा, बृहत् = विशालः, इति दृष्ट्वा = अवलोक्य, व्यूहेन = सैन्यसंस्थानेन, व्यूहाभ्याम् = सैन्यसंरचनाभ्याम्, वा = अथवा, व्यूहैः, सङ्करेणापि = मिश्रितेनाऽपि, मार्गम् = पन्थानम्, रणस्थलम् = युद्धभूमिः, कल्पयेत् = संरचयेत् ॥ २८४ ॥

हिन्दी—सेना की कमी या अधिकता राह तथा रणभूमि को देखकर एक, दो या अनेक व्यूहों की संरचना की कल्पना की जा सकती है ॥ २८४ ॥

सैन्यमिति। सैन्यम् अल्पं वा बृहत् अधिकं दृष्ट्वा व्यूहेन व्यूहाभ्यां वा व्यूहैः सङ्करेणापि व्यूढेन अव्यूढे च सैन्येन मार्गं रणस्थलञ्च कल्पयेत् ॥ २८४ ॥

यन्त्रास्त्रैः शत्रुसेनाया भेदो येभ्यः प्रजायते।
स्थलेभ्यस्तेषु सन्तिष्ठेत् ससैन्यो ह्यासनं हि तत् ॥ २८५ ॥

अन्वयः—येभ्यः स्थलेभ्यः यन्त्रास्त्रैः शत्रुसेनायाः भेदः प्रजायते, ससैन्यः तेषु सन्तिष्ठेत् तत् हि आसनम् ॥ २८५ ॥

व्याख्या—येभ्यः स्थलेभ्यः = येभ्यः स्थानेभ्यः, यन्त्रास्त्रैः = नालिकास्त्रैः, शत्रुसेनायाः = रिपुबलस्य, भेदः = भेदनम्, प्रजायते = सम्भवति, ससैन्यः = सेनासहितः सन्, तेषु = स्थलेषु, सन्तिष्ठेत् = स्थितो भवेत्, तत् हि = तदेव हि, आसनम् = स्थितिः कुर्यात् ॥ २८५ ॥

हिन्दी—जहाँ से शत्रुसेना पर तोप, गोली आदि चलाकर उसे छिन्न-भिन्न किया जा सके, वहाँ सेना के साथ राजा के टिकने को आसन कहते हैं ॥ २८५ ॥

यन्त्रास्त्रैरिति। येभ्यः स्थलेभ्यः यन्त्रास्त्रैः नालिकास्त्रैः शत्रुसेनायाः भेदः प्रजायते सम्भवति, ससैन्यः सन् तेषु स्थलेषु सन्तिष्ठेत् तत् हि तदेव आसनम् ॥ २८५ ॥

तृणान्नजलसम्भारा ये चान्ये शत्रुपोषकाः।
सम्यङ्निरुध्य तान् यत्नात् परितश्चिरमासनात् ॥ २८६ ॥
विच्छिन्नवीवधासारं प्रक्षीणयवसेन्धनम्।
विगृह्यमाणप्रकृतिं कालेनैव वशं नयेत् ॥ २८७ ॥

अन्वयः—तृणान्नजलसम्भाराः ये च अन्ये शत्रुपोषकाः चिरम् आसनात् परितः यत्नात् तान् सम्यक् निरुद्ध्य विच्छिन्नवीवधासारं प्रक्षीणयवसेन्धनं विगृह्यमाणप्रकृतिं कालेन एव वशं नयेत् ॥ २८६-२८७ ॥

व्याख्या—तृणानि = शादाः, अन्नानि = धान्यानि, जलानि = सलिलानि, सम्भाराः = अन्यावश्यकवस्तूनि, च = पुनः, ये अन्ये = अपरे, शत्रुपोषकाः—शत्रूणाम् = रिपूणाम्, पोषकाः = पालकाः, चिरम् = दीर्घकालपर्यन्तम्, आसनात् = अवस्थानात्, परितः = चतुर्दिक्, यत्नात् = प्रयत्नपूर्वकात्, तान् = रिपुसंरक्षकान्, सम्यक् = सुष्ठुतया, निरुद्ध्य = अवरुद्ध्य, विच्छिन्नाः = विशिलष्टाः, वीवधाः = अन्नादिसङ्ग्रहाः, आसाराः = मित्रबलसंरक्षणाः, यस्मिन् तं, प्रक्षीणानि = क्षयं गतानि, यवसानि = शादाः, इन्धनानि = काष्ठानि, च यस्मिन् तथोक्तम्, तथा विगृह्यमाणाः = युद्धव्यासक्ताः, प्रकृतयः = प्रजाः, यस्य तादृशम्, देशम् = राष्ट्रम्, कालेन = समयक्रमेण, वशम् = अधीनम्, नयेत् = प्रापयेत् ॥ २८६-२८७ ॥

हिन्दी—घास, अनाज, पानी प्रभृति आवश्यक सामग्री तथा शत्रुसेना के लिए अन्य उपयोगी वस्तुओं को आसन में घेरा डालकर बहुत दिनों तक चारों ओर से राजा रोक कर शत्रुसेना तक न पहुँचने दे। शत्रुसेना के यातायात को अवरुद्ध कर घास तथा जलाने की लकड़ी समाप्त हो जाने पर प्रजा में भेद उत्पन्न कर थोड़े ही दिनो में शत्रु को वशवर्त्ती बनाया जा सकता है ॥२८६-२८७ ॥

तृणेति। **विच्छिन्नेति**। तृणानि अन्नानि जलानि सम्भाराः प्रयोजनीयद्रव्याणि च ये च अन्ये शत्रुपोषकाः शत्रूणां पोषणकारिणः चिरं दीर्घकालं व्याप्य आसनात् अवस्थानात् परितः

सर्वतः यत्नात् तान् शत्रुपोषकान् सम्यक् निरुध्य विच्छिन्ना निरुद्धाः वीवधाःधान्यादिसङ्ग्रहाः आसाराः सुहृद्बलसम्पाताः यस्मिन् तं प्रक्षीणानि यवसानि तृणानि इन्धनानि काष्ठानि च यस्मिन् तथोक्तं तथा विगृह्यमाणाः सङ्ग्रामव्यासक्ताः प्रकृतयो यस्य तादृशं देशं कालेन वशं नयेत् ॥ २८६-२८७ ॥

अरेश्च विजिगीषोश्च विग्रहे हीयमानयोः ।
सन्धाय यदवस्थानं सन्धायासनमुच्यते ॥ २८८ ॥

अन्वयः—विग्रहे हीयमानयोः अरेः विजिगीषोः सन्धाय यत् अवस्थानं तत् सन्धायासनम् उच्यते ॥ २८८ ॥

व्याख्या—विग्रहे = समरे, हीयमानयोः = क्षीणबलयोः, अरेः = रिपोः, विजिगीषोः = विजयेच्छुकयोः, सन्धाय = परस्परं सन्धिं विधाय, यत् अवस्थानम् = आसनम्, तत सन्धायासनम्, उच्यते = कथ्यते ॥ २८८ ॥

हिन्दी—जब विजय चाहने वाले आक्रमणकारी शत्रु एवं आक्रमित राजा दोनों लड़ते-लड़ते थक जाय तब उन दोनों के आपस में सन्धि कर अपनी-अपनी जगह पर डटे रहने को सन्धायासन कहते हैं ॥ २८८ ॥

अरेरिति। विग्रहे युद्धे हीयमानयोः अरेः शत्रोः विजिगीषोश्च सन्धाय परस्परं सन्धिं कृत्वा यत् अवस्थानं तत् सन्धायासनम् उच्यते ॥ २८८ ॥

उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः ।
कुलोद्भवं सत्यमार्य्यमाश्रयेत बलोत्कटम् ॥ २८९ ॥

अन्वयः—बलिना उच्छिद्यमानः निरुपायप्रतिक्रियः कुलोद्भवम् आर्यं बलोत्कटं नृपम् आश्रयेत् ॥ २८९ ॥

व्याख्या—बलिना = शक्तिशालिना रिपुणा, उच्छिद्यमानः = उत्पाट्यमाणः, अत एव, निरुपायप्रतिक्रियः = प्रतिकारविहीनः सन्, कुलोद्भवम् = कुलीनम्, आर्यम् = सत्यप्रतिज्ञम्, बलोत्कटम् = प्रकर्षबलशालिनम्, नृपम् = भूपम्, आश्रयेत् = आश्रयग्रहणं कुर्यात् ॥ २८९ ॥

हिन्दी—जब किसी शक्तिशाली राजा द्वारा राज्य विनष्ट की स्थिति में आ जाय तो किसी कुलीन, दृढप्रतिज्ञ, शक्तिशाली अन्य राजा की शरण लेनी चाहिए ॥ २८९ ॥

उच्छिद्यमान इति। बलिना बलवता अरिणा उच्छिद्यमानः अत एव निरुपायप्रतिक्रियः गत्यन्तरहीनः सन् कुलोद्भवं कुलीनम् आर्य्यं साधु बलोत्कटम् अतिप्रबलं नृपम् आश्रयेत ॥ २८९ ॥

विजिगीषोस्तु साह्यार्थाः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः ।
प्रदत्तभृतिका ह्यन्ये भूपा अंशप्रकल्पिताः ।
सैवाश्रयस्तु कथितो दुर्गाणि च महात्मभिः ॥ २९० ॥

अन्वयः—विजिगीषोः साह्यार्थाः ये सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः प्रदत्तभृतिकाः, अन्ये भूपाः अंशप्रकल्पिताः महात्मभिः सैवाश्रयः कथितः दुर्गाणि च ॥ २९० ॥

व्याख्या—विजिगीषोः = विजयेच्छुकस्य नृपस्य, साह्यार्थाः = सहायाः, ये सुहृदः = मित्राणि, सम्बन्धिनः = सगोत्राः, बान्धवाः = कुटुम्बिनः, प्रदत्तभृतिकाः = दत्तवेतनाः, अन्ये = अपरे भूपाः

सहायकाः, अंशप्रकल्पिताः = विजितराज्यनियतभागलब्धेच्छुकाः, विपत्काले महात्मभिः = महाशयैः, सः = असौ सहायादिः, एव आश्रयः = शरणस्थलम्, च = पुनः, दुर्गाणि = कोटानि च, शरणस्थानानि भवन्ति ॥ २९० ॥

हिन्दी—विजय के लिए चढ़ाई करने वाले राजा की सहायता के लिए उनके मित्र, संबन्धी, बन्धु, जीविका पाने वाले लोग अथवा ऐसे राजे जो विजित राज्य से प्राप्त धन में हिस्सा की इच्छा रखते हों–ये सभी इनके आश्रय में चले जाय अथवा किसी सुदृढ दुर्ग का आश्रय ग्रहण कर लें ॥ २९० ॥

विजिगीषोरिति। विजिगीषोः नृपस्य साह्यार्थाः सहायाः ये सुहृदः सम्बन्धिनः बान्धवाश्च प्रदत्तभृतिकाः दत्तवेतनाः। अन्ये भूपाः साहाय्यकारिण इत्यर्थः, अंशप्रकल्पिताः विजयलब्धधनम अंशेन गृह्णीयुरित्यर्थः, आपत्काले महात्मभिः उन्नताशयैः स सहायादिः एव आश्रयः कथितः तथा दुर्गाणि च आश्रयस्थानानि आपत्सु इत्यर्थः ॥ २९० ॥

अनिश्चितोपायकार्य्यः समयानुचरो नृपः।
द्वैधीभावेन वर्त्तेत काकाक्षिवदलक्षितम्।
प्रदर्शयेदन्यकार्यमन्यमालम्बयेच्च वा ॥ २९१ ॥

अन्वयः—अनिश्चितोपायकार्यः समयानुचरः नृपः काकाक्षिवत् अलक्षितं द्वैधीभावेन वर्त्तेत। कदाचित् अन्यकार्यं प्रदर्शयेत् वा अन्यम् आलम्बयेत् ॥ २९१ ॥

व्याख्या—अनिश्चितम् = अनिर्धारितम्, उपायस्य = साधनस्य, कार्यम् = कृत्यम्, यस्य सः, अत एव समयानुचरः = कालप्रतीक्षमाणनृपः, काकाक्षिवत्—काकस्य = वायसस्य, अक्षिवत् = नेत्रमिव, अलक्षितम् = अन्यैरतर्कितम्, यथा तथा, द्वैधीभावेन = उभयपक्षीयव्यवहारेण, वर्त्तेत, कदाचित् अन्यकार्यम् = अपरकृत्यम्, प्रदर्शयेत् = प्रदर्शनं कुर्यात्, वा = अथवा, अन्यम् = अपरम्, आलम्बयेत् = अवलम्बनं कुर्यात् ॥ २९१ ॥

हिन्दी—समयानुसार काम करने वाला राजा शत्रुसंकट से बचने का जब तक कोई उपाय निश्चित न कर ले तब तक कौवे की एक आँख की तरह राजा दोनों ओर का काम करे। दिखाने के लिए अन्य कार्य तथा करे कुछ और ॥ २९१ ॥

अनिश्चितेति। अनिश्चितम् उपायस्य कार्य्यं यस्य सः अत एव समयानुचरः समयं प्रतीक्षमाण-नृपः काकाक्षिवत् काकस्य नेत्रमिव अलक्षितम् अन्यैरतर्कितं यथा तथा द्वैधीभावेन वर्त्तेत, काकस्य एकमेव नेत्रम् उभयनेत्रकार्य्यकारकं किन्तु केनापि न लक्ष्यते तद्वदिति भावः। तथा च कदाचित् अन्यकार्य्यं प्रदर्शयेत् कदाचिद् वा अन्यम् आलम्बयेच्च ॥ २९१ ॥

सदुपायैश्च सन्मन्त्रैः कार्य्यसिद्धिरथोद्यमैः।
भवेदल्पजनस्यापि किं पुनर्नृपतेर्न हि? ॥ २९२ ॥

अन्वयः—अल्पजनस्य सदुपायैः सन्मन्त्रैः अथ उद्यमैः कार्यसिद्धिः भवेत्, नृपतेः पुनः किं न हि ॥ २९२ ॥

व्याख्या—अल्पजनस्य = सामान्यालोकस्यापि, सदुपायैः = सत्साधनैः, सन्मन्त्रैः = सद्विचारैरुत्कृष्टमन्त्रबलैर्वा, उद्यमैः = अध्यवसायैः, कार्यसिद्धिः = मनोरथपूर्त्तिः, भवेत् = स्यात्। नृपतेः = राज्ञः, पुनः = भूयः, किं न हि कार्यसिद्धिर्भवेदपि भवत्येवेति ॥ २९२ ॥

हिन्दी—जब कि सामान्य व्यक्ति के भी अच्छे उपाय और अच्छी सलाह तथा चेष्टा से काम में सफलता मिलती हो तो फिर राजा का पूछना ही क्या? ॥२९२॥

सदुपायैरिति। अल्पजनस्य इतरस्यापि सदुपायैः सन्मन्त्रैः उत्कृष्टमन्त्रबलैः अथवा उद्यमैः चेष्टाभिः कार्य्यसिद्धिः भवेत्। नृपतेः पुनः किं न हि कार्य्यसिद्धिर्भवेत्? अपितु भवेदेवेत्यर्थः ॥२९२॥

उद्योगेनैव सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तमृगेन्द्रस्य निपतन्ति गजा मुखे ॥२९३॥

अन्वयः—उद्योगेन एव कार्याणि सिद्ध्यन्ति, न मनोरथैः। हि सुप्तमृगेन्द्रस्य मुखे गजाः न निपतन्ति ॥२९३॥

व्याख्या—उद्योगेन = चेष्टया, एव, कार्याणि = मनोरथानि, सिद्ध्यन्ति = सफलतां यान्ति, न केवलं मनोरथैः = वाञ्छाभिः, सुप्तमृगेन्द्रस्य = प्रसुप्तसिंहस्य, मुखे = आनने, गजाः = हस्तिनः, न = नहि, निपतन्ति = आगच्छन्ति ॥२९३॥

हिन्दी—उद्योग करने पर ही किसी भी काम में सफलता मिलती है, न केवल मनोरथ से। क्योंकि सोये हुए सिंह के मुँह में स्वयं हाथी आकर नहीं गिरते ॥२९३॥

उद्योगेनेति। उद्योगेन चेष्टया एव कार्य्याणि सिध्यन्ति, मनोरथैः न, हि तथाहि गजाः सुप्तस्य सिंहस्य मुखे न हि निपतन्ति ॥२९३॥

अयोऽभेद्यमुपायेन द्रवतामुपनीयते।
लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारि वह्नेर्नियामकम् ॥२९४॥

अन्वयः—अभेद्यम् अयः उपायेन द्रवताम् उपनीयते। एतच्च लोकप्रसिद्धं वारि वह्नेः नियामकम् ॥२९४॥

व्याख्या—अभेद्यम् = अखण्डनीयम्, अयः = लोहम्, उपायेन = साधनेन, द्रवताम् = तरलताम्, नीयते = प्राप्यते। एतच्च, लोकप्रसिद्धम् = लोके विख्यातम्, यत्, वारि = सलिलम्, वह्नेः = अग्नेः, नियामकम् = निरोधको भवति ॥२९४॥

हिन्दी—ठोस लोहे को भी उपाय से पिघलाया जाता है। लोक में प्रसिद्ध है कि आग को भी पानी से बुताया जाता है ॥२९४॥

अय इति। अभेद्यम् अयः लौहम् उपायेन द्रवताम् उपनीयते प्राप्यते, एतच्च लोकप्रसिद्धं यत् वारि जलं वह्नेः नियामकं निवारकम् ॥२९४॥

उपायोपगृहीतेन तैनेतत् परिशोष्यते।
उपायेन पदं मर्ध्नि न्यस्यते मत्तहस्तिनाम् ॥२९५॥

अन्वयः—उपायोपगृहीतेन तेन एतत् परिशोष्यते। उपायेन मत्तहस्तिनां मूर्ध्नि पदं न्यस्यते ॥२९५॥

व्याख्या—उपायोपगृहीतेन = साधनस्यावलम्बनेन, तेन = अग्निना, च, एतत् = जलम्, परिशोष्यते = सर्वतोभावेन शुष्कतां नीयते, उपायेन = उद्यमेन, मत्तहस्तिनाम्—मत्तानाम् = प्रमत्तानाम्, हस्तिनाम् = गजानाम्, मूर्ध्नि = मस्तके, पदम् = चरणम्, न्यस्यते = उपस्थाप्यते ॥२९५॥

हिन्दी—क़िन्तु यदि उपाय का अवलम्बन किया जाय तो वही आग उलटे पानी को सुखा देने वाली हो जाती है। उपाय से ही मतवाले हाथी के माथे पर पैर रखा जा सकता है ॥२९५ ॥

उपायोपगृहीतेनेति। उपायोपगृहीतेन तेन वह्निना च एतत् वारि परिशोष्यते परिशेषं नीयते। उपायेन मत्तानां दन्तिनां मूर्ध्नि पदं न्यस्यते ॥ २९५ ॥

उपायेषूत्तमो भेदः षड्गुणेषु समाश्रयः।
कार्य्यौ द्वौ सर्वदा तौ तु नृपेण विजिगीषुणा ॥ २९६ ॥

अन्वयः—उपायेषु भेदः षड्गुणेषु समाश्रयः उत्तमः, विजिगीषुणा तौ द्वौ सर्वदा कार्यौ ॥२९६ ॥

व्याख्या—उपायेषु = उद्यमेषु, भेदः = उपजापः, षड्गणेषु = सामदानादिषु, मध्ये, तथा समाश्रयः = बलवतामाश्रयग्रहणम्, उत्तमः = श्रेष्ठः, विजिगीषुणा = विजयाभिलाषिणा भूपतिना, तौ = पूर्वोक्तौ, द्वौ = भेदसमाश्रयौ, तु, सर्वदा = सततम्, कार्यौ = अनुष्ठेयौ ॥ २९६ ॥

हिन्दी—विजयाभिलाषी राजा के लिए शत्रुसेना के बीच फूट डालना तथा सन्धि आदि षड्गुणों से बलवान् आश्रयदाता की शरण लेना उत्तम उपाय है ॥ २९६ ॥

उपायेष्विति। उपायेषु सामादिषु मध्ये भेदः तथा षड्गुणेषु मध्ये समाश्रयः उत्तमः श्रेष्ठः। विजिगीषुणा नृपेण तौ द्वौ भेदसमाश्रयौ तु सर्वदा कार्य्यौ ॥ २९६ ॥

ताभ्यां विना नैव कुर्य्यात् युद्धं राजा कदाचन ॥ २९७ ॥

अन्वयः—राजा ताभ्यां विना युद्धं कदाचन नैव कुर्यात् ॥ २९७ ॥

व्याख्या—राजा = नृपः, ताभ्याम् = पूर्वोक्ताभ्यां भेदमाश्रयाभ्याम्, विना = विहाय, युद्धम् = समरम्, कदाचन = कस्यामपि अवस्थायाम्, नैव, कुर्यात् = प्रारम्भं कुर्यात् ॥ २९७ ॥

हिन्दी—भेद और समाश्रय का सहारा लिये बिना किसी भी स्थिति में राजा युद्ध न करे ॥ २९७ ॥

ताभ्यामिति। राजा ताभ्यां भेदसमाश्रयाभ्यां विना युद्धं कदाचन नैव कुर्य्यात् ॥ २९७ ॥

परस्परं प्रातिकूल्यं रिपुसेनपमन्त्रिणाम्।
भवेद्यथा तथा कुर्य्यात् तत्प्रजायाश्च तत् स्त्रियाः ॥ २९८ ॥

अन्वयः—रिपुसेनपमन्त्रिणां तत् प्रजायाः तत् स्त्रियाः यथा परस्परं प्रातिकूल्यं भवेत् तथा कुर्यात् ॥ २९८ ॥

व्याख्या—रिपूणाम् = शत्रूणाम्, ये सेनपाः = सेनानायकाः, मन्त्रिगणाश्च = सचिववर्गाश्च, तेषां तथा, तत् = तेषाम्, प्रजायाश्च = जनानां मध्ये, तथा तत् = तेषाम्, स्त्रियाः = नार्यश्च, यथा = येन प्रकारेण, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, प्रातिकूल्यम् = प्रतिकूलताम्, भवेत् = स्यात्, तथा = तेन प्रकारेण, कुर्यात् = विदध्यात् ॥ २९८ ॥

हिन्दी—जिस तरह दुश्मन के सेनापति एवं मन्त्रियों के बीच अनबन हो जाय तथा शत्रुओं की प्रजा एव रानियों के बीच किंवा सेनानायक एवं मन्त्रियों का अपनी सन्तान या स्त्रियों के बीच मतभेद हो जाय, ऐसा काम करना चाहिए ॥ २९८ ॥

परस्परमिति। रिपूणां ये सेनपाः सेनापतयः मन्त्रिणश्च तेषां तथा तेषां प्रजायाश्च तथा तेषां स्त्रियाश्च यथा परस्परं प्रातिकूल्यं मनोभेदः भवेत् तथा कुर्य्यात् ॥ २९८ ॥

उपायान् षड्गुणान् वीक्ष्य शत्रोः स्वस्यापि सर्वदा।
युद्धं प्राणात्यये कुर्य्यात् सर्वस्वहरणे सति॥ २९९॥

अन्वयः—शत्रोः स्वस्यापि उपायान् षड्गुणान् सर्वदा वीक्ष्य प्राणात्यये तथा सर्वस्वहरणे सति युद्धं कुर्यात्॥ २९९॥

व्याख्या—शत्रोः = रिपोः, स्वस्यापि = आत्मनोऽपि, उपायान् = सामदानादीन्, तथा षड्गुणान् = सन्धिविग्रहादीन्, सर्वदा = सततम्, वीक्ष्य = अनुचिन्त्य, प्राणात्यये = प्राणविनाशकाले, सर्वस्वहरणे = सर्वधनापहरणकाले, आपतिते सति = समुपस्थिते सति, युद्धम् = समरम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्॥ २९९॥

हिन्दी—पहले दुश्मन और अपने बीच सामादि उपाय तथा सन्धि आदि षड्गुणों में जो उचित हो उसी का अवलम्बन करे। किन्तु प्राणसंकट या सर्वस्व अपहरण की स्थिति सामने आ जाय तभी युद्ध करे॥ २९९॥

उपायानिति। शत्रोः स्वस्य आत्मनः अपि उपायान् सामादीन् तथा षट् गुणान् सन्ध्यादीन् सर्वदा वीक्ष्य प्राणात्यये तथा सर्वस्वहरणे आपतिते सति युद्धं कुर्य्यात्॥ २९९॥

स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च गोविनाशेऽपि ब्राह्मणैः।
प्राप्ते युद्धे क्वचिन्नैव भवेदपि पराङ्मुखः॥ ३००॥

अन्वयः—स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ ब्राह्मणैः गोविनाशेऽपि च प्राप्ते युद्धे क्वचित् पराङ्मुखः नैव भवेत्॥ ३००॥

व्याख्या—स्त्रीणाम् = नारीणाम्, विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, अभ्युपपत्तौ = अनुग्रहार्थम्, तथा ब्राह्मणैः = विप्रैः सह, गोविनाशेऽपि = धेनुसंहारेऽपि उपस्थिते, प्राप्ते = आपतिते, युद्धे = समरे, क्वचित् = कदाचित्, पराङ्मुखः = विमुखः, नैव = नास्त्येव, भवेत् = स्यात्॥ ३००॥

हिन्दी—नारी एवं ब्राह्मणों पर अनुग्रह करने के लिए अथवा गो-ब्राह्मण का विनाश उपस्थित होने पर उनकी रक्षा के लिए ठने युद्ध से कभी भी विमुख नहीं होना चाहिए॥ ३००॥

स्त्रीति। स्त्रीणां विप्राणाञ्च अभ्युपपत्तौ अनुग्रहार्थं तथा ब्राह्मणैः सह गोविनाशे गोब्राह्मणविनाशे इत्यर्थः, उपस्थिते इत्यर्थः, प्राप्ते युद्धे आपतिते सङ्ग्रामे क्वचित् कदाचित् पराङ्मुखः नैव भवत्॥ ३००॥

युद्धमुत्सृज्य यो याति स देवैर्हन्यते भृशम्॥ ३०१॥

अन्वयः—यः युद्धम् उत्सृज्य याति सः देवैः भृशं हन्यते॥ ३०१॥

व्याख्या—यः = राजा, युद्धम् = सङ्ग्रामम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, याति = गच्छति, सः = राजा, देवैः = देवताभिः, भृशम् = अत्यर्थम्, हन्यते = विनश्यते॥ ३०१॥

हिन्दी—ऐसी स्थिति में युद्ध का मेदान छोड़कर जो राजा भाग जाता है, उसका देवगण शीघ्र सर्वनाश करते हैं॥ ३०१॥

युद्धमिति। यः युद्धम् उत्सृज्य याति पलायते, सः देवैः भृशम् अत्यर्थं हन्यते॥ ३०१॥

समोत्तमाधमैः राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्त्तेत सङ्ग्रामात् क्षात्रधर्ममनुस्मरन्॥ ३०२॥

अन्वयः—प्रजाः पालयन् राजा समोत्तमाधमैः आहूतः क्षत्रधर्मम् अनुस्मरन् सङ्ग्रामात् न निवर्त्तेत ॥ ३०२ ॥

व्याख्या—प्रजाः = जनाः, पालयन् = रक्षयन्, राजा = भूपः, समैः = तुल्यैः, उतमैः = उत्कृष्टैः, वा = अथवा, अधमैः = नीचैः, अरिभिः, आहूतः = आकारितः सन्, क्षत्रधर्मम् = क्षत्रियाणां कर्त्तव्यम्, अनुस्मरन् = ध्यायन्, सङ्ग्रामात् = युद्धात्, न = नहि, निवर्त्तेत = परावर्त्तेत ॥ ३०२ ॥

हिन्दी—प्रजा का पालन करते हुए राजा को यदि समान, अधिक या कम बलशाली दुश्मन ललकार दे तो फिर क्षत्रधर्म का स्मरण करते हुए उसे युद्ध से नहीं लौटना चाहिए ॥ ३०२ ॥

समेति। प्रजाः पालयन् राजा समैः समानैः उत्तमैः उत्कृष्टैः वा अधमैः शत्रुभिः आहूतः सन् क्षत्रधर्मम् अनुस्मरन् सङ्ग्रामात् न निवर्त्तेत ॥ ३०२ ॥

राजानञ्चावियोद्धारं ब्राह्मणञ्चाप्रवासिनम्।
भूमिरेतौ निर्गिलति सर्पो विलशयानिव ॥ ३०२ ॥

अन्वयः—सर्पः विलशयान् इव भूमिः अवियोद्धारं राजानम् अप्रवासिनं ब्राह्मणञ्च, एतौ निर्गिलति ॥ ३०२ ॥

व्याख्या—सर्पः = विषधरः, विलशयान् = गर्त्तशयान्, इव = यथा, भूमिः = पृथ्वी, अवियोद्धारम् = सङ्ग्रामविमुखम्, राजानम् = नृपम्, अप्रवासिनम् = प्रवासविमुखम्, ब्राह्मणम् = विप्रम्, एतौ = द्वौ, निर्गिलति = विनाशयति ॥ ३०२ ॥

हिन्दी—विल में रहने वाले जीवों को जैसे साँप निगल जाता है वैसे ही संग्राम से विमुख राजे तथा प्रवास से विमुख ब्राह्मणों को यह धरती निगल जाती है ॥ ३०२ ॥

राजानमिति। सर्पः विलशयान् गर्त्तशयान् इव भूमिः अवियोद्धारं युद्धविमुखं राजानम् अप्रवासिनं ब्राह्मणञ्च एतौ निर्गिलति नाशयतीत्यर्थः ॥ ३०२ ॥

ब्राह्मणस्यापि चापत्तौ क्षत्रधर्मेण वर्त्ततः।
प्रशस्तं जीवितं लोके क्षत्रं हि ब्रह्मसम्भवम् ॥ ३०४ ॥

अन्वयः—आपत्तौ क्षत्रधर्मेण वर्त्ततः ब्राह्मणस्यापि जीवितं लोके प्रशस्तम्। हि क्षत्रं ब्रह्मसम्भवम् ॥ ३०४ ॥

व्याख्या—आपत्तौ = विपदि, स्ववृत्त्याभावे, क्षत्रधर्मेण = राजन्यवृत्तिमवलम्ब्य, वर्त्ततः = जीवतः, ब्राह्मणस्यापि = विप्रस्यापि, जीवितम् = जीवनम्, लोके = संसारे, प्रशस्तम् = प्रशंसनीयम्। हि = यतः, क्षत्रम् = क्षत्रियम्, ब्रह्मसम्भवम् = विप्रोत्पन्नमेव ॥ ३०४ ॥

हिन्दी—विपत्तिकाल में जीविका का अभाव होने पर क्षत्रिय धर्म का अनुसरण करते हुए ब्राह्मणों का जीवित रहना भी संसार में उत्तम माना जाता है। क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति भी ब्राह्मणों से ही मानी गई है ॥ ३०४ ॥

ब्राह्मणस्येति। आपत्तौ आपदि स्ववृत्त्यनुपपत्तौ इत्यर्थः, क्षत्रधर्मेण क्षत्रियवृत्तिमाश्रित्य इत्यर्थः, वर्त्ततः जीवतः ब्राह्मणस्यापि जीवितं लोके प्रशस्तं, हि यतः क्षत्रं ब्रह्मसम्भवं ब्रह्मोत्पन्नम् अतः ब्राह्मणस्य तत् कर्मकरणं न विरुद्धमिति भावः ॥ ३०४ ॥

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत्।
विसृजन् श्लेष्मपित्तानि कृपणं परिदेवयन्॥ ३०५ ॥
अविक्षतेन देहेन प्रलयं योऽधिगच्छति।
क्षत्रियो नास्य तत् कर्म प्रशंसन्ति पुराविदः ॥ ३०६ ॥

अन्वयः—शय्यायां मरणं भवेत् एषः क्षत्रियस्य अधर्मः। श्लेष्मपित्तानि विसृजन् कृपणं परिदेवयन् अविक्षतेन देहेन प्रलयं यः अधिगच्छति पुराविदः अस्य तत् कर्म न प्रशंसन्ति ॥ ३०५-३०६ ॥

व्याख्या—शय्यायाम् = पर्यङ्के, यत् मरणम् = मृत्युः, भवेत् = स्यात्, एषः क्षत्रियस्य, अधर्मः = पापः। यः = क्षत्रियः, श्लेष्माणि = कफाः, पित्तानि = पलज्वलाः, विसृजन् = परित्यजन्, तथा कृपणम् = कदर्यम्, परिदेवयन् = विलपन् सन्, अविक्षतेन = अखण्डितेन, देहेन = शरीरेण, प्रलयम् = लयं गच्छति, पुराविदः = इतिहासविदः, अस्य = क्षत्रियस्य, तत् = पूर्वोक्तम्, कर्म = शय्यामरणरूपं कृत्यम्, न = नहि, प्रशंसन्ति = प्रशंसनीयो भवति ॥ ३०५-३०६ ॥

हिन्दी—बिछावन पर पड़े-पड़े, देह से कफ और पित्त को देह से अलग करते हुए दीन-हीन की तरह रोते-कलपते क्षत्रियों के लिए मरना अधर्म है। शरीर के क्षत-विक्षत हुए बिना जो क्षत्रिय मरता है, इतिहासकार उसकी प्रशंसा नहीं करते ॥ ३०५-३०६ ॥

अधर्म इति। अविक्षतेनेति। शय्यायां मरणं भवेत् इति यत् एषः क्षत्रियस्य अधर्मः। यः क्षत्रियः श्लेष्मपित्तानि श्लेष्माणि पित्तानि च विसृजन् त्यजन् तथा कृपणं परिदेवयन् विलपन् सन् अविक्षतेन देहेन प्रलयं नाशं गच्छति, पुराविदः इतिहासज्ञाः पण्डिताः अस्य क्षत्रियस्य तत् कर्म शय्यामरणरूपं न प्रशंसन्ति ॥ ३०५-३०६ ॥

न गेहे मरणं शस्तं क्षत्रियाणां विना रणात्।
शौण्डीराणामशौण्डीरमधर्मं कृपण हि तत्॥ ३०७ ॥

अन्वयः—क्षत्रियाणां रणात् विना गेहे मरणं न शस्तम्। हि शौण्डीराणां तत् कृपणम् अशौण्डीरम् अधर्मम् ॥ ३०७ ॥

व्याख्या—क्षत्रियाणाम् = राजन्यानाम्, रणात् = सङ्ग्रामात्, विना = विहाय, गेहे = गृहे, मरणम् = निधनम्, न = नहि, शस्तम् = प्रशस्तम्। हि = यतः, शौण्डीराणाम् = अभिमानिनां क्षत्रियाणाम्, तत् = पूर्वोक्तम्, कृपणम् = दीनम्, आचरणम्, अशौण्डीरम् = स्वाभिमानविनष्टकरम्, अधर्मम् = पापकरञ्च भवति ॥ ३०७ ॥

हिन्दी—एक क्षत्रिय का जंग के मैदान से अलग घर में मरण प्रशंसनीय नहीं होता है। क्योंकि एक स्वाभिमानी वीर की वैसी दीन एवं कायर की मौत पाप समझा गया है ॥ ३०७ ॥

नेति। रणात् विना गृहे मरणं न शस्तं न प्रशस्तम्। हि यतः शोण्डीराणां गर्वशालिनां क्षत्रियाणां तत् कृपणं दीनम् आचरणम् अशौण्डीरं गर्वक्षयकरम् अधर्मं पापकरञ्च ॥ ३०७ ॥

रणेष्वकदनं कृत्वा ज्ञातिभिः परिवारितः।
शस्त्रास्त्रैः सुविनिर्भिन्नः क्षत्रियो वधमर्हति ॥ ३०८ ॥

अन्वयः—क्षत्रियः ज्ञातिभिः परिवारितः रणेषु अकदनं कृत्वा शस्त्रास्त्रैः सुविनिर्भिन्नः वधम् अर्हति ॥ ३०८ ॥

व्याख्या—क्षत्रियः = राजन्यः, ज्ञातिभिः = बान्धवैः, परिवारितः = निवारितः सन्, रणेषु = युद्धेषु, अकदनम् = अहननम्, कृत्वा = विधाय, शस्त्रास्त्रैः = प्रहरणैः, क्षतविक्षतैः, वधम् = हननम्, अर्हति = योग्यो भवति ॥ ३०८ ॥

हिन्दी—यदि क्षत्रिय युद्ध में दुश्मनों को मार न सके तो उसका बन्धुओं के साथ क्षत-विक्षत देह से युद्ध में मारा जाना ही उचित है ॥ ३०८ ॥

रणेष्विति। क्षत्रियः ज्ञातिभिः स्वगणैः परिवारितः सन् रणेषु सङ्ग्रामेषु अकदनं शत्रोरदलनं कृत्वा शस्त्रास्त्रैः सुविनिर्भिन्नः सुविक्षतः सन् वधम् अर्हति ॥ ३०८ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युद्ध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ३०८ ॥

अन्वयः—आहवेषु मिथः अन्योऽन्यं जिघांसन्तः परं शक्त्या युद्ध्यमानाः अपराङ्मुखाः स्वर्गं यान्ति ॥ ३०८ ॥

व्याख्या—आहवेषु = सङ्ग्रामेषु, मिथः = एकान्ते, अन्योऽन्यम् = परस्परम्, जिघांसन्तः = हन्तुमिच्छन्तः, परम् = अत्यन्तम्, शक्त्या = बलेन, युद्ध्यमानाः = युद्धं कुर्वाणाः, अपराङ्मुखाः = विमुखाः, स्वर्गम् = देवलोकम्, यान्ति = व्रजन्ति ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—क्षत्रिय राजे युद्ध के मैदान में एक-दूसरे पर घात लगाकर अन्तिम क्षण तक लड़ते हैं और युद्धभूमि से पीछे हटे बिना लड़ मिटते हैं तथा वे स्वर्ग जाते हैं ॥ ३०९ ॥

आहवेष्विति। आहवेषु युद्धेषु मिथः एकान्ते अन्योऽन्यं परस्परम् जिघांसन्तः हन्तुमिच्छन्तः परम् अत्यर्थं शक्त्या युध्यमानाः अपराङ्मुखाः अनिवृत्ताः स्वर्गं यान्ति ॥ ३०९ ॥

भर्त्तुरर्थे च यः शूरो विक्रमेद्वाहिनीमुखे ।
भयान्न विनिवर्त्तेत तस्य स्वर्गो ह्यनन्तकः ॥ ३१० ॥

अन्वयः—यः शूरः अर्थे वाहिनींमुखे विक्रमेत् भयात् न निवर्त्तेत, तस्य अनन्तकः स्वर्गः हि ॥ ३१० ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, शूरः = वीरः, भर्त्तुः = स्वामिनः, अर्थे = निमित्तम्, वाहिनीमुखे = सैन्यानामग्रे, विक्रमेत् = पराक्रमं कुर्यात्, भयात् = भीत्याः, न = नहि, निवर्तेत = विमुखो भवेत्, तस्य = राज्ञः, अन्तकः = अन्तहीनः, स्वर्गः = नाकः, मिलति ॥ ३१० ॥

हिन्दी—जो वीर पुरुष डरे बिना विक्रमपूर्ण सेना के आगे रहकर स्वामी के निमित्त लड़ मिटता है, उसे अनन्त काल तक स्वर्ग मिलता है ॥ ३१० ॥

भर्त्तुरिति। यः शूरः वीरः भर्त्तुः स्वामिनः अर्थे निमित्तं वाहिनीमुखे सेनानामग्रे विक्रमेत् भयात् न निवर्त्तेत च, तस्य अनन्तकः अक्षयः स्वर्गः हिशब्दचावधारणार्थकः ॥ ३१० ॥

आहवे निहतं शूरं न शोचेत कदाचन ।
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यः पूतो याति सुलोकताम् ॥ ३११ ॥

अन्वयः—आहवे निहतं शूरं कदाचन न शोचेत । सर्वपापेभ्यः निर्मुक्तः पूतः सन् सुलोकतां याति ॥ ३११ ॥

व्याख्या—आहवे = सङ्ग्रामे, निहतं = मृतम्, शूरं = वीरं, कदाचन = कदापि, न = नहि, शोचेत = चिन्तेत। यतः, सः = असौ, सर्वपापेभ्यः = सकलेभ्यः अधर्मेभ्यः, निर्मुक्तः = मुक्तः सन्, पूतः सन् = पवित्रो भूत्वा, सुलोकताम् = पुण्यलोके, याति = प्रयाति ॥ ३११ ॥

हिन्दी—युद्ध में मारे गये वीरों के लिए कभी भी शोक नहीं मनाना चाहिए, क्योंकि वह सब पापों से छूटकर पवित्र होने के कारण सुन्दर लोक पाता है ॥ ३११ ॥

आहवे इति। आहवे युद्धे निहतं शूरं कदाचन न शोचेत, यतः सः सर्वपापेभ्यः निर्मुक्तः रणकर्मणेति भावः, अत एव पूतः सन् सुलोकतां पुण्यवतां लोकमित्यर्थः, याति प्राप्नोति ॥ ३११ ॥

वराप्सरःसहस्राणि शूरमायोधने हतम्।
त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्त्ता भवेदिति ॥ ३१२ ॥

अन्वयः—वराप्सरःसहस्राणि त्वरमाणाः आयोधने हतं शूरम् अयं मम भर्त्ता भवेत् इति प्रधावन्ति ॥ ३१२ ॥

व्याख्या—वराप्सरःसहस्राणि—वराणाम् = उत्तमानाम्, अप्सरसाम् = स्वर्वेश्यानां, सहस्राणि = दशाधिकशतानि, त्वरमाणाः = सत्वराः, सत्यः, आयोधने = सङ्ग्रामे, हतम् = मृतम्, शूरम् = वीरम्, अयं = एषः, ममः = मदीयः, भर्त्ता = स्वामी, भवेत् = स्यात्, इति = इत्थं, प्रधावन्ति = व्रजन्ति ॥ ३१२ ॥

हिन्दी—युद्ध में वीरता के साथ लड़कर मरे हुए योद्धा की ओर हजारों अप्सराएँ तेजी से दौड़ पड़ती हैं और चाहती हैं कि वह हमारा पति बने ॥ ३१२ ॥

वरेति। वराणां श्रेष्ठानाम् अप्सरसां सहस्राणि त्वरमाणाः सत्वराः सत्यः आयोधने युद्धे हतं शूरम् अयं मम भर्त्ता भवेदिति प्रधावन्ति ॥ ३१२ ॥

मुनिभिर्दीर्घतपसा प्राप्यते यत् पदं महत्।
युद्धाभिमुखनिहतैः शूरैस्तद् द्रागवाप्यते ॥ ३१३ ॥

अन्वयः—मुनिभिः दीर्घतपसा यत् महत् पदं प्राप्यते तत् युद्धाभिमुखनिहतैः शूरैः द्राक् अवाप्यते ॥ ३१४ ॥

व्याख्या—मुनिभिः = ऋषिभिः, दीर्घतपसा—दीर्घेण = महता, तपसा = तपस्यया, यत्, महत् = श्रेष्ठं, पदं = स्थानं, प्राप्यते = लभते, तत् = पदं, युद्धाभिमुखनिहतैः—युद्धे = सङ्ग्रामे, अभिमुखं = सम्मुखम्, यथा स्यात् तथा, निहतैः = मृतैः, शूरैः = वीरैः, द्राक् = झटिति, अवाप्यते = लभते ॥ ३१३ ॥

हिन्दी—यति-मुनि लम्बी तपस्या के बाद जिस उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं, लड़ाई के मैदान में आमने-सामने लड़कर मारे गये शूरमा शीघ्र ही उस स्थान को पा लेते हैं ॥ ३१३ ॥

मुनिभिरिति। मुनिभिः दीर्घेण महता तपसा यत् महत्पदं प्राप्यते, तत् युद्धाभिमुखनिहतैः युद्धे अभिमुखं यथा तथा निहतैः शूरैः द्राक् झटिति अवाप्यते प्राप्यते ॥ ३१३ ॥

एतत्तपश्च पुण्यञ्च धर्मश्चैव सनातनः।
चत्वार आश्रमास्तस्य यो युद्धे न पलायते ॥ ३१४ ॥

अन्वयः—यः युद्धे न पलायते तत् एतत् तपः पुण्यं धर्मं च सनातनः, तस्य चत्वारः आश्रमाः ॥ ३१४

व्याख्या—यः = पुरुषः, युद्धे = सङ्ग्रामे, न = नहि, पलायते = पलायनं कुरुते, तत्तत् = तत्, एतत् = सङ्ग्रामात् अपलायनम्, तपः = तपश्चरणम्, पुण्यं = धर्मं, सनातनः = शाश्वतः, धर्मः, तथा चत्वारः = चतुःसंख्यकाः, आश्रमाः = ब्रह्मचर्यादयः, तज्जनितधर्मानुष्ठानम् इत्यर्थः ॥ ३१४ ॥

हिन्दी—जो लड़ाई के मैदान से नहीं भागता है उसके लिए वही तप, पुण्य, सनातन धर्म तथा चारों आश्रमों के अनुकूल धर्माचरण होता है ॥ ३१४ ॥

एतदिति। यः युद्धे न पलायते, तत्तत् एतत् युद्धादपलायनमित्यर्थः, तपः तपश्चरणं पुण्यं सनातनः नित्यः धर्मः तथा चत्वारः आश्रमाः चतुराश्रमजनितधर्मानुष्ठानमित्यर्थः ॥ ३१४ ॥

न हि शौर्य्यात् परं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
शूरः सर्वं पालयति शूरे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३१५ ॥

अन्वयः—त्रिषु लोकेषु शौर्यात् परं किञ्चित् न हि विद्यते। यतः शूरः सर्वं जनं पालयति शूरे च सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३१५ ॥

व्याख्या—त्रिषु लोकेषु = त्रिलोकेषु, शौर्यात् = वीर्यात्, परम् = विशिष्टम्, किञ्चित् = किमपि, न हि = नैव, विद्यते = अस्ति। यतः, शूरः = वीरः, सर्वम् = सकलम्, जनम् = लोकम्, पालयति = पोषयति, शूरे = वीरे, च = पुनः, सर्वम् = सकलम्, प्रतिष्ठितम् = स्थापितम् ॥ ३१५ ॥

हिन्दी—वीरता से बढ़कर कोई वस्तु उत्तम नहीं है। क्योंकि वीर व्यक्ति ही सबों का पालन करता है और वीर में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है ॥ ३१५ ॥

नेति। त्रिषु लोकेषु शौर्य्यात् परं किञ्चित् न हि विद्यते, यतः शूरः सर्वं जनं पालयति, शूरे च सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३१५ ॥

चराणामचरा अन्नमदंष्ट्रा दंष्ट्रिणामपि।
अपाणयः पाणिमतामन्नं शूरस्य कातराः ॥ ३१६ ॥

अन्वयः—चराणाम् अचराः अन्नं, दंष्ट्रिणाम् अदंष्ट्राः, अन्नं, पाणिमताम् अपाणयः तथा शूरस्य कातराः अन्नम् ॥ ३१६ ॥

व्याख्या—चराणाम् = मानवादीनाम्, अचराः = जडाः वृक्षादयः, अन्नम् = भक्ष्यम्, दंष्ट्रिणाम् = सिंहव्याघ्रादीनाम्, अदंष्ट्रा = गोमहीष्यादयः, अन्नम्, पाणिमताम् = करवताम्, अपाणयः = करहीनाः, अन्नम्, तथा; शूरस्य = वीरस्य, कातराः = दीनाः, अन्नम् ॥ ३१६ ॥

हिन्दी—चर के लिए अचर भक्ष्य हैं, दाँत वाले जीवों के लिए अदन्त पशु भक्ष्य हैं, हाथ-पैर वाले जीवों के लिए बिना हाथ-पैर वाले जीव तथा वीरों के लिए कायर व्यक्ति भक्ष्य होते हैं ॥ ३१६ ॥

चराणामिति। चराणां गोमनुष्यादीनाम् अचराः व्रीहियवादयः अन्नं, दंष्ट्रिणां व्याघ्रादीनाम् अदंष्ट्राः गवादयः अन्नं, पाणिमतां हस्तवताम् अपाणयः पाणिरहिताः अन्नं, तथा शूरस्य वीरस्य कातराः दुर्बलाः अन्नम् ॥ ३१६ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तो यो रणे चाभिमुखं हतः ॥ ३१७ ॥

अन्वयः—यः योगयुक्तः परिव्राड् यश्च रणे अभिमुखं हतः, इमौ द्वौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ भवतः ॥ ३१७ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, योगयुक्तः = योगसम्पनः, परिव्राट् = संन्यासी, यश्च = पुनः, यः पुरुषः, रणे = सङ्ग्रामे, अभिमुखम् = सम्मुखम्, हतः = मृतः, इमौ = एतौ, द्वौ = उभौ, पुरुषौ = जनौ, लोके = संसारे, सूर्यमण्डलभेदिनौ = सूर्यमण्डलादपि उत्कृष्टस्थानं प्राप्तकर्त्तारौ, भवतः = स्तः ॥ ३१७ ॥

हिन्दी—योगी और संन्यासी तथा युद्ध में आमने-सामने लड़कर मरने वाला वीर पुरुष; ये दोनों ही संसार में सूर्यलोक का भेदन करने वाले होते हैं ॥ ३१७ ॥

द्वाविति। यः योगयुक्तः योगी परिव्राट् चतुर्थाश्रमी यश्च रणे अभिमुखं हतः, इमौ द्वौ पुरुषौ लोके जगति सूर्य्यमण्डलभेदिनौ भवतः सूर्य्यलोकादपि उत्कृष्टं लोकं प्राप्नुत इत्यर्थः ॥ ३१७ ॥

आत्मानं गोपयेच्छक्तो वधेनाप्याततायिनः ।
सुविद्यब्राह्मणगुरोर्युद्धे श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ३१८ ॥

अन्वयः—श्रुतिनिदर्शनात् युद्धे आततायिनः सुविद्यब्राह्मणगुरोरपि वधेन आत्मानं गोपयेत् ॥ ३१८ ॥

व्याख्या—श्रुतिनिदर्शनात् = स्मृतिवचनात्; यथा—'गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' ॥ इति । (मनुस्मृतौ) शक्तः = बलवान् जनः समर्थो वा, युद्धे = सङ्ग्रामे, आततायिनः = वधोद्यतस्य; तद्यथा—'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः' ॥ सुविद्यस्य = विद्यावतः, ब्राह्मणस्य = विप्रस्य, गुरोः = आचार्यस्य, अपि, वधेन = हननेन, आत्मानं = स्वम्, गोपयेत् = रक्षेत् ॥ ३१८ ॥

हिन्दी—संग्राम में सशक्त व्यक्ति आत्मरक्षा के लिए वधोद्यत विद्वान् ब्राह्मण हो या गुरु उसकी हत्या कर देनी चाहिए। यह श्रुति-स्मृतिसम्मत बातें हैं ॥ ३१८ ॥

आत्मानमिति। श्रुतिनिदर्शनात् वेदवचनात् शक्तः शक्तिमान् जनः युद्धे आततायिनः वधोद्यतस्य 'आततायी वधोद्यतः' इत्यमरः। सुविद्यस्य ब्राह्मणस्य गुरोरपि वधेन आत्मानं गोपयेत् रक्षेत् । उक्तञ्च मनुना—'गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' ॥ इति । आततायनिश्च उक्ताः यथा—'अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः' ॥ इति ॥ ३१८ ॥

आचार्य्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापापदर्शिनः ।
नैते महाभये प्राप्ते सम्प्रष्टव्याः कथञ्चन ॥ ३१९ ॥

अन्वयः—महाभये प्राप्ते कारुणिकाः अपापदर्शिनः प्राज्ञाः आचार्याः—एते कथञ्चन न सम्प्रष्टव्याः वै ॥ ३१९ ॥

व्याख्या—महाभये = विनाशकाले, प्राप्ते = उपस्थिते सति, कारुणिकाः = कृपावन्तः दयालवो वा, अपापदर्शिनः = पापरहिताः, प्राज्ञाः = प्रकर्षज्ञानवन्तः, आचार्याः = गुरवः, एते, कथञ्चन = कदापि, न = नहि, सम्प्रष्टव्याः = प्रश्न न कर्त्तव्याः, वै = इति निश्चयेन ॥ ३१९ ॥

हिन्दी—शत्रुसंकट उपस्थित हो जाने पर दयालु, निष्पाप आचार्यों से प्रतिकार का उपाय कभी नहीं पूछना चाहिए॥३१९॥

आचार्य्या इति। महाभये प्राप्ते उपस्थिते सति कारुणिकाः दयावन्तः अपापदर्शिनः निष्पापाः प्राज्ञाः आचार्य्याः गुरवश्च एते कथञ्चन न सम्प्रष्टव्याः तेषु पृष्टेषु प्रतीकारस्य असम्भवादिति भावः॥३१९॥

प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च।
कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३२०॥

अन्वयः—विचित्रेषु प्रासादेषु गोष्ठीषु उपवनेषु विचित्राः कथाः कुर्वाणाः पण्डिताः तत्र शोभनाः॥३२०॥

व्याख्या—विचित्रेषु = आश्चर्यजनकेषु, प्रासादेषु = राजभवनेषु, गोष्ठीषु = परिषत्सु, तथा उपवनेषु = उद्यानेषु, विचित्राः = विलक्षणाः, कथाः = वार्त्ताः, कुर्वाणाः, पण्डिताः = विज्ञजनाः, तत्र = तस्मिन् स्थानेषु, शोभनाः = कान्तिं लभन्ते॥३२०॥

हिन्दी—विलक्षण राजभवनों में, सभा-समितियों में तथा प्रमोदवनों में बैठकर ज्ञानीजन कथा कहते हुए शोभा पाते हैं॥३२०॥

प्रासादेष्विति। विचित्रेषु प्रासादेषु राजभवनेषु गोष्ठीषु सभासु तथा उपवनेषु विनोदनस्थानेषु इति भावः। विचित्राः कथाः कुर्वाणाः पण्डिताः तत्र तेषु तेषु प्रदेशेषु इत्यर्थः, शोभनाः शोभां प्राप्नुवन्ति इत्यर्थः॥३२०॥

बहून्याश्चर्य्यरूपाणि कुर्वाणा जनसंसदि।
ईड्यास्ते चोपसन्धाने पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३२१॥

अन्वयः—जनसंसदि बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वाणाः उपसन्धाने ते च पण्डिताः ईड्याः तत्र शोभनाः॥३२१॥

व्याख्या—जनसंसदि–जनानाम् = लोकानाम्, संसदि = सभासु, बहूनि = अधिकानि, आश्चर्यरूपाणि = विलक्षणकार्याणि, कुर्वाणाः = सम्पाद्यमाणाः, उपसन्धाने = तत्त्वनिर्णये, ते च पण्डिताः = सुधयः, ईड्याः = पूजनीयाः, तत्र = तस्मिन् विषये, शोभनाः = कान्तिसम्पन्नाः भवन्ति॥३२१॥

हिन्दी—जनसभा में बहुत सारे आश्चर्यजनक कार्यों के सम्पादन में दक्ष तथा तत्त्वनिर्णय करने में प्रशंसित पंडितगण शोभा पाते हैं॥३२१॥

बहूनीति। जनसंसदि जनानां सभासु बहूनि आश्चर्यरूपाणि कर्माणीत्यर्थः, कुर्वाणाः उपसन्धाने तत्त्वनिर्णये ते च पण्डिताः ईड्याः पूज्याश्च तत्र विषये शोभनाः॥३२१॥

परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु च।
हस्त्यश्वरथचर्य्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि॥३२२॥
गोधनेषु प्रतोलीषु स्वयंवरमुखेषु च।
अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः॥३२३॥

अन्वयः—परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु हस्त्यश्वरथचर्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि गोधनेषु प्रतोलीषु स्वयंवरमुखेषु च अन्नसंस्कारदोषेषु ये पण्डिताः तत्र शोभनाः॥३२२-३२३॥

व्याख्या—परेषां = रिपूणाम्, विवरज्ञाने = छिन्द्रावबोधे, मनुष्याणाम् = नराणाम्, चरितेषु = चरित्रेषु, च = पुनः, हस्तिनाम् = गजानाम्, अश्वानां = घोटकानां, रथानाञ्च = स्यन्दनानाम्, चर्यासु = प्रक्रियासु, खराणां = वैशाखनन्दनानाम्, उष्ट्राणाम् = क्रमेलकानाम्, अजानाम् = छागानाम्, अवीनां = मेषानां, कर्मणि = कार्याणि, गोधनेषु = धेनुधनेषु, प्रतोलीषु = रथ्यासु, स्वयंवरमुखेषु = स्वयंवरकृत्येषु, तथा अन्नसंस्कारदोषेषु = पाकप्रक्रियाजन्यदोषेषु, ये. पण्डिताः = विज्ञाः, ते = तत्र, तस्मिन् विषयेषु, शोभनाः = शोभासम्पन्नाः भवन्ति ॥ ३२२-३२३ ॥

हिन्दी—दुश्मनों के दोष जानने में मनुष्यों के चरित्र हाथी, घोड़े और रथ सम्बन्धी गदहा, ऊँट, बकरी, भेड़ संबंधी कामों को जानने में एवं गोधन, गली, स्वयंवर तथा रसोई बनाने संबंधी दोषों को जानने में जो विशेषज्ञ हैं, उनकी शोभा उन्हीं विषयों में होती है ॥ ३२२-३२३ ॥

परेषामिति । गोधनेष्विति । परेषां शत्रूणां विवरज्ञाने छिद्रावबोधे, मनुष्याणां चरितेषु, हस्तिनाम् अश्वानां रथानाञ्च चर्य्यासु प्रक्रियासु, खराणां गर्दभानाम् उष्ट्राणाम् अजानाम् अवीनां मेषाणाञ्च कर्मणि, गोधनेषु प्रतोलीषु रथ्यासु, स्वयंवरमुखेषु स्वयंवरप्रभृतिषु तथा अन्नसंस्कारदोषेषु रन्धनविषयकदोषेषु ये पण्डिताः निपुणाः ते तत्र तेषु तेषु विषयेषु शोभनाः ·शोभां प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ३२२-३२३ ॥

पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः ।
अरेश्चित्तगुणान् ज्ञात्वा न सैन्ये भङ्गशङ्कया ।
विधीयतां तथा नीतिर्यथा वध्यो भवेत् परः ॥ ३२४ ॥

अन्वयः—परेषां गुणवादिनः पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा अरेः चित्तगुणान् ज्ञात्वा भङ्गशङ्कया तथा नीतिः विधीयतां यथा परः वध्यः भवेत् ॥ ३२४ ॥

व्याख्या—परेषाम् = रिपूणाम्, गुणवादिनः = गुणप्रशंसकाः, पण्डितान् = विदुषः, पृष्ठतः कृत्वा = समुपेक्ष्य, अरेः = रिपोः, चित्तगुणान् = मनोभावान्, ज्ञात्वा = अवबुध्य, भङ्गशङ्कया = युद्धात् सैन्यभङ्गो मा भूदिति, शङ्कया = सन्दिग्धत्वेन, तथा = तेन प्रकारेण, नीतिः = रणकौशलम्, विधीयताम् = क्रियताम्, यथा = येन प्रकारेण, परः = शत्रुः, वध्यः = हन्तव्यः, भवेत् = स्यात् ॥ ३२४ ॥

हिन्दी—शत्रुओं के गुणप्रशसंकों की अवहेलना कर, दुश्मनों के मनोभावों की जानकारी लेकर युद्ध में सेना के पैर उखड जायेंगे—इसकी चिन्ता छोड़कर ऐसी नीति का सहारा लेना चाहिए ताकि दुश्मन मारा जा सके ॥ ३२४ ॥

पण्डितानामिति । परेषां शत्रूणां गुणवादिनः गुणपक्षपातिनः पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा अविगणय्य इत्यर्थः, अरेः शत्रोः चित्तगुणान् मनोभावान् ज्ञात्वा भङ्गशङ्कया रणात् भग्नो मा भूदिति शङ्कया अभिप्रायेण तथा नीतिः विधीयतां यथा परः शत्रु वध्यः भवेत् ॥ ३२४ ॥

आततायित्वमापन्नो ब्राह्मणः शूद्रवत् स्मृतः ।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ ३२५ ॥

अन्वयः—आततायित्वम् आपन्नः ब्राह्मणः शूद्रवत् स्मृतः । आततायिवधे हन्तुः कश्चन दोषः न भवति ॥ ३२५ ॥

व्याख्या—आततायित्वम् = वधोद्यतभावम्, आपन्नम् = प्राप्तम्, ब्राह्मणः = विप्रः, शूद्रवत् = वृषल इव, स्मृतः = कथितः। आततायिनः = वधोद्यतब्राह्मणस्य, वधे = हनने, हन्तुः = हननकर्त्तुः, कश्चन = किमपि, दोषः = पापः, न = नहि, भवति ॥ ३२५ ॥

हिन्दी—आततायी ब्राह्मण शूद्र की तरह कहा गया है। अतः ऐसे आततायी ब्राह्मण को मारने में मारने वाले को कोई दोष नहीं है ॥ ३२५ ॥

आततायित्वमिति। आततायित्वम् आततायिभावमापन्नः प्राप्तः वधोद्यत इत्यर्थः, ब्राह्मणः शूद्रवत् स्मृतः ॥ ३२५ ॥

उद्यम्य शस्त्रमायान्तं भ्रूणमप्याततायिनम्।
निहत्य भ्रूणहा न स्यादहत्वा भ्रूणहा भवेत्॥ ३२६ ॥

अन्वयः—शस्त्रम् उद्यम्य आयान्तम् आततायिनं भ्रूणं निहत्य भ्रूणहा न स्यात्, अहत्वा भ्रूणहा भवेत् ॥ ३२६ ॥

व्याख्या—शस्त्रम् = आयुधम्, उद्यम्य = उत्थाप्य, आयान्तम् = आक्रमन्तम्, आततायिनम् = वधोद्यतम्, भ्रूणम् = बालकमपि, निहत्य = हननं कृत्वा, भ्रूणहा = शिशुहन्ता, न = नहि, स्यात् = भवेत्, अहत्वा = तमनिहत्य, भ्रूणहा = शिशुहन्ता, भवेत् ॥ ३२६ ॥

हिन्दी—हथियार उठाकर मारने के लिए आते हुए बालक की हत्या कर देने पर भी भ्रूणहा नहीं कहा जा सकता है, प्रत्युत ऐसे आततायी बालक को नहीं मारने से ही भ्रूणहत्या के पाप का भागी समझा जाता है ॥ ३२६ ॥

उद्यम्येति। शस्त्रम् उद्यम्य आयान्तम् आततायिनं भ्रूणं बालकमपि निहत्य भ्रूणहा न स्यात् अहत्वा तु भ्रूणहा भवेत् ॥ ३२६ ॥

उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत्।
यो हन्यात् समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायितम्।
ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ॥ ३२७ ॥

अन्वयः—यः समरे उद्यतेषुं क्रुद्धं क्षत्रबन्धुवत् युध्यन्तम् अपलायितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा हन्यात् तस्य ब्रह्महत्या न स्यात्; धर्मेषु इति निश्चयः ॥ ३२७ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, समरे = सङ्ग्रामे, उद्यतेषुम् = उत्थापितास्त्रं, क्रुद्धम् = अतिकुपितं, क्षत्रबन्धुवत् = क्षत्रियमिव, युध्यन्तम् = रणं कुर्वन्तम्, अपलायितम् = पलायनं विना, ब्राह्मणं = विप्रं, दृष्ट्वा = अवलोक्य, हन्यात् = हननं कुर्यात्, तस्य = जनस्य, ब्रह्महत्या = विप्रहननदोषः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, धर्मेषु = धर्मग्रन्थेषु, इति = एवम्, निश्चयः = निर्णयः ॥ ३२७ ॥

हिन्दी—लड़ाई के मैदान में क्षत्रियों की तरह डटकर मुकाबला करते हुए हथियार उठाये अत्यन्त कुपित ब्राह्मण की जो हत्या कर देता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता; यह धर्मशास्त्र का सिद्धान्त है ॥ ३२७ ॥

उद्यतेषुमिति। यः समरे उद्यतेषुम् उद्यतास्त्रं क्रुद्धं क्षत्रबन्धुवत् क्षत्रियमिव युध्यन्तम् अपलायितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा हन्यात्, तस्य ब्रह्महत्या न स्यात्, धर्मेषु धर्मशास्त्रेषु इति निश्चयः ॥ ३२७ ॥

अपसरति यो युद्धाज्जीवितार्थी नराधमः।
जीवन्नेव मृतः सोऽपि भुङ्क्ते राष्ट्रकृतं त्वघम्॥ ३२८ ॥

अन्वयः—यः नराधमः जीवितार्थी सन् युद्धात् अपसरति, सोऽपि जीवन्नेव मृतः राष्ट्रे कृतम् अघं तु भुङ्क्ते ॥ ३२८ ॥

व्याख्या—यः = जनः, नराधमः = पापीपुरुषः, जीवितार्थी = जीवनाभिलाषी सन्, युद्धात् = रणात्, अपसरति = पलायते, सोऽपि = असावपि, जीवन्नेव = जीवितेऽपि, मृतः = हतः सन्, राष्ट्रे = देशे, कृतम् = निष्पादितम्, अघम् = पापम्, तु, भुङ्क्ते = भक्षणं कुरुते ॥ ३२८ ॥

हिन्दी—जान बचाने के लिए मैदान छोड़कर भागने वाला नराधम जिन्दा रहकर भी मरा हुआ है। ऐसा आदमी राष्ट्र में किये गये सम्पूर्ण पाप को अकेले भोगता है ॥ ३२८ ॥

अपसरति इति। यः नराधमः जीवितार्थी सन् युद्धात् अपसरति सः जीवन्नेव मृतः सन् राष्ट्रे राज्ये कृतम् अघं पापं भुङ्क्ते ॥ ३२८ ॥

मित्रं वा स्वामिनं त्यक्त्वा निर्गच्छति रणाच्च यः।
सोऽन्ते नरकमाप्नोति सजीवो निन्द्यतेऽखिलैः ॥३२९ ॥

अन्वयः—यः मित्रं स्वामिनं त्यक्त्वा रणात् निर्गच्छति च सः अन्ते नरकम् आप्नोति, सजीवः अखिलैः निन्द्यते ॥ ३२९ ॥

व्याख्या—यः = सैनिकः, मित्रं = सुहृदम्, वा = अथवा, स्वामिनम् = प्रभुम्, त्यक्त्वा = विहाय, रणात् = सङ्ग्रामात्, निर्गच्छति = निस्सरति, च = पुनः, सः = असौ, अन्ते = अन्तिमकाले, नरकम् = निरयम्, आप्नोति = प्राप्नोति, सजीवः = जीवन्नपि, अखिलैः = सकलैः लोकैः, निन्द्यते = निन्दनीयो भवति ॥ ३२९ ॥

हिन्दी—लड़ाई के मैदान में जो अपने मित्र और मालिक को छोड़कर पीठ दिखाता है, वह मरणोपरान्त तो नरक जाता ही है, जिन्दा रहकर भी सबकी निन्दा का पात्र होता है ॥ ३२९ ॥

मित्रमिति। यः मित्रं वा स्वामिनं त्यक्त्वा रणात् निर्गच्छति पलायते, सः अन्ते देहावसाने नरकम् आप्नोति, सजीवः जीवन् सन् अखिलैः समस्तैः लोकैः निन्द्यते च ॥ ३२९ ॥

मित्रमापद्गतं दृष्ट्वा सहायं न करोति यः।
अकीर्त्तिं लभते सोऽत्र मृतो नरकमृच्छति ॥ ३३० ॥

अन्वयः—यः मित्रम् आपद्गतं दृष्ट्वा सहायं न करोति, सः अत्र अकीर्त्तिं लभते, मृतश्च नरकम् ऋच्छति ॥ ३३० ॥

व्याख्या—यः = जनः, मित्रम् = सुहृदम्, आपद्गतम् = विपन्नम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, सहायम् = साहाय्यम्, न = नहि, करोति = सम्पादयति, सः = असौ, अत्र = अस्मिन् लोके, अकीर्त्तिम् = अयशम्, लभते = प्राप्नोति, मृतश्च = उपरतश्च, नरकम् = निरयम्, ऋच्छति = प्राप्नोति ॥३३० ॥

हिन्दी—जो व्यक्ति विपत्ति में गिरे अपने मित्र को देखकर भी उसकी सहायता नहीं करता है, वह जिन्दा रहकर संसार में निन्दित होता है और मरने पर सीधे नरक में जाता है ॥ ३३० ॥

मित्रमिति। यः मित्रम् आपद्गतं विपन्नं दृष्ट्वा सहायं साहाय्यं न करोति, स अत्र इहलोके अकीर्त्तिं लभते, मृतश्च नरकम् आप्नोति ॥ ३३० ॥

विश्रम्भाच्छरणं प्राप्तं यः सन्त्यजति दुर्मतिः ।
स याति नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥ ३३१ ॥

अन्वयः—यः दुर्मतिः विश्रम्भात् शरणं प्राप्तं सन्त्यजति, सः चतुर्दशः इन्द्राः यावत् घोरे नरके याति ॥ ३३१ ॥

व्याख्या—यः = जनः, दुर्मतिः = दुष्टबुद्धिः, विश्रम्भात् = विश्वासात्, शरणम् = आश्रयम्, प्राप्तम् = आगतं जनम्, सन्त्यजति = परित्यागं करोति, सः = असौ पुरुषः, यावत् कालपर्यन्तम्, चतुर्दशः = चत्वार्यधिकदशः, इन्द्राः = सुरपतयः, तिष्ठन्ति तावत् कालपर्यन्तम्, घोरे = भयङ्करे, नरके = अतिमलिनस्थाने, याति = व्रजति ॥ ३३१ ॥

हिन्दी—जो दुर्बुद्धि विश्वासपूर्वक शरण में आये व्यक्ति को लौटा देता है, वह जब तक चौदह इन्द्र बदलते हैं तब तक घोर नरक में निवास करता है ॥ ३३१ ॥

विश्रम्भादिति । यः दुर्मतिः विश्रम्भात् विश्वासात् शरणं प्राप्तं जनं सन्त्यजति सः यावत् चतुर्दश इन्द्राः तिष्ठन्तीति शेषः, तावत्कालमित्यर्थः, घोरे नरके याति गच्छति ॥ ३३१ ॥

सुदुर्वृत्तं यदा क्षत्रं नाशयेयुस्तु ब्राह्मणाः ।
युद्धं कृत्वापि शस्त्रास्त्रैर्न तदा पापभागिनः ॥ ३३२ ॥

अन्वयः—यदा तु ब्राह्मणाः शस्त्रास्त्रैः युद्धं कृत्वापि सुदुर्वृत्तं क्षत्रं नाशयेयुः तदा ते पापभागिनः न ॥ ३३२ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, तु = किन्तु, ब्राह्मणाः = विप्राः, शस्त्रास्त्रैः = प्रहरणैः, युद्धं = समरम्, कृत्वा = सम्पाद्य, अपि = चेत्, सुदुर्वृत्तम् = अतिदुराशयम्, क्षत्रम् = राजन्यम्, नाशयेयुः = विनष्टं कुर्युः, तदा ते, पापभागिनः = अधर्मभागिनः, न = नहि, भवन्ति ॥ ३३२ ॥

हिन्दी—युद्ध के मैदान में हथियारों से सुसज्जित ब्राह्मण यदि किसी दुराचारी क्षत्रिय की हत्या करते हैं, तो वे पाप के भागीदार नहीं होते ॥ ३३२ ॥

सुदुर्वृत्तमिति । यदा तु ब्राह्मणाः शस्त्रास्त्रैः युद्धं कृत्वा सुदुर्वृत्तम् अतिदुराशयं क्षत्रं क्षत्रियं नाशयेयुः तदा ते पापभागिनः न भवन्तीत्यर्थः ॥ ३३२ ॥

हीनं यदा क्षत्रकुलं नीचैर्लोकैः प्रपीड्यते ।
तदापि ब्राह्मणा युद्धे नाशयेयुस्तु तान् द्रुतम् ॥ ३३३ ॥

अन्वयः—यदा तु हीनं क्षत्रकुलं नीचैः लोकैः प्रपीड्यते, तदापि ब्राह्मणाः युद्धे तान् द्रुतं नाशयेयुः ॥ ३३३ ॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, हीनम् = अधमम्, क्षत्रकुलम् = क्षत्रियवंशम्, नीचैः = अधमैः, लोकैः = जनैः, प्रपीड्यते = अभिभूयते, तदापि = तस्मिन्नपि काले, ब्राह्मणाः = विप्राः, युद्धे = रणे, तान् = नीचान्, द्रुतम् = त्वरितम्, नाशयेयुः = विनाशयेयुः ॥ ३३३ ॥

हिन्दी—जब क्षत्रियों को कमजोर समझ कर नीच लोग उसे पीड़ित करने लगे तो युद्ध में उन नीचों को विनष्ट करना ब्राह्मणों का कर्त्तव्य होता है ॥ ३३३ ॥

हीनमिति । यदा तु हीनं क्षत्रकुलं नीचैः अधमैः लोकैः प्रपीड्यते अभिभूयते, तदापि ब्राह्मणाः युद्धे तान् नीचान् लोकान् द्रुतं शीघ्रं नाशयेयुः ॥ ३३३ ॥

उत्तमं मान्त्रिकास्त्रेण नालिकास्त्रेण मध्यमम्।
शस्त्रैः कनिष्ठं युद्धन्तु बाहुयुद्धं ततोऽधमम्॥ ३३४॥

अन्वयः—मान्त्रिकास्त्रेण युद्धम् उत्तमं, नालिकास्त्रेण मध्यमं, शस्त्रैः कनिष्ठं, बाहुयुद्धं तु ततः अधमम् ॥३३४॥

व्याख्या—मान्त्रिकास्त्रेण = मन्त्रसिद्धायुधेन, युद्धम् = रणम्, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, नालिकास्त्रेण = आग्नेयास्त्रेण, युद्धम्, मध्यमम् = सामान्यम्, शस्त्रैः = प्रहरणैः, युद्धम्, कनिष्ठम् = अधमम्, बाहुयुद्धम् = मल्लयुद्धम्, तु, ततोऽपि = अधमादपि, अधमं भवति ॥ ३३४ ॥

हिन्दी—मंत्रसिद्ध आयुधों से युद्ध उत्तम होता है, आग्नेयास्त्रों से किया गया युद्ध मध्यम कोटि का होता है, सामान्य हथियारों से किया गया युद्ध कनिष्ठ होता है तथा बाहुबल से किया गया युद्ध अधम से भी अधम होता है ॥ ३३४ ॥

उत्तममिति। मान्त्रिकास्त्रेण मन्त्रसिद्धेन अस्त्रेण युद्धम् उत्तमं नालिकास्त्रेण मध्यमं शस्त्रैः कनिष्ठम् अधमं बाहुयुद्धन्तु ततः अधमादपि अधमम् ॥ ३३४ ॥

मन्त्रेरितमहाशक्तिबाणाद्यैः शत्रुनाशनम्।
मान्त्रिकास्त्रेण तद्युद्धं सर्वयुद्धोत्तमं स्मृतम्॥ ३३५॥

अन्वयः—मन्त्रेरितमहाशक्तिबाणाद्यैः यत् शत्रुनाशनं तत् मान्त्रिकास्त्रेण युद्धं सर्वयुद्धोत्तमं स्मृतम् ॥ ३३५ ॥

व्याख्या—मन्त्रेण = मन्त्रशक्तिना, ईरितैः = प्रेरितैः, यत् महाशक्तिबाणाद्यैः = मन्त्रशक्तिसम्पन्नशराद्यैः, शत्रूणाम् = रिपूणाम्, नाशनम् = विध्वंसनम्, तत् मान्त्रिकास्त्रेण = मन्त्रबलप्रयुक्तायुधेन, युद्धम् = समरम्, सर्वेषु = सकलेषु, युद्धेषु = रणेषु, उत्तमम् = उत्कृष्टम्, स्मृतम् = कथितम् ॥ ३३५ ॥

हिन्दी—मंत्रो से अभिषिक्त महाशक्तिशाली बाण आदि हथियारों का प्रयोग कर जिस युद्ध में शक्तियों का विनाश किया जाता है, उस युद्ध को मान्त्रिकास्त्र युद्ध कहते हैं तथा यह युद्ध सभी युद्धों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ ३३५ ॥

मन्त्रयुद्धमाह– **मन्त्रेति**। मन्त्रेण ईरितैः महाशक्तिबाणाद्यैः यत् शत्रूणां नाशनं तत् मान्त्रिकास्त्रेण युद्धं तच्च सर्वेषु युद्धेषु उत्तमं श्रेष्ठं स्मृतम् ॥ ३३५ ॥

नालाग्निचूर्णसंयागाल्लक्ष्ये गोलनिपातनम्।
नालिकास्त्रेण तद्युद्धं महात्रासकरं रिपोः॥ ३३६॥

अन्वयः—नालेन अग्निचूर्णसंयोगात् लक्ष्ये गोलनिपातनं तत् नालिकास्त्रेण युद्धं रिपोः महात्रासकरम् ॥ ३३६ ॥

व्याख्या—नालेन = लोहवलयेन, अग्निचूर्णसंयोगात् = स्फोटकचूर्णसम्पर्कात्, लक्ष्ये = शरव्ये, यत् गोलनिपातनम् = गोलाकारज्वलल्लौहपिण्डनिक्षेपम्, तत् नालिकास्त्रेण युद्धम् = आग्नेयास्त्रेण रणम्, रिपोः = शत्रोः, महात्रासकरम् = अतिभयप्रदं भवति ॥ ३३६ ॥

हिन्दी—तोप या बन्दूकों के द्वारा लक्ष्य पर गोले फेंक कर जिसमें युद्ध किया जाता है वह युद्ध शत्रुओं के लिए अति भयंकर होता है ॥ ३३६ ॥

नालयुद्धमाह—**नालेति**। नालेन अग्निचूर्णसंयोगात् लक्ष्ये लक्षणीये शत्रौ यत् गोलनिपातनं गोलाकारज्वलल्लौहपिण्डनिक्षेपणं तत् नालिकास्त्रेण युद्धं तच्च रिपोः शत्रोः महात्रासकरम् अतिभयङ्करमित्यर्थः ॥ ३३६ ॥

कुन्तादिशस्त्रसङ्घातै रिपूणां नाशनञ्च यत्।
शस्त्रयुद्धन्तु तज्ज्ञेयं नालास्त्राभावतः सदा ॥ ३३७ ॥

अन्वयः—कुन्तादिशस्त्रसङ्घातैः यत् रिपूणां नाशनं च तत् शस्त्रयुद्धं नालास्त्राऽभावतः सदा ज्ञेयम् ॥ ३३७ ॥

व्याख्या—कुन्तादीनाम् = प्रासादीनाम्, शस्त्राणाम् = आयुधानाम्, सङ्घातैः = समूहैः, यत्, रिपूणाम् = अरीणाम्, नाशनम् = विध्वंसनम्, तत् शस्त्रयुद्धम् = आयुधसङ्ग्रामम्, सदा = सर्वदा, नालास्त्राणाम् = आग्नेयास्त्राणाम्, अभावतः = सत्ताऽभावे, ज्ञेयम् = बोध्यम् ॥ ३३७ ॥

हिन्दी—जिस लड़ाई में आग्नेयास्त्र का अभाव होता है, केवल आयुधों से युद्ध किया जाता है, उसे आयुधयुद्ध कहा जाता है ॥ ३३७ ॥

शस्त्रयुद्धमाह—**कुन्तेति**। कुन्तादीनां शस्त्राणां सङ्घातैः समूहैः यत् रिपूणां शत्रूणां नाशनं तत् शस्त्रयुद्धं सदा नालास्त्राणाम् अभावतः ज्ञेयं नालास्त्रासद्भावे तैरेव योद्धव्यमिति भावः ॥ ३३७ ॥

कर्षणैः सन्धिमर्माणां प्रतिलोमानुलोमतः।
बन्धनैर्घातनं शत्रोर्युक्त्या तद् बाहुयुद्धकम् ॥ ३३८ ॥

अन्वयः—युक्त्या शत्रोः सन्धिमर्माणां कर्षणैः प्रतिलोमानुलोमतः बन्धनैः यत् घातनं तत् बाहुयुद्धम् ॥ ३३८ ॥

व्याख्या—युक्त्या = चातुर्येण, शत्रोः = रिपोः, सन्धिमर्माणाम् = दैहिकग्रन्थीनां मर्माणां च, कर्षणैः = उत्पीडनैः, प्रतिलोमानुलोमतः—प्रतिलोमेन = विपरीतेन, अनुलोमतः = स्वाभाविकगत्या च, तथा बन्धनैः = बाहुभिः, कर्षणैः, यत् घातनम् = हननम्, तत् = युद्धम्, बाहुयुद्धम् = मल्लयुद्धम्, कथितम् ॥ ३३८ ॥

हिन्दी—चालाकी से देह की जोड़ वाली जगह तथा मर्मस्थान में पीड़ा पहुँचाने के लिए उलटा-सीधा बाँहों को बाँहों से बाँधकर जिसमें लड़ाई की जाती है, उसे बाहुयुद्ध कहते हैं ॥३३९ ॥

बाहुयुद्धमाह—**कर्षणैरिति**। युक्त्या कौशलेन शत्रोः सन्धिमर्माणां सन्धीनां शरीरग्रन्थीनां मर्माणाञ्च कर्षणैः प्रपीडनैः प्रतिलोमानुलोमतः प्रतिलोमेन अस्वाभाविकरीत्या अनुलोमतः स्वभावगत्या च तथा बन्धनैः बाहुभिरिति शेषः, यत् घातनं नाशनं तत् बाहुयुद्धकम् ॥ ३३८ ॥

वामपाणिकचोत्पीडा भूमौ निष्पेषणं बलात्।
मूर्ध्नि पादप्रहरणं जानुनोदरपीडनम् ॥ ३३९ ॥
मालूराकारया मुष्ट्या कपाले दृढताडनम्।
कफोणिपातोऽप्यसकृत् सर्वतस्तलताडनम्।
छलेन युद्धे भ्रमणं नियुद्धं स्मृतमष्टधा ॥ ३४० ॥

अन्वयः—नियुद्धम् अष्टधा स्मृतम्। यथा—वामपाणिकचोत्पीडा, बलात् भूमौ निष्पेषणं, मूर्ध्नि, पादप्रहरणं, जानुना उत्पीडनं, मालूराकारया मुष्ट्या कपोले दृढताडनम्, असकृत् कफोणिपातः, सर्वतः तलेन ताडनं तथा छलेन युद्धे भ्रमणम् ॥ ३३९-३४० ॥

व्याख्या—नियुद्धम् = समरम्, अष्टधा = अष्टप्रकारकम्, स्मृतम् = कथितम्, यथा—वामपाणिना = दक्षिणेतरहस्तेन, कचानाम् = केशानाम्, उत्पीडा = संगृह्य उत्पीडनम्, बलात् = हठात्, भूमौ = पृथिव्याम्, निष्पेषणम् = मर्दनम्, मूर्ध्नि = मस्तके, पादप्रहरणम् = चरणाघातः, जानुना = ऊरुना, उदरपीडनम् = कुक्षिघातनम्, मालूरः = बिल्वफलं, तस्येव, आकारः = आकृतिः, यस्याः तादृश्या, मुष्ट्या = मुष्टिकया, कपोले = गण्डस्थले, दृढताडनम् = कठोराघातः, असकृत् = भूयोभूयः, कफोण्याः = कूर्परयोः, पातः = पृथिव्यां बलात् पातनम्, सर्वतः = सर्वतोभावेन, तलेन = चपेटेन, ताडनम् = प्रहरणम्, तथा छलेन = प्रपञ्चेन, शत्रूणाम्, युद्धे = सङ्ग्रामे, भ्रमणम् = गतागतम् ॥ ३३९-३४० ॥

हिन्दी—बाहुयुद्ध आठ प्रकार का होता है; जैसे—बायें हाथ से बाल पकड़ना, जबर्दस्ती धरती पर पटक कर रगड़ना, माथे पर पैर से चोट करना, घुटने से पेट को दबाना, बेल की तरह मजबूत मुक्के से गाल पर चोट करना, बार-बार केहुनी को बलपूर्वक धरती पर घसीटना, थप्पड़ मारना, कपटपूर्वक शत्रुओं की कमजोर जगहों को देखने के लिए मैदान में घुमाना ॥ ३३९-३४० ॥

नियुद्धं निरूपयति—**वामेत्यादि**। नियुद्धम् अष्टधा अष्टप्रकारं स्मृतम्। यथा—वामपाणिना वामहस्तेन कचानां केशानाम् उत्पीडा उत्पीडनं धारणमित्यर्थः १, बलात् भूमौ निष्पेषणं दलनं २, मूर्ध्नि शिरसि पादप्रहरणं पदाघातः ३, जानुना उदरपीडनं ४, मालूरः श्रीफलं तस्येव आकारः यस्याः तादृश्या मुष्ट्या कपोले गण्डे दृढताडनं कठिनप्रहारः ५, असकृत् पुनः पुनः कफोण्याः कूर्परयोः पातः भूतले बलात् पातनं ६, सर्वतः सर्वैः प्रकारैः तलेन चपेटेन ताडनं प्रहारः ७, तथा छलेन कापट्येन शत्रूणां रन्ध्रार्थितयेति शेषः, युद्धे भ्रमणम् ८ ॥ ३३९-३४० ॥

चतुर्भिः क्षत्रियं हन्यात् पञ्चभिः क्षत्रियाधमम्।
षड्भिर्वैश्यं सप्तभिस्तु शूद्रं सङ्करमष्टभिः।
शत्रुष्वेतानि युञ्जीत न मित्रेषु कदाचन ॥ ३४१ ॥

अन्वयः—चतुर्भिः क्षत्रियं, पञ्चभिः क्षत्रियाधमं, षड्भिः वैश्यं, सप्तभिः तु शूद्रम्, अष्टभिः सङ्करम् हन्यात्। एतानि शत्रुषु युञ्जीत मित्रेषु कदाचन न ॥ ३४१ ॥

व्याख्या—चतुर्भिः = नियुद्धप्रकारैः, क्षत्रियम् = क्षत्रम्, प्रयोक्तव्यम्, पञ्चभिः = प्रकारैः, क्षत्रियाधमम् = नीचक्षत्रियम्, षड्भिः वैश्यम् = वणिजम्, सप्तभिः, शूद्रम् = वृषलम्, अष्टभिः सङ्करम् = वर्णसङ्करजातिम्, हन्यात् = घातं कुर्यात्। एतानि = अष्टविधानि नियुद्धानि, शत्रुषु = रिपुषु, युञ्जीत = प्रयुञ्ज्यात्, मित्रेषु = सुहृत्सु, कदाचन = कथमपि, न = नहि, प्रयुञ्ज्यात् ॥ ३४१ ॥

हिन्दी—उक्त आठ प्रकार के बाहुयुद्धों के प्रहारों में से चार से क्षत्रियों को, पाँच से नीच क्षत्रियों को, छः से वैश्यों को, सात से शूद्रों को और आठ से संकीर्ण जाति वाले को मारे। इन प्रहारों का प्रयोग दुश्मनों के लिए करे, मित्रों के लिए कदापि नहीं ॥ ३४१ ॥

चतुर्भिरिति। चतुर्भिः नियुद्धप्रकारैरिति सर्वत्र शेषः, क्षत्रियं पञ्चभिः क्षत्रियाधमम् अधमक्षत्रियं,

षड्भिः वैश्यं सप्तभिः शूद्रम् अष्टाभिस्तु सङ्करं सङ्कीर्णजातिम् अम्बष्ठादिकं हन्यात्। एतानि अष्टविधानि नियुद्धानि शत्रुषु युञ्जीत प्रयुञ्ज्यात् मित्रेषु कदाचन न॥ ३४१ ॥

नालास्त्राणि पुरस्कृत्य लघूनि च महान्ति च।
तत्पृष्ठगांश्च-पादातान् गजाश्वान् पार्श्वयोः स्थितान्।
कृत्वा युद्धं प्रारभेत भिन्नामात्यबलारिणा॥ ३४२ ॥

अन्वयः—लघूनि च महान्ति नालास्त्राणि पुरस्कृत्य पादातान् तत्पृष्ठगान् तथा गजाश्वान् च पार्श्वयोः स्थितान् कृत्वा भिन्नामात्यबलारिणा युद्धं प्रारभेत॥ ३४२ ॥

व्याख्या—लघूनि = अल्पभारवत्वानि, च = पुनः, महान्ति = महत्तराणि, नालास्त्राणि = आग्नेयास्त्राणि, पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा, पादातान् = पदगतान्, तत्पृष्ठगान्— तेषाम् = आग्नेयास्त्राणाम्, पृष्ठगामिनः, गजाश्वान् = गजवाहिनः अश्वारोहिणश्च, पार्श्वयोः = उभयोः पक्षयोः, स्थितान्, कृत्वा = विधाय, भिन्नानि = भेदगतानि, अमात्याः = मन्त्रिणः, बलानि = सैन्यानि, च = पुनः, यस्य, तादृशेन, अरिणा = शत्रुणा, सह, युद्धम् = सङ्ग्रामम्, प्रारभेत = प्रारम्भं कुर्यात् ॥३४२ ॥

हिन्दी—छोटे-बड़े तोप-बन्दूकों को सेना के आगे रखकर तथा पैदल सेना को पीछे एवं गजारोही और अश्वारोहियों को सेना के दोनों ओर रखकर जिसके मंत्रियों और सेना के बीच फूट पड़ गई हो, ऐसे दुश्मन पर आक्रमण कर दे॥ ३४२ ॥

नालास्त्राणीति। लघूनि च महान्ति च नालास्त्राणि पूर्वोक्तानि पुरस्कृत्य अग्रे कृत्य पादातान् पदातिवर्गान् तत्पृष्ठगान् तेषां नालास्त्राणां पृष्ठगामिनः तथा गजाश्वान् गजबलानि अश्वबलानि च पार्श्वयोः स्थितान् कृत्वा भिन्नानि भेदं गतानि अमात्याः बलानि च यस्य तादृशेन अरिणा शत्रुणा सह युद्धं प्रारभेत॥ ३४२ ॥

साम्मुख्येन प्रपातेन पार्श्वाभ्यामपयानतः।
युद्धानुकूलभूमेस्तु यावल्लाभस्तथाविधम्।
सैन्यार्द्धांशेन प्रथमं सेनपैर्युद्धमीरितम्॥ ३४३ ॥

अन्वयः—युद्धानुकूलभूमेः यावल्लाभः तथाविधं यथा साम्मुख्येन प्रपातेन च पार्श्वाभ्याम् अपयानतः सेनपैः सैन्यानाम् अर्धांशेन सह प्रथमं युद्धम् ईरितम्॥ ३४३ ॥

व्याख्या—युद्धानुकूलभूमेः = रणोपयुक्तस्थानस्य, यावल्लाभः = यादृशी प्राप्तिः, तथाविधम् = तादृशम्, यथा, साम्मुख्येन = सम्मुखेन वा पार्श्वारस्वाभ्याम् उभाभ्यां पक्षाभ्याम्, प्रपातेन = आक्रमणेन च, सेनपैः = सेनापतिभिः, सैन्यानाम् = बलानाम्, अर्द्धांशेन = अर्धभागेन, सह, प्रथमम् = प्राथमिकम्, युद्धम् = सङ्ग्रामम्, ईरितम्॥ ३४३ ॥

हिन्दी—युद्ध के लिए अनुकूल भूमि जहाँ मिले वहाँ उसी के अनुसार कभी सामने से और कभी अगल-बगल से हमला करके या कभी पीछे हटकर सबसे पहले सेनापति अपनी आधी सेना के साथ लेकर युद्ध प्रारम्भ करे, ऐसा कहा गया है॥ ३४३ ॥

सामुख्येनेति। युद्धानुकूलभूमेः सङ्ग्रामोपयोगिस्थानस्य यावल्लाभः यादृशः लाभः, तथाविधं तादृशं तथा यथा साम्मुख्येन पार्श्वाभ्यां वा प्रापातेन अपयानतः अपसरणेन च सेनपैः सेनापतिभिः सैन्यानाम् अर्द्धांशेन सह प्रथमं युद्धम् ईरितं कथितम्॥ ३४३ ॥

अमात्यगोपितैः पश्चादमात्यैः सह तद्भवेत्।
नृपसङ्गोपितैः पश्चात् स्वतः प्राणात्यये च तत्॥ ३४४॥

अन्वयः—पश्चात् अमात्यगोपितैः अमात्यैः सह तत् भवेत्, पश्चात् नृपसङ्गोपितैः तैः ततश्च प्राणात्यये स्वतः॥ ३४४॥

व्याख्या—पश्चात् = तदनन्तरम्, अमात्यैः = मन्त्रिभिः, गोपितैः = रक्षितैः, सैन्यैः, अमात्यैः = शत्रूणां मन्त्रिभिः सह, तत् = युद्धम्, भवेत् = स्यात्, पश्चात् = तत्पश्चात्, अमात्यनाशे, नृपसङ्गोपितैः = भूपसंरक्षितैः, तैः = बलैः, सङ्ग्रामं भवेत्, प्राणात्यये = प्राणविनाशकाले, स्वतः = राजा स्वयम्, युद्धं कुर्यात्॥ ३४४॥

हिन्दी—उसके बाद मंत्रियों के अधीन रहने वाली सेना का शत्रुमंत्री के साथ युद्ध होना चाहिए। उसके बाद राजा के अधीन रहने वाली सेना के साथ युद्ध होना चाहिए और प्राणविनाश की स्थिति में राजा स्वयं रणक्षेत्र में उतरे॥ ३४४॥

अमात्यगोपितैरिति। पश्चात् अमात्यैः गोपितैः रक्षितैः सैन्यैः अमात्यैः शत्रूणामिति शेषः, सह तत् युद्धं भवेत्। पश्चात् अमात्यनाशे इत्यर्थः, नृपसङ्गोपितैः राजरक्षितैः तैः सैन्यैः युद्धं भवेत् ततश्च प्राणात्यये प्राणनाशसङ्कटे स्वतः स्वयम् अन्येन अगुप्तैरपीत्यर्थः, तत् युद्धं भवेत्॥ ३४४॥

दीर्घाध्वनि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितश्रमम्।
व्याधिदुर्भिक्षकरकैः पीडितं दस्युविद्रुतम्॥ ३४५॥
पङ्कपांशुजलस्कन्नं व्यस्तं श्वासातुरं तथा।
प्रसुप्तं भोजने व्यग्रमभूयिष्ठमसंस्थितम्॥ ३४६॥
घोराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम्।
एवमादिषु जातेषु व्यसनैश्च समाकुलम्।
स्वसैन्यं साधु रक्षेत्तु परसैन्यं विनाशयेत्॥ ३४७॥

अन्वयः—दीर्घाध्वनि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितश्रमं तं व्याधिदुर्भिक्षकरकैः पीडितं दस्युविद्रुतं पङ्कपांशुजलस्कन्नं व्यस्तं तथा श्वासातुरं प्रसुप्तं भोजने व्यग्रम् अभूयिष्ठम् असंस्थितं घोराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम् एवमादिषु जातेषु व्यसनैः समाकुलं स्वसैन्यं साधु रक्षेत्, तु परसैन्यं विनाशयेत्॥ ३४५-३४७॥

व्याख्या—दीर्घाध्वनि—दीर्घे = आयते, अध्वनि = मार्गे, परिश्रान्तम् = अतिक्लान्तम्, क्षुधा = क्षुधया विभुक्ष्या, पिपासया = तृष्णया, आहितः = जनितः, श्रमः = क्लान्तिः, यस्य तथाविधम्, व्याधिभिः = रुग्भिः, दुर्भिक्षैः = अकालैः, करकैः = शिलावृष्टिभिः, च पीडितम् = क्लेशितम्, दस्युभिः = तस्करैः, विद्रुतम् = आक्रान्तम्, पङ्कैः = कर्दमैः, पांसुभिः = रजोभिः, जलैश्च = सलिलैश्च, स्कन्नम् = क्लिन्नम्, व्यस्तम् = उद्विग्नम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, श्वासातुरम्—श्वासेन = अधिकश्रमजन्यदीर्घनिःश्वासेन, आतुरम् = अतिव्यग्रम्, प्रसुप्तम् = निद्रितम्, भोजने = अशने, व्यग्रम् = दुःखितम्, अभूयिष्ठम् = अत्यल्पसंख्यकम्, असंस्थितम् = दुर्गतम्, वा, घोरेण = भयङ्करेण, अग्निना = वह्निना, भयेन = भीत्या, वित्रस्तम् = अतिभयाकुलम्, वृष्टिवातसमाहतम्—वृष्टिभिः = वर्षाभिः, वातैश्च = पवनैश्च, समाहतम् = अत्याकुलितम्,

एवमादिषु = इत्थम्भूतेषु, जातेषु = घटनासु, व्यसनैः = विपद्भिः, समाकुलम् = अतिव्याकुलम्, स्वसैन्यम् = आत्मबलम्, साधु = सुष्ठुतया, रक्षेत् = रक्षां कुर्य्यात्, परसैन्यं तु = शत्रुबलं तु, विनाशयेत् = विनाशं कुर्य्यात् ॥ ३४५-३४७ ॥

हिन्दी—दूर से राह चलकर-आने के कारण थकी हुई, भूख-प्यास के मारे परेशान, रोग, अकाल तथा ओलों की मार से पीड़ित, बटमारों से लूटी गई, कीचड़, धूल तथा पानी से लथ-पथ व्याकुल, हाँफती हुई, सोई हुई, खाने में संलग्न सेना की कोई छोटी टुकड़ी दुर्गतिग्रस्त, भयंकर आग की लपटों से डरी हुई, वर्षा तथा आँधी से घबड़ायी हुई, ऐसी-ऐसी दुर्घटनाओं से अत्यन्त व्याकुल बनी हुई अपनी सेना की रक्षा तो करनी ही चाहिए, परन्तु दुश्मन की सेना की अगर यह स्थिति हो तो उसे विनष्ट कर देना चाहिए ॥ ३४५-३४७ ॥

दीर्घाध्वनीत्यादि। दीर्घाध्वनि दीर्घे मार्गे परिश्रान्तं क्लान्तं क्षुधा पिपासया च आहितः जनितः श्रमः क्लान्तिर्यस्य तादृशं व्याधिभिः पीडाभिः दुर्भिक्षैः अकालैः करकैः शिलावृष्टिभिश्च पीडितं दस्युभिः विद्रुतम् आक्रान्तं पङ्कैः कर्दमैः पांशुभिः रजोभिः जलैश्च स्कन्नं क्लिन्नं व्यस्तम् उद्विग्नं श्वासातुरं श्वासेन परिश्रमजनितेन दीर्घनिश्वासेन आतुरं कातरं प्रसुप्तं निद्रितं भोजने व्यग्रं क्षुधितमित्यर्थः, अभूयिष्ठं स्वल्पसंख्यकम् असंस्थितं दुर्गतं चञ्चलं वा घोरेण भीषणेन वित्रस्तं भीतं वृष्टिभिर्वातैश्च समाहतम् आकुलितम् एवमादिषु जातेषु घटनासु व्यसनैः वियद्भिः समाकुलं स्वसैन्यं साधु सम्यक् रक्षेत् परसैन्यन्तु विनाशयेत् ॥ ३४५-३४७ ॥

बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः।
मुख्यो भेदो हि तेषान्तु पापिष्ठो विदुषां मतः ॥ ३४८ ॥

अन्वयः—मनीषिभिः इह यानि बलस्य व्यसनानि उक्तानि तेषां भेदः मुख्यः पापिष्ठः विदुषां मतः ॥ ३४८ ॥

व्याख्या—मनीषिभिः = पण्डितैः, इह = शास्त्रे, यानि, बलस्य = सैन्यस्य, व्यसनानि = दुर्गुणाः, उक्तानि = कथितानि, तेषां मध्ये, तेषाम् = सैन्यानाम्, भेदः = अन्योऽन्यमनोमालिन्यम्, मुख्यः = प्रमुखः, पापिष्ठः = अतिपापः, विदुषाम् = विपश्चिताम्, मतः = विचारः ॥ ३४८ ॥

हिन्दी—शास्त्र में विद्वानों ने जितने सेना के विषय में दुःखदायक उपायों को बताया है, उनमें भेद अर्थात् परस्पर फूट डालने को ही मुख्य एवं अत्यन्त पापपूर्ण पंडितों ने माना है ॥ ३४८ ॥

बलस्येति। मनीषिभिः विद्वद्भिः इह शास्त्रे यानि बलस्य व्यसनानि दोषाः उक्तानि, तेषां मध्ये तेषां भेदः परस्परं विच्छेदः मुख्यः श्रेष्ठः, पापिष्ठः अतिपापैः विदुषां पण्डितानां मतश्च ॥

भिन्ना हि सेना नृपतेर्दुःसन्देहा भवत्युत।
मौला हि पुरुषव्याघ्र! किमु नानासमुत्थिता ॥ ३४९ ॥

अन्वयः—हे पुरुषव्याघ्र! नृपतेः नानासमुत्थिता सेना भिन्ना इह दुःसन्देहा भवति, मौला सेना किमुत ॥ ३४९ ॥

व्याख्या—हे पुरुषव्याघ्र = हे नरशार्दूल! नृपतेः = राज्ञः, नानासमुत्थिता = अनेकविधसमागता, सेना = बलम्, भिन्ना = भेदं, गता, इह = अस्मिन् संसारे, दुःसन्देहा = अतिदुःखदा, भवति = याति, उत = प्रत्युत, मौला = प्राचीना प्रशिक्षिता, सेना = सैन्यम्, किमुत = किमु वक्तव्यम् ॥ ३४९ ॥

हिन्दी—हे नरश्रेष्ठ! इस संसार में फूट डाली गई नई सेना भी राजा के लिए दुःखदायिनी बन सकती है तो फिर यदि उसकी प्रशिक्षत सेना के बीच फूट डाली जाय तो ऐसे राजा के दुःख के बारे में क्या कहा जा सकता है॥ ३४९॥

भिन्नेति। हे पुरुषव्याघ्र! नृपतेः नानासमुत्थिता विविधप्रकारेण समागता सेना भिन्ना भेदं गता सती इह दुःखदा भवति, मौला सेना किमुत? दुःखदेति किं वक्तव्यमित्यर्थः॥ ३४९॥

उपायान् षड्गुणान् मन्त्रं शत्रोः स्वस्यापि चिन्तयेत्।
धर्मयुद्धैः कूटयुद्धैर्हन्यादेव रिपुं सदा॥ ३५०॥

अन्वयः—शत्रोः स्वस्यापि उपायान् षड्गुणान् मन्त्रं च चिन्तयेत्, तथा धर्मयुद्धैः कूटयुद्धैः वा सदा रिपुं हन्यात्॥ ३५०॥

व्याख्या—शत्रोः = रिपोः, स्वस्यापि = आत्मनोऽपि, उपायान् = सामदानादीन्, षड्गुणान् = सन्धिविग्रहादीन्, मन्त्रञ्च = विचारणाञ्च, चिन्तयेत् = विचारयेत्, तथा धर्मयुद्धैः = धर्मसंग्रामैः, वा = अथवा, कूटयुद्धैः = कपटप्रबन्धसङ्ग्रामैः, सदा = सर्वदा, रिपुम् = शत्रुम्, हन्यात् = मारयेत्॥ ३५०॥

हिन्दी—राजा हमेशा दुश्मनों के द्वारा अथवा अपने द्वारा किये गये सामादि उपायों की तथा संधि-विग्रह आदि छः गुणों एवं मन्त्रणा का ध्यान रखता हुआ धर्मयुद्ध से या कूटयुद्ध से जैसे भी हो शत्रु का विनाश करे॥ ३५०॥

उपायानिति। शत्रोः स्वस्य आत्मनः अपि उपायान् सामादीन् षड्गुणान् सन्ध्यादीन् मन्त्रञ्च चिन्तयेत् तथा धर्मयुद्धैः कूटयुद्धैर्वा सदा रिपुं हन्यादेव॥ ३५०॥

याने सपादभृत्या तु स्वभृत्यान् वर्द्धयन् नृपः।
स्वदेहं गोपयेत् युद्धे चर्मणा कवचेन च॥ ३५१॥

अन्वयः—नृपः याने स्वभृत्यान् सपादभृत्या वर्धयन् युद्धे चर्मणा कवचेन स्वदेहं गोपयेत्॥

व्याख्या—नृपः = राजा, याने = प्रयाणकाले, स्वभृत्यान् = निजसेवकान्, सपादभृत्या = चतुर्थांशाधिकेन वेतनेन, वर्धयन् = अनुरञ्जयन्, युद्धे = समरे, चर्मणा = फलकेन, कवचेन = शरीरत्राणेन, स्वदेहम् = आत्मशरीरम्, गोपयेत् = रक्षेत्॥ ३५१॥

हिन्दी—शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने के समय अपने सैनिकों की तनख्वाह में एक चौथाई वेतन-वृद्धि कर लड़ाई के मैदान में ढाल और कवच से अपने शरीर की रक्षा करे॥ ३५१॥

याने इति। नृपः याने युद्धयात्रायां स्वभृत्यान् सपादभृत्या चतुर्थांशाधिकया भृत्या वेतनेन वर्द्धयन् रञ्जयन् युद्धे चर्मणा ढाल इति भाषाप्रसिद्धेन कवचेन शरीरत्राणेन परिच्छदविशेषेण स्वदेहं गोपयेत् रक्षेत्॥ ३५१॥

पाययित्वा मदं सम्यक् सैनिकान् शौर्यवर्द्धनम्।
उत्तेजितांश्च निर्द्वैधान् वीरान् युद्धे नियोजयेत्॥ ३५२॥

अन्वयः—सैनिकान् शौर्यवर्धनं मदं सम्यक् पाययित्वा उत्तेजितान् तथा निर्द्वैधान् वीरान् युद्धे नियोजयेत्॥ ३५२॥

व्याख्या—सैनिकान् = सैन्यान्, शौर्यवर्धनम् = वीर्यवृद्धिकरम्, मदम् = सुराम्, सम्यक् =

सुष्ठुतया, पाययित्वा = पानं कारयित्वा, उत्तेजितान् = प्रेरितान्, तथा निर्द्वैधान् = निःसंशयान्, वीरान् = शूरान्, युद्धे = सङ्ग्रामे, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात् ॥ ३५२ ॥

हिन्दी—अपने सैनिकों को वीरता बढाने वाली शराब पिलाकर उन्हें प्रेरित करने के बाद मरने का जिन्हें कोई भय न हो, ऐसे वीरों को लड़ने के लिए युद्ध में नियुक्त करे ॥३५२ ॥

पाययित्वेति। सैनिकान् शौर्य्यवर्द्धनं वीर्य्यवृद्धिकरं मदं सुरां सम्यक् पाययित्वा उत्तेजितान् कृत्वेति शेषः, तथा निर्द्वैधान् निःसंशयान् वीरान् युद्धे नियोजयेत् ॥ ३५२ ॥

नालिकास्त्रेण खड्गाद्यैः सैनिकः पातयेदरीन्।
कुन्तेन सादी बाणेन रथगो गजगोऽपि च॥ ३५३ ॥

अन्वयः—सैनिकः नालिकास्त्रेण खड्गाद्यैश्च सादी कुन्तेन रथगः तथा गजगः बाणेन अरीन् पातयेत् ॥ ३५३ ॥

व्याख्या—सैनिकः = पदातिः, नालिकास्त्रेण = आग्नेयास्त्रेण, च = पुनः, खड्गाद्यैः = करवालाद्यैः, सादी = अश्वारोही, कुन्तेन = फलकेन, रथगः = रथारोही, तथा गजगः = गजारोही, बाणेन = शरेण, अरीन् = शत्रून्, पातयेत् = घातयेत् ॥ ३५३ ॥

हिन्दी—पैदल सिपाही तोप, बन्दूक एवं तलवार से, घुड़सवार भाले से, रथी एवं गजारोही सैनिक बाण से शत्रुओं पर प्रहार करें ॥ ३५३ ॥

नालिकास्त्रेणेति। सैनिकः पदातिः नालिकास्त्रेण खड्गाद्यैश्च सादी अश्वारूढः कुन्तेन रथगः तथा गजगः गजारूढश्च बाणेन अरीन् पातयेत् ॥ ३५३ ॥

गजो गजेन यातव्यस्तुरगेण तुरङ्गमः।
रथेन च रथो योज्यः पत्तिना पत्तिरेव च।
एकेनैकश्च शस्त्रेण शस्त्रमस्त्रेण वास्त्रकम्॥ ३५४॥

अन्वयः—गजेन गजः तुरगेण तुरङ्गमः यातव्यः। रथेन रथः पत्तिना पत्तिः योज्यः। एकेन एकः शस्त्रेण शस्त्रम् अस्त्रेण अस्त्रकम् ॥ ३५४ ॥

व्याख्या—गजेन = गजारोहिणा, गजः = गजारोही शत्रुः, तथा तुरगेण = अश्वारोहिणा, तुरङ्गमः = अश्वारूढः शत्रुः, यातव्यः = योद्धव्यः, रथेन = रथिना, रथः = रथारूढः शत्रुः, पत्तिना = पदगामिना, पत्तिः = पदगामी शत्रुः, योज्यः = योजनीयः, तथा एकेन = मात्रैकवीरेण, एकः = अद्वितीयः, योज्यः, शस्त्रेण = प्रहरणेन, शस्त्रम् = शस्त्रधारी, अस्त्रेण = अस्त्रधारीवीरेण, अस्त्रकम् = अस्त्रधारिणम्, अवरोधनीयमिति ॥ ३५४ ॥

हिन्दी—गजारोही गजारोही से, अश्वारोही अश्वारोही से, रथी रथी से, पैदल पैदल से युद्ध करे और अकेला अकेले से, शस्त्र वाला शस्त्रधारी से तथा अस्त्र वाला अस्त्र वाले के साथ युद्ध करे ॥ ३५४ ॥

गज इति। गजेन गजारूढेन गजः गजारूढः रिपुः, तथा तुरगेण अश्वारूढेन तुरङ्गमः अश्वारूढः रिपुः यातव्यः योद्धव्यः। रथेन रथिना इत्यर्थः, रथः रथी पत्तिना पदातिना पत्तिः पदातिः रिपुः योज्यः योजनीयः। तथा एकेन वीरेण एकः योज्यः शस्त्रेण शस्त्रम् अस्त्रेण च अस्त्रकं निवारणीयमिति शेषः ॥३५४ ॥

न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशमासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥ ३५५॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुद्ध्यमानं पश्यन्तं युद्ध्यमानं परेण च॥ ३५६॥
पिबन्तं न च भुञ्जानमन्यकार्य्याकुलं न च।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥ ३५७॥

अन्वयः—सतां धर्मम् अनुस्मरन् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिं न मुक्तकेशं न आसीनं न तवास्मीति वादिनं न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं निरायुधं न अयुद्ध्यमानं न पश्यन्तं न परेण युद्ध्यमानं न पिबन्तं व भुञ्जानं न अन्यकार्येषु आकुलं न भीतं न परावृत्तं न च हन्यात्॥ ३५५-२५७॥

व्याख्या—सताम् = सज्जनानाम्, धर्मम् = धर्मयुद्धम्, अनुस्मरन् = स्मरणं कुर्वन्, जनः, स्थलारूढम् = भयाक्रान्तेन कमपि स्थलमाश्रितम्, न = नहि, क्लीबम् = नपुंसकम्, न = नहि, कृताञ्जलिम् = बद्धाञ्जलिपुटम्, न = नहि, मुक्तकेशम्—मुक्तम् = स्खलितम्, केशम् = कचबन्धनम्, यस्य तम्, न = नहि, आसीनम् = उपविष्टम्, न = नहि, तव = भवतः, अस्मि = अहं भवामि, इति वादिनम् = एवं कथयन्तम्, न = नहि, सुप्तम् = निद्रितम्, न = नहि, विसन्नाहम् = अबद्धपरिकरम्, न = नहि, नग्नम् = वस्त्रहीनम्, न = नहि, निरायुधम् = प्रहरणरहितम्, न = नहि, अयुद्ध्यमानम् = युद्धं न कुर्वाणम्, न = नहि, पश्यन्तम् = पश्यकम् अथवा दर्शकम्, न = नहि, परेण = अन्येन सह, युद्ध्यमानम् = युद्धं कुर्वाणम्, न = नहि, पिबन्तम् = किमपि पानं क्रियमाणम्, न = नहि, भुञ्जानं = भोजनं क्रियमाणम्, न = नहि, अन्यकार्येषु = भिन्नकर्मसु, आकुलम् = व्यस्तम्, न = नहि, भीतम् = भयाक्रान्तम्, न = नहि, परावृत्तम् = विमुखञ्च, न = नहि, हन्यात्॥

हिन्दी---सज्जनों के धर्मयुद्ध का ख्याल रखते हुए सैनिक किसी भगेड़ू को तथा हिजड़ा, हाथ जोड़े हुए, खुले बाल वाले, बैठे हुए, 'मैं आपके अधीन हूँ' ऐसा कहने वाले, सोये हुए, लड़ाई योग्य कपड़े न पहने हुए, नंगे, निहत्थे, नहीं लड़ते हुए, दर्शक, पानी पीते हुए या खाते हुए, किसी काम में व्यस्त, डरे हुए तथा युद्ध के मैदान से भागे सिपाहियों पर प्रहार नहीं करना चाहिए॥ ३५५-३५७॥

नेत्यादि। सतां साधूनां धर्मं युद्धधर्ममनुस्मरन् जनः स्थलारूढं भयेन कमपि देशम् आश्रितं न, क्लीबं न, कृताञ्जलिं बद्धाञ्जलिपुटं न, मुक्तकेशं स्खलितं केशबन्धं न, आसीनम् उपविष्टं न, तथा तव अस्मि अहं तव अधीनः भवामीति वादिनं, सुप्तं निद्रितं न, विसन्नाहम् अबद्धपरिकरं न, नग्नं न, निरायुधं न आयुधरहितं न, अयुध्यमानं न, पश्यन्तं दर्शकं न, परेण अन्येन सह युध्यन्तंन, पिबन्तं न, भुञ्जानं न, अन्यकार्य्येषु आकुलं न, भीतं न, परावृत्तं विमुखञ्च न हन्यात्॥ ३५५-३५७॥

वृद्धो बालो न हन्तव्यो नैव स्त्री केवलो नृपः।
यथायोग्यं तु संयोज्यं निघ्नन् धर्मो न हीयते॥ ३५८॥

अन्वयः—वृद्धः बालः न हन्तव्यः तथा स्त्री केवलः नृपः न हन्तव्यः। यथायोग्यं तु संयोज्यं निघ्नन् धर्मः न हीयते॥ ३५८॥

व्याख्या—वृद्धः = जराजीर्णः, बालः = बालकश्च, न = नहि, हन्तव्यः = घातव्यः, तथा, स्त्री = नारीलोकः, केवलः = निःसहायः, नृपः = राजा, नैव = कथमपि नहि, तु = किन्तु, यथायोग्यम् = योग्यतानुसारेण, संयोज्य = मिलित्वा, निघ्नन् = हनन्, जनः, धर्मः = धर्मात्, न = नहि, हीयते = क्षीयते ॥ ३५८ ॥

हिन्दी—वृद्ध, बालक, औरत तथा असहाय राजा को नहीं मारना चाहिए। योग्यतानुसार व्यवहार करके उन्हें अपने अधीन कर लेना धर्मच्यूत नहीं कहा जा सकता ॥ ३५८ ॥

वृद्ध इति। वृद्धः बालः शिशुश्च न, तथा स्त्री स्त्रीलोकः तथा केवलः निःसहायः नृपश्च न हन्तव्यः। यथायोग्यं संयोज्य वीरभावेन मिलित्वा निघ्नन् जनः धर्मात् न हीयते ॥ ३५८ ॥

धर्मयुद्धे तु कूटे वै न सन्ति नियमा अमी।
न युद्धं कूटसदृशं नाशनं बलवद्रिपोः ॥ ३५९ ॥

अन्वयः—धर्मयुद्धे तु अमी नियमाः वै सन्ति, कूटे न। बलवतः रिपोः कूटसदृशं युद्धं नाशनं न अस्ति ॥ ३५९ ॥

व्याख्या—धर्मयुद्धे = धर्मिकयुद्धे, अमी = पूर्वोक्ताः, नियमाः = व्यवहाराः, वै = निश्चयेन, बोद्धव्याः, सन्ति = भवन्ति, कूटे = कपटयुद्धे, अमी नियमाः न सन्ति। बलवतः = शक्तिशालिनः, रिपोः = शत्रोः, कूटसदृशम् = कूटयुद्धतुल्यम्, नाशनम् = विनष्टकरणोपायः, अन्यः न अस्ति ॥३५९ ॥

हिन्दी—ऊपर बनाये गये नियम केवल धर्मयुद्ध के लिए हैं, कूटयुद्ध के लिए नहीं। बलवान् शत्रु को विनष्ट करने के लिए कूटयुद्ध के अलावा कोई दूसरा उपाय भी नहीं है ॥ ३५९ ॥

धर्मयुद्धे इति। धर्मयुद्धे तु पूर्वोक्तनियमः बोद्धव्य इति शेषः, कूटे कपटमध्ये तु युद्धे अमी नियमाः न सन्ति। बलवतः रिपोः शत्रोः कूटयुद्धसदृशं नाशनं नाशोपायः न अस्तीति शेषः ॥३५९ ॥

रामकृष्णेन्द्रादिदेवैः कूटमेवादृतं पुरा।
कूटेन निहतो बालिर्यवनो नमुचिस्तथा ॥ ३६० ॥

अन्वयः—पुरा रामकृष्णेन्द्रादिदेवैश्च कूटमेव आदृतम्। कूटेन बालिः, यवनः तथा नमुचिः निहतः ॥ ३६० ॥

व्याख्या—पुरा = प्राचीनकाले, रामेण = दशरथपुत्रेण, कृष्णेन = वासुदेवेन, इन्द्रादिदेवैश्च = सुरपतिप्रभृतिभिः देवैः, कूटमेव = कपटयुद्धमेव, आदृतम् = अङ्गीकृतम्, यथा कूटेन = कपटयुद्धेन, रामेण, बालिः = वानरराजः, निहतः = मारितः, कृष्णेन, यवनः = यवनासुरः, निहतः, इन्द्रेण, नमुचिः = एतदाख्यदैत्यः निहतः ॥ ३६० ॥

हिन्दी—प्राचीन काल में राम, कृष्ण तथा इन्द्रादि देवताओं ने भी बलवान् असुरों के साथ लड़ने में कूटयुद्ध का ही आश्रय लिया था और कूटयुद्ध के द्वारा ही उन सबों ने क्रमशः बालि, कालयवन तथा नमुचि नामक दैत्य का विनाश किया था ॥ ३६० ॥

रामेति। पुरा पूर्वस्मिन् काले रामेण कृष्णेन इन्द्रादिदेवैश्च कूटमेव आदृतं यथा कूटेन कपटेन युद्धेन बालिः निहतः रामेणेति शेषः, यवनः निहतः कृष्णनेति शेषः, नमुचिः निहतः इन्द्रेणेति शेषः ॥ ३६० ॥

प्रफुल्लवदनेनैव तथा कोमलया गिरा।
अङ्गीकृतापराधेन सेवादाननतिस्तवैः ॥ ३६१ ॥
उपकारैः स्वाशयेन दिव्यैर्विश्वासयेत् परम्।
क्षुरधारेण मनसा रिपोश्छिद्रं सुलक्षयेत् ॥ ३६२ ॥

अन्वयः—प्रफुल्लवदनेन तथा कोमलया गिरा अङ्गीकृतापराधेन सेवादाननतिस्तवैः उपकारैः स्वाशयेन दिव्यैः परं विश्वासयेत्। परन्तु क्षुरधारेण मनसा रिपोः छिद्रं सुलक्षयेत् ॥ ३६१-३६२ ॥

व्याख्या—प्रफुल्लेन = प्रसन्नेन, वदनेन = मुखेन, तथा कोमलया = मधुरया, गिरा = वाचा, अङ्गीकृतेन = स्वीकृतेन, अपराधेन = दोषेन, सेवया = सुश्रूषया, दानेन = प्रदानेन, नत्या = अवतनभावेन, स्तवेन = स्तुत्या, उपकारैः = उपकृतैः, स्वाशयेन = शोभनविचारेण, दिव्यैः = शपथैः, परम् = रिपुम्, विश्वासयेत् = विश्वासमानयेत्, परन्तु, क्षुरधारेण = असिधारेण, मनसा = चित्तेन, रिपोः = शत्रोः, छिद्रम् = दोषम्, सुलक्षयेत् = सुष्ठुतया अवलोकयेत् ॥ ३६१-३६२ ॥

हिन्दी—खुशमिजाज होकर मीठी वाणी से, अपना अपराध कबूल करने से, सेवा से, कुछ देने से, झुककर प्रणाम करने से, प्रशंसा करने से, उपकार करने से, अच्छा भावप्रदर्शन करने से तथा शपथ खाने से शत्रु का विश्वास जीत ले और भीतर मन में तलवार की धार के समान दुश्मन के विनाश का अवसर ढूँढ़ता रहे, ताकि मौका मिलते ही उसे मार गिराये ॥३६१-३६२

प्रफुल्लेति। उपकारैरिति। प्रफुल्लेन प्रसन्नेन वदनेन, कोमलया गिरा वाचा, अङ्गीकृतेन स्वीकृतेन अपराधेन दोषेण, सेवया दानेन नत्या प्रणामेन स्तवेन गुणकीर्तनेन उपकारैः हितानुष्ठानैः स्वाशयेन सुष्ठुभावेन आशयेन तथा दिव्यैः शपथैः परं शत्रुं विश्वासयेत् परन्तु क्षुरधारेण मनसा रिपोः शत्रोः छिद्रं दोषं सुलक्षयेत् ॥३६१-३६२ ॥

अवमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
स्वकार्य्यं साधयेत् प्राज्ञः कार्य्यध्वंसो हि मूर्खता ॥ ३६३ ॥

अन्वयः—प्राज्ञः अवमानं पुरस्कृत्य पृष्ठतः मानं कृत्वा स्वकार्यं साधयेत्। हि कार्यध्वंसः एव मूर्खता भवति ॥ ३६३ ॥

व्याख्या—प्राज्ञः = बुद्धिमान् व्यक्तिः, अवमानम् = अपमानम्, पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा, पृष्ठतः = पश्चात्, मानम् = सम्मानम्, कृत्वा अर्थात् मानापमानम् अविगणय्य, स्वकार्यम् = स्वकीयकृत्यम्, साधयेत् = सम्पादयेत्। हि = यतः, कार्यध्वंसः = कार्यविनाशः, एव मूर्खता = अज्ञता, भवति ॥ ३६३ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् व्यक्ति अपने मानापमान की चिन्ता किये बिना अपना काम पूरा करता है। क्योंकि काम बिगाड़ना सबसे बड़ी मूर्खता होती है ॥ ३६३ ॥

अवमानमिति। प्राज्ञः पण्डितः जनः अवमानं पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य स्वीकृत्येत्यर्थः, पृष्ठतः पश्चात् मानं कृत्वा मानमविगणय्य इत्यर्थः, स्वकार्य्यं साधयेत्, हि यतः कार्य्यध्वंस एव मूर्खता भवति ॥ ३६३ ॥

मञ्चासीनः शतानीकः सेनाकार्य्यं विचिन्तयन्।
सदैव व्यूहसङ्केतवाद्यशब्दान्तवर्त्तिनः ॥ ३६४ ॥
सञ्चरेषु सैनिकस्य राजराष्ट्रहितैषिणः ।

भेदितां शत्रुणा दृष्ट्वा स्वसेनां घातयेच्च ताम् ॥ ३६५ ॥

अन्वयः—मञ्चासीनः शतानीकः सेनाकार्य्यं विचिन्तयन् राजराष्ट्रहितैषिणः सैनिकाः व्यूहसङ्केतवाद्यशब्दान्तवर्त्तिनः सदैव सञ्चरेयुः। ततश्च शत्रुणा भेदितां स्वसेनां दृष्ट्वा तां घातयेत् ॥ ३६४-३६५ ॥

व्याख्या—मञ्चासीनः = उच्चासनासीनः, शतानीकः = शतसंख्यकसेनापरिवृतः राजा, सेनाकार्यम् = बलानां कृत्यम्, विचिन्तयन् = चिन्तां कुर्वन्, राजराष्ट्रहितैषिणः = नृपदेशशुभेच्छुकाः, सैनिकाः = सुविश्वस्ता इति, व्यूहस्य = सेनारचनायाः, यः सङ्केतवाद्यशब्दः = वाद्ययन्त्रस्येङ्गितशब्दः, तस्य, अन्तेवर्त्तिनः = तदनुसारेण, सदैव = सर्वदा, सञ्चरेयुः = इतस्ततः भ्रमणं कुर्युः। ततश्च, शत्रुणा = रिपुणा, भेदिताम् = मनोमालिन्यं गताम्, स्वसेनां = स्वबलाम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, ताम् = स्वसेनाम्, घातयेत् = विनष्टं कुर्य्यात् ॥ ३६४-३६५ ॥

हिन्दी—सैकड़ों सेना के स्वामी राजा किसी ऊँचे आसन पर बैठकर अपनी सेना के कामों का अनुचिन्तन करे। सैन्यव्यूह के वाद्ययन्त्रों के द्वारा दिये गये संकेतों के अनुसार उसके भीतर रहकर काम करते हुए राजा राष्ट्र की हितैषी सेनाओं के बीच घूमता रहे। यदि यह समझे कि उसकी सेना में शत्रुओं ने फूट डाल दी है तो उस विद्रोही सेना को वह तुरन्त विनष्ट करदे ॥

मञ्चेति। सञ्चरेयुरिति। मञ्चासीनः पर्य्यङ्कगतः शतानीकः शतसंख्यकसेनापरिवृतः राजा सेनाकार्य्यं सेनानां कार्य्यम् अनुरागापरागजनितमित्यर्थः, विचिन्तयेत्। राजराष्ट्रहितैषिणः सैनिकाः सुविश्वस्ता इति भावः, व्यूहस्य यः सङ्केतवाद्यशब्दः तस्य अन्ते वर्त्तिनः तदनुसारिण इत्यर्थः, सदा सञ्चरेयुः अपरक्तसैनिककार्य्यानुसन्धानार्थमिति भावः, ततश्च शत्रुणा भेदितां स्वसेनां दृष्ट्वा तां स्वसेनां घातयेच्च नाशयेदपि ॥ ३६४-३६५ ॥

प्रत्यग्रे कर्मणि कृते यौधैर्दद्याद्धनं च तान्।
पारितोष्यञ्चाधिकारं क्रमतोऽर्हं नृपः सदा ॥ ३६६ ॥

अन्वयः—योधैः प्रत्यग्रे कर्मणि कृते नृपः सदा तान् क्रमतः अर्हं पारितोष्यं धनम् अधिकारञ्च दद्यात् ॥ ३६६ ॥

व्याख्या—योधैः = सैनिकैः, प्रत्यग्रे = अभिनवे, कर्मणि = कृत्ये, कृते सति = सम्पादिते सति, नृपः = राजा, सदा = सर्वदा, तान् = योद्धान्, क्रमतः = यथाक्रमम्, अर्हम् = योग्यम्, परितोष्यम् = पारितोषिकम्, धनम् = वित्तम्, अधिकारञ्च = स्वत्वञ्च, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ ३६६ ॥

हिन्दी—राजा सैनिकों द्वारा कोई नया उत्कृष्ट पराक्रम संबंधी काम किये जाने पर उन्हें योग्य पारितोषिक रूप में धन तथा अधिकार प्रदान करे ॥ ३६६ ॥

प्रत्यग्रे इति। योधैः प्रत्यग्रे अभिनवे कर्मणि कृते सति नृपः सदा तान् योधान् तान् इति कर्मविवक्षया द्वितीया तेभ्यः इत्यर्थः, क्रमतः यथाक्रमम् अर्हं योग्यं पारितोष्यं धनम् अधिकारञ्च दद्यात् ॥ ३६६ ॥

जलान्नतृणसंरोधैः शत्रून् सम्पीड्य यत्नतः।
पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चात् हन्यात्तु वेगवान् ॥ ३६७ ॥

अन्वयः—वेगवान् पुरस्तात् जलान्नतृणसंरोधैः यत्नतः शत्रून् सम्पीड्य पश्चात् विषमे देशे हन्यात् ॥ ३६६ ॥

व्याख्या—वेगवान् = क्षिप्रः सन्, पुरस्तात् = अग्रतः, जलानाम् = सलिलानाम्, अन्नानाम् = धान्यानाम्, तृणानाम् = शादानाम्, संरोधैः = सुष्ठु अवरोधैः, यत्नतः = प्रयासपूर्वकेण, शत्रून् = रिपून्, सम्पीड्य = सम्यक्प्रकारेण क्लेशं दत्त्वा, विषमे देशे = कठिनरणभूमौ, हन्यात् = घातयेत् ॥ ३६७ ॥

हिन्दी—पहले पानी, अग्नि, घास आदि को शत्रुसेना के पास जाने से रोककर प्रयत्नपूर्वक उसे कष्ट पहुँचाये। बाद में रणभूमि में शत्रुसेना पर वेग के साथ आक्रमण कर उसे विनष्ट कर दे ॥ ३६७ ॥

जलेति। वेगवान् त्वरावान् सन् पुरस्तात् अग्रतः जलानाम् अन्नानां तृणानाञ्च संरोधैः सम्यक् निरोधैः यत्नतः शत्रून् सम्पीड्य पश्चात् विषमे देशे रणभूमौ इत्यर्थः हन्यात् ॥ ३६७ ॥

कूटस्वर्णमहादानैर्भेदयित्वा द्विषद्बलम् ।
नित्यविश्रम्भसंसुप्तं प्रजागरकृतश्रमम् ॥ ३६८ ॥
विलोभ्यापि परानीकमप्रमत्तो विनाशयेत् ।
तत्सहायबलं नैव व्यसनाप्तमपि क्वचित् ॥ ३६९ ॥

अन्वयः—कूटस्वर्णमहादानैः द्विषद्बलं विलोभ्य भेदयित्वा नित्यविश्रम्भसंसुप्तं प्रजागरकृतश्रमं शत्रुभयात् निद्रारहितं परानीकं विनाशयेत्। व्यसनाप्तम् अपि तस्य सहायबलं क्वचित् नैव विनाशयेत् ॥ ३६८-३६९ ॥

व्याख्या—कूटानाम् = कृतिमानाम्, स्वर्णानाम् = कनकानाम्, महादानैः = बहुलप्रदानैः, द्विषताम् = शत्रूणाम्, बलम् = सैन्यम्, विलोभ्य = विशेषेण प्रलोभ्य, अप्रमत्तः = स्वयं पूर्णसावधानः सन्, भेदयित्वा = भेदं कृत्वा, नित्यविश्रम्भेन = विश्वासेन, संसुप्तम् = प्रजागरेण कृतः श्रमः, येन तम्, शत्रुभयात् = रिपुत्रासात्, निद्रारहितम्, परस्य = रिपोः, अनीकम् = सैन्यम्, विनाशयेत् = विनाशं कुर्य्यात्। व्यसनाप्तम् = व्यसनेषु आसक्तम् अपि, तस्य = शत्रोः, सहायबलम् = सहायकसैन्यम्, क्वचित् = कदाचित्, नैव = कथमपि नहि विनाशयेत् ॥ ३६८-३६९ ॥

हिन्दी--शत्रु की सेना को नकली सोने के सिक्के देकर उन्हें प्रलोभित कर फूट डालकर अपने में मिला ले। इसके बाद दुश्मन की सेना को दुश्मनों के द्वारा भय का संदेह न मानकर बेखबर सोई हुई अथवा अधिक जगे रहने के कारण थकी हई देखकर अपने बड़ी सावधानी के साथ इनका विनाश कर दे और शत्रु की सहायता में आई हुई किसी मित्र की सेना को व्यसन में डूबी हुई देखकर भी उसे विनष्ट नकरे, प्रत्युत उनकी मदद कर उन्हें अपनी सेना में मिला ले ॥ ३६८-३६९ ॥

कूटेति। विलोभ्येति। कूटानां स्वर्णानां महादानैः बहुकृत्रिमस्वर्णदानैरित्यर्थः, द्विषतां शत्रूणां बलं विलोभ्य विशेषेण लोभयित्वा अप्रमत्तः स्वयं सावधानः सन् भेदयित्वा शत्रुतः विच्छिद्य नित्यविश्रम्भेण विश्वासेन संसुप्तं प्रजागरेण कृतः श्रमः येन तं शत्रुभयात् निद्रारहितं परस्य शत्रोः अनीकं सैनिकं विनाशयेत्। व्यसनाप्तं कामादिष्वासक्तम् अपि तस्य सहायबलं क्वचित् कदाचित् नैव विनाशयेदित्यर्थः ॥ ३६८-३६९ ॥

स्वसमीपतरं राज्यं नान्यस्माद् ग्राहयेत् क्वचित् ॥ ३७० ॥

अन्वयः—अन्यस्मात् क्वचित् स्वसमीपतरं राज्यं न ग्राहयेत् ॥ ३७० ॥

व्याख्या—अन्यस्माद् = रिपोः, अत्र कर्मणि पञ्चमी आर्षः प्रयोगः, क्वचित् = कदाचित्, स्वस्य = आत्मनः, समीपतरम् = निकटतरम्, राज्यम् = राष्ट्रम्, न = नहि, ग्राहयेत् = आक्रमेत् ॥ ३७० ॥

हिन्दी—अपने पड़ोसी राज्य को दूसरों के द्वारा किसी भी स्थिति में हड़पने न दे, बल्कि उसे मदद पहुँचाकर अपनी ओर मिलाये रखे ॥ ३७० ॥

स्वेति । अन्यस्मात् शत्रोरिति कर्मणि पञ्चमी आर्षा इति बोध्या क्वचित् कदाचित् स्वस्य आत्मनः समीपतरं निकटस्थं राज्यं न ग्राहयेत् तथात्वे शत्रोर्निकटवर्तिन्या महानर्थसम्भव इति भावः ॥३७० ॥

क्षणं युद्धाय सज्जेत क्षणं चापसरेत् पुनः ।
अकस्मान्निपतेद् दूराद्दस्युवत् परितः सदा ॥ ३७१ ॥

अन्वयः—क्षणं युद्धाय सज्जेत, क्षणं पुनः अपसरेत् तथा अकस्मात् दूरात् परितः दस्युवत् सदा निपतेत् ॥ ३७१ ॥

व्याख्या—क्षणम् = पलमात्रे, युद्धाय = रणाय, सज्जेत = तत्परो भवेत्, क्षणञ्च = पलमात्रे, पुनः, अपसरेत् = रणात् पश्चाद्गामी भवेत्, तथा, अकस्मात् = हठात्, दूरात् = दूरप्रदेशात्, परितः = चतुर्दिक्, दस्युवत् = लुण्ठक इव, सदा = सर्वदा, निपतेत् = आक्रमेत् ॥ ३७१ ॥

हिन्दी—एक क्षण में युद्ध के लिए तैयार हो जाय और फिर पल भर में युद्ध से विरत हो जाय और पुनः दूर से एकाएक लूटेरों की तरह दुश्मन पर धावा बोल दे ॥ ३७१ ॥

क्षणमिति । क्षणं युद्धाय सज्जेत उद्युञ्जीत, क्षणञ्च पुनः अपसरेत् रणादिति शेषः, तथा अकस्मात् संहसा दूरात् परितः समन्तात् दस्युवंत् सदा निपतेच्च ॥ ३७१ ॥

रूप्यं हेम च कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत् ।
दद्यात् कार्य्यानुरूपञ्च हृष्टो योधान् प्रहर्षयन् ॥ ३७२ ॥

अन्वयः—यः रूप्यं हेम च कुप्यं यत् जयति, हृष्टः योधान् कार्यानुरूपं प्रहर्षयन् तत् तस्य दद्यात् ॥ ३७२ ॥

व्याख्या—यः = नरः, रूप्यम् = रजतम्, हेम = कनकम्, कुप्यम् = द्रव्यविशेषम्, जयति = विजयेन प्राप्नोति, नृपतिः, हृष्टः = प्रसन्नः सन्, कार्यानुरूपम् = यदा कार्यं तथा, योधान् = आयुधिकान्, प्रहर्षयन् = प्रसन्नं कुर्वन्, तत् = विजयेन प्राप्तं धनम्, अर्जकस्य, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ ३७२ ॥

हिन्दी—जब कभी कोई सैनिक चाँदी, सोना या अन्य द्रव्य जीतकर लाये तो राजा अन्य सैनिकों को भी खुश करता हुआ प्रसन्न मन से उनके काम के अनुसार उन्हें धन दे ॥ ३७२ ॥

रूप्यमिति । यः पुरुषः रूप्यं रजतं हेम स्वर्णं तथा कुप्यं स्वर्णरौप्यव्यतिरिक्तं यत् द्रव्यं जयति जयेन अर्जयतीत्यर्थः, राजा हृष्टः सन् कार्य्यानुरूपं यथाकार्य्यं योधान् सैनिकान् प्रहर्षयन् तत् द्रव्यं तस्य अर्जकस्येत्यर्थः दद्यात् ॥ ३७२ ॥

विजित्य च रिपूनेवं समादद्यात् करं तथा ।
राज्यांशं वा सर्वराज्यं नन्दयीत ततः प्रजाः ॥ ३७३ ॥

अन्वयः—एवं रिपून् विजित्य करं तथा राज्यांशं वा सर्वराज्यं समादद्यात् । ततः प्रजाः नन्दयीत ॥ ३७३ ॥

व्याख्या—एवम् = अनेन प्रकारेण, रिपून् = अरीन्, विजित्य = पराजित्य, करम् = राजस्वम्, राज्यांशम्—राज्यस्य = विजितराज्यस्य, अंशम् = भागम्, वा = अथवा, सर्वम् = सकलम्, राज्यम् = रिपुराष्ट्रम्, समादद्यात् = अपहरणं कुर्य्यात्। ततः = तत्पश्चात्, प्रजाः = तत्रत्या जनाः, नन्दयीत = रक्षणं कुर्यात्, आर्षोऽयं प्रयोगः॥ ३७३ ॥

हिन्दी—इस तरह कोई राजा अपने शत्रु राजा को जीतकर उसकी योग्यता के अनुसार उसकी राजस्व वसूल करे तथा कभी उसके राज्य का आधा हिस्सा या पूरा राज्य ही दखल कर ले। इसके बाद उसकी प्रजा को हर हालत में प्रसन्न रखने की चेष्टा करे॥ ३७३ ॥

विजित्येति। एवम्प्रकारेण रिपून् शत्रून् विजित्य करं राज्यांशं राज्यस्य विजितस्येति शेषः, अंशं कियन्तमिति भावः, वा सर्वं समस्तं राज्यं शत्रुराज्यं समादद्यात् गृह्णीयात्, ततः ग्रहणानन्तरं प्रजाः तत्रत्याः नन्दयीत रञ्जयेत्, नन्दयीत इति आर्षोऽयं प्रयोगः॥ ३७३ ॥

तूर्य्यमङ्गलघोषेण स्वकीयं पुरमाविशेत्।
तत्प्रजाः पुत्रवत् सर्वाः पालयीतात्मसात्कृताः॥ ३७४॥

अन्वयः—ततः तूर्यम् अस्य मङ्गलघोषेण स्वकीयं पुरम् आविशेत्। तथा आत्मसात्कृताः तत्प्रजाः सर्वाः पुत्रवत् पालयीत॥ ३७४ ॥

व्याख्या—ततः = तत्पश्चात्, तूर्यम् = शृङ्गवाद्यम्, अस्य, मङ्गलघोषेण = शुभदनादेन, स्वकीयम् = आत्मानम्, पुरम् = नगरम्, आविशेत् = प्रवेशं कुर्यात्। तथा, आत्मसात्कृताः = अधीनीकृताः, सर्वाः = सकलाः, तस्य = रिपोः, प्रजाः = जनाः, पुत्रवत् = स्वकीयसन्तान इव, पालयीत = रक्षां कुर्यात्, प्रयोगोऽयं आर्षः॥ ३७४ ॥

हिन्दी—इसके बाद तुरही के मङ्गलमय शब्द के साथ अपनी राजधानी में विजयी राजा प्रवेश करे। अपने अधीन बना ली गई शत्रु की सारी प्रजा का अपने पुत्र की तरह पालन करे॥ ३७४ ॥

तूर्य्येति। ततः तूर्य्यं वाद्यविशेषः तस्य मङ्गलघोषेण माङ्गलिकध्वनिना स्वकीयं पुरम् आविशेत् प्रविशेत् तथा आत्मसात्कृताः अधीनीकृताः सर्वाः तस्य शत्रोः प्रजाः पुत्रवत् पालयीत पालयेदित्यर्थः, पालयीत इति आर्षोऽयं प्रयोगः॥ ३७४ ॥

नियोजयेन्मन्त्रिगणमपरे मन्त्रचिन्तने।
देशे काले च पात्रे च ह्यादिमध्यावसानतः॥ ३७५॥

अन्वयः—मन्त्रिगणम् अपरे मन्त्रचिन्तने देशे च काले पात्रे च आदिमध्यावसानतः नियोजयेत्॥ ३७५ ॥

व्याख्या—मन्त्रिगणम् = अमात्यवर्गः, अपरे = अपरस्मिन्, मन्त्रचिन्तने = विचारणीयविषये, देशे = स्थाने, काले = समये, पात्रे = व्यक्तिविशेषे, तथा, आदौ = प्रथमे, मध्ये = अन्तराले, अवसाने = अन्ते च, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्॥ ३७५ ॥

हिन्दी—देश, काल तथा पात्र में एवं आदि, मध्य तथा अन्त में मन्त्रिवर्ग के लिए प्राचीन मन्त्रियों को हटाकर उनकी जगह नया मन्त्रिमण्डल नियुक्त कर दे॥ ३७५ ॥

नियोजयेदिति। मन्त्रिगणम् अपरे अन्यस्मिन् मन्त्रचिन्तने विषये देशे काले पात्रे तथा आदौ मध्ये अवसाने च नियोजयेत्॥ ३७५ ॥

भवेन्मन्त्रफलं कीदृगुपायेन कथन्त्विति।
मन्त्र्याद्यधिकृतः कार्य्यं युवराजाय बोधयेत्॥ ३७६ ॥

अन्वयः—मन्त्र्याद्यधिकृतः युवराजाय मन्त्रफलं कीदृक् उपायेन भवेत् तत् कथं वा इति सर्वं कार्यं बोधयेत् ॥ ३७६ ॥

व्याख्या—मन्त्र्यादिषु = अमात्यप्रभृतिषु, अधिकृतः = अधिकारसम्पन्नो जनः, युवराजाय = राजकुमाराय, मन्त्रफलम् = चिन्तनपरिणामम्, कीदृक् = किंविधम्, केन उपायेन = साधनेन, भवेत् = स्यात्, तत्, कथम् = केन प्रकारेण, वा = अथवा, इति, सर्वम् = सकलम्, कार्यम् = सुविचारितविषयम्, बोधयेत् = ज्ञापयेत् ॥ ३७६ ॥

हिन्दी—किस उपाय से विचार का कैसा परिणाम होगा, इन सबों पर विचार करने के लिए नियुक्त मंत्री अथवा अधिकारी किसी काम को सबसे पहले युवराज के सामने पेश करे ॥३७६ ॥

भवेदिति। मन्त्र्यादिषु सचिवादिषु अधिकृतः जनः युवराजाय मन्त्रफलं कीदृक् केन उपायेन भवेत् तत्, कथं वा इति सर्वं कार्य्यं मन्त्रितविषयं बोधयेत् ज्ञापयेत् ॥ ३७६ ॥

पश्चाद्राज्ञे तु तैः साकं युवराजो निवेदयेत्।
राजा संशासयेदादौ युवराजं ततस्तु सः ॥ ३७७ ॥
युवराजो मन्त्रिगणान् राजाग्रे तेऽधिकारिणः।
सदसत् कर्म राजानं बोधयेद्धि पुरोहितः ॥ ३७८ ॥

अन्वयः—पश्चात् युवराजः तैः साकं राज्ञे निवेदयेत्। राजा आदौ युवराजं ततः सः युवराजः मन्त्रिगणान् संशासयेत्। ते च अधिकारिणः राजाग्रे सत् असत् कर्म बोधयेयुः, ततः पुरोहितः राजानं हि बोधयेत् ॥ ३७७-३७८ ॥

व्याख्या—पश्चात् = ततः, युवराजः = राजकुमारः, तैः = सचिवादिषु, अधिकृतैः पुरुषैः, साकम् = सह, राज्ञे = नृपाय, निवेदयेत् = कथयेत्। राजा = नृपः, आदौ = अग्रतः, युवराजम् = राजकुमारम्, ततः = तत्पश्चात्, सः = असौ, युवराजः = राजकुमारः, मन्त्रिगणान् = अमात्यवर्गान्, संशासयेत् = समुपदिशेत्। ते च अधिकारिणः, राजाग्रे = नृपतिनिकटे, सत् = तथ्यम्, असत् = अतथ्यम्, कर्म = कार्यम्, बोधयेयुः, ततः = तत्पश्चात्, पुरोहितः = पुरोधा, राजानम् = नृपम्, हि = निश्चयेन, बोधयेत् = सकलं निवेदयेत् ॥ ३७७-३७८ ॥

हिन्दी—इसके बाद उन सबों को साथ लेकर युवराज उसी काम के विषय में राजा से निवेदन करे। राजा उस पर पहले युवराज के पास अपना मन्तव्य लिखकर भेजे, इसके बाद युवराज मंत्रियों को राजा का वह आदेश सुनावे। सभी अधिकारी वर्ग जो कुछ भला या बुरा काम हो, राजा के सामने उपस्थित होकर पुरोहित के माध्यम से राजा से निवेदित करे ॥३७७-७८ ॥

पश्चादिति। युवराज इति। पश्चात् युवराजः तैः मन्त्र्यादिषु अधिकृतैः पुरुषैः साकं सह राज्ञे निवेदयेत् मन्त्रितविषयमिति शेषः। राजा आदौ अग्रतः युवराजं, ततः सः युवराजः मन्त्रिगणान् संशासयेत् सम्यक् उपदिशेत्। ते च अधिकारिणः राजाग्रे राजसमीपे सत् असच्च कर्म बोधयेयुरिति शेषः, ततः पुरोहितः राजानं बोधयेत् सर्वमिति शेषः ॥ ३७७-३७८ ॥

ग्रामाद्बहिः समीपे तु सैनिकान् धारयेत् सदा।
ग्राम्यसैनिकयोर्न स्यादुत्तमर्णाधमर्णता ॥ ३७९ ॥

अन्वयः—ग्रामात् बहिः समीपे सदा सैनिकान् धारयेत्। ग्राम्यसैनिकयोः उत्तमर्णाधमर्णता न स्यात् ॥ ३७९ ॥

व्याख्या—ग्रामात् = पुरात्, बहिः = बाह्यप्रदेशे, वा = अथवा, समीपे = निकटे, सदा = सर्वदा, सैनिकान् = योद्धान्, धारयेत् = स्थापयेत्। ग्राम्यसैनिकयोः = नगरवासीजन-आयुधिक-पुरुषयोः, उत्तमर्णाधमर्णता = धन-आदानप्रदानव्यवहारः, न = नहि, स्यात् = भवेत् ॥ ३७९ ॥

हिन्दी—राजा हमेशा सैनिक-छावनी गाँव से बाहर या गाँव के समीप बनाये। साथ ही उसे इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामीण और सैनिकों के बीच ऋण का आदान-प्रदान न हो ॥३७९ ॥

ग्रामादिति। ग्रामात् बहिः बाह्यप्रदेशे समीपे वा सदा सैनिकान् धारयेत् रक्षेत्। ग्राम्यसैनिकयोः ग्रामवासिजनसैनिकपुरुषयोः उत्तमर्णाधर्मर्णता ऋणदानव्यवहारः न स्यात् तथात्वे भूयाननिष्टपातः स्यादिति भावः ॥ ३७९ ॥

सैनिकार्थन्तु पण्यानि सैन्ये सन्धारयेत् पथक्।
नैकत्र वासयेत् सैन्यं वत्सरन्तु कदाचन ॥ ३८० ॥

अन्वयः—सैनिकार्थं पण्यानि सैन्ये पृथक् सन्धारयेत्, तु तथा वत्सरं सैन्यं कदाचन एकत्र न वासयेत् ॥ ३८० ॥

व्याख्या—सैनिकार्थम् = सैनिकानां निमित्तम्, पण्यानि = क्रयवस्तूनि, सैन्ये = सेनाविशेषे, पृथक् = भिन्नम्, सन्धारयेत् = स्थापनं कुर्यात्, तथा वत्सरम् = वर्षपर्यन्तम्, सैन्यम्, एकत्र = एकस्मिन् स्थाने, न = नहि, वासयेत् = स्थापयेत् ॥ ३८० ॥

हिन्दी—सैनिकों की आवश्यक वस्तुओं की खरीद-बिक्री के लिए छावनी के ही भीतर बाजार की व्यवस्था होनी चाहिए। वर्ष भर से अधिक किसी सेना को एक स्थान पर नहीं रखना चाहिए ॥ ३८० ॥

सैनिकार्थमिति। सैनिकार्थं सेनानां निमित्तं पण्यानि विक्रयद्रव्याणि सैन्ये सेनानिवेशे पृथक् सन्धारयेत् स्थापयेत्। ग्रामवासिसाधारण्ये सर्वदा विसंवादसम्भावनादिति भावः। तथा वत्सरं व्याप्य सैन्यम् एकत्र एकस्मिन् स्थाने न वासयेत् ॥ ३८० ॥

सेनासहस्रं सज्जं स्यात् क्षणात् संशासयेत् तथा।
संशासयेत् स्वनियमान् सैनिकानष्टमे दिने ॥ ३८१ ॥

अन्वयः—यथा सेनासहस्रं क्षणात् सज्जं स्यात् तथा संशासयेत्, तथा अष्टमे दिने सैनिकान् स्वनियमान् संशासयेत् ॥ ३८१ ॥

व्याख्या—यथा, सेनासहस्रम् = सहस्रसंख्यकं बलम्, क्षणात् = पलमात्रात्, सज्जम् = उद्यतम्, स्यात् = भवेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, संशासयेत् = सम्यग्रूपेण प्रशिक्षयेत्, तथा = अष्टमे दिने = सप्ताहान्ते अथवा अपराह्णे, सैनिकान् = आयुधिकान्, स्वस्य = आत्मनः, नियमान् = नियतनियमान्, संशासयेत् = प्रशिक्षयेत् ॥ ३८१ ॥

हिन्दी—हजारों सेना की एक टुकड़ी आदेश मिलते ही एक क्षण में युद्ध के लिए तैयार हो जाय, ऐसी शिक्षा देनी चाहिए। साथ ही सप्ताह में एक दिन अथवा सायंकाल प्रतिदिन उन्हें अपनी नियत शिक्षा देनी चाहिए॥ ३८१ ॥

सेनेति। यथा सेनासहस्रं क्षणात् सज्जं स्यात् तथा संशासयेत् सम्यक् शिक्षयेत्। तथा अष्टमे दिने दिनस्य अष्टमे भागे इत्यर्थः, अपराह्णसमये इति यावत् सैनिकान् स्वस्य नियमान् संशासयेत् सम्यक् उपदिशेच्च॥ ३८१ ॥

चण्डत्वमाततायित्वं राजकार्य्ये विलम्बनम्।
अनिष्टपेक्षणं राज्ञः स्वधर्मपरिवर्जनम्॥ ३८२॥
त्यजन्तु सैनिका नित्यं सल्लापमपि वा परैः।
नृपाज्ञया विना ग्रामं न विशेयुः कदाचन॥ ३८३॥
स्वाधिकारिगणस्यापि ह्यपराधं दिशन्तु नः।
मित्रभावेन वर्त्तध्वं स्वामिकृत्ये सदाखिलैः॥ ३८४॥
सूज्ज्वलानि च रक्षन्तु शस्त्रास्त्रवसनानि च।
अन्नं जलं प्रस्थमात्रं पात्रं बह्वन्नसाधकम्॥ ३८५॥
शासनादन्यथाचारान् विनेष्यामि यमालयम्।
भेदायितान् रिपुधनं गृहीत्वा दर्शयन्तु माम्॥ ३८६॥

अन्वयः—सैनिकाः नित्यं चण्डत्वम्, आततायित्वं, राजकार्ये विलम्बनं, राज्ञः अनिष्टस्य उपेक्षणं, स्वधर्मस्य परिवर्जनम् अपि वा परैः सल्लापं त्यजन्तु। नृपाज्ञया विना कदाचन ग्रामं न विशेयुः। स्वाधिकारिगणस्यापि अपराधं नः दिशन्तु। अखिलैः स्वामिकृत्ये मित्रभावेन सदा वर्त्तध्वम्। सूज्ज्वलानि शस्त्रास्त्रवसनानि च शासनात् अन्नं जलं प्रस्थमात्रं बह्वन्नसाधकं पात्रं रक्षन्तु। अन्यथाचारान् यमालयं विनेष्यामि तथा रिपुधनं गृहीत्वा भेदायितान् मां दर्शयन्तु॥ ३८२-३८६ ॥

व्याख्या—सैनिकाः, नित्यम् = सततम्, चण्डत्वम् = क्रूरत्वम्, आततायित्वम् = क्रूरकर्मकारित्वम्, राजकार्ये—राज्ञः = नृपस्य, कार्ये = कृत्ये, विलम्बनम् = वेलातिक्रमणम्, राज्ञः = नृपस्य, अनिष्टस्य = अहितस्य, उपेक्षणम् = औदासीन्यम्, स्वधर्मस्य—स्वस्य = आत्मनः, धर्मस्य = कर्त्तव्यस्य, परिवर्जनम् = परित्यजनम्, अपि = चेत्, वा = अथवा, परैः = रिपुभिः, सल्लापम् = सुष्ठुवार्तालापम्, त्यजन्तु = परिहरन्तु। नृपाज्ञया—नृपस्य = भूपस्य, आज्ञया = आदेशेन, विना = विहाय, कदाचन = कथमपि, ग्रामम् = पुरम्, न = नहि, विशेयुः = प्रवेशं कुर्युः। स्वाधिकारिगणस्यापि = सेनाधिकारे नियुक्तस्य अपि, अपराधम् = दोषम्, नः = अस्मभ्यम्, दिशन्तु = निर्देशं कुर्वन्तु। अखिलैः = सकलैः, बलैः, स्वामिकृत्ये = प्रभुकार्ये, मित्रभावेन = सख्यभावेन, सदा = सर्वदा, वर्त्तध्वम् = निर्वहध्वम्। सूज्ज्वलानि = समुज्ज्वलानि, शस्त्राणि = प्रहरणानि, अस्त्राणि = आयुधानि, वसनानि = वस्त्राणि, च = पुनः, शासनात् = मम आदेशेन, अन्नम् = भक्ष्यम्, जलम् = पेयम्, प्रस्थमात्रम् = सेटकपरिमितम्, बहूनाम् = अत्यधिकानाम्, अन्नानाम् = भोज्यपदार्थानाम्, साधकम् = उपयोगिनम्, पात्रम् = स्थालीम् इति, रक्षन्तु = गोपयन्तु। अन्यथाचारान्—अन्यथा = इतरथा, आचरन्ति = व्यवहरन्ति, तान्, यमालयम् =

मृत्युलोकम्, विनेष्यामि = प्रापयिष्यामि, तथा, रिपुधनम् = शत्रुसम्पदम्, गृहीत्वा = नीत्वा, भेदायितान् = भेदं प्रापितान् सैनिकान्, माम् = अस्मान्, दर्शयन्तु = निर्दिशन्तु, तामपि यमालयं नेष्यामि इति ॥ ३८२-३८६ ॥

हिन्दी—अतिक्रुद्ध होना, आततायी का काम करना, राजकीय काम में देर लगाना, राजा के अनिष्ट होने की उपेक्षा करना, अपने धर्म को छोड़ देना, दुश्मनों के साथ बातचीत करना–ये सभी काम सैनिकों को हमेशा के लिए छोड़ देने चाहिए। राजा के हुक्म पाये बिना किसी गाँव में कभी भी प्रवेश न करें और अपने अधिकारी के द्वारा किये गये अपराधों को राजा से कहें। राजा के किसी भी काम को आपस में सभी मिलकर मित्रभाव से पूरा करें। अपने हथियार, वस्त्र और पात्रों को साफ-सुथरा रखें और अपने पास कम-से-कम एक-एक सेर अन्न और जल जरूर रखें। साथ में पकाने-खाने के लिए बर्तन-वासन भी रखें। मेरे इन आदेशों के विपरीत आचरण करने वाले सैनिकों को मैं यमपुरी भेज दूँगा और जो शत्रु से धन लेकर उनसे मिल गये हों उन सैनिकों को मुझे दिखालाओं, ताकि मैं उन्हें भी मौत के घाट उतार दूँगा ॥ ३८२-३८६ ॥

संशासनान्याह—**चण्डत्वमित्यादि**। सैनिकाः नित्यं सततं चण्डत्वम् उग्रत्वम् आततायित्वं राजकार्य्यविलम्बनं राज्ञः अनिष्टस्य उपेक्षणं स्वधर्मस्य परिवर्जनं परित्यागम् अपि वा अथवा परैः शत्रुभिः सल्लापं सदालापं त्यजन्तु। नृपस्य आज्ञया विना कदाचन ग्रामं न विशेयु प्रविशेयुः। स्वाधिकारिगणस्य सेनाधिकारे नियुक्तस्य अपराधं दोषं नः अस्मभ्यं दिशन्तु। अखिलैः समस्तैः सैन्यैः स्वामिनः कृत्ये कार्य्ये मित्रभावेन वर्त्तध्वं यूयमिति शेषः। सूज्ज्वलानि अत्युज्ज्वलानि शस्त्राणि अस्त्राणि वसनानि वस्त्राणि च तथा शासनात् मम आज्ञया इत्यर्थः, अन्नं जलं प्रस्थमात्रं प्रस्थपरिमितं बहूनाम् अन्नानां साधकं पात्रं स्थालीमित्यर्थः रक्षन्तु। अन्यथाचारान् ये अन्यथा आचरन्ति तानित्यर्थः, यमालयं विनेष्यामि प्रापयिष्यामि। तथा रिपुधनं गृहीत्वा भेदायितान् भेदं प्रापितान् सैनिकान् मां दर्शयन्तु तानपि यमालयं नेष्यामि ॥ ३८२-३८६ ॥

सैनिकैरभ्यसेन्नित्यं व्यूहाद्यनुकृतिं नृपः ।
तथायनेऽयने लक्ष्यमस्त्रपातैर्विभेदयेत् ॥ ३८७ ॥

अन्वयः—नृपः सैनिकैः व्यूहाद्यनुकृतिं नित्यम् अभ्यसेत्, तथा अयने अयने अस्त्रपातैः लक्ष्यं विभेदयेत् ॥ ३८७ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, सैनिकैः = आयुधिकैः, व्यूहादीनाम् = सैन्यरचनाप्रभृतीनाम्, अनुकृतिम् = अनुसरणम्, नित्यम् = सततम्, अभ्यसेत् = अभ्यासं कुर्यात्, तथा, अयनेऽयने = प्रतिषाण्मासिकम्, अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, पातैः = पतनैः, लक्ष्यम् = शरव्यम्, विभेदयेत् = भेदनं कुर्यात् ॥ ३८७ ॥

हिन्दी—राजा प्रतिदिन सैनिकों से व्यूहरचना का अभ्यास कराये तथा प्रत्येक छः महीने पर चाँदमारी (लक्ष्य-भेदन) का अभ्यास सैनिकों से कराये ॥ ३८७ ॥

सैनिकैरिति। नृपः सैनिकैः व्यूहादीनाम् अनुकृतिं नित्यम् अभ्यसेत् तथा अयने अयने प्रति षाण्मासिकमित्यर्थः, अथवा गतिविशेषे गतिविशेषे, अस्त्राणां पातैः लक्ष्यं विभेदयेत् ॥ ३८७ ॥

सायं प्रातः सैनिकानां कुर्य्यात् सङ्गणनं नृपः।
जात्याकृतिवयोदेशग्रामवासान् विमृश्य च॥ ३८८॥

अन्वयः—नृपः सायं प्रातः सैनिकानां जात्याकृतिवयोदेशग्रामवासान् विमृश्य च सङ्गणनं कुर्य्यात्॥ ३८८॥

व्याख्या—नृपः = राजा, सायं = सन्ध्याकाले, प्रातः = प्रभाते, सैनिकानाम् = बलानां वा आयुधिकानाम्, जातिम् = वर्णम्, आकृतिः = स्वरूपम्, वयः = अवस्था, देशम् = स्थानविशेषम्, ग्रामम् = पुरम्, वासम् = निवासम्, विमृश्य = विविच्य, सङ्गणनम् = सम्यक्प्रकारेण गणनाम्, कुर्यात् = विदध्यात्॥ ३८८॥

हिन्दी—राजा प्रतिदिन शाम-सुबह सैनिकों की सही-सही गिनती कराये। गिनती में प्रत्येक सैनिकों की जाति, स्वरूप, उम्र, देश, गाँव और निवासःस्थान के सम्बन्ध में पूरी जानकारी भी होनी चाहिए॥ ३८८॥

सायमिति। नृपः सायं प्रातः सैनिकानां जातिम् आकृतिं वयः, देशं ग्रामं वासं वासस्थानञ्च विमृश्य विविच्य सङ्गणनं संख्यां कुर्य्यात्॥ ३८८॥

कालं भृत्यवधिं देयं दत्तं भृत्यस्य लेखयेत्।
कति दत्तं हि भृत्येभ्यो वेतनं पारितोषिकम्।
तत्प्राप्तिपत्रं गृह्णीयाद्दद्याद्वेतनपत्रकम्॥ ३८९॥

अन्वयः—भृत्यस्य भृत्यवधिं कालं तथा देयं दत्तं कति दत्तं वेतनं पारितोषिकम् इति लेखयेत्। तत्प्राप्तिपत्रं गृह्णीयात् च वेतनपत्रकं दद्यात्॥ ३८९॥

व्याख्या—भृत्यस्य = सैनिकस्य, भृतेः = वेतनस्य, अवधिम् = सीमारूपम्, कालम् = समयम्, तथा, भृत्येभ्यः, देयम् = दातुं योग्यम्, कति, दत्तम् = प्रदत्तम्, वेतनं = भृतिः, पारितोषिकम् = पुरस्कारम्, कति = कियत्, इति = इत्थम्, लेखयेत् = लिपिबद्धं कुर्यात्, तत् = तेषाम्, प्राप्तिपत्रम् = अधिगतपत्रं वा स्वीकृतिपत्रम्, गृह्णीयात् = स्वीकुर्यात्, तथा, वेतनपत्रकम् = भृतिप्राप्तिपत्रम्, दद्यात् = समर्पयेत्॥ ३८९॥

हिन्दी—नौकरी प्रारम्भ की मासिक या वार्षिक वेतन पाने की रसीद, दिये गये वेतन की रसीद–इन सबों को विचार कर लिख ले। सेवकों को कितना वेतन या इनाम दिया गया है, इसकों पाने के लिए लिखे गये आदेशपत्र को लेकर उसके वेतन या पारितोषिक चुकता कर देने की रसीद दे दे॥ ३८९॥

कालमिति। भृत्यस्य भृतेः अवधिं सीमारूपं कालं तथा भृत्येभ्यः देयं, दत्तं कति दत्तं वेतनं पारितोषिकञ्च कति इत्येतत् लेखयेत्। लेखयित्वा तेषां प्राप्तिपत्रं गृह्णीयात् वेतनपत्रञ्च दद्यात्॥ ३८९॥

सैनिकाः शिक्षिता ये ये तेषु पूर्णा भृतिः स्मृता।
व्यूहाभ्यासे नियुक्ता ये तेष्वर्द्धां भृतिमावहेत्॥ ३९०॥

अन्वयः—ये ये सैनिकाः शिक्षिताः तेषु पूर्णा भृतिः स्मृता। व्यूहाभ्यासे नियुक्ताः तेषु अर्धां भृतिम् आवहेत्॥ ३९०॥

व्याख्या—ये ये सैनिकाः = ये ये योद्धारः, शिक्षिताः = प्रशिक्षणप्राप्ताः, तेषु = सैनिकेषु, पूर्णा = सम्पूर्णा, भृतिः = वेतनम्, स्मृता = कथिता; अर्थात् प्रशिक्षिकाः सैनिकाः पूर्णवेतनमर्हन्ति। ये = सैनिकाः, व्यूहानाम् = सैन्यरचनानाम्, अभ्यासे = प्रशिक्षणे, नियुक्ताः = नियोजिताः, तेषु = सैनिकेषु, अर्धाम् = अर्धभागमेव, भृतिम् = वेतनम्, आवहेत् = दद्यात् ॥ ३९० ॥

हिन्दी—जो सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों, उन्हें पूर्ण वेतन देना चाहिए। प्रशिक्षण में संलग्न सैनिकों को आधा वेतन देना चाहिए ॥ ३९० ॥

सैनिका इति। ये ये सैनिकाः शिक्षिताः तेषु भृत्येषु पूर्णा भृतिः वेतनं स्मृता ते पूर्णवेतनमर्हन्तीत्यर्थः। ये व्यूहानाम् अभ्यासे शिक्षायां नियुक्ताः तेषु अर्द्धां भृतिम् आवहेत् दद्यात् ते सैनिकाः पूर्णभृतेरर्द्धमर्हन्तीत्यर्थः ॥ ३९० ॥

असत्कर्त्राश्रितं सैन्यं नाशयेच्छत्रुयोगतः ॥ ३९१ ॥

अन्वयः—असत्कर्त्राश्रितं सैन्यं शत्रुयोगतः नाशयेत् ॥ ३९१ ॥

व्याख्या—असन्तम् = दुष्टम्, कर्त्तारम् = राजानम्, आश्रितम् = अवलम्बितम्, सैन्यम्, शत्रुयोगतः = रिपुसम्पर्केन, नाशयेत् = विनष्टं कुर्यात्, राजेति शेषः ॥ ३९१ ॥

हिन्दी—शत्रु से मिलकर जो सेना राजा की बुराई करे, उसे नष्ट कर देना चाहिए ॥ ३९१ ॥

असदिति। असन्तम् अभद्रं कर्त्तारं स्वामिनम् आश्रितं सैन्यं शत्रुयोगतः शत्रुयोगेन नाशयेत् प्रभुमिति शेषः ॥ ३९१ ॥

नृपस्यासद्गुणरताः के गुणद्वेषिणो नराः।
असद्गुणोदासीनाः के हन्यात् तान् विमृशन् नृपः।
सुखासक्तांस्त्यजेद् भृत्यान् गुणिनोऽपि नृपः सदा ॥ ३९२ ॥

अन्वयः—के नराः असद्गुणरताः? के वा नृपस्य गुणद्वेषिणः? के च असद्गुणोदासीनाः? नृपः विमृशन् तान् हन्यात्। किञ्च नृपः गुणिनोऽपि भृत्यान् सदा सुखासक्तान् त्यजेत् ॥ ३९२ ॥

व्याख्या—के नराः = जनाः, असद्गुणेषु = दुष्टगुणेषु, रताः = निरताः, वा = अथवा, के नृपस्य = राज्ञः, गुणद्वेषिणः = प्रकृतिविरोधिनः, के च असद्गुणेषु = दोषेषु, उदासीनाः = विरक्ताः, नृपः = राजा, विमृशन् = विचारयन्, तान् = विरोधिनः, हन्यात् = घातयेत्। किञ्च, नृपः = राजा, गुणिनोऽपि, भृत्यान् = सेवकान्, सदा = सर्वदा, त्यजेत् = त्यागं कुर्यात् ॥ ३९२ ॥

हिन्दी—राजा के दुर्गुणों के प्रति कौन सेवक रुचि रखता है और कौन उनके अच्छे गुणों के विरोधी हैं? कौन राजा के असद्गुणों में प्रवृत्ति रहने पर उनकी उपेक्षा करते हैं? इनका ठीक से विचार कर राजा इन्हें समाप्त कर दे। साथ ही गुणवान् नौकरों को भी, जो सदैव सुख में डूबे हों, उन्हें निकाल दे ॥ ३९२ ॥

नृपस्येति। के नराः असद्गुणेषु रताः के वा नृपस्य गुणद्वेषिणः, के च असद्गुणेषु उदासीनाः उपेक्षमाणाः, नृपः विमृशन् विचारयन् तान् हन्यात्। किञ्च नृपः गुणिनोऽपि भृत्यान् सदा सुखेषु आसक्तान् त्यजेत् ॥ ३९२ ॥

सुखान्तलोकविश्वस्ता योज्यास्त्वन्तःपुरादिषु।
धार्म्याः सुखान्तविश्वस्ता धनादिव्ययकर्मणि ॥ ३९३ ॥

अन्वयः—सुखान्तलोकविश्वस्ताः अन्तःपुरादिषु योज्याः। सुखान्तविश्वस्ताः च जनाः धनादिव्ययकर्मणि धार्याः ॥ ३९३ ॥

व्याख्या—सुष्ठु अन्तःकरणाः, लोकेषु = संसारेषु, विश्वस्ताः = विश्वसनीयाः जनाः, अन्तःपुरादिषु = हर्म्येषु, योज्याः = नियोक्तव्याः। सुखान्ताः = स्थिरचित्ताः, विश्वस्ताश्च = विश्वासापन्नाश्च जनाः, धनादीनाम् = अर्थादीनाम्, व्ययकर्मणि = धननिर्गमकार्येषु, धार्याः = नियोक्तव्याः ॥ ३९३ ॥

हिन्दी—अच्छे विचार वाले विश्वसनीय व्यक्तियों को रनिवास में तथा व्ययादि कार्यों में नियुक्त करना चाहिए ॥ ३९३ ॥

सुखान्तेति। सुखान्ताः सदन्तःकरणाः लोकेषु जगत्सु विश्वस्ताः जनाः अन्तःपुरादिषु योज्याः नियोक्तव्याः। तथा सुखान्ताः विश्वस्ताश्च जनाः धनादीनां व्ययकर्मणि धार्य्याः नियोज्याः ॥ ३९३ ॥

तथा हि लोकविश्वस्तो राजकृत्ये नियुज्यते।
अन्यथा योजितास्ते हि परिवादाय केवलम् ॥ ३९४ ॥

अन्वयः—तथा हि लोकविश्वस्तः राजकृत्ये नियुज्यते। अन्यथा ते हि योजिताः केवलं परिवादाय ॥ ३९४ ॥

व्याख्या—तथा हि = एवं सति, लोकेषु = जगत्सु, विश्वस्तः = विश्वसनीयो जनः, राजकृत्ये = नृपकर्मणि, नियुज्यते = नियुक्तो भवति। अन्यथा = इतरथा, ते = पूर्वोक्ताः, हि = यतः, अविश्वस्ताः = अविश्वसनीयाः जनाः, योजिताः = नियुक्ताः, केवलम् = मात्रम्, परिवादाय = निन्दार्थमेव भवति ॥ ३९४ ॥

हिन्दी—लोक में जो विश्वासपात्र हैं उन्हें ही राजकीय सेवा में नियोजित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अविश्वस्त लोगों की नियुक्ति से मात्र निन्दा होती है, काम कुछ नहीं सधता ॥ ३९४ ॥

तथेति। तथा हि लोकेषु विश्वस्तो जनः राजकृत्ये राजकार्य्ये नियुज्यते। ते हि अन्यथा अविश्वस्ताः योजिताः जनाः केवलं परिवादाय निन्दायै भवन्तीति भावः ॥ ३९४ ॥

शत्रुसम्बन्धिनो ये ये भिन्ना मन्त्रिगणादयः।
नृपदुर्गुणतो नित्यं हृतमाना गणाधिकाः।
स्वकार्य्यसाधका ये तु सुभृत्या पोषयेच्च तान् ॥ ३९५ ॥

अन्वयः—ये ये शत्रुसम्बन्धिनः भिन्नाः मन्त्रिगणादयः ये च गणाधिकाः नृपस्य दुर्गुणतः नित्यं हृतमानाः स्वकार्यसाधकाः तान् सुभृत्या पोषयेत् ॥ ३९५ ॥

व्याख्या—ये ये = जनाः, शत्रुसम्बन्धिनः = रिपुसम्पर्किणः, भिन्नाः = भेदं गताः, मन्त्रिगणादयः = अमात्यप्रभृतयः, ये च, गणाधिकाः = दलश्रेष्ठाः, नृपस्य = राज्ञः, शत्रोः, दुर्गुणतः = दोषेण, नित्यम् = प्रतिपलम्, हृतमानाः = सम्मानविहीनाः, अथ च स्वकार्यसाधकाः—स्वस्य = आत्मनः, कार्याणाम् = कृत्यानाम्, साधकाः = सम्पन्नाः, तान् = जनान्, सुभृत्या = सुन्दरवेतनदानेन, पोषयेत् = पालयेत् ॥ ३९५ ॥

हिन्दी—दुश्मनों के मंत्री, जो फोड़कर मिलाये गये हों अथवा दूसरा राजा के दुर्गुणों से

जो लोग अधिक गुणवान् हों परन्तु उनका सम्मान छीन लिया गया हो तथा जिनसे अपना काम सधता हो, ऐसे लोगों को अच्छा वेतन देकर राजा को उन्हें पालना चाहिए ॥ ३९५ ॥

शत्रुसम्बन्धिन इति। ये ये शत्रुसम्बन्धिनः भिन्नाः विच्छेदं गताः, मन्त्रिगणादयः ये च गणाधिकाः दलश्रेष्ठाः नृपस्य शत्रोः दुर्गुणतः दोषेण नित्यं सततं हतमानाः मानभ्रष्टाः अथ च स्वस्य आत्मनः राज्ञ इति यावत् कार्य्यसाधकाः, तान् सुभृत्या उत्कृष्टवेतनेन पोषयेत् ॥ ३९५ ॥

लोभेनासेवनाद्भिन्नास्तेष्वर्द्धां भृतिमावहेत्।
शत्रुत्यक्तान् सुगुणिनः सुभृत्या पालयेन्नृपः ॥ ३९६ ॥

अन्वयः—ये च लोभेन असेवनात् भिन्नाः नृपः तेषु अर्द्धां भृतिम् आवहेत्। शत्रुत्यक्तान् सुगुणिनः सुभृत्या पालयेत् ॥ ३९६ ॥

व्याख्या—ये च = सेवकाः, लोभेन = अतिलिप्सया, असेवनात् = सेवाकार्यम् उपेक्षणात्, भिन्नाः = रिपुं परित्यज्य समागताः, नृपः = राजा, तेषु = जनेषु, अर्द्धाम् = पूर्णवेतनात् अर्द्धभागं, भृतिम् = वेतनम्, आवहेत् = प्रयच्छेत्, तथा शत्रुत्यक्तान् = रिपुपरित्यक्तान्, अथ च सुगुणिनः = सुष्ठुगुणवन्तः जनान्, सुभृत्या = सुष्ठुवेतनदानेन, पालयेत् = पोषयेत् ॥ ३९६ ॥

हिन्दी—धन के लोभ से राजकाज की उपेक्षा करने वाले शत्रु के सेवकों को आधा वेतन देकर अपने यहाँ नियुक्त कर ले तथा दुश्मन के यहाँ जो गुणवान् सेवक हों उनमें फूट डालकर अपने पक्ष में मिलाकर उन्हें अच्छा वेतन देकर अपने यहाँ रख लेना चाहिए ॥ ३९६ ॥

लोभेनेति। ये च लोभेन अधिकप्राप्त्याशया असेवनात् सेवायाम् उपेक्षणादित्यर्थः, भिन्नाः शत्रुतः विच्छिन्नाः नृपः तेषु अर्द्धां भृतिं पूर्णभृतेरर्द्धमित्यर्थः, आवहेत् दद्यात्। तथा शत्रुत्यक्तान् अथ च सुगुणिनः जनान् सुभृत्या सुवेतनेन पालयेत् ॥ ३९६ ॥

परराष्ट्रे हृते दद्याद् भृतिं भिन्नावधिं तथा।
दद्यादर्द्धां तस्य पुत्रे स्त्रियै पादमितां किल ॥ ३९७ ॥

अन्वयः—परराष्ट्रे हृते भिन्नावधिं भृतिं दद्यात्। तथा तस्य पुत्रे अर्धां स्त्रियै पादमितां भृतिं किल दद्यात् ॥ ३९७ ॥

व्याख्या—परराष्ट्रे = रिपुराज्ये, हृते = स्वायत्तीकृते सति, भिन्नावधिम् = राज्यापहरणवधिम्, भृतिं = पालनोपयोगि धनं, दद्यात् = प्रयच्छेत्, तथा = तेनैव प्रकारेण, तस्य = शत्रुराज्ञः, पुत्रे = सुते, अर्धाम् = नृपतः अर्द्धभागम्, स्त्रियै = शत्रुपत्न्यै, पादमितां = चतुर्थांशम्, भृतिम् = वेतनम्, किल = निश्चयेन, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ ३९७ ॥

हिन्दी—पराजित राजा का राज्य यदि अपने राज्य में मिला ले तो वैसी स्थिति में पराजित राजा को पराजित काल से लेकर जीवन-यापन के लिए वेतन निर्धारित कर दे। राजा के वेतन का आधा भाग उसके बेटे को तथा वेतन की चौथाई उसकी पत्नी को निश्चित रूप से निर्धारित कर दे ॥ ३९७ ॥

परराष्ट्रे इति। परराष्ट्रे शत्रुराज्ये हृते आत्मसात्कृते सति भिन्नावधिं राज्यहरणदिवसावधिं भृतिं भरणोपयोगिधनं दद्यात् तथा तस्य पुत्रे अर्द्धां स्त्रियै पादमितां चतुर्थभागरूपां भृतिं किल निश्चितं दद्यात् ॥ ३९७ ॥

हतराज्यस्य पुत्रादौ सद्गुणे पादसम्मितम्।
दद्याद्वा तद्राज्यतस्तु द्वात्रिंशांशं प्रकल्पयेत्॥ ३९८॥

अन्वयः—हतराज्यस्य सद्गुणे पुत्रादौ पादसम्मितं दद्यात्। वा तु तद्राज्यतः द्वात्रिंशांशं प्रकल्पयेत्॥ ३९८॥

व्याख्या—हतराज्यस्य—हतम् = आत्मसात्कृतम्, राज्यम् = राष्ट्रम्, तस्य = रिपोः, सद्गुणे = सद्गुणसम्पन्ने, पुत्रादौ = सुतादौ, तस्य = राज्यस्य, पादसम्मितम् = चतुर्थांशपरिमितं, दद्यात् = प्रयच्छेत्, वा = अगुणशालिनि तु, द्वात्रिंशांशम् = द्वात्रिंशभागम्, प्रकल्पयेत् = समर्पयेत्॥३९८॥

हिन्दी—पराजित राजा के बेटे यदि सद्गुणसम्पन्न हों तो उनके जीविकार्थ उनसे छीने गये राज्य का चौथा भाग उन्हें दे। किन्तु यदि उनके बेटे गुणवान् न हों तो उन्हें केवल अपहृत राज्य का बत्तीसवाँ भाग ही देना चाहिए॥ ३९८॥

हतेति। हतं राज्यं यस्य तस्य शत्रोः सद्गुणे सुगुणशालिनि पुत्रादौ तस्य राज्यस्य पादसम्मितं चतुर्थभागमित्यर्थः, दद्यात् वा एव वाशब्दः अवधारणार्थः, अगुणशालिनि तु द्वात्रिंशांशं प्रकल्पयेत् दद्यादित्यर्थः॥ ३९८॥

हतराज्यस्य निचितं कोशं भोगार्थमाहरेत्॥ ३९९॥

अन्वयः—हतराज्यस्य निचितं कोशं भोगार्थम् आहरेत्॥ ३९९॥

व्याख्या—हतराज्यस्य = रिपोः अपहृतराष्ट्रस्य, निचितम् = सञ्चितम्, कोशम् = धनागारं, स्वस्य, भोगार्थम् = उपभोगहेतवे, आहरेत् = गृह्णीयात्॥ ३९९॥

हिन्दी—शत्रु के अपहृत राज्य में उसके द्वारा संचित जो खजाना है. उसे विजयी राजा अपने उपभोग के लिए रख ले॥ ३९९॥

हतेति। हतराज्यस्य शत्रोः निचितं सञ्चितं कोशं धनं स्वस्य भोगार्थम् आहरेत् गृह्णीयात्॥ ३९९॥

कौसीदं वा तद्धनस्य पूर्वोक्तार्द्धं प्रकल्पयेत्।
तद्धनं द्विगुणं यावन्न तदूर्ध्वं कदाचन॥ ४००॥

अन्वयः—वा तत् धनस्य कौसीदं पूर्वोक्तम्. अर्धं यावत् तत् धनं द्विगुणं तावत् प्रकल्पयेत्, कदाचन तत् ऊर्ध्वं न ॥४००॥

व्याख्या—वा = अथवा, तत् = तस्य नृपस्य, धनस्य = सञ्चितकोशस्य, कौसीदम् = वृद्धिधनम्, पूर्वोक्तम् = प्राक्कथितम्, अर्धम् = अर्धभागं, यावत् = कालावधि, तद् धनं द्विगुणं भवेत्, तावत् = अवधिपर्यन्तं, प्रकल्पयेत् = विचारयेत्, कदाचन = कथमपि, तस्मात् = पूर्वोक्तधनात्, ऊर्ध्वम् = उपरि, न = नहि, दद्यात्॥४००॥

हिन्दी—अथवा पराजित राजा के संचित कोश का आधा धन का सूद उसे तब तक देता रहे जब तक सूद की रकम मूल धन से दूनी न हो जाय। इससे ऊपर बिलकुल देना बन्द कर दे॥४००॥

कौसीदमिति। वा अथवा तद्धनस्य तस्य निचितकोशस्य इत्यर्थः, कौसीदं वृद्धिस्वरूपं

पूर्वोक्तम् अर्द्धं यावत् तत् धनं द्विगुणं भवेत् तावत्कालपर्य्यन्तं कल्पयेत् कदाचन तस्मात् ऊर्द्ध्वं न द्वैगुण्यादधिकं नेत्यर्थः ॥ ४०० ॥

स्वमहत्त्वद्योतनार्थं हतराज्यान् प्रधारेयत्।
प्राङ्मानैर्यदि सद्वृत्तान् दुर्वत्तास्तु प्रपीडयेत् ॥ ४०१ ॥

अन्वयः—हतराज्यान् यदि स्वमहत्त्वद्योतनार्थं प्राङ्मानैः सद्वृत्तान् धारयेत्, दुर्वत्तांस्तु प्रपीडयेत् ॥ ४० १ ॥

व्याख्या—हतराज्यान् = पराजितरिपून्, यदि = चेत्, सद्वृत्तान् = सदाचारनिरतान्, तदा, स्वस्य = आत्मनः, महत्त्वद्योतनार्थम् = माहात्म्यप्रकटनार्थम्, प्राङ्मानैः = पूर्ववत् राजोचितैः, मानैः = समादरैः, धारयेत् = स्थापितं कुर्यात्, दुर्वृत्तान् = दुराचारान्, तु = किन्तु, प्रपीडयेत् = दुःखयेत् ॥ ४० १ ॥

हिन्दी—यदि पराजित राजा सदाचारी हो तो अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए सर्वप्रथम उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। किन्तु यदि वह दुराचारी हो तो उसे हर तरह से सताना चाहिए ॥ ४० १ ॥

स्वेति। हतराज्यान् शत्रून् यदि सद्वृत्तान् सदाचारान् स्वस्य माहात्म्यद्योतनार्थं निज़महिमप्रकटनार्थं प्राङ्मानैः पूर्ववत् राजोचितैः मानैः सम्मानैः धारयेत् स्थापयेत् दुर्वृत्तांस्तु प्रपीडयेत् ॥ ४० १ ॥

अष्टधा दशधा वापि कुर्य्याद् द्वादशधापि वा।
यामिकार्थमहोरात्रं यामिकान् वीक्ष्य नान्यथा ॥ ४०२ ॥

अन्वयः—यामिकान् वीक्ष्य यामिकार्थम् अहोरात्रम् अष्टधा दशधा वा द्वादशधापि कुर्यात्, अन्यथा न ॥ ४० २ ॥

व्याख्या—यामिकान् = प्रहरिणः, वीक्ष्य = अवलोक्य, यामिकार्थम् = प्रहरिणां निमित्तम्, अहोरात्रम् = दिवानिशम्, अष्टधा = अष्टखण्डेषु विभज्य, दशधा = दशखण्डे विभज्य, वा = अथवा, द्वादशधापि = द्वादशखण्डेऽपि विभज्य, कुर्यात् = प्रहरार्थं नियोजयेत्, अन्यथा = इतरथा, न = नहि ॥ ४० २ ॥

हिन्दी—पहरेदारों की संख्या देखकर तदनुसार उनके लिए दिन-रात को आठ, दश या बारह खण्डों में विभाजित कर उस पर उनकी ड्यूटी लगा दे, दूसरे ढंग से बिलकुल नहीं ॥ ४० २ ॥

अष्टधेति। यामिकान् प्रहरिणः वीक्ष्य विचार्य्य यामिकार्थं प्रहरिणां निमित्तम् अहोरात्रम् अष्टधा दशधा अथवा द्वादशधा कुर्य्यात् विभजेदित्यर्थः, अन्यथा न, यामिकानामेव दिवाविभागस्य आवश्यकत्वादिति भावः ॥ ४० २ ॥

आदौ प्रकल्पितानंशान् भजेयुर्यामिकास्तथा।
आद्यः पुनस्त्वन्तिमांशं स्वपूर्वांशं ततोऽपरे ॥ ४०३ ॥

अन्वयः—यामिकाः आदौ तथा प्रकल्पितान् अंशान् भजेयुः। किञ्च आद्यः अन्तिमांशं ततः अपरे पुनः स्वपूर्वांशम् ॥ ४० ३ ॥

व्याख्या—यामिकाः = प्रहरिणः, आदौ = प्रथमतः, तथा = तेनैव प्रकारेण, प्रकल्पितान् = यथानिर्दिष्टान्, अंशान् = भागान्, भजेयुः = गृह्णीयुः, किञ्च, आद्यः = प्रथमः प्रहरी, अन्तिमांशम् = अवशिष्टभागम्, ततः = तत्पश्चात्, अपरे = अन्ये, पुनः यामिकाः, स्वपूर्णांशम् = निजपूर्वभागम्, गृह्णीयुः ॥४०३॥

हिन्दी—पहले नियत किये गये समय-विभाग के अनुसार पहरेदार पहरा दे। यह विभाजन ऐसा हो कि पहले भाग पर पहरा देने वाला ही अन्तिम खण्ड पर भी पहरा दे। बीच के भाग पर दूसरे का पहरा होना चाहिए॥४०३॥

आदाविति। यामिकाः प्रहरिणः आदौ अग्रतः तथा तेन प्रकारेण प्रकल्पितान् निर्दिष्टान् अंशान् भजेयुः गृह्णीयुः। किञ्च आद्यः प्रथमः यामिकः अन्तिमांशं शेषभागं ततः आद्यात् अपरे अन्ये यामिका स्वपूर्वांशं निज-निजपूर्वभागं भजेयुरिति शेषः॥४०३॥

पुनर्वा योजयेत् तद्वदाद्येऽन्त्यं चान्तिमे ततः।
स्वपूर्वांशं द्वितीयेऽह्नि द्वितीयादिक्रमागतम्॥४०४॥

अन्वयः—पुनश्च आद्ये अन्त्यं तद्वत् तथा अन्तिमे वा आद्यं तथा द्वितीये अह्नि द्वितीयादिक्रमागतं स्वपूर्वांशं योजयेत्॥४०४॥

व्याख्या—पुनश्च = भूयश्च, आद्ये = प्रथमे यामिके, अन्त्यम् = अन्तिमम्, तद्वत् = तेनैव प्रकारेण, अन्तिमे = अवशिष्टे शेषे वा यामिके, आद्यम् = अग्र्यम्, तथा द्वितीये अह्नि = अपरस्मिन् दिने, द्वितीयादिक्रमागतम् = अपरानुपूर्वीयक्रमेण, स्वस्य = आत्मनः, पूर्वांशम् = पूर्वभागे स्थितम्, योजयेत् = नियुक्तं कुर्यात्॥४०४॥

हिन्दी—इसी तरह फिर पहला तथा अन्तिम भाग करके पहले का क्रम बदल दे। दूसरे दिन वह अपने पूर्वभाग पर पहरा दे और जो अन्तिम भाग पर पहरा देता था, उसे फिर पहले भाग पर चक्रानुक्रम से नियुक्त कर दे॥४०४॥

पुनरिति। पुनश्च आद्ये यामिके अन्त्यं तद्वत् तथा अन्तिमे शेषे यामिके वा आद्यं तथा द्वितीये अह्नि द्वितीयादिक्रमागतं स्वपूर्वांशं योजयेत्॥४०४॥

चतुर्भ्यस्त्वधिकान् नित्यं यामिकान् योजयेद्दिने।
युगपद्योजयेद् दृष्ट्वा बहून् वा कार्य्यगौरवम्॥४०५॥

अन्वयः—दिने चतुर्भ्यः अधिकान् यामिकान् योजयेत् वा कार्यगौरवं दृष्ट्वा युगपत् बहून् योजयेत्॥४०५॥

व्याख्या—दिने = दिवसे, चतुर्भ्यः, अधिकान् = विशेषान्, यामिकान् = प्रहरिणः, नित्यम् = प्रतिदिनम्, योजयेत् = नियुञ्ज्यात्, वा = अथवा, कार्यगौरवम्—कार्यस्य = कृत्यस्य, गौरवम् = महत्त्वम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, युगपत् = एकस्मिन्नेव काले, बहून् = अत्यधिकान्, प्रहरिणः, योजयेत् = नियुञ्ज्यात्॥४०५॥

हिन्दी—काम की गुरुता देखकर एक स्थान पर एक दिन में चार से अधिक पहरेदारों को भी नियुक्त किया जा सकता है॥४०५॥

चतुर्भ्य इति। दिने चतुर्भ्यः अधिकान् यामिकान् नित्यं प्रत्यहं योजयेत् नियुञ्ज्यात्, वा अथवा कार्य्यगौरवं दृष्ट्वा युगपत् एककालं बहून् यामिकान् योजयेत्॥४०५॥

चतुरूनान् यामिकांस्तु कदा नैव नियोजयेत् ॥ ४०६ ॥

अन्वयः—कदापि चतुरूनान् यामिकान् नैव नियोजयेत् ॥ ४०६ ॥

व्याख्या—कदापि = कथमपि, चतुरूनान् = चतुर्भ्यः अल्पान्; एकम्, द्वौ त्रीन् वा, यामिकान् = प्रहरिणः, नैव = नास्त्येव, नियोजयेत् = नियुञ्ज्यात् ॥ ४०६ ॥

हिन्दी—चार से कम पहरेदारों को कहीं भी काम पर नहीं लगाना चाहिए ॥ ४०६ ॥

चतुरूनानिति। कदापि चतुरूनान् चतुर्भ्यः हीनान् एकं द्वौ त्रीन् वेत्यर्थः, यामिकान् नैव नियोजयेत् ॥ ४०६ ॥

यद्रक्ष्यमुपदेश्यं यदादेश्यं यामिकाय तत्।
तत् समक्षं हि सर्वं स्याद्यामिकोऽपि च तत्तथा ॥ ४०७ ॥

अन्वयः—यत् रक्ष्यं यच्च उपदेश्यं तत् यामिकाय आदेश्यम्। हि सर्वं तत् समक्षं स्यात्, यामिकोऽपि तत् तथा ॥ ४०७ ॥

व्याख्या—यत् = वस्तु, रक्ष्यम् = रक्षणीयम्, यच्च = विषयम्, उपदेश्यम् = उपदेष्टुं योग्यम्, तत् = विषयम्, यामिकाय = प्रहरिणे, आदेश्यम् = आज्ञापितव्यम्। हि = यतः, सर्वम् = प्रजानां सकलं कार्यम्, तत् = तस्य प्रहरिणः, समक्षम् = सम्मुखम्, स्यात् = भवेत्, तस्मात् यामिकोऽपि = प्रहरी अपि, तत् = सकलं कार्यम्, तथा = शिक्षेत ॥ ४०७ ॥

हिन्दी—जो वस्तु रक्षा करने लायक हो अथवा किसी को समझाने योग्य हो तो उसके लिए भी पहरेदारों को ही आदेश देना चाहिए। क्योंकि सारे काम पहरेदारों के सामने ही होते हैं। अतः वह भी उसे उस विषय में जानकारी रहने के बाद वैसा ही करने को कहेगा ॥ ४०७ ॥

यदिति। यत् रक्ष्यं रक्षणीयं यच्च उपदेश्यं शिक्षणीयं तत् यामिकाय आदेश्यम् उपदेष्टव्यं, हि यतः सर्वं प्रजानां कार्य्यं तत् समक्षं तस्य यामिकस्य समक्षं प्रत्यक्षं स्यात् तस्मात् यामिकोऽपि तत् सर्वं तथा शिक्षेतेति शेषः ॥ ४०७ ॥

कीलकोष्ठे तु स्वर्णादि रक्षेन्नियमितावधि।
स्वांशान्ते दर्शयेदन्ययामिकन्तु यथार्थकम् ॥ ४०८ ॥

अन्वयः—यामिकः नियमितावधि स्वर्णादि कीलकोष्ठे रक्षेत्। स्वांशान्ते अन्ययामिकं यथार्थकं तत् दर्शयेत् ॥ ४०८ ॥

व्याख्या—यामिकः, नियमितावधि = निर्धारितसमयपर्य्यन्तं, स्वर्णादि = कनकादि धनम्, यत् स्वस्वामिकम् अस्वामिकं वा, कीलकोष्ठे = तालकेन निरुद्धप्रकोष्ठे, रक्षेत्। ततः, स्वस्य = आत्मनः, अंशान्ते = प्रहरिकालस्यावसाने, अन्ययामिकम् = स्वपदे उपस्थितं प्रहरिणम्, यथार्थकम् = यथास्थितिम्, तत् = सकलम्, दर्शयेत् = दर्शयित्वा समर्पयेत् ॥ ४०८ ॥

हिन्दी—निश्चित समय तक तालाबन्द कमरे में रखे हुए सोने आदि धन की रक्षा जो पहरेदार करता है, पहरा बदलने पर उस रक्षणीय वस्तु की स्थिति अर्थात् ताला-कुण्डी दिखाकर दूसरे पहरेदार को अपना काम सौंप देना चाहिए ॥ ४०८ ॥

कीलेति। यामिकः नियमितावधि निर्द्धारितकालं यावत् स्वर्णादि यत् अस्वामिकं वा सस्वामिकं चोरितादिप्राप्तमिति भावः, कीलकोष्ठे कीलस्य आश्रयस्तम्भस्य कोष्ठे मध्ये रक्षेत्।

ततः स्वस्य अंशान्ते प्रहरिकालस्य अंशावसाने अन्ययामिकं स्वपदे उपस्थितमिति शेषः, यथार्थकं तत् सर्वं दर्शयेत् दर्शयित्वा बोधयेत् इत्यर्थः ॥४०८ ॥

क्षणे क्षणे यामिकानां कार्य्यं दूरात् सुबोधनम् ॥ ४०९ ॥

अन्वयः—क्षणे क्षणे दूरात् सुबोधनं यामिकानां कार्यम् ॥४०९ ॥

व्याख्या—क्षणे क्षणे = प्रतिक्षणम्, दूरात् = आरात्, सुबोधनम् = प्रजानां जागरणसम्पादनम्, यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, कार्यम् = कृत्यमस्ति ॥४०९ ॥

हिन्दी—पहरेदारों का यह कर्त्तव्य होता है कि दूर से ही प्रतिक्षण वह सबों को सावधान करते रहे ॥४०९ ॥

क्षणे इति। क्षणे क्षणे दूरात् सुबोधनं प्रजानां सतर्कतासम्पादनं यामिकानां कार्य्यम् ॥४०९ ॥

सत्कृतान् नियमान् सर्वान् यदा सम्पालयेन्नृपः ।
तदैव नृपतिः पूज्यो भवेत् सर्वेषु नान्यथा ॥ ४१० ॥

अन्वयः—नृपः यदा सत्कृतान् सर्वान् नियमान् सम्पालयेत् तदैव नृपतिः सर्वेषु पूज्यः भवेत्, अन्यथा न ॥४१० ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, यदा = यस्मिन्काले, सत्कृतान् = शोभनान् कृत्यान्, सर्वान् = सकलान्, नियमान् = व्यवस्थाः, सम्पालयेत् = पालनं कुर्यात्, तदैव = तस्मिन्नेवावस्थायाम्, नृपतिः = भूपः, सर्वेषु = जगत्सु, पूज्यः = श्रेष्ठः, भवेत् = स्यात्, अन्यथा = इत्थं विहाय, न = नहि ॥४१० ॥

हिन्दी—राजा जब सुन्दर ढंग से सभी नियमों का अच्छी तरह पालन करता है तभी वह सभी लोगों के बीच आदरणीय होता है, अन्यथा नहीं ॥४१० ॥

सत्कृतानिति। नृपः यदा सत्कृतान् शोभनान् सर्वान् नियमान् सम्पालयेत्, तदैव नृपतिः सर्वेषु जगत्सु पूज्यः भवेत् अन्यथा न ॥४१० ॥

यस्यास्ति नियतं कर्म नियतः सद्ग्रहो यदि ।
नियतोऽसद्ग्रहत्यागो नृपत्वं सोऽश्नुते चिरम् ॥ ४११ ॥

अन्वयः—यस्य नियतं कर्म तथा नियतः सद्ग्रहः तथा असद्ग्रहत्यागः नियतः, सः चिरं नृपत्वम् अश्नुते ॥४११ ॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, नियतम् = निश्चितम्, सततम्, कर्म = कर्त्तव्यम्, तथा = यदि, नियतः = निधारितः, सत्सु = सुन्दरविषयेषु, ग्रहः = आग्रहः, तथा = तेनैव रूपेण, असत्सु = अनर्गलविषयेषु, ग्रहत्यागः = उपेक्षाभावः, नियतः = सुस्थिरः, सः = असौ राजा, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्, नृपत्वम् = राजपदत्वम्, अश्नुते = उपभुज्यते ॥४११ ॥

हिन्दी—जिस राजा का हर काम हर समय नियमित होता है तथा सुन्दर विषयों में जिसकी रुचि और दुर्वत्तों के प्रति अरुचि रहती है, वह राजा या वैसा ही राजा बहुत दिनों तक अपने राजपद का उपभोग करता है ॥४११ ॥

यस्येति। यस्य नियतं सततं कर्म कार्य्याभिनिवेशः तथा यदि नियतः सत्सु विषयेषु ग्रहः आदरः, तथा असत्सु विषयेषु ग्रहत्यागः अनादरः नियतः, सः चिरं नृपत्वं राजत्वम् अश्नुते प्राप्नोति ॥४११ ॥

यस्यानियमितं कर्म साधुत्वं वचनं त्वपि।
सदैव कुटिलः सख्युः स्वपदाद् द्राग्विनश्यति ॥ ४१२ ॥

अन्वयः—यस्य कर्म साधुत्वं तथा वचनम् अनियमितं सदैव कुटिलं, सः सख्युः स्वपदात् द्राक् विनश्यति ॥ ४१२ ॥

व्याख्या—यस्य = नृपस्य, कर्म = कार्यम्, साधुत्वम् = सुष्ठु भवति, तथा वचनम् = तस्य नृपस्य कथनम्, अनियमितम् = अव्यवस्थितम्, सदैव = सर्वदा, कुटिलम् = वक्रम्, सः = असौ राजा, सख्युः = सुहृदः, स्वपदात्—स्वस्य = आत्मनः, पदात् = नृपत्वात्, द्राक् = झटिति, विनश्यति = विनष्टो भवति ॥ ४१२ ॥

हिन्दी—जिस राजा का काम सुन्दर हो किन्तु बातें अव्यवस्थित हों, सदैव कुटिल हो, वह राजा शीघ्र ही अपने मित्र एवं राज्य से भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४१२ ॥

नापि व्याघ्रगजाः शक्ता मृगेन्द्रं शासितुं यथा।
न तथा मन्त्रिणः सर्वे नृपं स्वच्छन्दगामिनम् ॥ ४१३ ॥
निर्भृताधिकृतास्तेन निःसारत्वं हि तेष्वतः।
गजो निबध्यते नैव तूलभारसहस्रकैः ॥ ४१४ ॥

अन्वयः—यथा व्याघ्रगजाः मृगेन्द्रं शासितुं न शक्ताः तथा तेन निर्भृताधिकृताः सर्वे मन्त्रिणः स्वच्छन्दगामिनं नृपं न। अतः तेषु निःसारत्वं तूलभारसहस्रकैः गजः नैव निबध्यते ॥ ४१३-४१४ ॥

व्याख्या—यथा, व्याघ्राः = शार्दूलाः, च = पुनः, गजाः = हस्तिनः, मृगेन्द्रम् = सिंहम्, शासितुम् = शासनं कर्त्तुम्, न = नहि, शक्ताः = समर्थाः भवन्ति, तथा, तेन = नृपेण, निर्भृताः—निःशेषेण, भृताः = पालिताः, अधिकृताः = हस्तगताः, सर्वे = सकलाः, मन्त्रिणः = अमात्याः, स्वच्छन्दगामिनम् = स्वेच्छाचारिणम्, तं नृपं शासितुं न समर्थाः भवन्ति। अतः = अनेन कारणेन, तेषु = अमात्येषु, निःसारत्वम् = सारहीनत्वम्, तूलानाम् = कार्पासानाम्, भारसहस्रकैः = सहस्रैरपि भारैः, गजः = हस्ती, नैव = नास्त्येव, निबध्यते = बन्धनं गच्छति ॥

हिन्दी—जैसे बाघ और हाथी सिंह पर शासन नहीं कर सकते, उसी तरह सभी मंत्री और अधिकारी गण स्वेच्छाचारी राजा के ऊपर शासन नहीं कर सकते। क्योंकि वे मंत्री तथा अधिकारीगण उसी राजा से पालित तथा पदारूढ़ होते हैं। राजा के सामने शासन करने में वे निस्तेज़ हैं; ठीक उसी तरह जैसे हजारों भार रूई की पूनी हाथी को नहीं बाँध सकती ॥

नापीति। यथा व्याघ्रा गजाश्च मृगेन्द्रं सिंहं शासितुं न शक्ताः, तथा तेन नृपेण निर्भृताः निःशेषेण भृताः अधिकृताः भृत्याः सर्वे मन्त्रिणः स्वच्छन्दगामिनं स्वेच्छाचारिणं तं नृपं शासितुं न शक्ता इत्यर्थः। अतः अस्मात् कारणात् तेषु मन्त्रिषु निःसारत्वम् अक्षमत्वमित्यर्थः, राज्ञः स्वेच्छाचारित्वात् मन्त्रिणामक्षमत्वं सुतरामुपपन्नमिति भावः। तूलानां कार्पासानां भारसहस्रकैः सहस्रैरपि भारैरित्यर्थः गजः नैव निबध्यते ॥ ४१३-४१४ ॥

उद्धर्तुं द्रागगजः शक्तः पङ्कलग्नं गजं बली।
नीतिभ्रष्टनृपं त्वन्यनृप उद्धरणक्षमः ॥ ४१५ ॥

अन्वयः—बली गजः पङ्कलग्नं गजं द्राक् उद्धर्तुं शक्तः, तु अन्यनृपः नीतिभ्रष्टनृपम् उद्धरणक्षमः ॥ ४१५ ॥

व्याख्या—बली = शक्तिशाली, गजः = हस्ती, पङ्कलग्नम् = पङ्के पतितम्, गजम् = हस्तिनम्, द्राक् = शीघ्रमेव, उद्धर्तुम् = पङ्कात् समुद्धर्तुम्, शक्तः = समर्थः, तु = तथा, अन्यनृपः = शक्तिशाली अन्य राजा, नीतिभ्रष्टम् = कुमार्गगामिनम्, नृपम् = राजानम्, उद्धरणक्षमः = उद्धर्तुं समर्थः ॥ ४१५ ॥

हिन्दी—कीचड़ में फँसे हाथी को जैसे कोई शक्तिशाली हाथी ही निकाल सकता है, उसी तरह नीतिभ्रष्ट राजा को कोई शक्तिशाली राजा ही उद्धार कर सकता है ॥ ४१५ ॥

उद्धर्तुमिति। बली प्रबलः गजः पङ्कलग्नं कर्दमपतितं गजं द्राक् झटिति उद्धर्तुं शक्तः। तु तथेत्यर्थः, अन्यनृपः नीतिभ्रष्टं नृपम् उद्धरणक्षमः अत्र नृपमिति कृद्योगे षष्ठ्यभाव आर्षः ॥ ४१५ ॥

बलवन्नृपभृत्येऽल्पेऽपि श्रीस्तेजो यथा भवेत्।
न तथा हीननृपतौ तन्मन्त्रिष्वपि नो तथा ॥ ४१६ ॥

अन्वयः—बलवन्नृपभृत्ये अल्पेऽपि यथा श्रीः तेजश्च भवेत् हीननृपतौ तथा न; तस्य मन्त्रिष्वपि तथा नो भवेत् ॥ ४१६ ॥

व्याख्या—बलवतः = शक्तिशालिनः, नृपस्य = राज्ञः, भृत्ये = सेवके, अल्पेऽपि = क्षुद्रेऽपि, यथा श्रीः = कान्तिः, तेजः = प्रभावः, भवेत्, हीननृपतौ = शक्तिहीने भूपे, तथा, न = नहि, तस्य = नृपस्य, मन्त्रिष्वपि = अमात्येष्वपि, तथा = तेन रूपेण, नो भवेत् ॥ ४१६ ॥

हिन्दी—बलवान् राजा के साधारण नौकर-चाकर में भी जो तेज और ओज दीख पड़ता है, वह शक्तिहीन राजा में या उनके मन्त्रियों में उपलब्ध नहीं होता ॥ ४१६ ॥

बलवदिति। बलवतः नृपस्य भृत्ये अल्पे क्षुद्रेऽपि यथा श्रीः तेजश्च भवेत् हीननृपतौ दुर्बले राजनि न तस्य मन्त्रिषु अपि तथा नो भवेदित्यर्थः ॥ ४१६ ॥

बहूनामैकमत्यं हि नृपतेर्बलवत्तरम्।
बहुसूत्रकृतो रज्जुः सिंहाद्याकर्षणक्षमः ॥ ४१७ ॥

अन्वयः—बहूनाम् ऐकमत्यं नृपतेः अपि बलवत्तरं हि। बहुसूत्रकृतः रज्जुः सिंहाद्याकर्षणक्षमः ॥ ४१७ ॥

व्याख्या—बहूनाम् = अत्यधिकानाम्, जनानाम्, ऐकमत्यम् = एकमतम्, नृपतेः = भूपतेः अपि, बलवत्तरम् = अधिकबलशालिनम्, हि = निश्चयेन। तथाहि—बहुसूत्रकृतः— बहुभिः = अनेकैः, सूत्रैः = तन्तुभिः, कृतः = रचितः, रज्जुः = दाम, सिंहादीनाम् = मृगेन्द्रादीनाम्, आकर्षणे = आनयने, क्षमः = समर्थो भवति ॥ ४१७ ॥

हिन्दी—बहुमत की ताकत राजा से अधिक होती है क्योंकि अनेक तन्तुओं से बनी मोटी रस्सी सिंह आदि जैसे बलवान् जन्तुओं को भी खींच लाने में

समर्थ होती है ॥४१७॥

बहूनामिति। बहूनाम् ऐकमत्यं नृपतेः राज्ञः अपि बलवत्तरम् अधिकबलवत् हि। तथा हि बहुसूत्रकृतः बहूभिः सूत्रैः निर्मितः रज्जुः सिंहादीनाम् आकर्षणे क्षमः शक्तः॥४१७॥

हीनराज्यो दुष्टभृत्यो न सैन्यं धारयेद् बहु।
कोशवृद्धिं सदा कुर्य्यात् स्वपुत्राद्यभिवृद्धये॥४१८॥

अन्वयः—हीनराज्यः दुष्टभृत्यः बहुसैन्यं न धारयेत्। स्वपुत्राद्यभिवृद्धये सदा कोशवृद्धिं कुर्यात्॥४१८॥

व्याख्या—हीनराज्यः—हीनम् = क्षुद्रम्, राज्यम् = राष्ट्रम्, यस्य सः तथा दुष्टः = दुर्वृत्तः, भृत्यः = सेवकः, यस्य तादृशः, राजा, बहुसैन्यम् = अत्यधिकबलम्, न = नहि, धारयेत् = रक्षेत्। स्वपुत्राद्यभिवृद्धये—स्वस्य = आत्मनः, पुत्रादीनाम् = सुतादीनाम्, अभिवृद्धये = अभ्युदयाय, सदा = सर्वदा, कोशवृद्धिम् = धनानाम् अभिवर्द्धनं, कुर्यात् = विद्यात्॥४१८॥

हिन्दी—छोटे राज्य वाला एवं दुष्ट सेवक वाला छोटा राजा अपने पास बहुत अधिक सेना न रखे। बल्कि वह सदा अपनी सन्तान आदि के अभ्युदय के लिए खजाने में धन-दौलत बढ़ाता रहे॥४१८॥

हीनेति। हीनं राज्यं यस्य सः तथा दुष्टः भृत्यः यस्य तादृशः नृपः बहुसैन्यं न धारयेत्, स्वस्य आत्मनः पुत्रादीनाम् अभिवृद्धये अभ्युदयाय सदा कोशवृद्धिं धनवृद्धिं कुर्य्यात्॥४१८॥

क्षुधया निद्रया सर्वमशनं शयनं शुभम्।
भवेद्यथा तथा कुर्य्यादन्यथाशु दरिद्रकृत्॥४१९॥

अन्वयः—सर्वम् अशनं शयनं च यथा शुभं भवेत् तथा कुर्यात्। अन्यथा क्षुधया निद्रया च आशु दरिद्रकृत्॥४१९॥

व्याख्या—सर्वम् = सकलम्, अशनम् = भोजनम्, शयनम् = सुप्तिम्, च, यथा = येन प्रकारेण, शुभम् = कल्याणप्रदम्, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, कुर्यात् = निष्पादयेत्। अन्यथा = इतरथा, क्षुधया = बुभुक्षया, निद्रया = सुप्तया, च, आशु = शीघ्रम्, दरिद्रकृत् = निर्धनताजनकं भवेत्॥४१९॥

हिन्दी—जब भूख लगे तब भोजन और जब नींद लगे तब सोना, ये सब राजा के लिए कल्याणकारी होते हैं। नहीं तो खाने और सोने से दरिद्रता शीघ्र आ धमकती है॥४१९॥

क्षुधयेति। सर्वम् अशनं भोजनं शयनञ्च यथा शुभं भवेत् तथा कुर्य्यात्, अन्यथा क्षुधया निद्रया च आशु शीघ्रं दरिद्रकृत् दारिद्र्यजनकं भवेदित्यर्थः॥४१९॥

दिशानया व्ययं कुर्य्यान्नृपो नित्यं न चान्यथा।
धर्म्मनीतिविहीना ये दुर्बला अपि वै नृपाः।
सुधर्म्मबलयुग्राज्ञा दण्ड्यास्ते चौरवत् सदा॥४२०॥

अन्वयः—नृपः अनया दिशा नित्यं व्ययं कुर्यात्, अन्यथा न। ये नृपाः दुर्बलाः तथा धर्मनीतिविहीनाः ते सुधर्मबलयुग्राज्ञा सदा चौरवत् दण्ड्याः॥४२०॥

व्याख्या—नृपः = राजा, अनया = पूर्वोक्तया, दिशा = रीत्या, नित्यम् = प्रतिदिनम्, व्ययम्

= धनस्य निर्गमनम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्, अन्यथा = भिन्नप्रकारेण, न = नहि। ये = पूर्वोक्ताः, नृपाः = राजानः, दुर्बलाः = शक्तिहीनाः, तथा, धर्मेण = पुण्यकर्मणा, नीत्या = सुव्यवस्थया, च = पुनः, विहीनाः = रहिताः, ते = सर्वे, सुधर्मबलयुजा = सुष्ठुकर्मशक्तिसंयुक्तेन, राज्ञा = नृपेण, सदा = सर्वदा, चौरवत् = तस्कर इव, दण्ड्याः = दण्डनीयाः ॥४२० ॥

हिन्दी—इस तरह राजा को खर्च करना चाहिए कि वह शीघ्र दरिद्र न हो जाय, इससे भिन्न ढंग से खर्च नहीं करना चाहिए। जो राजे दुर्बल तथा धर्म और नीति से रहित हैं, उन्हें धर्म तथा बल युक्त राजा हमेशा चोर की तरह दण्ड दे ॥४२० ॥

दिशेति। नृपः अनया दिशा रीत्या नित्यं व्ययं कुर्य्यात् अन्यथा न। ये नृपाः दुर्बलाः तथा धर्मेण नीत्या च विहीनाः ते सुधर्मबलयुजा राज्ञा सदा चौरवत् दण्ड्याः। अपि वै शब्दः पादपूरणार्थः ॥४२० ॥

सर्वधर्मावनान्नीचनृपोऽपि श्रेष्ठतामियात्।
उत्तमोऽपि नृपो धर्म्मनाशनान्नीचतामियात् ॥ ४२१ ॥

अन्वयः—नीचनृपोऽपि सर्वधर्मावनात् श्रेष्ठताम् इयात्, तथा उत्तमोऽपि नृपः धर्मनाशनात् नीचताम् इयात् ॥४२१ ॥

व्याख्या—नीचनृपोऽपि = अधमभूपोऽपि, सर्वेषाम् = अखिलानाम्, धर्माणाम् = पुण्यानाम्, अवनात् = पालनात् रक्षणाच्च, श्रेष्ठताम् = उच्चपदताम्, इयात् = गच्छेत्, तथा उत्तमोऽपि = उत्कृष्टोऽपि, नृपः = राजा, धर्मनाशनात् = पुण्यविनाशनात्, नीचताम् = अधमताम्, इयात् = प्राप्नुयात् ॥४२१ ॥

हिन्दी—सम्पूर्ण राजधर्मों का पालन करता हुआ नीच राजा भी श्रेष्ठता को प्राप्त करता है और उत्तम कोटि का राजा भी राजधर्मों की रक्षा न करने के कारण नीच हो जाता है ॥४२१ ॥

सर्वेति। नीचनृपोऽपि सर्वेषां धर्माणाम् अवनात् रक्षणात् श्रेष्ठताम् इयात् प्राप्नुयात् तथा उत्तमोऽपि नृपः धर्मनाशनात् नीचताम् इयात् ॥४२१ ॥

धर्माधर्मप्रवृत्तौ तु नृप एव हि कारणम्।
स हि श्रेष्ठतमो लोके नृपत्वं यः समाप्नुयात् ॥ ४२२ ॥

अन्वयः—नृपः एव धर्माधर्मप्रवृत्तौ हि कारणम्। यः नृपत्वं समाप्नुयात् लोके सः हि श्रेष्ठतमः ॥४२२ ॥

व्याख्या—नृप एव = राजा एव, धर्मस्य = पुण्यकर्मणः, अधर्मस्य = पापकर्मणः, प्रवृत्तौ = रुचौ, कारणम् = हेतुः, हि = निश्चयेन, यः = राजा, नृपत्वम् = राजत्वम्, समाप्नुयात् = प्राप्नुयात्, लोके = संसारे, सः = असौ, हि = एव, श्रेष्ठतमः = उत्कृष्टः ॥४२२ ॥

हिन्दी—लोगों की धर्म तथा अधर्म में रुचि होने का कारण राजा ही होता है अर्थात् राजा के धार्मिक या अधर्मी होने का प्रभाव प्रजा पर भी पड़ता है। अतः वही सर्वश्रेष्ठ होता है, जो राजपद को प्राप्त होता है ॥४२२ ॥

धर्मेति। नृपः एव धर्मस्य अधर्मस्य च प्रवृत्तौ कारणं हि। यः नृपत्वं समाप्नुयात् लोके जगति स हि स एव श्रेष्ठतमः ॥४२२ ॥

मन्वाद्यैरादृतो योऽर्थस्तदर्थो भार्गवेण वै।
द्वाविंशतिशतं श्लोका नीतिसारे प्रकीर्त्तिताः ॥ ४२३ ॥

अन्वयः—यः अर्थः मन्वाद्यैः आदृतः, भार्गवेण वै तदर्थः आदृतः द्वाविंशतिशतं श्लोकाः नीतिसारे प्रकीर्त्तिताः ॥ ४२३ ॥

व्याख्या—यः = विशिष्टः, अर्थः = विषयः, मन्वाद्यैः = मनुप्रभृतिभिः, आदृतः = समादृतः, भार्गवेण = शुक्राचार्येण, तदर्थः—तत् = तस्य मानवधर्मस्य, अर्थः = विषयः, आदृतः = सङ्कलितः, द्वाविंशतिशतम् = द्वयाधिकविंशतिशतम्, श्लोकाः नीतिसारे, प्रकीर्त्तिताः = सङ्कलिताः ॥ ४२३ ॥

हिन्दी—राजनीति के जिन विषयों को मन्वादि स्मृतियों में मान्यता दी गई है, उन्हीं विषयों को शुक्राचार्य ने दो हजार दो सौ श्लोकों में नीतिसार में कहा है ॥ ४२३ ॥

मन्वाद्यैरिति। यः अर्थः विषयः मन्वाद्यैः मनुप्रभृतिभिः आदृतः भार्गवेण भृगुणा च तदर्थः तस्य मानवधर्मस्य अर्थः आदृतः, तदर्थसङ्कलिताः द्वाविंशतिशतं श्लोकाः नीतिसारे प्रकीर्त्तिताः निबद्धाः मयेति शेषः ॥ ४२३ ॥

शुक्रोक्तनीतिसारं यश्चिन्तयेदनिशं सदा।
व्यवहारधुरं वोढुं स शक्तो नृपतिर्भवेत् ॥ ४२४ ॥

अन्वयः—यः शुक्रोक्तनीतिसारम् अनिशं चिन्तयेत् सः सदा व्यवहारधुरं वोढुं शक्तः भवेत् ॥ ४२४ ॥

व्याख्या—यः = राजा, शुक्रेण = भार्गवेण, उक्तम् = कथितम्, नीतिसारम् = एतदाख्यग्रन्थम्, अनिशम् = अहर्निशम्, चिन्तयेत् = विचारयेत्, सः = राजा, सदा = सर्वदा, व्यवहारधुरम् = राजकार्यभारम्, वोढुम् = वहनकर्त्तुम्, शक्तः = समर्थो भवेत् ॥ ४२४ ॥

हिन्दी—जो राजा शुक्राचार्य-निर्मित नीतिसार का निरन्तर चिन्तन करता है, वही राजा राजकार्य के भार को वहन करने में समर्थ होता है ॥ २२४ ॥

शुक्रेति। यः नृपतिः शुक्रेण उक्तं नीतिसारम् अनिशं चिन्तयेत् सः सदा व्यवहारधुरं राजकार्य्यभारं वोढुं शक्तः भवेत् ॥ २२४ ॥

न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
काव्यैव नीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणाम् ॥ ४२५ ॥

अन्वयः—त्रिषु लोकेषु कवेः सदृशी नीतिः न विद्यते, तस्मात् काव्यैव नीतिः, अन्या तु व्यवहारिणां कुनीतिः ॥ ४२५ ॥

व्याख्या—त्रिषु लोकेषु = त्रिलोके, कवेः = शुक्रस्य, सदृशी = तुल्या, नीतिः = नयः, न = नहि, विद्यते = अस्ति, तस्मात्, काव्यैव = शुक्ररचितैव, नीतिः = नयः अस्ति, अन्या = तद्भिन्ना, तु, व्यवहारिणाम् = कार्यार्थिणाम्, कुनीतिः = कुत्सिता नीतिः ॥ ४२५ ॥

हिन्दी—शुक्राचार्य द्वारा विरचित नीति की तरह कोई दूसरी नीति त्रिलोक में नहीं है। वस्तुतः व्यवहार करने वालों के लिए नीति तो शुक्रनीति ही है, इससे भिन्न नीति तो कुनीति है ॥ ४२५ ॥

नेति। त्रिषु लोकेषु कवेः शुक्रस्य सदृशी नीतिः न विद्यते, तस्मात् काव्यैव कविकृतैव शुक्रकृतैव इत्यर्थः नीतिः। अन्या तु तद्भिन्ना तु व्यवहारिणां कुनीतिः ॥४२५ ॥

नाश्रयन्ति च ये नीतिं मन्दभाग्यास्तु ते नृपाः ।
कातर्य्याद्धनलोभाद्वा स्युर्वै नरकभाजनाः ॥४२६ ॥

इति शुक्रनीतौ चतुर्थाध्यायस्य सेनानिरूपणं नाम सप्तमं प्रकरणम्।

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।

अन्वयः—ये कातर्यात् धनलोभात् वा नीतिं न आश्रयन्ति, ते नृपाः मन्दभाग्याः नरकभाजनाः स्युः वै ॥४२६ ॥

व्याख्या—ये = राजानः, कातर्यात् = भयविह्वलात्, धनलोभात् = अर्थलिप्सया, वा = अथवा, नीतिम् = नयम्, न = नहि, आश्रयन्ति = अवलम्बयन्ति, ते नृपाः, मन्दभाग्याः = हतभाग्याः, नरकभाजनाः = निरयभागिनः, स्युः = भवेयुः, वै = इति निश्चयेन ॥४२६ ॥

हिन्दी—जो राजे कायरता या धन के लोभ से नीति का अवलम्बन नहीं करते हैं, वे निश्चय ही अभागे हैं तथा मरने पर नरकगामी होते हैं ॥२२६ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में चतुर्थ अध्याय में 'सेनानिरूपण' नामक सप्तम प्रकरण की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

नेति। ये नृपाः कातर्य्यात् अक्षमत्वात् धनलोभाद्वा नीतिं न आश्रयन्ति ते मन्दभाग्याः नरकभाजनाः स्युः, वैशब्दः अवधारणार्थः निश्चितं नरकं गच्छन्तीत्यर्थः ॥४२६ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता चतुर्थाध्यायस्य सप्तमप्रकरणव्याख्या समाप्ता।

पञ्चमोऽध्यायः

नीतिशेषं खिले वक्ष्ये ह्यखिलं शास्त्रसम्मतम्।
सप्ताङ्गानान्तु राज्यस्य हितं सर्वजनेषु वै॥ १॥

अन्वयः—खिले राज्यस्य सप्ताङ्गानां सर्वजनेषु हितं शास्त्रसम्मतम् अखिलं नीतिशेषं वक्ष्ये॥ १॥

व्याख्या—खिले = परिशिष्टभागे, राज्यस्य = राष्ट्रस्य, सप्तानाम् = सप्तसंख्यकानाम्, अङ्गानाम् = अवयवानाम्, सर्वजनेषु = सकललोकेषु, हितम् = लाभकरम्, शास्त्रसम्मतम् = शास्त्रीयविचारानुकूलम्, अखिलम् = सम्पूर्णम्, नीतिशेषम् = अवशिष्टां नीतिम्, वक्ष्ये = वदिष्यामि॥ १॥

हिन्दी—परिशिष्ट रूप इस खिलनीति-निरूपण में राज्य के सात अंगों के तथा सबों के लिए हितकर शास्त्रसम्मत बची हुई नीति का वर्णन करता हूँ॥ १॥

नीतिशेषमिति। खिले परिशिष्टे अंशे राज्यस्य सप्तानाम् अङ्गानां सर्वजनेषु च विषयेषु हितं हितकरं शास्त्रसम्मतम् अखिलं समस्तं सङ्क्षिप्तमित्यर्थः, नीतिशेषम् अवशिष्टां नीतिं वक्ष्ये कथयिष्यामि॥ १॥

शतसंवत्सरान्तेऽपि करिष्याम्यात्मसाद्रिपुम्।
इति सञ्चिन्त्य मनसा रिपोश्छिद्राणि लक्षयेत्॥ २॥

अन्वयः—शतसंवत्सरान्तेऽपि रिपुम् आत्मसात् करिष्यामि, इति मनसा सञ्चिन्त्य रिपोः छिद्राणि लक्षयेत्॥ २॥

व्याख्या—शतसंवत्सरान्तेऽपि = शताधिकवर्षव्यतीतेऽपि, कदाचित्, रिपुम् = अरिम्, आत्मसात् = आत्माधीनम्, करिष्यामि = सम्पादयिष्यामि, इति = इत्थम्, मनसा = चित्तेन, सञ्चिन्त्य = विचार्य, रिपोः = शत्रोः, छिद्राणि = दोषाणि, लक्षयेत् = अवलोकयेत्॥ २॥

हिन्दी—सौ साल के बाद भी शायद मैं अपने दुश्मन को अधीन कर लूँगा, ऐसा सोचकर स्थिर चित्त से दुश्मन के दुर्गुणों को ढूँढता रहे॥ २॥

शतेति। शतसंवत्सराणाम् अन्तेऽपि कदाचिदपीत्यर्थः, रिपुं शत्रुम् आत्मसात् करिष्यामि इति मनसा सञ्चिन्त्य रिपोः शत्रोः छिद्राणि लक्षयेत्॥ २॥

राष्ट्रभृत्यविशङ्की स्याद्धीनमन्त्रबलो रिपुः।
युक्त्या तथा प्रकुर्वीत सुमन्त्रबलयुक् स्वयम्॥ ३॥

अन्वयः—स्वयं सुमन्त्रबलयुक् नृपः यथा रिपुः राष्ट्रभृत्यविशङ्की तथा हीनमन्त्रबलः स्यात् युक्त्या तथा प्रकुर्वीत॥ ३॥

व्याख्या—स्वयम् = आत्मनः, सुमन्त्रबलयुक् = सन्ध्यादिषड्गुणजन्यमन्त्रणा तथा सेनायुक्तः, नृपः, यथा = येन प्रकारेण, रिपुः = शत्रुः, राष्ट्रेषु = राज्येषु, भृत्येषु = सेवकेषु च, विशङ्की = विशिष्टशङ्कायुक्तः, तथा = तेनैव रूपेण, हीनम् = नीचम्, मन्त्रः = मन्त्रिणः, बलञ्च = सेनाञ्च, यस्य तादृशः, स्यात् = भवेत्, युक्त्या = युक्तिपूर्वकेन, तथा = तदनुरूपम्, प्रकुर्वीत = सम्पादयेत् ॥ ३ ॥

हिन्दी—स्वयं सुन्दर विचार या मन्त्रणा से युक्त रहकर ऐसा उपाय करे कि दुश्मन अपनी सेना पर सन्देह करने लगे और सेना तथा मंत्री से हीन बन जाय ॥ ३ ॥

राष्ट्रेति। स्वयं सुमन्त्रबलयुक् नृपः यथा रिपुः राष्ट्रेषु भृत्येषु च विशङ्की सन्देहवान् तथा हीनं मन्त्रः बलञ्च यस्य तादृशः स्यात् युक्त्या कौशलेन तथा प्रकुर्वीत ॥ ३ ॥

सेवया वा वणिग्वृत्त्या रिपुराष्ट्रं विमृश्य च।
दत्ताभयं सावधानो व्यसनासक्तचेतसम् ॥ ४ ॥
मार्जारलुब्धबकवत् सन्तिष्ठन् नाशयेदरिम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—सावधानः सेवया वा वणिग्वृत्त्या रिपुराष्ट्रं विमृश्य मार्जारलुब्धबकवत् सन्तिष्ठन् दत्ताभयं व्यसनासक्तचेतसम् अरिं नाशयेत् ॥ ४-५ ॥

व्याख्या—सावधानः = दत्तावधानो राजा, सेवया = सुश्रूषया, वा = अथवा, वणिग्वृत्त्या = वाणिज्यव्याजेन, रिपोः = अरेः, राष्ट्रम् = राज्यम्, विमृश्य = सम्यक् प्रकारेणावलोक्य, मार्जारः = बिलाडः, तद्वत् = तत्सदृशः, लुब्धबकवत् = व्याधबक इव, सन्तिष्ठन्, दत्ताभयम्—दत्तम् = प्रदत्तम्, अभयम् = अभयदानम्, यस्मै तादृशम्, व्यसनेषु = भोगविलासादिषु, आसक्तचेतसम् = संलग्नचित्तम्, अरिम् = रिपुम्, नाशयेत् = विनष्टं कुर्यात् ॥ ४-५ ॥

हिन्दी—सावधान होकर मनोनुकूल आचरण या व्यापार के बहाने दुश्मन के राज्य को ठीक से देखकर बिलाड, बहेलिया और बगुले की तरह सावधान होकर दुश्मन को निर्भय रहने का विश्वास दिलाकर रास-रंग में लिप्त दुश्मन को मौका पाते ही विनष्ट कर दे ॥ ४-५ ॥

सेवयेति। **मार्जारेति**। सावधानः नृपः सेवया आनुगत्येन वा वणिग्वृत्त्या वाणिज्यव्याजेन रिपोः शत्रोः राष्ट्रं विमृश्य समीक्ष्य मार्जारः बिडालः तद्वत् लुब्धबकवच्च सन्तिष्ठन् दत्ताभयं दत्तम् अभयं यस्मै तादृशं पूर्वम् अभयं दत्त्वा इत्यर्थः, व्यसनेषु कामादिषु आसक्तचेतसम् आक्रान्तचित्तं निर्भयत्वात् राज्यरक्षणे अव्यग्रतया भोगरतमिति भावः, अरिं शत्रुं नाशयेत् ॥ ४-५ ॥

सेनां युद्धे नियुञ्जीत प्रत्यनीकविनाशिनीम्।
न युञ्ज्याद्रिपुराष्ट्रस्थां मिथः स्वद्वेषिणीं न च ॥ ६ ॥

अन्वयः—प्रत्यनीकविनाशिनीं सेनां युद्धे नियुञ्जीत। रिपुराष्ट्रस्थां न मिथः स्वद्वेषिणीं न च युञ्ज्यात् ॥ ६ ॥

व्याख्या—प्रत्यनीकविनाशिनीम् = रिपुबलविध्वंसिनीम्, सेनाम् = वाहिनीम्, युद्धे = युद्धकाले, नियुञ्जीत = नियुक्तं कुर्वीत, रिपुराष्ट्रस्थाम् = शत्रुराज्यनिवासिनीम्, सेनाम्, न = नहि, नियुञ्जीत। मिथः = एकान्ते, स्वस्य = आत्मनः, द्वेषिणीम् = विरोधिनीम्, न = नहि, युञ्ज्यात् = नियुञ्ज्यात् ॥ ६ ॥

हिन्दी—शत्रुसेना को नष्ट करने वाली सेना की नियुक्ति संग्राम में करनी चाहिए। शत्रु-राज्य में रहने वाली या एकान्त में विरोध करने वाली सेना को नियुक्त न करे ॥ ६ ॥

सेनामिति। प्रत्यनीकविनाशिनीं शत्रुसैन्यनाशिनीं सेनां युद्धे नियुञ्जीत, रिपुराष्ट्रस्थां शत्रुराज्यवासिनीं सेनां न, मिथः रहसि स्वस्य आत्मनः द्वेषिणीं विद्वेपकारिणीञ्च सेनां न युञ्ज्यात् ॥ ६ ॥

न नाशयेत् स्वसेनान्तु सहसा युद्धकामुकः।
दानमानैर्वियुक्तोऽपि न भृत्या भूपतिं त्यजेत्।
समये शत्रुसान्नैव गच्छेज्जीवधनाशया ॥ ७ ॥

अन्वयः—युद्धकामुकः सहसा स्वसेनां न नाशयेत्। भृत्या दानमानैर्वियुक्तोऽपि भूपतिं न त्यजेत्। जीवधनाशया समये शत्रुसात् नैव गच्छेत् ॥ ७ ॥

व्याख्या—युद्धकामुकः = सङ्ग्रामलिप्सुः, सहसा = हठात्, स्वसेनाम्—स्वस्य = आत्मनः, सेनाम् = अनीकम्, न = नहि, नाशयेत् = विनष्टङ्कुर्यात्। तथा भृत्या = वेतनेन, दानमानैः—दानेन = प्रदानेन, मानेन = सम्मानेन, च, वियुक्तः = विरहितः, अपि = चेत्, भूपतिम् = राजानम्, न त्यजेत् = परित्यागं न कुर्यात्, तथा जीवधनाशया = जीविकार्थधनलिप्सया, शत्रुसात् = रिपोरधीनताम्, न = नहि, भवेत् = स्यात् ॥ ७ ॥

हिन्दी—युद्धप्रेमी राजा अकारण अपनी सेना को लड़ाई में झोंक कर विनष्ट न करे। सैनिक भी दान-सम्मान तथा वेतन न मिलने पर अपने स्वामी का साथ समय आने पर न छोड़े। जीविका के लिए धन की आशा में शत्रु राजा की अधीनता कबूल न करे ॥ ७ ॥

नेति। युद्धकामुकः रणप्रियः सन् सहसा स्वस्य आत्मनः सेनां न नाशयेत् तथा भृत्यः दानेन मानेन च वियुक्तः विरहितः अपि भूपतिं स्वामिनं न त्यजेत्। तथा जीवधनाशया जीवनोपयोगि धनप्रत्याशया शत्रुसात् नैव गच्छेत् शत्रोरधीनो न भवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥

मेघोदकैस्तु या पुष्टिः सा किं नद्यादिवारितः ?।
प्रजापुष्टिर्नृपद्रव्यैस्तथा किं धनिनां धनात् ? ॥ ८ ॥

अन्वयः—मेघोदकैः या पुष्टिः सा नद्यादिवारितः किम् ? यथा नृपस्य द्रव्यैः प्रजानां पुष्टिः तथा धनिनां धनात् पुष्टिः किम् ? ॥ ८ ॥

व्याख्या—मेघोदकैः = वर्षाजलैः, या पुष्टिः = संवर्द्धनम्, शस्यानामिति शेषः, सा पुष्टिः, नद्यादीनाम् = सरितादीनाम्, वारितः = सलिलैः, किमिति प्रश्ने, स्यात् = भवेत्, नैवेत्यर्थः, यथा = येन प्रकारेण, नृपस्य = राज्ञः, द्रव्यैः = धनैः, प्रजानाम् = जनानाम्, पुष्टिः = पोषणम्, भवेत्, तथा धनिनाम् = धनसम्पन्नजनानाम्, धनात् = द्रव्यात्, किमिति प्रश्ने, भवेत् ? नास्त्येवेति ॥ ८ ॥

हिन्दी—वर्षा के जल से फसलों का जैसा संवर्द्धन होता है नदीजल के सिंचन से क्या वैसा संभव है ? ठीक उसी तरह प्रजा का पोषण राजा के धन से जैसा होता है क्या वैसा किसी धनी के धन से संभव है ? अर्थात् नहीं ॥ ८ ॥

मेघोदकैरिति। मेघोदकैः वारिदजलैः या पुष्टिः शस्यानामिति शेषः, सा नद्यादीनां वारितः जलैः किं स्यात् ? नैवेत्यर्थः। यथा नृपस्य द्रव्यैः राजप्रसादलब्धैरिति भावः, प्रजानां पुष्टिः धनिनां धनात् तथा पुष्टिः किं ? नैवेत्यर्थः ॥ ८ ॥

दर्शयन् मार्दवं नित्यं महावीर्य्यबलोऽपि च।
रिपुराष्ट्रे प्रविश्यादौ तत्कार्य्ये साधको भवेत्॥ ८॥

अन्वयः—महावीर्यबलोऽपि नित्यं मार्जवं दर्शयन् रिपुराष्ट्रे प्रविश्य आदौ तस्य कार्यसाधकः भवेत्॥ ९॥

व्याख्या—महावीर्यबलोऽपि = प्रचण्डवीरत्वसैन्यंसम्पनोऽपि राजा, नित्यम् = अनवरतम्, मार्दवम् = मृदुत्वम्, दर्शयन् = प्रदर्शयन्, रिपुराष्ट्रे = शत्रुराज्ये, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, आदौ = प्रथमम्, तस्य = शत्रोः, कार्य्यसाधकः = कर्त्तव्यपालकः = भवेत् = स्यात्॥ ९॥

हिन्दी—अत्यन्त पराक्रमी और शक्तिशाली सेना के रहते हुए भी अपने को अतिकोमल दिखलाते हुए शत्रुराष्ट्र में हमेशा प्रवेश कर उसका कार्यसाधक बने॥ ९॥

दर्शयन्निति। महावीर्य्यबलः अपि नित्यं सततं मार्दवं मृदुतां दर्शयन् रिपुराष्ट्रे शत्रुराज्ये प्रविश्य आदौ प्रथमं तस्य रिपोः कार्य्यसाधकः कार्य्यनिर्वाहकः भवेत्॥ ९॥

सञ्जातबद्धमूलस्तु तद्राज्यमखिलं हरेत्।
अथ तद् द्विष्टदायादान् सेनपानंशदानतः।
तद्राज्यस्य वशीकुर्य्यान्मूलमुन्मूलयन् बलात्॥ १०॥

अन्वयः—अथ सञ्जातबद्धमूलः तु बलात् मूलम् उन्मूलयन् अखिलं तस्य राज्यं हरेत्। तथा तस्य द्विष्टान् दायादान् सेनपान् तत् राज्यस्य अंशदानतः वशीकुर्यात्॥ १०॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, सञ्जातम् = समुत्पन्नम्, बद्धमूलः—बद्धम् = सुदृढम्, मूलम् = ब्रध्नः, यस्य तादृशः, बलात् = सैन्यात्, मूलम् = आदिभागम्, उन्मूलयन् = उत्पाटयन्, अखिलम् = सर्वम्, तस्य = शत्रोः, राज्यम् = राष्ट्रम्, हरेत् = अपहरेत्। रिपोः = शत्रोः, द्विष्टान् = विद्वेषिणः, दायादान् = गोत्रजान्, अंशदानतः = अंशप्रदानेन, वशीकुर्यात् = आत्माधीनं कुर्यात्॥ १०॥

हिन्दी—उसके बाद यहाँ जब हर तरह से अपनी जड़ जम जाय, तब शत्रु के समस्त राज्य पर अधिकार जमा ले। शत्रु के दुश्मन, दायाद तथा सेनापतियों को राज्य का कुछ भाग देकर उन्हें अपने अधीन कर ले॥ १०॥

सञ्जातेति। अथ सञ्जातम् उत्पन्नं बद्धं दृढं मूलं यस्य तादृशः तत्र विशेषेण प्रतिपन्नः सन्नित्यर्थः, बलात् मूलम् उन्मूलयन् निरस्यन् अखिलं समस्तं तस्य राज्यं हरेत्, तथा तस्य रिपोः द्विष्टान् विद्वेषिणः दायादान् ज्ञातीन् सेनपान् सेनापतींश्च तद्राज्यस्य अंशदानतः अंशप्रदानेन वशीकुर्य्यात्॥ १०॥

तरोः सङ्क्षीर्णमूलस्य शाखाः शुष्यन्ति वै यथा।
सद्यः केचिच्च कालेन सेनपाद्याः पतिं विना॥ ११॥

अन्वयः—यथा सङ्क्षीणमूलस्य तरोः शाखाः वै शुष्यन्ति तथा सेनपाद्याः पतिं विना सद्यः केचिच्च कालेन शुष्यन्ति॥ ११॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, सङ्क्षीणमूलस्य = शुष्कब्रध्नस्य, तरोः = वृक्षस्य, शाखाः = विटपाः, शुष्यन्ति = शुष्कतां यान्ति, तथा सेनपाद्याः = सेनापतिप्रभृतयः, पतिम् = राजानम्, विना =

विहाय, सद्यः = तत्क्षणात्, केचिच्च = अपरे च, कालेन = समयान्तरेण, शुष्यन्ति = विनाशं प्राप्नुवन्ति ॥ ११ ॥

हिन्दी—जैसे जड़ कट जाने पर पेड़ की डालें सूख जाती हैं, वैसे ही राजा के बिना सेनापति आदि भी कुछ उसी क्षण और कुछ कालान्तर में शक्तिहीन हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तरोरिति। यथा सङ्क्षीणमूलस्य शुष्कमूलस्य तरोः शाखाः शुष्यन्ति वै शोषं प्राप्नुवन्त्येव तथा सेनपाद्याः सेनापतिप्रभृतयः पतिं स्वामिनं विना सद्यः तत्क्षणात्, केचिच्च कालेन शुष्यन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥

राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कन्धाश्च मन्त्रिणः।
शाखाः सेनाधिपाः सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च।
प्रजाः फलानि भूभागा बीजं भूमिः प्रकल्पिता ॥ १२ ॥

अन्वयः—नृपतिः राज्यवृक्षस्य मूलं, मन्त्रिणः स्कन्धाः, सेनाधिपाः शाखाः, सेनाः पल्लवाः, प्रजाः कुसुमानि, भूभागाः फलानि, भूमिः बीजं प्रकल्पिता ॥ १२ ॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, राज्यवृक्षस्य = राज्यरूपीतरोः मूलम् = ब्रध्नः, मन्त्रिणः = अमात्याः, स्कन्धाः = स्तम्भाः, सेनाधिपाः = सेनापतयः, शाखाः = विटपाः, सेनाः = अनीकाः, पल्लवाः = पत्राणि, प्रजाः = जनाः, कुसुमानि = पुष्पाणि, भूभागाः = राजस्वम्, फलानि, भूमिः = पृथ्वी, बीजम् = रोहिः, प्रकल्पिता = कथिता ॥ १२ ॥

हिन्दी—राज्य रूपी वृक्ष की जड़ राजा होता है, तना मंत्री लोग, डालें सेनापतिगण, पत्तें सेना, फूल प्रजा, फल धरती से प्राप्त होने वाले कर एवं बीज राज्य की भूमि कही गई है ॥ १२ ॥

राज्यवृक्षस्येति। नृपतिः राज्यवृक्षस्य मूलं, मन्त्रिणः स्कन्धाः, सेनाधिपाः शाखाः, सेनाः पल्लवाः, प्रजाः कुसुमानि, भूभागाः फलानि, भूमिः बीजं प्रकल्पिता कथिता ॥ १२ ॥

विश्वस्तान्यनृपस्यापि न विश्वासं समाप्नुयात्।
नैकान्ते न गृहे तस्य गच्छेदल्पसहायवान् ॥ १३ ॥

अन्वयः—विश्वस्तान्यनृपस्य विश्वासं न समाप्नुयात्। तस्य गृहे वा एकान्ते अल्पसहायवान् न गच्छेत् ॥ १३ ॥

व्याख्या—विश्वस्तछेस्यापि = प्रत्ययवतोऽपि, अन्यनृपस्य = प्रतिकूलराज्ञः, विश्वासम् = प्रत्ययम्, न = नहि, समाप्नुयात् = विश्वसेत्। तस्य = शत्रोः नृपतेः, गृहे = सदने, वा = अथवा, एकान्ते = रहसि, अल्पसहायवान् = न्यूनसहायकैः सह, न = नहि, गच्छेत् = व्रजेत् ॥ १३ ॥

हिन्दी—अपने व्यवहार से अपने को विश्वस्त प्रमाणित करने वाले शत्रु राजा का विश्वास नहीं करना चाहिए। थोड़े सहायकों के साथ न तो एकान्त में उससे मिले और न तो घर पर ही उसके जाय ॥ १३ ॥

विश्वस्तेति। विश्वस्तस्यापि अन्यनृपस्य प्रतिकूलनृपतेः विश्वासं न समाप्नुयात् शत्रौ नृपे नैव विश्वसेदित्यर्थः। तस्य प्रतिनृपस्य गृहे वा एकान्ते निर्जने देशे अल्पसहायवान् न गच्छेत् ॥ १३ ॥

स्ववेशरूपसदृशान् निकटे रक्षयेत् सदा।
विशिष्टचिह्नगुप्तः स्यात् समयेऽन्यादृशो भवेत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—सदा निकटे स्ववेशरूपसदृशान् रक्षयेत्। विशिष्टचिह्नगुप्तः स्यात् तथा समये अन्यादृशः भवेत् ॥ १४ ॥

व्याख्या—सदा = सर्वदा, निकटे = समीपे, स्वस्य = आत्मनः, वेशेन = वस्त्रेण, रूपेण च, सदृशान् = तुल्यान्, जनान् = लोकान्, रक्षयेत् = रक्षेत्, स्वयम्, विशिष्टचिह्नगुप्तः = गुप्तराजचिह्नम्, तथा, समये = यथावसरे, अन्यादृशः = जनसामान्यतुल्यः, भवेत् = स्यात् ॥ १४ ॥

हिन्दी—राजा को चाहिए कि अपने साथ कुछ ऐसे लोगों को रखे जो आकृति और वेश-भूषा की दृष्टि से राजा की तरह ही हो। अपनी पहचान छिपाने के लिए अपना राजचिह्न गुप्त रखे तथा समय आने पर अपना वेश बदल कर जनसामान्य की तरह बनने की कला भी जाने ॥ १४ ॥

स्वेति। सदा निकटे स्वस्य आत्मनः वेशेन परिच्छदेन रूपेण च सदृशान् जनान् रक्षेत् तथात्वे व्यक्तिग्रहो न स्यादिति भावः, स्वयं विशिष्टम् अन्यविलक्षणं चिह्नं राजचिह्नमित्यर्थः गुप्तं यस्य तथाभूतः स्यात् तथा समये समयविशेषे इत्यर्थः, अन्यादृशः सामान्यजनसदृशः भवेत् ॥ १४ ॥

वेश्याभिश्च नटैर्मद्यैर्गायकैर्मोहयेदरिम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—वेश्याभिः नटैः मद्यैः गायकैश्च अरिं मोहयेत् ॥ १५ ॥

व्याख्या—वेश्याभिः = गणिकाभिः, नटैः = नर्तकैः, मद्यैः = मदिराभिः, गायकैश्च = गेष्णैश्च, अरिम् = रिपुम्, मोहयेत् = अनुरञ्जयेत् ॥ १५ ॥

हिन्दी—वेश्याओं, नर्तकों, सुराओं और गायकों से दुश्मन को मोह लें ॥ १५ ॥

वेश्याभिरिति। वेश्याभिः नटैः नर्त्तकैः मद्यैः सुराभिः गायकैश्च अरिं शत्रुं मोहयेत् मुग्धं कुर्य्यात् ॥ १५ ॥

सुवस्त्राभरणैर्नैव न कुटुम्बेन संयुतः।
विशिष्टचिह्नितो भीतो युद्धे गच्छेन्न वै क्वचित् ॥ १६ ॥

अन्वयः—सुवस्त्राभरणैः कुटुम्बेन संयुतः न विशिष्टचिह्नितः भीतश्च न क्वचित् युद्धे गच्छेत् ॥ १६ ॥

व्याख्या—सुवस्त्राभरणैः = सुष्ठुवस्त्राभूषणैः, तथा, कुटुम्बेन, संयुतः = परिवारेण सहितः, न = नहि, विशिष्टचिह्नितः—विशिष्टम् = अन्यजनभिन्नम्, यत् चिह्नम् = लक्ष्म, तदस्य जातमिति तथाभूतः न, भीतश्च = भयाक्रान्तश्च, न = नहि, क्वचित् = कदाचित्, युद्धे = सङ्ग्रामे, गच्छेत् = व्रजेत् ॥ १६ ॥

हिन्दी—किसी भी लड़ाई के मैदान में सुन्दर वस्त्र और अलंकारों से सज-धज कर या अपने परिवार के साथ नहीं जाना चाहिए ॥ १६ ॥

सुवस्त्रेति। सुवस्त्राभरणैः शोभनवसनालङ्कारैः तथा कुटुम्बेन परिवारेण संयुतः न, विशिष्टचिह्नितः विशिष्टम् अन्यविलक्षणं यत् चिह्नं तदस्य जातमिति तथाभूतः न, भीतश्च न क्वचित् कदाचित् युद्धे गच्छेत् ॥ १६ ॥

क्षणं नासावधानः स्याद् भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु।
जीवन् सन् स्वामितो पुत्रे न देयाप्यखिला क्वचित्॥ १७॥
स्वभावसद्गुणे यस्मान्महानर्थमदावहा।
विष्ण्वाद्यैरपि नो दत्ता स्वपुत्रे स्वाधिकारता॥ १८॥

अन्वयः—जीवन् सन् क्षणमपि भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुपु असावधानः न स्यात्। स्वभावसद्गुणेऽपि पुत्रे क्वचित् अखिला स्वामिता न देया, यस्मात् सा महानर्थमदावहा। तस्मात् विष्ण्वाद्यैः स्वपुत्रे स्वाधिकारता न दत्ता॥ १७-१८॥

व्याख्या—जीवन् = समर्थः सन्, क्षणमपि = पलमात्रमपि, भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु—भृत्येषु = सेवकेषु, स्त्रीषु = पत्नीषु, पुत्रेषु = तनयेषु, च = पुनः, शत्रुषु = रिपुषु, असावधानः = अनवधानम्, न = नहि, स्यात् = भवेत्, स्वभावसद्गुणेऽपि = प्रकृत्या विवेकशीलेऽपि, पुत्रे = सुते, क्वचित् = कदाचित्, अखिला = समग्रा, स्वामिता = प्रभुता, न = नहि, देया = समर्प्या, यस्मात् सा शक्तिः, महानर्थमदावहा—महान्तम् = अत्यधिकम्, अनर्थम् = अनिष्टम्, मदम् = प्रमादश्च, आवहति = आनयति, इति तथोक्ता = अत्यनिष्टकारिणी प्रमादोत्पादिनी च। तस्मात् विष्ण्वाद्यैः = विष्णुप्रभृतिभिरपि, स्वपुत्रे = निजात्मजे, स्वाधिकारता—स्वस्य = आत्मनः, अधिकारता = प्रभुता, न = नहि, दत्ता = प्रदत्ता॥ १७-१८॥

हिन्दी—नौकर, पत्नी, पुत्र और शत्रु के प्रति एक पल भी असावधानी न बरते। जीवित रहते हुए किसी भी स्थिति में अपना सारा अधिकार बेटे को न सौंपे। स्वभाव से विवेकशील बेटे को भी अपना सारा अधिकार सौंप देना उनके लिए अति अनिष्टकर एवं मदोत्पादक होता है। इसीलिए विष्णु प्रभृति देवगण ने भी अपने बेटे को सारा अधिकार कभी नहीं दिया॥ १७-१८॥

क्षणमपि। स्वभावेति। जीवन् शक्त इत्यर्थः, सन् क्षणमपि भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु भृत्येषु स्त्रीषु पुत्रेषु शत्रुषु च असावधानः न स्यात्। किञ्च स्वभावसद्गुणेऽपि पुत्रे क्वचित् कदाचित् अखिला सम्पूर्णा स्वामिता प्रभुता न देया, यस्मात् सा महानर्थमदावहा महान्तम् अनर्थं मदञ्च आवहतीति तथोक्ता महानर्थकारिणी मदवर्द्धनी च। तस्मात् विष्ण्वाद्यैः विष्णुप्रभृतिभिरपि स्वपुत्रे स्वाधिकारता स्वस्य अधिकारः तस्य भावः स्वस्वाम्यं नो दत्ता॥ १७-१८॥

स्वायुषः स्वल्पशेषे तु सत्पुत्रे स्वाम्यमादिशेत्।
नाराजकं क्षणमपि राष्ट्रं धर्त्तुं क्षमाः किल।
युवराजादयः स्वाम्यलोभचापलगौरवात्॥ १९॥

अन्वयः— स्वायुषः स्वल्पशेषेतु सत्पुत्रे स्वाम्यम् आदिशेत्। युवराजादयः स्वाम्यलोभचापलगौरवात् अराजकं राष्ट्रं क्षणमपि धर्तुं न किल क्षमाः॥ १९॥

व्याख्या—स्वायुषः—स्वस्य = आत्मनः, आयुषः = जीवनकालस्य, स्वल्पशेषे = अत्यन्ताल्पावशिष्टे, सत्पुत्रे = विवेकीसुते, स्वाम्यम् = स्वप्रभुत्वम्, आदिशेत् = समर्पयेत्, युवराजादयः = राजकुमारप्रभृतयः, स्वाम्यलोभेन = अधिकारलिप्सया, यद् यत्, चापलम् = चञ्चलता, तत् = तस्य, गौरवात् = सम्मानात्, अराजकम् = राजरहितम्, राष्ट्रम् = राज्यम्, क्षणमपि = एकपलमपि, धर्त्तुम् = धारणं कर्त्तुम्, किल = नैव, क्षमाः = समर्थाः भवन्ति॥ १९॥

हिन्दी—अपनी आयु जब शेष होती नजर आये तो अपने सपूतों को राज्य का समस्त भार सौंप दे। क्योंकि अधिकार-लोभ से होने वाली चंचलता की अधिकता से युवराज आदि के बिना राजा राज्य क्षण भर भी सँभालने में समर्थ नहीं हो सकतें॥ १९ ॥

स्वेति। स्वस्य आत्मनः आयुषः जीवनकालस्य स्वल्पशेषे अत्यल्पावशेषे सति सत्पुत्रे सुपुत्रे स्वाम्यम् आदिशेत् अर्पयेत्। युवराजादयः स्वाम्यलोभेन यत् यत् चापलं चाञ्चल्यं तस्य गौरवात् अतिशय्यात् अराजकं राजरहितं राष्ट्रं क्षणमपि धर्त्तुं ग्रहीतुं शासितुमित्यर्थः, न किल नैव क्षमाः शक्ताः भवन्ति॥ १९ ॥

प्राप्योत्तमं पदं पुत्रः सुनीत्या पालयन् प्रजाः।
पूर्वामात्येषु पितृवद्गौरवं सम्प्रधारयेत्॥ २० ॥

अन्वयः—पुत्रः उत्तमं पदं प्राप्य सुनीत्या प्रजाः पालयन् पूर्वामात्येषु पितृवत् गौरवं सम्प्रधारयेत्॥ २० ॥

व्याख्या—पुत्रः = राजपुत्रः, उत्तमम् = श्रेष्ठम्, पदम् = नृपत्वम्, प्राप्य = अधिगम्य, प्रजाः = जनाः, पालयन् = पालनं कुर्वन्, सुनीत्या = शोभनेन नयेन, पूर्वामात्येषु = पितृकालीनसचिवेषु, पितृवत् = पितेव, गौरवम् = आदरः, सम्प्रधारयेत् = सम्यग्रूपेण सम्पादयेत्॥ २० ॥

हिन्दी—राजकुमार राजपद पाकर अच्छी नीति के साथ प्रजा का पालन करते हुए पिता के समकालीन मंत्रियों को पिता की तरह ही सम्मान प्रदान करे॥ २० ॥

प्राप्येति। पुत्रः उत्तमं पदं राजपदं प्राप्य सुनीत्या प्रजाः पालयन् पूर्वामात्येषु पुरातनेषु अमात्येषु पितृवत् गौरवं गुरुभावं भक्तिमित्यर्थः, सम्प्रधारयेत् सम्यक् कुर्य्यादित्यर्थः॥ २० ॥

तस्यापि शासनं तैस्तु प्रधार्य्यं पूर्वतोऽधिकम्।
युक्तं चेदन्यथा कार्य्यं निषेध्यं काललम्बनैः॥ २१ ॥

अन्वयः—तैः तु तस्यापि शासनं चेत् युक्तं तदा पूर्वतोऽपि अधिकं प्रधार्यम्, अन्यथा काललम्बनैः कार्यं निषेध्यम्॥ २१ ॥

व्याख्या—तैः = पुरातनैः सचिवैः, तस्याऽपि = राजकुमारस्यापि, शासनम् = आदेशम्, चेत् = यदि, युक्तम् = समुचितम्, तदा, पूर्वतोऽपि = पूर्वस्मादपि, अधिकम् = विशिष्टम्, यथा तथा, प्रधार्यम् = अनुपालनीयम्, अन्यथा = अनुपयुक्ते, काललम्बनैः = कालान्तरेऽयमादेशः पालनीय इत्युक्त्वा, कार्यम् = राजशासनीयकर्म, निषेध्यम् = प्रतिषेधनीयमिति॥ २१ ॥

हिन्दी—और यदि राजकुमार का आदेश समुचित हो तो पूर्व मन्त्रियों का यह कर्त्तव्य होता है कि उस आदेश का अनुपालन पहले से भी अधिक मनोयोग से करे। किन्तु यदि आदेश उपयुक्त न हो तो 'बाद' में इसका अनुपालन होगा ऐसा कहकर टाल दे॥ २१ ॥

तस्येति। तैः पूर्वैः अमात्यैः तस्य राजपुत्रस्यापि शासनं चेत् यदि युक्तं तदा पूर्वतः पूर्वस्मात् अधिकं यथा तथा प्रधार्य्यं प्रतिपालनीयम्, अन्यथा अयुक्तत्वे इत्यर्थः, काललम्बनैः कालाश्रयिभिः सद्भिः समयान्तरे एतत्प्रतिपालनीयमिति वादिभिरित्यर्थः कार्य्यं राजशासनीयं कर्म निषेध्यं निवारणीयम्॥ २१ ॥

तदनीत्या न वर्त्तेयुस्तेन साकं धनाशया।
वर्त्तन्ते यदनीत्या ते तेन साकं पतन्ति वै॥ २२॥

अन्वयः—धनाशया तेन साकं तत् अनीत्या न वर्त्तेयुः। यत् ते अनीत्या वर्त्तन्ते तदा तेन साकं वै पतन्ति॥ २२॥

व्याख्या—धनाशया = अर्थलिप्सया, तेन = नूतनेन नृपेण, साकम् = सह, तस्य = नृपस्य, अनीत्या = दुर्नीत्या, न = नहि, वर्त्तेयुः = तिष्ठेयुः। यत् = यदि, ते = अमात्याः, अनीत्या = अनयेन, वर्त्तन्ते = तिष्ठन्ति, तदा, तेन = नृपेण सह, वै = इति निश्चयेन, पतन्ति = विनष्टा भवन्ति॥ २२॥

हिन्दी—और वे पुराने मंत्रीगण धन के लालच से नये राजा की अनीति का साथ न दे तथा यदि वे ऐसा करेंगे तो नये राजा के साथ उनका भी विनाश हो जायेगा॥ २२॥

तदिति। धनाशया अर्थलोभेन तेन नवेन राज्ञा साकं सह तस्य अनीत्या दुर्नयेन न वर्तेयुः न तिष्ठेयुः, ते इति शेषः। यत् यदि ते अनीत्या वर्त्तन्ते तदा तेन राज्ञा साकं सह वै निश्चितं पतन्ति विनाशं यान्ति॥ २२॥

कुलभक्तांश्च यो द्वेष्टि नवीनं भजते जनम्।
स गच्छेच्छत्रुसाद्राजा धनप्राणैर्वियुज्यते॥ २३॥

अन्वयः—यः कुलभक्तान् द्वेष्टि नवीनं जनं भजते सः शत्रुसात् गच्छेत् च धनप्राणैः वियुज्यते॥ २३॥

व्याख्या—यः = राजा, कुलभक्तान् = वंशानुरक्तान् सेवकान्, द्वेष्टि = विद्वेषं करोति, नवीनम् = नूतनम्, जनम् = लोकम्, भजते = सेवते, च, सः = भूपतिः, शत्रुसात् = रिपोरधीनताम्, गच्छेत् = याति, तथा धनप्राणैः = धनजीवनैः, वियुज्यते = विनाशं भजते॥ २३॥

हिन्दी—जो नया राजा राजकुल के भक्त पुराने मंत्रियों से द्वेष करता है तथा नये लोगों के कथनानुसार काम करता है, वह शत्रु के अधीन होकर धन और जान से हाथ धो बैठता है॥ २३॥

कुलभक्तानिति। यः कुलभक्तान् कुलक्रमेण अनुरक्तान् भृत्यान् द्वेष्टि, नवीनं जनं भजते च स राजा शत्रुसात् गच्छेत् शत्रोरधीनो भवेत्धनप्राणैः वियुज्यते च॥ २३॥

गुणी सुनीतिर्नव्योऽपि परिपाल्यस्तु पूर्ववत्।
प्राचीनैः सह तं कार्य्ये ह्यनुभूय नियोजयेत्॥ २४॥

अन्वयः—नव्योऽपि गुणी तथा सुनीतिः चेत् पूर्ववत् परिपाल्यः, अनुभूय प्राचीनैः सह तं नियोजयेत्॥ २४॥

व्याख्या—नव्योऽपि = नूतनोऽपि जनः, यदि गुणी = गुणज्ञः, तथा सुनीतिः = सुनीतिसम्पन्नः, तदा, पूर्ववत् = प्राचीनमन्त्रिगण इव, परिपाल्यः = प्रतिपालनीयो भवति, एवं जनम्, अनुभूय = सम्यग्रूपेण परीक्ष्य, प्राचीनैः = पुरातनैः, मन्त्रिभिः, सह = साकम्, तम् = अभिनवजनम्, नियोजयेत् = नियुक्तं कुर्य्यात्॥ २४॥

हिन्दी—और यदि नया होते हुए भी कोई अधिकारी गुणवान् एवं नीतिसम्पन्न हो तो

उसका भी पुराने अधिकारी की तरह सम्मान करना चाहिए तथा भलीभाँति उसके चरित्र का अध्ययन कर उसे पुराने लोगों के साथ राजकाज में नियुक्त करना चाहिए ॥ २४ ॥

गुणीति। नव्योऽपि नवीनः अपि जनः गुणी गुणवान् तथा सुनीतिः सुनयसम्पन्नश्चेत् पूर्ववत् प्राचीनवत् परिपाल्यस्तु प्रतिपालनीय एव, अनुभूय तच्चरित्रं परीक्ष्य इत्यर्थः, प्राचीनैः पुरातनैः भृत्यैः सह कार्य्ये नियोजयेत् ॥ २४ ॥

अतिमृदस्तुतिनतिसेवादानप्रियोक्तिभिः ।
मायिकैः सेव्यते यावत् कार्य्यं नित्यन्तु साधुभिः ॥ २५ ॥
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा सत्यवाग्भिर्नृपोऽपि च ।
याथार्थ्यतस्तयोरीदृगन्तरं खभुवोर्यथा ॥ २६ ॥

अन्वयः—मायिकैः यावत् कार्यं अतिमृदुस्तुतिनतिसेवादानप्रियोक्तिभिः नृपः सेव्यते, सत्यवाग्भिः साधुभिः नित्यं प्रत्यक्षं वा परोक्षं याथार्थ्यतः। खभुवोः यथा तयोः ईदृक् अन्तरम् ॥ २५-२६ ॥

व्याख्या—मायिकैः = वञ्चकैः, यावत्, कार्यम् = आत्मनः स्वार्थम्, तावत्, अतिमृदुभिः = अत्यन्तकोमलैः, स्तुतिभिः = स्तवैः, नतिभिः = नमस्कारैः, सेवाभिः = सुश्रूषाभिः, दानैः = प्रदानैः, च = पुनः, प्रियोक्तिभिः = प्रियवचनैः, नृपः = राजा, सेव्यते = भजते, पुनः, सत्यवाग्भिः = सत्यवचनैः, साधुभिः = सज्जनैः, नित्यम् = सततम्, प्रत्यक्षम् = पुरःस्थितम्, वा = अथवा, परोक्षम् = अक्ष्णः परम्, याथार्थ्यतः = तत्त्वतः, सेव्यते। खभुवोः = आकाशभूम्योः, यथा = इव, तयोः = वञ्चकसज्जनयोः, ईदृक् = एतादृक्, अन्तरम् = भेदो भवति ॥ २५-२६ ॥

हिन्दी—धूर्तों का जब तक अपना काम सधता है तभी तक वे मुदृभाषी, प्रशंसक, विनीत, दानी, सेवापरायण एवं प्रियवादी बनकर राजा की सेवा करते हैं तथा ठीक इसके विपरीत सज्जन लोग सत्य वचनों से सामने या पीठ पीछे राजा की सेवा करते हैं। यथार्थतः इन दोनों में आकाश और धरती जैसा अन्तर है ॥ २५-२६ ॥

अतीति। **प्रत्यक्षमिति**। मायिकैः कापटिकैः जनैः यावत् कार्य्यम् आत्मन इति शेषः। तावत् अतिमृदुभिः स्तुतिभिः नतिभिः सेवाभिः, दानैः प्रियोक्तिभिः प्रियवचनैश्च नृपः सेव्यते, सत्यवाग्भिः सत्यवादिभिः, साधुभिस्तु नित्यं सततम् आत्मकार्य्याभावेऽपीत्यर्थः, प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा याथार्थ्यतः तत्त्वतः सेव्यते इत्यर्थः, खभुवोर्यथा आकाशभूम्योरिव तयोः मायिकसाध्वोः ईदृक् अन्तरं प्रभेदः ॥ २५-२६ ॥

मायाया जनका धूर्तजारचौरबहुश्रुताः ।
प्रतिष्ठितो यथा धूर्त्तो जारचौरौ तथा न हि ॥ २७ ॥

अन्वयः—धूर्तजारचौरबहुश्रुताः मायायाः जनकाः। यथा धूर्तः प्रतिष्ठितः तथा जारचौरौ न हि ॥ २७ ॥

व्याख्या—धूर्तः = कापटिकः, जारः = परदारलम्पटः, चौरः = तस्करः, एतद्रूपेण, बहुश्रुताः = बहुलेपु श्रवणगोचरतां गताः, मायायाः = वञ्चकत्वस्य, जनकाः = उत्पादकाः। यथा = येन प्रकारेण, धूर्तः = मायावी, प्रतिष्ठितः = विश्रुतः, तथा जारचौरौ = उपपतितस्करौ, न हि = नैव, भवतः ॥ २७ ॥

हिन्दी—वंचक, जार और चोर मायावी होते हैं, यह सर्वविदित है। किन्तु जार और चोर की अपेक्षा वंचक इस काम में सर्वाधिक श्रेष्ठ माना जाता है॥२७॥

मायाया इति। धूर्तः शठः जारः उपपतिः चौरस्तस्करः एतद्रूपेण बहुश्रुताः बहुशो विख्याता जना मायायाः कापट्यस्य जनकाः कारकाः। यथा धूर्तः प्रतिष्ठितः प्रतिपन्नः भवति इति यावत् तथा जारचौरौ न हि नैव भवतः॥२७॥

परस्वहरणे लोके जारचौरौ तु निन्दितौ।
तावप्रत्यक्षं हरतः प्रत्यक्षं धूर्त एव हि॥२८॥

अन्वयः—लोके परस्वहरणे जारचौरौ निन्दितौ। तौ अप्रत्यक्षं हरतः, धूर्तः प्रत्यक्षम् एव हि॥२८॥

व्याख्या—लोके = संसारे, परस्वहरणे = परस्त्री-परधनापहरणे, जारचौरौ = उपपतितस्करौ, निन्दितौ = गर्हितौ भवतः। किन्तु तौ = जारचौरौ, अप्रत्यक्षम् = अक्षणः परमिति यथा तथा, हरतः = हरणं कुरुतः, धूर्त्तस्तु = वञ्चकस्तु, प्रत्यक्षमेव = दृग्गोचरमेव, हरति = अपहरणङ्करोतीति॥२८॥

हिन्दी—संसार में दूसरे की स्त्री और धन अपहृत करने के कारण जार और चोर निन्दित होते हैं। किन्तु ये दोनों तो आँख के पीछे कुकर्म करते हैं परन्तु धूर्त तो आँखों में धूल झोंक कर सामने ही धन हर लेते हैं॥२८॥

परस्वेति। लोके जगति जारचौरौ परस्वस्य परधनस्य हरणे विपये निन्दितौ, किन्तु तौ अप्रत्यक्षं यथा तथा हरतः परस्वमिति भावः, धूर्त्तस्तु प्रत्यक्षमेव हरतीत्यर्थः॥२८॥

हितं त्वहितवच्चान्ते अहितं हितवत् सदा।
धूर्त्ताः सन्दर्शयित्वाज्ञं स्वकार्य्यं साधयन्ति ते॥२९॥

अन्वयः—ते अज्ञं हितम् अहितवत् तथा अहितं हितवत् दर्शयित्वा अन्ते सदा स्वकार्यं साधयन्ति॥२९॥

व्याख्या—ते = वञ्चकाः, अज्ञम् = ज्ञानहीनं जनम्, हितम् = लाभप्रदम्, अहितवत् = हानिकरमिव, तथा अहितम् = हानिकरम्, हितवत् = लाभप्रद इव, दर्शयित्वा = प्रदर्श्य, अन्ते = अन्तिमक्षणे, सदा = सर्वदा, स्वकार्यम् = आत्मकार्यम्, साधयन्ति = पूरयन्ति॥२९॥

हिन्दी—ये धूर्त हमेशा सीधे-सादे लोगों को लाभ में हानि और हानि में लाभ जैसी उलटी-सीधी बातें समझा कर अन्त में अपना काम साधते हैं॥२९॥

हितमिति। ते धूर्त्ता जनाः अज्ञं जनं हितम् अहितवत् तथा अहितं हितवत् दर्शयित्वा अन्ते अवसाने सदा स्वकार्य्यं साधयन्ति॥२९॥

विश्रम्भयित्वा चात्यर्थं मायया घातयन्ति ते॥३०॥

अन्वयः—ते अत्यर्थं विश्रम्भयित्वा मायया घातयन्ति॥३०॥

व्याख्या—ते = वञ्चकाः, अत्यर्थम् = अत्यधिकम्, विश्रम्भयित्वा = विश्वासमुत्पाद्य, मायया = कापट्येन, घातयन्ति = विनाशयन्ति॥३०॥

हिन्दी—और ये धूर्त पहले लोगों को पूरी तरह अपने विश्वास में लेकर बाद में नष्ट कर देते हैं॥३०॥

विश्रम्भयित्वेति। ते धूर्त्ताः अत्यर्थं विश्रम्भयित्वा विश्वास्य पश्चात् मायया छद्मना घातयन्ति ॥ ३० ॥

यस्य चाप्रियमन्विछेत् तस्य कुर्य्यात् सदा प्रियम्।
व्याधो मृगवधं कर्त्तुं गीतं गायति सुस्वरम्॥ ३१ ॥

अन्वयः—यस्य अप्रियम् अन्विच्छेत् सदा तस्य प्रियं कुर्यात्। व्याधः मृगवधं कर्त्तुं सुस्वरं गीतं गायति ॥ ३१ ॥

व्याख्या—यस्य = जनस्य, अप्रियम् = अहितम्, अन्विच्छेत् = अभिलषेत्, सदा = सर्वदा, तस्य = जनस्य, प्रियम् = हितम्, कुर्यात् = सम्पादयेत्, यथा, व्याधः = लुब्धकः, मृगवधम्—मृगस्य = हरिणस्य, वधम् = हत्या, कर्त्तुम् = विधातुम्, सुस्वरम् = सुमधुरम्, गीतम् = गानम्, गायति = तमानन्दयति ॥ ३१ ॥

हिन्दी—ये दुष्ट जिनकी बुराई करना चाहते हैं पहले हमेशा उनकी भलाई करते हैं। उसी तरह जैसे व्याध पहले हिरण को मीठा गीत सुनाकर उन्हें मार डालते हैं ॥ ३१ ॥

यस्येति। यस्य अप्रियम् अनिच्छेत् अभिलषेत् सदा तस्य प्रियं कुर्य्यात्। व्याधः मृगवधं कर्त्तुं सुस्वरं गीतं गायति सुमधुरगीतेन मृगम् आनन्दयतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

मायां विना महाद्रव्यं द्राङ् न सम्पाद्यते जनैः।
विना परस्वहरणान्न कश्चित् स्यात् महाधनः।
मायया तु विना तद्धि न साध्यं स्याद्यथेप्सितम्॥ ३२ ॥

अन्वयः—जनैः मायां विना द्राक् महाद्रव्यं न सम्पाद्यत। परस्वहरणात् विना कश्चित् महाधनः न स्यात्। मायया विना यत् ईप्सितं तत् न हि साध्यम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—जनैः = लोकैः, मायाम् = कापट्यम्, विना = विहाय, द्राक् = झटिति, महाद्रव्यम् = अत्यधिकधनम्, न = नहि, सम्पाद्यते = उत्पाद्यते। परस्वहरणात् = परधनहरणात्, विना = विहाय, कश्चित् = कोऽपि जनः, महाधनः = अतिसमृद्धशाली, न = नहि, स्यात् = भवेत्। मायया = कापट्येन, विना = विहाय, यथा यत् ईप्सितम् = अभिलषितम्, तत् न हि = नैव, साध्यम् = निष्पादनीयं भवति ॥ ३२ ॥

हिन्दी—बिना कपट के कोई शीघ्र बहुत धन इकट्ठा नहीं कर सकता है और दूसरों का धन बिना अपहृत किये कोई महाधनी नहीं बन सकता। बिना कपट के किसी के अभिलषित कार्य्य की सिद्धि नहीं हो सकती है ॥ ३२ ॥

मायामिति। जनैः मायां कापट्यं विना द्राक् झटिति महाद्रव्यं बहुधनं न सम्पाद्यते न सञ्चीयते, परस्वहरणात् विना कश्चित् जनः महाजनः न स्यात् मायया विना यथा यत् ईप्सितं तत् न हि नैव साध्यम् ॥ ३२ ॥

स्वधर्मं परमं मत्वा परस्वहरणं नृपाः।
परस्परं महायुद्धं कृत्वा प्राणांस्त्यजन्त्यपि॥ ३३ ॥

अन्वयः—नृपाः परस्वहरणं परमं स्वधर्मं मत्वा परस्परं महायुद्धं कृत्वा प्राणानपि त्यजन्ति ॥ ३३ ॥

व्याख्या—नृपाः = भूपाः, परस्वहरणम् = परधनापहरणं, परमम् = अत्युत्कृष्टम्, स्वधर्मम् = आत्मकर्तव्यम्, मत्वा = परिज्ञाय, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, महायुद्धम् = घोरसङ्ग्रामम्, कृत्वा = प्रारभ्य, तस्मिन् युद्धे प्राणानपि = असूनपि, त्यजन्ति = जहाति ॥ ३३ ॥

हिन्दी—एक राजा दूसरे राजा का सर्वस्व अपहृत करना अपना परम धर्म मानकर युद्ध के मैदान में परस्पर लड़कर अपनी जान तक दे डालते हैं ॥ ३३ ॥

स्वधर्ममिति। नृपाः परस्वहरणं परधनहरणं परमम् उत्कृष्टं स्वधर्मं मत्वा परस्परं महायुद्धं कृत्वा प्राणानपि त्यजन्ति ॥ ३३ ॥

राज्ञो यदि न पापं स्याद्दस्यूनामपि नो भवेत्।
सर्वं पापं धर्मरूपं स्थितमाश्रयभेदतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यदि राज्ञः पापं न स्यात् तदा दस्यूनामपि पापं नो भवेत्। आश्रयभेदतः सर्वं पापं धर्मरूपं स्थितम् ॥ ३४ ॥

व्याख्या—यदि = चेत्, राज्ञः = नृपस्य, पापम् = अधर्मम्, न = नहि, स्यात् = भवेत्, तदा, दस्यूनामपि = लुण्ठकानामपि, पापम् = अधर्मम्, नो भवेत् = न स्यात्, आश्रयस्य = आधारस्य, भेदतः = भेदात्, सर्वम् = अखिलम्, पापम् = अपकर्म, धर्मरूपम् = धर्मस्वरूपेण, स्थितम् = विद्यमानम् अस्ति ॥ ३४ ॥

हिन्दी—यदि राजा को वैसा करने में पाप नहीं लगता है तो डाकुओं को भी दूसरों का धन अपहृत करने में पाप नहीं लगना चाहिए। क्योंकि आधार बदलते ही सभी पाप धर्म बन जाते हैं अर्थात् जो कर्म डाकुओं के लिए पाप है वही राजा के लिए पुण्य है ॥ ३४ ॥

राज्ञ इति। यदि राज्ञः पापं न स्यात् तदा दस्यूनामपि पापं नो स्यात्। आश्रयस्य भेदतः भेदात् सर्वं पापं धर्म्मरूपं स्थितं दस्युषु परस्वहरणं पापं परं राजनि धर्म एवेति आश्रयभेद इति भावः ॥ ३४ ॥

बहुभिर्यः स्तुतो धर्मो निन्दितोऽधर्म एव सः।
धर्मतत्त्वं हि गहनं ज्ञातुं केनापि नोचितम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—यः बहुभिः स्तुतः सः धर्मः एव, बहुभिः निन्दिनः अधर्म एव। धर्मतत्त्वं हि गहनं, केनापि ज्ञातुं न उचितम् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—यः = कर्म, बहुभिः = अनेकैः, स्तुतः = प्रशंसितः, सः = कर्म, धर्म एव = पुण्यकर्म एव, यस्त्वनेकैः, निन्दितः = निर्भर्त्सितः, तत्कर्म, अधर्मः = पापमेव। धर्मतत्त्वम्—धर्मस्य = पुण्यकर्मणः, तत्त्वम् = सारम्, हि = यतः, गहनम् = दुर्ज्ञेयम्, केनापि = जनेन, ज्ञातुम् = बोद्धुम्, न = नहि, उचितम् = शक्तमिति ॥ ३५ ॥

हिन्दी—जिस काम की प्रशंसा बहुत सारे लोग करते हैं वह धर्म माना जाता है तथा जिस काम की लोग निन्दा करते हैं वह अधर्म माना जाता है। धर्म का तत्त्व दुर्ज्ञेय है, कोई इसका पार नहीं पा सकता है ॥ ३५ ॥

बहुभिरिति। यः व्यापारः बहुभिः स्तुतः प्रशंसितः सः धर्म एव, यस्तु बहुभिः निन्दितः सः अधर्म एव। धर्मतत्त्वं गहनं दुर्ज्ञेयमित्यर्थः, हिशब्दः अवधारणार्थः, केनापि ज्ञातुं न उचितं न शक्तमित्यर्थः ॥ ३५ ॥

अतिदानं तपः सत्ययोगो दारिद्र्यकृत् त्विह।
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां तद्वाक् कामं निरर्थिका ॥ ३६ ॥

अन्वयः—इह अतिदानं तपः सत्ययोगः दारिद्र्यकृत्। यत्र धर्मार्थौ न स्यातां तद्वाक् कामं निरर्थिका ॥ ३६ ॥

व्याख्या—इह = संसारे, अतिदानम् = यस्मै कस्मै बहुप्रदानम्, तपः = तपस्या, सत्ययोगः = सत्येनान्वितः, दारिद्र्यकृत् = अकिञ्चनत्वविधायकम्। अर्थात् अतिदानेन, अनवरतप्रदानेन दारिद्र्यं भवत्येवेति सुप्रसिद्धम्, तपसा धार्मिककृत्येन धनव्ययात्, धनागमस्य प्रपञ्चसाध्यत्वात्, सत्यान्वये तदभावाच्चेति। यत्र = यस्मिन् कथने, धर्मार्थौ = पुण्यधने, न = नहि, स्याताम् = भवेताम्, तद्वाक् = सा वाणी, कामम् = यथेष्टम्, निरर्थिका = निष्फला ॥ ३६ ॥

हिन्दी—संसार में अधिक दान, तपस्या एवं सत्य का सम्बन्ध—ये तीनों काम दरिद्रता पैदा करने वाले हैं। अधिक दान से दरिद्रता जगविदित है। इसी तरह तपजन्य धर्मानुष्ठान भी अर्थसाध्य है और धन की प्राप्ति धूर्तता से होती है। उसमें भी यदि सच्चाई हो तो दरिद्रता निश्चित है। अतः जिस वाणी में धर्म और धन की कमी हो वह वाणी निरर्थक है ॥ ३६ ॥

अतीति। इह जगति अतिदानं तपः सत्ययोगश्च दारिद्र्यकृत् अतिदानेन दारिद्र्यं प्रसिद्धं तपसा धर्मानुष्ठानरूपेण अर्थव्ययात् धनागमस्य मायासाध्यत्वात् सत्ययोगे तदभावाच्च दारिद्र्यमित्यनुसन्धेयम्। यत्र यस्यां वाचि धर्मार्थौ धर्मः अर्थश्च न स्यातां तद्वाक् सा वाणी कामं सम्यक् निरर्थका निष्फला ॥ ३६ ॥

अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित्।
निःसंशयो नरः पूज्यो नेष्टः संशयिता सदा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अर्थे वा धर्मे वा समर्थः देशकालवित् निःसंशयः नरः पूज्यः। सदा संशयिता नरः न इष्टः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अर्थे = धने, वा = अथवा, धर्मे = पुण्ये, वा धर्मानुसारेणार्थागमचातुर्येण, देशकालवित् = स्थानसमयानुसारेण कार्यविज्जनः, निःसंशयः = सन्देहशून्यः, नरः = जनः, पूज्यः = पूजनीयः। सदा = सततम्, संशयिता = सन्देहशीलः, नरः = मानवः, न = नहि, इष्टः = अभिप्रेतः ॥ ३७ ॥

हिन्दी—धर्मानुसार अर्थोपार्जन करने में कुशल व्यक्ति, देश-काल के अनुसार काम करने वाला संशयरहित व्यक्ति सदा समाज में पूजनीय होता है। संशयालु व्यक्ति कभी भी मान्य नहीं होता ॥ ३७ ॥

अर्थे इति। अर्थे वा धर्मे वा समर्थः धर्मानुसारेण अर्थागमकौशलज्ञ इत्यर्थः, देशकालवित् स्थानसमयानुसारेण कार्य्यज्ञ इत्यर्थः, निःसंशयः संशयरहितश्च नरः पूज्यः, सदा संशयिता संशयानः नरः न इष्टः, सम्मतः ॥ ३७ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
अतोऽर्थाय यतेतैव सर्वदा यत्नमास्थितः।
अर्थाद्धर्मश्च कामश्च मोक्षश्चापि भवेन्नृणाम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—पुरुषः अर्थस्य दासः, अर्थस्तु न कस्यचित् दासः। अतः यत्नमास्थितः सर्वदा अर्थाय यतेत एव। अर्थात् नृणां धर्मश्च कामश्च मोक्षश्च भवेत् ॥ ३८ ॥

व्याख्या—पुरुषः = मनुष्यः, अर्थस्य = धनस्य, दासः = सेवकः, भवति, अर्थस्तु = धनम्, न = नहि, कस्यापि = पुरुषविशेषस्यापि, दासः = सेवको भवति। अतः = अस्मात् कारणात्, यत्नमास्थितः = प्रयत्नशीलो भूत्वा, सर्वदा = सदा, अर्थाय = धनाय, यतेत एव = अध्यवसेदेव। अर्थात् = धनात्, नृणाम् = मनुष्याणाम्, धर्मश्च = पुण्यश्च, कामश्च = मनोरथश्च, मोक्षश्च = मुक्तिश्च, भवेत् = स्यात् ॥ ३८ ॥

हिन्दी—धन का गुलाम आदमी होता है, आदमी का गुलाम धन नहीं होता है। अतः धन के लिए सदैव व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि धन से धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥

अर्थस्येति। पुरुषः अर्थस्य दासः, अर्थस्तु न कस्यचित् दासः, अतः अस्मात् कारणात् यत्नमास्थितः यत्नवान् सन् सर्वदा अर्थाय यतेत एव। अर्थात् धनात् नृणां धर्मश्च कामश्च मोक्षश्च भवेत् ॥ ३८ ॥

शस्त्रास्त्राभ्यां विना शौर्य्यं गार्हस्थ्यन्तु स्त्रियं विना।
ऐकमत्यं विना युद्धं कौशल्यं ग्राहकं विना।
दुःखाय जायते नित्यं सुसहायं विना विपत्।
न विद्यते तु विपदि सुसहायं सुहृत्समम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—शौर्य्यं शस्त्रास्त्राभ्यां विना, गार्हस्थ्यं स्त्रियं विना, युद्धम् ऐकमत्यं विना, कौशल्यं ग्राहकं विना तथा विपत् सुसहायं विना नित्यं दुःखाय जायते। विपदि सुहृत्समं सुसहायं न विद्यते ॥३९ ॥

व्याख्या—शौर्य्यं = वीरत्वम्, शस्त्रास्त्राभ्याम् = आयुधप्रहरणाभ्याम्, विना = विहाय, गार्हस्थ्यम् = द्वितीयाश्रमम्, स्त्रियम् = पत्नीम्, विना = मुक्त्वा, युद्धम् = सङ्ग्रामम्, ऐकमत्यम् = सैनिकानामेकताम्, विना = वर्जयित्वा, कौशल्यम् = चातुर्यम्, ग्राहकम् = योद्धारम्, विना = अन्तरेण, तथा विपद् = आपद्, सुसहायम् = सुन्दरसहायकम्, विना = विहाय, नित्यम् = सततम्, दुःखाय = कष्टाय, जायते = भवति। तथा विपदि = आपदि, सुहृत्समम् = मित्रतुल्यः, सुसहायम् = सुष्ठुसहायकः, न = नहि, विद्यते = भवति ॥ ३९ ॥

हिन्दी—हथियारों के बिना वीरता, पत्नी के बिना गृहस्थी, सैनिकों की एकता के बिना युद्ध, समझने वाले के बिना चतुराई तथा सुन्दर सहायक के बिना विपत्ति नित्य दुःख देने के लिए ही होती है। विपत्ति में मित्र के समान कोई सच्चा सहायक भी नहीं होता है ॥३९ ॥

शस्त्रेति। शौर्य्यं शस्त्रास्त्राभ्यां विना, गार्हस्थ्यं स्त्रियं भार्य्यां विना, युद्धम् ऐकमत्यं योद्धृणामेकतां विना, कौशल्यं नैपुण्यं ग्राहकं बोद्धारं विना, तथा विपत् सुसहायं विना नित्यं सततं दुःखाय जायते विपदि सुहृदा समः सुसहायः न विद्यते ॥ ३९ ॥

अविभक्तधनान् मैत्र्या भृत्या भक्तधनान् सदा।
मित्रं स्वसदृशैर्भोगैः सत्यैश्च परितोषयेत् ॥ ४० ॥

नृपसम्बन्धिस्त्रीपुत्रसुहृद्भृत्यगणान् तथा।
तोषयित्वा सुखी चैव भुङ्क्ते यस्तु स्वकं धनम्॥४१॥

अन्वयः—मैत्र्या अविभक्तधनान् भृत्या भक्तधनान् पृथक्स्थान् स्वसदृशैः भोगैः सत्यैश्च मित्रं परितोषयेत्। तथा नृपसम्बन्धिस्त्रीपुत्रसुहृद्भृत्यगणान् तोषयित्वा यस्तु स्वकं धन भुङ्क्ते सः एव सुखी॥४०-४१॥

व्याख्या—मैत्र्या = सख्यभावेन, अविभक्तधनान् = अविभाजितान् अर्थान्, गोत्रजान्, भृत्या = वेतनेन, भक्तधनान् = विभाजितार्थान्, पृथक्स्थान् दायादान्, तथा = स्वसदृशैः = आत्मतुल्यैः, भोगैः = उपभोगैः, सत्यैश्च, मित्रम् = सुहृदम्, परितोषयेत् = सन्तोषयेत्। तथा नृपसम्बन्धिस्त्रीपुत्रसुहृद्भृत्यगणान् = राजकुटुम्बपत्नीपुत्रमित्रसेवकवर्गान्, तोषयित्वा = सन्तुष्टं कृत्वा, यस्तु, स्वकम् = आत्मानम्, धनम् = द्रव्यम्, भुङ्क्ते = उपभोगं कुरुते, सः = असौ, सुखी = प्रसन्नः, भवति = जायते॥४०-४१॥

हिन्दी—जिनके साथ धन का बँटवारा हो चुका है ऐसे गोत्रज और जिनके साथ धन का बटँवारा नहीं हुआ है ऐसे पारिवारिक जन; इन्हें क्रमशः मासिक वेतन देकर तथा सौहार्दभाव से संतुष्ट करे और मित्रों को अपने सदृश भोग एवं सत्य वचन से सन्तुष्ट रखे। जो राजा अपने सम्बन्धी, स्त्री, पुत्र, मित्र एवं सेवक को सन्तुष्ट कर अपने धन का स्वयं उपभोग करता है, वह सुखी होता है॥४०-४१॥

अविभक्तधनानिति। मैत्र्या सौहृद्येन अविभक्तधनान् एकान्तवर्त्तिनः ज्ञातीनित्यर्थः, भृत्या मासिकादिवृत्तिविधानेन भक्तधनान् पृथक्स्थान् दायादान् तथा स्वसदृशैः आत्मतुल्यैः भोगैः सत्यैश्च मित्रं परितोषयेत्। तथा नृपसम्बन्धिस्त्रीपुत्रसुहृद्भृत्यगणान् तोषयित्वा यस्तु स्वकं धनं भुङ्क्ते चैव स सुखी भवति इति यावत्॥४०-४१॥

त्यक्त्वा तु दर्पकार्पण्यमानोद्वेगभयानि च।
कुर्वीत नृपतिर्नित्यं स्वार्थसिद्ध्यै तु नान्यथा।
विशेषभृतितो भृत्यं प्रेममानाधिकारतः॥४२॥

अन्वयः—नृपतिः दर्पकार्पण्यमानोद्वेगभयानि च त्यक्त्वा स्वार्थसिद्ध्यै विशेषभृतितः तथा प्रेममानाधिकारतः नित्यं भृत्यं कुर्यात्, अन्यथा न॥४२॥

व्याख्या—नृपतिः = राजा, दर्पम् = अहङ्कारम्, कार्पण्यम् = कृपणताम्, मानम् = सम्मानम्, उद्वेगम् = उद्विग्नताम्, भयञ्च = त्रासञ्च, त्यक्त्वा = परित्यज्य, स्वार्थसिद्ध्यै = स्वकार्यसाधनाय, विशेषभृतितः = विशिष्टवेतनेन, तथा प्रेम्णा = प्रीत्या, मानेन = सम्मानेन, अधिकारतः = अधिकारप्रदानेन, नित्यम् = सततम्, भृत्यम् = सेवकम्, कुर्वीत = नियुञ्ज्यात्, अन्यथा = इतरथा, न = नहि॥४२॥

हिन्दी—राजा अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अपना अहंकार, कृपणता, मान, उद्वेग एवं डर छोड़कर विशिष्ट जीवका देकर प्रेम से, सम्मान से तथा अधिकार प्रदान कर हमेशा सेवक को नियुक्त करे, अन्यथा नहीं॥४२॥

त्यक्त्वेति। नृपतिः दर्पं कार्पण्यं कृपणतां मानम् उद्वेगं भयञ्च त्यक्त्वा स्वार्थसिद्ध्यै स्वकार्य्यसिद्धये विशेषभृतितः विशिष्टया भृत्या तथा प्रेम्णा मानेन अधिकारतः अधिकारप्रदानेन

नित्यं सततं भृत्यं कुर्वीत नियुञ्ज्यात् अन्यथा स्वार्थसिद्ध्यै इत्यर्थः न ॥४२ ॥

ब्राह्मणाग्निजलैश्चैव धनवान् भक्ष्यते सदा।
स सुखी मोदते नित्यमन्यथा दुःखमश्नुते ॥ ४३ ॥

अन्वयः—धनवान् ब्राह्मणाग्निजलैश्चैव सदा भक्ष्यते, सः सुखी नित्यं मोदते; अन्यथा दुःखम् अश्नुते ॥४३ ॥

व्याख्या—धनवान् = धनी जनः, ब्राह्मणाग्निजलैश्चैव—ब्राह्मणेभ्यः = विप्रेभ्यः दानात्, अग्निभ्यः = वह्निभ्यः, अग्निसाध्ययज्ञानुष्ठानात्, जलेभ्यः = पिपासितजनेभ्यः पयशालानिर्माणात्, धनक्षयात्, सः = असौ ब्राह्मणाग्निजलसात्कृतधनो जनः, नित्यम् = सततम्, सुखी = मुदितः सन्, नित्यम्, मोदते = प्रसन्नो भवति, अन्यथा = इतरथा, दुःखम् = कष्टम्, अश्नुते = प्राप्यते ॥४३ ॥

हिन्दी—ब्राह्मणों को दान देने से, अग्नि में हवन करने से, प्याऊ बनवाने से जिस व्यक्ति का धन व्यय होता है वह धनी सदा सुखी रहता है, अन्यथा दुःखी होता है ॥४३ ॥

ब्राह्मणेति। धनवान् जनः ब्राह्मणाग्निजलैश्चैव सदा नित्यं भक्ष्यते, ब्राह्मणेभ्यः दानात् अग्निसाध्ययज्ञानुष्ठानात् पथिकानां श्रान्तिनिवारणार्थं पानीयशालाविधानाच्च धनक्षयादिति भावः, सः ब्राह्मणाग्निजलसात्कृतधनः पुरुष इत्यर्थः, सुखी सन् नित्यं मोदते आनन्दमनुभवति, अन्यथा दुःखम् अश्नुते लभते ॥४३ ॥

दर्पस्तु परह्रासेच्छा मानोऽहं सर्वतोऽधिकः।
कार्पण्यन्तु व्यये दैन्यं भयं स्वोच्छेदशङ्कनम्।
मानसस्यानवस्थानमुद्वेगः परिकीर्त्तितः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—परह्रासेच्छा, दर्पः, अहं सर्वतोऽधिकः इति मानः, व्यये दैन्यं कार्पण्यं, स्वोच्छेदशङ्कनं भयं तथा मानसस्य अनवस्थानम् उद्वेगः परिकीर्तितः ॥४४ ॥

व्याख्या—अन्यस्य = अपरजनस्य, ह्रासेच्छा = अपकर्षेच्छा, दर्पः = अहङ्कारः, अहं सर्वतोऽधिकः—सर्वतः = सकलेभ्यः, अधिकः = विशिष्टः, इत्येवं मतिः, मानः = गर्वः, व्यये = धननिर्गमे, दैन्यम् = कातर्यम्, कार्पण्यम् = कृपणता, स्वस्य = आत्मनः, उच्छेदशङ्कनम् = विनाशसन्देहः, भयम् = त्रासम्, तथा मानसस्य = चित्तस्य, अनवस्थानम् = चाञ्चल्यम्, उद्वेगः = उद्विग्नता, परिकीर्तितः = कथितः ॥४४ ॥

हिन्दी—दूसरों की अवनति की इच्छा को दर्प, मैं सबसे अधिक हूँ इसे मान, खर्च में कंजूसी को कृपणता, अपने विनाश की आशंका को भय और मन की चञ्चलता को उद्वेग कहते हैं ॥४४ ॥

दर्प इति। परस्य ह्रासेच्छा खर्वीकरणाशयः दर्पः, अहं सर्वतः सर्वेभ्यः अधिकः इत्येवं बुद्धिः मानः, व्यये दैन्यं कातर्य्यं कार्पण्यं स्वस्य आत्मनः उच्छेदशङ्कनम् उच्छेदशङ्का भयम्, तथा मानसस्य चित्तस्य अनवस्थानम् अस्थिरतां चाञ्चल्यमित्यर्थः, उद्वेगः परिकीर्तितः ॥४४ ॥

लघोरप्यपमानस्तु महावैराय जायते।
दानमानसत्यशौर्य्यमार्दवं सुसुहत्करम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—लघोरपि अपमानः महावैराय जायते। दानमानसत्यशौर्यमार्दवं सुसुहत्करं भवति ॥४५ ॥

व्याख्या—लघोरपि = महत्त्वहीनस्यापि जनस्य, अपमानः = अनादरः, महावैराय = घोरविरोधाय, जायते = भवति, दानम् = प्रदानम्, मानः = सम्मानः, सत्यम्, शौर्यम् = वीरत्वम्, मार्दवम् = कोमलता, सुसुहृत्करम् = सुष्ठुमैत्रीसम्पादकं भवति ॥ ४५ ॥

हिन्दी—क्षुद्र लोगों के लिए भी किया गया अपमान बड़ी दुश्मनी का कारण बन जाता है। किसी को कुछ देना, सम्मान करना, सच्चाई का व्यवहार करना, वीरता एवं कोमलता- ये सभी मित्रता पैदा करने वाले होते हैं ॥ ४५ ॥

लघोरिति। लघोः क्षुद्रस्यापि जनस्य अपमानः मानहानिः महावैराय जायते प्रभवति। दानं मानः सत्यं शौर्य्यं मार्दवञ्च सुसुहृत्करं सुष्ठु सौहार्दविधायकं भवति ॥ ४५ ॥

सर्वानापदि सदसि समाहूय बुधान् गुरून्।
भ्रातृन् बन्धूंश्च भृत्यांश्च ज्ञातीन् सभ्यान् पृथक् पृथक्।
यथार्हं पूज्य विनतः स्वाभीष्टं याचयेत् नृपः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—नृपः विनतः आपदि सदसि सर्वान् बुधान् गुरून् भ्रातृन् बन्धून् भृत्यान् ज्ञातीन् तथा सभ्यान् समाहूय पृथक् पृथक् यथार्हं पूज्य स्वाभीष्टं याचयेत् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, विनतः = विनम्रो भृत्वा, आपदि = विपदि, सदसि = सभाकक्षे, सर्वान् = सकलान्, बुधान् = पण्डितान्, गुरून् = आचार्यान्, भ्रातृन् = सोदरान्, बन्धून् = बान्धवान्, भृत्यान् = सेवकान्, ज्ञातीन् = परिचितान्, तथा सभ्यान् = सभानियुक्तपुरुषान्, समाहूय = आह्वानं कृत्वा, पृथक् पृथक् = भिन्नं भिन्नम्, यथार्हं पूज्य = यथायोग्यं सम्पूज्य, स्वस्य = आत्मनः, अभीष्टम् = अभिलषितम्, याचयेत् = प्रार्थयेत् ॥ ४६ ॥

हिन्दी—विपत्ति आने पर राजा विनम्र होकर पण्डित, गुरु, भाई, बन्धु, नौकर एवं सभासद—इन्हें राजसभा में बुलाकर यथायोग्य सम्मान करने के बाद अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए उनसे उपाय पूछे ॥ ४६ ॥

सर्वानिति। नृपः विनतः विनीतः सन् आपदि सदसि सभायां सर्वान् बुधान् पण्डितान् गुरून् भ्रातृन् बन्धून् भृत्यान् ज्ञातीन् तथा सभ्यान् सभानियुक्तान् पुरुषान् समाहूय पृथक् पृथक् यथार्हं पूज्य पूजयित्वा पूज्येति यप्प्रत्यय आर्षः। स्वस्य अभीष्टं याचयेत् प्रार्थयेत् ॥ ४६ ॥

आपदं प्रतरिष्यामो यूयं युक्त्या वदिष्यथ।
भवन्तो मम मित्राणि भवत्सु नास्ति भृत्यता ॥ ४७ ॥

अन्वयः—आपदं प्रतरिष्यामः यथा यूयं तथा युक्त्या वदिष्यथ। भवन्तः मम मित्राणि भवत्सु भृत्यता नास्ति ॥ ४७ ॥

व्याख्या—आपदम् = विपदम्, प्रतरिष्यामः = पारं गमिष्यामः सन्तरिष्यामो वा, यथा, यूयम् = भवन्तः, तथा, युक्त्या = उपायाः, वदिष्यथ = उपदेक्ष्यथ, भवन्तः = यूयम्, मम = मे, मित्राणि = सुहृदः, भवत्सु = युष्मासु, भृत्यता = दासता, नास्ति = न भवति ॥ ४७ ॥

हिन्दी—मैं इस विपत्ति को पार कर जाऊँ, इसका उपाय आप लोग बतलायें। आप सभी मेरे मित्र हैं, दास नहीं ॥ ४७ ॥

याच्ञाप्रकारमाह—**आपदमिति**। आपदं प्रतरिष्यामः यथेति शेषः, यूयं तथा युक्त्या वदिष्यथ उपदेक्ष्यथ, भवन्तः मम मित्राणि सुहृदः भवत्सु भृत्यता किङ्करता नास्ति ॥ ४७ ॥

न भवत्सदृशास्त्वन्ये सहायाः सन्ति मे ह्यतः।
तृतीयांशं भृतेर्ग्राह्यमर्द्धं वा भोजनार्थकम्।
दास्याम्यापत्समुत्तीर्णः शेषं प्रत्युपकारवित्॥ ४८॥

अन्वयः—भवत्सदृशाः अन्ये सहायाः न सन्ति, अतः इदानीं भृतेः तृतीयांशं वा अर्द्धं भोजनार्थकं ग्राह्यम्। आपत्समुत्तीर्णः प्रत्युपकारवित् शेषं दास्यामि॥ ४८॥

व्याख्या—भवताम् = युष्माकम्, सदृशाः = तुल्याः, अन्ये = अपरे, मम = मे, सहायाः = सहायकाः, न = नहि, सन्ति = भवन्ति। अतः = अस्मात्कारणात्, इदानीम् = अधुना, भृतेः = वेतनस्य, तृतीयांशम् = तृतीयभागः, वा = अथवा, अर्द्धम् = वेतनस्यार्द्धभागः, भोजनार्थकम् = केवलजीविकासञ्चालनार्थम्, ग्राह्यम् = भवद्भिः स्वीकार्यम्। आपत्सु = विपत्तिकालेषु, सम्पूर्णवेतनदानेऽसमर्थत्वात्, अतः = अस्मात्कारणात्, प्रत्युपकारवित् = प्रत्युपकृतिज्ञः सन्, शेषम् = अवशिष्टम्, दास्यामि = अर्पयिष्यामि॥ ४८॥

हिन्दी—इस विपत्ति की स्थिति में आप लोगों के समान मेरा कोई दूसरा सहायक नहीं है, अतः इस स्थिति में केवल जीविका-निर्वाह के लिए आप वेतन का तीसरा भाग या आधा वेतन ही स्वीकार करे। विपत्ति पार कर जाने के बाद कृतज्ञभाव से मैं आपका शेष वेतन भी चुकता कर दूँगा॥ ४८॥

नेति। भवतां सदृशाः अन्ये मम सहाया न सन्ति हि नैव विद्यन्ते इत्यर्थः। अतः इदानीं भृतेः वृत्तिरूपस्य वेतनस्य तृतीयांशं वा अर्द्धं भोजनार्थकम् अन्नार्थं ग्राह्यं भवद्भिरिति शेषः, आपत्सु बहुव्ययसम्भवात् समग्रदाने अशक्तेरिति भावः। अतः आपदः समुत्तीर्णः अत एव प्रत्युपकारवित् कृतज्ञः सन्नित्यर्थः, शेषम् अवशिष्टं दास्यामि॥ ४८॥

भृतिं विना स्वामिकार्य्यं भृत्यः कुर्य्यात् समाष्टकम्।
षोडशाब्दधनी यः स्यादितरोऽर्थानुरूपतः॥ ४९॥

अन्वयः—यः भृत्यः षोडशाब्दधनी सः भृतिं विना समाष्टकं स्वामिकार्यं कुर्यात्, इतरः अर्थानुरूपतः॥ ४९॥

व्याख्या—यः भृत्यः = सेवकः, षोडशाब्दधनी = वेतनं विना षोडशवर्षपर्यन्तं जीविकासञ्चालने सक्षमः, सः = असौ, भृतिम् = वेतनम्, विना = विहाय, समाष्टकम् = अष्टवर्षपर्यन्तम्, स्वामिकार्यम्—स्वामिनः = प्रभोः, कार्यम् = कृत्यम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्; इतरः = तद्भिनस्तु, अर्थानुरूपतः = आर्थिकस्थित्यनुसारेण, स्वामिकार्यं कुर्यात्॥ ४९॥

हिन्दी—जो सेवक राजा से बिना वेतन लिये सोलह साल तक अपनी जीविका-संचालन में समर्थ हो, वह आठ साल तक बिना वेतन लिए राजा का काम करे और उससे भिन्न लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार बिना वेतन पाये राजकार्य करे॥ ४९॥

भृतिमिति। यः भृत्यः षोडशाब्दधनी षोडशवर्षीयव्ययोपयोगिधनसम्पन्नः स्यात् सः भृतिं विना समाष्टकम् अष्टौ वत्सरान् स्वामिकार्य्यं कुर्य्यात्। इतरः तद्भिन्नस्तु अर्थानुरूपतः यावदर्थमित्यर्थः, स्वामिकार्य्यं कुर्य्यादिति शेषः॥ ४९॥

निर्धनैरन्नवस्त्रन्तु नृपाद् ग्राह्यं न चान्यथा।
यतो भुक्तं सुखं सम्यक् तद्दुःखैर्दुःखितो न चेत्।
विनिन्दति कृतघ्नन्तु स्वामी भृत्योऽन्य एव वा॥ ५०॥

अन्वयः—निर्धनैः नृपात् अन्नवस्त्रं ग्राह्यम्, अन्यथा न। यतः नृपात् सम्यक् सुखं भुक्तं चेत् तद्दुःखैः दुःखितः न भवेत् तदा स्वामी वा अन्यः कृतघ्नं भृत्यं विनिन्दति॥५०॥

व्याख्या—निर्धनैः=धनहीनैः सेवकैः, नृपात्=भूपालात्, विपन्नावस्थायामपि, अन्नवस्त्रम् =जीवनयापनार्थं भृतिम्, ग्राह्यम्=स्वीकार्यम्, अन्यथा=सशक्ते सति, न=ग्राह्यम्। यतः= यस्मात्, नृपात्=भूभृतः, सम्यक्=सुष्ठु, सुखम्=सौविध्यम्, भुक्तम्=उपभोगितम्, चेत्= यदि, तस्य=नृपस्य, दुःखैः=कष्टैः, दुःखितः=पीडितः, न=नहि, भवेत्=स्यात्, तदा, स्वामी=प्रभुः, वा अन्यः=कृतज्ञः सेवकः, कृतघ्नम्=कृतज्ञरहितम्, भृत्यम्=सेवकम्, विनिन्दति=विशेषेण गर्हितम्॥५०॥

हिन्दी—निर्धन सेवक ही राजा से ऐसी विपन्न स्थिति में अन्न-वस्त्र ले, अन्यथा न ले। जिस राजा से आज तक जिसने भलीभाँति सुखोपभोग किया है, आज यदि उसके दुःख से वह दुःखी न हो तो ऐसे कृतघ्न सेवक की राजा एवं अन्य कृतज्ञ सेवक भी निन्दा करते हैं॥

निर्धनैरिति। निर्धनैः दरिद्रैः भृत्यैः नृपात् तथा विपन्नादिति भावः, अन्नवस्त्रं ग्राह्यम् अन्यथा सधनत्वे न, यतः नृपात् सम्यक् सुखं भुक्तं चेत् यदि तस्य दुःखैः दुरवस्थाभिः दुःखितः न भवेत् तदा स्वामी वा अन्यः कृतज्ञः भृत्यः कृतघ्नम् अकृतज्ञं तादृशं भृत्यं विनिन्दति॥५०॥

सकृत् सुभुक्तं यस्यापि तदर्थं जीवितं त्यजेत्।
भृत्यः स एव सुश्लोको नापत्तौ स्वामिनं त्यजेत्।
स्वामी स एव विज्ञेयो भृत्यार्थे जीवितं त्यजेत्॥ ५१॥

अन्वयः—यस्य अन्नं सकृत् सुभुक्तं भृत्यः तदर्थं जीवितं त्यजेत्, स एव भृत्यः सुश्लोकः। यः आपत्तौ स्वामिनं न त्यजेत् तथा स एव स्वामी भृत्यार्थे जीवितं त्यजेत्॥५१॥

व्याख्या—यस्य=नृपस्य, अन्नम्=भोज्यपदार्थम्, सकृत्=एकवारमपि, सुभुक्तम्= सुष्ठुभोजनं कृतम्, भृत्यः=सेवकः, तदर्थम्=तन्निमित्तम्, जीवितम्=जीवनमपि, त्यजेत्= परित्यागं कुर्यात्, स एव=तदेव, भृत्यः=सेवकः, सुश्लोकः=पुण्यकीर्तिः। यः=सेवकः, आपत्तौ=विपदि, स्वामिनम्=प्रभुम्, न=नहि, त्यजेत्=जह्यात्, तथा स एव=तदेव, स्वामी=प्रभुः, यः, भृत्यार्थे=सेवकार्थे, जीवितम्=प्राणम्, त्यजेत्=जह्यात्॥५१॥

हिन्दी—जो सेवक ससम्मान दिये गये राजा का अन्न एक बार भी यथेष्ट खा ले तो उसके लिए समय पड़ने पर वह जान भी दे दे। वही सेवक सुन्दर यशवाला कहलाता है जो विपत्ति में राजा का साथ नहीं छोड़ता और वही राजा राजा है जो जरूरत पड़ने पर अपने सेवक के लिए प्राण भी दे डाले॥५१॥

सकृदिति। यस्य अन्नं सकृत् एकवारमपि सुभुक्तं भृत्यः तदर्थं जीवितं त्यजेत् स एव भृत्यः सुश्लोकः पुण्यकीर्तिः यः आपत्तौ आपदि स्वामिनं न त्यजेत्। तथा स एव स्वामी विज्ञेयः यः भृत्यार्थे भृत्यनिमित्तं जीवितं त्यजेत्। स्वामिभृत्याभ्यां परस्परानुरक्ताभ्यां भवितव्यमिति भावः॥५१॥

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।
सुभृत्यता तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता ॥५२॥

अन्वयः—पृथिव्यां रामसदृशः नीतिमान् राजा न अभूत्। यन्नीत्या वानरैरपि सुभृत्यता स्वीकृता ॥५२॥

व्याख्या—पृथिव्याम् = भूम्याम्, रामेण = दाशरथिना, सदृशः = तुल्यः, नीतिमान् = नयसम्पन्नः, राजा = नरपतिः, न = नहि, अभूत् = बभूव, यस्य = रामस्य, नीत्या = नयेन, वानरैरपि = कपिभिरपि, सुभृत्यता = सुष्ठुसेवकत्वम्, स्वीकृता = अङ्गीकृता ॥५२॥

हिन्दी—राम की तरह नीतिसम्पन्न राजा इस धरती पर कोई दूसरा नहीं हुआ। क्योंकि इनकी सेवकाई वानर जैसे पशुओं ने भी कबूल की थी ॥५२॥

नेति। पृथिव्यां रामेण सदृशः नीतिमान् राजा न अभूत्। यस्य नीत्या सुनयेन वानरैरपि सुभृत्यता स्वीकृता ॥५२॥

अपि राष्ट्रविनाशाय चोराणामेकचित्तता।
शक्ता भवेन्न किं शत्रुनाशाय नृपभृत्ययोः ? ॥५३॥

अन्वयः—चोराणाम् एकचित्तता राष्ट्रविनाशाय शक्ता भवेत्, शत्रुनाशाय नृपभृत्ययोः किन्न भवेत् ॥५३॥

व्याख्या—चोराणाम् = तस्कराणाम्, एकचित्तता = अवधानम्, राष्ट्रविनाशाय—राष्ट्रस्य = देशस्य, विनाशाय = अवसादाय, शक्ता = समर्था, भवेत् = स्यात्, तदा शत्रुनाशाय = रिपुविध्वंसाय, नृपभृत्ययोः = भूपसेवकयोरैकमत्यम्, सा किं न भवेत्? भवत्येवेति ॥५३॥

हिन्दी—जब चोरों का एकमत होना किसी राष्ट्र को विनष्ट करने में समर्थ हो सकता है तो राजा और सेवकों की एकचित्तता क्या शत्रुओं को विनष्ट नहीं कर सकती? अर्थात् कर ही सकती है ॥५३॥

अपीति। चोराणां तस्कराणामपि एकचित्तता ऐकमत्यं राष्ट्रस्य विनाशाय उच्छेदाय शक्ता समर्था भवेत् शत्रुनाशाय नृपभृत्ययोः सा किं न भवेत्? अपितु भवेदेवेत्यर्थः ॥५३॥

न कूटनीतिरभवच्छ्रीकृष्णसदृशो नृपः।
अर्जुने प्रापिता स्वस्य सुभद्रा भगिनी छलात् ॥५४॥

अन्वयः—कश्चिदपि नृपः श्रीकृष्णसदृशः कूटनीतिः न अभवत्। स्वस्य भगिनी सुभद्रा छलात् अर्जुने प्रापिता ॥५४॥

व्याख्या—कश्चिदपि नृपः = कोऽपि राजा, श्रीकृष्णेन = वासुदेवेन, सदृशः = तुल्यः, कूटनीतिः = कपटनीतिसम्पन्नः, न = नहि, अभवत् = बभूव, स्वस्य = आत्मनः, भागिनी = अनुजा, सुभद्रा, छलात् = कपटात्, अर्जुने = पार्थे, प्रापिता = विवाहिता ॥५४॥

हिन्दी—श्रीकृष्ण की तरह कूटनीतिज्ञ कोई दूसरा राजा नहीं हुआ, जिन्होंने छल से अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया ॥५४॥

नेति। कश्चिदपि नृपः श्रीकृष्णेन सदृशः कूटनीतिः कपटनीतिमान् न अभवत्। येन स्वस्य भगिनी सुभद्रा छलात् अर्जुने प्रापिता ॥५४॥

नीतिमतान्तु सा युक्तिर्या हि स्वश्रेयसेऽखिला ॥ ५५ ॥

अन्वयः—नीतिमतां सा युक्तिः या हि अखिला स्वश्रेयसे ॥ ५५ ॥

व्याख्या—नीतिमताम् = नीतिसम्पन्नानां जनानां, सा = सैव, युक्तिः = उपायः, या हि युक्तिः, अखिला = सकला, स्वस्य = आत्मनः, श्रेयसे = कल्याणाय भवति ॥ ५५ ॥

हिन्दी—नीतिनिपुण लोगों की वही युक्ति असली युक्ति है, जिससे अपना कल्याण सम्भव हो ॥ ५५ ॥

नीतिमतामिति। नीतिमतां नीतिज्ञानां सा युक्तिः हि सैव युक्तित्यर्थः, या अखिला समग्रा स्वस्य आत्मनः श्रेयसे भवतीति शेषः ॥ ५५ ॥

आदौ तद्धितकृत्स्नेहं कार्य्यं स्नेहमनन्तरम् ।
कृत्वा सधर्मवादञ्च मध्यस्थः साधयेद्धितम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—मध्यस्थः आदौ तद्धितकृत्स्नेहम् अनन्तरं कार्यम् । सधर्मवादं कृत्वा हितं साधयेत् ॥ ५६ ॥

व्याख्या—मध्यस्थः = तटस्थजनः, आदौ = प्रथमे, तद्धितकृत्स्नेहम्—तत् = तस्य आत्मनः, हितकृति = कल्याणकारिणीसुहृदि, स्नेहम् = प्रीतिः, अनन्तरम् = तत्पश्चात्, कार्यम् = कर्तव्यम्, सधर्मवादम् = धर्मवचनसहितम्, स्नेहम् = प्रीतिम्, च, कृत्वा = सम्पाद्य, हितम् = कल्याणम्, साधयेत् = निष्पादयेत् ॥ ५६ ॥

हिन्दी—तटस्थ व्यक्ति सर्वप्रथम किसी के हितैषी मित्र के साथ स्नेह, फिर बाद में कर्त्तव्यकर्म और धर्मकथनपूर्वक स्नेह प्रदर्शन कर आत्महित का साधन करे ॥ ५६ ॥

आदाविति। मध्यस्थः उदासीनः जनः आदौ अग्रतः तस्य आत्मनः हितकृति हितकारिणि मित्रे इत्यर्थः, स्नेहम् अनन्तरं कार्य्यं कर्त्तव्यं धर्मवादसहितं धर्मवचनसमन्वितं स्नेहञ्च कृत्वा हितं साधयेत् ॥ ५६ ॥

परस्परं भवेत् प्रीतिस्तथा तद्गुणवर्णनम् ।
इष्टान्नधनवसनैर्लोभनं कार्य्यसिद्धिदम् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—परस्परं यथा प्रीतिः भवेत् तद्गुणवर्णनम् इष्टेन अन्नेन धनेन वसनेन च लोभनं कार्य्यं सिद्धिदं भवेत् ॥ ५७ ॥

व्याख्या—परस्परम् = अन्योऽन्यम्, यथा प्रीतिः = तृप्तिः, भवेत् = स्यात्, तथा = तेनैव प्रकारेण, तत् = तस्य, गुणवर्णनम् = गुणकथनम्, इष्टेन = वाञ्छितेन, अन्नेन = धान्येन, धनेन = द्रव्येण, वसनेन = वस्त्रेण, च, लोभनम् = लोभप्रदर्शनं कार्यम्, तदेव कार्यसिद्धिदम् = अभीप्सितसाधकम्भवतीति ॥

हिन्दी—परस्पर जैसी प्रीति हो वैसे ही उनके गुणों का वर्णन करे। फिर अभीष्ट अन्न, धन और वस्त्र का प्रलोभन देकर अपना कार्य्य साधे ॥ ५७ ॥

परस्परमिति। परस्परं यथा प्रीतिः भवेत् तथा तस्य प्रणयस्य गुणवर्णनम् इष्टेन अभिलषितेन अन्नेन धनेन वसनेन च लोभनं लोभप्रदर्शनं कार्य्यमिति शेषः ॥ ५७ ॥

दिव्यावलम्बनं मिथ्यासल्लापं धैर्य्यवर्द्धनम् ।
इमे उपाया मध्यस्थकुट्टिनीमायिनां मताः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—मध्यस्थकुट्टिनीमायिनां दिव्यावलम्बनं मिथ्यासल्लापं धैर्यवर्द्धनम्—इमे उपायाः मताः ॥५८ ॥

व्याख्या—मध्यस्थानाम् = उदासीनानां जनानाम्, कुट्टिनीनाम् = सञ्चारिकानाम्, मायिनाम् = कपटिनाम्, दिव्यस्य = शपथस्य, अवलम्बनम् = आश्रयणम्, मिथ्यासल्लापम् = असत्यवार्त्तालापम्, धैर्य्यवर्द्धनम् = सन्तोषवृद्धिकरणम्, इमे = युक्तयः, मताः = कथिताः ॥५८ ॥

हिन्दी—मध्यस्थ, कुट्टिनी और धूर्त्त लोगों को शपथ का अवलम्बन, मनगढन्त बातें करना और धैर्य बँधाना—ये सभी उपाय इष्ट होते हैं ॥५८ ॥

दिव्येति। मध्यस्थानां कुट्टिनीप्रभृतीनां मायिनां कपटिनां कार्य्ययोजकानामित्यर्थः, दिव्यस्य शपथस्य अवलम्बनं मिथ्यासल्लापः असत्यशिष्टालापः धैर्य्यवर्द्धनं सन्तोषवृद्धिकरणञ्च इमे उपायाः मताः इष्टाः ॥५८ ॥

यो नात्मगोपने युक्तिं चिन्तयेत् स पशोर्जडः।
जारसङ्गोपने छद्म संश्रयन्ति स्त्रियोऽपि च ॥५९ ॥

अन्वयः—यः आत्मगोपने युक्तिं न चिन्तयेत् सः पशोः जडः। स्त्रियः अपि जारसङ्गोपने छद्म संश्रयन्ति ॥५९ ॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, आत्मनः = स्वात्मानम्, गोपने = संरक्षणे, युक्तिम् = उपायः, न = नहि, चिन्तयेत् = विचारयेत्, सः = एतंविधो जनः, पशोः = पश्वपेक्षयाऽपि, जडः = मूर्खोऽस्ति। यतः, स्त्रियोऽपि = ज्ञानहीनाः नार्योऽपि, जारस्य = उपपतेः, सङ्गोपने = अन्तर्धाने, छद्म = कपटम्, संश्रयन्ति = आश्रयन्ति ॥५९ ॥

हिन्दी—जो अपनी रक्षा के लिए अपना उपाय नहीं सोचता, वह पशु से भी बदतर जड़ है। क्योंकि अज्ञानी और वे स्त्रियाँ भी अपने जारपति को छिपाने में छल का सहारा लेती हैं ॥५९ ॥

नेति। यः आत्मनः गोपने युक्तिं न चिन्तयेत् सः अनात्मगोपनार्थीत्यर्थः, पशोः पशुमपेक्ष्य पश्वपेक्षयापि अज्ञ इत्यर्थः। स्त्रियः अपि जारस्य उपपतेः सङ्गोपने छद्म छलं संश्रयन्ति ॥५९ ॥

युक्तिश्छलात्मिका प्रायस्तथान्या सत्यरूपिका।
यश्छद्मचारी भवति तस्मिन् छद्म समाचरेत् ॥६० ॥

अन्वयः—छलात्मिका प्रायः युक्तिः अन्या सत्यरूपिका। यः छद्मचारी भवति तस्मिन् छद्म समाचरेत् ॥६० ॥

व्याख्या—युक्तिः = द्विधा—प्रायः = अनेकशः, छलात्मिका = वञ्चनात्मिका, अन्या = अपरा, सत्यरूपिका = तथ्यात्मिका, यः = पुरुषः, छद्मचारी = कापटिकः, भवति = अस्ति, तस्मिन् = मायिके जने, छद्म = छलम्, समाचरेत् = संश्रयेत् ॥६० ॥

हिन्दी—सफलता के लिए दो तरह की युक्तियाँ बतलाई गयी हैं वञ्चनात्मक और तथ्यपरक। जो कपटाचारी है, उसके लिए छलात्मक युक्ति का ही प्रयोग करना चाहिए ॥६० ॥

युक्तिरिति। युक्तिः द्विधा प्रायः बाहुल्येन छलात्मिका कपटरूपा, अन्या अपरा सत्यरूपिका सत्यात्मिका इत्यर्थः। यः छद्मचारी कपटाचारः भवति तस्मिन् जने छद्म कपटं समाचरेत् ॥६० ॥

अन्यथा शीलनाशाय महतामपि जायते।
अस्ति बुद्धिमतां श्रेणिर्न त्वेको बुद्धिमानतः ॥ ६१ ॥
देशे काले च पुरुषे नीतिं युक्तिमनेकधा।
कल्पयन्ति च कुशला दृष्ट्वा रुद्धान्तु तात्त्विकीम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—अन्यथा महतामपि शीलनाशाय जायते, किञ्च बुद्धिमतां श्रेणिः अस्ति न तु एकः बुद्धिमान्। अतः कुशलाः तात्त्विकीं युक्तिं रुद्धां दृष्ट्वा तु देशे काले च अनेकधा नीतिं युक्तिञ्च कल्पयन्ति ॥ ६२ ॥

व्याख्या—अन्यथा = इतरथा, छद्म = छलम्, महतामपि = श्रेष्ठजनानामपि, शीलनाशाय = चरित्रविनाशाय, जायते = भवति, किञ्च, बुद्धिमताम् = ज्ञानिनाम्, श्रेणिः = समूहः, अस्ति = भवति, न तु एकः = अद्वितीयः एव। अतः = अस्मात् कारणात्, कुशलाः = चतुराः जनाः, तात्त्विकीम् = तथ्यात्मिकाम्, युक्तिम् = उपायम्, रुद्धाम् = स्तम्भिताम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, देशे = स्थाने, काले = समये, च, अनेकधा = बहुविधाम्, नीतिम् = नयम्, युक्तिञ्च = उपायञ्च, कल्पयन्ति = सृजन्ति ॥ ६१-६२ ॥

हिन्दी—ऊपरलिखित स्थिति से भिन्न स्तर पर छल का प्रयोग बड़े लोगों के चरित्र का हनन कर देता है। क्योंकि बुद्धिमानों का समूह होता है, कोई अकेला तो बुद्धिमान् होता नहीं। अतः चतुर लोग जहाँ तथ्यपरक युक्ति को असफल होते देखते हैं, वहाँ वे देश, काल और पात्र के अनुसार नीति और युक्ति की कल्पना कर लेते हैं ॥ ६१-६२ ॥

अन्यथेति। देशे इति। अन्यथा उक्तवैपरीत्ये छद्म समाचरणं महतामपि शीलनाशाय चरित्रविनाशाय जायते। किञ्च बुद्धिमतां श्रेणिः समूहः अस्ति न तु एक एव बुद्धिमान् अस्तीत्यर्थः। अतः अस्मात् कारणात् कुशला निपुणा जनाः तात्त्विकीं सत्यरूपिकां युक्तिं रुद्धां न्यक्कृताम् अफलामित्यर्थः, दृष्ट्वा देशे काले पुरुषे पात्रे इत्यर्थः, च अनेकधा बहुविधां नीतिं युक्तिञ्च कल्पयन्ति रचयन्ति ॥ ६१-६२ ॥

मन्त्रौषधिपृथग्वेशकालवागर्थसंश्रयात् ।
छद्म सञ्जनयन्तीह मायासु कुशला जनाः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—इह मायासु कुशलाः जनाः मन्त्रौषधिपृथग्वेशकालवागर्थसंश्रयात् छद्म सञ्जनयन्ति ॥ ६३ ॥

व्याख्या—इह = संसारे, मायासु = प्रवञ्चनेषु, कुशलाः = चतुराः जनाः, मन्त्राणाम् = विचारणानाम्, औषधीनाम् = भैषज्यानाम्, पृथक् = भिन्नानाम्, वेशानाम् = परिच्छदानाम्, कालानाम् समयानाम्, वाचाम् = वाणीम्, अर्थानाम् = धनानाम्, च, संश्रयात् = आश्रयणात्, छद्म = कपटम्, सञ्जनयन्ति = उत्पादयन्ति ॥ ६३ ॥

हिन्दी—इस संसार में कपटी व्यक्ति मंत्र, औषधि, वेष, समय, बोली और धन का आवश्यकतानुसार अवलम्बन कर छल का प्रयोग करते हैं ॥ ६३ ॥

मन्त्रेति। इह जगति मायासु कपटाचारेषु कुशला निपुणा जनाः मन्त्राणाम् औषधीनां पृथक् विभिन्नानां वेशानां परिच्छदानां कालानां वाचाम् अर्थानाञ्च संश्रयात् छद्म छलं सञ्जनयन्ति उत्पादयन्ति ॥ ६३ ॥

लोकेऽधिकारिप्रत्यक्षं विक्रीतं दत्तमेव वा।
वस्त्रभाण्डादिकं क्रीतं स्वचिह्नै रङ्कयेच्चिरम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—लोके विक्रीतं वस्त्रभाण्डादिकं दत्तं तथा क्रीतम् अधिकारिप्रत्यक्षं स्वचिह्नैः चिरम् अङ्कयेत् ॥ ६४ ॥

व्याख्या—लोके = इह संसारे, विक्रीतम् = विपणायितम्, वस्त्रभाण्डादिकम् = वसनपात्रादिकम्, दत्तम् = पात्रसात्कृतं वस्तु, तथा क्रीतम् = क्रयीकृतम्, वस्त्रभाण्डादिकम्, अधिकारिणाम् = विक्रेतृणां, दातृणां तथा क्रेतृणाञ्च, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, स्वचिह्नैः -- स्वस्य = आत्मनः, चिह्नैः = चिह्नविशेषैः, चिरम् = चिरकालव्यापिनम्, यथा स्यात्, अङ्कयेत् = चिह्नयेत् ॥ ६४ ॥

हिन्दी—लोक में वस्त्र, बर्त्तन प्रभृति बेची गई, दान दी गई एवं खरीदी गई वस्तु पर उनके अधिकारी विक्रेता, दाता एवं क्रेता के सामने ही अपनी टिकाऊ मुहर लगा दे ॥ ६४ ॥

लोके इति। लोके जगति विक्रीतं वस्त्रभाण्डादिकं दत्तं पात्रसात्कृतं वस्तु तथा क्रीतं वस्त्रभाण्डादिकम् अधिकारिणां विक्रेतृणां दातृणां क्रेतृणाञ्च प्रत्यक्षं स्वचिह्नैः आत्मचिह्नैः चिरंस्थायिरूपं तथा अङ्कयेत् अङ्कितं कुर्य्यात् भाविविसंवादनिराकरणार्थमिति भावः ॥ ६४ ॥

स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थं राजज्ञातं समाचरेत्।
जडान्धबालद्रव्याणां दद्याद् वृद्धिं नृपः सदा ॥ ६५ ॥

अन्वयः—स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थं राजज्ञातं समाचरेत्। नृपः जडान्धबालद्रव्याणां सदा वृद्धिं दद्यात् ॥ ६५ ॥

व्याख्या—स्तेनानाम् = तस्कराणाम्, कूटस्य = मायायाः, निवृत्त्यर्थम् = निवारणाय, सकलक्रीतादिकम्, राजज्ञातम्—राज्ञः = नृपस्य, ज्ञातम् = ज्ञातसारेण, क्रीतादिकम्, समाचरेत् = कुर्यात्। नृपः = राजा, जडानाम् = निश्चेष्टाणाम्, अन्धानाम् = नेत्रहीनानाम्, बालानाम् = बालकानाम्, यानि द्रव्याणि = धनानि, नृपे न्यस्तानि, तेषाम् = द्रव्याणाम्, सदा = सर्वदा, वृद्धिम् = लाभः, दद्यात् = प्रयच्छेत् ॥ ६५ ॥

हिन्दी—चोरी के माल बिकने न पाये, इसलिए इसकी सूचना राजा को मिलनी चाहिए। जड़ अर्थात् निष्क्रिय अंधें एवं बालकों का धन जो राजा के पास हो, उसका सूद राजा को देना चाहिए ॥ ६५ ॥

स्तेनेति। स्तेनानां चौराणां कूटस्य कपटस्य निवृत्त्यर्थं निवारणाय सर्वं क्रीतादिकं राजज्ञातं समाचरेत् राज्ञः ज्ञातसारेण क्रीतादिकं कुर्य्यादित्यर्थः। नृपः जडानाम् अन्धानां बालानां शिशूनाञ्च यानि द्रव्याणि धनानि राजनि न्यस्तानीति भावः, तेषां सदा वृद्धिं दद्यात् ॥ ६५ ॥

स्वीया तथा च सामान्या परकीया तु स्त्री यथा।
त्रिविधो भृतकस्तद्वदुत्तमो मध्यमोऽधमः ॥ ६६ ॥

अन्वयः—स्त्री स्वीया सामान्या परकीया चेति त्रिविधा, तथा भृतकः उत्तमः मध्यमः अधमश्चेति त्रिविधः ॥ ६६ ॥

व्याख्या—स्त्री = नारी, स्वीया = स्वकीया, सामान्या = गणिकादयः, परकीया = अन्यजनस्य पत्नी, चेति त्रिविधा = त्रिप्रकारिका, तथा = तेनैव रूपेण, भृतकः = सेवकः, उत्तमः = श्रेष्ठः, मध्यमः = साधारणः, अधमः = नीचश्चेति, त्रिविधः = त्रिप्रकारको भवति ॥ ६६ ॥

हिन्दी—जैसे औरतें अपनी, पराई तथा गणिकादि भेद से तीन तरह की होती हैं; ठीक उसी प्रकार सेवक भी ऊँचे दर्जे के, साधारण तथा नीच तीन तरह के होते हैं ॥ ६६ ॥

स्वीयेति। यथा स्त्री स्वीया, सामान्या साधारणी, परकीया चेति त्रिविधा, तथा भृतकः उत्तमः, मध्यमः अधमश्चेति त्रिविधः ॥ ६६ ॥

स्वामिन्येवानुरक्तो यो भृतकस्तूत्तमः स्मृतः ।
सेवते पुष्टभृतिदं स्वामिनं स च मध्यमः ।
पुष्टोऽपि स्वामिनाव्यक्तं भजतेऽन्यं स चाधम ॥ ६७ ॥

अन्वयः—यः भृतकः स्वामिनि एव अनुरक्तः सः उत्तमः स्मृतः। यः पुष्टभृतिदं स्वामिनं सेवते सः मध्यमः। यश्च स्वामिना पुष्टोऽपि अव्यक्तम् अन्यं भजते सः अधमः ॥ ६७ ॥

व्याख्या—यः भृतकः = सेवकः, स्वामिनि = राजनि, एव = केवलम्, भजते = सेवते, सः = सेवकः, उत्तमः = उत्कृष्टः, स्मृतः = कथितः, यः = सेवकः, पुष्टभृतिदम् = पर्याप्तवेतनदातारम्, स्वामिनम् = पालकम्, सेवते = भजते, सः = सेवकः, मध्यमः = सामान्यो भवति, यश्च = सेवकः, स्वामिना = अधिपेन, पुष्टोऽपि = सुपोषितोऽपि, अव्यक्तम् = परोक्षे, अन्यम् = अपरजनम्, भजते = सेवते। सः = एवंविधः सेवकः, अधमः = नीचो भवति ॥ ६७ ॥

हिन्दी—जो सेवक केवल अपने स्वामी में अनुरक्त हो वह उत्तम, जो पर्याप्त वेतन के लोभ में मालिक की सेवा करे वह मध्यम तथा जो मालिक से भलीभाँति पालित होने के बावजूद छिपे रूप से दूसरे की सेवा करता है, वह नीच सेवक कहलाता है ॥ ६७ ॥

स्वामिनीति। यः भृतकः स्वामिनि एव अनुरक्तः सः उत्तमः स्मृतः। यः पुष्टभृतिदं पर्य्याप्तवेतनदायिनं स्वामिनम् अधिकारिणं प्रभुमित्यर्थः, सेवते पर्य्याप्तवेतनलोभेन न त्वनुरागेणेति भावः, सः मध्यमः। यश्च स्वामिना पुष्टोऽपि सम्यक् पालितोऽपि अव्यक्तं गूढम् अन्यं भजते स अधमः ॥ ६७ ॥

उपकरोत्यपकृतो ह्युत्तमोऽप्यन्यथाधमः ।
मध्यमः साम्यमन्विच्छेदपरः स्वार्थतत्परः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—यः अपकृतोऽपि उपकरोति सः हि उत्तमः, अन्यथा अधमः। मध्यमः साम्यम् अन्विच्छेत्, अपरः स्वार्थेषु तत्परः ॥ ६८ ॥

व्याख्या—यः = भृतकः, अपकृतोऽपि = अनिष्टसाधकोऽपि, उपकरोति = हितं साधयति, स हि = स एव सेवकः, उत्तमः = उत्कृष्टः, अन्यथा = इतरथा, अधमः = नीचसेवको भवति, मध्यमः = सामान्यसेवकस्तु, साम्यम् = तुल्यव्यवहारत्वम्, अन्विच्छेत् = प्राप्तुमभिलषेत्, अपरः = एतद्भिन्नः, अधमः = नीचस्तु, स्वार्थेषु = आत्मकार्यसाधनेषु, तत्परः = उद्यतो भवति ॥ ६८ ॥

हिन्दी—जो अहित करने पर भी मालिक का उपकार करता हो, वह उत्तम कोटि का सेवक है तथा इससे भिन्न नीच सेवक होता है। मध्यम दर्जे का सेवक समान व्यवहार चाहता है तथा नीच सेवक सदा अपना स्वार्थ साधने में लगा रहता है ॥ ६८ ॥

उपकरोतीति। यः अपकृतोऽपि उपकरोति स हि स एव उत्तमः, अन्यथा अधमः। मध्यमः भृतकः साम्यम् अन्विच्छेत् समतां तुल्यव्यवहारताम् आप्तुमभिलषेत् अपरः अधमः स्वार्थेषु स्वकार्य्येषु तत्परः ॥ ६८ ॥

नोपदेशं विना सम्यक् प्रमाणैर्ज्ञायतेऽखिलम्।
बाल्यं वाप्यथ तारुण्यं प्रारम्भितसमाप्तिदम्॥ ६९॥
प्रायो बुद्धिमता ज्ञेयं न वार्द्धक्यं कदाचन।
आरम्भं तस्य कुर्य्याद्धि यत् समाप्तिं सुखं व्रजेत्॥ ७०॥

अन्वयः—उपदेशं विना प्रमाणैः अखिलं सम्यक् न ज्ञायते। बुद्धिमता प्रायः बाल्यं वा तारुण्यं प्रारम्भितसमाप्तिदं ज्ञेयम्। कदाचन वार्द्धक्यं न तस्य आरम्भं कुर्यात्, यत् सुखं समाप्तिं व्रजेत्॥ ६९-७०॥

व्याख्या—उपदेशम् = बोधनम्, विना = विहाय, प्रमाणैः = निदर्शनैः, अखिलम् = सर्वम्, सम्यक् = सुष्ठुतया, न = नहि, ज्ञायते = बुध्यते, बुद्धिमता = ज्ञानवता, प्रायः = बहुशः, बाल्यम् = शैशवम्, वा = अथवा, तारुण्यम् = कैशोर्यम्, प्रारम्भितसमाप्तिदम् = औपक्रमितावसानदम्, भवति, कदाचन = कदाचित्, वार्द्धक्यम् = वृद्धत्वम्, न = प्रारम्भितसमाप्तिदं न भवति, तस्मात्, तस्य = कार्यस्य, आरम्भम् = उपक्रमम्, कुर्यात् = विदध्यात्, यत् = कार्यम्, सुखम् = सुलभतया, यथा स्यात् तथा, समाप्तिम् = पर्यवसानत्वम्, व्रजेत् = गच्छेत्॥ ६९-७०॥

हिन्दी—उपदेश दिये बिना केवल प्रमाण देने से सारी बातें समझ में नहीं आ जाती हैं। बचपन या जवानी में प्रारंभ किया गया काम प्रायः पूरा हो जाता है, किन्तु वृद्धावस्था में प्रारम्भ किये गये काम की समाप्ति नहीं हो पाती है। अतः ऐसे काम प्रारंभ करना चाहिए जो सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाय॥ ६९-७०॥

नेति। प्राय इति। उपदेशं विना प्रमाणैः अखिलं समस्तं सम्यक् न ज्ञायते। बुद्धिमता विदुषा बाल्यं वा तारुण्यं यौवनं प्रारम्भितसमाप्तिदं ज्ञेयं, बाल्ये यौवने वा यत् प्रारभ्यते तत् समाप्यते इत्यर्थः, कदाचन वार्द्धक्यं न प्रारम्भितसमाप्तिदं वार्द्धक्ये यत् प्रारभ्यते तत् न समाप्यते इत्यर्थः। तस्मात् तस्य कार्य्यस्य आरम्भं कुर्य्यात् यत् सुखम् अक्लेशं यथा तथा समाप्तिं व्रजेत् गच्छेत् समाप्तं भवतीत्यर्थः॥ ६९-७०॥

नारम्भो बहुकार्य्याणामेकदैव सुखावहः।
नारम्भितसमाप्तिन्तु विना चान्यं समाचरेत्॥ ७१॥

अन्वयः—एकदैव बहुकार्याणाम् आरम्भः न सुखावहः। आरम्भितस्य समाप्तिं विना अन्यं न समाचरेत्॥ ७१॥

व्याख्या—एकदैव = समकालमेव, बहूनाम् = अनेकविधानाम्, कार्याणाम् = कृत्यानाम्, आरम्भः = प्रारम्भः, न = नहि, सुखावहः = सुकरः, तस्मात्, आरम्भितस्य = प्रारब्धस्य कार्यस्य, समाप्तिम् = समापनम्, विना = विहाय, अन्यम् = अपरं कार्यम्, न = नहि, समाचरेत् = प्रारम्भं कुर्यात्॥ ७१॥

हिन्दी—एक साथ अनेक कामों को शुरु करना सुखद नहीं होता है। अतः हाथ में लिये काम को समाप्त करने के बाद ही दूसरा काम शुरु करना चाहिए॥ ७१॥

नेति। एकदैव युगपदेव बहूनां कार्य्याणाम् आरम्भः न सुखावहः, तस्मात् आरम्भितस्य आरब्धस्य कार्य्यस्य समाप्तिं विना अन्यत् कार्य्यं न समाचरेत् आश्रयेत्॥ ७१॥

सम्पाद्यते न पूर्वं हि नापरं लभ्यते यतः।
कृती तत् कुरुते नित्यं यत् समाप्तिं व्रजेत् सुखम्॥७२॥

अन्वयः—यतः पूर्वं हि न सम्पाद्यते अपरं न लभ्यते तत् कृती तत् नित्यं कुर्यात् यत् समाप्तिं व्रजेत्॥७२॥

व्याख्या—यतः = एकदैव बहुकार्यारम्भात्, न = नहि, सम्पाद्यते = निष्पाद्यते, पूर्वम् = प्रथमारब्धम्, अपरम् = अन्यारब्धं कार्य्यम्, न = नहि, लभ्यते = उपलब्धो भवति, तत् = तस्मात् कारणात्, कृती = पटुजनः, नित्यम् = सततम्, तत् = कार्यम्, कुर्यात् = निष्पादयेत्, यत् = कार्यम्, सुखम् = सहजम्, समाप्तिम् = निःशेषताम्, व्रजेत् = गच्छेत्॥७२॥

हिन्दी—हाथ में लिया काम जब तक पूरा न हो जाय तब तक दूसरा काम शुरू नहीं करना चाहिए। क्योंकि दूसरा काम शुरू करने से पहला समाप्त तो नहीं ही होगा, दूसरा काम भी अधर में लटक जायेगा। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति सदा उसी काम को प्रारम्भ करते हैं जो सहज भाव से सम्पन्न हो जाय॥७२॥

सम्पाद्यते इति। यतः युगपद्बहुकार्य्यारम्भात् पूर्वं प्रथममारब्धमित्यर्थः, हि अपि अत्र हिशब्दोऽप्यर्थः। न सम्पाद्यते न निष्पाद्यते अपरं द्वितीयञ्च न लभ्यते न समाप्यते तत् तस्मात् कृती कार्य्यकुशलः जनः सततं तत् कुर्य्यात् यत् सुखं यथा तथा समाप्तिं व्रजेत्॥७२॥

यदि सिद्ध्यति येनार्थः कलहेन वरस्तु सः।
अन्यथायुर्धनसुहृद्यशोधर्महरः सदा॥७३॥

अन्वयः—येन कलहेन यदि अर्थः सिद्ध्यति सः वरः, अन्यथा सदा आयुर्धनसुहृद्यशोधर्महरः॥७३॥

व्याख्या—येन कलहेन = विवादेन, यदि = चेत्, अर्थः = प्रयोजनम्, सिद्ध्यति = पूर्णो भवति, सः = कलहः, वरः = श्रेष्ठः, अन्यथा = इतरथा, आयुषः = जीवितस्य, धनस्य = द्रव्यस्य, सुहृदः = मित्रस्य, धर्मस्य = पुण्यस्य, च, हरः = विनाशको भवति॥७३॥

हिन्दी—जिस झगड़े से अपना कोई मतलब सधता हो तो वह जरूर करना चाहिए। किन्तु निरर्थक झगड़े से आयु, धन, मित्र, धर्म तथा यश की हमेशा हानि होती है॥७३॥

यदीति। येन कलहेन यदि अर्थः सिद्ध्यति, सः कलहः वरः श्रेष्ठः, अन्यथा अर्थासिद्धौ इत्यर्थः, आयुषः धनस्य सुहृदः धर्मस्य च हरः नाशकः भवति॥७३॥

ईर्ष्या लोभो मदः प्रीतिः क्रोधो भीतिश्च साहसम्।
प्रवृत्तिच्छिद्रहेतूनि कार्य्ये सप्त बुधा जगुः॥७४॥

अन्वयः—ईर्ष्या लोभः मदः प्रीतिः क्रोधः भीतिः साहसं च एतानि सप्त कार्ये प्रवृत्तिच्छिद्रहेतूनि बुधाः जगुः॥७४॥

व्याख्या—ईर्ष्या = द्वेषः, लोभः = लिप्सा, मदः = गर्वः, प्रीतिः = प्रेम, क्रोधः = कोपः, भीतिः = भयम्, साहसम् = निर्भीकता, च, एतानि = पूर्वोक्तानि सप्त, कार्ये = कृत्ये, प्रवृत्तेः कार्यनिवाहे, छिद्रस्य = दोषस्य, हेतूनि = कारणानि, बुधाः = विबुधाः, जगुः = कथयन्ति गायन्ति चेति॥७४॥

हिन्दी—जलन, लालच, गर्व, प्यार, गुस्सा, डर और हिम्मत– इन सातों में किसी विषय की ओर मन का झुकाव चरित्रदोष के कारण है; ऐसी मान्यता बुद्धिमानों की है ॥७४॥

ईर्ष्येति। ईर्ष्या विद्वेषः लोभः लालसा, मदः गर्वः, प्रीतिः प्रणयः, क्रोधः कोपः, भीतिर्भयं, साहसं निर्भीकता च एतानि सप्त कार्य्ये प्रवृत्तेः छिद्रस्य दोषस्य च हेतूनि बुधाः पण्डिताः सर्वशास्त्रदर्शिनः जगुः गायन्तिस्म ॥७४॥

यथाच्छिद्रं भवेत् कार्य्यं तथैव हि समाचरेत्।
अविसंवादि विदुषां कालेऽतीतेऽप्यनापदि ॥७५॥

अन्वयः—यथा कार्यम् अच्छिद्रं भवेत् तथैव हि समाचरेत्। अनापदि काले अतीते अपि विदुषाम् अविसंवादि समाचरेत् ॥७५॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, कार्यम् = कृत्यम्, अच्छिद्रम् = दोषरहितम्, भवेत् = स्यात्, तथैव = तेनैव प्रकारेण, हि = इति निश्चयेन, समाचरेत् = कुर्यात्, अनापदि = आपत्तिरहिते, काले = यथावसरे, अतीते = व्यतीते सति, विदुषाम् = बुद्धिमताम्, अविसंवादि = अभिमतमेव कार्यम्, समाचरेत् = सम्पादयेत् ॥७५॥

हिन्दी—दोष रहित काम ही करना चाहिए। बुद्धिमानों को समय बीत जाने पर भी आपत्ति रहित अभिमत काम करना चाहिए ॥७५॥

यथेति। यथा कार्य्यम् अच्छिद्रं छिद्ररहितं निर्दोषमित्यर्थः, भवेत् तथैव हि समाचरेत्। अनापदि अविपन्नावस्थायां काले अतीते समतिक्रान्ते अपि विदुषां पण्डितानाम् अविसंवादि सम्मतम् एव कार्य्यं समाचरेत् कुर्य्यात् ॥७५॥

दशग्रामी शतानीकः परिचारकसंयुतौ।
अश्वस्थौ विचरेयातां ग्रामपा ह्यपि चाश्वगाः ॥७६॥

अन्वयः—दशग्रामी शतानीकः परिचारकसंयुतौ अश्वस्थौ विचरेयाताम्। ग्रामपाः अपि हि अश्वगाः ॥७५॥

व्याख्या—दशग्रामी = दशनिवसथानामधिपतिः, शतानीकः = शतसंख्यकसैन्यानामधिपश्च, परिचारकैः = सेवकैः, संयुतौ = परिवेष्टितौ, तथा अश्वस्थौ = हयपृष्ठासीनौ सन्तौ, विचरेयातां = भ्राम्येयाताम्, ग्रामपाः = ग्रामस्यैकस्यापि स्वामी, अश्वगाः = अश्वगामिनो भूत्वा विचरेयुः ॥७६॥

हिन्दी—दस गाँवों के मालिक तथा एक सौ सैनिकों के नायक अपने-अपने सेवकों के साथ घोड़े पर चढकर घूमे। एक गाँव का जो मालिक है, वह भी घोड़े पर ही घूमे ॥७६॥

दशेति। दशग्रामी दशग्रामाधिपः शतानीकः शतसैन्याधिपश्च परिचारकैः भृत्यैः संयुतौ परिवृतौ तथा अश्वस्थौ अश्वारूढौ सन्तौ विचरेयाताम्। ग्रामपा एकग्रामाधिपतयः अपि अश्वगा अश्वारूढाः विचरेयुरित्यर्थः ॥७६॥

साहस्रिकः शतग्रामी एकाश्वरथवाहनौ।
दशशस्त्रास्त्रिभिर्युक्तौ गच्छेतां वाश्वसङ्गतौ ॥७७॥

अन्वयः—साहस्रिकः शतग्रामी दशशस्त्रास्त्रिभिः युक्तौ एकाश्वरथवाहनौ वा अश्वसङ्गतौ गच्छेताम् ॥७७॥

व्याख्या—साहस्रिकः = दशशतसेनानायकः, शतग्रामी = शतसंख्यकनिवसथानां स्वामी, दशशस्त्रास्त्रिभिः—दशभिः, शस्त्रिभिः = आयुधिकैः, अस्त्रिभिः = प्रहारकैश्च, युक्तौ = सहितौ, एकाश्वरथवाहनौ = घोटकैकवाहितस्यन्दनारूढौ, वा = अथवा, अश्वसङ्गतौ = हयारूढौ, गच्छेताम् = व्रजेताम् ॥ ७७ ॥

हिन्दी—एक हजार सैनिकों के नायक तथा सौ गाँवों के मालिक सशस्त्रास्त्र दश अङ्गरक्षकों के साथ एक घोड़े वाले रथ पर या केवल घोड़े पर सवार होकर घूमे ॥ ७७ ॥

साहस्रिक इति। सहस्रसेनाधिपतिः शतग्रामी शतग्रामाधिपतिश्च दशशस्त्रास्त्रिभिः दशभिः शस्त्रिभिः अस्त्रिभिश्च युक्तौ एकाश्वरथवाहनौ एकाश्वयुतरथारूढौ वा अश्वसङ्गतौ अश्वारूढौ गच्छेताम् ॥ ७७ ॥

सहस्रग्रामपो नित्यं नराश्वद्व्यश्वयानगः।
आयुतिको विंशतिभिः सेवकैर्हस्तिना व्रजेत् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—सहस्रग्रामपः आयुतिकः विंशतिभिः सेवकैः नराश्वद्व्यश्वयानगः वा हस्तिना नित्यं व्रजते ॥ ७८ ॥

व्याख्या—सहस्रग्रामपः = दशशतनिवसथानां स्वामी, एवम्, आयुतिकः = दशसहस्रसैन्यनायकः, विंशतिभिः, सेवकैः = अङ्गरक्षकैः सहितः, नराश्वद्व्यश्वयानगः—नरयानम् = शिविका, तद्गामी अथवा द्व्यश्वयानगः = घोटकद्वयवाहितस्यन्दनगामी, वा = अथवा, हस्तिना = गजेन, व्रजेत् = गच्छेत् ॥ ७८ ॥

हिन्दी—एक हजार गाँवों का मालिक या दस हजार सैनिकों का नायक बीस अंगरक्षकों के साथ पालकी या दो घोड़े वाले रथ अथवा हाथी पर सवार होकर रोज घूमे ॥ ७८ ॥

सहस्रेति। सहस्रग्रामपः सहस्रग्रामाधिपतिः आयुतिकः दशसहस्रसैन्याध्यक्षश्च विंशतिभिः सेवकैः युतः तथा नराश्वद्व्यश्वयानगः नरयानं शिविका तद्गामी अश्वगामी वा द्व्यश्वयानगः अश्वद्वययुतरथगामी वा हस्तिना गजारूढः सन्नित्यर्थः, व्रजेत् गच्छेत् ॥ ७८ ॥

अयुतग्रामपः सर्वयानैश्च चतुरश्वगः।
पञ्चायुती सेनपोऽपि सञ्चरेद् बहुसेवकः ॥ ७९ ॥

अन्वयः—अयुतग्रामपः पञ्चायुती सेनपोऽपि बहुसेवकः चतुरश्वगः सर्वयानैश्च सञ्चरेत् ॥ ७९ ॥

व्याख्या—अयुतग्रामपः = दशसहस्रनिवसथाधिपतिः, पञ्चायुतसेनपोऽपि = पञ्चाशत्सहस्रसेनाधिपतिः अपि, बहुसेवकः = बहुपरिचारकपरिवृतः, चतुरश्वगः = घोटकचतुष्टयवाहितस्यन्दनारूढः, वा, सर्वयानगः = सकलवाहनगश्च सन्, सञ्चरेत् = परिभ्रमेत् ॥ ७९ ॥

हिन्दी—दस हजार गाँवों का मालिक या पचास हजार सैनिकों का अधिपति अनेक रक्षकों या सेवकों से घिरा चार घोड़े वाला रथ या किसी भी सवारी से घूमे ॥ ७९ ॥

अयुतेति। अयुतग्रामपः दशसहस्रग्रामाधिपः पञ्चायुतसेनपः अपि बहुसेवकः बहुभृत्यपरिवृतः चतुरश्वगः अश्वचतुष्टययुतरथारूढः सन् सञ्चरेत् ॥ ७९ ॥

यथाधिकाधिपत्यन्तु वीक्ष्याधिक्यं प्रकल्पयेत्।
कल्पयेच्च यथाधिक्यं धनिकेषु गुणिष्वपि ॥ ८० ॥

अन्वयः—यथाधिकाधिपत्यं वीक्ष्य आधिक्यं प्रकल्पयेत्, तथा धनिकेषु गुणिष्वपि यथाधिक्यं कल्पयेत् ॥८० ॥

व्याख्या—यथाधिकाधिपत्यम् = स्वामित्वानुसारेण, वीक्ष्य = अवलोक्य, आधिक्यम् = सम्मानाधिक्यम्, प्रकल्पयेत् = अनुचिन्तयेत्। तथा धनिकेषु = समृद्धजनेषु, गुणिष्वपि = गुणवन्तेष्वपि, यथाधिक्यम् = आधिक्यानुसारेण, मानम्, कल्पयेत् = विचारयेत् ॥८० ॥

हिन्दी—जैसा बहुसंख्यक गाँवों या सैनिकों पर आधिपत्य हो उसी के अनुसार सम्मान की कल्पना करनी चाहिए। इसी तरह धन के अनुसार धनिकों की तथा गुण के अनुसार गुणियों के सम्मान की कल्पना करनी चाहिए ॥८० ॥

यथेति। यथाधिकाधिपत्यं वीक्ष्य आधिक्यं सम्मानाधिक्यं प्रकल्पयेत्। तथा धनिकेषु धनवत्सु गुणिष्वपि यथाधिक्यम् आधिक्यानुसारेण कल्पयेच्च सम्मानमिति भावः ॥८० ॥

श्रेष्ठो न मानहीनः स्यान्न्यूनो मानाधिकोऽपि न।
राष्ट्रे नित्यं प्रकुर्वीत श्रेयोऽर्थी नृपतिस्तथा ॥ ८१ ॥

अन्वयः—यथा श्रेष्ठः मानहीनः न स्यात् न्यूनः मानाधिकोऽपि न श्रेयोऽर्थी नृपतिः राष्ट्रे तथा नित्यं प्रकुर्वीत ॥८१ ॥

व्याख्या— यथा = येन प्रकारेण, श्रेष्ठः = वरेण्यः, मानहीनः = सम्मानरहितः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, न्यूनः = हीनजनः, मानाधिकः = अधिकसम्माननीयः, न = नहि, स्यात् = भवेत्, श्रेयोऽर्थी = मङ्गलाकाङ्क्षी, नृपः = राजा, राष्ट्रे = राज्ये, तथा = तेनैव प्रकारेण, नित्यम् = सततम्, प्रकुर्वीत = विदध्यात् ॥८१ ॥

हिन्दी—कल्याणकामी राजा अपने राज्य में हमेशा यह ध्यान रखे कि मानवीय व्यक्ति के सम्मान में कमी न हो तथा हीन व्यक्ति अधिक सम्माननीय न हो जाय ॥८१ ॥

श्रेष्ठ इति। यथा श्रेष्ठः मानहीनः न स्यात्, न्यूनः निकृष्टश्च मानाधिकः अधिकमानयुतः न स्यात् श्रेयोऽर्थी मङ्गलार्थी नृपतिः राष्ट्रे राज्ये तथा नित्यं प्रकुर्वीत ॥८१ ॥

हीनमध्योत्तमानान्तु ग्रामे भूमिं प्रकल्पयेत्।
कुटुम्बिनां गृहार्थन्तु पत्तनेऽपि नृपः सदा ॥ ८२ ॥

अन्वयः—नृपः ग्रामे हीनमध्योत्तमानां तथा कुटुम्बिनां गृहार्थं पत्तनेऽपि भूमिं प्रकल्पयेत् ॥८२ ॥

व्याख्या—नृपः = राजा, ग्रामे = निवसथे, हीनानाम् = नीचानाम्, मध्यानाम् = साधारणजनानाम्, उत्तमानाम् = श्रेष्ठानाम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, कुटुम्बिनाम् = आत्मीयानाम्, गृहार्थम् = सदनाय, पत्तनेऽपि = नगरेऽपि, भूमिम् = वासस्थानम्, प्रकल्पयेत् = दद्यात् ॥८२ ॥

हिन्दी—राजा सदा नीच, साधारण एवं उत्तम कोटि के लोगों के लिए गाँव में तथा अपने आत्मीय जनों के निवास के लिए शहर में वासभूमि की व्यवस्था करे ॥८२ ॥

हीनेति। नृपः ग्रामे हीनानां मध्यानाम् उत्तमानाञ्च तथा कुटुम्बिनां स्वजनानां गृहार्थं पत्तनेऽपि नगरेऽपि भूमिं वासस्थानं प्रकल्पयेत् ॥८२ ॥

द्वात्रिंशत्प्रमितैर्हस्तैर्दीर्घार्द्धा विस्तृताधमा।
उत्तमा द्विगुणा मध्या सार्द्धमाना यथार्हतः।
कुटुम्बसंस्थितिसमा न न्यूना वाधिकापि न॥ ८३ ॥

अन्वयः—अधमा द्वात्रिंशत्प्रमितैः हस्तैः दीर्घा विस्तृतौ अर्द्धा उत्तमा यथार्हतः द्विगुणा मध्या सार्द्धमाना कुटुम्बसंस्थितिसमा न न्यूना वा अधिकाऽपि न॥ ८३ ॥

व्याख्या—अधमा = नीचनिवासभूमिः, द्वात्रिंशत्प्रमितैः = द्वात्रिंशत्परिमितैः, हस्तैः = करैः, दीर्घा = आयामा, विस्तृतौ = आयामविस्तारौ, अर्द्धा = तदर्द्धा, द्विगुणा = अधमात् द्विगुणा, चतुष्षष्टिहस्तदीर्घा तथा द्वात्रिंशत्हस्तविस्तृता, मध्या = सामान्यस्तरीया, निवासभूमिः, सार्द्धमाना = अर्द्धसहिताधमा, अष्टचत्वारिंशद्हस्तदीर्घा, चतुर्विंशतिहस्तविस्तृतेति यावत्, कुटुम्बानाम् = आत्मीयानाम्, संस्थितौ = निवासभूमिः, समा = तुल्या, सर्वेषामात्मीयानां समाना वासभूमिः विधेया, न्यूना = अल्पा, न = नहि, अधिकाऽपि = विशेषाऽपि, न = नहि, देया॥ ९३ ॥

हिन्दी—बत्तीस हाथ लम्बी और सोलह हाथ चौडी अधमा, चौसठ हाथ लम्बी और बत्तीस हाथ चौड़ी उत्तमा तथा अड़तालीस हाथ लम्बी और चौबीस हाथ चौडी सामान्य स्तर की वासभूमि कहलाती है। राजा अपने आत्मीयों के लिए न कम न ज्यादा बिलकुल समान वासभूमि की व्यवस्था करे॥ ८३ ॥

वासभूमेर्मानमाह— **द्वात्रिंशदिति**। अधमा वासभूमिः द्वात्रिंशत्प्रमितैः हस्तैः दीर्घा, विस्तृतौ अर्द्धा तदर्द्धा षोडशहस्तपरिमिता इत्यर्थः। उत्तमा वासभूमिः यथार्हतः यथायोग्यं द्विगुणा अधमद्विगुणा चतुःषष्टिहस्तदीर्घा द्वात्रिंशद्धस्तविस्तृता इत्यर्थः। मध्या वासभूमिः सार्द्धमाना अर्द्धसहिताधमा इत्यर्थः, अष्टचत्वारिंशद्धस्तदीर्घा चतुर्विंशतिहस्तविस्तृतेति यावत् कुटुम्बानां संस्थितौ समा सर्वेषां कुटुम्बानां समाना वासभूमिः कार्य्या, न्यूना न, अधिकापि च न॥ ८३ ॥

ग्रामाद् बहिर्वसेयुस्ते ये ये त्वधिकृता नृपैः।
नृपकार्य्यं विना कश्चिन्न ग्रामं सैनिको विशेत्॥ ८४ ॥

अन्वयः—ये ये नृपैः अधिकृताः ते ग्रामात् बहिः वसेयुः। कश्चित् सैनिकः नृपकार्य विना ग्रामं न विशेत्॥ ८४ ॥

व्याख्या—ये ये = जनाः, नृपैः = राजभिः, अधिकृताः = कार्ये नियुक्ताः, ते = जनाः, ग्रामात् = निवसथात्, बहिः = बाह्यक्षेत्रे, वसेयुः = निवासं कुर्युः, कश्चित् = कोऽपि, सैनिकः = आयुधिकः, नृपकार्यम् = राज्ञानुदेशम्, विना = विहाय, ग्रामम् = निवसथे, न = नहि, विशेत् = प्रवेशं कुर्यात्॥ ८४ ॥

हिन्दी—राजा ने जिन अधिकारियों को नियुक्त किया है, उन्हें गाँव से बाहर निवास करना चाहिए। किसी भी सैनिक को राजकार्य के बिना ग्राम में प्रवेश नहीं करना चाहिए॥ ८४ ॥

ग्रामादिति। ये ये नृपैः अधिकृताः कार्य्ये नियुक्ताः ते ग्रामात् बहिः वसेयुः। कश्चित् सैनिकः नृपकार्य्यं विना ग्रामं न विशेत्॥ ८४ ॥

तथा न पीडयेत् कुत्र कदापि ग्रामवासिनः।
सैनिकैर्न व्यवहरेन्नित्यं ग्राम्यजनोऽपि च॥ ८५ ॥

अन्वयः—तथा सैनिकः कुत्र कदापि ग्रामवासिनं न पीडयेत्। ग्राम्यजनोऽपि नित्यं सैनिकैः न व्यवहरेत् ॥८५॥

व्याख्या—तथा = तेनैव प्रकारेण, सैनिकः = आयुधिकः, कुत्र = कस्मिन्नपि स्थाने, कदापि = कस्यामपि अवस्थायां, ग्रामवासिनः = ग्राम्यजनान्, न = नहि, पीडयेत् = क्लिश्येत्, ग्राम्यजनोऽपि = ग्रामीणजनोऽपि, नित्यम् = सततम्, सैनिकैः = आयुधिकैः, न = नहि, व्यवहरेत् = व्यवहारं कुर्यात् ॥८५॥

हिन्दी—और सैनिक कहीं किसी ग्रामीण को कभी कष्ट न दे और ग्रामीणों को भी चाहिए कि वे किसी सैनिक के साथ किसी प्रकार का व्यवहार न करे ॥८५॥

तथेति। तथा सैनिकः कुत्र कस्मिन्नपि स्थाने कदापि ग्रामवासिनः जनान् न पीडयेत् ग्राम्यजनोऽपि नित्यं सततं सैनिकैः न व्यवहरेत् ॥८५॥

श्रावयेत् सैनिकान् नित्यं धर्मं शौर्य्यविवर्द्धनम्।
सुवाद्यनृत्यगीतानि शौर्य्यवृद्धिकराण्यपि ॥८६॥

अन्वयः—नित्यं सैनिकान् शौर्यविवर्द्धनं धर्मं तथा शौर्यवृद्धिकराणि सुवाद्यनृत्यगीतानि च श्रावयेत् ॥८६॥

व्याख्या—नित्यम् = प्रतिदिनम्, सैनिकान् = सेनाचरान्, शौर्यविवर्द्धनम् = वीरत्वसंवर्धकम्, धर्मम् = धर्मयुद्धम्, तथा शौर्यवृद्धिकराणि = वीरत्ववर्द्धकाणि, सुवाद्यानि = सुष्ठु वादित्राणि, गीतानि = गायनानि, च = पुनः, नृत्यानि = नर्त्तनानि, श्रावयेत् = आकर्णयेत् ॥८६॥

हिन्दी—राजा सैनिकों की वीरता बढाने वाले धर्मयुद्ध की कथा सुनायें। प्रतिदिन शूरत्व-वर्द्धक बाजे, नृत्य-गीत भी सुनवाये ॥८६॥

श्रावयेदिति। नित्यं सततं सैनिकान् शौर्य्यविवर्द्धनं शौर्य्यवृद्धिकरं धर्मं युद्धधर्मं तथा शौर्य्यवृद्धिकराणि सुवाद्यानि नृत्यानि गीतानि च श्रावयेत् ॥८६॥

युद्धक्रियां विना सैन्यं योजयेन्नान्यकर्मणि ॥८७॥

अन्वयः—सैन्यं युद्धक्रियां विना अन्यकर्मणि न योजयेत् ॥८७॥

व्याख्या—सैन्यम् = सैनिकम्, युद्धक्रियाम् = साङ्ग्रामिककर्म, विना = विहाय, अन्यकर्मणि = अपरस्मिन् कार्ये, न = नहि, योजयेत् = नियुक्तं कुर्यात् ॥८७॥

हिन्दी—सैनिकों को युद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य में न लगाये ॥८७॥

युद्धक्रियामिति। सैन्यं युद्धक्रियां साङ्ग्रामिकव्यापारं विना अन्यकर्मणि न योजयेत् न नियुक्तं कुर्य्यात् ॥८७॥

सत्याचारास्तु धनिका व्यवहारे हता यदि।
राजा समुद्धरेत् तांस्तु तथान्यांश्च कृषीबलान् ॥८८॥

अन्वयः—सत्याचाराः धनिकाः यदि व्यवहारे हताः, राजा तान् तथा अन्यान् कृषीबलान् समुद्धरेत् ॥८८॥

व्याख्या—सत्याचाराः = सत्यमार्गावलम्बिनः, धनिकाः = समृद्धिशालिनो जनाः, यदि = चेत्, व्यवहारे = व्यापारे, हताः = निहताः, क्षतिग्रस्ता भवेयुः, तदा राजा = नृपः, तान् = जनान्, तथा अन्यान् = अपरानपि जनान्, कृषीबलान् = कृषिकान्, समुद्धरेत् = निस्तारयेत् ॥८८॥

हिन्दी—यदि कोई ईमानदार व्यक्ति या किसान व्यवहार में विनष्ट हो जाय तो राजा उसकी सहायता कर उद्धार करे ॥८८॥

सत्याचारा इति। सत्याचाराः सत्यपथावलम्बिनः धनिकाः यदि व्यवहारे वाणिज्यादौ हताः विनष्टाः क्षतिग्रस्ता इत्यर्थः भवेयुः, तदा राजा तान् तथा अन्यान् तथाविधान् कृषीबलान् कृषिजीविनश्च समुद्धरेत् ॥८८॥

ये सैन्यधनिकास्तेभ्यो यथार्द्धां भृतिमावहेत्।
पारदेश्यञ्च त्रिंशांशमधिकं तद्धनव्ययात् ॥८९॥

अन्वयः—ये सैन्यधनिकाः तेभ्यः यथार्हां भृतिं तथा तद्‌धनव्ययात् अधिकं पारदेश्यं त्रिंशांशम् आवहेत् ॥८९॥

व्याख्या—ये = जनाः, सेन्येषु = सैनिकेषु, धनिकाः = धनवन्तः, तेभ्यः = धनिकेभ्यः, यथार्हाम् = यथायोग्याम्, भृतिम् = वेतनम्, तदा तस्य, धनव्ययात् = अर्थनिर्गमनात्, अधिकम् = विशेषम्, पारदेश्यम् = विदेशगमनार्थम्, त्रिंशांशम् = त्रिंशांशकम्, आवहेत् = निष्पादयेत् ॥८९॥

हिन्दी—धनी सैनिकों को उनकी योग्यता अनुसार वेतन निर्धारित करे। राजधानी से बाहर जाने पर मूल वेतन का तीसवाँ भाग भत्ता के रूप में दे ॥८९॥

ये इति। ये जनाः सैन्येषु मध्ये धनिकाः तेभ्यः यथार्हां यथायोग्यां भृतिं तथा तस्य धनव्ययात् अधिकं पारदेश्यं परदेशगमनार्थं त्रिंशांशञ्च आवहेत् दद्यात् ॥८९॥

धनं संरक्षयेत्तेषां यत्नतः स्वात्मकोशवत्।
संहरेद्धनिकात् सर्वं मिथ्याचाराद्धनं नृपः ॥९०॥

अन्वयः—स्वात्मकोशवत् तेषां धनं यत्नतः संरक्षेत्। किञ्च नृपः मिथ्याचारात् धनिकात् सर्वं संहरेत् ॥९०॥

व्याख्या— स्वात्मकोशवत् = स्वकीयवैभवमिव, तेषाम् = सैन्यानाम्, धनम् = वित्तम्, यत्नतः = सायासः, संरक्षेत् = सङ्गोपयेत्, किञ्च, नृपः = राजा, मिथ्याचारात् = कपटव्यवहारात्, धनिकात् = सम्पन्नजनात्, सर्वम् = निखिलं धनम्, संहरेत् = अपहरेत् ॥९०॥

हिन्दी—और सैनिकों के धन को अपने खजाने की तरह राजा को रक्षा करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति धोखघड़ी से धन इकट्ठा करे तो राजा उसका सर्वस्व छीन ले ॥९०॥

धनमिति। आत्मकोशवत् निजधनमिव तेषां धनिकसैन्यानां धनं यत्नतः यत्नेन संरक्षेत्। किञ्च नृपः मिथ्याचारात् मायाव्यवहारिणः धनिकात् सर्वं धनं संहरेत् ॥९०॥

यदा चतुगुर्णा वृद्धिर्गृहीता धनिकेन च।
अधमर्णान्न दातव्यं धनिने तु धनं तदा ॥९१॥

इति शुक्रनीतौ खिलनीतिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः।

अन्वयः—यदा धनिकेन अधमर्णात् चतुर्गुणा वृद्धिः गृहीता तदा धनिने धनं न दातव्यम् ॥९१॥

व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले, धनिकेन = उत्तमर्णेन, अधमर्णात् = धारकात्, चतुर्गुणा, वृद्धिः = वार्द्धुष्यम्, गृहीता = सम्प्राप्ता, तदा, धनिने = उत्तमर्णाय, धनम् = अर्थम्, न = नहि, दातव्यम् = प्रत्यर्पयितव्यम् ॥९१ ॥

हिन्दी—और जब मूल धन से सूद चौगुना अधिक दे दिया जाय तब महाजन को मूल धन भी वापस नहीं करना चाहिए ॥९१ ॥

इस प्रकार शुक्रनीति में 'खिलनीतिनिरूपण' नामक पञ्चम अध्याय की 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

यदेति। यदा धनिकेन उत्तमर्णेन अधमर्णात् चतुर्गुणा वृद्धिः गृहीता, तदा धनिने तस्मै उत्तमर्णाय धनं मूलमित्यर्थः, न दातव्यं अधमर्णेनेति शेषः ॥९१ ॥

इति श्रीजीवानन्दविद्यासागरविरचिता पञ्चमाध्यायव्याख्या समाप्ता।

समाप्तश्च ग्रन्थः।

व्याख्यातुः परिचयः

मिथिलाया दक्षिणे भागे गङ्गायाश्चोत्तरे तटे ।
अकबरपुरनामके ग्रामे सानुजः वसतो मुदा ॥ १ ॥
बेगूसरायनगरेऽस्मिन्त्यक्त्वा जाह्नवीतटम्
समागतोऽस्मि वासाय ग्रन्थनिर्माणहेतवे ॥ २ ॥
साक्षाच्छक्तिस्वरूपिणीं सुखमयीं सौभाग्यसंवर्द्धिनीं
माता मे च सरस्वती सुकृतिनीं धर्मैकनिष्ठामयीम् ।
शास्त्रज्ञानप्रबुद्धशुद्धचरितः श्रीकीर्त्तिनाथः पिता,
तज्जोऽहं जगदीशचन्द्रमुदितः प्राप्तावकाशः गृही ॥ ३ ॥
चन्द्राङ्कवसुभूः शाके आषाढस्यासिते दले ।
सप्तम्यां रविवारे च निशायाः पश्चिमे पले ।
दत्वाशिषश्च मे तात क्षिप्त्वा गृहधुरम्मयि ।
वैकुण्ठाधिपतिं ध्यात्वा वैकुण्ठञ्च समाययौ ॥ ४ ॥
बाणव्योमाङ्कचन्द्राऽब्दे शाके ज्येष्ठाऽसिते शनौ ।
द्वितीयायां समाप्येहलीला मे जननीयजौ ॥ ५ ॥
शुक्राचार्यप्रणीतस्य शुक्रनीतेर्विशिष्टता ।
विविच्य लिखिता व्याख्या नात्यल्पा नातिविस्तृता ॥ ६ ॥
खिष्ट्रे गुणाङ्कनिधिचन्द्रेशनावीषे सितान्विते ।
समाप्तिरगमद्व्याख्या विमलेयं विचक्षणा ॥ ७ ॥

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

(अ)

अकल्यबालस्थविर ६५९
अकीर्त्तिरिव नरको ५१५
अकृतञ्च करिष्यामि ६६८
अकृष्टपच्यं कति च १८३
अगाधसलिले मग्नो ४२
अग्निं दीप्तमिवासीदेद् २२१
अग्निदो गरदश्चैव ३१७
अग्निदो गरदो वेश्या ४५६
अग्निविर्षं घटस्तोयं ७०९
अङ्गानां क्रमशो वक्ष्ये २५
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो ६७
अङ्गारस्यैव गन्धस्य ८२६
अङ्गीकर्त्तव्यमिति च २७६
अङ्गीकृतं यथार्थं यत् ६७६
अङ्गुलाद्यं स्मृतं मान २७१
अजाविगोमहिष्येण १९८
अजालगर्भं सद्वर्णं ४८३
अज्ञातशास्त्रो न ब्रूयात् ४१८
अतः सुभागदण्डी स्यात् ४५५
अतादृशे च विरमेत् ४१०
अति सर्वं नाशहेतु ३८१
अतिमृदस्तुतिनति ९१४
अत्यटनं चानशनम् ४११
अत्याग्रहान्नरस्यैव ३८२
अत्यायासो हि विद्यासु ४११
अत्यावश्यमनावश्यं ३५६
अथ कोशप्रकरणं ४६४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

अथ मिश्रप्रकरणं ४२१
अथ मिश्रे तृतीयन्तु ५१३
अथर्वाङ्गिरसो नाम ५२५
अथवा हेषिते स्कन्धे ७९८
अथ साधारणं नीति ३०२
अथोर्वोरन्तरे चिह्नम् ७७३
अर्थं चापह्नुते वादी ७०५
अर्थशास्त्रं कामशास्त्रं ५२३
अर्थस्य पुरुषो दासो ९१८
अर्थानर्थौ तु वार्त्तायां ६३
अर्थिना कथितं राज्ञे ६५५
अर्थिना लिखितो ह्यर्थः ६७७
अर्थिप्रत्यर्थिप्रत्यक्षं ६८३
अर्थिप्रत्यर्थिनौ सभ्यान् ६३७
अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्यात् ६९०
अर्थे वा यदि वा धर्मे ९१८
अदत्तं यश्च गृह्णति ७४१
अरेयं यश्च गृह्णति ७३८
अदानेनापमानेन ५५
अदीर्घसूत्रः सत्कार्ये १६८
अधनादननुज्ञातात् ४१७
अधमा धनमिच्छन्ति २९५
अधर्मतः प्रवृत्तं तं ७२३
अधर्मः क्षत्रियस्यैष ८६१
अधर्मनिरतो यस्तु ४१७
अधर्मशीलात् नृपतिः ४६६
अधर्मशीलो नृपति ४६०
अधि [illegible] ७०४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

अधिकारबलं दृष्ट्वा १८८
अधिकारिगणो मध्यो २४४
अधिकारिगणो राजा २३५
अप्रियाण्यपि चान्यानि २३०
अधिकारे क्षमं दृष्ट्वा १८६
अधिकृतो दशग्रामे ७८
अधीते सुस्वरं गति ६७१
अधुना लिखितं वच्मि ६८५
अधोगमा सटा कार्या ७७३
अधोऽधश्च क्रमात् तत्र २७९
अनन्याः स्वामिभक्ताश्च २११
अमन्त्रमक्षरं नास्ति १९१
अनर्थं चार्थवत् कृत्वा ७२३
अनन्यस्वत्वकामत्वम् ४२२
अनागमं तु यो भुङ्क्ते ७०४
अनागमापि या भुक्तिः ७०४
अनियुक्तप्रभाषी च ६५०
अनियुक्तो नियुक्तो वा ६३४
अनिश्चितोपायकार्य्यः ८५६
अनीतिस्ते तु मनसि २२५
अनीतेरेव सच्छिद्रं ७
अनुभूतः सत्यवाग्यः ६९०
अनुभूतस्य स्मृत्यर्थं २५१
अनुरागं सुस्वरञ्च २१२
अनुपे तु वृषाश्वानां ८१५
अनृतं साहसं माया ३६२
अनृतं साहसं मौर्ख्यं ३६४
अनेकतन्तुसंयोगैः ५४६

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
अनेकयन्त्रशस्त्रास्त्र	२१५
अनेकाश्च तथा धर्म्माः	३४९
अनेकासनसन्धानै	५४०
अन्तर्मृदुर्बहिः क्रूरो	४४४
अन्तर्वेश्मनि रात्रौ वा	१३३
अन्त्यौ द्वौ पञ्चमाब्दे तु	८१०
अन्नं न निन्द्यात् सुस्वस्थः	३४३
अंन्नाच्छादनमात्रा हि	२८९
अन्यगृहद्वारविद्धं	९२
अन्यत्र प्रस्थितः सङ्गात्	८४५
अन्यथा दाण्डकं भूपं	२४२
अन्यथा शीलनाशाय	९२८
अन्यदुक्तं लिखेदन्यत्	६४६
अन्यथा दूषयन् दण्ड्यः	६८४
अन्यथा शङ्कनात् नित्यं	७०१
अधर्मधर्ममूर्त्तीनाम्	७११
अधोमूखः शुभः पादे	७९०
अन्नं भुक्त्वा जलं पीत्वा	८०३
अन्यथा हरतस्तै तु	२३९
अन्यथा ह्यभियोक्तारं	७२६
अन्यवस्त्रामरणयोः	६५०
अन्याधिकारवृत्तन्तु	२३५
अन्यान् सुचक्षुषा हास्यैः	२९६
अन्यायकारी कलह	४५६
अन्यायगामिनि पत्यौ	१६८
अन्यायेनार्जितो यस्माद्	४६५
अन्योदयासहिष्णुश्च	३९१
अन्यार्थमर्थहीनं च	६७०
अन्योऽन्ययोःसमक्षन्तु	६७८
अन्योदयासहिष्णुश्च	४५६
अपि बहुबलोऽशूरो	८१७
अपि श्रेयस्करं नृणां	५७८
अतः कार्य्यक्षमं दृष्ट्वा	१८७
अतः सदा नीतिशास्त्र	३
अतः स्वबान्धवैर्मित्रैः	१४०
अतत्परनरस्यैव	४७
अतिकामक्रोधलोभै	७२२
अतिदानं तपः सत्य	९१८
अतिभुक्तोऽतिपीतोऽपि	७९४
अतिमद्यं हि पिबतो	४७
अतीतकाललिखितं न स्यात्	६८८
अतोऽन्यथा विनाशाय	१५७
अत्राष्टरक्तिको माषो	४९०
अपराधं यथोक्तं च	४४७
अपशब्दाश्च नो वाच्या	४१५
अपसरति यो युद्धात्	८६८
अपसृत्यास्त्रसिद्ध्यर्थं	८५१
अपि राष्ट्रविनाशाय	९२५
अपि स्थाणुवदासीत	२२६
अपृष्टौ नैव कथयेद्	३२४
अप्रगल्भजडोन्मत्त	६६३
अप्रधानः प्रधानः स्यात्	२३३
अप्रसिद्धं निराबाधं	६७०
अप्राप्तव्यवहारश्च	६६०
अप्रेरितहितकरं	८
अभयं च वरं दद्यात्	६००
अभावे बीजिनो माता	७२७
अभिमानाच्च लोभाच्च	६९२
अभियुक्ताय दातव्यं	७१४
अभियुक्तनिरुद्धैर्वा	१०५
अभियुक्ताश्च ये यत्र	६३३
अभीक्षगं चोद्यमानोऽपि	७०७
अभियोक्ता बलीयस्त्वाद्	८३९
अभिशापे समुत्तीर्णे	२५६
अभेद्यं व्यूहविद्वीर	७४८
अमात्यगोपितैः पश्चाद्	८७५
अमार्गश्चाष्टवलयी	८५३
अमात्यः प्राड्विवाको वा	७२५
अमात्यः साधु लिखन	२७६
अयं भारस्त्वया तत्र	२८७
अयं सहस्रापराधी	३१६
अयुक्तं यत् कृतं चोक्तं	३१५
अयुतक्रोशजां वार्त्तां	१३८
अयुतग्रामपः सर्व	९३४
अयोऽभेद्यमुपायेन	८५७
अरक्षितारं नृपतिं	४९
अराजके हि सर्वस्मिन्	२९
अरातिसैन्यव्यायाम	८३५
अरिमित्राणि सर्वाणि	८४४
अरिमेदश्च पीतद्रुः	५७२
अरेश्च विजिगीषोश्च	८५५
अर्द्धं यथोक्तं द्विगुणं	४५१
अर्द्धचन्द्रां वर्त्तुलां वा	८६
अर्द्धन्तु शर्कराभस्य	४९१
अर्द्धांशेन प्रकृतयो	१२०
अर्द्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा	५८९
अल्पं शतधनुः प्रोक्तम्	७९९
अल्पदानात् महत् पुण्यं	४४०
अल्पायुर्भूभृदाद्यर्थं	२
अवमानं पुरस्कृत्य	८८१
अवरोधाद् बन्धनेन	४५४
अवश्यपोष्यवर्गस्य	२८९
अवश्यमेव भोक्तव्यं	३५
अवश्यम्भाविभावानां	२१
अवाहितो भवेन्मन्दः	७९५
अविक्षतेन देहेन	८६१
अविभक्तधनान् मैत्र्या	९१९
अविभवेऽपि विभवे	३४७

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
अविवेकी यत्र राजा ३१९
अवृत्तिव्याधिशोकार्त्तान् ३०५
अव्याहताज्ञस्तेजस्वी ७२
अशक्यो निर्णयो ह्यन्यैः ६३१
अशिक्षितं शिक्षितञ्च ७५६
अशिक्षितमसारञ्च ८१७
अशीत्यश्वान् रथं चैकं ७६१
अशोधयित्वा पक्षं ये ६५६
अश्वमेधादिभिः पुण्यं ४४०
अश्वस्य षट् सिता दन्ताः ८०९
अश्वानां हृदयं वेत्ति १९२
अश्वानाञ्च गजानाञ्च ८४८
अश्वे जवो वृषे धौर्यं ३८८
अष्टधा दशधा बापि ८९५
अष्टमांशं पारितोष्यं २९३
अष्टतालप्रमाणस्य ६१९
अष्टत्रिंशाङ्गुलं ज्ञेयं ७७०
अष्टादशाब्दतस्तौ हि ८१०
अष्टाविंशाङ्गुलमुखं ७६९
अष्टाश्रा पृथुबुध्ना तु ८२८
अश्रुपातो हनुगण्ड ७८८
असंवलितपद्धयां तु ८०५
असूयकः शत्रुसेवी ४५६
अस्ति यावत् तु सधनः ३६८
अस्वर्ग्या लोकनाशाय ६२८
अस्यिन्नर्थे समानेन ६७७
अस्वाभिकं स्वामिकं वा ७०१
अस्वतन्त्राः पुजाः सर्वाः ७२८
अस्वामिकेभ्यश्चौरेभ्यो ७३८
असत्यवादिनं गूढ १२७
असन्दिग्धमगूढार्थं २५७
अस्वर्ग्यं स्याद्धर्म्यमणि ३२६
असत्कार्यनियोक्तारं ३४५

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
अस्यते क्षिप्यते यत्तु ८२१
अस्त्रन्तु द्विविधं ज्ञेयं ८२२
असत्कर्त्राश्रितं सैन्यं ८९१
असम्मतं विरुद्धं वा १६३
असदाचरितं तेषां २३७
अस्वामिकं कति प्राप्तं १८३
अहितञ्चापि यत्कार्य्यं १७८
अहिसैवासाधुहिंसा ४३९
(आ)
आकुञ्चिताग्रपादाभ्याम् ८०५
आकृत्या चाधिमूल्यं ४८५
आगमार्थं हि यतते ३६३
आगमेऽपि बलं नैव ७०३
आचार्यः सर्वचेष्टासु ३१४
आचारप्रेरको राजा ९
आचार्य वै कारुणिकाः ८६५
आजन्मसेवितं दानै ३८६
आर्जकस्यैव दुःखं स्यात् ४७६
आज्ञामुल्लङ्घयन्ति स्म २४७
आज्ञोल्लङ्घनकारित्वं ६५३
आततायित्वमापन्नो ८६७
आत्मनश्च परेषां च ८३५
आत्मनश्च प्रजायाश्च ४४५
आत्मपितृभ्रातरश्च ४२६
आत्मपितृमातृगुणैः ३७६
आत्मस्त्रीधनगुह्यानां ४२२
आत्मस्त्रीधनुगुह्यानां ३३
आत्मानं गोपयेच्छक्तो ८६५
आत्मानं प्रथमं राजा ३७
आत्यानमपि सन्दत्ते १२१
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी ६९७
आदरेणार्जवेनैव ३५७
आदानमाशुकारित्वं ५५०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
आदौ कुलं परीक्षेत ३६५
आदौ तद्धितकृत्स्नेहं ९२६
आदौ प्रकल्पितानंशान् ८९५
आदौ लेख्यं यथाप्राप्तं २८१
आधर्षकेभ्यश्चोरभ्यो २०५
आधर्षणं न कुर्वन्तु ११४
आध्वर्यवादिकं कर्म ४०२
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता ६२
आन्वीक्षिक्यां तर्कशास्त्रं ६३
आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानात् ६५
मानृशंस्यं परो धर्मः ६५
आपणिकाश्च गणिका २१७
आपत्कालेऽन्यदुर्गाणाम् ७५०
आपदं प्रतरिष्यामो ९२२
आपन्नोऽभ्युदयाकाङ्क्षी ८४२
आप्तवाक्यमनादृत्य ३२०
आपद्गतं सुभर्त्तारं २३२
आपद्युन्मार्गगमने २२४
आबिभ्रतोः शत्रुभावम् ८३१
आमोदास्वेदसद्भूय २१८
आयव्ययैर्मुहूर्त्तानां १०९
आयमादौ लिखेत् सम्यग्२७८
आयस्यैवं षड्विभागै १२१
आयाः कति व्ययाः कस्य २८१
आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं ३४९
आयुर्वेदविदः कर्म १९०
आरण्यास्तु स्वकैः कुर्युः ६३२
आराधयति यं देवं ३८०
आरामादौ प्रकृतिभिः १२५
आरामाधिपतिञ्चैव १८८
आवर्त्तकविहीनौ तु २६९
आर्त्तौ सान्तरौ भाले ७८९
आवर्त्तत्रितयं भाले ७८९

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
आविकाजशकृच्चूर्णं ५७१
आशावर्द्धनकं कृत्वा २२९
आश्रमेषु द्विजातीनां ६३१
आसङ्गी मुक्तवेशश्च ६५१
आसमन्ताच्चतुर्दिक्षु ४२८
आसिन्धुनौगमाकूले ८६
आसीनः स्याद्विमुक्तास्त्रः ८५१
आसेधकाल आसिद्ध ६५८
आहूतो यत्र नागच्छेद् ६६७
आहवे विहतं शूरं ८६२
आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं ८६२
आहारे व्यवहारे च ३७२
आहूय साक्षिणः पृच्छेत् ६९६

(इ)

इच्छया ताडितं कृत्वा २८३
इच्छया त्वितरः कुर्यात् ७१४
इज्याध्ययनदानानि ५१८
इति बुद्ध्या सञ्चिनुयाद् ३६७
इति वाचं न शृणुयाद् १३६
इन्द्रानिलयमार्काणां २९
इयच्च सञ्चितं द्रव्यं १८३
इङ्गिताकारचेष्टाज्ञः १७८

(ई)

ईश्वरः कारणं यत्रा ५३७
ईषदुत्प्लुत्य गमनम् ८०५
ईषद्वक्रश्चैकधारो ८२९
ईर्ष्या लोभो मदः प्रीतिः ९३२

(उ)

उच्चैःपदन्यासगतिः ७९३
उच्छिद्यमानो बलिना ८५५
उक्तं राष्ट्रप्रकरणं ७४५
उक्तं सङ्क्षेपतो लक्ष्म ५२२
उक्तसंज्ञान् स्वस्वचिह्नै १९८

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
उक्तं समासतो राज १४५
उच्चैः प्रहसनं कासं २२३
उत्कर्तितुं समर्थोऽपि ४२
उत्कृती शस्यघाती चा ६५४
उत्कर्षो नैव नित्यः स्यात् ३२६
उत्कोचग्रहणं नैव ११४
उत्तमं मान्त्रिकास्त्रेण ८७१
उत्तमाधममध्यानां ६३६
उत्तमे राजते त्वर्द्धा ७४४
उत्तमैरननुज्ञातं ३५४
उत्थाय पश्चिमे यामे १०७
उत्थाय पश्चिमे यामे २१९
उत्तमं साहसं कुर्वन् ४४८
उत्तमत्वं मध्यमत्वं ४४९
उत्तमन्तु सुवर्णार्घम् ४९५
उत्पद्यते यो नियतो २६२
उत्तमो मध्यमो नीचो ३७६
उत्सर्गार्थं गृहान् कुर्यात् ८९
उत्सृष्टं रिपुणा वापि ७५८
उत्सृष्टा वृषभाद्या यै ११४
उत्सेधः पृथुता स्त्रीणां ६१५
उदग्गृहान् प्रकुर्वीत ९०
उदग्द्विशतहस्तां प्राक् ९९
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ८६८
उद्यम्य शस्त्रमायान्तं ८६८
उद्योगेनैव सिध्यन्ति ८५७
उदरञ्च तथा बस्ति ६१९
उन्मादमेके पुष्यन्ति ३७०
उपकरोत्यपकृतो ९३०
उपकांरप्रधानः स्यात् ३०६
उपकारैः स्वाशयेन ८८१
उपदेशो हि मूर्खाणां ४२७
उपभोगाय च धनं ७३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
उपायज्ञश्च योगज्ञः ३२३
उपायनीकृतं यत् तु ३७८
उपयान् षड्गुणं मन्त्रं ८७७
उपयान् षड्गुणान् वीक्ष्य ८५९
उपायेषूत्तमो भेदः ८५८
उपेक्षां कुर्वतस्तस्य ७०५
उपेक्षेत प्रनष्टं यत् ३३८
उपायोपगृहीतेन ८५७
उष्ट्रस्य माहिषसमं ५०१
उष्ट्रस्योक्तप्रकारेण ८१३
उदुम्बराश्वत्थवट ५६९
उदूह्यते दाक्षिणात्यै ६४२
उद्गीथं यस्य शस्त्रादे ५२५
उद्धतः क्रूरवाग्वेशो ६५५
उद्धर्तुं द्रागगजः शक्तः ९००

(ऊ)

ऊर्ध्वगानां तु गणित २७९
ऊर्द्‌ध्वाङ्कश्च यथासंज्ञः २८४
ऊढया कन्यया वापि ७३३
ऊरूमूलस्य परिधिः ६१४
ऊरुमूलस्य परिधि ५९५

(ऋ)

ऋग्रूपा यत्र ये मन्त्रा ५२४
ऋग्यजुः साम चाथर्वा ५२२
ऋणशेषं रोगशेषं ३४१
ऋत्विक् पुरोहिताचार्य २५२
ऋत्विक् याज्यमदुष्टं यः ७३८

(ए)

एकं शास्त्रमधीयानो ६३६
एकः शतं योधयति ७५०
एकः स्वादु न भुञ्जीत ३२१
एक एवोपहारस्तु ८३८
एकच्छिद्रसमाकृष्टे ४९७

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
एकद्वित्रिचतुर्वारं ६३७
एकभूमिं समारभ्य ५९८
एकद्विबहुवचनै २५७
एकवारमप्यशितं २३२
एकशीलवयोविद्या ४३०
एकस्मिन्नधिकारे तु ४७८
एकस्य बहुभिः सार्द्धं ८३२
एकस्यैव न पर्याप्तम् ३९२
एकार्थचर्य्या साहित्यं २२८
एकार्थाभिनिवेशित्वं ८४३
एकादशास्कन्दितञ्च १९४
एकविंशाङ्गुलं सक्थि ६१९
एकस्मिन्नधिकारे तु १८५
एकस्यैव हि योऽशक्तो ४०
एकस्यैव हि वज्रस्य ४८९
एकान्ते दण्डयेत् स्पष्ट १४२
एकैकशो विनिघ्नन्ति ४३
एको भूपो यदैकत्र ८४५
एको दश शतं चैव २८५
एको वाथ कपोलस्थो ७८३
एणो गजः पतङ्गश्च ३०८
एतत्तपश्च पुण्यञ्च ८६३
एतद्दशाङ्गकरणं ६३८
एता भृतिसमास्त्वष्टौ १७३
एतावता कार्यमिदं २८७
इति रक्तस्य वै लक्ष्यं २३०
एते वश्यकरोपाया ३५८
एभिर्गुणैश्च संयुक्तो १९३
एभिरेव गुणैर्युक्तं २५८
एवं परिचरन्ती सा ५५९
एवंविधा राजसभा ९८
एवंविधान् नृपो राष्ट्रे ६२३
एवंविधानसाधूंश्च ४५९

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
एवमेव प्रकारेण ७८३
एवं विहरतो राज्ञः ११०
एषां लक्ष्मैर्विमिलितो ७६६
एषा संख्या निकृष्टानां ७१३
एषु स्पर्शो वरस्त्रीणां ३०९
(ओ)
ओत्वक्ष्याभश्चलत्तन्तु ४८२
ओषधीनां च धातूनां ४७५
(क)
कष्ठाधोमुखमानेन ६१७
कण्ठे यस्य महावर्त्तो ७८६
कर्तव्यं यामिकैरेव ११३
कर्तव्याश्च पृथक् त्वेताः ७१०
कथितं तु समासेन ४२०
कदचिद् बीजमाहात्म्यात् ५६६
कदापि नोग्रदण्डः स्यात् ३३३
कन्यादात्रे तु ह्यधनं ३३९
कन्या वरयतेरूपं ३६५
कन्याया अपि विक्रेता ४५६
कायिको वाचिको मान ४४५
कपोलस्थौ यदावर्त्तौ ७८३
कर्मैव कारणञ्चात्र १४
करत्रयात्मिका पद्या १०२
करदीकरणं राज्ञां ५०
कराग्रे परिधिर्ज्ञेयः ६१३
करिष्यामीति ते कार्य्यं २२७
करैः पञ्चसहस्त्रैर्वा ७९
करैर्वा प्रमितैर्ग्रामै ४३२
करोति स नृपश्रेष्ठो ४७१
करोत्यकार्यं साशोऽन्यं ३९२
कर्णनेत्रान्तरं नित्यं ६१५
कर्णमूले यदावर्त्तौ ७८५
कर्णयोरन्तरं तद्वत् ७७६

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
कर्णयोरन्तरे व्यासो ६१२
कर्णौ च भ्रूसमौ ज्ञेयौ ५९१
कर्तुं जानाति यः सैव २०२
कर्मशीलगुणाः पूज्याः १६६
कार्यक्षमश्च प्राचीनः १७९
कार्य्यान्तरस्याकुलत्वांत् २७७
कारणारिसमायोगात् २७२
कालं भृत्यवधिं देयं ८९०
कलाभिलक्षिते देशे ५४३
कल्पयित्वोत्तरं सभ्यै ६८०
कल्पयेत् मध्यम मध्ये १०३
कल्पितश्रुतिमूलो वा ५३७
कर्षमात्रांस्तण्डुलांश्च ७११
कर्षणैः सन्धिमर्माणां ८७२
कांश्चित् सुकुशलप्रश्नैः २९६
का जातिः किं कुलं नाम १०६
काचपात्रादिकरण ५४९
कामः क्रोधस्तथा मोहो ५७
कामः प्रजापालने च ४८
कामक्रोधौ तु संयम्य ७२७
कायो नरार्द्धविस्तारः ७७७
कारणात् पूर्वपक्षोऽपि ६८१
कारुशिल्पिगणात् पक्षे ५०८
कारुशिल्पिगणान् राष्ट्रे ५६७
कार्यं तत्साद्यकादींश्च ३९७
कार्य्यं न चिन्तयेद्राजा ७००
कार्यं हि साध्यमित्युक्तं ६७९
कार्य्यंबोधि सुसम्बन्धं २५७
कार्यमाना कालमाना २८६
कार्याकार्यप्रविज्ञाता १७७
कार्येऽत्यावश्यके प्राप्ते ८३३
कार्यो नित्यो नियोगी न ६६५
कालं देशं च विज्ञाय ६६२

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
कालं देशं शत्रुबलं	८३२
कालं नियम्य कार्याणि	४०९
कालमानं त्रिधा ज्ञेयं	२८६
कालस्य कारणं राजा	२३
कालानुकूल्यं विस्पष्टं	२२
काले कार्य्यार्थिनं पृच्छेत्	६४५
काले यदुचितं कर्त्तुं	२३४
काले वृष्टिः सुपोषाय	११०
काले हितं मितं ब्रूयात्	३०६
काले हितमिताहार	३४२
कालेन हीनं भवति	४८४
किं पुनर्मनुजा नित्यं	५४
किङ्करा इव येनान्ये	१२३
किमाश्चर्यमता लोके	१५९
किमुच्यते कुटुम्बीति	४८
क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय	६७
क्रियावसानविरसै	४०
कीतिर्मन्यनृपाणां वा	२२५
कीदृशा राजपुरुषा	३५०
कीदृशी व्यवहारस्य	३५०
कीनाशाः कारुकाः शिल्पि	६३१
कीलकोष्ठे तु स्वर्णादि	८९७
कुटीकञ्चुकनेपथ्य	१९९
कुटुम्बभरणार्थेषु	३४८
कुद्दालो लवली धात्री	५६९
कुन्तादिशस्त्रसङ्घातै	८७२
कुनृपश्च छलं नित्यं	३९९
कुपिते बाहुमध्ये च	७९७
कुमन्त्रिभिर्नृपो रोगी	४०७
कुमार्गगं नृपमपि	१४९
कूर्मपृष्ठा मार्गभूमिः	१०४
कुर्यात् सहायं सीमान्ते	१०७

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
कुर्याद् विहारमाहारं	३४२
कुलगुणशीलवृद्धान्	१४९
कुलटा पतिपुत्रघ्नी	४५६
कुलभक्तांश्च यो द्वेष्टि	९१३
कुलादिभ्योऽधिकाः सभ्याः	६३६
कुलान्यकुलतां यान्ति	५५३
कुवैद्यामङ्गलाशौच	४५६
कुवेरता शतगुणा	५१३
कुर्वन्त्यन्यत् तद्विधं वा	५०८
कुशलः सर्वविद्यासु	३९३
कुशला लेख्यबिम्बानि	७००
कुसहायी कुनृपति	३६०
कुसीदकृषिवाणिज्यं	६४
कूटपण्यस्य विक्रेता	७४१
कूटसाक्ष्यं कूटलेख्य	११४
कूटसाधनकारी तु	६८५
कूटस्वर्णमहादानैः	८८३
कूटेन व्यवहारं तु	३५९
कूपवापीपुष्करिण्यः	५७३
कूर्परे.र्ध्वन्तु सूक्ष्माणि	६०१
कृतगुल्मं स्वयंगुल्मं	७५८
कृतप्रतिकृतैश्चित्रै	५४३
कृत्वा तु यौवराज्यार्हान्	१५५
कृत्वा स्वान्ते तथौदार्यं	३७२
कृत्वा स्वतन्त्रां तरुणीं	३४५
कृत्वा स्वस्य तुलासाम्यं	७१०
कृशा दुर्भिक्षदा नित्यं	६०३
कृषिस्तु चोत्तमा वृत्ति	४०२
कृष्णतालुः कृष्णाजिह्वः	७९३
कृष्णपादो हरिर्निन्द्यः	७९२
कृष्णपीतसितारक्त	८१३
कृष्णं सितं क्रमाद्रक्तं	४८७

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
कृष्णं सितं पीतरक्तं	४८७
क्रमादभावे दौहित्रं	१५२
क्रयाधमर्णघटना	२६९
क्रियाभेदैस्तु सर्वेषां	५१९
क्रयविक्रयकुशला	१६
क्रमशो वा नृपा ज्ञेयाः	४२८
क्रयो वा विक्रयो वापि	११४
क्रमागतान् विवादांश्च	६७९
क्रमात् पितृणां नामानि	६८७
क्रयविक्रयातिलिप्सां स्व	३२४
क्रयादर्थं रक्षयेद् वा	४७२
क्रियाफलमविज्ञाय	३२९
क्रियाभेदादुपाया हि	४३३
क्रिया स्याल्लिखितं भुक्तिः	६८२
क्रूराश्च मार्दवं यान्ति	४३८
क्रौञ्चानां खे गतिर्यादृक्	८५१
क्रौर्य्यात्तैक्ष्ण्याद्दुःस्वभावात्	३४१
केन कस्मिन् कदा कस्मात्	६४६
कोपं करोति दौरात्म्यात्	५२
कोशभूतस्य द्रव्यस्य	१०८
कोष्ठकानाञ्च भूमिर्वा	९८
कोष्ठविस्तारषष्ठांश	९१
कौसीदं वा तद्धनस्य	८९४
क्षणं चोपेक्षितं यत्तद्	४७६
क्षणं नासावधानः स्याद्	९११
क्षणं युद्धाय सज्जेत	८८४
क्षणशः कणशश्चैव	३६६
क्षमते योऽपराधं सः	३३
क्षिपन्तिः चाग्निसंयोगाद्	८२७
क्षमिणं बलिन साधु	४१४
क्षुमाविंशति भी रक्ती	४८८

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
क्षणे क्षणे यामिकानां ८९८
क्षुधया निद्रया सर्वम् ९०१
क्वचित् तु बालसदृशं ६२२
क्वचित् संख्या क्वचिन्मान २७०

(ख)

खड्ग: प्रासश्चतुर्हस्त ८२९
खदिराश्मन्तशाकाग्नि ५७२
खनि: सर्वधनस्येयं ७३
खलीनस्योदर्ध्वखण्डौ ८१४
खादन् न गच्छेदध्वानं ३५३
खशजाता: प्रगृह्यान्ति ६४२
खे: प्रियं रक्तवर्ण ४७९

(ग)

गच्छेत् षोडशमात्राभि ७९९
गच्छेदनियमेनैव ४०९
गजानाञ्च तथाश्वानां १७८
गजमाने ह्यङ्गुलं स्यात् ७६६
गजाश्वरथगत्या तु ५४४
गजाश्वरथयानं तु १२५
गजाननं नराकारं ६११
गजो गजेन यातव्य: ८७८
गजोष्ट्रवृषनालार्थं ७६२
गजोष्ट्रवृषभाश्वा: प्राक् ८१६
गणनाकुशलो यस्तु २०६
गण्डसंस्थो यदावर्त्तो ७८४
गतय: षड्विधा धारा ८०४
गतस्वेदस्य शान्तस्य ८०२
गरं प्रभक्षयेद्धस्तै: ७१०
गलमध्ये पृष्ठमध्ये ७८८
गवां प्रचारे गोपाला: ६६०
गवादिदुग्धान्नफलं ५११
गारुत्मतं तूत्तमं चेत् ४९३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
गिरीन्द्रशिखराकारो ४१
गुणनीतिबलद्वेषी २४२
गुणसाधनसन्दक्ष: ३२
गुणसाधनसन्दक्षा ११४
गुञ्जा माषस्तथा कर्ष: २८३
गुणी तावद् देवतार्थं ८५
गुणी सुनीतिर्निर्व्योऽपि ९१३
गुरूणां पुरतो राज्ञो ३६१
गुरोरप्यवलिप्तस्य ४३९
गुल्मीभूतं साधिकारि ७५७
गुह्यं कर्म च मन्त्रञ्च २२८
गुह्यपुच्छत्रिकावर्त्ती ७८७
गृहं बहुकुटुम्बेन ३८९
गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा २५४
गृहपङ्क्तिमुखे द्वारं ११२
गृहभूम्यादिकं दत्त्वा २५४
गृहसम्मार्जका: पात्र २१७
गृहागतं क्षुद्रमपि ३४०
गृहीतलिखितं योग्य ३७२
गृहीत्वा तत्प्रतिभुवं ५१०
गृहीत्वान्यविवादं तु ४१८
गृह्णति धर्मतत्त्वञ्च १२१
गोगजाश्वोष्ट्रकोशानाम् १३१
गोगजाश्वोष्ट्रमहिषी ११४
गोधनेषु प्रतोलीषु ८६६
गोधूमसम्मिस्थूल ८३०
गोलो लोहमयो गर्भ ८२६
ग्रामाद् बहिर्वसेयुस्ते ९३६
ग्रामन् पुराणि देशांश्च १४१
ग्रामाद्वहि: समीपे तु ८८७
ग्रामे ग्राम्यान् वने वन्यान् ५६८
ग्रामो देशश्च यत् कुर्यात् २५५
ग्राह्याग्राह्यं विवादन्तु ६५६

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
ग्रीवामूलाच्च स्कन्धान्तम् ५९१
ग्रीवामूलस्य परिधि: ७७५
ग्रीवामूलस्य परिधि ५९३
ग्रीवोर्द्ध्वपार्श्वे भ्रमरी ७९१
ग्रीष्मसूर्य्याशुसन्तप्त ६७
घोराग्निभयवित्रस्तं ८७५

(च)

चक्रं षड्ढस्तपरिधि ८३०
चक्रव्यूहश्चैकमार्गो ८५३
चक्रितं रेचितं वल्गि १९४
चण्डं षण्डं दण्डशील ३१०
चण्डत्वमाततायित्वं ८८८
चण्डायते विवदते ४००
चण्डी भैरववेताल ५८२
चतु:करात्मको दण्डो ८०
चतु:षष्टिकला ह्येता ५५१
चतुरूनान् यामिकांस्तु ८९७
चतुर्गुणं हि पादातम् ७६०
चतुर्गुणेन यत्नेन १६७
चतुर्थांशान् गजानुष्ट्राद् ७६०
चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ ५८७
चतुर्धा भेदिता जाति ५१६
चतुर्भि: क्षत्रियं हन्यात् ८७३
चतुर्भि: पञ्चभि: षड्भि ८८
चतुर्भुजै: समं प्रोक्तं ८४
चतुर्भ्यस्त्वधिकान् नित्यं ८९६
चतुर्माषमितं स्वर्णं ५०२
चतुर्विंशतिभिस्तामी ४८९
चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तै: ८०
चतुर्विंशशतैरेव ८२
चतुर्हस्ताङ्गुला जङ्घा ७७०
चतु: षष्टितमांशं तत् ३३२
चतुष्यात् मकरो दीर्घ ८५२

श्लोकाः **पृष्ठाङ्काः**
चतुष्पाद् व्यवहारः स्यात् ६७९
चतुस्तालात्मकौ बाहू ५८५
चतुस्त्रिंशतु वर्षाणाम् ८०८
चत्वारिंशत् समा भृतिः २९३
चत्वारिंशाङ्गलमुखो ७६७
चत्वारिंशाङ्गुफ्लमुखो ७६८
चराणामचरा अन्नम् ८६४
चलार्चाया स्थिरार्चायां ६०९
चारसूचकदोषेण २३२
चित्तवृत्तिनिरोधस्तु ५३२
चिरं संश्रृणुयान्नित्यं ३२३
चैत्यपूज्यध्वजाशस्त ३११
चोदनाप्रतिकालश्च ७०६
चौराणां पितृभूतास्ते ५६८
चौर्य्याभिशङ्कायुक्तानां ७१५
(छ)
छत्रातपत्रचमर २९६
छलं निरस्य भूतेन ६८३
छलानि चापराधांश्च ६४९
(ज)
जङ्गमस्थावरं बन्धं २५५
जङ्गमस्थावराणाञ्च २९
जङ्घमूलाग्रपरिधिः ५९५
जङ्घामूले तु परिधि ६१४
जपं तपस्तीर्थसेवां ५५३
जनस्याशयमालक्ष्य ३०७
जपहोमार्चनं यस्य ५२४
जपहोमार्चनैर्दानै २६९
जपोपवासनियम २०७
जयपत्रेण सम्यैर्वा ६७७
जरायुजाण्डजा स्वेदो ५१७
जलतस्कररराजाग्नि ७३४
जलदुर्गं स्मृतं तज्ज्ञै ७४८

श्लोकाः **पृष्ठाङ्काः**
जलान्नतृणसंरोधैः ८८२
जागर्त्ति च सचिन्तो य ३६०
जातिं तुलाञ्च मौल्यञ्च २०१
जातिवर्णाश्रमान् सर्वान् ५६७
जानुसंस्था यदावर्त्ताः ७८६
जानूत्पाता त्वोष्ठवाद्यो ८११
जान्वधश्चपादः स्यात् ७९६
जायते तत्त्रयं स्वर्गः ४७०
जायते धर्मनिरता ४३८
जायापत्योश्च पित्रोश्च ३३९
जिघांसन्तं जिघांसीयाद् ३६१
जितानां विषये स्थाप्यं १४२
जितेन्द्रियस्य नृपते ६२
जीवतोरस्वतन्त्रः स्यात् ७२७
ज्ञानकर्मोपासनाभि १६
ज्ञातीनां हि मिथो भेदे ३८६
ज्ञात्वाभियोगं येऽपि स्युः ६६२
ज्येष्ठोऽपि बधिरः कुष्ठी १२९
(त)
तडागवापिकाकूप ५०६
तडागवापीप्रासाद ५४५
ततः सुगोलकं दद्यात् ८२८
ततः स्वगौल्मिकगणो १००
ततश्चाष्टाढकः प्रोक्तो २८४
ततोऽर्थी लिखयेत् सद्यः ६८२
ततोऽर्हति प्रमाणन्तु ६१८
तत्कार्यं तु सुखं यस्माद् ३६०
तत्कृतं मन्यते राजा ३५
तत्तन्मतानुगैः सर्वै ५
ततस्तु कोटिपर्य्यन्तः ७५
ततोऽन्नसाधनं कृत्वा ५५६
ततस्ततोऽष्टांशहीना ५७६
ततो राजगृहं गत्वा २२१

श्लोकाः **पृष्ठाङ्काः**
तत्कर्म्म नियतं कुर्याद् १६२
तत् तत् जात्युक्तकर्माणि ४५९
तत्पदे तस्य कुलजं २४३
तत्सन्देहविनाशार्थं ४८१
तत्त्वाच्छलानुसारित्त्वाद् ६८२
तत्रत्यानि दैनिकानि ११२
तत्राभियोक्ता प्राक् पृष्टो ६७३
तत्रैव कल्पमेद् द्वारं ९२
तत् स्त्रियं सज्जयन्ति स्म २४७
तथा चापणिकेभ्यस्तु ५११
तथा न क्रीडयेत् कश्चित् ४१४
तथा न पीडयेत् कुत्र ९३६
तथा पुष्करिणीं कुण्डं २०२
तथादौ पादगमनं ४०५
तथाभिजनमत्तस्तु ३३५
तथा भोगाय भवति ३६
तथा लेखकषट्कं हि ७६१
तथापि नैव कुर्वीत ३३०
तथाविधा च पण्यस्त्री २१३
तथाविधाधोरणस्तु १९१
तथाविधोऽनुशातिकः १९७
तथा शय्यादिसन्धानं १९९
तथा हि लोकविश्वस्तो ८९२
तथैव चिपिटस्यापि ४९३
तदधीनकुटुम्बिन्यः ६६६
तदनीत्या न वर्त्तेयुः ९१३
तदाचार्यैश्च तच्छास्त्रं ५६५
तदूर्ध्वं तु भवेद्राजा ७५
तद्वद्वामाश्रितः क्रूरः ७८४
तद् वृद्धिर्नीतिनैपुण्यात् ४७०
तदर्थं गृहीत्वापि ३५१
तदर्द्धं बहवोऽर्हन्ति ४९१
तदर्द्धश्च तदर्द्धश्च ४६२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
तदाज्ञां धारयित्वादौ २२२
तदाश्रयाद् दस्युवृत्त्या १४४
तदेव हि भवेद् वेध्यः ४८७
तद्दत्तवस्त्रभूषादि २३१
तद्वत् बुद्धिस्तदीयेषु १६९
तद्विज्ञैः प्रस्तुता ये ये ५८८
तनुकण्ठदन्तकर्ण ७६६
तनोति मात्रया पीतं ४७
तन्न्यूनदर्शनं नैव ३७५
तन्त्रकर्मरता बेद ६४३
तन्त्रीकण्ठोत्थितान् सप्त २१२
तन्मन्त्रस्य प्रभेत्ता च ६५४
तन्मण्डयश्च तत्तुल्यः ५७६
तपस्विनां तु कार्याणि ६३२
तपःस्त्रीकृषिसेवासू ३९८
तपसा तेज आदत्ते ९
तपस्विनो दानशीलाः १८९
तपोविशेषैर्बिविधै ५२१
तप्तायोगोलकं धृत्वा ७१०
तप्ततैलगतं लोह ७१०
तमोगुणाधिकं क्षात्रं ४००
तरोः सङ्क्षीर्णमूलस्य ९०८
तर्जन्यनामिकामूल ५९५
तस्माच्छास्त्रत एव स्यात् ७३०
तस्माच्छास्त्रानुसारेण ६२९
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु ३२७
तस्यापि शासनं तैस्तु ९१२
तान् सर्वान् पोषयेद् भृत्या १९०
ताभ्यां भर्त्रा पितृभ्यां वा ५५५
ताभ्यां विना नैव कुर्यात् ८५८
ताम्रं रजतमूल्यं स्यात् ४९८
तारका तत्तृतीयांशा ५९०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
तावद् भवन्ति ते दोषा ७९८
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति ३८३
तिर्य्यगूर्द्ध्वच्छिद्रमूलं ८२३
तिलमांसादिस्नेहानां ५४८
तिष्ठतीं सूपविष्टां वा ६०२
तिष्ठन्ति सधनद्वारे ३६८
तिष्ठन्ती वाहनस्था वा ५८०
तीक्ष्णाग्रं करजं श्रेष्ठं ८३०
तीरितं चानुशिष्टं च ७२४
तुरप्रचण्डवेगश्च ७७९
तुलाकल्पितमूल्यं स्यात् ४८८
तुलाशासनमानानां ११३
तूर्य्यमङ्गलघोषेण ८८५
तेभ्यः कार्य्यं कारयीत २९१
तृणकाष्ठादिहरकात् ५०८
तृणान्नजलसम्भारा ८५४
तृतीयांशकमूलो वा ९४
तृतीयांशं चतुर्थांशम् ५०६
तृतीयेऽब्दे तु सन्दंशौ ८०९
ते राष्ट्रगुप्त्यै सन्धार्य्या ५१६
तेषां चेत् प्रसृतानां च ७३६
तेषु ज्येष्ठो भवेद्राजा १२९
तेजस्वी क्षमते सर्वं ३५५
त्रयोदशाङ्गुलं चाधः ५८६
त्रयोदशाङ्गुलं ज्ञेयं ६१९
त्रयो यस्य ललाटस्था ७८२
त्रिक संस्थो यदावर्त्तः ७८७
त्रिकोणं त्रितयं भाले ७९०
त्रिगुणा वा यथाकाम ९६
त्रिंशद्योजनगन्ता वा ८०७
त्रिंशद्योजनगन्ता वै ५०१
त्रिकोष्ठैः पञ्चकोष्ठैर्वा ९६
त्रिभागपूरणं प्रोथः ७७७

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
त्रिशतं दारपुत्रार्थे ७६२
त्र्यङ्गुलन्तु भवेज्जानु ६१८
त्यक्त्वा नीतिबलं स्वीय ४६६
त्यक्त्वा प्राणभयं युध्येत् १२१
त्यक्तं रिपुबलं धार्य्यं ८२१
त्यक्तस्वधर्माचरणा १७
त्यक्त्वा तु दर्पकार्पण्य ९२०
त्यजन्तु सैनिका नित्यं ८८८
त्यजेद्विरक्तं नृपतिं २२९
त्वत्समस्तु सखा नास्ति ४३०

(द)

दण्डको नृपतिः कामात् ५८
दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यम् ४३९
दण्डभूभागशुल्कानाम् ४६७
दण्डभूभागशुल्कैस्तु ४६९
दद्यात् प्रतिकर्षकाय ५१०
दद्याद्देशानुरूपं तु ६९९
दन्तः षडङ्गुलो दीर्घः ६१४
दन्तानामुद्गमैर्बर्णै ८०९
दमो दण्ड इति ख्यात ६४
दम्पत्योः कलहे साक्ष्यं ३२५
दयालुर्मृदुवाक् दान २०२
दर्पस्तु परहृसेच्छा ९२१
दर्शयन् मार्दवं नित्यं ९०८
दशग्रामी शतानीकः ९३३
दशताला कृतयुगे ५८३
दशताले तु विज्ञेयौ ६२१
दश प्रोक्ता पुरोधाद्या २९८
दशमांशाधिकाः पूर्वं १७२
दशानामपि चैतेषां ६३९
दशाष्टोननखो मन्दो ७६४
दशैकाङ्गुलपरिधी ७७२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

दस्युभिः पीडनं शत्रोः ४३३
दातृत्वं धनिके शौर्यं ३८८
दातृणां धार्मिकाणां च ३४२
दानं प्रज्ञापना भेदः ७०६
दानं सेवैव शूद्रादे ५१९
दानशौण्डः क्षमी शूरो १२
दानैर्मानैश्च सत्कारैः ३३३
दान्तं कुलीनं मध्यस्थम् ६२९
दान्तः शूरश्च शस्त्रास्त्र ३४
दान्तस्तु सधनो यस्तु १९८
दायः परिग्रहो यत्तु २६२
दायादाभिमतं दान ६८७
दासे भृत्येऽथ भार्य्यायां ११३
दास्याम्यदत्तमेतेन ६६८
दिव्यसंसाधनाद्वापि १८१
दिव्यावलम्बनं मिथ्या ९२६
दिशानया व्ययं कुर्यात् ९०१
दीर्घे चतुर्भागभूत २७३
दीर्घोरुजङ्घा विकटा ६२१
दूतस्ततः क्रमादेते १७३
दूतेनाह्वनितं प्राप्ता ६६८
दुष्टनिग्रहणं दानं ५०
दुष्कर्मदण्डको राजा ३०
दुर्गुणासूचका भाणा २१४
दुष्टनिग्रहणं कुर्याद् ६२५
दुष्टानां नृपतिः शत्रुः ४२७
दुर्गुणं वक्ति सत्येन ४१२
दुर्गुणानां खनिरहं ४१३
दुर्गुणं तु गुणीकृत्य ४११
दुर्वृत्तेऽप्यकुलीने तु ८४६
दृगमात्यसुहृच्छ्रोत्रं २४
दृढसुरालयमठ ८६
दृढस्य युद्धशीलस्य ४९१

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

दृष्ट्वा कार्याणि च गुणान् ७४१
दृष्ट्वागतान् सभामध्ये २२०
दृष्ट्वा धनं कुलं शीलं ३६४
दृष्ट्वा तत्कार्य्यकुशले १८६
दृष्ट्वाधमर्णं वृद्ध्यापि ३७१
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति २३०
दृष्ट्वैवं सविषं चान्नं १२४
दृष्ट्वा शास्त्राण्यतश्चित्तं ५०
द्राक् सन्धानं पुनः पासो ८४९
देवतां तु पुरस्कृत्य ६२३
देवतार्थं च यज्ञार्थं ३७८
देवतायाश्च पुरतो ६०९
देवपित्रतिथिभ्योऽन्नम् ३५२
देवांशान् सात्त्विको भुङ्क्ते १४
देवानां प्रतिबिम्बानि ५७८
देवालये मानहीनां ६२३
देवास्तु किङ्करास्तस्य १०
देशकालप्रविज्ञाता १७७
देशजातिकुलानां च ६४१
देशधर्मा जातिधर्माः ५१६
देशाटनं राजसभा ३४९
देशाधिकं यस्य राजा २५३
देशे काले कथं कस्मात् ६९६
देशे काले च पुरुषे ९२८
देशभेदैर्जातिभेदैः १९८
देहादीनां नश्वरत्वं ४
दैनिकं मासिकं वृत्तं २५०
दैवे च पुरुषकारे च १९
दोषा अपि गुणायन्ते ३६९
दौर्गं सङ्क्षप्तः प्रोक्तं ७५३
दौर्मनस्यं च सुहृदां ३९६
दौहित्रभागिनेयानां १३५
धूर्ता स्त्री मध्यमेवैतत् ४३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

द्व्यङ्गुलं नेत्रविस्तृतिः ७७५
द्व्यङ्गुलौ द्व्यङ्गुलौ चोनौ ६२०
द्वात्रिंशदङ्गुलमुखो ७६८
द्वात्रिंशांशं षोडशांशं ७३९
द्वादशाब्दप्रयूरं यद् ४७२
द्वारमार्गक्रियाभोग्य ७१९
द्वारार्थमष्टधा भक्तं ९१
द्वात्रिंशत्प्रमितैर्हस्तै ९३६
द्वात्रिशदङ्गुलः प्रोक्तः ५९२
द्वात्रिंशाशं हरेद्राजा ५०४
द्वापरे चार्द्धधर्मत्वात् ४४१
द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा ८४९
द्वाविंशतिपदान्याहुः ६५४
द्विगुणं त्रिगुणं द्वारं ५९७
द्विगुणं त्रिगुणं पश्चात् ४५०
द्विजसेवार्चनरताः १७
द्विजस्त्रीणामयं धर्म्मः ५६१
द्वितालौ ह्यायतावूरू ५८४
द्वीपे निवासितव्यास्ते ४५९
दीर्घदर्शी सदा च स्यात् ३२७
दीर्घाध्वनि परिश्रान्तं ८७५
दुरात्मनां च प्राबल्यं ३१९
दुर्गुणस्य च वक्तारः ३१५
द्वेधाधिकं साहजिकं २६३
द्वैधे बहूनां वचनं ६९४
द्वौ दर्शकौ तु तत्कार्य्ये १८६

(ध)

धनं संरक्षयेत् तेषां ९३८
धनप्राणहरो राजा ४४४
धनस्त्रीराज्यलोभो हि ३३२
धनिकादिक्रमेणैव १०१
धनिकाश्चक्रवृद्ध्यादि ७४०
धनिकाश्चोत्तमधना ४७२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
धनिकेभ्यो भृतिं दत्त्वा ४६८
धनिगुणिवैद्यनृप ३९६
धर्मं द्वैतवने राजा २७
धर्मकार्य्यं यतन् शक्त्या ३०५
धर्मतत्वं हि गहनम् ३१७
धर्मज्ञो व्यवहारज्ञो ६६५
धर्मपुत्रनलाद्यास्तु ४४
धर्मशास्त्रानुसारेण ६२६
धर्मशास्त्रानुसारेण ६४०
धर्माधर्मीप्रवृत्तौ तु ९०२
धर्माधर्मौ तदर्धे च ७१३
धर्माधिकरणं शिल्प ९१
धर्मयुद्धे तु कूटे वै ८८०
धर्मासनगतं दृष्ट्वा ६४४
धर्मासनमधिष्ठाय ६४१
धातूनां कूटकारी तु ७४५
धात्वौषधीनां संयोग ५४१
धान्यवस्त्रगृहाराम २६७
धान्यानां सङ्ग्रहः कार्यो ४७३
धारागतिः सा विज्ञेया ८०४
धिग्दण्डं प्रथमं चाद्य ४४८
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डः ७२३
धीमन्तो वन्द्यचरिता १९
धौताधौतविपाकज्ञो २०१
ध्यानयोगस्य संसिद्ध्यै ५७७

(न)

न कञ्चिदात्मनः शत्रुं ३०७
न कवेः सदृशा नीतिः ९०३
न कालनियमस्तत्र ८३४
न कालनियमस्तत्र ६४४
न कालवर्षी पर्जन्यः ४४३
न कार्य्यं भृतकः कुर्य्यान् २४८
न कालहरणं कार्य्यं ६८३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
न कालहरणं कार्य्यं ६९३
न क्रीडयेद्राजसमं २४०
न कुटुम्बं भृतं येन ३४८
न कुर्यात् भृतिलोपं तु २८८
न कुर्य्यात् स्वाधिकबलान् १८५
न कुर्यात् सहसा कार्य्यं २३३
न कूटनीतिरमवत् ९२५
न केनचिच्छ्रुतो दृष्टः ६७१
नक्तं दिनानि मे यान्ति ३१६
न कर्त्तुं शक्यते संख्या २८५
नक्षत्रग्रहगमनैः ५२९
न गेहेमरणं शस्तं ८६१
न च व्ययाधिकं कार्यं ३९८
न च हन्यात् स्थलारूढं ८७९
न च हिंस्रमुपेक्षेत ३८९
न चाल्पसाधनो गच्छेत् ८१६
न चास्य व्ययशीला स्यात् ५५८
न चाहूतो वदेत् किञ्चिद् ६७४
न चैकस्मिन् विवादे तु ६८१
न जरां यान्ति रत्नानि ४८६
न जात्या ब्राह्मणश्चात्र १५
न गोपयेद् वासयेच्च ३१७
नटगायकगणिका ५१
न ताननुमतान् विद्यान् १३६
न तु नृपविहीनाः स्यु ३८
न दर्शयेत् स्वाधिकार २३४
न दिवा मद्यपानं तु ५६८
न दद्याद् द्व्यङ्गुलमपि ८५
न तिष्ठन्ति स्वस्वधर्मे ३६
न तौ विना मे परत्र ३७७
न दर्शयेत् स्वाभिमतम् ३२४
नदीं तनेत्र बाहुभ्यां ३१२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
नदीनां सेतवः कार्या ५७३
नदीसन्तारकान्तार ६६१
न दोषः स्यात् प्रयत्नस्य १४५
नद्यद्रिवनदुर्गेषु ८४७
न नाशयेत् स्वसेनान्तु ९०७
न न्यूनं लक्षयेत् कस्य २२७
न पञ्चाङ्गुलतो हीना ६२२
न प्रियाकथितं सम्यङ् ३६२
न पीडयेदिन्द्रियाणि ३०८
नपुंसकश्च स्त्री बालः ३१९
नपुंसकाः सत्यवाचः २१०
न बलेन विनाप्यल्पं ७५५
न बिभेति नृपो येभ्यः १७६
न बोधयन्ति च हितम् २३६
न ब्रूयादनृतं साक्ष्यं ३३८
न भवत्सदृशास्त्वन्ये ९२३
न भूषयत्यलङ्कारो ३८७
न मध्याद् गमनं भाषा ३३९
न मूल्यं गुणहीनस्य ५०३
न यथेष्टव्ययामलं ७३
नयवान् अनीतिनितिवित् १११
नयस्य विनयो मूलं ३८
नयेत् कालं वृथा नैव ११०
न रक्षन्त्वप्रकाशं हि ११४
नराकृतिश्चञ्चुमुखो ६०९
न रामसदृशो राजा ९२५
नरो नारायणो रामो ५८२
नर्त्तकानामेव धर्मः ७३५
न प्रमाद्येन्मदद्रव्यै ३४६
नवतालप्रमाणे तु ५८३
न वर्द्धितं बलं यैस्तु ५१
न विद्यया न शौर्य्येण ३३४
न वीथिं न च पद्यां हि १०३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
न वेगितोऽन्यकार्य्ये स्यात् ३०४
न वैश्यो न च वै शूद्रः ३००
न शौर्ये न च तपसि ३९१
न श्रेयसे दुर्गवासो ९५
न सुप्तं न विसन्नाहं ८७९
न स्थायी न च वै मन्दः ८०७
न हि जातु विना दण्डं ७२५
न हि मानसिको धर्मः ३३१
न हि शौर्यात् परं किञ्चित् ८६४
न हि स्वसुखमन्विच्छन् ६६
न हीदृशं संवननं ७०
न हीनपक्षां युवतीं ६६०
न हीनसममूल्याद्धि ५०४
न निहन्याच्च भूतानि ४५४
न स्यात् स्वधर्महानिस्तु ४०१
न हि तत् सकलं ज्ञातुं १४९
न हीनं मणिधातूनां २७३
न स्थूला नापि चिपिटा ७७४
न स्थूला न कृशा वापि ५८८
नवतालात्मकमिदं ५८५
नवमाब्दात् क्रमात् पीतौ ८१०
नवतालप्रमाणे न ६२०
नवसमाजनियमं ११४
नष्टा दुर्योधनाद्यास्तु १५०
नाङ्गैश्चेष्टेत विगुणं ३१२
नातितृप्ता स्वयं भुक्त्वा ५५७
नातिसमीपाप्रकारा ९५
नात्यन्तं विश्वसेत् कञ्चित् ३३१
नान्यधर्मं हि सेवेत ३२२
नाश्लीलं कीर्त्तयेद् कञ्चित् ३२५
नासिकां न विकृष्णीयात् ३१२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
नावमानं नोपहासं ११४
नानावृक्षलताकीर्णे ८६
नापराधं हि क्षमते ५२
नासकृत् ताडयेदश्वम् ७९८
नासाकर्णान्तरं तद्वत् ५९२
नासाग्रविस्तरं तद्वद् ५९०
नासामध्ये यदार्क्त ७८५
नासावंशस्त्र्यङ्गुलस्तु ५९१
नासोत्तरोष्ठरूपा च ६१२
नास्ति भर्तृसमो नाथो ५६३
नासिकाधश्च हन्वन्तं ५८४
नाभिस्तस्मादधः कार्या ५८४
नालिकं द्विविध ज्ञेयं ८२२
नाकार्ये तु मतिं कुर्यात् ३४४
नामिताः शत्रवः शौर्य ३३७
नानिष्टं प्रवदेत् कस्मिन् ३४५
नाश्रयन्ति च ये नीतिं ९०३
नापि व्याघ्रगजाः शक्ता ८९९
नारम्भो बहुकार्याणाम् ९३१
नापिता रजकाश्चैव २१६
नाविकाः खनका व्याधाः २१६
नास्तिका दाम्भिकाश्चैवा १७०
नानायकं क्वचिदपि १२९
नासहायास्तु पित्राद्या ४५५
नापराद्यं तु क्षमते ४५५
नानुवाकहता बुद्धि ४०४
नातिक्रौर्ण्यं नातिशाठ्यं ३८१
नाध्यापने नाध्ययने ३९१
नासाक्षिमच्चालिखितं ३७५
नाहङ्कारी च धर्म्मान्धः ३५०
नासिकाकर्षरज्ज्वा तु ८१४
नासिकाग्रे ललाटे च ७८१
नाविकः सदा पूज्ये [illegible]

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
नालाग्निचूर्णसंयोगाद् ८७१
नायकः पुरतो यायात् ८४६
नालास्त्राणि पुरस्कृत्य ८७४
नालिकास्त्रेण खङ्गाद्यैः ८७८
नानादेशीयवर्णानां ५५०
निः श्वासोद्गीर्णहुतभुक् ६७
नित्यं प्रवर्द्धते बालः ६१७
नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः ११
नित्यं मनोऽपहारिण्या ६८
नित्यं संसेवनरतो २३३
नित्यं सम्मार्जिताञ्चैव १०५
निदेशयति कार्याणि १९७
निद्रार्थञ्च विहारार्थं ८९
निर्धनैरन्नवस्त्रन्तु ९२४
निधिर्भूमौ विनिहितो २६५
नियोगितस्यापि भृतिं ६६४
नियोजयेच्च मतिमान् ८४८
नियोजयेन्मन्त्रियणम् ८८५
नियोजयेद्वर्तने तु १८७
निरालसा जितक्रोध ६३०
निरालसा जितक्रोध २०४
निर्गच्छन्ति च ये ग्रामाद् ११२
निर्जनत्वं मधुरभुग् ३९९
निर्भर्त्सनं चापमानो ४३७
निर्भृताधिकृतास्तेन ८९९
निर्लोभे धनिके राज्ञि ३७१
निर्वेष्टुकामो रोगार्त्तो ६६०
निवेश्य कालं वर्षं च ६८७
निवर्त्तनानि द्वात्रिंशन् ८३
निवृत्तिरसदाचारात् ४३६
निवेशन् पुरे ग्रामे १०१
निश्चेतुं ये न शक्याः स्यु ७२१
निश्चितान्यस्वामिकं चा २६०

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
निश्चितान्यस्वामिकाद्या	२८२
निश्चितान्यस्वामिकं यत्	२६०
निष्पावसदृशं नासा	५९०
नीचरोमनखश्मश्रु	३०३
नीचो भवेन्नोत्तमस्तु	५१८
नीचप्रियः स्वतन्त्रश्च	१३
नीचहीनो दीर्घदर्शी	३४
नीचोद्र्ध्वतिर्य्यङ्मुखतः	७८०
नीतिं त्यक्त्वा वर्तते यः	७
नीतिमतान्तु सा युक्तिः	९२६
नीलतालुर्नीलजिह्वो	७६४
नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादि	१७४
नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादि	१९५
नीतिशेषं खिलं वक्ष्ये	९०५
नीचस्यातिपरिचयो	३९५
नीमकर्मकरं कुर्याद्	४५३
नूतनप्राक्तनानां च	४१९
नृणां हि मध्यमं यावत्	८०८
नृपदुगुर्णालापन्तु	११४
नृपः प्रजापालनार्थं	१५८
नृपः स्वधर्गनिरतो	१०
नृपसञ्चिह्नितं लेख्यं	२४९
नृपसम्बन्धिस्त्रीपुत्र	९२०
नृपस्य धर्मपूर्णत्वाद्	४४१
नृपस्य परमो धर्मः	६
नृपस्यासद्गुणरताः	८९१
नृपणे विनियुक्तो यः	६५०
नृपेभ्यो ह्यधिकोऽसीति	२२५
नृपोऽधिकृतसभ्याश्च	६३८
नृपो यदा तदा लोकः	५२
नेक्षेत सततं सूक्ष्मं	३१४
नेच्छत्यन्याधिकारं हि	१६९
नेच्छेच्च युगपद् ह्रासं	४६०
नेच्छेत् स्वाम्यं तु देवेषु	३८३
नेत्रवक्त्रविकाराद्यै	४४६
नेत्रोपरि परीणाहो	७७५
नेत्रोपान्ते च परिधिः	६१३
नैकः पश्येच्च कार्याणि	६२७
नैकः सुखी न सर्वत्र	३०७
नैकत्र संबसेच्चापि	३७४
नैव शूद्रास्तु संयोज्या	२९९
नैवास्ति लिखितादन्यत्	३७०
नोच्चैर्बदेन्न परुषं	५५८
नोत्पादयेत् स्वयं कार्य्यं	६४८
नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेत्	३१३
नोपकृतं मन्यते स्म	३००
नोपदेशं विना सम्यक्	९३१
नोपेक्षेत स्त्रियं बालं	३१८
नौकारथादियानानां	५४६
न्यायप्रवृत्तो नृपति	२६
न्यायान् यश्येत्तु मध्याह्ने	६४४
(प)	
पङ्क्तिद्वयगतानां हि	१०५
पङ्कपांशुजलस्कन्नं	८७५
पक्षपाताधिरोपस्य	६२७
पञ्चमांशं च चतुर्थांशं	७४२
पञ्चमांशाधिकं तूच्चं	९७
पञ्चयवाङ्गुलेनैव	७६७
पञ्चविंशतिभिर्दण्डै	८१
पञ्चविंशतिभिर्दण्डै	८४
पञ्चविंशधिकैर्हस्तै	८३
पञ्चसप्ततिसाहस्रै	८२
पञ्चहस्तं वसेयुर्वै	२४३
पञ्चाङ्गुलावटं पात्रं	२८४
पत्यौ नित्यं चानुरक्ता	३९४
पलं मेष्या अवेश्चापि	५००
पथिभङ्गी पराक्षेपी	६५०
पदातिबहुलं सैन्यं	७६१
पद्मरागस्तु माणिक्य	४८४
पर्य्यायेण च साम्मुख्यं	८४९
पार्थिवैः शङ्कितानां	७१४
पादमात्रा भृतिस्ताम्रे	७४४
पादाङ्गुलीनां परिधिः	५९६
पान्थशाला ततः कार्य्या	१०१
पाययित्वा मदं सम्यक्	८७७
पारितोषिकदानेन	१०९
पाशं वा डमरुं शूलं	६००
पाषाणधात्वादिदृतिः	५४१
पञ्चानामथवा षण्णाम्	१९५
पञ्चाशत्कोटिपर्य्यन्तः	७५
पठनं पाठनं कर्त्तुं	२०८
पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा	८६७
पटहाद्योषणाच्छारी	६५४
पतिं च तदनुज्ञाता	५५७
पतिं दृष्ट्वा विरक्ता स्यात्	३१०
पत्युः पूर्वं समुत्थाय	५५४
पदार्थस्य स्थलानि स्युः	२८२
पद्मकोशः पुष्पहासः	५७६
परगृहनिवासाढ्य	४०६
परदाराभिशापे च	७१५
परद्रव्यं क्षुद्रमपि	३३८
परराष्ट्राद्धनं यत् स्यात्	७३५
परराष्ट्रे हृते दद्याद्	८९३
पास्त्रीधनसंलुब्धा	६४३
परस्परमनिष्टं च	४३२
परस्परं नाभ्यसूयु	२३४
परस्परं प्रातिकूल्यं	८५८
परस्त्रीसङ्गमे कामो	४८
परस्परं भवेत् प्रीतिः	९२६

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
परस्वहरणे लोके	९१५
पराक्रमो बलं बुद्धिः	७२
पराधीनं नैव कुर्यात्	३८४
परार्थनाशनं न स्यात्	२२६
पारितोष्यं भृतिप्राप्तं	२६२
परिचारगणाः सर्वे	१३६
परिचारगणानां ही	१७९
परियोष्या भृतिः श्रेष्ठा	२८८
परिवर्त्त्य नृपो ह्येतान्	१८३
परीक्षकैर्द्रावयित्वा	१६५
परोपकरणे दक्षो	१६७
परोपकारनिरतः	२०५
परोपदेशकुशलः	३७
पशवोऽमि वशं यान्ति	२३३
पशुचर्माङ्गनिर्हार	५४७
पश्चातु वेगनिर्मोक्षं	१०८
पश्चाद्राज्ञे तु तैः साकं	८८६
पश्चाद्धाये तु शकटं	८४७
पश्चाद् भागे नितम्बस्य	५९४
पश्यति स्म सजीवश्चेत्	३७३
पादहीनां भृतिं त्वार्त्ते	२९१
पान्थप्रपीडका ये ये	१२०
परिखादैरिणं श्रेष्ठं	७४९
परिखापूरकश्चैव	६५०
परिणाहः शफस्योक्तो	७७२
परिणाहस्तूदरस्य	७६९
परिणाहस्तूदरे च	६१३
परितस्तु महाखातं	७४७
परेषां विवरज्ञाने	८६६
पर्य्यङ्कासनबन्धी चा	६५०
पर्वद्वयात्मकोऽन्यासां	५८६
पारन्तत्र्यात् परं दुःखं	४१९
पारुष्ये कूटकरणे	६६७
पाषाणघटका लोह	२१५
पिण्डदाने विशेषो न	१५८
पितरञ्चापि निघ्नन्ति	१५३
पिता माता-सुहृद् बन्धु	६६३
पितुराज्ञोल्लङ्घनेन	१६१
पितुस्तपोबलात् तौ तु	१६०
पितृमात्रात्मथगिनी	४२५
पितृव्याः स्वकुलश्रेष्ठाः	१३४
पित्राज्ञप्तेनापि मातृ	३५६
पित्रादिधनसम्बन्ध	७३३
पित्रोर्निर्दिशवर्त्ती यः	४२६
पित्रोराज्ञां पालयति	३९३
पिबन्तं न च भुञ्जानम्	८७९
पिशुना मूकतां यान्ति	४३८
पुत्रवत् पालितं यत् तु	८३६
पुत्रस्य पितुराज्ञा हि	१६०
पुत्राधिकाश्च दौहित्रा	३६३
पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्च	१३४
पुत्रो नप्ता धनं पत्नी	७३२
पुराणि च कति ग्रामा	१८३
पृथक् पृथक् क्रियाभिर्हि	५३७
पृथक् पृथक् तु विद्यानां	५३७
पृथग् पृथग् व्यापयन्ति	२४६
पृथक्स्तम्भान्तसत्कोष्ठा	९८
पृथग्भावो विनाशाय	१३०
पृष्ठतस्तु शरीरस्य	४५३
पृष्ठवंशे यदाबर्त्तो	७८२
पीठतस्तु समुच्छ्रायो	५९८
पीतवत्सा प्रष्ठदुग्धा	४९९
पुनर्वा योजयेत् तद्वत्	८९६
पूर्वदेवैर्यथान्यायं	१
पूर्ववत्सरशेषञ्च	२६३
पूज्यस्त्वेभिर्गुणैर्भूपो	९४
पुष्यत्यपां रसैः सर्वं	३०
परितः प्रतिकोष्ठे तु	९६
पुत्रापराधान् क्षमते	३९४
पुनः सायं पुनः प्रातः	५५७
परिणाहो वृषमुखाद्	८०६
पुरोगमनमुत्थानं	२४४
पुरोहितः श्रेष्ठतरः	२४४
पूर्वसाहसमादौ तु	४५१
पुनर्द्विधा कारितश्च	४४६
पुरुषोऽष्टौ प्रकृतयो	५३०
पूर्वसाहसमादौ तु	४५०
पुरुषे पुरुषे भिन्नं	१४८
पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठः	१७३
पुनरावर्त्तकः स्वत्व	२६५
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं	७०९
पूर्वपक्षे यथार्थे तु	६७५
पूर्वपक्षः स्मृतः पादो	६७८
पैशुन्यं चण्डता चौर्यं	३८९
पैशुन्यहिंसाविषय	५५९
पौरकार्य्याणि यो राजा	६२७
पौलस्त्यो राक्षसो मानान्	५८
प्रकीर्णविषयारण्ये	३९
प्रकृतीनांञ्च शत्रूणां	१२६
प्रकृतिभ्योऽधिकृतेभ्यो	१२८
प्रकृतीनाञ्च कपट	१६३
प्रकृत्यनुमतं कृत्वा	१६३
प्रजा नष्टा नं हि भवेत्	२०५
प्रकृत्यनुप्रकृतयो	१००
प्रख्यातवृत्तशीलांस्तु	११३
प्रगल्भो बहुविश्वस्ता	६६८
प्रजाभिर्विधृता ये ये	६२४
प्रजाशतेन सन्दिष्टं	१४१
प्रजा सूद्विजते यस्माद्	५१

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
प्रजा हीनधना रक्ष्या ४७१
प्रजानां पालनं कार्य्यं ११९
प्रजान्यथा हीयते च ४६८
प्रजास्ताः साधुभूतेन १४१
प्रत्यक्षेण च सादृश्यैः १४८
प्रभद्रादिजातिभेंद १९१
प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नों १४८
प्रासादं परिखां दुर्गं २०२
प्रणम्य जगदाधारं १
प्रणिपासेन हि गुरून् ७०
प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यो ५७२
प्रतिकर्त्तुं यतेतैव ४१५
प्रतिकूलानुकूलाभ्यां २१
प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तं ६६९
प्रतिज्ञाभावनाद्वादी ७२५
प्रतिदानं पारितोष्यं २६६
प्रतिमा सैकती पैष्टी ५७७
प्रतिमायाश्च ये दोषा ६०९
प्रतिमायास्तृतीयांशम् ५९७
प्रतिवर्षं स्ववेशार्मं ७६३
प्रत्यक्षं वादयेत् साक्ष्यं ६९३
प्रत्यक्षतो लेखतश्च १०८
प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्ण ११०
प्रत्यग्रे कर्मणि कृते ८८२
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च ६४१
प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तां ३२८
प्रथमं साहसं कुर्वन् ४४७
प्रथमं साहसं कुर्वन् ४४९
प्रथमं साहसं चादौ ४४८
प्रथमा यत्र भिद्यन्ते ७१८
प्रदर्शितं वृत्तलेख्यं २५८
प्रफुल्लवदनेनैव ८८१
प्रबलेऽरौ सामदानौ ४३४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
प्रवालं तोलकमितं ४९४
प्रमाणं मन्द्रमृगयोः ७६७
प्रमाणैर्हेतुचरितैः ७२०
प्रयातोऽसि कुतः कस्मात् १०६
प्रयोगं कुर्वते ये तु ७३६
प्रयोगो यत्र यज्ञानाम् ५२८
प्रवर्त्तयित्वा वादन्तु ६६६
प्रविचार्योत्तरं देयं ३२६
प्रविशत्यनियुक्तो यो ६५०
प्रविश्य सानुरागस्य २२१
प्रवृद्धिमति सुराज्ञि ३३
प्रश्लिष्टपठिता मन्त्रा ५२५
प्रसंवलितपद्भ्यां यो ८०६
प्रसन्नो येन नृपतिः ४४२
प्रसिद्धलिभिभाषाभिः ६४६
प्रहीनबलभिन्नन्तु ८४२
प्राक् पश्चाद्रदक्षिणोदक्तान् १०३
प्राकारगोपुरगण ५७५
प्राकृतानां पदार्थानां ४
प्राक्कर्मफलभोगार्हा १८
प्राक्कर्मवशतः सर्वं १८
प्राग्वृत्तकथनं चैक ५३२
प्राजापत्यं पादहीन ८३
प्राड्विवाको नृपाभावे ६४७
प्राणानपि च सन्दद्यान् २३८
प्राणान्तिकविवादे तु ७१६
प्रातःकृत्यन्तु निर्वर्त्त्य २१९
प्राप्ते दिव्येऽपि न शपेद् ७०८
प्राप्योत्तमं पदं पुत्रः ९१२
प्रायः कृत्रिममित्रे ते ४२४
प्रायः शाला नैकभुजा ८७
प्रायो बुद्धिमता ज्ञेयं ९३१

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
प्रासादप्रतिमाराम ५३५
प्रासादमण्डपद्वारे ९३
प्रासादमध्यविस्तारः ५९९
प्रासादानां मण्डपाना ९३
प्रासादे मण्डपे वापि ५९९
प्रासादेषु विचित्रेषु ८६६
प्रियं तथ्यञ्च पथ्यञ्च २२४
प्रियमेवाभिधातव्यं ६८
प्रेम्णा समीपवासेन ३५७
प्रेरकाकर्षकमुखो ८१३
प्रेटर्यमाणोऽप्यसद्बृत्तै ६१
प्रोक्षणीयानि तान्येव ५५४
प्रोक्तं पुण्यतमं सत्यं २१८
प्रोक्तोच्चथा वाथ दैर्घ्यम् ७७०
प्रोथे सुवलयस्तिस्रः ८११

(फ)

फलनाशे कुलुत्थैश्च ५७०
फलपुष्पवृद्धिहेतुं २०२
फलोपलब्धिः प्रत्यक्ष २०

(ब)

बलं पराक्रमं नित्य १२१
बलं यस्य तु सम्भिन्नं ८१९
बलदर्पविनाशान्तं ५४३
बलप्रजारक्षणार्थं ४६४
बलमत्तस्तु सहसा ३३६
बलमूलो भवेत् कोश ४६९
बलमेव रिपोर्नित्यं ७५५
बलवन्नृपभृत्येऽल्पे ९००
बलवान् प्रतिकारी स्यात् १९
बलवान् बुद्धिमान् शूरो ७१
बलस्य व्यसनानीह ८७६
बलिना सह योद्धव्यम् ८४१
बलिना सह सन्धाय ८४०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
बलीयसात्यल्पबलः ८४३
बलीयसाभियुक्तस्तु ८३८
बलीयसि प्रणमतां ८४१
बलेनोच्चेन युद्धेन ५०२
बहिरन्तर्धनुः खण्ड ७७३
बहुमध्याल्पफलतः ५०६
बहुभिर्यः स्तुतो धर्मो ९१७
बहुमध्याल्पफलितां ५०५
बहुसम्मतसंसिद्धान् १८१
बहुसाध्यानि कार्याणि १९०
बहुनामैकमत्यं हि ९००
बहून्याश्चर्यरूपाणि ८६६
बह्वर्थं न त्यजेदल्प ३८४
बह्वर्थव्ययभीत्या तु ३८५
बाणलिङ्गे स्वयम्भूते ६०६
बाला ह्यपि राजपुत्रा २३७
बालोऽपिता च दौहित्रो ३४६
बालोऽज्ञानादसत्यात् स्त्री ६९२
बाल्यमश्ववृषोष्ट्राणां ८०८
बाहुकर्णाक्षिहीनः स्याद् १५१
बाहुयुद्धन्तु मल्लानाम् ५४२
बीजानुपूर्व्या मन्त्राणां २०९
बुद्धियाशैर्बन्धयित्वा ४०४
बुद्धिपूर्वनृघातेन ४४९
बुद्धिमन्तं सदा द्वेष्टि ५२
बुद्धिरुत्पद्यते तादृक् १८
बुद्ध्या बलेन शौर्येण ११
बृहच्छुण्डं भग्नवाम ६११
बृहद्भूगण्डनेत्रस्तु ६१०
बृहद्भूगण्डफालस्तु ७६७
बृंहयेत् कर्षयेत् मित्रं ४२९
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च ५५२
ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यात् ५३१

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
ब्राह्मं तेजो बुद्धिमत्सु ४०४
ब्राह्मणैः षोडशगवं ५२०
ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः १५
ब्रह्मणस्तु चतुर्दिक्षु ६०१
ब्राह्मणस्यापि चापत्तौ ८६०
ब्राह्मणाग्निजलैश्चैव ९२१
ब्राह्मणेन विनान्येषां ५२०

(भ)
भजनं पूजनं सेवाम् ३८४
भर्त्रा पित्राथवा राज्ञा ३१०
भर्तुरर्थे च यः शूरो ८६२
भद्रो मन्द्रो मृगो मिश्रो ७६५
भवन्ति मित्रा दानेन ३७७
भवतीष्टं सत्क्रियया २३
भवन्तीति किमाश्चर्यं ४२४
भवन्त्यन्योपदेशार्थे ३९२
भवेत् क्रोशात्मको ग्रामो ७८
भवेन्मन्त्रफलं कीदृग् ८८६
भागग्राही क्षत्रियस्तु २९९
भागदानक्रियादान ६८६
भागशेषं स्थितं यस्मिन् १८३
भारमार्गपरिश्रान्तं ८०१
भार्या पुत्रश्च दासश्च ७२९
भार्या पुत्रश्च भगिनी ४५३
भार्यार्थं वरयेत् कन्याम् ३६६
भार्यार्थिनं वयोविद्या ३६५
भार्य्यानपत्या सद्यानं ४०९
भ्रान्तेः पुरुषधर्मत्वात् २४८
भावाभावपदार्थानां ५३०
भाविसंरक्षणक्षमं ३६७
भिन्नं राष्ट्रं बलं भिन्नं ८
भिन्ना हि सेना नृपते ८७६
भुजानां यत्र बाहुल्य ६०१

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
भुवि भागं भृतिं शुल्कं ५०९
भूत्वा महाधनं सम्यक् ३७७
भूमिष्ठाः स्वर्गमायान्ति ४३०
भूमौ यावद् यस्य कीर्त्ति ५१५
भूषयन्ति का कैर्भावै ५२
भृतिं विना स्वामिकार्य ९२३
भृतिदानेन सन्तुष्टा २९५
भृत्यं परीक्षयेन्नित्यं १६५
भृत्यतुल्यव्ययी दान्तो १६९
भृत्या धनहराः सर्वे २३८
भृत्याद्यैर्यन्न कर्त्तव्याः २४६
भृत्यानां गृहकृत्यार्थं २९०
भृत्यो भ्रातापि वा पुत्रः ३३०
भेदः सटालाञ्छनतो ६१०
भेदनीया कर्षणीयाः ४२९
भेरीपटहगोपुच्छ २१६
भोक्ष्येऽखिलमहं चैतत् ४२३
भोगः सङ्क्षेतलश्चोक्तः ७०५
भोगपत्रन्तु करदी २५३
भ्रमरस्तु द्विधावर्त्ती ७८०
भ्रष्टश्रीः स्वामिता राज्ञे ३८
भ्रष्टा भवन्त्यन्यथा ते १५७
भ्रातृणां गुरुशिष्याणां ११४
भ्रात्रभावे पितृद्रव्यम् ४२३

(म)
मकरन्दासवादीनां ५४०
मञ्चासीनः शतानीकः ८८१
मणिनेत्रप्रान्तरञ्च ७७६
मण्डनं वर्जयेन्नित्यं ५६२
मणिमुक्ताप्रवालानां ७२९
मत्स्यादाश्च नराः सर्वे ६४२
मत्स्याम्भसा तु सेकेन ५७१
मत्स्याहिशङ्खवाराह ४८६

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
मदनिष्टं तु सत्कार्यात्	३३०
मदा एतेऽवलिप्तानां	३३६
मद्यपः कितवः स्तेनो	४५५
मद्यप्येकश्च भ्रष्टः स्यात्	४४३
मद्दुःखसुखतो लोको	६७२
मधुदुग्धवसादीनां	११४
मध्यमं साहसं चादौ	४५१
मध्यदण्डा पार्श्वगमा	७८७
मध्यमे मध्यमो धार्यः	४६३
मध्यमामध्यमपर्व	७९
मध्यमो विंशतिकरो	१०२
मध्वाभदन्तः सबलः	७६५
मनसा चिन्तयन् पापं	३०५
मनसापि न कुर्वन्तु	११४
मनसापि न मन्तव्या	१५७
मनुष्यमारणे स्तेये	६६७
मनोऽनुकूलसेवायाः	५४९
मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा	५५६
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद	५२४
मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नः	१७४
मन्त्रास्त्रैर्दैविकं युद्धं	८३१
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च	१७१
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च	२७५
मन्त्री तु नीतिकुशलः	१७७
मन्त्रेरितमहाशक्ति	८७१
मन्त्रौषधिपृथग्वेश	९२८
मन्दरो ऋक्षमाली च	५७६
मन्यते वै पापकारी न	६९८
मन्यन्ते जातिभेदं	५१७
मन्दो मध्स्तथा शीघ्रः	२९०
मन्वाद्यैरादृतो योऽर्थो	९०३
ममागुणैर्गुणैर्वापि	५२
मर्दयित्वा तु गात्राणि	८०२
मस्त्विन्द्रियनिरोधेन	६५८
महत् पापफलं विद्यात्	५१५
महती सत्क्रियानिष्ट	२३
महतोऽसत्कृतमपि	३५५
महत्कालेनाल्पकर्म	३२९
महाकण्टकवृक्षौघै	७४७
महाजनांस्तथा राष्ट्रे	१६०
महाजनैर्धृतः पन्था	३३४
महानालिकयन्त्रस्थ	२१४
महानसस्य पात्राणि	५५५
महाधनाशो ह्यलसः	४७८
महापापाभिशापेषु	७१७
महिषस्योत्तमं मूल्यं	५००
महीं स्वल्पां नैव भुङ्क्ते	७२
मदरक्तस्य हंसस्य	६९
मातरं पितरं भार्य्यां	४६१
माता च पालयेद् बाल्ये	३१९
मातामहकुलश्रेष्ठा	१३४
माता मातृकुलं चैव	४२५
मातुः प्रियायाः पुत्रस्य	३९०
मातुलानी भ्रातृभार्या	३४६
मातृपितृगुरुस्वामि	३२१
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा	३०९
मात्रे दद्याच्चतुर्थांशं	७३२
मानतो नाधिकं हीनं	५७८
मानमत्तो मन्यते स्य	३३६
मानसममपि स्वर्णं	४९७
मानाकृतिप्रभावर्णं	१९८
मानुषं साधनं न स्यात्	७१७
मायां विना महाद्रव्यं	९१६
मायाया जनका धूर्त्त	९१४
मार्गं गुरुभ्यो बलिने	३५२
मार्गं निरुध्य न स्थेयं	४१०
मार्गान्नैव प्रबाधेयु	११४
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य	५५४
मार्जने गृहभाण्डादे	५४८
मार्जारलुब्धबकवत्	९०६
मार्जाराकृतिकः पीतः	६१०
मार्दवान्नैव गणयेद्	३८२
मालाकारस्य वृत्त्यैव	४७१
मालूराकारया मुष्ट्या	८७२
मितं ददाति हि पिता	५६३
मित्रं वा स्वामिनं त्यक्त्वा	८६९
मित्रं शत्रुं यथायोग्यैः	४२९
मित्रः शत्रुश्चतुर्धा स्यात्	४२१
मित्रमापद्यतं दृष्ट्वा	८६९
मित्रायापि न वक्तव्यं	२४०
मित्रेऽन्यमित्रसुगुणान्	४३१
मित्रे च सामदानौ स्तों	४३५
मिथ्या क्रिया पूर्ववादे	६८१
मिथ्याभिशापकः कर्णे	४५६
मिथ्यासत्यसदाचारै	१४०
मिथ्यैतन्नाभिजानाभि	६७६
मीमांसातर्कवेदान्त	२०९
मीमांसातर्कसांख्यानि	५२३
मुखतृतीयांशमेतद्	७७६
मुखाधस्त्र्यङ्गुला ग्रीवा	६१८
मुखानां यत्र बाहुल्यं	६००
मुद्रां विनाऽखिलं राज	१५१
मुखार्द्धं पुच्छदण्डं च	७७१
मुनेरपि मनोऽवश्यं	४५
मुनिभिर्दीर्घतपसा	८६३
मुहूर्त्तं भोजनेनैव	११०
मुहूर्त्तद्वितयञ्चैव	११०
मूकोऽन्धो बधिरः खञ्जः	४१६
मूर्खः पुत्रः कुवैद्यश्चा	४२७

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
मूर्खः पुत्रोऽभवा कन्या ३९१
मूलकीलभ्रमाल्लक्ष्य ८२४
मूलात्तु द्विगुणा वृद्धिः ७३९
मूलैर्व्यवहरन्त्यर्घैर्न ४७३
मूल्याधिक्याय भवति ४८५
मृगयाक्षाः स्त्रियः पानं ३५९
मृगयाभिस्तु व्याघ्राणां ७५९
मृगयाक्षास्तथा पानं ५६
मृगयायां गुणा एते १२६
मृत्तिकाकाष्ठपाषाण ५४५
मृतेऽधिपेऽपि पुत्राद्या ७३२
मृते भर्तरि सङ्गच्छेद् ५६२
मृदुना नातितीक्ष्णेन ७९७
मेढ्रस्य पश्चाद् भ्रमरी ७९०
मेद्योदकैस्तु या पुष्टिः ९०७
मेलयित्वा स्वधनांशान् २५६
मेर्वादिषोडशविध ५७४
मैत्र्यर्थे याचितं दद्यात् ३७१
मोहद् वा यदि वा शाठ्यात् ६७५
मौनं मूर्खेषु च स्त्रीषु ३८८
मौलशिक्षितसारेण ८१८
भ्यरस्तजभ्रगैर्लान्तैः ५२९

(य)

यं कञ्चिद्दशवर्षाणि ७०३
यः कश्चित् कारयेत् ६६३
यः सहायं सदा कुर्यात् ३९५
यः साक्षान्नैव निर्दिष्टो ६९४
यः सुदुर्निष्फलं कर्म ३२७
यज्ञार्थं द्रव्यमुत्पन्नः ४७०
यज्जातिपूज्यो यो देवः ५७४
यज्जायतेऽल्पक्रियया २०
यतते नैव कालेऽपि ३२८

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
यत् कर्त्तव्यं न जानाति ३६२
यत् कर्म धर्मसंज्ञं तद् ६१
यत्कार्ये यत् नियुक्तः स २२६
यत्कार्ये विनियुक्ता ये २९७
यत्नेनोपचरेन्नित्यं २२२
यत्र यादृग् व्यवहारः २७१
यत्रानियुक्तोऽपीक्षेत ६९५
यत्रैतानि न लिख्यन्ते ६८८
यत्रोभौ व्यापकव्याप्यौ २७८
यथा गुरुन्रं वज्रं ४९०
यथागुणान् स्वभृत्यांश्च २९६
यथाच्छिद्रं भवेत् कार्य्यं ९३३
यथाजाति यथावर्णं ६९१
यथा यथा तु गुणवान् २८८
यथा द्रव्याधिकं कार्यं ६६४
यथा न जानन्ति धनं ३७०
यथाधिकाधिपत्यन्तु ९३४
यथा पिता तथाचार्यः १३५
यथापूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात् ४९७
यथार्थमपि विज्ञातम् ४१८
यथावर्णं यथाच्छायं ४८३
यथाशक्ति चिकीर्षेत ३२५
यथोपन्यस्तसाध्यार्थ २५१
यथा विक्रयिणां मूल २०७
यथा यथा तु त्वक्सारं ८२४
यथा यथा श्रेष्ठपदे १८७
यथासत्यं चिन्तयित्वा ६४४
यथा हि शत्रुसेनाया ८१९
यथार्थमपि न ब्रूयात् ४१६
यथार्हमेनमभ्यर्च्य ६४५
यथोक्तवयवैः पूर्णा ५७७
यथोपाधिप्रभेदेन ६०५
यदा चतुर्गुणा वृद्धिः ९३८

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
यदा तु मान्त्रिकं नास्ति ८२२
यदा न कुर्यान्नृपतिः ६२९
यदा यदुचितं कर्तुं २१९
यदा बिप्रो न विद्वान स्यात् ६२९
यदा शत्रुविनाशार्थं ४६७
यदि ब्राह्मणभिन्नेषु २४५
यद् ब्राह्मणेनापहृतं २९०
यदि सिध्यति येनार्थः ३४४
यदि सिद्ध्यति येनार्थः ९३२
यदि न स्यान्नरपतिः २५
यद्रक्ष्यमुपदेश्यं यद् ८९६
यद्रुपं कर्तुमुद्युक्तः ७७८
यद् यत् स्याद् वाचिकं ५२२
यद्दत्तं हिंस्रवृद्ध्यर्थं ३७९
यद्यच्च साधकं द्रव्यं ४७५
यद्यत् सहायपुष्टं तु ७५१
यद्यत्र स्खलितं गात्रं ८०२
यद्यप्यल्पतरं कर्म १४७
यद्येकदेशप्राप्तापि ७२०
यद्येको मानुषीं ब्रूयात् ७१९
यद्वर्णजो भवेद्राजा ६३०
यत्र व्यवस्थिता चार्थ ५३०
यन्त्रशस्त्रास्त्ररूपं यत् ४९८
यन्त्राघाताग्निकृद् ग्राव ८२३
यन्त्रास्त्रैः शत्रुसेनाया ८५४
यन्नामगोत्रैर्यल्लेख्य ७१६
यन्निमित्ततो भवेदायो २६४
यमर्थ सत्र ददाति ७४०
यया कया चापि वृत्त्या ३६८
ययातेश्च यथा पुत्रा १६१
यवाश्च चणकाः श्रेष्ठा ८०३
यश्चापद्वारेण विशेत् ६५०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

यस्याधीनं भवेद् यावत् ५१३
यस्यानियमितं कर्म ८९९
यस्तु स्वशुद्धिमन्विच्छन् ७०९
यस्माद्देवैः प्रयुक्तानि ७०७
यस्मिन् पितुर्भवेत् प्रीतिः १६२
यस्मिन् सूक्तं दुरुक्तं च ३८५
यस्यास्ति नियतं कर्म ८९८
यस्मिन् यस्मिन् हि कृत्ये तु २५०
यस्य चाप्रियमन्विच्छेत् ९१६
यस्येच्छेदुत्तमां मैत्रीं ३७५
यस्त्वधर्मेण कार्याणि ६२८
यस्य वाभ्यधिका पीडा ६८०
यस्याश्रितो भवेल्लोकः ५१४
यस्याभियोगं कुरुते ६५९
यस्य नोपहता बुद्धिः ६९०
यस्यावर्त्तौ वक्त्रगतौ ७८६
यस्य सुद्रवते चित्तं ४२१
यस्मिन् देशे यथाकालं ८३४
याचकं विमुखं नैव २०२
याचकेभ्यो ददात्यर्थं २०७
याच्ञाधमतरा वृत्ति ४०२
यने सपादभृत्या तु ८७७
याभिः क्रियाभिः बलवान् ८३६
यावत् तु धर्मशीलः स्यात् ४६१
यामद्वयं शयानञ्च १४३
यामिकैः रक्षितो नित्यं ९५
यायाद् व्यूहेन महता ८४७
यावज्जीवं तु तत्पुत्रे २९३
याः सर्वाः पितृपत्न्यः स्युः ७२८
युक्तिमप्यसमर्थासु ७०७
युक्तिश्छलात्मिका प्रायः ९२७
युक्तिर्बलीयसी यत्र ५३४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

युगप्रवर्त्तको राजा ४४२
युद्धक्रियां विना सैन्यं ९३७
युद्धमुत्सृज्य यो याति ८५९
युद्धसम्भारसम्पन्नो ८३३
युद्धादौ सुमहत्कार्ये २३८
युद्धप्रवृत्तिकुशलाः १९८
युद्धशस्त्रन्त्व्यूहादि ५२६
युवराजोऽमात्यगणो १५०
युवराजो मन्त्रिगणान् ८८६
युवानः साक्षिणः कार्य्याः ६९१
ये च कण्टकिनो वृक्षाः ५७१
ये चान्ये कर्मसचिवा १८८
ये चान्ये साधकास्ते च २१३
येन केन प्रकारेण ४६४
ये प्रियाणि प्रभाषन्ते ६९
ये भृत्या हीनभृतिकाः २८९
येषां परम्पराप्राप्ताः ६४३
ये सैन्यधनिकास्तेभ्यो ९३८
यैर्गुप्तो बलवान् भूयात् ८३७
योऽधीतविद्यः सकलः ५२१
योगमुद्रान्विता स्वस्था ५७९
योग्या कान्तं च कुलटा ३९९
योजनानां शतं गन्ता ५०१
यो जानात्यर्जितुं सम्यग् ४७७
यो न भ्राता न च पिता ६६५
यो न संयोजयेदिष्टम् ४३१
यो नात्मगोपने युक्तिं ९२७
यो यथेष्टं कामयते ३९७
यो वै सुपुष्टसम्भारः ८३१
योषितो नित्यकर्मोक्तं ५६०
यो हि धर्मपरो राजा २८
यो हि मित्रमविज्ञाय ३३१
यो हि स्वधर्मनिरतः १२

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

यौवनं जीवितं चित्तं ५५

(र)

रक्तं पीतं वर्त्तुलं चेत् ४९६
रक्तिकादलविस्तारात् ४८९
रक्तिमात्रः पुष्परागो ४९४
रङ्गसीसे द्वित्रिगुणे ताम्रात् ४९८
रजतस्वर्णताम्रादि २७२
रज्यते सत्फले स्वान्तं ३६
रणेष्वकदनं कृत्वा ८६१
रत्नं न धारयेत् कृष्ण ४९३
रत्नभूतन्तु तत्तद् स्याद् ५०२
रत्नश्रेष्ठतरं वज्रं ४८२
रत्नश्रेष्ठो दुर्लभश्च ४८२
रत्नार्द्धं चैव क्षारार्द्धं ५०७
रत्ने स्वाभाविका दोषाः ४९६
रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थं ९०
रम्यः सहस्रशिखरः ५७५
रहः प्रचारकुशला ४४
राजदेशकुलज्ञाति ३१५
राजकार्य्योपयोग्यान् हि २०२
राजकीयं लौकिकञ्च ६८५
राजगृहं लभामध्यं ८७
राजदण्डभयाल्लोकः १०
राजन्यासन्नशयने ६५०
राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः १५५
राजभागस्तु रजत ५०७
राजमार्गमुखानि स्यु १०४
राजमार्गास्तु कर्त्तव्या १०२
राजयानारूढितः किं १४०
राजसम्बन्धिनः पूज्याः २४०
राजसेवां विना द्रव्यं ४०३
राजसो दाम्भिको लोभी १३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

राजाज्ञया विना नेच्छेत् २४१
राजाज्ञया विना नैव ११४
राजाज्ञया सत्पुरुषैः ६५६
राजा तु धार्मिकान् सभ्यान् ६३३
राजादनाम्रपुन्नाग ५६९
राजाद्यङ्कितलेख्यस्य २५०
राजानं स्वकृतं यद् यद् १६३
राजा न गच्छेद्विश्वासं ८४१
राजानञ्चावियोद्धारं ८६०
राजानु युवराजस्तु २३९
राजा परममित्रोऽस्ति २२८
राजापुरोहितादीनां २४४
राजामात्यप्रलोभेन ७२२
राजा मित्रमिति ज्ञात्वा ३५५
राजा स्वलेख्यचिह्न तु २७५
राजास्य जगतो हेतु २५
राज्यं प्रजा बलं कोशः १७६
राज्यतुर्यांशदानेन १३१
राज्यविभज्ञनाच्छ्रेयो १३१
राज्यवृक्षस्य नृपति ९०९
राज्यस्य यशसः कीर्त्ते १२१
राज्ञः समीपप्राप्तानां २१२
राज्ञां सदण्डनीत्या हि ४३९
राज्ञादिष्टन्तु यत् स्थानं २२३
राज्ञा ये विदिताः सम्यक् ६३५
राज्ञा स्वहस्तसंयुक्तं ६८७
राज्ञे च बलिने दत्तं ३७९
राज्ञोऽवश्यतरं कार्य्यं २३७
राज्ञो नानुकृतिं कुर्यात् ३६१
राज्ञो यदि न पापं स्याद् ९१७
राज्ञो राष्ट्रस्य विकृतिं ४६०
रामकृष्णोन्द्रादिदेवैः ८८०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः

रावणस्य च भीष्मादे २२
राष्ट्रं कर्णेजपैर्नित्यं ४४५
राष्ट्रभृत्यविशङ्की स्याद् ९०५
रिपुं यातस्य बलिनः ८४५
रिपोः प्रजानां सम्भेद ४३५
रिपोमिर्त्राः सेवकाश्च १७०
रूप्यं हेम च कुप्यञ्च ८८४

(ल)

लक्षकर्षमितो भागो ७४
लक्षण युवराजादेः ३०१
लक्ष्यते विमुखश्चैव २२९
लक्ष्यभेदी यथा बाणो ८२८
लघुदीर्घाकारधारा ८२२
लघोरप्यपमानस्तु ९२१
लज्ज्यते च सुहृद् येन ३८५
लब्धं कलासु संयोज्यं ४९१
लिखितं तादृशं सभ्या ६४७
लिखितं तु यदा यस्य ७४०
लिखिते शोधिते सम्यक् ६७८
लिखित्वा शासनं राजा ११९
लेख्यं यत्र न विद्येत ७२१
लेख्या लेप्या सैकती च ६०५
लोकप्रचारैरुत्पन्नो ७४५
लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः ६३३
लोकशास्त्रविरुद्धाः के १८२
लोकसंरक्षणे दक्षः १६
लोकसङ्केततोऽर्थानां ५३६
लोकेऽधिकारप्रत्यक्षं ९२९
लोभेनासेवनाद्धन्नाः ८९३
लोलुभ्यमानास्तेऽर्थेषु १५३
लोहसारमयं वाणि ८२६
लोहसारमयश्चक्र ७६३
लोहाभिसारशस्त्रास्त्र ५४९

श्लोकाः पृष्ठाङ्का

(ग)

वक्तुं न शक्यत्ते प्रायः ४१९
वक्तव्येऽर्थे ह्यतिष्ठन्तम् ६५७
वङ्गं च जसदं सीसं ७४२
वज्रं मुक्ता प्रवालं च ४७९
वणिजानां कर्षकाणाम् ७३७
वत्सरे वत्सरे वापि २५९
वत्सरे वत्सरे वापि २८७
वदन्तीहैव क्रियया २१
वदेत् वृद्धानुकूलं यत् ४१६
वन्दिमागधमल्लादि ३७८
वरं देशाच्छादनतः ४०६
वरं हि त्वनपत्यत्वं ४०५
वराप्सरः सहस्राणि ८६३
वराभयाब्जशङ्खाढ्य ६०३
वराभयाब्जलड्डुक ६०४
वर्गरक्तिषु सन्धार्य्यं ४९१
वर्णादिधर्म्मस्मरणं ५३४
वर्णमाक्रमते छाया ४८४
वर्णितपस्विसन्यासि १२७
वर्तमानाश्च प्राचीना १८२
वर्त्तयन्त्यन्यथा दण्ड्या ५५३
वर्त्तते यस्य यद्धस्ते ७३०
वर्द्धयन्निहः धर्मार्थौ ६०
वसुषण्मुनिसंख्याकै ८१
वस्तुजातस्यैकवारं ५०४
वस्तुयाथात्म्यविज्ञाने ४७९
वस्त्रादिमार्जनार्थञ्च ८९
वस्त्रान्नभूषणप्रेम ३११
वस्त्रालङ्कारपात्राणां १३२
वस्त्रालङ्कारसन्धानं ५३९
वर्षाणि विंशतिर्यस्य ७०३
वर्षासु न प्रशंसन्ति ८३३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
वर्षासु न वहेदीषत् ८००
वहेदमित्रं स्कन्धेन ३८७
वाक्पारुष्यान्नयूनभृत्या २९५
वाक्पारुष्यमवाच्याद्यं ६५३
वाग्दण्डपरुषेणैव ८१८
वाजिनां मुखमानेन ७६८
वाजिनामत्यबहनात् ७९५
वाजिसेवासु कुशलः १९४
वातप्रेरकयन्त्रैश्च ९८
वादिनश्चिह्नितं साक्ष्यं ६५६
वादिनौ पृच्छति प्राड् वा ६४७
वाद्यभाषासु सङ्केत १७९
वाद्यवाहनभेदैश्च २९८
वाद्यशस्त्रास्त्रवस्त्राणां २६८
वामपाणिकचोत्पीडा ८७२
वामदक्षिणपार्श्वस्थौ १३५
वामदक्षिणसंस्थो वा ८४९
वामनी सप्तताला स्यात् ५८१
वामभागेऽथवोद्यानं ५७०
वायुर्गन्धस्य सदसत् ३०
वारकाकर्षखण्डाभ्यां ८१४
वार्द्धुषिकाच्च कौसीदाद् ५११
वाहनं मूत्तिसदृशं ५९९
वाहनत्वं गता ये ये ६०९
विकल्पन्तेऽवमन्यन्ति २४६
विकर्त्तुं यततेऽल्पोऽपि ८१७
विकलाङ्गान् प्रव्रजितान् ३४७
विकर्षितः सन् वाधीनो ८३७
विगृह्य याति हि यदा ८४४
विग्रहः स च विज्ञेयो ८४३
विगृह्य सन्धाय तथा ८४३
विना कुटुम्बभरणात् ४५६
विक्रेतृक्रेतृतो राज ५०३

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
विक्रयादानसम्बन्धे ७१८
विचार्यं श्रेणिभिः कार्यं ६३५
विचार्य स्नेहं द्वेषं वा ३८०
विचित्राङ्गः स्रग्वी च ६५०
विच्छिन्नवीवधामारं ८५४
विजिगीषोस्तुं साह्यार्थाः ८५५
विजित्य च रिपूनेवं ८८४
विदितोऽर्थागमः शास्त्रे ७३१
विद्या ह्यनन्ताश्च कलाः ५२१
विद्यायाश्च फलं ज्ञानं ३३६
विद्या शौर्यञ्च दाक्ष्यञ्च ४२५
विद्यात् पणसहस्रं तु ४६२
विद्याधनं श्रेष्ठतरं ३६७
विद्यागमार्थं पुत्रस्य ३९४
विद्याकलानां वृद्धिः
स्यात् १३९
विद्यया कर्मणा शीलैः १६४
विद्यावत्सु शरच्चन्द्रो २४५
विद्रुतं न तु हीनं स्यात् ७४२
विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् ५५२
विनष्टे लिखिते राजा ६९९
विना कौशिकशास्त्रीय ५३७
विना तच्छोधनात् तत्त्वं १२८
विना प्रकृतिसन्मन्त्राद् १७५
विनाज्ञया विशन्तन्तु २२०
विना दानार्जवाभ्यां न ३८०
विना स्वधर्मान्न सुखं १०
विनिशिष्यामि दण्डेन ११५
विनिश्चिते पूर्वपक्षे ६७३
विन्दत्यायुर्वेत्ति सम्यग् ५२६
विपरीतगुणैरेभि १७०
विपरीतगुणैरेभिः ५६
विपरीतस्तामसः स्यात् १३

श्लोकाः पृष्ठाङ्का
विपरीतस्तु रक्षोंऽशः ३५
विप्रवद् विप्रविन्नासु ५६४
विभजेयुर्न तत् पुत्रा ३७४
विभक्ता ये च भ्रात्राद्याः २५४
विभिन्नकाले यज्ज्ञातं ६९५
विमुखः परदारासु १४४
विमृशेत् स्वमतेनैव १३७
विरक्तलक्षणं ह्येतत् २२९
विरुद्धो यत्र नृपति ३१८
विरौति कुक्कुटो माद्येत् १२३
विलोक्य भर्तृवदनं ५६१
विलोभ्यापि परानीकं ८८३
विवादिनौ सन्निरुध्य ६६९
विवाहोत्सवद्यूतेषु ७१९
विविधासनमुद्राभिः ५४४
विविधोपास्यमन्त्राणां ५२७
विवाहे भोजने नित्यं १६६
विविक्तदर्शनं चास्य २३०
विशिष्टचिह्नयुग्राजा १३६
विशिष्टतर्किता या च ७०६
विश्वसित्वाम्वद् गूढः ३३२
विश्वस्तान्यनृपस्यापि ९०९
विश्वामित्रो वशिष्ठश्च ५६६
विश्रम्भयित्वा चात्यर्थं ९१५
विश्रम्भाच्छरणं प्राप्तं ८७०
विश्रम्भान्निहितं सद्भि २६१
विषदोषभयादन्नं १२३
विषबह्निहिमव्याप्तं ४७४
विषयामिषलोभेन ३९
विस्तारार्धांशमध्योच्चा ९४
विस्रंसयन्ति तन्मन्त्रं २४७
विहारं च स्वस्त्रीभि ३४३
वीणालुङ्गाभयवर ६०४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
व्रीहिभिर्मर्दितं नेयाद् ४८८
वृक्षान् सम्पुष्य यत्नेन २०६
वृत्तलेख्यं तथा चाय २५१
वृद्धाः सुशीला विश्वस्ता ४०८
वृद्धिं हित्वा ह्यर्द्धधनै ७३९
वृद्धो बालो न हन्तव्यो ८८०
वृद्ध्यै धनं गृहीत्वा तु २५५
वृद्ध्यावृद्ध्याच यो दत्तः २६६
वृषस्याष्टौ सिता दन्ताः ८१२
वृष्टिशीतोष्णनक्षत्र ९
वेणो नष्टस्त्वधर्मेण २७
वेदाङ्गुला भवेद् ग्रीवा ६१९
वेश्याभिश्च नटैर्मद्यैः ९१०
वैतालिकाः सुकवयो २१४
वैदूर्यसन्निभे नेत्रे ७९२
वैरीभूतोऽपि पश्चात् प्राक् ४१५
वैश्यासु क्षत्रविप्राभ्यां ५६४
व्यङ्घ्रिचतुर्दशहतो ४९५
व्ययीभूतं तु यद् दृष्ट्वा ४७५
व्यवहारविदः प्राज्ञा २०४
व्यवहारे चाधिकृतं २७२
व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ६४०
व्यवहारानभिज्ञेन ६६२
व्यवहारविदः प्राज्ञा ६३०
व्यवहारे धृतं वैश्यैः ४७३
व्यसने सज्जमानं तं १५६
व्यसने सज्जमानं हि ३८६
व्यस्तक्षौरमसद्यान ४३७
व्याकृताः प्रत्ययाद्यैश्च ५२८
व्याघ्राग्निसर्पहिंस्राणां ३९५
व्याघ्रादिभिर्वनचरै १२५
व्यापकं बहुवृत्तित्वं २७९
व्यापकाश्च पदार्था वा २८०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
व्याप्यव्यापकभेदैश्च २५९
व्यायच्छन्तश्च बहवः ४५
व्यालग्राही यथा व्यालं ४०३
व्यूहरचनसङ्केतान् ८४८
व्यूहाभ्यासं शिक्षयेद् यः १९६

(श)

शकटात् पञ्चहस्तं तु ३५३
शक्तेनापि हि न धृतो ५२
शङ्कासतां तु संसर्गाद् ६५९
शङ्खचक्रगदापद्मै ६०४
शङ्कितव्यवहारेषु ७०१
शङ्खचक्रगदायद्म ७८१
शठाश्च कातरा लुब्धाः १७०
शतं शतं योजनान्ते ८१६
शतग्रामाधिपो यस्तु ७७
शतमायुर्मनुष्याणां ८०७
शतयोजनगन्ता स्याद् ८००
शतसंवत्सरान्तेऽपि ९०५
शतादूर्द्ध्वं रक्तिवर्गाद् ४९२
शतानान्तु शतानीकः १९५
शत्रुनाशार्थगमनं ८३७
शत्रुप्रजाभृत्यवृत्तं २११
शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य ५९
शत्रुसंसाधनोपायो ८२०
शत्रुसम्बन्धिनो ये ये ८९२
शत्रुसाधकहीनत्व ४३२
शत्रूदासीनमित्राणि ४२८
शत्रोरनिष्टकरणात् ६२६
शत्रोर्बलानुसारेण ८३९
शब्दनिर्वचनं यत्र ५२९
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च ४१
शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ ६४०
शनैः शनैः प्रवर्द्धेत १६४

श्लोकाः पृष्ठाङ्का
शपथार्थे हिरण्याग्नी ६३९
शय्यास्तराणसंयोग ५३९
शरद्धेमन्तशिशिर ८३३
शर्कराभं दलाभञ्च ४८३
शर्कराभं हीनमौल्यं ४८५
शल्लकी काश्मरी पाठा ५७२
शशादिभेदतः पुंसाम् ५३५
शस्त्रसन्धानविक्षेपः ५४२
शस्त्रास्त्रकुशलो यस्तु २०६
शस्त्रास्त्रयोर्धारणञ्च ८४९
शस्त्रास्त्रसन्धायुर्दर ७६३
शाङ्करी श्वेतवर्णा वा ६०७
शारीर हि बलं शौर्य ७५४
शासनादन्यथाचारान् ८८८
शास्त्रमानविहीनं यत् ५८९
शास्त्राय गुरुसंयोगः ६१
शास्त्रेणा निन्दिन्तस्त्वर्थी ६४९
शिंशपाशिम्भुवदर ५६९
शिशोः संरक्षणे ज्ञानं ५५०
शिक्षा व्याकरणं कल्पो ५२३
शिखावधि तु केशान्तं ५८५
शिरोज्झितौ पाणिपादौ ५८७
शिरोमणिं समारभ्य ७६९
शिरोवर्त्ती यदा न स्यात् ७१४
शिल्पाग्रे वाजिनं ध्यात्वा ७७९
शिशोस्तु कन्धरा ह्रस्वा ६१६
श्रीमत्तः पुरुषो वेत्ति ३३५
शुक्रोक्तनीतिसारं यः ९०३
शुचिर्दर्भाङ्कुराहारो ४१
शुद्धात् सङ्ग्राह्य सञ्चूर्ण्य ८२५
शुभाशुभौ भ्रमौ यस्मिन् ७९१
शुल्कग्राही तु वैश्यो हि २९९
शुल्कदण्डाकरकर २६४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
शुल्काख्यौ भालकण्ठस्थौ ७८६
शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि ५६३
शून्याटवीशून्यगृह ३१३
शूरस्य सैन्यदुर्गस्य ७५१
शूरस्योत्थानशीलस्य ४२३
शृङ्गाटके ग्राममध्ये ५७४
शृङ्गिणां च नखिनां च ३५३
शृणुयाद् गूढचारेभ्यो १२६
शेषं संयोजयेन्नित्यं २६७
शेषायव्ययविज्ञानं २८१
शोभते चोन्नतग्रीवो ७७८
शौर्ययुद्धरतान् सर्व १५४
शौर्य्यं प्रवर्द्धते नित्यं १२६
श्मश्रुहीनमुखः ७७९
श्वमैथुनमृणं गर्भा ४०६
श्वेता स्मृता सात्त्विकी तु ६०६
श्वेतपीतारक्तकृष्ण ६०६
श्रावयित्वा तु यत्कार्यं ६७२
श्रावयेत् सैनिकान् नित्यं ९३७
श्रीमतामनपत्यत्वम् ३९०
श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं ६७३
श्रुतिस्मृतीतरैर्मन्त्रा २१०
श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् ३५२
श्रुतिस्मृतिपुराणानाम् ३५८
श्रुतिरास्तिक्यपूतात्मा ७०
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन ५३४
श्रुत्वा भाषार्थमन्यस्तु ६७६
श्रेण्यादिषु च वर्गेषु ६९३
श्रेष्ठं तु सर्वदुर्गेभ्यः ७४९
श्रेष्ठाभ्यन्तरगा तासु २७४
श्रेष्ठो न मानहीनः स्यात् ९३५
श्रोतारो वणिजस्तत्र ६३४

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
(ष)
षट्कमेतन्नियोक्तव्यं १८८
षडङ्गवित् साङ्गधनु १७४
षड् दोषा पुरुषेणेह ३२२
षड्विंशत्यङ्गुलं सक्थि ६१९
षष्ठं दुर्गप्रकरणं ७४७
षष्ठांशं वा चतुर्थांशं २९४
षष्ठमायुर्बलं त्वेतै ७५५
षष्ठांशमन्तरं बाह्वो ७७७
षष्ठांशेनाधिका ग्रीवा ७७१
षष्ठे तृपान्त्यौ भवतः ८१२
षाण्मासिकीं तु दीर्घार्त्ते २९२
षोडशद्वादशदशा ५१०
षोडशाङ्गुलमात्रं तु ५९२
षोडशाब्दात् परं पुत्रं ३६३
षोडशांशं त्वन्यथा हि ७४३
(स)
संख्यातः स्वल्परत्नानां ४९४
संयोगापूर्वविज्ञानं ५४२
संरक्षणे संहरणे १२१
संरक्षयेत् कृपणवत् ४७८
संरक्षयेत् प्रयत्नेन ४७६
संरक्षयेद् यामिकैश्च १०६
संवत्सरोषितस्यापि २९२
संसृतौ व्यवहाराय ३६८
संस्कर्त्ता तत्कलाभिज्ञः ७३४
संहन्याद्व्रर्णजान् दोषान् ७९५
संहिताञ्च तथा होरां २०९
स उपायो नृपाधीनः ४३७
स एव हृदये स्कन्धे ७९२
सकुसीदमकुसीदं ३७५
सकृत् सुभुक्तं यस्यापि ९२४
सङ्क्षेपतस्तु ध्यानादि ५८०

श्लोकाः पृष्ठाङ्का
सङ्गीतैर्मधुरालापैः ५६१
सङ्घातवान् यथा वेणु ८४०
सचिवस्तु ततः प्रोक्तो १७३
सजातीनां च लिखनं २८०
सञ्चरेयुः सैनिकाश्च ८८१
सञ्जातबद्धमूलस्तु ९०८
सत्कारेण च ज्ञानेन २९६
सत्क्रियाभिश्चिरस्थायि ७६०
सत्कृतान् नियमान् सर्वान् ८९८
सत्यं मिथ्योत्तरञ्चैव ६७५
सत्यं यथार्थमिति च २७६
सत्याचारास्तु धनिका ९३७
सत्यं वा यदि वासत्यं १७८
सत्यं साक्ष्यं ब्रुवन् साक्षी ६९७
सत्येन पूयते साक्षी ६९७
सत्रिकक्षचतुर्द्वारं ८८
सत्त्वस्य तमसः साम्यान् १४
शत्रवो नीतिहीनानां ६
सदा कुर्याच्च स्वापत्तौ ८४
सदानुद्धतवेशः स्यात् २२२
सदा मद्दत्तकन्यायां ६७१
सदानुरक्तप्रकृतिः ३९
सदुपायैः सन्मन्त्रैः ८५६
सदारभ्रातरः प्रौढा ३७४
सदाल्पमप्युपकृतं ४१४
स दीव्यति पृथिव्यां तु ५१४
स देवकृत्रिमजलै २६४
सदैव सावधानः स्यात् १४४
सद्भावेन हरेन्मित्रं ७१
सद्रक्षणं दुष्टनाशः ५१९
सन्धायान्यत्र यात्राय ८४५
सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्री ३१४
सन्धिं च विग्रहं यानम् ८३६

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
सद्भिर्लेख्यैः साक्षिभिश्च ६८९
सद्भोगाभावतः साक्षि ६९९
सन्दिग्धमन्यत् प्रकृताद् ६७४
सन्धिश्चातिबले युद्धं ८४०
सधनश्रेष्ठजात्यानु ९९
सपाद्द्विगुणौ हस्तौ ६१७
सपादशतहस्तैश्च ८१
सपादषट्शता दण्डा ८२
सपीतरक्तरुग्भौम ४८०
सपुत्रस्तु गृहे कन्यां ३४०
स पूर्वपक्षः सभ्यादिः ६५५
सप्ततालादिमानेऽपि ६१६
सप्ततालाद्युच्चता वा ५८१
सप्ततालो वृषः पूज्यो ८०६
सप्तपर्णशमीतुन्न ५७२
सप्तर्षिभिश्च भिस्मार्थे ७०८
सप्तहस्तोन्नतिर्भद्रे ७६७
सप्ताङ्गं करतलं ५८६
सप्ताष्टनवदशभिः ७७४
सर्पजिह्वश्चर्क्षकान्तिः ८११
सर्पोऽग्निर्दुर्जनो राजा ३४०
स ब्रूते यं धर्म स्यात् ६३७
सभा वा न प्रवेष्टव्या ६३४
सभामध्यां कूपवापी ८६
सभायां प्रत्यगर्द्धस्य १३३
सभायां ये हिता योग्याः ६४८
सभ्यादिभिर्विनिर्णिक्तं ७२६
सभ्याधिकारिप्रकृति १४७
सभ्याधिकारिप्रकृति २५६
सभ्येष्वपक्षपातस्तु ३८८
समक्षं वक्ति न भयात् ५४
समन्यूनाधिकत्वेन् ५३६
समन्यूनाधिकैरंशैः ८२७

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
समानभागिनः कार्याः ७३१
समापतत्सुशस्त्रास्त्र १९३
समाप्तविद्यं सन्दृष्ट्वा १३८
समासतः पुरोधादि १७१
समासतो लेख्यमुक्तं २८३
समासव्यूहहेत्वादि ३१७
समासादुच्यते कृत्यम् १६५
समासाल्लक्षणं कृत्यं १८३
समुद्रं विलिखेयुर्वै २७७
समुद्रलिखितं राज्ञा २४९
समैर्नियुद्धकुशलै ७५९
समोत्तमाधमैः राजा ८५९
समो न्यूनोऽधिको ह्यंशो ७३७
सम्पन्नोऽपि च मेधावी २२८
सम्पाद्यते न पूर्वं हि ९३२
सम्भारदानभोगार्थं ७६२
सम्भारान् सैनिकान्
  कार्या १३७
सम्भोगं कीर्तयेद्यस्तु ७०२
सम्मीलनं प्रसरागं ८४९
सम्यग्विज्ञानसम्पन्नो ६३२
सरसालङ्कृतादुष्ट ५३६
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ५३३
सर्वं यद्यत् कार्य्यजातं २११
सर्वतः फलभुग्भूत्वा ५१२
सर्वतः स्यात् समभुजं ८७
सर्वतस्तु हरेद् दस्यु १४४
सर्वदोषहरोऽश्वानां ८०३
सर्वधर्मावनान्नीच ९०२
सर्वभूतात्मतुल्यो यो २०४
सर्वलोकव्यवहार ५
सर्वविद्यासु कुशलो १४७
सर्वाङ्गानां यथाशोभि ५९६

श्लोकाः पृष्ठाङ्क
सर्वाङ्गैः सर्वरम्यो हि ५८८
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु ४०१
सर्वानापदि सदसि ९२२
सर्वाभीष्टकरं नीति ६
सर्वे शृणुत कर्त्तव्य २५२
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं ५६०
सर्वोपजीवकं लोक ३
सर्वोपायैस्तथा कुर्यात् ४३४
स वक्ता गुणतुल्यांस्तान् १२१
सवयः सारवेशोच्च ७६१
सवृद्धिकं गृहीतं यद् २६१
ससङ्करचतुर्वर्ण ३००
ससङ्करश्चतुर्वर्णा ५६५
ससहायः सदा च स्यात् ४१०
स साधुस्तस्य देवा हि ४१३
सहवासोऽन्यपुरुषैः ३१०
सहस्रग्रामपो नित्यं ९३४
सहस्रचापप्रमितं ७९९
सहस्रस्तम्भसंयुक्तः ५९८
सहस्रादधिके मुक्ता ४९२
सहस्रेऽपहृते चाग्निः ७१२
सहायगौरवाद् विद्या ४५२
सहायपुष्टं यद्दुर्गं ७५१
सहायवान् सहामात्यः १६४
सहायसैन्यदुर्गे तु ७४९
साक्षिणं श्रावयेदेव ६९८
साक्षिभिर्लिखितैर्भोगै १८१
साक्षिसभ्यावसन्नानां ७२४
सागमो दीर्घकालश्च ७०२
साक्षिमद्रिक्थ्यभिमतं ६८६
साङ्ग्रामिकश्च कत्यस्ति १७९
सातपत्रपदत्राणो ३०३
सात्त्विकं राजसं चैव १२

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
सात्त्विकी राजसी देव	५७९
सादिनश्च तथा कार्य्याः	१९३
साद्यस्कश्चैव प्राचीन	२६०
साद्धाङ्गुलं सहास्थानं	७७३
साधनानाञ्च ये दोषा	६८४
साध्यं प्रमाणं द्रव्यं च	६८७
साध्यस्य साधनार्थं हि	६८०
साध्वी मार्य्या पितृपत्नी	३४६
साम दानञ्च भेदश्च	१७९
सामन्तः स नृपः प्रोक्तो	७४
सामन्तादिपदभ्रष्टाः	७७
सामन्तादिसमा ये तु	७६
सामन्तेष्वथ भृत्येषु	२५२
सामान्यं याचितं न्यास	७३७
सामान्यान् दशहस्तैश्च	५६८
सामैव प्रथमं श्रेष्ठं	४३४
साम्मुख्येन प्रपातेन	८७४
सायं प्रातः सैनिकानां	८९०
सायं प्रातश्च हेमन्ते	८००
सार्द्धचतुस्तालमितः	६१२
सार्द्धत्रितालपरिधिः	५९३
सार्द्धद्विकोटिहस्तैश्च	७९
सावधानमना नित्यं	३२०
सावधानमना भूत्वा	१०६
सांसर्गिकं साहचर्यं	४४६
साश्वश्च सगजश्चापि	१००
सास्त्रो दूरं नृपात् तिष्ठेद्	२४३
साहजिकं चाधिकं च	२६२
साहसाधिपतिञ्चैव	१८८
साहस्रिकः शतग्रामी	९३३
साहसेषु च सर्वेषु	६९२
साहस्रिकस्तु संयोज्यः	१९५
सिंहशावा इव घ्नन्ति	९५३

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
सिद्धास्त्रनग्नशस्त्रांश्च	१३९
सिद्धास्त्रो नग्नशस्त्रः सन्	१३६
सीवने कञ्चुकादीनां	५४८
सुपृष्टव्यवहारा ये	२३६
सुवर्णरत्नरजत	२६८
सुहृद्भिर्भ्रातृभिः सार्द्धं	१३३
सुलभासुलंभत्वाच्चा	२७३
सुवर्णरत्नरजत	१८८
सुमन्त्रः पण्डितो मन्त्री	१७३
सुमन्त्रस्तु ततः ख्यातो	१७३
सुवस्त्राद्यैर्भूषयित्वा	१५५
सुदुर्वृत्तास्तु दायादा	१५६
सुकुलश्च सुशीलश्च	१६६
सुनीतिशास्त्रकुशालान्	१५४
सुभार्य्या सुष्ठु चापत्यं	४०८
सुरूपः सधनः स्वामी	३९६
सुभार्यापुत्रमित्राणि	३७३
सुपुण्यो यत्र नृपतिः	४४२
सुभार्यापुत्रमित्रार्थं	३६६
सुनिर्धननत्वं प्राप्यैके	३६९
सुविद्यया सुसेवाभिः	३६८
सुशृङ्गवर्णा सुदुघा	४९९
सुपुष्टं कान्तिमज्जाति	४७४
सुहृत्सम्बन्धिस्त्रीपुत्र	४३०
सुराप्यपि वरो राजा	४४३
सुवर्चिलवणात् पञ्च	८२५
सुताडनैर्विनेया हि	८१५
सुगतिर्दुर्गतिर्नित्यं	७९६
सुगत्याग्निर्बलं दार्ढ्यम्	८०१
सुतस्य सुतदाराणां	७२८
सुकृतं यत् त्वया किञ्चित्	६९८
सुयुद्धकामुकं सारम्	७५७
सुवर्णं द्विशतांशं तु	७४३

श्लोकाः	पृष्ठाङ्क
सुवस्त्राभरणैर्नैव	९१०
सुखान्तलोकविश्वस्ता	८९१
सुदुर्वृत्तं यदा क्षत्रं	८७०
सुवर्चिलवणाद्भागाः	८२५
सुसिद्धाल्पबलः शूरो	८१८
सुविद्यामन्त्रभैषज्य	३३७
सुफलं तु भवेत् कर्म	३२९
सुखं च न विना तस्मात्	३०२
सुसेविताः प्रकुप्यन्ति	३२०
सुश्वेतभालतिलको	७९४
सुप्ते पत्यौ तद्ध्यास्य	५५८
सुजनैः सङ्गतं कुर्यात्	६६
सुनीतिकुशला नित्यं	४
सुकीर्त्यै सन्त्यजेन्नित्यं	५२
सुवर्णं रजतं ताम्रं	४९६
सुशृङ्गवर्णं बलिनो	५००
सूक्ष्मग्रीवं मध्यपुच्छं	८५२
सूचीतुल्यं शकटवत्	८४९
सूज्ज्वलानि च रक्षन्तु	८८८
सेनादुर्गं तु यस्य स्यात्	७५०
सेनाधियाः सैनिकाश्च	१९५
सेनाधिकारे सयोज्या	१३२
सेना युद्धे नियुञ्जीत	९०६
सेनाबलं तु द्विविधं	७५६
सेनाबलं सुभृत्या तु	७५९
सेनासहस्रं सज्जं स्यात्	८८७
सेवया वा वणिग्वृत्त्या	९०६
सेवयात्यन्तप्रबलं	८२०
सेवां विना नृपः पक्षं	२९२
सेवाशौर्य्यादिसन्तुष्टै	२६७
सेव्यसेवकभावेषु	६०९
सैनिकाः कति सन्त्येतैः	१९७
सैनिकाः शिक्षिता ये ये	८९०

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
सैनिकार्थन्तु पण्यानि ८८७
सैनिकैरभ्यसेन्नित्यं ८८९
सैन्यमल्पं बृहद्वापि ८५३
सैन्याद्विना नैव राज्यं ७५४
सोदरेषु च सर्वेषु १६१
सोपधं साधनं यत्र ७१६
सौजन्यात् साधकं मित्रं ७५७
सौदायिकं धनं प्राप्य ७३३
सौवर्णी राजती ताम्री ६०७
सौवर्णै रत्नजैर्वापि २९७
स्कन्धपार्श्वे यदावर्त्तौ ७८५
स्कन्धादि मुष्कमूलान्तं ७७१
स्तम्भैश्च भित्तिभिर्वापि ९१
स्तुत्या वशं यान्ति देवा ४१२
स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थं ९२९
स्त्रीकट्यां परिधिः प्रोक्तः ६१५
स्त्रीणां नामापि संह्लादि ४४
स्त्रीणां शीलाभियोगेषु ७१७
स्त्रीपुंदेहे वामदक्षौ ७८०
स्त्रीपुत्रार्थं कृतो यश्च ४६५
स्त्रीभिर्जितो ऋणी नित्यं ३४८
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च ८५९
स्थानटिप्पनिका चैषा २८०
स्थानभ्रष्टा नो विभान्ति १४३
स्थानसेधः कालकृतः ६५७
स्थावरेषु विवादेषु ७१८
स्थितो मृत्युमुखं चाहं ३७७
स्थूलकुक्षिः सिहंदृक् ७६५
स्निग्धरीपशिखालोक ४२
स्नेहलोभभयक्रोधैः ७००
स्पर्शयेत् पूज्यपादांश्च ७१२
स्मृतिर्विनिर्णयं ब्रूते ६३९
स्मृत्याचारव्यपेतेन ६४८

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
स्मृत्वा नियोगपात्राणि ५५५
स्याकूज्जयोऽवसरोक्त्या सद् ४०७
स्याद् बह्वागमसन्दर्शी ३५१
स्वकनिष्ठं पितृव्यं वा १५२
स्वकनिष्ठोऽपि ज्येष्ठस्य १३०
स्वकार्ये शिथिलो यः स्यात् ४७७
स्वक्रीयवृत्तज्ञानार्थं २५७
स्वकुलोत्पन्नकन्यायाः १५७
स्वगमान्यगमा चेति ७५३
स्वगमा या स्वयं गन्त्री ७५४
स्वजनैर्न विरुध्येत ३२१
स्वतन्त्रः साधयन्नर्थान् ७२१
स्वतन्त्राः सर्व एवैते ७२९
स्वत्वनिर्वर्त्तको द्वेधा २६६
स्वदुर्गुणश्रवणतो ४१३
स्वदुर्गुणान् स्वयं चातो ४१२
स्वधर्मं परमं मत्वा ९१६
स्वधर्मस्थं ब्राह्मणं हि ४०१
स्वधर्मनिरतान् शूरान् १५२
स्वधर्मनिरता नित्यं १९५
स्वधर्माचरणे दक्षो २०२
स्वनामाकृतयश्चैते ६०९
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता ५६०
स्वप्रजादण्डभेदैश्च ४३६
स्वप्रजादण्डनाच्छ्रेयः ४४१
स्वप्रजाधर्मसंस्थानं ६२६
स्वप्रजानां न भेदेन ४३६
स्वभागभृत्या दास्यत्वे ७६
स्वभावतो भवन्त्येते ४२६
स्वभावसद्गुणे यस्मात् ९११
स्वभावोक्तं वचस्तेषां ६९५

श्लोकाः पृष्ठाङ्काः
स्वभ्यन्तरे स्वभेदाः स्युः २७४
स्वमहत्त्वद्योतनार्थं ८९५
स्वमहत्त्वाच्च यो दिव्यं ७०८
स्वमूलपरिधेः पाद ५९६
स्वयम्भूर्भगवाँल्लोक २
स्वरतः कालतः स्थानात् ५२७
स्वरैरुदात्तादिधर्मैः ५२७
स्वर्णच्छविः पुष्परागः ४८१
स्वर्णस्योत्तमकार्ये तु ७४३
स्वर्णादर्द्धं च रजतात् ५०७
स्वर्णादीनान्तु याथात्म्य ५४७
स्वर्णाद्यलङ्कारकृतिः ५४७
स्ववेशरूपसदृशेन् ९१०
स्वशङ्कितानां सामीप्यं ३५४
स्वसमीपतरं राज्यं ८८३
स्वसम्पत्तिमदान्नैव १५९
स्वसामन्तांश्च सन्धीयात् ८३९
स्वसैन्यात् तु तृतीयांश ८३५
स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैः २४१
स्वस्वजात्युक्तधर्मो यः ५६६
स्वस्वधर्मपरो लोको ५१४
स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थोऽशो ५८१
स्वस्वमुद्राचिह्नितं च २७७
स्वहीनप्रतिप्राकारो ९५
स्वागमी सद्व्ययी पात्रम् ४६६
स्वात्यन्तसन्निकर्षेण १५४
स्वाधिकारिगणस्यापि ८८८
स्वानुरक्तां सुरूपाञ्च १४३
स्वान् दुर्गुणान् परित्यज्य ३४
स्वान्तेऽग्निचूर्णसन्धातृ ८२३
स्वामिकार्ये विनष्टो यः २९४
स्वामित्वं चैव दातृत्वं ४९
स्वामिन्येवानुरक्तो यो ९३०

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
स्वाम्यमात्यसुहृत्कोष	२४
स्वायुषः स्वल्पशेषे तु	९११
स्वाराध्यो नीर्तिमान् राजा	७
स्वावधानं यामिकानां	१९७
स्वीया तथा च सामान्या	९२९
स्वेतरः कार्य्यविज्ञानी	६८९
स्वेष्टदेवस्नपन	७११
स्वेष्टहानिकरः शत्रुः	६२५
(ह)	
हयग्रीवो वराहश्च	६०२
ह्यधिकोऽस्मीति सर्वेभ्यो	३८२
हरिमन्थांश्च माषांश्च	८०१
हरेच्च कर्षकाद्भागं	५०५
हरेत् पादं धनात् तस्य	४५२
हर्म्यं देवगृहं वापि	७३५
हस्तमूलाग्रपरिधिः	५९४
हस्त्यश्ववृषबालस्त्री	४०७
हावभावादिसंयुक्तन्तु	५३९
हिङ्गुलस्य तथा कान्त	८२६
हिङ्ग्वादिरससंयोगात्	५४०
हितं त्वहितवच्चान्ते	९१५
हितं राज्ञश्चाहितं यत्	२४२
हितः शनेरिन्द्रनीलो	४८१
हिताहितं न शृणोति	२३६
हिताहितं पोषणञ्च	१९२
हितापदेष्टा शिष्यस्य	३२
हित्वा प्राक्पश्चिमो यामौ	३४४
हिमांशुमाली च यथा	६६
हिंसा गरीयसी सर्वं	२१८
हिंसास्तेयान्यथाकार्य्ये स्यात्	३०४
हीनं यदा क्षत्रकुलं	८७०
हीनमध्यादिसंयोग	५४६
हीनमध्योत्तमानान्तु	९३५
हीनराज्यो दुष्टभृत्यो	९०१
हीनश्मश्रुनिमेषां च	६०२
हीनाङ्गुलचतुस्ताल	५९३
हीनाङ्ग्यो नाधिकाङ्ग्यश्च	६०३
हीनातिरिक्तं न कटु	१२४
हीना निम्ना छदिर्न स्यात्	९४
हीयते कुसहायेन	१५०
हीयते वर्द्धते नैव	२७०
हृतराज्यस्य निचितं	८९४
हृतराज्यस्य पुत्रादौ	८९४
हृदि विद्ध इवात्यर्थं	६८
हृदि स्कन्धे गले चैव	७८१
हेतुप्रमाणसम्बन्ध	२७०
हेतुलिङ्गौषधीभिर्यो	२१०
हेमकारादयो यत्र	७३४
हेषिते कक्षयोर्हन्यात्	७९७

————*

नीति विषयक पुस्तकें

* अपराध और दण्डशास्त्र । श्रीकौशलकुमार राय
* कौटिलीयअर्थशास्त्र । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । श्रीवाचस्पति गैरोला
* चाणक्यनीतिदर्पण । हिन्दी व्याख्या । डॉ. गुञ्जेश्वर चौधरी
* नीतिवाक्यामृतम् । हिन्दी टीका सहित । रामचन्द्र मालवीय
* पञ्चतन्त्रम् । श्रीविष्णुशर्मा । हिन्दी टीका सहित । श्रीगोकुलदास गुप्त
* प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड । डॉ. हरिहरनाथ त्रिपाठी
* बार्हस्पत्य राज्य-व्यवस्था । डॉ. राघवेन्द्र वाजपेयी
* मनुस्मृतिः । हिन्दी टीका सहित । पं. रामेश्वर भट्ट
* याज्ञवल्क्यस्मृतिः । 'मिताक्षरा' संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित ।
 डॉ. गंगासागर राय
* राजनय के सिद्धान्त और व्यवहार । श्रीमती कृष्णा राय
* विदुरनीतिः । हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ. गुञ्जेश्वर चौधरी
* शुक्रनीतिः । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र
* हितोपदेशः । हिन्दी टीका सहित । पं. रामेश्वर भट्ट

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी